।। श्रीः ।।
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
592

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका-अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

(प्रथम भाग : सृष्टि खण्ड)

सम्पादक एवं टीकाकार
आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्य)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

श्रीपद्ममहापुराणम् (1-7 भाग) – आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2335263

e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण : 2016

₹ 7500 (सात भाग–सम्पूर्ण)

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए

अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर

पोस्ट बॉक्स न. 2113

दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069

वाराणसी 221001

मुद्रक :

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

|| Shri ||

Chaukhamba Surbharti Prakashan
592

Śrīmanmaharṣikṛṣṇadvaipāyanavyāsaviracitaṁ

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM

Hindi Commentary with Śloka Index

(Part I : Sṛṣṭi Khaṇḍa)

Edited with Hindi Commentary by :
Acharya Shivprasad Dvivedi
(Shridharacharya)

Chaukhamba Surbharti Prakashan
Varanasi

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM – Shivprasad Dvivedi

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

Published by :
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Publishers or Distributors*)
K 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001 (India)
Tel. : +91-542-2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

Edition 2016
₹ 7500 (1-7 Part Complete)

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Daryaganj
New Delhi 110002
Tel : +91-11-32996391, +91-11-23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bunglow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

*

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

Printed by :
A. K. Lithographer
Delhi

श्रीमते रामानुजाय नमः
श्रियै नमः, श्रीधराय नमः

अग्रलेख

शास्त्रों में पुराणों की चर्चा अत्यन्त विस्तृत रूप से प्राप्त होती है । यह भी कहा गया है कि पुराण श्रीहरि के विग्रह स्वरूप हैं । जिस तरह सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने के लिए श्रीभगवान् सूर्य शरीरक होकर बाहरी अन्धकार को दूर करने का काम करते हैं, उसी तरह अन्तःकरण के अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए श्रीहरि पुराण शरीर को धारण करते हैं । शास्त्रों में बतलाया गया है कि त्रैवर्णिकों को वेदाध्ययन अवश्य करना चाहिए । श्रुति कहती है— **'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः'** इसी तरह से शास्त्र यह भी बतलाता है कि पुराणों का सदैव श्रवण करना चाहिए ।

पुराणों में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का विस्तृत तथा मनोज्ञ ढंग से प्रतिपादन किया गया है । श्रीमद्भागवत पुराण बतलाता है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ।।
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत् यावता ।
जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा नार्थो यस्येह कर्मभिः ।।

(श्रीमद्भागवत १/२/९-१०)

इन दोनों श्लोकों में चारो पुरुषार्थों में होने वाले परस्पर सम्बन्धों को बतलाया गया है । यह कहा गया है कि धर्म का फल यह है कि संसार के बन्धनों से मुक्त होकर श्रीभगवान् को प्राप्त किया जाय । धर्म के द्वारा यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति प्राप्त कर ली जाती हैं तो यह उसकी सफलता नहीं है । इसी तरह धन का फल यह है कि उसके द्वारा केवल धर्म का अनुष्ठान किया जाय । धन के द्वारा धार्मिक अनुष्ठान न करके यदि कोई भोग की सामग्रियों को प्राप्त करता है तो यह धन का वास्तविक उपयोग नहीं है । भोग की सामग्रियों का परिणाम तो दुःख की प्राप्ति में ही होती है । अतएव भोग की सामग्री को प्राप्त करने के लिए धन का उपयोग धन का दुरुप्रयोग मात्र ही है ।

भोग की सामग्रियों का भी यह सदुपयोग नहीं है कि उन सबों के द्वारा इन्द्रियों की तृप्ति की जाय। भोग की सामग्रियों का उपयोग तो उतनी ही मात्रा में करना चाहिए जितने से जीवनयात्रा चल जाय । अधिक भोग की सामग्रियों का उपयोग तो अनर्थकारी ही होता है । इसीलिए ईशावास्योपनिषद् की श्रुति कहती हैं— **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** अर्थात् परमात्म प्रदत्र भोग सामग्री का उपयोग परित्याग पूर्वक करना चाहिए ।

जीवन का भी यह उपयोग नहीं है कि विभिन्न प्रकार के कर्मों को करते हुए सांसारिक सुखों को तथा आमुष्मिक सुखों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाय । सांसारिक तथा आमुष्मिक सुख तो अल्प और अस्थिर होते हैं । कब तक सांसारिक सुख मिलेगा इसका कोई ठिकाना नहीं है । स्वर्गीय सुख भी सीमित ही होता है । गीता में श्रीभगवान् कहते हैं— **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** अर्थात् किए गये काम्य कर्म जन्य पुण्य जब क्षीण हो जाता है, उस समय देवता ही उस जीव को भूलोक में ढकेल देते हैं । अतएव जीवन का यही सदुपयोग है कि उसके द्वारा स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपाय स्वरूप, विरोधी स्वरूप तथा फलस्वरूप को जानने की शुद्ध जिज्ञासा हो । इन सबों के ज्ञान की जिज्ञासा पुराणों के श्रवण से बड़ी आसानी से हो जाती है ।

समस्त साधनों का यही फल है कि परमात्मा की प्रसन्नता को प्राप्त किया जाय परमात्मा की प्रसन्नता पुराणों के श्रवण से बड़ी आसानी से हो जाती है । इस पद्मपुराण में ही कहा गया है कि—

तस्माद् यदि हरेः प्रीतिरुत्पादे धीयते मतिः । श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्ण रूपिणः ।।

अर्थात् यदि श्रीभगवान् की प्रसन्नता प्राप्त करने की इच्छा हो तो मनुष्यों को निरन्तर पुराणों का श्रवण करना चाहिए, क्योंकि पुराण तो श्रीभगवान् का विग्रह हैं । पुराणों की अनादित का प्रतिपादन करते हुए पद्मपुराण में ही कहा गया है—

'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथम ब्रह्मणा स्मृतम् ।'

पुराणों का विस्तृत रूप एक अरब श्लोकों वाला बतलाया गया है । किन्तु मनुष्यों की आयु अत्यन्त छोटी हैं । इतनी छोटी आयु में विस्तृत पुराण का श्रवण करना सम्भव नहीं है । इसीलिए प्रत्येक द्वापर युग में महर्षि व्यास का आविर्भाव होता है । और वे पुराणों का संक्षिप्त रूप उपन्यस्त करते हैं । उन्होंने ही एक अरब श्लोक वाले पुराण को अठारह पुराणों के रूप में विभक्त करके उसको चार लाख श्लोकों में निबद्ध कर दिया है ।

महर्षि व्यास प्रणीत अठारह पुराणों में श्रीमत् पद्मपुराण का स्थान अत्यन्त महनीय है । विषय तथा आकार की दृष्टि से सभी पुराणों में इस पुराण का दूसरा स्थान है । स्कन्दपुराण में पचासी हजार श्लोक हैं अतएव आकार की दृष्टि से उसका पहला स्थान है और पद्मपुराण में पचपन हजार श्लोक हैं अतएव इस पुराण का पुराणों में दूसरा स्थान हैं ।

पद्मपुराण के वक्ता लोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत हैं । उग्रश्रवा सूतजी अपने पिता लोमहर्षण की ही सन्निधि में पुराणों का श्रवण किए थे और वे अपनी पिता की ही आज्ञा से नैमिषारण्य में जाकर सत्रासीन शौनकादि ऋषियों को इस पुराण को सुनाये । नैमिषारण्य में विद्यमान मुनियों में प्रधान शौनक महर्षि ने सूतजी से कहा—

सर्वे हीमे महात्मानो नानागोत्राः समागताः ।
स्वान्स्वानंशान् पुराणोक्तान् शृण्वन्तु ब्रह्मवादिनः ।।
सम्पूर्णे दीर्घसत्रेऽस्मिन् तांस्त्वं श्रावय वै मुनीन् ।
पाद्मं पुराणं सर्वेषां कथस्व महामते ।।

(पद्मपुराण १/१/२२-२३)

अर्थात् ये सभी अनेक गोत्र वाले ब्रह्मवादी महात्मागण यहाँ आये हुए हैं । ये सभी पुराणोक्त अपने-अपने अंशों का श्रवण करें । हे महामते सूतजी ! आप इन सबों को पद्मपुराण सुनायें । इसके पश्चात् सूतजी ने इस पुराण को सभी ऋषियों को सुनाया ।

सम्पूर्ण पद्मपुराण सात खण्डों में विभक्त है इस पुराण के खण्डों का क्रम इस प्रकार हैं— **१. सृष्टिखण्ड, २. भूमि खण्ड, ३. स्वर्ग खण्ड, ४. ब्रह्मखण्ड, ५. पाताल खण्ड, ६. उत्तर खण्ड, और ७. क्रियायोगसार खण्ड ।**

सृष्टि खण्ड में **बयासी (८२)** अध्याय हैं, भूमिखण्ड में **एक सौ पचीस (१२५)** अध्याय हैं, स्वर्ग खण्ड में **बासठ (६२)** अध्याय हैं, ब्रह्मखण्ड में **छबीस (२६)** अध्याय हैं, पाताल खण्ड में **एक सौ सत्ताइस (१२७)** अध्याय हैं, उत्तर खण्ड में **दो सौ पचपन (२५५)** अध्याय हैं और क्रियायोगसार खण्ड में **छबीस (२६)** अध्याय हैं । इस तरह इस पुराण के अध्यायों की सम्पूर्ण संख्या **सात सौ तीन (७०३)** है ।

इस पुराण के विषयों की चर्चा प्रायः **रसास्वाद** के अन्तर्गत कर दी गयी है, अतः उन सबों का यहाँ वर्णन केवल विष्टपेषण ही होगा, फलतः उन सबों की चर्चा न करके इस अग्रलेख में मैं, इस पुराण के विभिन्न स्थानों में वर्णित विभिन्न संग्राह्य विषयों की ही चर्चा कर रहा हूँ । ऐसे विषयों की भी संख्या इस पुराण में प्रभूत है । अतएव उन सबों को भी मैं संक्षेप में ही उद्धृत कर रहा हूँ ।

सर्वप्रथम पुराणों की महिमा को बतलाते हुए कहा गया है कि सभी शास्त्रों में पुराणों की महिमा प्रधान है, यह ब्रह्माजी ने कहा है—

पुराणं सर्वशास्त्रणां प्रथमं ब्राह्मणास्मृतम् (१/१/४५)

क्योंकि पुराण वेदों के सार स्वरूप हैं तथा वे वेदार्थों को आसानी से समझने के साधन है । इसीलिए महाभारत में महर्षि बादराण ने कहा है—

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । विभेत्याल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।।

अर्थात् वेदार्थ की व्याख्या इतिहासों और पुराणों के आलोक में करना चाहिए । अल्पश्रुत व्यक्तियों से वेद इसलिए भयभीत रहता है कि यह कहीं मेरे अर्थों का अपार्थ न कर दे । श्रीवचनभूषणकार भी कहते हैं—

'वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहास पुराणैः'

अर्थात् वेदार्थ का निश्चय स्मृतियों, इतिहासों और पुराणों के माध्यम से करना चाहिए ।

पुराणों की महिमा के ही प्रसङ्ग में कहा गया है कि अनेक शास्त्रों का विस्तार पूर्वक तथा अनेक वेदों का अच्छी तरह से अभ्यास करने वाले जिस पुरुष ने पुराणों का श्रवण नहीं किया है वह सम्यग् दर्शन वाला नहीं होता है ।

बहुशास्त्रं समभ्यस्य बहुवेदान् सविस्तरान् । पुंसोऽश्रुत पुराणस्य सम्यग्याति न दर्शनम् ।।

(पद्मपुराण ५/१०९/१३)

अतएव सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए पुराणों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है । पुराण पराङ्मुख

मनुष्य बहुज्ञ नहीं हो सकता है । बहुज्ञत्व मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए । बहुज्ञत्व ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति का प्रबल साधन है । एक समय था जबकि सम्पूर्ण भारत वर्ष ज्ञान की प्रभा से प्रकाशित था । मन्त्रों के द्रष्टा, पुराणों, स्मृतियों तथा इतिहासों के प्रणेता, ऋषियों की भरमार थी। सम्पूर्ण भारत वर्ष के लोग शास्त्रीय ज्ञानों से सम्पन्न थे और अपने-अपने वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों का अच्छी तरह से पालन करते थे । सभी राजागण धार्मिक थे, प्रजाएँ सत्कर्म परायण थीं । कहीं भी अत्याचार अनाचार का नाम नहीं सुनायी पड़ता था । किन्तु आज उसी भारत वर्ष में अत्याचार, अनाचार का बोल-बाला है । लोग अपनी संस्कृति, अपनी धार्मिक मार्यादा तथा अपने इतिहास का माखौल उड़ाते हैं और निरन्तर उन्मार्ग पर प्रवृत्त हैं ।

इसका स्पष्ट कारण है कि हम अपनी प्राचीन विरासत को भूल चुके हैं । देश के कोने-कोने में जो हाहाकार मचा है, उसका एक मात्र कारण है कि हम व्यास, वसीष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य आदि महर्षियों को भूल चुके हैं । हम भारत वर्ष की ज्ञान सम्पत्ति महाभारत आदि इतिहासों, पद्मपुराण आदि पुराणों को कभी नहीं पढ़ते हैं । अतएव आज इस बात की आवश्यकता है कि सभी भारतीय अपने प्राचीन इतिहासों, पुराणों तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन करें और उन सबों के ज्ञानालोक से आलोकित हों । इस दृष्टि से इस पद्मपुराण का अत्यधिक महत्त्व है ।

पद्मपुराण में पुराणों के पढ़ने का फल बतलाते हुए कहा गया है कि पुराणों का सदैव श्रवण इसलिए करना चाहिए क्योंकि इसका श्रवण बड़े-से-बड़े पाप को भी उसी तरह से भस्मसात् कर देता है जिस तरह से वनाग्नि वन के वृक्षों को जला देती हैं ।

'पुराणं शृणुयान् नित्यं महापाप दवानलम् ।।'

(पद्मपुराण ३/६२/५९)

इसी प्रकरण में यह भी बतलाया गया है कि पुराण सभी तीर्थों की अपेक्षा अधिक पावन करने वाला है । इसका अत्यल्प अंश का भी श्रवण करने से सर्वपाप प्रणाशक श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं । जिस तरह से सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करने के लिए श्रीहरि सूर्य शरीर धारण करके संसार में विचरण करते हैं, उसी तरह से मानवों के अन्त:करण को ज्ञानालोक से प्रकाशित करने के लिए श्रीहरि ने पुराण रूपी शरीर को धारण किया है । अतएव पुराण अत्यधिक पवित्रकारक हैं । श्रीहरि को प्रसन्न करने के लिए पुराणों का अवश्य श्रवण करना चाहिए । **(पद्मपुराण ३/६१/६०-६३)** ।

श्रीभगवान् ने कृष्णावतार में अर्जुन की रक्षा की और कर्ण का वध कराया; इसके कारणों का उद्घाटन करते हुए पद्मपुराण में बतलाया गया है कि पहले ब्रह्माजी के पाँच मुख थे । चारो दिशाओं में विद्यमान चार मुखों से वे चारो वेदों का उच्चारण करते हैं और पाँचवें मुख से ब्रह्माजी साङ्गोपाङ्ग इतिहासों, पुराणों, रहस्यों एवं संग्रहों के साथ वेदों का अध्ययन करते थे ।

'साङ्गोपाङ्गेतिहासांश्च सरहस्यान् ससङ्ग्रहान् । वेदानधीते वक्त्रेण पञ्चमेनोर्ध्वचक्षुषा ।।'

(पद्मपुराण १/१४/९५)

ब्रह्माजी के इस मुख का इतना प्रकाश था कि उसके प्रकाश में देवता असुर इत्यादि किसी का भी प्रकाश प्रकाशित नहीं होता था । सभी देवता उस तेज के कारण अभिभूत थे । कोई भी देवता ब्रह्माजी

के सामने जाने में समर्थ नहीं था । अन्त में देवताओं ने शङ्करजी की शरणागति की । देवताओं की प्रार्थना से संतुष्ट होकर शङ्करजी ब्रह्माजी के पास गये और अपने बायें हाथ के अङ्गुष्ठ के नख से ब्रह्माजी के उस शिर को काट दिये । किन्तु वह शिर पृथिवी पर नहीं गिरकर शङ्करजी के हाथ में ही सट गया और वे और शङ्करजी ब्रह्मघाती हो गये ।

शङ्करजी के इस कर्म को देखकर ब्रह्माजी के शिर से स्वेद निकला और उस स्वेद से एक पुरुष प्रकट हुआ । वह धनुष धारण किए । तुणीर बाँधे हुए था उसने ब्रह्माजी से पूछा मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ । इस पर ब्रह्माजी ने उस स्वेदज चाण्डाल पुरुष से कहा कि इस शङ्कर को तुम मार डालो। कपाली शङ्करजी इस बात को सुनकर वहाँ से भगे और वह चाण्डाल स्वेदज पुरुष उनका पीछा करने लगा।

शङ्करजी भागते हुए भगवान् नर-नारायण के आश्रम वदरिकाश्रम में गये और उन्होंने भगवान् नारायण से प्रार्थना की कि आप मेरी रक्षा करें । भगवान् नारायण ने कहा— तुम मेरे पौत्र हो; तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय वस्तु नहीं है । श्रीभगवान् के तेज से वह चाण्डाल स्वेदज पुरुष मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने अपना बायाँ हाथ ऊपर की ओर उठाया और कहा कि इसमें तुम अपने त्रिशूल से इसमें छेद करो । शङ्करजी के द्वारा उस भुजा में छेद कर दिए जाने के बाद उससे अत्यधिक मोटी रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी । वह रक्त की धारा पाँच सौ वर्षों तक प्रवाहित होती रही । अन्त में श्रीभगवान् ने शङ्करजी से पूछा कि अभी यह कपाल भरा कि नहीं ? शङ्करजी ने अङ्गुलि डालकर देखा तो उन्होंने कहा यह भर चुका है । इस पर उसे श्रीभगवान् ने देखा और वह ब्रह्मकपाल उनके हाथ से छूटकर पृथिवी पर गिर पड़ा । आज भी अलकनंदा नदी के तट पर वह स्थान ब्रह्मकपाली के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ जाकर लोग अपने पितरों की सद्गति के लिए श्राद्ध करते हैं ।

उस ब्रह्मकपाल से एक पुरुष प्रादुर्भूत हुआ और उसने श्रीभगवान् से कहा आपकी मैं कौन सी सेवा करूँ ? तो श्रीभगवान् ने कहा कि इस चाण्डाल स्वेदज पुरुष को तुम मार डालो । इसके पश्चात् उसने अपने पैर के ठोकरों से माकर उस स्वेदज पुरुष को जगाया और दोनों में युद्ध होने लगा । श्रीभगवान् ब्रह्माजी के पास जाकर कहे कि तुम्हारे स्वेदज पुरुष को मेरा रक्तज पुरुष मार देगा ।

ब्रह्माजी ने कहा मैं चाहता हूँ कि इस युग में मेरा स्वेदज पुरुष जीवित रहे । श्रीभगवान् ने कहा कि ठीक है अगले द्वापर युग के अन्त में मैं उसका वध कराऊँगा ।

श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी से कहा आपने बहुत बड़ा पाप किया है । उस चाण्डाल से आप अपने पुत्र रुद्र का वध कराना चाहते थे । अतएव आप यज्ञ करें जिससे कि आप का पापापनोदन हो सके । श्रीभगवान् के ही आदेश से ब्रह्माजी ने पुष्कर क्षेत्र में जाकर यज्ञ किया ।

ब्रह्माजी के पास से आकर श्रीभगवान् ने रक्तज पुरुष और स्वेदज पुरुष दोनों से कहा कि इस समय तुमलोग युद्ध करना बन्द कर दो । अब मैं तुम दोनों का युद्ध द्वापर युग के अन्त में कराऊँगा । युद्ध बन्द हो जाने के बाद श्रीभगवान् ने सूर्य और इन्द्र दोनों को बुलाया और सूर्य से कहा कि तुम इस स्वेदज पुरुष को अपने पास रख लो और द्वापर के अन्त में इसे कुन्ती के गर्भ में डाल देना । श्रीभगवान् की आज्ञा प्राप्त कर सूर्य उस स्वेदज पुरुष को लेकर चले गये । उसके पश्चात् श्रीभगवान् ने इन्द्र से कहा कि तुम इस रक्तज पुरुष को अपने पास रखो और इसे कुन्ती के गर्भ में डाल देना । इन्द्र ने कहा भगवन् आप

तो सूर्य के पुत्र की रक्षा करते हैं । आपने मेरे पुत्र बालि का वध कर दिया और सूर्य के पुत्र सुग्रीव की रक्षा की श्रीभगवान् ने कहा आने वाले द्वापर में तुम्हारे पुत्र अर्जुन की मैं हर प्रकार से रक्षा करूँगा और सूर्य पुत्र कर्ण का ही वध होगा ।

इसी कारण से श्रीभगवान् ने महाभारत युद्ध में इन्द्र पुत्र अर्जुन की रक्षा की और कर्ण का अर्जुन के द्वारा वध कराया ।

श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के तेरहवें और चौदहवें अध्याय में वेन का चरित्र वर्णित है। महाराज अङ्ग की पत्नी का नाम सुनीथा था वह मृत्यु की पुत्री थी । यहाँ पर यमराज को ही मृत्यु कहा गया है । महाराज अङ्ग की कोई सन्तान नहीं थी । अपने अनपत्य दोष को दूर करने के लिए उन्होंने याग विशेष भी किया, किन्तु वे अपने प्रयास में विफल रहे । उनके याग में ऋत्विजों ने बड़े ही सावधानी पूर्वक सारा कार्य सम्पन्न किया, किन्तु उस याग में ब्रह्मवादियों के द्वारा आहूत होने पर भी कोई देवता नहीं आया और न देवताओं ने उस याग के हविष्य को ही ग्रहण किया । उसके कारण का भी कोई पता नहीं चलता था । सदसस्पतियों ने बतलाया कि आपका कोई एक प्राचीन पाप है जिसके कारण आप निःसन्तान हैं **'अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक्त्वमप्रजः'** (श्रीमद्भागवत ४/१३/३१) । अतएव आप श्रीहरि की आराधना करें । श्रीहरि आपको पुत्र प्रदान करेंगे ।

इसके पश्चात् अङ्ग ने श्रीहरि की आराधना की जिसके फल स्वरूप सुनीथा के गर्भ से पुत्र पैदा हुआ उसका नाम वेन था वह आगे चलकर महानास्तिक हुआ । उसके फलस्वरूप मुनयों ने अपने तेज के द्वारा उसको मार दिया । उसके पश्चात् ऋषियों ने वेन के हृदय का मन्थन किया और उससे निषाद की उत्पत्ति हुयी । फिर वेन के हाथों का मन्थन करने से सपत्नीक महाराज पृथु का प्रादुर्भाव हुआ ।

किन्तु यहाँ अनेक प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते हैं । जैसे— वह कौन पाप था जिसके कारण महाराज अङ्ग अनपत्य थे ? महाराज पृथु के आविर्भूत होने के पश्चात् वेन का क्या हुआ ? वे नरकगामी हुए या स्वर्गगामी हुए ? इत्यादि ।

श्रीमत्पद्मपुराण में इन समस्त प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है । वहाँ बतलाया गया है कि यमराज की एकमात्र सन्तान सुनीथा थी । वह प्रायः अपने पिता के साथ ही रहा करती थी । वह देखती थी उसके पिता अनेक पापी जीवों को अनेक प्रकार से दण्ड देते हैं ।

एक बार वह उपवन में विचरण करती हुयी देखी कि वहाँ पर कोई गन्धर्व मुनि भगवदाराधन कर रहा है । सुनीथा ने बिना विचार किए ही उस मुनि को कोड़ों से मारा । मुनि कुछ नहीं बोले और सुनीथा ने इस घटना को अपने पिता को बतलाया भी; किन्तु यमराज उसे कुछ नहीं बोले । उन्होंने सुनीथा को यह नहीं बतलाया कि अकारण किसी को दण्ड नहीं दिया जाता है । यह यमराज की गलती थी । इसी बात को लेकर पुराणों में यह भी कहा गया है कि वेन के पापी होने में उसके मातामह का भी दोष था।

दूसरे दिन सुनीथा ने जाकर उस गन्धर्व मुनि को पुनः मारा तो मुनि ने उसे शाप दे दिया कि तुम्हारी सन्तान पापीयसी होगी । सुनीथा ने लौटकर उस शाप की बात को बतलाया तो यमराज दुःखी हो गये। उन्हें अपना दोष भी प्रतीत हुआ । यमराज ने सुनीथा का विवाह किसी देवता या ऋषि से कर देना चाहा; किन्तु उस अप्रतिम सुन्दरी सुनीथा के साथ सबों ने विवाह करने से इनकार इसलिए कर दिया कि वे लोग जान गये थे कि सुनीथा अभिशप्त है ।

सुनीथा भी अपने अपराध के कारण अत्यन्त दु:खी थी । उस समय उसकी सखी रम्भा ने उसको एक मोहन मन्त्र बतलाया, उसके कारण आकृष्ट होकर अङ्ग ने उससे विवाह कर लिया । अङ्ग का पुत्र पहले तो धार्मिक था वेन । किन्तु दैव प्रेरित जैन मुनि के द्वारा उपदिष्ट होकर वह वेद विरोधी हो गया और अपने राज्य में सत्कर्मों के अनुष्ठान को राजाज्ञा की घोषणा पूर्वक निषेध कर दिया । उसी के फलस्वरूप वह मुनियों के क्रोध का पात्र बन गया और मुनियों के शाप से उसकी मृत्यु हो गयी ।

पद्मपुराण में यह चर्चा आयी हैं कि महाराज पृथु के प्रादुर्भाव के पश्चात् वेन जीवित हो गये । वे सद्बुद्धि हो गये और अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना की । उनकी आराधना से भगवान् प्रकट हुए, उनको वरदान प्रदान किए । इसके पश्चात् उनकी मुक्ति हो गयी ।

इस तरह से पुराणों की कथाओं में अनेक अनसुलझे प्रसङ्ग हैं जिन सबों का उत्तर पद्म पुराण के अध्ययन करने से प्राप्त हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण के सोलह हजार पत्नियों को कोल-भिल्लों ने क्यों लूट लिया ? श्रीभगवान् की वे पत्नियाँ अपने पूर्व जन्म में कौन थी ? उन सबों को किसका-किसका शाप प्राप्त था ? जिसके फलस्वरूप उन सबों का अपहरण कोल-भिल्लों ने किया ।

साथ ही यह भी प्रश्न होता है कि कोल-भिल्लों के द्वारा अपहरण किए जाने के कारण वेश्यात्व को प्राप्त उन पत्नियों का क्या हुआ ? वे नरक गामिनी हो गयीं क्या ? यदि वे स्वर्गगामिनी हुयीं तो कैसे ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर पद्मपुराण में वर्णित है । कथाओं की दृष्टि से तो पद्मपुराण कथाओं का विश्वकोश ही है ।

कथाओं के अतिरिक्त पद्मपुराण में कुछ ऐसे विषयों का भी वर्णन है जिन विषयों को समान्यत: सभी लोग जान लेना चाहते है । उन विषयों की जानकारी की अभीप्सा प्राय: सभी संस्कृताध्येताओं को रहती हैं । अतएव उन विषयों की चर्चा नीचे के अनुच्छेदों में की जा रही है ।

एकादश रुद्रों के नाम— एकादश रुद्र इस प्रकार हैं— १. निऋति, २. सन्ध्य, ३. अयोनिज, ४. मृगव्याध, ५. कपर्दी, ६. महाविश्वेश्वर, ७. अहिर्बुध्न्य, ८. कपाली, ९. पिङ्गल, १०. सेनानी और ११. महातेजा ।

निऋतिश्चैव सन्ध्यश्च तृतीयश्चाप्ययोनिज: । मृगव्याध: कपर्दी च महाविश्वेश्वरश्च स: ।।
अहिर्बुध्न्यश्च भगवान् कपाली चैव पिङ्गल: । सेनानी च महातेजा रुद्राश्चैकादश स्मृता: ।।

(पद्मपुराण १/४२/८४-८५)

द्वादश आदित्यों के नाम— १. इन्द्र, २. विष्णु, ३. भग, ४. त्वष्टा, ५. वरुण, ६. अर्यमा, ७. रवि, ८. पूषा, ९. मित्र, १०. वरद, ११. धाता तथा १२. पर्जन्य । ये देवताओं में श्रेष्ठ द्वादशादित्य हैं ।

इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंशोऽर्यमारवि: ।
पूषा मित्रश्च वरदो धाता पर्जन्य एव हि ।।
इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठा स्त्रिदिवोकसाम् ।।

(पद्मपुराण १/४२/१०१)

विश्वेदेव— धर्म की पत्नी विश्वा के गर्भ से उत्पन्न देवताओं को विश्वेदेव कहा गया है । वे हैं— १. दक्ष, २. महाबाहु, ३. पुष्कर, ४. तम, ५. चाक्षुष, ६. अत्रि, ७. भद्र, ८. महेश्वर, ९. विश्वान्तकवसु, १०. बाल, ११. निकुम्भ, १२. रुरुदु, १३. अतिसिद्धौजा, और १४. भास्करप्रमितद्युति ।

(पद्मपुराण १/४२/९३-९५)

छह आततायियों के नाम

अग्निदोगरदश्चैव धनहारी चसुप्रघः । क्षेत्रदारापहरीच षडेते ह्याततायिनः ।।

(पद्मपुराण १/४८/५८)

अर्थात् छह प्रकार के लोग आताताायी कहे जाते हैं—

१. अग्निद— किसी के घर में आग लगाने वाला ।

२. गरदः— छल पूर्वक विष देने वाला ।

३. धनहारी— धन को चुराने वाला ।

४. सुप्तधः— सोये हुए को मारने वाला ।

५. क्षेत्रापहारी— किसी के खेत को कब्जा लेने वाला और

६. दारापहारी— दूसरे की पत्नी का अपहरण करने वाला ।

छह प्रकार के जीवों का स्पर्श हो जाने पर स्नान कर लेना चाहिए वे है— **पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोमांसभक्षी, कुत्ता, रजस्वला नारी तथा भिल्ल** इन छहों में से किसी का भी स्पर्श हो जाने पर स्नान करना चाहिए ।

पतितं कुष्ठसंयुक्तं चा गवाशिनम् ।
श्वानं रजस्वलां भिल्लं स्पष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ।।

(पद्मपुराण १/४८/३२)

महर्षि दुर्वासा के शाप से धर्मराज के तीन जन्म

भरतानां कुले जातो धर्मो भूत्वा युधिष्ठिरः ।
विदुरो दासीपुत्रस्तु अन्यं चैव वदाम्यहम् ।।
यदा राजा हरिश्चन्द्रः विश्वामित्रेण कर्षितः ।
तदा चाण्डालतां प्राप्तः स हि धर्मो महामतिः ।।

(पद्मपुराण २/१२/१२७-१२८)

धर्मराज भरतवंशीयों के वंश में युधिष्ठिर के रूप में जन्म लिए । उनका दूसरा जन्म दासी पुत्र विदुर के रूप में हुआ । महर्षि विश्वामित्र ने जब राजा हरिश्चन्द्र को कष्ट दिया उस समय महाबुद्धिमान् धर्मराज चाण्डाल के रूप में उत्पन्न हुए ।

छह प्रकार के लोगों से कन्या का विवाह न करे

अत्यासन्नेऽतिदूरस्थे चात्याढ्ये चातिदुर्गते ।
कुलहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते ।।

(पद्मपुराण १/५४/९७)

अत्यन्त सन्निकट रहने वाले, अत्यन्त दूर रहने वाले, अत्यन्त धनी, अत्यन्त गरीब, जिसके वंश का कोई पता ही न हो तथा मूर्ख इन छह प्रकार के लोगों से कन्या का विवाह न करे ।

स्त्रियों के बारह प्रकार के स्वाभाविकभूषण

रूपंमेव गुणः स्त्रीणां प्रथमं भूषणं शुभे। शीलमेव द्वितीयं च तृतीयं सत्यमेव च ।।
आर्जवत्वं चतुर्थं च पञ्चमं धर्मो वरानने। शुद्धत्वं सप्तमं बाले अन्तर्बाह्येषुयोषितम् ।।
अष्टमं हि पितुर्भावः शुश्रूषा नवमं किल। सहिष्णुर्दशमं प्रोक्तं रतिश्चैकादशं तथा ।।
पातिव्रत्यं तथा प्रोक्तं द्वादशं वरवर्णिनि ।।

(पद्मपुराण २/३४/३०-३३)

हे शुभे ! स्त्रियों का प्रथम भूषण उनका सुन्दर रूप है । दूसरा भूषण शील नामक गुण है, तीसरा भूषण सत्यवादिता है, चौथा ऋजुता है । हे वरानने ! स्त्रियों का पाचवाँ भूषण धर्म का पालन है, सातवाँ भूषण स्त्रियों की आभ्यन्तर तथा बाह्यशुद्धि है । आठवाँ भूषण पिता के प्रति श्रद्धा का भाव है, नवाँ भूषण सेवा करने की भावना है, दशवाँ भूषण सहिष्णुता है, ग्यारहवाँ भूषण पति से प्रेम करना है । हे सुन्दरि! स्त्रियों का बारहवाँ भूषण पातिव्रत्य का पालन है ।

छह जयन्तियों का वर्णन

जन्माष्टमी च नवमी चैत्रेमासे सिताशुभाः। कृष्णाचतुर्दशी कुम्भे, मेषे शुक्ला चतुर्दशी।।
दुर्गाष्टम्याश्विने शुक्ला, द्वादशीश्रवणान्विता। महापुण्याश्च शुभदा जयन्त्यः षट्प्रकीर्तिता।।

(पद्मपुराण ४/४/६-७)

विष्णुभक्तिपरा नित्यं जयन्ती व्रत मानसाः । ते धन्यास्ते कुलीनास्ते ईश्वरास्ते च पण्डिताः ।।

जन्माष्टमी, चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी, कुम्भ राशि में सूर्य के होने पर आने वाली कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, मेष मास में आने वाली शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में आने वाली दुर्गाष्टमी तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी । ये छह अत्यन्त पवित्र तथा कल्याण करने वाली छह जयन्तियाँ कही गयी हैं ।

जो लोग सदैव भगवान् विष्णु की भक्ति करते हैं तथा जिनका मन जयन्ती व्रत में लगा रहता है वे लोग धन्य हैं, कुलीन हैं, स्वामी हैं तथा ज्ञानी हैं ।

अठारह उपपुराणों के नाम

आद्यं सनत्कुमाराख्यं नारसिंहमतः परम् । तृतीयमाण्डमुद्दिष्टं दौर्वाससमथैव च ।।
नारदीयं तथान्यच्च कापिलं मानवं तथा । तद्वदौशनसं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च तथा परम् ।।
वारुणं कालिकाह्वानं, महेशं साम्बमेव च । सौरं पाराशरं चैव मारीचं भार्गवाह्वयम् ।।
कौमारं च पुराणानि कीर्तितान्यष्टवै दश ।।

(पद्मपुराण ५/११५/९४-९७)

१. सनत्कुमार पुराण, २. नरसिंह पुराण, ३. आण्ड पुराण, ४. दुर्वासा पुराण, ५. नारदीय पुराण, ६. कपिल पुराण, ७. मनु पुराण, ८. उशना पुराण, ९. ब्रह्माण्ड पुराण, १०. वरुण पुराण, ११. कलिका पुराण, १२. शिव पुराण, १३. साम्बपुराण, १४. सूर्य पुराण, १५. भृगुपुराण, १६. मारीच पुराण, १७. पराशर पुराण तथा १८. कार्तिकेय पुराण । ये अठारह उपपुराण कहे गये हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों का नाम

रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजीती सुलक्षणा ।
मित्र विन्दाऽनुविन्दा सुनन्दा जाम्बवती प्रिया ।।
सुशीला चाष्टमहिला वासुदेव प्रियास्ततः ।।

१. रुक्मिणी, २. सत्यभामा, ३. नग्नजीती, ४. मित्रविन्दा, ५. अनुविन्दा, ६. सुनन्दा, ७. जाम्बवती तथा सुशीला ये भगवान् श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ हैं ।

पाँच गुरुओं के नाम

या भावयति, या सूते, येनविद्योपदिश्यते ।
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः ।।

(पद्मपुराण ३/५१/३६-३७)

१. पालन पोषण करने वाली स्त्री, २. जन्म देने वाली, ३. विद्योपदेश करने वाले आचार्य, ४. बड़ा भाई और ५. स्वामी ये पाँच गुरु कहे गये हैं ।

शीघ्र बुढ़ापा के पाँच कारण

शीतमध्वा कदन्नं च वयोतीताश्च योषितः ।
मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः ।।

(पद्मपुराण २/७८/२९)

१ ठंढी, २. प्रतिदिन चलते रहना, ३. खराब अन्न का भोजन, ४. बूढ़ी पत्नियाँ तथा ५. मन की प्रतिकूलता ये शीघ्र बुढ़ापा आने के पाँच कारण हैं ।

संन्यासियों के तीन भेद

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद वेदसंन्यासिनः परे । कर्म संन्यासिनस्त्वन्ये वित्रिधाः परिकीर्तिताः ।।
यः सर्वत्र विनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः । प्रोच्यते ज्ञान संन्यासी आत्मन्येव व्यवस्थितः ।।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशीर्निष्प्रतिग्रहः । प्रोच्यते वेदसन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ।।
यस्त्वग्निमात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः । ज्ञेयः सः कम्र संन्यासी महायज्ञ परायणः ।।
त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानीत्वभ्यधिको मतः । न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वाविपश्चितः ।।

(पद्मपुराण ३/५९/५-९)

कुछ ज्ञान संन्यासी होते हैं, कुछ वेद संन्यासी होते हैं इन दोनों से भिन्न कर्म संन्यासी होते हैं । इस तरह तीन प्रकार के संन्यासी कहे गये हैं । जो सर्वत्र विनिर्मुक्त रहते हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार का द्वन्व नहीं रहता है अतएव वे सर्वत्र निर्भय रहते हैं । ऐसे आत्मलीन रहने वाले ज्ञानसंन्यासी कहे जाते हैं।

जो सदैव वेद का ही अभ्यास करते रहते हैं, वे उदासीन रहकर परिग्रह रहित होते हैं । किसी से कुछ दान नहीं लेते हैं ऐसे संन्यासी वेद संन्यासी कहे जाते हैं । वे मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा वाले जितेन्द्रिय होते हैं जो लोग अग्नि को आत्मसात् करके सब कुछ परं ब्रह्म परमात्मा को ही अर्पित कर देते हैं । ऐसे ब्राह्मण को कर्म संन्यासी जानना चाहिए । वे सदा पञ्च महायज्ञ का अनुष्ठान करते रहते हैं ।

इन तीनों प्रकार के संन्यासियों में जो ज्ञानी होता है वही श्रेष्ठ हैं । उसके लिए न तो कुछ भी कर्तव्य हैं और न उसका कोई चिह्न होता है । वह सर्वज्ञ होता है ।

निःसन्तान होने के कारण

पूर्व जन्म में जो मनुष्य ब्राह्मण की वृत्ति का अपहरण कर लेता है अथवा किसी दूसरे से उसका अपहरण करवा देता है वह इस जन्म में पुत्रहीन होता है । जो नारी पूर्व जन्म में दूसरे के बालक को छल पूर्वक मार दिए रहती है वह पुत्रहीन होती है । जल में डूबते हुए बालक को देखकर भी जो उसको नहीं बचाते है वे स्त्री अथवा पुरुष इस जन्म में पुत्रहीन होते हैं । हे द्विज ! जो पूर्वजन्म में अतिथि को निराश कर दिए रहता है और उस पर क्रोध करके उसे दण्ड देता है वह अवश्य पुत्रहीन होता हैं ।

पूर्वजन्मनि यो मर्त्यो वर्तन ब्राह्मणस्य च ।
हरेद् वा हारयेदत्र पुत्रहीनो भवेत् किल ।।

(पद्मपुराण ४/५/७)

पूर्वजन्मनि या नारी पर बालक घातनम् ।
करोति कपटेनैव बालहीना भवेद् ध्रुवम् ।।

(पद्मपुराण ४/५/१०)

जले निमग्नं बालं यो दृष्ट्वा या न समुद्धरेत् ।
इह जन्मन्यपुत्रो वै साऽपुत्री च भवेद् ध्रुवम् ।।

(पद्मपुराण ४/५/१३)

पूर्वजन्मनि यो मर्त्यो निराशं चातिथिं द्विज ।
कुर्यात् क्रोधेन दण्डं च पुत्रहीनो भवेद् ध्रुवम् ।।

(पद्मपुराण ४/५/१७)

नित्य स्नान का महत्त्व

प्राणिनां जीवनं वारि प्राणा वारिणि संस्थिताः ।
नित्यं स्नानेन पूयन्ते येऽपि पातकिनो नराः ।।
प्रातःस्नानं हरेद्वैश्य बाह्याभ्यन्तरजं मलम् ।
प्रातः स्नानेन निष्पापो नरो न निरयं व्रजेत् ।।
स्नानं बिना तु यो भुङ्क्ते मलाशी स सदा नरः ।।

(पद्मपुराण ३/३१/५३-५५)

जल प्राणियों का जीवन है और प्राण जल पर ही टिके रहते हैं । नित्य स्नान करने वाले पापी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं । हे वैश्य ! प्रातःस्नान वाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार के मलों को दूर करता है । प्रातः स्नान करने के कारण पाप रहित मनुष्य नरक में नहीं जाता है । स्नान किए बिना ही भोजन करने वाला मनुष्य सदा मल को ही खाता है ।

नरकगामी मनुष्यों के लक्षण

नास्तिका भिन्नमर्यादाः कन्दर्पविषयोन्मुखाः ।
दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै निरयगामिनः ।।

(पद्मपुराण २/९६/३)

ब्राह्मणेभ्यः प्रतिश्रुत्य न प्रयच्छन्ति ये धनम् ।
ब्रह्मस्वानां च हर्तारो नरा निरयगामिनः ।।

(२/९६/४)

सुकूपानां तड़ागानां प्रपाणां च परन्तप ।
सरसां दूषकाश्चैव तेवं निरयगामिनः ।।

(पद्मपुराण २/९६/८)

काष्ठैर्वा शङ्कुभिर्वापि शूलैरश्मिभिरेव वा ।
ये मार्गमुपरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ।।

(पद्मपुराण २/९६/१०)

नियमान् पूर्वमादाय पश्चादजितेन्द्रियाः ।
अतिक्रामन्ति चाञ्चल्यात् ते वै निरयगामिनः ।।

(पद्मपुराण २२९६/१९)

जो मनुष्य नास्तिक, मर्यादा का उल्लंघन करने वाला तथा कामपरायण रहकर सदा विषयोपभोग में लगा रहने वाला अभिमान करने वाला और कृतघ्न होता हैं वह नरकगामी होता हैं ।

जो लोग ब्राह्मणों को दान करने की प्रतिज्ञा करके उन सबों को धन नहीं प्रदान करते है, तथा ब्राह्मणों की सम्पत्ति का अपहरण करने वाले मनुष्य नरकगामी होते हैं । सुन्दर कूप तलाब, प्याऊँ और सरोवर को दूषित करने वाले मनुष्य नरकगामी होते हैं । जो लोग काष्ठ से, कील से, शूल से या रस्सी से रास्ते को बन्द कर देते हैं वे नरकगामी होते हैं । जो व्यक्ति किसी व्रत को करके जितेन्द्रिय नहीं होने के कारण उसका अतिक्रमण कर देते हैं, वे लोग नरकगामी होते हैं ।

गीत की प्रशंसा

गीतं सर्वरसं प्रोक्तं गीतमानन्ददायकम् ।
शृङ्गाराद्या रसाः सर्वे गीतेनापि प्रतिष्ठिताः ।।
शोभामायान्ति गीतेन वेदाश्चत्वार उत्तमाः ।
गीतेन देवताः सर्वास्तोषमायान्ति नान्यथा ।।

(पद्मपुराण २/४६/२६-२७)

गीतों में सभी रस विद्यमान रहते हैं, गीत आनन्दप्रद होता है शृङ्गार आदि सभी रस गीत से प्रतिष्ठित हैं चारो उत्तम वेदों की शोभा गीत से ही होती है । सभी देवता गीत से सन्तुष्ट होते हैं, किसी अन्य साधन से नहीं ।

धन की प्रशंसा

धनाद् धर्मः प्रभवति धनाच्च विपुलं यशः ।
धनात् कुलमवाप्नोति भवेत् किं वां धनादृते ।।
धनहीनं जनं दृष्ट्वा सखापि वा पलायते ।
मेघः शरद्यम्बुहीनः खण्डं खण्डं नयेन् महत् ।।
खादितुं प्राप्यते यावत् तावदेव हि बान्धवाः ।।

(पद्मपुराण ७/४/२५-२७)

धन से ही धर्म बढ़ता है, धन से महान् यश प्राप्त होता है । धन से ही वंश की समृद्धि होती है, धन के बिना क्या हो सकता है ? निर्धन मनुष्य को देखकर उसका मित्र भी उससे दूर भग जाता है । शरद् ऋतु में जल से रहित बड़ा से बड़ा भी मेघ टुकड़े-टुकड़े हों जाता है । लोग जब तक खाने के लिए प्राप्त करते हैं तब तक भी बान्धव बने रहते हैं ।

अतिथि पूजा का वर्णन

गृहिणां परमो धर्मः प्रोक्तश्चातिथि पूजनम् ।
बहन्ति अतिथि पूजायां दक्षतां गृहितो यदि ।।
तदा प्रयोजनं तेषां किमन्यैः पुण्यकर्मभिः ।
यस्य न श्रूयते नाम न च गोत्रं न च स्थितिम् ।।
अकस्माद् गृहमागेच्छेत् सोऽतिथिः प्रोच्यते बुधैः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वापि वैश्या वा वृषलास्तथा ।
गृहागताः हि पूज्या हि विष्णुवत् तत्त्वदर्शिभिः ।।

(पद्मपुराण ७/२५/२९-३२)

गृहस्थों का सबसे बड़ा धर्म अतिथि पूजन को कहा गया है । यदि गृहस्थ अतिथि की पूजा करने में दक्षता प्राप्त करते हैं तो उनको दूसरे पुण्य कर्मों को करने से कोई लाभ नहीं है । जिसका न तो नाम ज्ञात हो, न गोत्र ज्ञात हो और न जिसकी स्थिति ज्ञात हो वह अकस्मात् यदि घर आ जाय तो उसको विज्ञ पुरुष अतिथि कहते हैं । इस तरह का यदि ब्राह्मण या क्षत्रिय, या शूद्र भी आ जाय तो तत्त्वज्ञ पुरुष को उसकी पूजा भगवान् विष्णु के समान करनी चाहिए ।

तुलसी के गुणों का वर्णन

यत्र यत्र गृहे ग्रामे वने वा तुलसी भवेत् ।
गृहे तस्मिन्न दारिद्र्यं न योगो बन्धुसम्भवः ।।
न दुःखं न भय रोगः तुलसीयत्र तिष्ठति ।
तुलसी गन्धमाघ्राय यत्र गच्छति मारुतः ।।
दिशो दश च ताः पूता भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
यस्मिन् गृहे मुनिश्रेष्ठ तुलसीमूल मृत्तिका ।।
सर्वदा तत्र तिष्ठन्ति देवताश्च शिवोहरिः ।।

(पद्मपुराण ६/२५/२९-३५)

जिस किसी भी गृह में, ग्राम में, या वन में तुलसी होती है उस गृह में न तो दरिद्रता होती है और न बान्धवों का वियोग होता है । तुलसी की सुगन्धि को लेकर वायु जिन दिशा में जाती है, वे दशो दिशाएँ पवित्र हो जाती हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस घर में तुलसी के जड़ की मिट्टी रहती है, उस गृह में सभी देवता, शिव तथा श्रीहरि का निवास बना रहता है ।

इस तरह स्पष्ट है कि पद्मपुराण में अनेक संग्राह्य विषयों का स्थान-स्थान पर वर्णन है । इस पुराण में सर्वश्रेष्ठ देवता श्रीभगवान् को बतलाया गया है । श्रीभगवान् ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने का काम करते हैं । कल्प पर्यन्त जगत् की रक्षा करते हैं तथा प्रलय काल की बेला आने पर वे ही रुद्र शरीर धारण करके उसका उपसंहार करते हैं । तैत्तिरीयोपनिषद की भृगुबल्ली की श्रुति भी बतलाती हैं **''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि, जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्ब्रह्म ।''** अर्थात् जिससे ये सम्पूर्ण भूत

उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए भूत जिससे जिसके द्वारा रक्षित होते हैं तथा प्रलय काल में जिसमें जाकर लीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म है, उसी की उपासना करो । महर्षि बादरायण ने भी ब्रह्म सूत्र में कहा है । "**जन्माद्यस्य यतः ।**" (शारीरक मीमांसा १/१/२) अर्थात् जिससे इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि (रक्षा तथा संहार) होते हैं, वही ब्रह्म है ।

श्रीपद्मपुराण में भगवान् विष्णु के माहात्म्य के साथ ही उनके अवतारों के चरितों का भी विशद वर्णन है । भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं का इस पुराण में विस्तृत रूप से वर्णन है । इस पुराण के पाताल खण्ड में श्रीराम चरित का विस्तृत वर्णन सम्पुलब्ध होता है । इस पुराण के अनुसार श्रीजानकीजी श्रीरामाश्वमेध की समाप्ति की बेला में अयोध्या में आती हैं और श्रीभगवान् के साथ अवभृथ स्नान करके पुनः सिंहासनासीन होती है । इस खण्ड में कई कल्पों की श्रीराम कथा वर्णित है ।

इस पुराण में वृन्दावन तथा अयोध्या का भी माहात्म्य विस्तृत रूप से वर्णित है । श्रीवैष्णवों की द्वादशशुद्धि, पाँच प्रकार की पूजा, शालग्राम भगवान् के विविध रूपों का विस्तार से वर्णन, उनकी महिमा का वर्णन, तिलक विधि, भगवत्सेवा तथा भगवतापराध, उन अपराधों से बचने का उपाय, तुलसी के वृक्ष की महिमा, तुलसी के गुण तथा तुलसी की स्तुति का भी वर्णन इस पुराण में किया गया है ।

वर्ष भर के भिन्न-भिन्न मासों में श्रीभगवान् की पूजनविधि का वर्णन भी इस पुराण में विस्तार से वर्णित है । वदरिकाश्रम तथा भगवान् नारायण की महिमा, गङ्गाजी की महिमा, त्रिरात्र तुलसी व्रत की विधि जन्माष्टमी व्रत की महिमा, बारह मासों में होने वाली एकादशियों का माहात्म्य, एकादशी व्रत की विधि तथा एकादशी व्रत की उत्पत्ति इस पुराण में वर्णित है । श्रीभगवान् की भक्ति, श्रीवैष्णवों की श्रेष्ठता, नृसिंह चतुर्दशी व्रत की महिमा, श्रीमद्भगवद् गीता के अठारहों अध्यायों का पृथक्-पृथक् माहात्म्य, श्रीमद् भागवत महापुराण का माहात्म्य, नीलाचल पर स्थित भगवान् पुरुषोत्तम की महिमा आदि भी इस महापुराण में विस्तार से वर्णित है । अनेक प्रकार के व्रतों का भी इसमें विस्तृत वर्णन है ।

इस तरह स्पष्ट है कि यह महापुराण मानव जीवन को सन्मार्ग में प्रवृत्त करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

चौखम्बा सुरभारती के **संस्थापक स्वर्गीय श्रीनवनीत दासजी गुप्त** ने मुझे इस पुराण को अनूदित करने के लिए कई बार प्रोत्साहित किया । उसके पश्चात् मेरी इस कार्य को करने में प्रवृत्ति हुयी और श्रीभगवान् की महती कृपा के फल स्वरूप इस पुराण का अनुवाद कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न भी हो गया। इस पुराण का कार्य करने के लिए मैंने खेमराज श्रीकृष्णदास मुम्बई से प्रकाशित श्रीपद्ममहापुराण को प्राप्त करने का प्रयास किया किन्तु उस प्रकाशन की प्रति मुझे नहीं प्राप्त हो सकी । इसके बाद मुझे नाग प्रकाशन की प्रति से ही सन्तोष करना पड़ा । किन्तु नाग प्रकाशन की प्रति अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण उससे काम करने में बड़ी ही कठिनाई होती थी । कुछ समय के पश्चात् मैंने चौखम्बा वाराणसी से प्रकाशित पद्मपुराण की प्रति प्राप्त की । नाग प्रकाशन की अपेक्षा इस प्रकाशन की प्रति कुछ अच्छी थी और उसी के अनुसार मैंने अनुवाद का कार्य सम्पन्न किया ।

प्रस्तुत प्रकाशन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जो श्लोकानुक्रमणिका दी गयी है, उसमें

प्रत्येक **श्लोकों के खण्ड, अध्याय तथा श्लोकांक के साथ-साथ पृष्ठांक भी दिया गया है ।** मैं समझता हूँ कि इसमें पाठकों को अत्यधिक सुविधा होगी ।

इस कार्य के अक्षर संयोजन का कार्य मेरे छोटे आत्मज **श्रीसंजय द्विवेदी** ने बड़े मनोयोग से किया है मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ । यद्यपि इस प्रकाशन में ग्रन्थ की शुद्धि बनाये रखने के लिए अधिक प्रयास किया गया है फिर भी मानव स्वभाव के अनुसार होने वाले प्रमादादि दोषों के कारण अशुद्धियों का रह जाना भी स्वाभाविक ही है । उसके लिए मैं इस पुराण के सुधी पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
पूर्व प्राचार्य— श्रीहनुमत् संस्कृत महाविद्यालय
हनुमानगढ़ी, श्रीअयोध्याजी, उ. प्र., भारत

विषयानुक्रम

१. सृष्टिखण्ड

ॐ श्रीविष्णवे नमः
श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय नमः
श्रीमन्महामुनि वेदव्यास प्रणीत

श्रीपद्ममहापुराण

पहला अध्याय

मङ्गलाचरण

ॐ स्वच्छं चंद्रावदातं करिकरमकरक्षोभसंजातफेनम् ।
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैःसेवितं विप्रमुख्यैः ॥
ॐ कारालंकृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणादृष्टिपूतम् ।
संभोगाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं वः पुनातु ॥१॥

सूतमेकांतमासीनं व्यासशिष्यं महामतिः । लोमहर्षणनामा वा उग्रश्रवसमाह तत् ॥२॥
ऋषीणामाश्रमांस्तात गत्वा धर्मान्समासतः । पृच्छतां विस्तराद्ब्रूहि यन्मत्तः श्रुतवानसि ॥३॥
वेदव्यासान्मया पुत्र पुराणान्यखिलानि च । तवाख्यातानि प्राप्तानि मुनिभ्यो वद विस्तरात् ॥४॥
प्रयागे मुनिवर्यैश्च यथा पृष्टः स्वयंप्रभुः । पृष्टेन चानुशिष्टास्ते मुनयो धर्मकांक्षिणः ॥५॥
देशं पुण्यमभीप्संतो विभुना च हितैषिणा । सुनाभं दिव्यरूपं च सत्यगं शुभविक्रमं ॥६॥

पुराण का उपक्रम और उसका स्वरूप

जो चन्द्रमा के समान धवल एवं स्वच्छ है, जिसमें हाथी के सूंढ़ के समान आकार वाले घड़ियालों के सञ्चरण करने के कारण फेन उत्पन्न होता रहता है; ब्रह्माजी की उत्पत्ति की कथा वार्ता में संलग्न व्रत एवं नियम परायण श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका सेवन करते हैं, ओङ्कार का जप करने वाले ब्रह्माजी ने जिसे अपनी दृष्टि से पवित्र बना दिया है, जो पीने में अत्यन्त स्वादिष्ट तथा अपनी विशालता के कारण अत्यन्त रमणीय है, वह पुष्कर तीर्थ का, पापों को विनष्ट करने वाला जल; हम सबों को पवित्र बना दे॥१॥ एकान्त में बैठे हुए तथा व्यासजी के शिष्य उग्रश्रवा नामक सूत से महाबुद्धिमान रोमहर्षण नामक सूत ने कहा ॥२॥ हे वत्स ! ऋषियों के आश्रमों में जाकर जिन धर्मों का तुमने मुझसे संक्षेप में सुना है, उन धर्मों को उनके प्रश्नानुसार उन्हें विस्तार से सुनाओं ॥३॥ हे पुत्र ! महर्षि वेदव्यासजी से मैंने जिन पुराणों का श्रवण किया है, उन सबों को मैंने तुम्हें सुना दिया है, उन सबां को तुम मुनिजनों को विस्तार पूर्वक सुनाओं ॥४॥ प्रयाग क्षेत्र में धर्म को चाहने वाले मुनियों ने जिस प्रकार से भगवान् नारायण से प्रश्न किया था और उन्होंने जिस प्रकार से उन्हें उपदेश दिया उसे सुनो ॥५॥ वे ऋषि गङ्गा तट पर सर्वव्यापक तथा सर्वहितकारी श्रीभगवान् से

अनौपम्यमिदं चक्रं वर्तमानमतंद्रिताः। पृष्ठतो यात नियमात्पदंप्राप्स्यथ यद्धितम् ॥७॥
गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्रनेमिर्विशीर्यति। पुण्यः स देशो मंतव्य इत्युवाच स्वयंप्रभुः ॥८॥
उक्त्वा चैवमृषीन्सर्वानदृश्यत्वमगात्पुनः । गंगावर्तसमाहारो नेमि र्यत्र व्यशीर्यते ॥९॥
ईजिरे दीर्घसत्रेण ऋषयो नैमिषे तदा । तत्र गत्वा तु तान्ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंशयान् ॥१०॥
उग्रश्रवास्ततो गत्वा ज्ञानविन्मुनिपुंगवान्। अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्वा कृतांजलिः ॥११॥
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् । ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महात्मने॥१२॥

ऋषयऊचुः

तस्मै समेत्य पूजा च यथावत्प्रतिपेदिरे। कुतस्त्वमागतः सूत कस्माद्देशादिहागतः॥१३॥

सूत उवाच

कारणं चागमे ब्रूहि वृंदारकसमुद्युते । पित्राहं तु समादिष्टो व्यासशिष्येण धीमता॥१४॥
शुश्रूषस्वमुनीन् गत्वा यत्ते पृच्छंति तद्वद । वदंतु भगवंतो मां कथयामि कथां तु याम्॥१५॥
पुराणं चेतिहासं वा धर्मानथ पृथग्विधान्। तां गिरं मधुरां तस्य शुश्रुवु र्ऋषिसत्तमाः॥१६॥
अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत । दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लौमहर्षणिम् ॥१७॥
तस्मिन्सत्रे कुलपतिस्सर्वशास्त्रविशारदः । शौनको नाम मेधावी र्विज्ञानारण्यके गुरुः॥१८॥
इत्थं तद्भावमालंब्य धर्माञ्छुश्रूषुराह तम्। त्वया सूत महाबुध्दे भगवान्ब्रह्मवित्तमः॥१९॥

पवित्र देश (स्थान) को जानना चाहते थे। उन सबों से श्रीभगवान् ने कहा— यह चक्र सुन्दर नाभि वाला तथा दिव्यरूप वाला है, यह सत्यगामी, कल्याणकारी विक्रम सम्पन्न तथा अनुपम है। आप सभी सावधानी पूर्वक तथा नियम का पालन करते हुए इसके पीछे-पीछे जायँ, ऐसा करने से आपलोग उस पवित्र स्थान को प्राप्त कर लेंगे ॥६-७॥ इस जाने वाले धर्म चक्र की नेमि जहाँ विशीर्ण हो जाय उसी को पवित्र स्थान मानना चाहिए ॥८॥ उन सभी ऋषयों से इस प्रकार कहकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये। उसके बाद वह धर्मचक्र गङ्गावर्त नामक स्थान पर गया और वहाँ वह नेमि शीर्ण होकर गिर पड़ा ॥९॥ उसके बाद ऋषियों ने वहाँ उस नैमिष क्षेत्र में दीर्घ सत्र के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना प्रारम्भ की। तुम वहाँ पर जाकर उन ऋषियों के धर्म के विषय में होने वाले सन्देह को दूर करो॥१०॥ उसके बाद ज्ञान के स्वरूप को जानने वाले, उग्रश्रवा (सूतजी) उन श्रेष्ठ ऋषियो के पास गये। उनके पास जाकर उन्होंने उन ऋषियों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥११॥ मेधा सम्पन्न सूतजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन ऋषियों को सन्तुष्ट किया। वे सत्रनिष्ठ महर्षिगण ने भी सदस्यों के साथ प्रसन्न होकर एक साथ महात्मा सूतजी की सविधि पूजा की। **ऋषियों ने पूछा**— हे सूतजी ! आप यहाँ पर किस देश से आये हैं ? और किसलिए आये हैं ?॥१२-१३॥ हे देवताओं के समान कान्ति से सम्पन्न ! आप अपने आने का प्रयोजन बतलायें। **सूतजी ने कहा**— व्यासजी के बुद्धिमान् शिष्य मेरे पिता (रोमहर्षण) ने मुझे आदेश दिया है कि तुम जाकर मुनियों की सेवा करो तथा वे जो पूछें, उन्हें बतलाओं। अतएव, हे ऐश्वर्यसम्पन्न मुनिजन ! आपलोग बतलाएँ कि मैं आपलोगों को कौन सी कथा सुनाऊँ?॥१४-१५॥ पुराणों को ? या इतिहासों को ? या अनेक प्रकार के धर्मो को ? उन श्रेष्ठ ऋषियां ने सूतजी की उस मधुर वाणी को सुना ॥१६॥ उसके बाद रोमहर्षण सूत के पुत्र तथा विश्वस्त विद्वान् उग्रश्रवा सूतजी को देखकर उन लोगों की पुराण का श्रवण करने की इच्छा हुयी ॥१७॥ उस सत्र के कुलपति सभी शास्त्रों में निपुण शौनक महर्षि थे। वे मेधावी तथा विज्ञान रूपी आरण्यक भाग के प्रवक्ता थे ॥१८॥ धर्मो का श्रवण करने की इच्छा

इतिहासपुराणार्थंव्यासः सम्यगुपासितः । दुदोहिथ मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां शुभाम्॥२०॥
अमीषां विप्रमुख्यानां पुराणं प्रतिसम्प्रति । शुश्रूषाऽऽस्ते महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥२१॥
सर्वे हीमे महात्मानो नानागोत्राः समागतः। स्वन् स्वानंशान्पुराणोक्ताञ्छृण्वन्तु ब्रह्मवादिनः ॥२२॥
संपूर्णे दीर्घसत्रेस्मिंस्तांस्त्वं श्रावय वै मुनीन् । पाद्मं पुराणं सर्वेषां कथयस्व महामते ॥२३॥
कथं पद्मं समुद्भूतं ब्रह्मा तत्र कथंन्वभूत्। प्रोद्भूतेन कथं सृष्टिः कृता तां तु तथा वद॥२४॥
एवं पृष्टस्ततस्तांस्तु प्रत्युवाच शुभां गिरम्। सूक्ष्मं च न्यायसंयुक्तं प्राब्रवीद्रौमहर्षणिः ॥२५॥
प्रीतोस्म्यनुगृहीतोस्मि भवद्भिरिहचोदनात् । पुराणार्थं पुराणज्ञैःसर्वधर्मपरायणैः ॥२६॥
यथाश्रुतं सुविख्यातं तत्सर्वं कथयामि वः । धर्म एष तु सूतस्य सद्भिर्दृष्टः सनातनः ॥२७॥
देवतानामृषीणां च राज्ञां चामिततेजसाम्। वंशानां धारणं कार्यं स्तुतीनां च महामनाम्॥२८॥
इतिहासपुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिनः । नहि वेदेष्वधिकारः कश्चित्सूतस्य दृश्यते ॥२९॥
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः। मागधश्चैव सूतश्च तम स्तौतांनरेश्वरम् ॥३०॥
तुष्टेनाथ तयोर्दत्तो वरो राज्ञा महात्मना । सूताय सूतविषयो मगधो मागधाय च ॥३१॥
तत्र सूत्यां समुत्पन्नः सूतो नामेह जायते । ऐन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्ते बृहस्पतौ ॥३२॥
तमेवेंद्रं बार्हस्पतये तत्र सूतो व्यजायत । शिष्यहस्तेन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ॥३३॥

वाले वे सभी महर्षियों से उनकी श्रद्धा का भाव जानकर सूतजी से कहे— महाबुद्धिमान् सूतजी आपने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! भगवान् व्यासजी की अच्छी तरह से उपासना; इतिहास एवं पुराण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया है और उनकी पुराण विषयिणी मङ्गलमयी बुद्धि का अच्छी तरह से आपने लाभ उठाया है ॥१९-२०॥ हे महाबुद्धे ! इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की इस समय पुराणों की कथा को सुनने की इच्छा है, अतएव आप इन्हें उसे ही सुनाएँ ॥२१॥ अनेक गोत्रों के ये सभी महात्मा ब्राह्मण यहाँ पधारे हैं; अतएव ये सभी ब्रह्मवादी अपने-अपने वंश के विषय में पुराणों में वर्णित अंश का श्रवण करें ॥२२॥ इस सम्पूर्ण दीर्घसत्र में, हे महामते ! आप इन सबों को पद्मपुराण की कथा सुनायें ॥२३॥ पद्म कैसे उत्पन्न हुआ ? उस पर ब्रह्माजी किस प्रकार प्रकट हुए? उत्पन्न होकर उन्होंने सृष्टि कैसे की? इन सारी बातों को आप इन लोगों को सुनायें ॥२४॥ इस प्रकार से पूछे जाने पर रोमहर्षण के पुत्र सूतजी सूक्ष्म अर्थों से परिपूर्ण, सुन्दर न्याय युक्त वाणी में कहने लगे ॥२५॥ महर्षियों ! आपलोगों के पुराण विषयक प्रश्न को सुनकर मुझे बड़ी ही प्रसन्नता हुयी है। आपलोगों ने यह पूछ कर मुझे अनुगृहीत किया है । धर्म परायण तथा पुराणों के अर्थ को जानने वाले महापुरुषों से मैंने जैसा सुना है, उसी तरह से मैं उस पुराण के अर्थ को आपलोगों को सुनाऊँगा । सूतों का यही सनातन धर्म नतलाया है ॥२६-२७॥ कि वे ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों, इतिहासों तथा पुराणों में जिनका वर्णन किया है उन देवताओं तथा निस्सीम तेजः सम्पन्न राजाओं की वंशपरम्परा को याद रखें और महापुरुषों की स्तुति करें । कहीं भी सूत जाति का वेदों में अधिकार नहीं बतलाया गया है ॥२८-२९॥ जिस समय वेन के पुत्र महाराज पृथु का ऐन्द्र याग हो रहा था, उसमें बृहस्पति स्वयं आचार्य थे । उसी समय सूत और मागध की उत्पत्ति हुयी। मागध तथा सूत इन दोनों ने महाराज पृथु की स्तुति की ॥३०॥ उससे प्रसन्न होकर महाराज पृथु ने वरदान के रूप में सूत को सूत देश प्रदान कर दिया और मागध को मगध देश का राज्य दे दिया ॥३१॥ क्षत्रिय के वीर्य से ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम सूत हुआ । गुरु का हविष्य शिष्य के हाथ से संपृक्त होकर नीचे तथा ऊपर के धार से गिरा, उसी से वर्णसङ्कर की उत्पत्ति हुयी । वे वर्णसङ्कर क्षत्रिय के वीर्य तथा ब्राह्मणी के गर्भ

अधरोत्तरधारेण जज्ञे तद्वर्णसंकरम् । येत्र क्षत्रात्समभवन् ब्राह्मण्याश्चैव योनितः ॥३४॥
पूर्वेणैव तु साधर्म्याद्विधर्मास्ते प्रकीर्तिताः । मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षेत्रोपजीविनः ॥३५॥
पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह । दृष्ट्वा धर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३६॥
तस्मात्सम्यग्भुवि ब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् । पितॄणां मानसी कन्या वासवं समपद्यत ॥३७॥
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्यगर्भे बभूव सा । अरणीव हुताशस्य निमित्तं पुण्यजन्मनः ॥३८॥
तस्यां बभूव पूतात्मा महर्षिस्तु पराशरात् । तस्मै भगवते कृत्वा नमः सत्यायवेधसे ॥३९॥
पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मवाक्यानुवर्तिने । मानवच्छद्मरूपाय विष्णवे शंसितात्मने ॥४०॥
जातमात्रं च यं वेदउपतस्थे ससंग्रहः । मतिमंथानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ॥४१॥
प्रकाशो जनितो लोके महाभारतचंन्द्रमाः । भारतं भानुमान्विष्णुर्यदि न स्युरमीत्रयः ॥४२॥
ततोऽज्ञानतमोंधस्य का वस्था जगतो भवेत् । कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ॥४३॥
को ह्यन्यः पुंडरीकाक्षान्महाभारतकृद्भवेत् । तस्मादहमुपाश्रौषं पुराणं ब्रह्मवादिनः ॥४४॥
सर्वज्ञात्सर्वलोकेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः । पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥४५॥
उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम् । त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥४६॥
निःशेषु च लोकेषु वाजिरूपेण केशवः । ब्रह्मणस्तु समादेशाद्वेदानाहतवानसौ ॥४७॥

से उत्पन्न हुए थे । उसी से ऐन्द्र बार्हस्पत्य यज्ञ में सूत उत्पन्न हुए ॥३२-३४॥ पहले साधर्म्य (सदृशता) होने के कारण वे सूत जाति में उत्पन्न लोगों के लिए ये मध्यम कोटि के धर्म बतलाये गये हैं ॥३५॥ ब्राह्मणों ने मेरा पुराणों में अधिकार बतलाया है । आप सभी ब्रह्मवादी हैं । अतएव धर्म का विचार करके ही मुझे पुराण की कथा कहने को आपलोगों ने कहा है ॥३६॥ अतएव मैं पृथिवी पर ऋषियों द्वारा पूजित पुराण का अच्छी तरह से वर्णन करूँगा । पितरों की मानसिक पुत्री उपरिचर॥३७॥ वसु के वीर्य में इसलिए प्रविष्ट हो गयी कि पितरों ने उसका अपध्यान किया था; वही उपरिचर वसु के तेज से उत्पन्न होने के कारण अरणि से उत्पन्न अग्नि के समान देदीप्यमान रूप से मत्स्या के गर्भ से उत्पन्न हुयी ॥३८॥ उस मत्स्यगर्भा के ही गर्भ से महर्षि पराशर के पुत्र तथा अत्यन्त पवित्र महर्षि व्यासजी उत्पन्न हुए । उन सत्य स्वरूप तथा पुराणों के स्रष्टा, पुराणपुरुष तथा ब्रह्मा के वाक्य का अनुवर्तन करने वाले, भगवान् विष्णु के अंशावतार तथा श्लाघ्य, व्यासजी को नमस्कार करके, मैं आपलोगों को पुराणों की कथा को सुनाऊँगा ॥३९-४०॥ उपन्न होते ही व्यासजी को संग्रहों (अङ्गों और उपाङ्गों) के साथ वेद उपस्थित (ज्ञात) हो गये। उन्होंने अपनी बुद्धिरूपी मथानी से वेद रूपी सागर का मन्थन करके संसार में महाभारत रूपी चन्द्रमा का प्रकाश फैलाया । अर्थात् वेदों के सार रूप से महाभारत का निर्माण किया। महाभारत, सूर्य तथा भगवान् विष्णु यदि ये तीन नहीं होते ॥४१-४२॥ तो अज्ञानान्धकार से आवृत संसार की न जाने कौन सी अवस्था होती ?। कृष्णद्वैपायन व्यास को भगवान् नारायण ही जानना चाहिए।॥४३॥ भगवान् पुण्डरीकाक्ष को छोड़कर महाभारत का रचयिता दूसरा कौन हो सकता है ? उन्हीं ब्रह्मज्ञानी के सन्निकट में, मैंने पुराणों का श्रवण किया है ॥४४॥ जो व्यासजी सर्वज्ञ, सम्पूर्ण लोकों में पूजित और महातेजस्वी हैं, उनकी ही सन्निधि में मैंने पुराणों का श्रवण किया है । ब्रह्माजी ने पुराण को समस्त शास्त्रों में प्रधान बतलाया है।॥४५॥ यह सम्पूर्ण लोकों के विषय में सभी प्रकार के ज्ञानों को उपन्न करने वाला सर्वोत्तम साधन है । यह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) की प्राप्ति का पवित्र साधन है । इसका विस्तार सौ करोड़ श्लोक परिमित है ॥४६॥ भगवान् केशव अश्व का रूप धारण करके सभी लोकों में ब्रह्माजी के आदेश से वेदों को समादृत

अंगानि चतुरो वेदान्पुराणन्यायविस्तरम्। असुरेणाखिलं शास्त्रमपहृत्यात्मसात्कृतम् ॥४८॥
मत्स्यरूपेणाजहार कल्पादावुदकार्णवे। अशेषमेतदवददुदकांतर्गतो विभुः॥४९॥
श्रुत्वा जगाद च मुनीन्प्रतिवेदांश्चतुर्मुखः । प्रवृत्तिस्सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा॥५०॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः । व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे॥५१॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ। तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोके स्मिन्प्रकाशितम् ॥५२॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्। तदेवात्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् ॥५३॥
प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पाद्मज्ञितम् । सहस्त्रं पञ्चपञ्चाशतपंचखण्डैस्समन्वितम् ॥५४॥
तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्याद्भूमिखण्डं ततः परम्। स्वर्गखण्डं ततः पश्चात्ततः पातालखण्डकम्॥५५॥
पञ्चमं चततः ख्यातमुत्तरं खण्डमुत्तमम् । एतदेवमहापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत् ॥५६॥
तद्वृत्तान्ताश्रयं यस्मात्पाद्ममित्युच्यते ततः । एतत्पुराणममलं विष्णुमाहात्म्यनिर्मलम्॥५७॥
देवदेवो हरिर्यद्वै ब्रह्मणेप्रोक्तवान्पुरा। ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ॥५८॥
एतदेव च वैब्रह्मापाद्मंलोके जगाद वै । सर्वभूताश्रयं तच्च पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥५९॥
पाद्मं तत्पंचपंचाशत्सहस्त्राणीह पठ्यते । पंचभिः पर्वभिः प्रोक्तं संक्षेपाद्व्यासकारितात् ॥६०॥
पौष्करं प्रथमं पर्व यत्रोत्पन्नः स्वयं विराट् । द्वितीयं तीर्थपर्वस्यात्सर्वग्रहगणाश्रयम्॥६१॥

किए (अर्थात् वेदों का प्रचार किए) ॥४७॥ छह वेदाङ्गों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष्) चारो वेदों, पुराणों तथा न्याय शास्त्र इत्यादि समस्त शास्त्रों को चुराकर हयग्रीव नामक असुर पाताल लोक में चला गया॥४८॥ कल्प के प्रारम्भ में सर्वव्यापक श्रीभगवान् जल समुद्र में मत्स्य का रूप धारण करके उस राक्षस का वध करके सम्पूर्ण शास्त्रों को लाये तथा उसका उपदेश ब्रह्माजी को दिए ॥४९॥ श्रीभगवान् के मुख से वेदों का श्रवण करके ब्रह्माजी ने उसका उपदेश भिन्न-भिन्न मुनियों को दिया । उस समय से ही सभी शास्त्रों तथा पुराणों का प्रचार हुआ ॥५०॥ समयानुसार उस विस्तृत पुराण का श्रवण करना तथा अध्ययन करना; असंभव देखकर उसका विभाग करने के लिए श्रीभगवान् प्रत्येक द्वापर युग में व्यासजी के रूप से अवतीर्ण होते हैं ॥५१॥ प्रत्येक द्वापर में विस्तृत पुराण का चार लाख श्लोकों में संक्षेप करके तथा अठारह भागों में विभक्त करके इस भूलोक में व्यासजी प्रकाशन किया करते हैं ॥५२॥ इस समय भी देवताओं के लोकों में पुराण सौ करोड़ श्लोकों वाला है । उसी का इस भूलोक में व्यासजी ने चार लाख श्लोकों में संक्षेपण किया है ॥५३॥ मैं आपलोगों को पचपन हजार श्लोकों तथा पाञ्च खण्डों से युक्त अत्यन्त पवित्र पद्मपुराण को सुनाऊँगा ॥५४॥ इसका पहला खण्ड सृष्टिखण्ड है, दूसरा खण्ड भूमिखण्ड है, उसके बाद स्वर्गखण्ड है, इसका चतुर्थ खण्ड पातालखण्ड है ॥५५॥ इसका उत्तम पाञ्चवाँ खण्ड उत्तरखण्ड है । श्रीभगवान् की नाभि से महापद्म उत्पन्न और उसी से यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ ॥५६॥ उस महापद्म के वृत्तान्त से सम्बद्ध होने के कारण इस पुराण का नाम पद्म पुराण है । इस निर्मल महापुराण में भगवान् विष्णु का निर्मल माहात्म्य वर्णित है ॥५७॥ देवदेव (देवाराध्य) श्रीहरि ने सर्वप्रथम इस पुराण का उपदेश ब्रह्माजी को दिया । उसके बाद ब्रह्माजी ने उसका उपदेश मरीचि महर्षि को दिया ॥५८॥ ब्रह्माजी ने सभी भूतों के आश्रय रूप से पद्मपुराण का ही लोक में उपदेश किया इसलिए विद्वान् लोग इसे पद्मपुराण कहते हैं ॥५९॥ इस पद्मपुराण के पचपन हजार श्लोक इस लोक में पढे जाते हैं । महर्षि व्यास के द्वारा संक्षिप्त किए जाने के कारण पाञ्च पर्वों में भी पढ़ा जाता है ॥६०॥ इसका पहला पर्व पौष्कर पर्व है, पुष्कर (कमल) पर ही विराट् की उत्पत्ति हुयी । इसका सभी ग्रहों

तृतीयपर्वग्रहणा राजानो भूरिदक्षिणाः । वंशानुचरितं चैव चतुर्थे परिकीर्तितम् ॥६२॥
पंचमे मोक्षतत्वं च सर्वतत्वं निगद्यते। पौष्करे नवधा सृष्टिः सर्वेषां ब्रह्मकारिता ॥६३॥
देवतानां मुनीनां च पितृसर्गस्तथापरः । द्वितीये पर्वताश्चैव द्वीपाः सप्तसागराः ॥६४॥
तृतीयेतरूद्रसर्गस्तु दक्षशापस्तथैव च । चतुर्थे संभवो राज्ञां सर्ववंशानुकीर्त्तनम्॥६५॥
अन्त्येपवर्गसंस्थानं मोक्षशास्त्रा नुकीत्तनम् । सर्वमेतत्पुराणेऽस्मित्कथयिष्यामि वो द्विजाः ॥६६॥

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदंपितॄणामतिवल्लभं स्यात् ।
इदं च देवस्य सुखाय नित्यमिदं महापातकभिच्च्व पुंसाम् ॥६७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पुराणावतारे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीय अध्याय

सूत उवाच

नमस्ये सर्वलोकानां विश्वस्य जगतः पतिम् ।
य इमं कुरुते भावं सृष्टिरूपं प्रधानवित् ॥१॥

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय योगवित्। असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥२॥
तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम्। पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं विभुम् ॥३॥

के वर्णन से संबद्ध दूसरा तीर्थ पर्व है ॥६१॥ तीसरे पर्व में बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले राजाओं का वर्णन है । चौथे पर्व में वंशानुचरित का वर्णन है ॥६२॥ पाँचवाँ पर्व मोक्षपर्व है, उसी में सभी तत्त्वों का वर्णन है । पौष्कर पर्व में ब्रह्माजी के द्वारा की गयी नव प्रकार की सृष्टियों का वर्णन है ॥६३॥ पहला सर्ग देवसर्ग है, दूसरा सर्ग मुनियों का सर्ग है । उसके बाद पितृसर्ग का वर्णन है । दूसरे पर्व में पर्वतों, द्वीपों तथा सात सागरों का वर्णन है ॥६४॥ तीसरे पर्व में रुद्र सर्ग का वर्णन तथा दक्ष के शाप का वर्णन है । चतुर्थ सर्ग में बड़े-बड़े राजाओं की उत्पत्ति का वर्णन है। तथा विभिन्न वंशों का वर्णन है॥६५॥ अन्तिम पर्व में अपवर्ग उसके संस्थान तथा मोक्षशास्त्र का वर्णन है । हे ब्राह्मणों! इन सारी बातों को मैं इस पुराण में सुनाऊँगा ॥६६॥ यह पुराण अत्यन्त पवित्र है, यश का सागर है । यह पितृगणों को अत्यन्त प्रिय पुराण है । यह श्रीभगवान् को सदा सुख देने वाला है और यह पुरुषों के बड़े-से-बड़े पापों को विनष्ट करने वाला है ॥६७॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के सृष्टिखण्ड के पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

सृष्टिखण्ड की विषयानुक्रमणिका तथा भीष्म पुलस्त्य संवाद

सूतजी ने कहा— मैं सम्पूर्ण लोकों के स्वामी, जगत्पति श्रीभगवान् को नमस्कार करता हूँ । जो भगवान् प्रधानतत्व (प्रकृति तत्त्व) के वेत्ता हैं तथा जगत् की सृष्टि करने वाले हैं ॥१॥ जो लोकों के कर्त्ता हैं, लोकतत्त्व के

ब्रह्मविष्णुगिरीशेभ्यो नमस्कृत्वा समाहितः। इंद्राय लोकपालेभ्यः सवित्रेच समाधिना ॥४॥
मुनीनांच वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने । तद्वक्त्रे भाततपसे जातूकर्ण्याय चाक्षुषे ॥५॥
तस्मै भगवते नत्वा वेदव्यासाय वेधसे। पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यानुवर्तिने॥६॥
तस्मादहमुपाश्रौषं पुराणं ब्रह्मवादिनः । सर्वज्ञात्सर्वलोकेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः ॥७॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । महदादिविशेषांतं सृजती तिविनिश्चयः ॥८॥
अण्डे हिरण्मयेपूर्वं ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा । अण्डस्यावरणं चाद्भिरपामपि च तेजसः ॥९॥
वायुना तस्य वायोः खात्तद्भूतादित आवृतम्। भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेनावृतो महान् ॥१०॥
प्रादुर्भावश्च लोकानामंड एवोपवर्णितः। नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भावोऽनुवर्ण्यते ॥११॥
मन्वंतराणां संक्षेपात्कल्पानां चोपवर्णनम्। ब्रह्मवृक्षलयब्रह्मप्रजासर्गोपवर्णनम् ॥१२॥
कल्पानां संचरश्चैव जगतःस्थापनं तथा। शयनं च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं पुनः ॥१३॥
दशधा जन्मसंचारो भृगुशापेन केशवे। सन्निवेशो युगादीनां सर्वाश्रमविभाजनम्॥१४॥
स्वर्गस्थानविभागश्च मर्त्यानां स्वर्गचारिणाम्। पशूनां पक्षिणां चैव संभवः परिकीर्त्तितः ॥१५॥
तथानिर्वचनं कल्पं स्वाध्यायस्य परिग्रहः। प्रतिसर्गाः पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः ॥१६॥

ज्ञाता हैं। वे योग के वेत्ता हैं उन्होंने ही योग को अपनाकर इन समस्त चराचर जीवों की सृष्टि की है ॥२॥ पुराण की कथा को जानने की इच्छा वाला मैं उन्हीं, अज, सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा, सर्वज्ञ, लोकसाक्षी तथा व्यापक प्रभु की शरणागति करता हूँ ॥३॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश को सावधानी पूर्वक नमस्कार करके; देवराज इन्द्र को; समस्त लोकपालों को तथा भगवान् सूर्य को समाधि पूर्वक नमस्कार करके ॥४॥ मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ महर्षि को, उनको पुराणों का उपदेश करने वाले तपस्वी जातुकर्ण्य एवं चाक्षुष को एवं पुराणों की सृष्टि करने वाले महर्षि भृगु के वाक्यों का अनुसरण करने वाले पुराण पुरुष भगवान् व्यासजी को नमस्कार करके (मैं इस कथा को कह रहा हूँ) ॥५॥ उन्हीं ब्रह्मज्ञानी, सर्वज्ञ, समस्त लोकों में पूजित, महातेजस्वी वेदव्यासजी से मैंने पुराणों का श्रवण किया है ॥७॥ जो जगत् के उपादान कारण स्वरूप प्रकृति हैं, वह (प्रकृति ही) सदा चेतनाचेतनात्मक महत् तत्त्व से लेकर महाभूत पर्यन्त (समस्त प्राकृतिक तत्त्वों) की सृष्टि करती हैं। (उससे उत्पन्न हुए) हिरण्मय ब्रह्माण्ड में ब्रह्माजी की उत्तम सृष्टि हुयी। वह ब्रह्माण्ड जल के आवरण से आवृत है, उस जल के ऊपर तेज का आवरण है ॥९॥ वह तेज वायु के द्वारा आवृत है। वायु के ऊपर आकाश का आवरण है। वह भूतादि (तामस) अहङ्कार से आवृत है। भूतादि अहङ्कार महत् तत्त्व से आवृत है, और उस महत् तत्त्व के ऊपर अव्यक्त (प्रकृति) का आवरण है ॥१०॥ सभी लोकों की उत्पत्ति उस ब्रह्माण्ड में ही होती है। उसी से नदियों और पर्वतों की भी उत्पत्ति बतलायी गयी है ॥११॥ उसके बाद इस पुराण में संक्षेप में मन्वन्तरों तथा कल्पों का वर्णन किया गया है। फिर ब्रह्मवृक्ष के लय का वर्णन किया गया है, ब्रह्माजी के द्वारा प्रजाओं की सृष्टि का वर्णन किया गया है ॥१२॥ कल्पों का प्रलय तथा जगत् की स्थापना का वर्णन किया गया है। श्रीहरि का एकार्णव में योगनिद्रा को अपना कर शयन करने का वर्णन है, फिर पृथिवी के उद्धार का वर्णन है ॥१३॥ महर्षि भृगु के शाप के कारण श्रीभगवान् के दश प्रकार से अवतार का वर्णन है। उसके बाद युगों आदि का वर्णन है, एवं समस्त आश्रमों के विभाग का वर्णन है ॥१४॥ स्वर्ग का तथा स्वर्ग में एवं मृत्युलोक में रहने वाले जीवों के स्थानों का वर्णन है। इस पुराण में पशुओं तथा पक्षियों की उत्पत्ति का वर्णन है ॥१५॥ उसके बाद निर्वचन के समान वेदाध्ययन का वर्णन है। उसके बाद बुद्धिपूर्वक ब्रह्मा जी का तीन प्रकार का प्रलय वर्णित है ॥१६॥ और

त्रयोन्येऽबुद्धिपूर्वास्ते तथालोकानकल्पयत् । ब्रह्मणो वदनेभ्यश्च भृग्वादीनां समुद्भवः ॥१७॥
कल्पयोरंतरं प्रोक्तं प्रतिसंधिश्च सर्गयोः । भृग्वादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥१८॥
वसिष्ठस्य च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मत्वं परिकीर्तितम् । स्वायंभुवस्य च मनोस्ततश्चाप्यनुकीर्तनम् ॥१९॥
उक्तो नाभेर्विसर्गश्च रजसश्च महात्मनः । द्वीपानां च समुद्राणां पर्वतानां च कीर्तनम्॥२०॥
द्वीपभेदसमुद्राणामन्तर्भावश्च सप्तसु । कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः॥२१॥
तदीयानि च वर्षाणि नदीभिःपर्वतैःसह। जंबूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥२२॥
अंडस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी । सूर्यचंद्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ॥२३॥
कीर्त्यंते ध्रुवसामर्थ्यात्प्रजानां च शुभाशुभम्। ब्रह्मणा निर्मितः सौरः स्यंदनोऽर्थवशात् स्वयम्॥२४॥
कल्पितो भगवांस्तेन प्रसर्पतिदिवाकरः। सूर्यादीनां स्यंदनानां ध्रुवादेव प्रवर्त्तनम्॥२५॥
कल्पितः शिंशुमारश्च यस्य पुच्छे ध्रुवः स्थितः । संभवांते च संहारः संहारांते च संभवः ॥२६॥
देवतानामृषीणां च मनोः पितृगणस्य च । नशक्यं विस्तराद्वक्तुमित्युक्तं च समासतः ॥२७॥
अतीनागतानां वै समं स्वायम्भुवेन तु । मन्वंतरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्तनम् ॥२८॥
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यंतिकः स्मृतः । त्रिविधः सर्वभूतानां कल्पितः प्रतिसंचरः ॥२९॥
अनावृष्टिर्भास्कराच्च घोरः संवर्तकानलः । मेघाश्चैकार्णवा ये तु तथा रात्रिर्महात्मनः ॥३०॥
संध्यालक्षणमुद्दिष्टं तथाब्राह्मंविशेषतः । भूतानां चापि लोकानां सप्तानामनुवर्णनम् ॥३१॥

अबुद्धि पूर्वक होने वाले दूसरे प्रकार के तीन प्रकार के प्रलय वर्णित है । उसके बाद ब्रह्माजी ने जो लोकों की कल्पना की उसका वर्णन है । फिर ब्रह्माजी के मुखों से भृगु आदि महर्षियों की उत्पत्ति का वर्णन है ॥१७॥ उसके बाद दो कल्पों में होने वाले अन्तराल का वर्णन है । इसके बाद दो सर्गों (सृष्टियों) की प्रति सन्धि का वर्णन है । फिर भृगु आदि ऋषियों की सन्तानों की सृष्टि का वर्णन है ॥१८॥ उसके बाद ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के ब्रह्मत्व का वर्णन है । उसके बाद स्वायम्भुव मनु का वर्णन है ॥१९॥ उसके बाद महात्मा नाभि तथा रजस के विसर्ग का वर्णन है । उसके बाद द्वीपों, समुद्रों तथा पर्वतों का वर्णन किया गया है ॥२०॥ सातों द्वीपों तथा सातो समुद्रों का वर्णन एवं उनका योजनों में परिमाण का वर्णन है । उसके बाद उन द्वीपों में निवास करने वाले जीवों का वर्णन है ॥२१॥ उन द्वीपों के नदियों तथा पर्वतों के साथ वर्षों का वर्णन किया गया है । जम्बूद्वीप आदि सातो द्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं ॥२२॥ इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्वर्ती लोकों, सात द्वीपों से युक्त पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों तथा तारों आदि की गति का वर्णन किया गया है ॥२३॥ फिर ध्रुव के सामर्थ्य से प्रजाओं के होने वाले शुभ तथा अशुभ का वर्णन किया गया है । ब्रह्माजी ने स्वयम् प्रयोजनवशात् सूर्य के रथ को बनाया ॥२४॥ ब्रह्माजी के द्वारा निर्मित उस रथ से ही सूर्य सञ्चरण करते हैं । सूर्य इत्यादि ग्रहों के रथ ध्रुव के द्वारा ही प्रवर्तित होते हैं ॥२५॥ उसके बाद शिंशुमार चक्र की कल्पना का वर्णन है । जिसके पूछ भाग में ध्रुव विद्यमान हैं । सृष्टि के अन्त में संहार होता है और संहार (प्रलय) के अन्त में सृष्टि होती है ॥२६॥ देवताओं, ऋषियों, मनुओं तथा पितृगणों का विस्तार से वर्णन नहीं किया जा सकता है इसीलिए इन सबों का संक्षेप में वर्णन किया गया है ॥२७॥ उसके बाद स्वायम्भुव मन्वन्तर से पहले के अतीतकालिक तथा अनागत (भविष्यत् कालिक) मन्वन्तरों के मनु, देवता तथा प्रजापतियों का वर्णन किया गया है॥२८॥ सभी भूतों के तीन प्रकार के प्रलय बतलाये गये हैं— नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक ॥२९॥ उसके बाद अनावृष्टि, सूर्य से उत्पन्न होने वाली संवर्तकाग्नि तथा एकार्णव बना देने वाले मेघों तथा ब्रह्माजी की रात्रि का

संकीर्त्यते मया चात्र पापानां रौरवादयः । सर्वेषामेव सत्वानां परिणामविनिर्णयः ॥३२॥
ब्रह्मणः प्रतिसर्गश्चसर्वसंहारवर्णनम् । कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयः ॥३३॥
सुसंख्याय च बुद्ध्वा वै ब्रह्मणश्चाप्यनित्यताम् । दौरात्म्यं चैव भोगानां संसारस्य च कष्टताम् ॥३४॥
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वैराग्याद्दोषदर्शनम् । व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्वं ब्रह्मणि संस्थितम्॥३५॥
नानात्वदर्शनात् सुस्थस्ततस्तदभिवर्त्तते । ततस्तापत्रयातीतो विरूपाख्यो निरंजनः ॥३५॥
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्तो नबिभेति कुतश्चन । इति कृत्यसमुद्देशः प्रमाणस्योपवर्णितः ॥३६॥
कीर्त्यते जगतो यत्र सर्गप्रलय विक्रियाः । प्रवृत्तिश्चापि भूतानां निवृत्तीनां फलानि च ॥३७॥
प्रादुर्भावो वसिष्ठस्य शक्तेर्जन्म तथैव च । सौदासान्निग्रहस्तस्य विश्वामित्रकृतेन च ॥३८॥
पराशरस्य चोत्पत्तिरदृश्यन्त्यां यथा विभोः । जज्ञे पितृणां कन्यायां व्यासश्चापि यथा मुनिः ॥३९॥
शुकस्य च यथा जन्म पुत्रस्य सह धीमतः । पराशरस्य विद्वेषो विश्वामित्रकृतो यथा ॥४०॥
वसिष्ठसंभृतश्चाग्निर्विश्वामित्रजिघांसया । संधानहेतोर्विभुना जीर्णः कण्वेन धीमता॥४१॥
देवेन विप्रविप्राणां विश्वामित्रहितैषिणा । एकं वेदं चतुःपादं चतुर्धा पुनरीश्वरः॥४२॥
यथा विभेद भगवान्व्यासः सर्वेष्वनुग्रहात् । तस्य शिष्यप्रशिष्यैश्च शाखाभेदाः पुनः कृताः ॥४३॥

वर्णन किया गया है ॥३०॥ इसके बाद विशेष रूप से ब्रह्माजी की संध्या और संध्यांश का वर्णन है । उसके बाद भूतों तथा सातो लोकों का वर्णन किया गया है ॥३१॥ यहाँ पर मैं सभी जीवों द्वारा किए जाने वाले सभी पापों के परिणाम स्वरूप रौरव आदि नरकों का वर्णन करूँगा ॥३२॥ उसके बाद मैं सबों के संहार स्वरूप ब्रह्माजी के प्रतिसर्ग (प्रलय) का वर्णन करूँगा । प्रत्येक कल्पों में होने वाले महाभूतों के भी संक्षय का मैं वर्णन करूँगा ॥३३॥ अपनी बुद्धि में अच्छी तरह से गणना करके मैं ब्रह्माजी की अनित्यता, भोगों की दोषयुक्तता तथा संसार की दुःखरूपता, मोक्ष की दुर्लभता, वैराग्य के कारण सांसारिक भोगों में दोष दृष्टि का होना, व्यक्त (महदादि विशेषान्त) तथा अव्यक्त प्रकृति का परित्याग करके परब्रह्म में विद्यमान सत्त्व का मैं वर्णन करूँगा ॥३४-३५॥ भेदबुद्धि के ही कारण जीवों की भेद की ओर प्रवृत्ति होती है, उसके बाद जीव जिस तरह तापत्रय से रहित होकर सभी दोषों से रहित तथा संसार के विरूप हो जाता है इस बात का वर्णन मैं करूँगा इस तरह ब्रह्मानन्द को प्राप्ति कर लेने वाला जीव कहीं भी संसार के भय से भयभीत नहीं होता है, इस बात का वर्णन है । इस तरह से प्रमाणों के कृत्य का वर्णन किया गया है ॥३६॥ इस पुराण में जगत् की सृष्टि, प्रलय तथा विकारों का वर्णन किया गया है । इसमें जीवों की प्रवृत्ति तथा निवृत्तियों के फलों का वर्णन है ॥३७॥ महर्षि वसिष्ठ की उत्पत्ति तथा उनकी जन्म से ही स्वाभाविक शक्ति का वर्णन है । उनका सौदास के द्वारा तथा विश्वामित्र के द्वारा निग्रह ॥३८॥ (महर्षि पराशर की उत्पत्ति तथा पितरों की अदृश्यन्ती नामक कन्या के गर्भ से महर्षि व्यास की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है)॥३९॥ उसके बाद महाबुद्धिमान् शुकदेवजी तथा उनके पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है । महर्षि विश्वामित्र द्वारा किया गया महर्षि पराशर के विद्वेष का वर्णन किया गया है ॥४०॥ विश्वामित्र को मार देने की इच्छा से वसिष्ठ महर्षि द्वारा अग्नि की सृष्टि तथा उन दोनों में सन्धि करा देने के लिए ब्राह्मण तथा ब्राह्मण व्यतिरिक्त विश्वामित्र के हितैषी कण्व महर्षि के द्वारा उस अग्नि को शान्त कर दिये जाने का वर्णन है । इसके बाद एक ही चार चरणों वाले वेद का जिस प्रकार से महर्षि व्यास ने पुनः चार विभाग किया उसका वर्णन किया गया है । उसके पश्चात् उनके शिष्यों तथा प्रशिष्यों ने वेद की शाखाओं का विभाग किया इसका वर्णन है ॥४१-४२॥ उसके पश्चात् प्रयाग में श्रेष्ठ मुनियों ने भगवान् कृष्ण द्वैपायन

प्रयागे मुनिवर्यैश्च यथा पृष्टः स्वयंप्रभुः। कृष्णेन चानुशिष्टास्ते मुनयो धर्मकांक्षिणः ॥४४॥
एतत्सर्वं यथा तत्वमाख्यातं द्विजसत्तमाः। मुनिनां धर्मनित्यानां लोकतंत्रमनुत्तमम् ॥४५॥
ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुलस्त्याय महात्मने। पुलस्त्येनाथभीष्माय गंगाद्वारे प्रभाषितम्॥४६॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम्। कीर्तनं श्रवणं चास्य धारणं च विशेषतः ॥४७॥
सूतेनानुक्रमेणेदं पुराणं संप्रकाशितम्। ब्राह्मणेषु पुरा यच्च ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम् ॥४८॥
पाद्मस्य विदन्सम्यग्योधीयीत जितेन्द्रियः। तेनाधीतं पुराणं स्यात्सर्वं नास्त्यत्र संशयः ॥४९॥
योविद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः। पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥५०॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतारिष्यति ॥५१॥
अधीत्य चैकमध्यायं स्वयं प्रोक्तं स्वयंभुवा। आपदः प्राप्यमुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥५२॥
पुरा परंपरां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्। निरुक्तिमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५३॥
ऋषयो ह्यब्रुवन् सूतं कथं भीष्मेण सङ्गतः। ब्रह्मणो मानसः पुत्रः पुलस्त्यो भगवानृषिः ॥५४॥
दुर्लभं दर्शनं यस्य नरैःपापसमन्वितैः। अत्याश्चर्यमिदं सूत क्षत्रियेण कथं मुनिः ॥५५॥
आराधितो बृहद्भूतस्तन्नो वद महामते। कीदृशं वा तपस्तेन कोवान्यो नियमः कृतः॥५६॥
येन तुष्टो मुनिर्ब्राह्मस्तथा तेन प्रभाषितः। पर्ववाप्यथपर्वार्धं समग्रं वा प्रभाषितम् ॥५७॥

से जैसा प्रश्न किया और उन्होंने जो उसका उत्तर धर्म जिज्ञासु मुनियों को दिया, उसका वर्णन किया गया है ॥४३-४४॥ हे मुनिवर्यों ! इन सारी बातों का वर्णन इसमें (सृष्टि खण्ड में) किया गया है। निरन्तर धर्मनिष्ठ मुनियों के अनुपमेय लोकसंग्रह का उपदेश, महर्षि पुलस्त्य को ब्रह्माजी ने दिया उसका वर्णन इसमें किया गया है और उन्होंने उसका उपदेश भीष्म को जो हरिद्वार में दिया है, उसका वर्णन इसमें किया गया है ॥४५-४६॥ इस पुराण का कीर्तन, श्रवण तथा विशेष रूप से धारण यश तथा आयु को प्रदान करता है तथा सभी पापों का विनाश करता है ॥४७॥ सूतजी ने इस पुराण का इसी क्रम से प्रकाशन किया है। सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने इसका विस्तार पूर्वक उपदेश ब्राह्मणों को दिया ॥४८॥ जो व्यक्ति जितेन्द्रिय रहकर इसके एकचरण का भी अध्ययन करता है, उसको सम्पूर्ण पुराण के पढने का फल प्राप्त होता है ॥४९॥ पुराणों का ज्ञाता पुरुष अङ्गों तथा उपनिषदों के साथ चारो वेदों के ज्ञाता पुरुष की अपेक्षा अधिक निपुण होता है ॥५०॥ वेद का उपबृंहण (व्याख्यान) इतिहास और पुराण के आलोक में करना चाहिए, अल्पज्ञ व्यक्ति से वेद इसलिए भयभीत रहता है कि वह कहीं मेरा अपार्थ न कर दे ॥५१॥ स्वयं ब्रह्माजी के द्वारा जिसका उपदेश किया गया है, ऐसे पद्मपुराण के एक अध्याय का भी पाठ करके मनुष्य आयी हुयी विपत्ति से मुक्त हो जाता है और अपने अभिप्रेत गति को प्राप्त कर लेता है ॥५२॥ प्राचीन परम्परा का उपदेश करने के ही कारण पुराणों को पुराण कहते है; पुराण शब्द की इस व्युत्पत्ति को जानने वाला व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥५३॥ ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि ब्रह्माजी के मानस पुत्र ऋषि (क्रान्त द्रष्टा) भगवान् पुलस्तय महर्षि की भीष्म से भेंट कैसे हुयी ॥५४॥ हे महामत्ते ! आप हमलोगों को यह बतलाइये कि पापी मनुष्य जिनका दर्शन भी नहीं प्राप्त कर सकता है उन महर्षि को क्षत्रिय भीष्म ने किस तरह प्राप्त किया ? और उनकी सविधि आराधना की ? यह तो अत्यन्त आश्चर्य की बात है। उस भीष्मजी ने कौन सी ऐसी तपस्या अथवा नियम का पालन किया था ?॥५५-५६॥ जिससे प्रसन्न होकर मुनि उनको इस पुराण का उपदेश दिए ?। उन्होंने भीष्मजी को इस पुराण का एक पर्व या अथवा आधा पर्व सुनाया ? या इस सम्पूर्ण पुराण को सुनाया ?॥५७॥ हे महाभाग ! हमलोगों को आप यह बतलायें

यस्मिन्स्थाने यथा दृष्टः पुलस्त्यो भगवानृषिः । तन्नो वद महाभाग कल्याः स्मश्रवणे वयम् ॥५८॥

सूत उवाच

यत्र गंगामहाभागा साधूनां हितकारिणी । विभिद्यपर्वतं वेगान्निःसृता लोकपावनी ॥५९॥
गंगाद्वारे महातीर्थे भीष्मः पितृपरायणः । शुश्रूषुःसुचिरं कालं महतां नियमे स्थितः ॥६०॥
यावद्वर्षशतं साग्रं परमेण समाधिना । ध्यायमानः परं ब्रह्म त्रिकालं स्नानमाचरत् ॥६१॥
पितॄन्देवांस्तर्पयतः स्वाध्यायेन महात्मनः । आत्मानं कर्षत श्चास्य तुष्टो देवः पितामहः ॥६२॥
उवाच तनयं ब्रह्मा पुलस्त्यमृषिसत्तमम् । सत्वां देवव्रतं भीष्मं वीरं कुरु कुलोद्भवम् ॥६३॥
तपसः संनिवर्त्तस्व कारणं चास्य कीर्त्तय । पितॄन्भक्त्या महाभागो ध्यायमानस्समास्थितः ॥६४॥
यो ह्यस्य मनसः कामस्तं संपादय माचिरम् । पितामहवचः श्रुत्वा पुलस्त्योभुनिसत्तमः ॥६५॥
गंगाद्वारमथागत्य भीष्मं वचनमब्रवीत् । वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥६६॥
तुष्टस्ते तपसा वीर साक्षाद्देवः पितामहः । ब्रह्मणा प्रेषितस्ते हं वरान्दास्यामि कांक्षितान् ॥६७॥
भीष्मोपि तद्वचः श्रुत्वा मनः श्रोत्रसुखावहम् । उन्मील्य नयने दृष्ट्वा पुलस्त्यं पुरतः स्थितम् ॥६८॥
अष्टांगप्रणिपातेन नत्वा तं मुनिसत्तमम् । उवाच प्रणतो भूत्वा सर्वांगालिंगितावनिः ॥६९॥
अद्य मे सफलं जन्मदिनं चेदं सुशोभनम् । भवतश्चरणौ दृष्टौ जगद्वंद्यौ मया त्विह ॥७०॥
तपसश्च फलं प्राप्तं यद् दृष्टोभगवान्मया । वरप्रदो विशेषेण संप्राप्तश्च नदीतटे ॥७१॥
इयं बृसी मया क्लृप्ता अस्यतां सुखदाकृता । अर्घ्यपात्रे तु पालाशे दूर्वाक्षतसुमैः कुशैः ॥७२॥

कि भीष्मजी को किस स्थान पर तथा किस प्रकार से महर्षि पुलस्त्य का दर्शन मिला ? हमलोग इसको सुनने के लिए उत्कण्ठित हैं ॥५८॥ **सूतजी ने कहा**— जहाँ पर साधु पुरुषों का कल्याण करने वाली महाभागा गङ्गाजी पर्वत को तोड़कर वेगपूर्वक पृथिवी पर अवतरित हुयी हैं ॥५९॥ उस महान् तीर्थ गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में पितृभक्त भीष्मजी ज्ञानोपदेश प्राप्त करने की इच्छा से दीर्घकाल पर्यन्त महापुरुषों के नियम का पालन कर रहे थे ॥६०॥ वे सौ वर्ष से अधिक काल तक वहाँ समाधिस्थ होकर परं ब्रह्म का ध्यान करते हुए त्रिकाल स्नान करते थे ॥६१॥ वेदाध्ययन करते हुए पितरों का तर्पण तथा देवताओं की आराधना करते थे । इसतरह से अपने शरीर का शोषण करने वाले भीष्मजी को देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये ॥६२॥ उन्होंने ऋषियों में श्रेष्ठ तथा अपने मानस पुत्र महर्षि पुलस्त्य से कहा— तुम कुरुवंश के वीर देवव्रत भीष्म को ॥६३॥ उनके पास जाकर उन्हें तपस्या करने से रोको और उनको कारण तत्त्व का उपदेश करो । अपने पितरों की भक्ति से परिपूर्ण होकर वे महाभाग वहाँ पर निवास करते हैं ॥६४॥ उनके मन में जो कामना हो उसको शीघ्र पूरा करो । ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी ॥६५॥ गङ्गाद्वार में आकर भीष्मजी से कहे हे भद्र ! तुम्हारी जो इच्छा हो उस वरदान को माँग लो ॥६६॥ हे वीर ! तुम्हारी तपस्या से साक्षात् ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये हैं । मुझे ब्रह्माजी ने भेजा है, मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूँगा ॥६७॥ कानों को सुख देने वाली उस वाणी को सुनकर भीष्मजी ने भी अपनी आँखों को खोलकर देखा कि उनके सामने महर्षि पुलस्त्य खड़े हैं ॥६८॥ उसके बाद उन महर्षि को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अत्यन्त विनम्र होकर जिनके सभी अङ्गों में धूल लगी थी वे भीष्मजी कहे ॥६९॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया । आज का दिन मेरे लिए अत्यन्त कल्याणकारी है, क्योंकि मैंने आज आपके इन लोकवंद्य चरणों का दर्शन किया है ॥७०॥ मुझे तपस्या का फल प्राप्त हो गया, क्योंक आप मुझे नदी के तट में वरदान देने के लिए पधारे हैं ॥७१॥ मैंने इस सुखप्रद आसन का अपने

सर्षपैश्च दधिक्षौद्रैर्यवैश्चपयसा सह । अष्टांगो ह्येष निर्दिष्टो ह्यर्घो हि मुनिभिः पुरा ॥७३॥
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य भीष्मस्यामिततेजसः । उपविष्टो ब्रह्मसुतः पुलस्त्यो भगवानृषिः ॥७४॥
विष्टरं सह पाद्येन अर्घपात्रं मुदान्वितः । जुजोष भगवान्प्रीतः सदा चारेण तेन तु ॥७५॥

पुलस्त्य उवाच

सत्यवानृदानशीलोसि सत्यसंधिनरेश्वरः । ह्रीमान्मैत्रःक्षमाशीलो विक्रांतः शत्रुशासने ॥७६॥
धर्मज्ञस्त्वं कृतज्ञस्त्वं दयावान्प्रियभाषिता । मान्यमानयिताविज्ञो ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः ॥७७॥
तुष्टस्तेहं सदा वत्स प्रणिपातपरस्य वै । प्रब्रूहि त्वं महाभाग कथनं ते वदाम्यहम् ॥७८॥

भीष्म उवाच

भगवन् भगवान् ब्रह्मा कस्मिन् काले स्थितो विभुः।
सृष्टिं चकार वै पूर्वं देवादीनां वदस्व मे ॥७९॥
स्थितिं वा भगवान्विष्णुः कथं रुद्रस्तुनिर्मितः ।
कथं वा ऋषयो देवास्सृष्टास्तेन महात्मना ॥८०॥
कथं पृथ्वी कथं व्योम कथं चेमे तु सागराः ।
कथं द्वीपाः पर्वताश्च ग्रामारण्यपुराणि च ॥८१॥

मुनीन्प्रजापतींश्चैव सप्तर्षीन् प्रवरानपि । वर्णान् वायुं पुरा स्थानं गंधर्वान्यक्षराक्षसान् ॥८२॥
तीर्थानि सरितो वाथ सूर्यादीन् ग्रहतारकान् । यथा ससर्ज भगवांस्तथा मेत्वं वदस्व ह ॥८३॥

हाथों से निर्माण किया है; इसे आप ग्रहण करें । उसके बाद पलाश पत्र से निर्मित अर्घ्यपात्र में दूर्वा, अक्षत, पुष्प, कुश, सरसो, दधि, मधु, यव तथा दुग्ध मिश्रित मुनियों के द्वारा निर्दिष्ट इस अष्टाङ्ग अर्घ्य को स्वीकार करें ॥७२-७३॥ नि:सीम तेजः सम्पन्न भीष्मजी की वाणी को सुनकर ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि पुलस्त्य ने आसन ग्रहण किया॥७४॥ पाद्य के साथ विष्टर को प्राप्त करके भीष्मजी के द्वारा प्रदत्त सदाचारानुसार अर्घ्यपात्र को ग्रहण करके महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥७५॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे वत्स ! तुम सत्यवक्ता, दानशील, सत्याभिसन्धि वाले, नरेश्वर, लज्जायुक्त सबों को मित्र की दृष्टि से देखने वाले, क्षमाशील तथा शत्रुओं को परास्त करने में समर्थ हो॥७६॥ तुम धर्मों के ज्ञाता, कृतज्ञ, दयालु, प्रिय बोलने वाले, सम्मानीय पुरुषों का सम्मान करने वाले, ज्ञानी, ब्राह्मण भक्त तथा साधु वत्सल हो ॥७७॥ तुम प्राणिपात परायण हो, अतएव मैं तुम से प्रसन्न हूँ । तुम अपनी अभिलाषा बतलाओ; उसे मैं पूरा करूँगा ॥७८॥ **भीष्मजी ने कहा—** हे भगवन् ! भगवान् ब्रह्माजी ने किस समय में स्थित रहकर सृष्टि करने का काम किया ? उन्होंने सबसे पहले देवताओं की सृष्टि कैसे की ?॥७९॥ अथवा उन्होंने किस स्थिति में भगवान् रुद्र की सृष्टि की ? अथवा उन्होंने देवताओं तथा ऋषियों की सृष्टि कैसे की?॥८०॥ उन्होंने किस प्रकार पृथिवी, आकाश तथा सागरों की सृष्टि की ? किस प्रकार से उन्होंने द्वीपों, पर्वतों, ग्रामों अरण्यों तथा नगरों की सृष्टि की ?॥८१॥ मुनियों, प्रजापतियों, सप्तर्षियों तथा श्रेष्ठ मुनियों की रचना कैसे की ?। वर्णों, वायु, प्राचीन स्थानों, गन्धर्वों, यक्षों एवं राक्षसों की सृष्टि कैसे की ?॥८२॥ तीर्थों, नदियों, सूर्य आदि ग्रहों तथा तारों की उन्होंने कैसे सृष्टि की ? भगवान् ब्रह्माजी ने इन सबों की जिस प्रकार से सृष्टि की है, उसे आप हमें बतलाने की कृपा करें ॥८३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** ब्रह्माजी समस्त श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ हैं । वे परमात्मा हैं । विशेष रूप से वे रूप तथा वर्ण से रहित हैं ॥८४॥ वे ह्रास (अपक्षय) विनाश, परिणाम, समृद्धि तथा जन्म आदि

पुलस्त्य उवाच

परः पराणां परमः परमात्मा पितामहः । रूपवर्णादिरहितो विशेषण विवर्जितः ॥८४॥
अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः । गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातीति हि केवलम्॥८५॥
सर्वत्राऽसौ समश्चापि वसन्ननुपमोमतः । भावयन्ब्रह्मरूपेण विद्वद्भिःपरिपठ्यते ॥८६॥
तं गुह्यं परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् । तथापुरुषरूपेण कालरूपेण संस्थितम् ॥८७॥
तं नत्वाहं प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिं चकार ह। पूर्वं तु पद्मशयनादुत्थाय जगतः प्रभुः ॥८८॥
गुणव्यंजनसंभूतः सर्गकाले नराधिप। सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥८९॥
प्रधानतत्वेन समं तथा वीजादिभिर्वृतः । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥९०॥
त्रिविधोयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत। भूतेंद्रियाणां पंचानां तथा कर्मेंद्रियैः सह ॥९१॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च। एकैकशः स्वरूपेण कथयामि यथोत्तरम्॥९२॥
शब्दमात्रमथाकाशं भूतादिः खं समावृणोत्। अथाकाशं विकुर्वाणं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥९३॥
बलवानेष वै वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः।आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रंसमावृणोत् ॥९४॥
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह। ज्योतीरूपन्तु तद्वायुस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥९५॥
स्पर्शरूपस्तु वै वायूरूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ॥९६॥
संभवंति ततोंभांसि रूपमात्रं समावृणोत् । विकुर्वाणानि चांभांसि गंधमात्रं ससर्जिरे ॥९७॥
संघातो जायतेतस्मात्तस्य गंधो मतो गुणः । तैजसानींद्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥९८॥

से रहित तथा समस्त सत्त्व आदि गुणों से रहित हैं । वे केवल प्रतीत मात्र होते हैं ॥८५॥ वे सभी वस्तुओं में समान रूप से निवास करते हैं । वे स्वेतर समस्त वस्तुओं से भिन्न हैं । वे अपने को ब्रह्म रूप से अनुभव करते हैं, इसीलिए विद्वज्जन उन्हें ब्रह्मा कहते हैं ॥८६॥ परम रहस्यमय, नित्य, अजन्मा, अक्षय अव्यय तथा पुरुष रूप से एवं काल रूप से रहने वाले उन ब्रह्माजी को प्रणाम करके मैं बतलाता हूँ कि उन्होंने किस प्रकार से सृष्टि की । जगत् के स्वामी वे सृष्टि के काल उपस्थित होने पर हे राजन् ! अपने कमल रूपी शय्या से जगकर सर्वप्रथम ॥८७-८८॥ गुणरूपी अभिव्यञ्जक से उत्पन्न होने वाले सात्त्विक, राजस एवं तामस इन तीन प्रकार के महत्तत्व की सृष्टि किए।८९॥ उसको प्रधान तत्त्व के साथ बीज आदि ने आच्छादित किया, उसके कारण विकृत होकर उस महत् तत्त्व से तीन प्रकार के अहङ्कारों की सृष्टि हुयी— वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) तथा भूतादि (तामस) ॥९०॥ ये तीनों प्रकार के अहङ्कार महत्तत्व से उत्पन्न हुए । इसके बाद मैं पञ्च ज्ञानेन्द्रियों, पञ्च कर्मेन्द्रियों के साथ ॥९१॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश इन सबों के उत्तरोत्तर उत्पत्ति का स्वरूप बतलाता हूँ ॥९२॥ इसके बाद तामस अहंङ्कार ने शब्द तन्मात्रा तथा आकाश को आच्छादित किया, उससे विकृत होकर आकाश ने स्पर्श तन्मात्रा को उत्पन्न किया ॥९३॥ इस बलवान् वायु का गुण स्पर्श है । उसके बाद आकाश और शब्द तन्मात्रा दोनों ने स्पर्श तन्मात्रा को आवृत (आच्छादित) किया ॥९४॥ उसके कारण विकृत होकर वायु ने रूप तन्मात्रा को उत्पन्न किया । तेज स्वरूप उस वायु का गुणरूप है ॥९५॥ स्पर्श स्वरूप उस वायुने उस रूप तन्मात्रा को आवृत किया, उसके कारण विकृत होकर तेज ने भी रसतन्मात्रा की सृष्टि की ॥९६॥ उससे जलों की उत्पत्ति हुयी । उन जलों ने रूप तन्मात्रा को समावृत किया उसके कारण विकृत होकर जलों ने गन्ध तन्मात्रा की सृष्टि की ॥९७॥ चूकि उससे संघात (काठिन्य) की उत्पत्ति होती है, इसीलिए उस संघात स्वरूप पृथिवी का गुण गन्ध ही है । इन्द्रियों को तैजस अहङ्कार

एकादशम्मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः । त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पंचमम् ॥९९॥
ऐतेषां तु मतं कृत्यं शब्दादिग्रहणं पुनः । वाक् पाणिपादपायूनि चोपस्थं तत्र पञ्चमम् ॥१००॥
विसर्गशिल्पगत्युक्तिर्गुणा एषां विपर्ययात् । आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ॥१०१॥
शब्दादिभिर्गुणैर्वीर युक्तानीत्युतरोत्तरैः । शांताघोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ॥१०२॥
नानावीर्याः पृथग्भूतास्तत स्तेसंहतिं विना । नाशकुवन्प्रजाः स्त्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥१०३॥
समेत्यान्योन्यसंयोगात् परस्परसामाश्रयात् । एकसंघातलक्षाश्च संप्राप्यैक्यमशेषतः ॥१०४॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च व्यक्तानुग्रहणे तथा । महदादयो विशेषांता ह्यंडमुत्पादयंति वै ॥१०५॥
तत्क्रमेण विवृत्तं तु जलबुदबुदवत्समम् । तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपी जनार्दनः ॥१०६॥
ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः । मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्चमहीधराः ॥१०७॥
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासंश्च महात्मनः । तत्र द्वीपास्समुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ॥१०८॥

जन्य बतलाया गया है, और उन इन्द्रियों के अधिष्ठातृ दश देवताओं ॥९८॥ और ग्यारहवाँ मन ये ग्यारह वैकारिक (सात्त्विक) कहे गये हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा तथा पाँचवा श्रोत्र ॥९९॥ (यहाँ ध्यान देना चाहिए कि चक्षु इत्यादि के भीतर रहने वाला एक अतीद्रिय द्रव्य है, जिसे इन्द्रिय शब्द से कहा जाता है। चक्षु इत्यादि तो इन्द्रियों के आश्रय मात्र हैं क्योंकि देखा जाता है कि श्रोत्र के बने रहने पर श्रोत्रेन्द्रिय विनष्ट हो जाती है। उसी के कारण मनुष्यों में बाधिर्य दोष आता है।) इन पाञ्चो ज्ञानेन्द्रयों का कार्य शब्द आदि विषयों का ग्रहण करना है। (श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा शब्द का ग्रहण होता है, त्वगिन्द्रिय के द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है, चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रूप का ग्रहण होता है, रसनेन्द्रिय के द्वारा रस का ग्रहण होता है तथा घ्राणेन्द्रिय के द्वारा गन्ध का ग्रहण होता है।) कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच है— वाक्, पाणि, पाद, पायु (मल त्याग करने वाली इन्द्रिय) तथां उपस्थ (लिङ्ग) ॥१००॥ पायु इन्द्रिय का काम मल का त्याग करना है, पाणीन्द्रिय का काम शिल्प क्रिया का सम्पादन है। पादेन्द्रिय के द्वारा गति (चलना फिरना) होती है, वागिन्द्रिय का कार्य उक्ति (शब्दोच्चारण) है इसके विपरीत हे वीर, आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथिवी ये पाँचों भूत ॥१०१॥ शब्दादि उत्तरोत्तर गुणों से युक्त होते हैं। (अर्थात् आकाश केवल शब्द गुण से युक्त होता है, वायु के शब्द एवं स्पर्श ये दो गुण हैं तेज में तीन गुण पाये जाते है, शब्द, स्पर्श एवं रूप, जल में चार गुण होते हैं, शब्द स्पर्श, रूप एवं रस और पृथिवी में पाँच गुण पाये जाते हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध) ये सभी भूत पहले शान्त, घोर एवं मूढ होते हैं; (अर्थात् सुख-दुख एवं मोह प्रद होते है) अतएव विशेष कहलाते हैं ॥१०२॥ ये अलग-अलग अनेक प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न होते हैं। किन्तु अच्छी तरह से एकत्रित (परस्पर में मिले हुए) न होने के कारण ये प्रजाओं की सृष्टि नहीं कर सके ॥१०३॥ परस्पर में एक दूसरे के संयोग को (पञ्चीकरण प्रक्रिय के द्वारा) प्राप्त करके, जिन सबों का लक्ष था एक संघात रूप से परिणत हो जाना, वैसा पूर्णरूप से होकर वे ॥१०४॥ पुरुष परमात्मा से अधिष्ठित तथा व्यक्त (महदादि) के द्वारा अनुगृहीत होकर, महत् तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त सभी मिलकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करते हैं ॥१०५॥ वे क्रमशः जल में उत्पन्न होने वाले बुलबुले के समान विवर्तित हो गये। उस ब्रह्माण्ड में अव्यक्त स्वरूप वाले भगवान् जनार्दन ब्रह्मा रूप से, स्थित हो गये। उनका उल्ब (गर्भ के ऊपर लिपटी रहने वाली झिल्ली) सुमेरु पर्वत हो गया और दूसरे पर्वत जरायु बन गये ॥१०६-१०७॥ उन महात्मा के गर्भोदक का काम समुद्रों ने किया। उसी में द्वीप, समुद्र, तेज तथा लोक समूह विद्यमान रहे ॥१०८॥ हे भीष्म ! उसी अण्ड से देवता, असुर और मनुष्य उत्पन्न हुए। वह ब्रह्माण्ड उत्तरोत्तर दश

तस्मिन्नंडेऽभवन्वीर सदेवासुरमानुषाः । वारिवह्न्यनिलाकाशै र्वृतैर्भूतादिना बहिः ॥१०९॥
वृतं दशगुणैरंडं भूतादिर्महता तथा । अव्यक्तेनावृतोराजंस्तैः सर्वैः सहितो महान् ॥११०॥
एभिरावरणैः सर्वैः सर्वभूतैश्च संयुतम् । नारिकेलफलं यद्वद्बीजं बाह्यदलैरिव ॥१११॥
ब्रह्म स्वयं च जगतो विसृष्टौ संप्रवर्त्तते । सृष्टिं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ॥११२॥
ससंज्ञां याति भगवानेकएव जनार्दनः । सत्वभुग्गुणवान्देवो ह्यप्रमेयपराक्रमः ॥११३॥
तमोद्रेकं च कल्पांते रूपं रौद्रं करोतिच । राजेंद्राखिलभूतानि भक्षयत्यतिभीषणः ॥११४॥
भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते । नागपर्यकशयने शेते सर्वस्वरूपधृक् ॥११५॥
प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं प्रकरोति च रूपधृक् । सृष्टिस्थित्यंकरणाद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥११६॥
स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पति च । उपसंह्रियते चापि संहर्त्ता च स्वयं प्रभुः ॥११७॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । स एव सर्वभूतेशो विश्वरूपो यतोव्ययः ॥११८॥
सर्गादिकं ततोस्यैव भूतस्थमुपकारकम् स एव सृज्यः स च सर्गकर्त्ता स एव पाल्यं प्रतिपाल्यते यतः ।
ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्तिर्ब्रह्मा वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥११९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पुराणवतारे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

गुना अधिक, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन भूतों द्वारा बाहर से आवृत था ॥१०९॥ ये सब दश गुने अधिक भूतादि अहङ्कार से आच्छन्न थे और वह भी अव्यक्त (प्रकृति) से आच्छादित था । राजन् वह महान् ब्रह्माण्ड इन सभी आवरणों तथा भूतों के साथ उस नारियल के फल के समान था जो ऊपर से जटा आदि से घिरा रहता है उसके भीतर उसका बीज होता है ॥११०-१११॥ ब्रह्माजी स्वयं सृष्टि का कार्य करते हैं, और उसकी रक्षा वे कल्प पर्यन्त करते हैं ॥११२॥ केवल भगवान् जनार्दन जो सत्त्वगुण के भोक्ता, विविध दिव्य गुणों से समलङ्कृत, असीम पराक्रम सम्पन्न हैं, वे ही सृष्टि आदि के कालों में ब्रह्मा आदि के नाम से अभिहित किए जाते हैं ॥११३॥ वे ही कल्प की समाप्ति की बेला में भयङ्कर रुद्र रूप को धारण करके अत्यन्त भयङ्कर बने हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भक्षण कर जाते हैं ॥११४॥ सम्पूर्ण भूतों का भक्षण करने के बाद जब जगत् एकार्णव के रूप में परिणत हो जाता है तो सम्पूर्ण जगत् शरीरक वे शेष की शय्या पर शयन करते हैं ॥११५॥ उसके बाद जब वे जगते हैं तो पुनः सृष्टि का विस्तार करते हैं । सृष्टि, पालन तथा संहार करने के कारण वे सृष्टि काल में ब्रह्मा, पालन काल में विष्णु तथा संहार काल में शिव स्वरूप होते हैं ॥११६॥ स्रष्टा रूप से वे अपनी ही सृष्टि करते है, विष्णु रूप से वे अपना ही पालन करते है, और संहारकर्ता रुद्र रूप से श्रीभगवान् अपना ही संहार करते हैं ॥११७॥ चूकि अव्यय स्वरूप वे भगवान् विश्व स्वरूप हैं, इसीलए पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश भी वे ही हैं ॥११८॥ अतएव जीवों का उपकारक सर्गादि (सृष्टि आदि) उनके ही होते हैं । वे ही सृष्टि किए जाने वाले और सृष्टि कर्ता दोनों हैं । प्रतिपालित होने के कारण वे ही पाल्य भी हैं । सम्पूर्ण जगत् शरीरक वे ही ब्रह्मा आदि की अवस्था से युक्त श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न, वर प्रदान करने वाले ब्रह्मा भी हैं ॥११९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड का पुराणावतार नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तीसरा अध्याय

भीष्म उवाच

निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याथमहात्मनः । कथं सर्गादिकर्त्तृत्वं ब्रह्मणो ह्युपपद्यते ॥१॥

पुलस्त्यउवाच

शक्तयः सर्वभावानामचिंत्यज्ञानगोचराः । यत्ततो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः ॥२॥
उत्पन्नः प्रोच्यतो विद्वन्नित्य एवोपचारतः । निजेन तस्य मानेन आयुवर्षशतं स्मृतम् ॥३॥
तत्पराख्यं परार्द्धं च तदर्द्धं परिकीर्त्तितम् । काष्ठापंचदशाख्याता निमेषो नृपसत्तम ॥४॥
काष्ठास्त्रिंशत्कलात्रिंशत्कलामौहूर्तिको विधिः । तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तै र्मनुषं स्मृतम् ॥५॥
अहोरात्राणि तावंति मासः पक्षद्वयात्मकः । तैष्षड्भिरयनं वर्षमयने दक्षिणोत्तरे ॥६॥
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ॥७॥
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे। चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ॥८॥
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः । तत्प्रमाणैः शतैःसंध्या पूर्वा तत्राभिधीयते ॥९॥
संध्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानंतरो हि यः ।संध्यासंध्यांशयोरंतः कालो यो नृपसत्तम ॥१०॥

ब्रह्माजी की आयु, युगादि काल का वर्णन, पृथिवी का उद्धार तथा ब्रह्माजी द्वारा की गयी अनेक प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— निर्गुण, अप्रमेय तथा शुद्ध महात्मा ब्रह्माजी किस प्रकार सृष्टि करने का कार्य करते हैं?॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** सभी पदार्थों में रहने वाली शक्तियाँ अचिन्त्य ज्ञान का विषय हैं, उनको समान्य बुद्धि से नहीं जाना जा सकता है । इसीलए ब्रह्माजी में भी सृष्टि करने आदि की शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं ॥२॥ यद्यपि ब्रह्माजी नित्य हैं, फिर भी उनको औपचारिक रूप से विद्वान् लोग उत्पन्न कहते हैं । ब्रह्माजी की अपने मान से सौ वर्षों की आयु बतलायी गयी है ॥३॥ उस काल को पर के नाम से अभिहित किया जाता है, और उनकी आयु के आधे भाग को परार्द्ध कहते हैं । हे राजश्रेष्ठ ! पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा होती है ॥४॥ तीस काष्ठाओं की एक कला होती है और तीस कलाओं का एक मुहूर्त कहलाता है । तीस मुहूर्तो का मनुष्यों के एक दिन-रात होते हैं ॥५॥ तीस दिन-रातों का एक मास होता है और एक मास में दो पक्ष होते हैं । छह मासों का एक अयन होता है । एक वर्ष में दो अयन होते हैं दक्षिणायन और उत्तरायण ॥६॥ दक्षिणायन में देवताओं की रात्रि होती है और उत्तरायण में देवताओं का दिन होता है । इस तरह मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं के एक दिन-रात होते हैं । देवताओं के बारह हजार वर्षों के सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग से युक्त एक चतुर्युग होता है । इन चारो युगों के काल का विभाग तुम मुझसे सुनो । इनमें कृतयुग (सत्ययुग) दिव्य चार हजार वर्षों का होता है, त्रेतायुग तीन हजार वर्षो का होता है, द्वापर युग दो हजार दिव्य वर्षों का होता है और कलियुग एक हजार दिव्य वर्षों का होता है । इसतरह से पुरातत्त्व के वेत्ता पुरुष बतलाते हैं और प्रत्येक युग के प्रारम्भ में उनकी पूर्व सन्ध्या होती है । जितने हजार वर्ष का जो युग होता है, उसकी पूर्व सन्ध्या भी उतने ही सौ वर्षों की होती है ॥७-९॥ (अर्थात् सत्ययुग की पूर्वसन्ध्या चार सौ दिव्य वर्षों की, त्रेता युग की पूर्वसन्ध्या तीन सौ दिव्य वर्षों की, द्वापर युग की पूर्वसन्ध्या दो सौ दिव्य वर्षों की और कलियुग की पूर्व सन्ध्या सौ दिव्य वर्षों की होती है ।) प्रत्येक युगों के अन्त में उनका सन्ध्यांश भी होता है । जिस युग की जितनी बड़ी पूर्व सन्ध्या होती है, उस युग का सन्ध्यांश भी उतना ही बड़ा होता है । हे नृपसत्तम

युगाख्यःस तु विज्ञेयःकृतत्रेतदिसंज्ञितः। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुर्युगम्॥११॥
प्रोच्यते तत्सहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसं नृप। ब्रह्मणो दिवसे राजन्मनवश्च चतुर्दश॥१२॥
भवंति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु। सप्तर्षयःसुराःशक्रो मनुस्तत् सूनवो नृप॥१३॥
एककाले हि सृज्यंते संह्रियंते च पूर्ववत्। चतर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः॥१४॥
मन्वंतरं मनोःकालःसुरादीनां च पार्थिव। अष्टौशतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतः॥१५॥
द्विपंचाशतथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च। त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाःसंख्याताःसंख्यया नृप॥१६॥
सप्तषष्टिस्त तथान्यानि नियुतानि महामते। विंशतिश्च सहस्राणि कालोयमधिकं विना॥१७॥
मन्वंतरस्य संख्येयं मानुषैरिह वत्सरैः। चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम्॥१८॥
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यांते प्रतिसंचरः। तदाहि दह्यते सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्॥१९॥
जनं प्रयांति तापार्ता महर्लोकनिवासिनः। एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः॥२०॥
भोगिशय्यागतःशेते त्रैलोक्यग्रासबृंहितः। जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिंत्यमानो जगद्विभुः॥२१॥
तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदंते सृजतेपुनः। एवं तु ब्रह्मणो वर्षमेवं वर्षशतं च तत्॥२२॥
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः। एकमस्य व्यतीतं तु परार्धं ब्रह्मणोनघ॥२३॥
तस्यान्ते भून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः। द्वितीयस्य परार्धस्य वर्तमानस्य वै नृप॥२४॥
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः।

(नृपश्रेष्ठ) सन्ध्या और सन्ध्यांश के बीच का जो काल होता है॥१०॥ उसी काल को सत्ययुग, त्रेतायुग आदि के नाम से कहा जाता है। सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग इन चारों को मिलाकर एक चतुर्युग होता है॥११॥ हे राजन्! एक हजार चतुर्युगों का ब्रह्माजी का एक दिन होता है। राजन्! ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनुओं का समय बीत जाता है॥१२॥ राजन्! सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु तथा मनु के पुत्र ये सब के सब एक ही समय में सृजित होते हैं और एक ही साथ इन सबों का संहार भी होता है। अब इन सबों के कालकृत परिमाण को तुम सुनो। एकहत्तर चतुयुर्गों से कुछ अधिक काल का एक मन्वन्तर होता है॥१३-१४॥ प्रत्येक मनुओं तथा उस मन्वन्तर के प्रधान देवाताओं आदि का काल (आयु) एक मन्वन्तर ही होता है। एक मन्वन्तर का काल आठ लाख बावन हजार (८५२०००) दिव्य वर्षो का होता है। यह समय मनुष्यों की वर्ष गणना के अनुसार तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्षो का होता है। और इसके चौदह गुना बड़ा ब्रह्माजी का दिन होता है॥१५-१८॥ ब्रह्माजी के दिन के अन्त में नैमित्तिक नामक ब्राह्म प्रतिसञ्चर (प्रलय) होता है। इस प्रलय में भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक ये तीनों लोक जलकर भस्म हो जाते हैं॥१९॥ उसके संताप से संतप्त होकर महर्लोक निवासी जीव जनलोक में चले जाते हैं। त्रैलोक्य के एकार्णव हो जाने पर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी॥२०॥ त्रैलोक्य को उपसंहृत करके शेष की शय्या पर शयन करते हैं। उस समय जनलोक में रहन वाले योगी जीव उनके स्वरूप का चिन्तन (ध्यान) करते रहते हैं॥२१॥ ब्रह्माजी का जितना बड़ा दिन होता है, उनकी रात्रि भी उतनी ही बड़ी होती है। रात्रि के अन्त में जगकर वे पुनः सृष्टि करते हैं। इसीतरह ब्रह्माजी का वर्ष तथा उनकी सौ वर्ष की आयु होती है॥२२॥ महात्मा ब्रह्माजी की आयु उनके मान से सौ वर्ष की ही होती है। उसे परमायु कहते हैं। हे अनघ भीष्मजी! ब्रह्माजी का एक परार्द्ध बीत चुका है॥२३॥ उस प्रथम परार्द्ध के अन्त में पाद्म कल्प हुआ था ऐसा सुना जाता है। हे राजन्! यह तो ब्रह्माजी का द्वितीय परार्द्ध चल रहा है॥२४॥ उसका यह वाराह नामक प्रथम कल्प है। हे महामुने!

भीष्म उवाच

ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पादौ भगवान्यथा ॥२५॥
ससर्ज सर्वभूतानि तदाचक्ष्व महामुने ।

पुलस्त्य उवाच

प्रजाःससर्ज भगवाननादिस्सर्वसंभवः ॥२६॥
अतीतकल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः प्रभुः । सत्वोद्रिक्तस्तथा ब्रह्माशून्यं लोकमवैक्षत ॥२७॥
तोयान्तस्स महीं ज्ञात्वा निमग्नां वारिसंपल्वे । प्रविचिंत्य तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥२८॥
विष्णुरूपं तदा ज्ञात्वा पृथ्वीं वोढुं स्वतेजसा। मत्स्यकूर्मादिकां चान्यां वाराहीं तनुमाविशत् ॥२९॥
वेदयज्ञमयं रूपमाश्रित्य जगतःस्थितौ । स्थितःस्थिरात्मा सर्वात्मा परमात्मा प्रजापतिः ॥३०॥
प्रविवेश तदा तोयं तोयाधरे धराधरः । निरीक्ष्य तं तदा देवी पातालतलमागतम् ॥३१॥
तुष्टाव प्रणता भूत्वा भक्तिनम्रा वसुंधरा ।

पृथिव्युवाच

नमस्ते सर्वभूताय नमस्ते परमात्मने ॥३२॥
मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वत्तोहं पूर्वमुत्थिता । परमात्मन् नमस्तेस्तु पुरुषात्मन् नमोस्तुते ॥३३॥
प्रधानव्यक्तरूपाय कालभूताय ते नमः । त्वं कर्त्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ॥३४॥
सर्गादौ यः परो ब्रह्मा विष्णुरुद्रात्मरूपधृक् । भक्षयित्वा च सकलं जगत्येकार्णवीकृते ॥३५॥
शेषे त्वमेव गोविन्द चिन्त्यमानो मनीषिभिः । भवतो यत्परंरूपं तन्न जानाति कश्चन ॥३६॥

भगवान् नारायण नामक ब्रह्माजी जिस प्रकार से कल्प के प्रारम्भ में ॥२५॥ सभी भूतों की सृष्टि किए उसे आप मुझे बतलायें । **महर्षि पुलस्त्य ने कहा—** सर्वसम्भव, अनादि भगवान् ब्रह्माजी ने प्रजाओं की सृष्टि की ॥२६॥ बीते हुए कल्प के अन्त में रात्रि के समय सोने के बाद जगे हुए ब्रह्माजी ने सत्त्वगुण के उद्रिक्त हो जाने से सम्पूर्ण लोकों को शून्य देखा ॥२७॥ उन्होंने जान लिया कि एकार्णव के जल में पृथिवी डूब गयी है, इस तरह से विचार करके पृथिवी का उद्धार करने की इच्छा से प्रजापति अपने विष्णुरूप को जानकर अपने तेज से पृथिवी का वहन करने के लिए मत्स्य, कूर्म, वाराह इत्यादि शरीर के भीतर प्रवेश किए ॥२९॥ उसके बाद वे यज्ञमय शरीर को धारण करके जगत् की स्थिति (रक्षण) काल में सुदृढ शरीर वाले वे सर्वात्मा स्थित रहते हैं । वे ही प्रजापति परमात्मा वाराह शरीर को धारण किए ॥३०॥ पृथिवी को धारण करने वाले वे एकार्णव के जल में प्रवेश किए । पाताल में आये हुए श्रीभगवान् को देखकर पृथिवी देवी ने ॥३१॥ भक्ति की भावना से विनम्र होकर श्रीभगवान् की स्तुति की । **पृथिवी देवी ने कहा—** सर्वभूतस्वरूप, परमात्मा को नमस्कार है ॥३२॥ हे भगवान् आज आप यहाँ से मेरा उद्धार करें । पूर्वकाल में आपने ही मेरी रचना की थी हे परमात्मन् ! हे पुरुष स्वरूप भगवन् ! आपको नमस्कार है ॥३३॥ आप ही प्रधान (प्रकृति) व्यक्त तथा काल स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप ही समस्त भूतों की सृष्टि करने वाले, रक्षा करने वाले तथा संहार करने वाले हैं ॥३४॥ आप ही सृष्टि आदि कार्यों को करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र रूप को धारण करते हैं; और जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णव (एक महा समुद्ररूप) हो जाता है, उस समय आप जगत् का भक्षण कर लेते हैं ॥३५॥ और हे गोविन्द ! उस समय आप ही शेष की शय्या पर शयन करते है और मनीषी जन आपका ध्यान करते रहते हैं । आपका जो पर रूप है उसको कोई भी नहीं जान पाता है ॥३६॥ आपके

अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः । त्वामाराध्य परंब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः ॥३७॥
वासुदेवमनाराध्य को हि मोक्षमवाप्स्यति । यद्रूपं मनसा ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः ॥३८॥
बुद्ध्या च यत्परिछेद्यं तद्रूपमखिलं तव । त्वन्मय्यहं त्वदाधारा त्वत्सृष्टा त्वामुपाश्रिता ॥३९॥
माधवीमिति लोकोयमभिधत्ते ततोहि माम् । एवंसंस्तूयमानस्तु पृथिव्या पृथिवीधरः ॥४०॥

सामस्वरध्वनिःश्रीमान् जगर्ज परिघर्घरम् ।
ततःसमुत्क्षिप्यधरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभःसमुत्थितो नील इवाचलो महान् ॥४१॥
उत्तिष्ठता तेनमुखानिलाहतं तदा पल्वांभोजनलोकसंश्रयान् ।
सनंदनादीनपकल्मषान्मुनींश्चकार भूयोपि पवित्रतास्पदम् ॥४२॥
प्रयांति तोयानि खुराग्रविक्षते रसातलेऽधः कृतशब्दसंततिः ।
बलाहकानां च ततिस्तु तस्य श्वासानिलास्ते परितः प्रयाति ॥४३॥
उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महींविदार्य ।
विधून्वतो वेदमयं शरीरं रोमांतरस्था मुनयो जुषंति ॥४४॥
जनेश्वराणां परमेश केशव प्रभुर्गदाशंखदरासिचक्रधृक् ।
प्रभूतिनाशस्थिति हेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम् ॥४५॥
पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्रा दंतेषु यज्ञाःश्रुतयश्च वक्त्रे ।
हुताशजिह्वोसि तनूरुहाणि दर्भाःप्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ॥४६॥

जो अवतारों में श्रीराम कृष्ण आदि रूप होते हैं देवतागण उसी की आराधना करते हैं । आपकी ही आराधना करके मुमुक्षु पुरुष मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥३७॥ भगवान् वासुदेव की आराधना किए विना कौन मोक्ष प्राप्त कर सकता है ? जिस रूप को मन के द्वारा अथवा किसी चक्षु आदि बाह्येन्द्रिय के द्वारा जाना जा सकता है, अथवा जिसे बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है, वे सबके सब आपके ही रूप हैं । मैं भी आपमय हूँ । आप ही मेरे आधार हैं, आपने ही मेरी सृष्टि की और मैं आपके ही आश्रित हूँ ॥३८-३९॥ इसी से संसार के लोग मुझे माधवी कहते हैं । जिस समय पृथिवी इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति कर रही थी उसी समय पृथिवी को धारण करने वाले ॥४०॥ ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् सामस्वर की ध्वनि में धर्घर गर्जना किए । विकसित कमल के समान नेत्र वाले महा वराह भगवान् अपने दाँतों से पृथिवी को उठाकर कमलदल के समान कान्ति वाले वे महानीलाचल के समान रसातल से ऊपर आये॥४१॥ ऊपर की ओर आते हुए श्रीभगवान् के मुख की वायु से उछलने वाले जल से जनलोक निवासी भी जीव भींग गये, और उस जल ने निष्पाप सनंदन आदि महर्षियों को और अधिक पवित्र बना दिया ॥४२॥ उनके खुरों से छिद्र हो जाने के कारण ध्वनि करता हुआ जल रसातल से नीचे जाने लगा और उनके मुख की वायु से आहत मेध गण चारो ओर बिखर गये ॥४३॥ एकार्णव से ऊपर आते हुए महाबराह की कुक्षि (पेट) जो भिंग गयी थी उस शरीर को फडफड़ाते समय रोओं में लगे हुए जल ने पृथिवी को फाड़कर मुनियों को पवित्र बना दिया ॥४४॥ स्वामियों के भी सर्वश्रेष्ठ नियामक भगवान् केशव ! गदा, शंख, कृपाण तथा चक्र को धारण करने वाले, सृष्टि, संहार तथा पालन करने वाले ईश्वर तथा परम प्राप्य आप ही हैं, आपसे भिन्न कोई दूसरा नहीं है ॥४५॥ हे प्रभो ! आपके चरणों में वेद का निवास है, आपकी दंष्ट्रा (दाढ) ही यज्ञशाला के यूप हैं, आपके दाँतों में यज्ञों तथा मुख में श्रुतियों का

द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव यदंतरं तद्वपुषा तवैव ।
व्याप्तं जगद्व्यापि समस्तमेतद्धिताय विश्वस्य विभो भव त्वम् ॥४७॥

परमात्मा त्वमेवैको नान्योस्ति जगतः पते ॥४८॥
तवैष महिमा येन व्याप्तमेतच्चराचरम्। ज्ञानस्वरूपमखलं जगदेतदबुद्धयः ॥४९॥
अर्थस्वरूपं पश्यंतो भ्राम्यंते तमसः प्लवे। ये तु ज्ञानविदश्शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत् ॥५०॥
ज्ञानात्मकं प्रपश्यंति त्वद्रूपं परमेश्वर । प्रसीद सर्वभूतात्मन् भवाय जगतस्त्विमाम् ॥५१॥
उद्धरोर्वीममेयात्मन्निमग्नामब्जलोचन । सत्वोद्रिक्तोसि भगवन्गोविंद पृथिवीमिमाम्॥५२॥
समुद्धर भवायेश कुरु सर्वजगद्धितम्। एवं संस्तूयमानश्च परमात्मा महीधरः ॥५३॥
उज्जहार क्षितिं क्षिप्रं न्यस्तवान्स महार्णवे। तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिवस्थिता ॥५४॥
ततःक्षितिं समां कृत्वा पृथिव्यामचिनोद्गिरीन् । यथाविभागं भगवाननादिः पुरुषोत्तमः ॥५५॥
भूविभागं ततःकृत्वा सप्तद्वीपान्यथातथम् । भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ॥५६॥
ब्रह्मणे विष्णुना पूर्वमेतदेव प्रदर्शितम्। तुष्टेन देवदेवेन त्वं देवः पुरुषोत्तमः ॥५७॥
त्वया मया जगच्चेदं धार्यं पाल्यं च यत्नतः। येषां त्वसुरमुख्यानां वरो दत्तो मयाधुना ॥५८॥
देवानां हितकामेन हंतव्यास्ते त्वया विभो। अहं सृष्टिं करिष्यामि सा च पाल्या त्वया विभो॥५९॥
एवमुक्तो गतो विष्णुर्देवादीनसृजद्विभुः । अबुद्धिपूर्वकस्तस्य प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥६०॥

निवास है । आपकी जिह्वा की अग्नि है और आपके रोम ही कुश हैं और आप ही यज्ञ पुरुष हैं ॥४६॥ हे अतुलनीय प्रभाव सम्पन्न प्रभो ! द्युलोक और भूलोक के बीच में जो अन्तराल है, वह आपके ही शरीर से व्याप्त है । हे विभो! आप इस जगत् का कल्याण करें ॥४७॥ हे संसार के स्वामिन् ! केवल आप ही परमात्मा हैं ॥४८॥ आपकी महिमा से यह चराचर जगत् व्याप्त है । यद्यपि यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञान स्वरूप है किन्तु अज्ञानी जीव इसे विषय रूप से देखते हैं ॥४९॥ ऐसा अनुभव करने के कारण वे अज्ञान सागर में चक्कर काट रहे हैं । जो लोग ज्ञान स्वरूप परमात्म तत्त्व के ज्ञाता हैं तथा शुद्र अन्तःकरण वाले हैं वे लोग आपके शरीरभूत सम्पूर्ण जगत् का ॥५०॥ ज्ञानात्मक रूप से अनुभव करते हैं । हे भूतात्मन् ! आप जगत् का कल्याण करने के लिए प्रसन्न हो जाइये और हे अमेयात्मन् कमलनयन ! इस डुबी हुयी पृथिवी का आप उद्धार करें । हे गोविन्द ! आप में सत्त्व गुण उद्रिक्त हो गया है, अतएव जगत् का कल्याण करने के लिए आप पृथिवी का उद्धार करें । इसतरह से मुनियों द्वारा स्तुति किये जाते हुए पृथिवी को धारण किए परमात्मा ॥५१-५२॥ शीघ्र ही पृथिवी का उद्धार करके उसको महार्णव के ऊपर स्थापित कर दिये और वह (पृथिवी) जल समूह के ऊपर विशाल नौका के समान स्थित हो गयी ॥५४॥ इसके बाद पृथिवी को समतल बनाकर ब्रह्माजी ने उसके ऊपर पर्वतों को व्यवस्थित किया । विभागों के अनुसार अनादि भगवान् पुरुषोत्तम ने ॥५५॥ यथोचित रूप से पृथिवी का विभाग करके सात द्वीपों तथा भूलोक आदि चारो लोकों की पूर्वमन्वन्तर के ही समान रचना की ॥५६॥ भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी को इतने ही मात्र को बतलाया । उससे प्रसन्न होकर देवदेव **ब्रह्माजी ने कहा**— आप ही पुरुषोत्तम हैं ॥५७॥ यह जगत् आपका और मेरा (दोनों का) धार्य और पाल्य है । जिन बड़े-बड़े असुरों को मैंने वरदान दिया है ॥५८॥ हे विभो ! देवताओं का कल्याण करने के लिए आप उन सबों का वध कर दें । हे विभो ! मैं जगत् की सृष्टि करूँगा और आप उसका पालन करेंगे ॥५९॥ इसतरह से कहे जाने पर भगवान् विष्णु चले गये और ब्रह्माजी ने देवताओं आदि की सृष्टि की । बुद्धिपूर्वक उस सृष्टि

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रोह्यन्यसंज्ञकः । पंचधावस्थितःसर्गो ध्यायतस्तु महात्मनः ॥६१॥
बहिरंतश्चाप्रकाशःसंवृतात्मा नगात्मकः । मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥६२॥
तं दृष्ट्वाऽसायकं सर्गममन्यदपरं प्रभुः । तस्याभिध्यायतस्सर्गस्तिर्यक्स्त्रोतोभ्यवर्तत ॥६३॥
यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिः स्यात्तिर्यक्स्त्रोतस्ततःस्मृतः । पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः ॥६४॥
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः । अहंकृतास्त्वहंमाना अष्टाविंशद्वधात्मकाः ॥६५॥
तमप्यसायकं मत्वा ध्यायतोन्यस्ततोऽभवत् । ऊर्ध्वस्त्रोतस्तृतीयस्तु सात्विकोर्ध्वमवर्तत ॥६६॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरंतरनावृताः । प्रकाशा वहिरंतश्च उर्ध्वस्त्रोतास्ततः स्मृताः ॥६७॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु संस्मृतः । तस्मिन्सर्गे भवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥६८॥
ततोन्यं स तदादध्यौ सायकं सर्गमुत्तमम् । असाधकांस्तु तान् ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसंभवान् ॥६९॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः । प्रादुर्भूतस्दाव्यक्तादर्वाक्स्त्रोतस्तु सायकः ॥७०॥
यस्मादर्वाक्प्रवर्तंते ततोऽर्वाक्स्त्रोतसस्तु ते । ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ॥७१॥
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः । प्रकाशा बहिरंतश्च मनुष्याः सायकाश्चते ॥७२॥
पंचमोऽनुग्रहः सर्गःस चतुर्द्धा व्यवस्थितः । विपर्ययेण सिद्ध्या च शक्त्या तुष्ट्या तथैव च ॥७३॥
विवृत्तं वर्त्तमानं च तेन जानंति वै पुनः । भूतादिकानां भूतानां षष्ठःसर्गः स उच्यते ॥७४॥

को नहीं करने के कारण वह सृष्टि तमोगुणमयी हुयी ॥६०॥ जिस समय ब्रह्मा सृष्टि को करने के लिए चिन्तन करते थे उस समय वह सर्ग पाञ्च रूप में स्थित हो गया तम, मोह, महामोह तामिस्र तथा अन्धतामिस्र ॥६१॥ उसमें भीतर बाहर कहीं भी प्रकाश नहीं था और वह पर्वतात्मक सृष्टि हुयी । चूकि पर्वतों को मुख्य कहा गया है, अतएव यह मुख्य सर्ग कहलाता है ॥६२॥ उस सर्ग को साधक नहीं देखकर ब्रह्माजी दूसरा सर्ग करना चाहे । उस समय जब वे ध्यान कर रहे थे तो उससे तिर्यक् स्रोतों (पशुओं तथा पक्षियों) की उत्पत्ति हुयी ॥६३॥ चूकि उनकी तिर्यक् प्रवृत्ति होती है, इसीलिए उन्हें तिर्यक् स्रोत कहते हैं । पशु आदि तमः प्रधान तथा अज्ञानी रूप से विख्यात हैं ॥६४॥ वे उन्मार्गगामी, अज्ञान में ही ज्ञान की बुद्धि करने वाले, अहङ्कार से जन्य अभिमान युक्त होते हैं । ये अठाइस प्रकार के हैं । वे सबके सब भीतरी ज्ञान वाले तथा परस्पर में एक दूसरे से आच्छन्न हैं ॥६५॥ ब्रह्माजी ने उस सृष्टि को भी साधक नहीं माना और उससे भिन्न प्रकार की सृष्टि का चिन्तन करने लगे; उससे ऊर्ध्वस्रोत नामक तीसरे प्रकार की सृष्टि हुयी । वह सृष्टि सात्त्विक तथा ऊर्ध्व प्रवृति वाली हुयी ॥६६॥ उस सृष्टि के जीव सुख एवं आनन्द प्रधान थे। ये भीतर बाहर कहीं भी अज्ञान से आच्छादित नहीं थे । उनके भीतर एवं बाहर ज्ञान का प्रकाश था । इसीलिए वे ऊर्ध्वस्रोत कहलाये ॥६७॥ उस सृष्टि से ब्रह्माजी को सन्तोष हुआ इसलिए यह तीसरा देवसर्ग हुआ । उस सर्ग के पूर्ण हो जाने पर ब्रह्माजी को सुखानुभूति हुयी ॥६८॥ उन तीनों प्रकार के मुख्य सर्गो को साधक नहीं मानकर ब्रह्माजी ने उससे भिन्न उत्तम साधक सर्ग करने की इच्छा से ध्यान किया ॥६९॥ उसके वाद सत्य-सङ्कल्प करने वाले ब्रह्माजी के ध्यान करने से साधक अर्वाक् स्रोतों की अव्यक्त से सृष्टि हुयी ॥७०॥ चूकि उस सर्ग के जीव नीचे की ओर प्रवृत्ति वाले होते हैं अतएव वे अर्वाक् स्रोत हुए । उनमें ज्ञान का प्रकाश अधिक होता है, वे उद्रिक्त तमोगुण वाले तथा रजोगुण प्रधान होते हैं ॥७१॥ इसलिए वे अधिक दुःखी तथा बार-बार कर्मों को करने वाले होते हैं । उनके भीतर और बाहर दोनों ओर ज्ञान का प्रकाश होता है । वे साधक मनुष्य ही हैं ॥७२॥ पाँचवे प्रकार का सर्ग अनुग्रह सर्ग है । उस सर्ग के चार भेद हैं विपर्यय सर्ग, सिद्धिसर्ग, शक्तिसर्ग तथा तुष्टिसर्ग ॥७३॥ इसीलिए वे भूतकालिक

ते परिग्राहिण:सर्वे सविभागतरास्तु ते। चोदना जाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकास्तु ते ॥७५॥
इत्येते कथिता:सर्गा:षडत्रनृपसत्तम । प्रथमोमहतस्सर्गो द्वितीयो ब्रह्मणस्तु यः ॥७६॥
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः । वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैद्रियकः स्मृतः ॥७७॥
इत्येषः प्राकृत:सर्ग:संभूतो बुद्धिपूर्वक: । मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्यवैस्थावराः स्मृताः ॥७८॥
तिर्यक्स्त्रोतश्चय:प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यस्स उच्यते । ततोर्ध्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥७९॥
ततोर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः। अष्टमोऽनुग्रहः सर्ग:सात्विकस्तामसस्तु सः ॥८०॥
पंचैते वैकृता:सर्गा:प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः । प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥८१॥
एते तव समाख्याता नवसर्गा:प्रजापतेः । प्रकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ॥८२॥
सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ।

भीष्म उवाच

संक्षेपातक्थितासर्गा देवादीनां गुरो त्वया ॥८३॥
विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तो मुनिवरोत्तम ।

पुलस्त्य उवाच

कर्मभिर्भाविता:सर्वे कुशलाकुशलैस्तु ते ॥८४॥
ख्यात्या तया ह्यनिर्मुक्ताः संहारेह्युपसंहताः । स्थावरान्तास्सुराद्यास्तु प्रजाराजंश्चतुर्विधाः॥८५॥
ब्रह्मण:कुर्वत:सृष्टिं जज्ञिरे मानसा:स्मृताः । ततो देवासुरपितृन्मानुषांस्तु चतुष्टयम् ॥८६॥
सिसृक्षुरंभांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् । मुक्तात्मनस्ततो जातादुरात्मान:प्रजापतेः ॥८७॥

वस्तु को और वर्तमान को जानते है । भूत आदि जीवों की सृष्टि छठा सर्ग कहलाता है ॥७४॥ वे सबके सब परिग्रही और अत्यधिक विभाग से युक्त हैं । उन भूतादि को प्रेरणा युक्त तथा जाप्यशील समझना चाहिए ॥७५॥ हे राजन् इस तरह से इन छह सर्गो को बतलाया गया । ब्रह्माजी का पहला सर्ग महत् तत्त्व का सर्ग है ॥७६॥ दूसरा तन्मात्राओं का सर्ग है, उसी को भूत सर्ग कहा गया है । इन्द्रियों के सर्ग को वैकारिक सर्ग (सात्विक सर्ग) कहते हैं ॥७७॥ इसतरह से तीन बुद्धि रहित सर्ग प्राकृत सर्ग कहलाते हैं । चौथा सर्ग मुख्य सर्ग है । पर्वत वृक्ष आदि स्थावरों को मुख्य कहते हैं ॥७८॥ तिर्यग्योनि के जीवों की सृष्टि को तिर्यक् स्त्रोत कहा गया है । उसके बाद छठा ऊर्ध्व स्त्रोतों का सर्ग है । उसी को देवसर्ग कहते हैं ॥७९॥ उसके बाद सातवाँ सर्ग अर्वाक् स्त्रोतों का है । वही मनुष्य सम्बन्धी सृष्टि है । आठवाँ सर्ग अनुग्रह सर्ग है । वह सत्त्व प्रधान तथा तमः प्रधान है ॥८०॥ ये पाँच सर्ग वैकृत सर्ग हैं । इनसे पहले के तीन सर्ग प्राकृत सर्ग हैं । इन सबों से भिन्न नवाँ सर्ग कौमार सर्ग है, यह प्राकृत एवं वैकृत दोनों प्रकार का है ॥८१॥ इसतरह से मैंने प्रजापति (ब्रह्माजी) के नव सर्गो को बतलाया । इसमें प्राकृत एवं वैकृत ये दोनों प्रकार के सर्ग जगत् के मूल कारण हैं ॥८२॥ इसतरह से सृष्टि करने वाले जगदीश्वर की सृष्टियों को तुम्हें मैंने बतलाया, अब दूसरा क्या सुनना चाहते हो ? **भीष्मजी ने कहा—** हे गुरुदेव ! आपने संक्षेप में सृष्टियों का वर्णन किया है ॥८३॥ हे मुनिश्वरों में श्रेष्ठ मैं उसको विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** सभी जीव कुशल (पुण्य) तथा अकुशल (पाप) रूपी कर्मो के संस्कार से युक्त है ॥८४॥ हे राजन् ! जिनका संहार काल में संहार हो जाता है, जिनकी मुक्ति नहीं हुयी है, ऐसे ख्याति रूप से स्थावरों से लेकर देवताओं पर्यन्त चार प्रकार की सृष्टियाँ होती हैं॥८५॥ सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी के मानसिक सङ्कल्प से उत्पन्न होने के कारण यह मानसिक प्रजा कहलायी । उसके

सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वं जज्ञिरे त्वसुरास्ततः । तत्याज तां ततो दुष्टान्तमोमात्रात्मिकां तनुम् ॥८८॥
सा तु त्यक्ता तनुस्तेन राजेंद्राभूद्विभावरी । सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमापुस्ततः सुराः ॥८९॥
सत्वोद्रिक्ताः समुद्भूता मुखतो ब्रह्मणो नृप। त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्वप्रायमभूद्दिनम् ॥९०॥
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा। सत्वमात्रात्मिकां चैव ततोन्यां जगृहे तनुम् ॥९१॥
पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे । उत्सर्ज पितॄन्कृत्वा ततस्तामापि स प्रभुः ॥९२॥
सा चोत्सृष्टा भवत्संध्या दिननक्तांतरास्थितिः । रजोमात्रात्मिकामन्यां जगृहे स तनु ततः ॥९३॥
रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्याः कुरुसत्तम। तामप्याशु स तत्याज तनुमाद्यां प्रजापतिः ॥९४॥
ज्योत्स्ना समभवाच्चापि प्राक्संध्या याभिधीयते। ज्योत्स्नागमे तु वलिनो मनुष्याःपितरस्तथा ॥९५॥
राजेंद्र संध्यासमये तस्मात्ते प्रभवंति वै । ज्योत्स्नारात्र्यहनीसन्ध्या चत्वार्येतानि वै विभोः ॥९६॥
ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रयाणि च । रजोमात्रात्मिकामेव ततोन्यां जगृहे तनुम् ॥९७॥
ततः क्षुद्ब्रह्मणो जाता जज्ञे कोपस्तया कृतः । क्षुत्क्षामो ह्यंधकारे तु सोसृजद्भगवांस्ततः ॥९८॥
विरूपा अनुकामस्ते समधावंत तं प्रभुम् । रक्षतामेप यै रुक्तं राक्षसास्ते ततोऽभवन् ॥९९॥
ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु ते भवन् । अतिभीतस्य तान्दृष्ट्वा केशाःशिर्यन्ति वियसः ॥१००॥
हीनाश्च शिरसो भूयः समारोहंति ते शिरः । सर्पणात्तेऽभवन्सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः ॥१०१॥

बाद ब्रह्माजी ने देवता, असुर, पितृगण तथा मनुष्य इन चारों की सृष्टि की ॥८६॥ सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी ने इन सभी (चारो प्रकार की) तथा जल की सृष्टि में अपने शरीर का उपयोग किया । मुक्तात्मा ब्रह्माजी की जङ्घाओं से दुरात्मा असुरों की उत्पत्ति हुयी । उसके बाद ब्रह्माजी ने अपने तमः प्रधान शरीर का परित्याग कर दिया॥८७-८८॥ हे राजेन्द्र ! ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त शरीर रात्रि के रूप में परिणत हो गया । सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण किया, उससे देवताओं की उत्पत्ति हुयी ॥८९॥ हे राजन् ! देवताओं में सत्त्व गुण उद्रिक्त था ये देवता ब्रह्माजी के मुख से पैदा हुए । उसके बाद ब्रह्माजी ने उस शरीर का भी परित्याग कर दिया और वही सत्त्व प्रधान दिन बन गया ॥९०॥ इसीलिए रात्रि में असुर बलवान होते हैं और दिन में देवता । उसके बाद ब्रह्माजी ने सत्त्वगुण प्रधान दूसरे शरीर को धारण किया उससे पिता के तरह मानने वाले ब्रह्माजी के उस शरीर से पितरों की उत्पत्ति हुयी । पितरों की सृष्टि करके ब्रह्माजी ने उस शरीर का भी परित्याग कर दिया ॥९२॥ ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त वह शरीर ही दिन तथा रात्रि के बीच में रहने वाली सन्ध्या बन गयी । उसके बाद उन्होंने केवल रजोगुण से युक्त दूसरे शरीर को धारण किया ॥९३॥ हे कौरवश्रेष्ठ । उस शरीर से रजोगुण की अधिकता वाले मनुष्यों की सृष्टि हुयी । प्रजापति ने उस प्रथम शरीर को भी शीघ्र ही त्याग दिया ॥९४॥ यह शरीर ज्योत्स्ना (प्रकाश) हो गया । उसे ही पूर्व सन्ध्या भी कहते हैं । इसीलिए पूर्व संध्या की बेला में मनुष्य तथा सायंकाल में पितृगण बलवान् होते हैं ॥९५॥ हे राजेन्द्र । इसीलिए ये संध्या के समय ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन तथा सन्ध्या ये चारो ही होते हैं ॥९६॥ ब्रह्माजी के ये शरीर त्रिगुण (सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) को अपना आश्रय बनाते हैं । उसके बाद ब्रह्माजी ने रजोगुण प्रधान दूसरे शरीर को धारण किया ॥९७॥ उसके बाद ब्रह्माजी को भूख लगी और वे उसके कारण क्रोध किए । भूखे ब्रह्माजी ने अन्धकार में ही सृष्टि की, उसके कारण ॥९८॥ जो सृष्टि हुयी उस सृष्टि के जीव कुरुप तथा खाने की इच्छा वाले हुए और वे ब्रह्माजी को ही खाने के लिए दौड़े । उन सबों में से जिन सबों ने इसकी रक्षा करो कहा वे राक्षस हुए ॥९९॥ और जिन सबों ने कहा हम इसे खा रहे हैं; कहा वे यक्ष हो गये । उन सबों को देखकर

ततःक्रुद्धेन वै स्रष्ट्रा कोधात्मानो विनिर्मिताः। वर्णेन कपिशेनोग्रा भूतास्ते पिशिताशिनः ॥१०२॥
धयतो गां समुद्भूता गंधर्वास्तस्य तत्क्षणात्। पिबंतो जज्ञिरेवाचं गंधर्वास्तेन तेऽभवन्॥१०३॥
एतानिसृष्ट्वा भगवान्ब्रह्मा तच्छक्तिचोदितः । ततःस्वच्छंदतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत् ॥१०४॥
अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोजांश्च सृष्टवान्। सृष्टवानुदराद्गाश्च महिषांश्च प्रजापतिः ॥१०५॥
पद्भ्यां चाश्वान्स मातंगान् रासभान् गवयान्मृगान् ।उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यंकूनन्याश्चजातयः॥१०६॥
ओषध्यःफलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे। त्रेतायुगमुखे ब्रह्मा कल्पस्यादौ नृपोत्तम॥१०७॥
सृष्ट्वा पश्वोषधीस्सम्यक् युयोज स तदाध्वरे । गामजं महिषंमेषमश्वाश्वतरगर्दभान् ॥१०८॥
एतान् ग्राम्यपशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे। श्वापदो द्विखुरो हस्ती वानरः पञ्चमः खगः ॥१०९॥
उष्ट्रकाःपशवष्षष्ठास्सप्तमाहुस्सरीसृपाः । गायत्रं च ऋचश्चैव त्रिवृत्सोमं रथन्तरम् ॥११०॥
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्। यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दःस्तोमं पञ्चदशं तथा ॥१११॥
बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात्। सामानि जगतीच्छन्दःस्तोमं सप्तदशं तथा॥११२॥
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् । एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ॥११३॥
आनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् । उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥११४॥
सुरासुरपितॄन् सृष्ट्वा मनुष्यांश्च प्रजापतिः । ततःपुनःससर्जासौ स कल्पादौ पितामहः ॥११५॥
यक्षान्पिशाचान्गंधर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् । सिद्धकिन्नररक्षांसि हिंस्रान्पक्षिमृगोरगान्॥११६॥

अत्यन्त भयभीत ब्रह्माजी के शिर के बाल गिर गये ॥१००॥ शिर से गिरे हुए वे पुनः शिर पर जम (चढ) गये। उन सबों में जो चढ गये वे तो सर्प कहलाये तथा जो गिरे ही रह गये वे अहि कहलाये ॥१०१॥ उसके बाद क्रुद्ध ब्रह्माजी ने क्रोध प्रधान मांसभक्षी पिशाचों की सृष्टि की, वे कपिश वर्ण के तथा उग्र स्वभाव के थे ॥१०२॥ ब्रह्माजी द्वारा गौ (वाणी) का पान करते समय ही गन्धर्वों की उत्पत्ति हुयी। इसीलिए वाणी का पान करने वाले वे गन्धर्व कहलाये ॥१०३॥ इन सबों की सृष्टि करके ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर अपनी इच्छानुसार अपने वयस (आयु) से वायसों (पक्षियों) की सृष्टि की ॥१०४॥ उन्होंने अपने वक्षःस्थल से भेड़ों की, मुख से बकरियों की सृष्टि की। प्रजापति ने अपने पेट से गायों और भैसों की सृष्टि की ॥१०५॥ उन्होंने अपने दोनों पैरों से घोड़े, हाथी, गधे, नीलगाय, मृग, ऊँट, खच्चर, न्यंकू तथा दूसरे जाति के पशुओं की सृष्टि की ॥१०६॥ उनके रोओं से फल एवं मूल प्रधान ओषधियों की उत्पत्ति हुयी। हे राजन्! ब्रह्माजी ने त्रेतायुग के प्रारम्भ तथा कल्प के प्रारम्भ में पशुओं तथा ओषधियों (अन्नों) की सृष्टि करके उन सबों का यज्ञ में अच्छी तरह से उपयोग किया। गौ, बकरी, महिष (भैंस) मेष (भेंड) घोड़ा, खच्चर, गधे ॥१०८॥ इन सबों को ग्राम्य पशु कहा गया है, अव तुम अरण्य (वनों में रहने वाले) पशुओं को मुझसे सुनो, दो खुरों वाले पशु, हाथी, वानर, चिडिया ॥१०९॥ ऊँट ये छह प्रकार के पशु तथा सर्प वन्य जीव हैं। ब्रह्माजी ने अपने पूर्वमुख से गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्सोम, रथन्तरसाम ॥११०॥ तथा अग्निष्टोम नामक यज्ञ की सृष्टि की। उन्होंने अपने दक्षिण मुख से, यजुषों, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदश स्तोमों की॥१११॥ नृहत्साम तथा उक्थ की सृष्टि की। साम, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम ॥११२॥ वैरूप था अतिरात्र याग की सृष्टि ब्रह्माजी ने अपने पश्चिम मुख से की। इक्कीस प्रकार से अथर्व, आप्तोर्याम, वैराज तथा अनुष्टुप् छन्द की सृष्टि की। इसके अतिरिक्त उनके अङ्गों से उच्चावच (छोटे बड़े जीवों की सृष्टि हुयी) ॥११३-११४॥ देवता, असुर, पितृगणों तथा मनुष्यों की सृष्टि करके ब्रह्माजी कल्प के प्रारम्भ में पुनः यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं, सिद्धों, किन्नरों,

अव्ययं चव्ययंचैव यदिदं स्थाणुजंगमम् । तत्ससर्ज तदा ब्रह्मा भगवानादिकृद्विभुः ॥११७॥
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥११८॥
हिंस्राहिंस्रे मृदक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥११९॥
इंद्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः । नानात्त्वं विनियोगं च धातैवं व्यसृजत्स्वयम् ॥१२०॥
नानारूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपंचनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥१२१॥
ऋषीणां नामधेयानि यथावेदे श्रुतानि वै । यथानियोगं योग्यानि अन्येषामपि सोकरोत् ॥१२२॥
यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥१२३॥
करोत्येवं वियां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः । सिसृक्षुश्शक्तियुक्तोसौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः ॥१२४॥

भीष्म उवाच

अर्वाक्स्रोतास्तुकथितो भवता यस्तु मानुषः । ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद्यथा ॥१२५॥
यथा सवर्णानसृजद्गुणांश्च स महामुने । यच्च तेषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ॥१२६॥

पुलस्त्य उवाच

सत्वाभिध्यायिनःपूर्वंसिसृक्षोर्ब्रह्मणःप्रजाः । अजायंत कुरुश्रेष्ठ सत्वोद्रिक्ता मुखात्प्रजाः ॥१२७॥
वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथान्या ब्रह्मणोऽभवन् । रजसस्तमसश्चैव समुद्रिक्तास्थोरुतः ॥१२८॥
पद्भ्यामन्याःप्रजा ब्रह्मा ससर्ज कुरुसत्तम । तमःप्रधानास्ताःसर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः ॥१२९॥

राक्षसों, सिंहों, पक्षियों, सर्पों तथा मृगों की सृष्टि किए ॥११५-११६॥ उस समय, विकृत तथा अविकृत होने वाले समस्त स्थावर एवं जङ्गमों की सृष्टि ब्रह्माजी किए ॥११७॥ उन सबों में जिन जीवों द्वारा पूर्व जन्म में जो कर्म किए गये थे, वे सभी कर्म उन जीवों को प्राप्त हो गये । बार-बार सृजित किए जाने वाले वे जीव उन्हीं कर्मों को प्राप्त करते हैं ॥११८॥ हिंसक, अहिंसक, मृदु तथा क्रूर, धर्म-अधर्म, सत्य एवं मिथ्या इत्यादि जिस प्रकार के संस्कार से वे युक्त होते हैं, उन्हीं कर्मों में उन जीवों की रुचि होती है ॥११९॥ इन्द्रियों के रूप रसादि विषयों में; भूतों में तथा शरीर में जगत् के स्वामी ब्रह्माजी ने स्वयं नानात्व तथा विनियोग की सृष्टि की ॥१२०॥ कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने जीवों के नाम, रूप तथा कृत्यों का विस्तार वैदिक वाक्यों के ही अनुसार किया ॥१२१॥ वेदों में ऋषियों के भी जैसे नाम सुने गये हैं, उनके तथा अन्य जीवों के भी नाम नियोग (विधि वाक्यों) के अनुसार उन्होंने किया ॥१२२॥ जिस तरह से ऋतुओं के प्राप्त होने पर उनके विविध प्रकार के चिह्न आविर्भूत हो जाते हैं । उसी प्रकार युगों के प्रारम्भ में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न हो जाते हैं ॥१२३॥ सृष्टि करने की इच्छानुसार तथा सृष्टि की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी कल्प के प्रारम्भ में सृज्य पदार्थों की शक्ति से प्रेरित होकर उसी प्रकार से सृष्टि करते हैं ॥१२४॥ **भीष्मजी ने कहा—** आपने अर्वाक् स्रोत सर्ग के नाम से मनुष्यां को कहा है । हे ब्रह्मन् ! इस अर्वाक् स्रोत की सृष्टि जिस प्रकार से ब्रह्माजी ने की उसे आप विस्तार से बतलाइये ॥१२५॥ उन्होंने जिस प्रकार से सवर्णों की सृष्टि की, उन सबों के गुणों को तथा ब्राह्मणों आदि के जो कर्म हैं, उन सबां को आप बतलाएँ ॥१२६॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे कुरुश्रेष्ठ ! सत्त्वगुण का ध्यान करने वाले, सृष्टि करने के इच्छुक ब्रह्माजी की सर्व प्रथम उनके मुख से जिनका सत्त्वगुण उद्रिक्त था, ऐसी प्रजाएँ उत्पन्न हुयीं ॥१२७॥ ब्रह्माजी के वक्षःस्थल से रजोगुण प्रधान दूसरी प्रजाएँ उत्पन्न हुयीं । उनके ऊरूभाग (जङ्घों) से ऐसी प्रजाएँ हुयीं जिनका रजोगुण तथा तमोगुण उद्रिक्त था ॥१२८॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्रह्माजी ने अपने दोनों पैरों से दूसरी प्रजाओं की सृष्टि की जो तमोगुण प्रधान थी । यह चतुर्वर्ण्य भी

ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याःशूद्राश्च नृपसत्तम । पादोरुवक्षस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥१३०॥
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद्ब्रह्मा चकार ह । चातुर्वर्ण्यं महाराज यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥१३१॥
यज्ञेन यायिता देवा वृष्ठ्युत्सर्गेण मानवाः । आप्यायन्ते धर्मयज्ञा यतःकल्याणहेतवः ॥१३२॥
निष्पद्यंते नरैस्ते तु सुकर्मनिरतैःसदा । विरुद्धाचरणापेतैःसद्भिःसन्मार्गगामिभिः ॥१३३॥
स्वर्गापवर्गमानुष्यात्प्राप्नुवंति नरा नृप । यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यांति मनुजा विभो॥१३४॥
प्रजास्ता ब्रह्मणा सृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितौ। सम्यक् शुद्धाःसमाचारा चरणा नृपसत्तम ॥१३५॥
यथेच्छावासनिरताःसर्वबाधाविवर्जिताः । शुद्धांतःकरणाः शुद्धा धर्मानुष्ठाननिर्मलाः ॥१३६॥
शुन्द्धे च तासां मनसि शुद्धांतःसंस्थिते हरौ । शुद्धज्ञानं प्रपश्यंति ब्रह्माख्यं येन तत्पदम् ॥१३७॥
ततःकालात्मको योऽसौ विरिंचावास उच्यते । संसारपातमत्यर्थं घोरमल्पाल्पसारवत् ॥१३८॥
अधर्मबीजभूतं तत्तमोलोभसमुद्गतम् । प्रजासु तासु राजेंद्र रागादिकमसाधनम् ॥१३९॥
ततःसा सहजा सिद्धिरेषां नातीव जायते । राजन्वश्यादयश्चान्याः सिद्धयोष्टौ भवंति याः ॥१४०॥
तासु क्षीणास्वशेषासु वर्द्धमाने च पातके । द्वंद्वाभिभवदुःखार्तास्ता भवंति ततःप्रजाः ॥१४१॥
ततोदुर्गाणि ताश्चक्रुर्वार्क्षपार्वतमौदकम् । धान्वनं च तथा दुर्गं पुरंखार्वटकादि यत् ॥१४२॥
गृहाणि च यथान्यायं तेषु चक्रुः पुरादिषु । शीततापादिबाधानां प्रशमाय महामते ॥१४३॥

उसी से हुआ ॥१२९॥ हे नृपश्रेष्ठ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उनके पैर जङ्घा, वक्षःस्थल तथा मुख से उत्पन्न हुए (अर्थात् ब्रह्माजी के मुख से ब्राह्मणो की, वक्षःस्थल से क्षत्रियों की, ऊरूभाग से वैश्यों की तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुयी ।) ॥१३०॥ यह सब कुछ ब्रह्माजी ने यज्ञ के सम्पादन के लिए किया । हे महाराज ! चातुर्वर्ण्य यज्ञ का उत्तम साधन है ॥१३१॥ चूकि धर्मयज्ञ कल्याण करने वाले होते हैं, इसीलिए यज्ञ के द्वारा देवताओ की पुष्टि होती है, (और यज्ञ से प्रसन्न देवताओ के द्वारा की जाने वाली) वृष्टि से मनुष्य पुष्ट होते हैं ॥१३२॥ सन्मार्गगामी, शास्त्रनिषिद्ध कर्मों को नहीं करने वाले तथा सत्कर्म परायण मनुष्यों के द्वारा यज्ञ निष्पादित किए जाते हैं ॥१३३॥ हे राजन् ! यज्ञ के द्वारा मनुष्य स्वर्ग, मुक्ति तथा मनुष्यत्व को प्राप्त करते हैं । हे राजन् ! उन यज्ञकर्ताओं के लिए जो उचित स्थान होता है, उस स्थान को वे प्राप्त कर लेते हैं ॥१३४॥ हे नृपसत्तम ! जिनकी सृष्टि ब्रह्माजी ने की है, वह प्रजा चातुर्वर्ण्य में व्यवस्थित रहकर, अच्छी तरह से शुद्ध और सदाचार पालन करने वाली होती है ॥१३५॥ वे अपनी इच्छा के अनुसार निवास करने वाली तथा सभी प्रकार की बाधाओं से रहित होती हैं । वे प्रजाएँ शुद्ध धर्म का अनुष्ठान करने वाली, शुद्ध तथा निर्मल हो जाती हैं ॥१३६॥ उन सबों के शुद्ध हो जाने पर उनके शुद्ध अन्तःकरण में श्रीहरि का निवास हो जाता है । उसके कारण वे शुद्ध ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।॥१३७॥ सीमित समय तक रहने वाला जो ब्रह्माजी का लोक है, वह संसार में पतन के भय से युक्त होने के कारण उस मुक्ति की अपेक्षा अल्प महत्त्व का है ॥१३८॥ हे राजेन्द्र ! उन प्रजाओं में धर्म अधर्म का कारणभूत, तमोगुण तथा लोभ से उत्पन्न होने वाले राग आदि मुक्ति आदि मुक्ति के साधक नहीं हैं ॥१३९॥ उसके (रागादि के) कारण उन जीव में आठ प्रकार का वशयत्व तथा अन्य प्रकार की सिद्धियाँ नहीं हो पाती हैं । उन सभी सिद्धियों के पूर्ण रूप से क्षीण हो जाने और पापों के बढ जाने पर; वे प्रजाएँ द्वन्द्वों (सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि) से अभिभव जन्य दुःखों से अत्यन्त दुःखी हो जाती हैं ॥१४०-१४१॥ उसके बाद प्रजाओं ने वृक्षों, पर्वतों, जलों अथवा मरुभूमियों में अपना दुर्ग बनाया । उसके पश्चात् उन सबों ने दुर्ग, खर्वट तथा नगर आदि को बनाया ॥१४२॥ उन

प्रतिहारमिमं कृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः। वार्तोपायं ततश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ॥१४४॥
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः। प्रियंगुकोविदाराश्च कोरदूषाः सचीनकाः ॥१४५॥
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलुत्थकाः। अढकाश्चणकाश्चैव शणस्सप्तदश स्मृताः ॥१४६॥
इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयो नृप। ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्या वन्याश्चतुर्दश ॥१४७॥
व्रीहयःसयवा माषा गोधूमा अणवस्तिलाः। प्रियंगुसप्तमा ह्येता अष्टमास्तु कुलुत्थकाः ॥१४८॥
श्यामाकस्त्वथनीवारो वर्तुलस्सगवेधुकः। अथ वेणुयवाःप्रोक्तास्तद्वन्मर्कटका नृप ॥१४९॥
ग्राम्या वन्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश। यज्ञनिष्पत्तये तद्वत्तथासां हेतुरुत्तमः ॥१५०॥
एताश्च सह यज्ञेन प्रजानां कारणं परम्। परापरविदःप्राज्ञस्ततो यज्ञान्वितन्वते ॥१५१॥
अहन्यहन्यनुष्ठानं यज्ञानां पार्थिवोत्तम। उपकारकरं पुंसां क्रियमाणं फलार्थिनाम् ॥१५२॥
येषां च कालसृष्टोऽसौ पपाबिंदुर्महामते। मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम् ॥१५३॥
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान् धर्मभृतांवर। लोकांश्च सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम् ॥१५४॥
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं तु पार्थिव। स्थानमैंद्रं क्षत्रियाणां सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥१५५॥
वैश्यानाम्मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तिनाम्। गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्यासु वर्तिनाम् ॥१५६॥
अष्टाशीतिसहस्राणां यतीनामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम्॥१५७॥
सप्तर्षीणां च यत्स्थानं स्मृतं तद्वैवनौकसाम्। प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्राह्मसंज्ञितम् ॥१५८॥

नगरों में उन सबों ने अपने अनुकूल गृहों को बनाया। हे महामत्ते ! प्रजाओ ने यह सब शीत तथा आतप (धूप) आदि की बाधाओं से बचने के लिए किया ॥१४३॥ शीत आदि से इस प्रकार से रक्षा के उपाय को करके उन प्रजाओं ने कृषि के उपायों को तथा कर्म जन्य हस्त शिल्प को किया ॥१४४॥ उससे उनलोगों ने सत्रह प्रकार के ग्राम्य अन्नों की जातियों को उत्पन्न किया। वे हैं धान, यव, अणु, तिल, प्रियंगु, कोविदार, कोरदूष (कोदव) चीन, उडद, मूंग, मसूर, निष्पावा, कुलथी, आढक, चना तथा शण ॥१४५-१४६॥ हे राजन् ! ये सभी ग्राम्य अन्नों की जातियाँ है ग्रामों तथा वनों में उत्पन्न होने वाले यज्ञोपयोगी अन्न चौदह प्रकार के हैं ॥१४७॥ धान, यव, उड़द, गेहूँ, अणु, तिल, प्रियङ्गु, कुलथी, सावाँ, नीवार, वर्तुल, गवेधुक, वेणु यव तथा मर्कटक ॥१४८-१४९॥ ये सभी चौदह औषधियाँ (अन्य) ग्राम्य तथा वन्य हैं। ये सभी यज्ञ सम्पादन के साधन हैं, और यज्ञ इन सबों की उत्पत्ति का उत्तम साधन है ॥१५०॥ यज्ञ के साथ ये सभी अन्न प्रजाओं की उत्पत्ति के श्रेष्ठ साधन हैं। अतएव पर एवं अपर तत्वों के ज्ञाता पुरुष यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। हे राजन् श्रेष्ठ ! यज्ञों का प्रतिदिन किया जाने वाला अनुष्ठान किये जाने वाले कर्मो का फल चाहने वाले मनुष्यों के उपकारक हैं ॥१५२॥ हे महामत्ते ! काल ने लोगों के लिए प्राप्य विन्दु की मर्यादा की स्थापना स्थान और गुण के अनुसार की हैं ॥१५३॥ हे धर्म का पालन करने वालों में श्रेष्ठ ! वर्णों तथा आश्रमों के धर्मों तथा सभी वर्णों का पालन करने वालों को प्राप्त होने वाले लोकों को आप सुनें ॥१५४॥ हे राजन् ! ब्राह्मणों को प्राप्त होने वाले लोक को प्राजापत्य लोक कहा गया है। युद्ध में पीठ नहीं दिखाने वाले क्षत्रियों का लोक इन्द्रलोक बतलाया गया है ॥१५५॥ अपने धर्म का पालन करने वाले वैश्यों का लोक वायुलोक बतलाया गया है। स्वेतर वर्णों की सेवा करने वाले शूद्रों को गान्धर्व लोक की प्राप्ति होती है ॥१५६॥ अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता महर्षियों का जो स्थान बतलाया गया है, वही स्थान गुरु की सेवा में लगे रहने वाले शिष्यों को प्राप्त होता है ॥१५७॥ वन में रहने वाले वानप्रस्थियों को भी वही स्थान प्राप्त होता है जो स्थान सप्तर्षियों का है। गृहस्थों को प्राजापत्य लोक

योगिनाममृतं स्थानं ब्रह्मणःपरमं पदम्। एकांतिनःसदोद्युक्ता ध्यायिनो योगिनो हि ये ॥१५९॥
तेषां तत्परमं स्थानं यत्तत्पश्यंति सूरयः। गतागता निवर्तंते चंद्रादित्यादयो ग्रहाः ॥१६०॥
अद्यापि न निवर्तंति नारायणपरायणाः । तामिस्रमंधतामिस्रं महारौरवरौरवम् ॥१६१॥
असिपत्रवनं घोरं कालसूत्रमवीचिमत् । विनिंदकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम् ॥१६२॥
स्थानमेतत्समाख्यातं स्वधर्मत्यागिनश्च ये । ततोभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाःप्रजाः ॥१६३॥
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कायस्थैः करणैः सह। क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ॥१६४॥
ते सर्वे समर्वर्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः । देवाद्याःस्थावरांताश्च त्रैगुण्यविषये स्थिताः ॥१६५॥
एवंभूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च। यदास्य ताःप्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धंत धीमतः ॥१६६॥
अथान्यान्मनसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् । भृगुं मां पुलहं चैव क्रतुमंगिरसं तथा ॥१६७॥
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान् । नवब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥१६८॥
सनंदनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तुवेधसा । न ते लोकेष्वसज्जंत निरपेक्षाः प्रजासु ते ॥१६९॥
सर्वे ह्यागताविज्ञाना वीतरागा विमत्सराः। तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ॥१७०॥
ब्रह्मणोभून्महान्क्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः । तस्य क्रोधात्समुद्भूत ज्वालामालावदीपितम् ॥१७१॥
ब्रह्मणस्तु तदाज्योतिस्त्रैलोक्यमखिलं दहत्। भ्रुकुटीकुटिला तस्य ललाटात्क्रोधदीपितात् ॥१७२॥
समुत्पन्नस्तदारुद्रो मध्याह्नार्कसमप्रभः । अर्द्धनारीनरवपुः प्रचण्डोतिशरीरवान् ॥१७३॥

की प्राप्ति होती है, संन्यासियों को ब्राह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥१५८॥ योगियों को परब्रह्म के नित्य परं पद की प्राप्ति होती है । जो एकान्त में रहकर सदा वेदाध्ययन करते हैं, उन लोगों को परमात्मा के उसी स्थान की प्राप्ति होती है, जिसका सूरिजन निरन्तर साक्षात्कार करते रहते हैं । चन्द्रमा तथा आदित्य इत्यादि बार-बार पुनः अपने पद को प्राप्त करके पुनः इस संसार में आते रहते हैं ॥१५९-१६०॥ किन्तु जो भगवान् नारायण की उपासना करने वाले जीव हैं, वे कभी भी इस संसार में नहीं आते हैं । वेदों की निन्दा करने वाले तथा यज्ञों को विध्वंस करने वाले, लोगों को तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, भयङ्कर असिपत्र वन, तरङ्ग रहित कालसूत्र ॥१६१-१६२॥ इन सभी नरकों की प्राप्ति होती है । अपने धर्म का परित्याग करने वालों के लिए भी ये ही स्थान बतलाये गये हैं । उसके बाद ब्रह्माजी जब सृष्टि का चिन्तन कर रहे थे, उस समय उनकी मानस सन्तानें उत्पन्न हुयीं ॥१६३॥ वे जीव ब्रह्माजी के शरीर से उत्पन्न तथा इन्द्रियों से युक्त थे, और वे ब्रह्माजी के ही शरीर से युक्त थे ॥१६४॥ वे सब देवता से लेकर वृक्षपर्यन्त के ही जीव थे, जिनका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ । वे सब तीनों गुणों से युक्त थे ॥१६५॥ इस प्रकार से जिनकी ब्रह्माजी ने सृष्टि की थी, उन सृष्टियों की प्रजायें जब नहीं बढ सकीं ॥१६६॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने अपने दूसरे मानस पुत्रों की सृष्टि की । भृगु महर्षि, मेरी, (पुलस्त्य) पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि तथा दक्ष ये नवों ब्राह्मण हुए यह पुराणों में बतलाया गया है ॥१६७-१६८॥ ब्रह्माजी ने सनन्दन आदि जिन अपने मानस पुत्रों की सृष्टि पहले की थी, वे लोक से संबद्ध नहीं हुए वे सन्तानों के विषय में निरपेक्ष थे ॥१६९॥ वे सबके सब स्वाभाविक ज्ञान सम्पन्न, मत्सर रहित एवं संसार से उदासीन (वीतराग) थे । लोक की सृष्टि के विषय में उन सबों को इस प्रकार से निरपेक्ष देखकर, महात्मा, ब्रह्माजी को ॥१७०॥ त्रैलोक्य को भस्म कर देने में समर्थ क्रोध उत्पन्न हो गया । उनके उस क्रोध की ज्वाला समूह से प्रकाशित ॥१७१॥ ब्रह्म ज्योति उत्पन्न हुयी और उसने सम्पूर्ण त्रैलोक्य को जला दिया । टेढी भौहों से युक्त तथा क्रोध के कारण प्रकाशमान ब्रह्माजी के ललाट से, मध्याह्न

विभजात्मानामित्युक्त्वा तं ब्रह्मांतर्दधे ततः । तथोक्तोऽसौ द्विधास्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् ॥१७४॥
विभेदपुरुषत्वं च दशधा चैकधा च सः । सौम्यासौम्यैस्तथारूपैः शांतैः स्त्रीत्वं च स प्रभु ॥१७५॥
विभेद बहुधा चैव स्वरूपैरसितैः सितैः । ततो ब्रह्मा स्वयं भूतं पूर्वं स्वायंभुवं प्रभुम् ॥१७६॥
आत्मानमेव कृतवान् प्राजापत्ये मनुं नृप । शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् ॥१७७॥
स्वायंभुवो मनुर्नाम पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः । तस्माच्च पुरुषाद्देवीशतरूपा व्यजायत ॥१७८॥
प्रियव्रतोत्तानपादप्रसूत्याकूतिसंज्ञितम् । ददौ प्रसूतिं दक्षाय आकूतिं रुचये पुरा ॥१७९॥
प्रजापतिः स जग्राह तयोजर्ज्ञे सदक्षिणः । पुत्रो यज्ञो महाभाग दंपत्योर्मिथुनं ततः ॥१८०॥
यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे । यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवे मनौ ॥१८१॥
प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिं तथा। ससर्ज कन्यास्तासां तु सम्यङ् नामानि मे शृणु ॥१८२॥
श्रद्धा लक्ष्मी धृतिः पुष्टिस्तुष्टिर्मेधा क्रिया तथा । बुद्धिर्लज्जा वपुः शांतिर्ऋद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ॥१८३॥
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मोदाक्षायिणीःप्रभु। ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादशसुलोचनाः ॥१८४॥
ख्यातिःसत्यथ संभूतिः स्मृतिःप्रीतिःक्षमा तथा । सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जास्वाहा स्वधा तथा ॥१८५॥
भृगु र्भवो मरीचिश्च तथा चैवांगिरा मुनिः। अहं च पुलहश्चैव क्रतुर्मुनिवरस्तथा ॥१८६॥
अत्रिर्वसिष्ठो वह्नि पितरश्च यथाक्रमम् । ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो राजसत्तम ॥१८७॥
श्रद्धा कामं बलं लक्ष्मीर्नियमं धृतिरात्मजम् । संतोषं च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरसूयत ॥१८८॥
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेवच । बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ॥१८९॥

के सूर्य के समान कान्ति वाले रुद्र की उत्पत्ति हुयी । उनका आधा शरीर नारी का तथा भयङ्कर था ॥१७२-१७३॥ उनको ब्रह्माजी ने कहा— तुम अपने शरीर का विभाग करो, यह कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये । इस तरह से ब्रह्माजी के कहने पर रुद्र ने अपने शरीर का स्त्री तथा पुरुष के रूप में दो विभाग कर दिया । उसके बाद रुद्र ने अपने पुरुष शरीर को सौम्य तथा असौम्य दश रूपों में विभक्त करके ग्यारहवें स्वयं हो गये । इसीतरह से उन्होंने स्त्री शरीर का भी सौम्य तथा असौम्य विभाग किया ॥१७४-१७५॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने पहले ही स्वयं उत्पन्न स्वायम्भुव को मनु बना दिया और स्वयं प्रजापति बने रहे । हे राजन् ! उसके बाद स्वायम्भुव मनु ने तपस्या करने के कारण कल्मष रहित शतरूपा नामक नारी को ॥१७६-१७७॥ पत्नी रूप से स्वीकार किया । उस मनु के देवी शतरूपा के गर्भ से चार सन्तानें उत्पन्न हुयीं प्रियव्रत, उत्तानपाद, प्रसुति और आकूति । उन्होंने प्रसूति का विवाह दक्ष से कर दिया और आकूति का रुचि महर्षि से कर दिया ॥१७८-१७९॥ वे प्रजापति उन दोनों से दक्षिणा के साथ यज्ञ नामक पुत्र को प्राप्त किये । हे महाभाग ! वे दोनों यज्ञ तथा दक्षिणा परस्पर में पति-पत्नी हो गये ॥१८०॥ यज्ञ के दक्षिणा के गर्भ से बारह पुत्र उत्पन्न हुए । वे स्वाग्यभुव मन्वन्तर में याम देवता के नाम से प्रख्यात हुए ॥१८१॥ दक्ष ने प्रसूति के गर्भ से चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया, उन सबों का तुम नाम सुनो ॥१८२॥ श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपुः, शान्ति, ऋद्धि और कीर्ति ॥१८३॥ दक्ष की इन तेरह पुत्रियों को धर्म ने अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया । उन सबों से बची हुयी ग्यारह सुन्दरियाँ ये हैं ॥१८४॥ ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा ॥१८५॥ भृगु, शङ्कर, मरीचि, अङ्गिरा मुनि, मैं (पुलस्त्य) पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि तथा पितृगणों ने हे राजवर्य ! उपर्युक्त ख्याति आदि दस कन्याओं को अपनी पत्नी बनाया ॥१८६-१८७॥ श्रद्धा ने काम को, लक्ष्मी ने बल को, धृति ने नियम को, तुष्टि ने सन्तोष को

व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत । सुखमृद्धिर्यशःकीर्तिरित्येते धर्मसूनवः ॥१९०॥
कामान्नंदी सुतं हर्षं धर्मपौत्रमसूयत । हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तस्य जज्ञे तदानृतम्॥१९१॥
कन्या चा निकृतिस्ताभ्यां भयं नरक एव च । माया च वेदना चैव मिथुनं द्वंद्वमेवच ॥१९२॥
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् । वेदनायास्ततश्चापि दुःखं जज्ञेथ रौरवात् ॥१९३॥
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जाज्ञिरे । दुःखोत्तराःस्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ॥१९४॥
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा ते सर्वे ह्यूर्ध्वरेतसः । रौद्राण्येतानि रूपाणि ब्रह्मणो नृवरात्मज ॥१९५॥
नित्यं प्रलयहेतुत्वं जगतोस्य प्रयांति वै । रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि यथा ब्रह्मा चकार ह ॥१९६॥
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः । प्रादुरासीत्प्रभोरंके कुमारो नीललोहितः ॥१९७॥
रुदन् वै सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च नृपसत्तम । किं रोदिषीति तं देवो रुदंतं प्रत्युवाच ह ॥१९८॥
नाम धेहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच प्रजापतिम् । रोदनाद्रुद्रनामासि मारोदीर्धैर्यमावह ॥१९९॥
एवमुक्तः पुनस्सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद ह । ततोन्यानि ददौ तस्मै सप्तनामानि वै प्रभुः ॥२००॥
मूर्तीनां चैवमष्टानां स्थानान्यष्टौ चकार ह । भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं नृप ॥२०१॥
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः । सूर्यो जलं महीवह्निर्वायुराकाशमेवच ॥२०२॥
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येते तनवः क्रमात् । एवंप्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्यामविंदत ॥२०३॥
दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वं कलेवरम् । हिमवद्दुहिता साभून्मेनायां नृपसत्तम ॥२०४॥

तथा पुष्टि ने लोभ को अपने पुत्र रूप से उत्पन्न किया ॥१८८॥ मेघा ने श्रुत को, क्रिया ने दण्ड, नय तथा विनय को उत्पन्न किया । बुद्धि ने वोध को, लज्जा ने विनय को तथा वपु ने व्यवसाय नामक पुत्र को उत्पन्न किया । शान्ति ने क्षेम को उत्पन्न किया सुख, समृद्धि, यश तथा कीत ये धर्म के पुत्र हैं ॥१८९-१९०॥ काम से उनकी पत्नी नंदी ने हर्ष को उत्पन्न किया यह धर्म का पौत्र था । हिंसा अधर्म की पत्नी हुयी और उसका पुत्र अनृत उत्पन्न हुआ॥१९१॥ उन दोनों ने निकृति नामक कन्या तथा भय एवं नरक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया । उसके बाद उन दोनों ने माया तथा वेदना नामक कन्याओ को जन्म दिया ॥१९२॥ उन दोनो में से माया ने सभी भूतों को विनष्ट करने वाले मृत्यु को जन्म दिया । उसके बाद वेदना ने रौरव नामक पति से दुःख को उत्पन्न किया ॥१९३॥ मृत्यु के व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा तथा क्रोध नामक पुत्र उत्पन्न हुए । ये सभी दुःखोत्तर रूप से प्रख्यात हैं तथा अधर्म स्वरूप हैं ॥१९४॥ इन सबों की न तो कोई पत्नी है और न कोई पुत्र है । ये सभी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं । हे राजकुमार ! ये सभी ब्रह्माजी के रौद्र रूप हैं ॥१९५॥ ये सभी संसार के नित्य प्रलय के कारण बनते हैं । अब मैं ब्रह्माजी के द्वारा किया गया रुद्र सर्ग का वर्णन करूँगा ॥१९६॥ कल्प के प्रारम्भ में जब ब्रह्माजी अपने ही समान पुत्र का ध्यान कर रहे थे उस समय उनकी गोद में नीललोहित कुमार का प्रादुर्भाव हुआ ॥१९७॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उसको सुन्दर स्वर में रोते हुए देखकर ब्रह्माजी ने पूछा क्यों रोते हो ?॥१९८॥ उसने ब्रह्माजी से कहा— आप मुझे नाम प्रदान करें । ब्रह्माजी ने कहा कि तुम रोए अतएव तुम्हारा नाम रुद्र है । रोओ मत धैर्य धारण करो ॥१९९॥ इसी प्रकार से वह कुमार सात बार रोया और उसके अनुसार ब्रह्माजी ने उसे अन्य नामों को प्रदान किया ॥२००॥ इसीतरह से उसकी आठ मूर्तियों (शरीरों) और स्थानों का उन्होंने निर्देश किया । वे नाम है, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र तथा महादेव इन नामों को ब्रह्माजी ने बतलाया । उनकी मूर्तियाँ (शरीर भी) क्रमशः सूर्य, जल, पृथिवी, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, ब्राह्मण तथा सोम हैं । इस प्रकार के रुद्र ने दक्ष की पुत्री सती को अपनी

उपयेमे पुनश्चैव याचित्वा भगवान् भवः । दाक्षी धातृविधातारौ भृगोःख्यातिरसूयत॥२०५॥
श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ॥२०६॥

इतिश्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे तृतीयोऽयायः ॥३॥

चौथा अध्याय

भीष्म उवाच

क्षीराब्धौतु तथा लक्ष्मीः किलोत्पन्ना मया श्रुता । ख्यात्यां भृगोः समुत्पन्ना एतदाह कथं भवान् ॥१॥
कथं च दक्षदुहिता देहं त्यक्तवती शुभा । मेनायां गर्भसंभूतिमुमाया जन्म एव च॥२॥
किमर्थं देवदेवेन पत्नी हैमवती कृता । विरोधं चाथ दक्षेण भगवांस्तु ब्रवीतु मे॥३॥

पुलस्त्य उवाच

इदं च शृणु भूपाल यत्पृष्टोहमिह त्वया । श्रीसंबंधो मयाप्येष श्रुत आसीत्पितामहात् ॥४॥
अत्रिपुत्रस्तु दुर्वासाः परिभ्राम्यन्महीमिमाम् । विद्याधरीकरे मालां दृष्ट्वा सौगन्धिकीं शुभाम्॥५॥
याचयामास मे देहि जटाजूटे करोम्यहम् । इति विद्याधरी तेन पृष्टा सा ऋषिणा तथा ॥६॥

पत्नी के रूप में प्राप्त किया ॥२०१-२०३॥ उस सती ने दक्ष के प्रति कोप करके अपना शरीर त्याग दिया । हे राजश्रेष्ठ ! वह मेना के गर्भ से हिमालय की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुयी ॥२०४॥ पुनः भगवान् शङ्कर ने याचना करके उसके साथ विवाह किया । दक्ष की पुत्री ख्याति देवी ने महर्षि भृगु के पुत्र के रूप में धाता एवं विधाता नामक पुत्रों को उत्पन्न किया ॥२०५॥ ख्याति देवी ने भगवान् नारायण की पत्नी श्रीदेवी को भी जन्म दिया ॥२०६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

समुद्र मंथन के प्रसङ्ग में दुर्वासा महर्षि द्वारा इन्द्र को शाप, देवों तथा दैत्यों द्वारा समुद्र मंथन, समुद्र से सुरभि इत्यादि रत्नों की उत्पत्ति, लक्ष्मी की उत्पत्ति और लक्ष्मी द्वारा विष्णु का वरण, देवताओं द्वारा अमृत का पान, पुनः भृगु की पुत्री के रूप में लक्ष्मी की उत्पत्ति का वर्णन, भृगु महर्षि का भगवान् विष्णु को शाप, ब्रह्माजी द्वारा पुनः सृष्टि, नारदजी द्वारा ब्रह्माजी की सृष्टि का वर्णन, ब्रह्माजी द्वारा नारदजी को वरदान

भीष्मजी ने कहा— मैंने सुना है कि लक्ष्मीजी की उत्पत्ति क्षीरसागर में हुयी है, फिर आपने कैसे कहा कि लक्ष्मीजी ख्याति देवी के गर्भ से उत्पन्न हुयीं ?॥१॥ मङ्गलमयी दक्ष की पुत्री सती ने अपने शरीर का त्याग क्यों किया ? मेना के गर्भ से उमा की उत्पत्ति कैसे हुयी ?॥२॥ शङ्करजी ने हिमवान् पुत्री को अपनी पत्नी क्यों बनया ?। आप मुझे वतलाएँ कि भगवान् शङ्कर का दक्ष से विरोध क्यों हुआ ?॥३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** राजन् ! आपने जो मुझसे पूछा है, उसे मैं आपको बतलाता हूँ । श्रीदेवी सम्बन्धी कथा मैंने भी पितामह (ब्रह्माजी) से सुना था॥४॥ महर्षि अत्रि के पुत्र दुर्वासा पृथिवी पर भ्रमण कर रहे थे, उन्होंने किसी विद्याधरी के हाथ में अत्यन्त सुगन्धित माला

ददौ तस्मै मुदा युक्ता तां मालां स तदा नृप । गृहीत्वा सुचिरं कालं शिरोमालां बबंध ह ।।७।।
उन्मत्तप्रेतवद्विप्रः शोभमानो ब्रवीदिदम् । इयं विद्याधरी कन्या पीनोन्नतपयोधरा ।।८।।
शोभालंकारसौभाग्यै र्युक्ता दृष्टा ततो मनः । क्षोभमायाति मे चाद्य नाहं कामे विचक्षणः ।।९।।
व्रजामि तावदन्यत्र सौभाग्यं स्वं प्रदर्शयन् । एवमुक्त्वा स राजेंद्र परिबभ्राम मेदिनीम् ।।१०।।
ऐरावतं समारूढं राजानं त्रिदिवौकसाम् । त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं भ्राजमानं शचीपतिम् ।।११।।
तामात्मशिरसो मालां भ्रमदुन्मत्तषट्पदाम् । आदायामरराजाय चिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः ।।१२।।
गृहीत्वा देवराजेन माला सा गजमूर्द्धनि । मुक्ता रराज सा माला कैलासे जाह्नवी यथा।।१३।।
मदांधकारिताक्षोसौ गंधाघ्राणेन वारणः । करेणादाय चिक्षेप तां मालां पृथिवीतले ।।१४।।
ततश्चुक्रोध भगवान् दुर्वासा मुनिपुंगवः । राजेंद्र देवराजानं क्रुद्धश्चेदमुवाच ह।।१५।।
ऐश्वर्यमददुष्टात्मन्नतिस्तब्धोसि वासव । श्रियो धाम स्रजं यस्मान्मद्दत्तान्नभिनंदसि ।।१६।।
त्रैलोक्यश्रीरतोमूढ विनाशमुपयास्यति । मद्दत्ता भवता माला क्षिप्ता यस्मान्महीतले।।१७।।
तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति । यस्य संजातकोपस्य भयमेतिचराचरम् ।।१८।।
तं मां त्वमतिगर्वेण देवराजावमन्यसे । महेंद्रो वारणस्कंधादवतीर्य त्वरान्वितः ।।१९।।
प्रसादयामास मुनिं दुर्वाससमकल्मषम् । प्रसाद्यमानः स तदा प्रणिपात पुरः सरम् ।।२०।।
नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो। इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो देवराजोऽपि तं पुनः।।२१।।

को देखकर ।।५।। कहा कि इसे तुम मुझे दे दो मैं इसे अपनी जटा में लगाऊँगा, इसतरह से ऋषि के द्वारा कहे जाने पर उस विद्याधरी ने ।।६।। उस माला को प्रसन्नता पूर्वक उन्हें दे दिया । हे राजन् ! महर्षि दुर्वासा बहुत समय तक उस माला को अपने शिर में बाँधे रहे ।।७।। उन्मत्त प्रेत के समान महर्षि दुर्वासा ने सुशोभित होते हुए कहा— इस पुष्ट तथा उन्नत पयोधरों (स्तनों) वाली एवं शोभा तथा अलङ्कार से युक्त विद्याधरी कन्या को जब से मैंने देखा है, तब से मेरे मन में क्षोभ उत्पन्न होता हैं, किन्तु मैं कामकला में निपुण नहीं हूँ ।।८-९।। इसलिए अपने सौभाग्य का प्रदर्शन करते हुए मैं अन्यत्र चला जाता हूँ । हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से कहकर वे ऋषि पृथिवी पर भ्रमण करने लगे।।१०।। ऐरावत नामक हाथी पर चढे हुए, देवताओं के राजा, सुशोभित होते हुए, शचीपति तथा त्रैलोक्य के स्वामी ।।११।। इन्द्र को देखकर जिस पर मदमत्त भौंरें मँडरा रहे थे उस अपने शिर की माला को हाथ में लेकर मुनि ने उन्मत्त के समान इन्द्र के ऊपर फेंका ।।१२।। उस माला को लेकर इन्द्र ने गजराज ऐरावत के शिर पर लगा दिया। उससे वह हाथी उसी तरह से सुशोभित हुआ जिसतरह से कैलास पर्वत के ऊपर गङ्गा प्रवाहित हो रही हों।।१३।। उस माला की सुगन्धि को प्राप्त करके वह हाथी मदमत्त हो गया । उसने अपनी सूंढ से उस माला को उठाकर पृथिवी पर फेंक दिया ।।१४।। हे राजेन्द्र ! यह देखकर मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि दुर्वासा क्रुद्ध हो गये और उन्होंने क्रुद्ध होकर इन्द्र से कहा ।।१५।। ऐश्वर्य के मद से मत्त बने हुए दुष्ट इन्द्र ! तुम अत्यन्त स्तब्ध (ढीठ) हो गये हो, उसी के कारण तुमने लक्ष्मी के आश्रयभूत मेरी माला का समादर नहीं किया ।।१६।। मूर्ख ! इसीके कारण त्रैलोक्य की लक्ष्मी का विनाश हो जायेगा, क्योंकि मेरे द्वारा दी गयी माला को तुमने पृथिवी पर फेंक दिया है।।१७।। इसीलिए तुम्हारा त्रैलोक्य लक्ष्मी से हीन हो जायेगा । जिसके क्रुद्ध हो जाने पर चराचर जगत् भयभीत हो जाता है।।१८।। देवराज ! इस प्रकार के मेरा तुमने अत्यन्त गर्वपूर्वक अपमान किया है । यह सुनकर इन्द्र शीघ्र ही हाथी पर से उत्तर कर ।।१९।। मुनि दुर्वासा की प्रार्थना किये, इन्द्र के द्वारा साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक प्रसन्न किए जाते हुए

आरूह्यैरावतं नागं प्रययावमरावतीम्। ततः प्रभृति निःश्रीकं सशक्रं भुवनत्रयम् ॥२२॥
न यज्ञाः संप्रवर्तन्ते न तपस्यंति तापसाः। न च दानानि दीयंते नष्टप्रायमभूज्जगत्॥२३॥
एवमत्यंतनिःश्रीके त्रैलोक्ये सत्त्ववर्जिते। देवान्प्रतिबलोद्योगं चक्रुर्दैतेयदानवाः॥२४॥
विजितास्त्रिदशादैत्यैरिंद्राद्याः शरणं ययुः। पितामहं महाभागं हुताशनपुरोगमाः ॥२५॥
यथावत्कथिते देवैर्ब्रह्मा प्राह तथासुरान्। क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम सहितःसुरैः ॥२६॥
गत्वा जगाद भगवान् वासुदेवं पितामहः। उत्तिष्ठ विष्णो शीघ्रं त्वं देवतानां हितं कुरु ॥२७॥
त्वया विना दानवैस्तु जिताःसर्वे पुनः पुनः। इत्युक्तः पुंडरीकाक्षः पुरुषः पुरुषोत्तमः॥२८॥
अपूर्वरूपसंस्थानान्दृष्ट्वा देवानुवाच ह। तेजसो भवतां देवाः करिष्याम्युपबृंहणम्॥२९॥
वदाम्यहं यत्क्रियतां भवद्भिस्तदिदं सुराः। आनीय सहिता दैत्यैः क्षीराब्धौ सकलौषधीः॥३०॥
मंथानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम्। मथ्यताममृतं देवाःसहाये मय्यवस्थिते॥३१॥
सामपूर्वं च दैतेयांस्तत्र सम्भाष्य कर्मणि। समानफलभोक्तारो यूंय चात्र भविष्यथ ॥३२॥
मथ्यमाने च तत्राब्धौ यत्समुत्पद्यतेऽमृतम्। तत्पानाद्वलिनो यूयममराः संभविष्यथ ॥३३॥
तथैवाहं करिष्यामि यथा त्रिदशविद्विषः। नप्राप्स्यंत्यमृतं देवाःकेवलं क्लेशभागिनः ॥३४॥
इत्युक्ता देवदेवेन सर्व एव ततःसुराः। संधानमसुरैः कृत्वा यत्नवंऽतोऽमृतेभवन् ॥३५॥
सर्वौषधीःसमानीय देवदैतेयदानवाः। क्षिप्त्वा क्षीराब्धिपयसि शरदभ्रामलत्विषि ॥३६॥

महर्षि ने कहा ॥२०॥ इन्द्र ! वहुत कहने से कोई लाभ नहीं है, मैं क्षमा नहीं कर सकता हूँ। यह कहकर महर्षि दुर्वासा वहाँ से चले गये और इन्द्र भी ॥२१॥ उस ऐरावत हाथी पर चढकर अमरावती चले गये। उसी समय से इन्द्र के साथ त्रैलोक्य भी श्रीविहीन हो गया ॥२२॥ न तो कोई यज्ञ करता था और न तो कोई तपस्या करता था। कोई दान भी नहीं करता था। सारा संसार नष्टप्राय हो गया ॥२३॥ इसतरह से त्रैलोक्य के अत्यन्त श्रीविहीन तथा सत्त्वहीन हो जाने पर दैत्यों तथा दानवों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया ॥२४॥ पराजित होकर इन्द्र इत्यादि देवता ब्रह्माजी की शरण में गये और अग्नि आदि देवताओं ने महाभाग ब्रह्माजी ॥२५॥ से सारी बातें वतलायी। ब्रह्माजी देवताओं को साथ लेकर क्षीरसागर के उत्तर तट पर गये ॥२६॥ वहाँ पर जाकर ब्रह्माजी ने भगवान् वासुदेव से कहा— हे भगवन् विष्णो ! आप शीघ्र जागें और देवताओं का कल्याण करें ॥२७॥ आपके विना सभी देवता दैत्यों के द्वारा वार-वार पराजित कर दिये गये। इस तरह से कहे जाने पर पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) भगवान् पुरुषोत्तम ने ॥२८॥ देवताओं को अपूर्व रूप तथा अङ्गों वाला देखकर कहा— देवताओं ! मैं तुमलोगों के तेज का संवर्द्धन करूँगा ॥२९॥ देवताओं ! मैं जैसा कहता हूँ, वैसा आपलोग करें। आपलोग दैत्यों के साथ समस्त वनौषधियों को लाकर क्षीरसागर में डालें ॥३०॥ फिर मन्दराचल को मथानी तथा वासुकी को उसका नेत्र (रस्सी) वनाकर मेरी सहायता से आपलोग अमृत का मन्थन करें ॥३१॥ आपलोग सामनीति को अपना कर दैत्यों को इस कार्य में समिलित करें, और उनसे कहें कि समुद्र से निकली वस्तुओं का फल आपलोग भी समान रूप से भोगेंगे॥३२॥ देवताओं ! समुद्र का मन्थन करने से जो अमृत निकलेगा उसका पान करके आपलोग बलवान हो जायेंगे ॥३३॥ मैं ऐसा उपाय करूँगा कि देवताओं से द्वेष करने वाले असुरों को अमृत न मिले, उनके हिस्से में केवल परिश्रम करना ही मिलेगा ॥३४॥ श्रीभगवान् के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर देवताओं ने असुरों से सन्धि कर ली और अमृत प्राप्त करने के प्रयास में लग गये ॥३५॥ देवता, दैत्य तथा दानव सभी औषधियों को लाकर

मन्थानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम्। ततो मथितुमारब्धा राजेंद्र तरसामृतम्॥३७॥
विबुधा सहिताः सर्वे यतःपुच्छं ततः स्थिताः। विष्णुनावासुकेर्दैत्याः पूर्वकाये निवेशिताः॥३८॥
ते तस्य प्राणवातेन वह्निना च हतत्त्विषः। निस्तेजसोऽसुराःसर्वे बभूवुरमरद्युते॥३९॥
तेनैव मुखनिःश्वासवायुनाथ बलाहकैः। पुच्छप्रदेशे वर्षद्भिस्तदा चाप्यायिताःसुराः॥४०॥
क्षीरोदमध्ये भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मविदांवर। महादेवो महातेजा विष्णुपृष्ठनिवासिनौ॥४१॥
बाहुभ्यां मंदरं गृह्य पद्मवत्स परंतपः। शृंखले च तदा कृत्वा गृहीत्वा मंदराचलम्॥४२॥
देवानां दानवानां च बलमध्ये व्यवस्थितः। क्षीरोदमध्ये भगवान्कूर्मरूपी स्वयं हरिः॥४३॥
अन्येन तेजसा देवानुपबृंहितवान्हरिः। मथ्यमाने ततस्तस्मिन् क्षीराब्धौ देवदानवैः॥४४॥
हविर्धान्यभवत् पूर्वं सुरभिः सुरपूजिता। जग्मुर्मुदं तदा देवा दानवाश्च महामते॥४५॥
व्याक्षिप्तचेतसःसर्वे बभूवुस्तिमितेक्षणाः। किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिंतयतां तदा॥४६॥
बभूव वारुणी देवी मदाघूर्णितलोचना। कृतावर्त्ता ततस्तस्मात्प्रस्खलंती पदे पदे॥४७॥
एकवस्त्रा मुक्तकेशी रक्तांतस्तब्धलोचना। अहं बलप्रदा देवी मां वा गृह्णन्तु दानवाः॥४८॥
अशुचिं वारुणीं मत्वा त्यक्तवंतस्तदा सुराः। जगृहुस्तां तदा दैत्या ग्रहणान्ते सुराभवत्॥४९॥
मंथेन पारिजातोभूद्देवश्रीनंदनो द्रुमः। रूपौदार्य्यगुणोपेतास्ततश्चाप्सरसां गणाः॥५०॥
षष्टिकोट्यस्तदाजातास्सामान्या देवदानवैः। सर्वास्ताःकृतपूर्वास्तु सामान्याःपुण्यकर्मणा॥५१॥

शरत् कालीन मेघ के समान कान्ति वाले क्षीरसागर में डालकर ॥३६॥ मन्दराचल को मथानी तथा वासुकी को नेत्र बनाकर हे राजेन्द्र ! बलपूर्वक अमृत मन्थन का कार्य प्रारम्भ किए ॥३७॥ सभी देवता अमृत मन्थन का कार्य प्रारम्भ किए ॥३७॥ सभी देवता वासुकी के पूंछ की ओर लग गये तो भगवान् विष्णु ने दैत्यों को वासुकि के मुख की ओर लगा दिया ॥३८॥ हे देवताओं के समान कान्ति वाले भीष्मजी ! वासुकि के श्वास की वायु की अग्नि से सभी दैत्य निस्तेज हो गये, उनकी कान्ति क्षीण हो गयी ॥३९॥ उस मुख की वायु के द्वारा क्षिप्त वासुकि की पूंछ की ओर जाकर वर्षा करने वाले मेघों के कारण देवता पुष्ट हो गये ॥४०॥ क्षीरसागर के वीच में ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी तथा शङ्करजी कूर्म रूपधारी भगवान् विष्णु के पीठ पर खड़े होकर ॥४१॥ अपनी भुजाओं की शृंखला बनाकर कमल के समान मन्दराचल को पकड़े हुए थे ॥४२॥ क्षीरसागर के भीतर स्वयं भगवान् श्रीहरि कूर्म रूप से विराजमान थे और वे देवताओं और दैत्यों के बीच में भी एक रूप से विद्यमान थे ॥४३॥ अपने दूसरे तेज से श्रीहरि देवताओं को पुष्ट बना रहे थे। देवताओं तथा दैत्यों द्वारा क्षीरसागर के मथे जाते समय ॥४४॥ समुद्र से सर्वप्रथम देवताओं द्वारा पूजित सुरभि गौ (कामधेनु) प्रकट हुयीं। जो हविष्य का उत्पत्ति स्थान मानी गयी है। हे महामत्ते ! उस समय देवता तथा दैत्य दोनों प्रसन्न हो गये ॥४५॥ सबके सब आश्चर्य-चकित थे, उनकी टकटकी बँध गयी। आकाश में सिद्धगण सोच रहे थे कि यह क्या है ?॥४६॥ उसी समय वारुणी देवी प्रकट हुयी। उसके मद भरे नेत्र घूर्णित हो रहे थे। वह पग-पग पर लड़खडाती चलती थी ॥४७॥ एक ही वस्त्र धारण की थी। उसके केश खुले हुए थे, उसके लाल-लाल नेत्र स्तब्ध थे। उसने दानवों से कहा— मैं बलप्रदान करने वाली हूँ, दानवों ! आपलोग मुझे स्वीकार करें॥४८॥ वारुणी को अपवित्र मानकर देवताओं ने उसे त्याग दिया। उसको दैत्यों ने स्वीकार कर लिया और स्वीकार कर लेने पर वह सुरा (मदिरा) बन गयी। मंथन काल में पारिजात वृक्ष उत्पन्न हुआ, जो देवताओं के नदंन वन का ऐश्वर्य वृक्ष बन गया। उसके बाद रूप तथा ऐश्वर्य से युक्त अप्सराओं का गण प्रकट हुआ ॥४९-५०॥ ऐसी

ततःशीतांशुरभवद्देवानां प्रीतिदायकः । ययाचे शंकरो देवो जटाभूषणकृन्मम ॥५२॥
भविष्यति न संदेहो गृहीतोऽयं मया शशी । अनुमेने च तं ब्रह्मा भूषणाय हरस्य तु॥५३॥
ततोविषं समुत्पन्नं कालकूटं भयावहम् । तेन चैवार्दितास्सर्वे दानवाःसह दैवतैः ॥५४॥
महादेवेन तत्पीतं विषं गृह्य यदृच्छया । तस्य पानान्नीलकंठस्तदा जातो महेश्वरः ॥५५॥
पीतावशेषं नागास्तु क्षीराब्धेस्तु समुत्थितम् । ततो धन्वंतरिर्जातःश्वेतांबरधरः स्वयम् ॥५६॥
बिभ्रत्कमंडलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः । ततःस्वस्थमनस्कास्ते वैद्यराजस्य दर्शनात् ॥५७॥
ततश्चाश्वःसमुत्पन्नो नागश्चैरावतस्तथा । ततःस्फुरत्कांतिमती विकासि कमले स्थिता ॥५८॥
श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुत्थिता धृतपंकजा । तां तुष्टवुर्मुदायुक्ताःश्रीसूक्तेन महर्षयः ॥५९॥
विश्वावसुमुखास्तस्या गंधर्वाः पुरतो जगुः । घृताचीप्रमुखास्तत्र ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६०॥
गंगाद्याःसरितस्तोयैःस्नानार्थमुपतस्थिरे । दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम् ॥६१॥
स्नापयांचक्रिरे देवीं सर्वलोकमहेश्वरीम् । क्षीरोदस्तु स्वयं तस्यै मालामम्लानपंकजाम् ॥६२॥
ददौ विभूषणान्यंगे विश्वकर्मा चकार ह । दिव्यमाल्यांबरधरां स्नातां भूषणभूषिताम् ॥६३॥
इंद्राद्याश्चामरगणा विद्याधरमहोरगाः । दानवाश्च महादैत्या राक्षसाःसह गुह्यकैः ॥६४॥
कन्यामभिलषन्तिस्म ततो ब्रह्मा उवाच ह । वासुदेवत्वमेवैनां मया दत्तां गृहाण वै ॥६५॥
देवाश्च दानवाश्चैव प्रतिषिद्धा मया त्विह । तुष्टोहं भवतस्तावदलौल्येनेह कर्मणा ॥६६॥

साठ करोड़ अप्सरायें निकलीं जो देवताओं तथा दानवों के लिए सामान्य थीं । पुण्य कर्म करने के द्वारा वे पहले ही सामान्य (वाराङ्गना) बना दी गयी थीं ॥५१॥ उसके बाद देवताओं को प्रसन्न करने वाले चन्द्रमा निकले । उसको अपनी जटा का भूषण बनाने के लिए शङ्करजी ने माँग लिया ॥५२॥ उन्होंने कहा निःसन्देह चन्द्रमा मेरी जटा का भूषण होगा, अतएव इसे मैंने ले लिया, और उसको शङ्करजी का भूषण बनाने के लिए ब्रह्माजी ने समर्थन कर दिया॥५३॥ उसके बाद कालकूट हलाहल नामक विष निकला । उसने सभी देवों तथा दैत्यों को दुःखी बना दिया॥५४॥ उसको यदृच्छा वशात् शङ्करजी ने लेकर पी लिया । उसको पीने से शङ्करजी नीलकण्ठ हो गये ॥५५॥ क्षीरसागर से निकले हुए तथा शङ्करजी के पीने से बचे हुए विष को नागों ने पी लिया उसके बाद श्वेतवस्त्र धारण करने वाले धन्वन्तरि प्रकट हुए ॥५६॥ वे अमृत से भरे हुए कमण्डलु को धारण किए हुए थे । वैद्यराज धन्वन्तरि के देखने मात्र से सभी देवता और दैत्य स्वस्थ मन वाले हो गये ॥५७॥ उसके बाद घोड़ा (उच्चैःश्रवा) और ऐरावत हाथी प्रकट हुए । तदनन्तर विकसित कमल पर बैठीं हुयी कान्ति सम्पन्न श्रीदेवी उस दुग्ध सागर से उत्पन्न हुयी । ये अपने हाथ में कमल धारण किए थीं । महर्षियों ने श्रीदेवी की स्तुति की ॥५९॥ उनके सामने विश्वावसु इत्यादि गन्धर्वों ने गायन किया और घृताची इत्यादि अप्सराओं ने नृत्य किया ॥६०॥ गङ्गा आदि नदियाँ उनको स्नान कराने के लिए उपस्थित हो गयीं । दिग्गज सुवर्ण कलश में पवित्र जल लेकर ॥६१॥ समस्त लोकों की स्वामिनी उस देवी को स्नान कराये । स्वयं क्षीरसागर ने उनको कभी नहीं कुम्हलाने वाले कमलों की माला प्रदान किया ॥६२॥ विश्वकर्मा ने उनके अङ्गों में भूषणों को सजा दिया । स्नान करके दिव्य वस्त्रों तथा भूषणों को धारण करने वाली ॥६३॥ कन्या श्रीदेवी को इन्द्र इत्यादि देवगण, विद्याधर, महान्सर्प, दानव, बड़े-बड़े दैत्य, राक्षस तथा गुह्यक इत्यादि सब प्राप्त करना चाहे । तो ब्रह्माजी ने कहा— हे वासुदेव ! इसे मैं आपको प्रदान करता हूँ आप ही इसे स्वीकार करें ॥६४-६५॥ मैंने देवताओं तथा दैत्यों को रोक दिया है । मैं आपके लालच रहित इस कर्म से प्रसन्न हूँ ॥६६॥ हे देवि ! तुम

सा तु श्रीर्ब्रह्मणा प्रोक्ता देवि गच्छस्व केशवम् । मयादत्तं पतिं प्राप्य मोदस्व शाश्वतीः समाः ॥६७॥
पश्यतां सर्वदेवानां गता वक्षस्थलं हरेः । ततो वक्षस्थलं प्राप्य देवं वचनमब्रवीत् ॥६८॥
नाहं त्याज्या सदा देव सदैवादेशकारिणी। वक्षस्थले निवत्स्यामि सर्वस्य जगतः प्रिय॥६९॥
ततोऽवलोकिता देवा विष्णुवक्षस्थलस्थया । लक्ष्म्या राजेंद्र सहसा परां निर्वृतिमागताः ॥७०॥
उद्वेगं च परं जग्मु दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः। त्यक्तास्तुदानवा लक्ष्म्या विप्रचित्तिपुरोगमाः ॥७१॥
तस्ते जगृहुर्दैत्या धन्वंतरिकरस्थितम्। अमृतं तंमहावीर्य्या दैत्याः पापसमन्विताः॥७२॥
मायया लोभयित्वा तु विष्णुःस्त्रीरूपसंश्रयः। आगत्य दानवान्प्राह दीयतां मे कमंडलुः ॥७३॥
युष्माकं वशगा भूत्वा स्थास्यामि भवतां गृहे। तां दृष्ट्वा रूपसपन्नां नारीं त्रैलोक्यसुंदरीम् ॥७४॥
प्रार्थयानास्सुवपुषं लोभोपहतचेतसः। दत्त्वामृतं तदा तस्यै ततोपश्यन्त तेऽग्रतः ॥७५॥
दानवेभ्यस्तदाऽदाय देवेभ्यःप्रददेमृतं । ततः पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्तत्तदामृतम्॥७६॥
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दैत्यास्तांस्ते समभ्ययुः । पीतेऽमृते च वलिभिर्जिता दैत्यचमूस्ततः ॥७७॥
वध्यमाना दिशो भेजुः पातालं विविशुश्च ते । ततो देवा मुदा युक्ताःशंखचक्रगदाधरम् ॥७८॥
प्रणिपत्य यथापूर्वं प्रययुस्तेत्रिविष्टपम्। ततःप्रभृति ते भीष्म स्त्रीलोला दानवाभवन् ॥७९॥
अपध्यातास्तु कृष्णेन गतास्ते तु रसातलम् । ततः सूर्यः प्रसन्नाभः प्रययौ स्वेन वर्त्मना ॥८०॥
जज्वालभगवांश्चोच्चैश्चारुदीप्ति र्हुताशनः। धर्मे च सर्वभूतानां तदामतिरजायत॥८१॥

केशव के पास जाओ, मेरे द्वारा प्रदत्त पति को प्राप्त करके निरन्तर आनन्दित रहो, इसतरह से ब्रह्माजी के कहने पर श्रीदेवी, सबों के सामने ही श्रीहरि के वक्षःस्थल में प्रवेश कर गयीं । उसके बाद श्रीहरि के वक्षःस्थल को प्राप्त करके श्रीदेवी ने कहा ॥६७-६८॥ हे सबो के प्रिय देव ! आप मेरा कभी भी परित्याग नहीं करेंगे; आपकी आज्ञा का सदा पालन करने वाली मैं आपके वक्षःस्थल में निवास करूँगी ॥६९॥ हे राजेन्द्र ! भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में स्थित लक्ष्मीजी के द्वारा देखे जाने पर सभी देवता परम कल्याण को प्राप्त कर लिए ॥७०॥ भगवान् विष्णु के विरुद्ध रहने वाले दैत्य अत्यधिक उद्विग्न हो गये । लक्ष्मीजी ने विप्रचित्ति इत्यादि दैत्यों का परित्याग कर दिया ॥७१॥ उसके बाद महा पराक्रमी पापी दैत्यों ने धन्वन्तरि के हाथ में विद्यमान अमृत को ले लिया ॥७२॥ स्त्री का रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु उन दैत्यों को अपनी माया से मोहित करके उनके पास आये और कहे कि आपलोग मुझे अमृत का कमण्डलु, दे दीजिये ॥७३॥ आपलोगों की वशवर्तिनी बनकर आपलोगों के गृह में निवास करूँगी । उस रूप सम्पन्न त्रैलोक्य सुन्दरी नारी को देखकर ॥७४॥ लोभ से मोहित अन्तःकरण वाले वे दैत्य उसके शरीर को प्राप्त करना चाहे और उसको अमृत देकर, उन सबों ने अपने सामने देखा कि उस अमृत को दानवों से लेकर उसने देवताओं को दे दिया । उसके बाद इन्द्र आदि देवताओं ने उस अमृत को पी लिया ॥७५-७६॥ तत्पश्चात् दैत्य निस्त्रिंश आदि आयुध धारण करके देवताओं से युद्ध करने लगे । अमृत पीकर बलवान् बने हुए देवताओं द्वारा दैत्यसेना पराजित हो गयी ॥७७॥ देवताओं द्वारा मारे हुए दैत्य विभिन्न दिशाओं में भागकर पाताल में प्रवेश कर गये। उसके पश्चात प्रसन्न होकर देवताओं ने शङ्ख, चक्र तथा गदाधारी ॥७८॥ श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके पहले के ही समान स्वर्ग लोक में चले गये । हे भीष्मजी ! उसी समय से वे दानव स्त्री के लोभी हो गये ॥७९॥ श्रीभगवान् के द्वारा द्वेष की दृष्टि से देखे गये वे रसातल में चले गये । उसके बाद सूर्य की प्रभा स्वच्छ हो गयी और वे अपने मार्ग से चलने लगे ॥८०॥ भगवान् हुताशन (अग्नि) मनोहर प्रकाश के साथ जोर-जोर से जलने लगे ।

श्रिया युक्तं च त्रैलोक्यं विष्णुना प्रतिपालितं । देवास्तु ते तदा प्रोक्ता ब्रह्मणा लोकधारिणा ॥८२॥
भवतां रक्षणार्थाय मया विष्णुर्नियोजितः । उमापतिश्च देवेशो योगक्षेमं करिष्यतः ॥८३॥
उपास्यमानौ सततं युष्मत्क्षेमकरौ यतः । ततःक्षेम्यौ सदा चैतौ भविष्येते वरप्रदौ ॥८४॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् जगामगतिमात्मनः । अदर्शनं गते देवे सर्वलोकपितामहे ॥८५॥
देवलोकं गते शक्रे स्वं लोकं हरिशंकरौ। प्राप्तौ तु तत्क्षणाद्देवौ स्थानं कैलासमेव च ॥८६॥
ततस्तु देवराजेन पालितं भुवनत्रयम् । एवं लक्ष्मीर्महाभागा उत्पन्ना क्षीरसागरात् ॥८७॥
पुनःख्यात्यां समुत्पन्ना भृगोरेषा सनातनी। श्रिया सह समुत्पन्ना भृगुणा च महर्षिणा ॥८८॥
स्वनाम्ना नगरी चैव कृतापूर्वसारित्तटे । नर्मदायां महाराज ब्रह्मणा चानुमोदिता ॥८९॥
लक्ष्मीः पुरं स्वपित्रे स्वंसहकुञ्चिकयाऽर्प्य च । आगतादेवलोकं साऽयाचतागत्य वै पुनः ॥९०॥
लोभान्नदतं तु पुरं प्रार्थयाना यदा पुनः । भृगोःसकाशान्नावाप तदा चैवाह केशवम् ॥९१॥
परिभूता तु पित्राहं गृहीतं नगरं मम । तस्य हस्तात्त्वमाक्षिप्य पुरंतच्चानय स्वयम् ॥९२॥
तं गत्वा पुंडरीकाक्षो दिवश्चक्रगदाधरः । भृगुं सानुनयं प्राह कन्यायै पुरमर्पय ॥९३॥
कुञ्चिकातालिकेचोभे दीयेतां च प्रसादतः । भृगुस्तं कुपितःप्राह नार्पयिष्याम्यहं पुरम् ॥९४॥
न लक्ष्म्यास्तत्पुरं देव मया चेदं स्वयं कृतम्। भगवन्नैव दास्यामि त्यजाक्षेपं तु केशव ॥९५॥
तं प्राह देवोभूयोपि लक्ष्म्यास्तत्पुरमर्पय । सर्वथा तु त्वया त्याज्यं वचनान्मे महामुने ॥९६॥

उसी समय सभी जीवों की बुद्धि धार्मिक हो गयी ॥८१॥ श्रीसम्पन्न त्रैलोक्य का पालन भगवान् विष्णु ने किया । उस समय लोक को धारण करने वाले ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा ॥८२॥ मैंने आपलोगों की रक्षा करने के लिए भगवान् विष्णु को नियुक्त कर दिया है । शङ्करजी तथा श्रीभगवान् आपलोगों का निर्वाह करेंगे ॥८३॥ चूकि उपासना किये जाने पर ये दोनों आप सबों का कल्याण करेंगे, अतएव ये दोनों क्षेम्य तथा आपलोगों को वर प्रदान करने वाले होंगे॥८३-८४॥ इस तरह से कहकर ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये । सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी के अदृश्य हो जाने पर ॥८५॥ तथा इन्द्र के स्वर्ग लोक चले जाने पर, उसी समय श्रीभगवान् विष्णु अपने लोक में चले गये और शङ्करजी कैलास पर्वत पर चले गये ॥८६॥ उसी समय से देवराज भी त्रैलोक्य के स्वामी हो गये । इसतरह से महाभागा लक्ष्मीजी क्षीरसागर से उत्पन्न हुयीं ॥८७॥ ये ही पुनः भृगु महर्षि की पत्नी ख्याति देवी के गर्भ से उत्पन्न हुयीं । ये सनातनी हैं महर्षि भृगु से लक्ष्मी देवी के साथ एक नगरी भी उत्पन्न हुयी, नर्मदा नदी के पूर्व तट पर उसे लक्ष्मीजी ने बसाया और ब्रह्माजी ने उसका अनुमोदन किया ॥८८-८९॥ लक्ष्मीजी ने उस नगरी का नाम लक्ष्मीपुर रखा और नगरी का ताला और चाबी को अपने पिता को समर्पित किया । जब वे देवलोक आयीं तो पुनः अपने पिता से उस नगरी की चाभी माँगीं ॥९०॥ प्रार्थना करने पर भी महर्षि ने लोभ के कारण जब उन्हें उस नगरी को नहीं दिया तो उन्होंने भगवान् केशव से कहा ॥९१॥ पिताजी ने मुझे धोखा दिया है उन्होंने मेरा नगर ले लिया है अतएव आप उनके हाथ से छीन कर मेरे नगर को लाइये ॥९२॥ चक्र तथा गदाधारी श्रीभगवान् उन मुनि के पास जाकर उस नगरी को देने के लिए प्रार्थना किये और कहे कि आप अपनी पुत्री को उस नगर को दे दें ॥९३॥ प्रसन्नता पूर्वक ताला और चाभी दे दें । क्रुद्ध होकर भृगु महर्षि ने कहा मैं नगर नहीं दे सकता हूँ ॥९४॥ वह लक्ष्मी का नगर नहीं है मैंने उसे स्वयं उत्पन्न किया है । हे केशव ! आप आग्रह छोड़ दें मैं नगर नहीं दे सकता हूँ ॥९५॥ इसके बाद भी भगवान् ने महर्षि से कहा लक्ष्मी के उस नगर को आप दे दें । हे महामुने ! मेरे कथनानुसार आपको उस

ततः कोपसमाविष्टो भृगुरप्याह केशवम्। पक्षपातेन मां साधो भार्याया बाधसेधुना ॥९७॥
नृलोके दश जन्मानि लप्स्यसे मधुसूदन । भार्यायास्ते वियोगेन दुःखान्यनुभविष्यसि ॥९८॥
एवं शापं ददौ तस्मै भृगुःपरमकोपनः। विष्णुना च पुनस्तस्य दत्तःशापो महात्मना॥९९॥
नचापत्यकृतां प्रीतिं प्राप्स्यसे मुनिपुंगव। शापं दत्त्वा ऋषेस्तस्य ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥१००॥
पद्मजन्मानमाहेदं दृष्ट्वास्तुदेवस्केशवः। भगवंस्तव पुत्रोऽसौ भृगुःपरमकोपनः ॥१०१॥
निष्कारणं च तेनाहं शप्तो जन्मानि मानुषे। लप्स्यसे दशधा त्वं हि ततो दुःखान्येकशः ॥१०२॥
भार्यावियोगजा पीडा बलपौरुषनाशिनी। त्यक्त्वा चाहमिमं लोकं शयिष्ये च महोदधौ ॥१०३॥
देवकार्येषु सर्वेषु पुनश्चावाहनं क्रियाः। तथा ब्रुवंतं तंदेवं ब्रह्मा लोकगुरुस्तदा ॥१०४॥
प्रसादनार्थं विष्णोस्तु स्तुतिमेतां चकार ह। त्वया सृष्टं जगदिदं पद्मं नाभौ विनिःसृतम् ॥
तत्र चाहं समुत्पन्नस्तव वश्यश्च केशव ॥१०५॥
त्वं त्राता सर्वलोकानां स्रष्टा त्वं जगतः प्रभो। त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष एव वरो मम ॥१०६॥
दश जन्म मनुष्येषु लोकानां हितकाम्यया। स्वयं कर्त्ता न ते शक्तः शापदानाय कोपि वा ॥१०७॥
को यं भृगुः कथं तेन शक्यं शप्तुं जनार्दन। मानयस्व सदा विप्रान् ब्राह्मणास्ते तनुस्स्वयम् ॥१०८॥
योगनिद्रामुपास्व त्वं क्षीराब्धौ स्वपिहीश्वर । कार्यकाले पुनस्त्वां तु बोधयिष्यामि माधव॥१०९॥
भगवन्नेष तावत्तु त्वच्छक्त्या चोपबृंहितः। सर्वकार्यकरः शक्रस्तवैवांशेन शत्रुहा ॥११०॥
त्रैलोक्यं पालयन्नेव त्वदाज्ञां स करिष्यति। एवं स्तुतस्दा विष्णुर्ब्रह्माणमिदमुक्तवान् ॥१११॥
सर्वमेतत्करिष्यामि यन्मां ज्ञापयसे प्रभो । अदर्शनं गतो देवो ब्रह्मा तं नाभिजज्ञिवान्॥११२॥

नगर को दे ही देना चाहिए ॥९६॥ उसके कारण क्रुद्ध होकर भगवान् विष्णु को भृगु महर्षि ने कहा— तुम अपनी पत्नी का पक्षपात करके मुझे बाध्य कर रहे हो ॥९७॥ हे मधुसूदन ! तुम मनुष्य लोक में दश जन्मों को धारण करोगे । पत्नी का वियोग होने से तुम्हें बहुत अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा ॥९८॥ अत्यन्त क्रोधी भृगु महर्षि ने श्रीभगवान् को इस प्रकार से शाप दे दिया । भगवान् विष्णु ने भी भृगु महर्षि को शाप दे दिया ॥९९॥ हे मुनि श्रेष्ठ! आपको भी सन्तान सुख नहीं मिलेगा । ऋषि को शाप देकर भगवान् ब्रह्मलोक में गये ॥१००॥ ब्रह्माजी से मिलकर भगवान् केशव ने कहा— भगवन् ! आपके पुत्र भृगु अत्यन्त क्रोधी हैं ॥१०१॥ बिना किसी कारण के उन्होंने मुझे मनुष्य जन्म लेने का शाप दे दिया है । उन्होंने कहा कि तुम दश बार मनुष्य का जन्म लोगे और वहाँ तुम्हें अनेक प्रकार से दुःख प्राप्त होगा ॥१०२॥ पत्नी के वियोग से होने वाला कष्ट बल तथा पौरुष का नाश करने वाला होता है । मैं इस लोक का परित्याग करके महासागर में शयन करूँगा ॥१०३॥ आप देवताओं आदि के कार्यों में मेरा पुनः आवाहन करेंगे । इसतरह कहने वाले भगवान् केशव से लोकगुरु ब्रह्माजी ने कहा ॥१०४॥ उन्होंने भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए इस प्रकार से स्तुति की । आपने ही जगत् की सृष्टि की थी । आपकी नाभि में कमल उत्पन्न हुआ । हे केशव ! उसी कमल पर आपके वशीभूत मेरा जन्म हुआ ॥१०५॥ हे प्रभो ! आप ही जगत् की सृष्टि करने वाले तथा रक्षा करने वाले हैं । आप त्रैलोक्य का परित्याग न करें, मैं आपको वरदान देता हूँ ॥१०६॥ आप अपनी इच्छा से ही मनुष्य लोक में जगत् का कल्याण करने की इच्छा से दश बार जन्म लेंगे । आप को कोई भी शाप नहीं दे सकता है ॥१०७॥ हे जनार्दन ! ये भृगु कौन शाप देने वाले होते हैं ? ब्राह्मण आपके शरीर हैं, आप ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं ॥१०८॥ आप योगनिद्रा का आश्रय लेकर क्षीर सागर में शयन करें । हे माधव ! आवश्यकता पड़ने पर मैं आपको जगाऊँगा ॥१०९॥ हे भगवन् ! आपकी ही शक्ति से पुष्ट होकर, आपके अंशभूत, शत्रुओं का विनाश करने वाले इन्द्र सभी कार्यों को करेंगे ॥११०॥ त्रैलोक्य का पालन करते हुए इन्द्र आपकी आज्ञा का पालन करेंगे इस तरह से स्तुति किये जाने पर भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी से कहा ॥१११॥ हे प्रभो ! आप जो

गते देवे तदा विष्णौ ब्रह्मा लोकपितामहः । भूयश्चकार वै सृष्टिं लोकानां प्रभवःप्रभुः ॥११३॥
तं दृष्ट्वा नारदःप्राह वाक्यं वाक्यविदांवरः । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
सर्वव्यापी भुवःस्पर्शादध्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥११४॥
यद्भूतं यच्च वै भाव्यं सर्वमेव भवान्यतः । ततो विश्वमिदं तात त्वत्तो भूतं भविष्यति ॥११५॥
त्वत्तो यज्ञः सर्वहुतः पृषदाज्यं पशुर्द्विधा । ऋचस्त्वत्तोथ सामानि त्वत्त एवाभिजज्ञिरे ॥११६॥
त्वत्तो यज्ञास्त्वजायन्त त्वत्तो श्वाश्चैव दंतिनः । गावस्त्वत्तः समुद्भूताः त्वत्तो जाताऽवयो मृगाः॥११७॥
त्वन्मुखाद्ब्राह्मणा जातास्त्वत्तः क्षत्रमजायत । वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रा स्तवपद्भ्यां समुद्गताः॥११८॥
अक्ष्णोः सूर्योनिलःश्रोत्राच्चन्द्रमा मनसस्तव । प्राणोंतःसुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत ॥११९॥
नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्त्तत । दिशः श्रोत्रात्क्षितिःपद्भ्यां त्वत्तःसर्वमभूदिदम् ॥१२०॥
न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथाबीजे व्यवस्थितः । ससर्ज्ज विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि ॥१२१॥
वीजांकुरसमुद्भूतो न्यग्रोधः समुपस्थितः । विस्तारं च यथा याति त्वत्तःसृष्टौ तथा जगत् ॥१२२॥
यथाहि कदली नान्यतत्वक्पत्रेभ्योऽभिदृश्यते । एवं विश्वमिदं नान्यत्त्वत्स्थमीश्वर दृश्यते ॥१२३॥
ह्लादिनी त्वयि शक्तिस्सा त्वय्येका सहभाविनी । ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥१२४॥
पृथग्भूतैकभूताय सर्वभूताय ते नमः । व्यक्तं प्रधानं पुरुषो विराट् सम्राट् तथा भवान् ॥१२५॥
सर्वस्मिन्सर्वभूतस्त्वं सर्वःसर्वस्वरूपधृक् । सर्वं त्वत्तःसमुद्भूतं नमःसर्वात्मने ततः ॥१२६॥

कह रहे हैं वह मैं सब कुछ करूँगा । इसके बाद श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये और ब्रह्माजी उन्हें जान न सके॥११२॥ भगवान् विष्णु के चले जाने पर लोक पितामह ब्रह्माजी ने पुनः सृष्टि की; क्योंकि वे लोकों की उत्पत्ति स्थान हैं ॥११३॥ ब्रह्माजी को देखकर वाक्यज्ञों में श्रेष्ठ नारदजी ने ब्रह्माजी की स्तुति करते हुए कहा । अनन्तशिरों, अनन्त नेत्रों तथा अनन्त चरणों वाले सर्वव्यापक पुरुष सम्पूर्ण पृथिवी को व्याप्त करके उसके बाहर अनन्त प्रदेश तक स्थित हुआ ॥११४॥ उसी से सम्पूर्ण भूत एवं भविष्यत् पदार्थों की उत्पत्ति हुयी । इसीलिए हे तात ! आप से ही भूत एवं भविष्यत् पदार्थ उत्पन्न हैं ॥११५॥ आप से ही यज्ञ, अग्नि, हविष्य, घी, दो प्रकार के (ग्राम्य एवं अरण्य) पशुओं की उत्पत्ति हुयीं । आपसे ऋचाओं एवं सामों की उत्पत्ति हुयी ॥११६॥ आपसे ही यज्ञों की उत्पत्ति हुयी और आप से अश्व तथा दोनों ओर दाँतों वाले पशु उत्पन्न हुए । आप से ही गायें, भेंड और मृग उत्पन्न हुए॥११७॥ आपके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, आप से ही क्षत्रिय हुए और आपके ऊरू भाग से वैश्य हुए तथा आपके दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए ॥११८॥ आपकी आँखों से सूर्य मन से चन्द्रमा आपके अन्तश्छिद्र से प्राण हुआ तथा मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुयी ॥११९॥ आपकी नाभि से अन्तरिक्ष हुआ और शिर से द्युलोक हुआ । कानों से दिशाओं की उत्पत्ति हुयी, आपके पैरों से पृथिवी की उत्पत्ति हुयी । आप से ही यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ॥१२०॥ जिस तरह छोटे से बीज में विशाल वट वृक्ष विद्यमान रहता है उसी तरह बीज स्वरूप आप से ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि हुयी है ॥१२१॥ बीज से उत्पन्न होने वाला अङ्कुर जिसतरह वट वृक्ष होकर विस्तार को प्राप्त करता है, उसीतरह आपके द्वारा की जाने वाली इस सृष्टि से विस्तीर्ण सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है ॥१२२॥ जिस तरह से केले के स्तम्भ में छिलका और पत्तों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखता है; उसी तरह हे स्वामिन् ! आप से भिन्न यह जगत् कुछ भी नहीं है ॥१२३॥ आपके साथ रहने वाली केवल ह्लादिनी शक्ति है । आप प्राकृतिक गुणों से रहित हैं । अतएव आपमें आह्लाद और ताप से मिश्रित शक्ति नहीं हैं ॥१२४॥ आप पृथक् स्वरूप, एक स्वरूप तथा सर्व स्वरूप है । आप को नमस्कार है । आप ही, व्यक्त (महदादि), प्रधान (प्रकृति) विराट् पुरुष तथा सम्राट् (मुक्त जीव)

सर्वात्मकोसि सर्वेश सर्वभूतस्थितो यतः । कथयामि ततः किं ते सर्ववेत्सि हृदि स्थितम् ॥१२७॥
यो मे मनोरथो देव सफलः स त्वया कृतः । तप्तं सुतप्तं सफलं यद्दृष्टोसि जगत्पते ॥१२८॥

ब्रह्मोवाच

तपसस्तत्फलं पुत्र यद्दृष्टोहं त्वयाधुना । मद्दर्शनं हि विफलं नारदेह न जायते ॥१२९॥
वरं वरय तस्मात्त्वं यथाभिमतमात्मनः । सर्वंसंपद्यते तात मयि दृष्टिपथं गते ॥१३०॥

नारद उवाच

भगवन्सर्वभूतेश सर्वस्यास्ते भवान् हृदि । किमज्ञातं तव स्वामिन्मनसा यन्मयेप्सितम् ॥१३१॥
कृता त्वया यथा सृष्टिर्मया दृष्टा तथाविभो । तेन मे कौतुकं जातं दृष्ट्वा देवर्षिदानवान् ॥१३२॥

पुलस्त्य उवाच

नारदस्य पिता तुष्टो ब्रह्मा देवो दिवस्पतिः । नारदाय वरं प्रादादृषीणामुत्तमो भवान् ॥१३३॥
भविता मत्प्रसादेन कलिकेलिकथाप्रियः । गतिश्च तेऽप्रतिहता दिवि भूमौ रसातले ॥१३४॥
यज्ञोपवीतसूत्रेण योगपट्टावलंबिका । छत्रिका च तथा बीणा अलंकाराय ते नघ ॥१३५॥
विष्णोः समीपे रुद्रस्य तथाशक्रस्य नारद । द्वीपेषु पार्थिवानांतु सदा प्रीतिं च लाप्स्यसे ॥१३६॥
वर्णानां तु भवान् शास्ता वरो दत्तो मया तव । तिष्ठ पुत्र यथाकामं सेव्यमानः सुरैर्दिवि ॥१३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे लक्ष्म्युत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

हैं ॥१२५॥ सर्वस्वरूपधारी आप ही सबों में सब कुछ हैं । आप से ही सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न है; अतएव सर्वात्मा रूप आपको नमस्कार है ॥१२६॥ आप चूँकि सभी भूतों में स्थित हैं, अतएव आप सर्वात्मक हैं । अतएव मैं आपसे क्या कहूँ? आप हृदय की सारी बातों को जानते हैं ॥१२७॥ हे देव ! मेरा जो मनोरथ है, उसे आपने सफल बना दिया । हे जगत् के स्वामिन् ! मेरी छोटी बड़ी सभी तपस्याएँ सफल हो गयीं; क्योंकि मुझे आपका दर्शन मिल गया ॥१२८॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— हे पुत्र ! मेरा दर्शन ही तपस्या का फल है । हे नारद ! इस लोक में मेरा दर्शन विफल नहीं होता है ॥१२९॥ अतएव तुम अपने अभिमत वरदान को माँग लो । हे तात ! मेरा दर्शन मिल जाने पर उपासक को सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥१३०॥ **नारदजी ने कहा**— हे सभी जीवों के स्वामी भगवन् ! आप सबों के हृदय में स्थित है; अतएव हे स्वामिन् ! जो मेरे मन में है, वह आपको अज्ञात है क्या ?॥१३१॥ हे विभो ! आपने जैसे सृष्टि की उसे मैंने देखा है, अतएव देवताओं, ऋषियों तथा दानवों को देखकर मेरे मन में कौतूहल हो गया ॥१३२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— द्युलोक के स्वामी तथा नारदजी के पिता ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने उन्हें वरदान दिया कि तुम ऋषियों में श्रेष्ठ हो जाओ ॥१३३॥ मेरी कृपा से कलि के केलि से जन्य चर्चा में तथा भगवत् कथा में तुम्हारी रुचि होगी । तुम्हारी द्युलोक, भूलोक तथा पाताललोक में अव्याहत रूप से गति होगी ॥१३४॥ यज्ञोपवीत सूत्र से तुम्हारा योग पट्ट लगा रहेगा, छाता तथा वीणा ये दोनों तुम्हारे अलङ्कार होंगे ॥१३५॥ हे नारद ! भगवान् विष्णु, शङ्कर तथा इन्द्र एवं द्वीपों के राजाओ का तुमसे सदा प्रेम होगा ॥१३६॥ तुम सदा वर्णों का प्रशंसक होंगे यह वरदान मैंने तुम्हें प्रदान किया । हे पुत्र ! अपनी इच्छा के अनुसार देवताओं द्वारा सेवित होकर तुम द्युलोक में निवास करो ॥१३७॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के लक्ष्मी की उत्पत्ति नामक चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

कथं सती दक्षसुता देहं त्यक्तवती शुभा। दक्षयज्ञस्तुरुद्रेण विध्वस्तः केन हेतुना ॥१॥
एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्कथं देवो महेश्वरः। जगामाथ क्रोधवशं त्रिपुरारिर्महायशाः ॥२॥

पुलस्त्य उवाच

गंगाद्वारे पुरा भीष्म दक्षो यज्ञमथारभत् । तत्र देवासुरगणाः पितरोऽथ महर्षयः॥३॥
समाजग्मुर्मुदा युक्ताः सर्वे देवाः सवासवाः। नागा यक्षाः सुपर्णाश्च वीरुदोषधयस्तथा ॥४॥
कश्यपो भगवानत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। प्रचेतसोंगिराश्चैव वसिष्ठश्च महातपाः ॥५॥
तत्र वेदीं समां कृत्वा चातुर्होत्रं न्यवेशयत् । होता वसिष्ठस्तत्रासीदंगिराध्वर्युसत्तमः ॥६॥
बृहस्पतिरथोद्गाता ब्रह्मा वै नारदस्तथा। यज्ञकर्मप्रवृत्तौ तु हूयमानेषु चाग्निषु॥७॥
आगता वसवःसर्वे आदित्या द्वादशैव तु । अश्विनौ मरुतश्चैव मनवश्च चतुर्दश॥८॥
एवं यज्ञे प्रवृत्ते तु हूयमानेषु चाग्निषु । विभूतिं तां परां तत्र भक्ष्यभोज्यकृतां शुभाम् ॥९॥
आलोक्य सर्वां भूमिं समंताद्दशयोजनम्। महावेदी कृता तत्र सर्वैस्तत्र समन्वितैः ॥१०॥
सर्वान् देवान् शक्रमुख्यान्यज्ञे दृष्ट्वा सती शुभा। तदा सानुनयं वाक्यं प्रजापतिमभाषत ॥११॥

सत्युवाच्च

ऐरावतं समारूढो देवराजः शतक्रतुः। पत्न्या शच्या सहायातः कृतावासः शतक्रतुः ॥१२॥
पापानां यो यमयिता धर्मेणाधर्मिणां प्रभुः। पत्न्याधूम्रोर्णया सार्द्धमिहायातः स दृश्यते ॥१३॥

दक्षयज्ञविध्वंस

भीष्मजी ने कहा— दक्षपुत्री, कल्याणकारिणी सती ने अपना शरीरत्याग क्यों किया ? और किसलिए रुद्र ने दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त कर दिया ?॥१॥ मुझको यह कौतूहल है कि महायशस्वी त्रिपुरारि भगवान् शङ्कर क्यों क्रुद्ध हुए ॥२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे भीष्म ! प्राचीन काल में दक्ष ने हरिद्वार में यज्ञ करना प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में देवता, असुर, पितृगण, महर्षिगण ॥३॥ इन्द्र के साथ सभी देवता, नाग, यक्ष, पक्षी, वीरुध तथा ओषधियाँ सब के सब प्रसन्नता पूर्वक आये ॥४॥ कश्यप, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, प्रचेता, अङ्गिरा तथा महातपस्वी वसिष्ठ भी उस यज्ञ में आये ॥५॥ वहाँ पर समतल वेदी बनाकर चातुर्होत्र विधि से यज्ञ प्रारम्भ हुआ। उस यज्ञ में होता वसिष्ठ महर्षि थे, अध्वर्यु का कार्य महर्षि अङ्गिरा करते थे ॥६॥ उसमें बृहस्पति उद्गाता तथा नारदजी ब्रह्मा थे । यज्ञ का कार्य प्रारम्भ हुआ और अग्नियों में आहुतियाँ दी जा रही थीं ॥७॥ उस समय वसुगण, द्वादशादित्य, दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण और चौदहो मनु आये ॥८॥ इस तरह से यज्ञ प्रारम्भ होने तथा अग्नियो में आहुति दिये जाते समय वहाँ पर भक्ष्य एवं भोज्य सामग्रियों के अत्यधिक ऐश्वर्य को तथा हर ओर से समतल भूमि को देखकर दश योजन विस्तृत महावेदी का निर्माण सबों ने मिलकर किया ॥९-१०॥ उस यज्ञ में इन्द्र इत्यादि सभी देवताओं को देखकर सती ने, अनुनय पूर्वक अपने पिता दक्ष प्रजापति से पूछा ॥११॥ **सती ने कहा—** ऐरावत हाथी पर चढकर देवराज इन्द्र अपनी पत्नी के साथ यहाँ आये हैं और रह रहे हैं ॥१२॥ जो पापियों का नियमन धर्मपूर्वक करते हैं, वे यमराज अपनी पत्नी धूम्रोर्णा के साथ यहाँ आये हुए दिखायी देते हैं ॥१३॥ जलचरों के स्वामी

यादसां च पतिर्देवो वरुणो लोकभावनः । गौर्य्या पत्न्या सहायातः प्रचेता मंडपेत्विह ॥१४॥
सर्वयक्षाधिपो देवः पुत्रोविश्रवसो मुनेः । पत्न्या त्विह समायातः सह देव्या धनाधिपः ॥१५॥
मुखं यः सर्वदेवानां जंतूनामुदरे स्थितः । वेदा यदर्थमुत्पन्नास्सोयं यज्ञमुपागतः ॥१६॥
निऋती राक्षसेन्द्रोऽसौ दिक्पतित्वे नियोजितः । स च त्विहागतस्तात पत्न्या सार्द्धं कृताविह ॥१७॥
आयुःप्रदो जगत्यस्मिन्ब्रह्मणा निर्मितः पुरा । प्राणोपानो व्यान उदानस्समानाह्वयस्तथा ॥१८॥
एकोनपंचाशत्केन गणेन परिवारितः । यज्ञे प्रजापतिश्चासौ वायुर्देवः समागतः ॥१९॥
द्वादशात्मा ग्रहाध्यक्षः चक्षुषी जगतस्विह । पाति वै भुवनं सर्वं देवानां यः परायणः ॥२०॥
आयुषश्च वनानां च दिवसानां पति र्हि यः । संज्ञापतिरिहायातो भास्करो लोकपावनः ॥२१॥
अत्रिवंशसमुद्भूतो द्विजराजो महायशाः । नयनानंदजननो लोकनाथो धरातले ॥२२॥
ओषधीनां पतिश्चापि वीरुधामपि सर्वशः । उडुनाथः सपत्नीक इहायातः शशी तव ॥२३॥
वसवोष्टौ समायाता अश्विनौ च समागतौ । वृक्षो वनस्पतिश्चापि गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥२४॥
विद्याधरा भूतसंघा बेताला यक्षराक्षसाः । पिशाचाश्चोग्रकर्माणस्तथान्ये जीवहारकाः ॥२५॥
नद्यो नदाः समुद्राश्च द्वीपाश्च सह पर्वतैः । ग्राम्यारण्याश्च पशवो यदिङ्गं यच्चनेङ्गति ॥२६॥
कश्यपो भगवानत्रिर्वसिष्टश्चापरैःसह । पुलस्त्यः पुलहश्चैव सनकाद्या महर्षयः ॥२७॥
पुण्या राजर्षयश्चैव पृथिव्या ये च पार्थिवाः । वर्णाश्चाश्रमिणश्चैव सर्वे ये कर्मकारिणः ॥२८॥
किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मीसृष्टिरिहागता । भगिन्यो भागिनेयाश्च भगिनीपतयस्त्विमे ॥२९॥
स्वभार्यासहिताःसर्वे सपुत्रास्सहबांधवाः । त्वया समर्चिताःसर्वे दानमानपरिग्रहैः ॥३०॥

लोक कल्याण कर्ता, वरुण तथा अपनी पत्नी गौरी के साथ प्रचेता इस मण्डप में दिखयी देते हैं ॥१४॥ समस्त यक्षों के स्वामी तथा विश्रवा मुनि के पुत्र कुबेर भी अपनी पत्नी के साथ यहाँ पर पधारे हुए हैं ॥१५॥ जो सभी देवताओं के मुख हैं जो सभी जीवों के उदर में जाठरानल रूप से रहते हैं, जिनके लिए वेदों की उत्पत्ति हुयी वे अग्नि देव भी यहाँ यज्ञ में आये हैं ॥१६॥ राक्षसों के स्वामी निऋति जो दिक्पाल हैं वे भी इस यज्ञ में अपनी पत्नी के साथ दिखायी देते हैं ॥१७॥ जिन्हें प्राचीन काल में संसारियों को आयु प्रदान करने वाले रूप से ब्रह्माजी ने बनाया वे प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान एवं उनचास मरुद्गणों के साथ प्रजापति वायुदेव भी यहाँ आये हुए हैं॥१८-१९॥ जो द्वादश शरीरात्मक, ग्रहों के स्वामी, संसारियो के नेत्र स्वरूप, सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले, देवताओं के आश्रयभूत, आयु वन तथा दिवस के स्वामी संसार को पवित्र करने वाले संज्ञा देवी के पति भगवान् सूर्य भी आये हैं ॥२०-२१॥ अत्रि वंश में उत्पन्न, महा यशस्वी द्विजराज, आँखों को आनन्द प्रदान करने वाले, लोक स्वामी, पृथिवी पर ओषधियों एवं वृक्षों के स्वामी, ताराओं के स्वामी चन्द्रमा भी आपके इस यज्ञ में पत्नी के साथ पधारे हैं॥२२-२३॥ आठो वसु दोनों अश्विनीकुमार, वृक्ष, वनस्पति, गन्धर्व, अप्सराओं का समूह ॥२४॥ विद्याधर, भूतों का समूह, बेताल, यक्ष, राक्षस, उग्र कर्म करने वाले पिशाच गण, तथा दूसरे प्राणाहार करने वाले ॥२५॥ नदियाँ, नद, समुद्र, द्वीप, पर्वत, ग्राम्यपशु, अरण्य पशु, जो अपने नेत्रों को खोलते हैं, तथा जो अपने नेत्रों को नहीं खोलते॥२६॥ महर्षि कश्यप, भगवान् अत्रि, वसिष्ठ महर्षि, पुलस्त्य, पुलह, सनकादिक महर्षि ॥२७॥ महान् राजर्षि गण तथा पृथिवी पर विद्यमान जो राजागण हैं वे, अपने वर्ण एवं आश्रमों का पालन करने वाले तथा जितने भी कर्म करने वाले हैं, वे सब ॥२८॥ अधिक क्या कहना है ब्रह्माजी की सारी सृष्टि, मेरी सभी बहनें तथा उनके पुत्र

आमंत्रणा मंत्रितानां सर्वेषां मानना कृता । एक एवात्रभगवान्पतिर्मे न समागतः ॥३१॥
विना तेन त्विदं सर्वं शून्यवत्प्रतिभाति मे। मन्ये चाहं तु भवता पतिर्मे न निर्मंत्रितः ॥३२॥

पुलस्त्य उवाच

विस्मृतस्ते भवेन्नूनं सर्वं शंसतु मे भवान्। तस्यास्तदुक्तं वचनं श्रुत्वा दक्षःप्रजापति ॥३३॥
पतिस्नेहसमायुक्तां प्राणेभ्योपि गरीयसीम् । अंकमारोप्य तां बालां साध्वीं पतिपरायणाम् ॥३४॥
पतिव्रतां महाभागां पतिप्रियहितैषिणीम् । प्राह गंभीरभावेन श्रृणु वत्से यथातथम् ॥३५॥
येनाद्य कारणेनेह पतिस्ते न निर्मंत्रितः । कपालपात्रधृक्चर्मी भस्मावृततनुस्तथा ॥३६॥
शूली मुण्डी च नग्नश्च श्मशाने रमते सदा। विभूत्याङ्गानि सर्वाणि परिमार्ष्टि च नित्यशः ॥३७॥
व्याघ्रचर्मपरीधानो हस्तिचर्मपरिच्छदः । कपालमालां शिरसि खट्वागं च करे स्थितम् ॥३८॥
कट्यां वै गोनसं बध्वा लिंगेऽस्थ्नां वलयं तथा। पन्नगानां तु राजानमुपवीतं च वासुकिम् ॥३९॥
कृत्वा भ्रमति चानेन रूपेण सततं क्षितौ। नग्ना गणाः पिशाचाश्च भूतसंघा ह्यनेकशः ॥४०॥
त्रिनेत्रश्च त्रिशूली च गीतनृत्यरतस्सदा। कुत्सितानि तथान्यानि सदा तेकुरुते पतिः ॥४१॥
त्रपाकरोभवेन्मह्यं देवानां संनिधिःकथं । कीदृक्च वसनं तस्य केतनं प्रतिनार्हति ॥४२॥
एतैर्दोषैर्मया वत्से लोकानां चैव लज्जया । नाह्वानं तु कृतं तस्य कारणेन मया सुते ॥४३॥
यज्ञस्यास्य समाप्तौ तु पूजां कृत्वा त्वया सह । आनीय तव भर्त्तारं त्वयासह त्रिलोचनम् ॥४४॥
त्रैलोक्यस्याधिकां पूजां करिष्यामि च सत्कृतैः। एतत्ते सर्वमाख्यातं त्रपायाः कारणं महत् ॥४५॥

एवं पति भी ॥२९॥ अपनी पत्नियों, पुत्रों तथा बान्धवों साथ यहाँ आये हैं, और उन सबों को आपने दान, मान तथा परिग्रह के द्वारा सम्मान किया है ॥३०॥ आपने उन सबों का आमन्त्रण तथा विचारों के द्वारा सम्मान किया है, केवल मेरे पति ही यहाँ नहीं आये हैं ॥३१॥ उनके बिना मुझको यह सब कुछ शून्य के समान प्रतीत होता है । लगता है कि आपने मुझे तथा मेरे पति को निमन्त्रित नहीं किया है ॥३२॥ लगता है आप भूल गये, इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** सती की बातों को सुनकर दक्षप्रजापति ने ॥३३॥ पति के प्रेम से युक्त तथा अपने प्राणों से भी प्रिय, पतिभक्ता सती को अपनी गोद में बैठाया ॥३४॥ पतिव्रता, महाभागा तथा पति का कल्याण चाहने वली सती से उन्होंने गम्भीर वाणी में कहा— हे वत्से ! तुम्हें वास्तविक स्थिति मैं बतलाता हूँ॥३५॥ जिस कारण में मैंने तुम्हारे पति को नहीं निमन्त्रित किया है उसे सुनो । वे कपाल पात्र को धारण करते हैं, चमड़ा ओढते हैं, शरीर में चिता का भस्म लपेटते हैं ॥३६॥ त्रिशूल और मुण्डों की माला को धारण करते हैं, नङ्गे रहते हैं तथा श्मशान में निवास करते हैं । सदा वे भस्म को अपने अङ्गों में मलते है ॥३७॥ व्याघ्र के चर्म को पहनते हैं और हाथी के चमड़े को ओढते हैं । शिर पर कपालों की माला धारण करते हैं और हाथ में खट्वाङ्ग धारण करते हैं ॥३८॥ वे कमर में गोनस बाँधकर अपने लिङ्ग में हड्डी का कंकण लगाते हैं । वे सर्पो के राजा वासुकि का यज्ञोपवीत धारण करते हैं ॥३९॥ वे इसी रूप में सदा पृथिवी पर घूमते रहते हैं । उनके गणों में बहुत से पिशाच तथा भूतों का समुदाय रहता है ॥४०॥ वे तीन नेत्र वाले त्रिशूल धारण करने वाले, नृत्यगीत परायण हैं । तुम्हारे पति सदा निन्दित कर्म करते रहते हैं ॥४१॥ यह देवताओं के सन्निकट मेरे लिए अत्यधिक लज्जास्पद है । उनका वस्त्र और घर कैसा है ॥४२॥ हे वत्से ! इन्हीं दोषों तथा लोकलज्जा के कारण ही मैंने तुम्हारे पति को नहीं निमन्त्रित किया ॥४३॥ इस यज्ञ के समाप्त हो जाने पर तुम्हारे साथ उनका पूजन करके, तुम्हारे पति को बुलाकर

नात्र मन्युस्त्वया कार्यः सर्वः स्वं भागमर्हति। अन्यजन्मनि यैर्यादृक्कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥४६॥
इह जन्मनि ते तादृक्पुत्रिके भुंजते फलम्। परितापं माकृथास्त्वं फलं भुंक्ष्व पुरा कृतम्॥४७॥
श्रियं परगतां दृष्ट्वा रूपसौभाग्यशोभनाम्। रूपं च कांति सौभाग्यं रम्याण्याभरणानि च ॥४८॥
कुले महति वै जन्म वपुश्चातीव सुंदरम्। पूर्वभाग्यैस्तुलभ्यंते नरैरेतानि सुव्रते ॥४९॥
मात्मानं परिनिंदेथा मा च भाग्यानि सुव्रते। फलं चैवं विधिकृतं दातुं कस्य तु कः क्षमः ॥५०॥
नास्ति वै वलवान्कश्चिन्नमूर्खो न च पंडितः। पाडित्यं च बलं चैव जायते पूर्वकर्मणः ॥५१॥
एते देवा दिवं प्राप्ताः शोभमानाः स्थिताश्चिरम्। पुण्येन तपसा चैव क्षेत्रेषु विविधेषु च॥५२॥
यदेभिरर्जितं पुण्यं तस्यैते फलभागिनः। एवमुक्ता ततः सा तु सती भीष्म रूषान्विता ॥५३॥
विनिंदमाना पितरं क्रोधेनारुणितेक्षणा। एवमेतद्यथा तात त्वया चोक्तं ममाग्रतः ॥५४॥
सर्वो जनः पुण्यभागी पुण्येन लभते श्रियम्। पुण्येन लभते जन्म पुण्ये भोगाः प्रतिष्ठिताः ॥५५॥
तदयं जगतामीशः सर्वेषामुत्तमोत्तमः। स्थानान्येतानि सर्वेषां दत्तान्येतेन धीमता ॥५६॥
ये गुणास्तस्य देवस्य वक्तुं जिह्वापि वेधसः। न शक्ता ख्यापने तस्य देवस्य परमेष्ठिनः॥५७॥
भस्मास्थि च कपालानि श्मशाने वसतिस्तथा। गोनसद्याश्च ये सर्पाः सर्वे ते भूषणीकृताः ॥५८॥
भूतप्रेतागणास्तस्य पिशाचा गुह्यकास्तथा। एष धाता विधाता च एष पालयिता दिशः ॥५९॥
प्रसादेन च रुद्रस्य प्राप्तस्वर्गः पुरंदरः। यदि रुद्रेस्ति देवत्वं यदि सर्वगतःशिवः ॥६०॥

तुम्हारे साथ तुम्हारे पति का मैं सबसे अधिक सत्कार करूँगा। मैंने लज्जा का सारा कारण तुम्हें बतला दिया ॥४४-४५॥ इससे तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए, सबलोग अपना भाग प्राप्त करते हैं। पूर्वजन्म में जिसने जैसा पुण्य अथवा पाप कर्म किया है ॥४६॥ हे पुत्रि ! इस जन्म में वे लोग वैसा ही फल भोगते हैं। तुम शोक मत करो पूर्वकृत कर्मो का तुम फल भोगो ॥४७॥ हे सुव्रते ! दूसरे की सम्पत्ति को देखकर, अथवा सुन्दर सौभाग्य को देखकर, रूप, कान्ति, सौभाग्य, मनोहर आभरण, महान वंश में जन्म, सुन्दर शरीर ये सब पूर्व जन्म के भाग्य से ही मनुष्यों को प्राप्त होते हैं ॥४८-४९॥ हे सुव्रते ! तुम न तो अपनी निन्दा करो और न तो अपने भाग्य की निन्दा करो। फल तो भाग्यवशात् मिलता है, कौन किसको क्या दे सकता है ?॥५०॥ न तो कोई बलवान है, न मूर्ख हैं और न पण्डित हैं, बल, पाण्डित्य इत्यादि तो पूर्वजन्म के कर्म के फल हैं ॥५१॥ ये देव अनेक क्षेत्रों में जाकर तपस्या तथा पुण्य के रूप से स्वर्ग में जाकर सुशोभित हो रहे हैं ॥५२॥ इन लोगो ने जो पुण्य कमाया उसका ये फल भोग रहे हैं। इसतरह से कहे जाने पर भयङ्कर क्रोध से युक्त सती ॥५३॥ आँखें लाल करके अपने पिता की निन्दा करती हुयी कहीं— पिताजी आपने मेरे सामने यह जो कहा है ॥५४॥ कि सभी लोग अपने पुण्य के भागी होते हैं, और पुण्य से ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। पुण्य से जन्म प्राप्त करते हैं, पुण्य में ही भोग स्थित है ॥५५॥ भगवान् शङ्कर तो संसार के स्वामी है। सबों से उत्तमोत्तम हैं। इन्होंने ही इन सबों को समस्त स्थानों को प्रदान किया है ॥५६॥ भगवान् शिव के जिन गुणों का वर्णन न तो ब्रह्मा की जिह्वा कर सकती है और न तो ब्रह्माजी स्वयं उसका वर्णन कर सकते हैं ॥५७॥ उन्होंने भस्म, अस्थि, कपाल, श्मशान में निवास, गोनस आदि सर्प को भूषण बनाया है॥५८॥ भूत, प्रेत, पिशाच तथा गुह्यक ये सबके सब उनके गण हैं। ये (भगवान् शिव) ही धाता, विधाता और दिशाओं के पालक हैं ॥५९॥ रुद्र की ही कृपा से इन्द्र ने स्वर्ग लोक को प्राप्त किया। यदि रुद्र में देवत्व है, यदि शिव सर्व हैं, सर्वव्यापक हैं तो इसी सत्य के द्वारा शिव तुम्हारे यज्ञ का विध्वंस कर दें। यदि मेरी कोई तपस्या है,

सत्येन तेन ते यज्ञं विध्वंसयतु शंकरः । यद्यस्ति मे तपः किंचित्कश्चिद्धर्मोथवा कृतः ॥६१॥
फलेन तस्य धर्मस्य यज्ञस्ते नाशमर्हति । प्रियाहं यादि देवस्य यदि मां तारयिष्यति ॥६२॥
तेन सत्येन ते गर्वः समाप्तिमभिगच्छतु। इत्युक्त्वा योगमास्थाय स्वदेहस्थेन तेजसा ॥६३॥
निर्ददाह तदात्मानं स देवासुरपन्नगैः । किं किमेतदिति प्रोक्ते गंधर्वगणगुह्यकैः ॥६४॥
गंगाकूले तदा मुक्तो देहो वै क्रुद्धया तया । सौनकं नामतत्तीर्थं गंगायाःपश्चिमे तटे ॥६५॥
श्रुत्वा रुद्रस्तु तद्वार्त्तां पत्न्या नाशं सुदुःखितः । हंतुं यज्ञं धीरभवत् देवानामिह पश्यताम् ॥६६॥
गणकोटिःसमादिष्टा ग्रहा वै नायकास्तथा । भूतप्रेतपिशाचाश्च दक्षयज्ञविनाशने ॥६७॥
तैर्गत्वा विबुधा स्सर्वे यज्ञे निर्जित्य नाशिताः । हते यज्ञे तदा दक्षोनिरुत्साहो निरुद्यमः ॥६८॥
उपगम्याब्रवीत्त्रस्तो देवदेवं पिनाकिनम् । न ज्ञातोसि मया देव देवानां प्रभुरीश्वरः ॥६९॥
त्वमस्य जगतोधीशः सुरास्सर्वे त्वया जिताः । कृपां कुरु महेशान गणान्सर्वान्निवर्त्तय॥७०॥
गणैर्नानाविधैर्घोरैर्नानाभूषणभूषितैः । नानावदनदंतौष्ठैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥७१॥
नानानागेंद्रसंदष्टजटाभारोपशोभितैः । सुदृढोद्धतदर्पाढ्यैर्घोरैर्घोरनिघातिभिः ॥७२॥
कामरूपैरकांतैश्च सर्वकामसमन्वितैः । अनिवार्यबलैश्चोग्रैर्योगिभिर्योगगामिभिः ॥७३॥
व्यालोलकेसरजटैर्दंष्ट्रोत्कटहसन्मुखैः । करींद्रकरटाटोपपाटवैः सिंहदेहिभिः ॥७४॥
केचित्परमदाघ्राणघूर्णद्दीपसमप्रभैः । विचित्रचित्रवसनैर्द्धीरधीररवादिभिः ॥७५॥
मृगव्याघ्रसिंहरुतैस्तरक्ष्वजिनधारिभिः । भुजंगहारवलयकृतयज्ञोपवीतकैः ॥७६॥

अथवा मैंने कोई धर्म किया है ॥६०-६१॥ उस धर्म के फल रूप से तुम्हारे यज्ञ का नाश हो जाय । यदि मैं शिव की प्रिया हूँ, यदि वे मेरा उद्धार करेंगे ॥६२॥ तो उसी सत्य से तुम्हारे गर्व का नाश हो जाय । इसतरह से कहकर योग को अपनाकर, अपने शरीर में विद्यमान तेज के द्वारा ॥६३॥ सती ने अपने शरीर को भस्म कर दिया । उस समय, देवता, असुर, पन्नग, गन्धर्व तथा गुह्यकों ने कहा यह क्या हो गया ॥६४॥ उस समय सती ने क्रुद्ध होकर गङ्गा तट में अपने शरीर का त्याग कर दिया । वह गङ्गा के पश्चिम तट पर सौनक नामक तीर्थ विद्यमान है ॥६५॥ उस समाचार को सुनकर तथा अपनी पत्नी का नाश हो जाने से रुद्र अत्यन्त दुःखी हुए । देवताओं के समक्ष ही उन्होंने यज्ञ को विध्वस्त करने का निश्चय किया ॥६६॥ उन्होंने करोड़ों गणों, वैनायक ग्रहों, भूतों, प्रेतों तथा पिशाचों को दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त करने का आदेश दिया ॥६७॥ उन सबों ने जाकर देवताओं को जीतकर यज्ञ को विध्वस्त कर दिया । यज्ञ का विध्वंस हो जाने पर दक्ष उद्योग रहित और उत्साह रहित हो गये ॥६८॥ वे भयभीत होकर भगवान् शङ्कर के पास जाकर कहे हे देव ! मैंने नही जाना था कि आप देवताओं के स्वामी और ईश्वर हैं॥६९॥ इस जगत् के स्वामी हैं, आपने सभी देवताओं को परास्त कर दिया । हे महेश ! आप कृपा करें, अपने गणों को रोकें ॥७०॥ हे शङ्कर ! अनेक प्रकार के भयङ्कर तथा अनेक प्रकार के भूषणों से भूषित, अनेक प्रकार के मुख, दाँत तथा ओष्ठ वाले, अनेक प्रकार के आयुधों को धारण करने वाले ॥७१॥ अनेक सर्पराजों से बँधे जटाओं से सुशोभित सुदृढ तथा उद्धत गर्व (अभिमान) से युक्त, भयङ्कर तथा घोर प्रहार करने वाले ॥७२॥ अपनी इच्छा के अनुसार शरीर धारण करने वाले, कान्ति रहित, सभी कामनाओं से युक्त, दुर्द्धर्ष बल से सम्पन्न उग्र, योगी तथा योग पथ पर चलने वाले ॥७३॥ चञ्चल केसरों से युक्त जटा वाले, उत्कट दाँत वाले और हँसते हुए मुख वाले, गजराजों की गालों को फाड डालने वाले सिंह के शरीर वाले ॥७४॥ कुछ दूसरों के मद को सूंघकर बूझते हुए दीप के समान

शूलासिपट्टिशधरैः परशुप्रासहस्तकैः । वज्रक्रकचकोदंडकालदंडास्त्रपाणिभिः ॥७७॥
गणेश्वरैः सुदुर्द्धर्षैर्वृतःसूर्योग्रहैरिव । देवदेवमहादेव नष्टो यज्ञो दिवं गतः ॥७८॥
मृगरूपधरो भूत्वा भयभीतस्तु शंकर । नमःशङ्खाभदेवाय सगणय सनंदिने ॥७९॥
वृषासनाय सोमाय क्रतुकालांतकाय च । नमोदिक्चर्मवस्त्राय नमस्ते तीव्रतेजसे ॥८०॥
ब्रह्मणे ब्रह्मदेहाय ब्रह्मण्यायामिताय च । गिरीशाय सुरेशाय ईशानाय नमो नमः ॥८१॥
रुद्राय प्रतिवज्राय शिवाय क्रथनाय च । सुरासुराधिपतये यतीनां पतये नमः ॥८२॥
धूम्रोग्राय विरूपाय यज्वने घोररूपिणे । विरूपाक्षाशुभाक्षाय सहस्राक्षाय वै नमः ॥८३॥
मुंडाय चंडमुण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे । कव्यरूपाय हव्याय सर्वसंहारिणे नमः ॥८३॥
भक्तानुकंपिनेत्यर्थं रुद्रजाप्यस्तुतायच । विरूपाय सुरूपाय रूपाणां शतकारिणे ॥८४॥
पंचास्याय शुभास्याय चंद्रास्याय नमो नमः । वरदाय वराहाय कूर्माय च मृगाय च ॥८५॥
लोलालकशिखंडाय कमंडलुधराय च । विश्वनाम्नेय विश्वाय विश्वेशाय नमो नमः ॥८६॥
त्रिनेत्र त्राणमस्माकं त्रिपुरघ्न विधीयतां । वाङ्मनःकायभावैस्तु प्रपन्नस्य महेश्वर ॥८७॥
एवंस्तुतस्तदा देवोदक्षेणापन्नदेहिना । दिव्येनानेन स्तोत्रेण भृशमाराधितस्तदा ॥८८॥
समग्रं ते यज्ञफलं मया दत्तं प्रजापते । सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं फलं प्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥८९॥

कान्ति वाले, चित्र-विचित्र वस्त्र धारण करने वाले, घोर भयङ्कर ध्वनि करने वाले ॥७५॥ मृग,बाध तथा सिंह के समान बोलने वाले, तरक्षु के चमड़े को धारण करने वाले, सर्पो को हार, कङ्गन और यज्ञोपवीत बनाने वाले ॥७६॥ त्रिशूल, कृपाण, पट्टिस को धारण करने वाले, हाथ में फरसा तथा प्रास लेने वाले, अपने हाथ में वज्र, क्रकच (आरी) को, दण्ड (धनुष) तथा कालदण्ड नामक अस्त्रों को धारण करने वाले ॥७७॥ ग्रहों से घिरे हुए सूर्य के समान अत्यन्त दुर्द्धर्षगणों तथा गणेश्वरों से घिरा हुआ, नष्ट होकर यज्ञ भयभीत तथा मृग का रूप धारण करके स्वर्ग लोक में चला गया । शङ्ख के समान कान्ति वाले, गणों था नंदी से युक्त देव शिव को नमस्कार है ॥७९॥ वृष पर वैठने वाले सोमस्वरूप, क्रतु तथा काल को विनष्ट करने वाले, दिगम्बर, चर्माम्बर तथा तीब्र तेज से युक्त आपको नमस्कार है ॥८०॥ ब्राह्मण, ब्रह्म शरीरक, ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों के भक्त) तथा अमेय, गिरीश, सुरेश तथा ईशान को बारम्बार नमस्कार है ॥८१॥ रुद्र, दूसरे वज्र के समान, शिव क्रथन स्वरूप देवों तथा असुरों के स्वामी तथा यतियों के स्वामी आपको नमस्कार है ॥८२॥ हे धूम्र, उग्र, विरूप, यज्वा, घोर रूप वाले, विरूपाक्ष, अशुभाक्ष, तथा सहस्राक्ष आपको नमस्कार है ॥८३॥ हे मुण्ड, चण्डमुण्ड, श्रेष्ठ खट्वाङ्ग धारण करने वाले कव्य तथा हव्य स्वरूप एवं सबों का संहार करने वाले भगवन् शिव आपको नमस्कार हैं ॥८३॥ भक्तों पर अत्यधिक अनुकम्पा करने वाले तथा रुद्र जप्य के द्वारा जिनकी स्तुति की जाती हैं, विरूप, सुरूप तथा सैकड़ों रूपों को धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥८४॥ पञ्चास्य (पाँच मुख वाले) शुभास्य (सुन्दर मुख वाले) तथा चन्द्रास्य (चन्द्रमा के समान आह्लादक मुख वाले) आपको बारम्बार नमस्कार है । वर देने वाले वराह, कूर्मरूप धारी तथा मृगरूपधारी शिव को नमस्कार है ॥८५॥ चंचल केश तथा शिखण्डक वाले, कमण्डलु धारण करने वाले, सभी नामों वाले, विश्व स्वरूप एवं विश्वेश आपको नमस्कार है ॥८६॥ हे त्रिनेत्र ! हे त्रिपुरघ्न आप हमारी रक्षा कीजिये । हे महेश्वर ! मैं वाणी, मन तथा शरीर से आपके शरण में आया हूँ ॥८७॥ इस तरह से शरणागत दक्ष के द्वारा स्तुति किए जाने पर इस दिव्य स्तोत्र के द्वारा अत्यधिक आराधित ॥८८॥ **शङ्करजी ने कहा—** हे प्रजापते ! मैं आपको यज्ञ का समग्र फल प्रदान करता हूँ ।

एवमुक्तो भगवता प्रणम्याथ सुरेश्वरम्। जगाम स्वनिकेतं तु गणानामेव पश्यताम् ॥९०॥
पत्न्याः शोकेन वै देवो गंगाद्वारे तदास्थितः। तां सती चिंतयानस्तु क्वनु सामे प्रिया गता ॥९१॥
तस्य शोकाभिभूतस्य नारदो भवसंन्निधौ। सा ते सती या देवेश भार्याप्राणसमा मृता ॥९२॥
हिमवद्दुहिता सा च मेनागर्भसमुद्भवा। जग्राह देहमन्यं सा वेदवेदार्थवेदिनी॥९३॥
श्रुत्वा देवस्तदाध्यानमवतीर्णामपश्यत। कृतकृत्यमथात्मानं कृत्वा देवस्तदास्थितः ॥९४॥
संप्राप्तयौवना देवी पुनरेव विवाहिता। एवं हि कथितं भीष्म यथायज्ञो हतः पुरा॥९५॥

इतिश्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठा अध्याय

भीष्म उवाच

देवानां दानवानां च गंधर्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिं विस्तरेण मां गुरो ब्रूहि यथाविधि ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते । दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसंभवा ॥२॥

सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए आप सर्वोत्तम फल प्राप्त करेंगे ॥८९॥ इस तरह से भगवान् शङ्कर के कहने पर उनको प्रणाम करके दक्ष प्रजापति गणों के सामने ही अपने निवास स्थान पर चले गये ॥९०॥ पत्नी के शोक से संतप्त भगवान् शिव गङ्गाद्वार में ही रहकर उन सती के विषय में सोचते रहते थे कि मेरी प्रिया कहाँ चली गयी॥९१॥ शोक सन्तप्त शङ्करजी के पास आकर नारदजी ने बतलाया कि हे देवेश ! आपकी प्राणप्रिया पत्नी सती जो मर गयीं ॥९२॥ वह हिमवान की पत्नी मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुयी हैं। वेदों तथा वेदार्थों को जानने वाली उसने दूसरा शरीर धारण कर लिया है ॥९३॥ यह सुनकर भगवान् शङ्कर ने ध्यान करके देखा कि वह अवतीर्ण हो गयी हैं। उसके बाद अपने को कृतकृत्य मानकर वे निश्चिन्त हो गये ॥९४॥ जब वे देवी युवावस्था वाली हुयीं तो भगवान् शङ्कर ने उनसे विवाह किया। हे भीष्म ! इस तरह से मैंने आपको यज्ञ विध्वंस के प्रकार को सुनाया॥९५॥

इस तरह पद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के दक्षयज्ञ विध्वंस नामक पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

दक्ष से पहले सङ्कल्पजन्य, दर्शनजन्य तथा स्पर्शजन्य सृष्टि का वर्णन, दक्ष के पश्चात् मैथुनी सृष्टि का वर्णन, हर्यश्वों तथा शबलाश्वों को नारदजी के उपदेश से मोक्षमार्ग का अनुसरण, विश्वेदेव, वसुगण, रुद्र तथा आदित्यों की उत्पत्ति, दैत्यों की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में बाणासुर का संक्षिप्त चरित्र, दानवों, गरुड़ तथा शुक आदि की उत्पत्ति का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे गुरो ! आप मुझे देवों, दानवों, गन्धर्वों उरगों तथा राक्षसों की उत्पत्ति को विस्तार पूर्वक सुनाइये ॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** दक्ष से पहले देखने मात्र से, सङ्कल्प मात्र से तथा स्पर्श करने से ही सृष्टि होती थी। दक्ष के बाद मैथुन से सृष्टि होने लगी ॥२॥ हे कुरुवंशावतंस ! ब्रह्माजी ने जैसे सृष्टि की उसे तुम

यथा ससर्ज चैवासो तथैव शृणु कौरव। यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान्॥३॥
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः। दक्षः पुत्रसहस्राणि तदासिक्न्यामजीजनत्॥४॥
तांस्तु दृष्ट्वा महाभगान् सिसृक्षून्विविधाः प्रजाः। नारदः प्राह हर्यश्वान् दक्षपुत्रान् समागतान्॥५॥
भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वोर्ध्वमध एव वा। ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः॥६॥
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम्। अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिंधवः॥७॥
हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः। वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः॥८॥
शबलाश्वा नाम ते च समेताः सृष्टिकर्मणि। नारदोनुगतान्प्राह पुनस्तान्पूर्ववन्मुनिः॥९॥
भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वा भ्रातॄनथो पुनः। आगत्य च पुनः सृष्टिं करिष्यथ विशेषतः॥१०॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रात्रनुगास्तदा। ततः प्रभृति न भ्रातुः कनीयान्मार्गमिच्छति॥११॥
अन्वेष्टा दुःखमाप्नोति तेन तत्परिवर्जयेत्। ततस्तेष्वपि नष्टेषु षष्टिं कन्याः प्रजापतिः॥१२॥
वीरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तदा। प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश॥१३॥
विंशतिं सप्तसोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने। द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वेकृशाश्वाय धीमते॥१४॥
द्वे चैवांगिरसे प्रादात्तासां नामानि विस्तरात्। शृणु त्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तरमादितः॥१५॥
अरुंधती वसुर्जामिर्लम्बा भानुर्मरुत्वती। संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी॥१६॥
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोध मे। विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्यासाध्यानजीजनत्॥१७॥

सुनो। जब देवताओं, ऋषियों तथा सर्पों की सृष्टि से ब्रह्माजी की सृष्टि की वृद्धि नहीं हुयी तो दक्ष ने मैथुन के द्वारा अपनी पत्नी अशिक्नी के गर्भ से हजारों पुत्रों को उत्पन्न किया॥३-४॥ उन सबों को अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने के इच्छुक देखकर आये हुए दक्ष के हर्यश्व नामक पुत्रों से नारदजी ने कहा॥५॥ हे श्रेष्ठ ऋषियों! पृथिवी के ऊपर, नीचे के सम्पूर्ण विस्तार को जानकर के ही आपलोग सृष्टि करें॥६॥ नारदजी की बाणी को सुनकर वे (हर्यश्व) पृथिवी के प्रमाण का पता लगाने के लिए विभिन्न दिशाओं में चले गये और वे सब आज तक उसी प्रकार नहीं लौटे जिस तरह समुद्र में मिल जाने के बाद नदियाँ नहीं लौटती हैं॥७॥ हर्यश्वों के विनष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने वीरिणी के गर्भ से हजारों पुत्रों को उत्पन्न किया॥८॥ उन शबलश्वों को भी सृष्टि कर्म में व्यापृत देखकर नारद मुनि ने अपना अनुसरण करने वाले उन सबों से भी पहले के ही समान कहा॥९॥ उन्होंने कहा कि पहले तुमलोग पृथिवी के सम्पूर्ण प्रमाण का पता लगा लो; फिर आकर विशेष रूप से सृष्टि करना॥१०॥ इसके बाद अपने भाइयों का अनुसरण करने वाले वे शबलाश्व भी उसी मार्ग से चले गये। उसी समय से छोटा भाई बड़े भाई के मार्ग का अनुसरण नहीं करता है॥११॥ उनका अनुसरण करने वाला दुःख प्राप्त करता है। अतएव उसका परित्याग कर देना चाहिए। उसके बाद उन सबों के भी नष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने॥१२॥ वीरिणी के गर्भ से साठ कन्याओं तथा प्रचेताओं को उत्पन्न किया। उनमें से दक्ष ने सत्रह कन्याओं का विवाह धर्म से कर दिया और तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप महर्षि से किया॥१३॥ सत्ताइस कन्याओं को उन्होंने चन्द्रमा को दिंया तथा चार कन्याओं को अरिष्टनेमि को दिया; उन्होंने अपनी दो पुत्रियों का विवाह भृगु महर्षि के पुत्र से किया और तथा दो का विवाह कृशाश्व से किया॥१४॥ उसके बाद दो पुत्रियों का विवाह उन्होंने अङ्गिरा महर्षि से किया। उन सबों का विस्तार से वर्णन सुनो। देव माताओं की प्रजाओं का विस्तार आदि मुझसे सुनो॥१५॥ अरुन्धती, वसु, जामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता साध्या तथा विश्वा ये धर्म की दश पत्नियाँ हैं॥१६॥ अब इनके पुत्रों का नाम सुनो

मरुत्वत्यां मरुत्वंतो वसोस्तु वसवस्तथा । भानोस्तु भानवोजाता मूहूर्त्ताया मुहूर्तजाः ॥१८॥
लंबायां घोषनामानो नागवीथीतु जामिजा । पृथिवीतलसंभूतमरुंघत्यामजायत ॥१९॥
संकल्पायास्तु संकल्पा वसुसृष्टिंनिधारय । ज्योतिष्मंतश्च ये देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम् ॥२०॥
वसवस्ते समाख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु। आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलो नलः ॥२१॥
प्रत्यूषश्चप्रभासश्च वसवोष्टौ प्रकीर्तिताः । आपस्य पुत्राश्चत्वारः श्रांतो वैतण्ड एव च ॥२२॥
अपि शांतो मुनिर्वभ्रुर्यज्ञरक्षाधिकारिणः। ध्रुवस्य कालः पुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत॥२३॥
द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्राविमौ स्मृतौ । कल्पांतस्थस्ततःप्राणे रमणः शिशिरोपि च ॥२४॥
मनोहरो धवश्चाथ शिवो वाथ हरेःसुताः । शिवोमनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिप्रदम् ॥२५॥
अवाप चानलःपुत्रानग्निप्रायगुणांस्ततः । तत्र शाखो विशाखश्च निगमेषु स्वयंभुवः ॥२६॥
अपत्यंकृत्तिकानां च कार्तिकेयस्ततःस्मृतः । प्रत्यूषस्य ऋभुःपुत्रो मुनिर्नामाथ देवलः ॥२७॥
विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रःशिल्पी प्रजापतिः । प्रसादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु ॥२८॥
तटाकारामकूपेषु त्रिदशानां च वर्द्धकिः । अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोथ रैवतः ॥२९॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यंबकश्च सुरेश्वरः। सावित्रश्च जयंतश्च पिनाकी चापराजितः ॥३०॥
एते रुद्रास्समाख्याता एकादशगणेश्वराः । एतेषां मानसानां तु त्रिशूलवरधारिणाम् ॥३१॥
कोट्यश्चतुरशीतिस्तु तत्पुत्राश्चाक्षया मताः । दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुंर्वनति गणेश्वराः ॥३२॥
एते वै पुत्रपौत्राश्च सुरभीगर्भसंभवाः । कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पुत्रपौत्रादिपत्निषु ॥३३॥

विश्वेदेव, विश्वा के पुत्र है, साध्या ने साध्यगणों को जन्म दिया ॥१७॥ मरुत्वती ने मरुत्वानों को उत्पन्न किया, और वसुगण वसु के पुत्र हैं। भानु नामक पत्नी के पुत्र भानुगण (आदित्यगण) हैं और मूहुर्ता के पुत्र मुहूर्त हैं ॥१८॥ लम्बा के पुत्रों का नाम घोष है और जामि के पुत्र नागवीथी हैं। पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले सभी प्राणी अरुन्धती के पुत्र हैं ॥१९॥ सङ्कल्पा के पुत्र सङ्कल्प है, अब वसुओं की सृष्टि को सुनो। सभी दिशाओं में व्याप्त ज्योति सम्पन्न जितने देवता हैं ॥२०॥ वे वसुगण कहलाते हैं। उन वसुओं का नाम सुनो। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल ॥२१॥ प्रत्यूष तथा प्रभास ये आठ वसु कहे गये हैं। आप के चार पुत्र हैं श्रान्त, वैतण्ड ॥२२॥ शान्त तथा बभ्रुमुनि ये यज्ञ की रक्षा के अधिकारी हैं। ध्रुव के पुत्र काल हैं, सोम के पुत्र वर्चा हैं ॥२३॥ धर के ये दो पुत्र बतलाये गये है द्रविण और हव्यवाह। अनिल के तीन पुत्र हुए प्राण, रमण और शिशिर ॥२४॥ हरि के मनोहर, धव, तथा शिव नामक पुत्र हैं। शिव के पुत्र मन के समान बेगवान तथा अविज्ञात गति को प्रदान करने वाले हैं॥२५॥ अनल ने अग्नि के समान गुणों वाले अनेक पुत्रों को प्राप्त किया। उनमें शाख, विशाख, निगमेषु तथा स्वयम्भु प्रधान हैं ॥२६॥ कृतिकाओं के गर्भ से अनल के कार्त्तिकेय नामक पुत्र हुए। प्रत्यूष के ऋभु नाम वाले देवल मुनि पुत्र हुए ॥२७॥ प्रभास के पुत्र विश्वकर्मा हैं। ये देवताओं के शिल्पी प्रजापति हैं। देवताओं के प्रासाद, भवन, उद्यान, प्रतिमा, भूषण, तड़ाग, उद्यान तथा कूप बनाने वाले वर्द्धकी (बढई) का काम करते हैं। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, सुरेश्वर, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी तथा अपराजित ॥३०॥ ये गणों के स्वामी एकादश रुद्र हैं। ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं, श्रेष्ठ त्रिशूल को धारण करते हैं ॥३१॥ इनके चौरासी करोड़ पुत्र हैं जो अक्षय हैं। ये गणेश्वर सभी दिशाओं में रहकर रक्षा करने का काम करते हैं ॥३२॥ ये सभी पुत्र पौत्र, सुरभि के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। अब मैं कश्यप महर्षि की पत्नियों में उत्पन्न होने वाले पुत्र-पौत्रों का वर्णन

अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा । सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ॥३४॥
कद्रू खसा मुनिस्तद्वत्तासु पुत्रान्निबोध मे । तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः ॥३५॥
वैवस्वतेंतरे चैव आदित्या द्वादश स्मृताः । इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ॥३६॥
विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान्विष्णुरेव च । एते सहस्रकिरणा आदित्यादाद्वश स्मृताः ॥३७॥
मारीचात्कश्यपाज्जाताः पुत्रास्तेऽदितिनंदनाः । कृशाश्वस्य ऋषेःपुत्रा देवप्रहरणाःस्मृताः ॥३८॥
एते देवणास्तात प्रतिमन्वंतरेषु च । उत्पद्यंते विलीयंते कल्पे कल्पे तथैव च ॥३९॥
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नःश्रुतम् । हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च ॥४०॥
हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातं पुत्रचतुष्टयम् । प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च ॥४१॥
प्रह्लादपुत्रा आयुष्मान् शिविर्वाष्कलिरेव च । विरोचनश्चतुर्थस्तु स बलिं पुत्रमाप्तवान् ॥४२॥
बलेःपुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं ततो नृप । धृतराष्ट्रस्तथासूर्य्यो विवस्वानंशुतापनः ॥४३॥
निकुम्भनामागुर्वक्षः कुक्षिर्भौमोथ भीषणः । एवमन्ये तु बहवो बाणोज्येष्ठो गुणाधिकः ॥४४॥
बाणस्सहस्रबाहुस्तु सर्वास्त्रगुणसंयुतः । तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलधृत् ॥४५॥
महाकालत्वमगमत्साक्ष्ये यस्य पिनाकिनः । हिरण्याक्षस्य पुत्रोभूदंधको नाम नामतः ॥४६॥
भूतसंतापनश्चैव महानागस्तथैव च । एतेभ्यःपुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः ॥४७॥
महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः । दनुःपुत्रशतं लेभे कश्यपाद्वरदर्पितम् ॥४८॥
विप्रचित्तिः प्रधानोभूदेषां मध्ये महाबलः । द्विरष्टमूर्द्धा शकुनिस्तथा शंकुशिरोधरः ॥४९॥

करूँगा ॥३३॥ अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा क्रोधवशा, इरा ॥३४॥ कद्रु, खसा तथा मुनि ये कश्यप महर्षि की पत्नियों के नाम हैं । इन पत्नियों में उत्पन्न होने वाले पुत्रों का नाम सुनो । चाक्षुष मन्वन्तर में जो तुषित नामक देवता हुए ॥३५॥ वे ही वैवस्वत मन्वन्तर में द्वादश आदित्य कहलाये । इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा ॥३६॥ विवस्वान् सविता, पूषा, अंशुमान् तथा विष्णु, ये सभी हजारों किरण वाले द्वादशादित्य कहे गये हैं ॥३७॥ ये मरीचि महर्षि के पुत्र कश्यप महर्षि की आदिति नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हैं। कृशाश्व नामक ऋषि से जो पुत्र पैदा हुए वे देव प्रहरण कहलाते हैं ॥३८॥ ये देवगण सभी मन्वन्तरों तथा प्रत्येक कल्पों में उत्पन्न होते हैं तथा विलीन होते हैं ॥३९॥ हमने सुना है कि दिति ने कश्यप महर्षि से दो पुत्रों को प्राप्त किया । उनके नाम हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष हैं ॥४०॥ हिरण्यकशिपु के उनके ही समान चार पुत्र हुए प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लाद ॥४१॥ प्रह्लाद के भी चार पुत्र हुए— आयुष्मान्, शिवि, वाष्कलि और विरोचन । विरोचन के पुत्र बलि हुए ॥४२॥ बलि के सौ पुत्र हुए उन सबों में बड़े बाण थे । बलि के धृतराष्ट्र, सूर्य, विवस्वान्, अंशुतापन, निकुम्भ, आगुः, वक्षःकुक्षि, भौम, भीषण इसतरह दूसरे भी पुत्र थे, उन सबों में सबसे गुणवान् बाण था॥४४॥ उसकी एक हजार भुजाएँ थी तथा सभी प्रकार के अस्त्रों में वह निपुण था । उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शङ्करजी उसकी नगरी में निवास करते थे ॥४५॥ वह शङ्करजी के साथ रहने के कारण महाकालत्व की पदवी प्राप्त किए था । हिरण्याक्ष के पुत्र अन्धक ॥४६॥ भूतसंतापन, तथा महानाग थे । इन पुत्रों के पुत्रों की संख्या सतहत्तर करोड़ थी ॥४७॥ वे सभी महाबलवान्, महाकाय (विशाल शरीर वाले) अनेक रूप वाले, तथा महाओजस्वी थे दनु से कश्यप महर्षि को वरदान से दृप्त बने हुए सौ पुत्र हुए ॥४८॥ इन सबों में महाबली विप्रचित्ति प्रधान था । द्विरष्टमूर्धा (सोलह शिरों वाला) शकुनि, शङ्कुशिरा, ॥४९॥ अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मरीचि, मागध, हरि,

अयोमुखः शंबरश्च कपिलो वामनस्तथा। मरीचिर्मागधश्चैव हरिर्गजशिरास्तथा ॥५०॥
निद्राधरश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतक्रतुः । इन्द्रमित्रग्रहश्चैव बज्रनाभस्तथैव च॥५१॥
एकवस्त्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा। असिलोमा पुलोमा च विकुर्वाणो महासुरः ॥५२॥
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोस्सुता। स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा॥५३॥
उपदानवी मयस्यासीत्तथा मंदोदरीकुहूः। शर्मिष्ठा सुंदरी चैव चंडा च वृषपर्वणः ॥५४॥
पुलोमा कालका चैव वैश्वनरसुते उभे । बह्वपत्यो महासत्वो मारीचस्य परिग्रहः ॥५५॥
तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानां पुरा भवन्। पौलोमान् कालखंजांश्च मारीचो जनयत्पुरा ॥५६॥
अवध्या ये नराणां वै हिरण्यपुरवासिनः । चतुर्मुखाल्लब्धवरा ये हता विजयेन तु ॥५७॥
विप्रचित्तिः सिंहिकायां नवपुत्रानजीजनत् । हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश ॥५८॥
कसः शंखश्च राजेंद्र नलो वातापिरेव च । इल्वलो नमुचिश्चैव खसृमश्चांजनस्तथा ॥५९॥
नरकः कालनाभश्च परमाणुस्तथैव च । कल्पवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्द्धनः ॥६०॥
संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले। अबध्याः सर्वदेवानां गंधर्वोरगरक्षसाम् ॥६१॥
ये हताबलमाश्रित्य अर्जुनेन रणाजिरे। षट्कन्या जनयामास ताम्रा मारीचवीर्यतः ॥६२॥
शुकीं श्येनीं च भासीं च सुगृध्रीं गृणिकां शुचिम्। शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः ॥६३॥
श्येनी श्येनांश्च भासीच कुररानप्यजीजनत् । गृध्री गृध्रान्सुगृध्री च पारावतविहंगमान् ॥६४॥
हंससारसकारंडपल्वान् शुचिरजीजनत्। एते ताम्रा सुताः प्रोक्ता विनतायां निशामय॥६५॥
गरुडः पतगश्रेष्ठोऽरुणश्चेशः पतत्रिणाम् । सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता॥६६॥

गजशिरा ॥५०॥ निद्राधर, केतु, केतुवीर्य, शतक्रतु, इन्द्रमित्रग्रह, वज्रनाभ ॥५१॥ एकवस्त्र, महाबाहु वज्राक्ष, तारक, असिलोमा, पुलोमा, विकुर्वाण, महासुर ॥५२॥ स्वर्भानु तथा वृषपर्वा इत्यादि दनु के पुत्र थे । स्वर्भानु की पुत्री सुप्रभा थी और पुलोम की पुत्री शची थी ॥५३॥ मय की तीन पुत्रियाँ थी, उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू वृषपर्वा की भी तीन पुत्रियाँ थीं, शर्मिष्ठा, सुन्दरी और चण्डा ॥५४॥ वैश्वानर की दो पुत्रियाँ थी पुलोमा तथा कालका । ये दोनों अनेक सन्तानों वाली तथा महाशक्ति से सम्पन्न थीं ॥५५॥ इन दोनों से साठ हजार दानवों की उत्पत्ति हुयी । महर्षि कश्यप के ये पुत्र पौलोम तथा कालखञ्ज कहलाये ॥५६॥ ये मनुष्यों के लिए अवध्य थे तथा हिरण्यपुर में रहते थे । ये ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किये थे और ये अर्जुन के द्वारा मारे गये ॥५७॥ विप्रचित्ति के सिंहिका के गर्भ से तेरह पुत्र थे ॥५८॥ हे राजेन्द्र ! इनके नाम थे कंस, शङ्ख, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, खसृम, अञ्जन ॥५९॥ नरक, कालनाभ, परमाणु, दनुवंश विवर्द्धन और विख्यात कल्पवीर्य ॥६०॥ संह्लाद दैत्य के वंश में निवातकवचों का जन्म हुआ । ये सभी देवता, गन्धर्व उरग और राक्षसों के लिए अवध्य थे ॥६१॥ इन सबों को अर्जुन ने रणाङ्गण में मारा । कश्यप महर्षि के वीर्य से ताम्रा ने छह कन्याओं को जन्म दिया ॥६२॥ उनके नाम हैं— शुकी, श्येनी, भासी, सुगृधी, गृध्रिका तथा अशुचि । शुकी ने शुकों तथा उल्लुओं को उत्पन्न किया ॥६३॥ श्येनी ने श्येनों (वाज पक्षियां) को उत्पन्न किया भासी ने कुररों को जन्म दिया । गृधी ने गृध्रों को तथा सुगृधी ने पारावत (कबूत्तर) पक्षियों को जना ॥६४॥ शुची ने हंस, सारस, कारण्डव तथा प्लवों को उत्पन्न किया । ये ताम्रा के सन्तान बतलाये गये हैं अव विनता के पुत्रों को सुनो ॥६५॥ विनता के पक्षियों के स्वामी दो पुत्र हुए गरुड तथा अरुण । उसकी एक पुत्री सौदामिनी हुई जो आकाश में स्थित है ॥६६॥ अरुण के दो पुत्र हुए सम्पाती तथा जटायू । सम्पाती के प्रख्यात

संपातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ । संपातिपुत्रो वभ्रुश्च शीघ्रगश्चातिविश्रुतः ॥६७॥
जटायोः कर्णिकारश्च शतगामी च विश्रुतौ। तेषामसंख्यमभवत्पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् ॥६८॥
सुरसायां सहस्रं तु सर्पाणामभवत्पुरा । सहस्रशिरसां कद्रूः सहस्रं प्राप सुव्रता ॥६९॥
प्रधानास्तेषु विख्याताष्षड्विंशतिररिंदम । शेषवासुकिकर्कोटशंखैरावतकंबलाः ॥७०॥
धनंजयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः । एलापुत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ॥७१॥
शंखपालमहाशंखपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः । शङ्खरोमा च नहुषो रमणः पणिनस्तथा ॥७२॥
कपिलो दुर्मुखश्चापि पतंजलिमुखास्तथा । एषामनंतमभवत्सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् ॥७३॥
प्रायशो यत्पुरादग्धं जनमेजयमंदिरे । रक्षोगणं क्रोधवशा सुनामानमजीजनत् ॥७४॥
दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसे नादागात्क्षयम्। दंष्ट्रिगोमायुकाकादीन् महिषीर्गोवराङ्गनाः ॥७५॥
सुरभिर्जनयामास कश्यपात्त्रितयं पुरा । मुनिर्मुनीनांचगणं गणमप्सरसां तथा ॥७६॥
तथाकिन्नरगंधर्वानरिष्टा जनयद्बहून् । तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीजनत् ॥७७॥
खसा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः। एते कश्यपदायादाःशतशोऽथ सहस्रशः ॥७८॥
एष मन्वंतरे भीष्म सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः। ततस्त्वेकोनपंचाशन्मरुतः कश्यपाद्दितिः ॥
जनयामास धर्मज्ञ सर्वानमरबल्ल्भान् ॥७९॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे षष्ठोध्यायः ॥६॥

पुत्र शीघ्रग और वभ्रु थे ॥६७॥ जटायू के भी दो पुत्र विख्यात थे कर्णिकार और शतगामी । इन सबों के असंख्य पक्षी पुत्र और पौत्र रूप से उत्पन्न हुए ॥६८॥ सुरसा के पुत्र एक हजार सर्प हुए । कद्रु के भी हजार शिरों वाले एक हजार सर्प पुत्र हुए ॥६९॥ हे अरिन्दम ! उन सबों में छब्बीस प्रधान रूप से विख्यात हुए । वे हैं शेष, वासुकि, कर्कोटक, शंख, ऐरावत, कम्बल ॥७०॥ धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापुत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक ॥७१॥ शंखपाल, महाशंख, पुष्टदंष्ट्र, शुभानन, शंखरोमा, नहुष, रमणा, पणिन ॥७१-७२॥ कपिल, दुर्मुख तथा पतञ्जलि । इन सबों के अनन्त पुत्र पौत्र हुए ॥७३॥ इन सबों में से बहुत से पहले जनमेजय के यज्ञ में जल गये । क्रोधवशा ने सुनामा नामक राक्षसों के गण को उत्पन्न किया ॥७४॥ इनके दाँत बड़े-बड़े थे । क्रुद्ध होकर भीमसेन ने इनमें से दस लाख को तो मार दिया । सुरभि ने कश्यप महर्षि के वीर्य से दाँत वाल गोमायु (शृगाल) कौए आदि, भैंस, गौ तथा सुन्दरी स्त्रियों को जन्म दिया । मुनि ने मुनि समूह तथा अप्सराओं के गण को जन्म दिया।।७६॥ अरिष्टा ने बहुत से किन्नरों तथा गन्धर्वो को जन्म दिया । इरा ने तृण, वृक्ष, लता तथा गुल्म इत्यादि सबों को उत्पन्न किया ॥७७॥ खसा ने करोड़ों यक्षों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया । ये सभी सैकड़ों तथा हजारों कश्यप महर्षि की सन्ताने हैं ॥७८॥ हे भीष्म ! यह स्वारोचिष मन्वन्तर का सर्ग है । उसके बाद उनचास मरुतों को कश्यप ऋष के अंश से दिति ने उत्पन्न किया । हे धर्मज्ञ ! सभी मरुद्गण देवताओं के प्रिय हैं ॥७९॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

सातवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

दितेःपुत्राः कथं जाता मरुतो देवबल्लभाः । देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्सख्यमनुत्तमम् ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु हरिणा सुरैः। पुत्रपौत्रेषु शोकार्ता गता भूलोकमुत्तमम् ॥२॥
पुष्करेषु महातीर्थे सरस्वत्यास्तटे शुभे। भर्तुराराधनपरा तप उग्रं चचार ह॥३॥
दितिर्वै दैत्यमाता तु ऋषिकार्येण सुव्रता। फलाहारा तपस्तेपे कृच्छ्रचांद्रायणादिभिः ॥४॥
यावद्वर्षशतं साग्रं जराशोकसमाकुला। ततः सा तपसा तप्ता वसिष्ठादीनपृछत ॥५॥
कथयंतु भवन्तो मे पुत्रशोकविनाशनम् । व्रतं सौभाग्यफलदमिहलोके परत्र च ॥६॥
ऊचु र्वसिष्ठप्रमुखा ज्येष्ठस्य पूर्णिमाव्रतम्। यस्य प्रसादादभवत्सुतशोकविवर्जिता ॥७॥

भीष्म उवाच

श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन् ज्येष्ठस्य पूर्णिमाव्रतम्। सुतानेकोपंचाशद्येन लेभे पुनर्दितिः ॥८॥

पुलस्त्य उवाच

यद्वसिष्ठादिभिः पूर्वं दित्यै संकथितं व्रतम् । विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निशामय ॥९॥
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां यतव्रता। स्थापयेदव्रणं कुंभं सिततण्डुलपूरितम्॥१०॥
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदंडसमन्वितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचंदनचर्चितम्॥११॥
नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं तु शक्तितः । ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरिनिवेशयेत् ॥१२॥

ज्येष्ठपूर्णिमाव्रत, मरुद्गणों की उत्पत्ति, विभिन्न समुदाय के राजाओं तथा मन्वन्तरों का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— दिति के पुत्र मरुद्गण देवताओं के प्रिय कैसे हो गये। दैत्यों के शत्रु देवता उनके श्रेष्ठ मित्र कैसे हो गये ?॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** प्राचीनकाल में देवासुर संग्राम में इन्द्र तथा देवताओं के द्वारा अपने पुत्रों तथा पौत्रों के मार दिए जाने पर दिति शोकार्त हो गयी और वह भूलोक के महातीर्थ पुष्कर में सरस्वती नदी के तट पर चली गयी। अपने पति की आराधना करने वाली दिति उग्र तपस्या करने लगी ॥३॥ सुव्रता दैत्यों की माता दिति ऋषि के कार्य से फलाहार करती हुयी, कृच्छ्र चान्द्रायण इत्यादि का अनुष्ठान करती हुयी तथा जरा एवं शोक से व्याकुल बनी हुयी सौ से अधिक वर्षों तक तपस्या की। उसके बाद तपस्या से सन्तप्त वह वसिष्ठ आदि महर्षियों से पूछी ॥४-५॥ आपलोग मुझे उस व्रत को बतलाइये जो इस लोक में तथा परलोक में सौभाग्य देने वाला तथा पुत्रशोक को विनष्ट करने वाला हो ॥६॥ उसके बाद वसिष्ठ आदि महर्षियों ने ज्येष्ठ की पूर्णिमा का व्रत बतलाया। उसकी ही कृपा से दिति पुत्रशोक से रहित हो गयी ॥७॥ **भीष्मजी ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! मैं ज्येष्ठ की पूर्णिमा के व्रत को जानना चाहता हूँ; जिसके फलस्वरूप दिति ने उनचास पुत्रों को प्राप्त किया ॥८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** प्राचीन काल में वसिष्ठ आदि ने जिस व्रत को दिति को बतलाया उसे मैं तुम्हें विस्तार के साथ बतलाता हूँ सुनो ॥९॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को नियम पूर्वक उजले चावल से भरे हुए व्रणरहित कलश की स्थापना करे॥१०॥ उस कलश को अनेक प्रकार के फलों से युक्त तथा ईख दण्ड से युक्त होना चाहिए। उसे दो उजले वस्त्रों से ढँका हुआ तथा उजले चन्दन से लिप्त होना चाहिए ॥११॥ अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से तथा अपनी

तस्मादुपरि ब्रह्माणं सौवर्णं पद्मकोटरे । कुर्यात् शर्करयोपेतां सावित्रीं तस्य वामतः ॥१३॥
गंधं धूपं तयोर्दद्याद्गीतं वाद्यं च कारयेत् । तदभावे कथंकुर्याद्यथा पद्मे पितामहः ॥१४॥
ब्रह्माह्वयां च प्रतिमां कृत्वा गुडमयीं शुभाम् । शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेत्पद्मसंभवम् ॥१५॥
ब्राह्माय पादौ संपूज्य जंघे सौभाग्यदाय च। विरिंचायोरुयुग्मं च मन्मथायेति वै कटिम् ॥१६॥
स्वच्छोदरायेत्युदरत्युदरमतंद्रायेत्युरो विधेः । मुखं पद्ममुखायेति बाहू वै वेदपाणये ॥१७॥
नमः सर्वात्मने मौलिमर्च्चयेच्चापि पंकजम् । ततः प्रभाते तत्कुंभं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१८॥
ब्राह्मणं भोजयेद्भक्त्या स्वयं तु लवणं विना । भक्त्या प्रदक्षिणं दद्यादिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥१९॥
प्रीयतामत्रभगवान्सर्वलोकपितामहः । हृदये सर्वलोकानां यस्त्वानंदोभिधीयते ॥२०॥
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् । उपवासी पौर्णमास्यामर्चयेद्ब्राह्ममव्ययम् ॥२१॥
फलमेकं च संप्राश्यशर्वर्यां भूतले स्वपेत् । ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् ॥२२॥
शय्यां दद्याद्विरिंचाय सर्वोपस्करसंयुताम् । ब्रह्माणं कांचनं कृत्वा सावित्रीं रजतैस्तथा ॥२३॥
पद्मात्मकः सृष्टिकर्त्ता सावित्रीमुपलभ्य तु । वस्त्रैर्द्विजं सपत्नीकं पूज्यभक्त्या विभूषणैः ॥२४॥
शक्त्या गवादिकं दद्यात्प्रीयतामित्युदीरयेत् । होमं शुक्लैस्तिलैःकुर्याद्ब्रह्मनामानि कीर्तयेत् ॥२५॥
गव्येन सर्पिषा तद्वत्पायसेन च धर्मवित् । विप्रेभ्योऽथ धनं दद्यात्पुष्पमालां च शक्तितः ॥२६॥

शक्ति के अनुसार सुवर्ण से युक्त तथा गुड से युक्त ताम्र पात्र को उसके ऊपर रखे ॥१२॥ उसके ऊपर कमल के बीच में ब्रह्माजी की सुवर्ण की मूर्ति स्थापित करे और उस मूर्ति की बायीं ओर शर्करा निर्मित सावित्री देवी की मूर्ति स्थापित करे ॥१३॥ फिर उन दोनों को धूप तथा दीप समर्पित करके, गीत तथा वाद्य कराये । उसके (सुवर्ण के) अभाव में कमल पर ब्रह्माजी की कैसे स्थापना करे ?॥१४॥ इसके उत्तर में महर्षि ने कहा सुवर्ण के अभाव में ब्रह्माजी की गुड की प्रतिमा बनाये और उसकी पूजा उजले पुष्प तथा उजले अक्षत एवं तिल (उजले) से करे । ब्राह्माय नमः इस मंत्र से उनके चरणों की पूजा करे, सौभाग्यदाय नमः इस मंत्र से जंघों की पूजा करे, विरिंचाय नमः इस मंत्र से उनके दोनों ऊरुओं की पूजा करे । मन्मथाय नमः इस मंत्र से ब्रह्माजी की कटि की पूजा करे ॥१६॥ स्वच्छोदराय नमः इस मन्त्र से उदर की पूजा करे, अतन्द्राय नमः इस मन्त्र से उनके ऊरू भाग की पूजा करे । पद्ममुखाय नमः इस मन्त्र से मुख की पूजा करे । वेदपाणये नमः इस मन्त्र से दोनो बाहुओं की पूजा करे ॥१७॥ सर्वात्मने नमः इस मन्त्र से शिर तथा कमल की पूजा करे । उसके बाद सबेरा होने पर उस कलश को ब्राह्मण को दान कर दे ॥१८॥ उसके बाद भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को भोजन कराये, किन्तु स्वयं नमक रहित भोजन करे भक्ति पूर्वक **प्रीयताम इत्यादि** मन्त्र का उच्चारण करे ॥१९॥ जो सभी जीवों के हृदय में विद्यमान रहकर आनन्द शब्द से अभिहित किए जाते हैं वे भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्न हों कहकर प्रार्थना करे ॥२०॥ इसी प्रकार उसे सभी महिनों में पूजन करना चाहिए और पूर्णिमा के दिन उपवास करना चाहिए और ब्रह्माजी की पूजा करनी चाहिए ॥२१॥ उस दिन एक फल खाकर रात्रि में भूमि पर सोए, उसके बाद तेरहवें महीने में घृत एवं धेनु से युक्त ॥२२॥ ब्रह्माजी के लिए सभी सामग्री से युक्त शय्यादान करे । सुवर्ण की ब्रह्माजी की मूर्ति तथा चाँदी की सावित्री देवी की मूर्ति, कमलात्मक ब्रह्मा तथा सावित्री को स्पर्श करके पत्नी के साथ ब्राह्मण की वस्त्रों तथा भूषणों से पूजा करके ॥२३-२४॥ अपनी शक्ति के अनुसार गौ आदि का दान करके अन्त में कहे प्रीयताम् । फिर उजले तिल, गोघृत तथा पायस (खीर) से होम करके ब्रह्माजी के नामों का उच्चारण करे । फिर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को धन तथा पुष्पमाला प्रदान

यःकुर्याद्विधिनानेन पौर्णमास्यां स्त्रियोपि वा । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति ब्रह्मसाम्यताम् ॥२७॥
इह लोके वरान्पुत्रान्सौभाग्यं ध्रुवमश्नुते । यो ब्रह्मा स स्मृतो विष्णुरानंदात्मा महेश्वरः ॥२८॥
सुखार्थी कामरूपेण स्मरेद्देवं पितामहम् । एवं श्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः ॥२९॥
कश्यपो व्रतमाहात्म्यादागत्य परया मुदा । चकार कर्कशां भूयो रूपलावण्यसंयुताम्॥३०॥
वरैराछंदयामास सा तु वव्रे वरंवरम्। पुत्रं शक्रवधार्थाय समर्थं च महौजसम् ॥३१॥
वरयामि महात्मानं सर्वामरनिषूदनम् । उवाच कश्यपो वाक्यमिंद्रहंतारमूर्जितम् ॥३२॥
प्रदास्याम्यहमेतेन किन्त्वेतत् क्रियतां शुभे। आपस्तवीं तु कृत्वेष्टिं पुत्रीयाद्यसुस्तानि ॥३३॥
विधास्यामि ततो गर्भं स्पृष्ट्वाहंस्तनौ शुभे। भविष्यति शुभो गर्भो देवि शक्रनिषूदनः॥३४॥
आपस्तवीं ततश्चक्रे पुत्रेष्टिं द्रविणाधिकाम्। इंद्रशत्रो भवस्वेति जुहाव च हविस्त्वरन् ॥३५॥
देवाश्च मुमुर्हुर्दैत्या विमुखाश्चैव दानवाः । दित्यां गर्भमथाधत्त कश्यपः प्राह तां पुनः ॥३६॥
मुखं ते चंद्रप्रतिमं स्तनौ बिल्वफलोपमौ । अधरौ विद्रुमाकारौ वर्णश्चातीव शोभनः ॥३७॥
त्वां दृष्ट्वाहं विशालाक्षि विस्मरामि स्विकां तनुम्। तदेवं गर्भःसुश्रोणि हस्तेनोप्तस्तनौ तव ॥३८॥
त्वया यत्नो विधातव्यो ह्यस्मिन्गर्भे वरानने । संवत्सरशतंत्वेकमस्मिन्नेव तपोवने ॥३९॥
संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि। न स्थातव्यं न गंतव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥४०॥
नोपस्करेषु निविशेन्मुसलोलूखलादिषु । जलं च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत्॥४१॥

करे ॥२५-२६॥ जो कोई पुरुष अथवा स्त्री इस विधि से पौर्णमासीव्रत को करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्माजी के समान हो जाता है ॥२७॥ वह इस लोक में श्रेष्ठ पुत्रों तथा सौभाग्य को निश्चित रूप से प्राप्त करता है। ब्रह्मा, विष्णु तथा आनन्द स्वरूप महेश्वर इन तीनों में अभेद बतलाया गया है ॥२८॥ सुख चाहने वाला व्यक्ति ब्रह्माजी का स्मरण काम रूप से करे । इस तरह से सुनकर दिति ने पौर्णमासी व्रत की सारी विधियों को सम्पन्न किया॥२९॥ व्रत की महिमा के कारण कश्यप महर्षि अत्यधिक प्रसन्नता पूर्वक, व्रत करने के कारण कर्कश बनी हुयी दिति को रूप तथा लावण्य से सम्पन्न बना दिए ॥३०॥ उन्होंने दिति से वरदान माँगने के लिए कहा तो उसने इन्द्र का वध करने के लिए समर्थ तथा ओजस्वी पुत्र का वरदान माँगा ॥३१॥ **दिति ने कहा—** हे महात्मन् ! मैं सभी देवताओं को मारने वाले पुत्र को प्राप्त करना चाहती हूँ। महर्षि कश्यप ने कहा मैं तुम्हें इन्द्र को मारने वाले पुत्र को प्रदान करूँगा, किन्तु तुम्हें भी इन सब कार्यों को करना होगा । हे सुन्दरि ! आज पुत्र प्रदान करने वाली आपस्तवी इष्टि को करके ॥३३॥ तुम्हारे स्तनों का स्पर्श करके मैं तुम्हारे गर्भ का आधान करूँगा । हे देवि ! वह गर्भ इन्द्र को मारने वाला होगा ॥३४॥ उसके बाद महर्षि कश्यप ने अधिक धन से पूरा होने वाली आपस्तवी इष्टि को किया। उन्होंने तुम इन्द्र को मारने वाला होओ, इस मन्त्र से हविष्य का होम किया ॥३५॥ उससे दैत्यो के विरोधी देवता मूर्छित हो गये । इसके बाद कश्यप महर्षि ने दिति के गर्भ का आधान किया । उन्होंने कहा ॥३६॥ तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान है तथा तुम्हारे स्तन विल्वफल के समान हैं । तुम्हारे ओठ मूंगे के समान लाल हैं और तुम्हारा वर्ण अत्यन्त मनोहर है ॥३७॥ हे देवि ! तुमको देखकर तो मैं अपने शरीर को भी भूल जाता हूँ । हे सुन्दरी ! तुम्हारे शरीर में मैंने हाथ से स्पर्श करके गर्भ का आधान कर दिया है ॥३८॥ हे वरानने ! इस गर्भ के विषय में तुम्हें सावधानी करनी होगी । इसी तपोवन में सौ वर्षों तक तुम्हे रहना होगा ॥३९॥ गर्भिणी को संध्या के समय भोजन नहीं करना चाहिए । वृक्ष की जड़ में न तो रुकना चाहिये और न वहाँ जाना चाहिए ॥४०॥ उसे मूसल अथवा

वल्मीकेषु न तिष्ठेत न चोद्विग्नमना भवेत् । न नखेन लिखेद्भूमौ नांगारे न च भस्मनि ॥४२॥
न शयालुःसदा तिष्ठेद्व्यायामं च विवर्जयेत् । न तुषांगारभस्मास्थिकपालेषु समाविशेत् ॥४३॥
वर्जयेत्कलहं लोके गात्राभ्यंगं तथैव च । न मुक्तकेशी तिष्ठेत नाशुचिः स्यात्कथंचन ॥४४॥
न शयोतोत्तरशिराः च चैवाधःशिराः क्वचित् । न वस्त्रहीना नोद्विग्ना न चार्द्रचरणा सती ॥४५॥
नामंगल्यां वदेद्वाचं न च हास्याधिकाभवेत् । कुर्याच्च गुरुभिर्नित्यं पूजां मांगल्यतत्परा ॥४६॥
सर्वौषधीभिः सृष्टेन वारिणा स्नानमाचरेत् । कृतरक्षा तु शुश्रूषा वाचा पूजनतत्परा ॥४७॥
तिष्ठेत्प्रसन्नवदना भर्तृप्रियहिते रता । न गर्हयेच्चभर्तारं सर्वावस्थमपि क्वचित् ॥४८॥
कृशाहं दुर्बला चैव वार्द्धक्यं मम च गतम् । स्तनौ मे चलितौ स्थानान्मुखं च वलिभंगुरम् ॥४९॥
एवंविधा त्वया चाहंकृतेति न वदेत्क्वचित् । स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया पुनः ॥५०॥
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवांतरधीयत । ततः सा भर्तृवाचोक्तविधिना समतिष्ठत ॥५१॥
अथ ज्ञात्वा तथेंद्रोपि दितेःपार्श्वमुपागतः । विहाय देवसदनं तां शुश्रुषुरवस्थितः ॥५२॥
दितेश्छिद्रांतरप्रेप्सुरभवत्पाकशासनः । विपरीतांतरव्यग्रः प्रसन्नवदनो बहिः ॥५३॥
अजानन्निव तत्कार्यमात्मनश्शुभमाचरन् । ततो वर्षशतांते सा न्यूने तु दिवसैस्त्रिभिः ॥५४॥
मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा । अकृत्वा पादयोः शौचं शयाना मुक्तमूर्धजा ॥५५॥

ओखली आदि के ऊपर नहीं बैठना चाहिए । गर्भिणी जल के भीतर प्रवेश न करे और न कभी अकेले घर में रहे॥४१॥ उसको कभी भी बल्मीकों पर नहीं खड़ा होना चाहिए और न तो कभी उद्विग्न मन वाली होना चाहिए । उसे पृथिवी पर या आग के अङ्गारे पर या राख पर नख से नहीं लिखना चाहिए ॥४२॥ हमेशा सोते नहीं रहना चाहिए और न व्यायाम करना चाहिए । उसे भूसी की आग, भस्म, हड्डी तथा खोपड़ी पर नहीं बैठना चाहिए ॥४३॥ वह किसी से कभी झगड़ा न करे तथा अपने शरीर की मालिश भी न कराये । वह कभी बालों को खोलकर न रखे और कभी भी अपवित्र न रहे ॥४४॥ गर्भिणी कभी भी उत्तर दिशा में अथवा नीचे की ओर शिर करके न सोये । वह कभी नंगी न रहे, उद्विग्न (उदास) न होए और अपने पैरों को गीला न रखे ॥४५॥ कभी भी वह अमङ्गलमय बातों को न करे और न अधिक हँसे । अपने मङ्गल को चाहने वाली उसे गुरुजनों की पूजा करनी चाहिए ॥४६॥ सर्वौषधि मिश्रित जल से गर्भिणी स्नान करे । वह रक्षा, सुश्रुषा तथा वाणी द्वारा पूजन करती रहे ॥४७॥ पति का कल्याण चाहने वाली वह सदा प्रसन्न रहे । वह कभी भी किसी भी अवस्था में अपने पति की निन्दा न करे ॥४८॥ वह कभी भी अपने पति से यह न कहे कि तुमने मुझे दुबली-पतली बना दिया । मेरी बुढापा आ गयी, मेरे स्तन ढीले हो गये और मेरे मुख पर झूरियाँ आ गयीं । यह कहकर कश्यप महर्षि ने कहा— तुम्हारा कल्याण हो अब मैं जाऊँगा । यह कहकर महर्षि चले गये ॥४९-५०॥ वे सबों को देखते ही देखते वहाँ से अन्तर्धान हो गये । उसके बाद दिति महर्षि के द्वारा उपदिष्ट प्रकार से रहने लगी ॥५१॥ उसके बाद इन सारी बातों को जानकर इन्द्र भी दिति के पास आये । वे अपने देवगृह को छोड़कर तपोवन में रहकर दिति की सेवा करने लगे । वे हमेशा देखते रहते थे कि दिति से नियम-पालन में कोई गल्ती हो । इन्द्र ऊपर से तो प्रसन्न रहते थे; किन्तु वे भीतर से व्याकुल थे ॥५३॥ वे ऐसे रहते थे जैसे वे इस कार्य को जानते ही न हों और अपना कल्याण करते थे । उसके बाद सौ वर्ष पूरा होने में तीन दिन कम थे । दिति को लगता था कि मैं अब कृत-कृत्य हो गयी और आनन्दातिरेक के कारण वह अपने को भी भूल गयी । वह अपने पैरों को शुद्ध किये बिना ही बालों को खोलकर लेट गयी ॥५४-५५॥ दिन में दूसरी ओर

निद्राभरसमाक्रांता दिवा परशिराःक्वचित् । ततस्तदंतरं लब्ध्वा प्रविश्यांतःशचीपतिः ॥५६॥
वज्रेण सप्तधा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः । ततः सप्त च ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥५७॥
रुदंतस्सप्त ते बाला निषिद्धा दानवारिणा । भूयोपि रुदमानांस्तानेकैकान्सप्तधा हरिः ॥५८॥
चिच्छेद वज्रहस्तो वै पुनस्तूदरसंस्थितान् । एवमेकोनपंचाशद्भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम् ॥५९॥
इंद्रो निवारयामास मारुदध्वं पुनःपुनः । ततः स चिंतयामास वितर्कमिति वृत्रहा ॥६०॥
कर्मणः कस्य माहात्म्यात्पुनः संजीवितास्त्वमी । विदित्वा पुण्ययोगेन पौर्णमासीफलंत्विदम् ॥६१॥
नूनमेतत्परिणतमथवा ब्रह्मपूजनात् । वज्रेणाभिहताःसंतो न विनाशमुपाययुः ॥६२॥
एकोप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोपनम् । अवध्या नूनमेते वै तस्माद्देवा भवंत्विति ॥६३॥
यस्मान्मारुद इत्युक्ता रुदंतो गर्भसंभवाः । मरुतो नाम ते नाम्ना भवंतु सुखभागिनः ॥६४॥
ततः प्रसाद्यदेवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः । अर्थशास्त्रं समास्थायमयैतद्दुष्कृतं कृतम् ॥६५॥
कृत्वा मरुद्गणंदेवैः समानममराधिपः । दितिं विमानमारोप्य ससुतामगमद्दिवम् ॥६६॥
यज्ञभागभुजः सर्वे मरुतस्ते ततो भवन् । न जग्मुरैक्यमसुरैरतस्ते सुरवल्लभाः ॥६७॥

भीष्म उवाच

आदिसर्गस्त्वया ब्रह्मन्कथितो विस्तरेण मे । प्रतिसर्गश्च यो येषामधिपांस्तान्वदस्व मे ॥६८॥

पुलस्त्य उवाच

यदाभिषिक्तः सकलेपि राज्ये, पृथुर्द्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तथौषधीनाधिपं चकार, यज्ञव्रतानां तपसा च सोमम् ॥६९॥

शिर करके सो गयी । इसके बाद उस कमी को देखकर इन्द्र दिति के उदर में प्रवेश कर गये ॥५६॥ उन्होंने वज्र से उस गर्भ को सात टुकड़ों में काट दिया । उसके कारण वे सूर्य के समान देदीप्यमान सात बालक हो गये ॥५७॥ वे सभी बालक रोने लगे तो इन्द्र ने कहा मत रोओ, फिर भी वे रोते रहे तो इन्द्र ने फिर सातों के सात-सात टुकड़े कर दिए । इसतरह से वे सभी उनचास होकर अत्यधिक रोने लगे ॥५८-५९॥ इन्द्र ने उन सबों को बार-बार रोका कि मत रोओ, फिर भी वे रोते रहे । इन्द्र ने सोचा ॥६०॥ किस कर्म के कारण ये फिर भी जीवित हैं ? और इन्द्र ने जाना कि यह पूर्णमासीव्रत का फल है । उसी के पुण्य से ये जीवित हैं ॥६१॥ अथवा ब्रह्माजी की पूजा करने के कारण जीवित हैं । मैंने इन सबों को वज्र से मारा फिर भी ये मरे नहीं ॥६२॥ चूकि यह एक ही गर्भ अनेक हो गये हैं, अतएव ये अवध्य हैं । अतएव ये देवता ! हो जायँ ॥६३॥ इन सभी रोने वाले बालकों को इन्द्र ने **मारुद कहा**— अतएव इन सबों का नाम मारुत हो जाय और ये सुख भोगें ॥६४॥ उसके बाद इन्द्र ने दिति को स्तुति से प्रसन्न करके कहा कि क्षमा करो । मैंने अर्थशास्त्र को अपना कर इस पाप को किया है ॥६५॥ इसके बाद इन्द्र ने मरुद्गण को देवताओं के समान बना दिया और उन सबों के साथ दिति को विमान पर बैठाकर स्वर्गलोक में आ गये ॥६६॥ उसी समय से मरुद्गण यज्ञभाग के भोक्ता बन गये । वे असुरों के साथ मिले नहीं इसलिए वे देवताओं के प्रिय हैं ॥६७॥ **भीष्मजी ने कहा**— हे ब्रह्मन् ! आपने मुझे आदि सर्ग को बतलाया अब आप जिन राजाओं का प्रतिसर्ग है उसे मुझे बतलाएँ ॥६८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा** जब महाराज पृथु का राज्याभिषेक हुआ तब वे पृथिवी के सम्पूर्ण राज्यों के स्वामी हो गये । उसी समय ब्रह्माजी ने सोम (चन्द्रमा) को सभी औषधियों, यज्ञों, व्रतों तथा तपस्याओं का स्वामी बना दिया ॥६९॥ नक्षत्र, तारे, द्विज, वृक्ष, गुल्म तथा लताओं के स्वामी हिरण्यगर्भ को

नक्षत्रताराद्विजवृक्षगुल्म लतावितानस्य च रुक्मगर्भम् ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुर्वै श्रवणं च तद्वत् ॥७०॥
विष्णुं रवीणामधिपं वसूना मग्निं च लोकाधिपतिं चकार ।
प्रजापतीनाधिपं च दक्षं चकार शक्रं मरुतामधीशम् ॥७१॥
दैत्याधिपानामथदानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितॄणाम् ।
पिशाचरक्षः पशुभूतयक्ष वेतालराजं ह्यथशूलपाणिम् ॥७२॥
प्रालेयशैलं च पतिं गिरीणा मीशं समुद्रं सरितामधीशम् ।
गंधर्वविद्याधरकिन्नराणा मीशं पुनश्चित्ररथं चकार ॥७३॥
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिग्वारणानामधिपं चकार गजेंद्रमैरावणनामधेयम् ॥७४॥
सुपर्णमीशं पततामथार्वतां राजानमुच्चैःश्रवसं चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम् ॥७५॥
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिंच देतन्पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेशदिक्पालमथाभ्यषिंचत् नाम्ना सुपर्वाणमरगतिकेतुम् ॥७६॥
ततोधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शंखपदाभिधानम् ।
सकेतुमंतं दिगधीशमीशं चकार पश्चाद्भुवनांडगर्भः ॥७७॥
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिं मेघसुतं चकार ।
अद्यापि कुर्वन्तिदिशामधीशाः सदावहंतस्तु भुवोभिरक्षाम् ॥७८॥
चतुर्भिरेतैःपृथुनामधेयो नृपोभिषिक्तः प्रथमः पृथिव्याम् ।
गतेंतरे चाक्षुषनामधेये वैवस्तंचक्रुरिमं पृथिव्याम् ॥७९॥

बनाया । जल का स्वामी वरुण को तथा धन का स्वामी कुबेर को बनाया ॥७०॥ विष्णु को आदित्यों का स्वामी बनाया और अग्नि को वसुओं का स्वामी बनाया । ब्रह्माजी ने प्रजापतियों का स्वामी दक्ष को, और देवताओं का स्वामी इन्द्र को बनाया ॥७१॥ उन्होंने दानवों तथा दैत्याधिपों का स्वामी प्रह्लाद को और पितरों का स्वामी यम को बनाया । पिशाचों, राक्षसों, पशुओं, भूतों, यक्षों तथा बेतालों का स्वामी शङ्करजी को बनाया ॥७२॥ उन्होंने पर्वतों का स्वामी हिमालय को और नदियों का स्वामी समुद्र को बनाया । उन्होंने गन्धर्व, विद्याधर तथा किन्नरों का स्वामी चित्ररथ को बनाया ॥७३॥ नागों का स्वामी महापराक्रमी वासुकि को बनाया और सर्पो का स्वामी तक्षक को बनाया । उन्होंने दिग्गजों का स्वामी ऐरावण नामक गजेन्द्र को बनाया ॥७४॥ उन्होंने पक्षियों का स्वामी सुपर्ण (गरुड) को बनाया तथा अश्वों का स्वामी उच्चैःश्रवा को बनाया । मृगों का स्वामी सिंह को, गौओं का स्वामी सांड को तथा समस्त वनस्पतियों का स्वामी प्लक्ष (पाकड़) को बनाया ॥७५॥ ब्रह्माजी ने पहले इन सबों को राजपद पर अभिषिक्त किया इसके बाद उन्होंने सभी दिशाओं के स्वामियों को नियुक्त किया । उन्होंने पूर्व दिशा का दिक्पाल सुवर्मा नामक अरातिकेतु को बनाया ॥७६॥ उसके बाद उन्होंने दक्षिण दिशा के स्वामी शंख को बनाया । इसके बाद उन्होंने पश्चिम दिशा का स्वामी शङ्करजी को बनाया ॥७७॥ ब्रह्माजी ने उत्तर दिशा का अधीश अपने प्रजापति पुत्र को बनाया ये दिशाओं के स्वामी आज भी सदा पृथिवी की रक्षा करते हैं ॥७८॥ इन चारों के द्वारा सर्वप्रथम पृथिवी पर पृथु नामक

गतेंतरेचाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनःप्रवृते ।
प्रजापतिः सोस्यचराचरस्य बभूव सूर्यान्वयजःसचिह्नः ॥८०॥

पुलस्त्य उवाच

मन्वंतराणि सर्वाणि मनूनां चरितानि यत्। प्रमाणं चैव कल्पस्य तत्सृष्टिं च समासतः ॥८१॥
एकचित्तः प्रसन्नात्मा शृणु कौरवनंदन। यामा नाम पुरा देवा आसन्स्वायंभुवांतरे ॥८२॥
सप्तैव ऋषयः पूर्वं ये मरीच्यादयः स्मृताः। आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च विभुः सवन एव च ॥८३॥
ज्योतिष्मान् द्युतिमान्भव्यो मेधा मेधातिथिर्वसुः । स्वायंभुवस्यास्य मनोर्दशैते वंशवर्द्धनाः ॥८४॥
प्रतिसर्गममीकृत्वा जग्मुस्ते परमंपदम्। एवं स्वायंभुवं प्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम् ॥८५॥
स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः । नभोसृभस्यप्रसृतिर्भावनः कीर्तिवर्द्धनः ॥८६॥
दत्तोत्रिश्च्यवनस्तंभः प्राणः कश्यप एव च । अर्वा बृहस्पतिश्चैव सप्तसप्तर्षयोभवन्॥८७॥
तदादेवाश्च तुषिताः स्मृताः स्वारोचिषेंतरे । हवींद्रः सुकृतो मूर्तिरापोज्योतिरथः स्मृतः॥८८॥
वसिष्ठस्य सुताः पञ्च ये प्रजापतयस्तदा । द्वितीयमेतत्कथितं मन्वंतरमतःपरम् ॥८९॥
अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि तथा मन्वंतरं शुभम्। मनुर्नामौत्तमिस्तत्र दशपुत्रानजीजनत् ॥९०॥
इषं ऊर्जस्तनूजश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च । मधुश्च माधवश्चैव नभस्यतोथ नभस्तथा ॥९१॥
सहः सहस्य एतेषामुत्तमःकीर्तिवर्द्धनः । भावनस्तत्र देवाः स्युरूर्जाः सप्तर्षयः स्मृताः ॥९२॥
कौकभिण्डिः कुतुण्डश्च दाल्भ्यः शंख प्रवाहितः । मितिश्च संमितिश्चैव सप्तैते योगवर्द्धनाः ॥९३॥
मन्वंतरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतं। कविःपृथुस्तथैवाग्निरकपिः कविरेव च ॥९४॥

राजा का अभिषेक किया गया । चाक्षुष मन्वन्तर के वीत जाने पर वैवस्त मनु को इन सवों ने पृथिवी का राजा वनाया॥७९॥ जव चाक्षुष मन्वन्तर वीतकर वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ तो सूर्य वंश में उत्पन्न होने वाले अपने चिह्न के साथ सम्पूर्ण जगत् के स्वामी प्रजापति हुए ॥८०॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— हे कौरव नंदन सभी मन्वन्तरों, मनुओं के चरित, कल्प का प्रमाण और उस कल्प की सृष्टि को प्रसंन्नता पूर्वक एकाग्रचित्त होकर संक्षेप में सुनो । पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर में याम नामक देवता थे ॥८१-८३॥ उस मन्वन्तर के मरीचि आदि सप्तर्षि थे । स्वायम्भुव मनु के दश पुत्र थे आग्नीध्र, अग्निवाहु, विभु, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य, मेधा, मेधातिथि तथा वसु ॥८३-८४॥ ये सव प्रतिसर्ग (प्रलय) हो जाने पर परंपद चले गये । इसतरह मैंने स्वायम्भुव मन्वन्तर का वर्णन किया । अव इसके वाद स्वारोचिष् मन्वन्तर हुआ ॥८५॥ स्वारोचिष् मनु के देवता के समान कान्ति वाले चार पुत्र हुए । नभ, नभस्य, प्रसृति और भावन । ये स्वारोचिष् मनु की कीर्ति को वढाने वाले थे ॥८६॥ दत्तात्रेय, अत्रि, च्यवन, स्तम्व, प्राण, कश्यप और वृहस्पति ये स्वारोचिष् मन्वन्तर के सप्तर्षि हुए ॥८७॥ स्वारोचिष् मन्वन्तर में तुषित नामक देवताओं का गण था । हवीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप तथा ज्योतिरथ ये वसिष्ठ के पाँच पुत्र ही इस मन्वन्तर के प्रजापति थे । यह मैंने द्वितीय मन्वन्तर का वर्णन किया इसके वाद ॥८९॥ मैं तीसरे मन्वन्तर का वर्णन करूँगा । इस मन्वन्तर के मनु औतमि हुए उनके दश पुत्र हुए ॥९०॥ ईष, ऊर्ज, तनूज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नमस्य, नभ एवं सह । इनसवों में सहस्य सवसे छोटा थे । उस मन्वन्तर में भानुसंज्ञक देवता थे और ऊर्ज संज्ञक सप्तर्षि थे ॥९१-९२॥ कौकिभिण्डि, कुतुण्ड, दाल्भ्य, शंख प्रवाहित, मित एवं सम्मित, ये सात योगवर्द्धन सप्तर्षि थे ॥९३॥ चौथा मन्वन्तर तामस मन्वन्तर के नाम से प्रख्यात है । इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम थे

तथैव जन्यधामानौ मुनयःसप्तनामतः। साध्या देवगणा ये च कीर्तिस्तामसेंतरे ॥९५॥
अकल्मषस्तपोधन्वी तपोमूलस्तपोधनः। तपोराशिस्तपस्यश्च सुतपस्यः परंतपः॥९६॥
तामसस्य सुताः सर्वे दश वंशविवर्द्धनाः। पंचमस्य मनोस्तद्वद्रैवतस्यांतरं शृणु ॥९७॥
देवबाहुः सुबाहुश्च पर्ज्यन्यः सोमपो मुनिः। हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैतेऋषयः स्मृताः ॥९८॥
देवाश्चभूतरजसस्तथा प्रकृतयः स्मृताः। अवशस्तत्वदर्शी च वीतिमान्हव्यपः कपिः ॥९९॥
मुक्तोनिरुत्सुकः सत्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः। धर्मवीर्यबलोपेतो दशैते रेवतात्मजाः ॥१००॥
भृगुः सुधामा विरजः सहिष्णुर्नारदस्तथा। विवस्वान्कृतिनामा च सप्त सप्तर्षयोपरे॥१०१॥
चाक्षुषस्यांतरे देवालेखानामपरिश्रुताः। विभवोऽथपृथक्चानुकीर्तितास्त्रिदिवौकसः ॥१०२॥
चाक्षुषस्यांतरे प्राप्ते देवानां पंचमो जनः। रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ॥१०३॥
प्रोक्ताः स्वायंभुवे वंशे ये मयापूर्वमेव ते। अन्तरंचाक्षुषं चैव मया ते परिकीर्तितम्॥१०४॥
सप्तमं च प्रवक्ष्यामि यद्वैवस्वतमुच्यते। अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा ॥१०५॥
भारद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान्। जमदग्निश्च सप्तैते सांप्रतं ते महर्षयः॥१०६॥
कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्। सावर्ण्यस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भावि तथांतरम् ॥१०७॥
अश्वत्थामा शरद्वांश्च कौशिको गालवस्तथा। शतानंदः काश्यपश्च रामश्च ऋषयस्मृताः ॥१०८॥
धृतिर्वरीयान्यवसुः सुवर्णो धृतिरेव च। वरिष्णुवीर्यः सुमतिर्वसुश्शुक्रश्च वीर्यवान्॥१०९॥
भविष्यस्यार्कसावर्णेर्मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः। रौच्यादयस्तथान्येपि मनवःसंप्रकर्तिताः ॥११०॥
रुचेः प्रजापतेः पुत्रौ रौच्यो नाम भविष्यति। मनुर्भूतिसुतस्तद्वद्भौत्यो नाम भविष्यति ॥१११॥

कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जन्य तथा धामा। तामस मन्वन्तर में साध्य गण नामक देवता थे ॥९४-९५॥ तामस के वंश को बढाने वाले उनके दश पुत्र हुए अकल्मष, तपोधन्वा, तपोमूल, तपोधन, तपोराशि, तपस्य, सुतपस्य, परन्तप, तपोभागी और तपोयोगी। अब तुम पाञ्चवें रैवत मन्वन्तर को सुनो ॥९६-९७॥ इस मन्वन्तर के सप्रर्षियों के नाम हैं, देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप मुनि, हिरण्यरोमा तथा सप्ताश्व ॥९८॥ इस मन्वन्तर के देवता भूत रजस तथा प्रकृत नाम वाले थे। रेवत मनु के दश पुत्र थे वरुण, तत्त्वदर्शी, चितिमान, हव्यप, कवि, मुक्त, निरुक्त, सत्व, विमोह एवं प्रकाशक। ये सभी धर्म, पराक्रम और बल से युक्त थे ॥९९-१००॥ उसके पश्चात् चाक्षुष मन्वन्तर में भृगु, सुधामा, विरज, सहिष्णु, नारद, विवस्वान तथा कृति ये सात सप्तर्षि हुए ॥१०१॥ इस मन्वन्तर में लेखा नामक देवता प्रख्यात हुए। इन सबों से अहितिवत्त ऋभु, पृथाग्भूत, वारिमूल तथा दिवौका नामक देवता थे। चाक्षुष् मन्वन्तर में ये देवताओं की पाँच योनियाँ थी। उसी तरह इस मनु के रुरु इत्यादि दश पुत्र हुए ॥१०३॥ जिन सबों का वर्णन मैं स्वायम्भुव वंश के वर्णन में कर चुका हूँ। इस तरह से मैंने चाक्षुष मन्वन्तर का वर्णन किया॥१०४॥ अब मैं सातवें वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन करूँगा। इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भारद्वाज, प्रतापीयोगी विश्वामित्र तथा जमदग्नि। ये ही इस समय सप्तर्षि हैं ॥१०५-१०६॥ ये सभी धर्म की व्यवस्था करके परम पद चले जाते हैं। अब मैं भविष्यत् कालिक सावर्णि मनु के मन्वन्तर का वर्णन करूँगा॥१०७॥ इस मन्वन्तर के सप्तर्षि अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द, काश्यप तथा राम (परशुराम) कहे गये हैं ॥१०८॥ धृति, वरीयान, यवसु, सुवर्ण, धृष्टि, चरिष्णु, आद्य, सुमति, वसु तथा पराक्रमी शुक्र ॥१०९॥ ये भविष्यत् कालिक सावर्णि मनु के पुत्र बतलाये गये हैं। इन से भिन्न रौच्य आदि मनुओं के नाम

ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुःस्मृतः । ऋभुश्च ऋतुधामाच विष्वक्सेनो मनुस्तथा ॥११२॥
अतीतानागतांश्चैव मनवःपरिकीर्तिताः । वर्षाणां युगसाहस्त्रमेभिर्व्याप्तंनराधिप ॥११३॥
स्वे स्वेन्तरे सर्वमिदं समुत्पाद्य चराचरम्। कल्पक्षये निवृत्ते तु मुच्यंते ब्रह्मणा सह॥११४॥
अमी युगसहस्रान्ते विनश्यन्ति पुनः पुनः । ब्रह्माद्याविष्णुसायुज्यं ततो यास्यंति वै नृप ॥११५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे मन्वंतरवर्णनं नाम सप्तमोध्यायः ॥७॥

आठवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा। पार्थिवाः पृथिवीयोगात्पृथ्वी कस्य योगतः ॥१॥
किमर्थं च कृता संज्ञा भूमेस्सा पारिभाषिकी। गौरितीयं च संज्ञा वा भुवः कस्माद्ब्रवीहि मे ॥२॥

पुलस्त्य उवाच

पुरा कृतयुगस्यासीदंगो नाम प्रजापतिः । मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीतातिदुर्मुखी ॥३॥
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा। अधर्मनिरतःकामी बलवान्वसुधाधिपः ॥४॥
लोकस्याधर्मकृच्चापि परभार्यापहारकः। अथ तस्य प्रसिद्ध्यर्थं जगदर्थं महर्षिभिः ॥५॥

बतलाये गये हैं ॥११०॥ रुचि प्रजापति के पुत्र रौच्य होंगे । इसीतरह भूति के पुत्र भौत्य मनु होंगे ॥१११॥ उसके बाद ब्रह्माजी के पुत्र ब्रह्मसावर्णि मनु होंगे । उसके बाद, ऋभु, ऋतुधामा या वीतधामा तथा विष्वक्सेन मनु होंगे॥११२॥ मैंने तुम्हें अतीत कालिक तथा अनागत (भविष्यत्) कालिक मनुओं को बतलाया । हे नराधिप ! ये सभी मनु मिलकर एक हजार चतुर्युग पर्यन्त अधिकार प्राप्त रहते हैं ॥११३॥ ये सभी अपने-अपने मन्वन्तर में इस सम्पूर्ण चराचर को उत्पन्न करके, कल्प की समाप्ति होने पर ब्रह्माजी के ही साथ मुक्त हो जाते हैं ॥११४॥ ये सभी एक हजार चतुर्युग के बीत जाने पर बार-बार विनष्ट होते हैं और हे राजन् ! ये ब्रह्मा, विष्णु आदि के सायुज्य को प्राप्त करते हैं ॥११५॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के मन्वन्तर वर्णन नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ

पृथुचरित्र तथा सूर्यवंश का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे गुरो ! सुना जाता है कि प्राचीन काल में इस पृथिवी पर अनेक राजा हुए । पृथिवी का सम्बन्ध होने के कारण राजाओं को पार्थिव कहा जाता है, किन्तु भूमिका पृथ्वी नाम किसके सम्बन्ध से हुआ?॥१॥ भूमि का पारिभाषिक यह नाम क्यों हुआ ? अथवा भूमि का गौ नाम क्यों हुआ ? इसे आप मुझे बतलाएँ ॥२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पहले सत्ययुग में अङ्ग नामक प्रजापति हुए । उन्होंने मृत्यु की पुत्री सुनीथा से विवाह किया । सुनीथा का मुँह कुरूप था । सुनीथा के पुत्र वेन हुए । वे कामी, बलवान् तथा अधर्म परायण राजा थे ॥३-४॥ संसार के पापों को करने वाले वे दूसरों की पत्नी का अपहरण कर लेते थे । उसके बाद उस राजा तथा

अनुनीतोपि न ददावशुद्धात्माऽभयं ततः । शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥६॥
ममंथुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः । तत्कायान्मथ्यमानात्तु जनिता म्लेच्छजातयः ॥७॥
शरीरे मातुरंशेन कृष्णांजनसमप्रभाः । पितुरंशस्यसंगेन धार्मिको धर्मकारकः ॥८॥
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात्सधनुः स शरोगदी । दिव्यतेजोमयः पुत्रस्सरत्नकवचांगदः ॥९॥
पृथुरेवाभवन्नाम्ना स च विष्णुरजायत । स विप्रैरभिषिक्तःसंस्तपः कृत्वासुदुष्करम् ॥१०॥
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत्प्रभुः । निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्द्धर्मं वीक्ष्य भूतलम् ॥११॥
वेद्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः । ततो गोरूपमास्थाय भूःपलायितुमुद्यता ॥१२॥
पृष्ठेत्वन्वगमत्तस्याः पृथु सेषुशरासनः । ततः स्थित्वैकदेशे तु किंकरोमीति चाब्रवीत् ॥१३॥
पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते । सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ॥१४॥
तथेति च ब्रवीद्भूमिर्दुदोह स नराधिपः । स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायंभुवं मनुम् ॥१५॥
तदन्नमभवद्दुग्धं प्रजा जीवंति येन तु । ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धा वत्सः सोमस्तदाभवत् ॥१६॥
दोग्धा वाचस्पतिरभूत्पात्रं वेदस्तपोरसः । देवैश्च वसुधा दुग्धा मरुद्दोग्धा तदाभवत् ॥१७॥
इंद्रो वत्सः समभवत्क्षीरमूर्ज्जस्वलं बलं । देवानां कांचनं पात्रं पितृणां राजतं तथा ॥१८॥
अंतकश्चाभवद्दोग्धा यमो वत्सः स्वधा रसः । बिलं च पात्रं नागानां तक्षको वत्सकोऽभवत् ॥१९॥
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोभवत्पुनः । असुरैरपि दुग्धेयं आयसे शत्रुपीडनम् ॥२०॥

संसार का कल्याण करने के लिए महर्षियों ने ॥५॥ राजा से अनुनय विनय किया, किन्तु राजा ने प्रजा को अभयदान नहीं दिया । उसके वाद महर्षियों ने उसे शाप देकर मार डाला, किन्तु वे अराजकता के भय से भयभीत हो गये॥६॥ तदनन्तर निष्पाप ऋषियों ने उस राजा के शरीर का बलपूर्वक मन्थन किया । सर्वप्रथम मन्थन किए जाने वाले उस शरीर से म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुयीं ॥७॥ वे वेन की माता के अंश से उत्पन्न हुयी थीं । उन सबो के शरीर की कान्ति काले अंजन के समान काली थी । पिता के अंश से वेन के दाहिने हाथ से दिव्य तेज से युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। वह धनुष् बाण और गदा धारण किए हुए था । वह रत्नजटित कवच तथा अङ्गद (विजाइठ) धारण किए था ॥९॥ वे पृथु के नाम से प्रख्यात भगवान् विष्णु ही अवतीर्ण हुए थे । जब उनको ब्राह्मणों ने राजा के पद पर अभिषिक्त किया तो उन्होंने कठोर तपस्या की ॥१०॥ वे भगवान् विष्णु से वरदान प्राप्त करके सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी हो गये। उन्होंने देखा कि पृथिवी स्वाध्याय तथा वषट्कार (यज्ञादि) से रहित हो गयी है ॥११॥ अमित पराक्रम सम्पन्न उन्होंने अपने बाणों से पृथिवी को बेध देना चाहा । उस समय भूमि गौ का रूप धारण करके भागने के लिए तैयार हो गयी॥१२॥ पृथु भी धनुष पर बाण चढाये हुए उसके पीछे दौड़ने लगे । उसके बाद एक स्थान पर खड़ी होकर भूमि ने पूछा— मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ ॥१३॥ पृथु ने भी कहा— हे सुव्रते ! तुम चराचरात्मक सम्पूर्ण जगत् के अभिलषित अर्थों को शीघ्र प्रदान करो ॥१४॥ इस पर भूमि ने कहा— बहुत अच्छा । इसके बाद राजा पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ पर पृथिवी के दुग्ध को दूहा ॥१५॥ वह अन्न के रूप में परिणत हो गया । उसी से सारी प्रजायें जीवित रहती हैं । उसके बाद ऋषियों ने पृथिवी का दोहन किया । उस समय सोम बछड़ा बने थे ॥१६॥ दोहन करने वाले बृहस्पति थे । वेद ही दुग्ध पात्र बना और तपस्या ही दुग्ध था । देवताओं ने भी पृथिवी का दोहन किया उस समय दूहने वाले मरुद् देवता थे ॥१७॥ इन्द्र ही बछड़ा बने । उन सबों ने उर्जा तथा बल रूपी दुग्ध का दोहन किया । देवताओं का पात्र सुवर्ण का था । पितरों ने रजतपात्र में पृथिवी के स्वधा रूपी

पात्रेमायामभूद्वत्सः प्रह्लादि स्तुविरोचनः। दोग्धा त्रिमूर्द्धा तत्रासीन्माया येन प्रवर्तिता ॥२१॥
यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरांतर्द्धानमीप्सुभिः। कृत्वा विश्वावसुं वत्सं मणिमंतं महीपते ॥२२॥
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा वसा रुधिरमुल्वणम्। रौप्यनाभोऽभवद्दोग्धा सुमाली वत्स एव च ॥२३॥
गंधर्वैश्च पुनर्दुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः। वत्सं चित्ररथं कृत्वा गधंपद्मदले तथा ॥२४॥
दोग्धा वसुरुचिर्नामाथर्ववेदस्यपारगः। गिरिभिर्वसुधादुग्धा रत्नानि विविधानि च॥२५॥
औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महीधरः। वत्सोभूद्धिमवांस्तत्र पात्रं शैलमयं पुनः॥२६॥
वृक्षैश्च वसुधा दुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम्। पलाशपात्रे दोग्धा तु सालः पुष्पवनाकुलः ॥२७॥
प्लक्षोभवत्ततो वत्सः सर्ववृक्षवनाधिपः। एवमन्यैश्च वसुधा तथादुग्धा यथेच्छतः ॥२८॥
आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति। न दारिद्र्यं तथारोगी नाधनो न च पापकृत्॥२९॥
नोपसर्गा न चाघातः पृथौ राज्यं प्रशासति। नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिताः ॥३०॥
धनुःकोट्या च शैलेंद्रानुत्सार्य स महाबलः। भूमंडलं समं चक्रे लोकानां हितकाम्यया॥३१॥
न पुरग्रामदुर्गाणि नचायुधधरा नराः। म्रियंते यत्र दुःखं च नार्थशास्त्रस्य चादरः॥३२॥
धर्मैकतानाः पुरुषाः पृथौ राज्यं प्रशासति। कथितानि च पात्राणि यत्क्षीरं च यथा तव॥३३॥
येषां येन रुचिस्तत्र तेभ्यो दत्तंविजानता। यज्ञश्रद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ॥३४॥

दुग्ध का दोहन किया। उस समय यम ही बछड़ा बने और अंतक दोग्धा बने। नागों ने बिल रूपी पात्र में पृथिवी का दोहन किया, उसमें तक्षक ही बछड़ा बना ॥१८-१९॥ धृतराष्ट्र नामक दोग्धा ने विष रूपी दुग्ध को दूहा। असुरों ने लौह पात्र में शत्रुओं को दुःख देना तथा माया का दोहन किया। उस समय प्रह्लाद के पुत्र विरोचन बछड़ा बने। उसमें दोग्धा त्रिमूर्धा थे उन्होंने माया का प्रवर्तन किया ॥२०-२१॥ अन्तर्धान रहने के इच्छुक यक्षों ने विश्वावसु को बछड़ा तथा मणिमान को दोग्धा बनाकर अन्तर्धान विद्या का पृथिवी से दोहन किया ॥२२॥ प्रेतों तथा राक्षसों ने रौप्यनाभ को दोग्धा तथा सुमाली को बछड़ा बनाकर पृथिवी से वसा तथा रुधिर (रक्त) रूपी दुग्ध को दूहा॥२३॥ गन्धर्वों तथा अप्सराओं के समूह ने कमल दल के पात्र में चित्ररथ को बछड़ा बनाकर गन्धों का दोहन किया ॥२४॥ उसमें अथर्ववेद के ज्ञाता वसुरुचि ही दोग्धा थे। पर्वतों ने पृथिवी से पर्वतमय पात्र में अनेक प्रकार के रत्नों ॥२५॥ तथा दिव्य औषधियों का दोहन किया। उसमें दोहनकर्ता सुमेरु पर्वत तथा बछड़ा हिमालय को उन सबों ने बनाया ॥२६॥ वृक्षों ने पृथिवी पर कट जाने पर भी प्ररोह रूपी दुग्ध का दोहन, पुष्प तथा वन से परिपूर्ण साल वृक्ष को दोग्धा बनाकर पलाश पात्र में किया ॥२७॥ उस समय सभी वृक्षों तथा वनो के स्वामी प्लक्ष (पाकड़) बछड़ा बना। इसी तरह से दूसरों ने भी अपनी इच्छा के अनुसार पृथिवी का दोहन किया ॥२८॥ राजा पृथु के राज्य काल में सबलोग आयु, धन तथा सौख्य से युक्त थे। कोई भी रोगी, दरिद्र, निर्धन अथवा पापी नहीं था ॥२९॥ पृथु के प्रशासन काल में न तो कोई उपद्रव था और न कोई मरता था। लोग दुःख एवं शोक से रहित होकर सदा प्रसन्न रहते थे ॥३०॥ महाबलवान् पृथु अपने धनुष की नोक से पर्वतों को उखाड़कर लोगों का कल्याण करने की इच्छा से भूमण्डल को समतल बना दिया ॥३१॥ उस समय नगर, ग्राम तथा किले की आवश्यकता नहीं थी। उस समय न तो कोई आयुध धारण करता था और न तो किसीको मृत्यु का दुःख होता था। कोई भी अर्थशास्त्र का आदर नहीं करता था ॥३२॥ पृथु के प्रशासन काल में सभी लोग धार्मिक थे। तुम्हें मैने यह बतलाया है कि दोग्धाओं के पात्र कौन थे और उन लोगों ने किस दुग्ध को दूहा ॥३३॥ जिन लोगों को जिसमें रुचि थी उसे पृथ्वी ने वही प्रदान

दुहितृत्वं गता यस्मात्पृथोः पृथ्वी महामते। तस्यानुसारयोगाच्च पृथ्वी विश्रुता बुधैः ॥३५॥

भीष्म उवाच

आदित्यवंशमखिलं वद ब्रह्मन्यथाक्रमम्। सोमवंश च तत्त्वज्ञ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३६॥

पुलस्त्य उवाच

विवस्वान् कश्यपात्पूर्वमदित्यामभवत्पुरा। तस्य पत्नी त्रयं तद्वत्संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा ॥३७॥
रैवतस्य सुता राज्ञी रेवतं सुषुवे सुतम्। प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्रं संज्ञां तथा मनुम् ॥३८॥
यमश्च यमुना चैव यमलौ च बभूवतुः। ततस्तेजोमयं रूपमसहंती विवस्वतः ॥३९॥
नारीमुत्पादयामास स्वशरीराद निंदिताम्। त्वाष्ट्री स्वरूपरूपेण नाम्ना छायेति भामिनी ॥४०॥
किं करोमीति पुरतः संस्थितां तामभाषत। छाये त्वं भज भर्तारं मदीयं तं वरानने ॥४१॥
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय। तथेत्युक्त्वा च सा देवमगात्कामाय सुव्रता ॥४२॥
कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चादरात्। जनयामास सावर्णिमनुं मनुस्वरूपिणम् ॥४३॥
सवर्णत्वाच्च सावर्णेर्मनोर्वैवस्वतस्य तु। ततः सुतां च तपतीं त्वाष्ट्रीं चैव क्रमेण तु ॥४४॥
छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः। छायास्वपुत्रेत्वधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तदा ॥४५॥
न च क्षमे मनुः पूर्वस्तद्यमःक्रोधमूर्छितः। संतर्जयामास तदा पादमुत्क्षिप्य दक्षिणम् ॥४६॥
शशाप च यमं छाया भवतु क्रिमिसंयुतः। पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्रवः ॥४७॥
निवेदयामास पितुर्यमः शापेन धर्षितः। निःकारणमहं शप्तो भात्रा देव सकोपया ॥४८॥

किया। सभी यज्ञों तथा सभी श्राद्धों के अवसर पर यह प्रसङ्ग सुनाने योग्य है ॥३४॥ चूंकि पृथ्वी पृथु की पुत्री हुयी इसीलिए विद्वज्जन इसे पृथ्वी कहते हैं ॥३५॥ **भीष्मजी ने कहा—** हे ब्राह्मन् ! आप मुझे क्रमशः आदित्य (सूर्य) वंश का वर्णन सुनायें। तत्त्वज्ञ आप मुझे सोमवंश को भी यथोचित प्रकार से सुनायें ॥३६॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** अदिति के गर्भ से कश्यप महर्षि के पुत्र विवस्वान् (सूर्य) हुए। सूर्य की तीन पत्नियाँ थी, संज्ञा, राज्ञी तथा प्रभा ॥३७॥ रेवत की पुत्री राज्ञी थी। उसने रेवत नामक पुत्र को जन्म दिया। प्रभा ने प्रभात को उत्पन्न किया तथा संज्ञा ने त्वष्टा एवं मनु को जन्म दिया ॥३८॥ यम और यमुना दोनों सूर्य के जुडवी सन्तान थे। उसके बाद सूर्य के तेजोमय रूप को नहीं सह सकने के कारण संज्ञा ने अपने शरीर से अपने ही समान सुन्दरी नारी को उत्पन्न किया। उसका रूप संज्ञा के ही समान था। उसका नाम छाया हुआ ॥४०॥ जब उसने संज्ञा के सामने खड़ी होकर कहा कि मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ तो संज्ञा ने कहा— छाये ! तुम मेरे पति की पत्नी बन जाओ ॥४१॥ मेरे बच्चों को तुम माँ के ही समान स्नेहपूर्वक पालना। छाया ने कहा ठीक है। और सुन्दर व्रत वाली वह कामिनी होकर सूर्य के पास गयी ॥४२॥ सूर्य ने उसको संज्ञा ही समझकर उसका आदर किया। उसने मनु के ही समान मनु को उत्पन्न किया ॥४३॥ मनु का वर्ण वैवस्वत मनु के ही समन होने के कारण उस मनु का नाम सावर्णि मनु हुआ। उसके बाद छाया के गर्भ से तपती तथा त्वाष्ट्री नाम की कन्यायें उत्पन्न हुयीं। सूर्य ने छाया को संज्ञा जानकर उन सन्तानों को उत्पन्न किया। छाया अपने पुत्र सावर्णि मनु को अधिक स्नेह करती थी। उसके बाद क्रोधित होकर यम ने कहा कि मैं इसको नहीं बर्दास्त कर सकता हूँ। यम ने अपना दाहिना पैर उठाकर धमकाया ॥४६॥ यह देखकर छाया ने शाप दिया कि तुम्हारे इस पैर में कीड़े पड़ जायँ। इससे पीव बहने लग जायेगा ॥४७॥ उस शाप के कारण भयभीत यम ने उसे अपने पिता सूर्य को बतलाया कि हे देव ! बिना किसी कारण के माँ ने मुझे क्रोध करके शाप दे दिया

बालभावान्मया किंचिदुद्यतश्चरणः सकृत् । मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद्विभो ॥४९॥
प्रायो न माता सास्माकमसमा स्नेहतो यतः । देवोप्याह यमं भूयः किं करोमि महामते ॥५०॥
सौख्यात्कस्य न दुःखं स्यादथवा कर्मसंततिः । अनिवार्या भवस्यापि का कथान्येषु जंतुषु ॥५१॥
कृकवाकुस्तव पदे सक्रिमिं भक्षयिष्यति । खंजं च रुचिरं चैव पादमेतद्भविष्यति ॥५२॥
एवमुक्तः समाश्वस्तस्तपस्तीव्रं चकार ह । वैराग्यात्पुष्करे तीर्थे फलफेनानिलाशनः ॥५३॥
पितामहं समाराध्य यावद्वर्षायुतं पुनः । तपः प्रभावाद्देवेशः संतुष्टः पद्मसंभवः ॥५४॥
वव्रे सलोकपालत्वं पितृलोकं तथाक्षयम् । धर्माधर्मात्मकस्यास्य जगतस्तु परीक्षणम् ॥५५॥
एवं सलोकपालत्वमगमत्पद्मसंभवात् । पितृणामधिपत्यं च धर्माधर्मस्य चानघ ॥५६॥
विवस्वानथ तज्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्मचेष्टितम् । त्वष्टुःसमीपमगमदाचचक्षे सरोषवान् ॥५७॥
तमुवाच ततस्त्वष्टा सांत्वपूर्वमिदं वचः । तवासहंती भगवंस्तेजस्तीव्रं तमोनुद ॥५८॥
बडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता । निवारिता मया सा च त्वद्भयेन दिवस्पते ॥५९॥
यस्मादविज्ञातमना मत्सकाशमिहागता । तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न तवार्हति ॥६०॥
एवमुक्ता जगामाशु मरुदेशमनिंदिता । बडवारूपमास्थाय भूतले संप्रतिष्ठिता ॥६१॥
तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम् । अपनेष्यामि ते तेजःकृत्वा यंत्रे दिवाकरम् ॥६२॥
रूपं तव करिष्यामि लोकानंदकरं प्रभो । तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमे कृत्वा दिवाकरम् ॥६३॥
पृथक्चकार तेजश्च चक्रं विष्णोः प्रकल्पयत् । त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिंद्रस्य चापरम् ॥६४॥

हैं । लड़कपन के कारण मैंने एक बार अपना पैर कुछ उठाया, यद्यपि सावर्णि मनु ने रोका भी तो भी माँ ने मुझे शाप दे दिया ॥४८-४९॥ प्रायः माँ हमलोगों को एक समान स्नेह नहीं करती है, इस पर सूर्य ने कहा हे महामते! मैं क्या करूँ ?॥५०॥ सुख के बाद किसको दुःख नहीं मिलता है ?। यह तो कर्मो का फल है । इसे तो भगवान् शङ्कर को भी सहना पड़ता है दूसरे जीवों को कौन कहे ?॥५१॥ तुम्हारे पैरों के क्रिमी को कृकवाकु खा जायेगा । तुम्हारा यह पैर लङ्गडा तथा मनोहर हो जायेगा ॥५२॥ इस तरह से सूर्य द्वारा कहे जाने पर आश्वस्त होकर वैराग्य युक्त यम पुष्कर तीर्थ में आकर तीव्र तपस्या; फल, फेन तथा वायु खाकर किए ॥५३॥ उन्होंने दश हजार वर्ष तक ब्रह्माजी की आराधना की उससे ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये ॥५४॥ यम ने पितृलोक के अक्षय लोकपालत्वका तथा इस धर्माधर्मात्क जगत् के परीक्षण का वरदान माँगा ॥५५॥ हे अनघ ! इस प्रकार से यम ने ब्रह्माजी से लोकपालत्व पितरों का आधिपत्य तथा धर्म एवं अधर्म के परीक्षण का अधिकार प्राप्त किया ॥५६॥ उसके बाद सूर्य ने संज्ञा की चेष्टाओं को जाना तो वे त्वष्टा के पास जाकर क्रोध पूर्वक सारी बातें बतलायें ॥५७॥ त्वष्टा ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा— हे अन्धकार को दूर करने वाले भगवन् सूर्य ! आपके तीव्र तेज को नहीं सह सकने के कारण ॥५८॥ वह घोड़ी का रूप बनाकर मेरे पास आयी आपके भय से मैंने उसे ऐसा करने से रोका भी ॥५९॥ मैंने कहा— चूकि अविज्ञात मना होकर मेरे यहाँ आयी हो अतएव तुम मेरे घर में प्रवेश नहीं कर सकती हो ॥६०॥ मेरे द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वह शीघ्र ही मरु प्रदेश में चली गयी और वह घोड़ी का रूप धारण करके भूतल पर स्थित है ॥६१॥ अतएव यदि मैं आपकी कृपा का पात्र होऊँ तो आप मेरे ऊपर कृपा करें । आपको शाणयन्त्र चर चढ़ाकर मैं आपके तेज को कम कर दूँगा ॥६२॥ हे प्रभो ! मैं आपका रूप लोक को आनन्द प्रदान करने वाला बना दूँगा। सूर्य के द्वारा तथास्तु कहे जाने पर सूर्य को भ्रमि यन्त्र (शाण) पर चढ़ाकर ॥६३॥ त्वष्टा सूर्य के तेज को छाँट दिया

दैत्यदानवसंहर्तृ सहस्रकिरणात्मकम्। रूपं चाप्रतिमं चक्रे त्वष्टा पद्मामृते महत् ॥६५॥
न शशाक च तद्द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः। अद्यापि च ततः पादौ न कश्चित्कारयेत्क्वचित् ॥६६॥
यःकरोति स पापिष्ठो गतिमाप्नोति निंदितम्। कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेस्मिन्दुःखसंज्ञितम् ॥६७॥
तस्मान्नधर्मकमार्थी चित्रेष्वायतनेषु च। न क्वचित्कारयेत्पादौ देवदेवस्य धीमतः ॥६८॥
ततः स भगवान् गत्वा भूर्लोकममराधिपः। कामयामास कामार्तो मुख एव दिवाकरः ॥६९॥
अश्वरूपेण महता तेजसा च समन्वितः। संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भयविह्वला ॥७०॥
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोयमिति शंकया। तस्याथ रेतसो जातावश्विनाविति नः श्रुतम् ॥७१॥
दस्रौ श्रुतित्वात्संजातौ नासत्यो नासिकाग्रतः। ज्ञात्वा चिराच्चतं देवं सतोषमगमत्परम् ॥७२॥
विमानेनागमत्स्वर्गे पत्न्या सह मुदान्वितः। सावर्ण्योपि मनुर्मेरावद्यापि तपते तपः ॥७३॥
शनिस्तपोबलाच्चापि ग्रहाणां समतां गतः। यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः ॥७४॥
विष्ठिर्घोरात्मिका तद्वतकालत्वेन व्यवस्थिता। मनोर्वैवस्वतस्यापि दश पुत्रा महाबलाः ॥७५॥
इलस्तुप्रथमस्तेषां पुत्रेष्ट्या समकल्पितः। इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ट एव च ॥७६॥
नरिष्यंतः करूषश्च शर्यातिश्च महाबलः। पृषध्रश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः ॥७७॥
अभिषिच्य मनुःपूर्वमिलंपुत्रं सधार्मिकम्। जगाम तपसे भूयः पुष्करं स तपोवनम् ॥७८॥
अथाजगाम सिध्यर्थं तस्य ब्रह्मा वरप्रदः। वरं वरय भद्रं ते मानवेय यथेप्सितम् ॥७९॥

और उस तेज से विश्वकर्मा ने विष्णु के चक्र का, शङ्कर के त्रिशूल का तथा इन्द्र के वज्र का निर्माण किया ॥६४॥ त्वष्टा ने सूर्य के पैरों से रहित रूप को अप्रतिम बना दिया जो हजारों किरणमय दैत्यों और दानवों का संहार करने वाला था ॥६५॥ फिर कोई सूर्य के चरण के रूप को नहीं देख सका इसीलिए कोई भी तथा कहीं सूर्य के चरणों को न बनाये ॥६६॥ जो सूर्य को पैरो से युक्त बनाता है वह अत्यन्त पापमयी निंदित गति को प्राप्त करता है। वह इस लोक में दुःखप्रद कुष्ठ रोग का रोगी होता है ॥६७॥ अतएव धर्म और काम को चाहने वाले को चाहिए कि वह चित्रों तथा घरों में बुद्धिमान सूर्य के चरणों को नहीं बनवाये ॥६८॥ उसके बाद देवताओं के स्वामी सूर्य भूलोक में जाकर कामार्त होकर सुख पर ही संज्ञा को प्राप्त करना चाहे ॥६९॥ वे उस समय अत्यधिक तेजस्वी घोड़े का रूप बनाये थे उनको देखकर भय से विह्वल बनी हुयी संज्ञा भी क्षुब्ध हो गयी ॥७०॥ यह कोई सूर्य से भिन्न है क्या ? इस शङ्का से संज्ञा ने सूर्य के वीर्य को अपनी नाकों से त्याग दिया, उसी से दोनों अश्विनीकुमारों का जन्म हुआ ऐसा मैंने सुना है ॥७१॥ वे दोनों कान से उत्पन्न होने कारण दस्र कहलाये तथा नासिका के अग्रभाग से उत्पन्न होने के कारण नासत्य कहलाये। दीर्घ काल के बाद जब इस बात का पता चला कि ये भगवान् सूर्य ही हैं तो संज्ञा को अत्यन्त सन्तोष हुआ ॥७२॥ इसके बाद भगवान् सूर्य विमान से अपनी पत्नी के साथ स्वर्गलोक आये। सावर्णि मनु भी आज भी सुमेरु पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं ॥७३॥ छाया के पुत्र शनि भी अपनी तपस्या के बल से ग्रहों के समान हो गये। यमुना तथा तपती ये दोनों नदी हो गयीं ॥७४॥ विष्टि का रूप भयङ्कर था अतएव वह काल रूप से व्यवस्थित हो गयी। वैवस्वत मनु के भी महाबलवान दश पुत्र हुए ॥७५॥ उन सबों में बड़े इल थे। वे पुत्रेष्टि याग से पैदा हुए थे, इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट ॥७६॥ नरिष्यन्त, करूष, महाबलवान् शर्याति, पृषध्र तथा नाभाग ये सभी मनु पुत्र दिव्य मनुष्य थे ॥७७॥ मनु अपने बड़े पुत्र इल को राज्याभिषिक्त करके पुष्कर के तपोवन में तपस्या करने के लिए चले गये ॥७८॥ उसके बाद ब्रह्माजी उन्हें वर प्रदान करने के लिए आये। उन्होंने कहा

उवाच स तदा देवं पद्माक्षं पद्मजं विभुम्। वशे मे धर्मसंयुक्ताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥८०॥
भवेयुरीश्वराः स्वामिन्प्रसादात्तव कंजज । तथेत्युक्त्वा तु देवेशस्तत्रैवांतरधीयत ॥८१॥
ततोऽयोध्यां समागत्य समतिष्ठद्यथा पुरा । अथैकदा रथारूढ इलो निजसुतो मनोः ॥८२॥
निर्जगामार्थसिध्यर्थमिनप्रायां महीमिमाम् । भ्रमन् द्वीपानि सर्वाणि क्ष्माभूतः संप्रसाधयन् ॥८३॥
जगामोपवनं शंभोरथाकृष्टः प्रतापवान् । कल्पद्रुमलताकीर्णं नाम्रा शरवणं महत् ॥८४॥
रमते यत्र देवेशः सोमः सोमार्द्धशेखरः। उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः ॥८५॥
पुंनामसंज्ञं यत्किंचिदागमिष्यति नो वनं। स्त्रीत्वमेष्यति तत्सर्वं दशयोजनमंडले ॥८६॥
अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणं गतः। स्त्रीत्वं जगाम सहसा बडवाश्वोऽभवत्क्षणात् ॥८७॥
पुरुषत्वे कृतं सर्वं स्त्रीकाये विस्मृतं ततः । इलेति साऽभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी ॥८८॥
उन्नतश्रोणिजघना पद्मपत्रायतेक्षणा । पूर्णेन्दुवदना तन्वी विलासिन्यसितेक्षणा ॥८९॥
पीनोन्नतायतभुजा नीलकुंचितमूर्द्धजा । तनुलोमा सुवदना मृदुगद्गदभाषिणी ॥९०॥
श्यामा गौरेण वर्णेन तनुताम्रनखांकुरा। कार्मुकभ्रूयुगोपेता हंसावरणगामिनी ॥९१॥
भ्रममाणा वने तस्मिन् चिंतयामास भामिनी। को मे पिता वा भ्राता वा को मे त्राता भवेदिह ॥९२॥
कस्य भर्त्तुरहं दत्ता कियद्वर्षास्मि भूतले। चिंतयन्ती च ददृशे सोमपुत्रेण साङ्गना ॥९३॥
इलारूपसमाक्षिप्तमनसा वरवर्णिनी। बुधस्तदाप्तये यत्नमकरोत्कामपीडितः ॥९४॥

हे मानवेय ? अपने मनोऽनुकूल वरदान माँगो ॥७९॥ उसके बाद मनु ने कमल के समान नेत्र वाले ब्रह्माजी से कहा— पृथिवी के सभी धार्मिक राजा मेरे वंश में हो जायँ ॥८०॥ हे ब्रह्माजी ! आपकी कृपा से सभी राजा मेरे अधीन हो जायँ । ब्रह्माजी भी तथास्तु कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥८१॥ इसके बाद मनु अयोध्या में आकर पहले के ही समान रहने लगे । एक दिन रथ पर सवार होकर मनु का इल नामक पुत्र ॥८२॥ अपने अर्थ की सिद्धि के लिए पृथिवी पर चल पड़े । वे राजाओं को अपने वशवर्ती बनाते हुए सभी द्वीपों में घूमते हुए ॥८३॥ कल्प वृक्ष से परिपूर्ण भगवान् शङ्कर के महान् शरवण नामक वन को देखकर उसमें चले गये । उस वन में जिनके शिर पर अर्द्ध चन्द्रमा हैं ऐसे भगवान् शङ्कर पार्वतीजी के साथ क्रीडा करते हैं । उस वन में पूर्वकाल में शङ्करजी ने पार्वतीजी से कहा था कि इस वन के दश योजन के भीतर यदि कोई भी पुरुष संज्ञक जीव आ जायेगा तो वह स्त्री हो जायेगा ॥८५-८६॥ इस बात को राजा इल नहीं जानते थे अतएव वे शरवण वन में चले गये । वे एकाएक स्त्री हो गये और उनका घोड़ा भी घोड़ी हो गया ॥८७॥ वे पुरुष रहने के समय की सारी बातों को स्त्री होते ही भूल गये । वह पुष्ट तथा उन्नत स्तनों वाली इला नाम की नारी हो गये ॥८८॥ उसके श्रोणी तथा जङ्घे उठे हुए, कमल दल के समान विस्तृत नेत्र, पूर्ण चन्द्रमा के समान आह्लादक मुखमण्डल, दुबले पतले शरीर वाली तथा काले नेत्रों वाली विलासिनी (सुन्दरी) हो गये ॥८९॥ उसकी मांसल तथा लम्बी भुजायें तथा काले घुंघराले केश हो गये । कम रोओं तथा सुन्दर मुख वाली, गद्गद वाणी में बोलने वाली हो गयी वह ॥९०॥ गोरे वर्ण की उस युवती के लाल-लाल पैरों के नख हो गये । उसकी धनुष के समान भ्रुकुटी थी वह हंस के समान चलती थी ॥९१॥ उस वन में घूमती हुयी वह सुन्दरी सोचने लगी कि मेरे पिता अथवा भाई कौन है ? मेरा यहाँ रक्षक कौन है ?॥९२॥ मेरे पति कौन हैं ? मेरी अवस्था कितने वर्ष की है ? इसतरह से चिन्तन करती हुयी उसको सोम के पुत्र बुध ने देखा ॥९३॥ वे इला के आकर्षक रूप को देखकर उस पर आकृष्ट हो गये । वे कामार्त होकर उसे प्राप्त करने का प्रयास करने लगे ॥९४॥

विशिष्टाकारवान्मुंडी सकमंडलुपुस्तकः । वेणुदंडकृतावेशः पवित्रकखनित्रकः ॥९५॥
द्विजरूपः शिखी ब्रह्मनिगदन् कर्णकुंडली। वटुभिश्चार्थिभिर्युक्तः समित्पुष्पकुशोदकैः ॥९६॥
कालेन्विष्यंस्ततस्तस्मिन्नाजुहाव स तामिलाम् । बहिर्वनस्यांतरितः किल पादपमंडपे ॥९७॥
स संभ्रममकस्माच्च सोपालंभमिवाभवत् । त्यक्त्वाग्निहोत्रशुश्रुषां क्व गता मंदिरान्मम ॥९८॥
इयं विहारबेला ते अतिक्रामति सांप्रतम् । एह्येहि पृथुसुश्रोणि संभ्रांता केन हेतुना ॥९९॥
इयं सायंतनी वेला विहारस्येह वर्त्तते । कृत्वोपलेपनं पुष्पैरलंकुरु गृहं मम ॥१००॥
साब्रवीद्विस्मृताहं च सर्वमेव तपोधन । आत्मानं त्वां च भर्त्तारं कुलं च वदमेनघ ॥१०१॥
बुधः प्रोवाच तां तन्वीमिला त्वं वरवर्णिनि । अहं च कामुको नाम बहुविद्यो बुधःस्मृतः ॥१०२॥
तेजस्विनः कुले जातः पिता मे ब्राह्मणाधिपः । इति सा तस्य वचनात्प्रविष्टा बुध मंदिरम् ॥१०३॥
रत्नस्तंभसमाकीर्णं दिव्यमायाविनिर्मितम् । इलाकृतार्थमात्मानं मेने तद्भवनेस्थिता ॥१०४॥
अहो वृत्तमहोरूपमहोधनमहोकुलम् । मम चास्य च भर्त्तुर्ण अहो लावण्यमुत्तमम् ॥१०५॥
रेमे च सा तेन सममतिकालमिला वने । सर्वभोगमये गेहे यथेंद्रभवने तथा ॥१०६॥
अथान्विष्यंतो राजानं भ्रातरस्तस्य मानवाः । इक्ष्वाकुप्रमुखा जग्मुस्तदाशरवणांतिकम् ॥१०७॥
ततस्ते ददृशुः सर्वे बडवामग्रतःस्थिताम् । रत्नपर्यंतकिरणदीपमानामनुत्तमाम् ॥१०८॥
संप्राप्य प्रत्यभिज्ञानात्सर्वे विस्मयमागताः । अयं चंद्रप्रभो नाम वाजी तस्य महात्मनः ॥१०९॥
अगमद्बडवारूपमुत्तमं केन हेतुना । ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुः स्वपुरोहितम् ॥११०॥

उन्होंने कमण्डलु तथा पुस्तक धारण किए हुए विशिष्ट आकार वाले मुण्डी का रूप बनाया । वे दण्ड, पवित्रक तथा खनती धारण किये थे ॥९५॥ ब्राह्मण शिखाधारी ब्रह्मचारी होकर वेदपाठ करते हुए कानों में कुण्डल धारण किए हुए, ब्रह्मचारियों के साथ समिधा, कुश तथा जल प्राप्त करने के लिए ॥९६॥ समयानुसार उस इला को खोजकर उससे वन के बाहर वृक्ष मण्डप में छिपकर ॥९७॥ शीघ्रता से उपालम्भ पूर्वक कहने लगे— अरे अग्निहोत्र की सेवा को त्याग कर तुम मेरे घर से कहाँ चली गयी ? ॥९८॥ अरे ! यह तुम्हारे बिहार करने की बेला बीत रही है । अरे सुन्दर श्रोणी-प्रदेश वाली आओ-आओ तुम भूल कैसे गयी हो ॥९९॥ यह तुम्हारे विहार करने की सायंकाल की बेला है । मेरे घर को लिप कर तुम उसे पुष्पों से सजा दो ॥१००॥ **इला ने कहा**— हे तपोधन ! मैं सब कुछ भूल गयी हूँ । हे अनघ ! अपने को तथा आप पति देव को भी मैं भूल गयी हूँ । आप बतलायें की मेरा वंश कौन है?॥१०१॥ **बुध ने कहा**— हे सुन्दरी ! तुम्हारा नाम इला है । मैं तेरा कामुक हूँ । अनेक विद्याओं के ज्ञाता मेरा नाम बुध है ॥१०२॥ मेरा जन्म तेजस्वी वंश में हुआ है । मेरे पिता ब्राह्मणों के स्वामी सोम हैं । इस तरह से बुध की वाणी को सुनकर इला बुध के गृह में चली गयी ॥१०३॥ वह गृह रत्नों के स्तम्भों से परिपूर्ण तथा दिव्य माया से विनिर्मित था । उस गृह में रहती हुयी इला अपने को कृत-कृत्य मानने लगी ॥१०४॥ मेरा तथा मेरे इस पति का वृत्त (आचरण) रूप, धन, वंश तथा उत्तम लावण्य प्रशंसनीय है ॥१०५॥ वह इला उस बुध के साथ उस वन में बहुत समय तक रमण करती रही । वह भवन इन्द्र के भवन के समान सभी भोग की सामग्रियों से सम्पन्न था॥१०६॥ मनु के पुत्र तथा इल के भाई राजा इल का अन्वेषण करते हुए इक्ष्वाकु इत्यादि शरवण वन के सन्निकट गये ॥१०७॥ उसके बाद उन सबों ने अपने सामने खड़ी घोड़ी को देखा चारो ओर लगे रत्नों से वह देदीप्यमान उत्तम घोड़ी थी ॥१०८॥ उसको पहचान कर वे सब आश्चर्य चकित हो गये । वे जान गये कि यह तो महाराज इल

किमेतदित्यभूच्चित्रं वद योगविदांवर । वसिष्ठो ब्रवीत्सर्वं दृष्ट्वा तं ध्यानचक्षुषा ॥१११॥
समयः शंभुदयिताकृतःशरवणे पुरा । यः पुमान्प्रविशेच्चात्र स नारीत्वमवाप्स्यति ॥११२॥
अयमश्वोपि नारीत्वमगाद्राज्ञा सहैव तु । इलः पुरुषतामेति यथासौ धनदोपमः ॥११३॥
तथैव यत्नःकर्त्तव्य आराध्य च पिनाकिनम् । ततस्ते मानवा जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः ॥११४॥
तुष्टवुर्विविधैः स्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ । तावूचतुरलं चैष समयः किंनु सांप्रतम् ॥११५॥
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन यत्फलंस्यात्तदावयोः । दत्वा किंपुरुषो वीरः स भविष्यत्यसंशयम् ॥११६॥
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे जग्मुर्वैवस्वतात्मजाः । इष्ट्वाश्वमेधेन तत इलाकिंपुरुषो भवत् ॥११७॥
मासमेकंपुमान् वीरः स्त्रीवं मासमभूत् पुनः । बुधस्य भवने तिष्ठन्निलो गर्भधरो भवत् ॥११८॥
अजीजनत्पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् । बुध उत्पाद्य तं पूरुं सस्वर्गमगमत्पुनः ॥११९॥
इलस्य नाम्ना तद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा । सोमार्कवंशजो राजा इलोभूद्वंशवर्द्धनः ॥१२०॥
एवं पुरूरवाः पूरोरभवद्वंशवर्द्धनः । इक्ष्वाकुरर्कवंशस्य तथैवोक्तो नरेश्वरः ॥१२१॥
इलः किंपुरुषत्वे चसुद्युम्न इति चोच्यते । पुनः पुत्रत्रयमभूत्सुद्युम्नस्यापराजितम् ॥१२२॥
उत्कलोऽथ गयस्तद्वद्धरिताश्वश्च वीर्यवान् । उत्कलस्योत्कला नाम गयस्य तु गया पुरी ॥१२३॥
हरिताश्वस्य दिग्याम्या संज्ञाता कुरुभिः सह । प्रतिष्ठानेभिषिच्याथ सपुरूरवसं सुतम् ॥१२४॥
जगामेलावृतं भोक्तुं दिव्यं वर्षफलाशनः । इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥१२५॥

का चन्द्रप्रभा नामक अश्व है ॥१०९॥ यह किस कारण से घोड़ी हो गया इसके बाद उन सबों ने अपने पुरोहित वसिष्ठ से इसके विषय में पूछा ॥११०॥ हे योगियों में श्रेष्ठ ! यह बतलाइयें कि यह आश्चर्य कैसे हुआ ? महर्षि वसिष्ठ भी अपने ध्यानमय नेत्र से देखकर सारी बात बतला दिए ॥१११॥ उन्होंने कहा— कि प्राचीन काल में पार्वतीजी को प्रसन्न करने के लिए शङ्करजी ने शरवण के विषय में यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई भी पुरुष इस वन में प्रवेश करेगा वह नारी हो जायेगा ॥११२॥ यह अश्व भी राजा के ही साथ नारित्व को प्राप्त कर लिया । इल जिस तरह से पुरुषत्व को प्राप्त कर सकें वैसा आप लोग उपाय करें । आप लोग भगवान् शङ्कर की आराधना करें । उसके बाद वे सभी मनु पुत्र वहाँ गये जहाँ भगवान् शङ्कर थे ॥११३-११४॥ उन सबों ने पार्वती तथा शङ्करजी की अनेक स्तोत्रों से स्तुति की । उन दोनों ने कहा कि प्रतिज्ञा के कारण क्या किया जा सकता है ?॥११५॥ इक्ष्वाकु आदि अश्वमेध यज्ञ करके उसका फल हम दोनों को समर्पित कर दें तो इला किन्नरत्व को प्राप्त कर लेगी ॥११६॥ ठीक है ऐसा ही होगा; यह कहकर वे वैवस्वत मनु के पुत्र लौट आये । उन लोगों ने अश्वमेध यज्ञ किया, उसके फलस्वरूप इला किम् पुरुष (किन्नर) हो गयी ॥११७॥ अब इल एक मास पुरुष रहते थे और एक मास स्त्री । जब इल बुध के घर में रहते थे तो उस समय उन्होंने गर्भधारण किया ॥११८॥ उसने अनेक गुणों से सम्पन्न एक पुत्र को जन्म दिया। बुध उस पुरु को उत्पन्न करके स्वर्ग चले गये ॥११९॥ वह वर्ष इल के नाम से इलावर्त वर्ष हो गया । वहाँ का राजा सूर्य तथा चन्द्र वंश का हुआ ॥१२०॥ इस तरह पुरुरवा पुरु के वंश को बढाने वाले हुए । इक्ष्वाकु सूर्यवंश के राजा हुए, यह मैं पहले कह चुका हूँ ॥१२१॥ जब इल किम्पुरुष थे उस समय वे सुद्युम्न भी कहलाते थे । उसके बाद सुद्युम्न के कभी नहीं पराजित होने वाले तीन पुत्र हुए ॥१२२॥ उनके नाम उत्कल, गय तथा हरिताश्व थे । उत्कल की पुरी का नाम उत्कला (उड़ीसा) था, गय की राजाधानी गया हुयी और हरिताश्व कुरुक्षेत्र से लेकर दक्षिण दिशा के राजा हुए । उन्होंने (सुद्युम्न) पुरुरवा को प्रतिष्ठान पुरी का राजा बनाया ॥१२३-१२४॥ उसके

नरिष्यंतस्यपुत्रोभूच्छुको नाम महाबलः । नाभागादंबरीषस्तु धृष्टस्य तु सुतत्रयम् ॥१२६॥
धृष्टकेतुः स्वधर्माथो रणधृष्टश्च वीर्यवान् । आनर्तो नाम शर्यातिःसुकन्या चैव दारिका ॥१२७॥
आनर्तस्याभवत्पुत्रो रोचमानः प्रतापवान् । आनर्तो नाम देशोभून्नगरी च कुशस्थली ॥१२८॥
रोचमानस्य रेवोभूद्रेवाद्रैवत एव च । ककुद्मी चापरं नाम ज्येष्ठः पुत्रशतस्य च ॥१२९॥
रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्य विश्रुता । करूषाच्चैव कारूषा बहवः प्रथिता भुवि ॥१३०॥
पृषध्रो गोवधाच्छूद्रो गुरुशापादजायत । इक्ष्वाकुपुत्रा नाम्नाथ विकुक्षिनिमिदंडकाः ॥१३१॥
श्रेष्ठाःपुत्रशतस्यासन्पंचाशच्चाथ तत्सुताः । मेरोरुत्तरतस्ते तु जाताः पार्थिवसत्तमाः ॥१३२॥
चत्वारिंशत्तथाष्टान्ये शतमध्ये च येऽभवन् । मेरोर्दक्षिणतश्चैव राजानस्ते प्रकीर्तिताः ॥१३३॥
ज्येष्ठात्ककुत्स्थनामाभूत्सुतस्तस्य सुयोधनः । तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वस्तस्य पृथोः सुतः ॥१३४॥
आर्द्रस्तस्य च पुत्रोभूद्युवनाश्वस्ततो भवत् । युवनाश्वस्य पुत्रोभूच्छावस्तो नाम वीर्यवान् ॥१३५॥
निर्मिता येन शावस्ती ह्यंगदेशे नराधिप । शावस्ताद्बृहदश्वोभूत्कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ॥१३६॥
धुंधुमारत्वमगमद्धुंधुं हत्वाऽसुरं पुरा । तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढाश्वोघृणिरेवच ॥१३७॥
कपिलाश्वश्च विख्यातो धौंधुमारिः प्रतापवान् । दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ॥१३८॥
हर्यश्वस्य निकुंभोभूत्संहताश्वस्ततो भवत् । अकृताश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ॥१३९॥
युवनाश्वोरणाश्वस्य मांधाता च ततोभवत् । मांधातुः पुरुकुत्सोभूद्धर्मसेतुश्च पार्थिवः ॥१४०॥
मुचुकुन्दश्च विख्यातश्शक्रमित्रः प्रतापवान् । पुरुकुत्सस्य पुत्रोभूद्दुस्सहो नर्मदापतिः ॥१४१॥

बाद सुद्युम्न दिव्य फलों का भोग करने के लिए इलावृत वर्ष में चले गये । ज्येष्ठ भाई इक्ष्वाकु मध्य देश को प्राप्त किए॥१२५॥ नरिष्यन्त के पुत्र महाबलवान् शुक हुए । नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए, धृष्ट के तीन पुत्र हुए ॥१२६॥ धृष्टकेतु, स्वधर्मनिष्ठ तथा पराक्रमी रणधृष्ट । शर्याति के पुत्र का नाम आनर्त था और पुत्री का नाम सुकन्या था । आनर्त के प्रतापी पुत्र रोचमान हुए । उनके देश का नाम आनर्त था और राजधानी उनकी कुशस्थली हुयी ॥१२७-१२८॥ रोचमान के पुत्र रेव हुए और रेव के पुत्र रैवत हुए । रेवत का दूसरा नाम ककुद्मी भी था । रैवत के सौ पुत्र में सबसे बड़े थे ॥१२९॥ रैवत की पुत्री का नाम रेवती था वह बलरामजी की पत्नी हुयीं । करुष के बहुत पुत्र थे जो संसार में कारूष के नाम से विख्यात हुए ॥१३०॥ गौ का वध करने के कारण पृषध्र वसिष्ठ के शाप से शूद्र हो गये । इक्ष्वाकु के तीन पुत्रश्रेष्ठ थे । विकुक्षि, निमि और दण्डक ॥१३१॥ ये तीनों इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में श्रेष्ठ थे और उन सौ में से पचास पुत्र जो थे वे सब सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में राजा हुए ॥१३२॥ सौ में से जो दूसरे अड़तालिस थे वे सुमेरु की दक्षिण दिशा के राजा हुए ॥१३३॥ इक्ष्वाकु के ज्येष्ठ पुत्र के पुत्र ककुत्स्थ हुए । ककुत्स्थ के पुत्र सुयोधन हुए । सुयोधन के पुत्र पृथु हुए । पृथु के पुत्र विश्व हुए ॥१३४॥ विश्व के पुत्र आर्द्र हुए । आर्द्र के पुत्र युवनाश्व हुए । युवनाश्व के प्रतापी पुत्र शावस्त हुए ॥१३५॥ हे नराधिप ! उन्होंने अङ्ग देश में शावस्ती नाम की नगरी को बसाया । शावस्त के पुत्र बृहदश्व हुए और उनके पुत्र कुवलाश्व हुए ॥१३६॥ कुवलाश्व धुन्धु नामक दैत्य को मारकर धुन्धुमार के नाम से प्रख्यात हुए । धुन्धुमार के तीन प्रख्यात पुत्र हुए, दृढाश्व, धृणि ॥१३७॥ तथा विख्यात कपिलाश्व । कपिलाश्व धुन्धुमार के प्रतापी पुत्र थे । दृढाश्व के पुत्र प्रमोद हुए और उनके पुत्र हर्यश्व हुए॥१३८॥ हर्यश्व के पुत्र निकुंभ और उनके पुत्र संहताश्व हुए । संहताश्व के दो पुत्र हुए अकृताश्व तथा रणाश्व॥१३९॥ रणाश्व के पुत्र युवनाश्व हुए और युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुए । मान्धाता के तीन पुत्र थे पुरुकुत्स, धर्मसेतु ॥१४०॥

संभूतिस्तस्य पुत्रोभूत्त्रिधन्वा च ततोभवत्। त्रिधन्वनः सुतोजातस्त्रय्यारूण इति स्मृतः ॥१४२॥
तस्य सत्यव्रतो नाम तस्मात्सत्यरथः स्मृतः। तस्य पुत्रोहरिश्चन्द्रो हरिश्चंद्राच्च रोहितः ॥१४३॥
रोहिताच्च वृको जातो वृकाद्वाहुरजायत । सगरस्तस्य पुत्रोभूद्राजा परमधार्मिकः ॥१४४॥
द्वेभार्येसगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा। ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वाग्निःपुत्रकाम्यया ॥१४५॥
और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम् । एका षष्ठिसहस्राणि सुतमेकं तथा परा ॥१४६॥
अगृह्णद्वंशकर्तारं प्रभाऽगृह्णाद्वहून्सुतान् । एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमंजसम्॥१४७॥
ततः षष्ठिसहस्राणि सुषुवे यादवी प्रभा । खनंतः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येश्वमार्गणे ॥१४८॥
असमंजस्तु तनयो ह्यंशुमान्नामविश्रुतः। तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः ॥१४९॥
येन भागीरथी गङ्गा तपःकृत्वाऽवतारिता। भगीरथस्य तनयो नाभाग इति विश्रुतः ॥१५०॥
नाभागस्यांबरीषोभूत्सिंधुद्वीपस्ततोऽभवत् । तस्यायुतायुः पुत्रोभूदृतुपर्णस्तोभवत् ॥१५१॥
तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः। तस्यानरण्यः पुत्रोभून्निघ्नस्तस्य सुतोभवत् ॥१५२॥
निघ्नपुत्रावुभौ जातावनमित्ररघूत्तमौ । अग्निमित्रोवनमगादरिनाशकृते नृप ॥१५३॥
रघोरभूद्दिलीपस्तु दिलीपाच्चाप्यजस्तथा । दीर्घबाहुरजाज्जातः प्रजापालस्ततोभवत् ॥१५४॥
ततो दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम्। नारायणात्मकाः सर्वेरामस्तस्याग्रजोभवत् ॥१५५॥
रावणांत करस्तद्वद्रघूणां वंशवर्द्धनः। वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ॥१५६॥
तस्य पुत्रः कुशो नाम इक्ष्वाकुकुलवर्द्धनः। अतिथिस्तु कुशाज्जातो निषधस्तस्य चात्मजः ॥१५७॥

तथा मुचुकुन्द, प्रतापी मुचकुन्द इन्द्र के मित्र के रूप में विख्यात हुए। पुरुकुत्स के पुत्र दुःसह हुए जो नर्मदा के पति थे ॥१४१॥ दुःसह के पुत्र त्रिधन्वा हुए। त्रिधन्वा के पुत्र त्रय्यारुणि हुए ॥१४२॥ त्रय्यारुणि के पुत्र सत्यव्रत हुए और उनके पुत्र सत्यरथ हुए। सत्यरथ के पुत्र हरिश्चन्द्र हुए और हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित हुए ॥१४३॥ रोहित के पुत्र वृक हुए, वृक के पुत्र बाहु हुए, उनके पुत्र सगर हुए। वे परम धार्मिक राजा थे ॥१४४॥ सगर की दो पत्नियाँ थी प्रभा और भानुमती। उन दोनों ने पुत्र प्राप्ति की कामना से और्व महर्षि की आराधना की ॥१४५॥ प्रसन्न होकर और्व ने उन दोनों को यथेष्ठ वर प्रदान किया। एक को साठ हजार पुत्र प्रदान किया और एक को वंश बढ़ाने वाला एक पुत्र ॥१४६॥ प्रभा ने बहुत से पुत्रों को लिया और भानुमती ने वंश को बढाने वाले असमंजस नामक पुत्र को स्वीकारा ॥१४७॥ उसके बाद यादववंश की पुत्री प्रभा ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया जो अश्वमेध के घोड़े के मार्ग को खनते हुए भगवान् विष्णु के अंश कपिल महर्षि के द्वारा भस्म कर दिये गये ॥१४८॥ असमंजस के विख्यात पुत्र अंशुमान हुए। उनके पुत्र दिलीप हुए। दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए ॥१४९॥ उन्होंने तपस्या के द्वारा भागीरथी गङ्गा को पृथिवी पर अवतीर्ण किया। भगीरथ के पुत्र नाभाग हुए ॥१५०॥ नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए। अम्बरीष के पुत्र सिन्धद्वीप हुए। उनके पुत्र अयुतायु हुए। आयुतायु के पुत्र ऋतुपर्ण हुए ॥१५१॥ ऋतुपर्ण के पुत्र कल्माषपाद हुए। उनके पुत्र सर्वकर्मा हुए। सर्वकर्मा के पुत्र अनरण्य हुए, उनके पुत्र निघ्न हुए ॥१५२॥ निघ्न के दो पुत्र हुए, अनमित्र तथा रघु। शत्रु का नाश हो जाने पर अनमित्र वन में चले गये ॥१५३॥ रघु के पुत्र दिलीप हुए और दिलीप के पुत्र अज हुए। अज के पुत्र दीर्घबाहु हुए उनके पुत्र प्रजापाल हुए ॥१५४॥ प्रजापाल के पुत्र दशरथ हुए। उनके चार पुत्र हुए। वे सबके सब नारायण स्वरूप थे। उनमें राम सबसे बड़े थे ॥१५५॥ राम ने रावण का विनाश किया। वे रघुवंशियों के वंश को बढाने वाले थे। भार्गवश्रेष्ठ वाल्मीक ने उनके चरित का वर्णन

नलस्तु निषधाज्जातो नभास्तस्मादजायत । नभसः पुंडरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः परम् ॥१५८॥
तस्य पुत्रोभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् । अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततःपरः ॥१५९॥
ततश्चंद्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत्। तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिश्चंद्रस्तस्य सुतो भवत् ॥१६०॥
श्रुतायुरभवत्तस्माद्भारते योनिपातितः । नलौद्वावेवविख्यातौ वंशे यस्य विशेषतः ॥१६१॥
वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिपः । एतेविवस्वतो वंशेराजानो भूरिदक्षिणाः ॥१६२॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥१६३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे आदित्यवंशकथनं नामाष्टमोध्यायः ॥८॥

नवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि पितृणां वंशमुत्तमम्। रवेश्च श्राद्धदेवस्य सोमस्य च विशेषतः ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

हंत ते कथयिष्यामि पितृणां वंशमुत्तमम् । स्वर्गेपितृगणाः सप्त त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥२॥
मूर्तिमंतोऽथचत्वारः सर्वेषाममितौजसाम् । अमूर्त्तयःपितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः ॥३॥
यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः। ये वै ते योगविभ्रष्टाः प्रापुर्लोकान्सनातनान् ॥४॥

किया ॥१५६॥ श्रीराम के पुत्र इक्ष्वाकु वंश वर्द्धन कुश हुए । कुश के पुत्र अतिथि हुए और उनके पुत्र निषध हुए॥१५७॥ निषध के पुत्र नल हुए और नल के पुत्र नभस् हुए । नभस के पुत्र पुण्डरीक हुए और उनके पुत्र क्षेमधन्वा हुए ॥१५८॥ उनके पुत्र प्रतापी वीर देवानीक हुए । देवानकी के पुत्र अहीनगु हुए । अहीनगु के पुत्र सहस्राश्व हुए ॥१५९॥ उनके पुत्र चन्द्रावलोक हुए उनके पुत्र तारापीड हुए । तारापीड के पुत्र चन्द्रगिरि हुए और उनके पुत्र चन्द्र हुए ॥१६०॥ उनके पुत्र श्रुतायु हुए जो महाभारत युद्ध में मारे गये । उनके वंश में दो नल विख्यात हुए पहला वीरसेन का पुत्र और दूसरा निषधाधिप नल ये सभी सूर्य के वंश में बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले राजा हुए ॥१६२॥ इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होने वाले प्रधान प्रधान राजाओं का वर्णन किया गया ॥१६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के सूर्यवंश वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

पितृवंश का वर्णन, माया के व्यभिचार के कारण मत्स्ययोनिज सत्यवती का भूलोक में आना, पितृश्राद्ध विधि, अनुपनीततथा विधुरों की साधारण श्राद्धविधि, शूद्र का अमन्त्रक श्राद्ध तथा आभ्युदयिक श्राद्ध का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— भगवन् मैं पितरों के वंश को सुनना चाहता हूँ, विशेषतः रवि, श्राद्धदेव और सोम के वंश को सुनना चाहता हूँ। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** अच्छा तो अब मैं तुम्हें पितरों के वंश को बतलाऊँगा । स्वर्ग में रहने वाले पितृगण सात हैं; उनमें तीन अमूर्त हैं ॥२॥ सभी पितरों में चार मूर्तिमान् हैं । वैराज प्रजापति के सन्तान के पितृगण अमूर्त हैं, जिन सबों की पूजा वैराज नामक देवगण करते हैं । जो योगभ्रष्ट होकर सनातन लोकों को प्राप्त

पुनर्ब्रह्मदिनांते तु जायंते ब्रह्मवादिनः। संप्राप्य तां स्मृतिं भूयो योगं सांख्यमनुत्तमम् ॥५॥
सिद्धिं प्रयांति योगेन पुनरावृत्तिदुर्ल्लभाम् । योगिनामेव देयानि तस्माच्छ्राद्धानि दातृभिः ॥६॥
एतेषां मानसी कन्या पत्नीहिमवतो मता । मैनाकस्तस्य दायादः क्रौंचस्तस्यसुतो भवत् ॥७॥
क्रौंचद्वीपःस्मृतो येन चतुर्थो वृतसंयुतः। मेना तु सुषुवे तिस्रः कन्या योगवतीस्ततः ॥८॥
उमैकपर्णा पर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः । रुद्रस्यैका भृगोश्चैका जैगीषव्यस्य चापरा ॥९॥
दत्ता हिमवता बालाःसर्वलोकतपोधिकाः । पितृणां लोकसंगीतं कथयामि शृणुष्व तत् ॥१०॥
लोकाः सोमपथा नाम यत्र मारीचनंदनाः। वर्त्तंते येन पितरो यान् देवा भावयन्त्यलम् ॥११॥
अग्निष्वात्ता इतिख्याता यज्वानो यत्र संस्थिताः । अच्छोदा नाम तेषां कन्याभूद्वरवर्णिनी ॥१२॥
अच्छोदं च सरस्तत्र पितृभिर्निर्मितं पुरा। अच्छोदाथ तपश्चक्रे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥१३॥
आजग्मुः पितरस्तुष्टा दास्यन्तः किल ते वरम् । दिव्यरूपधराः सर्वे दिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥१४॥
सर्वे प्रधाना बलिनः कुसुमायुधसन्निभाः। तन्मध्ये मावसुं नाम पितरं वीक्ष्य सांगना ॥१५॥
वव्रे वरार्थिनीं संगं कुसुमायुधपीडिता । योगाद्भ्रष्टा तु सा तेन व्यभिचारेण भामिनी ॥१६॥
धरान्नस्पृशते पूर्वं प्रयाताथभुवस्तले । तथैवामावसुर्योऽयमिच्छांचक्रे न तां प्रति ॥१७॥
धैर्येण तस्य सा लोके अमावास्येति विश्रुता । पितृणां वल्लभा यस्माद्दत्तस्याक्षयकारिका॥१८॥
अच्छोदाधोमुखी दीना लज्जिता तपसःक्षयात् । सा पितृन्प्रार्थयामास पुनरात्मसमृद्धये ॥१९॥

किए ॥३-४॥ ब्रह्माजी के दिन के समाप्त हो जाने पर वे योग तथा संख्या विषयक सर्वोत्तम स्मृति को प्राप्त करके ब्रह्मवादी हो जाते हैं ॥५॥ वे (संसार में आगमन रूप) पुनरावृत्ति रहित सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त कर लेते हैं । अतएव दाताओं को चाहिए कि वे योगियों को ही श्राद्धीय दान दें ॥६॥ पितरों की मानसी कन्या हिमवान् की पत्नी हुयी । हिमवान् का दायद (पुत्र) मैनाक था और उसका पुत्र क्रौञ्च पर्वत हुआ ॥७॥ उसी के कारण घृत से युक्त क्रौञ्च द्वीप हुआ । उसके बाद योगज्ञा मेना ने तीन कन्याओं को जन्म दिया ॥८॥ उनके नाम हैं उमा, एकपर्णा तथा पर्णा । ये तीनों तीव्र व्रत करने वाली थीं । हिमालय ने उन तीनों में से एक का विवाह रुद्र से, दूसरी का भृगु महर्षि से तथा तीसरी का जैगीषव्य महर्षि से कर दिया । ये तीनों सभी लोकों से अधिक तपस्या करने वाली थीं । मैं पितरों के लोक सङ्गीत को कहता हूँ, उसे तुम सुनो ॥९-१०॥ जहाँ पर मारीच नन्दन पितृगण रहते हैं वे सोमपथ नामक लोक हैं, जिसके द्वारा पितृगण जिन देवताओं का ध्यान करते हैं ॥११॥ जहाँ पर अग्निष्वाता नामक यज्ञ करने वाले पितृगण रहते हैं, उन पितरों की अच्छोदा नाम की सुन्दरी कन्या हुयी । वहीं पर पितरों ने प्राचीन काल में अच्छोद नामक सरोवर का निर्माण कर दिया । अच्छोदा ने देवताओं के एक हजार वर्ष तक तपस्या किया ॥१३॥ वहाँ पर पितृगण उसे वरदान देने के लिए आये, वे सब दिव्य रूप धारण करके दिव्यमाला धारण किए थे ॥१४॥ वे सव प्रधान तथा बलवान् थे तथा कामदेव के समान सुन्दर थे । उन पितरों में अमावसु नामक पितर को देखकर उसने ॥१५॥ कामार्त होकर उन्हे वर के रूप में माँगा । उस व्यभिचार के कारण वह सुन्दरी योगभ्रष्टा हो गयी ॥१६॥ जो पृथिवी पर चलती हुयी पृथिवी का स्पर्श नहीं करती थी, उसको अमावसु ने प्राप्त करना नहीं चाहा ॥१७॥ धैर्य के कारण वह लोक में अमावस्या नाम से प्रख्यात हुयी । पितरों को दी गयी वस्तुओं को अक्षय बनाने वाली होने के कारण वह पितरों को प्रिय हुयी ॥१८॥ तपस्या का क्षय हो जाने के कारण अपनी समृद्धि के लिए वह पितरों से प्रार्थना की तो लज्जित होती हुयी अच्छोदा से भविष्यत् कालिक देवताओ के कार्य को देखकर पितरों ने ॥१९-२०॥ प्रसन्न होकर

विलज्जमाना पितृभिरिदमुक्ता तपस्विनी । भविष्यमथ चालोक्य देवकार्यं च ते तदा॥२०॥
इदमूचुर्महाभागाः प्रसादशुभया गिरा। दिवि दिव्यशरीरेण यत्किंचित्क्रियते बुधैः॥२१॥
तेनैव तत्कर्मफलं भुज्यते वरवर्णिनि । सद्यः फलंति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे॥२२॥
तस्मात्त्वं सुकृतं कृत्वा प्राप्स्यसे प्रेत्य यत्फलम् । अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥२३॥
व्यतिक्रमात्पितृणां तु कष्टं कुलमवाप्स्यसि । तस्माद्राज्ञो वसोःकन्या त्वमवश्यं भविष्यसि ॥२४॥
कन्यात्वे देवलोकांस्तान्पुनः प्राप्स्यसि दुर्ल्लभान्। पराशरस्य वीर्येण पुत्रमेकमवाप्स्यसि ॥२५॥
द्वीपे तु बदरीप्राये बादरायणमप्युत। स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः ॥२६॥
पौरवस्यात्मजौ द्वौ तु समुद्रांशस्य शंतनोः। विचित्रवीर्यस्तनयस्तथा चित्रांगदो नृपः॥२७॥
इमावुत्पाद्य तनयौ क्षेत्रजौ तस्य धीमतः। प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यसि॥२८॥
नाम्ना सत्यवती लोके पितृलोके तथाष्टका। आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा॥२९॥
भविष्यसि परेलोके नदीत्वं च गमिष्यसि । पुण्यतोया सरिच्छ्रेष्ठा लोकेष्वच्छोदनामिका ॥३०॥
इत्युक्ता सा गणै स्तैस्तु तत्रैवांतरधीयत। साप्यापचारित्रफलं मया यदुदितं पुरा ॥३१॥
विभ्राजो नाम ये चान्ये दिवि संति सुवर्चसः । लोका बर्हिषदो यत्र पितरः संति सुव्रताः ॥३२॥
यत्र बर्हिषि युक्तानि विमानानि सहस्रशः । सङ्कल्पपादपा यत्र तिष्ठंति फलदायिनः॥३३॥
यदभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिनः । ये दानवासुरगणा गंधर्वाप्सरसांगणाः ॥३४॥
यक्षरक्षोगणास्ते च यजन्ति दिवि देवताः । पुलस्त्य पुत्राः शतशस्तपोयोगबलान्विताः ॥३५॥
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयङ्कराः । एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता॥३६॥

पितरों ने कहा विज्ञ पुरुष स्वर्ग लोक में दिव्य शरीर के द्वारा जो कुछ भी कर्म करते है, हे सुन्दरी ! उसी शरीर से वे उस कर्म का फल प्राप्त करते हैं । मनुष्य के मरकर देवत्व को प्राप्त कर लेने पर कर्मों का फल वे सद्यः प्राप्त करते हैं ॥२१-२२॥ अतएव तुम पुण्य करके जिस फल को प्राप्त करोगी, उसके कारण तुम अठाइसवें द्वापर में मत्स्य की योनि से उत्पन्न होओगी ॥२३॥ पितरों के व्यतिक्रम के कारण तुम इस कष्टप्रद वंश को प्राप्त करोगी । उसके कारण वसु राजा की कन्या अवश्य होओगी ॥२४॥ कन्या रहने पर ही तुम दुर्लभ देवलोकों को प्राप्त करोगी। महर्षि पराशर के वीर्य से तुम एक पुत्र को प्राप्त करोगी ॥२५॥ बदरी प्रधान द्वीप में बादरायण नामक वह तुम्हारा पुत्र होगा । तुम्हारा वह पुत्र एक ही वेद के अनेक विभागों को करने वाला होगा ॥२६॥ पुरुवंश में उत्पन्न समुद्र के अंशभूत शन्तनु के दो पुत्र विचित्र वीर्य तथा चित्रांगद को उत्पन्न करोगी ॥२७॥ राजा शन्तनु के क्षेत्रज उन दोनों पुत्रों को उत्पन्न करके तुम पुनः पितृलोक में प्रौष्ठपदी तथा अष्टका हो जाओगी ॥२८॥ तुम्हारा लोक में सत्यवती तथा पितृलोक में अष्टका नाम होगा । तुम सदा आयु, आरोग्य तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली होओगी ॥२९॥ लोक में अच्छेदा नाम वाली तुम अपने पुण्य के कारण परलोक में श्रेष्ठ नही होओगी ॥३०॥ पितरों द्वारा इस तरह कहे जाने पर वह वहीं अन्तर्धान हो गयी और चरित्र भ्रष्ट होने के कारण पूर्वोक्त फल को प्राप्त की ॥३१॥ स्वर्गलोक में जो विभ्राज नामक देदीप्यमान लोक हैं, वहाँ पर सुन्दर व्रत वाले वर्हिषद नामक पितृगण रहते हैं ॥३२॥ वहाँ पर मयूरों से युक्त हजारों विमान हैं, और सङ्कल्प मात्र से फल प्रदान करने वाले वृक्ष हैं ॥३३॥ जिसकी अभ्युदय शालाओं में श्राद्ध करने वाले आनन्दानुभव करते हैं । दानव, असुर, गन्धर्व तथा अप्सराओं के जो जो गण हैं॥३४॥ यक्ष तथा राक्षस गण हैं, वे भी स्वर्गलोक में देवताओं का पूजन करते है । वहाँ पर तपस्या तथा योग के

योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम् । प्रसन्नोभगवांस्तस्या वरं वव्रे तु साततः ॥३७॥
योगवंतं सुरूपं च भर्तारं विजितेन्द्रियम् । देहि देव प्रसन्नस्त्वं यदि ते वदतांवर ॥३८॥
उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यदा शुकः । भवित्री तस्य भार्या त्वं योगाचार्यस्य सुव्रता ॥३९॥
भविष्यति च ते कन्या कृत्ती नामाथयोगिनी । पांचालपतये देया सात्वताय तु सा तदा ॥४०॥
जननी ब्रह्मदत्तस्य योगसिद्धांतगा स्मृता । कृष्णगौरश्च शंभुश्च भविष्यंति च ते सुताः ॥४१॥
सर्वकामसमृद्धेषु विमानेष्वपि पावनाः । कि पुनः श्राद्धदा विप्रा भक्तिमंतः क्रियान्विताः ॥४२॥
गौर्नाम कन्या येषां तु मानसी दिवि राजते । सुकन्या दयिता पत्नी साध्यानां कीर्तिवर्द्धिनी ॥४३॥
मरीचिगर्भनामानो लोके मार्तडमंडले । पितरो यत्र तिष्ठंति हविष्मंतोऽगिरःसुताः ॥४४॥
तीर्थश्राद्धप्रदा यांति यत्र क्षत्रियसत्तमाः । राज्ञां तु पितरस्ते वै स्वर्गभोगफलप्रदाः ॥४५॥
एतेषां मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता । पत्नीयांशुमतः श्रेष्ठा स्नुषां पंचजनस्य च ॥४६॥
जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही । लोकाः कामदुघा नाम कामभोगफलप्रदाः ॥४७॥
सुस्वधानाम पितरो यत्र तिष्ठंति ते सुताः । आज्यपा नामलोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः ॥४८॥
पुलहाग्रजदायादा वैश्या सन्भावयंति ह । यत्र श्राद्धकृतः सर्वे पश्यंति युगपद्गताः ॥४९॥
मातृभ्रातृपितृस्वसृःसखिसंबन्धिबांधवान् । अपिजन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः ॥५०॥
एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता । सा पत्नी नहुषस्यासीद्ययातेर्जननी तथा ॥५१॥

बल से युक्त मेरे (पुलस्त्य महर्षि के) सैकड़ों पुत्र हैं ॥३५॥ वे महाभाग महात्मा भक्तों को अभय बना देने वाले हैं। सुना जाता है कि इन सबों की मानसी कन्या पीवरी स्वर्ग लोक में विद्यमान है ॥३६॥ वह योगिनी तथा योगमाता है। उसने कठोर तपस्या की । उससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उससे वर माँगने के लिए कहा तो उसने कहा ॥३७॥ हे वर देने वालों में श्रेष्ठ देव ! आप यदि प्रसन्न हैं तो मुझे, योगयुक्त, सुन्दर रूप वाले तथा जितेन्द्रिय पति प्रदान करें॥३८॥ ब्रह्माजी ने कहा कि जब व्यासजी के पुत्र शुकदेव जी होंगे तो उन योगाचार्य की तुम सुव्रता पत्नी होओगी। तुम्हारी कन्या कृती भी योगिनी होगी । उस समय तुम उसका पाञ्चालराज से विवाह करना ॥४०॥ योग के सिद्धान्त में पारङ्गत वह ब्रह्मदत्त की माँ बनेगी । तुम्हारे भी तीन पुत्र होंगे । कृष्ण, गौर और शम्भु ॥४१॥ सभी कामनाओं से समृद्ध विमानों में भी पवित्र बनाने वाले होते हैं । जो श्राद्ध करने वाले भक्ति सम्पन्न तथा क्रियावान् विप्र होते हैं, उनके विषय में क्या कहना है ?॥४२॥ पितरों की मानसी कन्या जो गौ है वह सुकन्या अपने पति साध्यगणों की प्रियतमा पत्नी तथा उनकी कीर्ति को बढाने वाली है ॥४३॥ मार्तण्ड मण्उल नामक मरीचि गर्भ पितरों के लोक में, जहाँ पर अङ्गिरा ऋषि के पुत्र हविष्मान् पितृगण रहते हैं । वे राजाओं के पितर हैं तथा भोगमोक्ष प्रदान करने वाले हैं। उस लोक में तीर्थश्राद्ध करने वाले श्रेष्ठ क्षत्रिय जाते हैं ॥४४-४५॥ इन पितरों की मानसी कन्या यशोदा नाम से विख्यात हैं, वह अंशुमान की पत्नी तथा पञ्चजन की पुत्रबधू है ॥४६॥ वह दिलीप की माता तथा भगीरथ की पितामही है । कामदुघ नामक जो लोक हैं काम तथा भोग प्रदान करने वाले हैं ॥४७॥ वहाँ सुस्वधा नामक पितरों का निवास है । वे कर्दम प्रजापति के पुत्र हैं तथा लोक में आज्यप नाम से विख्यात हैं ॥४८॥ पुलह के बड़े भाई से उत्पन्न वैश्यगण उनकी पूजा करते हैं । यज्ञ तथा श्राद्ध करने वाले वैश्य उसी लोक में जाते हैं ॥४९॥ वे एक ही समय में वहाँ अपने उन माता, भाई, पिता, सासु, मित्र तथा सम्बन्धी इत्यादि सहस्रों बान्धवों का दर्शन करते हैं, जिनका वे अपने दशो हजार जन्मों में अनुभव तथा दर्शन किए रहते हैं ॥५०॥ इन सबों की मानसी कन्या विरजा

एषाष्टकाभवत्पश्चाद्ब्रह्मलोकं गता सती । त्रय एते गणाः प्रोक्ता श्चतुर्थं तु वदाम्यहम् ॥५२॥
लोकाःसुमनसो नाम ब्रह्मलोको परिस्थिताः । सोमपा नाम पितरो यत्र तिष्ठंति शाश्वतम् ॥५३॥
धर्ममूर्तिधराः सर्वे परतो ब्रह्मणः स्मृताः । उत्पन्नाः प्रलयान्ते तु ब्रह्मत्वं प्राप्य योगिनः ॥५४॥
कृत्वा सृष्ट्यादिकं सर्वे मानसे सांप्रतं स्थिताः । नर्मदा नाम तेषां तु कन्या तोयवहा सरित् ॥५५॥
भूतानि पुनती यातु पश्चिमोदधिगामिनी । तेभ्यः सर्वत्र मनुजाः प्रजासर्गे च निर्मितम् ॥५६॥
ज्ञात्वा श्राद्धानि कुर्वंति धर्मभावेन सर्वदा । सर्वदा तेभ्य एवास्य प्रसादाद्योगसंततिः ॥५७॥
पितृणामादिसर्गे तु श्राद्धमेव विनिर्मितम् । सर्वेषां राजतं पात्रमथवाराजतान्वितम् ॥५८॥
दत्तं स्वधां पुरोधाय पितृन्प्रीणाति सर्वदा । आग्नीघ्र सोमपाभ्यां तु कार्यमाप्यायनं बुधैः ॥५९॥
अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ वाथ जलेपि वा। अजाकर्णे श्वकर्णे वा गोष्ठे वाथ शिवांतिके ॥६०॥
पितृणाममलं स्थानं दक्षिणा दिक् प्रशस्यते । प्राचीनावीतमुदकं तिलसंत्यागमेव च ॥६१॥
खड्गिनामामिषं चैवमन्नं श्यामाकशालयः । यवनीवारमुद्गेक्षुशुक्लपुष्पफलानि च ॥६२॥
वल्लभानि प्रशस्तानि पितृणामिह सर्वदा । दर्भा माष षष्टिकान्नं गोक्षीरं मधुसर्पिषी ॥६३॥
शस्त्राणि च प्रवक्ष्यामि श्राद्धे वर्ज्यानि यानि च । मसूरशणनिष्पावा राजमाषाः कुलुत्थकाः ॥६४॥
पद्मविल्वार्कधूत्तूरपारिभद्राटरूषकाः । न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा ॥६५॥
कोद्रवो दारवरटकपित्थं मधुकातसी । एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्रियमिच्छता ॥६६॥

नाम से विख्यात है, वह नहुष की पत्नी तथा ययाति की माता थी ॥५१॥ यही बाद में ब्रह्मलोक में जाकर अष्टका हो गयी । इस तरह से मैंने पितरों के तीन गणों को बतलाया अब चौथे गण को बतला रहा हूँ ॥५२॥ ब्रह्मलोक के ऊपर सुमनस नामक लोक हैं । वहाँ पर सदा सोमय नामक पितृगण रहते हैं ॥५३॥ वे धर्ममय शरीर वाले तथा ब्रह्माजी से भी श्रेष्ठ हैं । वहाँ पर प्रलय के अन्त में ब्रह्मत्व को प्राप्त करके योगिगण उत्पन्न हुए ॥५४॥ वे सब सृष्टि आदि करके इस समय मन में स्थित हैं । उनकी मानसी कन्या का नाम नर्मदा है । जो सदा जल प्रवाहित होते रहने वाली नदी स्वरूपा है ॥५५॥ जीवों को पवित्र बनाती हुयी वह पश्चिम समुद्र में जाकर मिल जाती है । उन सोमप नामक पितरों से ही प्रजासर्ग की सृष्टि हुयी है ॥५६॥ इस बात को जानकर लोग धर्म की भावना से श्राद्ध करते हैं। उन पितरों की ही कृपा से योग का विस्तार होता है ॥५७॥ इस तरह से पितरों के आदि सर्ग में इस प्रकार से श्राद्ध का निर्माण हुआ । श्राद्ध में सभी पात्रों को चाँदी का होना चाहिए अथवा उन्हें चाँदी युक्त होना चाहिए ॥५८॥ पितरों के उद्देश्य से स्वधा शब्द का उच्चारण किया हुआ । पुरोहित को दान पितरों को तृप्त कर देता है । अग्निहोत्री तथा सोमप ब्राह्मणों से ही अग्निहोत्र के द्वारा पितरों को तृप्त करना चाहिए ॥५९॥ अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के हाथ पर अथवा जल में अजा (बकरी) के कान में अथवा घोड़े के कान में अथवा शिवजी के सन्निकट पितरों के लिए दान करे॥६०॥ पितरों के लिए दक्षिण दिशा प्रशस्त मानी गयी है । यज्ञोपवीत को अपसव्य करके तिल तथा जल से श्राद्ध एवं तर्पण करे ॥६१॥ गैंडे का मास, अन्न, सांवा, अगहनी का चावल, यव, नीवार, मूंग, ईख, उजले पुष्प तथा फल ये पितरों को प्रिय तथा श्राद्ध में प्रशस्त होते हैं । कुश, उड़द, साठी का चालव, मधु, गोदुग्ध, शहद तथा गोधृत पितरों को प्रिय हैं ॥६२-६३॥ अब मैं ऐसे पदार्थों को बतलाता हूँ जो श्राद्ध में बिल्कूल वर्जित हैं मसूर, शण, निष्पावा (मटर) राजमाष (काली उड़द) कुलथी, कमल, विल्व, मदार, धत्तूर, परिभद्रट, रूषक, भेड़ अथवा बकरी के दूध कोदो, उदार, वरट, कैंथ, महुआ, अतसी (तिसी या अलसी) कल्याण चाहने वाले को चाहिये कि वे

पितृन्प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयंति तम् । यच्छंति पितरः पुष्टिं स्वांगारोग्यं प्रजाफलम् ॥६७॥
देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते । देवताभ्यः पितृणां तु पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ॥६८॥
शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधा निस्संगाःस्थिरसौहृदाः । शांतात्मानः शौचपराः सततं प्रियवादिनः ॥६९॥
भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पर्वदेवताः । हविष्मताधिपत्ये श्राद्धदेवः स्मृतो रविः ॥७०॥
एतद्धि सर्वमाख्यातं पितृवंशानुकीर्त्तनम् । पुण्यंपवित्रमारोग्यं कीर्त्तनीयं नृभिः सदा ॥७१॥

भीष्म उवाच

श्रुत्वैतदखिलं भूयः परा भक्तिरूपस्थिता । श्राद्धकालं विधिं चैव श्राद्धमेव तथैव च ॥७२॥
श्राद्धेषु भोजनीया ये श्राद्धवर्ज्या द्विजातयः । कस्मिनवासरभागे तु पितृभ्यः श्राद्धमारभेत् ॥७३॥
अन्नं दत्तं कथं याति श्राद्धे वै ब्रह्मवित्तम । विधिना केन कर्तव्यं कथं प्रीणाति तान् पितॄन् ॥७४॥

पुलस्त्य उवाच

कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च । पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥७५॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते । नित्यं तावत्प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥७६॥
अदैवतं विजानीयात्पार्वणं पर्वसु स्मृतम् । पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणु यत्नान्महीपते ॥७७॥
पार्वणे ये नियोज्यास्तु तान्शृणुष्व नराधिप । पंचाग्निः स्नातकश्चैव त्रिसौपर्णः षडंगवित् ॥७८॥
श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतो विधिवाक्यविशारदः । सर्वज्ञो वेदवान्मंत्री ज्ञानवंशकुलान्वितः ॥७९॥
त्रिणाचिकेतास्त्रिमधुः श्रुतेष्वन्येषु संस्थितः । पुराणवेत्ता ब्रह्मज्ञः स्वाध्यायी जपतत्परः ॥८०॥

श्राद्ध में इन सब वस्तुओं का उपयोग न करें ॥६४-६६॥ जो भक्तिपूर्वक पितरों को प्रसन्न करता है पितृगण उसको भी सुखी बना देते हैं । पितृगण, अङ्गों की पुष्टि, आरोग्य तथा प्रजारूपी फल को प्रदान करते हैं ॥६७॥ पितृकार्य देवकार्य से भी श्रेष्ठ हैं । इसीलिए पितरों की तृप्ति देवताओं से पहले बतलायी गयी है ॥६८॥ पितृगण शीघ्र प्रसन्न होने वाले, क्रोध रहित, स्थिर सौहार्द वाले, शान्त, पवित्र तथा सदा प्रिय बोलने वाले होते हैं ॥६८-६९॥ भक्तों से प्रेम करने वाले, सुख देने वाले पितृगण पर्वों के देवता हैं । हविष्मान पितरों के अधिपति सूर्य ही श्राद्ध के देवता हैं॥७०॥ इसतरह से मैंने पितरों के पवित्र वंश का वर्णन किया मनुष्यों को चाहिए कि वे इस पुण्य, पवित्र, अरोग्य प्रदान करने वाले आख्यान का सदा कीर्तन किया करें ॥७१॥ **भीष्मजी ने कहा—** इन सारी बातों को सुनकर मुझमें अत्यन्त भक्ति उत्पन्न हो गयी है । अब आप मुझे श्राद्ध का काल, श्राद्ध की विधि तथा श्राद्ध के स्वरूप को बतलायें । यह भी बतलायें कि श्राद्ध में किन ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए तथा किन ब्राह्मणों को श्राद्ध में त्याग कर देना चाहिए । दिन के किस भाग में श्राद्ध प्रारम्भ करना चाहिए ॥७३॥ श्राद्ध में दिया हुआ अन्न पितरों को कैसे प्राप्त होता है ? श्राद्ध को किस विधि से करना चाहिये ? श्राद्ध किस प्रकार पितरों को प्रसन्न करता है ॥७४॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** अन्न तथा जल आदि से प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिए, अथवा दूध, मूल, फल के द्वारा पितरों को प्रसन्न करते हुए श्राद्ध करे ॥७५॥ श्राद्ध तीन प्रकार का होता है नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य । जो श्राद्ध पर्व पर किए जाते हैं वे पार्वण श्राद्ध कहलाते हैं । पार्वण श्राद्ध तीन प्रकार का होता है । हे राजन् ! इसे सावधानी पूर्वक सुनो ॥७७॥ पार्वण में जिन ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना चाहिए उन सबों को तुम सुनो । पञ्चाग्नि का सेवन करने वाले, स्नातक, त्रिसौपर्ण, वेदांगों के ज्ञाता ॥७८॥ श्रोत्रिय (वेदज्ञ) श्रोत्रिय का पुत्र, वेदों के विधिवाक्यों को जानने वाले, सर्वज्ञ, वेदाध्ययन करने वाले, मन्त्र का जप करने वाले, सद्वंश तथा सत्कुल वाले ज्ञानी ॥७९॥

ब्रह्मभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः । ब्राह्मणो योगनिष्ठात्मा विजितात्मा सुशीलवान् ॥८१॥
एते तोष्याः प्रयत्नेन वर्जनीयानिमान् शृणु । पतितस्तत्सुतः क्लीबः पिशुनो व्यंगरोगितः ॥८२॥
सर्वे ते श्राद्धकाले तु त्याज्या वै धर्मदर्शिभिः । पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतांश्च निमंत्रयेत् ॥८३॥
निमंत्रितांश्च पितर उपतिष्ठंति तान् द्विजान् । वायुभूतानि गच्छंति तथासीनानुपासते ॥८४॥
दक्षिणं जानु चालभ्य वामं पात्य निमंत्रयेत् । अक्रोधनैः शौचपरैः सुस्नातैर्ब्रह्मवादिभिः ॥८५॥
भवितव्यं भवद्भिस्तु मया च श्राद्धकर्मणि । पितृयज्ञं विनिर्वर्त्यतर्पणाख्यं तु योग्निमान् ॥८६॥
पिडान्वा हार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिंदुक्षये तथा । गोमयेनानुलिप्ते तु दक्षिणा प्लवनस्थले ॥८७॥
श्राद्धं समारभेद्धक्त्या गोष्ठे वा जलसन्निधौ । अग्निमान्निर्वपेत्पित्र्यं चरुं वा सक्तु मुष्टिभिः ॥८८॥
पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत् । अभिघार्य ततः कुर्यान्निर्वापत्रयमग्रतः ॥८९॥
तेवितस्त्यायताः कार्याश्चतुरङ्गलुविस्तृताः । दर्वीत्रयं च कुर्वीत खादिरं रजतान्वितम् ॥९०॥
रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम् । उदपात्राणि कांस्यस्य मे क्षणं च समित्कुशम् ॥९१॥
तिलपात्राणि सद्वासो गंधधूपानुलेपनम् । आहरेदपसव्यं च सर्वं दक्षिणतः शनैः ॥९२॥
एवमासाद्य तत्सर्वं भवनस्योत्तरेंतरे । गोमयेनानुलिप्तायां गोमूत्रेण च मंडलम् ॥९३॥
साक्षताभिः सपुष्पाभिरद्भिः सव्यापसव्यवत् । विप्राणां क्षालयेत्पादावभिवंद्य पुनः पुनः ॥९४॥

त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, अन्य शास्त्रों को भी जानने वाले, पुराणों के ज्ञाता, ब्रह्मज्ञानी, स्वाध्याय करने वाले, जप करने वाले ॥८०॥ ब्राह्मण भक्त, पिता की सेवा करने वाले, सूर्य का भक्त, वैष्णव, ब्रह्मवेत्ता, योगों को जानने वाले, जितेन्द्रिय, सुशील ॥८१॥ श्राद्ध में ऐसे ब्राह्मणों को प्रयत्न पूर्वक सन्तुष्ट करना चाहिए । अब श्राद्ध में वर्जनीय (नहीं भोजन कराने योग्य) ब्राह्मणों को सुनो । पतित, पतित का पुत्र, नपुंसक, कृपण, रोग से अत्यन्त पीडित ब्राह्मणों को श्राद्ध के समय विल्कुल त्याग देना चाहिए । श्राद्ध से एक दिन या दो दिन पहले ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए॥८२-८३॥ निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में पितरों का आवेश हो जाता है । वे वायु बनकर उन ब्राहाणों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और उन ब्राह्मणों के बैठ जाने पर वे भी बैठ जाते हैं ॥८४॥ दाहिना घुटना पकड़कर तथा वायाँ पृथिवी पर गिराकर ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए । यह ब्राह्मणों से प्रार्थना करे कि आपलोग मेरे द्वारा किए जाने वाले इस श्राद्धमें क्रोध रहित, पवित्र, सुस्नात तथा ब्रह्मवादी बनें ॥८५॥ अग्निहोत्री तर्पण नामक पितृकार्य को पूरा करके तथा आहार्यक पिण्डों का निर्माण करके अमावस्या के दिन श्राद्ध करे । श्राद्ध के स्थान को दक्षिण की ओर नीचा होना चाहिए । उस स्थान को गोबर से लिप दे ॥८६-८७॥ श्राद्ध गोशाल अथवा जलाशय के सन्निकट प्रारम्भ करना चाहिए । अग्निहोत्री पुरुष चरु अथवा सत्तू के द्वारा श्राद्ध करे । वह चरु बनाकर कहे कि इससे मैं पितरों का श्राद्ध करूँगा और उसे दक्षिण दिशा में रख दे । उसके बाद उसमें मधु, घी तथा तिल मिला दे । फिर अपने सामने तीन वेदियों को बनाये ॥८९॥ उन वेदियों को चार अङ्गुल चौड़ी तथा एक वित्ता लम्बा होना चाहिए । उसके बाद चाँदी से युक्त तीन खैर की लकड़ी के तीन करछूल को बनावे ॥९०॥ उसको एक हाथ लम्बा चिकना और आगे की ओर हाथ के आकार का होना चाहिए । उसके बाद दक्षिण दिशा में जलपात्र, कांस्यपात्र, प्रोक्षण, समिधा, कुश ॥९१॥ उत्तम वस्त्र, चन्दन, धूप, अनुलेपन को अपसव्य होकर रखना चाहिए । इन सारी वस्तुओं को एकत्रित करके घर के उत्तर दिशा में गोबर से लिपी हुयी भूमि पर गोमूत्र से मण्डल वनाये ॥९३॥ इसके बाद अक्षत एवं पुष्प से युक्त जल से क्रमशः सव्य एवं अपसव्य होते हुए ब्राह्मणों का पैर धोए । उनको वार-बार प्रणाम करके॥९४॥

आसनेषूपविष्टेषु दर्भवत्सुविधानतः । उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमंत्रयेत् ॥९५॥
द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकं चोभयत्र वा । भोजयेदीश्वरोपीह न कुर्याद्विस्तरं बुधः ॥९६॥
दैवपूर्वंनिवेद्याथ विप्रानर्घादिना बुधैः । अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि ॥९७॥
स्वगृह्योक्तेन विधिना काले कृत्वा समंततः । अग्नीषोममयाभ्यांतु कुर्यादाप्यायनं बुधः ॥९८॥
दक्षिणाग्नौ प्रणीतेन स एवाग्निर्द्विजोत्तमः । यज्ञोपवीतान्निर्वर्त्य ततः पर्युक्षणादिकम् ॥९९॥
प्राचीनावीतिना कार्यमेतत्सर्वं विजानता । लब्ध्वा तस्माद्विशेषेणा पिंडान् कुर्वीत चोदकम्॥१००॥
दद्यादुदकपात्रैस्तु सलिलं सव्यपाणिना । दद्यात्सर्वंप्रयत्नेन दमयुक्तो विमत्सरः ॥१०१॥
विधाय रेखां यत्नेन निर्वपेदवनेजनं । दक्षिणाभिमुखः कुर्यात्ततो दर्भान्निधाय वै ॥१०२॥
निधायपिंडमेकैकं सर्वं दर्भोपरि क्रमात् । निर्वपेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः ॥१०३॥
तेषु दर्भेषु तं हस्तं विमृज्याल्लेपभागिनाम् । तथैव च जपं कुर्यात्पुनःप्रत्यवनेजनम् ॥१०४॥
जलयुक्तं नमस्कृत्य गंधधूपार्चनादिभिः । एवमावाह्य तत्सर्वं वेदमंत्रैर्यथोदितैः ॥१०५॥
एकाग्निरेकएवाद्भिर्निर्वपेद्दर्विकां तथा । ततः कृत्वा नरो दद्यात्पितृभ्यस्तु कुशान् बुधः॥१०६॥
ततःपिंडादिकं कुर्यादावाहनविसर्जनम् । ततो गृहीत्वा पिंडेभ्यो मात्राः सर्वाः क्रमेण तु॥१०७॥
तानेवविप्रानप्रथममाशयित्वा च मानवः । वर्णयन्भोजयेदन्नमिष्टं पूतं च सर्वदा॥१०८॥
वर्जयेत्क्रोधपरतां स्मरन्नारायणं हरिम् । तृप्तान् ज्ञात्वा पुनः कुर्याद्विकिरं सार्ववर्णिकम्॥१०९॥

कुश युक्त आसन पर बैठे हुए ब्राह्मणों के विधिपूर्वक आचमन कर लेने पर आसन पर बैठाकर उनसे मन्त्रोच्चारण कराये । अथवा उनको मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे ॥९५॥ श्राद्धकर्त्ता के बहुत अधिक धनिक होने पर भी दैव कृत्य में दो तथा पितृकृत्य में तीन अथवा दोनों में एक-एक ही ब्राह्मण को भोजन करना चाहिए, इससे अधिक विस्तार नहीं करे ॥९६॥ पहले देवताक ब्राह्मणों को अर्घ्य इत्यादि प्रदान करके उसके बाद पितृ सम्बन्धी ब्राह्मणों को अर्घ्य इत्यादि प्रदान करना चाहिए । उसके बाद उन ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर अग्नि में होम इत्यादि करे । अपने गृह्यसूत्र में वर्णित विधि से समयानुसार होम इत्यादि करे । वह चरु से अग्नि तथा सोम को आहुति देकर उनका आप्यायन करे ॥९८॥ इन सबों को दक्षिणाग्नि में ही करना चाहिए । वह अग्नि ही श्रेष्ठ ब्राह्मण है । उसके बाद पितरों के लिए किए जाने वाले पर्युक्षण आदि सभी कार्यों को विज्ञ पुरुष को अपसव्य होकर ही करना चाहिए । हवन से बचे हुए अन्न को लेकर उससे कई पिण्डों को बनाये और उसका दान जल और तिल के साथ दाहिने हाथ से करे । इन सभी कार्यों को जितेन्द्रिय तथा मत्सर रहित होकर करना चाहिए ॥१०१॥ उसके बाद वेदी पर कुश से रेखा बनाकर सावधानी पूर्वक अवनेजन डाले । इसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर कुश रखकर ॥१०२॥ कुशों पर एक-एक पिण्ड को सभी कुशों पर रखे । और पितरों के नाम तथा गोत्र का उच्चारण करे ॥१०३॥ उन कुशों पर उस हाथ को पोंछकर, कहे कि **लेपभागभुजः पितरः तृप्यन्तु** अर्थात् इससे लेपभाग भोजी पितृगण तृप्त हों । इसके बाद फिर प्रत्यवनेजन करे ॥१०४॥ उसके बाद जल युक्त पिण्डों को नमस्कार करके उनकी धूप दीप इत्यादि से पूजन करे । इसी तरह से सभी पितरों को आवाहन करके श्राद्ध कल्प के मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ॥१०५॥ आहवनीय एक-एक अग्नि के प्रतिनिधि भूत एक-एक ब्राह्मण को एक-एक कलछूल दे देना चाहिए । उसके बाद विज्ञ पुरुष पिण्डों पर पितरों के लिए कुश रखे ॥१०६॥ उसके बाद पिण्डों आदि का विसर्जन कर देना चाहिए । उसके बाद सभी पिण्डों से थोड़ा-थोड़ा अंश निकाले ॥१०७॥ और उसी अंश को पहने ब्राह्मणों को खिलाकर उन

विधृत्य सोदकं त्वन्नं सतिलं प्रक्षिपेद्भुवि । आचांतेषु पुनर्दद्याज्जलं पुष्पाक्षतोदकम् ॥११०॥
स्वधावाचनकं सर्वं पिंडोपरि समाचरेत् । देवाद्यंतं प्रकुर्वीत श्राद्धनाशोन्यथा भवेत् ॥१११॥
विसृज्य विप्रान् प्रणतस्तेषां कृत्वा प्रदक्षिणम्। दक्षिणां दिशमाकांक्षन्पितॄनुद्दिश्य मानवः ॥११२॥
दातारो नोभिवर्द्धतां वेदाः संततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं यं च नो स्त्विति॥११३॥
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सतु मा च याचिष्म कंचन॥११४॥
एतदग्निमतः प्रोक्तमन्वाहार्यं तु पार्वणम् । यथेंदुसंक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते ॥११५॥
पिंडांस्तु गोजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा। वप्रांते वाथ विकिरेदापोभिरथ वापयेत् ॥११६॥
पत्नीं तु मध्यमं पिंडं प्राशयेद्विनयान्विताम्। आधत्त पितरो गर्भं पुत्रसंतानवर्द्धनम् ॥११७॥
तावन्निर्वापणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः। वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्तः पितृकर्मणः ॥११८॥
इष्टैः सह ततः शांतो भुंजीत पितृसेवितम्। पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् ॥११९॥
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुग्यो वा सर्वमेतद्विवर्जयेत् । स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नं च सर्वदा ॥१२०॥
अनेन विधिना श्राद्धं त्रिवर्गस्येह निर्वपेत् । कन्याकुंभवृषस्थेर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा॥१२१॥
यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिंडीकरणात्मकम् । तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा ॥१२२॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदीरितम् । श्राद्धं साधारणं नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥१२३॥

ब्राह्मणों को अभिप्रेत पवित्र भोजन कराये ॥१०८॥ भगवान् श्रीहरि का स्मरण करता रहे, क्रोध न करे । ब्राह्मण जब भोजन करके तृप्त हो जायँ तब सार्ववर्णिक विकिर कर्म करे ॥१०९॥ तिल एवं जल के साथ अन्न को लेकर उसे पृथिवी पर डाल दे । ब्राह्मणों के आचमन कर लेने के बाद पिण्डों पर जल, पुष्प एवं अक्षत प्रदान करे ॥११०॥ उसके बाद पिण्ड पर ही स्वधा वाचक सभी कर्मों को करे । स्वधा कर्म को देवादि पर्यन्त करना चाहिए अन्यथा श्राद्ध का नाश हो जाता है ॥१११॥ फिर प्रणत होकर ब्राह्मणों का विसर्जन करके उनकी प्रदक्षिण करे । उसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर पितरों से प्रार्थना करे ॥११२॥ मुझको देने वाले बढें, वेदों तथा सन्तानों की समृद्धि हो । हमारी श्रद्धा कभी भी समाप्त न हो, हम बहुत अधिक दान करें ॥११३॥ हमारे यहाँ अन्न बहुत होए । अतिथियों को मैं प्राप्त करता रहूँ । याचना करने वाले लोग मेरे पास आयें, मैं किसी से भी याचना न करूँ ॥११४॥ यह अग्निहोत्री ब्राह्मणों का अन्वाहार्य पार्वण कहलाता है । यह अमावस्या के दिन जैसे किया जाता है उसको अन्यत्र भी बतलाया गया है ॥११५॥ पिण्डों को गाय अथवा बकरी को खिला दे, अथवा ब्राह्मणों को दे दे । या अग्नि अथवा जल में डाल दे । या उसे खेत में बिखेर दे या धारा में बहा दे ॥११६॥ विनीत पत्नी को मध्यम पिण्ड को खिला दे और पितरों से प्रार्थना करे कि हे पितृगण आपलोग इसके गर्भ में सन्तान वर्द्धक पुत्र का आधान कर दें ॥११७॥ जब तक ब्राह्मणों का विसर्जन नहीं हो जाता है तब तक श्राद्ध तथा पिण्डदान आदि की स्थिति बनी रहती है । पितृकर्म से निवृत्त होने के बाद श्राद्ध कर्त्ता बलिवैश्वदेव करे ॥११८॥ उसके बाद पितरों से सेवित अन्न का शान्ति पूर्वक इष्ट मित्रों के साथ भोजन करे । उस दिन श्राद्ध करने वाले तथा श्राद्ध में भोजन करने वाले को फिर भोजन, मार्ग में चलना, सवारी पर चलना, व्यायाम करना तथा मैथुन करने आदि को त्यागना चाहिए, उस दिन वेदाध्ययन, कलह तथा दिन में सोना आदि को भी त्याग देना चाहिए ॥१२०॥ इस विधि से किया गया श्राद्ध त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) को प्रदान करने वाला होता है । जब सूर्य कन्या, कुम्भ तथा वृष राशि पर हो तो कृष्णपक्षमें प्रतिदिनि श्राद्ध करे ॥१२१॥ अग्निहोत्री को चाहिए कि उसे जहाँ-जहाँ पर श्राद्ध करना हो वहाँ-वहाँ सपिण्डी करण विधि से इसी

अयने विषुवे चैव अमावस्यार्कसंक्रमे । अमावस्याष्टकाकृष्णपक्षपंचदशीषु च ॥१२४॥
आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसंगमे । गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिवैधृतिवासरे ॥१२५॥
वैशाखस्य तृतीयायां नवमी कार्तिकस्य च । पंचदशी तु माघस्य नभस्ये च त्रयोदशी ॥१२६॥
युगादयः स्मृता ह्येताः पितृपक्षोपकारिकाः । तथामन्वंतरादौ च देयं श्राद्धं विजानता ॥१२७॥
अश्वयुङ्नवमीचैवद्वादशीकार्तिकितथा । तृतीयाचैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥१२८॥
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥१२९॥
श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैव ज्येष्ठे पंचदशी सिता ॥१३०॥
मन्वंतरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः । पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं, दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः॥१३१॥
श्राद्धं कृतं तेन समास्सहस्रं, रहस्यमेतत्पितरो वदंति । वैशाख्यामुपावासेषु तथोत्सवमहालये ॥१३२॥
तीर्थायतनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च । विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता ॥१३३॥
विप्रान्पूर्वेपरे चाह्नि विनीतात्मा निमंत्रयेत् । शीलवृत्तगुणोपेतान्वयो रूपसमन्वितान् ॥१३४॥
द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोपि न प्रकुर्वीत विस्तरम् ॥१३५॥
विश्वेदेवान्यवैःपुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु स्थाप्यं दर्भपवित्रके ॥१३६॥
शन्नोदेवीत्यपःकुर्याद्यवोसीतियवानपि । गंधपुष्पैस्तु संपूज्य विश्वान् देवान् प्रतिन्यसेत् ॥१३७॥

तरह श्राद्ध करना चाहिए ॥१२२॥ इसके बाद जिसे ब्रह्माजी ने बतलाया है उस साधारण श्राद्ध को मैं बतलाऊँगा । यह श्राद्ध भोग तथा मोक्ष रूपी फल को प्रदान करने वाला होता है ॥१२३॥ उत्तरायण तथा दक्षिणायन के प्रारम्भ होने के दिन तुला तथा मेष की संक्रान्ति रूप विषुव नामक योग में, प्रत्येक अमावस्या, तथा प्रत्येक संक्रान्ति के दिन, (पौष, माघ, फाल्गुन तथा अश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी रूप) अष्टका तिथियों में, पूर्णिमा को॥१२४॥ आर्द्रा, मघा और रोहिणी इन नक्षत्रों में, श्राद्ध के योग्य उत्तम द्रव्य के मिलने पर उत्तम ब्राह्मण के मिलने पर, व्यतिपात, विष्टि तथा वैधृति योग जिस दिन हो, उस दिन ॥१२५॥ वैशाख मास की तृतीया को, कार्तिक मास की नवमी तिथि को, माघ मास की पूर्णिमा को तथा भाद्र पद मास की त्रयोदशी तिथि को श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिए ॥१२६॥ उपर्युक्त सभी तिथियाँ युगादि कहलाती है और पितरों का उपकार करने वाली होती हैं । इसी तरह मन्वन्तरादि तिथि में भी श्राद्ध करना चाहिए ॥१२७॥ आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, चैत्र तथा भाद्र पद मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया, फाल्गुन मास की अमावस्या, पौष शुक्ल एकादशी, आषाढ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल सप्तमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, आषाढ, कार्तिक, फाल्गुन तथा ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा ॥१२८-१३०॥ ये मन्वन्तरादि तिथियाँ हैं । इन तिथियों में किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह इन तिथियों में पितरों को तिल मिश्रित जल दान करे ॥१३१॥ इन तिथियों को श्राद्ध करने वाले को हजार वर्षों तक श्राद्ध करने का फल प्राप्त होता है, इस रहस्य को पितृगण ही बतलाते हैं । विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह वैशाख की पूर्णिमा, ग्रहण के दिन, किसी उत्सव के अवसर पर और महालय (अश्विन कृष्णपक्ष) में किसी तीर्थ, मन्दिर, गोशला, द्वीप, उद्यान तथा गृह आदि में लिपे हुए एकान्त स्थान में श्राद्ध करे ॥१३२-१३३॥ नम्रता पूर्वक श्राद्ध से एक दिन पहले अथवा श्राद्ध के ही दिन ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे । ब्राह्मणों को शील गुण सम्पन्न एवं अवस्था एवं रूप से युक्त होना चाहिए ॥१३४॥ विश्वेदेव के लिए दो तथा पितरों के लिए तीन ब्राह्मणों को, अथवा दोनों के लिए एक-एक ही ब्राह्मणों को ही भोजन कराना चाहिए । ब्राह्मणों का विरतार न करे ॥१३५॥ विश्वेदेवों को आसन प्रदान

विश्वेदेवास इत्याभ्यामावाह्य विकिरेद्यवान् । यवोसिधान्यराजस्त्वं वारुणो मधुमिश्रितः ॥१३८॥
निर्णुदः सर्वपापानां पवित्रऋषिसंस्तुतः । गंधपुष्पैरलंकृत्य यादिव्येत्यर्घमुत्सृजेत् ॥१३९॥
अभ्यर्च्य गंधाद्युत्सृज्य पितृयज्ञं समारभेत् । दर्भासनादिकृत्वा दौ त्रीणि पात्राणि चार्चयेत् ॥१४०॥
सपवित्राणि कृत्वादौ शन्नोदेवीत्यपः क्षिपेत्। तिलोसीति तिलान्कुर्याद्गन्धपुष्पादिकं पुनः ॥१४१॥
पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः । राजतं वा प्रकुर्वीत तथा सागरसंभवम् ॥१४२॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं पितृणां पात्रमुच्यते । रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव च ॥१४३॥
राजतैर्भाजनैरेषां पितृणां रजतान्वितैः । वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥१४४॥
अद्यापि पितृपात्रेषु पितृणां राजतान्वितम् । शिवनेत्रोद्भवं यस्मादुत्तमं पितृवल्लभम् ॥१४५॥
एवं पात्राणि संकल्प्य यथालाभं विमत्सरः । यादिव्येति पितुर्नामगोत्रे दर्भान्करे न्यसेत् ॥१४६॥
पितृनावाहयिष्यामि तथेत्युक्तः स तैः पुनः । उशंतस्त्वा तथायन्तुऋग्भ्यामावाहयेत्पितृन् ॥१४७॥
यादिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद्गंधादिकं ततः । वस्त्रोत्तरं दर्भपूर्वं दत्वा संश्रयमादितः ॥१४८॥
पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत् । पितृभ्यःस्थानमसीति निधाय परिवेषयेत् ॥१४९॥

करके यव तथा पुष्प से पूजा करके उनके लिए दो पात्रों को जल से भरे, (क्योंकि विश्वेदेव के लिए दो आसन होते हैं, एक आसन पितृ पितामह सम्बन्धी विश्वेदेव के लिए तथा दूसरा मातामहादि सम्बन्धी विश्वेदेवों का) और उस जल पात्र पर कुश तथा पवित्रक को रखे ॥१३६॥ **शन्नोदेवी** इत्यादि मन्त्र से जल दे और **यवोसि** इत्यादि मन्त्र से यव प्रदान करे । उसके बाद गन्ध तथा पुष्प से पूजा करके वहाँ पर विश्वेदेव की स्थापना करे ॥१३७॥ **विश्वेदेवास आगत** इत्यादि दो मन्त्रों से आवाहन करके वहाँ यव डाले । यव छोड़ने के समय **यवोऽसि धान्यराजोऽसि०** इत्यादि मन्त्र को पढे । इसका अर्थ है कि हे यव तुम ही अन्नों के राजा हो । तुम्हारे देवता वरुण हैं, वरुण से ही तुम्हारी उत्पत्ति हुयी है । तुम्हारे भीतर मधु मिला हुआ है, तुम सभी पापों को विनष्ट करने वाले हो तथा पवित्र हो, मुनिजन तुम्हारी प्रशंसा करते हैं । उसके बाद चन्दन एवं पुष्प से अलंकृत करके **या दिव्या०** इत्यादि मन्त्र को पढते हुए अर्ध्य पात्र को विश्वेदेवों को प्रदान करे ॥१३८-१३९॥ पात्र तथा गन्ध आदि प्रदान करके ही पितृकर्म को प्रारम्भ करे । सर्वप्रथम दर्भ के आसन आदि को प्रदान करके तीन पात्रों की पूजा करे ॥१४०॥ उसके बाद उसमें पवित्र रखकर **शन्नो देवी** इत्यादि इस मन्त्र से जल डाले । **तिलोऽसि** इत्यादि मन्त्र से तिल डाल कर उसमें चन्दन और पुष्प आदि डाले ॥१४१॥ अर्घ्य पात्र पिपल आदि वनस्पति के, पत्ते का या चाँदी का होना चाहिए । अथवा समुद्र से निकले हुए शंख इत्यादि को अर्घ्य पात्र बनाये ॥१४२॥ पितरों का पात्र सुवर्ण का, या चाँदी का, या ताम्बे का होना चाहिए । पितृगण चाँदी का नाम भी सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं । चाँदी के दर्शन तथा चाँदी का दान भी अक्षय कारक होता है ॥१४३॥ चाँदी से युक्त अथवा चाँदी के पात्र से पितरों को यदि जल भी श्रद्धा पूर्वक दिया जाता तो वह प्रदत्त वस्तु अक्षय होती है । आज भी पितरों के पात्र चाँदी के ही होते है । रजत चूकि शिवजी के नेत्र से उद्भूत है इसीलिए पितरों को अत्यन्त प्रिय है ॥१४५॥ इसतरह से जो सुलभ हो उसे अर्घ्य पात्र बनाकर बिना किसी मत्सर के **या दिव्या०** इत्यादि मन्त्र पढकर पितरों के नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके फिर कुशों को हाथ में ले ले ॥१४६॥ इसके बाद आये हुए ब्राह्मणों से कहे **पितृन् आवाहयिष्यामि** और वे ब्राह्मण भी कहें **तथास्तु** उसके बाद **उशन्तस्त्वा०** तथा **आयान्तु०** इन दो मन्त्रों से पितरों का आवाहन करे ॥१४७॥ उसके बाद **या दिव्या०** इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य देकर उसके बाद गन्ध इत्यादि तथा उत्तम वस्त्र पितरों को चढाये ॥१४८॥ अर्घ्य

तत्रापि पूर्वतः कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः । उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ॥१५०॥
उशन्त्स्वेति तं दर्भं पाणिभक्तं विशेषतः। गुणान्वितैश्च शाकाद्यैर्नानाभक्ष्यैस्तथैव च ॥१५१॥
अन्नं च सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम् । मासं प्रीणाति वै सर्वान्पितृनित्याह पद्मजः ॥१५२॥
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन तु । औरभ्रेणाथचतुरः शाकुनेनाथपंच वै ॥१५३॥
वाराहस्य तु मांसेन षण्मासं तृप्तिरुत्तमा । सप्त लोहस्यमासेन तथाष्टावाजकेन तु ॥१५४॥
पृषतस्य तु मांसेन तृप्तिर्मासान्नवैव तु । दशमासांश्च तृप्यन्ते वराहमाहिषामिषैः ॥१५५॥
शशकूर्मयोस्तु मांसेनमासानेकादशैव तु । संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा ॥१५६॥
सौकरेण तु तृप्यंते मासान्पंचदशैव तु । वार्ध्रीणस्य मांसेन तृप्तिर्दाशवार्षिकी ॥१५७॥
कालशाकेन चानंत्यं खड्गमासेन चैव हि। यत्किंचिन्मधुना मिश्रं गोक्षीरं दधिपायसम्॥१५८॥
दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः । स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च ॥१५९॥
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तवानि विविधानि च । इंद्रेशसोमसूक्तानि पावमानीश्च शक्तितः ॥१६०॥
बृहद्रथंतरं तत्र ज्येष्ठसामाथ रौरवम् । तथैव शांतिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेव च ॥१६१॥
मण्डलब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारि च यत्पुनः। विप्राणामात्मनश्चापि तत्सर्वं समुदीरयेत् ॥१६२॥

दान की प्रक्रिया है कि पहले पिता के पात्र का जल पितामह के पात्र में डाले उसके बाद पितामह के पात्र का जल प्रपितामह के पात्र में डाल दे । उसके बाद प्रपितामह के जल पात्र को पितामह के पात्र में रखे, और उन दोनों पात्रों को पिता के पात्र में रखकर पिता के आसन के उत्तर भाग में **पितृभ्यः स्थानमसि** यह कहकर उलट दे । उसके बाद अन्न को परोसे ॥१४९॥ अन्न परोसने से पहले अग्निकार्य करे । अर्थात् अन्न में से थोड़ा सा लेकर **अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा** इस मन्त्र से अग्नि के लिए तथा **सोमाय पितृमते स्वाहा** इस मन्त्र से सोम देवता के लिए दो-दो वार अग्नि में आहुति दे । इसके बाद दोनों हाथों से अन्न निलकालकर हाथ में कुश लिए हुए परोसे, उस समय **उशन्तस्त्वा** इत्यादि मन्त्र को पढता रहे । उत्तम गुण वाले शाकों तथा अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों से॥१५०-१५१॥ ब्रह्मजी ने कहा कि दही, दूध, गोधृत तथा शक्कर से युक्त अन्न पितरों को एक मास तक तृप्त रखता है ॥१५२॥ पितरों को मछली के मांस से दो महीनों तक, हरिण के मांस से तीन महीने तक, औरभ्र के मांस से चार मास तक, पक्षी के मांस से पाँच मास तक ॥१५३॥ वनैले सूकर के मांस से छह मास तक, लोह के मांस से सात मास तक, बकरी के माँस से आठ मास तक ॥१५४॥ पृषत् के मांस से नव महीनों तक वराह तथा महिष के मांस से दश महीने तक ॥१५५॥ खरगोश तथा कछुए के मांस से ग्यारह मास तक, गौ के दूध अथवा गौ के दूध से निर्मित खीर से एक वर्ष तक पितरों की तृप्ति होती है ॥१५६॥ सूकर के मांस से पितरों को पन्द्रह महीनों तक तृप्ति होती है । वार्ध्रीणस के मास से पितरो को बारह वर्ष तक तृप्ति बनी रहती है ॥१५७॥ काले शाक तथा गैण्डे के मांस से पितरों की तृप्ति अनन्त काल पर्यन्त बनी रहती है । मधु मिलाकर बनायी हुयी कोई भी वस्तु तथा गौ के दूध से निर्मित खीर से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है ॥१५८॥ ऐसा पितरों ने स्वयं कहा है । इस तरह से भोजन परोस कर पितृ सम्बन्धी वेद मन्त्रों का पाठ समस्त पुराणों को सुनायें ॥१५९॥ ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र सम्बन्धी अनेक स्तोत्रों को सुनाये । इन्द्र, रुद्र तथा सोम देवताक सूक्तों को सुनायें । अपनी शक्ति के अनुसार पावमानी सूक्त सुनाये ॥१६०॥ बृहद्रथन्तर, ज्येष्ठसाम का रौरवगान, शान्तिकाध्याय, मधु ब्राह्मण ॥१६१॥ मण्डल ब्राह्मण इसके अतिरिक्त और जो ब्राह्मणों को तथा अपने को भी प्रिय लगे उसे सुनाये । राजन् ब्राह्मणों को भोजन कर लेने पर

भारताध्ययनं कार्यंपितृणां परमंप्रियम् । भुक्तवत्सु च विप्रेषु भोज्यतोयादिकं नृप ॥१६३॥
सार्ववर्णिकमन्नाद्यमानयेत्सावधारणम् । समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरान्भुवि ॥१६४॥
अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यंतु तृप्ता यांतु परां गतिम् ॥१६५॥
येषां न माता न पिता न बंधु र्नचापि मित्रं न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयांतु योगाय यतो यतस्ते ॥१६६॥
असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलभागिनाम् । उच्छिष्टभागधेयानां दर्भेषु विकिरासनम् ॥१६७॥
तृप्तान् ज्ञात्वोदकं दद्यात्सकृद्विकिरणे तथा । विप्रलिप्तमहीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा ॥१६८॥
निधायदर्भान्विधिवद्दक्षिणाग्रान्प्रयत्नतः । सर्ववर्णविधानेनपिंडांश्च पितृयज्ञवत् ॥१६९॥
अवनेजनपूर्वं तु नामगोत्रं तु मानवः । उक्त्वा पुष्पादिकं दत्वा कृत्वा प्रत्यवनेजनम् ॥१७०॥
ज्ञात्वापसव्यं सव्येन पाणिना त्रिःप्रदक्षिणम् । पितृवन्मातृकं कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥१७१॥
दीपप्रज्वालनं तद्वत्कुर्यात्पुष्पार्चनं बुधः । तथाचांतेषु चाचम्य दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ॥१७२॥
तथा पुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च । सतिलं नामगोत्रेण दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥१७३॥
गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च । दद्याद्यदिष्टं विणामात्मनः पितुरेव च ॥१७४॥
वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहेत् । ततः स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम् ॥१७५॥
दत्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद्द्विजेभ्योपि यथाबुधः । अघोराः पितरः संतु संत्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः ॥१७६॥

उससे बचे हुए अन्न को ब्राह्मणों के ही सामने जमीन पर बिखेर दे । क्योंकि वह अन्न तथा जल उन जीवों का भाग होता है जो संस्कार आदि से हीन होने के कारण अधम गति को प्राप्त कर लिए हैं ॥१६२-१६४॥ उस समय **अग्निदग्धा०** इत्यादि श्लोकों को पढना चाहिए । इन श्लोकों का अर्थ है, मेरे वंश में जो जीव, आग में जल गये, अथवा अदग्ध ही रह गये, वे पृथिवी पर दिए गये इन अन्नों से तृप्त होकर परम गति को पाप्त करें ॥१६५॥ जिन जीवों के माता, पिता, मित्र, बन्धु अन्न इत्यादि कुछ भी नहीं हैं उनकी ही तृप्ति के लिए यह अन्न पृथिवी पर दिया गया है, इससे तृप्त होकर वे योग को प्राप्त करें ॥१६६॥ जो संस्कार के बिना ही मर गये तथा जिन लोगों ने वंश का परित्याग कर दिया जो उच्छिष्ट भाग के अधिकारी हैं, उन सबों के लिए कुशों पर विकरासन है ॥१६७॥ जब ब्राह्मण तृप्त हो जायँ तों उनको वहीं पर एक बार जल दे । उसके बाद गाय के गोबर तथा गोमूत्र से लिपी हुयी भूमि पर ॥१६८॥ दक्षिणाग्र कुशों को बिछाकर पितृ यज्ञ के ही समान विधिपूर्वक पिण्डदान करे ॥१६९॥ पिण्डदान से पूर्व पितरों के नाम एवं गोत्र का उच्चारण करके उन्हें अवनेजन का जल प्रदान करे । फिर पिण्डों का फूल इत्यादि से पूजन करके उसके ऊपर प्रत्यवनेजन का जल गिराये ॥१७०॥ सव्यापसव्य का विधान जानकर हाथ से ही तीन बार प्रदक्षिणा करे । पिता के ही समान माता का भी श्राद्ध हाथ में कुश लेकर करना चाहिए ॥१७१॥ विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह दीप जलाये तथा पुष्प इत्यादि से पूजा करे । फिर ब्राह्मणों के आचमन कर लेने पर स्वयं भी आचमन करे । फिर सब ब्राह्मणों को एक-एक बार जल दे ॥१७२॥ फिर फूल तथा अक्षत देकर तिल सहित अक्षय्योदक दान करे और अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा दे ॥१७३॥ गौ, भूमि, सोना, वस्त्र तथा सुन्दर शय्या को प्रदान करे। जो वस्तुएँ, ब्राह्मणों, पितरों तथा अपने को प्रिय लगे उन सभी वस्तुओं का दान करना चाहिए ॥१७४॥ वित्तशाठ्य न करे पितरों की प्रसन्नता प्राप्त करे । उसके बाद स्वधा वाचन करके विश्वेदेवों को जल प्रदान करे॥१७५॥ उसके पश्चात् ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करे । वह पूर्वाभिमुख खड़ा होकर ब्राह्मणो से कहे **अघोराः पितरः सन्तु।**

गोत्रं तथावर्द्धतां तु तथेत्युक्तश्चतैः पुनः। स्वस्तिवाचनकं कुर्यात्पिंडानुद्धृत्य भक्तितः ॥१७७॥
उच्छेषणं तु तत्तिष्टेद्यावद्विप्रविसर्जनम्। ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१७८॥
उच्छेषणं भूमिगतमाजिह्मस्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत्पिंडं भागधेयं प्रचक्षते॥१७९॥
पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा । अव्रतानामपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप ॥१८०॥
ततः स्थानाग्रतः स्थित्वा प्रतिगृह्यांबुपात्रिकाम्। बाजेबाजेति च जपन्कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥१८१॥
बहिः प्रदक्षिणं कुर्यात्पदान्यष्टावनुव्रजेत्। बंधुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ॥१८२॥
निवृत्य प्रणिपत्याथ प्रयुज्याग्निं स मंत्रवित्। वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यिकं बलिमेव च॥१८३॥
ततस्तुवैश्वदेवांते सभृत्यसुतबांधवः । भुंजीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥१८४॥
एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नामसर्वकामफलप्रदम् ॥
भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि भक्तिमान् ॥१८५॥
शूद्रोप्यमंत्रकं कुर्यादनेन विधिना नृप । तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं विधीयते ॥१८६॥
उत्सवानंदसंस्कारे यज्ञोद्वाहादिमंगले । मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनंतरम् ॥१८७॥
ततो मातामहा राजन्विश्वेदवास्तथैव च । प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः॥१८८॥

(मेरे पितृगण शान्त और मङ्गलमय हो) उस पर ब्राह्मण कहें **सन्तु** (ऐसा ही हो) ॥१७६॥ इसके बाद यजमान ब्राह्मणों से प्रार्थना करे **गोत्रं नो वर्द्धताम्** (हमारा गोत्र बढता रहे) इस पर ब्राह्मण कहे **तथास्तु** ऐसा ही हो । उसके बाद यजमान कहे **दातारो मेऽभिवर्धन्ताम् वेदाः सन्ततिरेव च । एताः सत्याः आशिषः सन्तु** ।अर्थात् मेरे दाता बढ़ें, मेरे वंश में वेदाध्ययन चलता रहे, सुयोग्य सन्तान हो, ये सभी आशीर्वाद सत्य हों । ब्राह्मण कहें **सन्तु सत्या आशिषः** ये आशीर्वाद सत्य हों । उसके बाद पिण्डों को भक्ति पूर्वक उठाकर सूंघे और स्वस्ति वाचन करे ॥१७७॥ जब तक ब्राह्मणों का विजर्सन नहीं हो जाता है तब तक उच्छेषण बना रहता है । उसके बाद अग्नि को प्रज्वलित करके बलिवैश्वदेव करे ॥१७८॥ पृथिवी पर गिरा हुआ तथा पिण्ड का जो अन्न होता है वह कपट रहित, सज्जन दासों का हिस्सा होता है ॥१७९॥ पितरों के द्वारा यह श्राद्ध पितरों को पुष्ट करने वाला है, इसे अनुपनीत (जिसका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ है) पुत्र रहित तथा स्त्रियाँ भी कर सकती हैं ॥१८०॥ उसके बाद पितरों के समक्ष खड़ा होकर तथा जल पात्र को लेकर, **बाजे बाजे०** इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए श्राद्धकर्त्ता कुश के अग्रभाग से पितरों का विसर्जन करे ॥१८१॥ उसके बाद ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करे तथा जाते हुए ब्राह्मणों के पीछे आठ पग चले। इस काम को यजमान अपने बान्धवों, पुत्रों तथा पत्नी के साथ करे ॥१८२॥ उसके पश्चात् वह ब्राह्मणों को प्रणाम करके लौट जाय, फिर अग्नि को प्रज्वलित करके बलिवैश्वदेव तथा नित्यबलि की क्रिया को सम्पन्न करें॥१८३॥ उसके बाद वैश्वदेव कर्म करने के पश्चात् भृत्य, पुत्र, बन्धुवर्ग तथा अतिथि गण के साथ पितरों द्वारा सेवित अन्न का भोजन करे ॥१८४॥ इस श्राद्ध को अनुपनीत भी कर सकता है। इस श्राद्ध का नाम साधरण श्राद्ध है तथा यह कर्त्ता की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । इस श्राद्ध को विधुर तथा प्रवास में रहने वाले लोग भी भक्तिपूर्वक कर सकते हैं ॥१८५॥ हे राजन् ! इस विधि से विना मंत्र के ही इस श्राद्ध को कर सकते हैं । तीसरे प्रकार का श्राद्ध आभ्युदयिक श्राद्ध कहलाता है, इसे ही वृद्धि श्राद्ध भी कहते हैं ॥१८६॥ इस श्राद्ध को उत्सव के समय, आनन्दप्रद संस्कार के समय, यज्ञ के समय तथा विवाह आदि मङ्गलमय कार्य के समय किया जाता है । इस श्राद्ध में माताओं (माता, पितामही तथा प्रपितामही) की पूजा पहले की जाती है, उसके बाद पिता, पितामह तथा प्रपितामह की पूजा की

प्राङ्मुखोनिर्वपेत्पिण्डान्पूर्वां श्चैव पुरातनान् । संपन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्घं द्वयोर्द्वयोः ॥१८९॥
युग्माद्विजातयः पूज्या वस्त्राकल्पांबरादिभिः । तिलकार्यं यवैःकार्यं तच्च सर्वानुपूर्वकम् ॥१९०॥
मांगल्यानि च सर्वाणि वाचयेद्दिजपुंगवान् । एवं शूद्रोपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा॥१९१॥
नमस्कारेण मंत्रेण कुर्याद्दानानि वै बुधः । दानं प्रधानं शूद्रस्य इत्याह भगवान्प्रभुः ॥
दानेन सर्वकामाप्तिस्तस्य संजायते यतः ॥१९२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे साधारणाभ्युदयकीर्तनं नाम नवमोध्यायः ॥९॥

दसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

एकोद्दिष्टं ततो वक्ष्ये यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा । मृते पुत्रैर्यथाकार्यमाशौचं च पितुर्यदि ॥१॥
दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणस्य विधीयते । क्षत्रियेषु दशद्वेच पक्षं वैश्येषु चैव हि ॥२॥
शूद्रेषु मासमाशौचं सपिंडेषु विधीयते । नैशमाचूडाशौचं त्रिरात्रं परतःस्मृतम्॥३॥

जाती है ॥१८७॥ उसके बाद में मातामह, प्रमातामह तथा वृद्ध प्रमातमह की पूजा तथा विश्वेदेव की पूजा करनी चाहिए । इस श्राद्धको प्रदक्षिण, पूजोपचार (पूजन सामग्री) दही, अक्षत, फल तथा जल से करना चाहिए । इस श्राद्ध को पूर्वाभिमुख बैठकर तथा सव्य रहकर ही किया जाता है । पूर्वाभिमुख होकर ही पितरों को पिण्डदान भी किया जाता है । पिण्डदान तथा अर्घ्य सम्पन्नम् कहकर कर देना चाहिए । इस श्राद्ध में पत्नी से युक्त ब्राह्मण को अर्घ्य देना चाहिए, तथा सपत्नीक, ब्राह्मण को वस्त्र तथा सुवर्ण आदि के द्वारा पूजन करना चाहिए । तिल का काम यव से करना चाहिए । तथा सभी कार्यों को पूर्ववत् करना चाहिए ॥१८८-१९०॥ इसमें श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा इसी तरह शूद्र को भी सभी कर्मों को वृद्धि श्राद्ध में करना चाहिए ॥१९१॥ विज्ञ पुरुष, नमस्कार तथा मन्त्र के द्वारा इस श्राद्ध को करे । ब्रह्माजी ने कहा है कि शूद्र के श्राद्ध में दान की ही प्रधानता होती है । दान के ही द्वारा शूद्रों की सभी कामनाओं की पूर्ति होती हैं ॥१९२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

एकोदिष्ट श्राद्ध विधि, वर्णों के अनुसार जननाशौच तथा शावाशौच (मरणाशौच) का निर्णय, अस्थि संचयनादि प्रेतकर्म, लेप भोगी तथा सपिण्ड पितृगण का निर्णय, ब्राह्मणों के भोजन करने से पितरों की तृप्ति विषयक शङ्का का समाधान, श्राद्ध विषयक कौशिक पुत्र की कथा

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— जिसे पहले ब्रह्माजी ने बतलाया था उस एकोदिष्ट श्राद्ध को मैं बतलाऊँगा और यह भी बतलाऊँगा कि पिता आदि के मरने पर पुत्रों को किस प्रकार से अशौच का पालन करना चाहिए ॥१॥ ब्राह्मणों के यहाँ शावाशौच (मरणाशौच) दश दिन का होता हैं क्षत्रियों के यहाँ बारह दिन का और वैश्यों के यहाँ पन्द्रह दिन का शावाशौच होता है ॥२॥ शूद्रों के यहाँ शावाशौच एक महीने का होता है । यह अशौच सभी सपिण्डों

जननेप्ययमेव स्यात्सर्ववर्णेषु सर्वदा । अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥४॥
प्रेताय पिंडदानं तु द्वादशाहं समाचरेत् । पाथेयं तस्य तत्प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत् ॥५॥
यस्मात्प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहेन नीयते । गृहे पुत्रकलत्रं च द्वादशाहं प्रपश्यति ॥६॥
तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा । सर्वदाहोपशांत्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥७॥
ततस्त्वेकादशाहेऽपि द्विजानेकादशैवतु । गोत्रादिसूतकांते च भोजयेन्मनुजो द्विजान् ॥८॥
द्वितीयेह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत्। नावाहनाग्नौकरणं दैवहीनं विधानतः ॥९॥
एकं पवित्रमेकोर्घ एकः पिंडो विधीयते । उपतिष्ठतामितिवदेद्देयं पश्चात्तिलोदकम्॥१०॥
स्वास्ति ब्रूयाद्विप्रकरे विसर्गे चाभिरम्यताम्। शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदो विदुः ॥११॥
अनेन विधिना सर्वमनुमासं समाचरेत् । सूतकांते द्वितीयेह्नि शय्यां दद्याद्विलक्षणाम् ॥१२॥
कांचनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम्। प्रपूज्य द्विजदांपत्यं नानाभरणभूषितम् ॥१३॥
उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो ददेत्। रजतस्य तु पात्रेण दधिदुग्धसमन्वितम् ॥१४॥
अस्थिलालाटिकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा विमिश्रयेत्। पाययेद्द्विजदांपत्यं पितृभक्त्या समन्वितः ॥१५॥
एष एव विधिर्दृष्टः पार्वतीयै द्विजोतमैः। तेन दुष्टा तु सा शय्या न ग्राह्या द्विजसत्तमैः ॥१६॥
गृहीतायां तु तस्यां हि पुनः संस्कारमर्हति । वेदे चैव पुराणे च शय्या सर्वत्र गर्हिता ॥१७॥

को लगता है । मुण्डन संस्कार से पहले बच्चे की मृत्यु हो जाने पर एक रात का अशौच होता है । उसके बाद तीन रात तक का अशौच होता हे ॥३॥ सभी वर्णों में जननाशौच भी इतना ही होता है । अस्थि संचयन हो जाने पर दाहकर्ता के शरीर का स्पर्श किया जा सकता है ॥४॥ मरे हुए व्यक्ति के लिए बारह दिन पर्यन्त पिण्ड दान करना चाहिए । क्योंकि वहीं प्रेत का पाथेय होता है, अतएव उससे मरे हुए जीव को प्रसन्नता होती है ॥५॥ क्योंकि मृत्यु के बारहवें दिन प्रेत यमपुरी जाता है । उतने दिन तक वह घर में ही रहकर अपने पुत्र तथा पत्नी आदि को देखता है॥६॥ इसलिए दश दिन तक उसके लिए आकाश में दूध रखना चाहिए । उसके द्वारा उसके (प्रेत के) सारे सन्ताप विनष्ट हो जाते हैं और मार्ग में होने वाले श्रम विनष्ट हो जाते हैं ॥७॥ उसके बाद ग्यारहवें दिन भी ग्यारह ब्राह्मणों को तथा सूतक समाप्त हो जाने पर अपने गोत्र आदि के लोगों को तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥८॥ उसके दूसरे दिन उसी तरह से एकोदिष्ट श्राद्ध करना चाहिए । इसमें न तो आवाहन होता है, और न तो अग्नौकरण होता है । इस श्राद्ध में विश्वेदेव भी नहीं होते हैं ॥९॥ इसमें एक ही पवित्रक होता है एक ही अर्घ होता है तथा पिण्ड भी एक ही बनता है । पिण्ड दान करते समय पहले **तवोपतिष्ठताम्** कहकर बाद में पिण्ड देना चाहिए उसके बाद तिल तथा जल पिण्ड पर छोड़ना चाहिए । सङ्कल्प के जल को ब्राह्मण के हाथ में छोड़ना चाहिए । उस समय ब्राह्मण स्वस्ति कहें और विसर्जन करते समय अभिरम्यताम् कहना चाहिए । वेदज्ञों ने कहा है कि शेष सभी कार्यों को पहले के ही समान करना चाहिए ॥१०-११॥ इसी विधि से प्रत्येक मास में एकोदिष्ट करना चाहिए । मरणाशौच समाप्त हो जोने के दूसरे दिन सुन्दर शय्यादान करना चाहिए ॥१२॥ उसके बाद काञ्चन पुरुष की फल एवं वस्त्र के साथ पूजा करके तथा ब्राह्मण दम्पत्ती की पूजा करके उसे शय्या पर बैठाये उसके बाद उन्हें मधुपर्क प्रदान करे । दही और दूध से युक्त चांदी के पात्र में ॥१३-१४॥ मृत् पुरुष के ललाट की अत्यन्त सूक्ष्म हड्डी को मिला दे और पिता की भक्ति के युक्त होकर उस दुग्ध को द्विज दम्पती को पिलाये ॥१५॥ पार्वतीय द्विजोत्तमों के यहाँ यही पद्धति देखी गयी है, अतएव उस दूषित शय्या को श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नही लेना चाहिए ॥१६॥ यदि उस शय्या को ले तो उसका पुनः

ग्रहीतारस्तु जायन्ते सर्वे नरकगामिनः। ग्रथितां वसुजालेन शय्यां दांपत्यसेविताम् ॥१८॥
ये स्पृशंति न जानंतः सर्वे नरकगामिनः। नव श्राद्धे न भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥१९॥
पितृभक्त्या तु पुत्राणां कार्यमेव सदा भवेत्। वृषोत्सर्गं च कुर्वीत देया च कपिला शुभा ॥२०॥
उदकुंभश्च दातव्यो भक्ष्यभोज्यफलान्वितः। यावदब्दं नरश्रेष्ठ सतिलोदकपूर्वकम् ॥२१॥
ततः सवंत्सरे पूर्णे सपिंडीकरणं भवेत्। सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्यतः ॥२२॥
वृद्धिपूर्वेषु कार्येषु गृहस्थस्य भवेत्ततः। सपिंडीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत् ॥२३॥
पितृनावहयेत्तत्र पृथक्प्रेतं विनिर्दिशेत्। गंधोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥२४॥
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्। तद्वत्सङ्कल्प्य चतुरः पिंडान्पितृपरस्तदा ॥२५॥
ये समाना इति द्वाभ्यामन्नं तु विभजेत्त्रिधा। अनेन विधिना चार्घ्यं पूर्वमेव प्रदापयेत् ॥२६॥
ततः पितृत्वमापन्नस्स चतुर्थस्तदात्वनु। अग्निष्वातादिमध्ये तु प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् ॥२७॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पृथक्तस्मै न दीयते। पितृष्वेव च दातव्यां तत्पिंडं येषु संस्थितम् ॥२८॥
ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु। त्रिपिंडमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥२९॥
एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यःसमाचरेत्। सदैवं पितृहा स स्यात्तथा भ्रातृविनाशकः ॥३०॥
मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधो याति स मानवः। संपृक्ते स्वर्गतीभावे प्रेतमोक्षे यतो भवेत् ॥३१॥

संस्कार करना पड़ता है। वेद तथा पुराण में सर्वत्र शय्या ग्रहण की निन्दा की गयी है ॥१७॥ सभी शय्या ग्रहण करने वाले नरकगामी होते हैं। सम्पत्ति से भरी हुयी तथा दम्पती से सेवित ॥१८॥ शय्या को जो अज्ञानी पुरुष ले लेते हैं, वे सबके सब नरकगामी होते हैं, ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध होता है, उस श्राद्ध में भोजन नहीं करना चाहिए। यदि भोजन कर ले तो फिर चांद्रायण करे ॥१९॥ जो पुत्र पिता के भक्त होते हैं, उन्हें इस तरह से कार्य करना चाहिए। वह वृषोत्सर्ग करे (सांड, छोड़े) तथा कपिला गौ का दान करे ॥२०॥ भक्ष्य, भोज्य तथा फल से युक्त पितरों को उद्देश्य करके जलकुम्भ का दान करे। पुत्र को तिल और जल के साथ इन सारे कार्यों को एक वर्ष पर्यन्त करते रहना चाहिए ॥२१॥ उसके बाद वर्ष पूरा हो जाने पर सपिण्डीकरण करे। क्योंकि सपिण्डीकरण के बाद ही प्रेत पार्वण श्राद्ध का भागी होता है ॥२२॥ गृहस्थ के धर में होने वाले बृद्धि कार्यों तथा पर्वों पर वृद्धिश्राद्ध होते हैं। सपिण्डीकरण श्राद्ध को विश्वेदेव पूर्वक किया जाता है ॥२३॥ इस श्राद्ध में चन्दन, तिल तथा जल से युक्त चार अर्घ पात्रों को बनाये; फिर पितरों का आवाहन करे और प्रेत के पात्र को अलग रखे ॥२४॥ उसके बाद प्रेत के पात्र के जल को तीन भागों में विभक्त करके पितरों के अर्घ्य पात्र में मिला दे उसके बाद पहले के ही समान सङ्कल्प करके वह चार पिण्डों को बनाये। उसके बाद **ये समाना** इत्यादि दो मन्त्रों से प्रेतपिण्ड के अन्न को तीन भागों मे विभक्त करे। इसी विधि से अर्घ्य को पिण्डदान से पहले देना चाहिए ॥२५-२६॥ सपिण्डीकरण के बाद ही प्रेत पितृत्व को प्राप्त कर पाता है और अग्निष्वात्ता आदि पितरों के बीच में बैठकर अमृत पान करता है ॥२७॥ सपिण्डीकरण के बाद प्रेत के लिए पितरों से अलग कुछ भी नहीं दिया जाता है। उसको भी पितरों में ही पिण्ड दे देना चाहिए, क्योंकि वह उन पितरों में ही स्थित रहता है ॥२८॥ उसके बाद संकान्ति अथवा ग्रहण की वेला पर किए जाने वाले श्राद्ध में तीन पिण्डों को ही बनायें। मृत्यु की तिथि पर एकोदिष्ट करना चाहिए ॥२९॥ जो व्यक्ति मृत्यु तिथि पर एकोदिष्ट न करके पार्वण श्राद्ध करता है वह सदा-सदा के लिए पिता को मारने वाला तथा भाइयों का विनाश करने वाला होता है ॥३०॥ जो मृत्यु तिथि पर पार्वण करता है वह अधो गति को प्राप्त करता है। मृत व्यक्ति को जिस

आमश्राद्धं तदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्ततः। तेनाग्नौ करणं कुर्यात्पिंडांस्तेनैव निर्वपेत् ॥३२॥
त्रिभिः सपिंडीकरणं मासैक्ये त्रितये तथा। यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बंधनात् ॥३३॥
मुक्तोपि लेपभागित्वं प्राप्नोति कुशमार्जनात्। लेपभाजश्चतुर्थाद्यास्त्रयः स्युः पिंडभागिनः ॥३४॥
पिंडदः सप्तमस्तेषां सपिंडाः सप्त पूरुषाः।

भीष्म उवाच

कथं हव्यानि देयानि कव्यानि च जनैरिह ॥३५॥
गृह्णंति पितृलोके वा प्रायः के कैर्निगद्यते। यदि मर्त्ये द्विजो भुंक्ते हूयते यदि वानले ॥३६॥
शुभाशुभात्मकाः प्रेतास्तदन्नं भुंजते कथम्।

पुलस्त्य उवाच

वसुस्वरूपाः पितरो रुद्राश्चैव पितामहाः ॥३७॥
प्रपितामहास्तथादित्या इत्येषा वैदिकी श्रुतिः । नामगोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः ॥३८॥
श्राद्धस्य मन्त्रतस्तत्वमुपलभ्येत भक्तितः । अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः ॥३९॥
नामगोत्रास्तदादेशा भवंत्युद्भवतामपि । प्राणिनः प्रीणयत्येतदर्हणं समुपागतम्॥४०॥
दिव्यो यदि पिता माता गुरुः कर्मानुयोगतः। तस्यान्नममृतं भूत्वा दिव्यत्त्वेप्यनुगच्छति ॥४१॥
येऽपिदैत्यत्वे भोगरूपेण पशु तृणंभवेत्। श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेप्युपतिष्ठति ॥४२॥
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम्। दानवत्वे तथापानं प्रेतत्वे रुधिरोदकम् ॥४३॥

प्रकार प्रेतत्व से छूटकारा प्राप्त हो तथा स्वर्ग की प्राप्ति हो उसके लिए आम (कच्चे अन्न से) श्राद्ध करना चाहिए। वह आमान्न से ही अग्नौकरण करे तथा उसी से पिण्ड दान दे ॥३२॥ तीन महीने अथवा एक महीने में भी यदि सपिण्डीकरण कर दिया जाता है तो वह प्रेतत्व से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥३३॥ प्रेतत्व से मुक्त हो जाने पर उससे लेकर तीन पीढी तक के पितृगण कहलाते हैं। मुक्ति हो जाने पर भी वह कुश से मार्जन करने के कारण लेप भागी होता है। अर्थात्, पिता पितामह और प्रपितामह ये तीन पिण्ड भागी होते हैं और चतुर्थ (वृद्ध प्रपितामह) से लेकर तीन पीढी तक के पितृगण लेप भागी होते हैं ॥३४॥ पिण्डदान करने वाला सातवाँ होता है अतएव पिण्ड सप्त पुरुष कहलाते हैं। **भीष्मजी ने कहा—** लोगों को हव्य तथा कव्य कैसे प्रदान करना चाहिए ॥३५॥ पितृलोक में उनको कौन ग्रहण करता है ? यदि मर्त्य लोक में उनको ब्राह्मण खा लेते हैं अथवा अग्नि में उनका हवन कर दिया जाता है तो ॥३६॥ शुभ तथा अशुभ योनियों में गये हुए प्रेत उसका कैसे भोग करते हैं ? **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** वेद वतलाता है कि पिता वसु स्वरूप हो जाते है, पितामह रुद्र रूप हो जाते हैं और प्रपितामह आदित्य स्वरूप हो जाते है। पितरों के नाम तथा उनके गोत्र ही उन तक हव्य तथा कव्य को पहुँचाने वाले होते हैं ॥३६-३८॥ मन्त्र की शक्ति तथा हृदय की भक्ति से श्राद्ध का सार पितरों को प्राप्त हो जाता है। पिता, पितामह इत्यादि के अधिपति अग्निष्वाता आदि पितृगण हैं ॥३९॥ पितरों में से जो लोग कहीं जन्म लेते हैं, उनका नाम, गोत्र तथा देश होता ही है। उसी नामादि के द्वारा उन सबों को श्राद्ध का सार भाग उन प्राणियों को तृप्त करने का काम करता है ॥४०॥ यदि अपने कर्मों के अनुसार माता, पिता, गुरुजन दिव्य (देव) योनि को प्राप्त करते हैं तो श्राद्ध में प्रदत्त अन्न अमृत वनकर उनको प्राप्त होता है ॥४१॥ दैत्य योनि प्राप्त करने पर वह भोग रूप से प्राप्त करता है, पशु योनि को प्राप्त होने पर तृण रूा से और सर्प योनि प्राप्त करने पर वायु रूप से प्राप्त होता है ॥४२॥ यक्ष योनि को प्राप्त करने पर

मनुष्यत्वेन्नपानादि नानाभोगवतां भवेत् । रतिशक्तिस्त्रियःकान्तेऽन्येषां भोजनशक्तिता ॥४४॥
दानशक्तिः सविभवा रूपमारोग्यमेव च । श्राद्धं पुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः ॥४५॥
आयुः पुत्रान् धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च। प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीताः पितृगणा नृप ॥४६॥
श्रूयते च पुरा मोक्षं प्राप्ताः कौशिकसूनवः । पंचभिर्जन्मसंबंधैः प्राप्ता ब्रह्मपरंपदम् ॥४७॥

भीष्म उवाच

कथं कौशिकदायादाः प्राप्ता योगमनुत्तमम्। पंचभिर्जन्मसंबन्धैः कथं कर्मक्षयो भेवत् ॥४८॥

पुलस्त्य उवाच

कौशिको नाम धर्मात्मा कुरुक्षेत्रे महानृषिः। नामतः कर्मतस्तस्य पुत्राणां तान्निबोध मे ॥४९॥
स्वसृपः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च । वागदुष्टः पितृवर्ती च [illegible]शिष्यास्तदाभवन् ॥५०॥
पितर्युपरते तेषामभूद्दुर्भिक्षमुल्वणम् । अनावृष्टिश्चमहतीसर्वलोकभयङ्करी ॥५१॥
गर्गादेशाद्वने दोग्ध्रीं रक्षन्ति च तपोधनाः । खादामः कपिलामेतां वयं क्षुत्पीडिता भृशम् ॥५२॥
इति चिंतयतां पापं लघुः प्राह तदानुजः। यद्यवश्यमियं वध्या श्राद्धरूपेण योज्यताम् ॥५३॥
श्राद्धे नियोज्यमानायां पापं नश्यति नो ध्रुवम्। एवं कुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्ती तदानुजैः ॥५४॥
चक्रे समाहितः श्राद्धमुपयुज्याथ तां पुनः। द्वौ दैवे भ्रातरौ कृत्वा पित्र्ये त्रींश्चापरान् क्रमात्॥५५॥
तथैकमतिथिं कृत्वा श्राद्धदः स्वयमेव तु । चकार मंत्रवच्छ्राद्धं स्मरन्पितृपरायणः ॥५६॥

पान रूप से तथा राक्षस योनि प्राप्त करने पर मांस रूप से प्राप्त होता है । दानव होने पर पान रूप से तथा प्रेत योनि प्राप्त करने पर रुधिर रूप से प्राप्त होता है ॥४३॥ पितरों के मनुष्य योनि प्राप्त करने पर वे श्राद्ध की वस्तुएँ अन्न, पान तथा अनेक प्रकार के भोग रूप से प्राप्त होती हैं । स्त्री की योनि प्राप्त होने पर उसके पति को रति की शक्ति के रूप में प्राप्त होता है, दूसरे जीवों को भोजन की शक्ति के रूप में प्राप्त होता है ॥४४॥ दान की शक्ति वैभव, आरोग्य तथा रूप के रूप में प्राप्त होती है । श्राद्ध को पुष्प कहा गया है, इसका फल ब्रह्म की प्राप्ति है ॥४५॥ हे राजन् ! पितृगण प्रसन्न होकर श्राद्धकर्ता को आयु, पुत्र, धन, विद्या स्वर्ग, मोक्ष तथा सुख को प्रदान करते हैं किं वहुना वे उसे राज्य भी प्रदान करते हैं ॥४६॥ सुना जाता है कि कौशिक के पुत्रों ने मोक्ष प्राप्त किया । पाञ्च जन्मों के संबन्ध के कारण उन सबों ने परम पद प्राप्त किया ॥४७॥ **भीष्मजी ने कहा—** कौशिक के पुत्रों ने कैसे सर्वोत्तम योग को प्राप्त किया ? पाञ्च जन्मों के सम्वन्ध से कर्मों का क्षय कैसे सम्भव है ?॥४८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** कुरुक्षेत्र में महान् धर्मात्मा कौशक ऋषि रहते थे । अब तुम उनके पुत्रों के नाम और कर्म को जानो॥४९॥ वे सब गर्ग महर्षि के शिष्य थे । उनके नाम थे स्वसृप, गोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, वाग्दुष्ट तथा पितृवर्ती ॥५०॥ इनके पिता की मृत्यु हो जाने पर भयङ्कर दुर्भिक्ष हुआ । अत्यन्त भयङ्कर अनावृष्टि हुयी ॥५१॥ वे गर्ग महर्षि के आदेश से वन में उनकी गौ की रक्षा करते थे । वे भूख से अत्यन्त पीडित होकर निश्चित किया कि इस गौ को ही हमलोग खा लें, क्योंकि भूखे हैं ॥५२॥ इस तरह से जब वे विचार कर रहे थे; उसी समय उनके सब से छोटे भाई ने कहा— यदि इसको मारना है तो इसका उपयोग श्राद्ध रूप से कर लें ॥५३॥ जब इसका उपयोग श्राद्ध में करेंगे तो हमलोगों के पाप का तो नाश हो ही जायेगा । इस तरह से सभी अनुजों के द्वारा कहे जाने पर सबसे बड़ा जो पितृवर्ती था वह ॥५४॥ सावधानी से उस गौ से श्राद्ध कर दिया । उसने दो भाइयों को विश्वेदेव बनाया तथा तीन भाइयों को विश्वेदेव, फिर एक को अतिथि बनाकर स्वयं श्राद्ध कर्ता बन गया । और अन्न से युक्त

तदा गत्वा विशंकास्ते गुरवे च न्यवेदयन् । व्याघ्रेण निहता धेनुर्वत्सोयं प्रतिगृह्यताम् ॥५७॥
एवं सा भक्षिता धेनुः सप्तभिस्तैस्तपोधनैः । वैदिकं बलमाश्रित्य क्रूरे कर्मणि निर्भयाः ॥५८॥
ततः काले प्रणष्टास्ते व्याधा दशपुरेऽभवन् । जातिस्मरत्वं प्राप्तास्ते पितृभावेन भाविताः ॥५९॥
तत्र विज्ञाय वैराग्यं प्राणानुत्सृज्य धर्मतः । लोकैरवीक्ष्यमाणास्ते तीर्थतेऽनशनेन तु ॥६०॥
संजाता मृगरूपास्ते सप्त कालंजरे गिरौ । प्राप्तविज्ञानयोगास्ते तत्यजुस्तां निजां तनुम् ॥६१॥
मम्रुः प्रपतनेनाथ जातवैराग्यमानसाः । मानसे चक्रवाकास्ते संजाताः सप्तयोगिनः ॥६२॥
नामतः कर्मतः सर्वे सुमनाः कुसुमो वसुः । चित्तदर्शी सुदर्शी च ज्ञाता ज्ञानस्य पारगाः ॥६३॥
ज्येष्ठानुरक्ताः श्रेष्ठास्ते सप्तैते योगपावनाः । योगभ्रष्टास्त्रयस्तेषां बभूवुश्चलचेतसः ॥६४॥
दृष्ट्वा विभ्राजमानं तमणुहं स्त्रीभिरन्वितम् । क्रीडंतं विविधैर्भोगैर्महाबलपराक्रमम् ॥६५॥
पञ्चालान्वयसंभूतं प्रभूतबलवाहनम् । राज्यकामो भवत्त्वेकस्तेषां मध्ये जलौकसाम् ॥६६॥
पितृवर्ती च यो विप्रः श्राद्धकृत्पितृवत्सलः । अपरौ मंत्रिणौ दृष्ट्वा प्रभूतबलवाहनौ ॥६७॥
मंत्रित्वे च क्रतुश्चेच्छामस्मिन्मर्त्यौ द्विजोत्तमौ । विभ्राजपुत्रस्त्वेकोभूद्ब्रह्मदत्त इति स्मृतः ॥६८॥
मंत्रिपुत्रौ तथा चैव पुंडरीकसुबालकौ । ब्रह्मदत्तोभिषिक्तस्तु कांपिल्ये नगरोत्तमे ॥६९॥
पंचालराजो विक्रांतः श्राद्धकृत्पितृवत्सलः । योगवित्सर्वजंतूनां चित्तवेत्ताभवत्तदा ॥७०॥
तस्य राज्ञोभवद्भर्या सुदेवस्यात्मजा तदा । सन्नतिर्नामविख्याता कपिला या भवत्पुरा ॥७१॥

पितरों की भक्ति से युक्त होकर उसने श्राद्ध किया ॥५५-५६॥ इसके बाद जाकर उन सबों ने महर्षि से कहा आपकी गाय को बाघ मारकर खा गया बछड़ा बचा है इसे लीजिये ॥५७॥ इसतरह से क्रूर कर्म में वैदिक बल को अपना कर उन सातों तपस्वियों ने गौ को निर्भय होकर खा लिया ॥५८॥ उसके बाद वे समयानुसार मर कर दशपुर में व्याध हुए । पितृपरायण होने के कारण वे उस जन्म में भी जातिस्मर हुए; अपने पूर्व जन्म को याद रखने वाले हुए॥५९॥ उस जन्म में भी वैराग्य को अपना कर वे लोगों से अदृश्य रहकर ही अनशन तीर्थ में अपने प्राणों का धर्मपूर्वक त्याग कर दिये ॥६०॥ उसके बाद वे सातो कालंजर नामक पर्वत पर जाकर मृग हुए । ज्ञानी होने के कारण उन सबों ने अपने उस शरीर का भी परित्याग कर दिया ॥६१॥ मन में वैरागय हो जाने के कारण वे पर्वत से गिरकर अपने शरीर का परित्याग कर दिए । उसके बाद वे सातो योगी मानस तीर्थ में जाकर चक्रवाक पक्षी हो गये ॥६२॥ वहाँ वे कर्मानुसार नाम वाले हुए । उनके नाम थे— सुमना, कुसुमोवसु, चित्तदर्शी, सुदर्शी, ज्ञाता तथा ज्ञान पारंगत ॥६३॥ वे श्रेष्ठ योगी थे तथा अपने बड़े भाई में अनुरक्त रहने वाले थे । उनमें से चंचल चित्त वाले होने के कारण तीन तो योगभ्रष्ट हो गये ॥६४॥ वे महाबलवान् महा पराक्रमी अणुह को स्त्रियों के साथ क्रीडा करते हुए देखकर योग भ्रष्ट हुए थे ॥६५॥ अणुह पाञ्चालराज के वंश में उत्पन्न हुआ था तथा प्रभूत सेना और वाहन से युक्त था । उन तीनों में से एक तो राज्य की इच्छा वाला हो गया ॥६६॥ पहले जिसका नाम पितृवर्ती था तथा पितृभक्ति परायण था, वह राजा बनना चाहा । शेष दो अणुह के प्रभूत सेना तथा वाहन से युक्त दो मन्त्रियों को देखकर मंत्री होना चाहे । उनमें से एक तो विभ्राज का पुत्र ब्रह्मदत्त हुआ ॥६८॥ और दो उनके मंत्री के पुण्डरीक तथा सुबालक नामक पुत्र हुए । ब्रह्मदत्त काम्पिल्य नामक नगर का राजा हुआ ॥६९॥ वह पाञ्चालराज श्राद्ध करने वाला, पितृभक्त, योगवेत्ता और सभी जीवों के चित्त को जाने वाला हुआ ॥७०॥ उस राजा की पत्नी सुदेव की पुत्री हुयी । वह कपिला के गर्भ से उत्पन्न तथा सन्नति के नाम से विख्यात थी ॥७१॥ पितरों के कार्य में नियुक्त होने के कारण वह ब्रह्मवादिनी

पितृकार्ये नियुक्तत्वादभद्रब्रह्मवादिनी । तया चकार सहितः स राज्यं राजनंदनः ॥७२॥
कदाचिद्गत उद्यानं तया सह स पार्थिवः । ददर्श कीटमिथुनमनंगकलहान्वितम् ॥७३॥
पिपीलिकामधोवक्त्रां पुरतः कीटकामुकः । पंचबाणाभितप्तांगः सगद्गदमुवाच ह ॥७४॥
नत्वया सदृशी लोके कामिनी विद्यते क्वचित् । मध्ये क्षीणातिजघना बृहद्वक्त्रातिगामिनी ॥७५॥
सुवर्णवर्णसदृशी सद्वक्त्रा चारुहासिनी । आलक्ष्य ते च वदनं गुडशर्करवत्सलम् ॥७६॥
भोक्ष्यसे मायि भुक्ते त्वं स्नासि स्नाते तथा मयि । प्रोषिते मयि दीना त्वं क्रुद्धे च भयचंचला ॥७७॥
किमर्थं वद कल्याणि सदाधोवदना स्थिता । सा तमाहज्वलत्कोपा किमालपसि रे शठ ॥७८॥
त्वया मोदकचूर्णं तु मां विहायापि भक्षितम् । प्रादास्त्वं तदतिक्रम्य मामन्यस्यै समन्मथः ॥७९॥

पिपीलक उवाच

त्वत्सादृश्यान्मया दत्तमन्यस्यै वरवर्णिनि । तदेकमपराधं मे क्षंतुमर्हसि भामिनि ॥८०॥
नैवं पुनः करिष्यामि त्यज कोपं च सुस्तनि । स्पृशामि पादौ सत्येन प्रणतस्य प्रसीद मे ॥८१॥
रुष्टायां त्वयि सुश्रोणि मृत्युर्मे पुरतो भवेत् । तुष्टायां त्वयि वामोरु पूर्णाः सर्वमनोरथाः ॥८२॥
पूर्णचंद्रोपमं वक्त्रं स्वादेऽमृतरसोपमम् । निर्भरं पिब सुश्रोणि कामासक्तस्य मे सदा ॥८३॥
एतन्मत्वा शुभे कार्या सर्वदा तु कृपा मयि । इति सा वचनं श्रुत्वा प्रसन्ना चाभवत्ततः ॥८४॥
आत्मानमर्पयामास मोहनाय पिपीलिका । ब्रह्मदत्तोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा सस्मयाहसत् ॥८५॥
सर्वसत्वरुतज्ञानी प्रभावात्पूर्वकर्मणः ।

हुयी । वह राजकुमार उसी के साथ राज्य करता था ॥७२॥ उसके साथ एक बार वह राजा उद्यान में गया था, वहाँ पर उसने काममोहित होकर प्रणय कोप किए हुए दो कीड़ों की जोड़ी को देखा ॥७३॥ मादा चिंटी के सामने नर कीड़ा काम के बाणों से सन्तप्त होकर उससे गद्गद वाणी में कहा ॥७४॥ तुम्हारे समान संसार में पतली कमर वाली, विस्तृत जंघों वाली तथा कम्र गामिनी कोई दूसरी सुन्दरी नहीं है ॥७५॥ सुवर्ण के समान तुम्हारा वर्ण है, तुम अत्यन्त मनोहर ढंग से हँसती हो । तुम्हारा मुख देखने में गुड तथा शर्करा के समान प्रिय लगता है ॥७६॥ तुम मेरे खा लेने के बाद खाती हो तथा मेरे नहा लेने के बाद नहाती हो । मेरे बाहर चले जाने पर दीन हो जाती हो तथा मेरे क्रुद्ध होने से तुम भयभीत हो जाती हो ॥७७॥ हे कल्याणी ! तुम सदा अपना मुख नीचे क्यों किए रहती हो । उस चीटीं ने अत्यधिक क्रोध में कहा— अरे दुष्ट ! तुम क्या बक रहे हो ॥७८॥ तुमने मुझको छोड़कर अकेले मिठाई के चूर्ण को खा लिया । तुम कामुक होकर मुझसे भिन्न को उसे (मिठाई के चूर्ण को दे) दिया ॥७९॥ **नर चींटी ने कहा—** हे सुन्दरि ! जिस तरह तुम दूसरे को बाँटती हो उसी तरह से मैंने भी दूसरी को दे दिया । अतएव हे सुन्दरी ! मेरे इस एक अपराध को क्षमा कर दो ॥८०॥ हे सुन्दर स्तनों वाली ! अब मैं ऐसा अपराध कभी नहीं करूँगा अब तो क्रोध त्याग दो । मैं तुम्हारा पैर छूकर सत्य बोल रहा हूँ, अतएव मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ ॥८१॥ हे सुश्रोणि ! तुम्हारे रुष्ट हो जाने पर तो मेरी मृत्यु ही हो जायेगी । हे सुन्दरि ! तुम्हारे प्रसन्न रहने पर मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥८२॥ कामार्त पूर्ण चन्द्रमा के समान मेरे मुख में विद्यमान अमृत रस के समान रस का तुम स्वच्छन्दता पूर्वक पान करो ॥८३॥ हे शुभे ! इन सारी बातों का विचार करके तुम्हें मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिए। इस तरह की बातों को सुनकर वह प्रसन्न हो गयी ॥८४॥ उसके बाद वह पिपीलिका (चिंटी) अपने शरीर को उसे समर्पित कर दी जिससे कि वह मोहित हो गया । पूर्वकृत कर्मों के प्रभाव से सभी जीवों की बाणी को जानने वाले

भीष्म उवाच

कथं सर्वरुतज्ञोभूद्ब्रह्मदत्तो नराधिपः ॥८६॥
तच्चापि चाभवत्कुत्र चक्रवाकचतुष्टयं । तन्मे कथय सर्वज्ञ कुले कस्य च सुव्रतम् ॥८७॥

पुलस्त्य उवाच

तस्मिन्नेव पुरे जाताश्चक्रवाका अथो नृप ॥८८॥
वृद्धद्विजस्य दायादा विप्रा जातिस्मरा बुधाः । धृतिमांस्तत्त्वदर्शी च विद्यावर्णस्तपोधिकः ॥८९॥
नामतः कर्मतश्चैव सुदरिद्रस्य ते सुताः । तपसे बुद्धिरभवत्तेषां वै द्विजजन्मनाम् ॥९०॥
यास्यामः परमां सिद्धिमूचुस्ते द्विजसत्तमाः । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा सुदरिद्रो महातपाः ॥९१॥
उवाच दीनया वाचा किमेतदिति पुत्रकाः । अधर्म एष वः पुत्रा पिता तानित्युवाच ह ॥९२॥
वृद्धं पितरमुत्सृज्य दरिद्रं वनवासिनम् । क्वनु धर्मोऽत्र भविता मां त्यक्त्वा गतिमेव च ॥९३॥
ऊचुस्ते कल्पितावृत्तिस्तव तात वचःशृणु । व्रतमेतत्पुरा राज्ञः स ते दास्यति पुष्कलम् ॥९४॥
धनं ग्रामसहस्राणि प्रभाते पठतस्तव । कुरुक्षेत्रे तु ये विप्रा व्याधा दशपुरे तु ये ॥९५॥
कालंजरे मृगा भूताश्चक्रवाकास्तुमानसे । इत्युक्त्वा पितरं जग्मुस्ते वनं तपसे पुनः ॥९६॥
वृद्धोपि स द्विजो राजन् जगाम स्वार्थसिद्धये । अणुहो नाम वैभ्राजः पञ्चालाधिपतिः पुरा ॥९७॥
पुत्रार्थी देवदेवेशं पद्मयोनिं पितामहम् । आराधयामास विभुं तीव्रव्रतपरायणः ॥९८॥
ततः कालेन महता तुष्टस्तस्य पितामहः । वरं वरय भद्रं ते हृदयेभीप्सितं नृप ॥९९॥

अणुह उवाच

पुत्रं मे देहि देवेश महाबलपराक्रमम् । पारगं सर्वविद्यानां धार्मिकं योगिनां वरम् ॥१००॥

ब्रह्मदत्त इन सारी बातों को जानकर सहसा हँस पड़ा । **भीष्मजी ने कहा**— राजा ब्रह्मदत्त किस कारण से सभी जीवों की बोली समझने वाला हो गया ?॥८५-८६॥ किञ्च वे चारो कहाँ पर चक्रवाक हुए । हे सर्वज्ञ ! वे किसके कुल में हुए ? इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ॥८७॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— हे राजन् ! वे उसी नगर में ब्राह्मण हुए ॥८८॥ वृद्ध ब्राह्मण के वे पुत्र जातिस्मर थे । उनके कर्मानुसार नाम थे धृतिमान्, तत्त्वदर्शी, विद्यार्णव और तपोधिक । वे अत्यन्त दरिद्र के पुत्र थे । उन सभी ब्राह्मणों की तपस्या करने की इच्छा हुयी ॥८९-९०॥ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने कहा हमलोग परमा सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त करेंगे । उन सबों की वाणी को सुनकर महातपस्वी सुदरिद्र ने कहा ॥९१॥ हे पुत्रों ! यह क्या करना चाहते हो ? उन सबों के पिता ने कहा पुत्रों यह अधर्म है । वन में रहने वाले मुझ वृद्ध दरिद्र को छोड़कर कहीं जाने से कौन सा धर्म होगा ?॥९३॥ उन सबों ने कहा— हे तात! आप हमलोगों की बात सुनें । आपकी वृत्ति की व्यवस्था हो गयी है । इस नगरी के राजा का यह व्रत है वह आपको पुष्कल दान देगा ॥९४॥ प्रात:काल में वेद का पाठ करने वाले आपको राजा धन तथा हजारों ग्राम का दान देगा । आप उससे कहेंगे कुरुक्षेत्र के दशपुर में जो व्याध हुए थे वे ॥९५॥ वे कालञ्जर पर्वत पर मृग हो गये । उसके बाद वे मानसरोवर में चक्रवाक हुए । इस तरह से कहकर वे तपस्या करने के लिए वन में चले गये ॥९६॥ हे राजन् ! वह वृद्ध ब्राह्मण भी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उस नगरी में चला गया । उस समय विभ्राज का पुत्र अणुह ही पाञ्चाल देश का स्वामी था पुत्र प्राप्ति की कामना से उसने तीव्र तपस्या करते हुए पद्मयोनि ब्रह्माजी की आराधना की॥९७-९८॥ दीर्घकाल के पश्चात् ब्रह्माजी प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा— राजन् ! अपने अभिलषित वरदान को माँगो॥९९॥ **अणुह ने कहा**— हे देवेश मुझे आप महाबलवान् तथा महापराक्रमी पुत्र प्रदान कीजिये । जो सभी विद्याओं का ज्ञाता, धार्मिक और श्रेष्ठयोगी हो ॥१००॥ आप सभी जीवों की ध्वनि को जानने वाले पुत्र को प्रदान

सर्वसत्वरुतज्ञं मे देहि योगिनमात्मजम् । एवमस्त्विति विश्वात्मा तमाह परमेश्वरः॥१०१॥
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवांतरधीयत । ततः स तस्य पुत्रोभूद्ब्रह्मदत्तः प्रतापवान् ॥१०२॥
सर्वसत्वानुकंपी च सर्वसत्त्वबलाधिकः । सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च सर्वसत्त्वेश्वरेश्वरः ॥१०३॥
अथ सत्त्वेन योगात्मा स पिपीलकमागतः । यत्र तत्कीटमिथुनं रममाणमवस्थितम्॥१०४॥
ततः सा सन्नतिर्दष्ट्वा प्रहसंतं सुविस्मितम्। किमप्याशंकमाना सा तमपृच्छन्नरेश्वरम् ॥१०५॥

सन्नतिरुवाच

अकस्मादितिहासोऽयं किमर्थमभवन्नृप । हास्यहेतुं न जानामि यदकाले कृतं त्वया॥१०६॥
अवदद्राजपुत्रोऽसौ तं पिपीलिकभाषितम् । रागवद्विरसोत्पन्नमेतद्धास्यं वरानने॥१०७॥
नचान्यत्कारणं किंचिद्धास्यहेतुः शुचिस्मिते । न सामन्यत तं देवी प्राहालीकमिदं तव ॥१०८॥
अहमेवेह हसिता न जीविष्ये त्वयाधुना । कथं पिपीलिकालापं मर्त्यो वेत्ति सुरादृते ॥१०९॥
तस्मात्त्वयाऽहमेवाद्य हसिता किमतः परम् । ततो निरुत्तरो राजा जिज्ञासुस्तद्वचो हरेः॥११०॥
आस्थाय नियमं तस्थौ सप्त रात्रमकल्मषः । स्वप्नान्ते प्राह तं ब्रह्मा प्रभाते पर्यटन्पुरम् ॥१११॥
वृद्धद्विजोत्तमाद्वाक्यं सर्वं ज्ञास्यति ते प्रिया । इत्युयुक्त्वांतर्दधे ब्रह्मा प्रभाते च नृपः पुरात्॥११२॥
निर्गच्छन्मन्त्रिसहितः सभार्यो वृद्धमग्रतः। गदंतं विप्रमायांतं वृद्धंच स ददर्श ह ॥११३॥

ब्राह्मण उवाच

ये विप्रमुख्याः कुरुजांगलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च ।
कालजंरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे तत्र वसंति सिद्धाः ॥११४॥

करें । ऐसा ही हो; यह कहकर विश्वात्मा परमेश्वर ॥१०१॥ ब्रह्माजी सबों के देखते ही देखते अन्तर्धान हो गये । उसके बाद उस अणुह के प्रतापी पुत्र ब्रह्मदत्त हुए ॥१०२॥ वे सभी जीवों पर कृपा करने वाले तथा सभी जीवों से अधिक बलवान् थे । वे सभी जीवों की ध्वनि को जानने वाले तथा सभी जीवों के नियामक थे ॥१०३॥ उसके बाद वे योगात्मा उस चींटी के पास आये जहाँ पर वे दोनों कीट रमण करते हुए विद्यमान थे ॥१०४॥ उसके बाद उनकी पत्नी सन्नति उनको जोर से हँसते हुए देखकर कुछ आशंका करके राजा से पूछी ॥१०४-१०५॥ **सन्नति ने कहा**— राजन् ! आप अकस्मात् इतना अधिक क्यों हँसे बिना किसी कारण के इतनी हँसी का कारण क्या है?॥१०६॥ उसके बाद राजा ने उस चींटी की वाणी को बतलाया और कहा— सुमुखि ! इस वाणी को सुनकर मुझे हँसी आ गयी ॥१०७॥ हे शुचिस्मिते ! हँसी का दूसरा कोई कारण नहीं है, किन्तु सन्नति ने उसे माना नहीं और कहा यह तुम झूठ बोल रहे हो ॥१०८॥ तुमने मुझको देखकर हँसा है, अब मैं जीवित नहीं रह सकती । किसी देवता को छोड़कर कोई मनुष्य किसी चींटी की बात को कैसे जान सकता है ?॥१०९॥ अतएव तुम आज मुझ पर ही हँसे हो, इसको छोड़कर कोई दूसरी बात नही हो सकती है । उसके बाद राजा निरुत्तर हो गये । श्रीहरि की वाणी को जानने की इचछा से ॥११०॥ निष्पाप राजा सात रात्रियों तक नियम का पालन किए । प्रातःकाल में उस नगर में आकर ब्रह्माजी स्वप्न के अन्त में कहे ॥१११॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण की वाणी सुनकर तुम्हारी पत्नी सारी वातों को जान जायेगी । इसतरह से स्वप्न के अन्त में कहकर ब्रह्माजी राजा के नगर से अन्तर्धान हो गये ॥११२॥ राजा भी अपनी पत्नी तथा मन्त्री के साथ उस नगर से बाहर निकले । उन्होंने अपने सामने वेदपाठ करते हुए आते हुए वृद्ध ब्राह्मण को देखे ॥११३॥ **ब्राह्मण ने कहा**— जो श्रेष्ठ ब्राह्मण इस कुरुजांगल (कुरुक्षेत्र) प्रदेश में दशपुर में दाश (व्याध) हुए उसके बाद में कालंजर पर्वत पर जाकर मृग हुए । उसके बाद वे सातों मानसरोवर में चक्रवाक पक्षी हुए । वे सभी सिद्ध वहीं पर निवास करे हैं ॥११४॥ इस वाणी को सुनकर वह राजा शोक सन्तप्त होकर गिर पड़ा । वह

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सपपात शुचान्वितः । जातिस्मरत्वमगमत्तौ च मंत्रिवरात्मजौ ॥११५॥
कामशास्त्रप्रणेता तु बाभ्रव्यः स तु बालकः । पंचाल इति लोकेषु विश्रुतः सर्वशास्त्रवित् ॥११६॥
पुंडरीकोपि धर्मात्मा वेदशास्त्रप्रवर्तकः । भूत्वा जातिस्मरो शोकात्पतितावग्रतस्तथा ॥११७॥
हा वयं कर्मविभ्रष्टाः कामतः कर्मबंधनात् । एवं विलप्यबहुशस्त्रयस्ते योगपारगाः ॥११८॥
विस्मयाच्छ्राद्धमाहात्म्यमभिनंद्य पुनः पुनः । स तु तस्मै धनं दत्त्वा प्रभूतग्रामसंयुतम् ॥११९॥
विसृज्य ब्राह्मणं तं च वृद्धं धनमदन्वितम् । आत्मीयं नृपतिः पुत्रं नृपलक्षणसंयुतम् ॥१२०॥
विष्वक्सेनाभिधानं च राजा राज्येभ्यषेचयत् । मानसे सलिले सर्वे ततस्ते योगिनांवराः ॥१२१॥
ब्रह्मदत्तादयस्तस्मिन्पितृभक्ता विमत्सराः । सन्नतिश्चाभवद्धृष्टा मयैव तव दर्शितम् ॥१२२॥
राजन्योगफलं सर्वं यदेतदभिलक्ष्यते । तथेति प्राह राजापि पुरस्तादभिनंदयन् ॥१२३॥
त्वत्प्रसादादिदं सर्वं मयैवं प्राप्यते फलम् । ततस्ते योगमास्थाय सर्व एव वनौकसः ॥१२४॥
ब्रह्मरंध्रेण परमं पदमापुस्तपोबलात् ॥१२५॥
एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गमोक्षसुखानि च । प्रयच्छंति सुतं राज्यं नृणां तुष्टाः पितामहाः ॥१२६॥
इदं च पितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्य वै नृप । द्विजेभ्यः श्रावयेद्विदान् श्रृणोति पठतेपि वा ।
कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ॥१२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पितृमाहात्म्यकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

तथा उसके दोनों जो मंत्री थे वे पुनः जातिस्मर हो गये ॥११५॥ वह बालक बाभ्रव्य कामशास्त्र का प्रणेता हुआ । वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता हुआ तथा लोक में पञ्चाल के नाम से विख्यात हुआ ॥११६॥ धर्मात्मा पुण्डरीक भी वेदशास्त्र का प्रवर्तक था वह जाति स्मर होकर उन दोनों के समक्ष शोक संतप्त होकर गिर पड़ा ॥११७॥ हाय ! हमलोग काम के कारण योगभ्रष्ट हो गये । इस तरह से वे तीनों योगी वहुत अधिक विलाप करके ॥११८॥ विस्मय पूर्वक श्राद्ध की महिमा का वार-वार अभिनन्दन किये ब्रह्मदत्त ने उस ब्राह्मण को प्रभूत धन सम्पत्ति तथा ग्राम प्रदान किया॥११९॥ उस ब्राह्मण को विदा करके धन के मद से युक्त अपने पुत्र को जो राजा के लक्षण से युक्त था ॥१२०॥ जिसका नाम विष्वक्सेन था उसको अपने राज्य पर अभिषिक्त कर दिया । उसके बाद वे सभी ब्रह्मदत्त इत्यादि श्रेष्ठ योगी मानसरोवर के जल में मत्सर रहित होकर पितृभक्त हो गये । सन्नति भी यह कहती हुयी प्रसन्न हो गयी कि आपने मुझे दिखा दिया ॥१२१-१२२॥ हे राजन् ! यह सब जो दिखायी देता है, योग का फल है । उसके समक्ष अभिनंदन करते हुए राजा ने भी कहा— हाँ ऐसी ही बात है ॥१२३॥ तुम्हारी कृपा से मुझे यह सब फल प्राप्त हो रहा है॥१२३-१२४॥ उसके वाद वे सभी वनवासी योग को धारण करके, अपनी तपस्या के बल से ब्रह्मरन्ध्र से उत्क्रमण करके परमपद को प्राप्त कर लिए ॥१२५॥ इसतरह प्रसन्न होकर पितृगण, श्राद्ध कर्ता को आयु, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष तथा सुख प्रदान करते हैं ॥१२६॥ हे राजन् ! यह जो ब्रह्मदत्त का पितृ माहात्म्य है । विद्वान् को चाहिए कि वह द्विजों को सुनाये, अथवा जो ब्राह्मणों से इसे सुनता है वह सौ करोड़ कल्पों से भी अधिक काल तक ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है ॥१२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पितृमाहात्म्य वर्णन नामक दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

कस्मिन्वासरभागे तु श्राद्धी श्राद्धं समाचरेत्। तीर्थेषु केषु वै श्राद्धं कृतं बहुफलं द्विज॥१॥

पुलस्त्य उवाच

तीर्थं तु पुष्करं नाम यत्तु श्रेष्ठतमं स्मृतम्। सर्वेषां द्विजमुख्यानां मनोरथमिव स्थितम् ॥२॥
तत्र दत्तं हुतं जप्तमनन्तं भवति ध्रुवम्। पितृणां वल्लभं नित्यमृषीणां परमं मतम् ॥३॥
नंदाथ ललिता तद्वत्तीर्थमायापुरी शुभा। तथामित्रपदं राजंस्ततः केदारमुत्तमम्॥४॥
गंगासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम् । तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिलं शुभम् ॥५॥
तीर्थं तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम् । गंगोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः ॥६॥
तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलधृक् । यत्र तत्कांचनं दानमष्टादशभुजो हरः ॥७॥
नेमिस्तु धर्मचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत्पुरा । तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥८॥
देवदेवस्य तत्रापि वराहस्य च दर्शनम् । यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपुरं व्रजेत् ॥९॥
कोकामुखं परं तीर्थमिन्द्रमार्गोऽपि लक्ष्यते। अथापि पितृतीर्थं ब्रह्मणोव्यक्तजन्मनः ॥१०॥
पुष्करारण्यसंस्थोसौ यत्र देवः पितामहः । विरिंचिदर्शनं श्रेष्ठमपवर्गफलप्रदम् ॥११॥
कृतं नाम महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् । यत्राद्यो नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः ॥१२॥
तीर्थमिक्षुमती नाम पितृणां च शुभावहा। तुष्यन्ति पितरो नित्यं गंगायमुनसंगमे ॥१३॥

श्राद्धयोग्य प्रशस्त स्थानों का वर्णन, सत्य, दया, इन्द्रिय, निग्रह, तथा शम आदि के तीर्थत्व का वर्णन तथा श्राद्ध के योग्य प्रशस्त काल का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे द्विज ! श्राद्ध करने वाले को दिन के किस भाग में श्राद्ध करना चाहिए ? किन तीर्थों में किया हुआ श्राद्ध अधिक फलप्रद होता है ? **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पुष्कर नामक तीर्थ सबसे श्रेष्ठ माना गया है। वह सभी श्रेष्ठ द्विजों के मनोरथ के समान माना गया है ॥२॥ वहाँ पर किया गया होम, दान, जप अनन्त फलप्रद होता है, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है। वह ऋषियों तथा पितरों को अत्यन्त प्रिय तीर्थ है ॥३॥ इसके अतिरिक्त नन्दा, ललिता तथा मायापुरी (हरिद्वार) भी पुष्कर ही समान तीर्थ हैं। उससे बढकर मित्र पट तथा उससे बढकर केदार तीर्थ है ॥४॥ गङ्गासागर को सर्वतीर्थमय बतलाया गया है। उसी तरह का तीर्थ ब्रह्म सरोवर है, तथा शतद्रु का जल शुभ है ॥५॥ नैमिष तीर्थ सभी तीर्थों का फल प्रदान करने वाला है। नैमिष तीर्थ में गोमती नदी में गङ्गा नदी का सनातन श्रोत उत्पन्न हुआ है। वहाँ पर भगवान् यज्ञवराह तथा भगवान् शूलपाणि विराजते हैं। वहाँ सुवर्ण का दान दिया जाता है। वहाँ पर अठारह भुजाओं वाली भगवान् शङ्कर की मूर्ति है ॥७॥ नैमिषारण्य में ही धर्मचक्र की नेमि शीर्ण हो गयी थी, वह सभी तीर्थों से सेवित नैमिष तीर्थ है ॥८॥ वहाँ देवाधिदेव बराह का दर्शन जो कोई भी करता है, वह पवित्र होकर भगवान् नारायण के लोक में जाता है ॥९॥ कोकामुख नामक तीर्थ भी श्रेष्ठ तीर्थ है, वहाँ पर इन्द्रमार्ग का दर्शन होता है। यहाँ पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का पितृतीर्थ है॥१०॥ वहाँ के पुष्करारण्य में विद्यमान ब्रह्माजी का दर्शन मोक्षरूपी फल प्रदान करने वाला है ॥११। कृत नामक तीर्थ सभी पापों का विनाश करने वाला है। वहाँ पर स्वयं भगवान् जनार्दन आद्यनृसिंह रूप में विराजमान हैं ॥१२॥

कुरुक्षेत्रं महापुण्यं यत्र मार्गोऽपि लक्ष्यते । अद्यापि पितृतीर्थं तु सर्वकामफलप्रदम् ॥१४॥
नीलकण्ठमिति ख्यातं पितृतीर्थं नराधिप । तथा भद्रसरः पुण्यं सरो मानसमेव च ॥१५॥
मंदाकिनी तथाच्छोदा विपाशा च सरस्वती । सर्वमित्रपदं तद्वद्वैद्यनाथं महाफलम् ॥१६॥
क्षिप्रा नदी तथा पुण्या तथा कालंजरं शुभम् । तीर्थोद्भेदं हरोद्भेदं गर्भभेदं महालयम् ॥१७॥
भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च । गयापिंडप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः॥१८॥
एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च । स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धप्रदायिनाम् ॥१९॥
ॐकारं पितृतीर्थं तु कावेरी कपिलोदकम् । संभेदश्चण्डवेगायां तथैवामरकंटकम्॥२०॥
कुरुक्षेत्राच्चद्विगुणं तस्मिन्स्नानादिकं भवेत् । शुक्लतीर्थं तु विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम् ॥२१॥
सर्वव्याधिहरं पुण्यं फलं कोटिगुणाधिकम् । श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये चापि सन्निधौ॥२२॥
कायावारोहणं नाम देवदेवस्य शूलिनः। अवतारं रोचमानं ब्राह्मणावसथे शुभे ॥२३॥
जातं तत् सुमहापुण्यं तथा चर्मण्वती नदी । शूलतापी पयोष्णी च पयोष्णीसंगमस्तथा ॥२४॥
महौषधी चारणा च नागतीर्थप्रवर्त्तिनी । महावेणा नदीपुण्या महाशालस्तथैव च ॥२५॥
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थं हौताशनं परम् । भैरवं भृगुतुंगं च गौरीतीर्थमनुत्तमम्॥२६॥
तीर्थं वैनायकं नाम वस्त्रेश्वरमनुत्तमम् । तथा पापहरं नाम पुण्या वेत्रवती नदी॥२७॥
महारुद्रं महालिगं दशार्णा च महानदी । शतरुद्रा शताह्वा च तथा पितृपदं पुरम् ॥२८॥
अंगारवाहिकातद्वन्नदौ द्वौ शोणघर्घरौ। कालिका च नदी पुण्या पितरा च नदी शुभा॥२९॥

इक्षुमती नामक तीर्थ पितरों का कल्याण करने वाला है । जहाँ पर गङ्गा एवं यमुना का सङ्गम है वहाँ पर श्राद्ध करने से पितृगण सदैव तृप्त रहते हैं ॥१३॥ कुरुक्षेत्र अत्यन्त पुण्यप्रद तीर्थ है, वहाँ पर आज भी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले पितृतीर्थ का मार्ग दिखायी देता है ॥१४॥ हे राजन् ! नीलकण्ठ नामक पितृतीर्थ विख्यात है । इसी तरह का भद्रसर और मानसरोवर तीर्थ है । मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा, सरस्वती, सर्वमित्रपद, तथा महान फल देने वाला वैद्यनाथ तीर्थ है ॥१५-१६॥ उसी तरह परम पवित्र क्षिप्रा नदी और कालंजरगिरि तीर्थ हैं । तीर्थोद्भेद, हरोद्भेद, गर्भोद्भेद महालय ॥१७॥ भद्रेश्वर, विष्णुपद, नर्मदाद्वार (अमरकण्टक) तथा गया इन तीर्थों में पिण्डदान करने से एक समान फल होता है, यह महर्षियों ने कहा है ॥१८॥ ये सभी पितृतीर्थ स्मरण करने मात्र से भी सभी पापों को विनष्ट कर देने वाले हैं, जो लोग इन तीर्थों में पिण्डदान करते हैं उनके पुण्य के विषय में क्या कहना है?॥१९॥ ओङ्कार तीर्थ, कावेरी नदी, कपिला का जल, चण्डवेगा नदी में मिली हुयी नदियों के सङ्गम का जल तथा अमर कण्टक ये सभी पितृतीर्थ हैं ॥२०॥ अमरकण्टक में स्नान आदि करने से कुरुक्षेत्र की अपेक्षा दश गुना फल होता है । विख्यात शुक्ल तीर्थ तथा महान् सोमेश्वर तीर्थ ॥२१॥ ये सभी व्याधियों के विनाश करने वाले हैं । यहाँ पर श्राद्ध, दान, होम, स्वाध्याय तथा निवास करने से अन्य तीर्थों की अपेक्षा करोड़ गुना अधिक पुण्य होता है ॥२२॥ कायावार नामक महान् तीर्थ में किसी तेजस्वी ब्राह्मण के घर में भगवान् शङ्कर का अवतार हुआ था ॥२३॥ वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र है । चर्मण्वती, शूलतापी, पयोष्णी तथा पयोष्णी का सङ्गम ॥२४॥ महौषधी, चारणा, नागतीर्थप्रवर्तिनी, अत्यन्त पवित्र महावेणा नदी, महाशाला ॥२५॥ गोमती, वरुणा, हुताशनपुर, भैरवतीर्थ, महान् भृगुतीर्थ, श्रेष्ठ गौरी तीर्थ ॥२६॥ वैनायक नामक तीर्थ, श्रेष्ठ वस्त्रेश्वर तीर्थ, पापहर तीर्थ, पवित्र वेत्रवती (बेतवा) नदी ॥२७॥ महारुद्र तीर्थ, महालिङ्ग तीर्थ, दशार्णा नदी, महानदी, शतरुद्रा नदी, शताह्व नदी, पितृपद पुर ॥२८॥ अङ्गारवाहिका नदी,

एतानि पितृतीर्थानि शस्यंते स्नानदानयोः । श्राद्धमेतेषु यद्दत्तं तदनंतफलदं स्मृतम् ॥३०॥
शतावटा नदीज्वाला शरद्वी च नदी तथा। द्वारका कृष्णतीर्थं च तथाह्युदक्सरस्वती ॥३१॥
नदी मालवतीनाम तथा च गिरिकर्णिका। धूतपापं तथातीर्थं समुद्रे दक्षिणे तथा ॥३२॥
गोकर्णो गजकर्णश्च तथा चक्रनदीशुभा । श्रीशैलं शाकतीर्थं च नारसिंहमतः परम् ॥३३॥
महेंद्रं च तथा पुण्या पुण्या चापि महानदी । एतेष्वपि सदा श्राद्धमनंतफलदं स्मृतम् ॥३४॥
दर्शनादपि पुण्यानि सद्यः पापहराणि वै। तुंगभद्रानदी पुण्या तथा चक्ररथीति च ॥३५॥
भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी चाञ्जना नदी। नदी गोदावरी पुण्या त्रिसंध्या पूर्णमुत्तमम् ॥३६॥
तीर्थं त्रैयंबकं नाम सर्वतीर्थनमस्कृतम् । यत्रास्ते भगवान्भीमः स्वयमेव त्रिलोचनः ॥३७॥
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिगुणं भवेत् । स्मरणादपि पापानि व्रजंति शतधा नृप ॥३८॥
श्रीपर्णा च नदी पुण्या व्यासतीर्थमनुत्तमम् । तथा मत्स्यनदीराका शिवधारा तथैव च॥३९॥
भवतीर्थं च विख्यातं पुण्यतीर्थं च शाश्वतम् । पुण्यं रामेश्वरं तद्वद्वेणापुरमलंपुरम् ॥४०॥
अंगारकं च विख्यातमामदर्शमलंबुषम् । वत्सव्रातेश्वरं तद्वत्तथा गोकामुखं परम् ॥४१॥
गोवर्द्धनं हरिश्चंद्रपुरश्चंद्रं पृथूदकम्। सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी॥४२॥
नामधेयानि च तथा तथा सौमित्रिसंगतम्। इंद्रनीलं महानादं तथा च प्रियमेलकम् ॥४३॥
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि च । एतेषु सर्वदेवानां सांनिध्यं पठ्यते यतः ॥४४॥
दानमेतेषु सर्वेषु भवेत्कोटिशताधिकम् । बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवटं शुभम् ॥४५॥
तीर्थं पाशुपतं चैव नदीपर्यटिका तथा । श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम् ॥४६॥

उसी तरह शोण तथा घर्घर (घघरा) ये दोनों नद, पवित्र कालिका नदी, पितरा नदी ॥२९॥ ये सबके सब पितृतीर्थ हैं। ये सब स्नान तथा दान करने के लिए श्रेष्ठ माने गये हैं। इन तीर्थों में किया गया श्राद्ध अनन्त फल प्रदान करने वाला बतलाया गया है ॥३०॥ शतावटा नदी, ज्वाला शरद्वी नदी, श्रीकृष्ण तीर्थ द्वारका, उदक् सरस्वती॥३१॥ मालवती नदी, गिरिकर्णिका नदी, धूतपाप तीर्थ तथा दक्षिण समुद्र के तट पर विद्यमान ॥३२॥ गोकर्णतीर्थ, गजकर्ण तीर्थ, चक्रा नदी, श्रीशैल, शाकतीर्थ तथा नारसिंह तीर्थ ॥३३॥ महेन्द्र तीर्थ, महापुण्या नदी, महानदी, इन तीर्थों में भी किया गया श्राद्ध अनन्त फल प्रदान करने वाला बतलाया गया है ॥३४॥ ये सभी तीर्थ दर्शन करने मात्र से भी पापों को शीघ्र विनष्ट कर देने वाले है। पवित्र तुङ्गभद्रा नदी, चक्ररथी नदी ॥३५॥ भीमेश्वर तीर्थ, कृष्णवेणा नदी, कावेरी नदी, अञ्जना नदी, पवित्र गोदावरी नदी, उत्तम त्रिसन्ध्या तीर्थ ॥३६॥ सभी तीर्थों से नमस्कृत त्र्यम्बक तीर्थ जहाँ भीम नाम से विख्यात भगवान् शङ्कर स्वयं विराजमान हैं ॥३७॥ इन तीर्थों में किया गया श्राद्ध तथा दान करोड गुना फल देने वाला होता है। हे राजन् ! इन तीर्थों का स्मरण करने से भी सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥३८॥ पवित्र श्रीपर्णा नदी, तथा सर्वोत्तम व्यासतीर्थ, तथा शिवानदी, राकानदी, शिवधारा, विख्यात भवतीर्थ, सनातन पुण्यतीर्थ, पुण्य कारक रामेश्वर तीर्थ, वेणापुरम्, अलंपुरम् ॥३९-४०॥ विख्यात अङ्गारक तीर्थ, आत्मादर्शतीर्थ, अलंवुष तीर्थ, वत्सव्रातश्वेर तीर्थ, गोकामुखतीर्थ ॥४१॥ गोवर्द्धन तीर्थ, हरिश्चन्द्र पुर, चन्द्रपुर, पृथूदक तीर्थ, सहस्राक्ष तीर्थ, हिरण्याक्षतीर्थ तथा कदली नदी ॥४२॥ नामधेय तीर्थ, सौमित्रि सङ्गम तीर्थ, इन्द्र नील तीर्थ, महानाडतीर्थ तथा प्रियमेलक ॥४३॥ ये तीर्थ भी श्राद्ध के लिए अत्यन्त प्रशस्त माने गये हैं; क्योंकि इन सभी तीर्थों में सभी देवताओं का निवास बतलाया गया है ॥४४॥ इन तीर्थों में किया गया दान सौ करोड़ गुणा अधिक पुण्यप्रद होता है। पवित्र

तथैव पंचतीर्थं च यत्र गोदावरी नदी । युतालिंगसहस्रेण सव्येतरजलावहा ॥४७॥
जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं मोदायतनमुत्तमम् । प्रतीकस्य भयात्सिद्धा यत्र गोदावरी नदी ॥४८॥
तीर्थं तद्धव्यकव्यानामप्सरोगणसंयुतम् । श्राद्धाग्निदानकार्यं च तत्र कोटिशताधिकम् ॥४९॥
तथासहस्रलिंगं च राघवेश्वरमुत्तमम् । सेंद्रकाला नदी पुण्या तत्रशक्रोगतः पुरा॥५०॥
निहत्य नमुचिं मित्रं तपसा स्वर्गमाप्तवान् । तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनंतफलदं भवेत् ॥५१॥
पुष्करं नाम वै तीर्थं शालग्रामं तथैव च । शोणपातश्च विख्यातो यत्र वैश्वानराशयः ॥५२॥
तीर्थं सारस्वतं चैव स्वामितीर्थं तथैव च । मलंदरा नदी पुण्या कौशिकी चंद्रका तथा ॥५३॥
विदर्भा चाथवेगा च पयोष्णी प्राङ्मुखा परा । कावेरी चोत्तरांगा च तथा जालंधरो गिरिः ॥५४॥
एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानंत्यमश्नुते । लोहदंडं तथातीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ॥५५॥
दिव्यं सर्वत्र गंगायास्तथानद्यास्तटं शुभम् । कुब्जाम्रकं तथातीर्थमूर्वशीपुलिनं तथा॥५६॥
संसारमोचनंतीर्थं तथैव ऋणमोचनम् । एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानंत्यमश्नुते॥५७॥
अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च । तथावसिष्ठतीर्थं च भारतं च ततः परम् ॥५८॥
ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हंसतीर्थं तथैव च । पिंडारकं च विख्यातं शंखोद्धारं तथैव च॥५९॥
भांडेश्वरं बिल्वकं च नीलपर्वतमेव च । तथा च बदरीतीर्थं सर्वतीर्थेश्वरेश्वरम्॥६०॥
वसुधाराह्वयं तीर्थं रामतीर्थं तथैव च । जयंती विजया चैव शुक्लतीर्थं तथैव च ॥६१॥
एषु श्राद्धप्रदातारः प्रयांति परमं पदम् । तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा ॥६२॥
सप्तगोदावरीनाम सर्वतीर्थेश्वरेश्वरम् । तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनंतफलमीप्सुभिः ॥६३॥

बहुदा नदी, सिद्धवट नामक पवित्र तीर्थ ॥४५॥ पाशुपततीर्थ तथा पर्यटिका नदी, इन सबों में किया गया श्राद्ध तथा दान सौ करोड़ गुणा से भी अधिक पुण्यप्रद होता है ॥४६॥ वह पञ्च तीर्थ जहाँ पर गोदावरी नदी दक्षिणावर्त प्रवाहित होती है । वह नदी हजार लिङ्गों से युक्त है ॥४७॥ परशुरामजी का वह तीर्थ सर्वोत्तम आनन्दप्रद है । वहाँ पर गोदावरी नदी प्रतीक के भय से सदा प्रवाहित होती रहती है ॥४८॥ अप्सराओं के समूह से युक्त हव्य-कव्य तीर्थ में किया गया श्राद्ध तथा अग्निदान कार्य सौ करोड़ गुणा से भी अधिक फल देने वाला होता है ॥४९॥ उसी तरह सहस्रलिङ्ग तीर्थ, उत्तम राघवेश्वर तीर्थ, पवित्र इन्द्रकला नदी जहाँ पर प्राचीन काल में जाकर ॥५०॥ इन्द्र अपने मित्र नमुचि को मार कर स्वर्ग का राज्य प्राप्त किए । वहाँ मनुष्यों द्वारा किए गये श्राद्ध का अनन्त फल होता है ॥५१॥ पुष्कर तीर्थ, शालग्राम तीर्थ, शोणापत (सोनपत) नामक तीर्थ जहाँ पर वैश्ववानराशय तीर्थ है ॥५२॥ सारस्वत तीर्थ, स्वामी तीर्थ, पवित्र मलंदरा नदी, कौशिकी नदी, चन्द्रिका नदी ॥५३॥ विदर्भा नदी, वेगानदी, पयोष्णी नदी, प्राङ्मुखा नदी, कावेरी नदी, उत्तराङ्गा नदी, जालंधर पर्वत ॥५४॥ इन सभी श्राद्ध तीर्थों में किये गये श्राद्ध का अनन्त फल होता है । लोहदण्ड तीर्थ, चित्रकूट तीर्थ ॥५५॥ तथा सर्वत्र गङ्गा का मङ्गलमय तट, कुब्जाम्रक तीर्थ, उर्वशी पुलिन तीर्थ ॥५६॥ संसार मोचन तीर्थ तथा ऋणमोचन तीर्थ, इन पितृतीर्थों में किए गये श्राद्ध का अनन्त गुना फल होता है ॥५७॥ अट्टहास तीर्थ, गौतमेश्वर तीर्थ, वसिष्ठ तीर्थ, भारत तीर्थ ॥५८॥ ब्रह्मावर्त तीर्थ, कुशावर्त तीर्थ, तथा हंस तीर्थ, विख्यात पिण्डारक तीर्थ, शंखोद्धार तीर्थ ॥५९॥ भाण्डेश्वर तीर्थ, विल्वक तीर्थ, नीलगिरि, सभी तीर्थो का स्वामी बदरिकाश्रम तीर्थ ॥६०॥ वसुंधारा नामक तीर्थ तथा रामतीर्थ, जयन्ती तीर्थ, विजयातीर्थ एवं शुक्ल तीर्थ॥६१॥ इन तीर्थो में श्राद्ध करने वाले पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । मातृगृह तीर्थ, करवीर पुर नामक तीर्थ ॥६२॥ समस्त श्रेष्ठ

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्। च्यवनस्याश्रमं पुण्यं नदी पुण्या पुनःपुना ॥६४॥
विषयाराधनं पुण्यं नदी या तु पुनः पुना। यत्र गाथा विचरति ब्रह्मणा परिकीर्तिता ॥६५॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत्। यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥६६॥
एषा गाथा विचरति तीर्थेष्वायतनेषु च । सर्वे मनुष्या राजेंद्र कीर्त्तयंतः समागताः ॥६७॥
किमस्माकं कुले कश्चिद्गयां यास्यति यः सुतः । प्रीणयिष्यति तान् गत्वा सप्तपूर्वांस्तथापरान् ॥६८॥
मातामहानामप्येवं श्रुतिरेषा चिरंतनी । गंगायामस्थिनिचयं गत्वा क्षेप्स्यति यः सुतः ॥६९॥
तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि दास्यते च जलांजलिम्। अरण्यत्रितयं वापि पिंडदानं करिष्यति ॥७०॥
प्रथमं पुष्करारण्ये नैमिषे तदनंतरं। धर्मारण्यं पुनः प्राप्य श्राद्धं भक्त्या प्रदास्यति ॥७१॥
गयायां धर्मपृष्ठे वा सरसि ब्रह्मणस्तथा। गयाशीर्षवटे चैव पितृणां दत्तमक्षयम् ॥७२॥
व्रजन्कृत्वा निवापं यस्त्वध्वानं परिसर्पति । नरकस्थान्पितृन्सोपि स्वर्गं नयति सत्वरम् ॥७३॥
कुले तस्य न राजेंद्र प्रेतो भवति कश्चन। प्रेतत्वं मोक्षभावं च पिंडदानाच्च गच्छति ॥७४॥
एको मुनिस्ताम्रकराग्रहस्त ह्याम्रेषु मूले सलिलं ददाति ।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रियाद्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥७५॥
गयायां पिण्डदानस्य नान्यद्दानं विशिष्यते। एकेन पिंडदानेन तृप्तास्ते मोक्षगामिनः ॥७६॥
धान्यप्रदानं प्रवरं वदंति वसुप्रदानं च तथा मुनींद्राः। गयासुतीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुं प्रवरं वदन्ति ॥७७॥

तीर्थों का स्वामी सप्तगोदावरी तीर्थ। श्राद्ध का अनन्त फल प्राप्त करना चाहने वालों को इन स्थानों में श्राद्ध करना चाहिए ॥६३॥ कीकट प्रदेश में गया तीर्थ पवित्र है तथा राजगृह नामक वन पवित्र है, वहाँ का च्यवनाश्रम पवित्र है तथा पुनः पुना (पुन-पुन) नदी पवित्र है ॥६४॥ विषयाराधन तीर्थ में विद्यमान पुन-पुन नदी पवित्र है। जहाँ पर ब्रह्माजी द्वारा गायी गयी गाथा विचरण करती है ॥६५॥ **एष्टव्या० इत्यादि** गृहस्थों को अनेक पुत्रों को प्राप्त करने की कामना इसलिए करना चाहिए कि हो सकता है कि उन सबों में से कोई अपने पिता का श्राद्ध करने के लिए गया जाय, अथवा अश्वमेघ याग करे, अथवा पिता के नाम पर काला सांड छोड़े ॥६६॥ यह गाथा सभी तीर्थों तथा सभी गृहों में विचरण करती है। हे राजेन्द्र ! एक बार सभी मनुष्य यह गाते हुए गया में आये ॥६७॥ क्या हमारे कुल का कोई पुत्र गया जायेगा ? वहाँ जाकर क्या वह अपने से सात पीढी पहले के तथा सात पीढी बाद के होने वाले जीवों को तृप्त करेगा ?॥६८॥ मातामह (नाना) आदि के भी विषय में यही प्राचीन गाथा है कि क्या कोई हमारे वंश का पुत्र गया तीर्थ में जाकर हमारी अस्थियों को वहाँ डालेगा ?॥६९॥ क्या वह सात आठ तिलों से भी हमें वहाँ जलाञ्जलि प्रदान करेगा। अथवा तीन अरण्यों में जाकर पिण्डदान करेगा ?॥७०॥ क्या वह पहले पुष्कर अरण्य में, उसके बाद नैमिषारण्य में तथा उसके बाद धर्मारण्य में जाकर भक्तिपूर्वक श्राद्ध करेगा ?॥७१॥ गया के धर्मपृष्ठ पर या ब्रह्मसरोवर पर अथवा गयाशीर्ष वट में पितरों के लिए किया गया दान अक्षय होता है ॥७२॥ जो व्यक्ति घर पर श्राद्ध करके गया के लिए मार्ग में जाते समय ही, वह शीघ्र ही नरक में भी विद्यमान पितरों को स्वर्ग में पहुँचा देता है ॥७३॥ हे राजेन्द्र ! उसके वंश में कोई प्रेत नहीं होता है और जो प्रेत हुए रहते है, वे पिण्डदान करने से मुक्त हो जाते है ॥७४॥ गया में एक मुनि थे वे अपने हाथ में कलश तथा कुश लेकर, आम की जड़ में तर्पण किया करते थे, उससे आम भी सींच जाते थे और पितृगण भी तृप्त हो जाते थे। इसतरह से एक ही क्रिया से दो प्रयोजनों की सिद्धि होती थी ॥७५॥ गया में जाकर पिण्डदान करने से बढ़कर कोई भी दान नहीं है। गया में एक ही पिण्डदान

सर्वात्मना सुरुचिना महाचलमहानदी। ये तु पश्यंति तां गत्वा मानसे दक्षिणोत्तरे ॥७८॥
प्रणम्य द्विजमुख्येभ्यः प्राप्तं तैर्जन्मनः फलम्। यद्यदिच्छति वैमर्त्यस्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥७९॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहो मया। वागीशोपि न शक्नोति विस्तरात्किमुमानुषः ॥८०॥
सत्यंतीर्थं दयातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। वर्णाश्रमाणां गेहेपि तीर्थं शम उदाहृतम् ॥८१॥
येषु तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते। गयायां यत्तुवै श्राद्धं तच्छ्राद्धमपवर्गदम् ॥८२॥
यस्मात्तस्मात्प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं विधीयते । प्रातःकाले मुहूर्तांस्त्रीन्संगवस्तावदेव तु ॥८३॥
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परम् । सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ॥८४॥
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु। अह्नो मुहूर्ताव्याख्याता दशपंच च सर्वदा॥८५॥
तत्राष्टमो मुहूर्तो यः सकालः कुतपः स्मृतः। मध्याह्नात्सर्वदा यस्मान्मंदी भवति भास्करः ॥८६॥
तस्मादनंतफलदस्तत्रारंभो विशिष्यते। खड्गपात्रं च कुतपस्तथानैपाल कंबलम् ॥८७॥
रुक्मं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः । पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य तत्तापकारिणः ॥८८॥
अष्टवेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः । ऊर्ध्वं मुहुर्त्तात्कुतपान्महूर्त्तं च चतुष्टयम् ॥८९॥
मुहूर्त्त पचकं चैव स्वधावाचनमिष्यते । विष्णुदेहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णातिलास्तथा ॥९०॥
श्राद्धस्य लक्षणं कालमिति प्राहुर्मनीषिणः। तिलोदकांजलिर्देयो जलांते तीर्थवासिभिः ॥९१॥

करने से पितृगण मुक्त हो जाते हैं ॥७६॥ कुछ महर्षि अन्न दान करने को श्रेष्ठ वतलाते हैं, दूसरे धन दान करने को श्रेष्ठ वतलाते है । किन्तु महर्षिगण गया तीर्थ में मनुष्यों द्वारा किया गया पिण्डदान सवसे श्रेष्ठ बतलाते है॥७७॥ जो लोग पूर्णरूप से रुचिपूर्वक मानसरोवर के दक्षिण एवं उत्तर तट पर जाकर महाचल तथा महानदी का दर्शन करते हैं॥७८॥ तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम करते हैं, वे जन्म का फल प्राप्त कर लेते हैं । ऐसा कहने वाला मनुष्य जो कुछ भी चाहता है, वह वही प्राप्त कर लेता है ॥७९॥ इसतरह से मैंने (सूतजी) ने संक्षेप में तीर्थों का वर्णन किया। विस्तार पूर्वक तो सभी तीर्थों का वर्णन वृहस्पतिजी भी नहीं कर सकते हैं, मनुष्यों की क्या बात है?॥८०॥ सत्य तीर्थ, दयातीर्थ है, इन्द्रियों का निग्रह भी तीर्थ है अपने घर में रहकर शम का पालन करते हुए अपने वर्ण एवं आश्रम धर्मों का अनुष्ठान भी तीर्थ कहा गया है ॥८१॥ जिस तीर्थ में जो श्राद्ध वतलाया गया है, उसके करोड़ गुणा फल गया श्राद्ध का होता है । गया में किया गया श्राद्ध मोक्ष प्रदान करने वाला होता है ॥८२॥ अतएव तीर्थों में श्राद्ध का विधान किया गया है । सवेरे तीन मुहूर्त का प्रातःकाल होता है । तीन ही मुहूर्त का संगव होता है । उसके वाद तीन मुहूर्त का मध्याह्न होता है । उसके वाद तीन मुहूर्त का अपराहण होता है । उसके बाद तीन मुहुर्त का सायंकाल होता है । सायाह्न काल में श्राद्ध नहीं करना चाहिए ॥८४॥ यह बेला राक्षसी वेला होती है। वह सभी कर्मो के लिए निन्दित होती है । दिन के पन्द्रह मुहूर्त वतलाये गये हैं ॥८५॥ उनमें जो दोपहर के बाद आठवाँ मुहूर्त होता है, उसकाल को कुतप कहते हैं । चूकि मध्याह्न के वाद सूर्य मन्द होने लगते हैं ॥८६॥ उसी बेला में प्रारम्भ किया जाने वाला श्राद्ध अनन्त फल प्रदान करने वाला है । खड्गपात्र, कुतप, नेपाल में बना हुआ कम्वल ॥८७॥ सुवर्ण, कुश, तिल, गौ तथा आठवाँ दौहित्र (पुत्री का पुत्र) ये आठो पापों को सन्तप्त करने वाले हैं॥८८॥ इसीलिए इन आठों को कुतप कहा जाता है । कुतप मुहूर्त के बाद चार मुहूर्त तक ॥८९॥ ये पाँच मुहूर्त स्वधावाचन श्राद्ध के समय वतलाये गये हैं । कुश तथा काले तिल ये भगवान् विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुए हैं ॥९०॥ मनीषियों ने यही श्राद्ध का लक्षण और काल वतलाया है । तीर्थ में निवास करने वालों को जल में प्रवेश करके तिलाञ्जलि देनी चाहिए ॥९१॥

सदर्भहस्तेनैकेन गृहे श्राद्धं गमिष्यति । पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥९२॥
ब्रह्मणा चैव कथितं तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम् । शृणोति यःपठेद्वापि श्रीमान्संजायते नरः ॥९३॥
श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः। सर्वपापोपशांत्यर्थमलक्ष्मीनाशनं मतम् ॥९४॥
इदं पवित्रं यशसो निधान, मिदं महापातकनाशनंच ।
ब्रह्मार्करुद्रैरभिपूजितं च, श्राद्धस्यमाहात्म्यमुशंति तज्ज्ञाः ॥९५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे श्राद्धप्रकरणं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

सोमवंशः कथं जातःकथयात्र विशारद । तद्वंशे के तु राजानो बभूवुः कीर्तिवर्द्धनाः ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

आदिष्टो ब्रह्मणा पूर्वमत्रिः सर्गविधौ पुरा । अनुतरंनामतपः सृष्ट्यर्थं तप्तवान्विभुः ॥२॥
यदानंदकरं ब्रह्म भगवन्क्लेशनाशनम् । ब्रह्मरुद्रेन्द्रसूर्याणामभ्यन्तरमतींद्रियम् ॥३॥

एक हाथ में कुश लेकर घर में श्राद्ध करना चाहिए। यह श्राद्ध का वर्णन पवित्र, पुण्यप्रद, आयु प्रदान करने वाला तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला होता है ॥९२॥ यह तीर्थ श्राद्ध कीर्तन ब्रह्माजी ने वर्णित किया है। जो व्यक्ति इसका श्रवण करता है अथवा इसे पढता है वह ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है ॥९३॥ श्राद्ध के समय तीर्थ वासियों को इस अध्याय का पाठ करना चाहिए ऐसा करना सभी पापों का नाश करता है तथा अलक्ष्मी का नाश करता है॥९४॥ विज्ञपुरुष जानते हैं कि यह अत्यन्त पवित्र, यश को बढाने वाला, महापातकों का नाश करने वाला है। यह श्राद्ध का माहात्म्य ब्रह्मा, रुद्र तथा सूर्य से सम्मानित है ॥९५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के श्राद्धप्रकरण नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

चन्द्रवंश का वर्णन, चन्द्रमा के यज्ञ का वर्णन, चन्द्रमा द्वारा तारा का हरण, बृहस्पति के प्रार्थना करने पर भी चन्द्रमा ने जब तारा को नहीं लौटाया तो रुद्र के द्वारा युद्ध किए जाने के बाद चन्द्रमा का तारा को लौटाना। तारा के गर्भ से चन्द्रमा के पुत्र बुध की उत्पत्ति, बुध के पुत्र पुरुरवा की उत्पत्ति, पुरूरवा का चरित्र, पुरुरवा के वंश का वर्णन, बृहस्पति द्वारा रजि के पुत्र का मोहन, तथा कार्तवीर्य (सहस्त्रार्जुन) के नाम स्मरण का माहात्म्य

भीष्मजी ने कहा— हे विशारद ! आप यह बतलायें की सोमवंश कैसे हुआ ? इस वंश में कौन-कौन से प्रख्यात राजा हुए ॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने अत्रि महर्षि को सृष्टि करने के लिए कहा उसके बाद अत्रि महर्षि सृष्टि करने के लिए उपयोगी शक्ति प्राप्त करने के लिए अनंतर नामक तप किया आनन्दप्रद क्लेश को नष्ट करने वाले परब्रह्म श्रीभगवान् ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा सूर्य के भीतर जिस अतीन्द्रिय तप को

शान्तिं कृत्वात्ममनसा तदत्रिः संयमे स्थितः। माहात्म्यं तपसो वापि परमानंदकारकम् ॥४॥
यस्माद्वंशपतिः सार्द्धं समये तदधिष्ठितः। तं दृष्ट्वा चष्टसोमेन तस्मात्सोमोभवद्विभुः ॥५॥
अथ सुस्राव नेत्राभ्यां जलं तत्रात्रिसंभवम्। द्योतयद्विश्वमखिलं ज्योत्स्नया सचराचरम् ॥६॥
तद्दिशोजगृहुस्तत्र स्त्रीरूपेणसहच्छयाः। गर्भो भूत्वोदरेतासां स्थितः सोप्यत्रिसंभवः ॥७॥
आशाश्च मुमुचुर्गर्भमशक्ता धारणे ततः। समादायाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः ॥८॥
युवानमकरोद्ब्रह्मा सर्वायुधधरं नरम्। स्यंदनेथ सह स्तेन वेदशक्तिमये प्रभुः ॥९॥
आरोप्य लोकमनयदात्मीयं स पितामहः। ततो ब्रह्मर्षिभिः प्रोक्तं ह्यस्मत्स्वामीभवत्वयम् ॥१०॥
ऋषिभिर्देवगंधर्वैरप्सरोभिस्तथैव च। स्तूयमानस्य तस्याभूदधिकं महदंतरम् ॥११॥
तेजोवितानादभवद्भुवि दिव्यौषधीगणः। तद्दीप्तिरधिका तस्माद्रात्रौ भवति सर्वदा ॥१२॥
तेनौषधीशः सोमोऽभूद्द्विजेष्वपि हिगण्यते। वेदधामा रसश्चायं यदिदं मंडलं शुभम् ॥१३॥
क्षीयते वर्द्धते चैव शुक्ले कृष्णे च सर्वदा। विंशतिं च तथा सप्त दक्षः प्राचेतसो ददौ ॥१४॥
रूपलावण्यसंयुक्तास्तस्मै कन्याःसुवर्चसः। ततःशक्तिसहस्राणां सहस्राणि दशैव तु ॥१५॥
तपश्चकार शीतांशुर्विष्णुध्यानैकतत्परः। ततस्तुष्टश्च भगवांस्तस्मै नारायणो हरिः ॥१६॥
वरं वृणीष्व चोवाच परमात्मा जनार्दनः। ततो वव्रे वरं सोमः शक्रलोके यजाम्यहम् ॥१७॥
प्रत्यक्षमेव भोक्तारो भवंतु मम मंदिरे। राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्या ये चतुर्विधाः ॥१८॥
रक्षपालः सुरोस्माकमास्तांशूलधरो हरः। तथेत्युक्तः समाजह्ने राजसूयं तु विष्णुना ॥१९॥

मन से शान्ति प्राप्त किये, उसी तप को अत्रि महर्षि करने लगे। उस महातप का माहात्म्य भी परमानन्द प्रदान करने वाला है ॥२-४॥ चूँकि यह वंश वंशपति के साथ सोम से अधिष्ठित, हुआ अतएव वह सोम कहलाया उसके बाद महर्षि अत्रि के दोनों नेत्रों से जल निकला। वह जल सम्पूर्ण चराचर को अपनी कान्ति से प्रकाशित कर रहा था ॥५-६॥ उसको दिशाओं ने स्त्री रूप से गर्भ रूप में धारण कर लिया। वह अत्रि मुनि से उत्पन्न जल दिशाओं के उदर में गर्भ रूप से स्थित हो गया ॥७॥ उस गर्भ को धारण करने में असमर्थ होकर दिशाओं ने उसका त्याग कर दिया। उस गर्भ को ब्रह्माजी ने एकत्रित कर दिया ॥८॥ और उसको युवक बना दिया। वह सभी आयुधों को धारण करने वाला मनुष्य हो गया। उसके बाद वेदशक्ति से युक्त रथ पर ॥९॥ बैठाकर ब्रह्माजी उसे अपने साथ लाये। उसके बाद ब्रह्मर्षियों ने कहा यह हमारा स्वामी है। उसी तरह ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वो तथा अप्सराओं ने उस युवक को अपना स्वामी माना। स्तुति किए जाने वाले उस युवक में महान् अन्तर हो गया ॥१०-११॥ उसके तेज के प्रकाश से पृथिवी पर दिव्य औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं। उसके कारण उसकी कान्ति रात्रि में अधिक होती है ॥१२॥ उसके कारण वह सोम (चन्द्रमा) औषधियों तथा द्विजों (ब्राह्मणों) का स्वामी माना जाता है। उसका मण्डल (चन्द्रमण्डल) वेद की कान्ति का रस (सार) है ॥१३॥ वह सदा कृष्ण पक्ष में क्षीण होता है तथा शुक्ल पक्ष में बढता है। दक्ष ने अपनी सत्ताइस कन्याओं का विवाह चन्द्रमा से कर दिया ॥१४॥ दक्ष की वे सारी कन्यायें, रूप, लावण्य तथा कान्ति से सम्पन्न थीं ॥१५॥ उसके बाद चन्द्रमा ने हजारों हजार वर्ष तक भगवान् विष्णु के ध्यान में मग्न रहकर तपस्या की। उससे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि प्रकट होकर चन्द्रमा को वरदान माँगने के लिए कहे। उसके बाद चन्द्रमा ने वरदान माँगा कि मैं इन्द्र लोक में यज्ञ करने वाला होऊँ ॥१६-१७॥ मेरे उस राजसूय यज्ञ में ब्रह्मा आदि जो चारो प्रकार के देवता हैं वे मेरे यहाँ प्रकट रहकर यज्ञ के भाग के भोक्ता बनें ॥१८॥ उस यज्ञ के रक्षक शूलपाणि

होतात्रिर्भृगुरध्वर्युरुद्गाता च चतुर्मुखः। ब्रह्मत्वमगमत्तस्य उपद्रष्टा हरिः स्वयम् ॥२०॥
सदस्याः सर्वदेवास्तु राजसूयविधिः स्मृतः । वसवोध्वर्यवस्तद्वद्विश्वेदेवास्तथैव च ॥२१॥
त्रैलोक्यं दक्षिणा तेन ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादिता। सोमः प्राप्याथदुष्प्राप्यमैश्वर्यं सृष्टिसत्कृतम् ॥२२॥
सप्तलोकैकनाथत्वं प्राप्तस्स्वतपसा तदा । कदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणोपशोभाम् ॥२३॥
बृहन्नितंबस्तनभारखेदां पुष्पावभंगेप्यतिदुर्वलांगीम्। भार्यां च तां देवगुरोरनंगबाणभिरामायतचारुनेत्राम् ॥२४॥

तारां स ताराधिपतिः स्मरार्तः केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ ।
सापि स्मरार्ता सह तेन रेमे तद्रूपकांत्या हृतमानसैव ॥२५॥
चिरं विहृत्याथ जगाम तारां विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोपि ।
न तृप्तिरासीत्स्वगृहेपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखागमेषु ॥२६॥
बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्ध्याननिष्ठैकमना बभूव ।
शशाक शापं न च दातुमस्मै न मंत्रशस्त्राग्निविषैरनेकैः ॥२७॥
तस्यापकर्तुं विविधैरुपायैर्नैवाभिचारैरपि वागधीशः ।
स याचयामास तस्तुदेवं सोमं स्वभार्यार्थमनंगतप्तः ॥२८॥
स याच्यमानोपि ददौ न भार्यां बृहस्पतेः कामवशेन मोहितः ।
महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेन साध्यैर्मरुद्भिः सहलोकपालैः ॥२९॥
ददौ यदा तां न कथंचिदिंदुस्तदाशिवः क्रोधपरो बभूव ।
यो वामदेवः प्रथितः पृथिव्यामनेकरुद्रार्चितपादपद्मः ॥३०॥

शङ्करजी रहें । भगवान् विष्णु के तथास्तु कहने पर चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ प्रारम्भ किया ॥१९॥ उस यज्ञ में होता महर्षि अत्रि थे, भृगु महर्षि अध्वर्यु हुए तथा ब्रह्माजी उद्गाता हुए । स्वयं भगवान् श्रीहरि उपद्रष्टा रूप से ब्रह्मा हुए॥२०॥ उस राजसूय यज्ञ में सभी देवता सदस्य हुए । उस यज्ञ में वसुगण तथा विश्वेदेव अध्वर्युगण हुए ॥२१॥ चन्द्रमा ने ऋत्विजों को दक्षिणा में त्रैलोक्य को ही प्रदान कर दिया । उसके कारण सम्पूर्ण समादृत ऐश्वर्य को चन्द्रमा ने प्राप्त किया ॥२२॥ उस समय चन्द्रमा ने तपस्या के बल से सातो लोकों के अकण्टक स्वामित्व को प्राप्त कर लिया । एक बार चन्द्रमा ने उद्यान में गयी हुयी, अनेक प्रकार के पुष्पों के अलङ्कारों से अलङ्कृत शोभा सम्पन्न, विस्तृत नितम्ब तथा स्तनों के भार से खिन्न, पुष्पों से अलङ्कृत होने पर भी दुर्बल अङ्गों वाली बृहस्पति की सुन्दर नेत्रों वाली पत्नी तारा को देखा और वह कामार्त होकर एकान्त स्थान में उसके केशों को पकड़ लिया । तारा भी चन्द्रमा के रूप और कान्ति को देखकर कामार्त हो गयी और उसके साथ उसने रमण किया ॥२३-२५॥ दीर्घ काल तक रमण करने के बाद चन्द्रमा तारा को लेकर अपने घर गये । अपने घर जाकर भी तारा में अनुरक्त मन वाले चन्द्रमा की तृप्ति नहीं हुयी ॥२६॥ बृहस्पति तारा की विरहाग्नि से संतप्त होकर, निरन्तर तारा की चिन्ता करने लगे। किन्तु वे चन्द्रमा को शाप देने में समर्थ नहीं हो सके, वे अनेक प्रकार के मन्त्र, शस्त्र तथा अग्नियों एवं अनेक प्रकार के उपायों एवं अभिचार कर्मों के द्वारा भी चन्द्रमा का अपकार करने में समर्थ नहीं हुए । अन्त में काम सन्तप्त बृहस्पति चन्द्रमा के पास जाकर तारा की याचना किए ॥२७-२८॥ किन्तु बृहस्पति के द्वारा याचना किए जाने पर भी काम परवश चन्द्रमा ने तारा को नहीं लौटाया । उसके बाद शङ्करजी, ब्रह्माजी, साध्य गण तथा लोकपालों एवं मरुद्गण के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भी ॥२९॥ जब चन्द्रमा ने तारा को नहीं दिया तो उस समय शङ्करजी ने कोप

ततः सशिष्यो गिरिशः पिनाकी बृहस्पतेः स्नेहवशानुबद्धः ।
धनुर्गृहित्वाऽजगवं पुरारिर्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः ॥३१॥
युद्धायसोमेन विशेषदीप्तस्तृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः ।
सहैव जग्मुश्च गणेश्वराणां विंशाधिकाषष्ठिरथोग्रमूर्तिः ॥३२॥
यक्षेश्वराणां सगणैरनेकैर्युतोन्वगात्स्यंदनसंस्थितानाम् ।
वेतालयक्षोरगकिन्नराणां पद्मेन चैकेन तथार्बुदानाम् ॥३३॥
लक्षैस्त्रिभिर्द्वादशभीरथानां सोमोप्यगात्तत्र विवृद्धमन्युः ।
शनैश्चरांगारकवृद्धतेजा नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः ॥३४॥
जग्मुर्भयंसप्ततथैव लोका धरावनद्वीपसमुद्रगर्भाः ।
स सोममेवाभ्यगमत्पिनाकी गृहीतदीप्तास्त्रविशालवह्निः॥३५॥
अथाभवद्भीषणभीमसोमसैन्यद्वयस्याथमहाहवोसौ ।
अशेषसत्वक्षयकृत्प्रवृद्धस्तीक्ष्णप्रधानोज्वलनैकरूपः ॥३६॥
शस्त्रैरथान्योन्यमशेषसैन्यं द्वयोर्जगामक्षयमुग्रतीक्ष्णैः ।
पतंति शस्त्राणि तथोज्वलानि स्वर्भूमिपातालमलं दहान्ति ॥३७॥
रुद्रः क्रोधाद्ब्रह्मशिरो मुमोच सोमोपिसोमास्त्रममोधवीर्यम् ।
तयोर्निपातेन समुद्रभूम्योरथान्तरिक्षस्य च भीतिरासीत् ॥३८॥
तदासुयुद्धं जगतां क्षयाय प्रवृद्धमालोक्यपितामहोपि ।
ततःप्रविश्याथ कथंचिदेव निवारयामाससुरैः सहैव ॥३९॥

किया । पृथिवी पर शङ्करजी के चरण कमलों की पूजा अनेक रुद्र करते हैं ॥३०॥ उसके बाद बृहस्पति के स्नेह से आबद्ध होकर शङ्करजी अपने अजगव नामक धनुष को धारण करके अपने गणों के साथ चन्द्रमा के पास गये॥३१॥ उस समय उनके तीसरे नेत्र की अग्नि प्रकाशित हो रही थी । वे चन्द्रमा के साथ युद्ध करने के लिए गये थे । उनका मुख भयङ्कर हो गया था । उनके साथ अस्सी उग्र मूर्ति गणेश्वर भी गये थे ॥३२॥ रथों पर बैठकर उनके साथ अनेक यक्षेश्वर भी गये थे । उस सेना में एक पद्म अर्बुद की संख्या में वेताल, यक्ष, सर्प तथा किन्नर थे ॥३३॥ क्रुद्ध होकर चन्द्रमा भी छत्तीस लाख रथियों के साथ वहाँ युद्ध करने के लिए आ गयें । शनिश्चर तथा भौम के द्वारा जिनका तेज बढा हुआ था, ऐसा ताराओं तथा असुरों की सेना चन्द्रमा के साथ थी ॥३४॥ उस समय सातो लोक तथा वन, द्वीप तथा समुद्रों से युक्त पृथिवी भयभीत हो गयी । देदीप्यमान अस्त्रों तथा विशाल नेत्राग्नि से युक्त शङ्करजी चन्द्रमा से युद्ध करने लगे ॥३५॥ उस समय चन्द्रमा तथा शङ्करजी की सेना के बीच भयङ्कर युद्ध हुआ । सम्पूर्ण जीवों को विनष्ट कर देने वाला तीक्ष्ण अग्नि स्वरूप वह युद्ध हो रहा था ॥३६॥ दोनों ओर के तीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा सेना क्षीण हो गयी । उस समय स्वर्ग, भूमि तथा पाताल को जलाते हुए शस्त्रपात हो रहे थे ॥३७॥ रुद्र ने क्रुद्ध होकर ब्रह्मशिरः अस्त्र का प्रयोग किया तो चन्द्रमा ने भी अपने अमोघ पराक्रम सम्पन्न सोमास्त्र का प्रयोग किया । उन दोनों के प्रयोग से समुद्र, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष के विनष्ट होने का खतरा उपस्थित हो गया ॥३८॥ उस समय संसार को विनष्ट करने वाले युद्ध को बढे हुए देखकर ब्रह्माजी वहाँ पर आकर किसी तरह देवताओं और असुरों को युद्ध करने से रोके ॥३९॥ उन्होंने कहा— सोम तुम भी बिना किसी कारण के ही लोगों को विनष्ट करने वाले इस अकार्य को

अकारणं किं क्षयकृज्जनानां सोमत्वयापीदमकार्यकार्यम् ।
यस्मात्परस्त्रीहरणाय सोम त्वया कृतं युद्धमतीवभीमम् ॥४०॥
पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु पापोस्यलं वह्निमुखाशिनां त्वम् ।
भार्यामिमामर्पयवाक्पतेस्त्वं प्रमाणयन्नेवमदीयवाचम् ॥४१॥
तथेतिचोवाच हिमांशुमाली युद्धादपाक्रामदतः प्रशांतः ।
बृहस्पतिस्तामथ गृह्य तारां हृष्टो जगाम स्वगृहं च रुद्रः ॥४२॥

पुलस्त्य उवाच

ततः संवत्सरस्यांते द्वादशादित्यसन्निभः । दिव्यपीताम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ॥४३॥
तारोदरविनिष्क्रान्तः कुमारस्सूर्यसन्निभः । सर्वार्थशास्त्रविद्विद्वान् हस्तिशास्त्रप्रवर्त्तकः ॥४४॥
नामयद्राजपुत्रोयं विश्रुतो राजवैद्यकः । राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद्राजपुत्रो बुधः स्मृतः ॥४५॥
जनानां तु स तेजांसि सर्वाण्येवाक्षिपद्बली । ब्रह्माद्यास्तत्र चाजग्मुर्देवादेवर्षिभिः सह ॥४६॥
बृहस्पतिगृहे सर्वे जातकर्मोत्सवे तदा । पप्रच्छुस्ते सुरास्तारां केन जातः कुमारकः ॥४७॥
ततः सा लज्जिता तेषां न किंचिदवदत्तदा । पुनः पुनस्तदा पृष्टा लज्जयंती वरांगना ॥४८॥
सोमस्येति चिरादाह ततो गृह्याद्विधुः सुतम् । बुधइत्यकरोन्नाम प्रादाद्राज्यं च भूतले ॥४९॥
अभिषेकं ततः कृत्वा प्रदानमकरोद्विभुः । ग्रहमध्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिर्युतः ॥५०॥
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवांतरधीयत । इलोदरे च धर्मिष्ठं बुधः पुत्रमजीजनत् ॥५१॥
अश्वमेधशतं साग्रमकरोद्यस्स्वतेजसा । पुरूरवा इति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥५२॥
हिमवच्छिखरे रम्ये समाराध्य पितामहम् । लोकैश्वर्यमगाद्राजन्सप्तद्वीपपतिस्तदा ॥५३॥

क्यों करते हो ? तुमने दूसरे की पत्नी का अपहरण करने के लिए यह अत्यन्त भयङ्कर युद्ध किया है ॥४०॥ तुम लोको में पापग्रह हो जाओगे, क्योंकि तुमने देवताओं का अपराध किया है । मेरी बात मानों बृहस्पति की इस पत्नी को लौटा दो ॥४१॥ जब सोम ने कहा कि ठीक है, तो उस समय शान्त होकर अंशुमाली (सूर्य) भी युद्ध से चले गये । बृहस्पति भी अपनी पत्नी तारा को लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपने घर चले गये । रुद्र भी अपने स्थान पर चले गये ॥४२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** संवत्सर के अन्त में द्वादशादित्य के समान दिव्य, पीताम्बरधारी, दिव्य अलङ्कारों से अलङ्कृत ॥४३॥ सूर्य के समान बालक तारा के उदर से निकला । वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता तथा हस्तिशास्त्र का प्रवर्तक था ॥४४॥ प्रख्यात राजवैद्य ने उसका नाम राजपुत्र रखा । राजा सोम का पुत्र होने के कारण बुध नाम का राजपुत्र हुआ ॥४५॥ वह बालक सभी लोगों के तेज को तिरस्कृत कर रहा था ब्रह्मा आदि सभी देवता देवर्षियों के साथ; जब उस बालक का जातकर्म संस्कार हो रहा था तो बृहस्पति के घर आये । उन लोगों ने तारा से पूछा कि यह किसका पुत्र है ?॥४६-४७॥ उस समय लज्जित होने के कारण उन लोगों के बार-बार पूछने पर भी वह नहीं बोली ॥४८॥ बहुत देर के बाद तारा ने कहा यह सोम का पुत्र है, अतएव उसको चन्द्रमा ने ले लिया और उसका बुध नाम रखकर उन्होंने उसे पृथिवी का राज्य दे दिया ॥४९॥ चन्द्रमा ने उसका अभिषेक करके पृथिवी का राज्य दे दिया और ब्रह्माजी ने उसे ग्रहों के बीच एक ग्रह बना दिया ॥५०॥ उसके बाद ब्रह्माजी सबों के देखते-ही-देखते वहाँ से अन्तर्धान हो गये । बुध ने इला के गर्भ से एक धार्मिक पुत्र को पैदा किया ॥५१॥ वह सभी लोगों से नमस्कृत था । उसका नाम पुरूरवा हुआ । उसने सौ से भी अधिक अश्वमेध यागो को सम्पन्न किया ॥५२॥

केशिप्रभृतयो दैत्यास्तद्भृत्यत्वं समागताः । उर्वशी यस्य पत्नीत्वमगमद्रूपमोहिता ॥५४॥
सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना । धर्मेण पालिता तेन सर्वलोकहितैषिणा ॥५५॥
चामरग्रहणाकीर्तिः स्वयं चैवांगवाहिका । ब्रह्मप्रसादाद्देवेंद्रो ददावर्द्धासनं तदा ॥५६॥
धर्मार्थकामान्धर्मेण समवेतोभ्यपालयत् । धर्मार्थकामास्तं द्रष्टुमाजग्मुः कौतुकान्विताः ॥५७॥
जिज्ञासवस्तच्चरितं कथं पश्यति नः समम् । भक्त्या चक्रे ततस्तेषामर्घ्यपाद्यादिकं ततः ॥५८॥
आसनत्रयमानीय दिव्यं कनकभूषणम् । निवेश्याथाकरोत्पूजामीषद्धर्मेधिकां पुनः ॥५९॥
जग्मतुस्तौ च कामार्थावतिकोपं नृपं प्रति । अर्थः शापमदात्तस्मै लोभात्त्वन्नाशमेष्यसि ॥६०॥
कामोप्याह तवोन्मादो भविता गंधमादने । कुमारवनमाश्रित्य वियोगाच्चोर्वशीभवात् ॥६१॥
धर्मोप्याह चिरायुस्त्वं धार्मिकश्च भविष्यसि । संततिस्तवराजेंद्र यावदाचंद्रतारकम् ॥६२॥
शतशो वृद्धिमायाति न नाशं भुवि यास्यति। षष्ठिवर्षाणि चोन्माद ऊर्वशीकामसंभवः ॥६३॥
अचिरादेवभार्यापि वशमेष्यति चाप्सराः । इत्युक्त्वांतर्दधुः सर्वे राजा राज्यं तदान्वभूत् ॥६४॥
अहन्यहनि देवेंद्रं द्रष्टुं याति पुरूरवाः । कदाचिदारुह्य रथं दक्षिणांबरचारिणा ॥६५॥
सार्धं शक्रेण सोऽपश्यन्नीयमानामथांबरे । केशिनादानवेन्द्रेण चित्रलेखामथोर्वशीम् ॥६६॥
तं विनिर्जित्य समरे विविधायुधपातनैः । पुराशक्रोपि समरे येन वज्री विनिर्जितः ॥६७॥
मित्रत्वमगमत्तेन प्रादादिंद्राय चोर्वशीम् । ततःप्रभृति मित्रत्वमगमत्पाकशासनः ॥६८॥

हिमालय पर्वत के शिखर पर ब्रह्माजी की आराधना करके वह सम्पूर्ण लोकों के ऐश्वर्य को प्राप्त करके सातों द्वीपों का स्वामी हो गया ॥५३॥ केशी आदि दैत्य उसके नौकर थे । उसके रूप को देखकर मोहित हुयी उर्वशी उसकी पत्नी बन गयी ॥५४॥ सम्पूर्ण लोकों का कल्याण चाहने वाले उस राजा ने, पर्वत, कानन तथा वन से युक्त पृथिवी का धर्मपूर्वक पालन किया ॥५५॥ चामर को ग्रहण करने वाली कीर्ति स्वयं उसके अङ्गों की सेवा करने वाली हुयी । ब्रह्माजी की कृपा से इन्द्र ने पुरूरवा को अपना आधा आसन प्रदान किया ॥५६॥ वह धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनों का समान रूपेण पालन करता था । एक बार कौतुक वशात् धर्म, अर्थ और काम राजा पुरुरवा को देखने के लिए आये ॥५७॥ वे यह जानना चाहते थे कि यह राजा किस प्रकार हम तीनों को समान रूप से मानता है ? राजा ने आये हुए उन तीनों को भक्ति पूर्वक अर्घ्य प्रदान किया ॥५८॥ वह तीन सुवर्ण निर्मित आसनों को लाया । वह तीनों को उन आसनों पर बैठाकर इन तीनों का पूजन किया, किन्तु धर्म की उसने थोड़ी अधिक पूजा की ॥५९॥ उसके कारण अर्थ एवं काम राजा के प्रति अत्यन्त क्रोध किए । अर्थ ने राजा को शाप दिया कि लोभ के कारण तुम्हारा नाश हो जायेगा ॥६०॥ काम ने भी कहा कि गन्धमादन पर्वत पर तुम्हें उन्माद हो जायेगा । कुमार वन में तुम्हारा उर्वशी से वियोग हो जायेगा और उसके कारण तुम उन्मत्त हो जाओगे ॥६१॥ धर्म ने आशीर्वाद दिया तुम लम्वी आयु वाले तथा धार्मिक होओगे । हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सन्तानें तव तक वनी रहेंगी जव तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे ॥६२॥ उसकी अनेक प्रकार से वृद्धि होगी उसका नाश नहीं होगा । तुम्हें उर्वशी विषयक काम के कारण साठ वर्षों तक उन्माद होगा ॥६३॥ वह अप्सरा भी शीघ्र ही तुम्हारी वशवर्तिनी भार्या हो जायेगी । यह कहकर वे तीनों अन्तर्धान हो गये और राजा पुरूरवा भी राज्य करने लगे ॥६४॥ पुरूरवा प्रतिदिन देवेन्द्र से मिलने जाते थे । एक वार रथ पर चढकर दक्षिणाम्वरचारी रथ से ॥६५॥ इन्द्र के साथ वह केशी नामक दानवेन्द्र के द्वारा चित्रलेखा तथा उर्वशी नामक अप्सरा को ले जाते हुए देखा । केशी ने पहले इन्द्र को भी पराजित कर दिया था । उस केशी

सर्वलोकेतिशयितं पुरूरवसमेव तम् । प्राह वज्री तु संतुष्टो नीयतामियमेव च ॥६९॥
सा पुरूरवसः प्रीत्यैचागायच्चरितं महत् । लक्ष्मीस्वयंवरे नाम भरतेन प्रवर्तितम्॥७०॥
मेनकां चोर्वशीं रंभां नृत्यध्वमिति चादिशत् । ननर्त सलयं तत्र लक्ष्मीरूपेण चोर्वशी ॥७१॥
सा पुरूरवसं दृष्ट्वा नृत्यंती कामपीडिता । विस्मृताभिनयं सर्वं यत्पुरातनचोदितम् ॥७२॥
शशाप भरतः क्रोधाद्वियोगात्तस्य भूतले । पंचपंचाशदब्दानि लताभूता भविष्यसि ॥७३॥
ततस्तमूर्वशी गत्वा भर्त्तारमकरोच्चिरम् । शापानुभवनांते च ऊर्वशी बुधसूनुना ॥७४॥
अजीजनत्सुतानष्टौ नामतस्तान्निबोध मे । आयुर्दृढायुर्वश्यायुर्बलायुर्धृतिमान्वसुः ॥७५॥
दिव्यजायुः शतायुश्च सर्वे दिव्यबलौजसः । आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा तथैव च ॥७६॥
रजिर्दंडो विशाखश्च वीराः पंचमहारथाः । रजेः पुत्रशतं जज्ञे राजेया इति विश्रुतम् ॥७७॥
रजिराराधयामास नारायणमकल्मषम् । तपसा तोषितो विष्णुर्वरं प्रादान्महीपतेः ॥७८॥
देवासुरमनुष्याणामभूत्सविजयी तदा। अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम् ॥७९॥
प्रह्लादशक्रयोर्भीमं नकश्चिद्विजयी तयोः । ततो देवासुरैः पृष्टः पृथग्देवश्चतुर्मुखः ॥८०॥
अनयोर्विजयी कः स्याद्रजिर्यत्रेति सोऽब्रवीत् । जयाय प्रार्थितो राजा सहायस्त्वं भवस्व नः ॥८१॥
दैत्यैः प्राह यदि स्वामी वो भवामि ततस्त्वलम्। नासुरैः प्रतिपन्नं तत्प्रतिपन्नं सुरैस्तदा ॥८२॥
स्वामी भव त्वमस्माकं बलनाशय विद्विषः । ततोविनाशिताः सर्वे येऽवध्यावज्रपाणिनः ॥८३॥

को अनेक प्रकार के आयुधों के प्रहार से परास्त करके, उर्वशी को लाकर पुरूरवा ने इन्द्र को प्रदान कर दिया । उसके कारण इन्द्र की पुरूरवा से मित्रता हो गयी ॥६६-६८॥ संसार में सबसे श्रेष्ठ वीर पुरूरवा से इन्द्र ने कहा इसको तुम ले जाओ ॥६९॥ उर्वशी ने पुरूरवा को प्रसन्न करने के लिए उसके महान चरित का गान भरत के द्वारा प्रेरित होकर लक्ष्मी स्वयम्वर में किया ॥७०॥ उस नाटक में उन्होंने मेनका, उर्वशी तथा रम्भा को आदेश दिया कि तुमलोग नृत्य करो । वहाँ पर उर्वशी ने लयपूर्वक गीत गाते हुए लक्ष्मीरूप से नृत्य किया ॥७१॥ नृत्य करती हुयी वह पुरूरवा को देखकर कामार्त हो गयी और वह पूर्वोक्त सम्पूर्ण अभिनयों को भूल गयी ॥७२॥ उसके कारण क्रुद्ध होकर भरत मुनि ने शाप दे दिया कि उसका पृथिवी पर पुरूरवा से वियोग होगा । वह पचपन वर्षों तक लता के रूप में रहेगी ॥७३॥ उसके बाद उर्वशी राजा पुरुरवा के पास जाकर उन्हें अपना पति बना ली । जब शाप की समाप्ति हो गयी तो उर्वशी ने पुरूरवा के वीर्य से आठ पुत्रों का जन्म दिया । तुम उन सबों का नाम सुनो । आयु, दृढायु, वश्यायु, बलायु, धृतिमान, वसु ॥७४-७५॥ दिव्यायु तथा शतायु । ये आठो दिव्य बल और ओज से युक्त थे । आयु के पुत्र नहुष तथा वृद्धशर्मा, रजि, दण्ड, विशाख थे ये पाँचो वीर पुत्र महारथी थे । रजि के सौ पुत्र हुए । वे राजेय के नाम से विख्यात हुए ॥७६-७७॥ रजि ने भगवान् नारायण की आराधना की । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने उन्हें वर प्रदान किया ॥७८॥ उसके बाद वे देवताओं, असुरों तथा मनुष्यो पर विजय, प्राप्त किए। उसके पश्चात् तीन सौ वर्षों तक देवासुर संग्राम होता रहा ॥७९॥ उसमें प्रह्लाद तथा इन्द्र दोनों में से कोई भी विजय नहीं प्राप्त कर सका । उसके बाद देवताओं तथा असुरों ने अलग-अलग जाकर ब्रह्माजी से पूछा ॥८०॥ कि इन दोनों पक्षों में से कौन सा पक्ष विजयी होगा ? इस पर ब्रह्माजी ने कहा— जिस पक्ष की ओर से रजि युद्ध करेंगे वही पक्ष विजयी होगा । उसके बाद दोनों पक्षों के लोगों ने जाकर राजा रजि से प्रार्थना किए कि आप हमारी सहायता करें। इस पर रजि ने कहा हम उसी पक्ष की सहायता करेंगे जो हमे अपना इन्द्र बनाये । इस पर दैत्यों ने इस शर्त को

पुत्रत्वमगमत्तुष्टस्तस्येंद्रः कर्मणा ततः । दत्त्वेंद्राय पुरा राज्यं जगाम तपसे रजिः ॥८४॥
रजिपुत्रैस्दाछिन्नं बलादिंद्रस्य वै यदा । यज्ञभागश्च राज्यं च तपोबलगुणान्वितैः ॥८५॥
राज्यभ्रष्टस्ततः शक्रो रजिपुत्रनिपीडितः । प्राह वाचस्पतिं दीनः पीडितोऽस्मि रजेःसुतैः ॥८६॥
न यज्ञभागो राज्यं मे पीडितस्य बृहस्पते । राज्यलाभाय मे यत्नं विधत्स्व धिषणाधिप ॥८७॥
ततोबृहस्पतिः शक्रमकरोद्बलदर्पितम् । ग्रहशांतिविधानेन पौष्टिकेन च कर्मणा ॥८८॥
गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान्बृहस्पतिः । जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स धर्मवित् ॥८९॥
वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकार धिषणाधिपः । वेदवाह्यान् परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान् ॥९०॥
जघान शक्रो वज्रेण सर्वान्धर्मबहिष्कृतान् । नहुषस्य प्रवक्ष्यामि पुत्रान्सप्तैव धार्मिकान् ॥९१॥
यतिर्ययातिश्शर्यातिरुत्तरःपर एव च । अयतिर्वियतिश्चैव सप्तैते वंशवर्द्धनाः ॥९२॥
यतिः कुमारभावेपि योगी वैखानसोऽभवत् । ययातिरकरोद्राज्यं धर्मैकशरणः सदा ॥९३॥
शर्मिष्ठा तस्य भार्याभूद्दुहिता वृषपर्वणः । भार्गवस्यात्मजा चैव देवयानी च सुव्रता ॥९४॥
ययातेः पंचदायादास्तान्प्रवक्ष्यामि नामतः । देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुं चाप्यजीजनत् ॥९५॥
तथा द्रुह्यमणं पूरुं शर्मिष्ठा जनयत्सुतान् । यदुः पूरुश्च भरतस्ते वै वंशविवर्द्धनाः ॥९६॥
पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोसि पार्थिव । यदोस्तु यादवा जाता यत्र तौ बलकेशवौ ॥९७॥
भारावतारणार्थाय पांडवानां हिताय च । यदोः पुत्रा बभूवुश्च पंचदेवसुतोपमाः ॥९८॥

नहीं स्वीकार किया और देवताओं ने उसे स्वीकार कर लिया ॥८१-८२॥ **देवताओं ने कहा**— आप हमलोगों के स्वामी हो जायँ और शत्रुओं की सेना को नष्ट कर दें । उसके बाद वे असुर भी विनष्ट हो गये जिनको इन्द्र मार नहीं सके थे ॥८३॥ राजा रजि के कर्मों से प्रसन्न होकर इन्द्र उनके पुत्र बन गये । उसके बाद इन्द्र को राज्य प्रदान करके रजि तपस्या करने के लिए वन में चले गये ॥८४॥ तपस्या तथा बल रूपी गुण से युक्त रजि के पुत्रों ने इन्द्र से यज्ञ का भाग तथा राज्य दोनों छिन लिया तो ॥८५॥ रजि के पुत्रों से पीडित किए गये राज्यभ्रष्ट इन्द्र, दीन होकर वृहस्पति से कहे कि मुझे रजि के पुत्रों ने दुःख दिया है ॥८६॥ हे बृहस्पते ! अब न तो मेरा राज्य है और न तो यज्ञ का भाग ही मुझे मिलता है । हे देवाधिप आप ऐसा उपाय करें कि मुझे मेरा राज्य मिल जाय ॥८७॥ उसके बाद वृहस्पति ने इन्द्र को ग्रहशान्ति तथा पौष्टिक कर्मों के द्वारा बल से युक्त बना दिया ॥८८॥ बृहस्पति ने जाकर रजि के पुत्रों को मोहित कर दिया । धर्मज्ञ बृहस्पति ने उन सबों को जैन धर्मावलम्बी बनाकर उन्हें वेदबाहय बना दिया॥८९॥ वुद्धिमानों में श्रेष्ठ बृहस्पति ने रजि के पुत्रो को त्रयी धर्म से भ्रष्ट करके हेतु वादी (कुतार्किक) बना दिया, इस बात को जानकर ॥९०॥ उन समस्त धर्म बहिष्कृतों को इन्द्र ने वज्र से मार डाला । अब मैं यह बतलाता हूँ कि नहुष के सात ही पुत्र हुए । वे सब धार्मिक थे ॥९१॥ उन नहुष के पुत्रों के नाम थे यति, ययाति, शर्याति, उत्तर, पर, अयति तथा वियति । ये सातों वंश को बढाने वाले थे ॥९२॥ यति अपनी कुमारावस्था में वैखानस योगी हो गये । धर्म का पालन करते हुए ययाति राजा हुए ॥९३॥ ययाति की पत्नी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी । उनकी दूसरी पत्नी शुक्राचार्य की पुत्री सुव्रता देवयानी थी ॥९४॥ ययाति के पाँच पुत्र हुए उनमें देवयानी ने दो पुत्रों को जन्म दिया यदु तथा तुर्वसु को; शर्मिष्ठा ने तीन पुत्रों को जन्म दिया द्रुहयु मण तथ पुरु को । उनमें यदु, पुरु तथा भरत ये तीनों तुम्हारे (भीष्मजी के) ही वंश को बढाने वाले थे ॥९६॥ हे राजन् ! अब मैं तुम जिस वंश में उत्पन्न हुए हो उस पुरु के वंश का वर्णन करूँगा । यदु के वंश में यादव हुए, जिस वंश में बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए॥९७॥

सहस्रजित्तथाज्येष्ठः क्रोष्टा नीलोञ्जिको रघुः। सहस्रजितो दायादः शतजिन्नाम पार्थिवः ॥९९॥
शतजितश्च दायादा स्त्रयः परमधार्मिकाः। हैहयश्च हयश्चैव तथातालहयश्चयः ॥१००॥
हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रति श्रुतः। धर्मनेत्रस्य कुंतिस्तु संहतस्तस्य चात्मजः ॥१०१॥
संहतस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः। आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रसेनः प्रतापवान् ॥१०२॥
वाराणस्यामभूद्राजा कथितः पूर्वमेव हि। भद्रसेनस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नामधार्मिकः ॥१०३॥
दुर्दमस्य सुतो भीमो धनको नामवीर्यवान्। धनकस्य सुताह्यासन् चत्वारो लोकविश्रुताः ॥१०४॥
कृताग्निः कृतवीर्यश्च कृतधर्मा तथैव च। कृतौजाश्च चतुर्थोभूत्कृतवीर्याच्चसोऽर्जुनः ॥१०५॥
जातो बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः। वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥१०६॥
दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्योत्रिसंभवम्। तस्मै दत्तो वरान्प्रादाच्चतुरः पुरुषोत्तमः ॥१०७॥
पूर्वं बाहुसहस्रं तु सवव्रे राजसत्तमः। अधर्मं ध्यायमानस्य भीतिश्चापि निवारणम् ॥१०८॥
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणावाप्य वै बलम्। संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद्भवेत् ॥१०९॥
एतेनेयं वसुमती सप्तद्वीपा सपत्तना। सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ॥११०॥
जज्ञे बाहुसहस्रं च इच्छतस्तस्य धीमतः। सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन्भूरिदक्षिणाः ॥१११॥
सर्वे कांचनयूपास्ते सर्वे कांचनवेदिकाः। सर्वे देवैश्च संप्राप्ता विमानस्थैरलंकृतैः ॥११२॥
गंधर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवापि सेविताः। यस्य यज्ञे जगौ गाथा गंधर्वो नारदस्तथा ॥११३॥
कार्त्तवीर्यस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य सः। न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति पार्थिवाः ॥११४॥

वे दोनों पृथिवी के भार को उतारने के लिए तथा पाण्डवों का कल्याण करने के लिए अवतीर्ण हुए थे। यदु के देवताओं के समान पाँच पुत्र हुए ॥९८॥ सहस्रजित्, क्रोष्टा, नील, अञ्जिक तथा रघु। इनमें सहस्रजित् सबसे बड़े थे। सहस्रजित् के पुत्र राजा शतजित् हुए ॥९९॥ शतजित् के तीन परम धार्मिक पुत्र हुए हैहय, हय तथा तालहय॥१००॥ हैहय का पुत्र धर्मनेत्र के नाम से विख्यात था। धर्मनेत्र के पुत्र कुन्ति हुए और कुन्ति के पुत्र संहत हुए ॥१०१॥ संहत के पुत्र राजा महिष्मान् हुए महिष्मान् के भद्रसेन प्रतापी पुत्र हुए ॥१०२॥ वे वाराणसी के राजा हुए इस बात को मैं पहले कह चुका हूँ। भद्रसेन के धार्मिक पुत्र दुर्दम हुए। दुर्दम के धनक नाम से प्रसिद्ध भीम हुए। धनक के लोक विख्यात चार पुत्र हुए ॥१०४॥ कृताग्नि, कृतवीर्य, कृतधर्मा तथ कृतौजा। कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन हुए ॥१०५॥ उनकी एक हजार भुजायें थी। वे सातो द्वीपों के स्वामी हुए। उन्होंने दश हजार वर्ष पर्यन्त कठोर तपस्या की ॥१०६॥ कार्तवीर्य ने महर्षि अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय की आराधना की। उससे प्रसन्न होकर पुरुषोत्तम दत्तात्रेय ने उसे चार वरदान दिया ॥१०७॥ प्रथम वरदान में राजा ने अपनी एक हजार भुजाओं को माँगा। दूसरे वरदान में उन्होंने माँगा कि उनको अधर्म का भय न रहे ॥१०८॥ तीसरे वरदान के रूप में धर्मतः बल प्राप्त करके युद्ध में सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय माँगा और चौथे वरदान के रूप में अपने से अधिक बलवान् के द्वारा युद्ध में मारा जाना माँगा ॥१०९॥ इस वरदान के द्वारा सहस्रार्जुन क्षात्र विधि से सात द्वीपों, तथा नगरों से युक्त सात समुद्रों से घिरी हुयी पृथिवी पर विजय प्राप्त किया ॥११०॥ सहस्रार्जुन की इच्छानुसार उसकी एक हजार भुजायें हो गयीं। उन महाबाहू ने प्रभूत मात्रा में दक्षिणा देकर सभी यज्ञों को किया ॥१११॥ उनके यज्ञ के सभी स्तम्भ तथा सभी वेदियाँ सुवर्ण निर्मित थीं। वे सबके सब अलंकृत विमानों वाले देवताओ से प्राप्त हुए थे ॥११२॥ वे गन्धर्वों तथा अप्सराओ से सदैव ही सेवित थे। उस राजा के यज्ञ में गन्धर्व तथा नारदजी ने गाथा गाया था ॥११३॥ राजर्षि

यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च। सप्तद्वीपाननुचरन् वेगेन पवनोपमः ॥११५॥
पंचाशीतिसहस्राणि वर्षाणां च नराधिपः। सप्तद्वीपपृथिव्याश्च चक्रवर्ती बभूव ह ॥११६॥
स एवपशुपालो भूत्क्षेत्रपालः स एव हि। स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनो भवत् ॥११७॥
योऽसौ बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा। भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्करः ॥११८॥
एष नाम मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः। एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै ॥११९॥
क्रीडते स्वसुखायैव प्रतिस्रोतो महीपतिः। ललनाः क्रीडता तेन प्रतिबद्धोर्मिमालिनी॥१२०॥
ऊर्मिभ्रुकुटिमाला सा शांकिताभ्येति नर्मदा। एष एव मनोर्वंशे त्ववगाहेन्महार्णवम् ॥१२१॥
करेणोद्धृत्यवेगं तु कामिनी प्रीणनेन तु। तस्य बाहु सहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ ॥१२२॥
भवंति लीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः। तदूरुक्षोभचकिता अमृतोत्पादशंकिताः ॥१२३॥
नता निश्चलमूर्द्धानो भवंति च महोरगाः। एष धन्वी च चिक्षेप रावणं प्रतिसायकान् ॥१२४॥
एष धन्वी धनुर्गृह्य उत्सिक्तं पंचभिः शरैः। लंकेशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ॥१२५॥
निर्जित्य बद्धा त्वानीय महिष्मत्याम्बबंध तम्। ततो गतोहं तस्याग्रे अर्जुनं संप्रसादयन् ॥१२६॥
मुमोच राजन् पौत्रं मे सख्यं कृत्वा च पार्थिव। तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥१२७॥
युगांताग्नेः प्रवृतस्य यथा ज्यातलनिः स्वनः। अहोबलं विधेर्वीर्यं भार्गवः स यदा च्छिनत् ॥१२८॥
मृधे सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा। यं वसिष्ठस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान्विभुः ॥१२९॥

कार्तवीर्य की महिमा को देखकर लगता है कि कोई भी राजा कार्तवीर्य के समान नहीं होगा ॥११४॥ यह राजा यज्ञों, दानों, तपस्याओं तथा पराक्रम के द्वारा सातो द्वीपों में वायु के वेग के समान सञ्चरण करता है ॥११५॥ यह राजा सप्त द्वीपा पृथिवी का पच्चासी हजार वर्ष तक चक्रवर्ती राजा बना रहा ॥११६॥ वही पशुपाल, क्षेत्रपाल, वृष्टि करने वाला पर्जन्य देव तथा योगी होने के कारण अर्जुन बना रहा ॥११७॥ संग्राम में हजार बाहुओं के द्वारा ज्याघात करने के कारण कठोर त्वचा वाला यह राजा शरत् कालीन कान्तियों से युक्त सूर्य के समान सुशोभित होता है ॥११८॥ यह महिष्मती में सभी मनुष्यों से अधिक कान्तिसपन्न है। ये वर्षाकाल में समुद्र के वेग को रोक लेते थे ॥११९॥ स्त्रियों के साथ क्रीडा करता हुआ वह राजा नदियों के स्रोतों के समक्ष खड़ा होकर अपने सुखानुभव के लिए उन्हें रोक देता था ॥१२०॥ लहरियाँ ही जिसकी भृकुटी थी ऐसी नर्मदा नदी शंकित होकर उसके पास आती थी कि यह मनु के वंश में महा समुद्र की अवगाहन कर सकता है ॥१२१॥ अपनी पत्नियों को प्रसन्न करने के लिए जब यह अपने भुजाआ को उठाता था तो समुद्र क्षुब्ध हो जाता था। उस समय पाताल में रहने वाले असुरगण निश्चेष्ट होकर छिप जाते थे। उसकी जङ्घाओं के क्षोभ से आश्चर्यित होकर वे शंका करने लगते थे कि कहीं अमृत मंथन तो नहीं हो रहा है ॥१२२-१२३॥ बड़े-बड़े सर्प अपना शिर झुकाकर निश्चल हो जाते थे। यही धनुर्धारी रावण के विपरीत वाणों को चलाया था ॥१२४॥ यही धनुर्धारी धनुष धारण करके मदमत्त रावण को पाँच बाणों से उसकी सेना के साथ रावण को मूर्छित करके उसको जीत कर तथा बाँधकर महीष्मती में लाया और उसको (रावण को) बाँध दिया। उसके बाद मैंने (पुलस्त्य महर्षि ने) उस अर्जुन के समक्ष जाकर मैने उसे प्रसन्न किया ॥१२५-१२६॥ मैंने कहा राजन् आप मेरे पौत्र को बन्धन से मुक्त कर दें और इसके साथ मित्रता कर लें। उस सहस्रबाहु की प्रत्यञ्चा की जब ध्वनि होती थी तो ॥१२७॥ वह युग के अन्त में प्रवृत अग्नि के प्रत्यञ्चा की ध्वनि के समान होती थी। भाग्य का बल आश्चर्यकारी है कि युद्ध में परशुरामजी ने सजस्रार्जुन की भुजाओ को तालवन के समान काट डाला। जिस सहस्रार्जुन को क्रुद्ध

यस्माद्वनं प्रदग्धं ते विश्रुतं मम हैहय । तस्मात्तेदुष्कृतं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥१३०॥
छित्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली । तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां वै वधिष्यति सभार्गवः ॥१३१॥
तस्य रामोथहंतासीन्मुनिशापेन धीमतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीत्पंच तत्र महारथाः ॥१३२॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः । शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टो वैकृष्ण एव च ॥१३३॥
जयद्ध्वजः स वैकर्ता अवन्तिश्च रसापतिः । जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजंघो महाबलः ॥१३४॥
तस्यपुत्राश्शतान्येव तालजंघा इति स्मृताः । तेषां पंच कुलान्यासन्हैहयानां महात्मनाम् ॥१३५॥
वीतिहोत्राश्च संजाता भोजाश्चावंतयस्तथा । तुंडकेराश्च विक्रांतास्तालजंघाः प्रकीर्तिताः ॥१३६॥
वीतिहोत्रसुतश्चापि अनंतो नाम वीर्यवान् । दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्षणः ॥१३७॥
सद्भवेन महाराजः प्रजाधर्मेण पालयन् । कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रधृत् ॥१३८॥
येन सागरपर्यंता धनुषानिर्जिता मही । यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः ॥१३९॥
न तस्य वितनाशः स्यान्नष्टं च लभते पुनः । कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिहधीमतः ॥
यथा यष्टा यथा दाता स्वर्गलोके महीयते ॥१४०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे यदुवंशकीर्तनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

होकर वसिष्ठ महर्षि ने शाप दिया था कि ॥१२८-१२९॥ तुमने मेरे प्रख्यात वन को जला दिया है अतएव तुम अपराधी हो तुम्हारा पाप ही तुमको मार डालेगा ॥१३०॥ तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर तथा तुम्हारा मंथन करके तुमसे बलवान् तपस्वी ब्राह्मण भार्गव (परशुराम) तुम्हारा वध करेंगे ॥१३१॥ ज्ञानी मुनि के शाप के कारण परशुरामजी ने सहस्रार्जुन का वध किया । सजस्रार्जुन के सौ पुत्र थे उनमें पाँच महारथी थे ॥१३२॥ महाबलवान् वे सबके सब शास्त्रों के ज्ञाता, वीर धर्मात्मा तथा महावलवान थे । उनके नाम है शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण ॥१३३॥ तथा ज्यध्वज । राजा जयध्वज ने ही अवन्ति को बसाया । जयध्वज के पुत्र महाबलवान् तालजंघ हुए ॥१३४॥ उनके तालजंघ के नाम से विख्यात सौ पुत्र हुए । उन हैहयों के पाँच वंश हुए ॥१३५॥ वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, तुण्डकेर और विक्रान्त । ये सबके सब तालजङ्घ कहलाते थे ॥१३६॥ वीतहोत्र के पुत्र पराक्रमी अनन्त हुए । अनन्त के पुत्र शत्रुओं के विनाशक दुर्जय हुए ॥१३७॥ वे महाराज सद्भाव एवं धर्मपूर्वक प्रजाओं का पालन करते थे । राजा कार्तवीर्य अर्जुन, हजार भुजाओं वाले थे ॥१३८॥ जिन्होंने अपने धनुष के बल पर समुद्र पर्यन्त पृथिवी को जीत लिया था । जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर सहस्रार्जुन का नाम लेता है, उसकी सम्पत्ति का नाश नहीं होता है और वह अपनी नष्ट सम्पत्ति को पुनः प्राप्त कर लेता है । जो व्यक्ति इस लोक में कार्तवीर्य के जन्म का वर्णन करता है वह यज्ञ करने वाले तथा दान देने वाले के समान स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥१४०॥

इस तरह पद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के यदुवंश वर्णन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

क्रोष्टोः शृणु त्वं राजेंद्र वंशमुत्तमपूरुषम्। यस्यान्ववाये संभूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥१॥
क्रोष्टोरेवाभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः। तस्य पुत्रोभवत्स्वातिः कुशंकुस्तत्सुतोभवत् ॥२॥
कुशंकोरभवत्पुत्रो नाम्ना चित्ररथोस्य तु। शशबिंदुरिति ख्यातश्चक्रवर्ती बभूव ह ॥३॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्य पुरा भवत्। शशबिंदोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ॥४॥
धीमतां चारुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम्। तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबलः ॥५॥
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुतेजाः पृथूद्भवः। पृथुकीर्तिः पृथुमतो राजानः शशबिंदवः॥६॥
शंसंति च पुराणज्ञाः पृथुश्रवसमुत्तमम्। ततश्चास्याभवत्पुत्रः उशना शत्रुतापनः ॥७॥
पुत्रश्चोशनसस्तस्य शिनेयुर्नाम सत्तमः। आसीत् शिनेयोः पुत्रो यः स रुक्मकवचो मतः॥८॥
निहत्यरुक्मवचो युद्धे युद्धविशारदः। धन्विनो विविधै र्बाणैरवाप्य पृथिवीमिमाम् ॥९॥
अश्वमेधेऽददाद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम्। जज्ञे तु रुक्मकवचात्परावृत्परवीरहा ॥१०॥
तत्पुत्रा जज्ञिरे पंच महावीर्यपराक्रमाः। रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः ॥११॥
परिघं च हरिं चैव विदेहेस्थापयत्पिता। रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तथाश्रयः ॥१२॥
ताभ्यांप्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघो वसदाश्रमे। प्रशांतश्चाश्रमस्थस्तु ब्राह्मणेन विबोधितः ॥१३॥

क्रोष्टु के वंश का विस्तृत वर्णन, स्यमन्तक मणि का संक्षिप्त चरित्र, पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन, कृष्ण जन्म का वर्णन, दैत्यों के उत्कर्ष के लिए शुक्राचार्य की तपस्या, ख्याति देवी का वध करने वाले विष्णु को भृगु महर्षि का शाप, जयन्ती द्वारा शुक्राचार्य की सेवा, बृहस्पति द्वारा दैत्यों का मोहन, शुक्र द्वारा दैत्यों को शाप, दैत्यों द्वारा त्रैलोक्य हरण का प्रयास

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— राजन् ! अब तुम क्रोष्टु के उत्तम पुरुष वाले वंश का वर्णन सुनो। उसी वंश में वृष्णि वंश का उत्थान करने वाले भगवान् विष्णु का श्रीकृष्ण रूप से अवतार हुआ था ॥१॥ क्रोष्टु के पुत्र महायस्वी वृजिनीवान् हुए। वृजिनीवान् के पुत्र स्वाति हुए और उनके पुत्र कुशङ्कु हुए ॥२॥ कुशङ्कु के पुत्र चित्ररथ हुए वे शशविन्दु के नाम से विख्यात चक्रवर्ती राजा हुए ॥३॥ इस वंश के विषय में यह श्लोक गाया गया है। शशविन्दु के दश हजार पुत्र हुए ॥४॥ वे सबके सब बुद्धिमान्, सुन्दर, बहुत अधिक सम्पत्ति तथा तेज से सम्पन्न थे। उनमें सौ प्रधान थे। उनमें भी पाँच, जिनके नाम के साथ पृथु शब्द जुड़ा हुआ है वे महाबलवान् थे ॥५॥ उनके नाम थे— पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुतेजा, पृथुद्भवा तथा पृथुकीर्ति। ये शशविन्दु के वंश में पृथुशब्द से युक्त राजा हुए ॥६॥ पुराणज्ञों का कहना है कि उन सबों में पृथुश्रवा सर्वोत्तम थे। उसके बाद उनके पुत्र अपने शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले उशना हुए ॥७॥ उशना के उत्तम पुत्र शिनेयु हुए। शिनेयु के पुत्र रुक्म कवच हुए ॥८॥ युद्ध करने में निपुण रुक्म कवच ने युद्ध में अपने समस्त शत्रुओं का वध करके अश्वमेघ यज्ञ किया और उसमें उन्होंने ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में इस पृथिवी को ही दे दिया ॥९-१०॥ रुक्मकवच के पाँच महावीर पुत्र हुए। उनके नाम है— रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ एवं हरि ॥११॥ पिता रुक्मकवच ने परिघ तथा हरि को विदेह राज्य में स्थापित किया। उसके बाद रुक्मेषु हुआ और पृथुरुक्म उसके अधीन हो गया ॥१२॥ उन दोनों ने मिलकर ज्यामघ को राज्य से

जगामधनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी । नर्मदा तट एकाकी केवलं वृत्तिकर्शितः ॥१४॥
ऋक्षवंतं गिरिं गत्वा मुक्तमन्यैरुपाविशत् । ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या परिणता सती ॥१५॥
अपुत्रोप्यभवद्राजा भार्यामन्यामचिंतयन् । तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः ॥१६॥
भार्यामुवाच संत्रासात्स्नुषेयं ते शुचिस्मिते । एवमुक्त्वा ब्रवीदेनं कस्य केयं स्नुषेति वै ॥१७॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति । तस्याः सा तपसोग्रेण कन्यायाः संप्रसूयत ॥१८॥
पुत्रं विदर्भं सुभगं शैब्यापरिणता सती । राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ ॥१९॥
लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम् । पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरं रणविशारदम् ॥२०॥
लोमपादात्मजो बभ्रुर्धृतिस्तस्य तु चात्मजः । कौशिकस्यात्मजश्चेदिस्तस्माच्चैद्यनृपाः स्मृताः ॥२१॥
क्रथो विदर्भपुत्रो यः कुंतिस्तस्यात्मजो भवत् । कुंतेर्धृष्टस्ततो जज्ञेधृष्टात्सृष्टः प्रतापवान् ॥२२॥
सृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निवृत्तिः परवीरहा । निवृत्तिपुत्रो दाशार्हो नाम्ना स तु विदूरथः ॥२३॥
दाशार्हपुत्रो भीमस्तु भीमाज्जीमूत उच्यते । जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः ॥२४॥
अथ भीमरथस्यापि पुत्रो नवरथः किल । तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥२५॥
तस्मात्करंभस्तस्माच्च देवरातो बभूव ह । देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातान्महायशाः ॥२६॥
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नंदनः । मधुर्नाममहातेजा मधोः कुरुवशः स्मृतः ॥२७॥
आसीत्कुरुवशात्पुत्रः पुरुहोत्रः प्रतापवान् । अंशुर्जज्ञेथ वैदर्भ्यां द्रवंत्यां पुरुहोत्रतः ॥२८॥

निकाल दिया और ज्यामघ जाकर वनों में रहने लगे । ब्राह्मणों के द्वारा उपदेश प्राप्त करके ज्यामघ आश्रम में शन्तिपूर्वक रहने लगे ॥१३॥ इसके बाद वे ध्वज से युक्त रथ पर चढकर धनुष धारण करके अकेले ऋक्ष पर्वत पर चले गये दूसरों से परित्यक्त होकर वहीं वे रहने लगे । ज्यामघ की सती पत्नी शैब्या थी ॥१४-१५॥ पुत्रहीन होने पर भी ज्यामघ किसी दूसरी पत्नी को नहीं प्राप्त करना चाहे । एक युद्ध में ज्यामघ विजयी हो गये । वहाँ उन्होंने एक कन्या को देखा ॥१६॥ उसके बाद वे अपनी पत्नी से डरते हुए कहे हे सुन्दरि ! यह तुम्हारी पुत्रबधू है । यह किसीकी पुत्र वधू है ॥१७॥ पत्नी के इस तरह पूछने पर **राजा ने कहा—** तुम्हारा जो पुत्र उत्पन्न होगा उसीकी यह पत्नी होगी । उस कन्या के उग्र तप के प्रभाव से रानी ने पुत्र को जन्म दिया ॥१८॥ शैब्या ने अपने सुन्दर पुत्र विदर्भ का विवाह उस कन्या से कर दिया । उस राजकुमारी के गर्भ से दो पुत्र हुए क्रथ तथा कौशिक ॥१९॥ विदर्भ के तीसरे पुत्र का नाम लोमपाद हुआ । लोमपाद अत्यन्त धार्मिक हुए । विदर्भ ने युद्ध करने में निपुण लोमपाद को सबसे बाद में पैदा किया ॥२०॥ लोमपाद के पुत्र बभ्रु हुए और बभ्रु के पुत्र धृति हुए । कौशिक के पुत्र चेदि हुए, उन्हीं के वंश में चैद्यराज गण हुए ॥२१॥ विदर्भ के पुत्र जो क्रथ थे उनके पुत्र कुन्ति हुए । कुन्ति के पुत्र धृष्ट हुए और धृष्ट के प्रतापी पुत्र सृष्ट हुए ॥२२॥ सृष्ट के धर्मात्मा तथा शत्रुओं को मारने वाले पुत्र निवृत्ति हुए । निवृत्ति के पुत्र दाशार्ह हुए और वे विदूरथ के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥२३॥ दाशार्ह के पुत्र भीम हुए और भीम के पुत्र जीमूत कहे जाते हैं । जीमूत के पुत्र विकृति हुए और विकृति के पुत्र भीमरथ हुए ॥२४॥ उसके बाद भीमरथ के पुत्र नवरथ हुए। नवरथ के पुत्र दशरथ थे और दशरथ के पुत्र शुकनि हुए ॥२५॥ उनके पुत्र करम्भ हुए और करम्भ के पुत्र देवरात हुए । देवरात के पुत्र महायशस्वी देवक्षत्र हुए ॥२६॥ देवक्षत्र का पुत्र देवकुमार के समान हुआ । उसका नाम मधु हुआ । मधु के पुत्र कुरुवश हुए ॥२७॥ कुरुवश के प्रतापी पुत्र पुरुहोत्र हुए । पुरुहोत्र उनकी प्रिया पत्नी वैदर्भी के

वेत्रकीत्वभवद्भार्या अंशोस्तस्यां व्यजायत । सात्वतः सत्वसंपन्नः सात्वतान् कीर्तिवर्द्धनः ॥२९॥
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः । प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ॥३०॥
सात्वतान्सत्वसंपन्ना कौसल्या सुषुवे सुतान् । तेषां सर्गाश्च चत्वारो विस्तरेणैव तान् शृणु॥३१॥
भजमानस्य सृंजय्यां भाजनामासुतो भवत्। सृंजयस्य सुतायां तु भाजकास्तु ततोऽभवन्॥३२॥
तस्य भाजस्य भार्ये द्वे सुषुवाते सुतान्बहून्। नेमिं च कृकणं चैव वृष्णिं परपुरंजयम्॥३३॥
ते भाजकाः स्मृतायस्माद्भजमानाद्विजज्ञिरे । देवावृधः पृथुर्नाम मधूनां मित्रवर्द्धनः ॥३४॥
अपुत्र स्त्वभवद्राजा चचार परमं तपः। पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन् ॥३५॥
संयोज्य कृष्णमेवाथ पर्णाशायाजलं स्पृशन्। सा तोयस्पर्श नात्तस्य सांनिध्यं निम्नगाह्यगात्॥३६॥
कल्याणं चरतस्तस्य शुशोच निम्नगा ततः । चिंतयाथपरीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम् ॥३७॥
भूत्वा गच्छाम्यहं नारी यस्यामेवं विधः सुतः । जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यस्य सुतप्रदा ॥३८॥
अथभूत्वा कुमारी सा विभ्रती परमं वपुः। ज्ञापयामास राजानं तामियेष नृपस्ततः॥३९॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितांवरा। पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधात्परम् ॥४०॥
अत्र वंशे पुराणज्ञा ब्रुवंतीतिपरिश्रुतम्। गुणान्देवावृधस्याथ कीर्त्तयंतो महात्मनः ॥४१॥
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः। षष्ठिः शतं च पुत्राणाम् सहस्राणि च सप्ततिः॥४२॥
एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि । यज्ञदानतपोधीमान्ब्रह्मण्यस्सुदृढव्रतः ॥४३॥

गर्भ से उनका पुत्र अंशु का जन्म हुआ ॥२८॥ अंशु की पत्नी का नाम वेत्रकी था । उसके गर्भ से अंशु के पुत्र सात्वत हुए । वे सत्त्व सम्पन्न तथा सात्वतों की कीर्ति को बढाने वाले थे ॥२९॥ महात्मा ज्यामध की इस विसृष्टि (सन्तत्ति को जानकर) कोई भी सन्तान वाला सोम के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥३०॥ सात्वत से उनकी सत्त्वगुण सम्पन्न पत्नी कौसल्या ने पुत्रों को उत्पन्न किया उनकी सृष्टि चार प्रकार की हुई उसे विस्तार से सुनो ॥३१॥ भजमान का सृञ्जयी के गर्भ से भाज नामक पुत्र हुआ । उसके बाद सृञ्जय की पुत्री के गर्भ से उत्पन्न होने वाले भाजक कहलाये॥३२॥ भाजक की दो पत्नियाँ थी । उन सबों ने बहुत पुत्रों को उत्पन्न किया । उनके नाम थे नेमि, कृकण और वृष्णि । ये शत्रुओं की नगर को जीत लेने वाले हुए ॥३३॥ भजमान से उत्पन्न होने के कारण ये भाजक कहलाये । मधु के मित्रों को बढाने वाले पुत्र देवावृध का दूसरा नाम पृथु था ॥३४॥ उनका कोई पुत्र नहीं था । उन्होंने कठोर तपस्या की । वे चाहते थे कि हमारा पुत्र सर्वगुण सम्पन्न हो ॥३५॥ वे भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हुए पर्णाशा नदी के जल को पीते हुए तपस्या करते थे । वह नदी राजा के जल का स्पर्श करने के कारण उनके पास आयी ॥३६॥ कल्याण का आचरण करते हुए राजा के पास आकर वह सोचने लगी । चिन्तन करते-करते उसने निश्चय किया कि ॥३७॥ मैं नारी बनकर उनके पास चलूं जिससे मेरे गर्भ से इस प्रकार का पुत्र होए । अतएव मैं इस राजा को पुत्र प्रदान करने वाली ही रही हूँ ॥३८॥ उसके बाद वह कुमारी बन गयी और अत्यन्त सुन्दर शरीर को धारण कर ली । उसने राजा को अपना परिचय दिया । उसके बाद राजा भी उसे, प्राप्त करना चाहे ॥३९॥ उसके बाद नवें महीने में उस श्रेष्ठ नदी ने देवावृध से देवता के समान गुण वाले बभ्रु नामक पुत्र को जन्म दिया । बभ्रु सभी गुणों से युक्त थे ॥४०॥ इस देवावृध के वंश के विषय में पुराणज्ञों को कहते हुए सुना गया है— वे महात्मा देवावृध के गुणों का कीर्तन करते हुए कहते हैं ॥४१॥ बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवताओं के समान हैं । देवावृध तथा बभ्रु के उपदेश से छिहत्तर हजार मनुष्यों ने मुक्ति प्राप कर ली । बभ्रु से भोज का जन्म हुआ।

रूपवांश्च महातेजा भोजोतोमृतकावतीम् । शरकान्तस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥४४॥
कुकुरं भजमानं च श्यामं कंबलबर्हिषम् । कुकुरस्यात्मजोवृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयो धृतिः ॥४५॥
कपोतरोमा तस्यापि तित्तिरिस्तस्य चात्मजः । तस्यासीद्बहुपुत्रस्तु विद्वान्पुत्रो नरिःकिल ॥४६॥
ख्यायते तस्य नामान्यच्चंदनोदकदुंदुभिः । अस्यासीदभिजित्पुत्रस्ततो जातःपुनर्वसुः ॥४७॥
अपुत्रो ह्यभिजित्पूर्वमृषिभिःप्रेरितो मुदा । अश्वमेधं तु पुत्रार्थमाजुहाव नरोत्तमः ॥४८॥
तस्य मध्ये विचरतः सभामध्यात्समुत्थितः । अन्धस्तुविद्वान्धर्मज्ञो यज्ञदाता पुनर्वसुः ॥४९॥
तस्यासीत्पुत्रमिथुनं वसोश्चारिजितः किल । आहुकश्चाहुकीचैव ख्यातामतिमतांवर ॥५०॥
इमांश्चोदाहरंत्यत्र श्लोकांश्चातिरसात्मकान् । सोपासंगानुकर्षाणां तनुत्राणां वरूथिनाम् ॥५१॥
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु । नासत्यवादिनो भोजा नायज्ञा नासहस्रदाः ॥५२॥
नाशुचिर्नाप्यविद्वांसो न भोजादधिकोभवत् । आहुकांतमनुप्राप्त इत्येषोन्वय उच्यते ॥५३॥
आहुकश्चाप्यवंतीषु स्वसारं चाहुकीं ददौ । आहुकस्यैव दुहिता पुत्रौ द्वौ समसूयत ॥५४॥
देवकं चोग्रसेनं च देवगर्भसमावुभौ । देवकस्य सुताश्चैव जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥५५॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः । तेषां स्वसारः सप्तैव वसुदेवाय ता ददौ ॥५६॥
देवकी श्रुतदेवा च यशोदा च श्रुतिश्रवा । श्रीदेवा चोपदेवा च सुरूपा चेति सप्तमी ॥५७॥
नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां च पूर्वजः । न्यग्रोधस्तु सुनामा च कंकः शंकुः सुभूश्च यः॥५८॥

वे यज्ञ, दान और तपस्या में धैर्य सम्पन्न और ब्राह्मण भक्त तथा सुदृढ व्रत वाले थे । भोज के शरत्कान्त की पुत्री मृतकावती के गर्भ से चार पुत्र हुए उनके नाम थे कुकुर, भजमान, श्यामांक और बलबर्हिष । कुकुर के पुत्र वृष्टि थे। और वृष्टि के पुत्र धृति हुए ॥४२-४५॥ धृति के पुत्र कपोतरोमा हुए कपोतरोमा के पुत्र तितिरि हुए । तितिरि के पुत्र नरि हुए । इनके बहुत से पुत्र हुए । नरि विद्वान् थे । नरि के दूसरे नाम चन्दनोदक तथा दुन्दुभि भी थे । चन्दनोदक के पुत्र अभिजित् हुए । उनके पुत्र पुनर्वसु हुए ॥४६-४७॥ अभिजित् का पहले कोई पुत्र नही था । उनको ऋषयों ने अश्वमेध याग करने के लिए प्रेरित किया । उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक पुत्र प्राप्त करने के लिए अश्वमेध याग किया ॥४८॥ जब राजा अपनी सभा में विचरण कर रहे थे उनकी सभा के मध्य से एक पुत्र निकला जो अन्धा, विद्वान्, धर्मज्ञ तथा यज्ञ में दान करने वाला था । वसु के दो जुड़वे पुत्र हुए । एक कन्या थी और दुसरा पुत्र, पुत्र का नाम आहुक हुआ और कन्या का नाम आहुकी था ॥४९-५०॥ इनके विषय में निम्नाङ्कित रसमय श्लोक गाये जाते हैं । उपासङ्ग तथा अनुत्कर्ष से युक्त, कवचधारी सेनाओं तथा मेघ के समान ध्वनि करने वाले दश हजार रथ आहुक के थे । भोज के वंश में ऐसा कोई नहीं हुआ जो मिथ्याभाषी हो, यज्ञ नहीं करता हो तथा सहस्र से कम दान देने वाला हो ॥५१-५२॥ इस वंश में कोई भी अपवित्र रहने वाला अथवा मूर्ख नहीं हुआ । भोज से बढकर कोई भी राजा नहीं हुआ । भोज का वंश आहुक पर्यन्त ही चला, यह बतलाया जाता है ॥५३॥ आहुक ने अपनी बहन आहुकी का विवाह अवन्तिका राज्य में कर दिया। आहुकी की पुत्री ने दो पुत्रों को जन्म दिया ॥५४॥ उनके नाम देवक और उग्रसेन थे । दोनों देवकुमार के समान थे । देवक के पुत्र देवताओं के समान उत्पन्न हुए ॥५५॥ उनके नाम हैं— देवावान्, उपदेव, सुदेव, और देवरक्षित । इन सबो की सात बहनें थीं उन सबों का विवाह वसुदेवजी से हुआ ॥५६॥ देवकी, श्रुतदेवा, यशोदा, श्रुतिश्रवा, श्रीदेवा, उपदेवा तथा सुरूपा ये उनके नाम थे ॥५७॥ उग्रसेन के नव पुत्र थे और उन सबों में कंस बड़ा था । दूसरे पुत्रों के नाम थे न्याग्रोध, सुनामा, कंक, शंकुः, सुभू ॥५८॥ राष्ट्रपाल, बद्धमुष्टि और

अन्यस्तु राष्ट्रपालश्च बद्धमुष्टिः समुष्टिकः । तेषां स्वसारः पंचाग्सन्कंसा कंसवती तथा ॥५९॥
सुरभी राष्ट्रपाली च कंका चेति वरांगनाः। उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः॥६०॥
भजमानस्य पुत्रोभूद्रथिमुख्यो विदूरथः। राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत्॥६१॥
राजाधिदेवस्य सुतो जज्ञाते वीरसंमतौ । क्षत्रव्रतेतिनिरतौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः॥६२॥
शोणाश्वस्य सुताः पंच शूरा रणविशारदाः। शमी च राजशर्मा च निमूर्त्तः शत्रुजिच्छुचिः ॥६३॥
शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षस्य चात्मजः। प्रतिक्षत्रसुतो भोजो हृदीकस्तस्य चात्मजः ॥
हृदीकस्याभवन्पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ॥६४॥
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च सत्तमः । देवार्हश्च सुभानुश्च भीषणश्च महाबलः ॥६५॥
अजातश्च विजातश्च करकश्च करंधमः। देवार्हस्य सुतो विद्वान् जज्ञे कंबलबर्हिषः ॥६६॥
असमौजास्ततस्तस्य समौजाश्च सुतावुभौ। अजातपुत्रस्य सुतौ प्रजायेते समौजसौ॥६७॥
समौजः पुत्रा विख्यातास्त्रयः परमधार्मिकाः। सुदंशश्च सुवंशश्च कृष्ण इत्यनुनामतः ॥६८॥
अंधकानामिमं वंशं यः कीर्तयति नित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं प्रजामाप्नोत्ययं ततः ॥६९॥
गांधारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः । गांधारीजनयामास सुमित्रं मित्रवत्सलम् ॥७०॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रं शिनिं चैव पंचात्र कृतलक्षणाः ॥७१॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि च द्वौ सुतौ। प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ॥७२॥
स्यमंतकं प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमं । पृथिव्यां मणिरत्नानां राजेति समुदाहृतम्॥७३॥
हृदि कृत्वा सुबहुशो मणिं सोऽथ व्यराजत । मणिरत्नं ययाचेथ राजार्थं शौरिरुत्तमम्॥७४॥
गोविंदश्च न तं लेभे शक्तोपि न जहार सः। कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ॥७५॥

सुमुष्टि । कंसादि की पांच बहनें थीं— कंसा, कंसवती, सुरभी, राष्ट्रपाली तथा कङ्का । ये सभी सुन्दर स्त्रियाँ थीं । पुत्रों के साथ उग्रसेन का वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ । उग्रसेन कुकुर वंश में उत्पन्न हुए थे ॥६०॥ रथियों में प्रधान विदूरथ भजमान के पुत्र थे । विदूरथ के पुत्र राजाधिदेव हुए ॥६१॥ राजाधिदेव के दो पुत्र हुए शोणाश्व तथा श्वेत वाहन । ये दोनों प्रख्यात वीर और क्षत्रिय व्रत का पालन करने वाले थे ॥६२॥ शोणाश्व के पाँच पुत्र हुए वे सभी शूर वीर तथा युद्ध करने में निपुण थे । उनके नाम थे शमी, राजशर्मा, निमूर्त, शत्रुजित् तथा शुचि ॥६३॥ शमी के पुत्र प्रतिक्षत्र थे और प्रतिक्षत्र के पुत्र भोज हुए और भोज के पुत्र हृदीक हुए । हृदीक के दश पुत्र हुए वे भयङ्कर पराक्रमी थे ॥६४॥ उन सबों में बड़े कृतवर्मा और शतधन्वा थे । इनसे अतिरिक्तों के नाम थे— देवार्ह, सुभानु, भीषण, महाबल, अजात, विजात, करक और करंधम । देवार्ह के विद्वान् पुत्र कम्बल बर्हिष हुए ॥६५-६६॥ असमौजा और समौजा । आनर्त पुत्र के दो पुत्र समान ओज वाले हुए ॥६७॥ समौजा के परम धार्मिक रूप से विख्यात तीन पुत्र हुए सुदंश, सुवंश और अनुकृष्ण ॥६८॥ अंधकों के इस वंश का कीर्तन जो नित्य करता है वह अपने विशाल वंश तथा अनंत प्रजाओं को प्राप्त करता है ॥६९॥ क्रोष्टू की दो पत्नियाँ थीं गांधारी तथा माद्री । गान्धारी ने मित्र वत्सल सुमित्र को जन्म दिया ॥७०॥ माद्री ने पांच पुत्रों को जन्म दिया उनके नाम थे युधाजित्, देव, मीढुष, अनमित्र तथा शिनि। ये पांचो लक्षण सम्पन्न थे ॥७१॥ अनमित्र के पुत्र निघ्न हुए और निघ्न के भी दो पुत्र हुए, प्रसेन तथा शक्तिसेन॥७२॥ प्रसेन के पास स्यमंतक नामक सर्वोत्तम मणि रत्न था । उसको पृथिवी पर विद्यमान सभी मणिरत्नों का राजा कहा गया है ॥७३॥ प्रसेन अपने हृदय पर प्रायः उस मणि को बाँधकर सुशोभित होते थे । भगवान्

बिले शब्दं स शुश्राव कृतं सत्वेन केनचित्। ततः प्रवश्यि सबिलं प्रसेनो ह्यृक्षमासदत् ॥७६॥
ऋक्षः प्रसेनं च तथा ऋक्षं चापि प्रसेनजित्। आसाद्य युयुधाते तौ परस्परजयेच्छया॥७७॥
हत्वा ऋक्षः प्रसेनं च ततस्तं मणिमाददात् । प्रसेनं तु हतं श्रुत्वा गोविंदः परिशंकितः ॥७८॥
सत्राजित्रा तु तद्भ्रत्रा यादवैश्च तथापरैः। गोविंदेन हतो नूनं प्रसेनो मणिकारणात् ॥७९॥
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः। तं दृष्ट्वा निजघानाथ नत्यजन्तं स्यमंतकम् ॥८०॥
जघानैवाप्रदानेन शत्रुभूतं च केशवः। इति प्रवादस्सर्वत्र ख्यातस्सत्राजिता कृतः ॥८१॥
अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः। यदृच्छया च गोविंदो बिलाभ्याशमथागमत्॥८२॥
ततश्शब्दं यथापूर्वं स चक्रे ऋक्षराड्बली। शब्दं श्रुत्वा तु गोविंदः खड्गपाणिः प्रविश्य च॥८३॥
अपश्यज्जांबवंतं च ऋक्षराजं महाबलम्। ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षमतिरंहसा ॥८४॥
जांबवंतं स जग्राह क्रोधसंरक्तलोचनः। दृष्ट्वा चैनं तथा विष्णुं कर्मभिर्वैष्णवीं तनुम् ॥८५॥
तुष्टाव ऋक्षराजोऽपि विष्णुसूक्तेन सत्वरम्। ततस्तु भगवांस्तुष्टो वरेण समरोचयत्॥८६॥

जाम्बवानुवाच

इष्टं चक्रप्रहारेण त्वत्तो मे मरणं शुभम्। कन्या चेयं मम सुता भर्त्तारं त्वामवाप्नुयात्॥८७॥
योऽयं मणिः प्रसेनात्तु हत्वा चैवाप्तवानहम्। स त्वया गृह्यतां नाथ मणिरेषोऽत्र वर्त्तते॥८८॥
इत्युक्तो जांबवंतं वै हत्वा चक्रेण केशवः। कृतकार्यो महाबाहुः कन्यां चैवाददौ तदा॥८९॥
ततः सत्राजिते चैतन्मणिरत्नं स वै ददौ। यल्लब्धमृक्षराजाच्च सर्वयादवसन्निधौ॥९०॥

श्रीकृष्ण उस मणि रत्न को अपने राजा उग्रसेन के लिए माँगे ॥७४॥ समर्थ होकर भी भगवान् श्रीकृष्ण न तो उसे प्राप्त कर सके और न उसको छीने ही। एक बार प्रसेन उस मणि से अलंकृत होकर आखेट करने गये ॥७५॥ प्रसेन ने वहाँ पर एक बिल (गुफा) में किसी जीव की ध्वनि को सुना। प्रसेन उस बिल में प्रवेश कर गये और वहाँ उन्हें एक ऋक्ष मिला ॥७६॥ ऋक्ष प्रसेन को तथा प्रसेन ऋक्ष को प्राप्त करके परस्पर एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से युद्ध करने लगे ॥७७॥ ऋक्ष ने प्रसेनजित् को मारकर उस मणि को ले लिया। प्रसेन को मरा हुआ सुनकर गोविन्द के विषय में शङ्का हुयी ॥७८॥ प्रसेन के भाई सत्राजित् तथा दूसरे यादव कहने लगे कि निश्चित रूप से गोविन्द ने मणि के लिए प्रसेन को मार दिया ॥७९॥ प्रसेन मणिरत्न को धारण करके वन में गये थे। उसको देखकर जब प्रसेन मणि नहीं दे रहे थे तो गोविन्द ने उन्हें मार दिया ॥८०॥ मणि नहीं देने के कारण शत्रु बने हुए प्रसेन को केशव ने मारा। इस तरह का सत्राजित् के द्वारा फैलाया गया प्रवाद सर्वत्र फैल गया ॥८१॥ दीर्घकाल के बाद मृगया के लिए गये हुए भगवान् गोविन्द उस बिल (गुफा) के पास गये। उस समय भी बलवान् ऋक्षराज ने उसी तरह से आवाज किया। उस शब्द को सुनकर गोविन्द हाथ में तलवार लेकर उस गुफा में प्रवेश कर गये॥८३॥ वहाँ पर उन्होंने महाबलवान् ऋक्षराज जाम्बवान् को देखा। उसके बाद हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रोध से आँखें लाल करके जाम्बवान् को पकड़ लिया ॥८४॥ कर्म के द्वारा वैष्णव शरीर धारण किए भगवान् विष्णु को देखकर॥८५॥ जाम्बवान् ने शीघ्र ही उनकी विष्णु सूक्त से स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने भी जाम्बवान् से वरदान माँगने के लिए कहा ॥८६॥ **जाम्बवान् ने कहा—** मैं आपके चक्र के प्रहार से मरना चाहता हूँ। मेरी यह सुन्दरी पुत्री आपको अपने पति रूप से प्राप्त करे ॥८७॥ प्रसेनजित् को मारकर जिस मणि को मैंने प्राप्त किया था वह मणि यहाँ पर विद्यमान हैं उसको आप ले लें ॥८८॥ इसतरह से कहे जाने पर भगवान् ने जाम्बवान् को चक्र से मार दिया और

तेन मिथ्याप्रवादेन संतप्तोऽयं जनार्दनः। ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन्॥९१॥
अस्माकं मनसि ह्यासीत्प्रसेनस्तु त्वया हतः। एकैकस्यास्तु सुन्दर्यो दश सत्राजितः सुताः॥९२॥
सत्योत्पन्नास्सुता स्तस्य शतमेकं च विश्रुताः। विख्याताश्च महावीर्या भंगकारश्च पूर्वजः॥९३॥
सत्या व्रतवतीस्वप्नाभंगकारस्य पूर्वजा। सुषुवस्ताः कुमारांश्च शिनीवालः प्रतापवान्॥९४॥
अभंगो युयुधानश्च शिनिस्तस्यात्मजो भवत्। तस्माद्युगंधरः पुत्राश्शतं तस्य प्रकीर्तिताः॥९५॥
अनमित्राह्वयो यो वै विख्यातो वृष्णिवंशजः। अनमित्रात् शिनिर्जज्ञे कनिष्ठो वृष्णिनंदनः॥९६॥
अनमित्राच्च संजज्ञे वृष्णिवीरो युधाजितः। अन्यौ च तनयौ वीरावृषभश्चित्र एव च॥९७॥
ऋषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिंदिताम्। जयंतश्च जयंतीं च शुभां भार्यामविंदत॥९८॥
जयंतस्य जयंत्यां वै पुत्रः समभवत्ततः। सदा यज्वातिथीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः॥९९॥
अक्रूरः सुषुवे तस्मात्सुदक्षो भूरि दक्षिणः। रत्नकन्या च शैब्या च अक्रूरस्तामवाप्तवान्॥१००॥
पुत्रानुत्पादयामास एकादश महाबलान्। उपलंभं सदालंभमुत्कलं चार्य्यशैशवम्॥१०१॥
सुधीरं च सदायक्षं शत्रुघ्नं वारितेजयम्। धर्मदृष्टिं च धर्मं सृष्टिमौलिं तथैव च॥१०२॥
सर्वे च प्रतिहर्तारो रत्नानां जज्ञिरे च ते। अक्रूराच्छूरसेनायां सुतौ द्वौ कुलनंदनौ॥१०३॥
देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंमतौ। अश्विन्यां त्रिचतुः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च॥१०४॥
अश्वग्रीवोश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ। रिष्टनेमिः सुवर्चा च सुधर्मा मृदुरेव च॥१०५॥
अभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठा श्रवणेस्त्रियौ। इमां मिथ्याभिशप्तिं यो वेद कृष्णस्य बुद्धिमान्॥१०६॥

महाबाहु श्रीभगवान् ने कृतकार्य होकर उस कन्या को पत्नी रूप से स्वीकार कर लिया ॥८९॥ उसके बाद श्रीभगवान् उस मणि को लाकर सत्राजित् को सभी यादवों के समक्ष मैंने इसे ऋक्षराज से प्राप्त किया है यह कहकर दे दिया॥९०॥ उस अफवाह (प्रवाद) के कारण जर्नादन को कष्ट हुआ। उसके बाद उन सभी यादवों ने कहा कि हम लोगों के मन में हो रहा था कि आपने ही प्रसेन को मारा है। सत्राजित् की एक से बढकर एक सुन्दरी दश पुत्रियाँ थीं ॥९१-९२॥ सत्या उसकी पुत्री थी तथा सत्राजित् के एक सौ एक पुत्र थे। वे विख्यात तथा महाबलवान् थे। उनमें सबसे बड़े भङ्गकार थे ॥९३॥ भङ्गकार से पहले सत्या, व्रतवती तथा स्वप्ना उत्पन्न हुयी थी। उन सबों ने प्रतापी शिनीवाल, अभंग तथा युयुधान को जन्म दिया। युयुधान के पुत्र शिनि हुए। शिनि के पुत्र युगंधर हुए। युगंधर के सौ पुत्र हुए ॥९४-९५॥ वृष्णिवंश में उत्पन्न अनमित्र विख्यात थे। अनमित्र के पुत्र शिनि हुए। वे वृष्णिवंश में सबसे छोटे थे ॥९६॥ अनमित्र के पुत्र वृष्णिवंश के वीर युधाजित् हुए। उनके दूसरे और दो पुत्र थे ऋषभ एव चित्र ॥९७॥ ऋषभ ने काशिराज की सुन्दरी पुत्री से विवाह किया। उनका पुत्र जयन्त हुआ जयन्त ने जयन्ती नाम की सुन्दरी पत्नी को प्राप्त किया ॥९८॥ जयन्ती के गर्भ से जयन्त के पुत्र अक्रूर हुए। वे सदा यज्ञ करते रहते थे। वे धैर्य सम्पन्न, वेदज्ञ तथा अतिथिप्रिय थे ॥९९॥ अक्रूर अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों को करते थे। अक्रूर ने कन्यारत्न शैव्या को पत्नी के रूप में प्राप्त किया ॥१००॥ उन्होंने ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम थे उपलम्भ, सदालम्भ, उत्कल, आर्यशैशव, सुधीर, सदायक्ष, शत्रुघ्न, वारिमजय, धर्मदृष्टि, धर्म तथा सृष्टिमौलि ॥१०१-१०२॥ वे सबके सब रत्नों को ग्रहण करने वाले थे। अक्रूर के दो पुत्र शूरसेना नामक पत्नी से उत्पन्न हुए ॥१०३॥ उनके नाम थे देववान् तथा उपदेव। ये दोनों देवताओं को प्रिय थे। उनकी अश्विनी नामक पत्नी के गर्भ से बारह पुत्र उत्पन्न हुए उनके नाम हैं— पृथु, विपृथु ॥१०४॥ अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण,

न स मिथ्याभिशापेन अभिगम्यश्च केनचित्। ऐक्ष्वाकी सुषुवे पुत्रं शूरमद्भुतमीढुषम् ॥१०७॥
मीढुषा जज्ञिरे शूरा भोजायां पुरुषा दश। वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुंदुभिः ॥१०८॥
देवभागस्तथाजज्ञे तथादेवश्रवाः पुनः। अनावृष्टिं कुनिश्चैव नंदिश्चैव सकृद्यशाः॥१०९॥
श्यामः शमीकः सप्ताख्यः पंच चास्य वरांगनाः। श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवी श्रुतश्रवाः ॥११०॥
राजाधिदेवी च तथा पंचैता वीरमातरः। वृद्धस्य श्रुतदेवी तु कारूषं सुषुवे नृपम् ॥१११॥
कैकेयाच्छ्रुतकीर्तेस्तु जज्ञे संतर्दनो नृपः। श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत ॥११२॥
राजाधिदेव्याः संभूतो धर्माद्भयविवर्जितः। शूरः सख्येन बद्धोसौ कुंतिभोजे पृथां ददौ ॥११३॥
एवं कुंती समाख्या च वसुदेवस्वसा पृथा। कुंतिभोजोददात्तां तु पांडोर्भार्यामनिंदिताम् ॥११४॥
पांण्ड्वर्थेऽसूत देवी सा देवपुत्रान्महारथान्। धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वाताज्जज्ञे वृकोदरः ॥११५॥
इंद्राद्धनंजयश्चैव शक्रतुल्यपराक्रमः। योऽसौ त्रिपुरुषाज्जातस्त्रिभिरंशैर्ममहारथः॥११६॥
देवकार्यकरश्चैव सर्वदानवसूदनः। अवध्याश्चापि शक्रस्य दानवा येन घातिताः ॥११७॥
स्थापितस्स तु शक्रेण लब्धवर्चास्त्रिविष्टपे। माद्रवत्यां तु जनितावश्विनाविति नः श्रुतम् ॥११८॥
नकुलः सहदेवश्च रूपसत्वगुणन्वितौ। रोहिणी पौरवी नाम भार्या चानकदुंदुभेः ॥११९॥
लेभे चेष्टं सुतं रामं सारणं च रणप्रियम्। दुर्धरं दमनं चैव पिंडारकमहाहनुम्॥१२०॥
अथ माया त्वमावास्या देवकी या भविष्यति। तस्यां जज्ञे महाबाहुः पूर्वं तु सप्रजापतिः ॥१२१॥

रिष्टनेमि, सुवर्चा, सुधर्मा, मृदु ॥१०५॥ अभूमि तथा बहुभूमि। उनकी और दो स्त्रियाँ थी श्रविष्ठा तथा श्रवणा। जो व्यक्ति भगवान् के इस मिथ्या कलङ्क को जानता है उसको किसी प्रकार का कलङ्क नहीं लगता है। ऐक्ष्वाकी ने अद्भुत वीर पुत्र मीढुष को जन्म दिया ॥१०६-१०७॥ भोजा के गर्भ से मीढुष के दश वीर पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम थे वसुदेव जो पहले आनकदुन्दुभि कहलाते थे ॥१०८॥ उनके अतिरिक्त देवभाग, देवश्रवा, अनावृष्टि, कुन्ति, नन्दि, सकृद्यशा, श्याम, शमीक तथा सप्त। उनकी पाँच पुत्रियाँ भी हुयीं श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतश्रवा, तथा राजाधिदेवी। ये पाँचों वीरों की माताएँ थीं। श्रुतदेवी ने वृद्ध के पुत्र राजा कारूष को जन्म दिया ॥१०९-१११॥ श्रुतकीर्ति के गर्भ से कैकेय के पुत्र राजा संतर्दन उत्पन्न हुए। श्रुतश्रवा के गर्भ से चैद्य का पुत्र सुनीथ पैदा हुआ॥११२॥ राजाधिदेवी के गर्भ से धर्म की पत्नी (अभिवर्दिता) का जन्म हुआ। शूर की राजा कुन्तिभोज से मित्रता थी, उन्होंने पृथा नामक अपनी पुत्री को कुन्तिभोज को गोद दे दिया ॥११३॥ इसीलिए वसुदेव की बहन पृथा का नाम कुन्ती हुआ। कुन्तिभोज ने पृथा को पाण्डु की पत्नी के रूप में प्रदान किया ॥११४॥ कुन्ती ने पाण्डु के लिए महारथ देव पुत्रों को उत्पन्न किया। धर्म के अंश से युधिष्ठिर का जन्म हुआ और वायु के अंश से वृकोदर (भीम) का जन्म हुआ इन्द्र के अंश से अर्जुन (धनंजय) का जन्म हुआ। अर्जुन इन्द्र के समान पराक्रम सम्पन्न थे। ये तीनों तीन पुरुषों के अंश उत्पन्न महारथी थे ॥११५-११६॥ अर्जुन देवताओं का कार्य करने वाले तथा समस्त दानवों का वध करने वाले थे। अर्जुन ने उन दानवों का वध किया जो इन्द्र के लिए अवध्य थे ॥११७॥ तेजः सम्पन्न अर्जुन को इन्द्र स्वर्गलोक में ले गये थे। हमने सुना है के माद्रवती (माद्री) के गर्भ से अश्विनी कुमारों के अंश से नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। ये दोनों सात्त्विक प्रकृति के तथा रूप एवं गुण से सम्पन्न थे। पुरुवंश में उत्पन्न रोहिणी आनकदुन्दुभि (वसुदेवजी) की पत्नी थीं ॥११८-११९॥ उन्होंने अपने प्रिय पुत्र बलरामजी को तथा रणप्रिय सारण को जन्म दिया। उनके दूसरे पुत्र दुर्धर, दमन, पिण्डारक तथा महाहनु भी थे ॥१२०॥ वसुदेवजी की पत्नी देवकी

अनुजाताभवत्कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी। विजयो रोचमानस्तु वर्धमानश्च देवलः ॥१२२॥
एते सर्वे महात्मान उपदेव्यां प्रजज्ञिरे। अगावहं महात्मानं बृहद्देवी व्यजायत॥१२३॥
बृहद्देव्यां स्वयं जज्ञे मन्दको नामनामतः। सप्तमं देवकी पुत्रं रेमंतं सुषुवे सुतम्॥१२४॥
गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम्। श्रुतदेव्या विहारे तु वने विचराता पुरा॥१२५॥
वैश्यायां स मथाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम्। श्रुतंधरा तु राज्ञी तु सौरगंधपरिग्रहः॥१२६॥
पुत्रं च कपिलं चैव वसुदेवात्मजो बली। जनानां च विषादोभूत्प्रथमः सधनुर्द्धरः॥१२७॥
सौभद्रश्चाभवश्चैव महासत्वौ बभूवतुः। देवभागसुतश्चापि प्रस्तावः स बुधः स्मृतः॥१२८॥
पण्डितं प्रथमं बाहुदेवश्रवसमुत्तमम्। इक्ष्वाकुकुलतो यस्य मनस्विन्या यशस्विनी॥१२९॥
निवृत्तशत्रुः शत्रुघ्नः श्रद्धा तस्मादजायत। गंडूषायामपत्यानि कृष्णस्तुष्टः शतं ददौ॥१३०॥
स चंद्रं तु महाभागं वीर्यवंतं महाबलम्। रंतिपालश्च रंतिश्च नंदनस्य सुतावुभौ॥१३१॥
शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रांताः सुमहाबलाः। विरजश्च धनुश्चैव व्योमस्तस्य ससृंजयः॥१३२॥
अनपत्योभवद्व्योमः सृंजयस्य धनंजयः। यो जायमानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान्॥१३३॥
कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यःकीर्तयति नित्यशः। शृणोति वा नरो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१३४॥
अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः। विहारार्थं स देवोऽसौ मानुषेष्वप्यजायत॥१३५॥
देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः। चतुर्बाहुस्तु संजातो दिव्यरूपो जनाश्रयः॥१३६॥
श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा देवैः सलक्षणम्। उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो॥१३७॥

के गर्भ से पहले तो महाबाहु पजापति ने जन्म लिया ॥१२१॥ उसके बाद वसुदेवजी की मधुरभाषिणी पुत्री सुभद्रा का जन्म हुआ। सुभद्रा का जन्म भगवान् कृष्ण के जन्म के बाद हुआ। विजय, रोचमान, वर्धमान तथा देवल ॥१२२॥ ये सभी उपदेवी के पुत्र थे। महात्मा अगावहन को बृहद् देवी ने जन्म दिया ॥१२३॥ बृहदेवी के गर्भ से स्वयं मन्दक उत्पन्न हुए। देवकी ने रेमन्त को जन्म दिया ॥१२४॥ अपने पति के साथ वन में विचरण करती हुयी श्रुतदेवी के गर्भ से गवेषण का जन्म हुआ जो कभी युद्ध में पराजित होने वाले नहीं थे ॥१२५॥ शूरपुत्र शौरि ने वैश्या के गर्भ से कौशिक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वसुदेवजी के बलवान् पुत्र सौरगन्ध ने श्रुतंधरा नामक रानी के गर्भ से कपिल नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वह लोगों के विषाद स्वरूप प्रथम धनुर्धर हुआ ॥१२६-१२७॥ सौभद्र (अभिमन्यु) तथा अभव ये दोनों महाबलवान् हुए। देवभाग का पुत्र प्रस्ताव हुआ जो बुध कहा गया है॥१२८॥ प्रख्यात पण्डित बाहुदेवश्रवा नामक पुत्र को सौरगन्ध ने इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न यशस्विनी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न किया ॥१२९॥ उनके पुत्र शत्रुरहित शत्रुघ्न थे तथा उनकी पुत्री श्रद्धा थी। प्रसन्न होकर कृष्ण ने गण्डूषा नामक पत्नी के गर्भ से सौ पुत्रों को उत्पन्न किया ॥१३०॥ उन पुत्रों में चन्द्र तथा महाबलवान् वीर्यवान् भी थे। नन्दन के दो पुत्र हुए रन्तिपाल और रन्ति ॥१३१॥ शमीक के चार महाबलवान् तथा पराक्रमी पुत्र हुए, उनके नाम हैं— विरज, धनु, व्योम तथा सृंजय ॥१३२॥ व्योम को कोई पुत्र नहीं हुआ। सृंजय के पुत्र धनञ्जय हुए। वे उत्पन्न होते ही भोज तथा राजर्षि हो गये ॥१३३॥ जो व्यक्ति कृष्ण के जन्म की कथा को प्रतिदिन पढ़ता है, अथवा सुनता है, उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१३४॥ उसके बाद महान देव जो पहले कृष्ण प्रजापति थे वे ही श्रीभगवान् मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए ॥१३५॥ देवकी के गर्भ से वसुदेव के पुत्र के रूप में कमलनयन, प्रजाओं (जीवों) के आश्रय स्वरूप दिव्य रूप वाले भगवान् चतुर्भुज रूप से अवतीर्ण हुए ॥१३६॥ श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित श्रीभगवान्

भीतोहं देव कंसस्य ततस्त्वेतद्व्रवीमि ते । मम पुत्रा हतास्तेन श्रेष्ठाः षड्भीमविक्रमाः ॥१३८॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरदच्युतः । अनुज्ञाप्य तु तं शौरिर्नंदगोपगृहेऽनयत् ॥१३९॥
दत्वा तं नंदगोपाय रक्ष्यतामिति चाब्रवीत् । अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति ॥१४०॥
अयं तु भर्गो देवक्या यावत्कंसं हनिष्यति । तावत्पृथिव्यां भविता क्षेमो भारावहःपरम् ॥१४१॥
ये वै दुष्टास्तु राजानस्तांस्तु सर्वान्हनिष्यति । कौरवाणां रणे भूते सर्वक्षत्रसमागमे ॥१४२॥
सारथ्यमर्जुनस्यायं स्वयं देवः करिष्यति । निःक्षत्रियां धरां कृत्वा भोक्ष्यते शेषतां गताम् ॥१४३॥
सर्वं यदुकुलं चैव देवलोकं नयिष्यति ।

भीष्म उवाच

क एष वसुदेवस्तु देवकी का यशस्विनी ॥१४४॥
नंदगोपश्च कश्चैव यशोदा का महाव्रता । या विष्णुंपोषितवती यां समातेत्यभाषत ॥१४५॥
या गर्भं जनयामास या चैनं समवर्द्धयत् ।

पुलस्त्य उवाच

पुरुषः कश्यपश्चासावदितिस्तत्प्रिया स्मृता ॥१४६॥
कश्यपो ब्रह्मणोंशस्तु पृथिव्या अदितिस्तथा । नंदो द्रोणस्समाख्यातो यशोदाथ धराभवत् ॥१४७॥
अथकामान्महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत् । ये तया कांक्षिताः पूर्वमजात्तस्मान्महात्मनः ॥१४८॥
अचिरं स महादेवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् । मोहयन्सर्वभूतानि योगाद्योगी समाययौ॥१४९॥
नष्टे धर्मे तथा यज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले विभुः । कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥१५०॥

को देखकर वसुदेवजी ने कहा हे प्रभो ! आप अपने इस रूप को उपसंहत कर लीजिये ॥१३७॥ हे भगवन् ! मैं कंस से भयभीत हूँ इसीलिए ऐसा कह रहा हूँ। कंस ने भयङ्कर पराक्रम वाले मेरे छह पुत्रों को मार दिया है ॥१३८॥ वसुदेवजी की वाणी सुनकर भगवान् अच्युत ने अपने रूप को उपसंहत कर लिया । श्रीभगवान् से निवेदन करके शौरि उनको नन्दगोप के घर लाये ॥१३९॥ उनको नन्दगोप को सौपकर उन्होंने कहा आप इसकी रक्षा करें । इसके द्वारा सभी यादवों का कल्याण होगा ॥१४०॥ यह देवकी का पुत्र जब कंस को मार देगा तब तक यह पृथिवी के भार को दूर करने वाला और कल्याण करने वाला पृथिवी पर रहेगा ॥१४१॥ जो दुष्ट राजा पृथिवी पर हैं, उन सबों को यह मार देगा जिसमें सभी क्षत्रियों का समागम होगा उस कौरवों का युद्ध होने पर ॥१४२॥ ये श्रीभगवान् स्वयं अर्जुन के सारथी होंगे । सम्पूर्ण पृथिवी को क्षत्रिय रहित बनाकर बची हुयी पृथिवी का भोग करेंगे ॥१४३॥ यह सम्पूर्ण यदुकूल को स्वर्ग ले जायेंगे । **भीष्मजी ने पूछा—** ये वसुदेव कौन हैं ? तथा यशस्विनी देवकी कौन हैं ? जिन्होंने भगवान् विष्णु का पालन-पोषण किया ? जिसे आपने भगवान् श्री की समाता (माता के सदृश) कहा है ? जिस (देवकी ने) भगवान् को पुत्र रूप में उत्पन्न किया है जिस यशोदा ने उनका पालन किया वे कौन है ? **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पुरुष (वसुदेव जी) कश्यप महर्षि हैं और देवकी उनकी प्रिय पत्नी अदिति हैं ॥१४६॥ कश्यप महर्षि ब्रह्माजी के अंश हैं और अदिति पृथिवी के अंश हैं । द्रोण ही नंद हैं और यशोदा पृथिवी हैं ॥१४७॥ महाबाहु श्रीभगवान् ने देवकी की इच्छा को पूर्ण किया । वह पहले जो चाहती थी उसी के कारण श्रीभगवान् उनके पुत्र बने॥१४८॥ श्रीभगवान् अपनी योगमाया का आश्रयण लेकर सभी जीवों को मोहित करते हुए शीघ्र ही मानव शरीर में प्रवेश कर गये ॥१४९॥ जब धर्म नष्ट हो गया था तथा यज्ञ भी नष्ट हो गये थे, उस समय भगवान् विष्णु धर्म

रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्निजिती तथा । सुमित्रा च तथा शैब्या गांधारी लक्ष्मणा तथा ॥१५१॥
सुभीमा च तथा माद्री कौसल्या विजया तथा । एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ॥१५२॥
रुक्मिणी जनयामास पुत्रान् शृणु विशारदान् । चारुदेष्णं रणेशूरं प्रद्युम्नञ्च महाबलम् ॥१५३॥
सुचारुं चारुभद्रञ्च सदश्वं ह्रस्वमेव च । सप्तमञ्चारुगुप्तञ्च चारु भद्रञ्च चारुकं ॥१५४॥
चारुहासं कनिष्ठञ्च कन्याञ्चारुमतीं तथा। जज्ञिरे सत्यभामाया भानुर्भीमरथः क्षणः ॥१५५॥
रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रबंधो जलंधमः । चतस्रो जज्ञिर तेषां स्वसारश्च यवीयसीः ॥१५६॥
जांबवत्याः सुतो जज्ञे सांबश्चैवातिशोभनः । सौरशास्त्रस्य कर्ता वै प्रतिमा मंदिरस्य च ॥१५७॥
मूलस्थाने निवेशश्च कृतस्तेन महात्मना । तुष्टेन देवदेवेन कुष्ठरोगो विनाशितः ॥१५८॥
सुमित्रं चारुमित्रं च मित्रविंदा व्यजायत। मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्यां बभूवतुः ॥१५९॥
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निशामय । अशीतिश्च सहस्राणां वासुदेवसुतास्तथा ॥१६०॥
प्रद्युम्नस्य चदायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः । अनिरुद्धो रणे योद्धा जज्ञेऽस्य मृगकेतनः ॥१६१॥
काम्या सुपार्श्वतनया सांबंलेभे तरस्विनम्। सत्त्वप्रकृतयो देवाः पराः पंचप्रकीर्तिताः ॥१६२॥
तिस्रः कोठ्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम् । षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवंतो महाबलाः ॥१६३॥
देवांशाः सर्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः । दैवासुरे हता ये वा असुरास्तु महाबलाः ॥१६४॥
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधंते सर्वमानवान् । तेषामुद्धरणार्थाय उत्पन्ना यादवे कुले ॥१६५॥
कुलानां शतमेकं च यादवानाम्महात्मनाम् । विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः ॥१६६॥
निदेशस्थायिनस्तस्य ऋद्ध्यंते सर्वयादवाः ।

की व्यवस्था करने के लिए तथा असुरों का नाश करने के लिए वृष्णिवंश में अवतीर्ण हुए ॥१५०॥ रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, नाग्नजिती, सुमित्रा, शैब्या, गांधारी, लक्ष्मणा ॥१५१॥ सुभमा, माद्री, कौसल्या, विजया इत्यादि उनकी सोलह हजार पत्नियाँ हुयीं ॥१५२॥ रुक्मिणी ने जिन पुत्रों को उत्पन्न किया उनका नाम सुनो । युद्ध करने में शूरवीर चारुदेष्ण, महाबलवान् प्रद्युम्न ॥१५३॥ सुचारु, चारुभद्र, सदश्व, ह्रस्व, सातवें चारुगुप्त, चारुभद्र, चारुक॥१५४॥ सबसे छोटा चारुहास, तथा चारुमती कन्या को रुक्मिणी ने जन्म दिया । सत्यभामा के पुत्र भानु, भीमरथ, क्षण, रोहित, दीप्तिमान, ताम्रबंध, और जलंधम । उन सबों की चार छोटी बहनें भी हुयी ॥१५५-१५६॥ जाम्बवती के अत्यन्त सुन्दर पुत्र साम्ब हुए, वे सौर शास्त्र के प्रणेता तथा मन्दिर की प्रतिमा के निर्माता हुए ॥१५७॥ उन्होंने मूल स्थान में श्रीभगवान् का निवेश किया । इससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उनके कुष्ठ रोग को विनष्ट कर दिया ॥१५८॥ मित्रविन्दा नामक श्रीभगवान् की पत्नी ने सुमित्र तथा चारुमित्र नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया । नाम्नजीती के भी गर्भ से दो पुत्र ही हुए मित्रबाहु और सुनीथ ॥१५९॥ इसतरह से भगवान् के हजारो पुत्रों को सुनो । भगवान् वासुदेव के अस्सी हजार पुत्र हुए ॥१६०॥ प्रद्युम्न की वैदभी पत्नी के गर्भ से अनिरुद्ध का जन्म हुआ । उनके पुत्र मृगकेतन थे। ये प्रख्यात योद्धा थे ॥१६१॥ काम्या नाम की सुपार्श्व की पुत्री ने साम्ब के पुत्र तरस्वी को जन्म दिया । सात्विक प्रकृति वाले पाञ्च देवता बतलाये गये हैं ॥१६२॥ यादववीरों की संख्या तीन करोड़ साठ लाख बतलायी गयी है॥१६३॥ वे सबके सब देवताओं के अंश से उत्पन्न बतलाये जाते हैं । अथवा देवासुर संग्राम में जो महाबलवान् दैत्य मारे गये वे सब संसार में उत्पन्न होकर सभी मनुष्यों को दुःख देते थे, उन सबों का उद्धार करने के लिए वे देवता यादवकुल में उत्पन्न हुए थे ॥१६४-१६५॥ यादव महात्माओं के एक सौ एक वंश थे । उन सभी वंशों के

भीष्म उवाच

सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षोमणिधरस्तथा ॥१६७॥
सात्यकिर्नारदश्चैव शिवो धन्वंतरिस्तथा। आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सह दैवतैः ॥१६८॥
किमर्थं सह संभूताः सुरसम्भूतयः क्षितौ। भविष्याः कति वा चास्य प्रादुर्भावा महात्मनः ॥१६९॥
सर्वक्षेत्रेषु सर्वेषु किमर्थमिह जायते। यदर्थमिह संभूतो विष्णुर्वृष्ण्यंधके कुले॥१७०॥
पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्मे त्वं ब्रूहि पृच्छतः ।

पुलस्त्य उवाच

शृणु भूप प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम्। यथादिव्यतनुर्विष्णुर्मानुषेष्विह जायते ॥१७१॥
युगांते तु परावृत्ते कालेप्रशिथिले प्रभुः। देवासुरमनुष्येषु जायते हरिरीश्वरः॥१७२॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यस्य प्रशासिता। बलिनाधिष्ठिते चैव पुनर्लोकत्रये क्रमात् ॥१७३॥
सख्यमासीत्परमकं देवानामसुरैः सह। युगाख्यादशसंपूर्णा आसीदव्याकुलं जगत् ॥१७४॥
निदेशस्थायिनश्चापि तयोर्देवासुरास्स्वयं। बद्धो वलिर्विमर्दोयं सुसंवृत्तः सुदारुणः॥१७५॥
देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरोमहान्। कर्तुं धर्मव्यवस्थां च जायते मानुषेष्विह ॥१७६॥
भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा ।

भीष्म उवाच

कथं देवासुरकृते हरिर्देहमवाप्तवान् ॥१७७॥
दैवासुरं यथावृत्तं तन्मेकथय सुव्रत ।

प्रणेता भगवान् विष्णु ही थे और वे ही उन सबों के स्वामी थे ॥१६६॥ उनके प्रशासन में रहकर सभी यादव समृद्धि प्राप्त किए। **भीष्मजी ने कहा—** सप्तर्षिगण, कुबेर, मणिधर नामक यक्ष ॥१६७॥ सात्यकि, नारद, शिवजी, धन्वन्तरि, तथा देवताओं के साथ आदिदेव विष्णु ये सब किसलिए पृथिवी पर एक ही साथ अवतीर्ण हुए ? अथवा श्रीभगवान् के भविष्यत् काल में कितने अवतार होने वाले हैं ?॥१६८-१६९॥ वे सभी योनियों में तथा सभी स्थानों में किसलिए अवतीर्ण होते हैं ? वे किसलिए वृष्णि वंश के अंधक वंश में अवतरित हुए ॥१७०॥ वे बार-बार मनुष्यों में क्यों अवतार लेते हैं ? इसे आप मुझे बतलायें। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! आप सुनें। मैं अत्यन्त रहस्यमय बात वतलाता हूँ। जिसके कारण दिव्य शरीर वाले भगवान् विष्णु मनुष्य रूप से अवतार लेते हैं॥१७१॥ युग के अन्त में जब धर्म अत्यन्त शिथिल हो जाता है उस समय श्रीभगवान् देव, असुर तथा मनुष्य रूप से अवतरित होते हैं ॥१७२॥ जब महाबलवान् हिरण्यकशिपु नामक दैत्य त्रैलोक्य का प्रशासक था। वह क्रमशः त्रैलोक्य का अधिष्ठाता हो गया ॥१७३॥ उस समय देवताओं की दैत्यों से अत्यन्त मित्रता थी। दश युगों तक सम्पूर्ण जगत् शान्ति पूर्वक था ॥१७४॥ उसी के प्रशासन में देवता और असुर दोनों रहते थे। उस समय जब यह समाचार फैल गया कि भगवान् ने बलि को बाँध दिया ॥१७५॥ इस समाचार के कारण देवताओं तथा असुरों का बहुत बड़ा विनाश हुआ। उसी समय महर्षि भृगु के शाप के कारण देवताओं तथा असुरों के लिए धर्म की व्यवस्था करने के लिए भगवान् मनुष्य रूप से अवतार लेते हैं ॥१७६॥ **भीष्मजी ने कहा—** देवताओं तथा असुरों के लिए भगवान् ने क्यों शरीर धारण किया ॥१७७॥ हे सुव्रत देवासुर संग्राम कैसे हुआ ? उसे आप मुझे बतलायें। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** विजय प्राप्त करने के ही लिए देवताओं और असुरों का भयङ्कर संग्राम होता है ॥१७८॥

पुलस्त्य उवाच

तेषां जयनिमित्तं वै संग्रामाः स्युः सुदारुणाः ॥१७८॥
अवतारा दशद्वौच शुद्धा मन्वंतरे स्मृताः । नामधेयं समासेन श्रृणु तेषां विवक्षितम् ॥१७९॥
प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः । तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोमृतमंथनः ॥१८०॥
संग्रामः पंचमश्चैव सुघोरस्तारकामयः । षष्ठो ह्याडीवकाख्यश्च सप्तमस्त्रैपुरस्तथा ॥१८१॥
अष्टमश्चांधकवधो नवमो वृत्रघातनः । ध्वजश्च दशमस्तेषां हालाहलस्ततः परम् ॥१८२॥
प्रथितोद्वादशस्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नरसिंहेन सूदितः ॥१८३॥
वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे पुरा । हिरण्याक्षो हतो द्वंद्वे प्रतिवादे तु दैवतैः ॥१८४॥
दंष्ट्रया तु वराहेण समुद्रस्थो द्विधा कृतः । प्रह्लादो निर्जितोयुद्ध इंद्रेणामृतमंथने ॥१८५॥
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिंद्रवधोद्यतः । इंद्रेणैव च विक्रम्य निहतस्तारकामये ॥१८६॥
अशक्नुवत्सु देवेषु त्रिपुरं सोढुमासुरम् । मोहयित्वाऽमृते पीते गोरूपेणासुरारिणा ॥१८७॥
नासञ्जीवयितुं शक्या भूयो भूयो मृताऽसुराः । निहता दानवाः सर्वे त्रैलोक्ये त्र्यंबकेण तु ॥१८८॥
असुराश्च पिशाचाश्च दानवाश्चांधके वधे । हतादेवमनुष्यैस्ते पितृभिश्चैव सर्वशः ॥१८९॥
संपृक्तो दानवै र्वृत्रो घोरे कोलाहले हतः । तदाविष्णुसहायेन महेन्द्रेण निपातितः ॥१९०॥
हतस्ततो महेन्द्रेण मायाछन्नस्तु योगवित् । वज्रेणक्षणमाविश्य विप्रचित्तिः सहानुगः ॥१९१॥
दैत्याश्च दानवाश्चैव संयुताः कृत्स्नतस्तु ते । एते देवाऽसुरावृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु ॥१९२॥

एक मन्वन्तर में शुद्ध अवतार बारह कहे गये हैं, उन सबों के विवक्षित नामों को तुम संक्षेप में सुनो ॥१७९॥ भगवान् का पहला नरसिंहावतार हुआ, दूसरा वामनावतार हुआ । तीसरा वराहावतार हुआ और चौथा अवतार अमृत मंथन के समय हुआ ॥१८०॥ पाँचवाँ अत्यन्त भयङ्कर तारकामय संग्रामावतार हुआ । छठा अवतार आडी और वक का हुआ । सातवाँ त्रिपुरावतार हुआ ॥१८१॥ आठवाँ अवतार अंधकासुर को मारने वाला हुआ और नवाँ अवतार वृत्रासुर को मारने वाला हुआ । दशवाँ अवतार ध्वजरूप से हुआ और ग्यारहवाँ हालाहल का अवतार हुआ ॥१८१-१८२॥ बारहवाँ अवतार कोलाहल रूप से प्रख्यात है । हिरण्यकशिपु नामक दैत्य को नरसिंह ने मार दिया ॥१८३॥ प्राचीन काल में वामन ने त्रैलोक्य क्रमण के अवसर पर बलि को बाँध दिया । देवताओं के साथ युद्ध में हिरण्याक्ष मारा गया ॥१८४॥ समुद्र में विद्यमान हिरण्याक्ष को वराह ने अपने दाँत से दो भागों में चीर दिया । अमृत मंथन के समय इन्द्र ने प्रह्लाद को परास्त कर दिया ॥१८५॥ प्रह्लाद का पुत्र विरोचन सदा इन्द्र का वध करने के लिए तैयार रहता था वह इन्द्र के साथ युद्ध करके तारकामय में मारा गया ॥१८६॥ देवता त्रिपुर नामक असुर का सामना करने में असमर्थ थे । उस समय भगवान् विष्णु ने असुरों को मोहित करके तथा गौ का रूप धारण करके सम्पूर्ण अमृत कुण्ड को ही पी लिया ॥१८७॥ उसके कारण जो असुर मर जाने के बाद बार-बार शुक्राचार्य के द्वारा जीवित कर दिए जाते थे, वे पुनः उन सबों को जीवित नहीं कर सके । फलतः त्र्यम्वक (श्रीशङ्करजी) ने त्रैलोक्य के समस्त दानवों को मार दिया ॥१८८॥ अन्धकासुर के मार दिए जाने के बाद देव मनुष्यों तथा पितरों ने सम्पूर्ण असुरों, पिशाचो तथा दानवों को मार दिया ॥१८९॥ दानवों के साथ वृत्रासुर भी कोलाहल नामक भयङ्कर स्थान में मारा गया । वहाँ पर भगवान् विष्णु की सहायता से इन्द्र ने वृत्रासुर को मार दिया ॥१९०॥ उसके बाद मायावी तथा योगवेत्ता अपने सहायकों के साथ विप्रचित्ति को इन्द्र ने वज्र से मार दिया ॥१९१॥ ये बारह ही देवासुर संग्राम

देवासुरक्षयकराः प्रजानां च हिताय वै। हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ॥१९३॥
द्विसप्ततिं तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु। अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यवानभूत्॥१९४॥
पर्यायेण तु राजाभूद्बलिर्वर्षार्बुदं पुनः। षष्ठिं चैव सहस्राणि नियुतानि च विंशतिम्॥१९५॥
बलिराज्याधिकारे तु यावत्कालश्चकीर्तितः। तावत्कालं तु प्रह्लादोनिर्वृतोह्यसुरैः सह॥१९६॥
जयार्थमेतेविज्ञेया असुराणां महौजसः। त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रेणानुपाल्यते॥१९७॥
असम्पन्नमिदं सर्वं यावद्वर्षायुतं पुनः। पर्यायेणैव सम्प्राप्ते त्रैलोक्यं पाकशासने॥१९८॥
ततोसुरान्परित्यज्य यज्ञो देवानगच्छत। यज्ञे देवानथगते दितिजाः काव्यमब्रुवन्॥१९९॥

दैत्या ऊचुः

हृतंमघवता राज्यं त्यक्त्वा यज्ञः सुरान् गतः। स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्रतलप्रविशामो रसातलम्॥२००॥
एवमुक्तो ब्रवीदेतन्विषण्णान् सांत्वयन् गिरा। मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन वोऽसुराः॥२०१॥
मंत्राश्चौषध्यश्चैव धरायां यत्तु वर्तते। मयि तिष्ठति तत्सर्वं पादमात्रं सुरेषु वै॥२०२॥
तत्सर्वं प्रदास्यामि युष्मदर्थे धृतं मया। ततो देवास्तु तान् दृष्ट्वा धृतान्काव्येन धीमता॥२०३॥
अमंत्रयंत देवा वै संविग्रास्तज्जिघृक्षया। काव्यो ह्येष इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात्॥२०४॥
साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नच्यावयेत वै। प्रसह्य जित्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे॥२०५॥
ततो देवास्तु संरब्धा दानवानुपसृत्य ह। ततस्ते वध्यमानास्तैः काव्यमेवाभिदुद्रुवुः॥२०६॥

हुए, उन संग्रामों में सभी दैत्य तथा दानव मिलकर देवताओं से युद्ध करते थे ॥१९२॥ ये युद्ध देवताओं तथा दैत्यों का विनाश करने वाले तथा प्रजाओं का कल्याण करने के लिए हुए। उसके बाद हिरण्यकशिपु ने एक अरब, बहत्तर लाख तथा अस्सी हजार वर्षों तक त्रैलोक्य के ऐश्वर्य का स्वामी हुआ ॥१९४॥ उसके बाद बलि राजा हुए। उन्होंने भी एक अरब, बीस लाख, साठ हजार वर्षों तक त्रैलोक्य का ऐश्वर्य भोग किया ॥१९५॥ जब तक बलि का त्रैलोक्य पर अधिकार रहा तब तक प्रह्लाद भी असुरों के साथ सुखपूर्वक रहे ॥१९६॥ महाओजस्वी असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिए इन्द्र शान्ति पूर्वक त्रैलोक्य का पालन करते रहे ॥१९७॥ उस समय दश हजार वर्षों तक यह सम्पूर्ण जगत् अस्त-व्यस्त रहा। उसके बाद जब इन्द्र का त्रैलोक्य पर अधिकार हुआ तो ॥१९८॥ यज्ञ असुरों को त्याग कर देवाओं के पक्ष में चले गये। यज्ञ के देवताओं के पास चले जाने पर दैत्यों ने शुक्राचार्य से कहा ॥१९९॥
दैत्यों ने कहा— इन्द्र ने हमलोगों के राज्य का हरण कर लिया है, यज्ञ भी हमलोगों को छोड़कर देवताओं के पास चला गया। अतएव हमलोग यहाँ पर नहीं रह सकते है अतएव हमलोग रसातल में चले जा रहे हैं ॥२००॥ इसतरह से कहे जाने पर शुक्राचार्य ने उदास दैत्यों को सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा असुरों ! डरो मत; मैं अपने तेज से तुम सबों की रक्षा करूँगा ॥२०१॥ पृथिवी पर जितने मंत्र तथा औषधियाँ हैं, उन सबों को मैं जानता हू, देवता तो उसके केवल चौथाई भाग को ही जानते हैं ॥२०२॥ वह सब मैं तुम लोगों को बतला दूँगा, उन सबों को मैंने तुम लोगों के ही लिए धारण किया है। उसके बाद देवताओं ने देखा कि असुरों की रक्षा शुक्राचार्य कर रहे हैं॥२०३॥ उसके बाद देवता धबरा गये और वे दैत्यों से उन समस्त औषधियों तथा मन्त्रों को छिन लेने की इच्छा से आपस में विचार किए। ये शुक्राचार्य अपने तेजोबल से हमलोगों को त्रैलोक्याधिकार से हटा देना चाहते हैं॥२०४॥ जब तक शुक्राचार्य हमलोगों को राज्य से गिरा नहीं देते हैं, उससे पहले ही हमलोग बचे हुए असुरों को बल पूर्वक जीतकर उन्हें पाताल में भगा दे रहे हैं ॥२०५॥ उसके बाद देवगण दानवों के पास आकर उन्हें मारने

ततः काव्यस्तु तान् दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् । रक्षाकार्येण संहृत्य देवेभ्यस्तान्सुरार्दितान् ॥२०७॥
काव्यं दृष्ट्वा स्थितं देवान्निर्विशंकास्तु ते जहुः । ततः काव्योनुचिंत्याथ ब्रह्मणो वचनं हितम् ॥२०८॥
तानुवाच ततः काव्यः पूर्ववृत्तमनुस्मरन् । त्रैलोक्यं वो हृतं सर्वं वामनेन त्रिभिःक्रमैः ॥२०९॥
बलिर्बद्धो ततोजंभो निहतश्च विरोचनः । महासुरा द्वादशसु संग्रामेषु सुरैर्हताः ॥२१०॥
तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहतास्तुप्रयानतः । केचिच्छिष्टाश्च यूयं वै युद्धं नास्तीति मे मतम् ॥२११॥
नीतयो वो विधातव्या उपासे कालपर्ययात् । यास्याम्यहं महादेवं मंत्रार्थं विजयावहम् ॥२१२॥
अप्रतीपांस्ततो देवान्मंत्रान्प्राप्यमहेश्वरात् । योत्स्यामहे पुनर्देवैस्ततःप्राप्स्यथ वै जयम् ॥२१३॥
ततस्ते कृत संवादा देवानूचुस्तदासुराः । न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसन्नाहा रथैर्विनाः ॥२१४॥
वयं तपश्चरिष्यामः संवृतावल्कलैस्तथा । देवास्तेषां वचःश्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं ततः ॥२१५॥
ततोन्यवर्तयन्सर्वे विज्वरा मुदिताश्च ते । न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः ॥२१६॥
ततस्तानब्रवीत्काव्य उपाध्वं तपसि स्थिताः । निरुत्सिक्तास्तपो युक्ताः कालं कार्यार्थसाधकम् ॥२१७॥
पितुराश्रमसंस्था वै मां प्रतीक्षथ दानवाः । तानुद्दिश्यासुरान्काव्यो महादेवं प्रपद्यत ॥२१८॥

शुक्र उवाच

मंत्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ । पराभवाय देवानामसुराणां जयाय च ॥२१९॥
एवमुक्तो ब्रवीद्देवो व्रतं त्वं चर भार्गव । पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममधः शिराः ॥२२०॥

लगे । देवताओं से मारे जाते हुए दैत्य शुक्राचार्य के शरण में गये ॥२०६॥ उसके बाद शुक्राचार्य ने देखा कि देवता असुरों को खदेड़ रहे हैं । देवताओं द्वारा पीडित असुरों को देखकर शुक्राचार्य ने रक्षा करने वाले मंत्रों से उन सबों को एकत्रित किया ॥२०७॥ वहाँ पर शुक्राचार्य को विद्यमान देखकर देवता निश्शङ्क होकर दैत्यों को मारने लगे । उसके बाद शुक्राचार्य ने ब्रह्माजी के हितकारी बातों को स्मरण किया ॥२०८॥ पूर्व कालिक वृतान्त का स्मरण करके दैत्यों से कहा वामन ने तुमलोग के लिए त्रैलोक्य को तीन डग में ही हरण कर लिया ॥२०९॥ देवताओं ने बलि को बाँध दिया, जम्भ को मार दिया और विरोचन को भी मार दिया । बारह महा संग्रामों में देवताओं ने बड़े-बड़े दैत्यों को मार दिया ॥२१०॥ विभिन्न उपायों से देवताओं ने बहुत अधिक प्रधान दैत्यों को मार दिया है । अब तो कुछ ही तुमलोग बचे हो, अतएव युद्ध करना ठीक नहीं है ॥२११॥ अब नीति से काम लेना चाहिये । विजयप्रद मन्त्रों को प्राप्त करने के लिए मैं महादेवजी के पास जा रहा हूँ ॥२१२॥ उसके बाद महेश्वर से मन्त्र प्राप्त करके अविरोधी बने देवताओं के साथ हमलोग युद्ध करेंगे ॥२१३॥ उसके बाद देवताओं के साथ मित्रता करके असुरों ने देवताओं से कहा हमलोगों ने अपना शस्त्र रख दिया है, कवच तथा रथ से हमलोग रहित हो गये हैं ॥२१४॥ हमलोग वल्कल धारण करके तपस्या करेंगे । उन सबों की वाणी सुनकर देवताओं ने उसे सत्य मान लिया ॥२१५॥ उसके बाद प्रसन्नतापूर्वक सभी देवता लौट गये । दैत्यों के शस्त्र परित्याग कर देने पर देवता भी लौट गये ॥२१६॥ उसके बाद शुक्राचार्य ने दैत्यों से कहा कि तुमलोग तपस्या करते हुए उपासना करो । मद रहित तथा तपस्वी होकर कार्य साधक काल को बिताओ ॥२१७॥ दानवों मेरे पिता के आश्रम में रहकर मेरे लौटने की प्रतीक्षा करो । उन असुरों का कल्याण करने के लिए शुक्राचार्य महादेव (शङ्करजी) के शरण में गये ॥२१८॥ **शुक्राचार्य ने कहा—** हे देव जो मन्त्र बृहस्पति को भी नहीं ज्ञात हैं उन मन्त्रों को मैं आप से प्राप्त करना चाहता हूँ । जिससे कि देवताओं का पराजय और असुरों को विजय प्राप्त हो सके ॥२१९॥ इस प्रकार से कहने पर शङ्करजी ने कहा तुम तपस्या करो ।

यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मंत्रानवाप्स्यसि । तथेति समनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनंदनः ॥२२१॥
पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यब्रवीद्वचः । व्रतं चराम्यहं देव त्वयादिष्टोऽद्यवै प्रभो ॥२२२॥
आदिष्टो देवदेवेन कृतवान् भार्गवो मुनिः । तदा तस्मिन् गते शुक्रो असुराणां हिताय वै॥२२३॥
मंत्रार्थे तनुते काव्यो ब्रह्मचर्यं महेश्वरात् । तद्बुद्ध्वानीतिपूर्वं वै राजन्यास्तु तदासुखम्॥२२४॥
अस्मिंश्छिद्रे तदामर्षाद्देवास्तानाभिदुद्रुवुः । दंशिताःसायुधाः सर्वे बृहस्पति पुरःसराः ॥२२५॥
दृष्ट्वा सुरगणा देवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः । उत्पेतुस्सहसा सर्वे संत्रस्तास्तान्वचो ब्रुवन् ॥२२६॥

दैत्या ऊचुः

न्यस्तशस्त्रा वयं देवा आचार्ये व्रतमास्थिते । दत्वाभवंतस्स्त्वभयं संप्राप्ता नो जिघांसया ॥२२७॥
अनमर्षा वयं सर्वे त्यक्तशस्त्राश्च संस्थिताः । चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ॥२२८॥
रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथंचन । अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम् ॥२२९॥
ज्ञापयामः कृच्छ्रमिदं यावन्नाभ्येति नो गुरुः । निवृत्ते च तथा शुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः॥२३०॥
एवमुक्त्वा च तेन्योन्यं शरणं काव्यमातरम् । प्रापद्यंत ततो भीतास्तेभ्योऽदादभयं तु सा ॥२३१॥
न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः । मत्सन्निधौ वर्त्ततां वो न भीर्भवितुर्महति ॥२३२॥
तयाभिरक्षितांस्तांश्च दृष्ट्वा देवास्तदाऽसुरान् । अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्यबलाबलम् ॥२३३॥
ततस्तान्बध्यमानांस्तु देवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा । देवी क्रुद्धाब्रवीद्देवान्निद्रया मोहयाम्यहम् ॥२३४॥
संभृत्य सर्व संभारान्निद्रां सा व्यसृजत्तदा । तस्तंभ देवी च बलाद्योगयुक्ता तपोधना ॥२३५॥

नीचे शिर करके एक हजार वर्ष तक कण के धूमका पान करो ॥२२०॥ यदि तुम पान कर सकोगे तो तुम मन्त्रों को प्राप्त कर सकोगे । उसके बाद भृगुनन्दन शुक्राचार्य ने कहा ऐसा ही मैं करूँगा ॥२२१॥ उन्होंने भगवान् शङ्कर के दोनों चरणों का स्पर्श करके ठीक है, ऐसा कहकर कहा— हे देव ! मैं व्रत कर रहा हूँ ॥२२२॥ तदनंतर भागर्व मुनि उसी तरह से तप करने लगे जैसा शङ्करजी ने आदेश दिया था । शुक्राचार्य असुरों का कल्याण करने के लिए चले गये ॥२२३॥ महेश्वर से मन्त्र को प्राप्त करने के लिए शुक्राचार्य तपस्या कर रहे हैं, इस नीतिमय बात को जानकर देवता अशान्त हो गये ॥२२४॥ इस दोष को जानकर क्रोधवश देवता क्रोध करके बृहस्पति के साथ आयुध धारण करके दैत्यों पर आक्रमण कर दिए ॥२२५॥ असुरों ने जब देखा कि देवता पुनः आयुध धारण किए हुए हैं, तो वे भयभीत होकर सहसा खड़ा हो गये ॥२२६॥ **दैत्यों ने देवताओं से कहा—** देवाताओं ! हमारे आचार्य तपस्या कर रहे हैं, हमलोगों ने शस्त्रों का परित्याग कर दिया है । आपलोगों ने हमलोगों को अभय प्रदान किया है, फिर भी हमलोगों को मारने की इच्छा से आप आये हैं ॥२२७॥ हम सभी आमर्ष रहित हैं, शस्त्रों का परित्याग कर दिए हैं। वल्कल तथा कृष्ण मृगचर्म धारण किए है, हमलोग परिग्रह रहित हैं ॥२२८॥ हमलोग युद्ध में देवताओं को किसी भी प्रकार नहीं जीत सकते हैं । युद्ध रहित होकर शुक्राचार्य की माता के शरणागत हैं ॥२२९॥ हम तब तक यह व्रत करेंगे जब तक हमारे गुरु लौट नहीं आते हैं । गुरु के आ जाने पर ही हमलोग आयुध धारण करके युद्ध कर सकेंगे॥२३०॥ इसतरह से कहकर वे परस्पर में बातें करके शुक्राचार्य की माता के शरण में चले गये और शुक्राचार्य की माता ने उन्हें अभय प्रदान किया ॥२३१॥ दानवों डरो मत ! डरो मत ! भय त्याग दो । मेरे सन्निकट में रहने पर तुमलोगों को भय नहीं करना चाहिए ॥२३२॥ शुक्राचार्य की माता के द्वारा असुरों को सुरक्षित देखकर देवताओं ने बलाबल का विचार किए बिना असुरों पर आक्रमण कर दिया ॥२३३॥ उसके बाद देवताओं द्वारा मारे जाते हुए

ततस्तं स्तभितं दृष्ट्वा इंद्रं देवाश्च मूढवत् । प्राद्रवंत ततो भीता इंद्रं दृष्ट्वा वशीकृतम् ॥२३६॥
गतेषु सुरसंघेषु विष्णुरिंद्रमभाषत ।

विष्णुरुवाच

मां त्वं प्रविश भद्रं ते रक्षिष्ये त्वां सुरोत्तम ॥२३७॥
एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः । विष्णुसंरक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवीत् ॥२३८॥
एष त्वां विष्णुना सार्धं दहामि मघवन् बलात् । मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम् ॥२३९॥
तयाभिभूतौ तौ देवाविंद्रविष्णू बभूवतुः । कथं मुच्येय सहितो विष्णुरिंद्रमभाषत ॥२४०॥
इंद्रोब्रवीज्जहि ह्येनां यावन्नौ न दहेत्प्रभो । विशेषेणाभिभूतोस्मि जहीमां जहि माचिरम् ॥२४१॥
ततस्समीक्ष्य विष्णुस्तां स्त्रीवधेकृच्छ्रमास्थितः । अभिध्याय ततः शक्रमापन्नं सत्वरं प्रभुः ॥२४२॥
ततः स त्वरया युक्तः शीघ्रकारीभयान्वितः । ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ॥२४३॥
अथ क्रुद्धश्चक्रमादाय शिरश्चिछेद वै भयात् । तं दृष्ट्वा स्त्री वधं घोरं चुक्रोध भृगुरीश्वरः ॥२४४॥
ततोहि शप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे कृते।

भृगुरुवाच

यत्त्वया जानताधर्ममवध्या स्त्री निषूदिता ॥२४५॥
तस्मात्त्वं सप्त कृत्वो हि मानुषेषूपयास्यसि। ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः ॥२४६॥
लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह। अथ व्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरः स्वयम् ॥२४७॥
समानीय ततः कायं पाणौ गृह्येदमब्रवीत् ।

असुरों को देखकर क्रोध करके उन देवी ने कहा तुमलोगों को मैं निद्रा से मोहित कर दे रही हूँ ॥२३४॥ सभी सामग्रियों को एकत्रित करके ख्याति देवी ने निद्रा की सृष्टि कर दी । हे तपस्वियों योग के बल से ख्याति देवी ने देवताओं को स्तम्भित कर दिया ॥२३५॥ उसके वाद इन्द्र को स्तम्भित देखकर सभी देवता किं कर्तव्य विमूढ हो गये । इन्द्र को वशीकृत देखकर सभी देवता वहाँ से भाग चले ॥२३६॥ देवताओं के चले जाने पर विष्णु ने इन्द्र से कहा **विष्णु ने कहा—** हे सुरोत्तम ! तुम मुझ में प्रवेश कर जाओ । तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा॥२३७॥ इस तरह से कहने पर इन्द्र भगवान् विष्णु में प्रवेश कर गये । विष्णु के द्वारा संरक्षित इन्द्र को देखकर ख्याति देवी ने क्रोध करके कहा ॥२३८॥ इन्द्र अभी-अभी मैं तुमको विष्णु के साथ जला देती हूँ । मैं यह काम सवों को समक्ष करूँगा तुमलोग मेरी तपस्या के वल को देखो ॥२३९॥ ख्याति देवी के द्वारा इन्द्र और विष्णु दोनों देवता अभिभूत हो गये । इन्द्र ने विष्णु से कहा अव हमलोग कैसे मुक्त हों ?॥२४०॥ इन्द्र ने भगवान् विष्णु से कहा हे प्रभो ! जव तक यह हम दोनों को जला न दे उससे पहले ही आप इसको मार दीजिये । मैं विशेष रूप से अभिभूत हो गया हूँ, आप इसे शीघ्र ही मार दीजिये ॥२४१॥ उसके बाद भगवान् विष्णु स्त्री वध से होने वाले पाप का विचार किये । उसके वाद इन्द्र को आपद् ग्रस्त विष्णु ने देखा ॥२४२॥ उसके बाद भयभीत होकर उन्होंने शीघ्रता से जान लिया कि ख्याति देवी क्रूर कर्म (अभिचार कर्म) करना चाहती हैं ॥२४३॥ और भयवश उन्होंने चक्र से ख्याति देवी के शिर को काट दिया । स्त्री का भयङ्कर वध देखकर महर्षि भृगु क्रुद्ध हो गये ॥२४४॥ पत्नी का वध करने के कारण महर्षि भृगु ने विष्णु को शाप दे दिया । **भृगु महर्षि ने कहा—** तुम धर्म के जानकार हो स्त्री अवध्य होती है, फिर भी तुमने उसे मार दिया ॥२४५॥ अतएव तुम को सात बार मनुष्य योनि में जाना होगा ।

भृगुरुवाच

एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम् ॥२४८॥
यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोपि वा। तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥२४९॥
ततस्तां प्रोक्ष्य शीताद्भि र्जीव जीवेति सोऽब्रवीत्। ततोभिव्याहते तस्मिन्देवी संजीविता तदा ॥२५०॥
ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव। साधुसाध्विति दृष्ट्वैव वचस्तां सर्वतोऽब्रुवन् ॥२५१॥
एवं प्रत्याहृता तेन देवी सा भृगुणा तदा। मिषतां दैवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत् ॥२५२॥
असंभ्रांतेन भृगुणा पत्नी संजीविता पुनः। दृष्ट्वा चेंद्रोनालभत शर्म काव्यभयात्पुनः ॥२५३॥
प्रजागरे तत श्चेंद्रो जयंतीमिदमब्रवीत्। संधिकामोभ्यधाद्वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः॥२५४॥

इन्द्र उवाच

एष काव्योह्यनिंद्राय व्रतं चरति दारुणम्। तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो मतिमता दृढम् ॥२५५॥
तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च उपचारैरतन्द्रिता। आराध्य तथा पुत्रि यथातुष्येत स द्विजः ॥२५६॥
गच्छ त्वं तस्य दत्तासि प्रयत्नं कुरु मत्कृते। एवमुक्ता जयंती सा वचः संगृह्य वै पितुः ॥२५७॥
अगच्छद्यत्र घोरं स तपोह्यारभ्य तिष्ठति। तं दृष्ट्वा च पिबंतं सा कणधूममधोमुखम् ॥२५८॥
यक्षेण पात्यमानं च कुंडधारेण पावनम्। दृष्ट्वा तं यतमानं तु देवीकाव्यमवस्थितम् ॥२५९॥
शत्रूपघातेश्राम्यन्तं दुर्बलस्थितिमास्थितम्। पित्रा यथोक्तं वाक्यं साकाव्ये कृतवती तदा॥२६०॥
गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवन्तीवल्गुभाषिणी। गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना त्वचः सुखैः ॥२६१॥

उसी शाप के कारण धर्म के नष्ट हो जाने पर तथा संसार का कल्याण करने के लिए भगवान् बार-बार मनुष्य शरीर धारण करते हैं इसतरह से भगवान् विष्णु को शाप देकर वे स्वयं ख्याति देवी के शिर को उठा लिए ॥२४६-२४७॥ उसे उन्होंने ख्याति देवी के शरीर के साथ जोड़कर हाथ में उसे लेकर कहा **भृगु महर्षि ने कहा**— हे देवि ! विष्णु के द्वारा मारी गयी तुमको मैं जिला रहा हूँ ॥२४८॥ यदि मैं सम्पूर्ण धर्मों को जानता हूँ तथा मैंने अनुष्ठान किया हैं यदि मैं यह सत्य बोलता हूँ तो उस सत्य के बल से जीवित हो जाओ ॥२४९॥ उसके बाद ख्याति देवी को ठण्डे पानी से पोंछ कर महर्षि ने कहा जी जाओ, जी जाओ। इसतरह से महर्षि के कहने पर ख्याति देवी जीवित हो गयां ॥२५०॥ उसके पश्चात् सबलोगों ने देखा कि ख्याति देवी जैसे सोये से जग गयी हैं। उसे देखकर सबलोग बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ! कहने लगे ॥२५१॥ इस तरह से देवताओं के सामने ही महर्षि भृगु ने ख्याति देवी को जीवित कर दिया, यह अत्यद्भुत जैसा कार्य था ॥२५२॥ बिना किसी अधिक प्रयास के महर्षि भृगु ने अपनी पत्नी को जीवित कर दिया, इस बात को देखकर इन्द्र शुक्राचार्य के भय से भयभीत हो गये ॥२५३॥ सबेरा होने पर इन्द्र ने जाकर संधि करने की इच्छा से अपनी पुत्री जयन्ती से कहा ॥२५४॥ **इन्द्र ने कहा**— शुक्राचार्य अत्यन्त सावधानी पूर्वक व्रत कर रहे हैं। उन बुद्धिमान शुक्राचार्य की तपस्या से मैं घबरा गया हूँ ॥२५५॥ हे पुत्रि! तुम उनके पास जाकर उनके मनोऽनुकूल सेवाओं से उनकी ऐसी आराधना करो कि वे प्रसन्न हो जायँ ॥२५६॥ मैंने तुमको उन्हें प्रदान कर दिया। तुम मेरे लिए प्रयास करो। इसतरह से कहने पर जयन्ती पिता की बात मानकर॥२५७॥ वहाँ गयी जहाँ पर शुक्राचार्य घोर तपस्या कर रहे थे। उसने देखा कि शुक्राचार्य नीचे मुख करके कण के धुएँ को पी रहे हैं ॥२५८॥ उस पवित्र धुएँ को यक्ष कुण्ड की धारा से गिर रहा था, उस तरह से उनको तपस्या करते हुए देखकर जयन्ती वहीं स्थित हो गयी ॥२५९॥ शत्रु का नाश करने के लिए शुक्राचार्य श्रान्त कर

व्रतचर्यानुकूलाभिरुपास्य बहुलाः समाः । पूर्णे धूमव्रते तस्मिन् घोरे वर्षसहस्रके ॥२६२॥
वरेण छंदयामासशिवः प्रीतो भवत्तदा।

महेश्वर उवाच

एतद्व्रतं त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् ॥२६३॥
तस्माद्वै तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च । तेजसा च सुरान्सर्वांस्त्वमेकोभिभविष्यसि ॥२६४॥
यच्चकिंचिन्मयि ब्रह्मन् विद्यते भृगुनंदन । प्रतिदास्यामि तत्सर्वं त्वया वाच्यं न कस्यचित्॥२६५॥
किं भाषितेन बहुना अवध्यस्त्वं भविष्यसि । तान्दत्त्वा तुवरांस्तस्मै भार्गवाय पुनः पुनः ॥२६६॥
प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ । एतान् लब्ध्वा वरान्काव्यः संप्रहृष्टतनूरुहः ॥२६७॥
एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम् । प्रज्ञान्वितस्ततस्तस्मै प्राञ्जलिः प्रणतो भवत् ॥२६८॥
ततः सोंतर्हिते देवे जयंतीमिदमब्रवीत् । कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता॥२६९॥
महता तपसा युक्ता किमर्थं मां जिगीषसि । अनया संस्थिता भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च॥२७०॥
स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोस्मि वरवर्णिनि । किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समुद्यतः॥२७१॥
तं ते संपादयाम्यद्य यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् । एवमुक्ता ब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि ॥२७२॥
चिकीर्षितं हि मे ब्रह्मंस्त्वं वे वद यथातथम् । एवमुक्तो ब्रवीदेनां दृष्ट्वादिव्येन चक्षुषा ॥२७३॥
मया सहत्वं सुश्रोणिशतवर्षाणि भामिनि। सर्वभूतैरदृश्यांतः संप्रयोगमिहेच्छसि ॥२७४॥

देने वाली तपस्या कर रहे थे । वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे । इसके बाद जैसा कि इन्द्र ने कहा था उसी के अनुसार वह कार्य करने लगी ॥२६०॥ वह शुक्राचार्य के मनोऽनुकूल वाणी से उनकी स्तुति करती थी तथा उनसे मनोहर बातें करती थी । समयानुसार शरीर को सुखप्रद प्रकार से उनके शरीर को दबाती थी ॥२६१॥ व्रतचर्या के द्वारा वह उनकी अनेक वर्षों तक उपासना करती रही । इसतरह से एक हजार वर्ष का जब धूमव्रत समाप्त हो गया ॥२६२॥ तो शिवजी प्रसन्न होकर शुक्राचार्य से वरदान माँगने के लिए कहे । **महेश्वर ने कहा**— इस व्रत को केवल तुमने किया है, दूसरा कोई इसे आज तक नहीं कर सका है ॥२६३॥ अतएव तुम अकेले ही देवताओं को अपनी तपस्या, वुद्धि, ज्ञान, बल तथा तेज से अभिभूत कर दोगे ॥२६४॥ हे भृगुनन्दन ! जो कुछ भी मंत्र मेरे पास है उसे मैं तुम्हें दे रहा हूँ उसे किसी दूसरे को आप मत बतलाइयेगा ॥२६५॥ बहुत कहने से क्या लाभ है ? तुम अबध्य हो जाओगे । शुक्राचार्य को उन समस्त वरदानों को बार-बार प्रदान करके ॥२६६॥ वे शुक्राचार्य को प्रजेशत्व, धनेशत्व तथा अबध्य होने का भी वरदान दे दिये । इन समस्त वरदानों को प्राप्त करके शुक्राचार्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥२६७॥ इसतरह से कहकर नील लोहित शङ्करजी को बुद्धिमान् शुक्राचार्य हाथ जोड़कर उनके समक्ष प्रणत हो गये ॥२६८॥ जब शङ्करजी अन्तर्धान हो गये तो शुक्राचार्य ने जयन्ती से कहा सुन्दरि ! तुम कौन हो ? तुम मेरे दुखीः होने पर दुःखी होती हो ॥२६९॥ तुम अपनी इस महान तपस्या से मुझको क्यों जीतना चाहती हो ? । हे सुन्दरि ! तुम्हारी इस निरन्तर भक्ति पूर्वक सेवा दम (इन्द्रियों के निग्रह) तथा स्नेह से मैं प्रसन्न हो गया हूँ । हे वरारोहे ! तुम क्या चाहती हो ? तुम्हारी कौन सी कामना है ?॥२७१॥ यदि वह अत्यन्त दुष्कर भी होगी तो भी उसे मैं पूरा करूँगा। शुक्राचार्य के इस तरह से कहने पर जयन्ती ने कहा आप अपनी तपस्या के द्वारा मेरी कामना को जान लें ॥२७२॥ हे ब्रह्मन् ! आप ही ठीक-ठीक बतलाइये कि मैं क्या चाहती हूँ । इसतरह से कहने पर अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर शुक्राचार्य ने कहा ॥२७३॥ हे सुन्दरि ! हे भामिनि ! तुम सौ वर्षों तक अदृश्य रहकर मेरे साथ रमण करना चाहती

देवि इंदीवरश्यामे वरार्हे वामलोचने । एवं वृणोषि कामांस्त्वं ददे वै वल्गुभाषिते ॥२७५॥
एवं भवतु गच्छाव गृहं मे मत्तकाशिनि । ततः सगृहमागम्य जयंत्या सह चोशना ॥२७६॥
तया सहावसद्देव्या शतवर्षाणि भार्गवः । अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संशितव्रतः ॥२७७॥
कृतार्थमागतं ज्ञात्वा शुक्रं सर्वे दितेस्सुताः । अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥२७८॥
गता यदा न पश्यंति मायया संवृतं गुरुम् । लक्षणं तस्य चाबुद्ध्वा नाद्यागच्छति नो गुरुः ॥२७९॥
एवं ते स्वानि धिष्ण्यानि गताः सर्वे यथागताः । ततो देवगणास्सर्वे गत्वांगिरसमब्रुवन् ॥२८०॥
दानवालये तु भगवान् गत्वा तत्र च तां चमूम् । मोहयित्वात्मवशगां क्षिप्रमेव तथा कुरु ॥२८१॥
धिषणस्तान्सुरानाह एवमेव व्रजाम्यहम् । तेन गत्वा दानवेंद्रः प्रह्लादो वै वशीकृतः ॥२८२॥
शुक्रो भूत्वा स्थितस्तत्र पौरोहित्यं चकार सः । स्थितो वर्षशतं साग्रमुशना तावदागतः ॥२८३॥
दनुपुत्रैस्ततो दृष्टः सभायां तु बृहस्पतिः । उशना एक एवात्र द्वितीयः किमिहागतः ॥२८४॥
सुमहत्कौतुकं चात्र भविता विग्रहो दृढम् । किं वदिष्यति लोकोऽयं द्वारि योऽयं व्यवस्थितः ॥२८५॥
सभायामास्थितो योऽयं गुरुः किं नो वदिष्यति । एवं प्रजल्पतां तेषां दनूनां कविरागतः ॥२८६॥
स्वरूपधारिणं तत्र दृष्ट्वासीनं बृहस्पतिम् । उवाच वचनं क्रुद्धः किमर्थं त्वमिहागतः ॥२८७॥
शिष्यान्मोहयसे मे त्वं युक्तं सुरगुरोस्तव । मूढास्ते त्वां न जानंति त्वन्माया मोहिता ध्रुवम् ॥२८८॥
तन्न युक्तं तव ब्रह्मन्परशिष्यप्रधर्षणम् । व्रज त्वं देवलोकं स्वं तिष्ठधर्ममवाप्स्यसि ॥२८९॥

हो ॥२७४॥ हे देवि ! हे नीलकमल की शोभा वाली ! हे वामलोचने ! तुम्हारी इस मनोहर वाणी से प्रसन्न होकर मैं तुम्हारी इस कामना की पूर्ति कर रहा हूँ ॥२७५॥ हे मत्तकाशिनि ! अब हम दोनो हमारे घर चलें । उसके बाद शुक्राचार्य जयन्ती के साथ घर आये ॥२७६॥ वे उस जयन्ती के साथ सौ वर्षों तक निवास किए । प्रख्यात तपस्वी अपनी माया के प्रभाव से सबों से अदृश्य रहते थे ॥२७७॥ दैत्यों ने जब यह जाना कि शुक्राचार्य कृतार्थ होकर आ गये हैं तो वे उनका दर्शन करने की इच्छा से उनके घर गये ॥२७८॥ वहाँ जाकर भी जब माया से तिरोहित शुक्राचार्य को वे नहीं देख पाये और न तो उनका कोई लक्षण जान पाये तो उन सबों ने सोचा कि हमारे आचार्य आज नहीं आ पाये हैं ॥२७९॥ इसतरह वे जैसे आये थे उसी तरह अपने-अपने घर लौट गये । उसके बाद सभी देवता जाकर बृहस्पति को इस बात को बतलाये ॥२८०॥ देवों ने कहा आप दैत्यों के घर जाकर दैत्यों को इस प्रकार मोहित करें कि वे आपके वशवर्ती होकर आप से प्रेम करने लग जायँ ॥२८१॥ बृहस्पति ने देवताओं से कहा ठीक है, ऐसा ही होगा । मैं जा रहा हूँ । वे प्रह्लाद के घर जाकर उनको अपने वशवर्ती बना लिए ॥२८२॥ वे शुक्राचार्य बनकर वहाँ पर पौरोहित्य का काम करने लगे । वहाँ वे सौ वर्ष तक बने रहे । उसके बाद वहाँ शुक्राचार्य गये॥२८३॥ दैत्यों ने उनको देखकर जाना कि ये बृहस्पति हैं । एक शुक्राचार्य तो यहाँ पहले से विद्यमान हैं ही दूसरे शुक्राचार्य कहाँ से आ गये ॥२८४॥ यह तो अत्यन्त कौतूहल का विषय है । यहाँ पर झगड़ा होगा । यह जो द्वार पर खड़ा है इसको लोग क्या कहेंगे ?॥२८५॥ सभा में जो हमारे गुरु बैठे हैं, वे इसको क्या कहेंगे ? इसतरह से जब दानव आपस में बातें कर रहे थे उसी समय शुक्राचार्य आ गये ॥२८६॥ शुक्राचार्य का रूप बनाये हुए बृहस्पति से क्रोध करके शुक्राचार्य ने कहा— तुम यहाँ पर किसलिए आये हो ?॥२८७॥ तुम अपनी माया से मेरे शिष्यों को मोहित कर रहे हो ? वे मूर्ख इसीलिए तुमको नहीं पहचाने हैं ॥२८८॥ हे ब्रह्मन् ! दूसरे के शिष्यों को धोखा देना ठीक नहीं है, तुम देवलोक चले जाओ ऐसा करने से तुम्हें पुण्य मिलेगा ॥२८९॥ मेरा शिष्य कच था उसको श्रेष्ठ

शिष्योहि मे कचः पूर्वं हतो दानवपुंगवैः। विद्यार्थी तनयो ब्रह्मंस्तवायोग्यागतिस्त्विह ॥२९०॥
श्रुत्वा तु तस्य तद्वाक्यं स्मितं कृत्वा वदद्गुरुः। संति चोराः पृथिव्यां ये परद्रव्यापहारिणः ॥२९१॥
एवं विधानदृष्टाश्च रूपदेहापहारिणः। वृत्रघातेन चेंद्रस्य ब्रह्महत्या पुराभवत् ॥२९२॥
लोकायतिकशास्त्रेण भवता सा तिरस्कृता। जानामि त्वांगिरसं देवाचार्यं बृहस्पतिम् ॥२९३॥
मद्रूपधारिणं प्राप्तं सर्वे पश्यत दानवाः। एष वो मोहनायालं प्राप्तो विष्णु विचेष्टितैः ॥२९४॥
तदेनं शृंखलैर्बद्ध्वा क्षिपेत लवणार्णवे। पुनरेवाब्रवीच्छुक्रः पुरोधायं दिवौकसाम् ॥२९५॥
मोहिता नूनमेतेन क्षयं यास्यथ दानवाः। भो अहं दानवेंद्रेह वंचितोऽस्मि दुरात्मना ॥२९६॥
किमर्थं भवता त्यक्तः कृतश्चान्यः पुरोहितः। देवाचार्योंगिरः पुत्र एष एव बृहस्पतिः ॥२९७॥
वंचितोऽसि न संदेहो हितार्थं तु दिवोकसाम्। त्यजस्वैनं महाभाग शत्रुपक्षजयावहम् ॥२९८॥
अनुशिष्यभयाद्यातः पूर्वमेवमहं प्रभो। जलमध्येस्थितः पीतो महादेवेन शंभुना ॥२९९॥
उदरस्थस्य मे जातं साग्रं वर्षशतं किल। उदराच्छुक्ररूपेण शिश्नेनाहं विसर्जितः ॥३००॥
वरदः प्राह मां देवश्शुक्रेष्टं वरं वृणु। मया वृतो वरं राजन् देवदेवः पिनाकधृत् ॥३०१॥
मनसा चिंतिताह्यर्था मानसे येस्थितावराः। भवंतु मयि ते सर्वे प्रसादात्तव शङ्कर ॥३०२॥
एवमस्त्विति देवेन प्रेषितोऽस्मि तवांतिकम्। तावदत्राभवच्चायं पुरोधास्ते बृहस्पतिः ॥३०३॥
दृष्टः सत्यं दानवेंद्र मयोक्तं त्वं निशामय। बृहस्पतिस्तदा वाक्यं प्रह्लादं प्रत्यभाषत ॥३०४॥

दानवों ने मार दिया। हे ब्रह्मन ! तुम्हारा पुत्र मेरा शिष्य था अतएव आपका यहाँ आना उचित नहीं है ॥२९०॥ शुक्राचार्य की बातों को सुनकर बृहस्पति ने कहा संसार के सभी चोर तो दूसरों के द्रव्य को चुराते हैं ॥२९१॥ तुम्हारे जैसे रूप तथा शरीर को चुराने वाले चोर नहीं देखे गये। वृत्रासुर को मारने से प्राचीन काल में इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी ॥२९२॥ आपने तो चार्वाक शास्त्र के द्वारा उसको तिरस्कृत कर दिया। मैं आपको पहचानता हूँ, आप देवताओं के आचार्य बृहस्पति हैं ॥२९३॥ आप मेरा रूप धारण करके यहाँ आये हैं। दानवों तुम लोग भी देख लो। यह विष्णु के ही समान आपलोगों को मोहित करने के लिए यहाँ आया है ॥२९४॥ इसलिए इसको लोहे की वेणी में बाँधकर क्षार समुद्र में फेंक देना चाहिए। उसके बाद भी शुक्राचार्य ने कहा कि यह देवताओं का पुरोहित है॥२९५॥ हे दानवों ! इसके द्वारा मोहित होने के कारण आपलोगों का नाश हो जायेगा। हे दानवेन्द्र ! इस दुष्ट ने मुझ को भी धोखा दिया है ॥२९६॥ आपलोगों ने मेरा त्याग करके इसको पुरोहित क्यों बना लिया ? यह देवताओं के आचार्य अङ्गिरा महर्षि का पुत्र बृहस्पति है ॥२९७॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि देवताओं का कल्याण करने के लिए इसने आपलोगों के साथ छल किया है। हे महाभाग ! इसका आपलोग परित्याग कर दें यह शत्रु पक्ष को विजयी बना देने वाला है ॥२९८॥ हे राजन् ! इन सबों के शिष्यों के भय से प्राचीन काल में मैं जल में प्रवेश कर गया था। वहाँ पर महादेव ने मुझे पी लिया ॥२९९॥ मैं शङ्करजी के उदर में सौ वर्षों तक पड़ा रहा उसके बाद शङ्करजी ने अपने पेट से मुझको अपने शिश्न (लिङ्ग) के मार्ग से शुक्र के रूप में निकाल दिया ॥३००॥ इसके बाद वरदान देने वाले शङ्करजी ने मुझसे कहा— शुक्र तुम अपना अभीष्ट वर माँगो। उसके बाद मैंने देवाराध्य शङ्करजी से वरदान माँगा ॥३०१॥ हे शङ्करजी मेरे मन में जो अभिलाषा है, वे सबके सब आपकी कृपा से मुझे वरदान के रूप में प्राप्त हो जायँ ॥३०२॥ शङ्करजी ने कहा ऐसा ही हो, यह कहकर उन्होंने मुझे आपलोगों के पास भेजा इसी बीच में यह बृहस्पति आपलोगों का पुरोहित बन गया ॥३०३॥ हे दानवेंद्र ! आप मेरी सत्य बातों को सुनें। उसके

नाहमेतं प्रजानामि देवं वा दानवं नरम् । मद्रूपधारिणं राजन्वंचनार्थं तवागतम् ॥३०५॥
ततस्ते दानवाः सर्वे साधु साध्विति वादिनः। पुरोधाः पौर्विकोनोस्तु यो वा को वा भवत्विति॥३०६॥
नानेन कार्यमस्माकं यातु ह्येष यथागतः। सक्रोधमशपत्काव्यो दानवेंद्रान्समागतान् ॥३०७॥
त्यक्तो यथाहं युष्माभिस्तथा सर्वांश्चिरादिव। गतश्रीकान् गतप्राणान् पश्येयं दुःखजीविकान्॥३०८॥
सुघोरामापदं प्राप्तानचिरादेव सर्वशः। एवमुक्त्वा गतः काव्यो यदृच्छातस्तपोवनम्॥३०९॥
तस्मिन्गते ततः शुक्रेस्थितस्तत्र बृहस्पतिः । पालयन्दानवांस्तत्र किंचित्कालमतिष्ठत ॥३१०॥
ततो बहुतिथेकाले अतिक्रांतेनरेश्वर। संभूय दानवाः सर्वे पर्यपृछंस्तदा गुरुम् ॥३११॥
संसारेस्मिन्नसारे तु किंचिज्ज्ञानं प्रयच्छ नः । येन मोक्षं व्रजामश्च प्रसादात्तव सुव्रत ॥३१२॥
ततः सुरगुरुः प्राह काव्यरूपी तदा गुरुः । ममाप्येषा मतिः पूर्वं या युष्माभिरुदाहृता ॥३१३॥
क्षणं कुर्वंतु सहिताश्शुची भूय समाहिताः। ज्ञानं वक्ष्यामि वो दैत्या अहं वैमोक्षदायि यत्॥३१४॥
एषा श्रुतिर्वैदिकी या ऋग्यजुः सामसंज्ञिता । वैश्वानरप्रसादात्तु दुःखदा प्राणिनामिह ॥३१५॥
यज्ञश्राद्धं कृतं क्षुद्रै रैहिकस्वार्थतत्परैः। येत्वमी वैष्णवा धर्माः ये च रुद्रकृतास्तथा ॥३१६॥
कुधर्मा दारसहितै र्हिंसाप्रायाः कृता हि तैः। अर्द्धनारीश्वरो रुद्रः कथं मोक्षं गमिष्यति ॥३१७॥
वृतो भूतगणैर्भूरि भूषितश्चास्थिभिस्तथा । नस्वर्गो नैव मोक्षोऽत्र लोकाः क्लिश्यांति वै तथा॥३१८॥
हिंसायामास्थितो विष्णुः कथं मोक्षं गमिष्यति। रजोगुणात्मको ब्रह्मा स्वां सृष्टिमुपजीवति ॥३१९॥
देवर्षयोऽथ येचान्ये वैदिकं पक्षमाश्रिताः। हिंसाप्रायाः सदा क्रूरा मांसादाः पापकारिणः॥३२०॥

बाद बृहस्पति ने प्रह्लाद से कहा ॥३०४॥ हे राजन् ! मैं यह नहीं जानता हूँ कि यह देवता है या दानव । यह मेरा रूप बनाकर आपलोगों को धोखा देने के लिए आया है ॥३०५॥ इसके बाद सभी दानव बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !! कहने लगे । जो पहले से हैं वे ही हमारे पुरोहित है चाहे वे जो कोई भी हों ॥३०६॥ इस नये पुरोहित से हमलोगों का कोई भी प्रयोजन नहीं है, ये लौट जायँ । इसके बाद शुक्राचार्य ने क्रोध करके सभी दानवेन्द्रों को शाप दे दिया ॥३०७॥ तुमलोगों ने जैसे मेरा परित्याग कर दिया है, उसीतरह से मैं तुम लोगों को श्रीहीन, मरे हुए तथा दुःखी रूप से शीघ्र देखूं ॥३०८॥ शीघ्र ही तुमलोगों पर भयङ्कर विपत्ति आ जाय, इसतरह से कहकर शुक्राचार्य अपनी इच्छानुसार तपोवन चले गये ॥३०९॥ शुक्राचार्य के चले जाने पर बृहस्पति वहीं बैठे रहे वे कुछ समय तक दानवों की रक्षा करते रहे ॥३१०॥ उसके बाद कुछ समय बीत जाने पर दानवो ने एकत्र होकर बृहस्पति से पूछा॥३११॥ हे सुव्रत ! इस असार संसार के विषय में आप हमलोगों को कुछ ज्ञान दीजिये । जिससे कि हमलोग आपकी कृपा से मोक्ष प्राप्त कर सकें ॥३१२॥ उसके बाद शुक्राचार्य का रूप बनाये हुए बृहस्पति ने कहा आज आपलाग जो पूछ रहे हैं उसके विषय में मैं भी यही चाहता था ॥३१३॥ आपलोग थोड़ी देर तक पवित्र मन से सावधान हो जायँ; क्योंकि दैत्यों मै आपलोगो को मोक्षप्रद ज्ञान प्रदान करूँगा ॥३१४॥ यह जो ऋग् यजुः तथा साम नाम की संहिता रूपी संहिता है वह वैश्वानर (अग्नि) की कृपा से प्राणियों को दुःख देने वाली है । ये जो वैष्णव धर्म हैं तथा जो रुद्रकृत धर्म हैं, जो वे यज्ञ श्राद्ध इत्यादि क्षुद्र धर्म हैं, उनसे लौकिक कामना की पूर्ति होती है ॥३१६॥ पत्नी के साथ किए जाने वालें हिंसा प्रधान धर्म कुधर्म हैं । अर्द्धनारीश्वर रुद्र कैसे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं?॥३१७॥ वे भूतों के समुदाय से घिरे रहते हैं तथा अस्थियों से अलंकृत रहते हैं । इन सबों से न तो स्वर्ग मिल सकता है, और न मुक्ति हो सकती है, लोग व्यर्थ ही इन सबों के अनुष्ठान में कष्ट उठाते हैं ॥३१८॥ हिंसा करने में लगे रहने

सुरास्तु मद्यपानेन मांसादा ब्राह्मणास्त्वमी । धर्मेणानेन कः स्वर्गं कथं मोक्ष गमिष्यति॥३२१॥
यत्त्व यज्ञादिकं कर्म स्मार्तं श्राद्धादिकं तथा। तत्र नैवापवर्गोऽस्ति यत्रैषा श्रूयते श्रुतिः ॥३२२॥
यज्ञं कृत्वा पशुं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्। यद्येवं गम्यते स्वर्गो नरकः केन गम्यते ॥३२३॥
यदि भुक्तमिहान्येन तृप्तिरन्यस्य जायते । दद्यात्प्रवसतः श्राद्धं न स भोजनमाहरेत् ॥३२४॥
आकाशगामिनो विप्राः पतिता मांस भक्षणात्। तेषां न विद्यते स्वर्गो मोक्षो नैवेह दानवाः ॥३२५॥
जातस्य जीवितं जंतोरिष्टं सर्वस्य जायते । आत्ममांसोपमं मांसं कथं खादेत पंडितः॥३२६॥
योनिजास्तु कथं योनिंसेवंते जंतवस्त्वमी। मैथुनेन कथं स्वर्गं यास्यंते दानवेश्वर ॥
मृद्भस्मना यत्र शुद्धिस्तत्र शुद्धिस्तु का भवेत् ॥३२७॥
विपरीततमं लोकं पश्य दानव यादृशम्। विण्मूत्रस्य कृतोत्सर्गे शिश्नपाने तु शोधनम्॥३२८॥
न संभारोस्ति वदने मृदा तोयेन वा पुनः । भुक्ते वा भोजने राजन्कथंनपानशिश्नयोः ॥३२९॥
क्रियते शोयनं तद्वद्विपरीता स्थितिस्त्वियम्। यत्र प्रक्षालनं प्रोक्तं तत्र तेनैव कुर्वते ॥३३०॥
तारां बृहस्पतेर्भार्यां हत्वा सोमः पुरागतः। तस्यां जातो बुधः पुत्रो गुरुर्जग्राह तां पुनः ॥३३१॥
गौतमस्य मुनेः पत्नीमहल्यां नाम नामतः। अगृह्णात्तां स्वयं शक्रः पश्यधर्मोयथाविधः ॥३३२॥
एतदन्यच्च जगति दृश्यते पापदायकम् । एवं विधो यत्र धर्मः परमार्थो मतस्तु कः ॥३३३॥
वदस्व दानवेंद्र त्वं वद भूयो वदामि ते। गुरोस्तु गदितं श्रुत्वा परमार्थान्वितं वचः ॥३३४॥

वाले विष्णु को मोक्ष कैसे सम्भव है ? रजोगुणमय ब्रह्मा अपनी सृष्टि को ही अपनी जीविका बनाये हैं ॥३१९॥ वैदिक पक्ष को अपनाने वाले जितने ऋषि हैं वे सबके सब हिंसा करने वाले, क्रूर, मांसभक्षी तथा पापी हैं ॥३२०॥ देवगण मदिरा का पान करते है और ये ब्राह्मण मांस खाते हैं । इस धर्म से कौन सा स्वर्ग अथवा मोक्ष मिलेगा?॥३२१॥ स्मार्त जो ये यज्ञ इत्यादि तथा श्राद्ध इत्यादि धर्म हैं जिनका श्रुति विधान करती है, उनसे स्वर्ग नहीं मिल सकता है ॥३२२॥ यज्ञ करके, पशुओं को मारकर तथा खून का कीचड़ बनाकर यदि कोई स्वर्ग जाता है तो फिर नरक कौन जाते हैं ?॥३२३॥ यदि यहाँ पर भोजन कर लेने से दूसरे की तृप्ति हो जाती है तो विदेश जाने वाले का श्राद्ध कर देना चाहिए ऽसको अपने साथ भोजन नहीं ले जाना चाहिए ॥३२४॥ आकाश में जाने वाले ब्राह्मणों का मांस खाने के कारण पतन हो गया दानवों उन सबों को न स्वर्ग मिला न मोक्ष मिला ॥३२५॥ संसार में उत्पन्न सबलोगों को समान रूप से अपना मांस प्रिय होता है, उस मांस को कोई पण्डित (ज्ञानी) व्यक्ति कैसे खा सकता है ?॥३२६॥ हे दानवेश्वर योनि से उत्पन्न होने वाले जीव क्यों योनि का सेवन करते हैं । मैथुन से कैसे स्वर्ग प्राप्त हो सकता है ? जहाँ पर मिट्टी तथा भस्म से शुद्धि होती है, वहाँ पर कौन सी शुद्धि हो सकती है ? हे दानवों! इस अत्यन्त विपरीत लोक को आप देखें, यहाँ मल-मूत्र के परित्याग करने पर तथा स्त्री प्रसङ्ग के द्वारा संशोधन होता है ॥३२८॥ जल और मिट्टी से शुद्धि करने में कोई सामग्री तो जुटानी नही हैं । हे राजन् ! भोजन के बाद मदिरा और स्त्री प्रसङ्ग का सेवन क्यों न किया जाय ॥३२९॥ इसीतरह से शुद्धि की जाती है और यहाँ तो इसके ठीक विपरीत स्थिति है । जहाँ पर प्रक्षालन बतलाया गया हैं वहाँ प्रक्षालन नहीं किया जाता है ॥३३०॥ प्राचीन काल में चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी का हरण कर लिया । तारा के गर्भ से चन्द्रमा का पुत्र बुध उत्पन्न हुआ, उसके बाद भी बृहस्पति ने तारा को रख लिया ॥३३१॥ गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या को स्वयं इन्द्र ने अपना लिया, इसतरह का तो यह वैदिक धर्म है ॥३३२॥ इन सबों के अतिरिक्त भी संसार में पापप्रद ही दिखायी देता है । जहाँ पर इस

जातकौतूहलास्तत्र विविक्तास्तु भवार्णवात् ।

दानवा ऊचुः

दीक्षयस्व गुरोसर्वान्प्रपन्नान्भक्तितः स्थितान् ॥३३५॥
येन वै न पुनर्मोहं व्रजायमस्तवशासनात् । सुविरक्ताः स्म संसारे शोकमोहप्रदायिनि ॥३३६॥
उद्धरस्व गुरो सर्वान्केशाकर्षणकूपतः । कस्य देवस्य शरणं गच्छामो ब्राह्मणोत्तम ॥३३७॥
दैवतं च प्रपन्नानां प्रकाशय महामते । स्मरणेनोपवासेन ध्यानधारणया तथा ॥३३८॥
पूजोपहारे च कृते अपवर्गस्तुलभ्यते। विरक्तास्स्म कुटुंबे तु भूयो नात्र यतामहे ॥३३९॥
एवं चैव गुरुछन्नस्तैरुक्तो दनुपुंगवैः । चिंतयामास तत्कार्यं कथमेतत्करोम्यहम् ॥३४०॥
कथमेते मया पापाः कर्तव्या नरकौकसः । विडंबनाच्छ्रुतेर्वाह्या स्त्रैलोक्ये हास्यकारिणः ॥३४१॥
इत्युक्त्वा धिषणो राजंश्चिंतयामास केशवम् । तस्य तच्चिंतितं ज्ञात्वा मायामोहं जनार्दनः ॥३४२॥
समुत्पाद्य ददौ तस्य प्राह चेदं बृहस्पतिम् । मायामोहोयमखिलांस्तान्दैत्यान्मोहयिष्यति ॥३४३॥
भवता सहितः सर्वान्वेदमार्गबहिष्कृतान्। एवमादिश्य भगवानंतर्द्धानं जगाम ह ॥३४४॥
तपस्यभिरतान्सोऽथ मायामोहो गतोऽसुरान्। तेषां समीपमागत्य बृहस्पतिरुवाच ह ॥३४५॥
अनुग्रहार्थं युष्माकं भक्त्या प्रीतस्त्विहागतः। योगी दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरो ह्ययम् ॥३४६॥
इत्युक्ते गुरुणा पश्चान्मायामोहोऽब्रवीद्वचः। भो भो दैत्याधिपतयः प्रब्रूत तपसि स्थिताः ॥३४७॥
ऐहिकार्थं तु पारक्यं तपसः फलमिच्छथ ।

दानवा ऊचुः

पारक्यधर्मलाभाय तपश्चर्या हि नो मता ॥३४८॥

प्रकार का धर्म है, उससे कौन सा परमार्थ होगा ?॥३३३॥ हे दानवेन्द्र ! आप ही बतलायें इसके बाद मैं आपलोगों को वतलाता हूँ । वृहस्पति की पारमार्थ युक्त वाणी को सुनकर ॥३३४॥ उसके विषय में दैत्यों में उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी वे संसार सागर से उदासीन हो गये । **दानवों ने कहा**— हे गुरो ! आप हम सबों को दीक्षा दीजिए; हमलोग आपके शरणागत हैं और भक्ति सम्पन्न हैं ॥३३५॥ जिससे की आपकी आज्ञा में रहकर हमलोग कभी भी अज्ञान ग्रस्त नहीं हो सकें । इस शोक तथा मोह प्रदान करने वाले संसार के विषय में हमलोग विरक्त हो गये हैं ॥३३६॥ हे गुरो ! आप हम सबों के इसके केशाकर्षण कूप रूपी संसार से उद्धार करें । हे ब्राह्मणोत्तम ! हमलोग किस देवता के शरण में जायँ ॥३३७॥ इस तरह से उन श्रेष्ठ दानवों के द्वारा कहे जाने पर नकली गुरु बृहस्पति विचारने लगे कि मैं इस कार्य को कैसे सम्पन्न करूँ ?॥३४०॥ इन पापियों को मैं किसतरह नरकगामी बनाऊँ ? पाखण्ड करने पर तो ये वेदबाह्य त्रैलोक्य में वेदों की हँसी करेंगे ॥३४१॥ हे राजन् ! इसतरह से सोचकर बृहस्पति ने भगवान् केशव का ध्यान किए । उनकी अभिलाषा को जानकर भगवान् जनार्इदन ने मायामोह को उत्पन्न करके उन्हें दे दिया और कहा यह मायामोह सम्पूर्ण दैत्यों को मोहित कर देगा ॥३४३॥ आपके साथ यह सबों को वेदमार्ग से बहिष्कृत बना देगा । इसतरह से कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥३४४॥ इसके बाद मायामोह तपस्या करने वाले दानवों के पास गया । उन सबों के समीप आकर बृहस्पति ने कहा ॥३३५॥ आपलोगों की प्रीति से प्रसन्न होकर आपलोगों पर कृपा करने के लिए ये दिगम्बर तथा मुण्डी एवं मयूर पंख को धारण करने वाले योगी आये हैं ॥३४६॥ बृहस्पति के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मायामोह ने कहा हे तपस्यारत दैत्याधिपतियों ! आप लोग बतलायें॥३४७॥

अस्माभिरियमारब्धा किं वा तत्रविवक्षितम् ।

दिगंबर उवाच

कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥३४९॥
आर्हतं सर्वमेतच्च मुक्तिद्वारमसंवृतम् । धर्माद्विमुक्तेरर्होयं नैतस्मादपरः परः ॥३५०॥
अत्रैवावस्थिताः स्वर्गं मुक्तिं चापि गमिष्यथ । एवं प्रकारैर्बहुभिर्मुक्तिदर्शनवर्जितैः ॥३५१॥
मायामोहेन ते दैत्याः वेदमार्गबहिष्कृताः । धर्मायैतदधर्माय सदेतदसदित्यपि ॥३५२॥
विमुक्तये त्विदं नैतद्विमुक्तिं संप्रयच्छति । परमार्थोयमत्यर्थं परमार्थो नचाप्ययम् ॥३५३॥
कार्यमेतदकार्यं हि नैतदेतत्स्फुटं त्विदम् । दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम् ॥३५४॥
इत्यनेकार्थवादांस्तु मायामोहेन ते यतः । उक्तास्ततोऽखिला दैत्याः स्वधर्मास्त्याजिता नृप॥३५५॥
अर्हध्वं मामकं धर्मं मायामोहेन ते यतः । उक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन ते भवन् ॥३५६॥
त्रयीमार्गं समुत्सृज्य मायामोहेन ते सुराः । कारितास्तन्मया ह्यासंस्तथान्ये तत्प्रबोधिताः॥३५७॥
तैरप्यन्ये परे तैश्च तैरन्योन्यैस्तथा परे । नमोऽर्हते चेति सर्वे संगमे स्थिरवादिनः ॥३५८॥
अल्पैरहोभिः संत्यक्ता तैर्दैत्यैः प्रायशस्त्रयी । पुनश्च रक्तांबरधृन्मायामोहोजितेक्षणः ॥३५९॥
सोन्यानप्यसुरान्गत्वा ऊचेऽन्यन्मधुराक्षरम् । स्वर्गार्थं यदि वो वाञ्छा निर्वाणार्थाय वा पुनः॥३६०॥
तदलं पशुघातादिदुष्टधर्मैं निबोधत । विज्ञानमयमेतद्वै त्वशेषमधिगच्छत ॥३६१॥
बुध्यध्वं मे वचःसम्यग्बुधैरेवमिहोदितम् । जगदेतदनाधारं भ्रांतिज्ञानानुतत्परम् ॥३६२॥

कि आपलोग इस तपस्या से लौकिक फल प्राप्त करना चाहते हैं अथवा परलौकिक ? **दानवों ने कहा—** हमलोगों को परलौकिक फल की प्राप्ति के ही लिए तपस्या अभिमत है ॥३४८॥ परलौकिक फल की प्राप्ति के लिए हमलोग तपस्या कर रहे है; इस विषय में आप क्या कहना चाहते हैं ? **दिगम्बर ने कहा—** यदि तुमलोग मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो मेरी बात मानो ॥३४९॥ आर्हतमत (जैन मत) ही एक मात्र मुक्ति देने वाला है । यह धर्म से विमुक्ति के योग्य मत है इससे बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है ॥३५०॥ इस मत को ही अपनाकर तुमलोग स्वर्ग तथा मुक्ति को प्राप्त करोंगे । इस प्रकार की मुक्ति तथा दर्शन से रहित अनेक ॥३५१॥ वाक्यों के द्वारा दैत्यों को मायामोह ने वेद बहिष्कृत बना दिया । यह धर्मकारक है । यह अधर्म कारक है । यह सत् है यह असत् भी है॥३५२॥ यह मुक्तिप्रद है और मुक्तिप्रद नही भी है । यह सर्वोत्कृष्ट परमार्थ है यह परमार्थ नहीं भी है । यह करने योग्य है यह नहीं करने योग्य भी है । यह स्पष्ट भी है, यह स्पष्ट नहीं भी है । यही दिगम्बरों का धर्म है, यह अनेक वस्त्रों को धारण करने वालों का भी है ॥३५३-३५४॥ इसतरह अनेकार्थवाद (सप्तभङ्गीनय) के द्वारा मायामोह ने उन दैत्यों को मोहित कर दिया । हे राजन् ! उसके कारण दैत्यों ने अपने धर्म का परित्याग कर दिया ॥३५५॥ चूकि मायामोह ने दैत्यों से कहा कि तुमलोग मेरे धर्म का सम्मान करो, उसी के कारण वे सब आर्हत मतावलम्बी हो गये ॥३५६॥ मायामोह ने असुरों से त्रयी धर्म का परित्याग करवा दिया । उसके बाद उन असुरों ने दूसरे असुरों को उसे बतलाया और दूसरों ने दूसरों को उसे बतलाया । इसतरह से एकत्रित होने पर **नमोर्हते** इसतरह से कहने वाले वे हुए ॥३५७-३५८॥ उन दैत्यों ने थोड़े ही दिनों में प्रायः त्रयीधर्म का परित्याग कर दिया, उसके बाद वह मायामोह लाल वस्त्र धारण करके ॥३५९॥ दूसरे असुरों के पास जाकर मधुर वाणी में कहा यदि आपलोग स्वर्ग अथवा निर्वाण प्राप्त करना चाहते हैं ॥३६०॥ तब तो पशुमारणमय त्रयीधर्म को अपनाना व्यर्थ है । यह तो दोष

रागादिदुष्टमत्यर्थं भ्राम्यते भवसंकटे । नानाप्रकारं वचनं स तेषां मुक्तियोजितम् ॥३६३॥
तथा तथा वदद्धर्मं तत्यजुस्ते यथा यथा । केचिद्विनिंदां वेदानां देवानामपरे नृप ॥३६४॥
यज्ञकर्मकलापस्य तथाचान्ये द्विजन्मनाम् । नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय जायते ॥३६५॥
हवींष्यनलदग्धानि फलान्यर्हंति कोविदाः । निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते ॥३६६॥
स्वपिता यजमानेन किं वात्र न हन्यते । तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेद्यदि ॥३६७॥
दद्याच्छ्राद्धं प्रवसतो नवहेयुः प्रवासिनः । यज्ञैरनेकै र्देवत्वमवाप्येंद्रेण भुज्यते ॥३६८॥
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक् पशुः । जना श्रद्धेयमित्येतदवगम्य तु तद्वचः ॥३६९॥
उपेक्ष्य श्रेयसे वाक्यं रोचतां यन्मयेरितम् । नह्याप्तवादा नभसो निपतंति महासुराः ॥३७०॥
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः ।

दानवा ऊचुः

तत्ववादे वयं सर्वे प्रपन्नास्तव भक्तितः ॥३७१॥
कुरुष्वानुग्रहं चाद्य प्रसन्नोसि यदि प्रभो । संभारानाहरामोऽद्य दीक्षा योग्यांश्च सर्वशः ॥३७२॥
प्रसादात्तव येनाशु मोक्षो हस्तगतो भवेत् । ततस्तानब्रवीत्सर्वान्मायामोहोऽसुरांस्तदा ॥३७३॥
प्रपन्नः शासनं ह्येष मदीयो गुरुरग्रधीः । दीक्षां दास्यति युष्माकं निदेशान्मम सत्तमः ॥३७४॥

दूषित धर्म है । यह सम्पूर्ण जगत् विज्ञानमय हे ऐसा जानो ॥३६१॥ आपलोग मेरी बाणी को जानें; जिसे विज्ञ पुरुषों ने कहा है । इस जगत् का कोई भी आधार नहीं है तथा जगत् भ्रान्तिज्ञानमय है ॥३६२॥ रागादि दोषों से दूषित होने के कारण ही मनुष्य सङ्कटमय संसार में भ्रमण कर रहा है । उसने मुक्ति सम्बन्धी अनेक प्रकार के वचनों से दैत्यों को समझाया ॥३६३॥ वह जैसे-जैसे धर्म का उपदेश देता था वैसे-वैसे असुरों ने त्रयीधर्म का त्याग कर दिया। हे राजन् ! कुछ असुर वेदों की निन्दा करने लगे कुछ देवताओं की निन्दा करने लगे ॥३६४॥ कुछ यज्ञों के कर्मकलाप की निन्दा करने लगे तथा दूसरे असुर ब्राह्मणों की निन्दा करने लगे । वे सब कहने लगे कि हिंसा धर्मकारिणी होती है, यह युक्ति-युक्त कथमपि नहीं है ॥३६५॥ जो हविष्य आग में जल जाता है उससे विज्ञों को पुण्य रूपी फल की प्राप्ति होती है, यह युक्तियुक्त नहीं है । यज्ञ में मारे जाने वाले पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है इसे कौन मानेगा ?॥३६६॥ यदि ऐसी बात है तो यजमान अपने पिता को ही क्यों नहीं मार देता है कि उसको स्वर्ग मिल जाय । यदि दूसरे के खा लेने से दूसरों की तृप्ति हो जाती है तो फिर परदेश जाने वाले का घर पर ही श्राद्ध कर देना चाहिये; वह अपने लिए पाथेय क्यों ले जाता है ? अनेक यज्ञों को करके इन्द्र ने इन्द्र का पद प्राप्त किया यह भी श्रद्धेय नहीं है ॥३६७-३६८॥ यदि शमी आदि काष्ठ श्रेष्ठ हैं तो उससे श्रेष्ठ उसका पत्ता खा लेने वाला पशु ही श्रेष्ठ होगा । इन सारी बातों को तुम लोग अश्रद्धेय जानो ॥३६९॥ इन सारी बातों की उपेक्षा करके तुम लोग हमारी बात को मानो । महाअसुरों आप्त वाक्य कोई आकाश से नहीं गिरते हैं ॥३७०॥ युक्ति-युक्त ही बात को स्वीकार करना चाहिए, वह बात चाहे हमारी हो अथवा आपलोगों के समान दूसरे लोगों की हो । **दानवों ने कहा**—आपकी तत्त्विक बातों को हमलोग भक्ति-पूर्वक स्वीकार करते हैं ॥३७१॥ हे प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमलोगों पर कृपा करें हमलोग दीक्षा के योग्य सभी सामग्रियों को ला रहे हैं ॥३७२॥ जिससे कि आपकी कृपा से हमलोगों को शीघ्र मुक्ति मिल जाय । उसके बाद मायामोह ने सभी असुरों से कहा ॥३७३॥ हमारे प्रसन्न गुरु का ही आपलोग प्रसन्नता पूर्वक शासन स्वीकार करें । वे ही आपलोगों को दीक्षा देंगे ॥३७४॥ मायामोह ने बृहस्पति से कहा हे ब्रह्मन्!

एतान् दीक्षय भोब्रह्मन्वचनान्मम पुत्रकान् । गते मोहे दानवास्ते भार्गवं वाक्यमब्रुवन् ॥३७५॥
देहि दीक्षां महाभाग सर्वसंसारमोचनीम् । तथेत्याहोशना दैत्यान्गच्छामो नर्मदामनु ॥३७६॥
भोभोस्त्यजतवासांसि दीक्षां कारयितास्मि वः । एवं ते दानवा भीष्म भृगुरूपेण धीमता ॥३७७॥
आंगिरसेन ते तत्र कृता दिग्वाससोऽसुराः । बर्हिपिच्छध्वजं तेषां गुंजिकां चारुमालिकाम् ॥३७८॥
दत्वा चकार तेषां तु शिरसोलुंचनं ततः । केशस्योत्पाटनं चैव परमं धर्मसाधनम् ॥३७९॥
धनानामीश्वरो देवो धनदः केशलुंचनात् । सिद्धिं परमिकां प्राप्ताः सदावेषस्य धारणात् ॥३८०॥
नित्यत्वं लभ्यते ह्येवं पुरा प्राहार्हतः स्वयम् । बालोत्पाटेन देवत्वं मानुषैर्लभ्यते त्विह ॥३८१॥
किं न कुर्वीत तत्तस्मान्महापुण्यप्रदं यतः । मनोरथो हि देवानां लोके वै मानुषे कदा ॥३८२॥
अस्मिन् स्याद्भारते वर्षे जन्मनः श्रावके कुले । तपसायुञ्ज्महे स्मान्वै केशोत्पाटनपूर्वकम् ॥३८३॥
तीर्थंकराश्चतुर्विंश त्तथातैस्तु पुरस्कृताः । छायाकृतं फणींद्रेण ध्यानमार्गप्रदर्शकम् ॥३८४॥
स्तुवन्तं मंत्रवादेन स्वर्गो हस्तगतोर्हतम् । मोक्षो वा भाविता नूनं विचारः कोऽत्र कथ्यते ॥३८५॥
कदास्यामर्षयो भूत्वा सूर्याग्निसमतेजसः । जप्त्वा विरगिणश्चैव मनुपंचांगकं तथा ॥३८६॥
तथा तपस्यतां मृत्युं गतानां कालपर्ययात् । पाषाणेन शिरोभग्नं भवते पुण्य कर्मणाम् ॥३८७॥
अरण्ये निर्जनेवासः कदावै भविता हि नः । कर्ण जप्यं श्रावकाश्च करिष्यंति समाहिताः ॥३८८॥
भो भो ऋषे न गतंव्यं मोक्षमार्गी यतो भवान् । लब्धानि यानि स्थानानि भूयोवृत्तिकराणि च ॥३८९॥

आप मेरे इन शिष्यों को दीक्षा प्रदान करें । इसतरह से कहकर मायामोह के चले जाने पर दानवों ने भार्गव (नकली शुक्राचार्य) से कहा ॥३७५॥ हे महाभाग ! सम्पूर्ण संसार से मुक्ति दिलाने वाली दीक्षा आप हमलोगों को दें । भार्गव ने भी कहा ठीक है; हमलोग नर्मदा के तट पर चलें । वहाँ जाकर भार्गव ने कहा— आपलोग वस्त्र का परित्याग कर दें । मैं आपलोगों को दीक्षा देने वाला हूँ । हे भीष्म ! शुक्राचार्यरूपधारी बुद्धिमान् बृहस्पति ने उन असुरों को वस्त्रहीन बना दिया । मयूर पंख को उन सबों ने धारण कर लिया तथा गूंजे की सुन्दर माला सबों ने धारण कर ली॥३७८॥ इसके बाद बृहस्पति ने उन सबों के शिर के बाल को नोचा; केश को उखाड़ा जाना परम धर्म है॥३७९॥ धन के स्वामी कुबेर देवता केशलुञ्चन के ही द्वारा धनद हो गये । इसी वेष को सदा धारण करने के कारण वे परम सिद्धि को प्राप्त कर लिए ॥३८०॥ स्वयं आर्हत ने कहा— कि ऐसा करने से नित्यत्व की प्राप्ति होती है । केशों के उखाड़ने की क्रिया से मनुष्य इस संसार में ही देवत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३८१॥ यह क्रिया अत्यन्त पुण्यप्रद है, अतएव इसे अवश्य करनी चाहिये । देवताओं का मनोरथ होता है कि कब मनुष्य लोक में॥३८२॥ भारत वर्ष में हमलोगों का जन्म श्रावक वंश में होगा ? जिससे कि हमलोग भी केशोत्पाटन् पूर्वक तप से युक्त हो जायेंगे ॥३८३॥ चौबीस तीर्थंकरों के द्वारा पुरस्कृत असुरों ! जिनके ऊपर शेषनाग छाया करते हैं, ऐसे वे मोक्षमार्ग के प्रदर्शक हैं॥३८४॥ मन्त्रवाद के द्वारा स्तुति करने से तो प्राप्त भी स्वर्ग नष्ट हो जाने वाला है अथवा मोक्ष भी विनष्ट हो जाय इस विषय में क्या विचार करना है ?॥३८५॥ कब वह बेला आयेगी ? जब सूर्य अथवा अग्नि के समान तेज से युक्त होकर तथा पाञ्च अङ्ग वाले मन्त्र का हम जप करके ॥३८५॥ इसतरह से तपस्या करते हुए मरने के बाद पुण्यकर्मा पुरुषों का ही शिर पाषाण से फोड़ा जाता है ॥३८७॥ कब हमलोग निर्जन वन में निवास कर पायेंगे ? और समाहित श्रावक (भिक्षु) हमारे कान में मन्त्रोंपदेश करेंगे ॥३८८॥ हे ऋषे ! आप जायँ आप तो मोक्ष मार्ग के अनुयायी हैं । जिन स्थानों को हमलोगों ने प्राप्त किया है, वे तो पुनः सांसारिक वृत्ति उत्पन्न करने वाले

त्याज्यानि तेन चैतानि सत्यमेव वचो हि नः । अस्मदीयेन तपसा नियमैर्विविधैस्तथा ॥३९०॥
व्रजध्वं चोत्तमं स्थानं मोक्षमार्गं च यं बुधाः । विंदंति भक्तिभावेन तपोयुक्तास्तपस्विनः ॥३९१॥
अक्षेषु निग्रहो यत्र दयाभूतेषु सर्वदा । तत्तपोधर्ममित्युक्तं सर्वा चान्या विडंबना ॥३९२॥
ज्ञात्वैतद्भवतासाध्यं गंतव्यं परमं पदम् । यां वै तीर्थंकरा याता यां गतिं योगिनो गताः ॥३९३॥
एवं वै देवताः पूर्वां विद्याधरमहोरगाः । मनोरथाभिलाषांस्ते चिंतयंतो दिवानिशम् ॥३९४॥
यद्येषणा वै युष्माकं संसारविरतौ कृता । परित्यजध्वं दाराणि स्वर्गमार्गार्गलानि च ॥३९५॥
यस्यां योनौ पिता यातस्तां योनिं सेवसे कथम् । आत्ममांसोपमं मांसं कथं खादंति जंतवः ॥३९६॥
ततस्ते दानवा भीष्म ऊचुः सर्वे गुरुं वचः । दीक्षस्व नो महाभाग भ्रूणकानग्रतःस्थितान् ॥३९७॥
तथा कृत्वा स तानाह समयेन पुरोहितः । प्रणामो नान्यदेवेषु कर्तव्यो वः कदाचन ॥३९८॥
एकस्थाने यदा भक्तं भोक्तव्यं करसंपुटे । तत्रस्थाने स्थितं तोयं केशकीटविवर्जितम् ॥३९९॥
तुल्यं प्रिया प्रियं कार्यं नान्यद्दृष्टिहतं क्वचित् । भोक्तव्यमेतेन विभो आचारेण तथा कुरु ॥४००॥
भवध्वं सहिता यूयं ते तथा मोक्षभागिनः । एवमुक्त्वा स नियमान्कृत्वा तान्दनुपुंगवान् ॥४०१॥
जगाम धिषणो राजन् देवलोकं दिवौकसाम् । आचचक्षे स तत्सर्वं दानवानां च कारितम् ॥४०२॥
ततस्ते त्वसुरा जग्मु र्नर्मदामभितोवसन् । दृष्ट्वा तान्दानवांस्तत्र प्रह्लादेन विना कृतान् ॥४०३॥
देवराजस्ततो हृष्टो नमुचिं प्राह वै वचः । हिरण्याक्षं यज्ञहनं धर्मघ्नं वेदनिंदकम् ॥४०४॥
राक्षसं क्रूर कर्माणं प्रघसं विघसं तथा । मुचिं चैव तथा बाणं विरोचनमथापि वा ॥४०५॥

है ॥३८९॥ अतएव वे सब त्याज्य हैं यह हमारी सत्य वाणी है । हमारी तथा अनेक प्रकार की तपस्या से ॥३९०॥ हे विज्ञ पुरुषो ! मोक्ष को तुमलोग प्राप्त करो । तपस्वी पुरुष ही भक्तिभाव से मोक्ष के स्थान को प्राप्त करते हैं॥३९१॥ जिसमें इन्द्रियों को वश में किया जाता है, सभी जीवों पर दया की जाती है, इस प्रकार की ही तपस्या धर्म है । इसके अतिरिक्त सभी धर्म पाखण्ड हैं ॥३९२॥ आप लोगों को इस साध्य का ज्ञान प्राप्त करके परम पद प्राप्त करना चाहिये । जिस गति को तीर्थंकरों ने प्राप्त किया, जिस गति को योगियों ने प्राप्त किया ॥३९३॥ उसी को देवता, विद्याधर तथा महान् सर्पगण प्राप्त करने की रात-दिन कामना करते हैं ॥३९४॥ यदि आपलोग संसार बंध को विनष्ट करना चाहते हैं तो आपलोग स्वर्गमार्ग के बाधक भूत स्त्रियों का परित्याग कर दें ॥३९५॥ जिस योनि से तुम्हारे पिता की उत्पत्ति हुयी उसी योनि का सेवन तुम लोग क्यों करते हो ? अपने ही मांस के समान दूसरे जीव के मांस को लोग क्यों खाते हैं ?॥३९६॥ हे भीष्म ! उसके बाद वे सभी दानव गुरु से कहे— हमलोग आपके सामने खड़े हैं, आप हमलोगों को दीक्षा दीजिये ॥३९७॥ उन सबों को दीक्षा प्रदान करके पुरोहित (बृहस्पति) ने कहा तुमलोग कभी किसी दूसरे देवता को प्रणाम मत करना ॥३९८॥ जब एक स्थान पर भोजन रख जाय तो उसे अपने हाथ में ही लेकर खाना । वहीं पर विद्यमान केश (बाल) तथा कीड़ों से रहित जल पीना । मित्र तथा शत्रु दोनों से समान व्यवहार करना, किसी में विषम दृष्टि मत करना । इसी विधि से भोजन करना चाहिए तथा इसी आचार का पालन करो ॥४००॥ तुमलोग एक साथ रहना ऐसा करके मोक्ष के भागी बन जाओगे । इसतरह उन श्रेष्ठ दानवों को नियमोपदेश करके ॥४०१॥ हे राजन् ! बृहस्पति देवताओं के लोक में चले गये ओर उन्होंने जो कुछ दानवो से करवाया वह सब कुछ बतलायें ॥४०२॥ उसके बाद देवता नर्मदा नदी के तट पर गये और वहाँ पर प्रह्लाद को छोड़कर दिगम्बर बने हुए दानवों को देखे ॥४०३॥ उसके बाद देवराज ने प्रसन्न होकर नमुचि तथा अन्य

महिषाक्षं बाष्कलं च प्रचंडं चंडकं तथा । रोचमानं तथात्युग्रं सुषेणं दानवोत्तमम् ॥४०६॥
एतान्दृष्ट्वा तथा चान्यान्दानवेंद्रानथाब्रवीत् ।

इन्द्र उवाच

दानवेंद्राः पुरा जाताः कृतं राज्यं त्रिविष्टपे ॥४०७॥
इदानीं कथमेवेदं व्रतं वेदविलोपकम् । भवद्भिः कर्तुमारब्धं नग्नमुंडिकमंडलु ॥४०८॥
मयूरध्वजधारित्वं कथं चैवेह तिष्ठथ ।

दानवा ऊचुः

त्यक्तः सर्वासुरभाव ऋषिधर्मे वयं स्थिताः ॥४०९॥
धर्मवृद्धिकरं कर्म चरामः सर्वजंतुषु। त्रैलोक्यराज्यमखिलं भुंक्ष्व शक्रव्रजस्व च ॥४१०॥
तथेति चोक्त्वा मघवा पुनर्यातस्त्रिविष्टपम् । एवं ते मोहिताः सर्वे भीष्म देवपुरोधसा ॥४११॥
नर्मदासरितं प्राप्य स्थिता दानवसत्तमाः । ज्ञात्वा शुक्रेण ते सर्वे वृत्तांतमनुबोधिताः ॥४१२॥
तदा त्रैलोक्यहरणे चक्रुः क्रूरां पुनर्मतिम् ॥४१३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे अवतारचरितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

हिरण्याक्ष, यज्ञहन, वेदनिदंक धर्मघ्न ॥४०४॥ क्रूर कर्म करने वाले प्रघस नामक राक्षस, विघस, मुचि, बाण, तथा विरोचन ॥४०५॥ महिषाक्ष, वाष्कल, चण्ड तथा प्रचण्ड, रोचमान, उग्र तथा दानव श्रेष्ठ सुषेण ॥४०६॥ को देखकर तथा दूसरे भी दानवा को देखकर इन्द्र ने उन सबों से कहा **इन्द्र ने कहा**— हे दानवेन्द्र ! आपलोगों ने प्राचीन काल में तो स्वर्ग में राज्य किया था ॥४०७॥ इस समय आपलोग इस वेदों का लोप करने वाले व्रत को क्यों कर रहे हैं ? अब तो आप लोग शिर मुड़ाकर एवं कमण्डलु धारण करके नंगे रह रहे हैं ॥४०८॥ यहाँ मयूर ध्वज को धारण करके आपलोग क्यों स्थित हैं ? **दानवों ने कहा**— हमलोगों ने सम्पूर्ण आसुर भाव का परित्याग कर दिया है ओर हमलोग ऋषि धर्म को अपना लिए हैं ॥४०९॥ हम सभी जीवों के प्रति धर्म की वृद्धि करने वाले कर्मों को करते हैं । हे इन्द्र ! तुम जाओ सम्पूर्ण त्रैलोक्य का राज्य भोगो ॥४१०॥ उसके बाद इन्द्र भी ठीक है; इसतरह से कहकर स्वर्ग चले गये । हे भीष्म ! इस प्रकार से उन असुरों को देवगुरु ने मोहित करने का काम किया॥४११॥ नर्मदा नदी के तट पर जाकर सभी श्रेष्ठ दानव रहने लग गये । जब शुक्र ने इन सारी बातों को जाना तो वे जाकर उन सबों को पुनः प्रबोधित किए ॥४१२॥ उसके बाद त्रैलोक्य को हरण करने की उनकी (दानवों की) बुद्धि हुयी ॥४१३॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के अवतार चरित नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

कथं त्रिपुरुषाज्जातोह्यर्जुनः परवीरहा। कथं कर्णस्तु कानीनः सूतजः परिकीर्त्यते ॥१॥
वैरं तयोः कथं भूतं निसर्गादेव तद्वद। बृहत्कौतूहलं मह्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२॥

पुलस्त्य उवाच

छिन्ने वक्त्रे पुरा ब्रह्मा क्रोधेन महता वृतः। ललाटे स्वेदमुत्पन्नं गृहीत्वा ताडयद्भुवि ॥३॥
स्वेदतः कुंडली जज्ञे सधनुष्को महेषुधिः। सहस्त्रकवची वीरः किं करोमीत्युवाच ह ॥४॥
तमुवाच विरिंचस्तु दर्शयन्रुद्रमोजसा। हन्यतामेष दुर्बुद्धि र्जायते न यथा पुनः ॥५॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा धनुरुद्यम्य पृष्ठतः। संप्रतस्थे महेशस्य ब्राणहस्तोतिरौद्रदृक् ॥६॥
दृष्ट्वा पुरुषमत्युग्रं भीतस्तस्य त्रिलोचनः। अपक्रांतस्ततो वेगाद्विष्णोराश्रमभ्यगात् ॥७॥
त्राहि त्राहीति मां विष्णो नरादस्माच्च शत्रुहन्। ब्रह्मणा निर्मितः पापो म्लेच्छरूपो भयंकरः ॥८॥
यथा हन्यान्नमां क्रुद्धस्तथा कुरु जगत्पते। हुंकारध्वनिना विष्णुर्मोहयित्वा तु तं नरम् ॥९॥
अदृश्यः सर्वभूतानां योगात्मा विश्वदृक्प्रभुः। तत्र प्राप्तं विरूपाक्षं सांत्वयामास केशवः ॥१०॥

अर्जुन एवं कर्ण की उत्पत्ति, दोनों में वैर, शिवजी के द्वारा शिर काट दिए जाने से क्रुद्ध ब्रह्मा के पसीने से पाप पुरुष की उत्पत्ति, उससे भयभीत शिव का विष्णु के शरण में जाना, विरूपाक्ष के माँगने पर विष्णु द्वारा उसको अपनी दाहिनी भुजा का प्रदान, भुजा के कटने से उत्पन्न रक्त से भिक्षापात्र की पूर्ति, स्वेदज और रक्तज पुरुषों का परस्पर में युद्ध, विष्णु की आज्ञा से उन दोनों की सूर्य तथा शक्र द्वारा रक्षा और द्वापर के अन्त में पृथा के गर्भ से उन दोनों की कर्ण तथा अर्जुन रूप से उत्पत्ति, ब्रह्मा की आज्ञा से शिवजी द्वारा विष्णु की स्तुति, शिवजी की तीर्थ यात्रा, पुष्कर में शिवजी द्वारा कापालिक व्रत, कापाल मोचन तीर्थ की उत्पत्ति, शङ्करजी का वाराणसी गमन

भीष्मजी ने पूछा— शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन की तीन पुरुषों से कैसे उत्पत्ति हुयी ? कानीन कर्ण को सूत पुत्र क्यों कहा जाता है ? उन दोनों में स्वाभाविक वैर क्यों हुआ ? इस विषय में मुझे बहुत अधिक कौतूहल है, उसे आप मुझे बतलायें ॥२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** शङ्करजी द्वारा पाँचवे मुख के काट दिए जाने पर ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध हुआ, उसके कारण ब्रह्माजी के ललाट से पसीना निकला, उन्होंने उस पसीने को पृथिवी पर पटक दिया तो उस पसीने से विशाल धनुष बाण धारी, कुण्डलधारण किए हुए, हजारो कवच पहने हुए एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ब्रह्माजी से पूछा मैं क्या करूँ ॥३-४॥ रुद्र को दिखाते हुए ब्रह्माजी ने उससे कहा तुम इसे मार दो जिससे यह पुनः उत्पन्न न हो ॥५॥ ब्रह्माजी की बात को सुनकर पीठ पर धनुष बाँधकर बाणधारी वह पुरुष शिवजी का पीछा करने लगा। उस उग्र पुरुष को देखकर शङ्करजी भयभीत हो गये। वे वहाँ से वेग से भगे तथा भगवान् विष्णु के आश्रम (बदरिकाश्रम) में आये ॥७॥ उन्होंने कहा— हे शत्रुहन् विष्णो ! आप इस मनुष्य से मेरी रक्षा करें। इस भयङ्कर पापी म्लेच्छ का निर्माण ब्रह्माजी ने किया है। हे जगत्पते ! आप ऐसा करें कि यह मुझको मार न सके। उसके बाद भगवान् विष्णु ने अपनी हुंकार ध्वनि से उस पुरुष को मूर्छित कर दिया ॥९॥ सभी जीवों से अदृश्य रहने वाले योगी, सर्वज्ञ भगवान् ने वहाँ पर आये हुए विरूपाक्ष (शिवजी) को सान्त्वना प्रदान किया ॥१०॥ उसके

ततस्स प्रणतो भूमौ दृष्टो देवेन विष्णुना ।

विष्णुरुवाच

पौत्रो हि मे भवान्रुद्र कं ते कामं करोम्यहम् ॥११॥

पुलस्त्य उवाच

दृष्ट्वा नारायणं देवं भिक्षां देहीत्युवाच ह। कपालं दर्शयित्वाऽग्रे प्रज्वलंस्तेजसोत्कटम् ॥१२॥
कपालपाणिं संप्रेक्ष्य रुद्रं विष्णुरचिन्तयत् । कोन्यो योग्यो भवेद्भिक्षुर्भिक्षादानस्य सांप्रतम् ॥१३॥
योग्योयमिति सङ्कल्प्य दक्षिणं भुजमर्पयत् । तद्बिभेदातितीक्ष्णेन शूलेन शशिशेखरः ॥१४॥
प्रावर्तत ततोधारा शोणितस्य विभो र्भुजात् । जांबूनदरसाकारा वह्निज्वालेव निर्मिता ॥१५॥
निपपात कपालांतश्शम्भुना सा प्रभिक्षिता । ऋज्वी वेगवती तीव्रा स्पृशंती त्वांबरं जवात् ॥१६॥
पंचाशद्योजना दैर्घ्याद्विस्तराद्दशयोजना । दिव्यवर्ष सहस्रं सा समुवाह हरे र्भुजात् ॥१७॥
इयंतं कालमीशोऽसौ भिक्षां जग्राह भिक्षुकः । दत्ता नारायणेनाथ कपाले पात्र उत्तमे ॥१८॥
ततो नारायणः प्राह शंभु परमिदं वचः । संपूर्णं वा नवापात्रं ततोवै परमीश्वरः ॥१९॥
सतोयांबुदनिर्घोषं श्रुत्वा वाक्यं हरेर्हरः । शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशोभितः ॥२०॥
कपाले दृष्टिमावेश्य त्रिभिर्नेत्रैर्जनार्दनम् । अंगुल्या घटयन्प्राह कपालं परिपूरितम् ॥२१॥
श्रुत्वा शिवस्य तां वाणीं विष्णुर्धारां समाहरत् । पश्यतोऽथ हरेरीशः स्वांगुल्यारुधिरं तदा ॥२२॥
दिव्यवर्षसहस्रं च दृष्टिपातैर्ममंथ सः । मथ्यमाने ततो रक्ते कलिलं बुद्बुदं क्रमात् ॥२३॥
बभूव च ततः पश्चात्किरीटी सशरासनः । बद्धतूणीरयुगलो वृषस्कंधोङ्गुलित्रवान् ॥२४॥

तब पृथिवी पर गिरकर प्रणाम करते हुए शङ्करजी को भगवान् विष्णु ने देखा । **भगवान् विष्णु ने कहा**— हे रुद्र! तुम मेरे पौत्र हो । तुम्हारी कौन सी इच्छा मैं पूरी करूँ ॥११॥ शङ्करजी ने भगवान् नारायण को देखकर कहा— मुझे भिक्षा प्रदान करें । यह उन्होंने देदीप्यमान उस कपाल को दिखाकर कहा ॥१२॥ रुद्र को कपाल पाणि देखकर भगवान् विष्णु ने विचार किया इस समय भिक्षा प्रदान करने के लिए दूसरा योग्य भिक्षु कौन हो सकता है?॥१३॥ शङ्करजी को योग्य समझकर भगवान् ने उन्हें अपनी दाहिनी भुजा प्रदान कर दी । उसको शङ्करजी ने अपने अत्यन्त तीक्ष्ण त्रिशूल से काट दिया ॥१४॥ उसके कारण श्रीभगवान् की भुजा से खून की धारा बह चली । उसका आकार सुवर्ण के पानी के समान था और मनो वह अग्नि की ज्वाला से निर्मित हो ॥१५॥ शंभु के द्वारा माँगी गयी वह धारा उस कपाल के भीतर गिरने लगी वह धारा ऋज्वी, वेगपूर्ण, तीव्र गति से तथा अपने वेग से आकाश को छू रही थी॥१६॥ उसकी लम्वाई पचास योजन और चौड़ायी दश योजन थी । वह देवताओं के हजार वर्ष पर्यन्त श्रीहरि की भुजा से प्रवाहित होती रही ॥१७॥ इतने समय तक शङ्करजी उस भिक्षा को ग्रहण किए और भगवान् नारायण ने उसे कपाल नामक उत्तम पात्र में प्रदान किया ॥१८॥ उसके वाद भगवान् नारायण ने शङ्करजी से पूछा तुम्हारा पात्र भरा या नहीं ? उसके वाद जल भरे मेघ की ध्वनि के समान गम्भीर श्रीहरि के वाक्य को सुनकर चन्द्रमा रूपी मुकुट से सुशोभित तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि रूपी नेत्र वाले शङ्करजी अपने तीनों नेत्रों से भगवान् जर्नादन को देखते हुए अङ्गुली से छूकर कहे कपाल भर गया ॥१९-२१॥ शिवजी की वाणी को सुनकर भगवान् विष्णु ने उस धारा को रोक लिया । श्रीभगवान् के सामने ही शङ्करजी ने अपनी अङ्गुलि से उस रक्त को देवताओं के एक हजार वर्ष पर्यन्त अपनी दृष्टि पात के द्वारा मंथन किया मथे जाते हुए उस रक्त में क्रमशः कलिल तथा बुलबुले निकलने लगे ॥२२-२३॥

पुरुषो वह्निसंकाशः कपाले संप्रदृश्यते । तं दृष्ट्वा भगवान्विष्णुः प्राह रुद्रमिदंवचः ॥२५॥
कपाले भव कोवाऽयं प्रादुर्भूतोऽभवन्नरः । वचः श्रुत्वा हरेरीशस्तमुवाच विभो शृणु ॥२६॥
नरो नामैष पुरुषः परमास्त्रविदांवरः । भवतोक्तो नर इति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥२७॥
नरनारायणौ चोभौ युगे ख्यातौ भविष्यतः । संग्रामे देवकार्येषु लोकानां परिपालने ॥२८॥
एष नारायणसखो नरस्तस्माद्भविष्यति। अथासुरवधे साह्यं तव कर्ता महाद्युतिः ॥२९॥
मुनिर्ज्ञानपरीक्षायां जेतालोके भविष्यति । तेजोधिकमिदं दिव्यं ब्रह्मणः पंचमं शिरः ॥३०॥
तेजसो ब्रह्मणो दीप्ताद्भुजस्य तवशोणितात् । मम दृष्टिनिपाताच्च त्रीणितेजांसि यानि तु ॥३१॥
तत्संयोगसमुत्पन्नः शत्रुं युद्धे विजेष्यति । अवध्या ये भविष्यन्ति दुर्जया अपि चापरे ॥३२॥
शक्रस्य चामराणां च तेषामेषभयङ्करः । एवमुक्त्वा स्थितः शंभुर्विस्मितश्च हरिस्तदा ॥३३॥
कपालस्थः स तत्रैव तुष्टाव हरकेशवौ । शिरस्यंजलिमाधाय तदा वीर उदारधीः ॥३४॥
किं करोमीति तौ प्राह इत्युक्त्वा प्रणतः स्थितः । तमुवाच हरः श्रीमान् ब्रह्मणास्वेन तेजसा ॥३५॥
सृष्टो नरो धनुष्पाणिस्त्वमेनं तु निषूदय। इत्थमुक्तांजलिधरं स्तुवंतं शंकरो नरम् ॥३६॥
तथैवाञ्जलिसंबद्धं गृहीत्वा च करद्वयम् । उद्धृत्याथकपालात्तं पुनर्वचनमब्रवीत् ॥३७॥
स एष पुरुषो रौद्रो यो मया वेदितस्तव । विष्णुहुंकाररचितमोहनिद्रां प्रवेशितः ॥३८॥
विबोधयैनं त्वरितमित्युक्त्वान्तर्दधे हरः । नारायणस्य प्रत्यक्षं नरेणानेन वै तदा ॥३९॥
वामपादहतः सोऽपि समुत्तस्थौ महाबलः । ततो युद्धं समभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत् ॥४०॥

उसके बाद उससे किरीट धारण किए हुए तथा धनुर्धारी पुरुष पैदा हुआ । वह अपने पीठ पर दो तुणीरों को बाँधे था उसका कन्धा मोटा था तथा वह अङ्गुलित्र धारण किए था । इस प्रकार का पुरुष उस कपाल में दिखायी पड़ा । उस पुरुष को देखकर भगवान् विष्णु ने रुद्र से कहा ॥२४-२५॥ हे शङ्कर कपाल में यह कौन सा नर उत्पन्न हो गया है? श्रीहरि की वाणी सुनकर श्रीशङ्करजी ने कहा हे नाथ आप सुनें ॥२६॥ ये नर नामक पुरुष हैं, तथा ये श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञाता हैं । आपने इन्हें नर कहा है अतएव इनका नाम नर होगा ॥२७॥ कलियुग में नर और नारायण दोनों विख्यात होंगे । संग्राम में, देवताओं का कार्य करने में, तथा लोकों की रक्षा करने में ॥२८॥ ये नारायण के सखा नर होंगे । ये महाद्युति असुरों का वध करने में आपकी सहायता करेंगे ॥२९॥ ज्ञान की परीक्षा में ये मुनि विजयी होंगे । यह ब्रह्मा का पाँचवाँ शिर अधिक तेज से युक्त है ॥३०॥ ब्रह्माजी के देदीप्यमान तेज से आपकी भुजा के शोणित से तथा मेरी दृष्टि के पड़ने से ये तीन तेज से युक्त होंगे ॥३१॥ उन तेजों के संयोग के कारण युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे । जो असुर देवताओं तथा इन्द्र के लिए अवध्य तथा दुर्जय भी होंगे । उनके लिए भी ये भयङ्कर होंगे । इसतरह शङ्करजी तथा श्रीहरि विस्मित हो गये ॥३२-३३॥ उस समय शिर से अंजलि को लगाकर वही पर कपालस्थ पुरुष ने शङ्करजी तथा श्रीहरि की स्तुति की ॥३४॥ उसने उन दोनों से पूछा कि मैं आपलोगों की कौन सी सेवा करूँ ? यह कहकर वह उनके समक्ष विनम्र होकर खड़ा हो गया । उस समय शङ्करजी ने कहा ब्रह्माजी ने जिसे अपने तेज से उत्पन्न किया है ॥३५॥ उस धनुर्धारी पुरुष को तुम मार दो इसतरह से कहकर अंजलि बाँधे हुए तथा स्तुति करने वाले नर को शङ्करजी ने ॥३६॥ उसी तरह अञ्जलि बाँधे हुए नर के दोनों हाथों को पकड़कर कपाल से बाहर निकल कर फिर कहा ॥३७॥ यही वह रौद्र पुरुष है जिसके विषय में मैंने तुमसे कहा है । भगवान् विष्णु के हुंकार से यह मोहनिद्रा में पड़ा हुआ है ॥३८॥ इसको तुम शीघ्र जगा दो, यह कहकर शङ्करजी

विस्फारितधनुः शब्दं नादिताऽशेषभूतलम् । कवचं स्वेदजस्यैकं रक्तजेनत्वपाकृतम् ॥४१॥
एवं समेतयोर्युद्धे दिव्यं वर्षद्वयं तयोः । युध्यतोः समतीतं च स्वेदरक्तजयोर्नृप ॥४२॥
रक्तजंद्विभुजं दृष्ट्वास्वेदजंचैवसंगतौ । विचिन्त्यवासुदेवोगाद्ब्रह्मणः सदनं परम् ॥४३॥
ससंभ्रममुवाचेदं ब्रह्माणं मधुसूदनः । रक्तजेनाद्यभोब्रह्मन्स्वेदजोऽयं निपातितः ॥४४॥
श्रुत्वैतदाकुलो ब्रह्मा बभाषे मधुसूदनम् । हरेद्यजन्मनि नरो मदीयो जीवतादयम् ॥४५॥
तथा तुष्टोब्रवीत्तंच विष्णुरेवं भविष्यति । गत्वातयोरणमपि निवार्याह च तावुभौ ॥४६॥
अन्यजन्मनि भविता कलिद्वापरयोर्मिथः । संधौ महारणे जाते तत्राहंयोजयामि वाम् ॥४७॥
विष्णुना तु समाहूय ग्रहेश्वरसुरेश्वरौ। उक्ताविमौ नरौ भद्रौ पालनीयौ ममाज्ञया ॥४८॥
सहस्रांशोस्वेदजोऽयं स्वकीयोंशो धरातले । द्वापारांते वतार्योऽयं देवानां कार्यसिद्धये ॥४९॥
यदूनां तु कुले भावी शूरो नाममहाबलः । तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणाप्रतिमाभुवि ॥५०॥
उत्पस्यति महाभागा देवानां कार्यसिद्धये । दुर्वासस्तु वरं तस्यै मंत्रग्रामंप्रदास्यति ॥५१॥
मंत्रेणानेन यं देवं भक्त्या आवाहयिष्यति । देवि तस्य प्रसादात्तु तव पुत्रो भविष्यति ॥५२॥
सा च त्वामुदये दृष्ट्वा साभिलाषा रजस्वला। चिंताभिपन्ना तिष्ठंती भजितव्या विभावसो ॥५३॥
तस्या गर्भे त्वयं भावी कानीनः कुंतिनंदनः । भविष्यति सुतो देवदेवकार्यार्थ सिद्धये ॥५४॥
तथेति चोक्त्वा प्रोवाच तेजोराशिर्दिवाकरः । पुत्रमुत्पादयिष्यामि कानीनं बलगर्वितम् ॥५५॥

वहाँ से अन्तर्धान हो गये । उसके बाद नारायण के समक्ष ही नर ने ॥३९॥ उसको अपने बायें पैर से मारा ऐसा करते हीं वह महावलवान रौद्र पुरुष उठ खड़ा हुआ । उसके बाद उन स्वेदज तथा रक्तज दोनों पुरुषों में महान् युद्ध हुआ ॥४०॥ धनुष के टङ्कार से सारा भूलोक निनादित हो गया उसके बाद रक्तज पुरुष ने स्वेदज पुरुष के एक कवच को तोड़ दिया ॥४१॥ हे राजन् ! इस तरह से परस्पर में स्वेदज तथा रक्तज पुरुषों के युद्ध करते हुए देवताओं के दो वर्ष बीत गये ॥४२॥ स्वेदज तथा रक्तज दोनों को दो भुजाओं वाला देखकर विचार करके भगवान् वासुदेव ब्रह्माजी के धाम में गये ॥४३॥ उसके बाद भगवान् मधुसूदन ने ब्रह्माजी से कहा हे ब्रह्मन् ! आज रक्तज ने स्वेदज पुरुष को मार दिया ॥४४॥ इसतरह से सुनकर ब्रह्माजी व्याकुल हो गये । उन्होंने मधुसूदन से कहा हे हरे ! यह मेरा नर इस जन्म में जीवित हो जाय ॥४५॥ उससे प्रसन्न होकर विष्णु ने कहा ऐसा ही होगा । वहाँ जाकर भगवान् विष्णु ने उन दोनों के युद्ध को रोक कर उन दोनों से कहा ॥४६॥ दूसरे जन्म में कलियुग तथा द्वापर के संधिकाल में महायुद्ध होगा, उस समय मैं तुम दोनों को आमने सामने मिलाऊँगा ॥४७॥ उसके बाद विष्णु ने ग्रहेश्वर तथा सुरेश्वर (सूर्य तथा इन्द्र) को बुलाकर कहा इन दोनों भद्र पुरुषों का आपलोग पालन करेंगे । यह मेरी आज्ञा है॥४८॥ हे सूर्य ! यह स्वेदज पुरुष है इसको आप द्वापर के अंत में अपने अंश से पृथिवी पर देवताओं का कार्य करने के लिए अवतीर्ण करायेंगे ॥४९॥ यदुओं के वंश में शूर नामक महावलवान् राजा होंगे । उनकी अप्रतिम सुन्दरी पृथा नाम की पुत्री होगी ॥५०॥ वह महाभागा देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए उत्पन्न होयेगी । उसको महर्षि दुर्वासा वरदान रूप से मन्त्र समूह को प्रदान करेंगे ॥५१॥ उस मन्त्र के द्वारा वह देवी जिस देवता का आवाहन करेगी, उसी की कृपा से उसके पुत्र उत्पन्न होंगे ॥५२॥ रजस्वला वह आपको उदय काल में देखकर आपका आवाहन करेगी । हे सूर्य ! उस चिन्ता करती हुयी पृथा को आप अपनायेंगे ॥५३॥ उसी के गर्भ से यह कानीन कुन्तिनंदन होगा । हे देव ! देवकार्य के लिए उसका यह पुत्र उत्पन्न होगा ॥५४॥ ठीक है, कहकर तेजोराशि

यस्य कर्णेति वै नाम लोकः सर्वो वदिष्यति । मत्प्रसादादस्य विष्णो विप्राणां भावितात्मनः ॥५६॥
अदेयं नास्ति वैलोके वस्तुकिंचिच्च केशव । एवंप्रभावं चैवैनं जनये वचनात्तव ॥५७॥
एवमुक्त्वा सहस्रांशु र्देवं दानवघातिनम् । नारायणं महात्मानं तत्रैवांतर्दधे रविः ॥५८॥
अदर्शनं गते देवे भास्करे वारितस्करे । वृद्धश्रवसप्येवमुवाच प्रीतमानसः ॥५९॥
सहस्रनेत्र रक्तोत्थो नरोऽयं मदनुग्रहात् । स्वांशभूतो द्वापरांते योक्तव्यो भूतले त्वया ॥६०॥
यदा पांडुर्महाभागः पृथां भार्यामवाप्स्यति । माद्रीं चापि महाभाग तदारण्यं गमिष्यति ॥६१॥
तस्याप्यरण्यसंस्थस्य मृगः शापं प्रदास्यति । तेन चोत्पन्न वैराग्यः शतशृंगं गमिष्यति ॥६२॥
पुत्रानभीप्सन् क्षेत्रोत्थान्भार्यां स प्रवदिष्यति । अनीप्सन्ती तदा कुंती भर्त्तारं सा वदिष्यति ॥६३॥
नाहं मर्त्यस्य वैराजन् पुत्रानिच्छे कथंचन । दैवतेभ्यः प्रसादाच्च पुत्रानिछे नराधिप ॥६४॥
प्रार्थयंत्यै त्वया शक्र कुंत्यै देयोनरस्ततः । वचसा च मदीयेन एवं कुरु शचीपते ॥६५॥
अथाब्रवीत्तदाविष्णुं देवेशो दुःखितो वचः । अस्मिन्मन्वंतरेतीते चतुर्विंशतिके युगे ॥६६॥
अवतीर्य रघुकुले गृहे दशरथस्य च । रावणस्य वधार्थाय शांत्यर्थं च दिवौकसाम् ॥६७॥
रामरूपेण भवता सीतार्थमटता वने । मत्पुत्रो हिंसितो देव सूर्यपुत्रहितार्थिना ॥६८॥
वालिनामप्लवंगेंद्रः सुग्रीवार्थे त्वया यतः । दुःखेनानेन तप्तोहं गृह्णामि न सुतं नरम् ॥६९॥
अगृह्णमानं देवेंद्रं कारणांतरवादिनम् । हरिः प्रोचे शुनासीरं भुवो भारावतारणे ॥७०॥
अवतारं करिष्यामि मर्त्यलोके त्वहं प्रभो । सूर्यपुत्रस्य नाशार्थं जयार्थमात्मजस्य ते ॥७१॥

सूर्य ने कहा मैं कार्नीन वलवान पुत्र को उत्पन्न करूँगा । उसको लोक में लोग कर्ण शब्द से अभिहित करेंगे । हे विष्णो ! ब्राह्मण भक्त इस कर्ण के लिए मेरी कृपा से ॥५६॥ संसार की कोई भी वस्तु अदेय नहीं होगी । इसतरह के प्रभाव से युक्त रूप से मैं इसको आपकी आज्ञानुसार उत्पन्न करूँगा ॥५७॥ इसतरह से दैत्यों के विनाशक भगवान् नारायण से कहकर सूर्य अन्तर्धान हो गये ॥५८॥ जलशोषक सूर्य के अन्तर्हित हो जाने पर श्रीभगवान् ने प्रसन्नता पूर्वक इन्द्र से उसी प्रकार से कहा ॥५९॥ हे सहस्रनेत्र इन्द्र ! इस रक्तज नर को मेरी कृपा से आप अपने अंश से युक्त करके भूलोक में भेजेंगे ॥६०॥ जब महाभाग पाण्डु पृथा तथा माद्री को पत्नी रूप से प्राप्त कर लेंगे तो वे महाभाग वन में जायेंगे ॥६१॥ वन में रहते समय उनको मृग शाप दे देगा । उसके कारण उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा और वे शतशृंग पर्वत पर चले जायेंगे ॥६२॥ उस समय वे पुत्रों को प्राप्त करने की कामना से अपनी पत्नी को क्षेत्रज पुत्र को उत्पन्न करने के लिए कहेंगे । उसको नहीं चाहने वाली कुन्ती अपने पति से कहेगी कि राजन् ! मैं किसी भी प्रकार मनुष्य से पुत्र नहीं प्राप्त करना चाहती हूँ, राजन् ! मैं देवताओं की कृपा से पुत्रों को प्राप्त करना चाहती हूँ ॥६३-६४॥ उसके बाद जब कुन्ती प्रार्थना करे तो आप नर को पुत्र रूप में प्रदान कर देंगे। हे इन्द्र ! मेरी आज्ञा से आप इस काम को अवश्य करेंगे ॥६५॥ उसके बाद इन्द्र ने दुःखी होकर भगवान् विष्णु से कहा— इस मन्वन्तर के बीत हुए चौवीसवें युग में ॥६६॥ रघुकुल के महाराज दशरथ के घर में अवतार लेकर आपने रावण का वध करने के लिए तथा देवताओं को शान्ति प्रदान करने के लिए ॥६७॥ सीता का अन्वेषण करने के लिए वन में घूमते हुए आपने सूर्य पुत्र (सुग्रीव) का कल्याण करने के लिए मेरे पुत्र (वालि) का वध कर दिया॥६८॥ आपने सुग्रीव के लिए वालि नामक वानर राज को मार दिया । उसी दुःख से दुःखी मैं नर नामक पुत्र को नहीं स्वीकार करता हूँ ॥६९॥ दूसरे कारण के बताने वाले तथा नर को नहीं स्वीकार करने वाले इन्द्र से श्रीभगवान्

सारथ्यं च करिष्यामि नाशं कुरुकुलस्य च । ततो हृष्टोभवच्छक्रो विष्णुवाक्येन तेन ह ॥७२॥
प्रतिगृह्य नरं दृष्टः सत्यं चास्तु वचस्तव। एवमुक्त्वा वरं देवः प्रेषयित्वा च्युतः स्वयम् ॥७३॥
गत्वा तु पुंडरीकाक्षो ब्रह्माणं प्राह वै पुनः । त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥७४॥
आवां कार्यस्य करणे सहायौ च तव प्रभो। स्वयं कृत्वा पुनर्नाशं कर्तुं देव न बुध्यसे ॥७५॥
कृतं जुगुप्सितं कर्म शंभुमेतं जिघांसता । त्वया च देवदेवस्य सृष्टः कोपेन वै पुमान् ॥७६॥
शुद्ध्यर्थमस्य पापस्य प्रायश्चित्तं परं कुरु। गृह्णन् वह्नि त्रयं देवअग्निहोत्रमुपाहर॥७७॥
पुण्यतीर्थे तथा देशे वने वापि पितामह। स्वपत्न्या सहितो यज्ञं कुरुष्वास्मत्परिग्रहात् ॥७८॥
सर्वे देवास्तथादित्या रुद्राश्चापि जगत्पते। आदेशं तेकरिष्यंति यतोस्माकं भवान्प्रभुः ॥७९॥
एकोहि गार्हपत्योग्नि र्दक्षिणाग्नि र्द्वितीयकः। आहवनीयस्तृतीयस्तु त्रिकुंडेषु प्रकल्पय॥८०॥
वर्तुले त्वर्चयात्मानम्मामथोधनुराकृतौ। चतुःकोणे हरं देवं ऋग्यजुः सामनामभिः ॥८१॥
अग्नीनुत्पाद्य तपसा परामृद्धिमवाप्य च । दिव्यं वर्षसहस्रं तु हुत्वाग्नीन् शमयिष्यसि॥८२॥
अग्निहोत्रात्परं नान्यत्पवित्रमिह पठ्यते । सुकृतेनाग्निहोत्रेण प्रशुद्ध्यंति भुवि द्विजाः ॥८३॥
पंथानो देवलोकस्य ब्राह्मणैर्दर्शितास्त्वमी। एकोग्निः सर्वदाधार्यो गृहस्थेन द्विजन्मना॥८४॥
विनाग्निना द्विजेनेह गार्हस्थ्यन्नतुलभ्यते।

भीष्म उवाच

योसौ कपालादुत्पन्नोनरो नाम धनुर्द्धरः ॥८५॥

ने कहा पृथिवी का भार उतारने के लिए ॥७०॥ मैं पृथिवी पर अवतार ग्रहण करूँगा और सूर्य के पुत्र का नाश करने के लिए तथा तुम्हारे पुत्र को विजय दिलाने के लिए ॥७१॥ कुरुकुल का नाश करने के लिए तुम्हारे पुत्र के सारथि का काम मैं करूँगा । भगवान् की उस वाणी को सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो गये ॥७२॥ वे नर को लेकर कहे आपकी वाणी सत्य हो । इसतरह से वरदान देकर भगवान् ने इन्द्र को भेज दिया ॥७३॥ उसके बाद भगवान् पुण्डरीकाक्ष ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे कहे— आपने इस सम्पूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य की सृष्टि की है ॥७४॥ आपके कार्य करने में शङ्कर और हम दोनों सहायक हैं । स्वयं सृष्टि करके आप उसका नाश नहीं करना चाहेंगे ॥७५॥ शम्भु को मारना चाहकर आपने यह निन्दित काम किया है । क्रोध करके आपने स्वेदज पुरुष की सृष्टि कर दी ॥७६॥ अतएव इस पाप की शुद्धि के लिए आप प्रायश्चित करें । आप तीनों अग्नियों के लिए अग्निहोत्र का वहन करें ॥७७॥ इस तरह से हे पितामह ! आप किसी पवित्र तीर्थ में अथवा पवित्र देश में, या वन में अपनी पत्नी के साथ मेरी कृपा से यज्ञ करें ॥७८॥ वहाँ पर आप हमारे स्वामी होंगे वहाँ पर आदित्य तथा रुद्र आदि सभी देवता आपकी आज्ञा का पालन करेंगे ॥७९॥ आप तीन कुण्डों में गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि इन तीनों अग्नियों की कल्पना करें ॥८०॥ आप वृत्त कुण्ड में अपनी अर्चना करें, धनुषकृति कुण्ड में मेरी अर्चना करें तथा चतुष्कोण कुण्ड में शङ्करजी की आराधन ऋग्, यजुः तथा सामवेद के मन्त्रों से करें ॥८१॥ तपस्या के द्वारा अग्नियों को उत्पन्न करके तथा सर्वोत्कृष्ट समृद्धि को प्राप्त करके हजार दिव्य वर्ष, पर्यन्त होम करके आप अग्नियों को शान्त करेंगे ॥८२॥ इस विषय में अग्निहोत्र से बढकर किसी भी दूसरे साधन को पवित्र नहीं बतलाया गया है । अच्छी तरह से किए गये अग्निहोत्र के द्वारा ब्राह्मणों की अत्यधिक शुद्धि होती है ॥८३॥ ब्राह्मणों ने इसे ही देवलोक का मार्ग बतलाया है । गृहस्थ ब्राह्मणों को सर्वदा एक अग्नि को धारण किए रहना चाहिए ॥८४॥ ब्राह्मण अग्नि के बिना गार्हस्थ्य को नहीं

किमेष माधवाज्जात उताहोस्वेन कर्मणा । उतरुद्रेणजनितो ह्यथवा बुद्धिपूर्वकम् ॥८६॥
ब्रह्मन् हिरण्यगर्भोऽयमंडजातश्चतुर्मुखः । अद्भुतं पञ्चमं तस्य वक्त्रं तत्कथमुत्थितम् ॥८७॥
सत्वे रजो न दृश्येत न सत्वं रजसि क्वचित् । सत्वस्थो भगवान्ब्रह्मा कथमुद्रेकमादधात् ॥८८॥
मूढात्मना नरो येन हंतुं हि प्रहितो हरम् ।

पुलस्त्य उवाच

महेश्वरहरीचैतौ द्वावेव सत्पथि स्थितौ ॥८९॥
तयोरविदितं नास्ति सिद्धासिद्धं महात्मनोः । ब्रह्मणः पञ्चमं वक्त्रमूर्ध्वमासीन्महात्मनः ॥९०॥
ततो ब्रह्माऽभवन्मूढो रजसा चोपबृंहितः । ततोऽयं तेजसासृष्टिममन्यमया कृता ॥९१॥
मत्तोऽन्यो नास्ति वै देवो येनसृष्टिः प्रवर्तिता । सहदेवाः सगंधर्वाः पशुपक्षिमृगाकुला ॥९२॥
एवंमूढः स पंचास्यो विरिंचिरभवत्पुनः । प्राग्वक्त्रं मुखमेतस्य ऋग्वेदस्य प्रवर्तकम् ॥९३॥
द्वितीयं वदनं तस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् । तृतीयं सामवेदस्य अथर्वार्थं चतुर्थकम्॥९४॥
सांगोपांगेतिहासांश्च सरहस्यान्ससंग्रहान् । वेदानधीतेवक्त्रेण पंचमेनोद्ध्र्व चक्षुषा ॥९५॥
तस्यासुरसुराः सर्वे वक्त्रस्याद्भुतवर्चसः । तेजसा न प्रकाशंते दीपाः सूर्योदये यथा॥९६॥
स्वपुरेष्वपि सोद्वेगा ह्यवर्ततविचेतसः । न कंचिद्गणयेच्चान्यं तेजसाक्षिपते परान् ॥९७॥
नाभिगंतुं न च द्रष्टुं पुरस्तान्नोपसर्पितुम् । शेकुस्त्रस्ताः सुरास्सर्वे पद्मयोनिं महाप्रभुम् ॥९८॥
अभिभूतमिवात्मानं मन्यमाना हतत्विषः । सर्वे ते मंत्रयामासुर्दैवताहितमात्मनः ॥९९॥

प्राप्त करता है । **भीष्मजी ने कहा—** कपाल से जो धनुर्धारण किए वह नर उत्पन्न हुआ उसका निर्माण भगवान् माधव ने किया था अथवा वह अपने कर्म के कारण उत्पन्न हुआ था । अथवा उसे रुद्र ने बुद्धि पूर्वक उत्पन्न कर दिया था ॥८५-८६॥ हे ब्रह्मन ! हिरण्यगर्भ चार मुख वाले ब्रह्माजी अण्ड से उत्पन्न हुए थे ऐसी स्थिति में उनका पाञ्चवाँ मुख आश्चर्यमय है । वह कैसे उत्पन्न हुआ ?॥८७॥ कहीं भी सत्वगुण में रजोगुण नहीं दिखता है और न तो रजोगुण में सत्त्वगुण दिखता है । ब्रह्माजी तो सत्त्वस्थ पुरुष हैं, उनमें रजोगुण का उद्रेक कैसे हो गया ?॥८८॥ जिसके कारण मूढ बने हुए ब्रह्माजी स्वेदज पुरुष को शङ्करजी को मारने के लिए भेज दिए । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** महेश्वर तथा श्रीहरि ये दोनों सन्मार्गगामी हैं ॥८९॥ उन दोनों को कोई भी सिद्ध अथवा असिद्ध अज्ञात नहीं है । ब्रह्माजी का पाँचवाँ मुख ऊपर की ओर था ॥९०॥ उसी के कारण रजोगुण के उद्रिक्त हो जाने से ब्रह्माजी मूढ हो गये । उसके कारण वे यह मानने लगे कि तेजस्विनी सृष्टि मेरे द्वारा की गयी है ॥९१॥ अतएव मुझको छोड़कर सृष्टि करने वाला दूसरा कोई नहीं है । देवताओं, गन्धर्वों, पशु-पक्षी तथा मृग सबों की सृष्टि मैंने की है ॥९२॥ इसतरह से पाञ्चमुख वाले ब्रह्माजी मूढ हो गये । ब्रह्माजी का आगे का मुख ऋग्वेद का प्रवर्तक है ॥९३॥ उनका दूसरा मुख यजुर्वेद का प्रवर्तक है । तीसरा मुख सामवेद का प्रवर्तक है और चौथा मुख अथर्ववेद का प्रवर्तक है॥९४॥ अपने ऊपर की ओर विद्यमान मुख के नेत्र से ब्रह्माजी साङ्गोपाङ्ग इतिहासों को तथा रहस्यों (उपनिषदों) तथा संग्रहों (वेदाङ्गों) के साथ वेदों का अध्ययन करते थे ॥९५॥ देवता तथा असुर सभी उस अद्भुत तेजः सम्पन्न मुख के तेज से उसी तरह से प्रकाशित नहीं होते थे जिस तरह सूर्योदय हो जाने पर दीपक नहीं प्रकाशित होता है ॥९६॥ वे अपने नगरों में भी सदा उद्विग्न तथा अचेत बने रहते थे । ब्रह्माजी अपने सामने किसी को भी नहीं गिनते थें वे अपने तेज से दूसरों को क्षुब्ध ही करते थे ॥९७॥ ब्रह्माजी से सभी देवता उद्विग्न ही होते रहते थे वे ब्रह्माजी का

गच्छामः शरणं शम्भुं निस्तेजसो स्य तेजसा।

देवा ऊचुः

नमस्ते सर्वसत्वेश महेश्वर नमो नमः ॥१००॥

जगद्योने परं ब्रह्म भूतानां त्वं सनातनः । प्रतिष्ठा सर्वजगतां त्वं हेतुर्विष्णुना सह ॥१०१॥

एवं संस्तूयमानोऽसौ देवर्षिपितृदानवैः । अंतर्हित उवाचेदं देवाः प्रार्थयतेप्सितम् ॥१०२॥

देवा ऊचुः

प्रत्यक्षदर्शनं दत्वा देहि देव यथेप्सितम् । कृत्वा कारुण्यमस्माकं वरश्चापि प्रदीयताम् ॥१०३॥

यदस्माकं महद्वीर्यं तेज ओजः पराक्रमः । तत्सर्वं ब्रह्मणा ग्रस्तं पंचमास्यस्य तेजसा ॥१०४॥

विनेशुः सर्वतेजांसि त्वत्प्रसादात्पुनःप्रभो । जायते तु यथापूर्वं तथा कुरु महेश्वर ॥१०५॥

ततः प्रसन्नवदनो देवैश्चापि नमस्कृतः । जगाम यत्र ब्रह्मासौ रजोहंकारमूढधीः ॥१०६॥

स्तुवंतो देवदेवेशं परिवार्य समाविशन् । ब्रह्मा तमागतं रुद्रं न जज्ञे रजसावृतः ॥१०७॥

सूर्यकोटिसहस्राणां तेजसा रंजयन् जगत् । तदादृश्यत विश्वात्मा विश्वसृग्विश्वभावनः ॥१०८॥

सपितामहमासीनं सकलं देवमंडलम् । अभिगम्य ततो रुद्रो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥१०९॥

अहोतितेजसावक्त्रमधिकं देवराजते । एवमुक्त्वा ट्टहासं तु मुमोच शशिशेखरः ॥११०॥

वामांगुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणः पंचमंशिरः । चकर्त कदलीगर्भं नरः कररुहैरिव ॥१११॥

विच्छिन्नं तु शिरःपश्चाद्ब्रह्महस्ते स्थितं तदा । ग्रहमंडलमध्यस्थो द्वितीय इव चंद्रमाः ॥११२॥

दर्शन करने के लिए अथवा उनसे मिलने के लिए उनके पास जाने में समर्थ नहीं होते थे ॥९८॥ अपने को अभिभूत मानने वाले निस्तेज बने सभी देवताओं ने अपने कल्याण के साधना का विचार किया ॥९९॥ सभी देवताओं ने शम्भु की शरणागति की क्योंकि वे सभी निस्तेज हो गये थे । **देवतओं ने शङ्करजी की स्तुति करते हुए कहा**— हे सभी जीवों के स्वामिन् महेश्वर ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥१००॥ हे जगत् के कारण स्वरूप परब्रह्म ! आप सभी जीवों की सनातन प्रतिष्ठा हैं । आप विष्णु भगवान् के साथ जगत् के कारण हैं ॥१०१॥ देवताओं, पितरों, देवर्षियों तथा मनुष्यों के द्वारा इस तरह से स्तुति किए जाते हुए शङ्करजी अन्तर्धान रहकर ही कहे कि देवताओं आपलोग अपना अभीप्सित बतलायें ॥१०२॥ **देवताओं ने कहा**— आप प्रत्यक्ष दर्शन देकर हमारे अभिप्रेत अर्थ को प्रदान करें । हमलोगों पर कृपा करके आप हमलोगों को वरदान भी प्रदान करें ॥१०३॥ हमलोगों का जो महान् वीर्य तेज, ओज और पराक्रम है, उसको ब्रह्माजी ने अपने पाञ्चवें मुख के तेज से ग्रस्त कर लिया है ॥१०४॥ सभी तेज विनष्ट हो गये हैं, अतएव आप अपनी कृपा से उसे पूर्ववत् बना दें ॥१०५॥ उसके बाद देवताओं से नमस्कृत शङ्करजी वहाँ गये जहाँ पर रजोगुण जन्य अहङ्कार से मूढ बने ब्रह्माजी विद्यमान थे ॥१०६॥ देवदेव शङ्करजी की स्तुति करते हुए सभी देवता भी वहाँ गये, किन्तु रजोगुण से युक्त होने के कारण ब्रह्माजी आये हुए रुद्र को नहीं जान सके ॥१०७॥ वे अपने करोड़ों हजार सूर्य के तेज के समान तेज के द्वारा जगत् को प्रकाशित कर रहे थे । उसके बाद विश्व की सृष्टि करने वाले विश्वभावन ब्रह्माजी दिखायी दे रहे थे ॥१०८॥ शङ्करजी बैठे हुए ब्रह्माजी तथा देवताओं के पास जाकर कहे कि हे देव ! अत्यन्त तेजस्वी मुख अत्यधिक सुशोभित होता है । यह कहकर शङ्करजी ने अट्टहास किया ॥१०९-११०॥ उन्होंने अपने बायें हाथ के अङ्गूठे के नख से उस पाँचवे शिर को उस तरह से काट दिया जिस तरह कोई आदमी अपने नख से केले के परतों को फाड़ देता है ॥१११॥ उसके बाद वह शिर

करोत्क्षिप्तकपालेन ननर्त च महेश्वरः । शिखरस्थेन सूर्येण कैलास इव पर्वतः ॥११३॥
छिन्नेवक्त्रे ततो देवा हृष्टास्तं वृषभध्वजम् । तुष्टुवु विविधैस्तोत्रै र्देवदेवं कपर्दिनम् ॥११४॥

देवा ऊचुः

नमः कपालिने नित्यं महाकालस्य कालिने । ऐश्वर्यज्ञानयुक्ताय सर्वभागप्रदायिने ॥११५॥
नमो हर्षविलासाय सर्वदेवमयाय च । कलौ संहारकर्ता त्वं महाकालः स्मृतो ह्यसि ॥११६॥
भक्तानामार्तिनाशस्त्वं दुःखांतस्तेन चोच्यसे । शंकरोप्याशु भक्तानां तेन त्वं शङ्करः स्मृतः ॥११७॥
छिन्नं ब्रह्मशिरो यस्मात्त्वंकपालं बिभर्षि च । तेन देवकपाली त्वं स्तुतोह्यद्यप्रसीद नः ॥११८॥
एवं स्तुतः प्रसन्नात्मा देवान्प्रस्थाप्य शङ्करः । स्वानि धिष्ण्यानि भगवांस्तत्रैवासीन्मुदान्वितः ॥११९॥
विज्ञाय ब्रह्मणो भावं ततोवीरस्य जन्म च । शिरोनीरस्य वाक्यात्तु लोकानां कोपशांतये ॥१२०॥
शिरस्यंजलिमाधाय तुष्टावाथ प्रणम्य तम् । तेजोनिधिरपरं ब्रह्म ज्ञातुमित्थं प्रजापतिम् ॥१२१॥
निरुक्तसूक्तरहस्यै र्ऋग्यजुःसामभाषितैः ।

रुद्र उवाच

अप्रमेय नमस्तेस्तु परमस्य परात्मने ॥१२२॥
अद्भुतानां प्रसूतिस्त्वं तेजसां निधिरक्षयः । विजयाद्विश्वभावस्त्वं सृष्टिकर्ता महाद्युते ॥१२३॥
ऊर्ध्ववक्त्र नमस्तेस्तु सत्वात्मक धरात्मक । जलशायिन् जलोत्पन्न जलालय नमोस्तु ते ॥१२४॥

शङ्करजी के हाथ में सट गया । वह उसी तरह से लग गया था जिस तरह ग्रह मण्डल के बीच में कोई दूसरा चन्द्रमा आकर बैठ जाय ॥११२॥ हाथ में सटे हुए कपाल के साथ शङ्करजी उसी तरह से नृत्य करने लगे जैसे शिखर पर विद्यमान सूर्य के साथ कैलास पर्वत नृत्य कर रहा हो ॥११३॥ उस मुख के कट जाने पर देवगण प्रसन्न होकर कपर्दी भगवान् शङ्करजी की अनेक स्तोत्रों से स्तुति किए ॥११४॥ **देवताओं ने कहा—** महाकाल के भी काल स्वरूप, कपाली शङ्करजी को नित्य ही नमस्कार है, सबों को उनका भाग प्रदान करने वाले ऐश्वर्य तथा ज्ञान से युक्त शङ्करजी को नमस्कार है ॥११५॥ हर्ष तथा विलास से युक्त, सर्वदेव स्वरूप शङ्करजी को नमस्कार है । कलियुग का संहार करने वाले आप महाकाल कहे जाते हैं ॥११६॥ भक्तों के दुःख को विनष्ट करने वाले होने के कारण आप दुःखान्त शब्द से अभिहित किए जाते हैं । भक्तों का शीघ्र कल्याण करने वाले होने के कारण आप शङ्कर कहे गये हैं ॥११७॥ आपने ब्रह्माजी के शिर को काट दिया; इसलिए आप कपाल धारण करते हैं । हे देव ! इसीलिए कपाली शब्द से आपकी स्तुति की गयी है आप प्रसन्न हो जाइये ॥११८॥ इस तरह देवताओं द्वारा स्तुति कर लिए जाने पर शङ्करजी ने देवताओं को उनके घर भेज दिया और स्वयं वहीं पर प्रसन्नता पूर्वक स्थित रहे ॥११९॥ ब्रह्माजी के भाव तथा उनसे वीर की उत्पत्ति को जानकर शङ्करजी ने शिर को दूर करके लोकों को कोप को शान्त करने के लिए अपने शिर से अंजलि लगाकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और तेजोनिधि परब्रह्म को जानने के लिए, निरुक्त, ऋक्, यजुष्, एवं साम रहस्यों के सूक्तों से प्रजापति ब्रह्माजी की स्तुति करने लगे । **रुद्र ने कहा—** हे अप्रमेय आपको नमस्कार है परम परमात्मा स्वरूप आपको नमस्कार है ॥१२०-१२१॥ आप अद्भुत वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले तथा तेजों के अक्षय निधि हैं । विजयी होने के कारण विश्व स्वरूप है, हे महाद्युते आप जगत् की सृष्टि करने वाले हैं ॥१२२-१२३॥ हे ऊर्ध्ववक्त्र आपको नमस्कार है । हे सत्वगुण स्वरूप ! पृथिवी स्वरूप, जल में शयन करने वाले, जल से उत्पन्न होने वाले, तथा जल के भीतर उसकी अधिष्ठातृ देवता रूप से निवास करने

जलजोत्फुल्लपत्राक्ष जय देवपितामह । त्वयाह्युत्पादितः पूर्वं सृष्ट्यर्थमहमीश्वर ॥१२५॥
यज्ञाहुति सदाहार यज्ञांगेश नमोस्तु ते । स्वर्णगर्भ पद्मगर्भ देवगर्भ प्रजापते॥१२६॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारः स्वधा त्वं पद्मसंभव। वचनेन तु देवानां शिरश्छिन्नं मया प्रभो ॥१२७॥
ब्रह्महत्याभिभूतोस्मि मां त्वं पाहि जगत्पते । इत्युक्तो देवदेवेन ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥१२८॥

ब्रह्मोवाच

सखा नारायणो देवः सत्वां पूतं करिष्यति। कीर्तनीयस्त्वया धन्यः स मे पूज्यःस्वयं विभुः॥१२९॥
अनुध्यातोऽसि वै नूनं तेन देवेन विष्णुना । येन ते भक्तिरुत्पन्ना स्तोतु मां मतिरुत्थिता ॥१३०॥
शिरश्छेदात्कपाली त्वं सोमसिद्धांतकारकः । कोटीः शतं च विप्राणामुद्धर्तासि महाद्युते ॥१३१॥
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात् नान्यत्किंचन विद्यते। अभाष्याः पापिनः क्रूरा ब्रह्मघ्नाः पापकारिणः॥१३२॥
वैतानिका विकर्मस्था न ते भाष्याः कथंचन । तैस्तु दृष्टैस्तथाकार्यं भास्करस्यावलोकनम्॥१३३॥
अंगस्पर्शे कृते रुद्र सचैलो जलमाविशेत् । एवं शुद्धिमवाप्नोति पूर्वदृष्टां मनीषिभिः ॥१३४॥
सभवान्ब्रह्महन्तासि शुद्ध्यर्थं व्रतमाचर । चीर्णे व्रते पुनर्भूयः प्राप्स्यसि त्वं वरान्बहून् ॥१३५॥
एवमुक्त्वागतो ब्रह्मारुद्रस्तत्राभिजज्ञिवान्। अचिंतयत्तदा विष्णुं ध्यानगत्या ततः स्वयम् ॥१३६॥
लक्ष्मीसहायं वरदं देवदेवं सनातनम्। अष्टांगप्रणिपातेन देवदेवस्त्रिलोचनः ॥१३७॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शंखचक्रगदाधरम् ।

रुद्र उवाच

परंपराणाममृतं पुराण परात्परं विष्णुमनंतवीर्यम् ॥१३८॥

वाले ब्रह्माजी आपको नमस्कार है ॥१२४॥ हे विकसित कमलदल के समान मनोहर नेत्र वाले, देव, हे पितामह ! हे ईश्वर ! आपने ही प्राचीन काल में मुझको सृष्टि करने के लए उत्पन्न किया था ॥१२५॥ सदा यज्ञ की आहुति का आहार करने वाले, यज्ञांगेश आपको नमस्कार है । हे स्वर्ण (हिरण्य) गर्भ, पद्मगर्भ (कमल से उत्पन्न होने वाले) देवगर्भ तथा प्रजापते !॥१२६॥ हे ब्रह्माजी देवताओं के कहने से ही मैंने शिर को काटा है ॥१२७॥ मैं ब्रह्महत्या से निस्तेज हो गया हूँ, हे प्रजापते ! आप मेरी रक्षा करें । शङ्करजी से इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्माजी ने कहा॥१२८॥
ब्रह्माजी ने कहा— भगवान् नारायण के सखा नर तुमको निष्पाप बनायेंगे । तुम उनकी ही स्तुति करो वे धन्य हैं, वे मेरे भी पूज्य हैं । वे स्वयं व्यापक हैं ॥१२९॥ निश्चित रूप से तुम भगवान् विष्णु के द्वारा अनुगृहीत हुए हो । उसी के कारण तुममें मेरी स्तुति करने वाली बुद्धि उत्पन्न हुयी है ॥१३०॥ शिर काटने के कारण तुम कपाली हो सोम सिद्धान्त को करने वाले, तथा हे महाद्युते ! तुम सैकड़ो करोड़ ब्राह्मणों का उद्धार करने वाले हो ॥१३१॥ तुम्हें ब्रह्महत्याव्रत को करना चाहिए । ब्रह्मघ्न पापी होते हैं तथा क्रूर पापियों से बातें नहीं करनी चाहिए ॥१३२॥ जो वैतानिक तथा निन्दित कर्म करने वाले हैं, उन सबों से कभी बात नही करनी चाहिए । यदि ऐसे लोग देख लें तो शुद्धि के लिए सूर्य का दर्शन करना चाहिए ॥१३३॥ यदि उससे अङ्ग का स्पर्श हो जाय तो वस्त्र पहनकर ही जल में प्रवेश करके स्नान कर लेना चाहिए । इस प्रकार से ही शुद्धि मानीषियों ने बतलाया है ॥१३४॥ रुद्र आप ब्रह्महन्ता हैं, अतएव अपनी शुद्धि के लिए व्रत करे । व्रत पूरा होने पर तुम अनेक प्रकार के वरदानों को प्राप्त करोगे॥१३५॥ इसतरह से कहकर ब्रह्माजी चले गये, किन्तु शङ्करजी स्वयं लक्ष्मीजी से विशिष्ट वर देने वाले देवाराध्य, भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे । साष्टाङ्ग प्रणिपात पुरस्सर देवराध्य शङ्करजी ॥१३६-१३७॥

स्मरामि नित्यं पुरुषं वरेण्यं नारायणं निष्प्रतिमं पुराणम् ।
परात्परं पूर्वजमुग्रवेगं गंभीरगंभीरधियांप्रधानम् ॥१३९॥
नतोस्मि देवं हरिमीशितारं परात्परं धामपरं च धाम ।
परापरं तत्परमं च धाम परापरेशं पुरुषंविशालम् ॥१४०॥
नारायणं स्तौमि विशुद्धभावं परात्परं सूक्ष्ममिदं ससर्ज ।
सदास्थितत्वात्पुरुषप्रधानम् शांतं प्रधानं शरणं ममास्तु ॥१४१॥
नारायणं वीतमलं पुराणं परात्परं विष्णुमपारपारम् ।
पुरातनं नीतिमतां प्रधानं धृतिक्षमाशांतिपरं क्षितीशम् ॥१४२॥
शुभं सदास्तौमि महानुभावं सहस्त्रमूर्द्धानमनेकपादम् ।
अनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं क्षराक्षरं क्षीरसमुद्रनिद्रम् ॥१४३॥
नारायणं स्तौमि परंपरेशं परात्परं यत्त्रिदशैरगम्यम् ।
त्रिसर्गसंस्थं त्रिहुताशनेत्रं त्रितत्वलक्ष्यं त्रिलयं त्रिनेत्रम् ॥१४४॥
नमामि नारायणमप्रमेयं कृते सितं द्वापरतश्च रक्तम् ।
कलौ च कृष्णं तमथो नमामि ससर्ज योवक्त्रत एवविप्रान् ॥१४५॥
भुजांतरात्क्षत्रमथोरुयुग्माद्विशः पदाग्राच्च तथैव शूद्रान् ।
नमामि तं विश्वतनुं पुराणं परात्परं पारगमप्रमेयम् ॥१४६॥
सूक्ष्ममूर्त्तिं महामूर्त्तिं विद्यामूर्त्तिममूर्तिकम्। कवचं सर्वदेवानां नमस्ये वारिजेक्षणम् ॥१४७॥

अत्यन्त प्रणत होकर शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु की स्तुति किए । **रुद्र ने कहा**— श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ, अमृत स्वरूप, पुराण पुरुष, परात्पर, अनन्त पराक्रम सम्पन्न भगवान् विष्णु का ॥१३८॥ मैं स्मरण करता हूँ, नित्य, तथा वरेण्य पुरुष, अप्रतिम पुराण पुरुष का मैं चिन्तन करता हूँ । परात्पर पूर्वज, उग्रवेग वाले गम्भीर बुद्धि वाले प्रधान (भगवान् विष्णु) का मैं चिन्तन करता हूँ ॥१३९॥ सम्पूर्ण जगत् का नियम न करने वाले, परात्पर तथा परधाम स्वरूप भगवान् श्रीहरि को मैं प्रणाम करता हूँ । पर एवं अपर तत्त्वों के आश्रय पर एवं अपर तत्त्वों के स्वामी विशाल पुरुष ॥१४०॥ विशुद्ध भाव स्वरूप पर, अपर तथा सूक्ष्म तत्त्वों की जिन्होंने सृष्टि की मैं उन भगवान् नारायण की स्तुति कर रहा हूँ । जो पुरातन तत्त्व हैं, नीतिज्ञों में प्रधान, धृति (धैर्य), क्षमा, शान्ति तथा त्रिपाद्विभूति के स्वामी ॥१४२॥ सदा शुभ स्वरूप महान प्रभाव वाले अनन्त शिरों तथा अनेक चरणों वाले, अनन्त भुजाओं वाले, जिनके चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, क्षर एवं अक्षर शरीरक तथा क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान् नारायण की मैं स्तुति करता हूँ ॥१४३॥ परतत्त्व, परेश, परात्पर तत्त्व तथा जिनको देवता भी नहीं जान पाते हैं, त्रिसर्ग में स्थित रहने वाले तीनों अग्नियाँ, जिनके नेत्र हैं, तीनो तत्त्वों (चेतन, अचेतन एवं ईश्वर) के लक्ष्य स्वरूप तीनों प्रकार के (नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक) लयस्वरूप तीन (सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि ही जिनके नेत्र हैं) ऐसे भगवान् नारायण की मैं स्तुति करता हूँ ॥१४४॥ जिनका सत्ययुग में वर्ण श्वेत होता है, द्वापर में रक्त वर्ण का वर्ण होता है तथा जो कलियुग में कृष्ण वर्ण वाले होते हैं तथा जिन्हांने अपने मुख से ही ब्राह्मणों की सृष्टि की, अपनी भुजाओं से क्षत्रियों की जिन्होंने सृष्टि की, दोनों जंघाओं से वैश्यों की सृष्टि तथा अपने पैरों के अग्रभाग से शूद्रों की सृष्टि की; ऐसे भगवान् नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ । मैं उन्हीं विश्व शरीरक पुराण पुरुष, परात्पर तत्त्व, पारंगत

सहस्रशीर्ष देवेशं सहस्राक्षं महाभुजम्। जगत्संव्याप्यतिष्ठंतं नमस्ये परमेश्वरम् ॥१४८॥
शरण्यं शरणं देवं विष्णुं जिष्णुं सनातनम्। नीलमेघप्रतीकाशं नमस्ये वारिजेक्षणम् ॥१४९॥
शुद्धं सर्वगतं नित्यं व्योमरूपं सनातनम्। भावाभावविनिर्मुक्तं नमस्ये सर्वगं हरिम् ॥१५०॥
न चात्र किंचित्पश्यामि व्यतिरिक्तं तवाच्युत। त्वन्मयं च प्रपश्यामि सर्वमेतच्चराचरम् ॥१५१॥
एवं तु वदतस्तस्य रुद्रस्य परमेष्ठिनः। इतीरितस्तेन सनातनः स्वयं परात्परस्तस्य बभूव दर्शने ॥१५२॥
रथांगपाणि गरुडासनो गिरिं विदीपयन्भास्करवत्समुत्थितः।
वरं वृणीष्वेति सनातनोऽब्रवीद्वरस्तवाहं वरदः समागतः ॥१५३॥
इतीरिते रुद्रवरो जगाद ममातिशुद्धिर्भविता सुरेश।
न चास्य पापस्य हरंहिचान्यत्संदृश्यतेऽग्र्यं च ऋते भवंतम् ॥१५४॥
ब्रह्महत्याभिभूतस्य तनुर्मेकृष्णतां गता। शवगंधश्च मे गात्रे लोहस्याभरणानि मे ॥१५५॥
कथं मे न भवेद्देवमतद्रूपं जनार्दनम्। किंकरोमि महादेव येन मे पूर्विका तनूः॥१५६॥
त्वत्प्रसादेन भविता तन्मेकथय चाच्युत।

विष्णुरुवाच

ब्रह्मवध्या परा चोग्रा सर्वकष्टप्रदापरा ॥१५७॥
मनसापि न कुर्वीत पापस्यास्य तु भावनाम्। भवता देववाक्येन निष्ठा चैषा निबोधिता ॥१५८॥

तथा अप्रमेय परमात्मा को प्रणाम करता हूँ ॥१४५-१४६॥ सूक्ष्म मूर्ति, महामूर्ति, विद्यामूर्ति तथा मूर्तिरहित, सभी देवताओं के रक्षक होने से कवच स्वरूप कमल नयन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१४७॥ सहस्र शीर्षा, देवताओं के स्वामी, हजारों नेत्र वाले, महान भुजाओं वाले, सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होकर रहने वाले परमेश्वर श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१४८॥ शरण्य (सबों के रक्षक) शरण स्वरूप, नीलमेघ के समान शरीर की कान्ति वाले शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले दिव्यगुणसम्पन्न, जयशील सनातन भगवान् विष्णु को (मैं नमस्कार करता हूँ) ॥१४९॥ शुद्ध स्वरूप, सर्वत्र विद्यमान नित्य आकाश स्वरूप (आकाश में व्यापक) सनातन, भाव तथा अभाव दोनों प्रकार के पदार्थों से भिन्न सर्वत्र व्यापक श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५०॥ हे अच्युत ! मैं इस संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं देखता हूँ जो आप से रहित हो, मैं इस सम्पूर्ण चराचर को आपके द्वारा व्याप्त ही देखता हूँ ॥१५१॥ इस तरह से रुद्र के कहने पर उनको परात्पर तत्त्व श्रीभगवान् का दर्शन हुआ ॥१५२॥ हाथ में चक्र धारण करके गरुड पर बैठे हुए श्रीभगवान् जिस तरह सूर्य उदयाचल को प्रकाशित करते हैं, उसीतरह उनको श्रीभगवान् का साक्षात्कार हुआ। उन्होंने शङ्करजी से कहा तुम वरदान माँगों मैं तुमको वर देने के लिए आया हूँ॥१५३॥ इस तरह से कहने पर रुद्र ने कहा— भगवन् ! मेरी पूर्ण रूप से शुद्धि हो जाय। इस पाप को दूर करने वाला आपको छोड़कर कोई भी दूसरा समर्थ पुरुष नहीं प्रतीत होता है ॥१५४॥ ब्रह्महत्या के कारण निस्तेज बने हुए मेरा शरीर काला हो गया है। मेरे शरीर से शव की दुर्गन्धि आती है, मेरे भूषण लोहे के हो गये हैं॥१५५॥ हे जनार्दन ! किस उपाय से मेरा पूर्ववत् रूप हो सकेगा ? हे महादेव ! मैं क्या करू ? कि मेरा पहले का ही शरीर हो जाय ॥१५६॥ यह आपकी ही कृपा से सम्भव है, हे अच्युत ! उस उपाय को आप मुझे बतलायें। **भगवान् विष्णु ने कहा—** ब्रह्महत्या सबसे बड़ा, उग्र तथा सभी प्रकार के कष्टों को प्रदान करने वाला पाप है ॥१५७॥ इस पाप को करने की मन से भी भावना नहीं करनी चाहिए। आपने देवताओं के कहने से इस भयङ्कर पाप को किया

इदानीं त्वं महाबाहो ब्रह्मणोक्तं समाचर । भस्म सर्वाणि गात्राणि त्रिकालं घर्षयेस्तनौ ॥१५९॥
शिखायां कर्णयोश्चैव करे चास्थीनि धारय । एवं च कुर्वतो रुद्र कष्टं नैव भविष्यति ॥१६०॥
संदिश्यैवं स भगवांस्ततोंतर्द्धानमीश्वरः । लक्ष्मीसहायो गतवान् रुद्रस्तं नाभिजज्ञिवान् ॥१६१॥
कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन् वसुधामिमाम् । हिमवंतं समैनाकं मेरुणा च सहैव तु ॥१६२॥
कैलासं सकलं विंध्यं नीलं चैव महागिरिम् । कांचीं काशीं ताम्रलिप्तां मगधामाविलां तथा ॥१६३॥
वत्सगुल्मं च गोकर्णं तथा चैवोत्तरान्कुरून् । भद्राश्वं केतुमालं च वर्षंहैरण्यकं तथा ॥१६४॥
कामरूपं प्रभासं च महेन्द्रं चैवपर्वतम् । ब्रह्महत्याभिभूतोऽसौ भ्रमंस्त्राणं नविंदति ॥१६५॥
त्रपान्वितः कपालं तु पश्यन् हस्तगतं सदा । करौ विधुन्वन्बहुशो विक्षिप्तश्च मुहुर्मुहुः ॥१६६॥
यदास्य धुन्वतोहस्तौ कपालं पतते न तु । तदास्यबुद्धिरुत्पन्ना व्रतं चैतत्करोम्यहम् ॥१६७॥
मदीयेनैव मार्गेण द्विजा यास्यंति सर्वतः । ध्यात्वैवं सुचिरं देवो वसुधां विचचार ह ॥१६८॥
पुष्करं तु समासाद्य प्रविष्टोरण्यमुत्तमम् । नानाद्रुमलताकीर्णं नानामृगरवाकुलम् ॥१६९॥
द्रुमपुष्पभरामोदवासितं यत्सुवायुना । बुद्धिपूर्वमिव न्यस्तैः पुष्पै र्भूषितभूतलम् ॥१७०॥
नानागंधरसैरन्यैः पक्वापक्वैः फलैस्तथा । विवेश तरुबृंदेन पुष्पामोदाभिनंदितः ॥१७१॥
अत्राराधयतो भक्त्या ब्रह्मा दास्यति मे वरम् । ब्रह्मप्रसादात्संप्राप्तं पौष्करं ज्ञानमीप्सितम् ॥१७२॥
पापघ्नं दुष्टशमनं पुष्टिश्रीबलवर्द्धनम् । एवं वै ध्यायतस्तय रुद्रस्यामिततेजसः ॥१७३॥
आजगाम ततो ब्रह्मा भक्तिप्रीतोऽथकंजजः । उवाच प्रणतं रुद्रमुत्थाप्य च पुनर्गुरुः ॥१७४॥

है ॥१५८॥ अतएव हे महाबाहो ! ब्रह्माजी ने जो कहा है, उसी को आप इस समय करें । आप तीनों कालों में सम्पूर्ण शरीर में भस्म मलें ॥१५९॥ आप शिखा, दोनों कान तथा हाथ में हड्डी धारण करें । हे रुद्र ! ऐसा करने से आपको कष्ट नहीं होगा ॥१६०॥ इस तरह से निर्देश करके भगवान् अन्तर्धान हो गये । वे लक्ष्मीजी के साथ चले गये; किन्तु रुद्र उसे नहीं जान सके ॥१६१॥ हाथ में कपाल लिए शङ्करजी पृथिवी पर घूमते हुए, हिमालय नामक पर्वत, सुमेरु पर्वत, कैलास पर्वत सम्पूर्ण विन्ध्य पर्वत, महान् नीलगिरि पर तथा काञ्चपुरी, काशीपुरी, ताम्रलिप्तापुरी, मगध, वत्सगुल्म तीर्थ, गोकर्ण तीर्थ, उत्तरकुरु (कुरुक्षेत्र) भद्राश्व वर्ष, केतुमाल वर्ष पर अपने हाथ को देखते हुए गये, हिरण्य वर्ष, कामरूप, प्रभास क्षेत्र तथा महेन्द्र पर्वत पर वे गये । किन्तु ब्रह्महत्या से अभिभूत होने के कारण उनको कहीं भी शान्ति नहीं मिली ॥१६२-१६५॥ हाथ में ही सदा कपाल के सटे रहने के कारण वे अत्यन्त लज्जित थे । वे बार-बार प्रायः अपने हाथ को झटकते थे ॥१६६॥ दोनों हाथों के झटकने पर भी कपाल नहीं गिरता था तब उनको इस बात का ज्ञान हुआ कि मैं इस व्रत को करूँ ॥१६७॥ सभी ब्राह्मण मेरा ही अनुगमन करेंगे । इसतरह से ध्यान करके शङ्करजी बहुत समय तक पृथिवी पर घूमते रहे ॥१६८॥ वे पुष्कर तीर्थ में जाकर वहाँ के श्रेष्ठ वन में प्रवेश कर गये । वहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लतायें थीं तथा अनेक प्रकार के पक्षी बोलते रहते थे । वृक्षों के पुष्पों की सुगन्धि से युक्त उसे वायु सुगन्धित बना रही थी । लग रहा था की उस वन की भूमि को कोई दूसरा पुष्पों से भूषित कर दिया हो ॥१६९-१७०॥ वह वन कच्चे पके फलों से भरा था । वृक्ष समूह के द्वारा पुष्पों की सुगन्धि से अभिनंदित शङ्करजी उस वन में प्रवेश कर गये ॥१७१॥ यहाँ पर आराधना करने से ब्रह्माजी मुझे वरदान देंगे । ब्रह्माजी की ही कृपा से मुझे पुष्कर का ज्ञान हुआ था ॥१७२॥ यह तीर्थ पाप का नाश करने वाला, पुष्टि को बढाने वाला ऐश्वर्य तथा बल को बढाने वाला है । जब अमित तेजस्वी शङ्करजी इस तरह से ध्यान कर रहे थे ॥१७३॥

दिव्यव्रतोपचारेण सोहमाराधितस्त्वया। भवता श्रद्धयात्यर्थं ममदर्शनकांक्षया॥१७५॥
व्रतस्था मां हि पश्यंति मनुष्या देवतास्तथा। तदिच्छया प्रयच्छामि वरं यत्प्रवरं वरम् ॥१७६॥
सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं व्रतं यस्मान्निषेवितम्। मनोवाक्कायभावैश्च संतुष्टेनांतरात्मना ॥१७७॥
कं ददामि च वै कामं वद भोस्ते यथेप्सितम्।

रुद्र उवाच

एष एवाद्य भगवन्सुपर्याप्तो महावरः ॥१७८॥
यद्दृष्टोसि जगद्वंद्य जगत्कर्तर्नमोस्तुते। महता यज्ञसाध्येन बहुकालार्जितेन च ॥१७९॥
प्राणव्ययकरेणत्वं तपसा देवदृश्यते । इमं कपालं देवेश न करात्पतितं विभो ॥१८०॥
त्रपाकरा ऋषीणां च चर्यैषा कुत्सिता विभो । त्वत्प्रसादाद्व्रतं चेदं कृतं कापालिकं तु यत्॥१८१॥
सिद्धमेतत्प्रपन्नस्य महाव्रतमिहोच्यताम् । पुण्यप्रदेशे यस्मिंस्तु क्षिपामीदं वदस्व मे ॥१८२॥
पूतो भवामि येनाहं मुनीनां भावितात्मनाम् ।

ब्रह्मोवाच

अविमुक्तं भगवतः स्थानमस्ति पुरातनम् ॥१८३॥
कपालोचनं तीर्थं तव तत्र भविष्यति । अहंच त्वं स्थितस्तत्र विष्णुश्चापि भविष्यति ॥१८४॥
दर्शने भवतस्तत्र महापातकिनोपि ये। तेऽपि भोगान्समश्नंति विशुद्धाभवने मम ॥१८५॥
वरणापि असीचापि द्वे नद्यौ सुरवल्लभे । अंतराले तयोः क्षेत्रे वध्या न विशति क्वचित्॥१८६॥
तीर्थानां प्रवरं तीर्थं क्षेत्राणां प्रवरं तव। आदेहपतनाद् ये तु क्षेत्रं सेवंति मानवाः ॥१८७॥

उसी समय शङ्करजी की भक्ति से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी वहाँ आये । प्रणाम करने वाले रुद्र को उठाकर ब्रह्माजी कहे तुम्हारे इस दिव्य व्रतोंपचार के द्वारा, मैं तुमसे आराधित हो चुका हूँ, मेरा दर्शन पाने की अभिलाषा से आपने यह श्रद्धा पूर्वक व्रत किया ह ॥१७४-१७५॥ व्रत करने वाले ही देवता तथा मनुष्य मेरा दर्शन कर पाते हैं । अतएव मैं अपनी इच्छा से तुम्हें वरदान प्रदान करता हूँ ॥१७६॥ चूकि तुमने अपनी सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए मन, वाणी तथा शरीर से तथा सन्तुष्ट अन्तरात्मा से मेरा व्रत किया है ॥१७७॥ अब बतलाओं मैं तुम्हारी किस इच्छा को पूर्ण करूँ ? जो तुम्हें अभिप्रेत हो उसे तुम बतलाओ । **रुद्र ने कहा—** हे भगवन् ! आपका दर्शन ही महान वर पर्याप्त है ॥१७८॥ हे जगत् कर्ता ब्रह्माजी ! आपने मुझे दर्शन दिया है । आपको नमस्कार है । बहुत काल से अर्जित पुण्य से तथा महान यज्ञ करने से तथा बहुत बड़ी तपस्या से आपका दर्शन मिलता है । हे विभो ! यह कपाल अभी तक मेरे हाथ से नहीं गिरा ॥१८०॥ हमारा यह आचरण ऋषियों के बीच में लज्जास्पद है । आपकी ही कृपा से मैंने यह कपालिक व्रत लिया है ॥१८१॥ आपके शरणागत हूँ, अतएव आप इसे पूरा कर दीजिये । आप यह भी बतलायें कि मैं इसको किस पुण्य स्थान में फेंकू ॥१८२॥ जिससे पवित्र मुनियों के बीच में मैं पवित्र हो जाऊँ । **ब्रह्माजी ने कहा—** श्रीभगवान् का प्राचीन स्थान अविमुक्तक्षेत्र वाराणसी है ॥१८३॥ वहीं पर तुम्हारा कपाल मोचन तीर्थ होगा । वहाँ पर मैं, तुम तथा विष्णु तीनों निवास करेंगे ॥१८४॥ वहाँ पर महापातकी पुरुष भी यदि आपका दर्शन करेंगे तो वे शुद्ध होकर मेरे लोक में जायेंगे ॥१८५॥ वरुणा तथा अस्सी ये दोनों नदियाँ देवताओं के लिए भी दुर्लभ हैं । उन दोनों नदियों के बीच के क्षेत्र में कोई भी पापी प्रवेश नहीं करता है ॥१८६॥ वह आपका सर्वोत्तम तीर्थ तथा सर्वोत्तम क्षेत्र है । जो मनुष्य जीवन भर उस क्षेत्र में निवास करते हैं ॥१८७॥ वे मरकर हंस विमान पर

ते मृता हंसयानेन दिवं यांत्यकुतोभयाः। पंचक्रोशप्रमाणेन क्षेत्रं दत्तं मया तव ॥१८८॥
क्षेत्रमध्याद्यदा गंगागमिष्यति सरित्पतिम् । तदासा महतीपुण्या पुरी रुद्र भविष्यति ॥१८९॥
पुण्या चोदङ्मुखी गंगा प्राची चापि सरस्वती। उदङ्मुखी योजने द्वे गच्छेते जाह्नवी नदी॥१९०॥
तत्र वै विवुधाः सर्वे मया सह सवासवाः। आगता वासमेष्यंति कपालं तत्र मोचय ॥१९१॥
तस्मिंस्तीर्थे तु ये गत्वा पिंडदानेन वैपितृन् । श्राद्धैस्तु प्रीणयिष्यंति तेषां लोकोऽक्षयो दिवि॥१९२॥
वाराणस्यां महातीर्थे नरःस्नातो विमुच्यते । सप्तजन्मकृतात्पापाद्गमनादेव मुच्यते ॥१९३॥
तत्तीर्थं सर्वतीर्थानामुत्तमं परिकीर्तितम्। त्यजंति तत्र ये प्राणान्प्राणिनः प्रणतास्तव ॥१९४॥
रुद्रत्वं ते समासाद्य मोदंते भवता सह। तत्रापि हि तु यद्दत्तं दानं रुद्रयतात्मना ॥१९५॥
स्यान्महच्च फलं तस्य भविता भावितात्मनः। स्वांगस्फुटित संस्कारं तत्र कुर्वंति ये नराः ॥१९६॥
ते रुद्रलोकमासाद्य मोदंते सुखिनः सदा । तत्र पूजा जपो होमः कृतो भवति देहिनाम्॥१९७॥
अनंतफलदः स्वर्गो रुद्रभक्तियुतात्मनः। तत्र दीपप्रदाने तु ज्ञानचक्षुर्भवेन्नरः ॥१९८॥
अव्यंगं तरुणं सौम्यं रूपवंतं तु गोसुतम्। योङ्कयित्वा मोचयति सयाति परमं पदम् ॥१९९॥
पितृभिः सहितो मोक्षं गच्छते नात्र संशयः। अथ किं वहुनोक्तेन यत्तत्र क्रियते नरैः ॥२००॥
कर्मधर्मसमुद्दिश्य तदनंतफलं भवेत् । स्वर्गापवर्गयोर्हेतुस्तद्धितीर्थम्मतं भुवि ॥२०१॥
स्नानाज्जपात्तथाहोमादनंतफल साधनम् । गत्वा वाराणसीं तीर्थं भक्त्या रुद्र परायणः॥२०२॥
ये तत्र पंचतां प्राप्ता भक्तास्ते नात्रसंशयः । वसवः पितरो ज्ञेया रुद्राश्चैव पितामहाः ॥२०३॥

सवार होकर निर्भय होकर स्वर्गलोक जाते हैं। उस पाँच कोस के वीच का क्षेत्र मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥१८८॥ उस क्षेत्र के वीच से होकर गङ्गा नदी समुद्र में मिलेगी। हे रुद्र ! उस समय वह पुरी अत्यन्त पुण्यमयी हो जायेगी ॥१८९॥ उत्तर वाहिनी गङ्गा तथा पूर्व वाहिनी सरस्वती नदी ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं। वहाँ पर दो योजन पर्यन्त गङ्गा नदी उत्तर वाहिनी हैं ॥१९०॥ वहीं पर इन्द्र इत्यादि सभी देवता तथा मैं आकर निवास करेंगे। वहीं पर तुम कपाल का मोचन करो ॥१९१॥ उस क्षेत्र में जाकर जो लोग श्राद्ध के द्वारा अपने पितरों को प्रसन्न करेंगे वे लोग मरने के वाद स्वर्ग के अक्षय लोकों में जायेंगे ॥१९२॥ वाराणसी तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है, और उसके सात जन्मों के पाप उस तीर्थ में जाने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं ॥१९३॥ उस तीर्थ में जो कोई भी तुम्हारा भक्त प्राणी अपने प्राणों का परित्याग करेंगे वे ॥१९४॥ रुद्रत्व को प्राप्त करके आपके साथ आनन्दानुभव करेंगे। हे रुद्र ! वहाँ पर यदि कोई जितेन्द्रिय रहकर दान करता है ॥१९५॥ तो उसके कारण उसको महान फल की प्राप्ति होती है। वहाँ पर जो मनुष्य स्वांग स्फुटित संस्कार करते हैं ॥१९६॥ वे सुख पूर्वक रुद्रलोक मे जाकर आनन्दानुभव करते हैं। वहाँ पर रुद्रभक्त मनुष्यों द्वारा की गयी पूजा, जप तथा होम ॥१९७॥ अनन्त फल प्रदान करता है। वहाँ पर दीपदान करके मनुष्य ज्ञानचक्षु हो जाता है ॥१९८॥ जो व्यक्ति सीधा, युवक तथा सौम्य रूप वाले सांड को त्रिशूल से दाग कर छोड़ देता है, वह परमपद को प्राप्त करता है ॥१९९॥ वह अपने पितरों के साथ मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। वहुत अधिक कहने से क्या लाभ है ? मनुष्यों द्वारा वहाँ धर्म के उद्देश्य से जो कोई भी कर्म किया जाता है, वह अनन्त फल प्रदान करने वाला होता है। वह भूलोक में स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले तीर्थ के रूप में प्रख्यात है ॥२००-२०१॥ वहाँ पर स्नान, जप तथा होम करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। जो रुद्रभक्त व्यक्ति वाराणसी तीर्थ में जाकर ॥२०२॥ अपने पाँच भौतिक शरीर

प्रपितामहास्तथादित्या इत्येषा वैदिकी श्रुतिः । त्रिविधः पिंडदानाय विधिरुक्तो मयानघ ॥२०४॥
मानुषैः पिंडदानं तु कार्यमत्रागतैस्सदा । पिंडदानं च तत्रैव स्वपुत्रैः कार्यमादरात् ॥२०५॥
सुपुत्रास्ते पितृणां तु भवंति सुखदायकाः । प्रोक्तं तीर्थं मया तुभ्यं दर्शनादपि मुक्तिदम् ॥२०६॥
स्नात्वा तु सलिले तत्र मुच्यते जन्मबंधनात्। विमुक्ते ब्रह्महत्यायास्तत्र रुद्रयथासुखम् ॥२०७॥
अविमुक्ते मया दत्ते तिष्ठ त्वं भार्यया सह।

रुद्र उवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेष्वहं विष्णुना सह ॥२०८॥
तिष्ठामि भवतोक्तेन वर एष वृतो मया । अहं देवो महादेव आराध्यो भवता सदा ॥२०९॥
वरं दास्यामि तं चाहं संतुष्टेनांतरात्मना । विष्णोश्चाहं प्रदास्यामि वरांश्च मनसीप्सितान् ॥२१०॥
सुराणां चैव सर्वेषां मुनीनां भवितात्मनाम्। अहं दाता अहं याच्यो नान्यो भाव्यः कथंचन॥२११॥

ब्रह्मोवाच

एवं करिष्येऽहं रुद्र यत्वयोक्तं वचःशुभम् । नारायणश्च ते वाक्यं कर्ता सर्वं न संशयः ॥२१२॥
विसृज्यैवं तदा रुद्रं ब्रह्मा चांतरधीयत । वाराणस्यां महादेवो गत्वातीर्थं न्यवेशयत्॥२१३॥

इति श्रीपद्ममहापुराण प्रथमे सृष्टिखंडे रुद्रस्य ब्रह्मवध्यानाशश्चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

का परित्याग कर देते हैं; वे निश्चित रूप से भक्त हैं । उनके पितृगण वसु हो जाते हैं, पितामह रुद्र हो जाते हैं॥२०३॥ और उनके प्रपितामह आदित्य हो जाते हैं, यह वेदों के वाक्य बतलाते हैं । हे अनघ ! मैंने तीन प्रकार के पिण्डदान की विधि बतलायी है ॥२०४॥ इस क्षेत्र में आये मनुष्यों को पिण्डदान अवश्य करना चाहिए । पुत्रों को भी अपने पिता का पिण्डदान वहीं आदर पूर्वक करना चाहिए ॥२०५॥ ऐसे सुपुत्र अपने पितरों को सुख देने वाले होते है । मैंने जिस तीर्थ को तुम्हें बतलाया है वह दर्शन करने मात्र से भी मुक्ति प्रदान करने वाला है ॥२०७॥ मैंने तुम्हे अविमुक्त तीर्थ प्रदान किया है, वहाँ पर तुम अपनी पत्नी के साथ निवास करो । **रुद्र ने कहा—** पृथिवीं में जितने तीर्थ हैं, उन सबों में मैं भगवान् विष्णु के साथ आपकी आज्ञा के अनुसार निवास करूँ यह वरदान मैंने आप से माँगा है । हे महादेव ! मैं आपके द्वारा आराध्य देव होऊँ ॥२०८-२०९॥ सन्तुष्ट अन्तरात्मा वाला होकर मैं भी आपको वरदान प्रदान करूँगा । मैं भगवान् विष्णु को भी उनके अभिलाषित वरों को प्रदान करूँगा ॥२१०॥ सभी देवताओं तथा सभी भक्ति प्रवण ऋषियों को वरदान देने वाला मैं ही होऊँ । वे मुझसे ही याचना करें । वहाँ कोई दूसरा दाता और याच्य न हो ॥२११। **ब्रह्माजी ने कहा—** हे रुद्र जो कुछ तुमने कहा है, मैं वहीं करूँगा । भगवान् नारायण भी तुम्हारे वाक्यों का पालन करने वाले होयेंगे ॥२१२॥ इसतरह से रुद्र को विदा करके ब्रह्माजी भी अन्तर्धान हो गये । महादेव भी वाराणसी तीर्थ में जाकर निवास करने लगे ।

इस तरह श्रीपद्ममहापुाण के प्रथम सृष्टिखण्ड के रुद्र की ब्रह्महत्या का नाश नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

किं कृतं ब्रह्मणा ब्रह्मन्प्रेष्य वाराणसीं पुरीम्। जनार्दनेन किं कर्म शंकरेण च यन्मुने ॥१॥
कथं यज्ञः कृतस्तेन कस्मिंस्तीर्थे वदस्व मे। के सदस्या ऋत्विजश्च सर्वास्तान्प्रब्रवीहि मे ॥२॥
के देवास्तर्पितास्तेन एतन्मे कौतुकं महत्।

पुलस्त्य उवाच

श्रीनिधानं पुरं मेरोः शिखरे रत्नचित्रितम् ॥३॥
अनेकाश्चर्यनिलयं बहुपादपसंकुलम्। विचित्रधातुभिश्चित्रं स्वच्छस्फटिकनिर्मलम् ॥४॥
लतावितानशोभाढ्यं शिखिशब्दविनादितम्। मृगेन्द्ररववित्रस्तगज यूथसमाकुलम् ॥५॥
निर्झरांबुप्रपातोत्थ शीकरासारशीतलम्। वाताहततरुव्रातप्रसन्नापानचित्रितम् ॥६॥
मृगनाभिवरामोदवासिताशेषकाननम् । लतागृहरतिश्रान्तसुप्तविद्याधराध्वगम् ॥७॥
प्रगीतकिन्नरव्रातमधुरध्वनिनादितम् । तस्मिन्ननेक विन्यासशोभिताशेषभूमिकम् ॥८॥
वैराजं नाम भवनं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । तत्र दिव्यांगनोद्गीतमधुरध्वनिनादिता ॥९॥
पारिजाततरूत्पन्नमंजरीदाममालिनी । रत्नरश्मिसमूहोत्थबहुवर्णविचित्रिता ॥१०॥
विन्यस्त स्तंभकोटिस्तु निर्मलादर्शशोभिता । अप्सरोनृत्यविन्याससविलासोल्लासलासिता ॥११॥

सुमेरु पर्वत पर वैराज भवन की कान्तिमती सभा में ब्रह्माजी के चिन्ता करने के पश्चात् पृथिवी पर जाकर ब्रह्माजी का वृक्षो को वर प्रदान करने के प्रसङ्ग में वहाँ पर निवास करने का वर्णन, विष्णु के साथ सभी देवों का पृथिवी पर जाना, ब्रह्माजी का देवताओं को उपदेश, पुष्कर तीर्थ की उत्पत्ति तथा वहाँ पर निवास विधि का वर्णन, तीन प्रकार की भक्तियों तथा पुष्कर तीर्थ में मरने तथा निवास करने का फल, ब्राह्मणों का लक्षण तथा आश्रम धर्म का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे मुने ! शङ्करजी को वाराणसी में भेजकर ब्रह्माजी ने तथा भगवान् विष्णु ने कौन सा कर्म किया ?॥१॥ आप बतलायें कि ब्रह्माजी ने किस तीर्थ में कौन सा यज्ञ किया ? उस यज्ञ के सदस्य कौन थे ? तथा ऋत्विक्‌गण कौन हुए ? इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ॥२॥ मुझे यह भी उत्कण्ठा है कि उस यज्ञ के आराध्य देवता कौन थे ? **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** सुमेरु पर्वत के शिखर पर रत्नों से जटित श्रीनिधान पुरी है।॥३॥ वह अनेक आश्चर्यों तथा बहुत वृक्षों से व्याप्त है । अनेक धातुओं से सुशोभित, स्वच्छ स्फटिक मणि के कारण वह पुरी निर्मल बनी हुयी है ॥४॥ लताओं की शोभा से सम्पन्न उस नगरी में मयूरों की ध्वनि सुनायी देती रहती है । वहाँ पर सिंहों की ध्वनि से भयभीत बना हुआ हाथियों का समूह रहता है ॥५॥ झरनों से बहने वाले जल के कणों से शीतल वायु से आन्दोलित, वृक्ष समूह से सुशोभित ॥६॥ उस नगरी के वन कस्तूरी की सुगन्धि से सुगन्धित हैं । रीतिक्रीडा से श्रान्त विद्याधरों का समूह वहाँ के लतागृह में शयन करता है ॥७॥ वह नगरी किन्नरों के गायन ध्वनि से निनादित होती रहती है । वहाँ की सम्पूर्ण भूमि अनेक प्रकार के सजावटों से सुशोभित होती रहती है।॥८॥ वहाँ पर वैराज नामक ब्रह्माजी का भवन है । उस भवन में दिव्याङ्गनाओं की ध्वनि से निनादित ॥९॥ पारिजात वृक्ष की मञ्जरियों की माला से युक्त, रत्नों की कान्तिसमूह से जन्य अनेक वर्णो से विचित्रित ॥१०॥ स्तम्भों

बह्वातोद्यसमुत्पन्नसमूहस्वननादिता । लयतालयुतानेकगीतवादित्रशोभिता ॥१२॥
सभाकांतिमती नाम देवानां शर्मदायिका । ऋषिसंघसमायुक्ता मुनिबृंदनिषेविता ॥१३॥
द्विजातिसामशब्देन नादितानंददायिनी । तस्यां निविष्टो देवेशस्संध्यासक्तः पितामहः ॥१४॥
ध्यायतिस्म परंदेवं येनेदं निर्मितं जगत् । ध्यायतो बुद्धिरुत्पन्ना कथं यज्ञं करोम्यहम् ॥१५॥
कस्मिन्स्थाने मया यज्ञः कार्यः कुत्र धरातले । काशी प्रयागस्तुंगाच नैमिषं शृंखलं तथा ॥१६॥
कांची भद्रा देविका च कुरुक्षेत्रं सरस्वती । प्रभासादीनि तीर्थानि पृथिव्यामिह मध्यतः ॥१७॥
क्षेत्राणि पुण्यतीर्थानि संति यानीह सर्वशः । मदादेशाच्च रुद्रेण कृतान्यन्यानि भूतले ॥१८॥
यथाहं सर्वदेवेषु आदिदेवो व्यवस्थितः । तथाचैकं परं तीर्थमादिभूतं करोम्यहम् ॥१९॥
अहं यत्र समुत्पन्नः पद्मं तद्विष्णुनाभिजम् । पुष्करं प्रोच्यते तीर्थमृषिभिर्वेदपाठकैः ॥२०॥
एवं चिंतयतस्तस्य ब्रह्मणस्तु प्रजापतेः । मतिरेषा समुत्पन्ना व्रजाम्येष धरातले ॥२१॥
प्राक्स्थानं स समासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् । नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥२२॥
नानापक्षिरवाकीर्णं नानामृगगणाकुलम् । द्रुमपुष्पभरामोदै र्वासयद्यत्सुरासुरान् ॥२३॥
बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तैः पुष्पैर्भूषित भूतलम् । नानागंधरसैः पक्वापक्वैश्च षड्तूद्भवैः ॥२४॥
फलैः सुवर्णरूपाढ्यै र्घ्राणदृष्टिमनोहरैः । जीर्णपत्रं तृणं यत्र शुष्ककाष्ठफलानि च ॥२५॥
बहिः क्षिपति जातानि मारुतोनुग्रहादिव । नानापुष्पसमूहानां गंधमादाय मारुतः ॥२६॥

में लगे करोड़ों दर्पणों से सुशोभित, अप्सराओं के नृत्य विलास के उल्लास से सुशोभित ॥११॥ अनेक प्रकार के आतोद्य (वाद्य सामग्री) की ध्वनि से निनादित, लय तथा ताल से युक्त अनेक गीतों तथा वाद्यों से सुशोभित ॥१२॥ देवताओं को सुख देने वाली कान्तिमती नाम की सभा है । वह ऋषियों के समुदाय से युक्त तथा मुनिवृंद से सेवित है ॥१३॥ ब्राह्मणों की सामध्वनि से निनादित होने के कारण वह आनन्दप्रद है । उसके बीच में ब्रह्माजी बैठते हैं॥१४॥ वे वहाँ पर सम्पूर्ण जगत् के निर्माता परब्रह्म का ध्यान करते हैं । वहीं पर ध्यान करते समय उनकी बुद्धि उत्पन्न हुयी कि मैं कैसे यज्ञ करूँ ?॥१५॥ मुझे पृथिवी के किस स्थान पर यज्ञ करना चाहिए । काशी तीर्थ, प्रयाग तीर्थ, तुंगातीर्थ, नैमिषतीर्थ, शृंखल तीर्थ ॥१६॥ काञ्चीपुरी, भद्रानदी, देविकानदी, कुरुक्षेत्र तीर्थ, सरस्वती नदी, प्रभासक्षेत्र इत्यादि पृथिवी पर विद्यमान सभी तीर्थो में ॥१७॥ तथा मेरे एवं रुद्र के आदेश से जो तीर्थ हो गये हैं॥१८॥ उसीतरह से मैं सभी देवताओं में आदि देवता हूँ उसी तरह मैं एक सर्वोत्तम तीर्थ को बना देता हूँ ॥१९॥ जहाँ पर मैं उत्पन्न हुआ था भगवान् विष्णु की नाभि से उत्पन्न होने वाले कमल को वेद पाठक ऋषिगण पुष्कर तीर्थ कहते हैं ॥२०॥ इसतरह से विचार करते हुए ब्रह्माजी के मन में यह बात आयी कि सर्वप्रथम मैं पृथिवी पर चलूं ॥२१॥ सर्वप्रथम वे उस स्थान पर आकर उस उत्तम वन में प्रवेश किए । वह वन अनेक प्रकार के वृक्षों, लताओं तथा उनके पुष्पों से सुशोभित था ॥२२॥ वहाँ पर अनेक प्रकार के पक्षी बोल रहे थे तथा वहाँ पर अनेक प्रकार के मृग थे । वह वन वृक्षों के पुष्प समूह की सुगन्धि से देवताओं तथा असुरों को सुगन्धित बना रहा था॥२३॥ समझ-बुझकर पुष्पो से सजायी गयी के समान वहाँ की भूमि थी । अनेक प्रकार के गन्धों एवं रसों से युक्त देखने में सुन्दर, घ्राण, दृष्टि तथा मन को आकृष्ट करने वाले छहो ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले, कच्चे पके फलों के रस की सुगन्धि से युक्त था वह वन वहाँ के सूखे पत्ते, घास फल तथा काष्ठों को जो वहाँ पर होते थे, उनको वायु कृपा करके बाहर फेंक देने का काम करते थे । अनेक प्रकार के पुष्प समूह के गन्ध को लेकर ॥२४-२६॥ शीतल वायु चलती थी और

शीतलो वाति खंभूमिं दिशो यत्राभिवासयन्। हरितस्निग्धनिश्छिद्रै रकीटकवनोत्कटैः ॥२७॥
वृक्षैरनेकसंज्ञै र्यद्भूषितं शिखरान्वितैः। अरोगैर्दर्शनीयैश्च सुवृत्तैः कैश्चिदुज्ज्वलैः ॥२८॥
कुटुंबमिवविप्राणामृत्विग्भि र्भाति सर्वतः। शोभंते धातु संकाशैरंकुरैः प्रावृता द्रुमाः॥२९॥
कुलीनैरिव निश्छिद्रैः स्वगुणैः प्रावृता नराः। पवनाविद्धशिखरैः स्पृशंतीव परस्परम् ॥३०॥
आजिघ्रंतीव चान्योन्यं पुष्पशाखावतंसकाः। नागवृक्षाः क्वचित्पुष्पै र्द्रुमवानीरकेसरैः ॥३१॥
नयनैरिव शोभंते चंचलैः कृष्णतारकैः। पुष्पसंपन्नशिखराः कर्णिकारद्रुमाः क्वचित् ॥३२॥
युग्मयुग्मा द्विधा चेह शोभंन्त इव दंपती। सुपुष्पप्रभवाटोपैस्सियुवारद्रुपंक्तयः ॥३३॥
मूर्तिमत्य इवाभांति पूजिता वनदेवताः। क्वचित्क्वचित्कुंदलताः सपुष्पाभरणोज्वलाः ॥३४॥
दिक्षु वृक्षेषु शोभन्ते बालचंद्रा इवोच्छ्रिताः। सर्जार्जुनाः क्वचिद्भान्ति वनोद्देशेषु पुष्पिताः॥३५॥
धौतकौशेयवासोभिः प्रावृताः पुरुषा इव। अतिमुक्तकवल्लीभिः पुष्पिताभिस्तथा द्रुमाः ॥३६॥
उपगूढा विराजंते स्वनारीभिरिवप्रियाः। अपरस्परसंसक्तैः सालाशोकाश्च पल्लवैः ॥३७॥
हस्तैर्हस्तान्स्पृशंतीव सुहृदश्चिरसंगताः। फलपुष्पभरा नम्राः पनसाः सरलार्जुनाः ॥३८॥
अन्योन्यमर्चयंतीव पुष्पैश्चैव फलैस्तथा। मारुतावेगसंश्लिष्टैः पादपास्सालबाहुभिः ॥३९॥
अभ्याशमागतं लोकं प्रतिभावैरिवोत्थिताः। पुष्पाणामवरोधेन सुशोभार्थं निवेशिताः ॥४०॥
वसंतमहमासाद्य पुरुषान्स्पर्द्धयंति हि। पुष्पशोभाभरनतैः शिखरै र्वायुकंपितैः॥४१॥
नृत्यंतीव नराः प्रीताः स्रगलंकृतशेखराः। शृंगाग्रपवनक्षिप्ताः पुष्पाबलियुताद्रुमाः ॥४२॥

आकाश भूमि तथा दिशाओं को सुगन्धित बनाती रहती थी। हरे चिकने छिद्र रहित कीट रहित, वन में उत्पन्न अनेक नामों वाले वृक्षों से सुशोभित, शिखरों से युक्त, निरोग, दर्शनीय, सुन्दर आचरण वाले देदीप्यमान ऋत्विजों से युक्त, ब्राह्मणों के कुटुम्व के समान सुशोभित धातुओं के समान अंकुरों से घिरे हुए वृक्ष उसी तरह सुशोभित होते थे; जिसतरह कुलीन तथा दोष रहित पुरुष अपने गुणों से सुशोभित होते हैं। वायु से टकराने के कारण लगता था कि उनका (वृक्षों का) शिरोभाग एक-दूसरे को स्पर्श कर रहा हो ॥२७-३०॥ पुष्पों तथा शाखाओं से युक्त नागवृक्ष जैसे एक दूसरे का घ्राणन कर रहे हों। कहीं पर पुष्पों द्वारा वेतस वृक्ष काले-काले नेत्रों की काली पुतलियो के समान केसरों से सुशोभित होते थे। कहीं पर पुष्पों से युक्त कर्णिकार वृक्ष ॥३१-३२॥ पर दो-दो जोड़ों (दम्पतियों) के समान शोभते थे। सुन्दर पुष्पों से युक्त सिन्दुवार वृक्ष की पंक्तियाँ ॥३३॥ पूजा की गयी मूर्तिमान वन देवता के समान सुशोभित होती थीं। कहीं-कही पर पुष्प रूपी अलङ्कार से सुशोभित कुन्दलता ॥३४॥ दिशाओं के वृक्षों में उदित होने वाले चन्द्रमा के समान शोभती थी। वन के किसी प्रदेश में सर्ज तथा अर्जुन के पुष्पित वृक्ष सुशोभित होते थे ॥३५॥ धोये गये रेशमी वस्त्र को धारण किए हुए पुरुष के समान वृक्ष विकसित अतिमुक्तक लताओं से अपनी प्रिय-पत्नियों से आलिङ्गित पुरुषों के समान लगते थे। परस्पर में एक-दूसरे से नहीं सटे हुए पल्लवों द्वारा शाल तथा अशोक के वृक्ष ॥३६-३७॥ फल तथा पुष्पों से भरे हुए पनस (कटहल, सरल तथा अर्जुन) के वृक्ष दीर्घ काल के बाद मिलकर परस्पर में एक-दूसरे का हाथ पकड़ने वाले मित्र के समान सुशोभित होते थे। वायु के वेग के कारण एक-दूसरे से सटे हुए वृक्ष साल रूपी अपनी भुजाओं से परस्पर में एक-दूसरे की मानो पूजा कर रहे थे ॥३८-३९॥ वह सन्निकट में आये हुए लोगों के प्रति सद्भावना के कारण पुष्पों के समूह को मानो शोभा के लिए बिछाया गया हो॥४०॥ वसन्त की शोभा को प्राप्त करके पुष्प की शोभा के भार से झुके हुए शिरों वाले वायु के द्वारा कंपाये गये

सवल्लीकाः प्रनृत्यंति मानवा इव सप्रियाः । स्वपुष्पनतवल्लीभिः पादपाः क्वचिदावृताः ॥४३॥
भांतितारागणैश्चित्रै शरदीव नभस्तलम् । द्रुमाणामथवाग्रेषु पुष्पितामालतीलताः ॥४४॥
शेखरा इव शोभंते रचिता बुद्धिपूर्वकम् । हरिताः कांचनच्छायाः फलिताः पुष्पितादुमाः ॥४५॥
सौहदं दर्शयंतीव नराः साधुसमागमे । पुष्पकिंजल्ककपिला गताः सर्वदिशासु च ॥४६॥
कदंबपुष्पस्य जयं घोषयंतीव षट्पदाः । क्वचित्पुष्पासवक्षीबाः संपतंति ततस्ततः ॥४७॥
पुंस्कोकिलगणा वृक्षगहनेष्विव सप्रियाः । शिरीष पुष्पसंकाशाः शुका मिथुनशः क्वचित् ॥४८॥
कीर्तयंति गिरश्चित्राः पूजिता ब्राह्मणा यथा । सहचारिसु संयुक्ता मयूराश्चित्रबर्हिणः ॥४९॥
वनांतेष्वपि नृत्यांति शोभंत इव नर्त्तकाः । कूजंतः पक्षिसंघाता नानारुतविराविणः ॥५०॥
कुर्वंति रमणीयं वै रमणीयतरं वनम् । नानामृगगणाकीर्णं नित्यं प्रमुदितांडजम् ॥५१॥
तद्वनं नंदनसमं मनोदृष्टि विवर्द्धनम् । पद्मयोनिस्तु भगवांस्तथा रूपं वनोत्तमम् ॥५२॥
ददर्शादर्शवद् दृष्ट्या सौम्यया पावयन्निव । तावृक्षपंक्तयः सर्वा दृष्ट्वा देवं तथा गतम् ॥५३॥
निवेद्य ब्रह्मणे भक्त्या मुमुचुः पुष्पसंपदः । पुष्पप्रतिग्रहं कृत्वा पादपानां पितामहः ॥५४॥
वरंवृणीध्वं भद्रं वः पादपानित्युवाच सः । एवमुक्ताः भगवता तरवो निरवग्रहाः ॥५५॥
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे नमस्कृत्वा विरिंचनम् । वरं ददासि चेद्देव प्रपन्नजनवत्सल ॥५६॥
इहैव भगवन्नित्यं वने संनिहितो भव । एष नःपरमः कामः पितामह नमोस्तुते ॥५७॥

वृक्ष पुरुषों से यहाँ स्पर्धा करते हों । शिखा के अग्रभाग में वायु के द्वारा कंपाये गये पुष्पसमूह से युक्त वृक्ष ऐसे लग रहे थे जैसे माला, अलङ्कार तथा मुकुट से युक्त मनुष्य नृत्य कर रहे हों ॥४१-४२॥ पुष्पों से युक्त झुकी हुयी लताओं से घिरे हुए वृक्ष लताओं के साथ प्रियाओं के साथ नृत्य करते हुए मनुष्यों के समान लगते थे ॥४३॥ अनेक प्रकार के तारा समूह से युक्त शरत् कालीन रात्रि के समान वृक्षों के ऊपरि भाग में विकसित मालतीलता सुशोभित होती थी॥४४॥ हरी-हरी कांचन वृक्ष की छाया तथा फले एवं विकसित हुए वृक्ष सावधानी पूर्वक सजाये गये मुकुट से समलङ्कृत के समान शोभते थे ॥४५॥ पुष्पों के पराग से पीली बनी हुयी सभी दिशाओं में सज्जन पुरुषों के आने पर वे वृक्ष मानों सौहार्द को अभिव्यक्त करते थे ॥४६॥ कहीं पर पुष्पों के पराग रूपी मदिरा के पान से मदमत्त बने भौंरे इधर-उधर गिरते हुए मानों कदम्ब पुष्पों का जयघोष कर रहे थे ॥४७॥ कहीं पर पुंस्कोकिलों का समूह घने वृक्षों में अपनी प्रियतमाओं के साथ विद्यमान थे तो कहीं पर शिरीष पुष्प के समान शुक पक्षी के जोड़े विद्यमान थे ॥४८॥ वे पूजित ब्राह्मण के समान विचित्र ध्वनि कर रहे थे । वहाँ मयूरी के साथ सुन्दर मयूर थे ॥४९॥ वे वन के अन्तिम भाग में भी नृत्य करते हुए नर्तकों के सामन सुशोभित हो रहे थे । वहाँ पर अनेक पक्षियों का समूह, अनेक प्रकार की बोली बोलता था ॥५०॥ वे रमणीय वन को अधिकरमणीय (रमणीयतर) बना रहे थे । अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त उस वन में पक्षियों का समूह सदा प्रमुदित रहता था ॥५१॥ वह वन नन्दन वन के समान मन और दृष्टि को प्रमुदित करने वाला था । ब्रह्माजी उस प्रकार के उत्तम वन को अपनी सौम्य दृष्टि से पवित्र करते हुए के समान देखे। वृक्षों की पंक्तियों ने ब्रह्मजी को आये हुए देखकर ॥५३॥ ब्रह्माजी को निवेदित करके उन पर पुष्प रूपी सम्पत्ति की वर्षा की । वृक्षों द्वारा दिए गये उपायन को स्वीकार करके ब्रह्माजी ने वृक्षों से कहा— आपलोगों का कल्याण हो, आपलोग वरदान माँगिये । भगवान् ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर वृक्षों ने निःसङ्कोच कहा ॥५४-५५॥ वे सब ब्रह्माजी को हाथ जोड़कर प्रणाम किए और कहे— हे प्रपन्न वत्सल भगवन् ! यदि आप वर देना चाहते हैं तो ॥५६॥

त्वं चेद्वससि देवेश वनेस्मिन्विश्वभावन। सर्वात्मना प्रपन्नानां वांछतामुत्तमं वरम् ॥५८॥
वरकोटिभिरन्याभिरलं नो दीयतां वरम्। सन्निधानेन तीर्थेभ्य इदं स्यात्प्रवरं महत् ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां पुण्यमेतद्भविष्यति। नित्यं पुष्पफलोपेता नित्यसुस्थिरयौवनाः ॥६०॥
कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः। कामसंदर्शनाः पुंसां तपःसिद्ध्युज्वला नृणाम् ॥६१॥
श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ। एवं स वरदो ब्रह्मा अनुजग्राह पादपान् ॥६२॥
स्थित्वा वर्षसहस्रं तु पुष्करं प्राक्षिपद्भुवि। क्षितिर्निपतिता तेन व्यकंपतरसातलम् ॥६३॥
विवशास्तत्यजुर्वेलां सागराः क्षुभितोर्मयः। शक्राशनिहतानीव व्याघ्रव्यालावृतानि च ॥६४॥
शिखराण्यप्यशीर्यंत पर्वतानां सहस्रशः। देवसिद्धविमानानि गन्धर्वनगराणि च ॥६५॥
प्रचेलुर्बभ्रमुः पेतुर्विविशुश्च धरातलम्। कपोतमेघा खात्पेतुः पुटसंघातदर्शिनः ॥६६॥
ज्योतिर्गणांश्छादयंतो बभूवुस्तीव्रभास्कराः। महता तस्य शब्देन मूकांधबधिरीकृतम् ॥६७॥
बभूवव्याकुलं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। सुरासुराणां सर्वेषां शरीराणि मनांसि च ॥६८॥
अवसेदुश्च किमिति किमित्येतन्नजज्ञिरे। धैर्यमालब्य सर्वेऽथ ब्रह्माणं चाप्यलोकयन् ॥६९॥
न च ते तमपश्यंत कुत्र ब्रह्मा गतोह्यभूत्। किमर्थं कंपिता भूमिर्निमित्तोत्पातदर्शनम् ॥७०॥
तावद्विष्णुर्गतस्तत्र यत्र देवा व्यवस्थिताः। प्रणिपत्य इदं वाक्यमुक्तवन्तो दिवौकसः ॥७१॥

आपका नित्य ही इस वन में निवास हो। हे पितामह! हमलोगों की यही सबसे बड़ी कामना है। आपको नमस्कार है ॥५७॥ हे विश्व का कल्याण करने वाले ब्रह्माजी! आप यदि यहाँ निवास करते हैं तो शरणागतों द्वारा हर प्रकार से चाहे जाने वाला यह उत्तम वर होगा ॥५८॥ करोड़ों दूसरे वरदानों से भी उत्तम हमलोगों को यह वरदान दीजिये कि आपके सन्निधान के कारण यह तीर्थ सभी तीर्थों से श्रेष्ठ तीर्थ हो जाय ॥५९॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— यह क्षेत्र सभी क्षेत्रों से उत्तम क्षेत्र हो जायेगा। आप सभी भी मेरी कृपा से, सदैव पुष्पों तथा फलों से युक्त, सदा युवक रहने वाले॥६०॥ अपनी इच्छानुसार रूप वाले और इच्छा के अनुसार फल देने वाले, लोगों को देखने में सुन्दर लगने वाले, मनुष्यों द्वारा की जाने वाली तपस्या की सिद्धि में उदार आपलोग होंगे ॥६१॥ तथा परमैश्वर्य से सम्पन्न होंगे। इसतरह से वरदान देने वाले ब्रह्माजी ने उन वृक्षों को अनुगृहीत किया ॥६२॥ हजार वर्ष तक स्थित होकर ब्रह्माजी ने पुष्कर (कमल) को पृथिवी पर डाल दिया। उसके पृथिवी पर गिरने से रसातल पर्यन्त काँप गया ॥६३॥ सागर भी क्षुब्ध हो गये और उनका जल तटबन्धों को पार करके बहने लगा, उसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगीं। इन्द्र के द्वारा किए गये वज्र प्रहार के समान व्याघ्रों तथा सर्पों से आवृत पर्वतों के शिखरों के हजारों टुकड़े हो गये। देवताओं तथा सिद्धों के विमान तथा गन्धर्वों के नगर ॥६४-६५॥ हिलने लगे, काँपने लगे और पृथिवी में प्रवेश कर गये। पुट समूह को देखने वाले कपोत वर्ण के मेघ आकाश से गिर पड़े ॥६६॥ ज्योति समूह को आच्छादित करती हुयी सूर्य की किरणें तीव्र प्रकाश वाली हो गयीं। उसके अत्यधिक शब्द से लोग मूक अन्धे एवं बधिर हो गये ॥६७॥ चराचर से युक्त त्रैलोक्य व्याकुल हो गया। सभी सुरों तथा असुरों के शरीर तथा मन ॥६८॥ शून्य हो गये, वे यह नही जान सके कि यह क्या हो गया? सभी धैर्य धारण करके ब्रह्माजी को देखने लगे ॥६९॥ वे यह नहीं जान सके कि ब्रह्माजी कहाँ गये। वे सोच रहे थे कि उत्पातों को सूचित करने वाला पृथिवी में कंप क्यों उत्पन्न हो गया ॥७०॥ उसी समय भगवान् विष्णु वहाँ आ गये जहाँ पर देवता विद्यमान थे। उनको देखकर देवताओं ने उनको प्रणाम करके

किमेतद्भगवन्ब्रूहि निमित्तोत्पातदर्शनम् । त्रैलोक्यं कंपितं येन संयुक्तं कालधर्मणा ॥७२॥
जातकल्पावसानं तु भिन्नमर्यादसागरम् । चत्वारोदिग्गजाः किंतु बभूवुरचलाश्चलाः ॥७३॥
समावृता धरा कस्मातसप्तसागरवारिणा । उत्पत्तिर्नास्ति शब्दस्य भगवन्निः प्रयोजना ॥७४॥
यादृशोवास्मृतः शब्दो न भूतो न भविष्यति । त्रैलोक्यमाकुलं येन चक्रे रौद्रेण चोद्यता ॥७५॥
शुभोऽशुभो वा शब्दोऽयं त्रैलोक्यस्य दिवौकसाम् ।
भगवन् यदि जानासि किमेतत्कथयस्व नः ॥७६॥
एवमुक्तो ब्रवीद्विष्णुः परमेणानुभावितः । मा भैष्ट मरुतः सर्वे श्रृणुध्वं चात्र कारणम् ॥७७॥
निश्चयेनानुविज्ञाय वक्ष्याम्येष यथाविधम् । पद्महस्तो हि भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥७८॥
भूप्रदेशे पुण्यराशौ यज्ञं कर्तुं व्यवस्थितः । अवरोहे पर्वतानां वनेचातीव शोभने ॥७९॥
कमलं तस्य हस्तात्तु पतितं धरणीतले । तस्य शब्दो महानेष येन यूयं प्रकंपिताः ॥८०॥
तत्रासौ तरुबृंदेन पुष्पामोदाभिनंदितः । अनुगृह्याथ भगवान्वनं तत् समृगांडजम् ॥८१॥
जगतोनुग्रहार्थाय वासं तत्रान्वरोचयत् । पुष्करं नाम तत्तीर्थं क्षेत्रं वृषभमेव च ॥८२॥
जनितं तद्भगवता लोकानां हितकारिणा । ब्रह्माणं तत्र वै गत्वा तोषयध्वं मया सह ॥८३॥
आराध्यमानो भगवान्प्रदास्यति वरान्वरान् । इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः सह तै र्देवदानवैः ॥८४॥
जगाम तद्वनोद्देशं यत्रास्ते स तु कंजजः । प्रहृष्टास्तुष्टमनसः कोकिलालापलापिताः ॥८५॥
पुष्पोच्चयोज्ज्वलं शस्तंविविशु र्ब्रह्मणो वनम् । संप्राप्तं सर्वदेवैस्तु वनं नंदनसंमितम् ॥८६॥

कहा ॥७१॥ भगवन् ! आप यह वतलाइये कि यह क्या है ? उत्पात के कारण रूप से क्या दिख रहा है ? जिस कालधर्म के द्वारा त्रैलोक्य काँप गया है ?॥७२॥ क्या कल्प का अवसान आ गया है कि सागर ने अपनी मर्यादा को त्याग दिया है ? किञ्च अचल चारो दिग्गज भी चञ्चल हो गये हैं ॥७३॥ सातो समुद्र के जल से पृथिवी क्यों आप्लावित हो गयी है ? हे भगवन् ! इस शब्द की उत्पत्ति निष्प्रयोजन तो हुयी नहीं है ॥७४॥ जैसा कि यह शब्द हुआ है, वैसा शव्द न तो कभी हुआ और न तो कभी होगा ? इस भयङ्कर शब्द से त्रैलोक्य व्याकुल हो गया है॥७५॥ यह त्रैलोक्य देवताओं के लिए शुभ है या अशुभ ? हे भगवन् ! यदि आप जानते हों तो उसे आप हमलोगो को वतलाइये ॥७६॥ परंब्रह्म के द्वारा अनुभाषित भगवान् विष्णु ने कहा— देवताओं डरो मत; आपलोग इसका कारण सुनें ॥७७॥ सारी बातें को जानकर मैं इसको ठीक-ठीक वतला रहा हूँ । लोकपितामह ब्रह्माजी हाथ में कमल लिए थे ॥७८॥ वे पृथिवी के अत्यन्त पुण्यवान् स्थान पर यज्ञ करना चाहते हैं । वे अत्यन्त मनोहर वन में पर्वतों से उतर रहे थे; उसी समय उनके हाथ से वह कमल पृथिवी पर गिर गया उसी का यह महान शब्द है, जिसके कारण आपलोग काँप गये हैं ॥८०॥ यहाँ पर ब्रह्माजी वृक्ष समूह के पुष्पों की सुगन्धि से अभिनंदित होकर इस मृगों तथा पक्षियों से युक्त वन को अनुगृहीत किए (अपनी कृपा का विषय बनाये) ॥८१॥ संसार पर कृपा करने के लिए वे यहीं पर रहने का निश्चय किए । पुष्कर नामक यह तीर्थ धर्म का क्षेत्र है ॥८२॥ लोककल्याणकारी ब्रह्माजी ने इस तीर्थ को उत्पन्न किया है । इसलिए मेरे साथ ब्रह्माजी के पास जाकर आप लोग उनको सन्तुष्ट करें ॥८३॥ आराधित होकर ब्रह्माजी वहुत से श्रेष्ठ वरों को प्रदान करेंगे । इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु उन देवताओं तथा दैत्यों के साथ, वन के उस स्थान पर गये जहाँ पर ब्रह्माजी विद्यमान थे । अत्यन्त प्रसन्न तथा सन्तुष्ट मन वाले देवता एवं दैत्य कोकिलों की ध्वनि से युक्त ॥८४-८५॥ पुष्प समूह से सुशोभित ब्रह्माजी के श्रेष्ठ वन में प्रवेश किए, सभी

पद्मिनीमृगपुष्पाढ्यं सुदृढं शुशुभे तदा । प्रविश्याथ वनं देवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥८७॥
इह देवोस्तीति देवा बभ्रमुश्च दिदृक्षवः । मृगयन्तस्ततस्ते तु सर्वे देवाः सवासवाः ॥८८॥
अद्भुतस्य वनस्यांतं न ते ददृशुराशुगाः । विचिन्वद्भिस्तदादेवं दैवैर्वायुर्विलोकितः ॥८९॥
स तानुवाच ब्रह्माणं न द्रक्ष्यथ तपो विना । तदाखिन्नाविचिन्वंतस्तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥९०॥
दक्षिणे चोत्तरे चैव अंतराले पुनः पुनः । वायूक्तं हृदये कृत्वा वायुस्तानब्रवीत्पुनः ॥९१॥
त्रिविधो दर्शनोपायो विरिंचेरस्य सर्वदा । श्रद्धाज्ञानेन तपसा योगेन च निगद्यते ॥९२॥
सकलं निष्कलं चैव देवं पश्यंति योगिनः । तपस्विनस्तु सकलं ज्ञानिनो निष्कलं परम् ॥९३॥
समुत्पन्ने तु विज्ञाने मंदश्रद्धो न पश्यति । भक्त्या परमया क्षिप्रं ब्रह्मपश्यंति योगिनः ॥९४॥
द्रष्टव्यो निर्विकारोऽसौ प्रधानपुरुषेश्वरः । कर्मणा मनसा वाचा नित्ययुक्ताः पितामहम् ॥९५॥
तपश्चरत भद्रं वो ब्रह्माराधनतत्पराः । ब्राह्मीं दीक्षां प्रपन्नानां भक्तानां च द्विजन्मनाम् ॥९६॥
सर्वकालं स जानाति दातव्यं दर्शनं मया। वायोस्तु वचनं श्रुत्वा हितमेतदवेत्य च ॥९७॥
ब्रह्मेच्छा विष्टयतयो वाक्पतिं च ततोब्रुवन् । प्रज्ञानविबुधास्माकं ब्राह्मीं दीक्षां विधत्स्व नः ॥९८॥
सदिदीक्षयिषुः क्षिप्रममराब्रह्मदीक्षया । वेदोक्तेन विधानेन दीक्षयामास तान् गुरुः ॥९९॥
विनीतवेषाः प्रणता अंतेवासित्वमाययुः । ब्रह्मप्रसादं संप्राप्ताः पौष्करं ज्ञानमीरितम् ॥१००॥
यज्ञं चकार विधिना धिषणोऽध्वर्युसत्तमः । पद्मंकृत्वामृणालाढ्यं पद्मदीक्षाप्रयोगतः ॥१०१॥
अनुजग्राह देवांस्तान्सुरेच्छाप्रेरितो मुनिः । तेभ्यो ददौ विवेकिभ्यः सर्वदोक्तविधानवित् ॥१०२॥

देवताओं के आने से नन्दन वन के समान ॥८६॥ कमल, मृग तथा पुष्पों से भरा हुआ वह वन अत्यधिक सुशोभित हुआ । सभी प्रकार के पुष्पों से सुशोभित उस वन में प्रवेश करके देवगण ॥८७॥ यही पर ब्रह्माजी हैं, यह सोचकर उनका दर्शन करने की इच्छा से चारो ओर घूमने लगे । इन्द्र के साथ सभी देवता ब्रह्माजी को खोज रहे थे ॥८८॥ शीघ्रगामी वे देवगण उस अद्भुत वन में ब्रह्माजी को नहीं देखे । किन्तु ब्रह्माजी को खोजते हुए देवताओं ने वायुदेव को देखा ॥८९॥ वायु ने कहा कि आपलोग तपस्या के बिना ब्रह्माजी को नहीं देख पायेंगे । उसके बाद खिन्न होकर देवताओं ने पर्वत की तलहटी में ब्रह्माजी को खोजा ॥९०॥ वायु की बातों को सुनकर दक्षिण तथा उत्तर में तथा दोनों के बीच में देवताओं ने बार-बार खोजा वायु ने देवताओं से कहा ॥९१॥ ब्रह्माजी के दर्शन के तीन उपाय हैं, ज्ञान, तपस्या था योग युक्त श्रद्धा ॥९२॥ योगिजन ब्रह्माजी को सकल तथा निष्कल रूप से देखते है । तपस्वीजन सकल रूप से तथा योगिजन निष्कल रूप से ॥९३॥ विज्ञान उत्पन्न हो जाने पर भी जिसकी श्रद्ध मन्द होती है, वह भी उनका दर्शन नहीं पाता है । परमाभक्ति के द्वारा योगिजन ब्रह्माजी का शीघ्र दर्शन पा लेते हैं ॥९४॥ प्रधान तथा पुरुष के नियामक ब्रह्माजी को निर्विकार रूप से देखना चाहिए । आप लोग कर्म, वाणी तथा मन से श्रद्धा सम्पन्न होकर पितामह की तपस्या करें । जो प्रपन्न भक्त तथा ब्राह्मण ब्राह्मी दीक्षा से युक्त होकर ब्रह्माजी की आराधना करते हैं, उसके विषय में ब्रह्माजी सदा यह जानते हैं कि मुझे दर्शन देना चाहिए । वायु की वाणी को सुनकर तथा यही कल्याणकारी है, इस बात को जानकर ॥९५-९७॥ ब्रह्माजी की प्राप्ति की इच्छा से आविष्ट बुद्धि वाले वे देवता बृहस्पतिजी से कहे, हे ज्ञानप्रधान देव ! हमलोगों को आप ब्राह्मी दीक्षा प्रदान करें ॥९८॥ दीक्षा देने के इच्छुक बृहस्पति शीघ्र ही देवताओं को वेदोक्त विधि से ब्राह्मीदीक्षा से दीक्षित किए ॥९९॥ विनीतवेश वाले तथा नम्र बने हुए देवता बृहस्पतिजी के छात्र हो गये और ब्रह्माजी की कृपा से उन सबों को पुष्कर संबन्धि ज्ञान हो गया ॥१००॥

दीक्षां वै विस्मयं त्यक्त्वा बृहस्पतिरुदारधीः । एकमग्निं च संस्कृत्य महात्मात्रिदिवौकसाम् ॥१०३॥
प्रादादांगिरसस्तुष्टो जाप्यं वेदोदितं तु यत् । त्रिसुपर्णं त्रिमधु च पावमानी च पावनीम् ॥१०४॥
स हि जाप्यादिकं सर्वमशिक्षयदुदारधीः । आपोहिष्ठेति यत् स्नानं ब्राह्मं तत्परिपठ्यते ॥१०५॥
पापघ्नं दुष्टशमनं पुष्टिश्रीबलवर्द्धनम् । सिद्धिदं कीर्तिदं चैव कलिकल्मषनाशनम् ॥१०६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मं स्नानं समाचरेत् । कुर्वंतो मौनिनो दांता दीक्षिताः क्षपितेंद्रियाः ॥१०७॥
सर्वे कमंडलुयुता मुक्तकक्षाक्षमालिनः । दंडिनश्चीरवस्त्राश्च जटाभिरतिशोभिताः ॥१०८॥
स्नानाचारासनरताः प्रयत्नध्यानधारिणः । मनो ब्रह्मणि संयोज्य नियताहारकांक्षिणः ॥१०९॥
अतिष्ठन् दर्शनालाप संगध्यानविवर्जिताः । एवं व्रतधराः सर्वे त्रिकालं स्नानकारिणः ॥११०॥
भक्त्या परमया युक्ता विधिना परमेण च । कालेन महताध्यानाद्देवज्ञानमनोगताः ॥१११॥
ब्रह्मध्यानाग्निनिर्दग्धा यदा शुद्धैकमानसाः । आविर्बभूवभगवान्सर्वेषां दृष्टिगोचरः ॥११२॥
तेजसाप्यायितास्तस्य बभूवु र्भ्रांतचेतसः । ततोवलंब्य तेधैर्यमिष्टं देवं यथाविधि ॥११३॥
षडंगवेदयोगेन दृष्टचितास्तु तत्पराः । शिरोगतैरंजलिभिः शिरोभिश्च महीं गताः ॥११४॥
तुष्टुवुः सृष्टिकर्तारं स्थितिकर्तार मीश्वरम् ।

देवा ऊचुः

ब्रह्मणे ब्रह्मदेहाय ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥११५॥

उसके बाद बृहस्पतिजी ने वैदिक विधि से यज्ञ किया । ब्रह्माजी के उस यज्ञ में बृहस्पतिजी अध्वर्यु थे । वे मृणाल से युक्त पद्म को पद्म दीक्षा के प्रयोग द्वारा यज्ञ को कराये ॥१०१॥ देवताओं की इच्छा से प्रेरित होकर बृहस्पतिजी ने देवताओं को अनुगृहीत किया । उन्होंने वेदोक्त विधि से देवताओं को दीक्षित किया । उदार बुद्धि वाले बृहस्पति ने दीक्षा दी । महात्मा बृहस्पति ने देवताओं में विद्यमान अग्नि को संस्कार युक्त करके ॥१०३॥ संतुष्ट होकर उन्हे वेदोक्त आङ्गिरस मन्त्र का उपदेश दिया । त्रिसुपर्ण, त्रिमधु तथा पवित्र बनाने वाली पावमानी सूक्त ॥१०४॥ को सम्पूर्ण रूप से जपने योग्य की शिक्षा दी । **आपो हिष्ठा** इत्यादि जो ब्राह्मस्नान कहा गया है, वह पापों को विनष्ट करने वाला, दुष्टों को शान्त करने वाला, पुष्टि, श्री तथा बल को बढाने वाला है । वह सिद्धि देने वाला, कीर्ति देने वाला तथा कलि के पापों को विनष्ट करने वाला है ॥१०६॥ इसलिए सभी प्रकार के प्रयासों द्वारा ब्राह्मस्नान करना चाहिए । उसको करते हुए सभी देवता, मौनी, दान्त (इन्द्रियों को वश में रखने वाले) दीक्षित तथा जितेन्द्रिय हो गये॥१०७॥ सब कमण्डलु धारण किए हुए थे, कक्ष खोल दिए थे, माला धारण किए हुए थे । दण्ड धारण किए हुए थे, वल्कल वस्त्र धारण किए थे तथा जटाधारण करके सुशोभित हो रहे थे ॥१०८॥ वे स्नान, सदाचार तथा आसन के नियमों का पालन करते हुए प्रयत्न पूर्वक ध्यान करते थे । अपने मन को ब्रह्म में लगाकर अनुष्ठान के लिए विहित आहार करते थे ॥१०९॥ वे एक-दूसरे को देखना, बातें करना तथा सङ्ग का त्याग कर दिए थे । इसतरह व्रत का पालन करने वाले वे सब त्रिकाल स्नान करते थे ॥११०॥ वे विधिपूर्वक परमा भक्ति के द्वारा, बहुत समय तक ध्यान करके ब्रह्माजी के ध्यान से युक्त हो गये ॥१११॥ ब्रह्माजी का ध्यान करने के कारण उनके पाप विनष्ट हो गये और उनका मन जब शुद्ध हो गया, तब भगवान् ब्रह्माजी उन सबों को दर्शन दिए ॥११२॥ भ्रान्तचित्त वाले वे सभी देवता ब्रह्माजी के तेज से आप्यायित (पुष्ट) हो गये । उसके बाद वे सब लोग धैर्य धारण करके विधि पूर्वक अपने इष्टदेव ब्रह्माजी की स्तुति किए । ब्रह्मपारायण देवताओं का मन उस समय प्रसन्न हो गया था, उन लोगों

नमस्कुर्मः सुनियताः क्रतुवेदप्रदायिने । लोकानुकंपिने देवसृष्टिरूपाय वै नमः ॥११६॥
भक्तानुकंपिनेत्यर्थं वेदजाप्यस्तुाय च । बहुरूपस्वरूपाय रूपाणां शतधारिणे ॥११७॥
सावित्रीपतये देव गायत्री पतये नमः । पद्मासनाय पद्माय पद्मवक्त्राय ते नमः ॥११८॥
वरदाय वरार्हाय कूर्माय च मृगाय च । जटामकुटयुक्ताय स्रुवस्रुच निर्धारिणे ॥११९॥
मृगांकमृगधर्माय धर्मनेत्राय ते नमः । विश्वनाम्नेऽथ विश्वाय विश्वेशाय नमो नमः ॥१२०॥
धर्मनेत्रत्राणमस्मादधिकं कर्तुमर्हसि । वाङ्मनःकायभावैस्त्वां प्रपन्नास्स्मः पितामह ॥१२१॥
एवं स्तुतस्तदा देवै र्ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः । प्रदास्यामि स्मृतो बाढममोघं दर्शनं हि वः ॥१२२॥
ब्रुबन्तु वांछितं पुत्राः प्रदास्यामि वरान्वरान् । एवमुक्ता भगवता देवा वचनमब्रुवन् ॥१२३॥
एष एवाद्य भगवन् सुपर्याप्तो महान्वरः । जनितो नः सुशब्दोयं कमलं क्षिपता त्वया ॥१२४॥
किमर्थं कंपिता भूमिर्लोकाश्चाकुलिताः कृताः । नैतन्निरर्थकं देव उच्यतामत्र कारणम् ॥१२५॥

ब्रह्मोवाच

युष्मद्धितार्थमेतद्वै पद्मं विनिहितं मया । देवतानां च रक्षार्थं श्रूयतामत्र कारणम् ॥१२६॥
असुरो वज्रनाभोऽयं बालजीवापहारकः । अवस्थितस्त्ववष्टभ्य रसातलतलाश्रयम् ॥१२७॥

ने षडंग वेदयोग के द्वारा प्रसन्नता पूर्वक अञ्जलि बाँधकर तथा उसे शिर से लगाया करते थे शिर को भूमि से सटाकर देवताओं ने सृष्टि कर्ता, पालन कर्ता तथा नियमन कर्ता ब्रह्माजी की स्तुति की । **देवताओं ने कहा**— परब्रह्मात्मक, ब्रह्मण्य तथा अजितात्मा ब्रह्माजी को नमस्कार है ॥११३-११५॥ हमलोग अत्यन्त सावधान होकर क्रतुवेद (क्रतु तथा वेद) को प्रदान करने वाले ब्रह्माजी को नमस्कार करते हैं । संसारी जीवों पर कृपा करने वाले तथा देव सृष्टि रूप ब्रह्माजी को नमस्कार करते हैं ॥११६॥ भक्तों पर अत्यधिक कृपा करने वाले, तथा वैदिक मन्त्रों से स्तुति किए जाने वाले, अनेक रूप स्वरूप तथा सैकड़ों रूपों को धारण करने वाले, ब्रह्माजी को हम नमस्कार करते हैं ॥११७॥ सावित्री देवी के पति, तथा गायत्री देवी के पति ब्रह्माजी को नमस्कार है । कमल के आसन पर बैठने वाले, पद्मस्वरूप तथा कमल के समान मनोहर मुख वाले ब्रह्माजी को नमस्कार है ॥११८॥ वरदान देने वाले, वर के योग्य, कूर्म स्वरूप तथा मृग स्वरूप ब्रह्माजी को नमस्कार है । जटा तथा मुकुट को धारण करने वाले, स्रुव तथा स्रुच को धारण करने वाले ब्रह्माजी को नमस्कार है ॥११९॥ मृगाङ्क स्वरूप, मृगधर्म स्वरूप, तथा धर्मनेत्र स्वरूप आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण नामों वाले, विश्वस्वरूप तथा विश्व के स्वामी ब्रह्माजी को नमस्कार है ॥१२०॥ हे धर्मनेत्र ब्रह्माजी ! आप इससे भी अधिक हमलोगो की रक्षा करें । हे पितामह ! हमलोग वाणी, मन तथा शरीर से भाव पूर्वक आपके शरणागत हैं ॥१२१॥ इस तरह से देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने कहा जब कभी भी आपलोग स्मरण करेंगे तो मैं आपलोगों को अमोघ दर्शन दूँगा ॥१२२॥ हे पुत्रों ! आपलोगों को जो भी अभिप्रेत हो उसे बतलाओं । मैं आपलोगों को श्रेष्ठ वर प्रदान करूँगा । ब्रह्माजी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर देवताओं ने कहा ॥१२३॥ हे भगवन् ! आपका यही वरदान हमलोगों के लिए पर्याप्त है । आपने जब कमल फेंका उससे बहुत अधिक शब्द उत्पन्न हुआ ॥१२४॥ आपने भूमि को तथा लोकों को क्यों कँपाया? यह निरर्थक तो है नहीं, अतएव आप इसका कारण बतलाएँ ?॥१२५॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— आपलोगों का कल्याण करने के लिए मैंने कमल को पृथिवी पर फेंका है उसका उद्देश्य देवताओं की रक्षा करना था । इसका कारण आपलोग सुनें ॥१२६॥ यह वज्रनाभ नाम का असुर बालकों को मार देने वाला है । वह रसातल के मार्ग को

युष्मदागमनं ज्ञात्वा तपस्थान्निहितायुधान् । हंतुकामो दुराचारः सेंद्रानपि दिवौकसः ॥१२८॥
घातः कमलपातेन मया तस्य विनिर्मितः । सराज्यैश्वर्यदर्पिष्ठस्तेनासौ निहतो मया ॥१२९॥
लोकेस्मिन्समये भक्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः । मैव ते दुर्गतिं यांतु लभंतां सुगतिं पुनः ॥१३०॥
देवानां दानवानां च मनुष्योरगरक्षसाम् । भूतग्रामस्य सर्वस्य समोस्मि त्रिदिवौकसः ॥१३१॥
युष्मद्धितार्थं पापोऽसौ मया मंत्रेण घातितः । प्राप्तः पुण्यकृतान् लोकान् कमलस्यास्यदर्शनात् ॥१३२॥
यन्मया पद्ममुक्तं तेनेदं पुष्करं भुवि । ख्यातं भविष्यते तीर्थपावनं पुण्यदं महत् ॥१३३॥
पृथिव्यां सर्वजंतूनां पुण्यदं परिपठ्यते । कृतोह्यनुग्रहो देवा भक्तानां भक्तिमिच्छताम् ॥१३४॥
वनेस्मिन्नित्यवासेन वृक्षैरभ्यार्थितेन च । महाकालो वनेत्रागादागतस्य ममानघाः ॥१३५॥
तपस्यतां च भवतां महज्ज्ञानं प्रदर्शितम् । कुरुध्वं हृदये देवाः स्वार्थं चैवपरार्थकम् ॥१३६॥
भवद्भिर्दर्शनीयं तु नानारूपधरैर्भुवि । द्विषन्वै ज्ञानिनं विप्रं पापेनैवार्दितो नरः ॥१३७॥
नविमुच्येत पापेन जन्मकोटिशतैरपि । वेदांगपारगं विप्रं नहन्यान्नचदूषयेत् ॥१३८॥
एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिर्भवतिघातिता । एकं वेदांतगं विप्रं भोजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥१३९॥
तस्य भुक्ता भवेत्कोटिर्विप्राणां नात्र संशयः । यः पात्रपूरणीं भिक्षां यतीनां तु प्रयच्छति ॥१४०॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात् । यथाहं सर्वदेवानां ज्येष्ठः श्रेष्ठः पितामहः ॥१४१॥
तथाज्ञानी सदा पूज्यो निर्ममो निःपरिग्रहः । संसारबंधमोक्षार्थं ब्रह्मगुप्तमिदं व्रतम् ॥१४२॥

रोक कर स्थित था ॥१२७॥ तपस्यारत तथा आयुध का त्याग किए हुए आपलोगों के आगमन को जान कर वह दुराचारी इन्द्र सहित समस्त देवताओं को मार देना चाहता था ॥१२८॥ कमल को फेंक कर मैंने उसको मार दिया। वह राज्य और ऐश्वर्य के दर्प से अत्यन्त दृप्त हो गया था, इसीलिए मैंने उसे मार दिया ॥१२९॥ इस लोक में इस समय वेद पारंगत ब्राह्मण, दुर्गति को न भोगें अपितु सुन्दर गति को प्राप्त करें ॥१३०॥ हे देवताओं ! मैं देवताओं, दानवों, मनुष्यों, उरगों तथा राक्षसों इत्यादि सम्पूर्ण जीवों के लिए एक समान हूँ । सभी मेरे हैं ॥१३१॥ आपलोगों का ही कल्याण करने के लिए मैंने इस पापी को मन्त्र से मारा है । इस कमल का दर्शन करने के कारण वह पुण्यवानों के लोक में चला गया ॥१३२॥ मैंने जहाँ पर पद्म को छोडा है, उसके कारण लोक में यह स्थान पुष्कर के नाम से विख्यात होगा यह पवित्र तीर्थ महान् पुण्य प्रदान करने वला है ॥१३३॥ यह पृथिवी के समस्त जीवों को पुण्य प्रदान करने वाला कहा जाता है । भक्ति चाहने वाले भक्तों पर मैने यह अनुग्रह किया है ॥१३४॥ हे अनघ ! देवताओं, वृक्षों के द्वारा, प्रार्थना किए जाने के कारण, मेरा यहाँ नित्य निवास होने के कारण मेरे यहाँ आने से इस वन में महाकाल आये ॥१३५॥ देवताओं ! तपस्या करने वाले आप लोगों को मैंने महाज्ञान प्रदान किया हैं, हे देवताओं ! उस ज्ञान को आपलोग अपने लिए तथा दूसरों के लिए अपने हृदय में धारण करें ॥१३६॥ आपलोग अनेक रूप धारण करके पृथिवी पर देखें ज्ञानी विप्र से द्वेष करने वाले पाप के द्वारा पीड़ित पापी मनुष्य विनष्ट हो जाता है ॥१३७॥ वेदाङ्गों में पारङ्गत ब्राह्मण का न तो वध करें और न उसकी निन्दा करे, क्योंकि ऐसा करने वाला व्यक्ति सैकड़ो करोड़ जन्मों में भी उस पाप से मुक्त नहीं होता है ॥१३८॥ एक भी वेदान्तज्ञ ब्राह्मण का वध कर देने से करोड़ो ब्राह्मणों के वध का पाप लगता है और एक भी वेदान्त पारङ्गत ब्राह्मण को श्रद्धा पूर्वक भोजन कराने से॥१३९॥ करोड़ो ब्राह्मणों को भोजन कराने का पुण्य मिलता है । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है । जो व्यक्ति संन्यासी को उनके पात्र में भरकर भिक्षा देता है ॥१४०॥ वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और उसकी दुर्गति नहीं

मया प्रणीतं विप्राणामपुनर्भवकारणम् । अग्निहोत्रमुपादाय यस्त्यजेदजितेंद्रियः ॥१४३॥
रौरवं सप्रयात्याशु प्रणीतो यमकिंकरैः । लोकयात्रा वितंडश्च क्षुद्रं कर्म करोति यः ॥१४४॥
सरागचित्तः शृंगारी नारीजनधनप्रियः । एकभोजी सुमिष्टाशी कृषिवाणिज्यसेवकः ॥१४५॥
अवेदो वेदनिंदी च परभार्यां च सेवते । इत्यादिदोषदुष्टो यस्तस्य संभाषणादपि ॥१४६॥
नरो नरकगामी स्याद्यश्च सद्व्रतदूषकः । असंतुष्टं भिन्नचित्तं दुर्मतिं पापकारिणम् ॥१४७॥
नस्पृशेदंगसंगेन स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति । एवमुक्त्वा सभगवान् ब्रह्मा तैरमरैः सह ॥१४८॥
क्षेत्रंनिवेशयामास यथावत्कथयामि ते । उत्तरे चंद्रनद्यास्तु प्राची यावत्सरस्वती ॥१४९॥
पूर्वं तुनंदनात्कृत्स्नं यावत्कल्पं सपुष्करम् । वेदीह्येषा कृता यज्ञे ब्रह्मणा लोककारिणा ॥१५०॥
ज्येष्ठं प्रथमं ज्ञेयं तीर्थं त्रैलोक्यपावनम् । ख्यातं तद् ब्रह्मदैवत्यं मध्यमं वैष्णवं तथा ॥१५१॥
कनिष्ठं रुद्रदैवत्यं ब्रह्मा पूर्वमकारयत् । आद्यमेतत्परं क्षेत्रं गुह्यं वेदेषु पठ्यते ॥१५२॥
अरण्यंपुष्कराख्यं तु ब्रह्मासन्निहितः प्रभुः । अनुग्रहो भूमिभागे कृतो वै ब्रह्मणा स्वयम् ॥१५३॥
अनुग्रहार्थं विप्राणां सर्वेषां भूमिचारिणाम् । सुवर्णवज्रपर्यंता वेदिकांका महीकृता ॥१५४॥
विचित्रकुट्टिमारत्नैः कारिता सर्वशोभना । रमते तत्र भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१५५॥
विष्णुरुद्रौ तथा देवौ वसवोप्यश्नावपि । मरुतश्च महेंद्रेण रमंते च दिवौकसः ॥१५६॥

होती है । जैसे मैं सभी देवताओं में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हूँ तथा पितामह हूँ ॥१४१॥ उसी तरह ममता रहित तथा परिग्रह रहित ज्ञानी की सदा पूजा करनी चाहिए । संसार के बन्धन से मुक्ति दिलाने वाला यह ब्रह्मगुप्त नामक व्रत है॥१४२॥ ब्राह्मणों को जिसके कारण संसार के बन्धन में नहीं पड़ना पड़े, ऐसे साधन का निर्माण मैंने किया है । जो अग्निहोत्र व्रत को अपनाकर अजितेन्द्रिय व्यक्ति उसका फिर परित्याग कर देता है ॥१४३॥ वह यम किंकरों द्वारा निर्मित रौरव नामक नरक में चला जाता है । जो व्यक्ति लोकयात्रा वितण्डा तथा क्षुद्र (अभिचार इत्यादि) कर्मों को करता है ॥१४४॥ एवं रागी, शृङ्गारी तथा स्त्रियों को प्रिय लगने वाला, अकेले भोजन करने वाला, अकेले अच्छै भोज्य पदार्थ को खा लेने वाला, कृषि तथा व्यापार करने वाला, वेदज्ञान विहीन, वेदों की निन्दा करने वाले, दूसरे की पत्नी का सेवन करने वाले, इसतरह के दोषों से दूषित व्यक्ति के साथ बातें भी करने से ॥१४५-१४६॥ सद्व्रत का पालन करने वाला मनुष्य नरकगामी होता है । असन्तुष्ट रहने वाला, जिसका चित्त भिन्न प्रकार का होता है दुष्टबुद्धि वाले तथा पापी ॥१४७॥ ऐसे व्यक्ति के अङ्ग का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए, यदि स्पर्श हो जाय तो स्नान करने से ही शुद्धि होती है । इसतरह से भगवान् ब्रह्माजी ने उन देवताओं के साथ ॥१४८॥ जिस तरह उस क्षेत्र को स्थापित किया उसका मैं यथावत् वर्णन करता हूँ । चन्द्र नदी के उत्तर भाग में प्राची सरस्वती पर्यन्त॥१४९॥ उसी तरह से पूर्व दिशा में नन्दन पर्यन्त पुष्कर की कल्पना की गयी है । लोक की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी इस भाग को यज्ञ की वेदी बनाया ॥१५०॥ ज्येष्ठ पुष्कर को प्रथम त्रैलोक्य पावन तीर्थ समझना चाहिए । वह (ज्येष्ठ पुष्कर) ब्रह्म दैवत रूप से प्रसिद्ध है, मध्यम पुष्कर के देवता भगवान् विष्णु हैं ॥१५१॥ और कनिष्ठ पुष्कर को ब्रह्माजी ने रुद्र दैवत बनाया । वेदों में इस पुष्कर क्षेत्र को आद्य तथा गोपनीय क्षेत्र बतलाया गया है ॥१५२॥ पुष्कर नामक वन में ब्रह्माजी का नित्य ही सन्निधान बना रहता है । स्वयं ब्रह्माजी ने पृथिवी पर यह अनुग्रह किया है ॥१५३॥ ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों पर कृपा करने के लिए तथा पृथिवी के समस्त जीवों पर कृपा करने के लिए सुवर्णवज्र पर्यन्त की पृथिवी को वेदी बनाया ॥१५४॥ फर्श में लगे हुए रत्नों से सम्पूर्ण वेदी को सुन्दर बनाया । वहाँ पर लोक पितामह ब्रह्माजी

एतत्ते तथ्यमाख्यातं लोकानुग्रहकारणम्। संहितानुक्रमेणात्र मंत्रैश्च विधिपूर्वकम् ॥१५७॥
वेदान्पठंति ये विप्रा गुरुशुश्रूषणे रताः । वसंति ब्रह्मसामीप्ये सर्वे ते नानुभाविताः ॥१५८॥

भीष्म उवाच

भगवन्केन विधिना अरण्ये पुष्करे नरैः । ब्रह्मलोकमभीप्सद्भिर्वस्तव्यं क्षेत्रवासिभिः ॥१५९॥
किं मनुष्यैरुतस्त्रीभिरुतवर्णाश्रमान्वितैः। वसद्भिः किमनुष्टेयमेतत्सर्वं ब्रवीहि मे ॥१६०॥

पुलस्त्य उवाच

नरैः स्त्रीभिश्च वस्तव्यं वर्णाश्रमनिवासिभिः । स्वधर्माचारनिरतैर्दंभमोहविवर्जितैः ॥१६१॥
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्मभक्तैर्जितेंद्रियैः। अनसूयुभिरक्षुद्रैः सर्वभूतहिते रतैः ॥१६२॥

भीष्म उवाच

किं कुर्वाणो नरः कर्म ब्रह्मभक्तस्त्विहोच्यते। कीदृशा ब्रह्मभक्ताश्च स्मृता नृणां वदस्व मे ॥१६३॥

पुलस्त्य उवाच

त्रिविधा भक्तिरुद्दिष्टा मनोवाक्कायसंभवा। लौकिकी वैदिकीं चापि भवेदाध्यात्मिकी तथा॥१६४॥
ध्यानधारणया बुद्ध्या वेदार्थस्मरणे हि यत्। ब्रह्मप्रीतिकरी चैषा मानसी भक्तिरुच्यते॥१६५॥
मंत्रवेदनमस्कारै रग्निश्राद्धादिचिंतनैः। जाप्यैश्चावश्यकैश्चैव वाचिकी भक्तिरिष्यते ॥१६६॥
व्रतोपवासनियतै श्चितेंद्रयनिरोधिभिः। कृच्छ्रैः सांतपनैश्चान्यैस्तथा चांद्रायणादिभिः ॥१६७॥

रमण करते हैं ॥१५५॥ विष्णु, रुद्रगण, वसुगण तथा दोनों अश्विनी कुमार तथा इन्द्र के साथ सभी देवता वहाँ पर निवास करते हैं ॥१५६॥ ब्रह्माजी द्वारा जीवों पर अनुग्रह करने के कारणरूप पुष्कर का मैंने यह ठीक-ठीक वर्णन किया है। जो गुरुसेवी ब्राह्मण संहिता के क्रम से यहाँ पर विधिपूर्वक मन्त्रों द्वारा वेदों का पाठ करते हैं, वे सब ब्रह्माजी की कृपा के पात्र होकर ब्रह्माजी की सन्निधि में निवास करते हैं ॥१५७-१५८॥ **भीष्मजी ने कहा—** हे भगवन् ! ब्रह्मलोक में निवास करना चाहने वाले क्षेत्रवासी मनुष्यों को पुष्करारण्य में किस विधि से पुष्कर में निवास करना चाहिए ॥१५९॥ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले पुरुषों द्वारा तथा अथवा स्त्रियों द्वारा जो वहाँ निवास करते हैं, उनके द्वारा क्या किया जाना चाहिए, इस बात को आप मुझे बतलाइये ॥१६०॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले पुरुषों तथा स्त्रियों को पुष्कर में निवास करना चाहिए । उन सबों को अपने धर्म का पालन करने वाला तथा अभिमान एवं मोह से रहित होना चाहिए ॥१६१॥ उन सबों को मन, वाणी तथा कर्म से, ब्रह्माजी का भक्त, जितेंद्रिय, असूया रहित, क्षुद्रता रहित तथा सभी जीवों का कल्याणकारी होना चाहिए ॥१६२॥ **भीष्मजी ने कहा—** आप मुझे यह बतलायें कि यहाँ पर किन कर्मो को करने वाले मनुष्यों को ब्रह्मभक्त कहा गया है ? किस प्रकार के मनुष्यों को ब्रह्मभक्त कहा गया है ?॥१६३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** मन, वाणी तथा शरीर से उत्पन्न होने वाली भक्ति को तीन प्रकार का बतलाया गया है । वे भक्तियाँ है लौकिकी, वैदिकी तथा आध्यात्मिकी ॥१६४॥ ध्यान, धारण तथा बुद्धि के द्वारा वेदार्थ का स्मरण करने में जो, ब्रह्माजी में प्रेम को उत्पन्न करती है, उसे मानसी भक्ति कहते हैं ॥१६५॥ मन्त्र, वेद तथा नमस्कार करके, अग्नि तथा श्राद्ध आदि का चिन्तन करने से तथा आवश्यक जाप्यों (मन्त्र जपों) के द्वारा जो भक्ति उत्पन्न होती है, उसे वाचिकी भक्ति कहते हैं ॥१६६॥ मन तथा इन्द्रियों को वशीकृत बनाने वाला तथा व्रत एवं उपासक के द्वारा होने वाले, दूसरे सान्तपनकृछ्रों तथा चान्द्रायण इत्यादि व्रतों के द्वारा ॥१६७॥ ब्रह्म विषयक कृछ्र तथा उपवासों के द्वारा तथा दूसरे शुभ व्रतों के द्वारा उत्पन्न होने

ब्रह्मकृच्छ्रोपवासैश्च तथा चान्यैः शुभव्रतैः । कायिकी भक्तिराख्याता त्रिविधा तु द्विजन्मनाम्॥१६८॥
गोधृतक्षीरदधिभिः रत्नदीपकुशोदकैः । गंधैर्माल्यैश्च विविधैर्धातुभिश्चो पपादितैः ॥१६९॥
घृतगुग्गुलुधूपैश्च कृष्णागरुसुगंधिभिः । भूषणै र्हेमरत्नाढ्यैश्चित्राभिः स्त्रग्भिरेव च ॥१७०॥
नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्वरत्नोपहारकैः । भक्ष्यभोज्यान्नपानैश्च या पूजा क्रियते नरैः ॥१७१॥
पितामहं समुद्दिश्य भक्तिस्सा लौकिकी मता । वेदमंत्रहविर्योगै र्भक्तिर्यावैदिकी मता ॥१७२॥
दर्शे वा पौर्णास्यां वा कर्तव्यमग्निहोत्रकम् । प्रशस्त दक्षिणादानं पुरोडाशं चरुकिया ॥१७३॥
इष्टि र्धृतिः सोमपानां यज्ञीयं कर्मसर्वशः । ऋग्यजुःसामजाप्यानि संहिताध्ययनानि च ॥१७४॥
क्रियंते विधिमुद्दिश्य साभक्तिर्वैदिकीष्यते । अग्निभूम्यनिलाकाशांबुनिशाकरभास्करम् ॥१७५॥
समुद्दिश्य कृतं कर्म तत्सर्व ब्रह्मदैवतम् । आध्यात्मिकी तु द्विविधा ब्रह्मभक्तिः स्थिता नृप॥१७६॥
सांख्याख्या योगजा चान्या विभागं तत्र मेश्रृणु । चतुर्विंशतितत्वानि प्रधानादीनि संख्यया ॥१७७॥
अचेतनानि भोग्यानि पुरुषः पंचविंशकः । चेतनः पुरुषो भोक्ता नकर्ता तस्य कर्मणः ॥१७८॥
आत्मानित्यो व्ययश्चैव अधिष्ठाता प्रयोजकः । अव्यक्तः पुरुषो नित्यः कारणं च पितामहः ॥१७९॥
तत्वसर्गो भावसर्गो भूतसर्गश्च तत्त्वतः । संख्यया परिसंख्याय प्रधानं च गुणात्मकम् ॥१८०॥
साधर्म्यमानमैश्वर्यं प्रधानं च विधर्मि च । कारणत्वं च ब्रह्मत्वं काम्यत्वमिदमुच्यते ॥१८१॥
प्रयोज्यत्वं प्रधानस्य वैधर्म्यमिदमुच्यते । सर्वत्र कर्तृस्याद्ब्रह्म पुरुषस्याप्यकर्तृता ॥१८२॥

वाली भक्ति को कायिकी (शारीरिक) भक्ति कहते हैं । वह भी द्विजों के लिए तीन प्रकार की होती हैं ॥१६८॥ ब्रह्माजी की पूजा, गौ के दूध, घी, दधि, रत्न, दीप तथा कुशोदक, चन्दन, गन्ध (चन्दन), अनेक प्रकार के धातुओं से निर्मित मालाएँ ॥१६९॥ घी, गुलाल, धूप तथा कालगरु इत्यादि सुगन्धित पदार्थों से की जाती है । अनेक प्रकार के रत्नजटित सुवर्ण निर्मित मालाओं, सभी प्रकार के रत्नोंपहार पूर्वक नृत्य तथा वाद्यों एवं भक्ष्य भोज्य अन्न एवं पेय पदार्थों से की जाती हैं ॥१७०-१७१॥ वह लौकिकी भक्ति कहलाती है । वेद के मन्त्रों के द्वारा हविष्य प्रदान करना वैदिकी भक्ति कहलाती है ॥१७२॥ अमावस्या अथवा पूर्णिमा के दिन किया जाने वाला अग्निहोत्र, श्रेष्ठ दक्षिणा का दान, पुरोडाश तथा चरु का प्रदान ॥१७३॥ सोमपायी ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली इष्टियाँ इत्यादि, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के सूक्तों का पाठ, संहिता पाठ ॥१७४॥ जो ब्रह्माजी की प्रसन्नता के उद्देश्य से किए जाते हैं, वह भी वैदिकी ही भक्ति कहलाती है । अग्नि, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, चन्द्रमा तथा सूर्य की प्रसन्नता के लिए जो कर्म किए जाते हैं, वे ब्रह्मदैवत होते हैं । हे नृप ! आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकार की होती है ॥१७५-१७६॥ सांख्यभक्ति तथा योगजभक्ति उन दोनों का विभाग आप सुनें । प्रधान (प्रकृति) आदि जो चौबीस तत्त्व (प्रकृति, महान्, अहङ्कार, पञ्च तन्मात्रायें, पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और पञ्च महाभूत) हैं ॥१७७॥ ये अचेतन तथा भोग्य हैं, पच्चीसवाँ पुरुष तत्त्व है । पुरुष चेतन है, वह भोक्ता, है, किन्तु वह कर्मो को करने वाला नहीं है ॥१७८॥ वही आत्मा है, वह नित्य तथा विकार से रहित है, वह प्राकृतों तथा प्रकृति का अधिष्ठाता तथा प्रयोजक है । अव्यक्त पुरुष ब्रह्माजी ही कारण तत्त्व हैं ॥१७९॥ तत्त्वसर्ग (तत्त्वों की सृष्टि) भावसर्ग तथा भूतसर्ग इन तीनों को संख्यानुसार गणना करके तथा सत्त्वादि गुण प्रधान प्रकृति को ॥१८०॥ सादृश्य प्रयुक्त मान, ऐश्वर्य प्रधान को तथा प्रकृत तत्त्वों से विधर्मी प्रधान में कारणत्व, ब्रह्मत्व, काम्यत्व तथा प्रयोज्त्व जो बतलाये जाते हैं । वे ही प्रकृति के वैधर्म्य हैं । सर्वत्र कर्ता ब्रह्म ही है, पुरुष भी कर्ता नहीं है ॥१८१-१८२॥ प्रधान में ज्ञानयुक्तता ये सब ही साम्य हैं । वह ब्रह्म

चेतनत्वं प्रधाने च साधर्म्यमिदमुच्यते । तत्वांतरं च तत्वानां कर्मकारणमेव च ॥१८३॥
प्रयोजनं च नैयोज्यमैश्वर्यं तत्वसंख्यया । संख्यास्तीत्युच्यते प्राज्ञै विंनिश्चित्यार्थचिंतकैः ॥१८४॥
इति तत्वस्य संभारं तत्व संख्या च तत्वतः । ब्रह्मतत्वाधिकं चापि श्रुत्वा तत्वं विदुर्बुधाः ॥१८५॥
सांख्यकृद्भक्तिरेषा च सद्भिराध्यात्मिकी कृता । योगजामपि भक्तानां शृणु भक्तिं पितामहे ॥१८६॥
प्राणायामपरो नित्यं ध्यानवान्नियतेंद्रियः । भैक्ष्यभक्षी व्रती वापि सर्वप्रत्याहृतेंद्रियः ॥१८७॥
धारणं हृदये कुर्याद्ध्यायमानः प्रजेश्वरम् । हृत्पद्मकर्णिकासीनं रक्तवक्त्रं सुलोचनम् ॥१८८॥
परितो द्योतितमुखं ब्रह्मसूत्रकटीतटम् । चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं वरदाभयहस्तकम् ॥१८९॥
योगजा मानसीसिद्धि ब्रह्मभक्तिः परा स्मृता । य एवं भक्तिमान्देवे ब्रह्मभक्तः स उच्यते ॥१९०॥
वृत्तिं च शृणुराजेंद्र या स्मृता क्षेत्रवासिनाम् । स्वयं देवेन विप्राणां विष्ण्वादीनां समागमे ॥१९१॥
कथिता विस्तरात्पूर्वं सर्वेषां तत्र सन्निधौ । निर्ममा निरहंकारा निःसंगा निष्परिग्रहाः ॥१९२॥
बंधुवर्गे च निस्नेहास्समलोष्टाश्मकांचनाः । भूतानां कर्मभिर्नित्यै र्विविधैरभयप्रदाः ॥१९३॥
प्राणायामपरा नित्यं परध्यानपरायणाः । याजिनः शुचयो नित्यं यतिधर्मपरायणाः ॥१९४॥
सांख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः । यजंते विधिनानेन ये विप्राः क्षेत्रवासिनः ॥१९५॥
अरण्ये पौष्करे तेषां मृतानां सत्फलं शृणु । व्रजंति ते सुदुष्प्रापं ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ॥१९६॥

हीं इन पचीस तत्त्वों से भिन्न हैं, तत्त्वों के स्रष्टा होने के कारण वह तत्त्व भी हैं ॥१८३॥ तत्त्वों की संख्या के अनुसार ही प्रयोजन, नैयोज्य तथा ऐश्वर्य होते हैं । इन सवों की संख्या होने के कारण अर्थों का चिन्तन करने वाले प्राज्ञपुरुष इसे संख्या भक्ति कहते हैं ॥१८४॥ इस तरह तत्त्वों की सामग्री एवं तत्त्वों की संख्या को तत्त्वतः जानकर तत्त्वज्ञ पुरुष उस भक्ति में ब्रह्म तत्त्व को उन सवों से अधिक (छब्वीसवाँ तत्त्व) तत्त्व बतलाते हैं ॥१८५॥ यह भक्ति सांख्यमतानुसारिणी आध्यात्मिकी भक्ति है । अव आप पितामह (ब्रह्माजी) की योगज भक्ति को सुनें ॥१८६॥ जितेन्द्रिय भक्त को चाहिये वह प्रणायाम परायण रहकर ब्रह्माजी का ध्यान करे, भिक्षा माँग कर भोजन करे और अपनी इन्द्रियों को अन्य विषयों से विमुख बना ले ॥१८७॥ प्रजाओं के स्वामी ब्रह्माजी का ध्यान करते हुए उनको सदा हृदय में धारण करे । ब्रह्माजी हृदय कमल की कर्णिका में वैठे हैं, उनके मुख तथा नेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं॥१८८॥ उनके मुख की ज्योति चारो ओर प्रकाशित हो रही है और उनकी कटि पर्यन्त ब्रह्मसूत्र विराजमान है । उनके चार मुख हैं, चार भुजायें है, उनके हाथ वरद एवं अभय मुद्रा ये युक्त है ॥१८९॥ ब्रह्माजी की योगज मानसी भक्ति सर्वश्रेष्ठ भक्ति बतलायी गयी है । जो ब्रह्माजी की इस प्रकार से भक्ति करता है वह ब्रह्मभक्त कहलाता है॥१९०॥ क्षेत्र वासियों की शास्त्रोक्त वृत्ति को मैं तुम्हें बतलाता हूँ । विष्णु आदि देवताओं के समागम के अवसर पर स्वयं ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों की वृत्ति का विस्तार सवों के समक्ष किया है । क्षेत्रवासी ब्राह्मणों को ममता रहित, अहङ्कार रहित सङ्ग (आसक्ति) रहित तथा परिग्रह रहित होना चाहिए ॥१९१-१९२॥ उनका अपने वन्धु वर्ग में स्नेह नहीं होना चाहिए; उनकी वुद्धि मिट्टी के ढेले और सुवर्ण दोनों के विषय में एक समान होनी चाहिए । उनको अपने अनेक प्रकार के नित्य कर्मो को जीवों को अभय प्रदान करने वाला होना चाहिए ॥१९३॥ उन्हें सदैव प्राणायाम परायण तथा ध्यान परायण होना चाहिए । यज्ञ करने वाला, पावित्र्य का पालन करने वाला और यतियों (संन्यासियों) के धर्म का पालन करने वाला होना चाहिए ॥१९४॥ उनको सांख्य एवं योग विधि का ज्ञाता होना चाहिए । धर्म के विषय में उनको निर्भ्रान्त ज्ञान होना चाहिए । इस तरह की विधि से जो क्षेत्रवासी ब्राह्मण ब्रह्माजी का यजन करके पौष्कर क्षेत्र

यत्प्राप्य न पुनर्जन्म लभन्ते मृत्युदायकम्। पुनरावर्तनं हित्वा ब्राह्मी विद्यां समास्थिताः ॥१९७॥
पुनरावृत्तिरन्येषां प्रपंचाश्रमवासिनाम्। गार्हस्थ्यविधिमाश्रित्य षट्कर्मनिरतः सदा ॥१९८॥
जुहोति विधिना सम्यङ् मंत्रैर्यज्ञे निमंत्रितः। अधिकं फलमाप्नोति सर्वदुःखविवर्जितः ॥१९९॥
सर्वलोकेषु चाप्यस्य गतिर्न प्रतिहन्यते। दिव्येनैश्वर्ययोगेन स्वारूढः सपरिग्रहः ॥२००॥
बालसूर्यप्रकाशेन विमानेन सुवर्चसा। वृतः स्त्रीणां सहस्त्रैस्तु स्वच्छन्दगमनालयः ॥२०१॥
विचरत्यानिवार्येण सर्वलोकान् यदृच्छया। स्पृहणीयतमः पुंसां सर्वधर्मोत्तमो धनी ॥२०२॥
स्वर्गच्युतः प्रजायेत कुले महति रूपवान्। धर्मज्ञो धर्मभक्तश्च सर्वविद्यार्थपारगः ॥२०३॥
तथैव ब्रह्मचर्येण गुरु शुश्रूषणेन च। वेदाध्ययन संयुक्तो भैक्ष्यवृति र्जितेन्द्रियः ॥२०४॥
नित्यं सत्यव्रते युक्तः स्वधर्मेष्वप्रमादवान्। सर्वकामसमृद्धेन सर्वकामावलंबिना ॥२०५॥
सूर्येणेव द्वितीयेन विमानेनानिवारितः। गुह्यका नाम ब्रह्माख्यगणाः परम संमताः ॥२०६॥
अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः। तेषां ससमतां याति तुल्यैश्वर्यसमन्वितः ॥२०७॥
देवदानवमर्त्येषु भवत्यनियतायुधः। वर्षकोटिसहस्त्राणि वर्षकोटिशतानि च ॥२०८॥
एवमैश्वर्यसंयुक्तो विष्णुलोके महीयते। उषित्वाऽसौ विभूत्यैवं यदा प्रच्यवते पुनः ॥२०९॥
विष्णुलोकात्स्वकृत्येन स्वर्गस्थानेषु जायते ॥२१०॥

में निवास करते हैं ॥१९५॥ वे ब्राह्मण मर कर जिस फल को प्राप्त करते हैं, उसे आप सुनें वे ब्रह्माजी के दुष्प्राप्य अक्षय सायुज्य को प्राप्त करते हैं ॥१९६॥ उसको प्राप्त करके वे पुनः मृत्युप्रद जन्म को नहीं प्राप्त करते हैं। पुनरावर्तन का परित्याग करके ब्राह्मीविद्या में स्थिर रहते है ॥१९७॥ दूसरे प्रपञ्चाश्रम में रहने वालों का पुनर्जन्म होता है। जो ब्राह्मण गार्हस्थ्य विधि को अपनाकर सदा षट्कर्म में लगे रहते हैं ॥१९८॥ यज्ञ मे निमन्त्रित होकर विधिपूर्वक मन्त्रों से होम करते हैं, वह सभी दुःखों से रहित होकर अधिक फल को प्राप्त करता है ॥१९९॥ उनकी लोकों में अप्रतिहत रूप से गति होती है। वे अपने दिव्य ऐश्वर्य के बल से सूर्य के समान प्रकाशित होने वाले, देदीप्यमान विमान पर अपने परिग्रह के साथ बैठकर हजारों दिव्य स्त्रियों से घिरे हुए स्वच्छन्दतया अपने आश्रय में जाते है ॥२००-२०१॥ वह ब्राह्मण अपनी इच्छा के अनुसार सभी लोकों में विचरण करता है। सभी धर्मों में उत्तम धन वाला वह लोगों को अत्यधिक प्रिय होता है ॥२०२॥ जब उसका स्वर्ग से पतन होता है तो उसका जन्म महान् वंश में होता है तथा वह रूपवान् होता है। वह धर्मों को जानने वाला, धर्म का भक्त तथा सभी विद्याओं के अर्थ का ज्ञाता होता है ॥२०३॥ वह ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, अपने गुरुओं की सेवा के द्वारा तथा वेदाध्ययन करते हुए जितेन्द्रिय रहकर भैक्ष्य वृत्ति को अपना लेता है ॥२०४॥ वह सदा सत्यव्रत का पालन करता है, अपने धर्म के विषय में कभी भी प्रमाद नही करता है। उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती है, तथा सभी कामनाओं को अपनाने वाला वह मृत्यु के पश्चात् दूसरे सूर्य के समान देदीप्यमान विमान के द्वारा निर्निवार्य रूप से (बेरोक-टोक) ब्रह्माजी के जो गुह्यक नामक उनके अत्यन्त प्रिय अप्रमेय बल एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा देवताओं एवं दानवों से पूजित जो गण है, उसके समान हो जाता है और उनके सदृश ही ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥२०५-२०७॥ करोड़ों हजार वर्ष पर्यन्त इसतरह के ऐश्वर्य से युक्त होकर विष्णुलोक में पूजा प्राप्त करता है। इसतरह से ऐश्वर्य से युक्त होकर रहने के बाद उसका जब विष्णुलोक से पतन होता है तो वह अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग के स्थानों में उत्पन्न होता है ॥२०८-२०९॥ पुनः वह पुष्कर वन में आकर, ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करता है, और वेदों का अभ्यास करता

पुष्करारण्यमासाद्य ब्रह्मचर्याश्रमे स्थितः । अभ्यासेन तु वेदानां वसति म्रियतेपि वा ॥२११॥
मृतोऽसौ याति दिव्येन विमानेन स्वतेजसा । पूर्णचंद्रप्रकाशेन शशिवत्प्रियदर्शनः ॥२१२॥
रुद्रलोकं समासाद्य गुह्यकैः सह मोदते । ऐश्वर्यं महदाप्नोति सर्वस्य जगतः प्रभुः ॥२१३॥
भुक्त्वा युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । प्रच्युतस्तु पुनस्तस्माद्रुद्रलोकात्क्रमेण तु ॥२१४॥
नित्यं प्रमुदितस्तत्र भुक्त्वा सुखमनामयम् । द्विजानां सदने दिव्ये कुले महति जायते ॥२१५॥
मानुषेषु सधर्मात्मा सुरूपो वाक्पतिर्भवेत् । स्पृहणीयवपुः स्त्रीणाम्महाभोगपतिर्बली ॥२१६॥
वानप्रस्थसमाचारो ग्राम्यौषधिविवर्जितः । सर्वलोकेषु चाप्यस्य गति र्न प्रतिहन्यते ॥२१७॥
शीर्णपर्ण फलाहारः पुष्पमूलांबुभोजनः । कापोतेनाश्मकुट्टेन दंतोलूखलिकेन च ॥२१८॥
वृत्युपायेन जीवेत चीरवल्कलवाससा । जटी त्रिषवणस्नायी त्यक्तदोषस्तु दंडवान् ॥२१९॥
कृच्छ्रव्रतपरो यस्तु श्वपचो यदि वा परः । जलशायी पंचतपा वर्षास्वभ्रावगाहकः ॥२२०॥
कीटकंटकपाषाणभूम्यां तु शयनं तथा । स्थानवीरासनरतः संविभागी दृढव्रतः ॥२२१॥
अरण्यौषधिभोक्ता च सर्व भूताभयप्रदः । नित्यं धर्मार्जनरतो जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥२२२॥
ब्रह्मभक्तः क्षेत्रवासी पुष्करे वसते मुनिः । सर्वसंगपरित्यागी स्वारामो विगतस्पृहः ॥२२३॥
यश्चात्रवसते भीष्म शृणु तस्यापि या गतिः । तरुणार्कप्रकाशेन वेदिकास्तंभ शोभिना ॥२२४॥
ब्रह्मभक्तो विमानेन याति कामप्रचारिणाम् । विराजमानो नभसि द्वितीय इव चंद्रमाः ॥२२५॥

है, ऐसे रहते हुए यदि उसकी मृत्यु भी हो जाती है तो ॥२१०-२११॥ मरने पर वह पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाश से युक्त, अपने तेज के द्वारा चन्द्रमा के समान देखने में अच्छा लगने वाला, दिव्य विमान से रुद्र के लोक में जाता है और वहाँ पर गुह्यकों के साथ आनन्दानुभव करता है । जगत् का स्वामी वह महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है॥२१२-२१३॥ वहाँ हजारों युगों तक आनन्दोपभोग करके वह रुद्र लोक में पूजित होता है, पुनः क्रमशः उस रुद्र लोक से पतन होने पर ॥२१४॥ वहाँ पर नित्य ही प्रमुदित रहते हुए निर्दोष सुख का भोग करके ब्राह्मणों के दिव्य घर में और उनके श्रेष्ठ वंश में जन्म लेता है ॥२१५॥ वह धार्मिक, सुन्दर रूप वाला तथा वाग्मी मनुष्य होता है । वह वलवान, स्त्रियों के द्वारा स्पृहणीय शरीर वाला तथा महाभोगों से युक्त होता है ॥२१६॥ वह अन्त में वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करते हुए ग्राम्य अन्नों का परित्याग कर देता है । उसकी सभी लोकों में स्वच्छन्द गति होती है॥२१७॥ वह गिरे हुए पत्तों तथा फलों का आहार करता है तथा पुष्पों मूलों तथा जल का भोजन करता है । वह कापोत वृत्ति, अश्मकुट्ट वृत्ति (पत्थर से कूटकर खाने वाली वस्तुओं को खाना) अथवा दन्तोलूखलिक वृत्ति से॥२१८॥ जीवन निर्वाह करता है, तथा चीर एवं वल्कल वस्त्रों को धारण करता है । वह जटा धारण करता है, तीनों सन्ध्याओं में स्नान करता है एवं दोषों से रहित होकर दण्ड धारण करता है ॥२१९॥ यदि कोई चाण्डाल अथवा दूसरा कोई कृच्छ्र व्रत का पालन करता है, जल में सोता है, पञ्चाग्नि तापता है तथा वर्षा के दिन में मेघों के नीचे रहता है ॥२२०॥ कीड़ों, काँटों, पत्थर अथवा भूमि पर शयन करता है, सदा वीरासन से बैठता है, समय का विभाग करके कामों को करता है तथा दृढता पूर्वक अपने नियम का पालन करता है ॥२२१॥ वन्य अन्नों को खाता है, सभी भूतों (जीवों) को अभय प्रदान करता है, सदा धर्मार्जन करने में लगा रहता है, कभी क्रोध नहीं करता है तथा इन्द्रियों को वश में रखता है ॥२२२॥ ब्रह्माजी की भक्ति करता है, क्षेत्र में निवास करता है तथा पुष्कर तीर्थ में निवास करता है । सभी प्रकार के सङ्गों आसक्तियों का त्याग करता है, आत्माराम रहता है तथा किसी भी वस्तु की

गीतवादित्रनृत्यज्ञै गंधर्वाप्सरसां गणैः। अप्सरोभिः समायुक्तो वर्षकोटिशतान्यसौ ॥२२६॥
यस्य कस्यापि देवस्य लोकं यात्यनिवारितः। ब्रह्मणोनुग्रहेणैव तत्र तत्र विराजते ॥२२७॥
ब्रह्मलोकाच्च्युतश्चापि विष्णुलोकं स गच्छति। विष्णुलोकात्परिभ्रष्टोरुद्रलोकं स गच्छति ॥२२८॥
तस्मादपि च्युतः स्थानाद्द्वीपेषु स हि जायते।स्वर्गेषु च तथान्येषु भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान्॥२२९॥
भुक्त्वैश्वर्यं ततस्तेषु पुनर्मर्त्येषु जायते। राजा वा राजपुत्रो वा जायते धनवान्सुखी ॥२३०॥
सुरूपः सुभगः कांतः कीर्तिमान्भक्तिभावितः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वा क्षेत्रवासिनः॥२३१॥
स्वधर्मनिरता राजन् सुवृत्ता श्चिरजीविनः। सर्वात्मना ब्रह्मभक्ता भूतानुग्रहकारिणः ॥२३२॥
पुष्करे तु महाक्षेत्रे ये वसंति मुमुक्षवः। मृतास्ते ब्रह्मभवनं विमानैर्यांति शोभनैः ॥२३३॥
अप्सरोगणसंघुष्टैः कामगैः कामरूपिभिः। अथवासर्वदीप्ताग्नौ स्वशरीरं जुहोति यः ॥२३४॥
ब्रह्मध्यायी महासत्वःस ब्रह्मभवनं व्रजेत्। ब्रह्मलोको क्षयस्तस्य शाश्वतो विभवैः सह ॥२३५॥
सर्वलोकोत्तमो रम्यो भवतीष्टार्थसाधकः। पुष्करे तु महापुण्ये प्राणान्ये सलिलेत्यजन्॥२३६॥
तेषामप्यक्षयो भीष्म ब्रह्मलोको महात्मनाम्। साक्षात्पश्यंति ते देवं सर्वदुःखविनाशनम्॥२३७॥
सर्वामरयुतं देवं रुद्रविष्णुगणैर्युतम्। अनाशके मृताश्शूद्राः पुष्करे तु वने नराः ॥२३८॥

अभिलाषा नहीं करता है ॥२२३॥ हे भीष्म ! इस नियम से जो पुष्कर तीर्थ में निवास करता है, उसको जो गति प्राप्त होती है, उसे आप सुनें। मध्याह्न के सूर्य के समान प्रकाश वाले वेदिओं तथा स्तम्भों से सुशोभित, विमान से वह ब्रह्माजी का भक्त, अपनी इच्छा के अनुसार जाने वालों के लोक में जाता है। वह आकाश में दूसरे चन्द्रमा के समान सुशोभित होता है ॥२२४-२२५॥ गीत, वाद्य तथा नृत्य के अभिज्ञ गन्धर्वों एवं अपसराओं के समूह से तथा अप्सराओं के साथ सैकड़ों वर्षों तक ॥२२६॥ किसी भी देवता के लोक में बिना किसी अवरोध के जाता है। वह ब्रह्माजी की कृपा का पात्र होने के कारण विभिन्न स्थानों के लोकों में विराजित होता है ॥२२७॥ जब ब्रह्मलोक से उसका पतन होता है तो वह विष्णुलोक में जाता है। जब उसका विष्णुलोक से पतन होता है तो वह रुद्रलोक में जाता है ॥२२८॥ उस स्थान से भी पतित होकर वह विभिन्न द्वीपों में जन्म लेता है। किञ्च अन्य स्वर्गों में अपने मन के अनुसार भोगो को भोगकर ॥२२९॥ उसके बाद उन लोकों के भोगों को भोग कर वह मनुष्य का जन्म प्राप्त करता है। वह राजा अथवा राजकुमार होता है। वह धनी तथा सुखी होता हे ॥२३०॥ वह सुन्दर रूप वाला, सुभग, कमनीय यशस्वी तथा भक्त हाता है। क्षेत्र में रहने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ॥२३१॥ हे राजन्! जो अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं तथा सुन्दर आचरण वाले होते हैं वे चिरंजीवी होते हैं, पूर्णरूप से ब्रह्माजी के भक्त वे जीवों पर कृपा करने वाले होते हैं ॥२३२॥ ऐसे जीव मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से पुष्कर तीर्थ में निवास करते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् अप्सराओं के गीतों से गुञ्जित, स्वेच्छागामी तथा इच्छा के अनुसार रूप वनाने वाले सुन्दर विमान से ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं। अथवा जो व्यक्ति जलती हुयी अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे देता है।२३३-२३४॥ जो वेद का अध्ययन करता है तथा महा सत्त्व सम्पन्न होता है, वह भी अपनी आत्माहुति देकर ब्रह्मजी के लोक में चला जाता है। उसके लिए शाश्वत ऐश्वर्य से युक्त ब्रह्माजी का अक्षय लोक होता है ॥२३५॥ वह लोक सभी लोकों से उत्तम, रमणीय तथा अभिप्रेत अर्थ का साधक होता है। जिन लोगों ने महापुण्यवान् पुष्कर तीर्थ के जल में अपने शरीर का परित्याग कर दिया ॥२३६॥ हे भीष्म ! उन महात्माओं को भी अक्षय ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। वे जीव सभी दुःखों का विनाश करने वाले सभी देवताओं के तथा विष्णु एवं

हँसयुक्तैस्ततो यांति विमानैरर्कसप्रभैः। नानारत्नसुवर्णाढयैर्द्दर्गंधाधिवासितैः ॥२३९॥
अनौपम्यगुणैरन्यैरप्सरोगीतनादितैः । पताकाध्वजविन्यस्तै र्नाना घण्टा निनादितैः ॥२४०॥
ब्रह्माश्चर्यसमोपेतैः क्रीडाविज्ञानशालिभिः । सुप्रभै र्गुणसंपन्नै र्मयूरवरवाहिभिः ॥२४१॥
ब्रह्मलोके नरा धीरा रमंतेऽनाशके मृताः । तत्रोपित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्॥२४२॥
धनी विप्रकुले भोगी जायते मर्त्यमागतः । कारीषीं साध्येद्यस्तु पुष्करे तु वने नरः ॥२४३॥
सर्वलोकान्परित्यज्य ब्रह्मलोकं स गच्छति । ब्रह्मलोके वसेत्तावद्यावत्कल्पक्षयो भवेत् ॥२४४॥
नैव पश्यति मर्त्यं हि क्लिश्यमानं स्वकर्मभिः । गतिस्तस्याप्रतिहता तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥२४५॥
सपूज्यः सर्वलोकेषु यशोविस्तारयन्वशी । सदाचारविधिप्रज्ञः सर्वेंद्रियमनोहरः ॥२४६॥
नृत्यवादित्रगीतज्ञः सुभगः प्रियदर्शनः । नित्यमम्लानकुसुमो दिव्याभरणभूषितः ॥२४७॥
नीलोत्पलदलश्यामो नीलकुंचितमूर्द्धजः । अजघन्याः सुमध्याश्च सर्वसौभाग्यपूरिताः ॥२४८॥
सर्वैश्वर्यगुणोपेता यौवने नातिगर्विताः। स्त्रियः सेवंति तत्रस्थाः शयने रमयंति च ॥२४९॥
वीणवेणुनिनादैश्च सुप्तः संप्रतिबुध्यते । महोत्सवसुखं भुंक्ते दुःप्राप्यमकृतात्मभिः॥२५०॥
प्रसादाद्देवदेवस्य ब्रह्मणः शुभकारिणः ।

रुद्र के साथ श्रीब्रह्माजी का साक्षात् दर्शन करते हैं ॥२३७॥ पुष्कर तीर्थ के वन में कोई शूद्र भी मनुष्य उपवास करके यदि अपना प्राण त्याग कर देते हैं तो वे अनेक प्रकार के रत्नों तथा सुवर्ण बहुल, अत्यन्त सुगन्धियों से सुगन्धित, दूसरे अनुपमेय गुणों से युक्त, अप्सराओं के गीत ध्वनि से युक्त, ध्वजा एवं पताका से युक्त, विविध घण्टाओं की ध्वनि से ध्वनित, अनेक आश्चर्यों से युक्त, क्रीडा विज्ञान से सुशोभित सुन्दर कान्ति वाले, गुणों से युक्त श्रेष्ठ मयूरों द्वारा वहन किए जाने वाले, हंसों से युक्त विमान के द्वारा वहन किए जाने वाले सूर्य की कान्ति वाले विमान से ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं । अनाशक (उपवास व्रत) से मरने वाले धीर पुरुष ब्रह्मलोक में आनन्दानुभव करते हैं । उस लोक में चिरकाल तक रहकर तथा अपने मनोऽनुकूल भोगो को भोगकर ॥२३८-२४२॥ मर्त्यलोक में आकर धनी ब्राह्मण के वंश में भोगों को भोगने वाले के रूप में जन्म लेते हैं । पुष्कर वन में जो मनुष्य कारीषी विद्या की साधना करता है ॥२४३॥ वह मृत्यु के पश्चात् सभी लोकों का परित्याग करके ब्रह्मलोक में जाता है । वह ब्रह्मलोक में तव तक निवास करता है, जब तक की कल्प की समाप्ति नहीं हो जाती है ॥२४४॥ वह किसी भी ऐसे मनुष्य को नहीं देखता है जो अपने कर्मो के फलस्वरूप कष्ट का अनुभव कर रहा हो । उसकी गति तिर्यक् (तिरछा) ऊपर तथा नीचे की ओर बिना किसी रोक-टोक के होती है ॥२४५॥ वह जितेन्द्रिय पुरुष अपने यश का विस्तार करते हुए सभी लोकों में पूजित होता है । वह सदाचार विधि का विशेष ज्ञाता होता, उसकी सभी इन्द्रियाँ मनोहर होती हैं ॥२४६॥ वह नृत्य, वाद्य तथा गीत का ज्ञाता हो जाता है; देखने में वह अत्यन्त मनोहर होता है । वह कभी भी नहीं कुम्हलाने वाले पुष्पों से रचित दिव्य अलङ्कारों से अलङ्कृत होता हैं ॥२४७॥ उसका शरीर नील कमल दल के समान श्याम वर्ण का होता है । उसके केश काले धुंघराले होते हैं । अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली तथा सभी प्रकार के सौभाग्य से सम्पन्न ॥२४८॥ समस्त ऐश्वर्यो तथा समस्त गुणों से युक्त, यौवन के गर्व से गर्वीली बनी हुयी, वहाँ पर रहने वाली रमणियाँ उसकी सेवा करती हैं ओर उसको शय्या पर रमण कराती है ॥२४९॥ प्रात:काल वह वीणा तथा वेणु इत्यादि मङ्गलमय वाद्यों की ध्वनि सुनकर जगता है । वह महापुरुषों के साथ महोत्सव के सुख का अनुभव करता है ॥२५०॥ उसको समस्त सुख कल्याणकारी ब्रह्माजी की कृपा से ही प्राप्त होते हैं । **भीष्मजी ने**

भीष्म उवाच

आचाराः परमाधर्माः क्षेत्रधर्मपरायणाः ॥२५१॥
स्वधर्माचारनिरता जितक्रोधा जितेंद्रियाः। ब्रह्मलोकं व्रजंतीति नैतच्चित्रं मतं मम ॥२५२॥
असंशयं च गच्छंति लोकानन्यानपि द्विजाः। विना पद्मोपवासेन तथैव नियमेन च ॥२५३॥
स्त्रियोम्लेछाश्च शूद्राश्च पक्षिणः पशवो मृगाः। मूका जडान्धबधिरास्तपोनियमवर्जिताः ॥२५४॥
तेषां वद गतिं विप्र पुष्करे ये त्ववस्थिताः।

पुलस्त्य उवाच

स्त्रियो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ॥२५५॥
पुष्करे तु मृता भीष्म ब्रह्मलोकं व्रजंति ते। शरीरैर्दिव्यरूपैस्तु विमानै रविसप्रभैः ॥२५६॥
दिव्यव्यूहसमायुक्तैः सुवर्णवरकेतनैः। सुवर्णवज्रसोपानमणिस्तंभविभूषितैः ॥२५७॥
सर्वकामोपभोगाढ्यैः कामगैःकामरूपिभिः। नानारसाढ्यं गच्छंति स्त्रीसहस्त्रसमाकुलाः ॥२५८॥
ब्रह्मलोकं महात्मानो लोकानन्यान्यथेप्सितान्। ब्रह्मलोकाच्च्युताश्चापि क्रमाद्वीपेषु यांति ते ॥२५९॥
कुले महित विस्तीर्णे धनी भवति स द्विजः। तिर्यग्योनिगता ये तु सर्पकीटपिपीलिकाः ॥२६०॥
स्थलजा जलाश्चैव स्वेदांडोद्भिज्जरायुजाः। सकामा वाप्यकामा वा पुष्करे तु वने मृताः॥२६१॥
सूर्यप्रभविमानस्था ब्रह्मलोकं प्रयांति ते। कलौ युगे महाघोरे प्रजाः पापसमीरिताः ॥२६२॥
नान्येनास्मिन्नुपायेन धर्मः स्वर्गश्चलभ्यते। वसन्ति पुष्करे ये तु ब्रह्मार्चनरता नराः ॥२६३॥

कहा— क्षेत्रधर्म का पालन करने वालों का सबसे बड़ा धर्म सदाचार ही होता है ॥२५१॥ अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले, क्रोध को जीत लेने वाले तथा जितेन्द्रिय पुरुष ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं, इसके विषय में मुझे कोई भी आश्चर्य नहीं प्रतीत होता है। वे दूसरे लोकों में जाते हैं, इसके विषय में भी कोई सन्देह नहीं है, किन्तु जो जीव पुष्कर क्षेत्र में रहकर व्रतोपवास नहीं करते हैं, तथा नियमों का पालन नहीं करते हैं, ऐसे स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र, पक्षीगण, पशुगण, मृगगण, मूक, जड, अन्धे, बहरे जीव जो नियमका कभी पालन नहीं करते हैं ॥२५२-२५४॥ पुष्कर क्षेत्र में रहने वाले उन जीवों को प्राप्त होने वाली गति को आप मुझे बतलायें। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** स्त्रियाँ, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी, मृग ॥२५५॥ हे भीष्म ! ऐसे जीव जो पुष्कर क्षेत्र में शरीर त्याग करते हैं, वे दिव्य रूप से युक्त शरीर धारण करके, सूर्य के समान देदीप्यमान दिव्य समूहों से सम्पन्न, सुवर्ण रचित पताकाओं से सुशोभित, जिनमें सुवर्ण तथा हीरों से निर्मित सीढियाँ होती हैं, मणि निर्मित स्तम्भ होते हैं, समस्त कमनीय भोगों से युक्त, इच्छानुसार चलने वाले, इच्छा के अनुसार रूप बना लेने वाले, दिव्य विमानों से ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं। वे हजारों स्त्रियों के साथ वहाँ अनेक प्रकार से परिपूर्ण ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं ॥२५६-२५८॥ वे सब ब्रह्मलोक में तथा अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे लोकों में भी जाते हैं। जब उनका ब्रह्मलोक से पतन होता है, तव वे क्रमशः द्वीपों में जाकर जन्म लेते हैं ॥२५९॥ वहाँ उनका महान् तथा विशाल वंश वाले कुल में जन्म होता है। तिर्यक् योनि के जो सर्प, कीड़े, चींटी इत्यादि जीव हैं ॥२६०॥ भूमि पर उत्पन्न होने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज (वृक्ष आदि) जरायुज (मनुष्य आदि) सकाम, अथवा निष्काम जीव जो पुष्कर क्षेत्र में अपने शरीर का परित्याग करते हैं ॥२६१॥ वे सूर्य की कान्ति से युक्त विमान पर वैठकर ब्रह्मलोक में जाते हैं। अत्यन्त भयङ्कर कलियुग में प्रजा पापिनी हो जाती है ॥२६२॥ अतएव इस कलियुग में किसी भी दूसरे उपाय से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं

कलौ युगे कृतार्थास्ते क्लिश्यंत्यन्ये निरर्थका: । रात्रौ करोति यत्पापं नर:पंचभिरिंद्रियैः ॥२६४॥
कर्मणा मनसा वाचा कामक्रोधवशानुगः । प्रातः सवनमासाद्य पुष्करे तु पितामहम् ॥२६५॥
अभिगम्य शुचिर्भूत्त्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते। उदयेर्कस्य चारभ्य यावद्दर्शनमूर्ध्वगम् ॥२६६॥
मानसाख्ये प्रसंचिंत्य ब्रह्मयोगे हरेदघम् । दृष्ट्वा विरिंचिं मध्याह्ने नरः पापात्प्रमुच्यते ॥२६७॥
मध्याह्नास्तमयान्तं यदिंद्रियैः पापमाचरेत् । पितामहस्य संध्यायां दर्शनादेव मुच्यते ॥२६८॥
शब्दादीन्विषयान्सर्वान्भुंजानोपि सकामतः । यः पुष्करे ब्रह्मभक्तो निवसेत्तपसि स्थितः ॥२६९॥
पुष्करारण्यमध्यस्थो मिष्टन्नास्वादभोजनः । त्रिकालमपि भुंजानो वायुभक्षसमो मतः ॥२७०॥
वसंति पुष्करे ये तु नराः सुकृतकर्मिणः । ते लभन्ते महाभोगान् क्षेत्रस्यास्य प्रभावतः ॥२७१॥
यथा महोदये स्तुल्यो न चान्योस्ति जलाशयः । तथा वै पुष्करस्यापि समंतीर्थं न विद्यते ॥२७२॥
पुष्करारण्यसदृशं तीर्थं नास्त्यधिकं गुणैः । अथतेन्यान्प्रवक्ष्यामि क्षेत्रे येस्मिन् व्यव स्थिताः ॥२७३॥
विष्णुना सहिताः सर्व इंद्राद्याश्च दिवौकसः । गजवक्त्रः कुमारश्च रेवंतः सदिवाकरः ॥२७४॥
शिवदूती तथा देवी कन्या क्षेमंकरी सदा । अलं तपोभिर्नियमैः सुक्रियार्चनकारिणाम् ॥२७५॥
व्रतोपवासकर्माणि कृत्वान्यत्र महांत्यपि । ज्येष्ठे तु पुष्करारण्ये यस्तिष्ठति निरुद्यमः ॥२७६॥
लभते सर्वकामिवं योऽत्रैवास्ते द्विजः सदा । पितामहसमं याति स्थानं परममव्ययम् ॥२७७॥

हो पाती है । किन्तु जो लोग पुष्कर में रहकर ब्रह्माजी की अर्चना करते हैं ॥२६३॥ उनका कलियुग में जीवन सफल हो जाता है । दूसरे लोग तो व्यर्थ ही क्लेश का अनुभव करते हैं । मनुष्य रात्रि में अपनी पाञ्चो इन्द्रियों से जो पाप करते हैं ॥२६४॥ उन कामी तथा क्रोधी मनुष्यों का मन, वाणी तथा कर्म से किए गये प्रात:काल पवित्र होकर तथा जल लेकर पुष्कर तीर्थ में ब्रह्माजी का दर्शन करने से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । सूर्योदय काल से लेकर दोपहर होने तक ॥२६५-२६६॥ उनके द्वारा किए गये पाप ब्रह्माजी का चिन्तन (ध्यान) करने से विनष्ट हो जाते हैं। दोपहर में ब्रह्माजी का दर्शन करने से भी वे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥२६७॥ मध्याह्न से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त वह अपनी इन्द्रियों से जिन पापों को करता है, वह उन पापों से सायंकाल ब्रह्माजी का दर्शन करने से मुक्त हो जाता है॥२६८॥ कामना पूर्वक शब्दादि विषयों का भोग करने वाला भी व्यक्ति, पुष्कर तीर्थ में ब्रह्माजी की भक्ति से निवास करते हुए तपस्या करता है ॥२६९॥ पुष्करारण्य में रहकर अच्छे स्वाद से युक्त भोज्य पदार्थों का अपने मनोनुकूल भोजन करने वाले पुरुष को वही फल प्राप्त होता है जो फल अन्यत्र वायु पीकर तपस्या करने वाले को प्राप्त होता है ॥२७०॥ जो पुण्यवान् व्यक्ति पुष्कर तीर्थ में निवास करते हैं, वे इस क्षेत्र के प्रभाव से महान् भोगों को प्राप्त करते हैं ॥२७१॥ जिस तरह समुद्र के समान दूसरा कोई जलाशय नहीं है, उसीतरह पुष्कर के समान कोई दूसरा तीर्थ भी नहीं है ॥२७२॥ पुष्कर से बढकर अधिक गुणों वाला कोई दूसरा तीर्थ नहीं है । अब मैं इस क्षेत्र में रहने वाले देवताओं को बतलाता हूँ ॥२७३॥ यहाँ पर विष्णु भगवान् के साथ इन्द्र आदि समस्त देवताओं का निवास है । गजवक्त्र, कुमार, रेवन्त, सूर्य, शिवदूती तथा कल्याणकारिणी कन्यादेवी (सावित्री देवी) इन देवताओं का यहाँ सदा निवास बना रहता है । अन्य तीर्थों में रहकर तपस्या, नियम का पालन, तथा अर्चना करने से कोई लाभ नहीं है ॥२७४-२७५॥ अन्य तीर्थ में बड़े-से-बड़े व्रत, उपवास आदि कर्मों को करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है । उन फलों को सदा पुष्कर तीर्थ में रहकर किसी भी उद्यम को किए बिना भी पुष्करारण्य में रहने वाला ब्राह्मण प्राप्त कर लेता है और मृत्यु के पश्चात् पितामह (ब्रह्माजी) के ही समान अव्यय स्थान को प्राप्त

कृते द्वादशभिर्वर्षै स्त्रेतायां हायनेन तु। मासेन द्वापरे भीष्म अहोरात्रेण तत्कलौ ॥२७८॥
फलं संप्राप्यते लोके क्षेत्रेस्मिंस्तीर्थवासिभिः । इत्येवं देवदेवेन पुरोक्तं ब्रह्मणा मम ॥२७९॥
नातः परतरं किंचित् क्षेत्रमस्तीह भूतले। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनारण्यमेतत्समाश्रयेत् ॥२८०॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थाथ भिक्षुकः । यथोक्तकारिणः सर्वे गच्छंति परमां गतिम् ॥२८१॥
एकस्मिन्नाश्रमे धर्मं योऽनुतिष्ठेद्यथाविधि । अकामद्वेषसंयुक्तः स परत्र महीयते ॥२८२॥
चतुष्पथाहि निःश्रेणी ब्रह्मणेह प्रतिष्ठिता। एतामाश्रित्य निश्रेणी ब्रह्मलोके महीयते॥२८३॥
आयुषोऽपि चतुर्भागं ब्रह्मचार्यनसूयकः। गुरौ वा गुरुपुत्रे वा वसेद्धमार्थ कोविदः ॥२८४॥
कर्मातिरेकेण गुरोरध्येतव्यं बुभूषता । दक्षिणानां प्रदापी स्यादाहूतो गुरुमाश्रयेत् ॥२८५॥
जघन्यशायी पूर्वं स्यादुत्थायी गुरुवेश्मनि। यच्च शिष्येण कर्त्तव्यं कार्यमासेवनादिकम् ॥२८६॥
कृतमित्येव तत्सर्वं कृत्वा तिष्ठेत्तु पार्श्वतः । किंकरः सर्वकारी च सर्वकर्म सुकोविदः ॥२८७॥
शुचिर्दक्षो गुणोपेतो ब्रूयादिष्टमथोत्तरम् । चक्षुषा गुरुमव्यग्रो निरीक्षेत जितेंद्रियः ॥२८८॥
नाभुक्तवति चाश्नीयादपीतवति नो पिबेत् । नतिष्ठति तथासीत न सुप्तेनैवसंविशेत् ॥२८९॥
उत्तानाभ्यां च पाणिभ्यां पादावस्यमृदुस्पृशेत् । दक्षिणं दक्षिणेनैव सव्यं सव्येन पीडयेत् ॥२९०॥
अभिवाद्य गुरुं ब्रूयादभिधां स्वां ब्रुवन्निति। इदं करिष्ये भगवन्निदं चापि मया कृतम् ॥२९१॥

करता है ॥२७६-२७७॥ सत्ययुग में बारह वर्षो तक, त्रेता में एक वर्ष तक, द्वापर युग में एक मास तक तीर्थ में निवास करने से जिस फल को प्राप्त किया जा सकता है, उस फल को कलियुग में एक दिन और एक रात्रि तक इस तीर्थ में निवास करके तीर्थवासी प्राप्त करते हैं । इस बात को देवाराध्य ब्रह्माजी ने मुझे बतलाया था ॥२७९॥ भूलोक में इस तीर्थ से बढकर कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है, अतएव हर प्रकार के प्रयत्न के द्वारा इस तीर्थ में निवास करना चाहिए ॥२८०॥ गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी, उपर्युक्त प्रकार से इस तीर्थ में रहने वाले सबके सब मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥२८१॥ जो व्यक्ति कामना तथा द्वेष से रहित होकर किसी एक आश्रम में स्थित रहकर उपर्युक्त प्रकार से धर्म का अनुष्ठान करता है, वह परलोक में पूजित होता है ॥२८२॥ यहाँ पर ब्रह्माजी ने श्रेणी रहितचतुष्पथ की स्थापना की है, इस निःश्रेणी को अपना आश्रय बनाने वाला ब्रह्मलोक मे प्रतिष्ठित होता है॥२८३॥ ब्रह्मतत्त्व के ज्ञाता पुरुष को चाहिये कि आयु के चतुर्थ भाग तक बिना किसी द्वेष के अपने गुरु अथवा गुरु के पुत्र की सेवा करते हुए ब्रह्मचारी बनकर रहे ॥२८४॥ कर्मों को करने से बचे हुए समय में ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से गुरु से अध्ययन करना चाहिए उसके बाद आचार्य को अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करे और गुरु के द्वारा बुलाये जाने पर उनके सन्निकट जाना चाहिए ॥२८५॥ वह गुरु के घर में जमीन पर सोये और गुरु से पहले जग जाय; शिष्य के द्वारा किए जाने वाले कार्यों को सम्पादित करे, गुरु की सेवा करे ॥२८६॥ अपने सभी करने योग्य कार्यों को करके वह गुरु के सन्निकट में बैठे, उसे हर प्रकार से गुरु का सेवक होना चाहिए और समस्त धर्मों को करना चाहिए ॥२८७॥ उसे पवित्र, निपुण और गुरु के पूछने पर उचित उत्तर देने वाला होना चाहिए । वह जितेन्द्रिय रहकर अपने नेत्रों से शान्ति पूर्वक गुरु का दर्शन करे ॥२८८॥ गुरु के भोजन करने से पहले न तो भोजन करे और न तो गुरु के जल पीने से पहले पानी पिये । गुरु के बैठे बिना बैठे भी नहीं और न तो गुरु के सोने से पहले सोये ॥२८९॥ वह अपने दोनों हथेली को ऊपर की ओर करके कोमलता पूर्वक गुरु के चरणों का स्पर्श करे । वह दाहिने हाथ से दायें पैर का तथा बायें हाथ से बायें पैर का स्पर्श करे ॥२९०॥ गुरु को प्रणाम करके वह अपना नाम बतलाये और कहे भगवन्

इति सर्वं च विज्ञाप्य निवेद्य गुरवे धनम् । कुर्यात्कृतं च तत्सर्वमाख्येयं गुरवे पुनः ॥२९२॥
यांस्तु गंधान्रसान्वापि ब्रह्मचारी न सेवते । सेवेततान्समावृत्य इति धर्मेषु निश्चयः॥२९३॥
ये केचिद्विस्तरेणोक्ता नियमा ब्रह्मचारिणः । तान्सर्वाननुगृह्णीयाद्भक्तश्शिष्यश्च वै गुरोः॥२९४॥
स एवं गुरवे प्रीतिमुपकृत्य यथाबलम् । अग्राम्येष्वाश्रमेष्वेवं शिष्यो वर्तेत कर्मणा ॥२९५॥
वेदवेदौ तथा वेदान्वेदार्थाश्च तथाद्विजः । भिक्षाभुगप्यधः शायी समधीत्य गुरोर्मुखात् ॥२९६॥
वेदव्रतोपयोगी च चतुर्थांशेन योगतः । गुरवे दक्षिणां दत्वा समावर्तेद्यथाविधि ॥२९७॥
धर्मान्वितैर्युतोदारैरग्नीनावाह्य पूजयेत् । द्वितीयमायुषो भागं गृहमेधी समाचरेत् ॥२९८॥
गृहस्थ वृत्तयः पूर्वं चतस्रो मुनिभिः कृताः । कुसूलधान्या प्रथमा कुंभीधान्याद्वितीयका ॥२९९॥
अश्वस्तनी तृतीयोक्ता कापोत्यथ चतुर्थिका । तासां परापरा श्रेष्ठा धर्मतालोकजित्तमा ॥३००॥
षट्कर्मवर्त्तकस्त्वेकस्त्रिभिरन्यः प्रसर्पते । द्वाभ्यां चैव चतुर्थस्तु द्विजः सब्रह्मणि स्थितः॥३०१॥
गृहमेधिव्रतादन्यन्महत्तीर्थं नचक्षते । नात्मार्थे पाचयेदन्नं न वृथाघातयेत्पशुम् ॥३०२॥
प्राणीवा यदि वा प्राणी संस्काराद्यज्ञमर्हति । नदिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रयोः ॥३०३॥
नभुंजीतांतरा काले नानृतं तु वदेदिह । नचास्याश्नन्वसेद्विप्रो गृहे कश्चिदपूजितः ॥३०४॥
तथास्यातिथयः पूज्या हव्यकव्यवहाः स्मृताः । वेदविद्याव्रतस्नाता श्रोत्रिया वेदपारगाः ॥३०५॥

मैंने यह कार्य कर लिया है और अब यह कार्य करूँगा ॥२९१॥ इसतरह से सारी बातें बतलाकर तथा जो उसको धन मिला हो उसको गुरु को देकर उसके बाद अपने द्वारा किए हुए कार्यों को गुरु को बतलाए ॥२९२॥ जिन गन्धों और रसों का सेवन ब्रह्मचारी को नहीं करना चाहिए उन सबों का सेवन उसे समावर्तन संस्कार के बाद ही करना चाहिए ॥२९३॥ गुरु के भक्त शिष्य को उन समस्त नियमों का पालन करना चाहिए, जो नियम ब्रह्मचारी के लिए वतलाये गये हैं ॥२९४॥ अपनी शक्ति के अनुसार गुरु को प्रसन्न करके शिष्य को चाहिए कि वह अग्राम्य आश्रमों में ही अपने कर्मो को सम्पन्न करे ॥२९५॥ शिष्य गुरु के मुख से एक वेद को अथवा दो वेदो को या तीन वेदों को वेदार्थ के साथ अध्ययन करे । वेदाध्ययन काल में वह भिक्षाटन के ही अन्न को खाये तथा पृथिवी पर सोये ॥२९६॥ उसके बाद वेदव्रत के लिए उपयोगी चतुर्थांश दक्षिणा गुरु को प्रदान करके विधिपूर्वक समार्वतन संस्कार कराये॥२९७॥ वह धर्मानुकूल पत्नियों के साथ अग्नियों का आवाहन करके पूजन करे । वह अपने जीवन के दूसरे भाग को गृहमेधी (गृहस्थ) बनाकर बिताये ॥२९८॥ मुनियों ने गृहस्थ के लिए चार प्रकार की वृत्तियों को बतलाया है । पहली वृत्ति कुसूलधान्या (कोठिला भर अन्न रखने की) है । दूसरी वृत्ति कुम्भी धान्या (घड़ा भर अन्न रखने की) है ॥२९९॥ तीसरी वृत्ति अश्वस्तनी (उतना ही अन्न अपने पास रखना जो कल के लिए न बचे) और चौथी वृत्ति कापोती (प्रतीदिन माँगकर लाये और उसका उपयोग करे) है । इन चारो वृत्तियों में उत्तरोत्तर वृत्ति धर्मानुसार श्रेष्ठ हैं तथा लोकों को जित लेने वाली है ॥३००॥ उनमें षट्कर्म करने वाला ब्राह्मण एक वृत्ति को अपनाता है, उससे भिन्न तीन वृत्तियों को अपनाते है, या दो वृत्तियों को अपनाते हैं । चौथी वृत्ति को अपनाने वाला ब्राह्मण ब्रह्म में स्थित होता है ॥३०१॥ गार्हस्थ्य से बढकर कोई भी दूसरा साधन पवित्र करने वाला नहीं है । केवल अपना पेट भरने के लिए अन्न नहीं पकाना चाहिए और व्यर्थ ही पशु को न मारे ॥३०२॥ प्राणी हो अथवा प्राणहीन हो उसका संस्कार पूर्वक यज्ञ करे। गृहस्थ कभी भी दिन में न सोए किञ्च पूर्वसंध्या तथा पर संध्या के भी समय न सोये ॥३०३॥ वह दिन में ही भोजन करे, कभी झूठ न बोले । वह घर में आये हुए अतिथि की पूजा किए बिना कभी भी भोजन न करे ॥३०४॥ इसके

स्वकर्मजीविनो दांताः क्रियावंतस्तपस्विनः । तेषां हव्यं च कव्यं चाप्यर्हणार्थं विधीयते ॥३०६॥
नश्वरै स्संप्रयातस्य स्वधर्मापगतस्य च । अपविद्धाग्निहोत्रस्य गुरोर्वालीककारिणः ॥३०७॥
असत्याभिनिवेशस्य नाधिकारोस्ति कर्मणोः । संविभागोऽत्र भूतानां सर्वेषामेव शिष्यते ॥३०८॥
तथैवापचमानेभ्यः प्रदेयं गृहमेधिना । विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः ॥३०९॥
अमृतं यज्ञशेषंस्याद्भोजनं हविषा समम् । संभुक्तशेषं योश्नति तमाहुर्विघसाशिनम् ॥३१०॥
स्वदारनिरतो दान्तो दक्षोत्यर्थं जितेंद्रियः । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमातुलातिथिसंहतैः ॥३११॥
वृद्धबालातुरै वैंद्यै ज्ञातिसंबंधिबांधवैः । मात्रा पित्रा च जामात्रा भ्रात्रापुत्रेण भार्यया ॥३१२॥
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् । एतान्विमुच्य संवादान्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३१३॥
एतैर्जितैस्तु जयति सर्वलोकान्न संशयः । आचार्योब्रह्मलोकेशः प्राजापत्यप्रभुः पिता ॥३१४॥
अतिथिः सर्वलोकेश ऋत्विग्वेदाश्रयः प्रभुः । जामाताप्सरसां लोके ज्ञातयोवैश्वदेविकाः॥३१५॥
संबंधिबांधवादिक्षु पृथिव्यां मातृमातुलौ। वृद्धबालातुराश्चैव आकाशे प्रभविष्णवः ॥३१६॥
पुरोधा ऋषिलोकेशः संश्रितास्साध्यलोकपाः । अश्विलोकपतिर्वैद्यो भ्राता तु वसुलोकपः ॥३१७॥
चंद्रलोकेश्वरी भार्या दुहिताप्सरसां गृहे। भ्राताज्येष्ठः समः पित्रा भार्यापुत्रस्वका तनुः ॥३१८॥

हव्य एवं कव्य का वहन करने वाले अतिथि पूज्य बतलाये गये हैं । जो गृहस्थ वेदविद्या व्रत स्नात होते हैं वेद पारंगत वैदिक होते हैं ॥३०५॥ अपने कर्मों के अनुसार जीवन निर्वाह करते हैं तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं, नित्य नैमित्तिक कर्मो का अनुष्ठान करते हैं । तपस्वी होते हैं उन सबों के द्वारा प्रदत्त हव्य एवं कव्य समादरणीय होते हैं ॥३०६॥ नश्वर वस्तुओं से अपना निर्वाह करने वाले, अपने धर्म का पालन नहीं करने वाले, जिसने अग्निहोत्र का परित्याग कर दिया है तथा गुरु से मिथ्या व्यवहार करता हैं ॥३०७॥ जिसका असत्य भाषण में ही अभिनिवेश होता है, ऐसे गृहस्थ ब्राह्मण का कर्मों में अधिकार नहीं होता है । समस्त संसारी व्यक्तियों के लिए जीवन के संविभाग को बतलाया गया है ॥३०८॥ जो लोग भोजन नहीं बनाते हैं, ऐसे ब्रह्मचारी तथा संन्यासियों को गृहस्थ को चाहिए कि भोजन दे । गृहस्थ ब्राह्मण को विघशासी तथा अमृतभोजी होना चाहिए । यज्ञ से बचा हुआ अन्न अमृत होता है और उसका भोजन हविष्य के भोजन के समान होता है । अतिथियों आदि के खाने से बचे हुए को जो खाता है उसे विघशासी कहते हैं ॥३१०॥ गृहस्थ को अपनी पत्नी से ही स्नेह करना चाहिए, उसे दान्त (जितेन्द्रिय) दक्ष (कर्मों के सम्पादन में निपुण) तथा अत्यन्त जितेन्द्रिय होना चाहिए । उसे कभी भी ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि समूह, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, दायाद, सम्बन्धीजन, बन्धुवर्ग, माता, पिता, दमाद, भाई, पुत्र, पत्नी ॥३११-३१२॥ पुत्री, दासवर्ग से विवाद नहीं करना चाहिये । इन सबों के साथ संवाद रखने वाला व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥३१३॥ वह अपने इन संबन्धियो को जित लेता है वह सभी लोगों पर विजय प्राप्त कर लेता है । गृहस्थ के ब्रह्मलोक के स्वामी आचार्य होते हैं, पिता प्रजापति लोक के स्वामी होते हैं ॥३१४॥ अतिथि सभी लोकों के स्वामी होते हैं, ऋत्विक् वेद के स्वामी होते हैं । जामाता (दामाद) अप्सरालोक के स्वामी होते हैं, दायाद विश्वेदेव लोक के स्वामी होते हैं ॥३१५॥ संवन्धीजन तथा बांधव दिशाओं के स्वामी होते हैं, माता और मामा पृथिवी के स्वामी होते हैं, वृद्ध, बालक एवं आतुररोगी आकाश के स्वामी होते हैं ॥३१६॥ पुरोहित ऋषि लोक के स्वामी होते हैं, दास वर्ग साध्य लोक के स्वामी होते हैं, वैद्य अश्विनी कुमार लोक के स्वामी हैं, भाई वसुलोक के स्वामी होते हैं ॥३१७॥ पत्नी चन्द्रलोक की स्वामिनी होती है, पुत्री अप्सराओं के गृह की स्वामिनी होती है । बड़े

कायस्था दासवर्गाश्च दुहिता कृपणंपरम् । तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेन्नित्यमसंज्वरः ॥३१९॥
गृहधर्मरतो विद्वान्धर्मनिष्ठो जितक्लमः । नारभेद्बहुकार्याणि धर्मवान्किंचिदारभेत् ॥३२०॥
गृहस्थवृतयस्तिस्त्रस्तासां निश्रेयसं परम् । परस्परं तथैवाहुश्चतुराश्रम्यमेव च ॥३२१॥
येचोक्ता नियमास्तेषां सर्वं कार्यं बुभूषुणा । कुम्भधान्यैरुंच्छशिलैः कापोतीं वृत्तिमाश्रितैः ॥३२२॥
यस्मिंश्चैते वसंत्यर्थास्तद्राष्ट्रमभिवर्धते । पूर्वापरान्दशपरान्पुनाति च पितामहान् ॥३२३॥
गृहस्थवृत्तिमप्येतां वर्तयेद्यो गतव्यथः । स चक्रधरलोकानां समानाम्प्राप्नुयाद्गतिम् ॥३२४॥
जितेंद्रियाणामथवा गतिरेष विधीयते । स्वर्गलोकोगृहस्थानां प्रतिष्ठानियतात्मनाम् ॥३२५॥
ब्रह्मणा भिहता श्रेणी ह्येषा यस्याः प्रमुच्यते । द्वितीयां क्रमशः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३२६॥
तृतीयमपि वक्ष्यामि वानप्रस्थाश्रमं श्रृणु । गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥३२७॥
अपत्यस्यैव चापत्यं वनमेव तदाश्रयेत् । गृहस्थव्रतखिन्नानां वानप्रस्थाश्रमौकसाम् ॥३२८॥
श्रूयतां भीष्म भद्रं ते सर्वलोकाश्रयात्मना । दीक्षापूर्वं निवृत्तानां पुण्यदेशनिवासिनाम् ॥३२९॥
प्रज्ञाबलयुजां पुसां सत्यशौचक्षमावतां । तृतीयमायुषो भागं वानप्रस्थाश्रमे वसन् ॥३३०॥
तानेवाग्नीन्परिचरेद्यजमानो दिवौकसः । नियतो नियताहारो विष्णुभक्तिप्रसक्तिमान् ॥३३१॥
तदाग्निहोत्रमात्राणि यज्ञांगानि च सर्वशः । अकृष्टं वै व्रीहियवं नीवारं विघसानि च ॥३३२॥

भाई पिता के समान होते है, पत्नी के पुत्र अपने शरीर स्वरूप है ॥३१८॥ दास वर्ग, शरीर के स्वामी होते हैं और पुत्री परम कृपणों की स्वामिनी होती है । अतएव ये सब यदि कुछ कह भी दें तो उसे बर्दास्त कर लेना चाहिए क्रोध नहीं करना चाहिए ॥३१९॥ गृहकर्म में लगे हुए विद्वान् को धर्मनिष्ठ तथा क्लेश से रहित होना चाहिए । धर्मज्ञ को बहुत कार्यों को नहीं प्रारम्भ करना चाहिए । वह कुछ ही कार्यो को करे ॥३२०॥ गृहस्थ की तीन वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं उनमें सबसे बाद वाली वृत्ति (कापोती वृत्ति) श्रेष्ठ है । उसी तरह चारो आश्रमों की वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं॥३२१॥ उन आश्रमों के जो नियम बतलाये गये है कल्याण चाहने वालों को उन सबों का पालन करना चाहिए । कुम्भ धान्य के द्वारा, उंछ वृत्ति के द्वारा अथवा कापोती वृत्ति को अपनाने वालों के द्वारा ॥३२२॥ जिस राष्ट्र में उपर्युक्त नियमों का पालन किया जाता है, उस राष्ट्र की समृद्धि होती है । उन नियमों का पालन करने वाले अपने से पहले के दश पीढी तथा अपने से बाद के दश पीढी के पितरों को पवित्र बना देते हैं ॥३२३॥ कष्ट का अनुभव किए बिना यदि कोई गृहस्थ भी इस वृत्ति को अपनाता है वह भी भगवान् विष्णु के लोकों के समान लोकों में जाता है ॥३२४॥ अथवा जितेन्द्रिय गृहस्थों की इस प्रकार की गति बतलायी गयी है । जो नियम का पालन करने वाले गृहस्थ होते हैं, वे स्वर्ग लोक में जाते हैं ॥३२५॥ ब्रह्माजी के द्वारा कही गयी यह श्रेणी (विभाग) जिसका परित्याग कर देती है, वह क्रमशः दूसरी श्रेणी को प्राप्त करके स्वर्ग लोक में सम्मानित होता है ॥३२६॥ तीसरी श्रेणी जो वानप्रस्थ की श्रेणी है उसको भी मैं आपको बतलाता हूँ, आप सुनें । गृहस्थ जब यह देखे कि मेरे बाल पकने लग गये हैं ॥३२७॥ तथा अपने पुत्र के भी पुत्र (पौत्र) का भी मुख जब वह देख ले, तो उसे वन में ही चले जाना चाहिए । जो गृहस्थ व्रत से खिन्न होकर तथा वानप्रस्थ आश्रम को अपनाने वालें ॥३२८॥ तथा जो सर्वलोकाश्रयी है उसके भी व्रत को आप सुनें । पहले वानप्रस्थ की दीक्षा लेकर गार्हस्थ्य से निवृत हुए तथा पवित्र स्थान में रहने वाले ॥२२९॥ प्रकृष्ट ज्ञान सम्पन्न सत्य, शौच तथा क्षमा नामक गुण से युक्त पुरुषों को अपने जीवन के तीसरे भाग में वानप्रस्थ आश्रम में निवास करना चाहिए ॥३३०॥ वानप्रस्थाश्रम में उन्ही अग्नियों का सेवन करे

ग्रीष्मे हविष्यं प्रायच्छेत्समाघेष्वपि पंचसु । वानप्रस्थाश्रमेप्येताश्चतस्रो वृत्तयः स्मृताः ॥३३३॥
सद्यः प्रभक्षकाः केचित्केचिन्मासिकसंचयान् । वार्षिकान् संचयान् केचित्केचिद्द्वादशवार्षिकान्॥३३४॥
कुर्वन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतन्त्रार्थमेव च। अभ्रावकाश वर्षासु हेमंते जलसश्रयाः ॥३३५॥
ग्रीष्मे पंचाग्नि तपसः शरद्यमृतभोजनाः । भूमौविपरिवर्तंत तिष्ठंति प्रपदैरपि॥३३६॥
स्थानासने च वर्तन्ते वसनेष्वपि संस्थिते। दंतोलूखलिनः केचिदश्मकुट्टास्तथा परे ॥३३७॥
शुक्लपक्षे पिबन्त्येके यवागूं क्वथितां क्वचित्। कृष्णपक्षेऽपिबंत्येके भुंजते च यथागमम् ॥३३८॥
मूलैरेके फलैरेके जलैरेके दृढव्रताः। वर्त्तयंति यथान्यायं वैखानसधृतव्रताः ॥३३९॥
एताश्चान्याश्च विविधा दीक्षास्तेषां मनस्विनाम् । चतुर्थश्चौपनिषदो धर्मः साधारणो मतः ॥३४०॥
वानप्रस्थो गृहस्थश्च सततोन्यः प्रवर्त्तते। तस्मिन्नेव युगे तात विप्रैः सर्वार्थदर्शिभिः ॥३४१॥
अगस्त्यश्च सप्तर्षयोमधुच्छंदो गवेषणः । सांकृतिः सदिवोभांडि र्यवप्रोथो ह्यथर्वणः ॥३४२॥
अहोवीर्यस्तथाकाम्यः स्थाणु र्मेधातिथि र्बुधः । मनोवाकः शिवीवाकः शून्यपालो कृतव्रणः ॥३४३॥
एते कर्मसु विद्वांसस्ततः स्वर्गमुपागमन् । एते प्रत्यक्षधर्माणस्तथा यायावरागणाः ॥३४४॥
ऋषीणामुग्रतपसां धर्मनैपुण्यदर्शिनाम् । सुरेश्वरं समाराध्य ब्राह्मणा वनमाश्रिताः ॥३४५॥

जिन अग्नियों का सेवन गृहस्थाश्रम में वह करता था। नियम पूर्वक निश्चित आहार करे भगवान् विष्णु की भक्ति करे॥३३१॥ उस समय अग्निहोत्र तथा यज्ञ के सभी अङ्गोंका पालन करे। वह उन्ही व्रीहि, यव तथा निवार का भोजन करे जो बिना वोये ही जमते हैं। तथा विघस का भोजन करे ॥३३२॥ वह ग्रीष्म ऋतु में हविष्य का होम करे, माघ आदि पाँच महीनों में हविष्य का ही होम करे। वानप्रस्थाश्रम के लिए ये चार वृत्तियाँ वतलायी गयी हैं ॥३३३॥ कुछ लोग सद्यः प्राप्त वस्तु का भोजन करते हैं, कुछ लोग महीने भर चलने योग्य अन्नों का संचय करते हैं। कुछलोग वर्ष तक चलने भर अन्न का संचय करते हैं, और कुछ लोग बारह वर्ष तक चलने भर अन्न का संचय करते हैं ॥३३४॥ वे इतने अन्नों का संचय अतिथि की पूजा के लिए, तथा यज्ञ करने के लिए करते हैं। कुछ वानप्रस्थी वर्षा काल में मेघ के नीचे बैठते है, हेमन्त ऋतु में जल में निवास करते हैं ॥३३५॥ ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि तापते हैं। वे शरद् ऋतु में अमृत का भोजन करते हैं। वे पृथिवी पर लेटते हैं। कुछ तपस्वी अपने पैर के अग्रभाग (चौवे) पर खड़े रहते हैं ॥३३६॥ कुछ लोग एक ही स्थान पर तथा एक ही आसन से बैठे रहते हैं। कुछ लोग वस्त्र भी धारण करते हैं। कुछ लोग दाँतों से कूटकर खा लेते हैं, कुछ लोग पत्थर से कूट कर खाते हैं ॥३३७॥ कुछ लोग शुक्ल पक्ष में एकबार यव के आँटे को उबालकर पी लेते हैं तो कुछ लोग जो समयानुसार मिल जाता है उसे ही खा लेते हैं ॥३३८॥ कुछ लोग केवल मूल को खाकर दृढता पूर्वक व्रत का पालन करते हैं तो कुछ लोग फल खाकर व्रत का पालन करते हैं। कुछ लोग केवल जल ही पीते हैं। वे नियमानुसार वैखानस व्रत का पालन करते हैं ॥३३९॥ उन मनस्वी पुरुषों की इन सबों की तथा अन्य अनेक प्रकार की भी दीक्षाएँ होती हैं। चौथा धर्म औपनिषद धर्म है तथा वह सबों के लिए समान रूप से अनुष्ठेय है ॥३४०॥ वानप्रस्थ तथा गृहस्थों का जो धर्म है, उससे भिन्न ही संन्यासियों के धर्म का निरूपण सर्वार्थदर्शी मनीषियों ने किया है ॥३४१॥ अगस्त्य महर्षि, सप्तर्षि, गवेषण, साङ्कृति, सुदिव, भाण्डि, यवप्रोथ, अथर्वण ॥३४२॥ अहोवीर्य, काम्य, स्थाणु मेधातिथि, बुध, मनोवाक, शिनीवाक, शून्यपाल तथा अकृतव्रण ॥३४३॥ ये सबके सब धर्म तत्त्व के प्रख्यात ज्ञाता थे अतएव ये सब स्वर्ग को प्राप्त किये। इन लोगों ने धर्म का साक्षात्कार किया था तथा ये सभी यायावर (संन्यासी) थे ॥३४४॥ इन सबों के

अपास्योपरतांमायां ब्राह्मणा वनमाश्रिताः । अनक्षत्रास्तथाऽधृष्या दृश्यन्ते प्रोषिता गणाः ॥३४६॥
जरया तु परिघ्नूना व्याधिना परिपीडिताः । चतुर्थं त्वाश्रमं शेषं वानप्रस्था श्रमाद्ययुः ॥३४७॥
सद्यस्कारी सुनिर्वाप्य सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मयाजी सौम्यमतिरात्मक्रीडात्मसंश्रयः ॥३४८॥
आत्मन्यग्निं समाधाय त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम्। सद्यस्कश्च यजेद्यज्ञानिष्टिं चैव सर्वदा ॥३४९॥
सदैवयाजिनां यज्ञानात्मनीज्या प्रवर्त्तते । त्रीनेवाग्नींस्त्यजेत्सम्यगात्मन्येवात्मना क्षणात् ॥३५०॥
प्राप्नुयाद्येन वा यच्च तत्प्राशनीयादकुत्सयन्। केशलोमनखान्यस्येद्वानप्रस्थाश्रमे रतः ॥३५१॥
आश्रमादाश्रमं सद्यः पूतो गच्छति कर्मभिः । अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दत्वा प्रव्रजेद्द्विजः ॥३५२॥

लोकास्तेजोमयास्तस्य प्रेत्य चानंत्यमश्नुते ।
सुशीलवृत्तो व्यपनीतकल्मषो न चेह नामुत्र चरन्तुमीहते ॥३५३॥
अरोष मोहोगतसंधिविग्रहः सचेदुदासनवदात्मचिंतया ।
यमेषु चैवान्यगतेषु नव्यथः स्वशास्त्रशून्यो हृदिनात्मविभ्रमः ॥३५४॥
भवेद्यथेष्टा गतिरात्मयाजिनी निस्संशये धर्मपरे जितेन्द्रिये ।
अतःपरं श्रेष्ठमतीवसद्गुणै रधिष्ठितं त्रीनतिवर्त्यचाश्रमान् ॥३५५॥
चतुर्थमुक्तं परमाश्रमं शृणु प्रकीर्त्यमानं परमं परायणम् ।
प्राप्य संस्कारमेताभ्यामाश्रमाभ्यां ततः परम् ॥३५६॥

अतिरिक्त जो उग्र तपस्वी थे, तथा धर्म के नैपुण्य को जानने वाले थे वे सुरेश्वर ब्रह्माजी की आराधना करके वन में चले गये थे ॥३४५॥ माया के बन्धन को तोड़कर वे ब्राह्मण वन में चले गये । वे वन में गये हुए नक्षत्र से भिन्न तथा अधृष्य रूप से दिखायी देते हैं ॥३४६॥ बार्द्धक्य के द्वारा सताये गये तथा व्याधि से अत्यन्त पीडित वानप्रस्थ का परित्याग करके चतुर्थ आश्रम संन्यास में प्रवेश कर गये ॥३४७॥ संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाले को यज्ञ में अपना सब कुछ दक्षिणा देकर, अग्नि को शान्त करके, सद्यस्करी (शीघ्र किसी काम को करने वाला) होना चाहिए। उसे आत्मयजन करना चाहिए, उसे सौम्य मति वाला, अपनी आत्मा में ही क्रीडा करने वाला तथा आत्म संश्रय होना चाहिए ॥३४८॥ अपनी आत्मा में ही भावना द्वारा अग्नि का आधान करके सभी प्रकार के परिग्रहों का परित्याग कर देना चाहिए वे आत्मा में ही यज्ञों को तथा सदा इष्टियों को करते हैं ॥३४९॥ जो सदैव यज्ञों को करते हैं, उनका आत्मा में ही भावनात्मक यज्ञ चलता रहता है । वह तीनों अग्नियों का अच्छी तरह से परित्याग अपनी आत्मा में ही कर दे ॥३५०॥ जहाँ कहीं से जो कुछ भी मिले उसे ही उन्हें खाना चाहिए, वह अन्न की निन्दा न करे । वह वानप्रस्थाश्रम में ही केश, तथा रोमों को त्याग दे ॥३५१॥ मुमुक्षु पुरुष एक आश्रम से दूसरे आश्रम में कर्मों के द्वारा प्रवेश कर जाय ऐसा करने वाला पवित्र मुमुक्षु होता है । जो द्विज सभी भूतों (जीवों) को अभय प्रदान करके संन्यास ले लेता है ॥३५१-३५२॥ वह तेजोमय लोकों को जीत लेता है तथा मृत्यु के पश्चात् आनन्त्य को प्राप्त करता है। जो शील सम्पन्न वृत्ति वाला तथा निष्पाप मुमुक्षु पुरुष इस लोक में अथवा परलोक में रमण करना नहीं चाहता है॥३५३॥ वह रोष, मोह, संधि तथा विग्रह से रहित एवं संसार से उदासीन होकर आत्मचिन्तन करता रहता है । यमों तथा दूसरों के चले जाने पर उसको कोई कष्ट नहीं होता है, वह शास्त्र शून्य हो जाता है, उसे आत्मा के विषय में किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं रहता है ॥३५४॥ उसकी अपनी इच्छानुसार होने वाली गति अपनी आत्मा का ही यजन करने वाली हो जाती है । वह संशय रहित, धर्म परायण तथा जितेन्द्रिय हो जाता है । अतएव श्रेष्ठ गुणों से

यत्कार्यं परमात्मार्थं तत्त्वमेकमनाः श्रुणृ । काषायं धारयित्वा तुश्रेणी स्थानेषु च त्रिषु ॥३५७॥
यो व्रजेच्च परं स्थानं पारिव्राज्यमनुत्तमम् । तद्भावनेन संन्यस्य वर्तनं श्रूयतां तथा ॥३५८॥
एक एव चरेद्धर्मं सिध्यर्थमसहायवान् । एकश्चरति यः पश्यन्नजहाति नहीयते ॥३५९॥
अनग्निरनिकेतस्तु ग्रामं भिक्षार्थमाश्रयेत् । अश्वस्तनविधानः स्यान्मुनिर्भावसमन्वितः ॥३६०॥
लघ्वाशी नियताहारः सकृदन्नं निषेवयेत् । कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ॥३६१॥
उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद्भिक्षुलक्षणम् । यस्मिन् वाचः प्रविशंति कूपे प्राप्तामृता इव ॥३६२॥
नवक्तारं पुनर्याति सकैवल्याश्रमे वसेत् । नैव पश्येन्न शृणुयादवाच्यं जातु कस्यचित् ॥३६३॥
ब्राह्मणानां विशषेण नैतद्ब्रूयात्कथंचन । यद्ब्राह्मणस्यानुकूलं तदेव सततं वदेत् ॥३६४॥
तूष्णीमासीत निंदायां कुर्वन् भैषज्यमात्मनः । येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा ॥३६५॥
शून्यं येन समाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३६६॥
येनकेनचिदाछन्नो येनकेनचिदाशितः । यत्र क्वचन शायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३६७॥
अहेरिवजनाद्भीतः सुहृदोनरकादिव । कृपणादिव नारीभ्य स्तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥३६८॥

युक्त संन्यासाश्रम, स्वेतर तीन आश्रमों की अपेक्षा अत्यधिक श्रेष्ठ है ॥३५५॥ चतुर्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा गया है । वह परम परायण है । उसका मैं वर्णन करता हूँ उसे सुनो । गार्हस्थ्य तथा वानप्रस्थ इन दोनों आश्रमों से संस्कार प्राप्त करके उसके बाद ॥३५६॥ मुमुक्षु पुरुष को परमात्मा की प्राप्ति के लिए जो कुछ करना चाहिए उसे सुनो । जीवन के तीनों विभागों को पार करके उससे श्रेष्ठ संन्यासाश्रम में प्रवेश करने वाला पुरुष काषाय वस्त्र को धारण करे । संन्यास सर्वश्रेष्ठ आश्रम है । अतएव संन्यास लेकर उसकी भावना से युक्त हो जाय । संन्यासाश्रम के कर्तव्यों को सुनो ॥३५७-३५८॥ वह अपने साथ किसी को सहायक न रखे । धर्म की सिद्धि के लिए अकेले संन्यास के नियमों का पालन करे । जो अकेले रहता है वह न तो कुछ त्यागता है और न तो उसकी कोई हानि ही होती है ॥३५९॥ वह अग्नि का सेवन न करे । रहने के लिए घर न बनाये । वह केवल भिक्षा प्राप्त करने के लिए ग्राम में प्रवेश करे । वह आगामी दिन के लिए कुछ भी संग्रह न करे, वह संन्यास की भावना से युक्त रहे ॥३६०॥ वह थोड़ी मात्रा में और निश्चित ही भोजन करे । वह दिन में एक बार ही भोजन करे । वह कपाल (नारियल की खोपड़ी से बने पात्र) में भोजन करे । वृक्ष की जड में निवास करे, गन्दा कपड़ा पहने, किसी से कोई सहायता न ले॥३६१॥ वह सबों के प्रति उपेक्षा की भावना रखे, यही संन्यासी का लक्षण है । जिसतरह से कूप में गया हुआ पानी कुएँ में ही रह जाता है, उसी तरह वह किसी की भी बात सुनकर उसे सह ले ॥३६२॥ वह किसी का उत्तर न दे ऐसा ही व्यक्ति कैवल्य (संन्यासाश्रम) में रहने के योग्य होता है । वह किसी की निन्दा न तो सुने और न तो किसी की निन्दा करे ॥३६३॥ विशेष रूप से उसे ब्राह्मणों की निन्दा न तो सुनना चाहिए और न करना चाहिए । जो ब्राह्मणों के अनुकूल हो उसे ही बोलना चाहिए ॥३६४॥ यदि कोई उसकी निन्दा करे तो उसे अपनी आत्मशुद्धि की औषधि समझकर चुपचाप बैठे रहना चाहिए । जिससे केवल उसी से आकाश पूर्ण के समान हो जाता है । जिससे आकाश परिपूर्ण हो जाय उसे देवता ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) समझते हैं । जिस किसी भी वस्तु से अपने शरीर को ढँक लेने वाले, जिस किसी भी वस्तु को खाकर रह जाने वाले, जहाँ कहीं भी सो लेने वाले को देवता, ब्राह्मण समझते हैं ॥३६७॥ वह जनसमूह से उसी तरह से डरता है जिसतरह कोई सर्प को देखकर डरता है, जिस तरह कोई नरक से भयभीत होता है, उसी तरह अपने मित्रों को देखकर भयभीत होता है । वह नारियों को देखकर उसी तरह डरता

नहृष्येत विषीदेत मानितोऽमानितस्तथा। सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३६९॥
नाभिनंदेतमरणं नाभिनंदेतजीवितम्। कालमेव निरीक्षेत निर्देशं कृषको यथा ॥३७०॥
अनभ्याहतचितश्च दांतश्चाहतधीस्तथा। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नरो गछेत्ततो दिवम् ॥३७१॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयं यतः। तस्य देहविमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥३७२॥
यथा नागपदेन्यानि पदानि पदगामिनाम्। सर्वाण्येवावलीयंते तथा ज्ञानानि चेतसि॥३७३॥
एवं सर्वमहिंसायां धर्मोर्थश्च महीयते। मृतः स नित्यं भवति यो हिंसां प्रतिपद्यते ॥३७४॥
अहिंसकस्ततः सम्यग्धृतिमान्नियतेंद्रियः। शरण्यस्सर्वभूतानां गतिमाप्रोत्यनुत्तमाम् ॥३७५॥
एवं प्रज्ञान तृप्तस्य निर्भयस्य मनीषिणः। न मृत्युरधिको भावः सोऽमृतत्वं च गच्छति॥३७६॥
विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो मुनिराकाशवत्स्थितः। विष्णुप्रियकरः शांतस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३७७॥
जीवितं यस्य धर्मार्थे धर्मोरत्यर्थमेव च। अहोरात्रादि पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३७८॥
निवारित समारंभं निर्नमस्कारमस्तुतिम्। अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३७९॥

सर्वाणि भूतानि सुखं रमंते सर्वाणि दुःखानि भृशं भवंति।
तेषां भवोत्पादनजातखेदः कुर्यात्तु कर्माणि च श्रद्दधानः ॥३८०॥
दानं हि भूताभयदक्षिणायाः सर्वाणि दानान्यधितिष्ठतीह।
तीक्ष्णे तनुं यः प्रथमं जुहोति सोनंतमाप्रोत्यभयं प्रजाभ्यः ॥३८१॥

है जिसतरह कोई कंजूस व्यक्ति किसी को आते देखकर डरता है। ऐसे पुरुष को देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥३६८॥ जो सम्मान को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है और अपमान के कारण दुःखी नहीं होता है, जो सबों को अभय प्रदान करता है उसे देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥३६९॥ जो जीवन और मरण का अभिनंदन (समादर) नहीं करता है, वह कृषक के समान केवल काल की प्रतीक्षा करता है, उसे देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥३७०॥ जिसका चित्त राग अथवा द्वेष से दूषित नहीं होता है जो जितेन्द्रिय होकर अपने मन को वश में रखता है, वह व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है और वह अन्त में मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥३७१॥ जिसको किसी जीव से भय नहीं होता है, तथा जो किसी जीव को भयभीत नहीं करता है, उस देहात्माभिमान से रहित पुरुष को कहीं भी भय नहीं प्राप्त होता है॥३७२॥ जिसतरह पैर से चलने वाले सभी प्राणियों के पद्चिह्न, हाथी के पद्चिह्न में समा जाते है, किञ्च जिसतरह सभी ज्ञानों का लय अन्तःकरण में हो जाता है ॥३७३॥ उसीतरह सभी धर्म तथा अर्थ अहिंसा धर्म में ही समा जाते हैं। जो हिंसा करता है, वह नित्य ही मरता रहता है ॥३७४॥ अतएव जो अहिसंक होता है, वह सम्यक् धैर्य सम्पन्न, जितेन्द्रिय, सभी जीवों का रक्षक होता है फलतः वह सर्वोत्तम गति प्राप्त करता है ॥३७५॥ इस तरह के प्रज्ञान के कारण तृप्त तथा निर्भय मनीषी होता है, उसके लिए मृत्यु कोई अधिक भाव नहीं है, अतएव वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३७६॥ जो मननशील पुरुष आकाश के समान समस्त आसक्तियों से रहित होते हैं, वह शान्त पुरुष भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला होता है; देवगण उसे ब्राह्मण जानते हैं ॥३७७॥ जिसका जीवन धर्म के लिए होता है, धर्म अत्यधिक पुण्यकारक होता है तथा जिसके रात-दिन पुण्य करने के लिए होते हैं उसको देवगण ब्राह्मण समझते हैं ॥३७८॥ जिसके मन में कोई भी कामना नहीं होती है, तथा जो किसी कामना से किसी कार्य का संकल्प नही करता है, जो किसी स्तुति अथवा नमस्कार नहीं चाहता है, जिसके सभी कर्म विनष्ट हो गये है, ऐसे पुण्य पुरुष को देवता ब्राह्मण जानते हैं ॥३७९॥ सभी जीव सुख में रमण करते हैं, तथा दुःख में अत्यधिक कष्ट का अनुभव

उत्तानमास्येन हविर्जुहोति अनंतमाप्नोत्यभितः प्रतिष्ठाम् ।
तस्यांगसंगादभिनिष्कृतं च वैश्वानरं सर्वमिदं प्रपेदे ॥३८२॥
प्रादेशमात्रं हृदभिस्नुतं य त्तस्मिन्प्राणेनात्मयाजी जुहोति ।
तस्याग्निहोत्रे हुतमात्मसंस्थं सर्वेषु लोकेषु सदैवतेषु ॥३८३॥
देवं विधातुं त्रिवृतं सुवर्णं ये वै विदुस्तं परमार्थभूतम् ।
ते सर्वभूतेषु महीयमाना देवाः समर्था अमृतं व्रजंति ॥३८४॥
देवांश्च वेद्यं च विधिं च कृत्स्न मथोनिरुक्तं परमार्थतां च ।
सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद तस्याभिसर्वे प्रचरंति नित्यम् ॥३८५॥
भूमावसक्तं दिवि चाप्रमेयं हिरण्मयं तं च समंडलांते ।
प्रदक्षिणं दक्षिणमंतरिक्षे योवेदनाप्यात्मनि दीप्तरश्मिः ॥३८६॥
आवर्तमानं च विवर्तमानं षण्नेमियद्द्वादशारं त्रिपर्व ।
यस्येदमास्यं परिपातिविश्वं तत्कालचक्रंनिहितं गुहायाम् ॥३८७॥
यतः प्रसादं जगतः शरीरं सर्वांश्च लोकानधिगच्छतीह ।
तस्मिन्हि संतर्पयतीह देवान् स वै विमुक्तो भवतीह नित्यम् ॥३८८।
तेजोमयो नित्यमतः पुराणो लोकेभवत्यर्थभयादुपैति ।
भूतानि यस्मान्नभयं व्रजंति भूतेभ्यो यो नोद्विजते कदाचित् ॥३८९॥

करते हैं उन सबों को संसार में उत्पत्ति जन्य खेद (श्रम) होता है; इसलिए श्रद्धा पूर्वक ही कर्मों को करना चाहिए॥३८०॥ जीवों को अभय प्रदान रूप दान सबसे बड़ा दान है । उससे बड़ा दान संसार में कोई भी नहीं है । जो सर्वप्रथम जलती हुयी अग्नि में अपने शरीर का होम कर देता हे, वह प्रजाओं के लिए अनन्त अभय को प्राप्त करता है ॥३८१॥ जो ऊपर की ओर मुख करके उसमें हविष्य का होम करता है वह चारो ओर से अनन्त अभय को प्राप्त करता है । उसके शरीर से निकली हुयी अग्नि को ही इस सम्पूर्ण जगत् ने प्राप्त किया ॥३८२॥ जो अग्नि हृदय से एक बित्ता ऊपर निकलती है उसी में आत्मा यात्री प्राण का होम करता है । उसके अग्निहोत्र जो आत्मसंस्थ वस्तु का होम किया जाता है वह सभी लोकों तथा देवताओं में स्थित होता है ॥३८३॥ परमार्थ स्वरूप सुन्दर वर्ण वाले देवता को त्रिवृत करने की प्रक्रिया को जो जानते हैं; वे देवगण सभी भूतों में आनन्दानुभव करते हुए अमृतत्व को प्राप्तकर लेते हैं ॥३८४॥ जो सभी वेदों को, वेद्य तत्त्व को, सम्पूर्ण विधि को; उनकी निरुक्ति तथा परमार्थता को इन सबों को अच्छी तरह से जानता है उसी के चारो ओर ये सभी सदा घूमते रहते हैं ॥३८५॥ पृथिवी से जिसका सम्बन्ध नहीं होता है द्युलोक में अप्रमेय हिरण्मय मण्डल के भीतर अन्तरिक्ष में दक्षिणावर्त प्रदक्षिणा करने वालों की प्रख्यात किरणों वाले सूर्य को अपनी आत्मा में नहीं जानता है ॥३८६॥ जिस काल तत्त्व का आवर्तित तथा विवर्तित होने वाला छह (ऋतु रूपी) नेमियों, बारह मास रूप आरों तथा तीन (गर्भी, वरसात एवं जाड़ा) पर्वो वाला संवत्सर मुख है, तथा जो सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करता है, वह काल चक्र अत्यन्त गूढ है ॥३८७॥ जिसकी प्रसन्नता ही जगत् का शरीर, जो सम्पूर्ण लोकों को प्राप्त करता है, उसी काल तत्त्व में जो इन्द्रियों को तृप्त करता है, वह सदैव ही मुक्त रहता है ॥३८८॥ वह तेजोमय पुराण पुरुष लोक में प्रयोजन वशात् आता है । उससे किसी भी जीव को भय नहीं होता है और वह कभी भी भूतों (जीवों) से उद्विग्न नहीं होता है ॥३८९॥ वह किसी की निंदा का पात्र नहीं

अगर्हणीयो न च गर्हतेऽन्यान् स वै विप्रः प्रवरं स्वात्मनीक्षेत् ।
विनीतमोहोप्यपनीतकल्मषो न चेह नामुत्र चयोर्थमृच्छति ॥३९०॥
अरोषमोहः समलोष्टकांचनः प्रहीणशोको गतसंधिविग्रहः ।
अपेतनिंदास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेवभिक्षुः ॥३९१॥
इतिश्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे क्षेत्रवासमाहात्म्यं नाम पंचदशोध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

यदेतत्कथितं ब्रह्मंस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् । कमलस्याभिपातेन तीर्थंजातं धरातले ॥१॥
तत्रस्थेन भगवता विष्णुना शंकरेण च । यत्कृतं मुनिशार्दूल तत्सर्वं परिकीर्त्तय ॥२॥
कथं यज्ञो हि देवेन विभुना तत्र कारितः । के सदस्या ऋत्विजश्च ब्राह्मणाः के समागताः ॥३॥
केभागास्तस्य यज्ञस्य किं द्रव्यं का च दक्षिणा । का वेदी किंप्रमाणं च कृतं तत्र विरिंचिना ॥४॥
यो याज्यः सर्वदेवानां वेदैः सर्वत्रपठ्यते । कं च काममभिध्यायन्वेधा यज्ञं चकार ह ॥५॥
यथासौ देवदेवेशो ह्यजरश्चामरश्च ह । तथा चैवाक्षयः स्वर्गस्तस्य देवस्य दृश्यते ॥६॥

होता है और न तो वह किसी की निन्दा ही करता है। वही अपनी आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार करता है। वह मोह तथा पापों से दूर रहता है। किसी भी लौकिक अथवा पारलौकिक वस्तु की कामना नहीं करता है ॥३९०॥ वह न तो रोष करता है और न मोह करता है, वह मिट्टी के ढेले तथा सुवर्ण को एक समान समझता है। वह शोक से तथा सन्धि एवं विग्रह से रहित होता है। वह निन्दा तथा स्तुति से रहित तथा प्रिय एवं अप्रिय से रहित होकर संसार में उदासीन होकर विचरण करता है।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के क्षेत्रवास माहात्म्य नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

ब्रह्मदेव कृत याग वर्णन, इन्द्र के द्वारा लायी गयी गोपकन्या गायत्री के साथ ब्रह्माजी का परिणय, ब्रह्माजी द्वारा एक हजार युग पर्यन्त यज्ञ किया जाना

भीष्मजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! आपने यह तीर्थ का उत्तम माहात्म्य बतलाया है। आपने यह भी बतलाया है कि कमल के गिरने के स्थान पर पृथिवी पर वह तीर्थ बन गया ॥१॥ वहाँ पर स्थित भगवान् विष्णु तथा शङ्करजी ने क्या किया ? हे मुनिश्रेष्ठ ! उन लोगों के द्वारा जो किया गया उसे आप मुझे सुनायें ॥२॥ वहाँ पर व्यापक देव ब्रह्माजी ने यज्ञ कैसे कराया। उस यज्ञ के सदस्य तथा ऋत्विज कौन थे ? वहाँ पर कौन ब्राह्मण आये ?॥३॥ उस यज्ञ के कौन-कौन से भाग थे हवनीय द्रव्य क्या था और उस यज्ञ की दक्षिणा क्या थी ? वहाँ पर बह्माजी ने किसको वेदी बनाया तथा उस वेदी का प्रमाण क्या था ?॥४॥ जो सभी देवताओं के याज्य (अर्चनीय) हैं, तथा जिनका सभी

अन्येषां चैव देवानां दत्तः स्वर्गो महात्मना। अग्निहोत्रार्थमुत्पन्ना वेदा ओषधयस्तथा ॥७॥
ये चान्ये पशवो भूमौ सर्वे यज्ञकारणात् । सृष्टा भगवता तेन इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥८॥
तदत्र कौतुकं मह्यं श्रुत्वेदं तव भाषितम्। यं काममधिकृत्यैकं यत्फलं यां च भावनाम् ॥९॥
कृतश्चानेन वै यज्ञः सर्वं शंसितुमर्हसि । शतरूपा च या नारी सावित्री सात्विहोच्यते ॥१०॥
भार्या सा ब्रह्मणः प्रोक्ता ऋषीणां जननी च सा । पुलस्त्याद्यान्मुनीन्सप्त दक्षाद्यास्तु प्रजापतीन् ॥११॥
स्वायंभुवादींश्च मनून्सावित्रीसमजीजनत्। धर्मपत्नीं तु तां ब्रह्मा पुत्रिणीं ब्रह्मणः प्रियाम्॥१२॥
पतिव्रतां महाभागां सुव्रतां चारुहासिनीम् । कथं सतीं परित्यज्य भार्यामन्यामविंदत ॥१३॥
किंनाम्नी किं समाचरा कस्य सा तनया विभोः । क्व सा दृष्टा हि देवेन केन चास्य प्रदर्शिता ॥१४॥
किं रूपा सातु देवेशी दृष्टा चित्तविमोहिनी। यां तु दृष्ट्वा स देवेशः कामस्य वशमेयिवान् ॥१५॥
वर्णतो रूपतश्चैव सावित्र्यास्त्वधिका मुने । या मोहितवती देवं सर्वलोकेश्वरं विभुम् ॥१६॥
यथा गृहीतवान्देवो नारीं तां लोकसुदरिम् । यथा प्रवृत्तो यज्ञोसौ तथा सर्वं प्रकीर्तय ॥१७॥
तां दृष्ट्वा ब्रह्मणः पार्श्वे सावित्री किं चकार ह । सावित्र्यां तु तदा ब्रह्मा कां तु वृत्तिमवर्त्तत॥१८॥
सन्निधौ कानि वाक्यानि सावित्री ब्रह्मणा तदा। उक्ताप्युक्तवती भूयः सर्वं शंसितुमर्हसि ॥१९॥
किं कृतं तत्र युष्माभिः कोपोवाथक्षमाथ वा । यत्कृतं तत्र यद्दृष्टं यत्तवोक्तं मयात्विह ॥२०॥
विस्तरेणेह सर्वाणि कर्माणि परमेष्ठिनः । श्रोतुमिछाम्यशेषेण विधेर्यज्ञविधिं परम् ॥२१॥

वेदों में अर्चनीय रूप से वर्णन हैं उसे आप बतलाये तथा किस कामना से ब्रह्माजी ने यज्ञ किया ।।५।। जिस प्रकार से ये अजर तथा अमर देवताओं के भी स्वामी हैं उस प्रकार का उनका अक्षय स्वर्ग भी अजर-अमर देखा जाता है।।६।। उन महात्मा ब्रह्माजी ने दूसरे देवताओं को स्वर्ग प्रदान किया । वहाँ पर अग्निहोत्र के लिए वेद तथा औषधियाँ (अन्न) उत्पन्न हो गयीं ।।७।। पृथिवी पर जितने भी दूसरे पशु हैं, उन सबों की ब्रह्माजी ने यज्ञ के लिए सृष्टि की, यह वैदिकी श्रुति बतलाती है ।।८।। आपके इन वचन को सुनकर मेरे मन में उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी है । जिस कामना से जिस फल तथा भावना से ।।९।। ब्रह्माजी ने इस यज्ञ को किया उन सारी बातों को आप मुझे बतलायें । शतरूपा नाम की जो नारी है, उसी को यहाँ सावित्री कहा गया है ।।१०।। उसी को ब्रह्माजी की पत्नी तथा ऋषियों की माता कहा गया है । पुलस्त्य आदि सात मुनियों तथा दक्ष आदि प्रजापतियों ।।११।। तथा स्वायम्भुव आदि मनुओं को सावित्री ने जन्म दिया । ब्रह्माजी ने अपनी पुत्रों वाली प्रियतमा पतिव्रता महभागा, सुन्दर व्रत वाली तथा चारुहासिनी एवं सती पत्नी का परित्याग करके दूसरी पत्नी को क्यों ग्रहण किया ?।।१२-१३।। हे विभो ! ब्रह्माजी की उस पत्नी का क्या नाम था? उसका आचरण कैसा था ? वह किसकी पुत्री थी ? ब्रह्माजी ने उसको कहाँ देखा ? और उसको किसने दिखाया?।।१४।। देवेशी देखते ही जो चित्त को मोहित करने वाली थी उसका कैसा रूप था ? जिसको देखकर ब्रह्माजी कामभोहित हो गये थे ?।।१५।। जिसने वर्ण और रूप में सावित्री देवी से अधिक होने के कारण सभी लोकों के स्वामी ब्रह्माजी को मोहित कर लिया ।।१६।। ब्रह्माजी ने जिस प्रकार से उस लोकसुन्दरी नारी को स्वीकार किया तथा जिस प्रकार से वह यज्ञ प्रारम्भ हुआ, उन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ।।१७।। ब्रह्माजी के बगल में उस देवी को बैठी हुयी देखकर सावित्री देवी ने क्या किया ? उस समय सावित्री देवी के विषय में ब्रह्माजी की कैसी वृत्ति हुयी ?।।१८।। उनके सन्निकट में ब्रह्माजी ने सावित्री देवी से क्या कहा ? ब्रह्माजी की बातों को सुनकर सावित्री देवी ने क्या कहा? उसे भी आप मुझे बतलायें ।।१९।। उस समय आप लोगों ने क्रोध किया अथवा क्षमा कर दिया? वहाँ

कर्मणामानुपूर्व्यं च प्रारंभो होत्रमेव च। होतुर्भक्षो यथाऽर्चापि प्रथमा कस्य कारिता ॥२२॥
कथं च भगवान्विष्णुः साहाय्यं केन कीदृशं। अमरैर्वा कृतं यच्च तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२३॥
देवलोकं परित्यज्य कथंमर्त्यमुपागतः। गार्हपत्यं च विधिना अन्वाहार्यं च दक्षिणम् ॥२४॥
अग्निमाहवनीयं च वेदीं चैव तथास्रुवम्। प्रोक्षणीयं स्रुचं चैव आवभृथ्यं तथैव च ॥२५॥
अग्नींस्त्रींश्च यथाचक्रे हव्यभागवहान्हि वै। हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे क्रव्यादांश्च पितृनपि ॥२६॥
भागार्थं यज्ञविधिना ये यज्ञा यज्ञकर्मणि। यूपान्समित्कुशं सोमं पवित्रं परिधीनपि ॥२७॥
यज्ञियानि च द्रव्याणि यथा ब्रह्मा चकार ह। विबभ्राजपुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥२८॥
क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च। मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनं संवत्सरस्तथा ॥२९॥
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं पुरा। आयुः क्षेत्राण्यपचयं लक्षणं रूपसौष्ठवम् ॥३०॥
त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः। त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयोवर्णास्त्रयोगुणाः ॥३१॥
सृष्टा लोकाः पराः स्रष्ट्रा ये चान्येनल्पचेतसा। या गतिर्धर्मयुक्तानां या गतिः पापकर्मणाम्॥३२॥
चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता। चतुर्विद्यस्य यो वेत्ता चतुराश्रमसंश्रयः ॥३३॥
यःपरं श्रूयते ज्योतिर्यः परं श्रूयते तपः। यः परं परतः प्राह परं यः परमात्मवान् ॥३४॥
सेतुर्योलोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम्। वेद्यो यो वेदविदुषां यः प्रभुः प्रभवात्मनाम् ॥३५॥
असुभूतश्च भूतानामग्निभूतोग्निवर्चसाम्। मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ॥३६॥

पर आपलोगों ने जो किया तथा वहाँ जो हुआ उसे आप ॥२०॥ ब्रह्माजी द्वारा किये गये समस्त कर्मों को विस्तार पूर्वक मुझे सुनायें। मैं ब्रह्माजी के यज्ञ की विधि को पूर्णरूप से सुनना चाहता हूँ ॥२१॥ उस कर्म की आनुपूर्वी (क्रम) क्या थी ? यज्ञ कर्म का तथा अग्निहोत्र का प्रारम्भ, होता के भक्ष तथा जिसकी प्रथम पूजा हुयी उसकी अर्चा के प्रकार को मुझे बतलाये ॥२२॥ आप यह भी बतलायें कि भगवान् विष्णु ने किसके द्वारा तथा किस प्रकार से सहायता की अथवा देवताओं के द्वारा सहायता की ?॥२३॥ ब्रह्माजी देवलोक का परित्याग करके मर्त्य लोक में क्यों आये ? विधिपूर्वक, गार्हपत्य, अन्वाहार्य तथा दक्षिण ॥२४॥ अग्नि एवं आहवनीय अग्नि को, यज्ञ की वेदी, स्रुवा, प्रोक्षणीपात्र, स्रुक्, तथा जिस प्रकार अवभृथ स्नान उन्होंने किया उसे आप मुझे बतलायें ॥२५॥ उन्होंने तीनों अग्नियों का जैसे निर्माण किया, हव्य भाग का वहन करने वाले देवताओं, हव्य का भक्षण करने वाले देवताओं, असुरों तथा कव्य भाग को खाने वाले पितरों को ॥२६॥ यज्ञ विधि के द्वारा भागों के यज्ञ तथा अयज्ञ कर्म में होने वाले यूपों, समिधाओं, कुश, सोम, पवित्री, परिधियों ॥२७॥ यज्ञीय द्रव्यों को जैसे ब्रह्माजी ने बनाया, उसको तथा विवाभ्राज पूर्वक पारमेष्ठ (परमेष्ठी संबन्धी कर्म के द्वारा)॥२८॥ क्षण, निमेष, काष्ठा, कला तथा तीनों कालों के कर्म, मुहूत, तिथियाँ, मास, दिन एवं संवत्सर ॥२९॥ ऋतु, काल, योग, तथा तीनों प्रकार के प्रमाण, आयुष, क्षेत्र तथा उनका ह्रास लक्षण, रूप तथा सौष्ठव, तीनों वर्ण, तीनों लोक, त्रिविध कर्म तथा तीनों अग्नि। तीनों कालों में किए जाने वाले तीन कर्मों को, तीन वर्ण, तीन गुण ॥३१॥ और अल्प चेतस के द्वारा ब्रह्माजी द्वारा जिन लोकों की सृष्टि की गयी। धार्मिक पुरुषों को प्राप्त होने वाली गतियों तथा पापियों की होने वाली गतियों का वर्णन आप करें॥३२॥ चारों वर्णों की उत्पत्ति स्थान तथा चारो वर्णों की रक्षा करने वाले, चारो विद्याओं से संबन्धित कर्मों के ज्ञाता तथा चारो आश्रमों के आश्रय स्वरूप ॥३३॥ जो परंज्योति तथा परंतप रूप से सुने जाते हैं सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माजी ने जिनको कहा तथा जो परम परमात्मा हैं ॥३४॥ जो लोक के सेतुओं के भी सेतु हैं, जो मेध्य कर्मों में सर्वश्रेष्ठ मेध्य

विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि । इत्येतत्सर्वमखिलान्सृजन् लोकपितामहः ॥३७॥
यज्ञाद्गति कामनैछत् कथं यज्ञे मतिः कृता। एष मे संशयो ब्रह्मन्नेष मे संशयः परः ॥३८॥
आश्चर्यः परमो ब्रह्मा देवैर्दैत्यैश्च पठ्यते । कर्मणाश्चर्यभूतोपि तत्वतः स इहोच्यते ॥३९॥

पुलस्त्य उवाच

प्रश्नभारो महानेष त्वयोक्तो ब्रह्मणश्च यः। यथाशक्ति तु वक्ष्यामि श्रूयतां तत्परं यशः ॥४०॥
सहस्त्रास्यं सहस्त्राक्षं सहस्त्रचरणं च यम्। सहस्त्रश्रवणं चैव सहस्त्रकरमव्ययम् ॥४१॥
सहस्त्रजिह्वं साहस्त्रं सहस्त्रपरमं प्रभुम्। सहस्त्रदं सहस्त्रादिं सहस्त्रभुजमव्ययम्॥४२॥
हवनं सवनं चैव हव्यं होतारमेव च । पात्राणि च पवित्राणि वेदीं दीक्षां चरुं स्त्रुवम्॥४३॥
स्त्रुक् सोममदभृच्चैव प्रोक्षणीं दक्षिणाधनम् । अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यान्सदनंसदः ॥४४॥
यूपं समित्कुशं दर्वीं चमसोलूखलानि च। प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं बन्धनंच यत्॥४५॥
ह्रस्वान्यतिप्रमाणानि प्रमाणस्थावराणि च । प्रायश्चित्तानि वाजाश्च स्थंडिलानि कुशास्तथा ॥४६॥
मंत्रं यज्ञं च हवनं वह्निभावं भवं च यम्। अग्रेभुजं होमभुजं शुभार्चिषमुदायुधम् ॥४७॥
आहुर्वेदविदो विप्रा योयज्ञः शाश्वतः प्रभुः । यां पृछसि महाराज पुण्यां दिव्यामिमां कथाम्॥४८॥
यदर्थं भगवान्ब्रह्मा भूमौ यज्ञमथा करोत्। हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥४९॥
ब्रह्माथकपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च। देवाः सप्तर्षयश्चैव त्र्यंबकश्च महायशाः ॥५०॥

कर्म हैं, जो वेदज्ञ पुरुषों के द्वारा जानने योग्य हैं, तथा जो समर्थों के भी स्वामी हैं ॥३५॥ जो सभी जीवों के प्राण स्वरूप हैं, तथा अग्नि के समान देदीप्यमान कान्ति वालों के लिए अग्नि स्वरूप हैं । जो मनुष्यों के मन स्वरूप हैं तथा तपस्वियों के तपः स्वरूप है ॥३६॥ न्याय वृत्ति को अपनाने वालों के जो विनय (नम्रता) हैं तथा तेजस्वियों के तेजः स्वरूप हैं । इस जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी हैं ॥३७॥ वे यज्ञ के द्वारा किस गति को प्राप्त करना चाहे? उनको यज्ञ करने की इच्छा कैसे हुयी ? हे ब्रह्मन् ! मुझकों यही सबसे बड़ा संदेह होता है ॥३८॥ देवता तथा असुर ब्रह्माजी को आश्चर्य रूप से जानते हैं । कर्मों के द्वारा आश्चर्य स्वरूप होकर भी वे तत्त्वतः यहाँ वर्णित किए गये हैं ॥३९॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— ब्रह्माजी के विषय में आपने बहुत बड़ा प्रश्न किया है । मैं अपनी शक्ति के अनुसार उन सबों का उत्तर दूँगा । उसे आप सुनें ॥४०॥ जिन हजारों मुख वाले, अनन्त नेत्रों वाले, अनन्त चरणों वाले, अनन्त कानों वालें, अनन्त विकार रहित हाथों वाले ॥४१॥ अनन्त जिह्वाओं हजारों-हजार जीवों के परं स्वामी, अनन्त प्रदान करने वाले, अनन्त जगत् के मूलकारण, अनन्त भुजाओं वाले अव्यय पुरुष को आप पूछ रहे हैं ॥४२॥ जो स्वयं ही हवन, सवन, हव्य (हवनीय द्रव्य) होता, समस्त यज्ञ पात्र, पवित्र, वेदी, दीक्षा, चरु, स्त्रुव॥४३॥ स्त्रुक्, होम, अवभृथ, प्रोक्षणी, दक्षिणा का धन, अध्वर्यु सामग (साममन्त्रों क गान करने वाले), ब्राह्मण, सदस्य, सदन (यज्ञमण्डप) सदः (उपवेशन) ॥४४॥ यूप (यज्ञस्तम्भ) समिधा, कुश, दर्वी (खैर के काष्ट की बनी करछुल जिससे चरु चलाया जाता है ।) चमस (चमच) उलूखल (ओखली), प्राग्वंश (पत्नीशाला), यज्ञस्थल, होता तथा बन्धन स्वरूप हैं ॥४५॥ छोटे तथा लम्बे स्थावर पदार्थ, प्रायश्चित, अनेक प्रकार के अन्न, (बाज) स्थण्डिल तथा स्थण्डिल के कुश ॥४६॥ यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र, यज्ञ, हवन, वह्निभाग तथा यव, अग्रेभुज, होमभुज आयुध उठाये हुए शुभार्चिष (मङ्गल ज्योति) ॥४७॥ पुरुष को वेदज्ञ ब्राह्मणों ने यज्ञ तथा शाश्वत स्वामी कहा है । हे महाराज भीष्म ! आप जिस दिव्य कथा को पूछ रहे हैं ॥४८॥ तथा जिसके लिए भगवान्

सनत्कुमारश्च महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजापतिः ।
पुराणदेवोथ तथा प्रचक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥५१॥
पुरा कमलजातस्य स्वपतस्तस्य कोटरे । पुष्करे यत्रसंभूता देवाऋषिगणास्तथा ॥५२॥
एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः। पुराणं कथ्यते यत्र वेदस्मृतिसुसंहितम् ॥५३॥
वराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भूतो विरिंचिनः । सहायार्थं सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः ॥५४॥
विस्तीर्णं पुष्करे कृत्वा तीर्थं कोकामुखं हि तत्। वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुहस्तश्चितीमुखः ॥५५॥
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः । अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदांगः श्रुतिभूषणः ॥५६॥
आज्यनासः स्रुवतुंडः सामघोषस्वनो महान् । सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः ॥५७॥
प्रायश्चित्त नखो धीरः पशुजानुर्मखाकृतिः । उद्गात्रांत्रो होमलिंगो फलबीजमहौषधिः ॥५८॥
वाय्वंतरात्मा मंत्रास्थि रापस्फिक् सोमशोणितः । वेदस्कंधो हर्विर्गंधो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥५९॥
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः । दक्षिणा हृदयो योगी महासत्रमयो महान् ॥६०॥
उपाकर्मेष्टिरुचिरः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः । छायापत्नीसहायोवै मणिशृंगमिवोच्छ्रितः ॥६१॥
सर्वलोकहितात्मा यो दंष्ट्रयाभ्युज्जहार गाम् । ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ॥६२॥

ब्रह्माजी, पृथिवी पर देवता, मनुष्य तथा लोकों का कल्याण करने के लिए यज्ञ किये ॥४९॥ ब्रह्माजी, कपिल, परमेष्ठी, देवगण, सप्तर्षिगण, महायशा त्र्यम्बक (शिवजी) ॥५०॥ सनत्कुमार महर्षि, महाप्रभाव सम्पन्न मनु (स्वायम्भुव मनु) भगवान् प्रजापति (उस यज्ञ में आये) उस यज्ञ में अग्नि के समान तेजस्वी भगवान् विष्णु ने अग्नि को प्रज्वलित करने का काम किया ॥५१॥ प्राचीन काल में उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी जब उस कमल की कर्णिका में सो रहे थे, जिस कमल पर ही देवता तथा ऋषिगण उत्पन्न हुए ॥५२॥ यह उन महात्मा ब्रह्माजी का पौष्कर प्रादुर्भाव है, जिसके विषय में वेद तथा स्मृतियों के अर्थ से युक्त पुराण (पद्म महापुराण) कहा जाता है ॥५३॥ श्रुतियों के मुख स्वरूप वराह ब्रह्माजी की सहायता करने के लिए उत्पन्न हुए । सुरश्रेष्ठ (भगवान् विष्णु) वराह का रूप धारण कर लिए।॥५४॥ उन्होंने अपना शरीर जहाँ विस्तीर्ण किया वह कोकामुख नामक तीर्थ है । वेद ही उनके पैर थे, यूप ही उनके दाढ थे, क्रतु रूप हाथ वाले, चितीरूपी मुख वाले ॥५५॥ उनके अग्निही जिह्वा थी, कुश ही रोम थे, ब्रह्म ही शिर हुआ रात और दिन ये दोने उनके नेत्र हुए, अथवा रात्रि के द्वारा उपलक्षित चन्द्रमा और दिन के द्वारा उपलक्षित सूर्य उनके दोनों दिव्य नेत्र थे । वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष् तथा छन्द) ही उनके कानों के भूषण बने ॥५६॥ घृत ही उनकी नाक बना, स्रुक् ही उनका तुण्ड (थुथुन) हुआ और साम ध्वनि ही उनका घर्धर घोष था । ऐश्वर्य सम्पन्न वे सत्य तथा धर्म स्वरूप कर्म वैदिक कर्म तथा विक्रम से समादृत थे ॥५७॥ प्रायश्चित ही उनका सुदृढ नख हुआ, यज्ञ पशु ही उनके घुटने थे, इसतरह से वे यज्ञ के समान आकार वाले थे । उद्गाता ही उनके आँत थे, होम ही लिङ्ग था । फल तथा बीज महौषधियाँ हुयीं ॥५८॥ वायु ही उनकी अन्तरात्मा बना, वेद मन्त्र ही उनके सुदृढ स्फिक् थे, उन यज्ञ वराहका सोम ही शोणित (खून) बना, वेद ही उनके स्कन्ध थे हविष्य ही गन्ध हुआ । हव्य तथा कव्य रूपी अत्यन्त वेग से वे सम्पन्न थे ॥५९॥ पत्नीशाला ही उनका (यज्ञ वराह का) देदीप्यमान शरीर था । वे दीक्षाओं से अर्चित थे । दक्षिणा ही उनका हृदय थी तथा महासत्र स्वरूप महायोग थे॥६०॥ वे उपकर्म रूपी इष्टि से सुशोभित थे । प्रवर्ग्य आवर्त ही उनके भूषण हुए । छाया ही उनकी पत्नी थी इसतरह के वे यज्ञवराह, ऊचे मणि शृङ्ग के समान देखने में लगते थे ॥६१॥ सम्पूर्ण जीवों का कल्याण करने वाले उन्होंने पृथिवी

ततो जगामनिर्वाणं पृथिवीधारणाद्धरिः । एवमादिवराहेण धृत्वा ब्रह्महितार्थिना ॥६३॥
उद्धृतापुष्करे पृथ्वी सागरांबुगतापुरा। वृतः शमदमाभ्यां यो दिव्ये कोकामुखे स्थितः॥६४॥
आदित्यै र्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह । रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥६५॥
दिग्भिर्विदिग्भिः पृथिवी नदीभिः सहसागरैः । चराचरगुरुः श्रीमान्ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः ॥६६॥
उवाच वचनं कोकामुखं तीर्थं त्वया विभो। पालनीयं सदागोप्यं रक्षाकार्या मखेत्विह ॥६७॥
एवं करिष्ये भगवंस्तदाब्रह्माणमुक्तवान् । उवाच तं पुनर्ब्रह्मा विष्णुं देवं पुरः स्थितम् ॥६८॥
त्वं हि मे परमो देवस्त्वं हि मे परमो गुरुः। त्वं हि मे परमं धाम शक्रादीनां सुरोत्तम॥६९॥
उत्फुल्लामलपद्माक्ष शत्रुपक्षक्षयावह । यथा यज्ञे न मे ध्वंसो दानवैश्च विधीयते ॥७०॥
तथा त्वया विधातव्यं प्रणतस्य नमोस्तुते।

विष्णुरुवाच

भयंत्यजस्व देवेश क्षयं नेष्यामि दानवान् ॥७१॥
ये चान्ये विघ्नकर्तारो यातुधानास्तथासुराः । घातयिष्याम्यहं सर्वान्स्वस्ति तिष्ठ पितामह ॥७२॥
एवमुक्त्वा स्थितस्तत्र साहाय्येनकृतक्षणः । प्रववुश्च शिवावाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥७३॥
सुप्रभाणि च ज्योतींषि चंद्रं चक्रुः प्रदक्षिणम्। न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रसेदुश्चापि सिंधवः ॥७४॥
नीरजस्काभूमिरासीत्सकला ह्लाददास्त्वपः। जग्मुः स्वमार्गं सरितो नापि चुक्षुभुरर्णवाः ॥७५॥

का उद्धार अपनी दाढ़ के द्वारा किए। उसके बाद पृथिवी को धारण करने वाले वे यज्ञ वाराह पृथिवी को अपने स्थान पर लाकर स्थापित कर दिए ॥६२॥ पृथिवी को धारण करने के पश्चात् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। इसतरह से ब्रह्माजी का कल्याण करने वाले आदि वराह के द्वारा धारण करके पृथिवी को कमल के ऊपर रख दिया गया जो इसके पहले पृथिवी सागर के जल में समा गयी थी। शम तथा दम गुण से युक्त जो ब्रह्माजी कोकामुख में विद्यमान थे ॥६३-६४॥ आदित्यों, वसुओं, साध्यदेवों, मरुद्‌गणों, रुद्रों, विश्व की सहायता करने वाले, यक्षों, राक्षसों एव किन्नरों ॥६५॥ दिशाओं, विदिशाओं, पृथिवी, नदियों, महासागरों के साथ चराचर गुरु, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने ॥६६॥ कोकामुख तीर्थ से कहा— हे प्रभो! आप इस यज्ञ की सदा रक्षा करते रहेंगे ॥६७॥ उस समय कोकामुख तीर्थ ने ब्रह्माजी से कहा— हे भगवन्! मैं ऐसा ही करूँगा। उसके बाद ब्रह्माजी ने अपने सामने विद्यमान भगवान् विष्णु से कहा ॥६८॥ आप ही मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, आप ही मेरे परम गुरु हैं, आप ही मेरे परमधाम (प्राप्य) हैं, तथा इन्द्रादि देवताओं के भी आप ही आश्रय हैं, हे सुरश्रेष्ठ !॥६९॥ हे विकसित कमल के समान मनोहर नेत्र वाले कमल नयन भगवन्! हे शत्रु के पक्ष का विनाश करने वाले! जिस उपाय से दानव मेरे यज्ञ को विध्वस्त न कर सकें उसी प्रकार के कार्यों को आप करें। मैं आपकी शरण में हूँ, आपको नमस्कार है। **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे देवेश! आप भय छोड़ दें, मैं दानवों का विनाश कर दूँगा ॥७१॥ इसके अतिरिक्त जो विघ्न करने वाले दैत्य तथा असुर हैं, मैं उन सबों को मार दूँगा, आपका कल्याण हो ॥७२॥ इसतरह से कहकर भगवान् विष्णु सहायक रूप से वहाँ पर सावधन होकर स्थिर हो गये। उस समय सुन्दर हवायें चलने लगीं; दशो दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं।॥७३॥ सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र सुन्दर कान्ति से युक्त हो गया, और वे सब चन्द्रमा के दक्षिणवर्ती हो गये। ग्रहों में कोई विग्रह नहीं हुआ, नदियाँ स्वच्छ हो गयीं ॥७४॥ पृथिवी धूलि से रहित हो गयी और जल सम्पूर्ण आह्लाद को प्रदान करने वाले हो गये। नदियाँ अपने मार्ग से प्रवाहित होने लगीं, समुद्र में किसी भी प्रकार का क्षेभ नहीं

आसन् शुभानींद्रियाणि नराणाममंतरात्मनाम् । महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरवाचयन् ।।७६।।
यज्ञे तस्मिन् हविः पाके शिवा आसंश्च पावकाः । प्रवृत्तधर्मसद्वृत्ता लोका मुदितमानसाः ।।७७।।
विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधना गिरः । ततो देवाः समायाता दानवा राक्षसैस्सह ।।७८।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च सर्वे तत्रागताः क्रमात् । गंधर्वाप्सरसश्चैव नागा विद्याधरा गणाः ।।७९।।
वानस्पत्याश्चौषधयो यच्चेहेद्यच्चनेहति। ब्रह्मादेशान्मारुतेन आनीताः सर्वतो दिशः ।।८०।।
यज्ञपर्वतमासाद्यदक्षिणामभितो दिशम् । सुरा उत्तरतः सर्वे मर्यादापर्वते स्थिताः ।।८१।।
गंधर्वाप्सरसश्चैव मुनयो वेदपारगाः । पश्चिमां दिशमास्थाय स्थितास्तत्र महाक्रतौ ।।८२।।
सर्वे देवनिकायाश्च दानवाश्चासुरा गणाः । अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा सुप्रीतास्ते परस्परम् ।।८३।।
ऋषीन्पर्यचरन्सर्वे शूश्रूषन्ब्राह्मणांस्तथा । ऋषयो ब्रह्मर्षयश्च द्विजा देवर्षयस्तथा ।।८४।।
राजर्षयो मुख्यतमास्समायाताः समंततः । कतमश्च सुरोप्यत्र क्रतौ याज्यो भविष्यति ।।८५।।
पशवः पक्षिणश्चैव तत्रायातादिदृक्षवः । ब्राह्मणा भोक्तुकामाश्च सर्वेवर्णानुपूर्वशः ।।८६।।
स्वयं च वरुणोरत्नं दक्षश्चान्नं स्वयं ददौ । आगत्यवरुणो लोकात्पक्वं चान्नंस्वतोऽपचत् ।।८७।।
वायुर्भक्षविकारांश्च रसपाचीदिवाकरः । अन्नपाचनकृत्सोमो मतिदाताबृहस्पतिः ।।८८।।
धनदानं धनाध्यक्षो वस्त्राणि विविधानि च । सरस्वती नदाध्यक्षो गंगादेवी सनर्मदा ।।८९।।
याश्चान्याः सरितः पुण्याः कूपाश्चैव जलशयाः । पल्वलानि तटाकानि कुंडानि विविधानि च ।।९०।।
प्रस्रवाणि च मुख्यानि देवखातान्यनेकशः । जलाशयानि सर्वाणि समुद्राः सप्त संख्यकाः ।।९१।।

था।।७५।। अन्तरात्मा से युक्त मनुष्ये की इन्द्रियाँ शुभ हो गयीं । शोक रहित महर्षिगण जोर-जोर से वेद मन्त्रों का उच्चारण करने लगे ।।७६।। उस यज्ञ में हविष्य का पाक बनाने में अग्नियाँ मङ्गलमय हो गयीं । प्रवृत्ति धर्म वाले सभी जीव प्रसन्नमना तथा सद्वृति वाले हो गये ।।७७।। सत्य प्रतिज्ञा करने वाले भगवान् विष्णु की शत्रु विनाशिनी वाणी सुनकर सभी देवता दानवों एवं राक्षसों के साथ वहाँ आये ।।७८।। वहाँ पर क्रमशः भूत, प्रेत तथा पिशाच भी आये । गन्धर्व, अप्सरायें, नाग तथा विद्याधरों का समूह भी वहाँ आया ।।७९।। ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके वायु देवता सभी दिशाओं से उन सभी वनस्पतियों और औषधियों को लाये जो यहाँ हैं और जो नहीं है, उनको भी।।८०।। यज्ञ पर्वत को प्राप्त करके सम्पूर्ण दिशा में वे औषधियाँ रखी गयीं । सभी देवता उत्तर पर्वत पर वहाँ स्थित हो गये।।८१।। गन्धर्व, अप्सराएँ तथा वेदपारङ्गत मुनिगण उस महाक्रतु में आकर पश्चिम दिशा में बैठ गयें ।।८२।। देवताओं के सभी समूह दानवगण एवं असुरगण परस्पर के बैर को भूलकर एक-दूसरे से प्रसन्न रहकर ।।८३।। सबके सब ऋषियों तथा ब्राह्मणों की सेवा करने लगे । ऋषिगण, ब्रह्मर्षिगण, ब्राह्मणगण, देवर्षि गण ।।८४।। अत्यन्त प्रख्यात राजर्षिगण वहाँ उस यज्ञ में सभी स्थानों से आये । इस यज्ञ में किस देवता की आराधना की जायेगी, वे इस बात को जानना चाहते थे ।।८५।। उस यज्ञ को देखने की इच्छा से वहाँ, पशु-पक्षी भी आये । वर्णानुसार सभी ब्राह्मण वहाँ भोजन करने के लिए आये ।।८६।। वहाँ पर स्वयम् वरुण रत्न तथा अन्न प्रदान करने का काम करते थे। स्वयं वरुण अपने लोक से आकर वहाँ अन्न पकाते थे ।।८७।। वायुदेव भक्ष्य पदार्थों में होने वाले विकारों को दूर करते थे और सूर्य उनके रस को पकाते थे । वहाँ अन्न को पचाने का काम सोम करते थे तथा बुद्धि देने का काम वृहस्पति करते थे ।।८८।। धनाध्यक्ष कुबेर धन तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों को देते थे, सरस्वती नदी के स्वामी देवीगङ्गा, नर्मदा तथा अन्य पवित्र नदियाँ, कूप, जलाशय, पल्वल (छोटे जलाशय) तड़ाग तथा अनेक कुण्ड।।८९-९०।।

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् । सप्तलोकाः सपातालाः सप्तद्वीपाः सपत्तनाः ॥९२॥
वृक्षा वल्ल्यः सतृणानि शाकानि च फलानि च । पृथिवी वायुराकाशमापोज्योतिश्च पञ्चमम् ॥९३॥
सविग्रहाणि भूतानि धर्मशास्त्राणि यानि च । वेदभाष्याणि सूत्राणि ब्रह्मणा निर्मितं च यत् ॥९४॥
अमूर्तं मूर्तमत्यन्तं मूर्तदृश्यं तथाखिलम् । एवं कृते तथास्मिंस्तु यज्ञे पैतामहे तदा ॥९५॥
देवानां संनिधौ तत्र ऋषिभिश्चसमागमे । ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे स्थितो विष्णुः सनातनः॥९६॥
वामपार्श्वे स्थितो रुद्रः पिनाकी वरदः प्रभुः । ऋत्विजां चापि वरणं कृतं तत्र महात्मना ॥९७॥
भृगुर्होता वृतस्तत्र पुलस्त्योऽध्वर्य्युसत्तमः । तत्रोद्गाता मरीचिस्तु ब्रह्मा वै नारदः कृतः ॥९८॥
सनत्कुमारादयो ये सदस्यास्तत्र ते भवन् । प्रजापतयो दक्षाद्या वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः ॥९९॥
ब्रह्मणश्च समीपे तु कृताऋत्विग्विकल्पना । वस्त्रैराभरणैर्युक्ताः कृता वैश्रवणेन ते ॥१००॥
अंगुलीयैः सकटकै र्मकुटैर्भूषिता द्विजाः । चत्वारो द्वौ दशान्येच षोडशर्त्विजः ॥१०१॥
ब्राह्मणाः पूजिताः सर्वे प्रणिपातपुरः सरम् । अनुग्राह्यो भवद्भिस्तु सर्वैरस्मिन्क्रताविह ॥१०२॥
पत्नीममैषा सावित्री यूयं मे शरणं द्विजाः । विश्वकर्माणमाहूय ब्रह्मणः शीर्षमुडनम् ॥१०३॥
यज्ञे तु विहितं तस्य कारितं द्विजसत्तमैः । आतसेयानि वस्त्राणि दंपत्यर्थे तथा द्विजैः ॥१०४॥
ब्रह्मघोषेण ते विप्रानादयन्तस्त्रिविष्टपम् । पालयंतो जगच्चेदं क्षत्रियाः सायुधाः स्थिताः॥१०५॥
भक्ष्यप्रकारान्विविधान्वैश्यास्तत्र प्रचक्रिरे । रसबाहुल्ययुक्तं च भक्ष्यं भोज्यं कृतं ततः ॥१०६॥
अश्रुतं प्रागदृष्टं च दृष्ट्वा तुष्टः प्रजापतिः । प्राग्वाटेति ददौ नाम वैश्यानां सृष्टिकृद्विभुः ॥१०७॥

मुख्य झरने, अनेक देवताओं के खात, सभी जलाशय, सातो समुद्र ॥९१॥ लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरा समुद्र, धृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र तथा जलसमुद्र ये सभी, सातो लोक, (भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक) सातो पाताल (तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल और पाताल) अपने नगरों के साथ सातो द्वीप ॥९२॥ वृक्ष, लताएँ, तृण, शाक, फल, पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा तेज॥९३॥ शरीर धारण करके वहाँ आये यज्ञ तथा समस्त धर्मशास्त्र वेदों के भाष्य, सूत्र तथा ब्राह्मणग्रन्थ ॥९४॥ अमूर्त, तथा मूर्तिमान तथा दृश्य सबके सब पदार्थ, ब्रह्माजी के उस यज्ञ में आये ॥९५॥ देवताओं के सन्निकट में ऋषियों के आ जाने पर ब्रह्माजी के दाहिने भाग में सनातन भगवान् विष्णु स्थित हो गये ॥९६॥ ब्रह्माजी के बायें भाग में पिनाकधारी तथा वरदमुद्रा से युक्त शङ्करजी स्थित हो गये । उसके बाद ब्रह्माजी ने ऋत्विजों का वरण किया॥९७॥ भृगु महर्षि का वरण होता के रूप में और पुलस्त्य महर्षि का श्रेष्ठ अध्वर्यु के रूप में हुआ । महर्षि मरीचि उद्गाता के रूप में तथा नारदजी ब्रह्मा के रूप में वृत्त हुए ॥९८॥ वहाँ पर जो सनत्कुमार इत्यादि महर्षि थे वे उस यज्ञ में सदस्य हुए । दक्ष आदि जो वर्णहीन प्रजापति थे वे ब्राह्मण हुए ॥९९॥ ब्रह्माजी के समीप में ऋत्विजों ने विशेष रूप से कल्पना की, कुबेर ने उन सबों को वस्त्रों तथा आभूषणों से सजाया ॥१००॥ सभी ब्राह्मण अङ्गूठी, वलय तथा मुकुटों से सुसज्जित थे । इस तरह उस यज्ञ में सोलह ऋत्विक् हुए ॥१०१॥ ब्रह्माजी ने सभी ऋत्विजों को साष्टाङ्ग प्रणाम पुरस्सर पूजा की और कहा इस यज्ञ में आप सब लोग मेरे ऊपर कृपा करेंगे ॥१०२॥ मेरी पत्नी सावित्री हैं, आपलोग ही मेरे रक्षक हैं । उसके बाद विश्वकर्मा को बुलाकर ब्रह्माजी का मुण्डन कराया गया ॥१०३॥ इसके बाद ब्राह्मणों ने यज्ञ के लिए विहित सभी कर्मो को ब्रह्माजी से कराया । ब्राह्मणों ने यजमानदम्पती को आतसेय (रेशमी) वस्त्र दिया ॥१०४॥ वेदघोष पूर्वक विप्रों को देवताओं ने वस्त्र प्रदान किया । इस जगत् की रक्षा करते हुए

द्विजानां पादशुश्रूषा शूद्रैः कार्या सदात्विह । पादप्रक्षालनं भोज्यमुच्छिष्टस्य प्रर्मार्जनम् ॥१०८॥
तेपि चक्रुस्तदा तत्र तेभ्यो भूयः पितामहः । शुश्रूषार्थं मया यूयं तुरीये तु पदे कृताः ॥१०९॥
द्विजानां क्षत्रबन्धूनां बन्धूनां च भवद्विधैः । त्रिभ्यश्शुश्रूषणा कार्येत्युक्त्वा ब्रह्मा तथाऽकरोत्॥११०॥
द्वाराध्यक्षं तथा शक्रं वरुणं रसदायकम् । वित्तप्रदं वैश्रवणं पवनं गंधदायिनम् ॥१११॥
उद्योतकारिणं सूर्यं प्रभुत्वे माधवः स्थितः । सोमः सोमप्रदस्तेषां वामपक्षपथाश्रितः ॥११२॥
सुसत्कृता च पत्नी सा सावित्री च वरांगना । अध्वर्युणा समाहूता एहि देवि त्वरान्विता ॥११३॥
उत्थिताश्चाग्नयः सर्वे दीक्षाकाल उपागतः । व्यग्रा सा कार्यकरणे स्त्रीस्वभावेन नागता ॥११४॥
इह वै न कृतं किंचिद्द्वारे वै मंडनं मया। भित्त्यां वैचित्रकर्माणि स्वस्तिकं प्रांगणे न तु॥११५॥
प्रक्षालनं च भांडनां न कृतं किमपि त्विह। लक्ष्मीरद्यापि नायाता पत्नीनारायणस्य या॥११६॥
अग्नेः पत्नी तथा स्वाहा धूम्रोर्णा तु यमस्य तु । वारुणी वै तथा गौरी वायोर्वै सुप्रभा तथा ॥११७॥
ऋद्धिर्वैश्रवणो भार्या शम्भोर्गौरी जगत्प्रिया । मेधा श्रद्धा विभूतिश्च अनसूया धृतिः क्षमा ॥११९॥
गंगा सरस्वती चैव नाद्यायाताश्च कन्यकाः । इंद्राणी चंद्रपत्नी तु रोहिणी शशिनः प्रिया ॥१२०॥
अरुंधती वसिष्ठस्य सप्तर्षीणां च या स्त्रियः । अनसूयात्रिपत्नी च तथान्याः प्रमदा इह ॥१२१॥
वध्वो दुहितरश्चैव सख्यो भगिनिकास्तथा । नाद्यागतास्तु ताः सर्वा अहं तावत्स्थिता चिरम्॥१२२॥

क्षत्रिय आयुध लेकर स्थित हो गये ॥१०५॥ वैश्यों ने वहाँ पर अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थो को उपस्थित किया । उसके बाद सम्पूर्ण भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ रस से परिपूर्ण हो गये ॥१०६॥ इस प्रकार का यज्ञ पहले न तो सुना गया था और न देखा गया था, उससे ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने वैश्यों को प्राग्वाट नाम प्रदान किया ॥१०७॥ ब्रह्माजी ने कहा कि शूद्रों को सदा ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करनी चाहिए । उन्हें ब्राह्मणों का पैर धोना चाहिए तथा ब्राह्मणों के उच्छिष्ट पात्रों को साफ करना चाहिए ॥१०८॥ शूद्रों ने भी ब्रह्माजी के कथनानुसार कार्य किया । उसके वाद में उनसे ब्रह्माजी ने कहा सेवा करने के ही लिए मैंने आपलोगों की नियुक्ति चतुर्थ पद पर की है ॥१०९॥ ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों इन तीनों की आपलोगो को सेवा करनी चाहिए इसतरह से कहकर ब्रह्माजी ने ॥११०॥ इन्द्र को द्वाराध्यक्ष, वरुण को रस प्रदाता तथा कुबेर को धन प्रदाता एवं वायुदेव को गन्ध प्रदाता बनाया ॥१११॥ उन्होंने प्रकाशकर्त्ता सूर्य को तथा स्वामित्व के पद पर भगवान् माधव को नियुक्त किया । वाम पक्ष पथाश्रित सोम को उन्होंने सोम प्रदाता बनाया ॥११२॥ नारियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी की पत्नी का सत्कार करके अध्वर्यु ने सावित्री को बुलाते हुए कहा हे देवि ! शीघ्र आओ ॥११३॥ सभी अग्नियाँ प्रदीप्त हो गयी हैं दीक्षा का समय आ गया है । किन्तु कार्यान्तरों में व्यस्त रहने के कारण सावित्री देवी स्त्री के स्वभाव के अनुसार शीघ्र नहीं आयीं ॥११४॥ उन्होंने कहा अभी मैंने दरवाजों को बिल्कुल नहीं अलंकृत किया है न तो मैंने दिवालों पर चित्र बनाया है और न तो आंगन में स्वस्तिक चिह्न बनाया है ॥११५॥ अभी मैंने पात्रों को भी नहीं धोया है, अभी नारायण की पत्नी लक्ष्मीजी भी नहीं आयी हैं ॥११६॥ न तो अग्नि की पत्नी स्वाहा आयी हैं और न यम की पत्नी धूम्रोर्णा आयी हैं । वरुण की पत्नी गौरी तथा वायु की पत्नी सुप्रभा भी नहीं आयी हैं ॥११७॥ कुबेर की पत्नी ऋद्धि तथा शङ्करजी की जगत्प्रिया पत्नी गौरी भी नहीं आयी हैं ॥११८॥ मेघा, श्रद्धा, विभूति, अनसूया, धृति, क्षमा ॥११९॥ गङ्गा, सरस्वती (नदी) ये सभी कन्यकाएँ नहीं आ पायी हैं, इन्द्र की पत्नी, चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी जो चन्द्रमा की प्रियतमा हैं ॥१२०॥ महर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती तथा सप्तर्षियों की जो पत्नियाँ हैं, अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया तथा दूसरी भी

नाहमेकाकिनी यास्ये यावन्नायांति ताः स्त्रियः। ब्रूहि गत्वा विरंचिं तु तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम्॥१२३॥
सर्वाभिः सहिता चाहमागच्छामि त्वरान्विता। सर्वैः परिवृतः शोभां देवैः सह महाद्युते ॥१२४॥
भवान्प्राप्नोति परमां तथाहं तु न संशयः। वदमानां तथाध्वर्युस्त्यक्त्वा ब्रह्माणमागतः ॥१२५॥
सावित्री व्याकुला देव प्रसक्ता गृहकर्मणि। सख्यो नाभ्यागतायावत्तावन्नागमनं मम॥१२६॥
एवमुक्तोस्मि वै देव कालश्चाप्यतिवर्त्तते। यत्तेद्यरुचितं तावत्तत्कुरुष्व पितामह ॥१२७॥
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा किंचित्कोपसमन्वितः। पत्नीं चान्यां मदर्थे वै शीघ्रं शक्र इहानय ॥१२८॥
यथा प्रवर्तते यज्ञः कालहीनो न जायते। तथा शीघ्रं विधत्स्व त्वं नारीं कांचिदुपानय ॥१२९॥
यावद्यज्ञसमाप्तिर्मे वर्णे त्वां मा कृथा मनः। भूयोपि तां प्रमोक्ष्यामि समाप्तौ तु क्रतोरिह ॥१३०॥
एवमुक्तस्तदा शक्रो गत्वा सर्वं धरातलम्। स्त्रियो दृष्टाश्च यास्तेन सर्वाः परपरिग्रहाः॥१३१॥
आभीरकन्यारूपाढ्या सुनासा चारुलोचना। न देवी न च गंधर्वी नासुरी न च पन्नगी॥१३२॥
नचास्ति तादृशी कन्या यादृशी सा वरांगना। ददर्श तां सुचार्वंगीं श्रियं देवीमिवापराम्॥१३३॥
संक्षिपन्तीं मनोवृत्तिविभवं रूपसंपदा। यद्यद्वस्तुसौंदर्याद्विशिष्टं लभ्यते क्वचित् ॥१३४॥
तत्तच्छरीरसंलग्नं तन्वंग्या ददृशे वरम्। तां दृष्ट्वा चिंतयामास यद्येषा कन्यका भवेत्॥१३५॥
तन्मत्तः कृतपुण्योन्यो न देवो भुवि विद्यते। योषिद्रत्नमिदं सेयं सद्भाग्या यां पितामहः ॥१३६॥
सरागो यदि वास्यात्तु सफलस्त्वेष मे श्रमः। नीलाभ्रकनकांभोजविद्रुमाभां ददर्श ताम्॥१३७॥

स्त्रियाँ वे सब, उनकी बहुएँ तथा बेटियाँ, मेरी सखियाँ तथा मेरी बहनें भी नहीं आयी हैं। इसलिए मैं रुकी हूँ, उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ ॥१२१-१२२॥ जब तक ये सब नहीं आ जा रही हैं, तब तक मैं अकेले नहीं जा सकती। अतएव जाकर ब्रह्माजी से कहिए कि वे थोड़ी देर रुक जायँ ॥१२३॥ मैं इन सबों के साथ शीघ्र ही आ रही हूँ। हे महामत्ते ! जिस तरह आप सभी देतवाओं के साथ सुशोभित होते हैं ॥१२४॥ उसी तरह मैं भी इनसबों के साथ सुशोभित होती हूँ। इसतरह से कहने वाली सावित्री देवी को छोड़कर अध्वर्यु ब्रह्माजी के पास आ गये ॥१२५॥ उन्होंने ब्रह्माजी से कहा— हे देव ! सावित्रीजी गृह के कार्यों में व्यस्त हैं। उन्होंने कहा है कि जब तक मेरी सखियाँ नहीं आ जाती हैं, तब तक मैं नहीं आ सकती हूँ ॥१२६॥ हे देव ! उन्होंने ऐसा ही कहा है और समय भी बीतता जा रहा है, अतएव इस समय आपको जो उचित मालुम पड़े वही कीजिए ॥१२७॥ इस तरह से कहने पर ब्रह्माजी कुछ क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कहा इन्द्र ! तुम शीघ्र मेरे लिए दूसरी पत्नी लाओ ॥१२८॥ जिससे कि यज्ञ प्रारम्भ हो जाय समय बीत न जाये। अतएव ऐसा शीघ्र करो, किसी स्त्री को लाओ ॥१२९॥ उससे कहो कि जब तक मेरा यज्ञ पूरा न हो जाय तब तक के लिए मैंने तुम्हारा वरण किया है। मन में कोई दूसरी बात न सोचो। यज्ञ समाप्त हो जाने पर मैं उसको छोड़ दूँगा ॥१३०॥ इस तरह कहने पर सम्पूर्ण धरातल पर जाकर इन्द्र ने जिन स्त्रियों को देखा वे सब दूसरों की पत्नी थीं ॥१३१॥ उन्होंने एक अभीर (अहीर) की कन्या को देखा। वह देखने में सुन्दर थी, उसके नेत्र तथा नाक मनोहर थे। कोई भी देवी गन्धर्वी, आसुरी, सर्पिणी ॥१३२॥ उतना सुन्दर कन्या नहीं थी वह इतनी सुन्दरी थी। इन्द्र ने उस सुन्दरी को देखा वह लक्ष्मी के समान सुन्दर थी ॥१३३॥ वह देखने मात्र से अपने रूप के द्वारा मन को आकृष्ट कर लेती थी; संसार में जो कोई भी वस्तु सौन्दर्य से विशिष्ट पायी जाती है ॥१३४॥ उन्होंने देखा कि उस सुन्दरी के शरीर में उन सबों का समावेश था। उसको देखकर उन्होंने सोचा भाग्यवशात् यदि यह कन्या होती ॥१३५॥ तब तो मेरे समान संसार में कोई भी दूसरा पुण्यवान् नहीं होता। यह वही स्त्रीरत्न होती तथा

त्विषं संबिभ्रतीमंगैः केशगंडेक्षणाधरैः । मन्मथाशोकवृक्षस्य प्रोद्भिन्नां कलिकामिव ॥१३८॥
प्रदग्धहृच्छयेनैव नेत्रवह्निशिखोत्करैः । धात्रा कथं हि सा सृष्टा प्रतिरूपमपश्यता ॥१३९॥
कल्पिता चेत्स्वयं बुध्या नैपुण्यस्य गतिः परा । उत्तुंगाग्राविमौ सृष्टौ यन्मे संपश्यतः सुखम् ॥१४०॥
पयोधरौ नातिचित्रं कस्य संजायते हृदि । रागोपहतदेहोयमधरो यद्यपिस्फुटम् ॥१४१॥
तथापि सेवमानस्य निर्वाणं संप्रयच्छति । वहद्भिरपि कौटिल्यमलकैः सुखमर्प्यते ॥१४२॥
दोषोपि गुणवद्भाति भूरिसौंदर्यमाश्रितः । नेत्रयोर्भूषितावंतावाकर्णाभ्याशमागतौ ॥१४३॥
कारणाद्भावचैतन्यं प्रवदंति हि तद्विदः । कर्णयोर्भूषणे नेत्रे नेत्रयोः श्रवणाविमौ ॥१४४॥
कुंडलांजनयोरत्र नावकाशोस्ति कश्चन । न तद्युक्तं कटाक्षाणं यद्विधाकरणं हृदि ॥१४५॥
तव संबंधिनो येऽत्र कथं तेदुःखभागिनः । सर्वसुंदरतामेति विकारः प्राकृतैर्गुणैः ॥१४६॥
वृद्धेक्षणशतानां तु दृष्टमेषा मया धनम् । धात्रा कौशल्यसीमेयं रूपोत्पत्तौ सुदर्शिता ॥१४७॥
करोत्येषा मनो नृणां सस्नेहं कृतिविभ्रमैः । एवं विमृशतस्तस्य तद्रूपापहतत्विषः ॥१४८॥
निरंतरोद्गतैश्छन्नमभवत्पुलकैर्वपुः । तां वीक्ष्य नवहेमाभ्रां पद्मपत्रायतेक्षणाम् ॥१४९॥
देवानामथ यक्षाणं गंधर्वोरगरक्षसाम् । नाना दृष्टा मया नार्यो नेदृशी रूपसंपदा ॥१५०॥

सद्भाग्य से सम्पन्न होती जिसको ब्रह्माजी प्रेमपूर्वक अपनाते और मेरा प्रयास भी सफल हो जाता । इन्द्र ने उस कन्या को देखा वह नीलमेघ, स्वर्णिम कमल तथा विद्रुम की कान्ति से सम्पन्न थी । (अर्थात् उसके केश काले मेघ के समान, शरीर स्वर्णिम कमल के समान तथा ओष्ठ विद्रुम की कान्ति के समान लाल-लाल थे) ॥१३६-१३७॥ उसके अङ्ग, केश, कपोल, नेत्र तथा ओष्ठ कान्ति सम्पन्न थे । वह देखने में काम रूपी अशोक वृक्ष की विकसित कली के समान मनोहर थी ॥१३८॥ वासना रहित होने के कारण नेत्र अग्नि शिखा के अङ्कुर के समान थे इसके समान किसी दूसरी नारी को देखे बिना न जाने कैसे ब्रह्माजी ने इसकी सृष्टि कर दी ॥१३९॥ यदि उन्होंने इसकी कल्पना अपनी बुद्धि से की हो तब तो यह उनकी निपुणता की पराकाष्ठा होगी । जिनके आगे के भाग ऊपर की ओर उठे हुए ऐसे इसके ये दोनों स्तन हैं, जिनको मैं सुख पूर्वक देख रहा हूँ ॥१४०॥ इन दोनों को देखकर किसके हृदय में आश्चर्य नहीं भर जायेगा । इसका शरीर राग (लालिमा) से युक्त है और इसके ओष्ठ खुले हुए है ॥१४१॥ फिर भी उसका सेवन करने वाले को मुक्ति का सुख मिलेगा । इसके कुटिल होने पर भी केश सुखप्रद हैं । अर्थात् इसके बाल घुंघराले हैं ॥१४२॥ अधिक सौन्दर्य सम्पन्न होने के कारण दोष भी गुणों के समान प्रतीत होता है । इसके अलङ्कृत बड़े-बड़े नेत्र कानों के सन्निकट तक फैले हुए हैं ॥१४३॥ कारण के द्वारा भाव एवं चैतन्य होते हैं यह ज्ञाता पुरुष बतलाते हैं । इसके कानों को दोनों नेत्र अलङ्कृत करते हैं और दोनों नेत्रों को दोनों कान अलङ्कृत करते हैं ॥१४४॥ अतएव यहाँ पर न तो कुण्डल के लिए कोई अवकाश है और न तो अञ्जन का । कटाक्षो का यह कोई अच्छा काम नहीं है कि वे हृदय को फाड़ने का काम करते हैं ॥१४५॥ हे देवि ! तुम्हारे जो सम्बन्धी होंगे वे तो सुखी ही होंगे । प्रकृति के गुणों से उत्पन्न होने वाले विकार सभी प्रकार की सुन्दरता में परिणत हो जाते हैं॥१४६॥ मैंने सैकड़ों विस्तृत नेत्रों रूपी सम्पत्ति को देखा है, ब्रह्मा ने यह तो अपनी कुशलता की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया है ॥१४७॥ यह अपने हावभावों के द्वारा मनुष्यों के मन में स्नेह उत्पन्न कर देती है । इस तरह से विचार करने वाले तथा उसके रूप को देखकर जिनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी उन इन्द्र के ॥१४८॥ सम्पूर्ण शरीर उस सुवर्ण के समान कान्ति से सम्पन्न तथा कमलदल के समान सुन्दर नेत्रों वाली कन्या को देखकर रोमाञ्चित

त्रैलोक्यांतर्गतं यद्यद्वस्तुतत्तत्प्रधानतः। समादाय विधात्रास्याः कृतारूपस्य संस्थितिः ॥१५१॥

इंद्र उवाच

कासि कस्य कुतश्च त्वमागता सुभ्रु कथ्यताम्। एकाकिनी किमर्थं च वीथीमध्येषु तिष्ठसि ॥१५२॥
यान्येतान्यंगसंस्थानि भूषणानि विभर्षि च। नैतानि तवभूषायै त्वमेतेषां हि भूषणम् ॥१५३॥
न देवी न च गंधर्वी नासुरी नच पन्नगी। किन्नरी दृष्टपूर्वा वा यादृशी त्वं सुलोचने ॥१५४॥
उक्ता मयापि बहुशः कस्माद्दत्से हि नोत्तरम्। त्रपान्विता तु सा कन्या शक्रं प्रोवाच वेपती ॥१५५॥
गोप कन्या त्वहं वीर विक्रीणामीह गोरसम्। नवनीतमिदं शुद्धं दधि चेदं विमंडकम् ॥१५६॥
दध्ना चैवात्र तक्रेण रसेनापि परंतप। अर्थी येनासि तद् ब्रूहि प्रगृह्णीष्व यथेप्सितम् ॥१५७॥
एवमुक्तस्तदा शक्रो गृहीत्वा तां करे दृढम्। अनयत्तां विशालक्षीं यत्र ब्रह्माव्यवस्थितः ॥१५८॥
नीयमाना तु सा तेन क्रोशंती पितृमातरौ। हा तातमातर्हाभ्रातर्नयत्येष नरो बलात् ॥१५९॥
यदि वास्ति मया कार्यं पितरं मे प्रयाचय। स दास्यति हि मां नूनं भवतः सत्यमुच्यते ॥१६०॥
काहि नाभिलषेत्कन्या भर्तारं भक्तिवत्सलम्। नादेयमपि ते किंचित्पितुर्मे धर्मवत्सल ॥१६१॥
प्रसादये तं शिरसा मां स तुष्टः प्रदास्यति। पितुश्चित्तमविज्ञाय यद्यात्मानं ददामि ते ॥१६२॥
धर्मो हि विपुलो नश्येत्तेन त्वां न प्रसादये। भविष्यामि वशेतुभ्यं यदि तातः प्रदास्यति ॥१६३॥
इत्थमाभाष्यमाणस्तु तदा शक्रोनयच्च ताम्। ब्रह्मणः पुरतः स्थाप्य प्राहास्यार्थे मयाबले ॥१६४॥

हो गया ॥१४९॥ उन्होंने सोचा मैंने देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों, सर्पों तथा राक्षसों की अनेक नारियों को देखा है; किन्तु ऐसी रूप सम्पत्ति कहीं भी देखने को नहीं मिली ॥१५०॥ त्रैलोक्य में जितने भी प्रधान वस्तु हैं उन सबों को लेकर ब्रह्मा ने इसके रूप का निर्माण किया है ॥१५१॥ **इन्द्र ने कहा—** हे सुभ्रु ! बतलाओं कि तुम कौन हो, तुम किसकी पुत्री हो ? तुम कहाँ से आयी हो ? तुम अकेले इन गलियों में क्यों खड़ी हो ?॥१५२॥ तुम अपने इन अङ्गों में जो भूषणों को धारण की हो, वे तुम्हारे शरीर को नहीं भूषित करते हैं, तुम्हारा शरीर ही इन सबों को भूषित करता है ॥१५३॥ हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम्हारा जैसा रूप है वैसा रूप न तो किसी देवी, न गन्धर्वी, न आसुरी, न पन्नगी (सर्पिणी) और न तो किसी किन्नरी का मैंने देखा है ॥१५४॥ मैने तो बहुत कहा तुम उत्तर क्यों नहीं देती हो ? लज्जित होकर उस कन्या ने इन्द्र से काँपती हुयी कहा ॥१५५॥ हे वीर ! मैं गोपकन्या हूँ, मैं गोरस बेंचती हूँ। यह शुद्ध नवनीत है तथा यह मट्ठा से रहित दधि है ॥१५६॥ हे परंतप ! आप दही, तक्र, गोरस, में से जो चाहे वह ले लें ॥१५७॥ उसके ऐसा कहने पर इन्द्र ने उसके हाथ को दृढतापूर्वक पकड़ लिया और उसको वहाँ लाया जहाँ पर ब्रह्माजी थे ॥१५८॥ इन्द्र के द्वारा ले जाती हुयी वह अपने माता-पिता को चिल्ला रही थी; अरे माँ, अरे पितः, अरे भाई, यह मनुष्य मुझे बलपूर्वक ले जा रहा है ॥१५९॥ वह कह रही थी यदि आपको मेरी आवश्यकता है; तो आप मेरे माता-पिता से माँग ले। मैं सत्य कह रही हूँ, वे मुझे आपको दे देंगे ॥१६०॥ ऐसी कौन कन्या होगी जो प्रेमी पति को न चाहे। हे धार्मिक ! मेरे पिता को आपके लिए अदेय कुछ भी नहीं हैं ॥१६१॥ मैं उनको शिर से प्रणाम करके प्रसन्न कर लूँगी, वे सन्तुष्ट होकर मुझे आपको दे देंगे, पिता के मन को जाने विना मैं अपने को आपको यदि समर्पित कर देती हूँ तो ॥१६२॥ फिर महान् धर्म नष्ट होयेगा इसीलिए मैं आपको प्रसन्न नहीं कर रही हूँ। यदि मेरे पिताजी मुझे आपको दे देंगे तो मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी ॥१६३॥ इसतरह से जब वह कह रही थी उसी समय इन्द्र उसे वहाँ लाये। ब्रह्माजी के सामने उसको स्थापित करके इन्द्र ने कहा— मैं

आनीतासि विशालाक्षि मा शुचो वरवर्णिनि। गोपकन्यामसौ दृष्ट्वा गौरवर्णां महाद्युतिम् ॥१६५॥
कमलामेव तां मेने पुंडरीकनिभेक्षणाम् । तप्तकांचनसद्भित्तिसदृशा पीनवक्षसम्॥१६६॥
मत्तेभहस्तवृत्तोरुं रक्तोत्तुंगनखत्विषम्। तं दृष्ट्वाऽमन्यतात्मानं मन्मथस्येषुगोचरम् ॥१६७॥
तत्प्राप्तिहेतुकधिया गतचित्तेव लक्ष्यते। प्रभुत्वमात्मनो दाने गोपकन्याप्यमन्यत ॥१६८॥
यद्येषमां सुरूपत्वादिच्छत्यादातुमाग्रहात् । नास्ति सीमंतिनी काचिन्मत्तोधन्यतरा भुवि ॥१६९॥
अनेनाहं समानीता यच्चक्षुर्गोचरं गता । अस्यत्यागे भवेन्मृत्युरत्यागेजीवितं सुखम् ॥१७०॥
भवेयमपमानाच्च धिग्रूपादुःखदायिनी । दृश्यते चक्षुषा नेन यापियोषित्प्रसादतः ॥१७१॥
सापि धन्या न संदेहः किं पुनर्यां परिष्वजेत् । जगद्रूपमशेषं हि पृथक् संचारमाश्रितम् ॥१७२॥
लावण्यं तदिहैकस्थं दर्शितं विश्वयोनिना। अस्योपमा स्मरः साध्वी मन्मथस्य त्विषोपमा॥१७३॥
तिरस्कृतस्तु शोकोयं पिता माता न कारणम् । यदि मांनैष आदत्ते स्वल्पं मयि न भाषते ॥१७४॥
अस्यानुस्मरणान्मृत्युः प्रभविष्यति शोकजः । अनागसि च पत्न्यां तु क्षिप्रं यातेयमीदृशी ॥१७५॥
कुचयो र्मणिशोभायै शुद्धाम्बुजसमद्युतिः । मुखमस्य प्रपश्यंत्या मनो मे ध्यानमागतम् ॥१७६॥
अस्यांगस्पर्शसंयोगान्न चेत्त्वं बहुमन्यसे । स्पृशन्नटसि तर्हि न त्वं शरीरं वितथं परम् ॥१७७॥
अथवास्य न दोषोस्ति यदृच्छाचारको ह्यसि । मुषितः स्मर नूनं त्वं संरक्ष स्वांप्रियां रतिम्॥१७८॥
त्वत्तोपि दृश्यते येन रूपेणायं स्मराधिकः । ममानेन मनोरत्न सर्वस्वं च हृतं दृढम् ॥१७९॥
शोभाया दृश्यते वक्त्रे साकुतः शशलक्ष्मणि। नोपमासकलंकस्य निःष्कलं केन शस्यते॥१८०॥

अत्यधिक कान्ति सम्पन्न गौराङ्गी गोपकन्या को देखकर ॥१६५॥ उस कमलनयनी को लक्ष्मी ही माना । सन्तप्त सुवर्ण निर्मित दिवाल के समान उसका विस्तृत वक्षःस्थल था ॥१६६॥ उसके जङ्घे मदमत्त हस्ती के सूढ जैसे गोल थे, उसके लाल-लाल नख ऊपर की ओर उठे हुए थे । वह सुन्दरी भी ब्रह्माजी को दूसरे कामदेव के समान देखी॥१६७॥ वह भी लगता था की ब्रह्माजी को प्राप्त करना चाहती है । गोप कन्या ने भी मान लिया कि मैं इनको अपने को समर्पित कर सकती हूँ ॥१६८॥ उसने सोचा यदि ये आग्रह पूर्वक मुझको प्राप्त करना चाहते हैं तो फिर मुझसे बढकर कोई दूसरी नारी सौभाग्यवती नहीं होगी ॥१६९॥ इसने जो मुझको देखकर यहाँ लाया है, यदि मैं इनको त्याग देती हूँ तो मैं जी नहीं सकती हूँ, यदि इनको मैं स्वीकार कर लेती हूँ तो मेरा जीवन सुखी हो जायेगा॥१७०॥ इनका अपमान करके तो मेरा रूप धिक्कार के योग्य होगा और मैं अपने को दुःख देने वाली हो जाऊँगी । ये जिसको अपने प्रेम भरे नेत्रों से देख लें वह भी नारी धन्य हो जाय और जिस नारी का ये आलिङ्गन कर लें उसके सौभाग्य के बारे में क्या कहना है ? सम्पूर्ण जगत् में रूप तो पृथक्-पृथक् स्थित है; किन्तु विश्व के स्रष्टा ने इनमें तो संसार के सम्पूर्ण रूप को एकत्रित कर दिया है । इनकी सुन्दर उपमा तो कामदेवसे ही दी जा सकती है॥१७३॥ यदि मैं इनका त्याग कर देती हूँ तो मुझे जो शोक होगा उसके कारण मेरे माता-पिता नहीं होंगे । यदि ये मुझको नहीं अपनाते हैं, मुझसे बातें नही करते हैं ॥१७४॥ तो इनका याद ही करके मैं मर जाऊँगी । निर्दोष पत्नी के होने पर यह ऐसी हो गयी ॥१७५॥ स्तनों पर मणि की शोभा उत्पन्न करने वाले शुद्ध कमल की कान्ति के समान कन्ति वाले इनके मुख को देखते ही मेरा मन ध्यान मग्न हो गया ॥१७६॥ यदि इनके अंगों के संस्पर्श को तुम बहुत महत्त्व नहीं देते हो, यदि इनको स्पर्श करके तुम नहीं भ्रमण करते हो तो तुम्हारा शरीर व्यर्थ हो गया॥१७७॥ अथवा इसमें इनका कोई दोष नहीं है तुम तो अपनी इच्छा के अनुसार संचरण करने वाले हो हे कामदेव ! निश्चित रूप से ठगे जा चुके हो जाकर अपनी पत्नी रति की रक्षा करो ॥१७८॥ क्योंकि हे कामदेव ! ये तो तुमसे भी

समानभावतां याति पंकजं नास्य नेत्रयोः । कोपमाजलशंखेन प्राप्ताश्रवणशंख्वयोः ॥१८१॥
विद्रुमोप्यधरस्यास्य लभते नोपमां ध्रुवम् । आत्मस्थममृतं ह्येष संस्रवं श्रेष्टते ध्रुवम् ॥१८२॥
यदिकिंचिच्छुभं कर्म जन्मांतरशतैः कृतम् । तत्प्रसादात्पुनर्भर्ता भवत्वेष ममेप्सितः ॥१८३॥
एवंचिंतापराधीना यावत्सा गोपकन्यका । तावद्ब्रह्मा हरिं प्राह यज्ञार्थं सत्वरं वचः ॥१८४॥
देवी चैषा महाभागा गायत्री नामतः प्रभो । एवमुक्ते तदाविष्णु र्ब्रह्माणं प्रोक्तवानिदम् ॥१८५॥
तदेनामुद्वहस्वाद्य मया दत्तां जगत्प्रभो । गांधर्वेणविवाहेन विकल्पं माकृथाश्चिरम् ॥१८६॥
अमुं गृहाणदेवाद्य अस्याः पाणिमनाकुलम् । गांधर्वोणविवाहेन उपयेमे पितामहः ॥१८७॥
तामवाप्य तदा ब्रह्माजगादाध्वर्युसत्तमम् । कृता पत्नी मया ह्येषा सदने मे निवेशय ॥१८८॥
मृगशृंगधरा बाला क्षौमवस्त्रावगुंठिता । पत्नीशालां तदानीता ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥१८९॥
औदुंबेरण दंडेन प्रावृतो मृगचर्मणा । महाध्वरे तदा ब्रह्मा धम्नास्वेनैव शोभते ॥१९०॥
प्रारब्धं च ततो होत्रं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । भृगुणा सहितैः कर्मवेदोक्तं तैः कृतं तदा ॥१९१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गायत्रीसंग्रहोनाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अधिक रूपवान दिखते हैं । इन्होनें तो रत्न सर्वस्व मेरे मन का ही हरण कर लिया है ॥१७९॥ इनके मुख में जो सौन्दर्य है वह चन्द्रमा में कैसे हो सकता है । उस सकलङ्क चन्द्रमा की उपमा इनके निष्कलङ्क मुख से नहीं दी जा सकती है ॥१८०॥ इनके नेत्रों के समान कमल की शोभा नहीं हो सकती है और न तो इनके कर्ण रूपी शंख के साथ जल से उत्पन्न होने वाले शंख की कोई भी शोभा हो सकती है ?॥१८१॥ निश्चित रूप से इसके ओष्ठों की उपमा विद्रुम (मूंगे) से नहीं हो सकती है और इनकी आत्मा में विद्यमान अमृत भी निश्चित रूप से प्रवाहित होना चाहता है ॥१८२॥ यदि मैंने सैकड़ों जन्मों में कोई पुण्य किया है, तो उसके फलस्वरूप ये मेरे अभिलषित पति हों॥१८३॥ जिस समय वह गोपकन्या इस तरह से सोच रही थी उस समय ब्रह्माजी ने यज्ञ के लिए शीघ्रता करते हुए श्रीहरि से कहा ॥१८४॥ हे प्रभो ! ये महाभागा गायत्री नामकी देवी हैं । इस तरह से कहने पर भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी से कहा ॥१८५॥ हे प्रभो ! मैं इसे आपको प्रदान करता हूँ आप इसके साथ विवाह करें आप इसके साथ गान्धर्व विवाह करें देर न करें ॥१८६॥ आज आप इसके सुन्दर हाथों को अनुगृहीत करें । इसके बाद ब्रह्माजी ने गायत्री के साथ गान्धर्व विवाह किया ॥१८७॥ उसको प्राप्त करके ब्रह्माजी ने श्रेष्ठ अध्वर्यु से कहा इसको मैंने अपनी पत्नी बना लिया; इसे आप मेरे भवन में प्रवेश करायें ॥१८८॥ उस समय वह बाला अपने हाथ में मृग का शृंग लेकर रेशमी वस्त्र धारण की हुयी वेदों में पारङ्गत ऋत्विजों के द्वारा पत्नीशाला में लायी गयी ॥१८९॥ उसके बाद अपने हाथ में गूलर के दण्ड को लेकर तथा मृगचर्म पहनकर उस महायज्ञ में अपनी कान्ति से सुशोभित हुई॥१९०॥ उसके बाद वेदपारङ्गत भृगु इत्यादि ब्राह्मणों के द्वारा कर्मकाण्डोक्त वेदोक्त मन्त्रों से अग्निहोत्र प्रारम्भ हो गया । इसतरह हजारों युग तक पुष्कर में ब्रह्माजी का यज्ञ हुआ ॥१९१॥

इस तरह पद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के गायत्री विवाह नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

तस्मिन्यज्ञे किमाश्चर्यं तदासीद्द्विजसत्तम । कथं रुद्रः स्थितस्तत्र विष्णुश्चापि सुरोत्तमः ॥१॥
गायत्र्या किं कृतं तत्र पत्नीत्वे स्थितया तया। आभीरैः किं सुवृत्तज्ञै र्ज्ञात्वा तैश्च कृतं मुने ॥२॥
एतद्वृत्तं समाचक्ष्व यथावृत्तं यथाकृतम् । आभीरै र्ब्रह्मणा चापि ममैतत्कौतुकं महत् ॥३॥

पुलस्त्य उवाच

तस्मिन् यज्ञे यदाश्चर्यं वृत्तमासीन्नराधिप । कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणाष्वैकमना नृप ॥४॥
रुद्रस्तु महदाश्चर्यं कृतवान्वै सदो गतः। निंद्यरूपधरो देवस्तत्रायाद्द्विजसन्निधौ ॥५॥
विष्णुना न कृतं किंचित् प्राधान्ये स यतः स्थितः । नाशं तु गोपकन्याया ज्ञात्वा गोपकुमारकाः ॥६॥
गोप्यश्च तास्तथा सर्वा आगता ब्रह्मणोंतिकम् । दृष्ट्वा तां मेखलाबद्धां यज्ञसीमव्यस्थिताम्॥७॥
हा पुत्रीति तदा माता पिता हा पुत्रिकेति च । स्वसेति बांधवाः सर्वे सख्यः सख्येन हा सखि ॥८॥
केन त्वमिह चानीता अलक्तां का तु सुंदरी। शाटी निवृत्तं कृत्वा तु केन युक्ता च कं बली ॥९॥
केन चेयं जटा पुत्रि रक्तसूत्रावकल्पिता। एवं विधानि वाक्यानि श्रुत्वोवाच स्वयं हरिः ॥१०॥

ब्रह्माजी के यज्ञ में शिवजी का भिक्षार्थ आगमन, सदस्यों द्वारा शिवजी का उपहास और शिवजी द्वारा कपाल का प्रदर्शन, ब्रह्मा रुद्र संवाद, शिवजी द्वारा ब्राह्मणों को शाप, गोपकन्या के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्माजी की सावित्री द्वारा भर्त्सना, ब्रह्माजी का सावित्री से क्षमा माँगना, ब्रह्मा आदि देवताओं को सावित्री का शाप, सावित्री का पर्वत पर चला जाना, विष्णु कृत सावित्री स्तोत्र, सावित्री द्वारा विष्णु को वरदान, गायत्री द्वारा ब्रह्मव्रत का वर्णन, सावित्री प्रदत्त शाप का अच्छादन, गायत्री द्वारा सभी देवियों एवं देवताओं को वरदान, रुद्र कृत गायत्री स्तोत्र, गायत्री द्वारा रुद्र को वर प्रदान

भीष्मजी ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! उस यज्ञ में कौन सा आश्चर्य हुआ ? वहाँ पर रुद्र तथा विष्णु कैसे बने रहे ?॥१॥ वहाँ पर पत्नी रूप से स्थित रहकर गायत्री देवी ने क्या किया ? सुन्दर वृत्तान्त को जानकर अभीरों (अहीरों) ने क्या किया ?॥२॥ आप मुझे इसी वृत्तान्त को बतलाइये तथा वहाँ पर जो कोई घटना हुयी उसे बतलाइये। मुझे यह भी जानने का कौतुहल है कि आभीरों तथा ब्रह्माजी ने उसके बाद क्या किया ?॥३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! उस यज्ञ में जो कुछ भी आश्चर्यमय घटना हुयी उसे मैं पूर्णरूप से कहता हूँ आप सावधानी पूर्वक सुनें ॥४॥ उस सभा में जाकर रुद्र ने अत्यन्त आश्चर्यमय कार्य किया, वे अत्यन्त निन्दित रूप धारण करके ब्राह्मणों के सन्निकट आये ॥५॥ इस पर विष्णु ने वहाँ कुछ भी नहीं किया क्योंकि वहाँ वे ही प्रधान थे। गोपकुमारों ने जब यह जाना कि गोपकन्या का अपहरण हो गया और गोपियाँ भी इस बात को जानीं तो वे सबके सब ब्रह्माजी के पास आये, वहाँ उन सबों ने देखा कि वह गोपकन्या कमर में मेखला बाँधकर यज्ञ की सीमा में बैठी है॥७॥ उसके माता-पिता हाय पुत्रि ! हाय पुत्रि ! कहकर चिल्लाने लगे, उसके बाँधव स्वसा कहकर, तथा सखियाँ सखी कहकर चिल्ला रही थीं ॥८॥ अलाक्तक से रहित तुम सुन्दरी को यहाँ पर किसने लाया है तुमको साड़ी से रहित करके किसने यह कंबल पहना दिया है ?॥९॥ हे पुत्रि ! किसने तुम्हारी जटा बनाकर लाल सूत्र से बाँध दिया है? इस तरह की बातों को सुनकर श्रीहरि ने स्वयं कहा ॥१०॥ यहाँ इसको हमलोगों ने लाया है, और इसका उपयोग

इह चास्माभिरानीता पन्त्यर्थं विनियोजिता । ब्रह्मणा लंबिता बाला प्रलापं मा कृथास्त्विह ॥११॥
पुण्या चैषा सुभाग्या च सर्वेषां कुलनंदिनी। पुण्याचेन्न भवत्येषा कथमागच्छते सदः॥१२॥
एवं ज्ञात्वा महाभाग न त्वं शोचितुमर्हसि । कन्यैषा ते महाभागा प्राप्ता देवं विरिंचनम् ॥१३॥
योगिनो योगयुक्ता ये ब्राह्मणा वेदपारगाः। नलभंते प्रार्थयन्तस्तां गतिं दुहिता गता॥१४॥
धर्मवंतं सदाचारं भवंतं धर्मवत्सलम् । मया ज्ञात्वा ततः कन्या दत्ता चैषा विरंचये॥१५॥
अनया तारितो गच्छ दिव्यान् लोकान्महोदयान् । युष्माकं च कुले चापि देवकार्यार्थसिद्धये ॥१६॥
अवतारं करिष्येऽहं सा क्रीडा तु भविष्यति। यदा नंदप्रभृतयो ह्यवतारं धरातले ॥१७॥
करिष्यंति तदाचाहं वसिष्ये तेषु मध्यतः । युष्माकं कन्यकाः सर्वा वसिष्यंति मया सह॥१८॥
तत्र दोषो न भविता न द्वेषो न च मत्सरः । करिष्यंति तदा गोपा भयं च न मनुष्यकाः ॥१९॥
नचास्या भविता दोषः कर्मणानेन कर्हिचित्। श्रुत्वा वाक्यं तदा विष्णोः प्रणिपत्य ययुस्तदा॥२०॥
एवमेष वरो देव योदत्तो भवताहिमे । अवतारः कुलेऽस्माकं कर्तव्यो धर्मसाधनः ॥२१॥
भवतो दर्शनादेव भवामः स्वर्गवासिनः । शुभदा कन्यका चैषा तारिणी मे कुलैः सह ॥२२॥
एवं भवतु देवेश वरदानं विभो तव। अनुनीतास्तदा गोपाः वयं देवेन विष्णुना॥२३॥
ब्रह्मणाप्येवमेवं तु वामहस्तेन भाषितम् । त्रपान्विता दर्शने तु बंधूनां वरवर्णिनी॥२४॥
कैरहं तु समाख्याता येनेमं देशमागताः। दृष्ट्वा तु तास्ततः प्राह गायत्री गोपकन्यका॥२५॥

पत्नी के लिए किया है । ब्रह्माजी ने इसे अपनी पत्नी बना लिया है यहाँ शोर-गुल मत मचाओ ॥११॥ यह अत्यन्त पुण्य शालिनी, सौभाग्यवती तथा तुम्हारे कुल को आनन्दित करने वाली है । यदि यह पवित्र नहीं होती तो इस सभा में कैसे आ सकती थी ?॥१२॥ अतएव हे महाभाग ! इस बात को जानकर आपलोगों को शोक नहीं करना चाहिए। यह कन्या महाभाग्यवती है, इसने ब्रह्माजी को पति के रूप में प्राप्त किया है ॥१३॥ तुम्हारी कन्या ने जिस गति को प्राप्त किया है, उसको योग करने वाले योगी और वेद पारङ्गत ब्राह्मण भी नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥१४॥ धार्मिक, सदाचारी तथा धर्मवत्सल जानकर मैंने ब्रह्माजी को इस कन्या को प्रदान किया है ॥१५॥ इसने तो तुमलोगों के स्वर्गलोक में विद्यमान पित्तरों को भी तार दिया है, इसके द्वारा देवताओं के कार्य की सिद्धि हो गयी ॥१६॥ जब पृथिवी पर नन्द इत्यादि का अवतार होगा उस समय मैं भी अवतार लूँगा, उसी समय देवकार्य की सिद्धि रूपी क्रीडा होगी ॥१७॥ मैं भी उस समय तुम सबों के बीच में रहकर आपलोगों की कन्याओं के साथ क्रीडा करूँगा । और वे सब भी मेरे साथ क्रीडा करेंगी ॥१८॥ उस समय न तो कोई दोष होगा, न किसी से किसी का द्वेष होगा और न कोई किसी से क्रोध करेगा । उस समय गोप मनुष्य भी किसी प्रकर का भय नहीं करेंगे ॥१९॥ इस कार्य से इसको भी कोई पाप नहीं लगेगा । भगवान् विष्णु की बातों को सुनकर सबों ने उनको प्रणाम किया और सब चले गये॥२०॥ उन सबों ने भगवान् विष्णु से कहा हे देव ! आपने जो वरदान दिया है, वह हमलोगों को प्राप्त होए । आपको हमलोगों के वंश में धर्म के साधन भूत अवतार लेना चाहिए ॥२१॥ आपका दर्शन करके ही हमलोग स्वर्ग के निवासी बन गये । मङ्गलमयी यह कन्या भी हमलोगों के वंश को तारने वाली बन गयी ॥२२॥ हे देवेश ! हे विभो !! आपका ऐसा वरदान हो । उसके बाद स्वयं भगवान् विष्णु के द्वारा अनुनय किये जाने पर ॥२३॥ तथा ब्रह्माजी ने भी अपने बायें हाथ से सूचित करके कहा ऐसा ही होगा । लज्जित होने के कारण वह सुन्दरी अपने बाँधवों को नहीं देख पा रही थी ॥२४॥ वह सोचती थी कि किसने इन लोगों को मेरे विषय में बतला दिया कि ये

वामहस्तेन तान् सर्वान् प्रणिपातपुरः सरम् । अत्र चाहं स्थिता मातर्ब्रह्माणं समुपागता ॥२६॥
भर्ता लब्धो मया देवः सर्वस्याद्यो जगत्पतिः । नाहं शोच्या भवत्या तु न पित्रा नच बांधवैः ॥२७॥
सखीगणश्च मे यातु भगिन्यो दारकैः सह । सर्वेषां कुशलं वाच्यं स्थितास्मि सहदैवतैः ॥२८॥
गतेषु तेषु सर्वेषु गायत्री सा सुमध्यमा । ब्रह्मणा सहिता रेजे यज्ञवाटं गता सती ॥२९॥
याचितो ब्राह्मणैर्ब्रह्मा वरान्नो देहि चेप्सितान् । यथेप्सितं वरं तेषां तदा ब्रह्माप्ययच्छत ॥३०॥
तया देव्या च गायत्र्या दत्तं तच्चानुमोदितम् । सा तु यज्ञे स्थिता साध्वी देवतानां समीपगा ॥३१॥
दिव्यं वर्षशतं साग्रं स यज्ञो ववृधे तदा । यज्ञवाटं कपर्दी तु भिक्षार्थं समुपागतः ॥३२॥
बृहत्कपालं संगृह्य पंच मुण्डरैलंकृतः । ऋत्विग्भिश्च सदस्यैश्च दूरात्तिष्ठन् जुगुप्सितः ॥३३॥
कथं त्वमिह संप्राप्तो निंदितो वेदवादिभिः । एवं प्रोत्सार्यमाणोपि निंद्यमानः स तैर्द्विजैः ॥३४॥
उवाच तान्द्विजान् सर्वान् स्मितं कृत्वा महेश्वरः । अत्र पैतामहे यज्ञे सर्वेषां तोषदायिनि ॥३५॥
कश्चिदुत्सार्येते नैव ऋते मां द्विजसत्तमाः । उक्तः स तैः कपर्दी तु भुक्त्वा चान्नं ततो ब्रज ॥३६॥

कपर्दिना च ते उक्ता भुक्त्वा यास्यामि भो द्विजाः ।
एवमुक्त्वा निषण्णः स कपालं यस्य चाग्रतः ॥३७॥

तेषां निरीक्ष्य तत्कर्म चक्रे कौटिल्यमीश्वरः । मुक्त्वा कपालं भूमौ तु तान्द्विजानवलोकयन् ॥३८॥
उवाच पुष्करं यामि स्नानार्थं द्विजसत्तमाः । तूर्णं गच्छेति तै रुक्तः स गतः परमेश्वरः ॥३९॥
वियत्स्थितः कौतुकेन मोहयित्वा देवौकसः । स्नानार्थं पुष्करं याते कपर्दिनि द्विजातयः ॥४०॥

लोग यहाँ तक आ गये । उन सबों को देखकर उसने कहा मैंने पति के रूप में सर्वप्रथम देव ब्रह्माजी को प्राप्त किया है । आपलोगों या मेरे माता-पिता को मेरे विषय में कोई चिन्ता नहीं करना चाहिए ॥२५-२७॥ मेरी सखियों, मेरी बहनें, उनके बच्चों सबों से मेरा कुशल आपलोग कहेंगे । मैं देवताओं के साथ हूँ ॥२८॥ उन सबों के चले जाने पर अत्यन्त सुन्दरी गायत्री देवी, ब्रह्माजी के साथ यज्ञशाला में सुशोभित हुयीं ॥२९॥ इसके बाद ब्राह्मणों ने ब्रह्माजी से कहा आप हमलोगों को अभिप्रेत वरदान दें । उसके बाद ब्रह्माजी ने भी उन सबों को अभिलषित वरदान प्रदान किया॥३०॥ गायत्री देवी ने भी ब्रह्माजी द्वारा दिए गये वरदान का अनुमोदन किया । वह साध्वी देवी देवताओं के समीप बनी रही ॥३१॥ वह यज्ञ दिव्य सौ वर्ष से भी अधिक वर्षों तक चलता रहा उसी समय यज्ञशाला में भगवान् शिव भिक्षा प्राप्त करने के लिए आये ॥३२॥ वे अपने हाथ में बहुत बड़ा कपाल लिए हुए तथा पाञ्च मुण्डों की माला धारण किए हुए थे । उन्हें दूर से ही देखकर ऋत्विक् तथा सदस्य उनकी निन्दा करने लगे ॥३३॥ तुम यहाँ कैसे आ गये? वेदज्ञ पुरुष तुम्हारी निन्दा करते हैं, उन ब्राह्मणों द्वारा निन्दा किए जाते हुए तथा उन लोगों के द्वारा भगाये जाने पर भी ॥३४॥ शिवजी ने उन ब्राह्मणों से मुस्कुराकर कहा— सबों को सन्तुष्ट करने वाले इस ब्रह्माजी के यज्ञ में ॥३५॥ किसी को भी नहीं भगाया जाता है, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! केवल मुझको ही भागाया जा रहा है ? इसके बाद ब्राह्मणों ने कहा ठीक है, तुम भोजन करके चले जाना । इस पर शङ्करजी ने कहा— हे ब्राह्मणों ! मैं भोजन करके चला जाऊँगा । इसतरह से कहकर शङ्करजी अपने सामने कपाल रखकर बैठ गये ॥३७॥ उन ब्राह्मणों के उस कर्म को देखकर शङ्करजी ने कुटिलता की । कपाल को भूमि पर रखकर उनलोगों को देखते हुए ॥३८॥ उन्होंने कहा— श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! में पुष्कर में स्नान करने के लिए जा रहा हूँ, ब्राह्मणों ने कहा शीघ्र जाओ, यह सुनकर परमेश्वर शङ्करजी चले गये ॥३९॥ वे कौतुकवशात् देवताओं को मोहित करके आकाश में स्थित हो गये ।

कथं होमोऽत्र क्रियते कपाले सदसि स्थिते । कपालांतान्यशौचानि पुरा प्राह प्रजापतिः ॥४१॥
विप्रेभ्योऽथात्सदस्येकः कपालमुत्क्षिपाम्यहम् । उद्धृतं तु सदस्येन प्रक्षिप्तं पाणिना स्वयम् ॥४२॥
तावदन्यत्स्थितं तत्र पुनरेव समुद्धृतम् । एवं द्वितीयं तृतीयं विंशतिस्त्रिंशदप्यहो ॥४३॥
पंचाशच्च शतं चैव सहस्रमयुतं तथा । एवं नांतः कपालानां प्राप्यते द्विजसत्तमैः ॥४४॥
नत्वा कपर्दिनं देवं शरणं समुपागताः । पुष्कराराण्यमासाद्य जप्यैश्च वैदिकै भृशम् ॥४५॥
तुष्टुवुः सहिताः सर्वे तावत्तुष्टो हरः स्वयम् । ततः स दर्शनं प्रादाद्द्विजानां भक्तितः शिवः ॥४६॥
उवाच तांस्ततो देवो भक्तिनम्रान् द्विजोत्तमान् । पुरोडाशस्यनिष्पत्तिः कपालं न विना भवेत् ॥४७॥
कुरुध्वं वचनं विप्राः भागः स्विष्टकृतो मम । एवं कृते कृतं सर्वं मदीयं शासनं भवेत् ॥४८॥
तथेत्यूचु र्द्विजाश्शंभुं कुर्मो वै तव शासनम् । कपालपाणिराहेशो भगवतं पितामहम् ॥४९॥
वरं वरय भो ब्रह्मन्हृदि यत्तेप्रियं स्थितम् । सर्वं तव प्रदास्यामि अदेयं नास्ति मे प्रभो ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

न ते वरं ग्रहीष्यामि दीक्षितोऽहं सदः स्थितः । सर्वकामप्रदश्चाहं यो मां प्रार्थयते त्विह ॥५१॥
एवं वदंतं वरदं क्रतौ तस्मिन्पितामहम् । तथेति चोक्त्वा रुद्रः स वरमस्मादयाचत ॥५२॥
ततो मन्वंतरेतीते पुनरेवप्रभुः स्वयम् । ब्रह्मोत्तरं कृतं स्थानं स्वयं देवेन शंभुना ॥५३॥
चतुर्ष्वपि हि वेदेषु परिनिष्ठां गतो हि यः । तस्मिन्काले तदा देवो नगरस्यावलोकने ॥५४॥
संभाषणे द्विजानां तु कौतुकेन सदोगतः । तेनैवोन्मत्तवेषेण हुतशेषे महेश्वरः ॥५५॥

शङ्करजी के स्नान करने के लिए पुष्कर में चले जाने पर ब्राह्मणों ने कहा ॥४०॥ जब सभा में कपाल विद्यमान है तो फिर होम कैसे किया जा सकता है ? कपाल के भीतर रहने वाली वस्तुएँ अपवित्र होती हैं ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है॥४१॥ उस सभा में एक ब्राह्मण ने कहा मैं कपाल को उठाकर फेंक देता हूँ, और स्वयं सदस्य के द्वारा उसे उठाकर अपने हाथ से फेंक दिए जाने पर ॥४२॥ वहाँ पर दूसरा कपाल निकल आया फिर उसको फेंका गया । इसतरह दूसरा, तीसरा, बीसवाँ, तीसवाँ, भी कपाल फेंका गया ॥४३॥ पचासवाँ, सौवाँ, हजारवाँ, दश हजारवाँ भी उसी तरह उठाकर फेंका गया । इस तरह वे ब्राह्मण श्रेष्ठ कपालों का अन्त नहीं कर पा रहे थे ॥४४॥ इसके बाद शङ्करजी को नमस्कार करके वे ब्राह्मण उनके शरणागत हो गये । पुष्करारण्य में आकर वैदिक मन्त्रों के द्वारा उन लोगों ने शङ्करजी की बहुत अधिक स्तुति की । उससे शङ्करजी प्रसन्न हो गये । उसके बाद ब्राह्मणों की भक्ति के कारण प्रसन्न होकर शङ्करजी ने साक्षात् दर्शन दिया ॥४५-४६॥ उसके बाद उनकी भक्ति से नम्र बने हुए ब्राह्मणों से शङ्करजी ने कहा कि कपाल के बिना पुरोडाश की सिद्धि नहीं हो सकती है ॥४७॥ हे ब्राह्मणों ! मेरी बात मानो स्विष्टकृत का भाग मेरा होता है । ऐसा करने से मेरी सभी आज्ञाओं का पालन हो जाता है ॥४८॥ ब्राह्मणों ने तथास्तु कहकर शङ्करजी से कहा कि हमलोग आपकी आज्ञा का पालन करेंगे । हाथ में कपाल लेकर शिवजी ने ब्रह्माजी से कहा ॥४९॥ हे ब्रह्मन्! आपके हृदय में जो हो उस वरदान को आप माँग लीजिए । आप जो भी कहेंगे वह मैं आपको दूँगा । आपको अदेय कुछ भी नहीं हैं ॥५०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** मैं तुम्हारा वरदान नहीं लूँगा; मैं दीक्षित होकर सभा में स्थित हूँ । कोई भी जो कुछ मुझसे याचना करता है, मैं उसकी सारी कामनाओं को पूर्ण कर देता हूँ ॥५१॥ उस यज्ञ में इस प्रकार से कहने वाले तथा वरदान देने वाले ब्रह्माजी से शङ्करजी ने वरदान माँगा ॥५२॥ उसके बाद मन्वन्तर के बीत जाने पर फिर स्वयं प्रभु ब्रह्मोत्तर स्थान पर स्वयं शङ्करजी ने अपना स्थान बनाया ॥५३॥ चारो वेद में पारङ्गत उस

प्रविष्टो ब्रह्मणः सद्म दृष्टो देवो द्विजोत्तमैः । प्रहसांति च केप्येनं केचिन्निर्भर्त्सयंति च ॥५६॥
अपरे पांसुभिः सिञ्चन्त्युन्मत्तं तं तथा द्विजाः । लोष्ठैश्च लगुडैश्चान्ये शुष्मिणो बलगर्विताः ॥५७॥
प्रहरन्तिस्मोपहासं च कुर्वाणा हस्तसंविदम् । ततोन्ये बटवस्तत्र जटास्वागृह्य चांतिकम् ॥५८॥
पृच्छंति व्रतचर्यां तां केनैषा ते निदर्शिता । अत्र वामा स्त्रियः संति तासामर्थे त्वमागतः ॥५९॥
केनैषा दर्शिता चर्या गुरुणा पापदर्शिना । येन चोन्मत्तवद्वाक्यं वदन्मध्ये प्रधावसि ॥६०॥
शिश्नं मे ब्रह्मणो रूपं भगं चापि जनार्दनः । उप्यमानमिदं बीजं लोकः क्लिश्नाति चान्यथा ॥६१॥
मयायं जनितः पुत्रो जनितोनेन चाप्यहम् । महादेवकृते सृष्टिः सृष्टा भार्या हिमालये ॥६२॥
उमा दत्ता तु रुद्रस्य कस्य सा तनया वद । मूढा यूयं न जानीथ वदतां भगवांस्तु वः ॥६३॥
ब्रह्मणा न कृता चर्या दर्शितेनैव विष्णुना । गिरिशेनापि देवेन ब्रह्मवध्याकृतेन तु ॥६४॥
कथंस्विद्गर्हसे देवं वध्योस्माकं त्वमद्य वै । एवं तै र्हन्यमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्र शंकरः ॥६५॥
स्मितं कृवा ब्रवीत्सर्वान्ब्राह्मणनृपसत्तम । किं मां नवित्थभो विप्रा उन्मत्तं नष्टचेतनम् ॥६६॥
यूयं कारुणिकाः सर्वे मित्रभावे व्यवस्थिताः । वदमानमिदं छद्म ब्रह्मरूपधरं हरम् ॥६७॥
मायया तस्य देवस्य मोहितास्ते द्विजोत्तमाः । कपर्दिनं निजघ्नुस्ते पाणिपादैश्च मुष्टिभिः ॥६८॥
दंडैश्चापि चकीलैश्च उन्मत्तवेषधारिणम् । पीड्यमानस्ततस्तैस्तु द्विजैः कोपमथागमत् ॥६९॥
ततो देवेन ते शप्ता यूयं वेदविवर्जिताः । ऊर्ध्वजटाः क्रतुभ्रष्टाः परदारोपसेविनः ॥७०॥

समय शिवजी के द्वारा नगर के देखने के समय, ब्राह्मणों के बात करने पर कौतुकवशात् सभा में आकर स्विष्ट कृत होम के समय शङ्करजी उसी उन्मत्त वेष से ॥५४-५५॥ ब्राह्मणों के गृह में प्रवेश कर गये । उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने देखा । उसको देखकर कुछ ब्राह्मणों ने उनका उपहास किया तो कुछ ब्राह्मणों ने शङ्करजी की भर्त्सना की ॥५६॥ दूसरे ब्राह्मण उन्मत्त शङ्करजी के ऊपर धूल फेंकने लगे । बल के गर्व से दृप्त बने कुछ ब्राह्मण ढेले और लाठी से उन्हें मारने लगे ॥५७॥ कुछ लोग सन्निकट में विद्यमान शङ्करजी का उपहास करने लगे । उसके बाद दूसरे ब्राह्मण शङ्करजी की जटा को पकड़कर ॥५८॥ पूछने लगे कि तुमको इस व्रतचर्या को किसने बतलाया है ? यहाँ सुन्दर स्त्रियाँ हैं क्या उन सबों के लिए तुम यहाँ आये हो ?॥५९॥ किस पापी गुरु ने तुमको यह आचरण बतलाया है ? जिसके कारण पागल के समान बोलते हुए तुम सबों के बीच में दौड़ रहे हो ?॥६०॥ शङ्करजी ने कहा मेरा लिङ्ग ब्रह्म रूप है और जनार्दन ही मन हैं । इस बीज का वपन करने से संसार कष्टानुभव करता है ॥६१॥ मैंने इसे पुत्र रूप से उत्पन्न किया और इसने मुझे उत्पन्न किया है । महादेव के द्वारा सृष्टि की जाने पर उनकी पत्नी की सृष्टि हिमालय से हुयी ॥६२॥ उमा का विवाह शङ्कर से हुआ, बतलाओ वह किसकी पुत्री है ? तुमलोग मूर्ख हो नहीं जानते हो, जाकर इस बात को ब्रह्माजी से पूछो ॥६३॥ इस आचरण को ब्रह्मा ने नहीं किया, इसे विष्णु ने भी नहीं बतलाया, ब्रह्म हत्या करने वाले शङ्कर के द्वारा यह चर्या की गयी ॥६४॥ अरे तुम ब्रह्माजी की निन्दा कर रहे हो, आज तुम हमलोगों के बध्य हो, इसतरह से उन ब्राह्मणों द्वारा कहकर मारे जाते हुए ॥६५॥ हे नृप श्रेष्ठ शङ्करजी ने मुस्कुराकर ब्राह्मणों से कहा— ब्राह्मणों ! क्या तुमलोग उन्मत्त तथा अज्ञानी मुझको नहीं जानते हो ?॥६६॥ आपलोग दयालु तथा मेरे मित्र हैं । इस तरह से कहने वाले बनावटी ब्रह्मरूपधारी शङ्करजी को ॥६७॥ शङ्करजी की माया से मोहित वे ब्राह्मण श्रेष्ठ उन्मत्त वेषधारी शङ्करजी को हाथ, पैर तथा मुक्कों से ॥६८॥ दण्डों और कील से मारने लगे। उन सबों के द्वारा उस प्रकार से पीडित किए जाते हुए शङ्करजी क्रुद्ध हो गये ॥६९॥ उसके बाद शङ्करजी ने उन

वेश्यायां तु रता द्यूते पितृमातृविवर्जिताः । न पुत्रः पैतृकं वित्तं विद्यां वापि गमिष्यति ॥७१॥
सर्वे च मोहिताः संतु सर्वेंद्रियविवर्जिताः । रौद्रीं भिक्षां समश्नंतु परपिंडोपजीविनः ॥७२॥
आत्मानं वर्तयंतश्च निर्ममा धर्मवर्जिताः । कृपार्पिता तुयैर्विप्रै रुन्मत्ते मयि सांप्रतम् ॥७३॥
तेषां धनं च पुत्राश्च दासी दासमजाविकम् । कुलोत्पन्नाश्चवै नार्यो मयि तुष्टे भवन्त्विह ॥७४॥
एवं शापं वरं चैव दत्वांतर्द्धानमीश्वरः । गतोद्विजा गते देवे मत्वा तं शङ्करं प्रभुम् ॥७५॥
अन्विष्यंतोपि यत्नेन न चापश्यंत ते यदा । तदा नियमसंपन्नाः पुष्करारण्यमागताः ॥७६॥
स्नात्वा ज्येष्ठसरो विप्रा जेपुस्ते शतरुद्रियम् । जाप्यावसाने देवस्तानशरीरगिराब्रवीत् ॥७७॥
अनृतं न मया प्रोक्तं स्वैरेष्वपि कुतः पुनः । आगतोनिग्रहे क्षेमं भूयोपि करवाण्यहम् ॥७८॥
शांता दांता द्विजा ये तु भक्तिमंतो मयि स्थिराः । न तेषां छिद्यते वेदो न धनं नापि संततिः॥७९॥
अग्निहोत्ररता ये च भक्तिमंतो जनार्दने । पूजयंति च ब्रह्माणं तेजोराशिं दिवाकरम् ॥८०॥
नाशुभं विद्यते तेषां येषां साम्ये स्थिता मतिः । एतावदुक्त्वा वचनं तूष्णीं भूतस्तु सोऽभवत् ॥८१॥
लब्ध्वा वरं सप्रसादं देवदेवान्महेश्वरात् । आजग्मुः सहितास्सर्वे यत्र देवः पितामहः ॥८२॥
विरिञ्चिं संहिताजाप्यैस्तोषयंतोऽग्रतः स्थिताः । तुष्टस्तानब्रवीद्ब्रह्मा मत्तोपि व्रियतां वरः ॥८३॥
ब्रह्मणस्तेन वाक्येन हृष्टाः सर्वे द्विजोत्तमाः । को वरोयाच्यतां विप्राः परितुष्टे पितामहे॥८४॥
अग्निहोत्राणि वेदाश्च शास्त्राणि विविधानि च । सांतानिकाश्च ये लोका वरदानाद्भवंतु नः ॥८५॥

ब्राह्मणों को शाप दे दिया कि तुमलोग वेदज्ञान विहीन, ऊपर की ओर जटा रखने वाले, यज्ञाधिकार से रहित, परस्त्रीगामी ॥७०॥ वेश्या प्रेमी और द्यूतप्रेमी, माता-पिता से रहित हो जाओगे । तुमलोगों का पुत्र पिता की सम्पत्ति अथवा विद्या को नहीं प्राप्त कर पायेगा ॥७१॥ तुमलोग अज्ञानी तथा सभी इन्द्रियों से रहित हो जाओ । रुद्र की भिक्षा को खाने वाले होओगे । दूसरों के द्वारा दिए गये अन्न पर जीओगे ॥७२॥ अपने शरीर का पोषण करने वाले, निर्मम तथा अधार्मिक हो जाओगे । जिन ब्राह्मणों ने मुझ उन्मत्त के ऊपर इस समय कृपा की है ॥७३॥ उनके यहाँ, धन, पुत्र, दासी, दास, अजा, अविक (भेंड़) आदि पशु हों । मेरी प्रसन्नता से उनके यहाँ सद्वंश में उत्पन्न नारियाँ हों॥७४॥ इसतरह से शाप तथा वरदान देकर शङ्करजी अन्तर्धान हो गये । उनके चले जाने पर ब्राह्मणों ने जाना कि ये तो भगवान् शङ्कर थे ॥७५॥ उनका अन्वेषण करके भी वे ब्राह्मण जब उनको नहीं प्राप्त कर सके तो वे नियम का पालन करते हुए पुष्कर धाम में आये ॥७६॥ वहाँ वे ब्राह्मण ज्येष्ठ पुष्कर में स्नान करके शतरुद्रिय सूक्त का जप किए । पाठ के अन्त में भगवान् शङ्कर ने उन ब्राह्मणों से आकाशवाणी से कहा ॥७७॥ मैंने कोई भी बात झूठ नहीं कहा है, और स्वच्छान्दाचारियों के प्रति क्या कहना है । निग्रह का विषय बन जाने पर मैं क्षमा भी करता हूँ ॥७८॥ जो ब्राह्मण, शान्त, दान्त हैं; जिनकी मुझमें सुदृढ भक्ति है, उन सबों के वेद ज्ञान, धन तथा सन्तान का नाश नहीं होगा ॥७९॥ अग्निहोत्र करने वाले भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाले, ब्रह्माजी की पूजा करने वाले तथा तेजोराशि सूर्य की पूजा करने वाले ॥८०॥ किञ्च जिनका साम्य (सबों के प्रति भगवदात्मकत्व) में बुद्धि लगी रहती है, उन लोगों का कभी अमङ्गल नहीं होता है । इतना ही मात्र कहकर आकाशवाणी चुप हो गयीं ॥८१॥ देवाराध्य भगवान् शङ्करजी से प्रसन्नता पूर्वक वर प्राप्त करके वे सब एक साथ वहाँ आये जहाँ पर ब्रह्मदेव विद्यमान थे ॥८२॥ संहिता के मन्त्रों से ब्रह्माजी को प्रसन्न करके, उनके सामने खड़े ब्राह्मणों से ब्रह्माजी ने कहा आपलोग मुझसे भी वरदान माँगें॥८३॥ ब्रह्मजी के उस वाक्य को सुनकर सभी ब्राह्मण प्रसन्न हो गये; उन्होंने कहा— ब्राह्मणों प्रसन्न हुए ब्रह्माजी

एवं प्रजल्पतां तत्र विप्राणां कोपमाविशत्। के यूयं केऽत्रप्रवरा वयं श्रेष्ठस्तथापरे ॥८६॥
नेति नेति तथा विप्रा द्विजांस्तांस्तत्र संस्थितान् । ब्रह्मोवाचाभिसंप्रेक्ष्य ब्राह्मणान् क्रोधपूरितान् ॥८७॥
यस्माद्यूयं त्रिभिभर्गैः सभायां बाह्यतः स्थिताः । तस्मादामूलिको गुल्मो ह्येको भवतु वो द्विजाः ॥८८॥
उदासीनाः स्थिता ये तु उदासीना भवंतु ते । सायुधा बद्धनिस्त्रिंशा योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥८९॥
कौशिकीति गणो नाम तृतीयो भवतु द्विजाः । त्रिधाबद्धमिदं स्थानं सर्वं युष्मद्भविष्यति ॥९०॥
बाह्यतो लोकशब्देन प्रोच्यमानाः प्रजास्त्विह । अविज्ञेयमिदं स्थानं विष्णुः पालयिता ध्रुवम् ॥९१॥
मया दत्तं चिरस्थायि अभंगं च भविष्यति । एवमुक्त्वा तदा ब्रह्मा समाप्तिं तामवैक्षत॥९२॥
ब्राह्मणाः सहितास्ते तु क्रोधामर्ष समन्विताः। अतिथिं भोजयानाश्च वेदाभ्यासरतास्तु ते ॥९३॥
एतच्च परमं क्षेत्रं पुष्करं ब्रह्मसंज्ञितम्। तत्रस्था ये द्विजाः शांता वसंति क्षेत्रवासिनः ॥९४॥
न तेषां दुर्लभं किंचिद्ब्रह्मलोके भविष्यति । कोकामुखे कुरुक्षेत्रे नैमिषे ऋषिसंगमे ॥९५॥
वाराणस्यां प्रभासे च तथा बदरिकाश्रमे । गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे॥९६॥
रुद्रकोट्यां विरूपाक्षे मित्रस्यापि तथावने। तीर्थेष्वेतेषु सर्वेषु सिद्धिर्याद्वादशाब्दिका ॥९७॥
प्राप्यते मानवै र्लोके षण्मासाद्राजसत्तम । पुष्करे तु न संदेहो ब्रह्मचर्यमना यदि ॥९८॥
तीर्थानां परमं तीर्थं क्षेत्राणामपि चोत्तमम् । सदा तु पूजितं पूज्यै र्भक्तियुक्तैः पितामहे ॥९९॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि सावित्र्या ब्रह्मणा सह । वादो यथानुभूतस्तु परिहासकृतो महान् ॥१००॥

से कौन सा वरदान माँगा जाय ?॥८४॥ अग्निहोत्र, वेद तथा अनेक शास्त्र तथा जो संतानिकलोक हैं वे लोक हमलोगों को प्राप्त हो ॥८५॥ इसतरह से वे ब्राह्मण जब कह रहे थे, उस समय वहाँ पर विद्यमान कुछ ब्राह्मण क्रुद्ध हो गये और कहे— तुम लोग कौन हो ? हम प्रवर लोग कौन हैं ? तथा दूसरे जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥८६॥ वहाँ पर विद्यमान क्रुद्ध ब्राह्मणों को देखकर ब्रह्माजी ने कहा ऐसी बात नहीं है, ऐसी बात नहीं है ॥८७॥ चूकि आपलोग सभा में वाहर से तीन भागों में स्थित है इसलिए आपलोगों में एक भाग तो मूलतः गुल्मिक होगा ॥८८॥ जो लोग उदासीन बैठे हैं, वे उदासीन हो जायँ, जो लोग आयुध के साथ कृपाण बाँधकर युद्ध करना चाहते हैं वे लोग ॥८९॥ हे द्विजो ! वे तीसरे भाग के ब्राह्मण कौशिकीगण नाम वाले हो जायँ । तीन प्रकार से बँधा हुआ यह स्थान सम्पूर्ण रूप से आपलोगों का होगा । बाहर से लोक शब्द से कही जाने वाली यहाँ की प्रजा है और यह स्थान अविज्ञेय है। इसके स्वामी भगवान् विष्णु हैं ॥९०-९१॥ इसे मैंने प्रदान किया है, अतएव यह चिरस्थायी तथा अभङ्ग (कभी नष्ट नहीं होने वाला) होगा । इसतरह से कहकर ब्रह्माजी ने उस सभा को समाप्त कर दिया ॥९२॥ क्रोध एवं आमर्ष से समन्वित वे ब्राह्मण, अतिथियों को भोजन कराते हुए वेदाभ्यास में संलग्न हो गये ॥९३॥ ब्रह्मसंज्ञक यह पुष्कर क्षेत्र सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है । वहाँ पर जो क्षेत्रवासी शान्त ब्राह्मण निवास करते हैं ॥९४॥ उन ब्राह्मणों को ब्रह्मलोक में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होगी । कोकामुख, कुरुक्षेत्र, ऋषियों के सङ्गमस्थान नैमिषारण्य ॥९५॥ वाराणसी, प्रभास क्षेत्र, बदरिकाश्रम, गङ्गाद्वार (हरिद्वार) प्रयाग, गङ्गासागर, सङ्गमस्थल ॥९६॥ रुद्रकोटि तीर्थ, विरूपाक्ष तीर्थ तथा मित्रवन इन समस्त तीर्थों में बारह वर्षों में जो सिद्धि मनुष्यों को प्राप्त होती है, हे राजश्रेष्ठ ! पुष्कर क्षेत्र में वह सिद्धि छह मासों में ही ब्रह्मचर्य पालन करते हुए रहने पर प्राप्त हो जाती है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥९७-९८॥ वह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है तथा, सभी क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है, वहाँ पर पूज्य पुरुष भक्तिपूर्वक ब्रह्माजी की सर्वदा पूजा करते हैं ॥९९॥ इसके बाद मैं ब्रह्माजी तथा सावित्री में जो वंवाद हुआ, जो महान् परिहास को उत्पन्न करने वाला है,

सावित्री गमने सर्वा आगता देवयोषितः । भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना विष्णुपत्नी यशस्विनी॥१०१॥
आमन्त्रिता सदा लक्ष्मीस्तत्रायाता त्वरान्विता । मदिरा च महाभागा योगनिद्रा विभूतिदा ॥१०२॥
श्रीः कमलालया भूतिः कीर्तिः श्रद्धामनस्विनी। पुष्टितुष्टिप्रदा या तु देव्या एताः समागताः ॥१०३॥
सती या दक्षतनया उमेतिपार्वती शुभा। त्रैलोक्य सुंदरी देवी स्त्रीणां सौभाग्यदायिनी ॥१०४॥
जया च विजया चैव मधुच्छंदामरावती । सुप्रिया जनकांता च सावित्र्या मंदिरे शुभे ॥१०५॥
गौर्या सह समायातास्सुवेषाभरणान्विताः । पुलोमदुहिता चैव शक्राणी च सहाप्सराः ॥१०६॥
स्वाहा चापि स्वधा याता धूम्रोर्णा च वरानना। यक्षी तु राक्षसी चैव गौरी चैव महाधना ॥१०७॥
मनोजवा वायुपत्नी ऋद्धिश्च धनदप्रिया। देवकन्यास्तथायाता दानव्यो दनुवल्लभाः॥१०८॥
सप्तर्षीणां महापत्न्य ऋषीणां च वरांगनाः। एवं भगिन्यो दुहिता विद्याधरी गणास्तथा ॥१०९॥
राक्षस्यः पितृकन्याश्च तथान्या लोकमातरः। बधूभिः सस्नुषाभिश्च सावित्री गंतुमिच्छति॥११०॥
आदित्याद्यास्तथा सर्वा दक्षकन्यास्समागताः । ताभिः परिवृता साध्वी ब्रह्माणी कमलालया ॥१११॥
काचिन्मोदकमादाय काचिच्छूर्पवरानना। फलपूरितमादाय प्रयाता ब्रह्मणोंतिकम् ॥११२॥
आढकीः सहनिष्पावा गृहीत्वान्यास्तथापरा । दाडिमानि विचित्राणि मातुलिंगानि शोभना ॥११३॥
करीराणि तथा चान्या गृहीत्वा कमलानि च । कौसुंभकं जीरकं च खर्जूरमपरा तथा॥११४॥
उत्तमान्यपरादाय नालिकेराणि सर्वशः। द्राक्षयापूरितं काचित्पात्रं श्रृंगाटकं तथा ॥११५॥

उसे बतलाता हूँ ॥१००॥ सावित्री के उस यज्ञ में पधारने के समय सभी देवताओं की स्त्रियाँ आ गयीं । ख्याति देवी के गर्भ से उत्पन्न, भृगु महर्षि की पुत्री, तथा भगवान् विष्णु की यशस्विनी पत्नी लक्ष्मीजी आमन्त्रित होकर वहाँ पर शीघ्रता पूर्वक आयीं । महाभागा मदिरा देवी, योगनिद्रा, ऐश्वर्य प्रदान करने वाली, कमलवन में निवास करने वाली श्रीदेवी, भूति, कीर्ति, मनस्विनी कीर्ति देवी तथा पुष्टि एवं तुष्टि प्रदान करने वाली जितनी देवियाँ थी वे सब आयी ॥१०१-१०३॥ दक्ष प्रजापति की पुत्री सती देवी, मङ्गलप्रदा उमा, पार्वती देवी आयीं जो त्रैलोक्य सुन्दरी तथा स्त्रियों को सौभाग्य प्रदान करने वाली हैं ॥१०४॥ जया, विजया, मधुच्छन्दा, सरस्वती, सुप्रिया, जनकांता ये सबके सब सावित्री देवी के घर आयीं ॥१०५॥ ये सभी देवियाँ सुन्दर वेष में तथा आभूषणों से भूषित होकर आयीं । पुलोम की पुत्री तथा इन्द्र की पत्नी शची अप्सराओं के साथ आयीं ॥१०६॥ स्वाहा देवी, स्वधा देवी तथा सुन्दरी धूमोर्णा देवी । यक्षी तथा राक्षसी महाधनी कुबेर की पत्नी गौरी देवी आयीं ॥१०७॥ मन के समान वेग वाली वायु की पत्नी मनोजवा तथा कुबेर की प्रियतमा ऋद्धि देवी आयीं । देव कन्यायें आयी, दनु की प्रियतमाएँ दानवियाँ आयीं ॥१०८॥ सप्तर्षियों की पत्नियाँ तथा ऋषियों की पत्नियाँ आयीं, इसीतरह सावित्री की पुत्रियाँ, बहनें तथा विद्याधरियाँ आयीं ॥१०९॥ राक्षसियाँ, पितरों की कन्यायें तथा दूसरी लोक माताएँ भी आयीं । इसके बाद इन देवियों तथा उनकी बहुओं के साथ सावित्री ने जाना चाहा ॥११०॥ उसी समय अदिति आदि दक्ष की कन्याएँ आयीं । उन सबों के साथ कमलालया ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री देवी जाना चाहीं ॥१११॥ कुछ देवियाँ मिठायी लेकर आयी थीं, कुछ फल तथा मोदक से परिपूर्ण शूप लेकर ब्रह्माजी के पास गयीं ॥११२॥ कुछ देवियाँ आढकी तथा निष्पावा लेकर गयीं। कुछ सुन्दर दाडिम (अनार) तथा मातुलिङ्ग फल लेकर गयीं ॥११३॥ कुछ देवियाँ करीर पुष्पों तथा कमल पुष्पों को लेकर गयीं । दूसरी देवियाँ कुसुम्भ, कंजीर, तथा खजूर ले लीं ॥११४॥ दुसरी देवियों ने उत्तम नारियल के फलों को ले लिया । कुछ नारियाँ द्राक्षा से भरे हुए पात्र तथा शृंगाटक, कर्पूर, अद्भुत प्रकार के जामुन, अखरोट

कर्पूराणि विचित्राणि जंबूकानि शुभानि च । अक्षोटामलकान् गृह्य जंबीराणि तथा परा ॥११६॥
बिल्वानि परिपक्वानि चिपिटानि वरानना। कार्पासतूलिकाश्चान्या वस्त्रं कौसुंभकं तथा॥११७॥
एवमाद्यानि चान्यानि कृत्वा शूर्पे वराननाः। सावित्र्या सहिताः सर्वाः संप्राप्ताः सहसा शुभाः॥११८॥
सावित्रीमागतां दृष्ट्वा भीतस्तत्र पुरंदरः। अधोमुखः स्थितो ब्रह्मा किमेषा मां वदिष्यति॥११९॥
त्रपान्वितौ विष्णुरुद्रौ सर्वे चान्ये द्विजातयः। सभासदस्तथा भीतास्तथा चान्ये दिवौकसः ॥१२०॥
पुत्राः पौत्रा भागिनेया मातुला भ्रातरस्तथा। ऋभवो नाम ये देवा देवानामपि देवताः ॥१२१॥
वैलक्ष्येऽवस्थिताः सर्वे सावित्री किं वादिष्यति । ब्रह्मपार्श्वे स्थिता तत्र किंतु वै गोपकन्यका ॥१२२॥
मौनीभूता तु शृण्वाना सर्वेषां वदतां गिरः । अध्वर्युणा समाहूता नागता वरवर्णिनी॥१२३॥
शक्रेणान्याहता भीरा दत्ता सा विष्णुना स्वयम्। अनुमोदिता च रुद्रेण पित्राऽदत्तास्वयं तथा॥१२४॥
कथं सा भविता यज्ञे समाप्तिं वाव्रजेत्कथम्। एवं चिन्तयतां तेषां प्रविष्टा कमलालया॥१२५॥
वृतो ब्रह्मा सदस्यैस्तु ऋत्विग्भिर्दैवतै स्तथा । हूयंते चाग्नयस्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥१२६॥
पत्नीशालास्थिता गोपी सैणशृंगा समेखला। क्षौमवस्त्रपरीधाना ध्यायंती परमं पदम्॥१२७॥
पतिव्रता पतिप्राणा प्राधान्ये च निवेशिता। रूपान्विता विशालाक्षी तेजसा भास्करोपमा ॥१२८॥
द्योतयंती सदस्तत्र सूर्यस्येव यथा प्रभा। ज्वलमानं तथावह्निं श्रयंते ऋत्विजस्तथा॥१२९॥
पशूनामिहगृह्णाना भागं स्वस्वचरोर्मुदा। यज्ञभागार्थिनो देवा विलंबाद्ब्रुवते तदा ॥१३०॥
कालहीनं न कर्तव्यं कृतं न फलदं यतः। वेदेष्वेवमधीकारो दृष्टः सर्वैर्मनीषिभिः ॥१३१॥

तथा आँवला ले ली थीं। कुछ देवियाँ ॥११५-११६॥ पके हुए विल्व के फल तथा चिउड़ा ली थी। कुछ देवियाँ कपास की रुई तथा कुछ कुसुम्भरङ्ग के वस्त्रों को ली थीं ॥११७॥ इसतरह की दूसरी भी वस्तुओं को शूप में रखकर देवियाँ सहसा सावित्री देवी के साथ वहाँ आयीं'॥११८॥ आयी हुयी सावित्री देवी को देखकर इन्द्र भयभीत हो गये। ब्रह्माजी नीचे मुँह करके इसलिए बैठे थे कि सावित्री न जाने मुझको क्या कहेगी ॥११९॥ विष्णु, रुद्र तथा दूसरे ब्राह्मण लज्जित थे। सभी सभासद तथा देवता भी भयभीत थे ॥१२०॥ वहाँ पर ब्रह्माजी के पुत्र, पौत्र, भागिने, मामा, भाई, देवताओं के भी देव ऋभु नामक देवगण ॥१२१॥ ये सबके सब इसलिए उदासीन बैठे थे कि सावित्री देवी उन सबों को न जाने क्या कहेंगी। किन्तु ब्रह्माजी के बगल में वह गोपकन्या सबों की वाणी को सुनती हुयी मौन होकर बैठी थी। अध्वर्यु ने उनको बुलाया भी किन्तु वह वहाँ नहीं गयीं ॥१२२-१२३॥ उस आभीर कन्या को स्वयं इन्द्र लाये थे और विष्णु ने उसको (गायत्री देवी को) ब्रह्माजी को पत्नी रूप से प्रदान किया था। उसका अनुमोदन रुद्र ने किया था तथा ब्रह्माजी ने उसको स्वयं स्वीकार किया था ॥१२४॥ इस यज्ञ में न जाने क्या होगा ? यज्ञ परिपूर्ण कैसे होगा ? इस तरह से सभी चिन्ता ही कर रहे थे कि उसी समय कमलासना सावित्री देवी यज्ञशाला में आ गयीं। ब्रह्माजी के चारो ओर सदस्य थे, ऋत्विक् थे तथा देवता बैठे थे। वहाँ पर वेद पारंगत ब्राह्मण अग्नियों में होम कर रहे थे ॥१२६॥ गायत्री देवी हाथ में मृग का शृंग लिए हुए तथा मेखला बाधे हुए पत्नीशाला में विद्यमान थीं। वह रेशमी वस्त्र पहने थीं और भगवान् विष्णु का ध्यान कर रही थी ॥१२७॥ वह प्रतिव्रता तथा पति को प्राण के समान समझने वाली प्रधान रूप से वहाँ बैठी थीं। वह रूपवती थी तथा उसकें बड़े-बड़े नेत्र थे। उसका सूर्य के समान तेज था ॥१२८॥ जिस तरह सूर्य को प्रभा देवी प्रकाशित करती हैं, उसीतरह वह सम्पूर्ण सभा को प्रकाशित कर रही थीं। ऋत्विगण जलती हुयी अग्नि का सेवन कर रहे थे ॥१२९॥ देवता अपने-अपने तथा पशुओं के

प्रावर्ग्ये क्रियमाणे तु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । क्षीरद्वयेन संयुक्तशृतेनाध्वर्युणा तथा ॥१३२॥
उपहूते नागते नचाहूतेषु द्विजन्मसु । क्रियमाणे तथा भक्ष्ये दृष्ट्वा देवी रुषान्विता ॥१३३॥
उवाच देवी ब्रह्माणं सदो मध्ये तु मौनिनम् । किमेतद्युज्यते देव कर्तुमेतद्विचेष्टितम् ॥१३४॥
मां परित्यज्य यत्कामात्कृतवानासि किल्विषम् । न तुल्या पादरजसा ममैषा या शिरः कृता ॥१३५॥
यद्वदंति जना स्सर्वे संगताः सदसि स्थिताः । आज्ञामीश्वरभूतानां तां कुरुष्व यदीच्छसि ॥१३६॥
भवता रूपलोभेन कृतं लोकविगर्हितम् । पुत्रेषु न कृता लज्जा पौत्रेषु च न ते प्रभो ॥१३७॥
कामकारकृतं मन्य एतत्कर्म विगर्हितम् । पितामहोसि देवानामृषीणां प्रपितामहः ॥१३८॥
कथं न ते त्रपा जाता आत्मनः पश्यतस्तनुम् । लोकमध्ये कृतं हास्यमहं चापकृता प्रभो ॥१३९॥
यद्येष ते स्थिरो भावस्तिष्ठ देव नमोस्तुते । अहं कथं सखीनां तु दर्शयिष्यामि वै मुखम् ॥१४०॥
भर्त्रा मे विधृता पत्नी कथमेतदहं वदे।

ब्रह्मोवाच

ऋत्विग्भिस्त्वरित श्चाहं दीक्षाकालादनंतरम् ॥१४१॥
पत्नीं विना न होमोऽत्र शीघ्रं पत्नीमिहानय । शक्रेणेषा समानीता दत्तेयं मम विष्णुना ॥१४२॥
गृहीता च मया सुभ्रु क्षमस्वैतं मया कृतम् । नचापराधं भूयोन्यं करिष्ये तव सुव्रते ॥१४३॥
पादयोः पतितस्तेऽहं क्षमस्वेह नमोस्तुते।

चरुभाग को ग्रहण करने वाले, यज्ञभाग को प्राप्त करने की इच्छा से शीघ्र ही बोल रहे थे ॥१३०॥ कोई काम देर से नहीं करना चाहिए, देर करने से फल की प्राप्ति नहीं होती है, मनीषियों ने इसी प्रकार से वेदों में अधिकार अनुभव किया है ॥१३१॥ जिस समय वेद पारङ्गत ब्राह्मण प्रावर्ग्य कर रहे थे । दो प्रकार से दुग्ध से पके हुए अध्वर्यु के द्वारा ॥१३२॥ उपहूत तथा आने के बाद आहूत ब्राह्मणों के द्वारा किए जाते हुए प्रावर्ग्य को देखकर सावित्री देवी क्रुद्ध हो गयीं ॥१३३॥ सभा के बीच में मौन बैठे हुए ब्रह्माजी को देखकर सावित्री देवी ने कहा— हे देव ! आपके द्वारा की गयी यह क्रिया क्या उचित है ?॥१३४॥ आपने यह जो मुझको त्याग कर कामवशात् पापकर्म किया है । जिसको आपने अपने शिर चढाया है वह तो मेरे पैर की धूलि के भी समान नहीं है ॥१३५॥ इस सभा में स्थित लोग जो स्वामी के समान कहते हैं, उसे ही आप करते जाइये ॥१३६॥ रुप के लोभ में पड़कर आपने यह लोक निन्दित कर्म किया है । हे प्रभो ! आपको अपने पुत्रों तथा पौत्रों के सामने लज्जा भी नहीं आयीं?॥१३७॥ मुझे लगता है कि आपने यह निन्दित कर्म अपनी इच्छा से किया है । आप देवताओं के पितामह तथा ऋषियों के प्रपितामह हैं ॥१३८॥ अपने शरीर को देखकर आपको लज्जा क्यों नहीं आयी ? आपने संसार में मेरी हँसी करायी है और मेरा अपमान आपने किया है ॥१३९॥ यदि आपका यह स्थिर भाव है, हे देव ! आप यहाँ रहें आपको नमस्कार है । मैं अपनी सखियों को यहाँ किस प्रकार अपना मुख दिखाऊँगी ?॥१४०॥ मैं यहाँ कैसे कहूँ कि मेरे पति ने दूसरी पत्नी बना लिया है ? **ब्रह्माजी ने कहा—** दीक्षाकाल के पश्चात् ऋत्विजों ने शीध्रता करने को मुझे कहा ॥१४१॥ उन लोगों ने कहा पत्नी के बिना होम नहीं हो सकता है । पत्नी को शीघ्र बुलाइये । उस समय इन्द्र ने इसको यहाँ ला दिया और विष्णु ने इसे मुझे प्रदान कर दिया ॥१४२॥ इसके बाद मैंने इसे स्वीकार कर लिया । हे देवि ! मेरे इस अपराध को आप क्षमा करें । हे सुव्रते ! अब कभी भी मैं आपका अपराध नहीं करूँगा ॥१४३॥ मैं तुम्हारा पैर पकड़ता हूँ । तुम मुझे क्षमा कर दो । तुम्हें नमस्कार है । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—**

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्ता तदा क्रुद्धा ब्रह्माणं शप्तुमुद्यता ॥१४४॥
यदिमेस्ति तपस्तप्तं गुरवो यदि तोषिताः। सर्वब्रह्मसमूहेषु स्थानेषु विविधेषु च ॥१४५॥
नैव ते ब्राह्मणाः पूजां करिष्यंति कदाचन। ऋते तु कार्तिकीमेकां पूजां सांवत्सरीं तव ॥१४६॥
करिष्यंति द्विजाः सर्वे मर्त्या नान्यत्र भूतले । एतद्ब्रह्माणमुक्त्वाह शतक्रतुमुपस्थितम् ॥१४७॥
भो भोः शक्र त्वया नीता आभीरी ब्रह्मणोंतिकम् । यस्मात्तेक्षुद्रकं कर्म तस्मात्वं लप्स्यसे फलम् ॥१४८॥
यदा संग्राममध्ये त्वं स्थाता शक्रभविष्यसि। तदात्वं शत्रुभि र्बद्धो नीतः परमिकां दशाम् ॥१४९॥
अकिंचनो नष्टसत्वः शत्रूणां नगरे स्थितः । पराभवं महत्प्राप्य नचिरादेव मोक्ष्यसे ॥१५०॥
शक्रं शप्त्वा तदा देवी विष्णुं वाक्यमथाब्रवीत्। भृगुवाक्येन ते जन्म यदा मर्त्ये भविष्यति ॥१५१॥
भार्यावियोगजं दुःखं तदा त्वं तत्र भोक्ष्यसे । हृताते शत्रुणा पत्नी परेपारेमहोदधेः ॥१५२॥
न च त्वं ज्ञास्यसे नीतां शोकोपहतचेतनः । भ्रात्रा सह परंकष्टमापदं प्राप्यदुःखितः ॥१५३॥
यदा यदुकुले जातः कृष्ण संज्ञोभविष्यसि । पशूनां दासतां प्राप्यचिरकालं भ्रमिष्यसि ॥१५४॥
तदाह रुद्रं कुपिता यदा दारुवने स्थितः। तदात्वां ऋषयः क्रुद्धाः शापं दास्यंति वै हर ॥१५५॥
भोभोः कापालिक क्षुद्र स्त्रीरस्माकं जिहीर्षसि। तदेतद्दर्पितं तेद्य भूमौ लिगं पतिष्यति ॥१५६॥
विहीनः पौरुषेण त्वं मुनिशापाच्च पीडितः। गंगाद्वारे स्थिता पत्नी सात्वामाश्वासयिष्यति ॥१५७॥
अग्नेत्वं सर्वभक्षोसि पूर्वं पुत्रेण मे कृतः। भृगुणा धर्मनित्येन कथं दग्धं दहाम्यहम् ॥१५८॥

इस तरह से ब्रह्माजी के कहने पर सावित्री देवी क्रुद्ध हो गयीं और ब्रह्माजी को शाप देने के लिए तैयार हो गयीं॥१४४॥ उन्होंने कहा यदि मैंने तपस्या की है, यदि मैंने अपने गुरुजनों को संतुष्ट किया है तो सभी ब्रह्म समूह में तथा अनेक स्थानो में ब्राह्मण आपकी पूजा नहीं करेंगे । आपकी केवल कार्तिक के महीने में सांवत्सरिकी पूजा होगी॥१४५-१४६॥ भूलोक में दूसरे स्थान पर भी आपकी पूजा नहीं होगी । इसतरह से ब्रह्माजी को शाप देकर सावित्री देवी ने इन्द्र से कहा ॥१४७॥ अरे इन्द्र ! आपने इस अभीर कन्या को ब्रह्माजी के सन्निकट लाया है । यह तुम्हारा क्षुद्र कर्म है, अतएव तुम भी इस कर्म का फल प्राप्त करोगे ॥१४८॥ इन्द्र जब तुम युद्ध में स्थित रहोगे उस समय तुम शत्रु के द्वारा बाँध दिए जाओगे और बड़ी हीन दशा में पहुँच जाओंगे ॥१४९॥ तुम शत्रु के नगर में अकिञ्चन तथा सत्व रहित हो जाओगे । महान् पराभव को प्राप्त करके तुम शीघ्र नहीं छूटोगे ॥१५०॥ इन्द्र को शाप देकर सावित्री देवी भगवान् विष्णु से कही । महर्षि भृगु के शाप के अनुसार जब तुम्हारा जन्म मनुष्य योनि में होगा॥१५१॥ उस समय तुम अपनी पत्नी के वियोग से उत्पन्न दुःख को भोगोगे । शत्रु तुम्हारी पत्नी का अपहरण करके समुद्र के दूसरे पार ले जायेगे ॥१५२॥ शोक सन्तप्त अन्तःकरण वाले अपनी उस पत्नी का पता नहीं पाओगे। तुम अपने भाई के साथ अत्यधिक कष्ट को भोगोगे ॥१५३॥ जब तुम यदुवंश में जन्म लोगे उस समय तुम्हारा नाम कृष्ण होयेगा । उस समय तुम पशुओं के दास (चरवाहे) बनकर दीर्घकाल तक वन में भ्रमण करोगे॥१५४॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर सावित्री देवी ने रुद्र से कहा— जब तुम दारुक बन में रहोगे उस समय हे हर क्रुद्ध होकर ऋषिगण तुम को शाप देंगे ॥१५५॥ वे कहेंगे कि ऐ क्षुद्र कापालिक तुम हमलोगों की स्त्रियों का हरण करना चाहते हो क्या ? तुम्हारा यह दर्प युक्त लिङ्ग पृथिवी पर गिर जायेगा ॥१५६॥ तुम पौरुष से विहीन होकर मुनियों के शाप से पीड़ित हो जाओगे । जब तुम हरिद्वार में रहोगे तो तुम्हारी पत्नी तुम्हें आश्वस्त करेगी॥१५७॥

जातवेदस्सरुद्रस्त्वां रेतसा प्लावयिष्यति। अमेध्येषु च ते जिह्वा अधिकं प्रज्वलिष्यति ॥१५९॥
ब्राह्मणानृत्विजः सर्वान्सावित्री वै शशाप ह । प्रतिग्रहार्थाऽग्निहोत्रो वृथाटव्याश्रयास्तथा ॥१६०॥
सदातीर्थानि क्षेत्राणि लोभादेव भजिष्यथ। परान्नेषु सदा तृप्ता अतृप्तास्स्वगृहेषु च ॥१६१॥
अयाज्ययाजनं कृत्वा कुत्सितस्य प्रतिग्रहम् । वृथा धनार्जनं कृत्वा व्ययं चैव तथा वृथा॥१६२॥
प्रेतानां तेन प्रेतत्वं भविष्यति न संशयः। एवं शक्रं तथा विष्णुं रुद्रं वै वावकं तथा ॥१६३॥
ब्रह्माणं ब्राह्मणांश्चैव सर्वांस्तानाशपद्रुषा । शापं दत्वा तथा तेषां निष्क्रांता सदसस्तथा॥१६४॥
जयेष्ठं पुष्करमासाद्य तदा सा च व्यवस्थिता । लक्ष्मीं प्राह सतीं तां च शक्रभार्यां वराननाम् ॥१६५॥
युवतीस्तास्तथोवाच नात्र स्थास्यामि संसदि । तत्र चाहं गमिष्यामि यत्र श्रोष्ये न च ध्वनिम्॥१६६॥
ततस्ताः प्रमदाः सर्वाः प्रयाताः स्वनिकेतनम्। सावित्री कुपिता तासामपि शापाय चोद्यता ॥१६७॥
यस्मान्मां तु परित्यज्य गतास्ता देवयोषितः। तासामपि तथा शापं प्रदास्ये कुपिता भृशम् ॥१६८॥
नैकत्र वासो लक्ष्म्यास्तु भविष्यति कदाचन। क्षुद्रा सा चलचित्ता च मूर्खेषु च वसिष्यति ॥१६९॥
म्लेच्छेषु पार्वतीयेषु कुत्सितेऽकुत्सिते तथा । मूर्खेषु चावलिप्तेषु अभिशप्ते दुरात्मनि ॥१७०॥
एवंविधे नरे स्यात्ते वसतिः शापकारिता। शापं दत्वा ततस्तस्या इंद्राणीमशपत्तदा ॥१७१॥
ब्रह्महत्यागृहीतेंद्रे पत्यौ ते दुःखभागिनि। नहुषापहृते राज्ये दृष्ट्वा त्वां याचयिष्यति ॥१७२॥
अहमिन्द्रः कथं चैषा नोपस्थास्यति बालिशा। सर्वान्देवान्हनिष्यामि न लप्स्येहं शचीं यदि ॥१७३॥

इसके बाद तुम मेरे पुत्र के द्वारा सर्वभक्षी बन जाओगे । महर्षि भृगु के द्वारा शाप देकर दग्ध हुए तुमको मैं क्या कहू?॥१५८॥ ऐ अग्नि तुमको रुद्र वीर्य से डुबो देगें । अपिवित्र वस्तुओं के जलाने में तुम्हारी जिह्वा अधिक प्रज्वलित होगी ॥१५९॥ उसके बाद सावित्री ने समस्त ऋत्विज ब्राह्मणों को शाप दिया तुम लोग दान लेने के लिए अग्निहोत्र करोगे तथा पृथिवी पर व्यर्थ भ्रमण करोगे ॥१६०॥ लोभ से प्रेरित होकर तुम लोग सदा तीर्थों तथा क्षेत्रों में निवास करोगे । तुमलोगों की तृप्ति सदा परात्र से ही होंगी, तुमलोग अपने घरों में अतृप्त रहोगे ॥१६१॥ जो यज्ञ कराने के पात्र नहीं हैं, उनसे यज्ञ कराकर तुमलोग उनसे निन्दित दान लोगे ॥१६२॥ इसलिए मरने के बाद तुमलोग प्रेत हो जाओगे । इसतरह से इन्द्र, विष्णु, रुद्र तथा अग्नि को ॥१६३॥ ब्रह्मा तथा समस्त ब्राह्मणों को क्रोधवशात् शाप देकर सावित्री देवी उस सभा से बाहर निकल गयी ॥१६४॥ वे वहाँ से ज्येष्ठ पुष्कर में आकर, वहाँ स्थित हो गयीं । सभा में हीं उन्होंने लक्ष्मीजी, सती देवी तथा इन्द्र की सुन्दर पत्नी शची से कहा अब मैं इस संसद में नहीं रुक सकती हूँ । अब मैं यहाँ से इतनी दूर चली जाऊँगी जहाँ से यहाँ की ध्वनि न सुनायी पड़े॥१६५-१६६॥ उसके बाद वे सभी प्रमदाएँ अपने-अपने घर चली गयीं । उन सबों के चले जाने से सावित्री देवी क्रुद्ध हो गयीं और उन सबों को भी शाप देने के लिए तैयार हो गयीं ॥१६७॥ चूकि वे सभी देव पत्नियाँ मुझको छोड़कर चली गयी हैं, अतएव मैं उन सबों को भी शाप दूँगी । मैं इस समय अत्यन्त क्रुद्ध हूँ ॥१६८॥ **सावित्री देवी ने कहा—** लक्ष्मी का कभी भी एक स्थान पर निवास नहीं होगा । क्षुद्र स्वभाव तथा चञ्चल चित्त वाली होकर वह मूर्खों के यहाँ निवास करेगी ॥१६९॥ उन्होंने लक्ष्मी के लिए कहा कि मेरे शाप के कारण अत्यन्त निन्दित पर्वतों में रहने वाले म्लेच्छों के यहाँ, मूर्खों के यहाँ, अभिमानियों के यहाँ, अभिशप्तों के यहाँ, दुष्टों के यहाँ॥१७०॥ तुम्हारा निवास इसीतरह के लोगों के यहाँ होयेगा । लक्ष्मीजी को शाप देकर उन्होंने इन्द्राणी को शाप दिया; जिस समय इन्द्र ब्रह्महत्या से अभिभूत हो जायेंगे, और तुम्हारे पति अत्यन्त दुःख भोगेंगे । उस समय तुम्हारा राज्य नहुष

नष्टा त्वंच तदा त्रस्ता वाक्पते दुःखितागृहे । वसिष्यसे दुराचारे मम शापेन गर्विते ॥१७४॥
देवभार्यासु सर्वासु तदाशापमयच्छत। नचापत्यकृतां प्रीतिमेताः सर्वालभिष्यथ ॥१७५॥
दह्यमाना दिवारात्रौ वंध्या शब्देन दूषिताः । गौर्य्यप्येवं तदा शप्ता सावित्र्या वरवर्णिनी ॥१७६॥
रुदमाना तु सा दृष्टा विष्णुना च प्रसादिता। मारोदीस्त्वं विशालाक्षि एह्यागच्छ सदाशुभे ॥१७७॥
प्रविश्य च सभां देहि मेखलां क्षौमवाससी । गृहाणदीक्षां ब्रह्माणि पादौ च प्रणमामि ते ॥१७८॥
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं न करोमि वचस्तव । तत्र चाहं गमिष्यामि यत्र श्रोष्ये न वै ध्वनिम्॥१७९॥
एतावदुक्त्वा सारुह्यतस्मात्स्थानाद्गिरौ स्थिता। विष्णुस्तदग्रतः स्थित्वा बध्वा च करसंपुटम्॥१८०॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भक्त्या परमया स्थितः।

विष्णुरुवाच

सर्वगा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतोद्भुता ॥१८१॥
सदसच्चैव यत्किंचिद्दृश्यंतन्नाविना त्वया । तथापि येषु स्थानेषु द्रष्टव्या सिद्धिमीप्सुभिः ॥१८२॥
स्मर्तव्या भूतिकामैर्वा तत्प्रवक्ष्यामि तेऽग्रतः । सावित्री पुष्करे नाम तीर्थानां प्रवरे शुभे ॥१८३॥
वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिंगधारिणी। प्रयागे ललितादेवी कामुका गंधमादने ॥१८४॥
मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथांबरे । गोमंते गोमती नाम मंदरे कामचारिणी ॥१८५॥

ले लेंगे और वे तुम को भी प्राप्त करना चाहेंगे ॥१७१-१७२॥ नहुष कहेंगे कि मैं इन्द्र हूँ अतएव वह मूर्ख इन्द्राणी मेरी पत्नी क्यों नहीं होती है ? यदि मुझे शची नहीं मिली तो मैं सभी देवताओं को मार दूँगा ॥१७३॥ उस समय दुःखी होकर तुमको ऐ दुराचरण करने वाली गर्विली शची मेरे शाप के कारण तुम्हें बृहस्पति के घर में निवास करना पड़ेगा ॥१७४॥ उसके बाद सावित्री ने सभी देवताओं की पत्नियों को शाप दिया कि इन सबों को कभी भी सन्तान जन्य स्नेह नहीं प्राप्त होगा ॥१७५॥ तुमलोग बन्ध्या शब्द से दूषित होकर दिन-रात जलती रहोगी । इसीतरह से सुन्दरी गौरी देवी को भी शाप सावित्री ने दिया ॥१७६॥ इसके बाद रोती हुयी सावित्री देवी को भगवान् विष्णु ने देखा । उन्होंने उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा— हे शुभे ! हे विशालाक्षि ! मत रोइये आप आइये मेरे साथ, सभा में चलिए और वहाँ आप रेशमी वस्त्र और मेखला धारण कीजिये । हे ब्रह्माणि ! मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ॥१७७-१७८॥ इसतरह से भगवान् विष्णु के कहने पर सावित्री देवी ने कहा— मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी । मैं वहाँ चली जाऊँगी जहाँ पर मुझको यह ध्वनि नहीं सुनायी पड़ेगी ॥१७९॥ इसतरह से कहकर सावित्री देवी पर्वत के ऊपर चढकर वहीं स्थित हो गयी । भगवान् विष्णु उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥१८०॥ उनके सामने प्रणत होकर अत्यधिक भक्ति पूर्वक उनकी (सावित्री देवी की) स्तुति करने लगे । **भगवान् विष्णु ने कहा**— हे सर्वव्यापिके ! सभी भूतों में देखी जाने योग्य तथा सबसे अद्भुत देवि ! संसार में जितने भी अच्छे एवं बुरे पदार्थ हैं, (या जड़ एवं चेतन पदार्थ हैं) उन सबों में आपकी व्याप्ति है । फिर भी सिद्धि प्राप्त करने के इच्छुक जीवों द्वारा जहाँ पर जिस रूप में आप देखी जाने योग्य हैं, अथवा ऐश्वर्य चाहने वालों के द्वारा जिस रूप में आपका स्मरण करना चाहिए ॥१८१-१८२॥ उसे मैं कह रहा हूँ । तीर्थों में श्रेष्ठ पुष्कर में आपका नाम सावित्री होगा ॥१८३॥ वाराणसी में आपका नाम विशालाक्षी होगा, नैमिष तीर्थ में लिङ्गधारिणी होगा, प्रयाग में आपका नाम ललिता देवी तथा गन्धमादन पर्वत पर कामुका देवी आपका नाम होगा ॥१८४॥ मानस तीर्थ में आपका नाम कुमुदा देवी होगा, आकाश में आपका नाम विश्वकाया होगा, गोमन्त तीर्थ में आपका स्मरण गोमती नाम से तथा मन्दराचल पर आपकी

मदोत्कटा चैत्ररथे जयंती हस्तिनापुरे । कान्यकुब्जे तथा गौरी रंभामलयपर्वते ॥१८६॥
एकाम्रके कीर्तिमती विश्वा विश्वेश्वरी तथा । कर्णिके पुरुहासेति केदारे मार्गदायिका ॥१८७॥
नंदा हिमवतः पृष्टे गोकर्णे भद्रकालिका। स्थाण्वीश्वरे भवानीतु बिल्वके बिल्वपत्रिका ॥१८८॥
श्रीशैले माधवी देवी भद्रा भद्रेश्वरी तथा । जया वराहशैले तु कमला कमलालये ॥१८९॥
रुद्रकोट्यां तु रुद्राणी काली कालंजरे तथा। महालिंगे तु कपिला कार्कोटे मंगलेश्वरी ॥१९०॥
शालिग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया । मायापुर्यां कुमारी तु संताने ललिता तथा॥१९१॥
उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला। गयायां मङ्गला नाम विमला पुरुषोत्तमे ॥१९२॥
विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्यवर्द्धने । नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे भद्रसुंदरी॥१९३॥
विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले । कोटवी कोटितीर्थे तु सुगंधा माधवी वने॥१९४॥
कुब्जाम्रके त्रिसंध्या तु गंगाद्वारे हरिप्रिया । शिवकुंडे शिवानंदा नंदिनी देविकातटे ॥१९५॥
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृंदावने तथा । देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी ॥१९६॥
चित्रकूटे तथा सीता विंध्ये विंध्यनिवासिनी । सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चंद्रे तु चंद्रिका ॥१९७॥

उपासना कामचारिणी देवी के नाम से होगी ॥१८५॥ चैत्ररथ वन में आपकी उपासना मदोत्कटा नाम से तथा हस्तिनापुर में जयन्ती के नाम से आपकी उपासना होगी। कान्यकुब्ज में, आपकी उपासना गौरी देवी के नाम से तथा मलय पर्वत पर आप रम्भा देवी के नाम से पूजी जायेंगी ॥१८६॥ एकाम्र तीर्थ में आपकी पूजा कीर्तिमती देवी विश्वादेवी तथा विश्वेवरी के नाम से होगी। कर्णिका तीर्थ में पुरुहस्ता के नाम से तथा केदार तीर्थ में मार्गदायिका के नाम से आपकी आराधना होगी ॥१८७॥ हिमालय पर्वत पर नन्दा देवी के रूप में तथा गोकर्ण तीर्थ में भद्रकाली के रूप में आपकी आराधना होगी। स्थाण्वीश्वर तीर्थ में भवानी के नाम से तथा बिल्व तीर्थ में विल्वपत्रिका नाम से आपकी आराधना होगी ॥१८८॥ श्रीशैल पर माधवी देवी, भद्रा देवी तथा भद्रेश्वरी के नाम से आप पूजी जायेंगी वराहशैल पर जया देवी के नाम से तथा कमलालय में कमला देवी के रूप में आप पूजी जायेंगी ॥१८९॥ रुद्र कोटी तीर्थ में रुद्राणी के नाम से तथा कालंजर पर्वत पर काली नाम से आपकी पूजा होगी। महालिङ्ग तीर्थ में कपिला देवी के नाम से तथा ककोर्टक तीर्थ में मङ्गलेश्वरी देवी के नाम से आपकी पूजा होगी ॥१९०॥ शालिग्राम क्षेत्र में महादेवी के नाम से तथा शिवलिङ्ग तीर्थ में आप जलप्रिया होंगी। मायापुरी में कुमारी के नाम से तथा संतान तीर्थ में ललिता देवी के नाम से आप पूजी जायेंगी ॥१९१॥ सहस्राक्ष तीर्थ में कमलाक्षी के नाम से तथा हिरण्याक्ष क्षेत्र में महोत्पला नाम से आप पूजी जायेंगी। आपका गया मे नाम मङ्गला देवी तथा पुरुषोत्तम तीर्थ में विमला देवी होगा ॥१-९२॥ विपाशा में आप अमोघाक्षी देवी और पुण्यवर्द्धन क्षेत्र में आप पाटला देवी होंगी। सुपार्श्व तीर्थ में नारायणी देवी तथा त्रिकूट पर्वत पर आपका नाम भद्रसुन्दरी होगा ॥१९३॥ विपुलतीर्थ में आपका नाम विपुलादेवी होगा और मलयाचल पर आप कल्याणी देवी के नाम से पूजी जायेंगी। कोटि तीर्थ में कोटवी देवी तथा माधवी वन में आपका नाम सुगन्धा देवी होगा ॥१९४॥ कुब्जा नामक तीर्थ में आपका नाम हरिप्रिया होगा। शिवकुण्ड पर आप शिवानन्द होंगी तथा देविका नदी के तट पर आप नन्दिनी देवी होंगी ॥१९५॥ द्वारवती (द्वारका) में आप रुक्मिणी देवी तथा वृन्दावन में आप राधा देवी होंगी। मथुरा में आपका नाम देवकी देवी तथा पाताल में आपका नाम परमेश्वरी होगा ॥१९६॥ चित्रकूट में आपका नाम सीता देवी होगा। तथा विन्ध्यक्षेत्र में आपका नाम विन्ध्यवासिनी होगा। सह्याचल पर आपका नाम एकवीरा देवी होगा। हरिश्चन्द्र तीर्थ में आप चन्द्रिका देवी होंगी ॥१९७॥ रामतीर्थ में आप रमा देवी

रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती। करवीरे महालक्ष्मी रुमादेवी विनायके॥१९८॥
अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी। अभया पुष्पतीर्थे तु अमृता विंध्यकंदरे ॥१९९॥
मांडव्ये मांडवी देवी स्वाहामाहेश्वरे पुरे । वेगले तु प्रचंडाऽथ चंडिकाऽमरकंटके ॥२००॥
सोमेश्वरे वारारोहा प्रभासे पुष्करावती । देवमाता सरस्वत्यां पारापारे तटेस्थिता ॥२०१॥
महालये महापद्मा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी। सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिकेये तु शंकरी ॥२०२॥
उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा सिंधुसंगमे । उमा सिद्धवने लक्ष्मीरनंगा भरताश्रमे ॥२०३॥
जालंधरे विश्वमुखी तारा किष्किंधपर्वते । देवादारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमंडले ॥२०४॥
भीमादेवी हिमाद्रौ च तुष्टिर्वस्त्रेश्वरे तथा । कपालमोचने श्रद्धा माता कायावरोहणे ॥२०५॥
शंखोद्धारे ध्वनिर्नाम धृतिः पिंडारके तथा। काला तु चंद्रभागायामच्छोदे सिद्धिदायिनी॥२०६॥
वेणायाममृतादेवी बदर्यामूर्वशी तथा। औषधी चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ॥२०७॥
मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी। अश्वत्थे वंदनी या तु निधिर्वैश्रवणालये॥२०८॥
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ। देवलोके तथेंद्राणी ब्रह्मास्ये तु सरस्वती ॥२०९॥
सूर्यबिंबे प्रभानाम मातृणां वैष्णवी तथा। अरुंधती सतीनां तु रामासुच तिलोत्तमा॥२१०॥

होंगी और यमुनातीर्थ में आप मृगावती देवी होंगी । करवीर तीर्थ में महालक्ष्मी नाम से आपकी पूजा होगी और विनायक तीर्थ में आप रुमा देवी होंगी ॥१९८॥ वैजनाथ धाम में अरोगा के नाम से विख्यात होंगी और महाकाल तीर्थ में आप महेश्वरी होंगी । पुष्य तीर्थ में अभया देवी तथा विन्ध्य पर्वत की कन्दरा में आप अमृता देवी होंगी॥१९९॥ माण्डव्य तीर्थ में आप माण्डवी देवी होंगी और महेश्वर तीर्थ में आपका नाम स्वाहा देवी होगा । वेगल तीर्थ में प्रचण्डा देवी के नाम से तथा अमरकण्टक में आप चण्डिका देवी के नाम से प्रसिद्ध होंगी ॥२००॥ सोमेश्वर तीर्थ में वरारोहा देवी तथा प्रभास तीर्थ में पुष्करावती आपका नाम होगा । सरस्वती नदी में अपका नाम देवमाता होगा और पारापार में आप तटेस्थित देवी होंगी ॥२०१॥ आप महालय में महापद्मा देवी तथा पयोष्णी तीर्थ में आप पिङ्गलेश्वरी होंगी । कृतशौच तीर्थ में आप सिंहिका देवी तथा कार्तिकेय क्षेत्र में शाङ्करी देवी आप होंगी ॥२०२॥ उत्पलावर्त तीर्थ में लीला देवी के नाम से आप विख्यात होंगी और सिन्धुसङ्गम पर आपका नाम सुभद्रा देवी होगा, उमा सिद्ध वन में आपका नाम लक्ष्मी देवी तथा भरताश्रम में आपका नाम अनङ्गा देवी होगा ॥२०३॥ आप जालन्धर में विश्वमुखी तथा किष्किन्धा पर्वत पर आप तारा देवी होंगी । देवदारु वन में आप पुष्टि देवी होंगी और काश्मीर मण्डल में आपका नाम मेधा देवी होगा ॥२०४॥ हिमालय पर आप भीमा देवी होंगी तथा वस्त्रेश्वर तीर्थ में आप तुष्टि देवी होंगी । कपाल मोचन तीर्थ में आपका नाम श्रद्धादेवी होगा और कायावरोहरण तीर्थ में आप माता देवी के नाम से विख्यात होंगी ॥२०५॥ शंखोद्धार क्षेत्र में आपका नाम ध्वनि देवी होगा और पिण्डारक क्षेत्र में आप धृति देवी होंगी । चन्द्रभागा नदी में आप काला देवी होंगी और अच्छोद सरोवर पर आप सिद्धिदायिनी देवी होंगी॥२०६॥ वेणा नदी में आपका नाम अमृता देवी होगा और बदरीकाश्रम में आप उर्वशी देवी होंगी । उत्तर कुरु में आपका नाम औषधी देवी होगा और कुशद्वीप में आप कुशोदका देवी के नाम से पूजी जायेंगी ॥२०७॥ हेमकूट पर्वत पर मन्मथा देवी तथा कुमुद पर्वत पर आप सत्यवादिनी देवी होंगी । अश्वत्थ तीर्थ में आप वन्दनीया देवी तथा कुबेर नगरी अलकापुरी में आप निधि देवी होंगी ॥२०८॥ वेदवदन तीर्थ में आप गायत्री देवी होंगी और शिवजी के सन्निकट आप पार्वती देवी होंगी । देवलोक में आप इन्द्राणी होंगी और ब्रह्माजी के यहाँ आप सरस्वती देवी होंगी ॥२०९॥

चित्रे ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् । एतद्भक्त्या मया प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ॥२११॥
अष्टोत्तरंच तीर्थानां शतमेतदुदाहृतं। योजपेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१२॥
येषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानं पश्येन्नरोत्तमः। सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं ब्रह्मपुरे वसेत्॥२१३॥
नामाष्टकशतं यस्तु श्रावयेद्ब्रह्मसन्निधौ । पौर्णमास्याममायां वा बहुपुत्रोभवेन्नरः ॥२१४॥
गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा पुनः । देवार्चनविधौ शृण्वन्परंब्रह्माधिगच्छति ॥२१५॥
एवं स्तुवंतं सावित्री विष्णुं प्रोवाच सुव्रता। सम्यक्स्तुता त्वया पुत्र त्वमजय्यो भविष्यसि ॥२१६॥
अवतारे सदारस्त्वं पितृमातृषु वल्लभः । इह चागत्य यो मां तु स्तवेनानेन संस्तुयात् ॥२१७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं स्थानं गमिष्यति। गच्छ यज्ञं विरिञ्चस्य समाप्तिं नय पुत्रक ॥२१८॥
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च भविष्ये चान्नदायिनी । समीपगा स्थिता भर्तुः करिष्ये तव भाषितम् ॥२१९॥
एवमुक्तो गतो विष्णुर्ब्रह्मणः सद उत्तमम्। गतायामथ सावित्र्यां गायत्री वाक्यमब्रवीत्॥२२०॥
शृण्वंतु वाक्यमृषयो मदीयं भर्तृसन्निधौ। यदिदं वच्म्यहं तुष्टा वरदानाय चोद्यता ॥२२१॥
ब्रह्माणं पूजियिष्यंति नरा भक्तिसमन्विताः । तेषां वस्त्रं धनं धान्यं दाराः सौख्यं धनानि च॥२२२॥
अविच्छिन्नं तथा सौख्यं गृहे वै पुत्रपौत्रकम् । भुक्त्वासौ सुचिरं कालमंते मोक्षं गमिष्यति ॥२२३॥

पुलस्त्य उवाच

ब्रह्माणं च प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नो विधानतः । यत्पुण्यफलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥२२४॥

सूर्य मण्डल में आप प्रभा देवी होंगी, मातृकाओं में आप वैष्णवी देवी होंगी, सतियों में आप अरुन्धती देवी हैं और सुन्दरियों में आप तिलोत्तमा हैं ॥२१०॥ चित्रों में आप ब्रह्मकला हैं और शरीर धारियों में आप शक्ति स्वरूपिणी हैं। मैंने भक्ति पूर्वक आपके अष्टोत्तरशत नाम को कहा है ॥२११॥ यह मैं आपके अष्टोतर शत तीर्थों को कहा है । जो व्यक्ति आपके इन नामों को पढेगा अथवा सुनेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा ॥२१२॥ जो मनुष्य श्रेष्ठ जिस तीर्थ में जाकर स्नान करके आपका दर्शन करेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर एक कल्प पर्यन्त, ब्रह्मालोक में निवास करेगा ॥२१३॥ जो मनुष्य आपके इन अष्टोत्तरशत नामों को पूर्णिमा अथवा अमावस्या के दिन सुनायेगा, वह अनेक पुत्रों वाला होगा ॥२१४॥ गोदान के समय अथवा श्राद्ध करते समय या प्रतिदिन या देवपूजन के समय जो आपके नामों का श्रवण करेगा वह परंब्रह्म को प्राप्त कर लेगा ॥२१५॥ इस प्रकार से स्तुति करने वाले भगवान् विष्णु से सावित्री देवी ने कहा हे पुत्र ! तुमने मेरी अच्छी तरह से स्तुति की है; अतएव तुम अजेय होओगे ॥२१६॥ अवतारों के समय तुम अपनी पत्नी के साथ अपने माता-पिता के प्रिय होओगे । यहाँ पर आकर जो व्यक्ति इस स्तुति के द्वारा मेरी स्तुति करेगा ॥२१७॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर परम्पद (मुक्ति) को प्राप्त करेगा । हे पुत्र ! तुम ब्रह्माजी के यज्ञ में जाओ और उसे पूरा करो ॥२१८॥ मैं प्रयाग तथा कुरुक्षेत्र में अन्नदायिनी होऊँगी और अपने पति के सन्निकट रहकर मैं तुम्हारी वाणी को सत्य करूँगी ॥२१९॥ इसतरह से कहने पर भगवान् विष्णु ब्रह्माजी की उत्तम सभा में गये । इसके बाद सावित्री के चले जाने पर गायत्री ने कहा ॥२२०॥ हे ऋषियों आपलोग मेरी बात को सुनें । मैं अपने पति के सन्निकट में आपलोगों को वरदान देना चाहती हूँ ॥२२१॥ जो मनुष्य ब्रह्माजी की पूजा भक्ति पूर्वक करेंगे । उन लोगों के गृह में वस्त्र, धन, धान्य (अन्न) पत्नियाँ, सुख तथा अनेक प्रकार के धन ॥२२२॥ तथा निरन्तर सुख तथा पुत्र एवं पौत्र सदा बने रहेंगे । वह मनुष्य इस लोक में दीर्घ काल तक इन सबों का भोग करके अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेगा ॥२२३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** ब्रह्माजी की प्रतिष्ठा विधिपूर्वक करने से जिस

सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं लभेतैतत्प्रतिष्ठया ॥२२५॥
पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्या नराधिप । अनेन विधिना यस्तु विरिंचिं पूजयेन्नरः ॥२२६॥
प्रतिपदि महाबाहो स याति ब्रह्मणः पदम् । विरिंचिं वासुदेवं तु ऋत्विग्भिश्च विशेषतः ॥२२७॥
कार्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्तिता । यां कृत्वा मानवा भक्त्या सं यांति ब्रह्मलोकताम्॥२२८॥
कार्तिके मासि राजेंद्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् । मार्गेण ब्रह्मणा सार्द्ध सावित्र्या च परंतप ॥२२९॥
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यसमन्वितः । स्नापयेद् भ्रामयित्वा तु सलोका नगरं नृप ॥२३०॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वाग्रे शांडिलेयं प्रपूज्य च । आरोपयेद्रथे देवं पुण्यवादित्रनिःस्वनैः ॥२३१॥
रथाग्रे शांडिली पुत्रं पूजयित्वा विधानतः । ब्राह्मणान्वाचयित्वा तु कृत्वा पुण्याहमङ्गलम् ॥२३२॥
देवमारोपयित्वा च रथे कुर्यात्प्रजागरं । नानाविधैः प्रेक्षणिकै र्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः ॥२३३॥
कृत्वा प्रजागरं देवं प्रभाते ब्राह्मणान्नृप । भोजयित्वा यथाशक्ति भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥२३४॥
पूजयित्वा जनं धीरमंत्रेण विधिवन्नृप । आज्येन तु महाबाहो पयसा पायसेन च ॥२३५॥
ब्राह्मणान्वाचयित्वा तु स्वस्त्या तु विधिवन्नृप । कृत्वा पुण्याहशब्दं च तद्रथं भ्रामयेत्पुरे ॥२३६॥
विप्रैश्चतुर्वेदविद्धि र्भ्रामयेद्ब्रह्मणो रथम् । वहवृचाथर्वणैर्वीर छंदोगाध्वर्युभिस्तथा ॥२३७॥
भ्रामयेद्देवदेवस्य सुरश्रेष्ठस्य तं रथम् । प्रदक्षिणं पुरं सर्वं मार्गेण सुसमेन तु ॥२३८॥
नवोढव्यो रथो वीर शूद्रेणहितमिच्छता । नचारोहेद्रथं प्राज्ञो मुक्त्वैकं भोजकृन्नृपः ॥२३९॥
ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे गायत्रीं स्थापयेन्नृप । भोजकं वामपार्श्वे तु पुरतः पंङ्कजं न्यसेत् ॥२४०॥

पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे आप लोग सावधानी पूर्वक सुनें ॥२२४॥ समस्त यज्ञों तपस्याओं, दानों एवं तीर्थों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसक करोड़ गुणा फल की प्राप्ति उनकी प्रतिष्ठा करने से होती है ॥२२५॥ हे नराधिप ! पूर्णिमा के दिन उपवास करके प्रतिपत् तिथि को जो मनुष्य इस विधि से ब्रह्माजी की पूजा करके मरता है॥२२६॥ वह ब्रह्माजी के लोक में जाता है । ऋत्विजों के द्वारा ब्रह्माजी के साथ भगवान् वासुदेव की पूजा करने से विशेष रूप से फल की प्राप्ति होती है ॥२२७॥ कार्तिक के महीने में ब्रह्माजी की रथयात्रा बतलायी गयी है । उस रथ यात्रा को भक्तिपूर्वक करने वाले मनुष्य ब्रह्माजी के लोक में जाते हैं ॥२२८॥ हे परंतप ! कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन चतुर्मुख ब्रह्माजी को सावित्री देवी के साथ भ्रमण कराने वाले मनुष्य ॥२२९॥ को चाहिए कि वह अनेक प्रकार के वाद्यों के साथ ब्रह्माजी को सम्पूर्ण नगर में भ्रमण कराये । भ्रमण कराकर उनको नगर के लोगों के साथ स्नान कराये ॥२३०॥ पहले ब्राह्मणों को भोजन कराकर, फिर शाण्डिलेय की पूजा करे । उसके बाद पवित्र वाद्यों की ध्वनि करते हुए ब्रह्माजी को रथ पर स्थापित करे । रथ के आगे शाण्डिली पुत्र का विधिपूर्वक पूजन करके, फिर ब्राह्मणों के द्वारा पुण्याहवाचन कराये ॥२३१-२३२॥ ब्रह्माजी को रथ पर स्थापित करके अनेक प्रकार के प्रदर्शनों तथा वेद घोषों से जागरण करे ॥२३३॥ हे राजन् ! रात्रि में प्रजागरण करके प्रातःकाल अपनी शक्ति के अनुसार अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य सामग्रियों से ब्राह्मणों को भोजन कराकर, धीर मंत्रों के द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा करे । घृत, दुग्ध, पायस के द्वारा ॥२३५॥ ब्राह्मणों से विधिपूर्वक स्वस्विाचन कराये । उसके बाद पुण्याहवाचन कराकर उस रथ को नगर में घुमाये ॥२३६॥ चारो वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों के द्वारा ब्रह्माजी के रथ को धुमवाये । ऋग्वेद तथा अथर्ववेद छान्दोग्य तथा यजुर्वेद के ज्ञाताओं के द्वारा ॥२३७॥ देवराध्य, तथा श्रेष्ठ देवता ब्रह्माजी के रथ को घुमवाये। समतल मार्गो से सम्पूर्ण नगर में दक्षिणावर्त घुमाना चाहिए ॥२३८॥ हे वीर ! कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को उस रथ

एवं तूर्यनिनादैस्तु शंखशब्दैश्च पुष्कलैः। भ्रामयित्वा रथं वीर पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ॥२४१॥
स्वस्थाने स्थापयेद्देवं दत्वा नीराजनं बुधः । य एवं कुरुते यात्रां यो वा भक्त्यापि पश्यति॥२४२॥
रथं वा कर्षयेद्यस्तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम्। कार्तिके मास्यामवास्यां यश्च दीपप्रदीपनम् ॥२४३॥
शालायां ब्रह्मणः कुर्यात्सगच्छेत्परमं पदम् । गंधपुष्पैर्नवैर्वस्त्रैरात्मानं पूजयेत्तुयः ॥२४४॥
तस्यां प्रतिपदायां तु सगच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्तिनी ॥२४५॥
ब्रह्मणःसुप्रिया नित्यं बालेयी परिकीर्तिता। ब्रह्माणं पूजयेद्योऽस्यामात्मानं च विशेषतः ॥२४६॥
स याति परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः। चैत्र मासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदांवरा॥२४७॥
तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानंकुर्यान्नरोत्तमः । न तस्य दुरितं किंचिन्नाधयो व्याधयो नृप॥२४८॥
भवंति कुरुशार्दूल तस्मात्स्नानं समाचरेत्। दिव्यं नीराजनं तद्धि सर्वरोगविनाशनम् ॥२४९॥
गोमहिष्यादियत्किञ्चित्तत्सर्वं तर्पयेन्नृप। तेन वस्त्रादिभिः सर्वैस्तोरणं बाह्यतो न्यसेत् ॥२५०॥
ब्राह्मणानां तथाभोज्यं कुर्यात्कुरुकुलोद्वह । तिस्रो ह्येताः पुरा प्रोक्ता स्तिथयः कुरुनंदन ॥२५१॥
कार्तिकाश्वयुजेमसि चैत्रे मासितथा नृप। स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिके या तिथिर्नृप ॥२५२॥
बलिराजस्तु शुभदा पशूनां हितकारिणी ।

गायत्र्युवाच

यदुक्तं तु तया वाक्यं सावित्र्या कमलोद्भवम् ॥२५३॥

को शूद्रों से वहन नहीं करवाना चाहिए। पूजा करने वाले पुजारी को छोड़कर किसी को भी उस रथ पर नहीं चढना चाहिए ॥२३९॥ ब्रह्माजी की दाहिनी ओर गायत्री देवी को स्थापित करें, भोजक को वायीं वगल में ब्रह्माजी को समक्ष कमल को स्थापित करे ॥२४०॥ इसतरह काहली की ध्वनि तथा पुष्कल मात्रा में शंख की ध्वनि पूर्वक हे वीर सम्पूर्ण नगर में रथ को दक्षिणावर्त धुमाकर ॥२४१॥ विज्ञ पुरुष को चाहिए की वह आरती करके उनको अपने स्थान पर स्थापित कर दे। जो पुरुष इसतरह से रथयात्रा कराता है अथवा जो उस यात्रा का भक्ति पूर्वक दर्शन करता है॥२४२॥ अथवा जो रथ को खींचता है, वह मृत्यु के पश्चात् ब्रह्माजी के लोक में जाता है। कार्तिक मास की अमावस्या के दिन जो व्यक्ति ब्रह्माजी के मंदिर में उनके समक्ष दीपक जलाता है। वह परमपद को प्राप्त करता है। चन्दन, पुष्प तथा नवीन वस्त्र से जो व्यक्ति ब्रह्मा की पूजा प्रतिपद् तिथि को करता है वह ब्रह्माजी के लोक में जाता है। यह तिथि अत्यन्त पवित्र है। इसी तिथि को राजा बलि को राज्य मिला था ॥२४४-२४५॥ यह तिथि ब्रह्माजी को अत्यन्त प्रिय है और इस प्रतिपत् का नाम बालेयी प्रतिपत् है। इस तिथि को जो ब्रह्माजी की पूजा तथा आत्मा की पूजा विशेष रूप से करता है ॥२४६॥ वह निस्सीम तेजः सम्पन्न भगवान् विष्णु के लोक में जाता है। हे महाबाहो! चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि को जो व्यक्ति चाण्डाल का स्पर्श करके स्नान करता है उस नरश्रेष्ठ को न तो कोई पाप लगता है और न तो उसको कोई आधि-व्याधि होती है ॥२४८॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उस दिन चाण्डाल का स्पर्श करके स्नान करना ही चाहिए। ब्रह्माजी का वह नीराजन दिव्य नीराजन है। सभी रोगों को नष्ट करने वाला है॥२४९॥ गौ, भैस इत्यादि जो कुछ भी हो उसे उन सबों को ले चलना चाहिये। अपने दरवाजे के वाहर वस्त्रादि से तोरण बंधवाये ॥२५०॥ हे कुरुनंदन उस दिन ब्राह्मणों को भोजन कराये। पहले जो तीन तिथियाँ बतलायी गयी है, वे कार्तिक के महीने में, आश्विन के महीने में तथा चैत्र के महीने में होती है, उनमें जो कार्तिक महीने में प्रतिपदा तिथि होती है, वह सौ गुणा अधिक पुण्यप्रदा होती है ॥२५२॥ वह राजा बलि का कल्याण करने वाली तथा पशुओं

न तु ते ब्राह्मणाः पूजां करिष्यंति कदाचन। मदीयं तु वचः श्रुत्वा ये करिष्यंति चार्चनम् ॥२५४॥
इह भुक्त्वा तु भोगास्ते परत्र मोक्षभागिनः। एतां ज्ञात्वा परां दृष्टिं वरं तुष्टः प्रयच्छति ॥२५५॥
शक्राऽहंते वरं दास्ये संग्रामे शत्रुनिग्रहे। तदा ब्रह्मा मोचयिता गत्वा शत्रुनिकेतनम् ॥२५६॥
स्वपुरं लप्स्यसे नष्टं शत्रुनाशात्परां मुदम्। अकंटकं महद्राज्यं त्रैलोक्ये ते भविष्यति ॥२५७॥
मर्त्यलोके यदा विष्णो अवतारं करिष्यसि। भ्रात्रा सह परं दुःखं स्वभार्याहरणादिजम् ॥२५८॥
हत्वा शत्रुं पुनर्भार्यां लप्स्यसे सुरसन्निधौ। गृहीत्वा तां पुना राज्यं कृत्वास्वर्गं गमिप्यसि ॥२५९॥
एकादशसहस्राणि वर्षाणां च पुनर्दिवम्। ख्यातिस्ते विपुला लोके अनुरागं जनैस्सह ॥२६०॥
सांतानिकानाम तेषां लोकःस्थास्यंति भाविताः। त्वया ते तारिता देव रामरुपेण मानवाः ॥२६१॥
गायत्री तु तदा रुद्रं वरदा प्रत्यभाषत्। पतितेपि च ते लिंगे पूजां कुर्वंति ये नराः ॥२६२॥
ते पूताः पुण्यकर्माणः स्वर्गलोकस्य भागिनः। न तां गतिं चाग्निहोत्रे न क्रतौ हुतपावके ॥२६३॥
यां गतिं मनुजा यांति तव लिंगस्य पूजनात्। गंगातीरे सदालिगं बिल्वपत्रेण ये तव् ॥२६४॥
पूजयिष्यंति सुप्रीतारुद्रलोकस्य भागिनः। प्राप्यापि सर्वभक्षत्वमग्ने त्वं भव पावनः॥२६५॥
त्वयि प्रीते सुराः सर्वे प्रीता वै नात्र संशयः। त्वन्मुखेन हविर्देवैः प्रीताः प्रीते त्वयि ध्रुवम् ॥२६६॥
भुंजते नात्र संदेहो वेदोक्तं वचनं यथा। गायत्री ब्राह्मणांस्तांश्च सर्वाश्चैवाव्रवीदिदम्॥२६७॥
युष्माकं प्रीणनं कृत्वा सर्वतीर्थेषु मानवाः। पदं सर्वे गमिष्यंति वैराजाख्यं न संशयः ॥२६८॥

की हितकारी तिथि है। **गायत्री देवी ने कहा—** सावित्री देवी ने जो यह कहा है कि ब्रह्माजी की पूजा कोई ब्राह्मण नहीं करेगा मेरी बात को सुनकर जो ब्राह्मण ब्रह्माजी की अर्चना करेंगे ॥२५३-२५४॥ वे इस लोक में समस्त भोगों को भोग कर परलोक में मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस परादृष्टि को जानकर प्रसन्न होकर गायत्री देवी वरदान देती है॥२५५॥ हे इन्द्र! मैं तुम्हें वरदान देती हूँ कि संग्राम में जब तुम्हारा निग्रह हो जायेगा, उस समय तुम्हारे शत्रु के घर जाकर ब्रह्माजी तुम्हें छोड़वायेंगे ॥२५६॥ किञ्च शत्रु का नाश हो जाने पर अत्यन्त आनन्द पूर्वक अपनी राजधानी को आप प्राप्त करेंगे। आपका त्रैलोक्य में अकण्टक राज्य होगा ॥२५७॥ हे विष्णो! जब आप मर्त्यलोक में अवतार लेंगे, पत्नी के हरण के कारण आपकों जब अत्यन्त कष्ट होगा ॥२५८॥ उस समय आप शत्रु का वध करके देवताओं के समक्ष अपनी पत्नी को पुनः प्राप्त करेंगे। अपनी पत्नी को लेकर आप राज्य करेंगे। उसके पश्चात् आप अपने लोक में जायेंगे ॥२५९॥ आप्र भूलोक में ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करेंगे और आपमें प्रजाओं का विपुल अनुराग होगा। आपका विस्तृत यश होग ॥२६०॥ वे सबके सब सांतानिक लोको में जायेंगे, हे विष्णो! आप राम रूप से मनुष्यों का उद्धार करेंगे ॥२६१॥ उसके बाद गायत्री देवी ने रुद्र को वरदान दिया। तुम्हारे लिङ्ग के गिर जाने पर भी जो लोग उस लिङ्ग की पूजा करेंगे ॥२६२॥ वे पवित्र होंगे और अपने पवित्र कर्म के द्वारा स्वर्गलोक के भागी होंगे। आपके लिङ्ग की पूजा करने से जिस गति की प्राप्ति होगी उस गति की प्राप्ति अग्निहोत्र अथवा यज्ञ करने से नहीं हो सकती है। जो लोग सर्वदा गङ्गा नदी के तट पर आपके लिङ्ग की पूजा विल्वपत्र से करेंगे ॥२६३-२६४॥ वे रुद्र लोक के भागी होंगे। हे पावक शङ्कर भुक्त होने पर भी तुम पवित्र बने रहो ॥२६५॥ तुम्हारे प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न होंगे, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। तुम्हारे प्रसन्न होने पर तुम्हारे हीं मुख से देवता हविष्य ग्रहण करेंगे ॥२६६॥ यह वेद कहता है, अतएव यह मिथ्या नहीं हो सकता है। गायत्री देवी ने सभी ब्राह्मणों को यह कहा कि ॥२६७॥ जो लोग सभी तीर्थों में आप ब्राह्मणों को प्रसन्न करके निस्संदेह रूप से

अन्न प्रकारान्विविधान्दत्वा दानान्यनेकशः । श्राद्धेषु प्रीणनं कृत्वा देवदेवा भवंति ते ॥२६९॥
ये च वै ब्राह्मणश्रेष्ठास्तेषामास्यो दिवौकसः । भुंजते च हविः क्षिप्रं कव्यं चैव पितामहाः ॥२७०॥
यूयं हि धारणेशक्ता स्त्रैलोक्यस्य न संशयः। प्राणायामेन चैकेन सर्वे पूता भविष्यथ ॥२७१॥
विशेषात्पुष्करे स्नात्वा मां जप्त्वा वेदमातरम्। प्रतिग्रहकृतान्दोषान्नप्राप्स्यथ द्विजोतमाः ॥२७२॥
पुष्करे चात्र दानेन प्रीताः स्युः सर्वदेवताः । एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोट्याः फलमवाप्स्यते ॥२७३॥
ब्रह्महत्यादिपापानि दुष्कृतानि कृतानि च । करिष्यांति नरास्सर्वे दत्वा पुष्करे धनम् ॥२७४॥
मदीयेन तु जाप्येन पूजनीयस्त्रिभिः कृतैः। ब्रह्महत्या समं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२७५॥
दशभिर्जन्मभिर्जातं शतेन च पुरा कृतम्। त्रियुगेनसहस्त्रेण गायत्री हंतिकिल्बिषम् ॥२७६॥
एवं ज्ञात्वा सदा पूता जाप्ये तु मम वैकृते। भविष्यध्वं न संदेहो नात्र कार्या विचारणा ॥२७७॥
प्रणवेन त्रिमात्रेण सार्द्धं जप्त्वा विशेषतः। पूताः सर्वे न संदेहो जप्त्वा मां शिरसा सह॥२७८॥
अष्टाक्षरा स्थिता चाहं जगद्व्याप्तं मयात्त्विदम्। माताहं सर्ववेदानां पदैः सर्वैरलंकृता ॥२७९॥
जप्त्वा मां भक्तितः सिद्धिं यास्यंति द्विजसत्तमाः। प्राधान्यं मम जाप्येन सर्वेषां वो भविष्यति॥२८०॥
गायत्री सारमात्रोपि वरं विप्रः सुसंयतः । नायंत्रित श्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी॥२८१॥
यस्माद्विप्रेषु सावित्र्या शापो दत्तः सदस्यथ। अत्र दत्तं हुतं चापि सर्वमक्षयकारकम् ॥२८२॥
दत्तो वरो मया तेन युष्माकं द्विजसत्तमाः । अग्निहोत्रपरा विप्रास्त्रिकालं होमदायिनः ॥२८३॥

वैराज पद को प्राप्त करेंगे ॥२६८॥ अनेक प्रकार के अन्नों का ब्राह्मणों को दान देकर तथा श्राद्धों में ब्राह्मणों को प्रसन्न करने वाले मनुष्य मृत्यु के पश्चात् देवताओं के भी पूज्य हो जाते हैं ॥२६९॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों के मुख से ही देवताओं का भोजन होता है और पितृगण भी ब्राह्मण मुख से कव्य (श्राद्धदान) को ग्रहण करते हैं ॥२७०॥ आपलोग त्रैलोक्य का धारण करने में समर्थ हैं । आप लोगों को सभी केवल प्रणाम करके ही पवित्र हो जायेंगे॥२७१॥ विशेष रूप से पुष्कर में स्नान करके तथा वेद माता मेरा (गायत्री का) जप करके हे ब्राह्मणों ! आपलोगों को प्रतिग्रह (दान लेने) से होने वाला पाप नहीं लगेगा ॥२७२॥ पुष्कर तीर्थ में अन्नदान करने से सभी देवताओं को प्रसन्नता होती है । यहाँ पर एक भी ब्राह्मण को भोजन कराने से करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने के फल की प्राप्ति होगी॥२७३॥ ब्रह्महत्या इत्यादि तथा अन्य जो पाप किए गये रहते हैं, वैसे पापों को सभी मनुष्य आप लोगों के हाथ में धन देकर अपने को पवित्र करेंगे ॥२७४॥ मेरे मन्त्र के द्वारा तीन वार पूजा करने से ब्रह्महत्या के समान भी पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं ॥२७५॥ दश जन्मों में उत्पन्न तथा पहले के सौ जन्मों में भी किए गये पाप वारह हजार गायत्री का जप करने से विनष्ट हो जाते हैं ॥२७६॥ इसतरह जानकर जो ब्राह्मण गायत्री मन्त्र का जप करेंगे वे सर्वदा पवित्र रहेंगे इसके विषय में कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥२७७॥ विशेष रूप से प्रणवोच्चारण पूर्वक तीनों व्याहतयों के साथ मेरा जप करके सभी ब्राह्मण निःसन्देह रूप से पवित्र हो जायेंगे ॥२७८॥ मैं अष्टाक्षरा हूँ । अर्थात् मेरे प्रत्येक चरण आठ अक्षरों वाले होते हैं, यह सारा जगत् मुझसे व्याप्त है । सभी पदों से अलङ्कृत मैं वेदों की माता हूँ ॥२७९॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण भक्ति पूर्वक मेरा जप करके सिद्धि प्राप्त कर लेंगे । मेरा जप करने से आपलोग सबों में प्रधान हो जायेंगे ॥२८०॥ गायत्री प्रधान ब्राह्मण श्रेष्ठ है; किन्तु अजितेन्द्रिय, चारो वेदों का ज्ञाता भी, सर्वकुछ खाने वाला एवं सव कुछ बेचने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं है ॥२८१॥ चूकि सभा में सावित्री ने ब्राह्मणों को शाप दिया हैं । अतएव यहाँ पर (पुष्कर क्षेत्र में) किया गया दान और होम अक्षय होगा ॥२८२॥ इसीलिए ब्राह्मण श्रेष्ठों मैंने

स्वर्गं ते तु गमष्यंति सैकविंशतिभिः कुलैः । एवं शक्रस्य विष्णोश्च रुद्रस्य पावकस्य च ॥२८४॥
ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च गायत्री वरमुत्तमम्। तस्मिन्वै पुष्करे दत्त्वा ब्रह्मणः पार्श्वगाऽभवत् ॥२८५॥
चारणैस्तु तदाख्यातं लक्ष्म्या वै शापकारणम्। युवतीनां च सर्वासां शापान् ज्ञात्वा पृथक् पृथक्॥२८६॥
लक्ष्म्याश्चैव वरंप्रादाद्गायत्री ब्रह्मणः प्रिया। अकुत्सितान् सदा सर्वान् कुर्वन्ती धनशोभना ॥२८७॥
शोभिष्यसे न संदेहः सर्वेभ्यः प्रीतिदायिनी। ये त्वया वीक्षिताः पुत्रि सर्वे ते पुण्यभोजनाः॥२८८॥
परित्यक्तास्त्वया ये तु सर्वे ते दुःखभागिनः। तेषां जातिः कुलं शीलं धर्मश्चैव वरानने ॥२८९॥
सभायांते च शोभंते दृश्यंते चैव पार्थिवैः। अर्थित्वं चैव तेषां तु करिष्यंति द्विजोत्तमाः॥२९०॥
सौजन्यं तेषु कुर्वंति त्वं नो भ्राता पिता गुरुः। बांधवोपि न संदेहो न जीवेयं त्वया बिना॥२९१॥
त्वयि दृष्टे प्रसन्ना मे दृष्टिर्भवति शोभना। मनः प्रसीदतेऽत्यर्थं सत्यं सत्यं वदामि ते॥२९२॥
एवं विधानि वाक्यानि त्वद्दृष्ट्या ये निरीक्षिताः। सज्जनास्ते तु श्रोष्यंति जनानां प्रीदिायकाः॥२९३॥
इंद्रत्वं नहुषः प्राप्य दृष्ट्वा त्वां याचयिष्यति। तव दृष्ट्या तु हतः पापो ह्यगस्त्यवचनाद् ध्रुवम्॥२९४॥
सर्पत्वं समनुप्राप्य प्रार्थयिष्यति तं तु सः। दर्पेणाहं विनष्टोस्मि शरणं मे मुने भव ॥२९५॥
वाक्येन तेन तस्यासौ नृपस्य भगवानृषिः। कृत्वा मनसि कारुण्यमिदं वाक्यं वदिष्यति॥२९६॥
उत्पत्स्यते कुले राजा त्वदीये कुलनंदनः। सर्परूपधरं दृष्ट्वा स ते शापं हि भेत्स्यति॥२९७॥
तदा त्वं सर्पतां त्यक्त्वा पुनः स्वर्गं गमिष्यसि। अश्वमेधकृतेन त्वं भर्त्रा सह पुनर्दिवम्॥२९८॥

आप लोगों को वर प्रदान किया है। तीनों सन्ध्याओं में अग्निहोत्र करने वाले अग्निहोत्री ब्राह्मण ॥२८३॥ अपने इक्कीस पीढी के पूर्वजों के साथ स्वर्ग में जायेंगे। इस तरह से इन्द्र, भगवान् विष्णु, रुद्र तथा अग्नि ॥२८४॥ ब्रह्माजी को तथा ब्राह्मणों को गायत्री देवी ने उत्तम वर प्रदान किया। उस पुष्कर में ही वर देकर गायत्री देवी ब्रह्माजी की पर्श्ववर्तिनी बन गयीं ॥२८५॥ जब दूतों के द्वारा इस बात का पता चला की सावित्री देवी ने लक्ष्मी देवी तथा दूसरी देव युवतियों को अलग-अलग शाप दे दिया है ॥२८६॥ तो गायत्री देवी ने लक्ष्मीजी को वरदान दिया, सर्वदा अनिन्दित पुरुषों को सुन्दर सम्पत्ति प्रदान करके ॥२८७॥ सबों को प्रसन्न करने वाली आप सुशोभित होंगी; इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है। हे पुत्रि ! तुम जिसको देख लोगी वह मनुष्य अपने पुण्य फलों का भोग करेगा॥२८८॥ जिन सबों का आप परित्याग कर देंगी वे सभी दुखी रहेंगे। हे वरानने ! जो जीव तुम्हारी कृपा के पात्र होंगे, उनके ही जाति, कुल शील तथा धर्म संरक्षित होंगे। वे ही लोग सभा में सुशोभित होंगे तथा राजाओं के कृपा पात्र होंगे; उन्हीं लोगों के यहाँ याचना करने के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मण जायेंगे ॥२९०॥ उन्हीं लोगों के प्रति सज्जन पुरुष सौजन्य का प्रदर्शन करेंगे और कहेंगे कि आप ही मेरे भ्राता, पिता और गुरु हैं। उसके बन्धव भी इस तरह से कहेंगे कि आपके बिना मैं नहीं जी सकता हूँ ॥२९१॥ आपको ही देखने से मेरी दृष्टि प्रसन्न हो जाती है। यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि आपको देखकर मेरा मन प्रसन्न हो जाता है ॥२९२॥ इसतरह से तुम्हारी दृष्टि के ही कारण देखने वाले लोग उस व्यक्ति को कहेंगे लोगों को प्रसन्न करने वाले सज्जन पुरुष उनकी वाणी को सुनेंगे ॥२९३॥ इन्द्राणी से गायत्री देवी ने कहा— नहुष भी इन्द्र बनकर तुम्हारी याचना करेगा। वह पापी तुम्हारे देखने मात्र से मरा हुआ होने के कारण महर्षि अगस्त्य के शाप के कारण ॥२९४॥ सर्प बनकर उनसे यह प्रार्थना करेगा कि दर्प के ही कारण मैं विनष्ट ही गया हूँ। हे मुने ! आप मेरी रक्षा करें ॥२९५॥ उस राजा की बातों को सुनकर भगवान् अगस्त्य महर्षि मन में करुण करके कहेंगे ॥२९६॥ हे राजन् ! तुम्हारे ही वंश में तुम्हारे वंशधर रूप से भगवान्

प्राप्स्यसे वरदानेन मदीयेन सुलोचने ।

पुलस्त्य उवाच

देवपत्न्यस्तदा सर्वास्तुष्टया परिभाषिता: ॥२९९॥
अपत्यैरपि हीनानां नैव दु:खं भविष्यति । गौरी चैव तु गायत्र्या तदा सापि विबोधिता ॥३००॥
बृंहिता परितोषेण वरान्दत्त्वा मनस्विनी । समाप्तिं तस्य यज्ञस्य कांक्षंती ब्रह्मण: प्रिया ॥३०१॥
वरदां तां तथा दृष्ट्वा गायत्रीं वेदमातरम् । प्रणिपत्य तदा रुद्र: स्तुतिमेतां चकार ह ॥३०२॥

रुद्र उवाच

नमोस्तु ते वेदमातरष्टाक्षरविशोधिते । गायत्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा ॥३०३॥
सर्वाणि स्तुतिशास्त्राणि गाथाश्च निखिलास्तथा । अक्षराणि च सर्वाणि लक्षणानि तथैव च ॥३०४॥
भाष्यादिसर्वशास्त्राणि ये चान्ये नियमास्तथा। अक्षराणि च सर्वाणि त्वं तु देवि नमोस्तुते ॥३०५॥
श्वेतात्वं श्वेतरूपासि शशांकेन समानना । बिभ्रती विपुलौ बाहू कदली गर्भकोमलौ ॥३०६॥
एणशृंगं करे गृह्य पंकजं च सुनिर्मलम् । वसाना वसने क्षौमे रक्तेनोत्तरवाससा ॥३०७॥
शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजिता । दिव्यकुंडलपूर्णाभ्यां कर्णाभ्यां सुविभूषिता ॥३०८॥
चंद्रसापत्न्यभूतेन मुखेन त्वं विराजसे । मकुटेनातिशुद्धेन केशबंधेन शोभिता ॥३०९॥
भुजगाभोगसदृशौ भुजौते भूषणन्दिव: । स्तनौ ते रुचिरौ देवि वर्तुलौ समचूचुकौ ॥३१०॥
जघनेनातिशुभ्रेण त्रिवलीभंगदर्पिता । सुमध्यवर्त्तिनी नाभिर्गंभीरा शुभदर्शिनी ॥३११॥

अवतार लेगे सर्परूप धारण किए हुए तुमको देखकर तुम्हारे पापों को विनष्ट करेंगे ॥२९७॥ उस समय तुम अपनी सर्पयोनि का त्याग करके फिर स्वर्ग में जाओगे । हे सुन्दरि ! अपने पति के साथ अश्वमेघ याग करने के कारण तुम मेरे वरदान से पुन: स्वर्ग के राज्य को प्राप्त करोगी ॥२९७-२९८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** प्रसन्न हुयी गायत्री देवी से देवताओं की सभी पत्नियों ने भी वरदान प्राप्त किया ॥२९९॥ कि निस्संतान होने पर भी उन सबों को कष्ट नहीं होगा । इसके बाद गौरी देवी को भी गायत्री देवी ने सान्त्वना प्रदान किया ॥३००॥ वरादन देने के कारण परितोषण के कारण समृद्ध ब्रह्माजी की पत्नी गायत्री देवी ने यज्ञ की समाप्ति करना चाहा ॥३०१॥ वेदमाता गायत्री को वर देने वाली देखकर रुद्र ने उनको प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥३०२॥ **रुद्र ने कहा—** हे अष्टाक्षर से सुशोभित वेदमात: ! आपको नमस्कार है । गायत्री, दुर्गतरणी, सप्तविधा वाणी ॥३०३॥ सम्पूर्ण स्तुति शास्त्र, सम्पूर्ण गाथायें, समस्त अक्षर और समस्त लक्षण ॥३०४॥ भाष्य आदि सम्पूर्ण शास्त्र तथा जो दूसरे नियम हैं, वे सब तथा सभी अक्षर आप ही हैं, हे देवि आपको नमस्कार है ॥३०५॥ आप श्वेत रूप वाली श्वेतादेवी हैं; आपका मुख चन्द्रमा के समान आह्लादक है । कदली स्तम्भ के भीतरी भाग के समान अत्यन्त कोमल आपकी भुजाएँ हैं।॥३०६॥ अपने हाथ में मृग का शृङ्ग तथा सुन्दर कमल लेकर; दो रेशमी वस्त्रों को धारण की हुयी तथा लाल रङ्ग के उत्तरीय वस्त्र को धारण करने वाली आप हैं ॥३०७॥ हृदय प्रदेश में चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति वाले हार से आप सुशोभित हैं । आपके दोनों कानों में दो दिव्य कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं ॥३०८॥ आपका मुख चन्द्रमा के समान आह्लादक है । अत्यन्त शुद्ध मुकुट तथा केश बन्ध से आप सुशोभित हैं ॥३०९॥ दिव्य सर्प के आभोग के समान आपकी दोनों भुजाएँ द्युलोक को सुशोभित करने वाली हैं । हे देवि ! आपके दोनों स्तन गोल मनोहर, तथा एक समान चुचुक वाले हैं ॥३१०॥ अत्यन्त गौर वर्ण की जङ्घाओं तथा त्रिबली की शोभा से आप

विस्तीर्णजघना देवी सुश्रोणी च वरानने। सुजातवृतोरुयुगा सुजानुचरणा तथा ॥३१२॥
त्रैलोक्यधारिणी सा त्वं भुवि सत्योपयाचना। भविष्यसि महाभागे वरदा वरवर्णिनी ॥३१३॥
पुष्करे च कृता यात्रा दृष्ट्वा त्वं संभविष्यति। ज्येष्ठे मासे पौर्णमास्यामग्र्यां पूजां च लप्स्यसे ॥३१४॥
ये च वा त्वत्प्रभावज्ञाः पूजयिष्यंति मानवाः। न तेषां दुर्लभं किंचित्पुत्रतो धनतोपि वा ॥३१५॥
कांतारेषु निमग्नानामटव्यां वा महार्णवे। दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् ॥३१६॥
त्वं सिद्धिः श्री धृतिः कीर्ति र्ह्री विद्या सन्नति र्मतिः।
संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्त्वमेव च ॥३१७॥
अम्बा च कमलामात र्ब्रह्माणी ब्रह्मचारिणी। जननी सर्वदेवानां गायत्री परमाङ्गना ॥३१८॥
जया च विजया चैव पुष्टिस्त्वं च क्षमा दया। सावित्र्यवरजा चासि सदा चेष्टा पितामहे ॥३१९॥
बहुरूपाविश्वरूपा सुनेत्रा ब्रह्मचारिणी। सुरूपा त्वं विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी॥३२०॥
नगरेषु च पुण्येषु आश्रमेषु वरानने। वासस्तव महादेवि वनेषूपवनेषु च॥३२१॥
ब्रह्मस्थानेषु सर्वेषु ब्रह्मणो वामतः स्थिता। दक्षिणेन तु सावित्री मध्ये ब्रह्मा पितामहः ॥३२२॥
अंतर्वेदी च यज्ञानामृत्विजां चापि दक्षिणा। सिद्धिस्त्वं हे नृपाणां च वेला सागरजा मता॥३२३॥
ब्रह्मचारिणि या दीक्षा शोभा च परमा मता। ज्योतिषां च प्रभा देवी लक्ष्मीर्नारायणे स्थिता ॥३२४॥
क्षमा सिद्धि र्मुनीनां च नक्षत्राणां च रोहिणी। राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां संगमेषु च॥३२५॥
पूर्णिमा पूर्णचंद्रे च बुद्धिर्नीत्यां क्षमा धृतिः। उमादेवी च नारीणां श्रूयसे वरवर्णिनी ॥३२६॥

दृप्त हैं। सुन्दर मध्य भाग वाली आपकी सुन्दर गहरी नाभि है ॥३११॥ हे विस्तुत जङ्घाओं वाली देवि आपका श्रोणी प्रदेश अत्यन्त सुन्दर है। आपके दोनो ऊरू सुन्दर तथा गोल है, आपके घुटने तथा पैर सुन्दर हैं ॥३१२॥ हे महाभागे ! हे सुन्दरि ! आप भूलोक में याचकों की याचना को सत्य बनाने वाली तथा वरदान देने वाली होंगी॥३१३॥ आपका दर्शन करने पर ही पुष्कर क्षेत्र की यात्रा पुरी होगी। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन आपकी उत्तम पूजा होगी ॥३१४॥ आपके प्रभाव को जानने वाले जो ब्राह्मण आपकी पूजा करेंगे उन लोगों को पुत्रों तथा धनों की दुर्लभता नहीं हो सकती है ॥३१५॥ वन में अथवा अटवी में भूले हुए तथा महासागर में डूबने वालों के या लुटेरों से घिरे हुए जीवों के लिए एकमात्र सहारा आप ही हैं ॥३१६॥ आप ही सिद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, ह्री, विद्या, सन्नति, मति, संध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा तथा कालरात्रि स्वरूपिणी हैं ॥३१७॥ लक्ष्मीजी की माता, (ख्याति देवी) ब्रह्माणी, ब्रह्मचारिणी सभी देवताओं की माता, तथा परम श्रेष्ठ रमणी गायत्री भी आप ही हैं ॥३१८॥ जया, विजया, पुष्टि, दया, क्षमा, सावित्री, अवरजा, एवं सदा पितामह (ब्रह्मा) विषयिणी चेष्टा से युक्त आप हैं ॥३१९॥ अनेक रूपों वाली, विश्व स्वरूपिणी, सुन्दर नेत्रों वाली, ब्रह्मचारिणी सुन्दर रूप वाली, बड़े-बड़े नेत्रों वाली तथा भक्तों की हर प्राकार से रक्ष करने वाली भी आप ही हैं ॥३२०॥ हे महादेवि ! हे वरानने ! आपका नगरों, पवित्र आश्रमों, वनों तथा उपवनों में निवास है। ॥३२१॥ ब्रह्माजी के समस्त स्थानों में आप ब्रह्माजी के बायें भाग में स्थित हैं, दायें भाग में सावित्री देवी हैं तथा ब्रह्माजी आप दोनों के बीच में विद्यमान हैं ॥३२२॥ आप यज्ञों की अन्तर्वेदी (भीतर की वेदी) हैं तथा ऋत्विजों की दक्षिणा स्वरूपिणी हैं, आप राजाओं की सिद्धि स्वरूपिणी है तथा आप समुद्र के तट स्वरूपिणी समस्त ज्योतियों की प्रभा स्वरूपिणी हैं आप भगवान् नारायण में लक्ष्मी रूप में स्थित हैं ॥३२३-३२४॥ आप मुनियों में क्षमा तथा सिद्धि स्वरूपिणी हैं, नक्षत्रों में आप रोहिणी नक्षत्र स्वरूपिणी हैं। राजद्वारों में तीर्थों में,

इंद्रस्य चारुदृष्टिस्त्वं सहस्रनयनोपमा। ऋषीणां धर्मबुद्धिस्त्वं देवानां च परायणा ॥३२७॥
कर्षकाणां च सीता त्वं भूतानां धरणी तथा । स्त्रीणामवैधव्यकरी धनधान्यप्रदा सदा ॥३२८॥
व्याधिं मृत्युं भयं चैव पूजिता शमयिष्यसि । तथा तु कार्तिके मासि पौर्णमास्यां सुपूजिता ॥३२९॥
सर्वकामप्रदा देवी भविष्यसि शुभप्रदे। यश्चेदं पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ॥३३०॥
सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ।

गायत्र्युवाच

भविष्यत्येवमेवं तु यत्त्वया पुत्र भाषितम् ॥३३१॥
विष्णुना सहितः सर्वस्थानेष्वेव भविष्यसि ।

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे सावित्रीविवादगायत्रीवरप्रदानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् श्रुतवानस्मि तत्वतः । अभिषेकं तु गायत्र्याः सदस्यत्र तथा कृतम् ॥१॥
विरोधं चैव सावित्र्या शापदानं तथा कृतम् । विष्णुना च यथादेवी सर्वस्थानेषु कीर्तिता ॥२॥

नदियों में सङ्गम स्थलों में आपका निवास हैं ॥३२५॥ पूर्ण चन्द्रमा की आप पूर्णिमा है । आप नीतियों में विद्यमान बुद्धि, क्षमा तथा धृति स्वरूपिणी हैं हे सुन्दरि ! आप नारियों में उमा देवी के रूप में सुनी जाती हैं ॥३२६॥ आप इन्द्र के हजार नेत्रों के समान दृष्टि स्वरूपिणी हैं । आप ऋषियों की धर्मबुद्धि स्वरूपिणी हैं तथा देवताओं के सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं ॥३२७॥ आप कृषकों के लिए हल के फाल स्वरूपणि हैं, सभी भूतों में आप पृथिवी स्वरूप हैं, आप स्त्रियों को सदा सौभाग्य तथा धन-धान्य प्रदान करने वाली हैं ॥३२८॥ आपकी पूजा करने से रोग मृत्यु तथा भय का नाश हो जाता है । कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को अच्छी तरह से पूजित होकर ॥३२९॥ हे मङ्गल प्रदान करने वाली देवि ! आप सभी कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं । जो मनुष्य इस स्तोत्र को सदा पढता अथवा सुनता है॥३३०॥ वह निश्चित रूप से अपने समस्त अभिप्रेत अर्थों को प्राप्त करता है । **गायत्री देवी ने कहा—** हे पुत्र ! तुमने जैसा कहा है, वैसा ही होगा तुम सभी स्थानों में भगवान् विष्णु के साथ निवास करोगे ॥३३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के सावित्री विवाद तथा गायत्री वरदान नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

ब्रह्माजी के यज्ञ का विस्तृत वर्णन, विष्णु तथा दानवों का वैर, पुष्कर स्नान के द्वारा ऋषियों को सुमुखत्व की प्राप्ति, प्राची सरस्वती का चरित्र, मंकण ब्राह्मण का चरित्र, प्राची सरस्वती का माहात्म्य, सरस्वती नदी द्वारा बाडवाग्नि को लेकर समुद्र में जाकर अन्तर्धान होना तथा पुष्कर में जाना । पुष्कर क्षेत्र के खर्जूरी वन में सरस्वती की उत्पत्ति, प्रभञ्जनराज की कथा, सरस्वती नदी में स्नान तथा दान करने का माहात्म्य

भीष्मजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! यह अत्यन्त अद्भुत कथानक मैंने आप से सुना है । सभा में गायत्री का अभिषेक वहाँ पर किया गया ॥१॥ सावित्री का विरोध तथा शाप प्रदान भी मैंने सुना । जिस प्रकार से भगवान् विष्णु

गायत्री चापि रुद्रेण स्तुता च वरवर्णिनी । तं श्रुत्वा प्रतिमात्मानं विस्तरेण पितामहम्॥३॥
प्रहृष्टानि च रोमाणि प्रशांतं च मनो मम। श्रुत्वा म परमा प्रीतिः कौतूहलमथैव हि ॥४॥
नारायणस्तु भगवान् कृत्वा तां परमां च वै । ब्रह्मपत्न्याः स्तुतिं भक्त्या न्यस्य तां पर्वतोपरि ॥५॥
उवाच वचनं विष्णुस्तुष्टिपुष्टिप्रदायकम्। श्रीमति ह्रीमती चैव या च देवीश्वरी तथा॥६॥
एतदेवं श्रुतं ब्रह्मंस्तव वक्त्राद्विनिःसृतम्। उत्तरं तत्र यद्भुतं यच्चतस्मिन्स्थले कृतम् ॥७॥
आनुपूर्व्या च तत्सर्वं भगवान्वक्तुमर्हति । श्रुतेन मे देहशुद्धिर्भविष्यति न संशयः ॥८॥

पुलस्त्य उवाच

यजतः पुष्करे तस्य देवस्य परमेष्ठिनः । शृणु राजन्निदं चित्रं पूर्वमेव यथाकृतम्॥९॥
आदौ कृतयुगे तस्मिन्यजमाने पितामहे । मरीचिरंगिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥१०॥
दक्षः प्रजापतिश्चैव नमस्कारं प्रचक्रिरे । विद्योतमानाः पुरुषाः सर्वाभरणभूषिताः ॥११॥
उपनृत्यंति देवेशं विष्णुमप्सरसां गणाः। ततो गंधर्वतूर्यैस्तु प्रतिनंद्य विहायसि॥१२॥
बहुभिः सह गंधर्वैः प्रगायति च तुंबरुः । महाश्रुतिश्चित्रसेन ऊर्णायुरनघस्तथा ॥१३॥
गोमायुस्सूर्यवर्चाश्च सोमवर्चाश्च कौरव। युगपच्च तृणायुश्च नंदिश्चित्ररथस्तथा॥१४॥
त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः। कलिः पंचदशश्चात्र तारकश्चात्र षोडशः ॥१५॥
हाहाहूहूश्च गंधर्वो हंसश्चैव महाद्युतिः। इत्येते देवगंधर्वा उपगायांति ते विभुम् ॥१६॥
तथैवाप्सरसो दिव्या उपनृत्यंति तं विभुम्। धातार्यमा च सविता वरुणोंशो भगस्तथा॥१७॥
इंद्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा पर्जन्य एव च । इत्येते द्वादशादित्या ज्वलंतो दीप्ततेजसः ॥१८॥

ने सावित्री देवी का सभी स्थानों में वर्णन किया है, उसे मैंने सुना है ॥२॥ रुद्र ने वरवर्णिनी गायत्री देवी की जो स्तुति की, उसके अतिरिक्त ब्रह्माजी की प्रतिमा का वर्णन मैंने विस्तार से सुना ॥३॥ इसे सुनकर मेरा मन प्रसन्न एवं शान्त हो गया है । उसे सुनकर मुझे परम शान्ति मिली है और मेरे मन में कौतूहल उत्पन्न हो गया है ॥४॥ भगवान् नारायण ने ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री देवी की अत्यन्त श्रेष्ठ स्तुति कर उनकी पर्वत के ऊपर स्थापना की ॥५॥ भगवन् विष्णु ने उनको तुष्टि एवं पुष्टि प्रदान करने वाली वाणी सुनाया, उनको श्रीमती, ह्रीमती, देवी तथा ईश्वरी कहा ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुख से इतना ही सुना है । उसके बाद वहाँ जो अद्भुत कार्य हुआ ॥७॥ हे भगवान् ! उन सारी बातों को आप मुझे क्रमशः सुनायें । उसे सुनकर मेरे शरीर की शुद्धि हो जायेगी ॥८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पुष्कर क्षेत्र में ब्रह्माजी द्वारा यज्ञ किए जाने के समय जो आश्चर्य की बात हुयी उसे आप सुनें ॥९॥ प्रथम सत्ययुग में ब्रह्माजी यज्ञ कर रहे थे । उस समय मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु ॥१०॥ तथा दक्ष प्रजापति आकर ब्रह्माजी को नमस्कार किए । सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत पुरुष देदीप्यमान थे ॥११॥ देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु के समक्ष अप्सराओं का समूह नृत्य कर रहा था । उस समय गन्धर्वगण वाद्यों के द्वारा आकाश में उनका अभिनंदन करके अनेक गन्धर्वों के साथ तुम्बरु गायन कर रहे थे । महाश्रुति, चित्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोमायु, सूर्यवर्चा, सोमवर्चा, युगपत्, तृणायु, नन्दि, चित्ररथ ॥१२-१४॥ तेरहवें शालिशिरा, चौदहवें पर्जन्य, पन्द्रहवें कलि, सोलहवें तारक, हाहा, हूहू, तथा महाद्युति हंस, ये सभी देव गन्धर्व ब्रह्माजी की स्तुति कर रहे थे॥१५-१६॥ ब्रह्माजी के सन्निकट दिव्य अप्सरायें नृत्य कर रही थीं धाता, अर्यमा, वरुण, अंशु, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा तथा पर्जन्य ये बारहो अपने तेज से देदीप्यमान होने वाले आदित्य ॥१७-१८॥ सभी श्रेष्ठ

चक्रुरस्मिन्सुरेशाश्च नमस्कारं पितामहे। मृगव्याधश्च शर्वश्च निर्ऋतिश्च महायशाः ॥१९॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः। भवो विश्वेश्वरश्चैव कपर्दीच विशांपते ॥२०॥
स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्तत्रावतस्थिरे। अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः ॥२१॥
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्मै प्रांजलयः स्थिताः। शेषाद्यास्तु महानागा वासुकि प्रमुखाहयः ॥२२॥
काश्यपः कंबलश्चापि तक्षकश्च महाबलः। एते नामा महात्मानस्तस्मै प्रांजलयः स्थिताः॥२३॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः। वारुणिश्चैवारुणिश्च वैनतेयाव्यवस्थिताः ॥२४॥
नारायणश्च भगवान् स्वयमागत्यलोकवान्। प्राहलोकगुरुं श्रीमान्सहसवैर्महर्षिभिः ॥२५॥
त्वया ततमिदं सर्वं त्वया सृष्टं जगत्पते। तस्माल्लोकेश्वरश्चासि पद्मयोने नमोस्तुते॥२६॥
यदत्र ते मया कार्यं कर्तव्यं च तदादिश। एवं प्रोवाच भगवान्सार्धं देवर्षिभिः प्रभुः ॥२७॥
नमस्कृत्यसुरेशाय ब्रह्मणेऽव्यक्तजन्मने। स च तत्र स्थितो ब्रह्मा तेजसा भासयन्दिशः॥२८॥
श्रीवत्सलोमसंच्छन्नो हेमसूत्रेण राजता। सुरर्षिप्रतिमः श्रीमान्स्वयंभूर्भूतभावनः ॥२९॥
शुचिरोमा महावक्षाः सर्वतेजोमयः प्रभुः। योगतिः पुण्यशीलानामगतिः पापकर्मणाम् ॥३०॥
योगसिद्धा महात्मानो यंविदुर्लोकमुत्तमम्। यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहुर्देवसत्तमम् ॥३१॥
यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नियता मोक्षकांक्षिणः। जन्मनो मरणाच्चैव मुच्यंते योगभाविताः ॥३२॥
यदेतत्तपइत्याहुः सर्वाश्रमनिवासिनः। सेवं सेवं यताहारा दुश्चरं व्रतमास्थिताः ॥३३॥

देव पितामह को आकर नमस्कार किए। हे राजन्! मृग, व्याध, शर्व, महायशा निऋति ॥१९॥ अजैकपाद अहिर्बुध्न्य, अपराजित पिनाकी, भव, विश्वेश्वर तथा कपर्दी ॥२०॥ स्थाणु तथा भगवान् रुद्र वहाँ आये तथा ब्रह्माजी को नमस्कार किए। दोनों अश्विनीकुमार, आठो वसु तथा महाबलवान् मरुद्गण ॥२१॥ विश्वेदेव तथा साध्यगण आकर ब्रह्माजी के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े थे। शेष आदि तथा महानाग वासुकि इत्यादि भी आये ॥२२॥ काश्यप, कम्बल, महाबलवान् तक्षक, ये सभी महात्मा नाग हाथ जोड़कर ब्रह्माजी के समक्ष खड़े थे। तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबलवान गरुड, वारुणि तथा आरुणि ये सभी विनितानंदन वहाँ उपस्थित थे ॥२४॥ लोकों के स्वामी भगवान् नारायण स्वयम् सभी महर्षियों के साथ आकर लोक गुरु ब्रह्माजी से कहे ॥२५॥ यह सम्पूर्ण जगत् आपसे व्याप्त है, आपने इस जगत् की सृष्टि की है। हे जगत्पते! आप संसार के स्वामी हैं, हे पद्मयोने आपको नमस्कार है ॥२६॥ आप मुझे इस बात का आदेश दीजिये कि यहाँ पर मैं कौन सा आपका कार्य करूँ। इस तरह से भगवान् नारायण ने देवर्षियों के साथ कहा ॥२७॥ उन्होंने अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी को नमस्कार किया। उस समय वहाँ पर अपने तेज से प्रकाशित होते हुए ब्रह्माजी बैठे हुए थे ॥२८॥ वहाँ पर श्रीभगवान् भी वत्सचिह्न तथा सुवर्णमय सूत्रों वाले यज्ञोपवीत से सुशोभित थे। देवर्षि के सदृश वे ऐश्वर्य सम्पन्न तथा भूतभावन थे ॥२९॥ उनका एक-एक रोम पवित्र था, उनका वक्षस्थल विशाल था, सबों के स्वामी सभी प्रकार के तेज से सम्पन्न उन श्रीभगवान् की स्तुति देवताओं तथा ऋषियों ने इस प्रकार से की जो पुण्यवानों के एकमात्र आश्रय तथा पापियां के अनाश्रय हैं ॥२९-३०॥ जिनको योग सिद्ध महात्मागण उत्तम लोक मानते हैं। जिन देवश्रेष्ठ को अणिमा आदि आठ गुणों से सम्पन्न ऐश्वर्य वाला कहा गया है ॥३१॥ नियमों का पालन करने वाले तथा मोक्ष को चाहने वाले योगवेत्ता ब्राह्मण जिन शाश्वत श्रीभगवान् को प्राप्त करके जन्म एवं मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं ॥३२॥ सभी आश्रमों में निवास करने वाले जीव जिन श्रीभगवान् की नित्य सेवा करना ही परंतप बतलाते है, तथा उनकी सेवा प्राप्त करने के लिए अत्यन्त कठिन व्रत का

योऽनंत इति नागेषु प्रोच्यते सर्वयोगिभिः । सहस्रमूर्द्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः ॥३४॥
यो यज्ञ इति विप्रेंद्रैरिज्यते स्वर्गालिप्सुभिः । नानास्थानगतिः श्रीमानेकः कविरनुत्तमः ॥३५॥
यंदेवं वेत्ति वेत्तारं यज्ञभागप्रदायिनम् । वृषाग्नि सूर्यचंद्राक्षं देवमाकाशविग्रहम् ॥३६॥
तं प्रपद्यामहे देवं भगवन् शरणार्थिनः । शरण्यं शरणं देवं सर्वदेवभवोद्भवम् ॥३७॥
ऋषीणां चैव स्रष्टारं लोकानां च सुरेश्वरम् । प्रियार्थं चैव देवानां सर्वस्य जगतः स्थितौ ॥३८॥
कव्यं पितृणामुचितं सुराणां हव्यमुत्तमम् । येन प्रवर्तितं सर्वं तं नतास्मस्सुरोत्तमम् ॥३९॥
त्रेताग्निना तु यजता देवेन परमेष्ठिना । यथासृष्टिः कृतापूर्वं यज्ञ सृष्टिस्तथा पुनः ॥४०॥
तथा ब्रह्माप्यनंतेन लोकानां स्थितिकारिणा । अन्वास्यमानो भगवान्वृद्धोप्यथ च बुद्धिमान् ॥४१॥
यज्ञवाटमचिंत्यात्मा गतस्तत्र पितामहः । धनाढ्यै ऋर्त्विजैः पूर्णं सदस्यैः परिपालितम्॥४२॥
गृहीतचापेन तदा विष्णुना प्रभविष्णुना । दैत्यदानवराजानो राक्षसानां गणाः स्थिताः ॥४३॥
आत्मानमात्मना चैव चिंतयामासवै द्रुतम् । चिंतयित्वा यथातत्वं यज्ञं यज्ञः सनातनः ॥४४॥
वरणं तत्र भगवान्कारयामासऋत्विजाम् । भृग्वाद्या ऋत्विजश्चापि यज्ञकर्मविचक्षणाः ॥४५॥
चकुर्वाचमुख्यैश्च प्रोक्तं पुण्यं यदक्षरम् । शुश्रुवुस्ते मुनिश्रेष्ठा वितते तत्र कर्मणि ॥४६॥
यज्ञविद्या वेदविद्या पदक्रमविदां तथा। घोषेण परमर्षीणां सा वभूवनिनादिता॥४७॥
यज्ञसंस्तरविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथाद्विजैः । शब्दनिर्वचनार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ॥४८॥

पालन करते हैं ॥३३॥ जो नागों में अनन्त रूप से सभी योगियों द्वारा कहे जाते हैं । जिन्हें योगिजन सहस्रमूर्धा, रक्ताक्ष, शेष तथा योगज्ञ इत्यादि उत्तम नामों से पुकारते हैं । स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा वाले ब्राह्मण जिनकी आराधना यज्ञ के द्वारा करते हैं जो अनेक स्थानों में व्याप्त हैं, तथा ऐश्वर्य सम्पन्न हैं जो एक तथा श्रेष्ठ कवि हैं॥३४-३५॥ जिनको दिव्य गुण सम्पन्न सर्वज्ञ तथा यज्ञभाग को प्रदान करने वाले रूप से हम जानते हैं । धर्म, अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, आकाश ही जिनका शरीर है ॥३६॥ उन्ही श्रीभगवान् की हम शरणागति करते हैं । जो सबों के शरण्य, शरण, दिव्यगुण सम्पन्न तथा सभी देवों को उत्पन्न करने वाले हैं ॥३७॥ जो ऋषियों तथा लोकों की सृष्टि करने वाले हैं, जो देवताओं के स्वामी हैं । जो सम्पूर्ण जगत् में अन्तर्यामी रूप से देवताओं का कल्याण करने के लिए स्थित हैं ॥३८॥ हम उन सर्वश्रेष्ठ देवता को नमस्कार करते हैं जिन्होंने चिरकाल से पितरों को कव्य तथा देवताओं को हव्य प्रदान करने की परम्परा को प्रवर्तित किया है ॥३९॥ त्रेतग्नि में यजन करने वाले ब्रह्माजी के द्वारा जैसे पहले सृष्टि की गयी और फिर यज्ञ की सृष्टि की गयी ॥४०॥ उसके बाद वृद्ध तथा बुद्धिमान ब्रह्माजी लोकों की रक्षा करने वाले भगवान् अनन्त के साथ बैठे हुए सुशोभित हुए ॥४१॥ अचिन्त्यात्मा ब्रह्माजी जब यज्ञशाला में गये उस समय यज्ञशाला धन सम्पत्ति आदि सामग्रियों से परिपूर्ण थी, उसमें ऋत्विज बैठ गये थे । सदस्यगण उसकी रक्षा कर रहे थे ॥४२॥ भगवान् विष्णु धनुष धारण करके यज्ञशाला की रक्षा करते थे । वहाँ पर दैत्य, दानव तथा राक्षसों का समूह भी विद्यमान था ॥४३॥ उस समय सनातन यज्ञस्वरूप श्रीभगवान् ने अपने से ही अपनी आत्मा का चिन्तन (ध्यान) किया । चिन्तन के पश्चात् ॥४४॥ श्रीभगवान् ने ऋत्विजों का वरण कराया जो उस यज्ञ में भृगु आदि ऋत्विज थे । यज्ञ के कर्म को करने में निपुण थे ॥४५॥ वह्वृच आदि ऋत्विजों ने पुण्यप्रद अक्षर का उच्चारण किया । यज्ञकर्म का विस्तार हो जाने पर श्रेष्ठ मुनियों ने उसका श्रवण किया ॥४६॥ यज्ञविद्या, वेदविद्या तथा उनके पद तथा क्रम आदि के अभिज्ञ परमर्षियों की ध्वनि से यज्ञशाला ध्वनित हो गयी ॥४७॥ यज्ञ के संस्तर

मीमांसाहेतुवाक्यज्ञैः कृता नानाविधा मखे। तत्र तत्र च राजेंद्र नियतान् संशितव्रतान् ॥४९॥
जपहोमपरान् मुख्यान् ददृशुस्तत्र वैद्विजान्। यज्ञभूमौ स्थितस्तस्यां ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५०॥
सुरासुरगुरुः श्रीमान् सेव्यमानः सुरासुरैः। उपासते च तत्रैनं प्रजानां पतयः प्रभुम् ॥५१॥
दक्षो वसिष्ठः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः। अङ्गिरा भृगुरत्रिश्च गौतमो नारदस्तथा॥५२॥
विद्यमानमंतरिक्षं वायुस्तेजो जलं मही। शब्दः स्पर्शश्च रूपंच रसोगंधस्तथैव च ॥५३॥
विकृतश्च विकारश्च यच्चान्यत्कारणं महत्। ऋग्यजुःसमाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार एव च ॥५४॥
शब्दः शिक्षानिरुक्तं च कल्पश्छंदः समन्विताः। आयुर्वेदधनुर्वेदौ मीमांसा गणितं तथा ॥५५॥
हस्त्यश्वज्ञानसहिता इतिहाससमन्विताः। एतैरंगैरुपांगैश्च वेदाः सर्वे विभूषिताः ॥५६॥
उपासते महात्मानं सहोंकारं पितामहम्। तपश्च क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च ॥५७॥
एते चान्ये च बहवः पितामहमुपस्थिताः। अर्थो धर्मश्च कामश्च द्वेषो हर्षश्च सर्वदा ॥५८॥
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्तो बुध एव च। शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे तथैव च॥५९॥
मरुतो विश्वकर्मा च पितरश्चापि भारत। दिवाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं पर्युपासते॥६०॥
गायत्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा। अक्षराणि च सर्वाणि नक्षत्राणि तथैव च ॥६१॥
भाष्याणि सर्वशास्त्राणि देहवन्ति विशांपते। क्षणा लवा मुहूर्ताश्च दिनं रात्रिस्तथैव च॥६२॥
अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः सर्व एव च। उपसते महात्मानं ब्रह्माणं दैवतैः सह॥६३॥
अन्याश्च देव्यः प्रवरा ह्रीः कीर्ति र्द्युति रेव च। प्रभा धृतिः क्षमा भूति र्नीति र्विद्या मतिस्तथा॥६४॥

को जानने वाले, शिक्षा शास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों द्वारा सभी विद्याओं में विशारद शब्दों के निर्वचन तथा अर्थो को जानने वाले ॥४८॥ हे राजेन्द्र ! मीमांसा के सहेतुक वाक्यों को जानने वाले लोगों ने उस यज्ञ में विभिन्न स्थानों पर नियमों तथा व्रतों का पालन करने वाले, जप तथा होम करने वाले मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों को देखा ॥४८-४९॥ उस यज्ञशाला में लोक पितामह ब्रह्माजी बैठे हुए थे ॥५०॥ वे देवताओं तथा असुरों के स्वामी थे । देवता और असुर उनकी सेवा में विद्यमान् थे । सभी प्रजापतिगण भी ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित थे ॥५१॥ दक्ष, वसिष्ठ, पुलह, द्विजश्रेष्ठ मरीचि, अङ्गिरा, भृगु, अत्रि, गौतम तथा नारद (ये सभी प्रजापति वहाँ विद्यमान थे) ॥५२॥ वहाँ पर आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथिवी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, सभी विकृत और उनके विकार तथा दूसरे कारण तत्त्व, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चारो वेद ॥५३-५४॥ शब्द (व्याकरण) शिक्षा, निरुक्त, कल्प, छन्द के साथ आयुर्वेद, धनुर्वेद, मीमांसा, गणित ॥५५॥ हस्तिविज्ञान, अश्वविज्ञान के साथ एवं इतिहास से समन्वित वेद इन सभी अङ्गों तथा उपाङ्गों के साथ वहाँ पर मूर्तिमान रूप से उपस्थित थे ॥५६॥ ये सब ओङ्कार के साथ महात्मा ब्रह्माजी की उपासना में लगे थे । सभी तपस्या, सभी क्रतु, सङ्कल्प तथा प्राण ॥५७॥ ये सभी तथा इनके अतिरिक्त दूसरे जीव पितामह ब्रह्माजी के पास उपस्थित थे । अर्थ, धर्म तथा काम, द्वेष एवं हर्ष ॥५८॥ शुक्र, बृहस्पति, संवर्त तथा बुध, शनैश्चर एवं राहु ये सभी ग्रह भी वहाँ उपस्थित थे ॥५९॥ मरुद्गण, विश्वकर्मा, सभी पितृगण,सूर्य, चन्द्रमा भी ब्रह्माजी की उपासना में सलंग्न थे ॥६०॥ हे राजन् ! गायत्री, दुर्गा, तरणी तथा सातो प्रकार की बाणियाँ समस्त अक्षर तथा सभी नक्षत्र, सभी भाष्य, सभी शास्त्र वहाँ पर शरीर धारण करके उपस्थित थे । क्षण, लव, मुहूर्त दिन तथा रात्रि ॥६१-६२॥ अर्द्धमास तथा मास, सभी ऋतुएँ भी देवताओं के साथ शरीर धारण करके ब्रह्माजी की सेवा में संलग्न थीं ॥६३॥ बाराही, कीर्ति, द्युति, धृति, प्रभा, क्षमा, भूति, नीति, विद्या, मति, श्रुति, स्मृति, क्षान्ति,

श्रुतिः स्मृतिस्तथा क्षांतिः शांतिः पुष्टिस्तथा क्रिया। सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्यगीतविशारदाः ॥६५॥
उपतिष्ठंति ब्रह्माणं सर्वास्ता देवमातरः । विप्रचित्तिः शिबिः शंकुरयः शंकुस्तथैव च ॥६६॥
वेगवान्केतुमानुग्रः सोग्रो व्यग्रो महासुरः। परिघः पुष्करश्चैव सांबो श्वपतिरेव च ॥६७॥
प्रह्लादोथ बलिः कुंभः संह्लादो गगनप्रियः । अनुह्लादो हरिहरौ वराहश्च कुशोरजः ॥६८॥
योनिभक्षो वृषपर्वा लिंगभक्षोथवै कुरुः। निःप्रभः सप्रभः श्रीमांस्तथैव च निरूदरः ॥६९॥
एकचक्रो महाचक्रो द्विचक्रः कुलसंभवः । शरभः शलभश्चैव क्रपथः कापथः क्रथः ॥७०॥
बृहद्वांति र्महाजिह्वः शंकुकर्णो महाध्वनिः। दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृडकायो मृडप्रियः ॥७१॥
वायुर्गरिष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो विभुः । विष्वक्सेनश्चंद्रहर्ता क्रोधवर्द्धन एव च ॥७२॥
कालकः कलकांतश्च कुंडदः समरप्रियः । गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलंबो नरकः पृथुः ॥७३॥
इंद्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः। असिलोमा सुलोमा च वाष्कलिः प्रमदो मदः॥७४॥
सृगालवदनश्चैव कशीच शरदस्तथा। एकाक्षश्चैव राहुश्च वृत्रः कोधविमोक्षणः ॥७५॥
ऐते चान्ये च बहवो दानवा वलवर्द्धनाः । ब्रह्माणंपर्युपासंत वाक्यंचेदमथोचिरे ॥७६॥
त्वया सृष्टाः स्म भगवंस्त्रैलोक्यं भवताहि नः। दत्तं सुरवरश्रेष्ट देवेभ्यश्चाधिकाः कृताः ॥७७॥
भगवन्निह किं कुर्मो यज्ञे तव पितामह । यद्धितं तद्वदास्माकं समर्थाः कार्यनिर्णये ॥७८॥
किमेभिस्ते वराकैश्च आदितेर्गर्भसंभवैः । दैवतैर्निहतैः सर्वैः पराभूतैश्च सर्वदा॥७९॥
पितामहोसि सर्वेषामस्माकं दैवतैः सह । तव यज्ञसमाप्तौ च पुनरस्मासु दैवतैः ॥८०॥
श्रियं प्रतिविरोधश्च भविष्यति न संशयः । इदानीं प्रेक्षणं कुर्मः सहिताः सर्वदानवैः ॥८१॥

शान्ति, पुष्टि तथा क्रिया आदि देवियाँ तथा नृत एवं गीत में निपुण सभी दिव्य अप्सरायें ॥६४-६५॥ तथा सभी देव माताएँ श्रीब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित थीं । विप्रचिति, शिवि, रङ्कु, रय, शङ्कु ॥६६॥ वेगवान्, केतुमान, उग्र, महासुर, उग्र व्यग्र, परिध, पुष्कर, साम्ब तथा अश्वपति ॥६७॥ प्रह्लाद, बलि, कुम्भ, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्राद, हरिहर, वराह, कुशोरज ॥६७॥ योनिभक्ष, वृषपर्वा, लिङ्गभक्ष, कुरु, निष्प्रभ, सप्रभ, श्रीमान्, निरूदर ॥६९॥ एकचक्र, महाचक्र, द्विचक्र, कुलसंभव, शरभ, शलभ, क्रपथ, क्रापथ तथा क्रथ ॥७०॥ बृहद्वंति, महाजिह्व, शङ्कुकर्ण, महाध्वनि, दीर्घजिह्व, अर्कनयन, मृडकाय, मृडप्रिय ॥७१॥ वायु, गरिष्ठ, नमुचि, शम्बर, विज्वर, विभु, विष्वक्सेन, चन्द्रहर्ता, क्रोधवर्द्धन ॥७२॥ कालक, कालकान्त, कुण्डद, समरप्रिय, गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरकासुर, पृथु ॥७३॥ इन्द्रतापन, वातपी, केतुमान्, बलदर्पित, असिलोमा, सुलोमा, वाष्कलि, प्रमद, मद ॥७४॥ सृगालवदन, केशी, शरद, एकाक्ष, राहु, वृत्र, क्रोधविमोक्षण ॥७५॥ ये सभी तथा बहुत से दूसरे बलवान् दानव ब्रह्माजी की सेवा करते हुए कहे ॥७६॥ हे भगवन् ! हमलोग आपके ही द्वारा सृष्ट हैं और आपने हमलोगों को त्रैलोक्य का राज्य प्रदान किया है । हे देवताओं में श्रेष्ठ ! आपने हमलोगों को देवताओं की अपेक्षा अधिक बलवान बनाया है ॥७७॥ हे भगवन् ! ब्रह्माजी इस यज्ञ में हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ? जो कल्याणकारी हो उसे आप बतलाएँ; हमलोग कार्य करने में समर्थ हैं ॥७८॥ इन बेचारों अदिति के पुत्रों से आपका कौन कार्य होगा । ये भाग्य के मारे हुए सदा पराजित होते हैं ॥७९॥ आप हमलोगों के तथा देवताओं के दोनों के पितामह हैं । आपका यज्ञ समाप्त हो जाने पर फिर हमलोगों का देवताओं के साथ ॥८०॥ ऐश्वर्य के विषय में निश्चित रूप से विरोध होगा । इस समय तो हम सभी दानव एक साथ केवल देख रहे हैं । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** उन दानवों के गर्वयुक्त वाणी को सुनकर

पुलस्त्य उवाच

सगर्वं तु वचस्तेषां श्रुत्वा देवो जनार्दनः । शक्रेण सहितः शंभुमिदमाह महायशाः ॥८२॥
विघ्नं प्रकर्त्तुं वै रुद्र आयाता दनुपुंगवाः । ब्रह्मणामंत्रिता श्चेह विघ्नार्थं प्रयतंति ते ॥८३॥
अस्माभिस्तु क्षमा कार्या यावद्यज्ञः समाप्यते। समाप्ते तु क्रतावस्मिन् युद्धं कार्यं दिवौकसाम् ॥८४॥
यथा निर्दानवा भूमिस्तथा कार्यं त्वया विभो। जयार्थं चेह शक्रस्य भवता च मया सह ॥८५॥
द्विजानां परिवेष्टारो मरुतः परिकल्पिताः । दानवानां धनं यच्च गृहीत्वा तद्यजामहे ॥८६॥
अत्रागतेषु विप्रेषु दुःखितेषु जनेष्विह। व्ययं तस्य करिष्यामो दासभावे निवेशिताः ॥८७॥
वदंतमेवं तं विष्णुं ब्रह्मावचनमब्रवीत्। एते दनुसुताः क्रुद्धा युष्माकमपिनेप्सिताः॥८८॥
भवता च क्षमा कार्या रुद्रेण सह दैवतैः। कृते युगावसाने तु समाप्तिं च क्रतौ गते ॥८९॥
मया च प्रेषिता यूयमेते च दनुपुंगवाः । संधिर्वा विग्रहो वापि सर्वैः कार्यस्तदैव हि॥९०॥

पुलस्त्य उवाच

पुनस्तान्दानवान्ब्रह्मा वाक्यमाह स्वयं प्रभुः । दानवैर्न विरोधोत्र यज्ञे मम कथंचन ॥९१॥
मैत्रभावस्थितायूयमस्मत्कार्ये च नित्यशः ।

दानवा ऊचुः

सर्वमेतत्करिष्यामः शासनं ते पितामह ॥९२॥
अस्माकमनुजादेवाभयं तेषां नविद्यते ।

पुलस्त्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा तदा तेषां परितुष्टः पितामहः ॥९३॥

भगवान् जनार्दन ने इन्द्र के साथ शङ्करजी से इस बात को बतलाया ॥८१-८२॥ हे रुद्र ! श्रेष्ठ दानव सभी विघ्न करने के लिए आये हैं। ब्रह्माजी ने उन सबों को यहाँ आमन्त्रित किया है, वे सब विघ्न करने का प्रयास कर रहे हैं॥८३॥ जब तक यज्ञ समाप्त नहीं हो जाता है, तब तक हमलोगों को क्षमा करना चाहिए। इस यज्ञ के समाप्त हो जाने पर ही हम देवता युद्ध करेंगे ॥८४॥ हे विभो ! आपको तो ऐसा प्रयास करना चाहिए कि पृथिवी दानवों से रहित हो जाय। इन्द्र को विजय दिलाने के लिए आपको भी मेरे साथ मिलकर युद्ध करना चाहिए ॥८५॥ द्विजों का परिवेष्टन करने वाले रूप से मरुतों की सृष्टि की गयी हैं। दानवों का जो धन है, उसी को लेकर मैं यज्ञ कर रहा हूँ ॥८६॥ यहाँ पर ब्राह्मणों के आ जाने पर तथा लोगों के दुःखी हो जाने पर सेवक रूप से व्यवस्थित हमलोग उन दानवों के धन का ही व्यय करेंगे ॥८७॥ इस तरह से कहने वाले विष्णु को ब्रह्माजी ने कहा— ये क्रुद्ध दनु के पुत्र आपलोगों के साथ युद्ध नहीं करना चाहते हैं। अतएव रुद्र तथा सभी देवताओं के साथ आपको भी इन्हें क्षमा करना चाहिए। सत्ययुग की समाप्ति हो जाने पर जब यह यज्ञ समाप्त हो जायेगा ॥८९॥ मैं आपलोगों को तथा इन श्रेष्ठ दानवों को भेज दूँगा। उसी समय आप सभी लोगों को इन सबों के साथ सन्धि अथवा विग्रह करना चाहिए ॥९०॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** उसके बाद स्वयं ब्रह्माजी ने उन दानवों से कहा— मेरे इस यज्ञ में दानवों को किसी भी प्रकार का विरोध नहीं करना चाहिए ॥९१॥ मेरे इस कार्य में तुम सभी लोगों को मित्रता की भावना से युक्त होना चाहिए। **दानवों ने कहा—** हे पितामह ! हमलोग आपकी सभी आज्ञाओं का पालन करेंगे ॥९२॥ देवता हमारे अनुज हैं, उनलोगों को किसी भी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** दानवों की इस

मुहूर्तं तिष्ठतां तेषामृषिकोटिरुपागता। श्रुत्वा पैतामहं यज्ञं तेषां पूजां तु केशवः ॥९४॥
आसनानि ददौ तेषां तदा देवः पिनाकधृत्। वसिष्ठोर्घं ददौ तेषां ब्रह्मणा परिचोदितः ॥९५॥
गामर्घं च ततो दत्वा पृष्ट्वा कुशलमव्ययम्। निवेशं पुष्करे दत्वा स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥९६॥
ततस्त ऋषयः सर्वे जटाजिनधरास्तथा। शोभयंतः सरः श्रेष्ठं गङ्गामिव दिवौकसः ॥९७॥
मुंडाः काषायिणश्चैके दीर्घश्मश्रुधराः परे। विरलैर्दशनैः केचिच्चिपिटाक्षास्तथा परे ॥९८॥
बृहत्तनूदराः केपि केकराक्षास्तथा परे। दीर्घकर्णा विकर्णाश्च कर्णैश्च त्रुटितास्तथा ॥९९॥
दीर्घफालाविफालाश्च स्नायुचर्मावगुंठिताः। निर्गतं चोदरं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥१००॥
दृष्ट्वा तु पुष्करं तीर्थं दीप्यमानं समंततः। तीर्थलोभान्नरव्याघ्र तस्य तीरे व्यवस्थिताः ॥१०१॥
वालखिल्या महात्मानो ह्यश्मकुट्टास्तथा परे। दंतोलूखलिनश्चान्ये संप्रक्षालास्तथा परे ॥१०२॥
वायुभक्षा जलाहाराः पर्णाहारास्तथा परे। नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थंडिलशायिनः ॥१०३॥
सरस्यस्मिन् मुखं दृष्ट्वा सुरूपास्याः क्षणादभुः। किमेतदितिचिंत्याथ निरीक्ष्य च परस्परम् ॥१०४॥
अस्मिंस्तीर्थेदर्शनेन मुखस्येह सुरूपता। मुखदर्शनमित्येव नाम कृत्वा तु तापसाः ॥१०५॥
स्नाता नियमयुक्ताश्च सुरूपास्ते तदाभवन्। देवपुत्रोपमा जाता अनौपम्यगुणान्विताः ॥१०६॥

वाणी को सुनकर ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये ॥९३॥ उन सबों के मुहूर्त भर ठहरने पर करोड़ो ऋषिगण वहाँ आ गये। वे ब्रह्माजी के यज्ञ के विषय में सुनकर आये थे। उनलोगों की भगवान् विष्णु ने पूजा की उन लोगों को भगवान् शङ्कर ने आसन प्रदान किया। ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके वसिष्ठ महर्षि ने उन ऋषियों को अर्घ प्रदान किया॥९४-९५॥ गौ तथा अश्व प्रदान करके उन ऋषियों से महर्षि वसिष्ठ ने कुशल पूछा। इसके बाद उन लोगों को पुष्कर में निवास प्रदान करके उन्होंने कहा कि आपलोग यहीं निवास करें ॥९६॥ उसके बाद वे सभी जटा तथा मृगचर्म धारण करने वाले ऋषि उस श्रेष्ठ सरोवर को उसी तरह से सुशोभित किए जिस तरह से गङ्गा नदी को देवगण सुशोभित करते हैं ॥९७॥ कुछ ऋषि मुण्ड मुड़ाये हुए तथा गेरुआ वस्त्र धारण किए थे, दूसरे ऋषियों की दाढी लम्बी थी। कुछ लोगो के दाँत विरल (दूर-दूर) थे तो कुछ लोगों के नेत्र चिपटे थे ॥९८॥ कुछ ऋषि विशाल शरीर तथ पेट वाले थे, तो कुछ ऋषि केकराक्ष (टेढे देखने वाले) थे। कुछ लोगों के कान लम्बे थे, कुछ के कान नहीं थे, कुछ के कान टुटे हुए थे ॥९९॥ कुछ लम्बे फाल वाले थे तथा कुछ फाल रहित थे। वे स्नायु तथा चर्म से बँधे थे। उन भक्ति सम्पन्न मुनियों के पेट बढे हुए थे ॥१००॥ उनलोगों ने चारो ओर से देदीप्यमान पुष्कर तीर्थ को देखा, हे नरश्रेष्ठ भीष्मजी ! तीर्थ के लोभ से वे ऋषि उसी सरोवर के तट पर ही व्यवस्थित हो गये ॥१०१॥ उनमें कुछ बालखिल्य महात्मा थे तथा कुछ महात्मा पत्थर से ही कूटकर अन्न खाने वाले (अश्मकुट्ट) थे। कुछ दाँत रूपी ओखली वाले थे। अर्थात् दाँत से ही कूँचकर खाने वाले थे तथा कुछ संप्रक्षाल (अच्छी तरह से धोकर) अन्न ग्रहण करने वाले थे ॥१०२॥ कुछ ऋषि वायु पीकर रहने वाले, कुछ जल पीकर ही रहने वाले, कुछ पत्तों का ही आहार करने वाले थे। अनेक प्रकार के नियमों का पालन करने वाले तथा स्थण्डिल पर सोने वाले थे ॥१०३॥ वे जब इस सरोवर में अपना मुख देखे तो देखते ही क्षणभर में ही सुन्दर मुख वाले हो गये। यह क्या हो गया ? इसतरह से सोचकर वे एक-दूसरे को देखने लगे ॥१०४॥ इस तीर्थ में देखने के ही कारण हमलोगों का मुख सुन्दर हो गया है, यह सोचकर तपस्वियों ने उस तीर्थ का नाम मुखदर्शन तीर्थ रख दिया ॥१०५॥ वे नियम पूर्वक स्नान करने पर सुन्दर रूप वाले हो गये। अनुपम गुणों से युक्त वे देवपुत्र के समान लगने लग गये ॥१०६॥ हे नरश्रेष्ठ ! वे सभी

शोभामाना नरश्रेष्ठ स्थिताः सर्वे वनौकसः । यज्ञोपवीतमात्रेण व्यभजंस्तीर्थमंजसा ॥१०७॥
जुह्वतश्चाग्निहोत्राणि चक्रुश्चविविधाः क्रियाः । चिंतयंतो हि राजेंद्र तपसा दग्धकिल्विषाः ॥१०८॥
न यास्यामो परं तीर्थं ज्येष्ठभावेत्विदं सरः । ज्येष्ठपुष्करमित्येव नाम चक्रुर्द्विजातयः ॥१०९॥
तत्र कुब्जान् बहून्दृष्ट्वा स्थितांस्तीर्थसमीपतः । बभूवुर्विस्मितास्तत्र जना ये च समागतः ॥११०॥
दत्वा दानं द्विजातिभ्यो भांडानि विविधानि च । श्रुत्वा सरस्वतीं प्राचीं स्नातुकामा द्विजा गताः ॥१११॥
सरस्वती तीर्थवरा नानाद्विजगणैर्युता । बदरेंगुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थविभीतकैः ॥११२॥
पौलोमैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा । सरस्वती तीर्थरुहै धर्न्वनैः स्यंदनैस्तथा ॥११३॥
कपित्थैः करवीरैश्च बिल्वैरालातकैस्तथा । अतिमुक्तकपंडैश्च पारिजातैश्च शोभिता ॥११४॥
कदंबवनभूयिष्ठा सर्वसत्वमनोरमा । वाय्वंबुफलपूर्णादैर्दंतोलूखलिकैरपि ॥११५॥
तथाश्मकुट्टमुख्यैश्च वरिष्ठैर्मुनिभिर्वृता । स्वाध्यायघोषसंघुष्टा मृगयूथशताकुला ॥११६॥
अहिंसैर्धर्मपरमैस्तथा चातीव शोभिता । सुप्रभा कांचनाख्या च प्राची नंदा विशालका॥११७॥
स्रोतोभिः पंचभिस्तत्र वर्तते पुष्करे नदी । पितामहस्य सदसि वर्त्तमाने महीतले ॥११८॥
वितते यज्ञवाटे तु स्वागतेषु द्विजादिषु। पुण्याहघौषैर्विततैर्देवानां नियमैस्तथा ॥११९॥
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन् यज्ञविधौ तथा। तत्र चैव महाराज दीक्षिते च पितामहे ॥१२०॥
यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना। मनसा चिंतिताह्यर्था धर्मार्थकुशलास्तथा ॥१२१॥

वनवासी सुशोभित होकर वहाँ रहने लगे। केवल यज्ञोपवीत से नाप कर वे उस तीर्थ को विभाजित किए ॥१०७॥ वे अग्निहोत्र करने वाले थे और अपनी अनेक क्रियाओं को सम्पन्न किए। हे राजेन्द्र ! चिन्तन करने वाले उन तपस्वियों के सारे पाप दग्ध हो गये ॥१०८॥ वे सोचने लगे अब हमलोग किसी दूसरे तीर्थ में नहीं जायेंगे, यह सरोबर ही सबसे बड़ा तीर्थ है। उन ब्राह्मणों ने उस तीर्थ का नाम ज्येष्ठ पुष्कर रख दिया ॥१०९॥ वहाँ तीर्थ के सन्निकट बहुत से कुब्जों को देखकर उन ऋषियों को भाण्ड प्रदान करने के लिए आये हुए देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ ॥११०॥ उन लोगों ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के भाण्डों (पात्रों) का दान दिया उन ब्राह्मणों ने प्राची सरस्वती का नाम सुना तो वे प्राची सरस्वती में स्नान करने के लिए गये ॥१११॥ तीर्थों में श्रेष्ठ सरस्वती नदी के तट पर अनेक ब्राह्मणों का गण था। वैर इंगुदी, काश्मर्य, प्लक्ष (पाकड़) अश्वत्य (पिप्पल) विभीतक ॥११२॥ पौलोम, पलाश, करीर तथा पीलु के वृक्ष जो सरस्वती तीर्थ में उगे थे उनसे तथा धन्वनों तथा रथों से ॥११३॥ कपित्थ (कैंथ) करवीर, विल्व, अम्लातक (अमड़ा) अतिमुक्तक, पण्ड तथा पारिजात वृक्षों से सरस्वती नदी सुशोभित थी ॥११३-११४॥ वहाँ पर बहुत अधिक कदम्ब के वन थे सभी जीवों से वह नदी मनोहर लगती थी। वायु, जल तथा फल का आहार करने वाले तथा दांत से कूंचकर खाने वाले महात्माओ से भी ॥११५॥ वह नदी वरिष्ठ अश्मकुट्ट मुनियों से सुशोभित थी। वहाँ वेदाध्ययन की ध्वनि सुनायी पड़ती थी तथा मृगों के सैकड़ो समूह विचरण करते थे ॥११६॥ अहिंसा को ही परम धर्म मानने वाले मुनियों से वह नदी अत्यन्त सुशोभित थी। पुष्कर तीर्थ में सरस्वती नदी, सुप्रभा, काञ्चना, प्राची सरस्वती, नन्दा तथा विशाला इन पाँच नामों से जानी जाती है ॥११७॥ इन पाँच स्रोतों से सरस्वती नदी पुष्कर में प्रवाहित होती है। पृथिवी पर आयोजित ब्रह्माजी की सभा में ॥११८॥ उस विस्तृत यज्ञशाला में ब्राह्मणों आदि के स्वागत के कार्य, विस्तृत पुण्याहवाचन के ध्वनियों से तथा देवताओं के नियम से॥११९॥ उस यज्ञ के कार्यों में देवताओं के व्यस्त रहने पर तथा हे महाराज ! ब्रह्माजी के दीक्षित होने पर॥१२०॥

उपतिष्ठंति राजेंद्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह । जगुश्च देवगंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१२२॥
वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरंजसा । तस्य यज्ञस्य संपत्या तुतुषुदेर्वता अपि ॥१२३॥
विस्मयं परम जग्मुः किमु मानुषयोनयः । वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे ॥१२४॥
अब्रुवन्नृषयो भीष्म तदा तुष्टा स्सरस्वतीम् । सुप्रभां नाम राजेंद्र नाम्ना चैव सरस्वतीम् ॥१२५॥
ते दृष्ट्वा मुनयः सर्वे वेगयुक्तां सरस्वतीम् । पितामहं भासयंतीं क्रतुं ते बहुमेनिरे ॥१२६॥
एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती । पितामहार्थं सम्भूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम् ॥१२७॥
पुण्यस्य पुण्यताकारि पंचस्रोतास्सरस्वती । सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना चैव सरस्वती ॥१२८॥
यत्र ते मुनयश्शान्ता नाना स्वाध्यायवादिनः । ते समागत्य ऋषयस्सस्मरु श्चसरस्वतीम् ॥१२९॥
साभिध्याता महाभागा ऋषिभिः सत्रयाजिभिः । समास्थिता दिशं पूर्वां भक्तिप्रीता महानदी ॥१३०॥
प्राची पूर्वावहा नाम्ना मुनिवंद्या सरस्वती । इदमन्मयन्हाराज श्रृण्वाश्चर्यवरं भुवि ॥१३१॥
क्षतो मंकणको विप्रः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम् । क्षतात्किल करे तस्य राजन् शाकरसोस्त्रवत् ॥१३२॥
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् । ततस्तस्मिन्प्रनृत्ते तु स्थावरं जंगमं च यत् ॥१३३॥
प्रानृत्यत जगत्सर्वं तेजसा तस्य मोहितम् । शक्रादिभिस्सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः ॥१३४॥
विज्ञप्तस्तत्र वै ब्रह्मा नायं नृत्येत्तथा कुरु । आदिष्टो ब्रह्मणा रुद्र ऋषेरर्थे नराधिप ॥१३५॥
नायं नृत्येद्यथा भीम तथा त्वं वक्तुमर्हसि । गत्वा रुद्रो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव हि ॥१३६॥

सभी कामनाओं की समृद्धि से ब्रह्माजी के यज्ञ करते रहने पर, धर्म एवं अर्थ में प्रवीण पुरुष भी वहाँ चिन्ता करते ही उपस्थित हो जाते थे ॥१२१॥ हे राजेन्द्र ! वे विभिन्न स्थान पर ब्राह्मणों की सेवा में लग जाते थे । देवगन्धर्व वहाँ गायन करते थे और अप्सराएँ नृत्य करती थीं ॥१२२॥ वे सदा दिव्य वाद्यों को बजाते थे । उस यज्ञ की सम्पत्ति से देवता भी सन्तुष्ट हो गये ॥१२३॥ वे भी अत्यन्त आश्चर्यित थे तो मनुष्यों के विषय में क्या कहना है ? ब्रह्माजी का इस प्रकार का यज्ञ जब पुष्कर में हो रहा था ॥१२४॥ हे भीष्म ! उस समय सन्तुष्ट होकर ऋषियों ने सुप्रभा नाम से सरस्वती को कहा ॥१२५॥ उन ऋषियों ने वेग युक्त सरस्वती को पितामह और उनके यज्ञ को प्रकाशित हुयी देखकर बहुत प्रसन्नता का अनुभव किया ॥१२६॥ इस प्रकार से नदियों में श्रेष्ठ सरस्वती नदी पुष्कर में ब्रह्माजी की तथा मनीषी ऋषियों की प्रसन्नता के लिए प्रकट हुयी थीं ॥१२७॥ पवित्र मनुष्य को पवित्र बनाने वाली तथा पाँच स्रोतों में प्रवाहित होने वाली सरस्वती नदी का नाम सुप्रभा तथा सरस्वती है ॥१२८॥ वहाँ पर शान्त मुनिजन अनेक वेदों का स्वाध्याय करते हैं, वे सभी ऋषि आकर सरस्वती देवी का स्मरण किए ॥१२९॥ सत्र में यजन करने वाले उन ऋषियों के द्वारा ध्यान किए जाने पर, उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर पूर्व दिशा में सरस्वती नदी प्रकट हुयी॥१३०॥ मुनियों के द्वारा वंदनीय प्राची सरस्वती पर हुए एक अन्य आश्चर्यमय वृतान्त को मैं बतला रहा हूँ सुनो॥१३१॥ हमने सुना है कि मंकण नामक ब्राह्मण का हाथ कुश के अग्रभाग से कट गया । उस कटे हुए हाथ से शाक का रस प्रवाहित होने लगा ॥१३२॥ वे ब्राह्मण शाक के रस को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर नाचने लगे । उनके नृत्य करते समय संसार के समस्त स्थावर एवं जङ्गम पदार्थ ॥१३३॥ उनके तेज से मोहित होकर नृत्य करने लगे । इस बात को इन्द्र इत्यादि देवताओं और तपस्वी ऋषियों ने ॥१३४॥ ब्रह्माजी से कहा कि आप ऐसा कीजिये कि ये ब्राह्मण नृत्य न करें । हे राजन् ! ब्रह्माजी ने रुद्र को आदेश दिया कि वे ऋषि के पास जायँ ॥१३५॥ उन्होंने कहा कि आप ऋषि से कहें कि वे नृत्य न करें । वहाँ जाकर रुद्र ने अत्यन्त प्रसन्न हुए ऋषि को देखा ॥१३६॥

भो भो विप्रर्षभत्वं हि नृत्यसे केन हेतुना। नृत्यमानेन भवता जगत्सर्वं च नृत्यति ॥१३७॥
तेनायं वारितः प्राह नृत्यन्वै मुनिसत्तमः।

मुनिरुवाच

किं न पश्यसि मे देव कराच्छाकरसोस्रवत् ॥१३८॥
तं तु दृष्ट्वा प्रनृत्तोहं हर्षेण महता वृतः। तं प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम् ॥१३९॥
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्य माम्। एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठो महादेवेन कौरव ॥१४०॥
ध्यायमानस्तदा कोऽयं प्रतिषिद्धोस्मि येन हि। अङ्गुल्यग्रेण राजेंद्र स्वांगुष्ठस्ताडितस्तथा ॥१४१॥
ततो भस्मक्षताद्राजन्निर्गतं हिमपांडुरम्। तद्दृष्ट्वा ब्रीडितश्चासौ प्राह तत्पादयोः पतन् ॥१४२॥
नान्यद्देवादयं मन्ये रुद्रात्परतरं महत्। चराचरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृत् ॥१४३॥
त्वया सृष्टमिदं सर्व वदंतीह मनीषिणः। त्वामेव सर्वं विशति पुनरेव युगक्षये ॥१४४॥
देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं मया कुतः। त्वयि सर्वे च दृश्यन्ते सुराब्रह्मादयोपि ये ॥१४५॥
सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता चयः। त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे भवंतीहाकुतोभयाः ॥१४६॥
एवं स्तुत्वा महादेवमृषिश्च प्रणतोब्रवीत्। भगवंस्त्वत्प्रसादेन तपो न क्षीयते त्विह ॥१४७॥
ततोदेवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत्। तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ॥१४८॥
प्राचीमेवेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहं सदा। सरस्वती महापुण्या क्षेत्रे चास्मिन्विशेषतः ॥१४९॥
न तस्य दुर्लभं किंचिदिहलोके परत्र च। सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥१५०॥

उन्होंने ऋषि से कहा— हे ऋषि श्रेष्ठ ! आप किस कारण से नृत्य कर रहे हैं ? आपके नृत्य करने के कारण सारा संसार नृत्य करने लग गया है ॥१३७॥ रुद्र के द्वारा नृत्य करने से रोके जाने पर ऋषि नृत्य करते हुए ही कहे **मुनि ने कहा**— हे देव ! आप यह नहीं देख रहे हैं कि मेरे हाथ से शाक का रस प्रवाहित हो रहा है ॥१३८॥ उसी को देखकर अत्यधिक हर्षित होकर नृत्य कर रहा हूँ । प्रेम से मोहित मुनि को देखकर जोर से हँसकर रुद्र ने कहा॥१३९॥ हे विप्र इसको देखकर मैं तो आश्चर्यित नहीं हूँ । आप देखिये मुझको; हे कौरव भीष्म जी ! महादेव शङ्करजी के द्वारा इसतरह से कहने पर ॥१४०॥ इसके बाद ध्यान करके महर्षि ने जानना चाहा कि ये कौन पुरुष हैं जो मुझे रोक रहे है ? हे राजेन्द्र ! रुद्र ने अपने अङ्गुलियों के अग्रभाग से अपने अङ्गूठे को ठोका ॥१४१॥ उसके बाद उस घाव से वर्फ के समान श्वेत वर्ण का भस्म निकला । उसको देखकर लज्जित हुए ऋषि शङ्कर के पैरों पर गिर पड़े और कहे ॥१४२॥ मैं रुद्र से बढकर किसी भी देवता को नहीं मानता हूँ । हे त्रिशूलधारी ! चराचरात्मक जगत् के आप ही आश्रय हैं ॥१४३॥ मनीषी पुरुष कहते हैं कि आपने ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की है और जब युग की समाप्ति होती है तो प्रलय काल में सम्पूर्ण जगत् आप में ही प्रविष्ट हो जाता है ॥१४४॥ आपको तो देवगण भी तत्त्वतः नहीं जान पाते हैं, तो मैं कैसे जान पाऊँगा ? समस्त ब्रह्मा आदि देवता आप में ही दिखायी पड़ते हैं ॥१४५॥ आप ही देवताओं के सब कुछ करने वाले तथा उनसे कराने वाले हैं । आपकी कृपा प्राप्त करके सभी देवता इस संसार में निर्भय हो जाते हैं ॥१४६॥ इसतरह से महादेव शिवजी की स्तुति करके ऋषि ने उनको प्रणाम करके कहा— हे भगवन् ! आपकी ही कृपा से यहाँ पर मेरा तप क्षीण नहीं होता है ॥१४७॥ उसके बाद प्रसन्न होकर शङ्करजी ने ऋषि ने कहा हे ब्रह्मण ! मेरी कृपा से आपकी तपस्या हजारो गुणा बढेगी ॥१४८॥ मैं इस प्राची सरस्वती में ही मैं आपके साथ निवास करूँगा । विशेष रूप से इस क्षेत्र में सरस्वती नदी अत्यधिक पुण्य

प्राची तटे जाप्यपरो नचेह म्रियते पुनः। अल्पतो वाजिमेधस्य फलमाप्स्यति पुष्कलम् ॥१५१॥
नियमैश्चोपवासैश्च कर्शयन्देहमात्मनः । जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च तापसः ॥१५२॥
तथास्थंडिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक्। करोति योद्विजश्रेष्ठो नियमांस्तान् व्रतानि च ॥१५३॥
स याति शुद्धदेहश्च ब्रह्मणः परमं पदम् । तस्मिंस्तीर्थे तु यैर्दत्तं तिलमात्रं तु कांचनम्॥१५४॥
मेरुदानसमं तत्स्यात्पुरा प्राह प्रजापतिः । तस्मिंस्तीर्थे तु ये श्राद्धं करिष्यंति हि मानवाः॥१५५॥
एकविंशकुलोपेताः स्वर्गं यास्यंति ते नराः । पितॄणां च शुभं तीर्थं पिण्डेनैकेन तर्पिताः ॥१५६॥
ब्रह्मलोकं गमिष्यंति स्वपुत्रेणेह तारिताः । भूयश्चान्नं न चेच्छंति मोक्षमार्गं व्रजंति ते ॥१५७॥
प्राचीनत्वं सरस्वत्या यथाभूतं शृणुष्व तत्। सरस्वती पुरा प्रोक्ता देवैः सर्वैः सवासवैः ॥१५८॥
तटं त्वया प्रयातव्यं प्रतीच्यां लवणोदधेः । बडवाग्निमिमं नीत्वा समुद्रे निक्षिपस्व ह ॥१५९॥
एवं कृते सुराः सर्वे भवंति भयवर्जिताः। अन्यथाबाडवाग्निस्तु दहते स्वेन तेजसा ॥१६०॥
तस्माद्रक्षस्व विबुधानेतस्मादचिराद्भयात्। मातेव भव सुश्रोणि सुराणामभयप्रदा ॥१६१॥
एवमुक्ता तु सा देवी विष्णुना प्रभविष्णुना। आह नाहं स्वतंत्रास्मि पिता मे व्रियतां स्वराट्॥१६२॥
तदाज्ञाकारिणी नित्यं कुमारीह धृतव्रता । पित्रादेशाद्विना नाहं पदमेकमपि क्वचित् ॥१६३॥
गच्छामि तस्मात्कोप्यन्य उपायश्चिंत्यतामहो । तदाशयं विदित्वाहुस्ते समेत्य पितामहम्॥१६४॥
नान्येन शक्यत नेतुं बडवाग्निः पितामह। अदृष्टदोषाम्मुक्त्वैकां कुमारीं तनयां तव ॥१६५॥

प्रदान करने वाली है ॥१४९॥ जो व्यक्ति इस सरस्वती नदी के उत्तर तट पर आपने शरीर का परित्याग करेगा, उसको इस लोक में तथा परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा ॥१५०॥ जो व्यक्ति प्राची सरस्वती नदी के तट पर जप करता है, उसकी पुनः मृत्यु नहीं होती है; अर्थात् वह मुक्त हो जाता है । इस नदी में स्नान करने वाले को अश्वमेघ यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥१५१॥ यहाँ पर नियम पूर्वक उपवास करते हुए जो तपस्वी अपने शरीर का शोषण जल पीकर, वायु पीकर या पत्तों का आहार करके करता है ॥१५२॥ स्थण्डिल (वेदी) पर सोता है, इसके अतिरिक्त अन्य नियमों का पालन करता है तथा श्रेष्ठ नियमों और व्रतों का पालन करता है ॥१५३॥ वह शुद्ध देह ब्राह्मण परमपद को प्राप्त करता है । जो इस तीर्थ में तिल के बराबर भी सुवर्ण का दान करता है, उसके द्वारा किया गया वह दान सुमेरु के दान के समान होता है । इस बात को प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने कहा है । उस तीर्थ में जो मनुष्य अपने पितरों का श्राद्ध करेंगे, वे अपने इक्कीस पीढी के पितरों के साथ स्वर्गलोक में चले जायेंगे । यहाँ एक ही पिण्ड का दान करने से पितरों को तृप्ति हो जाती है ॥१५४-१५६॥ वे अपने पुत्र के द्वारा तारे जाकर ब्रह्मलोक में जाते हैं । वे फिर अन्न प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते है, वे मुक्त हो जाते हैं । यह प्राची सरस्वती कैसे हुयी इस बात को आप सुनें । प्राचीन काल में इन्द्र आदि देवताओं ने सरस्वती से कहा ॥१५७-१५८॥ आप पश्चिम दिशा में क्षार समुद्र के तट पर जायँ और इस बाडवाग्नि को लेकर पश्चिम समुद्र में डाल दें ॥१५९॥ ऐसा करने से सभी देवता निर्भय हो जायेंगे, अन्यथा यह बाडवग्नि अपने तेज से सबों को जलाता रहता है ॥१६०॥ अतएव आप शीघ्र ही देवताओं को इस भय से रक्षा करें । हे सुश्रोणि ! देवताओं को अभय प्रदान करके आप उनकी माता के समान हो जायँ ॥१६१॥ इसतरह से प्रभविष्णु भगवान् विष्णु के द्वारा कहे जाने पर सरस्वती ने कहा— मैं स्वतंत्र नहीं हूँ इसके लिए आप मेरे पिता ब्रह्माजी से कहें ॥१६२॥ मैं कुमारी हूँ, व्रत धारण करने वाली हूँ, सदा उनकी आज्ञा का पालन करती हूँ पिता के आदेश के बिना मैं कहीं एक डग भी नहीं जा सकती हूँ ॥१६३॥ अतएव आप

सरस्वतीं सामानीय कृत्वांकेवरवर्णिनीम् । शिरस्याघ्राय सस्नेहमुवाचाथ सरस्वतीम् ॥१६६॥
मां च देवि सुराः प्राहुः सत्वं ब्रूहि यशस्विनीम् । नीत्वा विनिक्षिपेदेनं बाडवं लवणांवुनि ॥१६७॥
पितुर्वाक्यं हि तच्छुत्वा वियुक्ता कुररी यथा। पित्रा तदैव सा कन्या रुरुदे दीनमानसा ॥१६८॥
शोभते तन्मुखं तस्याः शोकबाष्पाविलेक्षणम्। सितं विकसितं तद्वत्पद्मं तोयकणोक्षितम् ॥१६९॥
तत्तथाविधमालोक्य पितामह पुरस्सराः। बिबुधाः शोकभावस्य सर्वे वशमुपागताः ॥१७०॥
संस्तभ्य हृदयं तस्याः शोकसंतापितं तदा। पितामहस्तामुवाच मारोदी र्नास्ति ते भयम् ॥१७१॥
मानलाभश्च भविता तव देवानुभावतः। नीत्वा क्षारोदमध्ये तु क्षिपस्वज्वलनं सुते॥१७२॥
एवमुक्ता तु सा बाला बाष्पाकुलितलोचना । प्रणम्य पद्मजन्मानं गच्छाम्युक्तवती तु सा ॥१७३॥
मा भैरुक्ता पुनस्तैस्तु पित्रा चापि तथैव सा। त्यक्त्वाभयं हृष्टमनाः प्रयातुं समवस्थिता॥१७४॥
तस्याः प्रयाणसमये शंखदुंदुभिनिस्वनैः। मंगलानां च निर्घोषै र्जगदापूरितं शुभैः ॥१७५॥
सितांबरधरा धन्या सितचंदनमंडिता । शरदंबुजसच्छायतारहारविभूषिता ॥१७६॥
संपूर्णचंद्रवदना पद्मपत्रायतेक्षणा । शुभां कीर्तिं सुरेशस्य पूरयंती दिशो दश ॥१७७॥
स्वतेजसा तद्धृदया निःसृता भासयञ्जगत्। अनुव्रजन्ती तां गंगा तयोक्ता वरवर्णिनी ॥१७८॥
द्रक्ष्यामि त्वां पुनरहं प्रयासि कुत्र मे सखि । एवमुक्ता तु सा गंगा प्रोवाच मधुरांगिरम् ॥१७९॥
यदैवायास्यसि प्राची दिशं मां पश्यसे शुभे। बिबुधैस्त्वं परिवृता दर्शनं तव संश्रये ॥१८०॥

कोई दूसरा उपाय सोचें । सरस्वती देवी के अभिप्राय को जानकर सभी देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा ॥१६४॥ हे पितामह ! वाडवाग्नि को कोई दूसरा नहीं ले जा सकता है । केवल आपकी कुमारी कन्या सरस्वती ही इस काम को कर सकती हैं । इनमें कोई भी दोष नहीं है ॥१६५॥ इसके बाद ब्रह्माजी ने सरस्वती को बुलाकर उन्हें अपनी गोद में बैठाया और उनका सिर सूंधा, उसके बाद उन्होंने प्रेमपूर्वक सरस्वती से कहा ॥१६६॥ हे देवि ! देवताओं ने मुझसे प्रार्थना की है कि आप सरस्वती से कहें कि वे बाडवाग्नि को क्षार समुद्र में डाल दें ॥१६७॥ अपने पिता की बात को सुनकर चक्रवाकी के समान ब्रह्माजी से अलग होकर सरस्वती दीन होकर रोने लगीं ॥१६८॥ उस समय सरस्वती देवी के मुख और नेत्र आंसुओं से भरे होने पर भी सुशोभित हुए । लगता था कि जैसे विकसित श्वेत कमल के ऊपर ओस कण पड़ें हों ॥१६९॥ उनको वैसा देखकर पितामह ब्रह्माजी सहित सभी देवता शोक सन्तप्त हो गये॥१७०॥ ब्रह्माजी ने सरस्वती के शोक संतप्त हृदय को पकड़कर कहा रोओ मत तुमको किसी भी प्रकार का भय नहीं है ॥१७१॥ देवताओं के प्रभाव से तुमको सम्मान मिलेगा । पुत्रि ! इस अग्नि को लेजाकर तुम क्षार समुद्र में जल में फेक दों ॥१७२॥ ब्रह्माजी की इस वाणी को सुनकर आंसू भरे नेत्रों वाली सरस्वती ने ब्रह्माजी को प्रणाम करके कहा— मैं जा रही हूँ ॥१७३॥ इसके बाद देवताओं तथा ब्रह्माजी ने सरस्वती से कहा किसी प्रकार का भय मत करो । इसके बाद भय का परित्याग करके प्रसन्नता पूर्वक सरस्वती देवी जाने के लिए तैयार हो गयी ॥१७४॥ सरस्वती देवी के जाने के समय शंख, दुन्दुभि इत्यादि मङ्गलमय वाद्यों की ध्वनि से सारा संसार गुञ्जित हो उठा॥१७५॥ श्वेत वस्त्र धारण की हुयी, प्रशंसनीय श्वेत चन्दन से मण्डित शरत् कालीन कमल के समान मनोहर मोतियों की माला से मनोहर बनी हुयी सरस्वती देवी ॥१७६॥ का मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमा के समान आह्लादक था, कमलदल के समान उनके नेत्र विस्तृत थे । दशो दिशाओं में वे ब्रह्माजी के पवित्र यश को फैला रही थी ॥१७७॥ उनके ही तेज से उनके हृदय से जगत् को प्रकाशित करती हुयी सरस्वती नदी निकल पड़ी । उनके पीछे-पीछे चलती

उदङ्मुखी तदा भूत्वा त्यज शोकं शुचिस्मिते। अहं चोदङ्मुखी पुण्या त्वंतु प्राची सरस्वति ॥१८१॥
तत्र क्रतुशतं पुण्यं स्नानदानेन सुव्रते। श्राद्धदाने तथा नित्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥१८२॥
ये करिष्यंति मनुजा विमुक्तास्त ऋणैस्त्रिभिः। मोक्षमार्गं गमिष्यंति विचारो नात्र विद्यते ॥१८३॥
तामुवाच ततो गंगा पुनर्दर्शनमस्तु ते। गच्छ स्वमालयं भद्रे स्मर्तव्याहं त्वयानघे ॥१८४॥
यमुना पि तथैवं सा गायत्री च मनोरमा। सावित्र्या सहिताः सर्वाः सखीं संप्रैषयंस्तथा ॥१८५॥
ततोविसृज्य तान्देवान्नदी भूत्वा सरस्वती। उत्तंकस्याश्रम पदं उद्भूता सा मनस्विनी ॥१८६॥
अधस्तात्प्लक्षवृक्षस्य अवरोप्य च तां तनुम्। अवतीर्णा महाभागा देवानां पश्यतां तदा ॥१८७॥
विष्णुरूपस्तरुः सोऽत्र सर्वदेवैस्तु वंदितः। संसेव्यश्च द्विजैर्नित्यं फलहेतोर्महोदयः ॥१८८॥
अनेकशाखावितत श्चतुर्मुख इवापरः। तत्कोटरकुटीकोटिप्रविष्टानां द्विजन्मनाम् ॥१८९॥
श्रूयंते विविधा वाचः सुराणां रक्तचेतसाम्। वनस्पतिरपुष्पोपि पुष्पितश्चोपलक्ष्यते ॥१९०॥
जातीचंपकवत्पुष्पैः शाखालग्नैः शुकैः शुभैः। केतकीभिः सुरभिभिरशोभत सरिद्वरा ॥१९१॥
कोकिलाभिस्समालेव फेनकैः पुष्पितेव सा। हरेणेव यथा गंगा प्लक्षेणैव हि सा तथा ॥१९२॥
तत्रांभस्थ तदा देवं प्रोवाचाथ जनार्दनम्। समर्पयस्व तं वह्निं देवादेशं करोम्यहम् ॥१९३॥
एवमुक्तेन सा तेन प्रत्युक्ता विष्णुना तदा। न ते दाहभयं त्याज्यस्त्वयायं वह्निराट् स्वयम् ॥१९४॥

हुयी गङ्गा देवी को सरस्वती ने कहा ॥१७८॥ हे सखि ! मैं पुनः तुमसे मिलूंगी, तुम कहाँ तक जाओगी ? इस तरह से सरस्वती के कहने पर गङ्गा ने मधुर वाणी में कहा ॥१७९॥ जब तुम पूर्व दिशा में आओगी तो तुम मुझको देखोगी। देवताओं से घिरी हुयी तुम मुझे दर्शन दोगी ॥१८०॥ हे शुचिस्मिते ! तुम उत्तराभिमुखी होकर अपने शोक का परित्याग कर दो। मैं उत्तर वाहिनी होकर अत्यन्त पवित्र हो जाती हूँ तथा तुम प्राची सरस्वती के रूप में परम पवित्र होती हो ॥१८१॥ हे सुव्रते ! प्राची सरस्वती में स्नान और दान करने से सैकड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है। वहाँ पर श्राद्ध करने से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है ॥१८२॥ जो मनुष्य प्राची सरस्वती में श्राद्ध करके दान करेंगे वे तीनों ऋणों से मुक्त हो जायेंगे। वे लोग निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त करेंगे ॥१८३॥ सरस्वती ने गङ्गा से कहा अब फिर तुम्हारा दर्शन कब होगा। हे अनघे ! तुम अपने घर जाओ, मेरी भी याद रखना ॥१८४॥ उसी तरह से यमुना, मनोरमा, गायत्री तथा सावित्री ने भी अपनी सखी सरस्वती को भेजा ॥१८५॥ उसके बाद उन देवताओं से विदा लेकर सरस्वती ने नदी का रूप धारण कर लिया। उसके बाद मनस्विनी सरस्वती नदी उत्तंकमुनि के आश्रम में प्रकट हुयीं ॥१८६॥ उन्होंने अपने उस शरीर को पाकड़ वृक्ष की जड़ में स्थापित कर दिया और वे सभी देवताओं के सामने ही नदी के रूप में अवतीर्ण हो गयीं ॥१८७॥ वह वृक्ष विष्णु स्वरूप है, सभी देवता उनकी वंदना करते हैं अतएव वह फल चाहने वालों के द्वारा सेवनीय हैं ॥१८८॥ वह दूसरे ब्रह्मा के समान है। उसकी अनेक शाखायें फैली हुयी हैं। उस वृक्ष के कोटर में उसमें प्रवेश किए हुए ऋषियों की करोड़ों कुटिया हैं ॥१८९॥ उसमें अनुरक्त अन्तःकरण वाले देवताओं की अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। वह पुष्परहित भी वनस्पति पुष्पित के समान दिखता है ॥१९०॥ उसकी शाखा में बैठे हुए सुन्दर शुक पक्षी चमेली तथा चम्पा के पुष्पों के समान प्रतीत होते हैं। वह श्रेष्ठ नदी सुगन्धित केतकी पुष्प के समान सुशोभित होती हैं ॥१९१॥ कोकिलाओं के द्वारा वह माला से युक्त के समान प्रतीत होती है और फेनों के द्वारा पुष्पित के समान लगती है। जिसतरह गंगाजी को शङ्करजी धारण करते हैं, उसीतरह सरस्वती नदी को वह प्लक्ष वृक्ष धारण करता है ॥१९२॥ वहाँ पर जल में

पश्चिमं सागरं नेतुं बाडवज्वलनं शुभे। एवं क्रमेण गच्छंत्या तदा सःप्राप्स्यते शुभे ॥१९५॥
ततस्तं शातकुंभस्थं कृत्वासौ बडवानलम् । समर्पयत गोविंदः सरस्वत्या महोदरे ॥१९६॥
सा तं गृहीत्वा सुश्रोणी प्रतीच्यभिमुखी ययौ । अंतर्द्धानेन संप्राप्ता पुष्करं सा महानदी॥१९७॥
मर्यादापर्वते तस्मिन्संभूता विमला सरित्। पुष्करारण्यं विपुलं सुरसिद्धनिषेवितम्॥१९८॥
पितामहेन यत्रासीद्यज्ञसत्रं निषेवितम् । सिध्यर्थं मुनिमुख्यानामागताऽसौ महानदी ॥१९९॥
येषु तत्र कृतो होमः कुंडेष्वासीद्विरिंचिना । तानि सर्वाणि संप्लाव्य तोयेनाप्युद्गताहि सा ॥२००॥
तत्र क्षेत्रे महापुण्या पुष्करे सा तथोत्थिता । तेन तत्पूरणं प्रोक्तं वायुना जगदायुषा ॥२०१॥
सापि तत्क्षेत्रमासाद्य पुण्यं पुण्या महानदी। सरस्वती स्थिता देवी मर्त्यानां पापनाशिनी॥२०२॥
तत्र ये शुभकर्माणः पुष्करस्थां सरस्वतीम् । पश्यंति ते नपश्यंति सुघोरां तामधोगतिम् ॥२०३॥
यः पुनस्तत्र भावेन नरः स्नानं समाचरेत् । स ब्रह्मलोकमासाद्य ब्रह्मणा सह मोदते ॥२०४॥
यस्तु दद्यात्तत्र दधि ब्राह्मणाय मनोरमम्। सोप्यग्निलोकमासाद्य भुंक्ते भोगान्सुशोभनान्॥२०५॥
वरं प्रावरणं योपि भक्त्यादद्याद्द्विजातये। सोपि सद्वस्त्रदा नस्य फलं दशगुणं लभेत्॥२०६॥
ज्येष्ठकुंडे नरः स्नात्वा यःसंतर्पयते पितॄन् । स तानुद्धरते सर्वान्नरकादपि शुद्धधीः॥२०७॥
क्षेत्रे पैतामहे पूते पुण्यां प्राप्य सरस्वतीम् । नरः किंप्रार्थयेदन्यत्तीर्थं ब्रह्मसुतोऽब्रवीत्॥२०८॥

विद्यमान सरस्वती देवी ने भगवान् विष्णु से कहा— आप मुझे अग्नि को प्रदान कीजिये मैं देवताओं के आदेश का पालन करूँगी ॥१९३॥ इसप्रकार से भगवान् विष्णु ने सरस्वती से कहा तुमको दाह का किसी प्रकार से भय नहीं है, इस महा अग्नि को तुम्हें पश्चिम सागर में छोड़ना है ॥१९४॥ हे शुभे ! पश्चिम सागर में वाडवाग्नि को ले जाने के लिए इसतरह क्रमश जाते हुए वह समुद्र मिलेगा ॥१९५॥ उसके बाद भगवान् गोविन्द ने वाडवाग्नि को सुवर्ण के घड़े में रखकर सरस्वती को समर्पित किया और सरस्वती देवी ने उसके अपने उदर में रख लिया ॥१९६॥ उस बाडवाग्नि को लेकर सरस्वती नदी पूर्वाभिमुख होकर प्रस्थान की वे अन्तर्द्धान होकर चलती हुयी पुष्कर क्षेत्र में प्रकट हुयीं ॥१९७॥ देवताओं से सेवित पुष्करारण्य के मर्यादा पर्वत पर वे प्रकट हुयी ॥१९९॥ वहीं पर ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था, उन महामुनियों को सिद्धि प्रदान करने के लिए वे श्रेष्ठ नदी वहाँ आयीं ॥१९९॥ जिन कुण्डों में ब्रह्माजी ने होम किया था उन समस्त कुण्डों को उन्होंने जल से भर दिया और वहीं वे प्रकट हुयीं ॥२००॥ उस अत्यन्त पवित्र पुष्कर में सरस्वती नदी उद्भुत हुयी । इसलिए उस तीर्थ का नाम पूरण तीर्थ पड़ा । संसार को आयु प्रदान करने वाले वायु भी वहाँ आये ॥२०१॥ मनुष्यों का पाप नाश करने वाली अत्यन्त पवित्र वह सरस्वती देवी वहाँ स्थिर हो गयीं ॥२०२॥ जो पवित्र कर्म करने वाले मनुष्य वहाँ जाकर सरस्वती नदी का दर्शन करते हैं वे अधोगति को नहीं जाते हैं ॥२०३॥ जो व्यक्ति वहाँ आकर भक्ति भाव पूर्वक स्नान करता है वह ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी के साथ आनन्दानुभव करता है ॥२०४॥ जो व्यक्ति वहाँ ब्राह्मण को सुन्दर दधि का दान करता है, वह अग्नि लोक में जाकर सुन्दर भोगों को भोगता है ॥२०५॥ जो व्यक्ति वहाँ पर अच्छे वस्त्रों का दान ब्राह्मण को देता है, वह वस्त्र दान के दश गुणा अधिक फल को प्राप्त करता है ॥२०६॥ यदि कोई मनुष्य ज्येष्ठ पुष्कर में स्नान करके अपने पितरों का तर्पण करता है वह शुद्ध बुद्धि वाला मनुष्य अपने पितरों का नरक से भी उद्धार कर देता है ॥२०७॥ ब्रह्माजी के पवित्र क्षेत्र में सरस्वती तीर्थ को प्राप्त करके अन्य तीर्थों से क्या प्रार्थना करे यह ब्रह्माजी के पुत्र ने कहा है ॥२०८॥ अतएव सभी तीर्थों में स्नान करके जिस फल की प्राप्ति होती है, उन सभी फलों को मनुष्य ज्येष्ठ कुण्ड

तस्मात्सर्वेषु तीर्थेषु स्नातः प्राप्नोति यत्फलम्। तत्सर्वं प्राप्नुयान्मर्त्यो ज्येष्ठकुंडे सकृत्प्लुतः ॥२०९॥
किमत्र बहुनोक्तेन क्षेत्रं तीर्थं गतिश्शुभा। येनैत्त्रितयं प्राप्तं प्राप्ता तेन गतिः परा ॥२१०॥
कालेक्षेत्रे तथातीर्थे स्नात्वा हुत्वापि तत्र यः। प्रयच्छतो द्विजायार्थं सोऽनंतं सुखमश्नुते ॥२११॥
कार्त्तिके मासि शुक्ले च वैशाखे शशिभूषणे। चंद्रसूर्योपरागे च काले च कुरुजांगले ॥२१२॥
क्षेत्रेष्वेतेषु तीर्थानि यान्युक्तानि मुनीश्वरैः। तेषां पुण्यतमं तीर्थमिदमाह पितामहः ॥२१३॥
कुंडे तु मध्यमे स्नात्वा कार्तिक्यां यः पुमान्द्विजे। प्रयच्छते चापि द्रव्यं सोश्वमेधमवाप्नुयात् ॥२१४॥
एवं कनिष्ठकेप्यत्र कुंडे स्नात्वा समाधिना। यः प्रयच्छति विप्राय सुरूपामपि शालिकाम् ॥२१५॥
स प्रयाति नरः क्षिप्रमग्निलोकं मनोरमम्। त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो भुंक्ते तत्र महाफलम् ॥२१६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गमनाय मतिः स्थिरा। पुरुषेण तु कर्तव्या पुष्करावाप्तये शुभा ॥२१७॥
पुष्करारण्यमासाद्य प्राची यत्र सरस्वती। मतिः स्मृतिः शुभा प्रज्ञा मेधा बुद्धि र्दया परा॥२१८॥
सरस्वत्यास्तु पर्यायाष्षडेते संप्रकीर्तिताः। ततः प्रभृति यत्रासौ प्राची भूता सरस्वती ॥२१९॥
तत्रस्थं तज्जलं येऽपि पश्यंति तटसंस्थिताः। तेप्यश्वमेधस्य फलं लभंते नात्र संशयः ॥२२०॥
योवतीर्य पुनस्तत्र कश्चित्स्नानं समाचरेत्। नरः समाधियुक्तो वै ब्रह्मणोऽनुचरो भवेत् ॥२२१॥
शाकादिनापि हि पितॄन्यस्तत्रार्चयते नरः। सोप्येति विपुलान्भोगांस्तेषामेवानुभावतः ॥२२२॥
ये पुनर्विधिना तत्र श्राद्धं कुर्वंति मानवाः। ते नयंति पितॄन्स्वर्गं नरकादपि दुःखदात् ॥२२३॥
तृप्यंति पितरस्तस्य यस्तत्र कुशमिश्रितम्। स्नात्वा प्रयच्छते तोयं पूतं तेषां तिलान्वितम् ॥२२४॥

में एक बार स्नान करके ही प्राप्त कर लेता है ॥२०९॥ इस विषय में बहुत अधिक क्या कहना है जिसने, जिसने उत्तम क्षेत्र, उत्तम तीर्थ तथा उत्तम गति इन तीनों को प्राप्त कर लिया उसने परमागति को प्राप्त कर लिया ॥२१०॥ जो व्यक्ति पुण्यकाल, पवित्र क्षेत्र तथा पवित्र तीर्थ में स्नान और होम करके ब्राह्मणों को धन दान करता है वह अनन्त सुख को प्राप्त करता है ॥२११॥ कार्तिक मास तथा वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में तथा चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण के समय कुरुजाङ्गल प्रदेश में ॥२१२॥ मुनीश्वरों ने इन क्षेत्रों में जिन तीर्थो को बतलाया है, उन सभी तीर्थों में इस ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ को सबसे बड़ा तीर्थ ब्रह्माजी ने बतलाया है ॥२१३॥ जो व्यक्ति कार्तिक मास की पूर्णिमा को पुष्कर के मध्यपुष्कर में स्नान करके ब्रह्मण को द्रव्य दान करता है वह अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है॥२१४॥ इसीतरह छोटे पुष्कर कुण्ड में भी भक्ति पूर्वक स्नान करके जो ब्राह्मण को सुन्दर शाल दान करता है॥२१५॥ वह भी शीघ्र ही सुन्दर अग्नि लोक में जाता है और वहाँ पर अपने इक्कीस पीढ़ी के पूर्वजों के साथ महान् फल का भोग करता है ॥२१६॥ अतएव पुरुष को चाहिए कि वह हर प्रकार के प्रयास पूर्वक पुष्कर क्षेत्र में जाने का दृढ निश्चय करे ॥२१७॥ मति, स्मृति, मेधा, प्रज्ञा तथा दया ये सरस्वती के पर्याय माने गये हैं, जो व्यक्ति पुष्कर तीर्थ में आकर जहाँ पर प्राची सरस्वती हैं, वहाँ पर तट पर खड़ा होकर जल का दर्शन कर लेने मात्र से भी अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है॥२१८-२२०॥जो व्यक्ति सरस्वती नदी में प्रवेश करके भक्ति पूर्वक स्नान करता है, वह मृत्यु के बाद ब्रह्माजी का अनुचर होता है ॥२२१॥ जो व्यक्ति शाक इत्यादि से भी पितरों की पूजा करता है, वह उन पितरों की ही कृपा से विपुल मात्रा में भोगों को प्राप्त करता है ॥२२२॥ जो व्यक्ति वहाँ पर विधिपूर्वक श्राद्ध करते हैं वे लोग दुःखद नरक से भी अपने पितरों का उद्धार कर लेते हैं ॥२२३॥ जो व्यक्ति वहाँ कुश और तिल लेकर स्नान करके पितरों का तर्पण करते हैं उनके भी पितृगण तृप्त हो जाते हैं ॥२२४॥ सभी तीर्थों से यह पुष्कर तीर्थ ही अधिक

सर्वेषामेव तीर्थानामिदमेवाधिकं स्मृतम् । आदितीर्थमिदं तस्मात्तीर्थानां भुवि विश्रुतम् ॥२२५॥
धर्मापवर्गयोः क्रीडा निधिभूतमवस्थितम् । सरस्वत्या पुनश्चैव समेतं गुणवत्तरम् ॥२२६॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामपि दायकम् । येप्यत्र मलनाशाय पुमांसो विविशुर्जलम् ॥२२७॥
गोप्रदानसमं तेषां सुखेनैव फलं भवेत् । सुवर्णदानेन सममेवमाहुर्मनीषिणः ॥२२८॥
तर्पणात्पिंण्डदानाच्च नरकेष्वपि संस्थिताः । स्वर्गं प्रयान्ति पितरस्तत्र पुत्रेणतारिताः ॥२२९॥
पुष्करेपि सरस्वत्यां ये पिबन्ति जलं जनाः । ते लभन्तेऽक्षयान् लोकान् ब्रह्मविश्वेशवंदितान् ॥२३०॥
स्वर्गनिश्रेणिकाभूता पुष्करे च सरस्वती । सापुण्यवद्भिस्संप्राप्तुं पुंभिश्शक्या महानदी ॥२३१॥
मुनिभिर्धर्मतत्त्वज्ञै स्तत्र तत्र निषेविता । तस्मात्सर्वत्र सा देवी पवित्रा सर्वतस्स्थिता ॥२३२॥
पुष्करे तु विशेषेण पूतात्पूततमाहि सा । नदी सरस्वती पुण्या सुलभा जगति स्थिता ॥२३३॥
दुर्लभा सा कुरुक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा । तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां प्रवरं विहितं भुवि ॥२३४॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामपि साधकम्। प्राचीं सरस्वतीं प्राप्य योन्यत्तीर्थं हि मार्गति॥२३५॥
स करस्थं समुत्सृज्य ह्यमृतं विषमिच्छति । ज्येष्ठे ज्येष्ठ प्रयागस्य मध्ये मध्यमास्मृता ॥२३६॥
प्रदक्षिणं ततो गच्छेत्कनीयांसं विचक्षणः। त्रिष्वप्येतेषु स्नायीत कुर्याच्चापि प्रदक्षिणम् ॥२३७॥
प्रयच्छति पितृभ्यो यस्तोयं तेषां तिलान्वितम्। तेपि तुष्टाः पुनस्तस्य प्रयच्छंत्यमितं फलम् ॥२३८॥
यः स्नात्वा प्रयतो नित्यं ततः पश्येत्पितामहम् । अनुलोमविलोमाभ्यां तथा व्यस्तसमस्तयोः ॥२३९॥

पवित्र है, उसी के कारण यह पुष्कर तीर्थ ही पृथिवी पर आदि तीर्थ के नाम से विख्यात है ॥२२५॥ यह तीर्थ धर्म तथा मोक्ष का क्रीडा निधि स्वरूप है और सरस्वती का संयोग प्राप्त करके और अधिक गुण सम्पन्न हो गया है॥२२६॥ यह तीर्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है । जो लोग शरीर का मल धोने के लिए जल में प्रवेश करते हैं ॥२२७॥ उनको भी बड़ी आसानी से गोदान करने का फल प्राप्त होता है। उसे मनीषियों ने सुवर्ण दान करने के फल के समान फल बतलाया है ॥२२८॥ यहाँ पर तर्पण तथा पिण्डदान करने से नरक मे भी विद्यमान पितृगण उस पुत्र के द्वारा तारे जाकर स्वर्ग में चले जाते हैं ॥२२९॥ पुष्कर तीर्थ में जो लोग सरस्वती नदी का जल पीते हैं, वे लोग ब्रह्माजी तथा श्रीशङ्करजी के द्वारा वन्दित अक्षय लोक में जाते हैं ॥२३०॥ पुष्कर तीर्थ में सरस्वती नदी स्वर्ग की सीढी के समान है । उस महानदी को कोई पुण्यवान् मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है ॥२३१॥ उसका स्थान-स्थान पर सेवन धर्म तत्त्वों के ज्ञाता मुनिजन करते हैं । इसलिए सरस्वती देवी सभी स्थानों पर पवित्र मानी गयी हैं ॥२३२॥ पुष्कर तीर्थ में वह नदी विशेष रूप से अत्यन्त पवित्र मानी गयी है । पवित्र सरस्वती नदी संसार में अन्यत्र सुलभ है ॥२३३॥ वह प्रभास क्षेत्र तथा कुरुक्षेत्र तथा पुष्कर क्षेत्र में दुर्लभ है । पुष्कर तीर्थ पृथिवी के सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है ॥२३४॥ वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है । प्राची सरस्वती को प्राप्त करके जो मनुष्य दूसरे तीर्थ का अन्वेषण करता है ॥२३५॥ वह हाथ में आये हुए अमृत का परित्याग करके विष को प्राप्त करना चाहता है । ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ पुष्कर में स्नान करके उसकी प्रदक्षिणा करने से प्रयाग की प्रदक्षिणा का फल मिलता है, बीच में मध्यम पुष्कर में स्नान करके उसकी प्रदक्षिणा करे, उसके बाद विचक्षण पुरुष छोटे पुष्कर में स्नान करके उसकी प्रदक्षिणा करे । इन तीनों पुष्करों में स्नान करके उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥२३६-२३७॥ जो व्यक्ति उन पुष्करो के जल को तिल के साथ पितरों को जल दान करता है, उससे प्रसन्न होकर पितृगण उस तर्पण कर्त्ता को असीमित फल प्रदान करते हैं ॥२३८॥ जो

स्नातव्यं पुष्करे नित्यं ब्रह्मलोकमभीप्सिता । त्रीणिशृंगाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्त्रवणानि च ॥२४०॥
पुष्कराणि प्रसिद्धानि न विद्मस्तत्र कारणम् । कनीयांसंमध्यमं च तृतीयं ज्येष्ठपुष्करम् ॥२४१॥
शृंगशब्दाभिधानानि शुभप्रस्त्रवणानि च। धर्मार्थकाममोक्षाणं संकल्पैरफलं नरः॥२४२॥
यस्तत्र संत्यजेद्देहं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् । प्रयतः संयतस्तस्यां स्नात्वा दद्याद्विजे शुभाम् ॥२४३॥
गामेकां मंत्रपूतां च लोकानाप्नोतिमोक्षदान् । किमत्रबहुनोक्तेन रात्रावपि हि योर्थिने॥२४४॥
अर्थं प्रयच्छते स्नात्वा सोऽनन्तं सुखमश्नुते । तत्र दानं प्रशंसंति तिलानां मुनिसत्तमाः ॥२४५॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं च विहितं सदा । पिण्याकेन गुडेनापि पिंडं योत्र प्रयच्छति ॥२४६॥
पितॄणां प्रयतो भूत्वा पितृलोकं स गछति । पुष्करारण्यमासाद्य पुनस्तस्मात्सरस्वती ॥२४७॥
अंतर्द्धानं गता गंतुं प्रवृत्ता पश्चिमामुखी । नातिदूरे ततस्तस्य पुष्करस्य सुशोभना ॥२४८॥
खर्जूरवनमासाद्य फलपुष्पोपशोभितम् । तत्रोषित्वा पुनर्देवी वने मुनिमनोरमे॥२४९॥
सर्वर्तुकुसुमाकीर्णे सिद्धचारणसेविते। नंदा नाम सरिच्छ्रेष्ठा त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥२५०॥
मीननक्रझषोपेता विमलोदकपूरिता ।

सूत उवाच

अथ देवव्रतः प्राह किमन्या सा सरिद्वरा ॥२५१॥
एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्नंदा शब्दा सरस्वती। यथाभूता येन कृता कारणेन सरिद्वरा ॥२५२॥

नियमपूर्वक पुष्कर तीर्थ में स्नान करके प्रतिदिन ब्रह्माजी का दर्शन करता है । अनुलोम तथा विलोम रूप से अथवा व्यस्त एवं समस्त रूप से (अर्थात् पहले ज्येष्ठ पुष्कर फिर मध्यम पुष्कर और अन्त में कनिष्ठ पुष्कर और उसके बाद पहले कनिष्ठ पुष्कर फिर मध्यम पुष्कर और अन्त में ज्येष्ठ पुष्कर यह अनुलोम और विलोम विधि है, या एक-एक दिन एक-एक पुष्कर में यह व्यस्त क्रम है अथवा प्रतिदिन तीनों पुष्करों में यह समस्त क्रम है ।) ब्रह्मलोक को प्राप्त करने की कामना वाले को स्नान करना चाहिए । पुष्कर क्षेत्र में तीन सुन्दर शिखर है तथा तीन स्रोत है वे सब न जाने क्यों पुष्कर के ही नाम से प्रसिद्ध हैं । वे क्रमशः कनिष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर तथा ज्येष्ठ पुष्कर कहलाते हैं॥२४१॥ श्रृङ्ग शब्द से कहे जाने वाले तथा सुन्दर स्रोत ये धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के सङ्कल्प से युक्त मनुष्य फल रहित हो जाता है । जो नियम पूर्वक इन्द्रियों को वश में रखकर उस सरस्वती नदी में स्नान करके वहाँ पर ब्राह्मणों को एक गौ का दान करता है । वह मोक्ष प्राप्त करता है । जो मनुष्य सरस्वती नदी के तट पर ही अपने शरीर का त्याग कर देता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है । इस विषय में बहुत क्या कहना है, जो रात्रि मे भी स्नान करके याचक को ॥२४३-२४४॥ धन दान देता है, वह अनंत सुख को प्राप्त करता है । श्रेष्ठ मुनिजन वहाँ पर तिल के दान की प्रशंसा करते हैं ॥२४५॥ वहाँ पर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को सदैव ही स्नान करना चाहिए। यहाँ पर पिण्याक अथवा गुड का भी जो पिण्डदान पितरों को करता है ॥२४६॥ वह पितृलोक में जाता है । पुष्करारण्य में आकर सरस्वती नदी वहाँ से ॥२४७॥ पश्चिम समुद्र में जाने के लिए अन्तर्धान हो गयी और पश्चिमाभिमुख चली । उसके बाद पुष्कर के संन्निकट में ही वह सरस्वती नदी ॥२४८॥ पुष्प एवं फल से सुशोभित खर्जूरी वन में आयी । मुनियों से मनोहर बने हुए उस वन में सरस्वती देवी रुक गयीं ॥२४९॥ वह वन सभी ऋतुओं में होने वाले पुष्पों से सुशोभित था, उस वन में सिद्ध एवं चारणगण रहते थे वहाँ पर वे नन्दा नामक नदी हो गयीं । यह नदी तीनों लोकों में विख्यात हैं ॥२५०॥ वह नदी मछली, घड़ियाल तथा झष से परिपूर्ण हो गयी ।

एवमुक्ते पुलस्त्यः स भीष्मायैत्पुरातनम् । आख्यातुमुपचक्राम नंदा नाम यतस्स्मृतम् ॥२५३॥
क्षत्रव्रतधरो नित्यमासीद्राजाप्रभंजनः। प्रवृत्तो सो मृगान्हंतुं वने तस्मिन्महाबलः ॥२५४॥
स ददर्श ततस्तस्मिन्मृगीं गुल्मांतरे स्थिताम् । मार्गणेन सुतीक्ष्णेन तांविव्याधपुरोगताम् ॥२५५॥
सा विलोक्य दिशः सर्वास्तं दृष्ट्वाशरपाणिनम् । आह किं ते कृतं मूढ त्वयैतत्कर्म दुष्करम् ॥२५६॥
स्तनं तावत्प्रयच्छामि सुतस्याधो मुखीस्थिता । मांसलोभेन विद्धाहं तरसा ह्यकुतोभया ॥२५७॥
पिबंतं गुप्तवत्सं च गूढमैथुनमागतम्। एवं विधं मृगं राजन्नहन्यात्प्राङ् मया श्रुतम् ॥२५८॥
स्तनं तनयस्यास्य प्रयच्छंती त्वया हता । बाणेनाशनि कल्पेन निर्दोषा वनमागता ॥२५९॥
तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे कव्यादत्वमवाप्स्यसि । वनेस्मिन्कंटककाकीर्णे व्याघ्ररूपं त्वमाप्नुहि॥२६०॥
शापप्रदानं श्रुत्वैवं स राजा पुरतः स्थितः । प्रोवाच प्रांजलिर्भूत्वा तां मृगीं व्यथितेंद्रियः॥२६१॥
स्तनं तु तनयस्येह प्रयच्छंती न मे मता । अज्ञानेन हता भद्रे प्रसीद सुसमाधिना ॥२६२॥
व्याघ्ररूपमहं त्यक्त्वा प्राप्स्यामि मानुषं कदा। एवंविधस्य शापस्य विमोक्षं शंस मे मृगि ॥२६३॥
एवमुक्तो मृगी तस्य प्रोवाच वचनं शुभम् । राजन्नब्दशतं ते तु शापस्यागतया गवा॥२६४॥
नंदया सह संवादमासाद्यांतो भविष्यति । मृग्योक्ते वचने राजा व्याघ्र एवाभवत्तदा ॥२६५॥
नखदंष्ट्रायुधोपेतो व्याघ्ररूपोति भीषणः। तत्रासौ भक्षयन्नास्ते मृगान्हत्वा चतुष्पदः ॥२६६॥
द्विपदानपि तत्रस्थान्कालेन क्रमयोजितान् । एवं तत्र वने तस्य संवत्सरशतं गतम् ॥२६७॥

सूतजी ने कहा— इस पर भीष्मजी ने पूछा कि क्या वह (नन्दा) नदी कोई दूसरी नदी है ?॥२५१॥ हे ब्रह्मन् ! यह मुझको उत्कण्ठा है, अथवा सरस्वती का ही नाम नन्दा है । वह नदी नन्दा कैसे हुयी ? उसका यह नाम कैसे पड़ा ?॥२५२॥ इस तरह कहने पर महर्षि पुलस्त्य उस इतिहास को बतलायें जिसके कारण सरस्वती नदी का नाम नन्दा हुआ ॥२५३॥ क्षत्रिय के व्रत को धारण करने वाले एक प्रभञ्जन नाम के राजा थे । वे महाबलवान् राजा इस वन में मृगों को मारने लगे ॥२५४॥ राजा ने एक लता के नीचे बैठी हुयी एक मृगी को देखा । उस सामने पड़ी हुयी मृगी को राजा ने तीक्ष्ण बाण से बेध दिया ॥२५५॥ वह सभी दिशाओं में देखकर उस बाणधारी पुरुष को देखकर कहा अरे मूर्ख ! तुमने यह दुष्कर कर्म क्यों किया ?॥२५६॥ मैं तो नीचे मुँह करके अपने बच्चे को दूध पिला रही थी । मैं निर्भय थी और तुमने माँस के लोभ से मुझे मार दिया ॥२५७॥ राजन् ! मैंने सुना है कि जिसका बच्चा पी रहा हो अथवा छिपकर मैथुन करते हुए ऐसे मृग को नहीं मारना चाहिए ॥२५८॥ जब मैं अपने बच्चे को दूध पिला रही थी उसी समय तुमने मुझे मारा है । तुमने वज्र के समान बाण से निर्दोष मुझको इस वन में मारा है ॥२५९॥ अतएव हे दुर्बुद्धि ! तुम भी राक्षस हो जाओगे । इस कंटकाकीर्ण वन में तुम व्याघ्र हो जाओ ॥२६०॥ इस प्रकार के शाप को सुनकर राजा उस मृगी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और दुःखी होकर कहे ॥२६१॥ मैंने यह नहीं जाना कि तुम बच्चे को दूध पिला रही हो, अज्ञानवशात् मैंने तुमको इसतरह से मारा है । अतएव तुम मुझपर प्रसन्न होओ ॥२६२॥ बतलाओं मैं व्याघ्र का रूप त्याग कर कब फिर मनुष्य होऊँगा ? हे मृगि ! इस प्रकार के शाप से मुक्ति का साधन तुम मुझे बतलाओ ॥२६३॥ राजा के इस तरह कहने पर मृगी ने उससे कहा— हे राजन्! इस शाप के सौ वर्ष बीत जाने पर यहाँ पर एक गौ आयेगी । उस नन्दा नाम की गौ के साथ तुम्हारा संवाद होने पर तुम्हारे शाप का अंत होगा । मृगी के इस प्रकार से कहने पर वह राजा व्याघ्र बन गया ॥२६५॥ उसके नख एवं दाँत ही आयुध थे वह राजा अत्यन्त भयङ्कर व्याघ्र हो गया । वह वहाँ पर पशुओं तथा मृगों को मार कर खाते हुए

आत्मानं निंदमानस्य मृगमांसानि खादतः । कदाहं मानुषं भावं गमिष्यामीदृशं पुनः ॥२६८॥
कुत्सितं न करिष्यामि वियोनिकरणं महत् । कुर्वता मांसलोभेन मृगयां परिधावता ॥२६९॥
आपदासहितं प्राप्तं मानुषाणां भयावहम्। दर्शनं दुःखदं मह्यं मृगाणां मानुषैः सह ॥२७०॥
पापेन पापतां नीतोह्यपापेऽपि सतां कुले । उत्पन्नो विकृतिं नीतः पश्य कालस्य पर्ययम्॥२७१॥
तस्मान्मे सुकृतं नास्ति हिंसाप्येका विगर्हिता। तया तु प्राप्यते दुःखं न च मोक्षो भविष्यति॥२७२॥
कथं मे भविता मोक्षः कथं सत्या मृगी भवेत्। गते वर्षशते तस्य वसतस्तद्वने तदा ॥२७३॥
आयातं गोकुलं काले यवसादेककारणात्। गोवाटवाटीं संस्थानं तत्तत्र समवस्थितम् ॥२७४॥
वनोपकण्ठे मंथानं रवेणापूरितं च यत्। क्षीबैर्गोपैः समाकीर्णं पादपैरपि तद्वनम् ॥२७५॥
निशि वंशरवोपेतं गोपीनां च शुभप्रदम्। एवं तु वसतस्तस्य खर्जूरवनसंसदि॥२७६॥
हृष्टा तुष्टा पुष्टा च नंदा वै नामनामतः । गोमंडलस्य सामुख्या हंसवर्णा घटस्रवा ॥२७७॥
दीर्घघोणा विभक्तांगी बंधुरांगी तनुत्वचा। नीलकंठा शुभग्रीवा घंटाली मधुरस्वना॥२७८॥
सा च यूथस्य सर्वस्य पुरश्चरति निर्भया । घासस्थानं चरेच्छन्नं गत्वैका च यथासुखम्॥२७९॥
यथेष्टकामा सुरभी छन्नं चरति वै तृणम्। रोहितो नाम तत्रान्यः पर्वतः सरितस्तटे ॥२८०॥
अनेककंदरदरी गुहासत्वनिषेवितः । तस्य पूर्वोत्तरे भागे घोरे तृणसमाकुले ॥२८१॥

निवास करता था । यदि कालवशात् वहाँ कोई मनुष्य भी आ जाता था तो वह उसे भी मारकर खा जाता था । इसतरह से उसे उस वन में रहते हुए सौ वर्ष बीत गये ॥२६६-२६७॥ वह मृगों का मांस खाते हुए अपने आप की निन्दा करता था । वह सोचता था न जाने कब मैं पुनः मनुष्य हो पाऊँगा ?॥२६८॥ जब कभी भी मैं मारना रूप इस निन्दित कर्म को कभी नहीं करूँगा । माँस के लोभ से मैं आखेट में दौड़ता हुआ मारने का काम करता था । उसके फल स्वरूप मनुष्यों को भय प्रदान करने वाली यह विपत्ति आयी । मेरे लिए मृगों तथा मनुष्यों का दिखायी देना भी कष्टप्रद है ॥२६९-२७०॥ पाप ने मुझे पापी बना दिया है, यद्यपि मैं निष्पाप सज्जनों के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ । किन्तु मुझमें विकार उत्पन्न हो गया है, यही काल की विपरीतता है ॥२७१॥ अतएव मुझमें कोई भी पुण्य नहीं है, केवल अकेली निन्दित हिंसा बची है, वह मुझे दुख ही देती है, अब मेरी मुक्ति नहीं होगी ॥२७२॥ न जाने किस प्रकार से मेरी मुक्ति होगी और वह मृगी सत्यवादिनी होगी । इसतरह राजा के सोचते हुए तथा वन में रहते हुए सौ वर्ष बीत जाने पर ॥२७३॥ समयानुसार घास और जल की सुविधा के कारण वहाँ गायों का समूह आया । वहाँ पर गायों के रहने के लिए चारो ओर से बाड़ लगा दिए गये ॥२७४॥ वन के सन्निकट की भूमि गायों के रंभाने की ध्वनि से पूर्ण हो गयी । मदमत्त गोपों और वृक्षों से वह वन भर गया ॥२७५। रात्रि में गोपों तथा गोपियों की ध्वनि सुनायी देने लगी । इस तरह खर्जूरी बन में रहते हुए उस गोमण्डल में ॥२७६॥ नन्दा नाम की एक हृष्ट-पुष्ट गौ थी । वह उस गोमण्डल में प्रधान थी, हंस के समान उसका वर्ण था, वह घड़े भर दूध देती थी ॥२७७॥ उसकी नाक लम्बी थी उसके सभी अङ्ग पुष्ट थे । उसका शरीर देखने में सुन्दर था और उसका चमड़ा पतला था । उसका गला नील वर्ण का था उसकी ग्रीवा मनोहर थी तथा उसके गले में घण्टे की मधुर ध्वनि होती थी ॥२७८॥ वह अपने समूह के आगे निर्भय होकर चलती थी । वह घास के स्थान में अकेले जाकर अपनी इच्छा के अनुसार चरती थी॥२७९॥ अपनी इच्छा के अनुसार वह गौ घासों को चरती थी । उस नदी के तट पर रोहित नाम का दूसरा पर्वत था ॥२८०॥ उसमें अनेक गुफाएँ थी जिसमें विभिन्न प्रकार के जीव रहते थे । उस पर्वत के पूर्वोत्तर भाग में घासों से

संकटे विषमे दुर्गे भैरवे लोमहर्षणे । मृगसिंहसमाकीर्णे बहुश्वापदसेविते ॥२८२॥
वल्लीवृक्षादि गहने शिवाशतनिनादिते । दुर्गेस्मिन्वसते रौद्रः कामरूपी भयङ्करः ॥२८३॥
द्वीपीशोणितदिग्धांसो घोरदंष्ट्रा नखायुधः । नंदो नाम स धर्मात्मा स च गोपीहिते रतः॥२८४॥
अच्छिन्नाग्रैस्तृणै र्दीर्घै गोधनं परिरक्षति । तस्य यूथपरिभ्रष्टा सा नंदा तृणलिप्सया ॥२८५॥
चरंतीव्याघ्रपुरतः साधेनुः प्रत्युपस्थिता । अभ्यद्रवच्च तां द्वीपी तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२८६॥
त्वमद्य विहितो भक्षः स्वयं प्राप्तासि धेनुके । द्वीपिनश्च वचः श्रुत्वा निष्ठुरं रोमहर्षणम् ॥२८७॥
शुक्लरूपान्वितं बालं भद्रमिंदुसमप्रभम् । वत्सं स्मरति सा धेनुः स्नेहाक्ता गद्गदाक्षरम् ॥२८८॥
दह्यंती पुत्रशोकेन नंदा सा पुत्रवत्सला । रुदंती करुणं चैव निराशा पुत्रदर्शने ॥२८९॥
द्वीपी दृष्ट्वा तु तां धेनुं क्रंदमानां सुदुःखिताम् । उवाच वचनं घोरं धेनुके किं प्ररुद्यते ॥२९०॥
दैवात्सुखोपपन्नासि भक्षस्त्वं मे यदृच्छया । रुदंत्या वा हसंत्या वा तवात्तं जीवितं भवेत्॥२९१॥
विहितं भुज्यते लोके स्वयं प्राप्तासि धेनुके । मृत्युस्ते विहितोऽद्यैव वृथा किमनुशोचसि ॥२९२॥
पप्रच्छतां पुनर्द्वीपी किमर्थं रुदितं त्वया । कौतुकं चात्र मे जातं महन्मे कथयस्व वै ॥२९३॥
व्याघ्रस्य वचनं श्रुत्वा नंदा वाक्यमथाब्रवीत् । क्षंतुमर्हसि मे नाथ कामरूपिन्नमोस्तुते ॥२९४॥
त्वां समासाद्य लोकस्य परित्राणं न विद्यते । जीवितार्थं न शोचामि प्राप्तव्यं मरणं मया ॥२९५॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येर्थे न शोचामि मृगाधिप ॥२९६॥

परिपूर्ण ॥२८१॥ भयङ्कर गुफा थी । उसमें मृग तथा सिंह आदि अनेक जीव रहते थे ॥२८२॥ लताओं तथा वृक्षों से दुर्गम बने हुए तथा जिसमें स्यारिन बोला करती थी । उसी गुफा में वह भयङ्कर व्याघ्र रहता था ॥२८३॥ उसका कंधा हाथी के खून से भींगा रहता था । दाँत और नख ही उसके आयुध थे । वहीं पर नन्द नाम के धर्मात्मा गोप अपनी गायों को रखते थे ॥२८४॥ वहाँ पर खूब घास बढी हुयी थी । उस समूह से भूलकर नन्दा नाम की गौ घास के लोभ से ॥२८५॥ चरती हुयी उस व्याघ्र के समने चली गयी उसको देखकर वह व्याघ्र— ठहरो ! ठहरो !! रे गौ; कहता हुआ उस पर टूट पड़ा ॥२८६॥ मेरा आज का भोजन तुम ही हो, क्योंकि तुम स्वयं यहाँ आयी हो । गौ ने उस व्याघ्र की भयङ्कर और निष्ठुर वाणी को सुना ॥२८७॥ उसके बाद वह गौ अपने श्वेत वर्ण के चन्द्रमा के समान मनोहर, स्नेह युक्त मनोहर बोलने वाले बच्चे का स्मरण करके ॥२८८॥ पुत्र के शोक से संतप्त हो गयी । वह पुत्रवत्सला थी । वह अपने बच्चे को देखने के विषय में निराश हो गयी थी; अतएव करुण क्रन्दन कर रही थी॥२८९॥ सिंह ने उस रोती हुयी गौ को देखा और भयङ्कर वाणी में कहा कि तुम क्यों रोती हो ?॥२९०॥ भाग्यवशात् तुम यहाँ अपने आप आयी हो; अतएव तुम मेरा भक्ष्य हो । तुम चाहे रोओ या हँसो; मैं तुम्हे मारूँगा ही॥२९१॥ हे धेनुजे जिसके लिए जो विहित होता है वही खाने को मिलता है तुम स्वयं आयी हो । तुम्हारी आज ही मृत्यु लिखी है, व्यर्थ क्यों शोक कर रही हो ?॥२९२॥ व्याघ्र ने फिर उससे पूछा तुम क्यों रो रही हो ? इस विषय में मुझको बड़ी उत्कण्ठा है, उसे तुम मुझे बतलाओ ॥२९३॥ व्याघ्र की बात सुनकर नन्दा ने कहा हे अपनी इच्छानुसार रूप बनाने वाले स्वामिन् ! आपको नमस्कार है । आप मुझे क्षमा करेंगे ॥२९४॥ जो व्यक्ति आपके पास आ जाता है उसको संसार में कोई बचा नही पाता है । मैं अपने जीवन के लिए चिन्ता नहीं करती हूँ । एक दिन मुझे मरना ही है ॥२९५॥ जो उत्पन्न होता है, उसकी मृत्यु निश्चित होती है और जो मरता है । उसका जन्म भी निश्चत होता है । अतएव हे मृगाधिप ! मैं इस अवश्यंभावी के विषय में चिन्ता नहीं कर रही हूँ ॥२९६॥ जैसे देवताओं को

देवैरपि यथा सर्वैर्मर्त्तव्यमवशैर्ध्रुवम्। तस्मात्तुनाहमेवैका व्याघ्र शोचामि जीवितम् ॥२९७॥
किंतु स्नेहेन वै साधो दुःखेन रुदितं मया। अस्ति मे हृदि संतापस्तं च त्वं श्रोतुमर्हसि ॥२९८॥
प्रथमे वयसि प्राप्ते प्रसूताऽहं मृगाधिप। इष्टः प्रथमजातश्च सुतस्तु मम बालकः ॥२९९॥
क्षीरपाची च मे वत्सस्तृणं नाद्यापि जिघ्रति। स च गोपकुले बद्धः क्षुधार्तो मामवेक्षते ॥३००॥
तमहं चानुशोचामि कथं जीविष्यते सुतः। तस्येच्छामि स्तनं दातुं पुत्रस्नेहवशं गता ॥३०१॥
पाययित्वा स्तनं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि। सखीनामर्पयित्वा तु संदिश्य च हिताहितम्॥३०२॥
पुनः प्रत्यागमिष्यामि यथेष्टं भक्षयिष्यसि। स नंदाया वचः श्रुत्वा मृगेंद्रः पुनरब्रवीत् ॥३०३॥
किं ते पुत्रेण कर्त्तव्यं मरणं किं न बुध्यसे। त्रस्यांति सर्वभूतानि म्रियंते मां निरीक्ष्य च ॥३०४॥
त्वं पुनः कृपयाविष्टा पुत्रपुत्रेति भाषसे। न पुत्रा न तपो दानं न माता न पिता गुरुः॥३०५॥
शक्नुवंति परित्रातुं नरं कालप्रपीडितम्। कथं त्वं गोकुलं गत्वा गोपीजनसमाकुलम् ॥३०६॥
वृषभैर्नादितं दिव्यं बालवत्सविभूषितम्। भूषणंदेवलोक्स्य स्वर्गतुल्यं न संशयः ॥३०७॥
नित्यं प्रमुदितं दिव्यं सर्वदेवप्रपूजितम्। यत्पवित्रं पवित्राणां मंगलानां च मंगलम्॥३०८॥
यत्तीर्थं सर्वतीर्थानां धन्यानां धन्यमुत्तमम्। समस्तगुणसंपन्नमीश्वरायतनं महत् ॥३०९॥
यत्ख्यातं सर्वतीर्थानां भूमिस्वर्गमनुत्तमम्। गोपी मंथन शब्देन बालवत्सरवेण च ॥३१०॥
गवां हुंकारशब्देन अलक्ष्मी प्रतिहन्यते। यत्र वत्साश्च हुंकारं करुणं मातृकांक्षया ॥३११॥
यद्गोपैः पालितं शूरै र्बाहुयुद्धकृतश्रमैः। प्रगीतनृत्यसंलापं नंदिता स्फोटनादितम्॥३१२॥

भी विवश होकर मरना निश्चित है। अतएव हे व्याघ्र मैं अकेले अपने जीवन के विषय में शोक नहीं करती हूँ॥२९७॥ किन्तु हे सिंह स्नेह और दुःखजन्य दुःख के कारण मैं रोयी। मेरे हृदय में जो कष्ट है, उसे आप सुनें॥२९८॥ मैंने अपना पहली बार बच्चा दिया है, वह पहला बच्चा मुझको अत्यन्त प्रिय है ॥२९९॥ वह अभी दूध ही पीता है। घास को तो वह सूंघता भी नहीं है। वह गोपकुल में बँधा है, भूखा है, मेरी प्रतीक्षा कर रहा है॥३००॥ उसी के विषय में मैं सोचती हूँ कि अब वह मेरा बच्चा कैसे जीयेगा ? मैं अपने पुत्र स्नेह के कारण अपना स्तन उसे पिलाना चाहती हूँ ॥३०१॥ उस अपने बछड़े को दूध पिलाकर तथा उसका माथा चाटकर, उसे अपनी सखियों को समर्पित करके तथा उसको हित एवं अहित का उपदेश करके ॥३०२॥ पुनः लौट आऊँगी फिर आप अपनी इच्छानुसार मुझे खा लें। नन्दा की वाणी सुनकर सिंह ने फिर कहा ॥३०३॥ तुम्हे अपने बच्चे से क्या मतलब है अब तो तुम मरने वाली हो। मुझको देखकर सभी जीव भयभीत हो जाते हैं और मर जाते हैं ॥३०४॥ तुम तो करुणा ग्रस्त होकर पुत्र-पुत्र चिल्ला रही हो। पुत्र, तपस्या, दान, माता, पिता अथवा गुरु ॥३०५॥ कालग्रस्त जीव को नहीं बचा सकते हैं। गोपी से भरे गोशाला में जाकर, जहाँ बैल हुंकार करते होंगे, तथा छोटे बच्चे विद्यमान होंगे इसप्रकार देवलोक को अलङ्कृत करने वाले तथा स्वर्ग के समान ॥३०७॥ सदैव प्रसन्न रहने वाले दिव्य तथा सभी देवताओं से जो पूजित है, जो सभी पवित्र वस्तुओं से पवित्र तथा मङ्गलमय वस्तुओं से अधिक मङ्गलमय हैं ॥३०८॥ जो सभी तीर्थों का तीर्थ होता है और सभी धन्य पदार्थों से अधिक धन्य होता है, जो सभी उत्तम गुणों से युक्त तथा परमात्मा का श्रेष्ठ निवास स्थान होता है ॥३०९॥ जो सभी तीर्थों के भूमितीर्थ के रूप में विख्यात होता है। जो गोपियों के दधिमंथन ध्वनि से तथा छोटे बछड़ों की हुंकार ध्वनि से गूंजित होता है ॥३१०॥ जहाँ गायों के रंभाने की ध्वनि से दारिद्रय का नाश होता है। जहाँ पर बछड़े अपनी माताओं को देखने की इच्छा से

इतस्ततस्स्थितै र्वत्सै र्नर्द्यमानं समंततः। सरोवद्राजते गोष्ठं चलद्भिरिव पङ्कजैः ॥३१३॥
तं श्रीनिकेतनं सौम्यं हृष्टपुष्टजनाकुलम् । गोलोकप्रतिमं दृष्ट्वा कथंप्रत्यागमिष्यसि ॥३१४॥
पंचभूतानि मे भद्रे पिबंतु रुधिरं तव । न निर्विण्णानि भूतानि वाङ्मात्रेण करोम्यहम्॥३१५॥

नंदोवाच

एवं प्रथमवत्साया मृगेंद्र शृणु मे वचः । दृष्ट्वा सखी सुतं बालं गोपांश्च प्रतिपालकान्॥३१६॥
गोपीजनमुपामंत्र्य जननीं च विशेषतः। शपथैरागमिष्यामि मन्यसे यदि मुंच माम्॥३१७॥
यत्पापं ब्रह्मवध्याया मातृपितृवधेषु च। तेन पापेन लिप्येहं यद्यहं नागमे पुनः ॥३१८॥
यत्पापं लुब्धकानां तु म्लेच्छानां गरदायिनाम् । तेन पापेन लिप्येहं यद्यहं नागमे पुनः ॥३१९॥
गोषु विघ्नांश्च ये कुर्युः स्वपंतीं ताडयंति च। तेन पापेन लिप्येहं यद्यहं नागमे पुनः ॥३२०॥
सकृद्दत्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति । तस्य पापेन लिप्येहं यद्यहं नागमे पुनः ॥३२१॥
यस्त्वनर्हान् बलीवर्दान्विषमे वाहयेत्पुमान् । कथायां कथ्यमानायां विध्नं कारयते तु यः ॥३२२॥
तेन पापेन लिप्येहं यद्यहं नागमे पुनः । गृहे यस्यागतं मित्रं निराशं प्रतिगच्छति ॥३२३॥
तस्य पापेन लिप्येहं यद्यहं नागमे पुनः। इत्येतैः पातकैर्घोरै रागमिष्याम्यहं पुनः ॥३२४॥
बुध्वा संप्रत्ययं द्वीपी पुनर्वचनमब्रवीत् ।

व्याघ्र उवाच

संजातः प्रत्ययोऽस्माकं शपथै र्धेनुके तव ॥३२५॥

हुंकार करते हैं ॥३११॥ बाहुयुद्ध के द्वारा परिश्रम करने वाले गोपों के द्वारा जो रक्षित होता है, जो जोर-जोर से गाये जाने वाले गीतों, नृत्यों, संलापों तथा ताल ठोकने की ध्वनियों से ध्वनित होता है ॥३१२॥ जहाँ पर इधर-उधर बैठे हुए बछड़े बोलते रहते हैं, इस प्रकार का चंचल कमलों से सुशोभित होने वाले सरोवर के समान सुशोभित होने वाले गोष्ठ (गोशाला) में जाकर तुम कैसे लौट आ सकती है ?॥३१३-३१४॥ मैं अपनी वाणी मात्र से भी किसी जीव को उदासीन नहीं बनाता हूँ। मेरे पंचभूत तुम्हारा खून पी लें ॥३१५॥ **नन्दा ने कहा—** हे मृगेन्द्र ! मुझे पहले बच्चे वाली गौ की मेरी वाणी आप सुनें मैं अपने बच्चे, गोपों तथा सखियों को देखकर ॥३१६॥ गायों से विचार करके विशेष रूप से अपनी माता से विचार करके लौट आऊँगी इस बात की मैं शपथ करती हूँ; अतएव आप मुझे छोड़ दें ॥३१७॥ ब्रह्महत्या करने तथा माता-पिता को मारने से जो पाप लगता है, यदि मैं नहीं लौटूं तो वही पाप मुझको भी लगे ॥३१८॥ जो पाप व्याधों को, म्लेच्छों को तथा विष देने वालों को लगता है, वही पाप मुझे भी यदि मैं पुनः नहीं लौटू तो लगे ॥३१९॥ यदि मैं लौट कर नही आऊँ तो मुझे वही पाप लगे जो गायों का विघ्न करने वालों तथा सोयी हुयी गायों को मारने वालों को लगता है ॥३२०॥ यदि मैं नहीं लौटूँ तो मुझे वही पाप लगे जो पाप कन्या का एक बार विवाह करके फिर उसका विवाह दूसरे के साथ करने वाले को लगता है ॥३२१॥ जो पाप अयोग्य (कमजोर) बैलों से भारी बोझ ढोआने वालों को लगता है, वही पाप मुझको भी लगे यदि मैं लौट कर नहीं आऊँ तो। कही जाने वाली कथा में विघ्न करने वालों को जो पाप लगता है, वही पाप मुझको भी लगे यदि मैं लौट कर नहीं आऊँ तो। जिसके घर में आया हुए मित्र निराश होकर लौट जाता है ॥३२२-३२३॥ उसको जो पाप होता है, उसी पाप से युक्त हो जाऊँ यदि लौट कर नहीं आऊँ तो। इन भयङ्कर पापों के भय से मैं अवश्य आऊँगी ॥३२४॥ उसकी बातों पर विश्ववास करके उस सिंह ने पुनः कहा **व्याघ्र ने कहा—** हे गौ ! तुम्हारे शपथों से मुझे विश्वास हो

कदाचिन्मन्यसे गत्वा मूर्खोऽयं वंचितो मया। अत्रापि केचिद्वक्ष्यंति शपथै र्नास्ति पातकम् ॥३२६॥
कामिनीषु विवाहेषु गवां मुक्तौ तथैव च। प्राणत्यागे समुत्पन्ने श्रद्धातव्यं न च त्वया ॥३२७॥
लोकेस्मिन्नास्तिकाः केचिन्मूर्खाः पंडितमानिनः। भ्रामयिष्यंति ते चित्तं चक्रारूढमिव क्षणात् ॥३२८॥
कुतर्कहेतुवृत्तांतैरज्ञानावृतचेतसः। मोहयंति नराः क्षुद्रा आगमार्थ विशारदाः ॥३२९॥
अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयंत्यतिपेशलाः। समो निम्नोन्नतानीव चित्रकर्माविदोजनाः ॥३३०॥
प्रायः कृतार्थो लोकोयं मन्यते नोपकारिणम्। वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ॥३३१॥
न तं पश्यामि लोकेस्मिन्कृते प्रतिकरोति यः। सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते ॥३३२॥
ऋषिदेवासुरनरैः शपथाः कार्यसिद्धये। कृताः पश्यामि लोकेस्मिन्कृते प्रतिकरोति यः॥३३३॥
सत्येनापि शपेद्यस्तु देवाग्नि गुरुसन्निधौ। तस्य वैवस्वतो राजाधर्मस्यार्द्धं निकृंतति ॥३३४॥
माते बुद्धिर्भवेदेवं शपथैरेष वंचितः। त्वयैव दर्शितं सर्वं यथेष्टं कुरु सांप्रतम् ॥३३५॥

नंदोवाच

एवमेव महासाधो कस्त्वां वंचयितुं क्षमः। आत्मैव वंचितस्तेन यः परं वंचयिष्यति ॥३३६॥

द्वीप्युवाच

धेनुके पश्य गच्छ त्वं पुत्रकं पुत्रवत्सले। पाययित्वा स्तनं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि ॥३३७॥
मातरं भ्रातरं दृष्ट्वा सखीस्वजनबांधवान्। सत्यमेवाग्रतः कृत्वा शीघ्रमागमनं कुरु ॥३३८॥
एवं सा शपथं कृत्वा धेनुर्वै सत्यवादिनी। अनुज्ञाता मृगेंद्रेण प्रयाता पुत्रवत्सला ॥३३९॥

गया है ॥३२५॥ हो सकता है कि तुम जाकर यह सोचो कि इस मूर्ख को मैंने खूब धोखा दिया। कुछ लोग यह भी कहेंगे कि शपथ करने से पाप नहीं लगता है ॥३२६॥ कामिनियों, विवाहों तथा गौओं के बचाने के समय तथा प्राण सङ्कट उपस्थित होने पर झूठ बोला जाता है, तो ऐसे लोगों की बातों पर तुम विश्वास नहीं करना ॥३२७॥ इस संसार में कुछ मूर्ख एवं अपने को पण्डित मानने वाले नास्तिक लोग तुम्हारे चित्त को चक्र के समान भ्रम में डाल सकते हैं ॥३२८॥ कुतर्क तथा हेतुवाद के द्वारा जिनका अन्तःकरण अज्ञान से आवृत हो गया है। ऐसे क्षुद्र मनुष्य जो धर्म को नहीं जानते हैं, वे दूसरों को मोहित कर देते है ॥३२९॥ ऐसे लोग असत्य को भी सुन्दर सत्य के रूप में उपन्यस्त कर देते हैं। ऐसे लोग विचित्र कर्मों को करने में निपुण होते हैं, वे सम को भी निम्न तथा निम्न को भी उन्नत बना देते हैं ॥३३०॥ यह कृतार्थ लोक उपकार करने वाले को नही मानते हैं, बछड़ा भी दूध के समाप्त हो जाने पर अपनी माता को छोड़ देता है ॥३३१॥ संसार में ऐसे लोग नहीं मिलते है जो किए हुए उपकार का बदला चुकाते हैं। सभी कृतार्थ मनुष्यों की बुद्धि बदल जाती है ॥३३२॥ ऋषि, देवता, असुर और मनुष्य अपने कार्य की सिद्धि के लिए शपथ कर लेते हैं; किन्तु हम उसका महत्त्व नहीं देते हैं ॥३३३॥ जो व्यक्ति सत्य की शपथ देवता, अग्नि तथा गुरु के सामने करके भी नहीं निभाता है उसके आधे पुण्य को यमराज विनष्ट कर देते हैं॥३३४॥ तुम ऐसा मत सोचना कि मैंने शपथ करके धोखा दे दिया है, क्योकि तुमने ही मुझे धर्म का मार्ग दिखाया है। अतएव जैसा मन में आये वैसा करो ॥३३५॥ **नन्दा ने कहा**— महाराज ! आपको इसतरह से कौन ठग सकता है? जो दूसरों को ठगता है वह उसको नहीं अपितु अपने को ही ठगता है ॥३३६॥ **व्याघ्र ने कहा**— हे गौ तुम जाओ। हे पुत्रवत्सले ! अपने बछड़े को देख लो। अपने बछड़े को स्तन पिलाकर तथा उसके माथा को चाटकर॥३३७॥ अपनी माता, भाई बहन तथा बांधवों से मिलकर, सत्य को ही महत्त्व देकर शीघ्र आ जाओ ॥३३८॥ सत्य बोलने

अश्रुपूर्णमुखी दीना वेपमाना सुदुःखिता। हंभारवं प्रमुंचंती पतिता शोकसागरे ॥३४०॥
करीव चरणग्राहं गृहीतः सलिलाशये। अशक्ता स्वपरित्राणे विलपंती मुहुर्मुहुः ॥३४१॥
सा तत्र गोकुलं प्राप्ता हरिन्नद्यास्तटे स्थितम्। श्रुत्वा वत्सं तु क्रोशंतं पर्यधावत संमुखी ॥३४२॥
उपसृप्य च तं बालं वाष्पपर्याकुलेक्षणम्। संप्राप्य मातरं वत्सः शंकितः परिपृच्छति ॥३४३॥
न ते पश्याम्यहं स्वास्थ्यं धैर्यं नैवाद्य लक्षये। उद्विग्ना चापि ते दृष्टिर्भीता चातीव लक्ष्यसे ॥३४४॥

नन्दोवाच

पिब पुत्र स्तनं मेद्य कारणं यदि पृच्छसि। अशक्ताहं तवाख्यातुं कुरु तृप्तिं यथेप्सिताम् ॥३४५॥
अपश्चिमं तु ते पुत्रदुर्लभं मातृदर्शनम्। एकाहमद्य मे पीत्वा प्रभाते कस्य पास्यसि ॥३४६॥
त्वां त्यक्त्वा पुत्र गंतव्यं शपथैरागताह्यहम्। क्षुत्क्षामस्य च व्याघ्रस्य दातव्यमात्मजीवितम् ॥३४७॥
नंदायाश्च वचःश्रुत्वा वत्सो वचनमब्रवीत्।

वत्स उवाच

अहं तत्र गमिष्यामि यत्र त्वं गंतुमिच्छसि ॥३४८॥
श्लाघ्यं ममापि मरणं त्वया सह न संशयः। एकाकिनाऽपि मर्तव्यं मयार्तेन त्वया बिना ॥३४९॥
यदि मां सहितं मातर्वने व्याघ्रो हनिष्यति। या गतिर्मातृभक्तानां ध्रुवं सा मे भविष्यति ॥३५०॥
तस्मादवश्यं यास्यामि त्वया सह न संशयः। अथवा तिष्ठमातस्त्वं शपथाः संतु ते मम ॥३५१॥
जनन्या च वियुक्तस्य जीविते किं प्रयोजनम्। अनाथस्य वने नित्यं को मे नाथो भविष्यति ॥३५२॥

वाली पुत्र वत्सला वह गौ इस प्रकार से शपथ करके उस व्याघ्र की आज्ञा लेकर चली गयी ।।३३९।। उसके आँखों में आँसू भरे थे, वह काँप रही थी तथा दीन तथ दुःखी थी। शोक सागर में पड़ी हुयी वह हुंकार करती हुयी।।३४०।। जैसे किसी हाथी के पैरों को कोइ घडियाल पानी में पकड़ ले, और वह अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाय उसी तरह से अपनी रक्षा में असमर्थ वह बार-बार विलाप कर रही थी ।।३४१।। वह तो गोशाला में पहुँच गयी और वह व्याघ्र नदी के तट पर स्थित रहा। रंभाती हुयी उसकी ध्वनि को सुनकर उसका बछड़ा दौड़कर उसके सामने आया।।३४२।। वह उस बछड़े के पास आयी और बछड़े ने अपनी माँ को रोते हुए देखा और उसने सशंकित होकर पूछा।।३४३।। आज मैं देखता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है और न तो तुममें धैर्य है। तुम्हारी दृष्टि उद्विग्न सी लगती है, लगता है जैसे तुम डरी हुयी हो ।।३४४।। **नन्दा ने कहा—** हे वत्स ! तुम मेरा स्तन पिओ। तुम जो कारण पूछते हो उसे मैं कह नहीं सकती हूँ। तुम अपनी इच्छा भर कर तृप्त हो जाओ ।।३४५।। हे वत्स ! यह हमसे तुम्हारी अंतिम भेंट है। मैं तो एक हूँ। आज तो तुम मेरा स्तन पी लोगे, प्रातःकाल किसका स्तन पिओगे?।।३४६।। हे वत्स ! तुमको छोड़कर मुझे जाना है, मैं शपथ करके आयी हूँ। भूखे हुए व्याघ्र को मुझे अपना जीवन समर्पित करना है ।।३४७।। नन्दा की बात को सुनकर बछड़े ने कहा **बछड़े ने कहा—** जहाँ तुम जाना चाहती हो वहाँ मैं भी चलूँगा ।।३४८।। तुम्हारे साथ मेरी मृत्यु प्रशंसनीय हो जायेगी। तुम्हारे विना आर्त बनकर अकेले भी मुझे मरना ही है। हे माँ ! यदि वन में तुम्हारे साथ मुझे भी व्याघ्र मार देगा तो माता के भक्तों की जो गति होती है, वही गति मुझे भी मिल जायेगी ।।३५०।। अतएव निश्चित रूप से मैं तुम्हारे साथ चलूँगा अथवा हे मातः ! तुम यहीं रहो तुम्हारे शपथ हमारे ही शपथ बन जायँ ।।३५१।। माँ से अलग हो जाने पर मेरा जीने से कौन सा प्रयोजन है ? मैं अनाथ हो जाऊँगा इस वन में मेरा नाथ कौन होगा ?।।३५२।। दुग्ध पीकर जीने वाले बालकों

नास्ति मातृसमो बंधुर्बालानां क्षीरजीविनाम् । नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः ॥३५३॥
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं सुखम् । नास्ति मातृसमो देव इह लोके परत्र च ॥३५४॥
एवं वै परमो धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः । ये तिष्ठंति सदा पुत्रास्ते यांति परमां गतिम् ॥३५५॥

नंदोवाच

ममैव विहितो मृत्यु र्न त्वं पुत्रागमिष्यसि । न चायमन्यजीवानां मृत्युः स्यादन्यमृत्युना ॥३५६॥
अपश्चिममिमं पुत्र मातृसंदेशमुत्तमम् । अत्रातिष्ठस्व मद्वाक्यात्ततः शुश्रूषणं पुनः ॥३५७॥
जले स्थले च विचरन्प्रमादं तात मा कुरु । प्रमादात्सर्वभूतानि विनश्यंति न संशयः ॥३५८॥
न च लोभेन चर्तव्यं विषमस्थं तृणं क्वचित् । लोभाद्विनाशः सर्वेषामिह लोके परत्र च ॥३५९॥
समुद्रमटवीं पुत्र विशंति लोभमोहिताः । लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत् ॥३६०॥
लोभात्प्रमादाद्विस्रंभात्त्रिभिर्नाशो भवेन्नृणाम् । तस्माल्लोभं नकुर्वीत न प्रमादं ना विश्वसेत् ॥३६१॥
आत्मा हि सततं पुत्र रक्षितव्यः प्रयत्नतः । सर्वेभ्यः श्वापदेभ्यश्च म्लेच्छचोरादिसंकटात् ॥३६२॥
तिरश्चां पापयोनीनामेकत्र वसतामपि । विपरीतानि चित्तानि विज्ञायंते न पुत्रक ॥३६३॥
नखीनां च नदीनां च शृंगिणां शस्त्रधारिणाम् । न विश्वासस्त्वया कार्यः स्त्रीणां प्रेष्य जनस्य च ॥३६४॥
न विश्वसेदविश्वस्तो विश्वस्ते नातिविश्वसेत् । विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृंतति ॥३६५॥
न विश्वसेत्स्वदेहेपि बलिष्ठे भीतचेतसि । वक्ष्यंति गूढमत्यर्थं सुप्तं मत्तं प्रमादतः ॥३६६॥

के लिए माता के समान दूसरा कोई बंधु नहीं है । माता के समान कोई नाथ (स्वामी) नहीं होता और माता के समान कोई आश्रय नहीं होता है ॥३५३॥ माता के समान किसी का प्रेम नहीं होता है, और माता के सुख के समान कोई सुख नहीं होता है । इसलोक तथा परलोक में माता के समान कोई देवता भी नहीं होता है ॥३५४॥ ब्रह्माजी ने इसीप्रकार का सर्वश्रेष्ठ धर्म वनाया है । जो पुत्र सदा माता की आज्ञा का पालन करते हैं, उन सबों को मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥३५५॥ **नन्दा ने कहा**— हे पुत्र ! मृत्यु तो मेरी ही विहित है, अतएव तुम वहाँ नहीं जा सकते हो। दूसरे जीवों की मृत्यु के वदले दूसरे जीवों की मृत्यु नहीं होती हैं ॥३५६॥ हे पुत्र ! यह मेरा अन्तिम सन्देश सुनो। मेरी आज्ञा है तुम यहीं रहो, यही तुम्हारे द्वारा मेरी सबसे बड़ी सेवा है ॥३५७॥ जल अथवा स्थल पर विचरण करते हुए तुम असावधान मत होना, प्रमाद करने से सभी जीवों का विनाश हो जाता है ॥३५८॥ विषम स्थल में जाकर कभी घास के लोभ से नहीं चरना चाहिए । इसलोक में तथा परलोक में भी सबों का लोभ के कारण विनाश हो जाता है ॥३५९॥ पुत्र ! लोभ के कारण जीव समुद्र तथा भयङ्कर वन में भी प्रवेश कर जाते हैं । लोभ के कारण विद्वान् व्यक्ति भी अत्यन्त उग्र कार्य को कर बैठता है ॥३६०॥ लोभ, प्रमाद तथा विश्वास इन तीनों के कारण जीव का विनाश हो जाता है । इसीलिए न तो लोभ करना चाहिए, न प्रमाद करना चाहिए और न तो विश्वास करना चाहिए॥३६१॥ हे पुत्र ! सभी हिंसक जीवों से म्लेच्छों तथा चोरों तथा सङ्कटों से हर प्रकार से प्रयास द्वारा अपने आत्मा की रक्षा करनी चाहिए ॥३६२॥ हे पुत्र ! पक्षियों, पापियों तथा एक साथ रहने वालों के भी विपरीत चित्तवृत्ति का पता नहीं चल पाता है ॥३६३॥ नख वाले जीवों, नदियों, सींग वाले पशुओं तथा शस्त्र धारण करने वालें स्त्रियों तथा अनुचरों का तुम्हें अन्धविश्वास नहीं करना चाहिए ॥३६४॥ अविश्वसनीय व्यक्ति का विश्वास न करे तथा विश्वस्त व्यक्ति का अत्यन्त विश्वास न करे । विश्वास के कारण जो विपत्ति आती है, उसके कारण तो मूल का भी नाश हो जाता है ॥३६५॥ अपने बलवान शरीर का भी विश्वास नहीं करना चाहिए । जो भयभीत हो उस पर भी विश्वास न

गंधः सर्वत्र सततमाघ्रातव्यः प्रयत्नतः । गावः पश्यंति गंधेन राजानश्चारचक्षुषा ॥३६७॥
नैकस्तिष्ठेद्वने घोरे धर्ममेकं च चिंतयेत् । न चोद्वेगस्त्वया कार्यः सर्वस्य मरणं ध्रुवम् ॥३६८॥
यथाहि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति । विश्रम्य च पुनर्याति तद्वद्भूतसमागमः ॥३६९॥
पुत्र नित्यं जगत्सर्वं तत्रैकः शोचसे कथम् । तावत्त्वं शोकमुत्सृज्य मद्वाक्यमनुपालय ॥३७०॥
शिरस्याघ्राय तं पुत्रमवलिह्य च मूर्द्धनि । शोकेन महता विष्टा वाष्पव्याकुललोचना ॥३७१॥
विनिःश्वसंती नागीव दीर्घमुष्णं मुहुर्मुहुः । पुत्रहीनं जगच्छून्यं प्रपश्यंतीव साऽभवत् ॥३७२॥
महापंकनिमग्नेव तिष्ठंती चावसीदती । विलप्य नंदिनी पुत्रमुवाचेदं पुनर्वचः ॥३७३॥
नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति पुत्रसमं सुखम् । नास्ति पुत्रसमा प्रीतिर्नास्ति पुत्रसमा गतिः ॥३७४॥
अपुत्रस्य जगच्छून्यमपुत्रस्य गृहेऽसुखम् । पुत्रेणलभते लोकमपुत्रो नरकं व्रजेत् ॥३७५॥
लोको वदति वाक्यानि चंदनं किल शीतलम् । पुत्रगात्रपरिष्वंगश्चंदनादतिशीतलः ॥३७६॥
इति पुत्रगुणानुक्त्वा निरिक्ष्य च पुनः पुनः । स्वमातरं सखीर्गोपीस्त्वरमाणा च पृच्छति ॥३७७॥
यूथस्याग्रे चरंती मामाससाद मृगाधिपः । मुक्ताहं तेन शपथैः पुनर्यास्यामि तत्र वै ॥३७८॥
सुतं च मातरं चैव सखीर्द्रष्टुं च गोकुलम् । आगता सत्यवाक्येन पुनर्यास्यामि तत्र वै ॥३७९॥

करे सोए हुए, मत्त एवं प्रमत्त व्यक्ति पर भी विश्वास न करे, क्योंकि ये गुप्त रहस्य को बतला देते हैं ॥३६६॥ प्रयत्न पूर्वक गन्ध को भी सूंघना चाहिए क्योंकि गौ गन्ध के ही द्वारा किसी बात का पता लगा लेती है और राजा अपने दूतों द्वारा ही किसी बात को जान लेते हैं ॥३६७॥ भयङ्कर वन में अकेले न रहे, और धर्म का आचरण अकेले करना चाहिए । तुम्हें घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि सबों का मरना निश्चित है ॥३६८॥ जिस तरह कोई किसी वृक्ष की छाया में विश्राम करता है और फिर थोड़ी देर के बाद उसे छोड़कर चला जाता है, उसी तरह किसी का किसी से मिलना निश्चित समय के ही लिए होता है ॥३६९॥ हे पुत्र ! यह सम्पूर्ण जगत् अनित्य है, अतएव तुम अकेले क्यों शोक करते हो ? अतएव तुम शोक को छोड़कर मेरी बातों का पालन करो ॥३७०॥ इसके बाद नन्दा ने अपने बच्चे के शिर को सूंघा और उसके शिर को चाटा और वह महान् शोक से भर गयी, उसके नेत्रों में आँसू भर गये ॥३७१॥ उसने नागिन के समान लम्बी और गर्म-गर्म श्वास लिया और पुत्र से रहित होने के समान उसको सारा संसार सूना-सूना प्रतीत होने लगा ॥३७२॥ अत्यधिक कीचड़ में फंसकर खड़ी हुयी के समान दुःखानुभव करती हुयी, विलाप करके वह गौ फिर अपने बच्चे से कही ॥३७३॥ पुत्र के समान कोई स्नेह नहीं होता है, पुत्र के समान कोई सुख नहीं होता है, पुत्र के समान किसी पर प्रीति नहीं होती है, पुत्र के समान कोई गति नहीं है॥३७४॥ पुत्रहीन के लिए सारा जगत् सूना-सूना होता है, पुत्र हीन को अपने घर में भी सुख नहीं मिलता है, पुत्र के द्वारा ही अच्छे लोकों की प्राप्ति होती है, पुत्रहीन व्यक्ति नरकगामी होता है ॥३७५॥ संसार के लोग कहते हैं कि चन्दन सबसे अधिक शीतल होता है किन्तु वास्तविकता है कि पुत्र के शरीर का आलिङ्गन चन्दन से भी अधिक शीतल (सुखप्रद) होता है ॥३७६॥ इसतरह से पुत्र के गुणों का वर्णन करके नन्दा ने अपने बछड़े को बार-बार देखा, उसके बाद वह शीघ्रता पूर्वक अपनी माता तथा सखियों के पास विदा लेने के लिए गयी ॥३७७॥ उसने कहा अपने समूह के आगे-आगे जब मैं चर रही थी उसी समय मुझको सिंह मिल गया, उससे मैं शपथ करके आयी हूँ अतएव मैं फिर उसके पास जा रही हूँ ॥३७८॥ अपने सत्य वाक्य के द्वारा अपने बच्चे, माता, सखियों तथा गोशाला को देखने के लिए मैं आयी थी अव मैं फिर उसी के पास जा रही हूँ ॥३७९॥ हे माँ ! मैंने जो कुछ भी गल्तियाँ की

मातः क्षमस्व तत्सर्वं दौःशील्यादि कृतं मम । बालस्तवायं दौहित्रः किमत्रान्यद्ब्रवीम्यहम् ॥३८०॥
विपुले चंपके मातर्भद्रे सुरभिमानिनि । वसुधारे प्रियानंदे महानंदे घटस्त्रवे ॥३८१॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि यदुक्तं किंचिदप्रियम् । तत्क्षमध्वं महाभागा यच्चान्यच्च कृतं मया ॥३८२॥
सर्वाः सर्वगुणोपेताः सर्वा लोकस्य मातरः । सर्वाः सर्वप्रदा नित्यं रक्षध्वं मम बालकम् ॥३८३॥
अनाथं विकलं दीनं रक्षध्वं मम पुत्रकम् । मातृशोकभिसंतप्तं भगिन्यः पालयिष्यथ ॥३८४॥
यस्मादनाथमबलं पुत्रवत्पालयिष्यथ । क्षमध्वं च महाभागा यास्यामि सत्यसंश्रयात् ॥३८५॥
नचिंता महती कार्या सखीभिश्च कथंचन । प्रथमस्यास्य जातस्य स्थितं मरणमग्रतः ॥३८६॥
श्रुत्वा तु नंदावचनं माता सख्यश्च दुःखिताः । विषादं परमं जग्मुरिदमूचुश्च विस्मिताः ॥३८७॥
अहोत्र महदाश्चर्यं यद्व्याघ्रवचनं तव । प्रकर्तुमुद्यतं भीमं नंदा त्वं सत्यवादिनी ॥३८८॥
शपथैः सत्यवाक्येन वंचयित्वा महाभयम् । नाशनीयं प्रयत्नेन न गंतव्यं कथंचन ॥३८९॥
नन्दे न चैव गंतव्यमधर्मः क्रियते त्वया । यद्बालं स्वसुतं त्यक्त्वा सत्यलोभेन गम्यते ॥३९०॥
अत्र गाथा पुरा प्रोक्ता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः । प्राणत्यागे समुत्पन्ने शपथैर्नास्ति पातकम् ॥३९१॥
उक्त्वानृतं भवेद्यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम् । अनृतं तत्र सत्यं स्यात्सत्यमप्यनृतं भवेत् ॥३९२॥
कामिनीषु विवाहेषु गवां मुक्तौ तथैव च । ब्राह्मणानां विपत्तौ च शपथैर्नास्ति पातकम् ॥३९३॥

नंदोवाच

परेषां प्राणरक्षार्थं वदाम्येवानृतं वचः । नात्मार्थमुत्सहे वक्तुं जीवितार्थे कथंचन ॥३९४॥

है, उसे तुम क्षमा कर देना यह मेरा बच्चा तुम्हारा दौहित्र (नाती) है, इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?॥३८०॥ इसके बाद उसने अपनी सखियों से कहा हे विपुले ! हे चम्पके ! हे मातः ! हे सुरभि !, हे मानिनि !, हे वसुधरे !, हे प्रिया नन्दे ! हे महानन्दे ! हे घटस्त्रवे ॥३८१॥ मैंने जानकर अथवा अज्ञानवशात् यदि कोई अप्रिय वाक्य कह दिया हो तो हे महाभागाओं ! आपलोग उसे क्षमा करेंगी अथवा यदि दूसरा भी अपराध मुझसे हो गया हो तो आपलोग क्षमा करेंगी ॥३८२॥ आप सभी सभी गुणों से युक्त हैं, सम्पूर्ण संसार की माताएँ हैं आप सभी, सभी कुछ देने वाली हैं, आपलोग मेरे बच्चे की रक्षा करना ॥३८३॥ वह अनाथ, व्याकुल तथा दीन है, उसकी रक्षा तुमलोग करना । हे बहनों ! माता के शोक से संतप्त मेरे बच्चे का पालन आप लोग करेंगी ॥३८४॥ हे महाभागाओं ! चूकि आपलोग मेरे अनाथ तथा निर्बल पुत्र का पालन करेंगी अतएव आपलोग मुझे क्षमा कर देंगी मेरा आश्रय तो एकमात्र सत्य है॥३८५॥ आपलोग मेरे विषय में कोई चिन्ता न करें क्योंकि आपलोगों को मेरे इस प्रथम बच्चे को मृत्यु से बचाना है ॥३८६॥ नन्दा की बातों को सुनकर उसकी माता और सखियाँ दुःखी हो गयी और आश्चर्यित होकर उन सबों ने कहा ॥३८७॥ हे नन्दे ! यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम सत्यवादिनी होकर एक व्याघ्र के भयङ्कर बात का पालन करने जा रही हो ॥३८८॥ महाभय के उपस्थित होने पर प्रयत्न पूर्वक सत्य वाक्य के द्वारा शपथ करके उस भय को विनष्ट करना चाहिए ॥३८९॥ हे नन्दे ! तुम्हें छोटे से अपने बच्चे को छोड़कर नहीं जाना चाहिए । सत्य के लोभ से जो तुम जाना चाहकर पाप कर रही हो ॥३९०॥ इस विषय में ब्रह्मवादी ऋषियों की एक पुरानी गाथा है। प्राण सङ्कट उपस्थित होने पर झूठी शपथ कर लेने से पाप नहीं लगता है ॥३९१॥ झूठ बोलने मात्र से यदि किसी प्राणी की जान बच जाये तो वहाँ पर असत्य ही सत्य हो जाता है और ऐसा नहीं होने पर सत्य ही असत्य हो जाता है ॥३९२॥ रमणियों के समक्ष, विवाह के अवसर पर गौ को बचाने के लिए तथा ब्राह्मण को विपत्ति से

एकः संश्लिष्यते गर्भे मरणे भरणे तथा ।भुंक्ते चैकः सुखं दुःखमतः सत्यं वदाम्यहम्॥३९५॥
सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः । उदधिस्सत्यवाक्येन मर्यादां न विलंघते ॥३९६॥
विष्णवे पृथिवीं दत्वा बलिः पातालमाश्रितः । छद्मनापि बलिर्बद्धः सत्यवाक्यं न चात्यजत् ॥३९७॥
प्रवर्धमानः शैलेंद्रः शतशृंगः समुत्थितः । सत्येन संस्थितो विध्यः प्रबन्धं नातिवर्तते ॥३९८॥
स्वर्गापवर्गनरकाः सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः । यस्तु लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम् ॥३९९॥
योन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते। किं तेन न कृतं पापं चोरणोत्मापहारिणा ॥४००॥
यास्यामि नरकं घोरं विलोप्यात्मानमात्मना । तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्धं निकृंतति ॥४०१॥
अगाधे सलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमाह्रदे। स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ॥४०२॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥४०३॥
सत्यं साधुतपः श्रुतं च परमं क्लेशादिभिर्वर्जितम्। साधूनां निकषं सतांकुलधनं सर्वाश्रमाणां फलम् ॥
यस्मात्तं समवाप्य गच्छति दिवं संत्यज्यतेऽसौकथम्। लोकैरत्र समागमे प्रतिदिनं सत्यं वदध्वं ध्रुवम् ॥४०४॥

सख्य ऊचुः

नंदे सात्वं नमस्कार्या सर्वैरपि सुरासुरैः । या त्वं परमसत्वेन प्राणांस्त्यजसि दुस्त्यजान् ॥४०५॥
ब्रूमः किं तत्र कल्याणि यात्वं धर्मधुरंधरा । त्यागेनानेन ना प्राप्य त्रैलोक्ये वस्तु किंचन ॥४०६॥

बचाने के लिए, झूठी शपथ से पाप नहीं लगता है ॥३९३॥ **नन्दा ने कहा—** दूसरों के प्राण की रक्षा करने के लिए तो मैं झूठ बोलती ही हूँ, किन्तु अपनी जान बचाने के लिए मैं किसी भी हालत में झूठ नहीं बोल सकती हूँ॥३९४॥ जीव अकेले गर्भ में जाता है वह अकेले ही मरता है तथा अकेले ही उसका भरण पोषण होता है, वह अकेले ही सुख तथा दुःख भोगता है, अतएव मैं सत्य ही बोलूँगी ॥३९५॥ सारे लोक सत्य में ही प्रतिष्ठित हैं, और धर्म भी सत्य पर ही टिका हुआ है, सत्य के ही कारण समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है ॥३९६॥ राजा बलि अपना राज्य विष्णु को देकर पाताल में चले गये, यद्यपि कपट पूर्वक वे बंध गये किन्तु उन्होंने सत्य को नहीं छोड़ा ॥३९७॥ पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्यगिरि जब अपने सैकड़ों शिखरों से बढने लगा किन्तु सत्य में बंधकर वह आज भी नहीं बढ रहा है ॥३९८॥ सत्य वचन के ही आधार पर स्वर्ग, मोक्ष तथा नरक स्थित हैं, जो व्यक्ति अपनी वाणी का लोप (त्याग) कर देता है, उसका सब कुछ छूट जाता है ॥३९९॥ जो व्यक्ति आत्मा के वास्तविक स्वरूप को न कहकर उसका दूसरे प्रकार से प्रतिपादन करता है, उस आत्मापहारी चोर ने कौन सा पाप नहीं किया?॥४००॥ अपनी बातों का परित्याग करके मैं घोर नरक में जाऊँगी मृषावादी मनुष्य के आधे पुण्यों को यमराज विनष्ट कर देते हैं ॥४०१॥ अगाध जल वाले सत्य रूपी तीर्थ में तथा क्षमा रूपी जलाशय में स्नान करके निष्पाप बना हुआ जीव मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥४०२॥ हजार अश्वमेध यज्ञ के फल को तराजू के एक पलड़े पर तथा सत्य के फल को दूसरे पलड़े पर रखा जाय तो सत्य का फल अधिक हो जायेगा ॥४०३॥ सत्य ही उत्तम तप है, वह सुन्दर शास्त्र ज्ञान है, उसमें किसी प्रकार का क्लेश भी नहीं होता है, सत्य साधु जनों के परखने की कसौटी है, वह सज्जनों का कुलधन (सर्वोत्तम धन) है, वह सभी आश्रमों का फल है, इसीलिए उस सत्य को ही प्राप्त करके जीव स्वर्ग लोक जाता है, अतएव उसको कैसे त्यागा जा सकता है ? फलतः तुमलोग भी एक दूसरे से मिलकर सत्य बोलो॥४०४॥ **सखियों ने कहा—** हे नंदे ! तुम समस्त देवताओं तथा असुरों के लिए प्रणम्य हो, क्योंकि तुम सत्य का पालन करने के लिए अपने दुस्त्यज प्राणों का परित्याग कर रही हो । हे कल्याणि ! हमलोग तुम्हारे विषय में क्या कह

अवियोगं च पश्यामस्त्यागादस्मात्सुतेन हि । नार्याः कल्याणचित्तया नापदः संति कुत्रचित्॥४०७॥
दृष्ट्वागोपीजनं सर्वं परिक्रम्य च गोकुलम् । नंदा संप्रस्थिता देवान् वृक्षांश्चापृच्छ्य सा पुनः॥४०८॥
क्षितिं वरुणमग्निं च वायुं चापि निशाकरम् । दशदिग्देवतावृक्षान्नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥४०९॥
सर्वान्विज्ञापयामास प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः । ये संश्रिता वने सिद्धाः सर्वाश्च वनदेवताः॥४१०॥
वनेचरंतं च तृणं ते रक्षंतु सुतं मम। चंपकाशोकपुन्नागास्सरलार्जुनकिंशुकाः ॥४११॥
शृण्वंतु पादपाः सर्वे संदेशं मम विक्लवम्। वत्समेकाकिनं दीनं चरंतं विषमे वने ॥४१२॥
रक्षध्वं वत्सकं बालं स्नेहात्पुत्रमिवौरसम्। मात्रा पित्रा विहीनं च अनाथं दीनमानसम् ॥४१३॥
विचरंतमिमां भूमिं क्रंदमानं सुदुःखितम्। तस्येह क्रंदमानस्य मत्पुत्रस्य महावने ॥४१४॥
महाशोकाभिभूतस्य क्षुत्पिपासातुरस्य च । शून्यस्यैकाकिनः सर्वं जगच्छून्यं प्रपश्यतः ॥४१५॥
चरमाणस्य कर्तव्यं सानुक्रोशैस्तु रक्षणम् । संदिश्य नंदा प्रीत्यैवं पुत्रस्नेहवशं गता॥४१६॥
शोकाग्निना च सन्दीप्ता विच्छिन्ना पुत्र दर्शने। वियुक्ता चक्रवाकीव लतेव पतिता तरोः॥४१७॥
अंधेव दृष्टिरहिता प्रस्खलंती पदे पदे। अगच्छत्सा पुनस्तत्र यत्रासौ पिशिताशनः॥४१८॥
आस्ते विस्फूर्जितमुखस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः। तावत्तस्याः सुतो वत्स उद्ध्र्व पुच्छोति वेगवान्॥४१९॥
आगत्य मातुरग्रेऽसौ मृगेंद्रस्याग्रतो भवत् । आगतं तु सुतं दृष्ट्वा मृत्युं तमग्रतः स्थितम्॥४२०॥
व्याघ्रं दृष्ट्वा तु सा धेनुरिदं वचनमब्रवीत् । भो भो मृगेंद्रागताहं सत्यधर्मव्रते स्थिता ॥४२१॥

सकती है तुम तो धर्मधुरन्धर हो । इस त्याग के द्वारा तो त्रैलोक्य में सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है ॥४०५-४०६॥ हमलोग इस त्याग से समझाती हैं कि तुम्हारा तुम्हारे पुत्र का वियोग नहीं होगा । कल्याण मार्ग में प्रवृत नारी के ऊपर कोई भी विपत्ति नहीं आती है ॥४०७॥ सभी गायों से मिलकर गोशाला की परिक्रमा करके तथा उसे प्रणाम करके नन्दा ने देवताओं और वृक्षों से विदा लेकर प्रस्थान किया ॥४०८॥ पृथिवी, वरुण (जल) अग्नि, वायु, चन्द्रमा, दशो दिक्पाल, देवताओं, वृक्षों, क्षेत्रों तथा ग्रहों ॥४०९॥ इन सबों को बार-बार प्रणाम करके नन्दा ने निवेदन किया इस वन में रहने वाले जितने भी सिद्धजन और वन देवता हैं ॥४१०॥ वे सब वन में घास चरने वाले मेरे पुत्र की रक्षा करें । चम्पक, अशोक, पुन्नाग, सरल, अर्जुन तथा पलाश मेरी वाणी सुनें । यह मेरा अन्तिम सन्देश हैं अकेले तथा दीन इस वन में चरने वाले मेरे वत्स को ॥४११-४१२॥ आपलोग मेरे छोटे बछड़े को अपने बच्चे के समान रक्षा करें । माता-पिता से रहित, अनाथ तथा दुःखी मन वाले ॥४१३॥ इस भूमि में चरते हुए तथा दुःखी होकर रोते हुए मेरे पुत्र की रक्षा आपलोग इस वन में करेंगे ॥४१४॥ अत्यधिक शोक से संतप्त तथा भूख-प्यास से व्याकुल अकेले रहने वाले, शून्य तथा सम्पूर्ण संसार को शून्य देखने वाले चरते हुए मेरे बच्चे की रक्षा आपलोग कृपा करके करेंगे । अपने पुत्र के प्रति स्नेहिल नन्दा ने सबों को इस तरह से सन्देश देकर ॥४१५-४१६॥ शोकाग्नि से सन्तप्त अपने बच्चे की आँखों से ओझल होकर, चकवे से अलग हुयी चकई के समान वृक्ष से गिरी हुयी लता के समान ॥४१७॥ अन्धी के समान दृष्टि रहित पद-पद पर गिरती पड़ती हुयी वहाँ आयी जहाँ पर वह मांसभक्षी अपना मुख खोले हुये तीक्ष्ण दाँतों वाला भयङ्कर व्याघ्र था । उसी समय उसका बछड़ा भी पूंछ उठाये हुए अत्यन्त वेग पूर्वक ॥४१८-४१९॥ आकर अपनी माता के आगे तथा उस सिंह के सामने खड़ा हो गया अपने बच्चे को आये हुए तथा उसके सामने खड़ी मृत्यु को देखकर ॥४२०॥ उस व्याघ्र से उस गौ ने कहा हे मृगेन्द्र ! सत्य धर्म का पालन करती हुयी मैं आ गयी हूँ ॥४२१॥ इस समय तुम मेरे मांस से अपनी इच्छा भर तृप्ति कर लो । तुम

कुरुतृप्तिं यथाकाममस्मन्मांसेन सांप्रतम्। संतर्पयस्व भूतानि पिब त्वं शोणितं मम ॥४२२॥
मृतायां तु मयि त्वंभो भक्षयेमं तु बालकम् ।

द्वीप्युवाच

स्वागतं तव कल्याणि धेनुके सत्यवादिनि ॥४२३॥
नहि सत्यवतां किंचिदशुभं भवति क्वचित् । त्वयोक्तं धेनुके पूर्वं सत्यं प्रत्यागमे पुनः ॥४२४॥
तेन मे कौतुकं प्राप्तं प्राप्तागच्छेत्कथं पुनः । तव सत्यपरीक्षार्थं प्रेषितासि मया पुनः ॥४२५॥
अन्यथा मां समासाद्य जीवंती यास्यसे कथम् । यच्च नः कौतुकं जातं सत्यमन्वेषणं मम ॥४२६॥
तस्मादनेन सत्येन मुक्तासि च मयाधुना। भगिनी भवती मह्यं भागिनेयः सुतस्तव ॥४२७॥
दत्तोपदेशस्य शुभे मम पापिष्ठकर्मणः। सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः॥४२८॥
सत्येन गौः क्षीरधारां प्रमुंचति हविःप्रियाम् । स वै धन्यतमो गोपो यस्त्वत्क्षीरेण जीवति ॥४२९॥
भूमिप्रदेशा धन्यास्ते सतृणा वीरुधः शुभे। ते धन्याश्च कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम् ॥४३०॥
तैराप्तं जन्मनः सारं येपिबंति पयस्तव । मृगेंद्र प्रत्ययं गत्वा विस्मयं परमं गतः ॥४३१॥
प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सत्यं देवैः प्रदर्शितः । सत्यमिष्टं गवां दृष्ट्वा न मे वाञ्छास्ति जीवितुम्॥४३२॥
तत्करिष्याम्यहं कर्म येन मुच्येय किल्विषात्। मया जीवसहस्राणि भक्षितानि शतानि च ॥४३३॥
गतिं कामिह गच्छामि दृष्ट्वा गोः सत्यमीदृशम् । अहं पापो दुराचारो नृशंसो जीवघातकः ॥४३४॥
कांस्तुलोकानगमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् । गमिष्ये पुण्यतीर्थानि करिष्ये पापशोधनम्॥४३५॥
पतिष्ये गिरिमारुह्य प्रवेक्ष्ये वा हुताशनम् । धेनोद्य यन्मयाकार्यं तपः पापाद्विशुद्धये ॥४३६॥

भूतों की तृप्ति करो मेरे खून को पीओ ॥४२२॥ मेरे मर जाने के बाद तुम मेरे इस बच्चे को मारना । **सिंह ने कहा—** हे सत्यवादिनि ! क्ल्याणि ! तुम्हारा स्वागत है ॥४२३॥ सत्य बोलने वालों का कहीं भी अकल्याण नहीं होता है । हे गौ तुमने पहले कहा था कि सत्य के बल पर मैं लौटकर आऊँगी ॥४२४॥ उससे मुझे यह जानने की उत्कण्ठाा हुयी कि, किसी तरह से त्राण पायी हुयी यह कैसे आती है ? तुम्हारे सत्य की परीक्षा करने के ही लिए मैंने तुम्हें भेज दिया था ॥४२५॥ अन्यथा मुझको प्राप्त हो जाने पर तुम जिन्दा कैसे जा सकती थी ?। मुझको जो कौतुक हुआ था उसका अन्वेषण सत्य हुआ ॥४२६॥ इस सत्य के ही बल पर तुम मुझसे मुक्त हो गयी । तुम मेरी बहन हो और तुम्हारा यह पुत्र मेरा भाँजा है ॥४२७॥ हे शुभे ! तुमने मुझे सत्य का उपदेश दिया है मैं तो पापी हूँ । सारे लोक सत्य पर ही स्थित हैं, सत्य पर ही धर्म टिका हुआ है । सत्य के ही बल पर गौ हविष्य के लिए प्रिय दुग्ध की धारा बहाती है । वह गोप धन्य है जो तुम्हारे दुग्ध से जीवित रहता है ॥४२९॥ हे शुभे ! वहाँ के तृण और लताओं से युक्त भूमि भी धन्य है । जो लोग धन्य तथा कृतार्थ हैं, वस्तुत उनलोगों ने ही पुण्य किया है ॥४३०॥ उनलोगों ने ही जीवन का सारांश प्राप्त किया है जो लोग तुम्हारा दूध पीते हैं । वह सिंह विश्वस्त होकर अत्यन्त आश्चर्यित था ॥४३१॥ यह देवताओं की कृपा है जो हमलोगों को सत्य दिखलाता है । गौओं को सत्य अभिप्रेत हैं, इस बात को देखकर अब मैं जीवित नहीं रहना चाहता हूँ ॥४३२॥ अब मैं वही कर्म करूँगा जिसके कारण मैं पाप मुक्त हो सकूँ । मैंने सैकड़ों हजारों जीवों को खा लिया है । गौ को इस प्रकार सत्य अभिप्रेत देखकर न जाने मेरी कौन सी गति होगी । मै पापी, दुराचारी, नृशंस (क्रूर) तथा जीवों को मारने वाला हूँ ॥४३४॥ इन अत्यन्त दारुण कर्मों को करके मैं न जाने किन लोकों में जाऊँगा । मैं पवित्र तीर्थों में जाकर अपने पापों का प्रायश्चित करूँगा॥४३५॥

तदादिशस्व संक्षेपान्नकालो विस्तरस्य तु।

धेनुरुवाच

तपः कृते प्रशंसंति त्रेतायां ज्ञानमेव च ॥४३७॥
द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौ युगे । सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम् ॥४३८॥
अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम् । चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति ॥४३९॥
स च सर्वभयान्मुक्तः परंब्रह्माधिगच्छति । नास्त्यहिसां समं दानं नास्त्यहिंसासमं तपः ॥४४०॥
यथाहस्ति पदेष्वन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते । सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्र प्रलीयंते ह्यहिंसया ॥४४१॥
योगवृक्षस्य छाया या तापत्रयविनाशिनी । धर्मज्ञाने च पुष्पाणि स्वर्गमोक्षौ फलानि च ॥४४२॥
दुःखत्रयाभितप्तस्य छाया योगतरोः स्मृता । नबाध्यते पुनर्दुःखैः प्राप्य निर्वाणमुत्तमम् ॥४४३॥
इत्येतत्परमं श्रेयः कीर्तितं ते समासतः । ज्ञातं चैव त्वया सर्वं केवलं मां तु पृच्छसि॥४४४॥

दीप्युवाच

अहं मृग्या पुरा शप्तो व्याघ्ररूपेण संस्थितः । ततः प्राणिवधात्सर्वमशेषं मम विस्मृतम्॥४४५॥
त्वत्संपर्कोपदेशाभ्यां संजातं स्मरणं पुनः। त्वं चाप्यनेन सत्येन गमिष्यसि परां गतिम् ॥४४६॥
तदहं त्वां पुनः पृच्छे प्रश्नमेकं हृदि स्थितम् । साग्रंवर्षशतं जातं चिंयानस्य मे शुभे ॥४४७॥
भवत्या भाग्ययोगेन कदाचित्स्वर्गशोभने । कृतं धर्मस्य संस्थानं सतां मार्गे प्रतिष्ठितम् ॥४४८॥

पवर्त पर चढकर मैं उससे गिर पडूँगा अथवा जलती हुयी अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा । हे धेनो ! तुम उस तपस्या को बतलाओ जिससे मेरी पाप से शुद्धि हो सके ।।४३६।। उसे तुम मुझे संक्षेप में बतलाओं अब मेरे पास अधिक समय नहीं है । **धेनु ने कहा—** सत्ययुग में विज्ञ पुरुष तप की प्रशंसा करते है, त्रेतायुग में वे ज्ञानकी प्रशंसा करते हैं ।।४३७।। द्वापर में ऋषियों ने यज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया है और कलियुग में केवल दान को श्रेष्ठ बतलाया गया है । सभी दानों में श्रेष्ठ दान ।।४३८।। यही है कि सभी जीव को अभय प्रदान किया जाय, इससे बढकर कोई भी दूसरा दान नहीं है । जो समस्त चर एवं अचर जीवों को अभय दान करता है ।।४३९।। वह सभी भयों से मुक्त होकर परंब्रह्म को प्राप्त कर लेता है । अहिंसा के समान न तो कोई दान है और न तो अहिंसा के समान कोई तप है।।४४०।। जिस तरह हाथी के पैर में सबों के पैर समा जाते हैं, उसीतरह हे व्याघ्र ! सभी धर्म अहिंसा में ही आ जाते हैं ।।४४१।। भोग रूपी वृक्ष की छाया तीनों प्रकार के तापों को विनष्ट कर देने वाली है । धर्म और ज्ञान उसके पुष्प हैं तथा स्वर्ग की प्राप्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति उसके फल हैं ।।४४२।। दुःखत्रय से संतप्त व्यक्ति के लिए योग रूपी वृक्ष की छाया आवश्यक बतलायी गयी है । उसके द्वारा निर्वाण को प्राप्त करके जीव पुनः दुःख को नहीं प्राप्त करता है । मैंने संक्षेप में इस परमकल्याण के साधन को बतलाया है । तुम स्वयं भी इन सारी बातों को जानते हो केवल मुझसे पूछ रहे हो ।।४४४।। **सिंह ने कहा—** बहुत पहले मृगी ने मुझे शाप दे दिया था, उसी के कारण मैं व्याघ्र हो गया हूँ उसके कारण प्राणियों का वध करने के कारण मैं सब कुछ भूल गया ।।४४५।। तुम्हारे संपर्क तथा उपदेश के कारण मुझको वे सारी बातें याद आ गयी हैं तुम भी इस सत्य के द्वारा मुक्ति को प्राप्त कर लोगी।।४४६।। मेरे हृदय में एक और प्रश्न है, उसे मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ, हे शुभे ! चिन्ता करते हुए सौ वर्ष से अधिक बीत गये ।।४४७।। मेरे सौभाग्य से आकर तुमने मुझे धर्म के स्वरूप को बतलाया और मैं धर्म मार्ग में प्रतिष्ठित हो गया।।४४८।। हे सुव्रते ! मैं अज्ञानी हूँ । बतलाओ तुम्हारा नाम क्या हैं ? **नन्दा ने कहा—** मेरे स्वामी का नाम

किं तेऽभिधानं कल्याणि ब्रूहि मेऽज्ञस्य सुव्रते ।

नंदोवाच

मम नंदेतिसंज्ञा तु कृतानंदेन स्वामिना ॥४४९॥
सांप्रतं भक्षयामीति ह्यतिष्ठः केन हेतुना । नंदेति श्रुत्वा तन्नाम मुक्तशापः प्रभंजनः ॥४५०॥
पुनर्नृपत्वमापन्नो बलरूपसमन्वितः । एतस्मिन्नंतरे धर्मस्तां ज्ञात्वा सत्यवादिनीम् ॥४५१॥
द्रष्टुं समागतस्तत्र प्राब्रवीच्च पयस्विनीम् । तव सत्यव्रताद्धृष्टो धर्मोहमिह चागतः ॥४५२॥
नंदे वृणीष्व भद्रं ते वरं वरतमं हि यत् । एवमुक्ता हि सा देवी नंदा तं प्रार्थयद्वरम् ॥४५३॥
तवानुभावात्ससुता गच्छामि पदमुत्तमम् । भवेदिदं शुभं तीर्थं मुनीनां धर्मदायकम् ॥४५४॥
मन्नाम्ना च सरिदियं नंदानामसरस्वती । वरप्रदानाद्देवेश तदेतत्प्रार्थितं मया ॥४५५॥

पुलस्त्य उवाच

सा तत्क्षणाद्गता देवी स्थानं सत्यवतां शुभम् । प्रभंजनोपि तद्राज्यं संप्राप्तः प्रागुपार्जितम् ॥४५६॥
नंदा येन गतास्वर्गं नंदां प्राप्यसरस्वतीम् । तेनाख्यया बुधैस्तस्याः प्रोक्ता नंदासरस्वती ॥४५७॥
सरस्वती पुनस्तस्माद्वनात्खर्जूरसंज्ञितात् । दक्षिणेन पुनर्याता प्लावयंती धरातलम् ॥४५८॥
आगच्छन्नपि यस्तस्या नाम गृह्णाति मानवः । जीवन्सुखं स आप्नोति मृतो भवति खेचरः ॥४५९॥
तत्र ये शुभकर्माणस्त्यजति स्वां तनुं नराः । ते विद्याधरराजानो भवंति सुखिनो जनाः ॥४६०॥
नराणां स्वर्गानिःश्रेणी स्नानात्पानात्सरस्वती । तत्र स्नानंप्रकुर्वन्ति येऽष्टम्यां सुसमाहिताः ॥४६१॥
ते मृताः स्वर्गमासाद्य मोदंते सुमनोरमाः । सरस्वती सदास्त्रीणां तत्र सौभाग्यदायिका ॥४६२॥
उपोषिता तृतीयायामपि सौभाग्यभाजना । तत्र तद्दर्शनेनापि मुच्यत पापसंचयात् ॥४६३॥

नन्द है । उन्होंने मेरा नाम नन्दा रखा है ॥४४९॥ पहले तो तुमने कहा था कि मैं तुम्हे खा जाऊँगा किन्तु तुमने ऐसा क्यों नहीं किया ? नन्दा इस नाम को सुनते ही राजा प्रभंजन शाप मुक्त हो गये ॥४५०॥ वे पुनः बल तथा रूप से युक्त राजा हो गये । इसी बीच धर्मराज नन्दा को सत्यवादिनी समझकर ॥४५१॥ उसको देखने के लिए आये और उस गौ से कहे, तुम्हारे सत्यव्रत से प्रसन्न होकर मैं यहाँ आया हूँ । मैं धर्मराज हूँ ॥४५२॥ हे नन्दे ! तुम्हें जो सबसे अच्छा वर मालुम पड़े उसे तुम माँग लो । धर्मराज के इस तरह कहने पर नन्दा ने यह वरदान माँगा॥४५३॥ आपकी कृपा से मैं अपने पुत्र के साथ उत्तम गति को प्राप्त करूँ । यह मुनियों को पुण्य प्रदान करने वाला शुभ तीर्थ वन जाय ॥४५४॥ मेरे ही नाम से सरस्वती नदी के इस तीर्थ का नाम नन्दा सरस्वती हो जाय । हे देवेश ! प्रदान करने वाले आप से मेरी यही प्रार्थना है ॥४५५॥ **महर्षि पुलस्त्य ने कहा—** उसी समय वह नन्दा देवी सत्यवादियों के उत्तम लोक में चली गयी । राजा प्रभञ्जन भी पहले से अर्जित अपने राज्य को प्राप्त कर लिए॥४५६॥ चूँकि नन्दा सरस्वती को प्राप्त करके नन्दा स्वर्ग चली गयी इसलिए विज्ञ पुरुषों ने उसी के नाम से उस तीर्थ को नन्दा सरस्वती कहा ॥४५७॥ उसके वाद सरस्वती उस खर्जूरी वन से पृथिवी को सींचती हुयी दक्षिण दिशा में चली । पुष्कर आते हुए जो मनुष्य उस नन्दा सरस्वती का नाम लेता है, वह अपने जीवन में सुख को प्राप्त करता है और मृत्यु के बाद वह आकाशचारी देवता होता है ॥४५९॥ वहाँ पर जो पुण्यवान् पुरुष अपने शरीर का त्याग करते हैं, वे सुखी पुरुष मृत्यु के पश्चात् विद्याधरराज होते हैं ॥४६०॥ स्नान करके उसके जल को पीने वाले के लिए सरस्वती नदी स्वर्ग का सोपान बन जाती है । जो लोग उस तीर्थ में अष्टमी तिथि को भक्ति पूर्वक स्नान करते हैं ॥४६१॥ वे मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक में जाकर अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हैं वहाँ पर सरस्वती नदी स्त्रियों के लिए सदा सौभाग्य प्रदान करने वाली रहती है ॥४६२॥ कुछ दूर जाकर सरस्वती नदी पुनः लौट

स्पृशंति ये नराः केचित्तेपि ज्ञेया मुनीश्वराः। रजतस्य प्रदानेन रूपवान् जायते नरः ॥४६४॥
पुण्यापुण्यजलोपेता नदीयं ब्रह्मणः सुता। नंदानामेति विपुला प्रवृत्ता दक्षिणामुखी ॥४६५॥
गत्वा ततो नातिदूरं पुनर्याता पराङ्मुखी । ततः प्रभृति सा देवी प्रसभं प्रकटा स्थिता ॥४६६॥
तस्यास्तटेषु पुण्येषु तीर्थान्यायतनानि च । संसेवितानि मुनिभिः सिद्धैश्चापि समंततः ॥४६७॥
तेषु सर्वेषु भवति धर्महेतुस्सरस्वती । स्नानात्पानात्प्रदानाद्वा हिरण्यस्य महानदी॥४६८॥
हाटकक्षितिगौरीणां नंदातीर्थे महोदयम्। दानं दत्तं नरैः स्नातै र्जनयत्यक्षयंफलम् ॥४६९॥

धान्यप्रदानं प्रवदंति शस्तं वसुप्रदानं च तथामुनींद्राः ।
यैस्तेषु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुः प्रवरंप्रदिष्टम् ॥४७०॥
प्रायोपवेशं प्रयतः प्रयत्नाद्यस्तत्र कुर्यात्प्रमदा पुमान्वा ।
तीर्थेषु सायुज्यमवाप्य सोऽयं भुङ्क्ते फलं ब्रह्म गृहे यथेष्टम् ॥४७१॥
तस्योपकंठे तु मृतास्तु ये वै कर्मक्षयात्स्थावरजंगमाश्च ।
तैश्चापि सर्वैः सहसा प्रसह्य लभ्येत यज्ञस्य फलं दुरापम् ॥४७२॥
ततस्तु सा धर्मफलप्रदाभवेज्जन्मादिदुःखार्दितचेतसां नृणाम् ।
सर्वात्मनापुण्यफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषैर्महानदी ॥४७३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे नंदाप्राचीमहात्म्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

गयी वहाँ पर तृतीया तिथि को उपवास करने से सरस्वती नदी स्त्रियों को सौभाग्य प्रदान करती है । वहाँ पर सरस्वती नदी का दर्शन करने से मनुष्य पापों से छुटकारा पा लेता है ॥४६३॥ जो लोग वहाँ पर दान करते हैं, उन्हें भी मुनीश्वर जानना चाहिए । वहाँ पर चाँदी का दान करके मनुष्य रूपवान हो जाता है ॥४६४॥ यह पवित्र तथा अवित्र जल से युक्तबादी ब्रह्माजी की पुत्री है । वहाँ से दक्षिणाभिमुख जाने वाली सरस्वती नदी नन्दा के नाम से अभिहित होती है ॥४६५॥ वह वहाँ से थोड़ी दूर जाकर पुनः लौट गयी, उसी समय से वह सरस्वती देवी वहाँ पर स्पष्ट रूप से प्रकट रहती हैं ॥४६६॥ उसके पवित्र तटों पर पवित्र मन्दिर विद्यमान है उन सबां में मुनिजन तथा सिद्धजन निवास करते हैं ॥४६७॥ उन सभी स्थानों में सरस्वती नदी में स्नान करने, उसके जल को पीने अथवा सुवर्ण का दान करने से महानदी सरस्वती पुण्य प्रदान करती है ॥४६८॥ वहाँ पर नन्दा तीर्थ में सुवर्ण, भूमि तथ गौ का दान करने से, महान् कल्याण होता है । वहाँ पर स्नान करके दिया हुआ दान अक्षय फल प्रदान करने वाला होता है॥४६९॥ उन तीर्थों में मनुष्यों द्वारा किये गये अन्न दान तथा धन के दान को मुनीन्द्रों ने श्रेष्ठ बतलाया है॥४७०॥ वहाँ पर स्त्री अथवा पुरुष को नियम तथा प्रयत्न पूर्वक निवास करना चाहिए उन तीर्थों को तो प्राप्त करके मनुष्य ब्रह्माजी के लोक में अभिलषित फलों को प्राप्त करता है ॥४७१॥ उस नन्दा तीर्थ के सन्निकट जिस मनुष्य का शरीर छूट जाता है, उसके कर्मों का नाश हो जाता है, और वह जीव सहसा यज्ञ करने का दुष्प्राप्य फल प्राप्त करता है॥४७२॥ जन्मादि दुखों से दुःखी हृदय वाले जीवों को वहाँ पर सरस्वती नाम की महानदी धर्म के फलों को प्रदान करती है । इसलिए हर प्रकार के प्रयासों के द्वारा सरस्वती नदी का सेवन करने का प्रयास करना चाहिए ॥४७३॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के नन्दा प्राची सरस्वती तीर्थ के माहात्म्य वर्णन नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

पुष्करस्य च नंदायाः श्रुतं महाम्यमुत्तमम्। ऋषिकोटिर्यदा याता पुष्करे मुखदर्शनात् ॥१॥
सर्वैः सुरूपतालब्धा सर्वमेतन्मया श्रुतम्। यज्ञोपवीतै र्भक्तानि यानि तानि वदस्व मे ॥२॥
कथं तीर्थविभागस्तु कृतस्तैस्सुमहात्मभिः । आश्रमे यानि तीर्थानि कृतान्यपि महर्षिभिः ॥३॥
पदन्यासः कृतः पूर्वं विष्णुना यज्ञपर्वते । नागैस्तत्र पंच तीर्थं कृतं तैस्तु महाविषैः ॥४॥
पिंडप्रदानवापी च केनपूर्वं विनिर्मिता। उदङ्मुखी भूमिगता कथं गङ्गा सरस्वती ॥५॥
ब्राह्मणैर्वेदविद्वद्भिः कथं यात्रा त्रिपुष्करे। कर्तव्या यत्फलं तस्या जायते तद्वदस्व मे ॥६॥

पुलस्त्य उवाच

प्रश्नभारो महानेष भवता परिकल्पितः । तदेकाग्रमना भूत्वा शृणु तीर्थमहाफलम्॥७॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्यातपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥८॥

ऋषियों द्वारा यज्ञोपवीत से नाप कर तीर्थों का विभाग, ब्राह्मणों तथा ऋषियों को वरदान, पुष्कर क्षेत्र का माहात्म्य, पुष्कर में ब्रह्मर्षियों के आश्रम आदि का वर्णन, अगस्त्य महर्षि के प्रभाव का वर्णन, वृत्रासुर के वध की कथा, देवताओं की ऋषि दधीचि से प्रार्थना, दधीचि ऋषि की हड्डी से वज्र का निर्माण, इन्द्र द्वारा वज्र से वृत्रासुर का वध, इन्द्र का सरोवर में प्रवेश, देवताओं से भयभीत कालेय असुरों का समुद्र में प्रवेश, कालेय कृत उपद्रवों का वर्णन, देवताओं द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति, भगवान् विष्णु की आज्ञा से देवताओं द्वारा आगस्त्य महर्षि के आश्रम में जाकर उनकी स्तुति, अगस्त्य महर्षि द्वारा विन्ध्यगिर को झुकाया जाना, अगस्त्य महर्षि का समुद्र को पीना, देवताओं द्वारा कालेय का वध, ब्रह्माजी की आज्ञा से भागीरथी द्वारा समुद्र को भरना, पुष्कर क्षेत्र में श्राद्ध इत्यादि की विधि, अवर्षण तथा दुर्भिक्ष से त्रस्त ऋषियों द्वारा मरे हुए कुमारों के शरीर को पकाने पर उनका राजा से संवाद, दान लेने के दोष, शान्ति प्रशंसा, द्रव्यों के संग्रह तथा तृष्णा के दोष, सन्तोष की प्रशंसा, काम दोष का वर्णन, दान न लेने का फल, भूखों की अवस्था का वर्णन, अन्न की प्रशंसा, अन्नदान की प्रशंसा, दम आदि का वर्णन, शान्त के लक्षण, शान्ति तथा क्षमा की प्रशंसा और मध्यपुष्कर का महात्म्य वर्णन

भीष्मजी ने कहा— आपने मुझे पुष्कर तीर्थ के नन्दातीर्थ का उत्तम माहात्म्य सुनाया कि करोड़ों ऋषि पुष्कर में अपना मुख देखकर ॥१॥ सुन्दर रूप वाले हो गये । इसके बाद उन लोगों ने अपने यज्ञोपवीत से नाप कर जिन तीर्थों का विभाग किया उसे आप मुझे बतलायें ॥२॥ उन माहात्माओं ने किस प्रकार से तीर्थों का विभाग किया और उन महर्षियों ने अपने आश्रमों में जिन तीर्थों का निर्माण किया उसे भी आप बतलाइये ॥३॥ सर्वप्रथम भगवान् विष्णु जो यज्ञ पर्वत पर आये और वहाँ पर महाविषैले नागों ने पाँच तीर्थों का निर्माण किया, उसे बतलाइयें ॥४॥ सर्वप्रथम पिण्डप्रदान वापी का निर्माण किसने किया ? क्यों सरस्वती गङ्गा भूमि के भीतर चली गयीं । वेदज्ञ ब्राह्मणों को तीनों पुष्करों की यात्रा कैसे करनी चाहिए ? उस यात्रा से होने वाले फल को आप मुझे बतलायें ॥५-६॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** आपने तो यह प्रश्नों के बहुत बड़े भार की कल्पना की है अतएव एकाग्रमना होकर आप इस तीर्थ में प्राप्त होने वाले महान् फल का श्रवण करें ॥७॥ जिस के हाथ, पैर तथा मन एवं विद्या, तपस्या और यश अयन्त

प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित् । अहँकारनिवृत्तश्च सतीर्थफलश्नुते॥९॥
अक्रोधनश्च राजेंद्र सत्यशीलो दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥१०॥
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम। पूर्वं यत्र महाराज सत्रे पैतामहे तथा ॥११॥
यतीनामुग्रतपसां येषां कोटिः समागता । मुखदर्शनमाश्रित्य स्थितास्ते ज्येष्ठ पुष्करे ॥१२॥
सुरूपतां परां लब्ध्वा प्रीतास्ते मुनिसत्तमाः । हर्षेण महता विष्टा ब्रह्मदर्शनकांक्षिणः ॥१३॥
यज्ञोपवीतैस्ते भूमिं माप्य सर्वे चतुर्दिशं । कृत्वा तीर्थ विभागं च स्थिता भक्तिपरायणाः॥१४॥
आसन्नश्च ततस्तेषां तदा तुष्टः पितामहः । कोटिं कृवा तदा तेषां मानं दृष्ट्वा मनीषिणाम्॥१५॥
अद्य प्रभृति युष्माकं धर्मवृद्धिर्भविष्यति। इहागत्य नरो यो वै यदंगंप्रथमं जले ॥१६॥
प्लावयिष्यति रूपार्थं रूपिता तीर्थ करिता । भविष्यति न संदेहो योजनायतमंडले ॥१७॥
अर्धयोजनविस्तारं दीर्घं सार्धं हि योजनम् । एतत्प्रमाणं तीर्थस्य ऋषि कोटिप्रवर्त्तितम् ॥१८॥
गमनादेव राजेंद्र पुष्करस्य त्वरिंदम । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलमाप्नोति मानवः॥१९॥
सरस्वती महापुण्या प्रविष्टा ज्येष्ठपुष्करे । तत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥२०॥
अभिगच्छंति राजेंद्र चैत्र शुक्लचतुर्दशी। तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ॥२१॥
गोमेधं च तदाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् । एवं तीर्थविभागस्तु कृतस्तैस्तु महर्षिभिः॥२२॥
पितॄन् देवांश्च सन्तर्प्य विष्णुलोके महीयते । तत्र स्नात्वा भवेन्मर्त्यो विमलश्चन्द्रमा यथा ॥२३॥

सुसंयत रहते हैं, वही तीर्थ के फलों को प्राप्त करता है ॥८॥ जो कोई भी दान नहीं लेता है, जो कुछ भी मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहने वाला तथा जो अहङ्कार से रहित होता है, उसे ही तीर्थ का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है ॥९॥ हे राजेन्द्र ! जो क्रोध रहित, सत्य का पालन करने वाला तथा दृढतापूर्वक व्रत का पालन करने वाला होता है, तथा सभी जीवों में आत्मबुद्धि करता है, वह तीर्थ के फलों को प्राप्त करता है ॥१०॥ हे भरतश्रेष्ठ ! यह ऋषियों का परम रहस्यात्मक सिद्धान्त है । हे महाराज ! जहाँ पर प्राचीन काल में ब्रह्माजी के यज्ञ में ॥११॥ करोड़ों उग्र तपस्वी आये और अपने मुख का दर्शन करके ज्येष्ठ पुष्कर में निवास किए ॥१२॥ वे अपने अत्युत्कृष्ट सुरूपता को प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हुए । अत्यन्त हर्षित होकर वे ब्रह्माजी का दर्शन करना चाहते थे ॥१३॥ वे लोग चारो दिशाओं में भूमि को माप करके भक्ति पूर्वक तीर्थों का विभाग करके वहीं स्थित हो गये ॥१४॥ उन सबों से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उनके सन्निकट रहने लगे । उन ऋषियों के सम्मान को करोड़ों गुणा बढाकर कहे ॥१५॥ आज तक आपलोगों के धर्म की वृद्धि होती रहेगी । यहाँ पर आकर जो मनुष्य अपने जिस अंग को सर्वप्रथम जल में ॥१६॥ रूप की प्राप्ति के लिए इस रूप को करने वाले तीर्थ में डालेगा, वह सुन्दर रूप वाला हो जायेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है । ऋषियों ने आधा योजन (दो कोस) चौड़ा तथा ढाई योजन (दश कोस) लम्बा इस तीर्थ का निर्माण किया है । इसमें उन ऋषियों ने करोड़ों तीर्थों को बनाया है ॥१७-१८॥ हे राजेन्द्र ! पुष्कर तीर्थ में जाने मात्र से ही कोई मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध नामक दोनों यज्ञों के फल को प्राप्त कर लेता है ॥१९॥ महापुण्या सरस्वती नदी ज्येष्ठ पुष्कर में ही सर्वप्रथमं प्रवेश की है वहाँ पर ब्रह्मा आदि सभी देवता, ऋषिगण सिद्ध तथा चारणगण ॥२०॥ चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि को जाते हैं । वहाँ पर जाकर स्नान करके पितृगण तथा देवगण की अर्चना करनी चाहिए ॥२१॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति गोमेध यज्ञ का फल प्राप्त करके अपने वंश का उद्धार कर देता है । इस तरह से महर्षियों ने वहाँ पर तीर्थों का विभाग किया है ॥२२॥ वहाँ पर पितरों तथा देवताओं की तृप्ति करके जीव

ब्रह्मलोकमवाप्नोति गतिं च परमां व्रजेत् । नृलोके देवदेवस्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥२४॥
पुष्करं नाम विख्यातं महापातकनाशनम् । दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीपते ॥२५॥
सान्निध्यं पुष्करे येषां त्रिसन्ध्यं कुलनन्दन । आदित्या वसवो रुद्रास्साध्याश्च समरुद्गणाः ॥२६॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव नित्यं सन्निहिता विभो: । यत्र देवास्तपस्तप्त्वा दैत्या ब्रह्मर्षयस्तथा ॥२७॥
दिव्ययोगा महाराज पुण्येन महतान्विताः । मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विनः ॥२८॥
पूयन्ते सर्वपापानि नाकपृष्ठे समोदते । तस्मिंस्तीर्थे महाराज नित्यमेव पितामहः ॥२९॥
उवास परमप्रीतो देवदानवसम्मतः । पुष्करेषु महाराज देवास्सर्षि पुरोगमाः ॥३०॥
सिद्धिं च समनुप्राप्ताः पुण्येन महतान्विताः । तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः ॥३१॥
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदंति मनीषिणः । अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः ॥३२॥
अन्नेन तेन संप्रीता कोटिर्भवति पूजिता । तेनासौ कर्मणा भीष्म प्रेत्य चेह च मोदते ॥३३॥
शाकैर्मूलैः फलैर्वापि येन वा वर्त्तयेत्स्वयम् । तद्वै दद्याद्ब्राह्मणाय श्रद्धावाननसूयकः ॥३४॥
तेनैव प्राप्नुयात्प्राज्ञो हयमेधफलं नरः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ॥३५॥
पैतामहं सरः पुण्यं पुष्करं नाम नामतः । वैखानसानां सिद्धानां मुनीनां पुण्यदं हि यत् ॥३६॥
सरस्वती पुण्यतमा यस्माद्याता महार्णवम् । आदिदेवो महायोगी यत्रास्ते मधुसूदनः ॥३७॥
ख्यात आदिवराहेति नाम्नात्रिदशपूजितः । हीनवर्णाश्च ये वर्णास्तीर्थे पैतामहे गताः ॥३८॥

विष्णुलोक में जाकर पूजित होता है । वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य चन्द्रमा के समान स्वच्छ हो जाता है ॥२३॥ वह व्यक्ति, मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक में जाता है और परमा गति को प्राप्त कर लेता है । वह मनुष्यलोक में देवाराध्य ब्रह्माजी का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है और त्रैलोक्य में विख्यात है ॥२४॥ पुष्कर नाम का तीर्थ महापातकों का विनाश करने वाले तीर्थ के रूप में विख्यात है । हे राजन् ! पुष्कर तीर्थ में दश हजार तीर्थ हैं ॥२५॥ वहाँ पर आदित्यगण वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, मरुद्गण, गन्धर्वो तथा अप्सराओं का तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न तथा सायम्) में सान्निध्य बना रहता है । वहाँ पर तपस्या करके, दैत्य तथा ब्रह्मर्षिगण ॥२६-२७॥ दिव्ययोग से युक्त तथा महापुण्य से सम्पन्न हो जाते हैं । वे मन से भी जिसकी कामना करनी चाहिए ऐसे पुष्कर तीर्थ में स्नान करके अपने समस्त पापों का प्रक्षालन करके स्वर्गलोक में आनन्दानुभव करते हैं । हे महाराज ! उस तीर्थ में देवता एवं दानव दोनों के पूज्य ब्रह्माजी अत्यन्त प्रेम पूर्वक नित्य ही निवास करते है । हे महाराज ! तीनों पुष्करों में देवतागण और ऋषिगण॥२८-३०॥ महान् पुण्य से युक्त होकर सिद्धि प्राप्त कर लिए देवताओं और पितरों की अर्चना करने वाला जो व्यक्ति वहाँ पर स्नान करता है ॥३१॥ उसको अश्वमेध यज्ञ के दश गुणा फल मिलता है, यह मनीषिगण कहते हैं । पुष्करारण्य में यदि कोई एक भी ब्राह्मण को भोजन कराता है ॥३२॥ उसको करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है । हे भीष्म जी ! उस कार्य को करके वह व्यक्ति इस लोक में और परलोक में अनन्दानुभव करता है ॥३३॥ नवीन शाक, मूल, फल इत्यादि जो कुछ भी मिले उसको बिना किसी असूया के श्रद्धापूर्वक ब्राह्मण को प्रदान करना चाहिए ॥३४॥ ऐसा करने वाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है । हे राजश्रेष्ठ ! वह चाहे ब्राह्मण हो, या क्षत्रिय हो, या वैश्य हो ब्रह्माजी का पुष्कर सरोवर अत्यन्त पवित्र है । वह वैखानसों, सिद्धों तथा मुनियों को पुण्य प्रदान करने वाला है ॥३६॥ इस तीर्थ से अत्यन्त विख्यात सरस्वती नदी महार्णव में गयी है। यहीं पर आदि देव भगवान् वराह विराजते हैं ॥३७॥ ये आदि वराह के नाम से विख्यात हैं तथा देवताओं से पूजित

नवियोनिं व्रजंत्येते स्नात्वा तीर्थे महात्मनः । कार्तिक्यां च विशेषेण योभिगच्छेत्तुपुष्करम् ॥३९॥
फलं तत्राक्षयं तस्य भवतीत्यनुशुश्रुम । सायं प्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृतांजलिः ॥४०॥
उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थे तु कौरव । जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ॥४१॥
पुष्करे स्नानमात्रेण सर्वमेत्प्रणश्यति । यथासुराणां प्रवरः 'सर्वेषां तु पितामहः ॥४२॥
तथैव पुष्करं तीर्थं तीर्थानामादिरुच्यते । तद्दृष्ट्वा दशवर्षाणि पुष्करे नियतः शुचिः ॥४३॥
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं स गच्छति । यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते ॥४४॥
कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव तु । पुष्करे दुष्करो होमः पुष्करे दुष्करं तपः ॥४५॥
पुष्करे दुष्करं दानं वासश्चैव सुदुष्करः । ब्राह्मणो वेदविद्वांस्तु गत्वा वै ज्येष्ठपुष्करम् ॥४६॥
स्नानाद्भवेन्मोक्षभागी श्राद्धेन पितृतारकः । नाममात्रोऽपि यो विप्रो गत्वा संध्यामुपासते ॥४७॥
वर्षाणि द्वादशैवेह तेन संध्याह्युपासिता । भवेतु नात्र संदेहः पुरा प्रोक्तं स्वयंभुवा ॥४८॥
सावित्री कथितो दोषः कुले तस्य न जायते । य पत्नी ददते भर्तुः संध्योपास्तिंकरिष्यतः ॥४९॥
करकेण तु ताम्रेण तोयं मुक्तादिवं व्रजेत् । ब्रह्मलोकमनुप्राप्य तिष्ठति ब्रह्मणो दिनम् ॥५०॥
एकाकिना गतेनापि संध्या वंद्या यथाक्रमम् । पौष्करेणाथ तोयेन भृंगारे निहितेनतु ॥५१॥
तेनापि द्वादशाब्दानि संध्योपास्ता न संशयः । भवेत्समीपगा पत्नी कुर्वतः पितृतर्पणम् ॥५२॥

है । इस पुष्कर तीर्थ में आने वाले हीन वर्ण के भी मनुष्य ॥३८॥ ब्रह्माजी के इन तीर्थों में स्नान करके पुनः हीन योनियों में नहीं जातें है । विशेषरूप से कार्तिक मास की पूर्णिमा को जो लोग पुष्कर क्षेत्र में जाते हैं ॥३९॥ उन लोगों को अक्षय फल की प्राप्ति होती है, यह सुना जाता है । जो व्यक्ति हाथ जोड़कर सायंकाल तथा प्रात:काल तीनों पुष्करों का स्मरण करता है हे कौरव ! उस व्यक्ति को सभी तीर्थों में आचमन करने का फल प्राप्त हो जाता है । जन्म से लेकर स्नान करने के समय तक स्त्री अथवा पुरुषों के जो पाप होते हैं, वे पुष्कर तीर्थ में स्नान करने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं । जिस तरह ब्रह्माजी सभी देवताओं में आदि देव हैं ॥४०-४२॥ उसी तरह पुष्कर भी सभी तीर्थों में आदि तीर्थ है । उस तीर्थ में जाकर दश वर्षों तक जो नियम पूर्वक पावित्र्य पालन करते हुए रहता है ॥४३॥ उसको सभी यज्ञों को करने का फल प्राप्त हो जाता है, और मृत्यु के पश्चात् वह ब्रह्मलोक में जाता है । जो व्यक्ति पूरे सौ वर्षो तक रहकर अग्निहोत्र करता है ॥४४॥ उसके सदृश ही फल कार्तिक पूर्णिमा को पुष्कर में एक रात निवास करने का होता है । पुष्कर में रहकर होम करना अथवा पुष्कर में रहकर तपस्या करना कठिन है ॥४५॥ पुष्कर में दान देना तथा निवास करना भी कठिन है । वेद का विद्वान् ब्राह्मण यदि ज्येष्ठ पुष्कर में जाकर ॥४६॥ स्नान करे तो वह मोक्ष का भागी हो जाता है । यदि वह वहाँ श्राद्ध करता है, तो वह अपने पितरों का उद्धार कर देता है । यदि वह वहाँ पर नाम मात्र का सन्ध्योपासन करता है तो उसको इस लोक में बारह वर्षो तक सन्ध्योपासन करने का फल प्राप्त होता है । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है, इस बात को ब्रह्माजी ने कहा है ॥४७॥ जो व्यक्ति सन्ध्योपासन करने वाले ब्राह्मण को पत्नी दान देता है, उसके वंश में सावित्री देवी द्वारा दिए गये शापजन्य दोष नहीं होते हैं॥४८-४९॥ ताम्बे के पात्र से दिया गया जल स्वर्ग लोक तक चला जाता है । वह ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी के दिन पर्यन्त बना रहता है ॥५०॥ यदि अकेले भी (पत्नी के साथ लिए बिना भी) पुष्कर में जाय तो वह पुष्कर में जाकर सविधि संध्यावन्दन करे । उसे सन्ध्या वन्दन के लिए झारी में पुष्कर का जल लेकर संध्या करनी चाहिए॥५१॥ जो अपने समीप पत्नी को बैठाकर दक्षिणाभिमुख बैठकर अपने पितरों का तर्पण करता है हे राजन् !

दक्षिणां दिशमास्थाय गायत्र्या राजसत्तम । पितॄणां परमा तृप्तिः क्रियते द्वादशाब्दिकी ॥५३॥
युगसहस्रं पिण्डेन श्राद्धेनानन्त्यमश्नुते । एतदर्थं हि विद्वांसः कुर्वते दारसंग्रहम् ॥५४॥
तीर्थे गत्वा प्रदास्यामः पिंडान्वै श्राद्धपूर्वकं । तेषां पुत्रा धनं धान्यमविच्छिन्ना च संततिः ॥५५॥
भवेद्वै नात्र संदेह एतदाह पितामहः । तर्पयित्वा पितृन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५६॥
आश्रमानपि ते वाच्मि श्रृणुष्वैकमना नृप । अगस्त्येन कृतश्चात्र आश्रमो देवसंमितः ॥५७॥
सप्तर्षीणां पुरा चात्र आश्रमो देवसम्मतः । ब्रह्मर्षीणां तथा चात्र मनूनां परमस्तथा ॥५८॥
नागानां च पुरी रम्या यज्ञपर्वतरोधसि । अगस्त्यस्य महाराज प्रभावममितात्मनः ॥५९॥
कथयामि समासेन श्रृणु त्वं सुसमाहितः । पूर्वं कृतयुगे भीष्म दानवा युद्धदुर्मदाः ॥६०॥
कालेया इति विख्याता गणाः परमदारुणाः । ते तु वृत्रं समाश्रित्य देवान् हंतुं समुद्यताः ॥६१॥
ततो देवाः समुद्विग्ना ब्रह्माणमुपतस्थिरे । कृतांजली स्तुतान्सर्वान्परमेष्ठीत्युवाच ह ॥६२॥
विदितं मे सुराः सर्वं यद्वः कार्यं चिकीर्षितम् । तमुपायं प्रवक्ष्यामि यथा वृत्रं वधिष्यथ ॥६३॥
दधीचिरिति विख्यातो महानृषिरुदारधीः । तं गत्वा सहितास्सर्वे वरं च प्रतियाचत ॥६४॥
स वो दास्यति धर्मात्मा सुप्रीतेनांतरात्मना । स वाच्यः सहितैः सर्वैर्भवद्भिर्जयकांक्षिभिः ॥६५॥
स्वान्यस्थीनि प्रयच्छस्व त्रैलोक्यहितकांक्षया । सशरीरं समुत्सृज्य स्वान्यस्थीनि प्रदास्यति ॥६६॥
तस्यास्थिभिर्महाघोरं वज्रं संक्रियतां दृढम् । महच्छत्रुहनं दिव्यं तदस्त्रमशनिः स्मृतम् ॥६७॥
तेन वज्रेण वै वृत्रं बधिष्यति शतक्रतुः । एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्मात्सर्वं विधीयताम् ॥६८॥

भीष्म उसको भी बारह वर्षों तक सन्ध्या करने का फल प्राप्त करता है ॥५२-५३॥ वहाँ पर पिण्डदान करने से पितरों को हजारों युगों तक अक्षय तृप्ति बनी रहती है । विद्वान् पुरुष इसीलिए विवाह करते हैं कि पत्नी के साथ तीर्थों में जाकर हम श्रद्धापूर्वक पितरों का श्राद्ध करेंगे । ऐसा करने वाले ब्राह्मणों के धन, सम्पत्ति तथा सन्तान अविच्छिन्न रूप से बने रहते हैं ॥५४-५५॥ पुष्कर तीर्थ में जाकर पितरों का तर्पण करने से अग्निष्टोमयाग करने का फल प्राप्त होता है, यह ब्रह्माजी ने कहा है ॥५६॥ हे राजन् ! अब मैं तुमको पुष्कर तीर्थ के आश्रमों का वर्णन सुनाता हूँ, उसे सावधानी से सुनो । पुष्कर में देवतुल्य महर्षि अगस्त्य ने अपना आश्रम बनाया है ॥५७॥ यहाँ पर देवताओं के प्रिय सप्तर्षियों का, ब्रह्मर्षियों का तथा मनुओं के भी श्रेष्ठ आश्रम हैं ॥५८॥ यहाँ पर्वत की तलहटी में नागों की मनोहर पुरी है । वहाँ पर अमितात्मा महर्षि आगस्त्य का प्रभाव देखा जाता है ॥५९॥ उनका मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ; तुम सावधानी पूर्वक सुनो । हे राजन् पहले के सत्ययुग में युद्ध के मद में मदमत्त रहने वाले ॥६०॥ कालेय नाम से विख्यात दानवों का समूह हुआ । वह अत्यन्त भयङ्कर समूह था । वे सब वृत्रासुर के साथ मिलकर देवताओं को मार डालने के लिए तैयार हो गये ॥६१॥ उसके कारण उद्विग्न होकर देवता ब्रह्माजी के शरण में गये । हाथ जोड़े हुए देवताओं को देखकर ब्रह्माजी ने कहा ॥६२॥ देवताओं आपलोग जो कहना चाहते हैं, उसे मैं जानता हूँ ! आपलोग जिस तरह से वृत्रासुर का वध कर पायेंगे, उस उपाय को मैं आपलोगों को बतलाता हूँ ॥६३॥ अत्यन्त उदार बुद्धि वाले महर्षि दधीचि हैं, उनके पास जाकर आपलोग उनसे वरदान माँगे ॥६४॥ वे धर्मात्मा अपनी अन्तरामा से प्रसन्न होकर आपलोगों को वरदान देंगे । उसके बाद विजय चाहने वाले आपलोग उनसे कहें कि ॥६५॥ त्रैलोक्य का कल्याण करने के लिए वे अपनी हड्डियों को प्रदान करें । ऐसा करने से वे अपने शरीर का परित्याग करके आपलोगों को अपनी हड्डी प्रदान कर देंगे ॥६६॥ उनकी हड्डियों से आपलोग भयङ्कर वज्र का निर्माण करें । वह वज्र महान् से

एवमुक्तास्ततो देवा अनुज्ञाप्य पितामहम् । शतक्रतुं पुरस्कृत्य दधीचेराश्रमं ययुः ॥६९॥
सरस्वत्याः परे पारे नानाद्रुमलतावृतम् । षट्पदोद्गीतनिनदैरुद्घुष्टं सामगैरिव ॥७०॥
पुंस्कोकिलरवोन्मिश्रं जीवं जीवकनादितम् । महिषैश्च वराहैश्च सृमरै श्चामरैरपि ॥७१॥
तत्र तत्रानुचरितैः शार्दूलभयवर्जितैः । करेणुभि र्वारणैश्च प्रभिन्नकरटामुखैः ॥७२॥
स्वरोद्गारैश्च क्रीडद्भिः समंतादनुनादितम् । सिंहव्याघ्रै र्महानादं नदद्भिरनुनादितम्॥७३॥
मयूरैश्चापि संलीनै र्गुहाकंदरवासिभिः । तेषु तेषु च कुंजेषु नादितं सुमनोरमम् ॥७४॥
त्रिविष्टपसमप्रख्यं दधीच्याश्रममागमन्। तत्रापश्यन् दधीचिं तं दिवाकरसमप्रभम् ॥७५॥
जाज्वल्यमानं वपुषा यथालक्ष्म्या चतुर्भुजम् । तस्य पादौ सुराराजन्नभिवंद्य प्रणम्य च ॥
अयाचंत वरं सर्वे यथोक्तं परमेष्ठिना ॥७६॥

ततो दधीचिः परमप्रतीतः सुरोत्तमांस्तानिदमित्युवाच ।
करोमि यद्वोहितमद्य देवाः स्वं वापि देहंत्वहमुत्सृजामि ॥७७॥
तानेवमुक्त्वा द्विपदांवरिष्ठः प्राणांस्ततोसौ सहसोत्ससर्ज ।
सुरास्तदस्थीनि सवासवास्ते यथोपयोगं जगृहुःस्म तस्य ॥७८॥
प्रहृष्टरूपाश्च जयाय देवास्त्वष्टारमासाद्य तमर्थमूचुः ।
त्वष्टा तु तेषां वचनं निशम्य प्रहृष्टरूपः प्रयतः प्रयत्नात् ॥७९॥

महान् शत्रु का वध करने वाला अशनि शब्द से कहा जाने वाला दिव्य वज्र होगा ॥६७॥ उसी व्रज से इन्द्र वृत्रासुर का वध करेंगे । मैंने आपलोगों को सारी बातें बतला दी अब आपलोग जाइये और प्रयास कीजिये ॥६८॥ ब्रह्माजी के इसतरह से कहने पर सभी देवता ब्रह्माजी से विदा लेकर इन्द्र को आगे करके महर्षि दधीचि के आश्रम में गये॥६९॥ सरस्वती नदी के दूसरे तट पर अवस्थित, अनेक प्रकार के वृक्षों तथा लताओं से घिरे हुए उस आश्रम में भँवरे ऐसे गुन-गुना रहे थे जैसे सामवेद का वहाँ गान हो रहा हो ॥७०॥ वहाँ पर पुंस्कोकिलों की मधुर ध्वनि हो रही थी, जीवक पक्षी की भी ध्वनि सुनायी देती थी । सिंह के भय से निर्भय होकर वहाँ पर महिष, वराह, सृमर-चमर आदि पशु चर रहे थे । वहाँ पर जिनके गालों से मदवारि प्रवाहित हो रहा थे ऐसे हाथी मादा हाथी के साथ विद्यमान थे॥७१-७२॥ वे भी वहाँ पर बोल रहे थे तथा क्रीडा करते थे । गरजने वाले सिंह तथा व्याघ्र भी गरज रहे थे॥७३॥ गुफाओं तथा कन्दराओं में रहने वाले मयूर की विभिन्न कुञ्जों में बोलने की आवाज आ रही थी ॥७४॥ महर्षि दधीचि का वह आश्रम स्वर्ग के समान प्रतीत हो रहा था, उस आश्रम में सभी देवता आये । वहाँ पर देवताओं ने सूर्य के समान देदीप्यमान महर्षि दधीचि का दर्शन किया ॥७५॥ जिस तरह श्रीलक्ष्मीजी के द्वारा श्रीभगवान् का शरीर चमकता है उसीतरह महर्षि दधीचि का शरीर चमक रहा था । हे राजन् ! उन देवताओं ने महर्षि के चरणों में प्रणाम करके उनकी स्तुति की और अन्त में देवताओं ने ब्रह्माजी के कहे के अनुसार महर्षि से वरदान माँगा ॥७६॥ उसके बाद दधीचि महर्षि ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक देवताओं से कहा देवताओं यदि मुझे अपने शरीर का भी त्याग करना पड़े तो भी मैं अपने शरीर का त्याग करके आपलोगों का कल्याण करूँगा ॥७७॥ देवताओं से इस प्रकार कहकर मनुष्यों में श्रेष्ठ दधीचि महर्षि ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया और इन्द्रादि देवताओं ने अपने उपयोगानुसार उनकी हड्डी को ले लिया ॥७८॥ वहाँ से देवतागण प्रसन्नता पूर्वक त्वष्टा के पास आकर अपने प्रयोजन को बतलाये। देवताओं की बात को सुनकर त्वष्टा प्रसन्नता पूर्वक अपने कार्य में लग गये ॥७९॥ उन्होंने उग्र पराक्रम सम्पन्न वज्र

चकार वज्रं भृशमुग्रवीर्यं कृत्वा च शस्त्रं तमुवाच हृष्टः ।
अनेन शस्त्रप्रवरेण देवभस्मीकुरुष्वाद्य सुरारिमुग्रम् ॥८०॥
ततो हतारिः सगणः सुखं त्वं प्रशाधि कृत्स्नं त्रिदिवं दिविष्ठः ।
त्वष्ट्रा तथोक्तस्तु पुरंदरश्च वज्रं प्रहृष्टः प्रयतो ह्यगृह्णात् ॥८१॥
ततः स वज्रेणयुतो दैवतैरभिपूजितः । आससाद ततो वृत्रंस्थितमावृत्यरोदसी ॥८२॥
कालकेयै र्महाकायै स्समंतादभिरक्षितम् । समुद्यतप्रहरणैः सश्रृंगैरिव पर्वतैः ॥८३॥
ततो युद्धं समभवद्देवानां सह दानवैः । मुहुर्तं भरतश्रेष्ठ लोकत्रास करं महत् ॥८४॥
उद्यतैः प्रतिसृष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः । आसीत्सुतुमलः शब्दः शरीरैरभिपाटितैः ॥८५॥
शिरोभिः प्रपतद्भिश्चाप्यंतरिक्षान्महीतलम् । तालैरिव महीपाल वृतं तैरेव दृश्यते ॥८६॥
ते हेमकवचा भूत्वा कालेयाः परिघायुधाः । त्रिदशानभ्यवर्तन्त दावदग्धा इवद्रुमाः ॥८७॥
तेषां वेगवतां वेगं सहितानां प्रधावताम् । नशेकुः सहिताः सोढुं भग्नास्ते प्राद्रवन्भयात् ॥८८॥
तान्दृष्ट्वा द्रवतो भीतान् सहस्राक्षः पुरंदरः । वृत्रं च बर्द्धमानं तु कश्मलं महदाविशत् ॥८९॥
तं शक्रं कश्मलाविष्टं दृष्ट्वा विष्णुः सनातनः। स्वतेजोव्यदधाच्छक्रे बलमस्यविवर्धयन् ॥९०॥
विष्णुनाप्यायितं शक्रं दृष्ट्वा देवगणास्तदा । सर्वे तेजस्समादध्युस्तथा ब्रह्मर्षयोमलाः ॥९१॥
स समाप्यायितः शक्रो विष्णुना दैवतैः सह । ऋषिभिश्च महाभागैर्बलवान्समपद्यत॥९२॥
ज्ञात्वा बलस्थं त्रिदशाधिपं तं ननादवृत्रस्सुमहानिनादम् ।
तस्य प्रणादेन धरादिशश्च खं द्यौ र्नगाश्चेति चचाल सर्वम् ॥९३॥

का निर्माण किया और कहा हे देव आज आप इस श्रेष्ठ शस्त्र से भयङ्कर देवशत्रु को भस्म कर दें ॥८०॥ उसके पश्चात अपने शत्रु को मारकर आप अपने गण के साथ त्रैलोक्य का प्रशासन करें । त्वष्टा के द्वारा इसतरह से कहे जाने पर इन्द्र ने प्रसन्नता पूर्वक उस वज्र को ले लिया ॥८१॥ वज्र के साथ विद्यमान इन्द्र की देवताओं ने पूजा की। उसके बाद इन्द्र वहाँ आये जहाँ पर वृत्रासुर भूमि से लेकर आकाश तक व्याप्त था ॥८२॥ विशालकाय कालकेय दैत्य चारो ओर से घेरकर उसकी रक्षा कर रहे थे । वे अपने आयुधों को उठायें हुए थे, वे शिखर से युक्त पर्वत के समान दिख रहे थे ॥८३॥ उसके बाद देवताओं के साथ दानवों का भयङ्कर युद्ध हुआ । हे भरतश्रेष्ठ ! मुहूर्त भर तो वह युद्ध संसार को भयभीत बना देने वाला हुआ ॥८४॥ वीर अपनी तलवारें उठाकर उनका प्रहार कर रहे थे । अत्यधिक शोरगुल हो रहा था । शरीरों से पृथिवी पट गयी थी ॥८५॥ आकाश से कटकर पृथिवी पर गिरने वाले तथा ताल फल के समान प्रतीत होने वाले शिरों से पृथिवी पट गयी ॥८६॥ दावाग्नि से दग्ध हुए वृक्षों के समान काले-काले कालेय दैत्य सुवर्ण के कवच पहन कर देवताओं पर टूट पड़े ॥८७॥ वेग पूर्वक आक्रमण करने वाले दैत्यों के आक्रमण को देवता नहीं वर्दास्त कर सके और वे भयभीत होकर भाग चले ॥८८॥ देवताओं को भयभीत होकर भागते हुए तथा वृत्रासुर को बढ़ते हुए देखकर इन्द्र भी अत्यधिक भयभीत हो गये ॥८९॥ भगवान् विष्णु ने इन्द्र को भयभीत देखा तो उन्होंने अपने तेज का इन्द्र में आधान करके इन्द्र के बल को बढाया ॥९०॥ विष्णु भगवान् के द्वारा समर्थ बनाये गये इन्द्र को देखकर देवताओं ने भी अपने तेज का आधान इन्द्र में कर दिया और महर्षियों ने भी अपने तेज का आधान किया ॥९१॥ भगवान् विष्णु देव समूह तथा महर्षियो के द्वारा पुष्ट बनाये गये इन्द्र बलवान् हो गये ॥९२॥ इन्द्र को बल सम्पन्न जानकर वृत्रासुर ने सिंहनाद किया, उसकी उस सिंह गर्जना से

ततो महेंद्रः परमाभितप्तः श्रुत्वा रवं घोरतरं महांतम् ।
भयेन मग्नस्त्वरितं मुमोच वज्रं महान्तं खलु तस्य शीर्षे ॥९४॥
सशक्रवज्राभिहतः पपात महास्वनः कांचनमाल्यधारी ।
यथा महाशैलवरः पुरस्तात्समंदरो विष्णुकरात्प्रमुक्तः ॥९५॥
तस्मिन्हते दैत्यवरे भयार्तः शक्रः प्रदुद्राव सरः प्रवेष्टुम् ।
वज्रं च मेने स्वकरात्प्रमुक्तं वृत्रं भयाच्चैव हतं न पश्यति ॥९६॥
सर्वे च देवा मुदिताः प्रहृष्टाः महर्षयश्चैनमथो स्तुवंति ।
शेषांश्च दैत्यांस्त्वरितं समेत्य यघ्नुः सुरा वृत्रवधाभितप्तान् ॥९७॥
ते वध्यमानास्त्रिदशैस्तदानीं महासुरा वायुसमानवेगाः ।
समुद्रमेवाविविशु र्भयार्ताः प्रविश्य चैवोदधिमप्रमेयम् ॥९८॥
झषाकुलं रत्नसमाकुलं च तदास्म मंत्रं सहिताः प्रचक्रुः ।
तत्रस्म केचिन्मतिनिश्चयज्ञास्तांस्तानुपायान्परिचिंतयंतः ॥९९॥
भयार्दिता देवनिकायतप्तास्त्रैलोक्यनाशाय मतिं प्रचक्रुः ।
तेषां तु तत्र क्षयकालयोगाद्धोरामतिश्चिंतयतां बभूव ॥१००॥
ये संति विद्यातपसोपपन्नास्तेषां विनाशः प्रथमं च कार्यः ।
लोकाश्च सर्वे तपसा ध्रियंते तस्मात्त्वरध्वं तपसः क्षयाय ॥१०१॥
ये संति केचिद्धिवसुंधरायां तपस्विनो धर्मविदश्च तज्ज्ञाः ।
तेषां वधश्च क्रियतां हि क्षिप्रं तेषु प्रणष्टेषु जगद्विनष्टम् ॥१०२॥
एवं हि सर्वे गतबुद्धिभावा जगद्विनाशे परमप्रहृष्टाः ।
दुर्गं समाश्रित्यमहोर्मिमंतं रत्नाकरं बारुणमालयं स्म ॥१०३॥

पृथिवी, दिशाएँ आकाश, स्वर्गलोक तथा पर्वत काँप गये ॥९३॥ उस भयङ्कर ध्वनि को सुनकर इन्द्र अत्यन्त संतप्त हो गये । वे भयभीत होकर शीघ्रता पूर्वक उसके शिर पर वज्र का प्रहार किए ॥९४॥ इन्द्र के वज्र द्वारा मारा गया, सुवर्ण की माला धारण किए हुए वृत्रासुर घोर ध्वनि करते हुए पृथिवी पर उसी तरह गिर पड़ा जिस तरह भगवान् विष्णु के हाथ से छूटकर महान पर्वत मन्दराचल गिर पड़ा था ॥९५॥ उस श्रेष्ठ दैत्य के मारे जाने के बाद भयभीत होकर इन्द्र सरोवर में प्रवेश करने के लिए भाग चले । उन्हें लगा कि उनका व्रज उनके हाथ से छूट गया । वे यह नहीं देखे कि वृत्रासुर मर गया है ॥९६॥ उसके बाद सभी देवताओं और ऋषियों ने प्रसन्न होकर इन्द्र की स्तुति की। उसके बाद वे मिलकर बचे हुए दैत्यों को मारने लगे, क्योंकि वे दैत्य वृत्रासुर के मारे जाने से दुःखी थे ॥९७॥ देवताओं के द्वारा मारे जाते हुए वायु के समान वेग वाले दानव भयभीत होकर अपार सागर में जाकर छिप गये॥९८॥ समुद्र जलचरों तथा रत्नों से भरा था । उसमें जाकर वे आपस में देवताओं को विनष्ट करने वाले अनेक प्रकार के साधनों पर विचार करने लगे ॥९९॥ देवताओं के भय से संतप्त तथा भयभीत दैत्यों ने सोचा कि त्रैलोक्य का नाश कर दिया जाय । विनाश का समय आ जाने के कारण वे सोचे कि ॥१००॥ सर्वप्रथम, तपस्या, इत्यादि साधनों का अनुष्ठान करने वालों का नाश करना चाहिए । क्योंकि सम्पूर्ण लोक तपस्या के बल पर टिके हुए हैं । अतएव सबसे पहले शीध्रता पूर्वक तपस्वियों का नाश कर देना चाहिए ॥१०१॥ पृथिवी पर जो भी तपस्वी तथा धर्म

समुद्रंते समासाद्य वारुणं त्वंभसांनिधिम्। कालेयास्मपद्यंत त्रैलोक्यस्य विनाशने ॥१०४॥
ते रात्रौ समभिक्रुद्धा बभक्षुस्तांस्तदां मुनीन् । आश्रमेषु च ये संति पुण्येष्वायतनेषु च ॥१०५॥
वसिष्ठस्याश्रमे विप्रा भक्षितास्तै दुरात्मभिः । अशीतिः शतमष्टौ च वने चान्ये तपस्विनः ॥१०६॥
च्यवनस्याश्रमं गत्वा पुण्यं द्विजनिषेवितम् । फलमूलाशनानां हि मुनीनां भक्षितं शतम् ॥१०७॥
एवं रात्रौस्मकुर्वंतो विविशुश्चार्णवं दिवा। भरद्वाजाश्रमं गत्वा नियता ब्रह्मचारिणः ॥१०८॥
वाताहारांबुभक्षाश्च विंशतिश्च निषूदिताः । एवं क्रमेणभक्षार्थं मुनीनां दानवास्तदा ॥१०९॥
निशायां पर्यधावंत शक्ताभुजबलाश्रयात् । कालेन महता ते वै जघ्नुर्मुनिगणान्बहून् ॥११०॥
नचैतानवबुध्यंत मनुजा मनुजाधिप। निस्वाध्यायवषट्कारं नष्टयज्ञोत्सवक्रियम् ॥१११॥
जगदासीन्निरुत्साहं कालेयभयपीडितम् । एवं प्रक्षीयमाणास्ते मानवा मनुजेश्वर॥११२॥
आत्मत्राणपराभीताः प्रादवंस्तु दिशो दश । केचिद्गुहांप्रविविशु र्विकीर्णाश्चापरे द्विजाः ॥११३॥
अपरे च भयोद्विग्ना भयात्प्राणान्समत्यजन् । केचित्तत्र महेष्वासाः शूराः परमदर्पिताः ॥११४॥
मार्गमाणाः परं यत्नं दानवानां प्रचक्रिरे। न चैताननुजग्मुस्ते समुद्रं समुपाश्रितान् ॥११५॥
शमं न जग्मुः परममाजग्मुः क्षयमेव च। जगत्प्रशमने जाते नष्ट यज्ञोत्सवक्रिये॥११६॥
आजग्मुः परमोद्विग्नास्त्रिदशा मनुजेश्वर । समेत्यसमहेंद्रास्तु भयान्मंत्रं प्रचक्रिरे॥११७॥
नारायणं पुरस्कृत्य वैकुंठमपराजितम् । ततो देवास्समेतास्ते तदोचुर्मधुसूदनम् ॥११८॥

के ज्ञाता हैं उनका शीघ्र नाश कर दिया जाय, उनके विनष्ट हो जाने पर जगत् का विनाश हो जायेगा ॥१०२॥ इसतरह से बुद्धि के विनष्ट हो जाने से दैत्यों ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक जगत् का विनाश करने के लिए सोचा। उन सबों ने विशाल लहरों वाले समुद्र को ही अपना किला बना लिया ॥१०३॥ जल के आकर समुद्र में जाकर वे कालेय दैत्य रहने लगे और त्रैलोक्य का विनाश करने में लग गये ॥१०४॥ वे रात्रि में समुद्र से वाहर निकलकर पवित्र आश्रमों तथा मन्दिरों में रहने वाले मुनियों को खा जाते थे ॥१०५॥ वे महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में जाकर वहाँ पर रहने वाले आठ हजार आठ सौ महर्षियों को तथा दूसरे तपस्वियों को खा लिया ॥१०६॥ इसीतरह महर्षि च्यवन के आश्रम में रहने वाले तथा फल मूल का आहार करने वाले सौ मुनियों को खा लिया ॥१०७॥ वे रात्रि में इन सभी कामों को करके दिन में समुद्र में घुस जाते थे। महर्षि भरद्वाज के आश्रम में जाकर वहाँ पर नियम पूर्वक रहने वाले बीस ब्रह्मचारियों को खा लिया। वे ब्रह्मचारी वायु का आहार करके रहते थे। इस तरह से वे दानव क्रमशः मुनियों को खा जाते थे ॥१०८-१०९॥ महाबलवान् वे दानव रात्रि में ही धावा बोलते थे। कुछ ही समय में वे दानव बहुत से मुनियों के समूह को मार दिये ॥११०॥ हे मनुजाधिप भीष्म ! कोई भी मनुष्य उन सबों को जान नहीं पाता था। सारा संसार वेदाध्ययन, वषट्कार तथा यज्ञ महोत्सवों से रहित हो गया ॥१११॥ कालेय के भय से पीडित संसार उत्साहहीन हो गया। हे मनुजेश्वर ! इसतरह से मनुष्यों का विनाश हो रहा था ॥११२॥ अपनी रक्षा करने के लिए मनुष्य दशो दिशाओं में भाग गये। कुछ ब्राह्मण गुफाओं में जाकर छिप गये ॥११३॥ भय के मारे भयभीत होकर कुछ द्विजों ने अपना प्राण त्याग कर दिया। कुछ जो वीर थे अपने हाथ में धनुष बाण लेकर दानवों का अन्वेषण करने लगे। किन्तु दानव चूकि समुद्र में रहते थे अतएव उन सबों को वे जान नहीं पाये ॥११४-११५॥ उन्हें कही भी शान्ति नहीं मिलती थी, उनका नाश होता रहा। जगत् का विनाश सा हो जाने के कारण यज्ञ तथा वषटकार आदि का होना बन्द हो गया॥११६॥ हे मनुजेश्वर! सभी देवता उद्विग्न हो गये, वे भयभीत होकर इन्द्र से

त्वं नःस्रष्टा च गोप्ता च भर्ता च जगतः प्रभो। त्वया सृष्टं जगत्सर्वं यच्चङ्गं यच्च नेङ्गति ॥११९॥
त्वया भूमिः पुरा नष्टा समुद्रात्पुष्करेक्षण । वाराहं रूपमास्थाय जगदर्थे समुद्धृता॥१२०॥
आदिदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुः पुरा । नारसिंहं वपुः कृत्वा सूदितः पुरुषोतम ॥१२१॥
अवध्यः सर्वभूतानां बलिश्चापि महासुरः । वामनं वपुरास्थाय त्रैलोक्याद्भ्रंशितस्त्वया ॥१२२॥
असुरः सुमहेष्वासो जंभ इत्यभिविश्रुतः। यज्ञ क्षोभकरः क्रूरस्त्वमरैर्विनिपातितः॥१२३॥
एवमादीनि कर्माणि येषां संख्या न विद्यते। अस्माकं भयभीतानां त्वं गतिर्मधुसूदन ॥१२४॥
तस्मात्त्वां देवदेवेश लोकार्थं ज्ञापयामहे । रक्षलोकांश्च देवांश्च शक्रं च महतो भयात् ॥१२५॥
भवत्प्रसादाद्वर्तंते प्रजास्सर्वाश्चतुर्विधाः। स्वस्था भवंति मनुजा हव्यकव्यै र्दिवौकसः ॥१२६॥
लोकाह्येवं प्रवर्तंते अन्योन्यं च समाश्रिताः । त्वत्प्रभावान्निरुद्विग्नास्त्वयैव परिरक्षिताः ॥१२७॥
इदं हि समनुप्राप्तं लोकानां भयमुत्तमम्। जानीमो न च केनैते वध्यन्ते ब्राह्मणा निशि॥१२८॥
ब्राह्मणेषु च क्षीणेषु पृथिवी क्षयमेष्यति । त्वत्प्रसादान्महाबाहो लोकास्सर्वे जगत्पते॥१२९॥
विनाशं नाधिगच्छेयुस्त्वया वै परिरक्षिताः ।

विष्णुरुवाच

विदितं मे सुरास्सर्वं प्रजायाः क्षयकारणम् ॥१३०॥
भवतां चापि वक्ष्यामि श्रृणुध्वं विगतज्वराः। कालकेया इति ख्याता गणाः परमदरुणाः ॥१३१॥

मिलकर विचार करने लगे ॥११७॥ उसके बाद वे सभी देवता एक साथ मिलकर भगवान् नारायण के वैकुण्ठ लोक में गये और भगवान् मधुसूदन से कहे ॥११८॥ हे जगत् के स्वामिन् ! आप ही हमलोगों की सृष्टि करने वाले और रक्षा करने वाले हैं । आपने ही चराचर जगत् की सृष्टि की है ॥११९॥ हे कमलनयन ! जब पृथिवी विनष्ट हो गयी थी उस समय संसार का कल्याण करने के लिए आपने वराह रूप धारण करके पृथिवी का उद्धार किया ॥१२०॥ हे पुरुषोत्तम ! आपने ही आदि दैत्य हिरण्यकशिपु का बध नृसिंह रूप धारण करके किया ॥१२१॥ महा असुर बलि सभी जीवों के लिए अवध्य हो गये थे । आपने उस समय वामन का रूप धारण करके बलि का त्रैलोक्य के राज्य से पतन करा दिया ॥१२२॥ महावीर जम्भ नामक असुर यज्ञों में उत्पात करता था उस समय आपने ही उसका विनाश देवताओं द्वारा कराया ॥१२३॥ हे भगवन् मधुसूदन ! इसतरह से आपके असंख्य जगत् की रक्षा से संबद्ध कार्य हैं । हमलोग भयभीत हो गये है । केवल आप ही हमारे रक्षक हैं ॥१२४॥ हे देवताओं के आराध्य भगवन् ! हमलोग आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप संसार की रक्षा करने के लिए लोकों, देवताओं तथा इन्द्र की इस महती विपत्ति से रक्षा करें ॥१२५॥ आपकी ही कृपा से चारो प्रकार के (देव, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर अथवा अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज) जीव सुरक्षित हैं । आपकी ही कृपा से मनुष्य स्वस्थ रहते हैं तथा देवता एवं पितृगण हव्य एवं कव्य को प्राप्त करते हैं ॥१२६॥ आपके ही प्रभाव से सभी जीव परस्पर में व्यवहार करते हैं, निरुद्विग्न भी आपके ही द्वारा रक्षित होकर रहते हैं ॥१२७॥ इस समय संसार के ऊपर बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी है, हम यह नहीं जान पाते हैं कि रात्रि में कौन ब्राह्मणों को खा जाता है ॥१२८॥ ब्राह्मणों के विनष्ट हो जाने पर तो पृथिवी का ही नाश हो जायेगा । हे जगत्पते ! हे महाबाहो ! हम चाहते हैं कि ये सभी जीव ॥१२९॥ आपके द्वारा संरक्षित होकर विनष्ट न हों । **भगवान् विष्णु ने कहा—** हे देवताओं ! मैं प्रजाओं के विनाश के सभी कारणों को जानता हूँ ॥१३०॥ आपलोग भी शान्ति पूर्वक सुनें । उसको मैं आपलोगों को बतला रहा हूँ । कालकेय नाम से विख्यात

ते वृत्रं निहतं दृष्ट्वा सहस्राक्षेण धीमता। जीवितं परिरक्षन्तः प्रविष्टा वरुणालयम् ॥१३२॥
ते प्रविश्योदधिं घोरं नानाग्रहसमाकुलम्। उत्सादनार्थं लोकस्य रात्रौ घ्नंति मुनीनिह ॥१३३॥
न तु शक्याः क्षयं नेतुं समुद्रांतर्हिता हि ते। समुद्रस्य क्षये बुद्धिर्भवद्भिः परिचिंत्यताम् ॥१३४॥
एतच्छ्रुत्वा वचो देवा विष्णुना समुदाहृतम्। परमेष्ठिनमासाद्य अगस्त्यस्याश्रमं ययुः ॥१३५॥
तत्रापश्यन्महात्मानं वारुणं दीप्ततेजसम्। उपास्यमानमृषिभि र्देवैरिव पितामहम् ॥१३६॥
तेभिगम्यमहात्मानं मैत्रावरुणिमुत्तमम्। अप्रमत्तं तपोराशिं कर्मभिः स्वैरनुष्ठितैः ॥१३७॥

देवा ऊचुः

नहुषेणाभितप्तानां लोकानां त्वं गतिः पुरा। भ्रंशितश्च सुरैश्वर्याल्लोकार्थं लोककंटकः ॥१३८॥
क्रोधात्प्रवृद्धः स महान्भास्करस्य नगोत्तमः। वचस्तवानति क्रामन्विन्ध्यः शैलो न वर्धते ॥१३९॥
तमसाच्छादिते लोके मृत्युनाऽभ्यर्दिताः प्रजाः। त्वामेव नाथमागम्य निर्वृतिं परमां गताः ॥१४०॥
अस्माकं भयभीतानां नित्यमेव भवान्गतिः। ततस्त्वद्यप्रयाचामस्त्वां वरं वरदोह्यसि ॥१४१॥

भीष्म उवाच

किमर्थं सहसा विंध्यः प्रवृद्धः क्रोधमूर्च्छितः। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामुने॥१४२॥

पुलस्त्य उवाच

अद्रिराजं महाशैलं मेरुं कनकपर्वतम्। उदयेस्तमये भानुः प्रदक्षिणमवर्तत ॥१४३॥
तं दृष्ट्वा तदाविंध्यः शैलः सूर्यमथाब्रवीत्। यथाहि मेरुर्भवता नित्यशः परिगम्यते ॥१४४॥

दानवों का भयङ्कर समूह है ॥१३१॥ जब इन्द्र ने वृत्रासुर का बध कर दिया तो वे असुर अपनी जान बचाने के लिए समुद्र में प्रवेश कर गये ॥१३२॥ अत्यन्त भयङ्कर तथा अनेक प्रकार के ग्राहों से व्याप्त समुद्र में प्रवेश करके वे संसार का विनाश करने के लिए रात्रि में मुनियों को मारने का काम करते हैं ॥१३३॥ वे सब समुद्र के भीतर छिपे हुए है, अतएव उन्हें ऐसे नहीं मारा जा सकता है, आपलोग कोई ऐसा उपाय कीजिये कि समुद्र सुख जाय॥१३४॥ भगवान् विष्णु की इस बात को सुनकर देवता ब्रह्माजी को साथ लेकर महर्षि अगस्त्य के आश्रम में गये॥१३५॥ वहाँ पर देवताओं ने अपने तेज से देदीप्यमान वरुण के पुत्र महर्षि अगस्त्य का दर्शन किया। जिसतरह देवता ब्रह्माजी की उपासना करते हैं, उसीतरह महर्षिगण उनकी उपासना कर रहे थे ॥१३६॥ वे उन प्रमाद रहित, तपः समूह स्वरूप तथा अपने द्वारा अनुष्ठित कर्मो के कारण देदीप्यमान महर्षि अगस्त्य के पास जाकर ॥१३७॥ **देवताओं ने कहा—** प्राचीनकाल में जब नहुष ने संसार को कष्ट पहुँचाया था उस समय भी आप ने लोक की रक्षा करके लोक कण्टक नहुष को शाप देकर देवताओं के ऐश्वर्य से भ्रष्ट करके संसार की रक्षा किया था ॥१३८॥ जब सूर्य पर क्रोध करके पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्यगिरि बढने लगा था उस समय भी आपकी बातों को मानकर वह आज भी नहीं बढ रहा है ॥१३९॥ अन्धकार से आच्छलन संसार पर जब प्रजाओं पर मृत्यु ने आक्रमण कर दिया था उस समय आपकी कृपा से संसार को परम शान्ति प्राप्त हुयी ॥१४०॥ हम भयभीत देवताओं के लिए आप ही आश्रय हैं। इसीलिए हमलोग आप से वरदान की याचना करते हैं, और आप वरदान देने वाले हैं ॥१४१॥ **भीष्मजी ने कहा—** क्या कारण था कि क्रोध करके विन्ध्य पर्वत सहसा बढने लगा ? हे महामुने ! आप इस बात को मुझे विस्तार से बतलाइये ॥१४२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पर्वतों के राजा सुमेरु पर्वत की सूर्य उदय के समय तथा अस्त होने के समय प्रदक्षिणा करते थे ॥१४३॥ उसको देखकर विन्ध्यगिरि ने भी सूर्य से कहा जिस तरह आप

प्रदक्षिणं च क्रियते मामेवं कुरु भास्कर। एवमुक्तस्ततः सूर्यः शैलेन्द्रं प्रत्यभाषत ॥१४५॥
नाहमात्मेच्छया शैलं करोम्येनं प्रदक्षिणम् । एष मार्गः प्रदिष्टो मे येनेदं निर्मितं जगत्॥१४६॥
एवमुक्तस्तदा क्रोधात्प्रवृद्धः सहसाचलः । सूर्याचंद्रमसोर्मार्गं रोद्धुमिच्छन्परंतप ॥१४७॥

ततो हि देवाः सहितास्तु सर्वे सेंद्राः समागम्य महाद्रिराजम् ।
निवारयामासुरथोत्पतंतं न वै स तेषां वचनं चकार ॥१४८॥
ततोहि जग्मुर्मुनिमाश्रमस्थं तपस्विनां धर्मवतां वरिष्ठम् ।
अगस्त्यमत्यद्भुतदीप्तवीर्यं तं चार्यमूचुः सहिताः सुरास्ते ॥१४९॥

देवा ऊचुः

सूर्याचंद्रमसोर्मार्गं नक्षत्राणां गतिं तथा। शैलराडावृणोत्येष विंध्यः क्रोधवशानुगः ॥१५०॥
तं निवारयितुं शक्तो नान्यः कश्चिन्मुनीश्वर । तच्छ्रुत्वा वचनं विप्रः सुराणां शैलमभ्यगात् ॥१५१॥
सोभिगम्याब्रवीद्विंध्यं सादरं समुपस्थितम्। मार्गमिच्छाम्यहं दत्तं भवता पर्वतोत्तम॥१५२॥
दक्षिणामभिगंतास्मि दिशं कार्येण केनचित् । यावदागमनं मे स्यात्तावत्त्वंप्रतिपालय ॥१५३॥
निवृत्ते मयि शैलेंद्र ततो वर्धस्व कामतः ।

पुलस्त्य उवाच

अद्यापि दक्षिणद्देशाद्वारुणि र्ननिवर्तते ॥१५४॥
एतत्तेसर्वमाख्यतं यथा विन्ध्यो न वर्धते। अगस्त्यस्य प्रभावेण यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥१५५॥
कालेयास्तु यथा राजन् सुरैः सर्वैर्निषूदिताः। अगस्त्य द्वारमासाद्य तन्मे निगदतः श्रृणु॥१५६॥

प्रतिदिन सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हैं ॥१४४॥ हे सूर्य ! उसीतरह आप मेरी भी परिक्रमा कर लिया करें । विन्ध्यगिरि की बात को सुनकर सूर्य ने कहा ॥१४५॥ मैं अपनी इच्छा से इस पर्वत की परिक्रमा नहीं करता हूँ । जिसने इस जगत् का निर्माण किया है, उस परमात्मा ने मेरा यही मार्ग निर्धारित किया है ॥१४६॥ हे परन्तप भीष्म! उसके बाद विन्ध्यगिरि क्रुद्ध हो गया तथा सूर्य और चन्द्रमा के मार्ग को रोक देने की इच्छा से सहसा बढ गया॥१४७॥ उसके बाद सभी देवता विन्ध्यगिरि के पास आये और उससे नहीं बढने के लिए अनुरोध भी किए; किन्तु विन्ध्यगिरि उन सबों की बातों को नहीं माना ॥१४८॥ उसके बाद सभी देवता तपस्वियों एवं धार्मिकों में श्रेष्ठ महर्षि अगस्त्य के आश्रम में गये और वहाँ जाकर अद्भुत शक्ति सम्पन्न महर्षि से देवताओं ने कहा **देवताओं ने कहा—** नक्षत्रों के आश्रय भूत सूर्य तथा चन्द्रमा के मार्ग को क्रुद्ध होकर यह पर्वतों का राजा विन्ध्यगिरि रोक देना चाहता है ॥१५०॥ हे मुनीश्वर ! उसको दूसरा कोई नहीं रोक सकता है । देवताओं की वाणी को सुनकर महर्षि विन्ध्यगिरि के पास गये ॥१५१॥ उन्होंने आदर पूर्वक विन्ध्यगिरि से कहा— हे पर्वतश्रेष्ठ ! मैं आप के द्वारा प्रदत्त मार्ग प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१५२॥ कुछ कार्यवशात् मैं दक्षिणभारत में जाना चाहता हूँ । जब तक मैं लौटकर नहीं आ जाता हूँ तब तक तुम मेरी प्रतीक्षा करो ॥१५३॥ हे शैलेन्द्र ! जब मैं लौट आऊँ तो तुम अपनी इच्छा के अनुसार बढना । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** वरुणपुत्र महर्षि आज तक दक्षिण देश से नहीं लौटे ॥१५४॥ अगस्त्य महर्षि के प्रभाव से सम्बद्ध जो आपने मुझसे पुछा था ॥१५४॥ मैंने आपको उन सारी बातों को बतला दिया जिसके कारण विन्ध्यगिरि नहीं बढता है ॥१५५॥ हे राजन् ! महर्षि अगस्त्य के द्वारा मार्ग प्राप्त करके सभी देवताओं ने सभी कालेयों को जैसे मार डाला उसे मैं बतलाता हूँ ॥१५६॥ देवताओं की बातों को सुनकर महर्षि अगस्त्य ने

त्रिदशानां वचः श्रुत्वा मैत्रावरुणिरब्रवीत्। किमर्थं समुपायाता वरं मत्तः किमिच्छथ॥१५७॥
एवमुक्तास्तदा तेन देवास्तं मुनिमब्रुवन् ।
इच्छाम एकं वरमद्भुतं वयं पिबार्णवं देवमुने महात्मन् ॥१५८॥
एवं त्वयिच्छेमकृते महर्षेमहार्णवं पीयमानं समग्रम् ।
ततो विहन्याम च सानुबंधं कालेय संज्ञं सुरविद्विषां बलम् ॥१५९॥
त्रिदशानां वचः श्रुत्वा तथेति मुनिरब्रवीत्। करिष्ये भवतां कामं लोकानां सुखकारकम् ॥१६०॥
एवमुक्त्वा ततो गछत्समुद्रं निधिमंभसाम् । तपः सिद्धैश्च मुनिभिः सार्धं दैवैश्च सुव्रत ॥१६१॥
मनुष्यो रगगंधर्वा यक्षाः किंपुरुषास्तथा। अनुजग्मुर्महात्मानं द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥१६२॥
ततोभ्यपश्यत्सहितः समुद्रं भीमनिःस्वनम्। नृत्यंतमिव चोर्मीभि र्वल्गंतमिव वायुना ॥१६३॥
हसंतमिव फेनौघैः स्खलंतं कंदरेषु च । नानाग्रहसमाकीर्णं नानाद्विजगणैर्युतम् ॥१६४॥
अगस्त्यसहिता देवाः सगंधर्वमहोरगाः। ऋषयश्च महाभागाः समासेदु र्महोदधिम् ॥१६५॥
समुद्रं स समासाद्य वारुणि र्भगवानृषिः । उवाच सहितान्देवानृषींस्तांस्तु समागतान्॥१६६॥
पातुकामः समुद्रं च अगस्त्यऋषिसत्तमः। एष लोकहितार्थाय पिबामि वरुणालयम्॥१६७॥
भवतां यदनुष्ठेयं तच्छीघ्रं संविधीयताम्। एतावदुक्त्वा वचनं मैत्रावरुणिरग्रतः ॥१६८॥
समुद्रमपिबत्क्रुद्धस्सर्वलोकस्य पश्यतः। पीयमानं समुद्रं तु दृष्ट्वा देवाः सवासवाः॥१६९॥
विस्मयं परमं जग्मुस्स्तुतिभिश्चाप्यपूजयन्। त्वं नस्त्राता विधाता च लोकानां लोकभावनः ॥

कहा— आपलोग किस लिए आये हैं ? मुझसे कौन सा वरदान प्राप्त करना चाहते हैं ?॥१५७॥ महर्षि के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर देवताओं ने महर्षि से कहा— हे मुने हमलोग आपसे एक अद्भुत वरदान प्राप्त करना चाहते हैं। हे मुने ! हे महात्मन ! आप महासागर को पी जायँ ॥१५८॥ हे महर्षे ! हमलोग यही चाहते हैं कि आपके द्वारा सम्पूर्ण महासागर पी लिया जाय, जिससे कि हमलोग देवताओं के बैरी कालेय दानवों का वध कर सकें॥१५९॥ देवताओं की वाणी सुनकर महर्षि ने कहा ऐसा ही होगा, मैं संसार को सुख देने वाली आपलोगों की इच्छा को पूर्ण करूँगा ॥१६०॥ इसतरह से कहकर महर्षि जलसमुद्र के पास गये। उस समय उनके साथ तपः सिद्ध महर्षि गण तथा देवताओं का समूह था ॥१६१॥ मनुष्य, सर्प, गन्धर्व, यक्ष तथा किन्नर उस अद्भुत कर्म को देखने के लिए महर्षि के पीछे-पीछे गये ॥१६२॥ महर्षि ने देखा कि समुद्र घोर गर्जना कर रहा है; मानों वह अपनी लहरियों के द्वारा नृत्य कर रहा हो तथा वायु के झोंकों के साथ उच्छल रहा हो ॥१६३॥ मानो वह अपने फेनों के माध्यम से हँस रहा हो तथा कन्दराओं में जैसे गिर रहा हो। वह अनेक ग्राहों से समुद्र भरा हुआ था और उसमें अनेक प्रकार के पक्षी विद्यमान थे ॥१६४॥ महर्षि अगस्त्य के साथ सभी देवता, गन्धर्व तथा बड़े-बड़े सर्प तथा ऋषिगण महासमुद्र के तट पर आये ॥१६५॥ समुद्र तट पर आकर महर्षि अगस्त्य ने वहाँ पर आये हुए देवताओं तथा ऋषियों से समुद्र को पी जाने की इच्छा से कहा— मैं आज संसार का कल्याण करने के लिए समुद्र को पी रहा हूँ ॥१६६-१६७॥ आपलोगों को जो कुछ भी करना हो वह शीघ्र कीजिये; इसतरह से कहकर महर्षि अगस्त्य सबों के समक्ष ॥१६८॥ क्रोध करके समुद्र को पी गये। इन्द्र के साथ सभी देवताओं ने देखा कि महर्षि ने समुद्र को पी लिया ॥१६९॥ वे सब अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और स्तुतियों के द्वारा महर्षि की पूजा किये। **देवताओं ने कहा—** आप ही हमलोगों के धाता और विधाता हैं। आपलोकों का कल्याण करने वाले हैं, आपकी कृपा से यह

त्वत्प्रसादात्समुत्सेधमुपगच्छेत्समं जगत् ॥१७०॥

संपूज्यमानस्त्रिदशै र्महात्मा गंधर्वमुख्येषु नदत्सु चैव ।
दिव्यैश्च पुष्पैरवकीर्यमाणो महार्णवं निःसलिलं चकार ॥१७१॥
दृष्ट्वा कृतं निःसलिलं महार्णवं सुराः समस्ताः परमप्रहृष्टाः ।
प्रगृह्य दिव्यानि वरायुधानि तान्दानवान् जघ्नुरदीनसत्त्वाः ॥१७२॥
ते वध्यमानास्त्रिदशै र्महात्मभि र्महाबलै र्वेगयुतै र्नदद्भिः ।
न सेहिरे वेगवतां महात्मनां वेगं तदा धारयितुं दिवौकसाम् ॥१७३॥

ते वध्यमाना स्त्रिदशै र्दानवा भीमनिःस्वनाः। चक्रुःसुतुमुलं युद्धं मुहूर्त्तमिव भारत ॥१७४॥
ते पूर्व तपसा दग्धा मुनिभिर्भावितात्मभिः । यतमानाः परं शक्त्या त्रिदशै र्विनिषूदिताः ॥१७५॥
ते हेमनिष्काभरणाः कुंडलांगदधारिणः । निहता वह्वशोभंत पुष्पिता इव किंशुकाः ॥१७६॥
हतशिष्टास्ततः केचित्कालेयदनुजोत्तमाः । विदार्य वसुधां देवीं पतालतलमाश्रिताः ॥१७७॥
निहतान्दानवान्दृष्ट्वा त्रिदशा मुनिपुंगवम् । तुष्टुवु र्विविधै र्वाक्यैरिदं चैवाब्रुवन्वचः ॥१७८॥
त्वत्प्रसादान्महाभाग लोकैः प्राप्तं महत्सुखम् । त्वत्तेजसा च निहताः कालेया भीमविक्रमाः ॥१७९॥
पूरयस्व महाविप्र समुद्रं लोकभावनम् । यत्त्वया सलिलं पीतं तदस्मिन्पुनरुत्सृज ॥१८०॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच भगवान्मुनिपुंगवः । जीर्णं तद्धि मया तोयमुपायोन्यः प्रचिंत्यताम् ॥१८१॥
पूरणार्थं समुद्रस्य भवद्भिर्यत्नमास्थितैः । एवं श्रुत्वा तु वचनं महर्षे र्भावितात्मनः ॥१८२॥
विस्मिताश्च विषण्णाश्च बभूवुः सहितास्सुराः। परस्परमनुज्ञाप्य प्रणाम्यमुनिपुंगवम् ॥१८३॥

सम्पूर्ण जगत् पुष्टि को प्राप्त करे ॥१७०॥ देवता जब महर्षि की पूजा कर रहे थे उस समय मुख्य-मुख्य गन्धर्व गण गर्जना कर रहे थे । देवता उन पर दिव्य पुष्पों की वर्षा कर रहे थे और महर्षि ने समुद्र को जल से रहित बना दिया॥१७१॥ महासागर को जल से रहित देखकर देवगण अत्यन्त आनन्दित हो गये और वे दिव्य आयुधों को धारण करके उन समस्त दानवों को मार डाले ॥१७२॥ महाबलवान् तथा वेग सम्पन्न गर्जना करने वाले देवताओं के द्वारा मारे जाते हुए कालेय दानव, वेग सम्पन्न उन देवताओं के वेग को नहीं वर्दास्त कर पाये ॥१७३॥ भयङ्कर ध्वनि करने वाले दीन बने हुए वे दानव देवताओं द्वारा मारे जाते हुए मुहूर्त पर्यन्त देवताओं के साथ भयंकर युद्ध किए॥१७४॥ संसार का कल्याण करने वाले मुनियों की तपस्या से पहले ही जला दिये गये वे सारी शक्ति लगाकर युद्ध करके भी देवताओं के द्वारा मार दिये गये ॥१७५॥ सुवर्ण के आभूषणों अंगद तथा कुण्डल धारण किए हुए तथा मरे हुए दानव विकसित पलाश वृक्ष के समान सुशोभित होते थे ॥१७६॥ मरने से जो कुछ कालेय दानव बच गये थे वे पृथिवी को फाड़कर पाताल में प्रवेश कर गये ॥१७७॥ मारे गये दानवों को देखकर प्रसन्न हुए देवताओं ने महर्षि अगस्त्य की अनेक प्रकार से स्तुति की और कहा ॥१७८॥ हे महाभाग ! आपकी कृपा से ही भयङ्कर पराक्रमी दानव मारे गये और संसार के जीवों को अत्यधिक सुख की प्राप्ति हुयी ॥१७९॥ हे महाभाग ! आप पुनः इस समुद्र को भर दें, आपने जो जल पी लिया है, उसे पुनः इस महासागर में डाल दें ॥१८०॥ इसतरह से देवताओं के कहने पर महर्षि ने कहा, मैंने उस जल को पचा लिया है, अब इसे भरने के प्रयास में लगे हुए आपलोगों को कोई दूसरा उपाय करना होगा । भावितात्मा महर्षि अगस्त्य की वाणी को सुनकर ॥१८१-१८२॥ सभी देवता आश्चर्य चकित तथा उदास हो गये । उन लोगों ने परस्पर में एक दूसरे से वार्ता की और मुनिश्रेष्ठ

प्रजाः सर्वा महाराजविप्रा जग्मुर्यथागतम् । त्रिदशा विष्णुना सार्द्धमनुजग्मु पितामहम् ॥१८४॥
पूरणार्थं समुद्रस्य मंत्रयंतः परस्परम् । ऊचुः प्रांजलयः सर्वे सागरस्य हि पूरणम् ॥१८५॥
तानुवाच समेतांस्तु ब्रह्मालोकपितामहः । गच्छध्वं विबुधास्सर्वे यथाकामं यथेप्सितम् ॥१८६॥
महताकालयोगेन प्रकृतिंयास्यतेऽर्णवः । ज्ञातींस्तु कारणं कृत्वा महाराजो भगीरथः ॥१८७॥
गंगौघेन समुद्रं च पुनः संपूरयिष्यति । एवं ते ब्रह्मणा देवाः प्रेषिता ऋषि सत्तमाः ॥१८८॥
उवाच भगवांस्तुष्टस्त्वगस्त्यमृषिसत्तमम् । देवकार्यं तु भवता दानवानां विनाशनम् ॥१८९॥
यतस्संतारिता देवास्तेनतुष्टोस्मि वै मुने । अभिप्रेतो वरो यस्ते याचयस्व ददामि तम् ॥१९०॥
एवमुक्तस्तदागस्त्यः प्रणिपातपुरः सरम् । इहस्थेन मया देव देवकार्यमिदं कृतम् ॥१९१॥
सर्वाश्रमाणां प्रवरो भवत्वेष ममाश्रमः । त्वया चोक्तस्तु भगवन्भविता नात्र संशयः ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

यात्रां तु पुष्करे कृत्वा इहागत्यनरास्तु ये । इहकुंडेषु ये स्नानं तर्पणं पितृदेवयोः ॥१९३॥
अर्चनं चैवं देवेषु सर्वमक्षयकारकम् । अर्घ्यं चोच्चावचं गृह्य शष्कुलापूपकांस्ततः ॥१९४॥
दास्यंति द्विजमुख्येभ्यस्तेषां वासस्त्रिविष्टपे । श्राद्धेन पितरस्तृप्ता यावदाभूतसंपल्वम्॥१९५॥
कंदमूलफलैर्वापि तर्पयिष्यति यो मुनिम् । सप्तर्षिस्थानमासाद्य मोदते शास्वतीः समाः ॥१९६॥
यज्ञपर्वतमरूढो दृष्ट्वा गंगाविनिर्गमम् । उदङ्मुखी देवनदी निर्गता पुष्करं प्रति॥१९७॥
अत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः । अश्वमेधफलं तस्य भवत्येव न संशयः॥१९८॥

अगस्त्य को प्रणाम किया ॥१८३॥ हे महाराज भीष्म ! सम्पूर्ण प्रजा तथा ब्राह्मण अपने-अपने स्थान पर चले गये । भगवान् विष्णु के साथ सभी देवता ब्रह्माजी के पीछे-पीछे चले ॥१८४॥ वे परस्पर समुद्र को पुनः भरने के विषय में विचार भी कर रहे थे । सभी देवताओं ने समुद्र को भरने के साधन के विषय में हाथ जोड़कर कहा ॥१८५॥ उन एकत्रित हुए देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा— हे देवताओं ! आपलोग अपने-अपने अभिप्रेत स्थान पर जायँ ॥१८६॥ बहुत दिनों के बीत जाने पर सागर पुनः भर जायेगा, अपने दायादों के कारण महाराज भगीरथ ॥१८७॥ गङ्गा के जल से समुद्र को पुनः भर देंगे । इसतरह से कहकर ब्रह्माजी ने सभी देवताओं और श्रेष्ठ ऋषियों को भेज दिया॥१८८॥ प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ऋषियों में श्रेष्ठ अगस्त्य महर्षि से कहे आपने देवताओं के कार्य को तथा दानवों का विनाश तो कर दिया ॥१८९॥ चूँकि आपने देवताओं का उद्धार किया है, इसलिए मैं प्रसन्न हूँ । आप अपने अभिलषित वरदान को माँगिए, उसे मैं देना चाहता हूँ ॥१९०॥ ब्रह्माजी के इसतरह से कहने पर अगस्त्य महर्षि ने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणिपात किया और ब्रह्माजी से कहा— हे देव ! यहाँ पर रहकर मैंने यह देवताओं का काम किया किया ॥१९१॥ अतएव यह मेरा आश्रम सभी आश्रमों से श्रेष्ठ हो जाय । हे भगवन् ! आपके कह देने पर मेरा यह आश्रम वैसा हो जायेगा ॥१९२॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— जो मनुष्य पुष्कर तीर्थ की यात्रा करके यहाँ आकर इस कुण्ड में देवताओं तथा पितरों का तर्पण करेंगे ॥१९३॥ तथा देवताओं का पूजन करेंगे उन मनुष्यों द्वारा किया गया सारा कर्म अक्षय फलप्रद होगा । जैसा तैसा अर्घ्य स्वीकार करके तथा पूड़ी एवं पूआ लेकर ॥१९४॥ जो ब्राह्मणों को दान करेंगे उन लोगों का स्वर्गलोक में निवास होगा और उनके पितृगण प्रलय काल तक तृप्त रहेंगे ॥१९५॥ जो व्यक्ति वहाँ पर जाकर कन्द, मूल और फल का दान करके ऋषि को प्रसन्न करेंगा सप्तर्षि लोक में उसका सदैव निवास होगा ॥१९६॥ जो इस पर्वत पर चढकर वहाँ से गङ्गा के उद्भव का दर्शन करेगा, जहाँ से उत्तरभिभिमुखी गङ्गा नदी

यस्त्वेकं भोजयेद्विप्रं कोटिर्भवति भोजिता । अक्षयं त्वन्नपानं च अत्र दत्तं मुनीश्वर ॥१९९॥
यो यमिच्छति कामं तु सर्वं तस्य भविष्यति । न वियोनिं व्रजत्यत्र स्नातमात्रो नरो भुवि ॥२००॥
स्थानानां परमं स्थानं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्। मया दत्तं मुनिश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥२०१॥
जन्मप्रभृतियत्पापं स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । अत्रैव स्नातमात्रस्य सर्वमेतत्प्रणश्यति ॥२०२॥
एवमुक्त्वा तु भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः । जगामामंत्र्य समुनिमगस्त्यं मुनिसत्तमम्॥२०३॥
अगस्त्योपि स्थितस्तत्र आश्रमे स्वे परंतप । अगस्त्यस्याश्रमोत्पत्तिरेषा ते परिकीर्तिता ॥२०४॥
सप्तर्षीणामाश्रमांश्च कीर्त्तयिष्ये कुरूद्वह । अत्रिश्चैव वसिष्ठोथ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥२०५॥
अंगिरा गौतमश्चैव सुमतिः सुमुखस्तथा । विश्वामित्रः स्थूलशिराः संवर्तश्च प्रतर्दनः ॥२०६॥
रैभ्यो बृहस्पतिश्चैव च्यवनः कश्यपो भृगुः । दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोथ गालवः ॥२०७॥
उशनाथ भरद्वाजो यवक्रीतस्तथा मुनिः । स्थूलाक्षः सकलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिः कृतः॥२०८॥
नारदः पर्वतश्चैव स्वगंधी च्यवनो द्विजः । तृणाम्बुः शबलो धौम्यः शतानंदो कृतव्रणः ॥२०९॥
जमदग्निस्तथा रामो ह्यष्टकश्चैवमादयः । कृष्णद्वैपायनश्चैव पुत्रशिष्यैः समन्वितः ॥२१०॥
एते तु पुष्करं प्राप्य सप्तर्षीणामथाश्रमे । वेष्टिता नियमैश्चापि दयायुक्तास्तपस्विनः ॥२११॥
आनृशंस्यं जयो धैर्यं तपः सत्यं क्षमार्जवम्। दया दानं जपश्चैव सर्वेषां तत्प्रतिष्ठितम् ॥२१२॥
इह यत्क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते। ज्ञात्वा तदित्त्थं मुनयः परमार्थपरायणाः॥२१३॥

पुष्कर के लिए निकली उसका दर्शन करेगा ॥१९७॥ वहाँ पर स्नान करके देवताओं की अर्चना करेगा उसको निश्चित रूप से अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होगा ॥१९८॥ जो व्यक्ति वहाँ पर एक भी ब्राह्मण को भोजन करा येगा, उसको करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होगा । हे मुनीश्वर ! यहाँ पर दिया गया अन्न तथा जल का दान अक्षय होगा ॥१९९॥ जो यहाँ पर जिस वस्तु की कामना करता है, उसकी सारी कामनाओं की पूर्ति होगी यहाँ पर केवल स्नान कर लेने वाला भी व्यक्ति निन्दित योनि में नहीं जाता है ॥२००॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्माजी ने उस आश्रम को सभी स्थानों से बढकर स्थान तथा सभी आश्रमों से श्रेष्ठ आश्रम होने का वरदान् प्रदान किया है; अतएव नि:सन्देह रूप से यह वैसा ही होगा ॥२०१॥ चाहे स्त्री हो या पुरुष यहाँ पर केवल स्नान कर लेने से उसके जन्म भर के सारे पाप विनष्ट हो जायेंगे ॥२०२॥ इसतरह से लोकपितामह ब्रह्माजी मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य महर्षि से विदा लेकर चले गये ॥२०३॥ हे परंतप भीष्म ! अगस्त्य महर्षि भी अपने आश्रम में चले गये । इसतरह मैंने आपको अगस्त्य महर्षि के आश्रम की उत्पत्ति का वर्णन सुनाया ॥२०४॥ हे कुरुश्रेष्ठ भीष्म ! अब मैं आपको सप्तर्षि आश्रम का भी वर्णन सुनाऊँगा । अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु ॥२०५॥ अङ्गिरा, गौतम, सुमति, सुमुख, विश्वामित्र, स्थूल शिरा, संवर्त, प्रतर्दन ॥२०६॥ रैभ्य, वृहस्पति, च्यवन, कश्यप, भृगु, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय गालव॥२०७॥ उशना, भरद्वाज, यवक्रीत, स्थूलाक्ष, सकलाक्ष, कण्व, मेधातिथि ॥२०८॥ नारद, पर्वत, स्रगन्धी, ब्राह्मण च्यवन, तुणाम्वु, शवल धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, ॥२०९॥ जमदग्नि, परशुराम तथा अष्टका आदि कृष्णद अपने पुत्र तथा शिष्यों से युक्त महर्षि कृष्णद्वैपायन ॥२१०॥ पुष्कर तीर्थ में आकर इन महर्षियों के आश्रम में नियमों का पालन करने वाले, दयालु तपस्वि निवास कर चुके हैं ॥२११॥ इसीलिए उनमें आनृशंस्य, जय, धैर्य, तपस्या, सत्य, क्षमा,ऋजुता, दया, दान, जप ये सभी गुण प्रतिष्ठित हैं ॥२१२॥ यहाँ पर जो कर्म किया जाता है, उसका फल परलोक में प्राप्त होता है । इस बात को जान करके ऋषि परमार्थ परायण हो गये ॥२१३॥ वहाँ पर

न तत्र नास्तिका यांति नस्तेना नाजितेंद्रियाः । न नृशंसा न पिशुना न कृतघ्ना न मानिनः ॥२१४॥
सत्य तेजस्विनः शूरा दयावंतः क्षमापराः। यज्वानो यज्ञशीलाश्च निरीहा निरुपद्रवाः ॥२१५॥
निर्ममा निरहंकारास्तत्र गच्छंति पुष्करे। न रोगो न जरा मृत्यु र्भवितात्र महात्मनाम् ॥२१६॥
न तत्र मूढा विशंति पुरुषा विषयात्मकाः । कामलोभमदद्रोह क्रोधमोहैरुपद्रुताः ॥२१७॥
तुल्यमानापमानाश्च निर्द्वंद्वास्संयतेंद्रियाः। ध्यानयोगपराश्चैव ते तुगच्छंति पुष्करम् ॥२१८॥
आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं वै द्विजातयः । ये वर्तंते यमं त्रातुं तेषां लोका महोदयाः ॥२१९॥
येन हि संति भूतानि कर्मणा मनसा गिरा। अनृशंसतराः संतः सर्वदा च प्रियंवदाः ॥२२०॥
अग्निहोत्ररता नित्यं नित्यं चातिथिपूजकाः । नित्यं स्वाध्यायवंतश्च नित्यं स्नानपरायणाः ॥२२१॥
मातृवत्स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ह। परदारान्प्रपश्यंति सततं विगतस्पृहाः॥२२२॥
येधिक्षिप्ता न कुप्यंति नहि संति च हिंसिताः । समदुःखसुखाः सन्तो महात्मानो जितेंद्रियाः ॥२२३॥
ते हि सर्वे प्रपश्यंति पुरा चेरु र्महीमिमाम्। समाधिना चिंतयंतो ब्रह्मलोकं सनातनम्॥२२४॥
अथाभवदनावृष्टिः कदाचिन्महती तदा। कृच्छ्रप्रायो ह्यभूत्तत्र सर्वलोकः क्षुधार्दितः ॥२२५॥
ततो निरन्ने लोकेस्मिंश्चात्मानं ते परीप्सवः। मृतं कुमारमादाय कृच्छ्रप्रायास्तदापचन् ॥२२६॥
अथपर्यचरत्तत्र क्लिश्यमानान् हि तानृषीन्। दृष्ट्वा राजा विषादार्त्तः प्रोवाचेदं वचस्तदा॥२२७॥

(सप्तर्षि आश्रम में) नास्तिक, चोर, तथा अजितेन्द्रिय नहीं जातें हैं। नृशंस (निष्ठुर स्वभाव वाले) पिशुन (चुगलखोर) कृतघ्न (किए हुए उपकार को नहीं मानने वाले) तथा मानी (अभिमानी) पुरुष वहाँ नहीं जाते हैं ॥२१४॥ उस पुष्कर तीर्थ में, सत्य बोलने वाले, तेजस्वी, शूर, वीर दयालु, क्षमाशील, यज्ञ करने वाले, यज्ञशील, अनासक्त, किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करने वाले ॥२१५॥ ममता रहित, तथा अहङ्कार रहित मनुष्य ही जाते हैं। वहाँ पर महात्माओं को न तो कोई रोग होता है न मृत्यु होती है ॥२१६॥ वहाँ पर विषयी अज्ञानी जीव जाकर नहीं रह पाते हैं और न तो काम, लोभ, मद, द्रोह, क्रोध एवं मोह करने वाले रह पाते हैं ॥२१७॥ मान तथा अपमान को एक समान मानने वाले, अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले तथा ध्यान तथा योगपरायण व्यक्ति पुष्कर क्षेत्र में जाते हैं॥२१८॥ उपर्युक्त आश्रमों में उपुर्यक्त प्रकार के ही लोग निवास करते हैं। जो यमराज से रक्षा करने वाले हैं, उनको उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है ॥२१९॥ जो किसी भी प्राणी को मन, कर्म तथा वाणी से कष्ट नहीं देते हैं, नैष्ठूर्य रहित वे महापुरुष सदा प्रिय बोलने वाले होते हैं ॥२२०॥ जो नित्य ही अग्निहोत्र करते हैं तथा नित्य ही अतिथियों की पूजा करते हैं, नित्य ही वेद का पाठ करते हैं तथा नित्य स्नान करते हैं ॥२२१॥ वह सदा किसी भी प्रकार की स्पृहा से रहित होकर माता, बहन अथवा पुत्री के समान दूसरों की स्त्रियों को देखने वाले होते हैं॥२२२॥ जो निन्दा करने पर भी कुछ नहीं बोलते हैं तथा प्रहार करने पर भी प्रहार नहीं करते हैं, सुख तथा दुःख दोनों को एक समान मानने वाले तथा जितेन्द्रिय महामात्मा गण ॥२२३॥ एकबार इस पृथिवी पर तीर्थ करने की दृष्टि से विचरण कर रहे थे। वे लोग अपनी समाधि से सनातन ब्रह्मलोक का ध्यान करने वाले थे ॥२२४॥ उसी समय बहुत बड़ी अनावृष्टि हुयी (सुखा पड़ा)। सभी लोग भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर पीडित थे ॥२२५॥ वे अन्न रहित इस संसार में अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते थे। अत्यन्त भूखे लोग अपने भूखे बच्चों के मर जाने पर उसी को पका कर खा लेते थे ॥२२६॥ उस समय दुःखी हुए ऋषियों की सेवा करने के लिए वहाँ का राजा आया। ऋषियों को देखकर राजा विषाद के कारण आर्त हो गया और कहा ॥२२७॥ **राजा ने कहा**— ब्राह्मणों के

राजोवाच

प्रतिग्रहो ब्राह्मणानां दृष्टा वृत्तिरनिंदिता। तस्मात्प्रतिग्रहान्मत्तो गृह्णीध्वं मुनिसत्तमाः ॥२२८॥
वरान्ग्रामान् व्रीहियवान् रसानरत्नानि कांचनम्। गाश्च धेनूश्च तत्सर्वं मा मांसं पचत द्विजाः ॥२२९॥

ऋषय ऊचुः

राजन्प्रतिग्रहोघोरो मध्वास्वादो विषोपमः । तज्जानतां नः कस्मात्त्वं कुरुषे सम्प्रलोभनम् ॥२३०॥
दशसूना समश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजी । दशध्वजि समा वेश्या दश वेश्या समो नृपः॥२३१॥
दशसूनासहस्राणि यो वाहयति शौंडिकः । तेन तुल्यस्ततो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥२३२॥
यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो लोभमोहितः । तामिस्रादिषु घोरेषु नरकेषु स पच्यते ॥२३३॥
तद्गच्छ कुशलं तेस्तु सह दानेन पार्थिव । अन्येषां दीयतामेतदित्युक्त्वा ते वनं ययुः ॥२३४॥
अथ राज्ञः समादेशात्तत्र गत्वाऽथमंत्रिणः । उदुंबराणि व्यकिरन् हेमगर्भाणि भूतले ॥२३५॥
ततो ह्यन्नं विचिवन्तो गृह्णंश्चोदुंबराण्यपि । गुरूणि हि विदित्वा तु न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत्॥२३६॥

अत्रिरुवाच

नास्महे मूढ विज्ञाना नास्महे मंदबुद्धयः। हैमानीमानि जानीमः प्रतिबुद्धाः स्म ज्ञानिनः ॥२३७॥
इहैवेदं वसुप्रीत्यै प्रेत्य वैकुंठितोदयम् । तस्मान्न ग्राह्यमेवैतत्सुखमानंत्यमिच्छता ॥२३८॥
शतेन गुणितं निष्कं सहस्रेण समन्वितम् । यश्चान्यतः प्रतीच्छेत्स पापिष्ठां लभते गतिम् ॥२३९॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नूनं नैकस्य पर्याप्तमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥२४०॥

लिए प्रतिग्रह (दान लेना) अनिन्दित वृत्ति है, अतएव हे श्रेष्ठ मुनियों ! आपलोग मुझसे दान स्वीकार करें ॥२२८॥ श्रेष्ठ ग्राम, व्रीहि, यव, रस, रत्न, सुवर्ण, गायें, धेनु इत्यादि जो कुछ भी चाहें मुझसे लें; किन्तु यह मांस पकाकर न खायें ॥२२९॥ **ऋषियों ने कहा**— हे राजन् ! दान लेना घोर पाप है, उसका स्वाद तो मधुर होता है; किन्तु उसका परिणाम विष के तुल्य होता है । उसको हमलोग जानते हैं, अतएव हमलोगों को लोभ में क्यों डालते हो॥२३०॥ दश कसाई के समान चक्री (कुम्हार या तेली) होता है, दश चक्रियों के समान पापी शराब बेचने वाला होता है, दश शराब बेचने वालों के समान एक वेश्या होती है और दश वेश्याओं के समान एक राजा होता है॥२३१॥ दश हजार कसाई खानों को चलाने वाला शौण्डिक कहलाता है, राजा भी उसी के समान होता है । अतएव राजा का दान अत्यन्त भयङ्कर होता है ॥२३२॥ लोभ से प्रेरित होकर जो ब्राह्मण राजा का दान स्वीकार करता है वह तामिस्र इत्यादि भयङ्कर नरकों में पकाया जाता है ॥२३३॥ अतएव हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम अपना दान अपने साथ ले जाओ । उसे किसी दूसरे को दे देना, यह कहकर वे ऋषिगण वन में चले गये॥२३४॥ उसके बाद राजा के आदेशानुसार उसके मन्त्रीगण आकर गुलर के फल के भीतर सुवर्ण भर-भरकर पृथिवी पर विखेर दिए ॥२३५॥ उसके बाद अन्न के दानों को बीनते हुए तथा गूलर के फलों को बिटोरते हुए वे ऋषिगण वहाँ आये । उन गूलर के फलों को भारी देखकर ऋषियों ने जान लिया कि इन गूलरों को नहीं लेना चाहिए॥२३६॥ **अत्रि महर्षि ने कहा**— हमलोग न तो मूर्ख हैं और न तो मन्द बुद्धि वाले हैं । हम सभी प्रतिबुद्ध ज्ञानी हैं, इन गूलर के फलों को नहीं लेना चाहिए ॥२३७॥ ये गूलर के फल इस लोक में तो सुख देने वाले हैं; किन्तु इनसे हमारा मोक्षमार्ग अवरुद्ध हो जायेगा । अतएव अनन्त सुख मुक्ति प्राप्त करना चाहने वाले को इनको नहीं लेना चाहिए ॥२३८॥ जो व्यक्ति दूसरों से सुवर्ण का दान स्वीकार करता है उसको उसके लाखो गुना पाप लगता है और

वसिष्ठ उवाच

तपसां संचयो यस्य द्रव्याणां यस्य संचयः । तपः संचय एवेह विशिष्टो धनसंचयात् ॥२४१॥
त्यजतः संचयान्सर्वान्यांति नाशमुपद्रवाः । नहि संचयवान्कश्चिद्दृश्यते निरुप्रदवः ॥२४२॥
यथा यथा नगृह्णाति ब्राह्मणोऽसत्प्रतिग्रहम् । तथा तस्य हि संतोषाद्ब्रह्म तेजो विवर्द्धते ॥२४३॥
अकिंचनत्वं राज्यं च तुलया समतोलयत् । अकिंचनत्वमधिकं राज्यादपि हितात्मनः ॥२४४॥

कश्यप उवाच

अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यस्त्वर्थनिचयो महान् ॥२४५॥
अर्थैश्वर्यविमूढो हे श्रेयसो भ्रश्यतो द्विजः । अर्थसंपद्विमोहाय विमोहो नरकाय च॥२४६॥
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोर्थी दूरतस्त्यजेत् । यस्य धर्मार्थ मर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी ॥२४७॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् । योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः॥२४८॥
यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः ।

भरद्वाज उवाच

जीर्यंति जीर्यतः केशा दंताजीर्यंति जीर्यतः ॥२४९॥
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि नजीर्यति। चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका निरुपद्रवा ॥२५०॥
सूच्या सूत्रं यथावस्त्रे समानयति सूचकः । तद्वत्संसारसूत्रं हि तृष्णा सूच्योपनीयते ॥२५१॥

वह सबसे अधिक पापियों की गति को प्राप्त करता है ॥२३९॥ पृथिवी पर विद्यमान सम्पूर्ण व्रीहि, यव, सुवर्ण तथा स्त्रियाँ किसी एक भी व्यक्ति को तृप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है, इस बात को जानकर शम नामक गुण को अपनाना चाहिए ॥२४०॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** जो व्यक्ति तपस्या के बल पर द्रव्यों का संचय करता है, वस्तुतः उसी का संचय है । इसलोक में धन के संचय से बढकर तपस्या का संचय करना है ॥२४१॥ जो व्यक्ति सभी प्रकार के संग्रहों का परित्याग कर देता है, उसको प्राप्त होने वाले सभी प्रकार क उपद्रव शान्त हो जाते हैं । कोई भी संग्रह करने वाला ऐसा नहीं है जो उपद्रवग्रस्त न हो ॥२४२॥ ब्राह्मण जैसे-जैसे असत् परिग्रह का परित्याग करता जाता है, उसी क्रम से उसका संतोष जन्य ब्राह्मतेज समृद्ध होता है ॥२४३॥ जब अकिञ्चनत्व तथा राज्य को तराजू पर रखकर तौला गया तो आत्मकल्याण चाहने वाले के लिए अकिञ्चनत्व का फल भारी हो गया ॥२४४॥ **कश्यप महर्षि ने कहा—** अधिक धन सम्पत्ति का संचय ब्राह्मण के लिए अनर्थ स्वरूप है ॥२४५॥ धन के ऐश्वर्य से अज्ञानी बना हुआ ब्राह्मण आत्मकल्याण नहीं कर पाता है । धन सम्पत्ति अज्ञान के साधन हैं, और अज्ञान नरक प्राप्ति का साधन है ॥२४६॥ इसीलिए कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को अनर्थ स्वरूप अर्थ का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए । जो धर्म रूपी सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहता है, उसी की निष्कामना श्रेष्ठ है ॥२४७॥ कीचड़ लगाकर उसे धोने की अपेक्षा कीचड़ को दूर से ही त्याग देना श्रेष्ठ है । धन सम्पत्ति के द्वारा प्राप्त होने वाला धर्म क्षयिष्णु बतलाया गया है ॥२४८॥ जो त्याग दूसरे का कल्याण करने के लिए किया जाता है, वह त्याग मुक्तिप्रद होता है । **भरद्वाज महर्षि ने कहा—** बूढे होने के साथ-साथ केश तथा दांत भी जीर्ण होते जाते हैं किन्तु बुढापे के आ जाने पर भी अधिक धन प्राप्त करने के तथा अधिक दिनों तक जीने की आशा नहीं समाप्त होती है । बुढापे में नेत्र तथा कान भी जीर्ण हो जाते हैं, किन्तु विषयों को प्राप्त करने की इच्दा तो ज्यों के त्यों बनी रहती है ॥२५०॥ जिसतरह वस्त्र सीने वाला (दर्जी) सूई के माध्यम में सूत्र को वस्त्र में प्रवेश करा देता है उसी तरह तृष्णा (लालच)

यथा श्रृंगंरुरोः काये वर्द्धमाने च वर्द्धते । अनंतपारा दुष्पूरा तृष्णा दुःखशतावहा ॥२५२॥
अधर्मबहुला चैव तस्मात्तां परिवर्जयेत्।

गौतम उवाच

संतुष्टः को न शक्नोति फलैश्चाप्यतिवर्तितुम् ॥२५३॥
लुब्ध इंद्रियलौल्येन संकटान्यवगाहते। सर्वत्र संपदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ॥२५४॥
उपानद्गुप्तपादस्य तस्य चर्मावृतेव भूः । संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शांतचेतसाम् ॥२५५॥
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् । असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम् ॥२५६॥
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात्संतुष्टः संततं भवेत्।

विश्वामित्र उवाच

कामंकामयमानस्य यदि कामः समृद्ध्यति ॥२५७॥
अथैनमपरः कामो भूयो विध्यति बाणवत् । न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥२५८॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते। कामानभिलषन्मोहान्नरः सुखमेधते ॥२५९॥
श्येनालयतरुच्छायां व्रजन्निवकपिंजलः। चतुस्सागरपर्यन्तां यो भुंक्ते पृथिवीमिमाम् ॥२६०॥
तुल्याश्मकाञ्चनो यश्च सकृतार्थो न पार्थिवः।

जमदग्निरुवाच

प्रतिग्रहसमर्थोपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् ॥२६१॥

रूपी सूई से संसार रूपी सूत्र का विस्तार होता है ॥२५१॥ जिस तरह मृग के बढने के साथ-साथ उसका सींग भी बढता जाता है उसीतरह तृष्णा भी सदा बढती ही जाती है, उसका भी अन्त नहीं है । वह दुष्पूर है और अत्यधिक दुःखों को स्वयं ढोती रहती है ॥२५२॥ उससे बहुत अधिक पाप होते हैं, अतएव उसका परित्याग कर देना चाहिए। **गौतम महर्षि ने कहा—** जो व्यक्ति सन्तुष्ट है वह फलों का अतिक्रमण कर जाता है ॥२५३॥ इन्द्रियों की चंवलता से लुब्ध बना हुआ मनुष्य विपत्तियों को ही प्राप्त करता है । जिसका मन सन्तुष्ट है, उसके लिए पृथिवी धन सम्पत्ति से भरी हुयी है ॥२५४॥ जिसका पैर जूते में पड़ा है, उसके लिए सारी पृथिवी चमड़े से ढँकी हुयी है । संतोष रूपी अमृत का पान करके जिसका मन सन्तुष्ट हो गया है उसको जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह सुख धन के लोभ में इधर-उधर दौड़ने वालों को कहाँ से मिल सकता है ? सबसे बड़ा दुख असन्तोष है और सबसे बड़ा सुख सन्तोष है ॥२५५-२५६॥ अतएव सुख चाहने वाले व्यक्ति को सदा सन्तुष्ट रहना चाहिए । **विश्वामित्र महर्षि ने कहा—** काम्य पदार्थों की कामना करने वाले की कामना यदि पूर्ण होती हैं तो पुनः उसको दूसरी कामना बाण के समान बेध देती है; अतएव कामनाआं की पूर्ति करने से कामनाओं की कभी भी समाप्ति नहीं होती है ॥२५७-२५८॥ जिस तरह से हविष्य के द्वारा अग्नि और अधिक प्रदीप्त होती जाती है उसी तरह कामनाएँ भी बढ़ती ही जाती हैं । कामनाओं को चाहने वाला मनुष्य कभी भी सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है ॥२५९॥ चारो समुद्र पर्यन्त पृथिवी का स्वामित्व प्राप्त पुरुष उसी तरह से दुःखानुभव करता रहता है, जिस तरह जिस वृक्ष पर बाज पक्षी का निवास है, उस पेड़े की छाया प्राप्त करने वाला कपिञ्जल पक्षी आपद्ग्रस्त रहता है ॥२६०॥ जो व्यक्ति सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले को एक समान समझता है, वही व्यक्ति सुखी है राजा नहीं । **जमदग्नि महर्षि ने कहा—** प्रतिग्रह को लेने में समर्थ होकर भी जो प्रतिग्रह को नहीं लेता है ॥२६१॥ दानियों को जो लोक प्राप्त होते हैं उन्हीं लोकों को वह प्राप्त

ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति शाश्वतान्। योर्थानिच्छेन्नृपाद्विप्रः शोचितव्यो महर्षिभिः॥२६२॥
न स पश्यति मूढात्मा नरके यातनाभयम् । प्रतिग्रहसमर्थोपि न प्रसज्येत्प्रतिग्रहे ॥२६३॥
प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति । प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानां प्रतिग्रहात् ॥२६४॥
य एव ददतां लोकास्त एवाप्रतिगृह्णताम् ।

अरुन्धत्युवाच

विसतंतुर्यथा नित्यमंभस्थस्सततं विशेत् ॥२६५॥
तृष्णा चैवमनाद्यंता तथा देहगता सदा । या दुस्त्यजा दुर्मतिभि र्या न जीर्यतिजीर्यतः ॥२६६॥
योऽसौप्राणांतिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।

चांडाल उवाच

उग्रादितोभयाद्यस्माद्बिभ्यती मे महेश्वराः ॥२६७॥
बलीयसो दुर्बलत्वात्तस्माच्चैव विभेम्यहम्।

पशुसख उवाच

यदाचरंति विद्वांसः सदा धर्मपरायणाः ॥२६८॥
तदेव विदुषा कार्यमात्मनां हितमिच्छता । इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि त्यक्त्वा तानि फलानि वै॥२६९॥
ऋषयो जग्मुरन्यत्र सर्व एव दृढव्रताः। ततस्ते विचरंतो वै मध्यमं पुष्करं गताः॥२७०॥
ददृशुः सहसा प्राप्तं परिव्राजं शुनः सखम्। तेनेह सहितास्तत्र गत्वा किंचिद्वनांतरम् ॥२७१॥
सरःपरमपश्यंत वृतं पद्मैर्जलाशयम् । निविष्टाः सरसस्तीरे चिंतयंतो गतिं शुभाम्॥२७२॥
शुनःसखो मुनीन्सर्वानुवाच क्षुधितां स्तदा । सर्वे वदंतु सहिताः कीदृशी क्षुत्प्रवेदना ॥२७३॥

करता है। जो ब्राह्मण राजा से धन प्राप्त करना चाहता है, वह महर्षियों के द्वारा सोचनीय है ॥२६२॥ क्योंकि वह मूर्ख नरकों में प्राप्त होने वाली यातना के भय को नहीं जानता है। इसलिए प्रतिग्रह लेने में समर्थ ब्राह्मण को प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये ॥२६३॥ प्रतिग्रह लेने से ब्राह्मणों का तेज समाप्त हो जाता है। प्रतिग्रह में समर्थ रहकर भी उसे नहीं लेने वाले ब्राह्मणों को भी दान करने वालों को जो लोक प्राप्त होते हैं, वे ही लोक प्राप्त होते हैं। **अरुन्धती ने कहा**— जिस प्रकार विसतुंत (कमलनाल से निकलने वाला तंतु) जल में ही रहकर जल में नही प्रवेश करता है॥२६५॥ उसी तरह अनादि तथा अनंत तृष्णा सदा देह में ही विद्यमान रहती है। जिस दुर्मति को त्यागना कठिन है, जो बुढा होने पर भी जीर्ण नहीं होती है ॥२६६॥ वह ऐसा रोग है कि वह मरते दम तक भी नहीं समाप्त होती है, उस तृष्णा का परित्याग कर देने में ही सुख है। **चाण्डाल ने कहा**— उग्र आकृति वाले को देखकर बड़े-बड़े महेश्वर भी भयभीत हो जाते हैं ॥२६७॥ उसी तरह अत्यन्त दुर्बल महर्षियों को देखकर मैं भी भयभीत हो जाता हूँ। **पशुसख ने कहा**— धार्मिक विद्वान पुरुष जैसा आचरण करते हैं आत्म कल्याण चाहने वाले को भी वैसा ही आचरण करना चाहिए। इसतरह से कहकर उस सुवर्ण भरे हुए गूलर के फलों को छोड़कर॥२६९॥ सभी दृढव्रत वाले वे ऋषी अन्यत्र चले गये। उसके बाद विचरण करते हुए वे ऋषि मध्यपुषकर में गये ॥२७०॥ वहाँ पर उन लोगों की अचानक शुनःसख से भेंट हुयी उसके साथ वे सब ऋषि किसी दूसरे वन में चले गये॥२७१॥ उनलोगों ने एक ऐसे सरोवर को देखा जो कमलों से भरा हुआ था। वे सभी वहीं पर आत्मकल्याण का चिन्तन करते हुए बैठ गये ॥२७२॥ उन भूखे हुए मुनियों से शुनःसख ने पूछा आपलोग बतलाइये कि भूख की

तमूचुः सहितास्ते तु परिव्राजं शुनःसखम्।

ऋषय ऊचुः

शक्तिखड्गगदाभिश्च चक्रतोमरसायकैः ॥२७४॥
वाधिते वेदना या तु क्षुधया सापि निर्जिता। श्वासकुष्ठक्षयाष्टीली ज्वरापस्मारशूलकैः ॥२७५॥
व्याधिभि र्जनिता सापि क्षुधाया नाधिका भवेत् । हिरण्यांगदकेयूरमकुटोज्ज्वलकुंडलाः ॥२७६॥
क्षुधायां न विराजंते तत्र ये संस्थिता नराः । यथा भूमिगतं तोयं रविरश्मि र्विकर्षति ॥२७७॥
तद्वच्छरीरजा नाड्यः शोष्यंते जठराग्निना । न शृणोति न चाघ्राति चक्षुषा नैव पश्यति ॥२७८॥
दह्यते क्षीयते मूढः शुष्यते क्षुधयार्दितः । न पूर्वां दक्षिणां चापि पश्चिमां नोत्तरामपि ॥२७९॥
नचाधो नैव चोर्ध्वं च क्षुधाविष्टो हि विंदति । मूकत्वं बधिरत्वं च जडत्वमथ पंगुता ॥२८०॥
भैरवत्वममर्यादं क्षुधायां संप्रवर्द्धते । जनकं जननीं पुत्रान् भार्यां दुहितरं तथा ॥२८१॥
भ्रातरं स्वजनं वापि त्यजति क्षुधयार्दितः । न पितॄन्पूजयेत्सम्यक् देवं चापि गुरुं तथा ॥२८२॥
ऋषीनुपगतांश्चापि क्षुधाविष्टो न विंदति । एवमन्नविहीनस्य भवंत्येतानि देहिनाम् ॥२८३॥
तदेवं संप्रयच्छेत अन्नं श्रद्धा समन्वितः । ब्रह्मभूतस्ततः सोऽथ ब्रह्मणा सह मोदते ॥२८४॥
सुसंस्कृतं च योप्यन्नं दद्यादहरहर्द्विजे। यः पठेदन्नदानं तु श्राद्धे चैव विशेषतः ॥२८५॥
एकाग्रमनसो भूत्वा अमावस्येंदुसंक्षये । भूतोपघातसूपूर्णे श्राद्धे श्रावयते सदा ॥२८६॥
पितरस्तस्य तुष्यंति यावज्जीवं न संशयः । देवद्विजसमीपस्थोन्नस्य दाता विमुच्यते ॥२८७॥

व्यथा कैसी होती है ?॥२७३॥ उन सभी ऋषियों ने शुनःसख से कहा **ऋषयों ने कहा—** शक्ति, खड्ग, गदा, चक्र, तोमर तथा बाण आदि के लगने से जो व्यथा होती है ॥२७४॥ उससे भी अधिक भूख की व्यथा होती है । श्वास, कुष्ठ, क्षय, टिली (मिरगी), अपस्मार तथा शूल, ज्वर आदि रोगों के कारण जो पीड़ा होती है ॥२७५॥ उससे भी अधिक पीड़ा भूख के कारण होती है । सुवर्ण, अङ्गद, केयूर, मुकुट तथा कुण्डल ॥२७६॥ आदि आभूषण भूख से पीडित व्यक्ति को अच्छे नहीं प्रतीत होते है । जिस तरह भूमि के भीतर गये हुए सम्पूर्ण जल को सूर्य की किरणें सोख लेती हैं उसी तरह ॥२७७॥ जाठराग्नि शरीर की सभी नाड़ियों को सुखा देती है । भूखा व्यक्ति को न तो कुछ सुनायी पड़ता है, न तो वह किसी गन्ध को सूंघता है और न तो उसको कुछ दिखायी पड़ता है॥२७८॥ भूख से व्याकुल वह जलता रहता है क्षीण होता है और वह सूखता जाता है । भूख से व्याकुल व्यक्ति को पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर ऊपर तथा नीचे कुछ भी नहीं मालुम पड़ता है । उसकी मूकता (गूंगापन) बधिरत्व (बहरापन) जड़त्व तथा पंगुत्व (लंगड़ापन) ॥२७९-२८०॥ भैरवत्व तथा मर्यादा राहित्य ये सबके सब बढ जाते हैं। भूख से पीडित व्यक्ति पिता, माता, पुत्र, पत्नी, पुत्री, भाई तथा स्वजन का भी परित्याग कर देता है ॥२८१॥ वह पिता, देवता तथा आचार्य की भी पूजा नहीं कर पाता है ॥२८२॥ आये हुए ऋषयों को भी भूखा व्यक्ति नहीं जान पाता है । चूकि अन्न रहित व्यक्ति की इस प्रकार से स्थिति होती है, अतएव जिसके पास अन्न हो उसे भूखे व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक अन्न देना चाहिए । जो व्यक्ति उसे अन्न प्रदान करता है वह मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म स्वरूप होकर ब्रह्माजी के साथ सुखानुभव करता है ॥२८३-२८४॥ जो व्यक्ति अच्छी तरह से सिद्ध अन्न ब्राह्मण को देता है तथा जो व्यक्ति श्राद्ध करते समय अन्न दान की महिमा का पाठ करता है ॥२८५॥ अमावस्या के दिन चन्द्रमा का क्षय हो जाने पर भूतोपघात से युक्त श्राद्ध में जो इसे सुनाता है ॥२८६॥ उसके पितृगण जीवन भर तृप्त रहते हैं । देवता और

प्रबुद्धो वा प्रमत्तो वा प्रसंगादागतोपि वा। भक्त्या विरहितो वापि श्रृण्वन्पापाद्विमुच्यते ॥२८८॥
दानेन संयुता विप्राः सुखिनो धर्मभागिनः। यमो दमो वै नियमः प्रोक्तस्तत्वार्थदर्शिभिः ॥२८९॥
ब्राह्मणानां विशेषेण दमो धर्मः सनातनः। दमस्तेजोवर्द्धयति पवित्रो दम उत्तमः ॥२९०॥
विपाप्मा चैव तेजस्वी पुरुषो दमतो भवेत्। ये केचिन्नियमा लोके ये च धर्माश्शुभान्वयाः॥२९१॥
सर्वयज्ञफलं चापि दमस्तेभ्योविशिष्यते। तपो यज्ञस्तथा दानं दमादेव प्रवर्तते ॥२९२॥
किमरण्ये त्वदांतस्य दांतस्यापि किमाश्रमे। यत्र यत्र वसेद्दांतस्तदरण्यं महाश्रमः ॥२९३॥
शीलवृत्तसमेतस्य निगृहीतेन्द्रियस्य च। आर्जवे वर्तमानस्य आश्रमैः किं प्रयोजनम् ॥२९४॥

वनेपि दोषाः प्रभवंन्ति रागिणां गृहेपि पंचेद्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥२९५॥
सुकर्म धर्मार्जित जीवितानां सदा च संतुष्य गृहे रतानाम्।
जितेंद्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेपि धर्मो नियमस्थितानाम् ॥२९६।
न शब्दशास्त्रे निरतस्य मोक्षो न वर्णसंगे निरतस्य चैव।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकवृत्तग्रहणे रतस्य ॥२९७॥
एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य।
अध्यात्मयोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य ॥२९८॥

सुखं च दांतः स्वपिति सुखेन प्रतिबुध्यते। समः सर्वेषु भूतेषु मनो यस्य प्रबुध्यते ॥२९९॥

ब्राह्मण को अन्न दान करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२८७॥ ज्ञानी हो याँ प्रमत्त अथवा किसी प्रसङ्गवशात् आया हुआ हो, अथवा भक्तिहीन भी हो ऐसा पुरुष इस अन्न की महिमा को सुनकर मुक्त हो जाता है॥२८८॥ अन्नदान करने वाले ब्राह्मण सुखी, धर्मभागी, यम, दान तथा नियम से युक्त हो जाता है; ऐसा तत्त्वज्ञ पुरुषों ने कहा है ॥२८९॥ विशेष रूप से दम (इन्द्रियों का निग्रह) ब्राह्मणों का सनातन धर्म है, दम से ब्राह्मणों का तेज बढता है। दम को पवित्र कहा गया हैं ॥२९०॥ दम के द्वारा ब्राह्मण पाप से रहित तथा तेजस्वी हो जाता है। संसार में जितने भी नियम तथा शुभ धर्म बतलाये गये हैं ॥२९१॥ तथा सभी प्रकार के यज्ञों को करने का जो फल है, उन सबों सें बढकर दम का महत्व है। दम के ही पालन से तप, यज्ञ तथा दान होते हैं ॥२९२॥ दम का नहीं पालन करने वाले का वन में निवास व्यर्थ है तथा दम का पालन करने वाला यदि अपने घर में रहता है तो वह श्रेष्ठ है। दान्त पुरुष जहाँ रहता है। वहीं पर अरण्य नामक श्रेष्ठ आश्रम हो जाता है ॥२९३॥ शील, सदाचार का पालन करने वाले, अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले तो ऋजुता को अपनाने वाले को आश्रमों से कौन सा प्रयोजन है?॥२९४॥ रागी पुरुषों के वन में भी रहने पर उनमें दोष अत्यन्त बढ जाते हैं तथा घर में भी रहकर अपनी पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में रखना तपस्या ही है। जो व्यक्ति निन्दित कर्मों को नहीं करता है तथा जो राग (आसक्ति ममता आदि) से रहित है उसके लिए घर भी तपोवन के समान है ॥३९५॥ जो अपने जीवन में सत्कर्म के द्वारा धर्म का अर्जन करते हैं तथा जो घर में ही संतोष पूर्वक रहते हैं। जो जितेन्द्रिय अतिथि प्रिय है तथा नियम पूर्वक रहते हैं वे घर में धर्मार्जन करते हैं ॥२९६॥ मोक्ष न तो शब्द शास्त्र में लगे रहने वाले को मिलता है, और न तो वर्ण में आसक्त व्यक्ति को मोक्ष मिलता है, अच्छा भोजन तथा अच्छे वस्त्र पहनने वाले को भी मोक्ष नहीं मिलता है, लोक के वृतान्तों को सदा ग्रहण करने वाले को भी मोक्ष नहीं मिलता है ॥२९७॥ एकान्त में रहकर दृढतापूर्वक व्रत का

न रथेन सुखं याति न हयेन न दंतिना। यथात्मना विनीतेन सुखं याति महापथे ॥३००॥
न तु कुर्याद्धरिः स्पृष्टः सर्पो वा प्यतिरोषितः। अरिर्वानित्यसंक्रुद्धो यथात्मा दमवर्जितः ॥३०१॥
न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते । आत्मा वै यामितो येन सयमस्तु विशिष्यते ॥३०२॥
यमो यम इति प्रोक्तो वृथा तूद्विजते जनः। आत्मा वै यमितो येन यमस्तस्य करोति किम्॥३०३॥
क्रव्यादेभ्यश्च भूतेभ्योऽदान्तेभ्यश्च सदा भयम् । तेषां विप्रतिषेधार्थं दंडः सृष्टः स्वयंभुवा ॥३०४॥
दंडो रक्षति भूतानि दंडः पालयते प्रजाः। निवारयति पापिष्ठान्दंडो दुर्जय एव वा ॥३०५॥
श्यामो युवा लोहिताक्षः सर्वभूतभयावहः । दंडः शास्ता मनुष्याणां यस्मिन्धर्मः प्रतिष्ठितः॥३०६॥
अथाश्रमेषु सर्वेषु दम एवोत्तमव्रतम् । तानि लिंगानि वक्ष्यामि यैर्दान्त इति कीर्त्यते॥३०७॥
अकार्पण्यमपारुष्यं संतोषः सुविधानता। अनसूया गुरोः पूजा दया भूतेष्वपैशुनम् ॥३०८॥
षड्भिरेष दमः प्रोक्तं ऋषिभिः शांतबुद्धिभिः । दयाधीनौ धर्ममोक्षौ तथा स्वर्गश्च पार्थिव ॥३०९॥
अपमाने न कुप्येत संमाने न प्रहृष्यति। समदुःखसुखो धीरः स शांत इति कीर्त्यते ॥३१०॥
शेते सुखं हि शांतस्तु सुखं हि प्रतिबुध्यते। श्रेयस्तरमतस्तिष्ठेदवमन्ता विनश्यति ॥३११॥

पालन करने वाले तथा इन्द्रियों के प्रीणन से विरक्त रहने वाले, जिसका मन सदा अध्यात्मयोग में लगा रहता है तथा अहिंसा व्रत का पालन करने वाले को मोक्ष प्राप्त होता है ॥२९८॥ दान्त (अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला पुरुष) सुख पूर्वक सोता है तथ सुख पूर्वक वही व्यक्ति जगता है जिसका मन सदा सभी जीवों के विषय में समदर्शी बनकर जागरुक रहता है ॥२९९॥ जीव अपनी विनीत आत्मा के द्वारा मोक्ष के मार्ग पर जिस तरह सुखपूर्वक प्रवृत्त होता है, उस तरह वह रथ, घोड़ा अथवा हाथी के द्वारा नहीं जाता है ॥३००॥ अवशीकृत इन्द्रियाँ जितना अपकार करती हैं, उतना अपकार सिंह, अत्यन्त क्रुद्ध सर्प, अथवा शत्रु नहीं कर पाते हैं ॥३०१॥ यम को यम नहीं कहा गया है अपितु आत्मा को ही यम कहा जाता है, जिसने अपने आत्मा (मन) को अपने वश में कर लिया है वही सर्वश्रेष्ठ यम है ॥३०२॥ यम का नाम सुनकर मनुष्य व्यर्थ ही उद्विग्न होता है । जिसने अपनी आत्मा (मन) को वश में कर लिया है, यम उसका क्या विगाड़ सकता है ?॥३०३॥ मांस भक्षी जीवों तथा अदान्त (जिसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं हैं ऐसे मनुष्यों) से सर्वदा भय बना रहता है । उन सबों को ही भगाने के लिए ब्रह्माजी ने दण्डे का निर्माण किया है ॥३०४॥ दण्ड जीवों की रक्षा करता है, दण्ड ही प्रजाओं का पालन करता है; अत्यन्त पापियों के सन्निकट में आने से रोकने का काम दण्डा ही करता है । अतएव दण्ड को जीतना कठिन है ॥३०५॥ श्याम, युवा तथा लाल-लाल आखों वाला दण्डधारी पुरुष ही मनुष्यों का प्रशासन करता है, दण्ड के ही बल पर धर्म टिका रहता है ॥३०६॥ सभी आश्रमों के लिए दम ही सर्वोत्तम व्रत है । मैं उन चिह्नों को बतला रहा हूँ जिन सबों को देखकर किसी को भी दान्त कहा जाता है ॥३०७॥ शान्त बुद्धि वाले ऋषियों ने कहा है कि कृपणता नहीं करना (उदारता), कोमलता, संतोष, किसी काम को अच्छी तरह से सम्पादन करना, अनसूया (किसी से द्वेष नहीं करना) गुरुजनों का समादर करना तथा किसी की चुगली नहीं करना इन छहों गुणों से दम की पूर्ति होती है । हे राजन् ! धर्म और मोक्ष तथा स्वर्ग की प्राप्ति दया के अधीन हैं ॥३०८-३०९॥ जो अपमान होने पर क्रोध नहीं करता है तथा सम्मान पाकर प्रहृष्ट भी नहीं होता है, सुख तथा दुःख दोनों में एक समान रहने वाला तथा धैर्य सम्पन्न व्यक्ति ही शान्त कहलाता है ॥३१०॥ शान्त पुरुष सुख पूर्वक सोता है; तथा वह सुख पूर्वक जगता है । वह अधिक कल्याण को प्राप्त करता है जो उसका अपमान करने वाला होता है, उसका विनाश हो जाता है ॥३११॥ अपमानित होने वाले व्यक्ति को

अपमानितस्तु न ध्यायेत्तस्य पापं कदाचन। स्वधर्ममपि चावेक्ष्य परधर्मं न दूषयेत् ॥३१२॥
आत्मानमपि जानीयात्परं दोषैस्तु नाक्षिपेत्। मंत्रैर्हीनं क्रियाभिर्वा जन्मनाऽप्यथवा पुनः ॥३१३॥
दमश्छादयते सर्वं हीनमंगं पटो यथा। अधीयन्ते निरर्थन्ते नाभिजानांति ये दमम् ॥३१४॥
श्रुतस्य हि दमो मूलं दमो धर्मः सनातनः। योह्यात्मनस्तु लयते सुवर्णं तुलया दमम् ॥३१५॥
स तेन धृतिमान्ख्यातो न तु द्रव्येण मोहितः। व्रतानामपि सर्वेषां दम एव परायणम्॥३१६॥
यद्यधीते षडंगानि वेदतत्वार्थविद्द्विजः। दमेन तु विहीनश्च पूज्यत्वं नेह गच्छति ॥३१७॥
दमेन हीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सहषड्भिरङ्गै।
सांख्यंच योगश्चकुलं च जन्म तीर्थाभिषेकश्च निरर्थकानि ॥३१८॥
अमृतस्येव तृप्येत अपमानस्य योगवित्। विषवच्च जुगुप्सेत संमानस्य सदा द्विजः ॥३१९॥
अपमानात्तपोवृद्धिः संमानाच्च तपःक्षयः। अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव गच्छति॥३२०॥
पुनराप्यायते धेनुः सतृणैः सलिलै र्यथा। एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ॥३२१॥
आक्रोशक समो लोक सुहृदन्यो न विद्यते। यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति ॥३२२॥
आक्रोशमानान् नाक्रोशेन्मन्युं स्वं विनिवर्तयेत्। सन्नियम्य तदात्मानममृतेनाभिषिंचति ॥३२३॥
कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता। अनपेक्षा ब्रह्मचर्यं नयन्ति परमां गतिम्॥३२४॥

अपमान करने वाले के अकल्याण की भावना नहीं करनी चाहिए, उसे अपने धर्म का भी विचार करके दूसरे के धर्म की निन्दा नहीं करना चाहिए ॥३१२॥ मनुष्य को अपने स्वरूप को भी जानना चाहिए किन्तु दूसरों पर दोष नहीं लगाना चाहिए। चाहे वह मन्त्र, क्रिया तथा जन्म से हीन कोटि का ही क्यों न हो ॥३१३॥ जिस तरह हीन अङ्ग को वस्त्र ढंक देता है, उसी तरह दम भी समस्त दोषों को ढँक देने का काम करता है। वे लोग व्यर्थ ही वेदाध्ययन करते है जों दम के स्वरूप आदि को नहीं जानते हैं ॥३१४॥ वेदाध्ययन (ज्ञान) का मूल दम है, दम ही सनातन धर्म है, जो सुवर्ण के समान मूल्यवान् दम को आत्मा से करता है, वह उसी के कारण धैर्यवान रूप से प्रख्यात होता है, द्रव्य से मोहित होने वाला पावन नहीं कहलाता है। सभी व्रतों का आश्रय दम ही है ॥३१५-३१६॥ यदि कोई ब्राह्मण षडङ्गवेद का अध्ययन करता है; किन्तु दम से रहित है तो वह इस संसार में पूज्य नहीं हो पाता है॥३१७॥ दम से रहित व्यक्ति की शुद्धि षडङ्गवेदाध्ययन से नहीं होती है। उसके लिए सांख्य तथा योग दर्शन का ज्ञान सद्वंश में जन्म, तीर्थों में जाकर स्नान करना ये सब के सब निरर्थक होते हैं ॥३१८॥ योगवेत्ता को अपमान को अमृत के समान मानकर तृप्त हो जाना चाहिए और ब्राह्मण को चाहिए कि वह सम्मान को विष के समान समझकर उसमें घृणा का अनुभव करे ॥३१९॥ अपमान के द्वारा तपस्या बढती है, और सम्मान के द्वारा तपस्या का क्षय होता है। अर्चा तथा पूजा प्राप्त करके ब्राह्मण उस स्थान पर उसी तरह से जाता है जिस तरह गाय का सारा दूध दूहकर वहाँ से भेज दिया जाय ॥३२०॥ जिसतरह दूहने के बाद गौ की पुष्टि तृण और जल से पुनः होती है, उसी तरह जप तथा होम के द्वारा उस ब्राह्मण की पुनः पुष्टि होती है ॥३२१॥ निन्दा करने वाले के समान दूसरा कोई हितैषी नहीं होता है; क्योंकि निन्दा करने वाला अपना पुण्य देकर तथा निन्दा किए जाने वाले के पाप को लेकर चला जाता है ॥३२२॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह निन्दा करने वाले की निन्दा न करे, अपितु उसके प्रति होने वाले अपने क्रोध को रोक ले। अपने क्रोध को रोक कर वह अपनी आत्मा का अमृत से सींचन करता है ॥३२३॥ नारियल का भोजन पात्र (कपाल) रखना, वृक्ष की जड़ में निवास करना, मैला कुचैला वस्त्र धारण करना किसी की सहायता नहीं

कामक्रोधौ विनिर्जित्य किमरण्ये करिष्यति । अभ्यासेन तु वै शास्त्रं कुलं शीलेन धार्यते ॥३२५॥
गुणैर्मन्त्रा विधार्यन्ते क्रोधस्सत्त्वेन धार्यते। यस्तु कोधं समुत्पन्नं संधारयति चात्मनः ॥३२६॥
अक्रोधेन जयेद्वीरः कस्तेन सदृशो भुवि । यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं संतं संयम्य तिष्ठति ॥३२७॥
तं सत्सारतमम्मन्ये नास्मिन्सीदति यः पुमान्। एष पैतामहो गुह्यो ब्रह्मराशिस्सनातनः ॥३२८॥
धर्मस्य नियमो यो हि मया ते कथितो भृशम्। अन्ये च यज्वनां लोका अन्ये चापि तपस्विनाम् ॥३२९॥
अन्ये दमवतां लोकास्ते वै परमपूजिताः । एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ॥३३०॥
यदिदं क्षमया युक्तमशक्तंमन्यते जनः। न चैष दोषो मंतव्यः क्षमा प्रज्ञावतां बलम् ॥३३१॥
प्रशमं योभिजानाति इष्टापूर्तं महीयते । यत्क्रोधयुक्तो जपति जुहोति च यदर्चति ॥३३२॥
सर्वंक्षरति तत्तस्य भिन्नकुंभादिवोदकम्। दमाध्यायमिमं पुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥३३३॥
सधर्मनावमारुह्य दुर्गाण्यतितरिष्यति। दमाध्यायमिमं पुण्यं सततं श्रावयेद्द्विजः ॥३३४॥
स ब्रह्मलोकमाप्नोति तस्मान्न च्यवते पुनः । श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम् ॥३३५॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ॥३३६॥
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति । पचनं वैश्वदेवार्थे परार्थे यच्च जीवितम् ॥३३७॥
एतद्धवेच्च सर्वस्वं धातूनामिव कांचनम्। सर्वभूतहितं राजन्नधीत्यामृतमश्नुते ॥३३८॥

स्वीकार करना, किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना ये सभी मोक्ष को प्राप्त कराने वाले हैं ॥३२४॥ जिसने काम तथा क्रोध पर विजय प्राप्त कर लिया है, वह वन में जाकर क्या करेगा ? अभ्यास से शास्त्र की, और शील से वंश की, रक्षा की जाती है ॥३२५॥ गुणों से मन्त्र की रक्षा की जाती है तथा सत्व से क्रोध को रोका जाता है । जो व्यक्ति अपने उत्पन्न हुए क्रोध को रोक लेता है ॥३२६॥ जो व्यक्ति अक्रोध के द्वारा क्रोध को जीत लेता है, उसके समान संसार में दूसरा कोई वीर नहीं होता है । जो व्यक्ति उत्पन्न हुए क्रोध को संयमित कर लेता है ॥३२७॥ वही ब्रह्माजी के उपदेश का श्रेष्ठ सार है, यह सनातन वेदराशि है, व्यक्ति को इसके विषय में मनुष्य को असावधान नहीं होना चाहिए ॥३२८॥ मैंने खूब अच्छी तरह से धर्म के नियमों को समझा दिया है । यज्ञ करने वालों को प्राप्त होने वाले लोक दूसरे हैं, तपस्वियों को प्राप्त होने वाले दूसरे हैं और ॥३२९॥ उनका पालन करने वालो को परम पूज्य लोक होते हैं । क्षमा करने वालों को प्राप्त करके दोष एक ही रहता है, वह एक से दो नहीं हो पाता है ॥३३०॥ क्षमा करने वालों को जो लोग असमर्थ मानते है, उसे दोष नहीं मानना चाहिए । क्षमा तो ज्ञानियों का बल है ॥३३१॥ जो क्रोध को शान्त करना जानता है, उसके इष्टापूर्त कर्म समृद्ध होते हैं । क्रोध करने वाले के जप, होम तथा पूजन ये सबके सब उसी तरह विनष्ट हो जाते हैं ॥३३२॥ जिस तरह फूटे हुए घड़े का सारा जल वह जाता है । जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर इस दमाध्याय का पाठ करेगा ॥३३३॥ वह धर्म की नाव पर चढ़कर सभी विपत्तियों को पार कर लेगा । द्विज को चाहिये कि वह इस पवित्र दमाध्याय को सुनाये ॥३३४॥ वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, उस लोक से उसका पतन नहीं होता है । आप धर्म के सारांश को सुनिये और सुनकर अपने हृदय में धारण कीजिये ॥३३५। जो अपने को प्रतिकूल प्रतीत हो उसको दूसरों के प्रति नहीं करे दूसरे की पत्नी को माता के समान तथा दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान समझना चाहिए ॥३३६॥ जो अपने ही समान सभी जीवों को देखता है, उसी का दर्शन सद्दर्शन है, वही जीवन है जिसमें भोजन बलिवैश्वदेव करने के लिए, तथा दूसरों के लिए बनाया जाता है ॥३३७॥ जिस तरह सभी धातुओं का सार सुवर्ण है, उसीतरह सभी

एवं वै धर्मसर्वस्वमुक्ता ते तु शुनः सखम्। तेनैव सहिताः सर्वे निविष्टास्सरसस्तटे ॥३३९॥
सरो पश्यन्सुविस्तीर्णं पद्मोत्पलजलावृतम्। तत्रावतारं कृत्वा ते बिसानि च कलापशः ॥३४०॥
तीरे निक्षिप्य सरसश्चक्रुः पुण्यां जलक्रियाम् । अथोत्तीर्य जलात्तस्मात्ते समेत्य परस्परम् ॥३४१॥
बिसान्येतान्यपश्यंत इदं वचनमब्रुवन् ।

ऋषय ऊचुः

केन क्षुधाभितप्तानामस्माकं पापकर्मणाम् ॥३४२॥
नृशंसेनापनीतानि बिसान्याहारकांक्षिणा । ते शंकमानास्त्वन्योन्यं पर्यपृच्छन् द्विजोत्तमाः ॥३४३॥
चक्रु श्चनिश्चयं सर्वे शपथं प्रति पार्थिव ।

कश्यप उवाच

सर्वत्र सर्वं हरतु न्यासलोपं करोतु च ॥३४४॥
कूटसाक्षित्वमभ्येतु बिसस्तैन्यं करोति यः । दंभेन धर्मं चरतु राजानं चोपसेवताम् ॥३४५॥
मधुमांसं समश्नातु बिसस्तैन्यं करोति यः । अनृतं भाषतु सदा विषयांश्चोपसेवतु ॥३४६॥
ददातु कन्यां शुल्केन बिसस्तैन्यं करोति यः ।

वसिष्ठ उवाच

अनृतौ मैथुनं यातु दिवास्वप्नं निषेवतु ॥३४७॥
अन्योन्यातिथितामेतु बिसस्तैन्यं करोति यः। एककूपेवसेद्ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ॥३४८॥
तस्य सालोक्यतां यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ।

भरद्वाज उवाच

नृशंसस्सोऽस्तुसर्वेषु समृध्या चाप्यहंकृतः ॥३४९॥

उपदेशों का सार यह उपदेश है। हे राजन् भीष्म ! सभी जीवों के कल्याणार्थ किया गया अध्ययन मुक्तिप्रद होता है॥३३८॥ ऋषियों ने इस तरह से धर्म के सार का शुनः सखा को उपदेश दिया और उसी के साथ वे सरोवर के तट पर गये ॥३३९॥ उन लोगों ने कमल से व्याप्त उस विस्तृत सरोवर को देखा उस सरोवर में प्रवेश करके मृणाल को ढेर के ढेर उखाड़कर तीर पर रख दिया। इसके बाद उन लोगों ने सरोवर के जल से पवित्र तर्पणादि क्रिया को किया। उसके बाद वे जब एक साथ सरोवर से बाहर निकले तो ॥३४०-३४१॥ देखा कि वे मृणाल वहाँ पर नहीं थे। मृणालों को नहीं देखकर **ऋषियों ने कहा—** कौन ऐसा पापी है जो भूख से सन्तप्त हमलोगों के मृणालों को चुरा लिया है। भोजन करना चाहने वालों के अहार को किसने चुराया है, वे एक दूसरे पर शङ्का करके एक दूसरे से पूछे भी ॥३४२-३४३॥ हे राजन् ! उनलोगों ने शाप देने का निश्चय भी कर लिया। **कश्यप महर्षि ने कहा—** जिसने मृणाल की चोरी की हो उसको सर्वत्र सब कुछ चुराने का, रखी हुयी थाती को हड़पने का॥३४४॥ और झूठी गवाही देने का पाप लगे। वह दम्भपूर्वक धर्माचरण करे, तथा उसे राजा की सेवा करनी पड़े ॥३४५॥ जिसने मृणाल की चोरी की है वह मदिरा पीए तथा मांस खाये, वह सदा मिथ्या भाषण करे तथा विषयों को भोगता रहे ॥३४६॥ जिसने हमलोगों के मृणाल को चुराया है उसे पैसा लेकर कन्या बेचने का पाप लगे। **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** जिसने हमलोगों के विस को चुराया है वह बिना ऋतुकाल के भार्यागमन करे, दिन में उसको स्वप्नदोष होए ॥३४७॥ वह एक दूसरे के यहाँ अतिथि बन कर जाय। जिस ग्राम में एक ही कूआँ हो उसी ग्राम में उसे रहना

मत्सरी पिशुनश्चैव बिसस्तैन्यं करोति यः । प्रत्याक्रोशत्ववाकुष्टस्ताडयत्वन्यताडितः ॥३५०॥
विक्रीणातु रसांश्चैव बिसस्तैन्यं करोति यः ।

गौतम उवाच

अतिथिं त्वागतं प्राप्य पाकभेदं करोतु सः ॥३५१॥
शूद्रान्नं च सदाश्नातु बिसस्तैन्यं करोति यः। दत्वा दानं कीर्तयतु परभार्यासु तुष्यतु ॥३५२॥
एकाकी मिष्टमश्नातु बिसस्तैन्यं करोति यः ।

विश्वामित्र उवाच

नित्यकामपरः सोस्तु दिवसे चैव मैथुनी ॥३५३॥
नित्यं तु पातकी चैव बिसस्तैन्यं करोति यः। परापवादं वदतु परदारांश्च सेवतु ॥३५४॥
परनिंदारतश्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः । मातरं पितरं चैव सोवमन्यतु दुर्मतिः॥३५५॥
समातर्यन्यबुद्धिः स्याद्बिसस्तैन्यं करोति यः। परपाकं सदाश्नातु परनारीं च सेवतु॥३५६॥
वेदविक्रयकृच्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ।

जमदग्निरुवाच

परस्य यातु प्रेष्यत्वं स तु जन्मनि जन्मनि ॥३५७॥
सर्वधर्मक्रियाहीनो बिसस्तैन्यं करोति यः।

शुन:सख उवाच

न्यायेन वेदानध्येतु गृहस्थो स्तुप्रियातिथिः ॥३५८॥
सत्यं वदतु वाजस्रंबिसस्तैन्यं करोति यः । अग्निं जुहोतु विधिवद्यज्ञं यजतु नित्यशः ॥३५९॥

पड़े और ब्राह्मण होकर भी शूद्रा स्त्री से उसका सम्बन्ध हो ॥३४८॥ ऐसे लोगों को जिस लोक में जाना पड़ता है, उसी लोक में वह जाय । **भरद्वाज महर्षि ने कहा—** जो मृणाल को चुराया हो वह अत्यन्त क्रूर स्वभाव वाला हो जाय हर प्रकार की समृद्धि के कारण वह अहङ्कारी हो जाय ॥३४९॥ लोगों से डाह करने वाला तथा चुगुलखोर हो जाय । दूसरे द्वारा की जाने वाली निन्दा को सुनकर वह भी निन्दा करे, दूसरे के द्वारा मारे जाने पर वह उसको मारे॥३५०॥ वह रस वेचने का काम करे । **गौतम महर्षि ने कहा—** जिसने हमलोगों के मृणाल की चोरी की है, वह किसी अतिथि के आने पर उसके लिए दूसरा (खराब) भोजन बनवाये ॥३५१॥ सदा शूद्र का दिया हुआ अन्न खाय, दान देकर अपनी प्रशंसा करे तथा दूसरों की पत्नियों से सम्बन्ध रखे ॥३५२॥ वह अकेले ही अच्छी वस्तु को खा ले । **विश्वामित्र ऋषि ने कहा—** जिसने मृणाल की चोरी की है, वह सदा कामी बना रहे, दिन में ही मैथुन करे ॥३५३॥ वह सदा पाप कर्मों को करता रहे । वह दूसरों की निन्दा करे तथा दूसरों की पत्नी का सेवन करे॥३५४॥ वह सदा दूसरों की निन्दा करे तथा वह मूर्ख अपने माता-पिता का अपमान करे ॥३५५॥ वह अपनी समाता (माता की सौत के साथ दुष्टता) का व्यवहार करे, सदा दूसरे के लिए बनाये गये भोजन को खाय तथा दूसरे की पत्नी का सेवन करे ॥३५६॥ उसको वेदों के बेचने का पाप लगे । **जमदग्नि महर्षि ने कहा—** वह अनेक जन्मों में दूसरों का नौकर बने ॥३५७॥ वह सभी प्रकार की धार्मिक क्रियाओं से हीन हो जाय । **शुनःसख ने कहा—** जिसने मृणालों को लिया है वह न्याय पूर्वक वेदों का अध्ययन करे, वह अतिथियों का प्रिय गृहस्थ होए॥३५८॥ वह सदैव सत्य बोले, वह विधिपूर्वक अग्निहोत्र करे । वह सदैव यज्ञों को करता रहे ॥३५९॥ और

ब्रह्मणस्सदनं यातु विसस्तैन्यं करोति यः ।

ऋषय ऊचुः

इष्टमेवद्विजातीनां यदिदं शपथी कृतम् ॥३६०॥
त्वया कृतं बिसस्तैन्यं सर्वेषां नः शुनः सख।

शुनःसख उवाच

मयाह्यंतर्हितान्यासन् बिसानीमानि वोद्विजाः ॥३६१॥
धर्मं च श्रोतुकामेन जानीध्वं मां च वासवम् । अलोभादक्षयालोका जिता वो मुनिसत्तमाः ॥३६२॥
विमानमधितिष्ठध्वं गच्छामस्त्रिदशालयम् । ततो महर्षयस्ते तु विज्ञायाथपुरंदरम् ॥३६३॥
ऊचुःपुरंदरं चेदं वाक्यं वाक्यविशारदाः। इहागत्य नरो यस्तु मध्यमं पुष्करं विशेत् ॥३६४॥
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा लभेदावश्यकं फलम्। द्वादशवार्षिकीदीक्षा स्मृताया तु वनौकसाम् ॥३६५॥
तस्याः फलं समग्रं च लभेदिह न संशयः। नासौदुर्गतिमाप्नोति स्वगणैः सह मोदते ॥३६६॥
विरिञ्चिस्थानमासाद्यतिष्ठेद्वै ब्रह्मणो दिनम्।

पुलस्त्य उवाच

इंद्रेण सह संप्रीतास्तदाजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥३६७॥
एवं विलोभ्यमानास्ते लोभैर्बहुविधैरिह । नैव लोभं तथा चक्रुस्तेन जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥३६८॥
इदं यः श्रृणुयान्नित्यमृषीणां चरितं शुभम्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोके महीयते ॥३६९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे सप्तर्षिसंवादो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

ब्रह्माजी के लोक में जाय जिसने मृणाल को लिया है उसकी ऐसी ही गति हो । शुनः सख की बात को सुनकर **ऋषियों ने कहा—** तुमने तो द्विजातियों के अनुकूल शपथ किया है ॥३६०॥ इससे लगता है कि तुमने ही मृणालों को चुराया है । **शुनःसख ने कहा—** हे ब्राह्मणो ! मैंने ही इन मृणालों को छिपा दिया था ॥३६१॥ मैं आपलोगो के मुख से धर्म की बातें सुनना चाहता था । मैं इन्द्र हूँ । हे श्रेष्ठ मुनियो ! आपलोगों ने लोभ रहित होने के कारण अक्षय लोकों को जीत लिया है ॥३६२॥ आपलोग इस विमान पर बैठें, हम सभी स्वर्ग लोक चलते हैं । उसके बाद वाक्य विशारद उन महर्षियों ने शुनःसख को इन्द्र जानकर ॥३६३॥ उनसे कहा— इस मध्य पुष्कर में आकर जो व्यक्ति तीन रात्रियों तक उपवास करके निवास करे वह अपने समस्त अभिप्रेत फल को प्राप्त करे । वनवासियों की जो बारह वर्षों की दीक्षा बतलायी गयी है उसका जो फल बतलाया गया है, उस फल को वह मनुष्य पूर्णरूप से प्राप्त करे । वह कभी दुर्गति को न प्राप्त करे और अपने बान्धवों के साथ आनन्दित हो ॥३६४-३६६॥ वह ब्रह्माजी के लोक में जाकर पूरे एक कल्प तक निवास करे । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इसके बाद वे सभी महर्षिगण इन्द्र के साथ प्रसन्नता पूर्वक स्वर्गलोक में चले गये ॥३६७॥ इसतरह से इस लोक मे अनेक प्रकार के लोभ से लुभाये जाने पर भी वे चूकि लोभ नहीं किए इसीलिए वे महर्षिगण स्वर्गलोक में गये ॥३६८॥ जो मनुष्य महर्षियों के इस चरित्र का सदा श्रवण करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में जाता है ॥३६९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के सप्तर्षि संवाद नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

बीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

अत्याश्चर्यवती रम्या कथेयं पापनाशिनी। विस्तरेण च मे ब्रूहि याथातथ्येन पृच्छतः ॥१॥
माहात्म्यं मध्यमस्यापि ऋषिभिः परिकीर्तितम् । फलं चान्नस्य कथितं माहात्म्यं च दमस्य तु ॥२॥
विष्णुना च पदन्यासः कृतो यत्र महामुने । कनीयसस्तथोत्पत्तिर्यथाभूता वदस्व मे ॥३॥

पुलस्त्य उवाच

पुरा रथंतरे कल्पे राजासीत्पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥४॥
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण भारत । कमलं कांचनं दत्तं यथाकामगमं नृप ॥५॥
सप्तद्वीपानि लोकं च यथेष्टं विचरत्सदा । कल्पादौ तु समं द्वीपं तस्य पुष्करवासिना ॥६॥
लोकेन पूजितं तस्मात्पुष्करद्वीपमुच्यते । तदेव ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य ततोंबुजम् ॥७॥

पुष्पवाहन इत्याहु तस्मात्तं देवदानवाः ।
नौपम्यमस्तीह जगत्त्रयेपि ब्रह्मांबुजस्थस्य च तस्य राज्ञः॥८॥
तपोनुभावादथ तस्य राज्ञी नारीसहस्रैरभिवंद्यमाना ।
नाम्ना चलावण्यवती बभूव या पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ॥९॥
तस्यात्मजानामयुतं बभूव धर्मात्मनामग्र्यधनुर्धराणाम् ।
तदात्मजांस्तानभिवीक्ष्य राजा मुहुर्मुहुर्विस्मयमासाद ॥१०॥
सोभ्यागतं पूज्य मुनिप्रवीरं प्रचेतसं वाक्यमिदं बभाषे ।
कस्माद्विभूतिरचलामरमर्त्यपूजा जाता कथं कमलजा सदृशी सुराज्ञी ॥११॥

मध्यपुष्कर का माहात्म्य, पुष्पवाहन राजा की कथा, विभूति द्वादशी इत्यादि साठ व्रतों का वर्णन तथा स्नान एंव तर्पण विधि

भीष्मजी ने कहा— यह पापों को विनष्ट करने वाली कथा अत्यन्त मनोहर है, इसे आप पूर्ण रूप से मुझे विस्तार से सुनायें ॥१॥ ऋषियों ने मध्यम पुष्कर का माहात्म्य बतलाया है । आपने अन्नदान करने का फल बतलाया तथा दम का भी महत्त्व बतलाया है ॥२॥ जहाँ पर भगवान् विष्णु ने निवास किया उस छोटे पुष्कर की उत्पत्ति का भी वर्णन आप करें ॥३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** प्राचीन रथन्तर कल्प में एक पुष्पवाहन नाम का राजा हुआ उसका नाम लोकों में विख्यात था और वह सूर्य के समान तेजस्वी था ॥४॥ हे भारत ! उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उसको स्वर्णिम कमल तथा इच्छानुसार गमन का वरदान दिया । वह सातो द्वीपों तथा सभी लोकों में अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करता था । कल्प के प्रारम्भ में उस पुष्कर (कमल) में निवास करने वाले राजा के साथ उस द्वीप की भी पूजा हुयी इसीलिए उसका नाम पुष्कर द्वीप हुआ । इसीलिए ब्रह्माजी ने उसे पुष्कर विमान प्रदान किया ॥६-७॥ इसीलिए सभी देवता तथा दानव उसको पुष्पवाहन कहते थे । ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त कमल में रहने वाले उस राजा की उपमा त्रैलोक्य में किसी वस्तु से नहीं दी जा सकती थी ॥८॥ उसकी रानी भी अपनी तपस्या के प्रभाव से हजारों नारियों द्वारा वन्दित थी । गुण के ही अनुसार उसका नाम लावण्यवती था । जिस तरह पार्वतीजी शिवजी की प्रियतमा हैं उसी तरह वह राजा पुष्पवाहन को प्रिय थी ॥९॥ उसके दश हजार श्रेष्ठ धनुर्धर पुत्र हुए ।

भार्या मयाल्पतपसा परितोषितेन दत्तं ममांबुजगृहं च मुनींद्र धात्रा ।
यस्मिन्प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुंजररथौघजनावृतानाम् ॥१२॥
नालक्ष्यते क्वगतमम्बरगामिभिश्च तारागणेंदुरविरश्मिभिरप्यगम्यम् ।
तस्मात्किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषजनातिगं यत् ॥१३॥
सर्वैर्मयाथतनयैरथवानयापि सद्भार्यया तदखिलं कथय प्रचेतः ।
सोप्यभ्ययादथ भवांतरितं निरीक्ष्य पृथ्वीपते श्रृणु तदद्भुतहेतुवृत्तम् ॥१४॥
जन्माभवत्तवतु लुब्धकुलेपि घोरं जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी ।
वपुरप्यभूत्तव पुनः पुरुषांगसंधि दुर्गंधिसत्त्वकुनखाभरणं समंतात् ॥१५॥
न च ते सुहृन्नसुतबंधुजनो न तादृक् नैव स्वसा न जननी च तदाभिशस्ता ।
अतिसंमता परमभीष्टतमा भिमुखी जाता महीश तव योषिदियं सुरूपा ॥१६॥
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचनाहारनिमित्तमस्याम् ।
क्षुत्पीडितेन भवता तु यदा न किंचि दासादितं वन्यफलादिभक्ष्यम् ॥१७॥
अथाभिदृष्टं महदंबुजाढ्यं सरोवरं पंकपरीतरोधः।
पद्मान्यथादाय ततो बहूनि गतः पुरं वै दिशनामधेयम् ॥१८॥
तन्मूल्यलाभाय पुरं समस्तं भ्रांतं त्वया शेषमहस्तदासीत् ।
क्रेता न कश्चित्तवकमलेषु जातः क्लांतः परं क्षुत्परिपीडितश्च ॥१९॥

अपने उन पुत्रों को देखकर राजा पुष्पवाहन बार-बार आश्चर्यित हो जाते थे ॥१०॥ एक बार उनके यहाँ प्रचेतसमुनि आये और राजा ने उनकी पूजा करके उनसे पूछा— हे प्रचेत: आप बतलायें कि किस पुण्य के फल स्वरूप मुझको अचल ऐश्वर्य तथा देवताओं द्वारा पूजा की प्राप्ति हुयी है तथा लक्ष्मी के समान सुन्दर रानी मिली ॥११॥ मेरे द्वारा की गयी थोड़ी सी तपस्या के द्वारा सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने मुझे कमलरूपी गृह प्रदान किया है । उस कमल में मन्त्रियों हाथियों तथा रथों के साथ सैकड़ों करोड़ राजाओं के प्रवेश कर जाने पर भी, यह पता नहीं चलता है कि वे सब कहाँ चले गये ? इस बात को देवता भी नहीं जान पाते, उसका पता तारागण, चन्द्रमा तथा सूर्य भी नहीं लगा पाते हैं। क्या इससे भी अधिक उत्कृष्ट तपस्या किसी दूसरे व्यक्ति ने किया है ॥१२-१३॥ क्या उसको मेरे पुत्रों से अधिक पुत्र अथवा मेरी पत्नी से अधिक सुन्दर पत्नी प्राप्त है ? इन सारी बातों को आप मुझे बतलाएँ महर्षि प्रचेता ने भी उस राजा के पूर्वजन्मों का साक्षात्कार करके कहा राजन् ! आप इस अद्भुत वृत्तान्त को सुनें ॥१४॥ पूर्वजन्म में तुम्हारा जन्म भयङ्कर व्याधों के वंश में हुआ और तुम प्रतिदिन पाप कर्म करते थे । तुम्हारे शरीर से सदा दुर्गंधि निकलती रहती थी और तुम निन्दित नखों के आभूषणों को धारण करते थे ॥१५॥ तुम्हारे, मित्र, पुत्र, बंधु, बहन तथा तुम्हारी माता सबके सब निन्दित कोटि के थे, किन्तु हे राजन् ! तुम्हारी सुन्दरी पत्नी अपने पति को अत्यन्त प्रिय थी ॥१६॥ एक बार बहुत बड़ी अनावृष्टि हुयी, उसमें भूख से पीडित होकर तुम दोनों आहार करने के लिए जब कोई भी वन्य फल नहीं प्राप्त कर सके तो ॥१७॥ तुम दोनों ने एक कमल से भरे हुए सरोवर को देखा । वहाँ से कमलों को लेकर तुम दोनों विदिशा नामक नगर में गये ॥१८॥ उस दिन उन कमलों का मूल्य प्राप्त करने के लिए तुम दिन भर धूमते रहे, किन्तु उन कमलों को खरीद ने वाला वहाँ कोई नहीं मिला और तुम दोनों अत्यन्त भूखे तथा थके हुए थे ॥१९॥ तुम अपनी पत्नी के साथ एक भवन के आंगन में बैठ गये, वहाँ पर रात्रि

उपविष्टस्त्वमेकस्मिन्सभार्यो भवनांगणे । ततो रात्रौ भवांस्तत्र अश्रौषीन्मंगलध्वनिम् ॥२०॥
सभार्यस्तत्र गतवान्यत्रासौ मंगलध्वनिः । तत्र मंडलमध्यस्था विष्णो रर्चाविलोकिता ॥२१॥
वेश्याऽनंगवती नाम बिभ्रती द्वादशीव्रतम् । समाप्य माघमासस्य द्वादश्यां लवणाचलम् ॥२२॥
न्यवेदयत्तु गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम् । अलंकृत्य हृषीकेशं सौवर्णं सममादरात् ॥२३॥
सा तु दृष्टा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिंतितम् । किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलंकृतः ॥२४॥
इति भक्ति तदा जाता दंपत्योस्तु नरेश्वर । तत्प्रसंगात्समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम् ॥२५॥
शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताऽभूच्च सर्वशः । अथानंगवती तुष्टा तयोर्धान्यशतत्रयम् ॥२६॥
दीयतामादिदेशाथ कलधौतपलत्रयम् । न गृहीतं ततस्ताभ्यां महासत्वावलंबनात् ॥२७॥
अनंगवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम् । आनीय व्याहृतं चान्नं भुज्यतामिति भूपते ॥२८॥
ताभ्यां च तदपित्यक्तं भोक्ष्यावः श्वो वरानने । प्रसंगादुपवासो नौ तवाद्यास्तु शुभावहः ॥२९॥
जन्मप्रभृतिपापिष्ठावावां देवि दृढव्रते । त्वत्प्रसंगाद्धवद्गेहे धर्मलेशोस्तु नाविह ॥३०॥
इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसंगादनुष्ठितम् । प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला ॥३१॥
ग्रामश्च गुरवे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशैव तु । वस्त्रालंकारसंयुक्ता गावश्च कनकान्विताः ॥३२॥
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनांधकृपणैः सह । तच्चलुब्धकदांपत्यं पूजयित्वा विसर्जितम् ॥३३॥
स भवान् लुब्धको जातः सपत्नीको नृपेश्वरः । पुष्करप्रकरात्तस्मात्केशवस्य तु पूजनात् ॥३४॥
विनष्टाशेषपापस्य तव पुष्करमंदिरम् । तस्य सत्यस्य माहात्म्यादलोभतपसा नृप ॥३५॥

में तुमने किसी मङ्गल ध्वनि को सुना ॥२०॥ जहाँ वह मङ्गलध्वनि हो रही थी वहाँ तुम अपनी पत्नी के साथ गये। वहाँ पर मण्डल के बीच में हो रही भगवान् विष्णु की अर्चा का तुमने अवलोकन किया ॥२१॥ उस दिन अनंगवती नामकी वेश्या द्वादशी व्रत की थी । उसने द्वादशी व्रत करके अपने गुरु को लवण का पर्वत दान दिया ॥२२॥ उसने अपने गुरु को उपस्करों से युक्त शय्या तथा सुवर्ण से समलंकृत करके भगवान् हृषीकेश की मूर्ति भी प्रदान किया॥२३॥ उस व्याध दम्पती ने यह सब कुछ देखा और सोचा, इन कमलों को रखकर हम क्या करेंगे, अच्छा है कि इनसे भगवान् विष्णु को अलंकृत कर दिया जाय ॥२४॥ हे राजन् ! इस प्रकार से उस व्याध दम्पती के मन में भक्ति उत्पन्न हो गयी, उसी प्रसङ्ग में उन दोनों ने लवणाचल केशव की अर्चना की और उस शय्या की भी अच्छी तरह से पुष्प समूह से पूजा की । उसके कारण वेश्या अनंगवती ने प्रसन्न होकर लोगों को आदेश दिया कि उन लोगों को तीन सौ धान्य तथा तीन पल सुवर्ण दिया जाय । किन्तु सत्त्वगुण के उद्रिक्त हो जाने से उन दोनों ने उसे नहीं लिया ॥२६-२७॥ इसके बाद अनंगवती चार प्रकार के अन्नों को लेकर आयी और कही कि आपलोग भोजन करें॥२८॥ उन दोनों ने उसको भी त्याग दिया और कहा हे वरानने ! हमदोनों कल भोजन करेंगे आपके ही कारण आज हम दोनों का मङ्गलमय उपवास हो गया ॥२९॥ हे दृढव्रत देवि ! हमदोनों जन्म से ही अत्यन्त पापी हैं, आपके ही सम्बन्ध से हमारे भी घर में थोड़ा धर्म हो जाय ॥३०॥ उसी के साथ उन दोनों ने रात्रिभर जागरण किया। प्रातःकाल होने पर उस वेश्या ने लवणाचल के साथ शय्या तथा ग्राम को अपने गुरु को दे दिया । उसने बारह ब्राह्मणों को भी दान दिया । वस्त्र, अलङ्कार तथा सुवर्ण युक्त गायों को उसने दान दिया । फिर उसने अपने सुहृदो, मित्रों तथा कृपणों के साथ उस व्याध दम्पती को भोजन कराया और उसकी पूजा करके विदा किया ॥३१-३३॥ वे बहेलिया ही आप अपनी पत्नी के साथ राजाओं के स्वामी ही उस कमल समूह के द्वारा भगवान् केशव की पूजा

प्रादात्कामगमं यानं लोकनाथश्चतुर्मुखः । संतुष्टस्तव राजेंद्र पुष्करं त्वं समाश्रय ॥३६॥
कल्पं सत्वं समासाद्यविभूतिद्वादशीव्रतम् । कुरु राजेंद्रनिर्वाणमवश्यं समवाप्स्यासि॥३७॥
एतदुक्त्वा तु समुनिस्तत्रैवांतरधीयत। राजा यथोक्तं च पुनरकरोत्पुष्पवाहनः ॥३८॥
इदमाचरतो राजन्नखंडव्रतता भवेत् । यथाकथंचित्कालेन द्वादशद्वादशीर्नृप ॥३९॥
कर्तव्या शक्तितो देव विप्रेभ्यो दक्षिणा नृप। ज्येष्ठे गावः प्रदातव्या मध्ये भूमिरुत्तमा ॥४०॥
कनिष्ठे कांचनं देयमित्येषा दक्षिणा स्मृता । प्रथमं ब्रह्मदैवत्यं द्वितीयं वैष्णवं तथा ॥४१॥
तृतीयं रुद्रदैवत्यं त्रयो देवास्त्रिषु स्थिताः ।
इति कलुष विदारणं जनानां पठति च यस्तु शृणोति चापि भक्त्या ॥४२॥
मतिमपि च स याति देवलोके वसति च रोमसमानि वत्सराणि ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥४३॥
कथितं तेन रुद्रेण महापातकनाशनम्। नक्तमन्नं चरित्वा तु गवासार्धं कुटुंबिने ॥४४॥
हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद्विप्राय वाससी । एवं यः कुरुते पुण्यं शिवलोके स मोदते॥४५॥
एतदेव व्रतं नाम महापातकनाशनम् । यस्त्वेकभक्तेन क्षिपेद्धेनुं वृषसमन्विताम् ॥४६॥
धेनुं तिलमयीं दद्यात्स पदं याति शांकरम्। एतद्रुद्रव्रतं नाम भयशोकविनाशनम् ॥४७॥
यश्चनीलोत्पलं हैमं शर्करापात्र संयुतम् । एकांतरितनक्ताशी समांते वृषसंयुतम्॥४८॥

करने के कारण हुए हैं ॥३४॥ हे राजन् ! उस सत्य की महिमा के कारण तथा लोभ नहीं करने से तुम्हारे सारे पाप विनष्ट हो गये ॥३५॥ ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छा के अनुसार चलने वाले इस पुष्कर मन्दिर को तुम्हें प्रदान किया है । अतएव हे राजन् ! तुम भी पुष्कर क्षेत्र में प्रसन्नता पूर्वक जाओ । वहाँ पर सत्त्वगुण सम्पन्न होकर विभूति द्वादशी व्रत को करो । हे राजेन्द्र ! ऐसा करके तुम मोक्ष को प्राप्त कर लोगे ॥३७॥ इसतरह कहकर वे मुनि वहीं अन्तर्धान हो गये और उन्होंने जैसा कहा था उसी तरह से राजा पुष्पवाहन ने विभूति द्वादशी व्रत का अनुष्ठान किया ॥३८॥ हे राजन् ! इस व्रत को अखण्ड व्रत करना चाहिए । जिस किसी भी समय से बारह द्वादशी व्रत करे॥३९॥ और इस व्रत के अन्त में अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए । ज्येष्ठ पुष्कर में गायों का दान करना चाहिए । मध्य पुष्कर में भूमि का दान करना चाहिए और कनिष्ठ पुष्कर में सुवर्ण का दान करना चाहिए । यही यहाँ की दक्षिणा बतलायी गयी है । ज्येष्ठ पुष्कर के देवता ब्रह्माजी हैं । मध्य पुष्कर के आराध्य भगवान् विष्णु बतलाये गये हैं ॥४०-४१॥ कनिष्ठ पुष्कर के अधिष्ठतृ देवता रुद्र हैं । ये तीनों देवता इन तीनों पुष्करों में निवास करते हैं । यह प्रसङ्ग लोगों के पापों को विनष्ट करने वाला है, जो पुरुष इसको भक्ति पूर्वक पढता अथवा सुनता है ॥४२॥ अथवा इस व्रत को करने का विचार करता है, वह देवलोक में जाकर उतने वर्षों तक निवास करता है । अब मैं आपको सर्वोत्तम व्रत को बतलाता हूँ ॥४३॥ उसको रुद्र ने महापातक का नाश करने वाला बतलाया है । रात्रि में अन्न तैयार करके किसी कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को बुलाये और उसको सोने का चक्र और त्रिशूल बनवाकर गौ के साथ ब्राह्मण को दान दे तथा उसे दो वस्त्र भी दे । इसतरह करने वाला व्यक्ति शिवजी के लोक में जाकर आनन्दानुभव करता है ॥४४-४५॥ इसी को महापातक नाशन व्रत कहते है । जो व्यक्ति एक दिन एक ही अन्न को खाकर तिल निर्मित गौ और वृषभ का दान ब्राह्मण को देता है ॥४६॥ वह भगवान् शङ्कर के लोक को प्राप्त करता है । इसको भय तथा शोक को विनष्ट करने वाला रुद्र व्रत कहते हैं ॥४७॥ जो व्यक्ति एक दिन का

वैष्णवं सपदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतम् । आषाढादिचतुर्मासमभ्यंगं वर्जयेन्नरः ॥४९॥
भोजनोपस्करं दद्यात्स याति भवनं हरेः । जनप्रीतिकरं नृणां प्रीतिव्रतमिहोच्यते ॥५०॥
वर्जयित्व मधौ यस्तु दधिक्षीरधृतैक्षवम् । दद्याद्वस्त्राणि सूक्ष्माणि रसपात्रेण संयुतम् ॥५१॥
संपूज्यविप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति । एतद्गौरीव्रतं नाम भवानीलोकदायकम् ॥५२॥
पुष्ययादौ यस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमथो पुनः । अशोकं कांचनं दद्यादिक्षुयुक्तं दशांगुलम् ॥५३॥
विप्राय वस्त्रं संयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति । कल्पं विष्णुपुरे स्थित्वा विशोकस्स्यात्पुनर्नृप ॥५४॥
एतत्कामव्रतं नाम सदा शोकविनाशनम् । आषाढादिव्रते यस्तु वर्जयेद्यः फलाशनम् ॥५५॥
चातुर्मास्ये निवृत्ते तु घटं सर्पिर्गुडान्वितम् । कार्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥५६॥
स रुद्रलोकमाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् । वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणि हेमंते शिशिरावृते ॥५७॥
पुष्पत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्या च कांचनम् । दद्याद् द्विकालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥५८॥
दत्वापरंपदं याति सौम्यव्रतमिदं स्मृतम् । फाल्गुनादि तृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् ॥५९॥
समांते शयनं दद्याद्गृहं चोपस्करान्वितम् । संपूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति ॥६०॥
गौरीलोके वसेत्कल्पं सौभाग्यव्रतमुच्यते । संध्यामौनं नरः कृत्वा समांते घृतकुंभकम् ॥६१॥
वस्त्रयुग्मं तिलान् घंटां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । लोकं सारस्वतं याति पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥६२॥

अन्तर देकर रात्रि को भोजन करता है, तथा एक वर्ष के बाद, नील कमल तथा सुवर्ण निर्मित कमल तथा चिनी से भरे हुए पात्र के साथ बैल का दान करता ॥४८॥ वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । इस व्रत को नील व्रत कहते हैं । जो व्यक्ति आषाढ़ से प्रारम्भ करके चार महीने तक अपने शरीर में तेल नहीं लगाता है और भोजन की सामग्री का दान करता है, वह भगवान् श्रीहरि के धाम में जाता है । वह लोगों को प्रसन्न करने वाला प्रीतिव्रत कहा गया है ॥४९-५०॥ जो व्यक्ति चैत्र मास में दही, दूध, घी तथा ईख के रस का परित्याग करके रस पात्र के साथ ब्राह्मण दम्पती की पूजा करके उन्हें गौरी की प्रसन्नता के लिए दान देता है, उसे गौरी व्रत कहते हैं । उस व्रत को करने वाला भवानी के लोक में जाता है ॥५२॥ त्रयोदशी तिथि में पुष्य नक्षत्र के प्रारम्भ में रात्रि में उपवास करके दश अङ्गुल का सुवर्ण निर्मित अशोक वृक्ष का ईख के साथ ब्राह्मण को वस्त्र के साथ **प्रद्युम्नः प्रीयताम्** कहकर दान करने वाला व्यक्ति एक कल्प तक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करके शोक रहित हो जाता है । यह शोक का विनाश करने वाला कामव्रत कहलाता है । आषाढ महीने के प्रारम्भ में ही जो व्यक्ति फल खाना बन्द कर देता है॥५३-५४॥ चातुर्मास्य बीतने तक इस व्रत को करके चातुर्मास्य के बीत जाने पर घृत तथा गुड से भरकर कार्तिक मास की पूर्णिमा को सुवर्ण का घड़ा दान करता है ॥५६॥ वह रुद्र के लोक में जाता है, उसे शिवव्रत कहते हैं । जो व्यक्ति हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं में पुष्पों को धारण करना छोड़ देता है ॥५७॥ व्रत की समाप्ति पर फाल्गुन मास की पूर्णिमा को सुवर्ण के तीन फूलों को अपनी शक्ति के अनुसार बनवाकर ब्राह्मण को शिव तथा केशव की प्रसन्नता के लिए दान देता है ॥५८॥ वह परंपद को प्राप्त करता है, इस व्रत को सौम्यव्रत कहते हैं । जो व्यक्ति फाल्गुन मास की तृतीया से प्रारम्भ करके एक वर्ष तक तृतीया तिथि को नमक नहीं खाता है । वर्ष की समाप्ति होने पर विप्रदम्पती की पूजा करके सामग्री से युक्त शय्या तथा गृह का दान भवानी की प्रसन्नता के लिए करता है ॥५९-६०॥ वह गौरी के लोक में एक कल्प तक निवास करता है, इसको सौभाग्य व्रत कहते हैं । जो ब्राह्मण एक वर्ष तक मौन होकर संध्या करता है ओर वर्ष के अन्त मे, घी से भरा घड़ा, दो वस्त्र, तिल तथा घण्टा ब्राह्मण को दान देता है

एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकम् । लक्ष्मीमभ्यर्च्य पंचम्यामुपवासी भवेन्नरः ॥६३॥
समांते हेमकमलं दद्याद्धेनुसमन्वितम् । स वै विष्णुपदं याति लक्ष्मीः स्याज्जन्मजन्मनि॥६४॥
एतल्लक्ष्मीव्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम्। कृत्वोपलेपनं शंभोरग्रतः केशवस्य च ॥६५।
यावदब्दं पुनर्देयं धेनुर्जलघटस्तथा । जन्मायुतं स राजा स्यात्ततः शिवपुरं व्रजेत्॥६६॥
एतदायुर्व्रतं नामसर्वकामप्रदायकम्। अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकाग्रमानसः ॥६७॥
एकभक्तं नरः कुर्यादब्दमेकं विमत्सरः। व्रतांते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुत्रयान्वितम्॥६८॥
वृक्षं हिरण्मयं दद्यात्सोश्वमेधफलं लभेत् । एतत्कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्ति फलप्रदम् ॥६९॥
घृतेन स्नपनं कृवा शंभोर्वा केशवस्य वा । अक्षताभिः सपुष्पाभिः कृत्वा गोमयमंडलम् ॥७०॥
समांते हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितम् । शूलमष्टांगुलं दद्याच्छिवलोके महीयते ॥७१॥
सामगायनकं चैव सामव्रतमिहोच्यते। नवम्यामेकभक्तं तु कृत्वा कन्याश्चशक्तितः ॥७२॥
भोजयित्वा समं दद्याद्धेमकंचुकवाससी । हैमं सिंहं च विप्राय दद्याच्छिवपदं व्रजेत्॥७३॥
जन्मार्बुदं सुरूपः स्याच्छत्रुभिश्चापराजितः । एतद्वीरव्रतं नाम नराणां च सुखप्रदम् ॥७४॥
चैत्रादिचतुरोमासाञ्जलंदद्याद्दयान्वितः । व्रतांतेमणिकं दद्यादन्नं वस्त्रसमन्वितम्॥७५॥
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते । कल्पांते भूतिजननमानंदव्रतमुच्यते ॥७६॥

वह सारस्वत लोक में जाता है । वहाँ से वह इस लोक में नहीं लौटता है ॥६१-६२॥ इस व्रत का नाम सारस्वत व्रत है, यह रूप तथा विद्या को प्रदान करने वाला व्रत है । पञ्चमी तिथि को लक्ष्मीजी की पूजा करके जो मनुष्य उस दिन उपवास करता है ॥६३॥ वर्ष के अन्त में वह गौ के साथ सुवर्ण का कमल ब्राह्मण को दान देता है, ऐसा करने वाला व्यक्ति भगवान् विष्णु के लोक में जाता है और वह प्रत्येक जन्म में लक्ष्मी को प्राप्त करता है ॥६४॥ इस व्रत को लक्ष्मीव्रत कहते है । भगवान् शङ्कर अथवा भगवान् विष्णु के सामने गोबर से लिपे यह दुख तथा शोक को विनष्ट करने वाला व्रत है ॥६५॥ इसतरह एक वर्ष करने के बाद गौ तथा जल भरे घड़े का दान करे । ऐसा करने वाला दश हजार जन्मों तक राजा होता है और अन्त में वह शिवलोक में चला जाता है ॥६६॥ इसको आयु व्रत कहते हैं यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला व्रत होता है । एकाग्रमन से अश्वत्य वृक्ष, सूर्य नारायण तथा गङ्गा नदी को प्रणाम करके ॥६७॥ मनुष्य को एक वर्ष तक मत्सररहित होकर एक शाम भोजन करना चाहिए । गौओं के साथ व्रत के अन्त में ब्राह्मणदम्पती की पूजा करके ॥६८॥ उस सुवर्ण निर्मित वृक्ष को ब्राह्मण को दान करे, ऐस करने वाला व्यक्ति अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है । इस व्रत का नाम कीर्तिव्रत है तथा यह ऐश्वर्य तथा कीर्ति प्रदान करने वाला है ॥६९॥ भगवान् शिव अथवा केशव को घृत से स्नान कराकर पुष्पों अथवा अक्षत से गोमय का मण्डल बनवाये ॥७०॥ वर्ष के अन्त में सुवर्ण निर्मित आठ अंगुल का कमल तिल तथा धनु का दान करे, वह शिवजी के लोक में जाकर पूजित होता है ॥७१॥ उसे सामगान करने वाले ब्राह्मण से सामगान कराना चाहिए इस व्रत को सामव्रत कहते हैं । नवमी तिथि को अपनी शक्ति के अनुसार एक भक्त (एकबार) भोजन करे वर्ष भरके बाद अपनी शक्ति के अनुसार कन्याओं को भोजन कराकर उन सबों को सुवर्ण, चोली तथा दो वस्त्र प्रदान करे तथा सुवर्ण निर्मित सिंह का दान ब्राह्मण को दे । ऐसा करने वाला शिव के लोक में जाता है ॥७२-७३॥ वह अरबों जन्मों तक सुन्दर रूप प्राप्त करता है, उसे शत्रु पराजित नहीं कर सकते हैं । यह मनुष्यों को सुख प्रदान करने वाला वीर व्रत है ॥७४॥ जो दया से प्रेरित होकर चैत्र मास से लेकर चार महीनों तक लोगों को जल पिलाता है और व्रत के अन्त में अन्न वस्त्र

पंचामृतेन स्नपकं कृत्वा संवत्सरं विभोः । वत्सरांते पुनर्दद्याद्धेनुं पंचामृतान्विताम् ॥७७॥
विप्राय दद्याच्छंखं च सपदं याति शांकरम् । राजा भवति कल्पांते धृतिव्रतमिदं स्मृतम् ॥७८॥
वर्जयित्वा पुमान्मांसं व्रतांते गोप्रदो भवेत् । तद्वद्धेममृगं दद्यात्सोश्वेध फलं लभेत् ॥७९॥
अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्यांते भूपति र्भवेत् । कल्यमुत्थाय वै स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत् ॥८०॥
भोजयित्वा यथाशक्ति माल्यवस्त्रविभूषणैः । सूर्यलोके वसेत्कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम् ॥८१॥
आषाढादिचतुर्मासं प्रातः स्नायी भवेन्नरः । विप्राय भोजनं दत्वा कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत्॥८२॥
स वैष्णवं पदं याति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम्। अयनादयनंयावद्वर्जयेत्पुष्पसर्पिषी ॥८३॥
तदंते पुष्पमन्नानि घृतधेन्वा सहैव तु। दत्वा शिवपदं याति विप्राय घृतपायसम् ॥८४॥
एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम् । यावत्समं भवेद्यस्तु पंचदश्यां पयोव्रतः॥८५॥
समांते श्राद्धकृद्दद्याद्गाश्च पंच पयस्विनीः। वासांसि च पिशंगानि जलकुंभयुतानि च ॥८६॥
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतम् ॥८७॥
कल्पांते राजराजेंद्रः पितृव्रतमिदं स्मृतम्। संध्यादीपप्रदो यस्तु घृतैस्तैलं विवर्जयेत् ॥८८॥
समांते दीपकं दद्याच्चक्रं शूलं च कांचनम्। वस्त्रयुग्मं च विप्राय स तेजस्वी भवेन्नरः॥८९॥
रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतम् । कार्तिकादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम्॥९०॥

तथा मणि का दान देता है ॥७५॥ एवं तिल से भरा पात्र तथा सुवर्ण का दान करता है, वह ब्रह्माजी के लोक में सुशोभित होता है । कल्प के अन्त तक ऐश्वर्य प्रदान करने वाले इस व्रत को आनन्द व्रत कहते हैं ॥७६॥ जो व्यक्ति पञ्चामृत से एक वर्ष तक शङ्करजी को स्नान कराकर वर्ष के अन्त में पञ्चामृत से युक्त (दूध देने वाली) गौ का दान करता है ॥७७॥ तथा ब्राह्मण को शंख प्रदान करता है, वह शङ्करजी के लोक में जाता है । वह कल्प के अन्त में राजा होता है । इसको धृति व्रत कहते हैं ॥७८॥ जो व्यक्ति मांस का त्याग करके उसकी पूर्ति के लिए गोदान करता है तथा सुवर्ण निर्मित मृग का दान करता है वह अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥७९॥ इस व्रत को अहिंसा व्रत कहते हैं । वह कल्प के अन्त में राजा होता है । वह प्रातःकाल जगकर स्नान करके विप्रदम्पती की पूजा करे ॥८०॥ फिर उनको भोजन कराकर अपनी शक्ति के अनुसार माला, वस्त्र तथा आभूषणों से अलंकृत करे । ऐसा करने वाला व्यक्ति एक कल्प तक सूर्यलोक में निवास करता है, इस व्रत को सूर्यव्रत कहते हैं ॥८१॥ आषाढ से चार मासों तक प्रातःकाल जगकर जो मनुष्य प्रातःकाल ही स्नान करे । पुनः ब्राह्मण को भोजन कराकर कार्तिक पूर्णिमा को ब्राह्मण को गौ दान करे ॥८२॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति विष्णुलोक में जाता है इसे विष्णुव्रत कहते हैं । एक अयन से प्रारम्भ करके दूसरे अयन पर्यन्त फूल तथा घी की परित्याग करे ॥८३॥ व्रत के अन्त में पुष्प, अन्न, घी गौ तथा घी मिश्रित खीर इन सबों का दान करने वाला व्यक्ति शिवजी के लोक में जाता है ॥८४॥ इसे शीलव्रत कहते है, यह शील तथा अरोग्य प्रदान करता है । जो व्यक्ति पूरे वर्ष भर पूर्णिमा के दिन दूध पीकर रहता है ॥८५॥ वर्ष के अन्त में श्राद्ध करके दूध देने वाली पाँच गौओं का दान करता है । जल भरे घड़े के साथ पीले वस्त्रों का दान करता है ॥८६॥ वह सौ पीढ़ी के पितरों को तार देता है तथा स्वयं भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥८७॥ कल्प के अन्त में राजाओं का भी राजा होता है, इसे पितृव्रत कहा गया है । जो व्यक्ति सायंकाल घी का दीपक भगवान् शङ्कर के मन्दिर में जलता है और स्वयं तेल का परित्याग कर देता है ॥८८॥ वर्ष के अन्त में दीपक सुवर्ण निर्मित दीपक चक्र और त्रिशूल का ब्राह्मण को दान देता है तथा दो वस्त्रों का भी दान देता है, वह मनुष्य तेजस्वी होता

नक्तं चरेदब्दमेकमब्दान्ते गोप्रदो भवेत् । गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥९१॥
एतद्रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम् । वर्जयेच्चतुरोमासान्यस्तु गन्धानुलेपनम् ॥९२॥
शुक्तिगन्धाक्षतान्दद्याद्विप्राय सितवाससी । वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम् ॥९३॥
वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयेदथ गोप्रदः । भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वा राजा भवेदिह ॥९४॥
एतच्छान्तिव्रतं नाम कीर्तिकामफलप्रदम् । ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितम् ॥९५॥
घृतेनान्यप्रदो भूत्वा वह्निं संतर्प्यसद्द्विजम् । संपूज्य विप्रदांपत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥९६॥
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति । पुण्येऽह्नि दद्यादपरं ब्रह्मयात्यपुनर्भवम् ॥९७॥
एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणफलदं नृणाम् । यश्चोभयमुखीदद्यात्प्रभूतसकलान्विताम् ॥९८॥
दिनं पयोव्रतं तिष्ठेत्सयाति परमं पदम् । एतद्वैसुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥९९॥
त्र्यहं पयोव्रतः स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम् । पलादूर्ध्वं यथाशक्ति तण्डुलप्रस्थसंयुतम् ॥१००॥
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् । मासोपवासी योदद्याद्धेनुविप्राय शोभनाम् ॥१०१॥
सवैष्णवपदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् । दद्याद्विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् ॥१०२॥
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रलोके महीयते । धनप्रदमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम् ॥१०३॥

है॥८९॥ और रुद्रलोक में जाता है, इसको रुद्रव्रत कहते हैं । जो व्यक्ति कार्तिक मास की तृतीया से लेकर प्रत्येक तृतीय को उपवास करके शाम को गोमूत्र मिश्रित यव की लप्सी खाता है और एक वर्ष बीत जाने पर व्रत के अन्त में गोदान करता है, वह एक कल्प तक गौरीलोक में निवास करता है, उसके बाद इस संसार में आकर राजा होता है ॥९०-९१॥ इसे रुद्र व्रत कहते हैं सदा कल्याण करने वाला यह व्रत है । जो व्यक्ति चार मासों तक गन्ध के अनुलेपन का परित्याग करता है ॥९२॥ अन्त में सीपी, चन्दन तथा अक्षत एवं दो उजले वस्त्र ब्राह्मण को देता है, वह वरुण लोक में जाता है । इसे दृढव्रत कहा गया है ॥९३॥ वैशाख के महीने में पुष्प एवं नामक का परित्याग कर देना चाहिए और व्रत के अन्त में गोदान करे तो ऐसा करने वाला पुरुष कल्प पर्यन्त भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है और उसके बाद राजा होता है ॥९४॥ इस व्रत को शान्ति व्रत कहते हैं । यह यश एव कामना की पूर्ति रूपी फल को प्रदान करता है । सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिल के भीतर डाल दे ॥९५॥ तथा उसे घी के साथ दान करे, अग्नि में होम करे । उसके बाद ब्राह्मण भोजन कराये । ब्राह्मणदम्पती की पूजा माला, वस्त्र तथा भूषण से करे ॥९६॥ और अपनी शक्ति के अनुसार तीन पल से अधिक सुवर्ण विश्वात्मा की प्रसन्नता के लिए शुभ दिन को दान करे तो वह परब्रह्म को प्राप्त करता है और पुनः वह संसार में नहीं आता है ॥९७॥ इसे ब्रह्मव्रत कहते हैं और यह व्रती को मुक्ति रूपी फल प्रदान करता है । जो पुरुष प्रभूत मात्रा में सम्पूर्ण उभयमुखी गौ का दान करता है ॥९८॥ तथा दिन में दूध पीकर रहता है वह भी परमपद को प्राप्त करता है । इसे सुव्रत कहते है । इसको करने वाले को भी इस संसार में नही आना पड़ता है ॥९९॥ जो पुरुष तीन दिन तक दूध पीकर रहता है और एक फल से अधिक सुवर्ण का कल्पवृक्ष बनाकर उसे एक सेर चावल के साथ ब्राह्मण को दान देता है ॥१००॥ वह ब्रह्मलोक में जाता है । इस व्रत को भीमव्रत कहते है । एक महीने तक उपवास करके व्रत के अन्त में ब्राह्मण को जो सुन्दर गौ का दान करता है ॥१०१॥ वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । इस व्रत को भीमव्रत कहा गया है । बीस पल से अधिक सुवर्णमयी पृथिवी का निर्माण कराकर जो उसे ब्राह्मण को दान देता है ॥१०२॥ और दिन में केवल दूध पीकर रहता है, ऐसा व्रती रुद्रलोक में जाता है । यह सात कल्पों तक धन प्रदान करने वाला व्रत है ॥१०३॥ माघ

माघे मास्यथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत्। गुडव्रतं तृतीयायां गौरीलोके महीयते ॥१०४॥
महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम्। पक्षोपवासी यो दद्याद्विप्राय कपिलाद्वयम् ॥१०५॥
स ब्रह्मलोकमाप्नोति देवासुर सुपूजितः। कल्पान्ते सर्वराजा स्यात्प्रभा व्रतमिदं स्मृतम् ॥१०६॥
वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुंभदः। शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम् ॥१०७॥
नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद्वत्सरांते तु धेनुदः। पौरंदरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते ॥१०८॥
इंधनं यो ददेद्विप्रे वर्षादींश्चतुरस्त्वृतून्। घृतधेनुप्रदोंते च स परंब्रह्म गच्छति ॥१०९॥
वैश्वानरव्रतं नामसर्वपापप्रणाशनम्। एकादश्यां तु नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत् ॥११०॥
कृत्वा समांते सौवर्णं विष्णोः पदमवाप्नुयात्। एतत्कृष्णव्रतं नाम कल्पांते राज्यलाभकृत् ॥१११॥
पायसाशी समांते तु दद्याद्विप्राय गोयुगम्। लक्ष्मीलोके वसेत्कल्पमेतद्देवीव्रतं स्मृतम् ॥११२॥
सप्तम्यां नक्तभुग्दद्यात्समाप्ते गां पयस्विनीम्। सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम् ॥११३॥
चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्याद्धेमंते गोयुगं तथा। एतद्वैनायकं नाम शिवलोकफलप्रदम् ॥११४॥
महाफलानि यस्त्यक्त्वा चातुर्मास्यं द्विजातये। हैमानि कार्तिके दद्याद्धोमान्ते गोयुतं तथा ॥११५॥
एतत्सौरव्रतं नाम सूर्यलोकफलप्रदम्। द्वादशद्वादशी यस्तु समाप्योपोषणे नृप ॥११६॥
गोवस्त्रकांचनै र्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो नरः। परंपदमवाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् ॥११७॥

के अथवा चैत्र के महीने में जो पुरुष गुड़ की गौ का निर्माण करके उसे ब्राह्मण को तृतीया तिथि को दान देता है, वह गौरी लोक में पूजित होता है। इसे गुडव्रत कहते है ॥१०४॥ अब मैं परम आनन्द देने वाले महाव्रत का वर्णन करता हूँ। जो पुरुष एक पक्ष तक उपवास करके व्रत के अन्त में दो कपिला गायों का दान ब्राह्मण को देता है॥१०५॥ वह ब्रह्मलोक में जाकर देवताओं तथा असुरों से पूजित होता है। कल्प के अन्त में वह पुरुष सबों का राजा होता है, इसे प्रभावव्रत कहते हैं ॥१०६॥ जो व्यक्ति एक वर्ष तक एक शाम ही भोजन करके रहता है तथा भक्ष्य भोज्य वस्तुओं तथा जल भरे घड़े का दान देता है, वह एक कल्प तक शिवलोक में निवास करता है। इसे प्राप्ति व्रत कहते है ॥१०७॥ जो पुरुष एक वर्ष तक अष्टमी तिथि को केवल रात्रि में भोजन करता है, दिन में भोजन नहीं करता है। वर्ष के अन्त में गौ का दान करता है, वह इन्द्र की नगरी में निवास करता है। इस व्रत को सुगति व्रत कहते है ॥१०८॥ जो पुरुष वर्षा ऋतु से प्रारम्भ करके चार ऋतुओं तक ब्राह्मण को इन्धन दान देता है, और व्रत के अन्त में घृत धेनु का दान करता है, वह परंब्रह्म के लोक में जाता है ॥१०९॥ इसे सभी पापों को विनष्ट करने वाला वैश्वानर व्रत कहते हैं। जो एकादशी तिथि को रात्रि में ही भोजन करता है और वर्ष के अन्त में सुवर्ण का चक्र बनाकर ब्राह्मण को दान देता है वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है। इसे कृष्णव्रत कहते हैं। इसे करने वाला कल्प के अन्त में राज्य प्राप्त करता है ॥११०-१११॥ जो एक वर्ष तक दुग्ध पीकर रहता है और वर्ष के अन्त में ब्राह्मण को दो गायों का दान करता है, वह एक कल्प तक लक्ष्मीजी के लोक में निवास करता है, इसे देवीव्रत कहते हैं ॥११२॥ जो एक वर्ष तक सप्तमी तिथि को केवल रात्रि में भोजन करता है, व्रत की समाप्ति पर दूध देने वाली गौ का दान करता है, वह सूर्य लोक में जाता है। इसे सूर्यव्रत कहते हैं ॥११३॥ जो पुरुष एक वर्ष तक रात्रि में भोजन करता है, और व्रत के अन्त में हेमन्त ऋतु में दो गायों का दान करता है, वह शिवलोक में जाता है। इस व्रत को वैनायक व्रत कहते हैं ॥११४॥ जो पुरुष चैत्र मास भर बड़े-बड़े फलों का त्याग करता है, केवल खीर खाकर रहता है। व्रत के अन्त में होम करके ब्राह्मण को सुवर्ण निर्मित फल का दान देता है और दो

चतुर्दश्यां तुनक्ताशी समान्ते गोयुगप्रदः । शैवं पदमवाप्नोति त्रैयंबकमिदं स्मृतम्॥११८॥
सप्तरात्रोषितो दद्याद्घृतकुंभं द्विजातये । वरव्रतमिदं प्राहु ब्र्रह्मलोकफलप्रदम् ॥११९॥
असौ काशीं समासाद्य धेनुं दत्ते पयस्विनीम् । शक्रलोके वसेत्कल्पमिदं मंत्रव्रतं स्मृतम् ॥१२०॥
मुखवासं परित्यज्य समांते गोप्रदो भवेत् । वारुणं लोकमाप्नोति वारुणव्रतमुच्यते ॥१२१॥
चांद्रायणं च यः कुर्याद्धैमं चंद्रं निवेदयेत् । चंद्रव्रतमिदं प्रोक्तं चंद्रलोकफलप्रदम् ॥१२२॥
ज्येष्ठे पंचतपायोंते हेमधेनुप्रदो दिवम् । यात्यष्टमीचतुर्दश्यो रुद्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥१२३॥
सकृद्विधानकं कुर्यात्तृतीयायां शिवालये। समाप्ते धेनुदो याति भवानीव्रतमुच्यते॥१२४॥
माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात्सप्तम्यां गोप्रदो भवेत् । दिवि कल्पंवसित्वेह राजा स्यात्पवनव्रतम्॥१२५॥
त्रिरात्रोपोषितोदद्यात्फाल्गुन्यां भवनं शुभम् । आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतम्॥१२६॥
त्रिसंध्यं पूज्य दांपत्यमुपवासी विभूषणैः। ददन्मोक्षमवाप्नोति मोक्षव्रतमिदं स्मृतम्॥१२७॥
दत्त्वा सितद्वितीयायामिंदौ लवणभाजनम्। समाप्ते गोप्रदो याति विप्राय शिवमंदिरम् ॥१२८॥
कांस्यं स वस्त्रं राजेन्द्र दक्षिणासहितं तथा। समाप्ते गां च यो दद्यात्सयाति शिवमंदिरम्॥१२९॥
कल्पांते राजराजस्स्यात्सोमव्रतमिदं स्मृतम् । प्रतिपत्स्वेकभक्ताशी समाप्ते च फलप्रदः ॥१३०॥

गौओं का दान करता है ॥११५॥ वह सूर्य लोक में जाता है । इस व्रत को सौर व्रत कहते हैं । जो पुरुष बारह द्वादशियों तक उपवास करता है । व्रत को समाप्त करके हे राजन् ॥११६॥ ब्राह्मणों की पूजा गौ, वस्त्र तथा सुवर्ण के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार करता है, वह परंपद को प्राप्त करता है, इसे विष्णुव्रत कहते हैं ॥११७॥ जो व्यक्ति एक वर्ष तक चतुर्दशी तिथि को केवल रात्रि में ही भोजन करता है । वर्ष के अन्त में दो गौओं का दान करता है । वह शिव पद को प्राप्त करता है, इसे त्रैयम्बक व्रत कहते हैं ॥११८॥ जो चार रात्रियों तक उवास करके व्रत की समाप्ति पर ब्राह्मण को घी भरा घड़ा दान देता है । वह ब्रह्मलोक में जाता है इसे वार व्रत कहते हैं ॥११९॥ जो पुरुष काशी में जाकर दूध देने वाली गौ को दान देता है वह एक कल्प तक इन्द्र के लोक में निवास करता है, इस व्रत को मन्त्र व्रत कहते हैं ॥१२०॥ जो एक वर्ष तक मुखवास नहीं लेता है और वर्ष के अन्त में गोदान करता है । वह वरुण के लोक में जाता है । इस व्रत को वारुणव्रत कहते हैं ॥१२१॥ चान्द्रायण व्रत करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह व्रत के अन्त में सुवर्ण निर्मित चन्द्रमा का दान करे । ऐसा करने वाला चन्द्र लोक में जाता है । इस व्रत को चन्द्रव्रत कहते हैं ॥१२२॥ जो ज्येष्ठ के महीने में पञ्चाग्नि तापता है । व्रत के अन्त में अष्टमी या चतुर्दशी को सुवर्ण की गौ का दान कदता है, वह द्युलोक में जाता है इसे रुद्रव्रत कहते है ॥१२३॥ जो पुरुष प्रत्येक मास की तृतीया तिथि को शिव मन्दिर में जाकर एक बार हाथ जोड़ता है और वर्ष के अन्त में व्रत की समाप्ति होने पर गोदान करता है वह देवीं के लोक में जाता है, इसे भवानी व्रत कहते हैं ॥१२४॥ जो पुरुष माघ मास में रात को गीला वस्त्र पहनता है तथा सप्तमी तिथि को गोदान करता है, वह एक कल्प तक द्युलोक में निवास करके अन्त मे राजा होता है, इसे पवनव्रत कहते है ॥१२५। जो व्यक्ति तीन रात तक उपवास करके फाल्गुन मास की पूर्णिमा तिथि को सुन्दर भवन का दान देता है, वह आदित्य लोक में जाता है, इसे धामव्रत कहते हैं ॥१२६॥ जो व्यक्ति शाम तक उपवास रहकर आभूषणों से ब्राह्मण दम्पती की पूजा कर आभषूण उनको प्रदान कर देता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है । इसे मोक्ष व्रत कहा गया है ॥१२७॥ शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को लवण (नामक) पात्र का जो दान करता है तथा व्रत की समाप्ति होने पर ब्राह्मण को दान देता है वह शिवजी के लोक में जाता है ॥१२८॥ हे

वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम् । हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम् ॥१३१॥
दद्यात्कृतोपवास: स दिविकल्पशतं वसेत् । तदंते राजराजस्स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम् ॥१३२॥
तद्वद्धेमरथं दद्यात्करिभ्यां संयुतं पुन: । सत्यलोकेवसेत्कल्पं सहस्रमपि भूमिप: ॥१३३॥
भवेदिहागतो भूम्यां करिव्रतमिदं स्मृतम् । दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दश धेनुद: ॥१३४॥
दीपं च कांचनं दद्याद्ब्रह्माण्डाधिपति र्भवेत् । एतद्विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥१३५॥
कन्यादानं तु कार्तिक्यां पुष्करे य: करिष्यति । एकविंशद्गुणोपेतो ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥१३६॥
कन्यादानात्परं दानं नैव चास्त्यधिकं क्वचित् । पुष्करे तु विशेषेण कार्तिक्यां तु विशेषत: ॥१३७॥
विप्राय विधिवद्देयं तेषां लोकोऽक्षयो भवेत् । तिलपिष्टमयं कृत्वा गजं रत्नसमन्वितम् ॥१३८॥
विप्राय ये प्रयच्छंति जलमध्ये स्थिता नरा: । तेषां चैवाक्षयो लोको भविता भूतसंपल्वम् ॥१३९॥
य: पठेच्छृणुयाद्वापि व्रतषष्ठिमनुत्तमाम् । मन्वंतरशतं सोपि गंधर्वाधिपति र्भवेत् ॥१४०॥

षष्ठिव्रतं भारत पुण्यमेत त्तवोदितं विश्वजनीनमद्य।
श्रोतुं यदीच्छा तव राजराज शृणुद्विजाते: करणीयमेतत् ॥१४१॥

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विनास्नानं न विद्यते । तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते ॥१४२॥
अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलै: स्नानं समाचरेत् । तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान् मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥१४३॥

राजेन्द्र ! जो वस्त्र से ढंककर दक्षिणा सहित कांस्यपात्र दान देता है तथा व्रत की समाप्ति पर गोदान करता है, वह शिवलोक में जाता है ॥१२९॥ कल्प की समाप्ति होने पर वह राजाओं का भी राजा होता है । इस व्रत को सोमव्रत कहते हैं । जो प्रतिपत् तिथियों को एक अन्न खाता है और व्रत के समाप्त होने पर जो फलों का दान करता है॥१३०॥ वह वैश्वानर लोक में जाता है । इस व्रत को शिखी (अग्नि) व्रत कहते है । जो उपवास करके दो पल से अधिक सुवर्ण का घोड़ों से युक्त रथ बनवाकर दान करता है वह स्वर्गलोक में सौ कल्पों से भी अधिक समय तक निवास करता है । उसके बाद वह राजराज होता है । इस व्रत को अश्वव्रत कहते है ॥१३१-१३२॥ उसी तरह का रथ यदि दो हाथियों के साथ उपवास करने वाला व्यक्ति ब्राह्मण को दान देता है । वह हजार कल्पों तक ब्रह्माजी के लोक में निवास करे ॥१३३॥ इसके बाद वह पृथिवी का राजा होता है । इस व्रत को करिव्रत कहते हैं । जो दशमी तिथि को एक ही अन्न खाता है और एक वर्ष के अन्त में दश गायों का दान करता है ॥१३४॥ तथा सुवर्ण का दीप दान करता है तो वह ब्रह्माडाधिपति होता है । यह महान पापों को विनष्ट करने वाला विश्वव्रत है ॥१३५॥ जो व्यक्ति पुष्कर तीर्थ में कन्यादान करेगा वह इक्कीस गुणों से युक्त होकर ब्रह्मलोक में जायेगा ॥१३६॥ कन्यादान से बड़ा दान कहीं भी कोई भी नहीं है, खासकर पुष्करतीर्थ में उसमें भी कार्तिक पूर्णिमा को कन्यादान करने का बड़ा ही महत्त्व है ॥१३७॥ ब्राह्मण को जो सविधि कन्यादान करता हैं, उसको अक्षय लोक की प्राप्ति होती है । जो लोग तिल की पीठी के बने हुए हाथी के भीतर रत्न भरकर ब्राह्मण को जल में खड़ा होकर दान देते हैं उन लोगों को भी प्रलयकाल पर्यन्त अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है ॥१३९॥ जो व्यक्ति इस व्रतषष्ठि (साठ व्रतों) के उत्तम प्रसङ्ग को पढता अथवा सुनता है वह भी सौ मन्वन्तरों तक गन्धर्वो का स्वामी होता है ॥१४०॥ हे भारत ! मैंने यह विश्वविख्यात उत्तम षष्ठि व्रत आपको सुनाया यदि तुम्हारी सुनने की इच्छा हो तो ब्राह्मणों के कर्मों का श्रवण करो॥१४१॥ चूकि स्नान किए बिना निर्मलता तथा भावों की शुद्धि नहीं होती है, अतएव मन की विशुद्धि के लिए सर्वप्रथम स्नान करना चाहिए ॥१४२॥ जल चाहे निकाले गये हों या नहीं निकाले गये हों उससे स्नान करना चाहिए।

नमो नारायणायेति मूलमंत्र उदाहृतः । सदर्भपाणि र्विधिना आचांतः प्रयतः शुचिः ॥१४४॥
चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्त्रं समंततः । प्रकल्प्यावाहयेद्‌गंगामेभि र्मंत्रै र्विचक्षणः ॥१४५॥
विष्णोः पादप्रसूतासि वैष्णावी विष्णुदेवता । त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणांतिकात् ॥१४६॥
तिस्त्रः कोट्योर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिवि भुव्यंतरिक्षे च तानि ते संति जाह्नवि ॥१४७॥
नंदिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च । दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवासिता ॥१४८॥
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी । क्षेमा च जाह्नवी चैव शांता शांतिप्रदायिनी ॥१४९॥
एतानि पुण्य नामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् । भवेत्सन्निहिता तत्र गंगा त्रिपथगामिनी ॥१५०॥
सप्तवाराभिजप्तेन करसंपुटयोजितम् । मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुः पंचसप्तधा ॥१५१॥
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामंत्र्य तु विधानतः । अश्वक्रांते रथक्राते विष्णुक्रांते वसुंधरे ॥१५२॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् । उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥१५३॥
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते । एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य तु विधानतः ॥१५४॥
उत्थाय वाससी शुभ्रे शुद्धे तु परिधाय वै । ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै ॥१५५॥
ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतीन् । देवा यक्षास्तथा नागा गंधर्वाप्सरसांगणाः ॥१५६॥

मन्त्रज्ञ व्यक्ति मूल मन्त्र के द्वारा उसको तीर्थ (पवित्र) बना ले ॥१४३॥ **ओम नमो नारायणाय** इसी को मूलमन्त्र कहा गया है फिर हाथ में कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करके पवित्र हो जाय ॥१४४॥ उसके बाद चार हाथ के चतुरस्त्र की कल्पना करे और विचक्षण पुरुष उसमें इन मन्त्रों से गङ्गाजी का आवाहन करे ॥१४५॥ हे गङ्गे देवि ! आप भगवान् विष्णु के पैर से उत्पन्न हुयी हैं अतएव वैष्णवी है । भगवान् विष्णु ही आपके देवता हैं । अतएव आप मेरे जन्म से लेकर मरण पर्यन्त के पापों से मेरी रक्षा करें ॥१४६॥ वायु देवता ने कहा है कि द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष लोक में साढे तीन करोड़ जो तीर्थ हैं, वे सभी हे जाह्नवि देवि ! आप में ही निवास करते हैं ॥१४७॥ आपका देवलोक में नाम नन्दिनी और नलिनी विख्यात है । उनके अतिरिक्त दक्षा, पृथ्वी, सुभगा, विश्वकाया, शिवा, असिता, विद्याधरी, सुप्रसन्ना, लोकप्रसादिनी, क्षेमा, शान्ता तथा शान्ति प्रदायिनी आपके नाम है ॥१४८-१४९॥ इन पवित्र नामों का स्नान काल में स्मरण करना चाहिए । ऐसा करने से वहाँ पर त्रिपथगामिनी गङ्गाजी का सन्निधान हो जाता है ॥१५०॥ इन मन्त्रों को हाथ जोड़कर सात बार जपे, फिर उसे तीन चार पाँच या सात बार अपने शिर पर चढाये ॥१५१॥ उसी तरह से विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके मृतिका से भी स्नान करना चाहिए । मृतिका को अभिमन्त्रित करने का मन्त्र हैं—

अश्वक्रांते रथक्रांते विष्णुक्रांते वसुंधरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुःष्कृतं कृतम् ॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते ॥

अर्थात् हे वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व तथा रथ चलते है भगवान् वामन ने भी तुमको एक पग से नापा था । हे मृतिके ! मैंने जिन बुरे कर्मो को किया है, उनसे उत्पन्न पापों को तुम हर लो । हे देवि ! सैकड़ो भुजाओं वाले भगवान् विष्णु ने वाराह का रूप धारण करके तुम्हारा उद्धार किया था ॥१५२-१५३॥ हे सुव्रते ! समस्त लोकों को उत्पन्न करने के लिए तुम अरणि के समान हो । तुम्हे नमस्कार है । इसतरह से स्नान करके विधिपूर्वक आचमन करे॥१५४॥ उसके बाद उठकर दो सुन्दर तथा शुद्ध वस्त्रों को धारण करे । उसके बाद त्रैलोक्य की पुष्टि के लिए तर्पण करना चाहिए ॥१५५॥ क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सराओं ॥१५६॥

क्रूरास्सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जंभकादयः । विद्याधरा जलधरास्तथैवाकाशगामिनः ॥१५७॥
निराधाराश्च ये जीवा पापधर्मरताश्च ये । तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ॥१५८॥
कृतोपवीतो देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः । मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ऋषिपुत्रानृषींस्तथा ॥१५९॥
सनकश्च सनंदश्च तृतीयश्च सनातनः । कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा ॥१६०॥
सर्वे तेतृप्तिमायांतु मद्दत्तेनांबुना सदा । मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलह क्रतुम् ॥१६१॥
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेवच । देवब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयेत्साक्षतोदकैः ॥१६२॥
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जानु च भूतले । अग्निष्वात्तांस्तथा सौम्यान्हविष्मतस्तथोष्मपान् ॥१६३॥
सुकालिनो बर्हिषदस्तथा चैवाज्यपान्पुनः । संतर्पयेत्पितृन्भक्त्या सतिलोदकचंदनैः ॥१६४॥
सदर्भपाणि र्विधिना पितृंन्स्वांस्तर्पयेत्ततः । पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि ॥१६५॥
संतप्य विधिवद्भक्त्या इमं मंत्रमुदीरयेत् । ये बांधवाबांधवा ये येन्यजन्मनि बांधवाः ॥१६६॥
ते तृप्तिमखिला यांतु येप्यस्मत्तोयकांक्षिणः । आचम्य विधिना सम्यगालिखेत्पद्ममग्रतः ॥१६७॥
साक्षताद्भिस्सपुष्पाभिः सतिलारुणचंदनैः । अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः ॥१६८॥
नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विष्णुरूपिणे । सर्वदेवनमस्तेस्तु प्रसीद मम भास्कर ॥१६९॥

क्रूरसर्पो, सुपर्ण, वृक्ष, जम्भ आदि असुर, विद्याधर, मेघ, (जलधर) आकाशचारी जीव ॥१५७॥ निराधारजीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवों की तृप्ति के लिए मैं जल दान करता हूँ ॥१५८॥ इन देवताओं का तर्पण सव्य रहकर ही करना चाहिए, इसके बाद भक्ति पूर्वक निवीती होकर (यज्ञोपवीत को माला की तरह करके) मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रों का तर्पण करे ॥१५९॥ सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, बोढु तथा पंचशिख ॥१६०॥ ये सभी मेरे द्वारा प्रदत जल से तृप्त हो जायँ। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु ॥१६१॥ प्रचेता, वसिष्ठ और नारद इन देवताओं तथा ब्रह्मर्षियों का तर्पण अक्षत तथा जल से करना चाहिए ॥१६२॥ उसके बाद अपसव्य होकर तथा वायाँ घुटना पृथिवी पर करके बैठे। उसके बाद अग्निष्वाता, सौम्य, हविष्मान्, उष्मप ॥१६३॥ सुकाली, वर्हिषद् तथा आज्यप नामक पितरों का तिल से तथा चन्दन से तर्पण करे ॥१६४॥ उसके बाद हाथ में कुश लेकर विधिपूर्वक अपने पितरों का तर्पण करना चाहिए। पिता आदि तथा मातामह आदि पितरों के नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके तर्पण करना चाहिए ॥१६५॥ विधिपूर्वक तर्पण करके इस मंत्र का उच्चारण करे—

ये बांधवाबांधवा ये येन्यजन्मनि बांधवाः । ते तृप्तिमखिला यांतु येप्यस्मत्तोयकांक्षिणः ।।

अर्थात् जो लोग मेरे बन्धव न हो, जो लोग मेरे बन्धव हों, जो लोग किसी दूसरे जन्म में मेरे बान्धव रहें हों, वे सब मेरे दिये हुए जल से तृप्त हों। उनके अतिरिक्त यदि कोई दूसरा भी जीव मुझसे जल की अभिलाषा रखता हो तो वह भी तृप्त हो जाय। उसके बाद आचमन करके अपने सामने कमल का चिह्न बनाये ॥१६७॥ उसके बाद अक्षत, पुष्प, तिल, लालचन्दन मिलाकर सूर्यनारायण को अर्घ्य प्रदान करे। उस समय सूर्य के नामों का उच्चारण करना चाहिए ॥१६८॥ सूर्यार्घ्य देने का मन्त्र हैं—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे । सहस्त्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ।।
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल । पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गद भूषित ।।
नमस्ते सर्वलोकेषु सुप्तांस्तान प्रतिबुध्यसे । सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वदा ।।
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भाष्कर । दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।।

दिवाकर नमस्तेस्तु प्रभाकरनमोस्तु ते। एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वा च प्रदक्षिणम् ॥१७०॥
द्विजं गां कांचनं चैव दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा गृहं व्रजेत्। स्वगेहस्थां ततः पुण्यां प्रतिमां चापि पूजयेत् ॥१७१॥
भोजनं च ततः पश्चाद्द्विजपूर्वं च कारयेत्। अनेन विधिना सर्वऋषयः सिद्धिमागताः ॥१७२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे स्नानविधिर्नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

आसीत्पुरा बृहत्कल्पे धर्ममूर्तिर्जनाधिपः। सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्यास्सहस्रशः॥१॥
सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः। भवंति शतशो येन दानवाश्च पराजिताः ॥२॥
यथेच्छरूपधारी च मानुषोप्यपराजितः। तस्य भानुमती भार्या सती त्रैलोक्य सुंदरी॥३॥
लक्ष्मीसदृशरूपेण निर्जितामरसुंदरी। राज्ञस्तस्याग्रमहिषी प्राणेभ्योपि गरीयसी ॥४॥

अर्थात् हे भगवन् सूर्य ! आप विश्वरूप है, और ब्रह्म स्वरूप हैं। आपके इन दोनों रूपों को नमस्कार है। आप सहस्त्रों किरणों से सुशोभित और सबों के तेजोंरूप हैं आपको सदा नमस्कार है। रुद्र रूप धारण करने वाले आप परमेश्वर को बारम्बार नमस्कार है। कुण्डल तथा अङ्गद आदि आभूषणों से विभूषित पद्मनाथ आपको नमस्कार है। हे भगवन् ! आप संसार के समस्त सोए हुए लोगों को जगाते हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप सदा सबों के पुण्यों तथा पापों को देखते हैं। हे सत्यदेव आपको नमस्कार है। हे भास्कर आप प्रसन्न हो जाइये। दिवाकर आपको नमस्कार है। प्रभाकर ! आपको नमस्कार है। इस तरह से सूर्य को नमस्कार करके उनकी तीन बार प्रदक्षिणा करे ॥१६८-१७०॥ इसके बाद ब्राह्मण, गौ तथा सुवर्ण का दर्शन तथा स्पर्श करके अपने घर जाय। उसके बाद अपने घर में विद्यमान पवित्र मूर्ति का पूजन करे ॥१७१॥ फिर पहले ब्राह्मणों को भोजन कराकर बाद में स्वयं भोजन करे। इसीतरह से सभी ऋषि सिद्धि को प्राप्त किए ॥१७२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के स्नानविधि वर्णन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

धर्ममूर्तिराज का वर्णन, धान्यपर्वत आदि की दान विधि, विशोक द्वादशी व्रत, गुड आदि से निर्मित दश प्रकार के गायों के दान का वर्णन, धान्य आदि दश प्रकार के पर्वतों का वर्णन तथा सौर धर्म वर्णन

महर्षि पुलस्त्य ने कहा— प्राचीन वृहत् कल्प में धर्ममूर्ति नाम के एक राजा थे वे इन्द्र के मित्र थे। उन्होंने हजारों दैत्यों को मारा था ॥१॥ उस राजा के तेज के सामने सूर्य एवं चन्द्रमा की कान्ति फीकी प्रतीत होती थी। उन्होंने सैकड़ो दैत्यों को पराजित किया था ॥२॥ वे अपनी इच्छा के अनुसार अपना रूप बना लेते थे तथा मनुष्य होने पर भी वे किसी से पराजित नहीं हुए। उनकी भानुमती नाम की पत्नी त्रैलोक्य सुन्दरी थी ॥३॥ लक्ष्मी के समान अपने रूप के कारण उसने देवताओं की सुन्दरियों को रूप के विषय में जीत लिया था। वह राजा की पटरानी थी तथा प्राणबल्लभा थी ॥४॥ राजा की दश हजार पत्नियों के बीच में वह श्रीदेवी के समान सुशोभित होती थी। करोड़ों

दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिवराजते। नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित्समुच्यते ॥५॥
कदाचिदास्थानगतः पप्रच्छ स्वपुरोहितम्। विस्मयेनावृत्तो नत्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥६॥
भगवन्केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा। कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम् ॥७॥

वसिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा। तया दत्तश्चतुर्दश्यां पुष्करे लवणाचलः ॥८॥
हेमवृक्षामरैः सार्द्धं यथावद्विधिपूर्वकम्। शूद्रः सुवर्णकारश्च कर्मकृत्सोऽभवत्तदा ॥९॥
भृत्यो लीलावतीगेहे तेन हैमा विनिर्मिताः। तरवो हेमपुष्पाश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव ॥१०॥
अतिरूपेण संपन्ना घटितास्ते सुशोभनाः। धर्मकार्यमिति ज्ञात्वा नगृहीतं च वेतनम् ॥११॥
उज्ज्वालिताश्च ते पत्न्या सुवर्णमयपादपाः। लीलावती गृहे चापि परिचर्या च पार्थिव ॥१२॥
कृता ताभ्यामशाठ्येन द्विजशुश्रूषणादिका। सा च लीलावती वेश्या कालेन महतानघ ॥१३॥
सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमंदिरम्। योसौ सुवर्णकारश्च दरिद्रोप्यतिसत्त्ववान् ॥१४॥
नमूल्यमादाद्वेश्यातः सभवानिह सांप्रतम्। सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः ॥१५॥
यया सुवर्णकारस्य तरवो हेमनिर्मिताः। सम्यगुज्ज्वलिताः पत्न्या सेयं भानुमती तव ॥१६॥

तस्मान्नृलोकेष्वपराजितस्त्व मारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचला दीन्नृपते कुरुष्व ॥१७॥

पुलस्त्य उवाच

तथेति संपूज्य सुधर्ममूर्ति र्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान्।
धान्याचलादीन् विधिना स्मरारे र्लोकं गतोसौ सुरपूज्यमानः ॥१८॥

हजार राजा उसको कभी नही त्यागे ॥५॥ एकबार सभा में जाकर राजा ने आश्चर्य चकित होकर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ से पूछा ॥६॥ हे भगवन् ! किस धर्म के कारण मुझे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति हुयी है। किस कारण से मेरे शरीर में विपुल मात्रा में तेज बना रहता है ॥७॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** प्राचीनकाल में लीलावती नाम की शिवजी की भक्ता वेश्या थी। उसने पुष्कर क्षेत्र में चतुर्दशी तिथि को नमक का पर्वत बनाकर तथा देवताओं के सुवर्ण के वृक्षों को विधि पूर्वक बनवाकर दान किया। उस वेश्या के घर में शूद्र नामक एक सुनार नौकर था उसी ने उन सुवर्ण वृक्षों को बनाया था। हे राजन् ! उसने उन वृक्षों में श्रद्धा पूर्वक सुवर्ण पुष्पों को बनाया था ॥१०॥ वे देववृक्ष देखने में अत्यन्त सुन्दर लगते थे। उस सुनार ने धर्म का श्रम समझकर उन वृक्षों के निर्माण की मजदूरी नहीं ली ॥११॥ उस नमक के पर्वत पर जो सुवर्ण के वृक्ष बनाये गये थे, उन सबों को सुनार की पत्नी ने तपाकर देदीप्यमान बनाया था। वे दोनों लीलावती के घर में नौकर थे। वे बिना किसी कपट के ब्राह्मणों की सेवा करते थे। हे अनघ ! बहुत दिन बीत जाने पर वह लीलावती ॥१२-१३॥ सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक में चली गयी। वह सुवर्णकार भी अत्यन्त दरिद्र होकर भी अत्यन्त धार्मिक था ॥१४॥ उसने उस वेश्या से उन वृक्षों को बनाने का मूल्य नहीं लिया। वे ही आज आप सातो द्वीपों के स्वामी तथा दशों हजार सूर्य के समान तेजस्वी राजा हुए हैं ॥१५॥ और वह जो सुनार की पत्नी थी जिसने उन सुवर्ण के वृक्षों को तपाकर चमकाया था वही आपकी पत्नी भानुमती है ॥१६॥ इसीलिए तुम मर्त्यलोक में अपराजित तथा निरोग तथा तुम्हारी अचला लक्ष्मी सौभाग्य सम्पन्न है। इसीलिए हे राजन् ! तुम भी विधिपूर्वक अन्नों के पर्वतों का निर्माण कराओ ॥१७॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** राजा धर्ममूर्ति ने भी

पश्येद्यदीमानुपनीयमानान् स्पृशेन्मनुष्यैरिहदीयमानान् ।
शृणोति भक्त्याथमतिं ददाति विकल्मषः सोपि दिवं प्रयाति ॥१९॥
दुःस्वप्नप्रशममुपैति पठ्यमानैः शैलेंद्रै र्भवभयभेदनै र्मनुष्यः ।
यः कुर्यात्किमु नृपपुंगवेहसम्यक् शांतात्मा सकलगिरीद्रसंप्रदानम् ॥२०॥

भीष्म उवाच

किमभीष्टवियोगशोकसंघा नलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा ।
विभवध्रुवकारिभूतलेस्मिन् भवभीतेरपि सूदनं च पुंसः ॥२१॥

पुलस्त्य उवाच

परिपृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामापि दुर्लभं महत्त्वात् ।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिंद्रासुरमानवेषु गुह्यम् ॥२२॥
पुण्यमाश्वयुजे मासि विशेकद्वादशीव्रतम् । दशम्यां लघुभुग्विद्वान्प्रारभेत यमेन तु ॥२३॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दंतधानवपूर्वकम् । एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम् ॥२४॥
श्रियं चाभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्येऽहं चापरेहनि । एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ॥२५॥
स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पंचगव्यजलेन तु । शुभ्रमाल्यांबरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ॥२६॥
विशोकाय नमः पादौ जंघे च वरदाय वै । श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ॥२७॥

महर्षि वसिष्ठ की वाणी का समादर करके धान्य आदि के विविध पर्वतों को बनावाकर उन सबों का दान किया और अन्त में भगवान् शिव के लोक में देवताओं से पूजित होते हुए चला गया ॥१८॥ जो भी मनुष्य इस प्रसङ्ग में वर्णित दानों का दर्शन तथा स्पर्श करता है, अथवा इस प्रसङ्ग का श्रवण तथा मनन करता है वह भी स्वर्गलोक में जाता है। जो मनुष्य इन श्रेष्ठ तथा संसार के भय को विनष्ट करने वाले पर्वतों का पाठ करता है उसके दुःस्वप्न शान्त हो जाते हैं। हे राजश्रेष्ठ ! जो मनुष्य इस लोक में इन समस्त पर्वतों को तैयार करके दान करता है, उसके विषय में क्या कहना है ?॥२०॥ **भीष्मजी ने कहा—** ऐसा कौन सा उपवास अथवा व्रत है जो प्रिय व्यक्ति के वियोगजन्य शोक में उत्पन्न अग्नि को शान्त करने में समर्थ है ? इस भूलोक में ऐश्वर्य को स्थिर करने वाला तथा संसार के भय को विनष्ट करने वाला कौन सा व्रत अथवा उपवास है ?॥२१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** तुमने संसार का कल्याण करने वाले, देवताओं के लिए भी दुर्लभ महत्त्वशील मनुष्यों तथा असुरों के लिए भी गोपनीय व्रत के विषय में पूछा है। अतएव भक्ति सम्पन्न तुमको मैं सर्वश्रेष्ठ व्रत बतलाता हूँ ॥२२॥ पवित्र कार्तिक के महीने में विशोक द्वादशी व्रत होता है। व्रती को चाहिए कि दशमी के दिन थोड़ा सा भोजन करके इस व्रत को प्रारम्भ करे ॥२३॥ इन्द्रियों को वह अपने वश में रखे। वह उत्तर की ओर अथवा पूर्व की ओर मुख करके मुँह धोये। एकादशी के दिन अच्छी तरह से भगवान् केशव की पूजा करके निराहार रहे ॥२४॥ दूसरे दिन मैं लक्ष्मीजी की पूजा करके भोजन करूँगा, इस तरह से सङ्कल्प करके रात्रि में सोये, पुनः प्रातः काल जगकर मनुष्य को चाहिए कि वह ॥२५॥ सर्वौर्षिधि से पञ्चगव्य तथा जल से स्नान करे। फिर श्वेत वस्त्र धारण करके श्रीभगवान् की कमल से पूजा करे ॥२६॥ श्रीभगवान् के पूजा का क्रम इस प्रकार है— **विशोकाय नमः पादौ पूजयामि** इस मन्त्र से श्रीभगवान् के दोनों चरणों की पूजा करे, **वरदाय नमः जङ्घे पूजयामि** इस मन्त्र से श्रीभगवान् के दोनों जंङ्घों की पूजा करे। **श्रीशाय नमः जानुनी पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों घुटनों की पूजा करे **जलशायिने नमः ऊरू पूजयामि** इस मंत्र से दोनों ऊरूयों की पूजा

कंदर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम्। दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै ॥२८॥
नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै। श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुभिदे नमः ॥२९॥
वैकुण्ठाय नमः कंठमास्यं पद्ममुखाय वै। नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी ॥३०॥
ललाटं वामनायेति हरये च पुनर्भ्रुवौ । अलकं माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे ॥३१॥
नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत्। एवं संपूज्य गोविंदं धूपमाल्यानुलेपनैः॥३२॥
ततस्तु मंडलं कृत्वा स्थंडिलं कारयेन्मृदा। चतुरस्रं समंताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्॥३३॥
श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम् । त्रिरंगुलोच्छ्रितावप्रास्तद्विस्तारो द्विरंगुलः ॥३४॥
स्थंडिलस्योपरिष्टात्तु भित्तिरष्टांगुला भवेत् । नदीबालुकया सूर्ये लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत् ॥३५॥
स्थंडिले सूर्यमध्यस्थ लक्ष्मीमभ्यर्चयेद्बुधः। नामो देव्यै नमः शांत्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै॥३६॥
नमस्तुष्ट्यै नमः पुष्ट्यै सृष्ट्यै दृष्ट्यै नमोनमः । विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु ते ॥३७॥
विशोका मेस्तु संपत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये। ततः शुभ्रांबरैः सूर्यं वेष्ट्य संपूजयेत्फलैः ॥३८॥
भक्ष्यैर्नानाविधैस्तद्वत्सुवर्णकमलेन च। राजतीषु च पात्रीषु न्यसेद्दर्भोदकं बुधः ॥३९॥
ततस्तु नृत्यगीतानि कारयेत्सकलां निशाम्। यामत्रये व्यतीते तु तत उत्थाय मानवः ॥४०॥

करे ॥२७॥ **कन्दर्पाय नमः गुह्यं पूजयामि** इस मन्त्र से गुप्ताङ्गों की पूजा करे। **माधवाय नमः कटिं पूजयामि** इस मन्त्र से श्रीभगवान् के कमर की पूजा करे। **दामोदराय नमः उदरं पूजयामि** इस मन्त्र से उदर की पूजा करे, **विपुलाय नमः पार्श्वे पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों पार्श्वभागों की पूजा करे ॥२८॥ **पद्मनाभाय नमः नाभिं पूजयामि** इस मन्त्र से नाभि की पूजा करे, **मन्मथाय नमः हृदयं पूजयामि,** इस मन्त्र से हृदय की पूजाकरे, **श्रीधराय नमः वक्षः पूजयामि** इस मन्त्र से वक्षःस्थल की पूजा करे, **मधुसूदनाय नमः करौ पूजयामि,** इस मन्त्र से दोनों हाथों की पूजा करे ॥२९॥ **वैकुण्ठाय नमः कण्ठे पूजयामि** इससे कण्ठ की पूजा करे, **पद्ममुखाय नमः मुखं पूजयामि** इस मन्त्र से मुख की पूजा करे। **अशोकनिधये नमः नासे पूजयामि** इस मन्त्र से नाक की पूजा करे, **वासुदेवाय नमः अक्षिणी पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों नेत्रों की पूजा करे ॥३०॥ **वामनाय नमः ललाटं पूजयामि** इस मन्त्र से ललाट की पूजा करे, **हरये नमः भ्रुवौ पूजयामि** इस मन्त्र से भृकुटियों की पूजा करे, **माधवाय नमः अलकं पूजयामि** इस मन्त्र से केशों की पूजा करे, **विश्वरूपिणे नमः किरीटं पूजयामि** इस मन्त्र से किरीट की पूजा करे॥३१॥ **सर्वात्मने नमः शिरः पूजयामि** इस मन्त्र से शिर की पूजा करे। इस तरह से श्रीभगवान् की पूजा करके धूप, माला तथा चन्दन से उनकी पूजा करे ॥३२॥ उसके बाद ाण्डल बनाकर उसके ऊपर मिट्टी की वेदी बनाये। उसे चारो आरे से चतुरस्र (वर्गाकार) होना चाहिए। उसके बाद एक हाथ की खाईं बनायें ॥३३॥ उसको चिकने तथा सुन्दर तीन वप्रों (चाहारदिवारियों से घेर दे) चाहारदिवारियों को तीन अङ्गुल ऊँचा बनाये और उसका विस्तार दो अङ्गुल होना चाहिए ॥३४॥ स्थण्डिल के ऊपर की दिवार आठ अङ्गुल की हो नदी के बालू से लक्ष्मी की मूर्ति को बनाकर धूप में रखे ॥३५॥ स्थण्डिल पर सूर्य के बीच में लक्ष्मी की पूजा करे। लक्ष्मीजी की पूजा **देव्यै नमः, शान्त्यै नमः, लक्ष्म्यै नमः** ॥३६॥ **श्रियै नमः, तुष्ट्यै नमः, पुष्ट्यै नमः, सृष्ट्यै नमः, दृष्ट्यै नमः** इन मन्त्रों से करे फिर प्रार्थना करे। यह विशोक द्वादशी मेरे लिए दुखों का नाश करने वाली, वरदान देने वाली, सम्पत्ति प्रदान करे वाली तथा सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली हो। उसके बाद श्वेत वस्त्र में लपेट कर सूर्य की फलों से पूजा करे ॥३७-३८॥ अनेक प्रकार के पकवानों से तथा सुवर्णनिर्मित कमलों से पूजा करे। विद्वान् को चाहिए कि वह

अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि च पूजयेत् । शक्तितस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥४१॥
शयनास्थानि पूज्यानि नमोस्तु जलशायिने । ततस्तु गीतवाद्येन रात्र्यां जागरणे कृते ॥४२॥
प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत् । भोजयेच्च यथाशक्ति वित्तशाठ्येन वर्जितः ॥४३॥
भक्त्या श्रुत्वा पुराणानि तद्दिनं चातिवाहयेत् । अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ॥४४॥
व्रतांते शयनं दद्याद्गुडधेनुसमन्वितम् । सोपधानं सविश्रामं स्वास्तरावरणं शुभम् ॥४५॥
यथालक्ष्मीनरेशत्वां न परित्यज्य गच्छति । तथा सुरूपतारोग्यमशोकं चास्तु मे सदा ॥४६॥
यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते क्वचित् । तथा विशोकता मेस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे ॥४७॥
मंत्रेणानेन शयनं गुडधेनुसमन्वितम् । सूर्यश्च लक्ष्म्या सहितो दातव्यो भूतिमिच्छता ॥४८॥
उत्पलं करवीरं वाप्यम्लानं चैव कुंकुमम् । केतकं सिंधुवारं च मल्लिका गंधपाटला ॥४९॥
कदंबं कुब्जकं जाती शस्तान्येतानि सर्वदा ।

भीष्म उवाच

गुडधेनुविधानं च समाचक्ष्व मुनीश्वर ॥५०॥
किं रूपा केन मंत्रेण दातव्या तदिहोच्यताम् ।

पुलस्त्य उवाच

गुडधेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम् ॥५१॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् । कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि ॥५२॥
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः । लघ्वेणकाजिनं तद्वत् वत्सं च परिकल्पयेत् ॥५३॥

चाँदी के पात्रों में कुशोदक रखे ॥३९॥ उसके बाद सारी रात नृत्य एवं गीत करायें । उसके बाद रात्रि के तीन प्रहर वीत जाने पर ब्राह्मणों के पास जाकर अपनी शक्ति के अनुसार तीन अथवा एक ब्राह्मण दम्पत्तियों की पूजा माला तथा चन्दन से करे ॥४०-४१॥ इसके पश्चात् शयन स्थान की **जलशायिने नमः** इस मन्त्र से करे । इसके बाद गीत तथा वाद्य के द्वारा रात्रि में जागरण करे लेने पर ॥४२॥ सबेरा होने पर ब्राह्मण दम्पती की पूजा करके और अपनी शक्ति के अनुसार उदारता पूर्वक उनको भोजन कराये ॥४३॥ भक्ति पूर्वक पुराणों का श्रवण करते हुए उस दिन को बिताये । इसी प्रकार प्रत्येक मास में विधिपूर्वक विशोक द्वादशी का व्रत करे ॥४४॥ वर्ष की समाप्ति होने पर जब व्रत समाप्त हो जाय तो गुड़ की गौ के साथ शय्यादान करे । शय्या में अच्छे मसनद, विस्तर और चादर को होना चाहिये ॥४५॥ इसके बाद हे नरेश ! जिस तरह आपको छोड़कर लक्ष्मी कहीं नहीं जाती है उसी तरह से सदा सुन्दर रूप आरोग्य तथा शोक राहित्य मुझमें बने रहें ॥४६॥ जिस तरह से श्रीभगवान् के बिना अकेले लक्ष्मीजी कहीं भी नहीं जाती हैं, उसी तरह से मुझमें शोक राहित्य तथा श्रीभगवान् में श्रेष्ठ भक्ति बनी रहे ॥४७॥ इस तरह से गुड निर्मित धेनु से युक्त शय्या की मन्त्र पूर्वक स्तुति करके कल्याण चाहने वाले व्रती को चाहिऐ कि लक्ष्मी, सूर्य तथा शय्या इत्यादि को ब्राह्मण को दान दे दे ॥४८॥ ताजा कमल करवीर, कुंकुम, केतकी, सिन्धुवार, चमेली, गन्धपाटला (सुगन्धित गुलाब), कदम्ब, कुब्जक तथा जाती (जूही) के पुष्प पूजन में प्रशस्त होते हैं । **भीष्मजी ने कहा—** हे मुनीश्वर ! आप गुडधेनु का विधान मुझे बतलायें ॥५०॥ उस गुडधेनु को कैसा होना चाहिए तथा किस मन्त्र से उसका दान करना चाहिए उसे आप मुझे बतलायें । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** गुडधेनु के विधान तथा उसके दान का फल मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥५१॥ वह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है चार हाथ लम्बा तथा जिसके

प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुं मृदा वा गां सवत्सकां। उत्तमा गुढधेनुः स्यात्सदा भारचतुष्टयम् ॥५४॥
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता। अर्द्धभारेण वत्सस्स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु॥५५॥
चतुर्थांशेन वत्सः स्यादगृहवित्तानुसारतः। धेनुवत्सौ कृतौ चोभौ सितसूक्ष्मांबरावृतौ॥५६॥
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ। सितसूत्रासिराजालौ सितकंबलकंबलौ॥५७॥
ताम्रगंडक पृष्ठौ द्वौ सितचामरलोमकौ। विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ॥५८॥
काञ्चनाक्षियुगोपेताविन्द्रनीलकनीनिकौ। क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहौ शुभ्रातिकमनीयकौ॥५९॥
सुवर्णशृंगाभरणौ राजताढ्यखुरौ च तौ। नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगंधकरंडकौ ॥६०॥
इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैस्तथार्चयेत्। या लक्ष्मीस्सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ॥६१॥
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु। विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसौ॥६२॥
चंद्रार्कशक्रशक्तिर्या सा धेनु र्वरदास्तु मे। स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः॥६३॥
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माद्भूतिं प्रयच्छ मे। एवमामंत्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥६४॥
विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामपि पठ्यते। यास्तु पापविनाशिन्यः पठ्यंते दश धेनवः॥६५॥
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप। प्रथमा गुडधेनुः स्यद् धृतधेनुरथापरा ॥६६॥

आगे गला रहे, ऐसा मृगचर्म पृथिवी पर बिछाये ॥५२॥ पृथिवी को गोबर से लिपा हुआ होना चाहिए और उस पर चारो ओर कुश बिछा दे। उसी तरह बछड़े के लिए छोटा मृगचर्म बिछाये ॥५३॥ उसके ऊपर गुड अथवा मिट्टी की गौ बनाये। गुड की धेनु उत्तम होती है। चार भार वजन वाली गुडधेनु को होना चाहिए ॥५४॥ बछड़ा एक भार गुड का होना चाहिए। दो भार गुड की गौ मध्यम कोटि की होती है। उस स्थिति में बछड़ा आधे भार गुड का होना चाहिए। एक भार गुड की गौ अधम कोटि की होती है ॥५५॥ अपने वित्त के अनुसार बछड़े को गौ के चौथाई भार वाला बनना चाहिए। गौ और बछड़ा दोनों के बन जाने पर उसे श्वेत तथा महीन वस्त्र ओढा दे ॥५६॥ उसका सीपी से दोनों कान बनाये। ईख का पैर बनाये सुन्दर मोतियों से दोनों नेत्र को बनाये। उजले सूत्र से उसके स्नायुओं को वनाये। और उजले कंबलों से उसके चमड़ों की कल्पना करे। उन दोनों के गाल तथा पीठ ताम्बे का होना चाहिए धवल चामरों से उसके रोओं को बनाये। मूंगों से उसकी भौहों को बनाये उसका स्तन नवनीत (मक्खन) से वनाये॥५८॥ उनकी पूच्छ रेशम से बनाये, दोहनपात्र कांसे का होना चाहिए। दुग्ध पात्र को श्वेत तथा सुन्दर होना चाहिए ॥५९॥ सोने का सींग बनाये और चाँदी का खुर बनाये उनके घ्राण और नाक इत्यादि को अनेक प्रकार के फलों से बनाये ॥६०॥ इसतरह से गुड धेनु और उसक बछड़े का निर्माण करके उसकी पूजा धूप तथा दीप से करे। उसके बाद प्रार्थना इन मन्त्रों से करे। जिस लक्ष्मी का निवास सभी प्राणियों में है तथा जो लक्ष्मी समस्त देवताओं में रहती हैं ॥६१॥ वही लक्ष्मी धेनुरूप से विद्यमान होकर मेरे पापों को नष्ट कर दें। भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में जिस लक्ष्मीजी का निवास है जो लक्ष्मी अग्नि में स्वाहा रूप से विद्यमान रहती है ॥६२॥ जो लक्ष्मी चन्द्रमा, सूर्य तथा इन्द्र में शक्ति रूप से विद्यमान रहती हैं वही धेनु रूप से मुझे वर प्रदान करें। चूकि आप मुख्य पितरों की स्वधा रूपिणी और देवताओं की स्वाहा स्वरूपिणी हैं ॥६३॥ धेनु सभी पापों को विनष्ट करने वाली होती है, अतएव आप मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें। इस तरह से प्रार्थना करके उस गौ को ब्राह्मण को दान दे देना चाहिए ॥६४॥ इस तरह से सभी प्रकार की गायों का विधान बतलाया गया है। जो पापों को विनष्ट करने वाली दश प्रकार की गौ बतलायी गयी हैं ॥६५॥ हे राजन्! उन सबों के नाम और स्वरूप को मैं बतला रहा हूँ। पहली धेनु गुड धेनु है, दूसरी घृत

तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलनामिका। क्षीरधेनुः पंचमी च मधुधेनुस्तथा परा ॥६७॥
सप्तमी शर्कराधेनुरष्टमी दधिकल्पिता। रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ॥६८॥
कुंभास्स्यू रसधेनूनामितरासां स्वराशयः। सुवर्णधेनुं चाप्यत्र केचिदिच्छंति मानवाः ॥६९॥
नवनीतेन तैलैश्च तथान्येपि महर्षयः। एतदेव विधानं स्यात्तएवोपस्करास्स्मृताः ॥७०॥
मंत्रावाहनसंयुक्तः सदा पर्वणि पर्वणि। यथा श्राद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥७१॥
गुडधेनुप्रसंगेन सर्वास्तव मयोदिताः। अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः ॥७२॥
व्रतानामुत्तमं यस्माद्विशोकद्वादशीव्रतम्। तदंगत्वेन चैवात्र गुडधेनः प्रशस्यते ॥७३॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते तथा पुनः। गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्वसु ॥७४॥
विशोकद्वादशी चैषा सर्वपापहरा शुभा। यामुपोष्य नरो याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥७५॥
इह लोके ससौभाग्यमायुरारोग्यमेव च। वैष्णवं पुरमाप्नोति मरणे स्मरणं हरेः ॥७६॥
नवार्बुदसहस्राणि दशचाष्टौ च धर्मवित्। न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य संजायते नृप ॥७७॥
नारी वा कुरुते या तु विशोकद्वादशीमिमाम्। नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात् ॥७८॥

यस्मादग्रे हरेर्नृत्यमनन्तं गीतवादनम्।
इति पठति यइत्थं यः शृणोतीह सम्यक् मधुमुरनरकारेरर्चनं वाथ पश्येत् ॥७९॥
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके स वसति विबुधौघैः पूज्यते कल्पमेकम्।

धेनु है ॥६६॥ तीसरी धेनु का नाम तिल धेनु है चौथी धेनु जल धेनु है। पाञ्चवीं धेनु दुग्ध धेनु है और छठीं धेनु मधु (शहद) धेनु है ॥६७॥ सातवीं धेनु शर्करा (चीनी) धेनु और आठवीं धेनु दधि धेनु हैं। नवीं धेनु रस धेनु हैं और दशवी धेनु गौ धेनु हैं ॥६८॥ रस धेनु के तो घड़े होते हैं, उससे भिन्न जितनी धेनु हैं (दही, दूध, घी इत्यादि की धेनु) उनकी राशि में ही धेनु की कल्पना की जाती है। कुछ लोग इस विषय में सुवर्ण धेनु को भी बतलाते हैं॥६९॥ महर्षियों ने नवनीत तथा तेल की भी धेनुओं को बतलाया है। ये ही धेनुओं का विधान और उनकी सामग्रियाँ हैं ॥७०॥ उनका दान भिन्न-भिन्न पर्वो पर उनके मन्त्र तथा आवाहन पूर्वक करना चाहिए। श्रद्धा पूर्वक दान करने पर ये भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली होती हैं ॥७१॥ उन सारी बातों को मैंने गुड धेनु के ही प्रसङ्ग में आपकों बतला दिया है। ये सभी धेनुयाँ सम्पूर्ण यज्ञों के फलों को देने वाली तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाली एवं मङ्गलमयी हैं ॥७२॥ विशोका द्वादशी सभी व्रतों में उत्तम व्रत है, और उसका अङ्गभूत होने के कारण गुड धेनु सबों में श्रेष्ठ हैं ॥७३॥ गुड धेनु आदि का दान, उत्तरायण आदि अयनों, संक्रान्तियों, व्यतीपात योग के होने पर तथा ग्रहण आदि के अवसर पर करना चाहिए ॥७४॥ यह विशोक द्वादशी सभी पापों को विनष्ट करने वाली तथा मङ्गलमयी हैं। उसका उपवास करके मनुष्य भगवान् विष्णु के परम पद में चला जाता है ॥७५॥ इस लोक में आयु, आरोग्य तथा सौभाग्य को प्राप्त करके विशोक द्वादशी करने वाला मनुष्य मृत्यु के समय ही श्रीहरि का स्मरण करते हुए श्रीभगवान् के लोक में जाता है ॥७६॥ हे राजन्! उस धर्मज्ञ पुरुष को नव अरब हजार वर्षों तक शोक, दुःख तथा दुर्गति नहीं होती है ॥७७॥ यदि सदा नृत्य गीत करने वाली कोई नारी भी इस विशोक द्वादशी के व्रत को करती है, तो वह भी उसी फल को प्राप्त करती है, जो फल पुरुष को प्राप्त होता है ॥७८॥ चूकि श्रीहरि के समक्ष अनन्त नृत्य, गीत तथा वाद्य होता है। इस तरह से जो इस प्रसङ्ग को पढता है या इस प्रसङ्ग को सुनता है अथवा मधु, मुर, नरक आदि राक्षसों के शत्रु श्रीभगवान् की अर्चना का दर्शन करता है ॥७९॥ अथवा जो व्यक्ति लोगों को

भीष्म उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् ॥८०॥
यदक्षयं पर लोके देवर्षिगणपूजितम् ।

पुलस्त्य उवाच

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा नृपसत्तम ॥८१॥
यत्प्रदातानंतलोकान्प्राप्नोति सुरपूजितान् । पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च ॥८२॥
न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते । तस्माद्दानं प्रवक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात् ॥८३॥
प्रथमो धान्यशैलः स्याद्द्वितीयो लवणाचलः । गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः ॥८४॥
पंचमस्तिलशैलस्स्यात् षष्ठः कार्प्पासपर्वतः। सप्तमो घृतशैलः स्याद्रत्नशैलस्तथाष्टमः ॥८५॥
राजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः । वक्ष्येविधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ॥८६॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये। शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये ॥८७॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथवा पुनः । शुक्लायां पंचदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः॥८८॥
धान्यशैलादयो देयाः कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे। तीर्थेष्वायतने वापि गोष्ठे वा भवनांगणे ॥८९॥
मंडपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् । प्रागुदक्प्रवणं पुण्यं प्राङ्मुखं वा विधानतः ॥९०॥
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशान् । तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद्विष्कंभं पर्वतान्वितम् ॥९१॥
धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः । मध्यमः पंचशतकैः कनिष्ठश्च त्रिभिः शतैः ॥९२॥

इस व्रत को करने की राय देता है, वह भी एक कल्प पर्यन्त इन्द्र के लोक में निवास करता है तथा देवताओं के द्वारा पूजित होता हैं । **भीष्मजी ने कहा—** हे भगवन् ! मैं उस दान के उत्तम माहात्म्य को सुनना चाहता हूँ ॥८०॥ जो दान परलोक में अक्षय तथा देवों एवं ऋषियों के समूह द्वारा पूजित होता है । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे नृपश्रेष्ठ ! मैं दश प्रकार के सुमेरुओं के दान को आपको बतलाता हूँ ॥८१॥ उन सवों का दान करने वाला देवताओं से पूजित अनन्त लोकों को प्राप्त करता है । जिस फल को पुराणों तथा वेदों के पढने से अथवा यज्ञों को करने से नहीं प्राप्त किया जा सकता है जो फल दानों को करने से होता है । इसीलिए मैं क्रमशः पर्वतों के दान का वर्णन करूँगा ॥८३॥ पहला धान्य पर्वत है, दूसरा लवण (नमक) पर्वत है । तीसरा पर्वत गुड पर्वत है, चौथा सुवर्ण पर्वत है ॥८४॥ पाँचवाँ पर्वत तिल पर्वत है, छठा कर्पास (रुई) पर्वत है । सातवाँ घृतपर्वत है, आठवाँ रत्नपर्वत है॥८५॥ नवाँ चाँदी का पर्वत है और दशवाँ शर्करा (चीनी का) पर्वत है । अब मैं इस सबों के दान का विधान क्रमश बतलाता हूँ ॥८६॥ उत्तरायणादि अयनों के बदलने पर, पवित्र विषुव काल में, व्यतीपात योग के होने पर अथवा दिनक्षय के समय अथवा शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को, या ग्रहण के समय, या चन्द्रमा का क्षय (अमावस्या) होने पर ॥८७॥ या विवाह के समय या यज्ञ के समय अथवा द्वादशी तिथि को, अथवा पूर्णिमा के दिन या किसी पवित्र नक्षत्र में विधिपूर्वक ॥८८॥ कार्तिक पूर्णिमा के दिन ज्येष्ठ पुष्कर में धान्यपर्वत आदि का दान देना चाहिए । तीर्थ में, या घर में या गोशाले में, या मकान के आंगन में उत्तराभिमुख का चतुरस्र मण्डप बनवाये । पूर्व की ओर जिसका जल बहता हो अथवा पूर्वाभिमुख होकर विधि पूर्वक इन दोनों को करे ॥८९-९०॥ सबसे पहले गोवर से लीपी हुयी भूमि पर कुशों को बिछाये । उसके बीच में विष्कम्भ पर्वत से युक्त पर्वत का निर्माण करे ॥९१॥ एक हजार द्रोण धान्य का पर्वत सर्वोत्तम कोटि का होता है । पाँच सौ द्रोण का मध्यम कोटि का तथा तीन सौ द्रोण

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।
मूर्द्धन्यवस्थानमथांबरेण कार्यंत्वनेकं च पुनर्द्विजाग्र्यैः ॥९३॥
चत्वारि श्रृंगाणि च राजतानि नितंबभागा अपिराजताः स्स्युः ।
पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो याम्येन गोमेदकपद्मरागैः ॥९४॥
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येनवैडूर्यकपुष्परागैः ।
श्रीखंडखंडैरभितः प्रवालै र्लतान्वितो मौक्तिकप्रस्तराढ्यः ॥९५॥
ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान्पुरारि र्दिवाकरोप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।
तथेक्षु वंशावृतकंदरस्तु घृतोदकप्रस्रवणोदिशासु ॥९६॥
शुभ्रांबराण्यंबुधरावलिः स्यात् पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन ।
वासांसि पश्चादथकर्बुराणि रक्तानि चैवोत्तरतो धनानि ॥९७॥
रौप्यान्महेंद्रप्रमुखांस्तथाऽष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन्क्रमेण ।
नाना वनालीच समंततः स्यान् मनोरमम्माल्यविलेपनं च ॥९८॥
वितानकं चोपरि पंचवर्ण मम्लानपुष्पाभरणं सितं च ।
इत्थं निवेश्यामरशैलमग्र्यं मेरोस्तु विष्कंभगिरीन्क्रमेणा ॥९९॥
तुरीयभागेन चतुर्दिशं च संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाढ्यम् ।
पूर्वेण मंदरमनेकफलैश्च युक्तं कामेन कांचनमयेन विराजमानम् ॥१००॥
याम्येन गंधमदनो विनिवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतवांश्च ।
हैमेन यज्ञपतिना घृतमानसेन वस्त्रेण राजतवनैश्च ससंयुतः स्यात् ॥१०१॥

का अधम कोटि का धान्यपर्वत होता है ॥९२॥ धान्यपर्वत के ऊपर बीच में तीन सुवर्ण या सुवर्ण वृक्षो को स्थापित करे । उसको ऊपर से श्रेष्ठ ब्राह्मण कपड़े से ढँक दे ॥९३॥ उसके चाँदी के चार शिखरों को तथा चाँदी की तलहटी को बनाए उसके पूर्व में मोतियों या हीरों के तथा उसके दक्षिण तरफ पद्मराग मणियों तथा गोमेद को लगाये ॥९४॥ उसके पीछे वाले भाग को नीले रत्नों से बनाये और पश्चिम वाले भाग को वैदूर्यमणि तथा पुष्पराग मणि से बनाये । चारो ओर से श्रीखण्ड के टुकड़ों तथा मूँगे से लताओं को बनाए । उन वृक्षों को मोतियों से बने प्रस्तरों से युक्त होना चाहिए ॥९५॥ इस धान्य पर्वत पर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं सूर्य की सुवर्ण से बनी मूर्तियों को होना चाहिए । उस धान्य सुमेरु की कन्दराओं को ईखदण्ड से घिरा होना चाहिए उसके सभी दिशाओं में घृत रूपी जल चूते रहना चाहिए ॥९६॥ श्वेत वस्त्रों से मेघों को बनाये, उसके पूर्व भागों में पीले वस्त्रों को होना दक्षिण भाग में काले वस्त्रों को होना चाहिए । उत्तर दिशा में मेघों को लाल वस्त्रों से बना होना चाहिए ॥९७॥ चाँदी से निर्मित इन्द्र आदि आठ लोकपालों की क्रमशः स्थापना करके अनेक वनों को चारो ओर से बनाये और उन सबों पर सुन्दर मालाओं और चन्दन को लगाये ॥९८॥ उसके ऊपर पाँच रङ्गों की चाँदनी लगाकर उसे उजले पुष्पों से अलङ्कृत करे । इस तरह से सुमेरु पर्वत का निर्माण करके, उसमें विष्कम्भ गिरियों को क्रमशः उस सुमेरु के चौथाई भाग में चारो दिशाओं में स्थापित करके पुष्पों तथा चन्दनादि से अलङ्कृत करे । पूर्व दिशा में मन्दराचल की स्थापना करे । वह अनेक सुवर्णमय फलों से परिपूर्ण हो ॥९९-१००॥ दक्षिण दिश में गेहू की राशि से परिपूर्ण तथा सुवर्णमय गन्धमादन पर्वत को स्थापित करे । सुवर्ण निर्मित भगवान् विष्णु से युक्त वस्त्र निर्मित मानसरोवर वहाँ होना चाहिए । उसे चाँदी

पश्चात्तिलाचलमनेकसुगंधपुष्प सौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम् ।
आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्वद्व स्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥१०२॥
संस्थाप्य तंविपुलशैलथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सवस्त्रम् ।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरं त माकारयेत्कनककेतुविराजमानम् ॥१०३॥
माक्षीकभद्रसरसा च वनेन तद्वद्रौप्येण भासुरवितानयुतं विधाय ।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराण विद्भि दतैरनिंद्यचरिताकृतिभिर्द्विजेंद्रैः ॥१०४॥
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुंडं कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च ।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीतरूपै रावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥१०५॥
त्वं सर्व देवगणधामनिधे विरूद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशमाशु ।
क्षेमं विधत्स्व कुरू शान्तिमनुत्तमां च संपूजितः परमभक्तिमता मया हि ।।१०६।।

त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः । मूर्तामूर्तमयंबीजमतः पाहि सनातन ॥१०७॥
यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मंदिरम् । रुद्रादित्यवसूनां च तस्माच्छान्ति प्रयच्छ मे ॥१०८॥
यस्मादशून्यममरै र्नारीभिश्च शिरस्तव । तस्मान्मासुद्धमुष्माद्दुःखसंसारसागरात् ॥१०९॥
एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मंदरं चाभिपूजयेत् । यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेनत्र च पर्वत ॥११०॥
शोभसे मंदरक्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव । यस्माच्चूडामणि र्जंबूद्वीपे त्वं गंधमादन ॥१११॥
गंधर्वगणशोभावांस्ततः कीर्तिर्दृढास्तु मे । यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ॥११२॥
हिरण्मयाश्मशोभावांस्तस्मात्पुष्टि र्ध्रुवास्तु मे । उत्तरैः कुरुभि र्यस्मात्सावित्रेण वनेन च ॥११३॥
सुपार्श्व राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे । एवमामंत्र्य तान्सर्वान्प्रभाते विमले पुनः ॥११४॥

से वने वनों से युक्त होना चाहिए ॥१०१॥ उसके पश्चिम भाग में तिल निर्मित पर्वत होना चाहिए उसे सुगन्धित पुष्प, पिप्पल, सुवर्णमय हंस से युक्त होना चाहिए वहाँ चाँदी से पुष्पों को बनवाये, उसके आगे दधि के समान धवलजल को वस्त्र निर्मित होना चाहिए ॥१०२॥ उसके बाद उत्तर दिशा में माष (उड़द) और वस्त्र से सुपार्श्व पर्वत को बनाकर स्थापना करे । उसको पुष्पों से युक्त सुवर्ण निर्मित वट वृक्ष को उसके ऊपर होना चाहिए, फिर उस सुवर्ण के पताकों से सुशोभित बनाये ॥१०३॥ मधुमक्खी के छातों से सरस वन तथा चाँदी से सुशोभित चाँदनी से अलंकृत करके, चारो वेदों के ज्ञाता, दान्त, सदाचार सम्पन्न श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा होम कराये ॥१०४॥ एक हाथ का कुण्ड बनाकर, तिल, यव, घृत तथा कुश से होम कराये, रात्रि में सौम्य गीतों के द्वारा जागरण करे । अब मैं पर्वतों का आवाहन बतलाता हूँ ॥१०५॥ हे देव पर्वत, सुमेरु ! आप सभी देवताओं के आश्रय स्वरूप है, अतएव हमारे विरुद्ध रहने वाले समस्त हमारे घर के तत्त्वों को विनष्ट करें । आप हमारे घर में सर्वोत्तम शान्ति स्थापित करें । मैंने आपकी परमा भक्ति पूर्वक पूजा की है ॥१०६॥ आप ही रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा सम्पूर्ण मूर्त एवं अमूर्त द्रव्य स्वरूप कारण तत्त्व है, अतएव आप मेरी रक्षा करें ॥१०७॥ चूकि आप लोकपालों तथा परमात्मा के मन्दिर हैं । आप रुद्र, आदित्य तथा वसुओं के भी मन्दिर हैं, अतएव आप मेरी रक्षा इस दुःखमय संसार सागर से करें ॥१०९॥ इस तरह से सुमेरु की पूजा करके मन्दराचल की भी पूजा करे और कहे— हे पर्वत ! आप चैत्ररथ वन से तथा भद्राश्व वर्ष से सुशोभित होते हैं ॥१११॥ अतएव आप शीघ्र मेरी तुष्टि करें । हे गन्धमादन तुम जम्बूद्वीप के चूडामणि हो । गन्धर्वगण से सुशोभित आप मेरे यश को सुदृढ बनायें । चूँकि आप केतुमाल वन तथा वैभ्राज वन से ॥११२॥ तथा सुवर्णमय प्रस्तरों से सुशोभित हैं; अतएव आप मेरी पुष्टि को निश्चल बनायें । चूँकि तुम उत्तरकुरु वर्ष और सावित्र वन में सुशोभित हो ॥११३॥ अतएव हे सुपार्श्व पर्वत ! आप मेरी श्री की रक्षा करें । इसतरह से सभी पर्वतों का

स्नात्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् । विष्कंभपर्वतान् दद्यादृत्विग्भ्यः क्रमशो नृप ॥११५॥
गावो देयाश्चतुर्विंशदथवा दश पार्थिव । शक्तितः सप्त चाष्टौ वा पंच दद्यादशक्तिमान्॥११६॥
एकापि गुरवे देया कपिलाथपयस्विनी । पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः॥११७॥
त एव पूजने मंत्रास्तएवोपस्कराः स्मृताः । ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वतः ॥११८॥
स्वमंत्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते । उपवासी भवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते ॥११९॥
विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु पार्थिव । दानेषु चैव ये मंत्राः पर्वतेषु यथाफलम्॥१२०॥
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्नंप्राणाः प्रकीर्तिताः । अन्नाद्भवंति भूतानि जगदन्नेन वर्धते ॥१२१॥
अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः । धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥१२२।
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् । मन्वंतरशतं साग्रं देवलोके महीयते॥१२३॥
अप्सरोगणगंधर्वै राकीर्णेन विराजितः । विमानेन दिवः पृष्ठमायाति नृपसत्तम॥१२४॥
कर्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः। अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् ॥१२५॥
यत्प्रदानान्नरो लोकमाप्नोति शिवसंयुतम्। उत्तमः षोडशद्रोणैः कर्तव्यो लवणाचलः ॥१२६॥
मध्यमश्च तदर्धेन चतुर्भिरधमस्स्मृतः । वित्तहीनो यथाशक्ति द्रोणादूर्ध्वंच कारयेत्॥१२७॥
चतुर्थांशेन विष्कंभपर्वतान्कारयेत्पृथक्। विधानं पूर्ववत्कुर्याद्ब्रह्मादीनां च सर्वदा ॥१२८॥
तद्वद्धेममयं सर्वलोकपालनिवेशनम् । सरांसि वनवृक्षादितद्व च्चान्यान्निनिवेशयेत् ॥१२९॥

आवाहन करके प्रातःकाल ॥११४॥ स्नान करे बीच के श्रेष्ठ पर्वत को अपने आचार्य को दान दे दे । हे राजन् ! इसके बाद विष्कम्भ पर्वतों को ऋत्विजों को दान दे ॥११५॥ हे पार्थिव ! चौबीस गायों का या दश गायों का दान करे या सात या आठ गायों का दान दे । यदि शक्ति न हो तो पाँच गायों का दान दे ॥११६॥ कम-से-कम एक दूध देने वाली कपिला गौ का दान आचार्य को अवश्य दे । सभी पर्वतों के दान की यही विधि है ॥११७॥ उनके पूजन के वे ही मन्त्र है तथा उनकी सामग्री भी वही है, जो धान्यपर्वत की सामग्री है । ग्रहों, लोकपालों तथा ब्रह्मा आदि की भी पूर्ववत् ही स्थापना करे ॥११८॥ उन पर्वतों के मन्त्रों से ही सर्वत्र होम करना चाहिए । व्रती को सदा उपवास करना चाहिए । यदि उपवास करने का सामर्थ्य न हो तो रात्रि में भोजन कर लें ॥११९॥ हे राजन् ! आप सभी पर्वतों के विधान को क्रमशः सुनें । उन पर्वतों का दान करने से जो फल होते हैं उन सबो को आप सुनें॥१२०॥ अन्न को ही ब्रह्म कहा गया है और अन्न को ही प्राण भी कहा गया है । अन्न से ही सभी भूत उत्पन्न होते हैं, जगत् अन्न से ही बढता है ॥१२१॥ अन्न ही लक्ष्मी तथा नारायण दोनों हैं । अतएव हे नगोत्तम ! आप धान्यपर्वत के रूप से मेरी रक्षा करे ॥१२२॥ इस विधि से जो धान्यमय पर्वत का दान करता है, वह देवलोक में सौ मन्वन्तरों से भी अधिक समय तक पूजित होता है ॥१२३॥ हे राजश्रेष्ठ ! वह पुरुष अप्सराओं तथा गन्धर्वों से परिपूर्ण विमान से स्वर्गलोक में जाता है ॥१२४॥ और धर्मो की समाप्ति हो जाने पर इस संसार में वह राजराज (राजाओं का भी राजा) होता है । अब मैं उत्तम लवणाचल (नमक पर्वत) का वर्णन करता हूँ ॥१२५॥ उसका दान करने वाला मनुष्य शिवलोक में जाता है । सोलह द्रोणों का लवणाचल उत्तम होता है ॥१२६॥ आठ द्रोण का वह मध्यम होता है और चार द्रोण का नमक पर्वत अधम कोटि का होता है । निर्धन व्यक्ति एक द्रोण से अधिक जितना हो सके उतने का ही अपनी शक्ति के अनुसार लवणाचल बनाये ॥१२७॥ जितने भी द्रोण का बनाये उसके चौथाई नमक से वह विष्कम्भ पर्वतों को बनाये । ब्रह्मा आदि का विधान धान्य पर्वत के ही समान करना चाहिए ॥१२८॥

कुर्याज्जागरमत्रापि दानमंत्रान्निबोधत । सौभाग्यरससंयुक्तो यतोऽयं लवणे रसः ॥१३०॥
तदात्मकत्वेन च मा पाह्यापन्नं नगोत्तम । यस्मादन्ये रसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना ॥१३१॥
प्रियश्च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छांतिप्रदो भव । विष्णुदेहसमुद्भूतो यस्मदारोग्यवर्धनः ॥१३२॥
तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् । अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम् ॥१३३॥
उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम् ॥१३४॥
यत्प्रदानान्नरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितः । उत्तमो दशभिर्भारै र्मध्यमः पंचभिर्मतः ॥१३५॥
त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्धेनाल्पवित्तवान् । तद्वदामंत्रणं पूजां हैमवृक्षान्सुरार्चनम् ॥१३६॥
विष्कंभपर्वतांस्तद्वत्सरांसि वनदेवताः । होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम् ॥१३७॥
धान्यपर्वतवत्कुर्यादिमं मंत्रमुदीरयेत् । यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोयं जनार्दनः ॥१३८॥
सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् । प्रणवः सर्वमंत्राणां नारीणां पार्वती यथा ॥१३९॥
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः । मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददातु गुडपर्वतः ॥१४०॥
यस्मात्सौभाग्यदायिन्या धामत्वं गुडपर्वत । निर्मितश्चासि पार्वत्या तस्मान्मां पहि सर्वदा ॥१४१॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् । संपूज्यमानो गंधर्वैं गौरीलोके महीयते ॥१४२॥
पुनः कल्पशतांते च सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । आयुरारोग्यसंपन्नः शत्रुभिश्चापराजितः ॥१४३॥

उसी के समान सोने के लोकपाल आदि को बनाना चाहिए । धान्य पर्वत के ही समान सरोवर, वन तथा वृक्ष आदि का भी सन्निवेश करना चाहिए ॥१२९॥ लवणाचल के दान में भी रात्रि को जागरण करना चाहिए । अब आप इसके दान के मन्त्रों को सुनें । लवण का रस सौभाग्य रस से युक्त होता है ॥१३०॥ हे नगोत्तम ! (पर्वत श्रेष्ठ) तदात्मक होने के कारण आप मेरी रक्षा करें । चूकि लवण के बिना दूसरे रस उत्कट नहीं हो पाते हैं ॥१३१॥ और आप शिव तथा शिवा दोनों के प्रिय है, अतएव आप मुझे शान्ति प्रदान करें । आप भगवान् विष्णु के शरीर से उत्पन्न हैं और आरोग्य को बढाते हैं ॥१३२॥ इसलिए आप पर्वत रूप से इस संसार सागर से मेरी रक्षा करें । जो व्यक्ति इस विधि से लवणाचल का दान करता है ॥१३३॥ वह एक कल्प तक पार्वती जी के लोक में निवास करता है और उसके बाद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । इसके बाद मैं आपको गुड पर्वत के दान की विधि का वर्णन करता हूँ॥१३४॥ गुड पर्वत का दान करने वाला मनुष्य देवताओं द्वारा सम्मानित होकर स्वर्गलोक में जाता है । दश भारों का गुड पर्वत उत्तम होता है । पाँच भारों का वह मध्यम कोटि का होता है ॥१३५॥ तीन भार का गुड पर्वत अधम कोटि का होता है । और जो वित्तहीन है वह डेढ भार का गुड पर्वत बनाये । इसमें भी पूर्ववत् ही आवाहन, पूजन और होम तथा वृक्ष के देवताओं की पूजा करनी चाहिए ॥१३६॥ पूर्ववत् ही विष्कम्भ पर्वत, सरोवरों, वन देवताओं, होम, रात्रि जागरण तथा लोकपालों का अधिवास करना चाहिए ॥१३७॥ इन सभी कार्यों को धान्य पर्वत के ही समान करना चाहिए । इस पर्वत के दान में इन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए । जिस प्रकार सभी देवताओं में सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं ॥१३८॥ उसी तरह वेदों में सामवेद श्रेष्ठ है और योगियों में भगवान् शङ्कर श्रेष्ठ है, सभी मन्त्रों में प्रणव (ओंकार) श्रेष्ठ है तथा नारियों में पार्वतीजी श्रेष्ठ हैं ॥१३९॥ उसी तरह रसों में श्रेष्ठ ईख का रस बतलाया गया है । इसीलिए यह गुड़ पर्वत मुझको सर्वोत्तम लक्ष्मी प्रदान करे ॥१४०॥ हे गुड़ पर्वत आप सौभाग्यदायिनी (पार्वती जी) के आश्रय हैं, और पार्वती ने ही तुम्हें बनाया है, इसीलिए तुम मेरी सदा रक्षा करो ॥१४१॥ जो व्यक्ति इस विधि से गुडपर्वत का दान करता है वह गन्धर्वों के द्वारा पूजित होते हुए गौरीजी के

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्। यस्य प्रदानाद्भवनं वैरिंचं यांति मानवा: ॥१४४॥
उत्तम: पलसाहस्त्रो मध्यम: पंचभि: शतै: । तदर्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोपि मानव: ॥१४५॥
दद्यादेकपलादूर्द्ध्वं यथाशक्ति विमत्सर: । धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्याद्राजसत्तम ॥१४६॥
विष्कंभशैलांस्तद्वच्च ऋत्विग्भ्य: प्रतिपादयेत् । नमस्ते सर्वबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नम: ॥१४७॥
यस्मादनंतफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय । यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात्पुत्रो जगत्पते: ॥१४८॥
हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम। अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥१४९॥
स याति परमं ब्रह्मलोकमानंदकारकम्। तत्र कल्पशतं तिष्ठेत्ततो याति परा गतिम् ॥१५०॥
अथात: संप्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानत: । यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥१५१॥
उत्तमो दशभिर्द्रोणै र्मध्यम: पंचभि: स्मृत: । त्रिभि: कनिष्ठो राजेंद्र तिलशैल: प्रकीर्तित: ॥१५२॥
पूर्ववच्चापरं सर्वं विष्कंभपर्वतादिकम् । दानमंत्रं प्रवक्ष्यामि यथा च नृपपुंगव॥१५३॥
यस्मान्मधुवधे विष्णो र्देहस्वेदसमुद्भवा: । तिला: कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छांतिप्रदो भव॥१५४॥
हव्यकव्येषु यस्माच्च तिला एव हि रक्षणम् । लक्ष्मीं च कुरु शैलेंद्र तिलाचल नमोस्तु ते ॥१५५॥
इत्यामंत्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् । स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥१५६॥
कार्पासपर्वतश्चैव विंशद्भरैरिहोत्तम: । दशभि र्मध्यम: प्रोक्त: कनिष्ठ: पंचभिर्मत: ॥१५७॥

लोक में जाता है ॥१४२॥ इसके बाद सौ कल्पों के बीत जाने पर वह सप्त द्वीपाधिपति होता है और वह आयु तथा आरोग्य से सम्पन्न होता है, तथा कोई भी शत्रु उसे परास्त नहीं कर पाता है ॥१४३॥ अब मैं पापों के विनाशक सुवर्णाचल का वर्णन करता हूँ। उसको प्रदान करने वाला ब्रह्माजी के लोक में जाता है ॥१४४॥ एक हजार पल का सुवर्णाचल उत्तम कोटि का होता है। मध्यम कोटि का वह पाँच सौ पलों का होता है। उसके आधे ढाई सौ पल का सुवर्णाचल अधम कोटि का होता है। इस तरह अल्प वित्त वाला मनुष्य ॥१४५॥ भी एक पल से अधिक भार का ही सुवर्णाचल बनवाकर दान करे। धान्य पर्वत के ही समान सभी कार्यो को करना चाहिए ॥१४६॥ उसी तरह विष्कम्भ पर्वतों को ऋत्विजों को ही देना चाहिए। दान देते समय इस मन्त्र को पढना चाहिए। सबों के बीज स्वरूप तथा ब्रह्म गर्भ आपको नमस्कार है ॥१४७॥ हे शिलोच्चय ! (पर्वत) आप अनन्त फल देने वाले हैं। आप अग्नि की सन्तान हैं और जगत्पति के पुत्र हैं ॥१४८॥ हे नगोत्तम (पर्वतश्रेष्ठ) आप सुवर्णाचल रूप से मेरी रक्षा करें। इस विधि से जो सुवर्ण पर्वत का दान करता है ॥१४९॥ वह आनन्दप्रद परब्रह्म के लोक में चला जाता है। वहाँ पर सौ कल्पों तक रहकर मुक्त हो जाता है ॥१५०॥ अब मैं आपको तिल पर्वत का विधान बतलाता हूँ उसका दान करने वाला व्यक्ति सर्वोत्तम विष्णुलोक में जाता है ॥१५१॥ दश द्रोणों का तिल पर्वत उत्तम होता है। पाँच द्रोणों का मध्यम कोटि का होता है। हे राजेन्द्र ! तीन द्रोण का तिल पर्वत अधम कोटि का होता है ॥१५२॥ इसमें भी पहले के ही समान विष्कम्भ पर्वत आदि का दान करना चाहिए। हे राजश्रेष्ठ ! अब मैं तिल पर्वत के दान के मन्त्रों को बतलाता हूँ ॥१५३॥ चूंकि भगवान् विष्णु के मधु नामक दैत्य का वध करते समय उनके शरीर से निकले हुए स्वेद से तिल, कुश तथा माष (उड़द) उत्पन्न हुए अतएव तुम मुझे शान्ति प्रदान करो ॥१५४॥ हव्य एवं कव्य की रक्षा चूँकि तिल से ही की जाती है, हे तिलाचल ! आप मेरी लक्ष्मी को बढायें आप को नमस्कार हैं ॥१५५॥ इसतरह से आमन्त्रित करके जो व्यक्ति उत्तम तिल पर्वत का दान करता है, वह भगवान् विष्णु के लोक में चला जाता है। वह पुन: इस संसार में नहीं आता है ॥१५६॥ कर्पास पर्वत बीस भारों का उत्तम होता है। दश भारों का मध्यम

भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः । धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्यं राजसत्तम ॥१५८॥
प्रभातायां च शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयेत् । त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा ॥१५९॥
कार्पासाद्रे नमस्तस्मादघौघध्वंसनो भव । इति कार्पास शैलेंद्रं यो दद्याच्छर्वसंनिधौ ॥१६०॥
रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । अथातः संप्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् ॥१६१॥
तेजोमयं घृतं पुण्यं महापातकनाशनम् । विंशत्या घृतकुंभानामुत्तमः स्याद्घृताचलः ॥१६२॥
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पंचभिस्त्वधमः स्मृतः । अल्पवित्तोपि कुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः ॥१६३॥
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत् । शालितंडुलपात्राणि कुंभोपरि निवेशयेत् ॥१६४॥
कारयेत्संहतान्नुच्चान्यथाशोभं विधानतः । वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदंडफलादिकैः ॥१६५॥
धान्यपर्वतवत्सर्वं विधानमिह पठ्यते । अधिवासनपूर्वंहि तद्वद्धोमसुरार्चनम् ॥१६६॥
प्रभातायां च शर्वर्यां गुरवे विनिवेदयेत् । विष्कंभपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यः शांतमानसः ॥१६७॥
संयोगाद् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसि । तस्माद्घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शंकरः ॥१६८॥
यस्मात्तेजोमयं ब्रह्मघृते चैव व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर ॥१६९॥
अनेन विधिना दद्याद् घृताचलमनुत्तमम् । महापातकयुक्तोपि लोकमायाति शांभवम् ॥१७०॥
हंससारसयुक्तेन किंकिणीजालमालिना । विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः ॥१७१॥
विचरेत्पितृभिः सार्धं यावदाभूतसंप्लवम् । अथातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् ॥१७२॥

कोटि का होता है और पाँच भारों का कनिष्ठ होता है ॥१५७॥ अल्प धन वाला व्यक्ति एक भार का कर्पास पर्वत दान करे । इसमें वित्तशाठ्य (कंजूसी) न करे । हे राजश्रेष्ठ ! इसमें धान्यपर्वत के ही समान सब कुछ करना चाहिए॥१५८॥ इसका दान रात बीत जाने पर देना चाहिए । उस समय दाता इस तरह से कहे— इस संसार के सभी लोगों के आवरण स्वरूप तुम ही हो ॥१५९॥ हे कर्पास पर्वत ! तुमको नमस्कार है, मेरे समस्त पाप समूह को तुम विनष्ट करो । इस प्रकार से जो व्यक्ति शङ्करजी के सन्निकट कर्पास पर्वत का दान करता है ॥१६०॥ वह रुद्र लोक में जाकर एक कल्प तक निवास करता है, उसके बाद वह संसार में आकर राजा होता है । अब मैं सर्वोत्तम घृत पर्वत का वर्णन करता हूँ ॥१६१॥ घृत तेजोमय तथा महापातकों को विनष्ट करने वाला होता है । बीस घड़ों का घृतपर्वत सर्वोत्तम होता है ॥१६२॥ दश घड़ों का वह मध्यम कोटि का होता है और पाँच घड़ों का घृत पर्वत अधम कोटि का होता है । जो अल्प वित्त वाले लोग हैं वे दो घड़ों का घृत पर्वत दान करें । उसके चौथाई भाग से विष्कम्प पर्वतों को वनाये । घड़ों के ऊपर चावल को पात्र में भरकर पूर्णपात्र बनाये ॥१६४॥ उन घड़ों को ऐसे ऊँचा करे कि वे देखनें में अच्छे लगे । उसको वस्त्र तथा ईख एवं फलों से वेष्टित करके अलङ्कृत करे ॥१६५॥ इसके भी सारे विधान धान्य पर्वत के ही समान होते हैं । उसी के समान इस घृतपर्वत का अधिवासन पूर्वक होम तथा देवताओं का पूजन करे ॥१६६॥ रात्रि के बीत जाने पर प्रातःकाल उसका दान अपने आचार्य के लिए करे । शान्तमना होकर विष्कम्भ पर्वतों का दान ऋत्विजों को देना चाहिए । चूकि घृत अमृत के तेज के संयोग से उत्पन्न हुआ है इसलिए घृतार्चि स्वरूप भगवान् शङ्कर प्रसन्न हों ॥१६८॥ चूकि तेजोमय ब्रह्म का निवास घृत में है, अतएव हे पर्वत ! घृतपर्वत रूप से तुम हमारी रक्षा करो ॥१६९॥ इस विधि से श्रेष्ठ घृताचल (घृत पर्वत) का दान करना चाहिए । घृत पर्वत का दान करने वाला यदि महापापी भी है तो भी वह भगवान् शङ्कर के लोक में जाता है ॥१७०॥ हंसों तथा सारस आदि पक्षियों से युक्त, जिसमें घुंघुरू बंधे हुए रहते हैं ऐसे अप्सराओं, सिद्धों तथा विद्याधरों से युक्त

मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतस्स्यादनुत्तमः । मध्यमः पंचशतिकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः ॥१७३॥
चतुर्थांशेन विष्कंभपर्वताः स्युः समन्ततः । पूर्वेण वज्रगोमेदै र्दक्षिणेनेंद्रनीलकैः ॥१७४॥
पुष्परागैर्युतः कार्योविद्वद्भिर्गंधमादनः । वैडूर्यविद्रुमैः पश्चात्संमिश्रोविपुलाचलः ॥१७५॥
पद्मरागैः ससौवर्णै रुत्तरेणापि विन्यसेत् । धान्यपर्वतवत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत् ॥१७६॥
तद्वदावाहनं कृत्वा वृक्षान्देवांश्च कांचनान् । पूजयेत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते स्याद्विसर्जनम् ॥१७७॥
पूर्ववद्गुरुऋत्विग्भ्य इमं मंत्रमुदीरयेत् । यथादेवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः ॥१७८॥
त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल। यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिमेतिजनार्दनः ॥१७९॥
पूजामंत्रप्रसादेन तस्मान्नः पाहि पर्वत । अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् ॥१८०॥
स याति वैष्णवं लोकममरेश्वरपूजितः । यावत्कल्पशतं साग्रं वसेत्तत्रनराधिप ॥१८१॥
रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । ब्रह्महत्यादिकं किंचिदत्रामुत्राथवा कृतम् ॥१८२॥
तत्सर्व नाशमायाति गिरिर्वज्राहतो यथा । अथातः संप्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम् ॥१८३॥
यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकं नरोत्तम। दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः ॥१८४॥
पंचभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः । अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितः सदा ॥१८५॥
विष्कंभपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् । पूर्ववद्राजतान् कुर्यान्मंदरादीन्विधानतः ॥१८६॥

विमान से घृत पर्वत का दान करने वाला पुरुष ॥१७१॥ प्रलय काल पर्यन्त पितृगणों के साथ अपनी इच्छानुसार विचरण करता है । अब मैं श्रेष्ठ रत्न पर्वत के दान की विधि का वर्णन करता हूँ ॥१७२॥ एक हजार मुक्ताओं का रत्नाचल उत्तम कोटि का होता है । पाँच सौ मुक्ताओं का वह मध्यम कोटि का होता है और तीन सौ मुक्ताओं का वह अधम कोटि का होता है । जितनी मुक्ताओं का रत्नाचल बनाये उसके चतुर्थ अंश से विष्म्भक पर्वतों को बनाये । पूर्व दिशा में हीरा और गोमेद से दक्षिण दिशा में इन्द्र नीलमणि से ॥१७३-१७४॥ तथा पुष्पराग मणि से गन्धमादन नामक विष्कम्भक पर्वत का निर्माण करना चाहिए । पश्चिम दिशा में वैडूर्य तथा विद्रुम दोनों को मिलाकर षिष्कम्भक पर्वत का निर्माण करे ॥१७५॥ सुवर्ण के साथ पद्मराग मणियों के द्वारा उत्तर दिशा में विष्कम्भक पर्वत का निर्माण करे । धान्यपर्वत के ही समान इस रत्न पर्वत के भी दान तथा सारे कार्यों को करना चाहिए ॥१७६॥ उसी के समान वाहनों का निर्माण करके वृक्षों तथा देवताओं को सुवर्ण का बनवाना चाहिए । उन सबों की पूजा चन्दन तथा फूलों से करना चाहिए एवं प्रातःकाल सबों का विसर्जन करे ॥१७७॥ धान्यपर्वत के ही समान आचार्य एवं ऋत्विजों के द्वारा इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए । जिस तरह सभी देवताओं का सभी रत्नों में निवास रहता है ॥१७८॥ अतएव हे रत्नाचल ! तुम मेरी सदा रक्षा करो । जो व्यक्ति इस विधि से रत्नाचल का दान करता है ॥१८०॥ वह देवताओं के स्वामी इन्द्र के द्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है । हे राजन् ! वह भगवान् विष्णु के लोक मे सौ कल्प से भी ज्यादा समय तक निवास करता है ॥१८१॥ उसके बाद वह रूप तथा आरोग्य से युक्त होकर सातो द्वीपों का स्वामी होता है । उसके द्वारा इस लोक में अथवा परलोक में ब्रह्महत्या आदि जो कुछ भी पाप किए गये रहते हैं ॥१८२॥ वे सब उसी तरह से विनष्ट हो जाते हैं जिसतरह वज्र के प्रहार से पर्वत विनष्ट हो गये। अब मैं श्रेष्ठ रौप्य (चाँदी के पर्वत) के दान का वर्णन करता हूँ ॥१८३॥ हे नरोत्तम ! उस रौप्यपर्वत का दान करने वाला मनुष्य सोमलोक में जाता है । उत्तम रजताचल का निर्माण दश हजार पल चाँदी से होता है ॥१८४॥ पाञ्च हजार पल चाँदी से मध्यम कोटि का रजताचल बनता है । ढाई सौ पल चाँदी के द्वारा अधम कोटि का रौप्याचल का

कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशान् कारयेद् बुधः । ब्रह्मविष्ण्वर्कवान्कार्यो नितंबोत्र हिरण्मयः ॥१८७॥
राजतं स्यात्तदन्येषां पर्वतानां च कांचनम् । शेषं च पूर्ववत्कुर्याद्धोमजागरणादिकम् ॥१८८॥
दद्यात्तद्वत्प्रभातेतुगुरवेरौप्यपर्वतम् । विष्कंभशैलानृत्विग्भ्यः पूज्यवस्त्रविभूषणैः ॥१८९॥
इमं मंत्रं पठन्दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः । पितॄणांवल्लभं यस्मादिन्दोर्वा शंकरस्य च ॥१९०॥
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरत् । इत्थं निवेश्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम् ॥१९१॥
गवामयुतसाहस्रफलमाप्नोति मानवः । सोमलोके सगंधर्वैः किन्नराप्सरसां गणैः ॥१९२॥
पूज्यमानो वसेद्विद्वान्यावदाभूतसंप्लवम् । अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम् ॥१९३॥
यस्य प्रदानाद्विष्ण्वर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा । अष्टभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः ॥१९४॥
चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामधमः स्मृतः । भारेण चार्द्धभारेण कुर्याद्यःस्वल्पवित्तवान् ॥१९५॥
विष्कंभपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः । धान्यपर्वतवत्सर्वं हैमांबरसुसंयुतम् ॥१९६॥
मेरोरुपरितः स्थाप्यं हैमं तत्र तरुत्रयम् । मंदारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः ॥१९७॥
एतद्वृक्षत्रयं मूर्ध्निसर्वेष्वपि निवेशयेत् । हरिचंदनसंतानौ पूर्वपश्चिमभागयोः ॥१९८॥
निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले । मंदरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत् ॥१९९॥

निर्माण होता है ॥१८५॥ जो असमर्थ व्यक्ति है, उसको अपनी शक्ति के अनुसार बीस पल से अधिक चाँदी से रजताचल का निर्माण करना चाहिए । उसके चौथाई पल रजत से विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण करे । धान्य पर्वत के ही समान मन्दराचल आदि पर्वतों का निर्माण करे ॥१८६॥ विज्ञ पुरुषों को पहले के ही समान चाँदी के ही लोकपालों को बनवाना चाहिए । रौप्याचल की तलहटी का निर्माण ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य से युक्त करे और उसे सुवर्ण का होना चाहिए ॥१८७॥ अन्य पर्वतों की तलहटी का निर्माण चाँदी और सोने से करे । शेष कार्यों को पहले के ही समान करना चाहिए । पहले के ही समान प्रातःकाल उस पर्वत का दान आचार्य को कर दे और विष्कम्भ पर्वतों का दान ऋत्विजों को करे और उनकी पूजा वस्त्रों तथा आभूषणों से करे ॥१८८-१८९॥ दान देते समय हाथ में कुश लेकर बिना किसी मत्सर (द्वेष) के इस मन्त्र को पढे । चूँकि पितरों, चन्द्रमा तथा शङ्करजी को चाँदी प्रिय है॥१९०॥ इसीलिए हे रजत ! आप हमलोगों की इस शोकमय संसार सागर से रक्षा करें । इस तरह से बनाकर जो व्यक्ति रजताचल का दान करता है ॥१९१॥ वह दश हजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है । वह सोमलोक में गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सराओं से पूजित होते हुए प्रलय काल पर्यन्त निवास करता है । अब मैं उत्तम शर्कराचल (चीनी के पर्वत) का वर्णन करता हूँ ॥१९२-१९३॥ इस शर्कराचल का दान करने से विष्णु, सूर्य तथा रुद्र को प्रसन्नता होती है । आठ भार चीनी के द्वारा उत्तम कोटि का शर्कराचल होता है ॥१९४॥ चारभार चीनी का वह मध्यम कोटि का होता है तथा दो भार चीनी का शर्कराचल अधम कोटि का होता है । जो अत्यल्पपवित्त वाला व्यक्ति हो उसको एक भार अथवा आधे भार का शर्कराचल बनाना चाहिए ॥१९५॥ उसके चौथाई भाग का विष्कम्भ पर्वतों को बनाना चाहिए । इस पर्वत को सुवर्ण तथा वस्त्रों से सजाना चाहिए ॥१९६॥ उस सुमेरु पर्वत के ऊपर सुवर्ण के बने तीन वृक्षों की स्थापना करनी चाहिए । पहला मन्दार वृक्ष हो दूसरा परिजात एवं तीसरा कल्पवृक्ष होना चाहिए ॥१९७॥ इन तीनों वृक्षों को सभी पर्वतों के ऊपर स्थापित करना चाहिए । हरि चन्दन तथा सन्तान इन दो वृक्षों को क्रमशः पूर्वभाग तथा पश्चिम भाग में होना चाहिए ॥१९८॥ इन दोनों वृक्षों को सभी पर्वतों पर स्थापित करना चाहिए और शर्कराचल पर तो अवश्य स्थापित करना चाहिए । मन्दारचल पर्वत पर कामदेव को पूर्वाभिमुख

गंधमादनशृंगे तु धनदः स्यादुदङ्मुखः । प्राङ्मुखो वेदमूर्त्तिस्तु हंसः स्याद्विपुलाचले ॥२००॥
हैमीभवेत्सुपार्श्वे तु सुरभी दक्षिणामुखी । धान्यपर्वतवत्सर्वमावाहनमखादिकम् ॥२०१॥
कृत्वाथ गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्। ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान्मंत्रानुदीरयेत् ॥२०२॥
सौभाग्यामृतसारोयं परमः शर्कराचलः। तस्मादानंदकारीत्वं भव शैलेंद्र सर्वदा ॥२०३॥
अमृतं पिबतां ये तु पतिता भुवि शीकराः। देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि नः शर्कराचल ॥२०४॥
मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा पुनः । तन्मयोसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥२०५॥
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति ब्रह्ममंदिरम् ॥२०६॥
चंद्रसूर्यप्रतीकाशमधिरुह्यानुजीविभिः । सहैव यानमुत्तिष्ठेत्ततो विष्णुप्रभो दिवि ॥२०७॥
ततः कल्पशतांते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्। आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् ॥२०८॥
भोजनं शक्तितः कुर्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः । स्वयं चाक्षारलवणमश्नीयात्तदनुज्ञया ॥२०९॥
पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद्ब्राह्मणालयम्। एतत्ते सर्वमाख्यातं शैलदानमनुत्तमम् ॥२१०॥
यदन्यद्रोचते तुभ्यं तन्मां पृच्छस्व पार्थिव ।

भीष्म उवाच

भगवनभवसंसारसागरोत्तरकारकम् ॥२११॥
किंचिद्व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यफलप्रदम् ।

पुलस्त्य उवाच

सौरधर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ॥२१२॥

होना चाहिए ॥१९९॥ गन्धमादन पर्वत पर कुबेर को उत्तराभिमुख होना चाहिए । विपुलाचल पर वेदमूर्ति हंस को पूर्वाभिमुख होना चाहिए ॥२००॥ सुपार्श्व पर्वत पर सुवर्ण निर्मित दक्षिणाभिमुखी कामधेनु को होना चाहिये । इसमें भी धान्य पर्वत के ही समान आवाहन तथा यज्ञ इत्यादि करना चाहिए ॥२०१॥ इस तरह से करके बीच के पर्वत को आचार्य को दान दे देना चाहिए । शेष चारो विष्कम्भक पर्वतों का दान ऋत्विजों को दे देना चाहिए ॥२०२॥ दान देने के समय इन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए । यह शर्कराचल सौभाग्य रूपी अमृत का सर्वश्रेष्ठ सार है । अतएव हे शैलेन्द्र तुम आनन्द प्रदान करने वाले बनो ॥२०३॥ देवताओं के अमृत पान करते समय जो बूंदें पृथिवी पर गिर पड़ी थीं उन्हीं से तुम उत्पन्न हुए हो, अतएव हे शर्कराचल तुम हमलोगों की रक्षा करो ॥२०४॥ उसके पश्चात् कामदेव के धनुष के मध्यभाग से शर्करा की उत्पत्ति हुयी । महाशैल तुम शर्करामय हो; तुम इस संसार सागर से हमारी रक्षा करो ॥२०५॥ जो मनुष्य इस विधि से शर्कराचल का दान करता है वह सभी पापों से रहित होकर ब्रह्माजी के लोक में जाता है ॥२०६॥ सैकड़ों चन्द्रमा एवं सूर्य के समान तेजः सम्पन्न वह अपने अनुचरों के साथ विमान पर चढकर वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२०७॥ वहाँ पर सौ कल्पों तक निवास करने के पश्चात् वह सातो द्वीपों का स्वामी होता है । वह तीस हजार जन्मों तक आयु तथा आरोग्य से सम्पन्न होता है ॥२०८॥ व्रती सभी पर्वतों पर मत्सर रहित होकर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराता है और उनकी आज्ञा प्राप्त करके वह नमक रहित भोजन करता है ॥२०९॥ फिर पर्वतों की सारी सामग्री को ब्राह्मण के घर पहुँचवा देना चाहिए । इसतरह से मैंने सभी पर्वतों के दान की विधि तुम्हें बतलाया ॥२१०॥ हे राजन् ! आपको जो अच्छा लगे, उसे आप मुझसे पूछिये । **भीष्मजी ने कहा**— हे भगवन् ! कोई ऐसा व्रत बतलाइये जो संसार सागर

विशोकसप्तमीं तद्वत्तृतीयां फलसप्तमीम्। शर्करासप्तमीं कुर्यात्तथा कमलसप्तमीम् ॥२१३॥
मंदारसप्तमीं षष्ठीं सप्तमीं शुभसप्तमी । सर्वाः पुण्यफलाः प्रोक्ताः सर्वा देवर्षिपूजिताः॥२१४॥
विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः । यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्यदिनं भवेत् ॥२१५॥
सा तु कल्याणिनी नाम विजया च निगद्यते। प्रातर्गव्येन पयसा स्नानं नद्यां समाचरेत् ॥२१६॥
शुक्लांबरधरः पद्ममक्षतैः परिकल्पयेत्। प्राङ्मुखोष्टदलंमध्ये तद्वद्वृत्तां च कर्णिकाम्॥२१७॥
पुष्पाक्षताद्भिर्देवेशं विन्यसेत्सर्वतः क्रमात्। पूर्वेण तपनायेति मार्तंडायेति वै ततः ॥२१८॥
याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते। पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले ॥२१९॥
सौम्ये विकर्तनायेति देवायेत्यष्टमे दले। आदावंते च मध्ये च नमोस्तु परमात्मने॥२२०॥
मंत्रै तैस्समभ्यर्च्य नमस्कारांत दापितैः। शुक्लैर्वस्त्रैः फलैर्भक्ष्यै धूपमाल्यानुलेपनैः ॥२२१॥
स्थंडिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन वै । ततो व्याहृतिमंत्रेण विसृज्यद्विजपुंगवान् ॥२२२॥
शक्तितस्तर्पयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः । तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥२२३॥
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः । कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम् ॥२२४॥
भुक्त्वा च वेदविदुषि वैडालव्रतवर्जिते। घृतपात्रं सकनकं सोदकुंभं निवेदयेत्॥२२५॥
प्रीयतामत्र भगवान्परमात्मा दिवाकरः । अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ॥२२६॥

से पार करने वाला हो तथा स्वर्ग एवं आरोग्य रूपी फल को प्रदान करने वाला हो। **महर्षि पुलस्त्य ने कहा**— मैं आपको कल्याण सप्तमी नामक सौर व्रत को बतलाता हूँ ॥२११-२१२॥ विशोक सप्तमी, दूसरी है, तीसरी फल सप्तमी, चौथी शर्करा सप्तमी, पाँचवीं कमल सप्तमी, छठी ॥२१३॥ मंदार सप्तमी और सातवीं शुभ सप्तमी। ये सातों सप्तमियाँ देवों तथा ऋषियों से पूजित तथा पुण्यफल प्रदान करने वाली बतलायी गयी हैं। मैं इन सबों के क्रमानुसार विधानों को बतलाता हूँ। जब शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को रविवार का दिन आये ॥२१४-२१५॥ उस दिन कल्याणिनी नामकी विजया सप्तमी हाती है। उस दिन प्रातःकाल नदी में जाकर गौ के दूध से स्नान करे॥२१६॥ फिर श्वेत वस्त्र धारण करे अक्षतों के द्वारा अष्टदल कमल का निर्माण करे। उसके बीच की कर्णिका को भी वृत्ताकार होना चाहिए ॥२१७॥ पूर्वाभिमुख होकर कमल के बीच में देवेश सूर्यनारायण की स्थापना करे। स्थापना पुष्प, अक्षत एवं जल से करनी चाहिये। उसके बाद प्रत्येक दलों में पूजा करे। पूर्वदल में **तपनाय नमः** इस मंत्र से, अग्नि कोण में **मार्तण्डाय नमः** इस मन्त्र से, दक्षिण दल में **दिवाकराय नमः** से, नैऋत्य में **विधात्रे नमः** से, पश्चिम दिशा में **वरुणाय नमः** से वायव्य में **भास्कराय नमः** से ॥२१९॥ उत्तर दल में **विकर्तनाय नमः** से आठ वे ईशान में **देवाय नमः** इस मंत्र से स्थापना करे। मन्त्रों के आदि, मध्य तथा अत में **नमोऽस्तु परमात्मने** को जोड़ना चाहिए ॥२२०॥ इन्हीं मंत्रों से पूजा करके फिर इन्हीं मन्त्रों से नमस्कार करना चाहिये। उसके बाद वेदी के ऊपर श्वेत वस्त्र, फल, मिष्ठान, धूप, माला, चन्दन, गुड तथा नमक से सूर्य का पूजन करे। उसके बाद **ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्** इन व्याहृतियों के मन्त्रों से विसर्जन करे। उसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणों को ॥२२१-२२२॥ अपनी शक्ति के अनुसार गुड, घी तथा दुग्ध इत्यादि से भोजन कराये। उसके बाद तिल से भरे पात्र तथा सुवर्ण का ब्राह्मण को दान दे ॥२२३॥ इस तरह से नियम का पालन करके सो जाय। फिर प्रातःकाल उठकर, स्नान करके मन्त्र आदि का जप करके ब्राह्मणों के साथ ही घृत मिश्रित खीर का भोजन करे ॥२२४॥ जो पाखण्डी न हो ऐसे वैदिक विद्वान् को घी से भरे पात्र, सुवर्ण तथा जल से भरे घड़े का

ततस्त्रयोदशे मासि गाश्च दद्यात्त्रयोदश । वस्त्रालंकारसंयुक्ताः स्वर्णशृंगाः पयस्विनीः ॥२२७॥
एकामपि प्रदद्याच्च वित्तहीनो विमत्सरः । नवित्तशाठ्यं कुर्वीत यतो मोहात्पतत्यधः ॥२२८॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कल्याणसप्तमीम् । सर्वपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ॥२२९॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यमनंतमिह जायते। सर्वपापहरा चेयं सर्वदैवत पूजिता ॥२३०॥
सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमी । इमामनंतफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम् ॥२३१॥
शृणोति यः पठेद्वापि स च पापैः प्रमुच्यते । विशोकसप्तमीं तद्वद्वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥२३२॥
यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते । माघे कृष्णातिलैस्नातः पंचम्यां शुक्लपक्षतः ॥२३३॥
कृताहारः कृसरसा दंतधावनपूर्वकम् । उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी निशि स्वपेत् ॥२३४॥
ततः प्रभाते उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः । कृत्वा तु कांचनं पद्ममर्कायेति प्रपूजयेत् ॥२३५॥
करवीरेणरक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च । यथाविशोकं भुवनं त्वयैवादित्य सर्वदा ॥२३६॥
तथा विशोकता मे स्यात्त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च । एवं संपूज्य षष्ठ्यां तु भक्त्या संपूजयेद्द्विजान् ॥२३७॥
स्वयं संप्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनैत्यकः । संपूज्य विप्रान्यत्नेन गुडपात्रसमन्वितम् ॥२३८॥
सद्वस्त्रयुग्मं पद्मं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः ॥२३९॥
ततः पुराणश्रवणं कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता । अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः ॥२४०॥

दान दे और कहे कि मेरे इस व्रत से भगवान् सूर्य प्रसन्न हों । इसी प्रकार से प्रत्येक महीने में व्रत करे ॥२२५-२२६॥ उसके बाद तेरहवें मास में, वस्त्र तथा अलङ्कार से अलङ्कृत जिनके सींग में सुवर्ण लगा हो; ऐसी दूध देने वाली तेरह गायों का दान करे ॥२२७॥ धनरहित मनुष्य मत्सर रहित होकर एक भी गौ का दान कर सकता है । वह इस कार्य में कंजूसी न करे, क्योंकि कंजूसी क़रने वाले व्यक्ति का पतन हो जाता है ॥२२८॥ इस विधि से जो व्यक्ति कल्याण सप्तमी का व्रत करता है, वह समस्त पापों से रहित होकर सूर्य लोक में सुशोभित होता है ॥२२९॥ वह इस लोक में आयु, आरोग्य तथा अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है । यह कल्याण सप्तमी सभी पापों को विनष्ट करने वाली तथा सभी देवताओं से पूजित है ॥२३०॥ कल्याण सप्तमी का व्रत सभी दुष्टों को शान्त करने वाला होता है। इस कल्याण सप्तमी के प्रसङ्ग को जो कोई भी पढता अथवा सुनता है, उसको यह व्रत अनन्त फल प्रदान करता है॥२३१॥ इसको पढने अथवा सुनने वाला भी व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है । हे राजवर्य ! अब मैं आपको विशोकसप्तमी के व्रत को बतलाता हूँ ॥२३२॥ विशोक सप्तमी के दिन उपवास करने वाले व्यक्ति को कभी भी शोक नहीं होता है । माघ मास के शुक्ल पक्ष में पञ्चमी तिथि को काली तिल मिश्रित जल से स्नान करे ॥२३३॥ फिर खिचड़ी खाकर मुहँ धोए । उसके बाद ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए रात्रि में सो जाय ॥२३४॥ फिर प्रात:काल उठकर, स्नान करके जप इत्यादि करके पवित्र हो जाय । सुवर्ण का कमल बनवाकर उस पर **अर्काय नमः** इस मंत्र से सूर्य की पूजा करे ॥२३५॥ पूजन लाल करवीर के पुष्प से तथा दो वस्त्रों से करे । उसके बाद प्रार्थना करे कि हे आदित्य ! जिस तरह आपके द्वारा जगत् सदा शोक रहित रहता है ॥२३६॥ उसी तरह आपकी भक्ति के फलस्वरूप मैं प्रत्येक जन्म में शोक रहित बना रहूँ । इसतरह षष्ठी तिथि को भक्ति पूर्वक पूजा करके भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करे ॥२३७॥ फिर सप्तमी के दिन जगकर गोमूत्र से आचमन करे । उसके पश्चात् नित्य कृत्य करके ब्राह्मणों की पूजा करे, तदन्तर ब्राह्मण को दो हजार कमल तथा गुड भरे पात्र का दान दे । उसके बाद तेल तथा नमक से रहित भोजन करे । सप्तमी के दिन मौन व्रत रखे ॥२३८-२३९॥ तदनन्तर ऐश्वर्यकामी को पुराण का

कुर्याद्यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी। व्रतांते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥२४१॥
शय्यां सोपस्करां दद्यात्कपिलां च पयस्विनीम्। अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्येन वर्जितः ॥२४२॥
विशोकसप्तमीं कुर्यात्स याति परमां गतिम्। यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतं भवेत् ॥२४३॥
तावन्नशोकमाप्नोति रोगदौर्गत्यवर्जितः। यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम्॥२४४॥
निष्कामं कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति। यः पठेच्छृणुयाद्वापि विशोकाख्यां तु सप्तमीम्॥२४५॥
सोपींद्रलोकमासाद्य न दुःखी जायते क्वचित्। अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम् ॥२४६॥
यामुपोष्य नरः पापै र्विमुक्तः स्वर्गभाग्भवेत्। मार्गशीर्षे शुभे मासि पंचम्यां नियतव्रतः ॥२४७॥
षष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा तु कांचनम्। शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुंबिने॥२४८॥
रूपं च कांचनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित्। दद्याद्द्विकाल वेलायां भानुर्मे प्रीयतामिति ॥२४९॥
शक्त्या तु विप्रान् संपूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम्। कृत्वा कुर्यात्फलत्यागं यावत्स्यात्कृष्णसप्तमी॥२५०॥
तामुपोष्याथ विधिवदनेनैव क्रमेण तु। तद्वद्धेमफलं दत्वा सुवर्णकमलान्वितम्॥२५१॥
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमालासमन्वितम्। संवत्सरमनेनैव विधिनोभयसप्तमीम् ॥२५२॥
उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूर्यमंत्रमुदीरयेत्। भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शक्रो हरिः शिवः॥२५३॥
श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति। प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्त्तयेत् ॥२५४॥

श्रवण करना चाहिए। इस प्रकार से वह दोनों पक्षों की सप्तमी तिथि को व्रत करे ॥२४०॥ यह व्रत तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि पुनः माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि नहीं आ जाय। व्रत की समाप्ति के अवसर पर सुवर्ण निर्मित कमल से युक्त कलश का दान करना चाहिए ॥२४१॥ सभी सामग्रियों से युक्त शय्या तथा कपिला गौ का दान करना चाहिए। जो व्यक्ति उदारता पूर्वक इस प्रकार से ॥२४२॥ विशोकसप्तमी का व्रत करता है, वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। जब तक उसके करोड़ों जन्म होते हैं ॥२४३॥ तब तक उसको किसी भी प्रकार का शोक, रोग तथा दैन्य नहीं होता है। वह जिन-जिन वस्तुओं को प्राप्त करने की कामना करता है, उन समस्त वस्तुओं को पुष्कल मात्रा में प्राप्त करता है ॥२४४॥ जो व्यक्ति कामना रहित होकर इस व्रत को करता है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति विशोकसप्तमी के इस प्रसङ्ग को पढ़ता अथवा सुनता है, ॥२४५॥ वह भी इन्द्र लोक में चला जाता है, और वह कभी भी दुःखी नहीं होता है। अब मैं इससे भिन्न फलसप्तमी व्रत का वर्णन करता हूँ॥२४६॥ इस फल सप्तमी का व्रत करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक में जाता है। मार्गशीर्ष (अगहन) के महीने के कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि को व्रत रखे ॥२४७॥ षष्ठी तिथि को उपवास करके सुवर्ण कमल बनाकर, उसको चीनी के साथ गृहस्थ ब्राह्मण को दान करे ॥२४८॥ धर्मवेत्ता पुरुष को चाहिए कि वह एक फल को सुवर्ण के समान वनवाकर द्विकाल (दोपहर) की वेला मे भगवान् सूर्य की प्रसन्नता के लिए दान करे ॥२४९॥ सप्तमी के दिन अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों की पूजा करे स्वयं खीरान्न का भोजन करे कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि पर्यन्त फल का त्याग करे ॥२५०॥ इसी क्रम से इस सप्तमी तिथि को भी सविधि उपवास करे। पहले के ही समान सुवर्ण तथा सुवर्ण निर्मित कमल ब्राह्मण को दान दे ॥२५१॥ उसी के साथ चीनी भरा हुआ पात्र, वस्त्र तथा माला भी ब्राह्मण को दे। इसीविधि से एक वर्ष तक दोनों पक्ष की सप्तमी को ॥२५२॥ उपवास करके दान करे और इसी क्रम से सूर्य के वारह नामों का प्रत्येक मास में उच्चारण करे। वे नाम हैं— १. भानुः प्रीयताम्, २. रविः प्रीयताम्, ३. अर्क प्रीयताम्, ४. ब्रह्मा प्रीयताम्, ५. सूर्यः प्रीयताम्, ६. शक्रः प्रीयताम्, ७. हरिः प्रीयताम्, ८. शिवः प्रीयताम्, ९.

प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् । व्रतांते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ॥२५५॥
शर्कराकलशं दद्याद्धेमपद्मफलान्वितम् । यथा न विफलः कामस्त्वद्भक्तानां सदा भवेत्॥२५६॥
तथानंतफलावाप्तिरस्तु मे जन्मजन्मनि । इमामनंतफलदां यः कुर्यात्फलसप्तमीम् ॥२५७॥
भूतभव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेक विंशतिम् । यः शृणोति पठेद्वापि सोपि कल्याणभाग्भवेत्॥२५८॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते। सुरापानादिकं किञ्चिदत्रामुत्र च वा कृतम् ॥२५९॥
तत्सर्वं नाशमायाति यः कुर्यात्फलसप्तमीम्। शर्करा सप्तमीं वक्ष्ये तद्वत्कल्मषनाशिनीम् ॥२६०॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययानंतं प्रजायते। माधवस्यसिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः ॥२६१॥
प्रातः स्नात्वा तिलैः शुभ्रैः शुद्धमाल्यानुलेपनः। स्थंडिले पद्ममालिख्य कुंकुमेन सकर्णिकम्॥२६२॥
तस्मिन्नमः सवित्रेति गंधपुष्पं निवेदयेत्। स्थापयेदुदकुंभं च शर्करापात्रसंयुतम् ॥२६३॥
शुक्लवस्त्रैरलंकृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः। स्वर्णपुष्पसमायुक्तं मंत्रेणानेन पूजयेत् ॥२६४॥
विश्ववेदमयो यस्मात्त्वं वेदेषु च पठ्यसे । त्वमेवामृतसर्वस्वमतः शांतिं प्रयच्छ मे ॥२६५॥
पंचगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत्तत्पार्श्वतः क्षितौ। सौरसूक्तं जपन्नास्ते पुराणश्रवणेन च ॥२६६॥
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः। तत्सर्वं वेदविदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥२६७॥
भोजयेच्छक्तितो विप्रान्शर्कराघृतपायसैः । भुंजीतातैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः॥२६८॥

श्रीमान् प्रीयताम्, १०. विभावसुः प्रीयताम्, ११. त्वष्टा प्रीयताम् और १२. वरुणः प्रीयताम् ॥२५३-२५४॥ इसतरह से करते हुए प्रत्येक पक्ष में एक-एक फल का त्याग करता जाय । व्रत के समाप्त हो जाने पर ब्राह्मण दम्पती की पूजा वस्त्र तथा भूषण से करे ॥२५५॥ सुवर्ण फल से युक्त चीनी भरे कलश का दान करे । इसके बाद प्रार्थना करे जिस तरह आपके भक्तों की कोई कामना विफल नहीं होती है ॥२५६॥ उसी तरह मुझे भी प्रत्येक जन्मों में फल की प्राप्ति होती रहे । इस अनन्त फल देने वाली फलसप्तमी का व्रत जो करता है ॥२५७॥ वह इक्कीस पीढी पहले के तथा इक्कीस पीढी बाद के पितरों को तार देता है । इस व्रत के प्रसङ्ग को जो सुनता अथवा पढता है वह भी कल्याण प्राप्ति का पात्र बन जाता है ॥२५८॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर सूर्य के लोक में आनन्दानुभव करता है । जो इस लोक में अथवा परलोक में मदिरा पान इत्यादि पाप किए रहता है ॥२५९॥ उसके वे सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं; यदि वह फलसप्तमी का व्रत करता है । अब मैं उसी प्रकार की पापों को विनष्ट करने वाली शर्करासप्तमी का वर्णन करता हूँ ॥२६०॥ शर्करा सप्तमी करने से अनन्त आयु आरोग्य तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । चैत्र के महीने में शुक्ल पक्ष की सप्तमी को इस व्रत को करना चाहिए ॥२६१॥ प्रातःकाल उजले तिल मिश्रित् जल से स्नान करके श्वेत माला और चन्दन को लगाये । उसके बाद कुंकुम से वेदी पर कर्णिका युक्त अष्टदल कमल का निर्माण करे ॥२६२॥ उस पर **सवित्रे नमः** इस मन्त्र से चन्दन तथा फूल चढाये । उसके बाद वहाँ चीनी भरे पूर्णपात्र से युक्त जल के घड़े की स्थापना करे ॥२६३॥ उसको श्वेत वस्त्र तथा श्वेत माला के अलङ्कृत करे । स्वर्ण निर्मित पुष्प से युक्त उस कलश की पूजा इस मन्त्र से करे ॥२६४॥ चूकि आप वेदों में विश्ववेद (सर्वज्ञ) रूप से पढे जाते है; आप ही अमृत के सर्वस्वरूप हैं, अतएव मुझे शान्ति प्रदान करें ॥२६५॥ उसके बाद पञ्चगव्य का पान करके उस कलश के सन्निकट ही पृथिवी पर सो जाय । उस समय वह सूर्य सूक्त का जप करे तथा पुराणों का श्रवण करे ॥२६६॥ इस तरह से दिन और रात्रि के बीत जाने पर अष्टमी तिथि को नित्य कृत्य करने के पश्चात् उन सारी सामग्रियों को ब्राह्मण को दान कर दे ॥२६७॥ अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को चीनी, घी तथा खीर का भोजन

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्। संवत्सरांते शयनं शर्करा कलशान्वितम्॥२६९॥
सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् । गृहं च शक्तिमान्दद्यात्समस्तोपस्करान्वितम्॥२७०॥
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा। दशभिर्वा त्रिभिर्वापि निष्केणैकेन वा पुनः ॥२७१॥
पद्मं स्वशक्तितो दद्यात्पूर्ववन्मंत्रपाठनम् । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुर्वन्दोषान्समश्नुते ॥२७२॥
अमृतं पिबतो वक्रात्सूर्यस्यामृतबिंदवः । समुत्पेतुर्द्धरण्यां ये शालिमुद्गेक्षवस्तु ते ॥२७३॥
शर्करायाः रसस्तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान् । इष्टारवे रतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः ॥२७४॥
शर्करा सप्तमी चेयं वाजिमेघफलप्रदा। सर्वदुष्टोपशमनी पुत्रपौत्रविवर्धिनी ॥२७५॥
यः कुर्यात्परया भक्त्या सपरं ब्रह्मगच्छति। कल्पमेकं वसेत्स्वर्गे ततो याति परंपदम् ॥२७६॥

इदमनघश्रृणोति यः स्मरेद्वा परिपठतीहसुरेश्वरस्य लोके ।
मतिमपि च ददाति सोपि देवै रमरपुरे परिपूज्यते मुनीन्द्रैः ॥२७७॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्वत्कमलसप्मीम् । यस्यास्संकीर्त्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः ॥२७८॥
वसंतामलसप्तम्यां सुस्नातो गौरसर्षपैः । तिलपात्रे च सौवर्णं निधाय कमलं शुभम् ॥२७९॥
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गंधपुष्पैरथार्चयेत् । नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥२८०॥
दिवाकरनमस्तेस्तु प्रभाकरनमोस्तु ते । ततो द्विकालवेलायामुदकुंभसमन्वितम् ॥२८१॥
विप्रायदद्यात्संपूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः । शक्तितः कपिलां दद्यादलंकृय विधानतः ॥२८२॥

कराये । स्वयं तेल तथा नमक से रहित भोजन करके उस दिन मौन रहे ॥२६८॥ इसी प्रकार से सारे नियमों का पालन प्रत्येक मास में करे, संवत्सर के अन्त में चीनी भरे कलश के साथ ॥२६९॥ यदि शक्ति हो तो सभी सामग्रियों के साथ गृह तथा दूध देने वाली गौ का दान करे ॥२७०॥ एक हजार सुवर्ण मुद्रा अथवा सौ मुद्रा या दश मुद्रा, या तीन मुद्रा या एक सुवर्ण मुद्रा के द्वारा कमल का निर्माण करके उसे अपनी शक्ति के अनुसार दान करे और पहले के ही समान मन्त्र को पढे । इस काम में कंजूसी न करे, कंजूसी करने से पाप होता है ॥२७१-२७२॥ जिस समय सूर्य अमृत पी रहे थे, उस समय उनके मुख से जो अमृत की बूंदे पृथिवी पर गिर गयीं उसीसे धान, मूंग, तथा ईख पैदा हुए । इसलिए ईख का सार शर्करा है और वह अमृत से युक्त है । इसीलिए शर्करा सूर्य को प्रिय है, और वह हव्य तथा कव्य दोनों में मिलायी जाती है ॥२७४॥ यह शकरासप्तमी अश्वमेघ यज्ञ करने का फल प्रदान करने वाली है । यह सभी दुष्टों को विनष्ट करने वाली तथा पुत्रों एवं पौत्रों का बढाने वाली है ॥२७५॥ जो इस शर्करासप्तमी का व्रत परा भक्ति पूर्वक करता है, वह परंपद को प्राप्त कर लेता है ॥२७६॥ जो व्यक्ति इस प्रसङ्ग को सुनता है या स्मरण करता है अथवा पढता है, अथवा इस व्रत को करने की किसी को प्रेरणा देता है, वह भी देवताओ की नगरी में देवताओं तथा मुनीन्द्रों द्वारा पूजित होता है ॥२७७॥ इसके बाद में मैं उसी तरह की कमलसप्तमी व्रत का वर्णन करता हूँ इस व्रत का नाम लेने मात्र से भगवान् सूर्य को प्रसन्नता होती है ॥२७८॥ वसंत ऋतु की अमल सप्तमी तिथि को पीली सरसो मिश्रित जल से स्नान करे । फिर तिल से भरे पात्र में सुवर्ण निर्मित कमल रखे ॥२७९॥ उसको दो वस्त्रों में लपेट दे । उसकी चन्दन तथा पुष्प आदि से पूजा करे । उसके बाद इस मंत्र को पढे— अपने हाथ में कमल को धारण करने वाले तथा विश्व को धारण, पोषण करने वाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है ॥२८०॥ हे दिवाकर ! हे प्रभाकर ! आपको नमस्कार है । उसके बाद सायंकाल की बेला में जल भरे घड़े के साथ ब्राह्मण की वस्त्र, माला तथा भूषण से पूजा करके उसे दान दे दे । यदि शक्ति हो तो अलंकृत करके

अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद्द्विजान्। यथाशक्ति च भुंजीत विमांसं तैलवर्जितम्॥२८३॥
अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासि मासि च। सर्वं समाचरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः॥२८४॥
व्रतांते शयनं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥२८५॥
गाश्च प्रदद्याच्छक्त्या तु सुवर्णस्य पयस्विनीः। भाजनासनदीपादीन् दद्यादिष्टानुपस्कारान्॥२८६॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कमलसप्तमीम्। लक्ष्मीमनंतामभ्येति सूर्यलोके च मोदते॥२८७॥

कल्पे कल्पे ततो लोकान् सप्त गत्वा पृथक् पृथक्।
अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति परां गतिम्॥२८८॥
पश्येदिमां यः शृणुयान्मुहूर्ते पठेच्चभक्त्याथ मतिं ददाति।
सोप्यत्रलक्ष्मीममलामवाप्य गंधर्वविद्याधरलोकमेति॥२८९॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्। सर्वकामप्रदां पुण्यां नाम्ना मंदारसप्तमीम्॥२९०॥
माघस्यामलपक्षे तु पंचम्यां लघु भुङ्नरः। दंतकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद्बुधः॥२९१॥
विप्रान्संपूजयित्वा तु मंदारं प्रार्थयेन्निशि। ततः प्रभात उत्थाय कृत्वा स्नानं पुनर्द्विजान्॥२९२॥
भोजयेच्छक्तितः कुर्यान्मंदारकुसुमाष्टकं। सौवर्णं पुरुषं तद्वत्पद्महस्तं सुशोभनम्॥२९३॥
पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेष्टपत्रकम्। हेममंदारकुसुमै र्भास्करायोति पूर्वतः॥२९४॥
नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यमलेदले। दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्यम्णे च नैर्ऋते॥२९५॥

विधिपूर्वक कपिला गौ का दान दे ॥२८१-२८२॥ दिन तथा रात बीत जाने पर व्रती को चाहिये की वह अष्टमी तिथि में अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराये। उसके वाद स्वयं मांस तथा तेल रहित भोजन करे॥२८३॥ इसी प्रकार से प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को उदारता पूर्वक इस व्रत को करे, कंजूसी न करे ॥२८४॥ जव व्रत की समाप्ति हो जाय तो सुवर्ण निर्मित कमल के साथ शय्या दान करे ॥२८५॥ यदि शक्ति हो तो सुवर्णालङ्कृत दूध देने वाली गायों का दान करे। उसके साथ उसके लिए आवश्यक सामग्री दोहन पात्र, आसन, दीपक आदि भी दान में दे ॥२८६॥ इसी विधि से जो कमल सप्तमी का व्रत करता है, वह अनन्त लक्ष्मी को प्राप्त करता है तथा सूर्य लोक में जाकर आनन्दानुभव करता है ॥२८७॥ वह एक-एक कल्प तक सातो लोकों में जाकर अप्सराओं के साथ निवास करता है और उसके पश्चात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥२८८॥ इस कमल सप्तमी के व्रत का जो दर्शन करता है, अथवा उसका सुन्दर मुहूर्त में श्रवण करता हैं, अथवा भक्ति पूर्वक पढता है, अथवा किसी को इसे करने की प्रेरणा देता है, वह भी इस लोक में निर्दोष लक्ष्मी को प्राप्त करके गन्धर्वो तथा विद्याधरों के लोक में जाता है ॥२८९॥ इसके बाद मैं उस मंदार सप्तमी का वर्णन करूँगा जो सभी पापों को विनष्ट करने वाली, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा अत्यन्त पवित्र है ॥२९०॥ मनुष्य को चाहिए कि वह माघ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को अल्पाहार करे। उसके बाद दतौन करके षष्ठी तिथि को उपवास करे॥२९१॥ रात्रि में ब्राह्मणों की पूजा करके मन्दार की प्रार्थना करे। उसके बाद प्रात:काल जगकर फिर ब्राह्मणों को॥२९२॥ अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराये उसके पश्चात् सुवर्ण के द्वारा आठ मन्दार (पारिजात) पुष्पों का निर्माण कराये। उसके पश्चात् हाथ में कमल लिए सुन्दर पुरुष का सुवर्ण से निर्माण कराये ॥२९३॥ ताम्बे के पात्र में तिलों के द्वारा अष्टदल कमल का निर्माण करे। उसके पूर्व वाले दल पर सुवर्ण निर्मित मन्दार कुसुम में **भास्कराय नमः** इस मन्त्र से पूजा करे ॥२९४॥ फिर दक्षिण दल में **सूर्याय नमः** इस मन्त्र से सुवर्ण मन्दार पुष्प

पश्चिमे बेदधाम्ने च वायव्ये चंडभानवे । पूष्णे चोत्तरतः पूज्य आनंदायेति तत्परम्॥२९६॥
कर्णिकायां च पुरुषः स्थाप्यः सर्वात्मनेपि च। शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्य भक्ष्यै र्माल्यफलादिभिः ॥२९७॥
एवमभ्यर्च्य तत्सर्वं दद्याद्वेदविदे पुनः । भुंजीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही ॥२९८॥
अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासि मासि च। कुर्यात्संवत्सरं यावद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥२९९॥
एतदेव व्रतांते तु निधाय कलशोपरि । गोभिर्विभवतः सार्द्धं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥३००॥
नमो मंदारनाथय मंदारभवनाय च । त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात् ॥३०१॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मंदारसप्तमीम्। विपाप्मा ससुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते॥३०२॥
इमामघौघपटलभीषणध्वांतदीपिकाम् । गच्छन्संगृह्य संसारशर्वर्यां न स्खलेन्नरः॥३०३॥
मंदारसप्तमीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोपि पापैः प्रमुच्यते ॥३०४॥
अथान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम् । यामुपोष्य नरो रोगशोकौघात्तु प्रमुच्यते ॥३०५॥
पुण्यमाश्वयुजे मासि कृतस्नानजपः शुचिः । वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम् ॥३०६॥
कपिलां पूजयेद्भक्त्या गंधमाल्यानुलेपनैः । नमामि सूर्यसंभूतामशेषभुवनालयाम् ॥३०७॥
त्वामहंशुभकल्याणि स्वशरीरविशुद्धये । अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम् ॥३०८॥
कांचनं वृषभं तद्वद्वस्त्रमाल्य गुडान्वितम् । सोपधानं च विश्रामभाजनासनसंयुतम् ॥३०९॥

से पूजा करे। फिर **अर्काय नमः** इस मन्त्र से नैऋत्य कोण में पूजा करे। **अर्यम्णे नमः** इस मन्त्र से पश्चिम दल में पूजा करे। **वेदधाम्ने नमः** इस मन्त्र से वायव्य कोण वाले दल में पूजा करे। उसके बाद **चण्डभानवे नमः** से पूजा करके फिर **पूष्णे नमः** इससे उतरदल में पूजा करे। उसके बाद ईशान कोण में **आनन्दाय नमः** इस मंत्र से पूजा करे ॥२९४-२९६॥ इसके बाद कमल की कर्णिका में सौवर्ण पुरुष की स्थापना करे और उसकी पूजा **सर्वात्मने नमः** इस मन्त्र से करे। उसके बाद उजले वस्त्र से वेष्टित करके उसकी मिठाई, माला तथा फल से पूजा करे ॥२९७॥ इस तरह से उसकी पूजा करके उसको वेदज्ञ ब्राह्मण को दान दे दे। उसके बाद वह पूर्वाभिमुख बैठकर मौन होकर तेल तथा नमक रहित भोजन करे ॥२९८॥ इसी प्रकार वह एक वर्ष तक प्रत्येक मास की सप्तमी तिथि को उदारता पूर्वक पूजन करे ॥२९९॥ ऐश्वर्य चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि वह व्रत के अन्त में इन्ही सारी वस्तुओं को कलश पर रखकर अपनी शक्ति के अनुसार गायों के साथ दान करे ॥३००॥ इसके बाद सूर्य की प्रार्थना करते हुए कहे कि हे मन्दारनाथ ! हे मन्दारभवन ! सूर्य ! आप हमको इस संसार सागर से पार करें ॥३०१॥ जो व्यक्ति इसी विधि से मन्दार सप्तमी का व्रत करता है, वह पाप से रहित होकर सुख पूर्वक एक कल्प पर्यन्त स्वर्ग लोक में आनन्दानुभव करता है ॥३०२॥ यह मन्दारसप्तमी पाप समूह रूपी भयङ्कर अन्धकार को प्रकाशित करने वाले प्रदीप के समान है, इसको अपनाकर संसार रूपी रात्रि में चलने वाले पुरुष का पतन नहीं होता है ॥३०३॥ जो व्यक्ति अभिलषित फल प्रदान करने वाली इस मन्दार सप्तमी नामक प्रसङ्ग को पढता है अथवा सुनता है वह भी पापों से मुक्त हो जाता है ॥३०४॥ अब मैं आपको शुभसप्तमी नामक व्रत को सुनता हूँ उसका व्रत करके मनुष्य रोग, शोक तथा पाप समूह से मुक्त हो जाता है ॥३०५॥ पवित्र आश्विन मास में स्नान तथा जप करके पवित्र बने हुए मनुष्य को ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन इत्यादि कराकर शुभ सप्तमी नामक व्रत को करना चाहिए ॥३०६॥ व्रती भक्ति पूर्वक कपिला गौ का चन्दन तथा माला आदि से पूजन करके उसकी स्तुति करते हुए कहे मैं सूर्य से उत्पन्न तथा सम्पूर्ण जगत् के आश्रय स्वरूपिणी ॥३०७॥ हे शुभ कल्याणि ! तुम्हारा व्रत अपने शरीर की शुद्धि के लिए करता

फलैर्नानाविधै भक्ष्यैः घृतपायससंयुतैः । दद्याद्द्विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति ॥३१०॥
पंचगव्यं च संप्राश्य स्वपेद्भूमावसंस्तरे। ततः प्रभाते संजाते भक्त्या संतर्पयेद्द्विजान् ॥३११॥
अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः। वाससी वृषभं हैमंतद्वद्गां कांचनोद्भवाम् ॥३१२॥
संवत्सरांते शयनमिक्षुदंडगुडान्वितम्। ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा॥३१३॥
दद्याद्वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति । अनेन विधिना विद्वान् कुर्याद्यः शुभसप्तमीम् ॥३१४॥
तस्य श्रीर्विमला कीर्त्ति र्भवेज्जन्मनि जन्मनि। अप्सरोगणगंधर्वैः पूज्यमानः सुरालये॥३१५॥
वसेद्गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसंप्लवम् । कल्पादाववतीर्णश्च सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥३१६॥
भ्रूणहत्यासहस्रस्य ब्रह्महत्याशतस्य च । नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमी ॥३१७॥

इमां पठेद्यः शृणुयान्मुहूर्तं पश्येत्प्रसंगादपि दीयमानम् ।
सोप्यत्र सर्वाघविमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम् ॥३१८॥
यावत्समास्सप्तनरः करोति यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम् ।
स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं यातिपरं मुरारेः ॥३१९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पुष्करमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

हूँ । उसके बाद एक ताम्बे के पात्र में एक प्रस्थ की मात्रा में तिल रखकर उसीमें सुवर्ण निर्मित वृषभ (बैल) वस्त्र, माला, गुड तथा तकिया इत्यादि से युक्त शय्या ॥३०८-३०९॥ अनेक प्रकार के फल, मिठाइयाँ, घी तथा खीर का दान सायंकाल की बेला में अर्यमा की प्रसन्नता के लिए करना चाहिए ॥३१०॥ इसके बाद पञ्चगव्य को पीकर बिना विस्तार के ही रात्रि में भूमि पर ही शयन करे । उसके बाद प्रात:काल की बेला में ब्राह्मणों की भक्तिपूर्वक पूजा करे। इसी विधि से पूरे एक वर्ष तक प्रत्येक मास की सप्तमी को व्रत करे ॥३११॥ संवत्सर के अन्त में दो वस्त्र (धोती-चादर) सुवर्ण निर्मित बैल तथा उसी तरह की सुवर्ण निर्मित गौ ॥३१२॥ ईख के साथ ताम्बे के पात्र में एक प्रस्थ तिल इन सबों का विद्वान् वैदिक ब्राह्मण को दान **विश्वात्मा प्रीयताम्** इस वाक्य का उच्चारण करके दे । इस विधि से जो विज्ञ पुरुष शुभ सप्तमी का व्रत करता है ॥३१३-३१४॥ उसको अनेक जन्मों तक निर्मल कीर्ति, और लक्ष्मी की प्राप्ति होती रहती है । मृत्यु के प्रश्चात् वह पुरुष स्वर्गलोक में प्रलय काल पर्यन्त, अप्सराओं के साथ गणाधिप के रूप में निवास करता है । पुन: कल्प के प्रारम्भ में मर्त्यलोक में आकर सातो द्वीपों का स्वामी होता है ॥३१५-३१६॥ इस शुभ सप्तमी को हजारों गर्भपातों तथा सैकड़ों ब्रह्महत्याओं को भी विनष्ट करने में समर्थ बतलाया गया है॥३१७॥ इस शुभ सप्तमी के प्रसङ्ग को जो पढता है या सुनता है अथवा शुभ सप्तमी के दानों को देते समय उसका दर्शन करता है, उस व्यक्ति के भी समस्त पाप विनष्ट हो जाते है और वह विद्याधरों का नायक होता है ॥३१८॥ जो व्यक्ति पूरे एक-एक वर्ष तक इन सातो प्रकार के सप्तमियों का विधान पूर्वक करता है वह क्रमशः सातो द्वीपों का स्वामी होकर अन्त में भगवान् विष्णु के लोक में चला जाता है ॥३१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पुष्कर महात्म्य वर्णन नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

बाइसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्जनः। तपःसत्यं च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्त्तिताः ॥१॥
पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत्। इह लोके शुभं रूपमायुरारोग्यमेव च॥२॥
लक्ष्मीश्च विपुला ब्रह्मन् कथं स्यात्सुरपूजित।

पुलस्त्य उवाच

पुरा हुताशनः सार्द्धं मारुतेन महीतले ॥३॥
आदिष्टः पुरुहूतेन विनाशाय सुरद्विषाम् । निर्दग्धेषु ततस्तेनदानवेषु सहस्त्रशः ॥४॥
तारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रः परावसुः। विरोचनस्तु संह्लादः प्रयातास्ते तदावसन् ॥५॥
अंतः समुद्रमाविश्य सन्निवेशमकुर्वत। अशक्ता इति तेप्यग्नि मारुताभ्यामुपेक्षिताः ॥६॥
ततः प्रभृति वै देवान् मानुषान् सभुजंगमान् । संपीड्य च मुनीन्सर्वान् प्रविशंति पुनर्जलम् ॥७॥
एवं युगसहस्त्राणि ते वीराः सप्त पंच च। जलदुर्गबलाद्राजन्पीडयंति जगत्त्रयम्॥८॥
ततः पुनरथोवह्निमारुतावमराधिपः । आदिदेशाचिरादंबुनिधिरेषविशोष्यताम् ॥९॥
यस्मादस्मद्द्विषां चैष शरणं बरुणालयः। तस्माद्भवद्भयामद्यैव शोषमेष प्रणीयताम्॥१०॥
तावूचतुस्ततः शक्रं मयशम्बरसूदनम्। अधर्म एष देवेंद्र सागरस्य विनाशनम्॥११॥
यस्माज्जीवनिकायस्य महतः संक्षयो भवेत् । तस्मादुपायमन्यं तु समाश्रय पुरंदर॥१२॥

भूलोक आदि सातो लोकों के स्वामित्व प्राप्ति के उपाय का वर्णन, समुद्र को सुखा देने के लिए इन्द्र की आज्ञा का पालन नहीं करने पर अग्नि तथा मारुत को इन्द्र का शाप और उन दोनों का पृथिवी पर जन्म, अगस्त्य महर्षि का चरित्र, अगस्त्य को अर्घ्य देने की विधि का वर्णन, शिवजी द्वारा पार्वतीजी को गौरी तृतीया व्रत का उपदेश, रुद्र का आश्वासन प्राप्त करके गौरी का ब्रह्माजी के यज्ञ में जाना, भगवान् विष्णु का रुद्र को अपने व्रत के ख्यापन का आदेश तथा सारस्वत व्रत का विधान वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक। ये सात लोक जो बतलाये गये हैं इन लोको के स्वामित्व की प्राप्ति किस उपाय से होती है ? तथा इस लोक में सुन्दर रूप, आरोग्य तथा आयु की प्राप्ति का साधन क्या है ? इसे आप मुझे बतलाइये ॥१-२॥ **श्रीपुलस्त्य महर्षि ने कहा**— प्राचीनकाल में इन्द्र ने वायु तथा अग्नि को असुरों का विनाश करने के लिए आदेश दिया । उसके बाद अग्नि ने हजारों दानवों को भस्म कर दिया ॥३-४॥ तारक, कमलाक्ष, कालदंष्ट्र, परावसु, विरोचन, संह्लाद आदि पृथिवी से पलायन कर गये ॥५॥ और जाकर समुद्र के भीतर रहने लगे । इसके बाद अग्नि तथा वायु ने उन सबों को यह सोचकर उपेक्षा कर दी कि ये असमर्थ हैं ॥६॥ उसी समय से वे दैत्य देवताओं, मनुष्यों, सर्पो तथा मुनियों को कष्ट देकर समुद्र के जल में घूस जाते थे ॥७॥ इस तरह से वे वीर दानव हजारों युग पर्यन्त जल को ही अपना दुर्ग (किला) बनाकर त्रैलोक्य को पीड़ित करते रहे ॥८॥ उसके बाद इन्द्र ने पुनः अग्नि तथा वायु को आदेश दिया कि तुम दोनों शीघ्र ही समुद्र को सुखा दो ॥९॥ क्योंकि यह समुद्र हमलोगों के वैरियों का रक्षक बन गया है । इसलिए तुम दोनों आज ही इसे सुखा देने का काम करो ॥१०॥ इसके बाद मय नामक दानव तथा शम्बरासुर को

यस्य योजनमात्रेपि जीवकोटिशतानि च। निवसंति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति ॥१३॥
एवमुक्तः सुरेंद्रस्तु क्रोधसंरक्तलोचनः । उवाचेदं वचो रोषादमरावग्निमारुतौ ॥१४॥
न धर्माधर्मसंयोगं प्राप्नुवंत्यमराः क्वचित्। भवंतौ तु विशेषेण महात्मानौ च तिष्ठतः ॥१५॥
ममाज्ञा न कृता यस्मान्मारुतेन समं त्वया । मुनिव्रतपरो भूत्वा परिगृह्य कलेवरम्॥१६॥
धर्मार्थशास्त्ररहितां योनिं प्रतिबिभावसो। तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेणमानुषे ॥१७॥
मारुतेन समं लोके तव जन्म भविष्यति। यदा तु मानुषत्वेऽपि त्वया गंडूषशोषितः॥१८॥
भविष्यत्युदधिर्वह्ने तदा देवत्वमाप्स्यसि। इतींद्रशापात्पतितौ तत्क्षणात्तौ महीतले॥१९॥
अवाप्तवंतौ देहे च कुंभाज्जन्म ततोभवत्। मित्रावरुणयोर्वीर्याद्वसिष्ठश्चात्मजो भवत् ॥२०॥
ततोगस्त्य उग्रतपा बभूव मुनिसत्तमः । अस्माद्भ्रातुः स वै भ्राता वसिष्ठस्यानुजो मुनिः॥२१॥

भीष्म उवाच

कथं च मित्रावरुणौ पितरावस्य तौ स्मृतौ । जन्म कुंभादगस्त्यस्य यथाभूत्तद्वदाधुना ॥२२॥

पुलस्त्य उवाच

पुरा पुराणपुरुषः कदाचिद्गंधमादने। भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चचार विपुलं तपः॥२३॥
तपसा चास्य भीतेन विघ्नार्थे प्रेषितावुभौ। शक्रेण माधवानंगावप्सरोगणसंयुतौ ॥२४॥
यदा च गीतवाद्येन भावहावादिना हरिः । न काममाधवाभ्यां च मोहं नेतुमशक्यत॥२५॥
तदा काममधुस्त्रीणां विषादमभजद्गणः। संक्षोभाय ततस्तेषामूरुदेशान्नराग्रजः ॥२६॥
नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यस्यापि मोहिनीम्। संमोहितास्तया देवास्तौ तु चैव सुरावुभौ॥२७॥

मारने वाले इन्द्र से अग्नि तथा वायु ने कहा— हे देवेन्द्र ! सागर को विनष्ट करना अधर्म है ॥११॥ क्योंकि इस कार्य को करने से बहुत अधिक जीव समूह का नाश हो जायेगा । अतएव हे इन्द्र ! आप कोई दूसरा उपाय करें॥१२॥ जिसके एक ही योजन में सैकड़ों करोड़ जीव हैं उस समुद्र को कैसे नष्ट किया जा सकता है ?॥१३॥ इस तरह से अग्नि तथा वायु के द्वारा कहे जाने पर क्रोध से आँखें लाल करके इन्द्र ने उन दोनों देवताओं से कहा॥१४॥ देवताओं को धर्म अथवा अधर्म का फल नहीं मिलता है । आप दोनों तो विशेष रूप से महात्मा हैं॥१५॥ धर्मार्थ शास्त्र रहित योनि वाले होकर भी आपने मुनिव्रत का पालन किया है । अतएव तुम दोनों मुनिव्रत के पालन करने वाले मानव शरीर को धारण करोगे । जब मनुष्य लोक में भी जाकर तुमलोग अपने आचमन मात्र से॥१६-१८॥ समुद्र को सुखा दोगे तब फिर तुम देवत्व को प्राप्त करोगे । इसतरह इन्द्र के शाप के कारण अग्नि और वायु का तत्क्षण ही पतन हो गया ॥१९॥ उसके बाद उन दोनों का कुम्भ (घड़े) से मित्रावरुण देवता के पुत्र के रूप में जन्म हुआ वे दोनों अगस्त्य तथा वसिष्ठ हुए ॥२०॥ उसके बाद अगस्त्य महर्षि मुनियों में श्रेष्ठ तथा उग्र तपस्वी हुए । उनके भाई वसिष्ठ महर्षि हुए अगस्त्य महर्षि वसिष्ठ महर्षि के अनुज थे ॥२१॥ **भीष्मजी ने कहा**— इन दोनों के पिता मित्र और वरुण देवता कैसे हुए ? तथा अगस्त्य महर्षि के घड़े से जन्म की कथा आप मुझे बतलाइये ॥२२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— प्राचीनकाल में पुराण पुरुष श्रीभगवान् धर्म के पुत्र रूप से उत्पन्न होकर गन्धमादन पर्वत पर अत्यधिक तपस्या किए ॥२३॥ इनकी तपस्या से डर कर इन्द्र ने उनकी तपस्या में विघ्न करने के लिए अप्सराओं के समूह के साथ वसन्त तथा काम को भेजा ॥२४॥ काम और वसन्त आदि के द्वारा प्रदर्शित गीत तथा वाद्य एवं भावों के द्वारा श्रीहरि मोहित नहीं हुए ॥२५॥ तब काम, वसन्त तथा अप्सराओं को अत्यन्त भय हो गया

अप्सराणां समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः । उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥२८॥
ततः कामयमानेन मित्रेणाहूयतोर्वशी । प्रोक्त मां रमयस्वेति वाढमित्यब्रवीच्च सा ॥२९॥
गच्छंती तु ततः सूर्यलोकमिन्दीवरेक्षणा । वरुणेन वृता पश्चाद्वचनं तमाभाषत ॥३०॥
मित्रेणाहं वृता पूर्वं मम सूर्यः पतिः प्रभो । उवाच वरुणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम् ॥३१॥
गतायां बाढमित्युक्त्वा मित्रः शापमदादथ । अद्यैव मानुषे लोके गच्छ सोमसुतात्मजम् ॥३२॥
भजस्वेति यतो मिथ्या धर्म एष त्वया कृतः । जलकुंभे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च ॥३३॥
प्रक्षिप्तमथ संजातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ । निमिर्नाम नृपः स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत ॥३४॥
तदंतरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसंभवः । तस्य पूजामकुर्वाणं शशाप समुनिर्नृपम् ॥३५॥
विदेहस्त्वं भवस्वेति शप्तस्तेनाप्यसौ मुनिः । अन्योन्यशापादुभयोर्विशरीरे तु तेजसी ॥३६॥
जग्मतुश्शपनाशाय ब्रह्माणं जगतः पतिम् । अथ ब्रह्मसमादेशाल्लोचनेष्ववसन्निमिः ॥३७॥
निमेषाः स्युश्च लोकानां तद्विश्रामाय पार्थिव । वसिष्ठोप्यभवत्तस्मिञ्जलकुंभेच पूर्ववत् ॥३८॥
ततो जातश्चतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमंडलुः । अगस्त्य इति शांतात्मा बभूव ऋषिसत्तमः ॥३९॥
मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः । सभार्यः संवृतोविप्रैस्तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥४०॥
ततः कालेन महता तारकादिनिपीडितम् । जगद्वीक्ष्यसकोपेन पीतवान्वरुणालयम् ॥४१॥

उसके बाद भगवान् नारायण ने अपने जंघे से उन सबों को क्षुब्ध करने के लिए त्रैलोक्य मोहिनी नारी को उत्पन्न कर दिया उसको देखकर सभी देवता, काम तथा वसन्त सबके सब मोहित हो गये ॥२७॥ अप्सराओं के सामने ही श्रीहरि ने देवताओं से कहा यह नारी संसार में उर्वशी के नाम से विख्यात होगी ॥२८॥ उसके बाद मित्र नामक देवता ने एक दिन उर्वशी से कहा कि तुम मेरे साथ रमण करो और उसने भी उस बात को स्वीकार कर लिया॥२९॥ उस समय वह सूर्य और चन्द्रमा के लोक में जा रही थी उसके बाद वरुण देवता ने उसका वरण किया तो उर्वशी ने कहा ॥३०॥ हे प्रभो ! मेरे पति सूर्य हैं मित्र देवता ने इस समय मेरा वरण किया है । इस पर वरुण देवता ने कहा तुम अपना मन मुझमें लगा कर जाओ ॥३१॥ इस पर उर्वशी ने कहा ठीक है । यह देखकर मित्र देवता ने शाप दे दिया । तुम आज ही मर्त्यलोक में सोम के पुत्र बुध के आत्मज पुरुरवा की पत्नी हो जाओ ॥३२॥ क्योंकि तुमने मुझसे झूठ बोला है । इसके बाद मित्र और वरुण दोनों ने जल के घड़े में अपने वीर्य का पात कर दिया ॥३३॥ उससे दो श्रेष्ठ मुनि उत्पन्न हुए । प्राचीन काल में निमि नामक राजा अपनी पत्नियों के साथ द्यूतक्रीडा (जूआ) कर रहे थे ॥३४॥ उसी समय वहाँ महर्षि वसिष्ठ आ गये । किन्तु राजा उनकी पूजा नहीं कर सके, यह देखकर महर्षि वसिष्ठ ने उन्हें शाप दे दिया ॥३५॥ कि तुम देह रहित (विदेह) हो जाओ । इस पर राजा ने भी महर्षि वसिष्ठ को भी शाप दे दिया । परस्पर उन दोनों के शाप के कारण उन दोनों का शरीर पात हो गया । इसके बाद दोनों की आत्माएँ ब्रह्माजी के पास गयीं कि वे शाप का नाश कर दें । इससे ब्रह्माजी के आदेश से निमि ने लोगों के नेत्र में निवास किया ॥३६॥ हे पार्थिव भीष्म ! निमि के विश्राम के ही लिए लोगों का निमेषपात होता है । वसिष्ठ भी उस जल के घड़े से पहले के ही समान हो गये ॥३७-३८॥ उसके बाद उस घड़े से ही चार भुजाओं वाले तथा अक्ष सूत्र एवं कमण्डलु धारण किए हुए महर्षि अगस्त्य प्रकट हुए । वे शान्त प्रकृति वाले ऋषियों में श्रेष्ठ अगस्त्य हुए ॥३९॥ वे मलयाचल पर्वत के एक स्थान में वैखानस विधि से अपनी पत्नी तथा ऋषियों के साथ रहते हुए कठोर तपस्या किए ॥४०॥ उसके बहुत समय बाद तारक आदि असुरों से पीडित संसार को देखकर क्रोध करके

ततोस्य वरदास्सर्वे वभूवुः शंकरादयः । ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः ॥४२॥
वरंवृणीश्व भद्रं ते यश्चाभीष्टोऽत्र वै मुने ।

अगस्त्य उवाच

यावद्ब्रह्मसहस्राणां पंचविंशतिकोटयः ॥४३॥
वैमानिकोभविष्यामि दक्षिणांबरवर्त्मनि । मद्विमानोदयात्कुर्याद्यः कश्चित्पूजनं मम ॥४४॥
स सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति । यस्त्वाश्रमं पुष्करे तु मन्नाम्ना परिकीर्तयेत् ॥४५॥
स चैव पुष्यतां यातु वर एष वृतो मया । श्राद्धं येऽत्रकरिष्यन्ति पिंडपूर्वं तु भक्तितः ॥४६॥
तेषां पितृगणास्सर्वे मया सह दिवि स्थिताः । एतत्कालं वसिष्यंति एष एव वरो मम॥४७॥
एवमस्त्विति तेप्युक्त्वा जग्मुर्देवा यथागतम् । तस्मादर्घः प्रदातव्यो ह्यगस्त्याय सदा बुधैः ॥४८॥

भीष्म उवाच

कथमर्घप्रदानं च कर्तव्यं तस्य वै मुनेः। विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद्वदस्व मे ॥४९॥

पुलस्त्य उवाच

प्रत्यूषसमये विद्वान्कुर्यादस्योदये निशि । स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्यांबरो गृही ॥५०॥
स्थापयेदव्रणं कुंभं माल्यवस्त्रविभूषितम्। पंचरत्नसमायुक्तं घृतपात्रेण संयुतम् ॥५१॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सुवर्णमध्यायतबाहुदंडम् ।
चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्ताचलसंयुतानि ॥५२॥
सकांस्यपात्राक्षत शुक्लयुक्तं मंत्रेण दद्याद्द्विजपुंगवाय ।
उत्क्षिप्य कुंभोपरि दीर्घबाहु मनन्यचेता यमदिङ्मुखस्थम् ॥५३॥

वे समुद्र पी गये ॥४१॥ यह देखकर शङ्कर आदि देवताओं ने उनको वरदान दिया । ब्रह्मा तथा विष्णु भी उनको वरदान देने के लिए उनके पास गये ॥४२॥ उन्होंने कहा हे मुने ! आप अपने मनोऽनुकूल वरदान माँग लें । **अगस्त्य महर्षि ने कहा—** पचीस हजार करोड़ ब्रह्मा की आयु पर्यन्त मैं दक्षिण आकाश मार्ग (पितृगण का देवता बना रहूँ) मेरे विमान का उदय (अगस्त्योदय) होने पर जो कोई भी मेरी पूजा करे ॥४४॥ वह बारी-बारी से सातो द्वीपों का स्वामी बने । पुष्कर तीर्थ में मेरे नाम का जो आश्रम है उसका नाम लेने वाला भी पुण्यवान् हो जाय यही वरदान मैं माँगता हूँ । जो लोग पुष्कर के अगस्त्याश्रम में भक्तिपूर्वक श्राद्ध करके पिण्डदान करेंगे । उनके पितृगण मेरे साथ दक्षिणापथ में निवास करेंगे । और वे भी स्वर्गलोक में इतने ही समय तक निवास करेंगे ॥४७॥ वे देवता भी; ऐसा ही होगा, यह कहकर चले गये । अतएव विद्वानों को चाहिए कि वे अगस्त्य महर्षि को सर्वदा अर्घ्य दान करते रहें । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** विद्वान् को चाहिए कि जब अगस्त्योदय हो जाय तो वह प्रात:काल प्रत्यूष की बेला में स्नान करके, श्वेत वस्त्र धारण करे उसे श्वेत तिल मिश्रित जल से स्नान करना चाहिए ॥५०॥ वह माला तथा वस्त्र से अलङ्कृत कलश की स्थापना करे । पञ्चरत्न तथा घृतपात्र से युक्त कलश की स्थापना करे ॥५१॥ उस पर सुवर्ण निर्मित अंगुष्ठ प्रमाणक पुरुष की स्थापना करे, उसकी भुजायें लम्बी हो, उसकी चार भुजाएँ हों, उसे कुम्भ के मुख पर स्थापित करे । सात प्रकार के अन्नों के पर्वत, चावल से भरे कांस्य पात्र, इन सबो का दान ब्राह्मण को मंत्र पढते हुए करे । लम्बी भुजाओं वाली पुरुष मूर्ति को घड़े की ऊपर रखकर भक्तिपूर्वक दक्षिणाभिमुख होकर दान करे॥५२-५३॥ यदि शक्ति हो तो खुरों में चाँदी मढाकर दूध देने वाली, बछड़े से युक्त श्वेत वर्ण की गौ को वस्त्र

श्वेतां च दद्याद्यदिशक्तिरस्ति रौप्यैः खुरै र्हेममुखीं सवत्साम् ।
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य स्रग्वस्त्रघंटाभरणां द्विजाय ॥५४॥
आसप्तरात्रादुदयेनृपास्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण ।
यावत्समास्सप्तदशाथवा स्यु रथोद्र्ध्वमप्यत्र वदंति केचित् ॥५५॥
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुंभयोने नमोस्तु ते॥५६॥
प्रत्यब्दं च फलत्यागमेवं कुर्वन्न सीदति । होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्तयेन्मानवः फलम् ॥५७॥
अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घं निवेदयेत् । इमं लोकमवाप्नोति रूपारोग्यफलप्रदम् ॥५८॥
द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्लोकं च ततः परम्। सप्तैव लोकानाप्नोति सप्तार्घान्यः प्रयच्छति ॥५९॥
इति पठति श्रृणोति यो हि सम्यक् चरितमगस्त्यसमर्चनं च पश्येत् ।
गतिमपि च ददाति सोपि विष्णो र्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥६०॥

भीष्मउवाच

सौभाग्यारोग्यफलदममित्रक्षयकारकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं यच्च तन्मे ब्रूहि महामते ॥६१॥

पुलस्त्य उवाच

यदुमाया पुरा देव उवाचांधकसूदनः । कथासु संप्रवृत्तासु धर्म्यासु ललितासु च ॥६२॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

गौर्युवाच

दत्तः शापो हि सावित्र्या मह्यं लक्ष्म्यै सुरेश्वर ॥६३॥
यथा लक्ष्मी प्रधानत्वमहं यामि तथा वद ।

तथा घण्टा से अलंकृत करके ब्राह्मण को दान दें ॥५४॥ हे राजन् ! अगस्त्योदय के पश्चात् सात रात्रियों तक इन सारी वस्तुओं तथा अर्घ्य देने का काम करे । कुछ लोग वर्षभर तक, कुछ लोग सत्रह रात्रियों तक तथा कुछ लोग उसके बाद तक भी इस प्रकार से अर्घ्य प्रदान करने को बतलाते हैं ॥५५॥ अगस्त्य महर्षि को अर्घ्य दान करने का मन्त्र है काश पुष्प के समान श्वेत वर्ण वाले अग्नि तथा वायु से उत्पन्न होने वाले, हे मित्रावरुण के पुत्र कुम्भयोने अगस्त्य महर्षि ! आपको नमस्कार है ॥५६॥ जो व्यक्ति प्रत्येक वर्ष एक फल का त्याग करने वाला होता है वह कभी भी दुःखी नही होता है । मनुष्य को चाहिए कि पहले होम करके फल का प्रयोग करे ॥५७॥ जो पुरुष इस विधि से एक अर्घ प्रदान करता है, वह इस संसार में लोगों का स्नेह, रूप और आरोग्य रूपी फल को प्राप्त करता है ॥५८॥ दूसरे अर्घ के द्वारा वह भुवर्लोक को प्राप्त करता है, तीसरे अर्घ्य के द्वारा वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है । इसतरह से जो महर्षि अगस्त्य को सात अर्घो को प्रदान करता है, वह सातो लोकों को प्राप्त करता है ॥५९॥ इसतरह से जो अगस्त्य महर्षि के चरित को अच्छी तरह से पढता और सुनता है तथा महर्षि अगस्त्य की पूजा का दर्शन करता है, अथवा जो दूसरों को इस व्रत को करने की प्रेरणा देता है, वह भी भगवान् विष्णु के लोक में जाकर देवताओं के द्वारा पूजित होता है ॥६०॥ **भीष्मजी ने कहा—** हे महामते ! जिस व्रत को करने से सौभाग्य तथा अरोग्य रूपी फल की प्राप्ति होती है तथा शत्रुओ का नाश होता है, उसे आप मुझे बतलायें ॥६१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** सद्धर्म विषयक तथा ललित कथाओं के प्रसङ्ग में भगवान् शङ्करजी ने पार्वतीजी को बतलाया था उसे मैं तुम्हें बतला रहा हूँ वह भोग तथा मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाला व्रत है । **गौरी देवी ने कहा—** हे सुरेश्वर ! मुझे

शङ्कर उवाच

शुणुष्वावहिता देवि तथैवान्यत्स्वयं कृतम् ॥६४॥
नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम् । नभस्ये वाथ वैशाखे पुण्ये मार्गशिरस्यथ ॥६५॥
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नातः सगौरसर्षपैः । गोरोचनं सगोमूत्रं गोदुग्धं घृतं तथा ॥६६॥
दधि चंदन संमिश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत् । सौभाग्यारोग्यकृद्यस्मात्सदा च ललिताप्रियम् ॥६७॥
प्रतिपक्षं तृतीयायां पुमान्वापि सुवासिनी। धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च ॥६८॥
विधवा शुक्लवस्त्रं वै त्वेकमेव हि धारयेत् । कुमारी शुक्लसूक्ष्मे च परिदध्यात्तु वाससी ॥६९॥
देवीं च पंचगव्येन ततः क्षीरेण केवलं । स्नापयेन्मधुना तद्वत्पुष्पगंधोदकेन तु ॥७०॥
पूजयेच्छुक्लपुष्पैस्तु फलैर्नानाविधैरपि । धान्यलाजादिलवण गुडक्षीरघृतान्वितैः ॥७१॥
शुक्लाक्षततितलैरर्चा कार्या देवि सदा त्वया । पादयोरर्चनं कुर्यात्प्रतिपक्षं वरानने ॥७२॥
वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ श्रियै नमः । अशोकायै नमो जंघे पार्वत्यै जानुनी तथा ॥७३॥
ऊरू मांगल्यकारिण्यै वामदेव्यै तथा कटिम् । पद्मोदरायै जठरं नमः कण्ठे श्रियै नमः ॥७४॥
करौ सौभाग्यदायिन्यै बाहू च सुमुखश्रियै । मुखं दर्पविनाशिन्यै स्मरदायै स्मितं पुनः ॥७५॥
गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने । तुष्ट्यै ललाटमलकं कात्यायन्यै नमः शिरः ॥७६॥

तथा लक्ष्मी दोनों को सावित्री देवी ने शाप दे दिया है ॥६२-६३॥ जिस तरह से मैं लक्ष्मी के समान प्रधान हो जाऊँ उस उपाय को आप मुझे बतलायें । **शङ्करजी ने कहा**— हे देवि ! आप सावधानी पूर्वक सुनें उसी तरह से पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए समान रूप से आराधन को बतलाया गया है । श्रावण मास, वैशाख मास तथा मार्गशीर्ष मास में तृतीया तिथि को पीली सरसो मिश्रित जल से स्नान करे, फिर गोरोचन, गोमूत्र, गोदुग्ध तथा गोघृत, दधि तथा चन्दन इन सबों को मिलाकर ललाट में तिलक लगाये । यह ललिता देवी को प्रिय है । तथा सौभाग्य तथा आरोग्य को प्रदान करने वाला है ॥६४-६७॥ प्रत्येक पक्ष की तृतीया तिथि को पुरुष अथवा सौभाग्यवती नारी लाल रङ्ग के वस्त्र को धारण करे तथा उजले पुष्पों को धारण करे ॥६८॥ विधवा नारी को तो उजला तथा एक ही वस्त्र को धारण करना चाहिए । कुमारी कन्या पतले (महीन) श्वेत दो वस्त्र को धारण करे ॥६९॥ देवी को केवल गोदुग्ध से मधु (शहद) तथा पुष्प के गन्ध से युक्त जल से स्नान कराये ॥७०॥ उसके बाद श्वेत पुष्पों तथा अनेक प्रकार के फलों से पूजा करे । हे देवि ! धान्य, लावा, नमक, गुड, दुग्ध तथा घी से युक्त ॥७१॥ श्वेत अक्षत तथा श्वेत तिल से देवी की पूजा करे । हे वरानने ! उनके चरणों की पूजा प्रत्येक पक्षों में करे ॥७२॥ देवी के पूजन के मंत्र इस प्रकार है **वरदायै नमः पादौ पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों चरणों की पूजा करे, **श्रियै नमः गुल्फौ पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों गुल्फों की पूजा करे, **अशोकायै नमः जङ्घे पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों जङ्घों की पूजा करे, **पार्वत्यै नमः जानुनी पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों घुटनों की पूजा करे ॥७३॥ **माङ्गल्यकारिण्यै नमः ऊरू पूजयामि** इससे दोनों ऊरूओं की पूजा करे । **वामदेव्यै नमः कटिं पूजयामि** इस मन्त्र से उदर की पूजा करे । **श्रियै नमः कण्ठं पूजयामि** इस मन्त्र से कण्ठ की पूजा करे ॥७४॥ **सौभाग्यदायिन्यै नमः करौ पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों हाथों की पूजा करे । **सुमुखश्रियै नमः बाहू पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों भुजाओं की पूजा करे । **दर्पविनाशिन्यै नमः मुखं पूजयामि** इस मन्त्र से मुख की पूजा करे, **स्मरदायिन्यै नमः स्मितं पूजयामि** इस मन्त्र से मुस्कान की पूजा करे ॥७५॥ **गौर्यै नमः नासे पूजयामि** इस मन्त्र से दोनों नाकों की पूजा करे, **उत्पलायै नमः लोचने पूजयामि**

नामो गौर्य्यै नमः पुष्ट्यै नमः कांत्यै नमः श्रियै । रंभाये ललिताये च वामदेव्यै नमो नमः ॥७७॥
एवं संपूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत् । पत्रैः षोडशभिर्युक्तं क्रमेणैव सकर्णिकम् ॥७८॥
पूर्वेण विन्यसेद्गौरीमपर्णां च ततः परम् । भवानीं दक्षिणेतद्वद्रुद्राणीं च ततः परम् ॥७९॥
विन्यसेत्पश्चिमे भागे सौम्यां मदनवासिनीम् । वायव्ये पाटलामुग्रामुत्तरेण तथा उमाम् ॥८०॥
साध्यां पथ्यां तथा सौम्यां मंगलां कुमदां सतीम् । भद्रां च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि ॥८१॥
कुसुमैरक्षताद्भिर्वा नमस्कारेण विन्यसेत् । गीतमंगलघोषं च कारयित्वा सुवासिनीम् ॥८२॥
पूजयेद्रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः । सिंदूरं स्नानचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत् ॥८३॥
सिंदूरं कुंकुमं स्नानमतीवेष्टं यतस्ततः । तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्यत्नतो गुरुम् ॥८४॥
न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः । जप्यैश्च पूजयेद्गौरीमुत्पलैरसितैः सदा ॥८५॥
बन्धुजीवैः प्रिये पूज्या कार्तिकि मासि यत्नतः । जातीपुष्पै मार्गशिरे पौषे पीतैः कुरंटकैः ॥८६॥
कुंदैः कुमुदपुष्पैश्च देवीं माघेपि पूजयेत् । सिंदुवारेण जात्या वा फाल्गुनेप्यर्चयेन्नरः ॥८७॥
चैत्रे तु मल्लिकाशोकै वैंशाखे गंधपाटलैः । ज्येष्ठे कमलमंदारै राषाढे च जलांबुजैः ॥८८॥
मंदारैरथमालत्या श्रावणे पूजयेत्सदा । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् ॥८९॥
बिल्वपत्रार्ककुसुमांबुजगौश्रृंगवारि च । पंचगव्यं बिल्वं च प्राशयेत्क्रमशः सदा ॥९०॥

इस मन्त्र से दोनों नेत्रों की पूजा करे, **तुष्ट्यै नमः ललाटं पूजयामि** इस मन्त्र से देवी के ललाट की पूजा करे, **कात्यायन्यै नमः** इस मन्त्र से शिर की पूजा करे ॥७६॥ इसके बाद हाथ जोड़कर कहे **गौर्ये नमः, पुष्ट्यै नमः, कान्त्यै नमः, श्रियै नमः, रम्भायै नमः, ललितायै नमः, वामदेव्यै नमः** ॥७७॥ इस तरह से विधिपूर्वक देवी की अङ्ग पूजा करके, देवी के समक्ष षोडश दल कमल का निर्माण करे । उसमें कर्णिका भी होनी चाहिए ॥७८॥ पूर्व दिशा में गौरी देवी की स्थापना करे, उसके बाद वाम दल में अपर्णा की स्थापना करे । दक्षिण दल में भवानी की स्थापना करे, उसके वाद वाले दल में रुद्राणी की स्थापना करनी चाहिए ॥७९॥ पश्चिम वाले दल में मदनवासिनी देवी की स्थापना करे । वायव्य कोण वाले दल में उग्रपाटला देवी की स्थापना करे, उत्तर वाले दल में उमा की स्थापना करे ॥८०॥ बीच में, साध्या, पथ्या, सौम्या, मङ्गला, कुमुदा, सती तथा भद्रा देवी की स्थापना करके पूजा करे । ललिता देवी की कर्णिका में स्थापना करे । इन सभी चतुर्थ्यन्त नामों के अन्त में नमः पद लगाकर, फूल, अक्षत अथवा जल से स्थापना करे । उस समय सौभाग्यवती स्त्रियों से गीत तथा मङ्गल कराये ॥८२॥ देवी की पूजा लाल वस्त्र, लाल माला और रक्त चन्दन से करना चाहिए । देवियों के शिर पर सिन्दूर, स्नानचूर्ण चढाये ॥८३॥ देवी को सिन्दूर और कुंकुम से स्नान अत्यन्त प्रिय है, उसके वाद आचार्य की पूजा करे ॥८४॥ जो व्यक्ति आचार्य की पूजा नहीं करता है, उसकी सारी क्रियाएँ व्यर्थ हा जाती हैं । उसके बाद गौरी देवी की पूजा जपाकुसुम अथवा कमल से करे ॥८५॥ हे प्रिये ! कार्तिक के महीने में देवी की पूजा दुपहरिया के फूल से अवश्य करे । मार्गशीर्ष के महीने में जाती के फूल से करे तथा पौष के महीने में कुरंटक के फूल से करे ॥८६॥ माघ के महीने में देवी की पूजा कुन्द तथा कुमुद के पुष्प से करे । फाल्गुन के महीने में सिन्दुवार अथवा जाती के फूल से करे ॥८७॥ चैत्र के महीने में मल्लिका (मालती) तथा अशोक के पुष्पो से करे । वैशाख के महीने में देवीं की पूजा सुगन्धित गुलाव से करे । ज्येष्ठ के महीने में कमल और मन्दार से पूजा करे और आषाढ में पूजा जल कमल से करे ॥८८॥ श्रावण के महीने में पूजा सदा मन्दार और मालती से करे ॥८९॥ उसके बाद विल्वपत्र, मन्दार पुष्प, कमल गौ के सींग के जल,

एतद्भाद्रपदादौ तुप्राशनं समुदाहृतम् । प्रतिपक्षं च मिथुनं तृतीयायां वरानने ॥९१॥
भोजयित्वार्चयेद्भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । पुंसः पीतांबरे दद्यात् स्त्रियाः कौशेयवाससी ॥९२॥
निष्पावजीरलवणमिक्षुदंडगुडान्वितम् । स्त्रियै दद्यात्फलं पुंसः सुवर्णोत्पलसंयुतम् ॥९३॥
यथा न देविदेवस्त्वां संपरित्यज्य गच्छति । तथामामुद्धराशेष दुःखसंसारसागरात् ॥९४॥
कुमुदा विमला नंदा भवानी वसुधा शिवा। ललिता कमला गौरी सती रम्भाथ पार्वती ॥९५॥
नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत्। व्रतांते शयनं दद्यात् सुवर्णकलान्वितम्॥९६॥
मिथुनानि चतुर्विंशद् द्वादशाथ समर्चयेत् । अष्टावष्टाथवा भूयश्चतुर्मासेऽथवार्चयेत् ॥९७॥
पूर्वं दत्वाथगुरवे पश्चादन्यान् समर्चयेत् । उक्तानन्ततृतीयैषा सदानंतफलप्रदा ॥९८॥
सर्वपापहरा देवी सौभाग्यारोग्यवर्धिनी। न चैनं वित्तशाठ्येन कदाचिदपि लंघयेत् ॥९९॥
नरो बा यादि वा नारी सोपवासव्रतं चरेत्। गर्भिणी सूतिकानक्तं कुमारीवाथरोगिणी॥१००॥
यदाऽशुद्धातदान्येन करायेत्प्रयतास्वयम् । इमामनंतफलदां यस्तृतीयां समाचरेत्॥१०१॥
कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते। वित्तहीनोपि कुर्वीत यावद्वर्षमुपोषणम्॥१०२॥
पुष्पमंत्रविधानेन सोपि तत्फलमाप्नुयात् । नारी वा कुरुते या तु आत्मनः शुभमिच्छती॥१०३॥
जन्मपौरुषामाप्नोति गौर्यनुग्रहकारितम् ।
इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनया व्रतमिंद्रलोकसंस्थाः ॥१०४॥

पंचगव्य और विल्व फल का क्रमशः प्राशन करे ॥९०॥ यह प्राशन का कार्य भाद्रप्रद के प्रारम्भ में करना चाहिए। हे वरानने प्रत्येक पक्ष की तृतीय को ब्राह्मण दम्पती को भोजन कराये उसके बाद भक्तिपूर्वक वस्त्र, माला तथा चन्दन से उनकी पूजा करे। फिर पुरुष को दो पीताम्बर और स्त्री को दो रेशमी वस्त्र (साड़ी और चादर) दे ॥९१-९२॥ ब्राह्मणी को निष्पावा, जीरा, नमक, ईख तथा गुड के साथ फल प्रदान करे ब्राह्मण को सुवर्ण निर्मित कमल के साथ फल प्रदान करे ॥९३॥ इसके वाद प्रार्थना करे— हे देवि ! जिस प्रकार श्रीभगवान् आपको छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं, उसीतरह से हे देवि ! मेरा इस दुःखमय संसार सागर से उद्धार करें ॥९४॥ श्रावण आदि महीनों में क्रमशः कुमुदा, विमला, नन्दा, भवानी, स्वधा, शिवा, ललिता, कमला गौरी, सती, रम्भा और पार्वती इन नामों का उच्चारण करके प्रीयताम् पद का उच्चारण करे। जैसे कुमुदा प्रियताम्, विमला प्रीयताम् इत्यादि व्रत की समाप्ति हो जाने पर ब्राह्मण को सुवर्ण निर्मित कमल के साथ शय्या का दान करे ॥९५-९६॥ फिर चौबीस या बारह ब्राह्मण दम्पती की पूजा करे अथवा प्रत्येक चार-चार महीने पर आठ-आठ ब्राह्मण दम्पती की पूजा करे। (ऐसा करने से भी एक वर्ष में चौबीस ब्राह्मण दम्पती की पूजा हो जायेगी) ॥९७॥ इसमें पहले आचार्य की पूजा करके बाद में अन्य ब्राह्मणां की पूजां करे। इसको अनन्त तृतीया का व्रत कहते हैं। यह सदा अनन्त फल देने वाला व्रत है ॥९८॥ देवी सभी पापों को नष्ट करने वाली तथा सौभाग्य एवं आरोग्य को बढाने वाली हैं। इनकी आराधना में कभी भी कंजूसी नहीं करे ॥९९॥ स्त्री हो या पुरुष उसे उपवास रखकर ही व्रत करना चाहिए। गर्भिणी, प्रसव करने वाली कुमारी अथवा रोगिणी नारी रात में भोजन कर लें ॥१००॥ यदि व्रत करने वाली नारी अशुद्ध हो तो स्वयं नियम का पालन करते हुए दूसरे के द्वारा इस व्रत को कराये। इस अनन्त फल प्रदान करने वाली तृतीया के व्रत को जो करता है, वह सौ करोड़ कल्प तक शिवलोक में निवास करता है। यदि व्रती निर्धन हो तो एक वर्ष तक प्रत्येक तृतीया को उपवास करके इस व्रत को करे ॥१०१-१०२॥ पुष्प तथा मन्त्रविधि का पालन करने वाले उस व्यक्ति को भी वही

मतिमपि च ददाति योपि देवै रमरवधूजनकिन्नरैः स पूज्यः ।
अन्यामपि प्रवक्ष्यामि तृतीयां णपनाशिनीम् ॥१०५॥
रसकल्याणिनीमेतां पुरा कल्पभवा विदुः । माघे मासि तु संप्राप्य तृतीयां शुक्लपक्षतः ॥१०६॥
प्रातर्गंधेन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत् । स्नापयेन्मधुना देवी तथैवेक्षुरसेन तु॥१०७॥
गंधोदकेन च पुनः पूजनं कुंकुमेन तु । दक्षिणांगानि संपूज्य ततो वामानि पूजयेत् ॥१०८॥
ललितायै पदं देव्यै वामगुल्फौ ततोर्चयेत् । जंघेजानुतथाशांत्यै तथैवोरुं श्रियै नमः ॥१०९॥
मदालसायै च कटिममलायै तथोदरम्। स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कंधराम्॥११०॥
भुजं भुजाग्रं माधव्यै कमलायै सुखस्मिते। भ्रूललाटं च रुद्राण्यै शंकरायै तथालकम् ॥१११॥
मदनौ ललाटं तु मोहनायै पुनर्भ्रुवौ। नेत्रे चंद्रार्धधारिण्यै तुष्ट्यैच वदनं पुनः ॥११२॥
उत्कंठिन्यै नमः कंठममृतायै नमस्तनुम् । रंभायै च महाबाहू विशोकायै नमः करौ ॥११३॥
हृदयं मन्मथाह्वायै पाटलायै तथोदरम् । कटिं सुरतवासिन्यै तथोरू पंकजश्रियै ॥११४॥
जानुजंघे नमो गौर्यै गुल्फौ शांत्यै तथार्चयेत् । धराधरायै पादौ तु विश्वकायै नमः शिरः ॥११५॥
नमो भवान्यै कामिन्यै वासुदेव्यै जगच्छ्रियै । आनंददायै नंदायै सुभद्रायै नमो नमः ॥११६॥

फल प्राप्त होता है । यदि कोई नारी अनेक कल्याण के लिए इस व्रत को करती है तो ॥१०३॥ वह गौरी की कृपा से पुरुष का जन्म प्राप्त करती है । इस पार्वतीजी के व्रत के प्रसङ्ग को जो पढता अथवा सुनता है अथवा दूसरे को इसे करने की प्रेरणा देता है, वह इन्द्र लोक में रहकर अप्सराओं तथा किन्नरों से पूजित होता है । अब मैं दूसरी भी पापों को विनष्ट करने वाली तृतीया का वर्णन करता हूँ । इस तृतीया को रस कल्याणिनी कहते हैं । माघमास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि के आने पर ॥१०४-१०६॥ प्रात:काल चन्दन, दुग्ध तथा तिल मिश्रित जल से स्नान करे । उसके बाद शहद तथा ईख के रस से देवी को स्नान कराये ॥१०७॥ उसके बाद चन्दन के जल से तथा कुंकुम से देवी की पूजा करे । उसके बाद देवी के दाहिने अंगों की पूजा करके उसके बाद वायें अङ्गों की पूजा करे॥१०८॥ **ललितायै नमः** से पहले दाहिने पैर की पूजा करके, फिर बाये पैर की पूजा करे, **देव्यै नमः** से उसी क्रम से दोनों गुल्फों (पिण्डलियों) की पूजा करें **शान्त्यै नमः** से उसी क्रम से दोनों जङ्घों और घुटनों की पूजा करे, **श्रियै नमः** से दोनों ऊरुओं की पूजा करे ॥१०९॥ **मदालसायै नमः** से कटि भाग की पूजा करे, **अमलायै नमः** से पेट की पूजा करे **मदनवासिन्यै नमः** से दोनों स्तनों की पूजा करे । **कुमुदायै नमः** से कन्धे की पूजा करे॥११०॥ **माधव्यै नमः** से भुजाओं तथा भुजाओं के अग्रभाग की पूजा करे **कमलायै नमः** से स्मित (ओष्ठ) की पूजा करे **रुद्राण्यै नमः** से भौंहों तथा ललाट की पूजा करे, **शङ्करायै नमः** से केशों की पूजा करे ॥१११॥ **मदनायै नमः** से ललाट की पूजा करे और **मोहनायै नमः** से फिर भौहों की पूजा करे, **चन्द्रार्धधारिण्यै नमः** से दोनों नेत्रों की पूजा करे तथा **तुष्ट्यै नमः** से फिर मुख की पूजा करे ॥११२॥ **उत्कण्ठिन्यै नमः** से कण्ठ की पूजा करे **अमृतायै नमः** से शरीर की पूजा करे, **रम्भायै नमः** से दोनों भुजाओं की पूजा करे, **विशोकायै नमः** से दोनों हाथों की पूजा करे ॥११३॥ **मन्मथायै नमः** से ललिता देवी के हृदय की पूजा करे और **पाटलायै नमः** से उदर की पूजा करे **सुरतवासिन्यै नमः** से कटि प्रदेश की पूजा करे, **पङ्कजश्रियै नमः** से दोनों ऊरूओं की पूजा करे॥११४॥ **गौर्यै नमः** से धुटनों तथा जंघों की पूजा करे **शान्त्यै नमः** से दोनों गुल्फों की पूजा करे, **धराधरायै नमः** से दोनों चरणों की पूजा करे **विश्वकायै नमः** से शिर की पूजा करे ॥११५॥ उसके बाद **भाविन्यै नमः**,

एवं संपूज्य विधिवद्द्विजदांपत्यमर्चयेत्। भोजयित्वा तथान्नेन मधुरेण विमत्सरः ॥११७॥
समोदकं वारिकुंभं शुक्लांबरयुगद्वयम्। दत्त्वा सुवर्णकमलं गंधमाल्यैरथार्चयेत्॥११८॥
प्रीयतामत्र कुमुदागृह्णीयाल्लवणव्रतम्। अनेन विधिना देवीं मासि मासि सदार्चयेत् ॥११९॥
लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः। नवनीतं तथा चैत्रे वर्ज्यं मधु च माधवे ॥१२०॥
पानीयं ज्येष्ठमासे तु तथाषाढे च जीरकम्। श्रावणे विर्जयेत्क्षीर दधि भाद्रपदे तथा ॥१२१॥
घृतमाश्वयुजे तद्वदूर्जे वर्ज्यं च माक्षिकम्। धान्याकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या च शर्करा॥१२२॥
व्रतांते करकं पूर्णमेतेषां मासि मासि च। दद्याद्विकालवेलायां भक्ष्यपात्रेण संयुतम् ॥१२३॥
लड्डुकास्सेवकाश्चैव संयावमथ पूरिका। नारिका घृतपूर्णाश्च पिष्टपूर्णा च नंदिकी॥१२४॥
क्षीरशाकं च दध्यन्नं पिंडशाकं तथैव च। माघादौ क्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि॥१२५॥
कुमुदा माधवी रंभा सुभद्रा च शिवा जया। ललिता कमलाऽनंगा मंगला रति लालसा ॥१२६॥
क्रमान्माघोदिमासेषु प्रीयतामिति कीर्तयेत्। सर्वत्र पंचगव्यं च प्राशनं समुदाहृतम् ॥१२७॥
उपवासी भवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते। कुर्यादेवमिदं नारी रसकल्याणिनीव्रतम् ॥१२८॥
पुनर्माघे च संप्राप्ते शर्कराकलशोपरि। कृत्वा तु कांचनीं गौरी पंचरत्नसमन्विताम् ॥१२९॥
स्वकीयांगुष्ठमात्रं च साक्षसूत्रकमंडलुम्। चतुर्भुजामिंदुयुतां सितनेत्रपट्टावृताम् ॥१३०॥

कामिन्यै नमः, वासुदेव्यै नमः, जगच्छ्रियै नमः, आनन्ददायै नमः, नन्दायै नमः तथा **सुभद्रायै नमः** इन मन्त्रो से भी देवी की पूजा करे ॥११६॥ इसतरह से अच्छी तरह से पूजा करके ब्राह्मणदम्पती की पूजा करे तथा प्रसन्नता पूर्वक उन्हें मधुर अन्न का भोजन कराकर ॥११७॥ मिठायी, जल का घड़ा तथा दो वस्त्र प्रदान करे। उसके बाद सुवर्ण निर्मित कमल देकर चन्दन और माला से पूजा करे ॥११८॥ और कहे कि इस मेरे लवणव्रत को स्वीकार करके कुमुदादेवी प्रसन्न हों। **(इदं लवणव्रतं स्वीकृत्य कुमुदादेवी प्रीयताम् न मम)** इसी विधि से प्रत्येक मास में देवी की पूजा करनी चाहिए ॥११९॥ व्रत के दिन माघ मास में नमक न खाय, फाल्गुन मास में गुड न खाय, चैत्र मास में नवनीत का त्याग करे, वैशाख मास में मधु (शहद) का त्याग करे ॥१२०॥ ज्येष्ठ मास में व्रत के दिन पानी न पिये, आषाढ मास में जीरा न खाय। श्रावण के महीने में दुग्ध न पिये। भाद्रपद में दधि का परित्याग करे। आश्विन मास में घृत न खाय तथा कार्तिक मास में माक्षिक का त्याग करे। अगहन में चावल न खाय और पौष मास में चीनी का त्याग करे ॥१२२॥ व्रत की समाप्ति होने पर जल भर करके का प्रत्येक महीने में सायंकाल की वेला में दान करे। भक्ष्य या मिठायी भरा पात्र भी होना चाहिए ॥१२३॥ लड्डू, सेव, संयब, पूडी, घृत भरे नारियल, चूर्ण से भरी नंदिकी भी रहना चाहिए ॥१२४॥ दूध, शाक, दही, अन्न, तथा पिण्डशाक (जैसे आलू इत्यादि) इन सबों को माघ आदि के महीनों में करके के ऊपर रखकर देना चाहिए। माघ आदि मासों में व्रत के अन्त में क्रमशः कुमुदा, माधवी, रम्भा, सुभद्रा, शिवा, जया, ललिता, कमला, अनङ्गा, मङ्गला और रतिलालसा, ॥१२५-१२६॥ इन नामों का प्रत्येक मास में उच्चारण करके उसके अन्त में प्रीयताम् कहे (जैसे माघ मास में कुमदा प्रीयताम्, फालगुन में माधवी प्रीयताम् इत्यादि) प्रत्येक मास के व्रत में पञ्चगव्य का प्राशन अवश्य करना चाहिए ॥१२७॥ व्रत के दिन उपवास करे असमर्थ होने पर रात्रि में (मीठा) भोजन कर ले। इसी तरह से स्त्री को भी रस कल्याणिनी व्रत करना चाहिए ॥१२८॥ वर्ष के अन्त में जब माघ का महीना आये तो कलश के ऊपर चीनी रखकर, पञ्चरत्न से युक्त सुवर्ण की गौरी देवी की मूर्ति बनाये ॥१२९॥ उस मूर्ति का परिमाण व्रती के अंगुष्ठ परिमाण का होना चाहिए। मूर्ति

तद्वद्गोमिथुनं चैव सुवर्णस्य सितांबरम्। सवस्त्रं भाजनं दद्याद्भवानी प्रीयतामिति ॥१३१॥
अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनीव्रतम् । कुर्याच्च सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेवमुच्यते ॥१३२॥
भवानां च सहस्रं तु न दुःखीजायते क्वचित्। अग्निष्टोमसहस्रेण यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥१३३॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने। विधवा च वराकी वा सापि तत्फलभागिनी॥१३४॥

सौभाग्यारोग्यसंपन्ना गौरीलोके महीयते ।
इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसंगात् सकलकलुषमुक्तः पार्वतीलोकमेति ॥१३५॥
मतिमपि च विधत्ते यो नराणां प्रियार्थं विवुधपतिजनानां लोकगः स्यादमोघः ।
तथैवान्यां प्रवक्ष्यमि तृतीयां पापनाशिनीम् ॥१३६॥

नाम्ना च लोकविख्यातामग्र्यानंदकरीमिमाम्। यदा शुक्लतृतीयायामाषाढर्क्षं भवेत्क्वचित् ॥१३७॥
ब्रह्मर्क्षं वाथा च मघा हस्तो मूलमथापि वा। दर्भगंघोदकैः स्नानं तदा सम्यक्समाचरेत्॥१३८॥
शुक्लमाल्यांबरधरः शुक्लगंधानुलेपनः। भवानीमर्चयेद्भक्त्या शुक्लपुष्पैः सुगंधिभिः॥१३९॥
महादेवं च सकलमुपविष्टं महासने। वासुदेव्यै नमः पदौ शंकरायै नमो हरेः॥१४०॥
जंघे शोकविनाशिन्यै मानदायै नमः प्रभोः। रंभायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिने ॥१४१॥
आनंदिन्यै कटिं देव्याः शूलिनश्शूलपाणये। माधव्यै च तथा नाभिमथ शंभो र्भवाय वै॥१४२॥

को अक्ष सूत्र तथा कमण्डलु से युक्त होना चाहिए। चार भुजाओं, चन्द्रमा तथा दो श्वेत वस्त्रो से ढंकी हुयी मूर्ति को होनी चाहिए ॥१३०॥ इसी तरह सुवर्ण की गौ तथा वृषभ को भी होना चाहिए। श्वेत वस्त्र से युक्त, वस्त्र तथा पात्र सहित होना चाहिए। इन सबों को **भवानी प्रीयताम्** कहकर दान देना चाहिए ॥१३१॥ जो व्यक्ति इस विधि से रस कल्याणिनी व्रत को करता है, वह तत्क्षण ही समस्त पापों से रहित हो जाता है ॥१३२॥ वह हजारों शिव के काल तक कभी दुःखी नहीं होता है। वह हजारो अग्निष्टोम याग के करने का फल प्राप्त करता है ॥१३३॥ कोई नारी, या कुमारी या विधवा भी यदि इस व्रत को करे तो वह भी फल को प्राप्त करती है। इस व्रत को करने वाली सौभाग्य तथा आरोग्य से सम्पन्न होकर गौरी के लोक में सुशोभित होती है। जो व्यक्ति इस व्रत के प्रसङ्ग को पढता है या सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर पार्वतीजी के लोक में जाता है ॥१३५॥ जो कोई इस व्रत को करने के लिए दूसरे को प्रेरित करता है, वह भी प्रजापति के लोक में जाता है। यह अमोघव्रत है। अब मैं पापनाशिनी तृतीया के व्रत का वर्णन करता हूँ ॥१३६॥ वह अपने इस नाम से लोकों में विख्यात है तथा वह सर्वश्रेष्ठ आनन्द प्रदान करने वाली है। जब कभी भी तृतीया को आषाढा (जैसे पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा) नामक नक्षत्र हो, या ब्रह्मनक्षत्र (अभिजित्) हो या मघा अथवा हस्त नक्षत्र हो, या मूल नक्षत्र हो तो उस समय कुश तथा चन्दन के जल से अच्छी तरह से स्नान करे ॥१३८॥ व्रती श्वेत वस्त्र तथा श्वेत माला धारण करे। वह श्वेत चन्दन लगाये। उसके बाद विधिपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर उपविष्ट भवानी तथा शङ्करजी की पूजा सुगन्धित श्वेत पुष्पों से करे ॥१३९॥ **वासुदेव्यै नमः पादौ पूजयामि** इस मन्त्र से भवानी के चरणों की पूजा करे और **शङ्करायै नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के चरणों की पूजा करे ॥१४०॥ **शोक विनाशिन्यै नमः जङ्घे पूजयामि** इस मंत्र से भवानी के जङ्घाओं की पूजा करे और **मानदायै नमः** इस मंत्र से शङ्करजी के जङ्घाओं की पूजा करे। **रम्भायै नमः ऊरू पूजयामि** इस मंत्र से देवी के ऊरू प्रदेश की पूजा करे और **शिवाय नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के ऊरूप्रदेश की पूजा करे ॥१४१॥ **आनन्दिन्यै नमः कटिं पूजयामि** इस मन्त्र से देवी के कटि प्रदेश की पूजा करे और **शूलपाणये नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी की पूजा करे।

स्तनौ चानंदकारिण्यै शङ्करस्येंदुधारिणे। उत्कंठिन्यै नमः कंठंनीलकंठाय वै हरेः ॥१४३॥
करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय जगतः प्रभोः। बाहू च परिरंभिण्यै नृत्यप्रीताय वै हरेः ॥१४४॥
देव्या मुख विलासिन्यै वृषभाय पुनर्विभोः। स्मितं च स्मरणीयायै विश्ववक्त्राय वै विभोः॥१४५॥
नेत्रे मंदारवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिनः । भ्रुवौ नृत्यप्रियायै च शंभोर्वै पाशशूलिने ॥१४६॥
देव्या ललाटमिन्द्राण्यै वृषवाहाय वै विभोः । स्वाहायै मकुटं देव्या विभोर्गंगाधराय वै ॥१४७॥
विश्वकायौ विश्वभुजौ विश्वपादमुखौ शिवौ । प्रसन्नवरदौ वंदे पार्वतीपरमेश्वरौ॥१४८॥
एवं संपूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः पुनः । पद्मोत्पलानि रजसा नानावर्णेन कारयेत् ॥१४९।
शंखचक्रे सकटके स्वस्तिकं शुभकारकम्। यावंतः पांसवस्तत्र रजसः पतिता भुवि ॥१५०॥
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते। चत्वारि घृतपात्राणि सहिरण्यानि शक्तितः ॥१५१॥
दत्वा द्विजाय करकमुदकेन समन्वितम् । प्रतिपक्षं चतुर्मासं यावदेतान्निवेदयेत् ॥१५२॥
ततस्तु चतुरो मासान् पूर्ववत्करकोपरि। चत्वारि घृतपात्राणि तिलपात्राण्यनंतरम् ॥१५३॥
गंधोदकं पुष्पवारि चंदनं कुङ्कुमोदकम्। अपक्वं दधि दुग्धं च गोशृंगोदकमेव च ॥१५४॥

मायव्यै नमः नाभिं पूजयामि इस मन्त्र से देवी की नाभि की पूजा करे, **भवाय नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी की पूजा करे ॥१४२॥ **आनन्दकारिण्यै नमः** इस मन्त्र से देवी के स्तनों की पूजा करे **इन्दुधारिणे नमः** मन्त्र से शङ्करजी के स्तनों की पूजा करे, **उत्कण्ठिन्यै नमः** इस मंत्र से देवी के कण्ठ की पूजा करे और **नीलकण्ठाय नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के कण्ठ की पूजा करे ॥१४३॥ **उत्पलधारिण्यै नमः** इस मन्त्र से देवी के दोनों हाथों की पूजा करे और **रुद्राय नमः** इस मन्त्र से जगत् के स्वामी शङ्करजी की पूजा करे **परिरम्भिण्यै नमः** इस मन्त्र से देवी की दोनों भुजाओं की पूजा करे और **नृत्यप्रीताय नमः** इस मन्त्र से श्रीशङ्करजी के भुजाओं की पूजा करे ॥१४४॥ **विलासिन्यै नमः** इस मन्त्र से देवी के मुख की पूजा करे, **वृषभाय नमः** इस मंत्र से शङ्करजी के मुख की पूजा करे। **स्मरणीयायै नमः** इस मन्त्र से देवी के स्मित (ओष्ठों) की पूजा करे और **विश्ववक्त्राय नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के स्मित की पूजा करे ॥१४५॥ **मन्दारवासिन्यै नमः** इस मन्त्र से देवी के दोनों नेत्रों की पूजा करे और **विश्वधाम्ने नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के नेत्रों की पूजा करे, **नृत्यप्रियायै नमः** इस मंत्र से देवी के दोनों भौहों की पूजा करे और **पाशशूलिने नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के भौहों की पूजा करे ॥१४६॥ **इन्द्राण्यै नमः** इस मन्त्र से देवी के ललाट की पूजा करे, **वृषवाहाय नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के ललाट की पूजा करे । **स्वाहायै नमः** इस मन्त्र से देवी के मुकुट की पूजा करे और **गङ्गाधराय नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के भृकुटी की पूजा करे ॥१४७॥ इसके वाद प्रार्थना करे मैं जगत् शरीरक, विश्वबाहु, विश्वपाद, विश्वमुख, विश्व के कल्याण स्वरूप, प्रसन्न तथा वरदान देने वाले पार्वती और परमेश्वर (शिवजी) की वन्दना करता हूँ ॥१४८॥ इसतरह पार्वती एवं शङ्कर की विधिपूर्वक पूजा करके उनके सामने नील कमल तथा कमलों का निर्माण अनेक रङ्गों से करे ॥१४९॥ शङ्ख, चक्र, कटक तथा मङ्गलमय स्वस्तिक चिह्नों का निर्माण कराये इन सवों के बनाने में जितन रजकण पृथिवी पर पड़ते हैं, उतने हजार वर्ष तक व्रती शिव लोक में सुशोभित होता है । घी से भरे चार पात्र तथा उसमें अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण॥१५०-१५१॥ तथा जल भरे करक को ब्राह्मण को चार मासों तक प्रत्येक पक्ष में दान करे ॥१५२॥ उसके बाद चार मासों तक पहले के ही समान करक के ऊपर चार घी के पात्रों को रखे, उसके ऊपर तिल भरे पात्रों को रखे ॥१५३॥ चन्दन का जल, फूल का जल, चन्दन, कुंकुम का जल, विना गर्म किए दूध एवं दही, गौ के शृङ्ग

अब्दोदकं तथा वारि कुष्ठचूर्णान्वितं पुनः । उशीरसलिलं चैव यवचूर्णोदकं पुनः ॥१५५॥
तिलोदकं च संप्राश्य स्वपेन्मार्गशिरादिषु । मासेषु पक्षद्वितयं प्राशनं समुदाहृतम् ॥१५६॥
सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि सदार्चने । दानकाले च सर्वत्र मंत्रमेतमुदीरयेत् ॥१५७॥
गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशाय मङ्गला । सौभाग्यायास्तु ललिता भावानी सर्वसिद्धये ॥१५८॥
संवत्सरांते लवणं गुडकुंकुमसंयुतम् । चंदनेन युतं कुंभं सहस्वर्णाम्बुजेन च ॥१५९॥
उमायाः प्रीतये हैमं तद्वदिक्षुफलैर्युतम् । सास्तरावरणां शय्यां सविश्रामां निवेदयेत् ॥१६०॥
सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति । आत्मानंदकरीं नाम प्राप्नुयात्संपदं नरः ॥१६१॥
आयुरानंदसंपन्नो न क्वचिच्छोकमाप्नुयात् । नारी वा कुरुते यातु कुमारी विधवा तथा ॥१६२॥
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता । प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मंत्रार्चनविधानतः ॥१६३॥
रुद्राणां लोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । इमां यः शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि भक्तितः ॥१६४॥
शक्रलोकं स गत्वा तु पूज्यते कल्पसंस्थितः ।

शङ्कर उवाच

एवंविधा भवति चेन्नारी व्रतपरायणा ॥१६५॥
सावित्री तु वराकी सा तस्याः शापस्तु कीदृशः । न काचिद्गणना चास्ति यतस्त्रैलोक्यसुंदरी ॥१६६॥
सापूर्वस्यापि वन्द्या च लक्ष्मीर्विष्णुप्रतिग्रहात् । मया पूर्वं तवार्थाय दक्षयज्ञस्तु नाशितः ॥१६७॥
लक्ष्म्यर्थं विष्णुना चापि वारिधिर्मथितः पुरा । आज्ञाकरौ भवत्योश्च मा कुरुष्व भयं क्वचित् ॥१६८॥
सावित्र्या माननाकार्या कुपितायाः प्रसादनम् । मया च विष्णुना चैव ब्रह्मणामानमीप्सुना ॥१६९॥

का जल, मेघ का जल तथा कूठ के चूर्ण मिश्रित जल, खश के जल तथा यव के चूर्ण से युक्त जल तथा तिल का जल मार्गशीर्ष आदि चार महीनों में दोनों पक्षों में पीकर सो जाय ॥१५४-१५६॥ सभी पूजाओं में उजले फूल से पूजन श्रेयस्कर है और दान करते समय सदा इन मन्त्रों को बोलना चाहिए ॥१५७॥ मेरे ऊपर गौरी देवी प्रसन्न हो, मङ्गला देवी मेरे पापों का विनाश करें, ललिता देवी मुझे सौभाग्य प्रदान करें तथा भवानी सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करें ॥१५८॥ संवत्सर के अन्त में, नमक, गुड, कुंकुम, चन्दन तथा स्वर्ण निर्मित कमल के साथ, ईख तथा फल के साथ सुवर्ण घट का दान उमा देवी की प्रसन्नता के लिए करे तथा चादर तथा विस्तर से युक्त सुखप्रद शय्या का दान सपत्नीक ब्राह्मण को गौरी मे प्रीयताम् कह कर दे ॥१५८-१६०॥ ऐसा करने वाला पुरुष आत्मानन्द प्रदान करने वाली सम्पत्ति को प्राप्त करता है ॥१६१॥ आयु तथा आनन्द से सम्पन्न उस पुरुष को कभी भी शोक नही प्राप्त होता है । यदि कोई स्त्री, कुमारी अथवा विधवा इस व्रत को करती है तो ॥१६२॥ वह भी देवी की कृपा से उसी फल को प्राप्त करती है । प्रत्येक पक्ष में मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजा करने वाला व्यक्ति पुनरावृत्ति से रहित रुद्रो के लोक में जाता है । जो पुरुष इस प्रसङ्ग को भक्ति पूर्वक पढता अथवा सुनता है, वह इन्द्रलोक में जाकर एक कल्प तक पूजा प्राप्त करता है । **शङ्करजी ने कहा—** यदि इस तरह से कोई नारी व्रत करती है ॥१६३-१६५॥ तो उसके लिए बेचारी सावित्री तथा उसके शाप का क्या महत्त्व है, क्योंकि देवी तो त्रैलोक्य सुन्दरी हैं ॥१६६॥ त्रैलोक्य सुन्दरी देवी तो पहले लक्ष्मी की भी वन्द्या है । लक्ष्मी विष्णु भगवान् की पत्नी पूज्या हैं । प्राचीन काल में लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए श्रीभगवान् विष्णु ने समुद्र का मन्थन किया । सावित्री तो आप दोनों (भवानी तथा लक्ष्मी) की आज्ञा का पालन करने वाली हैं । अतएव भयमत करो ॥१६७-१६८॥ ब्रह्माजी का मान बढाना चाहने

गमिष्ये ब्रह्मसदनं त्वं च तिष्ठ वरानने। एवमुक्त्वा गतो रुद्रो गौरी तत्र व्यवस्थिता ॥१७०॥
कृतं युगं समग्रं च यज्ञेतस्मिन्हुताशनः । वहंस्तु हव्यं देवानां प्रीणयानो जगत्त्रयम्॥१७१॥
भोजनं द्विजमुख्येषु भोगान्विद्याधरे गणे। कामावाप्तिं मनुष्येषु सर्वमेव ददौ प्रभुः ॥१७२॥
रुद्रेणोक्तस्तदाविष्णु धर्मास्ते त्वं प्रकीर्त्तय । गौरीधर्मान्सरस्वत्या व्रतं यत्परिकीर्तितम् ॥१७३॥
इत्येवमुक्ते रुद्रेण विष्णुः प्रोवाच सादरम्। नाहं धर्मं ख्यापयिष्ये स्वकीयं शंकराधुना ॥१७४॥
भवानाख्यातु महात्म्यं मदीयं सुरसत्तम । त्वया वै कथितं पूर्वं कृते वै पापसंक्षयः ॥१७५॥
भविष्यति न संदेहो भवान् पूतो भविष्यति।

भीष्म उवाच

मधुरा गीर्भवेत्केन व्रतेन मुनिसत्तम ॥१७६॥
तथैव जनसौभाग्यं मतिर्विद्यासु कौशलम् । अभेदश्चापि दांपत्ये संगो बंधुजनेन च ॥१७७॥
आयुश्च विपुलं पुंसां तन्मे कथय सत्तम ।

पुलस्त्य उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया राजन् शृणु सारस्वतं व्रतम् ॥१७८॥
यस्य संकीर्तनादेव देवीतुष्येत्सरस्वती। यावद्भक्तः स्तवं कुर्यादितद्व्रतमनुत्तमम्॥१७९॥
प्राग्वासरादौ संपूज्य दिव्यं स्तवं समारभेत् । अथवा रविवारेण ग्रहताराबलेन च ॥१८०॥
पायसं भोजयेद्विप्रान् कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् । शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तितः॥१८१॥
गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः । यथा न देवि भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१८२॥
त्वां परित्यज्य तिष्ठेच्च तथा भव वरप्रदा । वेदशास्त्राणि धर्माणि नृत्यगीतादिकं च यत् ॥१८३॥

के कारण मैंने तथा विष्णु ने क्रुद्ध हुयी सावित्री देवी को मानाया ॥१६९॥ हे वरानने ! तुम यहीं रहो मैं ब्रह्माजी के घर जाऊँगा,यह कहकर रुद्र ब्रह्माजी के लोक में चले गये और गौरी वहीं स्थित रही ॥१७०॥ पूरे सत्ययुग पर्यन्त अग्निदेव उस यज्ञ में देवों के हविष्य का वहन तथा त्रैलोक्य का प्रीणन करते रहे ॥१७१॥ ब्रह्माजी उस यज्ञ में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन, विद्याधरों को भोग तथा मनुष्यों की सारी कामनाओं की पूर्ति करते रहे ॥१७२॥ रुद्र ने भगवान् विष्णु से कहा कि आप अपने धर्मों को बतलायें, शङ्करजी के इस तरह कहने पर भगवान् विष्णु ने आदर पूर्वक कहा। **विष्णु ने कहा—** हे शङ्कर इस समय मैं अपने धर्मों की स्थापना नहीं करूँगा ॥१७४॥ हे सुरश्रेष्ठ ! आप ही मेरे माहात्म्य का वर्णन करें । आपके द्वारा सर्वप्रथम उसका वर्णन किए जाने पर उसका अनुष्ठान करने से पापों का नाश होगा ॥१७५॥ और आप भी निःसन्देह रूप से पवित्र हो जायेंगे । **भीष्मजी ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! किस व्रत को करने से वाणी मधुर होती है? ॥१७६॥ आप मुझे उस व्रत को बतलायें जिसके करने से सौभाग्य, विद्या की कुशलता, पति-पत्नी में प्रेम, बान्धवों से सम्बन्ध तथा विपुल मात्रा में आयु की प्राप्ति होती है । **महर्षि पुलस्त्य ने कहा—** हे राजन् ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, अतएव आप सारस्वत व्रत का श्रवण करें ॥१७७-१७८॥ मनुष्य जब तक इस सर्वोत्तम व्रत को करता है, तब तक इसके कीर्तन मात्र से सरस्वती देवी प्रसन्न रहती हैं॥१७९॥ दिन के प्रारम्भ में (प्रातःकाल) सरास्वती देवी की पूजा करके इस दिव्य स्तोत्र को प्रारम्भ करना चाहिये। अथवा जिस रविवार को ग्रहों तथा तारा का बल प्राप्त हो ॥१८०॥ उस दिन ब्राह्मणों को खीरान्न (पायस) भोजन कराकर फिर ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराये । अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण के साथ धवल वस्त्र प्रदान करे॥१८१॥ उसके वाद भक्तिपूर्वक श्वेत माला तथा श्वेत चन्दनादि से गायत्री देवी की पूजा करे । उसके बाद प्रार्थन करे— हे देवि !

न विहीनं त्वया देवि तथा मे संतु सिद्धयः। लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिर्जया मतिः ॥१८४॥
एताभिः पाहि चाष्टाभि मूर्तिभिर्मां सरस्वति। एवं संपूज्यगायत्रीं वीणाकमलधारिणीम् ॥१८५॥
शुक्लपुष्पाक्षतै र्भक्त्या सकमंडलुपुस्तकाम्। मौनव्रतेन भुंजीत सायं प्रातश्च धर्मवित् ॥१८६॥
पंचम्यां प्रतिपक्षं च गां च विप्राय शोभनाम्। तथैव तंडुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ॥१८७॥
क्षीरं दद्याद्धिरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति। संध्यायां च तथा मौनमेतत्कुर्वन् समाचरेत् ॥१८८॥
न रात्र्यां भोजनं कुर्याद्यावन्मासास्त्रयोदश। समाप्ते तु व्रते दद्याद्‌भोजनं शुक्लतंडुलैः ॥१८९॥
दिव्यां वितानं घंटां च सितनेत्रपटान्विताम्। चंदनं वस्त्रयुग्मं च दध्यन्नं सुरसं पुनः ॥१९०॥
अथोपदेष्टारमपि भक्त्या संपूजयेद्गुरुम्। वित्तशाठ्येन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥१९१॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम्। सौभाग्यमतियुक्तस्तु सूक्ष्मकंठश्च जायते ॥१९२॥
सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके महीयते। नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलभागिनी ॥१९३॥
ब्रह्मलोके वसेद्राजन्यावत्कल्पायुतत्रयम्। सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि वा पठेत् ॥१९४॥
विद्याधरपुरे सोऽपि वसेदब्दायुतत्रयम्।

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे व्रताध्यायो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥
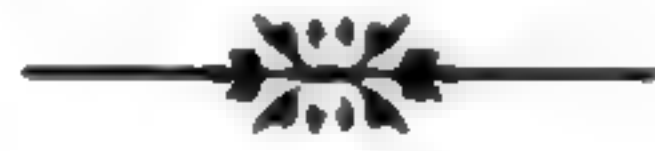
जिस तरह लोक पितामह भगवान् ब्रह्माजी ॥१८२॥ आपको छोडकर कहीं अलग नहीं रहते हैं उसी तरह आप मुझे वरदान दीजिये। हे देवि ! चूँकि आपकी कृपा के विना मुझे, वेद शास्त्र, तथा धर्मशास्त्र, नृत्य, गीत तथा सिद्धियाँ इत्यादि नहीं प्राप्त हो सकती हैं ॥१८३॥ इसलिए आप मुझे इन सवों का वरदान दें। हे सरस्वति देवि ! आप अपने लक्ष्मी, मेधा, धारा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, जया तथा मति ॥१८४॥ इन आठ रूपों से मेरी रक्षा करें। इस तरह से वीणा पुस्तक कमण्डलु तथा कमल को धारण करने वाली गायत्री देवी की श्वेत माला तथा श्वेत अक्षत से भक्तिपूर्वक अच्छी तरह से पूजा करके, धर्मज्ञ पुरुष को चाहिए कि मौनव्रत धारण करके सायंकाल तथा प्रातःकाल भोजन करे ॥१८६॥ प्रत्येक पक्ष की पञ्चमी तिथि को सायं काल ब्राह्मण को सुन्दर गौ तथा सुवर्ण युक्त एक प्रस्थ चावल, घृत भरे पात्र के साथ ॥१८७॥ दान दे। उन्हें दूध का भी दान गायत्री प्रीयताम् कहकर दे। इन समस्त कार्यों को मौनव्रत के साथ करे ॥१८८॥ उस दिन रात्रि में भोजन न करे, इसतरह से तेरह महीनों तक यह व्रत करे। व्रत के समाप्त हो जाने पर श्वेत चावलों से ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥१८९॥ फिर ब्राह्मण को चाँदनी, श्वेत नेत्र पट के साथ दिव्य (सुन्दर) घण्टा, चन्दन, दो वस्त्र, सरस दधि का दान दे ॥१९०॥ उसके बाद इस व्रत का उपदेश करने वाले गुरु की भी अच्छी तरह से पूजा करे, उनको वस्त्र एवं माला तथा चन्दन प्रदान करे। कंजूसी न करे॥१९१॥ जो व्यक्ति इस प्रकार से सारस्वत व्रत करता है, उसको सौभाग्य की प्राप्ति तथा सुन्दर स्वर की प्राप्ति हो जाती है ॥१९२॥ वह सरस्वती देवी की कृपा से, ब्रह्मालोक में जाकर समादृत होता है। यदि कोई नारी भी इस व्रत को करती है तो वह भी उस व्रत के फल को प्राप्त करती है ॥१९३॥ वह ब्रह्मलोक में तीस कल्पों तक निवास करती है। जो व्यक्ति सारस्वत व्रत को सुनता अथवा पढता है ॥१९४॥ वह भी विद्याधरों के लोक में तीस हजार वर्षों तक निवास करता है।

इसतरह पद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के वाइसवें व्रताध्याय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

तेइसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

वैण्णवा ये तु वै धर्मा यान् रुद्रः प्रोक्तवानिह। तान्मे कथय विप्रेंद्र कीदृशास्ते फलं तु किम् ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

पुरा रथंतरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना। मंदरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम् ॥२॥
कथमारोग्यमैश्वर्यमनंतमममरेश्वर। अल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षः सदानृणाम् ॥३॥
किं तज्ज्ञानं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज। अल्पकेनापि तपसा महाफलमिहोच्यते ॥४॥
इति पृष्टस्सविश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः। उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम् ॥५॥

ईश्वर उवाच

अस्माद्रथंतरात्कल्पाद्भूयो विंशतिमो यदा। वाराहो भविता कल्पस्तदामन्वंतरे शुभे ॥६॥
वैवस्वताख्ये संप्राप्ते सप्तमे सप्तलोकधृक्। द्वापाराख्यं युगं तस्मिमसप्तविंशतिमं यदा ॥७॥
तस्यांते तु महातेजा वासुदेवो जनार्दनः। भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति ॥८॥
द्वैपायनऋषिस्तत्र रौहिणेयोऽथ केशवः। कंसारिः केशिमथनः केशवः क्लेशनाशनः ॥९॥
पुरी द्वारावतीं नाम सांप्रतं या कुशस्थली। दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः ॥१०॥
त्वष्टा तदाज्ञया ब्रह्मन्करिष्यति जगत्पतेः। तस्यां कदाचिदासीनः सभायां सोऽमितद्युतिः ॥११॥
भार्याभि र्वृष्णिविद्वद्धि र्भूरिभि र्भूरिदक्षिणैः। कुरुभि र्देवगंधर्वैरन्वितः कैटभार्दनः ॥१२॥

वैष्णव धर्म का वर्णन, भीम द्वारा वैष्णव धर्म का प्रवर्तन, माघ शुक्ल पक्ष में होने वाली भीमद्वादशीव्रत का विधान, वर्णाश्रमों की उत्पत्ति, वेश्या व्रत का विधान और उसका विस्तृत वर्णन

भीष्मजी ने कहा— जो वैष्णव व्रत है, तथा जिनका रुद्र ने उपदेश किया है, हे विप्र ! आप हमें उन्हीं व्रतों को बतलाइये। वे व्रत कौन हैं ? तथा उनका फल क्या है ?॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— प्राचीन काल में रथन्तर कल्प में ब्रह्माजी ने रुद्र से पूछा— उस समय महादेव शङ्करजी मन्दाराचल पर्वत पर थे। हे अमरेश्वर ! हे देव ! थोड़ी सी ही तपस्या के द्वारा आरोग्य तथा अनन्त ऐश्वर्य एवं मोक्ष मनुष्यों को कैसे प्राप्त हो सकता है ? हे महादेव ! हे अधोक्षज ! आपकी कृपा से प्राप्त होने वाला वह कौन सा ज्ञान है जिसके कारण थोड़ी सी भी तपस्या से महान् फल की प्राप्ति होती है ॥४॥ इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा पूछे जाने पर, लोकों पर कृपा करने वाले विश्वात्मा उमापति ने मन को प्रसन्न करने वाली वाणी कहा ॥५॥ **ईश्वर (शङ्करजी) ने कहा**— इस रथन्तर कल्प के बाद बीसवाँ वाराह कल्प होगा। उसके मङ्गलमय ॥६॥ सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के सताइसवें द्वापर में सातो लोकों को धारण करने वाले महातेजस्वी जनार्दन वासुदेव, पृथिवी का भार उतारने के लिए तीन रूपों में पृथिवी पर अवतीर्ण होंगे ॥७-८॥ वे एक रूप से द्वैपायन ऋषि होंगे, दूसरे रूप से रोहिणी माता के पुत्र बलराम होंगे और तीसरे रूप में वे भगवान् श्रीकृष्ण होंगे। कंस के शत्रु, भक्तों के कष्ट को विनष्ट करने वाले केशव, केशी नामक दैत्य का वध करेंगे ॥९॥ इस समय जो कुशस्थली है, वही उस समय दिव्य प्रभाव से सम्पन्न शार्ङ्गधारी श्रीभगवान् की निवासस्थली द्वारावती (द्वारका) पुरी होंगी। श्रीभगवान् की आज्ञा पाकर उस नगरी का निर्माण त्वष्टा (विश्वकर्मा) करेंगे। उस नगरी में एक बार सभा में अमित कान्ति सम्पन्न कैटभारि श्रीभगवान् अपनी पत्नियों, तथा अत्यधिक

प्रवृत्तासु पुराणासु धर्मसंबंधिनीषु च । कथासु भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान् ॥१३॥
त्वया पृष्टस्य धर्मस्य वक्ष्यत्यस्य च भेददृक् । भविता स तदा ब्रह्मन्कर्ता चैव वृकोदरः ॥१४॥
प्रवर्तकोस्य धर्मस्य पांडुसूनु महाबलः । यस्य तीक्ष्णो वृको नाम जठरे हव्यवाहनः ॥१५॥
संभाव्यते सधर्मात्मा तेन चासौ वृकोदरः । अतीव स्वादशीलश्च नागायुतबलो महान् ॥१६॥
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे । इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः ॥१७॥
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः । अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम् ॥१८॥
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम् । पवित्राणां पवित्रं यन्मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥
भविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम् ॥१९॥

वासुदेव उवाच

यद्यष्टमी चतुर्दश्यो द्वादशीषु च भारत । अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम् ॥२०॥
ततस्त्वग्र्यामिमां भीम तिथिं पापप्रणाशिनीम् । उपोष्य विधिनानेन गच्छविष्णोः परं पदम् ॥२१॥
माघमासस्य दशमी यदाशुक्ला भवेत्तदा । घृतेनाभ्यंजनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥२२॥
तथैव विष्णुमभ्यर्चेन्नमो नारायणाय च । कृष्णाय पादौ संपूज्य शिरः कृष्णात्मनेति च ॥२३॥
वैकुण्ठायेति वैकण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे । शंखिने गदिने चैव चक्रिणे वरदाय वै ॥२४॥
सर्वं नारायणन्त्वेवं संपूज्यावाहनक्रमात् । दामोदरायेत्युदरं कटिं पञ्चजनायवै ॥२५॥
ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे । नमो नीलाय वै जंघे पादौ विश्वभुजे पुनः ॥२६॥

दक्षिणा वाले यज्ञों को करने वाले अनेक वृष्णिवंशियों कुरुवंशियों तथा देवगन्धर्वों के साथ बैठे हुए रहेंगे ॥१०-१२॥ जब धर्म संबन्धिनी चर्चा होती रहेगी, उस समय प्रतापी श्रीभगवान् से भीमसेन प्रश्न करेंगे ॥१३॥ उस समय आपके द्वारा प्रश्न और उसके भेदों को जानने वाले श्रीभगवान् बतलायेंगे ॥१४॥ इस धर्म का प्रवर्तन करने वाले महाबलवान् पाण्डु के पुत्र भीम होंगे । उनके पेट में वृक नामक तीक्ष्ण अग्नि होगी ॥१५॥ वे धर्मात्मा वृकोदर भीम से उस व्रत को कहेंगे । भीम अत्यधिक स्वाद लेने वाले तथा दश हजार हाथियों के बल से युक्त होने के कारण॥१६॥ तथा जाठराग्नि के अत्यन्त तीव्र होने के कारण धार्मिक भी उपवास नहीं कर पायेंगे । उनसे विश्वात्मा जगद्गुरु भगवान् वासुदेव कहेंगे कि जिसे मैं बतला रहा हूँ वह सभी व्रतों में श्रेष्ठ है ॥१७॥ यह सम्पूर्ण दुष्टों को शान्त करने वाला, समस्त यज्ञों का फल प्रदान करने वाला, समस्त प्रापों को विनष्ट करने वाला सभी देवताओं से पूजित, समस्त पवित्र व्रतों से पवित्र, सर्वाधिक मङ्गलमय, भविष्य कालीन व्रतों से बढकर भविष्यत् कालिक तथा प्राचीन व्रतों से भी प्राचीन व्रत है ॥१८-१९॥ **भगवान् वासुदेव ने कहा**— हे भारत ! यदि आप, अष्टमी, चतुर्दशी तथा द्वादशी इनके अतिरिक्त दूसरे दिन अथवा नक्षत्रों में उपवास नहीं कर सकते हैं, तो फिर ॥२०॥ यह (द्वादशी) तिथि पापों को विनष्ट करने वाले व्रतों में श्रेष्ठ हैं, इस तिथि में उपवास करके श्रीभगवान् के परम पद को प्राप्त कर लें ॥२१॥ जब माघ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि आये तो सम्पूर्ण शरीर में घी मलकर तिल मिश्रित जल से स्नान करे ॥२२॥ उसके बाद भगवान् विष्णु की पूजा **ॐ नमो नारायणाय** इस मन्त्र से करे **कृष्णाय नमः** इस मन्त्र से उनके चरणों की पूजा करे, **कृष्णात्मने नमः** इस मन्त्र से उनके शिर की पूजा करे॥२३॥ **वैकुण्ठाय नमः** से वैकुण्ठ की पूजा करे और **श्रीवत्सधारिणे नमः** इस मन्त्र से वक्षःस्थल की पूजा करे। फिर **शंखिने नमः गदिने नमः, चक्रिणे नम, वरदाय नमः** ॥२४॥ **सर्वं वै नारायणम्** इसतरह से पूजन

नमो देव्यै नमः शांत्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै । नमस्तुष्ट्यै नमः पुष्ट्यै धृत्यै व्युष्ट्यै नमो नमः ॥२७॥
नमो विहंगनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे । विषप्रमथनायेति गरुडं चाभिपूजयेत् ॥२८॥
एवं संपूज्य गोविंदमुमापतिविनायकौ । गंधैर्माल्यैस्तथा धूपै र्भक्ष्यै र्नानाविधैरपि ॥२९॥
गव्येन पयसा सिक्तां कृसरामथ पायसम् । सर्पिषा सह भुक्त्वा तु गत्वा स्थानांतरं पुनः॥३०॥
नैयग्रोधं दंतकाष्ठमथवा खादिरं बुधः । गृहीत्वा धावयेद्दंतानाचांतः प्रागुदङ्मुखः ॥३१॥
ब्रूयात्सायंतनीं कृत्वा संध्यामस्तमिते रवौ । नमोनारायणायेति त्वामहं शरणं गतः ॥३२॥
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च केशवम् । तां रात्रिं सकलां स्थित्वा शेषपर्यंकशायिनम् ॥३३॥
सर्पिषा विश्वदहनं हुत्वा ब्राह्मणपुंगवैः । सहैव पुंडरीकाक्षं द्वादश्यां क्षीरभोजनम् ॥३४॥
करिष्यामि यथात्मानं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे। एवमुक्त्वा स्वपेद्भूमावितिहासकथां पुनः ॥३५॥
श्रुत्वा प्रभाते संजाते नदीं गत्वा विशांपते । स्नानं कृत्वा मुदा तद्वत्पाषण्डानभिवर्जयेत् ॥३६॥
उपास्य सन्ध्यां विधिवत्कृत्वा च पितृतर्पणम् । प्रणम्य च हृषीकेशं शेषपर्यङ्कशायिनम् ॥३७॥
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद्बुधः । चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद्वेदीमरिनिषूदन ॥३८॥
चतुर्हस्तप्रमाणं तु विन्यसेत्तत्र तोरणम् । मध्ये च कलशं तत्र माषमात्रेण संयुतम् ॥३९॥
छिद्रेण जलसंपूर्णमधः कृष्णाजिने स्थितः । तस्य धारां च शिरसा धारयेत्सकलां निशाम्॥४०॥
धाराभिर्भूरिभिर्भूरि फलं वेदविदो विदुः । यस्मात्तस्मात्कुरुश्रेष्ठ कारयेत्प्रयतो द्विजः ॥४१॥

करके आवाहन के क्रम से पूजन करे **दामोदराय नमः** इस मन्त्र से श्रीभगवान् के उदर की पूजा करे । **पद्मनाभाय नमः** इस मन्त्र से कटि की पूजा करे ॥२५॥ **सौभाग्यनाथाय नमः** इस मन्त्र से दोनों ऊरूओं की पूजा करे, **भूतधारिणे नमः** इस मन्त्र से दोनों घुटनों की पूजा करे । **नीलाय नमः** इस मन्त्र से दोनों जंघों की पूजा करे, **विश्वभुजे नमः** इस मन्त्र से दोनों पैरों की पूजा करे ॥२६॥ इसके बाद हाथ जोड़कर प्रार्थना करे **देव्यै नमः, शान्त्यै नमः, मोक्षलक्ष्म्यै नमः, श्रियै नमः, तुष्ट्यै नमः, पुष्ट्यै नमः, व्युष्ट्यै नमः** ॥२७॥ **विहङ्गनाथय नमः, वायुवेगाय नमः, पक्षिणे नमः विषप्रमथनाय नमः** इन चार मन्त्रों से गरुड की पूजा करे ॥२८॥ इस तरह श्रीगोविन्द भगवान् की पूजा करे, शङ्करजी तथा गणेशजी की चन्दन, माला, धूप तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से पूजा करे ॥२९॥ इसके बाद गौ के दूध में निर्मित खीरान्न का दूसरी जगह जाकर भोजन करे ॥३०॥ उसके बाद बड़ अथवा खैर की दतौन से दाँतों को साफ करे और पूर्वाभिमुख होकर आचमन करे ॥३१॥ सूर्यास्त के समय सायंकाल सन्ध्या करे और कहे, हे नारायण ! आपको नमस्कार है, मैं आपके शरणागत हूँ ॥३२॥ इसके बाद सङ्कल्प करे कि एकादशी को निराहार रहकर तथा भगवान् केशव की पूजा करके, उस दिन पूरी रात्रि निराहार रहकर, शेषपर्यंकशायी श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणों से अग्नि में तथा पुण्डरीकाक्ष भगवान् के भी निमित होम कराकर ब्राह्मणों के साथ क्षीरान्न का भोजन करूँगा । यह आपकी कृपा से निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न हो जाय। इस तरह से श्रीभगवान् से निवेदन करके पृथिवी पर शयन करे, फिर इतिहास की कथा का श्रवण करके॥३३-३५॥ प्रातःकाल होने पर नदी में जाकर स्नान करे । उस दिन पाषण्डियों से दूर रहे, उन से बात न करे ॥३६॥ फिर सविधि, सन्ध्या तथा तर्पण करके शेषपर्यंकशायी भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करके ॥३७॥ गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने घर के सामने मण्डप का निर्माण करे । हे अरिनिषूदन ! चार हाथ की वेदी बनाये ॥३८॥ उस पर चार हाथ का तोरण लगाये । उसके बीच में कलश की स्थापना करके उसमें उतना ही बड़ा छिद्र करे जिसमें उड़द घूस

दक्षिणे चार्धचंद्रं तु पश्चिमे वर्तुलं तथा। अश्वत्थपत्राकारं च उत्तरेण तु कारयेत् ॥४२॥
मध्ये तु पद्माकारं च कारयेद्वैष्णवो द्विजः। पूर्वतो वेदिकां स्थानं स्थानं याम्ये च कल्पयेत्॥४३॥
पानीयधारां शिरसि धारयेद्विष्णुतत्परः। द्वितीया वेदी देवस्य तत्र पद्मं सकर्णिकम् ॥४४॥
तस्य मध्ये स्थितं देवं कुर्याद्वै पुरुषोत्तमम्। हस्तामात्रं च तत्कुंडं कृत्वा तत्र त्रिमेखलम्॥४५॥
योनिवक्त्रं ततस्तस्मिन् ब्राह्मणै र्यवसर्पिषी। तिलांश्च विष्णुदेवत्यै मंत्रैरेवानले हुनेत्॥४६॥
कृत्वा तु वैष्णवं सम्यग्यागं तत्र प्रकल्पयेत्। आज्यधारामध्यमे तु कुंडे दद्यात्तु यत्नतः ॥४७॥
क्षीरधारां देवदेवे वारिधारात्मनोपरि। निष्पावार्धप्रमाणां वै धारामाज्यस्य पातयेत्॥४८॥
स्वेच्छया क्षीरजलयोरविच्छिन्नां च शर्वरीम्। जलकुंभान् महावीर्य स्थापयित्वा त्रयोदश ॥४९॥
भक्ष्यै र्नानाविधै र्युक्तान्सितवस्त्रैरलंकृतान्। प्रतानौदुंबरैः पात्रैः पंचरत्नसमन्वितैः॥५०॥
चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमः कार्यस्तत्र उदङ्मुखैः। रुद्रजाप्यश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः॥५१॥
वैष्णवानि च सामानि चतुर्भिः सामवेदिभिः। एवं द्वादश वैविप्रान्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥५२॥
पूजयेदंगुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः। वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥५३॥
एवं क्षपातिवाह्या वै गीतमङ्गलनिःस्वनैः। उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु ॥५४॥
ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश। गावो देयाः कुरुश्रेष्ठ सौवर्णश्रृंगसंवृताः॥५५॥

जाय। उस कलश में जल भर दे, उस कलश के नीचे काले मृगचर्म पर बैठे। और पूरी रात्रि तक उस छिद्र से गिरने वाली जल की धारा को अपने शिर पर धारण करे ॥३९-४०॥ वेदज्ञों का कहना है कि जितनी ही अधिक धाराओं को धारण किया जाय उतना ही अधिक फल होता है। अतएव हे कुरुश्रेष्ठ ! इस व्रत को सप्रयास करना चाहिए ॥४१॥ वैष्णव ब्राह्मण को चाहिए कि वह मण्डप को दक्षिण दिशा में अर्द्ध चन्द्राकार, पश्चिम में वर्तुलाकार गोल, उत्तर दिशा में पिप्पल के पत्ते के आकार का तथा बीच में कमलाकृति बनाये। मण्डप के पूर्व में वेदी का स्थान बनाना चाहिए उसके दक्षिण ओर भी एक वेदी बनाये ॥४२-४३॥ भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए रात्रिभर जल की धारा को धारण करे। दूसरी वेदी भगवान् विष्णु की होनी चाहिए, उस पर कर्णिका युक्त कमल बनाये। उसके बीच में भगवान् पुरुषोत्तम की स्थापना करे। वहीं पर एक हाथ का कुण्ड बनाये, अर्थात् उसे एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा होना चाहिए। उसकी तीन मेखलाएँ हों ॥४३-४५॥ उसके पश्चिम में योनि बनाये। फिर उस कुण्ड में अग्नि में भगवान् विष्णु के मन्त्र से तिल, यव और घी से, ब्राह्मणों द्वारा होम कराये ॥४६॥ इस तरह से वैष्णव याग करके कुण्ड के बीच में घी की धारा (वसोर्धारा) गिराये ॥४७॥ श्रीभगवान् के ऊपर दूध की धारा तथा अपने ऊपर जल की धारा गिराये। घी की धारा को निष्पावा (मटर) की दाल को बराबर छिद्र से गिराना चाहिए ॥४८॥ दूध और जल की धारा को अपनी इच्छा के अनुसार ही मोटी-पतली होनी चाहिए। इन दोनों धाराओं को रात्रिभर गिराना चाहिए। उसके बाद जल से भरे हुए तेरह कलशो की स्थापना करे ॥४९॥ उन कलशों को अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों तथा श्वेत वस्त्र से अलङ्कृत होना चाहिए। उन्हें चाँदनी, उदूम्बर पत्र, तथा पञ्चरत्नों से भी युक्त होना चाहिए ॥५०॥ उस समय चार उत्तराभिमुख बैठे हुए ऋग्वेदी ब्राह्मणों से होम कराये चार यजुर्वेदी ब्राह्मण रुद्राध्याय का पाठ करें ॥५१॥ चार सामवेदी ब्राह्मणों को अरिष्ट वर्ग के साथ वैष्णव साम का पाठ करना चाहिए ॥५२॥ इसतरह से बारह ब्राह्मणों की पूजा वस्त्र, माला, सुवर्ण की अङ्गूठी, कंकण तथा जंजीर देकर करे ॥५३॥ उन्हें वस्त्र तथा शय्या प्रदान करे। इस कार्य में वित्तशाठ्य (कंजूसी) न करे। इसतरह पूरी रात गीत

पयस्विन्यः शीलवत्यः कांस्यदोहसमन्विताः । रौप्यखुराः सवत्साश्च चंदनेनाभिभूषिताः ॥५६॥
तास्तु तेषां ततो दत्वा भक्ष्यभोज्येन तर्पितान् । कृत्वा वै ब्राह्मणान्सर्वान् छत्रैर्नानाविधैस्तथा ॥५७॥
भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मनाच विसर्जयेत् । अनुगम्यपदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः ॥५८॥
प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः । एवं गुर्वाज्ञयां कुंभान् गाश्चैव शयनानि च ॥५९॥
वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणि प्रापयेद्बुधः । अभावे बहुशय्यानामेकामपि सुसंस्कृताम् ॥६०॥
शय्यां दद्याद्गृही भीम सर्वोपस्करसंयुताम् । इतिहासपुराणानि वाचयित्वा तु वाहयेत् ॥६१॥
तद्दिनं कुरुशार्दूल य इच्छेद्विपुलां श्रियम् । तस्मात्त्वं सत्त्वमालंब्य भीमसेन विमत्सरः ॥६२॥
कुरुव्रतमिदं सम्यक् स्नेहाद्गुह्यं मयोदितम् । त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नाम्ना च भविष्यति ॥६३॥
सा भीमद्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभा । या तुकल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते ॥६४॥

त्वं चादिकर्ता भव सौकरेस्मिन् कल्पे महावीरवरप्रधान ।
यस्याः स्मृतेः कीर्तनतोप्यशेषं पापं प्रणष्टं त्रिदशाधिपस्य ॥६५॥
दृष्ट्वा च तामप्सरसामभीष्टां वेश्या कृतामन्यभवांतरेषु ।
जाताथ सा वैश्यकुलोद्भवापि पुलोमकन्या पुरुहूतपत्नी ॥६६॥
तत्रापि तस्याः परिचारिकेयं मम प्रिया संप्रति सत्यभामा ।
कृतं पुरा मङ्गलमेतदेव द्विजात्मजा वेदवती बभूव ॥६७॥

तथा मङ्गल गानों से बिताये ॥५४॥ अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा आचार्य को दो गुना सभी वस्तुओं का दान देना चाहिए। हे कुरुश्रेष्ठ भीष्म ! इसके बाद प्रातःकाल जगकर तेरह गायों का दान करे । सभी गायों की सींग सुवर्ण से तथा खुर चाँदी से मढे हुए होना चाहिए । सबों को दूध देने वाली, सीधी, तथा कांसे के दुग्धपात्र से युक्त होना चाहिए ॥५५-५६॥ सभी गायों को बछड़े वाली तथा चन्दन से अलङ्कृत होना चाहिए । उन सबों को भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों से तृप्त ब्राह्मणों को देना चाहिए ॥५७॥ सभी ब्राह्मणों को अनेक प्रकार का छाता प्रदान करे । फिर स्वयं नमक रहित भोजन करके ब्राह्मणों को विदा करे ॥५८॥ ब्राह्मणों को विदा करते समय पत्नी तथा पुत्र के साथ आठ पग उनके पीछे-पीछे जाय । ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर लौटते समय कहे । मेरे इस व्रत से क्लेशों को दूर करने वाले भगवान् केशव प्रसन्न हों ॥५९॥ आचार्य की आज्ञा प्राप्त करके कलशों, गायों, शय्याओं तथा वस्त्रों को ब्राह्मणों के घर पहुँचवा देना चाहिए ॥६०॥ हे भीम ! यदि किसी गृहस्थ के पास अनेक शय्या न हो सके तो सभी समाग्रियों से युक्त तथा संस्कार संपन्न एक ही शय्या का दान करना चाहिए ॥६१॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! प्रभूत सम्पत्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले व्रती को वह दिन इतिहासों तथा पुराणों के पाठ में बिताना चाहिए ॥६२॥ हे भीम ! तुम सत्त्वगुण को अपनाकर तथा मत्सर (द्वेष) रहित होकर इस व्रत को अच्छी तरह से करो, स्नेहवशात् मैंने तुम्हें इसका उपदेश दिया है ॥६३॥ हे वीर ! यदि इस व्रत को तुम करो तो यह व्रत तुम्हारे ही नाम पर भीमद्वादशी के नाम से विख्यात होगा। यह व्रत मङ्गलमय और सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । पहले के कल्पों में यह द्वादशी कल्याणिनी द्वादशी के नाम से कही जाती थी ॥६४॥ हे महावीरों ! में प्रधान भीम ! इस वाराह कल्प में इस व्रत को सर्वप्रथम करने वाला तुम ही बन जाओ । इसका ही अनुष्ठान करने से देवराज इन्द्र के सारे पाप विनष्ट हो गये ॥६५॥ सभी अप्सराओं से भी अधिक अभिप्रेत उस आभीर कन्या को देखकर जो इन्द्र ने पाप किया था, वही आभीर कन्या इस समय स्वर्ग में उर्वशी है ॥६६॥ पहले वह वैश्य (अहीर) वंश में उत्पन्न हुयी थी फिर वह पुलोम की पुत्री और इन्द्र की पत्नी

अस्यां च कल्याणतिथौ विवस्वान् सहस्त्रधारेण सहस्त्ररश्मिः ।
स्नातः पुरा मंडलमेत्य तद्वत् तेजोमयं खेटपति र्बभूव ॥६८॥
इदमेव कृतं महेंद्रमुख्यै र्बहुभि र्देवसुरारिकोटिभिश्च ।
फलमस्येह नशक्यते हि वक्तुं यादि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः ॥६९॥
कलिकलुष विदारिणीमनंता मपि कथयिष्यति यादवेंद्र सूनुः ।
अपि नरकगतान् पितॄनथैषा ह्यलमुद्धर्तुमिहैव यः करोति ॥७०॥
इदमनघ शृणोति वक्ति भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः ।
इह पंकजनाभ भक्तिमान्भवे दथ शक्रस्य सपूज्यतामुपैति ॥७१॥
कल्याणिनी नाम पुरा विसर्गे या द्वादशी माघसितेभिपूज्या ।
सा पांडुपुत्रेण कृता भविष्य त्यंनतपुण्यानघ भीमपूर्वा ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः । सदाचारश्च भगवान् धर्मशास्त्राङ्ग विस्तरैः ॥७३॥
पण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ।

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नेव पुरे ब्रह्मन्सहस्त्राणि तु षोडश ॥७४॥
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यंत्यंबुजोद्भव । ताभिर्वसंतसमये कोकिलालिकुलाकुले ॥७५॥
पुष्पितोपवने फुल्लकह्लारसरसस्तटे। निर्भरं सहपत्नीभिः प्रशस्ताभिरलंकृतः ॥७६॥
रमयिष्यति विश्वात्मा कृष्णो यदुकुलोद्वहः । कुरंगनयनः श्रीमान्मालतीकृतशेखरः ॥७७॥

शची हुयी । वहाँ मेरी प्रिया सत्यभामा उसकी परिचारिका थी ॥६७॥ वहाँ पर उसने इस मङ्गलमय व्रत को किया तो वह ब्राह्मण की पुत्री वेदवती हुयी ॥६८॥ इसी तिथि को इस व्रत को करते समय सूर्य ने एक हजार जलधाराओं को ग्रहण किया था । उसके फल स्वरूप वे इस प्रकार के तेजस्वी और नक्षत्रों के स्वामी हों गये ॥६९॥ महेन्द्र आदि करोड़ों देवताओं और असुरों ने भी इसी व्रत को किया था । अतएव यदि किसी के मुख में करोड़ों भी जीभ हो तो भी वह इसके फल का वर्णन नहीं कर सकता है ॥७०॥ यादवेन्द्र सूनु भगवान् श्रीकृष्ण भी कलि के पापों को विनष्ट करने वाली तथा अनन्त फल देने वाली इस द्वादशी को बतलायेंगे । जो इस लोक में इस व्रत को करता है वह नरक में भी गये हुए अपने पितरों का उद्धार करने में समर्थ हो जाता है ॥७१॥ हे अनघ ! यदि इसको कोई पढता अथवा इसका श्रवण करता है, अथवा दूसरों का उपकार करने के लिए इसे सुनाता है तो वह इस लोक में भगवान् विष्णु का भक्त होता है, और स्वर्गलोक में इन्द्र भी उसकी पूजा करते हैं ॥७२॥ प्राचीन काल के कल्पों में जो माघमास के शक्ल पक्ष में कल्याणिनी द्वादशी के नाम से पूजित थी वह पाण्डुपुत्र भीम के द्वारा अनुष्ठित किए जाने पर अनन्त पुण्य प्रदान करने वाली भीम द्वादशी हो जायेगी ॥७३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** मैंने पुराणों में वर्णाश्रमों की उत्पत्ति को सुना है । मैंने विस्तार पूर्वक सदाचार तथा साङ्ग धर्मशास्त्रों का भी श्रवण किया है । अब मैं अच्छी तरह से वेश्याओं के भी व्रत को सुनना चाहता हूँ ॥७४॥ **ईश्वर (भगवान् शिव) ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! उस द्वारकापुरी में ही भगवान् वासुदेव की सोलह हजार पत्नियाँ होयेंगी । उन सबों के साथ कोयलों से परिपूर्ण वसन्त ऋतु में॥७५-७६॥ भगवान् श्रीकृष्ण विकसित उपवन में, जिसमें कमल विकसित हों ऐसे सरोवर के तट में, उन श्रेष्ठ पत्नियों के साथ

गच्छन्समीपमार्गेण सांबो जांबवती सुतः । साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥७८॥
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः । प्रबुद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि॥७९॥
तदवेक्ष्य जगन्नाथस्सर्वज्ञो ध्यानचक्षुषा । स्वयंप्रभुर्वक्ष्यति ता वो हरिष्यंति दस्यवः ॥८०॥
अपरोक्षं यतस्त्वेवं स्निग्धमेतद्विचिंतितम् । ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् ॥८१॥
ताभिः शापाभितप्ताभि र्भगवान्भूतभावनः । उत्तराश्रितदाशानामुद्धर्ता ब्राह्मणप्रियः ॥८२॥
उपदेक्ष्यत्यनंतात्मा भावि कल्याणकारकम् । भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद्व्रतं कथयिष्यति ॥८३॥
इत्युक्त्वा ताः परित्यज्य गतोन्तर्धानमीश्वरः । ततः कालेन महता भारावतरणे कृते ॥८४॥
निवृत्ते मौसले तद्वत्केशवे दिवमागते । शून्ये यदुकुले सर्वे चौरैरपि जितेर्जुने ॥८५॥
हृतासु कृष्णपत्नीषु दाशभोग्यासु चार्बुदे । तिष्ठंतीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुख ॥८६॥
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः । तास्तमर्ध्येणसंपूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥८७॥
लालप्यमाना बहुशो वाष्पपर्याकुलेक्षणाः । स्मरंत्यो विविधान्भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनान् ॥८८॥
भर्त्तारं जगतामीशमनंतमपराजितम् । दिव्यानुभावां च पुरीं नानारत्नमृहाणि च ॥८९॥
द्वारकावासिनः सर्वान्देवरूपान्कुमारकान् । प्रश्नमेतंकरिष्यंति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥९०॥
दस्युभिर्भगवन्सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात् । स्वधर्मश्च्याविततोस्माकमस्मिन्नः शरणं भवान्॥९१॥
आदिष्टोसि पुरा ब्रह्मन् केशवेन च धीमता । कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः ॥९२॥

अलङ्कारो से अलङ्कृत विश्वात्मा यदुवंश भूषण भगवान् श्रीकृष्ण रमण करेगे । इसके सन्निकट के मार्ग से हरिण के समान विशाल नेत्रों वाले, मालती पुष्प की माला धारण किए हुए, साक्षात् कामदेव के समान सुन्दर रूप वाले समस्त अलङ्कारों से अलङ्कृत जाम्ववती नन्दन साम्ब को काम के बाणों से व्यथित वे पत्नियाँ साभिलाष देखकर कामाकुल हो जायेंगी । उनके मन में काम का विकार उद्रिक्त हो जायेगा ॥७७-८०॥ जगन्नाथ जगत् के स्वामी सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण अपने ध्यान योग के द्वारा इस बात को जानकर उन सबों को शाप दे देंगे कि तुम लोगों को लुटेरे लुट लेंगे ॥८१॥ क्योंकि तुम लोगों के मन में मेरे सामने ही ऐसा विचार आया है । शाप से सन्तप्त उन पत्नियों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भूतभावन जीवों का कल्याण करने वाले ब्राह्मण प्रिय उन सबों से भविष्यत् काल में कल्याण के साधन का उपदेश करते हुए कहेंगे कि दस्युओं (लुटेरों) द्वारा लूट लिए जाने के बाद दाल्भ्य ऋषि तुम लोगों को उद्धार का साधन बतलायेंगे ॥८२-८४॥ इसतरह से कहकर श्रीभगवान् उन सबों के सामने से ही अन्तर्धान हो जायेंगे । उसके बहुत दिनों के बाद जब भगवान् पृथिवी के भार को उतार लेंगे ॥८५॥ जब मूसल का प्रसङ्ग समाप्त हो जायेगा, भगवान् अपने लोक में चले जायेंगे और सम्पूर्ण यदुवंश विनष्ट हो जायेगा । उस समय चोरों द्वारा अर्जुन के परास्त हो जाने पर ॥८६॥ एक खरब (अर्बुद) चोरों (लुटेरें) द्वारा भगवान् कृष्ण की पत्नियों के लूट लिए जाने पर, वे सब दुर्गति ग्रस्त हो जायेंगी, उस समय हे ब्रह्माजी ॥८७॥ उन सबों के पास महातपस्वी योगी दाल्भ्य आयेंगे । वे सब उनको अर्घ्य प्रदान करके तथा पूजन पूर्वक उनको बार-बार प्रणाम करके ॥८८॥ आँखों में आँसू भरकर अत्यधिक रोती हुयी अतीत कालिक अनेक प्रकार के भोगों, दिव्य माल्य एवं चन्दनादि के अनुलेपों ॥८९॥ जगत् के स्वामी, अनन्त तथा कभी भी किसी द्वारा परास्त नहीं होने वाले अपने पति को, दिव्य प्रभाव से युक्त द्वारकापुरी को, रत्न निर्मित अपने गृहों को ॥९०॥ समस्त द्वारका वासियों तथा देवतुल्य पुत्रों को याद करती हुयी महर्षि के सामने खड़ी होकर ॥९१॥ कहेंगी कि हे भगवन् ! दस्युओं ने हमलोगों का बलपूर्वक उपभोग

वेश्यानामपि योधर्मस्तं नो ब्रूहि तपोधन । कथयिष्येऽवदत्तासां यद्दाल्भ्यश्चैकितायनः ॥९३॥

दाल्भ्य उवाच

जलक्रडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे । भवतीनां सगर्वाणां नारदोभ्याशमागतः ॥९४॥
हुताशनसुताः सर्वा भवत्योप्सरसः पुरा । अप्रणाम्यावलेपेन परिपृष्टः सयोगवित् ॥९५॥
कथं नारायणोस्माकं भर्त्ता स्यादित्युपादिश । तस्माद्वरप्रदानं च शापश्चायमभूत्पुरा ॥९६॥
शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः । सुवर्णोपस्करोत्संगं द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥९७॥
भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि । यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात् ॥९८॥
परिपृष्टोस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति । चोरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥९९॥
एवं नारदशापेन केशवस्य च शापतः । वेश्यात्वमागताः सर्वा भवत्यः काममोहिताः ॥१००॥
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वरांगनाः । पुरा दैवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः ॥१०१॥
दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः । तेषां दारसाहस्राणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०२॥
परिणीतानि यानि स्यु र्वलाद्भुक्तानि यानि वै । तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतांवरः ॥१०३॥
वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमंदिरे । भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च ॥१०४॥
राजतः स्वामिनश्चापि जीविकां च प्रलप्स्यथ । भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः ॥१०५॥
यःकश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा । निश्छद्मनैवोपचर्यः प्रीतिभावैरदांभिकैः ॥१०६॥

किया है । हमलोग अपने धर्म से पतित हो गयी हैं; इस समय केवल आप ही हमलोगों का सहारा हैं ॥९२॥ बुद्धिमान् केशव ने हमलोगों को आपके विषय में निर्देश दिया है । अतएव आप बतलायें कि श्रीभगवान् का संयोग प्राप्त करके हमलोग वेश्या क्यों हो गयीं ॥९३॥ हे तपोधन ! हमलोगों को वेश्या के धर्म को बतलायें । यह सुनकर चेकितायन दाल्भ्य ऋषि ने कहा कि मैं तुमलोगों को बतलाता हूँ ॥९४॥ **दाल्भ्य महर्षि ने कहा—** पूर्वजन्म में तुम लोग अग्नि की पुत्रियाँ अप्सरा थी । एक बार तुम लोग मानसरोवर में जलक्रीडा कर रही थीं, उसी समय तुम लोगों के सन्निकट नारद ऋषि आये; किन्तु गर्वीली होने के कारण तुमलोगों ने उनको प्रणाम नहीं किया । तुमलोगों ने उन महर्षि से पूछा ॥९४-९५॥ आप हमें बतलायें कि किस उपाय को करने से हमलोगों के पति भगवान् नारायण होयेंगे? उस समय नारदजी ने तुमलोगों को वरदान और शाप दोनों दिया ॥९६॥ उन्होंने कहा— चैत्र और वैशाख इन दोनों महीनों के शुल्लपक्ष की द्वादशी तिथि को, सुवर्ण की सामग्री से युक्त दो शय्याओं का दान करने से ॥९७॥ दूसरे जन्म में भगवान् नारायण तुमलोगों के पति होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है । किन्तु अपने रूप तथा सौभाग्य के अभिमान के कारण तुमलोगों ने जो मुझे प्रणाम किए बिना ही ॥९८॥ पूछा है, उसके कारण तुमलोगों से उनका शीघ्र ही वियोग भी हो जायेगा । तुमलोगों का अपहरण चोर कर लेंगे और तुमलोग वेश्या हो जाओगी ॥९९॥ इस तरह नारदजी के शाप के कारण तथा भगवान् केशव के शाप के कारण, काममोहित तुमलोग वेश्या हो गयी हो॥१००॥ हे वराङ्गनाओं ! इस समय भी मैं जो कह रहा हूँ उसे तुमलोग सुनो । प्राचीनकाल में जब देवासुर संग्राम में देवताओं द्वारा सैकड़ो असुर, दानव, दैत्य तथा राक्षस मारे गये । उन सबों की सैकड़ो हजार पत्नियाँ ॥१०२॥ जो विवाहिता थी उन सबों का देवताओं ने बलपूर्वक उपभोग किया । उन सबों को बोलने वालों में श्रेष्ठ इन्द्र ने कहा॥१०३॥ हे सुन्दरियों । तुमलोग भक्तिपूर्वक इस समय राजा के भवन में तथा मन्दिर में वेश्या धर्म से निवास करो ॥१०४॥ तुम लोगों को राजाओं तथा स्वामियों से जीविका की प्राप्ति होगी । तुम सबों को शक्ति के

देवतानां पितृणां च पुण्येह्निसमुपस्थिते । गो भूहिरण्यधामानि प्रदेयानि च शक्तितः ॥१०७॥
यद्व्रतं चोपदेक्ष्यामि तत्कुरुध्वं च सर्वशः। संसारोत्तारणयालमेतद्वेदविदो विदुः ॥१०८॥
यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्यो वाथ पुनर्वसुः। भवेत्सर्वौषधिस्नानं सम्यक् नारी समाचरेत् ॥१०९॥
तदा पचंशरात्मा तु हरिस्सन्निधिमेष्यति । अर्चयेत्पुंडरीकाक्षमनंगस्यानुकीर्तनैः ॥११०॥
कामाय पादौ संपूज्य जंघे वै मोहकरिणे । मेढ्ं कदर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः ॥१११॥
नाभिं सौख्यसमुद्राय वामनाय तथोदरम्। हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे ॥११२॥
उत्कंठायेति वै कण्ठमास्यमानंदकारिणे । वामांसं पुष्पचापाय पुष्पबाणाय दक्षिणम् ॥११३॥
मानसायेति वै मौलिं विलोलायेति मूर्द्धजम् । सर्वात्मने शिरस्तद्वद्देवदेवस्य पूजयेत्॥११४॥
नमः शिवाय शांताय पाशांकुशधराय च । गदिने पीतवस्त्राय शंखचक्रधराय च ॥११५॥
नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः । नमः शांत्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै॥११६॥
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसंपदे। एवं संपूज्य गोविंदमनंगात्मकमीश्वरम् ॥११७॥
गंधमाल्यैस्तथा धूपै नैवेद्येन च भामिनी। तत आहूयधर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥११८॥
अव्यंगमथ सम्पूज्य गंधपुष्पार्चनादिभिः। शालेयतंडुलप्रस्थं घृतपात्रेणसंयुतम्॥११९॥

अनुसार सौभाग्य भी प्राप्त होगा ॥१०५॥ जो कोई तुम लोगों के यहाँ धन लेकर तुमलोगों के यहाँ आये, उसके प्रति विना दम्भ तथा कपट के तुम लोगों को प्रेम करना चाहिए ॥१०६॥ जब देवताओं तथा पितरों की पुण्य तिथि आये उस दिन तुम लोगों को गौ, पृथिवी, सुवर्ण तथा अन्न का अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए ॥१०७॥ मैं जिस व्रत को बतलाता हूँ उसका नियम पूर्वक पालन करो । वेदज्ञों का कहना है कि यह व्रत संसार सागर से पार करने में समर्थ है ॥१०८॥ जब रविवार के दिन, हस्त या पुष्य या पुनर्वसु नक्षत्र आये उस दिन नारी को अच्छी तरह से सर्वौषिधि से स्नान करना चाहिए ॥१०९॥ उस दिन अपने मन में ऐसी भावना करे कि आज मेरे काम शरीरक श्रीभगवन् हमारे पास आयेंगे । उसके बाद काम के नामों से भगवान् पुण्डरीकाक्ष की पूजा करे ॥११०॥ **कामाय नमः** इस मंत्र से पैरों की पूजा करके, **मोहकारिणे नमः** इस मंत्र से दोनों जंघाओं की पूजा करे, **कंदर्पनिधये नमः** इस मन्त्र से मेढ़ (अण्डकोश) की पूजा करे **प्रीतिमते नमः** इस मंत्र से कमर की पूजा करे॥१११॥ **सौख्यसमुद्राय नमः** इस मंत्र से नाभि की पूजा करे, **वामनाय नमः** इस मंत्र से उदर की पूजा करे **हृदयेशाय नमः** इस मंत्र से हृदय की पूजा करे, **आह्लादकारिणे नमः** इस मंत्र से दोनों स्तनों की पूजा करे॥११२॥ **उत्कण्ठाय नमः** इस मन्त्र से कण्ठ की पूजा करे, **आनन्दकारिणे नमः** उस मन्त्र से मुख की पूजा करे, **पुष्पचापाय नमः** इस मन्त्र से बायें कंधे की पूजा करे **पुण्यबाणाय नमः** इस मंत्र से दाहिने कन्धे की पूजा करे ॥११३॥ **मानसाय नमः**-इस मन्त्र से शिर की पूजा करे, **विलोकाय नमः** इस मन्त्र से बालों की पूजा करे **सर्वात्मने नमः** इस मन्त्र से शिर की पूजा करे और **देवदेवाय नमः** इस मन्त्र से मुख की पूजा करे ॥११४॥ इसके बाद में हाथ जोड़कर प्रार्थना करे **शिवाय नमः, शान्ताय नमः, पाशाङ्कुशधराय नमः, गदिने नमः, पीतवाससे नमः, शङ्खचक्रधराय नमः** ॥११५॥ **नारायणाय नमः, कामदेवात्मने नमः, शान्त्यै नमः, प्रीत्यै नमः, रत्यै नमः, श्रियै नमः** ॥११६॥ **पुष्ट्यैः नमः, तुष्ट्यै नमः, सर्वार्थ सम्पदे नमः** इसतरह से कामात्मक श्रीगोविन्द की पूजा करे ॥११७॥ उसके बाद चन्दन, माला, धूप तथा नैवेद्य से श्रीभगवान् की पूजा करे । उसके बाद धर्मज्ञ तथा वेद पारंगत ब्राह्मण को बुलाकर ॥११८॥ पुष्प तथा चन्दन आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए । ब्राह्मण को अव्यङ्ग

तस्मै विप्राय वै दद्यान्माधवः प्रीयतामिति। यथेष्टाहारसंभुक्तमेनं द्विजमनुत्तमम् ॥१२०॥
रत्यर्थं कामदेवोयमिति चित्ते च धारयेत् । यद्यदिच्छतिविप्रेंद्र स्तत्तत्कुर्याद्विलासिनी ॥१२१॥
सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत्स्मितभाषिणी। एवमादित्यवारेण सर्वमेतत्समाचरेत् ॥१२२॥
तंडुलप्रस्थदानं चयावन्मासास्त्रयोदश। ततस्त्रयोदशे मासि संप्राप्ते चास्य भामिनी ॥१२३॥
विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विचक्षणा। सोपधानां सविन्यासां स्वास्तरावरणां शुभाम् ॥१२४॥
दीपिकोपानहच्छत्र पादुकासनसंयुताम् । सपत्नीकमलंकृत्य हेमसूत्रांगुलीयकैः ॥१२५॥
सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकै र्धूपमाल्यानुलेपनैः। कामदेवं सपत्नीकं गुडकुंभोपरिस्थितम् ॥१२६॥
ताम्रपात्रासनगतं हिमनेत्रपटावृतम् । सुकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदंडसमन्वितम् ॥१२७॥
दद्यादनेन मंत्रेण तथैकां गां पयस्विनीम्। यथांतरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा॥१२८॥
तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विप्र सदा मम। तथा च कांचनं देवं प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः॥१२९॥
कोदात्कामोदादिति वैदिकं मंत्रमुदीरयेत् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृज्यद्विजपुंगवम् ॥१३०॥
शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत्। ततः प्रभृति योन्योपि रत्यर्थं गेहमागतः ॥१३१॥
सम्मान्यसूर्यवारेण स संपूज्यो भवेत्सदा। एवं त्रयोदशं यावन्मासमेकं द्विजोत्तमम्॥१३२॥
तर्पयित्वा यथाकामं प्रेषयेच्चैव मंदिरम् । तदनुज्ञया रूपवन्तं यावदस्यागमो भवेत्॥१३३॥
आत्मनोपि यदाविघ्नं गर्भसूतकराजकम् । दैवं वा मानुषं वा स्यादुपरागेण वा ततः॥१३४॥

(निर्दोष) होना चाहिए। उनको एक प्रस्थ चावल तथा घी भरा पात्र दान दे ॥११९॥ उस ब्राह्मण को दान देने के समय कहे— **माधवः प्रीयताम्** यथेष्ठ अहार से ब्राह्मण को सन्तुष्ट करे ॥१२०॥ स्वयं कामदेव रति करने के लिए मेरे पास आये हैं, इसतरह से मन में भावना करे, और वे ब्राह्मण जो-जो कहें उन समस्त कामों को उसे करना चाहिये ॥१२१॥ मुस्कुराती हुयी उसे उन्हें अपने को पूर्णरूप से समर्पित कर देना चाहिए। इस तरह से उसको रविवार को आचरण करना चाहिए ॥१२२॥ तेरह महीनों तक उसे एक प्रस्थ चावल प्रदान करे। उसके बाद तेरहवें महीनें में जब वे ब्राह्मण आयें ॥१२३॥ तो उन ब्राह्मणको सभी सामग्रियों के साथ शय्या दान करे। शय्या को तकिया के साथ तथा सुन्दर विस्तर तथा चादर के साथ सुन्दर होना चाहिए ॥१२४॥ सपत्नीक ब्राह्मण को दीपक, जूता, छाता तथा खडाऊँ के साथ सोने के जंजीर तथा अङ्गूठी आदि देना चाहिए ॥१२५॥ महीन वस्त्र, कटक (कंगन) धूप, माला, चन्दन से सपत्नीक कामदेव की मूर्ति को अलङ्कृत करके गुडभरे घड़े पर स्थापित करे॥१२६॥ उनको ताम्बे के पात्र का आसन दे, सुवर्ण के नेत्रपट से अलङ्कृत करे, कांसे के पात्र तथा ईख के साथ दान दे ॥१२७॥ और उसके साथ एक दूध देने वाली गौ का दान करे। उस समय यह मन्त्र पढे— जैसे मैं कामदेव तथा केशव भगवान् में अन्तर नहीं देखती हूँ ॥१२८॥ हे विप्र ! उसी तरह मेरी सारी कामना सदा पूर्ण होती रहे। उसके बाद उस सुवर्ण निर्मित कामदेव की मूर्ति को लेकर ॥१२९॥ **कोऽदात् कामोदात्** इत्यादि वैदिक मंत्र का उच्चारण करे। उसके बाद वेश्या को चाहिये कि उस ब्राह्मण की प्रदक्षिण करके उन्हें विदा करे ॥१३०॥ फिर शय्या तथा आसन इत्यादि सब कुछ उस ब्राह्मण के घर पहुँचवा दें। उस समय के बाद रति के लिए उस वेश्या के घर जो कोई भी ब्राह्मण रविवार के दिन आये उसका सम्मान करके वह उनकी पूजा करे। इस तरह तेरह महीनों तक किसी एक ब्राह्मण को तृप्त करके उन्हें उनकी इच्छानुसार प्रेषित करे। उन ब्राह्मण की आज्ञा प्राप्त करके उसके घर जो रूपवान व्यक्ति आये उसका सम्मान करे ॥१३१-१३३॥ स्वयं भी, गर्भ, सूतक, रजस्वलापन अथवा

सा वारानष्टपंचाशद्यथा शक्तिसमर्पयेत् । एतद्धि कथितं सम्यग्भवतीनां विशेषतः ॥१३५॥
स्वधर्मोऽयं यतो भाव्यो वेश्यानामिह सर्वदा। शय्यया त्यज्यते देव नकदाचिद्यथा भवान् ॥१३६॥
शय्याममाप्यशून्येयं तथास्तु मधुसूदन। गीतवादित्र निर्घोषं देवदेवस्य कारयेत् ॥१३७॥
एतद्वः कथितं सर्वं वेश्याधर्ममशेषतः । पुरुहूतेन यत्प्रोक्तं दानवीषु पुरा मया॥१३८॥
तदिदं सांप्रतं सर्वं भवतीष्वपि युज्यते। सर्वपापप्रशमनमनंतफलदायकम् ॥१३९॥
कल्याणिनीनां कथितं तदेतद्दुश्चरं व्रतम् ।
करोति याशेषमुदग्रमेतत् कल्याणिनी माधवलोकसंस्था॥१४०॥
सा पूजिता देवगणैरशेषै रानंदकृत्स्थानमुपैति विष्णोः ।
तपोधनः सोप्यभिधाय चैत दनंगदानव्रतमंगनानाम् ॥१४१॥
स्वस्थानमेष्यंति समस्तमित्थं व्रतं करिष्यंति च देवयोने ॥१४२॥
इतिपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे वेश्याव्रतकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मोवाच

भगवन्पुरुषस्येह स्त्रियाश्च वरदायकम् । शोकव्याधिभयं दुःखं न भवेद्येन तद्वद॥१॥

दैव या मानुष उपराग के होने पर अपने विघ्न का अनुभव करे ॥१३४॥ वह ब्राह्मण को अठावन दिन अपने को शक्ति के अनुसार समर्पित करे । यह व्रत इन्द्र ने उन वेश्याओं के लिए कहा था । अब आपलोगों को मैंने विशेष रूप से इसे बतलाया है ॥१३५॥ उस समय भगवान् की प्रार्थना करे । यह वेश्याओं का स्वधर्म है, अतएव हे भगवन् मधुसूदन ! जिस प्रकार आप कभी भी शय्या का त्याग नहीं करते हैं उसी तरह मेरी भी शय्या कभी शून्य न हो । उस दिन गीतों तथा वाद्यों का घोष कराये ॥१३६-१३७॥ यह मैंने आपलोगों को वेश्या का धर्म बतलाया, इसी को इन्द्र ने दानवियों को बतलाया था और मैंने उसे आप लोगों को बतलाया ॥१३८॥ अत एव इन सारी बातो को आप लोगों को भी करना चाहिए । यह व्रत वेश्याओं के सभी पापों को विनष्ट करने वाला तथा अनन्त फलों को प्रदान करने वाला है ॥१३९॥ यह कल्याणिनियों का कठिन व्रत मैंने बतलाया है । जो वेश्या इस श्रेष्ठ कल्याणिनी व्रत को पूर्ण रूप से करती है वह श्रीभगवान् के लोक में जाती है ॥१४०॥ वह सभी देवताओं से पूजित होकर भगवान् विष्णु के आनन्दप्रद लोक में जाती है । तपस्वी महर्षि दाल्भ्य भी इस कामदान व्रत को बतलाकर हे ब्रह्माजी अपने स्थान पर चले जायेंगे और वे अङ्गनायें भी इस व्रत को सविधि करेंगी ॥१४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के वेश्याव्रत वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

अशून्यशयन व्रत का वर्णन, अङ्गारक चतुर्थी व्रत, वीरभद्र को मङ्गलग्रहत्व की प्राप्ति

ब्रह्माजी ने कहा— हे भगवन् ! इस लोक में स्त्रियों तथा पुरुषों को वर प्रदान करने वाले तथा शोक, भय

शङ्कर उवाच

श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः । क्षीरार्णवे सपत्नीकः सदा वसति केशवः ॥२॥
तस्यां संपूज्य गोविंदं सर्वान्कामानवाप्नुयात् । गोभूहिरण्यदानादि सप्तकल्पशतानुगम् ॥३॥
आवाहनादिकां पूजां पूर्ववत्परिकल्पयेत् । अशून्यशयना नाम द्वितीयाऽसौ प्रकीर्तिता ॥४॥
तस्यां संपूजयेद्विष्णुमेभिर्मंत्रै विंधानतः । श्रीवत्सधारिन् श्रीकांत श्रीपते श्रीधराव्यय ॥५॥
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातुधर्मार्थकामदम् । अग्नयो मा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम ॥६॥
पितरो माप्रणश्न्यतु मम दांपत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्यते देवो न कदाचिद्यथा हरिः ॥७॥
तथा कलत्रसंबंधो देव मा मे वियुज्यतां । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथाते शयनं सदा ॥८॥
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथैव मधुसूदन । गीतवादित्रनिर्घोषान् देवदेवस्य कारयेत्॥९॥
घंटाभवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः । एवं संपूज्य गोविंदमश्नीयात्तैलवर्जितम् ॥१०॥
नक्तमक्षारलवणं यावत्तुस्याच्चतुष्टयम् । ततः प्रभाते संजाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम् ॥११॥
दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणाम् । पादुकोपानहच्छत्र चामरासनसंयुताम् ॥१२॥
अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पांबरावृताम् । अव्यंगाय च विप्राय वैष्णवाय कुटुंबिने ॥१३॥
दातव्या वेदविदुषे न वंध्यापतये क्वचित् । तत्रोपवेश्य दांपत्यमलंकृत्य विधानतः ॥१४॥
पत्यास्तु भाजनं दद्याद्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् । ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसन्विताम् ॥१५॥

एवं दुःख को विनष्ट करने वाले व्रत को आप मुझे बतलाइये ॥१॥ **शङ्करजी ने कहा—** श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को भगवान् मधुसूदन क्षीरसागर में अपनी पत्नी श्रीदेवी के साथ सदा निवास करते हैं ॥२॥ उस तिथि को गोविन्द की पूजा करके जीव अपने समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है । उस दिन गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदि के दान का फल सात सौ कल्पों तक प्राप्त होता है ॥३॥ इसमें पहले के ही समान आवाहन आदि के द्वारा पूजा करे । इस द्वितीया का नाम अशून्यशयना है ॥४॥ इस तिथि को भगवान् विष्णु की पूजा विधिपूर्वक इन मन्त्रों से करे (श्रीभगवान् से प्रार्थना करे) हे श्रीवत्सचिह्न को धारण करने वाले श्रीपते, श्रीधर, अव्यय भगवन् !॥५॥ धर्म, अर्थ तथा काम को प्रदान करने वाला मेरा गार्हस्थ्य कभी विनष्ट न हो । हे पुरुषोत्तम ! मेरे घर के अग्नि देवता कभी विनष्ट न हों ॥६॥ मेरे दाम्पत्य में भेद होने के कारण मेरे पितृगण कभी विनष्ट न हों । जिस तरह भगवान् श्रीहरि कभी श्रीलक्ष्मीजी से अलग नहीं होते हैं ॥७॥ हे देव ! उसी तरह से मेरा पत्नी से कभी संबन्ध नहीं टूटे। हे वरदान देने वाले प्रभो ! जिसतरह आपकी शय्या कभी लक्ष्मीजी से रहित नहीं होती है ॥८॥ उसी तरह हे मधुसूदन! मेरी शय्या कभी भी शून्य न होए । इस तरह से प्रार्थना करके श्रीभगवान् के समक्ष गीत तथा वाद्य की ध्वनि कराये॥९॥ जो ऐसा करने में असमर्थ हो; वह घण्टा की ही ध्वनि कराये, क्योंकि घण्टा तो सर्व वाद्य स्वरूपिणी होती है । इसतरह से श्रीभगवान् की पूजा करके तैल रहित भोजन करे ॥१०॥ सायंकाल, क्षार, लवण, कटु और तेल इन चारो से रहित भोजन करे । प्रातःकाल होने पर श्रीभगवान् की मूर्ति के साथ, दीपक, अन्न तथा पात्रों से युक्त विलक्षण (सुन्दर) शय्या, पादुका, उपानह (जूता) छत्र, चामर तथा आसन का दान दे ॥१२॥ शय्या को अभिप्रेत सभी सामग्रियों से युक्त, तथा श्वेत पुष्प एवं वस्त्र से युक्त होना चाहिए । उस शय्या को अङ्गहीन रहित, पारिवारिक वैष्णव ब्राह्मण को देना चाहिए ॥१३॥ ब्राह्मण को वेद का विद्वान् होना चाहिए और उसे बन्ध्या स्त्री का पति नहीं होना चाहिए । ब्राह्मण पत्नी को बैठाकर विधि पूर्वक अलंकृत करे ॥१४॥ पत्नी को भक्ष्य एवं भोज्य

प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुंभां निवेदयेत् । एवं यस्तु पुमान्कुर्यादशून्यशयनं हरेः ॥१६॥
वित्तशाठ्येनरहितो नारायणपरायणः । न तस्य पत्न्याविरहः कदाचिदपि जायते ॥१७॥
नारी वा विधवा ब्रह्मन् यावच्चंद्रार्कतारकम् । नविरूपौ नशोकार्तौ दंपती भवतः क्वचित् ॥१८॥
न पुत्र पशुरत्नानि क्षयं यांति पितामह । सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च ॥१९॥
कुर्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते ।

ब्रह्मोवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यं मतिर्धर्मेस्थितिस्सदा ॥२०॥
अव्यंगाथपरे भक्ति र्विष्णौ चापि भवेत्कथम् ।

ईश्वर उवाच

साधुब्रह्मंस्त्वया पृष्टमिदानीं कथयामि ते ॥२१॥
विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः । प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम् ॥२२॥
तस्य रूपमिदं ब्रह्मन् सोहसद्भृगुनंदनः । साधुसाधुमहाबाहो विरोचन शिवं तव ॥२३॥
तत्तथाहसितं तस्य पप्रच्छसुरसूदनः । ब्रह्मन्किमर्थमेतत्ते हास्यं वै मामकं कृतम् ॥२४॥
साधुसाध्विति मामेवमुक्तवांस्त्वं वदस्व मे । तमेवं वादिनं युक्तमुवाचवदतां वरः ॥२५॥
विस्मयाद्व्रतमाहात्म्या द्धास्यमेतत्कृतं मया । पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य त्रिशूलिनः ॥२६॥
अपतद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिंदु र्ललाटजः । भित्वा स सप्तपातालानदहत्सप्तसागरान् ॥२७॥
अनेक वक्त्रनयनो ज्वलज्ज्वलन भीषणः । वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतै र्युतः ॥२८॥

सामग्रियों के साथ पात्र दे और ब्राह्मण को भी, सभी सामग्रियों के साथ सुवर्णमयी शय्या का दान दे ॥१५॥ ब्राह्मण को जल के कलश के साथ श्रीभगवान् की मूर्ति भी प्रदान करे । इसी प्रकार से जो व्यक्ति श्रीहरि के अशून्यशयन व्रत को करता है ॥१६॥ उसमें वित्त की (कंजूसी) नहीं करता है तथा भगवान् नारायण की भक्ति करता है, उसका अपनी पत्नी से वियोग कभी भी नहीं होता है ॥१७॥ इस व्रत को कोई नारी अथवा विधवा भी कर सकती है । इस व्रत को करने वाले जब तक चन्द्रमा, सूर्य तथा तारे रहते हैं, तब तक न तो वे विरूप होतें हैं और न कभी शोकार्त होते हैं ॥१८॥ हे ब्रह्माजी ! उसके पुत्र, पशु तथा रत्नों का कभी नाश भी नहीं होता है । भगवान् विष्णु के अशून्यशयन व्रत को करने वाला मनुष्य सात हजार सात सौ कल्पों तक भगवान् विष्णु के लोक में पूजित होता है । **ब्रह्माजी ने शङ्करजी से पूछा—** किस व्रत को करने से सदा आरोग्य, ऐश्वर्य तथा धार्मिकी बुद्धि बनी रहती हैं ॥१९-२०॥ तथा भगवान् विष्णु में निर्दुष्ट भक्ति किस प्रकार होती है ? **श्रीशङ्करजी ने कहा—** हे ब्रह्माजी ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं उसे बतलाता हूँ । आपको मैं विरोचन तथा भार्गव (शुक्राचार्य) के संवाद को सुनाता हूँ । प्रह्लाद के सोलह वर्षीय पुत्र विरोचन को देखकर ॥२२॥ उसके उस रूप को देखकर शुक्राचार्य हँस पड़े । हे महाबाहो विरोचन ! बहुत अच्छा ! तुम्हारा कल्याण हो ॥२३॥ शुक्राचार्य की इस प्रकार की हँसी को देखकर विरोचन ने पूछा हे ब्रह्मन् ! आप मुझको देखकर इसतरह से कैसे हँसे ?॥२४॥ आप यह बतलायें कि आप साधु ! साधु !! कैसे कहे ? इसतरह से विरोचन के पूछने पर बोलने वालों में श्रेष्ठ शुक्राचार्य ने कहा ॥२५॥ तुम्हारी आश्चर्यमयी महिमा को देखकर मुझे हँसी आयी है । प्राचीनकाल में दक्ष का विनाश करने के लिए जब शङ्करजी कुपित हो गये ॥२६॥ उस समय शङ्करजी के ललाट से स्वेद विन्दु टपका और उसने सात पातालों का भेदन करके सात सागरों को जला

कृत्वा सयज्ञमथनं पुनर्भूतस्य संपल्वः । त्रिजगद्दहनाद्भूयः शिवेन विनिवारितः ॥२९॥
कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम् । इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा ॥३०॥
शांतिप्रदानात्सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव । प्रहृष्टाभिजनाः पूजां करिष्यंति कृतात्मनः ॥३१॥
अंगारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज । देवलोके द्वितीयं च तव रूपं भविष्यति ॥३२॥
ये च त्वां पूजयिष्यंति चतुर्थ्यां तु दिने नराः । रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनंतं भविष्यति ॥३३॥
एवमुक्तस्ततः शांतिमगमत्कामरूपधृत् । सजातस्तत्क्षणाद्राजन् ग्रहत्वमगमत्पुनः ॥३४॥
स कदाचिद्भवांस्तस्य पूजार्घादिकमुत्तमम् । दृष्टवान् क्रियामाणं च शूद्रेण त्वं व्यवस्थितः ॥३५॥
तेन त्वं रूपवान् जातो सुरः शत्रुकुलाशनिः । विविधा च रुचिर्जाता यस्मात्तव विदूरगा ॥३६॥
विरोचन इति प्राहुस्तस्मात्वां देवदानवाः । शूद्रेणक्रियमाणस्य व्रतस्य तवदर्शनात् ॥३७॥
ईदृशीरूपसंपत्तिरिति विस्मितवानहम् । साधुसाध्विति तेनोक्तमहो महात्म्यमुत्तमम् ॥३८॥

पश्यतोपि भवेद्रूपमैश्वर्यं किमुकुर्वतः ।
यस्माच्च भक्त्याधरणीसुतस्य विनिंद्यमानेन गवादिदानम् ॥३९॥
आलोकितं तेन सुरारिगर्भे संभूतिरेषा तव दैत्यजाता ।
अथ तद्वचनं श्रुत्वाभार्गवस्य महात्मनः ॥४०॥

प्रह्लादनंदनो वीरः पुनः पप्रच्छभार्गवम् ।

विरोचन उवाच

भगवंस्तद्व्रतं सम्यक् श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥४१॥
दीयमानं तु यद्दानं मया दृष्टं भवांतरे । माहात्म्यं च विधिं तस्य यथावद्वक्तुमर्हसि ॥४२॥

दिया ॥२७॥ वही अनेक मुखों तथा नेत्रों से युक्त अग्नि के समान भयङ्कर दशो हजार हाथों और पैरों से युक्त वीरभद्र हो गया ॥२८॥ दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने के बाद त्रैलोक्य को भस्म करके प्रलय करने के लिए उद्यत वीरभद्र को शङ्करजी ने रोका ॥२९॥ उन्होंने कहा वीरभद्र ! तुमने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया, बस बहुत हो गया, लोकों को जलाओ मत ॥३०॥ शान्ति प्रदान करने के कारण तुम सभी ग्रहों में प्रधान बन जाओ । तुम्हारी पूजा भद्र पुरुष प्रसन्नता पूर्वक करेंगे ॥३१॥ तुम पृथिवी के पुत्र अङ्गारक (मङ्गल) के नाम से प्रसिद्ध होओगे । देवलोक में तुम्हारा रूप दूसरा होगा ॥३२॥ जो मनुष्य चतुर्थी तिथि को तुम्हारी पूजा करेंगे उन लोगों का अनन्त रूप, ऐश्वर्य तथा आरोग्य होगा ॥३३॥ इसके बाद अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वीरभद्र हो गये । हे राजन् ! वे उसी क्षण ग्रह बन गये ॥३४॥ एक बार तुमने उन अङ्गारक की उत्तम पूजा अर्चा इत्यादि किसी शूद्र के द्वारा की जाती हुयी को देखकर किया ॥३५॥ उसके कारण शत्रु वंश के लिए वज्र के समान तुम रूपवान् हो गये और दूर-दूर तक जाने वाली तुम्हारी अनेक प्रकार की रुचि भी उत्पन्न हुयी ॥३६॥ इसीलिए देवताओं और दानवों ने तुम्हे विरोचन कहा । शूद्र के द्वारा किए जाने वाले तुम्हारे व्रत को देखने के कारण ॥३७॥ तुमको इतनी रूप सम्पत्ति की प्राप्ति हुयी; इसलिए मैं आश्चर्यित हूँ । तुम्हारे उत्तम माहात्म्य को देखकर मैंने साधु ! साधु !! कहा॥३८॥ जिसको देखने मात्र से भी रूप की प्राप्ति होती है, तो उसको करने से प्राप्त होने वाले फल के विषय में क्या कहना है? चूकि भक्तिपूर्वक स्तुति किए जाने तथा तन्निमित्तक गौ आदि का दान करने से प्रसन्न अङ्गारक के द्वारा गर्भ में देखे जाने मात्र से हे दैत्य ! तुमको इतनी सम्पत्ति की प्राप्ति हुयी शुक्राचार्य की बातों को सुनकर शुक्राचार्य से ॥३९-४०॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा विप्रः प्रोवाच सादरम् । चतुर्थ्यंगारकदिने यदा भवति दानव ॥४३॥
मृदास्नानं तदाकुर्यात् पद्मरागविभूषितः । अग्निर्मूर्द्धा दिवो मंत्रं जपेत्स्नात उदङ्मुखः ॥४४॥
शूद्रस्तूष्णीं स्मरन्भौममास्तां भोगविवर्जितः । अथास्तमित आदित्ये गोमयेनानुलेपयेत् ॥४५॥
प्रांगणं पुष्पमालाभि रक्षताद्भिः समंततः । तदभ्यर्च्यालिखेत्पद्मं कुंकुमेनाष्टपत्रकम् ॥४६॥
कुंकुमस्याप्यभावेन रक्तचंदनमिष्यते । चत्वारः करकाः कार्याः भक्ष्यभोज्यसमन्विताः ॥४७॥
तंडुलै रक्तशालेयैः पद्मरागैश्च संयुताः । चतुःकोणेषु तान्कृत्वा फलानि विविधानि च ॥४८॥

गंधमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत् ।
सुवर्णशृंगां कपिलामथार्च्य रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहांसवस्त्राम् ॥४९॥
धुरंधरं रक्तखुरं च सौम्यं धान्यानि सप्तांबरसंयुतानि ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमप्यायतबाहुदंडम् ॥५०॥
चुतुर्भुजं हेममयं च ताम्र पात्रे गुडस्योपरि सर्पियुक्तम् ।
सामस्वरज्ञाय जितेंद्रियाय वाग्रूपशीलान्वयसंयुताय ॥५१॥

दातव्येतत्सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दंभयुक्ते। भूमिपुत्रहाभाग स्वेदोद्भव पिनाकिनः ॥५२॥
रूपार्थी त्वां प्रपन्नोहं गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते। मंत्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं रक्तचंदनवारिणा ॥५३॥
ततोर्चयेद्विप्रवरं रक्माल्यांबरादिभिः । दद्यात्तेनैव मंत्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम् ॥५४॥

प्रह्लादनदंन वीर विरोचन ने फिर पूछा । **विरोचन ने कहा—** हे भगवन् ! मैं उस व्रत को अच्छी तरह से जानना चाहता हूँ ॥४१॥ दूसरे जन्म में मैंने जो दान दिया था उसके माहात्म्य और विधि को आप मुझे ठीक-ठीक बतलायें॥४२॥ विरोचन की बातों को सुनकर शुक्राचार्य ने आदर पूर्वक कहा— हे दानव जब किसी भौमवार को चतुर्थी तिथि आये ॥४३॥ उस दिन मिट्टी शरीर में लगाकर स्नान करे और फिर पद्मराग आदि से अलंकृत होकर स्नान करके **अग्निर्मूर्द्धा दिवः** इत्यादि मन्त्र का उत्तराभिमुख बैठकर जप करे । शूद्र को चाहिए कि वह मौन रहकर भौम का स्मरण करे तथा भोगों से रहित रहे । फिर सूर्यास्त होने पर भूमि को गोबर से लिप दे ॥४५॥ उसके बाद आंगन को अक्षत पुष्पमाला तथा जल से अलंकृत करके कुंकुम के द्वारा अष्टदल कगल का निर्माण करे ॥४६॥ कुंकुम का अभाव रहने पर रक्त चन्दन से कमल बनाये । उसके बाद भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों से चार करकाओं की स्थापना करे ॥४७॥ उन सबों को लाल चावल तथा पद्मरागमणि से युक्त होना चाहिए । उन करकों को चारो कोनों पर रखकर, उन सबों पर अनेक प्रकार के फलों को रखे ॥४८॥ फिर उसे चन्दन इत्यादि से अलंकृत करे । उसके पश्चात् जिसके सींग सोने के तथा खुर चाँदी से मढे गये हों ऐसी कपिला गौ की पूजा करके, कांसे के दोहन पात्र तथा वस्त्र के साथ ॥४९॥ तथा उसके साथ लाल खुरवाले, सीधा बैल तथा वस्त्र से ढंके हुए सात प्रकार के अन्न, सुवर्ण निर्मित अङ्गुष्ठ परिमाणक लम्बी भुजाओं वाले पुरुष ॥५०॥ जिसकी चार भुजाएँ हों, उसको ताम्बे के पात्र में गुड और घी के ऊपर रखकर सामस्वर के ज्ञाता, जितेन्द्रिय, वाणी, रूप, शील तथा सद्वंश से युक्त ब्राह्मण को ॥५१॥ इन सारी वस्तुओं का दान दे । उस ब्राह्मण को गृहस्थ होना चाहिये तथा अभिमानी नहीं होना चाहिए । उसके बाद मङ्गल को रक्त चन्दन के जल से निम्नाङ्कित मन्त्र को पढते हुए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए— हे शङ्करजी के पसीने से उत्पन्न होने वाले भूमिपुत्र ! आपको नमस्कार है । मैं रूप को प्राप्त करना चाहता हूँ और आपके शरणागत हूँ, आप इस अर्घ्य को स्वीकार करें; आपको नमस्कार है ॥५२-५३॥ इसके बाद उस ब्राह्मण की पूजा रक्त माला एवं

शय्यां च शक्तिमान्द्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् । यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ॥५५॥
तत्तद्गुणवते देयं दत्तस्याक्षयमिच्छता । ततः प्रदक्षिणं कृत्वा विसृज्य द्विजसत्तमम् ॥५६॥
नक्तं क्षीराशनं कुर्यादेवं चांगारकाष्टकम् । चतुरो वाथवा तस्य यत्पुण्यं तद्वदामि ते ॥५७॥
रूपसौभाग्यसंपन्नः पुमान् जन्मनि जन्मनि । विष्णौ वाथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपधिपोभवेत् ॥५८॥
सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । तस्मात्वमपि दैत्येंद्र व्रतमेतत्समाचर ॥५९॥
इत्येवमुक्तो भृगुनंदनेन चकारसर्वं व्रतमेवदैत्यः ।
त्वं चापि राजन्कुरु सर्वमेतद्यतोऽक्षयं वेदविदो वदंति ॥६०॥
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सर्वं भगवान् विधत्ते ॥६१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टखंडे अंगारकचतुर्थीव्रतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः । अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुच्यताम् ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते । यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतां वै व्रतं महत् ॥२॥

वस्त्र आदि से करे । उसी मन्त्र के साथ गोमिथुन तथा भौम की मूर्ति का दान करे ॥५४॥ यदि व्रती शक्तिमान हो तो उसे सभी सामग्रियों के साथ शय्या का दान करना चाहिए । दान के अक्षय फल चाहने वाले को उन सभी वस्तुओं का दान देना चाहिए, जो सबों को अच्छी लगती हों, तथा जो अच्छी वस्तु उसके घर में हो ॥५५॥ उन सारी वस्तुओं का गुणवान् ब्राह्मण को दान देना चाहिए । उसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करे ॥५६॥ रात्रि में दुग्धान्न का भोजन करे । इस तरह का अङ्गारक (भौम) का आठ बार या चार बार व्रत करे । इस व्रत को करने का फल मैं तुम्हें सुना रहा हूँ ॥५७॥ इस व्रत को करने वाला व्यक्ति प्रत्येक जन्मों में रूप तथा सौभाग्य से सम्पन्न होता है । वह भगवान् विष्णु अथवा शिव का भक्त होता है तथा सातो द्वीपों का अधिपति होता है ॥५८॥ वह मृत्यु के बाद सात हजार कल्पों तक रुद्रलोक में निवास करता है । अतएव हे दैत्येन्द्र ! तुम भी इस व्रत को करो ॥५९॥ इस तरह से शुक्राचार्य के कहने पर विरोचन ने सम्पूर्ण व्रतों को किया । हे राजन् ! भीष्म तुम भी इस व्रत को करो; क्योंकि महर्षियों ने इस व्रत को अक्षय फल देने वाला कहा है ॥६०॥ जो व्यक्ति अनन्यमना होकर इस व्रत की विधि का श्रवण करता है, उसको भी इस व्रत के फल की प्राप्ति होती है ॥६१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के अंगारक चतुर्थी व्रत का विधान वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

आदित्य शयन विधान व्रत तथा उमा महेश्वर पूजन प्रकार

भीष्मजी ने कहा— उपवास करने का अभ्यास नहीं रहने के कारण अथवा रोगी होने के कारण जो उपवास

आदित्यशयनं नाम यथावच्छंकरार्चनम् । येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।।३।।
यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् । सूर्यस्य चापि संक्रांतिस्तिथिस्सा सार्वकामिकी ।।४।।
उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत्सूर्यनामभिः । सूर्यार्चा शिवलिंगं च उभयं पूजयेद्यतः ।।५।।
उमापतेरवेश्चापि न भेदः क्वचिदिष्यते । यस्मात्तस्मान्नृपश्रेष्ठ गृहे भानुं समर्चयेत् ।।६।।

हस्तेन सूर्याय नमोस्तु पादा वर्काय चित्रासु च गुल्फदेशं ।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय धात्रेविशाखासु च जानुदेशम् ।।७।।
तथानुराधासु नमोभिपूज्य मूरुद्वयं चैव सहस्रभानोः ।
ज्येष्ठास्वनंगाय नमोस्तु गुह्य मिन्द्राय भीमाय कटिं च मूले ।।८।।
पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरंगमाय ।
तीक्ष्णांशवे श्रवणे चाथ कुक्षिं पृष्ठं धानिष्ठासु विकर्तनाय ।।९।।
वक्षस्थलं ध्वांतविनाशनाय जलाधिपर्क्षे प्रतिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदद्वये च बाहूत्तमश्चंडकराय पूज्यौ ।।१०।।
साम्नामधीशय करद्वयंच संपूजनीयं नृप रेवतीषु ।
नखानिपूज्यानि तथाश्विनीषु नमोस्तु सप्ताश्वधुरंधराय।।११।।
कठोरधाम्ने भरणीषु कंठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीयम् ।
ग्रीवाग्निपर्क्षे धरसंपुटे तु संपूजयेद्धारत रोहिणीषु ।।१२।।

करने में असमर्थ हो, किन्तु व्रत के फल को प्राप्त करना चाहता हो, उसके द्वारा किए जाने योग्य व्रत को आप बतलाइये ।।१।। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** जो व्यक्ति उपवास नही कर सकें उसको ऐसा व्रत करना चाहिए जिसमें रात्रि में भोजन किया जा सके । इसतरह के महान् व्रत को आप सुनें ।।२।। ऐसा वह आदित्य शयन नामक व्रत है, इसमें सविधि शङ्करजी की अर्चना की जाती है । जिस नक्षत्र के योग में पुराण पुरुष उसे बतलाते हैं, उसे सुनो ।।३।। जब रविवार को सप्तमी तिथि को हस्त नक्षत्र आये तथा सूर्य की सङ्क्रान्ति भी उस दिन हो तो वह तिथि सभी कामनाओं को पूरा करने वाली होती है ।।४।। उस तिथि को सूर्य के नामों से पार्वतीजी तथा शङ्करजी की पूजा करनी चाहिए । चूकि सूर्य की अर्चा तथा शिवलिङ्ग दोनों की पूजा की जाती है ।।५।। उमापति और सूर्य में कोई भी भेद नहीं है । अतएव हे राजश्रेष्ठ भीष्म ! पहले अपने घर में सूर्य की पूजा करे ।।६।। हस्त नक्षत्र में **सूर्याय नमः** मन्त्र से सूर्य के दोनों पैरों की पूजा करे, चित्रा नक्षत्र में **अर्काय नमः** इस मन्त्र से गुल्फ प्रदेश (दोनों पिण्डलियों) की पूजा करे, स्वाती नक्षत्र में **पुरुषोत्तमाय नमः** इस मंत्र से दोनों जंघों की पूजा करे । विशाखा नक्षत्र में **धात्रे नमः** इस मंत्र से दोनों घुटनों की पूजा करे ।।७।। अनुराधा नक्षत्र में **सहस्रभानवे नमः** से दोनों ऊरू प्रदेशों की अर्चा करे । ज्येष्ठा नक्षत्र में **अनङ्गाय नमः** इस मंत्र से गुह्य प्रदेश की पूजा करे, मूल नक्षत्र में **इन्द्राय नमः भीमाय नमः** इस मन्त्र से कटि प्रदेश की पूजा करे ।।८।। पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में **त्वष्ट्रे नमः** तथा **सप्ततुरङ्गमाय नमः** से नाभि की पूजा करे श्रवण नक्षत्र में **तीक्ष्णांशवे नमः** इस मंत्र से कुक्षि प्रदेश की पूजा करे; धनिष्ठा नक्षत्र में **विकर्तनाय नमः** से पृष्ठ भाग की पूजा करे ।।९।। वरुण देवताक शतभिषा नक्षत्र में **ध्वान्तविनाशाय नमः** इस मन्त्र से वक्षः स्थल की पूजा करे । पूर्वाभद्रपद और उत्तराभाद्र पद इन दोनों नक्षत्रों में **चण्डकराय नमः** इस मन्त्र से दोनों भुजाओं की पूजा करे ।।१०।। हे राजन् ! रेवती नक्षत्र में **साम्नामधीशाय नमः** इस मन्त्र से दोनों हाथों की पूजा करे । अश्विनी नक्षत्र

मृगेर्चनीया रसना पुरारे रौद्रे तु दंताहरये नमस्ते।
नमः सवित्रे इति शङ्करस्य नासाभिपूज्या चपुनर्वसौच ॥१३॥
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्येऽलकान्वेदशरीरधारिणे ।
सार्पे च मौलिं विबुधप्रियाय मघासु कर्णावितिपूजनीयौ ॥१४॥
पूर्वासु गोब्राह्मणनंदनाय नेत्राणि संपूज्यतमानि शंभोः ।
अथोत्तराफाल्गुनिभे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥१५॥
नमोस्तु पाशांकुशपद्मशूल कपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गयासुरानङ्गपुरांधकादि विनाशमूलाय नमः शिवाय ॥१६॥
इत्यादिकांगान च पूजयित्वा विश्वेश्वरायेति शिरोभिपूज्यम् ।
अत्रापि भोक्तव्यमतैलमन्न ममांसमक्षारमभुक्तशेषम् ॥१७॥
इयेवं नृप नक्तानि कृत्वादद्यात्पुनर्वसौ । शालेयतंडुलप्रस्थमौदुंबरमथो घृतम् ॥१८॥
संस्थाप्य पात्रे विप्राय सहिरण्यं निवेदयेत् । सप्तमे वस्त्रयुग्मं तु पारणे त्वधिकं भवेत् ॥१९॥
चतुर्दशे तु संप्राप्तपारणे भारतादिके । ब्राह्मणं भोजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ॥२०॥
कृत्वा च कांचनं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् । शुद्धमष्टांगुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम् ॥२१॥
शय्यांसुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रंथिवर्जिताम् । सोपधानवितानां च स्वास्तरावरणाश्रयाम् ॥२२॥
पादुकोपानहच्छत्र चामरासनदर्पणः । भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥२३॥

में नखों की पूजा **सप्ताश्व धुरंधराय नमः** इस मन्त्र से करे ॥११॥ भरणी नक्षत्र में **कठोरधाम्ने नमः** इस मंत्र से कण्ठ की पूजा करे । कृतिका में ग्रीवा की, रोहिणी में ओठों की मृगशिरा में जिह्वा की तथा आर्द्रा में **हरये नमः** इस मन्त्र से सूर्यदेव की दांतों की पूजा करे । पुनर्वसु में **सवित्रे नमः** इस मंत्र से शङ्करजी के नाकों की पूजा करे ॥११-१३॥ पुष्य नक्षत्र में **अम्भोरुह बल्लभाय नमः** इस मंत्र से ललाट की पूजा करे **वेदशरीरधारिणे नमः** इस मन्त्र से शङ्करजी के केशों की पूजा करे । आश्लेषा तथा मधा नक्षत्र में **विबुधप्रियाय नमः** इस मंत्र शिर की तथा दोनों कानों की पूजा करे ॥१४॥ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में **गो ब्राह्मणनंदनाय नमः** इस मंत्र से शङ्करजी के नेत्रों की पूजा करे । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में **विश्वेश्वराय नमः** इस मंत्र से दोनों भौहों की पूजा करनी चाहिए ॥१५॥ इसके बाद हाथ जोड़कर शङ्करजी की प्रार्थना करे— पाश, अङ्कुश, पद्म, त्रिशूल, कपाल, सर्प, चन्द्र तथा धनुष को धारण करने वाले गयासुर, कामदेव, त्रिपुरासुर तथा अंधकासुर आदि असुरों का विनाश करने वाले, शिवजी को नमस्कार है॥१६॥ इसतरह से शिवजी के अङ्गों की पूजा करके **विश्वेश्वराय नमः** इस मंत्र से शिवजी की पूजा करे । इस व्रत में भी रात्रि को तेल, मांस तथा नमक रहित भोजन करना चाहिए ॥१७॥ हे राजन् भीष्म ! इसतरह से रात्रि में पूजन करने के बाद पुनर्वसु नक्षत्र में प्रातःकाल अगहनी का एक प्रस्थ चावल उदूम्बर पात्र तथा घी ब्राह्मण को दान दें ॥१८॥ इन सबों को एक पात्र में सुवर्ण रखकर उसके साथ ब्राह्मण को दान दे सातवें बार के व्रत में पारण के समय दो वस्त्र अधिक दान देना चाहिए ॥१९॥ हे भारत ! जब चौदहवें बार व्रत करना हो तो पारण के समय ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक, गुड तथा खीरान्न एवं धृत आदि से भोजन कराये ॥२०॥ सुवर्णनिर्मित कार्णिका से युक्त अष्टदल कमल जिसमें नीलम रत्न जड़ा हो दान दे । कमल को आठ अङ्गुल का होना चाहिए ॥२१॥ विरुद्ध गंथि रहित सुन्दर शय्या तकिया तथा विस्तर से युक्त होनी चाहिए । ऊपर चादनी होनी चाहिए । उसके सन्निकट में खड़ाऊँ, जूता,

तस्यां विधाय तत्पद्ममलंकृत्य गुणान्विताम् । कपिलां वस्त्रसंयुक्तामतिशीलां पयस्विनीम्॥२४॥
रौप्यखुरां हैमश्रृंगीं सवत्सां कांस्यदोहनाम्। दद्यान्मंत्रेण तां धेनुं पूर्वाह्णं नातिलंघयेत्॥२५॥
यथैवादित्यशयनमशून्यं तव सर्वदा । कांत्या धृत्या श्रिया पुष्ट्या तथा मे संतु वृद्धयः॥२६॥
यथा न देवाः श्रेयांसं त्वदन्यमनघं विदुः । तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥२७॥
ततः प्रदक्षिणी कृत्य प्रणम्य च विसर्जयेत्। शय्यां गवादितत्सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत् ॥२८॥

नैतद्विशीलाय न दांभिकाय प्रकाशनीयं व्रतमिंदुमौलैः ।
गोविप्रदेवर्षिविकर्मयोगिनां यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते ॥२९॥
भक्ताय दांताय च गुह्यमेत दाख्येयमानंदकरं शिवञ्च ।
इदं महापातकिनां नराणां अघक्षयं वेदविदोवदंति ॥३०॥
न बंधुपुत्रै र्नधनै र्वियुक्तः पत्नीभिरानंदकरः सुराणाम् ।
नाभ्येतिरोगं न च दुःखमोहं या चापि नारी कुरुतेऽथ भक्त्या ॥३१॥
इदं वसिष्ठेन पुरार्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरंदरेण।
यत्कीर्तनादप्यखिलानि नाश मायांति पापानि न संशयोऽत्र ॥३२॥
इति पठति श्रृणोति वा य इत्थं रविशयनं पुरुहूतवल्लभः स्यात् ।
अपि नरकगतान् पितॄनशेषा नपि दिवमानयतीह यः करोति ॥३३॥

छाता, चामर, आसन, दर्पण, आभूषण, फल चन्दन तथा वस्त्र भी होना चाहिए ॥२२-२३॥ उस शय्या पर ही उस सुवर्ण कमल को रखकर दान करे । एक सीधी, वस्त्र से अलङ्कृत जिसके सींग सुवर्ण से और खुर चाँदी से मढा हो ऐसी गौ होनी चाहिए । उसके साथ में बछड़ा तथा कांसे का दुग्ध पात्र होना चाहिए । गोदान पूर्वाह्ण में ही करे। समय का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए ॥२४-२५॥ इसके बाद हाथ जोड़कर प्रार्थना करे— हे आदित्य ! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी भी कान्ति, धृति श्री तथा पुष्टि से खाली नहीं रहती है, उसीतरह मेरी भी वृद्धि निरन्तर होती रहे ॥२६॥ जिस प्रकार देवगण आपसे भिन्न किसी दूसरे को निर्दोष कल्याणकारी नहीं मानते हैं, उसीतरह आप मेरा इस दुःखों के सागर रूपी संसार से उद्धार कीजिये ॥२७॥ उसके बाद ब्राह्मण की प्रक्षिणा करके तथा उन्हें प्रणाम करके विदा करे और शय्या, गौ इत्यादि सारी सामग्री को ब्राह्मण के घर पहुँचवा दे ॥२८॥ भगवान् शङ्कर के इस व्रत को किसी शीलहीन तथा दम्भी व्यक्ति को नहीं बतलाना चाहिये । किञ्च जो गौ, विप्र, देवता, ऋषि, विशेष, कर्म तथा योगिजन की निन्दा करता हो उसको भी इसे नहीं बतलाना चाहिए ॥२९॥ जो गो भक्त तथा जितेन्द्रिय हो उसको उस आनन्दप्रद और कल्याणकारी व्रत को बतलाना चाहिये । यह बड़े से बड़े पापियों के भी पाप को विनष्ट करने वाला व्रत है, इसतरह से वेदज्ञ पुरुष बतलाते हैं ॥३०॥ इस व्रत को करने वाला व्यक्ति बान्धव, पुत्र तथा धन से सम्पन्न होता है । शरीर त्याग के पश्चात् वह अप्सराओं के साथ विहार करता है । वह कभी रोग, दुःख तथा मोह से ग्रस्त नहीं होता है यदि कोई स्त्री भी भक्ति पूर्वक इस व्रत को करती है तो वह भी इन फलों को प्राप्त करती है वह भी इन समस्त फलों को प्राप्त करती ॥३१॥ प्राचीन काल में इस व्रत को वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्र ने किया था । इस व्रत का कीर्तन करने मात्र से भी सभी पापों का विनाश हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥३२॥ जो व्यक्ति इस व्रत के प्रसङ्ग को पढता है अथवा सुनता है; वह शरीर त्याग के पश्चात् इन्द्र का प्रिय हो जाता है । अर्थात् स्वर्ग लोक में जाता है । जो इस व्रत को करता है वह अपने नरक में गये हुए समस्त पितरों

अश्वत्थं च वटं चैवोदुंबरं वृक्षमेव च। नंदीशं जंबुवृक्षं च बिल्वं प्राहु र्महर्षयः ॥३४॥
मार्गशीर्षादिमासाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामथ क्रमात् । एकैकं दंतधवनं वृक्षेष्वेतेषु कारयेत् ॥३५॥
दद्यात्समाप्ते दध्यन्नं वितानध्वजचामरम् । द्विजानामुदकुंभांश्च पंचरत्नसमन्वितान् ॥३६॥
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन्दोषानवाप्नुयात् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टखंडे आदित्यशयनव्रतं नाम पंचविंशोध्यायः ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

दीर्घायुरारोग्यकुलातिवृद्धिभि र्युक्तः पुमान् रूपकुलान्वितः स्यात् ।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक् व्रतं समाचक्ष्व च शीतरश्मेः ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यगक्षयस्वर्गकारकम्। रहस्यं तु प्रवक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥२॥
रोहिणी चंद्रशयनं नाम व्रतमिहोच्यते। तस्मिन्नारायणस्यार्चामर्चयेदिंदुनामभिः ॥३॥
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत्पंचदशी क्वचित् । अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ॥४॥
तदा स्नानं नरः कुर्यात्पंचगव्येन सर्षपैः । आप्यायस्वेति च जपेद्विद्वानष्टशतं पुनः ॥५॥

को स्वर्ग में पहुँचा देता है ॥३३॥ महर्षियों ने अश्वत्थ, (पिप्पल) बड़, गूलर तथा विल्व इन सभी वृक्षों को शङ्कर स्वरूप बतलाया है ॥३४॥ मार्गशीर्ष (अगहन) तथा पौष इन दोनों मासों से क्रमशः प्रत्येक दो-दो मासों में उपुर्यक्त वृक्षों में से एक-एक वृक्ष की दतौन करे ॥३५॥ इस व्रत के समाप्त हो जाने पर दही, अन्न, चंदोवा, ध्वजा, चामर तथा पञ्चरत्न के साथ ब्राह्मणों को जल भरे घड़ों का दान करे ॥३६॥ इस व्रत को करने में वित्तशाठ्य न करे, जो इस व्रत में वित्तशाठ्य करता है उसको पाप लगता है ॥३७॥

इस तरह पद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के आदित्यशयन व्रत का वर्णन नामक पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

रोहिणी चन्द्रशयन व्रत का विधान

भीष्मजी ने कहा— जिस चन्द्रशयन व्रत का अनुष्ठान करके मनुष्य प्रत्येक जन्मों में दीर्घायु आरोग्य तथा वंश की समृद्धि को बार-बार प्राप्त करता है, उस व्रत की विधि का वर्णन आप करें ॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । यह व्रत अक्षय स्वर्ग को प्रदान करने वाला है । मैं इस रहस्यात्मक व्रत को बतलाता हूँ, जिसको पुराणों के वेत्ता पुरुष ही जानते हैं ॥२॥ इसे रोहिणी चन्द्रशयन व्रत कहते हैं । इस व्रत में चन्द्रमा के नामों से भगवान् नारायण की अर्चा की जाती है ॥३॥ जब शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तिथि को सोमवार का दिन आये अथवा सोमवासरीय पूर्णिमा के दिन ब्रह्मनक्षत्र (रोहिणी) आये तो उस दिन मनुष्य को चाहिए कि वह पञ्चगव्य में सरसो मिलाकर उससे स्नान करे । उसके बाद **अप्यायस्व** इत्यादि मन्त्र का अष्टोत्तर शत जप करे ॥४-५॥

शूद्रोपि परया भक्त्या पाषंडालापवर्जितः । सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमो नमः ॥६॥
कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम् । पूजयेत्फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ॥७॥

सोमाय शांताय नमोस्तु पादाव नंतधाम्नेति च जातुजङ्घे ।
ऊरुद्वयं चापि जलोदराय संपूजयेन्मेढ्रमनंगाधाम्ने ॥८॥
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशांकस्य सदार्चनीयः ।
तथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः शशांकाय नमोभिपूज्या ॥९॥
नमोस्तु चंद्राय मुखं च नित्यं दंता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।
हास्यं नमश्चंद्रमसेऽभिपूज्य मोष्ठौ तु कौमोदवनप्रियाय ॥१०॥
नासा च नाथाय वरौषधीना मानंदबीजाय पुनर्भ्रुवौ च ।
नेत्रद्वयं पद्मनिभं तथेंदो रिंदीवरव्यासकराय शौरेः ॥११॥
नमः समस्ताध्वरपूजिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय।
ललाटमिंदोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥१२॥
शिरः शशांकाय नमो मुरारे र्विश्वेश्वरायाथ नमः किरीटम् ।
पद्मप्रिये रोहणी नाम लक्ष्मि सौभाग्यसौख्यामृतसागराय ॥१३॥
देवीं च संपूज्य सुगंधिपुष्पै नैंवेद्यपद्यादिभिरिंदुपत्नीम् ।
सुप्त्वातु भूमौ पुनरुत्थितो यः स्नात्वाच विप्राय हविष्यभुक्तः ॥१४॥

उस व्रत को पराभक्ति से युक्त शूद्र भी कर सकता है । व्रती को पाखण्डी से बात-चित नहीं करना चाहिए । उसके बाद **सोमाय वरदाय विष्णवे च नमो नमः** अर्थात् वरदान प्रदान करने वालो सोम स्वरूप भगवान् विष्णु को बारम्बार नमस्कार है । इस मन्त्र का जप करके व्रती अपने घर आये और चन्द्रमा के नामों का उच्चारण करके भगवान् मधुसूदन की पूजा फलों तथा पुष्पों से करे ॥७॥ **सोमाय शान्ताय नमः** इस मन्त्र से श्रीभगवान् के दोनों घुटनों तथा दोनों जङ्घों की पूजा करे । **जलोदराय नमः** इस मन्त्र से दोनों ऊरूभागों की पूजा करे । **अनङ्गधाम्ने नमः** इस मन्त्र से भगवान के मेढ्र (अण्डकोषों) की पूजा करे ॥८॥ **कामसुखप्रदाय नमः** इस मन्त्र से चन्द्रमा के कटि प्रदेश की पूजा करे, **अमृतोदराय नमः** इस मंत्र से उदर की पूजा करे **शशांकाय नमः** इस मन्त्र से नाभि की पूजा करे ॥९॥ **चन्द्राय नमः** से श्रीभगवान् के मुख की पूजा करे **द्विजानामधिपाय नमः** इस मन्त्र से दांतों की पूजा करे । **चन्द्रमसे नमः** इस मन्त्र से हास्य की पूजा करके **कौमोदवनप्रियाय नमः** इस मन्त्र से दोनों ओष्ठों की पूजा करे ॥१०॥ **औषधिनाथाय नमः** से नाक की पूजा करे, **आनन्दबीजाय नमः** इससे दोनों भौहों की पूजा करे । **इन्दीवरायासकराय नमः** इस मन्त्र से चन्द्रमा के कमल सदृश दोनों नेत्रों की पूजा करके, ॥१२॥ **समस्ता ध्वरपूजिताय नमः** इस मन्त्र से श्रीभगवान् के दोनों नेत्रों की पूजा करे । **दैत्यनिषूदनाय नमः** इस मन्त्र से दोनों कानों की पूजा करे, **उदधिप्रियाय नमः** इस मन्त्र से चन्द्रमा के ललाट की पूजा करे और उसी मन्त्र से श्रीभगवान् के भी ललाट की पूजा करे ॥१२॥ **शशांकाय नमः** इस मन्त्र से भगवान् के शिर की पूजा करे और **विश्वेश्वराय नमः रोहिणीनामधेय लक्ष्मी सौभाग्य सौख्यामृत सागराय पद्मश्रिये नमः** (अर्थात् रोहिणी नामवाली लक्ष्मी के सौभाग्य तथा सौख्य रूपी अमृत के सागर स्वरूप तथा कमल जैसी कान्ति वाले भगवान् को नमस्कार है ।) इस मन्त्र से श्रीभगवान् के समक्ष प्रणाम करे ॥१३॥ उसके पश्चात् चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी देवी की भी सुगन्धित पुष्पों,

देयः प्रभाते सहिरण्यवारि कुंभो नमः पापविनाशनाय ।
संप्राश्य गोमूत्रममांसमन्न मक्षारमष्टावथविंशतिं च ॥१५॥
ग्रासांश्च त्रीन् सर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूतम् ।
कदंबनीलोत्पलकेतकानि, जातिः सरोजं शतपत्रिका च ॥१६॥
अम्लानपुष्पाण्यथ सिंदुवारं पुष्पं पुनर्भारत मल्लिकायाः ।
शुक्लं च पुष्पं करवीर पुष्पं श्री चंपकं चंद्रमसे प्रदेयम् ॥१७॥

श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा । यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्तत्पुष्पैरर्चयेद्धरिम् ॥१८॥
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः । व्रतांते शयनं दद्याच्छयनोपस्करान्वितम् ॥१९॥
रोहिणी चंद्र मिथुनं कारयित्वा तु कांचनम् । चंद्रः षडंगुलः कार्यो रोहिणी चतुरंगुला ॥२०॥
मुक्ताफलाष्टकयुतां सितनेत्रसमन्विताम् । क्षीरकुंभोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्विताम् ॥२१॥
दद्यान्मंत्रेण पूर्वाह्ले शालीक्षुफलसंयुताम् । श्वेतामथ सुवर्णास्यां रौप्यखुरसमन्विताम् ॥२२॥
सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शंखं च भाजनम् । भूषणै र्द्विजदाम्पत्यमलंकृत्य गुणान्वितम् ॥२३॥
चंद्रोऽयं विप्ररूपेण सभार्य इति कल्पयेत् । यथाते रोहिणी कृष्ण शयनं न त्यजेदपि ॥२४॥
सोमरूपस्य वै तद्वन्न मे भेदोविभूतिभिः । यथा त्वमेव सर्वेषां परमानंदमुक्तिदः ॥२५॥
भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चंद्र दृढास्तु मे । इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ॥२६॥

नैवेद्यों तथा धूप आदि से पूजा करके रात्रि में भूमि पर सो जाय प्रात:काल जगकर स्नान करे और उसके पश्चात् ब्राह्मणों को हविष्य से भोजन कराये ॥१४॥ इसके बाद प्रात:काल ब्राह्मण को घी तथा सुवर्ण के साथ जल से भरे घड़े का दान करना चाहिये । दान करते समय **पापविनाशनाय नमः** इस मन्त्र का उच्चारण करे । उसके बाद गोमूत्र पीकर दिन भर उपवास करे और रात्रि में मांस तथा नमक रहित अन्न के इकतीस ग्रास को घी के साथ खाना चाहिये। उसके बाद मुहूर्त भर इतिहास का श्रवण करे । हे राजन् ! कदम्ब, नीलकमल, केवड़ा, जाती पुष्प, शतपत्रिका॥१५-१६॥ बिना कुम्हलाये हुए सिन्दुवार के पुष्प, मल्लिका के पुष्प, उजले पुष्प, करवीर पुष्प तथा चम्पा के पुष्प को चन्द्रमा पर चढाना चाहिए ॥१७॥ इन समस्त पुष्पों में से श्रावण आदि महीनों में एक-एक प्रकार के पुष्प को चढाये और जिस महीने में व्रत प्रारम्भ किया गया हो उस मास में इन विभिन्न प्रकार के पुष्पों से श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥१८॥ इस तरह एक वर्ष तक विधिपूर्वक व्रत करके मनुष्य व्रत के अन्त में शय्या की सभी सामग्री के साथ शय्या दान करे ॥१९॥ रोहिणी तथा चन्द्रमा इन दोनों की सुवर्ण की मूर्ति बनवा दे । चन्द्रमा की मूर्ति छह अङ्गुल की तथा रोहिणी की मूर्ति चार अङ्गुल की होनी चाहिए ॥२०॥ उन दोनों मूर्तियों को आठ मोतियों तथा श्वेत नेत्रों से युक्त करके दूध भरे कलश के ऊपर चावल भरे कांस्य पात्र में रखकर ब्राह्मण को दान दे ॥२१॥ उसके पश्चात् सुवर्ण मढे मुख वाली तथा चाँदी मढे मुखवाली श्वेतवर्ण की वस्त्र एवं पात्र के साथ दूध देने वाली गौ का दान करे । गुण सम्पन्न ब्राह्मण दम्पती को भूषणों से अलङ्कृत करके ॥२२-२३॥ मन में ऐसी कल्पना करके ब्राह्मण दम्पती के रूप में अपनी पत्नी के साथ ये चन्द्रमा ही हैं । ब्राह्मण दम्पती के समक्ष हाथ जोड़कर प्रार्थना करे— हे चन्द्र स्वरूप कृष्ण ! जिस तरह से रोहिणी देवी आप की शय्या का परित्याग नहीं करती हैं ॥२४॥ उसी तरह से मेरे ऐश्वर्यों में किसी प्रकार का भेद न हो । जिसतरह से आप अपने समस्त भक्तों को परमानंद तथा मुक्ति प्रदान करते हैं ॥२५॥ उसी तरह हे चन्द्र स्वरूप भगवन् ! मुझे भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो और आपमें मेरी सुदृढ

रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् । इदमेवपितॄणां च सर्वदा वल्लभं नृप ॥२७॥
त्रैलोक्याधिपति र्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम् । चंद्रलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२८॥
नारी वा रोहिणी चंद्रशयनं या समाचरेत्। सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्ति दुर्लभम्॥२९॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तनेन ।
मतिमपि च ददाति सोपि शौरेर्भवनगतः परिपूज्यतेमरौघैः ॥३०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टखंडे रोहिणीचंद्रशयनव्रतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सत्ताइसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

तटाकारामकूपेषु वापीषु नलिनीषु च। विधिं वदस्व मे ब्रह्मन् देवतायतनेषु च ॥१॥
के तत्र ऋत्विजो विप्रा वेदी वा कीदृशी भवेत् । दक्षिणा वलयः कालः स्थानमाचार्य एव च॥२॥
द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचाक्ष्व सुव्रत।

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्महाबाहो तटाकादिषु यो विधिः ॥३॥
पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते राजसत्तम । प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लं संप्राप्तेचोत्तरायणे॥४॥

भक्ति हो । हे अनघ भीष्म ! इस प्रकार से संसार से भयभीत तथा मुक्ति चाहने वाले को ॥२६॥ रूप, आरोग्य तथा दीर्घ आयु प्रदान करने वाला यह सर्वोत्तम व्रत हैं । यह व्रत पितरों को अत्यन्त प्रिय है ॥२७॥ शरीर त्याग करने के पश्चात् व्रती इक्कीस सौ कल्पों तक त्रैलोक्य का स्वामी होकर, संसार में पुनरावृत्ति रहित दुर्लभ चन्द्रलोक को प्राप्त करता है ॥२८॥ यदि कोई नारी इस रोहिणी चन्द्रशयन व्रत को करती है तो वह भी पुनरावृत्ति रहित दुर्लभ फल को प्राप्त करती है ॥२९॥ चन्द्रमा के नाम कीर्तन द्वारा भगवान् मधुसूदन की पूजा के इस प्रसङ्ग को जो पढता अथवा सुनता है, उसको श्रीभगवान् उत्तमबुद्धि प्रदान करते हैं । अन्त में वह श्रीभगवान् के धाम में जाकर देवताओं के द्वारा पूजित होता है ॥३०॥

इस तरह पद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के रोहिणी चन्द्रशयनव्रत विधान वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

तडाग प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणप्रतिष्ठा, वापीप्रतिष्ठा, कूपप्रतिष्ठा तथा सरोवरप्रतिष्ठा का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! आप मुझे, तटाक, आराम (उद्यान), कूप, बावली, कमलिनी तथा मन्दिर आदि की प्रतिष्ठा की विधि को बतलायें ॥१॥ उसमें ऋत्विक् कौन ब्राह्मण होते हैं ? वेदी कैसी होनी चाहिए ? दक्षिणा, वल्लियाँ, काल, स्थान तथा आचार्य किसको होना चाहिए ?॥२॥ उसमें उत्तम द्रव्य कौन होते हैं, इन सारी बातों को मुझे बतलायें । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! तटाक आदि की स्थापना में कौन सी विधि होनी चाहिए इस बात को आप सुनें ॥३॥ हे राजश्रेष्ठ ! पुराणों में यह इतिहास पढा गया है । उत्तरायण के आ जाने पर

पुण्येह्नि विप्रैः कथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । अशुभैर्वर्जिते देशे तटाकस्य समीपतः ॥५॥
चतुर्हस्तां समां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखीम् । तथा षोडशहस्तः स्यान्मंडपश्च चतुर्मुखः ॥६॥
वेद्यास्तु परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः । नव सप्ताथवा पंच ऋजुवक्त्रा नृपात्मज ॥७॥
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्सप्तांगुलिविस्तृता । गर्ताश्च हस्तमात्रास्यु स्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः ॥८॥
सर्वतस्तु सवर्णास्युः पाकाध्वजसंयुताः । अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु ॥९॥
मंडपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् । शुभास्तत्राष्टहोतारो द्वारपालस्तथाष्ट वै ॥१०॥
अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः । सर्वलक्षणसंपूर्णान् मंत्रज्ञान्विजितेंद्रियान् ॥११॥
कुलशीलसमायुक्तान् स्थापयेद्वै द्विजोत्तमान् । प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च ॥१२॥
व्यजने चासनं शुभ्रं ताम्रपात्रं सुविस्तरम् । ततस्त्वनेकवर्णास्यु र्बलयः प्रतिदैवतम् ॥१३॥
आचार्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः । अरत्निमात्रो यूपः स्यात् क्षीरवृक्षविनिर्मितः ॥१४॥
यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता । हेमालंकारिणः कार्याः पंचविंशति ऋत्विजः ॥१५॥
कुंडलानि च हैमानि केयूरकटकानि च । तथांगुलिपवित्राणि वासांसि विविधानि च ॥१६॥
दद्यात्समानि सर्वेषामाचार्ये द्विगुणं स्मृतम् । दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत्प्रियम् ॥१७॥
सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यडुण्डुभौ । ताम्रौ कुंभीरमंडूकावायसः शिंशुमारकः ॥१८॥

मङ्गलमय शुक्ल पक्ष में ॥४॥ ब्राह्मणों द्वारा बतलायी गयी तिथि को सर्वप्रथम ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराये । जहाँ पर किसी भी प्रकार की अपवित्रता न हो ऐसे तालाब के सन्निकट में ही ॥५॥ चार हाथ लम्बी चार हाथ चौड़ी चतुरस्र तथा समतल वेदी का निर्माण कराये । उसके चारो ओर मुख हों । वहीं पर सोलह हाथ का चतुरस्र मण्डप बनाये । मण्डप को भी चतुर्मुख होना चाहिए ॥६॥ वेदी के चारो ओर (अरत्नि) निमुठहाथ परिमित तीन मेखलाओं का निर्माण करे । हे राजन् ! उस मण्डप में नव या सात या पाँच कुण्डों का निर्माण कराये । कुण्डों की लम्बाई चौड़ाई एक-एक निमुठहाथ की हो । योनि की लम्बाई एक वित्ता और चौड़ाई छह या सात अङ्गुल हो । कुण्डों की गहराई भी एक हाथ की होनी चाहिए मेखलाओं की ऊँचाई तीन पर्व की होनी चाहिए ॥७-८॥ मेखलाओं को एक समान रङ्गवाली होना चाहिए । उन्हें ध्वजाओं एवं पताकाओं से अलंकृत करे । मण्डप के चारो दिशाओं में चारो द्वारों के स्तम्भों की लकड़ी पिप्पल, बड़, गूलर तथा पाकड़ की होनी चाहिए ॥९॥ इन्हीं काष्ठों से मण्डप के दरवाजों को बनाना चाहिए । मण्डप के होताओं की संख्या आठ, द्वारपालों की संख्या आठ और ब्राह्मणों की संख्या भी आठ होनी चाहिए । मन्त्रों का जप करने वाले ब्राह्मणों को भी आठ होना चाहिए । उन ब्राह्मणों को वेदों का विद्वान् होना चाहिए। उन्हें समस्त लक्षणों से सम्पन्न मन्त्रों का ज्ञाता तथा जितेन्द्रिय होना चाहिए ॥११॥ ब्राह्मणों को कुल तथा शील गुण सम्पन्न होना चाहिए । प्रत्येक कुण्डों पर कलश तथा यज्ञ की सामग्री होनी चाहिए ॥१२॥ व्यजन, स्वच्छ आसन तथा विस्तृत ताम्रपात्र होना चाहिए । उसके बाद प्रत्येक देवताओं के लिए अनेक वर्णों (रङ्गों) वाली बलि की सामग्री (दही, चावल इत्यादि) को रहना चाहिए ॥१३॥ वेदज्ञ आचार्य को उन सबों को अभिमन्त्रित करके पृथिवी पर बलि समर्पित करना चाहिए । दूध वाले वृक्ष का बना हुआ यूप (स्तम्भ) अरत्नि मात्र का होना चाहिए ॥१४॥ ऐश्वर्य चाहने वाले यजमान के होने पर स्तम्भ की लम्बाई यजमान के बराबर होनी चाहिए । उसके बाद पच्चीस ऋत्विजों का वरण करके उन्हें सुवर्ण निर्मित ॥१५॥ कुण्डल, केयूर, कटक (कड़ा), अङ्गूठी तथा पवित्रक इत्यादि अलङ्कारों से अलङ्कृत करे । इन्हें अनेक प्रकार के वस्त्रों को दे ॥१६॥ सभी ऋत्विजों को एक समान वरण देना चाहिए, किन्तु

एवमासाद्य तत्सर्वमादावेव विशांपते। शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥१९॥
सर्वौषध्युदकैः सर्वैः स्नापितो वेदपारगैः । यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥२०॥
पश्चिमद्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमंडपम् । ततो मंगलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च॥२१॥
रजसामण्डलं कुर्यात्पंचवर्णेन तत्त्ववित् । षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ॥२२॥
चतुरस्रं तु परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम्। वेद्याश्चोपरितः कृत्वा ग्रहान् लोकपतींस्ततः॥२३॥
संन्यसेन्मंत्रतः सर्वान्प्रतिदिक्षु विचक्षणः । कलशं स्थापयेन्मध्ये वारुणं मंत्रमाश्रितम् ॥२४॥
ब्रह्माणं च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद्बुधः । विनायकं च विन्यस्य कमलामंबिकां तथा ॥२५॥
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः । पुष्पभक्ष्यफलै र्युक्तमेवं कृत्वाधिवासनम् ॥२६॥
कुंभाश्च रत्नगर्भांस्तान्वासोभिः परिवेष्टयेत् । पुष्पगंधैरलंकृत्य द्वारपालान् समंततः ॥२७॥
यजध्वमिति तान्ब्रूयादाचार्यमभिपूजयेत् । वह्वृचौ पूर्वतः स्थापयौ दक्षिणेन यजुर्विदौ ॥२८॥
सामगौ पश्चिमे स्थाप्यावुत्तरेण अथर्वणौ । उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत् ॥२९॥
यजध्वमिति तान्ब्रूयाद्याजकान्पुनरेव तान् । उत्कृष्टमंत्रजाप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान् ॥३०॥
एवमादिश्य तान्सर्वान् संधुक्ष्याग्निं समंत्रवित् । जुहुयादाहुती मंत्रैराज्यं च समिधस्तथा ॥३१॥
ऋत्विग्भिश्चैव होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः । ग्रहेभ्यो विधिवद्धुत्वा तथेंद्रायेश्वराय च ॥३२॥

आचार्य को दो गुना देना चाहिए । उन सबों को वैसी ही शय्या देनी चाहिए जैसी अपने को प्रिय हो ॥१७॥ सोने के कच्छप, मगर एवं चाँदी की मछली तथा केकड़ा, ताम्बे के घडियाल तथा मेढक तथा लोहे को दो सूंस को बनवाकर पहले से ही रखना चाहिए ॥१८॥ यजमान को श्वेत माला तथा श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिए । चन्दन भी श्वेत लगाना चाहिए ॥१९॥ इसके बाद वैदिक विद्वान् यजमान को सर्वौषिधि मिश्रित जल से स्नान करायें । यजमान को पत्नी, पुत्र तथा पौत्र के साथ रहना चाहिए ॥२०॥ इन सबों के साथ यजमान मण्डप में पश्चिम द्वार से प्रवेश करें । उस समय मङ्गलमय गीत और वाद्य की ध्वनि कराये ॥२१॥ तत्त्वज्ञ ब्राह्मण पाँच रङ्गों के चूर्ण से मण्डल का निर्माण करे । उसमें सोलह आरों वाले चक्र का निर्माण करना चाहिए । चक्र के बीच में कमल को भी रहना चाहिए। मण्डल को चार मुखों वाला होना चाहिए ॥२२॥ चक्र को चौकोर और सुन्दर होना चाहिए । चारो ओर से वृत्ताकार होने के साथ बीच में अधिक सुन्दर होना चाहिए । वेदी के ऊपर ग्रहों तथा लोकपालों की प्रतिष्ठा करे ॥२३॥ विद्वान् को उन सबों की प्रत्येक दिशा में स्थापना मन्त्र से करनी चाहिए । उसके बाद बीच में मन्त्रों के द्वारा कलश की स्थापना करे॥२४॥ वेदी पर ही ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु की स्थापना करे । विनायक (गणेशजी) कमला (लक्ष्मीजी) तथा अम्बिका की भी स्थापना करे ॥२५॥ सभी लोकों की शान्ति के लिए भूतसमूह की भी स्थापना करे । इस प्रकार पुष्प, भक्ष्य पदार्थ, तथा फलों के द्वारा उनका अधिवास कराये ॥२६॥ कलशों के भीतर रत्नों को डालकर उन्हें वस्त्र से वेष्टित करे सभी द्वारपालों को पुष्प तथा चन्दन से अलंकृत करे । उसके बाद द्वारपालों (ब्राह्मणों) से पूजन करने के लिए कहे । फिर आचार्य की पूजा करे । पूर्वद्वार पर दो ऋग्वेदी ब्राह्मणों को तथा दक्षिण द्वार पर दो यजुर्वेदी ब्राह्मणों की, पश्चिम द्वार पर दो सामवेदी तथा उत्तर द्वार पर दो अथर्ववेदी ब्राह्मणों की पूजा करे । यज्ञ मण्डप की दक्षिण दिशा में यजमान उत्तराभिमुख बैठें ॥२७-२९॥ पुनः याजक ब्राह्मणों से यजमान कहे कि आपलोग यजन कीजिये । जप करने वाले ब्राह्मणों से कहे कि आपलोग उत्तम मन्त्र का जप करें ॥३०॥ इस प्रकार से ब्राह्मणों से कहकर मन्त्रज्ञ आचार्य घी तथा समिधा की आहुतियाँ दें ॥३१॥ ऋत्विजों को भी वारुण मन्त्र से होम करना चाहिए । ग्रहों की

मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्मणे । शान्तिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं च मंगलम् ॥३३॥
जपेच्च पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बहवृचः पृथक् । शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कौष्मांडं जातवेदसम् ॥३४॥
सौरं सूक्तं जपेयुस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः । वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहितम् ॥३५॥
शैशवं पंच निधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च । वामदेव्यं बृहत्सामरौरवं च रथंतरम् ॥३६॥
गवां व्रतं विकीर्णं रक्षोघ्नं च यमं तथा । गायेयुः सामगा राजन् पश्चिमद्वारमाश्रिताः ॥३७॥
आथर्वणाश्चोतरतः शांतिकं पौष्टिकं तथा । जपेयुर्मनसा देवमाश्रिता वरुणं प्रभुम् ॥३८॥
पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनम् । गजाश्वरथवल्मीक संगमाद्व्रजगोकुलात् ॥३९॥
मृदमादाय कुंभेषु प्रक्षिपेदोषधीस्तथा । रोचनां च ससिद्धार्थां गंधान् गुगुलुमेव च ॥४०॥
स्नपनं तस्य कर्त्तव्यं पंचगव्यसमन्वितम् । पूर्वं कर्तुर्महामंत्रैरेवं कृत्वा विधानतः ॥४१॥
अतिवाह्य क्षपामेवं विधियुक्तेन कर्मणा । ततः प्रभाते विमले संजाते तु शतं गवाम् ॥४२॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्ट्यथवा पुनः । पंचाशद्वाथ षट्त्रिंशत् पंचविंशति वा पुनः ॥४३॥
ततश्चावसरप्राप्ते शुद्धे लग्ने सुशोभने । वेदशब्दैः सगंधर्वै र्वाद्यैश्च विविधैः पुनः ॥४४॥
कनकालंकृतां कृत्वा जले गामवतारयेत् । सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशांपते ॥४५॥
पात्रीमादाय सौवर्णीं पंचरत्नसमन्विताम् । ततो निक्षिप्य मकरान्मत्स्यादींश्चैव सर्वशः ॥४६॥
धृतां चतुर्भिर्विप्रैश्च वेदवेदांगपारगैः । महानदीजलोपेतां दध्यक्षतविभूषिताम् ॥४७॥
उत्तराभिमुखां न्युब्जां जलमध्ये तु कारयेत् । आथर्वणेन सुस्नातां पुनर्मायां तथैव च ॥४८॥
आपोहिष्ठेति मंत्रेण क्षिप्त्वागत्य च मंडपम् । पूजयित्वा सदस्यान्वै बलिं दद्यात्समंततः ॥४९॥

आहुति देने के बाद इन्द्र, शिव, मरुद्गण, लोकपालों तथा विश्वकर्मा के लिए आहुति प्रदान करे । उस समय मङ्गलमय शान्तिसूक्त, रुद्रसूक्त, पवमानसूक्त ॥३३॥ तथा पुरुषसूक्त का पाठ ऋग्वेदी ब्राह्मण पूर्व दिशा में बैठकर करें। यजुर्वेदियों को दक्षिण दिशा में, शिवसूक्त, रुद्रसूक्त, सोमसूक्त, कूष्माण्ड सूक्त, अग्नि सूक्त ॥३४॥ और सूर्यसूक्त का पाठ करना चाहिए । हे राजन् ! पश्चिम द्वार पर विद्यमान सामवेदी ब्राह्मण वैराजसूक्त, पुरुषसूक्त, सुपर्णसूक्त, रुद्रसूक्त, शैशव सूक्त, पञ्चनिधन सूक्त, गायत्र ज्येष्ठ साम, वामदेव्य बृहत् साम रौरव रथन्तर, गोव्रत सूक्त, विकीर्ण सूक्त, रक्षोघ्न सूक्त तथा यमसूक्त का गायन करें ॥३५-३७॥ उत्तर द्वार पर विद्यमान ब्राह्मण मन से वरुण देव को आश्रय रूप से अपनाकर शान्ति एवं पौष्टिक मन्त्रों का जप करें ॥३८॥ पहले दिन इन सभी कार्यों को सम्पन्न करके रात्रि में अधिवास करें, हाथीशाला, अश्वशाला, वल्मीक, नदियों के संगम स्थल, तथा गोशाला की मिट्टी लाकर कलशों में डाले, फिर ओषधियों, रोचना, पीली सरसो, चन्दन तथा गुग्गुल डाले ॥३९-४०॥ इसके बाद यजमान पञ्चगव्यमिश्रित जल से स्नान (अभिषेक) आपो हिष्ठा मयोभुवः इत्यादि मन्त्रों से करे ॥४१॥ इस तरह विधिपूर्वक कर्मों के अनुष्ठान के द्वारा रात्रि को बिताकर उसके बाद सबेरा होने पर ब्राह्मणों को एक सौ अथवा अड़सठ या पचास या छत्तीस या पच्चीस गायों का दान दे ॥४२-४३॥ उसके पश्चात् शुद्ध लग्न के आ जाने पर, वेदपाठ, सङ्गीत, अनेक प्रकार के वाद्य के साथ गायों को सुवर्ण से अलंकृत करके एक गाय को जल में उतारे और उसको साम गायन करने वाले ब्राह्मण को दान कर दे । ॥४४-४५॥ उसके बाद पञ्चरत्न से युक्त पात्र को लेकर उसमें मकर तथा मत्स्य आदि को रखे ॥४६॥ उस पात्र को वेदों तथा वेदांगों में पारङ्गत चार ब्राह्मण पकड़े । उसमें महानदी के जल दधि तथा अक्षत डाले ॥४७॥ फिर उत्तर की ओर उसका मुख करके जल में डाल दे । उसके बाद आथर्वणिक मन्त्र से **मायां पर्यन्त आपो हिष्ठा मयोभुवः** इत्यादि मन्त्र से उस पर जल डालकर सबलोग यज्ञमण्डप

पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि राजसत्तम । चतुर्थी कर्म कर्त्तव्यं देयं तत्रापि शक्तितः ॥५०॥
कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च । ऋत्विग्भ्यस्तु समं दद्यान्मंडपं विभजेत्पुनः ॥५१॥
हेमपात्रीं च शय्यां च विप्राय च निवेदयेत्। ततः सहस्रं विप्राणामथवाऽष्टशतं तथा ॥५२॥
भोजनीयं यथाशक्ति पंचाशद्वाथविंशतिः । एवमेष पुराणेषु तटाकविधिरुच्यते॥५३॥
कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च । एष एवविधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥५४॥
मंत्रतस्तु विशेषः स्यात्प्रासादोद्यानभूमिषु । अयं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयंभुवा ॥५५॥
स्वल्पेष्वेकाग्निवत्कार्यो वित्तशाठ्यविवर्जितैः । प्रावृट्काले स्थितं तोयमग्निष्टोमसमं स्मृतम् ॥५६॥
शरत्कालस्थितं यत्स्यात्तदुक्तफलदायकम् । वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमंते शिशिरे स्थितम् ॥५७॥
अश्वमेधसमं प्राहु र्वसंतसमये स्थितम्। ग्रीष्मेपि यत्स्थितं यत्स्यात्तदुक्तफलदायकम् ॥५८॥

एतान् महाराज विशेषधर्मान् करोति चोर्व्यामतिशुद्धबुद्धिः ।
स यातिब्रह्मालयमेव शुद्धः कल्पाननेकान्दिवि मोदते च ॥५९॥
अनेकलोकान्विचरन्स्वरादीन् भुक्त्वापरार्धद्वयमङ्गनाभिः ।
सहैव विष्णोः परमं पदं यत्प्राप्नोति तद्योगबलेन भूयः ॥६०॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे तटाकप्रतिष्ठाविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

में चले आयें। सभी सदस्यों की पूजा करके सभी देवताओं को बलि प्रदान करे ॥४८-४९॥ हे राजश्रेष्ठ ! उसके वाद चार दिनों तक होम होते रहना चाहिए। उसके बाद चतुर्थी कर्म करे और यजमान अपनी शक्ति के अनुसार दान दें ॥५०॥ उसके बाद यज्ञ के समस्त पात्र एवं यज्ञ की सामग्री तथा मण्डप का विभाग करके सभी ऋत्विजों को समान मात्रा में दे दे ॥५१॥ सुवर्ण के पात्र तथा शय्या को ब्राह्मण को दे दे। उसके बाद एक हजार अथवा आठ सौ ॥५२॥ या अपनी शक्ति के अनुसार पचास या पच्चीस ब्राह्मणों को भोजन कराये। इसतरह से पुराणों में तड़ागप्रतिष्ठा विधि वर्णित है। कूप, बावली तथा पुष्करिणी की तथा उनकी प्रतिष्ठा की भी यही विधि है ॥५३-५४॥ प्रासाद, उद्यान आदि की प्रतिष्ठा में विशेष रूप से मन्त्रों का प्रयोग होता है। यह अथवा इसके आधी भी विधि की जा सकती है, यह ब्रह्माजी ने कहा है ॥५५॥ इस कार्य को एक कुण्ड के द्वारा भी सम्पन्न किया जा सकता है। इस कार्य को करने में वित्त की शठता न करे। जिस तड़ाग में केवल वर्षाकाल में ही जल रहता है उसका फल अग्निष्टोम याग के फल के समान होता है ॥५६॥ जिसमें शरत् काल तक जल रहता है, उसका भी वही फल होता है। जिसमें हेमन्त तथा शिशिर ऋतु तक जल रहता है, उसका फल वाजपेय तथा अतिरात्र यज्ञ करने के फल के समान होता है ॥५७॥ जिस तड़ाग का जल वसंत ऋतु तक रहता है उसका फल अश्वमेध याग के समान होता है। जिसका जल ग्रीष्म ऋतु में भी रहता है उसका फल राजसूय यज्ञ के फल के समान होता है ॥५८॥ हे महाराज ! जो शुद्ध बुद्धि वाला पुरुष इन विशेष धर्मों को करता है, वह शुद्ध ब्रह्मलोक में जाता है और अनेक कल्पों तक द्युलोक में आनन्दानुभव करता है। वह अप्सराओं के साथ परार्द्धकाल पर्यन्त अनेक लोकों में अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करते हुए उनका उपभोग करता है और वह अपने योग के बल से भगवान् विष्णु के लोक मे चला जाता है ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के तटाकप्रतिष्ठा वर्णन विधि नामक सताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीशराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

अठाइसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

पादपानां विधिं ब्रह्मन्यथावद्विस्तराद्वद । विधिना येन कर्त्तव्यं पादपारोपणं बुधैः ॥१॥
ये च लोकाः स्मृता येषां तानिदानीं वदस्व मे ।

पुलस्त्य उवाच

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु ॥२॥
तटाकविधिवत्सर्वं समाप्य जगतीश्वर । ऋत्विङ्मंडपसंभारमाचार्यं चापि तद्विधम् ॥३॥
पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः । सर्वौषध्युदकैः सिक्तान् दध्यक्षतविभूषितान् ॥४॥
वृक्षान्माल्यै रलंकृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्। सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् ॥५॥
अंजनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया । फलानि सप्तचाष्टौ वा कालधौतानि कारयेत् ॥६॥
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां विद्यां तान्यधिवासयेत्। धूपोऽत्र गुग्गुलुः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रेष्वधिष्ठितान् ॥७॥
सप्तधान्यस्थितान् कृत्वा वस्त्रगंधानुलेपनैः । कुंभान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वावनीश्वर ॥८॥
पूजयित्वा दिनांते च कृत्वाबलिनिवेदनम् । यथावल्लोकपालानामिंद्रादीनां विधानतः ॥९॥
वनस्पतेरधिवास एवं कार्यो द्विजातिभिः । ततः शुक्लांबरधरान् सौवर्णकृतमेखलान् ॥१०॥
सकांस्यदोहां सौवर्णश्रृंगाभ्यामतिशालिनीम् । पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद्गामुदङ्मुखीम् ॥११॥
ततोभिषेकमंत्रेण वाद्यमंगलगीतकैः । ऋग्यजुः साममंत्रैश्च वारुणै रभितस्तदा ॥१२॥
तैरेवकुंभैः स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मणपुंगवाः । स्नातः शुक्लांबरधरो यजमानोऽभिपूजयेत् ॥१३॥

वृक्षारोपण विधि का वर्णन, अश्वत्थ आदि वृक्षों के रोपने के फलों का पृथक्-पृथक् वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! आप वृक्षारोपण विधि का ठीक-ठीक वर्णन करें । विद्वान् पुरुष को किस तरह से वृक्षारोपण करना चाहिए ॥१॥ वृक्षारोपण करने वाले लोगों को प्राप्त होने वाले लोकों का आप वर्णन करें ।
पुलस्त्य महर्षि ने कहा— मैं आपको वृक्षारोपण की विधि को बतलाता हूँ । उद्यान की भूमि पर ॥२॥ तटाक प्रतिष्ठा में किए जाने वाली समस्त विधियों को पूरा करके ऋत्विजों को मण्डप की सारी सामग्री देकर उसी तरह आचार्य की पूजा करे । तडाग विधि के ही समान सुवर्ण, वस्त्र, चन्दन, सर्वौषधि के जल से दधि एवं अक्षत को भिगोकर उससे ब्राह्मणों की पूजा करे वृक्षों को माला से अलंकृत करके उनमें वस्त्र लपेट दे । सभी वृक्षों का कर्णवेध संस्कार सोने की सूई से करे ॥३-५॥ उनमें सुवर्ण की शलाका से ही अञ्जन लगाये । सोने चाँदी के सात-आठ फलों का निर्माण कराये । सभी वृक्षों की वेदी के भीतर उन सबों का अधिवास कराये । हे पृथिवीपते ! गुग्गुल के श्रेष्ठ धूप को ताम्बे के पात्र में सप्तधान्य के ऊपर रखे । फिर उन वृक्षों में गन्ध एवं चन्दन लगाये, सभी वृक्षों पर कुम्भों को स्थापित करके ॥६-८॥ सायंकाल उन वृक्षों की पूजा करके इन्द्र इत्यादि लोकपालों को विधिपूर्वक बलि प्रदान करे॥९॥ द्विजातियों को इसीतरह से श्वेत वस्त्र धारण किए हुए तथा जिनकी मेखला सुवर्ण निर्मित हो ऐसे वनस्पतियों का अधिवास कराना चाहिए ॥१०॥ उसके बाद कांस्य दोहिनी के साथ जिसकी सींग सुवर्ण से मढे गये हों ऐसी सीधी तथा दुग्ध देने वाली गौ का वृक्ष के बीच से दान करे । गौ को उत्तराभिमुखी करके दान करे ॥११॥ उसके बाद अभिषेक मंत्रों के द्वारा मङ्गलमय गीत ध्वनि के साथ ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के वरुण देवताक मंत्रों से

गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजः ससमाहितान् । हेमसूत्रैः सकटकैरंगुलीयैः पवित्रकैः ॥१४॥
वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः । क्षीराभिषेचनं कुर्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ॥१५॥
होमश्च सर्पिषा कार्यो यवैः कृष्णातिलैरपि । पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः ॥१६॥
दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रापि शक्तितः । यद्यदिष्टतमं किंचित्तत्तद्दद्यादमत्सरी ॥१७॥
आचार्ये द्विगुणं दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् । अनेन विधिना यस्तु कुर्यादवृक्षोत्सवं बुधः ॥१८॥
सर्वान् कामानवाप्नोति पदं चानन्तमश्नुते । यश्चैवमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेद्बुधः ॥१९॥
सोपि स्वर्गे वसेद्राजन्यावदिंद्रायुतत्रयम्। भूतान्भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्रोमसंमितान् ॥२०॥
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्। य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः ॥२१॥
सोपि संपूज्यते देवै ब्रह्मलोके महीयते। अपुत्रस्य च पुत्रित्वं पादपा एव कुर्वते॥२२॥
तीर्थेषु पिंडदानादीन् रोपकाणां ददंति ते। यत्नेनापि च राजेंद्र अश्वत्थारोपणं कुरु॥२३॥
स ते पुत्रसहस्रस्य कृत्यमेकः करिष्यति । धनी चाश्वत्थवृक्षेण अशोकः शोकनाशनः ॥२४॥
प्लक्षो यज्ञप्रदः प्रोक्तः क्षीरीचायुः प्रदः स्मृतः। जंबुकी कन्यकादात्री भार्यादा दाडिमी तथा॥२५॥
अश्वत्थो रोगनाशाय पलाशो ब्रह्मदस्तथा । प्रेतत्वं जायते पुंसो रोपयेद्यो विभीतकम् ॥२६॥
अंकोले कुलवृद्धिस्तु खादिरेणाप्यरोगिता । निंबप्ररोहकाणां तु नित्यं तुष्येद्दिवाकरः ॥२७॥

चारो ओर ॥१२॥ उन्हीं कलशों के जलों से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को स्नपन (अभिषेक) करना चाहिए । उसके बाद यजमान स्नान करके तथा श्वेतवस्त्र धारण करके ॥१३॥ अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को, समाहित ऋत्विजों की पूजा करे और ब्राह्मणें को सोने की जंजीर, कड़ा, अङ्गूठी तथा पवित्रक प्रदान करें ॥१४॥ वस्त्र, सभी सामग्री के साथ शय्या, पादुका (खड़ाऊँ) प्रदान करें । उसके बाद चार दिनों तक, दुग्ध से वृक्षों का अभिषेक करें ॥१५॥ इस कार्य में घी, यव तथा तिल से होम करे । होम में समिधा पालाश की श्रेष्ठ है । चौथे दिन उत्सव मनाये ॥१६॥ उसके वाद पहले के ही समान दक्षिणा अपनी शक्ति के अनुसार देनी चाहिए । बिना किसी द्वेष के जो-जो वस्तुएँ अपने को अच्छी लगती हों उन्हीं वस्तुएँ का दान करे ॥१७॥ आचार्य को दो गुनी दक्षिणा देकर नमस्कार करके क्षमा प्रार्थना करे । जो विद्वान् इस प्रकार से वृक्ष का उत्सव मनाता है ॥१८॥ वह समस्त अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है तथा अनंत पद को प्राप्त करता है, हे राजेन्द्र ! जो विद्वान ऐसे भी वृक्ष का रोपण करता है ॥१९॥ वह भी जब तक तीस इन्द्र होते हैं तब तक स्वर्गलोक में निवास करता है और अपने शरीर में विद्यमान रोमों की संख्या के बराबर अपने अतीत एवं अनागत पितरों का उद्धार करता है ॥२०॥ वह पुनरावृत्ति रहित मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, जो मनुष्य इस प्रसङ्ग को पढता या सुनता है ॥२१॥ वह भी देवताओं से पूजित होकर ब्रह्मलोक में सुशोभित होता है पादपारोपण करने से सन्तानहीन सन्तान वाला हो जाता है ॥२२॥ वे वृक्षाभिमानी देवता तीर्थों में जाकर वृक्षारोपण करने वाले के लिए पिण्डदान करते हैं । अतएव हे राजेन्द्र ! यत्नपूर्वक आप पिप्पल का वृक्ष लगायें॥२३॥ वह अकेला तुम्हारे हजारों पुत्रों का कार्य करेगा । अश्वत्थ वृक्ष का रोपण करने वाला धनी होता है । अशोक वृक्ष का रोपण शोक को विनष्ट करता है ॥२४॥ पाकड़ वृक्ष यज्ञ करने का फल प्रदान करता है, दूध वाला वृक्ष रोपने वाले की आयु को बढ़ाता है । जामुन का वृक्ष कन्यादान का फल देता है तथा अनार का वृक्ष पत्नी प्रदान करता है ॥२५॥ अश्वत्थ वृक्ष को रोपने से रोग का नाश होता है, पलाश के वृक्ष से ब्रह्म की प्राप्ति होती है । बहेड़े का वृक्ष लगाने वाला प्रेत होता है ॥२६॥ अंकोल लगाने से वंश की वृद्धि होती है । खैर का वृक्ष लगाने से आरोग्य

श्रीवृक्षे शंकरो देवः पाटलायां तु पार्वती । शिंशपायामप्सरसः कुंदे गंधर्वसत्तमाः ॥२८॥
तिंतिडीके दासवर्गा वंजुले दस्यवस्तथा। पुण्यप्रदः श्रीप्रदश्च चंदनः पनसस्तथा॥२९॥
सौभाग्यदश्चंपकश्च करीरः पारदारिकः । अपत्य नाशकस्तालो वकुलः कुलवर्द्धनः ॥३०॥
बहुभार्या नारिकेलाद्द्राक्षा सर्वांगसुंदरी। रतिप्रदा तथाकोली केतकी शत्रुनाशिनी ॥३१॥
एवमादि नगाश्चान्ये येनोक्तास्तेपि दायकाः । प्रतिष्ठांते गमिष्यंति यैस्तु वृक्षाः प्ररोपिताः ॥३२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे वृक्षारोपणविधिर्नाम अष्टाविंशोध्यायः ॥२८॥

उनतीसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

तथैवान्यत्प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ॥१॥
पुरादग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु । सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत्तदा ॥२॥
बैकुंठं सर्वमासाद्यविष्णोर्वक्षस्थले स्थितम् । ततः कालेन कियता पुनः सर्वविधौ नृपः ॥३॥
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते । स्पर्द्धायां च प्रवृद्धायां कमलासनकृष्णयोः ॥४॥

बढता है । निम्ब का वृक्ष लगाने से सूर्य देव प्रसन्न होते हैं ॥२७॥ विल्व का वृक्ष लगाने से भगवान् शङ्कर प्रसन्न होते हैं । गुलाब के पेड़ में पार्वतीजी का निवास होता है । अशोक के वृक्ष में अप्सराओं का निवास होता है । कुन्द में श्रेष्ठ गन्धर्वों का निवास होता है ॥२८॥ इमली के वृक्ष में दासों का समूह रहता है और वेंत में लुटेरों का निवास होता है । चन्दन का वृक्ष लगाने से पुण्य होता है कटहल का वृक्ष लगाने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥२९॥ चम्पा का वृक्ष सौभाग्यप्रद होता है । ताड़ का वृक्ष सन्तान का नाश करता है । करीर का वृक्ष दारिद्र्य देता है । बकुल (मौलश्री) के वृक्ष से सन्तान की वृद्धि होती है ॥३०॥ नारियल का पेड़ लगाने वाला अनेक पत्नियों का पति होता है । दाख लगाने से सर्वाङ्गसुन्दरी नारी की प्राप्ति होती है । कोली का वृक्ष रति प्रदान करने वाला होता है और केवड़ा शत्रुओं का नाश करता है ॥३१॥ इसी तरह अन्य वृक्ष जिनको यहाँ नहीं कहा गया है, वे भी फल प्रदान करने वाले होते हैं । वृक्ष लगाने वालों की परलोक में प्रतिष्ठा होती है ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के वृक्षारोपणविधि वर्णन नामक अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

सौभाग्यशयनव्रत का विधान, सौभाग्याष्टकोत्पत्ति वर्णन, कलिसाधन विधि वर्णन

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— राजन् मैं एक दूसरा सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाला व्रत बतलाता हूँ । इस व्रत का नाम सौभाग्यशयन है । इसे पुराणवेत्ता ही जानते हैं ॥१॥ प्राचीनकाल में जब भूःभुवः, स्वः तथा महर्लोक इत्यादि लोक दग्ध हो गये उस समय सभी प्राणियों में रहने वाला सौभाग्य एकत्रित हुआ ॥२॥ वह वैकुण्ठ में जाकर भगवान् विष्णु के वक्षस्थल में स्थित हो गया । उसके पश्चात् सृष्टि काल के आ जाने पर ॥३॥ प्रधान तथा पुरुष से युक्त लोक अहङ्कार से आवृत हो गया । उस समय ब्रह्माजी तथा भगवान् विष्णु में परस्पर में स्पर्धा उत्पन्न

पिंगाकारासमुद्भूता वह्निज्वालातिभीषणा । तयाभितप्तस्य हरे र्वक्षसस्तद्विनिःसृतम् ॥५॥
यद्वक्षःस्थलमाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमास्थितम्। रसरूपं न तद्यावदाप्रोतिवसुधातले॥६॥
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षात्तु ब्रह्मपुत्रेण धीमता । दक्षेण पीतमात्रं तद्रूपलावण्यकारकम् ॥७॥
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यदपतद्भूमावष्टधा तद्व्यजायत ॥८॥
ततस्त्वोषधयो जाताः सप्त सौभाग्यदायिकाः। इक्षवस्तरुराजश्च निष्पावाश्शालिधान्यकम् ॥९॥
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुंभं कुसुमं तथा। लवणं चाष्टमं तद्वत्सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥१०॥
पीतं यद्ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुरा । दुहिता सा भवत्तस्माद्यासतीत्यभिधीयते॥११॥
लोकानतीत्यलालित्याल्ललिता तेन चोच्यते। त्रैलोक्यसुदरीं देवीमुपयेमे पिनाकधृत् ॥१२॥
त्रिविश्वसौभाग्यमयीं भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् । तामाराध्य पुमान्भक्त्या नारी वा किं न विंदति॥१३॥

भीष्म उवाच

कथमाराधनं तस्या ललिताया मुने वद । यद्विधानं च जगतः शांतये तद्वदस्व मे ॥१४॥

पुलस्त्य उवाच

वसंतमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रियः । शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥१५॥
तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती । पाणिग्रहणिकैर्मंत्रै रुदूढा वरवर्णिनी ॥१६॥
तया सहैव विश्वेशं तृतीयायामथार्चयेत् । फलै र्नानाविधै र्दीपै र्धूपै नैवेद्यसंयुतैः ॥१७॥
प्रतिमां पंचगव्येन तथा गंधोदकेन च । स्नापयित्वार्चयेद्गौरीमिंदुशेखरसंयुताम् ॥१८॥

हो गयी ॥४॥ उसी समय अत्यन्त भयङ्कर पीले रङ्ग की ज्योति प्रकट हुयी । उसके द्वारा संतप्त होकर सौभाग्य द्रव रूप से भगवान् विष्णु के हृदय से प्रवाहित होकर पृथिवी पर गिरने लगा । जब तक वह सौभाग्य द्रव पृथिवी नहीं गिर पाया था ॥५-६॥ उसी समय अन्तरिक्ष से गिरने वाले उसको ब्रह्माजी के बुद्धिमान पुत्र दक्ष ने पी लिया । जो रूप और तेज को उत्पन्न करने वाला था ॥७॥ उसके कारण दक्ष प्रजापति का रूप और बल बहुत अधिक बढ गया। दक्ष के पीने से बचकर जो सौभाग्य पृथिवी पर गिरा उससे आठ औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं ॥८॥ वे औषधियाँ सात प्रकार के सौभाग्य को प्रदान करने वाली बन गयीं । वे औषधियाँ हैं ईख, तरुराज, निष्पावा (मटर) शालि (अगहनीधान) विकार युक्त गोखुर, कुसुम्भ, कुसुम और नमक । ये आठो सौभाग्याष्टक कहलाती हैं ॥९-१०॥ योग ज्ञान को जानने वाले दक्ष ने जो उसे पी लिया, उससे दक्ष की सती नाम की पुत्री उत्पन्न हुयी ॥११॥ उसका सौन्दर्य अतिलौकिक था । अतएव उसका नाम ललिता भी हो गया । उस त्रैलोक्य सुन्दरी से पिनाकधारी शङ्करजी ने विवाह किया ॥१२॥ ललिता देवी त्रैलोक्य के सौभाग्य से युक्त हैं तथा भोग एवं मोक्ष रूपी फल को प्रदान करने वाली हैं। उन देवी की आराधना करके कोई भी स्त्री अथवा पुरुष समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ॥१३॥ **भीष्मजी ने कहा—** हे मुने ! आप यह बतलायें कि उन ललिता देवी की आराधना कैसे की जाती है ? उसको आप जगत् का कल्याण करने के लिए मुझे बतलाइये ॥१४॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** वसन्त ऋतु के चैत्र शुक्ल तृतीया को पूर्वाह्ण में तिलमिश्रित जल से स्नान करे ॥१५॥ इसी दिन सती देवी का विश्वात्मा भगवान् शङ्कर के साथ वैवाहिक मंत्रों द्वारा विवाह हुआ था ॥१६॥ ललिता देवी के साथ भगवान् शङ्कर की अर्चना तृतीया तिथि को ही करे । अनेक प्रकार के फलों, दीपों, धूपों तथा नैवेद्य को निवेदित करे ॥१७॥ उन दोनों की सुवर्ण निर्मित प्रतिमा को पञ्चगव्य तथा चन्दनोदक से स्नान कराये फिर शङ्करजी के साथ गौरी देवी की अर्चना करे ॥१८॥ **पार्वतीदेव्यै**

नमोस्तु पाटलायै तु पादौ दिव्याः शिवस्य च । शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयो र्द्वयोः ।।१९।।
त्र्यंबकायेति रुद्रस्य भवान्यै जंघयो र्युगम् । शिरो रुद्रेश्वरायेति विजयायै च जानुनी ।।२०।।
संकीर्त्य हरिकेशाय तथोरुवरदे नमः । ईशायेति कटिं रत्यै शङ्करायेति शङ्करम् ।।२१।।
कुक्षिद्वयं च कोटव्यै शूलिनं शूलपाणये । मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत् ।।२२।।
सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यै च कुचद्वयम् । शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कंठमर्चयेत् ।।२३।।
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनंतायै करद्वयम् । त्रिलोचनायेति हरं बाहू कालानलप्रिये ।।२४।।
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत् । स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम् ।।२५।।
अशोकवनवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ । स्थाणवे च हरं तद्वदास्यं चंद्रमुखप्रिये ।।२६।।
नमोर्धनारीशहरमसितांगीति नासिकाम् । नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ।।२७।।
शर्वाय पुरहर्त्तारं वासुदेव्यै तथालकम् । नमः श्रीकंठनाथाय शिवकेशांस्तथार्चयेत् ।।२८।।
भीमोग्रभीमरूपिण्यैशिरः सर्वात्मने नमः । हरमभ्यर्च्य विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः ।।२९।।
स्थापयेत्स्निग्धनिष्पावान् कुसुंभक्षीरजीरकम् । तरुराजेक्षुलवणं कुस्तुंबुरुमथाष्टमम् ।।३०।।
दद्यात्सौभाग्यकृद्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्युत । एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः ।।३१।।
चैत्रे श्रृंगाटकान्प्राश्य स्वपेद्भूमावरिंदम । पुनः प्रभाते च तथा कृतस्नानजपः शुचिः ।।३२।।
संपूज्य द्विजदांपत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः । सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सौवर्णं प्रतिमाद्वयम् ।।३३।।

नमः, **शिवाय नमः** इन दोनों मन्त्रों से शिव और पार्वती दोनों के चरणों की पूजा करे । **जयायै नमः शिवाय नमः** से दोनों की घुट्टियों की पूजा करे ।।१९।। **त्र्यम्बकाय नमः भवान्यै नमः** से दोनों की जङ्घों की पूजा करे । **रुद्रेश्वराय नमः तथा विजयायै नमः** से घुटनों की पूजा करे ।।२०।। **हरिकेशाय नमः वरदे नमः** से दोनों के उरु भाग की पूजा करे । **ईशाय नमः** और **शङ्कराय नमः, रत्यै नमः** से दोनों के कटि प्रदेश की पूजा करे ।।२१।। **कोटव्यै नमः, शूलिने नमः** से दोनों की कुक्षि की पूजा करे । **शूलपाणये नमः, मङ्गलायै नमः** से उदर की पूजा करे ।।२२।। **सर्वात्मने नमः, ईशान्यै नमः** से दोनों के स्तनों की पूजा करे । **वेदात्मने नमः, रुद्राण्यै नमः** से दोनों के कण्ठ की अर्चना करे ।।२३।। **त्रिपुरघ्नाय नमः अनन्तायै नमः** से दोनों के दोनों हाथों की अर्चना करे । **त्रिलोचनाय नमः कालानलप्रियायै नमः** से दोनों की भुजाओं की पूजा करे ।।२४।। **सौभाग्यभवनाय नमः** से आभूषणों की पूजा करे । **स्वाहायै नमः स्वधायै नमः ईश्वराय नमः** से मुख की पूजा करे ।।२५।। **अशोकवन वासिन्यै नमः** से ऐश्वर्य प्रदान करने वाले ओष्ठों की पूजा करे । **स्थाणवे नमः, चन्द्रमुखप्रियायै नमः** से दोनों के मुख का पूजन करे ।।२६।। **अर्द्धनारीश्वराय नमः, असिताङ्ग्यै नमः** से नासिका की पूजा करे । **उग्राय नमः ललितायै नमः** से दोनों के भौंहों की पूजा करे ।।२७।। **शर्वाय नमः वासुदेव्यै नमः** से दोनों के केशों की पूजा करे। **श्रीकण्ठाय नमः** से केवल शिव के केश का पूजन करे ।।२८।। **भीमोग्ररूपिण्यै नमः सर्वात्मने नमः** से दोनों के मस्तक का पूजन करे । इस तरह सविधि पूजा करके उन दोनों मूर्तियों के समक्ष सौभाग्य अष्टक को स्थापित करे।।२९।। निष्पावा, कुसुम्भ, क्षीरजीरक, तरुराज, ईख, नमक, कुसुम तथा राजधान्य ये आठो सौभाग्य अष्टक हैं।।३०।। इन सबों को सौभाग्याष्टक इसलिए कहते हैं कि इन सबों का दान करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है । इन सबों को शिव तथा शिवा को निवेदित करके फिर उन दोनों की सुवर्ण प्रतिमा को ब्राह्मण दम्पती को प्रदान कर दे ।।३१।। रात्रि में शृङ्गाटक (सिंघाड़ा) खाकर भूमि पर सो जाय । प्रातःकाल स्नान करके तथा जप करके पवित्र

प्रीयताम्मेऽत्रललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत्। एवं संवत्सरं यावत्तृतीयायां सदा नृप॥३४॥
प्राशने दानमंत्रे च विशेषोऽयं निबोध मे । गोश्रृंगाबुमथौ प्रोक्तं वैशाखे गोमयं पुनः ॥३५॥
ज्येष्ठे मंदारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम् । श्रावणे दधिसंप्राश्यं नभस्ये तु कुशोदकम् ॥३६॥
क्षीरं चाश्वयुजे मासि कार्त्तिके पृषदाज्यकम्। मार्गशीर्षे तु गोमूत्रं पौषे संप्राशयेद् घृतम् ॥३७॥
माघे कृष्णतिलांस्तद्वत् पंचगव्यं च फाल्गुने। ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ॥३८॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती। उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्त्तयेत् ॥३९॥
तस्मिंस्तु द्वादशे मासि द्वादश्यां कृष्णमर्चयेत् । तथा लक्ष्मीं च तत्रैव भर्त्रा सार्धमथार्चयेत्॥४०॥
पौर्णमास्यामतस्तद्वत्सपत्नीकः पितामहः। उपासनीयो विदुषा परत्राभीतिमिच्छता ॥४१॥
सौभाग्याष्टकं तद्वच्च दातव्यं भूतिमिच्छता। मल्लिकाशोककमलं कदंबोत्पलचंपकम्॥४२॥
कुब्जकं करवीरं च बाणमम्लानपंकजम् । सिंदुवारं च सर्वेषु मासेषु कुसुमं स्मृतम्॥४३॥
जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका। यथालाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा॥४४॥
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः। स्त्री च नक्तं कुमारी च शिवमभ्यर्च्य भक्तितः॥४५॥
व्रतांते शयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् । उमामहेश्वरौ हैमौ वृषभं च गवा सह ॥४६॥
स्थापयित्वा च शयनं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । द्वादश्यां वत्सरं त्वेकं महालक्ष्म्या च केशवम्॥४७॥
ब्रह्माणं सह सावित्र्या पूजयित्वा नरस्त्विह । सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा समभीप्सितान्॥४८॥

होकर ॥३२॥ द्विजदम्पती की माला, वस्त्र तथा भूषण से पूजा करे, सौभागय अष्टक के साथ दोनों सुवर्ण प्रतिमा को उन्हें निवेदित कर दे ॥३३॥ उस समय ललिता देवी मुझ पर प्रसन्न हों (ललिता मे प्रीयताम्) का उच्चारण करे। हे राजन् भीष्म ! इस तरह एक वर्ष तक प्रत्येक शुक्ल तृतीया को ॥३४॥ व्रत करे भोजन और दान के विषय में विशेषता यह है कि रात्रि में चैत्र मास में गौ के श्रृंग का जल पीकर, वैशाख मास में गोमय चाट कर ॥३५॥ ज्येष्ठ मास में मन्दार पुष्प चाटकर, आषाढ मास में विल्वपत्र खाकर, श्रावण में दही, भाद्रपद में कुशोदक पीकर ॥३६॥ आश्विन में दुग्ध पीकर तथा कार्तिक के महीनें में पृषदाज्य (दधि मिश्रित घी) मार्गशीर्ष में गोमूत्र पीकर, पौष मास में घी खाकर ॥३७॥ माघ में काली तिल खाकर तथा फाल्गुन में पञ्चगव्य पीकर, भूमि पर सोये। प्रत्येक मास में दान देते समय क्रमशः इन नामों का उच्चारण करे ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा ॥३८॥ वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला, सती तथा उमा। जैसे चैत्र के व्रत के अन्त में **ललिता प्रीयतम्** वैशाख में **विजया प्रीयताम्** इत्यादि ॥३९॥ बारहवें महीने में द्वादशी तिथि को भगवान् विष्णु और लक्ष्मी की पूजा करे। दोनों की पूजा एक साथ करे ॥४०॥ पूर्णिमा के दिन परलोक में अभय प्राप्ति चाहने वाले को सावित्री देवी के साथ ब्रह्माजी की पूजा करनी चाहिए ॥४१॥ और पूर्ववत् सौभाग्याष्टक का दान ब्राह्मण दम्पत्ती को देना चाहिये। मल्लिका (मालती) अशोक, कमल, नील कमल, चम्पा, कुब्जक, करवीर, बाण, विना कुम्हलाया हुआ कमल, सिन्दुवार इन पुष्पों को सभी मासों में चढाये ॥४३-४३॥ जपाकुसुम (ओड़हुल) कुसुम्भ कुसुम, मालती तथा शतपत्रिका इनमें से जो भी पुष्प मिले उसे चढाना चाहिए। करवीर को तो सदा चढाना चाहिए ॥४४॥ इस तरह वर्ष पर्यन्त व्रत करके पुरुष, स्त्री तथा कुमारी को रात्रि में शिवजी की विधिवत् भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥४५॥ व्रत के समाप्त होने पर सभी आवशयक सामग्री के साथ शय्या दान करे। उस शय्या पर सुवर्ण निर्मित उमा तथा महेश्वर की मूर्ति को रखकर, गौ तथा वृषभ के साथ ब्राह्मण को दान दे। उसके बाद एक वर्ष तक द्वादशी तिथि को लक्ष्मी नारायण ॥४६-४७॥

अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यंबरादिभिः । धान्यालङ्कारगोदानैरन्यैश्च धनसञ्चयैः ॥४९॥
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद्गतविस्मयः । एवं करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् ॥५०॥
सर्वान्कामानवाप्नोति पदं वा नित्यमश्नुते । फलस्यैकस्य च त्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥५१॥
यशः कीर्तिमवाप्नोति प्रतिमासं नराधिप। सौभाग्यारोग्यरूपैश्च वस्त्रालंकारभूषणैः ॥५२॥
नवियुक्तो भवेद्राजन् सौभाग्यशयनप्रदः । यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ॥५३॥
करोति सप्तचाष्टौ वा ब्रह्मलोके महीयते। पूज्यमानो वसेत्सम्यक् यावत्कल्पायुतं नरः ॥५४॥
विष्णोर्लोकमथासाद्य शिवलोकगतस्तथा । नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा नरेश्वर ॥५५॥
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता। शृणुयादपि यश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् ॥५६॥
सोपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत्। इदमिह मदनेन पूर्वसृष्टं शतधनुषा च कृतं नरेण तद्वत्॥५७॥
कृतमथ पवनेननंदिना च किमु जननाथ महाद्भुतं न वा स्यात् ॥५८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे व्रताध्यायो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥
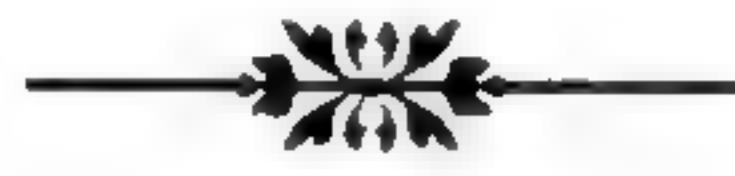
ब्रह्माजी तथा सावित्री देवी इन सबों की पूजा करे ऐसा करने वाला मनुष्य अपने समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ॥४८॥ अपनी शक्ति के अनुसार अन्य दम्पत्तियों को भी वस्त्र, अन्न, अलङ्कार, गोदान तथा दूसरे प्रकार की धन सम्पत्ति के द्वारा पूजा करे ॥४९॥ इस पूजन में बिना किसी विस्मय के वित्त की शठता न करे । इस तरह से जो कोई भी सौभागय शयन व्रत करता है ॥५०॥ वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है, यदि निष्काम भाव से इस व्रत को करे तो फिर मुक्ति मिल जाती है । इस व्रत को करते समय किसी एक फल का परित्याग करे । ऐसा करने वाला प्रत्येक मास में यश को प्राप्त करता है । सौभाग्य, आरोग्य, रूप वस्त्र अलङ्कार तथा भूषण ॥५२॥ सौभाग्यशयन का दान करने वाला व्यक्ति इन सबों से रहित कभी नहीं रहता है । जो व्यक्ति बारह वर्षों तक सौभाग्यशयन व्रत करता है अथवा सात-आठ बार इस व्रत को करता है वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है और देवताओं से पूजित होता हुआ वह ब्रह्माजी के लोक में दश हजार कल्पों तक निवास करता है ॥५३-५४॥ उसके बाद वह भगवान् विष्णु के लोक में तथा शिवजी के लोक में जाता है । हे राजन् ! यदि इस व्रत को कोई नारी अथवा कुमारी करती है तो ॥५५॥ वह भी देवीजी की कृपा से उस फल को प्राप्त करती है । जो इस व्रत का श्रवण करता है, अथवा दूसरों को करने की प्रेरणा देता है ॥५६॥ वह भी विद्याधर होकर दीर्घकाल तक स्वर्ग लोक में निवास करता है । इस व्रत को पूर्वकाल में कामदेव ने, राजा शतधन्वा ने, वरुणदेव ने, भगवान् सूर्य ने तथा धनाधिपति कुबेर ने किया था ॥५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के उनतीसवें व्रताध्याय नामक अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२९।।

तीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

यज्ञपर्वतमासाद्य विष्णुना प्रभविष्णुना । पदानि चेह दत्तानि किमर्थं पदपद्धतिः ॥१॥
कृता वै देवदेवेन तन्मे वद महामते । कतमो दानवस्तेन विष्णुना दमितोत्र वै ॥२॥
कृत्वा वै पदविन्यासं तन्मे शंस महामुने । स्वर्लोके वसतिर्विष्णो वैकुंठेस्य महात्मनः ॥३॥
स कथं मानुषे लोके पदन्यासं चकार ह। देवलोकेषु वै देव देवाः सेंद्रपुरोगमाः ॥४॥
तपसा महता ब्रह्मन् भक्ता ये सततं प्रभुम् । श्रीवराहस्य वसतिर्महर्लोके प्रकीर्तिता ॥५॥
नृसिंहस्य तथा प्रोक्ता जनलोके महात्मनः । त्रिविक्रमस्य वसतिस्तपोलोके प्रकीर्तिता ॥६॥
लोकानेतान्परित्यज्य कथं भूमौ पदद्वयम् । क्षेत्रे पैतामहे चास्मिपुष्करे यज्ञपर्वते ॥७॥
पदानि कृतवान् ब्रह्मन्विस्तरान्मम कीर्तय । श्रुतेन सर्वपापस्य नाशो वै भविता ध्रुवम् ॥८॥

पुलस्त्य उवाच

सम्यक् पृच्छसि भोस्त्वं यत् संशृणु त्वं समाहितः । यथापूर्वं पदन्यासः कृतो देवेन विष्णुना ॥९॥
यज्ञपर्वतमासाद्य शिलापर्वतरोधसि । पुरा कृतयुगे भीष्म देवकार्यार्थसिद्धये ॥१०॥
विष्णुना च कृतं पूर्वं पृथिव्यर्थे परंतप । त्रिदिवं सर्वमानीतं दानवैर्बलवत्तरैः ॥११॥
त्रैलोक्यं वशमानीय जित्वा देवान्सवासवान् । दानवा यज्ञभोक्तारस्तत्रासन् बलवत्तराः ॥१२॥
कृता बाष्कलिना सर्वे दानवेन बलीयसा । एवं भूते तदालोके त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१३॥

वामनावतार चरित्र वर्णन, वामन का शक्र के साथ वाष्कलि की नगरी में जाना, वामन के द्वारा तीन पगभूमि की याचना, वामन द्वारा वाष्कलि की प्रवंचना

भीष्मजी ने कहा— भगवान् विष्णु ने यज्ञपर्वत पर चढकर उस पर अपने पैरों को क्यों रखा ? उन पदचिह्नों का क्या प्रयोजन है ?॥१॥ देवाराध्य श्रीभगवान् ने पद्चिह्न क्यों किया हे महामते ! उसे आप मुझे बतलायें। यहाँ पर उन्होंने किस दानव का दमन अपने पदविन्यास (पद चिह्न) के द्वारा किया ? हे महामुने ! उसे आप बतलायें भगवान् विष्णु का निवास तो वैकुण्ठ नामक स्वर्गलोक में है ॥३॥ उन्होंने इस मनुष्य लोक में किसलिए अपने पैरों को रखा । इन्द्र इत्यादि देवता बड़े-बड़े देवलोक में रहते हैं । तथा जो भक्तगण निरन्तर बहुत बड़ी तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करते हैं, वे भी वैकुण्ठ लोक में रहते हैं । श्रीवराह भगवान् का निवास महर्लोक में बतलाया गया है ॥४-५॥ नृसिंह भगवान् का निवास जनलोक में बतलाया गया है तथा त्रिविक्रम भगवान् का निवास तपोलोक में कहा गया है ॥६॥ इन समस्त लोकों का परित्याग करके श्रीभगवान् भूमि पर ब्रह्माजी के क्षेत्र में यज्ञपर्वत के ऊपर क्यों गये ?॥७॥ हे ब्रह्मन् ! जिस कारण से अपने पैरों को रखे उसे आप मुझे विस्तार से वतलाइये । यह निश्चित है कि इसका श्रवण करने से पापों का नाश हो जायेगा ॥८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया उसे आप सावधानी पूर्वक सुनें, जिस तरह से पूर्वकाल में भगवान् ने पदन्यास किया था उसे मैं बतलाता हूँ ॥९॥ हे परंतप भीष्म ! पूर्वकाल में सत्ययुग में देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए भगवान् विष्णु ने यज्ञ पर्वत पर आकर शिला पर्वत के तट में पृथिवी को प्राप्त करने के लिए तपस्या किया । वहीं पर अधिक वलवान् दानवों ने सम्पूर्ण स्वर्ग लोक को ला दिया ॥११॥ उन सबों ने इन्द्र सहित समस्त देवताओं को

परमार्तिं ययौ शक्रो निराशो जीविते कृतः । स बाष्कलिर्दानवेंद्रोऽवध्योऽयं मम संयुगे ॥१४॥
ब्रह्मणो वरदानेन सर्वेषां तु दिवौकसाम् । तदहं ब्रह्मणो लोके वृतः सर्वै र्दिवौकसैः ॥१५॥
व्रजामि शरणं देवं गतिरन्या न विद्यते । एवं विचिंत्य देवेंद्रो वृतः सर्वैर्दिवौकसैः ॥१६॥
जगाम त्वरितो भीष्म यत्र देवः पितामहः । ब्रह्मणः स पदं प्राप्य वृतस्तैश्च दिवौकसैः ॥१७॥
अब्रवीत् जगतः कार्यं प्राप्तामापदमुत्तमाम् । किं न जानासि वै देव यतो नो भयमागतम् ॥१८॥
दैत्यैर्यदाहृतं सर्वं वरदानाच्च ते प्रभो । कथितं वै मया सर्वं बाष्कलेश्च दुरात्मनः ॥१९॥
क्रियतां चाविलंबेन पिता त्वं नः पितामहः । तत्त्वं चिन्तय देवेश शांत्यर्थं जगतस्त्विह ॥२०॥
तेषां च पश्यतां किंचिच्छ्रौतस्मार्तादिकाः क्रियाः । न प्रावर्तन्त हानिस्तु तै रस्माकं दिने दिने ॥२१॥
यथाहि प्राकृतः कश्चित्स्वार्थमुद्दिश्य भाषते । विज्ञाप्यसे तथा स्माभिर्निरस्तोपकृतैः सदा ॥२२॥
यद्येनोपकृतं यस्य सहस्रगुणितं पुनः । यो न तस्योपकाराय तत्करोति वृथामतिः ॥२३॥
तस्योपकारदग्धस्य निस्त्रपस्यासतः पुनः । नरकेष्वपि संवासस्तस्य दुष्कृतकारिणः ॥२४॥
नैतावतैव साधुत्वं कृते यातु प्रतिक्रिया । स्वार्थैकनिष्ठबुद्धीनामेतन्नापि प्रवर्तते ॥२५॥
यद्यस्य ना भवत्स्थानं जगतोह्यत्र दुःखदम् । शतधा हृदयं दीर्णं तन्न तृप्तिमुपागतम् ॥२६॥
तत्र वा यत्र गंतास्मि निमग्नानुद्धरस्व नः । उपाय कथनेनास्य येन तेजः प्रवर्तते ॥२७॥

परास्त करके, सभी दानव यज्ञों के भोक्ता बन बये । वे उस यज्ञ पर्वत पर ही निवास करते थे ॥१२॥ इस कार्य को सभी दानवों में बलवान् वाष्कलि ने किया । जब सचराचर त्रैलोक्य दानवों के अधीन हो गया ॥१३॥ उस समय इन्द्र अत्यन्त आर्त होकर जीवन से निराश हो गये । उन्होंने सोचा युद्ध में दानवेन्द्र वाष्कलि ब्रह्माजी के वरदान के कारण सभी देवताओं के लिए अवध्य है, अतएव मैं सभी देवताओं के साथ ब्रह्माजी के लोक में ॥१४-१५॥ जाकर उनकी ही शरणागति करूँ अव दूसरा कोई भी उपाय नहीं है । इस तरह से सोचकर इन्द्र सभी देवताओं के साथ ॥१६॥ हे भीष्म ! ब्रह्माजी के लोक में गये । देवताओं के साथ ब्रह्माजी के लोक में जाकर वे ॥१७॥ ब्रह्माजी से जगत् के कार्य तथा आयी हुयी इस वहुत बड़ी विपत्ति को बतलाये । हे देव ! आप हमलोगों पर आयी हुयी विपत्ति के विषय में नहीं जानते हैं क्या ?॥१८॥ हे प्रभो ! आपके वरदान के प्रभाव से दैत्यों ने सब कुछ छिन लिया है । यह सब कुछ दुष्ट वाष्कलि ने ही किया है ॥१९॥ अतएव आप शीघ्र कोई ऐसा उपाय करें क्योंकि आप हमसबों के पितामह हैं । अतएव हे देवेश ! जगत् की शान्ति के लिए आप कोई उपाय सोचें ॥२०॥ उन सबों के समक्ष कोई भी श्रौत अथवा स्मार्त क्रिया नहीं हो पाती है । वे प्रतिदिन हमलोगों की हानि करते रहते हैं ॥२१॥ जिसतरह कोई अज्ञानी व्यक्ति अपने स्वार्थ को ही देखकर बोलता है उसी तरह हमलोग भी उन सबों के द्वारा अपकृत होकर कह रहे हैं॥२२॥ जिसके द्वारा कोई भी उपकृत होता है, वह उसकी बड़ाई हजारों गुणा करता है, किन्तु जिससे जिसका उपकार नहीं होता है, उसकी दृष्टि में वह व्यर्थ होता है ॥२३॥ उसके द्वारा किए गये उपकार के तेज से दग्ध हुए, निर्लज्ज तथा दुष्ट का निवास नरकों में ही होता है ॥२४॥ केवल प्रतिकार कर देना मात्र ही सज्जनता नहीं कहलाती है । किन्तु जिसकी बुद्धि सदा स्वार्थ परायण ही बनी रहती है वह उपकार के बदले में उपकार भी नहीं कर पाता है॥२५॥ इस जगत् में जो जिसका स्थान है, उसकी यदि प्राप्ति नहीं होती है तो उससे उसको ऐसा कष्ट होता है कि उसका हृदय शतधा विदीर्ण हो जाता है अतएव वह उसकी प्राप्ति के उपाय को नहीं जान पाता है ॥२६॥ अतएव हमें जहाँ जाना चाहिए उसे आप हमें बतलाइये । हमलोग दुर्दशाग्रस्त हैं, आप हमारा उद्धार करें, क्योंकि उपाय के

यथाख्यातं मया दृष्टं जगत् तत्स्थमवेक्ष्यताम्। निःस्वाध्याय वषट्कारं निवृत्तोत्सवमङ्गलम् ॥२८॥
त्यक्ताध्ययन संयोगं मुक्तवार्तापरिग्रहम्। दंडनीत्या परित्यक्तं श्वासमात्रावशेषितम्॥२९॥
जगदार्तिमपि प्राप्तं पुनः कष्टतरां दशाम्। एतावता हि कालेन वयं ग्लानिमुपागताः ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

जानामि बाष्कलिं तं तु वरदानाच्च गर्वितम्। अजेयं भवतां मन्ये विष्णुसाध्यो भविष्यति॥३१॥
निरुध्य संस्थितो ब्रह्मा भावं तत्वमयं तदा। समाधिस्थस्य तस्यैव ध्यानमात्राच्चतुर्भुजः॥३२॥
स्तोकेनैव हि कालेन चिंत्यमानः स्वयंभुवा। आजगाम मुहूर्तेन सर्वेषामेव पश्यताम्॥३३॥

विष्णुरुवाच

भो भो ब्रह्मन्निवर्त्तस्व ध्यानादस्मान्निवारितः। यदर्थमिष्यते ध्यानं सोहं त्वां समुपागतः ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

महाप्रसाद एषोऽत्र स्वामिनो हि प्रदर्शनम्। कस्यान्यस्य भवेच्चैषा चिन्ताया जगतः प्रभो ॥३५॥
ममैव तावदुत्पत्ति र्जगदर्थे विनिर्मिता। जगदेतत्त्वदर्थीयं तत्वतो नास्ति विस्मयः॥३६॥
भवता पालनं कार्यं संहरेद्रुद्र एव तु। एवं भूते जात्यस्मिन् शक्रस्यास्य महात्मनः ॥३७॥
हृतं राज्यं बाष्कलिना त्रैलोक्यं सचराचरम्। भृत्यस्य क्रियतां साह्यं मंत्रदानेन केशव॥३८॥

वासुदेव उवाच

भवतो वरदानेन अवध्यः स तु सांप्रतम्। बुद्धिसाध्यः स वै कार्यो बंधनादिह दानवः ॥३९॥

बतलाने से तेज की वृद्धि होती है ॥२७॥ मैंने जो कुछ कहा है, संसार की वही स्थिति है, उसे आप देखें। संसार स्वाध्याय (वेद पाठ) वषट्कार तथा मङ्गलमय उत्सवों से रहित हो गया ॥२८॥ संसार में कोई पढता भी नहीं है, वार्ता (कृषि) भी समाप्त हो गयी हैं दण्ड और नीति से रहित संसार, किसी तरह श्वास मात्र ले रहा है ॥२९॥ इस समय कष्ट प्राप्त संसार अत्यन्त कष्ट प्राप्त हो गया है। इतने समय में हमलोग अत्यन्त दुःखी हो गये हैं ॥३०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** मैं वरदान से अभिमानी हुए वाष्कलि को जानता हूँ। मैं समझता हूँ कि वह आपलोगों के लिए अवध्य है किन्तु भगवान् विष्णु के लिए तो वह अवध्य नहीं है ॥३१॥ उसी समय ब्रह्माजी भी सब ओर से अपने मन को समेट कर समाधिस्थ हो गये जिस समय वे ध्यान कर रहे थे उसी समय थोड़ी ही देर में चतुर्भुज ॥३२॥ रूप में भगवान् विष्णु भी वहाँ आ गये, सबों के सामने ही भगवान् मुहूर्त भर में वहाँ आ गये ॥३३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे ब्रह्मन्! आप ध्यान करना बन्द कीजिए, आप जिस लिए ध्यान कर रहे हैं, वह करने के लिए मैं यहाँ आ गया हूँ ॥३४॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे स्वामिन्! आपकी यह बहुत बड़ी कृपा है कि ध्यान करते ही आप आ गये। हे प्रभो! दूसरा कौन है जिसके चिन्तन करने मात्र से यह संसार उत्पन्न हो जाय ॥३५॥ आपने संसार का कल्याण करने के लिए मुझको उत्पन्न किया है। इस समय संसार आपकी कृपा चाहता है, अतएव आपको कोई विस्मय नहीं होना चाहिए ॥३६॥ आपको संसार की रक्षा करनी चाहिए, इसका संहार रुद्र करते हैं। संसार की इसी प्रकार की स्थिति है। इस समय महात्मा इन्द्र का राज्य वाष्कलि ने छिन लिया है और त्रैलोक्य पर अधिकार कर लिया है। ये आपके दास हैं, इनको कोई उपाय बतलाकर आप इनकी सहायता करें ॥३७-३८॥ **भगवान् वासुदेव ने कहा—** वाष्कलि इस समय आपसे वरदान प्राप्त करके अवध्य हो गया है। अतएव बुद्धि पूर्वक उसको वाँधकर अपने वश में किया जा सकता है ॥३९॥ दानवों का विनाश करने के लिए मैं वामन हो जाने वाला हूँ। इन्द्र मेरे

वामनोऽहं भविष्यामि दानवानां विनाशकः । मया सह व्रजत्वेष वाष्कलेस्तु निवेशनम् ॥४०॥
तत्र गत्वा वरं त्वेष मदर्थे याचतामिमम्। वामनस्यास्य विप्रस्य भूमेराजन्पदत्रयम् ॥४१॥
प्रयच्छस्व महाभाग याच्यैषा तु मया कृता। शक्रेणोक्तो दानवेंद्रो दद्यात्स्वमपि जीवितम् ॥४२॥
गृह्य प्रतिग्रहं तस्य दानवस्य पितामह । तं बध्वा च ततो यत्नात्कृत्वा पातालवासिनम् ॥४३॥
सौकरं रूपमास्थाय वधार्थं च दुरात्मनः । भविष्यामि न संदेहो व्रज शक्र त्वरान्वितः ॥४४॥
विरराम तमुक्त्वैवमंतर्द्धानं गतश्च वै । अथकालांतरे विष्णावदिते गर्भतां गते ॥४५॥
निमित्तान्यतिघोराणि प्रादुर्भूतान्यनेकशः । समस्तजगदाधारे विष्णौ गर्भत्वमागते ॥४६॥
शोभनं हि तदाजातं निमित्तं चैवमूर्जितम्। मालतीकुसुमानां तु सुगंधः सुरभिर्ववौ ॥४७॥

अथ विहितविधानं कालमासाद्य देव स्त्रिदशगणहितार्थ सर्वभूतानुंकपी ।
विमलविरलकेशश्चंद्रशंखोदयश्री रदितितनयभावं देवदेवश्चकार ॥४८॥
अवतरति च विष्णौ सिद्धदेवासुराणा मनिमिषनयनानां विप्रसेदुर्मुखानि ।
अतिविरतरजोभि र्वायुभिः संवहद्भि र्दिनमपि च तदासीज्जन्मविष्णोः सुगर्भे ॥४९॥

अदिति रजनगर्भा सापि देवी प्रयांती नतजघनभरार्त्तामंदसंचाररम्या ।
अलसवदनखेदं पांडुभावं वहंती गुरुतरमवगाढं गर्भमेवोद्वहंती ॥५०॥

ततः प्रविष्टे खलुगर्भवासं नारायणे भूतभविष्ययोगात् ।
विना पदं प्राप्तमनोरथानि भूतानि सर्वाणि तदा बभूवुः ॥५१॥

समीरणो वाति च मंदमंदं पतत्सुबर्षेषु नगोद्ववेषु।
विविक्तमार्गेषु दिगंतरेषु जनेषु वै सत्यमुपागतेषु ॥५२॥

साथ वाष्कलि के घर चलें ॥४०॥ वहाँ जाकर ये वाष्कलि से वरदान माँगें कि हे राजन् ! इनके रहने के लिए आप इन्हें तीन डग पृथिवी दे दीजिये । मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । इन्द्र के प्रार्थना करने पर वाष्कलि अपना प्राण भी दे सकता है ॥४२॥ हे ब्रह्माजी ! उससे दान लेकर मैं उस दानव को बाँधकर उसे पाताल लोक का निवासी बना दूँगा॥४३॥ उसके बाद उसका बध करने के लिए मैं वराह रूप धारण करूँगा । इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है । हे इन्द्र ! तुम शीघ्र चलो ॥४४॥ यह कहकर श्रीभगवान् चुप हो गये और अन्तर्धान हो गये, इसके बाद कुछ समय बीतने पर भगवान् विष्णु अदिति के गर्भ में आये ॥४५॥ उस समय अनेक प्रकार के अत्यन्त भयङ्कर शकुन हुए । सम्पूर्ण जगत् के आधार जब भगवान् विष्णु गर्भ में आये ॥४६॥ उस समय अनेक सुन्दर शकुन होने लगे । हवा मालती के पुष्प की सुगन्धि लेकर प्रवाहित होने लगी ॥४७॥ इसके बाद विधानानुसार समय आ जाने पर देवताओं का कल्याण करने के लिए सभी जीवों पर कृपा करने वाले स्वच्छ एवं विरलकेश वाले चन्द्रमा एवं शङ्ख के समान ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवान् अदिति के पुत्र बन गये ॥४८॥ जिस समय भगवान् विष्णु का अवतार हुआ उस समय जिनके नेत्रों में पलक नहीं होता है उन सिद्धों और देवताओं का मुख प्रसन्न हो गया । विष्णु के सुन्दर गर्भ के समय हवा धूलि रहित चलने लगी और दिन स्वच्छ हो गया ॥४९॥ जिनके गर्भ में श्रीभगवान् विराजमान थे उन अदिति देवी के जङ्घे चलते समय झुक जाते थे, भार जन्य खेद के कारण वे धीरे-धीरे चलती थीं । उनका शरीर अलसाया हुआ पीत वर्ण का हो गया । वे अत्यधिक भार से युक्त गर्भ का वहन किए रहती थीं ॥५०॥ जिस समय भगवान् गर्भ में आये उस समय भूत और भविष्य का संयोग हो जाने के कारण सभी जीवों के मनोरथों की पूर्ति बिना

विमुच्यमाने गगने रजोभिः शनैश्शनै र्नश्यति चांधकारे ।
उदरांतर्गते विष्णौ द्रोहबुद्धिस्तदाभवत् ॥५३॥

तां निशामय राजेंद्र देवमातुर्यथाक्रमम् । किमनुक्रमणेनैव लंघयामि त्रिविष्टपम् ॥५४॥
बाष्कलिं दानवेंद्रं तं कुर्यां पातालवासिनम् । शक्रस्य तु मया दत्तं धनं लावण्यमेव च ॥५५॥
दानवानां विनाशाय एकैव प्रभवाम्यहम् । क्षिपामि शरजालानि चक्रयानान्यनेकशः ॥५६॥
गदाव्रातांश्च विविधान् दानवानां विनाशने । विबुधान् देवलोकस्थानधोभूमेस्तु दानवान् ॥५७॥
करोमि कालयोगेन तत्तु कार्यं व्रतेन मे । निस्सृता सहसा वाणी वक्त्रमेवाभिसंस्थिता ॥५८॥
येनेदं चिन्त्यते पूर्वं यन्नदृष्टं न च श्रुतम् । बंधं वै दनुमुख्यस्य कृतं कोपेन पश्य मे ॥५९॥
कश्यपाय पुरा दत्तं धनं लावण्यमेव च। किमयं विगतोत्साहो वायवोथ समाकुलाः ॥६०॥
भ्रमतीव हि मे दृष्टिमैंतद्रूपं प्रचिंतितम् । आविष्टा किमहं वच्मि केनाप्यसदृशं वचः ॥६१॥
विकल्पवशमापन्नाभीक्ष्णं हृदि ममर्श सा । दधार दिव्यं वर्षाणां सहस्रं दिव्यमीश्वरम् ॥६२॥
ततः समभवत्तस्यां वामनो भूतवामनः । जातेन येन चक्षूंषि दानवानां हतानि वै ॥६३॥
जातमात्रे ततस्तस्मिन् देवदेवे जनार्दने । नद्यः स्वच्छांबुवाहिन्यो ववौ गंधवहोनिलः ॥६४॥
कश्यपोऽपि सुखं लेभे तेन पुत्रेण भास्वता । सर्वेषां मानसोत्साहस्त्रैलोक्यांतरवासिनाम् ॥६५॥
संजातमात्रे तु ततो जनाधिप जनार्दने । स्वर्गलोके दुंदुभयो विनेदुस्तैश्च ताडिताः ॥६६॥

प्रयास के ही होने लगी ॥५१॥ हवा मंद-मंद चलती थी, पर्वतों पर वर्षा होती थी, सभी मार्ग स्पष्ट हो गये, सभी लोग सत्य बोलने लगे ॥५२॥ आकाश में धूलि नहीं रह गयी, धीरे-धीरे अंधकार नष्ट हो गया । जब भगवान् उदर में आये उस समय देवमाता अदिति के मन में द्रोह की बुद्धि उत्पन्न हो गयी ॥५३॥ हे राजेन्द्र ! उसे आप सुनें अदिति देवी सोचनें लगीं दैत्यों का अनुसरण करने से कौन सा लाभ है ? मैं तो स्वर्गलोक को भी पार कर सकती हूँ॥५४॥ मै वाष्कलि नामक दानवेन्द्र को पाताल निवासी बना दूँ । इन्द्र को तो मैंने सौन्दर्य और धन प्रदान किया है । दानवों का विनाश करने में मैं अकेले समर्थ हूँ । मैं अनेक बाणों तथा चक्रों का प्रयोग कर देती हूँ ॥५७॥ दानवों के समूह का विनाश करने के लिए गदा समूह का प्रयोग कर देती हूँ । देवताओं को देवलोक में और दानवों को भूमि के नीचे कर देती हूँ ॥५७॥ इस कार्य को मैं समयानुसार करती ही हूँ । यह मेरा व्रत है । मुख से निकली हुयी वाणी मुख में ही स्थित होती है ॥५८॥ जो इस तरह से अश्रुतपूर्व एवं अदृष्टपूर्व जिसके द्वारा सोचा जाता है, मैं उस श्रेष्ठ दानवों को बन्धन गत कर देती हूँ ॥५९॥ मैंने पूर्वकाल में कश्यप महर्षि को धन और लावण्य प्रदान किया, क्या कारण है कि ये उत्साह रहित हो गये हैं, और वायुगण व्याकुल हैं ॥६०॥ इस तरह से सोचने के कारण मेरी बुद्धि भ्रान्त सी होने लगी है । मेरी दृष्टि क्रोधाविष्ट हो गयी है, किसी से मैं इस बात को क्या कहूँ ? विकल्प से युक्त वह निरन्तर अपने हृदय में सोचती रहीं । इसतरह से देवी अदिति ने देवताओं के हजार वर्षों तक गर्भ में ईश्वर को धारण किया ॥६२॥ उसके बाद अदिति देवी के गर्भ से वामन भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ । उनके उत्पन्न होने मात्र से दैत्यों की आँखें मानों विनष्ट हो गयीं ॥६३॥ जिस समय देवताओं के भी आराध्य श्रीभगवान् का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय नदियों में स्वच्छ जल प्रवाहित होने लगा और सुगन्धित हवा चलने लगी ॥६४॥ महर्षि कश्यप भी उस प्रकाशमान पुत्र को प्राप्त करके प्रसन्न हो गये । त्रैलोक्य में रहने वाले समस्त जीवों के मन में उत्साह भर गया ॥६५॥ जिस समय जनाधिप जनार्दन श्रीभगवान् का प्रादुर्भाव हुआ उस समय स्वर्गलोक में दुन्दुभि और नगाड़े बजे ॥६६॥

अतिप्रहर्षात्तु जगत्त्रयस्य मोहश्च दुःखानि च नाशमीयुः ।
जगौ च गन्धर्वगणोतिमात्रं भावस्वरै र्भर्तुविमिश्रिताश्च ॥६७॥
सुराङ्गनाश्चापि च भावयुक्ता नृत्यंति तत्राप्सरसां समूहाः ।
तथैव विद्याधरसिद्धसंघा विमानयाने र्मुदिता भ्रमंति ॥६८॥
वदंति सत्यानृतकार्यनिर्णयं तथा भिरंगं प्रतिदर्शयंति ।
गायंति गेयं विनिवृत्तरागां मुहुर्मुहु र्दुःखसुखप्रभूताः ॥६९॥
नृत्यांति वै स्वर्गगताश्च ते तु धर्मार्जितंः स्वर्गमितो व्रजंति ।
इति विगतविषादे निर्मले जीवलोके तिमिर निकर मुक्तां निर्वृतिं प्राप्तुकामाः ॥७०॥
तत्रोचुः केचिदुर्व्यां जयजयभगवन् संप्रहृष्टाश्च केचि त्त्वेवं प्रोक्तप्रणादैरविरलमनसश्चानुवादै स्तथान्यैः ।
ध्यातंतेन्ये निगूढं जननभयजरामृत्युविच्छेदहेतो रित्येवं कृत्स्नमासीज्जगदिदमखिलं सर्वतः संपृहृष्टम् ॥७१॥
परमासाद्य यं विष्णुं ब्रह्माह जगतः कृते। जातोयं भवतामर्थे वामनो यदपीश्वरः ॥७२॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च एष एव महेश्वरः । एष वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गश्चैष न संशयः ॥७३॥
विष्णुव्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। एकः स तु पृथक्त्वेन स्वयंभूरितिविश्रुतः ॥७४॥
यथार्थवर्णकि स्थाने विचित्रः स्फटिको मणिः । ततो गुणवशात्तस्य स्वयंभोरनुनर्त्तनम् ॥७५॥
यथाहि गार्हपत्योग्निरन्यसंज्ञां पुनर्व्रजेत् । लभेत संज्ञां भगवान् ब्राह्मादिषु तथाह्यसौ ॥७६॥
सर्वथा वामनो देवो देवकार्यं करिष्यति । एवं चिंतयतां तेषां भवितानां दिवौकसाम् ॥७७॥

प्रहर्षातिरेक के कारण त्रैलोक्य वासियों के शोक एवं दुःख विनष्ट हो गये । गन्धर्वो ने भाव एवं स्वर से मिश्रित संङ्गीतों का गायन किया ॥६७॥ किञ्च अप्सराओं ने भी भाव भरे नृत्यों को किया और विद्याधर तथा सिद्धों का समूह विमानों पर चढकर भ्रमण किया ॥६८॥ कुछ लोग सत्य तथा अनृत कार्य का निर्णय बतलाने लगे, कुछ लोग अपने अङ्गों का प्रदर्शन करने लगे, कुछ लोग विना राग के ही गीत गाने लगे, कुछ लोग बारम्बार अत्यधिक सुख का अनुभव करने लगे ॥६९॥ कुछ स्वर्ग में विद्यमान जीव नृत्य करने लगे, कुछ लोग धर्म से अर्जित स्वर्गलोक में जाने लगे । इस तरह जब सम्पूर्ण जीवों का विषाद विनष्ट हो गया । अज्ञान रूपी अन्धकार समूह से रहित जीव मुक्ति रूपी मोती को प्राप्त करने की इच्छा वाले हो गये ॥७०॥ कुछ लोग भूलोक में भी भगवान् का जय-जयकार मनाने लगे, कुछ लोग हर्षातिरेक के कारण गर्जने लगे । कुछ भगवद् भक्त उनके गुणों का गायन करने लगे । कुछ लोग जन्म मृत्यु के भय से रहित होकर मुक्ति प्राप्त करने के लए श्रीभगवान् का ध्यान करने लगे । इस तरह भगवान् वामन के जन्म काल में सम्पूर्ण जगत् हर्षित हो गया ॥७१॥ देवता लोग सोचने लगे कि ब्रह्माजी ने जिन्हें संसार का कल्याण करने के लिए कहा है । वे ही भगवान् विष्णु वामन का रूप धारण करके अवतीर्ण हुए हैं ॥७२॥ इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि ये ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर स्वरूप हैं । तथा ये ही वेद, यज्ञ तथा स्वर्ग स्वरूप हैं॥७३॥ यह स्थावर जंगम युक्त स्म्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णु से व्याप्त है । वेद बतलाते हैं कि केवल भगवान् विष्णु ही विभिन्न रूप से प्रतीत होते हैं ॥७४॥ जिस तरह अनेक रूपों वाली वस्तुओं का सन्निध्य प्राप्त करके स्फटिक मणि विभिन्न रूपों वाली प्रतीत होती है, उसीतरह अनेक गुणों वाली माया के सन्निधान से श्रीभगवान् भी अनेक रूपों वाले प्रतीत होते हैं ॥७५॥ जिसतरह एक ही गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि इत्यादि अनेक रूपों को धारण करती है, उसी तरह श्रीभगवान् भी ब्रह्मा इत्यादि अनेक नामों को धारण करते हैं ॥७६॥ निश्चित रूप से भगवान् वामन देवताओं का

जगाम शक्रसहितो बाष्कलेश्च निवेशनम् । दूरादेव च तां दृष्ट्वा पुरीं तस्य समावृताम् ॥७८॥
पांडुरैः खगमागम्यैः सर्वरत्नोपशोभितैः । शोभितां भवनै मुख्यै स्सुविभक्तमहापथैः ॥७९॥
नित्यप्रभिन्नै र्मातङ्गै रंजनाचलसन्निभैः । देवनागकुलोत्पन्नैः शतसंख्यै र्विराजिताम् ॥८०॥
निर्मांसगात्रैस्तुरगै रल्पकर्णै र्मनोजवैः । दीर्घग्रीवाक्षिकूटैश्च मनोज्ञै रूपशोभिताम् ॥८१॥
पद्मगर्भसुवर्णाभाः पूर्णचंद्रनिभाननाः । संल्लापोल्लापकुशला स्तत्र वेश्याः सहस्रशः ॥८२॥
न तत्पुण्यं न सा विद्या न तच्छिल्पं न सा कला । वाष्कलेर्न पुरेऽस्याथ निवासं प्रतिगच्छति ॥८३॥
उद्यानशतसंबाधं समाजोत्सवमालिनी । अन्विते दनुमुख्यैश्च सर्वैरंतकवर्जितैः ॥८४॥
वीणावेणुमृदङ्गानां शब्दैः सर्वत्र नादिते । सदा प्रहृष्टा दनुजा बहुरत्नोपशोभिताः ॥८५॥
क्रीडमानाः प्रदृश्यंते मेराविव यथामराः । ब्रह्मघोषो महांस्तत्र दनुवृद्धैरुदीरितः ॥८६॥
साज्यधूमेन चाग्नीनां वायुना नष्टकिल्विषे । सुगंधधूपविक्षेपसुरभीकृतमारुते ॥८७॥
सुगंधिदनुजाकीर्णे पुरे तस्मिंस्तु बाष्कलिः । त्रैलोक्यं तु वशे कृत्वा सुखेनास्ते सदा नवः॥८८॥
तत्रस्थः पालयन्नास्ते त्रैलोक्यं सचराचरम् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवादी जितेंद्रियः ॥८९॥
सुदर्शः पूर्वदेवानां नयानयविचक्षणः । ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च दीनानामनुकंपकः ॥९०॥
वेदमन्त्रप्रभूत्साहसर्वशक्तिसमन्वितः । षाड्गुण्यविषयोत्साहः स्मितपूर्वाभिभाषितः॥९१॥

कार्य करेंगे । इसतरह से जब देवतागण भक्तिपूर्वक सोच रहे थे, उसी समय भगवान् इन्द्र के साथ वाष्कलि के यहाँ गये । उन्होंने दूर से वाष्कलि की नगरी को देखा; वह परकोटे से घिरी हुयी थी ॥७७-७८॥ सभी प्रकार के स्वच्छ रत्नो से जटित भवन सुशोभित हो रहे थे, वहाँ के मार्ग विस्तृत थे ॥७९॥ आकाशचारी जीव भी वहाँ नहीं जा सकते थे ॥७९॥ वहाँ अञ्जनोपल पर्वत के समान विशाल और काले-काले असंख्य हाथी थे जो देवताओं के हाथियों के ही कुल में उत्पन्न थे ॥८०॥ घोड़े स्थूल शरीर वाले नहीं थे । वे मन के समान वेग वाले तथा छोटे-छोटे कान वाले थे। उनकी लम्बी गर्दन थी तथा वे अक्षिकुट के कारण सुशोभित होते थे । इसतरह के अश्वों से वह नगरी सुशोभित हो रही थी ॥८१॥ वहाँ पर कमल के बीच में विद्यमान के समान कान्ति वाली, तथा पूर्ण चन्द्रमा के समान आह्लादक मुखों वाली हजारों वारांगनाएँ थीं जो नृत्य सङ्गीत में कुशल थीं ॥८२॥ उस वाष्कलि के नगर में समस्त पुण्य, सभी विद्याएँ, समस्त शिल्प तथा समस्त कलायें विद्यमान थीं ॥८३॥ वहाँ अनेक उद्यान थे जहाँ सदैव उत्सव होते रहते थे, वहाँ बड़े-बड़े दानव रहते थे वे सब यमराज को जीत लेने वाले थे ॥८४॥ सर्वत्र वीणा, वेणु तथा मृदङ्ग की ध्वनि होती रहती थी, अनेक रत्नों से अलङ्कृत दानव वहाँ सदा प्रसन्न रहते थे ॥८५॥ जिस तरह सुमेरु पर्वत पर देवता क्रीडा करते रहते हैं उसीतरह दानव भी उस नगरी में क्रीडा करते रहते थे । वहाँ पर वृद्ध दानव सदा वेद पाठ करते रहते थे ॥८६॥ घृत युक्त धूप से अग्नियों के दोष को वायु के द्वारा अपाकृत कर दिए जाने के कारण सुगंधित धूप के पड़ते रहने से वायु वहाँ सुगन्धित रहती थी ॥८७॥ सुगन्धित दानवों से व्याप्त उस नगरी में रहकर वाष्कलि, त्रैलोक्य को अपने वश में करके दानवों के साथ सुखपूर्वक रहता था ॥८८॥ वहीं रहकर वह त्रैलोक्य का प्रशासन करता था । वह धर्मज्ञ, कृतज्ञ सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय था ॥८९॥ वह नीति और अनीति को अच्छी तरह जानता था, अतएव देवता भी उसे मिल सकते थे । वह ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों का भक्त) शरणागत की रक्षा करने वाला तथा दीन जनों पर दया करने वाला था ॥९०॥ वह वेद मन्त्रों का ज्ञाता, उत्साह एवं शक्ति से सम्पन्न तथा षाड्गुण्य के विषय में उत्साह सम्पन्न वह मुस्कुराकर ही कुछ भी कहता था ॥९१॥ वह वेदों तथा वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाला, यज्ञों

वेदवेदांगतत्वज्ञो यज्ञयाजी तपोरतः । न चदुःशीलनिरतः स सर्वत्राविहिंसकः ॥९२॥
मान्यमानयिता शुद्धः सुमुखः पूज्यपूजकः। सर्वार्थविदनाधृष्यः सुभगः प्रियदर्शनः ॥९३॥
बहुधान्यो बहुधनो बहुयानश्च दानवः। त्रिवर्गसाधको नित्यं त्रैलोक्ये वरपूरुषः ॥९४॥
स्वपुरीनिलयो नित्यं देवदानवदर्पहा। स चैवं पालयामास त्रैलोक्ये सकलाः प्रजाः ॥९५॥
नाधमः कश्चिदप्यास्ते तस्मिन् राजनि दानवे । दीनो वा व्याधितो वापि अल्पायुर्वाथ दुःखितः ॥९६॥
मूर्खो वा मंदरूपो वा दुर्भगो वानिराकृतः ।
एवं युतं तं विमलैगुणौघै दृष्ट्वा च मत्वा च निविष्टबुद्धिम् ॥९७॥
प्रसादयन् दैत्यवरं महात्मा पुरंदरस्तं तु दनुप्रधानम्। तेजोयुक्तं दानवं तं तपंतमिवभास्करम् ॥९८॥
त्रैलोक्यधारणे शक्तं विस्मितः सोऽभवत्तदा। इंद्रं पुरागतं दृष्ट्वा दानवेंद्राय पार्थिव ॥९९॥
इदमूचुस्तदा गत्वा दानवा युद्धदुर्मदाः। आश्चर्यमिति वै कृत्वा इंद्रोभ्येति पुरीं तव॥१००॥
एकाकी द्विजमुख्येन वामनेन सह प्रभो। अस्माभिर्यदनुष्ठेयं सांप्रतं नो वद स्वराट् ॥१०१॥
दानवानब्रवीत्सर्वान् पुरो तिष्ठत संकुलम् । प्रवेश्यतां देवराजः पूज्यः स तु ममाद्य वै ॥१०२॥
एतस्मिन्नेव काले तु वामनः स च वासवः । आगतौ दनुनाथेन प्रेम्णा चैवावलोकितौ ॥१०३॥
कृतार्थं मन्यतात्मानं प्रणिपातपुरः सरम् । उवाच वचनं राजा दानवानां धुरंधरः ॥१०४॥
अद्य वै त्रिषु लोकेषु नास्ति धन्यतरो मया । योऽहं श्रिया वृतः शक्रं पश्यामि गृहमागतम् ॥१०५॥
अर्थित्वकाम्यया यस्तु मामयं याचयिष्यति । गृहागतस्य तस्याहं दास्ये प्राणानपि ध्रुवम् ॥१०६॥

को करने वाला तथा तपस्या करता रहता था। वह दुःशील नहीं था, सर्वत्र वह अहिंसा का पालन करता था ॥९२॥ वह सम्माननीयों का सम्मान करने वाला, शुद्ध, सुन्दर मुख वाला तथा पूज्य पुरुषों की पूजा करने वाला था। वह सभी विषयों को जानने वाला, अनाधृष्य (किसी से पराजित नहीं होने वाला) तथा सुन्दर तथा देखने में अच्छा था॥९३॥ उन दानव के पास बहुत अधिक धन, धान्य और विमान थे। वह सदा अपने त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) को सिद्ध करता था, वह त्रैलोक्य में श्रेष्ठ पुरुष था ॥९४॥ वह सदा अपनी नगरी में ही रहता था तथा देवताओं और दानवों के दर्प को विनष्ट करने वाला था। वह इस प्रकार से त्रैलोक्य की सारी प्रजा का पालन करता था ॥९५॥ उस दानव के राज्य में कोई भी अधम पुरुष नहीं था। उसके राज्य में कोई दीन, रोगी, अल्पायु अथवा दुःखी, मूर्ख, मन्दरूप वाला, दुर्भाग्यग्रस्त अथवा अपमानित नहीं था। इस प्रकार के सुन्दर गुणों से युक्त वाष्कलि को देखकर तथा उसे निविष्ट बुद्धि मानकर ॥९६-९७॥ महात्मा इन्द्र सूर्य के समान तेजस्वी उस दानव को प्रसन्न करते हुए त्रैलोक्य के धारण करने में समर्थ उसे देखकर आश्चर्य चकित हो गये। आगे-आगे दानवेन्द्र के पास आते हुए इन्द्र को देखकर ॥९८-९९॥ युद्ध करने में दुर्मद दानव जाकर वाष्कलि से कहे कि बड़े आश्चर्य की बात है कि आपकी नगरी में इन्द्र आ रहे हैं ॥१००॥ वे अकेले हैं और उनके साथ एक वामन ब्राह्मण हैं। अतएव हमलोगों को क्या करना चाहिए ? इस बात का आप हमें शीघ्र आदेश दें ॥१०१॥ वाष्कलि अपनी नगरी में ही रहा और दानवों से कहा कि देवराज को मेरे पास लाओ, वे मेरे पूज्य हैं ॥१०२॥ उसी समय वहाँ वामन भगवान् तथा इन्द्र दोनों आ गये और वाष्कलि ने उन दोनों को प्रेम पूर्वक देखा ॥१०३॥ वाष्कलि ने उन दोनों को प्रणाम किया और अपने को कृतार्थ माना। दानवों के धुरन्धर राजा वष्कलि ने कहा ॥१०४॥ आज त्रैलोक्य में मुझसे बढकर दूसरा कोई भी धन्य नहीं है; क्योंकि आज मैं अपने ऐश्वर्य से सम्पन्न इन्द्र को अपने घर पर आये हुए देख रहा हूँ॥१०५॥

दारान् पुत्रांस्तथागारं त्रैलोक्ये का कथा मम । आगत्य संमुखं तस्य अंकमानीय सादरम् ॥१०७॥
परिष्वज्याभिनन्द्यैनं गृहं प्रावेशयत्स्वकम् । तस्य स्वागतमर्घ्याद्यैः कृत्वा पूजां प्रयत्नतः ॥१०८॥
अद्य मे सफलं जन्म पूर्णाः सर्वे मनोरथाः । यस्त्वां पश्यामि शक्राद्य स्वयमेव गृहागतम् ॥१०९॥
ख्याप्योऽहं दनुमुख्यानां देवराज त्वया कृतः । आगच्छता मम गृहं पुण्यता तु पराहि मे ॥११०॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञै स्सम्यगिष्टैस्तु यत्फलम् । तत् फलं समावाप्यैत त्वयि दृष्टे पुरंदर ॥१११॥
यत्फलं भूमिदानेन गवां दानेन ऋत्विजे। ममाद्य तत् फलं भूतमथवा राजसूयकम्॥११२॥
नाल्पेन तपसा लभ्यं दर्शनं तव वासव । एवं गेहे मया यत्ते प्रियं कार्यं तदुच्यताम्॥११३॥
विकल्पोन्यो न भवता हृदि कार्यः कथंचन। कृतं च तद्विजानीय यद्यदिस्यात्सुदुष्करम् ॥११४॥
पुण्योऽहं पुण्यतां प्राप्तो दर्शनात्तव शत्रुहन् । यत्ते देववरैर्वंद्यौ वंदितौ चरणौ मया॥११५॥
किमागमनकृत्यं ते वद सर्वं मयि प्रभो । अत्याश्चर्यमिदं मन्ये तवागमनकारणम्॥११६॥

इंद्र उवाच

जानेऽहं दनुमुख्यानां प्रधानं त्वां तु वाष्कले। नात्याश्चर्यमिदं भाति त्वयि दृष्टेऽसुरोत्तम ॥११७॥
विमुखा नार्थिनो यांति भवतो गृहमागताः। अर्थिनां कल्पवृक्षोसि दाता चान्यो न विद्यते॥११८॥
प्रभायां सूर्यतुल्योसि गांभीर्ये सागरोपमः। सहिष्णुत्वे धरा चैव श्रिया नारायणोपमः ॥११९॥
ब्राह्मणः कश्यपकुले जातोयं वामनः शुभे । प्रार्थितोहमनेनैवं भूमेर्देहि पदत्रयम् ॥१२०॥

अर्थी बनकर ये मुझसे जो कुछ भी माँगेगे, वह मेरे घर आये हुए इनको मैं दूँगा, यहाँ तक कि अपने प्राणों को भी दे सकता हूँ । त्रैलोक्य की कौन सी बात है, ये पत्नी, पुत्र तथा मेरे गृह को भी माँगेंगे तो उसे भी मैं दूँगा । इसके बाद इन्द्र के समक्ष आकर आदर पूर्वक उनको अपने क्रोड में लेकर ॥१०६-१०७॥ वाष्कलि ने इन्द्र का आलिंगन किया और अपने घर ले गया और उसने स्वागत पूर्वक इन्द्र को अर्घ्य प्रदान करके पूजा किया ॥१०८॥ इसके बाद **वाष्कलि ने कहा—** आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो गये, क्योंकि आज आप स्वयम् मेरे घर आये हैं ॥१०९॥ हे देवराज ! आज आपने मुझे सभी दानवों में श्रेष्ठ बना दिया है । आप मेरे घर आकर आपने मेरे पुण्य को बढा दिया है ॥११०॥ अग्निष्टोम इत्यादि यज्ञों के द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती हैं, आपके आने से मुझे उसी फल की प्राप्ति हुयी है ॥१११॥ ऋत्विजों को भूमि दान करने अथवा गोदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, अथवा राजसूय यज्ञ का जो फल होता है आज मुझे उसी फल की प्राप्ति हुयी है ॥११२॥ हे इन्द्र ! थोड़ी तपस्या के द्वारा आपका दर्शन नहीं मिलता है, अतएव मेरे यहाँ आपका जो उत्तम कार्य हो उसे आप बतलायें॥११३॥ आपको अपने मन में किसी दूसरे विकल्प को नहीं करना चाहिए । आपका वह कार्य अत्यन्त दुष्कर भी हो तो भी उसे आप पूरा हुआ ही समझिए ॥११५॥ हे शत्रुओं का विनाश करने वाले इन्द्र ! मैं पवित्र हूँ और मैं अधिक पुण्यवान हो गया हूँ, क्योंकि बड़े-बड़े देवताओं द्वारा वन्दनीय आपके दोनों चरणों की मैंने बन्दना की है ॥११५॥ हे प्रभो ! आप बतलायें कि आपके आने का प्रयोजन क्या है ? मुझे तो सबसे बड़ा यही आश्चर्य कि आप मेरे यहाँ आये । **इन्द्र ने कहा—** हे वाष्कले ! मैं आपको सभी दानवों में श्रेष्ठ मानता हूँ । हे असुरोत्तम ! यह कोई अत्यन्त आश्चर्य की बात नहीं है ॥११७॥ आपके घर आकर कोई भी याचक निराश होकर नहीं लौटता है । आप याचकों के लिए कल्पवृक्ष हैं, आपके समान कोई दाता नहीं है ॥११८॥ आप प्रभा (कान्ति) के विषय में सूर्य के समान हैं, गाम्भीर्य के विषय में आप सागर के समान हैं । आप पृथिवी के समान सहिष्णु हैं और लक्ष्मी के विषय में नारायण

ममाग्निशरणार्थाय यत्र कुर्यां मखं त्वहम् । तदस्य कारणं कृत्वा अर्थितैषा मम प्रभो ॥१२१॥
लोकत्रयं मेऽपहृतं त्वया विक्रम्य बाष्कले । निर्वृत्तिको निर्धनोस्मि यद्दित्से न तदस्ति मे ॥१२२॥
भवंतं याचयिष्यामि परार्थेनापि चात्मना । अर्थित्त्वेन ममाप्यस्य यद्योग्यं तत्समाचर ॥१२३॥
जातोऽसि काश्यपे च त्वं वंशे वंशविवर्द्धनः । दित्यास्त्वं गर्भसंभूतः पिता त्रैलोकपूजितः ॥१२४॥
एवं भूतमहं ज्ञात्वा तेन त्वां याचयाम्यहम् । अस्याग्निशरणार्थाय दीयतां भू पदत्रयम् ॥१२५॥
अतीवह्रस्वगात्रस्य वामनस्यास्य दानव । भूमिभागे च पारक्ये दातुं नत्वहमुत्सहे ॥१२६॥
एतदेव मया दत्तं यद्भवानर्थितोऽसि मे । गुरवो यदि मन्यंते मंत्रिणो वा पदत्रयम् ॥१२७॥
अर्थित्वेन मदीयेन स्वकुले बांधवेपि च । गृहायाते मयि तथा यद्योग्यं तत्समाचर ॥१२८॥
यदिते रुचितं वीर दानवेंद्र महाद्युते । तदस्मैदीयतां शीघ्रं वामनाय महात्मने ॥१२९॥

बाष्कलिरुवाच

देवेंद्र स्वागतं तेस्तु स्वस्ति प्राप्नुहि माचिरम् । त्वं समीक्षस्वधात्मानं सर्वेषां च परायणम् ।१३०॥
त्वयि भारं समावेश्य सुखमास्ते पितामहः । ध्यानधारणया युक्तश्चिंतयानः परं पदम् ॥१३१॥
संग्रामै र्बहुभिः खिन्नो जगच्चिंतामपास्य तु । क्षीराब्धिद्वीपमाश्रित्यसुखं स्वपिति केशवः ॥१३२॥
अन्ये च दानवाः सर्वे बलिनः सायुधास्त्वया । असहायेनैव शक्र सर्वेऽपि विनिपातिताः ॥१३३॥
आदित्या द्वादशैवेह रुद्रास्त्वेकादशापि वा । अश्विनौ वसवश्चैव धर्मश्चैव सनातनः ॥१३४॥

के समान हैं ॥११९॥ यह ब्राह्मण कश्यप महर्षि के शुद्ध वंश में उत्पन्न हुआ है । इसने मुझसे प्रार्थना की कि मुझे तीन डग पृथिवी दे दीजिये ॥१२०॥ यह मेरी यज्ञशाला के लए आप दें । जहाँ पर मैं यज्ञ कर सकूँ । इसी के लिए मैं आपके पास अर्थी बन कर आया हूँ ॥१२१॥ हे वाष्कले ! आपने अपने पराक्रम के बल पर मुझसे त्रैलोक्य को छीन लिया है । मै तो निर्धन और निवृर्ति हूँ, अतएव मैं इसे नहीं दे पाया हूँ ॥१२२॥ अतएव दूसरे के लिए मैं अर्थी बनकर आपके समक्ष याचना कर रहा हूँ । आपके लिए जो योग्य हो वैसा आप करें ॥१२३॥ हे अपने वंश को बढाने वाले वाष्कलि आप भी महर्षि कश्यप के ही वंश में उत्पन्न हुए हैं । आप दिति माता के गर्भ से उत्पन्न हैं और आपके पिता त्रैलोक्य में पूजित हैं ॥१२४॥ इसी प्रकार का आपको जानकर मैं आपसे याचना कर रहा हूँ । इसकी यज्ञशाला के लिए आप तीन डग पृथिवी इन्हें प्रदान करें ॥१२५॥ हे दानव ! अत्यन्त मन्द चलने वाले इस ब्राह्मण को दूसरे की पृथिवी को देने का मैं उत्साह नहीं कर पा रहा हूँ ॥१२६॥ मैंने इसके लिए इतना ही मैं दे रहा हूँ कि, मैं आपके यहाँ मैं याचना कर रहा हूँ । यदि आपके गुरुजन तथा मन्त्रिजन इसको उचित समझते हों तो इसे तीन डग पृथिवी दे दीजिये ॥१२७॥ मेरे अर्थी होने पर भी अपने वंश तथा अपने बान्धव एवं मेरे विषय में आप जैसा उचित समझें वैसा करें ॥१२८॥ हे महाकान्ति ! सम्पन्न दानवेन्द्र ! यदि आपको अच्छा लगे तो शीघ्र ही आप इसे प्रदान कर दें ॥१२९॥ **वाष्कलि ने कहा**— हे देवेन्द्र ! आपका स्वागत है । शीघ्र ही आप कल्याण प्राप्त करें। आप सबों के आश्रयभूत अपने को तो देखिये ॥१३०॥ लोक पितामह अपना सारा भार आपको सौंप कर सुख पूर्वक शयन करते हैं और वे ध्यान तथा धारणा से युक्त होकर सर्वदा परंपद का चिन्तन करते हैं ॥१३१॥ अनेक संग्राम करने के कारण खिन्न बने हुए भगवान् केशव संसार की रक्षा की चिन्ता का त्याग करके क्षीरसागर में सुखपूर्वक शयन करते हैं ॥१३२॥ आपने दूसरे भी बलवान् तथा आयुध धारी दानवों को बिना किसी दूसरे सहायक के मार गिराया ॥१३३॥ हे इन्द्र । द्वादशादित्य, एकादश रुद्र, दोनो अश्विनी कुमार तथा सनातन धर्म ये सब के

त्वद्बाहुबलाश्रित्य त्रिदिवे मखभागिनः । त्वया क्रतुशतैरिष्टं समाप्तवरदक्षिणैः ॥१३५॥
त्वया च घातितो वृत्रो नमुचिः पाकशासन । त्वदाज्ञाकारिणापूर्वं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१३६॥
हिरण्यकशिपोर्भ्राता हिरण्याक्षोऽपि घातितः । हिरण्यकशिपुर्योत्र जङ्घेचारोप्यघातितः ॥१३७॥
वज्रपाणिनमायांतमैरावतशिरोगतम् । संग्रामभूमौ दृष्ट्वा त्वां सर्वे नश्यंति दानवाः ॥१३८॥
ये त्वया विजिताः पूर्वं दानवा बलवत्तराः । सहस्रांशेन तत्तुल्यो न भवामि कथंचन ॥१३९॥
एवंविधोऽसि देवेंद्र मम का गणना भवेत् । मां समुद्धर्तुकामेन त्वयैवागमनं कृतम् ॥१४०॥
करिष्यामि न संदेहो दास्ये प्राणानपि ध्रुवम् । किमर्थं देवराजोक्ता भूमिरेषा त्वया हि मे॥१४१॥
इमे दाराः सुता गावो यच्चान्यद्विद्यते वसु । त्रैलोक्यराज्यमखिलं विप्रस्यास्य प्रदीयताम्॥१४२॥
अपकीर्तिर्भवेन्मह्यं पूर्वेषां च न संशयः । गृहायातस्य शक्रस्य दत्तं बाष्कलिना न तु॥१४३॥
अन्योपि योर्थी मे प्राप्तः समे प्रियतरः सदा । भवानत्रविशेषेण विचारं मा कृथाः क्वचित्॥१४४॥
बृहत्त्रपा मे देवेंद्र यद्भूमेस्तु पदत्रयम् । ब्राह्मणस्य विशेषेण प्रार्थितं तु त्वया विभो ॥१४५॥
दास्ये ग्रामवरानस्य भवतस्तु त्रिविष्टपम् । अश्वान्गजान् भूमिधनं स्त्रियश्चोद्भिन्नचूचुकाः ॥१४६॥
यासां दर्शनमात्रेण वृद्धोपि तरुणायते । तास्त्रियो वसुधां चैतां वामनस्य प्रतिग्रहम्॥१४७॥
प्रतिदास्यामि देवेन्द्र प्रसादः क्रियतां हि मे । एतावदुक्ते वचने तदाबाष्कलिना नृप ॥१४८॥
पुरोधास्तूशनाप्राह दानवेंद्रं तदा वचः । भवान् राजा दानवेंद्र ऐश्वर्येष्टविधे स्थितः ॥१४९॥

सब ॥१३४॥ आपके ही बाहुबल का सहारा लेकर यज्ञ के भागों को प्राप्त करते हैं । आपने स्वयं भी श्रेष्ठ दक्षिणा देकर सौ श्रेष्ठ यज्ञों को किया है ॥१३५॥ आपने ही वृत्रासुर, नमुचि तथा पाक नामक दैत्यों को मारा है, आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए भगवान् विष्णु भी पूर्वकाल में ॥१३६॥ हिरण्यकशिपु के भाई हिरण्याक्ष को मारे थे और उन्होंने हिरण्यकशिपु को अपने जङ्घों पर रखकर मारा ॥१३७॥ ऐरावत के कन्धे पर बैठकर तथा हाथ में वज्र धारण किए हुए संग्राम भूमि में आते हुए आपको देखकर सभी दानव पलायन कर जाते हैं ॥१३८॥ आपने पूर्व काल में जिन दानवों पर विजय प्राप्त किया है, उन सबों के हजारवें हिस्से के भी समान मैं नहीं हूँ ॥१३९॥ हे देवेन्द्र ! आप इस प्रकार के हैं, आपके सामने मेरी कौन सी गणना है । आप तो केवल मेरा उद्धार करने के लिए मेरे यहाँ आये हैं ॥१४०॥ मैं आपकी बातों को मानूँगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है, मैं आपको अपने प्राणो को भी दे सकता हूँ । हे देवराज ! आपने यह छोटी सी भूमि ही क्यों मुझसे माँगा ॥१४१॥ पत्नी, पुत्र, गायें तथा दूसरी सम्पत्ति जो मेरी है वह तथा त्रैलोक्य का राज्य आप इस ब्राह्मण को दे दीजिये ॥१४२॥ यदि मैं ऐसा न करूँ तो मेरा अयश होगा । लोग कहेंगे कि घर आये हुए इन्द्र को वाष्कलि दान नहीं दे सका ॥१४३॥ दूसरे भी अतिथि मेरे पास आते हैं तो वे भी मुझको अधिक प्रिय होते हैं और आप तो उन अतिथियों में विशेष हैं, आप कोई भी विचार नहीं कीजिये ॥१४४॥ हे विभो ! मुझे सबसे अधिक लज्जा इस बात की है कि आप ब्राह्मण को देने के लिए तीन पग पृथिवी मुझसे माँग रहे हैं ॥१४५॥ हे देवेन्द्र ! आप मुझ पर कृपा कीजिये; मैं इस वामन ब्राह्मण को श्रेष्ठ ग्रामों, अश्वों, गजों, भूमि, धन, युवति स्त्रियाँ, जिन सबों को देखकर वृद्ध व्यक्ति जैसे युवक हो जाता है, तथा इस पृथिवी को दूँगा, तथा आपको स्वर्गलोक दूँगा ॥१४६-१४७॥ जिस समय वाष्कलि इसतरह की बातें कर रहे थे ॥१४८॥ उसी समय उनके पुरोहित शुक्राचार्य ने उनसे कहा---- हे देवेन्द्र ! आप राजा हैं आपके पास आठो प्रकार के ऐश्वर्य हैं॥१४९॥ किन्तु आपको उचित अनुचित का ज्ञान नहीं है, मुझे किसको क्या देना चाहिए, इसके विषय में आपको

युक्तायुक्तं न जानासि देयं कस्य मया क्वचित्। मंत्रिभिः सुसमालोच्य युक्तायुक्तं परीक्ष्य च ॥१५०॥
प्राप्तं त्रैलोक्यराज्यत्वं जित्वा देवान् सवासवान् । वाक्यस्यास्यावसानेव भवान् प्राप्स्यति बंधनम्॥१५१॥
य एष वामनो राजन्विष्णुरेव सनातनः । नास्य वै भवता देयं पिता ते घतितः स्वयम्॥१५२॥
अयं ते पितृहा प्राप्तो मातृहा बंधुघातकः । वंशोच्छेदकरस्तुभ्यं भूतश्चैव भविष्यति॥१५३॥
न चैष धर्मं जानाति शक्रादीनां हि ते रतः । मायाविना दानवा ये मायया येन निर्जिताः ॥१५४॥
मायया ब्राह्मणं रूपं वामनं च प्रदर्शितम्। अत्र किं बहुनोक्तेन नास्य देयं तु किंचन॥१५५॥
मक्षिकापादमात्रं तु भूमिरस्य प्रतिग्रहः। विनाशमेष्यसि क्षिप्रं सत्यं सत्यं मया श्रुतम् ॥१५६॥
गुरुणाप्येवमुक्तस्तु भूयो वाक्यमथाब्रवीत्। धर्मार्थिना मया सर्वं प्रतिज्ञातं गुरोत्विदम्॥१५७॥
प्रतिज्ञापालनं कार्यं सतां धर्मः सनातनः । यद्येष भगवान् विष्णुर्नास्ति धन्यतरो मया ॥१५८॥
गृह्यप्रतिग्रहं मत्तो यदि देवान् बुभूषति । भूयोपि धन्यतां नीतो देवेनानेन वै गुरो ॥१५९॥
यं योगिनो ध्यानयुक्ता ध्यायमाना हि दर्शनम्। न लभंते तथाविप्रा स्सोऽयं दृष्टो मयाद्य वै ॥१६०॥
दानानि ये प्रयच्छंति सकुशोदकपाणिना। प्रीयतां भगवान् विष्णुः परमात्मा सनातनः॥१६१॥
एवमुक्ते तु वचने अपवर्गस्य भागिनः । यदत्र कार्यकरणे विकल्पो मे बभूव ह॥१६२॥
उपदिष्टोस्मि भवता बालत्वे चावधारितम् । शत्रावपि गृहायाते मास्त्वदेयं तु किंचन ॥१६३॥
एतदेवविचिंत्याहं प्राणानपि स्वकान्गुरो। वामनस्य प्रदास्यामि शक्रस्यापि त्रिविष्टपम् ॥१६४॥

अपने मन्त्रियों से सलाह करना चाहिए। फिर उचित अनुचित की परीक्षा करके कुछ करना चाहिए ॥१५०॥ आपने इन्द्र सहित समस्त देवताओं को पराजित करके त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त किया है। इस वाक्य के पूरा होते ही आप वन्धन में पड़ जायेंगे ॥१५१॥ यह जो वामन हैं, वह साक्षात् विष्णु है। इसको आपको वैभव नही प्रदान करना चाहिए, इसीने आपके पिता को मारा था ॥१५२॥ यह आपके पिता माता तथा बान्धवों को मारने वाला है। यह आपके वंश का विनाश करने वाला है यह आपका भी विनाश कर देगा ॥१५३॥ यह धर्म को जानता ही नहीं है, केवल इन्द्र इत्यादि देवताओं का कल्याण करने में लगा रहता है। यह मायावी है, इसने माया से बड़े-बड़े दानवों को जीत लिया ॥१५४॥ यह माया से वामन ब्राह्मण का रूप बनाये हुए है। बहुत अधिक क्या कहना है ? इसको कुछ भी नहीं देना चाहिए ॥१५५॥ मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ, कि इसको यदि आपने मक्खी के पैर रखने भर भी भूमि दे दिया तो यह आपका विनाश कर देगा ॥१५६॥ अपने गुरु शुक्राचार्य के इस तरह से कहने पर वाष्कलि ने कहा— आचार्य मैं धर्मार्थी हूँ। मैंने धर्मानुसार इसको इन सारी वस्तुओं को देने की प्रतिज्ञा की है ॥१५७॥ अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना सज्जनों का सनातन धर्म है। यदि ये स्वयं भगवान् विष्णु हैं, तो फिर आज मुझसे बढकर धन्य कोई नहीं है ॥१५८॥ हे गुरो ! यदि ये मुझसे दान लेकर उसे देवतओं को देना चाहते हैं तब तो भगवान् विष्णु ने ही मुझे धन्य बना दिया ॥१५९॥ योगिजन ध्यान करके ध्यान के द्वारा जिनका दर्शन करना चाहते हैं, फिर भी ये उनके ध्यान में नहीं आते हैं, उन्हीं भगवान् विष्णु का मैं आज साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ ॥१६०॥ दान करने वाले लोग अपने हाथ में कुश का जल लेकर दान देते समय कहते हैं, इस दान से सनातन परमात्मा विष्णु प्रसन्न हो जायँ, यह कहकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ पर दान करने का मेरा विकल्प भी मुक्ति प्राप्त करना ही है॥१६२॥ आपने मुझे बचपन में जो उपदेश दिया था उसको मैं अपने हृदय में धारण किये हुए हूँ। आपने कहा था शत्रु के भी घर पर याचक के रूप में आने पर उसके लिए कुछ भी अदेय नहीं होना चाहिए ॥१६३॥ हे गुरो!

अपीडाकारियद्दानं तद्दानमिह दीयते । पीडाकारि च यद्दानं तद्दानं समलं स्मृतम् ॥१६५॥
एतच्छ्रुत्वा गुरुस्तत्र त्रपयाधोमुखः स्थितः ।

वाष्कलिरुवाच

अर्थिता भवतो देव देया सर्वा धरा मया ॥१६६॥
त्रपाकरं भवेन्मह्यं यदस्य भू पदत्रयम् ।

इंद्र उवाच

सत्यमेतद्दानवेन्द्र यदुक्तं भवता हि मे ॥१६७॥
भूमेः पदत्रयार्थित्वं द्विजेनानेन मे कृतम्। एतावता त्वयंचार्थी मयाप्यस्य कृते भवान् ॥१६८॥
दनुपुत्रो याचितोसि वरमेतत्प्रदीयताम्।

बाष्कलिरुवाच

पदत्रयं वामनाय देवराजप्रतीच्छ मे ॥१६९॥
तत्रस्वं सुचिरं कालं सुखी सुरपते वस । एवमुक्त्वा वाष्कलिना वामनाय पदत्रयम् ॥१७०॥
तोयपूर्वं तदा दत्तं प्रीयतां मे हरिः स्वयम्। दत्ते तु दानवेंद्रेण त्यक्त्वा रूपं च वामनम् ॥१७१॥
हरिराचक्रमे लोकान् देवानां हितकाम्यया । यज्ञपर्वतमासाद्य गत्वा चैव उदङ्मुखः ॥१७२॥
देवस्य वामचरणे निविष्टो दानवालयः । तत्र क्रमं स प्रथमं ददौ सूर्येजगत्पतिः ॥१७३॥
द्वितीयं चध्रुवे देवस्तृतीयेन चपार्थिव। ब्रह्मांडस्ताडितस्तेन देवेनाद्भुतकर्मणा ॥१७४॥
अङ्गुष्ठाग्रेणाभिन्नेंडे जलं भूरिविनिःसृतम्। प्लावयित्वा ब्रह्मलोकान्सर्वान् लोकाननुक्रमात् ॥१७५॥
ध्रुवस्थानं सूर्यलोकं प्लाव्यतं यज्ञपर्वतम् । प्रविष्टापुष्करं धारा धौत्वा विष्णुपदानि सा ॥१७६॥

इसी बात का विचार करके मैं इस वामन को अपने प्राणों को भे दे दूँगा और इन्द्र को त्रैलोक्य का राज्य दे दूँगा॥१६४॥ जो दान पीडा देने वाला नहीं होता है उसी प्रकार का दान मैं देता हूँ । जो दान देने से कष्ट होता है, वह दूषित दान है ॥१६५॥ वाष्कलि की इन बातों को सुनकर गुरु शुक्राचार्य अपना मुख नीचे कर लिए । **वाष्कलि ने कहा—** हे देव यदि आप माँगे तो मैं सम्पूर्ण पृथिवी आपको दे दूँ ॥१६६॥ यह तो मेरे लिए लज्जास्पद है कि मैं इसे तीन पग पृथिवी दे रहा हूँ । **इन्द्र ने कहा—** हे दानवेन्द्र ! आपने जो कहा है, वही सत्य है ॥१६७॥ इस ब्राह्मण ने तीन पग पृथिवी के लिए मुझे आपका अर्थी बनाया है । इसको इतना ही चाहिये और मैने भी इसके लिए इतनी ही भूमि की याचना की है ॥१६८॥ हे दानव ! मैंने आपसे जो याचना की है, वह इसे प्रदान कीजिये । **वष्कलि ने कहा—** हे देवराज ! आप मुझसे इस वामन के लिए तीन पग पृथिवी लीजिए ॥१६९॥ हे सुरपते ! वहाँ पर आप सुखपूर्वक चिरकाल तक निवास करें । यह कहकर वाष्कलि ने वामन को तीन पग पृथिवी संकल्प पूर्वक देकर कहा इससे श्रीभगवान् प्रसन्न हों । दानवेन्द्र के द्वारा दान दे देने पर श्रीहरि ने अपने वामन रूप को त्याग करके देवताओं का कल्याण करने के लिए लोकों को भी पार कर गये । यज्ञ पर्वत के ऊपर उत्तराभिमुख होकर॥१७१-१७२॥ श्रीभगवान् का वायाँ पैर दानवों के लोक में प्रवेश कर गया । भगवान् ने पहले डग में सूर्यलोक को नाप लिया । दूसरे पग में ध्रुवलोक को नापा तीसरे डेग में उनके पैर ने ब्रह्माण्ड का स्पर्श कर लिया। भगवान् के अङ्गूठे के अग्र भाग से ब्रह्माण्ड के फूट जाने से उस ब्रह्माण्ड से बहुत अधिक जल निकला । उसने क्रमशः ब्रह्मलोक को सींचकर सभी लोकों को सींच दिया ॥१७३-१७५॥ ध्रुवस्थान तथा सूर्य लोक के प्लावित

पदानि यानि जातानि वैष्णवानि धरातले। तत्राश्रमे तु यो गत्वा स्नानं वाप्यां समाचरेत्॥१७७॥
अश्वमेधफलं तस्य दर्शनादेव जायते। एकविंशगणोपेतो वैकुंठे वासमाप्नुयात्॥१७८॥
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् कल्पानां तु शतत्रयम्।
तदंते जायते राजा सार्वभौमः क्षिताविह ॥१७९॥
तोयधारा तु सा भीष्म अङ्गुष्ठाग्राद्विनिःसृता। नदी सा वैष्णवी प्रोक्ता विष्णुपादसमुद्भवा ॥१८०॥
अनेन कारणेनाभूद्गंगा विष्णुपदी नृप। यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१८१॥
अङ्गुष्ठाग्रक्षतादंडाद्यत्प्रविष्टं जलं शुभम्। प्राप्तं देवनदीत्वं तु या तु विष्णुपदी नदी॥१८२॥
देवनद्या तया व्याप्तं ब्रह्मांडं सचराचरम्। विभूतिभिर्महाभाग सर्वानुग्रहकाम्यया॥१८३॥
सबाष्कलिर्वामनेन उक्तःपूरय मे क्रमान्। अधोमुखस्तदा जात उत्तरं नास्य विंदति ॥१८४॥
मौनीभूतं तु तं दृष्ट्वापुरोधा वाक्यमब्रवीत्। स्वाभाविकी दानशक्ति र्नतु स्त्रष्टुंवयं क्षमाः ॥१८५॥
यावतीयं धरा देव सा दत्तानेन ते प्रभो। उक्तो बाष्कलिना विष्णुर्यावन् मात्रा वसुंधरा ॥१८६॥
या सृष्टा भवता पूर्वं सा मया न च गोपिता। अल्पा भूमिर्भवान् दीर्घो न तु सृष्टेरहंक्षमः ॥१८७॥
इच्छाशक्तिः प्रभवति प्रभोस्ते देवसर्वदा। निरुत्तरस्तदाविष्णुर्मत्वा तं सत्यवादिनम् ॥१८८॥
ब्रूहि दानवमुख्यत्वं कंते कामं करोम्यहम्। ममहस्तगतं तोयं त्वया दत्तं तु दानव ॥१८९॥
तेन त्वं वरयोग्योसि वराणां भाजनं शुभम्। दास्येहं भवतः काममर्थी येन वृणुष्व ह ॥१९०॥

करके वह जल धारा भगवान् विष्णु के पैरों को धोकर उस यज्ञपर्वत को धोती हुए पुष्कर में प्रवेश कर गयी॥१७६॥ इस धरातल पर भगवान् विष्णु के जो पैर पड़े उस आश्रम में जाकर जो व्यक्ति स्नान करेगा ॥१७७॥ उसके देखने मात्र से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होगा। वह अपने इक्कीस पीढी के पितरों के साथ वैकुण्ठ में निवास करेगा॥१७८॥ वह तीन सौ कल्पो तक वहाँ पर प्रभूत मात्रा में भोगों को भोगकर उसके अन्त में भूलोक में सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा होगा ॥१७९॥ हे भीष्म ! श्रीभगवान् के अङ्गूठे के अग्रभाग से निकली हुयी वह जल की धारा भगवान् विष्णु के चरण से निकलने के कारण वैष्णवी नदी कही गयी है ॥१८०॥ इसी कारण गङ्गानदी विष्णुपदी कही जाती है वह नदी सम्पूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य में व्याप्त है ॥१८१॥ अङ्गूठे के अग्रभाग से क्षत हो जाने से उस ब्रह्माण्ड से जो जल निकला वह देवनदी बन गया वही विष्णुपदी नदी है ॥१८२॥ लोकों पर कृपा करने की इच्छा से वह देवनदी अपनी विभूतियों द्वारा सम्पूर्ण त्रैलोक्य में व्याप्त है ॥१८३॥ उसके बाद वामन भगवान् ने वाष्कलि से कहा मेरे तीन डगों की पूर्ति करो। यह सुनकर वाष्कलि ने अपना मुखड़ा नीचे कर लिया। उसके पास कोई उत्तर नहीं था ॥१८४॥ वाष्कलि को मौन देखकर पुरोहित शुक्राचार्य ने कहा हमलोगों में स्वाभाविक दानशक्ति की सृष्टि करने की क्षमता नहीं है ॥१८५॥ यह जितनी बड़ी पृथिवी है उसे तो इसने आपको दे दिया है। वाष्कलि ने कहा पृथिवी जितनी बड़ी है ॥१८६॥ आपने जितनी बड़ी पृथिवी को बनाया है उसे मैंने दे दिया उसमें से कुछ भी नहीं छिपाया है ॥१८७॥ हे प्रभो ! आपकी इच्छा शक्ति ही बलवती है। उस सत्यवादी वाष्कलि को निरुत्तर समझकर भगवान् विष्णु ने कहा ॥१८८॥ हे दानवराज ! आप बतलाइये मैं आपकी किस इच्छा की पूर्ति करूँ। दानव ! तुमने मेरे हाथ पर सङ्कल्प का जल दिया है ॥१८९॥ अतएव तुम वर प्राप्त करने के योग्य हो, तुम वरदान के उत्तम अधिकारी हो, तुम जो चाहो उसे मैं तुम्हें दूँगा; वरदान माँगों ॥१९०॥ इस पर वाष्कलि ने भगवान् जनार्दन से कहा— हे देवेश मैं आपकी भक्ति को प्राप्त करना चाहता हूँ, तथा आपके ही हाथों मृत्यु चाहता हूँ॥१९१॥

वाष्कलिरुवाच

विज्ञप्तोहि तदा तेन देवदेवो जनार्दनः । भक्तिंवृणोमि देवेश त्वद्धस्तान्मरणं हि मे ॥१९१॥
व्रजामि श्वेतद्वीपं ते दुर्लभं तु तपस्विनाम् । आहैवमुक्तेविष्णुस्तां तिष्ठस्वैक युगांतरम् ॥१९२॥
वाराहरूपी यदाहं प्रवेक्ष्यामि धरातलम् । तदा हनिष्येहं त्वां तु मदग्रे च यदैष्यसि ॥१९३॥
उक्तोऽथ दानवस्तेन अपासर्प्यत्तदग्रतः । वामनेन समाक्रांताः सर्वेलोकास्तदानृप ॥१९४॥
असुरैस्तैस्तदात्यक्तं देवानां सत्यभाषणम् । देवो हृत्वा तु त्रैलोक्यं जगामादर्शनं विभुः ॥१९५॥
पातालनिलयश्चापि सुखमास्ते स वाष्कलिः । शक्रोपि पालयामास विपश्चिद्भुवनत्रयम् ॥१९६॥
अयं त्रैविक्रमो नाम प्रादुर्भावो जगद्गुरोः । गंगासंभवसंयुक्तस्सर्वकिल्विषनाशनः ॥१९७॥
विष्णोः पदानामेष त उत्पत्तिः कथिता नृप । यां श्रुत्वा तु नरो लोके सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१९८॥
दुःस्वप्नं दुर्विचिंत्यं च दुःष्करं दुःष्कृतानि च । क्षिप्रंहि नाशमायांति दृष्टो विष्णुपदत्रये ॥१९९॥
युगानुक्रमशो दृष्ट्वा पापिनो जंतवस्तथा । सूक्ष्मता दर्शिता भीष्म विष्णुना पददर्शने ॥२००॥
यस्त्वारोहति तस्मिंस्तु मौनवान्मानवो भुवि । कृत्वा त्रिपुष्करीं यात्रामश्वमेधफलं व्रजेत् ॥२०१॥
मुच्यते सर्वपापैश्च मृतो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२०२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे विष्णुपदोत्पत्तिर्नाम त्रिंशोध्यायः ॥३०॥

जिससे कि मैं तपस्वियों को भी दुर्लभ श्वेतद्वीप में जा सकूँ । इस पर भगवान् विष्णु ने कहा अभी इसी तरह बने रहो, दूसरे युग के आने पर जब मैं वाराह रूप धारण करके पृथिवी का उद्धार करूँगा, उस समय जब तुम मेरे सामने आओगे तो मैं तुम्हारा वध करूँगा ॥१९२-१९३॥ इस तरह से कहने पर वाष्कलि भगवान् वामन के सामने से हट गया । हे राजन् ! उस समय वामन ने सभी लोकों को आक्रान्त किया ॥१९४॥ उसी समय से दैत्यों ने देवताओं से सत्य बोलना छोड़ दिया । भगवान् त्रैलोक्य का अपहरण करके अन्तर्धान हो गये ॥१९५॥ वाष्कलि भी उसी समय से सुखपूर्वक पाताल में रहने लगे; बुद्धिमान इन्द्र भी त्रैलोक्य का पालन करने लगे । गङ्गा की उत्पत्ति से सम्बद्ध जगद्गुरु भगवान् त्रिविक्रम की उत्पत्ति की कथा सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाली है ॥१९७॥ हे राजन् इस प्रकार से मैंने विष्णु भगवान् के चरणों की उत्पत्ति की कथा आपको बतलायी । इस कथा का श्रवण करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१९८॥ यज्ञपर्वत पर विद्यमान श्रीभगवान् के इन तीनों चरणों का दर्शन करने से दुःस्वप्न, दुर्विचार, दुष्कर कृत्य तथा पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं ॥१९९॥ देखा गया है कि पापी जीव भी युग के क्रम से दर्शन करके विष्णु पद का दर्शन करने में सूक्ष्मता का प्रदर्शन करते हैं ॥२००॥ जो मनुष्य मौन होकर उस यज्ञपर्वत पर आरोहण करता है तीनों पुष्करों की यात्रा करता है वह अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥२०१॥ वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के विष्णुपद की उत्पत्ति नामक तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३०।।

इकतीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

भगवन्महदाश्चर्यं वाष्कले वंधनं हि यत् । कृतं त्रिविक्रमं रूपं यदासंयमितो बलिः ॥१॥
एतन्मयाश्रुतं पूर्वं कथ्यमानं द्विजोत्तमैः । पाताले वसतेद्यापि वैरोचनसुतो बलिः ॥२॥
नागतीर्थं यथाभूतं पिशाचानां तु संभवम् । शिवदूती कथं चात्र केनेयं मंगली कृता ॥३॥
अंतरिक्षे पुष्करं तु केन नीतं महामुने । एतदाचक्ष्व मे सर्वं यथवाष्कलिबंधनम् ॥४॥
भूमिप्रक्रमणं पूर्वं कृतं देवेन विष्णुना । द्वितीये कारणं किं च येन देवश्चकार ह ॥५॥
तत्त्वतस्त्वं हि तत्सर्वं यथाभूतं तथा वद । पापक्षयकरं ह्येतच्छ्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥६॥

पुलस्त्य उवाच

प्रश्नभारस्त्वया राजन् कौतुकादेव कीर्तितः । कथयामि हि तत् सर्वं यथाभूतं नृपोत्तम ॥७॥
विष्णोः पदानुषंगेण बंधनं वाष्कलेरिह । श्रुतं तद्भवता सर्वं मया ते परिकीर्तितम् ॥८॥
भूयोपि विष्णुना भीष्म प्राप्ते वैवस्वतेंतरे । त्रैलोक्यं बलिना क्रांतं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९॥
गत्वा त्वेकाकिना यज्ञे तथा संयमितो बलिः । भूयोपि देवदेवेन भूमेः प्रक्रमणं कृतम् ॥१०॥
प्रादुर्भावो वामनस्य तथाभूतो नराधिप । पुनस्त्रिविक्रमो भूत्वा वामनोभूदवामनः ॥११॥

नागतीर्थ का वर्णन, जनमेजय सर्पों को भस्म कर देंगे इस तरह से ब्रह्माजी का सर्पों को शाप; सर्पों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी का उच्छापन करना कि जरत्कारु के पुत्र आस्तिक द्वारा सर्पों की रक्षा हो जायेगी, नागतीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन, श्रावणशुक्ल पञ्चमी तिथि को नागतीर्थ में श्राद्ध आदि करने का माहात्म्य, शिवदूती का चरित्र वर्णन, रुरु दैत्य से भयभीत देवताओं का नीलगिरि पर जाकर देवी की प्रार्थना करना, देवी के मुख से अन्य देवियों की उत्पत्ति, देवीगण और दैत्यगण का युद्ध, शिवकृत शिवदूती स्तोत्र, शिवदूति द्वारा शिव को वर प्रदान और स्तोत्र महिमा

भीष्मजी ने कहा— हे भगवन् ! यह बहुत बड़े आश्चर्य की बात है कि बाष्कलि भी बन्धन गत हो गये । भगवान् ने त्रिविक्रम रूप धारण करके बलि को बाँध दिया ॥१॥ ब्राह्मणों द्वारा कहे जाते हुए मैंने सुना है कि विरोचन के पुत्र बलि आज भी पाताल में रहते हैं ॥२॥ जिस तरह से नागतीर्थ उत्पन्न हुआ, पिशाचों की उत्पत्ति कैसे हुयी ? शिवदूती कैसे उत्पन्न हुयी ? उसे मङ्गलमयी किसने बनाया ?॥३॥ हे महामुने ! अंतरिक्ष में विद्यमान पुष्कर को किसने लाया ? इन सारी बातों को तथा बाष्कलि के बन्धन के प्रसङ्ग को आप मुझे सुनायें ॥४॥ श्रीभगवान् ने प्रथम डग में पृथिवी को नाप लिया, दूसरे में ध्रुवलोक को नापने का क्या कारण था ?॥५॥ ये सारी बातें जैसे हुयीं उसे आप मुझे ठीक-ठीक बतलाइये । ये सारी कथायें पाप को विनष्ट करने वाली हैं, ऐश्वर्य चाहने वाले को इसे सुनना चाहिए ॥६॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे राजन् ! तुमने कौतुक वशात् प्रश्नों का बोझ मेरे ऊपर डाल दिया, ये सारी बातें जैसे हुयीं उसे मैं बतला रहा हूँ ॥७॥ भगवान् विष्णु के पद के ही सम्बन्ध में बाष्कलि का बन्धन हुआ, उन सारी बातों के मैंनें कहा भी और आपने सुना भी है ॥८॥ उसके बाद जब वैवस्वत मन्वन्तर हुआ उस समय भगवान् विष्णु ने त्रैलोक्य को नापने का काम किया ॥९॥ उस समय भगवान् अकेले बलि के यज्ञ में गये, और बलि को बाँध दिए । उस समय भी देवेदेव भगवान् विष्णु ने भूमि को एक डग में नापा ॥१०॥ हे राजन् ! उस समय

उत्पत्तिरेषा ते सर्वा कथिता कुरुनंदन । नागानां तु यथा तीर्थं तच्छृणुष्व महाव्रत ॥१२॥
अनंतो वासुकिश्चैव तक्षकश्च महाबलः । कर्कोटकश्च नागेंद्रः पद्मश्चान्यः सरीसृपः ॥१३॥
महापद्मस्तथा शङ्खः कुलिकश्चापराजितः । एते कश्यपदायादा एतैरापूरितं जगत् ॥१४॥
एतेषां तु प्रसूत्या तु इदमापूरितं जगत् । कुटिला भीमकर्माणस्तीक्ष्णास्याश्चविषोल्वणाः ॥१५॥
दष्ट्वा मंदांश्च मनुजान् कुर्युर्भस्म क्षणात्तु ते । तद्दर्शनाद्भवेन्नाशो मनुष्याणां नराधिप॥१६॥
अहन्यनि जायेत क्षयः परमदारुणः । आत्मनस्तु क्षयं दृष्ट्वा प्रजास्सर्वास्समंततः ॥१७॥
जग्मुः शरण्यं शरणं ब्रह्माणं परमेश्वरम् । इममेवार्थमुद्दिश्य प्रजाः सर्वा महीपते ॥१८॥
ऊचुः कमलजं दृष्ट्वा पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम् ।

प्रजा ऊचुः

देवदेवेश लोकानां प्रसूते परमेश्वर ॥१९॥
त्राहि न स्तीक्ष्णदंष्ट्राणां भुजगानां महात्मनाम् । दिने दिने भयं देव पश्यामः कृपणा भृशम्॥२०॥
मनुष्यपशुपक्ष्यादि तत् सर्वं भस्मसाद्भवेत् । त्वया सृष्टिः कृता देव क्षीयते तु भुजंगमैः ॥२१॥
एतज्ज्ञात्वा यदुचितं तत्कुरुष्व पितामह ।

ब्रह्मोवाच

अहं रक्षां विधास्यामि भवतीनां न संशयः ॥२२॥
व्रजध्वं स्वनिकेतानि नीरुजो गतसाध्वसाः । एवमुक्ते प्रजाः सर्वा ब्रह्मणाव्यक्तमूर्तिना ॥२३॥
आजग्मुः परम प्रीताः स्तुत्वा चैव स्वयं भुवम् । प्रयातासु प्रजास्वेवं तानाहूय भुजंगमान्॥२४॥

भी वामन का अवतार पहले के ही समान हुआ था । उसके बाद वामन त्रिविक्रम बनकर बढ गये ॥११॥ हे कुरुनंदन ! इनकी उत्पत्ति सम्बन्धी सम्पूर्ण कथा मैं तुम्हें सुना चुका हूँ, अतएव हे महाव्रत भीष्म ! अब आप नागतीर्थ की उत्पत्ति की कथा को सुनें ॥१२॥ अनन्त, वासुकि, महाबलवान् तक्षक, नागेन्द्र, कर्कोटक तथा पद्म नामक सरीसृप (सर्प) ॥१३॥ महापद्म, शंङ्ख तथा कभी पराजित नहीं होने वाले कुलिक, ये सभी महर्षि कश्यप की सन्तान हैं । इन सबों के द्वारा जगत् भर गया ॥१३-१४॥ ये सभी कुटिल, भयङ्कर कर्म करने वाले, तीक्ष्ण मुख वाले तथा भयङ्कर विष वाले हैं । इनकी सन्तान से ही जगत् भर गया ॥१५॥ ये दुष्ट मनुष्यों को दंश कर उन सबों को क्षण भर में भस्म कर देते थे । हे नराधिप ! उसे देखकर मनुष्यों ने सोचा कि इस तरह से तो मनुष्यों का नाश ही हो जायेगा ॥१६॥ इन सबों द्वारा प्रतिदिन अत्यन्त भयङ्कर नाश होगा । इस तरह से अपने नाश को देखकर सभी प्रजायें ॥१७॥ सबों के रक्षक ब्रह्माजी के शरण में गयीं । हे राजन् ! इसी विषय में सभी प्रजाओं ने ॥१८॥ पुराणपुरुष ब्रह्माजी का दर्शन करके उनसे कहा— प्रजाओं ने कहा हे देव देवेश्वर ! प्रजाओं के परम स्वामिन्!॥१९॥ आप हमलोगों की तीक्ष्ण दाँतों वाले सर्पो से रक्षा करें । हे देव ! हमलोग अत्यन्त भयभीत हैं, हमरा भय प्रतिदिन बढता जा रहा है ॥२०॥ उन सबों के कारण सभी मनुष्य, पशु तथा पक्षी भस्म हो जायेंगे । हे देव ! आपने तो सृष्टि की है और ये सर्प उसका नाश कर रहे हैं ॥२१॥ हे पितामह ! इस बात को जानकर आप जो उचित हो वही कीजिये । **ब्रह्माजी ने कहा—** मैं निश्चित रूप से तुम सबों की रक्षा करूँगा ॥२२॥ तुम लोग अपने घर जाओ, और रोग तथा भय से रहित होकर रहो । अव्यक्त मूर्ति ब्रह्माजी द्वारा इसतरह से कहे जाने पर ॥२३॥ सारी प्रजाओं ने स्वयम्भु ब्रह्माजी की स्तुति की और अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वे सब अपने-अपने घर चली गयीं । प्रजाओं के चले जाने

शशाप परमक्रुद्धो वासुकिप्रुखांस्तदा ।

ब्रह्मोवाच

अहन्यहनि भूतानि भक्ष्यंते वै दुरात्मभिः ॥२५॥
नश्यंति तूरगै र्दष्टा मनुष्याः पशवस्तथा । यस्मान्मत्प्रभवान्नित्यं क्षयं नयथ मानुषान् ॥२६॥
अतोन्यस्मिन् भवेभूयान्मम कोपात् सुदारुणात् । भवतां हि क्षयो घोरो भावि वैवस्वतेंतरे ॥२७॥
तथान्यः सोमवंशीयो राजा वै जनमेजयः । धक्ष्यते सर्पसत्रेण प्रदीप्ते हव्यवाहने ॥२८॥
मातृष्वसुश्च तनयां स्ताक्ष्यों वो भक्षयिष्यति । एवं वो भविता नाशः सर्वेषां दुष्टचेतसाम् ॥२९॥
शप्त्वा कुलसहस्त्रं तु यावदेकं कुलं स्थितम् । एवमुक्ते तु वेपंतो ब्रह्मणा भुजगोतमाः ॥३०॥
निपत्य पादयोस्तस्य इदमूचुर्वचस्तदा । भगवन् कुटिला जातिरस्माकं भूतभावन ॥३१॥
विषोल्बणत्वं क्रूरत्वं दंदशूकत्वमेव च । संपादितं त्वया देव इदानीं शपसे कथम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

यदि नाम मया सृष्टा भवंतः कुटिलाशयाः । ततः किं बहुना नित्यं भक्षयध्वं गतव्यथाः ॥३३॥

नागा ऊचुः

मर्यादां कुरु देवेश स्थानं चैव पृथक् पृथक् । मनुष्याणां तथास्माकं समयं देवकारय ॥३४॥
शापो यो भवतादत्तो मनुष्यो जनमेजयः । नाशं नः सर्पसत्रेण उल्बणं च करिष्यति ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

जरत्कारुरिति ख्यातो भविता ब्रह्मवित्तमः । जरत्कन्या तस्य देया तस्यामुत्पत्स्यते सुतः ॥३६॥
रक्षाकर्ता स वो विप्रो भवतां कुलपावनः । तथा करोमि नागानां समयं मनुजैः सह ॥३७॥

के बाद ब्रह्माजी ने सर्पों को बुलाकर ॥२४॥ उन वासुकि इत्यादि को अत्यन्त क्रोध पूर्वक शाप दिया । **ब्रह्माजी ने कहा**— तुम दुष्टों द्वारा प्रजायें प्रतिदिन विनष्ट की जा रहीं हैं ॥२५॥ सर्पों द्वारा दंशे जाने के कारण मनुष्य तथा पशु मर जाते हैं, मुझसे उत्पन्न मनुष्यों का प्रतिदिन क्षय हो रहा है ॥२६॥ अतएव दूसरे जन्म में मेरे भयङ्कर क्रोध के कारण होने वाले वैवस्वत मन्वन्तर में तुमलोगो का भयङ्कर नाश होगा ॥२७॥ उस समय सोमवंशीय राजा जनमेजय होंगे । वे सर्प सत्र के द्वारा तुम लोगों को जलती हुयी अग्नि में भस्म कर देंगे ॥२८॥ तुम लोगों की माता, वहन तथा पुत्रों को गरुड खा जायेगा । इस तरह दुष्ट अन्तःकरण वाले तुम सबों का नाश हो जायेगा ॥२९॥ हजारों सर्प वंश को शाप देकर ब्रह्माजी ने कहा कि तुम लोगों का एक ही वंश रह जायेगा । ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार के शाप दिए जाने पर सभी सर्प भय से काँपने लगे ॥३०॥ वे ब्रह्माजी के पैर पर गिरकर उनसे कहे— हे भूतभावन भगवन्! हमारी जाति ही अत्यन्त कुटिल है ॥३१॥ इस जाति में आपने ही विष के कारण भयङ्करता, क्रूरता तथा दंदशूकता का निर्माण किया है । अब शाप क्यों दे रहे हैं ॥३२॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— यदि मैने तुम लोगों को कुटिल आशय वाला बनाया है, तो तुम लोग अधिक प्रजाओं को प्रतिदिन क्यों काटते हो ॥३३॥ **नागों ने कहा**— हे देवेश ! आप हमलोगों की तथा मनुष्यों की अलग-अलग व्यवस्था कीजिये । आपने जो हमलोगों को शाप दे दिया है, वह मनुष्य जनमेजय, सर्पसत्र के द्वारा जो हमलोगों का नाश करेगा, उसके लिए एक आप सीमा निर्धारित करके नियम बना दीजिये ॥३४-३५॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— भविष्यत् काल में ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ जरत्कारु ऋषि होंगे । उनका विवाह तुमलोग जरत् नाम की अपनी कन्या से कर देना । उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥३६॥ वही

तदेकमनसः सर्वे शृणुध्वं मम शासनम् । सुतलं वितलं चैव तृतीयं च तलातलम् ॥३८॥
दत्तं च त्रिप्रकारं वो गृहं तत्र गमिष्यथ । तत्र भोगान् बहुविधान् भुंजाना मम शासनात्॥३९॥
तिष्ठध्वं सप्तमं यावत्कालं तं तु पुनः पुनः । ततो वैवस्वतस्यादौ काश्यपेयो भविष्यति॥४०॥
दायादः सर्वदेवानां सुपर्णस्सर्पभक्षकः। तदा प्रसूतिः सर्पाणां दग्धा वै चित्र भानुना॥४१॥

भवतां चैव सर्वेषां भविष्यति न संशयः ।
ये ये क्रूरा भोगिनो दुर्विनीतास्तेषामंतो भविता नान्यथैतत् ॥४२॥
कालव्याप्तं भक्ष्यध्वं च सत्वं तथापकारे च कृते मनुष्यम् ।
मंत्रौषधैर्गारुडैश्चैव तंत्रै र्बंधैर्जुष्टा मानवा ये भवंति ॥४३॥
तेभ्यो भीतै र्वर्तितव्यं नचान्य च्चिते कार्यं चान्यथा वो विनाशः ।
इतीरिते ब्रह्मणा वै भुजंगा जग्मुः स्थानं सुतलाख्यं हि सर्वे ॥४४॥
तस्थुर्भोगान्भुंजमानाश्च सर्वे रसातले लीलया संस्थितास्ते ।
एवं शापं तु ते लब्ध्वा प्रसादं च चतुर्मुखात् ॥४५॥

तस्थुः पातालनिलये मुदितेनांतरात्मना। ततः कालांतरे भूते पुनरेवं व्यचिंतयन् ॥४६॥
भविता भरतो राजा पांडवेयो महायशाः। अस्माकं तु क्षयकरो दैवयोगेन केनचित् ॥४७॥
कथंत्रिभुवने नाथः सर्वेषां च पितामहः । सृष्टिकर्ता जगद्वंद्यः शापमस्मासु दत्तवान्॥४८॥
देवंविरंचिनं त्यक्त्वा गतिरन्या न विद्यते। वैराजे भवनश्रेष्ठे तत्र देवः स तिष्ठति ॥४९॥
सदेवः पुष्करस्थो वै यज्ञं यजति सांप्रतम्। गत्वा प्रसादयामस्तं वरं तुष्टः प्रदास्यति ॥५०॥
एवं विचिंत्य ते सर्वे नागा गत्वा च पुष्करम्। यज्ञपर्वतमासाद्य शैलभित्तिमुपाश्रिताः॥५१॥

ब्राह्मण तुम लोगों की रक्षा करने वाला होगा। वह तुम लोगों के वंश को पवित्र बना देगा। अब मैं मनुष्यों के साथ नागों का नियम बना देता हूँ ॥३७॥ अतएव एकाग्र मन से तुमलोग मेरी आज्ञा को सुनो। तुमलोगों को मैं तीन प्रकार का गृह प्रदान करता हूँ, सुतल, वितल तथा तलातल। वहीं तुमलोग चले जाओंगे। वहाँ पर मेरी आज्ञा से तुमलोग बहुत प्रकार के भोगों को भोगोगे ॥३८-३९॥ और वहीं पर सातवें मन्वन्तर पर्यन्त निवास करना। उसके पश्चात् वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में कश्यप वंशीर्य सभी देवताओं के मित्र सुपर्ण होंगे। वे सर्पो के खाने वाले होंगे। उसी समय अग्नि के द्वारा सर्पों की सन्तानें भस्म होंगी ॥४१॥ उस समय जो-जो सर्प क्रूर, भोगि सम्पन्न तथा दुर्विनीत होंगे उन सबों का नाश होयेगा ही ॥४१-४२॥ तुम लोग भी मनुष्य के मृत्यकाल आने पर तथा जो तुम लोगों का अपकार करे, ऐसे ही मनुष्य को काटना। जो मनुष्य गारुड मंत्र तथा औषधि से युक्त होंगे तथा तंत्रवन्ध से युक्त होंगे ॥४३॥ उन मनुष्यों से तुम लोग डरना। अन्यथा मनुष्यों को मत काटना नहीं तो तुमलोगों का नाश होगा। ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वे सर्प सुतल लोक में चले गये ॥४४॥ वे वहाँ पर भोगों को भोगते हुए रहने लगे और वे लीलापूर्वक रसातल में स्थित रहे। इस प्रकार वे ब्रह्माजी से शाप तथा वरदान दोनों प्राप्त करके ॥४५॥ प्रसन्नता पूर्वक पाताल में ही रहने लगे। उसके बाद कुछ समय बीत जाने पर उन सवों ने सोचा॥४६॥ किसी दैवयोग से हमलोगों का नाश करने वाला पाण्डवों के वंश में राजा होने वाला है ॥४७॥ क्योंकि त्रिभुवन नाथ सवों के पितामह है जगद्वंद्य तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने हमलोगों को शाप दिया है ॥४८॥ ब्रह्माजी को छोडकर हमलोगों का रक्षक कोई दूसरा नहीं है और वे वैराज भवन में निवास करते हं ॥४९॥ वे बह्माजी इस समय

दृष्ट्वा नागांस्तथा श्रान्तान् वारिधाराश्च शीतलाः। उदङ्मुखा वै निष्क्रांतास्सर्वेषां तु सुखप्रदाः ॥५२॥
नागतीर्थं ततो जातं पृथिव्यां भरतर्षभ। नागकुंडं च वै केचित्सरितं चापरेऽब्रुवन् ॥५३॥
पुण्यं तत्सर्वतीर्थानां सर्पाणां विषनाशनम्। मज्जन्ति तत्र ये मर्त्या अधिश्रावणपंचमीम् ॥५४॥
न तेषां तु कुले सर्पाः पीडां कुर्वंति कर्हिचित्। श्राद्धं पितॄणां ये तत्र करिष्यंति नरा भुवि ॥५५॥
ब्रह्मा तेषां परं स्थानं दास्यते नात्र संशयः। नागानां तु भयं ज्ञात्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५६॥
पूर्वोक्तं तु पुनर्वाक्यं नागानश्रावयत्तदा। पंचमी सा तिथिर्धन्या सर्वपापहरा शुभा ॥५७॥
यतोस्यामेव सुतिथौ नागानां कार्यमुद्धृतम्। एतस्यां सर्वतोयस्तु कट्वम्लं परिवर्जयेत्॥५८॥
क्षीरेण स्नापयेन्नागां स्तस्य ते यांति मित्रताम्।

भीष्म उवाच

शिवदूती यथा जाता येन चैव निवेशिता ॥५९॥
तन्मे सर्वं यथातत्वं भवान् शंसितुमर्हति।

पुलस्त्य उवाच

शिवा नीलगिरिं प्राप्ता तपसे धृतमानसा ॥६०॥
रौद्री जटोद्भवा शक्तिस्तस्याः शृणु नृपव्रतम्। तपः कृत्वा चिरं कालं ग्रसिष्याम्यखिलं जगत् ॥६१॥
एवमुद्दिश्य पंचाग्निं साधयामास भामिनी। तस्याःकालांतरे देव्यास्तपंत्यास्तप उत्तमम् ॥६२॥
रुरुर्नाम महातेजा ब्रह्मदत्तवरोऽसुरः। सुद्रमध्येरत्नाख्यंपुरमस्ति महाधनम् ॥६३॥
तत्रातिष्ठत्स दैत्येंद्रस्सर्वदेवभयंकरः। अनेकशतसाहस्रकोटिकोटिशतोत्तमैः ॥६४॥

पुष्कर तीर्थ में यज्ञ कर रहे हैं, हमलोग चल कर उनको प्रसन्न करें। वे प्रसन्न होकर हमलोगों को वरदान देंगे॥५०॥ इसतरह से विचार करके वे सभी नाग पुष्कर में जाकर यज्ञपर्वत पर जाकर पर्वत की दिवारों को ही अपना आश्रय बना लिए ॥५१॥ उन नागों को श्रान्त देखकर, उन सबों को सुख प्रदान करने वाली वहाँ से उत्तरामुखी शीतल जल की धारा निकली ॥५२॥ हे भरतर्षभ ! उसी से पृथिवी पर नागतीर्थ उत्पन्न हो गया। उसको कुछ लोगों ने नागकुण्ड कहा तथा कुछ लोगों ने नागनदी कहा ॥५३॥ वह समस्त तीर्थों से बढकर अधिक पुण्यप्रद है तथा सर्पों के विष को विनष्ट करने वाला है। जो लोग श्रावण मास की पञ्चमी तिथि को उसमें स्नान करते हैं ॥५४॥ उनके वंश में कभी भी सर्प पीडा नहीं देते हैं, जो मनुष्य वहाँ पर अपने पितरों का श्राद्ध करेंगे ॥५५॥ उनको बह्माजी श्रेष्ठ स्थान प्रदान करेंगे। इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। नागों के भय को जानकर लोक पितामह ब्रह्माजी ने ॥५६॥ नागों को पहले कहे गये वाक्य को पुनः सुनाया। वह सभी पापों को विनष्ट करने वाली शुभ पञ्चमी तिथि धन्य है॥५७॥ क्योंकि इसी तिथि को नागों का कार्य बतलाया गया है। इस तिथि को जो व्यक्ति कटु तथा अम्ल (खट्टा) पदार्थों का परित्याग करेगा ॥५८॥ जो व्यक्ति इस तिथि को सर्पों को दुग्ध से स्नान करायेगा उसके साथ उन सर्पों की मित्रता हो जायेगी। **भीष्मजी ने कहा—** शिवदूती तपस्या करने के लिए नीलगिरि पर आयी ॥६०॥ वे रुद्र की जटा से उद्भूत शक्ति स्वरूपिणी थीं। उनके मन में था कि दीर्घकाल तक तपस्या करके सम्पूर्ण जगत् को मैं खा जाऊँगी॥६१॥ यही सोचकर वे पंचाग्नि की साधना करने लगीं। जब वे देवी घोर तपस्या कर रही थीं ॥६२॥ उसी समय रुरु नामक महातेजस्वी दैत्य हुआ। वह ब्रह्माजी का वरदान प्राप्त किए था। वह समुद्र के भीतर विद्यमान अत्यधिक धन सम्पत्ति सम्पन्न रत्नपुर नामक नगर में रहता था ॥६३॥ वह सभी देवताओं के लिए भयङ्कर था।

असुरैरर्चितः श्रीमान् द्वितीयो नमुचिर्यथा । कालेन महता सोऽथ लोकपालपुरं ययौ ॥६५॥
जिगीषुः सैन्यसंवीतो देवै वैरमरोचयत् । उत्तिष्ठतस्तस्य महासुरस्य समुद्रतोयं ववृधेतिवेगात्॥६६॥
अनेकनागग्रहमीनजुष्ट माप्लावयत्पर्वतसानुदेशान् ।
अंतः स्थितानेकसुरारिसंघं विचित्रवर्मायुधचित्रशोभम् ॥६७॥
भीमं बलं चलितंचारुयोधं विनिर्ययौ सिंधुजलाद्विशालम् ।
तत्र द्विपा दैत्यभटाभ्युपेताः सयानघंटाश्च समृद्धियुक्ताः ॥६८॥
विनिर्ययुःस्वाकृतिभिर्झषाणां समत्वमुच्चैः खलुदर्शयन्तः ।
अश्वास्तथा कांचनसूत्रनद्धा रोहीतमत्स्या इव ते जलान्ते ॥६९॥
व्यवस्थितास्तैः सममेव तूर्णं विनिर्ययुर्लक्षशः कोटिशश्च ।
तथारविस्यंदनतुल्यवेगाः सचक्रदंडाक्षतवेणुयुक्ताः ॥७०॥
रथाश्च यंत्रोपरिपीडितां गा श्चलत्पताकाः स्वनितंविचक्रुः ।
तथैव योधाः स्थगितास्तरीभि स्तितीर्षवस्ते प्रवरास्त्रपाणयः ॥७१॥
रणे रणे लब्धजयाः प्रहारिणो विरेजुरुच्चैरसुरानुगा भृशम् ।
देवेषु वै रणे तेषु विद्रुतेषु विशेषतः ॥७२॥
असुरास्सर्वदेवानामन्वधावंस्ततस्ततः । ततो देवगणाः सर्वे द्रवंतो भयविह्वलाः ॥७३॥
नीलं गिरिवरं जग्मुर्यत्र देवी स्वयं स्थिता । रौद्री तपोन्विताधन्या शांभवी शक्तिरुत्तमा ॥७४॥
संहारकारिणी देवी कालरात्रीति यां विदुः । सा तु दृष्ट्वा तदा देवान्भयत्रस्तान्विचेतसः ॥७५॥

अनेक करोड़ उत्तम कोटि के दैत्य उसकी पूजा करते थे । ऐश्वर्य सम्पन्न वह द्वितीय नमुचि के समान था । वह बहुत समय के बाद अपनी सेना के साथ विजय प्राप्त करने की इच्छा से लोकपालों की नगरी में गया । उसने देवताओं से वैर कर लिया । जिस समय वह महा असुर समुद्र से बाहर निकला उस समय समुद्र का जल अत्यन्त वेग से बढ गया ॥६४-६६॥ अनेक नाग, घडियाल तथा मत्स्य से युक्त वह जल पर्वत के शिखर तक फैल गया । समुद्र के भीतर विद्यमान दैत्य समूह अद्भुत प्रकार के कवचों से सुशोभित हो रहा था ॥६७॥ दैत्यों की भयङ्कर सेना चल पड़ी, बड़े-बड़े उसमें योद्धा थे । इस प्रकार की भयङ्कर सेना समुद्र से निकली । उस सेना के हाथियों पर विद्यमान वीर, विमानों तथा धण्टा से सुशोभित थे ॥६८॥ वे सबके सब समुद्र से निकले, उनकी आकृति बहुत अधिक जलचरों के समान थी, किञ्च उस सेना के सुवर्ण सूत्र से सुशोभित अश्व जल के भीतर रोहित (रोहू) मछली के समान प्रतीत होते थे ॥६९॥ उन सबों के साथ वे सभी दैत्य लाखों करोड़ों की संख्या में शीघ्र ही निकल पड़े । उनके रथों का वेग सूर्य के वेग के समान था और वे रथ चक्र, दण्ड तथा वेणु से युक्त थे ॥७०॥ यन्त्रों पर चढाये गये उन रथों की पताकाये फहरा रही थीं, उन सबों से ध्वनि होने लगी । वीर भी अपने हाथ में अस्त्र लेकर तैर जाना चाहते थे अतएव उन सबों ने नावों को रोक दिया ॥७१॥ इस तरह के उस असुर के अनुचर अनेक युद्धों में विजयी होने के कारण अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे । उन दैत्यों के साथ युद्ध करने में असमर्थ देवता जब भाग चले तो ॥७२॥ दैत्य भी उन्हें खदेड़ने के लिए उन देवताओं के पीछे-पीछे दौड़ पड़े । उस समय भयभीत वे देवता भागते हुए॥७३॥ उस नीलगिरि पर पहुँचे जहाँ पर देवी स्वयं उपस्थित थीं । वह तपस्विनी भगवान् शङ्कर की उत्तम शक्ति थीं ॥७४॥ वे संहार करने वाली थीं । उनका ही नाम काली है । वे ही कालरात्रि हैं । उस देवी ने घबराये हुए

पप्रच्छविस्मयाद्देवी प्रोत्फुल्लांबुजलोचना । पृष्ठतो वो न पश्यामि भयं किंचिदुपागतम् ॥७६॥
कथं तु विद्गुता देवाः सर्वे शक्रपुरःसराः ।

देवा ऊचुः

अयमायाति दैत्येंद्रो रुरुर्भीमपराक्रमः ॥७७॥
चतुरंगेण सैन्येन महता परिवारितः । तस्माद्दीना वयं देवीं भवतीं शरणं गताः ॥७८॥
देवानामिति वै श्रुत्वा वाक्यमुच्चै र्जहास सा। तस्यां हसंत्यां निश्चेरुर्वरांग्यो वदनात्ततः ॥७९॥
पाशांकुशधराः सर्वाः पीनोन्नतपयोधराः । सर्वाश्शूलधरा भीमाः सर्वा दंष्ट्राङ्कुशाननाः॥८०॥
आबद्धमकुटाः सर्वाः संदष्टदशनच्छदाः । फूत्काररावैरशिवै स्त्रासयंत्यश्चराचरम् ॥८१॥
काश्चिच्छुक्लाम्बरधराः काश्चिच्चित्राम्बरा स्तथा। सुनीलवसनाः काश्चिद्रक्तपानातिलालसाः ॥८२॥
नानारूपै र्मुखैस्तास्तु नानावेषवपुर्धराः । ताभिरेवं वृता देवी देवानामभयंकरी ॥८३॥
माभैष्ट देवा भद्रं वो यावद्वदति दानवः । चतुरंगबलोपेतो रुरुस्तावत्समागतः ॥८४॥
तं नीलपर्वतवरं देवानां मार्गमार्गिणः । देवानामग्रतः सैन्यं दृष्ट्वा देवीसमाकुलम् ॥८५॥
तिष्ठतिष्ठेतिजल्पन्तो दैत्यास्ते समुपागताः । ततः प्रववृते युद्धं तासां तेषां महाभयम् ॥८६॥
नाराचै र्भिन्नदेहानां दैत्यानां भुविसर्पताम् । रोषाद्दंडप्रभग्नानां सर्पाणामिव सर्पताम् ॥८७॥
शक्तिनिर्भिन्नहृदया गदासंचूर्णितोरसः। कुठारै र्भिन्नशिरसो मुसलैर्भिन्नमस्तकाः॥८८॥
विद्धोदरास्त्रिशूलाग्रै श्छिन्नग्रीवा वरासिभिः । क्षताश्वरथमातंगपादाताः पेतुराहवे ॥८९॥

देवताओं को देखा ॥७५॥ विकसित कमल के समान नेत्रों वाली उस देवी ने उनसे पूछा— आपलोग के पीछे किसी प्रकार का भय मैं नही देख रही हूँ ॥७६॥ इन्द्र आदि देवताओं तुम लोग क्यों भाग रहे हो । देवताओं ने कहा यह भयङ्कर पराक्रम वाला रुरु आ रहा है ॥७७॥ उसके साथ विशाल चतुरंगिणी सेना है । इसीलिए हे देवि ! इसी कारण से हमलोग आपकी शरण में आये हैं ॥७८॥ देवताओं की इस वाणी को सुनकर वे देवी जोर से हँस पड़ीं । उनके हंसते समय उनके मुख से श्रेष्ठ अङ्गों वाली देवियों का प्रादुर्भाव हुआ ॥७९॥ वे सब पाश, अङ्कुश आदि को धारण किये थीं, उनके स्तन मोटे तथा उन्नत थे । वे सब त्रिशूल धारए किए हुयी भयङ्कर थीं । उनके दांत अङ्कुश के समान थे ॥८०॥ वे सब मुकुट धारण किए हुए थीं और अपने ओठों को चबा रही थीं । वे अपने अशिव फुत्कारों से चराचर को भयभीत बना रही थीं ॥८१॥ उनमें से कुछ ने श्वेत वस्त्र को धारण किया था तथा कुछ चित्रविचित्र वस्त्र पहना था । कुछ के वस्त्र नीले थे; वे सब रक्त पीने की लालसा से युक्त थीं ॥८२॥ उन सबों के मुख, वेष तथा शरीर अनेक प्रकार के थे । उन सबों से घिरी हुयी देवी ने देवताओ को अभय प्रदान किया ॥८३॥ देवी ने कहा— देवताओं डरो मत, उसी समय रुरु भी अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ वहाँ आ गया ॥८४॥ पर्वतों में श्रेष्ठ उस नीलगिरि पर देवताओं के मार्ग को खोजने वाले देवताओं के सामने विद्यमान दैत्यों की सेना को देवी ने देखा । उसके बाद ठहरो ! ठहरो !! कहते हुए दैत्य वहाँ आ गये । उसके बाद दैत्यों तथा देवियों में भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥८५-८६॥ बाणों से विधे हुए दैत्यों के शरीर पृथिवी पर गिरने लगे क्रोध करके दण्ड प्रहार करने के कारण फुटे शिर वाले दैत्य सर्पों के समान सरकने लगे ॥८७॥ शक्ति के प्रहार से जिनके शिर फट गये थे तथा गदा के प्रहार से जिनका हृदय चूर-चूर हो गया था तथा कुठार से जिनके शिर फट गये थे एवं मूसल प्रहार से जिनका शिर फट गया था ॥८८॥ त्रिशूल से जिन सबों का पेट चिर गया था तथा कृपाण से जिनका शिर कट गया

रणभूमिं समासाद्य दैत्याः सर्वे रुरूं विना। ततो बलं हतं दृष्ट्वा रुरुर्मायां तदाददे ॥९०॥
तया संमोहिता देव्यो देवाश्चापि रणाजिरे । तामस्या मायया देव्या सर्वमन्धंतमोऽभवत्॥९१॥
ततो देवी महाशक्त्या तं दैत्यं समताडयत्। तया तु ताडितस्याजौ दैत्यस्य प्रगतं तमः ॥९२॥
मायायामथ नष्टायां तामस्यां दानवो रुरुः । पातालमाविशत्तूर्णं तत्रापि परमेश्वरी ॥९३॥
देवीभिः सहिता क्रुद्धा पुरतोभिमुखीस्थिता । रुरोस्तु दानवेंद्रस्य भीतस्याग्रे गतस्य च ॥९४॥
नखाग्रेण शिरश्छित्वा चर्मचादाय वेगिता । निष्पपाताथ पातालात्पुष्करं च पुनर्गिरिम् ॥९५॥
कन्या सैन्येन महता बहुरूपेण भास्वता । देवैस्तु विस्मितै दृष्टा चर्ममुंडधरा रुरोः ॥९६॥
स्वकीये तपसः स्थाने निविष्टा परमेश्वरी । ततो देव्यो महाभागाः परिवार्य व्यवस्थिताः ॥९७॥
याचयामासुरव्यग्रा स्ता तु देवीं बुभुक्षिताः । बुभुक्षिता वयं देवि देहिनो भोजनं वरम्॥९८॥
एवमुक्ता ततो देवी दध्यौ तासां तु भोजनम्। नाध्यगच्छत्तदा तासां भोजनं चिन्तितम्महत्॥९९॥
तदा दध्यौ महादेवं रुद्रं पशुपतिं विभुम् । सोऽपि ध्यानात्ससमुत्तस्थौ परमात्मा त्रिलोचनः॥१००॥
उवाच रुद्रस्तां देवीं किं ते कार्यविवक्षितम्। ब्रूहि देवि महामाये यत्ते मनसि वर्तते॥१०१॥

शिवदूत्युवाच

छागमध्ये तु वै देवछागरूपेणवर्तसे । एतास्त्वां भक्षयिष्यन्ति भक्ष्यमीप्सितमादरात् ॥१०२॥
भक्षार्थमासां देवेश किंचिद्दातुमिहार्हसि । शूली कुर्वंति मामेता भक्षार्थिन्यो महाबलाः ॥१०३॥

था; इस तरह के कटे हुए रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल सेना संग्राम स्थल में गिर पड़ी ॥८९॥ उसके बाद रुरु को छोड़कर सभी दैत्य रणभूमि में आकर मारे गये । उसके बाद सेना को मारी गयी देखकर रुरु ने माया को अपनाया॥९०॥ युद्धस्थल में उसने देवियों तथा देवताओं को मोहित कर दिया । उसकी तामसी माया से सब कुछ घोर अन्धकाराच्छन्न हो गया ॥९१॥ उसके बाद देवी ने महाशक्ति से रुरु को मारा । उस शक्ति के द्वारा रुरु के मारे जाते ही अन्धकार समाप्त हो गया ॥९२॥ तामसी माया के नष्ट हो जाने पर रुरु नामक दैत्य शीघ्र ही पाताल में प्रवेश कर गया । वहाँ भी परमेश्वरी उन सभी देवियों के साथ उसके सामने क्रोध पूर्वक खड़ी हो गयी और सामने विद्यमान भयभीत दानव रुरु के शिर को अपने नख के अग्रभाग से काट दिया । और रुरु के शिर तथ चमड़े को लेकर पाताल से बाहर निकलीं । उसके बाद वे पुष्कर के यज्ञगिरि पर आयीं ॥९३-९५॥ उनके साथ अनेक देदीप्यमान कन्याओं की सेना थी । रुरु के चमड़े तथा शिर को ली हुयी देवी को देखकर देवता आश्चर्यित हो गये॥९६॥ उसके बाद परमेश्वरी अपनी तपस्या के स्थान में आकर बैठ गयी । उसके पश्चात् महाभाग देवियाँ उनको चारो ओर से घेर कर खड़ी हो गयीं ॥९७॥ वे भूखी होने के कारण देवी से भोजन माँगने लगीं उन सबों ने कहा— हे देवि ! हमलोग भूखी हैं, हमलोगों को श्रेष्ठ भोजन दीजिये ॥९८॥ इस तरह से कहने पर देवी ने उन सबों के भोजन का चिन्तन किया । बहुत अधिक चिन्तन करने पर भी उन्हें भोजन की प्राप्ति नहीं हुयी ॥९९॥ उसके बाद महादेवी ने पशुपति महादेव रुद्र का ध्यान किया । ध्यान करते ही त्रिलोचन भगवान् शङ्कर का ध्यान टूट गया॥१००॥ उन्होंने देवी से पूछा कि आप क्या कहना चाहती हैं ? हे महामाये देवि ! आपके मन में जो हो उसे आप बतलाइये ॥१०१॥ **शिवदूती ने कहा**— हे देव ! छाग के भीतर आप छाग रूप से विद्यमान हैं, ये सभी देवियाँ अत्यन्त अभिप्रेत भक्ष्य होने के कारण आपको खायेंगी ॥१०२॥ हे देवेश ! इन सबों को खाने के लिए आप कुछ दीजिये । ये महाबलवान् देवियाँ भोजन चाहती हैं अतएव मुझको ही दुःख दे रही हैं ॥१०३॥ यदि ऐसा नहीं

अन्यथा मामपि बलाद्भक्षयेयु र्बुभुक्षिताः। एवं मां तु समालक्ष्य भक्ष्यं कल्पय सत्वरम्॥१०४॥

रुद्र उवाच

शिवदूति ब्रवीम्येकं प्रवृत्तं यद्युगांतरे। गङ्गाद्वारे दक्षयज्ञो गणैर्विध्वंसितो मम ॥१०५॥
तत्र यज्ञो मृगो भूत्वा प्रदुद्राव सुवेगवान्। मया बाणेन निर्विद्धो रुधिरेण प्रसेचितः ॥१०६॥
अजगंधस्तदाभूतो नाम देवैस्तु मे कृतम्। अजगंधस्त्वमेवेति दास्ये चान्यत्तु भोजनम्॥१०७॥
एतासां शृणु मे देवि भक्ष्यमेकं मयोचितम्। कथ्यमानं वरारोहे कालरात्रि महाप्रभे ॥१०८॥
या स्त्री सगर्भा देवेशि अन्यस्त्रीपरिधानकम्। परिधत्ते स्पृशेद्वापि पुरुषस्य विशेषतः॥१०९॥
स भागोस्तु वरारोहे कासांचित्पृथिवीतले। अप्येकवर्षं बालं तु गृहीत्वा तत्र वै बलात्॥११०॥
भुक्त्वा तिष्ठंतु सुप्रीता अपि वर्षशतान्बहून्। अन्याः सूतिगृहेच्छिद्रं गृह्णीयुस्तु ह्यपूजिताः ॥१११॥
निवसिष्यंति देवेशि तथा वै जातहारिकाः। गृहे क्षेत्रे तटाके च वाप्युद्यानेषु चैव हि ॥११२॥
अन्येषु च रुदंत्यो या स्त्रियस्तिष्ठंति नित्यशः। तासां शरीरगाश्चान्याः काश्चित्तृप्तिमवाप्नुयुः ॥११३॥

शिवदूत्युवाच

कुत्सितं भवता दत्तं प्रजानां परिपीडनम्। न च त्वं बुध्यसे दातुं शंकरस्य विशेषतः ॥११४॥
त्रपाकरं यद्भवति प्रजानां परिपीडकम्। न तु तदयुज्यते दातुं तासां भक्ष्यं तु शङ्कर॥११५॥

रुद्र उवाच

अवंत्यां तु यदास्कंदो मया पूर्वं तु भद्रितः। चूडाकर्मणि वृत्ते तु कुमारस्य तदा शुभे॥११६॥
आगत्य मातरो भक्ष्यमपूर्वंतु प्रचक्रिरे। देवलोकाद्देवगणा मातृणां भोक्तुमागताः ॥११७॥

हुआ तो ये बलपूर्वक मुझको भी खा जायेंगी। इसतरह मुझको देखकर आप शीघ्र इन सबों के भोजन की व्यवस्था करें ॥१०४॥ **रुद्र ने कहा**— हे शिवदूती मैं एक भक्ष्य बतला रहा हूँ जो दूसरे युग में हुआ था। गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में मेरे गणों ने दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त कर दिया था ॥१०५॥ वहाँ पर यज्ञ मृग का रूप धारण करके अत्यन्त वेग से भगा। उसे मैंने अपने बाण से मारा तो वह खून से रङ्ग गया ॥१०६॥ वही अजगंध हो गया। उस समय देवताओं ने मुझे अजगन्ध नाम से कहा कि तुम ही अजगन्ध हो और अन्य भोजन भी मैं दूँगा ॥१०७॥ हे कालरात्रि! हे महाप्रभे देवि! इन सबों के लिए मैं एक उचित भोजन बतला रहा हूँ ॥१०८॥ यदि कोई गर्भवती स्त्री किसी दूसरी स्त्री के वस्त्रों को धारण करती या स्पर्श करती है, अथवा किसी पुरुष के वस्त्रों को पहनती या स्पर्श करती है ॥१०९॥ तो हे वराहे! वह भाग इन देवियों में से कुछ का भाग बन जाय। उसके एक वर्ष के बालक को बलपूर्वक लेकर उसे ये खाकर सैकड़ों वर्षों तक तृप्त बनी रहें। कुछ देवियाँ सूतिका गृह में जब इनकी पूजा न हो तो वे वहाँ पर दोषों को देखती रहें वहीं पर वे निवास करें तथा उत्पन्न शिशु का हरण कर लें। यदि वे स्त्रियाँ गृह में, खेत में अथवा तलाब के किनारे या उद्यान में बैठकर रोती हैं तो कुछ देवियाँ उन स्त्रियों के शरीर में प्रवेश करके उनके शरीर को खाकर तृप्त हो जायँ ॥११०-११३॥ **शिवदूती ने कहा**— आपने तो निन्दित तथा प्रजाओं को दुःख देने वाला ही भक्ष्य इन सबों को प्रदान किया है। आप उस भक्ष्य को नहीं जानते हैं जो कल्याणकारी हो॥११४॥ हे शङ्कर! जो लज्जाकारक तथा प्रजाओं को दुख देने वाला भक्ष्य हो उसे इन सबों को नहीं देना चाहिए॥११५॥ **रुद्र ने कहा**— अवन्ती नगरी में जब मैंने कार्तिकेय का मुण्डन संस्कार कराया, उस समय मङ्गलमय चूडाकरण संस्कार के अवसर पर ॥११६॥ आकर मातृकाओं ने अपूर्व भक्ष्य तैयार किया; उन मातृकाओं

तासां गृहे यदा पूर्वं ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः । गंधर्वाप्सरसश्चैव यक्षास्सर्वे च गुह्यकाः ॥११८॥
मेर्वादयः शिखरिणो गंगाद्याः सरितस्तथा । सर्वे नागा गजास्सिद्धाः पक्षिणोऽसुरसूदनाः ॥११९॥
डाकिन्यः सहवेतालै र्वृताः सर्वै ग्रहै स्तदा । किमुक्तेनामुना देवि यत्सृष्टं ब्रह्मणा त्विह ॥१२०॥
तत्सर्वं भोजनं दत्तं स्वेच्छान्नं च नभोगतम् ।

शिवदूत्युवाच

आसां कृतं देहि भोज्यं दुर्लभं यात्त्रिविष्टपे ॥१२१॥
स्नेहाक्तं सगुडं हृद्यं सुपक्वं परिकल्पितम् । क्वचिन्नान्येन यद्भुक्तमपूर्वं परमेश्वर ॥१२२॥
एवमुक्तस्तदासोऽपि देवदेवो महेश्वरः । भक्ष्यार्थं तास्तदा प्राह पार्वत्याश्चैव सन्निधौ ॥१२३॥
मया वै साधितं चान्नं प्रकारैर्बहुभिः कृतम् । तत् सर्वं च व्ययं यातं नचान्यदिह दृश्यते ॥१२४॥
भवतीष्वागतास्वद्य किं मया देयमुच्यताम् । अपूर्वं भवतीनां यन्मयादेयं विशेषतः ॥१२५॥
आस्वादितं नचान्येन भक्ष्यार्थे च ददाम्यहम् । अधोभागे च मे नाभे र्वर्तुलौ फलसन्निभौ ॥१२६॥
भक्षयध्वं हि सहितालंबौ मे वृषणाविमौ । अनेन चापि भोज्येन परातृप्तिर्भविष्यति ॥१२७॥
महाप्रसादं ता लब्ध्वा देव्यस्सर्वास्तदा शिवम् । प्रणिपत्य स्थिताश्शर्व इदं वचनमब्रवीत् ॥१२८॥
करिष्यंति शुभाचारान्विना हास्येन ये नराः । तेषां धनं पशुः पुत्रा दाराश्चैवगृहादिकम् ॥१२९॥
भविष्यति मया दत्तं यच्चन्यन्मनसि स्थितम् । हास्येन दीर्घदशना दरिद्राश्च भवंति ते ॥१३०॥
तस्मान्ननिंदाहास्यं च कर्तव्यं हि विजानता । भवत्यो मातरः ख्याता ह्यस्मिन्लोकेभविष्यथ ॥१३१॥

के द्वारा बनाये गये भोजन को खाने के लिए देव लोक से देवता आये ॥११७॥ उन मातृकाओं के गृह में सर्वप्रथम ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता आये । फिर गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष समस्त गुह्यक गण ॥११८॥ सुमेरु आदि पर्वत, गङ्गा इत्यादि नदियाँ, सभी नगर, सभी गज, सिद्ध, पक्षीगण, असुरों का मर्दन करने वाली ॥११९॥ वेतालों के साथ डाकिनियाँ, समस्त ग्रहगण भी आये । हे देवि ! अधिक क्या कहना है, ब्रह्माजी की सृष्टि में जितने जीव हैं, उन सबों को वहाँ भोजन कराया गया ॥१२०॥ आकाश पर्यन्त भरा हुआ अन्न, उनकी इच्छा के अनुसार दिया गया । **शिवदूती ने कहा**— इन सबों को आप ऐसा भोजन दीजिए जो त्रैलोक्य में दुर्लभ हो ॥१२१॥ उसे स्निग्ध तथा गुण से युक्त, हृद्य तथा अच्छी तरह से पका हुआ होना चाहिए । हे परमेश्वर उस अन्न को ऐसा होना चाहिए कि उसको कहीं पर कोई खाया न हो ॥१२२॥ इस तरह कहने पर वे देवराध्य महेश्वर भी पार्वतीजी के सामने ही कहे॥१२३॥ जिस अन्न को मैंने स्वयं अनेक प्रकार से सिद्ध किया है वह सब समाप्त हो गया है, उसका कोई भी अंश नहीं बचा है ॥१२४॥ आपलोग भोजन के लिए आयी हैं, अतएव बतलाइये कि मैं क्या दूँ । जो मेरे द्वारा दिया गया अन्न अपूर्व हो ॥१२५॥ अतएव जिसका किसी ने भी अस्वाद नहीं लिया है, उस अपूर्व अन्न को मैं दे रहा हूँ। मेरी नाभि के नीचे जो दो गोल-गोल फल के समान वृषण (अण्डकोश) है ॥१२६॥ उसी को आप सभी खा लें । इस भोज्य पदार्थ से आपलोगों को अत्यन्त तृप्ति होगी ॥१२७॥ उस महाप्रसाद को प्राप्त करके सभी देवियों ने शिव को प्रणाम किया; उस समय शिव ने कहा ॥१२८॥ जो मनुष्य बिना हँसी उड़ाये मङ्गलमय आचारों को करेंगे, उन सबों को मैं धन, पशु, पुत्र, पत्नी तथा गृह आदि ॥१२९॥ प्रदान करूँगा तथा उनके मन में अन्य जो इच्छा होगी उसे भी मैं प्रदान करूँगा । जो लोग इसकी हँसी उड़ाते हुए अपना दाँत दिखायेंगे, उन लोगों को दारिद्र्य की प्राप्ति होगी ॥१३०॥ अतएव इस बात को जानने वाले को इसकी न तो निन्दा करनी चाहिए और न इसकी हँसी करनी

उपहारे नरा ये तु करिष्यंति च कौमुदीम्। चणकान्पूरिकाश्चैव वृषणैः सह पूपकान् ॥१३२॥
बंधुभिः स्वजनैश्चैव तेषां वंशो न छिद्यते। अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥१३३॥
रूपवान् सुभगो भोगी सर्वशास्त्रविशारदः। हंसयुक्तेन यानेन ब्रह्मलोके महीयते॥१३४॥
शिवदूति मयाप्येवं तासां दत्तं च भक्षणम्। त्रपाकरं किं भवत्या उक्तोहं तन्निशामय ॥१३५॥
जयस्व देवि चामुंडे जयभूतापहारिणी। जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोस्तुते ॥१३६॥
विश्वमूर्तियुते शुद्धे विरूपाक्षि त्रिलोचने। भीमरूपे शिवे विद्ये महामाये महोदरे ॥१३७॥
मनोजये मनोदुर्गे भीमाक्षि क्षुभितक्षये। महामारिविचित्रांगि गीतनृत्यप्रिये शुभे ॥१३८॥
विकरालि महाकालि कालिके पापहारिणि। पाशहस्ते दंडहस्ते भीमहस्ते भयानके॥१३९॥
चामुंडे ज्वलमानास्ये तीक्ष्णदंष्ट्रे महाबले। शिवयानप्रिये देवि प्रेतासनगते शिवे ॥१४०॥
भीमाक्षि भीषणे देवि सर्वभूतभयंकरि। करालि विकराले च महाकालि करालिनि॥१४१॥
कालि करालविक्रांते कालरात्रि नमोस्तुते। सर्वशस्त्रभृते देवि नमो देवनमस्कृते ॥१४२॥
एवं स्तुता शिवदूती रुद्रेण परमेष्ठिना। तुतोष परमा देवी वाक्यं चैवमुवाच ह ॥१४३॥
वरं वृणीष्व देवेश यत्ते मनसि वर्तते।

रुद्र उवाच

स्तोत्रेणानेन ये देवि स्तोष्यंति त्वां वरानने ॥१४४॥

चाहिए। आपलोग भी मातृकाओं के नाम से लोक में प्रसिद्ध होंगी ॥१३१॥ जो लोग उपहार के रूप में आपलोगों को प्रकाश, चने से बने भोजन, पूड़ी तथा पूजा प्रदान करेंगे ॥१३२॥ वे अपने बांधवों तथा स्वजनों से सम्पन्न होंगे। उनकी सन्तानों का कभी उच्छेद नहीं होगा। इससे पुत्रहीन पुत्र को तथा धनार्थी धन को प्राप्त कर लेता है ॥१३३॥ वे लोग रूपवान, सुभग, तथा भोग सम्पन्न तथा सभी शास्त्रों में निपुण रहकर मृत्यु के बाद हंसयुक्त विमान के द्वारा ब्रह्मलोक में जायेंगे ॥१३४॥ हे शिवदूती ! मैंने इन सबों को इस प्रकार का भोजन प्रदान किया है। मैंने लज्जाकारक जो कहा है उस को आप देखें ॥१३५॥ हे चामुण्डे देवि ! आपकी जय हो, हे भूतों का अपहरण करने वाली देवि आपकी जय हो। हे सर्वव्यापिके देवि आपकी जय हो, हे कालरात्रि देवि आपको नमस्कार है ॥१३६॥ हे विश्वमूर्ति से युक्ते, हे शुद्धे, हे विरूपाक्षि, त्रिलोचने भयङ्कर रूप वाली, शिवे, कल्याणकारिणि, हे विद्या स्वरूपिणी, हे महामाये, हे महोदरे, आपकी जय हो ॥१३७॥ हे मनोजये, हे मनोदुर्गे, हे भीमाक्षि, हे क्षुभितक्षये ! हे महामारि! हे विचित्रांगि ! हे गीत नृत्य प्रिये ! हे शुभे ॥१३८॥ हे विकराल आकारों वाली, हे महाकाली ! हे कालिके ! हे पापहारिणि (पापों को विनष्ट करने वाली) हे पाशहस्ते (हाथ में पाश धारण करने वाली) हे दण्डहस्ते ! हे भीमहस्ते! हे भयानके (भयानक आकार वाली) ॥१३९॥ हे चामुण्डे, हे ज्वलनास्ये (जलते हुए मुख वाली) हे तीक्ष्ण दंष्ट्रे ! (तीक्ष्ण दांतों वाली) हे महाबले ! हे शिवयान प्रिये देवि ! हे प्रेतासन युते ! हे शिवे !॥१४०॥ हे भीमाक्षि, हे भीषणे देवि, हे सर्वभूतभङ्करि, हे करालि, हे विकरालि ! हे महाकालि ! हे करालिनि ॥१४१॥ हे कालि, हे करालविक्रान्ते, हे कालरात्रि आपको नस्कार है। हे सर्वशस्त्रभृते देवि (सभी शस्त्रों को धारण करने वाली देवि) हे देवनमस्कृते ! तुम्हें नमस्कार है ॥१४२॥ इस तरह परमेष्ठी रुद्र के द्वारा स्तुति किए जाने पर शिवदूती देवी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गयीं और कहीं ॥१४३॥ हे देवेश ! आप अपनी इच्छा के अनुसार वरदान माँगें। **रुद्र ने कहा**— हे वरानने देवि ! इस स्तोत्र के द्वारा जो लोग आपकी स्तुति करें ॥१४४॥ हे सर्वव्यापिके देवि ! उनको आप वरदान

तेषां त्वं वरदा देवि भव सर्वगता सती। इमं पर्वतमारूह्य यः पूजयति भक्तितः॥१४५॥
स पुत्र पौत्रपशुमान् समृद्धिमुपगच्छतु । यश्चैवंशृणुयाद्भक्त्या स्तवं देवि समुद्भवम्॥१४६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छतु। भ्रष्टराज्यो यदा राजा नवम्यां नियतः शुचिः॥१४७॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सोपवासो नरोत्तम । संवत्सरेण लभतां राज्यं निष्कंटकं पुनः ॥१४८॥
एषा ज्ञानान्विता शक्तिः शिवदूतीति चोच्यते। य एवं शृणुयान्नित्यं भक्त्या परमया नृप ॥१४९॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमाप्नुयात्। यश्चैनं पठते भक्त्या स्नात्वा वै पुष्करे जले॥१५०॥
सर्वमेतत् फलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते। यत्रैतल्लिखितं गेहे सदा तिष्ठति पार्थिव॥१५१॥
न तत्राग्निभयं घोरं सर्वचोरादिसंभवम्। यश्चेदं पूजयेद्भक्त्या पुस्तकेपि स्थितं बुधः ॥१५२॥
तेन चेष्टं भवेत् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । जायंते बहवः पुत्राः धनं धान्यं वरस्त्रियः ॥१५३॥
रत्नान्यश्वागजा भृत्यास्तेषामाशु भवंति च । यत्रेदं लिख्यते गेहे तत्राप्येवं ध्रुवं भवेत्॥१५४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे शिवदूतीचरितं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

बतीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वं जायते पुनः। केन वात्र प्रमुच्येत तन्मे ब्रूहि महामते॥१॥

प्रदान करें। जो व्यक्ति इस पर्वत पर चढकर भक्तिपूर्वक आपकी पूजा करे ॥१४५॥ वह पुत्रों पौत्रों तथा पशुओं की समृद्धि से युक्त हो जाय। हे देवि ! जो व्यक्ति इस स्तोत्र को भक्तिपूर्वक सुने और आपकी उत्पत्ति की कथा को सुने॥१४६॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर मुक्ति प्राप्त कर ले। जिसका राज्य भ्रष्ट हो गया हो ऐसा राजा पवित्र होकर यदि अष्टमी तथा चतुर्दशी को व्रत करे वह उत्तम पुरुष एक वर्ष में अपना पुनः राज्य प्राप्त कर ले ॥१४८॥ ज्ञान से युक्त यह शक्ति शिवदूती कहलाती है। हे राजन् ! जो व्यक्ति परमाभक्ति के साथ इस कथा को सुने ॥१४९॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर ले, जो व्यक्ति पुष्कर के जल में स्नान करके इस कथा का भक्तिपूर्वक श्रवण करे ॥१५०॥ वह इन समस्त फलों को प्राप्त करके ब्रह्मलोक में पूजित होता है। हे राजन् ! जिस घर में यह स्तोत्र लिखित रूप से रहता है ॥१५१॥ उस घर में चोर तथा अग्नि आदि का भय नहीं रहता है। जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक पुस्तक में भी विद्यमान इस स्तोत्र की पूजा करता है ॥१५२॥ उसके लिए यह चराचरात्मक त्रैलोक्य प्रिय हो जाय। उसके यहाँ अनेक पुत्र, धन, धान्य तथा श्रेष्ठ स्त्रियाँ हों ॥१५३॥ उन लोगों को शीघ्र ही अनेक प्रकार के रत्न, घोड़े, हाथी तथा नौकर प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ पर यह स्तोत्र लिखित रूप से रहता है, वहाँ भी ये सारी चीजें प्राप्त रहती हैं ॥१५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के शिवदूतीचरित वर्णन नामक इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

प्रेतपंचक की कथा, अन्तरिक्ष स्थित पुष्कर के पृथिवी पर आने का वृत्तान्त वर्णन,कार्तिक पूर्णिमा को पुष्कर में स्नानादि का माहात्म्य, सरस्वती के पाँच स्रोतें का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— जीव किस कर्म के फल स्वरूप प्रेत होता है और किस कर्म को करके वह प्रेतयोनि से

पुलस्त्य उवाच

अहं ते कथायिष्यामि सर्वमेतदशेषतः । यच्छ्रुत्वा नपुनर्मोहं यास्यते नृपसत्तम ॥२॥
येन जायेत प्रेतत्वं येन चास्मात्प्रमुच्यते। प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं त्रिदशैरपि॥३॥
सतां संभाषणे चैव पुण्यतीर्थानुकीर्त्तने । मानवास्तु प्रमुच्यंते आपन्नाः प्रेतयोनिषु ॥४॥
श्रूयते हि पुरा भीष्म ब्राह्मणः संशितव्रतः। पृथुस्सर्वत्रविख्यातः संतोषे च सदा स्थितः ॥५॥
स्वाध्याययुक्तो गेहेषु नित्ययोगश्च योगवित् । जपयज्ञविधानेन युक्तं कालं क्षिपेच्च सः ॥६॥
युक्तः क्षमा दयाभ्यां च क्षांत्या युक्तश्च तत्त्ववित्। अहिंसा हितचितश्च मार्दवे च तथा स्थितः ॥७॥
ब्रह्मचर्यसमायुक्तस्तपो योगसमन्वितः। युक्तः स पितृकार्येषु युक्तो वैदिककर्मसु ॥८॥
परलोकभये युक्तो युक्तस्सत्यवचःप्रति। युक्तो मधुरवाक्येषु युक्तश्चातिथिपूजने ॥९॥
इष्टापूर्तसमायुक्तो युक्तो द्वंद्वविवर्जने। स्वकर्मविधिसंयुक्तो युक्तःस्वाध्यायकर्मसु ॥१०॥
एवं कर्माणि कुर्वतस्संसारविजिगीषया । बहून्यब्दानतीतानि ब्राह्मणस्य गृहे सतः ॥११॥
तस्य बुद्धिरियं जाता तीर्थाभिगमनं प्रति । पुण्यैस्तीर्थजलै रेतत्क्लिन्नं कुर्यां कलेवरम् ॥१२॥
प्रयतः पुष्करे स्नात्वा भास्करस्योदयं प्रति । कृतजप्यनस्कारोप्यद्ध्वानं प्रत्यपद्यत ॥१३॥
अग्रतः पंचपुरुषानपश्यत सोतिभीषणान्। वने कंटकवृक्षाढ्ये निर्जने पक्षिवर्जिते॥१४॥
तान् दृष्ट्वा विकृताकारान् सुघोरान् पापदर्शनान्। ईषत्संत्रस्तहृदयो व्यातिष्ठन्निश्चलाकृतिः ॥१५॥
अवलंब्य ततो धैर्य्यं भयमुत्सृज्य दूरतः । पप्रच्छ मधुराभाषी के यूयं विकृताः कुतः ॥१६॥

मुक्त हो सकता है ? इसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— मैं तुम्हें इन सारी बातों को बतला रहा हूँ। उसको सुनकर हे राजवर्य आपको पुनः मोह नहीं होगा ॥२॥ जिस कर्म को करने से मनुष्य प्रेत होता है, और जिस कर्म को करने से उसको प्रेतत्व से मुक्ति मिलती है अथवा किस कर्म के फल स्वरूप देवताओं को भी भयङ्कर नारकीय यातना भोगनी पड़ती है ॥३॥ सज्जनों के साथ संभाषण (सत्सङ्ग) तथा पावित्र तीर्थ का नाम कीर्तन करने से मनुष्य प्रेतयोनि से छुटकार प्राप्त करते हैं ॥४॥ हे भीष्म ! यह सुना जाता है कि पूर्वकाल में प्रशंसित व्रतों को करने वाले पृथु नाम के ब्राह्मण थे । वे सदा संतोष रखने वाले विख्यात ब्राह्मण थे ॥५॥ वे अपने घर में ही रहकर स्वाध्याय करते थे, वे योगवेत्ता तथा योग करते रहते थे । वे सदा जपयज्ञ में लगे रहकर अपना समय बिताते थे ॥६॥ वे तत्त्ववेत्ता क्षमा तथा दया से युक्त थे । हमेशा अहिंसा का पालन करते थे तथा स्वभाव से मृदु थे ॥७॥ ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले सदा तपस्यारत रहते थे । वे पितृकार्यों तथा वैदिक कार्यों को करने में ही संलग्न रहते थे ॥८॥ उनको परलोक से भय था तथा सदा वे सत्य बोलते थे । वे मधुर बोलते थे तथा अतिथियों का पूजन करते रहते थे ॥९॥ वे इष्टापूर्त (वावली कूप इत्यादि का निर्माण कराना) करते रहते थे तथा सुख दुःख आदि द्वन्द से रहित थे । वे अपने विहित कार्मों को तथा स्वध्याय कर्म को करते रहते थे ॥१०॥ संसार पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से वे इसी प्रकार से कर्मों को करते रहते थे । इस तरह उस ब्राह्मण के अपने घर में रहते हुए अनेक वर्ष बीत गये ॥११॥ उसके बाद उनकी इच्छा तीर्थाटन करने की हुयी । वे सोचे कि तीर्थों के पवित्र जलों से अपने शरीर को मैं पवित्र बना लूँ ॥१२॥ नियमपूर्वक पुष्कर में स्नान करके भगवान् सूर्य के उदित हो जाने पर जप तथा नमस्कार करके जब वे मार्ग में आये ॥१३॥ उसी समय उन्होंने अत्यन्त भयङ्कर पाँच पुरुषों को अपने सामने देखा । वे पुरुष काण्टों वाले घने वृक्षों से भरे हुए तथा पक्षियों से रहित निर्जन वन में विद्यमान थे ॥१४॥ विकृत आकार वाले,

किं वा चैव कृतं कर्म येन प्राप्ताश्च वैकृतम्। कथमेवं विधाः सर्वे प्रस्थिताः कुत्र चाध्वनि ॥१७॥

प्रेता ऊचुः

क्षुत्पिपासान्विता नित्यं महादुःखसमावृताः । हृतप्रज्ञा वयं सर्वे नष्ट सञ्ज्ञा विचेतसः ॥१८॥
न जानीमो दिशं चापि प्रदिशं चापि कांचन। नांतरिक्षं महीं चापि न जानीमो दिवं तथा ॥१९॥
यदेतद्दुःखमाख्यात मेतदेवसुखं भवेत् । प्रभातमिदमाभाति भासकरोदय दर्शनात् ॥२०॥
अहं पर्युषितो नाम सूचीमुखस्तथा परः । शीघ्रगो रोहकश्चैव पंचमो लेखकस्तथा ॥२१॥

ब्राह्मण उवाच

प्रेतानां कर्मार्तानां नाम्नां वै संभवः कुतः । किं तत्कारणमुद्दिश्य यतो यूयं सनामकाः ॥२२॥

प्रेता ऊचुः

अहं स्वादुसदाभुंजे दद्यां पर्युषितं द्विजे। एतत्कारणमासाद्य नाम पर्युषितो मम ॥२३॥
सूचिता बहवोनेन विप्राश्चान्नाद्यकांक्षिणः । एतत्कारणमुद्दिश्यसूचीमुखाभिधो मतः ॥२४॥
शीघ्रं गतोस्मि विप्रेण याचितः क्षुधितेन च । एतत्कारणमुद्दिश्यशीघ्रगो द्विजसत्तम ॥२५॥
गृहोपरि सदा स्वादु भुंक्ते द्विजभयेन हि । उद्विग्नमानसस्तत्र तेनासौ रोहकः स्मृतः ॥२६॥
मौने चापि स्थितो नित्यं याचितो विलिखन्महीम् । अस्माकमपि पापिष्ठो लेखको नाम नामतः ॥२७॥
कृच्छ्रेण लेखको याति रोहकस्तु आवाक्शिराः । शीघ्रगः पंगुतां प्राप्तः सूची सूचीमुखोभवत् ॥२८॥

भयङ्कर तथा पापी उन पुरुषों को देखकर, वे थोड़ा डर गये और वहीं चुपचार खड़े हो गये ॥१५॥ उसके वाद धैर्य धारण करके तथा भय को छोड़कर उन सवों से मधुर वाणी में पूछे; आपलोग कौन हैं ? और आपलोगों का आकार क्यों विकृत हैं ?॥१६॥ आपलोगों ने कौन सा कर्म किया है; जिसके कारण इस तरह का आपलोगों का आकार हो गया ?। आपलोग यहाँ पर क्यों रास्ते में खड़े हैं ?॥१७॥ **प्रेतों ने कहा—** हमलोग भूखे-प्यासे हैं, हमलोगों को वड़ा ही कष्ट है । हम सवों का ज्ञान नष्ट हो गया है, हमारी चेतना भी समाप्त हो गयी है ॥१८॥ हमलोगों को दिशाओं और विदिशाओं का कोई भी ज्ञान नहीं है । हमलोग अंतरिक्ष, पृथिवी तथा स्वर्गलोक को भी नहीं जानते हैं॥१९॥ हमलोग दुःख को ही सुख समझ लेते हैं । सूर्योदय को ही देखकर हम जानते हैं कि सबेरा हो गया ॥२०॥ मेरा नाम पर्युषित है, इस दूसरे का नाम सूचीमुख है, तीसरे का नाम शीघ्रग है, चौथे का नाम रोहक है और पाञ्चवें का नाम लेखक है ॥२१॥ **ब्राह्मण ने कहा—** आपलोग तो अपने कर्म के फल स्वरूप प्रेत हो गये हैं अतएव आपलोगों का नाम कैसें सम्भव है ? किस कारण से आपलोगों के ये नाम हो गये हैं ?॥२२॥ **प्रेतों ने कहा—** मैं सदा स्वादिष्ट वस्तु खाता था और ब्राह्मणों को वासी वस्तुएँ देता था, इसी कारण से मेरा नाम पर्युषित हो गया॥२३॥ इस दूसरे सूचीमुख ने भूखे वहुत से ब्राह्मणों को मार दिया था, इसीकारण से इसका नाम सूचीमुख है ॥२४॥ तीसरा यह शीघ्रग है, किसी भूखे ब्राह्मण के मांगने पर यह शीघ्रता से चल देता था । हे द्विजश्रेष्ठ ! इसी कारण से इसका नाम शीघ्रग है ॥२५॥ इस चौथे का रोहक नाम इसलिए है कि यह अकेले ही छिपकर अच्छी वस्तुएँ खा लेता था कि कोई ब्राह्मण मुझसे इन सब वस्तुओं को माँग न ले । अतएव यह रोहक है ॥२६॥ यह लेखक हम पाँचों में सबसे बड़ा पापी है । यह किसी ब्राह्मण के कुछ माँगने पर मौन होकर खड़ा हो जाता था अथवा अपने पैर से जमीन कुरेदने लग जाता था ॥२७॥ यह लेखक लङ्गड़ा है, बड़ी मुश्किल से चल पाता है, इस रोहक को शिर नीचे और पैर ऊपर करके चलना पड़ता है । यह शीघ्रग लङ्गडा हो गया है सूचीमुख का मुँह सूई से सिल दिया गया है ॥२८॥

पर्युषितो लम्बग्रीवो लंबोदर उदाहृतः। बृहद्वृषणलंबोष्ठः पापादस्मादजायत ॥२९॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तं सहेतुकम्। पृच्छस्व यदि ते श्रद्धा पृष्टाश्च कथयामहे ॥३०॥

ब्राह्मण उवाच

ये जीवा भुवि तिष्ठंति सर्वेप्याहारमूलकाः। युष्माकमपि चाहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३१॥

प्रेता ऊचुः

शृणुष्वाहारमस्माकं सर्वसत्वविगर्हितम्। यच्छ्रुत्वा निंदसे विप्र भूयो भूयश्च नित्यशः॥३२॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषेण योषिदङ्गमलेन च। गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रेताभुंजंति तत्र वै ॥३३॥
स्त्रीभिर्दग्धानि कीर्णानि प्रकीर्णोच्छिष्टकानि च। मलेनापि जुगुप्स्यानि प्रेता भुंजंति तत्र वै ॥३४॥
चित्तलज्जाविहीनानि होमहीनानि यानि च। व्रतैश्चैव विहीनानि प्रेता भुंजंति तत्र वै ॥३५॥
गुरवो नैव पूज्यंते स्त्रीजितानि गृहाणि च। क्रोधलोभगृहीतानि प्रेता भुंजंति तत्र वै॥३६॥
त्रपा मे जायते तात कथ्यमानेस्वभोजने। अस्मात् परतरं चान्यन्न वक्तुमपि शक्यते ॥३७॥
निवृत्तिं प्रेतभावस्य पृच्छामस्त्वां दृढव्रत। यथा न भवति प्रेतस्तन्मे वद तपोधन॥३८॥

ब्राह्मण उवाच

एकरात्रद्विरात्रादि कृच्छ्रचांद्रायणादिभिः। व्रतैरन्यैःकृतै र्नित्यं न प्रेतो जायते नरः ॥३९॥
त्रीनग्नीन्पञ्च चैकं वा योहन्यहनि सेवते। सर्व भूतदयापन्नो न प्रेतो जायते नरः॥४०॥
तुल्यो मानेऽपमाने च तुल्यः कांचनलोष्टयोः। तुल्यः शत्रौ च मित्रे च न प्रेतो जायते नरः ॥४१॥

मैं पर्युषित हूँ। मेरी गर्दन लम्बी हो गयी है और पेट बड़ा हो गया है। पाप के कारण मेरे अण्डकोश बड़े हो गये हैं, ओठ लम्बे हो गये हैं। यह इसी पाप का फल है। इसतरह से हमलोगों ने अपना वृत्तान्त बतलाया। आपका मन हो तो दूसरा कुछ भी पूछिये। पूछने पर हमलोग बतलायेंगे ॥२९-३०॥ **ब्राह्मण ने कहा**— संसार में रहने वाले सभी जीवों को अपने आहार के ही बलपर रहना पड़ता हे। अतएव आपलोगों का आहार क्या है ? उसे आप हमें बतलायें ॥३१॥ **प्रेतों ने कहा**— हमलोगों का आहार अत्यन्त निन्दित है, उसे आप सुनें। उसको सुनकर आप हमारी बार-बार निन्दा करेंगे ॥३२॥ बलगम, पेशाब, विष्ठा और स्त्रियों के शरीर का मल, ये ही हमारे भोजन हैं। जिस घर में पावित्र्य का पालन नहीं किया जाता है, उस घर में प्रेत भोजन करते हैं ॥३३॥ जिस घर में स्त्रियों द्वारा जले हुए तथा इधर-उधर छीटें गये जूठे पड़े रहते हैं, जो विष्ठा से भी अधिक घृणित पदार्थ हैं, वे जहाँ रहते हैं, वहीं पर प्रेत भोजन करते हैं ॥३४॥ जिस घर के लोगों में निर्लज्जता है, होम नहीं किया जाता है, जहाँ के लोग व्रत नहीं करते हैं, उस स्थान पर प्रेत भोजन करते हैं ॥३५॥ जिस घर में अपने से बड़े लोगों का अपमान होता है, जिस घर मे स्त्रियों का ही प्रभुत्व हो और घर में रहने वाले लोग क्रोधी और लोभी हों उसी घर में प्रेत भोजन करते हैं ॥३६॥ हे तात ! हमे अपने भोजन का वर्णन करने में स्वयं लज्जा होती है, अतएव इससे अधिक मैं वर्णन नही कर सकता हूँ ॥३७॥ हे दृढव्रत ! हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि किस कर्म के करने से प्रेतत्व से मुक्ति मिलती है ? जिसके करने से जीव प्रेत नहीं होता है, हे तपोधन ! हमें उस साधन को आप बतलाइये ॥३८॥ **ब्राह्मण ने कहा**— एक रात अथवा दो रातों का भी कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत करने वाला भी मनुष्य प्रेत नहीं होता है। दूसरे व्रतों को भी करने से जीव प्रेत नहीं होता है ॥३९॥ जो व्यक्ति प्रतिदिन तीन अग्नियों अथवा पञ्चग्नियों का सेवन करता है, वह प्रेत नहीं होता है। दूसरे जीवों पर दया करने वाला प्रेत नहीं होता है ॥४०॥ जो व्यक्ति मान तथा

देवतातिथिपूजासु गुरुपूजासु नित्यशः । रतो वै पितृपूजासु न प्रेतो जायते नरः ॥४२॥
शुक्लांगारकसंयुक्ता चतुर्थी जायते यदा । श्रद्धया श्राद्धकृत्तस्यां न प्रेतो जायते नरः ॥४३॥
जितक्रोधविमर्शो यस्तृष्णासंगविवर्जितः। क्षमावान् दानशीलश्च न प्रेतो जायते नरः ॥४४॥
गोब्राह्मणांश्च तीर्थानि पर्वतांश्च नदीस्तथा । देवांश्चैव तु यो वन्द्यान्न प्रेतो जायते नरः ॥४५॥

प्रेता ऊचुः

श्रुताश्च विविधा धर्माः पृच्छामो दुःखिता मुने । येन वै जायते प्रेतस्तन्नो वद महामते ॥४६॥

ब्राह्मण उवाच

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन ब्राह्मणेन विशेषतः । म्रियते ह्युदरस्थेन स वै प्रेतो भवेन्नरः ॥४७॥
मातरं पितरं भ्रातॄन् भगिनीं सुतमेव च । अदृष्टदोषांस्त्यजति स प्रेतो जायते नरः ॥४८॥
अयाज्ययाजनाच्चैव याज्यस्य च विवर्जनात् । रतो वै शूद्रसेवासु स प्रेतो जायते नरः ॥४९॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् शूद्रपाकरतः सदा । विस्रम्भघाती कूटस्थः स प्रेतो जायते नरः ॥५०॥
ब्रह्महा गोघ्नकः स्तेनः सुरापो गुरुतल्पगः । भूमि कन्यापहर्त्ता च स प्रेतो जायते नरः ॥५१॥
सामान्यां दक्षिणां लब्ध्वा एक एव निगूहति । नास्तिकीभावनिरतः स वै प्रेतोभिजायते ॥५२॥
एवं ब्रुवाणे विप्रेन्द्रे आकाशे दुंदुभिस्वनः । पुष्पवृष्टिः पपातोर्व्यां देवैर्मुक्ता सहस्रशः ॥५३॥

अपमान दोनों को एक समान मानता है, अथवा सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले दोनों को एक समान समझता है, शत्रु तथा मित्र दोनों के साथ एक समान व्यवहार करने वाला भी प्रेत नहीं होता है ॥४१॥ जो व्यक्ति देवता, अतिथि तथा गुरुजन की पूजा करता है, पितरों का पूजन करता है वह व्यक्ति प्रेत नहीं होता है ॥४२॥ जिस दिन शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि हो उस दिन जो श्रद्धा पूर्वक अपने पितरों का श्राद्ध करता है, वह प्रेत नहीं होता है । शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को यदि भौमवार हो उस दिन यदि कोई पितरों श्राद्ध करता है तो वह मृत्यु के पश्चात् प्रेत नहीं होता है।॥४३॥ जो विचारशील व्यक्ति अपने क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेता है तथा जो लालच तथा आसक्ति से रहित होता है, क्षमा करने वाला तथा दानशील होता है, वह मृत्यु के पश्चात् प्रेत नहीं होता है ॥४४॥ जो गौ, ब्राह्मण, तीर्थ, नदी, पर्वत तथा देवताओं की वन्दना करता है, वह मृत्यु के पश्चात् प्रेत नहीं होता है ॥४५॥ **प्रेतों ने कहा**— हे मुने ! हमलोगों ने अनेक धर्मो को आपसे सुना, किन्तु दुःखी होने के कारण हम आप से पूछते हैं; आप हमें उन कर्मो को बतलायें जिनके कारण कोई प्रेत होता है ॥४६॥ **ब्राह्मण ने कहा**— यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र का अन्न खाय और उस अन्न को पचाये बिना ही यदि मर जाय तो वह मरकर प्रेत होता है ॥४७॥ यदि कोई अपने निर्दोष माता-पिता, भाई-बहन तथा पुत्र का परित्याग कर देता है तो वह मर कर प्रेत होता है ॥४८॥ अयाज्य याजन कराने वाला तथा याज्य के याजन का परित्याग करने वाला, तथा शूद्रों की सेवा करने वाला ब्राह्मण मर कर प्रेत होता है।॥४९॥ किसी के धरोहर को हड़पने वाला, मित्र से द्रोह करने वाला, शूद्र का भोजन बनाने वाला, विश्वस्त व्यक्ति के साथ विश्वासघात करने वाला तथा कूटभाषी (झगड़ा लगाने वाला) व्यक्ति मरकर प्रेत होता है ॥५०॥ ब्राह्मण तथा गौ की हत्या करने वाला, चोर, शराबी, गुरु की पत्नी के साथ अवैध सम्बन्ध रखने वाला, भूमि तथा कन्या का अपहरण करने वाला ये सबके सब मरकर प्रेत होते हैं ॥५१॥ सम्मिलित रूप से सबों की दक्षिणा लेकर जो ब्राह्मण अकेले उसे छिपा कर रख लेता है, सदा नास्तिकता से युक्त रहने वाला ये सबके सब मर कर प्रेत होते हैं ॥५२॥ जिस समय वह ब्राह्मण इस तरह की बातें कह रहा था उसी समय आकाश में दुन्दुभि की ध्वनि होने लगी और

प्रेतानां तु विमानानि आगतानि समंततः । अस्य विप्रस्य संभाषात्पुण्यसंकीर्तनेन च ॥५४॥
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन सतां संभाषणं कुरु । यदि ते श्रेयसा कार्यं गङ्गासुत अतंद्रितः ॥५५॥
तिलकं सर्वधर्मस्य पञ्च प्रेतकथामिमाम् । पठेल्लक्षं योऽस्य कुले न प्रेतो जायते नरः ॥५६॥
श्रृणोति वाप्यभीक्ष्णं वा श्रद्धया परयान्वितः । भक्त्या समन्वितो वापि न प्रेतो जायते नरः ॥५७॥

भीष्म उवाच

अंतरिक्षे किमर्थं तु पुष्करं परिकीर्त्यते । मुनिभिर्धर्मशीलैश्च लभ्यते तत्कथं त्विह ॥५८॥
येन तल्लभ्यते लब्धं लब्धं चैव फलप्रदम् । तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कौतुकादेव पृच्छतः ॥५९॥

पुलस्त्य उवाच

ऋषिकोटिस्समायाता दक्षिणापथवासिनी । स्नानार्थं पुष्करे राजन् पुष्करं च वियद्गतम् ॥६०॥
मत्वा ते मुनयः सर्वे प्राणायामपरायणाः । ध्यायमानाः परंब्रह्म स्थिता द्वादशवत्सरान् ॥६१॥
ब्रह्मा महर्षयस्तत्र देवास्सेन्द्रास्समागताः । ऋषयोन्तर्हिताः प्रोचुर्नियमांस्ते सुदुष्करान् ॥६२॥
आकारणं पुष्करस्य मंत्रेण क्रियतां द्विजाः । आपोहिष्ठेति तिसृभि र्ऋग्भिः सांनिध्यमेष्यति ॥६३॥
अघमर्षणजप्येन भवेद्धै फलदायकम् । विप्रैर्वाक्यावसाने तु सर्वैस्तैस्तु तथाकृतम् ॥६४॥
कृतेन पुण्यतां प्राप्ता ये निदेशाच्च ते द्विजाः । गर्हिता धर्मशास्त्रेषु ते विप्रा दक्षिणोत्तराः ॥६५॥
ये चान्ये पार्वतीयाश्च श्राद्धेनार्हन्ति केतनम् । एतस्मात्कारणाद्राजन् वियत्येवं समास्थितम् ॥६६॥
कार्तिक्यां पुष्करं स्नानात्पूततामभियच्छति । ब्रह्मणा सहितं राजन्सर्वेषां पुण्यदायकम् ॥६७॥

देवताओं ने अनेक प्रकार के पुष्पों की वृष्टि की ॥५३॥ उसी समय प्रेतों के लिए विमान आ गये, क्योंकि उस ब्राह्मण के साथ प्रेतों की वर्ता हुयी थी और उस ब्राह्मण ने पुण्यों का वर्णन किया था ॥५४॥ हे गङ्गापुत्र ! यदि तुम्हे कल्याण प्राप्त करना हो तो निरालस होकर तुम भी हर प्रकार के प्रयास द्वारा सज्जनों के साथ बाते करो ॥५५॥ पाँच प्रेतों की यह कथा सभी धर्मो में श्रेष्ठ है, जो इस कथा को पढता है, वह मृत्यु के बाद प्रेत नहीं होता है ॥५६॥ अथवा जो व्यक्ति अत्यन्त श्रद्धा सम्पन्न होकर इस कथा का श्रवण करता है, वह मरकर प्रेत नहीं होता है ॥५७॥ **भीष्मजी ने कहा**— पुष्कर को अन्तरिक्षस्थ क्यों बतलाया जाता है ? क्यों यह कहा जाता है कि धर्मशील मुनिगण ही उसे प्राप्त करते हैं ॥५८॥ जिसने इस पुष्कर को प्राप्त किया तथा उसे प्राप्त करके जिस फल को प्राप्त किया, उन सारी बातों को आप मुझे बतलायें, मैं इस बात को कौतुकवशात् पूछ रहा हूँ ॥५९॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— हे राजन् ! एक बार दक्षिणापथ में रहने वाले करोड़ो मुनिगण पुष्कर में स्नान करने के लिए आये ॥६०॥ प्राणायाम परायण वे लोग पुष्कर को आकाश स्थित मानकर परंब्रह्म का ध्यान करते हुए बारह वर्षो तक वहाँ रहे ॥६१॥ उस समय वहाँ, ब्रह्माजी, महर्षिगण, इन्द्र तथा सभी देवता आकर अन्तर्धान ही रहकर उन्हें अत्यन्त दुष्कर नियमों को वतलाये ॥६२॥ उन लोगों ने कहा हे ऋषियों ! आपलोग आवाहन मन्त्र से पुष्कर का आवाहन कीजिये । **आपो हिष्ठाः** इत्यादि तीन मन्त्रों से आवाहन करने पर वह पुष्कर सन्निकट आ जायेगा ॥६३॥ अघमर्षण मन्त्र का जप करने से वह फलप्रद होता है । यह सुनकर उन ब्राह्मणों ने वैसा ही किया ॥६४॥ जिन ब्राह्मणों ने कर्म करके पुण्य प्राप्त किया है, अथवा जो कहने मात्र के लिए ब्राह्मण है, जिनको धर्मशास्त्रों में निन्दित बतलाया गया है, वे ब्राह्मण दक्षिणोत्तर है ॥६५॥ जो पार्वतीय ब्राह्मण, हैं, उनको श्राद्ध में नहीं सम्मिलित किया जाता है । हे राजन् ! इसी कारण पुष्कर आकाश में ही स्थित है ॥६६॥ कार्तिक पूर्णिमा के दिन उसमें स्नान करने से वह पावित्र्य प्रदान करता

तत्रागतास्तु ये वर्णाः सर्वे ते पुण्यभाजनाः । द्विजैस्तुल्या न संदेहो विना मंत्रेण ते नृप ॥६८॥
आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित्। महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नाने दाने तथोत्तमा ॥६९॥
यदा याम्यं तु भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित् । तिथिः सापि महापुण्या यतिभिः परिकीर्तिता ॥७०॥
प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप । सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥७१॥
यदाचार्के गुरौ सोमे वारेष्वेतेषु वै त्रिषु । त्रीण्येतानि च ऋक्षाणि स्वयं प्रोक्तानि ब्रह्मणा॥७२॥
अत्राश्वमेधिकं पुण्यं स्नातस्य भवति ध्रुवम् । दानमक्षयतां याति पितृणां तर्पणं तथा ॥७३॥
विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चंद्रमाः । सयोगः पुष्करो नाम पुष्करेष्वति दुर्लभः ॥७४॥
अंतरिक्षावतीर्णे तु तीर्थे पैतामहे शुभे । स्नानं येऽत्र करिष्यंति तेषां लोका महोदयाः ॥७५॥
नस्पृहां तेन्यपुण्यस्य कृतस्याप्यकृतस्य च । करिष्यंति महाराज सत्यमेतदुदाहृतम् ॥७६॥
तीर्थानां प्रवरं तीर्थं पृथिव्यामिह पठ्यते । नास्मात्परं पुण्यतीर्थं लोकेषु नृप पठ्यते ॥७७॥
कार्तिक्यां तु विशेषेण पुण्या पापहरा शुभा। उदुंबरवनात्तस्मादागाता च सरस्वती ॥७८॥
तया तत्पूरितं तीर्थं पुष्करं मुनिसेवितम् । दक्षिणे शिखरं भाति पर्वतस्याविदूरतः ॥७९॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यं वर्णतो नीलशाद्वलम् । तया तच्छिखरं तस्य खस्थितं पुष्करं यथा ॥८०॥
प्रावृट्काले वियत्पूर्णं घनवृंदमिवोच्छ्रितम्। कदंबपुष्पगंधाढ्यं कुटजार्जुनभूषितम् ॥८१॥
रथमार्गमिवारोढुं रवेस्तच्छिखरं स्थितम् । वृत्तैस्सपुलकैस्स्निग्धैः स्त्रीणामिव पयोधरैः ॥८२॥

है । हे राजन् ! वह पुष्कर ब्रह्माजी के साथ सबों को भी पुण्य प्रदान करता है ॥६७॥ वहाँ पर जिस वर्ण के भी मनुष्य आ जायँ वे सभी पुण्य के भागी होते हैं । वे मन्त्र के बिना भी ब्राह्मणों के सदृश हो जाते है ॥६८॥ यदि कार्तिक पूर्णिमा के दिन अग्नि देवताक कृतिका नक्षत्र हो तो उसे महती तिथि समझना चाहिए तथा वह स्नान एवं दान के लिए उत्तम हैं ॥६९॥ यदि उस तिथि को यम देवताक भरणी नक्षत्र हो तो उसे यति जनों ने अत्यन्त पुण्यप्रद तिथि बतलाया है ॥७०॥ हे नराधिप ! यदि उस तिथि को प्रजापति देवताक रोहिणी नक्षत्र हो तो उस तिथि को महाकार्तिकी कहा गया है वह देवताओ को भी दुर्लभ है ॥७१॥ यदि ये तिथियाँ रवि, गुरु अथवा सोमवार को उपर्युक्त नक्षत्र से युक्त हों तो उस दिन पुष्कर में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है, यह ब्रह्माजी ने कहा है । तथा इस तिथि को किया हुआ दान एवं पितरों को तर्पण अक्षय होता है ॥७२-७३॥ यदि विशाखा नक्षत्र में सूर्य हों तथा कृत्तिका नक्षत्र में चन्द्रमा हों तो उसे पुष्करयोग कहते है, और पुष्करों में वह दुर्लभ होता है ॥७४॥ अन्तरिक्ष से अवतीर्ण हुए ब्रह्माजी का तीर्थ (पुष्कर) में उस समय जो स्नान करता है, उसको अत्यन्त आभ्युदयिक लोकों की प्राप्ति होती है ॥७५॥ हे महाराज ! मैं यह सत्य कहता हूँ कि वे लोग किसी दूसरे पुण्य को करने अथवा नहीं करने की इच्छा नहीं करेंगे ॥७६॥ हे राजन् ! पुष्कर तीर्थ सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है, इससे बढकर कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है ॥७७॥ उदूम्बर वन से आयी हुयी सरस्वती नदी कार्तिक पुर्णिमा के दिन विशेष रूप से पुण्यों को प्रदान करने वाली तथा पापों को विनष्ट करने वाली होती है ॥७८॥ उस सरस्वती नदी ने ही पुष्कर तीर्थ को जल से भर दिया है । वह पर्वत के सन्निकट दक्षिण शिखर पर सुशोभित होती है ॥७९॥ वह शिखर नीलाञ्जन (काजल) के समान वर्ण वाला तथा घासों से भरा है । उस सरस्वती नदी के द्वारा वह शिखर पुष्कर के समान स्थित है ॥८०॥ वर्षाकाल में आकाशस्थ मेघ वृन्द के समान काला-काला प्रतीत होता है । वह कदम्ब पुष्प की सुगन्धि से भरा हुआ तथा कुटज एवं अर्जुन वृक्षों से भरा हुआ है ॥८१॥ लगता है कि जैसे वह शिखर सूर्य रथ के ऊपर चढने का

श्रीफलैः शिखरं भाति समन्तात्सुमनोहरैः। गुंजद्भिः षट्पदकुलैः समंतादुपशोभितम् ॥८३॥
कोकिलारावरुचिरं शिखिकेकारवाकुलम्। शृंगे मनोहरे तस्मिन्नुद्गतासु मनोरमा॥८४॥
पुण्यापुण्यजलोपेता नदीयं ब्रह्मणस्सुता। वंशस्तम्बात्सुविपुला प्रवृत्ता चोत्तरामुखी ॥८५॥
गत्वा ततो नाति दूरात्पुनर्याति पराङ्मुखी। ततः प्रभृति सा देवी प्रसन्ना प्रकटा स्थिता ॥८६॥
अन्तर्धानं परित्यज्य प्राणिनामनुकम्पया। कनका सुप्रभा चैव नन्दा प्राची सरस्वती ॥८७॥
पंचस्त्रोताः पुष्करेषु ब्रह्मणा परिभाषिता। तस्यास्तीरे सुरम्याणि तीर्थान्यायतनानि च ॥८८॥
संसेवितानि मुनिभिः सिद्धैश्चापि समंततः। तेषु सर्वेषु भविता धर्महेतुः सरस्वती॥८९॥
हाटकाक्षितिगौरीणां तत्तीर्थेषु महोदयम्। दानं दत्तं नरैः स्नातैर्जनयत्यक्षयं फलम्॥९०॥

धान्यप्रदानं प्रवरं वदंति तिलप्रदानं च तथामुनींद्राः।
यैस्तेषु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुप्रवरं प्रदिष्टम् ॥९१॥
प्रायोपवेशं प्रयतः प्रयत्नाद् यस्तेषु कुर्यात्प्रमदा पुमान्वा।
तीर्थेपि संयोज्य मनोपि चेत्थं भुंक्ते फलं ब्रह्मगृहे यथेष्टम् ॥९२॥
तस्योपकंठे म्रियते हि यैस्तु कर्मक्षयात् स्थावरजंगमैश्च।
ते चापि सर्वे सकलं प्रसह्य लभंति यज्ञस्य फलं दुरापम् ॥९३॥
ततस्तु सा धर्मफलारणी च जन्मादिदुःखार्दितचेतसां तु।
सर्वात्मना चारुफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषै र्महानदी ॥९४॥

तत्र ये सलिलं पूतं पिबंति सततं नराः। न ते मनुष्या देवास्ते जगत्यामिह संस्थिताः ॥९५॥

मार्ग हो। सुन्दर, विकसित तथा सघन विल्वों के द्वारा वह रोमाञ्च युक्त स्निग्ध तथा वस्त्राच्छादित स्त्रियों के स्तन के समान प्रतीत होता है। वह शिखर हर ओर से गुनुगुनाते हुए भ्रमरों से सुशोभित होता है ॥८२-८३॥ कोयलों की ध्वनि तथा मयूरों की केका ध्वनि से वह शिखर सुशोभित होता है। उस सुन्दर शिखर से अत्यन्त सुन्दर तथा पवित्र सरस्वती नदी निकलती है ॥८४॥ पवित्र जल से युक्त सरस्वती नदी ब्रह्माजी की पुत्री है। वंश स्तम्ब से वह धारा विस्तृत हो जाती है, वहाँ से थोड़ी दूर तक वह उत्तर की ओर प्रवाहित होती है। थोड़ी दूर के बाद वह पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। वहाँ से प्रसन्न वह सरस्वती देवी प्रकट हो जाती है ॥८५-८६॥ वह प्राणियों पर कृपा करने के लिए अन्तर्धान नहीं होती हैं। पुष्करतीर्थ में ब्रह्माजी ने सरस्वती नदी के पाँच स्त्रोतों का वर्णन किया है। वे स्त्रोत हैं १. कनका, २. सुप्रभा, ३. नन्दा, ४. प्राची और ५. सरस्वती ॥८७॥ सरस्वती नदी के तट में अत्यन्त मनोहर तीर्थ तथा मन्दिर विद्यमान हैं ॥८८॥ उन सबों में सिद्धों तथा मुनियों का निवास है। उन सबों में होने वाले धर्मों का कारण सरस्वती नदी है ॥८९॥ उन तीर्थों मे स्नान करके सुवर्ण, पृथिवी तथा कन्या का दान करना अक्षय फलप्रद होता है ॥९०॥ मुनीन्द्रो ने वहाँ पर अन्नदान करने तथा तिलदान करने का श्रेष्ठ फल बतलाया है। उन तीर्थों में अन्नदान करने को अत्यन्त कल्याणप्रद बलाया गया है ॥९१॥ जो स्त्री अथवा पुरुष संयम पूर्वक रहकर वहाँ पर प्रयत्नपूर्वक उपवास करते हैं, वे ब्रह्मलोक में जाकर यथेष्ट फल को प्राप्त करते हैं ॥९२॥ जो स्थावर अथवा जङ्गम प्राणी कर्म का क्षय हो जाने के कारण सरस्वती के तट पर अपने शरीर को त्यागते हैं, वे भी यज्ञों के दुष्प्राप्य फल को प्राप्त करते है ॥९३॥ अतएव जन्मादि दुःखों से संतप्त जीवों के लिए यह सरस्वती नदी धर्मरूपी फल को प्रदान करती है। वह सरस्वती नदी हर प्रकार से मनोहर फल प्रदान करने वाली है, अतएव मनुष्यों को उसका

यज्ञै दनैस्तपोभिश्च यत्फलं प्राप्यते द्विजैः । तदत्रस्नानमात्रेण शूद्रैरपि स्वभावजैः ॥९६॥
दर्शनात्पुष्करस्यापि महापातकिनोपि ये । तेऽपि तत्पापनिर्मुक्ताः स्वर्गं यांति तनुक्षये ॥९७॥
तत्रोपवासी यज्ञस्य पुंडरीकस्य यत् फलम् । तत्प्राप्नोति नरः क्षिप्रमल्पायासेन पुष्करे ॥९८॥
माघमासे तिलान्यस्तु प्रयच्छति च सद्द्विजे । यथाशक्ति च भक्त्या च सविष्णुभवने वसेत् ॥९९॥
तत्रोपवासं स्नानं च पंचगव्याशनं तथा । यःकरोति नरः सोपि देहांते स्वर्गमाप्नुयात् ॥१००॥
वसंति तत् समीपस्था येपि तस्करजातयः। तेपि तस्यानुभावेन स्वर्यान्ति च न संशयः॥१०१॥
ये पुनः शूद्रवृत्तिस्थास्त्रिरात्रोपोषिता नराः । प्रयच्छंति द्विजेष्वर्थं ब्रह्मशक्तिसमन्विताः ॥१०२॥
ते मृता यानमारूढाः पद्मासनचतुर्भुजाः । ब्रह्मणा सह सायुज्यं प्राप्नुवंत्यपुनर्भवम् ॥१०३॥
गङ्गोद्भेदं यत्र गङ्गा संप्राप्ता सरितांवराम् । सरस्वतीं द्रष्टुकामा सांत्वार्थे प्रोद्गतांबरात् ॥१०४॥
तत्र गत्वा पयः पूतं सुरसिद्धनिषेवितम् । सारस्वतं च विमलं विद्याधरगणार्चितम् ॥१०५॥
पीतमेकांजलिमितं ये नाप्तं तेन तत्परम्। अवलोक्य दिशं पूर्वमाह गंगे सखि त्वया ॥१०६॥
एकाकिनी वियुक्तास्मि क्व यास्येहमबांधवा । तां विज्ञाय ततो गङ्गा रुदंती शोककर्शिताम्॥१०७॥
पूर्वदिशात् समायाता द्रष्टुं तां दीनमानसाम्। दृष्ट्वा च तां महाभागा पष्विज्य तु पीडिताम्॥१०८॥
नेत्रे प्रमृज्य चैतस्याः प्राह गङ्गा वचस्तदा । मारोदीस्त्वं महाभागे दुष्करं ते कृतं सखि ॥१०९॥
देवकार्यं यदन्येन कर्तुंशक्येत नैवहि। एतस्मात्ते महाभागे द्रष्टुं देवाः समागताः॥११०॥

प्रयास पूर्वक सेवन करना चाहिए ॥९४॥ जो लोग सरस्वती नदी के जल को ही सदा पीते हैं वे इस संसार में भी रहने वाले देवता हैं मनुष्य नहीं ॥९५॥ ब्राह्मण लोग अन्यत्र यज्ञ, दान तथा तपस्या के द्वारा जिस फल को प्राप्त करते हैं, उस फल की प्राप्ति यहाँ शूद्रों को भी केवल स्नान करने से ही हो जाती है ॥९६॥ यदि कोई महापातकी पुष्करों का केवल दर्शन भी करता है तो वह अपने पापों को विनष्ट करके शरीर त्याग करके स्वर्ग में चला जाता है॥९७॥ अन्यत्र पौण्डरीक यज्ञ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति पुष्कर में उपवास करने मात्र से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥९८॥ माघ के महीने में यदि कोई किसी ब्राह्मण को यहाँ अपनी भक्ति तथा शक्ति के अनुसार तिल दान करता है, वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥९९॥ वहाँ पर कोई मनुष्य यदि स्नान करके पञ्चगव्य प्राशन करके उपवास करता है तो वह भी शरीर त्याग के बाद स्वर्ग जाता है ॥१००॥ पुष्कर के सन्निकट में जो चोर जाति के लोग निवास करते हैं वे भी पुष्कर के प्रभाव से स्वर्गलोक में जाते हैं; इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१०१॥ शूद्रवृत्ति से भी रहने वाले जो लोग तीन दिन तक वहाँ रहकर उपवास करते हैं तथा ब्राह्मणों को धन दान करते हैं, वे ब्रह्म शक्ति से सम्पन्न होकर मरने के बाद विमान पर चढकर चार भुजाओं वाले ब्रह्मा बनकर ब्रह्माजी से सायुज्य को प्राप्त करते हैं और पुनः इस संसार में नहीं आते हैं ॥१०३॥ पुष्कर तीर्थ के ब्रह्मोद्भेद नामक तीर्थ में ही गङ्गा नदी श्रेष्ठ सरस्वती से मिलने के लिए आयी थीं, वे आकाश से यहाँ आकर शान्ति प्राप्त कीं ॥१०४॥ वहाँ पर जाकर यदि कोई विद्याधरों से पूजित एवं देवताओं तथा सिद्धों से सेवित सरस्वती नदी के पवित्र जल को ॥१०५॥ एक अंजलि भी पी लेता है तो वह परमपद को प्राप्त कर लेता है । वहीं पर पूर्वाभिमुख होकर सरस्वती ने गङ्गाजी ने कहा सखि ! मैं तुमसे अलग हो रही हूँ; बाँधवों से रहित अकेली मैं कहाँ जाऊँगी ? सरस्वती को रोती हुयी शोक सन्तप्त देखकर पूर्व देश से सरस्वती से मिलने के लिए आयी हुयी गङ्गा ने उसे दुःखी देखकर उसका आलिङ्गन किया और आँखें के आँसू को पोंछकर कहा— हे महाभागे ! रोओ मत; तुमने

एषां च क्रियतां पूजा वाङ्मनः कायकर्मणा । सरस्वती सुरेंद्राणां कृत्वा पूजाविधिक्रमम् ॥१११॥
क्रमेण ब्रह्मजा पश्चात् संगता तु सखीजनम् । ज्येष्ठमध्यमयोर्मध्ये संगमो लोकविश्रुतः ॥११२॥
पश्चान्मुखी ब्रह्मसुता जाह्नवी तु उदङ्मुखी । ततस्ते विबुधाः सर्वे पुष्करं ये समागताः ॥११३॥
विदित्वा दुष्करं कर्म तस्याःस्तुतिमकारयन् । त्वं बुद्धिस्त्वं मति र्लक्ष्मी स्त्वं विद्या त्वं गतिः परा ॥११४॥
त्वं श्रद्धा त्वं परानिष्ठा बुद्धि मेधा रतिः क्षमा । त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं पवित्रं मतं महत् ॥११५॥
संध्या रात्रिः प्रभा भूति र्मेधा श्रद्धा सरस्वती । यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभना ॥११६॥
आन्वीक्षिकी तु या वार्ता दंडनीतिश्च कथ्यते । नमोस्तु ते पुण्यजले नमः सागरगामिनि ॥११७॥
नमस्ते पापनिर्मोके नमो देवि जगत् प्रिये । एवं स्तुता हि सा देवी दिव्या स्वार्थपरायणैः ॥११८॥
एवं सा प्राङ्मुखी तत्र स्थिता देवी सरस्वती । सर्वतीर्थमयी देवी सर्वामरसमन्विता ॥११९॥
प्राची सेति बुधै र्ज्ञेया ब्रह्मणो वचनं तथा । तत्र शुद्धावटं नाम तीर्थं पैतामहं स्मृतम् ॥१२०॥
दर्शनेनापि वै तस्य महापातकिनोपि ये । भोगिभोगान् समश्नंति विशुद्धा ब्रह्मणोंतिके ॥१२१॥
प्रायोपवेशं तत्र प्रकुर्वंति नरोत्तमाः । ते मृता ब्रह्मयानेन दिवं यांत्यकुतोभयाः ॥१२२॥
तत्राल्पमपि यै र्दानं दत्तं ब्रह्मविदात्मनाम् । जन्मांतरशतं तेषां तैदर्त्तं भावितात्मनाम् ॥१२३॥
खण्डस्फुटितसंस्कारं तत्र कुर्वन्ति ये नराः । ते ब्रह्मलोकमासाद्य मोदन्ते सुखिनस्सदा ॥१२४॥

तो देवताओं का अत्यन्त कठिन काम किया है ॥१०६-१०९॥ हे देवि ! तुमने देवताओं के उस कार्य को किया है, जिसको दूसरा कोई नहीं कर सकता है; इसीलिए ये देवगण तुम्हारा दर्शन करने के लए आये हैं ॥११०॥ इन सबों की तुम मन, वाणी तथा कर्म से पूजा करो । इसके बाद सरस्वती भी उन देवताओं की सविधि पूजा की ॥१११॥ उसके बाद सरस्वती अपनी सखियों से क्रमशः मिलीं यह गङ्गा तथा सरस्वती का लोक विख्यात मिलन ज्येष्ठ पुष्कर तथा मध्यम पुष्कर के बीच में हुआ है ॥११२॥ उसके बाद पुष्कर में आये हुए देवता तथा ऋषिगण सरस्वती को पश्चिमाभिमुख तथा गङ्गा को उत्तराभिमुखी देखकर और सरस्वती के दुष्कर कर्म को जानकर सरस्वती की स्तुति करने लगे । **देवताओं ने कहा**— हे देवि ! तुम ही, बुद्धि, मति, लक्ष्मी, विद्या तथा परमा गति हो ॥११३-११४॥ तुम ही श्रद्धा हो, तुम ही परा निष्ठा हो, तुम ही बुद्धि, मेधा, रति तथा क्षमा हो । तुम ही सिद्धि, स्वधा, स्वाहा तथा पवित्र एवं महान् सिद्धान्त हो ॥११५॥ तुम ही संध्या, रात्रि, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा, सरस्वती, यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या ॥११६॥ सुन्दर अन्विक्षिकी (तर्कविद्या) वार्ता, दण्ड, तथा नीति भी तुम ही कहलाती हो । हे पवित्र जलवाली देवि ! आपको नमस्कार हैं । हे सागर गामिनि ! तुम्हें नमस्कार हैं ॥११७॥ हे पापों को विनष्ट करने वाली; तुम्हें नमस्कार है, हे जगत प्रिये देवि ! तुम्हें नमस्कार हैं । उन स्वार्थ परायण देवताओं द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर दिव्य गुण सम्पत्र समस्त तीर्थ स्वरूपिणी तथा समस्त देवताओं से युक्त सरस्वती देवी॥११८-११९॥ को ब्रह्माजी ने कहा कि इसे ही प्राची सरस्वती जानना चाहिए । वहीं पर ब्रह्माजी का शुद्धावट नामक तीर्थ है ॥१२०॥ उस तीर्थ का दर्शन करने मात्र से भी बड़े-बड़े पापी शुद्ध होकर ब्रह्माजी के लोक में जाकर अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त करते हैं ॥१२१॥ जो श्रेष्ठपुरुष उस तीर्थ में जाकर उपवास व्रत करते हैं वे मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म विमान से स्वर्गलोक में जाते हैं ओर निर्भय हो जाते हैं ॥१२२॥ जो वहाँ पर (पुष्कर में) जाकर ब्रह्मज्ञ पुरुषों को थोड़ा सा भी दान करते हैं वे अगले सैकड़ों जन्मों तक उस दान के पुण्य को भोगते हैं ॥१२३॥ जो लोग पुष्कर तीर्थ में जाकर वहाँ के टूटे-फूटे तीर्थों का जीर्णोद्धार करते हैं, वे सुखी मनुष्य ब्रह्मलोक में जाकर आनन्दानुभव

योऽत्र पूजाजपोहोमः कृतो भवति देहिनाम्। अनन्तं तत्फलं सर्वं ब्रह्मभक्तिरतात्मनाम् ॥१२५॥
तत्र दीपप्रदानेन ज्ञानचक्षुरतींद्रियः। प्राप्नोति धूपदानेन स्थानं ब्रह्मनिषेवितम् ॥१२६॥
अथ किं बहुनोक्तेन संगमे यत्प्रदीयते। तदनंतफलं प्रोक्तं जीवतो वा मृतस्य च ॥१२७॥
स्नानाज्जपात्तथा होमादनंतफलसाधकम्। रामेणागत्य वै तत्र पिंडं दशरथस्य च ॥१२८॥
दत्तं श्राद्धं तत्र तेन मार्कंडेयेन दर्शिते। तत्र वापी चतुः कोणा तत्रपिंडप्रदा नराः ॥१२९॥
हंसयुक्तेन यानेन सर्वे यांति त्रिविष्टपम्। तस्यां वाप्यां तु वै ब्रह्मा पितृमेधं चकार ह॥१३०॥
यज्ञं यज्ञविदां श्रेष्ठः समाप्तवरदक्षिणम्। वसवः पितरो ज्ञेया रुद्राश्चैव पितामहाः ॥१३१॥
आदित्याश्च ततस्तेषां विहिताः प्रपितामहाः। त्रिविधा अपि आहूय पुनरुक्ता विरिंचिना ॥१३२॥
भवद्भिः पिंडदानाद्यं ग्राह्यमत्र स्थितैस्सदा। यत् कृतं पितृकार्यं च तदनंतफलं भवेत् ॥१३३॥
वृत्यर्थं पितरस्तेषां तुष्टाश्चैव पितामहाः। लभंते तर्पणात्तृप्तिं पिंडदानात्त्रिविष्टपम् ॥१३४॥
तस्मात् सर्वं परित्यज्य प्राचीने पिंडदो भवेत्। दत्वा पुत्रः प्रयत्नेन पितॄन् सर्वांश्च तर्पयेत् ॥१३५॥
प्राचीनेश्वरदेवस्य पुरोभूतं प्रतिष्ठितम्। आदितीर्थं तदित्युक्तं दर्शनादपि मुक्तिदम् ॥१३६॥
स्पृष्ट्वा तु सलिलं तत्र मुच्यते जन्मबन्धनात्। अवगाहनाद्ब्रह्मणोऽसौ भवत्यनुचरः सदा ॥१३७॥
आदि तीर्थे नरः स्नात्वा यः प्रदद्यात्समाधिना। अन्नमल्पमपि प्रायः प्रायशस्स्वर्गमाप्नुयात्॥१३८॥
यस्तत्र ब्रह्मभक्तानां नरः स्नात्वा ददेद्धनम्। कृसरेणापि हेम्ना च सस्वर्गे मोदते सुखी ॥१३९॥

करते हैं ॥१२४॥ इस तीर्थ में जो लोग पूजा, होम तथा जप करते हैं वे ब्रह्माजी की भक्ति से युक्त मनुष्य अनन्त फल को प्राप्त करते हैं ॥१२५॥ इस तीर्थ में दीपदान करने से दिव्य ज्ञान चक्षु की प्राप्ति होती है, तथा धूप देने से ब्रह्माजी का लोक प्राप्त होता है ॥१२६॥ बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है ? संगम स्थल में जीवित अथवा मृत व्यक्ति के उद्देश्य से जो दान दिया जाता है, उससे उसके अनन्त फल की प्राप्ति होती है ॥१२७॥ यहाँ पर स्नान, जप तथा होम करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ? यहीं आकर महर्षि मार्कण्डेय की आज्ञा से श्रीराम ने महाराज दशरथ का पिण्डदान एवं श्राद्ध किया था। वहीं पर एक चतुष्कोण छोटी सी वावली है, वहाँ पर पिण्डदान करने वाले लोग ॥१२८-१२९॥ हंस युक्त विमान के द्वारा स्वर्गलोक में जाते हैं। उसी वापी पर ब्रह्माजी ने भी पितृमेध (पितृश्राद्ध) किया था। यज्ञ को जानने वालों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने उस श्राद्ध में श्रेष्ठ दक्षिणा दी थी। उसमें उन्होंने वसुओ को पितृस्थान पर नियुक्त किया, रुद्रो को पितामह रूप से नियुक्त किया ॥१३०-१३१॥ और आदित्यों को उन्होंने प्रपितामह के स्थान पर नियुक्त किया। तीनों प्रकार से नियुक्त करके ब्रह्माजी ने कहा— ॥१३२॥ आप सब लोग यहाँ पर स्थित रहकर सदा पिण्डदान ग्रहण करेंगे। यहाँ पर किया गया पितृकार्य अनन्त फल प्रदान करने वाला होता है ॥१३३॥ यहाँ पर श्राद्ध करने वालों के पितृगण उन सबों की जीविका का आशीर्वाद देते हैं। वे इस स्थान पर तृप्त हो जाते हैं और पिण्डदान करने पर स्वर्गलोक में चले जाते हैं ॥१३४॥ अतएव हर प्रकार से प्राचीन तीर्थ में पिण्डदान करना चाहिए। यहाँ पिण्डदान करने वाला पुत्र अपने समस्त पितरों को तृप्त कर देता है॥१३५॥ प्राचीनेश्वर के सामने ही अदि तीर्थ हैं, उसका दर्शन करने मात्र से भी मुक्ति मिल जाती हैं ॥१३६॥ वहाँ पर जल का स्पर्श करके भी मनुष्य जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। वहाँ पर स्नान कर लेने से मनुष्य ब्रह्माजी का सदा के लिए अनुचर हो जाता है ॥१३७॥ जो मनुष्य आदि तीर्थ में स्नान करके भक्तिपूर्वक थोड़ा सा भी अन्न दान करता है वह स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥१३८॥ जो व्यक्ति वहाँ पर स्नान करके ब्रह्माजी के भक्तों को धन दान करता

प्राची सरस्वती तत्र नरैः किं मृग्यते परम्। तस्यां स्नानात्फलं तृप्त्यै तपोयज्ञादि लक्षणम् ॥१४०॥
ये पिबंति नराः पुण्यां प्राचीं देवीं सरस्वतीम्। न ते नराः सुरा ज्ञेया मार्कंडेयर्षिरब्रवीत् ॥१४१॥
सरस्वतीनदीं प्राप्य न स्नानेनियमः क्वचित्। भुक्ते वा न च वा भुक्ते दिवा वा यदि वा निशि॥१४२॥
तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां प्राचीनं प्रवरं स्मृतम्। पापघ्नं पुण्यजननं प्राणिनां परिकीर्तितम् ॥१४३॥
ये पुनर्भावितात्मानस्तत्र स्नात्वा जनार्दनम्। पूजयन्ति यथा शक्ति ते प्रयांति त्रिविष्टपम् ॥१४४॥
देवानां प्रवरो विष्णुस्तेन यत्र सरस्वती। सेविता तत्परं तीर्थं क्षितौ ब्रह्मसुतोब्रवीत् ॥१४५॥
ततस्तस्मान् महातीर्थं मन्यमाना महोदयम्। मंदाकिनीमुदीक्षंती स्थिता तत्र सरस्वती॥१४६॥
तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां परं स्वायंभुवो ब्रवीत्। मंदाकिन्या समंयत्र प्राप्य पुण्यसमागमम् ॥१४७॥
तत्र स्थानेस्थिता देवैः स्तुता देवी सरस्वती। मत्वा चैकाकिनीं तां तु दीनास्यां दीनमानसाम्॥१४८॥
सखीं तदा सृजद्ब्रह्मारूपिणीं विमलेक्षणाम्। हरिणीं हरिरप्याशु जज्ञे कमललोचनाम् ॥१४९॥
वज्रिणीमपि देवेशो वज्रपाणिर्विसृष्टवान्। सुकुरङ्गरुचिं देवो नीलकंठो वृषध्वजः ॥१५०॥
सखीं सञ्जनयामास सरस्वत्यास्त्रिलोचनः। विलोक्यमाना सा राजन् सखीभिः सुरसुंदरी॥१५१॥
प्रहृष्टायातुमारब्धा देवादेशान्महानदी। ततः सखीभिः सार्द्धं सा प्राचीना गंतुमुद्यता॥१५२॥
सरस्वती समस्तानां तासां श्रेष्ठतमा स्मृता। प्राची सरस्वती तोयं ये पिबंति मृगा भुवि ॥१५३॥
तेपि स्वर्गं गमिष्यंति यज्ञैर्द्विजवरा यथा। चिंतामणिरिवात्रैषा प्राची ज्ञेया सरस्वती ॥१५४॥
तथाकामफलस्येयं हेतुभूता महानदी। दक्षिणां दिशामालोक्य पुनः पश्चान्मुखीगता॥१५५॥

है यदि वह सुवर्ण तथा खिचड़ी भी दान करता है, वह स्वर्ग लोक में जाकर सुखी होता है ॥१३९॥ प्राचीन सरस्वती तीर्थ वहीं हैं, उसमें स्नान करने से तपस्या एवं यज्ञ से प्राप्त होने वाले फल की प्राप्ति होती है ॥१४०॥ जो लोग प्राचीन सरस्वती के जल का पान करते हैं, वे देवताओं से भी बढकर है यह महर्षि मार्कण्डेय ने कहा है ॥१४१॥ सरस्वती नदी में स्नान करने का कोई नियम नहीं है; यहाँ दिन में या रात में, या भोजन करके, या बिना भोजन किए किसी भी दशा में स्नान कर लेना चाहिए ॥१४६॥ वह तीर्थ सभी तीर्थो से प्राचीन और श्रेष्ठ है। उसे प्राणियों के पाप को विनष्ट करने वाला तथा पुण्य प्रदान करने वाला बतलाया गया है ॥१४३॥ जो भक्ति सम्पन्न लोग वहाँ पर स्नान करके अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् जनार्दन की पूजा करते हैं, वे स्वर्गलोक में जाते हैं ॥१४४॥ जहाँ पर देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णु हैं वहाँ पर रहने वाली सरस्वती का सेवन ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है यह ब्रह्माजी ने कहा है। जहाँ पर गङ्गा के साथ सरस्वती का पवित्र सङ्गम है ॥१४६-१४७॥ वहाँ पर सभी देवता रहकर सरस्वती देवी की स्तुति करते हैं। उस सरस्वती को अकेली तथा दीन समझकर ॥१४८॥ ब्रह्माजी ने उसकी सखी के रूप में विमलेक्षण की सृष्टि की। भगवान् श्रीहरि ने कमल के समान नेत्रों वाली हरिणी नाम की उसकी सखी की सृष्टि की॥१४९॥ वज्रपति इन्द्र ने वज्रिणी की सृष्टि की, नीलकण्ठ भगवान् वृषध्वज शङ्करजी ने सरस्वती नदी की सखी के रूप में कुरङ्गाक्षी की सृष्टि की ॥१५०॥ अपनी सखियों को देखकर सरस्वती देवी ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त कर प्रसन्नता पूर्वक उन सबों के साथ जाने के लिए तैयार हो गयीं ॥१५१-१५२॥ उन सभी सखियों में सरस्वती श्रेष्ठ हैं। इस लोक में जो मृग भी प्राची सरस्वती के जल को पीते हैं ॥१५३॥ वे भी उसी तरह स्वर्ग जाते हैं, जिस तरह श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञों को करके स्वर्गलोक जाते हैं। यहाँ पर विद्यमान प्राची सरस्वती चिन्तामणि के समान हैं ॥१५४॥ यह महानदी चिन्तामणि के ही समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करती हैं, वहाँ से दक्षिण दिशा में जाकर फिर

उक्ता तया तथा गङ्गादिशं प्राचीं व्रजस्व ह । विस्मर्तव्या न चाहं ते व्रज देवि यथागतम् ॥१५६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे तीर्थावतारो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

मार्कंडेयेन वै रामः कथमत्र प्रबोधितः । कथं समागमो भूतः कस्मिन्काले कदा मुने ॥१॥
मार्कंडेयः कस्य सुतः कथं जातो महातपाः । नाम्नोस्य निगमं ब्रुहि यथा भूतं महामुने॥२॥

पुलस्त्य उवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि मार्कंडेयोद्भवं पुनः । पुराकल्पे मुनिःपूर्वं मृकंडु र्नाम विश्रुतः ॥३॥
भृगोः पुत्रो महाभागः सभार्यस्तप्तवांस्तपः । तस्य पुत्रस्तदा जातो वसतस्तु वनांतरे ॥४॥
स पंचवार्षिको भूतो बाल एव गुणाधिकः । ज्ञानिना स तदा दृष्टो भ्रमन् बालस्तदांगणे ॥५॥
स्थित्वा स सुचिरं कालं भाव्यर्थं प्रत्यबुध्यत । तस्य पित्रा स वै पृष्टः कियदायुः सुतस्य मे ॥६॥
संख्ययाचक्ष्व वर्षाणि तस्याल्पान्यधिकानि वा । मृकंडुनैवमुक्तस्तु स ज्ञानी वाक्यमब्रवीत्॥७॥
षण्मासमायुः पुत्रस्य धात्रा सृष्टं मुनीश्वर । नैव शोकस्त्वया कार्यः सत्यमेतदुदाहृतम् ॥८॥

पश्चिमाभिमुख गयी हैं ॥१५५॥ सरस्वती ने गङ्गाजी से कहा की तुम पूर्व दिशा में जाओ । हे देवि ! तुम कभी मुझे भूलना मत ॥१५६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के तीर्थावतार नामक बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३२।।

मार्कण्डेय महर्षि की उत्पत्ति का वर्णन, उनके आश्रम का वर्णन, श्रीरामचन्द्रजी का महर्षि मार्कण्डेय से समागम, मार्कण्डेय आश्रम में श्रीरामचन्द्रजी का स्वप्न में महाराज दशरथ का दर्शन, श्रीरामजी द्वारा वहाँ श्राद्ध, महाराज दशरथ को वहाँ प्रत्यक्ष देखकर सीताजी को लज्जा, श्रीरामजी का ज्येष्ठ पुष्कर में एक मास तक निवास, श्रीरामजी द्वारा अजगन्ध शिव का दर्शन, अजगन्ध शिव द्वारा श्रीरामजी की प्रशंसा

श्रीभीष्मजी ने कहा— हे मुने ! श्रीरामजी की महर्षि मार्कण्डेय से कब तथा किस स्थान पर एवं कैसे भेंट हुयी ? उन्होंने श्रीरामजी को कैसे प्रबोधित किया ?॥१॥ महर्षि मार्कण्डेय किसके पुत्र थे, वे महातपस्वी कैसे हो गये? इनका नाम मार्कण्डेय कैसे हुआ ?॥२॥ **महर्षि पुलस्त्य ने कहा**— मैं तुम्हें मार्कण्डेय महर्षि की उत्पित्ति को बतलाता हूँ । पहले के कल्प में मृकण्डु नाम के विख्यात मुनि थे ॥३॥ वे महर्षि भृगु के पुत्र थे और वन में पत्नी के साथ जाकर तपस्या करने लगे वन में रहते समय ही उनको एक पुत्र हुआ ॥४॥ बालक बचपन से ही गुणवान् था, जब वह पाँच वर्ष का हुआ तो बालक को आंगन में घूमते हुए किसी ज्ञानी व्यक्ति ने देखा ॥५॥ वह दीर्घकाल तक खड़ा होकर भावी अर्थ का विचार कर रहा था । उससे उस बालक के पिता ने पूछा कि मेरे पुत्र की आयु

स तच्छ्रुत्वा वचो भीष्म ज्ञानिना यदुदाहृतम् । अथोपनयनं चक्रे बालकस्य पिता तदा ॥९॥
आह चैनं पिता पुत्रमृषीँस्त्वमभिवादय । एवमुक्तः स वै पित्रा प्रहृष्टश्चाभिवादने ॥१०॥
नवर्णावर्णतां वेत्ति सर्ववर्णाभिवादनः । पंचमासास्त्वतिक्रांता दिवसाः पंचविंशतिः ॥११॥
मार्गेणाथ समायाता ऋषयस्तत्र सप्त वै । बालेन तेन ते दृष्टाः सर्वेचाप्यभिवादिताः ॥१२॥
आयुष्मान्भव तै रुक्तः सबालो दंडमेखली । उक्त्वैवं पुनर्बालमपश्यन् क्षीणजीवितम् ॥१३॥
दिनानि पंचतस्यायु र्ज्ञात्वाभीताश्च ते नृप । तं गृहीत्वा बालकं च गतास्ते ब्रह्मणोंतिकम् ॥१४॥
प्रतिमुच्य च तं राजन् प्रणिपेतुः पितामहम् । अयमावेदितस्तैस्तु तेन ब्रह्माभिवादितः ॥१५॥
चिरायुर्ब्रह्मणा बालः प्रोक्तः स ऋषिसन्निधौ । ततस्ते मुनयः प्रीताः श्रुत्वा वाक्यं पितामहात् ॥१६॥
पितामह ऋषीन् दृष्ट्वा प्रोवाच विस्मयान्वितः । कार्येण येन चायातः कोऽयं बालो निवेद्यताम् ॥१७॥
ततस्त ऋषयो राजन् सर्वं तस्मै न्यवेदयन् । पुत्रो मृकंडोः क्षीणायुः सायुषं कुरु बालकम् ॥१८॥
अल्पायुषस्त्वस्य मुनिर्बुध्वेमां चापि मेखलाम् । यज्ञोपवीतं दंडं च दत्वा चैनमबोधयत् ॥१९॥
यं कंचित्पश्यसे बाल भ्रमंतं भूतले जनम् । तस्याभिवादः कर्तव्य एवमाह पिता वचः ॥२०॥
अभिवादनशीलोऽयं क्षितौ दृष्टः परिभ्रमन् । तीर्थयात्राप्रसंगेन दैवयोगात्पितामह ॥२१॥
चिरायुर्भवपुत्रेति प्रोक्तोसौ तत्र बालकः । कथं वचो भवेत्सत्यमस्माकं भवता सह ॥२२॥

कितनी है ?॥६॥ आप इसकी आयु को गिनकर बतलायें चाहे वह कम हो अथवा अधिक हो । मृकण्डु के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर ज्ञानी पुरुष ने कहा ॥७॥ हे मुनीश्वर ! ब्रह्माजी के द्वारा रचित इस बालक की आयु केवल छह मास बची है । आपको इस विषय में कोई शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि मैंने आपसे सत्य कहा है ॥८॥ ज्ञानी पुरुष द्वारा कही गयी बात को सुनकर मृकण्डु महर्षि ने उस बालक का उपनयन संस्कार कर दिया ॥९॥ उन्होंने अपने पुत्र से कहा— तुम ऋषियों को प्रणाम किया करो । पिता की बात को सुनकर वह प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करने लगा ॥१०॥ किसी भी ऋषि के वर्ण को जाने बिना ही प्रणाम करने लगा । इसतरह करते हुए उसके पाँच मास पचीस दिन और बीत गये ॥११॥ उसी मार्ग से सप्तर्षि आ रहे थे । उन लोगों को देखकर उस बालक ने सबों को प्रणाम किया ॥१२॥ दण्ड तथा मेखला धारण किए हुए उस बालक को देखकर सप्तर्षियों ने कहा आयुष्मान् भव । इस तरह से उस बालक को कहकर ऋषियों ने देखा कि इसकी आयु क्षीण हो चली है ॥१३॥ हे राजन् ! यह जानकर वे भयभीत हो गये कि इसकी आयु केवल पाँच दिन बची है । उस बालक को लेकर वे ब्रह्माजी के पास गये॥१४॥ उस बालक को छोड़कर उनलोगों ने ब्रह्माजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । उसके बाद उन लोगों के द्वारा प्रेरित उस बालक ने भी ब्रह्माजी को प्रणाम किया ॥१५॥ उन ऋषियों के सामने ब्रह्माजी ने उस बालक को चिरायु होने का आशीर्वाद दिया । ब्रह्माजी की बात को सुनकर वे सप्तर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१६॥ ऋषियों को देखकर आश्चर्यचकित होकर ब्रह्माजी ने कहा— आपलोग जिस कार्य से आये हों उस कार्य को तथा इस बालक को बतलाइये कि यह कौन है ?॥१७॥ इसके बाद उन ऋषियों ने सारी बातें बतला दी । **ऋषियों ने कहा**— यह मृकण्डु ऋषि का पुत्र है, उसकी आयु क्षीण हो चली है, इसे आयु से युक्त आप बना दें ॥१८॥ मुनि ने इसके अल्पायुष्ट्वा को जानकर इसका उपनयन कर दिया और मेखलाबंध करके यज्ञोपवित और दण्ड प्रदान करके कहा कि ॥१९॥ हे बालक ! जिस किसी भी ऋषि को पृथिवी पर घूमते हुए देखो उसे प्रणाम किया करो ॥२०॥ हे पितामह ! तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में इस बालक ने दैवयोग से हमलोगों को देखा । इसको हमलोगों ने चिरायु होने का आशीर्वाद दे दिया । अब

एवमुक्तस्तदा तैस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः। ऋतवाक्यादियं भूमिः संस्थिता सर्वतोभया॥२३॥

ब्रह्मोवाच

मत्समश्चायुषा बालो मार्कंडेयो भविष्यति। कल्पस्यादौ तथा चांते मतो मे मुनिसत्तमः॥२४॥
एवं ते मुनयो बालं ब्रह्मलोके पितामहात्। संसाध्य प्रेषयामासु र्भूयोप्येनं धरातलम्॥२५॥
तीर्थयात्रां गता विप्रा मार्कंडेयो निजं गृहम्। जगाम तेषु यातेषु पितरं स्वमथाब्रवीत्॥२६॥
ब्रह्मलोकमहं नीतो मुनिभि र्ब्रह्मवादिभिः। दीर्घायुश्च कृतश्चास्मि वरान् दत्वा विसर्जितः॥२७॥
एतदन्यच्च मे दत्तं गतं चिन्ताकरं तव। कल्पस्यादौ तथा चांते भविष्ये समनंतरे॥२८॥
लोककर्तुर्ब्रह्मणोहं प्रसादात्तस्य वै पितः। पुष्करं वै गमिष्यामि तपस्तप्तुं समुद्यतः॥२९॥
तत्राहं देवदेवेशमुपासिष्ये पितामहम्। सर्वकामावाप्तिकरं सर्वारातिनिबर्हणम्॥३०॥
सर्वसौख्यप्रदं देवमिन्द्रादीनां परायणम्। ब्रह्माणं तोषयिष्यामि सर्वलोकपिताहम्॥३१॥
मार्कण्डेय वचः श्रुत्वा मृकंडुर्मुनिसत्तमः। जगाम परमं हर्षं क्षणमेकं समुच्छ्वसन्॥३२॥
धैर्यं सुमनसा स्थाप्य इदं वचनमब्रवीत्। अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्॥३३॥
सर्वस्य जगतां स्रष्टा येन दृष्टः पितामहः। त्वया दायादवानस्मि पुत्रेण वंशधारिणा॥३४॥
त्वं गच्छ पश्य देवेशं पुष्करस्थं पितामहम्। दृष्टे तस्मिन् जगन्नाथे न जरामृत्युरेव च॥३५॥
नृणां भवति सौख्यानि तथैश्वर्यं तपोऽक्षयम्। त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च॥३६॥
पुष्कराणि तथा त्रीणि नविघ्नस्तत्र कारणम्। कनीयांसं मध्यमं च तृतीयं ज्येष्ठपुष्करम्॥३७॥

दूसरा कौन सा उपाय है कि आपकी वाणी के साथ-साथ हमलोगों की भी वाणी सत्य हो ॥२२॥ इस तरह से सप्तर्षियों द्वारा कहे जाने पर लोकपितामह ब्रह्माजी ने कहा सत्य भाषण करने के ही कारण पृथिवी अभय होकर स्थित है ॥२३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** मुनियों में श्रेष्ठ यह बालक मार्कण्डेय मेरे ही समान आयु वाला होगा। यह कल्प की आदि और अन्त दोनों में रहेगा ॥२४॥ इस प्रकार वे मुनि ब्रह्माजी से उस बालक को दीर्घायु बनवाकर उसे पृथिवी पर भेज दिए ॥२५॥ सप्तर्षिगण तो तीर्थ यात्रा में चले गये और मार्कण्डेय अपने घर आये। उन ऋषियों के चले जाने पर मार्कण्डेय अपने पिता के पास गये और कहे ॥२६॥ ब्रह्मवादी ऋषिगण मुझे ब्रह्मलोक ले गये थे। ब्रह्माजी ने मुझे दीर्घायु होने का वरदान देकर भेज दिया है ॥२७॥ उस वर देने से अब आपको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए; मैं कल्प की आदि में तथा अन्त में भी रहूँगा ॥२८॥ लोककर्ता ब्रह्माजी की कृपा से मैं ऐसा हो गया हूँ, मैं तपस्या करने के लिए पुष्कर तीर्थ में जाना चाहता हूँ ॥२९॥ वहाँ पर मैं देवाराध्य ब्रह्माजी की उपासना करूँगा। ब्रह्माजी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा समस्त शत्रुओं को विनष्ट करने वाले हैं ॥३०॥ वे सभी प्रकार के सौख्य को प्रदान करने वाले तथा इन्द्र आदि देवताओं के भी आश्रय हैं। मैं सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी को प्रसन्न करूँगा ॥३१॥ बालक माकण्डेय की बात सुनकर मृकण्डु महर्षि थोड़ी देर तक हर्षातिरेक के कारण मौन रहे॥३२॥ उसके बाद धैर्य धारण करके प्रसन्नता पूर्वक कहे— आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा जीवन भी सफल हो गया ॥३३॥ क्योंकि सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी का तुमने दर्शन किया है। तुम जैसे पुत्र को प्राप्त करके मैं पुत्रवान् तथा दायादवान् हो गया ॥३४॥ तुम पुष्कर जाकर देवेश ब्रह्माजी का दर्शन करो उनका दर्शन करने वाले के पास न तो बुढापा आती है और न मृत्यु आती है ॥३५॥ मनुष्यों को अक्षय सुख तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। वहाँ पर तीन श्वेत शिखिर तथा तीन स्रोतस हैं ॥३६॥ तथा तीन ही पुष्कर भी हैं, क्यों ऐसा है

शृंगशब्दाभिधानानि शुभप्रस्रवणानि च । ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो नित्यं सन्निहितास्त्रयः ॥३८॥
पुष्करेषु महाराज नातः पुण्यतमं भुवि । विरजं विमलं तोयं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥३९॥
ब्रह्मलोकस्य पन्थानं धन्याः पश्यंति पुष्करम् । यस्तुवर्षशतं साग्रमग्निहोत्रमुपासिता ॥४०॥
कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव च । कर्तुम्मया न शकितं कर्मणा नैव साधितम् ॥४१॥
तदयत्नात्त्वया तात मृत्युस्सर्वहरोजितः । तत्र दृष्टस्सदेवेशो ब्रह्मालोकपितामहः ॥४२॥
नान्यो मर्त्यस्त्वया तुल्यो भविता जगतीतले । अहं वै तोषितो येन पञ्चवार्षिकजन्मना ॥४३॥
वरेण त्वं मदीयेन उपमां चिरजीविनाम् । गमिष्यसि न सन्देहस्तथाशीर्वचनम्मम ॥४४॥
एवं वदन्ति ते सर्वे व्रजलोकान् यथेप्सितान् । एवं लब्धप्रसादेन मृकण्डुतनयेन च ॥४५॥
आश्रमःस्थापितस्तेन मार्कण्डाश्रम इत्युत । तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥४६॥
सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायते नरः ।

पुलस्त्य उवाच

तथान्यं ते प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥४७॥
यथा रामेण वै तीर्थंपुष्करं तु विनिर्मितम् । चित्रकूटात्पुरा रामो मैथिल्या लक्ष्मणेन च ॥४८।
अत्रेराश्रममासाद्य पप्रच्छ मुनिसत्तमम् ।

राम उवाच

कानि पुण्यानि तीर्थानि किं वा क्षेत्रं महामुने ॥४९॥
यत्र गत्वा नरो योगिन् वियोगं सह बंधुभिः । नैव प्राप्नोति भगवन्तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥५०॥

इसको मैं नहीं जानता हूँ ॥३७॥ शृङ्ग (शिखर) शब्द से कहे जाने वाले तथा तीनों स्रोत रूप से वहाँ पर सदा ब्रह्मा, विष्णु का सान्निध्य बना रहता है ॥३८॥ अतएव हे महाराज भीष्म, पुष्कर से वढकर भूलोक में कोई दूसरा तीर्थ नहीं है । वहाँ का स्वच्छ तथा विमल जल त्रैलोक्य में विख्यात है ॥३९॥ वही (पुष्कर ही) ब्रह्मलोक का मार्ग है । धन्य पुरुष ही पुष्कर का दर्शन कर पाते हैं । एक सौ एक वर्ष तक अग्नियों की उपासना करने वाले व्यक्ति तथा कार्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर में एक रात्रि का निवास करने वाले व्यक्ति दोनों को समान फल होता है । जिन कर्मो को मैं नहीं कर सका और न जिसकी साधना मैं कर सका ॥४०-४१॥ हे तात ! तुमने उस सबों को मारने वाली मृत्यु को जीत लिया है तुमने लोक पितामह ब्रह्माजी का दर्शन कर लिया है ॥४२॥ इस पृथिवी पर तुम्हारे समान कोइ दूसरा पुरुष नहीं होगा । तुमने पाँच वर्ष की अवस्था में मुझको प्रसन्न कर दिया ॥४३॥ मेरा तुम्हारे लिए आशीर्वाद है कि मेरे आशीर्वाद को प्राप्त करके तुम चिरंजीवियों में सर्वश्रेष्ठ हो जाओगे । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥४४॥ सबलोग बतलाते हैं, कि महर्षि मृकण्डु के पुत्र मर्कण्डेय आशीर्वाद प्राप्त करके पुष्कर आये और ॥४५॥ वहाँ पर मार्कण्ड आश्रम के नाम से आश्रम स्थापित किये । वहाँ पर पवित्र होकर स्नान करने वाला मनुष्य वाजपेययज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥४६॥ सभी पापों से रहित वह विशुद्धात्मा पुरुष दीर्घायु हो जाता है । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** अब मैं तुम्हे दूसरा प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ ॥४७॥ जिस तरह श्रीराम ने पुष्कर तीर्थ बनाया उसे सुनाता हूँ । एक बार श्रीराम चित्रकूट में जानकीजी तथा लक्ष्मण के साथ ॥४८॥ महर्षि अत्रि के आश्रम में आकर उन मुनिश्रेष्ठ से पूछे । **श्रीराम ने कहा—** हे महामुने ! आप हमें यह बतलाइये कि वे कौन से पवित्र तीर्थ तथा क्षेत्र हैं॥४९॥ हे योगिन् भगवन् ! जहाँ पर जाकर मनुष्य अपने बांधवों के वियोग को नहीं प्राप्त करता है ॥५०॥ इस

अनेनवनवासेन राज्ञस्तु मरणेन च। भरतस्य वियोगेन परितप्येह्यहं त्रिभिः ॥५१॥
तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा विप्रर्षभस्तदा । ध्यात्वा च सुचिरं कालमिदं वचनमब्रवीत्॥५२॥

अत्रिरुवाच

साधुपृष्टं त्वया वीर रघूणां वंशवर्धन। मम पित्रा कृतं तीर्थं पुष्करं नामविश्रुतम्॥५३॥
पर्वतौ द्वौ च विख्यातौ मर्यादायज्ञपर्वतौ। कुंडत्रयं तयोर्मध्येज्येष्ठ मध्य कनिष्ठकम् ॥५४॥
तेषु गत्वा दशरथं पिंडदानेन तर्पय। तीर्थानां प्रवरं तीर्थं क्षेत्राणामपि चोत्तमम् ॥५५॥
अवियोगा च सुरसा वापी रघुकुलोद्वह । तथा सौभाग्य कूपोन्यः सुजलो रघुनंदन ॥५६॥
तेषु पिण्डप्रदानेन पितरो मोक्षमाप्नुयुः। आभूतसंप्लवं कालमेतदाह पितामहः ॥५७॥
तत्र राघव गच्छस्व भूयोप्यागमनं क्रियाः । तथेति चोक्त्वा रामोऽपि गमनायमनो दधे ॥५८॥
ऋक्षवंतमभिक्रम्य नगरं वैदिशं तथा। चर्मण्वतीं समुत्तीर्य प्राप्तोसौ यज्ञपर्वतम् ॥५९॥
तमतिक्रम्य वेगेन मध्यमे पुष्करे स्थितः। पितृन्संतर्पयामास अद्भिर्देवांश्च सर्वशः ॥६०॥
स्नानावसाने रामेण मार्कंडो मुनिपुंगवः। आगच्छन् शिष्यसंयुक्तो दृष्टस्तत्रैव धीमता ॥६१॥
गत्वा वै ससुखं तस्य प्रणिपत्य च सादरम् । पृष्टोऽवियोगदः कूपः कतमस्यां दिशि प्रभो ॥६२॥
सुतो दशरथस्याहं रामो नाम जनैः स्मृतः। सौभाग्यवापीं तां द्रष्टुमहं प्राप्तोऽत्रिशासनात् ॥६३॥
तत् स्थानं तौ च वै कूपौ भगवान्प्रब्रवीतु मे। एवमुक्तश्च रामेण मार्कंडः प्रत्युवाच ह॥६४॥

मार्कंडेय उवाच

साधु राघव भद्रं ते सुकृतं भवता कृतम्। तीर्थयात्राप्रसंगेन यत् प्राप्तोसीह सांप्रतम्॥६५॥

वनवास, महाराज की मृत्यु तथा भरत के वियोग इन तीनों के कारण मैं संतप्त हूँ ॥५१॥ श्रीराम की उस वाणी को सुनकर महर्षि ने दीर्घकाल तक ध्यान करके देखा और कहा ॥५२॥ **अत्रि महर्षि ने कहा—** हे रघुवंश को बढाने वाले श्रीराम ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, मेरे पिता ब्रह्माजी ने पुष्कर नामक विख्यात तीर्थ का निर्माण किया है ॥५३॥ वहाँ के मर्यादा पर्वत तथा यज्ञपर्वत ये दोनों विख्यात पर्वत हैं । उन दोनों के बीच में तीन कुण्ड हैं— ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर तथा कनिष्ठ पुष्कर ॥५४॥ वहाँ जाकर पिण्ड दान करके महाराज दशरथ को तृप्त करो। सभी तीर्थों में तथा सभी क्षेत्रों में पुष्कर श्रेष्ठ है ॥५५॥ हे रघूद्वह वहाँ पर अवियोगा नाम की वावली है । हे रधुनन्दन ! वहाँ पर सुन्दर जल वाला सौभाग्य कूप है ॥५६॥ इन स्थानों में पिण्डदान करने से पितृगण मुक्त हो जाते हैं, ब्रह्माजी ने कहा है कि उस पिण्डदान से पितरों को प्रलय काल तक तृप्ति बनी रहती है ॥५७॥ हे राम ! पहले तुम वहाँ जाओं और उसके बाद यहाँ आना । श्रीराम भी बहुत अच्छा कहकर वहाँ जाने का मन बनाये ॥५८॥ वे ऋक्षपर्वत, विदिशा नगरी तथा चर्मण्वती नदी को पार करके यज्ञपर्वत पर आये ॥५९॥ उसको पार करके वे मध्यपुष्कर पर आ गये । वहाँ पर वे जल से पितरों तथा देवों का तर्पण किए ॥६०॥ स्नान करने के बाद श्रीरामजी ने वहीं पर अपने शिष्यों के साथ आते हुए मुनिपुंगव मार्कण्डेय को देखा ॥६१॥ श्रीरामचन्द्रजी उन महर्षि के समक्ष जाकर आदर पूर्वक साष्टङ्ग प्रणाम करके उनसे पूछे— हे प्रभो ! अवियोग कुण्ड कहाँ पर हैं ?॥६२॥ मैं महाराज दशरथ का पुत्र राम हूँ, मैं सौभाग्यवापी का दर्शन करने के लिए महर्षि अत्रि के आदेश से आया हूँ ॥६३॥ अतएव आप मुझे उस स्थान को तथा उन दोनों कूपों को बतलायें । श्रीरामचन्द्रजी के इस तरह से कहने पर महर्षि मार्कण्डेय ने कहा ॥६४॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—** हे श्रीराम ! आपका कल्याण हो, आपने बहुत अच्छा काम किया कि

एह्यागच्छस्व पश्यस्व वापी तामवियोगदाम् । अवियोगश्च सर्वैश्च कूप एवात्र जायते ॥६६॥
आमुष्मिके चैहिके च जीवितोपि मृतस्य वा । एतद्वाक्यं मुनींद्रस्य श्रुत्वा लक्ष्मणपूर्वजः ॥६७॥
सस्मार रामो राजानं तदा दशरथं नृप । भरतं सह शत्रुघ्नं भ्रातॄनन्यांश्च नागरान् ॥६८॥
एवंचिंतयतस्तस्य संध्याकालो व्यजायत । उपास्य पश्चिमां संध्यां मुनिभिः सह राघवः ॥६९॥
सुष्वाप तां निशां तत्र भ्रातृभार्यासमन्वितः । विभावर्यवसाने तु स्वप्नांते रघुनंदनः ॥७०॥
पित्रा मात्रा तथा चान्यैरयोध्यायां स्थितः किल । विवाहमङ्गले वृत्ते बहुभिर्बांधवैः सह ॥७१॥
समासीनः सभार्योसावृषिभिः परिवारितः । लक्ष्मणेनाप्येवमेव दृष्टोऽसौ सीतया तथा ॥७२॥
प्रभाते तु मुनीनां तत्सर्वमेव प्रकीर्तितम् । ऋषिभिश्च तथेत्युक्तः सत्यमेतद्रघूत्तम ॥७३॥
मृतस्य दर्शने श्राद्धं कार्यमावश्यकं स्मृतम् । वृद्धिकामास्तु पितरस्तथा चैवान्नकांक्षिणः ॥७४॥
ददंति दर्शनं स्वप्ने भक्तियुक्तस्य राघव । अवियोगस्तु ते भ्रात्रा पित्रा च भरतेन च ॥७५॥
चतुर्दशानां वर्षाणां भविता राघवध्रुवम् । कुरु श्राद्धं तथा वीर राज्ञो दशरथस्य च ॥७६॥
अमी च ऋषयः सर्वे तव भक्ताः कृतक्षणाः । अहं च जमदग्निश्च भारद्वाजश्च लोमशः ॥७७॥
देवरातः शमीकश्च षडेते वै द्विजोत्तमाः । श्राद्धे च ते महाबाहो संभारांस्त्वमुपाहर ॥७८॥
मुख्यं चेंगुदिपिण्याकं बदरामलकैः सह । श्रीफलानि च पक्वानि मूलं चोच्चावचं बहु ॥७९॥
मार्गेण चाथ मांसेन धान्येन विविधेन च । तृप्तिं प्रयच्छविप्राणां श्राद्धदानेन सुव्रत ॥८०॥
पुष्करारण्यमासाद्य नियतो नियताशनः । पितॄंस्तर्पयते यस्तु सोश्वमेधमवाप्नुयात् ॥८१॥
स्नानार्थं तु वयं रामगच्छामो ज्येष्ठपुष्करम् । इत्युक्त्वा ते गताः सर्वे मुनयो राघवं नृप ॥८२॥

तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में आप यहाँ आये ॥६५॥ आइये उस अवियोगदा वापी का दर्शन कीजिये । इस कूप पर हो सबों का अवियोग हो जाता है ॥६६॥ पारलौकिक, लौकिक, जीवित तथा मृत सबों का यहाँ अवियोग हो जाता है । मुनीन्द्र के इस वाक्य को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ॥६७॥ महाराज दशरथ का भरत, शत्रुघ्न तथा दूसरे नागरिकों का स्मरण किए ॥६८॥ इस तरह से श्रीरामचन्द्रजी के सोचते हुए सन्ध्या का समय हो गया । श्रीरामचन्द्रजी ने मुनियों के साथ सायं सन्ध्या किया ॥६९॥ वहीं पर वे रात्रि में अपने भाई तथा पत्नी के साथ सोए । रात्रि की समाप्ति के समय वे स्वप्न में ॥७०॥ देखे कि वे अपने पिता, माता तथा भाइयों के साथ अयोध्या में विधमान हैं । विवाह मङ्गल के समाप्त हो जाने पर वे अपने अनेक बान्धवों के साथ तथा पत्नी तथा ऋषियों के साथ बैठे हैं । उसी तरह लक्ष्मण ने तथा सीताजी ने भी स्वप्न देखा ॥७१-७२॥ प्रात:काल होने पर उन्होंने स्वप्न का वृतान्त ऋषियों को सुनाया तो ऋषियों ने कहा हे रघूत्तम ! यह आप सत्य कह रहे हैं ॥७३॥ मृत व्यक्ति का स्वप्न में अपने पुत्रों की वृद्धि करने की इच्छा से पितृगण अन्न प्राप्त करना चाहते हैं ॥७४॥ जो भक्तियुक्त होता है, उसी को वे स्वप्न में दिखायी देते हैं । आपका पिता तथा भाई भरत से चौदह वर्षो के बाद अवियोग होगा । हे वीर राजा दशरथ का आप श्राद्ध करें ॥७५-७६॥ ये सभी ऋषि आपके भक्त हैं, तथा आपके इस शुभ कार्य में सहायक हैं । मैं जमदग्नि, भारद्वाज, लोमश ॥७७॥ देवरात, शमीक, ये छहो द्विजोत्तम हैं । हे महाबाहो ! बेर, आँवला इन सबों के साथ पके हुए बेल, तथा अनेक प्रकार के मूल ॥७८॥ इन सभी वस्तुआं से तथा श्राद्ध संवन्धी दान के द्वारा आप ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करें ॥७९-८०॥ इस पुष्कराण्य में जो नियम पूर्वक रहता है तथा नियमित आहार करके श्राद्ध करता है वह अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है ॥८१॥ हे राम ! हमलोग स्नान करने के लिए ज्येष्ठ पुष्कर जा रहे

लक्ष्मणं चाब्रवीद्रामो मेध्यमाहर मे मृगम् । शुद्धेक्षणं च शशकं कृष्णशाकं तथा मधु ॥८३॥
जंबीराणि च मुख्यानि मूलानि विविधानि च। पक्वानि च कपित्थानि फलान्यन्यानि यानि च ॥८४॥
तान्याहरस्व वै श्राद्धे क्षिप्रमेवास्तु लक्ष्मण । तथातत्कृतवान् सर्वं रामादेशाच्च राघवः ॥८५॥
बदरेङ्गुदिशाकानि मूलानि विविधानि च । तत्राहृत्य च रामेण कूटाकारः कृतो महान्॥८६॥
परिपक्वं च जानक्या सिद्धं रामे निवेदितम् । स्नात्वा रामो योगवाप्यां मुनींस्ताननुपालयन्॥८७॥
मध्याह्नाच्चलिते सूर्ये काले कुतपके तथा । आयाता ऋषयः सर्वे ये रामेणानुमंत्रिताः॥८८॥
तानागतान् मुनीन् दृष्ट्वा वैदेहीजनकात्मजा । रामांतिकं परित्यज्य व्रीडिताऽन्यत्र संस्थिता ॥८९॥
विस्मयोत्फुल्लनयना चिंतयाना च वेपती । ब्राह्मणानेह जानंति श्राद्धकाले ह्युपस्थिताः ॥९०॥
रामेण भोजिता विप्राः स्मृत्युक्तेन यथाविधि । वैदिक्यश्च कृतास्सर्वाः सत्क्रिया यास्समीरिताः ॥९१॥
पुराणोक्तो विधिश्चैव वैश्वदेविक पूर्वकः । भुक्तवत्सु चविप्रेषु दत्वा पिंडान्यथाक्रमम् ॥९२॥
प्रेषितेषु यथाशक्ति दत्वा तेषु च दक्षिणाम्। गतेषु विप्रमुख्येषु प्रियां रामोब्रवीदिदम् ॥९३॥
किमर्थं सुभ्रु नष्टासि मुनीन् दृष्ट्वा त्विहागतान्। तत्सर्वंत्वमिदं तत्वं कारणं वद माचिरम् ॥९४॥
भवितव्यं कारणेन तच्च गोप्यं न मे कुरु। शापितासि मम प्राणै र्लक्ष्मणस्य शुचिस्मिते ॥९५॥
एवमुक्ता तदाभर्त्रा त्रपयाऽवाङ्मुखी स्थिता । विमुंचंती साऽश्रुपातं राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥९६॥
शृणु त्वं नाथ यद्दृष्टमाश्चर्यमिह यादृशम् । राम त्वया चिंत्यमानो राजेंद्रस्त्विह चागतः ॥९७॥
सर्वाभारणसंयुक्तौ द्वौ चान्यौ च तथाविधौ। द्विजानां देहसंयुक्ता स्त्रयस्ते रघुनंदन ॥९८॥

हैं। हे राजन् ! इस तरह से श्रीरामचन्द्रजी से कहकर वे मुनिगण चले गये ॥८२॥ उसके बाद **श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा—** तुम मेरे लिए मेध्य मृग, शुद्ध नेत्रों वाला खरगोश, कालाशाक, मधु ॥८३॥ जम्बीर, मुख्यमूल, अनेक प्रकार के मूल, पके कैंथ तथा दूसरे प्रकार के फल ॥८४॥ इन सबों को श्राद्ध करने के लिए शीघ्र लाओ। श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा प्राप्त करके लक्ष्मणजी ने भी वैसा ही किया ॥८५॥ बेर, इङ्गुदी, अनेक प्रकार के शाक तथा मूल इन सबों को लाकर वे वहाँ ढेर लगा दिये ॥८६॥ श्रीराम के कहने पर श्रीजानकीजी ने उन सबों को सिद्ध किया। श्रीरामजी योगवापी में स्नान करके उन मुनियों के आने की प्रतीक्षा करने लगे ॥८७॥ जब मध्याह्न के बाद कुतप की बेला आयी, उसी समय वे सभी ऋषि आ गये, जिन ऋषियों को श्रीरामचन्द्र ने निमन्त्रित किया था॥८८॥ उन आये हुए ऋषियों को देखकर श्रीसीताजी लज्जित होकर श्रीरामजी से दूर चली गयीं ॥८९॥ उनके नेत्र चिन्ता से विकसित हो गये थे, वे सोच रही थीं और काँप रही थीं ब्राह्मण यह नहीं जानते है किन्तु श्राद्ध के समय उपस्थित हो गये ॥९०॥ श्रीरामजी ने स्मृतिप्रोक्त विधि से ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा वैदिक विधि से उन्होंने ब्राह्मणों का सत्कार किया ॥९१॥ उन्होंने बलि वैश्वदेव विधि से पौराणिक प्रक्रिया को भी सम्पन्न किया। ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उन्होंने क्रमानुसार पिण्डदान किया ॥९२॥ अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर उनको विदा कर देने के बाद श्रीरामजी ने सीताजी से पूछा ॥९३॥ हे सुन्दरि ! यहाँ पर आये हुए ऋषियों को देखकर तुम यहाँ से हट क्यों गयी ? अतएव शीघ्र तुम इसका कारण बतलाओ ॥९४॥ यहाँ पर जो भी कारण हो उसे तुम मुझसे छिपाना मत। तुमको मेरे तथा लक्ष्मण के प्राणों की शपथ है ॥९५॥ श्रीरामजी के इसतरह से कहने परे लज्जित होकर नीचे मुख करके, अपने आँसुओं को बहाती हुयी श्रीरामजी से सीताजी ने कहा ॥९६॥ हे नाथ ! यहाँ पर मैंने जो आश्चर्य देखा उसे आप सुनें। हे श्रीराम ! आपके स्मरण करते ही महाराज दशरथ यहाँ पधार गये ॥९७॥ वे

पितरस्तु मया दृष्टा ब्राह्मणांगेषु राघव। दृष्ट्वा त्रपान्विता चाहमपक्रांता तवांतिकात्॥९९॥
त्वया वै भोजिता विप्राः कृतं श्राद्धं यथाविधि । वल्कलाजिनसंवीता कथं राज्ञः पुरः सरा ॥१००॥
भवामि रिपुवीरघ्न सत्यमेतदुदाहृतम् । कौशेयानि च वस्त्राणि कैकेय्यापहृतानि च ॥१०१॥
ततः प्रभृतिचैवाहं चीरिणी तु वनाश्रयम्। ज्ञात्वाहं न वदे किंचिन्मा ते दुःखं भवत्विति॥१०२॥
नाहं स्मरामि वै मातुर्नपितुश्च परंतप। कदाभविष्यतीहांतो वनवासस्य राघव ॥१०३॥
एतदेवानिशं रामचिंतयंत्याः पुनः पुनः । व्रजंति दिवसा नाथ तवपद्भ्यां शपाम्यहम् ॥१०४॥
स्वहस्तेन कथं राज्ञो दास्ये वै भोजनं त्विदम्। दासानामपि यद् दासो नोपभुंजीत यत् क्वचित् ॥१०५॥
एतादृशी कथं त्वस्मै संप्रदातुं समुत्सहे। याहं राज्ञा पुरा दृष्टा सर्वालङ्कारभूषिता ॥१०६॥
वालव्यजनहस्ता च वीजयंती नराधिपम् । सा स्वेदमलदिग्धांगी कथं पश्यामि भूमिपम् ॥१०७॥
व्यक्तं त्रिविष्टपं प्राप्तस्त्वया पुत्रेण तारितः । दृष्ट्वा मां दुःखितां बालां वनेक्लिष्टामनागसम्॥१०८॥
शोकः स्यात्पार्थिवस्यास्य तेन नष्टास्मि राघव । भवान् प्राणसमो राम न ते गोप्यं भवत्विह ॥१०९॥
सत्येन तेन चैवाथ स्पृशामि चरणौ तव। तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतः प्रियां तां प्रियवादिनीम्॥११०॥
अंकमानीयसुदृढं परिष्वज्य च सादरम्। भुक्तौ भोज्यं तदा वीरौ पश्चाद्भुक्ता च जानकी॥१११॥
एवं स्थितौ तदा सा च तां रात्रिं तत्र राघवौ। उदिते च सहस्रांशौ गमनाय मनो दधुः ॥११२॥
प्रत्यङ्मुखं गतः क्रोशं ज्येष्ठं यावच्च पुष्करम् । पूर्वभागे पुष्करस्य यावत्तिष्ठति राघवः ॥११३॥

सभी आभरणों से भूषित थे, तथा उनके ही समान दो पुरुष और आये । हे रघुनंदन ! वे तीनों ब्राह्मणों के देह से संयुक्त हो गये ॥९८॥ उन ब्राह्मणों के अङ्गों में ही मैंने पितरों का दर्शन किया उनको देखकर मैं लज्जित हो गयी और आपके पास से दूर चली गयी ॥९९॥ आपने अकेले ब्राह्मणों को भोजन कराया और विधिवत् श्राद्ध किया वल्कल एवं अजिन धारण की हुयी मैं महाराज के सामने कैसे जाती ?॥१००॥ हे शत्रुओं को मारने वाले वीर मैंने सभी बातें सच्ची-सच्ची बता दिया । कैकेयी ने तो मेरे रेशमी वस्त्रों को ले लिया था ॥१०१॥ उसी समय से मैं वन में रहती हूँ तथा चीर वस्त्रों को धारण करती हूँ । मैं किसी बात को जानकर आपको बतलाये बिना कैसे रह सकती हूँ ? अतएव आपको कष्ट नहीं होना चाहिए ॥१०२॥ हे परन्तप न तो मैं अपनी माँ का स्मरण करती हूँ और न पिताजी को याद करती हूँ । मैं सदा यही सोचती हूँ कि वनवास का समय कब समाप्त होयेगा ॥१०३॥ हे श्रीराम ! इसी बात का बार-बार चिन्तन करते हुए मैं आपके चरणों की शपथ खाकर कहती हूँ कि मेरे दिन बीत जाते हैं॥१०४॥ जिसको दासों के दास भी कभी नही खाते हैं, उस भोजन को मैं अपने हाथों से कैसे दे सकती थी॥१०५॥ महाराज ने तो मुझे सभी अलङ्कारां से अलंकृत देखा था, वहीं मैं इस अवस्था में कैसे भोजन दे सकती हूँ ॥१०६॥ जो मैं अपने हाथ से चामर लेकर महाराज को भोजन कराती थी वही स्वेदजन्य मैल से भरे हुए अङ्गों वाली होकर मैं महाराज का दर्शन कैसे कर सकती हूँ ?॥१०७॥ आप जैसे पुत्र को प्राप्त करके महाराज स्वर्ग में चले गये, निर्दोष दुःखिनी तथा वन में दुःख प्राप्त मुझको देखकर महाराज को कष्ट होता, हे राघव ! इसीलिए मैं दूर चली गयी, हे राम ! आप तो मुझे प्राणों के समान प्रिय है, आपके लिए मेरे पास कुछ भी गोप्य नहीं है॥१०८-१०९॥ उसी सत्य के कारण आपके चरणों को मैं स्पर्श करती हूँ (प्रणाम करती हूँ) प्रियतमा तथा प्रिय बोलने वाली श्रीजानकीजी की बातों को सुनकर श्रीराम ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया । इसके बाद श्रीराम लक्ष्मण ने भोजन किया और श्रीजानकीजी ने उन दोनों के बाद भोजन किया ॥११०-१११॥ इस तरह श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी

शुश्राव च ततो वाचं देवदूतेन भाषितम्। भो भो राघव भद्रं ते तीर्थमेतत्सुदुर्लभम् ॥११४॥
अस्मिन् स्थाने स्थितो वीर आत्मनः पुण्यतां कुरु ।
देवकार्यं त्वया कार्यं हंतव्या देवशत्रवः ॥११५॥
ततो हृष्टमना वीरो ह्यब्रवील्लक्ष्मणं वचः । सौमित्रेऽनुगृहीतोहं देवदेवेन ब्रह्मणा ॥११६॥
अत्राश्रमपदं कृत्वा मासमेकं च लक्ष्मण । व्रतं चारितुमिच्छामि कायशोधनमुत्तमम् ॥११७॥
तथेति लक्ष्मणेनोक्ते व्रतं परिसमाप्य तु । पिंडदानादिभिर्दानैः श्राद्धैश्चैव पितामहान् ॥११८॥
पुष्करे तु तदा रामोऽतर्पयद्विधिवत्तदा । कनका सुप्रभा चैव नंदा प्राची सरस्वती ॥११९॥
पंचस्रोताः पुष्करेषु पितृणां तुष्टिदायिनी । दैनंदिनीं पितृणां तु पूजां तां पितृपूर्विकाम् ॥१२०॥
रचयित्वा तदा रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्। एहि लक्ष्मणशीघ्रं त्वं पुष्कराज्जलमानय ॥१२१॥
पादप्रक्षालनं कृत्वा शयनं कुरु संस्तरे । विभावर्यां निवृत्तायां यास्यामो दक्षिणां दिशम् ॥१२२॥
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतयानीयतां पयः। नाहं राम सर्वकाले दासभावं करोमि ते ॥१२३॥
इयं पुष्टा च सुभृशं पीवरी च ममाप्युत। किं त्वं करिष्यस्यनया भार्यया वद सांप्रतम् ॥१२४॥
किं वा मृतस्य वै पृष्ठ इयं यास्यति ते प्रिया। रक्षसे त्वं सदा कालं सुपुष्टां चैव सर्वदा ॥१२५॥
हृष्टा चैषा क्लेशयति सततं मां रघूत्तम । त्वं च क्लेशयसे राम परत्र जायते क्षतिः ॥१२६॥
त्वत्कृते च सदाचाहं पिपासां क्षुधया सह । संसहामि न संदेहः परत्र च निशामय ॥१२७॥
मृतानां पृष्ठतः कश्चिद्गतो नैव च दृश्यते। भार्य्या पुत्रो धनं चापि एवमाहुर्मनीषिणः ॥१२८॥

इन तीनों ने उस दिन रात्रि में वहीं निवास किया। सूर्योदय हो जाने पर उन लोगों ने वहाँ से जाने का मन वनाया॥११२॥ वहाँ से वे कोशभर पूर्व ज्येष्ठ पुष्कर में गये और ज्येष्ठ पुष्कर में ठहर गये ॥११३॥ उसी समय श्रीरामजी ने देवदूत की वाणी को सुना— हे राम जी ! यह अत्यन्त दुर्लभ तीर्थ है ॥११४॥ हे वीर यहाँ पर रहकर आप अपने को पवित्र बनायें। आपको देवताओं का कार्य करना है; तथा देवताओं के शत्रुओं का वध करना है॥११५॥ उसके बाद प्रसन्न होकर श्रीरामजी ने प्रसन्न होकर लक्ष्मणजी से कहा— हे लक्ष्मण ! देवाराध्य ब्रह्माजी ने मेरे ऊपर कृपा की है ॥११६॥ मैं यहीं पर आश्रम बनाकर एक मास तक शरीर शोधन पूर्वक उत्तम व्रत करना चाहता हूँ ॥११७॥ लक्ष्मणजी ने कहा ठीक है, इसके बाद व्रत पूरा करके श्रीरामजी ने पिण्डदान तथा सरस्वती दोनों के द्वारा अपने पितरों को तृप्त किया ॥११८॥ उस समय पुष्कर में रहकर श्रीरामजी ने कनका, सुप्रभा, नन्दा, प्राची तथा तर्पण तीर्थों में जाकर विधिपूर्वक तर्पण किया ॥११९॥ पुष्कर में उपर्युक्त पाँचों स्रोत पितरों को अत्यन्त तृप्त करने वाले हैं। पिता पूर्वक पितरों की प्रतिदिन की पूजा करके श्रीराम ने श्रीलक्ष्मणजी से कहा हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्र ही पुष्कर का जल लाओ ॥१२०॥ और पैर धोकर जल्दी से चटाई पर सो जाओ। रात्रि बीत जाने पर प्रातःकाल हमलोग यहाँ से दक्षिण दिशा में चलेंगे। उस समय लक्ष्मणजी ने कहा— कि जल लाने का काम सीताजी करें, हे राम ! सदैव मैं आपका दास नहीं बना रहूँगा ॥१२३॥ ये हमेशा पुष्ट और मोटी बनी रहती हैं, वतलाइये आप ऐसी पत्नी को रखकर क्या करेंगे ?॥१२४॥ क्या आपके मरने पर ये आपके पीछे-पीछे जायेंगी ? कि आप सदा इनकी रक्षा करने में ही लगे रहते हैं ॥१२४-१२५॥ हे रघूत्तम ! ये प्रसन्न रहकर हमेशा मुझे क्लेश देती रहती हैं। हे राम आप भी हमेशा हमें दुःख देते रहते हैं; किन्तु मेरी तो क्षति होती रहती है ॥१२६॥ आप सुन लें आपके लिए तो मैं परलोक में भी कष्ट उठाऊँगा और यहाँ भी भूख-प्यास बर्दास्त करता हूँ ॥१२७॥ मरने वालों के पीछे कोई जाये

मृतश्च ते पिता रामत्यक्त्वा राज्यमकंटकम् । विनिक्षिप्य वने त्वां च कैकेय्याः प्रियकाम्यया॥१२९॥
इह स्थिता सा कैकेयी धनं सर्वे च बांधवाः । महाराजो दशरथ एक एव गतो गतिम् ॥१३०॥
मन्येऽहं न त्वया सार्धं सीता यास्यति वै ध्रुवम् । करिष्यसे किमनया वद राघव सांप्रतम् ॥१३१॥
श्रुत्वा चाश्रुतपूर्वं हि वाक्यं लक्ष्मणभाषितम्। विमना राघवस्तस्थौ सीता चापि वरानना ॥१३२॥
यदुक्तं लक्ष्मणेनाथ सीता सर्वं चकार ह। स्नात्वा भुक्त्वा ततो वीरौ पुष्करे पुष्करेक्षणौ॥१३३॥
नीत्वा विभावरी तत्र गमनाय मनो दधुः। एह्युत्तिष्ठ च सौमित्रे व्रजामो दक्षिणां दिशम्॥१३४॥
सौमित्रिरब्रवीद्रामं नाहं यास्ये कथंचन। व्रजत्वमनया सार्धं भार्यया कमलेक्षण ॥१३५॥
नान्यद्वनं गमिष्यामि नैवायोध्यां च राघव । अस्मिन्वने वसिष्यामि वर्षाणीह चतुर्दश ॥१३६॥
मया विना त्वयोध्यायां यदि त्वं न गमिष्यसि। अनेन वर्त्मना भूप आगंतव्यं त्वया विभो ॥१३७॥
यदि जीवामि तत्कालं पुनर्यास्ये पितुः पुरम् । तपस्संभावयिष्यामि मया त्वं किं करिष्यसि ॥१३८॥
व्रज सौम्य शिवः पंथा मा च ते परिपंथिनः। पश्यामि त्वां पुनःप्राप्तं सभार्यं कमलेक्षणम् ॥१३९॥
पितृपैतामहं राज्यमयोध्यायां नराधिप। शत्रुघ्नभरतौ चोभौ त्वदाज्ञाकरणे स्थितौ ॥१४०॥
अहं ते प्रतिकूलस्तु वनवासे विशेषतः । अनारतं दिवा चाहं रात्रौ चैव परंतप ॥१४१॥
कर्म कर्तुं न शक्नोमि व्रज सौम्य यथासुखम्। एवं ब्रुवाणं सौमित्रिमुवाच रघुनंदनः ॥१४२॥
कथं पूर्वमयोध्याया निर्गतोसि मया सह । वने वत्स्याम्यहं राम नववर्षाणि पंच च ॥१४३॥
न तु त्वया विरहितः स्वर्गेपि निवसे क्वचित् । या गतिस्ते नरव्याघ्र मम सापि भविष्यति ॥१४४॥

ऐसा कहीं नहीं दिखता है, पत्नी, पुत्र, धन कुछ भी नहीं जाता है, यह मनीषियों ने कहा है ॥१२८॥ पिताजी कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए, आपको वन में भेजकर, अकण्टक राज्य छोड़कर चले गये ॥१२९॥ कैकेयी, धन और सभी बान्धव यहीं रह गये, अकेले महाराज ही मरकर चले गये ॥१३०॥ मैं यह भी मानता हूँ कि आपके साथ सीताजी भी नहीं जायेंगी । आप इनको अपनाकर क्या करेंगे ? बतलइाये ॥१३१॥ श्रीलक्ष्मणजी की इस अश्रुतपूर्व वाणी को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी तथा सीताजी दोनों उदास हो गये और चुपचाप पड़े रहे ॥१३२॥ उसके बाद श्रीलक्ष्मणजी ने जो कुछ कहा— उसे सीताजी ने किया । उसके बाद श्रीराम और लक्ष्मण दोनों पुष्कर में स्नान करक भोजन किए ॥१३३॥ रात्रि बीत जाने के बाद वे जाने का मन बनाये । श्रीरामजी ने कहा लक्ष्मण आओ, उठो अब दक्षिण दिशा में चलें ॥१३४॥ **श्रीलक्ष्मणजी ने कहा**— राम मैं नहीं जा सकता हूँ, हे कमलनयन ! आप अपनी पत्नी के साथ यहाँ से जायँ ॥१३५॥ हे राघव ! न मैं किसी दूसरे बन में जाऊँगा और न तो मैं अयोध्या जाऊँगा। मैं इसी वन में चौदह वर्षों तक निवास करूँगा ॥१३६॥ यदि आप मेरे बिना अयोध्या नहीं जा सकते हैं तो फिर आप इसी मार्ग से आइयेगा ॥१३७॥ यदि मैं जीवित रहूँगा तो अपने पिताजी के नगर में जाऊँगा । मैं यहाँ तपस्या करूँगा, आप मुझको अपने साथ रखकर क्या करेंगे ॥१३८॥ हे सौम्य ! आप जायँ, आप का मार्ग मङ्गलमय हो, आपका कोई विरोधी नहीं रहे । अब मैं आपके लौटने पर ही आपका दर्शन करूँगा ॥१३९॥ हे नराधिप ! आपकी आज्ञा से पिता पितामह से प्राप्त राज्य शत्रुघ्न और भरत कर रहे हैं ॥१४०॥ खासकर वनवास के विषय में मैं आपके प्रतिकूल रहने वाला हूँ । मैं रात-दिन निरन्तर आपकी सेवा नहीं कर सकता हूँ । इस तरह से कहने वाले लक्ष्मणजी से श्रीरामचन्द्रजी ने कहा ॥१४१-१४२॥ तो तुम पहले ही हे राम ! मैं आपके साथ चौदह वर्षों तक वन में निवास करूँगा, यह कहकर क्यों आये ?॥१४३॥ तुमने कहा था— हे नरव्याघ्र ! आपके बिना मैं स्वर्ग में भी

प्रसादः क्रियतां मह्यं नय मामपि राघव । इदानीमर्थमार्गे त्वं कथं स्थास्यसि शत्रुहन् ॥१४५॥
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्रामं ना हं गंता वने पुनः । लक्ष्मणं संस्थितं ज्ञात्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥१४६॥
मानुव्रज सौमित्र एको यास्यामि काननम् । द्वितीया मे त्वियं सीता रामेणोक्तस्तु लक्ष्मणः ॥१४७॥
गृहीत्वाऽथ समुत्तस्थौ रामवाक्यं सलक्ष्मणः । मर्यादापर्वतं प्राप्तौ क्षेत्रसीमां परंतपौ ॥१४८॥
अजगंधं च देवेशं देवदेवं पिनाकिनम् । अष्टांगप्रणिपातेन नत्वा रामस्त्रिलोचनम् ॥१४९॥
तुष्टव प्रयतः स्थित्वा शङ्करं पार्वतीप्रियम् । कृतांजलिपुटो भूत्वा रोमांचित शरीरकः ॥१५०॥
सात्विकं भावमापन्नो विनिर्धूतरजस्तमाः । लोकानां कारणं देवं बुबुधे विबुधाधिपम् ॥१५१॥

राम उवाच

कृत्स्नस्य योस्य जगतः सचराचरस्य । कर्ता कृतस्य च पुनः सुखदुःखदश्च ॥
संहारहेतुरपि यः पुनरंतकाले तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५२॥
योऽयं सकृद्विमलचारुविलोलतोयां गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात्पतन्तीम् ।*
मूर्ध्ना दधे स्त्रजमिव प्रविलोलपुष्पां तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५३॥
कैलासशैलशिखरं परिकम्प्यमानं कैलासश्रृंगसदृशेन दशाननेन ।
यत्पादपद्मविधृतं स्थिरतां दधार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५४॥
येनासकृद्दनुसुताः समरे निरस्ता विद्याधरोरगगणाश्च वरैः समग्रैः ।
संयोजिता मुनिवराः फलमूलभक्षा स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५५॥
दक्षाध्वरे च नयने च तथा भगस्य पूष्णस्तथादशनपंक्तिमपातयच्च ।
तस्तंभ यः कुलिशयुक्तमथेंद्रहस्तं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५६॥

नहीं रह सकता हूँ। आपकी जो गति होगी वही गति मेरी भी होगी ॥१४४॥ हे राघव ! कृपा कीजिये; मुझे भी अपने साथ ले चलिये । हे शत्रुघ्न ! इस समय बीच रास्ते में कैसें रहोगे ?॥१४५॥ लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा मैं नहीं जाने वाला हूँ। लक्ष्मण को बैठे हुए देखकर राम ने कहा ॥१४६॥ लक्ष्मण तुम मेरे साथ चलो यह सीता भी मेरे साथ चलेगी । श्रीरामजी की बातों को सुनकर लक्ष्मणजी उठकर खड़े हो गये । इसके बाद वे दोनों पुष्कर क्षेत्र की सीमा मर्यादा पर्वत पर पहुँचे ॥१४७-१४८॥ इसके बाद वे देवाराध्य पिनाकधारी भगवान् अजगंन्ध शिव को साष्टाङ्ग प्रणाम किये ॥१४९॥ उसके बाद उन्होंने रोमाञ्चित होकर तथा हाथ जोड़कर पार्वती पति शिवजी की स्तुति की॥१५०॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी ने रजोगुण एवं तमोगुण से रहित सात्विक भावना से भरकर देवाधिदेव, शङ्करजी को सम्पूर्ण जगत् का कारण समझकर उनकी स्तुति की ॥१५१॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि करते हैं, जो सृष्ट जगत् को सुख-दुःख रूप कर्मफलों को प्रदान करते हैं, और प्रलय काल की बेला आ जाने पर जो जगत् का संहार करते हैं, शरण प्रदान करने वाले उन शङ्करजी की मैं शरणागति करता हूँ ॥१५२॥ जिन्होंने एक बार स्वच्छ मनोहर तथा चञ्चल जलतरङ्गों से युक्त तथा ऊँची लहरियों से बिषम बनी हुयी तथा आकाश से गिरने वाली गङ्गाजी को अत्यन्त चञ्चल पुष्पों से निर्मित माला के समान अपने शिर पर धारण किया, उन शरण प्रदान करने वाले शङ्करजी की मैं शरणागति करता हूँ ॥१५३॥ कैलास पर्वत के शिखर के समान आकार वाले रावण के द्वारा कैलास पर्वत के कँपाये जाते हुए पर्वत शिखर जिनके चरण कमल के रख दिए जाने के कारण स्थिर हो गये, उन शरणागत रक्षक भगवान् शङ्कर की मैं शरणागति करता हूँ ॥१५४॥ जिन्होंने अनेक बार दैत्यों को परास्त कर दिया तथा विद्याधर उरगगण तथा श्रेष्ठमुनियों को समस्त वरों को प्रदान करके उत्तम बना दिया उन शरणागत रक्षक शङ्करजी की मैं शरणागति करता हूँ ॥१५५॥ जिन्होंने दक्ष के यज्ञ में भग देवता की आँखों को

* अन्य संस्करण में आये हुए श्लोक :

यं योगिनो विगतमोहरजस्तमस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः। ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमितदिव्यभावं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥
यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्मयूखं बद्ध्वा सदा प्रियतमां शिरसा बिभर्ति। यश्चार्धदेहमददाद्गिरिराजपुत्र्यै तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

एनः कृतोपि विषयेष्वपि सक्तचित्ता ज्ञानान्वयश्रुतगुणैरपि नैव युक्ताः ।
यं संश्रिताः सुखभुजः पुरुषा भवंति तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५७॥
अत्रिप्रसूतिरविकोटिसमानतेजाः सत्रासनं विबुधदानवसत्तमानाम् ।
यः कालकूटमपि बत प्रसभंसुदीप्तं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५८॥
ब्रह्मेंद्ररुद्रमरुतां च सषण्मुखानां दद्याद्वरं सुबहुशो भगवान्महेशः ।
नन्दिंच मृत्युवदनात्पुनरुज्जहार तं शङ्कर शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५९॥
आराधितः सुतपसा हिमवन्निकुजे धूम्रव्रतेन मनसापि परैरगम्ये ।
संजीवनीमकथयद्‌भृगवे महात्मा तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६०॥
नानाविधैर्गजबिडालसमानवक्त्रै र्दक्षाध्वरप्रमथनै र्बलिभिर्गणेन्द्रैः ।
योग्यर्चितोऽमरगणैश्च सलोकपालै स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६१॥
शंखेंदुकुंदधवलं वृषभं प्रवीर मारुह्य यः क्षितिधरेंद्रसुतानुयातः ।
यात्यंबरं प्रलयमेघविभूषितं च्च तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६२॥
शांतं मुनिं यमनियोगपरायणैस्तै र्भीमैर्महोग्रपुरुषैः प्रतिनीयमानम् ।
भक्त्या न तं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६३॥
यः सव्यपाणि कमलाग्रनखेन देव स्तत्पंचमं प्रसभमेव पुरस्सुराणाम् ।
ब्राह्मं शिरस्तरुणपद्मनिभं चकर्त्त तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६४॥

फोड़ दिया तथा पूषा देवता के दाँतों को तोड़ कर नीचे गिरा दिया, हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्र को जिन्होंने स्तम्भित कर दिया, उन शरण प्रदान करने वाले भगवान् शङ्कर की मैं शरणागति करता हूँ ॥१५६॥ पाप करते रहने वाले, विषयासक्त, अज्ञानी तथा उत्तम कुल से रहित भी जीव जिन भगवान् शङ्कर के शरण में जाकर सुखी हो जाते हैं, उन शरण प्रदान करने वाले भगवान् शङ्कर की मैं शरणागति करता हूँ ॥१५७॥ जिनका तेज करोड़ों चन्द्रमा और सूर्य के समान है जिन्होंने देवताओं तथा दानवों के हृदय को भयभीत बना देने वाले, अत्यन्त वेगवान् कालकूट हलाहल विष का पान कर लिया । उन शरण प्रदान करने वाले शङ्करजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१५८॥ जिन भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मा इन्द्र, रुद्र, मरुद्‌गण तथा कार्तिकेय, इत्यादि देवताओं को अनेक बार वरदान प्रदान किया तथा नन्दी को जिन्होंने मृत्यु के मुख से बचा लिया, उन शरणागत रक्षक भगवान् शङ्कर की मैं शरणागति करता हूँ ॥१५९॥ महर्षि भृगु के पुत्र शुक्राचार्य ने हिमालय पर्वत के वन में जिनकी आराधना अत्यन्त कठोर धूम्रव्रत के द्वारा की थी, और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान करने वाले शरणागत रक्षक भगवान् शङ्करजी की मैं शरणागति करता हूँ ॥१६०॥ अनेक प्रकार के हाथी तथा विडाल जैसे मुख वाले, तथा दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त करने वाले महाबलवान् गणों द्वारा जिनकी पूजा की जाती रहती है तथा देवताओं का समूह एवं लोकपाल जिनकी प्रार्थना करते हैं, उन शरण प्रदान करने वाले भगवान् शङ्कर की मैं शरणागति करता हूँ ॥१६१॥ जो भगवान् शङ्कर शङ्ख, चन्द्रमा तथा कुन्द के समान श्वेत शरीर वाले महाबलवान् नन्दी बैल पर चढकर पार्वतीजी के साथ प्रालयकालीन मेघ से विभूषित आकाश मार्ग में विचरण करते हैं, उन शरणागत रक्षक भगवान् शङ्कर की मैं शरणागति करता हूँ ॥१६२॥ यमराज की आज्ञा से भयङ्कर यमदूतों द्वारा ले जाये जाते हुए भयभीत शान्त, भक्ति प्रवण स्तुति करते हुए महर्षि मार्कण्डेय की रक्षा जिन्होंने बलपूर्वक कर ली; उन शरणागत रक्षक भगवान् शङ्कर की

यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या स्तुत्वा च वाग्भिरमलाभिरतंद्रितात्मा ।
दीप्तस्तमांसिनुदते स्वकरैर्विवस्वां स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६५॥
ये त्वां सुरोत्तमगुरुं पुरुषाविमूढा जानंति नास्य जगतः सचराचरस्य ।
ऐश्वर्यमाननिगमानुशयेन पश्चा तेयातनानुभवंत्यविशुद्धचित्ताः ॥१६६॥
तस्यैवं स्तुवतोऽवोचच्छूलपाणिर्वृषध्वजः। उवाच वचनं हृष्टो राघवं तुष्टमानसः ॥१६७॥

रुद्र उवाच

राम हृष्टोस्मि भद्रं ते जातस्त्वं निर्मले कुले। त्वं चापि जगतां वंद्यो देवो मानुषरूपधृत् ॥१६८॥
त्वया नाथेन वै देवाः सुखिनः शाश्वतीः समाः । सेविष्यंते चिरं कालं गते वर्षे चतुर्दशे ॥१६९॥
अयोध्यामागतं त्वां ये द्रक्ष्यन्ति भुवि मानवाः । सुखं तेऽत्र भजिष्यंति स्वर्गे वासन्तथाक्षयम्॥१७०॥
देवकार्यं महत्कृत्वा आगच्छेथाः पुनः पुरीम्। राघवस्तु तथादेवं नत्वा शीघ्रं विनिर्गतः ॥१७१॥
इंद्रमार्गां नदीं प्राप्य जटाजूटं नियम्य च। अब्रवील्लक्ष्मणं राम इदमर्पय मे धनुः ॥१७२॥
रामवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा सीतां वै लक्ष्मणोब्रवीत्। किमर्थं देवि रामेण त्यक्तोऽहं कारणं विना ॥१७३॥
अपराधं न जानामि कुपितोयन्महाभुजः । रामेणाहं परित्यक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥१७४॥
नैव मेजीवितेनार्थो धिग्धिङ्मां कुलपांसनम् । आर्यस्य येन वै मन्युर्जनितः पापकारिणा ॥१७५॥
कांस्तुलोकान्गमिष्यामि अपध्यातो महात्मना। उभौ हस्तौ मुखे कृत्वा साश्रुकंठो व्रवीदिदम्॥१७६॥

मैं शरणागति करता हूँ ॥१६३॥ अपने वायें हस्त कमल के नख से जिन भगवान् शङ्कर ने विकसित कमल के समान देदीप्यमान ब्रह्माजी के पाँचवें शिर को देवताओं के सामने ही काट दिया उन शरणागत रक्षक शङ्करजी की मैं शरणागति करता हूँ ॥१६४॥ जिन भगवान् शङ्कर के चरणों की भक्तिपूर्वक स्तुति करके सतत सावधान भगवान् सूर्य सदा अन्धकार को विनष्ट किया करते हैं, उन शरणागत रक्षक भगवान् शङ्कर की मैं शरणागति करता हूँ ॥१६५॥ जो अज्ञानी पुरुष अपने ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा तथा वेदज्ञान के अभिमान के कारण आपको इस चराचरात्मक जगत् के गुरु (कारण) नहीं मानते हैं, वे मलिन अन्तःकरण वाले जीव यमयातना को भोगते हैं ॥१६६॥ जिस समय भगवान् इस तरह से स्तुति कर रहे थे उसी समय शङ्करजी प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजी से कहे ॥१६७॥ **रुद्र ने कहा—** हे राम! मैं प्रसन्न हूँ, आप निर्मल वंश में उत्पन्न हुए हैं आप मनुष्य का रूप धारण किए हुए हैं, किन्तु आप संसारी जीवों के लिए वन्दनीय (परमात्म तत्त्व) हैं ॥१६८॥ आप संसार के स्वामी है आपकी ही कृपा से सभी सदा सुखी रहा करते हैं। चौदहवें वर्ष के बीत जाने पर वे सभी देवता आपकी सेवा करेंगे ॥१६९॥ आपके अयोध्या लौट जाने पर पृथिवी के जो लोग आपका दर्शन करेंगे वे इस लोक में सुखी रहेंगे और अन्त में वे अक्षय लोकों को प्राप्त करेंगे ॥१७०॥ आप देवताओं के महान् कार्य को करके अपनी नगरी में आयेंगे। इसके बाद भगवान् श्रीराम शङ्करजी को नमस्कार करके वहाँ से निकल गये ॥१७१॥ इन्द्रमार्गा नदी के पार आकर उन्होंने अपने जटा-जूट को बाँधा, इसके बाद उन्होंने लक्ष्मणजी से कहा कि तुम मेरा धनुष दे दो ॥१७२॥ श्रीराम की बातों को सुनकर लक्ष्मणजी ने सीताजी से कहा हे देवि ! क्या कारण है कि श्रीराम ने बिना किसी कारण के मेरा त्याग कर दिया है ?॥१७३॥ मैं अपने उस अपराध को नहीं जानता हूँ, जिसके कारण श्रीराम कुपित हुए हैं। यदि श्रीराम ने मेरा त्याग कर दिया तो मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा ॥१७४॥ मुझे अपने जीवन से कोई लाभ नहीं है, मुझको धिक्कार है। मैं पापी हूँ, इसीलिए आर्य मुझसे नाराज हुए हैं ॥१७५॥ महात्मा श्रीराम के क्रोध का पात्र होकर मैं न जाने किस लोक में

नापराध्याम रामस्य कर्मणा मनसा गिरा। स्पृष्टौ चरणौ देवि मम नान्या गति र्भवेत् ॥१७७॥
ततः सीता ब्रवीद्रामं त्यक्तः किमनुजस्त्वया। वैषम्यं त्यज्यतां बाले लक्ष्मणे लक्ष्मिवर्धने ॥१७८॥
राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाहं त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम्। परस्परं न पश्यंति स्वात्मनश्च हितं वचः ॥१७९॥
श्रुतपूर्वं च सुश्रोणिक्षेत्रस्यास्य विचेष्टितम्। अत्र क्षेत्रे जनास्सत्यं सर्वे हिस्वार्थतत्पराः ॥१८०॥
परस्परं न पश्यंति स्वात्मनश्च हितं वचः। न शृण्वांति पितुः पुत्राः पुत्राणां पितरस्तथा ॥१८१॥
न शिष्या हि गुरोर्वाक्यं शिष्यस्यापि तथा गुरुः। अर्थानुबंधिनी प्रीतिर्न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥१८२॥
इत्येवं कथयन्नेव प्राप्तो रेवां महानदीम्। चक्रेभिषेकं काकुस्थः सानुजः सह सीतया ॥१८३॥
तर्पयित्वा च सलिलैः स्वान्पितॄन्दैवतान्यपि। उद्वीक्ष्य च मुहुःसूर्यं देवताश्च समाहितः ॥१८४॥

कृताभिषेकस्तु रराज रामः सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन ।
कृताभिषेकः सह शैलपुत्र्या गुहेन सार्धं भगवानिवेशः ॥१८५॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे मार्कडेयाश्रमदर्शनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

जाऊँगा। अपने दोनों हाथों से मुख को ढँककर गद्गद कण्ठ से लक्ष्मणजी ने इन सारी बातों को कहा ॥१७६॥ हे देवि ! मैं आपके दोनों चरणों को छूकर कहता हूँ कि श्रीराम से भिन्न मेरा कोई भी दूसरा आश्रय नहीं हैं। मैं तो मन, वाणी तथा कर्म किसी भी प्रकार से श्रीराम का अपराध करना नही चाहता हूँ ॥१७७॥ उसके बाद श्रीसीताजी ने श्रीराम से कहा— लक्ष्मण लक्ष्मी का संवर्धन करने वाले हैं, वालकों पर क्रोध नहीं करना चाहिए। आप अपने इस अनुज का क्यों त्याग करते हैं ॥१७८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से कहा— मैं लक्ष्मण का त्याग नहीं कर रहा हूँ। हे प्रिये ! स्वप्न में भी मुझे श्रीलक्ष्मण का परित्याग अभिमत नहीं है ॥१७९॥ हे सुन्दरि ! इस क्षेत्र के विषय में मैं पहले से ही सुन चुका हूँ। यहाँ सव लोग सत्य का परित्याग करके अर्थ परायण हो चुके हैं ॥१८०॥ वे परस्पर में भी आत्मकल्याण की बातों को नहीं सुनते हैं। यहाँ न तो पिता की बातों को पुत्र सुनते हैं और न पुत्र की बातों को पिता सुनता है ॥१८१॥ न शिष्य गुरु की बातों को सुनता है और न गुरु शिष्य की बातों को सुनते हैं। सबों के प्रेम का सम्वन्ध अर्थ से है। स्वाभाविक प्रेम किसी का नहीं है। कोई भी किसी का प्रिय नहीं है ॥१८२॥ इसतरह से बातें करते हुए भगवान् श्रीराम रेवा (नर्मदा) नदी पर आ गये। वहाँ पर उन्होंने अपनी पत्नी और अनुज के साथ स्नान किया ॥१८३॥ फिर उन्होंने देवताओं और पितरों का तर्पण किया, उसके बाद थोड़ी देर तक उन्होंने सूर्य और देवताओं का दर्शन किया ॥१८४॥ इसके वाद सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ स्नान करके भगवान् श्रीराम उसी तरह सुशोभित हुए जिस तरह पार्वतीजी एवं कार्तिकेय के साथ शङ्करजी सुशोभित होते हैं ॥१८५॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के मार्कण्डेयाश्रम दर्शन नामक तैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३३।।

चौंतीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

कस्मिन्काले भगवता ब्रह्मणा लोककारिणा। यज्ञियैर्यष्टुमारब्धं तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१॥
किं नामानो ऋत्विजस्ते ब्रह्मणाये प्रकल्पिता:। का च वै दक्षिणा तेषां दत्ता तेन महात्मना ॥२॥
यथा भूतं यथावृत्तं तथा त्वं मे प्रकीर्तय । सुमहत्कौतुकं जातं यज्ञं पैतामहं प्रति ॥३॥

पुलस्त्य उवाच

पूर्वमेव मया ख्यातं यदा स्वायंभुवो मनुः । सृष्ट्वाप्रजापतीन् सर्वानुक्तः सृष्टिं कुरुष्व वै ॥४॥
स्वयं तु पुष्करं गत्वा यज्ञस्याहत्यविस्तरम् । ससंभारान् समानाय्य वह्न्यागारेस्थितो भवत् ॥५॥
गायंति नित्यं गंधर्वा नृत्यंत्यप्सरसां गणाः। ब्रह्मोद्गाताहोताध्वर्युश्चत्वारो यज्ञवाहकाः ॥६॥
एकैकस्य त्रयश्चान्ये परिवाराः स्वयंकृताः । ब्रह्मा च ब्राह्मणाच्छंसी पोता चाग्नीध्र एव च ॥७॥
आन्वीक्षिकी सर्वविद्या ब्राह्मी ह्येषा चतुष्टयी। उद्गाता च प्रत्युद्गाता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्यः ॥८॥
चतुष्टयी द्वितीयैषा तूद्गातुश्च प्रकीर्तिता । होता च मैत्रावरुणस्तथाऽच्छावाक एव च ॥९॥
ग्रावस्तुच्चचतुर्थोत्र तृतीया च चतुष्टयी। अध्वर्युश्च प्रतिष्ठाता नेष्टोत्रेता तथैव च ॥१०॥
चतुष्टयी चतुर्थ्येषा प्रोक्ता शंतनुनंदन । एते वै षोडशप्रोक्ता ऋत्विजो वेदचिंतकैः ॥११॥

ब्रह्माजी के यज्ञ के काल आदि का वर्णन, ब्रह्माजी की आज्ञा से लक्ष्मी सहित विष्णु के द्वारा सावित्री को मनाना, गौरी के साथ शिवजी द्वारा सावित्री देवी की प्रार्थना, सावित्री का ब्रह्माजी के पास आना, गायत्री और सावित्री का संवाद, यज्ञान्त स्नान के द्वारा ब्रह्माजी का सभी देवताओं को वरदान, विष्णुकृत ब्रह्म स्तुति, रुद्र कृत ब्रह्म स्तुति, ब्रह्मा द्वारा अपने निवास स्थान का वर्णन, ब्रह्माजी के स्थान का माहात्म्य, पुष्कर आदि तीर्थो में अनेक प्रकार के दानों की महिमा, पुष्कर तीर्थ में दीक्षा इत्यादि की विस्तृत विधि, ग्रहों के अनुकूल बनाने की विधि का वर्णन तथा श्वेतराजा की कथा

भीष्मजी ने कहा— आप मुझे यह बतलायें कि लोककर्ता ब्रह्माजी ने किस समय यज्ञ करना प्रारम्भ किया?॥१॥ उस यज्ञ के ऋत्विजों का नाम क्या था ? जिन सबों को ब्रह्माजी ने ऋत्विज बनाया और उन सबों को ब्रह्माजी ने कौन सी दक्षिणा दी ?॥२॥ उस यज्ञ के समस्त वृत्तान्तों को आप मुझे बतलायें, पितामह ब्रह्माजी के यज्ञ के विषय में मुझे अत्यन्त उत्कण्ठा है ॥३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जव ब्रह्माजी ने समस्त प्रजापतियों की सृष्टि करके उनसे कहा कि सृष्टि करो ॥४॥ स्वयं वे पुष्कर क्षेत्र में जाकर विस्तार पूर्वक यज्ञ की सारी सामग्रियों को लाकर यज्ञशाला में बैठ गये ॥५॥ उस समय सभी गन्धर्व सङ्गीत कर रहे थे और अप्सरायें नृत्य कर रहीं थीं, उस यज्ञ का प्रवर्तन करने वाले चार हुए ब्रह्मा, उद्गाता, अध्वर्यु और होता ॥६॥ इन चारों वे दूसरे और तीन-तीन परिवार नियुक्त हुए । ब्रहा, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता और आग्नीध्र । ये ब्रह्मा के परिवार हैं ॥७॥ ये सभी आन्वीक्षिकी तथा वेदविद्या में प्रवीण होते हैं । उद्गाता, प्रत्युद्गाता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य ॥८॥ ये चारो उद्गाता के परिवार होते हैं । होता, मैत्रावरुण तथा अच्छावाक ॥९॥ ग्रावस्तुत ये चारो तृतीय ऋत्विज होता के परिवार हैं । अध्वर्यु, प्रतिष्ठता, नेष्ट और नेता ॥१०॥ हे शन्तनु नंदन ! ये चारो चतुर्य, ऋत्विज अध्वर्यु के परिवार हैं । वेद के चिन्तकों ने इन सोलह ऋत्विजों को बतलाया है ॥११॥ ब्रह्माजी ने तीन सौ साठ यज्ञों की सृष्टि की है । इन

शतानि त्रीणि षष्टिश्च यज्ञाः सृष्टाः स्वयंभुवा। एतांश्चैतेषु सर्वेषु प्रवदन्ति सदाद्विजान् ॥१२॥
सदस्यं केचिदिच्छन्ति त्रिसामाध्वर्युमेव च । ब्रह्माणं नारदं चक्रे ब्राह्मणाच्छंसिगौतमम् ॥१३॥
देवगर्भं च हीतारमाग्नीध्रं चैव देवलम् । उद्गातांगिरसः प्रत्युद्गाता च पुलहस्तथा ॥१४॥
नारायणः प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्योत्रि रुच्यते । तस्मिन्यज्ञे भृगुर्होता वसिष्ठो मैत्र एव च ॥१५॥
अच्छावाकः क्रतुः प्रोक्तो ग्रावस्तुच्च्यवनस्तथा। पुलस्त्योद्ध्वर्युरिवासीत्प्रतिष्ठाता च वै शिबिः ॥१६॥
बृहस्पतिस्तत्रनेष्टा उन्नेता शांशपायनः । धर्मः सदस्यस्तत्रासीत्पुत्रपौत्रसहायवान् ॥१७॥
भरद्वाजः शमीकश्च पुरुकुत्सो युगंधरः । एनकस्तीर्णकश्चैव केशः कुतप पव च ॥१८॥
गर्गो वेदशिराश्चैव त्रिसामाद्धवार्यवः कृताः। कण्वादयस्तथाचान्यो मार्कंडो तण्डिरेव च ॥१९॥
पुत्रपौत्रसमेताश्च सशिष्याः सह बांधवाः । कर्माणि तत्र कुर्वाणा दिवानिशमतंद्रिताः ॥२०॥
मन्वंतरे व्यतीते तु यज्ञस्यावभृथोऽभवत् । दक्षिणा ब्रह्मणे दत्ता प्राची होतुस्तु दक्षिणा ॥२१॥
अद्ध्वर्यवे प्रतीची तु उद्गातुश्चोत्तरा तथा । त्रैलोक्यं सकलं ब्रह्मा ददौ तेषां तु दक्षिणाम् ॥२२॥
धेनूनां च शतं प्राज्ञै र्दातव्यं यज्ञसिद्धये। अष्टौ तु यज्ञवाहानां चत्वारिंशाधिकास्तथा ॥२३॥
द्वितीयस्थानिनां चैव चतुर्विंशत्प्रकीर्तिताः । षोडशैव तृतीयानां देया वै धेनवः शुभाः ॥२४॥
द्वादशैव तथा चान्या आग्नीध्रादिषु दापयेत् । अनया संख्यया चैव ग्रामान् दासीरजाविकं ॥२५॥
सहस्रभोज्यं दातव्यं स्नात्वा चावभृथे क्रतौ । यजमानेन सर्वस्वं देयं स्वायं भुवोब्रवीत् ॥२६॥
अद्ध्वर्यूणां सदस्यानां स्वेच्छया दानमिष्यते । विष्णुं चाहूय वै ब्रह्मा वाक्यमाह मुदान्वितः ॥२७॥

सभी यज्ञों के ऋत्विज ब्राह्मणों की सोलह संख्या होनी चाहिए ॥१२॥ कुछ लोग इन ऋत्विजों के अतिरिक्त एक सदस्य तथा ग्यारह त्रिसामाध्वर्युओं को भी बतलाते हैं। ब्रह्माजी ने नारदजी को ब्रह्मा बनाया औ[illegible] [illegible]म ब्रह्म [illegible] को आग्नीध्र बनाया। अङ्गिरा ऋषि को उद्गाता और पुलह ऋषि को प्रत्युद्गाता ॥१३-१४॥ नारायण [illegible] प्रतिहर्ता और अत्रि ऋषि को सुब्रह्मण्य बनाया। उस यज्ञ में भृगु महर्षि होता, वसिष्ठ महर्षि को मैत्रावरुण ॥[illegible]५॥ क्रतु को अच्छावाक् तथा च्यवन महर्षि को ग्रावस्तुत बनाया। पुलस्त्य (मुझे) को अध्वर्यु तथा शिवि को प्र[illegible]तष्ठाता ॥१६॥ उस यज्ञ में बृहस्पति नेष्टा थे तथा शांशपायन को उन्नेता बनाया गया। उस यज्ञ में अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ धर्म सदस्य थे ॥१७॥ भरद्वाज, शमीक, पुरुकुत्स, युगन्धर, एनक, तीर्णक, केश तथा कुतप ॥१८॥ गर्ग, वेदशिरा, ये सबके सब त्रिसामाध्वर्यु हुए। कण्व आदि, मार्ण्कडेय, तण्डि ॥१९॥ ये सभी अपने पुत्रों, पौत्रों तथा बान्धवों तथा शिष्यों के साथ बड़ी सावधानी से रात-दिन दूसरे कार्यों को करते थे ॥२०॥ उस मन्वन्तर के बीत जाने पर उस यज्ञ का अवभृथ स्नान हुआ। ब्रह्माजी ने ब्रह्मा को दक्षिणा के रूप में पूर्वदिशा होता को दक्षिण दिशा ॥२१॥ अध्वर्यु को पश्चिम दिशा और उद्गाता को उत्तर दिशा प्रदान किया। इसतरह से ब्रह्माजी ने उन सबों को दक्षिणा के रूप में त्रैलोक्य को ही प्रदान कर दिया ॥२२॥ प्राज्ञ पुरुष को यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए सौ गौओं को दान में देना चाहिए। उनमें से यज्ञ का निर्वाह करने वाले प्रथम ऋत्विज समुदाय को अड़तालिस गायें ॥२३॥ दूसरे स्थान के ऋत्विजों को चौबीस, तीसरे स्थान के ऋत्विजों को सोलह ॥२४॥ तथा आग्नीध्र इत्यादि को वारह गायें देनी चाहिये। इसी संख्या में ऋत्विजों को ग्राम, दासी, बकरी तथा भेंड़ इत्यादि भी दान में देना चाहिए ॥२५॥ यज्ञ के अवभृथ स्नान करने पर एक हजार ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए। स्वायम्भुव मनु ने बतलाया है कि यजमान को अपना सर्वस्व दान में दे देना चाहिए ॥२६॥ त्रिसामाध्वर्युओं को तथा

अभिप्रसाद्यसावित्रीं त्वमिहानय सुव्रत। त्वयि दृष्टे न सा कोपं करिष्यति शुभानना ॥२८॥
स्निग्धैः सानुनयै र्वाक्यै र्हेतुयुक्तै र्विशेषतः। त्वं सदा मधुराभाषी जिह्वा तेस्त्रवतेमृतम्॥२९॥
यः करोति न ते वाक्यं त्रैलोक्ये न सदृश्यते। गंधर्वैः सहितो गत्वाप्रिया मम समानय॥३०॥
त्वया प्रसादिता साध्वी तुष्टा सा त्वेष्यति ध्रुवम्। विलंबो न त्वया कार्यो व्रज माधव माचिरम्॥३१॥
लक्ष्मीस्ते पुरतो यातु सावित्र्याः सदनं शुभा। तस्यास्त्वं पदवीं गच्छ सांत्वयस्व प्रिया मम ॥३२॥
न च ते विप्रियं देवि विविक्तं कर्तुमीहते। मुखं प्रेक्ष्य सदा कालं वर्तते तव सुंदरि ॥३३॥
एवं विधानि वाक्यानि मधुराणि बहूनि च। देवी श्रावयितव्या सा यथा तुष्टाऽचिराद्भवेत् ॥३४॥
एवमुक्तस्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा लोककारिणा। जगाम त्वरितो भूत्वा सावित्री यत्र तिष्ठति ॥३५॥
दूरादेवागच्छमानं पत्न्या सह च केशवम्। उत्तस्थौ सत्वरा भूत्वा विष्णुना चाभिवंदिता ॥३६॥
नमस्ते देवदेवेशि ब्रह्मपत्नि नमोस्तुते। त्वां नमस्कृत्य सर्वो हि जनः पापात्प्रमुच्यते ॥३७॥
पतिव्रता महाभागा ब्रह्मणस्त्वं हृदि स्थिता। अहर्निशं चितयंस्त्वां प्रसादं तेभिकांक्षति ॥३८॥
सखीं चैनां प्रियां पृच्छ लक्ष्मीं भृगुसुतां सतीम्। यदि च श्रद्दधानासि वाक्यादस्मात्सुलोचने ॥३९॥
एवमुक्त्वा ततः शौरिः सावित्र्याश्चरणद्वयम्। उभाभ्यां चैव हस्ताभ्यां क्षम देवि नमोस्तुते ॥४०॥
जगद्वंद्ये जगन्मातरिति स्पृष्ट्वाऽभ्यवन्दत। संकोच्य पादौ सा देवी स्वकरेण करौ हरेः ॥४१॥
गृहीत्वोवाच तं विष्णुं सर्वं क्षान्तं मयाच्युत। इयं लक्ष्मीः सदा वत्स हृदये ते निवत्स्यति ॥४२॥

सदस्यों को अपनी इच्छा के अनुसार दान देना चाहिए। इसके बाद प्रसन्नता पूर्वक भगवान् विष्णु को बुलाकर ब्रह्माजी ने कहा ॥२७॥ हे सुव्रत ! आप प्रसन्न करके सावित्री को यहाँ लाइये। आपको देखकर सावित्री क्रोध नहीं करेगी ॥२८॥ स्नेह, तथा अनुनय से युक्त तथा युक्ति-युक्त वाक्यों द्वारा उसे लाइये। आप तो सदा मधुर ही बोलते हैं। आपकी जिह्वा से सदा अमृत टपकता है ॥२९॥ त्रैलोक्य में ऐसा कोई भी नहीं है जो आपकी बात को न मानें। गन्धर्वों के साथ जाकर आप मेरी पत्नी सावित्री को लाइये ॥३०॥ आपके मनाने पर वह निश्चित रूप से आयेगी। हे माधव ! देर न कीजिये शीघ्र जाइये ॥३१॥ आपसे आगे ही लक्ष्मी देवी सावित्री के घर जायँ। आप लक्ष्मी देवी के पीछे जायँ और मेरी प्रियतमा को सान्त्वना प्रदान करें ॥३२॥ आप उससे कहेंगे कि हे सुन्दरि ! ब्रह्माजी आपके मन के प्रतिकूल कोई भी कार्य नहीं करना चाहते हैं, वे सदा आपके मुख को देखते रहते हैं ॥३३॥ इस तरह की अनेक वाक्यों को आप उससे कहें जिससे कि वह शीघ्र प्रसन्न हो जाय ॥३४॥ लोक स्रष्टा ब्रह्माजी के इस तरह कहने पर भगवान् विष्णु शीघ्र ही सावित्री देवी के पास गये ॥३५॥ दूर से अपनी पत्नी के साथ आते हुए भगवान् विष्णु को देखकर सावित्री देवी शीघ्र उठकर खड़ी हो गयीं और भगवान् विष्णु ने उनकी वन्दना की ॥३६॥ हे देवदेवेशि ! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्माजी की पत्नी आपको नमस्कार है। आपको नमस्कार करके सभी लोग पापमुक्त हो जाते हैं ॥३७॥ आप पतिव्रता, महाभागा तथा ब्रह्माजी के हृदय में निवास करती हैं। आपकी निरन्तर चिन्ता करते हुए ब्रह्माजी आपकी प्रसन्नता चाहते हैं ॥३८॥ आप अपनी प्रिय सखी तथा महर्षि भृगु की पुत्री लक्ष्मी से ही पूछ लीजिये। हे सुलोचने ! आप मेरी इन बातों पर विश्वास करें। इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु ने सावित्री देवी के दोनों पैरों को पकड़ कर कहा देवि ! आप क्षमा करें ॥३९-४०॥ हे जगद्वंन्द्य मातः इस तरह से सावित्री देवी के चरणों का स्पर्श करके भगवान् विष्णु ने वन्दना की। अपने दोनों पैरों को समेट कर सावित्री देवी ने श्रीहरि के दोनों हाथों को पकड़ लिया और कहा हे अच्युत ! मैंने सब क्षमा कर दिया है। हे वत्स ! यह लक्ष्मी तुम्हारे हृदय में सदैव निवास

विना त्वया न चान्यत्र रतिं यास्यति कर्हिचित् । भृगोः पत्न्यां समुत्पन्ना पत्न्येषा तव सुव्रता ॥४३॥
देवदानवयत्नेन संभूता चोदधौ पुनः । भगवान्यत्र तत्रैषा अवतारं च कुर्वती ॥४४॥
देवत्वे देवदेहा वै मानुषत्वे च मानुषी । त्वत्सहाया न संदेहो दांपत्यव्रतिनी चिरम्॥४५॥
यन्मया चात्र कर्त्तव्यं प्रभो तन्मां वदस्व वै ।

विष्णुरुवाच

यज्ञावसानं संजातं प्रेषितोहं तवांतिकम् ॥४६॥
सावित्रीमानय क्षिप्रं मया स्नानं समाचरेत् । आगच्छ त्वरिता देवि याहि तत्र मुदान्विता ॥४७॥
पश्य स्वस्य पतिं गत्वा देवैः सर्वैस्समन्वितम् ।

लक्ष्मीरुवाच

आर्ये उतिष्ठ शीघ्रं त्वं याहि यत्र पितामहः ॥४८॥
बिना त्वया न यास्यामि स्पृष्टौ पादौ मया तव । उत्थाप्य साग्रहीद्धस्तं दक्षिणा दक्षिणे करे॥४९॥
चिरायमाणां सावित्रीं ज्ञात्वा देवः पितामहः । समीपस्थं महादेवमिदमाह तदा वचः॥५०॥

ब्रह्मोवाच

गच्छ त्वमनया सार्द्धं पार्वत्याऽसुरदूषण । गौरी त्वदग्रतो यातु पश्चात्त्वं गच्छ शङ्कर ॥५१॥

पुलस्त्य उवाच

प्रतिबोध्यानय यथा शीघ्रमायाति तत्कुरु । एवमुक्तौ तदा तौ तु पर्वतीपरमेश्वरौ ॥५२॥
गत्वादिष्टौ दंपती तां प्रोचतुर्ब्रह्मणः प्रियाम् । बृहत्कृत्यं त्वया तत्र करणीयं पतिव्रते ॥५३॥
पृच्छस्वेमां वरारोहां गौरीं पर्वतनंदिनीम् । लक्ष्मींचैतां विशालाक्षीमिंद्राणीं वा शुभानने॥५४॥

करेगी ॥४१-४२॥ आपके बिना यह किसी से भी प्रेम नहीं करेगी । आपकी यह सुव्रता पहले भृगु महर्षि की पत्नी ख्याति देवी के गर्भ से उत्पन्न हुयी ॥४३॥ देवताओं तथा दानवों के प्रयास से यह पुनः समुद्र से उत्पन्न हुयी । जहाँ पर आपका अवतार होता है, वहीं पर यह भी अवतार लेती हैं ॥४४॥ आपके देवता होने पर यह देव शरीर को धारण करती है और मनुष्य होने पर मानव शरीर को धारण करती है । यह सदा आपके साथ ही रहा करती है, यह दीर्घकाल से दाम्पत्य व्रत को करने वाली है ॥४५॥ हे प्रभो ! मुझे जो कुछ करना है, उसे आप बतलाइये । **भगवान् विष्णु ने कहा—** यज्ञ समाप्त हो गया है, मुझे ब्रह्माजी ने आपके पास भेजा है ॥४६॥ उन्होंने कहा है कि शीघ्र सावित्री को लाओ । वह मेरे साथ स्नान करें । हे देवी ! आप वहाँ पर प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र चलें ॥४७॥ वहाँ जाकर सभी देवताओं के साथ अपने पति को प्रसन्न कीजिये । **लक्ष्मी देवी ने कहा—** हे आर्ये ! शीघ्र उठो, तथा शीघ्र वहाँ चलो जहाँ पर श्रीब्रह्माजी हैं ॥४८॥ मैं आपके बिना जा नहीं सकती हूँ, मैंने आपके चरणों को छू भी लिया है । इसके बाद लक्ष्मीजी ने सावित्री देवी को उठाकर उनके दाहिने हाथ को पकड़ लिया ॥४९॥ देर करती हुयी सावित्री देवी को जानकर ब्रह्माजी ने शङ्करजी से कहा ॥५०॥ ऐ असुरों को दूषित करने वाले शङ्करजी इस पार्वती देवी के साथ आप जाइये । आगे गौरी देवी जायँ ओर आप उनके पीछे से जाइये ॥५१॥ उसे अश्वस्त करके शीघ्र लाइये । ब्रह्माजी के इसतरह से कहने पर पार्वतीजी तथा शङ्करजी ॥५२॥ पति-पत्नी दोनों जाकर ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री देवी से कहे हे पतिव्रते ! वहाँ पर चलकर आपको बहुत बड़ा काम करना है ॥५३॥ आप इस पर्वत नन्दिनी पार्वती से पूछ लीजिये इस बात को आप विशाल नेत्रों वाली लक्ष्मी तथा शची से भी पूछ लें ॥५४॥ हे देवि ! जिन

यासां वा श्रद्धधासि त्वं पृच्छ देवि नमोस्तुते । आशीर्वादस्तया दत्तो देवदेवस्य शूलिनः ॥५५॥

सावित्र्युवाच

शरीरार्धे च ते गौरी सदा स्थास्यति शङ्कर । अनया शोभसे देव त्वन्तु त्रैलोक्यसुंदर ॥५६॥

पुलस्त्य उवाच

सुखभागिजगत्ससर्वं त्वया नाथेन शत्रुहन् । एवं ब्रुवंती सावित्री गृहीता ब्रह्मणः प्रिया ॥५७॥
गौर्य्या च वामहस्ते तु लक्ष्म्या वै दक्षिणे करे । अभिवंद्य तु तां देवीं शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ॥५८॥

शिव उवाच

एह्यागच्छमहाभागे यत्र तिष्ठति ते पतिः । तत्र गच्छ वरारोहे स्त्रीणां भर्ता परा गतिः ॥५९॥
बृहदाग्रहेण देवि प्रणयाद्गंतुमर्हसि । लक्ष्मीश्चैषा पार्वती च स्थिता देवि तवाग्रतः ॥६०॥
एतयोर्वचसा देवि आवयोश्च शुभानने । मानभंगो न ते कर्तुं युज्यते ब्रह्मणः प्रिये ॥६१॥
अस्मदभ्यर्थिता देवि तत्र याहि मुदान्विता ।

गौर्युवाच

अहं च ते प्रिया देवि सर्वदा वदसि स्वयम् ॥६२॥
लक्ष्मीश्च ते करे लग्ना दक्षिणे च मया धृता । एह्यागच्छ महाभागे यत्र तिष्ठति ते पतिः ॥६३॥

पुलस्त्य उवाच

नीता सा तु तदा ताभ्यां देवी सा मध्यतः कृता । पुरस्सरौ विष्णुरुद्रौ शक्राद्याश्च तथा सुराः ॥६४॥
गंधर्वाप्सरसश्चैव त्रैलोक्यं सचराचम् । तत्रायाता च सा देवी सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥६५॥
सावित्रीं सुमुखीं दृष्ट्वा सर्वलोकपितामहः । गायत्र्या सहितो ब्रह्मा इदं वचनमब्रवीत् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

एषा देवी कर्मकरी अहं ते वशगःस्थितः । समादिश वरारोहे यत्ते कार्यं मया त्विह ॥६७॥

सबों पर आपकी श्रद्धा है उन सबों से आप पूछ सकती हैं । आपको नमस्कार है । सावत्री ने शङ्करजी को आशीर्वाद दिया ॥५५॥ हे शङ्कर ! आपके शरीरार्द्ध रूप से गौरी सदा बनी रहेंगी । हे त्रैलोक्य सुन्दर आप इसके साथ सुन्दर लगते हैं ॥५६॥ हे शत्रुहन् ! आप जैसे स्वामी को प्राप्त करके संसार सुखी हो गया है । जिस समय सावित्री देवी इस तरह से कह रही थीं उस समय गौरी देवी ने सावित्री देवी के बायें हाथ को पकड़ लिया और लक्ष्मी दाहिने हाथ को पकड़ी थीं । सावित्री देवी को प्रणाम करके शङ्करजी ने कहा ॥५७-५८॥ हे महाभागे ! आप आइये और जहाँ आपके पति ब्रह्माजी हैं वहाँ चलिए । स्त्री के लिए उसका सबसे बड़ा आश्रय पति ही होता है ॥५९॥ हे देवि ! बहुत अधिक आग्रह होने के कारण आपको चलना ही चाहिए । लक्ष्मी और पार्वती ये दोनों आपके सामने खड़ी हैं ॥६०॥ इन दोनों के तथा हम दोनों के कहने के कारण आपको हम सबों का अनादर करना ठीक नहीं है ॥६१॥ हे देवि! हमलोगों की प्रार्थना को सुनकर आप प्रसन्नता पूर्वक वहाँ चलें । **गौरी ने कहा**— हे देवि ! आप हमेशा कहती हैं कि मैं आपकी प्रिय सखी हूँ । मैं आपको पकड़े हुयी हूँ और लक्ष्मीजी भी आपकी दाहिनी ओर हैं । अतएव हे महाभागे ! आओ, और वहाँ चलो जहाँ तुम्हारे पतिदेव हैं ॥६३॥ इसके बाद पार्वती और लक्ष्मी दोनों सावित्री देवी को अपने बीच में करके लायीं । उनके आगे विष्णु रुद्र तथा इन्द्र आदि देवता तथा असुर ॥६४॥ गन्धर्व, अप्सराएँ तथा चराचरात्मक त्रैलोक्य चल रहा था । ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री देवी वहाँ आयीं ॥६५॥ सावित्री देवी को प्रसन्न

एवमुक्ता च सा देवी स्वयं देवेन ब्रह्मणा। त्रपयाधोमुखी देवी न च किंचिदवोचत ॥६८॥
पादयोः पतिता देवी गायत्री ब्रह्मचोदिता । कृतवत्यपराधं ते क्षम देवि नमोस्तुते ॥६९॥

पुलस्त्य उवाच

आलिंग्य सादरं कंठे सा परिष्वज्य पीडिताम्। गायत्रीं सांत्वयामास मान्यश्चैष पतिर्मम ॥७०॥
कर्त्तव्यं वचनं तस्य स्त्रीणां प्राणेश्वरः पतिः। उक्तं भगवता पूर्वं सृष्टिकाले विरिंचिना ॥७१॥
न च स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । भर्ता यद्वदते वाक्यं तत्तुकुर्यादकुत्सया ॥७२॥
भर्तृनिंदां या कुरुते स्वसृनिंदां तथैव च । परिवादं प्रलापं वा नरकं सा तु गच्छति ॥७३॥
पत्यौ जीवति या नारी उपवासव्रतं चरेत्। आयुष्यं हरते भर्तु मृता नरकमिच्छति ॥७४॥
एवं ज्ञात्वा त्वया भर्तु र्न कार्यं विप्रियं सति। नचास्य दक्षिणं त्वंगं त्वया सेव्यं कथंचन ॥७५॥
सर्वकार्ये त्वहं चास्य दक्षिणं पक्षमाश्रिता। सव्यं त्वमाश्रयेस्साध्वि पार्श्वे नारदपुष्करौ ॥७६॥
ब्रह्मस्थानानि चान्यानि स्थितान्यायतनानि च । लभे वै शोभमानेह यावत् सृष्टिः प्रजायते ॥७७॥
भवत्या च मया चैव स्थातव्यं च न संशयः। पुष्करे ब्रह्मणः पार्श्वे वामं च त्वं समाश्रय ॥७८॥
अनेन चोपदेशेन सुखं तिष्ठ मयान्विता।

गायत्र्युवाच

एवमेतत्करिष्यामि तव निर्देशकारिका ॥७९॥
तवैवाज्ञा मया कार्या त्वं मे प्राणसमा सखी । अहं ते त्वनुजा देवि सदा मां पातुमर्हसि ॥८०॥

देखकर गायत्री देवी के साथ विद्यमान ब्रह्माजी ने कहा ॥६६॥ हे देवि ! यह आपकी अज्ञाकारिणी है और मैं आपके वशवर्ती हूँ । हे देवि ! आप मुझे आज्ञा दो, आपकी कौन सी सेवा करूँ ॥६७॥ इसतरह से ब्रह्माजी के द्वारा कहे जाने पर सावित्री देवी ने लज्जा से अपना मुख नीचे कर लिया और कुछ नहीं बोलीं ॥६८॥ ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके गायत्री देवी सावित्री देवी के चरणों पर गिर पड़ी और कहीं हे देवि ! मैंने आपका अपराध किया है आप मुझे क्षमा करें । आपको नमस्कार है ॥६९॥ इसके बाद सावित्री देवी ने गायत्री देवी को अपने हृदय से लगा लिया और गायत्री देवी को सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा— ये हमारे पति सम्माननीय हैं ॥७०॥ इनकी बातों को मानना चाहिए, पति पत्नी के प्राणेश्वर होते हैं । इस बात को ब्रह्माजी ने सृष्टिकाल में ही कहा था ॥७१॥ पति जो कहें उसको बिना किसी चिन्ता के मानना चाहिए, इससे भिन्न स्त्री के लिए कोई भी यज्ञ, उपवास तथा व्रत नहीं है ॥७२॥ जो स्त्री अपने पति अथवा सासु की निन्दा करती है अथवा उनका विरोध या कलह करती है, वह नरक में जाती है। पति के जीवित रहने पर जो नारी किसी उपवास या व्रत को करती है, वह अपने पति की आयु को क्षीण करती है॥७४॥ अतएव तुम कभी भी पति के प्रतिकूल आचरण न करना, इनके कभी भी दाहिनी ओर नहीं बैठना ॥७५॥ सभी कार्यों में मैं इनकी दाहिनी ओर और तुम बायी ओर रहोगी, नारद और पुष्कर दोनों बगल में रहेंगे ॥७६॥ ब्रह्माजी के अन्य भी स्थान और मन्दिर है, इस लोक में मैं सृष्टिकाल पर्यन्त इसीतरह रहूँगी ॥७७॥ तुम और हम दोनों पुष्कर में एक साथ रहेंगे । मै ब्रह्माजी की दाहिनी ओर और तुम बायीं ओर रहोगी ॥७८॥ मेरे इस उपदेश को मानकर मेरे साथ सुख पूर्वक रहो । **गायत्री देवी ने कहा**— मैं ऐसा ही करूँगी । मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करने वाली हूँ ॥७९॥ हे सखी ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी, आप मेरी प्राणप्रिया सखी हैं । हे देवि ! आपकी छोटी बहन हूँ, आप मेरी सदा रक्षा करना ॥८०॥ उसके बाद देवाराध्य ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु के साथ

पुलस्त्य उवाच

देवदेवस्तदा ब्रह्मा पुष्करे विष्णुना सह। स्नानावसाने देवानां सर्वेषां प्रददौ वरान् ॥८१॥
देवानां च पतिं शक्रं ज्योतिषां च दिवाकरम्। नक्षत्राणां तथा सोमं रसानां वरुणं तथा॥८२॥
प्रजापतीनां दक्षं च नदीनां चैव सागरम्। कुबेरं च धनाध्यक्षं तथा चक्रे च रक्षसाम्॥८३॥
भूतानां चैव सर्वेषां गणानां च पिनाकिनम्। मानवानां मनुं चैव पक्षिणां गरुडं तथा॥८४॥
ऋषीणां च वसिष्ठं च ग्रहाणां च प्रभाकरम्। एवमादीनि वै दत्वा देवदेवः पितामहः॥८५॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुं च शङ्करं चैव ब्रह्मा प्रोवाच सादरम्। पृथिव्याः सर्वतीर्थेषु भवंतौ पूज्यसत्तमौ॥८६॥
भवद्भ्यां न विना तीर्थं पुण्यतामेति कर्हिचित्। लिंगं वा प्रतिमा वापि दृश्यते यत्र कुत्रचित्॥८७॥
तत्तीर्थं पुण्यतां याति सर्वमेव फलप्रदम्। मानवा ह्युपहारैश्च येकरिष्यंति पूजनम्॥८८॥
युष्माकं मां पुरस्कृत्य तेषां रोगभयं कुतः। येषु राष्ट्रेषु युष्माकमुत्सवाः पूजनादिकाः॥८९॥
प्रवर्त्स्यंती क्रियाः सर्वा यत्फलं तेषु तच्छृणु। नाधयो व्याध्यश्चैव नोपसार्गा न क्षुद्भयम्॥९०॥
विप्रयोगो न चापीष्टै रनिष्टैर्नापि संगतिः। नाक्षिरोगः शिरोर्ति र्वा पित्तशूलभगंदराः॥९१॥
नाभिचारभयं तत्रापस्मारो न विषूचिका। वृद्धिर्निकामतस्तस्मिन् सम्यग्बुद्धिरनुत्तमा॥९२॥
आरोग्यं सर्वतश्चैव दीर्घायुश्च प्रजाधनम्। नाकाले भविता मृत्युर्गावो नाल्पपयोमुचः॥९३॥
नाकालफलिता वृक्षा नोत्पातभयमण्वपि। एतच्छ्रुत्वा ततोविष्णुर्ब्रह्माणं स्तोतुमुद्यतः॥९४॥

स्नान किया और देवताओं को वरदान दिया ॥८१॥ उन्होंने देवताओं के स्वामी इन्द्र को, ज्योतियों के स्वामी सूर्य को, नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा को तथा सभी रसों का स्वामी वरुण को बनाया ॥८२॥ प्रजापतियों का स्वामी दक्ष प्रजापति को, नदियों का स्वामी सागर को, धन का तथा राक्षसों का स्वामी कुबेर को बनाया ॥८३॥ सभी भूतों तथा गणों का स्वामी पिनाकधारी भगवान् शङ्कर को, मनुष्यों का स्वामी मनु को तथा पक्षियों का स्वामी गरुड को बनाया॥८४॥ ऋषियों का स्वामी वसिष्ठ को तथा ग्रहों का स्वामी सूर्य को बनाया। इसतरह से वरदानों को देकर देवाराध्य ब्रह्माजी ॥८५॥ ने प्रेम पूर्वक रुद्र एवं विष्णु से कहा आप दोनों पृथिवी के समस्त तीर्थों में अत्यन्त पूज्य होयेंगे ॥८६॥ आप दोनों के बिना कोई भी पुण्य प्रदान करने वाला तीर्थ नहीं होगा। जहाँ कहीं भी आप दोनों की प्रतिमा अथवा लिङ्ग दिखायी दे वहाँ पर जो भी मनुष्य उपचारों द्वारा आप दोनों की पूजा करेंगे उन लोगों को वही; तीर्थ अधिक पवित्र तथा समस्त फलों को प्रदान करने वाला होगा ॥८८॥ मुझको आगे करके जो लोग आपलोगों की पूजा करेंगे। उनको रोग का भय नहीं होगा। जिनके राष्ट्रों में आपलोगों के उत्सव मनाये जायेंगे तथा आपलोगों की पूजा आदि होंगे ॥८९॥ वहाँ पर होने वाली समस्त क्रियाएँ सफल होंगी। वहाँ पर आधि, व्याधि, महामारी तथा भूखमरी के भय नहीं होंगे ॥९०॥ वहाँ किसी को न तो प्रिय का विप्रयोग होगा और न अप्रिय का संयोग होगा। नेत्र के रोग, शिरोरोग, पित्त, शूल तथा भगन्दर के रोग नहीं होंगे ॥९१॥ वहाँ न अभिचारकर्म, न अपस्मार रोग होगा और न विषूचिका होगी। वहाँ के लोगों की समृद्धि इच्छानुकूल होगी और बुद्धि भी सन्मार्ग गामिनी होगी ॥९२॥ हर ओर आरोग्य बना रहेगा दीर्घ आयु होगी, और प्रजाओं के पास धन होगा। बेसमय के किसी की मृत्यु नहीं होगी तथा गायों का दूध नहीं कम होगा ॥९३॥ बेसमय के वृक्षों में फल नहीं आयेंगे। थोड़ा सा भी किसी उत्पात का भय नहीं होगा। इन सारी बातों को सुनकर भगवान् विष्णु ब्रह्माजी की स्तुति करने के लिए उद्यत हो गये ॥९४॥

विष्णुरुवाच

नमोस्त्वनंताय विशुद्धचेतसे स्वरूपरूपाय सहस्रबाहवे ।
सहस्ररश्मिप्रभवाय वेधसे विशालदेहाय विशुद्धकर्मणे ॥९५॥
समस्तविश्वर्तिहराय शंभवे समस्तसूर्यानलतिग्मतेजसे ।
नमोस्तु विद्यावितताय चक्रिणे समस्तधीस्थान कृते सदा नमः ॥९६॥
अनादिदेवाच्युतशेखरप्रभो भाव्युद्भवद्भूतपते महेश्वर ।
मरुत्पते सर्वपते जगत्पते भुवस्पते भुवनपते सदा नमः ॥९७॥
यज्ञेश नारायण जिष्णु शङ्कर क्षितीश विश्वेश्वर विश्वलोचन ।
शशांक सूर्याच्युत वीरविश्व प्रवृत्तमूर्ते मृतमूर्त अव्यय ॥९८॥
ज्वलद्धुताशर्चिनिरुद्धमंडल प्रदेशनारायणविश्वतोमुख ।
समस्तदेवार्तिहरामृताव्यय प्रपाहि मां शरणगतं तथा विभो ॥९९॥
वक्त्राण्येनकानि विभोतवाहं पश्यामि यज्ञस्य गतिं पुराणम् ।
ब्रह्माणमीशं जगतां प्रसूतिं नमोस्तु तुभ्यं प्रपितामहाय ॥१००॥
संसारचक्रक्रमणैरनेकैः क्वचिद्भवान् देववराधिदेवः ।
तत्सर्वविज्ञानविशुद्धसत्व रूपास्यसे किं प्रणमाम्यहं त्वाम् ॥१०१॥
एवं भवंतं प्रकृतेः पुरस्ता द्योवेत्त्यसौ सर्वविदांवरिष्ठः ।
गुणान्वितेषु प्रसभं विवेद्यो विशालमूर्तिस्त्विह सूक्ष्मरूपः ॥१०२॥

भगवान् विष्णु ने कहा— अनन्त रूप, विशुद्ध अन्तःकरण वाले, आत्मारूप, अनन्त भुजाओं वाले, अनन्ततेजः सम्पन्न, विशालकाय तथा विशुद्ध कर्मो को करने वाले ब्रह्माजी को नमस्कार है ॥९५॥ सम्पूर्ण संसार के कष्ट को विनष्ट करने वाले, कल्याण करने वाले तथा समस्त सूर्य वायु और अग्नि के तेज से सम्पन्न, विद्याओं का विस्तार करने वाले, चक्र धारण करने वाले तथा समस्त ज्ञानो को देने वाले आपको हमारा नमस्कार है ॥९६॥ आप अनादि देव हैं, अपनी प्रतिज्ञा से कभी च्युत नहीं होने वाले होने के कारण अच्युत स्वरूप हैं, आप शङ्कर रूप से शेषनाग का मुकुट धारण करते हैं । हे महेश्वर ! आप ही अतीत एवं अनागत कालों के स्वामी हैं । हे मरुद्गणों के स्वामिन्! सबों के स्वामिन्, जगत् के स्वामिन्, पृथिवी के स्वामिन् तथा भुवनों के स्वामिन् आपको मेरा सदैव ही नमस्कार है॥९७॥ यज्ञेश, नारायण, विष्णु, शङ्कर, पृथिवीश, विश्वेश्वर तथा विश्व लोचन स्वरूप, चन्द्रमा, सूर्य, अच्युत तथा समस्तजगत्शरीरक, अमृतमूर्ति तथा अव्यय स्वरूप, ब्रह्माजी आपको मेरा नमस्कार है ॥९८॥ आप अपने देदीप्यमान ज्वालाओं से युक्त सम्पूर्ण मण्डल में व्याप्त है । आप नारायण स्वरूप हैं, आपके हर ओर मुख हैं । सभी देवताओं के कष्ट को आप दूर करने वाले हैं, अमृत स्वरूप, अविनाशी आप हैं । आप मेरी रक्षा करें । हे विभो ! मैं आपके शरणागत हूँ ॥९९॥ मैं आपके अनेक मुखों को देख रहा हूँ, आप यज्ञ के आश्रय हैं । आप ही ब्रह्मा, रुद्र तथा जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं, प्रपितामह स्वरूप आपको नमस्कार है ॥१००॥ आपने अनेक प्रकार से संसार मण्डल को आक्रान्त कर रखा है । आप कहीं पर तो देवाधिदेव हैं । सभी विशुद्ध बुद्धि वाले पुरुष आपकी उपासना करते हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥१०१॥ इस प्रकार से जो उपासक आपको प्रकृति से भी परे (श्रेष्ठ) तथा अद्वितीय, ब्रह्म स्वरूप जानता है वही सर्वज्ञों में श्रेष्ठ है । गुणमय पदार्थों में आप विराट् रूप से जानने योग्य हैं ।

वाक्पाणिपादैर्विगतेन्द्रियोपि कथं भवान्वै सुगतिस्सुकर्मा ।
संसारबंधे निहितेंद्रियोऽपि पुनः कथं देववरोसि वेद्यः ॥१०३॥
मूर्त्तादमूर्त्तं न तु लभ्यते परं परं वपु र्देवविशुद्धभावैः ।
संसारविच्छित्तिकरै र्यजद्भि रतोऽवसीयेत चतुर्मुखत्वम् ॥१०४॥
परं नजानंति यतो वपुस्ते देवादयोऽप्यद्भुतरूपधारिन् ।
विभोवतारेऽग्रतरंपुराण माराधयेद्यत्कमलासनस्थम् ॥१०५॥
न ते तत्त्वं विश्वसृजोपियोनि मेकांततो वेत्ति विशुद्धभावः ।
परं त्वहं वेद्मि कथं पुराणं भवंतमाद्यं तपसा विशुद्धम् ॥१०६॥
पद्मासनो वै जनकः प्रसिद्ध एवं प्रसिद्धिर्ह्यसकृत् पुराणात् ।
संचिंत्यते नाथ विभुं भवंतं जानाति नैवं तपसा विहीनः ॥१०७॥
अस्मादृशैश्च प्रवरै र्विबोध्यं त्वां देव मूर्खाः स्वमतिं विभज्य ।
प्रबोद्धुमिच्छन्ति न तेषु बुद्धि रुदारकीर्तिष्वपि वेदहीनाः ॥१०८॥
जन्मांतरै र्वेदविवेकबुद्धिभि र्भवेद्यथा वा यदि वा प्रकाशः ।
तल्लाभलुब्धस्य नमानुषत्वं न देवगंधर्वपतिः शिवः स्यात् ॥१०९॥
नविष्णुरूपो भगवान्सुसूक्ष्मः स्थूलोसि देवः कृतकृत्यतायाः ।
स्थूलोऽपि सूक्ष्मः सुलभोसि देव त्वद्बाह्यकृत्या नरके पतंति ॥११०॥
विमुच्यते वा भवतिस्थितेस्मिन् दस्रेन्दुवह्न्यर्कमरुन्महीभिः ।
तत्वैः स्वरूपैः समरूपधारिभि रात्मस्वरूपे विततस्वभावः ॥१११॥

आप विशाल मूर्ति तथा सूक्ष्मरूप वाले हैं ॥१०२॥ वाक्, पाणि, पाद आदि कर्मेन्द्रियों से रहित होकर भी आप सुन्दर गति से युक्त तथा सुन्दर कर्म करने वाले हैं। इस संसार के बन्धन में आसक्त इन्द्रियों वाले भी होकर आप देवश्रेष्ठ रूप से जानने योग्य हैं ॥१०३॥ हे देव ! मूर्त की अपेक्षा अमूर्त श्रेष्ठ रूप से नहि प्राप्त होता है। इसीलिए विशुद्धभाव सम्पन्न, संसार बन्धन को विनष्ट करने वाले याज्ञिकों द्वारा आपका चतुर्मुख रूप ही निश्चित किया जाता है।॥१०४॥ हे अद्भुत रूप धारण करने वाले ब्रह्माजी देवतागण भी आपके परं रूप को नहीं जानते हैं, हे विभो ! अवतारों में श्रेष्ठ आपका जो कमलासनस्थ रूप है, उसे नहीं जानने के कारण वे उसकी आराधना नहीं कर पाते हैं।॥१०५॥ विश्व की सृष्टि करने वाले आपको विशुद्धभाव वाले पुरुष भी तत्त्वतः नहीं जान पाते हैं, ऐसी स्थिति में तपस्या करने के कारण विशुद्ध बने हुए, आद्य पुरुष आपको मैं कैसे जान सकता हूँ ॥१०६॥ आप पद्म के आसन पर बैठे हैं, सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा हैं, इस बात को पुराणों में बार-बार कहा गया है, इस बात का अच्छी तरह से चिन्तन करके भी व्यापक आपको तपस्या से ही व्यक्ति जान पाता है ॥१०७॥ हमारे सदृश श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा जानने योग्य आपको हे देव ! मूर्ख जीव अपनी बुद्धि का विभाग करके आपको जानना चाहते है, उदारकीर्ति वाले भी लोगों में वेदज्ञान नहीं होने के कारण बुद्धि है ही नहीं ॥१०८॥ अनेक जन्मों के प्रयास के द्वारा जिनमें वेद का ज्ञान, तथा विवेक उत्पन्न हो गया है, या प्रकाश उत्पन्न हो गया है। जो उस ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है, वह मनुष्य नहीं होता है, वह तो देव, गन्धर्व या शिव स्वरूप हो जाता है ॥१०९॥ हे देव ! आप विष्णुरूप से अत्यन्त सूक्ष्म नहीं है, आप कृतकृत्यता के स्थूल रूप हैं। आप स्थूल होकर भी सूक्ष्म हैं तथा सुलभ हैं ऐसे आपकी जो लोग

इति स्तुतिं मे भगवन् ह्यनंत जुषस्व भक्तस्य विशेषतश्च ।
समाधियुक्तस्य विशुद्धचेतस स्त्वद्भावभावैकमनोनुगस्य ॥११२॥
सदा हृदिस्थो भगवन्नमस्ते नमामि नित्यं भगवन्पुराण ।
इति प्रकाशं तव मेतदीश स्तवं मया सर्वगतिप्रबुद्ध ॥११३॥
संसारचक्रे भ्रमणादियुक्तांभीतिं पुनर्नः प्रतिपालयस्व ॥११४॥

ब्रह्मोवाच

सर्वज्ञस्त्वं न संदेहो प्रज्ञाराशिश्चकेशव । देवानां प्रथमः पूज्यः सर्वदा त्वं भविष्यसि ॥११५॥
नारायणादनंतरं रुद्रोभक्त्या विरिंचनम् । तुष्टावप्रणतो भूत्वा ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥११६॥
नमः कमलपत्राक्ष नमस्ते पद्मजन्मने । नमः सुरासुरगुरो कारिणे परमात्मने ॥११७॥
नमस्ते सर्वदेवेश नमो वै मोहनाशन । विष्णोर्नाभिस्थितवते कमलासनजन्मने ॥११८॥
नमोविद्रुमरक्तांगपाणिपल्लवशोभिने । शरणं त्वां प्रपन्नोस्मि त्राहि मां भवसंसृतेः ॥११९॥
पूर्वं नीलांबुदाकारं कुड्मलं ते पितामह । दृष्ट्वा रक्तमुखं भूयः पत्रकेसरसंयुतम् ॥१२०॥
पद्मं चानेकपत्रान्तमसंख्यातं निरंजनम् । तत्रस्थितेन त्वयैषा सृष्टिश्चैव प्रवर्तिता ॥१२१॥
त्वां मुक्त्वा नान्यतस्त्राणं जगद्वंद्य नमोस्तुते । सावित्री शापदग्धोहं लिंगं मे पतितं क्षितौ ॥१२२॥
इदानीं कुरु मे शांतिं त्राहि मां सह भार्यया । ब्रह्मा वै पातु मे पादौ जंघे वै कमलासनः ॥१२३॥

उपासना नहीं करते वे नरक में जाते हैं ॥११०॥ आपकी उपासना करने वाले जीव मुक्त हो जाते हैं । आप ही अश्विनी कुमार, अग्नि, सूर्य, वायु, पृथिवी आदि के रूप को धारण करने वाले हैं; हे विस्तृत स्वभाव वाले देव! आप अपने ही स्वरूप में स्थित रहे हैं ॥१११॥ हे अनन्त ! स्वरूप भगवन् मेरी इस स्तुति को आप स्वीकार करें। मैं तो आपका विशेष रूप से भक्त हूँ । मैंने समाधिस्थ होकर, शुद्ध अन्तःकरण से तथा आपकी ही भक्ति में मन को लगाकर यह स्तुति की है ॥११२॥ हे मेरे हृदय में विद्यमान रहने वाले भगवन् ! आपको नमस्कार है; हे पुराणपुरुष! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे ईश ! आप सबको सुलभ है; सर्वव्यापक आपकी यह स्तुति मैंने सावधानी पूर्वक की है ॥११३॥ इस संसारचक्र में भ्रमण करने के भय से भयभीत आप हमारी रक्षा करे ॥११४॥

ब्रह्माजी ने कहा— हे केशव ! इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि आप सर्वज्ञ हैं, आप ज्ञान की राशि हैं आप सदैव सभी देवताओं में सर्वप्रथम पूज्य होयेंगे ॥११५॥ नारायण के पश्चात् शङ्करजी ने कमलोद्भव ब्रह्माजी की भक्ति पूर्वक स्तुति की ॥११६॥ हे कमलदल के समान नेत्र वाले, हे कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी आपको नमस्कार है । हे देवताओं और असुरों के पूज्य, जगत् की सृष्टि करने वाले परमात्मन् आपको नमस्कार है ॥११७॥ हे देवेश ! हे अज्ञान को विनष्ट करने वाले, हे विष्णु की नाभि में स्थित कमल से जन्म लेने वाले ब्रह्माजी आपको नमस्कार है॥११८॥ हे विद्रुम के सदृश लाल-लाल हाथ आदि अङ्गों से सुशोभित ब्रह्माजी, मैं आपके शरण में हूँ, आप हमारी संसार के वन्धन से रक्षा करे ॥११९॥ हे पितामह ! पहले आपके कमल का कुडमलका वर्ण नील मेघ के समान था । उसको लाल तथा दल के केसरों से युक्त देखकर ॥१२०॥ एवं उसे अनेक पत्रों वाला निर्दोष देखकर आपने उस पर बैठकर इस जगत् की सृष्टि की ॥१२१॥ हे जगद्वंद्य ! आपको छोडकर दूसरा कोई जगत् का रक्षक नहीं है, अतएव आपको नमस्कार है । मैं सावित्री के शाप से दग्ध हूँ, मेरा लिङ्ग पृथिवी पर गिर पड़ा है ॥१२२॥ अपनी पत्नी के साथ आप मेरा कल्याण करें । मेरे चरणों की रक्षा ब्रह्माजी करें, जङ्घों की रक्षा कमलासन करें ॥१२३॥

विरिंचो मे कटिं पातु सृष्टिकृद्गुह्यमेव च । नाभिं पद्मनिभः पातु जठरं चतुराननः ॥१२४॥
उरुस्तु विश्वसृक् पातु हृदयं पातु पद्मजः । सावित्रीपतिर्मे कंठं हृषीकेशो मुखं मम ॥१२५॥
पद्मवर्णश्च नयने परमात्मा शिरो मम । एवंन्यस्य गुरोर्नाम शङ्करो नाम शङ्करः ॥१२६॥
नमस्ते भगवन् ब्रह्मन्नित्युक्त्वा विरराम ह । ततस्तुष्टो हरं ब्रह्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥१२७॥
कं ते कामं करोम्यद्य पृच्छ मां यद्यदिच्छसि ।

रुद्र उवाच

यदि प्रसन्नो मे नाथ वरदो यदि वा मम ॥१२८॥
तदेकं मे वद विभो यस्मिन् स्थाने भवान्स्थितः । केषु केषु च स्थानेषु त्वां पश्यन्ति सदाद्विजाः ॥१२९॥
नाम्ना च केन तेस्थानं शोभते धरणीतले । तन्मे वदस्वसर्वेश तव भक्तिरतस्य च ॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

पुष्करेऽहंसुरश्रेष्ठो गयायां च चतुर्मुखः । कान्यकुब्जे देवगर्भो भृगुकक्षे पितामहः ॥१३१॥
कावेर्य्यां सृष्टिकर्ता च नंदिपुर्य्यां बृहस्पतिः । प्रभासे पद्मजन्मा चत्वानर्यां च सुरप्रियः ॥१३२॥
द्वारावत्यां तु ऋग्वेदी वैदिशे भुवनाधिपः । पौंड्रके पुंडरीकाक्षः पिंगाक्षो हस्तिनापुरे ॥१३३॥
जयंत्यां विजयश्चास्मि जयंतः पुष्करावते । उग्रेषु पद्महस्तोऽहं तमोनद्यां तमोनुदः ॥१३४॥
अहिच्छत्रे जया नंदी कांचीपुर्यां जनप्रियः । ब्रह्माहं पाटली पुत्र ऋषिकुंडे मुनिस्तथा ॥१३५॥
महितारे मुकुंदश्च श्रीकंठः श्रीनिवासिते । कामरूपे शुभाकारो वाराणस्यां शिवप्रियः ॥१३६॥

मेरे कटि की रक्षा विरिंचि करें, मेरे गुप्ताङ्गों की रक्षा सृष्टिकृत् करें । पद्मनाभ मेरी नाभि की रक्षा करें तथा मेरे पेट की रक्षा चतुरानन करें ॥१२४॥ उरः स्थल की रक्षा विश्वसृक् करें, मेरे मुख की रक्षा हृषीकेश करें ॥१२५॥ दोनों नेत्रों की रक्षा पद्मवर्ण करें, मेरे शिर की रक्षा परमात्मा करें । इस तरह से कल्याणकर्ता भगवान् शङ्करजी ने ब्रह्माजी के नामों का अपने अङ्गों में न्यास किया ॥१२६॥ हे भगवन् ! आपको मेरा नमस्कार है, इसतरह से कहकर शङ्करजी चूप हो गये । उससे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने शङ्करजी से कहा ॥१२७॥ बतलाओं मैं तुम्हारी किस इच्छा की पूर्ति करूँ । **रुद्र ने कहा—** हे नाथ ! यदि आप प्रसन्न हैं तथा मुझे वरदान देना चाहते हैं ॥१२८॥ तो आप मुझे यह बतलायें कि आप किस-किस स्थान में रहते हैं । आपका ब्राह्मण गण किस-किस स्थान में सदा साक्षात्कार करते हैं ॥१२९॥ और भूलोक में वह स्थान किस नाम से सुशोभित होता है ? हे सर्वेश ! मैं आपका भक्त हूँ, आप मुझे इसी बात को बतलाइये ॥१३०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** पुष्कर में मैं सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध हूँ और गया में मेरा नाम चतुर्मुख है । कान्यकुब्ज में देवगर्भ मेरा नाम है, भृगुक्षेत्र में मेरा नाम पितामह है ॥१३१॥ कावेरी में मेरा नाम सृष्टिकर्ता है, नन्दिपुरी में मेरा नाम बृहस्पति है । प्रभास क्षेत्र में मैं पद्मजन्मा के नाम से विख्यात हूँ, वानरी (किकिन्धा) में मेरा नाम सुरप्रिय है ॥१३२॥ द्वारका में मेरा नाम ऋग्वेदी है और विदिशा में मेरा नाम भुवनाधिप है । पौण्ड्रक क्षेत्र में मेरा नाम पुण्डरीकाक्ष है, हस्तिनापुर में मेरा नाम पिङ्गाक्ष है ॥१३३॥ जयन्ती तीर्थ में मैं जय नाम से स्थित हूँ और पुष्करावत में मेरा नाम जयन्त है । उग्र प्रदेश में मैं पद्महस्त के नाम से हूँ और तमोनदी (श्यामलापुर) में मैं तमोनुद के नाम से विख्यात हूँ ॥१३४॥ अहिच्छत्र क्षेत्र में मेरा नाम जयानन्दी है और काञ्चीपुरी में मेरा नाम जनप्रिय है । पाटलीपुत्र में मेरा नाम ब्रह्मा है और ऋषि कुण्ड में मैं मुनि के नाम से स्थित हूँ॥१३५॥ महितार क्षेत्र में मेरा नाम मुकुन्द है और श्रीनिवास क्षेत्र में मेरा नाम श्रीकण्ठ है । कामरूप क्षेत्र में मेरा

मल्लिकाक्षे तथा विष्णु र्महेंद्रे भार्गवस्तथा । गोनर्देस्थ्यविकाकार उज्जयिन्यां पितामहः ॥१३७॥
कौशांब्यां तु महाबोधि रयोध्यायां च राघवः । मुंनीद्रश्चित्रकूटे तु वाराहो विंध्यपर्वते ॥१३८॥
गङ्गाद्वारे परमेष्ठी हिमवत्यपि शङ्करः । देविकाया स्रुचाहस्तः स्रुवहस्तश्चतुर्वटे ॥१३९॥
वृंदावने पद्मपाणिः कुशहस्तश्चनैमिषे । गोप्लक्षे चैव गोपीन्द्रः सचन्द्रो यमुनातटे ॥१४०॥
भागीरथ्यां पद्मतनुर्जलानंदो जलन्धरे । कौंकणे चैव मद्राक्षः कांपिल्ये कनकप्रियः ॥१४१॥
वेंकटे चान्नदाता च शंभुश्चैव क्रतुस्थले । लंकायां च पुलस्त्योहं काश्मीरे हंसवाहनः ॥१४२॥
वसिष्ठश्चार्बुदे चैव नारदश्चोत्पलावते । मेलके श्रुतिदाता हं प्रपातेयादसांपतिः ॥१४३॥
सामवेदस्तथायज्ञे मधुरो मधुरप्रियः । अंकोटे यज्ञ भोक्ता च ब्रह्मवादे सुरप्रियः ॥१४४॥
नारायणश्च गोमंते मायापुर्यां द्विजप्रियः । ऋषिवेदे दुराधर्षो देवायां सुरमर्दनः ॥१४५॥
विजयायां महारूपः स्वरूपो राष्ट्रवर्द्धने । पृथूदरस्तु मालव्यां शाकंभर्यां रसप्रियः ॥१४६॥
पिंडारके तु गोपालः शङ्खोद्धारेङ्गवर्द्धनः । कादंबके प्रजाध्यक्षो देवाध्यक्षः समस्थले ॥१४७॥
गङ्गाधरो भद्रपीठे जलशाय्यहमर्बुदे । त्र्यंबके त्रिपुराधीशः श्रीपर्वते त्रिलोचनः ॥१४८॥
महादेवः पद्मपुरे कापाले वैधसस्तथा । श्रृंगबेरपुरेशौरिर्नैमिषे चक्रपाणिकः ॥१४९॥
दंडपुर्यां विरूपाक्षो गौतमो धूतपापके । हंसनाथो माल्यवति द्विजेंद्रो वलिके तथा ॥१५०॥

नाम शुभाकार है और वाराणसी में मेरा नाम शिवप्रिय है ॥१३६॥ मल्लिकाक्ष में मेरा नाम विष्णु है, महेन्द्र पर्वत पर मेरा नाम भागर्व है । गोनदतीर्थ में मैं स्थविराकार हूँ ओर उज्जयिनी में मेरा नाम पितामह है ॥१३७॥ कौशाम्वी में मेरा नाम महावोधि है, और अयोध्या में मैं राघव रूप से विद्यमान हूँ । नैमिष क्षेत्र में मेरा नाम कुशहस्त है, चित्रकूट में मेरा नाम मुनीन्द्र है और विन्ध्यपर्वत पर मैं वाराह नाम से विद्यमान हूँ ॥१३८।गङ्गाद्वार में मेरा नाम परमेष्ठी है और हिमालय पर मैं शङ्कर रूप से विद्यमान हूँ । देविका नदी के तट पर मैं स्रुक्‌हस्त रूप से विद्यमान हूँ और चतुर्वट में मैं स्रुवहस्त हूँ ॥१३९॥ वृन्दावन में मैं पद्मपाणि हूँ और नैमिषारण्य में मैं कुशहस्त हूँ । गोप्लक्ष में मैं गोपीन्द्र हूँ और यमुनातट में मै सुचन्द्र हूँ ॥१४०॥ भागीरथी में मैं पद्मतनु हूँ और जालन्धर में मैं जलानन्द हूँ । कोंकण में मैं मद्राक्ष हूँ और काम्पिल्य में मेरा नाम कनकप्रिय है ॥१४१॥ वेङ्कटाचल पर मैं अन्नदाता रूप से विद्यमान हूँ और क्रतुस्थल में मेरा नाम शम्भु है । लङ्का में मैं पुलस्त्य नाम से विद्यमान हूँ और काश्मीर में मैं हंसवाहन रूप से विद्यमान हूँ ॥१४२॥ अर्बुदक्षेत्र में मैं वसिष्ठ हूँ और उत्पलावत में मैं नारद रूप से विद्यमान हूँ । मेलक क्षेत्र में मेरा नाम श्रुतिदाता है और प्रताप क्षेत्र में मैं यादसांपति रूप से विद्यमान हूँ ॥१४३॥ यज्ञ में मेरा नाम सामवेद है और मधुर तीर्थ में मेरा नाम मधुरप्रिय है । अंकोट में मैं यज्ञभोक्ता रूप से विद्यमान हूँ और ब्रह्मवाद में मैं सुरप्रिय रूप से विद्यमान हूँ ॥१४४॥ गोमन्ततीर्थ में मेरा नाम नारायण है और मायापुरी में मेरा नाम द्विजप्रिय है । ऋषिवेद में मेरा नाम दुराधर्ष है और देवा में मेरा नाम सुरमर्दन है ॥१४५॥ विजया में मेरा नाम महारूप है ओर राष्टवर्द्धन में मेरा नाम स्वरूप है । मालवी में मेरा नाम पृथूदर है, शाकम्भरी में मैं रसप्रिय रूप से विद्यमान हूँ॥१४६॥ पिण्डारक तीर्थ में मैं गोपाल रूप से विद्यमान हूँ, शंखोद्धार में मेरा नाम अङ्गवर्द्धन है । कादम्बक क्षेत्र मे मेरा नाम प्रजाध्यक्ष है और समस्थल में मेरा नाम देवाध्यक्ष है ॥१४७॥ गङ्गाधर में मेरा नाम भद्रपीठ है और अर्वुद क्षेत्र में जलशायी रूप से मैं विद्यमान हूँ । त्र्यंवक में मैं त्रिपुराधीश तथा श्रीपर्वत पर मेरा नाम त्रिलोचन है ॥१४८॥ पद्मपुर में महादेव तथा कापाल तीर्थ में मेरा नाम वेधस है । शृङ्गवेरपुर मे मेरा नाम शौरि तथा नैमिषक्षेत्र में मेरा नाम

इंद्रपुर्या देवनाथो धूतपायां पुरंदरः । हंसवाहस्तु लंबायां चंडायां गरुडप्रियः ॥१५१॥
महोदये महायज्ञः सुयज्ञो यज्ञकेतने । सिद्धिस्मरे पद्मवर्णः विभायां पद्मबोधनः ॥१५२॥
देवदारुवने लिंगं महापत्तौ विनायकः । त्र्यंबको मातृकास्थाने अलकायां कुलाधिपः ॥१५३॥
त्रिकूटे चैव गोनर्दः पाताले बासुकिस्तथा । पद्माध्यक्षश्च केदारे कूष्मांडे सुरतप्रियः ॥१५४॥
कुंडवाप्यां शुभांगस्तु सारण्यां तक्षकस्तथा । अक्षोटे पापहा चैव अंबिकायां सुदर्शनः ॥१५५॥
वरदायां महाबीरः कांतारे दुर्गनाशनः । अनंतश्चैव पर्णाटे प्रकाशायां दिवाकरः ॥१५६॥
विराजायां पद्मनाभः स्वरूद्रश्च वृकस्थले । मार्कंडो वटकेचैव वाहिन्यां मृगकेतनः ॥१५७॥
पद्मावत्यां पद्मगृहो गगने पद्मकेतनः । अष्टोत्तरं स्थानशतं मया ते परिकीर्तितम् ॥१५८॥
यत्र वै मम सांनिध्यं त्रिसंध्यं त्रिपुरांतक । एतेषामपि यस्त्वेकं पश्यते भक्तिमान्नरः ॥१५९॥
स्थानं सुविरजं लब्ध्वा मोदते शाश्वतीः समाः । मानसं वाचिकं चैव कायिकं यच्च दुष्कृतम् ॥१६०॥
तत्सर्वं नाशमायाति नात्र कार्या विचारणा । यस्त्वेतानि च सर्वाणि गत्वा मां पश्यते नरः ॥१६१॥
भवते मोक्षभागी च यत्राहं तत्र वै स्थितः । पुष्पोपहारै र्धूपै श्चब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥१६२॥
ध्यानेन च स्थिरेणाशु प्राप्यते परमेश्वरः । तस्य पुण्यफलं चाग्र्यमंते मोक्षफलं तथा ॥१६३॥
सब्रह्मलोकमासाद्य तत्कालं तत्र तिष्ठति । पुनः सृष्टौ भवेद्देवो वैराजानां महातपाः ॥१६४॥

चक्रपाणि है ॥१४९॥ दण्डपुरी में मैं विरूपाक्ष नाम से स्थित हूँ तथा धूतपाप तीर्थ में मेरा नाम गौतम है । माल्यवत् क्षेत्र में मेरा नाम हंसनाथ है तथा बलिक में मेरा नाम द्विजेन्द्र है ॥१५०॥ इन्द्रपुरी में मैं देवनाथ हूँ और धूतपापा में मेरा नाम पुरन्दर है । लम्बा में मेरा नाम हंसवाह है और चण्डा में मैं गरुडप्रिय नाम से स्थित हूँ ॥१५१॥ महोदय में मेरा नाम महायज्ञ है और यज्ञकेतन में मैं सुयज्ञरूप से विद्यमान हूँ । सिद्धिसर तीर्थ में मेरा नाम पद्मवर्ण है तथा विभा में मेरा नाम पद्मबोधन है ॥१५२॥ देवदारु वन में मैं लिङ्ग रूप से विराजमान हूँ और महापत्ति में मेरा नाम विनायक है । मातृकास्थान में त्र्यम्बक नाम से विद्यमान् हूँ और अलकापुरी में मेरा नाम कुलाधिप है ॥१५३॥ त्रिकूट क्षेत्र में मेरा नाम गोनर्द है और पाताल में मैं वासुकी रूप से विद्यमान हूँ । केदार में पद्माध्यक्ष और कुष्माण्ड में मेरा नाम सुरतप्रिय है ॥१५४॥ कुण्डवापी में मेरा नाम शुभाङ्ग है तथा सारणी में मैं तक्षक नाम से स्थित हूँ । अक्षोट में मेरा नाम पापहा है तथा अम्बिका में मेरा नाम सुदर्शन है ॥१५४॥ वरदा में मैं महावीर हूँ, कांतार में मैं दुर्गनाशन हूँ । पर्णाट में मैं अनन्त रूप से विद्यमान हूँ प्रकाशा में मैं दिवाकर रूप से स्थित हूँ ॥१५६॥ विरजा तीर्थ में मैं पद्मनाथ रूप से विद्यमान हूँ तथा वृकस्थल में मेरा नाम रुद्र है । वटकतीर्थ में मेरा नाम मार्कण्डेय है । और अहिनीतीर्थ में मेरा नाम मृगकेतन है ॥१५७॥ पद्मावती में मेरा नाम पद्मगृह और आकाश में मेरा नाम पद्मकेतन हैं। मैंने अपने अष्टोत्तरशत स्थानों का वर्णन किया ॥१५८॥ हे त्रिपुरांतक इन स्थानों में मेरा दर्शन तीनो सन्ध्याओ में होता है । इन सबों में से यदि कोई भक्तिमान पुरुष एक स्थान का भी दर्शन करता है ॥१५९॥ वह निर्मल स्थान को प्राप्त करके निरन्तर आनन्दानुभव करता है । उसके मानसिक, वाचिक तथा कायिक ॥१६०॥ सभी प्रकार के पाप विनष्ट हो जाते हैं । इसमें किसी प्रकार के विचार करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है । जो व्यक्ति मेरे इन समस्त स्थानों में जाकर मेरा दर्शन करता है ॥१६१॥ वह मोक्ष का भागी बन जाता है और जहाँ मैं रहता हूँ वहीं पर वह भी निवास करता है । फूलों की माला चढाने, धूप के द्वारा तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्थित रूप से ध्यान करने से भी परमेश्वर ब्रह्माजी की प्राप्ति होती है । ऐसा करने वाले को श्रेष्ठ पुण्य की प्राप्ति तथा अन्त में मोक्ष

ब्रह्महत्यादि पापानि इह लोके कृतान्यपि । अकामतः कामतो वा तानि नश्यंति तत्क्षणात्॥१६५॥
इह लोके दरिद्रो यो भ्रष्टराज्योऽथवा पुनः । स्थानेष्वेतेषु वै गत्वा मां पश्यति समाधिना ॥१६६॥
कृत्वा पूजोपहारं च स्नानं च पितृतर्पणम् । कृत्वा पिंडप्रदानं च सोऽचिराद्दुःखवर्जितः ॥१६७॥
एकछत्रोभवेद्राजा सत्यमेतन्न संशयः । इह राज्यानि सौभाग्यं धनं धान्यं वरस्त्रियः ॥१६८॥
भवंति विविधास्तस्य यैर्यात्रापुष्करे कृता। इदं यात्राविधानं यः कुरुते कारयेत वा॥१६९॥
शृणोति वा स पापैस्तु सर्वैरेव प्रमुच्यते । अगम्यागमनं येन कृतं जानाति मानवः ॥१७०॥
ब्रह्मक्रियायालोपेन बहुवर्षकृतेन च। यात्रा चेमां सकृत्कृत्वा वेदसंस्कारमाप्नुयात् ॥१७१॥
किमत्र बहुनोक्तेन इदमस्तीह शङ्कर। अप्राप्यं प्राप्यते तेन पापं चापि विनश्यति ॥१७२॥
सर्वयज्ञफलैस्तुल्यं सर्वतीर्थफलप्रदम्। सर्वेषां चैव वेदानां समाप्तिस्तेन वैकृता ॥१७३॥
यः कृत्वापुष्करे संध्यां सावित्रीं समुपासिता। स्वपत्नी हस्त दत्तेन पौष्करेण जलेन तु॥१७४॥
भृंगारेण वरेणैव मृण्मयेनापि शङ्कर । आनीय तज्जलं पुण्यं संध्योपास्तिर्दिनक्षये॥१७५॥
समाधिना समाधेया सप्राणायामपूर्विका । तस्यां कृतायां यत्पुण्यं तच्छृणुष्व हराद्यमे ॥१७६॥
तेन द्वादशवर्षाणि भवेत्संध्या सुवंदिता । अश्वमेधफलं स्नाने दाने दशगुणं तथा॥१७७॥
उपवासे प्यनंतं च स्वयं प्रोक्तं मयानघ। सावित्र्याः पुरतो यस्तु दंपत्योर्भोजनं ददेत् ॥१७८॥
तेनाहं भोजितस्तत्र भवामीह न संशयः। द्वितीयं भोजयेद्यस्तु भोजितस्तेन केशवः ॥१७९॥

की प्राप्ति होती है ॥१६२-१६३॥ ऐसा करने वाला प्रलयकाल पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करता है । पुनः सृष्टिकाल के आने पर वह वैराज संज्ञक देवता की योनि में जाता है ॥१६४॥ वह यदि इस लोक में ब्रह्महत्या आदि पापों को जानकर अथवा अनजाने में भी किए रहता है, वे सब पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं ॥१६५॥ इस लोक में जो दरिद्र हैं अथवा जो राज्यभ्रष्ट हो गये हैं वे लोग भी यदि उपर्युक्त स्थानों में जाकर भक्तिपूर्वक मेरा दर्शन करते हैं, उपहार समर्पण पूर्वक मेरी पूजा करते हैं तथा स्नान करके पितरों का तर्पण तथा पिण्ड दान करते हैं तो वे शीघ्र ही दुःख रहित हो जाते हैं ॥१६६-१६७॥ ऐसे लोग एकछत्र राजा हो जाते हैं, पुष्करतीर्थ की यात्रा करने वाले लोगों को राज्य, सौभाग्य,धन-धान्य एवं श्रेष्ठ स्त्रियों की प्राप्ति होती है । जो इस यात्रा का विधान करते है, अथवा करवाते हैं ॥१६८-१६९॥ अथवा इसका श्रवण करते हैं वे लोग समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं । ब्रह्मक्रिया का लोप हो जाने के कारण जो मनुष्य अनेक वर्षो तक अगम्यागमन किये रहते हैं वे भी इस पुष्कर तीर्थ की एक बार भी यात्रा करके वैदिक संस्कार को प्राप्त कर लेते हैं ॥१७०-१७१॥ हे शङ्कर ! इस विषय में बहुत अधिक क्या कहना है? यहाँ पर जो व्यक्ति अपनी पत्नी के हाथ से लाये गये पुष्कर तीर्थ के जल से संध्योपासन करके सावित्री देवी की उपासना करता हैं, वह व्यक्ति अप्राप्य वस्तु को भी प्राप्त कर लेता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । यह तीर्थ समस्त यज्ञों के फल को प्रदान करने वाला तथा सभी तीर्थों के फल को प्रदान करने वाला है ॥१७२-१७४॥ हे शङ्कर ! मिट्टी की झारी से पुष्कर का जल लाकर जो व्यक्ति प्रणायाम पूर्वक सायं सन्ध्या उस जल से भक्ति पूर्वक करता है, उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे मैं तुम्हे बतलाता हूँ ॥१७६॥ उस संध्या के द्वारा बारह वर्ष पर्यन्त संन्ध्या करने का फल प्राप्त होता है । यहाँ स्नान करके दान करने का फल अश्वमेध यज्ञ के दश गुना अधिक फल देने वाला है ॥१७७॥ हे अनघ ! मैं स्वयं कहता हूँ कि यहाँ पर उपवास करने का अनन्त फल होता है । सावित्री देवी के समक्ष जो व्यक्ति ब्राह्मण दम्पत्ती को भोजन कराता है ॥१७८॥ उसके द्वारा मुझको ही भोजन कराया

लक्ष्मीसहायो वरदो वरांस्तस्य प्रयच्छति। उमासहायस्तार्तीये भोजितोसि न संशयः ॥१८०॥
अथवा या कुमारीणां भक्त्या दद्याच्च भोजनम् ।
तस्याः कुले भवेद्वंध्या न कदाचिच्चदुर्भगा ॥१८१॥
न कन्या जननी क्वापि न भर्तुर्या न वल्लभा। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सावित्र्यग्रे तु भोजनम् ॥१८२॥
पारत्रमैहिकं वापि कामयद्भिर्नरैः सदा। दातव्यं सर्वदा भीष्म कटुतैलविवर्जितम्॥१८३॥
न चाम्लं न च वै क्षारं स्त्रीणां भोज्यं कदाचन। भक्ष्यं पंच प्रकारं च रसैः स वैस्सुसंस्कृतम् ॥१८४॥
घृतपूर्यः सुपक्वाश्च बहुक्षीरसमन्विताः। शिखरिणी तथा पेया दधिक्षीरसमन्विता ॥१८५॥
आह्लादकारिणी पुंसां स्त्रीणां चातीव वल्लभा। धनधान्यांजनोपेतं नारीणां च शताकुलम् ॥१८६॥
पूपकं शष्कुलं तस्यां जायते नात्र संशयः । न ज्वरो न च संतापो न दुःखं न वियोगिता॥१८७॥
असौ तारयते स्वानां कुलानामेकविंशतिम्। बंधुभिश्च सुतैश्चैव दासीदासैरनंतकैः ॥१८८॥
पूरितं च कुलं तस्याः पूरिकां या प्रदास्यति । एधते च चिरं कालं पुत्र पौत्रसमन्वितम्॥१८९॥
कुलं च सकलं तस्य शष्कुलं यः प्रयच्छति । पुत्रिण्यो वै दुहितरो बंधुभिः सहितं कुलम्॥१९०॥
शिखरिणी प्रदात्रीणां युवतीनां न संशयः। मोदते तु कुलं तस्याः सर्वसिद्धिप्रपूरितम्॥१९१॥
मोदकानां प्रदानेन एवमाह प्रजापतिः। एतदेव तु गौरीणां भोजनं हर शस्यते ॥१९२॥
सुभगा पुत्रिणी साध्वी धनऋद्धिसमन्विता। सहस्रभोजिनी शंभो जन्म जन्म भविष्यति॥१९३॥

जाता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। ब्राह्मण-दम्पती को भोजन कराने वाले को लक्ष्मी विशिष्ट विष्णु को भी भोजन कराने का फल प्राप्त होता है। उसको भगवान् केशव अनेक प्रकार के वरदानों को प्रदान करते हैं॥१७९॥ तीन ब्राह्मण दम्पत्तियों को भोजन कराने वाले को सपत्नीक ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है ॥१८०॥ अथवा जो व्यक्ति सावित्री देवी के सामने कुमारियों को भोजन कराता है, उसके वंश में कभी कोई स्त्री बन्ध्या नहीं होती है ॥१८१॥ उसके वंश में कोई स्त्री केवल कन्याओं को ही जन्म देने वाली भी नहीं होती है, और कोई ऐसी भी नारी नहीं होती है जो अपने पति को प्रियतम न हो। इसलिए हर प्रकार के प्रयास के द्वारा सावित्री देवी के सामने ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥१८२॥ हे भीष्म ! लौकिक एवं पारलौकिक सुख प्राप्त करने की इच्छा वाले को ऐसा भोजन कराना चाहिए जिसमें तीक्ष्णता अथवा तेल का प्रयोग नहीं किया गया हो॥१८३॥ खटाई तथा नमक युक्त भोजन स्त्रियों को नहीं करना चाहिये। भोजन पाँच प्रकार की वस्तुओं का होना चाहिए तथा उसे सभी रसों से युक्त होना चाहिए ॥१८४॥ भोजन में घी निर्मित पूड़ी, क्षीरान्न, श्रीखण्ड, पीने योग्य दधि और दूध होना चाहिए ॥१८५॥ इसी प्रकार का भोजन स्त्रियों तथा पुरुषों के लिए सुखप्रद तथा प्रिय होता है। जो व्यक्ति धन, धान्य तथा अञ्जन से युक्त नारियों को सौ पूआ तथा पूड़ी का दान देता है, उसके यहाँ ज्वर, संताप, दुःख तथा किसी प्रकार का वियोग नहीं होता है ॥१८६-१८७॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति अपनी इक्कीस पीढी के पितरों को तार देता है और उसका वंश अनन्त दासी, दास तथा गौ से भरा रहता है। जो स्त्री पूड़ी का दान पुष्कर मे करती है उसका वंश चिरकाल तक पुत्र एवं पौत्रों के द्वारा समृद्ध बना रहता है ॥१८८-१८९॥ पूड़ी दान करने वाली नारी का वंश बन्धु-बांधवों तथा पुत्रवती पुत्रियों से परिपूर्ण रहता है ॥१९०॥ जो स्त्रियाँ पुष्कर में श्रीखण्ड का दान करती हैं, उन सबों का वंश आनन्दित रहता है, और सभी प्रकार की सिद्धियों से भरा रहता है॥१९१॥ मिठाई दान करने वालों के विषय में ब्रह्माजी ने कहा है कि, हे शङ्कर! कुमारियों के लिए मोदक ही श्रेष्ठ भोजन है॥१९२॥

पूपानि चैव पुण्यानि कृतानि मधुराणि च । द्राक्षारसप्रधानं च गुडखंडसमन्वितम् ॥१९४॥
शारदेन तु धान्येन कृत्वा खंडविमिश्रितम्। स्त्रीणां चैव तु पेयानि भक्ष्याणि च द्विजन्मनाम्॥१९५॥
इह चाविकवासांसि वर्षायोग्ययानि सर्वशः । यानि यानि च पेयानि तानि योग्यानि दापयेत्॥१९६॥
प्रतिपूज्य विधानेन वसुदानैः सकञ्चुकैः । कुंकुमेनानुलिप्तांग्यः स्रग्दामभिरलंकृताः ॥१९७॥
दत्वा तूपानहावंघ्र्योर्नारिकेलं करे तथा । अक्ष्णोश्चैवांजनं दत्वा सिंदूरं चैव मस्तके ॥१९८॥
गुडं फलानि हृद्यानि वांछितानि मृदूनि च । हस्ते दत्वा सपात्राणि प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१९९॥
स्वयं भुंजीत वै पश्चात्सबंधुर्बालकैः सह । अथवा नैव संपत्तिस्तीर्थे दानं च भाजनम्॥२००॥
गृहे गतः प्रदास्यामि हृष्टो देव प्रसीद मे । एवमेव पितॄणां च आगत्य स्वीयमंदिरे ॥२०१॥
पिंडप्रदानपूर्वं तु श्राद्धं कुर्याद्विधानतः । पितरस्तस्य वै तृप्ता भवंति ब्रह्मणो दिनम् ॥२०२॥
तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतां शिव । न च पश्यंति वै नीचाः श्राद्धं द्विजातिभिः कृतम्॥२०३॥
एकान्ते तु गृहे गुप्ते पितॄणां श्राद्धमिष्यते। नीच दृष्ट्याहतं तच्च पितॄन्नैवोपतिष्ठति ॥२०४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं गुप्तं च कारयेत् । पितॄणां तृप्तिदं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयंभुवा॥२०५॥
गौरीभक्त्या धिकाया तु शस्ताज्ञातक्रियातु सा। राजसी मनसा ज्ञाता जनानां कीर्तिदायिनी॥२०६॥
गुप्तं दानं सदा देयमात्मनो हितमिच्छता। पक्वान्नं दृश्यतामेति दीयमानं जनै भुवि ॥२०७॥
दृश्यमानं तु तत्तुष्ट्यै दृश्यते नेह कर्हिचित् । एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता॥२०८॥

हे शम्भो ! जो नारी एक हजार कुमारियों को मोदक का भोजन कराती है, वह प्रत्येक जन्मों में सौभाग्यवती, पुत्रों वाली तथा धन-धान्य से समृद्ध होती है ॥१९३॥ मीठे तथा स्वादिष्ट पूओं को बनाकर दाख के रस से युक्त गुड़ के टुकड़ों के साथ तथा अगहनी के चावल के लड्डू के साथ दान करे । ब्राह्मणों की स्त्रियों को भक्ष्य एवं पेय पदार्थों का दान दे ॥१९४-१९५॥ उनके अनुकूल जो योग्य पेय पदार्थ हों उन सबों का दान देना चाहिए ॥१९६॥ ब्राह्मण दाम्पती की विधिपूर्वक पूजा करके धन तथा वस्त्र दान करे, स्त्रियों को कुंकुम तथा माला से अलङ्कृत करे । उनके पैरों का चपल और ब्राह्मणों को जूता दान करे, उनके हाथ में नारियल रखे । उनकी आँखों के लिए आंजन तथा मांग में लगाने के लिए सिन्दूर दे ॥१९७-१९८॥ गुड तथा सुन्दर एवं मधुर फल हाथ में देकर ब्राह्मण दम्पती को प्रणाम करके विदा करे ॥१९९॥ उसके बाद बालकों तथा बान्धवों के साथ स्वयं भोजन करे । यदि सम्पत्ति न हो तो तीर्थ में पात्रों का ही दान करे ॥२००॥ हे देव ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, मैं घर जाकर दान करूँगा इसी तरह देवता और पितरों से प्रार्थना करे, उसके बाद अपने घर आकर पिण्डप्रदान पूर्वक सविधि श्राद्ध करे । ऐसा करने वाले के पितृगण ब्रह्माजी के एक दिन (एक कल्प) तक तृप्त रहते हैं ॥२०२॥ हे शिव ! तीर्थ की अपेक्षा अपने घर में आकर दान करने से उसके आठ गुना फल होता है । ऐसा करने से द्विजातियों के द्वारा किए गये श्राद्ध को नीच प्राणी नहीं देख पाते हैं ॥२०३॥ श्राद्ध एकान्त में गृह के भीतर, गुप्त स्थान में करना चाहिए, क्योंकि श्राद्ध को नीच प्राणियों द्वारा देख लिए जाने पर, वह पितरों को नहीं प्राप्त होता है ॥२०४॥ इसलिए प्रयास पूर्वक श्राद्ध को गुप्त स्थान में ही करना चाहिए । इसतरह से किया गया श्राद्ध पितरों को तृप्ति प्रदान करता है, यह ब्रह्माजी ने कहा है॥२०५॥ जो क्रिया गौरी की भक्ति से भरकर की जाती है, वह अधिक श्रेष्ठ होती है जो राजसी क्रिया होती है, वह मन से भी किए जाने पर मनुष्यों को यश - दान करने वाली होती है ॥२०६॥ आत्मकल्याण चाहने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे गुप्त दान दें । संसार में लोगों द्वारा दिया जाने वाला पक्वान्न चूकि दिखायी पड़ता है ॥२०७॥

भवने नात्र संदेहः सत्यं पौराणिकं वचः। तीर्थे तु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कथंचन॥२०९॥
अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरबवीत् । सक्तुभिः पिडदानं च संयावैः पायसेन वा॥२१०॥
कर्त्तव्यमृषिभिर्दृष्टं पिण्याकेनैंगुदेन वा। तिलपिण्याककैर्देयं भक्तिमद्भिर्नरैः सदा ॥२११॥
श्राद्धं तत्र तु कर्तव्यमर्घ्यावाहन वर्जितम् । स्वधां तु गृध्राः काका वा नैव दृष्ट्या हरन्ति ते॥२१२॥
श्राद्धं तत्तैर्थिकं प्रोक्तं पितृणां तृप्तिदं परम् । कर्तव्यं तत्प्रयत्नेन भक्तिरेवात्र कारणम् ॥२१३॥
भक्त्या तुष्यन्ति पितरस्तुष्टाः कामान्दिशन्ति ते। पुत्रं पौत्रं धनं धान्यं कामान्यान्मनसेच्छति॥२१४॥
भक्त्या चाराधितो दद्यान्नृणां प्रीतः पितामहः । अकालेप्यथ काले वा तीर्थे श्राद्धं सदा नरैः ॥२१५॥
प्राप्तै रेव सदा स्नानं कर्तव्यं पितृतर्पणम्। पिंडदानं च कर्तव्यं पितृणां चाति बल्लभम् ॥२१६॥
पितरो हि निरीक्षन्ते गोत्रजं समुपागतम्। आशया परया युक्ताः कांक्षंतस्सलिलं च ते ॥२१७॥
विलम्बो नैव कर्तव्यो नैव विघ्नं समाचरेत्। अच्छिन्ना सन्ततिस्तेषां सदा कालं भविष्यति ॥२१८॥
पितरः पुत्रदातारं वृद्धिश्राद्धभिकांक्षिणः । तेन ते सन्ततिच्छेदं न कुर्वन्ति हि कर्हिचित्॥२१९॥
अतः श्राद्धं पुरा प्रोक्तं स्वयमेव स्वयंभुवा । गुणोत्तरं तु यत्कार्यं द्विजैः पितृपरायणैः ॥२२०॥
तीर्थे क्षेत्रे गृहे वापि संक्रांतौ ग्रहणेपि वा। विषुवे अयने चापि जन्मर्क्षे च प्रपीडिते॥२२१॥

देखने से जो तुष्टि होती है वह कभी नहीं दिखायी पड़ती है । पुष्कर क्षेत्र में एक ब्राह्मण को भोजन कराने से एक करोड़ ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल मिलता है ॥२०८॥ इस विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं है, यह पौराणिक वचन है । तीर्थ में कभी भी ब्राह्मणों के ज्ञानादि की परीक्षा नहीं करनी चाहिये ॥२०९॥ मनु का कहना है कि जो व्यक्ति भोजन प्राप्त करने के लिए आये उसे भोजन करा देना चाहिए । तीर्थ में पिण्डदान सत्तु से या यवके आँटे से या खीर से करे ॥२१०॥ अथवा पिण्याक या इंगुदी के फल से करे, यह ऋषियों का कहना है । अथवा तिल से बने हुए पिण्याक से सदा तीर्थो में श्राद्ध करे ॥२११॥ तीर्थ में श्राद्ध अर्घ्य और आवाहन के बिना ही करना चाहिए । कौए अथवा गृध्र देखकर स्वधा (श्राद्ध) का हरण नहीं करते हैं ॥२१२॥ इस प्रकार से तीर्थ में किया गया श्राद्ध पितरों को परम तृप्ति प्रदान करता है । अतएव तीर्थ में जाकर प्रयास करके श्राद्ध अवश्य करना चाहिए॥२१३॥ भक्ति के द्वारा पितरों को तृप्ति होती है और तृप्त होकर पितृगण श्राद्ध करने वालों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं । वे उन सबों को अभिप्रेत धन-धान्य तथा पुत्र-पौत्र आदि समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं ॥२१४॥ भक्तिपूर्वक की गयी आराधना से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी आराधक को सारे फल प्रदान करते हैं । उचित समय हो या न हो तीर्थ में जाने पर श्राद्ध अवश्य करना चाहिए । मनुष्य जब कभी भी तीर्थ में पहुँचे उसी समय स्नान करके वह पितरों का तर्पण करे और पितरों को अत्यन्त प्रिय पिण्डदान भी करे ॥२१६॥ तीर्थ में जाने वाले व्यक्ति को उसके पितृगण अत्यन्त आशान्वित होकर देखते हैं और चाहते है कि यह हमारा वंश यहाँ तर्पण करे ॥२१७॥ अतएव तीर्थयात्री को स्नान करने तथा तर्पण करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए और न तो इन सब कार्यों को करने में किसी भी प्रकार का विघ्न करे । जो लोग इस नियम का पालन करते हैं उनकी सन्तानों का कभी भी उच्छेद नहीं होता है, वह सदा बनी रहती है ॥२१८॥ आभ्युदयिक श्राद्ध को चाहने वाले पितृगण पुत्र प्रदान करने वाले हैं इसीलिए वे कभी भी सन्तान का नाश नहीं करते हैं ॥२१९॥ इसीलिए प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने स्वयं ही श्राद्ध करने का विधान किया है । अतएव पितृभक्तों को चाहिए कि वह उन कार्यो को अवश्य करे जिनके करने से गुणों की वृद्धि होती है॥२२०॥ तीर्थ में, क्षेत्र में अथवा अपने घर पर संक्रान्ति काल पर, ग्रहण लगने पर, विषुवकाल में, अथवा अयन के बदलने

एतान् वै श्राद्धकालांस्तु पुरा स्वायंभुवोऽब्रवीत् । कृते श्राद्धेन वै पुंसां पीडा भवति देहजा ॥२२२॥
तदा पुत्रकृतं वापि सर्वं त्यजति दुष्कृतम् । यथा न भविता पीडा ग्रहचोरनृपादिकात् ॥२२३॥
दुष्कृतं नश्यते सर्वं परत्र च गतिं शुभाम् । लभते नात्र सन्देहः प्रजापतिवचो यथा ॥२२४॥
कृते युगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषं स्मृतम् । द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाश्रयेत् ॥२२५॥
दुष्करः पुष्करे वासो दुष्करं पुष्करे तपः । यदन्यत्रकृतं पापं तीर्थे तद्याति लाघवम् ॥२२६॥
न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित्पापं व्यपोहति । सायं प्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः ॥२२७॥
उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थेषु भारत । सायं प्रातरुपस्पृश्य पुष्करे नियतेन्द्रियः ॥२२८॥
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति । द्वादशाब्दं द्वादशाहं मासं मासार्धमेव च ॥२२९॥
योवसेत्पुष्करे नित्यं सगच्छेत्परमां गतिम् । सर्वेषामेव लोकानां ब्रह्मलोकोपरि स्थितः ॥२३०॥
य इच्छेत्पुष्करं गन्तुं सोनुसेवेत पुष्करम् । यथालोमविलोमाभ्यां तथा व्यस्तसमस्तयोः ॥२३१॥
स्नातस्तु पुष्करे सम्यक् कोट्याश्च फलमश्नुते । विधिवत्क्रियमाणेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥२३२॥
पुष्करालोकनादेव नरः प्राप्नोति तत्फलम् । दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीतले ॥२३३॥
सान्निध्यं पुष्करे तेषां त्रिसंध्यं कुरुन्दन । यावत्तिष्ठंति गिरयो यावत्तिष्ठन्ति सागराः ॥२३४॥
तावत्पुष्करमृत्यूनां ब्रह्मलोको न संशयः । जन्मान्तरसहस्रैश्च आजन्ममरणान्तिकम् ॥२३५॥

पर अथवा अपने जन्म नक्षत्र में अथवा किसी प्रकार की पीडा होने पर ॥२२१॥ इन सभी समयों को ब्रह्माजी ने स्वयं श्राद्ध का समय वतलाया है । श्राद्ध करने से मनुष्य के शरीर में किसी प्रकार की पीडा नहीं होती ॥२२२॥ उस समय पुत्र के द्वारा भी किये गये समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । श्राद्ध करने से ग्रह, तारे तथा राजादि द्वारा की गयी किसी प्रकार की पीडा नहीं होती है ॥२२३॥ इसके करने पर सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं और परलोक में शुभ गति की प्राप्ति होती है । इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है, यह ब्रह्माजी ने स्वयं कहा है ॥२२४॥ सत्ययुग में पुष्करों का आश्रय ले, त्रेतायुग में नैमिषारण्य का महत्त्व है, द्वापर में कुरुक्षेत्र का महत्त्व है और कलियुग में गङ्गाजी का आश्रय ग्रहण करे ॥२२५॥ पुष्कर में निवास करना कठिन है, तथा पुष्कर में तपस्या करना भी कठिन है । जो अन्यत्र पाप किए जाते हैं वे तीर्थ में जाकर क्षीण हो जाते हैं, किन्तु तीर्थ में किया हुआ पाप अन्यत्र कहीं भी नहीं समाप्त होता है । जो व्यक्ति सायंकाल तथा प्रातःकाल हाथ जोड़कर तीनों पुष्करों का स्मरण करता है ॥२२६-२२७॥ हे भीष्म ! उसे सभी तीर्थों में आचमन करने का फल प्राप्त हो जाता है । जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को संयमित करके पुष्कर में स्नान या आचमन करता है ॥२२८॥ उसे सभी क्रतुओ के करने का फल प्राप्त होता है और वह ब्रह्मलोक में जाता है । बारह वर्ष, बारह दिन या एक मास अथवा पन्द्रह दिन ॥२२९॥ जो पुष्कर तीर्थ में निवास करता है वह निश्चित रूप से मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । ब्रह्मलोक सभी लोकों के ऊपर विद्यमान है ॥२३०॥ जो पुष्कर जाने की इच्छा करे उसे पुष्कर का सेवन अनुलोम विलोम ओर व्यस्त-समस्त विधि से करना चाहिए ॥२३१॥ पुष्कर में स्नान करने से करोड़ अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । विधिपूर्वक सभी तीर्थों के करने का जो फल होता है, वही फल मनुष्य पुष्कर का दर्शन कर लेने मात्र से प्राप्त कर लेता है । पृथिवी पर विद्यमान दश हजार करोड़ तीर्थ ॥२३२-२३३॥ उन सबों का तीनों सन्ध्याओं में पुष्कर में सान्ध्यि बना रहता है । जब तक पर्वत तथा सागर बने रहते हैं तब तक पुष्कर में शरीर त्याग करने वालों का निवास ब्रह्मलोक में होता है । हजारों पूर्व जन्मों में जीव, जन्म से लेकर मृत्युकाल पर्यन्त जितने पापों के किए रहता है, ॥२३४-२३५॥ उन समस्त पापों

निर्दहेद्दुष्कृतंसर्वं सकृत्स्नात्वा तु पुष्करे। पुष्करं दुष्करं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम्॥२३६॥
इदानीं शृणु मे राजन् पञ्चपातकनाशनम्। यजनं देवदेवस्य ब्रह्मपुत्रवसुप्रदम्॥२३७॥
इह जन्मनि दारिद्र्यव्याधिकुष्ठादिपीडितः। अलक्ष्मीवानपुत्रस्तु यो भवेत्पुरुषो भुवि॥२३८॥
तस्य सद्यो भवेल्लक्ष्मीरायुः पूर्ण सुतास्सुखम्। कृत्वा तु मण्डलगतं लोकपालसमन्वितम्॥२३९॥
ब्रह्माणं तु परं देवं यः पश्यति विधानतः। पूजितं नव नाभेन मन्त्रमूर्तिमयोनिजम्॥२४०॥
कार्तिके मासि शुक्लायां पौर्णमास्यां विशेषतः। सर्वासु वा यजेद्देवं पूर्णिमासु विधानतः॥२४१॥
संक्रान्तौ च महाबाहो चन्द्रसूर्यग्रहेऽपि वा। यः पश्यति विभुं देवं पूजितं गुरुणा नृप॥२४२॥
तस्य सद्यो भवेत्तुष्टिः पापध्वंसश्च जायते। स मान्यो देवतानां च भवतीह नराधिप॥२४३॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भक्तानां तु परीक्षणम्। संवत्सरं गुरुःकुर्याज्जातिशौचक्रियादिभिः॥२४४॥
उपपन्नमिति ज्ञात्वा हृदयेनावधारयेत्। तेपि भक्तियुता ध्यात्वा त्वाचार्यं परमेश्वरम्॥२४५॥
संवत्सरं गुरौ भक्तिं कुर्युर्विष्णौ यथा तथा। प्रसादयेयुश्च ततःपूर्णे संवत्सरे गुरुम्॥२४६॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन संसारार्णवतारणम्। परब्रह्मोपासनेन विरिंच्याराधनेन च॥२४७॥
सहस्रशीर्षजप्येन मण्डलब्राह्मणेन च। ध्यानेन स्यात्तथास्माकमुपदेशः प्रदीयताम्॥२४८॥
इच्छामो वैदिकीं लक्ष्मीं विशेषेण प्रसद्यताम्। अभ्यर्थितो गुरुस्त्वेवं मेधावीं तैस्तदाततः॥२४९॥
यथाविधि समभ्यर्चेद्ब्रह्माणं विष्णुमग्रतः। ते बद्धनेत्राः स्वाप्यास्तु कार्तिकस्य चतुर्दशीम्॥२५०॥

को वह पुष्कर तीर्थ में एक बार स्नान करके भस्म कर देता है। पुष्कर अत्यन्त दुष्कर क्षेत्र है। तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला है॥२३६॥ हे राजन्! अब मैं तुम्हें पाँच प्रकार के पापों को विनष्ट करने वाले तथा ब्रह्मपुत्र की सम्पत्ति प्रदान करने वाले ब्रह्माजी की पूजा का वर्णन करता हूँ॥२३७॥ इस जन्म की दरिद्रता, कुण्ठा आदि व्याधियों से होने वाली पीडा, लक्ष्मी रहित तथा सन्तान रहित जो व्यक्ति होता है॥२३८॥ उसको इस पूजन से शीघ्र ही लक्ष्मी की प्राप्ति, तथा आयु से युक्त पुत्रों की प्राप्ति जन्य सुख की प्राप्ति होती है॥२३९॥ जो मनुष्य कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को विशेष रूप से, अयोनिज, मन्त्रमूर्ति, ब्रह्माजी की नवनाभ के द्वारा करता है उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अथवा वह सभी पूर्णिमाओं को, सङ्क्रान्ति काल में, सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय, आचार्य बृहस्पति द्वारा पूजित ब्रह्माजी की विधिपूर्वक पूजा करके उनका दर्शन करे॥२४०-२४२॥ हे राजन्! यहाँ पर सामान्य देवताओं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा भक्तों की परीक्षा जाति तथा शौचादि क्रियाओं द्वारा गुरु को एक वर्ष तक करनी चाहिए॥२४३-२४४॥ जब गुरु यह जान जायँ कि यह शिष्य बनाने योग्य है, और वे नवनाभ की दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा वाले भी गुरु को परमेश्वर समझकर॥२४५॥ भगवान् विष्णु के ही समान एक वर्ष तक गुरु की भक्ति करे, जब एक वर्ष बीत जाय तो आचार्य को दीक्षा देने के लिए प्रसन्न करे॥२४६॥ वे गुरु से प्रार्थना करे हे भगवन् कृपा करके आप हमें ऐसा उपदेश दीजिये कि हमें संसार सागर से पार करने वाले, परब्रह्म की उपासना तथा ब्रह्माजी की आराधना के द्वारा॥२४७॥ सहस्र इत्यादि सूक्त के जप के द्वारा, ब्राह्मण मण्डल ब्राह्मण के द्वारा तथा ध्यान के द्वारा वैदिक लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाय, यही हम चाहते हैं। इसके लिए आप हमारे ऊपर विशेष रूप से कृपा करें। उन सबों के द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना किए जाने पर मेधावी गुरु॥२४८-२४९॥ अपने सामने ही ब्रह्माजी की तथा भगवान् विष्णु की विधिपूर्वक पूजा करें और उन शिष्य बनने वालों का नेत्र बाँधकर कार्तिक मास की चतुर्दशी तिथि को सुला दें॥२५०॥ दूसरे दिन ब्राह्म मुहूर्त में

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय बद्धपद्मासनास्तु ते। ध्यात्वा गुरुं सहस्रारे श्वेतवस्त्रोपवीतकम् ॥२५१॥
श्वेतमाल्यांबरधरं श्वेतगंधानुलेपनम् । निर्गम्य च बहिर्नद्यां कुर्युर्नित्यमतन्द्रिताः ॥२५२॥
क्षीरवृक्षोत्थमाचार्यो दापयेद्दन्तधावनम्। ते च तं भक्षयेयुर्हि नदीं गत्वा समुद्रगाम्॥२५३॥
इतरद्वातटाकं वा गृहे वापि विधानतः । तद्भक्षयेयु मंत्रेण मंत्रितं परमेष्ठिनः ॥२५४॥
आपोहिष्ठेति मंत्रेण सप्तकृत्वोभिमंत्रितम् । देवस्य त्वेति वैजप्त्वा युंजानेति करेन्यसेत् ॥२५५॥
इरावत्येति प्रक्षाल्य ब्रह्मोदनेति वै मुखे । भक्षयित्वा क्षिपेद्दूरं पतितं च निरीक्षयेत् ॥२५६॥
सम्मुखं प्राङ्मुखं वापि विदिशं चापि वा गतम् । संमुखे देवतालब्धि मंत्रसिद्धिश्च जायते ॥२५७॥
पराङ्मुखे दंतकाष्ठे सर्वेदेवाः पराङ्मुखाः। उत्तरेण गते तस्मिन् सिद्धिर्भवति वा नवा ॥२५८॥
दक्षिणेन भवेन्मृत्युर्गुरोस्तस्य न संशयः । प्रेक्ष्याशुभं स्वपेद्भूमौ देवदेवस्य सन्निधौ ॥२५९॥
स्वप्नान् दृष्ट्वा गुरोरग्रे श्रावयेयुर्विचक्षणाः । ततः शुभाशुभं तत्र लक्षयेत्परमो गुरुः॥२६०॥
पौर्णमास्यामथ स्नात्वा ततो देवालयं व्रजेत्। गुरुश्च मंडलं भूमौ कल्पितायां तु वर्तयेत् ॥२६१॥
लक्षणैर्विविधैर्भूमिं लक्षयित्वा विधानतः । षोडशारं लिखेत्पद्मं नवधारमथापि वा ॥२६२॥
अष्टपत्रमथो वापि लिखित्त्वा दर्शयेद्बुधः । नेत्रबंधं तु कुर्वीत सितवस्त्रेण यत्नतः ॥२६३॥
वर्णानुक्रमतः शिष्यान्पुष्पहस्तान् प्रवेशयेत्। नवनाभं यदा कुर्यान्मंडलं वर्णकैर्बुधः ॥२६४॥

जगकर वे सब वद्धपद्मासन से वैठकर अपने हृदय में श्वेत वस्त्र तथा श्वेत यज्ञोपवीत धारण किए हुए ॥२५१॥ श्वेत माला तथा श्वेत चन्दन लगाये हुए गुरु का ध्यान करें । फिर वहाँ से निकलकर विना किसी आलस्य के वे नदी जायँ और नित्य कृत्य से निवृत्त होएँ ॥२५२॥ उसके बाद आचार्य उन्हें किसी दूध वाले वृक्ष का दतौन दें । वे पुनः समुद्रगामिनी नदी में जाकर उस दतौन से मुँह धोएँ ॥२५३॥ अथवा किसी दूसरी नदी में या तालाब में अथवा घर पर ही विधिपूर्वक दतौन करे । उसके पहले परमेष्ठी देवता के मन्त्र से उस दतौन को अभिमन्त्रित करे ॥२५४॥ **आपोहिष्ठा०** इत्यादि मन्त्र को सात बार पढकर अभिमन्त्रित करे । उसके बाद **देवस्य त्वा सवितुः** इत्यादि मन्त्र का जप करके **युजान** इत्यादि मन्त्र से करन्यास करे ॥२५५॥ उसके पश्चात् **इरावती** इत्यादि मन्त्र से दतौन को धोए । फिर **ब्रह्मोदन** इत्यादि मन्त्र से उसे मुँह में डालकर दतौन करे । मुँह धोकर उसे दूर फेंक दे और उसके जमीन पर गिरते समय देखे ॥२५६॥ वह चाहे सामने गिरे या पूर्व दिशा में गिरे अथवा किसी कोण (विदिश) में जाकर गिरे तो उसका फल जाने; यदि वह सामने गिरे तो उससे देवता की प्राप्ति और मन्त्र की सिद्धि सूचित होती है ॥२५७॥ यदि दतौन पीछे गिरे तो जानना चाहिए कि सभी देवता विपरीत हैं । यदि वह दतौन उत्तर दिशा में जाकर गिरे तो यह निश्चित नहीं होता है कि सिद्धि होगी कि नहीं होगी ॥२५८॥ यदि वह दक्षिण ओर जाकर गिरे तो समझना चाहिए कि इसका फल मृत्यु है । अशुभ शकुन होने पर ब्रह्माजी के सन्निकट पृथिवी पर जाकर सो जाय॥२५९॥ रात्रि में जो स्वप्न दिखायी दे उसे आचार्य को बतलाये । उसके पश्चात् आचार्य उसके (स्वप्न के) शुभाशुभ का विचार गम्भीरता से करें ॥२६०॥ उसके बाद पूर्णिमा के दिन स्नान करके देवालय में जाय । आचार्य भूमि पर बनाये गये मण्डल में अनेक लक्षणों को देखकर विधिपूर्वक उसका उपयोग करें । वहाँ पर वे षोडश दल वाले अथवा नव दलों वाले कमल का निर्माण करें ॥२६१-२६२॥ अथवा आठ दलों वाले कमल को बनाकर उसे शिष्य को दिखायें । उसके बाद श्वेत वस्त्र से आचार्य शिष्य के नेत्रों को अच्छी तरह से बाँध दें ॥२६३॥ उसके वाद बर्णों (व्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि) वर्णो के क्रम से शिष्यों को प्रवेश करायें । यदि नव नाभियों वाला मण्डल बनायें

इंद्राणी पूर्वकं देवमिंद्रमैंद्र्यां तु पूजयेत् । लोकपालैः समं तद्वदग्निं संपूज्ययेन्नृपः ॥२६५॥
दिशि वह्ने र्यमं याम्यां नैर्ऋत्यां चैव निर्ऋतिम् । वरुणं वारुणाशायां वायुं वायव्यगोचरे ॥२६६॥
धनदं चोत्तरे न्यस्य रुद्रमीशानगोचरे। कमंडलुं पूर्वतोहि स्रुचं वै दक्षिणे तथा ॥२६७॥
हंसंवै पश्चिमायां तु उत्तरायां स्रुवं तथा । आग्नेय्यां च वृसीं दद्यान्नैर्ऋत्यां पादुके तथा ॥२६८॥
वायव्यां योगपट्टं च ऐशान्यां च गलंतिकाम्। विष्णुस्तु पूर्वतः पूज्यो दक्षिणे चापि शङ्करम् ॥२६९॥
पश्चिमे तु रविर्देव ऋषयश्चोत्तरे तथा । मध्ये स्वयं पद्मजन्मा सावित्री दक्षिणे तथा ॥२७०॥
उत्तरे चैव गायत्री देवी पद्मदलेक्षणा । ऋग्वेदं पूर्वतोन्यस्य यजुर्वेदं च दक्षिणे॥२७१॥
पश्चिमे सामवेदं च अथर्वं चोत्तरे तथा। इतिहासपुराणानि च्छंदोज्यौतिषमेव च॥२७२॥
धर्मशास्त्राणि चान्यानि इंद्रादिदिक्षुविन्यसेत् । पूर्वपत्रे बलं पूज्यं प्रद्युम्नं दक्षिणे दले ॥२७३॥
पश्चिमे चानिरुद्धं च वासुदेवमथोत्तरे । पूर्वतो वामदेवं च सद्योजातं तु दक्षिणे ॥२७४॥
ईशानं पिश्चमे स्थाप्य तत्पुरुषं चोत्तरे तथा । अघोरस्सर्वतः पूज्य एषा पूजा तु मंडले ॥२७५॥
पूर्वतो भास्करं पूज्य दक्षिणेन दिवाकरम्। प्रभाकरं पश्चिमे तु ग्रहराजमथोत्तरे ॥२७६॥
एवं पूज्य विधानेन ब्रह्माणं परमेश्वरम् । दिङ्मंडले तु विन्यस्य अष्टौ कुंभान् विधानतः॥२७७॥
ब्राह्मं तु कलशं मध्ये नवमं तत्र कल्पयेत्। स्नापयेन्मुक्तिकामं तु ब्रह्मणौघै घटेन तु ॥२७८॥

तो ॥२६४॥ पूर्व दिशा की नाभि में इन्द्राणी और इन्द्र की पूजा करे । उसी तरह अग्नि कोण की नाभि में लोकपालों के साथ अग्नि की पूजा करे ॥२६५॥ दक्षिण दिशा में यम की पूजा करे, नैऋत्य कोण में निऋति की पूजा करे पश्चिम दिशा में वरुण की तथा वायव्य कोण में वायु की पूजा करे ॥२६६॥ उत्तर दिशा में कुबेर का न्यास (स्थापना) करके उनकी पूजा करे और ईशान कोण में ईशान (रुद्र) की पूजा करे । मण्डल के पूर्व में कमण्डलु की और दक्षिण दिशा में सुच् की ॥२६७॥ पश्चिम दिशा में हंस की तथा उत्तर दिशा में स्रुव की, अग्नि कोण में मृगचर्म की तथा नैऋत्य कोण में पादुका की ॥२६८॥ वायव्य कोण में योगपट्ट की तथा ईशान कोण में गलंतिका की स्थापना करके पूजा करे । मण्डल के पूर्व में विष्णु की पूजा करे दक्षिण दिशा में शङ्करजी की पूजा करे ॥२६९॥ पश्चिम दिशा में सूर्य की तथा उत्तर दिशा में ऋषियों की पूजा करे । मण्डल के बीच में ब्रह्माजी की स्थापना करे तथा उनकी दाहिनी ओर सावित्री देवी की स्थापना करे ॥२७०॥ ब्रह्माजी के उत्तर में कमलनयनी गायत्री देवी की स्थापना करे । फिर पूर्व दिशा में ऋग्वेद की स्थापना करके, दक्षिण में यजुर्वेद की स्थापना करे ॥२७१॥ पश्चिम दिशा में सामवेद की तथा उत्तर दिशा में अथर्ववेद की स्थापना करे । उसके बाद पूर्व आदि दिशाओं में इतिहास, पुराण, छन्द, ज्योतिष् तथा अन्य धर्मशास्त्रों की स्थापना करे । इसके बाद पूर्वदल में बल की पूजा करके दक्षिण दिशा में प्रद्युम्न की पूजा करे॥२७२-२७३॥ पश्चिम दिशा में अनिरुद्ध की पूजा करके उत्तर दिशा में वासुदेव की पूजा करे । फिर पूर्व दिशा में वामदेव की पूजा करे और दक्षिण दिशा में सद्योजात की पूजा करे ॥२७४॥ पश्चिम दिशा में ईशान की स्थापना करके पूजा करे, उत्तर दिशा में तत्पुरुष की स्थापना करके पूजा करे, और अघोर की सभी स्थानों में पूजा करे । यह पूजा मण्डल में करनी चाहिए ॥२७५॥ पूर्व दिशा में सूर्य की पूजा करके, दक्षिण दिशा में दिवाकर की पूजा करे । पश्चिम में प्राकार की पूजा करे और उत्तर दिशा में ग्रहराज की पूजा करे ॥२७६॥ इसतरह परमेश्वर ब्रह्माजी की सविधि पूजा करके सभी दिशाओं में आठ कलशों की स्थापना विधिपूर्वक करे ॥२७७॥ नवें कलश की ब्राह्म कलश के रूप में स्थापना करे । अतएव मुक्ति चाहने वाले शिष्य को ब्राह्मघट से स्नान कराये ॥२७८॥ लक्ष्मी चाहने वाले

श्रीकामं वैष्णवेनेह कलशेन तु पार्थिव। राज्यार्थिनं स्नापयेच्च ऐंद्रेण कलशेन तु ॥२७९॥
द्रव्यप्रतापकामं तु आग्नेयघटवारिणा। मृत्युं जयविधानाययाम्येन स्नापयेन्नरम्॥२८०॥
दुष्टप्रध्वंसनायालं नैर्ऋतेन विधीयते। स्नापयेद्वारुणेनाशु पापनाशाय मानवम्॥२८१॥
शरीरारोग्यकामं तु वायव्येनाभिषेचयेत्। द्रव्यसंपत्ति कामस्य कौबेरेण विधीयते ॥२८२॥
रौद्रेण ज्ञानकामस्य लोकपालघटास्त्विमे। एकैकेन नरः स्नात्वा सर्वदोषविवर्जितः ॥२८३॥
जायते ब्रह्मसदृशो राजासद्योऽथवा नरः। अथवा दिक्षु सर्वासु यथासंख्येन लोकपान्॥२८४॥
पूजयेत्तु स्वनाम्ना तु कुंभैरेवविधानतः। एवं संपूज्यदेवांस्तुलोकपालान् प्रसन्नधीः ॥२८५॥
पश्चात्परीक्षितान् शिष्यान् बद्धनेत्रान् प्रवेशयेत्। दग्ध्वाग्नेय्याधारणया वायुना विधुनेत्ततः ॥२८६॥
सोमेनाप्यायितान् कृत्वाश्रावयेत्समयांस्ततः। ननिंद्याद्ब्राह्मणान् देवान् विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥२८७॥
इंद्रमादित्यमग्निंच लोकपालान् ग्रहांस्तथा। गुरुं च ब्राह्मणं वापि मुनींद्रं पूर्वदीक्षितम् ॥२८८॥
एवं तु समयान् श्राव्य पश्चाद्धोमं तु कारयेत्। ॐ नमो भगवते ब्रह्मणे सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा॥२८९॥
षोडशाक्षरमंत्रेण होमयेज्ज्वलितेऽनले। गर्भाधानादिकाः सर्वा आहुतीस्संप्रदापयेत् ॥२९०॥
तिसृभिस्तु व्याहृतिभि देवदेवस्य सन्निधौ। होमांते दीक्षितः पश्चाद्दापयेद्गुरुदक्षिणाम् ॥२९१॥
हस्त्यश्वयानशकटहेमधान्यादिकं नृप। दापयेद्गुरवे प्राज्ञो मध्यमे मध्यमं तथा ॥२९२॥
दापयेदपरो युग्मं सहिरण्यं तु तद्गुरोः। एवं कृते तु यत्पुण्यं महत्संजायते तथा ॥२९३॥

को वैष्णव कलश से स्नान कराये। राज्य चाहने वाले को इन्द्र कलश से स्नान कराये ॥२७९॥ द्रव्य तथा प्रताप चाहने वाले का आग्नेय घट के जल से स्नान कराये। मृत्युंजय विधान के लिए यम देवताक घट से स्नान कराये॥२८०॥ दुष्टों का विनाश चाहने वाले शिष्य को नैऋत्यदेवताक घट से स्नान कराये। पाप का नाश चाहने वाले मनुष्य को आचार्य वरुण देवताक घट से स्नान कराये ॥२८१॥ शारीरिक आरोग्य चाहने वाले को वायव्य कोण के घट से स्नान कराये द्रव्य तथा सम्पत्ति चाहने वाले को कुबेरदेव ताक घट से स्नान कराये ॥२८२॥ ज्ञान चाहने वाले को ईशान कोण के घट से स्नान कराये। ये सभी घट लोकपाल घट हैं। जो व्यक्ति प्रत्येक घटों से स्नान करता है वह समस्त दोषों से रहित हो जाता है ॥२८३॥ कोई राजा हो अथवा कोई सामान्य मनुष्य हो वह प्रत्येक घट से स्नान करके बह्माजी के सदृश हो जाता है। अथवा सभी दिशाओं में समस्त लोकपालों की पूजा करे॥२८४॥ अपने नाम से उन घटों से ही लोकपालों की विधिपूर्वक पूजा करे। इस तरह से प्रसन्नता पूर्वक लोकपालों की पूजा करके ॥२८५॥ उसके वाद नेत्र बंधे हुए परीक्षित शिष्यों को प्रवेश कराये। उसके बाद अग्नि का ध्यान करके भस्म कर दे, उसके बाद वायु की धारणा द्वारा उसको साफ करे ॥२८६॥ उसके बाद चन्द्रमा की धारणा के द्वारा उन सबों को आप्ययित (पुष्ट) करे। उसके बाद आचार्य शिष्यों को निम्नाङ्कित नियमों को सुनायें। कभी भी ब्राह्मणों, देवताओं तथा ब्राह्माजी की निन्दा नहीं करनी चाहिए ॥२८७॥ इन्द्र, आदित्य, अग्नि तथा लोकपालों तथा ग्रहों की भी निन्दा न करे। इसीतरह गुरु, ब्राह्मण, मुनीन्द्र तथा पहले जो दीक्षित हो चुके हैं, उनकी भी निन्दा न करे ॥२८८॥ इसतरह से नियमों को सुनाने के पश्चात् होम करवाये। प्रदीप्त अग्नि में **ओं नमो भगवते ब्रह्मणे सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा** इस षोडशाक्षर मन्त्र से होम कराये। अग्नि के गर्भाधान आदि समस्त संस्कारों के लिए आहुतियों को देना चाहिए ॥२९०॥ होम के अन्त में दीक्षित पुरुष को तीनों व्याहृतियों का उच्चारण करके आचार्य को गुरुदक्षिणा देनी चाहिए ॥२९१॥ हे राजन्! दक्षिणा में हाथी, घोड़े, रथ, गाडी, सुवर्ण तथा अन्न

तन्नशक्यं निगदितुमपि वर्षशतैरपि । दीक्षितोऽथ पुरा भूत्वा पाद्मं वै शृणुयाद्यदि ॥२९४॥
तेन वेदाः पुराणानि सर्वमंत्रास्ससंग्रहाः । जप्तास्स्युः पुष्करे तीर्थे प्रयागे सिंधुसागरे ॥२९५॥
देवह्रदे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः । ग्रहणे विषुवे चैव यत् फलं जपतां भवेत् ॥२९६॥
फलं शतगुणं तच्च पुष्करस्थं पितामहम् । दृष्ट्वा प्राप्नोति विविधान् कामान् कामयते यदि॥२९७॥
पूजां वैधानिकीं कृत्वा दीक्षितो यः शृणोति च । देवा अपि तपः कृत्वा ध्यायंति च वदन्ति च ॥२९८॥
कदा मे भारते वर्षे जन्म स्यादिति पार्थिव । दीक्षिताश्च भविष्यामः पाद्मंश्रोष्यामहे कदा ॥२९९॥
पाद्मं तु षोडशात्मानं न्यस्य देहे कदा वयम् । यास्यामस्तु परं स्थानं यद्गत्वा न पुनर्भवेत्॥३००॥
एवं जल्पंति विबुधा मनसा चिंतयंति च । ब्रह्मयज्ञं च कार्तिक्यां कदा द्रक्ष्यामहे नृप॥३०१॥
एवं ते विधिरुद्दिष्टो मयायं कुरुसत्तम । देवगंधर्वयक्षाणां सर्वदा दुर्लभो ह्यसौ ॥३०२॥
एवं यो वेत्ति तत्त्वेन यश्च पश्यति मंडलम् । यश्चेमं शृणुयाच्चैव सर्वे मुक्ता इति श्रुतिः॥३०३॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि रहस्यमिदमुत्तमम् । येन लक्ष्मी र्धृतिस्तुष्टिः पुष्टि श्चापि भवेन्नृणाम्॥३०४॥
सर्वे ग्रहास्सदा सौम्या जायंते येन पार्थिव । आदित्यवारं हस्तेन पूर्वमादाय भक्तितः॥३०५॥
भक्तैकेन क्षिपेत्तावद्यावत्सप्त च संख्यया । ततस्तु सप्तमे पूर्णे कुर्याद्ब्राह्मण भोजनम्॥३०६॥
आदित्यं चैव सौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः । रक्तवस्त्रयुगच्छत्रं छत्रिकां पादुके तथा ॥३०७॥

आदि देना चाहिए । इस तरह से गुरु को दक्षिणा दे, मध्यम को मध्यम दक्षिणा दे । उसके बाद आचार्य को सुवर्ण के साथ दो दक्षिणा और देनी चाहिए । इसतरह से बहुत अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है ॥२९३॥ उस पुण्य का वर्णन सैकड़ों वर्ष में भी नहीं किया जा सकता है । यदि दीक्षित व्यक्ति आगे बैठकर पद्मपुराण का श्रवण करता है॥२९४॥ उसको पुष्कर तीर्थ, प्रयाग तथा गङ्गासागर में जाकर वेदों पुराणों सभी मंत्रों तथा संग्रह गन्थों का जप करने का फल प्राप्त होता है ॥२९५॥ देवह्रद, कुरुक्षेत्र तथा वाराणसी जाकर ग्रहण, विषुव के अवसर पर जप करने का जो फल होता है, उसके सौ गुण अधिक पुष्कर में ब्रह्माजी के दर्शन करने का फल सकाम पुरुष को प्राप्त होता है । उसकी सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥२९६॥ जो दीक्षित होकर व्यक्ति ब्रह्माजी की पूजा करके पद्मपुराण का श्रवण करता है उसको उपर्युक्त फल की प्राप्ति होती है । देवता भी ध्यान करते हैं तथा कहते हैं ॥२९७-२९८॥ मेरा जन्म भारत वर्ष में कब होगा कि हमलोग भी दीक्षित होकर पद्मपुराण का श्रवण करेंगे ॥२९९॥ षोडशदलात्मक कमल की स्थापना करके हमलोग उस सर्वश्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करेंगे जहाँ से पुनः इस संसार में लौटना नहीं पड़ता है ॥३००॥ हे राजन् ! देवता लोग इस प्रकार से चिन्ता करते हैं तथा कहते हैं कि हमलोग न जाने कब ब्रह्माजी का दर्शन करने का अवसर प्राप्त करेंगे ॥३०१॥ हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ मैंने इस प्रकार से दीक्षा विधि का वर्णन किया। यह विधि देवता, गन्धर्व तथा यक्षों को पूर्णरूप से दुर्लभ है ॥३०२॥ इसतरह से इस विधि को जो जानता है, तथा जो मण्डल का दर्शन करता है, तथा जो इसका श्रवण करता है, ये तीनों प्रकार के लोग मुक्त हो जाते हैं ॥३०३॥ इसके बाद मैं ऐसे उत्तम रहस्य को बतलाता हूँ कि जिसके द्वारा मनुष्य धृति, तुष्टि तथा पुष्टि को भी प्राप्त कर लेते हैं ॥३०४॥ हे राजन् ! उसका अनुष्ठान करने से सभी ग्रह अनुकूल बन जाते हैं । जब रविवार हस्त नक्षत्र से युक्त हो उस दिन एक प्रकार का अन्न खाकर भक्ति पूर्वक व्रत करे । यह व्रत तब तक करता रहे जब तक कि सात बार रविवार व्रत पूरा न हो जाय । जब सातवें बार का व्रत पूरा हो जाय तो ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥३०६॥ सुवर्ण की सूर्य की मूर्ति बनवाकर उसको दो लाल वस्त्रों से ढंककर छाता, खड़ाऊँ, जूता, के साथ दान देना चाहिए । मूर्ति

उपानहौ च दातव्ये स्थापयेत्ताम्रभाजने। घृतेन स्नपनं कृत्वा संपूर्णांगद्विजातये॥३०८॥
दापयेत्कृत्यं विदुषे ब्राह्मणाय विशेषतः। एवं कृते फलं तस्य भवेदारोग्यमुत्तमम्॥३०९॥
द्रव्यसंपत्समप्राप्तिरिति पौराणिकी क्रिया। अविसंवादिनी चेयं शांतिपुष्टिप्रदा नृणाम्॥३१०॥
तद्वच्चित्रासु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः। रात्रि भक्षः क्षिपेदष्टौ सोमवारान्प्रयत्नतः॥३११॥
प्रत्येकं ब्राह्मणा भोज्या यथा शक्तिविचक्षणाः। नवमे तु ततः पूर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्॥३१२॥
वस्त्रयुग्मं च दातव्यं ततः सोमं प्रदापयेत्। कांस्यभाजनसंस्थं तु क्षीरसंपूरितं ततः॥३१३॥
तद्वच्छत्रं पादुके च तथोपानत्समन्वितम्। संपूर्णांगाय दातव्यं ब्राह्मणाय विशेषतः॥३१४॥
स्वात्यामंगारकं पूज्यक्षपयेन्नक्तभोजनैः। अष्टावेवं च यावच्च कुर्याद्ब्राह्मणोजनम्॥३१५॥
अंगारकं च सौवर्णं स्थापितं ताम्रभाजने। दापयेद्ब्रह्मणायाथ संपूर्णांगाय चैव हि॥३१६॥
नक्षत्रानुक्रमेणैव क्षिपेन्नक्तानि सप्त वै। अष्टमे तु क्रमात्खेटान् सौवर्णान् दापयेद्बुधः॥३१७॥
अग्निकार्यं च कुर्वीत यथादृष्टं विधानतः। एवंकृते भवेद्यद्वैतन्निबोध नराधिप॥३१८॥
असौम्याश्चग्रहास्सर्वे सौम्यरूपा भवंति च। सर्वे रोगा विनश्यन्ति तुष्टिमायान्ति देवताः॥३१९॥
नविरुन्धन्ति तं नागाः पितरस्तर्पितास्तथा। दुस्स्वप्ननाशो भवति शृण्वतां पठतां तथा॥३२०॥
यदि भौमो रविसुतो भास्करो राहुणा सह। केतुश्च मूर्ध्नितिष्ठंति रौद्राः पीडाकरा ग्रहाः॥३२१॥
अनेन कृतमात्रेण ससौभाग्या भवंति हि। य एवं कुरुते राजन् सदा भक्तिसमन्वितः॥३२२॥

को ताम्बे के पात्र में स्थापित करे। उसको घी से स्नान कराये। उसको सर्वाङ्ग युक्त कर्मकाण्ड के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण को दान दे। ऐसा करने वाले को उत्तम अरोग्य की प्राप्ति होती है॥३०७-३०९॥ इस व्रत से समस्त द्रव्य एवं सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। यह पौराणिक क्रिया है। इसमें किसी भी प्रकार का विसंवाद नहीं है। यह क्रिया मनुष्यों को पुष्टि एवं शान्ति प्रदान करने वाली है॥३१०॥ अथवा निपुण पुरुष को चाहिए कि जब चित्रा नक्षत्र का सोमवार दिन हो उस दिन से आठ सोमवार का व्रत करे। रात्रि में भोजन करे, दिन में भोजन न करे। प्रत्येक व्रत के दिन अपनी शक्ति के अनुसार योग्य ब्राह्मणों को भोजन कराये। नौवा सोमवार व्रत पूरा होने पर ब्राह्मण भोजन कराये॥३११-३१२॥ पहले दो वस्त्र देकर फिर सुवर्ण की सोम की मूर्ति का दान करे। मूर्ति को दुग्ध भरे कांसे के पात्र में रखकर दान करे॥३१३॥ पहले के ही समान छत्र, पादुका तथा उपानह के साथ दान करे। विशेष रूप से सम्पूर्णाङ्ग सम्पन्न ब्राह्मण को दान देना चाहिए॥३१४॥ इसी तरह स्वाती नक्षत्र के भौमवार का व्रत प्रारम्भ करके आठ मङ्गलवारों को व्रत करे। रात्रि में ही भोजन करे। इसीतरह आठ व्रतों को करके ब्राह्मण भोजन कराये॥३१५॥ मङ्गल की सुवर्ण की मूर्ति बनवाकर उसे ताम्बे के पात्र में रखे और समस्त अङ्गों से युक्त ब्राह्मण को उसका दान दे॥३१६॥ अथवा नक्षत्रों के क्रम से ही सात रात्रियों को बिताये। रात्रि में ही भोजन करे। आठवें नक्षत्र के दिन समस्त व्रतों की सुवर्ण की मूर्ति बनवाकर ब्राह्मणों को दान दे॥३१७॥ उसी दिन होम भी विधिपूर्वक करे। हे राजन्! इस तरह से व्रत करने के फल को आप मुझसे सुनें॥३१८॥ सभी विपरीत हुए ग्रह अनुकूल फल देने वाले हो जाते हैं, सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं और सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं॥३१९॥ उसका विरोधसर्प भी नहीं करते है पितृगण तृप्त हो जाते हैं। इसका श्रवण तथा पाठ करने वालों के भी दुःस्वप्न का नाश हो जाता है॥३२०॥ यदि मङ्गल, शनि, सूर्य, राहु तथा केतु उच्च स्थान में और अत्यन्त दुःख देने वाले हों तो॥३२१॥ इस व्रत के करने मात्र से वे सबके सब सौभाग्य प्रदान करने वाले बन जाते हैं। हे राजन्! जो व्यक्ति इस तरह से भक्तिपूर्वक

तस्य सानुग्रहाः सर्वे शांतिं यच्छंति नान्यथा । शनैश्चरं राहुकेतू लोहपात्रेषु विन्यसेत् ॥३२३॥
लोहेन कारयेच्चैनान् ब्राह्मणेभ्यश्च दापयेत् । कृष्णं वस्त्रयुगं देयमेतेषां प्रीणनाय वै ॥३२४॥
सौवर्णांगाश्च दातव्याः शांतिश्रीविजयेप्सुभिः । व्रतांते सर्वएते हि ग्रहास्सौवर्णका नृप ॥३२५॥
दातव्याः शांतिमिच्छद्भिर्व्रतांते द्विजभोजनम् । यथाशक्ति दक्षिणा च ग्रहाणां प्रीतये तथा ॥३२६॥
अल्पायासेन राजेंद्र सर्वान्कामानवाप्नुयात् । शङ्कराज्ज्ञानमन्विच्छेदारोग्यं भास्करात्तथा ॥३२७॥
हुताशनाद्धनमिच्छेद्गतिमिच्छेज्जनार्दनात् । ब्राह्म्यं पितामहाच्चैव सर्वजन्तु प्रशांतिदम् ॥३२८॥

भीष्म उवाच

यस्त्वया कथितो यज्ञो यज्वनां तु फलं महत् । तथायुषस्स्वल्पतया अन्यैः प्राप्तुं न शक्यते ॥३२९॥
स्वल्पायासेन यत्पुण्यं संवत्सरमुपोषणम् । भवेत्तन्मे मुनि श्रेष्ठ कथयस्व महाफलम् ॥३३०॥

पुलस्त्य उवाच

इदमर्थं महाराज श्वेतो राजा महायशाः । वसिष्ठं पृष्टावान्प्रश्नंक्षुधया पीडितो भृशम् ॥३३१॥
आसीदिलावृते वर्षे श्वेतो राजा महाबलः । स महीं सकलां जिग्ये सप्तद्वीपां सपत्तनाम् ॥३३२॥
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठश्च आसीत्तस्य पुरोहितः । सकदाचिन्नृपश्रेष्ठो जित्वा परमधार्मिकः ॥३३३॥
पुरोहितमुवाचेदं वसिष्ठं जपतां वरम् ।

श्वेत उवाच

भगवन्नश्वमेधानां सहस्रं कर्तुमुत्सहे ॥३३४॥
सुवर्णरूप्यरत्नानां दानं कर्तुं द्विजातिषु । पृथिव्यामन्नदानं तु नेच्छामि वै गुरो ॥३३५॥

व्रत करता है ॥३२२॥ उसको सभी ग्रह शान्ति प्रदान करने वाले बन जाते हैं । शनिश्चर, राहु तथा केतु की मूर्ति को लोहे के पात्र में रखे और दो काले वस्त्र के साथ उसे ब्राह्मण को दान दे जिससे कि ये सभी ग्रह प्रसन्न रहें ॥३२३-३२४॥ शान्ति, श्री तथा विजय चाहने वाले को चाहिए कि वे इन सभी ग्रहों की सुवर्ण की मूर्ति बनवाकर दान दें । हे नृप व्रत के अन्त मे इन सुवर्ण निर्मित ग्रहों का ॥३२४॥ शान्ति चाहने वालों को ब्राह्मणों को दान दे देना चाहिए तथा ग्रहों की प्रसन्नता के लिए अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥३२६॥ हे राजेन्द्र ! ऐसा करके मनुष्य थोड़े प्रयास के द्वारा अपने समस्त कामनाओं को पूरा कर लेता है । शङ्करजी से ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करे, सूर्य से आरोग्य प्राप्ति की इच्छा करे ॥३२७॥ अग्नि से धन प्राप्ति की इच्छा करे और मुक्ति की प्राप्ति की इच्छा भगवान् विष्णु से करे, सभी जीवों को शान्ति प्रदान करने वाले ब्रह्मवर्चस की ब्रह्माजी से प्राप्त करने की इच्छा करे ॥३२८॥ **भीष्मजी ने कहा—** आपने जो पूजन करने वालों के लिए अल्प प्रयास से महान फल वाला यज्ञ बतलाया है, अन्य साधनों से उस तरह की आयु आदि की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥३२९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! थोड़े प्रयास से एक वर्ष तक किए जाने वाले व्रत से जिस महान् फल की प्राप्ति होती है उसे आप मुझे बतलायें ॥३३०॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इसी प्रकार का प्रश्न महाराज श्वेत ने वसिष्ठजी से किया था वे उस समय बहुत अधिक भूखे थे ॥३३१॥ इलावृत्त वर्ष के महाबलवान् राजा श्वेत थे । उन्होंने सोचा कि मैं सम्पूर्ण सातो द्वीपों वाली तथा समस्त नगरों से युक्त पृथिवी को जीत लूँ ॥३३२॥ उनके पुरोहित ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि वसिष्ठ थे । परम धार्मिक वे राजा एक बार विजयी होकर ॥३३३॥ एक बार जप करने वालें में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ से कहे **राजा श्वेत ने कहा—** हे भगवन् ! मैं एक हजार अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ ॥३३४॥ और ब्राह्मणों को सोना, चाँदी तथा रत्नों

पुलस्त्य उवाच

नान्नेन किंचिद्दत्तेन दत्ते होम्रिद्विजे प्रभो । नकिंचिद्वस्त्वितिज्ञात्वा न दत्तं तत्कदाचन ॥३३६॥
रक्तवस्त्रमलंकारं ग्रामांश्च नगराणि च । अददाद्ब्राह्मणेभ्योऽसौ श्वेतो राजा महायशाः ॥३३७॥
नान्नं जलं तेन राज्ञा दत्तमासीत्कदाचन । ततोश्वमेधैर्बहुभिर्यज्वासौ नृपसत्तम ॥३३८॥
स्वर्गं गतः पुण्यजितं तपस्तप्त्वार्बुदत्रयम् । ब्राह्मीं सलोकतां प्राप्तः सर्वालंकारभूषितः ॥३३९॥
नृत्यंत्यप्सरसस्तत्र गायंते सिद्धयोषितः । तुंबुरुर्नारदस्तत्र द्वावप्यनुगतौ सदा॥३४०॥
अगायेतां महाप्राज्ञौ मुनयश्च तपोन्विताः । वेदोक्तमंत्रैः स्तुन्वंति अनेकक्रतुयाजिनम् ॥३४१॥
एवंविभवयुक्तस्य राज्ञस्तस्य महात्मनः । क्षुधयापीड्यते देहं तृष्णाया च विशेषतः ॥३४२॥
स तयापीड्यमानस्तु क्षुधया राजसत्तमः । विमानेनाप्यसौस्वर्गं त्यक्त्वागादृक्ष पर्वतम् ॥३४३॥
यत्रात्मूर्तिस्तत्रागात्पुरा दग्धा महावने । तत्रास्थीनि स्वयं गृह्य लिहन्नास्ते सपार्थिवः॥३४४॥
पुनर्विमानमारुह्य ययौ नाकं नराधिपः । अथ कालेन महता स राजा संशितव्रतः ॥३४५॥
स्वान्यस्थीनिलिहन् दृष्टो वसिष्ठेन पुरोधसा। उक्तश्चकिन्नुराजेंद्र स्वास्थिभक्षो नराधिप॥३४६॥
एवमुक्तस्ततो राजा वसिष्ठेन महर्षिणा । उवाच वचनं चेदं श्वेतो राजाथ तं मुनिम्॥३४७॥
भगवंस्तृट्क्षुधार्तोहमन्नदानं पुरा मया । न दत्तं मुनिशार्दूल तेन मां क्षुत्प्रबाधते ॥३४८॥
एवमुक्तस्तदा राज्ञा वसिष्ठो मुनिपुंगवः । उवाच तं नृपं भूयो वाक्यमेतन्महामुनिः ॥३४९॥
किन्ते करोमि राजेंद्र क्षुधितस्य विशेषतः । वस्तुकस्यापि किंचिद्धि नादत्तमुपतिष्ठति॥३५०॥

का दान देना चाहता हूँ । हे गुरो ! मैं पृथिवी पर अन्न दान नहीं करना चाहता हूँ ॥३३५॥ सुवर्ण दान कर देने पर अन्न दान देने का क्या महत्त्व है ? उस राजा ने किसी भी वस्तु को अदेय समझकर दान नहीं किया हो ऐसी बात नहीं है ॥३३६॥ महा यशस्वी राजा श्वेत ने रंगीन वस्त्र, अलङ्कार, ग्रामों तथा नगरों को ब्राह्मणों को दान दिया॥३३७॥ किन्तु उस राजा श्वेत ने कभी अन्न का तथा जल का दान नहीं दिया । उसके बाद राजा ने अनेक अश्वमेघ यज्ञों को किया ॥३३८॥ उस श्रेष्ठ राजा अपने पुण्य के प्रभाव से तीन अरब वर्षों तक तपस्या करके, सभी अलङ्कार से अलङ्कृत होकर ब्रह्माजी के लोक में गये ॥३३९॥ उस राजा के सन्निकट अप्सरायें नृत्य करती थीं और सिद्धों की नारियाँ गीत गाती थीं । राजा के साथ सदा तुम्बुर और नारदजी दोनों रहते थे ॥३४०॥ ये दोनों सदा गायन करते थे तथा तपस्वी दूसरे महर्षिगण उस राजा की वेदोक्त मन्त्रों से स्तुति करते रहते थे ॥३४१॥ इसतरह से ऐश्वर्य युक्त भी वह राजा सदा भूख तथा प्यास से पीडित रहता था ॥३४२॥ भूख से व्याकुल उस राजश्रेष्ठ ने स्वर्ग का त्याग कर दिया और विमान से ऋक्ष पर्वत पर आया ॥३४३॥ वह उस महावन में गया जहाँ पर उसका शरीर जलाया गया था वहाँ पर उसकी जो अस्थियाँ पड़ी थीं उसी को वह चाटने लगा ॥३४४॥ उसके बाद विमान पर चढकर स्वर्गलोक चला गया । बहुत समय बाद उस श्रेष्ठ राजा को महर्षि वसिष्ठ ने हड्डियों को चाटते हुए देखा और पूछा राजेन्द्र तुम इन हड्डियों को क्यों चाटते हो ?॥३४५-३४६॥ इसतरह से पूछने पर राजा श्वेत ने तपस्वियों में श्रेष्ठ महामुनि वसिष्ठ से कहा ॥३४७॥ हे मुने ! मैं भूख और प्यास से व्याकुल हूँ । इसका कारण है कि मैंने सब कुछ दान किया; किन्तु अन्न और जल का दान नहीं किया । इसीलिए मुझे भूख बाधित करती है । इस तरह से राजा के कहने पर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने उस राजा से कहा ॥३४८-३४९॥ हे राजन् ! तुम्हारे भूख की शान्ति के लिए मैं कौन सा उपाय करूँ ? मनुष्य जो वस्तु दान करता है, स्वर्ग में उसको वहीं वस्तु मिलती है ॥३५०॥ रत्नों तथा सुवर्ण

रत्नहेमप्रदानेन भोगवान् जायते नरः । अन्नदानप्रदानेन सर्वकामैः प्रदीपितः ॥३५१॥
तन्न दत्तं त्वया राजन् स्तोकं मत्वा नराधिपः ।

श्वेत उवाच

अदतस्य च संभूतिर्यथा भवति मे गुरो ॥३५२॥
वसिष्ठ त्वत्प्रसादेन तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ।

वसिष्ठ उवाच

अस्त्येकं कारणं येन जायते नात्र संशयः ॥३५३॥
तच्छृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं मया तव। आसीद्राजापुरा कल्पे विनीताश्वेति कीर्तितः ॥३५४॥
सचाश्वमेधमारेभे यज्ञं कर्तुं वरं नृपः । यजनांते द्विजेंन्द्रेभ्यो दत्तं गोश्वादि याचितम् ॥३५५॥
नात्रं दत्तं तेन किंचित् स्वल्पं मत्वा यथा त्वया । ततः कालेन महतामृतोऽसौ जाह्नवीतटे ॥३५६॥
मायापुर्यां विनीताश्वः सार्वभौमोऽभवन्नृपः । स्वर्गं च गतवान्योपि यथा राजाभवान्प्रभो ॥३५७॥
असावपि क्षुधाविष्ट एव मेवागतो भवत् । मर्त्यलोके नदीतीरे गङ्गायां नीलपर्वते ॥३५८॥
विमानेनार्कवर्णेन भास्वता देववन्नृप । ददर्शतत्स्वकं देहं तथास्वं च पुरोहितम् ॥३५९॥
होतारं ब्राह्मणं नाम यजंतं जाह्नवी तटे । तं दृष्ट्वासावपि पुनः पर्यपृच्छद्विजोत्तमम् ॥३६०॥
क्षुधायाः कारणं राजन् स होता तमुवाच ह । तिलधेनुं च वै राजन् घृतधेनुं च सत्तम ॥३६१॥
जलधेनुं च धेनुं च रसधेनुं च पार्थिव । देहि शीघ्रं येन भवांस्तृट्क्षुधावर्जितो दिवि ॥३६२॥
रमेत यावदादित्यस्तपते दिवि चंद्रमाः । एवमुक्तस्ततो राजा तं पुनः पृष्टवानिदम् ॥३६३॥
तिलधेनुस्थितिं ब्रूहि तथा कृत्वा ददाम्यहम् ।

का दान करने से जीव परलोक में भोग सम्पन्न होता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । अन्न दान करने से उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥३५१॥ हे राजन् ! तुमने अपने को राजा मानकर थोड़ा सा भी अन्न दान नहीं किया। **श्वेत राजा ने कहा—** हे गुरो ! यद्यपि मैंने दान नहीं दिया फिर भी मुझे आप उस उपाय को बतलाइये कि मुझे अन्न की प्राप्ति हो । हे वसिष्ठ मैं आपसे उस उपाय को पूछता हूँ, मुझे बतलाइये । **वसिष्ठ ने कहा—** एक उपाय है, उसी से यह सम्भव है ॥३५३॥ उसे मैं बतलाता हूँ, हे राजन् ! उसे आप सुनिये । इससे पहले के कल्प में विनीताश्व नामक राजा थे ॥३५४॥ उस राजा ने अश्वमेघ यज्ञ करना प्रारम्भ किया । यज्ञ के अन्त में याचकों ने जो माँगा उन्हें गौ तथा अश्व इत्यादि को राजा ने दान दिया ॥३५५॥ तुम्हारे ही समान अपने को राजा मानकर उसने थोड़ा सा भी अन्न दान नहीं किया । बहुत दिनों के बाद वह राजा गङ्गा के तट में अपने प्राणों का परित्याग किया॥३५६॥ उसकी मृत्यु मायापुरी हरिद्वार में हुयी । मृत्यु के पश्चात् वह भी राजा आपके ही समान स्वर्ग गया॥३५७॥ वह भी भूख से व्याकुल होकर विमान से नील पर्वत पर गङ्गा नदी में आता था ॥३५८॥ उसका विमान सूर्य के समान चमकता था । वहाँ पर उसने अपने शरीर तथा अपने पुरोहित को देखा ॥३५९॥ वे ब्राह्मण होता थे और गङ्गा नदी के तट पर पूजन करते थे । उन ब्राह्मण को देखकर राजा ने उनसे पूछा ॥३६०॥ उसके बाद उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने भूख का कारण बतलाते हुए कहा हे राजन् ! आप तिल धेनु, धृत धेनु ॥३६१॥ जल धेनु तथा रस धेनु का दान करें । ऐसा ही करने से तुम्हारे भूख और प्यास की शान्ति होगी ॥३६२॥ ऐसा करने वाला जीव स्वर्ग में तब तक आनन्दानुभव करता है जब तक स्वर्ग में सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं । इस तरह से कहने पर

पुरोहित उवाच

विधानं तिलधेनोस्तु तच्छृणुष्व नराधिप ॥३६४॥
धेनुस्स्यात्षोडशाढक्या चतुर्भिर्वत्सको भवेत्। इक्षु दंडमयाः पादा दन्ताः पुष्पमयाः शुभाः॥३६५॥
नासागंधमयी तस्या जिह्वागुडमयी तथा । पुच्छेस्त्रक्कल्पनीया स्याद् घंटाभरणभूषिता॥३६६॥
ईदृशीं कल्पयित्वा तु स्वर्णश्रृंगीं तु कल्पयेत् । रौप्यखुरां कांस्यदोहां पूर्वधेनुविधानतः ॥३६७॥
कृत्वा तां ब्राह्मणायाशु दापयेन्मंत्रतो नृप । स्थितां कृष्णाजिने धेनुं वासोभिर्गोपितां शुभाम्॥३६८॥
सूत्रेण सूत्रितां कृत्वा पंचरत्नसमन्विताम् । सर्वौषधिसमायुक्तां मंत्रपूतां तु दापयेत् ॥३६९॥
अन्नम्मेजायतां सद्यःपानं सर्वरसास्तथा । कामान् संपादयास्माकं तिलधेनो द्विजेर्पिता ॥३७०॥
गृह्णामि देवि त्वां भक्त्या कुटुम्बार्थे विशेषतः । देहि कामान्वितान्सर्वा स्तिलधेनो नमोस्तुते ॥३७१॥
एवंविधानतो दत्ता तिलधेनु र्नृपोत्तम । सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते नात्र संशयः ॥३७२॥
जलधेनुस्तथैवेह कुंभैरेव प्रकल्पिता । दत्ता तु विधिना कामान् सद्यः सर्वान्प्रयच्छति॥३७३॥
धेनुशतं तथादत्तं पूर्णिमानियमेन हि । सावित्री इव वैस्वर्गे सर्वकामप्रदा भवेत् ॥३७४॥
घृतधेनुस्तथा दत्ता विधानेन विचक्षणैः । सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते कांतिदा भवेत् ॥३७५॥
रसधेनुस्तथादत्ता कार्तिके मासि पार्थिव । सर्वान् कामान प्रयच्छेत्तु नित्यं सा गतिदा भवेत्॥३७६॥
एत्तते सर्वमाख्यातं समासाद्बहुविस्तरम् । अपारं फलमुद्दिष्टं ब्रह्मणा सर्वकर्मणा ॥३७७॥

राजा ने फिर उनसे पूछा ॥३६३॥ आप मुझे तिलधेनु का रूप बतलाइये वैसा करके मैं दान देता हूँ। **पुरोहित ने कहा—** हे राजन् ! आप तिल धेनु के विधान को सुनो ॥३६४॥ सोलह आढक की गौ बनाये, चार आढक का बछड़ा बनाये । इक्षु दण्ड से उसके पैरों को बनाये तथा पुष्पों से उसके दाँतों को बनाये ॥३६५॥ सुगन्धित द्रव्य से उसकी नाक तथा गुड से उसकी जीभ बनाये । माला से उसकी पूंछ बनाये तथा उसको धण्टा रूपी आभरण से अलङ्कृत करे ॥३६६॥ इसतरह से तिलधेनु को बनाकर सुवर्ण का उसका सींग बनाये । चाँदी से खुरों को तथा कांस्य निर्मित दोहन पात्र के साथ पूर्व वर्णित विधि पूर्वक दान दे ॥३६७॥ हे नृप ! इस तरह से गौ का निर्माण करके उसे मन्त्र पूर्वक दान देना चाहिए । उस धेनु को काले मृग चर्म पर रखकर वस्त्रों से ढंक दे ॥३६८॥ पञ्चरत्नों से युक्त सूत्र से उसे सूत्रित (बाँध) करके सभी प्रकार के अन्नों के साथ मन्त्र से पवित्र बनी हुयी उस गौ को ब्राह्मण को दान दे दे ॥३६९॥ उसके बाद प्रार्थना करे हे तिल धेनो ! मुझे शीघ्र ही अन्न, पान तथा सभी प्रकार के रसों की प्राप्ति हो और मेरी सारी कामनाओं को पूर्ण करो ॥३७०॥ हे देवि ! मैं कुटुम्ब के लिए आपको ग्रहण करता हूँ अतएव तुम सारी कामनाओं को पूरा करो । हे तिलधेनो ! तुम्हें नमस्कार है ॥३७१॥ हे नृप ! इस विधान से दी गयी तिलधेनु दाता की सारी कामनाओं की पूर्ति कर देती है, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥३७२॥ उसी तरह घड़ों से जल धेनु की कल्पना करनी चाहिए । दान दी गयी जल धेनु दाता की शीघ्र ही सभी कामनाओं को पूर्ण कर देती है ॥३७३॥ पूर्णिमा को नियम से सौ धेनुओं का दान करने से वह दाता की सारी कामनाओं की उसी तरह से पूर्ति करती हैं जिस तरह माता अपने पुत्र की कामनाओं को पूर्ण करती है ॥३७४॥ विचक्षण पुरुषों द्वारा दान की गयी घृतधेनु दाता की सारी कामनाओं को पूर्ण करके उसे कान्ति प्रदान करती है ॥३७५॥ हे पार्थिव! कार्तिक के महीनें में दान दी गयी रसधेनु सभी कामनाओं को प्रदान करके नित्य गति (मुक्ति) को प्रदान करने वाली होती है ॥३७६॥ इस तरह मैंने संक्षेप में सारी बातें बता दी और इसका बहुत अधिक विस्तार से वर्णन सभी कर्मों

तृष्णया क्षुधया यद्वा पीडितो राजसत्तम। तद्दानं कार्तिके देयं पूर्वं देहि नराधिप ॥३७८॥
ब्रह्मांडं सर्वसंपन्नं भूतरत्नौषधीयुतम् । देवदानवयक्षैश्च युक्तमेतत्सदा विभो ॥३७९॥
एतत्तुसकलं कृत्वा सर्वतो रजतान्वितम् । सुरत्नसूर्यचंद्राढ्यं कार्तिके द्वादशी दिने ॥३८०॥
अथवा पंचदश्यां तु कार्तिकस्यैव नान्यतः । पुरोहिताय गुरवे दापयेद्भक्तिमान्नरः ॥३८१॥
ब्रह्मांडोदरवर्तीनि यानि भूतानि पार्थिव । तानि दत्तानि वै तेन समासात्कथितं तव॥३८२॥
यद्यज्ञै र्यजतो राजन् समाप्तवरदक्षिणैः । सर्वं फलं तत्खंडस्य ब्रह्मांडस्य विशेषतः॥३८३॥
यः पुनः सकलं चेदं ब्रह्मांडं प्रदिशेन्नरः । तेन जप्तं हुतं दत्तं पठितं कीर्तितं भवेत् ॥३८४॥

राजोवाच

विधिं ब्रह्मांडदानस्य कृत्वा तत्मोक्षभाग्भवेत् । कालं देश विप्रतीर्थं सर्वं त्वं वद मेऽनघ॥३८५॥
कृतेन येन सर्वस्य फलभागी भवाम्यहम् । कुत्सितस्यास्य भावस्य मोक्षस्स्यादचिराच्च मे ॥३८६॥

वसिष्ठ उवाच

एवं श्रुत्वा ततो राजन् पुरोधास्तस्य सद्विजः। ब्रह्मांडं कारयामास सौवर्णं सर्वधातुभिः ॥३८७॥
युतं निष्कसहस्रेण पद्मं तत्र ह्यकल्पयत्। तत्र ब्रह्मा तस्य मध्ये पद्मरागैरलंकृतः ॥३८८॥
सावित्र्या चैव गायत्र्या ऋषिभिर्मुनिभिः सह। नारदाद्याः सुताः सर्व इन्द्राद्याश्च दिवौकसः ॥३८९॥
सौवर्णविग्रहाः सर्वे ब्रह्मणस्तु पुरः सराः । वराहरूपी भगवान् लक्ष्म्या सह सनातनः ॥३९०॥
नीलं मरकतं चैव भूषायां तस्य कारयेत्। गोमेदैस्तस्य वै शोभां कारयेत च बुद्धिमान् ॥३९१॥

को करने वाले ब्रह्माजी ने किया है और उसका अपार फल बतलताया है ॥३७७॥ हे नराधिप ! चाहे आप भूख से पीडित हों या प्यास से व्याकुल हों आपको उसका दान कार्तिक मास में करना चाहिए, किन्तु आप पहले ही इसका दान कर दें ॥३७८॥ हे विभो ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, भूतों, रत्नों तथा अन्नों से सम्पन्न है । तथा यह ब्रह्माण्ड देवता, दानव एवं यक्षों से युक्त है ॥३७९॥ भक्ति सम्पन्न पुरुष को चाहिए कि इन सभी दानों को करने के पश्चात् पूर्ण रूप से चाँदी सुन्दर रत्न सूर्य तथा चन्द्रमा से युक्त ब्रह्माण्ड का कार्तिक शुक्ल द्वादशी अथवा पूर्णिमा के दिन अपने आचार्य को दान दे दे ॥३८०-३८१॥ हे राजन् ! मैंने आपको संक्षेप में बतला दिया कि इस तरह से दान करने वाले व्यक्ति को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भीतर विद्यमान् सम्पूर्ण वस्तुओं के दान करने का फल प्राप्त होता है ॥३८२॥ श्रेष्ठ दक्षिणा के साथ समाप्त करने वाले यज्ञिकों को जो फल प्राप्त होता है, वह ब्रह्माण्ड से होने वाले फल के एक अंश के समान होता है ॥३८३॥ जो व्यक्ति इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दान की विधि का उपदेश करता है, उसे इसके जप करने, होम करने, दान देने, पाठ करने तथा कीर्तन करने का फल प्राप्त होता है ॥३८४॥ **राजा ने कहा**— जो ब्रह्माण्ड दान की विधि को सम्पन्न करता है, वह मोक्ष का पात्र होता है । हे अनघ विप्र ! आप मुझे ब्रह्माण्ड दान के अनुकूल काल, देश तथा तीर्थ इन सारी बातों को बतलायें ॥३८५॥ जिसको करके मैं सबों के फल का पात्र बन जाऊँ और शीघ्र ही मेरे इस निन्दित भाव से मोक्ष हो जाय ॥३८६॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा**— हे राजन् ! उस राजा की बात को सुनकर उसके पुरोहित ने सभी मनुष्यों से युक्त सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बनवाया उसमें हजारों निष्क जड़े गये थे । उसके ऊपर कमल का निर्माण किया । उस कमल के बीच में पद्मराग मणि से भूषित ब्रह्माजी को सावित्री देवी तथा गायत्री देवी तथा ऋषियों के साथ बनवाया । ब्रह्माजी के नारद आदि पुत्रों तथा इन्द्र आदि देवताओं की सुवर्ण मूर्तियों को ब्रह्माजी के आगे बनवाया। वहीं पर लक्ष्मीजी के साथ सनातन वराह भगवान् को बनवाया ॥३९०॥

मौक्तिकैश्चापि सोमस्य शोभां वज्रैर्दिवाकरे। ग्रहाणां चैव सर्वेषां सुवर्णानि च दापयेत् ॥३९२॥
स्वर्णात्सप्तगुणं रौप्यं रौप्यात्ताम्रं तथाविधम् । ततःसप्तगुणं कार्यं कांस्यं सप्तगुणं तथा॥३९३॥
कांस्यात्सप्तगुणं कार्यं त्रपुचैव नराधिप । त्रपुसप्तगुणं सीसं सीसाल्लोहं च कारयेत् ॥३९४॥
सप्तद्वीपास्समुद्राश्च सप्त वै कुलपर्वताः । अनयासंख्यया कृत्वा निपुणैः शिल्पिभिस्ततः ॥३९५॥
पादपादीनि भूतानि राजतान्येव कारयेत् । आरण्यानि च सत्त्वानि सौवर्णानि च कारयेत्॥३९६॥
वृक्षान्वनस्पतीन् गुल्मतृणपर्णानि वीरुधः । सर्वं प्रकल्प्य विधिवत्तीर्थे देयं विचक्षणैः ॥३९७॥
कुरुक्षेत्रे गयायां च प्रयागेऽमरकंटके । द्वारावत्यां प्रभासे च गङ्गाद्वारे च पुष्करे ॥३९८॥
तीर्थेष्वेतेषु वै देयं ग्रहणे शशिसूर्ययोः । दिनच्छिद्रेषु सर्वेषु अयनेदक्षिणोत्तरे ॥३९९॥
व्यतीपाते बहुगुणं विषुवे चविशेषतः । दातव्यमेतद्राजेंद्र विचारं नैव कारयेत् ॥४००॥
शालाग्निहोत्रिणं कृत्वा सुरूपं च गुणान्वितम् । सपत्नीकं च संपूज्य भूषयित्वा च भूषणैः ॥४०१॥
पुरोहितं मुख्यतमं कृत्वान्ये च तथा द्विजाः। चतुर्विंशद्गुणोपेताः सपत्नीका निमंत्रिताः ॥४०२॥
अङ्गुलीयानि च तथा कर्णवेष्टं च दापयेत् । एवं विधांस्तु तान्पूज्य तेषामग्रे सुसंस्थितः ॥४०३॥
अष्टांगप्रणिपातेन प्रणम्य च पुनः पुनः । पुरोहिताय पुरतः कृत्वा वै करसंपुटम्॥४०४॥
यूयं वै ब्राह्मणाः प्रीता मैत्रत्वेनानुगृह्णत । सौमुख्येन द्विजश्रेष्ठा भूयः पूततरस्त्वहम् ॥४०५॥
भवतां प्रीतियोगेन स्वयं प्रीतः पितामहः । ब्रह्मांडेन तु दत्तेन तोषं यातु जनार्दनः॥४०६॥
पिनाकपाणिर्भगवान् शक्रश्च त्रिदशेश्वरः । एते तोषं समायांतु अनुध्यानाद्विजोत्तमः ॥४०७॥

उनको अलंकारों में नील मणि तथा मरकत मणि लगाये । बुद्धिमान् पुरुष उनकी शोभा में गोमेद लगाये ॥३९१॥ चन्द्रमा की शोभा मोतियों से तथा सूर्य की शोभा को हीरों से बनाये । सभी ग्रहों की शोभा सुवर्ण से बनवाये॥३९२॥ इसमें सुवर्ण के सात गुना चाँदी लगाये, उसके सात गुना ताम्बा लगाये । उसके सात गुना कांस्य और कांसा के सात गुना रङ्गा लगाये । रङ्गे के सात गुना शीशा, शीशे के सात गुना लोहा लगाये ॥३९३-३९४॥ सात द्वीपों सात समुद्रों, सात कुल पर्वतों इन सबों का इसी तरह से कुशल शिल्पी से ब्रह्माण्ड मूर्ति का निर्माण करे ॥३९५॥ वृक्षों आदि को चाँदी का ही बनवाये । वन तथा उनमें रहने वाले जीवों की मूर्ति सुवर्ण की बनवाये ॥३९६॥ वृक्षों, वनस्पतियों, गुल्मों, तृणों, पत्तों तथा वीरुधों इन सबों की विधिवत् रचना करवाकर विचक्षणों को चाहिंए कि वे उसका दान तीर्थ में जाकर करें ॥३९७॥ कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, अमरकण्टक, द्वारका, प्रभास क्षेत्र, हरिद्वार तथा पुष्कर ॥३९८॥ इन्हीं तीर्थो में जाकर ग्रहण अथवा संक्रान्ति के अवसर पर, सभी दिनछिद्रों (तिथि हानियों) उत्तरायण तथा दक्षिणायन के अवसर पर ॥३९९॥ व्यतीपात योग में तथा संक्रान्ति के अवसर पर दान अधिक फलप्रद होता है । हे राजेन्द्र ! इन्हीं अवसरों पर दान करे इसमें कोई विचार न करे ॥४००॥ सुन्दर गुणवान सपत्नीक शालाग्निहोत्री सबसे मुख्य पुरोहित को अलंकारों से अलङ्कृत करके, तथा चौबीस गुणों से युक्त तथा सपत्नीक दूसरे ब्राह्मणों को अँगूठी तथा कुण्डल प्रदान करे । इस प्रकार से उन ब्राह्मणों की पूजा करके उन सबों के समक्ष अच्छी तरह से खड़ा होकर ॥४०२-४०३॥ उन लोगों को बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम करके, पुरोहित के सामने हाथ जोड़कर ॥४०४॥ कहे कि आप सभी ब्राह्मण प्रसन्न होकर मुझे अपने मैत्रभाव से अनुगृहीत करें । आपलोगों की अनुकूलता से मैं अत्यन्त पवित्र हो गया हूँ ॥४०५॥ आपलोगों की प्रसन्नता से ब्रह्माजी भी स्वयं प्रसन्न हो गये हैं । ब्रह्माण्ड का दान करने से भगवान् जनार्दन प्रसन्न हो जायँ ॥४०६॥ पिनाकधारी भगवान् शङ्कर और देवेश्वर इन्द्र हे

एवं स्तुत्वा ततो राजा ब्राह्मणान् वेदपारगान् । ब्रह्माण्डं तु गुरोः प्रादात्सविधानं पुनः क्षणात् ॥४०८॥
सर्वकामैस्ततस्तृप्तो ययौ स्वर्गं नराधिपः । तेनैव गुरुणा तच्च विभक्तं ब्राह्मणैः सह ॥४०९॥
दत्तं तेनापि चान्येभ्यो ब्रह्मांडं च नराधिप । ब्रह्मांडे भूमिदाने च ग्राही चैको न वै भवेत्॥४१०॥
गृह्णन् दोषमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः । सर्वेषां चैव प्रत्यक्षं दातव्यं परिकीर्त्य वै॥४११॥
दीयमानं च पश्यंति तेपि पूता भवंति हि । दर्शनादेव ते मुक्ता भवन्त्येव न संशयः ॥४१२॥
या भीमद्वादशी प्रोक्ता स्वर्णं तोयं मृगाजिनं। एतानि कृत्वा पश्यन्तु दृष्टैरेतैःक्रियाफलम् ॥४१३॥
अयत्नादेव लभ्येत कर्तुश्चैव सलोकता। सदा गावः प्रणम्याश्च मंत्रेणानेन पार्थिव॥४१४॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च । नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमोनमः ॥४१५॥
मंत्रस्य चास्य स्मरणाद्गोदानफलमाप्नुयात् । तस्मात्त्वमपि राजेंद्रपुष्करे तीर्थ उत्तमे॥४१६॥
कार्तिक्यां तु विशेषेण गोदानफलमाप्स्यसि । यत्किंचिद्विद्यते पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ॥४१७॥
पुष्करे स्नानमात्रेण तदशेषं प्रणश्यति । पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रात्तु भारत ॥४१८॥
पुष्करे तान्युपायांति कार्तिक्यां तु विशेषतः ॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे ब्रह्मांडदानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३४॥

द्विजश्रेष्ठों ! ध्यान करने मात्र से सभी सन्तुष्ट हो जायँ ॥४०७॥ राजा वेद पारंगत ब्राह्मणों की इसतरह से स्तुति करके विधिपूर्वक आचार्य को ब्रह्माण्ड दान किए ॥४०८॥ इसके पश्चात् सभी कामनाओं से तृप्त होकर राजा स्वर्ग चले गये । उस आचार्य ने ही सम्पूर्ण दान सामग्री को सभी ब्राह्मणों के साथ बाँट लिया ॥४०९॥ उस आचार्य ने भी दूसरे ब्रह्मणों को ब्रह्माण्ड दान किया । ब्रह्माण्ड की भूमि का दान करने में एक ही ग्रहीता को नहीं होना चाहिए॥४१०॥ यदि कोई अकेले ब्रह्माण्ड का दान लेता है तो उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता हैं, इसमें कोई भी संशय नहीं है । अतएव सबों के सामने गिनकर ब्रह्माण्ड का दान देना चाहिए ॥४११॥ दिए जाने वाले ब्रह्माण्ड का जो दर्शन करते हैं, वे लोग भी पवित्र हो जाते हैं । दर्शन करके ही वे लोग मुक्त हो जाते हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥४१२॥ पहले जो भीम द्वादशी बतलायी गयी है, उसका दर्शन सुवर्ण, जल तथा मृगचर्म लेकर उसका दर्शन करे । ऐसा करने का फल है कि ॥४१३॥ वह बिना प्रयास के ही ब्रह्माजी के लोक में चला जाता है । हे राजन् ! सर्वदा इस मन्त्र से गायों को प्रणाम करे ॥४१४॥ श्रीमती तथा सौरभेयी गायों को नमस्कार है । ब्रह्मसुता तथा पवित्र गायों को नमस्कार है ॥४१५॥ इस मन्त्र का स्मरण करने मात्र से गोदान करने का फल प्राप्त होता है। अतएव हे राजेन्द्र ! तुम भी उत्तम पुष्कर तीर्थ में ॥४१६॥ विशेष रूप से कार्तिक मास में गोदान करके गोदान के फल को प्राप्त करोगे । स्त्री हो या पुरुष पुष्कर तीर्थ में स्नान करने से उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं । हे भारत! समुद्र पर्यन्त जितने भी तीर्थ पृथिवी पर हैं ॥४१७-४१८॥ वे सबके सब कार्तिक पूर्णिमा के दिन पुष्कर तीर्थ में आते हैं ।

इसतरह से श्रीपद्ममहापुराण के सृष्टिखण्ड के ब्रह्माण्डदान नामक चौंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३४।।

पैंतीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

उक्तंभगवता सर्वं पुराणाश्रय संयुतम्। तथाश्वेतेन ब्रह्मांडं गुरवे प्रतिपादितम् ॥१॥
श्रुत्वैतत् कौतुकं जातं यथा तेनास्थिलेहनम्। कृतं क्षुधापानोदार्थे अन्नदानाद्विना द्विज ॥२॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि पृथिव्यां ये च पार्थिवाः। अन्नदानाद्दिवं प्राप्ताः क्रतवश्चान्नमूलकाः ॥३॥
कथं तस्य 'मतिर्नष्टा श्वेतस्य च महात्मनः । न दत्तं तेनान्नदानमृषिभिर्वा न दर्शितम् ॥४॥
अहोमाहात्म्यमन्नस्य इह दत्तस्य यत्फलम् । परत्र भुज्यते पुंभिः स्वर्गश्चाक्षयतां व्रजेत् ॥५॥
अन्नदानं परं विप्राः कीर्तयंति सदोत्थिताः । अन्नदानात्सुरेंद्रेण त्रैलोक्यमिह भुज्यते ॥६॥
शतक्रतुरिति प्रोक्तः सर्वैरेव द्विजोत्तमैः । तेनावस्थां तत्सदृशीं प्राप्तवांस्त्रिदशेश्वरः॥७॥
दानादेव गतः स्वर्गं त्वत्तः सर्वं श्रुतं मया। अपरं च पुरावृत्तं निवृत्तं यदि कर्हिचित्॥८॥
भूयोपि श्रोतुमिच्छामि तन्मे वद महामते ।

पुलस्त्य उवाच

एतदाख्यानकं पूर्वमगस्त्येन महात्मना ॥९॥
रामाय कथितं राजंस्तव वक्ष्यामिसांप्रतम् ॥

भीष्म उवाच

कस्मिन्वंशे समुत्पन्नो रामोऽसौ नृपसत्तमः ॥१०॥
यस्यागस्त्येन कथितश्चेतिहासः पुरातनः ॥

पुलस्त्य उवाच

रघुवंशे समुत्पन्नो रामो नम महाबलः ॥११॥

अन्नदान का माहात्म्य, श्रीराम कथा, अगस्त्य आदि ऋषियों द्वारा रामराज्य की प्रशंसा तथा श्रीराम द्वारा शम्बूक नामक तपस्वी शूद्र का वध करके ब्राह्मण बालक को जीवित करना

श्रीभीष्मजी ने कहा— हे भगवन् ! आपने पुराणों की कथाओं को कहा तथा राजा श्वेत द्वारा आचार्य को ब्रह्माण्ड दान का वर्णन किया ॥१॥ इस बात को सुनकर मुझे अत्यन्त कौतुक है कि राजा ने हड्डियों को अन्न दान नहीं करने के कारण चाटा ॥२॥ अतएव मैं सुनना चाहता हूँ कि पृथिवी के सभी राजा अन्न मूलक क्रतुओं को करके स्वर्ग लोक गये ॥३॥ उस राजा की बुद्धि क्यों नष्ट हो गयी कि उसने अन्न दान नहीं किया । अथवा ऋषियों ने उसे अन्न दान करने का निर्देश ही नहीं दिया ॥४॥ अन्न का बहुत अधिक महत्त्व है, इस लोक में दिए गये अन्न का जो फल परलोक में भोगा जाता है उन जीवों के लिए स्वर्ग अक्षय बन जाता है ॥५॥ सदा सावधान ब्राह्मण बतलाते हैं कि अन्नदान श्रेष्ठ दान है । अन्नदान करने के ही कारण इन्द्र त्रैलोक्य के स्वामी हैं ॥६॥ इसीलिए सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण इन्द्र को शतक्रतु कहते हैं । उसी के कारण उन्होंने इन्द्रत्व के समान अवस्था प्राप्त किया ॥७॥ आपसे ही मैंने सुना है कि दान करने के ही कारण इन्द्र स्वर्ग गये । यदि कोई दूसरा भी इतिहास इस विषयक बचा हो तो उसे मैं सुनना चाहता हूँ । हे महामते ! उसे आप मुझे सुनाइये । **महर्षि पुलस्त्य ने कहा**— इस कथा को पहले अगस्त्य महर्षि ने॥८-९॥ श्रीरामचन्द्र जी को सुनाया था उसे मैं तुम्हें सुना रहा हूँ **भीष्मजी ने कहा**— राजश्रेष्ठ श्रीराम किस वंश

देवकार्यं कृतं तेन लंकायां रावणो हतः । पृथिवीराज्य संस्थस्य ऋषयोभ्यागता गृहे ॥१२॥
प्राप्तास्ते तु महात्मानो राघवस्य निवेशनम् । प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवचनाद् द्रुतम् ॥१३॥
आवेदयामास ऋषीन् प्राप्तांस्तांश्चत्वरान्वितः । दृष्ट्वा रामं द्वारपालः पूर्णचंद्रमिवोदितम्॥१४॥
कौसल्यासुतभद्रं ते सुप्रभाताद्य शर्वरी । द्रष्टुमभ्युदयं तेऽद्य सम्प्राप्तो रघुनंदन ॥१५॥
अगस्त्यो मुनिभिः सार्द्धं द्वारि तिष्ठति ते नृप। श्रुत्वा प्राप्तान् मुनीन् रामस्तान्भास्करसमद्युतीन् ॥१६॥
प्राह वाक्यं तदा द्वास्थं प्रवेशय त्वरान्वितः । किमर्थं तु त्वया द्वारि निरुद्धा मुनिसत्तमाः॥१७॥
रामवाक्यान्मुनींस्तांस्तु प्रावेशयद्यथासुखम् । दृष्ट्वा तु तान् मुनीन् प्राप्तान् प्रत्युवाच कृतांजलिः॥१८॥
रामोभिवाद्य प्रणत आसनेषु न्यवेशयत् । ते तु कांचनचित्रेषु स्वास्तीर्णेषु सुखेषु च॥१९॥
कुशोत्तरेषु चासीनाः समन्तान्मुनिपुंगवाः । पाद्यमाचमनीयं च ददौ चार्घ्यं पुरोहितः ॥२०॥
रामेण कुशलं पृष्टा ऋषयः सर्व एव ते । महर्षयो वेदविद इदं वचनमब्रुवन् ॥२१॥
कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनंदन । त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतविद्विषम्॥२२॥
हता सीतातिपापेन रावणेन दुरात्मना। पत्नी ते रघुशार्दूल तस्या एवौजसा हतः॥२३॥
असहायेन चैकेन त्वया राम रणे हतः । यादृशं ते कृतं कर्म तस्य कर्ता नविद्यते ॥२४॥
इह संभाषितुं प्राप्ता दृष्ट्वा पूताः स्म सांप्रतम् । दर्शनात्तव राजेंद्र सर्वे जातास्तपस्विनः ॥२५॥
रावणस्यवधात्तेद्य कृतमश्रुप्रमार्जनम् । दत्वा पुण्यामिमां वीर जगत्यभयदक्षिणम् ॥२६॥

में उत्पन्न हुए थे ॥१०॥ जिन श्रीराम को महर्षि अगस्त्य ने प्राचीन इतिहास को सुनाया । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** श्रीराम नामक महाबलवान् राजा रघुवंश में उत्पन्न हुए थे ॥११॥ श्रीराम ने देवताओं का कार्य लङ्का में जाकर रावण का वध करके किया । उसके बाद जब श्रीराम पृथिवी के राजा हुए उस समय ऋषिगण उनके यहाँ आये ॥१२॥ वे सभी महात्मा श्रीराम के घर पधारे । उसके बाद महर्षि अगस्त्य की आज्ञा से प्रतिहार (द्वारपाल) ने ही श्रीराम को॥१३॥ शीघ्रता से जाकर बतलाया कि ऋषिगण आये हुए हैं । उदित हुए पूर्णचन्द्र के समान श्रीराम को देखकर द्वारपाल ने कहा ॥१४॥ हे कौसल्या नन्दन ! आपका कल्याण हो, आज आपके लिए रात्रि का सुप्रभात हुआ है । हे रघुनन्दन ! आपके अभ्युदय को देखने के लिए ॥१५॥ मुनियों के साथ महर्षि अगस्त्य आपके द्वार पर आये हुए हैं । सूर्य के समान कान्ति वाले मुनियों के आगमन को सुनकर ॥१६॥ श्रीराम ने द्वारपाल से कहा कि शीघ्र मुनियों को लाओ । तुमने मुनियों को द्वार पर ही क्यों रोक दिया ?॥१७॥ भगवान् श्रीराम के वाक्यों को सुनकर द्वारपाल उन ऋषयों को सुखपूर्वक प्रवेश कराया । आये हुए महर्षियों को देखकर श्रीराम ने हाय जोड़कर प्रणाम किया ॥१८॥ रामचन्द्रजी ने प्रणाम करके भक्ति पूर्वक उन ऋषियों को आसन पर बैठाया । सुवर्णनिर्मित सुन्दर सुखद तथा जिनके ऊपर कुश बिछाया गया था उन आसनों पर मुनिश्रेष्ठों के बैठ जाने पर पुरोहित ने उन महर्षियों को पाद्य, आचमन तथा अर्घ्य प्रदान किया ॥१९-२०॥ श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा कुशल पूछे जाने पर वेदज्ञ सभी ऋषियों ने कहा ॥२१॥ हे महाबाहो ! रघुनन्दन आपके राज्य में सर्वत्र कुशल है । हमलोग अपने सौभाग्यवशात् शत्रु का वध करके कुशली आपका दर्शन कर रहे हैं ॥२२॥ महापापी रावण ने आपकी पत्नी सीता का अपहरण किया और उसी पाप के कारण वह मारा गया ॥२३॥ हे श्रीराम ! आपने बिना किसी की सहायता के अकेले उस रावण को युद्ध में मारा, आपने जैसा कर्म किया है वैसा कर्म कोई भी नहीं कर सकता है ॥२४॥ हमलोग यहाँ पर आपसे बातें करने के लिए आये है । आपको देखकर ही हमलोग पवित्र हो गये । हे राजेन्द्र ! आपके दर्शन से ही सभी तपस्वी पवित्र हो गये हैं।॥२५॥

दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामितविक्रम । दृष्टस्संभाषितश्चासि यास्यामश्चाश्रमान् स्वकान् ॥२७॥
अरण्यं ते प्रविष्टस्य मया चेंद्रशरासनम् । अर्पितं चाक्षयौ तूणौ कवचं च परंतप ॥२८॥
भूयोप्यागमनं कार्यमाश्रमे मे रघूद्वह । एवमुक्त्वा तु ते सर्वे मुनयों तर्हिताभवन्॥२९॥
गतेषु मुनिमुख्येषु रामो धर्मभृतांवरः । चिंतयामास तत्कार्यं किंस्यान्मे मुनिनोदितम् ॥३०॥
भूयोप्यागमनं कार्यमाश्रमे रघुनंदन । अवश्यमेव गंतव्यं मयागस्त्यस्य सन्निधौ ॥३१॥
श्रोतव्यं देवगुह्यं तु कार्यमन्यच्च यद्वदेत् । एवं चिंतयतस्तस्य रामस्यामिततेजसः ॥३२॥
करिष्ये नियतं धर्मं धर्मो हि परमागतिः । स तु वर्ष सहस्राणि दश राज्यकारयत् ॥३३॥
ददतो जुह्वतश्चैव जग्मुस्तान्येकवर्षवत् । प्रजाः पालयतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥३४॥
एतस्मिन्नेव दिवसे वृद्धो जानपदो द्विजः । मृतं पुत्रमुपादाय रामद्वारमुपागतः ॥३५॥
उवाच विविधं वाक्यं स्नेहाक्षरसमन्वितम् । दुष्कृतं किंनुमे पुत्र पूर्वदेहांतरे कृतम् ॥३६॥
त्वामेकपुत्रं यदहं पश्यामि निधनं गतम् । अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षं गतायुषम् ॥३७॥
अकाले कालमापन्नं दुःखाय मम पुत्रक । अकृत्वापितृकार्याणि गतो वैवस्वतक्षयम् ॥३८॥
रामस्य दुष्कृतं व्यक्तं येन ते मृत्युरागतः । बालवध्या ब्रह्मवध्या स्त्रीवध्या चैव राघवम् ॥३९॥
प्रवेक्ष्यति न सन्देहः सभार्ये तु मृते मयि । शुश्राव राघवः सर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥४०॥
निवार्य तं द्विजं रामो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् । किं मयाद्य च कर्तव्यं कार्यमेवं विधे स्थिते ॥४१॥

हे वीर ! रावण का वध करके आपने सभी तपस्वियों के आँसू को पोंछ कर यह अभय प्रदान रूप पवित्र दक्षिणा उन्हें प्रदान किया है ॥२६॥ हे काकुत्स्थ ! इस विजय के द्वारा भाग्यवशात् आपकी समृद्धि हो रही है । आपका हमलोगों ने दर्शन कर लिया तथा आपसे सम्भाषण भी हमलोगों ने कर लिया । अब हमलोग अपने आश्रमों में जायेंगे॥२७॥ हे श्रीरामचन्द्र ! आप जब वन में आये थे उस समय में मैंने आपको इन्द्र का धनुष तथा दो अक्षय तुणीर तथा कवच प्रदान किया था ॥२८॥ हे परंतप श्रीराम ! आप पुनः हमारे आश्रम में आइयेगा । इसतरह से कहकर वे सभी मुनिगण वहाँ से अन्तर्धान हो गये ॥२९॥ उन प्रधान मुनियों के चले जाने पर श्रीराम ने विचार किया कि किस काम के लिए मुनियों ने मुझे बुलाया है ?॥३०॥ महर्षियों ने कहा है कि आप हमारे आश्रम में पुनः अवश्य आइयेगा, अतएव मुझे महर्षि अगस्त्य के आश्रम में अवश्य जाना चाहिए ॥३१॥ और देवताओं का रहस्यमय जो कार्य हो उसे सुनना चाहिए । इसतरह से विचार करते हुए अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र के राज्य करते हुए दश हजार वर्ष बीत गये । वे सोचते थे कि मैं निश्चित रूप से धर्म का अनुष्ठान करूँगा । धर्म ही परम प्राप्य है॥३२-३३॥ दान करते हुए, होम करते हुए तथा प्रजा का पालन करते हुए यह सारा समय श्रीरामचन्द्र के लिए एक वर्ष के समान शीघ्र ही बीत गया ॥३४॥ उसी समय एक बृद्ध ब्राह्मण जो राज्य का ही था अपने मरे हुए पुत्र को लेकर श्रीराम के द्वार पर आया ॥३५॥ वह स्नेहपूर्ण अनेक वाक्यों को कह रहा था । उसने कहा— पुत्र ! पूर्वजन्म में मैंने कोई पाप अवश्य किया है जिसके कारण मैं तुम इकलौते पुत्र को मरा हुआ देख रहा हूँ । अभी तो तुम्हारी पाँच वर्ष की अवस्था थी तुम युवक भी नहीं हुए थे ॥३६-३७॥ हे पुत्र ! तुम बिना समय के ही, अपने पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया किए बिना ही यमराज के घर चले गये ॥३८॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इसमें राम का ही कोई पाप है कि बाल वध्य (जिसका बालक मर गया हो) ब्रह्मवध्या (ब्राह्मण को मारने का पाप) तथा स्त्रीवध्या (स्त्री का वध करने का पाप) मेरे मर जाने पर श्रीराम के पास जायेंगे । श्रीराम ने दुख तथा शोक से युक्त इन सारी

प्राणानहंजुहोम्यग्नौ पर्वताद्वा पते ह्यहम् । कथं शुद्धिमहं यामि श्रुत्वा ब्राह्मणभाषितम् ॥४२॥
वसिष्ठस्याग्रतः स्थित्वा राज्ञो दीनस्य नारदः । प्रत्युवाच श्रुतं वाक्यमृषीणां सन्निधौ तदा ॥४३॥
श्रृणु राम यथाकालं प्राप्तो वै बालसंक्षयः । पुरा कृतयुगे राम सर्वत्र ब्राह्मणोत्तरम् ॥४४॥
अब्राह्मणो न वै कश्चित्तपस्तपति राघव । अमृत्यवस्तदा सर्वे जायंते चिरजीविनः ॥४५॥
त्रेतायुगे पुनः प्राप्ते ब्रह्मक्षत्रमनुत्तमम् । अधर्मोद्वापरे तेषां वैश्यान् शूद्रांस्तथा विशत् ॥४६॥
एवं निरंतरं जुष्टमुद्भूतमनृतं पुनः । अधर्मस्य त्रयः पादा एको धर्मस्य चागतः ॥४७॥
ततः पूर्वे भृशं त्रस्तावर्णा ब्राह्मण पूर्वकाः । भूयः पादस्तु धर्मस्य द्वितीयः समपद्यत ॥४८॥
तस्मिन्द्वापरसंज्ञे तु तपो वैश्यं समाविशत् । युगत्रयस्यवै धर्म्यं धर्मस्य प्रतितिष्ठति ॥४९॥
कलि संज्ञे ततः प्राप्ते वर्तमाने युगेंतिमे । अधर्मश्चानृतं चैव ववृधाते नरर्षभ ॥५०॥
भविता शूद्रयोन्यां तु तपश्चर्या कलौ युगे । स ते विषयपर्यंते राजन्नुग्रतरं तपः ॥५१॥
शूद्रस्तपति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधः कृतः । यस्याधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य हि ॥५२॥
पुरे वा राजशार्दूल कुरुते दुर्मतिर्नरः । क्षिप्रं स नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥५३॥
चतुर्थं तस्य पापस्य भागमश्नाति पार्थिवः । सत्त्वं पुरुषाशार्दूल गच्छस्व विषयं स्वकम् ॥५४॥
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर । एवं ते धर्मवृद्धिश्च बलस्य वर्धनं तथा ॥५५॥

पुलस्त्य उवाच

भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवनम् । नारदेनैवमुक्तस्तु साश्चर्यो रघुनंदनः ॥५६॥

बातों को सुनकर उस ब्राह्मण को चुप कराकर महर्षि वसिष्ठ से पूछा कि ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए?॥३९-४१॥ मैं अपने प्राणों को अग्नि में होम कर दूँगा अथवा पर्वत से मैं कूद पडूगा, इस ब्राह्मण की बातों को सुनकर मैं कैसे शुद्ध हो सकता हूँ ॥४२॥ जिस समय महर्षि वसिष्ठ के सामने खड़े होकर दीन भाव से श्रीरामचन्द्रजी इन बातों को कह रहे थे उसी समय नारदजी ने ऋषियों की वाणी को सुनकर कहा ॥४३॥ हे श्रीराम! बालक के काल कवलित होने का कारण आप सुनें। पहले सत्ययुग में सर्वत्र ब्राह्मण ही तपस्या करते थे। ब्राह्मण से भिन्न वर्ण का कोई कहीं तपस्या नहीं करता था, उस समय सभी दीर्घायु होते थे, किसी की अकालमृत्यु नहीं होती थी ॥४४-४५॥ त्रेतायुग में फिर ब्राह्मण और क्षत्रिय तपस्या करने लगे, द्वापर युग में अधर्म वैश्य और शूद्रों में प्रवेश कर गया ॥४६॥ इसतरह से सदा होते रहने से अनृत (अधर्म) उत्पन्न हुआ। अधर्म के तीन चरण और धर्म का एक चरण हो गया ॥४७॥ इसतरह पहले ब्राहाण आदि वर्ण बहुत अधर्म से भयभीत रहते थे। उसके बाद धर्म का दूसरा चरण भी हो गया ॥४८॥ उस द्वापर नामक युग में तपस्या वैश्यों में भी प्रवेश कर गयी। तीनों युगों की विधर्मता ही धर्म की विरोधिनी हो गयी ॥४९॥ हे नरश्रेष्ठ ! अन्तिम युग कलियुग के आने पर अधर्म और अनृत (मिथ्याभाषित्व) दोनों वढ जाते हैं ॥५०॥ कलियुग में तपश्चर्या शूद्रयोनि में चली जायेगी। आपके राज्य की सीमा में हे राजन् ! कोई शूद्र उग्र तपस्या कर रहा है ॥५१॥ उस दुष्टबुद्धि के ही कारण बालक की अकाल में मृत्यु हुयी है। जिस राजा के राज्य में, अथवा नगर में अधर्म अथवा अकार्य कोई दुष्ट व्यक्ति करता है, हे नरश्रेष्ठ ! वह राजा शीघ्र ही नरक में चला जाता है और वहाँ प्रलयकाल पर्यन्त उसे यातना भोगनी पड़ती है ॥५२-५३॥ क्योंकि उस दुष्ट व्यक्ति के द्वारा किए गये पाप का चतुर्थांश राजा को भोगना पड़ता है। अतएव हे नरश्रेष्ठ ! आप अपने राज्य में जाइये ॥५४॥ जहाँ कहीं भी आप पाप देखें, वहाँ उसे आप रोकने का प्रयास करें। ऐसा करने से आपके धर्म की

राम उवाच

प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत्। गच्छ सौम्यद्विजश्रेष्ठं समाश्वासय लक्ष्मण ॥५७॥
बालस्य च शरीरं त्वं तैलद्रोण्यां निधापय। गंधैश्च परमोदारै स्तैलैश्चैव सुगंधिभिः॥५८॥
यथा न शीर्यति बालस्तथा सौम्य विधीयताम्। यथाशरीरं गुप्तं स्याद्बालस्याक्लिष्टकर्मणः ॥५९॥

पुलस्त्य उवाच

विपत्तिः परिभेदो वा न भवेत्ततथा कुरु । तथा संदिश्य सौमित्रं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥६०॥
मनसा पुष्पकं दध्यावागच्छेति महायशाः । इंगितं तत्तु विज्ञाय कामगं हेमभूषितम् ॥६१॥
आजगाम मुहूर्त्तात्तु समीपं राघवस्य हि । सोऽब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमहमस्मि नराधिप ॥६२॥
अग्रे तव महाबाहो किंकरः समुपस्थितः। भाषितं सुचिरं श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिप ॥६३॥
अभिवाद्य महर्षींस्तान्विमानं सोध्यरोहत । धनुर्गृहीत्वा तूणौ च खड्गं चापि महाप्रभम् ॥६४॥
निक्षिप्य नगरे वीरौ सौमित्रिभरतावुभौ । प्रायात्प्रतीचीं त्वरितो विचिन्वन्सुसमाहितः ॥६५॥
उत्तरामगमत्पश्चाद्दिशं हिमवदाश्रिताम्। पूर्वामपि दिशं गत्वा तथापश्यन्नराधिपः ॥६६॥
सर्वां शुद्धसमाचारामादर्शमिव निर्मलाम् । ततो दिशं समाक्रामद्दक्षिणां रघुनंदनः ॥६७॥
शैलस्य उत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः । तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः ॥६८॥
ददर्श राघवो भीमं लंबमानमधोमुखम् । तमुपागम्यकाकुत्स्थस्तप्यमानं तु तापसम् ॥६९॥
उवाच राघवो वाक्यं धन्यस्त्वममरप्रभ । कस्यां योनौ तपो वृद्धिर्वर्तते दृढनिश्चय ॥७०॥

वृद्धि होगी और उस बालक की भी वृद्धि होगी ॥५५॥ वह बालक भी जीवित हो जायेगा । नारदजी के द्वारा इस तरह से कहने पर श्रीरामचन्द्र आश्चर्य चकित हो गये ॥५६॥ वे अत्यन्त प्रहृष्ट होकर लक्ष्मणजी से कहे— हे सौम्य! तुम उस श्रेष्ठ ब्राह्मण के पास जाओ और उसे आश्वासन प्रदान करे ॥५७॥ बालक के शरीर को तेल के नाव में रखवा दो । अच्छे सुगन्धित द्रव्यों तथा सुगन्धित तेलों से भर कर ऐसा प्रयास करना चाहिए कि वह बालक का शरीर सड़ने न पाये । अक्लिष्ट कर्म करने वाले बालक का शरीर अच्छी तरह से सुरक्षित रहे ॥५८-५९॥ जिस तरह से इस विपत्ति का प्रभाव न हो सके वैसा करो । इस तरह से सुन्दर लक्षण वाले लक्ष्मण को इस प्रकार का आदेश देकर ॥६०॥ महायशस्वी श्रीरामचन्द्र ने मन से ध्यान किया कि पुष्पक विमान आ जाय । भगवान् श्रीराम के ईशारे को जानकर वह कामग सुवर्णालङ्कृत पुष्पक विमान एक मुहूर्त में ही वहाँ श्रीरामजी के पास आ गया । उसने हाथ जोड़कर कहा राजन् मैं आ गया हूँ ॥६१-६२॥ हे महाबाहो ! आपके सामने दास उपस्थित है । हे भीष्म ! पुष्पक की वाणी सुनकर ॥६३॥ श्रीरामचन्द्रजी उन महर्षियों को प्रणाम करके उस विमान पर वैठ गये । वे अपने साथ धनुष दो तुणीर तथा चमचमाता हुआ खड्ग लिए हुए थे ॥६४॥ नगर की रक्षा का भार भरतजी तथा लक्ष्मणजी को सौंप कर वे शीघ्र ही सावधानी पूर्वक पश्चिम दिशा में खोजते हुए गये ॥६५॥ उसके बाद हिमालय के अन्तर्गत आने वाले उत्तर दिशा में गये उसके बाद वे राजा श्रीराम पूर्व दिशा में भी उसी तरह देखते हुए गये ॥६६॥ उन्होंने सम्पूर्ण धरती को दर्पण के समान स्वच्छ देखा । उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी दक्षिण दिशा में गये ॥६७॥ उन्होंने पर्वत के उत्तर दिशा में एक महान् सरोवर को देखा, उस सरोवर में घोर तपस्या करते हुए एक तपस्वी को उन्होंने देखा॥६८॥ वहाँ पर उन्होंने नीचे मुँह करके लटकते हुए भयंङ्कर तपस्वी को देखा । तपस्या करने वाले तपस्वी के पास श्रीरामचन्द्रजी आये ॥६९॥ श्रीराम ! ने कहा तुम धन्य हो तुम्हारी कान्ति देवता के समान है । हे दृढनिश्चय !

अहं दाशरथी रामः पृच्छामि त्वां कुतूहलात् । कोऽर्थो व्यवसितस्तुभ्यं स्वर्गलोकोऽथवेत्तरः ॥७१॥
किमर्थं तप्यसे वा त्वं श्रोतुमिच्छामि तापस । ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वाथदुर्जयः ॥७२॥
वैश्यस्तृतीयवर्णो वा शूद्रो वा सत्यमुच्यताम् । तपः सत्यात्मकं नित्यं स्वर्गलोक परिग्रहे ॥७३॥
सात्विक राजसं चैव तच्च सत्यात्मकं तपः । जगदुपकारहेतुर्हि सृष्टं तद्वै विरिंचिना ॥७४॥
रौद्रं क्षत्रियतेजोजं तत्तुराजसमुच्यते । परस्योत्सादनार्थाय तच्चासुरमुदाहृतम् ॥७५॥
अंगानि निहुते यो वा असृग्दिग्धानि भागशः । पंचाग्निं साधयेद्वापि सिद्धिं वा मृत्युमेव वा ॥७६॥
आसुरो ह्येष ते भावो न च मे त्वं द्विजो मतः । सत्यं ते वदतः सिद्धिरनृते नास्ति जीवितम् ॥७७॥
तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः । अवाक्शिरास्तथाभूतो वाक्यमेतदुवाच ह ॥७८॥

शूद्रतापस उवाच

स्वागतं ते नृपश्रेष्ठ चिराद्दृष्टोसि राघव । पुत्रभूतोस्मि ते चाहं पितृभूतोसि मेऽनघ ॥७९॥
अथवा नैतदेवं हि सर्वेषां नृपतिः पिता । स त्वमर्च्योऽसि भो राजन् वयं ते विषये तपः ॥८०॥
चरामस्तत्र भोगोस्ति पूर्वं सृष्टः स्वयंभुवा । नधन्याः स्मो वयं राम धन्यस्त्वमसि पार्थिव ॥८१॥
यस्य ते विषये ह्येवं सिद्धिमिच्छंति तापसाः । तपसा त्वं मदीयेन सिद्धिमाप्नुहि राघव ॥८२॥
यदेतद्भवता प्रोक्तं योनौ कस्यां तु ते तपः । शूद्रयोनिप्रसूतोहं तप उग्रं समास्थितः ॥८३॥
देवत्वं प्रार्थये रामस्वशरीरेण सुव्रत । न मिथ्याहं वदे भूप देवलोकजिगीषया ॥८४॥

पुलस्त्य उवाच

शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शंबूकं नाम नामतः । भाषतस्तस्य काकुत्स्थः खड्गं तु रुचिरप्रभम् ॥८५॥

आप किस योनि में तप की वृद्धि कर रहे हो ॥७०॥ मैं दशरथ पुत्र राम हूँ कौतूहलवशात् पूछ रहा हूँ। तुम किसलिए तपस्या कर रहे हो ? स्वर्ग की प्राप्ति के लिए अथवा किसी अन्य प्रयोजन से ॥७१॥ तुम किस प्रयोजन से तपस्या करते हो उसे मैं जानना चाहता हूँ। तुम यदि ब्राह्मण हो तो तुम्हारा कल्याण हो, अथवा दुर्जय क्षत्रिय हो॥७२॥ या तुम तृतीय वर्ण के वैश्य हो या शूद्र हो, मुझे सत्य बतलाओ। स्वर्गलोक में तपस्या सदा सत्यात्मक रूप से परिगृहीत है ॥७३॥ वह सत्य स्वरूप तीन प्रकार का होता है, सात्त्विक, राजस एवं तामस। ब्रह्माजी ने जगत् का कल्याण करने के लिए सात्त्विक एवं राजस तप को बनाया है ॥७४॥ क्षत्रिय तेज से युक्त होकर भयङ्कर तप होता है, वह राजस तप है। दूसरे को दुःख देने के लिए किया जाने वाला तप तामस कहलाता है ॥७५॥ उसमें खून से लथपथ अङ्गों को टुकड़े-टुकड़े काटा जाता है, अथवा पञ्चाग्नि की सिद्धि की जाती है, अथवा मृत्यु की सिद्धि की जाती है ॥७६॥ मुझे तुम्हारा अभिप्राय आसुर प्रतीत होता है, अतएव तुम ब्राह्मण तो नहीं ही हो। यदि तुम सत्य बोलोगे तो तुम्हे सिद्धि की प्राप्ति होगी और यदि झूठ बोलते हो तो तुम जीवित नहीं रहोगे ॥७७॥ अक्लिष्ट कर्म कर्ता श्रीराम की बातें सुनकर, नीचे शिर किए हुए ही उसने कहा ॥७८॥ हे श्रीराम आपका स्वागत है, आप वहुत समय बाद दर्शन दिए हैं। आप मेरे पिता स्वरूप हैं मैं आपका पुत्र स्वरूप हूँ ॥७९॥ अथवा ऐसी बात नहीं है, राजा तो सबों का पिता होता है। हे राजन्! आप पूजनीय हैं। मैं आपके राज्य में तप कर रहा हूँ ॥८०॥ हम जो कुछ भी करते हैं, उसका एक भाग ब्रह्माजी ने राजा का बनाया है। हे राम! मैं धन्य नहीं हूँ धन्य तो आप हैं॥८१॥ क्योंकि आपके राज्य में तपस्वीजन इस प्रकार से सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं। हे राधव! मेरी तपस्या से आप सिद्धि प्राप्त करें ॥८२॥ आपने यह जो पूछा है कि किस योनि में तुम तप की वृद्धि करते हो तो मैं शूद्र योनि में उत्पन्न हुआ हूँ और उग्र तपस्या कर रहा हूँ ॥८३॥ मैं अपने इसी शरीर से देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ। हे राजन्! मैं मिथ्या नहीं कह रहा हूँ, मैं देवलोक प्राप्त करना चाहता हूँ ॥८४॥ हे काकुत्स्थ मुझे आप शम्बूक नाम का शूद्र जानें। इसतरह से उसके कहते ही चमकते हुए खड्ग को ॥८५॥ म्यान से निकालकर श्रीराम ने उसके शिर

निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः । तस्मिन् शूद्रे हते देवाः सेन्द्राश्चाग्निपुरोगमाः ॥८६॥
साधुसाध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः । पुष्पवृष्टिश्च महती देवानां ससुगंधिनी ॥८७॥
आकाशद्विप्रमुक्तं तु राघवं सर्वतोकिरत् । सुप्रीताश्चाब्रुवन् देवा रामं वाक्यविदांवरम् ॥८८॥
सुरकार्यमिदं सौम्यकृतं ते रघुनदन । गृहाण च वरं राम यमिच्छसि महाव्रत ॥८९॥
त्वत्कृतेन हि शूद्रोऽयं सशरीरोभ्यगाद्दिवम् । देवानां भाषितं श्रुत्वा राघवः सुसमाहितः ॥९०॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सहस्राक्षं पुरंदरम् । यदि देवाः प्रसन्ना मे वरार्हो यदि वाप्यहम् ॥९१॥
कर्मणा यदि मे प्रीता द्विजपुत्रः स जीवतु । वरमेतद्धि भवतां कांक्षितं परमं हि मे ॥९२॥
ममापराधाद्बालोऽसौ ब्राह्मणस्यैक पुत्रकः । अप्राप्तकालः कालेन नीतो वैवस्वतक्षयम् ॥९३॥
तं जीवयत भद्रं वो नानृतीस्यामहं गुरोः । द्विजस्य संश्रुतोह्यर्थो जीवयिष्यामि ते सुतम् ॥९४॥
मदीयेनायुषा बालं पादेनार्द्धेन वा सुराः । जीवेदयं वरो मह्यं वरकोट्यधिको वृतः ॥९५॥
राघवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा विबुधसत्तमाः । प्रत्यूचुस्ते महात्मानं प्रीताः प्रीतिसमन्विताः ॥९६॥
निर्वृतो भव काकुत्स्थ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः । जीवितं प्राप्तवान्भूयः समेतश्चापि बंधुभिः ॥९७॥
यस्मिन् मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोऽयं विनिपातितः । तस्मिन् मुहूर्ते सहसा जीवेन समयुज्यत ॥९८॥
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते साधयामः परंतपः । अगस्त्यस्याश्रमपदे द्रष्टारः स्म महामुनिम् ॥९९॥
स तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनंदनः । आरुरोह विमानं तं पुष्पकं हेमभूषितम् ॥१००॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे शूद्रतापसवधो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥
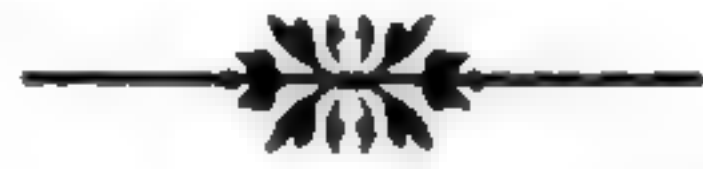
को काट दिया । उस शूद्र के मार दिए जाने पर इन्द्र तथा अग्नि आदि देवता ॥८६॥ बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहकर श्रीराम की बार-बार प्रशंसा किए । देवताओं ने श्रीरामचन्द्र पर सुगन्धित पुष्पों की आकाश से खूब वर्षा की। और प्रसन्न होकर देवताओं ने वाक्यज्ञों में श्रेष्ठ श्रीराम से कहा ॥८८॥ हे सौम्य रघुनन्दन ! आपने यह देवताओं का कार्य किया है । हे महाव्रत श्रीराम ! आप जो चाहें वरदान हमलोगों से माँग लें ॥८९॥ आपके कारण यह शूद्र सशरीर स्वर्ग नहीं जा सका । देवताओं की वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने ॥९०॥ हाथ जोड़कर इन्द्र से कहा यदि देवगण मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, और मैं वरदान प्राप्त करने के योग्य हूँ । यदि मेरे इस कर्म से देवता प्रसन्न हुए हैं तो ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो जाय । मैं यही अत्यन्त प्रिय वरदान आपलोगों से प्राप्त करना चाहता हूँ ॥९२॥ मेरे ही पाप के कारण ब्राह्मण का इकलौता पुत्र बिना समय के काल का ग्रास बन गया और यमलोक चला गया ॥९३॥ उसी को आपलोग जीवित कर दें । मैं मृषाभाषी न बनूँ । ब्राह्मण से मैंने कहा है कि मैं आपके पुत्र को जीवित करूँगा॥९४॥ मेरे ही चौथाई अथवा आधी आयु से हे देवताओं वह बालक जीवित हो जाय । यह वरदान मेरे लिए करोड़ों वरदानों से भी बड़ा बरदान है ॥९५॥ श्रीरामचन्द्रजी की वाणी को सुनकर देवताओं ने श्रीराम से प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक कहा ॥९६॥ हे काकुत्स्थ ! ब्राह्मण का इकलौता पुत्र जीवित होकर अपने बांधवों से मिल चुका है ॥९७॥ हे काकुत्स्थ जिस मुहूर्त में आपने इस शूद्र को मारा उसी मुहूर्त में वह बालक सहसा जीवित हो गया ॥९८॥ हे श्रीरामचन्द्र ! आपका कल्याण हो, हमलोग जा रहे हैं, हमलोग महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जाकर उनका दर्शन करने वाले हैं ॥९९॥ उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ठीक है, यह कहकर उस सुवर्णालङ्कृत विमान पर चढ गये ॥१००॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के शूद्रतापसजध नामक पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३५।।

छत्तीसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

ततो देवाः प्रयातास्ते विमानै र्बृहुभिस्तदा। रामोप्यनुजगामाशु कुंभयोनेस्तपोवनम्॥१॥
उक्तंभगवता तेन भूयोप्यागमनं क्रियाः। पूर्वमेव सभायां च यो मां द्रष्टुं समागतः॥२॥
तदहं देवतादेशात्तत्कार्यार्थे महामुनिम्। पश्यामि तं मुनिं गत्वा देवदानवपूजितम्॥३॥
उपदेशं च मे तुष्टः स्वयं दास्यति सत्तमः। दुःखी येन पुनर्मर्त्ये न भवामि कदाचन॥४॥
पिता दशरथो मह्यं कौसल्या जननी तथा। सूर्यवंशे समुत्पन्न स्तथाप्येवं सुदुःखितः॥५॥
राज्यकाले वने वासो भार्यया चानुजेन च। हरणं चापि भार्याया रावणेन कृतं मम॥६॥
असहायेन तु मया तीर्त्वा सागरमुत्तमम्। रुद्धां तु तां पुरीं सर्वां कृत्वा तस्य कुलक्षयम्॥७॥
दृष्टा सीता मया त्यक्ता देवानां तु पुरस्तदा। शुद्धांतां मां तथोचुस्ते मया सीता तथा गृहम्॥८॥
समानीता प्रीतिमता लोकवाक्याद्विसर्जिता। वने वसति सा देवी पुरे चाहं वसामि वै॥९॥
जातोहमुत्तमे वंशे उत्तमोहं धनुष्मताम्। उत्तमं दुःखमापन्नो हृदयं नैव भिद्यते॥१०॥
वज्रसारस्य सारेण धात्राहं निर्मितो ध्रुवम्। इदानीं ब्राह्मणादेशाद्भ्रमामि धरणीतले॥११॥
तपःस्थितस्तु शूद्रोऽसौ मया पापो निपातितः। देववाक्यात्तु मे भूयः प्राणो मे हृदि संस्थितः॥१२॥
पश्यामि तं मुनिं वंद्यं जगतोऽस्य हितेरतम्। दृष्टेन मे तथा दुःखं नाशमेष्यति सत्वरम्॥१३॥

श्रीरामचन्द्रजी का अगस्त्य आश्रम में जाना, रामागस्त्य संवाद, अक्षयराज की कथा, महर्षि अगस्त्य के द्वारा प्रदत्त आभरण को श्रीरामचन्द्रजी का लेना, श्वेतराज की कथा

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— उसके बाद सभी देवता अनेक विमानों से चले गये उनके जाने के वाद श्रीरामचन्द्र भी शीघ्र ही महर्षि अगस्त्य के तपोवन में गये ॥१॥ उन्होंने सोचा भगवान् अगस्त्य जब मुझे देखने के लिए अयोध्या में आये थे उस समय वे मेरी सभा में ही कहे थे कि तुम मेरे आश्रम में पुनः आना ॥२॥ मैं देवता के आदेश से देवताओं का कार्य करने के लिए यहाँ आया हूँ, अतएव देवों एवं दानवों से पूजित उन महामुनि का दर्शन कर लूँ ॥३॥ प्रसन्न होकर वे महर्षि मुझे उपदेश देंगे, जिसके कारण मैं पुनः दुःखी नहीं होऊँगा, क्योंकि मैं मनुष्य हूँ ॥४॥ मेरे पिता महाराज दशरथ हैं, मेरी माता कौसल्या हैं। मेरा जन्म सूर्यवंश में हुआ है फिर भी मैं इतना अधिक दुःखी हूँ ॥५॥ जब राज्य करने की बेला थी तो उस समय मुझे पत्नी तथा अनुज के साथ वन में रहना पड़ा और रावण ने मेरी पत्नी का अपहरण कर लिया ॥६॥ बिना किसी की सहायता के मैंने सागर पार करके उसकी नगरी को घेरकर उसके वंश का विनाश किया ॥७॥ जब सीता मेरे सामने आयी तो मैंने उसका परित्याग देवताओं के सामने कर दिया। उस समय सभी देवताओं ने मुझे कहा कि सीता शुद्ध है तव मैं सीता को अपने घर लाया॥८॥ उसके प्रति प्रेम युक्त होने पर भी संसार के कहने से मैंने उसका परित्याग कर दिया। वह देवी इस समय वन में निवास कर रही है, और मैं नगर में रहता हूँ ॥९॥ मेरा जन्म उत्तम वंश में हुआ है, धनुर्धारियों में मैं उत्तम हूँ। मैंने उत्तम दुःख भी प्राप्त किया फिर भी मेरा हृदय विदीर्ण नहीं होता है ॥१०॥ निश्चित रूप से ब्रह्माजी ने मेरा निर्माण वज्रसार के सार अंश से किया है। इस समय मैं ब्राह्मण के आदेश से धरणीतल पर भ्रमण कर रहा हूँ ॥११॥ यह शूद्र तपस्या करता था मैं पापी हूँ अतएव उसको मैंन मारा। फिर भी देवताओं के वाक्यानुसार मेरा प्राण मेरे हृदय

उदयेन सहस्रांशो र्हिमं यद्वद्विलीयते । तद्वन्मेदुःखसंप्राप्तिः सर्वथा नाशमेष्यति ॥१४॥
दृष्ट्वा च देवान् संप्राप्तानगस्त्यो भगवानृषिः। अर्घ्यमादाय सुप्रीतः सर्वांस्तानभ्यपूजयत् ॥१५॥
ते तु गृह्य ततःपूजां संभाष्य च महामुनिम् । जग्मुस्तेन तदा हृष्टा नाकपृष्टं सहानुगाः ॥१६॥
गतेषु तेषु काकुत्स्थः पुष्पकादवरुह्य च । अभिवादयितुं प्राप्तः सोगस्त्यमृषिमुत्तमम् ॥१७॥

राजोवाच

सुतो दशरथस्याहं भवंतमभिवादितुम् । आगतो वै मुनिश्रेष्ठ सौम्येनेक्षस्व चक्षुषा ॥१८॥
निर्धूतपापस्त्वां दृष्ट्वा भवामीह न संशयः । एतावदुक्त्वा समुनिमभिवाद्य पुनः पुनः ॥१९॥
कुशलं भृत्यवर्गस्य मृगाणां तनयस्य च । भगवद्दर्शनाकांक्षी शूद्रं हत्वा त्विहागतः ॥२०॥

अगस्त्य उवाच

स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ जगद्वंद्यसनातन। दर्शनात्तवकाकुत्स्थ पूतोऽहं मुनिभिः सह ॥२१॥
त्वत्कृते रघुशार्दूल गृहाणार्घं महाद्युते। स्वागतं नरशार्दूल दिष्ट्या प्राप्तोसि शत्रुहन् ॥२२॥
त्वं हि नित्यं बहुमतो गुणैर्बहुभिरुत्तमैः । अतस्त्वं पूजनीयो वै मम नित्यं हृदि स्थितः॥२३॥
सुरा हि कथयन्ति त्वां शूद्रघातिनमागतम् । ब्राह्मणस्य च धर्मेण त्वया वै जीवितः सुतः॥२४॥
उष्यतां चेह भगवन् सकाशे मम राघव। प्रभाते पुष्पकेणासि गंतायोध्यां महामते ॥२५॥
इदं चाभरणं सौम्य सुकृतं विश्वकर्मणा । दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२६॥
प्रतिगृह्णीष्व राजेन्द्र मत्प्रियं कुरु राघव । लब्धस्य हि पुनर्दाने सुमहत्फलमुच्यते ॥२७॥

में स्थित हैं ॥१२॥ जगत् का कल्याण करने वाले मुनि का दर्शन करने से मेरे दुःख का विनाश होगा ॥१३॥ जिस तरह सूर्योदय के होने से अंधकार का विनाश हो जाता है, उसी तरह से महर्षि का दर्शन करने से मेरे दुःख का नाश होगा ॥१४॥ आये हुए देवताओं को देखकर भगवान् अगस्त्य ऋषि ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उन सबों को अर्घ्य प्रदान करके उन सबों की पूजा की ॥१५॥ वे वहाँ पर महर्षि से पूजा प्राप्त करके तथा महर्षि से बातें करके, प्रसन्नता पूर्वक स्वर्ग लोक चले गये ॥१६॥ उन देवताओं के चले जाने पर ककुत्स्थ वंशावतंस श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमान से उतर कर ऋषियों में श्रेष्ठ महर्षि अगस्त्य के पास उन्हें प्रणाम करने के लिए गये ॥१७॥ **राजा श्रीराम ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं दशरथ का पुत्र हूँ आपको प्रणाम करने के लिए आया हूँ, मुझे प्रसन्नता पूर्वक देखें ॥१८॥ आपका दर्शन करके मैं निश्चित रूप से निष्पाप हो जाऊँगा, यह कहकर उन्होंने मुनि का बारम्बार अभिवादन किया॥१९॥ आपके शिष्यों का तथा मृगशावकों का कुशल एवं आपका दर्शन करने की आकांक्षा से शूद्र का वध करके मैं आया हूँ ॥२०॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा—** हे जगद्वंद्य रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र ! आपका स्वागत है । आपका दर्शन करके मैं मुनियों के साथ पवित्र हो गया । हे महामते ! आपके लिए यह अर्घ्य है आप इसे स्वीकार करें । हे शत्रुओं का विनाश करने वाले नरश्रेष्ठ ! मेरे सौभाग्य से आप पधारे हैं ॥२१-२२॥ आप सदा अनेक उत्तम गुणों से सम्पन्न होने के कारण सबों को अत्यन्त प्रिय हैं । यद्यपि आप मेरे हृदय में निवास करते हैं, फिर भी आप मेरे लिए पूजनीय हैं ॥२३॥ देवताओं ने मुझे बतलाया है कि शूद्र को मारने वाले आप आये हुए है आपने धर्म के द्वारा ब्राह्मण के पुत्र को जीवित कर दिया है ॥२४॥ हे राघव ! आज आप रात्रि में मेरे पास ही निवास कीजिये । हे महामते ! आप प्रातःकाल पुष्पक द्वारा अयोध्या जाइयेगा ॥२५॥ हे सौम्य ! अपने दिव्य शरीर से देदीप्यमान, इस देदीप्यमान दिव्य आभूषण को विश्वकर्मा ने अपने तेज से निर्माण किया था ॥२६॥ हे राघव ! मेरा कल्याण कीजिये, इसे आप स्वीकार

त्वं हि शक्तः परित्रातुं सेंद्रानपि सुरोत्तमान् । तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्प्रतीच्छस्व नरर्षभ ॥२८॥
अथोवाच महाबाहुरिक्ष्वाकूणां महारथः । कृतांजलिर्मुनिश्रेष्ठं स्वं च धर्ममनुस्मरन् ॥२९॥
प्रतिग्रहो वे भगवंस्तव मेऽत्र विगर्हितः । क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं विजानता ॥३०॥
ब्राह्मणेन तु यद्दत्तं तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि । सपुत्रो गृहवानस्मि समर्थोस्मि महामुने॥३१॥
आपदा च न चाक्रांतः कथं ग्राह्यः प्रतिग्रहः । भार्या मे सुचिरं नष्टा न चान्या मम विद्यते॥३२॥
केवलं दोषभागी च भवामीह न संशयः । कष्टां चैव दशां प्राप्य क्षत्रियोपि प्रतिग्रही ॥३३॥
कुर्वन्नदोषमाप्नोति मनुरेवात्र कारणम् । बृद्धौ च मतापितरौ साध्वीभार्या शिशुः सुतः॥३४॥
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् । नाहं प्रतीच्छे विप्रर्षे त्वया दत्तं प्रतिग्रहम् ॥३५॥
न च मे भवता कोपः कार्यो वै सुरपूजित ॥३६॥

अगस्त्य उवाच

न च प्रतिग्रहे दोषो गृहीते पार्थिवे नृप। भवान्वै तारणे शक्तस्त्रैलोक्यस्यापि राघव ॥३७॥
तारय ब्राह्मणं राम विशेषेण तपस्विनम् । तस्मात्प्रदास्य विधिवत्प्रतीच्छस्व नराधिप ॥३८॥

राम उवाच

क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं विजानता । ब्राह्मणेन तु यद् दत्तं तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥३९॥

अगस्त्य उवाच

आसीत्कृतयुगे राम ब्रह्मभूते पुरातने । अपार्थिवाः प्रजाः सर्वाः सुराणां च शतक्रतुः॥४०॥
ताः प्रजाःदेवदेवेशं राजार्थं समुपागमन्। सुराणां विद्यते राजा देवदेवः शतक्रतुः ॥४१॥

कीजिये । बतलाया गया है कि दान में प्राप्त वस्तु को पुनः दान कर देने से बहुत बड़ा फल होता है ॥२७॥ आप इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओं की भी रक्षा करने में समर्थ हैं, इसीलिए मैं इसे विधिपूर्वक आपको प्रदान करता हूँ, इसे आप स्वीकार करें ॥२८॥ इसके बाद अपने क्षात्रधर्म का स्मरण करते हुए, इक्ष्वाकुवंशीय महारथ महाबाहु श्रीरामजी ने कहा ॥२९॥ हे भगवन् ! आपसे दान लेना मेरे लिए निन्दित है । ज्ञानी क्षत्रिय किसी ब्राह्मण से दान कैसे ले सकता है ?॥३०॥ ब्राह्मण के द्वारा प्रदत्त किसी वस्तु को मैं कैसे ले सकता हूँ ? मैं पुत्रों वाला गृहस्थ हूँ । अतएव हे महामुने ! इसे आप ही बतलायें ॥३१॥ मेरे ऊपर कोई विपत्ति भी नहीं आयी है अतएव मैं दान कैसे ले लूँ ?। मेरी पत्नी दीर्घकाल से नष्ट हो गयी है, मेरी कोई दूसरी पत्नी भी नहीं है ॥३२॥ ऐसा करके मैं केवल पाप को ही करने वाला बनूँगा । विपत्ति में पड़ा हुआ क्षत्रिय भी दान ले सकता है ॥३३॥ ऐसा करके वह पाप का भागी नहीं होता है । यह मनु ने कहा है । वृद्ध माता-पिता, साध्वी पत्नी तथा छोटे बच्चे का भरण पोषण अकार्य (पाप) करके भी किया जा सकता है; यह मनु ने कहा है । अतएव हे महामुने ! आपके द्वारा दिए जाने वाले दान को लेने में समर्थ नहीं हूँ ॥३४-३५॥ हे सुरपूजित महर्षे ! आप मेरे ऊपर कोप नहीं करें ॥३६॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा**— हे राजन् ! राजाओं को दान लेने में कोई पाप नहीं है । हे राघव ! आप तो त्रैलोक्य का उद्धार करने में समर्थ हैं॥३७॥ हे श्रीराम ! आप इस तपस्वी ब्राह्मण का उद्धार करें । अतएव मैं आपको विधिपूर्वक प्रदान कर रहा हूँ और आप इसे स्वीकार करें । **श्रीरामचन्द्र ने कहा**— ज्ञानी क्षत्रिय ब्राह्मण से दान कैसे ले सकता है ? ब्राह्मण ने किसी क्षत्रिय को दान दिया हो उसे आप मुझे बतलायें ॥३८-३९॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा**— ब्रह्म स्वरूप प्राचीन सत्ययुग मे सारी प्रजाएँ राजा से रहित थीं । देवताओं के राजा इन्द्र थे ॥४०॥ वे सभी प्रजाएँ राजा को प्राप्त करने

श्रेयसेऽस्मासु लोकेश पार्थिवं कुरु सांप्रतम् । यस्मिन्पूजां प्रयुंजानाः पुरुषा भुंजते महीम् ॥४२॥
ततो ब्रह्मासुरश्रेष्ठो लोकपालान् सवासवान् । समाहूयाब्रवीत्सर्वांस्तेजो भागोऽत्र युज्यताम् ॥४३॥
ततो ददुर्लोकपालाश्चतुर्भागंस्वतेजसा । अक्षयश्च ततो ब्रह्मा यतो जातो क्षयो नृपः ॥४४॥
तं ब्रह्मा लोकपालानामंशं पुंसामयोजयत् । ततो नृपस्तदा तासां प्रजानां क्षेमपंडितः ॥४५॥
तत्रैंद्रेण तु भागेन सर्वानाज्ञापयेन्नृपः । वारुणेन च भागेन सर्वान्पुष्णाति देहिनः ॥४६॥
कौबेरेण तथांशेन त्वर्थान् दिशति पार्थिवः । यश्च याम्यो नृपो भागस्तेन शास्ति च वै प्रजाः ॥४७॥
तत्र चैंद्रेण भागेन नरेन्द्रोऽसि रघूत्तम । प्रतिगृह्णीष्वाभरणं तारणार्थे मम प्रभो ॥४८॥
ततो रामः प्रजग्राह मुनेर्हस्तान्महात्मनः । दिव्यमाभरण चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥४९॥
प्रतिगृह्य ततोऽगस्त्याद्राघवः परवीरहा । निरीक्ष्य सुचिरं कालं विचार्य च पुनः पुनः ॥५०॥
मौक्तिकानि विचित्राणि धात्रीफलसमानि च । जांबूनदनिबद्धानि वज्रविद्रुमनीलकैः ॥५१॥
पद्मरागैः सगोमेधै वैंडूर्यैः पुष्परागकैः । सुनिबद्धं सुविभक्तं सुकृतं विश्वकर्मणा ॥५२॥
दृष्ट्वा प्रीतिसमायुक्तो भूयश्चेदं व्यचिंतयत् । नेदृशानि च रत्नानि मया दृष्टानि कानिचित् ॥५३॥
उपशोभानि बद्धानि पृथ्वी मूल्यसमानि च । विभीषणस्य लंकायां न दृष्टनि मया पुरा ॥५४॥
इति सं चित्य मनसा राघवस्तमृषिं पुनः । आगमं तस्य दिव्यस्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥५५॥
अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्नप्राप्यं च महीक्षिताम् । कथं भगवता प्राप्तं कुतो वा केन निर्मितम् ॥५६॥
कुतूहलवशाच्चैव पृच्छामि त्वां महामते । करतले स्थिते रत्ने करमध्यं प्रकाशते ॥५७॥

के लिए ब्रह्माजी के पास गयीं और कहीं हे देवदेवेश देवताओं के राजा इन्द्र हैं ॥४१॥ हे देवेश ! हमलोगों का भी कल्याण करने के लिए आप राजा को प्रदान कीजिये । जिससे उसकी पूजा करके प्रजाएँ उसकी भूमि का उपभोग करें॥४२॥ उसके बाद देवताओ में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने इन्द्र इत्यादि लोकपालों को बुलाकर कहा । आपलोग अपने तेज का अंश प्रदान कीजिये ॥४३॥ उसके बाद लोकपालों ने अपने तेज का चतुर्थांश प्रदान किया वह तेज अक्षय हो गया। उससे अक्षय राजा हुए ॥४४॥ ब्रह्माजी ने लोकपालों के उस अंश को प्रजाओं को प्रदान कर दिया । उसी समय से राजा प्रजाओं का कल्याण करने में निपुण होता है ॥४५॥ उन चारो भागों में से राजा इन्द्र के भाग से प्रजाओं का प्रशासन करता है । वरुण के भाग से वह सबों का पोषण करता है ॥४६॥ कुबेर के अंश से राजा प्रजाओं को धन प्रदान करता है और यमराज के तेज के अंश से राजा प्रजाओं को दण्डित करता है ॥४७॥ राघव ! आप इन्द्र के तेज के भाग से राजा हैं । फलतः मुझको तारने के लिए आप इस आभरण को स्वीकार कीजिये ॥४८॥ उसके बाद श्रीराम ने मुनि के हाथ से दिव्य तथा सूर्य के समान देदीप्यमान आभरण को स्वीकार किया ॥४९॥ शत्रुओं का विनाश करने वाले श्रीराम उसे लेकर उस आभरण को देर तक देखते रहे । बार-बार विचार कर ॥५०॥ धात्री फल के समान् अद्भुत मोतियों को जो सोने से मढी गयी थीं उन हीरे, मूंगों तथा नीलम, पद्मराग, गोमेद, वैदूर्य मणि, तथा पुष्पराग मणि से अच्छी तरह से विश्वकर्मा द्वारा निर्मित आभूषण को ॥५१-५२॥ देखकर श्रीरामचन्द्र अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक पुनः महर्षि अगस्त्य से पूछे मैंने इस प्रकार का कोई भी रत्न नहीं देखा है ॥५३॥ उपशोभा से युक्त वने हुए, जो पृथिवी के मूल्य के समान मूल्यवान् हैं, पहले कभी नहीं देखा ॥५४॥ इस तरह से मन में विचार करके श्रीराम मुनि से फिर उसकी प्राप्ति का वृतान्त जानना चाहे ॥५५॥ उन्होंने कहा— हे ब्रह्मन् ! यह आभरण अत्यन्त अद्भुत है, यह किसी राजा को नहीं मिल सकता है । आपने इसे कहाँ से और कैसे प्राप्त किया ?

अधमं तद्विजानीयात्सर्वशास्त्रेषु गर्हितम् । दिशः प्रकाशयेद्यत्तन्मध्यमं मुनिसत्तम॥५८॥
ऊर्ध्वगं त्रिशिखं यत्स्यादुत्तमं तदुदाहृतम् । एतान्युत्तमजातीनि ऋषिभिः कीर्तितानि तु ॥५९॥
आश्चर्याणां बहूनां हि दिव्यानां भगवान्निधिः। एवं वदति काकुत्स्थे मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥६०॥

अगस्त्य उवाच

शृणु राम पुरावृत्तं पुरा त्रेतायुगे महत् । द्वापरे समनुप्राप्ते वने यद्दृष्टवानहम् ॥६१॥
आश्चर्य सुमहाबाहो निबोध रघुनंदन। पुरा त्रेतायुगे ह्यासीदरण्यं बहुविस्तरम्॥६२॥
समंताद्योजनशतं मृगव्याघ्रविवर्जितम्। तस्मिन्निष्पुरुषेऽरण्ये चिकीर्षुस्तप उत्तमम् ॥६३॥
अहमाक्रमितुं सौम्य तदरण्यमुपागतः । तस्यारण्यस्य मध्यं तु युक्तं मूलफलैः सदा॥६४॥
शाकै र्बहुविधाकारै र्नानारूपैः सुकाननैः । तस्यारण्यस्य मध्ये तु पंचयोजनमायतम् ॥६५॥
हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्। तत्राश्चर्यं मया दृष्टं सरः परमशोभितम् ॥६६॥
विसरिकच्छपाकीर्णं बकपंक्तिगणैर्युतम्। समीपे तस्य सरसस्तपस्तप्तुं गतः पुरा ॥६७॥
देशं पुण्यमुपेत्यैवं सर्वहिंसाविवर्जितम्। तत्राहमवसं रात्रिं नैदाघीं पुरुषर्षभ ॥६८॥
प्रभाते पुनरुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे । अथापश्यं शवमहमस्पृष्टजरसं क्वचित् ॥६९॥
तिष्ठंतं परया लक्ष्म्या सरसो नाति दूरतः । तदर्थं चिंतयानोऽहं मुहूर्तमिव राघव ॥७०॥
अस्य तीरे न वै प्राणी कोवाप्येष सुरर्षभः । मुनिर्वा पार्थिवो वापि क्व मुनिः पार्थिवोपि वा ॥७१॥
अथवा पार्थिवसुतस्तस्यैवं संभवः कृतः । अतीतेऽहनि रात्रौ वा प्रातर्वापि मृतो यदि ॥७२॥

इसे किसने बनाया है ?॥५६॥ हे महामते ! मैं कुतूहलवशात् ही यह आपसे पूछ रहा हूँ । इसको हथेली पर रखने पर हथेली को यह प्रकाशित करता है ॥५७॥ जो रत्न नीचे की ओर प्रकाशित हो उसे अधम रत्न जानना चाहिए । वह सभी शास्त्रों में निन्दित रत्न होता है । जो रत्न सभी दिशाओं को प्रकाशित करे वह मध्यम कोटि का होता है॥५८॥ हे मुनिश्रेष्ठ जो रत्न ऊपर की ओर तीन शिखाओं वाला हो वह उत्तम कोटि का कहा गया है । ये रत्न उत्तम जाति के है । यह ऋषियों के द्वारा वर्णित हैं ॥५९॥ ये आश्चर्यकारी दिव्य आभरण आपको कैसे मिले ? इसतरह से श्रीरामचन्द्रजी के पूछने पर महर्षि अगस्त्य ने कहा ॥६०॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा—** हे श्रीराम आप इसका इतिहास सुनें— बीते हुए त्रेतायुग के अन्त में द्वापर युग के आने पर मैंने वन में जिस आश्चर्य को देखा उसे हे महाबाहो आप सुनें । प्राचीनकाल में एक बहुत बड़ा वन था ॥६१-६२॥ वह चारो ओर से सौ योजन में फैला था उसमें मृग, व्याघ्र इत्यादि कोई भी जीव नहीं थे । उस पुरुष रहित वन में उत्तम तप करने की इच्छा से ॥६३॥ हे सौम्य ! मैं गया उस अरण्य के बीच में सर्वदा रहने वाले मूलों तथा फलों से युक्त ॥६४॥ अनेक प्रकार के शाकों तथा अनेक प्रकार के वनों से युक्त एक पाँच योजन विस्तृत ॥६५॥ हंसों, कारण्डवों तथा चक्रवाकों से सुशोभित अत्यन्त आश्चर्यमय सरोवर को मैंने देखा जो अत्यन्त सुन्दर था ॥६६॥ उसमें बड़े-बड़े कछुए थे । वहाँ बकों की पंक्ति सुशोभित होती थी । उसी सरोवर के पास मैं तपस्या करने के लिए गया ॥६७॥ इसतरह से सभी हिंसाओं से रहित उस पवित्र स्थान में आकर गर्मी के दिन में एक रात्रि को मैंने निवास किया ॥६८॥ प्रात:काल उठकर उस सरोवर पर मैं आया । वहाँ मैंने एक शव को देखा वह पूर्णरूप से जरा से रहित था ॥६९॥ अत्यन्त सुशोभित वह सरोवर के सन्निकट में ही पड़ा था । हे राघव ! मैं उसके विषय में थोड़ी देर तक विचार करता रहा ॥७०॥ इस सरोवर के तीर पर न तो कोई प्राणी है, यह कोई श्रेष्ठ देवता है क्या ? यहाँ कोई मुनि अथवा राजा भी नहीं है,

अवश्यं तु मया ज्ञेया सरसोस्य विनिष्क्रिया। यावदेवं स्थितश्चाहं चिंतयानो रघूत्तम ॥७३॥
अथापश्यं मुहूर्तात्तु दिव्यमद्भुतदर्शनम्। विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजवम् ॥७४॥
पुरस्तत्र सहस्त्रं तु विमानेप्सरसां नृप। गंधर्वाश्चैव तत्संख्या रमयंति वरं नरम् ॥७५॥
गायंति दिव्यगेयानि वादयंति तथापरे। अथापश्यं नरं तस्माद्विमानादवरोहितम् ॥७६॥
शव मांसं भक्षयन्तं च स्नात्वा रघुकुलोद्वह। ततो भुक्त्वा यथा कामं स मांसं बहुपीवरम् ॥७७॥
अवतीर्यसरः शीघ्रमारुरोह दिवं पुनः। तमहं देवसंकाशं श्रिया परमयान्वितम्॥७८॥
भो भो स्वर्गिन् महाभाग पृच्छामि त्वां कथंत्विदम्। जुगुप्सितस्तवाहारो गतिश्चेयं तवोत्तमा ॥७९॥
यदि गुह्यं न चैतत्ते कथयत्वद्य मे भवान्। कामतः श्रोतुमिच्छामि किमेतत्परमं वचः ॥८०॥
को भवान् वद संदेहमाहारश्च विगर्हितः। त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं क्व च वर्तसे ॥८१॥
कस्यायमैश्वरो भावः शवत्वेन विनिर्मितः। आहारं च कथं निद्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥८२॥
श्रुत्वा च भाषितं तत्र मम राम सतांवर। प्रांजलिः प्रत्युवाचेदं सस्वर्गी रघुनंदन ॥८३॥
शृणुष्वाद्य यथावृत्तं ममेदं सुखदुःखजम्। कामोहि दुरितक्रम्यः शृणु यत्पृच्छसे द्विज॥८४॥
पुरा वैदर्भको राज पिता मे हि महायशाः। वासुदेव इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु धार्मिकः ॥८५॥
तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन् द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत। अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान् सुरथो भवत् ॥८६॥
पितर्युपरते तस्मिन्पौरा मामभ्यषेचयन्। तत्राहं कारयन् राज्यं धर्मे चासं समाहितः ॥८७॥
एवं वर्षसहस्त्राणि बहूनि समुपाव्रजन्। मम राज्यं कारयतः परिपालयतः प्रजाः ॥८८॥

अतएव यह मुनि या राजा भी कैसे हो सकता है ?॥७१॥ अथवा यह कोई राजकुमार हो सकता है, किन्तु वह ऐसे मर कैसे सकता है ? यदि यह कल दिन में अथवा रात्रि में मरा होता अथवा प्रातःकाल मरा होता ॥७२॥ तो इसको मैं अवश्य देखा होता। हे रघूत्तम ! उसके एक मुहूर्त पश्चात् मैंने दिव्य तथा सुन्दर ऐसा एक विमान देखा जिसमें हंस लगे हुए थे। वह मन के समान तीव्र गती वाला विमान था ॥७४॥ हे राजन् ! उस विमान में हजारों अप्सराओं का गण था। उतनी ही संख्या में वहाँ गन्धर्व भी थे जो किसी श्रेष्ठ पुरुष का मनोरञ्जन कर रहे थे ॥७५॥ वे दिव्य गीत गा रहे थे तथा दिव्य वाद्य बजा रहे थे। उसके बाद मैंने देखा कि वह श्रेष्ठपुरुष उस विमान से उतरा ॥७६॥ वह स्नान करके उस शव के मांस को खा रहा था। वह उस खूब मोटे मांस को अपनी इच्छाभर खाकर ॥७७॥ शीघ्र ही सरोवर में स्नान करके स्वर्ग में चला गया। देवता के समान परमशोभा सम्पन्न उस पुरुष से मैने कहा ॥७८॥ ऐ स्वर्ग में रहने वाले ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि यह क्या बात है ? तुम्हारी गति तो उत्तम है, और तुम्हारा घृणित आहार है ॥७९॥ यदि यह कोई छिपाने वाली बात न हो तो मुझे इसका कारण बतलाओं। मैं अपनी इच्छानुसार सुनना चाहता हूँ। यह मेरी सत्य वाणी है ॥८०॥ आप कौन हैं। आपका यह निन्दित आहार है। हे सौम्य ! तुम इसे क्यों खाते हो तथा कहाँ रहते हो ?॥८१॥ यह किसका ऐश्वर प्रभाव शव रूप से हो गया है। तुम्हारा आहार निन्दित क्यों है ? मैं इसे पूर्णरूप से सुनना चाहता हूँ ॥८२॥ हे सज्जन श्रेष्ठ श्रीराम ! मेरी वाणी सुनकर वह स्वर्गी हाथ जोड़कर कहा ॥८३॥ आप मेरे सुख एवं दुःख जन्य इतिहास को सुनें। हे द्विज ! यह पाप के कारण है, आप इसे सुने॥८४॥ प्राचीन काल में मेरे पिता विदर्भ देश के महायशस्वी राजा वासुदेव थे। वे त्रैलोक्य विख्यात धार्मिक थे॥८५॥ उनकी दो स्त्रियों से दो पुत्र उत्पन्न हुए। मेरा नाम श्वेत हुआ और मेरे छोटे भाई का नाम सुरथ था ॥८६॥ पिताजी की मृत्यु हो जाने पर नागारिकों ने मुझे राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। मैं सावधानी पूर्वक धार्मिक राज्य कर

सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्वैराग्येण द्विजोत्तम । मरणं हृदये कृत्वा तपोवनमुपागमम् ॥८९॥
सोहं वनमिदं रम्यं भृशं पक्षिविवर्जितम् । प्रविष्टस्तप आस्थातुमस्यैव सरसोंतिके ॥९०॥
राज्येभिषिच्य सुरथं भ्रातरं तं नराधिपम् । इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं सुदारुणम् ॥९१॥
दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने । शुभं तु भवनं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनामयम् ॥९२॥
स्वस्थमपि मां ब्रह्मन्क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम । अबाधेताम् भृशं चाहमभवं व्यथितेंद्रियः ॥९३॥
ततस्त्रिभुवनश्रेष्ठमवोचं वै पितामहम् । भगवन् स्वर्गलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥९४॥
कस्येयं कर्मणः पक्तिः क्षुत्पिपासे यतो हि मे । आहारः कश्च मे देव ब्रूहि त्वं श्रीपितामह ॥९५॥
ततः पितामहः सम्यक् चिरं ध्यात्वा महामुने । मामुवाच ततो वाक्यं नास्तिभोज्यं स्वदेहजम् ॥९६॥
ऋते ते स्वानि मांसानि भक्षय त्वं तु नित्यशः । स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तप उत्तमम् ॥९७॥
नादत्तं जायते तात श्वेत पश्य महीतले । आग्रहाद्भिक्षमाणाय भिक्षापि प्राणिने पुरा ॥९८॥
नहि दत्ता गृहे भ्रांत्या मोहादतिथये तदा । तेन स्वर्गगतस्यापि क्षुत्पिपासे तवाधुना ॥९९॥
सत्वं प्रपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् । भक्षयस्व च राजेंद्र सा ते तृप्तिर्भविष्यति ॥१००॥
एवमुक्तस्ततो देवं ब्रह्माणमहमुक्तवान् । भक्षिते च स्वके देहे पुनरन्यन्न मे विभो ॥१०१॥
क्षुधानिवारणं नैव देहस्यास्यविनौदनम् । खादमि ह्यक्षयं देव प्रियं मे नहि जायते ॥१०२॥
ततोब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तव देहोऽक्षयः कृतः । दिनेदिने ते पुष्टात्मा शवः श्वेत भविष्यति ॥१०३॥
यावद्वर्षशतं पूर्णंस्वमांसं खाद भोनृप । यदागच्छति चागस्त्यः श्वेतारण्यं महातपाः ॥१०४॥

रहा था ॥८७॥ राज्य करते हुए और प्रजाओ का पालन करते हुए मेरे अनेक हजार वर्ष बीत गये ॥८८॥ वही मैं एक समय वैराग्य वशात् मृत्यु को ध्यान में रखकर तपोवन में चला गया ॥८९॥ मैं पक्षियों से रहित अत्यन्त मनोहर इस वन में इसी सरोवर के सन्निकट तपस्या करने के लिए आया ॥९०॥ मैंने राज्य पर अपने भाई सुरथ को अभिषिक्त करके उसे राजा बना दिया । इस सरोवर पर आकर अत्यन्त कठोर तप करने के लिए आया ॥९१॥ इस महावन में दश हजार वर्ष तक तपस्या करके, ब्रह्माजी के निर्दोष शुभलोक में चला गया ॥९२॥ हे द्विजोत्तम उस स्वर्ग में भी मुझे भूख तथा प्यास पीडित करने लगे और मैं दुःखी हो गया ॥९३॥ उसके बाद त्रिभुवन में श्रेष्ठ ब्रह्माजी से मैंने कहा हे भगवन् ! यह ब्रह्मलोक तो भूख तथा प्यास की बाधा से रहित है ॥९४॥ यह किस कर्म का परिणाम है कि मुझको भूख-प्यास सता रहे हैं ? हे पितामह ! आप बतलाइये कि मेरा आहार क्या है ?॥९५॥ उसके बाद दीर्घकाल तक ध्यान करके ब्रह्माजी ने मुझे कहा कि तुम्हारे देह से उत्पन्न कोई भी भोज्य पदार्थ नहीं है॥९६॥ अतएव तुम प्रतिदिन अपने शरीर के ही मांस को खाया करो । उत्तम तप करते समय तुमने अपने शरीर को पुष्ट किया है ॥९७॥ हे वत्स श्वेत ! जो वस्तु भूलोक में नही दान दी जाती है, वह नहीं मिलती । तुमने आग्रहवशात् भिक्षा माँगने वाले प्राणी को भिक्षा भी नहीं दिया है । तुमने किसी अतिथि को भ्रमवशात् भी भोजन नहीं दिया । इसीलिए स्वर्ग में आने पर भी तुमको भूख-प्यास सताते हैं ॥९८-९९॥ अतएव तुम पुष्ट बने हुए अपने शरीर को ही खाया करो । उसी से तुम्हें तृप्ति हो जाया करेगी ॥१००॥ इस प्रकार से मैंने ब्रह्माजी से कहा हे विभो! अपना शरीर खा लेने पर मेरा दूसरा कोई भोज्य नहीं रहेगा ॥१०१॥ ओदन के बिना इस देह से मेरे भूख की निवृत्ति नहीं हो सकती है । हे देव ! अक्षय शरीर को खाना मुझको प्रिय नहीं है ॥१०२॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारे शरीर को मैंने अक्षय बना दिया है । हे श्वेत तुम्हारा शव प्रतिदिन पुष्ट हो जाता रहेगा ॥१०३॥ हे राजन् !

भगवानति दुर्धर्षस्तदा कृच्छ्राद्विमोक्ष्यसे। सहि तारयितुं शक्तः सेंद्रानपि सुरासुरान् ॥१०५॥
आहारं कुत्सितं चेमं राजर्षे किं पुनस्तव। सुरकार्यं महत्तेन सुकृतं तु महात्मना ॥१०६॥
उदधिं निर्जलं कृत्वा दानवाश्च निपातिताः । विंध्यश्चापिविद्वेषाद्वर्धमानो निवारितः ॥१०७॥
लंबमानामही चैषा गुरुत्वेनाधिवासिता । दक्षिणादिग्दिवंयाता त्रैलाक्यं विषमस्थितम् ॥१०८॥
मया गत्वा सुरैः सार्द्धं प्रेषितो दक्षिणां दिशम्। समां कुरुमहाभाग गुरुत्वेन जगत्समम् ॥१०९॥
एवं च तेन मुनिना स्थित्वासर्वा धरा समा । कृता राजेंद्र मुनिना एवमद्यापि दृश्यते ॥११०॥
सोहं भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य भाषितम्। भुंजे च कुत्सिताहारं स्वशरीरमनुत्तमम् ॥१११॥
पूर्णं वर्षशतं चाद्य भोजनं कुत्सितं च मे । क्षयं नाभ्येति तद्विप्र तृप्तिश्चापि ममोत्तमा ॥११२॥
तं मुनिं कृच्छ्रसन्तप्तश्चिंतयामि दिवानिशम्। कदा वै दर्शनं मह्यं स मुनिर्दास्यते वने ॥११३॥
एवं मे चिंतयानस्य गतं वर्षशतन्त्विह। सोगस्त्यो हि गतिर्ब्रह्मन्मुनिर्मे भविता ध्रुवम्॥११४॥
न गतिर्भविता मह्यं कुम्भयोनिमृतेद्विजम्। श्रुत्वेत्थं भाषितं राम दृष्ट्वाहारं च कुत्सितम्॥११५॥
कृपया परया युक्तस्तं नृपं स्वर्गगामिनम् । करोम्यहं सुधाभोज्यं नाशयामि च कुत्सितम्॥११६॥
चिन्तयन्नित्यवोचं तमगस्त्यः किं करिष्यति। अहमेतत्कुत्सितं ते नाशयामि महामते॥११७॥
ईप्सितं प्रार्थयस्वास्मान्मनः प्रीतिकरं परम्। स स्वर्गी मां ततः प्राह कथं ब्रह्मवचोन्यथा॥११८॥

सौ वर्षों तक तुम अपने शरीर को खाओ उस समय महातपस्वी अगस्त्य श्वेतारण्य में आयेंगे ॥१०४॥ भगवान् अगस्त्य दुर्धर्ष हैं, उन्हीं की कृपा से तुम्हे इस कष्ट से मुक्ति मिलेगी। वे समस्त इन्द्रादि देवताओं तथा असुरों का उद्धार करने में समर्थ हैं ॥१०५॥ उन महात्मा ने देवताओं के बड़े-बड़े कार्यो को किया है। ऐसी स्थिति में तुम्हारे इस निन्दित आहार की कौन सी बात है ॥१०६॥ उन्होंने सागर को निर्जल बनाकर दानवों का विनाश किया, जिस समय सूर्य के विरोध के कारण उनका मार्ग रोकने के लिए विन्ध्याचल पर्वत दिन-रात बढ रहा था तो उन्होंने विन्ध्याचल को बढने से रोक दिया ॥१०७॥ जब पृथिवी लम्बा होती हुयी दक्षिण दिशा में आकाश को छूने लगी, उस समय त्रैलोक्य की विषम स्थिति हो गयी ॥१०८॥ उस समय देवताओं के साथ जाकर मैंने उन महर्षि को दक्षिण दिशा में भेजा। मैंने कहा कि हे महाभाग ! आप अपने गुरुत्व (भारीपन) के द्वारा पृथिवी को सम बना दें ॥१०९॥ इसतरह से मुनि के दक्षिण मे रह जाने से पृथिवी समतल हो गयी। हे राजेन्द्र ! उन्हीं मुनि के द्वारा पृथिवी सम बना दी गयी और उसी तरह की आज भी दिखायी देती है ॥११०॥ इस तरह देवाराध्य ब्रह्माजी की बातों को सुनकर अपने इस अद्भुत शरीर रूपी निन्दित आहार का भोग करता हूँ ॥१११॥ आज इस निन्दित आहार को करते हुए सौ वर्ष बीत गये, फिर भी मेरे इस शरीर का क्षय नहीं होता है, और इसी से मेरी तृप्ति होती है ॥११२॥ विपत्ति से व्याकुल मैं रात-दिन उन महर्षि अगस्त्य का चिन्तन दिन रात करता हूँ। न जाने कब वे मुनि मुझे इस वन में दर्शन देंगे ॥११३॥ इस तरह से सोचते हुए मेरे सैकड़ों वर्ष बीत गये हैं। निश्चित रूप से आप मेरे गति स्वरूप अगस्त्य महर्षि ही हैं ॥११४॥ महर्षि कुम्भयोनि से भिन्न कोई दूसरा मेरा सहारा नहीं है। हे राम ! राजा की उस वाणी को सुनकर और उनके निन्दित आहार को देखकर ॥११५॥ उस स्वर्ग जाने वाले राजा पर अत्यन्त करुणाक्रान्त होकर मैंने सोचा कि इसे अमृतभोजी बनाकर इसके इस निन्दित भोजन को विनष्ट कर दे रहा हूँ॥११६॥ मैंने राजा से कहा अगस्त्य क्या करेंगे ? हे महामते ! मैं तुम्हारे निन्दित आहार को नष्ट कर देता हूँ॥११७॥ जो तुम्हारे मन को अत्यन्त प्रिय लगे उसे तुम मुझसे माँगो उस स्वर्गी ने मुझसे कहा ब्रह्माजी की वाणी

कर्तुं मुने मया शक्यं नचान्यस्तारयिष्यति । ऋते वै कुंभयोनिं तं मैत्रावरुणसंभवम् ॥११९॥
अपृष्टोपि मया ब्रह्मन्नेवमूचे पितामहः । एवं ब्रुवाणं तं श्वेतमुक्तवानहमस्मि सः ॥१२०॥
आगतस्तव भाग्येन दृष्टोहं नात्र संशयः । ततः स्वर्गी स मां ज्ञात्वा दंडवत्पतितो भुवि॥१२१॥
तमुत्थाप्य ततो रामाब्रवंकिन्ते करोम्यहम् ।

राजोवाच

आहारात्कुत्सितादब्रह्मंस्तारयस्वाद्य दुष्कृतात् ॥१२२॥
येन लोकोऽक्षयः स्वर्गो भवितात्वत्कृते न मे । ततः प्रतिग्रहो दत्तो जगद्वंद्य नृपेण हि ॥१२३॥
भवान्मामनुगृह्णातु प्रतीच्छस्व प्रतिग्रहम् । इदमाभरणं सौम्य ताराणार्थं द्विजोत्तम ॥१२४॥
ब्रह्मर्षे प्रतिगृह्णीष्व प्रसादं कर्तुमर्हसि । इहगाश्च सुवर्णं च धनं वस्त्रसमन्वितम् ॥१२५॥
भक्ष्यं भोज्यं च विप्रर्षे ददाम्याभरणं त्वहम् । सर्वकामप्रदं तुभ्यं सर्वान् भोगांश्च ते द्विज ॥१२६॥
तारणे तु भवान्मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हति। तस्याहंस्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् ॥१२७॥
कृतामतिस्तारणाय नलोभाद्रघुनंदन । गृहीते भूषणे राम ममहस्तगते तदा ॥१२८॥
मानुषः पौर्विकोदेहस्तदानष्टोस्य भूपते । प्रणष्टे तु शरीरे च राजर्षिः परया मुदा ॥१२९॥
मयोक्तोऽसौ विमानेन जगाम त्रिदिवं पुनः । तेन मे शक्रतुल्येन दत्तमाभरणं शुभम्॥१३०॥
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतकर्मणा । श्वेतो वैदर्भको राजा तदाभून्नतकल्मषः ॥१३१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे रामागस्त्यसंवादो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अन्यथा (मिथ्या) ॥११८॥ करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । मेरा उद्धार कुम्भयोनि तथा मित्रावरुण महर्षि अगस्त्य को छोड़कर दूसरा कोई नहीं कर सकता है ॥११९॥ हे ब्रह्मन् ! बिना पूछे भी ब्रह्माजी ने मुझे ऐसा बतलाया है । इसतरह से श्वेत के कहने पर मैंने कहा मैं ही वह अगस्त्य हूँ ॥१२०॥ तुम्हारे भाग्यवशात् मैं यहाँ आया हूँ और तुमने मुझे देखा है । उसके बाद वह स्वर्गी मुझे जानकर पृथिवी पर दण्ड के समान गिर पड़ा ॥१२१॥ उसके बाद उसे उठाकर मैंने पूछा तुम्हारा कौन सा उपकार करूँ । **राजा ने कहा—** इस पाप जन्य निन्दित आहार से आप मेरा उद्धार करे ॥१२२॥ जिसके द्वारा वह स्वर्गी अक्षय स्वर्गलोक को प्राप्त कर सके, उसके लिए उस राजा ने मुझे यह दान दिया ॥१२३॥ और कहा आप मुझे अनुगृहीत करें और इस प्रतिग्रह को स्वीकार करें । हे सौम्य ! हे द्विजोत्तम! मुझे तारने के लिए इस आभरण को हे ब्रह्मर्षे ! स्वीकार करें । मेरे ऊपर कृपा करें । यहाँ पर मैं गौ, सुवर्ण, धन, वस्त्र से युक्त ॥१२४॥ हे विप्रर्षे ! मैं भक्ष्य भोज्य तथा अभारण दे रहा हूँ । हे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले द्विज आपको मैं भक्ष्य एवं भोगों को दे रहा हूँ ॥१२५-१२६॥ आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरा उद्धार करें । उस स्वर्गी के दुःखपूर्ण वाक्य को सुनकर ॥१२७॥ लोभ के कारण नहीं अपितु उसका उद्धार करने के लिए, उस आभषूण को लेने का मैंने मन बनाया । इसतरह ये आभूषण मुझे मिले ॥१२८॥ हे राजन् ! उसी समय उसका पहले का मनुष्य शरीर विनष्ट हो गया उस शरीर के विनष्ट हो जाने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर वह राजर्षि ॥१२९॥ मुझसे आज्ञा लेकर स्वर्ग चला गया । उस इन्द्र तुल्य स्वर्गी ने मुझे इस आभरण को दिया ॥१३०॥ उस अद्भुत कर्म करने वाले राजा ने मुझे इन आभरणों को दिया और वह श्वेत नामक विदर्भ देश का राजा निष्पाप हो गया ॥१३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के श्रीरामागस्त्यसंवाद नामक छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३६।।

सैंतीसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

तदद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वा च रघुनंदनः । गौरवाद्विस्मयाच्चपि भूयः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥१॥

राम उवाच

भगवंस्तद्वनं घोरं यत्रासौ तप्तवांस्तपः । श्वेतो वैदर्भको राजा तदद्भुतमभूत्कथम् ॥२॥
विषमं तद्वनं राजा शून्यं मृगविवर्जितम् । प्रविष्ट तप आस्थातुं कथं वद महामुने ॥३॥
समंताद्योजनशतं निर्मनुष्यमभूत्कथम् । भवान्कथं प्रविष्टस्तद्येन कार्येण तद्वद ॥४॥

अगस्त्य उवाच

पुरा कृतयुगे राजा मनुर्दण्डडधरः प्रभुः । तस्य पुत्रोथनाम्नासीदिक्ष्वाकुरमितद्युतिः ॥५॥
तं पुत्रं पूर्वजं राज्ये निक्षिप्य भुवि संमतम् । पृथिव्यां राजवंशानां भव राजेत्युवाचह ॥६॥
तथेति च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव । ततः परम संहृष्टः पुनस्तं प्रत्यभाषत॥७॥
प्रीतोस्मि परमोदारकर्मणा ते न संशयः । दण्डेन च प्रजारक्ष न च दंडमकारणम् ॥८॥
अपराधिषु यो दंडः पात्यते मानवैरिह। स दंडो विधिवन्मुक्तः स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥९॥
तस्माद्दण्डे महाबाहो यत्नवान् भवपुत्रक । धर्मस्ते परमो लोके कृत एवं भविष्यति॥१०॥
इति तं बहुसंदिश्य मनुः पुत्रं समाधिना। जगामत्रिदिवं हृष्टो ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥११॥

दण्डकारण्य की उत्पत्ति और राजा दण्ड की कथा, गृध्र एवं उल्लू के परस्पर में गृह के विषय में विवाद होने पर श्रीराम द्वारा निर्णय; गृध्र के पूर्वजन्म की कथा, श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा राजसूय यज्ञ का विचार होने पर भरतजी द्वारा सयौक्तिक उसका निषेध, कान्यकुब्ज में श्रीराम द्वारा वामन की स्थापना की प्रतिज्ञा

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— उस अत्यन्त अद्भुत वाक्य के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी गौरव तथा विस्मय वशात् पुनः पूछना प्रारम्भ किए ॥१॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे भगवन् ! वह घोर वन जहाँ पर राजा श्वेत ने तपस्या की थी, अद्भुत के समान क्यों हो गया ?॥२॥ हे महामुने ! आप यह बतलाएँ कि राजा श्वेत उस विषम तथा शृगाल आदि से रहित वन में तपस्या करने के लिए क्यों गये ॥३॥ चारो ओर से सौ योजन विस्तृत वह वन मनुष्यों से रहित क्यों हो गया और आप उस वन में किस कार्य के लिए गये ? इसे हमें बतलायें ॥४॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा**— पहले सत्ययुग में मनु नामक एक राजा हुए । उनके पुत्र इक्ष्वाकु निस्सीम कान्ति सम्पन्न राजा हुए यह सुना जाता है ॥५॥ राजा ने उस अपने इक्ष्वाकु नामक पुत्र को अपने पूर्वजों के राज्य पर नियुक्त करके कहा कि पृथिवी के समस्त राजवंशों के तुम राजा होओ ॥६॥ पुत्र ने भी अपने पिता के समक्ष उसी तरह करने की प्रतिज्ञा की । उसके बाद अत्यन्त प्रसन्न होकर मनु ने कहा ॥७॥ **मनु ने कहा**— मैं तुम्हारे इस कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है । तुम दण्ड के द्वारा प्रजाओं की रक्षा करो, किन्तु दण्ड को अकारण नहीं होना चाहिए ॥८॥ जो अपराधियों को मनुष्यों द्वारा दण्ड दिया जाता है, वह दण्ड विधिपूर्वक होता है, और उससे दण्ड देने वाला राजा मुक्त होकर स्वर्ग जाता है ॥९॥ इसलिए हे महाबाहो ! दण्ड के विषय में तुम्हे सावधान होना चाहिए । ऐसा करने से संसार में तुम महान् धर्म को प्राप्त करोगे ॥१०॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा**— इसतरह से अनेक प्रकार से पुत्र को उपदेश देकर मनु प्रसन्नता पूर्वक ब्रह्मलोक में चले गये ॥११॥ इसके बाद मैं कैसे पुत्रों को उत्पन्न करूँगा ? इस

जनयिष्ये कथं पुत्रानिति चिंता परोभवत्। कर्मभिर्बहुभिस्तैस्तैस्ससुतैस्संयुतो भवत् ॥१२॥
तोषयामासपुत्रैस्स पितृन् देवसुतोपमैः । सर्वेषामुत्तमस्तेषां कनीयान् रघुनंदन ॥१३॥
शूरश्च कृतविद्यश्च गुरुश्चजनपूजया । नामतस्याथदंडेति पिता चक्रे सबुद्धिमान् ॥१४॥
भविष्यद्दण्डपतनं शरीरे तस्य वीक्ष्य वै । संपश्यमानस्तं दोषं घोरं पुत्रस्य राघव ॥१५॥
सविंध्यनीलयोर्मध्ये राज्यमस्य ददौ प्रभुः । सदंडस्तत्रराजा भूद्रम्ये पर्वतमूर्द्धनि ॥१६॥
पुरं चाप्रतिमं तेन निवेशाय तथाकृतम्। नामास्य पुरस्याथ मधुमत्तमिति स्वयम् ॥१७॥
तथादेशेन संपन्नः शूरो वासमथाकरोत्। एवं राजा स तद्राज्यं चकार स पुरोहितः ॥१८॥
प्रहृष्ट सुप्रजाकीर्णं देवराजो यथादिवि । ततः स दंडः काकुत्स्थ बहुवर्षगणायुतम् ॥१९॥
अकारयत्तुधर्मात्मा राज्यं निहतकंटकम् । अथ काले तु कस्मिंश्चिद्राजा भार्गवमाश्रमम् ॥२०॥
रमणीयमुपाक्रमच्चैत्रमासे मनोरमे । तत्र भार्गवकन्यांतु रूपेणाप्रतिमां भुवि ॥२१॥
विचरंतीं बनोद्देशे दंडोपश्यदनुत्तमाम् । उत्तुंगपीवरी श्यामा चंद्राभवदनां शुभाम् ॥२२॥
सुनासां चारुसर्वांगीं पीनोन्नतपयोधराम्। मध्ये क्षामां च विस्तीर्णां दृष्ट्वा तां कुरुते मुदम् ॥२३॥
एकवस्त्रां वने चैकां प्रथमे यौवनेस्थिताम् । स तां दृष्ट्वा त्वधर्मेण अनंगशरपीडितः ॥२४॥
अभिगम्य सुविश्रांतां कन्यां वचनमब्रवीत्। कुतस्त्वमसि सुश्रोणि कस्य चासि सुशोभने ॥२५॥
पीडितोहमनंगेन पृच्छामि त्वां सुशोभने। त्वया मेऽपहृतं चित्तं दर्शनादेव सुंदरि ॥२६॥
इदं ते वदनं रम्यं मुनीनां चित्तहारकम् । यद्यहं न लभे भोक्तुं मृतं मामवधारय ॥२७॥

तरह से इक्ष्वाकु सोचने लगे और वे विविध प्रकार के कर्मों के द्वारा अनेक पुत्रों वाले हो गये ॥१२॥ उन्होंने देव पुत्रों के समान पुत्रों के द्वारा पितरों को सन्तुष्ट किया। हे रघुनंदन उन सभी पुत्रों में जो सबसे छोटा पुत्र था वह सबों से योग्य था ॥१३॥ वह शूरवीर, लब्धविद्य तथा गुरुजनों की पूजा करने वाला था। उसका नाम बुद्धिमान् पिता ने दण्ड रखा ॥१४॥ भविष्यत् काल में उसके शरीर पर दण्डपात होगा इस बात को जानकर उस पुत्र के भयङ्कर दोष को देखते हुए पिता ने उस पुत्र को विन्ध्य तथा नील पर्वत के बीच में राज्य प्रदान किया। वह दण्ड उस मनोहर पर्वत के ऊपर राजा हुआ ॥१५-१६॥ उसने अपने रहने के लिए अप्रतिम नगर बसाया और उसनगर का नाम मधुमत्त रखा ॥१७॥ उस प्रकार के देश वाला वह शूरवीर राजा, वहाँ पर निवास करता था। इस प्रकार से वह राजा अपने पुरोहित के साथ राज्य करता था ॥१८॥ सुन्दर प्रजाओं से युक्त वह उसी तरह राज्य करता था जिस तरह देवराज स्वर्गलोक का राज्य करते हैं। हे काकुत्स्थ ! वह अनेक अयुत वर्षों तक अकण्टक राज्य किया। एक बार वह राजा शुक्राचार्य के आश्रम में गया ॥१९-२०॥ उस समय मनोहर चैत्र का महीना प्रारम्भ हुआ था। वहाँ पर उसने भूलोक सुन्दरी शुक्राचार्य की पुत्री को देखा ॥२१॥ वह वन में विचरण कर रही थी। उस सुन्दरी को दण्ड ने देखा। उन्नत पीवरी उस युवती का मुख चन्द्रमा के समान आह्लादक था ॥२२॥ उसकी नासिका उठी हुयी थी, उसके सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर थे, उसके विशाल उठे हुए स्तन थे। उसकी कमर पतली थी और वह विस्तीर्ण शरीर वाली थी, देखने मात्र से वह आनन्द उत्पन्न कर देती थी ॥२३॥ उसकी नवीन जवानी थी। उस समय वह रजस्वला थी। उसको देखकर राजा अधर्म पूर्वक काम के बाणों से पीडित हो गया ॥२४॥ वह विश्राम करती हुयी उस कन्या के पास जाकर कहा हे सुन्दरि ! तुम कहाँ से आयी हो, तुम किसकी पत्नी हो ?॥२५॥ मैं कामपीडित हूँ हे सुन्दरि ! मैं पूछता हूँ। हे सुन्दिर ! देखने मात्र से तुमने मेरे चित्त का हरण कर लिया है ॥२६॥ तुम्हारा यह मुखड़ा मुनियों के

त्वया हृता मम प्राणा मां जीवय सुलोचने । दासोस्मि ते वरारोहे भक्तं मां भज शोभने ॥२८॥
तस्यैवं तु ब्रुवाणस्य मदोन्मत्तस्य कामिनः । भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सविनयं नृपम् ॥२९॥
भार्गवस्य सुतां विद्धि शुक्रस्याक्लिष्टकर्मणः। अरजां नाम राजेंद्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनः ॥३०॥
शुक्रः पिता मे राजेंद्र त्वं च शिष्यो महात्मनः। धर्मतो भगिनी चाहं भवामि नृपनंदन ॥३१॥
एवंविधं वचो वक्तुं नत्वमर्हसि पार्थिव। अन्येभ्योपि सुदुष्टेभ्यो रक्ष्या चाहं सदा त्वया॥३२॥
क्रोधनो मे पिता रौद्रो भस्मत्वं त्वां समानयेत्। अथवा राजधर्मेण संबंधं कुरुषे बलात् ॥३३॥
पितरं याचयस्व त्वं धर्मदृष्टेन कर्मणा। वरयस्व नृपश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् ॥३४॥
अन्यथा विपुलं दुःखं तव घोरं भवेद्ध्रुवम् । क्रुद्धो हि मे पिता सर्वं त्रैलोक्यमभिनिर्दहेत् ॥३५॥
ततोऽशुभं महाघोरं श्रुत्वा दंडःसुदारुणम्। प्रत्युवाच मदोन्मत्तः शिरसाभिनतः पुनः ॥३६॥
प्रसादं कुरु सुश्रोणि कामोन्मत्तस्य कामिनि। त्वया रुद्धा मम प्राणा विशीर्यंति शुभानने ॥३७॥
त्वां प्राप्य वैरं मेऽत्रास्तु वधो वापि महत्तरः । भक्तं भजस्व मां भीरु त्वयि भक्तिर्हि मे परा ॥३८॥
एवमुक्त्वा तु तां कन्यां बलात्संगृह्य बाहुना । अन्येन राज्ञा हस्तेन विविस्त्रा सा तथा कृता ॥३९॥
अंगमंगे समाश्लेष्य मुखे चैव मुखं कृतम्। विस्फुरंतीं यथाकामं मैथुनायोपचक्रमे ॥४०॥
तमनर्थं महाघोरं दंडः कृत्वा सुदारुणम्। नगरं स्वं जगामाशु मदोन्मत्त इव द्विपः ॥४१॥
भार्गवी रुदती दीना आश्रमस्याविदूरतः। प्रत्यपालयदुद्विग्ना पितरं देवसम्मितम्॥४२॥
समुहूर्तादुपस्पृश्य देवर्षिरमितद्युतिः। स्वमाश्रमं शिष्यवृतं क्षुधार्तः सन्यवर्तत ॥४३॥

भी चित्त का अकर्षण करने वाला है, यदि मैं तुमको भोग करने के लिए नहीं प्राप्त कर सकूँ ता मैं मर जाऊँगा॥२७॥ हे सुलोचने ! तुमने मेरे प्राणों को हर लिया है, मुझे जिला दो । हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूँ । मैं तुम्हारा भक्त हूँ, तुम मुझे अपना बना लो ॥२८॥ इसतरह से बोलने वाले मदोन्मत्त बने हुए कामी राजा ने भार्गवी ने नम्रता पूर्वक कहा ॥२९॥ मैं भृगुवंशीय शुक्राचार्य की पुत्री हूँ । मैं आपके आचार्य की अरजा नाम की ज्येष्ठ पुत्री हूँ मेरे पिता आश्रमवासी हैं ॥३०॥ मेरे पिता शुक्राचार्य हैं, तुम उनके शिष्य हो । हे नृपश्रेष्ठ ! धर्मानुसार मैं आपकी बहन लगती हूँ ॥३१॥ अतएव तुम इसतरह की बातें मुझसे नहीं कर सकते हो । तुम्हें तो दूसरे दुष्टों से भी मेरी रक्षा करनी चाहिए ॥३२॥ मेरे पिता क्रोधी हैं, वे तुम्हें भस्म कर सकते हैं । यदि तुम राजधर्मानुसार बलपूर्वक सम्बन्ध करना ही चाहते हो तो ॥३३॥ मेरे पिता से तुम्हे याचना करनी चाहिए । हे राजश्रेष्ठ आप मेरे महाद्युति पिता का वरण करें ॥३४॥ यदि ऐसा नहीं करते हो तो तुम्हें अत्यधिक भयङ्कर कष्ट भोगना पड़ेगा । यदि मेरे पिता क्रुद्ध हो जायँ तो वे त्रैलोक्य को भस्म कर सकते हैं ॥३५॥ उसके बाद अत्यन्त भयङ्कर अशुभ का श्रवण करके राजा दण्ड शिर झुकाये हुए पुनः कहा ॥३६॥ हे कामिनि ! हे सुश्रोणि ! मेरे ऊपर कृपा करो मैं कामोन्मत्त हो गया हूँ । तुम्हारे द्वारा रोके गये मेरे प्राण निकल जाना चाहते हैं ॥३७॥ तुमको प्राप्त करके यहाँ मेरा वैर हो जाय अथवा मेरा वध हो जाय कोई बात नहीं है । मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मुझे तुम अपना लो, हे भीरु ! तुममें मेरी अत्यन्त भक्ति है॥३८॥ इसतरह से कहकर राजा ने उस कन्या के एक हाथ को पकड़ लिया, और दूसरे हाथ से उसे निर्वस्त्र कर दिया॥३९॥ उसने अपने अङ्ग से उसके अङ्गों को संश्लिष्ट करके उसके मुख को चूमने लगा । वह कन्या छटपटा रही थी किन्तु वह अपनी इच्छानुसार मैथुन करना प्रारम्भ कर दिया ॥४०॥ वह दण्ड अत्यन्त भयङ्कर अनर्थ करके मदोन्मत हाथी के समान अपने नगर में चला गया ॥४१॥ दीन भार्गवी रोती हुयी आश्रम के सन्निकट ही देवतुल्य अपने पिता के

सोपश्यदरजां दीनां रजसा समभिप्लुताम् । चंद्रस्य घनसंयुक्तां ज्योत्स्नामिव पराजिताम् ॥४४॥
तस्य रोषः समभवत् क्षुधार्तस्य महात्मनः । निर्दहन्निवलोकांस्त्रींस्तान् शिष्यान्समुवाच ह ॥४५॥
पश्यध्वं विपरीतस्य दंडस्यादीर्घदर्शिनः । विपत्तिं घोरसंकाशां दीप्तामग्निशिखामिव ॥४६॥
यन्नाशं दुर्गतिं प्राप्तस्सानुगश्च न संशयः । यस्तु दीप्तहताशास्य अर्चिः संस्पृष्टवानिह ॥४७॥
यस्मात्सकृतवान्पापमीदृशं घोरसंमितम् । तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः पांसुवर्षमनुत्तमम् ॥४८॥
कुराजा देशसंयुक्तः सभृत्यबलवाहनः । पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥४९॥
समंताद्योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः । धुनोतु पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥५०॥
सर्वसत्वानि यानीह जंगमस्थावराणि वै । सर्वेषां पांसुवर्षेण क्षयः क्षिप्रं भविष्यति ॥५१॥
दंडस्य विषयो यावत्तावत्स वनमाश्रमम् । पांसुवर्षमिवाकस्मात् सप्तरात्रं भविष्यति ॥५२॥
इत्युक्त्वा क्रोधसंतप्तस्तमाश्रमनिवासिनम् । जनं जनपदस्यांते स्थीयतामित्युवाचह ॥५३॥
उक्तमात्रे उशनसा आश्रमावसथो जनः । क्षिप्रं तु विषयात्तस्मात्स्थानं चक्रे च बाह्यतः ॥५४॥
तं तथोक्त्वा मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् । आश्रमे त्वं सुदुर्मेधे वस चेह समाहिता ॥५५॥
इदं योजनपर्यंतमाश्रमं रुचिरप्रभम् । अरजे विरजास्तिष्ठ कालमत्रसमाश्शतम् ॥५६॥
श्रुत्वा नियोगं विप्रर्षेररजा भार्गवी तदा । तथेति पितरं प्राह भार्गवं भृशदुःखिता ॥५७॥
इत्युक्त्वा भार्गवो वासं सदन्यमुपाक्रमत् । सप्ताहे भस्मसाद्भूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिना ॥५८॥
तस्माद्दंडस्य विषयो विंध्यशैलस्य मानुष । शप्तोह्युशनसा राम तदा भूद्धर्षणे कृते ॥५९॥

आने की प्रतीक्षा करने लगी ॥४२॥ एक मुहूर्त के पश्चात् अत्यन्त कान्ति सम्पन्न शुक्राचार्य स्नान करके भूख लगने के कारण शिष्यों के साथ अपने आश्रम में आये ॥४३॥ उन्होंने दीन बनी हुयी रजोगुण से लथपथ चन्द्रमा की मेघाच्छन्न ज्योत्स्ना (चाँदनी) के समान पराजित अरजा को देखा ॥४४॥ भूख से व्याकुल शुक्राचार्य का क्रोध उदीर्ण हो गया । त्रैलोक्य को भस्म करते हुए के समान उन्होंने शिष्यों से कहा ॥४५॥ मेरे विपरीत कर्म करने वाले मूर्ख दण्ड के ऊपर आने वाली जलती हुयी अग्नि के समान भयङ्कर विपत्ति को तुमलोग देखो ॥४६॥ अपने समस्त अनुचरों के साथ उनका दुर्गतिमय नाश होने वाला है । दण्ड ने जो यहाँ जलती हुयी अग्नि की ज्वाला को छुआ है॥४७॥ चूकि उसने इसतरह का भयङ्कर पाप किया है अतएव उसके राज्य में भयङ्कर धूल की वर्षा होगी ॥४८॥ पाप कर्म करने वाले दुष्ट राजा का देश, भृत्य, सेना तथा वाहन के साथ बध कर देना ही उचित है ॥४९॥ इस मूर्ख के राज्य के चारो ओर सौ योजन पर्यन्त इन्द्र धूलि की वर्षा करके विनष्ट कर दे ॥५०॥ यहाँ पर स्थावर जंगम जितने भी जीव हों वे सबके सब इस धूलि की वर्षा से शीघ्र ही विनष्ट हो जायेंगे ॥५१॥ जहाँ तक दण्ड का राज्य है वहाँ तक सभी आश्रम वन आदि में धूलि की वर्षा सात रात तक होती रहेगी ॥५२॥ यह कहकर क्रोध से व्याकुल शुक्राचार्य ने आश्रमवासियों से कह दिया कि, आपलोग इस जनपद के बाहर चले जायँ ॥५३॥ शुक्राचार्य के कहते ही आश्रम में रहने वे लोग शीघ्र ही उस राजा के राज्य से बाहर चले गये ॥५४॥ मुनियों को इस प्रकार से कहकर शुक्राचार्य ने अरजा से कहा हे दुर्बुद्धि वाली, तुम इसी आश्रम में समाहित होकर निवास करो ॥५५॥ यह आश्रम एक योजन तक सुन्दर कान्ति से सम्पन्न रहेगा । हे अरजे ! यहाँ पर रजोगुण से रहित होकर सौ वर्ष तक रहो॥५६॥ शुक्राचार्य की आज्ञा को सुनकर भार्गवी अरजा अत्यन्त दुःखी होकर अपने पिता शुक्राचार्य से कही ठीक हैं ॥५७॥ यह कहकर शुक्राचार्य अपना दूसरा निवास स्थान बनाये । एक सप्ताह में ही जैसा कि ब्रह्मवादी शुक्राचार्य ने कहा था

ततः प्रभृति काकुत्स्थ दंडकारण्यमुच्यते । एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव ॥६०॥
संध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते। एतेमहर्षयो रामपूर्णकुंभाः समंततः ॥६१॥
कृतोदका नरव्याघ्रपूजयन्ति दिवाकरम् । सर्वैर्ऋषिभिरभ्यस्तैः स्तोत्रै र्ब्रह्मादिभिः कृतैः ॥६२॥
रविरस्तं गतो राम गत्वोदकमुपस्पृश । ऋषेर्वचनमादाय रामः संध्यामुपासितुम् ॥६३॥
उपचक्राम तत्पुण्यं ससरो रघुनंदनः । अथ तस्मिन्वनोद्देशे रम्ये पादपशोभिते ॥६४॥
नदीपुण्ये गिरिवरे कोकिला शतमंडिते । नाना पक्षिरवोद्याने नानामृगसमाकुले ॥६५॥
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णे नानाद्विजसमावृते । गृध्रोलूकौ प्रवसितौ बहून्वर्षगणानपि ॥६६॥
अथोलूकस्य भवनं गृध्रः पापविनिश्चयः । ममेदमिति कृत्वाऽसौ कलहं तेन चाकोरात् ॥६७॥
राजा सर्वस्य लोकस्य रामो राजीवलोचनः । तं प्रपद्यावहै शीघ्रं कस्यैतद्भवनं भवेत् ॥६८॥
गृध्रोलूकौ प्रपद्येतां जातकोपावमर्षिणौ। रामं प्रपद्य तौ शीघ्रं कलिव्याकुलचेतसौ ॥६९॥
तौ परस्परविद्वेषौ स्पृशतश्चरणौ तथा। अथ दृष्ट्वा राघवेंद्रं गृध्रोवचनमब्रवीत् ॥७०॥
सुराणामसुराणां च त्वं प्रधानो मतो मम । बृहस्पतेश्च शुक्राच्च त्वं विशिष्टो महामतिः ॥७१॥
परावरज्ञो भूतानां मर्त्ये शक्र इवापरः। दुर्निरीक्षो यथा सूर्यो हिमवानिव गौरवे॥७२॥
सागरश्चासि गांभीर्ये लोकपालो यमोहयसि । क्षांत्या धरण्या तुल्योसि शीघ्रत्वे ह्यनिलोपमः ॥७३॥
गुरुस्त्वं सर्वसंपन्नो विष्णुरूपोसि राघव। अमर्षी दुर्जयो जेता सर्वास्त्रविधिपारगः ॥७४॥

वैसा ही सब कुछ भस्म हो गया ॥५८॥ हे राघव ! उसी के कारण दण्ड विन्ध्य पर्वत का राज्यधर्षण करने पर शुक्राचार्य के द्वारा शापग्रस्त हो गया ॥५९॥ हे काकुत्स्थ उसी समय से यह दण्डकारण्य कहलाने लगा । इसतरह से आपने जो मुझसे पूछा वह सब मैंने बतला दिया ॥६०॥ हे वीर ! सन्ध्या करने की बेला बीत रही है ये सभी महर्षि गण चारो ओर घड़े में जल भरकर ब्रह्मा आदि के द्वारा निर्मित तथा ऋषियों के द्वारा अभ्यस्त किए गये स्तोत्रों से सूर्य की पूजा कर रहे हैं ॥६१-६२॥ हे राम ! सूर्य अस्त हो गये, तुम भी जाकर जल का आचमन करो । ऋषि की वाणी को सुनकर सन्ध्योपासन करने के लिए श्रीरामचन्द्र भी उस पवित्र सरोवर पर गये, उसके बाद वृक्षों से सुशोभित उस वन प्रदेश में ॥६३-६४॥ नदी से पवित्र बने श्रेष्ठ पर्वत पर अनेक कोकिलाओं, पक्षियों तथा मृगों से मण्डित सिहों तथा व्याघ्रों से परिपूर्ण तथा अनेक पक्षियों से व्याप्त उद्यान में अनेक वर्षों से एक गृध्र तथा एक उल्लू दोनों रहते थे ॥६५-६६॥ उसके बाद पापी गृध्र उल्लू के निवास स्थान को यह मेरा निवास स्थान है, यह सोचकर उसके साथ कलह किया ॥६७॥ उसने कहा हमदोनों सम्पूर्ण संसार के स्वामी श्रीराम के पास चलें और पूछें कि यह भवन किसका है ?॥६८॥ क्रोध करके गृध्र और उल्लू दोनों कलह से व्याकुल हृदय वाले होकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी के पास गये ॥६९॥ परस्पर में एक दूसरे से विद्वेष करने वाले उन दोनों ने श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का स्पर्श किया । इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी को देखकर गृध्र ने कहा ॥७०॥ मेरे मतानुसार आप असुरों तथा सुरों में प्रधान हैं, किञ्च आप बृहस्पति तथा शुक्राचार्य दोनों से अधिक बुद्धिमान हैं ॥७१॥ सभी जीवों के परावर तत्त्व के ज्ञाता आप मनुष्यों के इन्द्र के समान प्रशासक हैं । आप सूर्य के समान तेजस्वी होने के कारण दुर्निरीक्ष्य हैं, और हिमालय के समान गुरुता सम्पन्न हैं ॥७२॥ गाम्भीर्य के विषय में आप सागर के समान हैं और लोकपालों में आप यम हैं । क्षमा के विषय में आप पृथिवी के समान हैं, शीध्रता करने में आप वायु के समान हैं ॥७३॥ आप गुरुत्व सम्पन्न विष्णु स्वरूप हैं । क्रोध करने पर आपको कोई जीत नहीं सकता है तथा आप समस्त शास्त्रों की विधि के

श्रृणु त्वं मम देवेश विज्ञाप्यं नरपुंगव । ममालयं पूर्वकृतं बाहुवीर्येण वै प्रभो ॥७५॥
उलूको हरते राजंस्त्वत्समीपे विशेषतः । ईदृशोयं दुराचारस्त्वदाज्ञालंघको नृप ॥७६॥
प्राणांतिकेन दंडेन रामशासितुमर्हसि। एवमुक्ते तु गृध्रेण उलूको वाक्यमब्रवीत् ॥७७॥
श्रृणु देव मम ज्ञाप्यमेकचित्तो नराधिप। सोमाच्छक्राच्च सूर्याच्च धनदाच्च यमात्तथा॥७८॥
जायते वै नृपो राम किंचिद्भवति मानुषः । त्वं तु सर्वमयो देवो नारायणपरायणः ॥७९॥
प्रोच्यते सोमताराजन्सम्यक्कार्ये विचारिते । सम्यग्रक्षसि तापेभ्यस्तमोघ्नो हि यतो भवान्॥८०॥
दोषे दंडात्प्रजानां त्वं यतः पापभयापहः । दाता प्रहर्ता गोप्ता च तेनेंद्र इव नो भवान्॥८१॥
अधृष्यः सर्वभूतेषु तेजसा चानलो मतः । अभीक्ष्णं तपसे पापांस्तेन त्वं रामभास्करः ॥८२॥
साक्षाद्वित्तेशतुल्यस्त्वमथवाधनदाधिकः । चित्तायत्ता तु पत्नी श्रीर्नित्यं ते राजसतम॥८३॥
धनदस्य तु कोशेन धनदस्तेन वैभवान् । समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥८४॥
शत्रो मित्रे च ते दृष्टिः समंताद्याति राघव । धर्मेण शासनं नित्यं व्यवहारविधिक्रमैः ॥८५॥
यस्यरूष्यसि वै राम मृत्युस्तस्याभिधीयते । गीयसे तेन वै राजन्यम इत्यभिविश्रुतः ॥८६॥
यश्चासौ मानुषोभावो भवतो नृपसतम । आनृशंस्य परो राजा सर्वेषु कृपयान्वितः ॥८७॥
दुर्बलस्य त्वनाथस्य राजा भवति वै बलम् । अचक्षुषो भवेच्चक्षुरमतेषु मति र्भवेत् ॥८८॥
अस्माकमपि नाथस्त्वं श्रूयतां मम धार्मिक । भवता तत्र मंतव्यं यथैते किलपक्षिणः ॥८९॥

विषय में पारङ्गत हैं ॥७४॥ हे देवेश ! हे नरपुंगव ! आप मेरी प्रार्थना को सुनें । मैंने अपने बाहुबल से अपना निवास पहले बनाया । किन्तु आपकी उपस्थिति में यह उल्लू उसे ले लेना चाहता है । हे राजन् ! यह इस प्रकार का दुराचारी है, आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाला है ॥७६॥ अतएव हे श्रीराम ! आप इसको प्राणदण्ड से दण्डित कीजिये । इस तरह से गृध्र के कहने पर उल्लू ने कहना प्रारम्भ किया ॥७७॥ हे नराधिप ! आप सावधानी पूर्वक मेरी बात को सुनें । राजा में सोम, इन्द्र, सूर्य, कुबेर तथा यम का अंश होता है ॥७८॥ मनुष्य का अंश अल्प मात्रा में होता है । आप तो सर्वदेव स्वरूप हैं । नारायण तथा सबों के आश्रय हैं ॥७९॥ हे राजन् ! अच्छी तरह से विचार करके कार्य करने को सोमत्व कहते हैं । संतापों से अच्छी तरह से रक्षा करने के कारण आप तमोघ्न (अन्धकार विनाशक) हैं ॥८०॥ पाप तथा प्रजाओं के भय के विनष्ट करने वाले आप पाप करने पर प्रजाओं को दण्ड देते हैं । दाता, प्रहर्ता तथा रक्षक होने के कारण आप इन्द्र के समान हैं ॥८१॥ अपने तेज के द्वारा आप सभी जीवों के लिए अनभिभवनीय होने के कारण अग्नि हैं । आप पापियों को सदा संतप्त करते हैं, अतएव आप सूर्य हैं॥८२॥ आप साक्षात् कुबेर के समान हैं, अथवा उनसे बढकर है । हे राजश्रेष्ठ ! आपकी पत्नी श्रीसदा आपके मन के अधीन रहती हैं । कुबेर की लक्ष्मी तो कोष में रहती हैं । अतएव आप कुबेर हैं । आप समस्त चराचरों के लिए समदर्शी हैं । आपकी दृष्टि शत्रुओं और मित्रों पर सदा एक समान पड़ती रहती है । आप व्यवहार विधि के अनुसार धर्मपूर्वक शासन करते हैं ॥८३-८५॥ आप जिस पर क्रोध करते हैं, उसकी मृत्यु हो जाती है, इसलिए हे राजन् ! आप यम शब्द से कहे जाते हैं ॥८६॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपका जो यह मनुष्य भाव है, वह इसलिए कि राजा की सबों के प्रति अनृशंसता (निष्ठुरता का अभाव) और कृपा बनी रहती है ॥८७॥ दुर्बलों तथ अनाथों क वल राजा ही होता है। वह नेत्रहीनों के लिए नेत्र होता है और अज्ञानियों के लिए ज्ञान होता है ॥८८॥ आप हमलोगों के भी स्वामी हैं, अतएव हे धार्मिक ! आप हमारी बातों को सुनें । आपको जिस तरह के ये पक्षी हैं उसीतरह से विचार करना चाहिए ॥८९॥

योस्मन्नाथः सपक्षींद्रो भवतो विनियोज्यकः । अस्वाम्यं देवनास्माकं सन्निधौ भवतः प्रभो ॥९०॥
भवतैव कृतं पूर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् । ममालयप्रविष्टस्तु गृध्रो मां बाधते नृप ॥९१॥
भवान्देव मनुष्येषु शास्ता वै नरपुंगव । एतच्छ्रुत्वा तु वै रामः सचिवानाह्वयत्स्वयम् ॥९२॥
विष्टिर्जयंतो विजयः सिद्धार्थो राष्ट्रवर्धनः । अशोको धर्मपालश्च सुमंत्रश्च महाबलः ॥९३॥
एते रामस्य सचिवा राज्ञो दशरथस्य च । नीतियुक्ता महात्मानः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥९४॥
सुशांताश्च कुलीनाश्च नये मन्त्रे च कोविदाः । तानाहूय स धर्मात्मा पुष्पकादवरूह्य च ॥९५॥
गृध्रोलूकौ विवदंतो पृच्छतिस्म रघूत्तमः । कतिवर्षाणि भो गृध्र तवेदं निलयं कृतम् ॥९६॥
एतन्मे कौतुकं ब्रूहि यदि जानासि तत्त्वतः । एतच्छ्रुत्वा वचो गृध्रो वभाषे राघवं स्थितम् ॥९७॥
इयं वसुमती राम मानुषैर्बहुबाहुभिः । उच्छ्रितैराचिता सर्वा तदाप्रभृतिमद्गृहम् ॥९८॥
उलूकस्त्वब्रवीद्रामं पादपै रुपशोभिता । यदैव पृथिवी राजंस्तदा प्रभृति मे गृहम् ॥९९॥

एतच्छ्रुत्वा तु रामो वै सभासद उवाच ह ।
न सा सभा यत्र न संति वृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदंति धर्मम् ॥१००॥
नासौधर्मो यत्र न चास्ति सत्यं, नतत्सत्यं यच्छलमभ्युपैति ।
ये तु सभ्याः सभां गत्वा, तूष्णीं ध्यायंत आसते ॥१०१॥

यथा प्राप्तं न ब्रुवते सर्वेतेऽनृतवादिनः । न वक्ति च श्रुतं यश्च कामात्क्रोधात्तथा भयात्॥१०२॥
सहस्रं वारुणाः पाशाः प्रतिमुंचंति तं नरम्। तेषां संवत्सरे पूर्णे पाश एकः प्रमुच्यते ॥१०३॥
तस्मात्सत्यं तु वक्तव्यं जानता सत्यमंजसा। एतच्छ्रुत्वा तु सचिवा राममेवाब्रुवंस्तदा ॥१०४॥

हमलोगों के स्वामी गरुड़ आपके सेवक हैं। हे देव ! आपकी सन्निधि में हम स्वामी रहित नहीं है ॥९०॥ आपने ही पहले चार प्रकार के जीवों की रचना की है। हे राजन् ! मेरे घर में प्रवेश करके यह गृध्र मुझे दुःख देता है ॥९१॥ हे देव ! आप मनुष्यों के स्वामी है तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। इन सारी बातों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने अपने मन्त्रियों को बुलाया ॥९२॥ विष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राष्ट्रवर्धन, अशोक, धर्मपाल तथा महाबलवान् सुमन्त्र॥९३॥ ये ही श्रीरामचन्द्रजी के तथा महाराज दशरथ के भी मन्त्री हैं। ये सभी नीति को जानने वाले तथा सभी शास्त्रों में निपुण है ॥९४॥ ये अत्यन्त शान्त, कुलीन तथा नीति एवं मन्त्रणा करने में विशारद है। वे धर्मात्मा, पुष्पक विमान से उतरकर तथा उन सबों को बुलाकर ॥९५॥ श्रीरामचन्द्रजी ने जिस विषय में गृध्र तथा उल्लू दोनों विवाद करते थे उसके विषय में पूछा। श्रीराम ने कहा हे गृध्र कितने दिन पहले तुमने अपना घर बनाया ॥९६॥ मुझको यह उत्कण्ठा है, अतएव तुम ठीक-ठीक बतलाओ। यह सुनकर गृध्र ने श्रीरामचन्द्र से कहा ॥९७॥ **गृध्र ने कहा**— हे श्रीराम ! जब यह पृथिवी अनेक भुजाओं वाले मनुष्यों से भरी पड़ी थी हे राजन् ! उस समय मैंने अपना यह घर बनाया है ॥९८॥ इस पर उल्लू ने श्रीरामचन्द्र से कहा जब यह पृथिवी वृक्षों से सुशोभित हुयी, उस समय से मेरा घर है ॥९९॥ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने सभासदों से कहा ॥१००॥ **श्रीरामजी ने कहा**— वह सभा सभा नहीं है, जिसमें वृद्ध पुरुषों न हों और वे वृद्ध वृद्ध नहीं है जो धर्मानुकूल न बोलें। जिसमें सत्य न हो वह धर्म धर्म नहीं है और छल युक्त सत्य भी सत्य नहीं होता है ॥१०१॥ जो सभासद सभा में बैठकर चुपचाप बैठे रहते हैं तथा समयानुकूल उचित बातें नहीं कहते हैं वे सब झूठ बोलने वाले हैं ॥१०२॥ यदि कोई सभासद काम, क्रोध अथवा भय के कारण सुनकर भी नहीं बोलता है, उस मनुष्य को हजारो वरुण बाँध लेते हैं ॥१०३॥ ऐसे लोगों की

उलूकः शोभते राजन्नतु गृध्रो महामते । त्वं प्रमाणं महाराज राजा हि परमा गतिः ॥१०५॥
राजमूलाः प्रजाः सर्वा राजा धर्मः सनातनः । शास्ता राजा नृणां येषां न ते गच्छंति दुर्गतिम्॥१०६॥
वैवस्वतेन मुक्ताश्च भवंति पुरुषोत्तमाः । सचिवानां वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥१०७॥
श्रूयतामभिधास्यामि पुराणं यदुदाहृतम् । द्यौः सचंद्रार्कनक्षत्रा सपर्वतमहीद्रुमम् ॥१०८॥
सलिलार्णवे संमग्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् । एकमेव तदाह्यासीत्सर्वमेकमिवांबरम् ॥१०९॥
पुनर्भूः सह लक्ष्म्या च विष्णो र्जठरमाविशत् । तानि गृह्यमहातेजाः प्रविश्य सलिलार्णवम् ॥११०॥
सुष्वापहि कृतात्मा स बहुवर्षशतान्यपि । विष्णौ सुप्ते ततो ब्रह्मा विवेश जठरं ततः ॥१११॥
बहुस्त्रोतं च तं ज्ञात्वा महायोगी समाविशत्। नाभ्यां विष्णोः समुद्भूतं पद्मं हेमविभूषितम्॥११२॥
सतु निर्गम्य वै ब्रह्मा योगी भूत्वा महाप्रभः । सिसृक्षुः पृथिवीं वायुं पर्वतांश्च महीरुहान् ॥११३॥
तदंतराः प्रजाः सर्वा मानुषांश्च सरीसृपान् । जरायुजाण्डजान्सर्वान्ससर्ज समहातपाः ॥११४॥
तस्य गात्रसमुत्पन्नः कैटभो मधुना सह । दानवौ तौ महावीर्यौ घोरौ लब्धवरौ तदा ॥११५॥
दृष्ट्वा प्रजापतिं तत्र क्रोधाविष्टावुभौ नृप । वेगेन महता भोक्तुं स्वयंभुवमधावताम् ॥११६॥
दृष्ट्वा सत्वानि सर्वाणि निस्सरन्ति पृथक् पृथक् । ब्रह्मणा संस्तुतो विष्णुर्हत्वा तौ मधुकैटभौ ॥११७॥
पृथिवीं वर्धयामास स्थित्यर्थं मेदसा तयोः । मेदो गंधा तु धरणी मेदिनीत्यभिधां गता ॥११८॥
तस्माद्गृध्रस्त्वसत्यो वै पापकर्मा परालयम् । स्वीयं करोति पापात्मा दण्डनीयो न संशयः ॥११९॥

एक पाश से मुक्ति पूरे एक वर्ष में होती है । अतएव ज्ञाता पुरुष को सदा सत्य ही बोलना चाहिए ॥१०४॥ इन बातों को सुनकर मन्त्रियों ने श्रीराम से कहा— हे महामते ! उल्लू ही ठीक कह रहा है । गृध्र नहीं ॥१०५॥ हे महाराज आपको प्रणाम है, राजा ही परम आश्रय होता है, सारी प्रजाओं का मूल राजा होता, राजा ही सनातन धर्म है ॥१०६॥ जिन मनुष्यों का प्रशासन करने वाला राजा होता है, वे मनुष्य दुर्गति प्राप्त नहीं होते हैं । वे यमराज के द्वारा मुक्त होकर पुरुषोत्तम (उत्तम पुरुष) बन जाते हैं ॥१०७॥ मन्त्रियों की बातों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा मेरी बात सुनो जिसे पुराण बतलाया है ॥१०८॥ द्युलोक, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, पर्वत, पृथिवी, वृक्ष, चर अचर से युक्त त्रैलोक्य ये सबके सब सागर के जल में डूबे हुए थे ॥१०९॥ उस समय सब के सब एक ही समान थे जैसे अकेला आकाश हो । उसके बाद पृथिवी लक्ष्मीजी के साथ भगवान् विष्णु के उदर में प्रवेश कर गयी ॥११०॥ उनको निगृहीत करके महातेजस्वी भगवान् विष्णु समुद्र के जल में अनेक हजार वर्ष तक सोते रहे ॥१११॥ भगवान् विष्णु के सो जाने पर ब्रह्माजी उनके पेट में प्रवेश किए । भगवान् विष्णु को अनेक स्त्रोतों वाला जानकर महायोगी ब्रह्माजी प्रवेश किए॥११२॥ भगवान् विष्णु की नाभि से सुवर्णालंकृत कमल उत्पन्न हुआ । वे सृष्टि करने के इच्छुक योगी होकर महाप्रभु ब्रह्माजी ॥११३॥ पृथिवी, वायु, पर्वत, वृक्ष, ब्रह्माण्ड के भीतर रहने वाली सारी प्रजाओं, मनुष्यों, सर्पो, जरायुजों, अण्डजों इत्यादि सबों की सृष्टि किए । भगवान् विष्णु के शरीर से मधु एवं कैटभ उत्पन्न हुए ॥११४-११५॥ वे दोनों दानव महावीर तथा वरदान प्राप्त थे । उन दोनों ने ब्रह्माजी को देखा और क्रुद्ध हो गये ॥११६॥ वे दोनों ब्रह्माजी को खा जाने के लिए वेग से दौड़े । उन दोनों को देखकर सभी जीव अलग-अलग निकलने लगे ॥११७॥ ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु की स्तुति की, भगवान् विष्णु ने उन दोनों की मेदा से पृथिवी को बढाने के लिए, उन दोनों को मार दिए ॥११८॥ मेदस की गन्धवाली होने के कारण पृथिवी मेदिनी कहलाने लगी । अतएव वह गृह गृध्र का नहीं अपितु उल्लू का है ॥११९॥ अतएव गृध्र झूठ बोलता है दूसरे के घर को अपना वनाना चाहता है, अतएव

ततोऽशरीरिणी वाणी अंतरिक्षात्प्रभाषते । मावधीरामगृध्रं त्वं पूर्वं दग्धं तपोबलात् ॥१२०॥
पुरा गौतमदग्धोऽयं प्रजानाथो जनेश्वर। ब्रह्मदत्तस्तु नामैष शूरः सत्यव्रतः शुचिः ॥१२१॥
गृहमागत्यविप्रर्षे भोजनं प्रत्ययाचत। साग्रं वर्षशतं चैव भुक्तवान्नृपसत्तम ॥१२२॥
ब्रह्मदत्तस्य वै तस्य पाद्यमर्घ्यं स्वयं ततः । आत्मनैवाकरोत्सम्यग्भोजनार्थं महाद्युते ॥१२३॥
समाविश्य गृहं तस्य आहारे तु महात्मनः । नारीं पूर्णस्तनीं दृष्ट्वा हस्तेनाथपरामृशत् ॥१२४॥
अथ क्रुद्धेन मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः । गृध्रत्वं गच्छ वै मूढ राजा मुनिमथाब्रवीत् ॥१२५॥
कृपां कुरु महाभाग शापोद्धारो भविष्यति । दयालुस्तद्वचः श्रुत्वा पुनराहनराधिप ॥१२६॥
उत्पत्स्यते रघुकुले रामो नाम महायशाः । इक्ष्वाकूणां महाभागो राजा राजीवलोचनः ॥१२७॥
तेन दृष्टो विपापस्त्वं भविता नरपुंगव। दृष्टो रामेण तच्छ्रुत्वा बभूव पृथिवीपतिः ॥१२८॥
गृध्रत्वं त्यज्य वै शीघ्रं दिव्यगंधानुलेपनः । पुरुषो दिव्यरूपोऽसौ बभाषे तं नराधिपम् ॥१२९॥
साधु राघव धर्मज्ञ त्वत्प्रसादादहं विभो। विमुक्तो नरकाद्घोरादपापस्तु त्वया कृतः ॥१३०॥
विसर्जितं मया गार्ध्यं नररूपी महीपतिः । उलूकं प्राह धर्मज्ञ स्वगृहं विश कौशिक ॥१३१॥
अहं संध्यामुपासित्वा गमिष्ये यत्र वै मुनिः। अथोदकमुपस्पृश्य संध्यामन्वास्य पश्चिमाम्॥१३२॥
आश्रमं प्राविशद्रामः कुंभयोने र्महात्मनः। तस्यागस्त्यो बहुगुणं फलमूलं च सादरम् ॥१३३॥
रसवंति च शाकानि भोजनार्थमुपाहरत् । स भुक्त्वा नरव्याघ्रस्तदन्नममृतोपमम् ॥१३४॥
प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपावसत् । प्रभाते कल्यमुत्थाय कृत्वाह्निकमरिंदम ॥१३५॥

दण्डनीय है ॥१२०॥ उसी समय अन्तरिक्ष से आकाशवाणी हुयी; हे राम ! आप गृध्र का बध न करें, यह तपस्या के बल से पहले ही जल चुका है ॥१२१॥ हे जनेश्वर ! पहले यह राजा था; गौतम महर्षि ने इसे शाप से दग्ध किया। यह ब्रह्मदत्त नाम का वीर तथा पवित्र राजा था ॥१२२॥ इसके घर आकर ब्राह्मण ने भोजन की याचना की । हे राजश्रेष्ठ उस ब्राह्मण के अन्न खाये हुए सौ वर्ष से अधिक बीत गये थे ॥१२३॥ हे महाद्युते ! ब्रह्मदत्त ने उस ब्राह्मण को भोजन कराने के लिए स्वयं पाद्य, अर्घ्य इत्यादि किया ॥१२४॥ उनको भोजन लाने के लिए राजा भीतर गये वहाँ उन्होंने पूर्ण स्तनों वाली नारी को देखकर उसका अपने हाथ से स्पर्श किया ॥१२५॥ इसके बाद क्रुद्ध होकर मुनि ने भयङ्कर शाप दिया कि अरे ! मूर्ख तुम गृध्र हो जाओ । इसके बाद राजा ने मुनि से कहा ॥१२६॥ हे महाभाग! आप कृपा कीजिये, मेरा शाप से उद्धार बतलाइये । हे नराधिप ! दयालु ऋषि ने कहा ॥१२७॥ रघु के वंश में राम नाम के यशस्वी राजा उत्पन्न होंगे वे महाभाग इक्ष्वाकु वंशीय राजा होंगे ॥१२८॥ उनके द्वारा देखलिए जाने के बाद तुम निष्पाप होओगे । यह सुनकर श्रीराम ने उसे देखा और वह राजा हो गया ॥१२९॥ उसने शीघ्र ही गृध्रत्व का परित्याग कर दिया दिव्य गन्धों वाले अनुलेपन से युक्त हो गया । दिव्यरूपधारी उस राजा ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा॥१३०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी आप धर्मज्ञ हैं, आपकी कृपा से मैं इस नरक से मुक्त हो गया और आपने मुझे निष्पाप बना दिया ॥१३१॥ मैंने मनुष्य रूपधारी राजा होकर गृध्रत्व का परित्याग कर दिया है । भगवान् श्रीराम ने उल्लू से कहा— तुम अपने घर में प्रवेश करो । मैं सन्ध्या करके मुनि के पास जाऊँगा । उसके पश्चात् आचमन करके तथा सायं सन्ध्या करने के पश्चात् भगवान् श्रीराम भी महर्षि अगस्त्य के पास आये । उनको महर्षि अगस्त्य ने अच्छे-अच्छे फलों तथा मूलों को प्रेमपूर्वक प्रदान किया ॥१३२-१३३॥ उन्होंने भोजन करने के लिए रसभरे शाकों को प्रदान किया । भगवान् श्रीराम अमृत के समान उस अन्न को खाकर ॥१३४॥ प्रसन्नता पूर्वक सन्तुष्ट होकर उस रात्रि

ऋषिं समभिचक्राम गमनाय रघूत्तमः । अभिवाद्याब्रवीद्रामो महर्षिं कुंभसंभवम् ॥१३६॥
आपृच्छे साधये ब्रह्मन्ननुज्ञातुं त्वमर्हसि । धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि दर्शनेन महामुने ॥१३७॥
दिष्ट्या चाहं भविष्यामि पावनात्मा महात्मनः । एवं ब्रुवति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ॥१३८॥
उवाच परमप्रीते बाष्पनेत्रस्तपोधनः । अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव रामशुभाक्षरम्॥१३९॥
पावनं सर्वभूतानां त्वयोक्तं रघुनंदन । मुहूर्तमपि रामत्वां मैत्रेणेक्षंति ये नराः ॥१४०॥
पावितास्सर्वसूक्तैस्ते कथ्यंते त्रिदिवौकसः । ये च त्वां घोरचक्षुर्भिरीक्षंते प्राणिनो भुवि॥१४१॥
ते हता ब्रह्मदंडेन सद्यो नरकगामिनः । ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् ॥१४२॥
कथयंतश्च लोकास्त्वां सिद्धिमेष्यंति राघव । गच्छस्वानातुरोऽविघ्नं पंथानमकुतोभयः ॥१४३॥
प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिस्तु जगतां भवान् । एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिप्रग्रहोनृपः ॥१४४॥
अभिवादयितुं चक्रे सोगस्त्यमृषिसत्तमम् । अभिवाद्यमुनिश्रेष्ठं तांश्च सर्वास्तपोधिकान् ॥१४५॥
अथारोहत्तदाव्यग्रः पुष्पकं हेमभूषितम् । तं प्रयान्तं मुनिगणा आशीर्वादैस्समन्ततः ॥१४६॥
अपूपुजन्नरेंद्रं तं सहस्त्राक्षमिवामराः । ततोर्धदिवसे प्राप्ते रामः सर्वार्थकोविदः ॥१४७॥
अयोध्यां प्राप्य काकुत्स्थः पद्भयां कक्षामवातरत् । ततो विसृज्यरुचिरं पुष्पकं कामवाहितम् ॥१४८॥
कक्षांतराद्विनिष्क्रम्य द्वास्थान् राजा व्रवीदिदम् । लक्ष्मणं भरतं चैव गच्छध्वं लघुविक्रमाः॥१४९॥
ममागमनमाख्याय समानयत माचिरम् । श्रुत्वाथ भाषितं द्वास्था रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥१५०॥

में वहीं निवास किए । प्रातःकाल जगकर उन्होंने आह्निक कृत्यों को सम्पन्न किया ॥१३५॥ और जाने के लिए महर्षि अगस्त्य के पास आये । उन्होंने प्रणाम करके महर्षि अगस्त्य से कहा ॥१३६॥ हे ब्रह्मन् ! अब मैं जाने के लिए आज्ञा चाहता हूँ आप मुझे जाने की आज्ञा दें । हे महामुने ! आपके दर्शन से मैं धन्य और अनुगृहीत हो गया॥१३७॥ भाग्यवशात् मैं आपके दर्शन से कभी पुनः पवित्र होऊँगा । इसतरह से जब श्रीरामचन्द्रजी कह रहे थे उस समय महर्षि ने कहा ॥१३८॥ उन्होंने अपनी आँखों में आँसू भरकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक कहा— हे श्रीराम! यह सुन्दर वाक्य अत्यन्त अद्भुत है ॥१३९॥ हे रघुनंदन ! आपने सभी भूतों को पवित्र कर देने वाला वाक्य कहा है । हे राम ! जो लोग मुहूर्त भर भी मित्रता भरी दृष्टि से देख लेता है ॥१४०॥ वह मनुष्य सभी सूक्तों के द्वारा पवित्र हो जाते हैं, यह देवताओं ने कहा है । जो जीव आपको द्वेष भरी दृष्टि से इस लोक में देखते हैं ॥१४१॥ वे शीघ्र ही ब्रह्मदण्ड से मार दिए जाते हैं और वे शीघ्र ही नरकगामी हो जाते हैं । रघुश्रेष्ठ ! आप इस तरह से सभी प्राणियों को पवित्र बना देने वाले हैं ॥१४२॥ हे राघव ! आपके गुणों की चर्चा करने वालों को सभी लोकों की सिद्धि हो जाती है । आप शीघ्र अपने राज्य में जायँ, आपके मार्ग निर्विघ्न और भयरहित हों ॥१४३॥ आप धर्मपूर्वक राज्य का प्रशासन करें आप ही लोगों के आश्रय हैं । इसतरह से मुनि के कहने पर हाथ जोड़कर भगवान् श्रीराम ॥१४४॥ ने महर्षि को अभिवादन किया । मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य को प्रणाम करके उन्होंने उन तपस्वी मुनियों को भी प्रणाम किया ॥१४५॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी शान्तिपूर्वक, पुष्पक विमान पर चढ गये । जाते हुए श्रीरामचन्द्रजी की मुनिगण अपने आशीर्वाद से ॥१४६॥ उसीतरह पूजा किए जिस देवता इन्द्र की पूजा करते हैं । उसके बाद सब कुछ जानने वाले श्रीरामचन्द्रजी दोपहर के समय ॥१४७॥ अयोध्या पहुँचे कक्षा में उतरे । इच्छानुसार चलने वाले पुष्पक विमान को विदा करके ॥१४८॥ दूसरी कक्षा से निकल कर द्वारपालों से श्रीरामचन्द्रजी ने कहा तुमलोग शीघ्र लक्ष्मण और भरत के पास जओ ॥१४९॥ मेरे आगमन को बतलाकर उन्हें शीघ्र लाओ । अक्लिष्ट कर्म करने वाले

गत्वा कुमारावाहूय राघवायन्यवेदयन् । द्वास्थैः कुमारावानीतौ राघवस्य निदेशतः ॥१५१॥
दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्तौ प्रियौ भरतलक्ष्मणौ। समालिंग्य तु रामस्तौ वाक्यं चेदमुवाच ह ॥१५२॥
कृतं मया यथातथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् । धर्महेतुमतो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥१५३॥
भवद्भयामात्मभूताभ्यां राजसूयं क्रतूत्तमं । सहितो यष्टुमिच्छामि यत्र धर्मश्च शाश्वतः ॥१५४॥
पुष्करस्थेन वै पूर्वं ब्रह्मण लोककारिणा । शतत्रयेण यज्ञानामिष्टं षष्ट्याधिकेन च ॥१५५॥
इष्ट्वाहं राजसूयेन सोमो धर्मेणधर्मवित् । प्राप्तः सर्वेषु लोकेषु कीर्तिस्थानमनुत्तमम् ॥१५६॥
इष्ट्वा हि राजसूयेन मित्रः शत्रुनिबर्हणः । मुहूर्तेन सुशुद्धेन वरुणत्वमुपागतः ॥१५७॥
तस्माद्भवंतौ संचिंत्य कार्येस्मिन् वदतं हि तत् ।

भरत उवाच

त्वं धर्मः परमः साधो त्वमसि सर्वा वसुंधरा ॥१५८॥
प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम । महीपालाश्च सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामराः ॥१५९॥
निरीक्षंते महात्मानो लोकनाथ तथा वयम्। प्रजाश्च पितृवद्राजन्पश्यंति त्वां महामते ॥१६०॥
पृथिव्यां गतिभूतोऽसि प्राणिनामिह राघव । सत्वमेवं विधं यज्ञं नाहर्त्तासि परंतप ॥१६१॥
पृथिव्यां सर्वभूतानां विनाशो दृश्यते यतः । श्रूयते राजशार्दूल सोमस्य मनुजेश्वर ॥१६२॥
ज्योतिषां सुमहद्युद्धं संग्रामे तारकामये। ताराबृहस्पते र्भार्याहता सोमेन कामतः ॥१६३॥
तत्र युद्धं महद्वृत्तं देव दानवनाशनम्। वरुणस्य क्रतौ घोरे संग्रामे मत्स्यकच्छपाः ॥१६४॥
निवृत्ते राजशार्दूल सर्वे नष्टा जलेचराः । हरिश्चंद्रस्य यज्ञांते राजसूयस्य राघव ॥१६५॥

श्रीरामचन्द्रजी की बातों को सुनकर द्वारपाल ॥१५०॥ जाकर श्रीलक्ष्मण और भरतजी को बतलाये और श्रीरामजी की आज्ञानुसार द्वारपाल उन दोनों को लाये ॥१५१॥ श्रीरामचन्द्रजी ने देखा कि प्रिय भरत और लक्ष्मण आ गये हैं, उन्होंने उन दोनों का आलिङ्गन किया और कहा ॥१५२॥ मैंने ब्राह्मण का सर्वोत्तम कार्य कर दिया है । वह कार्य धार्मिक था; पुनः ऐसे कार्यों को करना चाहता हूँ ॥१५३॥ आप दोनों मेरे प्राणों के समान हैं । आपलोगों के साथ ऐसे यज्ञ को करना चाहता हूँ जो शाश्वत धर्मस्वरूप होता है ॥१५४॥ पुष्कर क्षेत्र में लोक सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी ने तीन सौ साठ यज्ञों को किया था ॥१५५॥ चन्द्रमा ने धर्मपूर्वक राजसूय यज्ञ करके सभी लोकों में व्यापक यश को प्राप्त किया ॥१५६॥ शत्रुओं को विनष्ट करने वाले सूर्य ने शुद्ध मुहूर्त में राजसूय यज्ञ करके वरुणत्व को प्राप्त कर लिया ॥१५७॥ अतएव आप दोनों अच्छी तरह से विचार करके इस विषय में अपना कल्याणकारी विचार प्रकट करें। **भरतजी ने कहा—** हे साधो ! आप परम धर्म हैं, यह पृथिवी आपके ऊपर टिकी है ॥१५८॥ हे अमित विक्रम महाबाहो सभी राजा और देवता आपको प्रजापति के समान ॥१५९॥ मानते हैं हे लोकनाथ ! हमलोग भी आपको वैसा ही मानते हैं । हे महामते राजन् ! सारी प्रजा आपको अपने पिता के समान मानती है ॥१६०॥ हे राघव! आप सभी प्राणियों के आश्रय हैं । इस प्रकार के आप ऐसा यज्ञ न करें ॥१६१॥ क्योंकि देखा जाता है कि राजसूय यज्ञ से पृथिवी के सभी जीवों का विनाश होता है । हे मनुजेश्वर ! यह सुना जाता है कि सोम ने ॥१६२॥ तारकमय सङ्ग्राम में बहुत बड़ा युद्ध हुआ । कामवशात् सोम ने बृहस्पति की पत्नी का अपहरण कर लिया ॥१६३॥ उसमें देवताओ और दानवों का विनाश करने वाला बहुत बड़ा युद्ध हुआ वरुण के भयङ्कर क्रतु में जो संग्राम हुआ उसमें मत्स्य एवं कच्छप ॥१६४॥ यज्ञ के समाप्त होने पर सभी जलचर नष्ट हो गये । हे राघव ! हरिश्चन्द्र के

आडीबकं महद्युद्धं सर्वलोकविनाशनम् । पृथिव्यां यानि सत्वानि तिर्यग्योनिगतानि वै ॥१६६॥
दिव्यानां पार्थिवानां च राजसूयेक्षयः श्रुतः । स त्वं पुरुषशार्दूल बुद्ध्या संचिंत्य पार्थिव ॥१६७॥
प्राणिनां च हितं सौम्यं पूर्णधर्मं समाचर। भरतस्य वचः श्रुत्वा राघवः प्राह सादरम् ॥१६८॥
प्रीतोस्मि तव धर्मज्ञ वाक्येनानेन शत्रुहन् । निवर्तिताराजसूयान्मतिर्मे धर्मवत्सल ॥१६९॥
पूर्णं धर्मं करिष्यामि कान्यकुब्जे च वामनम् । स्थापयिष्याम्यहं वीर सा मेख्यातिर्दिवं गता ॥१७०॥
भविष्यति न संदेहो यथा गङ्गा भगीरथात् ॥१७१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे यज्ञनिवारणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

कथं रामेण विप्रर्षे कान्यकुब्जे तु वामनः। स्थापितः क्व च लब्धोसौ विस्तरान्मम कीर्तय ॥१॥
तथाहि मधुरा चैषा या वाणी रामकीर्तने। कीर्तिता भगवन्मह्यं हृतकर्णसुखावहा ॥२॥
अनुरागेण तं लोकाः स्नेहात्पश्यंति राघवम्। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ॥३॥

राजसूय यज्ञ के अन्त में ॥१६५॥ संसार को विनष्ट कर देने वाला आडी और वक का महान् युद्ध हुआ । पृथिवी पर जितने भी तिर्यग्योनि के जीव हैं ॥१६६॥ दिव्य राजाओं के राजसूय के अन्त में विनाश सुना जाता है । अतएव हे पुरुष शार्दूल राजन् ! आप बुद्धिपूर्वक विचार करें ॥१६७॥ प्राणियों का कल्याण करने वाले सौम्य धर्म का अनुष्ठान करें । भरतजी की वाणी सुनकर श्रीरामजी ने आदर पूर्वक कहा ॥१६८॥ हे शत्रुओं का विनाश करने वाले! मैं तुम्हारी बात से बहुत प्रसन्न हूँ । हे धर्मवत्सल अब मेरी बुद्धि राजासूय से दूर हो गयी है ॥१६९॥ मैं कान्यकुब्ज में वामन की स्थापना करके पूर्ण धर्म करूँगा । उससे मेरी ख्याति स्वर्गलोक तक उसीतरह व्याप्त होगी जिस तरह भगीरथ से गङ्गा लोक विख्यात हैं ॥१७०-१७१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथमसृष्टि खण्ड के यज्ञनिवारण नामक सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३७।।

विभीषण का वृत्तान्त जानने के लिए श्रीरामचन्द्रजी का भरतजी के साथ दक्षिणापथ में प्रस्थान, श्रीरामजी का वनवास काल में अपने निवास स्थानों को भरतजी को दिखाना, किष्किन्या में सुग्रीव आदि से भेंट, वहाँ से सुग्रीव को लेकर लङ्का जाना, विभीषण से भेंट, केकसी राम संवाद, विभीषण का श्रीराम को वामन की मूर्ति समर्पित करना, सेतुभङ्ग, श्रीरामकृत रामेश्वर स्तुति, पुष्कर में श्रीराम द्वारा ब्रह्माजी की स्तुति, ब्रह्मा और राम का संवाद, श्रीराम का मथुरा गमन, वामन भगवान् की प्रतिष्ठा

भीष्मजी ने कहा— हे विप्रर्षे ! श्रीरामचन्द्रजी ने कान्यकुब्ज में वामन भगवान् की प्रतिष्ठा कैसे की, उन्हें वामन की मूर्ति कहाँ से प्राप्त हुयी ? इन सारी बातों को विस्तार से बतलायें ॥१॥ वही वाणी मधुर है जो श्रीरामजी के वर्णन से सबद्ध है । हे भगवन् ! आपने कानों को सुख देने वाली रामकथा को मुझे सुनाया है ॥२॥ संसारी जीव

प्रशास्ति पृथिवीं सर्वां धर्मेण सुसमाहितः । तस्मिन् शासति वै राज्यं सर्वकामफलाद्रुमाः ॥४॥
रसवंतः प्रभूताश्च वासांसि विविधानि च। अकृष्टपच्या पृथिवी निःसपत्ना महात्मनः ॥५॥
देवकार्यं कृतं तेन रावणो लोककंटकः । सपुत्रोऽमात्यसहितो लीलयैव निपातितः ॥६॥
तस्य बुद्धिस्समुत्पन्ना पूर्णे धर्मे द्विजोत्तम । तस्याहं चरितं सर्वं श्रोतुमिच्छामि वै मुने ॥७॥

पुलस्त्य उवाच

कस्यचित्त्वथ कालस्य रामो धर्मपथे स्थितः । यच्चकारमहाबाहो शृणुष्वैकमना नृप ॥८॥
सस्मार राक्षसेंद्रं तं कथं राजा बिभीषणः। लंकायां संस्थितो राज्यं करिष्यति च राक्षसः ॥९॥
गीर्वाणेषु प्रातिकूल्यं विनाशस्य तु लक्षणम् । मया तस्य तु तद्दत्तं राज्यं चंद्रार्ककालिकम् ॥१०॥
तस्याविनाशतः कीर्तिः स्थिरा मे शाश्वती भवेत् । रावणेन तपस्तप्तं विनाशायात्मनस्त्विह ॥११॥
विध्वस्तः स च पापिष्ठो देवकार्ये मयाधुना। तदिदानीं मयान्वेष्यः स्वयं गत्वा विभीषणः ॥१२॥
संदेष्टव्यं हितं तस्य येन तिष्ठेत्स शाश्वतम् । एवं चिंतयतस्तस्य रामस्यामिततेजसः ॥१३॥
आजगामाथ भरतो रामं दृष्ट्वा ब्रवीदिदम् । किं त्वं चिंतयसे देव न रहस्यं वदस्व मे ॥१४॥
देवकार्ये धरायां वा स्वकार्ये वा नरोत्तम । एवं ब्रुवंतं भरतं ध्यायमानमवस्थितम् ॥१५॥
अब्रवीद्राघवो वाक्यं रहस्यं तु न वै तव। भवान् वहिश्चरः प्राणो लक्ष्मणश्च महायशाः ॥१६॥
अवेद्यं भवतो नास्ति मम सत्यं विधारय । एषा मे महती चिंता कथं देवैर्विभीषणः॥१७॥

को अनुरागपूर्वक श्रीराम को देखते हैं । श्रीराम धर्म के ज्ञाता, कृतज्ञ तथा परिपक्व बुद्धि वाले हैं ॥३॥ वे सावधानीपूर्वक पृथिवी का प्रशासन करते हैं । उनके प्रशासन काल में वृक्ष सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले थे॥४॥ वे रस से युक्त अनेक प्रकार के वस्त्रों को प्रदान करने वाले थे । उनकी पृथिवी बिना जोते ही अन्न पैदा करने वाली तथा शत्रुओं से रहित थी ॥५॥ उन्होंने देवताओं का कार्य किया और संसार को कष्ट देने वाले रावण के पुत्रों तथा आमात्यों के साथ बिना किसी प्रयास के ही मार दिया ॥६॥ हे द्विजोत्तम ! उन श्रीरामचन्द्रजी को पूर्णधर्म करने की इच्छा हुयी । हे मुने ! मैं उन श्रीरामचन्द्रजी का सम्पूर्ण चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥७॥ **श्रीपुलस्त्य महर्षि ने कहा—** एक समय धर्ममार्गानुयायी मनुष्य रूपधारी भगवान् श्रीराम ने जो कुछ किया उसे आप सुनें । उन्हें याद आयी कि राजश्रेष्ठ विभीषण कैसे हैं ? वे राक्षसराज लङ्का में राज्य कर रहे हैं ॥८-९॥ देवताओं की प्रतिकूलता विनाश का लक्षण है । मैंने विभीषण को ऐसा राज्य प्रदान किया है, जो तब तक रहे जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहें॥१०॥ उसका विनाश नहीं होने से मेरी शाश्वत कीर्ति होगी । रावण ने तो अपने विनाश के लिए तपस्या की थी॥११॥ इसीलिए देवताओं का कार्य करने वाले मैंने उसका विनाश कर दिया । अतएव मुझको स्वयं जाकर विभीषण का पता लगाना चाहिए ॥१२॥ उसको इस प्रकार का उपदेश देना चाहिए जिससे कि वह सदा बना रहे जिस समय निस्सीम तेजस्वी श्रीराम इस प्रकार से सोच रहे थे ॥१३॥ उसी समय वहाँ भरतजी आ गये और श्रीरामचन्द्रजी को देखकर उन्होंनें कहा— हे देव ! आप क्या सोच रहे है ? यदि कोई रहस्यमयी बात न हो तो उसे आप मुझे बतलायें ॥१४॥ आप किसी देवता के कार्य के विषय में सोच रहे हैं अथवा पृथिवी पर किए जाने वाले अपने कार्य के विषय में सोच रहे हैं ? इस तरह से भरतजी के कहने पर ॥१५॥ भगवान् श्रीराम ने कहा— कोई भी रहस्य की बात नहीं है । तुम और लक्ष्मण दोनों हमारे बाहर चलने फिरने वाले प्राण हो ॥१६॥ तुम यह सत्य जानो कि मेरी कोई भी ऐसा बात नहीं है जो तुम्हारे लिए नहीं जानने योग्य हो । मुझको यह चिन्ता हो रही है कि

वर्तते यद्धितार्थं वै दशग्रीवो निपातितः । गमिष्ये तदहं लंकां यत्र चासौ विभीषणः ॥१८॥
तं च दृष्ट्वा पुरीं तां तु कार्यमुक्त्वा च राक्षसम् । आलोक्य सर्ववसुधां सुग्रीवं वानरेश्वरम् ॥१९॥
महाराजं च शत्रुघ्नं भ्रातृपुत्रांश्च सर्वशः । एवं वदति काकुत्स्थे भरतः पुरतः स्थितः॥२०॥
उवाच राघवं वाक्यं गमिष्ये भवता सह । एवं कुरु महाबाहो सौमित्रिरिह तिष्ठतु॥२१॥
इत्युक्त्वा भरतं राम सौमित्रिं चाह वै पुरे । रक्षा कार्या त्वया वीर यावदागमनं हि नौ ॥२२॥
एवं लक्ष्मणमादिश्य ध्यात्वा वै पुष्पकं नृप । अरुरोह स वै यानं कौसल्यानंदवर्धनः ॥२३॥
पुष्पकं तु ततः प्राप्तं गांधारविषयं यतः। भरतस्य सुतौ दृष्ट्वा जगन्नीतिं निरीक्ष्य च ॥२४॥
पूर्वां दिशं ततो गत्वा लक्ष्मणस्य सुतौ यतः । पुरेषु तेषु षड्रात्रमुषित्वा रघुनंदनौ ॥२५॥
गतौ तेन विमानेन दक्षिणामभितो दिशम्। गङ्गायामुनसंभेदं प्रयागमृषिसेवितम् ॥२६॥
अभिवाद्य भरद्वाजमत्रेराश्रममीयतुः । संभाष्य च मुनींस्तत्र जनस्थानमुपागतौ ॥२७॥

राम उवाच

अत्र पूर्वं हृता सीता रावणेन दुरात्मना। हत्वा जटायुषं गृध्रं योऽसौ पितृसखोहि नौ॥२८॥
अत्रास्माकं महद्युद्धं कबन्धेन कुबुद्धिना। हतेन तेन दग्धेन सीतास्ते रावणालये ॥२९॥
ऋष्यमूके गिरिवरे सुग्रीवो नाम वानरः । स ते करिष्यते साह्यं पंपां व्रज सहानुजः ॥३०॥
पंपासरः समासाद्य शबरीं गच्छ तापसीम् । इत्युक्तो दुःखितो वीर निराशोजीविते स्थितः ॥३१॥
इयं सा नलिनी वीर यस्यां वै लक्ष्मणो वदत् । मा कृथाः पुरुषव्याघ्र शोकं शत्रुविनाशन ॥३२॥

देवताओं के साथ विभीषण का व्यवहार कैसा है ?॥१७॥ देवताओं के लिए मैंने रावण को मारा, अतएव मैं लङ्का विभीषण को देखने के लिए जाऊँगा ॥१८॥ उस लङ्कापुरी को देखकर तथा विभीषण को कर्तव्य का उपदेश करके, सम्पूर्ण पृथिवी का अवलोकन करके पुनः वानरराज महराज सुग्रीव से मिलकर शत्रुघ्न तथा उनके पुत्रों से मिलूँगा । जिस समय श्रीरामचन्द्रजी यह कह रहे थे उसी समय उनके सामने खड़ा होकर भरतजी ने कहा ॥१९-२०॥ मैं भी आपके साथ चलूँगा । हे महाराज आप ऐसा ही कीजिये, तब तक लक्ष्मण यहाँ रहें ॥२१॥ इस तरह से भरतजी को स्वीकृति देकर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा कि जब तक हम दोनों लौट न आएँ तब तक तुम्हें रक्षा का कार्य करना है ॥२२॥ इस तरह से लक्ष्मणजी को आदेश देकर भगवान् ने पुष्पक विमान का स्मरण किया और वे उस पर चढ गये ॥२३॥ वहाँ से पुष्पक विमान गधार राज्य में पहुँचा । वहाँ पर श्रीभगवान् भरतजी के दोनों पुत्रों से मिले और उनकी जगत् नीति का निरीक्षण किये ॥२४॥ वहाँ से पूर्व दिशा में गये जहाँ लक्ष्मणजी के दोनों पुत्र थे । वहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी और भरतजी छह रात्रियों तक निवास किए ॥२५॥ वहाँ से वे विमान द्वारा अपनी अभिमत दक्षिण दिशा में चले । वे गङ्गा और यमुना के संगम स्थल प्रयाग में गये ॥२६॥ वहाँ भरद्वाज ऋषि का दर्शन करके वे दोनों अत्रि महर्षि के आश्रम में आये । वहाँ पर मुनियों से वार्तालाप करके वे दण्डकारण्य में आये ॥२७॥ **श्रीराम ने कहा—** यहाँ पर हमारे पिताजी के मित्र जटायु गृध्र का वध करके रावण ने सीताजी का अपहरण किया था॥२८॥ यहाँ पर हमारा युद्ध दुष्ट कबन्ध से हुआ था । उसको मारकर मैंने जला दिया तो उसने बतलाया कि आपकी सीता रावण के गृह में हैं ॥२९॥ ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव नामक वानर रहते हैं, वे आपकी सहायता करेंगे । अतएव आप अपने अनुज के साथ पम्पासरोवर पर जायँ ॥३०॥ पम्पासरोवर पर जाकर शबरी नाम की तपस्विनी से मिलें । हे वीर ! इस तरह से उसके द्वारा कहे जाने पर दुःखी तथा जीवन से निराश मैं पम्पासरोवर पर गया ॥३१॥ यह

आज्ञाकारिणि भृत्ये च मयि प्राप्स्यसि मैथिलीम्। अत्र मे वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः ॥३३॥
अत्रैव निहतो वाली सुग्रीवार्थे परंतप । एषा सा दृश्यते नूनं किष्किंधा वालि पालिता॥३४॥
यस्यां वै स हि धर्मात्मा सुग्रीवो वानरेश्वरः। वानरैः सहितो वीर तावदास्ते समाः शतम् ॥३५॥
वानरैस्सह सुग्रीवो यावदास्ते सभां गतः। तावत्तत्रागतौ वीरौ पुर्यां भरतराघवौ ॥३६॥
दृष्ट्वा सभ्रातरौ प्राप्तौ प्रणिपत्याब्रवीदिदम् । क्व युवां प्रस्थितौ वीरौ कार्यं किं तु करिष्यथः॥३७॥
विनिवेश्यासने तौ च ददावर्घ्यं स्वयं तदा। एवं सभास्थिते तत्र धर्मिष्ठे रघुनंदने॥३८॥
अंगदोथहनूमांश्च नलो नीलश्च पाटलः। गजो गवाक्षो गवयः पनसश्च महायशाः ॥३९॥
पुरोधसो मन्त्रिणश्च दैवज्ञो दधिवक्त्रकः। नीलश्शतबलिर्मैन्दो द्विविदो गंधमादनः॥४०॥
वीरबाहुस्सुबाहुश्च वीरसेनो विनायकः। सूर्याभः कुमुदश्चैव सुषेणो हरियूथपः॥४१॥
ऋषभो विनतश्चैव गवाख्यो भीमविक्रमः। ऋक्षराजश्च धूम्रश्च सहसैन्यैरुपागताः॥४२॥
अंतः पुराणि सर्वाणि रुमां तारा तथैव च। अवरोधोंगदस्यापि तथान्याः परिचारिकाः ॥४३॥
प्रहर्षमतुलं प्राप्य साधुसाध्विति चाब्रुवन्। वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा ॥४४॥
वानर्यश्च महाभागास्ताराद्यास्तत्र राघवम्। अभिप्रेक्ष्याश्रुकंठ्यश्च प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥४५॥
क्व सा देवी त्वया देव या विनिर्जित्य रावणम्। शुद्धिं कृत्वा हि ते वह्नौ पितुरग्र उमापपतेः ॥४६॥
त्वया नीतां पुरीं राम न तां पश्यामि तेग्रतः। न विना त्वं तया देव शोभसे रघुनंदन ॥४७॥
त्वया विनापि साध्वी सा क्वनु तिष्ठति जानकी। अन्यां भार्यां न ते वेद्मि भार्याहीनो न शोभसे ॥४८॥

वहीं कमलिनी है, जहाँ पर लक्ष्मणजी ने मुझसे कहा, हे शत्रुओं का विनाश करने वाले पुरुष श्रेष्ठ शोक न करें॥३२॥ मैं आपका आज्ञाकारी भृत्य हूँ। मेरे रहते आप सीताजी को अवश्य प्राप्त करेंगे। यहाँ पर मैंने वर्ष के चार महीनों को बड़े कष्ट से बिताया ॥३३॥ हे परन्तप सुग्रीव का कल्याण करने के लिए मैंने बालि का वध किया। यह बालि की राजधानी किष्किन्धा दिखायी दे रही है ॥३४॥ यहीं पर वानरों के राजा सुग्रीव सैकड़ों वर्ष से वानरों के साथ रहते हैं ॥३५॥ जिस समय वानरों के साथ सुग्रीव सभा में विद्यमान थे उसी समय भरतजी के साथ श्रीरामजी वहाँ पहुँच गये ॥३६॥ श्रीराम और भरतजी दोनों को देखकर सुग्रीव ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पूछा आप दोनों कहाँ से आ रहे हैं। आप दोनों कौन सा कार्य करने वाले हैं ?॥३७॥ उन दोनों को आसन पर बैठाकर सुग्रीव ने स्वयं उन्हें अर्घ्य प्रदान किया। इस तरह सभा में धार्मिक श्रीराम के स्थित रहने पर ॥३८॥ अङ्गद, हनूमान, नल, नील, पाटल, गज, गवाक्ष, गवय, महायशस्वी पनस ॥३९॥ पुरोहित, मन्त्रीगण, दैवज्ञ, दधिवक्त्र, नील, शतबलि, मैन्द, द्विविद, गन्धमादन ॥४०॥ बीरबाहु, सुबाहु, वीरसेन, विनायक, सूर्याभ, कुमुद तथा सेनापति सुषेण ॥४१॥ ऋषभ, विनत, भीम विक्रम गवाक्ष, ऋक्षराज, धूम्र ये सभी सेना के साथ आये ॥४२॥ अन्तःपुर की सभी नारियाँ, रुमा, तारा, अङ्गद के भी अन्तःपुर की स्त्रियाँ तथा अन्य परिचारिकायें ॥४३॥ अत्यधिक हर्षित होकर सबों ने साधु-साधु कहा। सुग्रीव इत्यादि बड़े-बड़े वानर ॥४४॥ सभी तारा आदि वानरियों ने श्रीरामचन्द्रजी को देखकर रुँधे गले से प्रणाम करके पूछा ॥४५॥ वे देवी कहाँ हैं, जिनको आपने रावण को परास्त करके, तथा महाराज दशरथजी तथा शङ्करजी के समक्ष अग्नि में पवित्र करके ॥४६॥ अपनी नगरी में लाये। हमलोग उन देवी को नहीं देख रहे हैं। हे रघुनंदन! आप उनके बिना सुशोभित नहीं हो रहे हैं ॥४७॥ आपके बिना वे साध्वी देवी जानकी कहाँ पर विद्यमान हैं? मैं जानती हूँ कि आपकी कोई दूसरी पत्नी नहीं हो सकती और आप पत्नी के बिना सुशोभित नहीं हो रहे हैं ॥४८॥

क्रौञ्चयुग्मं मिथो यद्वच्चक्रवाकयुगं यथा । एवं वदंतीं तां तारां तराधिपसमाननाम् ॥४९॥
प्राह प्रवचसां श्रेष्ठो रामो राजीवलोचनः। चारु दंष्ट्रे विशालाक्षि कालो हि दुरतिक्रमः ॥५०॥
सर्वं कालकृतं विद्धि जगदेतच्चराचरम्। विसृज्य ताः स्त्रियः सर्वाः सुग्रीवोभिमुखः स्थितः॥५१॥

सुग्रीव उवाच

भवंतौ येन कार्येण इहायातौ नरेश्वरौ । तच्चापि कथ्यतां शीघ्रं कृत्यकालो हि वर्तते ॥५२॥
ब्रुवाणमेवं सुग्रीवं भरतो रामचोदितः। आचचक्षे च गमनं लंकायां राघवस्य तु ॥
तौ चाब्रवीच्च सुग्रीवो भवद्भ्यां सहितः पुरीम् ॥५३॥
गमिष्ये राक्षसं देव द्रष्टुं तत्र विभीषणम् । सुग्रीवेणैव मुक्ते तु गच्छस्वेत्याह राघवः ॥५४॥
सुग्रीवो राघवौ तौ च पुष्पके तु स्थितास्त्रयः। तावत्प्राप्तं विमानं तु समुद्रस्योत्तरं तटम् ॥५५॥
अब्रवीद्भरतं रामो ह्यत्र मे राक्षसेश्वरः । चतुर्भिः सचिवैः सार्धं जीवितार्थे विभीषणः ॥५६॥
प्राप्तस्ततो लक्ष्मणेन लंकाराज्येभिषेचितः । अत्र चाहं समुद्रस्य परे पारेस्थितस्त्र्यहम् ॥५७॥
दर्शनं दास्यते मेऽसौ ज्ञातिकार्यं भविष्यति । तावन्नदर्शनं मह्यं दत्तमेतेन शत्रुहन् ॥५८॥
ततः कोपः समुद्भूतश्चतुर्थेऽहनि राघव । धनुरायम्य वेगेन दिव्यमस्त्रकरे धृतम् ॥५९॥
दृष्ट्वा मां शरणान्वेषी भीतो लक्ष्मणमाश्रितः । सुग्रीवेणानुनीतोऽस्मि क्षम्यतां राघव त्वया ॥६०॥
ततो मयो क्षिप्तशरो मरुदेशेह्यपाकृतः । ततस्समुद्रराजेन भृशं विनयशालिना ॥६१॥
उक्तोऽहं सेतुबंधेन लंकां त्वं व्रज राघव । लंघयित्वा नरव्याघ्रवारिपूर्णं महोदधिम् ॥६२॥
एष सेतुर्मया बद्धः समुद्रे वरुणालये । त्रिभिर्दिनैः समाप्तिं वै नीतो वानरसत्तमैः ॥६३॥

क्रौंच पक्षी के जोड़े तथा चक्रवाक युगल के समान आप दोनों हैं । चन्द्रमा के समान मुखवाली तारा के इस तरह कहने पर उसको ॥४९॥ वक्ताओं में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— हे चारुदंष्ट्रे ! हे बड़े-बड़े नेत्रों वाली, काल का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥५०॥ तुम यह जानो कि यह सारा चराचरात्मक जगत् काल के अधीन हैं। उसके बाद उन सभी स्त्रियों को छोड़कर श्रीराम सुग्रीव के सामने मुख कर लिए ॥५१॥ **सुग्रीव ने कहा**— हे नरेश्वर! आप दोनों जिस कार्य से यहाँ पधारे हैं, उसे शीघ्र बतलायें, अभी तो काम करने का समय हैं ॥५२॥ सुग्रीव के इस तरह कहने पर श्रीरामजी से प्रेरित होकर भरतजी ने कहा— श्रीरामजी को लङ्का जाना है । उन दोनों से सुग्रवी ने कहा— आप दोनों के साथ मैं भी राक्षसों की नगरी में ॥५३॥ राक्षसराज विभीषण को देखने के लिए चलूँगा । सुग्रीव के इस तरह से कहने पर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा चलो ॥५४॥ सुग्रीव तथा श्रीरामजी तथा भरतजी तीनों पुष्पक विमान में बैठ गये । उसके बाद समुद्र के उत्तरी तट पर विमान पहुँच गया ॥५५॥ श्रीरामचन्द्रजी ने भरतजी से कहा कि यहाँ पर राक्षसेश्वर विभीषण अपने चार मन्त्रियों के साथ अपनी जीवन रक्षा के लिए मुझे मिले थे॥५६॥ उसके बाद लक्ष्मण ने उनको लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया । यहाँ पर हमलोग समुद्र के तट पर तीन दिन तक रहे ॥५७॥ इस आशा से पड़े रहे कि समुद्र दर्शन देगा और हमारा कार्य करेगा, हे शत्रुहन् ! किन्तु तब तक समुद्र ने दर्शन नही दिया ॥५८॥ उसके बाद हे राघव ! चौथे दिन मुझे क्रोध उत्पन्न हो गया । अपने धनुष को झुकाकार मैंने दिव्यास्त्र को धारण किया ॥५९॥ मुझको देखकर भयभीत समुद्र लक्ष्मण के शरण में गया । सुग्रीव ने प्रार्थना करते हुए कहा हे राघव ! आप इसे क्षमा कर दें ॥६०॥ उसके बाद मैंने अस्त्र को उतार कर उसे मरुस्थल प्रदेश में फेंक दिया उसके बाद अत्यन्त विनीत समुद्रराज ने ॥६१॥ कहा हे राघव ! आप जल से भरे हुए

प्रथमे दिवसे बद्धो योजनानि चतुर्दश । द्वितीयेहनि षट्त्रिंशत्तृनीयेऽर्धशतंतथा ॥६४॥
इयं सा दृश्यते लंका स्वर्णप्राकारतोरणा। अवरोधो महानत्र कृतोवानरसत्तमैः ॥६५॥
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां महद्युद्धमभूदिह। अष्टचत्वारिंशद्दिनं यत्रासौ रावणो हतः ॥६६॥
अत्र प्रहस्तो नीलेन हतो राक्षसपुंगवः । हनूमता च धूम्राक्षो ह्यत्रैव विनिपातितः ॥६७॥
महोदरातिकायौ च सुग्रीवेण महात्मना । अत्रैव मे कुंभकर्णो लक्ष्मणेनेंद्रजित्तथा ॥६८॥
मया चात्र दशग्रीवो हतो राक्षसपुंगवः। अत्र संभाषितुं प्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः॥६९॥
पार्वत्या सहितो देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः । महेंद्राद्याः सुरगणाः सगंधर्वास्सकिंनराः ॥७०॥
पिता मे च समायातो महाराजस्त्रिविष्टपात् । वृतश्चाप्सरसां संघै विद्याधरगणैस्तथा ॥७१॥
तेषां समक्षं सर्वेषां जानकी शुद्धिमिच्छता । उक्ता सीता हव्यवाहं प्रविष्टा शुद्धिमागता ॥७२॥
लंकाधिपैः सुरै र्दृष्टा गृहीता पितृशासनात् । अथाप्युक्तो राज्ञाहमयोध्यां गच्छ पुत्रक ॥७३॥
नमे स्वर्गो बहुमतस्त्वया हीनस्य राघव । तारितोहं त्वया पुत्र प्राप्तोऽस्मीन्द्रसलोकताम् ॥७४॥
लक्ष्मणं चाब्रवीद्राजा पुत्र पुण्यं त्वयार्जितम् । भ्रात्रा सममथोदिव्यांल्लोकान्प्राप्स्यसि चोत्तमान् ॥७५॥
आहूय जानकीं राजा वाक्यं चेदमुवाच ह। न च मन्युस्त्वया कार्यो भर्तारं प्रति सुव्रते ॥७६॥
ख्यातिर्भविष्यत्येवाग्र्या भर्तुस्ते शुभलोचने । एवं वदति रामे तु पुष्पके च व्यवस्थिते ॥७७॥
तत्र ये राक्षसवरास्तेगत्वाऽशु विभीषणम् । प्राप्तो रामः ससुग्रीवश्चारा इत्थं तदाऽवदन् ॥७८॥

महासागर को सेतु के माध्यम से पार करके लङ्का जायँ ॥६२॥ वरुणालय समुद्रपर मैंने इस सेतु को बाँधा इसको श्रेष्ठ वानरों ने तीन दिनों में पूरा कर दिया ॥६३॥ पहले दिन चौदह योजन बंधा, दूसरे दिन छत्तीस योजन और तीसरे दिन पचास योजन सेतु बँधा ॥६४॥ वही लङ्का दिखायी देती है जिसकी चहार दिवारी इत्यादि सोने की है । इसको श्रेष्ठ वानरों ने सुदृढ तरीके से घेर लिया ॥६५॥ यहाँ पर चैत्र शुक्ल चतुर्दशी के दिन घोर युद्ध हुआ । इस युद्ध में अड़तालिस दिनों में रावण मारा गया ॥६६॥ यहाँ पर राक्षस श्रेष्ठ प्रहस्त नील के द्वारा मारा गया; यहीं पर हनुमान ने धूम्राक्ष को मार कर गिरा दिया ॥६७॥ महोदर तथा अतिकाय को सुग्रीव ने मारा । यहाँ पर मैंने कुम्भकर्ण को तथा लक्ष्मण ने इन्द्रजित को मारा ॥६८॥ यहाँ पर राक्षसश्रेष्ठ रावण को मैंने मारा । यहाँ पर बातें करने के लिए लोकपितामह ब्रह्माजी आये थे । तथा पार्वती के साथ वृषभध्वज भगवान् शङ्करभी आये थे । गन्धर्वों एवं किन्नरों के साथ महेन्द्र आदि देवता भी आये थे ॥६९-७०॥ मेरे पिता महाराज दशरथ भी स्वर्गलोक से आये थे । उनको अप्सराओं तथा विद्याधरों के समूह घेरे हुए थे ॥७१॥ उन सबों के सामने ही जानकी की शुद्रि चाहने वाले मैंने सीता को अग्नि में शुद्धि के लिए प्रवेश कराया और वह शुद्ध निकली ॥७२॥ लङ्का के स्वामी देवताओं ने इस बात को देखा और अपने पिताश्री के आदेश से मैंने उसे (सीता को) स्वीकार किया । उसके बाद महाराज ने कहा— पुत्र अब अयोध्या जाओ ॥७३॥ हे राघव ! तुम्हारे बिना मुझको स्वर्ग प्रिय नहीं है । हे पुत्र ! तुमने मुझे तार दिया और मैं इन्द्र लोक में गया हूँ ॥७४॥ लक्ष्मण को महाराज ने कहा— हे पुत्र तुमने पुण्य कमाया है । अतएव तुम अपने भाई के साथ दिव्य लोकों को प्राप्त करोगें ॥७५॥ जानकी को बुलाकर महाराज ने कहा हे सुव्रते ! तुम्हें अपने पति के प्रति क्रोध नहीं करना चाहिए ॥७६॥ हे सुन्दर नेत्रों वाली ! इससे तुम्हारे पति का शुभ्र यश फैलेगा । जब श्रीरामजी पुष्पक पर बैठकर इस तरह से बातें कर रहे थे ॥७७॥ उसी समय वहाँ जो श्रेष्ठ राक्षस थे वे शीघ्र जाकर विभीषण को वतलाये कि श्रीरामचन्द्रजी आये हैं ओर उनके साथ सुग्रीव भी हैं ॥७८॥ विभीषण ने जब यह सुना कि

विभीषणस्तु तच्छ्रुत्वा रामागमनमंतिके। चारां स्तान्पूजयामास सर्वकामधनादिभिः ॥७९॥
अलंकृत्य पुरीं तां तु निष्क्रान्तः सचिवैः सह। दृष्ट्वा राम विमानस्थं मेराविवदिवाकरम् ॥८०॥
अष्टाङ्गप्रणिपातेन नत्वा राघवमब्रवीत्। अद्यमे सफलं जन्म प्राप्ताः सर्वे मनोरथाः ॥८१॥
यद्दृष्टौ देवचरणौ जगद्वंद्यावनिंदितौ। कृतः श्लाध्योस्म्यहं देव शक्रादीनां दिवौकसाम्॥८२॥
आत्मानमधिकं मन्ये त्रिदशेशात्पुरंदरात्। रावणस्य गृहे दीप्ते सर्वरत्नोपशोभिते ॥८३॥
उपविष्टे तु काकुत्स्थे अर्घं दत्वा विभीषणः। उवाच प्रांजलिर्भूत्वा सुग्रीवं भरतं तथा ॥८४॥
इहागतस्य रामस्य यद्दास्ये न तदस्तिमे। इयं च लंका रामेण रिपुं त्रैलोक्यकंटकम् ॥८५॥
हत्वा तु पापकर्माणं दत्ता पूर्वं पुरीं मम। इयं पुरी इमे दारा अमी पुत्रास्तथाह्यहम्॥८६॥
सर्वमेतन्मयादत्तं सर्वमक्षयमस्तु ते। ततः प्रकृतयः सर्वा लंकावासिजनाश्च ये ॥८७॥
आजग्मूराघवं द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः। उक्तो विभीषणस्तैस्तु रामं दर्शय नःप्रभो ॥८८॥
विभीषणेन कथिता राघवाय महात्मने। तेषामुपायनं सर्वं भरतो रामचोदितः ॥८९॥
जग्राह वानरेन्द्रश्च धनरत्नौघसंचयम्। एवं तत्र त्र्यहं रामो ह्यवसद्राक्षसालये ॥९०॥
चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते रामे चापि सभा स्थिते। केकसी पुत्रमाहेदं रामं द्रक्ष्यामि पुत्रक ॥९१॥
दृष्टे तस्मिन्महत्पुण्यं प्राप्यते मुनिसत्तमैः। विष्णुरेष महाभागश्चतुर्मूर्तिस्सनातनः ॥९२॥
सीतालक्ष्मीर्महाभाग न बुद्धा साग्रजेन ते। पित्रा ते पूर्वमाख्यातं देवानां दिवि संगमे॥९३॥
कुले रघूणां वै विष्णुः पुत्रो दशरथस्य तु। भविष्यति विनाशाय दशग्रीवस्य रक्षसः॥९४॥

श्रीरामचन्द्रजी सन्निकट आ गये हैं उन्होंने दूतों को धन इत्यादि देकर सन्तुष्ट किया और उन सबों की कामनाएँ पूर्ण कीं ॥७९॥ लङ्कापुरी को अलंकृत करके वे मन्त्रियों के साथ बाहर निकले और उन्होंने विमान पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी को उसी तरह देखा जैसे सुमेरु पर्वत पर सूर्य विद्यमान हों ॥८०॥ उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो गये ॥८१॥ क्योंकि आज मैंने आपके जगद्वन्द्य पवित्र चरणों का दर्शन किया है। हे देव ! मैं आज इन्द्र इत्यादि देवताओं के लिए भी प्रशंसनीय हो गया हूँ ॥८२॥ मैं देवताओ के स्वामी इन्द्र से भी अधिक अपने को मानता हूँ। सभी रत्नों से सुशोभित रावण के जले हुए भवन में श्रीरामचन्द्रजी के बैठ जाने पर विभीषणजी अपना आधा आसन देकर सुग्रीव तथा भरतजी से हाथ जोड़कर कहे ॥८३-८४॥ यहाँ पर आये हुए श्रीरामचन्द्रजी के दासभूत मेरी यह लङ्का है। श्रीरामचन्द्रजी ने त्रैलोक्य के शत्रु पापी रावण को मारकर मुझे इस नगरी को प्रदान किया है। यह नगरी, ये स्त्रियाँ, ये पुत्र तथा मैं स्वयम् ॥८५-८६॥ इन सारी वस्तुओं को इन्हें प्रदान करता हूँ, ये सारी वस्तुएँ आपके अक्षय बनी रहें। उसके बाद सारी प्रजा तथा सभी लङ्कावासी ॥८७॥ कौतूहल वशात् श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने के लिए आये और विभीषण से कहे हे प्रभो ! हमे रामजी का दर्शन कराइये ॥८८॥ विभीषण के कहने से श्रीरामचन्द्रजी के लिए लाये गये उपहार को श्रीरामजी के द्वारा प्रेरित होकर भतरजी ने ॥८९॥ तथा सुग्रीव ने धन तथा रत्न समूह को स्वीकार किया। इस तरह श्रीरामचन्द्रजी रावण के घर में तीन दिन तक निवास किए ॥९०॥ चौथे दिन जब श्रीरामचन्द्रजी भी सभा में बैठे थे, उस समय कैकसी ने अपने पुत्र विभीषण से कहा— हे पुत्र ! मैं श्रीराम का दर्शन करूँगी ॥९१॥ उनका दर्शन करके श्रेष्ठ मुनिजन महान् पुण्य को प्राप्त करते हैं। ये सनातन चतुर्मूति विष्णु हैं ॥९२॥ सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। इस बात को तुम्हारा बड़ा भाई नहीं जान सका। जब स्वर्गलोक में देव सभा हुयी उस समय तुम्हारे पिता ने

विभीषण उवाच

एवं कुरुष्व वै मातर्गृहाण नवमंबरम् । पात्रं चंदनसंयुक्तं दधिक्षौद्राक्षतैः सह ॥९५॥
दूर्वयार्घ सह कुरु राजपुत्रस्य दर्शनम् । सरमामग्रतः कृत्वा याश्चान्यदेवकन्यकाः ॥९६॥
व्रजस्व राघवाभ्याशं तस्मादग्रे वजाम्यहम् । एवमुक्त्वा गतं रक्षो यत्र रामो व्यवस्थितः ॥९७॥
उत्सार्य दानवान् सर्वान् रामं द्रष्टुं समागतान् । सभां तां विमलां कृत्वा रामं स्वाभिमुखे स्थितम् ॥९८॥

विभिषण उवाच

विज्ञाप्यं शृणु मे देव वदतश्च विशांपते । दशग्रीवं कुंभकर्णं या च मां चाप्यजीजनत् ॥९९॥
इयं सा देव माता नः पादौ ते द्रष्टुमिच्छति । तस्यास्तु त्वं कृपां कृत्वा दर्शनं दातुमर्हसि ॥१००॥

राम उवाच

अहं तस्याः समीपं तु मातृदर्शनकांक्षया । गमिष्ये राक्षसेंद्र त्वं शीघ्रं याहि ममाग्रतः ॥१०१॥
प्रतिज्ञाय तु तं वाक्यमुत्तस्थौ च वरासनात् । मूर्ध्नि चांजलिमाधाय प्रणाममकरोद्विभुः ॥१०२॥
अभिवादयेहं भवतीं माता भवसि धर्मतः । महता तपसा चापि पुण्येन विविधेन च ॥१०३॥
इमौ ते चरणौ देवि मानवो यदि पश्यति । पूर्णस्स्यात्तदहं प्रीतो दृष्ट्वेमौ पुत्रवत्सले ॥१०४॥
कौसल्या मे यथा माता भवती च तथा मम । केकसी चाब्रवीद्रामं चिरंजीव सुखी भव ॥१०५॥
भर्त्रा मे कथितं वीर विष्णुर्मानुषरूपधृत् । अवतीर्णो रघुकुले हितार्थे त्रिदिवौकसाम् ॥१०६॥
दशग्रीवविनाशाय भूतिं दातुं विभीषणे । वालिनो निधनं चैव सेतुबंधं च सागरे ॥१०७॥

कहा था ॥९३॥ रघुवंशियों के वंश में दशरथ पुत्र विष्णु राक्षसराज रावण का विनाश करेंगे ॥९४॥ **विभीषण ने कहा—** हे माँ ऐसा करो कि नवीन वस्त्र लेकर दधि, मधु तथा अक्षत के साथ चन्दन युक्त पात्र में दूर्वा युक्त अर्घ्य के साथ श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करो । सरमा को आगे कर लो, जितनी भी देव कन्यायें हैं उन सबों के साथ श्रीरामचन्द्रजी के पास जाओ । मैं सबों के आगे चलूँगा । इस तरह से कहकर विभीषणजी श्रीरामजी के पास गये॥९५-९६॥ श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने के लिए आये हुए सभी दानवों को हटाकर, उस सभा को स्वच्छ बनाकर सामने बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी से ॥९८॥ **विभीषण ने कहा—** हे देव ! हे राज़न् ! आप मेरी बातों को सुनें । जिसने रावण, कुम्भकर्ण तथा मुझको जन्म दिया ॥९९॥ वह हमारी माता आपके चरणों का दर्शन करना चाहती है । अतएव कृपा करके आप उसे दर्शन दें ॥१००॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** हे राक्षसेन्द्र ! मैं उसका दर्शन करने के लिए स्वयं उसके पास चलूँगा और आप मेरे आगे-अगे चलें ॥१०१॥ कैंकसी की बातों को जानकर श्रीरामचन्द्रज़ी उस श्रेष्ठ आसन से उठ कर खड़े हो गये और अपनी अञ्जलि को शिर से लगाकर भगवान् श्रीराम ने कैंकसी को प्रणाम किया ॥१०२॥ उन्होंने कहा— मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप मेरी धर्म की माता हैं; क्योंकि आपने अत्यधिक तपस्या की है, और अनेक प्रकार के पुण्यों को आपने अर्जित किया है ॥१०३॥ यदि आपके इन दोनों चरणों का कोई मनुष्य दर्शन करता है, तो वह पूर्ण हो जाय । हे पुत्रवत्सले ! मैं आपके चरणों का दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥१०४॥ जिस तरह कौसल्या मेरी माता हैं, उसी तरह आप भी मेरी माता हैं । कैकसी ने कहा— तुम चिरंजीवी और सुखी होओ ॥१०५॥ मेरे पति ने कहा था कि देवताओं का कल्याण करने के लिए रघुकुल में भगवान् विष्णु मनुष्य रूप से अवतीर्ण हुए हैं ॥१०६॥ वे रावण का विनाश करेंगे तथा विभीषण को ऐश्वर्य प्रदान करेंगे । वे बाली को मारेंगे और समुद्र पर सेतु बनायेंगे ॥१०७॥ इन समस्त कार्यों को महाराज दशरथ

पुत्रो दशरथस्यैव सर्वं स च करिष्यति। इदानीं त्वं मया ज्ञातः स्मृत्वा तद्भर्तृ भाषितम्॥१०८॥
सीतालक्ष्मी र्भवान्विष्णुर्देवा वै वानरास्तथा । गृहं पुत्र गमिष्यामि स्थिरकीर्तिमवाप्नुहि ॥१०९॥

सरमोवाच

इहैव वत्सरं पूर्णमशोकवानिकास्थिता । सेविता जानकी देवी सुखं तिष्ठति ते प्रिया॥११०॥
नित्यं स्मरामि वै पादौ सीतायास्तु परंतप । कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं चिंतयाना त्वहर्निशम्॥१११॥
किमर्थं देवदेवेन नानीता जानकीत्विह। एकाकी नैव शोभेथा योषिता च तया बिना॥११२॥
समीपे शोभते सीता त्वं च तस्याः परंतप। एवं ब्रुवन्त्यां भरतः केयमित्यब्रवीद्वचः ॥११३॥
ततश्चेंगितविद्रामो भरतं प्राह सत्वरम् । विभीषणस्य भार्या वै सरमा नामनामतः॥११४॥
प्रिया सखी महाभागा सीतायास्सुदृढं मता । सर्वं कालकृतं पश्य न जाने किं करिष्यति॥११५॥
गच्छत्वं सुभगे भर्तृगेहं पालय शोभने । मां त्यक्त्वा हि गता देवी भाग्यहीनं गतिर्यथा॥११६॥
तया विरहितः सुभ्रु रतिं विंदे न कर्हिचित् । शून्या एव दिशः सर्वाः पश्यामीह पुनर्भ्रमन् ॥११७॥
विसृज्य तां च सरमां सीतायास्तु प्रियां सखीम्। गतायामथ केकस्यां रामः प्राह विभीषणम्॥११८॥
दैवतेभ्यः प्रियं कार्यं नापराध्यास्त्वया सुराः। आज्ञया राजराजस्य वर्तितव्यं त्वयानघ ॥११९॥
लंकायां मानुषो यो वै समागच्छेत्कथंचन। राक्षसैर्न च हंतव्यो द्रष्टव्योऽसौ यथात्वहम्॥१२०॥

विभीषण उवाच

आज्ञयाहं नरव्याघ्र करिष्ये सर्वमेव तु । बिभीषणे हि वदति वायू राममुवाच ह ॥१२१॥
इहास्ति वैष्णवी मूर्तिः पूर्वं बद्धो बलिर्यया। तां नयस्व महाभागे कान्यकुब्जे प्रतिष्ठय ॥१२२॥

के पुत्र ही करेंगे, अपने पति की बातों को स्मरण करके मैंने अब आपको जान लिया है ॥१०८॥ सीताजी लक्ष्मी हैं, आप विष्णु हैं तथा सभी वानर देवगण हैं। हे पुत्र ! मैं अपने घर जाऊँगी, तुम स्थिर कीर्ति को प्राप्त करो ॥१०९॥ **सरमा ने कहा—** यहीं पर अशोक वाटिका में एक वर्ष तक रहने वाली, जानकी देवी की मैंने सेवा की है, वे सीताजी सुख पूर्वक हैं न ॥११०॥ हे परंतप ! मैं सदैव सीताजी के चरणों का स्मरण करती हूँ, मैं सदा यही सोचती हूँ कि सीताजी का न जाने कब दर्शन कर पाऊँगी ॥१११॥ आप अपने साथ जानकी देवी को क्यों नहीं लाये ? अपनी पत्नी के बिना अपकी अकेले शोभा नहीं हो पा रही है ॥११२॥ आपके सन्निकट में रहकर सीताजी सुशोभित होती हैं और आप उनके साथ सुशोभित होते हैं। इस तरह से सरमा के कहते समय भरतजी ने पूछा ये कौन है?॥११३॥ उसके बाद इशारे को जानने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने भरतजी से कहा, ये विभीषणजी की पत्नी सरमा हैं॥११४॥ ये महाभागा सीता की स्निग्ध सखी हैं। भगवान् श्रीराम ने कहा— सबकुछ कालजन्य देखो वह न जाने क्या करने वाला है ?॥११५॥ हे सुभगे ! तुम अपने घर जाओ, अपने पति के घर का पालन करो, वे देवी मुझको छोड़कर भाग्यहीन की गति के समान चली गयीं ॥११६॥ हे सुभ्रु ! सीता के बिना मुझें कहीं भी सुख नहीं मिलता है। घूमता हुआ मैं तो सारी दिशाओं को शून्य सा देखता हूँ ॥११७॥ सीता की प्रिय सखी सरमा को विदा करके तथा कैकसी के चले जाने पर श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण से कहा ॥११८॥ तुम सदा देवताओं का प्रिय कार्य करना, तुम कभी देवताओं का अपराध नहीं करना हे अनघ ! राज-राज की आज्ञा का सदा पालन करना ॥११९॥ लङ्का में यदि कोई मनुष्य आता है तो उसे राक्षसों को नहीं मारना चाहिए, उसको मेरे ही समान देखना चाहिए ॥१२०॥ **विभीषण ने कहा—** हे नरव्याघ्र मैं आपकी आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करूँगा। जिस समय विभीषण बोल रहे

विदित्वा तदभिप्रायं वायुना समुदाहतम् । विभीषणस्त्वलंकृत्य रत्नैः सर्वैश्च वामनम्॥१२३॥
आनीय चार्पयद्रामे वाक्यं चेदमुवाच ह । यदा वै निर्जितः शक्रो मेघनादेन राघव॥१२४॥
तदा वै वामनस्त्वेष आनीतो जलजेक्षण । नयस्व तमिमं देव देवदेवं प्रतिष्ठय ॥१२५॥
तथेति राघवः कृत्वा पुष्पकं च समारुहत् । धनं रत्नमसंख्येयं वामनं च सुरोत्तमम्॥१२६॥
गृह्यसुग्रीवभरतावारूढौ वामनादनु । व्रजन्नेवांबरे रामस्तिष्ठेत्याहविभीषणम् ॥१२७॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा भूयोप्याह सराघवम् । करिष्ये सर्वमेतद्धि यदाज्ञप्तं विभो त्वया॥१२८॥
सेतुनानेन राजेंद्रपृथिव्यां सर्वमानवाः । आगत्य प्रतिबाधेरन्नाज्ञा भंगो भवेत्तव ॥१२९॥
कोऽत्रमे नियमो देव किन्नुकार्यं मया विभो । श्रुत्वैतद्राघवो वाक्यं राक्षसोत्तमभाषितम् ।१३०॥
कार्मुकं गृह्यहस्तेन रामः सेतुं द्विधाच्छिनत् । त्रिर्विभज्य च वेगेन मध्ये वै दशयोजनम् ॥१३१॥
छित्त्वा तु योजनं चैकमेकं खंडत्रयं कृतम् । वेलावनं समासाद्य रामः पूजां रमापतेः ॥१३२॥
कृत्वा रामेश्वरं नाम्ना देवदेवं जनार्दनम् । अभिषिच्याथ संगृह्य वामनं रघुनंदनः॥१३३॥
दक्षिणादुदधेश्चैव निर्जगामत्वरान्वितः । अंतरिक्षादभूद्वाणी मेघगंभीरनिःस्वना ॥१३४॥

रुद्र उवाच

भो भो रामास्तुभद्रं ते स्थितोहमिह सांप्रतम्। यावज्जगदिदं राम यावदेषा धरास्थिता॥१३५॥
तावदेव च ते सेतुतीर्थं स्थास्यति राघव । श्रुत्वैवं देवदेवस्य गिरं याममृतोपमाम्॥१३६॥

थे उसी समय वायु देवता ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥१२१॥ जिसने प्राचीनकाल में बलि को बाँध दिया था उन भगवान् वामन की यहाँ मूर्ति है, हे महाभाग ! उसे आप ले चलें और कान्यकुब्ज में उसकी प्रतिष्ठा करें ॥१२२॥ वायु के अभिप्राय को जानकर विभीषण ने भगवान् वामन की मूर्ति को सभी रत्नों से अलंकृत करके ॥१२३॥ लाये और श्रीरामचन्द्रजी को प्रदान करके कहे हे राघव ! जब मेघनाद ने इन्द्र को जीत लिया ॥१२४॥ उसी समय वह इस मूर्ति को लाया था । हे देव ! आप इस भगवान की मूर्ति को प्रतिष्ठित करें ॥१२५॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— ठीक है, और वे पुष्पक विमान पर बैठ गये । वामन भगवान् के पश्चात् भरतजी तथा सुग्रीव असंख्य सम्पत्ति तथा रत्नों को लेकर उस विमान पर बैठ गये । आकाश में जाते हुए श्रीराम ने विभीषण से कहा— तुम ठहरो ॥१२७॥ श्रीराम की वाणी को सुनकर विभीषण ने फिर कहा— हे विभो ! आपने जो आज्ञा दी है, मैं उन सारे कार्यों को करूँगा ॥१२८॥ हे राजेन्द्र ! पृथिवी के सभी मानव इस सेतु के माध्यम से आकर बाधा उपस्थित करेंगे और उसके कारण आपकी आज्ञा का उल्लंघन होगा ॥१२९॥ हे देव ! इसके विषय में मेरा कौन सा नियम होगा तथा मुझे क्या करना चाहिए ? विभीषण की बातों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ॥१३०॥ हाथ में धनुष उठाकर सेतु को दो भागों में तोड़ दिये । फिर वेग पूर्वक उन्होंने बीच के दश योजन को तीन भागों में विभक्त कर दिया ॥१३१॥ उसके बाद एक योजन को तोड़कर एक टूकड़े को तीन बना दिया । इसके बाद वेला वन में आकर भगवान् विष्णु की वे पूजा किए ॥१३२॥ वहाँ उन्होंने शङ्करजी का नाम रामेश्वर रखा इसके बाद उन्होंने वामन भगवान् का अभिषेक किया॥१३३॥ श्रीरामचन्द्रजी दक्षिण समुद्र से शीघ्रता पूर्वक बाहर निकले उसी समय अंतरिक्ष से मेघ के समान गम्भीर वाणी में आकाशवाणी हुयी ॥१३४॥ **रुद्र ने कहा**— हे श्रीराम ! आपका कल्याण हो । मैं यहाँ पर स्थित हूँ । जब तक यह जगत् रहेगा तथा जब तक पृथिवी रहेगी ॥१३५॥ तव तक आपका यह सेतु तीर्थ बना रहेगा । भगवान् शङ्कर की अमृत के समान वाणी को सुनकर ॥१३६॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे भक्तों को अभय बनाने

राम उवाच

नमस्ते देवदेवेश भक्तानामभयंकर। गौरीकांतनमस्तुभ्यं दक्षयज्ञविनाशन ॥१३७॥
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये नित्यं चोग्राय च कपर्दिने ॥१३८॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय दिशांपते। ईशानाय भगघ्नाय नमोस्त्वंधकघातिने॥१३९॥
नीलग्रीवाय घोराय वेधसे वेधसास्तुत। कुमारशत्रुनिघ्नाय कुमारजननाय च॥१४०॥
विलोहिताय धूम्राय शिवाय क्रथनाय च। नमोनीलशिखंडाय शूलिने दैत्यनाशिने॥१४१॥
उग्राय च त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे। अनिंद्यायांबिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥१४२॥
अभिगम्याय काम्याय सद्योजाताय वै नमः। वृषध्वजाय मुंडाय जटिने ब्रह्मचारिणे ॥१४३॥
तप्यमानाय तप्याय ब्रह्मण्याय जयाय च। विश्वात्मने विश्वसृज विश्वमावृत्यतिष्ठते॥१४४॥
नमो नमोस्तु दिव्याय प्रपन्नार्तिहराय च। भक्तानुकंपिने देव विश्वतेजो मनोगते ॥१४५॥

पुलस्त्य उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु देवदेवो हरो नृप। उवाच राघवं वाक्यं भक्तिनम्रं पुरा स्थितम् ॥१४६॥

रुद्र उवाच

भो भो राघव भद्रं ते ब्रूहि यत्ते मनोगतम्। भवान्नारायणो नूनं गूढो मानुषयोनिषु ॥१४७॥
अवतीर्णो देवकार्यं कृतं तच्चानघ त्वया। इदानीं स्वं व्रजस्थानं कृतकार्योसि शत्रुहन् ॥१४८॥
त्वया कृतं परं तीर्थं सेत्वाख्यं रघुनंदन। आगत्य मानवा राजन्पश्येयुरिह सागरे ॥१४९॥
महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विलीयते। ब्रह्मवध्यादिपापानि यानि कष्टानि कानिचित्॥१५०॥

वाले देवदेवेश आपको नमस्कार है। हे दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले गौरीकान्त ! आप को नमस्कार है॥१३७॥ भव, शङ्कर, शर्व, रुद्र तथा वरद को नमस्कार है। पशुपति, उग्र तथा कपर्दी को नित्य ही मेरा नमस्कार है ॥१३८॥ महादेव, त्र्यम्बक तथा दिशाओं के स्वामी ईशान, भगघ्न तथा अंधकासुर का विनाश करने वाले शिवजी को नमस्कार है ॥१३९॥ नीलग्रीव, घोर, ब्रह्माजी जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे बेधस, कुमार (कार्तिकेय) के शत्रु को मारने वाले, तथा कुमार को उत्पन्न करने वाले शङ्करजी को नमस्कार है ॥१४०॥ विलोहित, धूम्र, शिव, क्रथन, नीलशिखण्ड, शूलधारी तथा दैत्यों का विनाश करने वाले शिवजी को नमस्कार है ॥१४१॥ उग्र, त्रिनेत्र, हिरण्यवसु तथा हिरण्यरेता शिवजी को नमस्कार है। अनिन्द्य, अम्बिकापति तथा सभी देवता जिनकी स्तुति किए हैं, ऐसे शङ्करजी को नमस्कार है ॥१४२॥ अभिगम्य, काम्य तथा सद्योजात को नमस्कार है। वृषध्वज, मुण्ड, जटिल तथा ब्रह्मचारी शङ्करजी को नमस्कार है ॥१४३॥ तप्यमान, तप्य, ब्रह्मण्य, जय, विश्वात्मा, विश्वसह तथा विश्वव्यापक शिवजी को नमस्कार है ॥१४४॥ दिव्य, शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले, भक्तों पर कृपा करने वाले, विश्वतेज स्वरूप, मन के समान गति वाले शिवजी को नमस्कार है ॥१४५॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इसतरह से स्तुति किए जाते हुए देवाराध्य भगवान् शङ्करजी ने भक्ति पूर्वक सामने खड़े भगवान् श्रीराम से कहा॥१४६॥ **रुद्र ने कहा—** हे राघव ! आपका कल्याण हो, आपके मन में जो हो आप कहिए। निश्चित रूप से इस मनुष्य रूप में छिपे हुए आप नारायण हैं ॥१४७॥ हे अनघ ! अवतार ग्रहण करके आपने देवताओं का कार्य किया। अब आप अपने स्थान पर जाइये, हे शत्रुओं के विनाशक आपने अपना कार्य कर लिया है ॥१४८॥ हे रघुनंदन! आपने श्रेष्ठतीर्थ सेतुबन्ध का निर्माण किया है। जो लोग यहाँ समुद्र तट पर आकर इसका दर्शन करेंगे॥१४९॥

दर्शनादेव नश्यंति नात्र कार्या विचारणा । गच्छ त्वं वामनं स्थाप्य गंगातीरे रघुत्तम ॥१५१॥
पृथिव्यां सर्वशः कृत्वा भागानष्टौ परंतप । श्वेतद्वीपं स्वकं स्थानं व्रज देव नमोस्तुते ॥१५२॥
प्रणिपत्य ततो रामस्तीर्थं प्राप्तश्च पुष्करम् । विमानं तु न यात्यूर्ध्वं वेष्टितं तत्तु राघवः ॥१५३॥
किमिदं वेष्टितं यानं निरालंबेऽम्बरे स्थितम् । भवितव्यं कारणेन पश्येत्याह स्म वानरम् ॥१५४॥
सुग्रीवो रामवचनादवतीर्यधरातले । स च पश्यति ब्रह्माणं सुरसिद्धसमन्वितम् ॥१५५॥
ब्रह्मर्षिसङ्घसहितं चतुर्वेदसमन्वितम् । दृष्ट्वा गत्याब्रवीद्रामं सर्वलोकपितामहः ॥१५६॥
सहितोलोकपालैश्च वस्वादित्यमरुद्गणैः । तं देवं पुष्पकं नैव लंघयोद्धि पितामहम् ॥१५७॥
अवतीर्य ततो रामः पुष्पकाद्धेमभूषितात् । नत्वा विरिंचनं देवं गायत्र्या सह संस्थितम् ॥१५८॥
अष्टांगप्रणिपातेन पंचांगलिंगितावनिः । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं विरिंचनम् ॥१५९॥

राम उवाच

नमामि लोककर्तारं प्रजापतिसुरार्चितम् । देवनाथं लोकनाथं प्रजानाथं जगत्पतिम् ॥१६०॥
नमस्ते देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत । भूतभव्यभवन्नाथ हरिपिंगललोचन ॥१६१॥
बालस्त्वं वृद्धरूपी च मृगचर्मासनांबरः । तारणश्चासि देवस्त्वं त्रैलोक्यप्रभुरीश्वरः ॥१६२॥
हिरण्यगर्भ पद्मगर्भ वेदगर्भस्मृतिप्रद । महासिद्धो महापद्मी महादंडी च मेखली ॥१६३॥

वे लोग यदि महापापी भी होंगे तो उनके भी पाप विनष्ट हो जायेंगे । कष्ट प्रदान करने वाले ब्रह्महत्या इत्यादि पाप हैं॥१५०॥ वे सभी पाप इस सेतुबन्ध तीर्थ का दर्शन करने से नष्ट हो जायेंगे, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । आप जाइये, गङ्गा के तट पर वामन की स्थापना करके ॥१५१॥ सम्पूर्ण पृथिवी को आठ भागों में विभक्त करके आप अपने स्थान श्वेतद्वीप में चले जायँ । हे देव, आपको नमस्कार हैं ॥१५२॥ उसके बाद भगवान् श्रीराम शङ्करजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करके पुष्कर तीर्थ में आये । किन्तु पुष्कर तीर्थ के वेष्टित होने के कारण उसके ऊपर से वह विमान आगे नहीं जा रहा था ॥१५३॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा क्या कारण है कि इस आधार हीन आकाश में विमान वेष्टित (स्तम्भित) क्यों हो गया ? उन्होंने उसका कारण जानने के लिए सुग्रीव से कहा ॥१५४॥ श्रीरामचन्द्रजी की बात सुनकर सुग्रीव पृथिवी पर उतर कर पृथिवी पर विद्यमान देवताओं तथा सिद्धों के साथ ब्रह्माजी को देखे ॥१५५॥ उनके साथ महर्षियों का समूह तथा चारो वेद थे, यह देखकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी को बतलाये की सम्पूर्ण लोकों के पितामह ॥१५६॥ ब्रह्माजी लोकपालों, वसुओं, आदित्यों तथा मरुद्गणों के साथ नीचे विद्यमान हैं। अतएव यह पुष्पक ब्रह्माजी को नहीं लांघ सकता है ॥१५७॥ उसके बाद सुवर्ण मण्डित पुष्पक विमान से उतरकर गायत्री देवी के साथ विद्यमान ब्रह्माजी को नमस्कार करके ॥१५६-१५७॥ जिसमें (शिर, हृदय, पैर, हाथ और घुटने) पृथिवी से सट गये थे इसतरह से साष्टाङ्ग प्रणाम करके श्रीरामजी नम्र होकर देवाराध्य ब्रह्माजी की स्तुति किए ॥१५९॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— देवताओं से पूजित लोककर्ता प्रजापति ब्रह्माजी को मैं नमस्कार करता हूँ। हे देवताओं के स्वामी लोकों के स्वामी, प्रजाओं के स्वामी तथा जगत् के स्वामी ब्रह्माजी मैं नमस्कार करता हूँ । हे देवदेवेश, हे सुरासुर नमस्कृत, भूत भविष्य तथा वर्तमान के स्वामी, हरित तथा पीत नेत्र वाले ॥१६१॥ ब्रह्माजी आप बालरूप तथा बृद्ध रूप वाले हैं । मृगचर्म ही आपका आसन और वस्त्र है । आप उद्धार करने वाले देवता त्रैलोक्य के स्वामी तथा ईश्वर है ॥१६२॥ हिरण्यगर्भ, पद्मगर्भ, वेदगर्भ तथा स्मृति प्रदान करने वाले ब्रह्माजी आप महासिद्ध, महापद्मी, महादण्डी तथा मेखला धारण करने वाले हैं ॥१६३॥ आप काल स्वरूप, काल शरीरक,

कालश्च कामरूपीच नीलग्रीवो विदांवरः । वेदकर्तार्भको नित्यः पशूनां पतिरव्ययः ॥१६४॥
दर्भपाणि हँसकेतुः कर्ता हर्ता हरो हरिः। जटी मुंडी शिखी दंडी लगुडी च महायशाः॥१६५॥
भूतेश्वरः सुराध्यक्षः सर्वात्मा सर्वभावनः । सर्वगः सर्वहारी च स्रष्टा च गुरुरव्ययः ॥१६६॥
कमंडलुधरो देवः स्रुक्स्रुवादिधरस्तथा। हवनीयोर्चनीयश्च ओंकारो ज्येष्ठसामगः ॥१६७॥
मृत्युश्चैवामृतश्चैव पारियात्रश्च सुव्रतः । ब्रह्मचारीव्रतधरो गुहावासी सुपङ्कजः ॥१६८॥
अमरोदर्शनीयश्च बालसूर्यनिभस्तथा । दक्षिणे वामतश्चापि पत्नीभ्यामुपसेवितः ॥१६९॥
भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च त्रिजटी लब्धनिश्चयः । चित्तवृत्तिकरः कामो मधुर्मधुकरस्तथा ॥१७०॥
वानप्रस्थो वनगत आश्रमी पूजितस्तथा । जगद्धाता च कर्त्ता च पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः॥१७१॥
धर्माध्यक्षो विरूपाक्षस्त्रिधर्मो भूतभावनः । त्रिवेदो बहुरूपश्च सूर्यायुतसमप्रभः ॥१७२॥
मोहको बंधकश्चैव दानवानां विशेषतः । देवदेवश्च पद्माङ्कस्त्रिनेत्रोब्जजटस्तथा ॥१७३॥
हरिश्मश्रु र्धनुर्धारी भीमो धर्मपराक्रमः । एवं स्तुतस्तु रामेण ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः ॥१७४॥
उवाच प्रणतं रामं करे गृह्यपितामहः। विष्णुस्त्वं मानुषे देहेऽवतीर्णो वसुधातले ॥१७५॥
कृतं तद्भवता सर्वं देवकार्यं महाविभो । संस्थाप्य वामनं देवं जाह्नव्या दक्षिणे तटे॥१७६॥
अयोध्यां स्वपुरीं गत्वा सुरलोकं व्रजस्व च । विसृष्टे ब्रह्मणा रामः प्रणिपत्य पितामहम् ॥१७७॥
आरूढः पुष्पकं यानं संप्राप्तो मधुरां पुरीम्। समीक्ष्य पुत्रसहितं शत्रुघ्नं शत्रुघतिनम्॥१७८॥

नीलग्रीव तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ है । आप वेदकर्ता, नित्य ही बाल स्वरूप तथा निर्विकार पशुपति हैं ॥१६४॥ आप हाथ में कुश धारण करने वाले, हंसकेतु, जगत् के कर्ता, हर्ता तथा जगत् का संहार करने वाले हैं । आप महायशस्वी जटी, मुंडी तथा लगुडी हैं ॥१६५॥ आप भूतेश्वर, देवताओं के स्वामी, सबों की आत्मा स्वरूप तथा सर्वात्मा हैं । सर्वत्र व्याप्त, सबों का हरण करने वाले, सृष्टि करने वाले तथा निर्विकार गुरु हैं ॥१६६॥ आप कमण्डलु धारण करने वाले तथा स्रुक् एवं स्रुव धारण करने वाले हैं । आप हवनीय, अर्चनीय, ओंकार स्वरूप तथा ज्येष्ठ साम स्वरूप हैं ॥१६७॥ आप मृत्यु स्वरूप तथा अमृत स्वरूप हैं पारियात्र तथा सुव्रत ब्रह्मचारी, व्रत धारण करने वाले, हृदय गुफा में निवास करने वाले तथा सुन्दर पङ्कज स्वरूप हैं ॥१६८॥ आप अमर, दर्शनीय, बाल सूर्य के समान है । आपके दायें और बायें दोनों ओर आपकी दोनों पत्नियाँ रहती हैं ॥१६९॥ आप भिक्षु, भिक्षुरूप वाले, त्रिजटी तथा निश्चय प्राप्त करने वाले, चित्त में विकार को उत्पन्न करने वाले, काम स्वरूप मधु तथा मधुकर हैं॥१७०॥ आप वानप्रस्थ, वनवासी, आश्रमी तथा सबों से पूजित हैं । जगत् का पालन करने वाले तथा जगत् को रचने वाले तथा ध्रुव, शाश्वत पुरुष हैं ॥१७१॥ आप हरिश्मश्रु, धनुष धारण करने वाले भीम, धर्म तथा पराक्रम स्वरूप हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किये जाने वाले ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ॥१७४॥ विनम्र हुए श्रीरामचन्द्रजी का हाथ पकड़कर उनसे कहे— आप विष्णु हैं और इस पृथिवी पर मनुष्य रूप से अवतीर्ण हुए हैं ॥१७५॥ हे महाविभो ! आपने देवताओं के समस्त कार्यों को कर दिया, गङ्गा नदी के दाहिने तट पर वामन भगवान् की प्रतिष्ठा करके ॥१७६॥ अपनी राजधानी अयोध्या में जाकर देवलोक में चले जाइये । ब्रह्माजी से विदा लेकर भगवान् श्रीरामचन्द्र ने उन्हे साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥१७७॥ उसके बाद पुष्पक विमान पर चढकर वे मथुरा पुरी

तुतोष राघवः श्रीमान् भरतः स हरीश्वरः । शत्रुघ्नो भ्रातरौ प्राप्तौ शक्रोपेन्द्राविवागतौ ॥१७९॥
प्रणिपत्य ततो मूर्ध्ना पंचांगालिंगितावनिः । उत्थाप्य चांकमारोप्य रामो भ्रातरमंजसा ॥१८०॥
भरतश्च ततः पश्चात्सुग्रीवस्तदनंतरम् । उपविष्टोऽथ रामाय सोऽर्घमादायसत्वरम् ॥१८१॥
राज्यं निवेदयामास चाष्टांगं राघवे तदा । श्रुत्वा प्राप्तं ततो रामं सर्वो वै माथुरो जनः॥१८२॥
वर्णा ब्रह्मणभूयिष्ठा द्रष्टुमेनं समागताः । संभाष्य प्रकृतीः सवनिगमान्ब्राह्मणैः सह ॥१८३॥
दिनानि पंचोषित्वाऽत्र रामो गंतुं मनोदधे । शत्रुघ्नश्च ततो रामे वाजिनोथगजांस्तथा॥१८४॥
कृताकृतं च कनकं तत्रोपायनमाहरत् । रामस्त्वाह ततः प्रीतः सर्वमेतन्मया तव ॥१८५॥
दत्तं पुत्रौ तेभिषिञ्च राजानौ माथुरे जने । एवमुक्त्वा ततो रामः प्राप्तो मध्यं दिने रवौ॥१८६॥
महोदयं समासाद्य गङ्गातीरे स वामनम् । प्रतिष्ठाप्य द्विजानाह भाविनः पार्थिवांस्तथा ॥१८७॥
मया कृतोयं धर्मस्य सेतुर्भूतिविवर्धनः । प्राप्ते काले पालनीयो न च लोप्यः कथंचन॥१८८॥
प्रसारितकरेणैवं प्रार्थनैषा मया कृता । नृपाः कृते मयार्थित्वे यत्क्षेमंक्रियतामिह॥१८९॥
नित्यं दैनंदिनी पूजा कार्या सर्वैरतंद्रितैः । ग्रामान्दत्वा धनं तच्च लङ्कायाः आहृतं च यत्॥१९०॥
प्रेषयित्वा च किष्किंधां सुग्रीवं वानरेश्वरम् । अयोध्यामागतो रामः पुष्पकं तमथाब्रवीत्॥१९१॥
नागंतव्यं त्वया भूयस्तिष्ठ यत्र धनेश्वरः । कृतकृत्यस्ततो रामः कर्तव्यं नाप्यमन्यत॥१९२॥

में आये । वहाँ पर वे शत्रुओं का विनाश करने वाले पुत्रों सहित शत्रुघ्नजी से मिले ॥१७८॥ और भरतजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए । इन्द्र एवं उपेन्द्र के समान आये हुए दोनों भाइयों को शत्रुघ्नजी ने पृथिवी पर पड़कर साष्टाङ्ग किया ॥१७९॥ उस समय उनके पाँचों अङ्ग पृथिवी से सट गये थे इसतरह से प्रणाम करते हुए शत्रुघ्नजी को उठाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी उन्हें अपने हृदय से लगा लिये ॥१८०॥ उसके बाद भरतजी ने शत्रुघ्नजी को हृदय से लगाया और उसके पश्चात् सुग्रीवजी के बैठ जाने पर उन्होंने उन्हें शीघ्र ही अर्घ्य प्रदान किया॥१८१॥ तदनन्तर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को अष्टाङ्ग राज्य प्रदान किया । मथुरा के लोगों ने जव यह सुना कि श्रीरामचन्द्रजी आये हैं, तो वे उनका दर्शन करने के लिए आये ॥१८२॥ भगवान् श्रीराम का दर्शन करने आने वालों में ब्राह्मण अधिक थे । भगवान् श्रीराम ने समस्त वैदिक ब्राह्मणों तथा प्रजाओं से बातें की ॥१८३॥ वहाँ पर पाँच दिन रहने के बाद श्रीरामचन्द्रजी जाने का मन बनाये । उसके पश्चात् शत्रुघ्नजी हाथी, घोड़े तथा सुवर्ण भगवान् श्रीराम को उपहार रूप में प्रदान किये । तदनन्तर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम ने कहा— कि तुमने जो कुछ भी दिया है ॥१८४-१८५॥ तुम अपने पुत्रों को अभिषिक्त करो और मैने उसे दोनों पुत्रों तथा मथुरा के लोगों को दे दिया । इसतरह से कहकर रामचन्द्रजी रविवार के दिन दोपहर में ॥१८६॥ वामन भगवान् के साथ गङ्गाजी के तट पर आकर वामन भगवान् की प्रतिष्ठा किए और ब्राह्मणों तथा भविष्यत् कालिक राजाओं से कहे ॥१८७॥ मैंने ऐश्वर्य को बनाने वाले धर्मसेतु का निर्माण किया है । हे राजाओं मैंने जो किया है, उसका आपलोग पालन करेंगे, यही मैं चाहता हूँ ॥१८९॥ सबों को सावधानीपूर्वक प्रतिदिन की पूजा करनी चाहिए । उसके पश्चात् वे जो लङ्का से धन लाये थे उस धन को तथा ग्रामों को श्रीभगवान् ने उन्हें प्रदान किया ॥१९०॥ सुग्रवीजी को किष्किन्धा भेजकर वे अयोध्या आये और पुष्पक विमान से कहे ॥१९१॥ अब तुम मत आना, कुबेर के ही पास रहना । कृतकृत्य होकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने मान लिया कि अब मुझे कुछ भी नहीं करना है ॥१९२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— हे भीष्म !

पुलस्त्य उवाच

एवन्ते भीष्म रामस्य कथायोगेन पार्थिव । उत्पत्तिर्वामनस्योक्ता किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१९३॥
कथयामि तु तत्सर्वं यत्र कौतूहलं नृप । सर्वं तेकीर्त्तयिष्यामि येनार्थी नृपनंदन ॥१९४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे वामनप्रतिष्ठानामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

उनतालिसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

कथितं वामनस्यैव माहात्म्यं विस्तरेण वै। पुनस्तस्यैव माहात्म्यमन्यद्विष्णोरतो वद ॥१॥
पद्मं कथमभूद्देव नाभौ येनाभवज्जगत् । कथं च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्ये भवत् पुरा॥२॥
कथं पाद्मे महाकल्पेऽभवत्पद्ममयं जगत् । जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जलानुगम्॥३॥
प्रभावं पद्मनाभस्य स्वपतः सागरांभसि। पुष्करे तु कथं जाता देवा ऋषिगणाःपुरा ॥४॥
एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदां पते । कथं निर्मितवांस्तत्र चैतं लोकं सनातनम् ॥५॥
कथमेकार्णवे शून्ये नष्टे स्थावरजंगमे । भूगोलके प्रदग्धेतु प्रणष्टोरगराक्षसे ॥६॥
नष्टानलानिलाकाशे नष्टधर्मे महीतले । केवले गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥७॥

रामकथा के प्रसङ्ग में मैंने तुम्हें वामनोत्पत्ति की कथा बतलायी अब क्या सुनना चाहते हो ?॥१९३॥ हे राजन् ! आपको जिस विषय में उत्कण्ठा हो उसे मैं बतलाऊँगा ॥१९४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड का वामनप्रतिष्ठावर्णन नामक अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३८।।

भीष्म का भगवान् विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति विषयक प्रश्न, पुलस्त्य महर्षि द्वारा सृष्टि वर्णन के प्रसङ्ग में युगों तथा युग सन्धि आदि का एवं युगधर्म का वर्णन, भगवान् के मुख में प्रविष्ट मर्कण्डेय महर्षि द्वारा भगवान् के उदर में प्रपंच का दर्शन, परमेश्वर से पद्म की उत्पत्ति

भीष्मजी ने कहा— आपने मुझे भगवान् वामन के माहात्म्य को विस्तार से बतलाया अतएव आप भगवान् विष्णु के ही माहात्म्य को विस्तार से बतलायें ॥१॥ भगवान् विष्णु की नाभि में पद्म कैसे उत्पन्न हुआ ? और उस कमल से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुयी और पाद्मकल्प में वैष्णवी सृष्टि कैसे हुयी ?॥२॥ पद्म नामक कल्प में जगत् पद्ममय कैसे हो गया । जल सागर में विद्यमान भगवान् की नाभि में जलज कैसे उत्पन्न हुआ ?॥३॥ सागर में शयन करने वाले पद्मनाभ की महिमा को आप बतलायें । पुष्कर (कमल) पर ही देवताओं और ऋषियों की उत्पत्ति कैसे हुयी?॥४॥ हे योगियों में अग्रगण्य इस योग से संबद्ध सारी बातों को आप बतलायें । उसमें इस सनातन लोक की सृष्टि कैसे हुयी ॥५॥ जब स्थावर एवं जङ्गम सभी जीव नष्ट हो गये थे, सम्पूर्ण भूमण्डल दग्ध हो चुका था, सर्प तथा राक्षस भी जब विनष्ट हो गये थे, उस शून्य एकार्णव वन में ॥६॥ जब अग्नि, वायु तथा आकाश विनष्ट हो

किं नु विश्वपतिः साक्षान्महातेजा महाद्युतिः। आस्ते यथाध्याननिष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥८॥
शृण्वतः परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः। वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ यशो नारायणात्मकम्॥९॥
श्रद्धिनः सूपविष्टस्य भगवन्वक्तुमर्हसि ।

पुलस्त्य उवाच

नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ॥१०॥
सद्वंशान्वयपूतस्य न्याय्यं कुरु कुलोद्वह। शृणुष्वादिपुराणेषु देवेभ्यश्च यथाश्रुति ॥११॥
ब्राह्मणानां च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम्। यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ॥१२॥
पराशरसुतः श्रीमान्गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् । तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाभक्ति यथा श्रुतिः ॥१३॥
यद्विज्ञातं मया सम्यगृषिमार्गेण सत्तम। कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ॥१४॥
विश्वावितारं ब्रह्मा यन्न वेदयति तत्वतः । तत्कर्म विश्वदेवानां तद्रहस्यं महर्षिषु॥१५॥
स इज्यस्सर्वयज्ञानां स तत्वं तत्वदर्शिनाम् । अध्यात्ममध्यात्मविदां नरकं च विकर्मिणाम् ॥१६॥
अधिदैवं च तद्दैवमधिदैवतसंज्ञितम्। अधिभूतं च तद्भूतं परं च परमार्थिनाम् ॥१७॥
स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः। यः कर्त्ता कारकोबुद्धि र्यतः क्षेत्रज्ञ एव च ॥१८॥
प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते। प्राणः पंचविधश्चैव ध्रुवमक्षरमेव च ॥१९॥
कालः पाकश्च यज्ञश्च यष्टा चाधीतमेव च। उच्यते विविधैर्भावैः स एवायं तु तत्परम् ॥२०॥
स एव भगवान्सर्वं करोति न करोति च। सोस्मिन्कारयते सर्वं स्थानिनां च कृतिः कृता॥२१॥

चुके थे, पृथिवी केवल गुफा के समान रह गयी थी तथा महाभूतों का विनाश हो गया था। महातेजस्वी तथा महाकान्ति सम्पन्न ध्यननिष्ठ, योग वेत्ता विश्व के स्वामी किस प्रकार से योग का आश्रय लेकर रहते हैं ॥८॥ हे ब्रह्मन् ! मैं इन सारी बातों को परमा भक्ति से सुन रहा हूँ; अतएव हे धर्मज्ञ आप भगवान् नारायण के यश का वर्णन करें ॥९॥ हे भगवन् ! मैं श्रद्धा सम्पन्न हूँ मुझे सृष्टि विषयक बातों को बतलायें। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** भगवान् नारायण के यश को सुनने की जो तुम्हारी कामना है ॥१०॥ वह सद्वंश में उत्पन्न हुए तुम्हारे लिए उचित ही है। जिसतरह आदि पुराणों में, देवताओं से जैसा सुना गया है ॥११॥ कहने वाले ब्राह्मणों तथा महात्माओं की वाणी को सुनकर तथा आचार्य बृहस्पति के समान कान्ति सम्पन्न हमारे गुरु तथा महर्षि पराशर के पुत्र महर्षि व्यास ने जैसा साक्षात्कार करके कहा, उसी को मैं अपनी भक्ति तथा श्रुति के अनुसार तुम्हें सुनाता हूँ ॥१२-१३॥ मैंने जिसे ऋषिमार्ग से जाना है कि कौन भगवान् नारायण को पूर्ण रूप से जानने का उत्साह कर सकता है ?॥१४॥ विश्व के रक्षक जिन भगवान् नारायण को ब्रह्माजी भी तत्त्वतः नहीं जान पाते हैं। उनके कर्म सम्पूर्ण देवताओं तथा महर्षियों के लिए रहस्यमय है॥१५॥ वे ही सभी यज्ञों में पूजनीय हैं तथा वे ही तत्त्वज्ञों के लिए तत्त्व हैं। वे अध्यात्म को जानने वालों के लिए आध्यात्म हैं, तथा पापियों के लिए नरक हैं ॥१६॥ वे ही अधिदैव संज्ञक अधिदेव हैं, वे ही अधिभूत तथा भूत हैं तथा परमार्थियों के परंतत्व हैं ॥१७॥ वे ही वेदों में निर्दिष्ट यज्ञ हैं तथा ब्रह्मवेत्ता उनको ही तप रूप से जानते हैं। वे ही कर्ता, कराने वाले हैं, उनसे ही ज्ञान तथा जीव उत्पन्न होते हैं ॥१८॥ वे ही प्रणव, पुरुष तथा जगत् के एकमात्र प्रशासक रूप से जाने जाते हैं। वे ही पाँच प्रकार के प्राण ध्रुव एवं अक्षर हैं ॥१९॥ वे ही काल, पाक, यज्ञ, यजन करने वाले तथा वेदाध्ययन स्वरूप हैं। वे अनेक भावों से यही हैं इस प्रकार से कह जाते हैं ॥२०॥ वे ही भगवान् सबो की सृष्टि करते हैं, उनमें विकार उत्पन्न करते हैं। वे ही इस जगत् के प्राणियों से सब कुछ करवाते

यजामहे तमेवाद्यं स एवोत्थाननिर्वृतः । यो वक्ता यच्च वक्तव्यं यश्चाहं तद्‌ब्रवीमि ते॥२२॥
श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत्परिजल्पितम् । या कथायाश्च श्रुतयो योधर्मी धर्मतत्परः ॥२३॥
विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स्मृतः ।
यत्सत्यं यदनृतमादिमध्यभूतं यच्चांत्यं निरवधिकं च यद्भविष्यम् ॥२४॥
यत्किंचिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्सर्वं तत्पुरुषवरः प्रधानभूतः ।
चत्वार्य्याहु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ॥२५॥
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा कुरुनंदन । यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः ॥२६॥
स्वधर्मनिरताः शांता जायंते यत्र मानवाः । विप्राःस्थिता धर्मपरा राजवृत्तिस्थिता नृपाः॥२७॥
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा । तदा सत्यं च सत्वं च धर्मश्चैव विवर्धते ॥२८॥
सद्भिराचरितो धर्मो येन लोकः प्रवर्त्तते । एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव पार्थिव ॥२९॥
प्राणिनां धर्मसंज्ञानां नराणां नीचजन्मनाम् । त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ॥३०॥
तस्यतावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता । द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभि धर्मोव्यवस्थितः॥३१॥
यत्र सत्यं च सत्वं च क्रियाधर्मो विधीयते। त्रेतायां विकृतिं यांति वर्णा लोभेन संयुताः ॥३२॥
चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्यं क्षांतिदौर्बल्यमेव च । एषा त्रेता युगगति र्विचित्रा देवनिर्मिता ॥३३॥
द्वापरं द्विसहस्रं तु वर्षाणां कुरुनन्दन । तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणं युगमुच्यते॥३४॥
तत्राप्यतीवार्थ पराः प्राणिनो रजसा हताः । शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुनन्दन॥३५॥

हैं वे ही सर्वकृति स्वरूप हैं ॥२१॥ हमलोग उन्हीं आद्य पुरुष का यजन करते हैं, वे ही उत्थान और पूर्णता रूप हैं। वे ही वक्ता, वक्तव्य तथा मैं जो बोलता हूँ वह सब वे ही हैं ॥२२॥ जो सुना जाता है, जो सुनने योग्य है, तथा जो कुछ कहा जा चुका है, कथाएँ, श्रुतियाँ, धर्म तथा धर्मी भी वे ही हैं ॥२३॥ तथा विश्व एवं विश्व के स्वामी भी भगवान् नारायण ही हैं । सत्य, अनृत (मिथ्या) आदि, मध्य, अन्तिम, अनन्त, भविष्य भी वे ही हैं ॥२४॥ जो कुछ भी सबसे अन्तिम है तथा दूसरी सारी वस्तुएँ भी भगवान नारायण ही है । वे ही प्रधान स्वरूप श्रेष्ठ पुरुष हैं। सत्य युग को चार हजार दिव्य वर्षो वाला कहा गया है ॥२५॥ और उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी चार-चार सौ वर्ष के ही होते हैं । सत्ययुग में धर्म चार पैरों वाला और अधर्म एक पैर वाला होता है ॥२६॥ इस युग में सभी मनुष्य अपने धर्म का पालन करने वाले तथा शान्त उत्पन्न होते हैं । ब्राह्मण धर्म परायण रहते हैं और क्षत्रिय राजवृत्ति वाले होते हैं ॥२७॥ वैश्य कृषि करते हैं तथा शूद्र सेवा परायण होते हैं । सत्ययुग में, सत्य, सत्त्वगुण तथा धर्म की वृद्धि होती है ॥२८॥ सज्जन पुरुष जिस धर्म का अनुष्ठान करते हैं, उसी से लोक की प्रवृत्ति होती है । हे राजन् ! सत्ययुग में सभी लोगों का ऐसा ही धर्म संज्ञक प्राणियों, मनुष्यों तथा नीचों के व्यवहार होते हैं । तीन हजार दिव्य वर्षो का त्रेतायुग कहा गया है ॥२९-३०॥ इस युग के सन्ध्या और सन्ध्यांश भी तीन-तीन सौ दिव्य वर्षो के ही होते हैं । त्रेतायुग में अधर्म के दो पैर होते हैं ओर धर्म के तीन पैर होते हैं ॥३१॥ त्रेतायुग में सत्य, सत्वगुण तथा धार्मिक क्रियाओं का अनुष्ठान होता हैं । त्रेतायुग में सभी वर्णो में लोभ रूपी विकार आ जाता है ॥३२॥ चारो वर्णो में क्षान्ति रूपी दुर्बलता आ जाती है । यह त्रेतायुग की विचित्र गति देवताओं ने बनायी है ॥३३॥ हे कुरुनन्दन द्वापरयुग दो हजार दिव्य वर्षो का होता है । उस युग की सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो-दो सौ दिव्य वर्षो के ही हो जाते हैं ॥३४॥ इस युग में लोग अत्यन्त अर्थ परायण भी हो जाते हैं । इस युग के लोग शठ, निष्कृति (कृतघ्न)

द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्म स्त्रिभिरुत्थितः । विपर्ययशतै धर्मः क्षयमेति कलौ युगे ॥३६॥
ब्रह्मण्यभावश्च्यवते तथास्तिक्यं विवर्ज्यते। व्रतोपवासास्त्यज्यंते कलौ वै युगपर्यये ॥३७॥
तदा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्विशते तथा । यत्राधर्मश्चतुष्पादो धर्मः पादपरिग्रहः ॥३८॥
कामिनस्तापसाः क्षुद्रा जायंते यत्र मानवाः । नचावसायिकः कश्चिन्नसाधुर्न च सत्यवाक्॥३९॥
नास्तिका ब्राह्मणा भक्ता ज्ञायंते तत्र मानवाः । अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबंधनाः ।४०॥
विप्राः शूद्रसमाचारास्संति सर्वे कलौ युगे । आश्रमाणां विपर्यासः कलौ संप्रतिवर्तते ॥४१॥
वर्णानां चैव संदेहो युगांते कुरुनंदन । एषा द्वादशसाहस्त्रीयुगाख्या पूर्वनिर्मिता ॥४२॥
सहस्रयुगपर्यतं तदहर्ब्राह्ममुच्यते । ततो हनि गते तस्मिन्सर्वेषामेव जीविनाम् ॥४३॥
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा कालः संहारबुद्धिमान्। देवतानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां महीपते ॥४४॥
दैत्यानां दानवानां च यक्षराक्षसपक्षिणाम् । गंधर्वाणामप्सरसां भुजंगानां च पार्थिव ॥४५॥
पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव सत्तम । तिर्यग्योनिगतानां च क्रिमीणां दंशिनां तथा ॥४६॥
सर्वभूतपत्तिः पंच भूत्वा भूतानि भूतकृत्। जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ॥४७॥

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषीआददानो भूत्वा वायुः प्राणिनांप्रणिजातम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकान् भूत्वामेधो भूय उग्रोऽभ्यवर्षत् ॥४८॥

भूत्वा नारायणो योगी सर्वमूर्तिविभावसुः । गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ॥४९॥
ततः पीत्वार्णवान्सर्वान्नदीकूपांश्च सर्वतः । पर्वतानां च सलिलं सर्वमादाय योगवित् ॥५०॥

तथा क्षुद्र हो जाते हैं ॥३५॥ द्वापर में धर्म के दो पैर हो जाते हैं तथा अधर्म के तीन पैर हो जाते हैं । अनेक प्रकार के विपर्ययों के कारण धर्म कलियुग में नष्ट हो जाता है ॥३६॥ ब्राह्मणों के प्रति भक्ति की भावना क्षीण हो जाती है कहीं ही आस्तिकता नहीं रह जाती है । कलियुग के आने पर लोग व्रतों तथा उपवासों का परित्याग कर देते हैं।॥३७॥ उसके बाद अपनी संध्या तथा संध्यांश के साथ बारह सौ वर्ष तक रहने वाला क्रूर कलियुग होता है, कलि में अधर्म चार पैरों वाला और धर्म एक चरण वाला रहता है ॥३८॥ कलियुग में तपस्वीगण, कामी तथा क्षुद्र हो जायेंगे सभी ब्राह्मण कोई भी निश्चय में समर्थ सज्जन और सत्य बोलने वाला नहीं होगा ॥३९॥ ब्राह्मण भक्तिहीन, तथा नास्तिक हो जायेंगे, वे अहङ्कारी तथा स्नेह के बन्धन से रहित होंगे ॥४०॥ कलियुग में सभी ब्राह्मण शूद्र के समान आचरण करने वाले हो जाते हैं । कलियुग में आश्रमों में उलट-फेर हो जाते हैं ॥४१॥ हे कुरुनन्दन भीष्म ! कलियुग में तो वर्ण भी पहचनाने में कठिनाई होने लगती है । इस तरह से बारह हजार दिव्य वर्षो का एक चतुर्युग पूर्वकाल से ही निर्मित है ॥४२॥ इस तरह के एक हजार चतुर्युग का ब्रह्माजी का एक दिन होता है । उसके बाद ब्रह्माजी के दिन के बीत जाने पर सभी प्राणियों के ॥४३॥ शरीर की पूर्ति को देखकर काल सबों का संहार करता है । सभी देवताओं, ब्रह्मण आदि मनुष्यों, दानवों, दैत्यों, यक्ष, राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरायें, सर्प ॥४४-४५॥ पर्वतों, नदियों, तिर्यक् योनि के पशुओं, क्रिमियों, दंशों इत्यादि सबों का वह संहार करता है ॥४६॥ योग शक्ति सम्पन्न सभी जीवों के स्वामी परमात्मा जगत् का संहार करने के लिए सबों का विनाश कर देते हैं ॥४७॥ वे सूर्य होकर सबों के नेत्रों की ज्योति समाप्त कर देते हैं, वायु बनकर वे प्राणियों के प्राण समूह को ले लेते हैं, अग्नि होकर वे लोकों को जलाने लगते हैं तथा मेघ होकर वे अत्यन्त भयङ्कर वर्षा करते हैं ॥४८॥ सर्व शरीरक योगी भगवान् नारायण अग्नि होकर अपनी किरणों से सागरों के जल को सोख लेते हैं ॥४९॥ वे सभी समुद्रों, नदियों तथा कूपों के जल को पूर्ण

भूत्वा चैव सहस्रार्चि र्महीं भित्वा रसातले। रमते जलमादाय पिबन्नसमनुत्तमम् ॥५१॥
मूर्त्तामूर्त्ते तदन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् । तत्सर्वमरविंदाक्ष आदते पुरुषोत्तमः ॥५२॥
वायुश्च बलवान्भूत्वा विधुन्वानोखिलं जगत् । प्राणापानं समासाद्य वायुनाक्रमते हरिः ॥५३॥
ततो देवगणानां च सर्वेषां चैव देहिनाम्। पंचेंद्रियगुणास्सर्वे भूतान्येव च यानि च ॥५४॥
घ्रेयं घ्राणं शरीरं च पृथिवीसंश्रितागुणाः । लोकयात्रा भगवता मुहूर्तेन विनाशिता ॥५५॥
जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः । रूपं चक्षुर्विभागश्च नेत्रज्योतिः श्रिता गुणाः ॥५६॥
स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संश्रिता गुणाः । शब्दः श्रोत्रे च श्रवणं गगनं संश्रिता गुणाः ॥५७॥
मनो बुद्धिश्च चित्तं च क्षेत्रज्ञं चेति संश्रिताः। परेण परमेष्ठी च हृषीकेशमुपाश्रिताः ॥५८॥
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारिताः । वायुना परिनुन्नाश्च भूमिशाखामुपाश्रिताः ॥५९॥
तेषां संहरणोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन् । प्रदहन्नखिलं विश्वं वृत्तः संवर्त्तकोऽनलः ॥६०॥
सपर्वतद्रुमान्गुल्मान् लतावल्लीस्तृणानि च। विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ॥६१॥
यानि च श्रयणीयानि सर्वाण्यप्यदहद्भृशम् । भस्मीकृत्य तु तान्सर्वाल्लोकान् लोकगुरो र्गुरुः ॥६२॥
सभूतिं धारयामास युगांते लोकसंभवाम्। सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाघनः ॥६३॥
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् । ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमांभसा ॥६४॥
शिशिरेण चपुण्येन महीनिर्वाणमागमत्। तेन तोयेन संपृक्ता पयस्साधर्म्यतो धरा ॥६५॥
एकार्णावजलीभूता सर्वसत्वविवर्जिता। महासत्वान्यपि विभुं प्रविष्टान्यमितौजसम् ॥६६॥

रूप से पी लेते हैं। योगवेत्ता भगवान् पर्वतों के भी जल को खींच लेते हैं ॥५०॥ वे सूर्य होकर पृथिवी का भेदन करके रसातल में जाकर वहाँ के सम्पूर्ण जलों को पी लेते हैं ॥५१॥ मूर्त-अमूर्त तथा उससे भिन्न जितने भी प्राणी होते हैं उन सबों को श्रीभगवान् ग्रस लेते हैं ॥५२॥ उसके बाद वायु बनकर वे सम्पूर्ण जगत् को सुखा देते हैं, तथा वे प्राण, अपान आदि वायुओं का भी संहार कर देते हैं ॥५३॥ उसके पश्चात् समस्त देवताओं आदि शरीरधारियों के पाञ्चों इन्द्रियों के जो गुण हैं, उन सबों को भी वे ग्रहण कर लेते हैं ॥५४॥ घ्रेय (सूंघने योग्य वस्तुएँ) घ्राणेन्द्रिय तथा शरीर ये सभी पृथिवी में प्रवेश कर जाते हैं। इसतरह सम्पूर्ण संसार को भगवान् एक मुहूर्त में विनष्ट कर देते हैं॥५५॥ रसनेन्द्रिय, रस, स्नेह नामक गुण ये सभी जल में प्रवेश कर जाते हैं। रुप, चक्षुरिन्द्रिय तथा नेत्र ये सभी अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं ॥५६॥ स्पर्श नामक गुण, प्राण तथा सभी चेष्टायें ये सबके सब वायु में प्रवेश कर जाते हैं। शब्द और श्रोत्रेन्द्रिय आकाश में प्रवेश कर जाते हैं ॥५७॥ मन, बुद्धि, चित्त, तथा जीवात्मा ये सभी तथा ब्रह्मा ये सबके सब हृषीकेश परमात्मा में लीन हो जाते हैं ॥५८॥ उसके पश्चात् भगवान् सूर्य की किरणों से संतप्त, वायु के द्वारा उत्क्षिप्त तथा पृथिवी के ऊपर पड़े हुए इन सबों को ॥५९॥ विनष्ट करने वाली अग्नि अनेक प्रकार से प्रदीप्त हो जाती है और उससे सम्पूर्ण संसार दग्ध हो जाता है ॥६०॥ पर्वत, वृक्ष, गुल्म, लताएँ, बल्लियाँ, तृण, दिव्य विमान, सभी नगर ॥६१॥ जो कुछ भी आश्रय स्वरूप है, वे सबके सब जल जाते हैं। इसतरह सभी लोकों को लोकगुरु श्रीभगवान् भस्म कर देते हैं ॥६२॥ वे लोक जन्य विभूति (भस्म) को युग के अन्त में धारण करते हैं। इसके बाद भगवान् महामेघ बनकर मूसलाधार वर्षा करते हैं ॥६३॥ और उस दिव्य जल से पृथिवी को सींच देते हैं। उसके पश्चात् दुग्ध के समान स्वादिष्ट शीतल तथा परम पवित्र जल से पृथिवी शीतल बन जाती है, उस दुग्ध के समान जल से सम्पृक्त तथा ॥६४-६५॥ सम्पूर्ण जीवों से रहित पृथिवी एकार्णव के रूप में परिणत हो जाती है।

नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते । संशोषमात्मना कृत्वा समुद्राणां च देहिनः ॥६७॥
दग्ध्वा संकोच्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः । पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः ॥६८॥
एकार्णवजलेशायी योगीयोगमुपासितः । अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवांभसि ॥६९॥
न चैव कश्चिदव्यक्तं व्यक्तो वेदितुमर्हति। कश्चैष पुरुषो नाम किं योग कश्च योगवान् ॥७०॥
न पृष्ठे नैवमभितो नैव पार्श्वे नचाग्रतः । कश्चिद्विज्ञायते तस्य दृश्यते देवसत्तमः ॥७१॥
नभः क्षितिं पवनमपः प्रकाशनं प्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम् ।
पितामहं श्रुतिनिलयं मुनिं प्रभुं समापयच्छयनमरोचयत्प्रभुः ॥७२॥
एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः । प्रच्छाद्यसलिले नोर्वी हंसो नारायणायते ॥७३॥
महतो राजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै । वारिजाक्षो महाबाहुरक्षयं ब्रह्म यद्विदुः ॥७४॥
आत्मरूपसरूपेण तमसा संवृतः प्रभुः । मनः सात्विकमादाय यत्र तत्सत्वमाहितम् ॥७५॥
यथातथ्यं परं ज्ञानं भूताय ब्रह्मणे ततः । रहस्यं च तथोद्दिष्टं यथोपनिषदां स्मृतम् ॥७६॥
पुरुषो यज्ञ इत्येतत्परमं परिकीर्तितम् । यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात्स एव पुरुषोत्तमः ॥७७॥
ये च यज्ञकरा विप्रा य ऋत्विज इति स्मृताः । अस्मादेव पुराभूता वक्त्रेभ्यः श्रूयते तथा ॥७८॥
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम् । होतारं च तथादध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः ॥७९॥
ब्रह्माणं ब्राह्मणाच्छंसिस्तोतारौ चैव सर्वशः । मेढ्राच्च मैत्रावरुणं प्रतिष्ठातारमेव च ॥८०॥
उदरात्प्रतिहर्तारं पोतारं चैव पार्थिव । पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रमुन्नेतारं च याजुषम् ॥८१॥

निस्सीम भोग सम्पन्न श्रीभगवान् में ही बड़े-बड़े जीव भी लीन हो गये रहते हैं ॥६६॥ सूर्य, वायु तथा आकाश आदि के नष्ट हो जाने पर जब जगत् सूक्ष्म हो जाता है, तब श्रीभगवान् समुद्रों को शान्त करके तथा शरीर धारियों को जलाकर उनका संङ्कोच कर देते हैं । उसके पश्चात् श्रीहरि अकेले शयन करते हैं । अमित विक्रम सम्पन्न वे नागरिकों का रूप धारण करके शयन करते हैं ॥६८॥ योगनिद्रा को अपनाकर श्रीभगवान् अनेक हजार युगों तक उस एकार्णव के जल में शयन करते हैं ॥६९॥ इनको कोई भी व्यक्त अथवा अव्यक्त नही जान सकता है कि इस पुरुष का नाम क्या है ? इस योग का नाम क्या है ? तथा योग को अपनाने वाला पुरुष कौन है ?॥७०॥ उनके आगे, पीछे, पार्श्व (बगल) में कोई भी जानने वाला देवता नहीं दिखायी पड़ता ॥७१॥ आकाश, पृथिवी, वायु तथा जल को प्रकाशित करने वाले, प्रजाओं के स्वामी, लोकों को धारण करने वाले, सुरेश्वर, सम्पूर्ण जगत् के पितामह, श्रुतियों के आश्रय स्वरूप, मननशील जगत् स्वामी ने समयानुसार अपनी निद्रा को समाप्त करना चाहा ॥७२॥ इस तरह जगत् के एकार्णव हो जाने पर महती कान्ति सम्पन्न श्रीभगवान् शयन करते हैं । सम्पूर्ण पृथिवी को जल से ढँककर हंस स्वरूप श्रीभगवान् नारायण हो जाते हैं ॥७३॥ महत् तत्त्व एवं रजोगुण के बीच महार्णव को सन्निविष्ट करके उसकी रक्षा करते हुए महाबाहु भगवान् कमल नयन जिनको ब्रह्म कहते हैं ॥७४॥ अपने आत्मारूप से वे तमोगुण से आच्छन्न होकर सत्त्व गुण सम्पन्न सात्त्विक मन को अपनाकर ॥७५॥ उत्पन्न हुए ब्रह्माजी को परंज्ञान का ठीक-ठीक ज्ञान तथा उपनिषदों में वर्णित रहस्य का उपदेश दिये ॥७६॥ जिनको यज्ञ पुरुष तथा परम पुरुष कहा गया है, जिनको अन्य पुरुष कहा गया है वे ही पुरुषोत्तम हैं ॥७७॥ जो यज्ञ करने वाले ब्राह्मण हैं, जिनको ऋत्विज शब्द से से कहा गया है । पहले उत्पन्न हुए इन्हीं के मुख से सुना जाता है ॥७८॥ उनके प्रथम सामवेद का उद्गान करने वाले मुख उद्गाता तथा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुयी । उन्होंने अपनी दोनों भुजाओं से अध्वर्यु तथा होता की सृष्टि की ॥७९॥ ब्राह्मणाच्छंशी

अच्छावाकमथोरुभ्यां सुब्रह्मण्यं च सामगम् । एवमेव सभगवान्षोडशैतान् जगत्पतिः ॥८२॥
स्वयंभूः सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् । तदा चैष महायोगी पुरुषो यज्ञ संज्ञितः ॥८३॥
वेदाश्चैव तथा सर्वे सहांगोपनिषत्क्रियाः । स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्पुरा ॥८४॥
श्रूयतां तु तदा विप्रो मार्कंडेयः कुतूहलात् । गीर्णो भगवता तेन कुक्षावासीन्महामुनिः ॥८५॥
बहुवर्ष सहस्त्रायुस्तस्यैव वरतेजसः । अटंस्तीर्थप्रसंगेन पृथिवीतीर्थगोचरः ॥८६॥
आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च । देशाद्राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ॥८७॥
जपहोमपराः शांतास्तपोभिरमलाः स्मृताः । मार्कंडेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिर्गतः ॥८८॥
निष्क्रामन्तं नचात्मानं जानीते देवमायया । निष्क्रम्य तस्य उदरादेकार्णवमथो जगत् ॥८९॥
सर्वतस्तमसाछन्नं मार्कंडेयोन्ववैक्षत । तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं व्यत्ययं चात्मजीवितम् ॥९०॥
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमं गतः । सोचिंतयदमोघात्मा मार्कंडेयोऽथशंकितः ॥९१॥
किंनु स्याच्चित्तसंमोहः किंनु स्वप्नोनुभूयते । व्यक्तमन्यतरो भाव एतयोर्भविता मम ॥९२॥
नहि स्वप्नो ह्ययं सत्यं युक्तं यत्सत्यमर्हति । नष्टचंद्रार्कपवनो नष्टपर्वतभूतलः ॥९३॥
कतमः स्यादयं लोक इति शोकमुपागतः । ददर्श चापि पुरुषं स्वपंतं पर्वतोपमम् ॥९४॥
सलिलेऽर्धमथोमग्नं जीमूतमिव सागरे । तपंतमिव तेजोभिरामुक्तशशिभास्करम् ॥९५॥
गांभीर्यात्सागरमिव भासमानमिवौजसा । देवं द्रष्टुमिहायातः को भवानिति विस्मयात् ॥९६॥

मैत्रावरुण (वसिष्ठ) की सृष्टि की ॥८०॥ हे राजन् ! ब्रह्माजी ने अपने उदर से प्रतिहर्ता तथा पोता की सृष्टि की । अपने दोनों हाथों से उन्होंने आग्नीध्र तथा यजुर्वेदीय उन्नेता की सृष्टि की ॥८१॥ अपनी दोनों ऊरुओं से उन्होंने समागन करने वाले सुब्रह्मण्य की सृष्टि की । इसीतरह से जगतपति स्वयम्भू (ब्रह्माजी) ने सभी यज्ञों के सोलह उत्तम ऋत्विजों की सृष्टि की । उसी समय वे महायोगी यज्ञ पुरुष हो गये ॥८२-८३॥ उसी तरह अङ्गों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष इन वेदाङ्गों) उपनिषत् (रहस्यों) तथा क्रियायें भी हुयीं । परम पुरुष जो एकार्णव में शयन करते हैं यही आश्चर्यमयी घटना हुयी उसके विषय में आप सुनें । कौतूहलवशात् मार्कण्डेय नामक विप्र को श्रीभगवान् ने निगल लिया उसके कारण मार्कण्डेय महर्षि श्रीभगवान् के उदर में निवास किए ॥८४-८५॥ परम तेजस्वी मार्कण्डेय महर्षि की आयु तो हजारों वर्षों की थी । वे तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में पृथिवी के तीर्थों की यात्रा करने लगे ॥८६॥ उन्होंने श्रीभगवान् के उदर में ही अत्यन्त पवित्र आश्रमों, देव मन्दिरों, देशों विचित्र राष्ट्रों तथा अनेक नगरों को ॥८७॥ जप होम करने वाले निर्मल शान्त तपस्वियों को उन्होंने देखा । उसके बाद वे धीरे से श्रीभगवा ्‌ के मुख से बाहर निकल गये ॥८८॥ श्रीभगवान् की माया से मोहित होने के कारण वे यह नहीं जान सके कि मैं भगवान् के मुख से निकल गया हूँ । श्रीभगवान् के उदर से निकलकर उन्होंने एकार्णव जगत् को देखा॥८९॥ उन्होंने देखा कि जगत् घोर अन्धकार से आवृत है । उनको अत्यन्त भय उत्पन्न हो गया है उन्हें लगता था कि प्राण निकल जायेंगे॥९०॥ किन्तु जब उन्होंने श्रीभगवान् का दर्शन किया तो उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुयी । अमोघात्मा मार्कण्डेय महर्षि ने सोचा ॥९१॥ क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा मुझे भ्रम हा रहा हैं ? स्पष्ट रूप से यह कोई मुझसे भिन्न व्यक्ति हैं ॥९२॥ यह स्वप्न नहीं हैं, अपितु सत्य ही है । चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पर्वत और पृथिवी नष्ट हो गये हैं ॥९३॥ किन्तु यह कौन सा लोक है ? यह सोचकर वे चिन्तित हो गये । उन्होंने पर्वत के समान सोते हुए पुरुष को देखा ॥९४॥ वह आधे समुद्र के जल में डुबे हुए मेघ के समान है । वह अपने तेज से प्रकाशित हो रहा है,

तथैव च मुनिः कुक्षिं पुनरेवप्रवेशितः । सप्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कंडेयः सविस्मयम् ॥९७॥
तथैव च पुनर्भूयो विजानन्स्वप्रदर्शनम् । स तथैव यथा पूर्वं पृथिवीमटते वनम् ॥९८॥
पुण्यतीर्थजलोपेतं विविधान्याश्रमाणि च । क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तगुरुदक्षिणैः ॥९९॥
अपश्यद्देवकुक्षिस्थान् यज्ञस्थान् शतशो द्विजान् । सद्वृत्तमाश्रिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः ॥१००॥
चत्वार आश्रमाः सम्यग्यथापूर्वं विलोकिता । एवं वर्षशतं साग्रं मार्कंडेयेन धीमता ॥१०१॥
चरता पृथिवीं सर्वां तत्कुक्षौ हि समीक्ष्यते । ततः कदाचिदथवै पुनः कुक्षेर्विनिर्गतः ॥१०२॥
सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरीक्ष्य च । तथैवैकार्णवजले नीहारेणावृतांतरे ॥१०३॥
अव्यक्तक्रीडिते लोके सर्वभूतविवर्जिते । समुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ॥१०४॥
बालमदित्यसंकाशं नशक्नोत्यभिवीक्षितुम् । सोप्यचिंतयदेकांते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ॥१०५॥
पूर्वदृष्टमिदं मेने शंकितो देवमायया । अगाधे सलिले शेते मार्कंडेयः सविस्मयः ॥१०६॥
पूर्ववत्तमथो द्रष्टुमव्रजत्त्रस्तलोचनः । स तस्मै भगवानाह स्वागतो बाल भो इति॥१०७॥
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः । मार्कंडेय न भेतव्यमागच्छस्व ममांतिकम् ॥१०८॥

मार्कडेय उवाच

को नाम्ना कीर्तयति मां कुर्वन् परिभवं मम । दिव्यवर्षसहस्राख्यं घर्षयं श्चैव मे वयः ॥१०९॥
नह्येष च सदाचारो देवेष्वपि ममोचितः । मां ब्रह्मापि हि सस्नेहो दीर्घायुरिति भाषते॥११०॥

होता तथा ब्रह्माजी की उन्होंने अपने सम्पूर्ण शरीर से सृष्टि की । उन्होंने अपने मेढ्र (अण्डकोश) से प्रतिष्ठाता सूर्य एवं चन्द्रमा से भिन्न है ॥९५॥ इसका सागर के समान गाम्भीर्य हैं, जैसे यह अपने ओज के द्वारा प्रकाशित हो रहा है । श्रीभगवान् का दर्शन करने के लिए यहाँ आये हुए आप कौन हैं ? इसतरह से विस्मय के कारण वे ॥९६॥ मुनि श्रीभगवान् के उदर में फिर प्रवेश कर गये । श्रीभगवान् की कुक्षि में प्रवष्टि वे मार्कण्डेय महर्षि विस्मय पूर्वक॥९७॥ उसीतरह पुनः स्वप्न समझते हुए पहले के ही समान पृथिवी पर वन में घूमने लगे ॥९८॥ उन्होंने पुण्य तीर्थो तथा जलों से युक्त अनेक आश्रमों को, क्रतुओं के द्वारा यजन करने वाले तथा बहुत अधिक दक्षिणा देकर जो यज्ञ पूरे हो चुके थे ऐसे क्रतुओं को देखा ॥९८॥ उन्होंने श्रीभगवान् के शरीर में विद्यमान् सैकड़ों श्रेष्ठ ब्राह्मणों को देखा । वहाँ सभी ब्राह्मण आदि वर्णों के लोग सदाचार का पालन करने वाले थे ॥९९-१०१॥ उस उदर में ही उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवी को देखा । फिर वे कभी श्रीभगवान् के उदर में निकल गये ॥१०२॥ वहाँ उन्होंने वट वृक्ष की शाखा पर सोए हुए एक बालक को देखकर पहले के ही समान एकार्णव के जल में तुषार से आवृत तथा जिसमें अव्यक्त के द्वारा क्रीडा किया गया था ऐसे लोक में जहाँ पर कोई भी नहीं था ऐसे वट पर विद्यमान बालक को देखा। वे मुनि कौतूहल पूर्वक तथा आश्चर्य से ॥१०३-१०४॥ आदित्य के समान देदीप्यमान उस बालक को देख नहीं सके। उसके सन्निकट में जल में ही एकान्त में खड़ा होकर सोचे कि ॥१०५॥ इस बालक को मैंने कहीं देखा है वे श्रीभगवान् की माया से मोहित थे मार्कण्डेय महर्षि ने विस्मय पूर्वक उस अगाध जल में सोते हुए उस बालक को देखा ॥१०६॥ वे भयभीत से हो गये थे अतएव उस बालक के सन्निकट नहीं जा रहे थे । महर्षि से बालक पुरुषोत्तम ने मेघ के समान गम्भीर स्वर से कहा— तुम्हारा स्वागत है । मार्कण्डेय ! डरो मत; मेरे सन्निकट आओ ॥१०७-१०८॥ **मार्कण्डेय ने कहा—** यह कौन है ? जो मेरा तिरस्कार करते हुए मेरा नाम लेकर मुझे बुला रहा है । देवताओं के सैकड़ों वर्ष की आयु वाले मुझको अभिभूत करते हुए ॥१०९॥ इसतरह से मेरे लिए सदाचार तो देवता भी नहीं कर

कस्तपो घोरमासाद्य ममाद्यत्यक्तजीवितः । मार्कंडेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हसि ॥१११॥
एवं प्रक्षुभितः क्रोधान्मार्कंडेयो महामुनिः । तदैनं भगवान्भूयो बभाषे मधुसूदनः ॥११२॥

श्रीभगवानुवाच

अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः । आयुः प्रदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि॥११३॥
मां पुत्रकामः प्रथमं त्वत्पितांगिरसोमुनिः । पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः ॥११४॥
तं दृष्ट्वा घोरतपसं त्रिदशोत्तमतेजसम् । दत्तवांस्त्वामहं पुत्रं महर्षिममितौजसम् ॥११५॥
कस्समुत्सहते चान्यो योगिभूतात्मगात्मकम् । द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडंतं योगमायया ॥११६॥
ततः प्रहृष्टहृदयो विस्मयोत्फुल्ललोचनः । मूर्ध्नि बद्धांललिपुटो मार्कंडेयो महातपाः ॥११७॥
नामगोत्रे तु संप्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः । तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत्॥११८॥

मार्कंडेय उवाच

इच्छामि तत्वतो ज्ञातुमिमां मायां तवानघ । यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान्॥११९॥
किं संज्ञश्चैव भगवान्लोके विज्ञायसे प्रभो । तर्कयेऽहं महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हसि ॥१२०॥

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणो ब्रह्मन्सर्वभूतविनाशनः । अहं सहस्रशीर्षास्यः सहस्रपदसंयुतः ॥१२१॥
आदित्यवर्णः पुरुषो मुखेब्रह्ममयोह्यहम् । अहमग्निर्हव्यवहः सप्तसप्तिभिरन्वितः ॥१२२॥
अहमिंद्रपदः शक्र ऋतूनां परिवत्सरः । अहं योगिषु सांख्याख्यो युगांतावर्त एव च ॥१२३॥
अहं सर्वाणि सत्वानि दैवतान्यखिलानि च । भुजगानामहं शेष स्ताक्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥१२४॥

सकते हैं । मुझको तो ब्रह्माजी स्नेह पूर्वक दीर्घायु कहते हैं ॥११०॥ कौन मरा हुआ है, जो घोर तपस्या करके मुझको आज मार्कण्डेय कहकर पुकारता है ॥१११॥ इसतरह से वे क्षुब्ध हो गये थे महर्षि मार्कण्डेय । उनसे फिर भगवान् मधुसूदन ने कहा ॥११२॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे वत्स ! मैं तुम्हारा पिता हूँ, हृषीकेश हूँ, मैं तुम्हारे पिता का भी गुरु हूँ । मैंने तुम्हें पुरानी आयु प्रदान किया है, तुम मेरे पास क्यों नहीं आ रहे हो ॥११३॥ प्राचीन काल में तुम्हारे पिता आंगिरस मुनि ने मेरी आराधना की थी, उन्होंने पुत्रप्राप्ति की कामना से घोर तपस्या की थी ॥११४॥ देवताओं के समान तेज वाले घोर तपस्वी उनको देखकर मैंने निःसीम तेजःसम्पन्न तुम जैसे महर्षि पुत्र को प्रदान किया॥११५॥ दूसरा कौन है जो सबों की आत्मा में व्यापक एकार्णव में विद्यमान तथा योगमाया के साथ क्रीडा करने वाले मेरा साक्षात्कार कर सके ॥११६॥ उसके पश्चात् प्रसन्न हृदय वाले तथा जिनके नेत्र आश्चर्य चकित थे ऐसे लोक पूजित, दीर्घायु महातपस्वी महर्षि मार्कण्डेय हाथ जोड़कर तथा उसे शिर से लगाकर ॥११६-११७॥ अपने नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके उन श्रीभगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार किए ॥११८॥ **मार्कण्डेय महर्षि ने कहा**— हे अनघ ! मैं आपकी इस माया को तत्त्वतः जानना चाहता हूँ । आप जो इस एकार्णव में बाल रूप धारण करके शयन करते हैं ॥११९॥ हे भगवन् ! आपका यह रूप लोक में किस नाम से जाना जाता है ? मैं आपको परमात्मा ही समझ रहा हूँ, परमात्मा को छोड़कर दूसरा कौन हो सकता है ? ॥१२०॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे ब्रह्मन् ! मैं सभी भूतों का विनाश करने वाला नारायण हूँ । मैं ही सहस्रशीर्षा (असंख्य शिरों वाला) असंख्य मुखों वाला तथा असंख्य पैरों से युक्त हूँ ॥१२१॥ मैं ही आदित्य वर्ण पुरुष हूँ, तथा मेरे मुख में ब्रह्म (वेद) है । मैं ही हविष्य का वहन करने वाला अग्नि हूँ तथा सूर्य हूँ ॥१२२॥ मैं ही इन्द्र शब्द से कहा जाने वाला शक्र हूँ, ऋतुओं में परिवत्सर हूँ । मैं

कृतांतः सर्वभूतानां विज्ञेयः कालसंज्ञितः । अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥१२५॥
अहं दया परो धर्मः क्षीरोदोहंमहार्णवः। यत्सत्यं तत्परंत्वेक अहमेव प्रजापतिः ॥१२६॥
अहं सांख्यमहं योगो ह्यहंतत्परमं पदम्। अहमिज्या क्रिया चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥१२७॥
अहंज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं जलम्। आकाशोहं समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥१२८॥
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योहमहं रविः । अहं पुराणं परमं तथैवाहं परायणम् ॥१२९॥
भविष्ये चापि सर्वत्र भविष्यत्सर्वसंग्रहः । यत्किंचित्पश्यसे विप्र यच्छृणोषि चकिंचन ॥१३०॥
यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामनुस्मर। विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेऽद्यापि च पश्य माम्॥१३१॥
युगे युगे च रक्षामि मार्कण्डेयाखिलं जगत् । तदेतत्कथितं सर्वं मार्कंडेयावधारय ॥१३२॥
शुश्रूषुरपि धर्मेषु कुक्षौ चर सुखं मम । मम ब्रह्माशरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिःसह ॥१३३॥
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छमुरद्विषम्। अहमेकाक्षरो मंत्रस्त्र्यक्षरश्च पितामहः ॥१३४॥
परस्त्रिवर्गओंकारः परमात्मप्रदर्शनः। एवमादिपुराणं च वदते मां महामते॥१३५॥
वक्त्रं यातो भगवतो मार्कंडेयो महामुनिः। ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ॥१३६॥

तस्यसम्मुखमेकान्ते शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ।
यदक्षय विविधमुपाश्रितं तु तन् महार्णवे व्यपगतचंद्रभास्करे ॥१३७॥
शनैश्चरन्प्रभुरथहंससंज्ञितः सृजन् जगद्विहरति कालपर्यये ।
अथ चैवंशुचिर्भूत्वा वरयामास वै तपः ॥१३८॥

योगियों में कपिल तथा युगान्त रूप आवर्त हूँ ॥१२३॥ मैं ही सम्पूर्ण जीव स्वरूप हूँ तथा सम्पूर्ण देव स्वरूप हूँ। मैं सर्पों में शेष हूँ, सभी पक्षियों में मैं गरुड हूँ ॥१२४॥ सभी जीवों में मैं यमराज हूँ, मैं काल नाम से जानने योग्य हूँ, मैं ही सभी आश्रमों में रहने वालों का धर्म तथा तप हूँ ॥१२५॥ मैं दया करने वाला धर्म हूँ तथा महार्णवों में मैं क्षीरसागर हूँ। जो परं सत्य है वह अकेला मैं ही हूँ। मैं प्रजापति हूँ ॥१२६॥ मैं ही सांख्य हूँ, योग हूँ तथा मैं ही परंप्राप्य हूँ। मैं ही यज्ञ हूँ, क्रिया हूँ तथा मैं ही विद्याधिप कहा जाता हूँ ॥१२७॥ मैं ही तेज हूँ, मैं ही वायु हूँ, मैं ही पृथिवी हूँ तथा मैं ही जल हूँ। मैं ही आकाश हूँ तथा मैं ही समुद्र हूँ, मैं ही नक्षत्र तथा दशो दिशाएँ हूँ ॥१२८॥ मैं ही वर्षा हूँ, मैं सोम हूँ, मैं मेघ हूँ तथा मैं सूर्य हूँ। मैं ही सबसे पुराण पुरुष हूँ तथा मैं ही सबों का आश्रय हूँ॥१२९॥ भविष्यत् काल में होने वाली समस्त वस्तु स्वरूप हूँ। हे विप्र ! तुम जो कुछ देखते हो तथा सुनते हो॥१३०॥ लोक में तुम जो कुछ भी अनुभव करते हो, वह सब कुछ मुझे जानो। सृष्टि के प्रारम्भ में मैंने सृष्टि की तथा आज भी सृष्टि करता हूँ, मुझे देखो ॥१३१॥ हे मार्कण्डेय प्रत्येक युग में मैं सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करता हूँ। हे मार्कण्डेय मैंने जो कहा है उसे तुम धारण करो ॥१३२॥ धर्म का श्रवण करने के इच्छुक तुम मेरी कुक्षि में सुख पूर्वक विचरण करो। मेरे शरीर में ऋषियों तथा देवताओं के साथ ब्रह्माजी विद्यमान हैं ॥१३३॥ मुझे, व्यक्त तथा अव्यक्त योग वाला मुरद्विष (मुर नामक दैत्य को मारने वाला) विष्णु जानो। मैं ही एकाक्षर (ओम्) तथा तीन अक्षरों वाला (अ+उ+म्) मन्त्र हूँ। मैं ही सबों का पितामह हूँ ॥१३४॥ मैं परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला, सर्वश्रेष्ठ त्रिवर्ग ओंकार हूँ। हे महामते ! इस तरह से ज्ञानी पुरुष मुझे आदिपुरुष बतलाते हैं ॥१३५॥ इसके बाद महामुनि मार्कण्डेय श्रीभगवान् के मुख में प्रवेश कर गये। फिर वे श्रीभगवान् की कुक्षि में प्रवेश कर गये ॥१३६॥ श्रीभगवान् की कुक्षि में प्रवेश किए हुए महर्षि मार्कण्डेय एकान्त में धर्म का श्रवण करने के इच्छुक अक्षय, अनेक प्रकार से अपनाये गये

छादयित्वात्मनो देहं पयसांबुजसंभवः । ततो महात्मातिबलो मर्त्यलोकविसर्जने ॥१३९॥
महतां चैव भूतानां विश्वो विश्वमचिंतयत् । तस्यचिंतयमानस्य नियते संस्थितेर्णवे ॥१४०॥
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति संक्षये । ईशः संक्षोभयामास सोर्णवं सलिलं गतः ॥१४१॥
अथांतरादपांसूक्ष्ममथच्छिद्रमभूत्पुरा । शब्दं प्रति ततो भूतो मारुतश्छिद्रसंभवः ॥१४२॥
संलब्ध्वांतरसंक्षोभं व्यवर्धतसमीरणः । नभस्वता बलवता वेगाद्विक्षोभितोर्णवः ॥१४३॥
तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नंभसि मध्यतः । कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरो महान् ॥१४४॥
ततः संशोषयामास पावकः सलिलं बहु । समस्तजलधिश्छिद्रमभवद्विसृतं नभः ॥१४५॥
आत्मतेजो भवाः पुण्या आपोमृतरसोपमाः । आकाशंछिद्रसंभूतं वायुराकाशसंभवः ॥१४६॥
अथ संघर्षसम्भूतं पावकं चास्य संभवम् । दृष्ट्वा पितामहोदेवो महाभूतविभावनः ॥१४७॥
दृष्ट्वा भूतानि भगवान् लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम् । ब्रह्मणोजन्मसहितं बहुरूपोह्यचिंतयत् ॥१४८॥
चतुर्युगानां संख्यातं सहस्त्रं युगपर्यये । यत्पृथिव्यां द्विजेंद्राणां तपसाभावितात्मनाम् ॥१४९॥
बहुजन्मविशुद्धात्मा ब्रह्मणो हरिरुच्यते । ज्ञानं दृष्ट्वा तु विश्वात्मा योगिनां याति योग्यताम् ॥१५०॥
तं योगवंतं विज्ञाय संपूर्णैश्वर्यमुत्तमम् । पदेब्रह्मणि विश्वस्य न्ययोजयत योगवित् ॥१५१॥
ततस्तस्मिन्महातोये महेशो हरिरच्युतः । जलक्रीडां च विधिवत्सचक्रे सर्वलोककृत् ॥१५२॥

चन्द्रमा तथा सूर्य से रहित महार्णव परमात्मा में ॥१३७॥ धीरे-धीरे संचरण करते हुए जगत् प्रभु हंस की सृष्टि काल के आने पर जगत् की सृष्टि करते हैं । इसके पश्चात् पवित्र होकर कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी ने अपने शरीर को छिपाकर तपस्या का वरण किया । उसके बाद अत्यन्त बल सम्पन्न वे महात्मा मर्त्यलोक की सृष्टि करने के लिए महाभूतों तथा सम्पूर्ण विश्व का चिन्तन किये । उनके चिन्तन करते ही आकाश रहित महार्णव में जलमय महार्णव से सूक्ष्म जगत् का संरक्षण हो जाने पर जल में विद्यमान परमात्मा ने क्षोभ उत्पन्न किया ॥१३८-१४१॥ उस जल के बीच में छोटा सा छिद्र हो गया । उससे शब्द उत्पन्न हुआ, उससे वायु की उत्पत्ति हुयी ॥१४२॥ अपने में क्षोभ को प्राप्त करके वायु की वृद्धि हो गयी । उस बलवान् वायु के वेग से समुद्र में क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥१४३॥ उस क्षुब्ध हुए महार्णव के आकाश के बीच से महान् कृष्णवर्त्मा अग्नि की उत्पत्ति हुयी ॥१४४॥ उसके बाद अग्नि ने बहुत अधिक जल को सोख लिया । और सम्पूर्ण छिद्र बन गया उसमें आकाश फैल गया ॥१४५॥ आत्मा के तेज से उत्पन्न जल अमृत रस के समान था । छिद्र से आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु की उत्पत्ति हुयी ॥१४६॥ उसके बाद वायु के टकराने से उत्पन्न अग्नि को देखकर महाभूतों का चिन्तन करने वाले पितामह श्रीभगवान् ॥१४७॥ लोक की सृष्टि के लिए सर्वोत्तम भूतों को देखकर, अनेक रूपों को धारण करने वाले ब्रह्माजी के जन्म का चिन्तन किए ॥१४८॥ एक हजार चतुर्युगों के बीत जाने पर भूलोक में तपस्या के द्वारा प्रभाव सम्पन्न ब्राह्मणों में ॥१४९॥ अनेक जन्मों से जो ब्राह्मण विशुद्धात्मा होते हैं, उन्हीं को श्रीहरि, ब्रह्मा कहते हैं । योगियों के ज्ञान को देखकर सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप परमात्मा की योग्यता को प्राप्त करते हैं ॥१५०॥ उनको योग सम्पन्न तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त जानकर श्रीभगवान् जगत् के ब्रह्मा के पद पर प्रतिष्ठित किए ॥१५१॥ उसके पश्चात् उस महार्णव में श्रीभगवान् सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने वाले, विधिपूर्वक जल क्रीडा किए ॥१५२॥ उसके बाद उन्होंने अपनी नाभि में एक कमल को उत्पन्न किया । वह कमल अनेक वर्णों का निर्मल तथा सूर्य के समान कान्ति वाला तथा सुवर्णमय

पद्मंनाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्ततः । सहस्रवर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ॥१५३॥
हुताशनज्वलितशिखोज्ज्वलप्रभं समुत्थितं शरदमलार्कतेजसम् ।
विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुशैवलम् ॥१५४॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पद्मप्रादुर्भावो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चालीसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद्भूरिवर्चसम् । स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥१॥
तस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते । सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्वृते ॥२॥
तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवीरूपमुत्तमम् । नारायणसमुद्भूतं प्रवदंति महर्षयः ॥३॥
यत्पद्मं सा रसा देवी पृथिवी परिकथ्यते । ये पद्मकेसरा मुख्यास्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ॥४॥
हिमवंतं च नीलं च मेरुं निषधमेव च । कैलासं शृंगवंतं च तथाद्रिं गंधमादनम् ॥५॥
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कांतं मदंरमेव च । उदारं पिंजरं चैव विंध्यमस्तं च पर्वतम् ॥६॥
एत एव गणनां च सिद्धानां च महात्मनाम् । आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः ॥७॥

था॥१५३॥ वह देदीप्यमान अग्नि की ज्वाला से युक्त शरत् कालीन स्वच्छ सूर्य के समान तेज से युक्त उत्पन्न हुआ। मनोहर कान्ति सम्पन्न वह कमल श्रीभगवान् के रोम रूपी सेवार से सुशोभित हुआ ॥१५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पद्मप्रादुर्भाव नामक उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति का वर्णन, कमल के पृथिवी रूप से वर्णन पूर्वक कमल के केसरों का सुमेरु आदि रूप से वर्णन, कमल दल के अनुसार देशों का वर्णन, मधु कैटभ की कथा, ब्रह्माजी से प्रजापतियों की उत्पत्ति का वर्णन, तारकामय संग्राम का वर्णन

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— उसके पश्चात् श्रीभगवान् ने योगियों में श्रेष्ठ, विपुल तेजः सम्पन्न, सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले तथा जिनका मुख चारो ओर था ऐसे ब्रह्माजी की सृष्टि की ॥१॥ उस सुवर्णमय, अनेक योजनो में विस्तृत सम्पूर्ण तेजोगुण से युक्त तथा पृथिवी के लक्षणों वाले कमल पर ब्रह्माजी की सृष्टि हुयी ॥२॥ वह उत्तम कमल पहले पृथिवी रूप था, उसको महर्षिगण भगवान् नारायण से उत्पन्न हुआ बतलाते हैं ॥३॥ वह पृथिवी देवी ही कमल कहलाती हैं और उस कमल के जो मुख्य केसर थे उनको दिव्य पर्वत रूप से ऋषियों ने कहा है ॥४॥ वे पर्वत हिमवान् (हिमालय), नील, सुमेरु, निषध, कैलास, शिखरों वाला गन्धमादन ॥५॥ पवित्र त्रिकूट पर्वत तथा देदीप्यमान मन्दराचल पर्वत थे । उदार पिञ्जर पर्वत, विन्ध्याचल तथा अस्ताचल पर्वत है ॥६॥ ये पर्वत ही सिद्धों तथा पुण्यवान् महात्माओं के आश्रय तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥७॥ इन सबों के भीतर जम्बू

एतेषामंतरे द्वीपो जंबूद्वीप इति स्मृतः । जंबुद्वीपस्य संस्थानं याज्ञीया यत्र च क्रियाः ॥८॥
तेभ्यो यद् द्रवते तोयं दिव्यामृरसोपमम् । दिव्यतीर्थशताधाराः सरस्यः सर्वतः स्मृताः ॥९॥
यान्येतानीह पद्मस्य केसराणि समंततः । असंख्येयाः पृथिव्यां ते विविधाश्चैव पर्वताः ॥१०॥
यानि पर्णानि पद्मस्य भूरिपूर्वाणि पार्थिव । ते दुर्गमाः शैलचिताम्लेच्छदेशाः प्रकीर्तिताः ॥११॥
यान्यधोभागपत्राणि तानि वासास्तु भागशः । दैत्यानामसुराणां च पन्नगानां च पार्थिव ॥१२॥
तेषांमध्येंतरं यत्तु तद्रसातलसंज्ञितम् । महापातककर्माणो मज्जंते यत्र मानवाः ॥१३॥
चतुर्दिशासु संख्याताश्चत्वारः सलिलाकराः । एवं नारायणस्यार्थे महीपुष्करसंभवा ॥१४॥
प्रादुर्भावोप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्कर संज्ञितः । एतस्मात्कारणाद्यज्ञे पुराणैः परमर्षिभिः ॥१५॥
यज्ञियै वेंददृष्टांतै र्यज्ञै र्यूपचितिः कृता । एवं भगवता तेन विश्वव्याप्यधराचिता ॥१६॥

पर्वतानां नदीनां च रचना चैव निर्मिता ।
विश्वस्य यश्चाप्रतिमप्रभावः प्रभाकरा भो वरुणोमितद्युतिः ॥१७॥
शनैः स्वयं भूर्व्यसृजत्सुषुप्तं जगन्मयः पद्मनिधिं महार्णवे ।
विघ्नस्तपसि संभूतो मधुर्नाममहासुरः ॥१८॥

तेनैव च सहोद्भूतो ह्यसुरो नाम कैटभः । तौरजस्तमसोर्भूतौ सम्भूतौ तामसौ गणौ ॥१९॥
एकार्णवं जगत्सर्वं क्षोभयेतां महाबलौ । दिव्यरक्तांबरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ ॥२०॥
किरीटमकुटोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ । महाविवृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ ॥२१॥
महागिरेः संहनजौ जंगमाविवपर्वतौ । नवमेघप्रतीकाशावादित्यप्रतिमाननौ ॥२२॥

नामक द्वीप है । जम्बूद्वीप के ही स्थानों में याज्ञिकी क्रियायें होती हैं ॥८॥ उन पर्वतों से जो जल द्रवित होता है वह दिव्य तथा अमृतरस के समान बतलाया गया है । दिव्यतीर्थो वाली सैकड़ों धारायें ही सर्वत्र सरसी कही गयी हैं ॥९॥ ये जो पद्म के केसर चारो ओर से हैं, वे ही पृथिवी पर असंख्य पर्वत है ॥१०॥ उस पृथिवी रूपी पद्म के जो मुख्य दल हैं; वे ही दुर्गम शैलों (पर्वतों) से भरे हुए म्लेच्छों के देश कहे गये हैं ॥११॥ जो नीचे के पत्र है वे विभाग पूर्वक क्रमशः दैत्यों, असुरों, तथा सर्पो के निवास स्थान हैं ॥१२॥ जो उन सबों के बीच में पत्र हैं वही रसातल कहलाता है । उसमें महापातकी मनुष्य डुबो दिए जाते हैं ॥१३॥ उसके चारो दिशाओं में चार समुद्र बतलाये गये हैं। इस तरह से भगवान् नारायण के लिए पुष्कर से उत्पन्न होने वाली पृथिवी है ॥१४॥ इसीलिए इस उत्पत्ति को पुष्कर कहते हैं । इसीलिए प्राचीन परमर्षियों ने यज्ञ में वेदों के यज्ञीय दृष्टान्तों के द्वारा यज्ञीय यूपों (स्तम्भों) का चयन किया। इस तरह श्रीभगवान् ने विश्व में व्याप्त होकर पृथिवी का निर्माण किया ॥१६॥ उन्होंने पर्वतों तथा नदियों की रचना की । विश्व में जिनके प्रभाव की कोई तुलना नहीं है, जिनकी सूर्य के समान प्रभा तथा वरुण के समान अपार कान्ति है तथा यह सम्पूर्ण है, वे महात्मा ब्रह्माजी एकार्णव के जल में धीरे-धीरे पद्म निधि की रचना किये । उनकी तपस्या में मधु नामक महा असुर विघ्न बन गया ॥१७-१८॥ उसी के साथ कैटभ नामक भी असुर उत्पन्न हुआ । वे दोनों रजोगुण तथा तमोगुण से उत्पन्न थे; किन्तु वे दोनो तामस हो गये । वे महाबलवान् थे तथा एकार्णव में वे सम्पूर्ण जगत् में बाधा उत्पन्न करने लगे । वे लाल दिव्यवस्त्र धारण किए थे । उनके दाँत श्वेत दीप्यमान तथा भयङ्कर थे॥१९-२०॥ वे किरीट, मुकुट तथा केयूर एवं कंकण धारण किए हुए थे । उनकी आँखें बड़ी-बड़ी और खुली हुयी थीं, विशाल हृदय तथा लम्बी-लम्बी भुजायें थीं ॥२१॥ लगता था वे किसी बहुत बड़े पर्वत से उत्पन्न जंगम पर्वत हों

विपुला भोगकेयूर कराभ्यामतिभीषणौ । पादसंचारविन्यासै विंक्षिपंताविवार्णवम् ॥२३॥
कंपयंतौ हरिमिव शयानं मधुसूदनम् । तौ तत्र विचरंतौ तु पुष्करे विश्वतोमुखौ ॥२४॥
योगिनां श्रेष्ठमत्यंतं दीप्तं ददृशतुस्तदा । नारायणसमाज्ञातं सृजंतमखिलाः प्रजाः ॥२५॥
दैवतानि च विश्वानि मानसांश्च सुतानृषीन् । ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ ॥२६॥
दुष्टौ युयुत्सूसंक्रुद्धौ कोधव्याकुलितेक्षणौ। कस्त्वं पुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्भुजः ॥२७॥
आवामगणयन्मोहादास्से त्वं विगतस्पृहः। एह्यागच्छावयोर्युद्धं देहि त्वं कमलोद्भव ॥२८॥
आवाभ्यां परमेशाभ्यामशक्तः स्थातुमर्णवे । तत्र कश्चभवेत्तुभ्यं येन चात्र नियोजितः॥२९॥
कः स्त्रष्टा कश्च ते गोप्ता केन नाम्नाभिधीयते।

ब्रह्मोवाच

ईश्वरः प्रोच्यते लोके विष्णुश्चानंतशक्तिधृत् ॥३०॥
तत्सकाशात्तु जातं मां स्त्रष्टारमवगच्छतम् ।

मधुकैटभावूचतुः

नावयोः परमं लोके किंचिदस्ति महामुने ॥३१॥
आवाभ्यां च्छादते विश्वं तमसारजसा च वै । रजस्तमोमयावावामृषीणामतिलंघिनौ ॥३२॥
धर्मशीलं च्छादयन्तौ नाशकौ सर्वदेहिनाम्। आवाभ्यां युज्यते लोको दुस्तराभ्यां युगे युगे॥३३॥
आवामर्थश्च कामश्च यज्ञस्सर्वपरिग्रहः । सुखं यत्र मदो यत्र यत्र श्रीः कीर्तिरेव च ॥३४॥
येषां यत्कांक्षितं किंचित्तत्तदावां विचिंतय ।

वे नवीन मेध के समान काले-काले थे तथा उनका मुख सूर्य के समान चमक रहा था ॥२२॥ अधिक मोटे तथा केयूर युक्त उनके दोनों हाथ देखने में भयङ्कर थे । वे अपने पैरो के विन्यास के द्वारा एकाणर्व को क्षुब्ध कर रहे थे॥२३॥ मानो वे सोये हुए भगवान् को कंपा रहे हों । वे दोनों उस पुष्कर के ऊपर चारो ओर घूम रहे थे ॥२४॥ उन दोनो ने वहाँ पर विद्यमान योगियों में श्रेष्ठ तथा देदीप्यमान ब्रह्माजी को देखा । उस समय ब्रह्माजी भगवान् नारायण की आज्ञा से सम्पूर्ण जगत् की रचना कर रहे थे ॥२५॥ वे अपने मानस पुत्रों सम्पूर्ण देवताओं तथा ऋषियों की रचना कर रहे थे ॥२६॥ वे दोनों दुष्ट, युद्ध करने की इच्छा वाले, क्रुद्ध तथा क्रोध से लाल आँखों वाले थे उन दोनों ने ब्रह्माजी से पूछा उजली पगड़ी तथा चार भुजाओं वाले इस पुष्कर के बीच में विद्यमान तुम कौन हो ?॥२७॥ हमदोनों की परवाह किए बिना तुम निस्पृह बने हुए हो । ऐ कमलोद्भव ! तुम आओ और हमदोनों के साथ युद्ध करो ॥२८॥ हम दोनों ही परमेश हैं सामर्थ्य ही न तुम इस समुद्र में कैसे रहते हो ? तुमको जिसने इस काम में लगा रखा है, वह तुम्हारा कौन है ?॥२९॥ तुमको उत्पन्न करने वाला तथा तुम्हारी रक्षा करने वाला कौन हैं ? उसका नाम क्या है ? **ब्रह्माजी ने कहा**— अनंत शक्ति से सम्पन्न भगवान् विष्णु ही लोक में ईश्वर कहलाते हैं॥३०॥ मैं जगत् की सृष्टि करने वाला तथा उन्हीं से उत्पन्न हूँ । **मधु और कैटभ ने कहा**— हे महामुने ! हमदोनों से बड़ा इस लोक में कोई दूसरा नहीं है ॥३१॥ हम दोनों तमोगुण तथा रजोगुण के द्वारा जगत् को आच्छादित कर देते हैं, हम दोनों रजोगुण तथा तमोगुणमय हैं और ऋषियों से भी बढकर हैं ॥३३॥ हम धर्म करने वाले को ढँक देते है समस्त शरीरधारियों को मार डालते हैं । हम दोनों दुस्तर हैं । प्रत्येक युग में हमसे ही जगत् उत्पन्न होता है ॥३४॥ हमदोनों ही अर्थ, काम तथा सब कुछ स्वीकार करने वाले यज्ञ हैं । हमलोगो से ही सुख, मद,

ब्रह्मोवाच

आवाभ्यां संहतौ दृष्ट्वा युवां पूर्वं पराजितौ ॥३५॥

तं समाधय गुणिनं सत्वं चास्मि समाश्रितः । यःपरोयोगयुक्तात्मा योऽक्षरः स त्व मेव च॥३६॥

रजसस्तमसश्चैव यःस्रष्टा विश्वसंभवः। ततोभूतानि जायंते सात्विकानीतराणि च॥३७॥

स एव युवयोर्नाशं वासुदेवः करिष्यति । स्वपन्नेव ततो देवो बहुयोजनविस्तृतौ ॥३८॥

बाहू नारायणो ब्रह्म कृतवानात्ममायया। कृष्यमाणौ ततस्तस्य बाहुभ्यां बाहुशालिनौ॥३९॥

चेरतुस्तौ विगलितौ शकुनाविव पीवरौ। ततस्तावाहतु गत्वा वासुदेवं सनातनम्॥४०॥

पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्यनतावुभौ । जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम्॥४१॥

आवयोश्चैव हेतुं त्वां जानन्तौ बुद्धिकारणम्। अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां विद्मश्शाश्वतम् ॥४२॥

ततस्त्वामभितो देवकांक्षावः प्रसमीक्षितुम् । अमोधदर्शनोसि त्वं नमस्ते समितिंजय ॥४३॥

श्रीभगवानुवाच

किमर्थंमामनुब्रूथ युवामसुरसत्तमौ । गतायुष्कौ युवांभूयस्त्वहोजीवितुमिच्छथः॥४४॥

मधुकैटभावूचतुः

यस्मिन्नकश्चिन्मृतवान् देवतस्मिन्वधं प्रभो। इच्छावः पुत्रतां चैव भवतः सुमहातपः॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

युवयोर्बाढमेतत्स्याद्भविष्ये कलिसंभवे । भविष्यथो न संदेहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम् ॥४६॥

विजय तथा कीर्ति की प्राप्ति होती है ॥३४॥ जिसको जिस वस्तु को प्राप्त करना है वह हमदोनों से ही प्राप्त करता है, यह जानो । **ब्रह्माजी ने कहा—** हम दोनों को एक साथ देखकर तुमदोनो पराजित हो गये थे उन्हीं गुण सम्पन्न श्रीभगवान् का ध्यान करके मैं सत्त्वगुण सम्पन्न हो गया हूँ। वे ही सर्वश्रेष्ठ योग से युक्त हैं तथा वे ही अक्षर सत्त्व हैं ॥३६॥ रजोगुण तथा तमोगुण की सृष्टि उन्होंने ही की, वे ही जगत् की सृष्टि करते हैं । उनसे ही सभी सात्त्विक तथा दूसरे प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं ॥३७॥ वे ही भगवान् वासुदेव तुम दोनों का नाश करेंगे । उसी समय सोते हुए ही श्रीभगवान् नारायण अपनी माया से अनेक योजन विस्तृत अपनी दोनों भुजाओं को कर दिए । उसके द्वारा वे दोनों बलवान उन दोनों को भुजाओं द्वारा खिंचने लगे ॥३९॥ उस समय वे दोनों विवश होकर मोटे ताजे पक्षी के समान छटपटाने लगे । उस समय वे दोनों सनातन भगवान् वासुदेव के पास जाकर ॥४०॥ पद्मनाभ भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करके तथा नम्र होकर कहे कि हम दोनों आपको सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप तथा अकेला पुरुषोत्तम रूप से जानते हैं ॥४१॥ हम जानते हैं कि आप ही हम दोनों को उत्पन्न करने वाले हैं । आप ही बुद्धि प्रदान करने वाले हैं । आपका दर्शन अमोघ (सफल) ही होता है । हम आपको सत्य तथा शाश्वत रूप से जानते हैं॥४२॥ अतएव हे देव ! हम दोनों आपको चारो ओर देखना चाहते हैं । हे समितिञ्जय (संग्राम जितने वाले) आपका अमोघ दर्शन हैं, आपको नमस्कार है ॥४३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे असुरश्रेष्ठ ! किसलिए मुझको पूछ रहे थे । तुमदोनों की आयु समाप्त हो चुकी है फिर भी तुम दोनों जीवित रहना चाहते हो ॥४४॥ **मधु और कैटभ ने कहा—** हे देव ! जहाँ पर कोई नहीं मरा हो वहीं पर हम दोनों मरना चाहते हैं तथा हमदोनों आपके महातपस्वी पुत्र होना चाहते हैं ॥४५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** टीक है तुमलोग आगे कलियुग के आने पर मेरे पुत्र होओगे ? इसमें कोई सन्देह नहीं है, मैं सत्य कह रहा हूँ ॥४६॥ इस तरह से उन दोनों असुरों को वरदान देकर सनातन विश्व को धारण करने

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्वधरः सुरोत्तमः ।
रजस्तमोजौ तु तदां जनोपमौ ममर्दतावूरुतलेऽमरप्रभुः ॥४७॥
स्थित्वा तस्मिंस्तु कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः । ऊर्ध्वबाहुर्महातेजास्तपो घोरं समाश्रितः ॥४८॥
प्रज्वलन्निव तेजोभि र्भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः । बभासे स तु धर्मात्मा सहस्रांशुरिवांशुभिः ॥४९॥
अथान्यद्रूपमास्थाय प्रभुर्नारायणोव्ययः । आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः ॥५०॥
सांख्याचार्यश्च मतिमान् कपिलो ब्रह्मणां वरः । उभावपि महात्मानौ पूजितौ तत्र तत्परौ ॥५१॥
तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् । परावरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः ॥५२॥
ब्रह्मसंपरिवेद्यं ते विशालजगदास्थितौ । ग्रामणीस्सर्वभूतानां ब्रह्मा त्रैलोक्यपूजितः ॥५३॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा विवोध्य गतयोः परम् । त्रीनिमान्कृतवान् लोकान् यथेयं ब्रह्मणः श्रुतिः ॥५४॥
पुत्रं स्वसंभवं चैकं समुत्पादितवान्भुवम् । तदाग्रे चागतस्तस्य ब्रह्ममानससंभवः ॥५५॥
उत्पन्नमात्रो ब्रह्माणमुक्तवान्मानसः सुतः । किं कुर्मस्तवसाहाय्यं ब्रवीतु भगवानिति ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

यदेष कपिलो नाम ब्रह्मनारायणस्तथा । वदतो भवतत्वं तु तत्कुरुष्व महामते ॥५७॥
ब्रह्मणा स तथोक्तस्तौ प्राह भूपसमुत्थितः । सुश्रुषुरस्मि युवयोः किंकरोमि कृतांजलिः ॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

यत्सत्यमक्षरंब्रह्म अष्टादशविधंच तत् । यत्सत्यमृतं तत्तु परं पद मनुस्मर ॥५९॥
एतद्वचोनिशम्यैवं स ययौ दिशमुत्तराम् । गत्वा च तत्र स ब्रह्म अगमज्ज्ञानचक्षुषा ॥६०॥
ततोब्रह्मा भुवर्नाम द्वितीयमसृजत्प्रभुः । संकल्पयित्वा मनसा तमेव च महामनाः ॥६१॥

वाले श्रीभगवान् रजोगुण तथा तमोगुण से उत्पन्न उन दोनों को अपनी जंघा पर ही मसल डाले ॥४७॥ उसके बाद ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी ब्रह्माजी उस कमल पर ही स्थित रहकर अपने बाहुओं को उठाकर घोर तपस्या करने लगे । अपने तेज से प्रकाशित होने वाले तथा अपनी कान्ति से अन्धकार को दूर करने वाले, अपनी रश्मियों से सूर्य के समान प्रकाशित होने वाले, धर्मात्मा भगवान् नारायण, दूसरा रूप धारण करके, महातेजस्वी, महायशस्वी योगाचार्य के रूप में वहाँ आये ॥४९-५०॥ उसी समय ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ कपिल महर्षि वहाँ आये । वहाँ पर वे दोनों ब्रह्माजी द्वारा पूजित हुए ॥५१॥ वहाँ आये हुए वे दोनो परावरतत्त्व के विशेषज्ञ थे तथा महर्षिगण उनकी पूजा कर चुके थे । वे दोनों ब्रह्माजी से कहे, तुम्हे अच्छी तरह से जगत् की स्थिति में विशाल ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । सभी भूतों में प्रधान तथा त्रैलोक्य पूजित ब्रह्माजी उन दोनों की वाणी सुनकर समाधि से जगकर वेद श्रुति के अनुसार तीनों लोकों की सृष्टि किए ॥५२-५४॥ उन्होंने अपने से एक पुत्र को उत्पन्न किया । वह ब्रह्मा का मानस पुत्र उनके सामने आया ॥५५॥ उत्पन्न होते ही ब्रह्माजी का वह मानस पुत्र कहा— हे भगवन् ! आप बतलाइये कि मैं आपकी कौन सी सहायता कर सकता हूँ ॥५६॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे महामते ! ये महर्षि कपिल तथा ब्रह्म नारायण जो कह रहे हैं, उसे तुम करो ॥५७॥ ब्रह्माजी के कहने पर उसने उन दोनों से हाथ जोड़कर कहा— मैं यह सुनना चाहता हूँ कि मैं क्या करूँ ?॥५८॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** जो सत्य तथा अक्षर ब्रह्म है वह अठारह प्रकार का है तथा जो सत्य तथा अमृत स्वरूप है उस परमपद का स्मरण करो ॥५९॥ उस बाणी को सुनकर वह उत्तर दिशा में चला गया, और वहाँ जाकर वह अपने ज्ञाननेत्र के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त किया ॥६०॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने दूसरे

ततः सोप्यब्रवीद्वाक्यं किं करोमि पितामह । पितामह समाज्ञातो ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥६२॥
ब्राह्मणस्यामृतरसो नु भूतस्तेन वै ततः। प्राप्तः स परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः ॥६३॥
तस्मिन्नपि गते सोऽथ तृतीयमसृजत्प्रभुः। मोक्षप्रवृत्तिकुशलं सुवर्नाम युतं प्रभुः ॥६४॥
सोऽपि तं धर्ममास्थाय तयोरेवागमद्गतिम् । एवं पुत्रा स्त्रयोप्येते गताः शंभोर्महात्मनः ॥६५॥
तान् गृहीत्वा सुतांस्तस्य तौ गतवूर्जितां गतिम् । नारायणश्च भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः ॥६६॥
यं कालं ते गता ब्रह्म ब्रह्मा तं कालमेव च। तपोघोरतरं भूयः संश्रितः परमं पदम् ॥६७॥
न च शक्तस्ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन्। शरीरार्धात्ततो भार्यामुत्पादयति तच्छुभाम् ॥६८॥
आत्मनः सदृशान्पुत्रानसृजद्वै पितामहः। विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोकाविनिःसृताः ॥६९॥
विश्वेशं प्रथमं तावन्महात्मा तपसात्मजम् । सर्वत्र संहतं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान् ॥७०॥
दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमंगिरसं मुनिम् ॥७१॥
अत्यद्भुतास्स्वकृत्येन ज्ञेयास्ते तु महर्षयः । त्रयोदशगुणारंभा ये वंशास्तु महर्षिणाम् ॥७२॥
अदिति र्दिति र्दनुः काला अनायुः सिंहिका खसा। प्राची क्रोधा च सुरसा विनता कद्रुरेव च ॥७३॥
दक्षस्यापत्यमेतद्वै कन्याद्वादशपार्थिव । नक्षत्राणि च चंद्रस्य विंशतिस्सप्तचोर्जिताः ॥७४॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसानिर्मितः किल। तस्मै द्वादशकन्याश्च दक्षस्ताश्चान्वमन्यत॥७५॥
नक्षत्राणि च सोमाय तथैवं दत्तवानृषिः । रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि कुरुनंदन ॥७६॥
लक्ष्मीस्सरस्वतीसंध्या विश्वेशा च महायशाः। देवी सरस्वती चैव ब्रह्मणानिर्मिताः पुरा ॥७७॥

भुवः की सृष्टि की । महामना ब्रह्माजी ने मन से ही सङ्कल्प करके सृष्टि की थी ॥६१॥ उसके वाद उसने भी कहा पितामह मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ? ब्रह्माजी के पास आये हुए ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके उसने ब्राह्मण के अमृत रस का अनुभव किया । उसी के द्वारा वह परम स्थान को प्राप्त करके उन दोनों के पास चला गया ॥६२-६३॥ उसके भी चले जाने पर ब्रह्माजी ने तीसरे पुत्र स्वः की सृष्टि की । वह भी मोक्ष की प्रवृत्ति में कुशल था ॥६४॥ वह भी धर्म को अपनाकर उपर्युक्त भूः तथा भुवः की ही गति को प्राप्त कर लिया । इसीतरह शङ्करजी के भी तीन पुत्र इसी गति को प्राप्त कर लिये ॥६५॥ ब्रह्माजी के उन तीनों पुत्रों को लेकर भगवान् नारायण और यतीश्वर कपिल श्रेष्ठ गति को चले गये ॥६६॥ जिस समय वे सब ब्रह्म को प्राप्त कर लिए उसी समय से ब्रह्माजी ने परमपद में ही रहकर घोर तपस्या की ॥६७॥ जब अकेले ब्रह्माजी तपस्या नहीं कर सके तब उन्होंने अपने शरीर के आधे भाग से शुभ पत्नी को उत्पन्न किया ॥६८॥ उसके बाद उन्होंने अपने ही समान सम्पूर्ण प्रजापति पुत्रों को उत्पन्न किया । उन सबो से ही लोकों की सृष्टि हुयी ॥६९॥ सर्वप्रथम प्रजापति ने धर्म को तपस्या से उत्पन्न किया । वह सर्वत्र पुण्य के नाम से व्याप्त हो गया ॥७०॥ इसके बाद उन्होंने दक्ष, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु तथा अङ्गिरा मुनि को उत्पन्न किया ॥७१॥ ये सभी महर्षि अत्यन्त अद्भुत कर्म करने वाले हैं । महर्षियों के तेरह गुण से प्रारम्भ होने वाले वंश है वे इन्हीं से हैं ॥७२॥ अदिति, दिति, दनु, काला, अनायुः, सिंहिका, खसा, प्राची, क्रोधा, सुरसा, विनता तथा कद्रु ॥७३॥ हे राजन् ! ये बारह दक्ष की पुत्रियाँ हैं । तथा जो चन्द्रमा के सत्ताइस नक्षत्र हैं वे भी दक्ष की ही पुत्रियाँ हैं ॥७४॥ मरीचि महर्षि ने तपस्या करके कश्यप नामक पुत्र को उत्पन्न किया । दक्ष प्रजापति ने अपनी बारह पुत्रियों का विवाह महर्षि कश्यप से कर दिया ॥७५॥ उन्होंने अपनी सत्ताइस पुत्रियों का विवाह चन्द्रमा से कर दिया । हे कुरुनंदन ! उनमें रोहिणी इत्यादि पुण्य नक्षत्र भी हैं ॥७६॥ ब्रह्माजी ने पहले ही पाँच

एताः पञ्चवरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव । दत्ता धर्माय भद्रं त ब्रह्मणा दृष्टकर्मणा ॥७८॥
या रूपार्धवी पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी। सुरभिः सहसा भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता ॥७९॥
ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुने लोकपूजितः । लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय सत्तम ॥८०॥
जज्ञे चैकादश सुतान्विपुलान्धर्मसंज्ञितान् । रक्त संध्याभ्रसंकाशान् महतस्तिग्मतेजसः ॥८१॥
ते रुदंतो द्रवंतश्च गतवंतः पितामहम् । रोदनाद्द्रवणाच्चैव रुद्रा एवेति ते स्मृताः ॥८२॥
निर्ऋतिश्चैव संध्यश्च तृतीयश्चाप्ययोनिजः । मृगव्याधः कपर्दी च महाविश्वेश्वरश्च यः ॥८३॥
अहिर्बुध्न्यश्च भगवान्कपाली चैव पिंगलः । सेनानीश्च महतेजा रुद्राश्चैकादशस्मृताः ॥८४॥
तस्यामेवसुरभ्यां च गावो जाताः सुराश्च ये । अजश्चैव तु हंसश्च तथैव नृपसत्तम ॥८५॥
ओषध्यः प्रवरा याश्च सुरभ्या स्तास्समुत्थिताः । धर्माल्लक्ष्मीस्तथाकामं साध्यान्साध्याव्याजायत ॥८६॥
भवं च प्रभवं चैव कृशाश्वं सुवहं तथा । अरुणं वरुणं चैव विश्वामित्रचलध्रुवौ ॥८७॥
हविष्मंतं तनूजं च विधानाभिमतावपि । वत्सरं चैव भूतिं च सर्वासुरनिषूदनम् ॥८८॥
सुपर्वाणं बृहत्कांतिं साध्या लोकनमस्कृतम् । वासवानुगता देवी जनयामास वै सुरान् ॥८९॥
धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम् । विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम् ॥९०॥
ततोऽनुरूपमायं च यमं तस्मादनंतरम्। सप्तं च तथावायुमष्टमं निर्ऋतिं तथा ॥९१॥
धर्मस्यापत्येमतद्वै सुरभ्यां तदजायत् । विश्वेदेवाश्च विश्वायां धर्माज्जाता इति स्मृताः ॥९२॥
दक्षश्चैव महाबाहुः पुष्करस्तम एव च । चाक्षुषश्च ततोत्रिश्च तथाभद्रमहोरगौ ॥९३॥
विश्वांतक वसुर्वालो निकुंभश्च महायशाः । रुरुद्श्चातिसिद्धौजा भास्करप्रमितद्युतिः ॥९४॥

पुत्रियों की सृष्टि की थी । उनके नाम है— लक्ष्मी, सरस्वती, सन्ध्या, महायशस्विनी विश्वेशा तथा देवी ॥७७॥ हे राजन् ! कर्मो को जानने वाले ब्रह्माजी ने इन पाँचों का विवाह देवताओं में श्रेष्ठ धर्म से कर दिया ॥७८॥ ब्रह्माजी के आधे शरीर से उत्पन्न जो उनकी पत्नी थी वह अपना रूप इच्छा के अनुसार बना लेती थी । वह सुरभि (कामधेनु) का रूप धारण करके ब्रह्माजी के पास गयी ॥७९॥ उसके पश्चात् लोकसंग्रह को जानने वाले ब्रह्माजी ने गायों को प्राप्त करने के लिए उसके साथ सङ्गम किया ॥८०॥ और उससे ग्यारह सन्तानों को प्राप्त किया जो धर्म संज्ञक हुए । वे सायं कालिक रक्तवर्ण के तथा अत्यन्त तीक्ष्ण तेजस्वी थे ॥८१॥ वे दौड़ते हुए तथा रोते हुए ब्रह्माजी के पास गये । रोने तथा दौड़ने के कारण वे रुद्र कहलाये ॥८२॥ उनके नाम है— निऋति, सन्ध्य, अयोनिज, मृग, व्याध, कपर्दी, महाविश्वेश्वर, अहिर्बुध्न्य, कपाली, पिगंल तथा सेनानी, ये ग्यारह रुद्र हैं ॥८३-८४॥ इसी सुरभि के गर्भ से गायें तथा देवता उत्पन्न हुए । बकरा तथा हंस भी उससे ही उत्पन्न हुए ॥८५॥ उस सुरभि से अनेक प्रकार के श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न हुए । लक्ष्मी से धर्म के पुत्र काम उत्पन्न हुए । साध्या से साध्यदेवगण उत्पन्न हुए ॥८६॥ साध्यों के नाम हैं— भव, प्रभव, कृशाश्व, सुवह, अरुण, वरुण, विश्वामित्र, चल, ध्रुव, हविष्मान्, तनूज, विधान, अभिमत, वत्सर, भूति सभी असुरों को विनष्ट करने वाले सुपर्वा, तथा बृहत्कान्ति, ये सभी लोक नमस्कृत साध्य देवगण हैं । देवी (वसु) ने देवताओं का अनुगमन करने वाले वसु देवताओं को उत्पन्न किय ॥८७-८९॥ उन वसुओं के नाम है धर, ध्रुव, विश्वावसु, सोम, अनुरूपमाय, यम, वायु तथा निऋति ॥९०-९१॥ ये सभी धर्म की सन्तानें सुरभि से उत्पन्न हुयीं । विश्वा के गर्भ से धर्म के पुत्र विश्वेदेव उत्पन्न हुए ॥९२॥ महाबाहु दक्ष, पुष्कर, तम, चाक्षुष, अत्रि, भद्र, महोरग ॥९३॥ विश्ववान्तक, वसु, बाल, महायशस्वी निकुम्भ, रुरुद, अतिसिद्धौजा, भास्कर तथा प्रमितद्युति ॥९४॥ इन समस्त विश्वेदेवों को देवमाता विश्वा

विश्वान्देवान्देवमाता विश्वेषां जनयत्सुतान्। मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयत्सुतान्॥९५॥
अग्निश्चक्षुरविर्ज्योतिः सावित्री मित्रमेव च। अमरं शरवृष्टिं च सुकर्षं च महत्तरम्॥९६॥
विराजं चैव राजं च विश्वायुं सुमतिं तथा। अश्वगं चित्ररश्मिं च तथाचानिषधं नृपम्॥९७॥
भूय एवं चात्मविधिं चारित्रं पादमात्रगम्। बृहंतं वै बृहद्रूपं तथा चैवसनाभिगम्॥९८॥
मरुत्वती प्रज्ञां जज्ञे ज्येष्ठांतं मरुतां गणम्। अदितिः कश्यपाज्जज्ञे आदित्यान् द्वादशैव हि॥९९॥
इंद्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंशोऽर्यमारविः। पूषामित्रश्च वरदो धाता पर्जन्य एव हि ॥१००॥
इत्येते द्वादशादित्या वरिष्टास्त्रिदिवौकसाम्। आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञाते द्वौ सुतौ वरौ॥१०१॥
तपः श्रेष्ठौ गुणश्रेष्ठौ त्रिदिवस्यातिसंमतौ। दनुस्तु दानवान् जज्ञे दितिर्दैत्यान्व्यजायत॥१०२॥
काला तु कालकेयांस्तानसुरान् राक्षसांस्तथा। अनायुषायास्तनया व्याधयश्च महाबलाः॥१०३॥
सिंहिका ग्रहमाता च गंधर्वजननी मुनिः। प्राचीत्वप्सरसां माता पुण्यानां भारतेतरा॥१०४॥
क्रोधाद्याःसर्वभूतानि पिशाचा सा च पार्थिव। जज्ञे यक्षगणांश्चैव राक्षसांश्च विशांपते॥१०५॥
चतुष्पदानि सत्वानि एतागाश्चैव सौरभी। पुराणपुरुषश्चैव मायां विष्णुर्हरिः प्रभुः॥१०६॥

कथितस्तेनुपूर्वेण संस्तुतश्च महर्षिभिः।
यश्चेदमग्रयं शृणुयात्पुराणं, सदा नरः पर्वसु चेत्पठेत्॥१०७॥
अवाप्य लोकं स हि वीतरागः, परत्र च स्वर्गफलानि भुंक्ते।
चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्॥१०८॥

प्रसादयति यः कृष्णं तस्य कृष्णः प्रसीदति। राज्यं च लभते राजा निर्धनश्चोत्तमं धनम्॥१०९॥
क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामोथ संततिम्। यज्ञार्थिनस्तथाकामांस्तपांसि विविधानि च॥११०॥

ने उत्पन्न किया॥९५॥ अग्नि, चक्षुः रवि, ज्योति, सावित्री मित्र, अमर, शरवृष्टि, सुकर्ष, महत्तर॥९६॥ विराजराज, विश्वायु, सुमति, अश्वग, चित्ररश्मि, निषध, नृप॥९७॥ आत्मविधि, चारित्र, पादमात्रग, बृहत्, बृहद्रूप, सनाभिग॥९८॥ मरुत्वती ने इन ज्येष्ठान्त मरुद्गणों को मारुत्वान से उत्पन्न किया। अदिति ने महर्षि कश्यप के पुत्र द्वादश आदित्यों को उत्पन्न किया॥९९॥ इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा, वरुण, अंश, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, वरदाता, धाता तथा पर्जन्य॥१००॥ ये सभी द्वादशादित्य है तथा देवताओं में श्रेष्ठ हैं। आदित्य के सरस्वती के गर्भ से दो श्रेष्ठ पुत्र हुए॥१०१॥ तप एवं श्रेष्ठ ये दोनों श्रेष्ठ गुणों से युक्त तथा स्वर्गलोक के अत्यन्त अनुकूल थे। दनु ने दानवों को उत्पन्न किया और दिति के पुत्र दैत्य हुए॥१०२॥ काला ने कालकेय असुरों तथा राक्षसों को उत्पन्न किया। अनायुषा ने महावलवान् व्याधियों को उत्पन्न किया॥१०३॥ ग्रहों की माता सिंहिका हुयी और गन्धर्वों की माता मुनि हुयी। अप्सराओं की माता प्राची थीं और पुण्यों की माता भारतेतरा हुयी॥१०४॥ हे राजन्! क्रोधा आदि ने भूतों तथा पिशाचों को उत्पन्न किया। हे राजन्! उन सबों ने ही यक्षों तथा राक्षसों को भी उत्पन्न किया॥१०५॥ सुरभि ने गायों तथा चार पैर वाले जानवरों को जन्म दिया। पुराण पुरुष श्रीहरि भगवान् विष्णु ने माया को उत्पन्न किया॥१०६॥ महर्षियों के द्वारा संस्तुत प्रसङ्ग को मैंने आपको क्रमशः बतलाया। जो मनुष्य इस श्रेष्ठ पुराण को सदा सुनता है तथा पर्व (संक्रान्ति) के समय पढ़ता है॥१०७॥ वह इस लोकराग से विरक्त हो जाता है तथा परलोक में स्वर्ग सुख को भोगता है। जो मनुष्य चक्षु, मन, वाणी तथा कर्म इन चारो प्रकारों से॥१०८॥ श्रीभगवान् को प्रसन्न करता है उस पर श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। राजा राज्य प्राप्त कर लेता है और निर्धन मनुष्य उत्तम धन को प्राप्त

यं यं कामयते कामं तं तं लोकेश्वराल्लभेत् । सर्वाविहाय य इमं पठेद्वै पौष्करं हरेः ॥१११॥
प्रादुर्भावं नरश्रेष्ठ न तस्य ह्यशुभं भवेत् । एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥११२॥
कीर्तितस्तु महाराज व्यासः श्रुतिनिदर्शनात् । विष्णुत्वं शृणु मेविष्णो र्हरित्वं च कृते युगे॥११३॥
वैकुंठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च । ईश्वरस्य हि तस्यैषा कर्मणां गहना गतिः ॥११४॥
सांप्रतं भूतभव्यंच शृणुराजन्यथातथम् । अव्यक्तो व्यक्तलिंगस्थो य एष भगवान्प्रभुः ॥११५॥
नारायणो ह्यनंतात्मा प्रभवाप्यय एव च । एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः ॥११६॥
ब्रह्मा वायुश्चसोमश्च धर्मः शक्रो बृहस्पतिः । अदितेरपि पुत्रत्वमेत्यजः कुरुनंदन ॥११७॥
एष विष्णुरिति ख्यात इंद्रस्यावरजो विभुः । प्रसादनं तस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् ॥११८॥
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् । ससर्जाथ सुरान्कल्पे ब्रह्माणं च प्रजापतीन् ॥११९॥
असृजन्मानसांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् । तेभ्यो भवन्महात्मभ्यः परं ब्रह्मसनातनम् ॥१२०॥
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तितम् । कीर्त्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥१२१॥
वृत्ते वृत्रवधे भीष्म वर्तमाने कृते युगे । आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥१२२॥
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः । घ्नंतिदेवासुरान् सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ॥१२३॥
ते वध्यमाना विमुखाश्छिन्नप्रहरणा रणे । त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुम् ॥१२४॥
एतस्मिन्नंतरे मेघा निर्वाणांगारवर्चसः । सार्कचंद्रग्रहगणंच्छादयंतो नभस्तलम् ॥१२५॥

कर लेता है ॥१०९॥ जिसकी आयु क्षीण हो गयी रहती है वह आयु को प्राप्त कर लेता है तथा पुत्रहीन पुत्र को प्राप्त कर लेता है । यज्ञार्थी पुरुष अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेते हैं तथा अनेक प्रकार की तपस्याओं के फल को प्राप्त कर लेते हैं ॥११०॥ जो मनुष्य सब कुछ छोड़कर श्रीहरि के पौष्कर प्रसङ्ग को पढता है, वह जिन-जिन कामनाओं को करता है, उन समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ॥१११॥ हे नरश्रेष्ठ ! उस पुरुष का अशुभ योनि में जन्म नहीं होता है । यह महात्मा ब्रह्माजी का पौष्कर नाम का प्रादुर्भाव है ॥११२॥ हे महाराज ! मैंने यह सब कुछ महर्षि व्यास के कथनानुसार कहा है । तुम भगवान् विष्णु के विष्णुत्व को मुझसे सुनो । सत्ययुग में वे ही श्रीहरि हुए ॥११३॥ देवों में उनके वैकुण्ठत्व तथा मनुष्यों में कृष्णत्व, ये सबके सब श्रीभगवान् के ही धर्म हैं कर्मो की गति अत्यन्त गहन है ॥११४॥ हे राजन् ! इस समय तुम भूत तथा भविष्य का श्रवण करो । ये श्रीभगवान् व्यक्तलिङ्गों में अव्यक्त रूप से रहते हैं ॥११५॥ अनन्त स्वरूप भगवान् नारायण ही सबों को उत्पत्ति स्थान तथा लय स्थान हैं । सृष्टि के प्रारम्भ में ये भगवान् नारायण ही सनातन हरि रूप से विद्यमान थे । हे कुरुनन्दन ! ये ही ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र, बृहस्पति तथा अदिति के पुत्र बन जाते है ॥११७॥ ये ही विष्णु रूप से प्रसिद्ध हैं तथा ये ही इन्द्र के छोटे भाई हो गये । अदिति ने अपने पुत्रों को राज्य दिलवाने के लिए इन्हें प्रसन्न किया ॥११८॥ वह चाहती थी कि देवताओं के शत्रु दानव और राक्षस मारे जायँ । कल्प के प्रारम्भ में इन्होंने ही सभी देवताओं तथा ब्रह्मा की सृष्टि की । ब्रह्माजी ने प्रजापति इत्यादि श्रेष्ठ वंशों की मन से सृष्टि की । उन सभी महात्माओं से श्रेष्ठ ये परब्रह्म हुए॥१२०॥ आश्चर्य रूप तथा लोकों में कीर्तनीय भगवान् विष्णु के कर्मो का मैंने वर्णन किया, उन कीर्तन किए जाने वाले भगवान् विष्णु को तुम मुझसे जानो ॥१२१॥ हे भीष्म ! वर्तमान सत्ययुग में जब वृत्रासुर का वध हो गया उस समय त्रैलोक्य विख्यात तारकामय संग्राम हुआ ॥१२२॥ उस संग्राम में सभी भयङ्कर तथा दुर्जय दानव, सभी देवताओं, यक्षों, सर्पों तथा राक्षसों को मारने लगे ॥१२३॥ दानवों से मारे जाते हुए वे युद्ध से विमुख हो गये । युद्ध

चंडविद्युद्गणोपेता घोरनिर्ह्लादकारिणः । अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुःसप्तमारुताः ॥१२६॥
दीप्ततोयाः सनिर्घातैः सह वज्रानलानिलैः । रवैस्सुघोरैरुत्पातै र्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥१२७॥
पेतुरुल्कासहस्राणि निपेतुः खचराण्यपि । दैवानि च विमानानि प्रपतंत्युत्पतंति च ॥१२८॥
चतुर्युगांतसमये लोकानांयद्भयं भवेत् । अरूपवति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥१२९॥
तस्माद्दुष्प्रथितं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन । तिमिरौघ परिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशोदश ॥१३०॥
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुंठिता । द्यौर्नभात्यभिभूतार्का घोरेण तमसावृता ॥१३१॥
तां घनौघां सतिमिरां दोर्भ्यामाछिद्य सप्रभुः । वपुः स्वं दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥१३२॥
बलाहकांजननिभं बलाहकतनूरुहम् । तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ॥१३३॥
दीप्तपीतांबरधरं तप्तकांचनभूषणम् । धूम्रांधकारवपुषं युगांताग्निमिवोत्थितम् ॥१३४॥
वृत्तद्विगुणपीनांसं किरीटाच्छन्नमूर्धजम् । बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम् ॥१३५॥
चंद्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् । नंदकानंदितकरं कौस्तुभोद्भासितोरसम् ॥१३६॥
शक्तिचित्रफलोदग्रं शंखचक्रगदाधरम् । विष्णुशैलं क्षमाशीलं श्रीवत्सं शार्ङ्गपाणिनम् ॥१३७॥
त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुवल्लभम् । सर्वलोकमनः कांतं सर्वसत्त्वमनोहरम् ॥१३८॥
मायाविशालविटपं तोयदौघसमप्रभम् । विद्याहंकारमानाढ्यमहाभूतप्ररोहणम् ॥१३९॥

में उनके समस्त अस्त्र-शस्त्र विनष्ट हो गये थे । वे मन से ही अपने रक्षक भगवान् नारायण की शरणागति किए॥१२४॥ उसी समय ऐसे मेघ उत्पन्न हुए जो अङ्गार के समान चमक रहे थे । उन सबों ने सूर्य, चन्द्रमा तथा समस्त ग्रहों को तथा आकाश को ढँक लिया ॥१२५॥ उनमें भयङ्कर विजली चमक रही थी, वे भयङ्कर गर्जना कर रहे थे परस्पर में टकराकर सातो प्रकार की वायु चलने लगी ॥१२६॥ तप्त जल की वर्षा होने लगी वज्र के समान अग्नि तथा वायु के द्वारा भयङ्कर ध्वनि तथा उल्कापातों से आकाश मानो जला जा रहा था ॥१२७॥ हजारों उल्काएँ गिरने लगी, आकाशचारी जीव पृथिवी पर गिर पड़े देवताओं के विमान नीचे गिर रहे थे तथा ऊपर उठ रहे थे॥१२८॥ चतुर्युग के अन्त के समय में जिसतरह का भय लोकों में उत्पन्न हो जाता है । रूप रहित उत्पात उसीतरह का यह रूपवान उत्पात हो रहा था ॥१२९॥ उससे होने वाले उत्पातों के कारण का कुछ भी पता न चला अन्धकार से आच्छन्न होने के कारण दिशायें सुशोभित नहीं होती थीं ॥१३०॥ कालमेघ से आच्छन्न साक्षात् काली प्रवेश कर गयी। सूर्य के अभिभूत हो जाने के कारण दिशाओं का पता नहीं चल रहा था ॥१३१॥ मेघसमूह के अन्धकार से युक्त आकाश के अन्धकार को दोनों हाथों से फाड़कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना दिव्य शरीर प्रकाशित किया ॥१३२॥ मेघ जन्य आंजन के समान मेघ के समान रोओं वाले, तेज तथा शरीर से नीलाचल के समान भगवान् विष्णु॥१३३॥ जो देदीप्यमान पीताम्बर धारण किए हुए थे तप्तकाञ्चन निर्मित उनके भूषण थे, धूमिल अंधकार के समान तथा नवोद्भूत युगान्त अग्नि के समान उनका शरीर था ॥१३४॥ गोल दो गुना मोटा उनका कंधा था, उनके केश किरीट से ढँके थे तथा सुवर्ण के समान आयुधों से वे सुशोभित हो रहे थे ॥१३५॥ सूर्य तथा चन्द्रमा के समान उनके शरीर की रश्मि के समान उनका प्रकाश था तथा उनका वह शरीर पर्वत समूह के समान ऊँचा था । उनके हाथ में नन्दक नामक खड्ग विद्यमान था वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि से प्रकाशित तथा ॥१३६॥ शक्ति रूपी विचित्र फल से उन्नत, शङ्ख, चक्र तथा गदाधारण किए हुए क्षमाशील श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित शार्ङ्ग धनुषधारी ॥१३७॥ देवताओं को अभिमत फल प्रदान करने वाले स्वर्ग की स्त्रियों के प्रिय वल्लभ, सभी लोकों के मन को प्रिय लगने वाले, सभी

विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम्। दैत्यलोकमहास्कंधं मर्त्यलोकप्रकाशितम् ॥१४०॥
सागराकारनिर्ह्लादं रसातलतलाश्रयम् । नागेंद्रपाशै र्विततं पक्षिजंतुसमन्वितम् ॥१४१॥
शीलानाहार्यगंधाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् । अव्यक्तानंदसलिलं व्यक्ताहंकारफेनिलम् ॥१४२॥
महाभूतकरौघौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् । विमानवाहनैर्व्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम् ॥१४३॥
जंतुमत्स्यगणाकीर्णं शैलशंखकुलैर्युतम् । त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिंगिलम् ॥१४४॥
वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्सृष्टशैवलम् । द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ॥१४५॥
वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्यांभो महोदधिम्। संध्यासंध्योर्मिसलिलमापूर्णानिलशोभितम् ॥१४६॥
दैत्ययक्षगणग्रामं रक्षोगणझषाकुलम् । पितामहमहावीर्यं स्वर्गस्त्रीरत्नसंकुलम्॥१४७॥
श्रीकीर्तिकांतिलक्ष्मीभिर्नदीभिश्च समाकुलम् । कालयोगमहावर्षप्रलयोत्पत्तिवेगितम् ॥१४८॥
सत्संयोगमहापारं नारायणमहार्णवम् । देवातिदेवं वरदं भक्तानां भक्तवत्सलम् ॥१४९॥
अनुग्रहकरं देवं प्रशांतिकरणं शुभम् । हर्यश्वरथसंयुक्तसुपर्णध्वजशोभिते ॥१५०॥
चंद्रार्कचक्ररचित उदाराक्षवृतांतरे । अनंतरश्मिसंयुक्ते दुर्दर्शे मेरुकूबरे ॥१५१॥
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबंधुरे । भयेष्वभयदे व्योम्नि देवदैत्यापराजिते ॥१५२॥
हर्यश्वरथसंयुक्तमुक्ताशोभासमन्वितम् । ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्यालोकमये रथे ॥१५३॥

जीवों को मनोहर प्रतीत होने वाले ॥१३८॥ माया के विशाल वृक्ष स्वरूप, मेघ के समान कान्ति वाले, विद्या, अहङ्कार तथा सम्मान से सम्पन्न महाभूतों के अङ्कुरण के समान ॥१३९॥ विशेष प्रकार के पत्तों से परिपूर्ण तथा नक्षत्र रूपी पुष्पों से पुष्पित दैत्यलोक रूपी मोटी शाखाओ वाली तथा मर्त्य लोक को प्रकाशित करने वाले ॥१४०॥ सागर के समान ध्वनि करने वाले, पाताल लोक के आश्रय स्वरूप, नागेन्द्र के पाशों से जिनका विस्तार था पक्षियों तथा जंतुओं से युक्त ॥१४१॥ शील के द्वारा जिसका आहरण नहीं किया जा सकता ऐसे गन्ध से सम्पन्न सारे लोक ही जिनके महान वृक्ष है, अव्यक्त आनन्द ही जिनका जल है, जो व्यक्त अहंकार से फेन युक्त हैं ॥१४२॥ महाभूत समूह को उत्पन्न करने वाले, ग्रह एवं नक्षत्र ही उस जल के बुलबुले हैं, जो विमानों तथा वाहनों से भरे हुए है मेघ समूह से व्याप्त ॥१४३॥ तथा जन्तु रूपी मत्स्य समूह से भरा हुआ, पर्वत रूपी शङ्ख जिसमे भरे हुए हैं प्रकृति के विषय रूपी आवर्त (चकोह) से युक्त तथा सारेलोक ही उस जल राशि के तिमिङ्गिल हैं ॥१४४॥ वीर ही उसके वृक्ष तथा लताएँ हैं, सर्पो से परित्यक्त अंश ही उसके (जल राशि के) सरोवर हैं, द्वादशादित्य ही उसके महाद्वीप है, ग्यारह रुद्र ही उसके नगर हैं ॥१४५॥ आठो वसु ही उसके आठ कुल पर्वत हैं ऐसे त्रैलाक्य रूपी महासागर के संध्या तथा संध्यांश ही जिसके तरङ्ग हैं, आपूर्ण रूपी वायु से सुशोभित ॥१४६॥ दैत्यों तथा यक्षों के समूह ही जिसके जलजंतु हैं, पितामह (ब्रह्माजी) ही जिनके महावीर्य हैं, जो स्वर्ग की स्त्रियों से व्याप्त है (भरा हुआ है) श्री, कीर्ति, कांन्ति तथा लक्ष्मी आदि नदियों से जो भरा हुआ है, कालयोग रूपी महावर्षा के कारण उत्पन्न होने वाले प्रलय ही उस समुद्र के वेग हैं ॥१४८॥ सत्संग की प्राप्ति ही जिसका महापार है, ऐसे देवों के आराध्य, भक्तों को वरदान देने वाले भक्त वत्सल ॥१४९॥ कृपा करने वाले तथा शान्ति प्रदान करने वाले, शुभ देवता हर्यश्श्व रूपी रथ से युक्त सुपर्ण (गरुड) रूपी ध्वज से सुशोभित ॥१५०॥ चन्द्रमा और सूर्य रूपी चक्के से निर्मित, विशाल अक्ष के भीतर जो अनंतरश्मियों से युक्त था, जिसको देख पाना कठिन था, ऐसे सुमेरु पर्वत के ऊपर ॥१५१॥ तारायें ही जिसको सजाने वाले रङ्ग-विरङ्गे पुष्प हैं तथा ग्रहों एवं नक्षत्रों से मनोहर लगने वाले, भय के अवसर पर भी अभय प्रदान

तेकृतांजलयः सर्वे देवा इंद्रपुरोगमाः । जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणंगताः ॥१५४॥
एतेषां च गिरः श्रुत्वा सविष्णुर्देवदैवतः। मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ॥१५५॥
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुराश्रितः । उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ॥१५६॥
शांतिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्टमरुतां गणाः ! जितामे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ॥१५७॥
ततोस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः । देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राश्यामृतमिवोत्तमम् ॥१५८॥
ततस्तमश्च संहृत्य विनेशुश्च बलाहकाः । प्रववुश्च शिवा वाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥१५९॥
शुद्धप्रायाणि ज्योतींषि सोमं चक्रुः प्रदक्षिणम् । न विग्रहंग्रहाश्चकुः प्रसन्नाश्चापिसिंधवः॥१६०॥
विरजा अभवन् मार्गा लोकाः स्वर्गादयस्त्रयः । यथार्थमूहुस्सरितश्चुक्षुभे न तथार्णवः ॥१६१॥
आसन्छुभानीन्द्रियाणि नराणामंतरात्मसु । महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत॥१६२॥
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमापाच पावकः । प्रवृत्तधर्मसंवृत्ता लोकामुदितमानसाः ॥१६३॥
विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधनागिरः । ततोभयं विष्णुमुखाच्छ्रुत्वा दैतेयदानवाः ॥१६४॥
उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च । मयस्तु कांचनमयं त्रिनल्वांतरमव्ययम् ॥१६५॥
चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकल्पितमहायुधम् । किंकिणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ॥१६६॥
रुचिरं रश्मिजालैश्च हैमजालैश्च शोभितम् । ईहा मृगगणाकीर्णं पक्षिसंघविराजितम् ॥१६७॥

करने वाले, जिसको देवता और दैत्य कभी पराजित नहीं कर सकते हैं ॥१५२॥ ऐसे हर्यश्वरथ से युक्त मोतियों की शोभा से युक्त, दिव्य लोक रूपी महारथ में उपविष्ट भगवान् विष्णु ने देवताओं को दर्शन दिया ॥१५३॥ इन्द्र इत्यादि सभी देवता हाथ जोड़कर जय शब्द का उच्चारण करके उन शरण्य श्रीभगवान् की शरणागति किए।॥१५४॥ देवताओं की वाणी को सुनकर देवताओं के भी देवता भगवान् विष्णु ने महासमर में दानवों का विनाश करने के लिए मन बनाया ॥१५५॥ उत्तम शरीर वाले आकाश में स्थित भगवान् विष्णु प्रतिज्ञा करते हुए सभी देवताओं से कहे॥१५६॥ हे देवताओं ! आपलोग भयभीत न होइये, शान्त हो जाइये, आपलोगों का कल्याण हो । मैं सभी दैत्यों को जित लूँगा और आपलोगों को त्रैलोक्य प्रदान करूँगा ॥१५७॥ उसके पश्चात् सत्यसङ्कल्प वाले भगवान् विष्णु के वाक्य से सन्तुष्ट होकर देवता उसीतरह की प्रसन्नता का अनुभव किये जिस तरह की प्रसन्नता उन्हें अमृत का पान करने से होती है ॥१५८॥ उसके पश्चात् अन्धकार को उपसंहत करके मेघ विनष्ट हो गये । सुखद वायु चलने लगी दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं ॥१५९॥ सभी ज्योतियाँ शुद्ध होकर चन्द्रमा की प्रदक्षिणा करने लगीं । ग्रहों में अब कोई भी विग्रह नहीं हो रहा था, सभी नदियाँ स्वच्छ हो गयीं ॥१६०॥ सभी मार्ग धूलि रहित हो गये तथा स्वर्ग आदि लोक रजोगुण रहित हो गये । नदियाँ अपने मार्ग से प्रवाहित होने लगीं तथा महासागर में क्षोभ नहीं उत्पन्न हुआ ॥१६१॥ मनुष्यों की अन्तरात्माओं में इन्द्रियाँ मङ्गलमयी हो गयीं । शोक रहित महर्षिगण उच्च स्वर से वेद घोष करने लगे॥१६२॥ यज्ञों में अग्नि देव ने कल्याणमय हविष्यपाक को ग्रहण किया । प्रवृति मार्ग में लगे हुए लोगों का मन प्रसन्न हो गाया ॥१६३॥ सत्य प्रतिज्ञ भगवान् विष्णु के मुख से शत्रुओं के विनाश विषयक वाणी को सुनकर ये सारी बातें हो गयीं । उसके पश्चात् विष्णु के मुख से भयप्रद वाणी को सुनकर सभी दैत्य तथा दानवों ने ॥१६४॥ युद्ध करने तथा विजय प्राप्त करने के लिए पूरी मात्रा में तैयारी की । मय नामक दानव युद्ध करने की इच्छा से ऐसे रथ पर बैठा जो उदित हुए सूर्य से सुशोभित सुमेरु पर्वत के समान था । वह सुवर्ण निर्मित रथ, तीन नल्वों (प्रकोष्ठों) वाला था । उसमें चार चक्र लगे थे । उसमें विपुल मात्रा में महान् आयुध भरे थे । वह ईहामृगों से परिपूर्ण था तथा

दिव्यास्त्रशस्त्ररुचिरं पयोधरनिनादितम् । स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् ॥१६८॥
गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमंतमिवार्णवम् । हेमकेयूरवलयं चंद्रमंडलकूबरम् ॥१६९॥
सपताकध्वजोपेतं सादित्यमिवमन्दरम् । गजेंद्राभोगवपुषं क्वचित्केसरवर्चसम् ॥१७०॥
युक्तमृक्षसहस्त्रेण सुधारांबुदनादितम् । दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् ॥१७१॥
अध्यतिष्ठद्रणाकांक्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् । तारस्तु क्रोशविस्तारमायामे च तथाविधम् ॥१७२॥
शैलकूबरसंकाशं नीलांजनचयोपमम् । काललोहस्य रत्नानां समूहावद्धकूबरम् ॥१७३॥
तिमिरोद्गारकिरणं गर्जंतमिव तोयदम् । लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ॥१७४॥
आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः । प्रासैः पाशैश्च विततैरसंयुक्तैश्च कण्टकैः ॥१७५॥
शोभितं त्रासनीयैश्च तोमरैः स परश्वधैः । उद्यन्तंद्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मंदरम् ॥१७६॥
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्याराहद्रथोत्तमम् । विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ॥१७७॥
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृंग इवाचलः । युक्तं हयसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ॥१७८॥
व्यूहितं दानवव्यूहं परिचक्रमवीर्यवान् । विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुंडलभूषणः ॥१७९॥
स्यंदनं वाहयामास परानीकस्य मर्दनः । व्यायतं किष्कुसाहस्त्रं धनुर्विस्फारयन्महत् ॥१८०॥
स चाहवमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः । खरस्तु विष्किरिन् क्रोधान्नेत्राभ्यां रोपजं जलम् ॥१८१॥
स्फुरद्दंतौष्ठनयनः सङ्ग्राम सोभ्यकांक्षत । त्वष्टा त्वष्टादशहयं यानमास्थाय दानवः ॥१८२॥
दिव्यव्यूहप्रतीकाशोयुद्धायाभिमुखः स्थितः । अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्ठो दुर्धरायुधः ॥१८३॥

पक्षिगण से वह सुशोभित था । वह दिव्य अस्त्रों तथा शस्त्रों से मनोहर तथा मेघ के समान घर्घर ध्वनि करता था । उस श्रेष्ठ रथ का पृष्ठ भाग आकाश के समान विस्तृत था ॥१६५-१६८॥ गदाओं और परिघों से भरा हुआ वह मूर्तिमान समुद्र के समान था । सुवर्ण निर्मित केयूर तथा वलय वाले उस रथ के बीच का भाग चन्द्रमण्डल के समान था । आदित्य से सुशोभित मन्दराचल के समान वह पताकाओं तथा ध्वजों से सुशोभित था । उसका कलेवर गजेन्द्र के समान विस्तृत तथा कहीं पर केसर के समान चमकदार था एवं हजारो तारों से युक्त, सुन्दर धाराओं के युक्त, मेघ के समान ध्वनि करता था । इस प्रकार का देदीप्यमान वह आकाशगामी रथ दूसरों के रथ को विनष्ट कर देने वाला था ॥१६९-१७२॥ तारकासुर तो ऐसे रथ पर बैठा था जिसमें हजारो गधे जुते हुए थे । उस रथ की लम्बाई तथा चौड़ाई एक कोश में थी । वह देखने में पर्वत के मध्य भाग के समान था, लगता था जैसे वह काले आंजन का समूह हो । उसके बीच का भाग काले लोहे के रत्नों से बंधा था ॥१७३॥ उसकी चमक से अन्धकार फैल जाता था। उसकी मेघ के समान ध्वनि होती थी उसकी खिड़कियाँ लौह समूह से बनी थीं ॥१७४॥ वह रथ लोहे से निर्मित परिघ तथा प्रक्षेपणीय मुद्गरों से भरा हुआ था, पृथक्-पृथक् कण्टकों से युक्त वह प्रासों तथा प्राशों से भरा था । वह भय पैदा करने वाले तोमर तथा कुठारों से सुशोभित था । ऐसा लगता था जैसे वह शत्रुओं के लिए दूसरा मंदराचल प्रकट हुआ हो ॥१७५-१७६॥ क्रुद्ध विरोचन अपने हाथ में गदा धारण करके खड़ा था । वह असुर सेना का प्रमुख सेनापति था । देखने में पर्वत शिखर के समान लगता है । हजारो अश्व रोहियों से युक्त हयग्रीव नामक पराक्रमी दानव॥१७७-१७८॥ व्यूहवद्ध दानव सेना के चारो ओर धूम रहा था । श्वेत कुण्डल धारण किए हुए विप्रचित्ति का पुत्र श्वेत शत्रु की सेना को मसलं डालने वाला था वह हजारो हाथ विस्तृत अपने रथ को विशाल धनुष का टंकोर करते हुए आगे बढा रहा था ॥१७९-१८०॥ वह युद्ध के अग्रभाग में बढ़ते हुए पर्वत के समान आगे आकर खड़ा हो गया । खर नामक राक्षस के आँखों से क्रोध के कारण जल निकल पड़ा ॥१८१॥ उसके दाँत, ओष्ठ एवं नेत्र फड़फड़ा रहे थे, वह युद्ध करना चाहता था । त्वष्टा नामक दानव अठारह घोड़ों वाले रथ पर चढकर ॥१८२॥ दिव्य व्यूह के समान युद्ध करने के लिए सामने खड़ा था । बलि का बड़ा तथा भयङ्कर आयुध धारण करने वाला पुत्र

युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकंपनः । किशोरस्त्वतिसंहर्षात्किशोर इव चोदितः ॥१८४॥
अभवद्दैत्यमध्ये स ग्रहमध्ये यथारविः । लंबस्तु नवमेघाभः प्रलंबांबरभूषणः ॥१८५॥
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहारइवांशुमान् । वसुन्धराभस्तदनु दशनौष्ठेक्षणायुधः ॥१८६॥
हसंस्तिष्ठति दैत्यानाम्मध्ये क्रूरमहाग्रहः । अन्ये हयगतास्तत्र मत्तेभेंद्रगताः परे ॥१८७॥
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे । केचित्खरोष्ट्रयन्तारः केचित्तोयदवाहनाः ॥१८८॥
पत्तयश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः । एकपादास्त्वपादाश्च ननृतुर्युद्धकांक्षिणः ॥१८९॥
आस्फोटयंतो बहवः स्वनंतश्च तथापरे। दृप्तशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः॥१९०॥
तेगदापरिघैर्घोरैः शिलामुद्गरपाणयः । बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयंतिस्म देवताः ॥१९१॥
प्रासैः खड्गैश्च पाशैश्च तोमरां कुशपट्टिशैः । चिक्रीडुस्तेशतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ॥१९२॥
खड्गशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोद्यतायुधैः। युक्तं बलाहकगणैः सर्वतः संवृतं नभः ॥१९३॥
एवं तद्दानवं सैन्यं सर्वसत्वमदोत्कटम् । देवताभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोदितम्॥१९४॥
रेजे च तद्दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलांबुदतोयकल्पम् ।
बलंबलौघाकुलमभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवाबभासे ॥१९५॥
श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तारः कुरुनंदन। सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु॥१९६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे दैत्यसेनावर्णनं नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

अरिष्ट ॥१८३॥ पर्वतों को कंपा देने वाला युद्ध स्थल में सामने खड़ा था, वह किशोर नामक दैत्य किशोर के ही समान दैत्यों के बीच में उसी तरह विद्यमान था जैसे ग्रहों के बीच सूर्य विद्यमान हों । नवीन मेघ के समान कान्ति वाला लम्बा काला वस्त्र धारण करके ॥१८५॥ वह दैत्यों के बीच कुहरा से आच्छन्न सूर्य के समान प्रतीत होता था। उसके पीछे दाँत, ओष्ठ तथा नेत्र ही जिसके आयुध थे ऐसा वसुन्धराभ था ॥१८६॥ वह महाग्रह के समान दैत्यों के बीच में हँस रहा था । दूसरे भी घुड़सवार तथा हाथी सवार भी दैत्य युद्ध के लिए तैयार थे ॥१८७॥ कुछ दैत्य सिंह पर, कुछ व्याघ्र पर, कुछ वराह पर, कुछ भालू पर, कुछ गधों पर, कुछ ऊँटो पर सवार थे । कुछ तो मेघ पर ही सवार थे ॥१८८॥ दूसरे भयङ्कर तथा विकृत मुख वाले दैत्य पैदल सेना में थे । कुछ एक पैर वाले कुछ बिना पैर के ही थे । सब युद्ध करने की इच्छा से नृत्य कर रहे थे ॥१८९॥ कुछ दैत्य अपनी ताल ठोक रहे थे बहुत से चिल्ला रहे थे । भयङ्कर सिंह के समान भयङ्कर दानव श्रेष्ठ गर्जना कर रहे थे ॥१९०॥ अपने हाथ में शिला और मुद्गर धारण किए हुए वे भयङ्कर गदाओं, परिघों तथा परिघ के समान भुजाओं से देवताओं को डरा रहे थे ॥१९१॥ वे प्रास, खड्ग, पाश, तोमर, अङ्कुश, पट्टिश, शतघ्नी, सौ धारों वाले तथा मुद्गर से क्रीडा कर रहे थे॥१९२॥ खड्ग, खड्गशैल, शैल से तथा परिघों से क्रीडा करते थे । आकाश मेघगण से ढँक गया । इसतरह की दैत्यों की सेना मद से उत्कट बनी थी । वह देवताओं के सामने उठे हुए मेध के समान खड़ी हो गयी ॥१९४॥ हजारों दैत्यों से युक्त वह सेना लगती थी वायु और अग्नि से युक्त पर्वत रूपी मेघ का जल हो, इस तरह की दैत्यों की अति बलवती सेना देवताओं से युद्ध करने की इच्छा से उन्मत के समान प्रतीत होती थी ॥१९५॥ हे कुरुनन्दन! आपने दैत्यों की सेना का विस्तार सुना अब आप देवताओं की सेना का विस्तार सुनें ॥१९६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के दैत्यसेना वर्णन नामक चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४०।।

एकतालीसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ । सबलाः सानुगाश्चैव संनह्यन्त यथा क्रमम् ॥१॥
पुरुहूतश्च पुरतो लोकपालः सहस्रदृक् । ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोहवरद्विपम् ॥२॥
सव्ये चास्य रथःपार्श्वे पक्षिप्रवरकेतनः । सुचारुचक्रचरणो हैमच्छत्रपरिष्कृतः ॥३॥
देवगंधर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः । दीप्तिमद्भिश्च स्वर्गस्थै र्ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥४॥
वज्रविस्फारितोद्भूतौ विद्युदिंद्रायुधप्रभैः । युक्तं बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ॥५॥
यमारूढः सभगवान्पर्येति सकलं जगत् । हविर्दानेषु गायंति विप्रा मखमुखेस्थिताः ॥६॥
स्वर्गसंग्रामयातेषु देवतूर्यनिनादिषु । सेंद्रं तमुपनृत्यन्ति शतशोह्यप्सरोगणाः ॥७॥
केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः । युक्तो हयसहस्रेण मनोमारुतरंहसा ॥८॥
सम्यग्रथवरो भाति युक्तो मातलिना तदा । कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥९॥
यमस्तु दंडमुद्यम्य कालयुक्तं च मुद्गरम् । तस्थौ सुरगणानीके दैत्यानां चैव दर्शयन् ॥१०॥
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः । शङ्खमुक्तांगदधरो बिभ्रत्तोयमयंवपुः ॥११॥
कालपाशान्समाविध्य हयैः शशिकरोपमैः । वाय्वीरितजलाकारैः कुर्वन्लीलाः सहस्रशः ॥१२॥
पांडुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिरांगदः । मणिश्यामोत्तमवपुर्हारकेणार्चितोदरः ॥१३॥

देवसेना के दैत्य सेना के साथ युद्ध करते समय उर्व के ऊरूभाग से और्वानल की उत्पत्ति का वर्णन, कालनेमि का वध, ब्रह्माजी द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति, भगवान् द्वारा देवताओं को वरदान

महर्षि पुलस्त्य ने कहा— आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण और महाबलवान् दोनों अश्विनी कुमार ये सब अपनी सेना तथा अनुचरों के साथ युद्ध करने के लिए क्रमशः तैयार हो गये ॥१॥ सभी देवताओं में प्रधान, सहस्राक्ष तथा सर्व प्रथम लोकपाल इन्द्र श्रेष्ठ हाथी पर बैठ गये ॥२॥ इन्द्र की दाहिनी ओर गरुडध्वज, सुन्दर चक्र हाथ में लिए हुए तथा सुवर्ण निर्मित छत्रधारी ॥३॥ जिनके पीछे हजारों देवता, गन्धर्व तथा यक्षों का समूह चल रहा था, देदीप्यमान, स्वर्ग में रहने वाले ब्रह्मर्षिगण जिनकी स्तुति करते रहते हैं ॥४॥ वज्र के समान उत्पन्न, इन्द्रायुध के समान कान्ति वाले मेध गण, स्वेच्छानुसार चलने वाले पर्वत के समान ॥५॥ जिस पर चढकर श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् में जाते हैं, यज्ञ में व्याप्त विप्रगण हविष्य प्रदान करते समय जिनका गायन करते हैं ॥६॥ स्वर्ग में संग्राम होने पर तथा देवताओं की तूर्य ध्वनि में, असंख्य अप्सराएँ जिनके सन्निकट में नृत्य करती हैं ॥७॥ जो नागराज रूपी पताका के द्वारा सूर्य के समान सुशोभित होते हैं, जिनका मातलि से युक्त मन तथा वायु के समान वेग वाले हजारों अश्वों से युक्त रथ उसी तरह से सुशोभित होता है, जैसे सूर्य के तेज से सम्पूर्ण सुमेरु पर्वत प्रकाशित हो रहा हो। इसप्रकार के इन्द्र अपनी सेना के अग्रभाग में विद्यमान थे ॥९॥ यमराज ने अपना यमदण्ड तथा काल युक्त मुग्दर को उठाकर, उसे दैत्यों को दिखाते हुए देवताओं की सेना में विद्यमान थे ॥१०॥ वरुण चार सागरों से युक्त जिनको सर्पचाट रहे थे, शङ्ख तथा मुक्तामय अंगद (केयूर) धारण किए हुए, जलमय शरीर धारण किए हुए ॥११॥ कालपाश से युक्त, चन्द्र किरणों के समान अश्वों के द्वारा, जिनका आकार वायुप्रेरित जल के समान था, उन अश्वों के द्वारा लीला कर रहे थे ॥१२॥ उनका श्वेत वस्त्र फड़फडा रहा था तथा उनका केयूर प्रवाल जटित था, श्यामसणि (नीलमणि) के

वरुणः पाशधृङ्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान्। युद्धमेवाभिलषन्भिन्नवेल इवार्णवः ॥१४॥
यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि। युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ॥१५॥
राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत । विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः॥१६॥
सराजराजः शुशुभे यक्षेशो नरवाहनः । पूर्वपक्षे सहस्राक्षः पितृराजश्च दक्षिणे॥१७॥
वरुणः पश्चिमे पक्ष उत्तरे नरवाहनः । चतुः पक्षाश्च चत्वारो लोकपाला महाबलाः॥१८॥
आत्मदिक्षु चरंतश्च तस्य देववलस्यते। सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनानिलागामिना ॥१९॥
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः । उदयास्तमयौ चक्रे मेरुपर्यन्तगामिना ॥२०॥
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपसालोकमव्ययम्। सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा ॥२१॥
चचार मध्ये देवानां द्वादशात्मा दिवाकरः । सोमः श्वेतहयोभाति स्यंदने शीतरश्मिमान् ॥२२॥
हिमतोयप्रपूर्णाभि र्भाभिराह्लादयञ्जगत् । तमृक्ष योगानुगतं शिशिरांशुंद्विजेश्वरम् ॥२३॥
शशच्छायांकिततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् । ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसदं प्रभुमव्ययम्॥२४॥
ओषधीनां पवित्राणां निधानममृतस्य च। जगतः परमं भागं सौम्यं सर्वमयं रसम् ॥२५॥
ददृशुर्दानवाःसोमं हिमप्रहरणं स्थितम् । यः प्राणः सर्वभूतानां पंचधा भिद्यते नृषु ॥२६॥
सप्तस्कंधगतो लोकांस्त्रीन्दधार चकार च । यमाहुरग्निकर्त्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ॥२७॥
सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीर्भिरुदीयते । यं वदंति चलं भूतं यं वदंत्यशरीरिणम् ॥२८॥

समान उनका उत्तम शरीर था, उनके उदर पर हार सुशोभित हो रहा था । ऐसे वरुण पाश धारण किए हुए देवताओं की सेना में विद्यमान थे । उमड़ते हुए समुद्र के समान वे युद्ध की बेला आने की अभिलाषा कर रहे थे ॥१४॥ यक्षों एवं राक्षसों की सेना तथा गुह्यकों के समूह से भी, युक्त शङ्ख तथा पद्म नामक निधियों के स्वामी ॥१५॥ राजराजेश्वर कुबेर अपने हाथ में गदा लिए हुए दिखायी दे रहे थे । इस प्रकार के विमान से युद्ध करने वाले कुबेर पुष्पक विमान पर बैठे हुए थे ॥१६॥ इसतरह से वे राज राजेश्वर नरवाहन कुबेर सुशोभित होते थे । सेना के पूर्वभाग में इन्द्र थे, दक्षिणभाग में यमराज थे ॥१७॥ पश्चिम भाग में वरुण थे तथा उत्तर भाग में कुबेर थे । इसतरह से सेना के चारो भाग में चार महाबलवान् लोकपाल थे ॥१८॥ अपनी दिशाओं में संचरण करने वाली देवसेना के बीच में द्वादश शरीरधारी सूर्य विचरण कर रहे थे । उनका रथ वायु के समान वेग वाला था, उस में सात घोड़े जुते थे ॥१९॥ देदीप्यमान रश्मियों से वह चमक रहा था । सुमेरु पर्यन्त जाने वाले रथ के द्वारा उदय तथा अस्तमन करने का काम करते थे ॥२०॥ स्वर्ग के द्वारा चक्र भूत तपस्या के द्वारा उसका प्रकाश कभी क्षीण नहीं होता था । असंख्य रश्मियों के तेज से उनका रूप प्रकाशित हो रहा था ॥२१॥ चन्द्रमा के रथ का घोड़ा श्वेत वर्ण का था और उनकी किरणें शीतल थी ॥२२॥ वे अपनी शीतल जल से पूर्ण कान्ति के द्वारा संसार को आह्लादित करते थे । उन नक्षत्रों के योग से युक्त, द्विजेश्वर चन्द्रमा को ॥२३॥ दानवों ने देखा कि वे शीत अस्त्र को धारण किए हुए हैं । उनका शरीर शशक (खरगोश) के चिह्न से युक्त है । रात्रि के अन्धकार को ये विनष्ट करने वाले हैं, ये नक्षत्रों के स्वामी हैं, आकाश में रस प्रदान करने वाले अव्यय स्वामी हैं तथा पवित्र ओषधियों के तथा अमृत के आकर (खजाना) हैं । जगत् के परम भाग, सर्व रसमय एवं सौम्य हैं । जो सभी प्राणियों के पाँच प्रकार के प्राण हैं ॥२३-२६॥ इनके सात स्कन्ध (स्थूल भेद) हैं । जो त्रैलोक्य को धारण करते हैं, जिनको अग्नि का जनक तथा सर्व समर्थ ईश्वर बतलाया गया है ॥२७॥ सात स्वरों वाली वाणी जिन से उद्भूत बतलायी जाती है । जिनको चल महाभूत तथा शरीर रहित कहा जाता

यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोनिजम् । सवायुः सर्वभूतायुरुद्धतः स्वेन तेजसा ॥२९॥
ववौ प्रव्यथयन्दैत्यान् प्रतिलोमं सतोयदः । मारुतो देवगंधर्वै विद्याधरगणैः सह ॥३०॥
चिक्रीडरश्मिभिश्शुभ्रै निर्मुक्तैरिव पन्नगैः । सृजंतः सर्पपतयस्तीव्रंरोषमयं विषम् ॥३१॥
शरभूताविलग्नाश्च चेरुर्व्यात्ताननना दिवि । पर्वताश्च शिलाश्रृंगैः शतशाखैश्च पादपैः ॥३२॥
उपतस्थुः सुरगणान्प्रहर्तुं दानवं बलम् । यः सदेवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ॥३३॥
युगांते कृष्णवर्त्मा च विश्वस्य जगतः प्रभुः । सर्वयोनि स मधुहा हव्यभुक्क्रतुसंस्थितः ॥३४॥
भूम्यम्बुव्योमभूतात्मा श्यामः शांतिकरोरिहा । अविघ्नममरादीनां चक्रे चक्रगदाधराः ॥३५॥
सव्येनालभ्यमहतीं सर्वायुधविनाशिनीम् । करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम् ॥३६॥
शेषैर्भुजैः प्रदिप्ताभै भुजगारिध्वजः प्रभुः । दधारायुधजालानि शार्ङ्गदीनि महाबलः ॥३७॥
स कश्यपस्यात्मभवं द्विजं भुजगभोजनम् । भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम् ॥३८॥
अमृतारंभसंयुक्तं मंदराद्रिमिवोच्छ्रितम् । देवासुरविमर्देषु बहुशोदृष्टविक्रमम् ॥३९॥
महेद्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् । विचित्रपत्रवसनं धातुमंतमिवाचलम् ॥४०॥
स्फीतक्रोधावलंबेन शीतांशुसमतेजसा । भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ॥४१॥
पक्षाभ्यां चारुपत्राभ्यामावृतं दिवि लीलया । युगांते सेंद्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवांबरम् ॥४२॥
नीललोहितापीताभिः पातकाभिरलंकृतम् । अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे प्रभुः ॥४३॥

है ॥२८॥ जिन्हे आकाशचारी, शीघ्रगामी तथा आकाशजन्य कहा गया है। वे सबों के आयु रूप वायु अपने तेज से॥२९॥ उद्धत होकर दैत्यों के विपरीत मेघ के साथ चल रहे थे। वायुदेव देवगन्धर्वों तथा विद्याधरों के गण के साथ, सर्पो के केचुल के समान श्वेत किरणों से क्रीडा कर रहे थे। सर्पो के स्वामीगण तीव्र रोषमय विष को उगल रहे थे ॥३०-३१॥ और वाण वने हुए, वाणों में लगकर अपना मुख खोलकर आकाश में विचरण कर रहे थे। पर्वतगण सैकड़ों शिलाओं तथा सैकड़ों शाखाओं वाले वृक्षों द्वारा ॥३२॥ देवताओं की सेना में दैत्यों को मारने के लिए आकर मिल गये। भगवान् हृषीकेश पद्मनाभ त्रिविक्रम, जो युग के अन्त में अग्नि स्वरूप हो जाते हैं तथा जगत् के स्वामी हैं, सबों के कारण, मधु नामक दैत्य को मारने वाले तथा यज्ञों में रहकर हव्य का भोग करते हैं॥३४॥ पृथिवी, जल तथा आकाश आदि भूतों की आत्मा रूप, श्याम वर्ण वाले, शान्ति प्रदान करने वाले शत्रुओं का विनाश करने वाले, चक्र एवं गदा धारण करने वाले, देवता आदि के विघ्न को विनष्ट करने वाले ॥३५॥ श्रीभगवान् अपने दाहिने हाथ में सभी आयुधों को विनष्ट करने वाली तथा शत्रुओं को मारने वाली काली गदा को धारण करके ॥३६॥ महावलवान् गरुडध्वज भगवान् अपनी अवशिष्ट भुजाओं से शार्ङ्ग धनुष आदि आयुध समूह को धारण किए हुए थे ॥३७॥ वे कश्यप महर्षि के पुत्र सर्पो को खाने वाले, जिनके मुख में बड़ा सर्प लटकता रहता है॥३८॥ अमृतारंभ से युक्त मन्दराचल के समान विशाल शरीर वाले, देवासुर संग्रामों में जिनका पराक्रम देखा जा चुका है ॥३९॥ अमृत के लिए इन्द्र ने वज्र से जिनके शरीर पर चिह्न बना दिया था। चित्र-विचित्र वस्त्रों वाले तथा गैरिकादि धातुओं से युक्त पर्वत के समान ॥४०॥ स्पष्ट रूप से क्रोध को अपनाने तथा चन्द्रमा के सामने तेजस्वी सर्पो के शरीर से संसक्त देदीप्यमान मणि रत्न के द्वारा तथा सुन्दर दोनों पङ्खों से बड़ी आसानी से आकाश में व्याप्त, युगान्त के समय दो इन्द्र धनुषों के द्वारा सुशोभित दो मेघों के समान, आकाश में व्याप्त नीला लाल तथा पीली पताकाओं से अलङ्कृत अरुण के छोटे भाई गरुड पर चढकर श्रीभगवान् युद्ध में पधारे ॥४१-४३॥ सुवर्ण के

सुवर्णवर्ण वपुषं सुपर्णखेचरोत्तमम् । तमन्वयुः सुरगणा मुनयश्च समाहिताः ॥४४॥
गीर्भिः परममंत्राभिस्तुष्टुवुश्च गदाधरम् । तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम् ॥४५॥
वारिराजपरिक्षिप्तं देवराज विराजितम् । पवनाबद्धनिर्घोषं संप्रदीप्तहुताशनम् ॥४६॥
विष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसावृतम् । बलंबलवदुद्रिक्ते युद्धाय समवर्तत ॥४७॥
स्वस्त्यस्तुदेवेभ्य इति बृहस्पतिरभाषत । स्वस्त्यस्तुदैत्येभ्य इति उशनावाक्यमाददे ॥४८॥
ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तथा । सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम् ॥४९॥
दानवा दैवतैः सार्द्धं नाना ग्रहरणोद्यमाः । समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥५०॥
तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ । धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥५१॥
ततो हयैः प्रजवितै र्वारणैश्च प्रचोदितैः । उत्पतद्भिश्च गगने सासिहस्तैः समंततः ॥५२॥
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः संपतद्भिश्च सायकैः । चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैः सुदारुणैः ॥५३॥
तद्युद्धमभवद्धोरं देवदानवसंकुलम् । जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम् ॥५४॥
स्वहस्तमुक्तैः परिघै मुद्गरैश्चैव पर्वतैः । दानवास्समरे जघ्नुर्देवानिंद्रपुरोगमान् ॥५५॥
ते वध्यमाना बलिभिर्दानवै र्जितकाशिभिः । विषण्णवदना देवाजग्मुरार्तिं परां मृधे ॥५६॥
ते चास्त्रशूलमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः । भिन्नोरस्कादितिसुतैः स्रवद्रक्ता रणे बहु ॥५७॥
सूदिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः । प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥५८॥
उत्तंभितमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति । बलंसुराणामसुरै र्निष्प्रयत्नायुधं कृतम् ॥५९॥

समान शरीर वाले, पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड का अनुगमन देवता और समाहित मुनिगण कर रहे थे ॥४४॥ वे लोग वैदिक मन्त्रों से भगवान् गदाधर की स्तुति कर रहे थे । उसके सुनने से संश्लिष्ट यमराज जिसमें आगे खड़े थे वरुण देवता के द्वारा परिक्षिप्त तथा इन्द्र से सुशोभित, वायु की ध्वनि से युक्त तथा जिसमें अग्नि प्रज्जवलित हो गये थे॥४६॥ विजयी, सहिष्णु तथा देदीप्यमान भगवान् विष्णु के तेज से संरक्षित बलवानों से युक्त देवताओं की सेना के युद्ध करने के लिए उद्यत देखकर ॥४७॥ आचार्य बृहस्पति ने आशीर्वाद दिया— देवताओं का कल्याण हो । उसके वाद शुक्राचार्य ने कहा दैत्यों का कल्याण हो ॥४८॥ उसके बाद दोनों सेनाओं के बीच भयङ्कर युद्ध होने लगा । देवता और असुर परस्पर में एक दूसरे पर विजय प्राप्त कर लेना चाहते थे । देवताओं की सेना विजय से युक्त धर्मावलम्विनी थी तथा दैत्यों की सेना दर्प सम्पन्न तथा अधर्मावलम्विनी थी ॥५१॥ उसके बाद वेग सम्पन्न अश्वों तथा हाथियों के प्रेरित होने के कारण, वीर अपने हाथ में कृपाण लेकर आकाश में उछल रहे थे ॥५२॥ मूसल का प्रहार किया जा रहा था तथा बाण गिर रहे थे । धनुष का टङ्कोर किया जा रहा था तथा भयङ्कर बाण बरसाये जा रहे थे॥५३॥ इस तरह का देवों तथा दानवों से व्याप्त वह भयङ्कर युद्ध हुआ । वह युद्ध संसार को भयभीत कर देने वाला युगान्त कालिक संवर्तक के समान वह युद्ध था ॥५४॥ दानवों ने परिध, मुद्गर पर्वत इत्यादि के प्रहार से इन्द्र इत्यादि समस्त देवताओं को मारा ॥५५॥ समर विजयी, बलवान् दानवों के द्वारा मारे जाते हुए देवता दुःखी हो गये और युद्ध में अत्यन्त आर्त बन गये ॥५६॥ अस्त्रों तथा शूलों से मथ दिए गये, परिघ के प्रहार से जिनका शरीर फट गया था, दैत्यों ने जिनकी छाती को छेद दिया था, जिनका बहुत अधिक रक्त बह चुका था ॥५७॥ वाण समूह से मारे गये तथा यत्नहीन बने हुए वे देवता दानवों की माया के अविष्ट होने के कारण कोई चेष्टा भी करने में असमर्थ हो गवे ॥५८॥ देवताओं की सेना स्तम्मित तथा निष्प्राण जैसी लगने लगी । दैत्यों ने उनके आयुधों को प्रयत्न हीन

दैत्यचापच्युतान् घोरांश्छित्वा वज्रेण तान् शरान् । शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥६०॥
सदैत्यप्रमुखान् सर्वान् हत्वा दैत्यबलं महत् । तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥६१॥
तेन्योन्यं नान्वबुध्यंत दैत्यानां वाहनानि च । घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥६२॥
मायापाशै र्विमुक्तास्तु यत्नवंतः सुरोत्तमाः । शिरांसि दैत्यसंघानां तमोभूतान्यपातयन् ॥६३॥
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा । पेतुस्ते दानवास्सद्यश्छिन्नपक्ष इवाद्रयः ॥६४॥
तत्राभिभूतदैत्येंद्रमंधकारमिवांतरम् । दानवं देहसदनं तमोभूतमिवाभवत् ॥६५॥
तथासृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन् । युगांतोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेणवह्निना ॥६६॥
सा ददाह च तां शाक्रीं मायां मय विकल्पिता । दैत्याश्चादित्यवपुषा सद्य उत्तस्थुराहवे ॥६७॥
मायामौर्वी समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः । भेजिरे चंद्रविषयं शीतांशुसलिलह्रदम् ॥६८॥
ते दह्यमाना औंर्वेण वह्निना नष्टचेतसः । शशंसुर्वज्रिणं देवाः संतप्ताः शरणैषिणः ॥६९॥
संतप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः । चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥७०॥
पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्र तपस्तेपे सुदारुणम् । उर्वः स पूर्वं तेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥७१॥
तं तपंतमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम् । उपतस्थुर्मुनिगणा देवा देवर्षिभिः सह ॥७२॥
हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः । ऋषिं विज्ञापयामास पुरापरमतेजसम् ॥७३॥
ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्ते तु वचनं धर्मसंहितम् । ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदंकुलम् ॥७४॥
एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न विद्यते । कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे ॥७५॥

सा बना दिया ॥५९॥ इसके बाद इन्द्र ने दैत्यों के धनुष से छोड़ गये बाणों को वज्र से काट दिया और अनेक नेत्रों वाले इन्द्र दैत्यों की घोर सेना में प्रवेश करके ॥६०॥ सभी प्रमुख दैत्यों तथा उनकी सेना को मार कर तामस अस्त्र समूह से सव जगह अन्धकार फैला दिया ॥६१॥ वे दैत्य परस्पर में एक दूसरे को नहीं पहचान पा रहे थे । वे घोर अन्धकार से तथा इन्द्र के तेज से अविष्ट हो गये थे ॥६२॥ मायापाश से मुक्त हुए देवता भी युद्ध करने लगे। वे काले-काले दैत्यों के शिरों को काट कर गिराने लगे ॥६३॥ घोर अन्धकाराच्छन्न दैत्यों की सेना संज्ञाशून्य हो गयी। शीघ्र ही दानव पङ्खों के काट देने के कारण असमर्थ बने पर्वतों के समान पृथिवी पर गिर पड़े ॥६४॥ दैत्येन्द्र भी उससे अभिभूत हो गये, उनके भीतर जैसे अन्धकार भर गया था । दानवों का शरीर अन्धकार के गृह के समान हो गया ॥६५॥ उस समय मय नामक दानव ने उस तामसी माया को जला देने वाली औंर्वी माया की सृष्टि की । उन्होंने युगान्त में फैलाने वाले प्रकाश से युक्त औंर्वाग्नि को प्रकट कर दिया ॥६६॥ उसके द्वारा इन्द्र की तामसी माया जल गयी और सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाश फैल गया और दैत्य युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ॥६७॥ उस औंर्वी माया के कारण देवता जलने लगे, वे शीतल किरण रूपी जलाशय रूप चन्द्रमा के पास गये ॥६८॥ औंर्व अग्नि से जलते हुए देवता ज्ञानहीन से हो गये थे । शरण चाहने वाले देवता इन्द्र से कहे कि हमलोग संतप्त हो गये हैं ॥६९॥ सेना के माया द्वारा संतप्त हो जाने तथा दैत्यों द्वारा मारे जाने पर इन्द्र ने वरुण को बुलाया तो वरुण ने कहा ॥७०॥ हे इन्द्र ! प्राचीन काल में ब्रह्मर्षि पुत्र उर्व ने सूर्य की तपस्या की । वे ऋषि पहले तेजस्वी ब्राह्मण के गुणों से युक्त थे ॥७१॥ सूर्य के समान तपते हुए ऋषि की तपस्या से यह जगत् संतप्त होने लगा । सभी देवता एवं मुनिगण तथा दानवेश्वर हिरण्कशिपु इन सबों ने जाकर परं तेजस्वी ऋषि की प्रार्थना की ॥७२-७३॥ उन ब्रह्मर्षियों ने धर्म पूर्वक कहा— हे भगवन् ! ऋषियों के वंश में यह वंश छिन्नमूल (विनष्ट) हो गया है ॥७४॥ आप

बहूनि विप्रगोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम्। एकदेहानितिष्ठंति विविक्तानि विना प्रजाः ॥७६॥
एवंभूतेषु सर्वेषु पुत्रैर्मेनास्ति कारणम्। भवांश्च तापसश्रेष्टः प्रजापतिसमद्युतिः ॥७७॥
तत्प्रवर्तस्व वंशाय वर्धयात्मानमात्मना। समाधत्स्वोर्जितं तेजो द्वितीयां कुरु वै तनुम् ॥७८॥
स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मनसि ताडितः। जगर्हतानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत्॥७९॥
यथाहि विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतः पुरा। आर्षं हि केवलं कर्म वन्यमूलफलाशिनः ॥८०॥
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मवर्तिनः। ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत्॥८१॥
जनानां वृत्तयस्तिस्रो ये गृहाश्रमवासिनः। अस्माकं च वनेवृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥८२॥
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दंतोलूखलिनस्तथा। अश्मकुट्टादयो यत्र पंचाग्नितपसश्च ये ॥८३॥
एते तपसि तिष्ठन्तो व्रतैरपि सुदुश्चरैः। ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयंति परां गतिम्॥८४॥
ब्रह्मचर्याद्ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते। एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः ॥८५॥
ब्रह्मचर्येस्थितो धर्मो ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः। ये स्थिता ब्रह्मचर्ये तु ब्राह्मणा दिवि ते स्थिताः॥८६॥
नास्ति योगं विना सिद्धि र्नास्तियोगं विना यशः। नास्ति लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात्परंतप ॥८७॥
योनिगृह्येंद्रियग्रामं भूतग्रामं च पंचकम्। ब्रह्मचर्य समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥८८॥
अयोग केशधरणमसंकल्पव्रतक्रिया। अब्रह्मचर्या चर्या च त्रयं स्याद्दंभसंज्ञितम् ॥८९॥

अकेले इस वंश में वचे है किन्तु आप की भी कोई सन्तान नहीं है। आप कौमार व्रत को धारण करके केवल क्लेश का ही अनुभव करते हैं ॥७५॥ ब्राह्मणों के बहुत से गोत्र हैं जिनमें केवल एक ही पुरुष आप जीवित हैं, और सन्तान हीन है आप भी ब्रह्मचर्य व्रत को अपनाकर केवल क्लेश का ही अनुभव कर रहे हैं ॥७६॥ हे विप्र ! प्रभाव सम्पन्न वहुत से मुनियों के गोत्र में केवल एक ही व्यक्ति बचा है। उनके वंश में कोई सन्तान नहीं है ॥७७॥ वे सव कहते हैं कि मुझे पुत्रों से कोई प्रयोजन नहीं है आप तो तपस्या के कारण ब्रह्माजी के समान कान्ति सम्पन्न हैं अतएव आप अपने से ही अपने वंश का संवर्द्धन करें। आप अपने तेज को धारण करें और अपने दूसरे शरीर को उत्पन्न करें ॥७८॥ मुनियों के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मुनि उर्व के मन में चोट लगी। वे उन ऋषियों की निन्दा किए और कहे ॥७९॥ वन में रहकर केवल वन के मूल और फलों को खाने वाले ऋषियों का जो प्राचीन काल नें शाश्वत धर्म बतलाया गया है कि केवल आर्ष कर्मों को करना चाहिए ॥८०॥ ब्राह्मण योनि में उत्पन्न, आत्मनिष्ठ ब्राह्मण के लिए ब्रह्मचर्य का पालन ही सर्वोत्तम कर्म है। वह ब्रह्मा को भी हिला सकता है ॥८१॥ गृहस्थाश्रम में रहने वाले लोगों के लिए तीन प्रकार की वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं। मैं तो वन में रहता हूँ अतएव हमारी वृत्ति वन में ही है ॥८२॥ वन में तो जल पीकर रहने वाले, वायु पीकर रहने वाले, दाँत से ही कूटकर खाने वाले तथा पत्थर से कूटकर खाने वाले तपस्वी रहते हैं तथा वे पञ्चाग्नि का सेवन करते हैं ॥८३॥ इसतरह के तपस्वीजन ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक कठोर व्रतों के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं ॥८४॥ ब्रह्मण का ब्राह्मणत्व तो ब्रह्मचर्य से ही सुरक्षित रहता है, इसतरह से परलोक में ब्रह्मचर्य के महत्त्व को जानने वाले पुरुषों ने कहा है ॥८५॥ ब्रह्मचर्य में ही धर्म और तपस्या का निवास है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्राह्मण स्वर्गलोक में जाते हैं ॥८६॥ हे परंतप ! योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं मिलती है और न तो यश मिलता है। संसार में यश के मूल कारण ब्रह्मचर्य से बढकर कुछ भी नहीं है ॥८७॥ इन्द्रियों तथा पञ्चभूतों को अपने वश में करके ब्रह्मचर्य का पालन करने से बढकर कोई भी दूसरा तप नहीं है ॥८८॥ योग के बिना जटा धारण करना, सङ्कल्प किए बिना किसी व्रत को करना तया ब्रह्मचर्य का पालन

क्व दाराः क्व च संयोगः क्वच भावविपर्ययः । नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥९०॥
यद्यस्ति तपसोवीर्यं युष्माकं विजितात्मनाम् । सृजध्वं मानसान्पुत्रान्प्राजापत्येन कर्मणा ॥९१॥
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः । नो दारयोगं बीजं व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥९२॥
यदिदं लुप्तधर्माख्यं युष्माभिरिहनिर्भयैः । व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव संमतम् ॥९३॥
वपुर्दीप्तांतरात्मानमेषकृत्वा मनोमयम् । दारयोगं विनास्त्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥९४॥
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति । प्राजापत्येन विधिना दिधक्षंतमिव प्रजाः ॥९५॥

वरुण उवाच

उर्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने । ममंथैकेनदर्भेण पुत्रस्य प्रसवारणिम् ॥९६॥
तस्योरुं सहसा भित्वा वरोऽसौ ह्यग्निरुत्थितः । जगतो दहनाकांक्षी पुत्रोऽग्निस्समपद्यत ॥९७॥
उर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वोनामांतकोऽनलः । दिधक्षुरिवलोकांस्त्रीन् जज्ञे परमकोपनः ॥९८॥
उत्पद्यमानश्चोवाच पितरं दीनया गिरा । क्षुधा मे बाधते तात जगद्भक्षे त्यजस्व माम् ॥९९॥
त्रिदिवारोहिभि र्ज्वालै र्जृम्भमाणो दिशो दश । निर्दहन्सर्वभूतानि ववृधे सोंतकोपमः ॥१००॥
एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा मुनिमुर्वं समागतः । उवाच वार्यतां पुत्रो जगतस्त्वं दयां कुरु ॥१०१॥
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये साह्यमुत्तमम् । तथ्यमेतद्वचः पुत्र शृणुत्वं वदतांवर ॥१०२॥

और्व उवाच

धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि यन्मे त्वं भगवन् शिशोः । मतिमेतां ददासीह परमात्मन्हिताय वै ॥१०३॥

किए बिना कृत्यों को करना ये तीनों केवल दम्भ मात्र हैं ॥८९॥ ब्रह्माजी ने तो मन से ही सारी प्रजाओं की सृष्टि कर दी थी । उन्होंने दारसंग्रह, स्त्री संयोग तथा मन का विपर्यय (मन में काम विकार को लाना) इन सबों को कहाँ किया॥९०॥ अपने मन को वश में रखने वाले आपलोगों में यदि तपस्या का बल है तो आपलोग प्राजापत्य कर्म के द्वारा मानस पुत्रों की सृष्टि कीजिये ॥९१॥ तपस्वियों को तो मन से निर्मित योनि में ही आधान (गर्भाधान) करना चाहिए । तपस्वियों के लिए दारयोग (विवाह) का विधान नहीं किया गया है ॥९२॥ निर्भय होकर आपलोगों ने जो धर्म का लोप बतलाया है, वह सज्जनों के लिए नहीं अपितु असज्जनों के लिए ही अनुकूल है॥९३॥ मैं दीप्त अन्तरात्मा वाले शरीर को मनोमय बनाकर अपने शरीर से पत्नी संयोग के बिना ही पुत्र की सृष्टि करूँगा ॥९४॥ इस तरह से मेरी आत्मा प्राजापत्य विधि से प्रजाओं को जलाते हुए के समान दूसरे आत्मा (पुत्र) की सृष्टि करेगा॥९५॥ **वरुण ने कहा—** तपस्वी उर्व ने अपने जङ्घे को अग्नि में प्रवेश कराकर एक कुश से अपने जङ्घे का मंथन किया और उससे प्रसवारणि को उत्पन्न किया ॥९६॥ उनके जङ्घे का सहसा भेदन करके यह श्रेष्ठ अग्नि उत्पन्न हुआ । वह पुत्र रूपी अग्नि जगत् को जला देना चाहता था ॥९७॥ उर्व के ऊरू भाग को फोड़कर वह और्व नामक परम क्रोधी अग्नि उत्पन्न हुआ । मानो वह त्रैलोक्य को जला देना चाहता हो ॥९८॥ उत्पन्न होते ही उसने दीन वाणी में अपने पिता से कहा हे पितः ! मुझे भूख लगी है, आप मुझे छोड़ दीजिये मैं संसार का भक्षण करूँगा ॥९९॥ उसकी स्वर्ग चुम्बिनी ज्वाला दशो दिशाओं में फैल रही थी । समस्त भूतों को जलाते हुए वह यमराज के समान बढकर हो गया ॥१००॥ उसी समय उर्व मुनि के पास ब्रह्माजी आ गये और कहे तुम अपने पुत्र को रोको, संसार पर कृपा करो ॥१०१॥ तुम्हारे इस पुत्र की सर्वोत्तम सहायता करूँगा । हे पुत्र ! मेरी यह सत्य वाणी है, तुम मेरी वात को सुनो ॥१०२॥ **और्व ने कहा—** मैं तो धन्य और अनुगृहीत हो गया कि आप मेरे शिशु पुत्र

प्रभातकाले संप्राप्ते कांक्षितव्ये समागमे । भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥१०४॥
कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं तु किमात्मकम् । विधास्यतीह भगवान्वीर्य तुल्यं महौजसः ॥१०५॥

ब्रह्मोवाच

बडवामुखे च वसतिः समुद्रे वै भविष्यति । ममयोनिर्जलं विप्र तच्चामेयं व्रजत्वयम् ॥१०६॥
तत्रायमास्ते नियतं पिबन्वारिमयं हविः । तद्वारिविस्तरं विप्र विसृजाम्यालयं च तम् ॥१०७॥
ततोयुगांते भूतानामेष चाहं च पुत्रक । सहितो विचरिष्यावो निष्पुराणकराविह ॥१०८॥
एषोग्निरंतकाले तु सलिलाशी मया कृतः । दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ॥१०९॥
एवमस्त्विति तं सोग्निः संवृतज्वालमंडलः । प्रविवेशार्णवमुखं नत्वोर्वं पितरं प्रभुम् ॥११०॥
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ते च सर्वे महर्षयः । औंर्वस्याग्नेः प्रभावज्ञाः स्वां स्वां गतिमुपागताः ॥१११॥
हिरण्यकशिपु दृष्ट्वा तदातन्महदद्भुतम् । उर्वं प्रणतसर्वांगो वाक्यमेतदुवाच ह ॥११२॥
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम् । तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ॥११३॥
अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत । भृत्य इत्यवगंतव्यः श्लाध्यस्त्वमिह कर्मणा ॥११४॥
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम् । यदि सीदेन्मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः ॥११५॥

उर्व उवाच

धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि यस्य ते हं गुरुर्मतः । नास्ति ते तपसानेन भयं चैवेह सुव्रत ॥११६॥
तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् । निरिंधनामग्निमयीं दुःस्पर्शां पावकैरपि ॥११७॥
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे । रक्षिष्यत्यात्मपक्षं च विपक्षं च प्रधक्ष्यति ॥११८॥

को ज्ञान प्रदान कर रहे है, जिससे कि इसका कल्याण हो ॥१०३॥ प्रातःकाल होने पर जब हमदोनों (पिता-पुत्र) का समागम होगा उस समय हे भगवन् ! मेरा पुत्र क्या भोजन करेगा ?॥१०४॥ इसका निवास कहाँ होगा, और इसका भोजन क्या होगा ? जो भोजन इसके अत्यन्त ओजस्वी पराक्रम के अनुकूल हो ॥१०५॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** इसका निवास बडवामुख समुद्र में होगा और मुझसे उत्पन्न जल का यह पान करेगा । यह वहीं जाकर निवास करे॥१०६॥ वहीं पर सदा जल को पीता रहेगा । उस जल का विस्तार इसके लिए प्रलयकाल तक बनाये रहूँगा॥१०७॥ हे वत्स ! जब प्रलय की वेला होगी उस समय मैं और यह (और्वाग्नि) दोनों विहार करेंगे । हम दोनों संसार का बिनाश कर देंगे ॥१०८॥ जिसको मैंने जल पीने वाला बनाया है, वह युग के अन्त में देवताओं सुरों तथा मनुष्यों को जला देगा ॥१०९॥ ऐसा ही हो यह कहकर उस अग्नि ने अपनी ज्वाला को समेट लिया और अपने पिता उर्व को प्रणाम करके समुद्र में प्रवेश कर गया ॥११०॥ उसके बाद ब्रह्माजी तथा सभी महर्षिगण लौट गये। और्व अग्नि के प्रभाव को जानने वाले वे सब अपने-अपने घर चले गये ॥१११॥ हिरण्यकशिपु ने इस अद्भुत प्रसंग को देखा था । उसने महर्षि उर्व को साष्टाङ्ग प्रणाम किया, और कहा ॥११२॥ हे भगवन् ! यह समस्त लोगों के सामने अद्भुत कर्म हुआ है । आपकी तपस्या से ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये हैं ॥११३॥ हे महाव्रत मैं आपका तथा आपके पुत्र का दास हूँ । आपका यह कर्म अत्यन्त प्रशंसनीय है ॥११४॥ मैं आपकी पूजा करता हूँ अतएव आप मुझ पर कृपा कीजिये । हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझको कष्ट होने का अर्थ है कि आपका पराजय हो गया ॥११५॥ **और्व ने कहा—** मैं तो तुम्हारा गुरु बनकर धन्य और अनुगृहीत हो गया । अतएव हे सुव्रत ! मेरी इस तपस्या के कारण तुम्हें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होगा ॥११६॥ तुम मेरे पुत्र के द्वारा निर्मित उसी माया को अपना लो । वह

वरुण उवाच

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा। और्वेणनिर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥११९॥
तस्मिंस्तु व्यथिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः। शापोह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा ॥१२०॥
यद्येषा प्रतिहंतव्या कर्तव्यो भगवान्सुखी। दीयतां मे सखा शक्र तोययोनि र्निशाकरः ॥१२१॥
तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः। मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥१२२॥
एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः। संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धायशिशिरायुधम् ॥१२३॥
गच्छ सोम सहायन्त्वं कुरुपाशधरस्य वै। असुराणां विनाशाय जयार्थं त्रिदिवौकसाम् ॥१२४॥
त्वं मतः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषामपि चेश्वरः। त्वन्मयान्सर्वलोकेषु रसान् वेदविदोविदुः ॥१२५॥
त्वया समो न लोकेस्मिन्विद्यते शिशिरायुधः। क्षयवृद्धी तवाव्यक्ते सागरे चैव चांबरे ॥१२६॥
प्रवर्तयस्यहोरात्रात्कालं संमोहयन् जगत्। लोकच्छायामयं लक्ष्म तवांकः शशविग्रहः ॥१२७॥
नविदुः सोम ते मायां ये च नक्षत्रयोनयः। त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ॥१२८॥
तमः प्रोत्सार्य सहसा भासयस्यखिलं जगत्। शीतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी ॥१२९॥
अपि तत्कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरथोव्ययः। ओषधीशः क्रियायोनिरपांयोनिरनुष्णगुः ॥१३०॥
शीतांशुरमृताधारश्चपलःश्वेतवाहनः। त्वं कांतिः कांतवपुषां त्वं सोमः सोमपायिनाम्॥१३१॥
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट्। तद्गच्छ त्वं महासेन वरुणेन वरूथिना ॥१३२॥

इन्धन रहित अग्नि स्वरूप है। उसका स्पर्श करने में अग्नि भी समर्थ नहीं है ॥११७॥ शत्रुओं का निग्रह करने वाली यह माया तुम्हारे वंश की वशवर्तिनी होगी। यह अपने पक्ष वालों की रक्षा करेगी और विपक्ष का विध्वंस करेगी॥११८॥ **वरुण ने कहा**— यह उर्व महर्षि के पुत्र और्व के द्वारा निर्मित माया है। इसको सह पाना अत्यन्त कठिन है। हे इन्द्र ! मुझे मित्र के रूप में जल से उत्पन्न होने वाले चन्द्रमा को प्रदान कीजिये ॥११९॥ उसके साथ तथा जलचरों के साथ मिलकर मैं निश्चित रूप से इस माया को विनष्ट कर दूँगा ॥१२२॥ वरुण के द्वारा इसतरह से कहे जाने पर इन्द्र ने शिशिरायुध चन्द्रमा को युद्ध करने का आदेश दिया ॥१२३॥ उन्होंने कहा हे चन्द्रमा ! तुम वरुण के सहायक बनकर युद्ध करो, जिससे कि असुरों का विनाश हो जाय और देवताओं को विजय प्राप्त हो॥१२४॥ वेदज्ञों का कहना है कि तुम ही इसके विरोधी योद्धा हो तथा सभी नक्षत्रों के स्वामी हो। सभी लोकों में विद्यमान् जल आपका ही स्वरूप है ॥१२५॥ इसलोक में तुम्हारे समान कोई शिशिरायुध नहीं है आपकी क्षीणता और वृद्धि दोनों समुद्र तथा आकाश दोनों में अव्यक्त रूप से होते हैं ॥१२६॥ तुम कहीं हो और जगत् मोहित करके दिन तथा रात्रि के द्वारा काल का प्रवर्तन करते हो। तुममें विद्यमान यह शशक का शरीर, संसार की छाया रूप है॥१२७॥ हे सोम ! नक्षत्र योनि वाले तुम्हारी माया को लोग नहीं जानते हैं। तुम आदित्य मार्ग तथा सभी नक्षत्रों के ऊपर विद्यमान हो ॥१२८॥ आप अंधकार को दूर करके सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हो। तुम्हारी किरणें शीतल हैं, तुम्हारा शरीर वर्फ के समान शीतल हैं। तुम सभी ज्योतियों के स्वामी और शशक के चिह्न वाले हो॥१२९॥ तुम शीघ्र ही योग करने वाले, तुम ही पूजनीय और यज्ञ स्वरूप हो। तुम ओषधियों के स्वामी, क्रियाओं को करने वाले, जल को उत्पन्न करने वाले तथा शीतल किरणों वाले ॥१३०॥ शीतांशु, अमृत के आश्रय, चञ्चल तथा श्वेत वाहन वाले हो तुम कान्ति सम्पन्न शरीर वालों की कान्ति, तथा सोमपान करने वालों के सोम हो ॥१३१॥ तुम भूतों की सौभ्यता तथा अन्धकार को विनष्ट करने वाले तथा नक्षत्रों के स्वामी हों। हे महासेन ! सेना सम्पन्न

शमयस्वासुरीं मायां यया दह्यामहे रणे।

सोम उवाच

यन्मां वदसि युद्धार्थं देवराज वरप्रद ॥१३३॥
एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम्। एतान्मे शीतनिर्दग्धान्पश्यस्व हिमवेष्टितान् ॥१३४॥
तथा हिमकरोत्सृष्टाः सपाशाहिमवृष्टयः। वेष्टयंति च तान्दैत्यान्वायुर्मेघगणानिव ॥१३५॥
तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेंदू महाबलौ। जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥१३६॥
द्वावंबुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ। मृधे चेरतुरंभोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥१३७॥
ताभ्यामापूरितं सर्वं तद्दानवबलं महत्। जगत्संवर्त्तकांभोदैः प्रवर्षैरिव संवृतम् ॥१३८॥
तावुद्यतावंबुनाथौ शशांकवरुणावुभौ। शमयामासतुस्तां तु मायां दैत्येन्द्रनिर्मिताम्॥१३९॥
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्चास्कंदिता रणे। न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥१४०॥
शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्या स्सर्वे निपातिताः। हिमप्लावितसर्वांगा निरूष्माण इवाग्नयः ॥१४१॥
तेषां तु दिवि दैत्यानां निपतंति शुभानि वै। विमानानि विचित्राणि निपतंत्युत्पतंति च ॥१४२॥
तान्पाशहस्तग्रथितान् छादितान् शीतरश्मिभिः। मयो ददर्श मयावी दानवान्दिवि दानवः ॥१४३॥
सशैलजालां विततां खड्गपट्टिशहासिनीम्। पादपोत्करकूटस्थां कंदराकीर्णकाननाम् ॥१४४॥
सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदद्भिर्देवयूथपैः। ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥१४५॥
निर्मितां स्वेनपुत्रेण कूजंतीं दिवि कामगाम्। प्रथितां पार्वतीं मायां ससृजे स समंततः ॥१४६॥

वरुण के सहायक बनकर तुम जाओ ॥१३२॥ हमलोग जिससे जल रहे हैं, तुम उस आसुरी माया को शान्त कर दो। **सोम ने कहा**— हे वरप्रदान करने वाले इन्द्र ! आप मुझे युद्ध करने के लिए कह रहे हैं ॥१३३॥ मैं दैत्यों को विनष्ट करने वाली ठंढी की वर्षा करता हूँ, मेरे शैत्य से दग्ध हुए तथा हिम से वेष्टित असुरों को आप देखें॥१३४॥ शीतल किरणों से सृष्ट पाश से युक्त हिम वृष्टियाँ, जिस तरह वायु मेघ समूह को वेष्टित कर लेती है, उसी तरह वेष्टित कर ले रही है ॥१३५॥ उसके पश्चात् महाबलवान् पाशधारी वरुण तथा शीतल किरणों वाले चन्द्रमा दोनों दानवों को पाश के प्रहार से तथा शीतल किरणों से मार डाले ॥१३६॥ युद्ध में वे दोनों चन्द्रमा और वरुण अपने हिमायुध तथा पाश धारण किए हुए उमड़ते हुए दो सागरों के समान विचरण कर रहे थे ॥१३७॥ उन दोनों ने विशाल दानव सेना को जल से भर दिया जिसतरह प्रलय काल की वेला में संवर्तक मेघ से संसार जल से भर जाता है ॥१३८॥ चन्द्रमा और वरुण दोनों जल स्वामियों ने उस दैत्येन्द्र के द्वारा निर्मित माया को जल से शान्त कर दिया ॥१३९॥ शीतल किरण समूह से दग्ध तथा पाश से बंधे हुए दैत्य युद्ध में उसी तरह नहीं चल फिर पा रहे थे जिस तरह शिखर विहीन पर्वत नहीं चल फिर पाते हैं। शीतायुध से मारे गये सभी दैत्य गिर पड़े उनके सारे अंग हिम से भर गये थे और वे उष्मा रहित अग्नि के समान हो गये थे ॥१४०-१४१॥ उन दैत्यों के सुन्दर तथा विचित्र विमान आकाश से नीचे गिर रहे थे फिर ऊपर की आरे चले जाते थे ॥१४२॥ मायावी दानव मय ने उन सबों को पाश में बंधे हुए तथा हिम से ढँके हुए दानवों को देखा ॥१४३॥ उसने अपने पुत्र के द्वारा निर्मित, पर्वत समूह से भरी हुयी, खड्गों तथा पट्टिसों से परिपूर्ण वृक्ष समूह से युक्त तथा जिसके बन में अनके गुफाएँ थीं ॥१४४॥ जिसमें सिंह एवं व्याध्रों के समूह भरे हुए थे, तथा देव सैनिक नाद कर रहे थे, ईहा मृगो से भरी हुयी तथा वायु के वेग से वृक्ष समूह झूम रहे थे ॥१४५॥ जो अपनी इच्छानुसार आकाश में संचरण करने वाली थी, इसतरह की पार्वती माया

सासिशब्दैश्शिलावर्षैः संपतद्भिश्च पादपैः। जघान देवसंघांस्ते दानवानभ्यजीवयत्॥१४७॥
नैशाकरी वारुणी च माये अंतर्हिते तदा। अभवद्धोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव॥१४८॥
न चारुद्धो द्रुमगणै र्देवोदृश्यत कश्चन। तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम्॥१४९॥
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम्। स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकंपत॥१५०॥
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः। कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन्कालमाहवे॥१५१॥
देवासुरविमर्दं च द्रष्टुकामस्तदा हरिः। ततो भगवतादिष्टो रणे पावकमारुतौ॥१५२॥
चोदितौ विष्णुवाक्येन ततो मायांव्यकर्षताम्। ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रबुद्धाभ्यां महाहवे॥१५३॥
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह। सोनिलोनलसंयुक्तस्सोनलश्चानिलाकुलः॥१५४॥
दैत्यसेनां ददहतु र्युगांतेष्विवमूर्च्छितौ। वायुः प्रजवितस्तत्र पश्चादग्निश्च मारुतात्॥१५५॥
चेरतुर्दानवानीके क्रीडंतावनलानिलौ। भस्म भूतेषु भूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च॥१५६॥
दानवानां विमानेषु निपतत्सु समंततः। वातस्कंधापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके॥१५७॥
मायावधे प्रवृतेत्तु स्तूयमाने गदाधरे। निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबंधने॥१५८॥
प्रहृष्टेषु च देवेषु साधुसाध्वितिजल्पिषु। जयेदशशताक्षस्य दैत्यानां च पराजये॥१५९॥
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मविस्तरे। अपावृते चंद्रपथे स्वस्थानस्थे दिवाकरे॥१६०॥
प्रवृत्तिस्थेषु भूतेषु नृषु चारित्रवत्सु च। अभिन्नबंधने मृत्यौ हूयमाने हुताशने॥१६१॥

को उत्पन्न कर दिया ॥१४६॥ उसने कृपाण के शब्दों तथा गिरते हुए वृक्षों से दैत्यों को जीवित करते हुए देवताओं को मारा ॥१४७॥ उस समय चन्द्रमा और वरुण दोनों की माया विनष्ट हो गयी। पर्वतों के पहार से मर जाने के कारण पृथिवी पर चलना मुश्किल हो गया ॥१४८॥ कोई भी देवता ऐसा नहीं दिखता था जो वृक्षों से घिर न गया हो। उनके धनुष टूट गये और आयुध दूषित हो गये ॥१४९॥ भगवान् गदाधर को छोड़कर सम्पूर्ण देव सेना प्रयत्न रहित (किं कर्तव्य विमूढ हो गयी। युद्ध में विद्यमान श्रीभगवान् भयभीत नहीं हुए ॥१५०॥ जगत् के स्वामी श्रीभगवान् सहिष्णु होने के कारण क्रुद्ध नहीं हुए। काल को जानने वाले श्यामवर्ण के मेघ के समान कान्ति वाले, वे युद्ध में काल की प्रतीक्षा कर रहे थे ॥१५१॥ श्रीहरि देवासुरसंग्राम को देखना चाहते थे। उसके बाद श्रीभगवान् ने अग्नि और वायु को युद्ध करने का आदेश दिया ॥१५२॥ भगवान् विष्णु की माया को दूर करने की आज्ञा से प्रेरित होकर उन दोनों वेग सम्पन्न देवताओं ने अपनी माया फैलायी ॥१५३॥ उस समय पार्वती माया भस्म होकर विनष्ट हो गयी। अग्नि से युक्त वायु तथा वायु से युक्त अग्नि दोनों ने ॥१५४॥ प्रलय कालीन अग्नि के समान समिद्ध होकर दैत्यों की सेना को जलाया। वहाँ पर पहले जोर से हवा चलने लगी और उसके बाद अग्नि भी प्रदीप्त हो गयी ॥१५५॥ दानवों की सेना में वायु तथा अग्नि क्रीडा करते हुए संचरण करने लगे फिर तो दानव भस्म होकर गिरने लगे तथा फिर वे खड़े हो जाते थे ॥१५६॥ चारो ओर दैत्यसेना के विमान गिरने लगे वायु के वेग से युक्त अग्नि ने उन सबों को जला दिया ॥१५७॥ जब भगवान् माया का वध कर रहे थे उस समय देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। दैत्य प्रयत्न हीन हो गये और त्रैलोक्य दैत्यों के बन्धन से रहित हो गये ॥१५८॥ सभी देवता प्रसन्न हो गये वे सभी बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कह रहे थे। जब इन्द्र विजयी हो गये और दैत्य पराजित हो गये॥१५९॥ सभी दिशायें शुद्ध हो गयीं और चारो ओर धर्म का विस्तार हो गया। चन्द्रमा का मार्ग खुल गया तथा सूर्य अपने स्थान पर स्थित हो गये ॥१६०॥ जब यज्ञों में देवगण सुशोभित होने लगे तथा लोकपालगण स्वर्ग के

यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गमार्गंदिशत्सु च। लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षुसंधानवर्तिषु ॥१६२॥
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम् । देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति ॥१६३॥
त्रिपादविग्रहे धर्मेऽधर्मे पादपरिग्रहे । अपावृत्ते महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे॥१६४॥
लोकेषु धर्मवृत्तेषु प्रवृत्तेष्वाश्रमेषु च । प्रजारक्षणयुक्तेषु राजमानेषु राजसु ॥१६५॥
प्रशांतेषु च लोकेषु शांते तमसि दानवे। अग्निमारुतयोस्तस्मिन्वृत्ते संग्रामकर्मणि ॥१६६॥
तन्मयाविमला लोकास्ताभ्यां जयकृतक्रियाः। तीव्रं दैत्यभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत्॥१६७॥
कालनेमीतिविख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत । भास्कराकारमकुटः शिंजिताभरणांगदः ॥१६८॥
मंदराद्रिप्रीकाशो महारजतसंवृतः । शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः ॥१६९॥
शतशीर्षः स्थितः श्रीमान् शतश्रृंग इवाचलः । कक्षे महति संवृद्धो निदाघ इव पावकः॥१७०॥
धूम्रकेशो हरिश्मश्रु दंतुरो विकटाननः। त्रैलोक्यांतरविस्तारं धारयन्विपुलं वपुः ॥१७१॥
बाहुभिस्तुलयन्व्योम क्षिपन्पद्भ्यांमहीधरान्। ईरयन्मुखनिःश्वासै वृष्टिकारान् बलाहकान् ॥१७२॥
तिर्यगायतकरक्ताक्षं मंदरोदग्रवर्चसम् । दिधक्षंतमिवायांतं सर्वान्देवगणान्मृधे ॥१७३॥
तर्जयंतं सुरगणांश्छादयंतं दिशो दश । संवर्तकाले हृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम्॥१७४॥
सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलांगुलिपर्वणा । लंबाभरणपूर्णेन किंचिच्चलितकर्मणा ॥१७५॥
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता । दानवान्देवनिहतान् ब्रुवन्तं तिष्ठतेति च ॥१७६॥

मार्ग को बतलाने लगे। दिशाएँ परस्पर में संयुक्त हो गयीं ॥१६१-१६२॥ जब सिद्धों तथा तपस्वियों का प्राधान्य हो गया तथा पापियों का अभाव हो गया, देवपक्ष प्रसन्न हो गया तथा दैत्य पक्ष सङ्कटापन्न हो गया ॥१६३॥ धर्म तीन चरणों वाला हो गया तथा अधर्म का एक ही चरण वाला रह गया। मुक्ति का महाद्वार खुल गया, सन्मार्ग स्थित हो गया॥१६४॥ सभी लोग धर्म के कार्यों को करने लगे तथा आश्रमों की व्यवस्था व्यवस्थित हो गयी। राजागण प्रजाओं की रक्षा करके सुशोभित होने लगे ॥१६५॥ वायु तथा अग्नि के द्वारा युद्ध करने के बाद सारा संसार शान्ति का अनुभव करने लगा तथा दानव रूप अन्धकार विनष्ट हो गये ॥१६६॥ अग्नि तथा वायु के सङ्ग्राम करते समय सारे लोक स्वच्छ हो गये, और वे दोनों विजयी हो गये। इस तरह अग्नि तथा वायु द्वारा उत्पादित दैत्यों के लिए भयङ्कर भय को सुनकर ॥१६७॥ कालनेमि के नाम से विख्यात दानव दिखायी पड़ा। वह सर्प के समान देदीप्यमान मुकुट धारण किये था। उसके अङ्गद नामक भूषण से ध्वनि आ रही थी ॥१६८॥ उसका आकार मंदराचल पर्वत के समान विशालकाय था वह चाँदी के अभरणों से ढँका था भयङ्कर सैकड़ों आयुधों को धारण किये था। उसके सैकड़ों हाथ और सैकड़ों मुख थे ॥१६९॥ वह सैकड़ों शिरों के द्वारा सैकड़ों शिखरों वाले पर्वत के समान प्रतीत होता था। वह विस्तृत कक्ष (इन्धन) में समृद्ध हुयी अग्नि के समान प्रतीत होता था ॥१७०॥ उसके धुएँ के समान केश काली काली दाढी, निकले हुए दाँत तथा भयङ्कर मुख थे। उसका विशाल शरीर त्रैलोक्य व्यापक विस्तार वाला था॥१७१॥ वह अपनी भुजाओं से आकाश को तौल सा रहा था पैरों से पर्वतों को इधर-उधर प्रक्षिप्त कर रहा था, तथा मुख की वायु से वर्षालु मेघों को इतस्ततः उडा रहा था ॥१७२॥ उसकी लाल-लाल आँखें टेढ़ी थीं उसका तेज मन्दराचल के समान अत्यधिक था। वह युद्ध में मानो समस्त देवताओं को मानो जलाते हुए आ रहा था ॥१७३॥ देवताओं को डाँटते हुए, दशों दिशाओं को ढँकते हुए उसके द्वारा प्रलय काल में प्रसन्न होने वाली मृत्यु जैसे जल गयी हो॥१७४॥ सुन्दर तलवें की उठी हुयी उसकी अङ्गुलियों के पर्व बहुत बड़े-बड़े थे। आभरणों से परिपूर्ण, कर्म के

तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालनेमिनम् । वीक्षंतेस्म सुराः सर्वे भयविह्वललोचनाः ॥१७७॥
तं वीक्षंतेस्म भूतानि ग्रसंतं कालनेमिनम् । त्रिविक्रमं विक्रमंतं नारायणमिवापरम् ॥१७८॥
सोभ्युच्छ्रयं पुनः प्राप्तोमारुताघूर्णितांबरः । प्राक्रामदसुरो योद्धुं त्रासयन्सर्वदेवताः ॥१७९॥
समेयिवान्सुरेन्द्रेण परिष्वक्तो भ्रमन्रणे । कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मंदरः ॥१८०॥
अथविव्यथिरे देवाः सर्वेशक्रपुरोगमाः । कालनेमिनमायांतं दृष्ट्वा कालमिवापरम् ॥१८१॥
दानवाननुपिप्रीषुः कालनेमिर्महासुरः । व्यवर्धतमहातेजास्तपांते जलदो यथा ॥१८२॥
तं त्रैलोक्यांतरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः । उत्तस्थुरपरिश्रांताः पीत्वेवामृतमुत्तमम् ॥१८३॥
ते वीतभयसंत्रासा मयतारपुरोगमाः । तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः ॥१८४॥
रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकांक्षिणः । मंत्रमभ्यसतां तेषां व्यूहं च परिधावताम् ॥१८५॥
प्रेक्षतां चाभवत्प्रीति र्दानवं कालनेमिनम् । ये तु तत्र मयस्यासन्मुख्या युद्धपुरस्सराः ॥१८६॥
ते तु सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः । मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च दानवः ॥१८७॥
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलंबावुभावपि । अरिष्टो बलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ॥१८८॥
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यश्चक्रयोधी महासुरः । एतेस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वे तपसि सुस्थिताः ॥१८९॥
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिनमुद्धतम् । ते गदाभिस्सुगुर्वीभिश्चक्रैरथपरश्वधैः ॥१९०॥
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः । अश्मभिश्चाद्रिसदृशैस्तथा शैलैश्च दारुणैः ॥१९१॥

करने के कारण जो कुछ चंचल हो गया था ॥१७५॥ इस प्रकार के उठे हुए लम्बे दाहिने श्रेष्ठ हाथ से वह देवताओं द्वारा मारे गये दानवों को उठो-उठो इस प्रकार से कहते हुए ॥१७६॥ समर में उससे द्वेष करने वालों के लिए काल के समान कालनेमि को सभी देवताओं ने भय से व्याकुल नेत्रों से देखा ॥१७७॥ देवों ने उस कालनेमि को सभी भूतों को खाते हुए त्रिविक्रमावतारधारी दूसरे नारायण के समान पग संचार करते हुए के समान देखा ॥१७८॥ आकाश में संचरण करने वाले वायु के द्वारा अपनी ऊँचाई को प्राप्त किए हुए वह असुर देवताओं को भयभीत करते हुए युद्ध करने के लिए आगे बढ रहा था ॥१७९॥ रण में घूमता हुआ वह इन्द्र के साथ युद्ध करने के लिए आया। वह कालनेमि दानव विष्णु से युक्त मंदराचल पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था ॥१८०॥ दूसरे काल के समान आते हुए कालनेमि को देखकर देवतागण अत्यन्त दुःखी हुए ॥१८१॥ उस कालनेमि नामक महाअसुर ने दानवों को प्रसन्न कर दिया । ग्रीष्म ऋतु के अंत में उठने वाले मेघ के समान वह महातेजस्वी बढ गया ॥१८२॥ त्रैलोक्य के अन्तर्गत विद्यमान उसको देखकर बड़े-बड़े दानव अत्यन्त प्रसन्न हुए । अमृत का पान करक उत्साहित देवताओं के समान वे युद्ध करने के लिए उठ खड़े हुए ॥१८३॥ मय तथा तार इत्यादि सभी दानव भय एवं त्रास से रहित हो गये । वे सभी तारकामय संग्राम में विजय प्राप्त करने वाले थे ॥१८४॥ युद्ध चाहने वाले सभी दानव युद्धस्थल में जाकर सुशोभित हो रहे थे, वे मन्त्रों को जप रहे थे और परिघ धारण करके इधर-उधर दौड़ रहे थे॥१८५॥ वे कालनेमि को देखकर प्रसन्न हो गये । जो मय दानव के युद्ध में मुख्य रूप से आगे रहते थे ॥१८६॥ वे सभी भय का परित्याग करके युद्ध करने के लिए युद्धस्थल में उपस्थित हो गये । ऐसे दानव थे मय, तार, वराह, हयग्रीव ॥१८७॥ विप्रचित्ति पुत्र श्वेत, खर, लंबु दोनों बलि के पुत्र अरिष्ट तथा किशोर ॥१८८॥ देवताओं के समान प्रतीत होने वाले सुभानु जो चक्र से युद्ध करता था । ये सभी अस्त्रों के ज्ञाता थे, ये सवके सब तपस्या करने वाले थे॥१८९॥ ये सभी दानव महाबलवान् कालनेमि की सेना में जाकर मिल गये । भारी गदाओं, चक्रों, फरसों॥१९०॥

पट्टिशैर्भिंडिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः । घातिनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥१९२॥
युगैर्यंत्रैश्च निर्मुक्तै र्लाङ्गलैरुग्रताडितैः । दोर्भिरायतमानैश्च पाशैश्च परिघादिभिः ॥१९३॥
भुजंगवक्त्रैर्लेलिहानै र्विसर्पद्भिश्च सायकैः । वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्चतोमरैः ॥१९४॥
विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः । दैत्यैः संदीप्यमानैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥१९५॥
ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिनमाहवे । सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः ॥१९६॥
यैर्निमीलितसर्वांगा वनालीवांम्बुदागमे । देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता ॥१९७॥
उपेता शिशिरोष्णाभ्यां तेजोभ्यां चंद्रसूर्ययोः । वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ॥१९८॥
तोयदाबद्धवसना ग्रह नक्षत्रहासिनी । यमेंद्रधनदैर्गुप्ता वरुणेन च धीमता ॥१९९॥
साप्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा । सा समुद्रौघसदृशी दीप्यमाना महाचमूः ॥२००॥
रराजास्त्रवतीभीमा यक्षगंधर्वशालिनी । तयोश्चम्वोस्तदानीं तु बभूव ससमागमः ॥२०१॥
द्यावापृथिव्योस्संयोगो यथास्याद्युगपर्यये । तद्युद्धमभवद्धोरं देवदानवसंकुलम् ॥२०२॥
क्षमापराक्रम परं सदर्प विनयस्य च । निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु भीमाभ्यां च सुरासुराः ॥२०३॥
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवांबुदाः । ताभ्यां बलाभ्यां सहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ॥२०४॥
वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथानगाः । समाजघ्नुस्तथा भेरीःशंखान्दध्मुरनेकशः ॥२०५॥
ब्रह्मांडं च भुवं चैव दिशश्च समपूरयन् । ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च ॥२०६॥

तथा काल के समान भयङ्कर मुसलों को फेंककर युद्ध करने योग्य मुसलों । अस्त्रों के समान प्रतीत होने वाले पत्थरों, भयङ्कर पर्वतों, पट्टिसों, भिन्दिपलों तथा उत्तम लोहे से निर्मित परिघों । मार डालने वाली भारी शतघ्नियों ॥१९१-१९२॥ युगयंत्र के द्वारा छोड़े जाने वाले हलायुधों, हाथ भर चौड़े, पाशों, परिघों ॥१९३॥ जिनके मुख पर सर्प विद्यमान थे ऐसे बाणों, वज्रों, अस्त्रों, चमकते हुए तोमरों ॥१९४॥ हाथ में गृहीत कृपाणों जो चमक रहे थे इस प्रकार के त्रिशूलों से युक्त दैत्यों वाली सेना जो धनुष धारण किए हुए थी ॥१९५॥ उसने युद्ध में कालनेमि को आगे किया था । इस प्रकार की दैत्यों की सेना सुशोभित हो रही थी ॥१९६॥ देवताओं की भी सेना जिसके सारे अङ्ग सुरक्षित थे, वह इन्द्र के द्वारा संरक्षित होने के कारण प्रसन्न हो रही थी ॥१९७॥ वह सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों के शीत तथा उष्ण तेज से युक्त थी । वायु के वेग से देखने में सुन्दर तारागण ही उसके पताके थे ॥१९८॥ मेघ उसके वस्त्र का काम करते थे । तथा उस सेना रूपी नारी के ग्रह तथा नक्षत्र ही हास के समान थे । उसकी रक्षा यम, इन्द्र तथा वरुण कर रहे थे ॥१९९॥ वह सेना नारायणाश्रित थी, और वह वायु तथा अग्नि से प्रदीप्त हो रही थी । वह महासेना सातो समुद्र के समान देदीप्यमान थी ॥२००॥ अस्त्रों से सुशोभित होने वाली वह यक्षों एवं गन्धर्वों से युक्त थी । उन दोनों सेनाओं का जब आमने सामने समागम हुआ ॥२०१॥ उस समय युग की समाप्ति की बेला में होने वाले द्युलोक तथा भूलोक के समागम के समान प्रतीत हो रहा था । देव तथा दनवों से व्याप्त वह भयङ्कर युद्ध हुआ ॥२०२॥ देवता क्षमा प्रधान थे तथा दैत्य पराक्रम प्रधान थे । मानो उससे नम्रता प्रवाहित हो रही थी । दोनों भयङ्कर सेनाओं से देवता और असुर निकले ॥२०३॥ लग रहा था जैसे पूर्व तथा पश्चिम दोनों समुद्रों के मेघ परस्पर में टकरा रहे हों। उन दोनों सेनाओं में देवता और दानव प्रसन्नता पूर्वक संचरण कर रहे थे ॥२०४॥ वे दोनों पर्वतीय बनों के पुष्पित पर्वतों के समान प्रतीत होते थे । उसी समय भेरी बज उठी, अनेक शङ्ख बजने लगे ॥२०५॥ सेनाओं ने ब्रह्माण्ड, भूलोक तथा सभी दिशाओं को धनुष के टङ्कोर की ध्वनि से भर दिया ॥२०६॥ दुन्दुभियों की ध्वनि से दैत्यों की

दुंदुभीनां च निर्ह्लादो दैत्यमंतर्दधुः स्वनम् । तेन्योन्यमभिसंपेतु र्यतयंतः परस्परम् ॥२०७॥
बभंजुर्बाहुभि र्बाहुयुद्धमन्ये युयुत्सवः । देवानामशनीर्घोराः परिघांश्चोत्तमायुधान् ॥२०८॥
निस्त्रिंशान्ससृजुः संख्ये गदागुर्वीश्च दानवाः । गदानिपातैर्भग्नांगा बाणैश्च शकलीकृताः ॥२०९॥
परिपेतुर्भृशं केचित्पुनः केचित्तु जघ्निरे । ततो रथैश्चतुरगैर्विमानैश्च गजादिभिः ॥२१०॥
समीयुस्तेतिसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे । संवर्त्तमानास्समरे संदष्टौष्टपुटाननाः ॥२११॥
रथारथैर्नियुध्यंते पादाताश्च पदातिभिः । तेषां रथानां तुमुलः सशब्दः शब्दवाहिनाम् ॥२१२॥
नभोनभस्वान् हि यथा नभस्ये जलदस्वनैः । बभंजिरे रथान्केचित्केचित्संमृदितारथैः ॥२१३॥
संबाधमन्ये संप्राप्ता न शेकुश्चलितुं रथाः । अन्योन्यमध्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः ॥२१४॥
संह्लादमाणास्सबला जघ्नुस्तत्रासिचर्मिणः । अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना रक्तं वेमुर्हता युधि ॥२१५॥
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागताः । अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ ॥२१६॥
एतस्मिन्नंतरे क्रुद्धः कालनेम्सि दानवः । अवर्धतसमुद्रौघैः पूर्यमाण इवांबुदः ॥२१७॥
तस्य विद्युल्लतापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः । गात्रैर्नगगिरिप्रख्यै र्विनिपेतुर्बलाहकाः ॥२१८॥
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः । साग्निस्फुलिंगाः प्रतता मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥२१९॥
तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः । पर्वतादिवनिष्क्रांताः पंचास्या इव पन्नगाः ॥२२०॥
सोस्त्रजालै र्बहुविधै र्धनुभिः परिघैरपि । दिव्यमाकाशमाववे्र पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥२२१॥
सोनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः । संध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः ॥२२२॥

ध्वनि दव गयी । वे परस्पर में एक दूसरे पर प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे ॥२०७॥ युद्ध करने के लिए उत्सुकों ने अपनी भुजाओं से दूसरे की भुजा को ऐंठ दिया और देवताओं के भयङ्कर वज्रों तथा उत्तम परिधायुधों को विनष्ट कर दिया ॥२०८॥ दानवों ने युद्ध में भारी गदाओं और निस्त्रिंशों की सृष्टि कर दी । गदा के प्रहार से दानवों के अङ्ग टूट गये थे तथा वाणों से कट गये थे ॥२०९॥ बहुत से बीर गिर पड़े और कुछ प्रहार कर रहे थे । उसके पश्चात् वे रथों, अश्वों, विमानों तथा हाथियों आदि से अत्यन्त क्रोध पूर्वक युद्ध करने लगे । युद्ध मे विद्यमान वीरों ने क्रोध से अपने ओठों को काट लिया ॥२११॥ एक रथी दूसरे रथी से युद्ध कर रहे थे तथा पैदल पैदल सेना से युद्ध कर रहे थे । उनके शब्द करने वाले रथों की तुमुल ध्वनि श्रावण में गरजने वाले आकाश की ध्वनि के समान प्रतीत हो रही थी । कुछ बीरों ने रथों को तोड़ दिया तथा कुछ बीर रथों से मसल गये ॥२१२-२१३॥ कुछ रथ बीच में दब जाने के कारण चल नहीं सके । युद्ध में वीरों ने एक दूसरे को अपनी भुजाओं से खींचकर मार दिया ॥२१४॥ खड्ग तथा ढाल धारण किए हुए बलवान् वीर प्रसन्न होकर, मर रहे थे । दूसरे वीर अस्त्रों से मारे जाने के कारण खून वमन कर रहे थे ॥२१५॥ जल बरसाने वाले मेघों के समान बाणों की वर्षा से दुर्दिन जैसी प्रतीति होने लगी॥२१६॥ उसी समय कालनेमि दानव उसतरह से बढने लगा जैसे समुद्री बाढ से मेघ बढ रहा हो ॥२१७॥ उसकी शिखा में लगी हुयी माला के समान विद्युलताएँ प्रदीप्त वज्र की वर्षा कर रही थीं । पर्वत शिखर के समान अङ्गों के द्वारा उसने मेघों को गिरा दिया ॥२१८॥ वह क्रोध से लम्बी श्वास ले रहा था । उसकी भुकुटि से पसीना बह रहा था । उसके फैले हुए मुख से चारो ओर अग्नि की चिनगारी फैल रही थी ॥२१९॥ वह अपनी भुजाओं को तिरछा करके आकाश में उसे ऊपर की ओर फैलाये हुए था । लग रहा था उसके हाथ जैसे पर्वत से निकले हुए विषैले पाँच मुखों वाले सर्प हों ॥२२०॥ वह आकाश को छू रहा था ऊँचे पर्वतों के शिखरों के समान वह अपने

ऊरुवेगप्रमथितैः शृंगशैलाग्रपादपैः । अपातयद्देवगणान्वज्रेणेव महागिरीन् ॥२२३॥
बाहुभिश्च सनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः । न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥२२४॥
मुष्टिभि र्निहताः केचित्केचिच्चद्विदलीकृताः । यक्षगंधर्वपतगाः समहोरगकिन्नराः ॥२२५॥
तेनवित्रासिताः पेतुः समरे कालनेमिना । न शेकुर्यत्नवंतोपि यत्नं कर्तुं विचेतसः ॥२२६॥
तेन शक्रःसहस्राक्षोऽस्पंदितः शरबंधनैः । निष्प्रयत्नः कृतः संख्ये चलितुं न शशाक ह॥२२७॥
निर्जलांभोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः । निर्व्यापारःकृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ॥२२८॥
रणे वैश्रवणस्तेन परीतः कालरूपिणा । विलपन् लोकपालेशस्त्याजितो धनदः क्रियाम्॥२२९॥
यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणो रणे । याम्यामवस्थां संत्यज्य भीतः स्वां दिशमाविशत्॥२३०॥
सलोकपालानुत्सार्य हत्वा तेषां च कर्म तत् । दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धाविदधे तदा ॥२३१॥
सनक्षत्रपथंगत्वा दिव्यंस्वर्भानुदर्शितम् । जहारलक्ष्मीं सोमस्य यच्चास्य विषयं महत् ॥२३२॥
चालयामास दीप्तांशुं धर्म द्वारासभास्करम् । शासनं चास्यविषयं जहार दिनकर्म च॥२३३॥
सोऽग्निंदेवमुखं जित्वा चकारात्ममुखाश्रयम् । वायुं च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ॥२३४॥
ससमुद्रात्समानीयसमस्ताः सरितो बलात् । चकाराभिसुखा वीर्या देहभूताश्च सिंधवः ॥२३५॥
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजायाश्च भूमिजाः । छादयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ॥२३६॥

अनेक प्रकार के अस्त्रों, धनुषों तथा परिघों से युक्त अपने हाथों से दिव्य आकाश को छेंक लिया था ॥२२१॥ उसके वस्त्र वायु से फरफरा रहे थे । उसकी युद्ध करने की इच्छा थी वह सायंकालीन सूर्य की किरणों से चमकने वाली शिलाओं से युक्त सुमेरु पर्वत के समान प्रतीत होता था ॥२२२॥ अपने जङ्घो के वेग से तोड़े गये पर्वत के शिखरों पर विद्यमान बड़े-बड़े वृक्षों से वज्र के प्रहार से गिरे हुए पर्वतों के समान देवताओं को गिरा रहा था ॥२२३॥ उसने हाथों में निस्त्रिंश धारण करके देवताओं के शिरों को काट दिया । कालनेमि के आयुधों से मारे गये देवता चल भी नहीं पा रहे थे ॥२२४॥ कुछ देवताओं यक्षों गन्धर्वों सर्पों तथा किन्नरों को उसने मुक्के से मार दिया तथा कुछ देवताओं को चीर दिया ॥२२५॥ कालनेमि से भयभीत होकर वे युद्ध में गिर पड़े तथा प्रयास करके भी वे युद्ध करने के लिए नहीं उठ सके ॥२२६॥ उसने इन्द्र को बाणों के बन्धनों से बाँध दिया तथा उन्हें प्रयत्न हीन बना दिया जिससे वे हिल-डुल भी नहीं सके ॥२२७॥ जल रहित मेघ के समान, तथा जल रहित समुद्र के सदृश कान्ति वाले वरुण को उसने युद्ध में निर्व्यापार तथा पाश विहीन बना दिया ॥२२८॥ युद्ध में काल के समान कालनेमि, से घिरे हुए कुबेर विलाप करते हुए अपने धन प्रदान की क्रिया को त्याग दिये ॥२२९॥ सबों के प्राण को हरने वाले तथा मृत्यु रूपी अस्त्र को धारण करने वाले यमराज को उसने युद्ध में मरे जैस बनाकर उन्हें दक्षिण दिश में भेज दिया॥२३०॥ उसने लोकपालों को भगाकर तथा उनके कर्मो का हरण करके सम्पूर्ण दिशाओं में अपने शरीर को चार प्रकार का बना दिया ॥२३१॥ वह नक्षत्र मार्ग में जाकर दिव्य राहु के रूप में दिखा और चन्द्रमा के राज्य की महान लक्ष्मी का हरण कर लिया उसने सूर्य को अपने तेज से भगा दिया तथा इन के रात तथा दिन करने के कर्म का हरण कर लिया ॥२३३॥ वह अग्नि देव की ज्वाला को जितकर अपने मुख में रख लिया और वायु को बलपूर्वक जितकर अपने अधीन बना लिया ॥२३४॥ उसने समुद्र से बलपूर्वक सभी नदियों को जितकर उन सबों को अपने अभिमुख वहने वाली बनाया और सभी नदियाँ उसका शरीर बन गयीं ॥२३५॥ वह स्वर्ग तथा भूलोक के समस्त जलों को स्ववशवर्ती बनकर संसार की सम्पूर्ण पृथिवी को पर्वतों से ढँक दिया॥२३६॥ महाभूतों के स्वामी वह

स स्वयंभूरिवाभाति महाभूतपतिर्महान् । सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावहः ॥२३७॥
स लोकपालैकवपुश्चंद्रसूर्यग्रहात्मवान् । पावकानिलसंभूतो रराज युधि दानवः ॥२३८॥
पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवोपमे। तं तुष्टुवु दैंत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥२३९॥
पंच तं नाभ्यवर्तंत विपरीतेन कर्मणा। वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ॥२४०॥
स तेषामनुप स्थानात्सक्रोधो दानवेश्वरः । वैष्णवं पदमन्विच्छन्स गतो देवता यतः ॥२४१॥
स ददर्शसुपर्णस्थं शंखचक्रगदाधरम् । दानवानां विनाशाय भ्रामयंतं गदां शुभाम् ॥२४२॥
स जलांभोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् । आरूढं स्वर्णपत्राढ्यं खेचरंकाश्यपं खगम् ॥२४३॥
दुष्टदैत्यविनाशाय दृष्ट्वा खस्थमिवस्थितम् । दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः ॥२४४॥
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः। अर्णवावासिनश्चैव मधोश्च कैटभस्य च ॥२४५॥
अयं स रिपुरस्माकमसमः किल कथ्यते । अनेकसंयुगेऽनेन दानवा बहवो हताः ॥२४६॥
अयं स निर्घृणो लोके स्त्रीबालनिरपत्रपः । येन दानवनारीणां सीमंतोद्धरणं कृतम् ॥२४७॥
अयं स विष्णुर्देवानां वैकुंठश्च दिवौकसाम् । अनंतो भोगिनां मध्ये स्वयंभूश्च स्वयंभुवः ॥२४८॥
अयंसनाथोदेवानामस्माभिर्विप्रकृष्यते । अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपु र्हतः ॥२४९॥
अस्य च्छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे स्थिताः । आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवंति त्रिधा हुतम् ॥२५०॥
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् । अस्य चक्रप्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥२५१॥

पृथिवी के समान प्रतीत होने लगा । वह सभी लोकों को भयभीत बनाने वाला दैत्य सर्वभूतमय हो गया ॥२३७॥ सम्पूर्ण लोकपाल शरीरक अग्नि तथा वायु से उत्पन्न वह दानव युद्ध में सुशोभित हो रहा था । चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रह उसके शरीर बन गये थे ॥२३८॥ लोकों की उत्पत्ति स्थान के समान वह ब्रह्माजी के पद पर जाकर बैठ गया, तथा सभी दैत्यगण उसकी उसी तरह स्तुति करने लगे जिस तरह देवता ब्रह्माजी की स्तुति करते हैं ॥२३९॥ उसके विपरीत कर्म के कारण, वेद, धर्म, क्षमा, सत्य तथा नारायणाश्रित लक्ष्मीदेवी ये पाँचों उसका अनुवर्तन नहीं किए ॥२४०॥ इन सबों की अनुपस्थिति से क्रुद्ध हुआ वह दानवेश्वर; भगवान् विष्णु के लोक में वैष्णव पद की इच्छा से गया॥२४१॥ उसने, शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले, गरुड पर बैठे हुए तथा दानवों का विनाश करने के लिए अपनी शुभ गदा को घुमाते हुए श्रीभगवान् को देखा ॥२४२॥ उसने जल भरे मेघ के समान, विद्युत् के समान देदीप्यमान वस्त्र धारण किए हुए, तथा सुवर्ण के समान देदीप्यमान पङ्ख वाले गरुड पर बैठे हुए भगवान् विष्णु को देखा ॥२४३॥ दुष्ट दैत्यों का विनाश करने के लिए आकाश में स्थित अक्षोभ्य भगवान् विष्णु को देखकर क्षुब्ध मन वाले उस दानव ने कहा ॥२४४॥ यह समुद्रवासी हमारे पूर्वज मधु एवं कैटभ का शत्रु है ॥२४५॥ यह हमलोगों का असाधारण शत्रु कहलाता है । अनेक युद्धों में इसने बहुत से दानवों को मार दिया है ॥२४६॥ यह लोक में स्त्री तथा बालकों के प्रति निष्ठुर तथा निर्लज्ज है । इसने दानवों की स्त्रियों के माँग का सिंदूर धो दिया है ॥२४७॥ यह देवताओं का विष्णु है । स्वर्ग वासियों का वैकुण्ठ है सर्पों में यह अनन्त है तथा ब्रह्मा में यह स्वयम्भू है ॥२४८॥ यह देवताओं का स्वामी है, तथा हमलोगों से सदा दूर रहता है । इसके ही क्रोध का विषय बनकर हिरण्यकशिपु मारे गये ॥२४९॥ इसके ही आश्रय को प्राप्त करके देवता यज्ञों में स्थित रहते हैं, और महर्षियों द्वारा प्रदत्त एवं होम किए गये घृत का पान करते हैं ॥२५०॥ यही समस्त दैत्यों की मृत्यु का कारण है । इसके चक्र में हमारे अनेक वंश प्रवेश कर गये ॥२५१॥ यह देवताओं के लिए अपने प्राण का न्योछावर करने वाला है । यह तेज से सम्पन्न

अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः । सविभुस्तेजसा युक्तं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ॥२५२॥
अयं स कालो दैत्यानां कालभूते मयि स्थिते। अतिक्रांतस्य कालस्य फलं प्राप्स्यति केशवः ॥२५३॥
दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः । निष्पिष्टो बाहुना संख्ये मय्येव प्रणशिष्यति ॥२५४॥
यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे। इमन्नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥२५५॥
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणानहम् । जात्यंतरगतोप्येष बाधते दानवान्मृधे ॥२५६॥
एषोनंतःपुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः । जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ॥२५७॥
द्विधा भूतं वपुः कृवा सिंहस्यार्द्धं नरस्य च। पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥२५८॥
यं सुतं गर्भमाधत्त ह्यदितिर्देवतारणिः । त्रीन् लोकानाजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ॥२५९॥
भूयस्त्विदानीं संप्राप्ते संग्रामे तारकामये । मया सह समागम्य सदेवो विनशिष्यति ॥२६०॥
एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिप्रं नारायणं रणे । वाग्भिरप्रतिरूपाभि र्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२६१॥
क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः । क्षमा बलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत् ॥२६२॥
अल्पं दर्पबलं दैत्यस्थिरमक्रोधजं बलम् । हतस्त्वं दर्पजैर्दोषै र्हित्वा यो भाषसे क्षमाम् ॥२६३॥
अधमस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम् । के तत्र पुरुषाः संति यत्र गर्जाति योषितः ॥२६४॥
अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम् । प्रजापतिकृतं सेतुं त्यक्त्वा कः स्वस्तिमान्भवेत् ॥२६५॥
अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम्। स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः॥२६६॥
एवं ब्रुवति वाक्ये तु मृधे श्रीवत्सधारिणि । जहास दानवः कोधाद्धस्तांश्चक्रेण सायुधान् ॥२६७॥

अपने चक्र से शत्रुओं पर प्रहार करता है ॥२५२॥ काल स्वरूप मेरे रहते हुए दैत्यों का काल है । इसने काल का अतिक्रमण किया है । यह इसका फल प्राप्त करेगा ॥२५३॥ भाग्यवशात् इस समय यह मेरे सामने आ गया है । युद्ध में मैं इसे पिस दूँगा और यह मेरे द्वारा विनष्ट हो जायेगा ॥२५४॥ इस नारायण को युद्ध में मारकर आज मैं अपने पूर्वजों की पूजा को सम्पन्न करूँगा यह दानवों के लिए अत्यन्त भयङ्कर है ॥२५५॥ इसके बाद मैं शीघ्र ही देवताओं को युद्ध में मार डालूँगा । देव जाति का होने के कारण यह युद्ध में दानवों को दुःख देता है ॥२५६॥ एकार्णव की वेला में अनन्त बनकर पद्मनाभ शब्द से अभिहित किया जाने वाले इसने मधु एवं कैटभ का बध किया॥२५७॥ इसने आधा सिंह तथा आधा मनुष्य दो तरह का शरीर बनाकर अकेले ही मेरे पिता हिरण्यकशिपु को मार दिया ॥२५८॥ देवताओं की माता ने इसको अपने गर्भ में धारण किया और इसने तीन डग में तीनों लोकों को ले लिया ॥२५९॥ वह पुनः इस तारकामय युद्ध में मेरे साथ युद्ध करके विनष्ट हो जायेगा ॥२६०॥ इसतरह अनेक प्रकार से अनुचित वाणियों से आक्षेप करने के बाद उसने युद्ध करना चाहा ॥२६१॥ अनेक प्रकार से असुरेन्द्र के द्वारा आक्षिप्त होकर भी क्षमा बल से युक्त श्रीभगवान् क्रुद्ध न होकर मुस्कराते हुए कहे ॥२६२॥ हे दैत्य घमण्ड का बल अल्प होता है क्षमा का बल स्थिर होता है । तुम अपने अभिमानजन्य दोषों से ही मार दिए गये हो क्योंकि तुम क्षमा का परित्याग करके बोल रहे हो ॥२६३॥ मेरे मतानुसार तुम अधम हो, तुम्हारे इस वाणी के बल को धिक्कार है । जहाँ पर स्त्रियाँ गरजती है, वहाँ पर कायर पुरुष रहते हैं ॥२६४॥ हे दैत्य ! मैं देखता हूँ कि तुम भी अपने पूर्वजों के ही मार्ग पर चलते हो । प्रजापति के द्वारा निर्मित मार्ग का परित्याग करके कौन कुशल से रह सकता है॥२६५॥ देवताओं के व्यापार को विनष्ट करने वाले तुमको मैं आज मारूँगा । तथा देवताओं को मैं उनके पदों पर स्थापित करूँगा ॥२६६॥ जब श्रीवत्सचिह्नधारी श्रीभगवान् बोल रहे थे, उसी समय वह दानव जोर से हँसा और

सबाहुशतमुद्यम्य सर्वायुधगणान्रणे। क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णोर्वक्षस्यपातयत् ॥२६८॥
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः । उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन्रणे ॥२६९॥
सताड्यमानोऽतिबलै दैत्यैः सर्वायुद्योद्यतैः। न चचाल ततो युद्धे कंप्यमान इवाचलः ॥२७०॥
संयुक्तश्च सुपर्णेन कालनेमिर्महासुरः । सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥२७१॥
घोरां ज्वलंती मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि। कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागमत् ॥२७२॥
तदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्ध्नि सा गदा। सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः ॥२७३॥
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुंठाश्चक्रमाददे । व्यवर्द्धत च वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥२७४॥
भुजाश्चास्य व्यवर्धत व्याप्तवंतो दिशो दश । विदिशश्चैव खं चापि गां चैव प्रतिपूरयन् ॥२७५॥
ववृधे स पुनर्लोकान्क्रांतुकाम इवोजसा । तं जयाय सुरेंद्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ॥२७६॥
ऋषयः सहगंधर्वास्तुष्टुवु र्मधुसूदनम् । स द्यां किरीटेन लिखन् शिरसा भास्वरेण च॥२७७॥
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः । सहस्रकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥२७८॥
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् । सुवर्णरेणुपर्यतं वज्रनाभं भयावहम् ॥२७९॥
मेदोस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तं दानवसंभवैः। अद्वितीयं प्रहरणं क्षुरपर्यंतमंडलम्॥२८०॥
स्रग्दाममालानिचितं कामगं कामरूपिणम्। स्वयं स्वयंभुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम्॥२८१॥
दधार रोषेणाविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्। क्षेपणाद्यस्य मुह्यंति लोकाः सस्थाणुजंगमाः॥२८२॥

हाथों में आयुध धारण किया ॥२६७॥ वह अपनी सैकड़ो भुजाओं को उठाकर युद्ध में अपने समस्त आयुधों का प्रहार श्रीभगवान् के वक्षस्थल पर किया। उस समय उसकी आँखें क्रोध के कारण दो गुना लाल हो गयी थीं॥२६८॥ मय तथा तार आदि दानव भी अपने आयुधों को उठाकर भगवान् विष्णु पर टूट पड़े ॥२६९॥ भगवान् विष्णु उन अत्यन्त बलवान् दैत्यों के द्वारा भी सभी आयुधों के द्वारा मारे जाते हुए विचलित नहीं हुए। वे पर्वत के समान अचल बने रहे ॥२७०॥ गरुड के साथ संयुक्त होकर कालनेमि ने अपनी जलती हुयी गदा को उठाकर पूरा जोर लगाकर गरुड के ऊपर प्रहार किया। कालनेमि के उस कर्म को देखकर भगवान् विष्णु आश्चर्यित हो गये ॥२७१-२७२॥ उसने अपनी गदा से गरुड के शिर पर प्रहार किया। गरुड को व्यथित देखकर तथा अपने शरीर को क्षत-विक्षत देखकर ॥२७३॥ क्रोध से आँखें लाल करके श्रीभगवान् ने अपने हाथ में चक्र को उठा लिया और वे बड़े वेग से गरुड के साथ बढने लग गये ॥२७४॥ उनकी भुजाएँ बढकर दशो दिशाओं में व्याप्त हो गयीं। विदिशाएँ, आकाश तथा पृथिवी भर में वे व्याप्त हो गयीं असुरेन्द्रों पर विजय प्राप्त करने के लिए आकाश में बढ़ते हुए भगवान् विष्णु की स्तुति गन्धर्वो तथा ऋष्यिो ने की। श्रीभगवान् अपने देदीप्यमान शिर तथा किरीट से आकाश को छू रहे थे ॥२७५-२७७॥ पृथिवी पर खड़ा होकर तथा भुजाओं से दिशाओं को आच्छादित करके सूर्य की किरणों के समान कान्ति वाले श्रीभगवान् शत्रुओं का विनाश करने वाले तथा हजारों अरों वाले ॥२७८॥ जलती हुयी अग्नि के समान भयङ्कर, देखने में सुन्दर लगने वाले सुवर्ण के पराग से युक्त, वज्र के समान नाभि वाले, भय उत्पन्न करने वाले ॥२७९॥ दानवों के मेदस मांस तथा रक्त से संसिक्त, अद्वितीय आयुध क्षुर प्रदेश पर्यन्त मण्डलकार ॥२८०॥ माला से अलंकृत अपने मनोऽनुकूल चलने वाले, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, जिसका निर्माण स्वयं ब्रह्माजी ने किया था, उस शत्रुओं को भयभीत करने वाले ॥२८१॥ युद्ध के दर्प से दृप्त सुदर्शन चक्र को श्रीभगवान् ने अपने हाथ में उठा लिया। जिसका प्रहार करने पर स्थावर जंगात्मक लोक बेहोश हो जाता है॥२८२॥

क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यांति महामृधे। तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ॥२८३॥
चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः। प्रणष्टं दानवं तेजः कुर्वाणं स्वेन तेजसा ॥२८४॥
चिच्छेद बाहूस्तेनैव समरे कालनेमिनः। तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निचूर्णाट्टहासि वै॥२८५॥
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः। सच्छिन्नबाहुर्विशिरानप्राकम्पत दानवः ॥२८६॥
कबंधावस्थितः संख्ये विशाख इवपादपः। तं वितत्यमहापक्षौ वयोः कृत्वासमंजवम् ॥२८७॥
उरसा ताडयामास गरुडः कालनेमिनम्। सतस्य देहोभिमुखो विबाहुः खात्परिभ्रमन् ॥२८८॥
निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन्धरणीतलम्। तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तथा ॥२८९॥
साधुसाध्विति वैकुंठं समेताः प्रत्यपूजयन्। अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दृष्टपराक्रमाः ॥२९०॥
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे। कांश्चित्केशेषु जग्राह कांश्चित्कण्ठेष्वपीडयत् ॥२९१॥
चकर्त कस्यचिद्वक्त्रं मध्ये गृह्यात्तथापरम्। ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्वा गतासवः ॥२९२॥
गगनाद्भ्रष्टसर्वांगा निपेतुर्धरणीतले। तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः॥२९३॥
शक्रप्रियं ततः कृत्वा कृतकर्मगदाधरः। तस्मिन्विमर्दे संवृत्ते संग्रामे तारकामये॥२९४॥
तं च देशं जगामाशु ब्रह्मालोकपितामहः। सर्वै र्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्ध गंधर्वाप्सरसां गणैः ॥२९५॥
देवदेवं हरिं देवः पूजयन्वाक्यमब्रवीत्। कृतं देवमहत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् ॥२९६॥
निधनेन च दैत्यानां वयं च परितोषिताः। योऽयं त्वया हतो विष्णो कालनेमिर्महासुरः ॥२९७॥

और महासंग्रामों में मांसभक्षी जीव तृप्त हो जाते हैं। उस अप्रतिम कर्म को करने वाले तथा सूर्य के समान चमकने वाले ॥२८३॥ चक्र को उठाकर युद्ध में क्रोध से लाल हुए भगवान् विष्णु ने अपने तेज से दानव के तेज को विनष्ट करते हुए ॥२८४॥ उस चक्र से कालनेमि की भुजाओं को काट दिया। अट्टहास करते समय जिनसे अग्नि की चिनगारी निकलती थी ऐसे उस दानव के सैकड़ों मुखों को भगवान् श्रीहरि ने बलपूर्वक चक्र से काट दिया। जिसकी भुजाएँ और शिर कट गये थे वह दानव कँपा नहीं ॥२८५-२८६॥ उसका शरीर ठूंठे पेड के समान संग्राम स्थल में खड़ा था। उसको अपने पङ्खों को फैलाकर तथा वायु के वेग से युक्त करके ॥२८७॥ गरुड ने अपनी छाती से धक्का दिया और उसका वह भुजा और शिर से रहित शरीर आकाश से पृथिवी पर नाचता हुआ गिर पड़ा ॥२८८॥ वह आकाश का परित्याग करके पृथिवी को कँपाता हुआ गिरा। उसके गिर जाने पर देवताओं तथा महर्षियों ने बहुत अच्छा कहकर इस कार्य का अभिनंदन किया। दूसरे दैत्य जो युद्ध में अपने पराक्रम को प्रदर्शित कर चुके थे वे सबके सब श्रीभगवान् की भुजाओं से व्याप्त होने के कारण हिल-डुल न सके। भगवान् ने कुछ दानवों के केश को पकड़ लिया, कुछों के गले को दबा दिया ॥२८९-२९१॥ कुछों के शिर को काट दिया, कुछ दानवों को बीच से काट दिया। इसतरह से गदा और चक्र के तेज से दग्ध होने के कारण वे सब मर गये ॥२९२॥ जिनके सभी अङ्ग नष्ट भ्रष्ट हो गये थे वे दानव आकाश से नीचे गिर पड़े। उन सभी दैत्यों के मार दिए जाने पर भगवान् पुरुषोत्तम॥२९३॥ उस तारकामय युद्ध के समाप्त हो जाने पर अपने काम को पूरा करके भगवान् विष्णु ने इन्द्र को प्रसन्न कर दिया ॥२९४॥ उसी स्थान पर शीघ्र ही लोक पितामह ब्रह्माजी आ गये, उनके साथ ऋषिगण, गन्धर्व तथा अप्सराओं का समूह था ॥२९५॥ उन्होंने देवदेव श्रीहरि की पूजा करते हुए कहा हे देव! आपने देवताओं के शत्रु को मारकर बहुत बड़ा काम किया है ॥२९६॥ दैत्यों की मृत्यु से हम पूर्णतः सन्तुष्ट हैं। हे भगवन्! आपने जो इस कालनेमि नामक महाअसुर को मारा है ॥२९७॥ इसको आपको छोड़कर दूसरा कोई नहीं मार सकता था। सम्पूर्ण

त्वामेतस्य ऋते ह्यस्मिन् शास्ता कश्चिन्न विद्यते । एष देवान्परिभवन्लोकांश्च सचराचरान् ॥२९८॥
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपिप्रतिगर्जति । तदनेन त्वदीयेन परितुष्टोस्मि कर्मणा ॥२९९॥
यदयं कालकल्पस्ते कालनेमिर्निपातितः । तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमाम् ॥३००॥
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षंते सदोगताः । कं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतांवर ॥३०१॥
स्वस्थानस्थेषुदेवेषु तेषां च वरदो भवान् । निर्यातमेतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकंटकम् ॥३०२॥
अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने । एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ॥३०३॥
देवान् शक्रमुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा ।

विष्णुरुवाच

श्रूयतां त्रिदशास्सर्वे यावंतोऽत्र समागताः ॥३०४॥
सुपर्णसहितैस्तत्र पुरस्कृत्य पुरंदरम् । अस्माभिः समरे सर्वैः कालनेमिमुखा हताः ॥३०५॥
दानवाविक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः । अस्मिन्महति संग्रामे द्वावेव तु विनिस्सृतौ ॥३०६॥
विरोचनस्तुदैतेयः स्वर्भानुश्च महाबलः । स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ॥३०७॥
याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः । ऋक्षैः सह सदायोगं गच्छतां चंद्रमास्तथा ॥३०८॥
अयमृतुमुखं सूर्योभजतामयनैः सह । आज्यभागाः प्रवर्ततां सदस्यै रभिपूजिताः ॥३०९॥
हूयंतामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा । देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ॥३१०॥
श्राद्धेन पितरश्चैव तुष्टिं यांतु यथासुखम् । वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधादीप्यतु पावकः ॥३११॥
त्रयोवर्णाश्च लोकांस्त्रींस्तपर्पयंत्वात्मजैर्गुणैः । क्रतवः संप्रवर्ततां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः ॥३१२॥

सचराचर लोकों तथा देवताओं को अभिभूत करते हुए ॥२९८॥ ऋषियों को काटकर यह मुझको भी धमकाता था । अतएव आपके इस कर्म से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ ॥२९९॥ आपने इस काल के समान कालनेमि को मारा है । अब आप आइये, हमलोग उत्तम द्युलोक में चलें ॥३००॥ वहाँ पर सभा में ब्रह्मर्षिगण आपके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । हे बरदान देने वालों में श्रेष्ठ भगवन् ! मैं आपको कौन सा वरदान दूँ ॥३०१॥ देवताओं के अपने पदों पर आसीन हो जाने पर आप उन सबों को वरपद्रान करने वाले हैं । इसी संग्राम में इन्द्र को निःशत्रु त्रैलोक्य का राज्य प्रदान कर दिया है । ब्रह्माजी के इस प्रकार से कहने पर अव्यय भगवान् श्रीहरि ने ॥३०३॥ इन्द्र इत्यादि देवताओं से कहा **भगवान् विष्णु ने कहा**— जो देवता यहाँ उपस्थित हैं वे सब मेरी बात सुनें ॥३०४॥ गरुड इत्यादि हम सबों ने इन्द्र को आगे करके कालनेमि इत्यादि दानवों को मारा है ॥३०५॥ ये दानव इन्द्र से भी अधिक पराक्रम सम्पन्न थे । इस संग्राम में दो दैत्य बचे हुए हैं ॥३०६॥ विरोचन नामक दैत्य तथा महाबलवान् राहु । अब इन्द्र अपनी पूर्व दिशा का प्रशासन करें, वरुण पश्चिम दिशा का प्रशासन करे ॥३०७॥ दक्षिण दिशा का स्वामित्व यमराज करें और उत्तर दिशा का पालन कुबेर करें । चन्द्रमा भी सभी नक्षत्रों के साथ संयोग को प्राप्त कर लें ॥३०८॥ ऋतु प्रधान सूर्य अयनों के साथ रहें और सदस्यों के द्वारा यज्ञों में पूजित होकर आज्यभाग का उपभोग करें ॥३०९॥ ब्राह्मणगण वैदिकविधि से अग्नि में होम करें । देवता लोग बलि तथा होम से, महर्षिगण स्वध्याय (वेदाध्ययन) के द्वारा ॥३१०॥ तथा पितृगण श्राद्ध के द्वारा संतुष्ट होएँ । वायु अपने मार्ग से चलें तथा तीनों प्रकार के अग्निदेव प्रदीप्त हो जायँ ॥३११॥ तीनों वर्णों के लोग अपने गुणों के द्वारा तीनों लोकों का आप्यायित करें । दीक्षित ब्राह्मणों के द्वारा क्रतुओं का अनुष्ठान किया जाय ॥३१२॥ याज्ञिक पुरुष अलग-अलग अपनी दक्षिणा प्राप्त करें । सूर्य,

दक्षिणाश्चोपपद्यंतां याज्ञिकैश्च पृथक् पृथक् । गाश्चसूर्यो रसान्सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु ॥३१३॥
तर्पयन्तः प्रवर्ततामेते सौम्यैः स्वकर्मभिः । यथावदनुपूर्वेण महेंद्रमलयोद्भवाः ॥३१४॥
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः समुद्रं यांतु सिंधवः। दैत्येभ्यस्त्यज्यतांभीश्च शांतिं व्रजत देवताः ॥३१५॥
स्वस्ति वोस्तुगमिष्यामि ब्रह्मलोकंसनातनम् । स्वगृहे स्वर्गलोके वा संग्रामे वा विशेषतः॥३१६॥
विश्वस्तैश्च गंतव्यं नित्यं क्षुद्राहि दानवाः। छिद्रेषु हरन्त्येिते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा ॥३१७॥
सौम्यानां निजभावानां भवतामार्जवे मनः । एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुस्सत्यपराक्रमः ॥३१८॥
जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोकं महायशाः । देवानां महतीं प्रीतिमुत्पाद्य भगवान्प्रभुः ॥३१९॥
एतदाश्चर्यमभवत्संग्रामे तारकामये। दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥३२०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पद्मोद्भवदेवासुरयुद्धे नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

बयालिसवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

श्रुतः पद्मोद्भवो ब्रह्मन् विस्तरेण त्वयेरितः । समासाद्भवमाहात्म्यमुत्पत्तिं च गुहस्य च॥१॥

पृथिवी, सोम रसों को तथा वायु प्राणियों के प्राणों को ।।३१३।। तृप्त करते हुए अपने-अपने सौम्य कर्मों को करते रहें । पहले के ही समान महेन्द्र तथा मलय पर्वत से निकलने वाली लोकमाता सभी नदियाँ समुद्रगामिनी हो जायँ । अब दैत्यों के भय को त्याग दें और सभी देवता शान्ति का अनुभव करें ॥३१४-३१५॥ आप सबों का कल्याण हो मैं सनातन ब्रह्मलोक में जा रहा हूँ अपने घर में या स्वर्ग लोक में अथवा विशेष रूप से संग्राम में ॥३१६॥ दानवों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए, दानव स्वभाव से क्षुद्र प्रकृति वाले होते हैं । वे मौका पाते ही प्रहार करने लग जाते हैं । इन सबों की स्थिर प्रवृत्ति नहीं होती है ॥३१७॥ शान्त स्वभाव वाले होने के कारण आप लोगों का मन सदा सरल वना रहता है । इस तरह देवताओं से कहकर सत्य पराक्रम महायशस्वी भगवान् विष्णु देवताओं को अत्यन्त प्रसन्न करके ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक चले गये ॥३१८-३१९॥ तारकामय संग्राम में भगवान् विष्णु और दानवों के बीच यही आश्चर्य कार्य हुआ जिसके विषय में आपने मुझसे पूछा है ॥३२०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पद्मोद्भव देवासुर संग्राम वर्णन नामक एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४१।।

शङ्करजी का माहात्म्य वर्णन, दिति के पुत्र वज्राङ्ग की उत्पत्ति, वज्राङ्ग द्वारा इन्द्र को बन्दी बनाकर उनको दिति के पासा लाना, ब्रह्म तथा कश्यप की आज्ञा से इन्द्र को मुक्त करना, ब्रह्माजी द्वारा वराङ्गी को वज्राङ्ग की पत्नी के रूप में प्रदान, वज्राङ्ग तथा वराङ्गी की तपस्या, ब्रह्माजी द्वारा वज्राङ्ग को वरदान, तारकासुर की उत्पत्ति और उसकी तपस्या, ब्रह्माजी द्वारा तारकासुर को वरदान, तारकासुर का इन्द्र के साथ युद्ध तथा देवताओं की पराजय

भीष्मजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुख से पद्म की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन सुना अब आप

श्रोतुमिच्छामि ते ब्रह्मन्यथाभूतः कृतं च यत् । तारकश्च कथंभूतो दानवो बलवत्तरः ॥२॥
कार्तिकेयेन स ब्रह्मन्कथं ध्वस्तो महासुरः । कथं रुद्रेण मुनयः प्रेषिता मंदरं गिरिम् ॥३॥
कथं लब्धा उमा तत्र रुद्रेण परमेष्ठिना। एतदाख्याहि मे सर्वं यथाभूतं महामुने ॥४॥

पुलस्त्य उवाच

कश्यपेन पुरा प्रोक्ता दितिं दैत्यारणिः शुभा। वज्रसारमयैश्चांगैः पुत्रो देवि भविष्यति ॥५॥
वज्रांगोनामपुत्रस्तु भविता धर्मवल्सलः। सा च लब्धवरा देवी सुषुवे वज्रदुश्छिदम् ॥६॥
स जातमात्र एवाभूत्सर्वशास्त्रार्थपारगः। उवाच मातरं भक्त्या मातः किं करवाण्यहम् ॥७॥
तस्योवाच ततो हृष्टा दितिर्दैत्याधिपस्य तु । बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक॥८॥
तेषामपचितिं कर्तुं गच्छ शक्रवधाय तु। बाढमित्येव तां चोक्त्वा जगाम त्रिदिवं बलात् ॥९॥
बध्वा ततः सहस्राक्षं पाशेनामोघवर्चसा। मातुरंतिकामागच्छद्व्याधः क्षुद्रमृगं यथा ॥१०॥
एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः । आगतौ तत्र यत्रास्तां माता पुत्रावभीतकौ ॥११॥
दृष्ट्वा तु तावुवाचेदं ब्रह्मा कश्यप एव च । मुंचैनं पुत्रदेवेंद्रं किमनेन प्रयोजनम् ॥१२॥
अवमानो वधः प्रोक्तः पुत्र संभावितस्य तु । अस्मद्वाक्येन योमुक्तस्त्वद्धस्तान्मृत एव सः ॥१३॥
परस्य गौरवान्मुक्तः शत्रूणा शत्रुराहवे । सजीवन्नेव हि मृतो दिवसे दिवसे पुनः ॥१४॥
एतच्छ्रुत्वा तु व्रजांगः प्रणतो वाक्यमब्रवीत्। न मे कृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञा कृता हि मे ॥१५॥
त्वं सुरासुरनाथो वै मान्यश्च प्रपितामहः । करिष्ये त्वद्वचो देव एष मुक्तः शतक्रतुः॥१६॥

मुझे संक्षेप में शङ्करजी की महिमा तथा कार्तिकेय (गुह) की उत्पत्ति को सुनाइये ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रसङ्ग को मैं सुनना चाहता हूँ, तारकासुर इतना अधिक बलवान कैसे हो गया ॥२॥ कार्तिकेय ने उसका विनाश कैसे किया ? रुद्र ने मुनियों को मन्दराचल पर क्यों भेजा ?॥३॥ वहाँ पर परमेष्ठी रुद्र ने किस प्रकार उमा को प्राप्त किया ? हे ब्रह्मन्! इन सारी बातों को आप मुझे ठीक-ठीक सुनायें ॥४॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** महर्षि कश्यप ने पूर्वकाल में दैत्यों की माता दिति को यह वरदान दिया कि तुम्हारा पुत्र वज्र के सदृश अङ्गों वाला होगा ॥५॥ तुम्हारे धार्मिक पुत्र का नाम वज्राङ्ग होगा । महर्षि कश्यप के वरदान को प्राप्त करके दिति ने वज्राङ्ग को जन्म दिया । उसके अङ्गों को काटना अत्यन्त कठिन था ॥६॥ उत्पन्न होते ही वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो गया । उसने भक्तिपूर्वक अपनी माता से कहा माँ मैं तुम्हारा कौन सा कार्य करूँ ?॥७॥ उस दैत्याधिप की बात को सुनकर दिति प्रसन्न हो गयी और कहा— पुत्र ! इन्द्र ने मेरे अनेक पुत्रों को मार दिया है ॥८॥ उन सबों का बदला लेने के लिए तुम जाकर इन्द्र को मार दो । बहुत अच्छा कहकर वज्राङ्ग भी स्वर्गलोक में चला गया ॥९॥ और अमोघ वर्चस्वी वज्राङ्ग इन्द्र को पाश से उसीतरह से बाँधकर अपनी माता के पास लाया जैसे कोई बहेलिया छोटे मृग को बाँध लेता है ॥१०॥ उसी समय ब्रह्माजी तथा महर्षि कश्यप दिति और वज्राङ्ग के पास आये ॥१०॥ ब्रह्माजी तथा कश्यप महर्षि दोनों ने कहा वत्स ! इसे तुम मुक्त कर दो इससे तुम्हारा कौन सा लाभ है ?॥११-१२॥ किसी सम्मानित व्यक्ति का अपमान उसकी मृत्यु के ही समान होता है । हमलोगों के कहने से यदि तुम इसे छोड़ देते हो तो इसे मरा हुआ ही समझो ॥१३॥ किसी वड़े की बात मानकर युद्ध में शत्रु के द्वारा छोड़ा गया शत्रु तो जीवित होकर भी मरा हुआ है । वह तो प्रतिदिन मरता है ॥१४॥ इस बात को सुनकर वज्राङ्ग ने नम्रतापूर्वक कहा— मेरा इससे कोई प्रयोजन नहीं है । मैंने अपनी माता

तपसे मे रति र्देव निर्विघ्नं तच्च मे भवेत् । त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्ता विरराम ह ॥१७॥
तस्मिंस्तूष्णींस्थिते दैत्ये प्रोवाचेदं पितामहः ।

ब्रह्मोवाच

तपस्त्वं कुरु मापन्नः सोस्मच्छासनसंस्थितः ॥१८॥
अनया चित्तशुद्ध्या हि पर्याप्तं जन्मनः फलम् । इत्युक्त्वा पद्मजः कन्यां ससर्जायतलोचनाम् ॥१९॥
तामस्मैप्रददौ देवः पन्त्यर्थे पद्मसंभवः । वरांगीति च नामास्याः कृत्वा यातः पितामहः॥२०॥
वज्रांगोपि तया सार्द्धं जगाम तपसे वनम् । ऊद्ध्वबाहुस्सदैत्येंद्रो चरद्वर्षसहस्रकम्॥२१॥
कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः । तावच्चाधोमुखः कालं तावत्पंचाग्निमध्यगः ॥२२॥
निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत । ततः सोंतर्जले चक्रे वासं वर्षसहस्रकम् ॥२३॥
जलांतरं प्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाव्रता । तस्यैव तीरे सरसः स्थिताऽसौ मौनमाश्रिता ॥२४॥
निराहारं तपोघोरं प्रविवेश महाद्युतिः। तस्यां तपसि वर्तंत्यामिन्द्रश्चक्रे विभीषिकाम् ॥२५॥
गत्वा तुमर्कटाकारस्तदाश्रमपदं महत् । वृसीं चकर्ष बलवान् गंधाद्यर्चा करंडकम्॥२६॥
ततस्तु सिंहरूपेण भीषयामास भामिनीम् । ततो भुजंग रूपेणाप्यदशच्चरणद्वयम् ॥२७॥
तपोबलवशात्सा तु न वध्यत्वं जगाम ह । भीषिकाभिरनेकाभिः क्लेशयन् पाकशासनः ॥२८॥
विरराम यदा नैव वज्रांगमहिषी तदा । शैलस्य दुष्टतां मत्वा शापं दातुं समुद्यता॥२९॥
तां शापाभिमुखीं दृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः। उवाच तां वरारोहां वरांगीं भीतलोचनः ॥३०॥

की आज्ञा का पालन किया है ॥१५॥ हे देव ! आप मेरे प्रपितामह हैं ? मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ। मैंने इन्द्र को छोड़ दिया ॥१६॥ मेरा प्रेम तपस्या में है । मै चाहता हूँ कि मेरी तपस्या आपकी कृपा से निर्विघ्न रूप से पूरी हो जाय । इतना कहकर वज्राङ्ग चूप हो गया ॥१७॥ उस दैत्य के मौन हो जाने पर ब्रह्माजी बोले ब्रह्माजी ने कहा— मेरी आज्ञा में रहकर तुम तपस्या करो ॥१८॥ अपने चित्त की शुद्धि के द्वारा तुमने अपने जन्म का फल प्राप्त कर लिया । इस तरह से कहकर ब्रह्माजी ने एक बड़े-बड़े नेत्रों वाली कन्या की सृष्टि कर दी ॥१९॥ उसका नाम उन्होंने वराङ्गी रखा और उसको वज्राङ्ग की पत्नी बना दिया । उसके बाद पितामह ब्रह्माजी चले गये ॥२०॥ वज्राङ्ग भी उस वराङ्गी के साथ तपस्या करने के लिए वन में चला गया और अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर एक हजार वर्ष तक तपस्या करता रहा ॥२१॥ उसके नेत्र कमल दल के समान थे । शुद्ध बुद्धि वाला वह महातपस्वी, उतने ही समय तक नीचे मुख करके पञ्चाग्नि का सेवन करता रहा ॥२२॥ वह घोर तपस्वी निराहार रहता था इस तरह वह तपोराशि हो गया । उसके बाद वह जल के भीतर एक हजार वर्ष तक रहा ॥२३॥ उसके जल में पवेश कर जाने पर उसकी पत्नी भी उसी सरोवर के तट पर मौन होकर बैठ गयी ॥२४॥ वह भी निराहार रहकर घोर तपस्या करने लगी । उसके तपस्या करते समय वहाँ पर इन्द्र ने भय उत्पन्न कर दिया ॥२५॥ बन्दर के आकार में उस आश्रम में प्रवेश करके इन्द्र ने वृषी (मृगचर्म) तथा पूजा की टोकरी की खींच लिया ॥२६॥ उसके बाद इन्द्र ने उसे सिंह का रूप धारण करके डराया । उसके बाद सर्प का रूप धारण करके उसने वराङ्गी के दोनों पैरों में काट लिया ॥२७॥ किन्तु अपनी तपस्या के बल से वराङ्गी मरी नहीं जब इन्द्र अनेक प्रकार के भयों को उत्पन्न करना नहीं छोड़ा तो यह सारा उत्पात पर्वत के द्वारा किया हुआ जानकर वह पर्वत को शाप देने के लिए तैयार हो गयी॥२८-२९॥ उसको शाप देने के लिए उद्यत देखकर पर्वत ने मनुष्य शरीर धारण करके भयभीत होकर वराङ्गी

शैल उवाच

नाहं महाव्रते दुष्टः सेव्योहं सर्वदेहिनाम् । विप्रियं ते करोत्येष रुषितः पाकशासनः ॥३१॥
एतस्मिन्नंतरे जातः कालोवर्षसहस्रकः। तस्मिन् ज्ञात्वा तु भगवान्काले कमलसंभवः ॥३२॥
तुष्टः प्रोवाच ब्रज्रांगं तदागत्य जलाशयम् ।

ब्रह्मोवाच

ददामि सर्वकामं त उत्तिष्ठ दितिनंदन ॥३३॥
एवमुक्तस्तदोत्थाय सदैत्येन्द्रस्तपोनिधिः। उवाच प्रांजलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम् ॥३४॥

वज्रांग उवाच

आसुरो मास्तु मे भावः संतु लोका ममाक्षयाः। तपस्यभिरतिर्मेस्तु शरीरस्यास्य वर्तनम् ॥३५॥
एवमस्त्विवति तं देवो जगाम स्वकमालयम् । वज्रांगोपि समाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः ॥३६॥
संगंतुमिच्छन्स्वां भार्यां न ददर्शाश्रमे स्वके । क्षुधाविष्टः स शैलस्य गहनं प्रविवेश ह ॥३७॥
आदातुं फलमूलानि स च तस्मिन्व्यलोकयत् । रुदन्तीं स्वां प्रियां दीनां तरुप्रच्छादिताननाम् ॥३८॥
तां विलोक्य ततो दैत्यः प्रोवाच परिसांत्वयन्।

वज्रांग उवाच

केन तेऽपकृतं भद्रे यमलोकं यियासुना ॥३९॥
कं वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं प्रब्रूहि मानिनि ॥

वरांग्युवाच

त्रासितास्म्यपविद्धास्मि ताडिता पीडितास्मि च ॥४०॥

से कहा ॥३०॥ **पर्वत ने कहा—** हे महाव्रते ! मैंने कोई दुष्टता नहीं की है । मैं तो सबों क लिए सेवनीय हूँ । तुम्हारा अपकार क्रुद्ध होकर इन्द्र कर रहा है ॥३१॥ उसी समय एक हजार वर्ष पूरा हो गया इस बात को जानकर कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी ॥३२॥ प्रसन्न होकर उस जलाशय पर आये और वज्राङ्ग से कहे । **ब्रह्माजी ने कहा—** हे दैत्य ! तुम उठो । तुम्हें मैं सम्पूर्ण अभिलषित वरदानों को दे रहा हूँ ॥३३॥ ब्रह्माजी के इस प्रकार से कहने पर वह तपोनिधि दैत्येन्द्र उठकर तथा हाथ जोड़कर सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी से कहा ॥३४॥ **वज्रांग ने कहा—** मुझमें असुर भाव न उदित हो, मुझे अक्षय लोक की प्राप्ति हो जब तक मेरा शरीर रहे तब तक मेरा मन तपस्या करने में लगा रहे ॥३५॥ एवमस्तु ! इसतरह से कहकर ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये । वज्राङ्ग भी तपस्या के समाप्त हो जाने पर संयम का पालन करते हुए अपनी पत्नी के साथ संगम करना चाहा, किन्तु उसने उसे आश्रम में नहीं देखा । भूख से पीडित होने के कारण वह गहन वन में प्रवेश कर गया ॥३७॥ वह फल मूल लेने के लिए गया था और वहाँ उसने देखा कि पेड़ की ओट में अपना मुँह छिपाकर उसकी पत्नी रो रही थी ॥३८॥ उसको देखकर वज्राङ्ग ने उसे सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा **वज्राङ्ग ने कहा—** हे भद्रे ! किसने तुम्हारा अपकार किया है ? कौन यमलोक जाना चाहता है ?॥३९॥ हे मानिनि ! तुम शीघ्र बलाओं कि मैं तुम्हारी किस इच्छा को पूरी करूँ । वराङ्गी ने कहा दुष्ट इन्द्र ने मुझे विधवा के समान बहुत अधिक पीटा है, प्रताडित किया है, भयभीत किया है और त्रास दिया है । जब मैंने अपने दुःख का अन्त नहीं देखा तो फिर अपने प्राणों का परित्याग करने के लिए तैयार हो गयी ॥४०-४१॥ आप मुझे तारक पुत्र प्रदान करें जिससे मैं इस दुःख सागर से बच सकूँ । वराङ्गी

रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेन भूरिशः । दुःखस्यांतमपश्यंती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता ॥४१॥
पुत्रं मे तारकं देहि तस्माद्दुःखमहार्णवात् । एवमुक्तस्तु दैत्येंद्रः कोपव्याकुललोचनः ॥४२॥
शक्तोपि देवराजस्य प्रतिकर्तुं महासुरः । तप एव पुनश्चर्तुं व्यवस्यत महाबलः ॥४३॥
ज्ञात्वा तस्य तु सङ्कल्पं ब्रह्मा क्रूरतरं पुनः । आजगामत्वरा युक्तोयत्राऽसौ दितिनंदनः ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

किमर्थं पुत्रभूयस्त्वं कर्तुं नियममुद्यतः । तदहं ते पुनर्दद्मि कांक्षितं पुत्रमोजसा ॥४५॥

वज्रांग उवाच

उत्थितेन मया दृष्टा समाधानात्त्वदाज्ञया । त्रासितेंद्रेण मामाह सा वरांगी सुतार्थिनी ॥४६॥
पुत्रं मे तारकं देहि तुष्टो मे त्वं पितामह।

ब्रह्मोवाच

अलं ते तपसा वीर मा क्लेशे दुस्तरो विश ॥४७॥
पुत्रस्तु तारको नाम भविष्यति महाबलः । देवसीमंतिनीनां तु धम्मिल्लकविमोक्षकः ॥४८॥
इत्युक्तो दैत्यनाथस्तु प्रणम्य प्रपितामहम् । गत्वा तां नंदयामास महिषीं कर्शितांतराम्॥४९॥
तौ दंपती कृतार्थौ तु जग्मतुः स्वाश्रमं तदा । आहितं तु तदा गर्भं वरांगीवरवर्णिनी ॥५०॥
पूर्णवर्षसहस्रं तु दधारोदर एवहि । ततो वर्षसहस्रांते वरांगी सा प्रसूयत ॥५१॥
जायमाने तु दैत्ये तु तस्मिन् लोकभयंकरे । चचाल सर्वा पृथिवी प्रोद्धूताश्च महार्णवाः ॥५२॥
चेलु धराधराश्चापि ववुर्वाताश्चभीषणाः । जेपुर्जप्यंमुनिवरानेदुर्व्यालमृगा अपि ॥५३॥
जहौ कांतिश्चंद्रसूर्यौ नीहारच्छादिता दिशः । जाते महासुरे तस्मिन्सर्वे चापि महासुराः ॥५४॥

के द्वारा इस तरह कहे जाने पर वज्रांग क्रोध से व्याकुल हो गया ॥४२॥ यद्यपि वह स्वयं इन्द्र का प्रतिकार करने में समर्थ था फिर भी उस महाबलवान् ने पुनः तपस्या करने का मन बना लिया ॥४३॥ उसके अत्यधिक क्रूर सङ्कल्प को जानकर ब्रह्माजी उस दैत्य के पास अत्यन्त शीघ्रता से आये ॥४४॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— पुत्र तुम पुनः तपस्या करने के लिए क्यों तैयार हो गये ? मैं तुम्हें तुम्हारे अभिप्रेत पुत्र को प्रदान कर रहा हूँ । जो महाओस्वी होगा ॥४५॥ **वज्राङ्ग ने कहा**— आपकी आज्ञा प्राप्त करके जब मैं समाधि से उठा तो देखा कि मेरी पत्नी वराङ्गी को इन्द्र ने वहुत त्रास दिया है; अब वह पुत्र प्राप्त करना चाहती है ॥४६॥ हे पितामह ! आप प्रसन्न होकर मुझे तारक पुत्र प्रदान कीजिये । **ब्रह्माजी ने कहा**— वत्स ! तुम्हें तपस्या करने की कोई आवश्यकता नहीं । अब क्लेश मत उठाओ॥४७॥ तुम्हारा तारक नाम का महावलवान् पुत्र होगा । वह देवताओं की पत्नियों के केशों को खोलने वाला होगा ॥४८॥ इस तरह कहे जाने पर वज्राङ्ग ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया, उसने जाकर अपनी दुःखिनी पत्नी को प्रसन्न किया॥४९॥ उसके बाद कृतार्थ होकर दोनो दम्पती (पति-पत्नी) अपने आश्रम में चले गये जिससे कि सुन्दरी वराङ्गी का गर्भाधान हो सके ॥५०॥ वराङ्गी ने उस गर्भ को एक हजार वर्ष तक अपने गर्भ में ही धारण किया । उसके बाद एक हजार वर्ष पूरा होने पर वराङ्गी ने पुत्र प्रसव किया ॥५१॥ लोक भयङ्कर उस दैत्य के उत्पन्न होते ही सारी पृथिवी काँप गयी और महार्णवों में तुफान आ गया ॥५२॥ पर्वत डगमगाने लगे और भयङ्कर वायु चलने लगी । श्रेष्ठ मुनिगण मन्त्रों का जप करने लगे और सर्प तथा पशु भी बोलने लगे ॥५३॥ चन्द्रमा और सूर्य की कान्ति क्षीण हो गयी। दिशाओं में कुहरा छा गया । उस महा असुर के उत्पन्न होने पर सभी बड़े-बड़े तथा असुरों की पत्नियाँ वहाँ प्रसन्नतापूर्वक

आजग्मुर्हर्षितास्तत्र तथाचासुरयोषितः । जगुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥५५॥
ततो महोत्सवे जाते दानवानां महाद्युते। विषण्णमनसो देवाः सहेंद्रा अभवंस्तदा ॥५६॥
वरांगीतु सुतं दृष्ट्वा हर्षेणापूरिता तदा। बहु मेने च दैत्येंद्रो विजातं तं तदा तया ॥५७॥
जातमात्रस्तु दैत्येंद्रस्तारकश्चोग्रविक्रमः । अभिषिक्तो सुरै मुख्यैः कुजंभ महिषादिभिः ॥५८॥
सर्वासुरमहाराज्ये पृथिवीतुलनक्षमे । स तु प्राप्तमहाराज्यस्तारको नृपसत्तम ॥५९॥
उवाच दानवश्रेष्ठो युक्तियुक्तमिदं वचः ।

तारक उवाच

शृणुध्वमसुराः सर्वे वाक्यं मम महाबलाः ॥६०॥
वंशक्षयकरा देवाः सर्वेषामेव दानवाः । अस्माकं जातिधर्मेण विरूढं वैरमक्षयम् ॥६१॥
वयं तपश्चरिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु । स्वबाहुबलमाश्रित्य सर्व एव न संशयः ॥६२॥
तच्छ्रुत्वा संमतं कृत्वा पारियात्र ययौ गिरम् । निराहारः पंचतपाः पत्रभुग्वारिभोजनः ॥६३॥
शंत शतं समानां तु तपांस्येतान्यथाकरोत् । एवं तु कर्शिते देहे तपोराशित्वमागते ॥६४॥
ब्रह्मागत्याह दैत्येंद्रं वरं वरय सुव्रत । स वव्रे सर्वभूतेभ्यो न मे मृत्युर्भवेदिति ॥६५॥
तमुवाच ततो ब्रह्मादेहिनां मरणं ध्रुवम्। यतस्ततोपि वरय मृत्युं यस्मान्न शंकसे ॥६६॥
ततः संचिंत्य दैत्येंद्रःशिशोर्वै सप्तवासरात्। वव्रे महासुरो मृत्युं मोहितो ह्यवलेपतः ॥६७॥
जगामोमित्युदाहृत्य ब्रह्मा दैत्यो निजं गृहम्। अथाह मंत्रिणस्तूर्णं बलं मे संप्रयुज्यताम् ॥६८॥
यदि वो मत्प्रियं कार्यं निग्राह्याः सुरसत्तमाः । निगृहीतेषु मे प्रीतिर्जायते चातुलाऽसुराः ॥६९॥

आयी । वे प्रसन्न होकर गीत गाने लगीं और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥५४-५५॥ हे महाद्युति सम्पन्न भीष्म ! दानवों के महोत्सव के समाप्त हो जाने पर इन्द्र आदि सभी देवतागण उदास हो गये ॥५६॥ उस समय उत्पन्न हुए पुत्र को देखकर वराङ्गी प्रसन्न हो गयी और उससे उत्पन्न हुए उस पुत्र का दैत्येन्द्र वज्राङ्ग ने बहुत अधिक सम्मान किया ॥५७॥ अत्यन्त पराक्रमी तारक को उत्पन्न होते ही कुजम्भ तथा महिष आदि मुख्य असुरों ने उसे अपना राजा बना दिया ॥५८॥ पृथिवी से जिसकी तुलना की जा सकती है ऐसे सम्पूर्ण असुरों के राज्य का महाराजत्व प्राप्त करके राजश्रेष्ठ तारकासुर ॥५९॥ ने युक्तियुक्त वाणी से कहा **तारकासुर ने कहा**— हे महाबलवान् सभी असुरों ! आपलोग हमारी बात को सुनें ॥६०॥ हे दानवों ! देवता हमसबों के वंश का विनाश करने वाले हैं । हमलोगों की जाति तथा धर्म से उन सबों का अत्यधिक वैर बढा हुआ है ॥६१॥ हमलोग तपस्या करके अपने बाहुबल के सहारे देवताओं का निग्रह करेंगे, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥६२॥ इस बात को सुनकर सबों से विचार करके वह परियात्र पर्वत पर चला गया । वह सौ वर्षों तक निराहार रहकर, पंचाग्नि ताप कर पत्ते चबाकर, तथा केवल पानी पीकर इन सभी तपस्याओं को किया । इसतरह से शरीर के कृश हो जाने पर वह तपोराशि बन गया॥६३-६४॥ ब्रह्माजी ने आकर दैत्येन्द्र तारकासुर से कहा हे सुव्रत ! वरदान माँगो । उसके बाद उसने वर माँगा कि किसी भी जीव से मेरी मृत्यु न हो ॥६५॥ उससे ब्रह्माजी ने कहा कि शरीरधारियों का मरना निश्चित है, अतएव तुम ऐसे से मृत्यु का वरण करो जिससे तुम्हें मृत्यु का कोई भय न हो ॥६६॥ उसके बाद अपने अभिमान से मोहित होने के कारण उसने सात दिन के बच्चे से अपनी मृत्यु को माँगा ॥६७॥ यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा ठीक है । उसके बाद ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये और तारकासुर अपने घर लौट आया । उसके बाद उसने मन्त्रियों से

तारकस्य वचः श्रुत्वा ग्रसनो नाम दानवः। सेनानीर्दैत्यराजस्य सज्जं चक्रे बलं च तत् ॥७०॥
आहत्य भेरीं गंभीरां दैत्यानाहूय सत्वरः। दशकोटीश्वरा दैत्या दैत्यानां चंडविक्रमाः ॥७१॥
तेषामग्रेसरो जंभः कुजंभोऽनंतरोऽसुरः। महिषः कुंजरो मेघः कालनेमि र्निमिस्तथा ॥७२॥
मंथनो जंभकः शुम्भो दैत्येंद्रा दशनायकाः। अन्ये चशतशस्तत्र पृथिवी तुलनक्षमाः ॥७३॥
गरुडानां सहस्रेण चक्राष्टक विभूषितः। सकूवरपरीवारश्चतुर्योजनविस्तृतः ॥७४॥
स्यंदनस्तारकस्यासीत् व्याघ्रसिंहखरार्वभिः। युक्ता रथास्तु ग्रसन जंभ कौजंभ कुंभिनाम् ॥७५॥
मेघस्य द्वीपिभिर्युक्तः कूष्मांडैः कालनेमिनः। पर्वताभश्चतुर्दंष्ट्रो निमेश्चैवमहागजः ॥७६॥
शतहस्ततुरंगस्थो मंथनो नाम दैत्यराट्। जंभकस्तूष्ट्रमारूढो गिरींद्राभं महाबलः ॥७७॥
शुंभो मेषं समारूढोऽन्येप्येवं चित्रवाहनाः। प्रचंडाश्चित्रवर्माणः कुंडलोष्णीषभूषिताः ॥७८॥
तद्वलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यजायत। प्रमत्तमत्तमातंगतुरंगरथसंकुलम् ॥७९॥
प्रतस्येऽमरयुद्धाय बहुपत्तिपताकिकम्। एतस्मिन्नंतरे वायु र्देवदूतोऽसुरालये ॥८०॥
दृष्ट्वा तद्दानवबलं जगामेंद्रस्य शंसितुम्। स गत्वा तु सभां दिव्यां महेंद्रस्य महात्मनः ॥८१॥
शशंस मध्ये देवानां तत्कार्यं समुपस्थितम्। तच्छ्रुत्वा देवराजस्तु निमीलितविलोचनः ॥८२॥
बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं काले महाभुजः।

इंद्र उवाच

संप्राप्नोति विमर्दोयं देवानां दानवैः सह ॥८३॥

कहा शीघ्र मेरी सेना तैयार करो ॥६८॥ यदि आपलोगो को मेरा प्रिय करना है तो बड़े-बड़े देवताओं को निगृहीत किया जाय। असुरों देवताओं के निगृहीत हो जाने पर मुझे सर्वाधिक प्रसन्नता होगी ॥६९॥ तारक की वाणी को सुनकर ग्रसन नामक उसका सेनापति दैत्यराज की सेना को तैयार कर दिया ॥७०॥ उसने शीघ्र ही भेरी ताड़न करके सेना को बुलाया। उस सेना में दश करोड़ अत्यन्त बलवान् दैत्य थे ॥७१॥ उन सबों के आगे चलने वाले दश सेना नायक थे। उनका नाम था— जम्भ, कुजम्भ, महिष, कुञ्जर, मेघ, कालनेमि, मंथन, जम्भक, शुम्भ। वे दशो दैत्येन्द्र के सेनानायक थे। इसके अतिरिक्त अनेक पृथिवी को उठा लेने में समर्थ दैत्य थे ॥७२-७३॥ कूबर से युक्त तारक का रथ चार योजन विस्तृत था। ग्रसन के रथ में व्याघ्र, जम्भ के रथ में सिंह, कुजम्भ के रथ में गधे तथा कुम्भ के रथ में घोड़े जुते थे ॥७५॥ मेघ के रथ में हाथी जुते थे, कालनेमि के रथ में कुष्माण्ड (भूत) जुते थे। कालनेमि का हाथी पर्वत के समान चार दाँतो वाला था ॥७६॥ मंथन नाम का दैत्यराज सौ हाथ के घोड़े पर बैठा था। जंभक ऊँट पर बैठा था महाबलवान् वह देखने में गिरिराज (पर्वतराज) के समान लगता था ॥७७॥ शुम्भ बकरे पर बैठा था दूसरे भी दैत्य विचित्र सवारियों पर बैठे थे प्रचण्ड आकार वाले उन सबों के कवच चित्र-विचित्र थे। वे सब कुण्डल एवं पगड़ी से अलंकृत थे ॥७८॥ दैत्यराज की वह सेना अत्यन्त भयङ्कर थी। उस सेना में मदमत्त हाथी घोड़े तथा रथ भरे थे ॥७९॥ अनेक ध्वजों एवं पताकों वाली वह सेना देवताओं के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान की। उसी समय देवताओं के दूत वायु असुरराज की उस दानवों की सेना को देखकर इन्द्र को बतलाने के लिए गये। वह महेन्द्र की दिव्य सभा में जाकर ॥८०-८१॥ उस उपस्थित कार्य का वर्णन किया। उसे सुनकर इन्द्र ने तो अपनी आँखें बन्द कर ली ॥८२॥ महाभुज इन्द्र ने समयानुसार बृहस्पति से कहा कि देवताओं का दानवों के साथ संग्राम होने वाला है ॥८३॥ अतएव आप नीति तथा उपाय से युक्त यह बात बतलाइये कि क्या करना चाहिए ?

कार्यं किमत्र तद्ब्रूहि नीत्युपायोपबृंहितम् । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं महेंद्रस्य गिरांपतिः ॥८४॥
इत्युवाच महाभागो बृहस्पतिरुदारधीः ।

बृहस्पतिरुवाच

सामपूर्वा श्रुतानीतिश्चतुरंगा पताकिनी ॥८५॥
जिगीषतांसुरश्रेष्ठ स्थिति रेषा सनातनी । सामभेदस्तथादानं दंडश्चांगचतुष्टयम् ॥८६॥
न सांत्वगोचरे लुब्ध नभेद्यास्त्वेकधर्मिणः । न दानमत्र संसिद्ध्यै प्रसह्यैवापहारिणाम् ॥८७॥
एकोऽभ्युपायो दंडोऽत्र भवतां यदि रोचते । एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेतदुवाच ह॥८८॥
कर्त्तव्यतां च संचिंत्य प्रोवाचामरसंसदि ।

इंद्र उवाच

अवधानेन मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः ॥८९॥
भवंतो यज्ञभोक्तारो दिव्यात्मानो हि सान्वयाः । स्वे महिम्निस्थिता नित्यं जगतः पालने रताः ॥९०॥
क्रियतां समरोद्योगः सैन्यं संयोज्यतां मम । आह्रियंतां च शस्त्राणि पूज्यंतां शस्त्रदेवताः ॥९१॥
वाहनानि विमानानि योजयद्ध्वं ममेश्वराः । यमं सेनापतिं कृत्वा शीघ्रमेव दिवौकसः ॥९२॥
इत्युक्तास्समनह्यंत देवानां ये प्रधानतः । वाजिनामयुतेनाजौ हेमघंटा परिष्कृतम् ॥९३॥
नानाश्चर्यगुणोपेतं संग्राप्तं देवदानवैः । रथं मातलिना युक्तं देवराजस्य दुर्जयम्॥९४॥
यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्त्तत । चंडकिंकरबृंदेन सर्वतः परिवारितः ॥९५॥
कल्पकालोद्गतज्वालापूरितोम्बरगोचरः । हुताशनस्त्वंजारूढः शक्तिहस्तो व्यवस्थितः ॥९६॥

इन्द्र की बातों को सुनकर बृहस्पति ने कहा ॥८४॥ उदार बुद्धि वाले बृहस्पति ने इसतरह से कहा— विजयाभिलाषियों की सेना चार अङ्गों वाली बतलायी गयी है ॥८५॥ हे सुरश्रेष्ठ ! यही सनातनी नीति है कि सेना के चार अङ्ग होने चाहिए, साम (शान्ति) भेद (शत्रु की सेना में फूट डालना) दान (शत्रुओं को दान देकर उनको अपने में मिला लेना) और इन सबों से काम न चले तो शत्रु को दण्ड देना चाहिए ॥८६॥ दान व दान और साम नीति के विषय नहीं हो सकते हैं, क्योंकि वे उसके लोभी नहीं हैं । एक धर्म वाले होने के कारण उन पर भेद नीति भी नहीं काम करेगी वे बल पूर्वक अपहरण कर लेने वाले हैं, अतएव यह नीति भी उन पर सफल नहीं होगी ॥८७॥ अतएव यहाँ एक ही उपाय है, वह है दण्ड । अतएव आपलोगों को अच्छा लगे तो युद्ध करें । बृहस्पति के इस तरह कहने पर इन्द्र ने॥८८॥ अपने कर्तव्य का विचार करके देवताओं की सभा में कहा **इन्द्र ने कहा**— हे स्वर्गवासियों ! आपलोग हमारी बात को सावधानी से सुनें ॥८९॥ आप सभी लोग सवंश यज्ञों के भोक्ता, दिव्यात्मा, जगत् की रक्षा करने में संलग्न रहने वाले तथा अपनी महिमा में स्थित रहने वाले हैं ॥९०॥ आप लोग युद्ध की तैयारी करें । मेरी सेना को एकत्रित कर लें, शस्त्रों को धारण कर लें ओर शस्त्रों की अधिष्ठातृ देवताओं की पूजा कर लें ॥९१॥ हे देवताओं! आपलोग यमराज को सेनापति बनाकर मेरे वाहनों एवं विमानों को तैयार करें ॥९२॥ इस तरह से कहने पर जो प्रधान देवता थे वे इन्द्र के रथ को तैयार किए उसमें सुवर्ण के घंटों वाले दश हजार घोड़े जुते थे ॥९३॥ जो रथ देवों एवं दानवों से प्राप्त अनेक आश्चर्यों से युक्त था जिसके सारथि मातलि थे, इस प्रकार का इन्द्र का दुर्जय रथ तैयार हुआ ॥९४॥ प्रचण्ड किंकर समूह से घिरे हुए यमराज उस सेना के आगे खड़े थे ॥९५॥ कल्प के अन्त में उत्पन्न होने वाली ज्वाला से युक्त अग्नि देव अपने हाथ में शक्ति धारण करके मेष पर सवार थे ॥९६॥ पवनदेव

पवनोऽङ्कुशहस्तश्च विस्तारितमहाजवः । भुजगेंद्रसमारूढो जलेशो भगवान्स्वयम् ॥९७॥
नरयुक्ते रथे देवो राक्षसेशो वियच्चरः। तीक्ष्णखड्गयुतो भीमः समरे समवस्थितः ॥९८॥
महासिंहरथे देवो धनाध्यक्षो गदायुधः । चंद्रादित्यावश्विनौ च चतुरंगबलान्विताः ॥९९॥
सेनान्यो देवराजस्य दुर्जया भुवनत्रये। कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंशद्देवदेवनिकायिनाम् ॥१००॥

हिमाचलाभे सितचारुचामरे सुवर्णपद्मामलसुंदरस्रजि ।
कृताभिरामोज्ज्वलकुंकुमांकुरे कपोललीलालिकदंबसंकुले ॥१०१॥
स्थितस्तदैरावणनामकुंजरे महामनाश्चित्रविभूषणांबरः ।
विशालवज्रः सुवितानभूषितः प्रकीर्णकियूरभुजंगमंडलः ॥१०२॥
सहस्रदृग्वंदित पादपल्लव स्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः ।
तुरंगमातंगकुलौघसंकुला सितातपत्रध्वजशालिनी च ॥१०३॥
बभूव सा दुर्जय पत्ति संतता विभाति नानायुधयोधदुस्तरा ।
ततोश्विनौ च मरुतः ससाध्याः सपुरंदराः ॥१०४॥

यक्षराक्षसगंधर्वा दिव्यनानास्त्रपाणयः । जघ्नुर्दैत्येश्वरं सर्वे संभूय तु महाबलाः ॥१०५॥
न चैवास्त्राण्यसज्जंत गात्रे वज्राचलोपमे। अथो रथादवप्लुत्य तारको दानवाधिपः ॥१०६॥
जघान कोटिशो देवान्करपार्ष्णिभिरेव च । हतशेषाणि सैन्यानि देवानां विप्रदुद्रुवुः ॥१०७॥
दिशो भीतानि संत्यज्य रणोपकरणानि च । दृष्ट्वा तान्विद्रुतान् देवांस्तारको वाक्यमब्रवीत्॥१०८॥
मा वधिष्ठ सुरान् दैत्या वज्रांगाय च मंदिरे। शीघ्रमानीयदर्श्यतां बद्धान्पश्यत्वयं सुरान् ॥१०९॥

अपने हाथ में अंकुश धारण करके तथा अपने वेग का विस्तार करके सर्पराज पर सवार थे । स्वयं जल के स्वामी भगवान् वरुण नरयुक्त रथ पर सवार थे । आकाश में संचरण करने वाले राक्षसेश्वर निऋृति देवता अपने हाथ में तीक्ष्ण खड्ग लेकर युद्ध में उपस्थित थे ॥९८॥ धनाधिप कुबेर महासिंह जिसमें जोते गये थे ऐसे रथ पर बैठे थे। वे अपने हाथ में गदा धारण किए थे । चन्द्रमा, सूर्य और दोनों अश्विनी कुमार अपनी चतुरंगिणी सेना से सम्पन्न थे॥९९॥ देवराज इन्द्र के देवताओं के भिन्न-भिन्न समुदाय के सेनापति त्रैलोक्य में तैतिस करोड़ विख्यात हैं ॥१००॥ उस समय हिमालय के समान कान्ति से सम्पन्न जिस पर दो श्वेत चमर लगे थे, सुवर्ण कमल की माला से समलंकृत जिसके गालों को चमकते हुए कुंकुम से सजाया गया था ऐसे ऐरावण नामक हाथी पर इन्द्र बैठे थे । वे महामना विचित्र आभूषणों तथा वस्त्रों को धारण किए हुए थे । उनके हाथ में विशाल वज्र था । ऊपर चाँदनी लगी थी । उनकी भुजाओं में केयूर समूह सुशोभित हो रहा था ॥१०१-१०२॥ उनकी एक हजार आँखें थी । उनके चरणों की वंदना देवता करते थे । घोड़े तथा हाथियों के समूह से तथा श्वेत छत्रों से सुशोभित वह सेना ॥१०३॥ सदा दुर्जय के समान प्रतीत होती थी, अनेक आयुधों तथा योद्धाओं के कारण वह दुस्तर थी । उसके बाद दोनों अश्विनी कुमार, मरुद्गण, साध्यगण, इन्द्र, ॥१०४॥ यक्ष, राक्षस, गन्धर्व ये सभी महाबलवान् देवता एक साथ मिलकर अनेक दिव्यास्त्रों से दैत्येश्वर तारकासुर पर प्रहार करने लगे ॥१०५॥ किन्तु उसके वज्राचल के समान अङ्गों पर दिव्यास्त्रों का कोई प्रभाव नहीं हो रहा था । उसके बाद दानवाधिप तारकासुर रथ से कूद कर ॥१०६॥ अपने हाथों तथा पैरों से कुचलकर देवताओं को मार डाला । मरने से बची हुयी देवताओं की सेना अपने आयुधों को छोड़कर विभिन्न दिशाओं में भाग गयी । देवताओं को भगे हुए देखकर तारकासुर ने कहा ॥१०७-१०८॥ दैत्यों देवताओं को मत मारो । सबों को

लोकपालांस्ततो दैत्यो बद्धा चेंद्रपुखान्रणे । स रुद्रान्सुदृढैः पाशैः पशुपालः पशूनिव ॥११०।
स भूयोरथमास्थाय जगाम स्वकमालयम् । सिद्धगंधर्वसंघुष्टं विपुलाचलमस्तकम् ॥१११॥
स्तूयमानोदितिसुतै रप्सरोभिः सुसेवितः।

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे देवासुरसंग्रामे तारकजयो नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

तिरालिसवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

प्रादुरासीत्प्रतीहारः शुभ्रचीनांशुकांबरः । सजानुभ्यां महीं गत्वा पिहितास्यश्च पाणिना ॥१॥
उवाचानाविलं वाक्यमल्पाक्षरपरिष्कृतम् । दैत्येंद्रमर्कवृंदाभं विभ्रतं भास्वरं वपुः ॥२॥
कालनेमिः सुरान्बद्ध्वा प्रादाय द्वारि तिष्ठति। सविज्ञापयतिस्थेयं क्व वंदिनिचयैः प्रभो ॥३॥
तन्निशम्याब्रवीद्दैत्यः प्रतीहारस्य भाषितम्। यथेष्टं स्थीयतामेभिर्गृहं मे भुवनत्रयम् ॥४॥

वाँधकर घर लाओं जिससे कि मेरे पिता बँधे हुए देवताओं को देखें ॥१०९॥ उसके वाद तारकासुर ने जिस तरह कोई पशु का स्वामी पशुओं को वाँध देता है उसी तरह इन्द्र आदि लोकपालों तथा रुद्रों को पाश में कसकर वाँध कर, रथ पर वैठकर अपने घर चला गया। उसके गृह में सिद्धों एवं गन्धर्वों की ध्वनि होती रहती थी और वह पर्वत शिखिर के समान ऊँचा था ॥१०९-११०॥ उस समय सभी दैत्य उसकी स्तुति करते थे और अप्सरायें उसकी सेवा करती थीं।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के देवासुर संग्राम में तारकासुर विजय नामक बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४२।।

सभी देवताओं द्वारा ब्रह्माजी की स्तुति, शङ्कर का पुत्र तारकासुर का वध करेगा, यह ब्रह्माजी का कहना, रात्रि देवी को ब्रह्माजी का वरदान, हिमाचल की पत्नी मेना के गर्भ से पार्वती के जन्म का वर्णन, नारदजी द्वारा पार्वतीजी के सामुद्रिक लक्षणों का वर्णन, शङ्करजी का कामदेव को भस्म करना, रतिकृत शङ्करजी की स्तुति, सप्तर्षि पार्वती संवाद, मैं शङ्करजी को ही पति बनाऊँगी यह पार्वती का सप्तर्षियों को कहना, शिव पार्वती विवाह, गणेशजी का वर्णन, वीरक को पार्वतीजी द्वारा अपना पुत्र बनाना, ब्रह्माजी की आज्ञा से पार्वती के शरीर में रात्रि का प्रवेश, पार्वती का काला होना

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— वज्राङ्गक का द्वारपाल उसके सामने गया वह शुभ्र चीनाशुंक धारण किए हुए था। उसने पृथिवी पर घुटना टेक कर तथा अपने मुख को हाथ से ढंककर ॥१॥ कम अक्षरों वाले शुभ वाक्य को वज्राङ्ग को सुनाया। हे दैत्येन्द्र ! ! कालनेमि नामक दैत्य अनेक सूर्यों के समान कान्ति वाले तथा देदीप्यमान शरीर वाले देवताओं को बाँधकर अपको समर्पित करने के लिए द्वार पर खड़े हैं। वह पूछ रहे हैं कि इन वन्दी बनाये गये देवताओं को कहाँ रखना है ?॥२-३॥ उसे सुनकर वज्राङ्ग ने कहा इन सवों को जहाँ रहना हो वहाँ रहें। त्रैलोक्य

केवलं वासवं त्वेकं मुन्डयित्वा विमुच्यताम्। सितवस्त्र परिच्छन्नं शुनः पादेन चिह्नितम् ॥५॥
एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा। जग्मुर्जजगुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवम् ॥६॥
विनिर्विण्णास्तमासाद्य शिरोभिर्धरणीं गताः । तुष्टुवुः सुष्ठवर्णाढ्यै र्वचोभिः कमलासनम् ॥७॥

देवा ऊचुः

नमस्त्वोंकारांकुरादिप्रसूत्यै विश्वस्थानानंतभेदस्य पूर्वम् ।
संभूतस्यानंतरं सत्त्वमूले संहारेच्छोस्ते नमः सत्त्वमूर्त्ते ॥८॥
व्यक्तीनां त्वामादिभूतं महिम्ना चास्मादस्मानभिधानाद्विचिंत्य ।
द्यवापृथ्व्यो रूर्द्धलोकांस्तथायश्चांडादस्मात्वं विभागं चकर्थ ॥९॥
व्यक्तंमेरु र्यज्जरायुस्तवाभूद् देवं विद्मस्त्वत्प्रणीतोवकाशः ।
व्यक्तं देवाजज्ञिरे यस्य देहाद्देहस्यांतश्चारिणो देहभाजः ॥१०॥
द्यौस्ते मूर्द्धा लोचने चंद्रसूर्यौ व्यालाः केशाः श्रोत्ररंध्रे दिशस्ते ।
गात्रं यज्ञः सिंधवः संधयो वै पादौभूमिस्तूदरंते समुद्राः ॥११॥
मायाकारःकारणंत्वंप्रसिद्धोवेदैःशांतोज्योतिरर्कस्त्वमुक्तः ।
वेदार्थेन त्वां विवृण्वांन्ति बुद्ध्या हृत्पद्मांतः संनिविष्टं पुराणम् ॥१२॥
त्वां चात्मानं लब्धयोगा गृणंति सांख्यै र्याः स्ताः सप्त सूक्ष्माः प्रणीताः ।
तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता तास्वंतस्थो जीवभूतस्त्वमेव ॥१३॥

ही मेरा घर है ॥४॥ अकेले इन्द्र का शिर मुड़वाकर तथा उसको उजला वस्त्र पहनकर तथा उसके शरीर को कुत्ते के चरण चिह्नों से चिह्नित करके छोड़ दो ॥५॥ इस तरह से किए जाने के बाद दुःखी मन से सभी देवता जगद् गुरु ब्रह्माजी का दर्शन करने के लिए उनके पास गये ॥६॥ अत्यन्त दुःखी देवता ब्रह्माजी के यहाँ जाकर पृथिवी पर माथा टेक कर उनकी स्तुति करने लगे ॥७॥ **देवताओं ने कहा**— हे सत्त्वमूर्त्ते ! आप को नमस्कार है । आप ओंकार स्वरूप हैं, विश्व में उत्पन्न अनन्त भेद रूपी अङ्कुर की उत्पत्ति के लिए आप कारण स्वरूप हैं । अतएव आप सर्वप्रथम ब्रह्मारूप से हुए । उसके बाद उसकी रक्षा करने के लिए सत्त्वमूर्ति विष्णु रूप से आप होते हैं और जगत् का संहार करने के लिए आप रुद्र रूप धारण किए हैं । आपको नमस्कार है ॥७-८॥ आप ही सभी व्यक्तियों के आदि भूत हैं । आपने अपनी महिमा से विचार करके हमलोगों का नाम रखा है । आपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का दो विभाग करके ऊपर के लोकों कों आकाश में स्थापित किया है, तथा नीचे के लोकों को पृथिवी पर तथा पृथिवी के नीचे स्थापित किया है ॥९॥ यह सुमेरु पर्वत जो आपका जरायू (गर्भ) बना था । इससे लगता है कि यह सम्पूर्ण अवकाश आपका ही बनाया हुआ है । आपके ही शरीर से देवता उत्पन्न हुए । अतएव सभी शरीरधारी आपके शरीर हैं ॥१०॥ द्युलोक आपका शिर है, सूर्य और चन्द्रमा आपके दोनों नेत्र हैं, सर्प ही आपके देह हैं, तथा दिशाएँ आपके कर्ण रंध्र हैं । यज्ञ ही शरीर है, नदियाँ ही सन्धि स्थान हैं, पृथिवी ही आपके दोनों पैर हैं और सभी समुद्र आपके उदर स्थान हैं ॥११॥ वेदों ने आपको माया का प्रसिद्ध निर्माण करने वाला, शान्त ज्योति तथा सूर्य स्वरूप बतलाया है । विज्ञ पुरुष वेदार्थ के द्वारा आपकी व्याख्या करते हुए बतलाते हैं कि सवों के हृदय में आप अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट पुराण पुरुष हैं ॥१२॥ योगी पुरुष आपको ही आत्मा बतलाते हैं । सांख्यों का कहना है कि सात जो सूक्ष्म तत्त्व (महान्, अहङ्कार, तथा पञ्च तन्मात्राएँ) हैं, उनके भी कारण स्वरूप जो जीव तत्त्व स्वरूप है, वह भी

दृष्ट्वा मूर्तिंस्थूलसूक्ष्मां चकार ये वै भावाः कारणे केचिदुक्ताः ।
संभूतास्ते त्वत्त एवादिसर्गे भूयस्तास्त्वां वासनांतेभ्युपेयुः ॥१४॥
त्वत्संकेतस्त्वंतरायो निगूढः कालो मेयो ध्वस्तसंख्याविकल्पः ।
भावाभावा व्यक्ति संहारहेतुः सोनंतस्त्वं तस्य कर्ता निधानम् ॥१५॥
स्थूलस्सर्वोनर्थभूतस्ततोन्यस्सोर्थस्सूक्ष्मो यो हि तेभ्योऽपिगीतः ।
स्थूला भावाश्चावृता यैश्च तेषां तेभ्यः स्थूलस्त्वं पुराणे प्रणीतः ॥१६॥
भूतं भूतं भूतिमद्भूतभावं भावे भावे भावितं त्वं युनक्षि ।
युक्तं युक्तं व्यक्ति भावान्निरस्य स्थाने स्थाने व्यक्तिवृत्तिं करोषि ॥१७॥
इत्थं देवो व्यक्ति भाजां शरण्यस्त्राता गोप्ता भावितोऽनंतमूर्तिः ।

पुलस्त्य उवाच

विरेमुरमराःस्तुत्वा ब्रह्माणमिति कारणम् ॥१८॥
तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थसंप्राप्तिप्रार्थनास्ततः । एवं स्तुतो विरिंचिस्तु प्रसादं परमं गतः ॥१९॥
अमरान्वरदोप्याह वामहस्तेन निर्दिशन्।

ब्रह्मोवाच

नारीवाभर्तृकाकस्माद्धस्तसंत्यक्तभूषणा ॥२०॥
न राजसे कुतश्शक्र म्लानवक्त्रसरोरुहः । हुताशन वियुक्तोपि धूमेन न विराजसे ॥२१॥
तृणौघेन प्रतिच्छन्नो दग्धदावश्चिरोषितः । यमामयशरीरेण क्लिष्टोनाद्य विराजसे ॥२२॥

आप ही हैं ॥१३॥ इन सबों को देखकर आपने अपना स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर बना लिया । जितने भी कारण पदार्थ बतलाये गये हैं वह सबके सब आदि सर्ग में आप से ही उत्पन्न हुए हैं, और अन्त में (प्रलयकाल में) वे पुनः आप में ही मिल जायेंगे ॥१४॥ काल अमेय इत्यादि जितने भी अनन्त भेद हैं, उन सभी भाव, अभाव आदि पदार्थों की अभिव्यक्ति और संहार के कारण स्वरूप निगूढ अन्तरायभूत आपके सङ्केत स्वरूप ही हैं । उन सबों के कर्त्ता, अनन्त स्वरूप आप ही हैं ॥१५॥ जितने भी स्थूल पदार्थ हैं वे सभी अनर्थ स्वरूप हैं । उन सबों से भिन्न जो सूक्ष्म पदार्थ हैं, वे अर्थ स्वरूप बतलाये गये हैं, जिन सबों से स्थूल पदार्थ अध्यवसन्न हैं, उन सबों से आप स्थूल हैं, यह पुराणों में बतलाया गया है ॥१६॥ आप सभी भूतों को भूति सम्पन्न तथा सभी भाव पदार्थों को सोचकर मिला देते हैं तथा समस्त संयुक्त पदार्थों की अभिव्यक्ति को दूर करके आप विभिन्न उचित स्थानों पर उनकी अभिव्यक्ति करते हैं॥१७॥ इस तरह समस्त व्यक्त पदार्थों के अनन्तमूर्ति आप शरण्य, रक्षक तथा गोप्ता रूप से माने जाते हैं । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इसतरह से जगत् के कारण स्वरूप ब्रह्माजी की स्तुति करके देवगण अपने मनोभिलषित अर्थ की प्राप्ति की इच्छा से चुप लगा गये । इसतरह स्तुति किए जाने पर ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१८-१९॥ अपने बायें हाथ से देवताओं को वरद मुद्रा का प्रदर्शन करते हुए वे देवताओं से कहे **ब्रह्माजी ने कहा—** हे इन्द्र ! जिस तरह पति विहीन नारी के हाथ के कङ्गन को कोई छीन ले उस तरह से तुम्हारी शोभा को किसने छीन लिया ? तुम्हारा मुखकमल क्यों मुरझाया हुआ है ? हे हुताशन ! (अग्निदेव) धूम से रहित होने पर भी तुम क्यों नहीं सुशोभित हो रहे हो ॥२०-२१॥ वन को जलाकर दीर्घकाल से सोये के समान तथा तृण से ढंके हुए के समान तुम क्यों प्रतीत हो रहे हो ? हे यम ! तुम अपने रुग्ण शरीर से दुःखी के समान सुशोभित नहीं हो रहे हो ॥२२॥ जिसके कारण

दंडेनालंबनेनेव कृष्टो येन पदे पदे । रजनीचरनाथ त्वां किंभीत इव भाषसे ॥२३॥
राक्षसेंन्द्र कृतादाने त्वमरातिक्षतो यथा । तनुस्ते वरुणोच्छुष्का परीतस्येव वह्निना ॥२४॥
विमुक्तरुधिरं चाथ पदं त्वं प्रविलोकय । वायो भवान् विचेतस्कः खड्गाग्रैरिव निष्कृतः॥२५॥
किं त्वं नतोऽसि धनद संत्यज्येव कुबेरताम् । रुद्रास्त्रिशूलिनः संतोऽविंदध्वं बहुशूरताम् ॥२६॥
भवतां केन चाक्षिप्ता तीव्रता नस्तदुच्यताम् ।

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्ताः सुरास्तत्र ब्रह्मणा ब्रह्मवर्तिना ॥२७॥
वाचां प्रधानभूतत्वात्तेमारुतमचोदयन् । अथ शक्रमुखैर्देवैः पवनः प्रतिचोदितः ॥२८॥
प्राह देवं चतुर्वक्त्रं भवान्वेत्ति चराचरम् ।

वायुरुवाच

पुरहूतमुखाः सबला निमिषा विजिताः प्रसभं किल दैत्यशतैः ॥२९॥
ऋतवो विहिता भवता स्थितये जगतां च महाद्भुतचित्रगुणाः ।
अपि यज्ञकृतः श्रुतकामफलां विहिता ऋषयस्तत एव पुरः ॥३०॥
अपि नाकमभूत्किलयज्ञभुजां भवतो विनियोगवशात्सततम् ।
अपहृत्य विमानगणं सकृतो दनुजेन महाकरभूमिसमः ॥३१॥
कृतवानसि सर्वगुणातिशयं यमशेषमहीधरराजतया ।
मखभूषितमंशुमतामवधिं सुरधामगिरिं गगनेपि सदा॥३२॥
अधिवास विहारविधानुचितो दनुजेन परिष्कृतशृंगतटः ।
प्रविलम्बितरत्नगुहानिवहो बहुदैत्यसमाश्रयतां गमितः ॥३३॥

लगता है कि तुम पग-पग पर दण्ड के सहारे चल रहे हो। हे राक्षसों के स्वामिन् त्रित्रऋतिदेव ! आप डरे हुए के समान क्यों बोल रहे हैं ?॥२३॥ हे राक्षसेन्द्र ! लगता है कि तुमको किसी शत्रु ने क्षति पहुँचायी है ? हे वरुण ! तुम्हारा शरीर अग्नि से व्याप्त के समान तथा शुष्क के समान क्यों प्रतीत हो रहा है ?॥२४॥ देखो तुम्हारे पैर से खून निकल रहा है। वायु ! तुम निश्चेष्ट से हो गये हो लगता है किसी ने, खड्ग से काटा है ॥२५॥ हे कुबेर ! लगता है तुम अपने कुबेरत्व का परित्याग करके झुक से गये हो। हे त्रिशूलधारी रुद्रों ! तुम लोग तो प्रख्यात शूरवीर हो ॥२६॥ बतलाओं; तुमलोगों की तीव्रता को किसने छीन लिया है ? **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** ब्रह्मनिष्ठ ! ब्रह्माजी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर ॥२७॥ बोलने वालों में प्रधान वायु देवता को बोलने के लिए देवताओं ने प्रेरित किया। उसके बाद इन्द्र आदि देवताओं से प्रेरित होकर वायुदेव ने ॥२८॥ चतुर्मुख ब्रह्माजी से कहा— हे देव! आप तो सम्पूर्ण चराचर को जानते हैं। इन्द्र इत्यादि समस्त देवताओं को उनकी सेना के साथ सैकड़ों दैत्यों ने पराजित कर दिया है ॥२९॥ आपने यज्ञों का निर्माण जगत् की रक्षा करने के लिए किया है। वे यज्ञ विचित्र गुणों वाले हैं। ऐसा सुना जाता है कि यज्ञों के द्वारा अभिलषित फलों की प्राप्ति होती है, इसीलिए ऋषियों ने प्राचीनकाल में यज्ञों का विधान किया ॥३०॥ आपकी ही आज्ञा से स्वर्ग देवताओं का निवास स्थान हुआ। किन्तु उसे राक्षस तारक ने देवताओं के विमानों को छिन लिया है और स्वर्ग को पृथिवी के समान बना दिया है ॥३१॥ जिसको आपने पर्वतराज बनाया है। यज्ञों से समलङ्कृत, प्रकाशवानों में श्रेष्ठ तथा देवताओं के निवास स्थान रूप से आकाश में

असुरस्य च तस्य भयेन गतं सविषादशरीरनिमित्ततया ।
उपभोग्यतयाधिकृतं सुचिरं विमलद्युतिपूरितदिग्वदनम् ॥३४॥
भवतैवविनिर्मितमादियुगे सुरहेतिसमूहवरं कुलिशम्।
दितिजस्य शरीरमवाप्यगतं शतयामतिभेदमिवाल्पविदः ॥३५॥

बाणैश्च युधि विद्धांगा द्वारि द्वास्थैर्निदर्शिताः । लब्धप्रवेशाः कृच्छ्रेण वयं तस्यामरद्विषः ॥३६॥
सभायाममरा देव प्रकृष्योपनिवेशिताः । वेत्रहस्तै रजल्पंतस्तथोपहसिताः परैः ॥३७॥
महार्थाः सिद्धसर्वार्था भवंतः स्वल्पभाषिणः। शास्त्रयुक्तमथ ब्रूत माऽमरा बहुभाषिणः ॥३८॥
सभेयं दैत्यसिंहस्य न शक्रस्य विशृंखला। वदद्भिरिति दैत्यस्य प्रेष्यै र्विहसिता बहु॥३९॥
ऋतवो मूर्तिमंतश्चाप्यहर्निशमुपासते। कृतापराधं सत्रासं नत्यजंति कथंचन ॥४०॥
तंत्रीलयनयोपेतं सिद्धगंधर्वकिन्नरैः । सरागमुपथाविष्टं गीयते तस्य वेश्मसु ॥४१।
कृताकृतोपकरणै र्मित्रादिगुरुलाघवः । शरणागतसंत्यागी त्यक्तसत्यप्रतिश्रयः ॥४२॥
इतिनिश्शेषमथवा निश्शेषं केन शक्यते। तस्याविनयमाख्यातुं स्त्रष्टा तत्र परायणम्॥४३॥
इत्युक्त्वा व्यरमद्वायुः शनैर्देवविचेष्टितम् । सुरानुवाचभगवांस्ततः स्मितमुखांबुजः ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः। यस्य वध्यस्स नाद्यापि जातस्त्रिभुवने पुमान् ॥४५॥
मया स वरदानेन छंदयित्वा निवारितः । तपसः सांप्रतं राजा त्रैलोक्यदहनात्मकः ॥४६॥

बनाया है ॥३२॥ उस सुमेरु पर्वत के शिखर को तारकासुर ने अपना निवास स्थान बना लिया है । वहाँ की कन्दरायें जो रत्नजटित हैं उनमें बहुत से दैत्य निवास करते हैं ॥३३॥ दीर्घकाल से जिस पर देवताओं का अधिकार था जो प्रकाशमान होने के कारण दिशाओं को प्रकाशित करता था । वह तारकासुर के भय से विषाद युक्त शरीर वाला हो गया है ॥३४॥ सत्ययुग में आपने ही वज्र को देवताओं के शस्त्रों में श्रेष्ठ बनाया था, किन्तु वह तारकासुर के शरीर पर पड़कर अज्ञानी जीव के ज्ञान के समान चूर-चूर हो गया ॥३५॥ युद्ध में जिनके अङ्ग विद्ध हो गये हैं, ऐसे हमलोग उस असुरराज के द्वार पर जाकर द्वारपालों के द्वारा जनाये जाने पर बड़ी मुश्किल से प्रवेश कर पाते हैं॥३६॥ हे देव ! सभा में शत्रुओं के द्वारा उपहास पूर्वक बिना कुछ बोले हुए तथा द्वारपालों द्वारा नीचे बैठाये जाते हैं ॥३७॥ वे सब कहते हैं, देवता बहुत बोलते है । अतएव आपलोग महान अर्थ वाले है । आप लोगों की सारी कामनायें पूर्ण हैं । अतएव शास्त्रानुकूल बातें ही तुमलोग बोलो ॥३८॥ तारकासुर के भृत्य कहते हैं कि यह दैत्यराज की सभा है यह इन्द्र की अव्यवस्थित सभा नहीं है । यह कहकर वे बहुत उपहास करते हैं ॥३९॥ सदा भयभीत बनी हुयी ऋतुएँ उस तारकासुर की सेवा में शरीर धारण करके रात-दिन उपस्थित रहती हैं, सिद्ध, गन्धर्व तथा किन्नर सदा वीणा के लय से युक्त उसके भवन में रागयुक्त सदा गायन करते रहते हैं ॥४१॥ कृत्रिम अथवा नित्य साधनों के द्वारा सूर्य इत्यादि बड़े शरणागतों को वह परित्याग करता है । वह सत्य प्रतिज्ञा का परित्याग करने वाला है ॥४२॥ इसतरह से उसके सम्पूर्ण अपराध का वर्णन कौन कर सकता है ? उसके अपराधों के विषय में स्वयं ब्रह्माजी आप ही प्रमाण हैं ॥४३॥ इसतरह से देवताओं की स्थिति का वर्णन करके वायुदेव चूप हो गये । उसके बाद मुस्कुराते हुए ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा ॥४४॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** तारकासुर नामक दैत्य सभी देवताओं और असुरों के लिए अवध्य है । वह जिसके द्वारा मारे जाने वाला है, वह पुरुष, आज तक त्रैलोक्य में उत्पन्न ही नहीं

स तु वव्रे वधं दैत्यशिशुतः सप्त वासरात् । स तु सप्त दिनो बालः शङ्कराद्यो भविष्यति ॥४७॥
तारकस्य निहंता स भास्कराभो भविष्यति । सांप्रतं चाप्यपत्नीकः शङ्करोभगवान्प्रभुः ॥४८॥
हिमाचलस्य दुहिता या च देवी भविष्यति। तस्याः सकाशाद्यः सूनुररण्याः पावको यथा ॥४९॥
जनयिष्यति तं प्राप्य तारको न भविष्यति । मयाऽभ्युपायः कथितो यथैष हि भविष्यति ॥५०॥
शेषं चाप्यस्य विभवं विभजध्वमनंतरम्। स्तोककालं प्रतीक्षध्वं निर्विशंकेन चेतसा॥५१॥
इत्युक्ता स्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलयोनिना । जग्मुस्ते प्रणिपत्येशं यथा योगं दिवौकसः ॥५२॥
ततो यातेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः। निशां सस्मार भगवांस्तां देवीं पूर्वसंभवाम् ॥५३॥
ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम् । तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावरीम् ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

विभावरि महत्कार्यं देवानां समुपस्थितम् । तत्कर्तव्यं त्वया देवि शृणु कार्यस्य निश्चयम् ॥५५॥
तारको नाम दैत्येंद्रः सुरशत्रुरनिर्जितः । तस्याभवाय भगवान् जनयिष्यति चेश्वरः॥५६॥
सुतं स भविता तस्य तारकस्यांतकः किल। शङ्करस्याभवत्पत्नी सती दक्षसुता तु या ॥५७॥
सापि तु कुपिता देवी कस्मिंश्चित्कारणांतरे। भवित्री हिमशैलस्य दुहिता लोकभाविनी ॥५८॥
विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम् । स तस्य हिमशैलस्य कंदरे सिद्धसेविते ॥५९॥
प्रतीक्षमाणस्तज्जन्मकिंचित्कालं निवत्स्यति । तयोः सुतप्ततपसो र्भविता यो महान्सुतः ॥६०॥
भविष्यति स दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः । जातमात्रा च सा देवी स्वल्पसंज्ञेव भामिनी॥६१॥

हुआ है ॥४५॥ मैंने वरदान माँगने के लिए कहकर उसको त्रैलोक्य को भस्म कर देने में समर्थ तपस्या करने से रोका है ॥४६॥ उस दैत्य ने वरदान में माँगा कि मेरी मृत्यु सात दिन के बालक से हो । शङ्करजी का जो सात दिन का पुत्र होगा सूर्य के समान कान्ति वाला वह बालक ही उसका वध करेगा । इस समय भगवान् शङ्कर पत्नी से रहित हैं ॥४७-४८॥ जो देवी हिमालय की पुत्री होगी उसी के गर्भ से अरणी से उत्पन्न होने वाली अग्नि के समान वह बालक ॥४९॥ उत्पन्न होगा । उसके उत्पन्न होने पर ही तारकासुर का विनाश होगा । मैंने तारकासुर के विनाश का उपाय बतला दिया और जो उसका ऐश्वर्य होगा उसका तुम लोग विभाग करो । थोड़े समय तक आपलोग नि:शङ्क होकर प्रतीक्षा करें ॥५०-५१॥ ब्रह्माजी के इस प्रकार से कहने पर देवता उनको प्रणाम करके अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥५२॥ देवताओं के चले जाने पर लोकपितामह ब्रह्माजी ने पहले से ही उत्पन्न रात्रि देवी का स्मरण किया॥५३॥ उसके बाद रात्रि देवी ब्रह्माजी के सन्निकट आयीं । उनको एकान्त में देखकर ब्रह्माजी ने कहा ॥५४॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— हे रात्रि ! देवताओं का बहुत बड़ा काम आ गया है, उस कार्य को तुम्हे करना है । मैं उस कार्य को बतलाता हूँ ॥५५॥ तारक नामक दैत्यों का राजा अपराजेय है । उसका विनाश करने वाले पुत्र को भगवान् शिव उत्पन्न करेंगे ॥५६॥ शङ्करजी का वह पुत्र तारकासुर का विनाश करेगा । शङ्करजी की पत्नी जो सती थीं॥५७॥ वे किसी कारण से अपने पिता से क्रुद्ध हो गयीं । वह लोक कल्याणकारिणी देवी हिमालय की पुत्री होने वाली हैं॥५८॥ उनके विरह में भगवान् शिव त्रैलोक्य को सूना-सूना मानकर सिद्धों के द्वारा सेवित हिमालय की कन्दरा में॥५९॥ हिमाचल पुत्री के जन्म की प्रतीक्षा करते हुए कुछ समय तक निवास करेंगे । उन दोनों की तपस्या के फल स्वरूप जो पुत्र होगा ॥६०॥ वही तारकासुर का विनाश करने वाला होगा । उत्पन्न होते ही वह देवी (पार्वती) थोड़ा सा ज्ञान होते ही ॥६१॥ भगवान् शिव के सङ्गम की लालसा से विरहोत्कण्ठित हो जायेंगी । उन दोनों का सुन्दर तपस्या जन्य

विरहोत्कंठिता गाढं हरसंगमलालसा । तयोः सुतप्ततपसोः संयोगः स्याच्छुभावहः ॥६२॥
ततस्ताभ्यां तु जनितः स्वल्पो वाक्कलहो भवेत् । ततस्तु संशयो भूयस्तारकस्य च दृश्यते ॥६३॥
तयोः संयुक्तयोस्तस्मात्सुरतासक्तिकारणे । विघ्नं त्वया विधातव्यं यथा ताभ्यां तथा शृणु॥६४॥
गर्भस्थमेव तन्मातुः स्वेनरूपेण संज्ञया । ततो विहस्य शर्वस्तां विषण्णो नर्मपूर्वकम् ॥६५॥
भर्त्सयिष्यति तां देवीं ततः सा कुपिता सती। प्रयास्यति तपश्चर्तुं ततः सा तपसा युता ॥६६॥
जनयिष्यति तं शर्वादमितद्युतिमंडलम् । संभविष्यति हंताऽसौ सुरारीणामसंशयम् ॥६७॥
त्वयापि दानवा देवि हंतव्या लोकदुर्जयाः । यावत्सुरेश्वरीदेहसंक्रांतगुणसंचया ॥६८॥
तत्संगमेन तावत्त्वं दैत्यान्हंतु न शक्यसे । एवं कृते तपस्तप्त्वा त्वया सर्वंकरिष्यति ॥६९॥
समाप्तनियमा देवि यदा चोमा भविष्यति । तदा स्वमेव सारूपं शैलजा प्रतिपत्स्यते ॥७०॥
तदा त्वयापि सहिता भवानी सा भविष्यति। रूपांशेन तु संयुक्ता उमायास्त्वं भविष्यसि ॥७१॥
एकाऽनंशेति लोकस्त्वां वरदे पूजयिष्यति। भेदै र्बहुविधाकारैः सर्वगां कामसाधिनीम् ॥७२॥
ओंकारवक्त्र गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः । आक्रान्तैरुर्जिताकारा राजभिश्च महाभुजैः ॥७३॥
त्वं भूरिति विशां माता शूद्रैश्शैवेति पूजिता । क्षांतिर्मुनीनामक्षोभ्या दया नियमिनामपि ॥७४॥
त्वं महोपायसंदेहो नीतिर्नयविसर्पिणाम्। परिचितिस्त्वमर्थानां त्वमीहा प्राणिहृच्छया॥७५॥
त्वं मुक्तिस्सर्वभूतानां त्वं गतिःसर्वदेहिनाम्। रतिस्त्वं रतचित्तानां प्रीतिस्त्वं हृदि देहिनाम् ॥७६॥

संयोग लोक कल्याणकारी होगा ॥६२॥ उसके बाद उन दोनों में थोड़ा सा विवाद उत्पन्न होगा उसके कारण तारकासुर को संशय होगा ॥६३॥ उसके बाद उन दोनों के सुरत क्रीडा करने में प्रवृत्त होने पर तुम्हें थोड़ा विघ्न उत्पन्न करना होगा । उसको मैं बतलाता हूँ सुनो ॥६४॥ उसके गर्भस्थ होने पर ही उसकी माता को अपने रूप से तथा संज्ञा द्वारा हंसकर भगवान् शिव उदास होकर कामना पूर्वक उस देवी की भर्त्सना (उपहास) करेंगे । उसके बाद कुपित होकर वह देवी तपस्या करने के लिए चली जायेंगी । उसके बाद तपस्या सम्पन्न वह देवी शङ्करजी के सम्बन्ध से निस्सीम प्रकाशमण्डल को उत्पन्न करेंगी । उससे उत्पन्न होने वाला बालक तारकासुर का बध करने वाला होगा इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥६५-६६॥ हे देवि ! तुमको भी लोकदुर्जय दानवों का वध करना चाहिए, क्योंकि उतने दिन का सुरेश्वरी के शरीर का संयोग होने से तुममें भी गुणों का समूह भर जायेगा ॥६८॥ जब तक शिव पार्वती का सङ्गम नहीं होगा तब तक तुम भी दैत्यों को नहीं मार सकती हो । ऐसा करने से तपस्या करके तुम्हारे द्वारा वह सब कुछ करेगी ॥६९॥ हे देवि ! जब उमा देवी का नियम समाप्त हो जायेगा, तब पार्वती अपने रूप को प्राप्त कर लेगी ॥७०॥ उस समय पार्वती तुम्हारे साथ हो जायेगी । तुम उस समय उमा के रूपांश से युक्त हो जाओगी ॥७१॥ हे वरदे ! लोक में लोग अंश रहित, केवल तुम्हारी अनेक आकारों वाली, कामनाओं को सिद्ध करने वाली तथा सर्वत्र व्यापिका रूप से तुम्हारी पूजा करेंगे ॥७२॥ ब्रह्मज्ञानी पुरुष तुम्हारी उपासना ओङ्कार ही जिसका मुख है ऐसी गायत्री के रूप में करेगें । महाबलवान् आक्रान्त राजागण तुम्हारी उपासना, उर्जित आकार वाली के रूप में करेंगे ॥७३॥ तुम वैश्यों की माता भू देवी हो । शूद्र जन तुम्हारी पूजा शैव के रूप में करते हैं । तुम मुनियों की भी क्षुब्ध नहीं होने वाली क्षमा हो, नियमों का पालन करने वालों की तुम दया हो ॥७४॥ तुम महा उपाय रूप सन्देह हो और नीतिज्ञों की तुम नीति हो । तुम अर्थों एवं धनों की परिचित्ति हो, तुम निर्जीवों के हृदय की वासना हो ॥७५॥ तुम सभी जीवों की मुक्ति हो, सभी शरीरधारियों की तुम गति हो । अनुरक्त चित्त वालों की तुम

त्वंकीर्तिः सत्यभूतानां त्वं शांतिर्दुष्टकर्मणाम् । त्वं भ्रांतिः सर्वभूतानां त्वं गतिः क्रतुयाजिनाम्॥७७॥
जलधीनां महावेला त्वं च लीलाविलासिनी। प्रियकंठग्रहानंददायिनी त्वं विभावरी ॥७८॥
इत्यनेकविधै र्देवी रूपैर्लोके त्वमर्चिता । ये त्वां स्तोष्यंति वरदे पूजयिष्यंति चापि ये ॥७९॥
ते सर्वकामानाप्स्यंति नियता नात्र संशयः । इत्युक्ता तु निशा देवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः॥८०॥
जगाम त्वरिता तूर्णं गृहं हिमगिरेर्महत्। तत्रासीनां महाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रयाम्॥८१॥
ददर्श मेनामापाण्डुच्छशिवक्त्रसरोरुहाम्। किंचित्क्षामां मुखोदग्रस्तनभारावनामिताम् ॥८२॥
महौषधिगणाबद्धमंत्रराजनिषेविताम् । उदूढकनकोन्नद्धजीवरक्षामनोरमाम् ॥८३॥
मणिदीपगणज्योति र्महालोकप्रकाशिते । प्रकीर्णबहुसिद्धार्थमनोज्ञपरिचारके ॥८४॥
शुद्धचीनांशुकच्छत्र भूशय्यास्तरणोज्ज्वले । धूपामोदमनोरम्ये सज्जसर्वोपयोगिके ॥८५॥
ततःक्रमेण दिवसे गते दूरं विभावरी । विजृंभितसुखोदर्के ततो मेनामहागृहे ॥८६॥
प्रसुप्तप्रायपुरुषे निद्राभूतोपचारके । स्फुटालोके शशभृति भ्रान्तरात्रिविहंगमे॥८७॥
रजनीचरसंचारभूतैरावृतचत्वरे । गाढकंठग्रहालग्ने शुभगोष्ठजने ततः ॥८८॥
किंचिदाकुलतां प्राप्ते मेनानेत्रांबुजद्वये । आविवेशमुखे रात्रिः सुखमद्भुतसंगमा ॥८९॥
उन्मादाय जगन्मातुः क्रमेण जठरांतरे । आविवेशातुलं जन्म मन्यमाना कदा तु वै ॥९०॥

रति (स्नेह) हो, शरीरधारियों के हृदय में रहने वाली तुम प्रीतिं हो ॥७६॥ सत्यवादी जीवों की तुम कीर्ति हो तथा दुष्टकर्म करने वालों की तुम शान्ति हो । तुम सभी भूतों की भ्रान्ति स्वरूपिणी हो, और यज्ञ करने वालां की तुम कीर्ति हो ॥७७॥ हे लीलापूर्वक विलास करने वाली रात्रि ! तुम समुद्र तट स्वरूपिणी हो । तुम प्रियतम को कण्ठालिङ्गन जन्य आनन्द प्रदान करने वाली विभावरी (रात्रि) हो ॥७८॥ हे देवि ! तुम लोक में इस तरह अनेक रूपों में पूजित हो । हे वरदान देने वाली रात्रि ! जो लोग तुम्हारी स्तुति तथा पूजा करेंगे ॥७९॥ निश्चित रूप से उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी, इसमें किसी भी प्राकार का सन्देह नहीं है । ब्रह्माजी के इस तरह कहने पर रात्रि देवी ने हाथ जोड़कर आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ॥८०॥ यह कहकर वह शीघ्र ही हिमाचल के विशाल गृह में चली गयी । वहाँ उसने रत्ननिर्मित दिवार का सहारा लेकर जिनका मुख कमल कुछ पीले वर्ण का हो गया था उन मेना देवी को बैठे हुए देखा । उनका शरीर कुछ कमजोर हो गया था और वे उन्नत स्तनों के भार से कुछ झुक सी गयी थीं ॥८१-८२॥ उनके शरीर में अनेक महौषधियाँ बँधी थीं और वे मन्त्रराज से सुसेवित थीं । उत्कृष्ट उढकन से संबद्ध तथा जीवों की रक्षा करने के कारण मनोहर ॥८३॥ मणि समूह रूपी दीपक के प्रकाश से प्रकाशित जिसमें बहुत अधिक पीली सरसो विखरी हुयी थी तथा मनोहर परिचारक से युक्त ॥८४॥ चीन देश में निर्मित शुद्ध वस्त्र के छत्र जन्य शय्या तथा आस्तरण से सुशोभित धूप की सुगन्धि से मनोरम तथा जिसमें उपयोगी सारी वस्तुएँ सजा दी गयी थी मेना देवी के उस गृह को रात्रि ने देखा ॥८५॥ उसके बाद क्रमशः दिन बीत गया जिसके कारण सुख की प्रतीति हो रही थी तथा निद्रा के उपचार के कारण सबलोग सो गये थे, चन्द्रमा की चाँदनी का प्रकाश फैल गया था, रात्रि के पक्षी निद्रित से हो गये थे । चौराहों पर दैत्य गण चल फिर रहे थे । प्रियतम अपनी प्रियतमाओं के गले में हाथ डाले हुए थे ॥८६-८८॥ उसी समय अद्भुत सङ्गम वाली रात्रि देवी ने मेना देवी के मुख में प्रवेश किया॥८९॥ जिससे कि जगन्माता के उदर में क्रमशः उन्माद हो । स्वर्गलोक पर्यन्त अतुलनीय जन्म प्रदान करने के लिए रात्रि देवी ने प्रवेश किया ॥९०॥ रात्री ने गुफा रूपी अरण्य में देवी के गृह को सजा दिया । उसके बाद जगत् का कल्याण

अरंजयद्गृहं देव्या गुहारण्ये विभावरी। ततो जगत्या निर्वाणहेतुर्हिमगिरिप्रिया ॥९१॥
ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे प्रासूयत गुहारणिम्। तस्यां तु जायमानायां जंतवः स्थाणुजंगमाः ॥९२॥
अभवन्सुखिनः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः। नारकाणामपि तदा सुखं स्वर्गसमं महत् ॥९३॥
अभवत्क्रूरसत्वानां चेतः शांतं च देहिनाम्। ज्योतिषामपि तेजस्तु सुतरां चाभवत्तदा ॥९४॥
वनाश्रिताश्चोषधयः स्वादवंति फलानि च। गंधवंति च माल्यानि विमलं च नभोऽभवत् ॥९५॥
मारुतश्च सुखस्पर्शो दिशश्च सुमनोहराः। ऋतूद्धुतफलायोगपरिपाकगुणोज्ज्वला ॥९६॥
अभवत्पृथिवीदेवी शालिमालाकुलापि च। तपांसि दीर्घचीर्णानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥९७॥
तस्मिन् गतानि साफल्य काले निर्मलचेतसाम्। विस्मृतानि च शास्त्राणि प्रादुर्भावं प्रपेदिरे ॥९८॥
प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदा पुण्यतमस्त्वभूत्। अंतरिक्षेमराश्चासन्विमानेषु सहस्रशः ॥९९॥
समहेंद्रजलाधीशवायुवह्निपुरोगमाः। पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिंस्तुहिनभूधरे ॥१००॥
जगुर्गंधर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः। मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमंतो महाचलाः ॥१०१॥
तस्मिन्महोत्सवे प्राप्ते दिव्याः प्रसृतपाणयः। सागरास्सरितश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः ॥१०२॥
हिमशैलोऽभवल्लोके तदासर्वैश्चराचरैः। संसेव्यश्चाधिगम्यश्च साश्रयश्चाचलोत्तमः ॥१०३॥
अनुभूयोत्सवं देवा जग्मुः स्वान्निलयास्तदा। देवनागेंद्रगंधर्वशैललीलावतीगणैः ॥१०४॥
हिमशैलसुता देवी त्वहं पूर्विकया ततः। क्रमेण बुद्धिमानीता विद्याज्ञानलसैर्बुधैः ॥१०५॥
क्रमेण रूपसौभाग्यप्रबोधैर्भुवनत्रये। संपूर्णलक्षणा जाता हिमालयसुता तथा ॥१०६॥
एतस्मिन्नंतरे शक्रो नारदं देवसंमतम्। देवर्षिमथ सस्मार कार्यसाधनतत्परः ॥१०७॥

करने के लिए हिमवान की पत्नी मेना देवी ने ॥९१॥ सुन्दर ब्राह्म मुहूर्त में पार्वती देवी को जन्म दिया। पार्वती के जन्म के समय सभी लोकों में रहने वाले स्थावर एवं जङ्गम जीव ॥९२॥ सुखी हो गये। नरकों में रहने वाले भी जीवों को स्वर्ग के समान सुख प्राप्त हुआ ॥९३॥ क्रूर योनि के भी शरीर धारियों का अन्तःकरण शान्त हो गये। उस समय सभी नक्षत्रों में भी चमक पैदा हो गयी ॥९४॥ वन में रहने वाली ओषधियाँ तथा फल स्वादिष्ट हो गयी। मालाएँ सुगन्धि से भर गयीं तथा आकाश स्वच्छ हो गया ॥९५॥ सुख प्रदान करने वाली हवा बहने लगी, दिशाएँ मनोहर हो गयीं। उस ऋतु में उत्पन्न होने वाले फल पककर चमकने लगे ॥९६॥ उस समय पृथिवी देवी अनेक प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण हो गयीं। स्वच्छ अन्तःकरण वाले तपस्वी मुनियों द्वारा दीर्घकाल से की गयी तपस्याओं की उसी समय पूर्ति हो गयी। उसी समय विस्मृत हुए शास्त्र याद हो गये ॥९७-९८॥ बड़े-बड़े तीर्थों का प्रभाव अत्यन्त पुण्यमय हो गया। आकाश में हजारों देवता अपने-अपने विमानों में एकत्रित हो गये ॥९९॥ इन्द्र के साथ वरुण तथा वायु आदि देवताओं ने उस हिमालय पर्वत पर फूलों की वृष्टि की ॥१००॥ बड़े-बड़े गन्धर्वों ने गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया। सुमेरु आदि महापर्वत शरीर धारण करके उस महोत्सव के समय देवी को प्रणाम किए। सभी समुद्र और नदियाँ भी उस समय वहाँ आयीं ॥१०१-१०२॥ उस समय पर्वत्तोत्तम हिमालय पर्वत सबों के लिए सेवनीय और प्राप्य बन गया। सभी देवता उस महोत्सव का आनन्दानुभव करके देवता, पर्वत, गन्धर्व तथा पर्वतों पर क्रीडा करने वाली अप्सराओं के साथ अपने-अपने घर आये ॥१०३-१०४॥ हिमवान् पुत्री देवी अतिशीघ्र ही बुद्धिमती हो गयी, और आलस्य रहित विद्वानों ने उन्हें विद्या प्रदान किया ॥१०५॥ क्रमशः वह रूप सौभाग्य तथा ज्ञान के द्वारा त्रैलोक्य में सम्पूर्ण सद्गुणों से सम्पन्न हो गयी ॥१०६॥ अपने कार्य की सिद्धि में सदा

स तु शक्रस्य विज्ञाय कांक्षितं भगवांस्तदा। आजगाम मुदा युक्तो महेंद्रस्य निवेशनम्॥१०८॥
तं तु दृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात् । यथार्हेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः ॥१०९॥
शक्रप्रणिहितां पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि । नारदः कुशलं देवमपृच्छत्पाकशासनम् ॥११०॥
पृष्टे च कुशले शक्रः प्रोवाच वचनं प्रभुः ।

इंद्र उवाच

कुशलस्यांकुरस्तावत्संवृत्तो भुवनत्रये ॥१११॥
तत्फलोद्भवसंपत्तौ त्वं मया विदितो मुने । वेत्स्येव तत्समस्तं त्वं तथापि परिचोदितः ॥११२॥
निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने। तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात्पिनाकिना ॥११३॥
शीघ्रं तथोद्यमः सर्वैरस्मत्पक्षैर्विधीयताम् । अवगम्यार्थमखिलं तत आमंत्र्य नारदः ॥११४॥
शीघ्रं जगाम भगवान् हिमशैलनिकेतनम्। तत्र द्वारे सविप्रेंद्रश्चित्रवेत्रलताकुले॥११५॥
वंदितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरो मुनिः। सह प्रविश्य भवनं भुवो भूषणतां गतम् ॥११६॥
निवेदिते स्वयं हैमे हिमशैलेन विस्तृते । महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः ॥११७॥
यथार्हमर्घ्यपाद्यं च शैलस्तस्मै न्यवेदयेत् । मुनिः स प्रति जग्राह तमर्घ्यं विधिवत्तदा ॥११८॥
गृहीतार्घम्मुनिश्रेष्ठमपृच्छत् श्लक्ष्णया गिरा । कुशलं तपसः शैलः शनैः फुल्लाननांबुजः ॥११९॥
मुनिरप्यद्रिराजानमपृच्छत्कुशलं तदा।

नारद उवाच

अहो धर्मोचितस्तेऽस्ति संनिवेशो महागिरे ॥१२०॥
पृथुत्वं मनसा तुल्यं कंदराणां तवानघ । गुरुत्वं ते गुणौघानां स्थावरादतिरिच्यते॥१२१॥

सावधान इन्द्र ने इसी बीच देवताओं के अभिमत देवर्षि नारद का स्मरण किया ॥१०७॥ भगवान् नारद भी इन्द्र के अभिप्रेत कार्य को जानकर प्रसन्नता पूर्वक इन्द्र के घर आये ॥१०८॥ उनको आये हुए देखकर इन्द्र ने अपने सिंहासन से खड़ा होकर उनकी पाद्य इत्यादि उपचारों से पूजा की ॥१०९॥ इन्द्र के द्वारा की गयी सविधि पूजा को स्वीकार करके नारदजी ने देवताओं का कुशल पूछा ॥११०॥ कुशल पूछने पर इन्द्र ने कहना प्रारम्भ किया । **इन्द्र ने कहा—** इस समय त्रैलोक्य में कुशल का अङ्कुर उत्पन्न हो गया है ॥१११॥ मैं समझता हूँ कि उसमें फल आपके द्वारा ही लगेगा । यद्यपि आप इन सारी बातों को जानते हैं, फिर भी आपने पूछा है तो मैं कहता हूँ ॥११२॥ अपने सुहृदों को अपना अभिलषित अर्थ बतलाने में बहुत अधिक सुख मिलता है । अतएव देवी पार्वती का जिस प्रकार से भगवान् शिव से सम्बन्ध हो सके ॥११३॥ इस प्रकार का प्रयास देव पक्षीयों को शीघ्रातिशीघ्र करना चाहिए । सारी बातों को जानकर नारदजी इन्द्र से विदा लेकर ॥११४॥ शीघ्र ही हिमालय के घर गये । वहाँ प्रतिहारीगण से परिपूर्ण द्वार पर हिमवान ने घर से निकलकर देवर्षि नारद की बन्दना की उनके साथ पृथिवी के अलङ्कारभूत भवन में प्रवेश करके ॥११५-११६॥ स्वयं हिमवान के द्वारा विस्तृत सुवर्णमय आसन पर महान् कान्ति सम्पन्न नारद मुनि बैठे॥११७॥ हिमवान् ने उनको उचित अर्घ्य को प्रदान किया ॥११८॥ नारदमुनि के अर्घ्य स्वीकार कर लेने पर पर्वतराज हिमालय ने मधुर वाणी में प्रसन्न मुख से कुशल प्रश्न किया ॥११९॥ मुनि नारद ने भी पर्वतराज से कुशल पूछा । **नारदजी ने कहा—** हे महापर्वत आपके धर्म का सन्निवेश उचित और प्रशंसनीय है ॥१२०॥ जिसतरह से आपका मन उदार है उसी तरह से आपकी कन्दराएँ विस्तृत हैं । आपके गुण समूह की गुरुता समस्त स्थावरों से

प्रसन्नता च तोयस्य मुनिभ्यश्चाधिका तव । न लक्षयामः शैलेंद्र कुत्राविनयिता स्थिता ॥१२२॥
नानातपोभि र्मुनिभिर्ज्वलनार्कसमप्रभैः । पावनैः पावितो नित्यं त्वं कंदरसमाश्रयैः ॥१२३॥
अवमत्य विमानानि स्वर्गवासविरगिणः । पितुर्गृह इवासीना देवगंधर्वकिन्नराः ॥१२४॥
अहो धन्योसि शैलेंद्र यस्य ते कंदरं हरः । अध्यास्ते लोकनाथो हि रामध्यानपरायणः ॥१२५॥
इत्युक्तवति देवर्षौ नारदे सादरं गिरा । हिमशैलस्य महिषी मेनामुनिदिदृक्षया ॥१२६॥
अनुयाता दुहित्रा तु स्वल्पालिपरिचारिका । लज्जाप्रणयनम्राङ्गी प्रविवेशनिकेतनम् ॥१२७॥
यत्र स्थितो मुनिवरः शैलेन सहितो वशी । तं दृष्ट्वा तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा ॥१२८॥
ववंदे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः । तां विलोक्य महाभागां देवर्षिरमितद्युतिः ॥१२९॥
आशीर्भिरमृतोद्गाररूपाभिस्तं व्यवर्द्धयत् । ततो विस्मितचित्ता तु हिमवद्गिरिपुत्रिका ॥१३०॥
ऐक्षिष्ट नारदं देवी मुनिमद्भुतरूपिणम् । एहि वत्सेति साप्युक्ता ऋषिणा स्निग्धया गिरा ॥१३१॥
कंठे गृहीत्वा पितरमङ्के सा तु समाविशत् । उवाच माता तां देवीमभिवंदय पुत्रिके ॥१३२॥
भगवंतं तपोधन्यं पतिमाप्स्यसि संमतम् । इत्युक्त्वा तु ततो मात्रा वस्त्रेण पिहितानना ॥१३३॥
किंचित्कंपितमूर्द्धा तु वाक्यं नोवाच किंचन । ततः पुनरुवाचेदं वाक्यं माता सुतां तदा ॥१३४॥
वत्से वंदय देवर्षिं ततो दास्यामि ते शुभम् । रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं यच्चिरं मया ॥१३५॥
इत्युक्ता सा ततो वेगादुद्गत्य चरणौ तदा । ववंदे मूर्ध्नि संधाय पाणिपङ्कजकुड्मलम् ॥१३६॥

अधिक है ॥१२१॥ आपके जलों की स्वच्छता मुनियों के कारण और अधिक है । हे शैलेन्द्र ! आप में कहीं भी अविनीतता दिखायी नहीं पड़ती है ॥१२२॥ तुम्हारी कन्दराओं में रहकर तपस्या करने वाले अग्नि तथा सूर्य के समान कान्ति सम्पन्न मुनियों तथा उनकी तपस्याओं से आप सदा पवित्र रहते हैं ॥१२३॥ देवता, गन्धर्व तथा किन्नर स्वर्ग निवास से उदासीन होकर तथा अपने विमानों को छोड़कर अपने पिता के घर के समान ही तुम पर निवास करते हैं ॥१२४॥ हे शैलेन्द्र ! आप धन्य हैं कि आपकी कन्दरा में निरन्तर भगवान राम का ध्यान करने वाले लोकों के स्वामी भगवान् शिव निवास करते हैं ॥१२५॥ देवर्षि नारद के इसतरह से आदर पूर्वक कहने पर हिमवान् की पत्नी मेना मुनि का दर्शन करने की इच्छा से ॥१२६॥ अपनी थोड़ी सी सखियों तथा परिचारिकाओं के साथ अपनी पुत्री के साथ आयीं । उस समय लज्जा और स्नेह के कारण उसके अङ्ग झुके हुए थे ॥१२७॥ वहाँ पर पर्वतराज के साथ मुनि विद्यमान थे । तेज के समूह स्वरूप उन मुनि को देखकर पर्वतराज की पत्नी ने अपने मुख को छिपाये हुए तथा हस्तकमलों को जोड़कर वंदना की । महाभागा मेना को देखकर अपार कान्ति सम्पन्न देवर्षि, अमृत की धारा के समान अपने आशीर्वचनों से उसे सम्पन्न किया । उसके बाद आश्चर्यित अन्तःकरण वाली हिमवान् की पुत्री ॥१२८-१३०॥ देवी पार्वती ने अद्भुत रूप वाले नारद मुनि को देखा । ऋषि ने भी प्रेम भरी वाणी से कहा वत्से ! आओ ॥१३१॥ उस समय वह बालिका अपने पिता के कण्ठ को पकड़कर उनकी गोद में बैठ गयी । माता ने उस देवी से कहा पुत्रि ! तपोधन ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि की वन्दना करो, उसके फलस्वरूप तुम्हें अनुकूल पति की प्राप्ति होगी । माता के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर अपने मुख को वस्त्र से ढँककर पार्वती ने अपना थोड़ा सा शिर हिलाया; किन्तु कुछ बोली नहीं । उसके बाद माता ने अपनी पुत्री से फिर कहा ॥१३२-१३४॥ पुत्रि देवर्षि की तुम वन्दना कर लो तो तुमको जिसे मैंने बहुत दिनों से रखा है उस रत्न निर्मित खिलौने को दूँगी ॥१३५॥ माता के द्वारा इस तरह कहे जाने पर शीघ्र ही उठकर देवर्षि के चरणों पर अपने हस्तकमल को रखकर पार्वती ने उनकी

कृते तु वंदने तस्या माता सखिमुखेन तु । चोदयामास शनकैस्तस्याः सौभाग्यदर्शिताम् ॥१३७॥
शरीरलक्षणानां च परिज्ञानाय कौतुकात्। स्त्रीस्वभावात्स्वदुहितुश्श्रितां हृदि समुद्वहन्॥१३८॥
ज्ञात्वा तदिंगितं शैलो महिष्या हृदयेन तु। अनुदीर्णाकृतिर्मेने रम्येतदुपस्थितम् ॥१३९॥
चोदितः शैलमहिषी सख्या मुनिवरस्ततः । स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाच नारदः ॥१४०॥

नारद उवाच

न जातोस्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विवर्जितः । उत्तानहस्ता सततं चरणैर्व्यभिचारिभिः ॥१४१॥
सुच्छायास्याभविष्येयं किमन्यद्बहुभाष्यते । श्रुत्वैतत्संभ्रमाविष्टो ध्वस्तधैर्यो हिमाचलः ॥१४२॥
नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकंठो महागिरिः ।

हिमवानुवाच

संसारस्यातिदोषस्य दुर्विज्ञेया गतिर्यतः ॥१४३॥
सृष्ट्या चावश्यभाविन्या केनाप्यतिशयात्मना। कर्त्रा प्रणीता मर्यादा स्थिता संसारिणामियम्॥१४४॥
यो जायते हि यद्बीजाज्जनितुः सोर्थसाधकः। जनिता चापि जातस्य नं कश्चिदिति च स्फुटम्॥१४५॥
स्वकर्मणैव जायंते विवधा भूतजातयः । अंडजो ह्यंडजाज्जातः पुनर्जायेत मानवः ॥१४६॥
मानुषोपि सरीसृप्यां मानुषत्वेन जायते। तत्रापि जातौ श्रेष्ठायां धर्मस्योत्कर्षणेन तु ॥१४७॥
अपुत्रजन्मनः शेषाः प्राणिनः समवस्थिताः। मनुजास्तत्र सुतरां नयेन सहधर्मिणः ॥१४८॥
क्रमेणाश्रमसंप्राप्ति र्ब्रह्मचारिव्रतादनु। तस्य कर्तुर्नियोगेन संसारो येन वर्धितः॥१४९॥
संसारस्य हि नोत्पत्तिः सर्वे स्यु र्यदि निर्गृहाः । कर्त्रा तु शास्त्रेषु सदा सुतलाभः प्रशंसितः ॥१५०॥

वन्दना की ॥१३६॥ वन्दना कर लेने के पश्चात् उसकी माता ने सखी को उस बालिका के सौभाग्य आदि के विषय में पूछने के लिए प्रेरित किया ॥१३७॥ तथा कौतुक वशात् उसके शरीर तथा लक्षण आदि के विषय में स्त्री स्वभाव वाली होने के कारण उस बालिका को हृदय से लगाकर जानना चाहा ॥१३८॥ बिना कहे ही पत्नी की इशारे को जानकर हिमवान् ने सोचा यह बहुत अच्छा अवसर आ गया है ॥१३९॥ हिमवान् की पत्नी की सखी के द्वारा पूछे जाने पर मुस्कुराते हुए देवर्षि नारद ने कहा ॥१४०॥ **नारद ने कहा**— भद्रे ! इसका पति उत्पन्न नहीं हुआ है। इसका जो पति होगा उसमें कोई भी लक्षण नहीं है। इसके हाथ सदा ऊपर की ही ओर उठे रहेंगे। इसके चरण सुच्छाय और व्यभिचारी हैं ॥१४१॥ इससे अधिक इसके विषय में क्या कहा जाय ? यह सुनकर हिमवान् घबरा गये, उनका धैर्य टूट गया ॥१४२॥ भरे हुए कण्ठ से हिमवान् ने नारदजी से कहा **हिमवान् ने कहा**— संसार अत्यन्त दोषमय है। इसकी गति को जानना कठिन है ॥१४३॥ यह सृष्टि किसी सबों से श्रेष्ठ कर्त्ता के द्वारा बनायी हुयी है। सृष्टि अवश्य भाविनी है। यही संसारी जीवों की मर्यादा है ॥१४४॥ जो जिस बीज से उत्पन्न होता है, वह उत्पन्न होने वाले के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला होता है। उत्पन्न करने वाला भी उत्पन्न हुए के किसी प्रयोजन का साधक नहीं होता है ॥१४५॥ अनेक प्रकार के जीवों की जातियाँ अपने कर्मों से होती हैं। अण्डज अण्डज से उत्पन्न होता है फिर वह मानव हो सकता है ॥१४६॥ इसीतरह मनुष्य भी अपने कर्मों के अनुसार सर्पादि योनियों में उत्पन्न होता है। उसमें भी श्रेष्ठ जाति के होने में धर्म की उत्कृष्टता कारण होती है। दूसरे जीव पुत्र जन्म से रहित होते हैं, किन्तु मनुष्य नीति के अनुसार सहधर्मी होते हैं ॥१४७॥ उसे ब्रह्मचारी व्रत के पश्चात् गार्हस्थ्य इत्यादि आश्रमों की प्राप्ति; जिसने जगत् को वढाया उस जगत् के कर्त्ता की आज्ञा के अनुसार ही होती है ॥१४८॥ यदि सबलोग गृह का

प्राणिनां मोहनार्थाय नरकत्राणकारणात् । स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जंतूनां नोपपद्यते॥१५१॥
स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपणा दैन्यभागिनी । शास्त्रलोचनसामर्थ्याद्दूषितं तासु कर्तृणा ॥१५२॥
तस्यां नोपरिभावज्ञा भवेदिति च वेधसा । शास्त्रेपूक्तमसंदिग्धं बहुवारं महाफलम्॥१५३॥
दशपुत्रसमा कन्या यापि स्याच्छीलवर्जिता । वाक्यमेतत्फलभ्रष्टं पुंसां ग्लनिकरं फलम्॥१५४॥
कन्या हि कृपणा शोच्या पितुर्दुःखविवर्द्धिनी । यापि स्यात्पूर्णसर्वार्था पतिपुत्रसमन्विता ॥१५५॥
किं पुनर्दुर्भर्गा हीना पतिपुत्रधनादिभिः। त्वं चोक्तवान्सुताया मे शरीरे दोष संग्रहम्॥१५६॥
अहो मुह्यामि शुष्यामि ग्लामि सीदामि नारद। अयुक्तमपि वक्तव्यमप्राप्यमपि सांप्रतम्॥१५७॥
अनुग्रहाय मे छिन्धि दुःखं कन्याश्रयं मुने । परिच्छिन्नेपप्यसंदिग्धे मनः परिभवाश्रयात् ॥१५८॥
तृष्णा मुष्णाति निष्णातं फललोभाश्रयात्पुनः । स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम् ॥१५९॥
इहामुत्रसुखायोक्तं सत्पतिप्राप्तिसंज्ञितम् । दुर्लभत्वात्सतः स्त्रीणां विगुणोपि पतिः किल॥१६०॥
न प्राप्यते विना पुण्यैः पतिर्नार्याः कदाचन। यतोनिस्साधनो धर्मः परिणामोत्थिता रतिः ॥१६१॥
धनं जीवितपर्यंतं पत्यौ नार्याःप्रतिष्ठितम्। निर्धनो दुर्मुखो मूर्खःसर्वलक्षणवर्जितः ॥१६२॥
दैवतं परमं नार्याः पतिरुक्तः सदैव हि। त्वया देवर्षिणा प्रोक्तं न जातोस्याः पतिः किल॥१६३॥
एतद्दौर्भाग्यमतुलमसंख्यं च दुरुद्वहम्। चराचरे भूतसर्गे चिंता सा व्यापिनी मुने ॥१६४॥

परित्याग कर दें तो फिर संसार की उत्पत्ति ही नहीं होगी, इसीलिए जगत् के कर्त्ता ने पुत्र की प्राप्ति की प्रशंसा किया है ॥१४९-१५०॥ प्राणियों को मोहित करने के लिए नरक से रक्षा को कारण बतलाकर, पुत्र प्राप्ति की प्रशंसा की गयी है । स्त्रियों के बिना जगत् की सृष्टि संभव नहीं है ॥१५१॥ स्त्री जाति तो स्वभाव से ही कृपण तथा दीन होती है । शास्त्र का विचार करने के सामर्थ्य के कारण कर्त्ता ब्रह्मा ने उन सबों में दोष बतलाया है ॥१५२॥ स्त्री जाति में शास्त्रों के अभिप्राय को जानने वाली कोई नहीं हो सकती है । इस बात को शास्त्रों में बार-बार कहा गया है कि शील गुण रहित कन्या दश पुत्रों के समान होती है । यह वाक्य निष्फल तथा पुरुषों को हतोत्साहित करने वाला है ॥१५३-१५४॥ कन्या कृपण होती है, शोचनीय होती है तथा पिता के दुःख को बढाने वाली होती है । भले ही उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हों तथा वह पति एवं पुत्र से सम्पन्न हो ॥१५५॥ यदि वह दुर्भाग्य वाली तथा पति, पुत्र तथा धन आदि से रहित है तो फिर उसके विषय में क्या कहना है ? आपने मेरी पुत्री के शरीर में अनेक दोषों को बतलाया है ॥१५६॥ हे नारद जी ! मुझे तो चक्कर आ रहा है, मेरा मुख सुखा जा रहा है, मैं हतोत्साहित हो रहा हूँ तथा दुःखी हो रहा हूँ । मेरी पुत्री पर कृपा करने के लिए आप यदि अनुचित तथा अप्राप्य भी उपाय हो तो उसे बतलायें ॥१५७॥ हे मुने ! आप मेरी कन्या के दुःख का निवारण कीजिये । सीमित तथा सन्देह रहित विषय में मन परिभव का अनुभव करने लगता है ॥१५८॥ फल की प्राप्ति लोभ के होने पर तृष्णा, निष्णात (निपुण) व्यक्ति को भी ठग लेने का काम करती है । (पिता और पति) दोनों के वंश सम्बन्ध रखने के कारण स्त्रियों का जन्म श्रेष्ठ माना गया है ॥१५९॥ स्त्रियों के लिए लोक तथा परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति का साधन अच्छे पति की प्राप्ति को बतलाया गया है । स्त्रियों के लिए सत्पति की प्राप्ति के दुर्लभ होने के कारण स्त्रियों को गुण हीन भी पति की प्राप्ति के बिना पुण्य की प्राप्ति नहीं होती है । क्योंकि धर्म साधन रहित धर्म के परिणाम जन्य प्रेम तथा जीवन पर्यन्त रहने वाला धर्म पति ही कहा गया है । निर्धन, कुरूप, मूर्ख तथा सद्गुण विहीन भी पति नारी के लिए सदा सर्वश्रेष्ठ देवता होता है । आप देवर्षि हैं । आपने कहा कि इसका कोई पति ही नहीं है ॥१६०-१६३॥ यह इसका

स न जात इति श्रुत्वा ममेदं व्याकुलं मनः । मनुष्यदेवजातीनां शुभाशुभनिवेदकम् ॥१६५॥
लक्षणं हस्तपादाभ्यां लक्षणं विहितं किल । सेयमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुंगव॥१६६॥
उत्तानहस्तता प्रोक्ता या च तामेव नित्यका । शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित्प्रयच्छताम् ॥१६७॥
सुच्छाययास्याश्चरणौ त्वयोक्तौ व्यभिचारिणौ । तत्रापि श्रेयसी ह्याशा मुने न प्रतिभाति नः ॥१६८॥
शरीरलक्षणाश्चान्ये पृथक्फलनिवेदिनः । इत्युक्त्वा विरते शैले महादुःख विचारिणि ॥१६९॥
स्मितपूर्वमुवाचेदं नारदो देवपूजितः ।

नारद उवाच

हर्षस्थाने च महति त्वया दुःखं निरुच्यते ॥१७०॥
अपरिच्छिन्नवाक्यार्थो मोहं यासि महागिरे । इमां शृणु गिरं मत्तोरहस्यपरिनिष्ठिताम्॥१७१॥
समाहितो महाशैल मयोक्तस्य विचारणाम् । न जातोस्याः पतिर्देव्या यन्मयोक्तं हिमाचल ॥१७२॥
स न जातो महादेवो भूतभव्यभवोद्भवः । शरण्यः शाश्वतः शास्ता शङ्करः परमेश्वरः ॥१७३॥
ब्रह्मरुद्रेन्द्रमुनयो गर्भजन्मजरार्दिताः । तस्य ते परमेशस्य सर्वे क्रीडनका गिरे ॥१७४॥
ब्रह्मांडतस्तदिच्छातः संभूतो भुवनप्रभुः । आत्मनो न विनाशोस्ति स्थावरांतेपि भूधर ॥१७५॥
संसारे जायमानस्य म्रियमाणस्य देहिनः । नश्यते देह एवात्रनात्मनो नाश उच्यते ॥१७६॥
ब्रह्मादिस्थावरांतोऽयं संसारो यः प्रकीर्तितः । स जन्ममृत्युदुःखार्तो ह्यनिशं परिवर्तते ॥१७७॥

अतुलनीय और असंख्य दुर्भाग्य है । इसको बर्दास्त करना असंभव है । हे मुने ! सम्पूर्ण चराचर मे इसका पति उत्पन्न ही नहीं हुआ यह सुनकर मेरा मन व्याकुल हो गया है । मनुष्य तथा देव जाति में होने वाले शुभ तथा अशुभ को बतलाने वाला ॥१६४-१६५॥ लक्षण हाथ तथा पैर से बतलाया जाता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने बतलाया है कि यह ऊपर की ओर ही हाथ किए रहेगी ॥१६६॥ यह बतलाया गया है कि ऊपर की आरे उठे हुए हाथ वाले को हमेशा माँगते रहना होता है । कल्याण प्राप्त धन्य तथा दान करने वालों का हाथ उत्तान हस्त नहीं होता है ॥१६७॥ आपने यह बतलाया है कि सुन्दर छाया से युक्त दोनों पैर व्यभिचारी हैं । हे मुने ! उससे भी मुझे कोई आशा नही प्रतीत होती है ॥१६८॥ शरीर के दूसरे लक्षण तो अलग-अलग फलों को अभिव्यक्त करते हैं । यह कहकर जब अत्यन्त दुःखी हिमालय चुप हो गये तो ॥१६९॥ देवताओं से पूजित नारद-मुनि ने मुस्कुराते हुए कहा **नारदजी ने कहा—** प्रसन्न होने के बदले आपने महान दुःख निवेदित किया है ॥१७१॥ वाक्यों के अर्थ के स्पष्ट नहीं होने के कारण आप मोहित हो रहे हैं । मेरी रहस्य भरी बातों को आप सुनें ॥१७१॥ हे महाशैल ! मेरी बातों के विचारों को आप सावधानी पूर्वक सुनें । हे हिमाचल ! मैंने, यह जो कहा है कि इसका पति उत्पन्न नहीं हुआ ॥१७२॥ महादेव इस संसार में कभी भी उत्पन्न नहीं हुए । वे सबों के रक्षक, शाश्वत (नित्य) सबों के प्रशासक तथा परमेश्वर एवं कल्याणकारी हैं ॥१७३॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, मुनिगण ये सबके सब गर्भ जन्य तथा जरा जन्य दुःख से दुःखी होते हैं । हे पर्वतराज ! ये उन परमेश्वर भगवान् शङ्कर के लिए क्रीडा के साधन रूप हैं ॥१७४॥ उनकी इच्छा से ही ब्रह्माण्ड उद्भूत होते हैं । हे पर्वत ! स्थावर पर्यन्त भी वस्तुओं की आत्माओं का कभी विनाश नहीं होता है॥१७५॥ संसार में उत्पन्न होने वाले और मरने वाले जीवों के इस संसार में ही देह का नाश हो जाता है, आत्मा का नाश नहीं होता है ॥१७६॥ ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त जो यह संसार है वह निरन्तर जन्म तथा मृत्यु जन्य दुःख से दुःखी होता रहता है ॥१७७॥ महादेव अचल एवं स्थाणु (कूटस्थ) हैं, वे कभी उत्पन्न नहीं हुए । वे सम्पूर्ण जगत् के

महादेवोचलः स्थाणुऽर्न जातो जनकोजरः । भविष्यति पतिः सोस्या जगन्नाथो निरामयः ॥१७८॥
यदुक्तं च मया देवी लक्षणैर्वर्जिता तव । शृणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यक्तेन विचारणम् ॥१७९॥
लक्षणं दैविको ह्यंकः शरीरावयवाश्रयः । स चायुर्धनसौभाग्यपरिणामप्रकाशकः ॥१८०॥
अनंतस्याप्रमेयस्य सौभाग्यस्य तु भूधर । नैवांको लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते ॥१८१॥
अतोस्या लक्षणं गात्रे शैल नास्ति महामते । यच्चाहमुक्तवानस्या उत्तानकरता सदा ॥१८२॥
उत्तानो वरदः पाणिरेषदेव्याः सदैव तु । सुरासुरमुनिव्रातवरदात्री भविष्यति ॥१८३॥
यच्च प्रोक्तं मया पादौ सुच्छायौ व्यभिचारिणौ । मत्तः शृणु त्वमस्यापि व्याख्योक्तिं शैलसत्तम ॥१८४॥
चरणौ पद्मसंकाशौ स्वच्छावस्या नखोज्वलौ । सुरासुराणां नमतां किरीटमणिकांतिभिः ॥१८५॥
विचित्रवर्णैः पश्यद्भिः सुच्छायौ प्रतिबिंबितौ । एषा भार्या जगद्भर्तुर्वृषांकस्य महीधर ॥१८६॥
जननी सर्वलोकस्य संभूता भूतभाविनी । शिवेयं पावनायैव त्वत् क्षेत्रे पावनद्युतिः ॥१८७॥
तद्यथाशीघ्रमेवैषा योगं यायात्पिनाकिनः । तथाविधेयं विधिवत्त्वया शैलेंद्रसत्तम ॥१८८॥
अस्त्यत्र हि महत्कार्यं देवानां हिमभूधर । एवं श्रुत्वा तु शैलेंद्रो नारदात्सर्वमेव हि ॥१८९॥
स्वमात्मानं पुनर्जातं मेने मेनापतिस्तदा । उवाच चापि संहृष्टो नारदं तु हिमाचलः ॥१९०॥
दुस्तरान्नरकाद्घोरादुद्धृतोस्मि त्वया विभो । पातालादहमुद्धृत्य सप्तलोकाधिपः कृतः ॥१९१॥
हिमाचलोस्मि विख्यातस्त्वया मुनिवराधुना । हिमाचलाच्छतगुणां प्रापितोस्मि समुन्नतिम् ॥१९२॥

जनक तथा जरा से रहित हैं । वे जगन्नाथ और निर्दोष हैं । वे ही इसके पति होंगे ॥१७८॥ मैंने यह जो कहा है कि आपकी पुत्री यह जो देवी है, वह लक्षणों से रहित है, उस वाक्य का भी विचार आप अच्छी तरह से सुनें ॥१७९॥ लक्षण दैविक अङ्ग है । वह शरीर में रहता है । वह आयु, धन, सौभाग्य तथा परिणाम का प्रकाशक नहीं है॥१८०॥ हे भूधर ! अनन्त (निःसीम) अप्रमेय (जिसको मापा नही जा सके) सौभाग्य को प्रकाशित करने वाले आकार का लक्षण शरीर में नहीं किया जाता है ॥१८१॥ अतएव हे महामते शैल !इसके शरीर में कोई लक्षण नहीं है । मैंने इसकी जो उत्तानकरता (ऊपर की ओर हाथ उठाये रखना) वतलायी है ॥१८२॥ उसका अभिप्राय है कि इस देवी का हाथ वरदान देने के लिए सदा ऊपर की ओर उठा रहेगा । यह देवताओं तथा असुरों को वरदान देने वाली होगी॥१८३॥ मैंने यह जो कहा है कि इसके पैर सुन्दर छाया वाले तथा व्यभिचारी हैं; हे शैलराज ! मेरी उस वाणी की व्याख्या आप सुनें ॥१८४॥ कमल के समान इसके स्वच्छ तथा नखों से प्रकाशित दोनों पैरों के नख देवताओं तथा असुरों के मुकुटों के मणियों के अनेक प्रकार की कान्तियों से प्रकाशित तथा देखने वालों की सुन्दर छाया को प्रतिविम्वित करने वालें होंगे । हे महीधर ! यह जगत् स्वामी भगवान् शङ्कर की पत्नी होगी ॥१८५-१८६॥ यह भूत तथा भविष्यत् कालिक सम्पूर्ण लोकों की माता होगी । तुम को पवित्र करने के लिए शिवा तुम्हारी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुयी हैं ॥१८७॥ हे शैलेन्द्रश्रेष्ठ ! आपको ऐसा प्रयास करना चाहिए कि यह शीघ्रातिशीघ्र भगवान् शिव की पत्नी वन जाय ॥१८८॥ हे हिमभूधर ! इसके द्वारा देवताओं का वहुत वड़ा कार्य होने वाला है । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** नारदजी की इन सारी वातों को सुनकर हिमालय ॥१८९॥ को लगा कि जैसे उनका पुनर्जन्म हुआ है । वे अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक नारदजी से कहे **हिमाचल ने कहा—** भगवन् ! आपने मेरा दुस्तर घोर नरक से उद्धार किया है । आपने मुझे पाताल से निकाल कर सातों लोकों का स्वामी वना दिया है ॥१९०-१९१॥ हे मुनिवर! आपने तो मुझे इस समय में विख्यात हिमाचल वना दिया है । मैं हिमाचल से भी सौ गुना उन्नत वन गया

आनंदादेव चाहारि हृदयं मे महामुने। नाध्यवस्यति कृत्यानां विभागप्रविचारणम् ॥१९३॥
भवद्विधानां नियतममोघं दर्शनं मुने। भवद्भिरेवहिप्रोक्तं निवासायात्मरूपिणाम् ॥१९४॥
मुनीनां देवतानां च स्वयं कर्तास्मि कल्मषम्। तथापि वस्तुन्येकस्त्रिाज्ञा मे संप्रदीयताम् ॥१९५॥
इत्युक्तवति शैलेंद्रे स तदा हर्षनिर्भरः। उवाच नारदो वाक्यं कृतं सर्वमिति प्रभो ॥१९६॥
सुरकार्ये स एवार्थ स्तवापि सुमहत्तरः। इत्युक्त्वा नारदः शीघ्रं जगाम त्रिदिवं ततः ॥१९७॥
स गत्वा देवभवनं महेद्रं संददर्श ह। ततोनुरूपे स मुनिरूपविष्टो महासने॥१९८॥
पृष्टः शक्रेण प्रोवाच गिरिजासंश्रयां कथाम्।

नारद उवाच

यन्महामुक्तं कर्तव्यं तन्मया कृतमेवहि ॥१९९॥
किंतु पंचशरस्येषुगोचरत्वमपेक्षितम्। इत्युक्तो देवराजस्तु मुनिना कार्यदर्शिना॥२००॥
चूतांकुरास्त्रं सस्मार भगवान्पाकशासनः। स स्मृतस्तु तदा क्षिप्रं सहस्राक्षेण धीमता॥२०१॥
उपतस्थे रतियुतः सविलासो झषध्वजः। प्रादुर्भूतं च तं दृष्ट्वा शक्रः प्रोवाच मन्मथम्॥२०२॥

शक्र उवाच

उपदेशेन बहुना किं त्वां प्रति रतिप्रिय। मनोभवोसि तेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम् ॥२०३॥
तद्यथानुक्रमं तु त्वं कुरु नाकसदां प्रियम्। शङ्करं योजय क्षिप्रं गिरिपुत्र्या मनोभव ॥२०४॥
संयुक्तो मधुनानेन गच्छ रत्या सहायवान्। इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये॥२०५॥

हूँ ॥१९२॥ हे महामुने ! मेरा हृदय आनन्द से भर गया है। मैं इस समय ऐसा कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि मुझे सम्प्रति क्या करना चाहिए ?॥१९३॥ हे मुने ! आप जैसे महापुरुषों का दर्शन निश्चित रूप से कल्याणकारी होता है। आपलोगों ने ही कहा है कि मैं आत्मा स्वरूप पुरुषों का निवास स्थल हूँ ॥१९४॥ मुझमें देवताओं और मुनियों का निवास है, स्वयं तो मैं पापी हूँ फिर भी आप मुझे किसी कार्य को सम्पादित करने के लिए आज्ञा प्रदान करें ॥१९५॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पर्वतराज के इस प्रकार से कहने पर अत्यन्त प्रसन्नता से भरकर देवर्षि नारदजी ने कहा हे प्रभो ! अब सब कुछ सम्पन्न हो गया ॥१९६॥ देवताओं का जो कार्य है, वहीं आपका भी महान् कर्तव्य है। यह कहकर नारदजी शीघ्र ही स्वर्ग लोक में चले गये ॥१९७॥ वे देवताओं के लोक में जाकर इन्द्र से मिले। उसके बाद महामुनि नारदजी अपने स्वरूपानुरूप सिंहासन पर जब बैठ गये ॥१९८॥ उसके बाद इन्द्र के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने पार्वती विषयक सारी बातों को बतलाया। **नारदजी ने कहा—** आपने जो मुझे जो करने के लिए कहा था वह मैंने कर दिया ॥१९९॥ अब कामदेव के बाणों का विषय बनाने की आवश्यकता है। कार्य के विषय में अभिज्ञ देवर्षि के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर ॥२००॥ पाक नामक दैत्य का वध करने वाले देवराज इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया। बुद्धिमान इन्द्र के द्वारा स्मरण किए जाते ही ॥२०१॥ कामदेव अपनी पत्नी रति के साथ विलास पूर्वक वहाँ उपस्थित हो गये। प्रकट हुए कामदेव को देखकर इन्द्र ने उनसे कहा ॥२०२॥ **इन्द्र ने कहा—** हे रतिप्रिय ! आपको बहुत अधिक सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है, आप तो मनोभव हैं, अतएव किसी के मन में क्या है ? इस बात को आप स्वयं जान जाते हैं ॥२०३॥ अतएव जिसतरह से प्रारम्भ करना उचित हो उसी तरह देवताओं का आप प्रिय कार्य करें। हे मनोभव ! आप शीघ्र ही भगवान् शिव को हिमाचल की पुत्री से मिला दें ॥२०४॥ अतएव आप वसन्त तथा रति के साथ शीघ्र ही प्रस्थान

प्रोवाच पंचबाणोऽथ वाक्यं भीतः शतक्रतुम्।

काम उवाच

अनया देवसामग्र्या मुनिदानवभीमया ॥२०६॥
दु;साधश्शंकरो देवः किं न वेत्सि जगत्प्रभो। तस्य देवस्य वेत्थ त्वं कारणं पदमव्ययम् ॥२०७॥
प्रायः प्रसादे कोपेऽपि सर्वं हि महतां महत्। सर्वोपभोगसारं हि सौंदर्यं स्वर्गसंभवम् ॥२०८॥
विशेषं कांक्षतां शक्र सामान्याद्भ्रशनं फलात्। श्रुत्वैतद्वचनं शक्रस्तमुवाचामरैर्युतः ॥२०९॥

शक्र उवाच

वयं प्रमाणं ते तत्र रतिकांत न संशयः। संदंशेन विना शक्तिरयस्कान्तस्य नेष्यते॥२१०॥
कस्यचिच्च्वक्वचिदृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वतः। इत्युक्तः प्रययौ कामः सहायं मधुमाश्रितः ॥२११॥
रतियुक्तो जगामाशु प्रस्थं तुहिनभूभृतः। स तु प्राप्याकरोच्चिंतां कार्यस्योपायपूर्विकाम् ॥२१२॥
महात्मानो हि निष्कंपा मनस्तेषां सुदुर्जयम्। तदादावेव संक्षोभ्य तेत्थं तस्य जयो भवेत् ॥२१३॥
संसिद्धिः प्रायशश्चैव पूर्वं संशोध्य मानसम्। कथमेवंविधैर्भावैर्द्वेषानुगमनं विना ॥२१४॥
क्रोधः क्रूरतरात्संगाद्भीषणेर्ष्यामहासखी। चापल्यान्मूर्छिविध्वस्तधैर्याधारमहाबला ॥२१५॥
तामस्यविनियोक्ष्यामि मनसो विकृतिं पुरः। पिधाय धैर्यद्वाराणि संतोषमपकृष्य च ॥२१६॥
अवगंतुं हि मां तत्र न कश्चिदिह पंडितः। विकल्पमात्रसंस्थानं विरूपाक्षमनोभवम्॥२१७॥
प्रविश्याथ क्रियारंभी गंभीरावर्त्तदुस्तरः। भविष्यामि हरस्याहं तपःस्थस्य स्थिरात्मनः ॥२१८॥

करें। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर॥२०५॥ भयभीत काम ने इन्द्र से कहा **काम ने कहा—** हे देव ! मुनियों तथा दानव के लिए भयङ्कर इस सामग्री के द्वारा॥२०६॥ शङ्करजी को वशवर्ती नहीं बनाया जा सकता है, क्या इस बात को आप नहीं जानते हैं। आप तो जानते हैं कि वे निर्विकार पुरुष हैं ॥२०७॥ प्रसाद तथा कोप दोनों के विषय में वे सबसे महान हैं। सबों के उपभोग का सार स्वर्ग में उत्पन्न सौन्दर्य है ॥२०८॥ अतएव हे इन्द्र ! आप कोई विशेष उपाय कीजिये जिसका परिणाम नाश ही होना है, उस साधारण साधन से कोई लाभ नहीं है। कामदेव की बातों को सुनकर देवताओं के साथ विद्यमान इन्द्र ने कहा ॥२०९॥ **इन्द्र ने कहा—** हे रतिकान्त ! तुम्हारे विषय में हमसब लोग प्रमाण हैं। विना संदंश (क्षोभ) के अयस्कान्त मणि में भी शक्ति नहीं आती है ॥२१०॥ किसी का कहीं पर भी ही सामर्थ्य दिखायी देता है सर्वत्र नहीं। इस तरह से कहने पर वसन्त को सहायक बनाकर कामदेव ने प्रस्थान किया ॥२११॥ रति के साथ वह शीघ्र हिमालय के शिखर पर गया वहाँ पर जाकर वह सोचने लगा कि किस उपाय से कार्य की सिद्धि हो॥२१२॥ महापुरुषों में क्षोभ नहीं हो सकता है। उनके मन को जीतना कठिन है। अतएव सर्वप्रथम संक्षोभ उत्पन्न करना चाहिए, अन्यथा शङ्करजी को जीता नहीं जा सकता है ॥२१३॥ प्रायः पहले मन का संशोधन करके ही सिद्धि (सफलता) मिलती है। द्वेष का अनुगमन किए विना इसतरह के साधनों से सिद्धि कैसे संभव है ?॥२१४॥ क्रोध अत्यन्त क्रूर है, उसकी सहायिका भयङ्कर ईर्ष्या है महाबलवती वह अपनी चपलता के द्वारा धैर्य को विध्वस्त कर देती है ॥२१५॥ सर्वप्रथम इनके मन में विकार उत्पन्न करने के लिए उसी का मैं प्रयोग करूँगा। धैर्य के समस्त मार्गों को अवरुद्ध करके तथा सन्तोष को भगाकर ॥२१६॥ कोई भी मुझको जानने में निपुण नहीं है। केवल विकल्प ही जिसका संस्थान है उन शङ्करजी के मन में उत्पन्न होने वाले काम में प्रवेश करके गंभीर आवर्त के कारण

इंद्रियग्राममावृत्य रम्यसायनसंविधिः। चिंतयित्वेति मदनो भूतभर्तुस्तदाश्रमम् ॥२१९॥
जगाम जगतीसारं सरलद्रुमवेदिकम् । शांतसत्वसमाकीर्णमचलं प्राणिसंकुलम्॥२२०॥
नानापुष्पलताजालं सानुसंस्थगणेश्वरम्। निर्व्यग्रवृषभोद्घुष्टं नीलशाद्वलसानुकम् ॥२२१॥
तत्रापश्यत्त्रिनेत्रस्य रम्यं कंचिद्द्वितीयकम्। वीरकं वीरलोकेशमीशानसदृशद्युतिम्॥२२२॥
पक्वं कुंकुमकिंजल्कपुंजपिंगजटासटम् । वेत्रपाणिं तमव्यग्रमुग्रं चाभद्रभूषणम्॥२२३॥
ततो निमीलितोन्निद्रपद्मपत्रांतलोचनम् । प्रेक्षमाणमृजुस्थानं नासावंशाग्रगोचरम् ॥२२४॥
अतीवरम्यसिंहेंद्रचर्मलंबोत्तरीयकम् । श्रवणाहिफणोन्मुक्तनिश्वासानलपिंगलम् ॥२२५॥
प्रेंखत्कपोलपर्यंतचुंबिलंबिजटाचयम् । कृतवासुकिपर्यंतं नाभिमूलनिवेशितम्॥२२६॥
ब्रह्मांजलिस्थनासाग्रनिबद्धोरगभूषणम् । ददर्श शङ्करं कामः क्रमप्राप्तांतिकः शनैः ॥२२७॥
ततो भ्रमरझंकारमालंब्य द्रुमसानुगम्। प्रविष्टःकर्णरंध्रेण भवस्य मदनो मनः ॥२२८॥
शङ्करस्तमथाकर्ण्य मधुरं मदनाश्रयम्। सस्मार दक्षतनयां दयितां रंतुमानसः ॥२२९॥
ततः शिवस्य शनकैस्तिरोधायातिनिर्मला । समाधिभावनातस्थौ लक्ष्यप्रत्यक्षरूपिणी ॥२३०॥
ततस्तन्मयतां यातः प्रत्यूह पिहिताशयः । विवेशविबुधाधीशो विकृतिं मदनात्मिकाम्॥२३१॥
ईषत्क्रोधसमाविष्टो धैर्यमालंब्य धूर्जटिः । निरस्य मदनं स्थित्वा योगमायासमावृतः ॥२३२॥
स तया मायया विष्टो जज्वालमदनस्ततः । इच्छाशरीरोदुर्ज्ञेयो दोषावासो महायशः ॥२३३॥

दुस्तर में तपः स्थित शङ्करजी के स्थिर मन वाले शङ्करजी के विषय में इन्द्रिय समूह को आच्छन्न करके मनोज्ञ साधनों से सम्पन्न अपना कार्य करना प्रारम्भ करूँगा । इसतरह से विचार करके कामदेव ने शङ्करजी के आश्रम में प्रवेश किया ॥२१७-२१९॥ वह संसार के सारभूत सरल वृक्षों से जिसकी वेदी वनी थी, शान्त जीव जिसमें चारो ओर भरे थे ॥२२०॥ उस समय अनेक प्रकार के पुष्पों एवं लताओं से घिरे हुए शिखर पर गणेश्वर बैठे थे । व्यग्रताहीन वृषभ हुंकार भर रहा था । उस शिखर पर हरियाली छायी हुयी थी ॥२२१॥ वहाँ पर कामदेव ने शङ्करजी के ही समान मनोहर किसी दूसरे वीरक को देखा, जिसकी कान्ति शङ्करजी के समान थी, तथा जो वीर लोकेश था ॥२२२॥ उसकी जटा पके हुए कुंकुम के केसर के समान पीली थी । वह अपने हाथ में वेत्र लिए हुए था, व्यग्रता रहित वह उग्र तथा अभद्र आभूषणों को धारण किए था ॥२२३॥ उसके बाद कामदेव ने विकसित कमल दल के समान सीधे अपनी नासिका के अग्रभाग को देखने वाले ॥२२४॥ जिनके कन्धे पर मृगराज के चर्म से बना उत्तरीय लटक रहा था, कानों में लगे सर्प के फुफकार की ज्वालाग्नि से पीले से प्रतीत होने वाले ॥२२५॥ जिनकी झूलती हुयी जटा गालों तक लटक रही थी, वासुकि सर्प से बना यज्ञोपवीत नाभी पर्यन्त लटक रहा था ॥२२६॥ ब्रह्माञ्जलि पर विद्यमान नासिका के अग्रभाग में सर्प निर्मित भूषण लगा हुआ था । इस प्रकार के शङ्करजी को कामदेव ने देखा और धीरे से उनके सन्निकट में आया ॥२२७॥ उसके पश्चात् शिखर के वृक्षों पर विद्यमान भ्रमरों के झंकार के सहारे कामदेव ने शङ्करजी के कान के छिद्र से मन में प्रवेश किया ॥२२८॥ उसके बाद उस कामात्मक झंकार को सुनकर रमण करने की इच्छा से शङ्करजी ने दक्ष की पुत्री (सती) का स्मरण किया ॥२२९॥ उसके बाद लक्ष्य के साक्षात्कार स्वरूपिणी अत्यन्त निर्मल समाधि की भावना तिरोहित हो गयी ॥२३०॥ उसके बाद विघ्नित अन्तःकरण वाले देवताओं के स्वामि तन्मय हो गये और उनमें कामात्मक विकार उत्पन्न हो गया ॥२३१॥ उसके बाद थोड़े से क्रोध युक्त तथा योगमाया से समावृत भगवान् शिव धैर्य धारण करके काम को दूर करके स्थित हो गये ॥२३२॥ उस माया के द्वारा

हृदयान्निर्गतः सोऽथ वासनाव्यसनात्मकः। बहिस्थलं समासाद्य उपतस्थे झषध्वजः॥२३४॥
अनुयातो हि साह्येन मित्रेण मधुना सह । सहकारतरोर्दृष्ट्वामंदमारुतनिर्धुतम् ॥२३५॥
स्तबकं मदनो रम्यं हरवक्षसि सत्वरम् । मुमोच मोहनं नाम मार्गणं मकरध्वजः ॥२३६॥
स तस्य हृदये शुद्धे नामशाली महाशरः। पपात परुषः प्रांशुः पुष्पबाणो विमोहनः॥२३७॥
ततः करणसंदोहे विद्धे तु हृदये भवः। बभूव भूतपोऽकंप्यधैर्योपि मदनोन्मुखः ॥२३८॥
ततः प्रभुत्वाद्भावानामावेशं स्वमपश्यत। वाक्यं बहुवभाषेऽथ प्रत्यूहप्रसवात्मकम् ॥२३९॥
ततः कोपानलोद्भूतघोरहुंकारभीषणे। बभूव वदनेनेत्रं तृतीयमनलाकुलम् ॥२४०॥
रुद्रस्य रौद्रवपुषो जगत्संहारभैरवम् । तदंतिकस्थे मदने व्यस्फारयतधूर्जटिः ॥२४१॥
तन्नेत्रविस्फुलिंगेन क्रोशतां नाकवासिनाम्। गमितोभस्मतां तूर्णं कंदर्पः कामदर्पकः॥२४२॥
स तु तं भसासात्कृत्वा हरनेत्रोद्भवोऽनलः । व्यजृंभतजगद्दग्धुं ज्ञात्वा हुंकारघस्मरम् ॥२४३॥
ततो भवो जगद्धेतो र्व्यभजत् जातवेदसम्। सह्रकारे मधौ चन्द्रे सुमनःस्सवपरेष्वपि॥२४४॥
भृंगेषु कोकिला ये च विभागेनस्मरानलम् । संबाह्याभ्यंतरे विद्धो हरोऽथ स्मरमार्गणैः॥२४५॥
भागेष्वेतेषु संविष्टं वीक्षतीवहुताशनम्। विभक्तं लोकसंक्षोभकरं दुर्वारजृंभितम् ॥२४६॥
तत्प्राप्तिस्नेहसंपूर्णकामेन हृदये किल। ज्वलन्नहर्निशं भीमो दुःखस्य वशगो भवत् ॥२४७॥
विलोक्यहरहुंकारज्वालाभस्मीकृतं स्मरम् । विललाप रतिः क्रूरं बंधुना मधुना सह॥२४८॥
ततोविलप्य बहुशो मधुना परिसांत्विता । जगाम शरणं देवमिंदुमौलिं त्रिलोचनम्॥२४९॥

आविष्ट होने के कारण इच्छारूपी शरीर वाला, दुर्ज्ञेय तथा दोषाश्रय महान् आशय वाला कामदेव जलने लगा॥२३३॥ उसके पश्चात् वह वासना रूपी व्यसन से युक्त कामदेव बाहर निकल कर खड़ा हो गया ॥२३४॥ उसके साथ उसका मित्र वसन्त विद्यमान था । मन्दवायु से झूमते हुए आम के मनोहर वृक्ष के गुच्छों को देखकर कामदेव ने शङ्करजी के वक्षःस्थल पर मोहनास्त्र का प्रहार किया ॥२३५-२३६॥ वह प्रख्यात महाबाण शङ्करजी के शुद्ध हृदय में जोर से लगा ॥२३७॥ उसके बाद इन्द्रिय समूह तथा हृदय के विद्ध हो जाने पर भूतों की रक्षा करने वाले तथा अविचल धैर्य सम्पन्न शिव कामदेव की ओर देखे ॥२३८॥ उसके पश्चात् समस्त भाव पदार्थों के स्वामी अपने आवेश को देखे और बहुत से विघ्नोत्पादक वाक्यों को बोले ॥२३९॥ तदनन्तर कोपाग्नि से उत्पन्न तथा घोर हुकार से भयङ्कर मुखड़े पर तीसरा नेत्र अग्नि से व्याप्त हो गया ॥२४०॥ रुद्र के भयङ्कर शरीर का जगत् का संहार करने वाले भयङ्कर उस अग्नि को शङ्करजी ने सन्निकट में विद्यमान कामदेव पर प्रकट किया ॥२४१॥ उनके नेत्रकी चिनगारी से चिल्लाते हुए देवताओं के बीच में विद्यमान, काम के दर्प से युक्त कामदेव शीघ्र ही जलकर भस्म हो गया ॥२४२॥ शङ्करजी के नेत्र से उत्पन्न वह अग्नि कामदेव को जलाकर हुंकार जन्य तेज को जानकर संसार को जला देने के लिए बढ गया॥२४३॥ उसके बाद शङ्करजी ने जगत् का कल्याण करने के लिए उस अग्नि को आम्रवृक्ष, वसन्त, चन्द्रमा, पुष्प, भ्रमर तथा कोकिलाएँ इन सबों में विभक्त कर दिया । उसके बाद काम के बाणों से भीतर तथा बाहर विद्ध हुए शङ्करजी इन भागों में विभक्त काम को देखते हुए संसार को संक्षुब्ध करने वाले तथा जिसका विजृभण रोका नहीं जा सकता है उसको विभक्त कर दिया ॥२४६॥ उसकी प्राप्ति जन्य स्नेह के कारण कामपूर्ण हृदय के द्वारा शङ्करजी रात-दिन संतप्त होते हुए दुःखी हो गये ॥२४७॥ शङ्करजी की ज्वाला से भस्म हुए कामदेव को देखकर अपने बान्धव वसन्त के साथ रति अत्यन्त करुण विलाप करने लगी ॥२४८॥ उसके बाद बहुत अधिक विलाप करके

भृंगानुयातां संगृह्य पुष्पितां सहकारजाम्। लतां पत्रद्रुमच्छन्नां जातां परभृतां सखीम् ॥२५०॥
निबध्य तु जटाजूटं कुटिलैरलकै रतिः। उद्वर्त्य गात्रं शुभ्रेण हृद्येन स्मर भस्मना ॥२५१॥
जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रोवाचेन्दुविभूषणम्।

रतिरुवाच

नमःशिवायास्तु मनोमयाय जगन्मयायाद्भुतवर्त्मने नमः ॥२५२॥

नमःशिवायास्तु सुरर्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय।
नमो भावायास्तु भवोद्भवाय नमोस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय ॥२५३॥
नमोस्तु मायामदनाश्रयाय नमोनिसर्गामलभूषिताय।
नमोस्त्वमेयाय गुणाय नाय नमोस्तुसिद्धायपुरातनाय ॥२५४॥
नमःशरण्याय नमोऽगुणाय नमोस्तुते भीमगणानुगाय।
नमोस्तु नानाभुवनर्द्धिकर्त्रे नमोस्तु भक्ताभिमतप्रदाय॥२५५॥
नमोथ कर्मप्रसवे नमः सदा अनंतरूपायसदैव तुभ्यम्।
असह्यकोपाय सदैव तुभ्यं शशांकचिह्नाय नमोस्तु तुभ्यम् ॥२५६॥
असीमलीलापरमस्तुताय वृषेंद्रयानाय पुरांतकाय।
नमः प्रसिद्धाय महौषधाय नमोस्तु नानाविधरूपकाय ॥२५७॥
नमोस्तु कालाय नमः कलाय नमोस्तु ते कालकलातिगाय।
चराचराचार्यविचार्यवर्यमाचार्यमुत्प्रेक्षितभूतसर्गम् ॥२५८॥

वसन्त ने रति को सान्त्वना प्रदान किया। उसके पश्चात् रति ने चन्द्रमौलि त्रिलोचन भगवान् शङ्कर की शरणागति की॥२४९॥ तदनन्तर जिस पर भौंरें मडरा रहे थे ऐसी विकसित आम की लता को लेकर जो पत्ते तथा वृक्ष से पृथक् हो गयी थी, जो कोयल की सखी थी उस ॥२५०॥ अपने घुंघराले अलकों से जटा बनाकर रति ने कामदेव के भस्म को अपने सम्पूर्ण शरीर में पोतकर ॥२५१॥ दोनों घुटनों को पृथिवी पर टेककर भगवान् शङ्कर से कहा **रति ने कहा**— मनोमय जगत्स्वरूप, अद्भुत मार्गावलम्बी भगवान् शिव को नमस्कार है ॥२५२॥ सदा भक्तों पर कृपा करने वाले तथा देवताओं से पूजित आप भगवान् शिव को नमस्कार है, कामदेव को भस्म करने वाले तथा संसार की सृष्टि करने वाले आप शिव को नमस्कार है ॥२५३॥ मायामय काम के आश्रयभूत तथा स्वाभाविक रूप से निर्मल तथा अलङ्कृत शिव को नमस्कार है। अप्रमेय तथा समस्त गुणों के आश्रय तथा प्राचीन सिद्ध भगवान् शिव को नमस्कार है ॥२५४॥ सबों को अपने शरण में रखने वाले प्राकृतिक गुणों से रहित तथा भयङ्कर गुणों से अनुसृत शिव को नमस्कार है। अनेक भुवनों की समृद्धि करने वाले तथा अपने भक्तों को अभिप्रेत फल प्रदान करने वाले शिव को नमस्कार है ॥२५५॥ कर्मो को उत्पन्न करने वाले, हे अनन्त रूपों वाले भगवन् शिव ! आपको नमस्कार है। चन्द्रमौलि तथा असह्य कोप करने वाले भगवान् शिव आप को नमस्कार है ॥२५६॥ असीम लीलाओं को करने वाले, रूप से जिनकी स्तुति की जाती है, वृषेन्द्र नन्दी को अपना वाहन बनाने वाले तथा त्रिपुर का विनाश करने वाले आपको नमस्कार है। प्रसिद्धमहौषध स्वरूप तथा अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले भगवान् शिव को नमस्कार है ॥२५७॥ काल स्वरूप, कला स्वरूप तथा काल की कला का विषय नहीं बनने वाले, चराचर के आचार्य विचारणीय विषयों का विचार करने में श्रेष्ठ आचार्य तथा भूतसर्ग की सृष्टि करने वाले आपको नमस्कार

त्वामिंदुमौलिं शरणं प्रपन्नाप्रियाप्तयेहं सहसा महेशम् ।
प्रयच्छ मे कामयशः समृद्धिं पतिं विना तंभगवन्नजीवे ॥२५९॥
प्रियः प्रियायाः पुरुषेशनित्यस्ततोपरः कोभुवनेष्विहास्ति ।
प्रभुः प्रभावी प्रभवः प्रियाणां प्रवीणपर्याय परापरंतपः ॥२६०॥
त्वमेव नाथो भुवनस्य गोप्ता दयालुरुन्मूलितभक्तभीतिः ।
इत्थंस्तुतः शङ्करइंद्रमौलिर्वृषाकपिर्मन्मथकांतया तु ॥२६१॥
तुतोष दोषाकरखंडधारी उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य ।

शङ्कर उवाच

भविष्यति च कामोयं कालेकांतेऽचिरादथ ॥२६२॥
अनंग इति लोकेषु सविख्यातिं गमिष्यति। इत्युक्ता शिरसा वंद्य गिरीशं कामवल्लभा ॥२६३॥
जगामोपवनं चान्यद्रतिस्तुहिनपर्वते । रुरोद चापिबहुशो दीना रम्ये स्थले स्थले॥२६४॥
मरणव्यवसायापि निवृत्ता च शिवाज्ञया । अथ नारदवाक्येन चोदितो हिमभूधरः ॥२६५॥
कृताभरणसंस्कारां कृतकौतुकमंगलाम् । स्वर्गपुष्पकृतापीडां शुभ्रचीनांशुकांबराम्॥२६६॥
सखीभ्यां संयुतां शैलो गृहीत्वा स्वसुतां ततः। जगाम सुभगे योगे तदा संपूर्णमानसः ॥२६७॥
सकाननान्युपाक्रम्य वनान्युपवनानि च । ददर्श रुदतीं नारीमप्रतर्क्यां महौजसम् ॥२६८॥
नरूपेणेदृशीलोके रम्येषु वनसानुषु। कौतुकेन परामृष्टस्तां दृष्ट्वा रुदतीं गिरिः॥२६९॥
उपसृप्य ततस्तस्यानिकटं सोप्यपृच्छत।

हिमवानुवाच

कासि कस्यासि कल्याणि किमर्थं चापि रोदिषि ॥२७०॥

है॥२५८॥ मैं अपने पति को प्राप्त करने के लिए चन्द्रमौलि आपकी शरण में आयी हूँ । आप मुझे अभिलषित कामना, यश तथा समृद्धि को प्रदान करें । मैं पति के बिना जीवित नहीं रह सकती हूँ ॥२५९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! पत्नी का प्रिय तो सदा उसका पति ही होता है । उससे बढकर उसके लिए (पत्नी के लिए) दूसरा कौन प्रभावी, प्रभु, शत्रुओं को संतप्त करने वाले तथा प्रवीण हो सकता है ॥२६०॥ आप ही भुवनों के स्वामी और रक्षक हैं । आप दयालु तथा भक्तों के भय को विनष्ट करने वाले हैं । इसतरह कामदेव की पत्नी के द्वारा स्तुति किए जाने पर, चन्द्रमौलि ॥२६१॥ चन्द्रकला को अपने शिर पर धारण करने वाले भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और उसको देखकर मधुर वाणी में कहने लगे । **शङ्करजी ने कहा—** तुम्हारा पति काम शीघ्र ही उत्पन्न होयेगा ॥२६२॥ वह संसार में अनङ्ग के नाम से विख्यात होगा । इसतरह कहने पर रति ने भगवान् शिव को शिर झुकाकार प्रणम किया ॥२६३॥ और हिमाचल के दूसरे उपवन में चली गयी । उसने विभिन्न स्थलों पर दीन होकर रुदन किया ॥२६४॥ वह मर जाना चाहती थी किन्तु शिवजी ने उसे ऐसा करने से मना कर दिया । उसके बाद नारदजी के वाक्य से प्रेरित होकर हिमालय पर्वत॥२६५॥ अलङ्कार से अलङ्कृत तथा सजी धजी हुयी, स्वर्गीय पुष्पों से जिसका जूडा बन्धा हुआ था, स्वच्छ चीनांशुक (रेशमी वस्त्र) को धारण की हुयी ॥२६६॥ तथा दो सखियों के साथ विद्यमान अपनी पुत्री को लेकर हिमालय सुन्दर योग में प्रसन्नता पूर्ण मन से काननों (वनों) तथा उपवनों में गये । वहाँ पर उन्होंने अत्यन्त सुन्दरी, वहाँ उन्होंने महाओजः सम्पन्न नारी को रोते हुए देखा ॥२६८॥ संसार में ऐसी सुन्दरी मनोहर वन के शिखरों पर

नैतदल्पमहं मन्ये कारणं लोकसुंदरि । सा तस्य वचनं श्रुत्वा उवाच मधुना सह ॥२७१॥
रुदंती शोकवचनं श्वसन्ती दैन्यवर्धनम् ।

रतिरुवाच

कामस्य दयितां भार्यां रतिं मां विद्धि सुव्रत ॥२७२॥
गिरावस्मिंश्च भगवान् गिरिशस्तपसि स्थितः । तेन प्रत्यूहरुष्टेन क्रोधाद्विस्फार्यलोचनम्॥२७३॥
विमुच्याग्निशिखाज्वालां कामो भस्मावशेषितः । अहं तु शरणं याता तं देवं भयविह्वला ॥२७४॥
स्तुतवत्यथ संतुष्टस्ततो मां गिरिशोऽब्रवीत् । तुष्टोहं कामदयिते कामोत्पत्तिर्भविष्यति॥२७५॥
त्वत्स्तुतिं चाप्यधीयानो नरोभक्त्यामदाश्रयः । लप्स्यते कांक्षितं कामंनिवर्तमरणादपि ॥२७६॥
प्रतीक्षमाणा तद्वाक्यमाशावेशवशादहम् । शरीरं परिरक्षिष्ये किंचित्कालं महाद्युते ॥२७७॥
इत्युक्तस्तु तया रत्या शैलः संभ्रमभीषणः । पाणावादाय तनयां गंतुमैच्छत् स्वकं पुरम् ॥२७८॥
भाविनोऽवश्यभावित्वाद्भवित्री भूतभाविनी। लज्जमाना सखिमुखैरुवाच पितरं गिरिम् ॥२७९॥

शैलपुत्र्युवाच

दुर्भगेन शरीरेण किं ममानेन कारणम् । कथं च तां दशां प्राप्तश्शङ्करो मे पतिर्भवेत्॥२८०॥
तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं तु तपस्यतः । दुर्भगत्वं वृथा लोके विहिते सति साधने ॥२८१॥
तपसि भ्रष्टसंदेहा ततः स्वार्थजिगीषया । एवं तपःकरिष्येऽहं यामीत्युक्तवतीं सुताम्॥२८२॥
उवाच वाचा शैलेंद्रो गद्गदस्वरवर्णया ।

नहीं हो सकती है । कौतूहल पूर्वक उसको देखकर पर्वतराज रोती हुयी ॥२६९॥ उस नारी के निकट गये और पूछे **हिमवान् ने पूछा**— हे कल्याणि ! तुम कौन हो ? किसकी पत्नी हो ? और किसलिए रो रही हो ?॥२७०॥ हे लोक सुन्दरि मुझे लगता है कि इसका कोई बहुत वड़ा कारण होगा । हिमालय की बातों को सुनकर वसन्त के साथ विद्यमान रति ने भी ॥२७१॥ रोती हुयी तथा दीर्घ निःश्वास लेती हुयी दैन्य भरी वाणी में कहने लगी । **रति ने कहा**— हे सुव्रत ! मैं काम की प्रियतमा पत्नी रति हूँ ॥२७२॥ इस पर्वत पर भगवान् शिव तपस्यारत हैं मेरे द्वारा उत्पन्न विघ्न से रुष्ट होकर उन्होंने अपनी आँखें खोलकर ॥२७३॥ उससे उत्पन्न अग्नि के द्वारा कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया । मैं तो भयभीत होकर उनके शरण में गयी ॥२७४॥ मेरी स्तुति से प्रसन्न होकर सन्तुष्ट शिवजी ने कहा हे कामपत्नि ! मैं संतुष्ट हूँ, काम भी उत्पन्न होयेगा ॥२७५॥ तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुति का भक्ति पूर्वक पाठ करने वाला मेरा भक्त, मृत्यु से रहित तथा अपने समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करेगा ॥२७६॥ आशा से आशान्वित मैं उनके वाक्य की प्रतीक्षा करती हुयी मैं; हे महाद्युते ! मैं कुछ समय तक अपने जीवन की रक्षा करूँगी॥२७७॥ रति के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर हिमवान् घबरा गये और अपनी पुत्री का हाथ पकड़कर अपने घर जाना चाहे ॥२७८॥ जीवों का कल्याण करने वाली पार्वती भावी को अवश्यंभावी जानकर लज्जित होती हुयी अपनी सखी के द्वारा पिता को कहवायी ॥२७९॥ **शैलपुत्री पार्वती ने कहा**— मेरे इस शरीर के दुर्भाग्य पूर्ण होने के कारण ही मेरे पति शङ्करजी की यह दशा हुयी है, दूसरा कोई कारण नही हो सकता है ॥२८०॥ तपस्या के द्वारा ही अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति होती है । तपस्या के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है । लोक में साधन के रहने पर दुर्भाग्यता तो व्यर्थ है ॥२८१॥ अपने स्वार्थ को प्राप्त करने की इच्छा से पार्वती के कहने पर ॥२८२॥ शैलराज ने अपने रुद्धकण्ठ से गद्गद वाणी में कहा **हिमवान् ने कहा**— हे उमे ! हे पुत्रि ! यह तुम्हारी चपलता है, तुम्हारा

हिमवानुवाच

उमेति चापलं पुत्रि नक्षमं तावकं वपुः ॥२८३॥
सोढुं क्लेशानुरूपस्य तपसः सौम्यदर्शने। भावीन्यपि च कार्याणि पदार्थानि सदैव तु ॥२८४॥
भाविनोर्थाः भवंत्येव बहवोऽनिच्छतोपि हि। तस्मान्न तपसा तेस्ति बाले किंचित्प्रयोजनम् ॥२८५॥
भवनं चैव गच्छामि चिंतयिष्यामि तत्र वै। इत्युक्ता यदा नैवगृहमन्वेति शैलजा ॥२८६॥
ततोद्रिश्चिंतयाविष्टः स्वसुतां प्रशशंस च। ततोंरिक्षे दिव्या च वागभूद्भुवनत्रये॥२८७॥
उमेति चापलं पुत्रि त्वयोक्ता तनया यतः। उमेति नाम तेनास्या भुवनेषु भविष्यति॥२८८॥
सिद्धिर्मूर्तिमती त्वेषा साधयिष्यति चिंतितम्। इति श्रुत्वा तु वचनं स तदाकाशमंडले ॥२८९॥
अनुज्ञाय सुतां शैलो जगामाशु स्वमंदिरम्।

पुलस्त्य उवाच

शैलजापि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः ॥२९०॥
सखीभ्यामनुयाता तु नियता नगराजजा। श्रृंगं हिमवतः पुण्यं नानाधातुविभूषितम् ॥२९१॥
दिव्यपुष्पलताकीर्णं भ्रमरोद्घुष्टपादपम्। दिव्यप्रस्रवणोपेतं मनोरथशतोज्ज्वलम् ॥२९२॥
नानापक्षिसमायुक्तं चक्रवाकोपशोभितम्। जलजस्थलजैः पुण्यैः प्रफुल्लैरुपशोभितम्॥२९३॥
चित्रकंदरसंगुह्यं दिव्यगेहसमन्वितम्। विहंगसंघसंघुष्टं कल्पपादपसंकटम्॥२९४॥
तत्रापश्यन्महाशाखं शाखिनं हरितच्छदम्। सर्वर्तुकुसुमोपेतं चक्रवाकोपशोभितम्॥२९५॥
नानापुष्पशताकीर्णं नानाविधफलान्वितम्। त्यक्तं सूर्यस्यरुचिभिर्भिन्नसंहतपल्लवम् ॥२९६॥

शरीर तपस्या के योग्य नहीं है ॥२८३॥ तुम सौम्य दर्शना हो, तुम तपस्या के क्लेशों को नहीं वर्दास्त कर सकती हो, जिस कार्य को होना होता है, वह होकर ही रहता है ॥२८४॥ बहुत अधिक नहीं चाहने पर भी अवश्यं भावी कार्य होता ही है। अतएव हे बाले ! तपस्या करने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं है ॥२८५॥ हम घर चलते है, और वही जाकर विचार करते है कि मुझे क्या करना चाहिए ? इस तरह से कहने पर भी जब शैलपुत्री अपने घर नहीं जाना चाही ॥२८६॥ उसके बाद चिन्ताग्रस्त हिमवान् ने अपनी पुत्री की प्रशंसा की उसी समय त्रैलोक्य के अन्तरिक्ष में आकाश वाणी हुयी ॥२८७॥ तुमने चूकि अपनी पुत्री को उमा यह तुम्हारी चपलता कहा है; अतएव इसका उमा नाम त्रैलोक्य में विख्यात होगा ॥२८८॥ यह तो सिद्धि की मूर्ति है, यह अपने अभिलषित अर्थ की सिद्धि करेगी। आकाशमण्डल में इस वाणी को सुनकर पर्वतराज ॥२८९॥ अपनी पुत्री को तपस्या की अनुमति प्रदान कर अपने घर चले गये। **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पार्वती भी देवताओं के लिए भी अगम्य स्थल पर चली गयी॥२९०॥ पर्वत पुत्री के साथ उसकी दो सखियाँ भी थीं। वह अनेक धातुओं से मण्डित हिमवान के पवित्र शिखर पर चली गयी॥२९१॥ वह दिव्य पुष्पों एवं लताओं से भरा था, वृक्षों पर भैरें मँडरा रहे थे। दिव्य झरने प्रवाहित हो रहे थे, तथा अनेक प्रकार के मनोरथों से वह युक्त था ॥२९२॥ वहाँ पर अनेक प्रकार के पक्षी विद्यमान थे, वह चकवा चकई से सुशोभित था। वहाँ पर स्थल कमल विकसित थे ॥२९३॥ अद्भुत कन्दराएँ वहाँ विद्यमान थीं। वहाँ दिव्य गृह विद्यमान थे। पक्षियों का समूह कलरव कर रहा था , घने कल्प वृक्षों से वह भरा हुआ था ॥२९४॥ वहाँ पर पार्वती ने हरे पत्ते वाले महान् वृक्ष को देखा। उसमे सभी ऋतुओं के पुष्प विकसित थे, चक्रवाक पक्षी से वह सुशोभित था ॥२९५॥ अनेक प्रकार के पुष्प वहाँ विखरे थे, अनेक प्रकार के फल लगे थे। सूर्य की किरणों से

तत्रांबराणि संत्यज्य भूषणानि च शैलजा। संवीतावल्कलै र्दिव्यै र्दर्भनिर्मितमेखला ॥२९७॥
त्रिःस्नाता पाटलाहारा बभूव शरदांशतम् । शतमेकेन जीर्णेन पर्णेनावर्त्तयत्तदा ॥२९८॥
निराहारा शतं साभूत्समानां तपसो निधिः। तत उद्वेजिताः सर्वे प्राणिनस्तपसोग्निना ॥२९९॥
ततः सस्मार भगवान् मुनीन्सप्तशतक्रतुः। ते समागम्य मुदिताः सर्वे समुदितास्तथा॥३००॥
पूजितास्ते महेंद्रेण पप्रच्छुस्तत्प्रयोजनम् । किमर्थं हि सुरश्रेष्ठ संस्मृतास्तु वयं त्वया ॥३०१॥
शक्रः प्रोवाच शृण्वंतु भगवंतः प्रयोजनम् । हिमाचले तपो घोरं तप्यते भूधरात्मजा ॥३०२॥
तस्याभिमतयोगेन भवंतः कर्तुमर्हथ । तपःसमापनं देव्या जगदर्थे त्वरान्विताः॥३०३॥
तथेत्युक्त्वा ततः शैलं सिद्धसंघातसेवितम् । ऊचुरागम्य मुनयस्तामथो मधुराक्षरम् ॥३०४॥
पुत्रि कस्ते व्यवसितः कामः कमललोचने । तानुवाच ततो देवी सादरं गौरवान्मुनीन् ॥३०५॥

देव्युवाच

तपस्यंतो महाभागाः प्रोह्य मौनं भवादृशाम् । वंदनाय नियुक्ताधीर्याचयत्यविकल्पितम्॥३०६॥
सुप्रसन्नमुखा यूयं गृहीत्वासनमादितः। उपविष्टाः श्रमं मुक्त्वा ततः प्रक्ष्यथ मामनु ॥३०७॥
इत्युक्तास्ते ततश्चक्रुस्तत्रासनपरिग्रहम् । सा च तान्विधिवत्पूर्वं पूजयित्वा विधानतः ॥३०८॥
उवाचादित्यसंकाशान्मुनीन्सप्त ऋषीन् शनैः । त्यक्त्वा व्रतात्मकं मौनं नत्वा च विधिवन्मुनीन्॥३०९॥
भगवंतोपि मौनांते तस्याः सप्तर्षयोप्यथ । गौरवाधारतां प्राप्तां पप्रच्छुस्तां पुनस्तथा ॥३१०॥
सापि गौरवगर्भेण मनसा चारुहासिनी। मुनीन्सर्वांस्तथालोक्य प्रोवाच प्रोह्य वाग्यमम् ॥३११॥

रहित तथा घने पल्लव से भरा हुआ था वह वृक्ष ॥२९६॥ वहाँ पर पार्वती ने अपने वस्त्रों और आभूषणों का परित्याग करके दिव्य वल्कलों तथा कुश निर्मित मेखला को धारण किया ॥२९७॥ वह तीन बार स्नान करती थी तथा पाटलपुष्पों का आहार सौ वर्षों तक करती रही । उसके बाद उसने सौ वर्ष पुराने पत्तों को खाकर बिताया॥२९८॥ तपस्या की खजाना के समान वहा पार्वती निराहार रही । उसके बाद उस तपस्या की अग्नि से सभी प्राणी उद्विग्न हो गये ॥२९९॥ तदनन्तर इन्द्र ने सप्तर्षियों का स्मरण किया । वे सभी महर्षि प्रसन्नता पूर्वक इन्द्र के पास आये॥३००॥ इन्द्र ने उन सभी महर्षियों की पूजा की इसके बाद महर्षियों ने अपने स्मरण किए जाने के प्रयोजन के विषय में पूछा **ऋषियों ने कहा—** हे सुरश्रेष्ठ ! आपने हमलोगो का स्मरण किसलिए किया है ?॥३०१॥ शक्र ने कहा— हे भगवन् आपलोग उस प्रयोजन को सुनें **इन्द्र ने कहा—** हिमालय पर्वत पर हिमालय पुत्री घोर तपस्या कर रही हैं ॥३०२॥ आपलोग उसके अभिमत योग को करे । आपलोग जगत का कल्याण करने के लिए उसकी तपस्या को शीघ्र समाप्त करायें ॥३०३॥ ठीक है; इसतरह कहकर ऋषिगण सिद्ध समूह से सेवित हिमालय पर्वत पर आये । आकर उन लोगों ने मधुर वाणी में पार्वती से कहा ॥३०४॥ हे कमल के समान नेत्र वाली पुत्रि ! तुम क्या प्राप्त करना चाहती हो ? उन मुनियों के गौरव का अनुभव करती हुई देवी पार्वती ने उन सबों से कहा ॥३०५॥ **देवी पार्वती ने कहा—** हे तपस्वि महाभागों ! आप जैसे महापुरुषों का वन्दन करने के लिए विकल्प रहित नियुक्त बुद्धि से बन्दन करना उत्कृष्ट होता है ॥३०६॥ पहले आप लोग प्रसन्नता पूर्वक आसन ग्रहण करें; बैठ जाने के पश्चात् थकान मिटा लेने के पश्चात् आपलोग हमसे पूछें ॥३०७॥ इसतरह से कहने पर मुनियों ने आसन ग्रहण किया । पार्वती देवी ने भी सर्वप्रथम उन मुनियों की विधपूर्वक पूजा की ॥३०८॥ इसके पश्चात् सूर्य के समान देदीप्यमान उन सप्त ऋषियों से अपना व्रतात्मक मौन भङ्ग करके तथा सविधि प्रणाम करके कहा ॥३०९॥ सप्त ऋषियों ने भी

भगवंतो विजानीथ प्राणिनां मनसेप्सितम् । शरीरादिभिरत्यर्थं कदर्थ्य ते हि देहिनः ॥३१२॥
केचित्तु निपुणास्तत्र घटंते विविधोद्यमैः । उपायैर्दुर्लभान्भावान्प्राप्नुवंति ह्यतंद्रिताः ॥३१३॥
अपरे तु परिच्छिद्य नानाकारानुपक्रमान् । देहांतरार्थं सारंभमाश्रयंति हि तद्व्रतम् ॥३१४॥
ममत्वाकाशसंभूतकुसुमस्रग्विभूषितम् । विंध्यशृंगंस्प्रष्टुकामो हस्तः प्रसरते मुहुः ॥३१५॥
अहं किल भवं देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यता । प्रकृत्यैव दुराराध्यं तपस्यंतं च संप्रति ॥३१६॥
सुरासुरैरनिर्णीतं परमार्थक्रियाश्रयम् । साम्प्रतं चापि निर्दग्धो मदनो वीतरागिणा ॥३१७॥
कथमाराधयेदीशं मादृशी तादृशं शिवम् । इत्युक्ता मुनयस्ते तु स्थिरतामनसस्ततः ॥३१८॥
ज्ञातुमस्या वचः प्रोचुः प्रक्रमात्प्रकृतार्थकम् ।

मुनय ऊचुः

द्विविधन्तु सुखं तावत्पुत्रि लोके विभाव्यते ॥३१९॥
शरीरस्यास्य संयोगश्चेतसश्चापि निर्वृतिः । प्रकृत्या तु स दिग्वासा भीमो भस्मास्थिभूषणः॥३२०॥
कपाली भिक्षुको नग्नो विरूपाक्षोऽस्थिरक्रियः । प्रमत्तोन्मत्तकाकारो बीभत्सो कृतसंग्रहः ॥३२१॥
पत्या न तेन चास्त्यर्थो मूर्तानर्थेन कांक्षितः । यदि स्वस्य शरीरस्य सुखमिच्छसि शाश्वतम् ॥३२२॥
तत्कथं ते महादेवाद्भूतभाजो जुगुप्सितात् । स्रवन्नरवसासास्थिकपालकृतभूषणात् ॥३२३॥
श्वसदुग्रभुजंगेन्द्रकृतभूषणभूषितात् । श्मशानवासिनो रौद्रप्रमथानुगतादपि ॥३२४॥

पार्वती के मौन भङ्ग हो जाने पर गौरव प्राप्त पार्वती से पुनः पूछा ॥३१०॥ चारुहासिनी पार्वती भी गौरवपूर्ण मन से सभी मुनियों को देखकर अपने मौन को तोड़ती हुयी प्रकृष्ट वाणी में कहा ॥३११॥ हे भगवन् ! आपलोग तो सभी प्राणियों के मन की बात को जानते हैं । शरीरधारी जीवों को, शरीर आदि अत्यधिक कष्ट प्रदान करते हैं ॥३१२॥ उनमें से कुछ निपुण पुरुष अनेक प्रकार के प्रयास करते हैं और सावधानी पूर्वक रहकर वे उपायों के द्वारा दुष्प्राप्य भी पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं ॥३१३॥ दूसरे जीव अनेक प्रकार के उपायों का परित्याग करके दूसरे शरीर के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उस व्रत को करते हैं ॥३१४॥ मैं तो आकाश पुष्प की माला से समलङ्कृत विन्ध्याचल के शिखर को छू लेने की इच्छा से मानो हाथ फैला रही हूँ ॥३१५॥ मैं इस समय तपस्यारत स्वभाव से ही दुराराध्य भगवान् शिव को अपना पति बनाने के लिए उद्यत हूँ ॥३१६॥ आज तक देवता और असुर दोनों उनकी प्राप्ति के साधनभूत कर्म का निर्णय नहीं कर सके हैं । वे बीतराग हैं और इस समय उन्होंने कामदेव को भी जला दिया है ॥३१७॥ मुझ जैसी नारी उस प्रकार के शिव की आराधना कैसे करे ? इसे आपलोग बतलायें । इसतरह से पार्वती के मन की स्थिरता को जानने के लिए मुनियों ने ॥३१८॥ पार्वती की वाणी को सुनने के लिए क्रमशः प्रकृत विषय में कहा **मुनियों ने कहा**— हे पुत्रि ! लोक में दो प्रकार का सुख देखा जाता है ॥३१९॥ शरीर का संयोग और मन की भी शान्ति । शिव स्वभाव से नङ्गे रहने वाले हैं, भयङ्कर है, भस्म धारण करते हैं और हड्डियों का भूषण धारण करते हैं ॥३२०॥ कपाल धारण करते हैं भीख माँगते हैं, वे विरूपाक्ष हैं, क्योंकि उनके तीन नेत्र है और सदा अस्थिर रहते हैं । उनका आकार पागल जैसा है तथा घृणित है तथा अपने पास कुछ भी नहीं रखते हैं ॥३२१॥ उनको पति के रूप में प्राप्त करके तुम्हारा कल्याण नहीं होगा; वे अनर्थों के मूर्तिमान रूप हैं । यदि तुम शाश्वत अपने शरीर का सुख प्राप्त करना चाहती हो ॥३२२॥ तो फिर भूतों के प्रिय निन्दित महादेव को क्यों पति बनाना चाहती हो ? उनके शरीर से मनुष्यों की वसा टपकती रहती है, वे अस्थि तथा कपाल (मुण्डों) की

सुरेन्द्रमकुटव्रातनिघृष्टचरणोऽरिहा । हरिरस्ति जगद्धाता श्रीकान्तोऽनन्तमूर्तिमान् ॥३२५॥
जप्यो यज्ञभुजामस्ति तथेन्द्रः पाकशासनः । देवतानां निधिश्चास्ति ज्वलनस्सर्वकाधुक् ॥३२६॥
वायुरस्तिजगद्धाता यः प्राणस्सर्वदेहिनाम् । तथा वैश्रवणो राजा सर्वार्थमहिमा प्रभुः ॥३२७॥
एभ्य एकतमं कस्मान्नत्वं संप्राप्तुमिच्छसि । उतान्यस्मादिह प्राप्यं सुखं ते मनसेहितम् ॥३२८॥
एवमेतत्तथा पुत्रि प्रभावो लोकसम्पदाम् । अस्मिन् देहे परे वापि कल्याणप्राप्तये तव ॥३२९॥
पितुरेवास्ति ते सर्वं सुरेभ्यो यन्निवेदितम् । वरस्य प्राप्तये क्लेशस्स चाप्यत्राफलस्तरुः ॥३३०॥
प्रायेण प्रार्थितो ह्यर्थस्समर्थो ह्यतिदुर्लभः । स्वस्थानविनियोगित्वात्पुत्रि तत्रापि लभ्यते ॥३३१॥
इत्युक्तवत्सु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा । उवाच क्रोधरक्ताक्षी विस्फुरद्दशनच्छदा ॥३३२॥

देव्युवाच

असद्ग्रहस्य का नीतिर्व्यसनस्य क्व यंत्रणा । विपरीतार्थबोद्धारः सत्पथे केन योजिताः ॥३३३॥
एवं मां वित्थ दुष्प्रज्ञामस्थानासद्ग्रहप्रियाम् । न मां प्रति विचारोस्ति यदहंकारमानिनी ॥३३४॥
प्रजापतिसमाः सर्वे भवंतः सर्वदर्शिनः । न नूनं वित्थ तं देवं शाश्वतं जगतः प्रभुम् ॥३३५॥
अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदयम् । आस्तां तत्कर्मसद्भावं संबोधं तावदावृतम् ॥३३६॥
विदुस्तं न हरिब्रह्ममुखा अपि सुरेश्वराः । यत्तस्य विभवं स्वोत्थं भुवनेषु विजृंभितम् ॥३३७॥

माला धारण करते हैं ॥३२३॥ वे फुफकारते हुए सर्प को भूषण बनाते हैं । शमशान में निवास करते हैं तथा भयङ्कर प्रमथगण उनके अनुचर हैं ॥३२४॥ जिनके चरणों पर अनेक इन्द्र अपना शिर रखते हैं, अपने शत्रुओं का विनाश करने वाले, श्रीहरि जगत् के धाता (पालक) हैं लक्ष्मीपति हैं, तथा मूर्तिमान अनन्त हैं ॥३२५॥ सभी देवता उनका भजन करते हैं तथा पाकशासन इन्द्र भी देवताओं के स्वामी हैं । अग्नि सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले देवता हैं ॥३२६॥ जगत् के पालक वायुदेव हैं, वे सम्पूर्ण जगत् के प्राण स्वरूप हैं । इसीतरह कुबेर भी समस्त धनों के स्वामी तथा महिमा सम्पन्न हैं ॥३२७॥ इन सबों में से किसी एक को तुम क्यों नहीं प्राप्त करना चाहती हो । अथवा यदि इन सवों से भिन्न व्यक्ति द्वारा प्राप्य सुख प्रभाव तथा लोक की सम्पत्ति तुम प्राप्त करना चाहती हो या इस जन्म में या जन्मान्तर में सुख को प्राप्त करना चाहती हो तो ॥३२८-३२९॥ तुम्हारे पिता की ही सम्पत्ति है, जो सभी देवताओं को निवेदित किया गया है । तुम जिस पति को प्राप्त करने के लिए क्लेश उठा रही हो वह फल हीन वृक्ष के समान है ॥३३०॥ प्राय: अत्यन्त दुर्लभ तथा समर्थ वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है । पुत्रि ! अपने स्थान का विनियोग करने वाला होने के कारण वह भी प्राप्त हो जाता है ॥३३१॥ मुनियों के द्वारा इस प्रकार से कहने पर पार्वती मुनियों पर क्रुद्ध हो गयीं । वह क्रोध से आँखें लाल करके कहने लगी । उस समय उसके ओठ काँप रहे थे ॥३३२॥ **देवी ने कहा**— दुराग्रह की न तो कोई नीति होती है और न तो व्यसन का कोई नियन्त्रण है । विपरीत अर्थ को जानने वालों को कोई सन्मार्ग पर कौन चला सकता है ?॥३३३॥ आपलोग मुझे इस प्रकार की ही दुष्प्रज्ञा तथा असद्ग्रहप्रिया समझें । मेरे विषय में विचार करने की कोई जरुरत नहीं है, क्योंकि मैं अभिमानिनी हूँ ॥३३४॥ आपलोग तो प्रजापति के समान सर्वज्ञ हैं । निश्चित रूप से जगत् के स्वामी शिव को नहीं जानते हैं॥३३५॥ वे अजन्मा ईशान (सम्पूर्ण जगत् के नियामक) अव्यक्त तथा असीम महिमा सम्पन्न हैं । उनके रहस्यात्मक कर्मों के सद्भाव को कोई नही जानता है ॥३३६॥ उनको यथार्थ रूप से श्रीहरि और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी नहीं जान पाते हैं । उनका स्वाभाविक ऐश्वर्य सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त है ॥३३७॥ वह समस्त जीवों को ज्ञात हैं, फिर भी उसको

प्रकटं सर्वभूतानां तदप्यथ न वित्थ किम् । कस्यैतद्गगनंमूर्तिः कस्याग्निः कस्य मारुतः ॥३३८॥
कस्य भूः कस्य वरुणः कश्चंद्रार्कविलोचनः । कस्यार्चयंति लोकेषु लिंगंभक्त्या सुरासुराः ॥३३९॥
यच्च ब्रह्मेश्वरा देवा विष्णिवन्द्राद्या महर्षयः । प्रभावं प्रभवं वापि तेषामपि न वित्थकिम् ॥३४०॥
अदितेः कश्यपाज्जाता देवा नारायणादयः । मरीचेः कश्यपः पुत्रो ह्यदितिर्दक्षपुत्रिका ॥३४१॥
मरीचिश्चापि दक्षश्च पुत्रौ तौ ब्रह्मणः किल। ब्रह्मा हिरणमयादंडादेव सिद्धविभूतिकः ॥३४२॥
कस्य प्रादुरभूद्ध्यानात्प्राकृतः प्राकृतांशकः । अथ नारायणेनैव स्वकीयेच्छासमाश्रयात्॥३४३॥
तत्प्रेरितः प्रयात्वेष जन्मनारायणात्मकम् । सापि कर्मण एवोक्ता प्रेरणा विवशात्मनाम् ॥३४४॥
यथोन्मादादिदुष्टस्य मतिरेवहि सा भवेत्। इष्टानेव पदार्थान् वै विपरीतान् हि मन्यते॥३४५॥
लोकस्य व्यवहारेषु दृष्टेषु हसते सदा। धर्माधर्मफलप्राप्तौ विष्णुमेव निबोधत॥३४६॥

विदध्वमित्थं मुनयोऽसकृच्च मे गिरं गिरीशश्रुतिभूमिसन्निधौ ।
उत्कृष्टकेदारइवावनीले सुबीजमुष्टिं सुफलाय कर्षकाः ॥३४७॥

ते तां श्रुत्वा हितां रम्यां प्रक्रमात्प्रक्रमक्रियाम्। वाचं वाचांपतिप्रख्याः प्रोचुश्च स्मितसुन्दराः ॥३४८॥

मुनय ऊचुः

जाते लोकविधाने तु सत्यं तत्कार्यमुत्तमम्। प्रायः प्रालेयशैलस्य शंकातत्कालरूपिणः ॥३४९॥
सत्यमुत्कंठिताः सर्वे ये ये कार्यार्थमुद्यताः । तेषां त्वरंते चेतांसि किंतु नाममहात्मनाम्॥३५०॥
लोकयात्रानुगंतव्या विशेषेण विवक्षितैः। यतस्तद्धर्ममेधंते तत्प्रामाण्यं परे धृताः ॥३५१॥

आपलोग नहीं जानते हैं । यह आकाश अग्नि तथा वायु किसकी मूर्ति (शरीर) है पृथिवी और जल भी किसके शरीर हैं । चन्द्रमा और सूर्य किसके नेत्र हैं ? समस्त लोकों में देवता एवं असुर किसके लिङ्ग की भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं ॥३३९॥ ब्रह्मा आदि देवता विष्णु, इन्द्र, यम महर्षिगण उनके ही प्रभाव से उत्पन्न हैं, क्या इस बात को भी आपलोग नहीं जानते हैं ?॥३४०॥ नारायण आदि देवता आदिति और कश्यप के पुत्र हैं । कश्यप महर्षि मरीचि के पुत्र हैं, और अदिति दक्ष की पुत्री हैं ॥३४१॥ मरीचि तथा दक्ष ये दोनों ब्रह्मा के पुत्र हैं । हिरण्मय अण्ड से ब्रह्मा की विभूति है ॥३४२॥ किसके ध्यान से प्राकृत तथा प्राकृतांश पदार्थों की उत्पत्ति होती है ? नारायण ही अपनी इच्छा से ॥३४३॥ सम्पूर्ण जन्मों को ग्रहण करते हैं । वह कर्माधीनों के इच्छा भी कर्मवशात् होती है ॥३४४॥ जिस तरह उन्माद इत्यादि दोष से दूषित व्यक्ति की बुद्धि ही दूषित होती है उसके कारण वह अभिप्रेत पदार्थों को भी विपरीत ही समझने लगता है ॥३४५॥ वह सदा लौकिक व्यवहारों को देखकर हँसता है । इष्ट और अनिष्ट फल की प्राप्ति का कारण आपलोग विष्णु को ही जानें ॥३४६॥ हे मुनियों ! आपलोग इस तरह शङ्कर के श्रवण की भूमि रूप मेरे सन्निकट बार-बार कहते रहें । उत्तम खेत में डाले गये सुन्दर बीज से सुन्दर फल ही किसान प्राप्त करते हैं॥३४७॥ वे मुनिगण आदि से अन्त तक पार्वती की मनोहर वाणी को सुनकर जो वाणी बृहस्पति की वाणी के समान युक्ति युक्त थी मनोहर मुस्कान करते हुए कहने लगे ॥३४८॥ **मुनियों ने कहा—** लोक का विधान हो जाने पर तो वह कार्य उत्तम ही होता है, प्रायः हिमवान पर्वत की शङ्का तत्कालानुरूप ही थी ॥३४९॥ जो लोग कार्य करने के लिए उद्यत हैं, वे तो शीघ्रता कर रहे हैं, वे महात्मागण अपने अन्तःकारण में शीघ्रता करना चाहते हैं॥३५०॥ विशेष रूप से प्रख्यात पुरुषों के द्वारा तो लौकिक विधान का अनुसरण किया ही जाना चाहिए; क्योंकि उन धर्मों की वृद्धि होती है और दूसरे लोग जो उनका अनुसरण करने वाले होते हैं, वे उनको प्रमाण मानते

इत्युक्ता मुनयो जग्मुस्त्वरितास्तुहिनाचलम्। तत्र ते पूजितास्तेन हिमशैलेन सादरम् ॥३५२॥
ऊचुर्मुनिवराः प्रीताः स्वल्पकं तु त्वरान्विताः ।

मुनय ऊचुः

देवो दुहितरं साक्षात्पिनाकी तव मार्गते ॥३५३॥
तच्छीघ्रं पावयात्मानमाहुत्येवानले हुतम् । कार्यंहि तच्च देवानां सुचिरं परिवर्तते ॥३५४॥
जगदुद्धाराणायैष विधातव्यः समुद्यमः । इत्युक्तस्तु तदा शैलो हर्षविशवशान्मुनीन् ॥३५५॥
असमर्थोभवद्वक्तुमुत्तरंप्रार्थयन्निव । ततो मेना मुनीन्वंद्य प्रोवाच स्नेहविक्लबा ॥३५६॥
दुहितुस्तान्मुनींश्चैव वचनं स्वयमर्थवत्।

मेनोवाच

यदर्थं दुहितुर्जन्म चेच्छंत्यपि महाफलम् ॥३५७॥
तदेवोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव सांप्रतम् । कुलजन्मवयोरूपविभुत्वैस्सहितोपि यः ॥३५८॥
वरस्तस्यापि नाहूय सुता देया ह्ययाचतः । दिग्वासा जटिलः शूली दग्धकामोपि कामदः॥३५९॥
स तु मत्सुतया घोरः कथं नाम उपास्यते ।

मुनय ऊचुः

ऐश्वर्यमवगच्छस्व शंकरस्य सुरासुराः ॥३६०॥
आराध्यमानपादाब्जयुगलाश्च सुनिर्वृताः । यस्योपयोगि यद्रूपं तेन तत्प्रार्थ्यते चिरम् ॥३६१॥
घोरं तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्वृता। यत्सा व्रतानि दिव्यानि नयिष्यति समापनम् ॥३६२॥
तदत्रावहिता तावदस्मास्वेव भविष्यति । इत्युक्त्वा गिरिणा सार्द्धं ययुर्यत्रास्तिशैलजा ॥३६३॥

हैं॥३५१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** यह कहकर वे मुनिगण शीघ्र ही हिमालय के पास गये । वहाँ पर हिमालय ने उन लोगों की आदर पूर्वक पूजा की ॥३५२॥ शीघ्रता करने के कारण मुनियों ने थोड़ी बातें की । आपकी पुत्री को पिनाकधारी भगवान् शिव प्राप्त करना चाहते हैं ॥३५३॥ अतएव शीघ्र ही अग्नि में प्रदत्त आहुति के समान आप अपने को पवित्र बना लें । उससे देवताओं का वहुत बड़ा कार्य होने वाला है ॥३५४॥ जगत् का उद्धार करने के लिए आपको यह कार्य अवश्य करना चाहिए । इसतरह से कहे जाने पर हर्षातिरेक के कारण मुनियों को उत्तर नहीं दे सके । उसके बाद हर्ष से परिपूर्ण मेना ने मुनियों की वन्दना करके कहा ॥३५५-३५६॥ उन मुनियों से उन्होंने अपनी पुत्री विषयक सार्थक बातें की । **मेना ने कहा—** जिसके लिए महाफलवान पुत्री के जन्म की कामना की जाती है ॥३५७॥ वह सव कुछ इस समय क्रमशः प्राप्त हो गया है । कुल, जन्म, अवस्था, रूप तथा ऐश्वर्य सम्पन्न ही॥३५८॥ वर होता है उसको बिना बुलाये विना याचना किए ही पुत्री का दान करना चाहिए। वे दिग्बर, जटाधारी, काम को जलाने वाला तथा दूसरों की कामना को पूरा करने वाले हैं ॥३५९॥ उनकी मेरी पुत्री घोर उपासना के द्वारा क्यों उपासना करती है । **मुनियों ने कहा—** जिनके दोनों चरणों की उपासना देवता और असुर करके अपनी कामनाओं को पूर्ण कर लेते हैं, उन भगवन् शिव के ऐश्वर्य को जानो । जिसके लिए जो उपयोगी होता है, वह उसी की उपासना करता है ॥३६०-३६१॥ भगवान् शङ्कर के उस रूप से संतुष्ट होकर वह बाला उनकी घोर तपस्या करती है । अब वह अपने दिव्य व्रतों का समापन करेगी ॥३६२॥ अतएव सावधान वह हमलोगों के बीच में होगी। यह कहकर वे मुनिगण हिमालय पर्वत के साथ वहाँ गये जहाँ पार्वती तपस्या करती थीं ॥३६३॥ तपस्या के तेज से

जितार्कज्वलनज्वाला तपस्तेजोमयी ह्युमा। प्रोक्ता सा मुनिभिः स्निग्धं मानिन्याह वचोर्थवत्॥३६४॥
नाहं क्षुद्रात्किलेच्छामि ऋते शर्वात्पिनाकिनः। स्थितं च तारतम्येन प्राणिनां परमर्द्धिदम्॥३६५॥
धीरतैश्वर्यकार्याणि प्रमाणमतुलं महत्। यस्मान्नकिंचिदपरं यच्च यस्मात्प्रवर्तते ॥३६६॥
यस्यैश्वर्यमनाद्यंतं तमहं शरणं गता। समः स व्यवसायश्च दीर्घेण विपरीतकः ॥३६७॥
एवं निशम्य ते वाचं देव्या मुनिवरास्तदा। आनंदाश्रुपरीताक्षाः सस्वजुस्तां तपस्विनीम्॥३६८॥
ऊचुश्च परमप्रीताः शैलजां मधुरं वचः।

ऋषय ऊचुः

अत्यद्भुतमहो पुत्रि ज्ञानमूर्तिरिवामला ॥३६९॥
प्रसादयसि नो भावं भवभावप्रतिश्रयात्। ननु विद्मो वयं तस्य देवस्यैश्वर्यमद्भुतम्॥३७०॥
त्वन्निश्चयस्य दृढतां वेत्तुं वयमिहागताः। अचिरादेव तन्वंगि कामस्त्वेष भविष्यति ॥३७१॥
आदित्यस्सप्रभो याति रत्नेभ्यः का द्युतिः पृथक्।
कोर्थो वर्णान्स्वकांस्त्यक्त्वा तथा त्वं गिरिशं विना ॥३७२॥
यामोनेकाभ्युपायेन तमभ्यर्थयितुं वयम्। अस्माकमपि चैषोर्थः सुतरां हृदि वर्तते ॥३७३॥
अतस्त्वमेव सा बुद्धिर्यतो नीतिस्त्वमेव हि। अतो निःसंशयं कार्यं शङ्करोपि विधास्यति ॥३७४॥
इत्युक्त्वा पूजितास्सर्वे मुनयो गिरिकन्यया। प्रययुर्गिरिशं द्रष्टुं प्रस्थं हिमवतो महत् ॥३७५॥
गंगांभ्मः प्लावितात्मानः पिंगा बद्धजटासटाः। भृंगानुयातपाणिस्थमंदारकुसुमस्त्रजः ॥३७६॥

सम्पन्न पार्वती का तेज सूर्य और अग्नि से भी अधिक था। मुनियों के द्वारा मधुर वाणी कहे जाने पर स्वाभिमानिनी उमाने सार्थक वाणी कहा ॥३६४॥ मैं शिव से भिन्न किसी दूसरे क्षुद्र को नहीं प्राप्त करना चाहती हूँ। वे ही सवों के भीतर तारतम्य रूप से स्थित हैं और पापियों क कल्याण करने वाले हैं ॥३६५॥ वे ऐश्वर्यमय कार्यों को धारण किए हैं। उनका प्रमाण अतुलनीय और महान् है। उनसे भिन्न कोई भी दूसरा वस्तु नहीं हैं जिससे कोई वस्तु प्रवर्तित होती हो। जिनका ऐश्वर्य अनादि और अनन्त है, मैं उन्हीं के शरणागत हूँ। वे सवों के प्रति समदर्शी हैं तथा व्यवसाययुक्त हैं। दीर्घ काल से विपरीत है ॥३६७॥ पार्वती की इस तरह की वाणी को सुनकर उन दिव्य मुनिश्रेष्ठों की आँखों में आनन्दाश्रु भर गया तथा उस तपस्विनी का उन लोगों ने आलिङ्गन किया ॥३६८॥ अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उन लोगों ने पार्वती से मधुर वाणी में कहा **ऋषियों ने कहा—** पुत्रि ! तुम अत्यन्त विमल ज्ञान की मूर्ति के समान हो॥३६९॥ भगवान् शिव में भक्तिभाव से युक्त होने के कारण हमारी भावनाओं को प्रसन्न कर रही हो। हमलोग भगवान् शिव के अद्भुत ऐश्वर्य को जानते हैं ॥३७०॥ तुम्हारे निश्चय की दृढता को जानने के लिए हमलोग यहाँ आये हैं। हे तन्वंगि ! शीघ्र ही तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी ॥३७१॥ सूर्य प्रभा के साथ ही रहते है, उनसे पृथक् रत्नों की कांति का क्या महत्त्व हैं ? अपने वर्ण का परित्याग करने से कौन सा लाभ है ? उसीतरह शङ्कर के विना तुम्हारा क्या महत्त्व है ॥३७२॥ हमलोग अनेक उपायों के द्वारा उन भगवान् शिव की प्रार्थना करने के लिए जा रहे हैं। इस समय हमलोगों के भी हृदय में यही प्रयोजन (इच्छा) है ॥३७३॥ अतएव तुम ही नीति सम्पन्न बुद्धि स्वरूपिणी हो। अतएव विना संशय के तुम्हें इस कार्य को करना चाहिए और शङ्करजी भी ऐसा ही करेंगे ॥३७४॥ इसतरह से कहकर तथा पार्वतीजी के द्वारा पूजित सभी ऋषिगण शङ्करजी का दर्शन करने के लिए हिमालय के महान शिखर पर चले गये ॥३७५॥ वे लोग गङ्गाजल में स्नान किए थे, अपनी पीली जटाओं को बाँधे हुए थे। वे अपने

संप्राप्य तु गिरेः प्रस्थं ददृशुः शङ्कराश्रमम् । प्रशांताशेषसत्त्वौघं पर्यस्तिमितकाननम् ॥३७७॥
निःशब्दक्षोभसलिलप्रयातं सर्वतोदिशम् । तत्रापश्यंस्ततोद्वारि वीरकं वेत्रपाणिनम् ॥३७८॥
तमेते मुनयः पूज्या विनीताःकार्यगौरवात् । ऊचुर्मधुरभाषाभिस्तेवाचं वाग्मिनां वराः ॥३७९॥
द्रष्टुं वयमिहायाताः शङ्करं गुणनायकम् । त्रिलोचनं विजानीहि सुरकार्यप्रचोदिताः ॥३८०॥
त्वमेव नो गतिस्तत्र यथाकालानतिक्रमः । स्यात्प्रार्थनैषा प्रायेण प्रतीहारमयी प्रभो ॥३८१॥
इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात्तानुवाच ह । सवनस्यापरां संध्यां कर्तुं मदाकिनीं गतः ॥३८२॥
क्षणेन भविता विप्रास्ततो द्रक्ष्यथ शूलिनम् । इत्युक्ता मुनयस्तस्थुर्यत्नात्कार्यविचक्षणाः ॥३८३॥
गंभीरांबुधरं प्रावृद् तृषिताश्चातका यथा । तथा क्षणेन निष्पन्न समाचारक्रियाविधिम् ॥३८४॥
वीरासनकृतोद्देशं मृगचर्म नियामितम् । ततो विनीतो जानुभ्यामवलंम्व्य महीं मुदा ॥३८५॥
उवाच वीरको देवं प्रणयैकसमाश्रयम् । संप्राप्ता मुनयः सप्त द्रष्टुं त्वां दीप्ततेजसम् ॥३८६॥
विभो समादिश द्रष्टुं ततो ध्यानमिहार्हसि । इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन वीरकेण महात्मना ॥३८७॥
भ्रूभंगसंज्ञया तेषां प्रवेशाज्ञां ददौ तदा । मूर्द्धकंपेन तान्सप्त वीरकोपि महामुनीन् ॥३८८॥
आजुहाव विदूरस्थान्दर्शनाय पिनाकिनः । त्वराबद्धजटास्ते च लंबकृष्णाजिनांबराः ॥३८९॥
विविशुर्वेदिकां दिव्यां गिरीशस्यविभोस्ततः । वद्धपाणिपुटाक्षिप्तनाकपुष्पोत्करास्ततः ॥३९०॥
पिनाकि पादयुगलं वन्द्य नाकनिवासिनः । ततः स्निग्धेक्षिताः संतो मुनयः शूलपाणिना ॥३९१॥

हाथ में पारिजात पुष्प की माला लिए थे । उन पर भौरें मँडरा रहे थे ॥३७६॥ पर्वत के शिखर पर पहुँचकर उन लोगों ने भगवान् शिव के आश्रम का दर्शन किया । वहाँ के सभी जीव प्रशान्त थे । वह वन जैसे बिल्कुल शान्त था॥३७७॥ चारो ओर शब्द रहित था क्षोभ रहित जल प्रवाहित हो रहा था । वहाँ पर द्वार पर उन लोगों ने हाथ में वेत्र धारण किए हुए वीरक को देखा ॥३७८॥ कार्य के गौरव के कारण सभी पूज्य तथा विनम्र बोलने में निपुण उन मुनियों ने मधुर भाषाओं में कहा ॥३७९॥ हमलोग यहाँ पर गुणाग्रगण्य त्रिलोचन शङ्करजी से देवताओं के कार्य के लिए मिलने आये हैं ॥३८०॥ हमलोगों के लिए आप ही गति हैं । ऐसा करे कि समय का अतिक्रमण न हो । हे प्रभो ! यह हमलोगों की प्रतिहार स्वरूपिणी प्रार्थना है ॥३८१॥ मुनियों के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वीरक ने उनका सम्मान करते हुए कहा— भगवान् शिव सवन की दूसर संध्या (मध्याह्न संध्या) करने के लिए मंदाकिनी में गये हैं ॥३८२॥ हे समादरणीय विप्रों ! क्षणभर पश्चात् आपलोग उनका दर्शन कर पायेंगे । इस तरह से कहे जाने पर कार्य निपुण ऋषिगण वहीं बैठ गये ॥३८३॥ और उनकी उसीतरह प्रतीक्षा करने लगे जैसे प्यासे चातक पक्षी वरसाती मेघ की गम्भीर जलधारा की प्रतीक्षा करते हैं । क्षणभर सम्पूर्ण क्रियाओं को सम्पन्न हो जाने पर जब भगवान् शिव मृगचर्म पर वीरासन से बैठे थे उसी समय पृथिवी पर धुटनों को टेककर वीरक ने प्रसन्नता पूर्वक ॥३८४-३८५॥ प्रणाम करके स्नेह के एकमात्र आश्रय शिवजी से कहा— आपका दर्शन करने के लिए देदीप्यमान तेज वाले सात ऋषि आये हैं ॥३८६॥ हे विभो ! आप उनको दर्शन का आदेश दें उसके बाद ध्यान करें; वीरक के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् शिव ने ॥३८७॥ अपने भौहों के इशारे से उन्हें प्रवेश करने के लिए आज्ञा दी । वीरक ने भी अपने शिर को हिलाकर सन्निकट में ही विद्यमान उन महामुनियों को ॥३८८॥ भगवान् शिव का दर्शन करने के लिए बुलाया । जिन लोगों ने शीघ्र ही अपनी जटा बाँध ली थी तथा जिनका कृष्णमृगचर्म का वस्त्र लटक रहा था ॥३८९॥ वे भगवान् शिव की दिव्य वेदी में प्रवेश किये । स्वर्गीय पुष्पों को चढकार हाथ जोड़े हुए वे॥३९०॥

गिरीशं ते ततो दृष्ट्वा ते समं तुष्टवुर्मुदा ॥३९२॥

मुनय ऊचुः

अहो कृतार्थां वयमेव सांप्रतं सुरेश्वरैर्वंदितपादपल्लवम् ।
विलोकयामो गुणगौरवर्द्धिभिः समादिशेः कार्यमशेषरक्षणम् ॥३९३॥

ततः प्रहस्य सर्वज्ञ उवाच मुनिसत्तमान् । भवतां यद्धृदिगतं कार्यं तत्कुरुताधुना ॥३९४॥
इत्युक्ता मुनयस्तूर्णं ययुर्यत्र च शैलजा । बभाषिरे विभागज्ञा गिरिजां गिरिगह्वरे ॥
रम्यं प्रियमनोहारि मा रूपं तपसादह ॥३९५॥
प्रीतस्ते शङ्करः पाणिमेषप्रतिग्रहीष्यति। वयमर्थितवंतस्ते पितरं पूर्वमागताः ॥३९६॥
पित्रा सह गृहं गच्छ वयं यामः स्वमंदिरम् । इत्युक्ता तपसः सत्यं फलमस्तीति चिंत्य सा ॥३९७॥
त्वरमाणा ययौ वेश्म पितुर्दिव्यं सुशोभितम् । सा तत्र रजनीं मेने वर्षायुतसमां सती ॥३९८॥
हरदर्शनसंजातसमुत्कंठा हिमाद्रिजा । ततो मुहूर्त्ते ब्राह्मे तु तस्याश्चक्रुः सुहृत्क्रियाम् ॥३९९॥
नानामंगलसंदोहान्यथावत्क्रमपूर्वकम् । दिव्यमंगलसंयोगान्मंदिरे बहुमंगले ॥४००॥
उपासत गिरिं मूर्त्ता ऋतवः सर्वकामिकाः । वायवः सुखदाःश्चासन्संमार्जनविधौ गिरेः ॥४०१॥
हर्म्येषु श्रीः स्वयं देवीं कृतनानाप्रसाधना । कांतिः सर्वेषु भावेषु ऋद्धिश्च भरणाकुला ॥४०२॥
चिंतामणिप्रभृतयो रत्नाश्शैलं समंततः । उपतस्थुर्लताश्चापि कल्पकाद्यामहाद्रुमाः ॥४०३॥
ओषध्यो मूर्तिमत्यश्च दिव्यौषधिसमन्विताः । रसाश्च धातवश्चैव सर्वे शैलस्य किंकराः ॥४०४॥

स्वर्गलोक निवासी भगवान् शिव के दोनों चरणों की वन्दना किए । उसके बाद त्रिशूलधारी भगवान् शिव ने उन लोगों को प्रेम पूर्वक देखा ॥३९१॥ मुनियों ने शिवजी की प्रसन्नता पूर्वक प्रार्थना की ॥३९२॥ **मुनियों ने कहा—** बड़े-बड़े देवगण जिनके चरण कमलों की वन्दना करते है, उनका दर्शन करके हमलोग कृतार्थ हो गये । गुणों के गौरव के कारण हमलोग दर्शन प्राप्त कर रहे हैं आप सम्पूर्ण कार्यों की रक्षा का आदेश दें ॥३९३॥ उसके बाद जोर से हँसकर सर्वज्ञ भगवान् शिव ने, उन श्रेष्ठ मुनियों से कहा— आपलोगों के हृदय में जो हो, उसे आप लोग सम्पन्न करें ॥३९४॥ इसतरह से कहने पर ऋषिगण वहाँ गये जहाँ पर पार्वतीजी थीं । उस पर्वत की गुफा में विभागों को जानने वाले ऋषियों ने पार्वतीजी से कहा— अब तपस्या के द्वारा अपने मनोहर रूप को जलाओ मत ॥३९५॥ भगवान् शिव प्रसन्न हैं, वे आपका पाणिग्रहण करेंगे । पहले आकर के हमलोगों ने तुम्हारे पिता से भी कहा है॥३९६॥ तुम अपने पिता के साथ घर जाओ हमलोग अपने घर जा रहे हैं । इसतरह से कहे जाने पर पार्वती ने यह निश्चित ही तपस्या का फल है, इसतरह से सोचकर ॥३९७॥ शीघ्र ही अपने पिता के सुन्दर घर में चली गयी। सती पार्वती ने वहाँ पर एक रात्रि को दश हजार वर्ष के समान बिताया ॥३९८॥ पार्वती शङ्करजी का दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित थीं । उसके बाद ब्राह्म मुहूर्त में उनकी सखियों ने सारी क्रियाओं को सम्पन्न किया ॥३९९॥ उनलोगों ने क्रमशः अनेक प्रकार के मङ्गल कार्यों को सम्पन्न किया । अनेक मङ्गलों से युक्त भवन में उन सभी कार्यों को पूरा किया ॥४००॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली मूर्तिमान सभी ऋतुएँ उस समय हिमालय की सेवा कर रही थीं। पर्वत की सफाई करने का काम सुख पूर्वक वायु कर रहे थे ॥४०१॥ उस पर्वत पर चिन्तामणि आदि रत्न भर गये कल्पलता तथा कल्पद्रुम उस पर्वत पर भर गये ॥४०३॥ दिव्य औषधियों से युक्त सभी औषधियाँ मूर्तिमान थीं । उस पर्वतराज के सभी रस तथा धातुगण किंकर हो गये थे ॥४०४॥ आश्रमों में रहने वाले सभी उस शैल के किंकर बन

किंकरास्तस्य शैलस्य व्यग्राश्चाश्रमवर्तिनः। नद्यः समुद्रा निखिलाः स्थावरं जंगमं च यत्॥४०५॥
ते सर्वे हिमशैलस्य महिमानमवर्द्धयन्। अभवन्मुनयो नागा यक्षा गंधर्वकिन्नराः॥४०६॥
शङ्करस्यापि विबुधा गंधमादनपर्वते। सज्जमंडनसंभारास्तस्थुर्निर्मलमूर्त्तयः॥४०७॥
शर्वस्याथजटाजूटे चंद्रखंडं पितामहः। ववंधप्रणयोदारविस्फारितविलोचनः॥४०८॥
कपालमालां विपुलां चामुंडा मूर्ध्नि बध्नती। उवाचगिरिशं काली पुत्रं जनय शङ्कर॥४०९॥
यो दैत्येंद्रकुलं हत्वा मां रक्तैस्तर्पयिष्यति। शौरिर्वतंसिकारत्नं कंठाभरणमुज्ज्वलम्॥४१०॥
भुजंगाभरणं गृह्य सज्जश्शंभोः पुरोभवत्। शक्रोगजाजिनं तस्य वसाभ्यक्ताग्रपल्लवम्॥४११॥
दध्रे सरभसं स्विद्यद्विस्तीर्णमुखपङ्कजम्। वायवश्चववुस्तीक्ष्णास्तीक्ष्णं हिमगिरिप्रभम्॥४१२॥
वृषं विभूषयामासु र्हरयानं मनोजवम्। विरेजुर्नयनान्तस्थाः शंभोः सूर्यानलेंदवः॥४१३॥
स्वां द्युतिं लोकनाथस्य जगतः कर्मसाक्षिणः। चिताभस्मसमाधत्त कपाले रजतप्रभम्॥४१४॥
मनुजास्थिमयीं मालां निवबंध च पाणिना। प्रेताधिपः पुरे दूरे सभयः समवर्तत॥४१५॥
नानाकारमहारत्नभूषणं धनदाहृतम्। विहायोदीप्तसर्पेंद्रकटकेन स्वपाणिना॥४१६॥
कर्णोत्तंसं चकारेशो ह्यमलं तक्षकं स्वयम्। निष्पन्नाभरणं चैव प्रसाध्येशं प्रसाधनैः॥४१७॥
तत्राप्येषा नियमतो ह्यभवन्व्यग्रमूर्तयः। मुमोचाभिनवान्सर्वरम्यशालिरसौषधीन्॥४१८॥
व्याग्रा तु पृथिवी देवी सर्वभावात्मनोरमा। गृहीत्वा वरुणः साक्षाद्रत्नाढ्याभरणानि च॥४१९॥
पुष्पाणि च विचित्राणि नानारत्नमयानि तु। तस्थौ साभरणो देवः सर्वज्ञः सर्वदेहिनाम्॥४२०॥

गये थे। सभी नदियाँ तथा सभी समुद्र तथा सभी स्थावरजंगम जीव उस पर्वत की महिमा को बढा रहे थे। मुनिगण, नाग, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नर भी गन्धमादन पर्वत पर शङ्करजी की सेवा में लग गये। अलङ्कार की सारी सामग्री के साथ वे निर्मल मूर्ति वाले शङ्करजी को सजाने लगे॥४०५-४०७॥ ब्रह्माजी ने शङ्करजी की जटा समूह में चन्द्रमा के खण्ड को बाँधा। उस समय प्रेमातिरेक के कारण उनके नेत्र चमक रहे थे॥४०८॥ शङ्करजी के मूंड पर चामुण्डा देवी कपालों की माला बाँध रही थीं। काली ने शङ्करजी से कहा— हे गिरिश अब आप पुत्र उत्पन्न करें॥४०९॥ जो दैत्येन्द्र के वंश का विनाश करके मुझे खून से तृप्त करेगा। भगवान् विष्णु ने उनके गले में मणिमाला पहना दी॥४१०॥ सर्पों के आभूषण को शिव ने पहले से ही पहन रखा था। इन्द्र ने उनको गजासुर का चमड़ा जिससे वसा चू रही थी उन्हें ओढा दिया॥४११॥ उसको जल्दी से शिवजी ने अपने मुख पर पोत लिया। हवाएँ तीव्र चलने लगीं। हिमालय पर्वत के समान कान्ति वाले तथा मन के सामन वेग वाले नन्दी को शङ्करजी की सवारी के लिए सजाया गया। उस समय सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि भगवान् शिव के नेत्रों के भीतर रहकर सुशोभित हो रहे थे॥४१२-४१३॥ जो लोकों के कर्मों के साक्षी हैं तथा लोकनाथ शिवजी की कान्ति के साथ उनकी अपनी कान्ति मिल गयी थी। शिवजी ने चाँदी के समान चमकते हुए चिता के भस्म को अपने कपाल पात्र में रख लिया॥४१४॥ उन्होंने अपने ही हाथों मनुष्यों की हड्डी की माला को धारण कर लिया प्रेतों के स्वामी यम भयभीत होकर अपने नगरी में दूर ही रहे॥४१५॥ अनेक प्रकार के रत्नों से बने आभूषण को कुबेर लाये थे उसको छोड़कर अपने हाथ से शिवजी ने उग्र विष वाले सर्प का कड़ा पहन लिया॥४१६॥ उन्होंने स्वयं चमकते हुए तक्षकों को अपना कुण्डल बनाया। सारे आभूषणों से शिवजे को सजाकर॥४१७॥ उसमें भी इन सबों के नियमानुसार सब व्यग्र हो गये और उन्होंने सभी मनोहर नवीन रसों तथा औषधियों को त्याग दिया॥४१८॥ घबरायी हुयी जल्दी से पृथिवी देवी ने

ज्वलनश्चापि दिव्यानि हैमान्याभरणानि च । जातरूपपवित्राणि प्रयतः समुपस्थितः ॥४२१॥
वायुर्ववौ च सुरभिः सुखसंस्पर्शनो विभुम् । छत्रं चंद्रकरोद्दामं हासितं च शतक्रतुः ॥४२२॥
जग्राह मुदितः श्रीमान् बाहुभिर्वज्रभूषणः । जगुर्गंधर्वमुख्याश्च ननृतु श्चाप्सरोगणाः ॥४२३॥
वादयन्तोतिमधुरं जगुर्गंधर्वकिन्नराः । मुहूर्तादृतवस्तत्र जगुश्च ननृतुश्च वै ॥४२४॥
चपला श्च गणास्तस्थुर्लोडयन्तो हिमाचलम् । उपविष्टः क्रमाद्धाता विश्वकृद्भगनेत्रहा ॥४२५॥
चकारौद्वाहिकं कृत्यं पत्न्या सह यथोदितम् । दत्तार्घ्योगिरिराजेन सुरबृंदैर्विनोदितः ॥४२६॥
अवसत्तांक्षपां तत्र पत्न्या सह पुरांतकः । ततो गंधर्वगीतेन नृत्येनाप्सरसामपि ॥४२७॥
स्तुतिभिर्देवदैत्यानां विबुद्धो विबुधाधिपः । आमंत्र्य हिमशैलेंद्रं प्रभाते जायया सह ॥४२८॥

जगाम मंदरगिरिं वायुवेगेन शृंगिणा ।
ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमया रतिमनुभूतभूधरः ॥४२९॥
सबांधवो भवति हि कस्य नो मनो विशृंखलं जगति हि कन्यकापितुः ।
पुरोद्यानेषु रम्येषु विविक्तेषु वनेषु च ॥४३०॥

सुरक्तहृदयो देव्या विजहारभगाक्षिहा । ततो बहुतिथे काले पुत्रनाम्ना गिरेः सुता ॥४३१॥
सखीभिः सहिता क्रीडां चक्रे कृत्रिमपुत्रकैः । कदाचिद्गंधतैलेन गात्रमभ्यज्यशैलजा ॥४३२॥
चूर्णैरुद्वर्तयामास मलेनापूरितां तनुम् । तदुद्वर्त्तनकं गृह्य नरंचक्रे गजाननम् ॥४३३॥
पुरुषं क्रीडती देवी तच्चाप्यक्षिपदंभसि । जाह्नव्या शिवया सख्या ततः सोभूद्बृहत्तनुः ॥४३४॥

वरुण देव के द्वारा लाये गये रत्न निर्मित आभूषणों को लेकर ॥४१९॥ अनेक रत्नों से निर्मित अद्भुत पुष्पों को लेकर शिवजी को सजाया । अलङ्कारों से भूषित सबों के विषय में सब कुछ जानने वाले शिवजी खड़े हो गये॥४२०॥ अग्नि भी दिव्य शुद्ध सुवर्ण निर्मित आभरणों को लेकर सावधानी पूर्वक उपस्थित हो गये ॥४२१॥ सुगन्धित तथा सुखद वायु भी वहने लगी । चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ कान्ति वाले को ॥४२२॥ जो अनेक हीरों से समलंकृत था उसको प्रसन्नता पूर्वक इन्द्र ने धारण किया । प्रधान गन्धर्व गायन करने लगे और अप्सरायें गीत गाने लगीं ॥४२३॥ अत्यन्त मधुर वाद्य बजाकर गन्धर्व और किन्नर सङ्गीत कर रहे थे । मुहूर्त भर ऋतुओं ने भी वहाँ गाया और नृत्य किया ॥४२४॥ शिव के चञ्चल गणों ने हिमालय को मथ दिया । क्रमशः विश्व स्रष्ट ब्रह्मा तथा भग देवता के नेत्र को विनष्ट करने वाले शिवजी बैठ गये ॥४२५॥ और अपनी पत्नी के साथ सम्पूर्ण वैवाहिक कृत्य को सम्पन्न किए । हिमालय ने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया शिवजी से देवताओं ने मनोविनोद किया ॥४२६॥ त्रिपुर का विनाश करने वाले शिवजी उस रात्रि को अपनी पत्नी के साथ वहीं निवास किए । उसके बाद गन्धर्वों के गीत तथा अप्सराओं के नृत्य, देवों तथा दैत्यों की स्तुति के शब्दों को सुनकर देवाधिप शिवजी जगे । प्रातःकाल हिमालय से विदा लेकर शिवजी प्रातःकाल अपनी पत्नी के साथ ॥४२७-४२८॥ नन्दी के द्वारा वायु के वेग से मन्दराचल पर्वत पर चले गये । पार्वती के साथ भगवान् शिव के चले जाने पर हिमालय ने प्रसन्नता का अनुभव किया ॥४२९॥ संसार में किस कन्या के पिता का मन अपने बान्धवों के साथ विशृंखल (अव्यवस्थित) नहीं होता है ? भगवान् शिव अत्यन्त प्रेम पूर्वक पार्वतीजी के साथ नगर के मनोहर उद्यानों में तथा एकान्त वनों में विहार किये । उसके बाद पार्वतीजी ने पुत्र के नाम से ॥४३०-४३१॥ कृत्रिम पुत्रों के द्वारा अपनी सखियों के साथ क्रीडा किया । एक बार पार्वतीजी ने अपने शरीर में सुगन्धित तेल लगाकर मैल से भरे हुए अपने शरीर में चूर्णों का उबटन लगाया । उस

कायेनातिविशालेन जगदापूरयत्तदा । पुत्रेत्युवाच तं देवी पुत्रेत्युचे च जाह्नवी ॥४३५॥
गांगेय इति देवैस्तु पूजितोभूद्गजाननः । विनायकाधिपत्यं च ददावस्य पितामहः॥४३६॥
पुनः सा क्रीडती चक्रे तरुं च वरवर्णिनी । मनोज्ञमंकुरं रूढमशोकस्य शुभानना ॥४३७॥
वर्द्धयास तं चापि कृतसंस्कारमंगलम् । बृहस्पतिमुखै विप्रैर्दिवस्पतिपुरोहितैः ॥४३८॥
ततो देवैः समुनिभिः प्रोक्ता देवीत्विदं वचः । अधुना दर्शिते मार्गे मर्यादां कर्तुमर्हसि ॥४३९॥
फलं किं भविता देवि कल्पितैस्तरुपुत्रकैः । इत्युक्ता हर्षपूर्णांगी प्रोवाचाति शुभां गिरम्॥४४०॥
एकं निरुदके ग्रामे यःकूपं कारयेद्बुधः । बिंदौ बिंदौ च तोयस्य सवसेद्वत्सरं दिवि ॥४४१॥
दशकूपसमावापी दशवापीसिमो ह्रदः । दशह्रदसमा कन्या दशकन्यासमो द्रुमः ॥४४२॥
एषा वै शुभमर्यादा नियतां लोकभाविनी । इत्युक्तास्तु ततोविप्रा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥४४३॥
जग्मुः स्वमंदिराण्येव भवानीं वंद्यमातरम् । गतेषु तेषु देवोपि शङ्करः पर्वतात्मजाम् ॥४४४॥
पाणिनालम्ब्यमानेन स्वमावासमगच्छत । चित्तप्रसादजननं प्रासादाट्टालगोपुरम् ॥४४५॥
लंबमौक्तिकदामानं मालिकाकुलवेदिकम् । सुनद्धकलधौतं च कीडागृहमनोगतम् ॥४४६॥
प्रकीर्णकुसुमामोदमत्तालिकुलकूजितम् । किन्नरोद्गीतसंगीतगृहांतरिताभित्तिकम् ॥४४७॥
सुगंधिधूपसंघातं मनः प्राप्यमलक्षितम् । क्रीडामयूरनारीभिर भितोरभसार्पितम्॥४४८॥

उबटन को लेकर गजानन नामक मनुष्य को बना दिया ॥४३२-४३३॥ और शिवा नामक सखी के साथ पुरुष क्रीडा करती हुयी पार्वती ने उस पुरुष की मूर्ति को जाह्नवी में फेंक दिया । उसके वाद उस पुरुष का शरीर बड़ा हो गया॥४३४॥ उसने अपने विशाल शरीर से जगत् को भर दिया । उसको पार्वती और गङ्गा दोनों ने पुत्र कहा॥४३५॥ देवताओं ने उस पुरुष को गाङ्गेय कहा इस तरह वे गजानन पूजित हुए । ब्रह्माजी ने उस पुरुष को विनायकों का स्वामी वना दिया ॥४३६॥ फिर क्रीडा करती हुयी सुन्दर मुखवाली पार्वतीजी ने सुन्दर अङ्कुर से युक्त अशोक वृक्ष को बनाया ॥४३७॥ और इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति के द्वारा उसका संस्कार मङ्गल कराकर उसको बड़ा किया॥४३८॥ उस समय देवताओं और मुनियों ने पार्वतीजी से कहा आप शास्त्रविहित मर्यादा के अनुसार कार्यों को करें ॥४३९॥ हे देवि ! इन कल्पित पुत्रों से आपको कौन सा लाभ होने वाला है ? इसतरह से कहने पर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करती हुयी पार्वतीजी ने कहा ॥४४०॥ जो व्यक्ति जल रहित ग्राम में एक कूप बनवाता है तो उसमें जितनी बूंद जल होता है, उतने वर्ष तक वह स्वर्ग में निवास करता है ॥४४१॥ दश कूपों के फल के समान बावली निर्माण का फल होता है । दश वापी के फल के समान एक सरोवर के बनाने का फल होता है । दश सरोवर के फल के समान एक कन्या उत्पन्न करने का फल होता है तथा दश कन्या के समान एक वृक्ष के लगाने का फल होता है ॥४४२॥ यही लोक की मङ्गलमयी मर्यादा है । जो लोक कल्याण करने वाली है । इसतरह से कहने पर बृहस्पति इत्यादि ब्राह्मण ॥४४३॥ जगन्माता पार्वती की वन्दना करके चले गये । उन सबों के चले जाने पर शङ्करजी पार्वतीजी को ॥४४४॥ अपने हाथ से पकड़कर अपने निवास स्थान पर चले गये । वह भवन मन को प्रसन्न करने वाला था अट्टालिकाओं और गोपुर से अलंकृत था ॥४४५॥ मोती की मालाएँ लटक रही थीं वेदियों पर मालाएँ सजी थीं, सोने चाँदी से अलङ्कृत क्रीडा गृह बने थे जो मनोनुकूल थे ॥४४६॥ बिछे हुए पुष्पों की सुगन्धि से आकृष्ट भौंरें गूंज रहे थे । घर की दिवार के बाहर किन्नर गण सङ्गीत गा रहे थे ॥४४७॥ मनोनुकूल सुगन्धि युक्त धूप की सुगन्धि आ रही थी, जिसको मन से जाना जा सकता था, वह दिखायी नहीं पड़ता था । चारो ओर क्रीडा

हंससंघातसंदिष्टस्फटिकस्तम्भतोरणम् । अनाविलमसंभ्रांत्या बहुशः किन्नराकुलम् ॥४४९॥
शुकैर्यत्राभिदृश्यंते पद्मरागविनिर्मिताः । भित्तयो जातिसंभ्रांत्या प्रतिबिंबितमौक्तिकाः ॥४५०॥
तत्राक्षैः प्रियाया देवो विहर्तुमुपचक्रमे । स्वच्छेन्द्रनीलभूभागे क्रीडंतौ यत्र संस्थितौ ॥४५१॥
वपुः सहायतांप्राप्तौ विनोदरसनिर्वृतौ । एवंप्रकीडतोस्तत्र देवीशंकरयोस्तदा ॥४५२॥
प्रादुर्भूतोमहाशब्दः पतितांबरगोचरः । तच्छ्रुत्वा कौतुकाद्देवी किमेतदिति शङ्करम् ॥४५३॥
पर्यपृच्छत्सुरवरं हरं विस्मितपूर्वकम् । उवाच देवो नैतत्तेदृष्टपूर्वं शुचिस्मिते ॥४५४॥
एते गणेशाः क्रीडंते शैलेस्मिन्मत्प्रियाः सदा। तपसा ब्रह्मचर्येण नामभिः क्षेत्रसेवनैः ॥४५५॥
यैरहं तोषितः पूर्वं त एते मनुजोत्तमाः । मत्समीपमनुप्राप्ता मम हृद्याः शुभानने ॥४५६॥
कामरूपा महोत्साहा महारूपगुणान्विताः । कर्मभिर्विस्मयं तेषां प्रयामि बलशालिनाम् ॥४५७॥
सामरस्यास्यजगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः । ब्रह्मचन्द्रेंद्रगंधर्वैस्सकिन्नरमहोरगैः ॥४५८॥
विवर्जितोप्यहं नित्यं नैभिर्विरहितो रमे। हृद्या मे चारुसर्वाङ्गि त एते क्रीडिता गिरौ ॥४५९॥
इत्युक्ता तु तदा देवीत्यक्त्वा तं विस्मयाकुला । गवाक्षांतरमासाद्य प्रेक्षते चकितानना ॥४६०॥
यावंतस्ते कृशा दीर्घा ह्रस्वाः स्थूला महोदराः । व्याघ्रेभवदनाः केचित्केचिन्मेषाजरूपिणः ॥४६१॥
अनेकप्राणिरूपाश्च ज्वालास्याः कृष्णपिंगलाः । सौम्या भीमाः स्मितमुखाः कृष्णपिंगजटास्सदा॥४६२॥

मयूर तथा मयूरी चल रहे थे ॥४४८॥ हंसों का समूह दिखायी पड़ता था । उसके स्तम्भ तथा तोरण स्फटिक से निर्मित थे । उसमें कोई दोष नहीं था और उसमें किन्नरगण चल रहे थे ॥४४९॥ पद्मराग मणि से जिसमें शुक पक्षी बने हुए थे । मोतियों की ही जाति के दिवार में मोती प्रतिबिम्बित हो रही थी ॥४५०॥ वहाँ पर भगवान् शङ्कर पार्वतीजी के साथ द्यूतक्रीडा करने लगे । स्वच्छ इन्द्र नीलमणि के जमीन पर अकेले पार्वती एवं शङ्करजी मनोविनोद करते हुए अक्षक्रीडा कर रहे थे । उन दोनों को छोड़कर वहाँ दूसरा कोई नहीं था ॥४५१-४५२॥ उसी समय आकाश में जोर से शब्द हुआ । उसे सुनकर देवी ने कौतुकवशात् पूछा यह कैसा शब्द है ?॥४५३॥ इस तरह से मुस्कुराते हुए शिवजी से उन्होंने पूछा । **शङ्करजी ने कहा**— हे सुन्दर मुस्कान वाली इसे तुमने पहले नहीं देखा है॥४५४॥ ये सभी गणेश इस पर्वत पर खेल रहे हैं । ये मुझको सदा प्रिय लगते हैं; क्योंकि वे तपस्वी हैं तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं तथा इस क्षेत्र की सेवा करते हैं ॥४५५॥ जिन मुनष्यों ने मुझे पूर्व काल में प्रसन्न किया था वे ही ये हैं । हे शुभानने ये मेरे सामीप्य को प्राप्त किए हैं और मेरे प्रिय हैं ॥४५६॥ ये अपनी इच्छा के अनुसार रूप को बना लेते हैं, महोत्साही हैं तथा महान् रूप तथा गुण से सम्पन्न हैं । इन बलवानों के कर्म से मैं विस्मित हूँ॥४५७॥ ये इस जगत् की समरसता, सृष्टि तथा संहार करने में समर्थ हैं । ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र तथा गन्धर्व, किन्नर तथा महोरगों (महासर्पो) से ॥४५८॥ रहित भी होकर मैं इन सबों के बिना नही प्रसन्न रहता हूँ । हे सर्वाङ्ग सुन्दरि ! ये मुझको प्रिय हैं तथा इस पर्वत पर क्रीडा करते हैं ॥४५९॥ इस तरह से कहे जाने पर पार्वतीजी भगवान् शिव को छोड़कर खिड़की पर आयीं आश्चर्यित होकर उन सबों को देखने लगीं ॥४६०॥ उन सबों में कोई दुबला, कोई लम्बा, कोई छोटा, कोई मोटा, कोई बड़ा पेट वाला, कोई व्याघ्र के समान मुख वाला, कोई हाथी के समान मुख वाला, कोई भेडे के समान, तो कोई बकरे के समान रूप वाला था ॥४६१॥ उनका रूप अनेक प्राणियों के समान था, उनके मुख से ज्वाला निकलती थीं तथा वे काले और पीले थे । कोई सौम्य था, कोई भयङ्कर था, कोई मुस्कुराता था, उनकी जटाएँ काली और पीली थीं ॥४६२॥ उनका मुख अनेक पक्षियों का था एवं मुख अनेक प्रकार

नानाविहंगवदना नानाविधसुराननाः । कौशेयचर्मवसना नग्नाश्चान्ये विरूपिणः ॥४६३॥
गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुवक्त्रेक्षणोदराः । बहुपादा बहुभुजा दिव्यनानास्त्रपाणयः ॥४६४॥
अनेककुसुमापीडानानाव्याकुलभीषणाः । कृतनानायुधधरा नानाकवचभूषणाः ॥४६५॥
विचित्रवाहनारूढा दिव्यरूपा वियच्चराः । वीणावाद्यरवोद्घुष्टा नानास्थानकनर्तकाः ॥४६६॥
गणेशांस्तांस्तथा दृष्ट्वा देवी प्रोवाच शङ्करम् ।

देव्युवाच

गणेशाः कतिसंख्याताः किंनामानः किमात्मकाः ॥४६७॥
एकैकशो मम ब्रूहि निष्ठिता ये पृथक्पृथक् ।

शङ्कर उवाच

कोटिकोटिश्चसंख्याता नाना विख्यातपौरुषाः ॥४६८॥
जगदापूरितं सर्वमेभिर्भीमै र्महाबलैः । सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु ॥४६९॥
दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु च । एते विशंति मुदिता नानाहारविहारिणः ॥४७०॥
ऊष्मपा फेनपाश्चैव धूमपा मधुपायिनः । मेदाहारा रुधिरपास्सर्वभक्षा ह्यभोजनाः ॥४७१॥
देवादास्तापसाहारा नानावाद्यरतिप्रियाः । नहि वक्तुमनंतत्वाच्छक्यन्ते हि गणाः पृथक् ॥४७२॥

देव्युवाच

नागत्वगुत्तरासंगः शुद्धांगो मुंजमेखली । मनःशिलेन कल्केन चपलो रंजिताननः ॥४७३॥
भृंगदष्टोत्पलानां च स्रग्दामा मधुराकृतिः । पाषाणशकलोत्तानकांस्यतालप्रवर्तकः ॥४७४॥

का था । कोई रेशमी वस्त्र तो कोई चर्म धारण किए या कोई नङ्गा था, तो कोई कुरुप था ॥४६३॥ किसी का कान गौ के समान, किसी का हाथी के समान था उनके अनेक मुख नेत्र तथा पेट भी अनेक थे । वे अनेक चरणों तथा अनेक भुजाओं वाले । अपने हाथ में दिव्य अस्त्रों को धारण किए थे ॥४६४॥ अपने बालों में अनेक कुसुमों को लगाये थे वे व्याकुल तथा भयङ्कर थे । वे अनेक प्रकार के आयुध वनाकर धारण किए थे और अनेक प्रकार के कवचों और आभूषणों को धारण किए थे । वे अनेक बाहनों पर चढे थे उनका रूप दिव्य था और वे अकाशगामी थे । वे वीणा आदि वाद्यों की ध्वनि कर रहे थे और अनेक प्रकार के नृत्य करते थे ॥४६६॥ उन सभी गणेशों को उस प्रकार से देखकर देवी ने शङ्करजी से कहा **देवी ने कहा**— ये गणेश कितने हैं इनका नाम क्या है ? तथा इनका स्वरूप क्या है ?॥४६७॥ मुझे आप उन सबों को अलग-अलग बतलाइये । **शङ्करजी ने कहा**— इनकी संख्या अनेक करोड़ है और इनका पौरुष विख्यात है ॥४६८॥ इन भयङ्कर तथा महाबलवान् गणेशों से संसार भर गया है। सिद्ध क्षेत्रों में गलियों में, पुराने उद्यानों में तथा गृहों में ॥४६९॥ दानवों के शरीर में बालकों में और उन्मत्तों में (पागलों) ये प्रसन्नता पूर्वक प्रवेश कर जाते हैं और अनेक प्रकार के आहार और बिहार करते हैं ॥४७०॥ गर्मी का पान करने वाले, फेन पीने वाले, धूम पीने वाले, मधुपान करने वाले, मेदस खाने वाले, खून पीने वाले, सव कुछ खाने वाले, निराहार रहने वाले ॥४७१॥ देवताओं को खाने वाले तपस्वियों को खाने वाले तथा अनेक प्रकार के वाद्यों को वजाने वाले तथा रतिप्रिय, इन अनन्त गणों का पृथक्-पृथक् वर्णन नहीं किया जा सकता ॥४७२॥ इसके वाद पार्वतीजी ने पूछा— हे देव, हाथी का चमड़ा ओढे हुए, शुद्ध अङ्गों वाला, मेखला पहने हुए, मनः शिला के रंग से जिसने अपना मुख रङ्ग लिया है ॥४७३॥ जिस पर भौंरे मडरा रहे हैं, ऐसे कमलों की माला पहने हुए तथा

असौ गणेश्वरो देव किं नामा किन्नरानुगः । य एष गणगीतेषु दत्तकर्णो मुहुर्मुहुः ॥४७५॥

शर्व उवाच

स एष वीरको देवि सदा मे हृदयप्रियः । नानाश्चर्यगुणाधारो गणेश्वरगणार्चितः ॥४७६॥

देव्युवाच

ईदृशस्य सुतस्यास्तिममोत्कंठा पुरांतक । कदाहमीदृशं पुत्रं द्रक्ष्याम्यानंददायकम् ॥४७७॥

शर्व उवाच

एष एव सुतस्तेस्तु नयनानंदकारकः । त्वया मात्रा कृतार्थो हि वीरकोपि सुमध्यमे ॥४७८॥
इत्युक्त्ता प्रेषयामास विजयां हर्षणोत्सुकाम् । वीरकानयनायाशु दुहिता भूभृतः सखीम् ॥४७९॥
सावरुह्यत्वरायुक्ता प्रासादादंबरस्पशृः ।

विजयोवाच

गणपं गणमध्यस्थ सूर्यकोटिप्रवर्तनम् ॥४८०॥
एहि वीरक चापल्यात्त्वया देवी प्रतोषिता । त्वामाह्वयति चेत्युक्तस्त्यक्त्वा पाषाणखंडकम् ॥४८१॥
देव्याः समीपमागच्छद्विजयानुगतः शनैः । प्रासादशिखरोत्फुल्लरक्तांबुजनिभद्युतिः ॥४८२॥
तं दृष्ट्वा प्रस्थितानल्पस्वादुक्षीरपयोधरा ।

गिरिजोवाच

पिब क्षीरमिदं वत्स स्रुतं पिब यथेच्छकम् ॥४८३॥
उवाच देवीसस्नेहं गिरा मधुरवर्णया ।
एहि सद्योहि जातोसि मे पुत्रको देवदेवेन दत्तोऽधुनावीरक ॥४८४॥

मनोहर आकार वाला जो पत्थर के टुकडों को उठाकर कांस्य के समान बजा रहा है ॥४७४॥ जिसके पीछे किन्नर चलते हैं, हे देव उसका क्या नाम है ? जो गणों के गीतों को बार-बार सुन रहा है ॥४७५॥ **शङ्करजी ने कहा**— हे देवि ! यह वीरक है और यह मेरे हृदय को प्रिय है । अनेक आश्चर्यमय गुणों वाला तथा गणेश्वर उसकी पूजा करते है ॥४७६॥ **देवी ने कहा**— हे त्रिपुर का विनाश करने वाले ! मैं इस तरह के पुत्र को प्राप्त करना चाहती हूँ । वह कब समय आयेगा जब मैं अपने इस प्रकार के आनंददायी पुत्र को देखूँगी ॥४७७॥ **शिवजी ने कहा**— तुम्हारे नेत्रों को आनन्द देने वाला यह वीरक ही तुम्हारा पुत्र हो जाय । हे सुन्दरि ! तुम जैसी माता को प्राप्त करके यह वीरक भी कृतार्थ हो जायेगा ॥४७८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— इसतरह से शिवजी के कहने पर पार्वतजी अत्यन्त हर्षित होकर विजया नाम की अपनी सखी को शीघ्र वीरक को बुलाने के लिए भेजा ॥४७९॥ आकाश चूंवी अट्टालिका से शीघ्र ही उत्तरकर **विजया ने कहा**— गणों के बीच में विद्यमान, गणों की रक्षा करने वाले तथा करोड़ों सूर्यो को प्रवर्तित करने वाले ॥४८०॥ वीरक से कहा— वीरक तुम आओ तुमने अपनी चञ्चलता से देवी को सन्तुष्ट कर दिया है । वे तुम्हें बुला रही हैं । यह सुनकर पाषाण खण्डों को त्याग कर ॥४८१॥ वह विजया के पीछे-पीछे देवी पार्वती के पास आया । उसकी कान्ति भवन के शिखर पर विकसित कमल के समान थी ॥४८२॥ उसको देखकर अत्यन्त स्वादिष्ट दुग्ध जिनके स्तन में भर गया था ऐसी **गिरिजा देवी ने कहा**— वत्स ! इस दुग्ध का तुम यथेच्छ पान करो जो मेरे स्तन से बहा है ॥४८३॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— देवी ने स्नेह पूर्वक मधुर वाणी में कहा वीरक ! तुम आओ देवराध्य भगवान् शिव ने तुमको अभी-अभी पुत्र रूप में मुझे प्रदान किया

उक्तवत्यङ्क आधाय पर्यष्वजत् तं कपोले चुचुम्बागराणन्दिनी ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय संमार्ज्य गात्राणि चा भूषयामास दिव्यैः स्वयं भूषणैः ॥४८५॥
किंकिणी मेखलानूपुरैः सन्मणिप्रोतकेयूरहारैरमूल्यै र्गुणैः ।
कोमलैः पल्लवैश्चित्रितश्चारुभिर्मंगलैः कंकणैर्दिव्यमंत्रोद्भवैः ॥४८६॥
तस्य शुद्धैस्ततो भूरिभिश्चाकरोन्मिश्रसिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधिम् ।
एवमादाय चोवाच कृत्वा स्रजं मूर्ध्नि गोरोचनापत्रभंगोज्ज्वलैः ॥४८७॥
वत्सवत्साधुना क्रीडसार्द्धंगणैरप्रमत्तो व्रजश्वभ्रवर्जशनै ।
व्यालमालाकुलाः शैलसानुद्रुमादंतिभिर्भग्नशाखाः परंभंगिनः ॥४८८॥
जाह्नवीमंडलक्षुब्धतोयाकुलं माविशेथाबहुव्याघ्रजुष्टे वने ।
वत्ससंख्येषु दुर्गेषु यद्वीरकापुत्रभावाय तां स्वच्छचित्तोजनः ॥४८९॥
प्रार्थितं भव्यमायातभाविन्यसौभाव्यतां सोपि निर्वर्त्यसर्वैर्गुणैः ।
एवमुक्तोनया वीरको मातरं सस्मयन्नाह लीलावशाविष्टधीः ॥४९०॥
एष मात्रा स्वयं मे कृतः कंकणः पत्रकश्चित्रितः पाटलैर्बिंदुभिः ।
चारुपुष्पैरियं मालतीभिः कृता मालिकामे शिरस्याहिता कोमला ॥४९१॥
तोषयामीश्वरीमित्ययं सत्वरं चिन्तयित्वा व्रजद्बाह्यतःक्रीडनम् ।
स्वैर्गुणैः संयुतो वीरको हर्षितो दक्षिणात्पश्चिमं पश्चिमादुत्तरम् ॥४९२॥
उत्तरात्पूर्वमभ्येत्यसख्या युता प्रेक्षते तं गवाक्षांतराद्वीरकम् ।
शैलपुत्री बहिः क्रीडितारं जगत् स्नेहतः पुत्रलुब्धा यतस्सोऽत्रकः ॥४९३॥

है॥४८४॥ इस प्रकार से कहकर पार्वती ने उसे गोद में बैठाकर उसको गले से लगाया और उसकी गालों को चूम लिया । उसके शिर को सूंघकर तथा उसके शरीर को साफ करके अपने हाथों से उसे दिव्य आभूषणों से अलंकृत किया ॥४८५॥ किंकिणी से युक्त करधनी, नूपुर, अच्छे मणियों से जटित केयूर तथा अनर्घ्य रत्नों से उसे भूषित किया । कोमल पल्लवों के जिन पर चित्र बने थे ऐसे मंगलभय कंकण जो दिव्य मन्त्रों से उत्पन्न थे, उससे उसे भूषित किया ॥४८६॥ उसके बाद उन्होंने शुद्ध पीली सरसों से उसके अङ्गों की रक्षा किया । इसतरह से उसको माला पहनाकर उसे गोरोचन की पत्रावली से चित्रित किया और कहा ॥४८७॥ हे वत्स ! इस समय तुम गणों के साथ खेलो और कहीं भी सावधानी पूर्वक जाओ । पर्वतों पर सर्प रहते हैं और हाथी अपने दाँतों से वृक्षों की शाखाओं को तोड़ देते हैं ॥४८८॥ गङ्गा में आवर्त युक्त जल रहता है, और अनेक व्याघ्रों से युक्त वनों में भी तुम मत जाना हे वत्स ! युद्धों में दुर्गों में जो वीरक होते हैं, वे पुत्र भाव के लिए स्वच्छ चित्त वाले होते हैं ॥४८९॥ प्रार्थना करने पर भव्यता आती है वे भी भव्यता के सभी गुणों से परिपूर्ण होते हैं । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** पार्वतीजी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वीरक ने भी लीला बुद्धि से अपनी माता से कहा ॥४९०॥ माँ ने मुझे कंकण स्वयं पहनाया है तथा पाटल (गुलाब) के पराग से मेरी पत्रावली बनाया है । सुन्दर मालती पुष्पों से निर्मित कोनल माला को मेरे शिर पर रखा है ॥४९१॥ अतएव मैं इनको शीघ्र सन्तुष्ट करता हूँ, इस तरह से विचार करके वह बाहर खेलने के लिए गया । अपने गणों के साथ हर्षित वीरक दक्षिण से पश्चिम दिशा में गया और पश्चिम से उत्तर दिशा में गया । उत्तर से पूर्व में आया पार्वतीजी भी अपनी सखी के साथ खिड़की से वीरक को देख रही थीं । शैलपुत्री

मोहमायाति यः स्वल्पवेत्ता जडो मां सविण्मूत्रसंघातदेहोद्वहः ।
द्रष्टुमभ्यंतरे नाकवासेश्वरेष्विन्दुमौलिं प्रविष्टेषु कक्षांतरम् ॥४९४॥
वाहनान्येव मारोहमाणास्ततो लोकपालास्त्रपूगं मुहूर्त्तावधि ।
खड्गएषोविखड्गाकरोनिर्मलः कृंतकः कस्य केनाहतो ब्रूत नः ॥४९५॥
नोभवेद्धस्तदंडेन किं ब्रूमहे भीममूर्त्यङ्गणेनास्ति कृत्यंगिरौ ।
पाशएषोस्ति तेनात्रकोबध्यते मा वृथालोकपालानुगास्तिष्ठत ॥४९६॥
एवमेवैतदित्यब्रुवंस्ते तदा वीक्ष्य देवानुगं वीरकं रक्षकम् ।
प्राह देवी वने पर्वते निर्जराध्यग्निशालामुखे भूतले भूतपाः ॥४९७॥
निर्झरांभोनिपातेषु नोमज्जतात्पुष्पजालावनद्धेषु धामस्वपि ।
प्रोच्चनानाद्रिकुंजावगाहेष्वथो मारुतास्फोटसंरक्षणे कामतः ॥४९८॥
कांचनोत्तुंगशृंगावरोहक्षितौ हैमरेणूत्करासंगपिंगद्युतिः ।
खेचराणां वने चापि रम्ये बभौ रूपसंपत्प्रकारो गणोवासितुम् ॥४९९॥
मंदरे कंदरे चारु वापीतटे कुन्दमंदारपुष्पप्रवालांबुजे ।
सिद्धनारीभि रापीतरूपामृतं विस्तृतैर्नेत्रमात्रैरनुन्मेषिभिः ॥५००॥
वीरकं शैलपुत्री निमेषांतरादस्मरत्पुत्रगृध्नुर्विनोदार्थिनी ।
सोऽपि तादृक् क्षणावाप्तपुण्योदयो यो हि जन्मांतरेऽस्यात्मजत्वं ततः ॥५०१॥
क्रीडतस्तस्यतृप्तिः कथंजायते योऽपि भावाज्जगद्वेधसा तेजसा ।
कल्पितः प्रेक्षणं दिव्यगीतक्षणं नृत्यलोलैर्गणेशैः प्रवृत्यक्षणम् ॥५०२॥

बाहर खेलने वाले जगत् को स्नेह पूर्वक पुत्र के स्नेह के लिए लुब्ध हो जाय ऐसा कौन है ?॥४९२-४९३॥ अल्पज्ञ जीव तो मोहित हो जाता है और मल, मूत्र मांस से युक्त शरीर केवल ढोने का काम करता है । भीतर देखने के लिए देवताओं में भगवान् शिव को दूसरी कक्षा में चले जाने पर ॥४९४॥ वाहनों पर चढ़ता हुआ वीरक लोकपालों के अस्त्र समूह को मुहूर्त भर वे सभी यह खड्ग है, यह विशेष खड्ग है, यह स्वच्छ है । यह किसका कृकर है कह रहा (काटने वाला दाव) । यह बतलाओ ॥४९५॥ भुजदण्ड से काम नहीं चलेगा । इस पर्वत भयङ्कर मूर्ति की कोई आवश्यकता नहीं है । यह पाश है । इससे यहाँ पर किसको बाँधा जाता है ? हे लोकपालो के अनुचर आपलोग यहाँ पर व्यर्थ में न रहें ॥४९६॥ इस तरह से देवानुग रक्षक वीरक को देखकर लोकपालों ने कहा **देवी ने कहा**— पर्वत पर देवताओं की अग्निशाला के सामने तथा भूतल पर जहाँ पर झरने का पानी गिरता हो, वहाँ पर स्नान न करो, तथा पुष्प समूह से घिरे हुए गृहों में भी न जाना अत्यन्त ऊँचे अनेक पर्वतों के कुजों में तथा जहाँ पर वायु तीव्रता से टकराती हो वहाँ पर भी मत जाना किन्तु शीघ्र ही वह वीरक गया ॥४९७-४९८॥ सुवर्ण पर्वत के शिखरों पर चढा, तथा पृथिवी पर भी जहाँ सुवर्ण के पीले-पीले कण थे वहाँ भी गया । तथा आकाशचारियों के मनोहर वन में भी वह रूप सम्पति से सम्पन्न गण के साथ रहने के लिए गया ॥४९९॥ मन्दराचल पर्वत के मनोहर वावलियों के तट पर तथा कुन्द एवं मन्दार पुष्प एवं रक्त कमल वनों में भी गया, जहाँ सिद्धों की अपनी आँखों को बन्द नहीं करने वाली नारियों ने इसके (वीरक) के रूपामृत का पान किया ॥५००॥ पर्वत पुत्री तथा पुत्र को चाहने वाली पार्वतीजी ने अपने मनोविनोद के लिए क्षणभर बाद वीरक को स्मरण किया वीरक भी उसी क्षण पुण्य के उदय हो जाने के कारण

सिंहनादाकुले गंडशैलेज्वलद्रत्नजाले बृहत्सालतालेक्षणम् ।
फुल्लनानातामालालिकालेक्षणं वृक्षमूले विलोलोमरालेक्षणम् ॥५०३॥
स्वल्पपंकेजले पंकजांकेक्षणं मातुरंकेशुभे निष्कलंकेक्षणम् ।
परिक्रीडते बाललीलाविसारी गणेशाधिपो देवतानंदकारी ॥५०४॥
निकुंजेषु विद्याधरोद्गीतशील: पिनाकीवलीलाविलासै:सलील: ।
प्रकाश्यभुवनं गोर्भिस्ततो दिनकरे गते ॥५०५॥
देशांतरं तदापश्चाद्दूरस्थो धरणीधरः । मित्रत्वमस्य सुदृढं हृदये द्योतयन्निव ॥५०६॥
नित्यमाराधितो विप्रैः श्रीमान् विखनसः सुतः। नाकरोत्सवितुर्मेरुरुपकारं पतिष्यतः ॥५०७॥
जनेष्वेषाव्यवस्थेति श्रूयतेस्खलितोह्यधः । दिनेनानुगतो भानुः स्वजनं परिपूरयन् ॥५०८॥
संध्या बद्धांजलिपुटा मुनयोभिमुखा रविम् । यावदध्यासते शीघ्रं निवार्योष्णाभिभाविताम् ॥५०९॥
व्यजृंभताथलोकेस्मिन् क्रमाद्वैभावरं तमः । कुटिलस्येव हृदये कालुष्यं दूषयन्मनः ॥५१०॥
ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके । शयने शशिसंघातरत्नवस्त्रोत्तरच्छदे ॥५११॥
नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडंबके । रत्नैः किंकिणिजालेन लसन्मुक्ताकलापके ॥५१२॥
कमनीयचलल्लीलावितानाच्छादितांबरे । मंदरे मन्दसंचारं गते गिरिसुतायुतः॥५१३॥
तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामिलितकंधरः । शशिमौलिः सितज्योत्स्नास्फारपूरितगोचरः ॥५१४॥

जो दूसरे जन्म में पार्वतीजी का पुत्र बन चुका था ॥५०१॥ उसकी क्रीडा करने से तृप्ति कैसे हो सकती थी ? जो अपने प्रभाव से ब्रह्मा के तेज से जगत् की कल्पना किया दिव्य गीतों के समय चञ्चल गणेशों को देख रहा था, सिंहनाद से व्याप्त पर्वत पर चमकते हुए रत्नों के समूह पर विशाल ताल वृक्ष का विकसित तमाल समूह का वृक्षों की जड़ में चञ्चल हंसों का ॥५०२-५०३॥ जिसमें कीचड़ बहुत कम था ऐसे जल में कमलों का अवलोकन तथा माता पार्वती की गोद में निर्दोष अवलोकन कर रहा था । बाल लीला का विस्तार करने वाले वीरक गणेशों का स्वामी तथा देवताओं को आनन्दित करने वाला था ॥५०४॥ वह निकुञ्जों में विद्याधरों के समान गीत गाने वाला था और शङ्करजी के ही समान आसानी से लीलाएँ करता था । जब संसार को प्रकाशित करके सूर्य डूबने लग गये ॥५०५॥ उसके पश्चात् वे पर्वतराज इसके हृदय स्थित सुदृढ मित्रता को मानो प्रकाशित करते हुए के समान सूर्य से दूर हो गये॥५०६॥ ब्राह्मणों ने ब्रह्मा के पुत्र नित्य अग्नि की आराधना की । गिरते हुए सूर्य की सुमेरु ने सहायता नहीं की॥५०७॥ नीचे जिनका पतन हो जाता है, उन लोगों के भी विषय में यही व्यवस्था सुनी जाती है । सूर्य के पीछे दिन भी अपने जनों को परिपूर्ण करते हुए बीत गया ॥५०८॥ संध्या करने के लिए मुनिजन सूर्य के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये । जब तक संसार में उष्णता दूर ही हो रही थी ॥५०९॥ उसी समय संसार में रात्रि का अन्धकार कुटिल व्यक्ति के मन को दूषित कर देने वाले कलुषता के समान फैल गया॥५१०॥ सर्पों की फणाओं के रत्नों की ज्योति दिवारों में प्रतिविम्बित होने लगी । चन्द्रमा की किरण समूह के समान वस्त्रों वाली शय्या पर ॥५११॥ अनेक रत्नों की कान्ति से सुशोभित वह शय्या इन्द्रधनुष के समान लगती थी । रत्नों की किंकिणी (छोटी घुंघरु) के समूह से मोती की मालायें सुशोभित हो रही थी ॥५१२॥ मनोहर चाँदनी से आच्छन्न वह शय्या थी । जब मन्दराचल पर लोगों का आना जाना कम हो गया उस समय पार्वतीजी के साथ॥५१३॥ पार्वतीजी की वाहुलता से जिनका कंधा सटा हुआ था एसे अपनी ध्वल कान्ति से प्रकाशित करने वाले

गिरिजाप्यसितापांगी नीलोत्पलदलच्छविः । विभावर्या च संपृक्ता बभूवातीव गोमयी ॥५१५॥
तामुवाच ततो देवः क्रीडा केलिकलायुताम् ॥५१६॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गौरीविवाहवर्णनं नामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चौवालिसवाँ अध्याय

शर्व उवाच

शरीरे मम तन्वंगि सिते भास्यसितद्युतिः । भुजंगीवासिताशुभ्रे संश्लिष्टा चंदने तरौ ॥१॥
चंद्रातपेन संपृक्ता रुधिराम्बरसंवृता । रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥२॥
इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकंठा पिनाकिनम् । उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीविकृतानना ॥३॥

देव्युवाच

स्वकृतेन जनःसर्वो जाड्येन परिभूयते । अवश्यमर्थी प्राप्नोति खंडनं शशिमंडनम् ॥४॥
तपोभिर्दीर्घचरितै र्या त्वां प्रार्थितवत्यहम् । तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदे पदे ॥५॥
नैवास्मि कुटिला शर्व विषमा न च धूर्जटे । सविषस्त्वं जगत्ख्यातो व्यक्तदोषाकराश्रयः ॥६॥

भगवान् शिव शयन किए ॥५१४॥ काली-काली कटाक्षों वाली तथा नील कमल के समान सौन्दर्य वाली पार्वतीजी भी रात्रि से संबद्ध अत्यन्त निद्रित हो गयीं । क्रीडा की केली की कला को जानने वाली पार्वतीजी से भगवान् शिव ने कहा ॥५१६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड का गौरीविवाह वर्णन नामक तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४३।।

श्यामवर्ण की पार्वतीजी से भगवान् शिव का मनोविनोद, पार्वतीजी की तपस्या, ब्रह्माजी के वरदान से पार्वतीजी को गौरित्व की प्राप्ति, स्कन्द का जन्म, स्कन्द तारकासुर युद्ध और स्कन्द द्वारा तारकासुर का वध

भगवान् शिव ने कहा— हे सुन्दरि ! मेरे श्वेतवर्ण के शरीर पर श्याम वर्ण वाली तुम उसी तरह से सुशोभित होती हो, जिस तरह श्वेत वर्ण के चन्दन वृक्ष से कोई श्यामवर्ण की नागिन लिपटी हो ॥१॥ चन्द्रमा की कान्ति से संलग्न रक्त वर्ण के वस्त्र को धारण की हुयी तुम कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान मेरे नेत्रों में दृष्टि दोष उत्पन्न करती हो ॥२॥ शङ्करजी के द्वारा ऐसा कहने पर पार्वतीजी ने उनके गले का संस्पर्श त्याग दिया और क्रोध से आँखे लाल-लाल करके तथा अपनी भौहें टेढी करके कहने लगीं ॥३॥ **देवी ने कहा—** कोई भी मनुष्य अपनी जडता के ही कारण अपमानित होता है । अर्थी मनुष्य चन्द्रमा के अलङ्करण को अवश्य प्राप्त करता है ॥४॥ दीर्घकाल तक तपस्या करके मैंने आपको अपने पति के रूप में प्राप्त किया यही कारण है कि आप मेरा पग-पग पर अपमान करते हैं ॥५॥ हे धूर्जटे! हे शर्व! मैं न तो विषमा और न कुटिल बुद्धि वाली हूँ । हाँ आपका ही विष युक्तत्व तथा दोषाकर (चन्द्रमा) युक्तत्व प्रख्यात है ॥६॥ आप ही भग देवता के दाँत और नेत्र का अपहरण करने वाले हैं । आप को तो

त्वं हि मुष्णासि दशनान्नेत्रहंताभगस्य च । आदित्यस्त्वां विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः ॥७॥
मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् । यस्त्वं मामात्थ कृष्णेति महाकालोसि विश्रुतः ॥८॥
यास्याम्यहं परित्यक्तुमात्मानं तपसा गिरिम् । जीवंत्या न मया कृत्यं धूर्तेन परिभूतया ॥९॥
कापालिकेन क्षुद्रेण श्मशाने नित्यवासिना । भूत्या बिलिप्तस्वांगेन मातृमध्यस्थचारिणा ॥१०॥
निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं हरः । उवाचानिष्टसंभ्रांतः प्रचलेनेंदुमौलिना ॥११॥

शर्व उवाच

अगात्मजासि गिरिजे नाहं निंदापरस्तव । चाटूक्तिबुध्या तु मया कृत उन्मादसंश्रयः ॥१२॥
विकल्पः स्वस्थचित्तो तु गिरिजेन मम क्रमात् । यद्येवं कुपिता भीरु तत्त्वाहं न वै पुनः ॥१३॥
नर्मवादी भविष्यमि जहि कोपं शुचिस्मिते । शिरसा प्रणतेनैष रचितस्ते मयांजलिः ॥१४॥
निहीनो ह्यपमानेन निंदितेनैति विक्रियाम् । असतां तु सतां न स्यान्मर्मस्पृष्टो नरः किल ॥१५॥
अनेकैश्चाटुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता । कोपं तीव्रं न तत्याज सतीमर्मणि घट्टिता ॥१६॥
अवष्टब्ध्यमथाच्छिद्य वासः शंकरपाणिना । विपर्यस्तालकावेगाद्गन्तुमैच्छच्च शैलजा ॥१७॥
तस्या व्रजंत्याः कोपेन पुनराह पुरांतकः । सत्यं सर्वैरवयवैस्तनोषि सदृशं पितुः ॥१८॥
हिमाचलस्य श्रृंगस्थमेघजालाकुलं मनः । तथा दुरवगाह्येभ्यो गहनो हि तवाशयः ॥१९॥
काठिन्यमश्मसारेभ्यो वनेभ्यो बहुलां गता । कुटिलत्वं निम्नगाभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि ॥२०॥
संक्रांतं सर्वमेवैतत्तन्वंगि हिमभूधरात् । इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलकन्यका ॥२१॥

द्वादशात्मा भगवान् सूर्य ही जानते हैं ॥७॥ आप ही अपने दोषों से शूल उत्पन्न करते हैं, और मुझ पर दोष लगाते हैं । आपने मुझे काली कहा— किन्तु आप तो महाकाल हैं ॥८॥ मैं पर्वत पर जाकर तपस्या करके अपना प्राण त्याग दूँगी । कपाल धारण करने वाले, क्षुद्र, निरन्तर श्मशान में रहने वाले, अपने शरीर में चिता का भस्म लपेटने वाले तथा मातृकाओं के मध्य में विचरण करने वाले, धूर्त के द्वारा अपमानित होकर मुझे अपने जीवन से कोई भी प्रयोजन नहीं है ॥९-१०॥ क्रोध के कारण पार्वतीजी के तीक्ष्ण वचनों को सुनकर होने वाले किसी अनिष्ट की शङ्का से शङ्करजी ने अपने शिर को कँपाते हुए कहा ॥११॥ हे गिरिजे ! तुम पर्वत पुत्री ही हो । मैंने तुम्हारी निन्दा नहीं कर रहा हूँ । मैं तो प्रेमोन्मत्त होकर इन बातों को चाटुकारिता की बुद्धि से कहा है ॥१२॥ मेरे स्वस्थ चित्त में विकल्प नहीं है । यदि तुम इसतरह से क्रुद्ध होती हो तो फिर मैं ऐसा मजाक नहीं करूँगा । मधुर मुस्कान वाली, क्रोध छोड़ो मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ ॥१३-१४॥ दुष्ट और हीन व्यक्ति भी अपमान तथा निन्दा के कारण विकार युक्त (क्रुद्ध) हो जाता है, सज्जनों को तो मर्मस्पर्शी नहीं होना चाहिए ॥१५॥ इसतरह से अनेक प्रकार से भगवान् शिव द्वारा मनाये जाने पर भी देवी पार्वती ने हृदय से दुःखी होने के कारण अपने तीव्र कोप का परित्याग नहीं किया॥१६॥ उसके बाद शङ्करजी द्वारा हाथों से रोके जाने पर भी उनके हाथों को हटाकर विखरे हुए केशों वाली पार्वती वेग से जाना चाहीं ॥१७॥ वेग पूर्वक जाती हुयी पार्वतीजी से शङ्करजी ने फिर कहा **शङ्करजी ने कहा**— यह सत्य है कि तुम अपने अङ्ग-अङ्ग से अपने पिता के ही समान आचरण करती हो ॥१८॥ हिमालय के शिखर पर स्थित मेघ समूह के समान तुम्हारा मन चञ्चल है और उसी तरह तुम्हारा अन्तःकरण भी अत्यन्त दुरवगाह्य है॥१९॥ तुम्हारा हृदय वज्र से भी अधिक कठोर है, तुम वनों से बहुलता प्राप्त हो, नदियों से भी अधिक कुटिल (टेढी) तथा हिम (वर्फ) से भी अधिक दुःसेवनीय हो ॥२०॥ सुन्दरी ये सारे हिमालय के गुण तुममें आ गये हैं । **पुलस्त्य महर्षि**

कोपकंपितमूर्द्धा सा प्रस्फुरद्दशनच्छदा ।

उमोवाच

स्यात्सर्वं दोषदानेन निंदायां गुणिनो बलात् ॥२२॥
तवापि दुष्टसंपर्कात्संक्रांतं सर्वमेव हि। व्यालेभ्योनेकजिह्वत्वं भस्मनोऽस्नेहवृत्तिता ॥२३॥
हृत्कालुष्यं शशांकोत्थं दुर्बाधत्वं विषादपि। किं चात्र बहुनोक्तेन अलं वाचां श्रमेण ते॥२४॥
श्मशानवासान्निर्भीस्त्वं नग्नत्वात्तवनत्रपा । निर्घृणत्वं कपालित्वाद्दया ते विगता चिरम् ॥२५॥
इत्युक्त्वा मंदिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा । तस्यां व्रजंत्यां देवेश्यां गणैः किलकिला कृता॥२६॥
क्व मातर्गच्छसीत्युक्त्वा रुदद्भिर्धावितं पुनः । विष्टभ्यचरणौ देव्या वीरको वाष्पगद्गदः ॥२७॥
प्रोवाच मातः किन्त्वेतत्क्व यासि कुपितातुरा । अहं त्वामनुयास्यामि व्रजंतीं स्नेहवर्जिताम् ॥२८॥
नोचेत्पतिष्ये शिखराद्गिरेरस्य त्वयोज्झितः । उन्नम्यवदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना ॥२९॥
उवाच वीरकं माता त्वं शोकं पुत्र मा कृथाः। शैलाग्रात्पतितुं नैव न च गंतुं मया सह ॥३०॥
युक्तं ते पुत्र गच्छामि येन कार्येण तच्छृणु । कृष्णेत्युक्ता हरेणाहं स्तंभितास्म्यवमानिता ॥३१॥
साहं तपःकरिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम्। एष स्त्रीलंपटो देवो यातायां मय्यनंतरम्॥३२॥
द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षणम् । यथा न काचित्प्रविशेद्योषित्तत्र हरांतिकम् ॥३३॥
दृष्ट्वा परस्त्रियं चापि वदेथा मम पुत्रक। शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनंतरम् ॥३४॥
एवमस्त्विति देवेशी वीरकोवाच सांप्रतम् । मातुराज्ञामृताहारप्लाविवितांगो गतज्वरः ॥३५॥
जगाम रक्षां स द्रष्टुं प्रणिपत्य तु मातरम्। देवी चापश्यदायांतीं सखीं मातुर्विभूषिताम्॥३६॥

ने कहा— इसतरह से कहे जाने पर पार्वतीजी ने पुनः शङ्करजी से कहा ॥२१॥ उस समय क्रोध के कारण उनका शिर काँप रहा था और ओष्ठ फड़-फड़ा रहा था **उमा ने कहा—** अधिक गुणवानों के सभी दोष मिल ही जाते हैं॥२२॥ दुष्टों का सम्पर्क होने से ये सारी बातें आप में भी हैं । सर्पों से आपको कुटिलता तथा भस्म से स्नेह राहित्य मिला है ॥२३॥ चन्द्रमा से आपको हृदय की कुशलता तथा विष के संपर्क से आपको दुर्बाधता मिली है । बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है, बहुत बोलना व्यर्थ है ॥२४॥ श्मशान में रहने के कारण आप निर्भय हो गये हैं तथा नङ्गे रहने के कारण आप में निर्लज्जता आ गयी है, कपाल धारण के कारण आप में नैर्घृण्य आया है, दया तो आप से चिरकाल से दूर चली गयी है ॥२५॥ यह कहकर पार्वतीजी उस भवन से निकल पड़ीं । पार्वतीजी के जाते समय सभी गण रोने चिल्लाने लगे ॥२६॥ माँ ! कहाँ जा रही हो यह कहकर सब रोते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे । पार्वतीजी के चरणों को पकड़कर वीरक ने भरे कण्ठ से ॥२७॥ कहा माँ यह क्या कर रही हो क्रोध करके कहाँ जा रही हो ? तुम निष्ठुर हो गयी हो । मैं तुम्हारे साथ ही चलूँगा ॥२८॥ तुम यदि मुझे छोड़ दोगी तो पर्वत के शिखर से गिरकर जान दे दूँगा । देवी ने दाहिने हाथ से उसके मुखड़े को ऊपर उठाकर ॥२९॥ वीरक से कहा तुम शोक मत करो । तुम न तो शिखर से गिरना और न मेरे साथ चलो । पुत्र मैं जिस कार्य को करने जा रही हूँ उसे सुनो। शिव ने मुझे काली कहकर मेरा उपहास तथा अपमान किया है ॥३१॥ मैं ऐसी तपस्या करूँगी कि मैं गोरी हो जाऊँ। शिव स्त्री लम्पट है मेरे चले जाने के बाद ॥३२॥ तुम द्वार की रक्षा करना और सावधानी से देखना जिससे कि कोई स्त्री शङ्कर के पास न जाय ॥३३॥ पुत्र किसी स्त्री को देखना तो मुझको बतलाना, उनके बाद जैसा उचित होगा वैसा मैं करूँगी॥३४॥ वीरक ने पार्वतीजी से कहा ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगा। माता की आज्ञा रूपी अमृत के आहार को

कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम् । सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा ॥३७॥
क्व पुत्रि गच्छसीत्युच्चै रालिंग्योवाच देवता । सा तस्याः सर्वमाचख्यौ शङ्करात्कोपकारणम् ॥३८॥
पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसंमिताम् ।

उमोवाच

नित्यं शैलाधिराजस्य देवतात्वमनिंदिते ॥३९॥
सर्वतः सन्निधानं ते मनसातीव वत्सला । अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं त्वयांबिके ॥४०॥
अन्यस्त्री संप्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः । सरहस्ये प्रयत्नेन निषेव्यः सततं गिरौ ॥४१॥
पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयानघे । ततो हं संविधास्यामि यत्क्षमं तदनंतरम् ॥४२॥
इत्युक्ता तां तथेत्युत्क्वा जगाम सा गिरिं शुभा । उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रि सुताद्भुतम् ॥४३॥
अंतरिक्षं समाविश्य मेघमालाविलप्रभम् । भूषणानि ततोन्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी ॥४४॥
ग्रीष्मे पंचाग्निसंतप्ता वर्षासु च जलोषिता। वन्याहारा निराहारा शुष्कस्थंडिलशायिनी ॥४५॥
एवं साधयती तत्र तपः सा च व्यवस्थिता। ज्ञात्वा गतां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रांतरे बली ॥४६॥
अंधकस्य सुतो हृष्टः पितुर्वधमनुस्मरन् । देवान्सर्वान्विजित्याजौ बकभ्राता रणोत्कटः ॥४७॥
आडिर्नामांतरप्रेक्षी सततं चंद्रमौलिनः । आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः ॥४८॥
स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम् । विचिंत्य सोपि च वरं दत्तं कमलयोनिना ॥४९॥

पाकर वह सर्वात्मना संतुष्ट हो गया ॥३५॥ अपनी माता को प्रणाम करके वह रक्षा करने के काम में लग गया । देवी ने देखा कि उनकी माता की सखी अलङ्कृत होकर उनके पास आ रही है ॥३६॥ वह उस पर्वत की देवता थी और उसका नाम कुसुमामोदिनी था । वह भी पार्वती को देखकर स्नेह के कारण व्याकुल हो गयी ॥३७॥ उस देवता ने भी पार्वती का अलिङ्गन करके जोर से पूछा— पुत्रि कहाँ जा रही हो ? पार्वती ने भी शङ्कर से क्रोध करने के समस्त कारणों को बतलाया ॥३८॥ उसके बाद अपनी माता के तुल्य उस देवता से कहा **उमा ने कहा**— हे अनिन्दिते ! तुम इस पर्वतराज की नित्य देवता हो ॥३९॥ आपका यहाँ सर्वत्र सन्निधान बना रहता है, आप मन से अत्यन्त वात्सल्य गुण सम्पन्न हैं, अतएव हे मातः आपको मैं बतला रही हूँ कि आपको क्या करना है ॥४०॥ आपको दूसरी स्त्री के प्रवेश से हर प्रकार से रक्षा करनी चाहिए । प्रयत्न पूर्वक रहस्य में ही रहकर सदा पर्वत की सेवा करनी चाहिए ॥४१॥ हे अनघे ! यदि पिनाकी के पास किसी स्त्री का प्रवेश हो तो आप मुझे बतलायें । उसके बाद ही जो उचित होगा उसे मैं करूँगी ॥४२॥ इसतरह से पार्वतीजी के कहने पर वह देवता भी पर्वत पर चली गयी और पार्वती भी अपने पिता के अद्भुत उद्यान में चली गयीं ॥४३॥ मेघ माला से घिरे अन्तरिक्ष के समान कान्ति वाले उद्यान में प्रवेश करके पार्वती ने भूषणों का परित्याग करके वल्कल वस्त्र को धारण कर लिया ॥४४॥ वह ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि का सेवन करती थीं और वर्षा के दिन में वह जल के भीतर रहती थी । वह वन्य फलों को खाती थी अथवा निराहार रहती थीं । शुष्क वेदी पर सोती थी ॥४५॥ पार्वती इस प्रकार से तपस्या कर रही हैं, इस बात को जानकर अन्धकासुर का पुत्र बलवान् दैत्य अपने पिता के बध का स्मरण करके प्रसन्न हो गया युद्ध में सभी देवताओं को परास्त करके वह सदा इस बात की प्रतीक्षा करता था कि कोई भी शङ्कर को मारने का मौका मिले, उसका नाम आडि था । वह त्रिपुरासुर को मारने वाले शङ्करजी के पास आया ॥४६-४८॥ यहाँ आकर उसने देखा कि द्वार पर वीरक पहरे पर है । उसने ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त वरदान का विचार किया ॥४९॥ असुरों से द्वेष करने वाले शङ्करजी

हतेकिलांधके दैत्ये गिरिशेनासुरद्विषा । आदिश्चकारविपुलं तपः परमदारुणम् ॥५०॥
समागत्याब्रवीद्ब्रह्मा तपसा परितोषितः । किमाडे दानवश्रेष्ठ तपसा प्राप्तुमिच्छसि ॥५१॥
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ।

ब्रह्मोवाच

जातानामिह संसारे विना मृत्युं न युज्यते ॥५२॥
यतस्ततोपि दैत्येंद्र मृत्युः प्राप्यश्शरीरिभिः । इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचांबुजसंभवम् ॥५३॥
रूपस्य परिवर्तो मे यदास्यात्पद्मसंभव । तदामृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरोस्म्यहम् ॥५४॥
इत्युक्तस्तु ततोवाच तुष्टः कमलसंभवः । यदाद्वितीयो रूपस्य विवर्त्तस्ते भविष्यति ॥५५॥
तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति । इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः ॥५६॥
तस्मिन्काले त्वसंस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः । प्रतिहर्तुर्दृष्टिपथे वीरकस्याभवंस्तदा ॥५७॥
भुजंगरूपी रंध्रेण प्रविवेश दृशःपथम् । परिहृत्य गणेशस्य दानवो रौद्रदुर्जयः ॥५८॥
अलक्षितो गणेशेन प्रविश्याथ परां तनुम् । भुजंगरूपं संत्यज्य जग्राहाथ महासुरः ॥५९॥
उमारूपं रमयितुं गिरिशं मूढचेतनः । कृत्वा मायामयं रूपमप्रतर्क्यं मनोहरम् ॥६०॥
सर्वैरवयवैः पूर्णं सर्वाभिज्ञानबृंहितम् । कृत्वा भगांतरे दन्तं दैत्यो वज्रमयं दृढम् ॥६१॥
तीक्ष्णाग्रं बुद्धिमोहेन गिरिशं हंतुमुद्यतः । कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरांतिकम् ॥६२॥
पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणांबरसंयुतः । तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तमालिंग्य महासुरम् ॥६३॥
मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवां तरैः । अपृच्छत्साधुभावं ते गिरिपुत्रि न कृत्रिमम् ॥६४॥
या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनी । त्वया विरहितं शून्यं ममस्थानं जगत्त्रयम् ॥६५॥

ने जब अंधकासुर का वध कर दिया, तो आडि ने घोर तपस्या की ॥५०॥ उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने कहा— वत्स आडि ! हे दानवश्रेष्ठ तपस्या के द्वारा तुम क्या प्राप्त करना चाहते हो ॥५१॥ आडी ने ब्रह्माजी से कहा मैं चाहता हूँ कि मेरी मृत्यु न हो **ब्रह्माजी ने कहा**— जो इस संसार में जन्म लेता है, वह न मरे ऐसा नहीं हो सकता है ॥५२॥ अतएव हे दैत्येन्द्र शरीरधारियों की तो मृत्यु होती ही है इसतरह कहने पर वह दैत्य श्रेष्ठ ब्रह्माजी से कहा ॥५३॥ हे ब्रह्माजी ! जब मेरा रूप परिवर्तन हो तो उसी समय मेरी मृत्यु हो, नहीं तो मैं अमर रहूँ॥५४॥ इसतरह से कहने पर ब्रह्माजी उसकी वाणी से सन्तुष्ट हो गये और उन्होंने कहा जब तुम्हारा दूसरा रूप होगा ॥५५॥ उसी समय तुम्हारी मृत्यु होगी अन्यथा नहीं होगी । ब्रह्माजी के इस तरह से कहने पर वह महाबलवान् दैत्यपुत्र अपने को अमर मान लिया ॥५६॥ उस समय अपनी मृत्यु के उपाय को भूलकर जब प्रतिहार पर विद्यमान वीरक के सन्निकट आया तो साँप का रूप बनाकर वह भयङ्कर दानव वीरक की आँखें से बचकर भीतर प्रवेश कर गया ॥५८॥ वीरक के देखे बिना ही प्रवेश करके उसने सर्प के रूप को छोड़कर उमा का रूप धारण कर लिया । शङ्करजी से स्मरण कराने के लिए उसने मायामय ऐसा रूप बनाया कि उसके विषय में कोई शङ्का न हो ॥६०॥ उसके सारे अङ्ग तथा चिह्न उमा के ही समान हो गये । उसने अपने योनि के भीतर वज्र के समान तीक्ष्ण एवं सुदृढ दाँतों को बना लिया वह अपने बुद्धिमोह के कारण शङ्करजी को मारने के लिए उद्यत था । वह उमा के ही समान रूप तथा संस्थान को बना कर शङ्करजी के सन्निकट गया ॥६१-६२॥ उस पापी मनोहर रूप वस्त्र तथा भूषणों को धारण किए था । उसको देखकर प्रसन्न होकर शङ्करजी ने उसका आलिङ्गन किया ॥६३॥ उसके सारे अङ्गों को

प्राप्ता प्रसन्नवदने युक्तमेवं विधं त्वयि। इत्युक्तो दानवेंद्रस्तु तं बभाषे स्मितं शनैः ॥६६॥
स चाबुध्यदभिज्ञानैः प्राह त्रिपुरघातिनम् ।

दैत्य उवाच

यातास्मि तपसः कामाद्वरं लब्धुं हिमाचलम् ॥६७॥
रतिश्च तत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदंतिकम् । इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां चित्ते प्राप्तो विचारयन् ॥६८॥
हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः । कुपिता कुपितं बुद्ध्वा प्रकृत्या च दृढव्रता ॥६९॥
अप्राप्तकामा संप्राप्ता किमेतत्संविजानती। इति चिंत्यहरस्तस्या अभिज्ञानं विचारयन् ॥७०॥
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदंकं पद्मलक्षणम् । लोम्नामावर्तरचितं ततो देवः पिनाकधृक् ॥७१॥
बुद्ध्वा तां दानवीं मायामाकारं गूहयंस्ततः । मेढ्रदंष्ट्रास्त्रमादाय दानवं तमसादयत् ॥७२॥
नचाबुध्यत तद्वृत्तं वीरको द्वाररक्षकः । कुसुमामोदिनं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम् ॥७३॥
दूतेन मारुतेनाशु बोधिता हिमशैलजा । श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्ताविलेक्षणा ॥७४॥
अपश्यद्वीरकं पुत्रं हृदयेनैव दूयता ।

देव्युवाच

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वंस्नेहविक्लवाम् ॥७५॥
विहितावसरः स्त्रीणां शङ्करस्य रहो विधौ । तस्मात्ते मानुषे रूक्षा जडाहृदयवर्जिता ॥७६॥
गणेशाकारसदृशी शिला माता भविष्यति। निमित्त एष विख्यातो वीरकस्य सुतादरात् ॥७७॥
संभवे प्रक्रमे चैव विचित्राख्यानसंशयः। एवमुत्सृष्टशापायां गिरिपुत्र्यामनंतरम् ॥७८॥

देखकर उसे वे उमा ही मान रहे थे । उन्होंने कहा पर्वती यह तुम्हारा साधुभाव कृत्रिम नहीं है ॥६४॥ तुम मेरे अभिप्राय को जानकर तुम मेरे पास आयी हो । तुम्हारे बिना मेरे लिए यह त्रैलोक्य सूना-सूना है ॥६५॥ प्रसन्न मुख से तुम मेरे पास आयी हो यह तुम्हारे लिए उचित ही है । इसतरह से वह दैत्य मुस्कुराते हुए धीरे से कहा । शङ्करजी भी उसके अभिप्राय को जान गये **दैत्य ने कहा—** मैं हिमालय पर तपस्या करके वरदान प्राप्त करने के लिए गयी थी ॥६७॥ किन्तु वहाँ मेरा मन नहीं लगा, अतएव मैं आपके पास आ गयी । इसतरह से कहने पर शङ्करजी को शङ्का हो गयी और मुस्कुराते हुए भगवान् शिव समाहित होकर विचार किए । पार्वती स्वभाव से दृढव्रता है । वह क्रुद्ध जानकर कुपित हो गयी थी ॥६८-६९॥ अपने अभिलषित अर्थ को प्राप्त किए बिना ही लौट आयी यह कैसे सम्भव है ? इसतरह से सोचकर शङ्करजी ने उसके चिह्नों का विचार किया तो उसके वाम पार्श्व में रोओं के आर्वत से बने हुए कमल के चिह्न को नहीं देखे ॥७०॥ उन्होंने उसे दानवी माया समझकर अपने आकार को छिपाते हुए मेढ्रदंष्ट्रा नामक अस्त्र को अपनाकर उस दानव को मार दिया ॥७१॥ द्वार रक्षक वीरक उसे पहचान नहीं पाये थे। वे उस स्त्री वेषधारी दानव को कुसुमामोदी (मालिन) समझ लिया था ॥७३॥ देवताओं के दूत वायु ने इस बात को जाकर पार्वतीजी को बतला दिया । वायु के मुख से इस बात को सुनकर पार्वतीजी की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं॥७४॥ उन्होंने अपने दुःखी हृदय से अपने पुत्र को देखा । **देवी पार्वती ने कहा—** चूंकि स्नेह से परिपूर्ण अपनी माता मुझको छोड़कर तुमने अवसर प्राप्तकर शङ्करजी के पास स्त्री को एकान्तिक कृत्य के लिए जाने दिया, अतएव तुम्हारी हृदयहीन, जडाबुद्धि मानुषी हो गयी है ॥७६॥ तुम्हारी माता गणेश के आकार वाली शिला होगी । वीरक के उत्पन्न होने और उसके क्रम के विषय में यह विचित्र आख्यान विख्यात है । इसतरह पार्वती के शाप दे देने

निर्जगाममुखात्क्रोधः सिंहरूपीमहाबलः। स तु सिंहः करालास्यः सटाजटिलकंधरः ॥७९॥
ऊर्ध्वं प्रोद्भूतलांगूलो दंष्ट्रोत्कटमुखावटः। व्यादितास्यो लंबजिह्वः क्षामः कुक्षिबलादिपु ॥८०॥
अस्यास्ये वर्तितुं देवीव्यवस्थितवती तदा। ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः ॥८१॥
आजगामाश्रमपदं संपदामाश्रयं यतः। आगम्योवाचदेवेशो गिरजां स्पष्टया गिरा ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

किं पुनः प्राप्तुकामासि किमलभ्यं ददामि ते। विरम्यतामतिक्लेशात्तपसोस्मान्मदाज्ञया ॥८३॥
तच्छ्रुत्वोवाचगिरिजा गुरोर्गौरवयंत्रितम्। वाक्यं वाचा हरोद्गीर्णवर्णनिर्गमवांछितम् ॥८४॥

देव्युवाच

तपसा दुष्करेणाप्तः पतिर्वै शङ्करो मया। स मां श्यामलवर्णेति बहुशः प्रोक्तवान् रहः ॥८५॥
तस्मादहं कांचनाभवर्णा तन्नामसंयुता। भर्तुर्भूतपतेरंगमेकतो निर्विषं भवेत् ॥८६॥
तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच जगदीश्वरः। एवं भव त्वं भूयश्च भर्तुर्देहार्द्धचारिणी ॥८७॥
ततस्तत्याज तां कृष्णां फुल्लनीलोत्पलत्वचम्। त्वक्च साप्यभवद्भीमा घंटाहस्ता त्रिलोचना ॥८८॥
नानाभरणसंपूर्णा पीतकौशेयधारिणी। तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलांबुजत्विषम् ॥८९॥
निशेभूधरजादेहसंपर्का त्वं मदाज्ञया। संप्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशापुरोह्यसि ॥९०॥
य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने। स तेस्तु वाहनं देवि केतौ चास्तु महाबलः ॥९१॥
गच्छ विंध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि। पंचालो नाम यक्षोयं यक्षलक्षपदानुगः ॥९२॥

पर उसके वाद ॥७७-७८॥ उनके मुख से महावली सिंह का रूप बनाकर क्रोध निकला। भयङ्कर मुख वाला वह सिंह आयाल और जटा धारण किए हुए था ॥७९॥ वह अपनी पूंछ ऊपर उठाये था और उसका मुख भयङ्कर दाँतों वाला था। उसका मुख खुला था, जीभ लम्बी थी और उसकी कमर पतली थी ॥८०॥ देवी उसके मुख में समा जाना चाहती थीं, उसी समय देवी के मनोभावों को ब्रह्माजी ने जान लिया ॥८१॥ सम्पत्तियों के आश्रय भूत वे उस आश्रम में आये, और वे स्पष्ट रूप से देवी गिरिजा से कहे ॥८२॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** तुम फिर क्या प्राप्त करना चाहती हो ? तुम्हारे लिए क्या अलभ्य है ? मैं उसे प्रदान करता हूँ, मेरी आज्ञा है, तुम इस क्लेशप्रद तपस्या को करना वन्द करो। उस बाणी को सुनकर ब्रह्माजी की महिमा का अनुभव करती हुयी पार्वतीजी ने शङ्करजी के द्वारा कही गयी वाणी को कहा ॥८४॥ उन्होंने कहा मैंने दुष्कर तपस्या करके शङ्करजी को पति के रूप में प्राप्त किया। वे शङ्करजी अकेले में मुझको कई वार काली कह चुके हैं ॥८५॥ आप मुझे सुवर्ण के समान रूप तथा वैसा ही नाम प्रदान करें और मेरे पति का एक ओर का अङ्ग विष हीन हो जाय ॥८६॥ पार्वतजी की उस वाणी को सुनकर जगदीश्वर ब्रह्माजी ने कहा ऐसा ही होगा तथा तुम अपने पति के आधे शरीर में संचरण करोगी ॥८७॥ उसके पश्चात् पार्वतीजी ने विकसित नीलकमल के समान त्वचा का परित्याग कर दिया पार्वतीजी का वह चमड़ा अपने हाथ में भयङ्कर घण्टा लिए हुए तीन नेत्रों वाली नारी हो गया ॥८८॥ वह नारी अनेक आभरणों तथा पीला रेशमी वस्त्र धारण किये थी। उसको ब्रह्माजी ने नीलकमल की कान्ति वाली देवी कहा ॥८९॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे रत्रि ! तुम मेरी आज्ञा से पार्वती के शरीर के साथ रहो। कृतकृत्यता को प्राप्त तुम एक अंश से यहाँ स्थिर रहो ॥९०॥ हे वरानने ! देवी के क्रोध से यह जो सिंह उत्पन्न हुआ है, वही तुम्हारा वाहन होगा और यह महावलवान् तुम्हारी पताका पर वना रहेगा॥९१॥ तुम विंध्याचल चली जाओ, वहाँ पर देवताओं का कार्य करोगी। यह पंचाल नामक यक्ष है, इसके एक

दत्तस्ते किंकरो देवि मया मायाशतैर्युतः । इत्युक्त्वा कौशिकी देवी विंध्यशैलं जगाम ह॥९३॥
उमापि प्राप्तसंकल्पा जगाम गिरिशांतिकम् । प्रविशंतीं तु तां द्वारादपहृत्यसमाहितः ॥९४॥
रुरोधवीरकोदेवी हेमवेत्रलताधरः । तामुवाच च कोपेन रूपे तु व्यभिचारिणीम् ॥९५॥
प्रयोजनं न तेऽत्रस्ति गच्छ यावन्न भक्ष्यसे। देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वंचितुमागतः ॥९६॥
प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स च देवेन घातितः । घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकंठेनकोपिना ॥९७॥
द्वारेत्वनवधानं ते यस्मात्पश्यामि वै ततः । भविष्यसि न मे द्वास्थो वर्षपूगाननेकशः ॥९८॥
अतस्ते नात्रदास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम्। एकां मुक्त्वा गिरिसुतां मातरं स्नेहवत्सलाम्॥९९॥
प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने। इत्युक्ता तु तदा देवी चिंतयामास चेतसा ॥१००॥
नारी नैव स दैतेयो वायुर्मे यामभाषत। वृथैव वीरकश्शप्तो मया क्रोधपरीतया॥१०१॥
अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमन्वितैः । क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हंति स्थिरां श्रियम्॥१०२॥
अपरिच्छिन्नतत्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम्। विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदागमः ॥१०३॥
संचित्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा। सज्ज लज्जा विकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा ॥१०४॥

देव्युवाच

अहं वीरक ते माता न तेस्तु मनसो भ्रमः । शङ्करस्यास्मि दयिता सुता तुहिनभूभृतः॥१०५॥
मम गात्रच्छविभ्रांत्या मा शङ्कां पुत्र धारय। तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना॥१०६॥
मया शप्तोस्यविदिते वृत्तांते दैत्यनिर्मिते । ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करे रहसि स्थिते ॥१०७॥

लाख यक्ष अनुचर हैं । इसको मैंने तुम्हें किंकर रूप से प्रदान किया है । यह अनेक प्रकार की मायाओं को जानता है । इसतरह से कौशिकी देवी विंध्याचल पर चली गयीं ॥९२-९३॥ उमा भी अपने मनोरथ को प्राप्त करके भगवान् शिव के पास गयीं । प्रवेश करती हुयी देवी को द्वार से हटाकर हाथ में वेत्रलता को धारण करने वाले सावधान वीरक ने ॥९४॥ रोक दिया । उसने क्रोध करके कहा रूप बदलकर धोखा करने वाली ॥९५॥ जब तक मैं तुम्हें खा न जाऊँ उससे पहले ही तुम यहाँ से चली जाओ । यहाँ तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है । देवी का रूप बनाकर दैत्य भगवान् शिव के पास आया था ॥९६॥ वह प्रवेश कर गया और मैं उसे देख नहीं सका भगवान् शिव ने उसे मार दिया । उसके बाद क्रुद्ध होकर भगवान् नीलकण्ठ ने कहा ॥९७॥ मैं देखता हूँ कि द्वार पर तुम सावधान नहीं रहते हो अतएव अनेक वर्षो तक तुम मेरा द्वारपाल नहीं रहोगे ॥९८॥ अतएव मैं तुम्हें जाने नही दूँगा तुम शीघ्र चली जाओ । केवल अपनी स्नेहवत्सला माता पार्वती को छोड़कर मैं किसी दूसरी स्त्री को नहीं जाने दूँगा ॥९९॥ हे कमललोचने ! यहाँ कोई दूसरी नारी प्रवेश नहीं कर पायेगी । इसतरह से कहंने पर देवी ने अपने मन में सोचा॥१००॥ जिसके विषय में वायु ने मुझे कहा था, वह नारी नहीं अपितु दैत्य था । क्रुद्ध होकर मैंने वीरक को व्यर्थ ही शाप दे दिया ॥१०१॥ क्रोधी मूर्ख प्रायः गल्त काम कर बैठते हैं । क्रोध से यशका नाश हो जाता है । क्रोध स्थिर लक्ष्मी को नष्ट कर देता है ॥१०२॥ विषय को ठीक-ठीक नहीं जान सकने के कारण मैंने अपने पुत्र को शाप दे दिया । जिसकी बुद्धि विपरीत हो गयी है, उसको यहाँ बड़ी आसानी से विपत्ति मिल जाती है ॥१०३॥ इसतरह से विचार करके वीरक से लज्जा से लज्जित मुख कमल से पार्वती ने कहा ॥१०४॥ **देवी ने कहा—** वीरक मैं तुम्हारी माँ हूँ; तुमको भ्रम नहीं होना चाहिए । मैं शङ्कर की पत्नी और हिमालय की पुत्री हूँ ॥१०५॥ मेरे शरीर की छवि के भ्रम से तुम शंका न करो । प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने मुझे यह गौरता प्रदान किया है ॥१०६॥ दैत्य के द्वारा

ननिवर्तयितुं शक्यः शापः किंतु ब्रवीमि ते। शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात्सर्वकामसमन्वितः ॥१०८॥
शिरसा तु ततो वंद्य मातरं पूर्णमानसः । उवाच साध्वीं पूर्णेन्दुद्युतिं तुहिनशैलजाम् ॥१०९॥

नत सुरासुर मौलिलसन्मणि प्रवरकान्तिकरालिनखाङ्घ्रिके ।
नगसुते शरणागतवत्सले तवनमोवनतार्ति विनाशिनि ॥११०॥
तपनमंडलमंडितकंधरे पृथुसुवर्णनगद्युतिहारिके ।
विषमभंगविषंगमभीषितो गिरिसुते भवतीमहाश्रये॥१११॥
जगतिका प्रणताभिमता ददौ झटितिसिद्धिमृतेभवतीं यथा ।
जगतिकांप्रणमेच्छशिशेखरो भुवनभृन्मुनयो भवतीं यथा ॥११२॥
विमलयोगविनिर्मितदुर्जये सुतनुलुल्यमहेश्वरमंडली ।
विदलितांधकबांधवसंहतिः सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥११३॥
सितसटापटलोद्धतकंधरा भवमहामृगराजरयस्थिता ।
विमलशक्तिमुखानलपिंगला यतभुजौघनिपिष्टमहासुरा ॥११४॥
निगदिता भुवने रतिचंडिका जननि शुंभनिशुंभनिषूदिनी ।
प्रणतचिंतितदा भवदानवप्रशमनैकरतिस्तरसा भुवि ॥११५॥
वियति वायुपथे ज्वलनाकुलेऽवनितले तवदेवि च यद्वपुः ।
तदजिते प्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि ते भव वल्लभे ॥११६॥

रचे गये वृत्तांत के कारण मैंने तुम्हें शाप दे दिया है । शङ्कर के साथ एकान्त में नारी का प्रवेश जानकर मैंने यह शाप दिया है ॥१०७॥ शाप को लौटाया तो नहीं जा सकता है किन्तु मैं तुमको बतला रही हूँ । तुम शीध्र ही मनुष्यता का परित्याग करके और सम्पूर्ण कामनाओं से सम्पन्न होकर आओगे ॥१०८॥ इसके बाद वीरक ने शिर से माता को पूर्ण मन से प्रणाम करके पूर्ण चन्द्रमा के समान कान्ति वाली पार्वतीजी से कहा ॥१०९॥ **वीरक ने कहा—** हे देवताओं और असुरों के द्वारा प्रणाम करते समय उनकी मुकुट मणियों से प्रकाशित नख एवं चरण वाली माँ, पर्वत पुत्रि, शरणागत वत्सले ! हे विनम्र जीवों के कष्ट को नष्ट करने वाली ! आपको नमस्कार है ॥११०॥ आपका कन्धा सूर्य मण्डल से समलंकृत है, विशाल स्वर्ण पर्वत की कान्ति के समान कान्ति वाली माँ, विषम परिणाम वाले संसार से भयभीत मैं आपकी शरणागति करता हूँ ॥१११॥ जिसतरह से आपने सांसारिक अभिमत नम्रता युक्त सिद्धि प्रदान की आपको छोड़कर कौन देवता ऐसे दे सकता है ? संसार में ऐसी कौन नारी है जिसे शङ्करजी प्रणाम करें तथा मुनिगण जिस तरह आपको प्रणाम करते हैं, वैसी नारी कौन है ?॥११२॥ हे सुतनु माँ विमल योग के द्वारा दुर्जय बनी हुयी महेश्वर मण्डली को अन्धकासुर के बाँधवों ने परास्त कर दिया था । ऐसे श्रेष्ठ देवताओं ने तुम्हारी स्तुति की ॥११३॥ तो आप धवल आयालों के समूह से उन्नत कन्धे वाले महामृगराज के वेग में स्थित होकर विमल शक्ति रूपी मुख वाली तथा अग्नि के समान पीत वर्ण वाली आपने अपने भुजा समूह से असुरों को पीस दिया॥११४॥ हे माँ ! लोक में आपको चण्डिका से भी बढकर कहा गया है । आप शुम्भ तथा निशुम्भ का विनाश करने वाली हैं । आप शरणागत जीवों के अभिप्रेत अर्थो को प्रदान करने वाली हैं । आप संसार रूपी दाव का अत्यन्त वेग पूर्वक प्रशमन करती हैं ॥११५॥ आकाश में वायु मार्ग में और अग्नि से व्याकुल भूतल में हे देवि ! आपका जो शरीर है । हे शङ्कर प्रिये अजिते ! आपको मेरा प्रणाम है, हे लोक कल्याणकारिणि ! आपको मेरा प्रणाम

जलधयो ललितोद्धतवीचयो हुतवहो द्युतिदग्धचराचरः ।
फणसहस्रभृतश्च भुजंगमास्त्वमभिधास्यसि मामभयङ्करा ॥११७॥
भगवति स्थिरभक्तजनाश्रये प्रतिगतो भवती चरणाश्रयम् ।
करणजातिमहास्तुममाद्यवैतवविलासमुखानुभवास्पदम् ॥११८॥

सुप्रसन्ना ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता। प्रविवेश शुभं भर्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥११९॥
द्वास्थोपि वीरको देवान् हरदर्शनकांक्षिणः । व्यसर्जयत्स्वकानेव गृहानादरपूर्वकम् ॥१२०॥
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्याः सह वृषाकपिः । निभृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम् ॥१२१॥
गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसाः । ज्वलनं चोदयामासु र्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम् ॥१२२॥
प्रविश्य पक्षिरंध्रेण शुकरूपी हुताशनः। ददर्श शयने सर्वं रतौ गिरिजया सह ॥१२३॥
ददर्श तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम् । तमुवाच महादेवः किंचित्कोपसमन्वितः ॥१२४॥

शर्व उवाच

निषिक्तमर्धं देव्यां मे बीर्यं न शुकविग्रह । लज्जया विरतिश्चास्य त्वमर्धं पिब पावक ॥१२५॥
यस्मात्तु त्वत्कृते विघ्नं तस्मात्त्वय्युपपद्यते। इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद्वीर्यमाहितम् ॥१२६॥
तेनाप्लुतास्ततो देवास्तन्मुखा ऋभवो यतः । विपाट्य जठरं तेषां वीर्यमाहेश्वरं ततः ॥१२७॥
निष्क्रांतं तप्तहेमाभं वितते शङ्कराश्रमे । तस्मिन्सरो महज्जातं विमलं बहुयोजनम् ॥१२८॥
प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम्। तच्छ्रुत्वा तु सरो देवी जातं हेममहांबुजम् ॥१२९॥

है ॥११६॥ ललित तथा उद्धत तरङ्गों वाले समुद्र, तथा अपनी कान्ति से चराचर को जला डालने वाला अग्नि, हजारों फणाओं वाले सर्प ये सब के सब तुम्हारा ही वर्णन करते हैं । आपने मुझे अभय बना दिया है ॥११७॥ हे स्थिर भक्त जनों के आश्रय स्वरूपे भगवति ! माँ ! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ आपके चरणाश्रित हो जायँ और तुम्हारे विलासों का अनुभव करने में प्रवृत्त रहें ॥११८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** वीरक के द्वारा स्तुति की गयी देवी पार्वती ने प्रसन्नता पूर्वक अपने पति के आश्रम में प्रवेश किया ॥११९॥ **वीरक ने कहा—** भगवान् शिव का दर्शन करना चाहने वाले देवताओं को आदर पूर्वक उनके घर लौटा दिया ॥१२०॥ उसने कहा— देवों इस समय अवसर नहीं है । इस समय भगवान् शिव देवी के साथ एकान्त में क्रीडा कर रहे हैं । इसतरह से कहने पर वे देवता भी चले गये ॥१२१॥ एक हजार वर्ष बीत जाने पर देवताओं ने शीघ्रता करने की इच्छा से अग्नि को भगवान् शिव की चेष्टाओं को जानने के लिए प्रेरित किया ॥१२२॥ शुक पक्षी का रूप बनाकर पक्षी के मार्ग से अग्नि ने गिरजा के साथ रति करते हुए भगवान् शिव को देखा ॥१२३॥ भगवान् शिव ने शुक पक्षी का रूप बनाये हुए अग्नि को देखा। कुछ क्रोध करके महादेव ने अग्नि से कहा ॥१२४॥ **शङ्करजी ने कहा—** हे अग्नि ! मैंने अपना आधा वीर्य देवी में आहित कर दिया है । लज्जा के कारण वह तो विरत हो गयीं; अब आधे वीर्य को तुम पीओ ॥१२५॥ चूंकि तुमने ही विघ्न किया है अतएव तुमको यह करना उचित ही है । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इसतरह से कहने पर अग्नि ने उस वीर्य को पी लिया ॥१२६॥ उससे ऋभु नामक देवता उत्पन्न हो गये । उसके बाद शिवजी का वह वीर्य उन सबों का पेट फाड़कर ॥१२७॥ सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाला बाहर निकल पड़ा और विस्तृत शङ्करजी के आश्रम में अनेक योजन विस्तृत एक स्वच्छ सरोवर उत्पन्न हो गया ॥१२८॥ उसमें स्वर्णिम कमल विकसित थे, अनेक प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे । उस सरोवर के विषय में सुनकर देवी पार्वती उस

जगामकौतुकाविष्टा तत्सरः कनकांबुजम्। तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा ॥१३०॥
उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीवृता। पातुकामा च तत्तोयं स्वादुनिर्मलपङ्कजम् ॥१३१॥
अपश्यत्कृत्तिका स्तास्सषडर्कद्युतिसन्निभाः। पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वा प्रस्थिता गृहम् ॥१३२॥
हर्षात्सोवाच पास्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः। ततःस्ता ऊचुरखिलाः कृत्तिका हिमशैलजाम् ॥१३३॥

कृत्तिका ऊचुः

दास्यामो दयिते गर्भे संभूतो यो भविष्यति। सोस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मत्त्राता च वृत्तिमान्॥१३४॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपि शुभानने। इत्युक्तोवाच गिरिजा कथंमद्गात्रसंभवैः ॥१३५॥
सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत्। ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यमोस्य वै वयम् ॥१३६॥
उत्तमान्युत्तमांगानि यद्येवं तु भविष्यति। उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिंदिताः॥१३७॥
ततस्तु हर्षसंपूर्णाः पद्मपत्रस्थितं पयः। तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ॥१३८॥
पीते तु सलिले चैव तस्मिन्नेव क्षणे वरः। विपाट्यदेव्याश्च ततो दक्षिणं कुक्षिमुद्गतः ॥१३९॥
निश्चक्रामाद्भुतो बालो रोगशोकविनाशनः। प्रभाकरकरव्रातप्रकारप्रकरप्रभुः ॥१४०॥
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलांकुशोऽनलः। दीप्तोमारयितुं दैत्यानुत्थितः कनकच्छविः ॥१४१॥
एतस्मात्कारणादेव कुमारश्चापि सोऽभवत्। वामं विदार्य निष्क्रांतस्ततो देव्याः पुनः शिशुः॥१४२॥
स्कंदोऽथ वदनाद्वह्नेः शुभ्रात्षड्वदनोरिहा। कृत्तिकासलिलादेव शाखाभिः सविशेषतः ॥१४३॥
शाखाः शिवाः समाख्याताः षट्सु बक्त्रेषु विस्तृताः।
यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु षण्मुखः ॥१४४॥

स्वर्णिम कमलवाले सरोवर के पास कौतुकाविष्ट होकर गयीं। उस सरोवर में जलक्रीडा करके तथा उसके कमल को अपने शिर में लगाकर ॥१२९-१३०॥ वे अपनी सखियों के साथ उस सरोवर के तट पर बैठ गयीं वे उस सरोवर के स्वादिष्ट जल को पीना चाहती थी ॥१३१॥ वहाँ उन्होंने छह सूर्यों के समान कान्ति वाली छह कृत्तिकाओं को देखा। उस जल को कमल के पत्ते में लेकर वे अपने घर गयीं ॥१३२॥ प्रसन्नता पूर्वक उन्होंने कहा कि इस पद्म पत्र के जल को मैं पीऊँगी। उसके बाद उन सभी कृत्तिकाओं ने पार्वतीजी से कहा ॥१३३॥ **कृत्तिकाओं ने कहा**— आपके गर्भ से जो बच्चा उत्पन्न होगा वह यदि हमलोगों का भी पुत्र हो तथा हमलोगों की रक्षा करे तब हमलोग इस जल को देंगी ॥१३४॥ हे शुभानने ! वह बालक सभी लोकों में विख्यात होगा मेरे शरीर से उत्पन्न सभी अङ्गो वाला वह पुत्र आपलोगों का पुत्र कैसे हो सकता है ? यदि ऐसी बात है, तो हमलोग भी उसे प्रदान करेंगी ॥१३५-१३६॥ यदि वह हमलोगों का भी पुत्र होगा तो हमलोग उसे उत्तम शिरों को प्रदान करेंगी। इस पर पार्वतीजी ने कहा— यदि ऐसी बात है तो वह तुम लोगों का भी पुत्र होगा ॥१३७॥ इसके बाद उन कृत्तिकाओं ने भी पद्मपत्र पर स्थित जल को पार्वतीजी को दिया और पार्वतीजी ने भी उन जलों को क्रमशः पिया ॥१३८॥ जल के पी लेने पर उसी क्षण देवी पार्वती की दाहिनी कुक्षि को फाड़कर श्रेष्ठ गुण युक्त अद्भुत तथा शोक को विनष्ट करने वाला बालक बाहर निकला। सूर्य की किरणों के समान उसकी कान्ति थी ॥१४०॥ वह दैत्यों को मारने के लिए देदीप्यमान सुवर्ण के समान कान्ति वाले अपने हाथ में निर्मल तथा श्रेष्ठ शक्ति, त्रिशूल, अङ्कुश तथा अग्नि को धारण किए हुए था॥१४१॥ इसी कारण वह कुमार हुआ। उसके बाद देवी पार्वतीजी की वामकुक्षि को विदीर्ण करके शिशु फिरा पैदा हुआ ॥१४२॥ अग्नि के समान शुभ वदन वाला होने के कारण उसका नाम स्कन्द हुआ। छह कृत्तिकाओं के जल

स्कंदो विशाखः षड्वक्त्रः कार्तिकेयश्च विश्रुतः ।
पक्षे चैत्रस्य बहुले पंचदश्यां महाबलौ ॥१४५॥
संभूतावर्कसदृशौ विशाले शरकानने। सिते पक्षे तु पंचम्यां तथैतौ पावकानलौ ॥१४६॥
बालकाभ्यां चकारैकं संध्यायामेव भूतये । तस्यामेव ततः षष्ठ्यामभिषिक्तो गुहःप्रभुः ॥१४७॥
सर्वैरमरसंघातै र्ब्रह्मोपेंद्रभास्करैः । गंधमाल्यैः शुभैः धूपैस्तथाक्रीडनकैरपि ॥१४८॥
छत्रैश्चामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः। अभिषिक्तो विधानेन यथावत् षण्मुखः प्रभुः ॥१४९॥
सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विश्रुताम् । पन्त्यर्थं देवदेवेशो ददौ विष्णुरथायुधम् ॥१५०॥
यक्षाणां दशलक्षाणि ददावस्य धनाधिपः । ददौ हुताशनस्तेजो ददौ वायुश्च वाहनम् ॥१५१॥
ददौ क्रीडनकं त्वष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम्। एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनन्तकम् ॥१५२॥
ददुर्मुदितचेतस्काः स्कंदायादित्यवर्चसे। जानुभ्यामवनौ स्थित्वा सुरसंघास्तमस्तुवन् ॥१५३॥
स्तोत्रेणानेन वरदं षण्मुखं मुख्यशः सुराः।

देवा ऊचुः

नमः कुमाराय महाप्रभाय स्कंदाय चास्कंदिति दानवाय ॥१५४॥
नवार्क बिम्बप्रतिमप्रभाव नमोस्तु गुह्याय गुहाय तुभ्यम् ।
नमोस्तुतेलोकभयापहाय नमोस्तुतेलोककृपापराय ॥१५५॥
नमो विशालामललोचनाय नमोविशाखय महाव्रताय ।
नमो नमस्तेस्तुरणोत्कटायनमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय॥१५६॥

के कारण वह षण्मुख हुआ । विशेष रूप से शाखा से युक्त होने के कारण उसका नाम विशाख हुआ । शिवाओं को शाखा कहते हैं, वे सव छह मुखों में विस्तृत हैं । इसलिए ही वह लोक में विशाख के नाम से विख्यात बालक हुआ॥१४४॥ लोक में वह षण्मुख, स्कन्द, षडवक्त्र, कार्तिकेय तथा विशाख के नाम से विख्यात हुआ । चैत्रमास के वहुल (शुक्ल) पक्ष की पूर्णिमा तिथि को वे दोनों महाबलवान बालक शरपत के वन में उत्पन्न हुए । शुक्लपक्ष की पञ्चमी तिथि को सायंकाल दोनों अग्नि (पावक तथा अग्नि) दोनों बालकों को मिलाकर लोक कल्याण के लिए एक वालक बना दिए । उसके पश्चात् उस पक्ष की षष्ठी तिथि को गुह (कार्तिकेय) को ॥१४५-१४७॥ ब्रह्मा, उपेन्द्र, इन्द्र, सूर्य आदि सभी देवताओं के समूह ने सिंहासनासीन किया । चन्दन, माला, धूप, खिलौना, छत्र, चामर, भूषण और अङ्गराग आदि के द्वारा षण्मुख विधिवत् अभिषिक्त हुए ॥१४८-१४९॥ उनको इन्द्र ने अपनी प्रख्यात पुत्री देवसेना को पत्नी के रूप में प्रदान किया और भगवान् विष्णु ने उनको आयुध प्रदान किया ॥१५०॥ कुबेर ने इनको दश लाख यक्षों को प्रदान किया; अग्नि ने उनको तेज प्रदान किया और वायु ने वाहन प्रदान किया ॥१५१॥ त्वष्टा ने उन्हें अपने मन से रूप बना लेने वाले मूर्गे को खिलौने के रूप में प्रदान किया । इसतरह उन सभी देवताओं ने उन्हें अनन्त नामक परिवार स्कन्द को प्रसन्नता पूर्वक प्रदान किया । इसके बाद देवताओं ने दोनों घुटने पृथिवी पर टेककर स्कन्द की स्तुति की ॥१५१-१५३॥ मुख्य-मुख्य देवताओं ने इस स्तोत्र से षण्मुख की स्तुति की **देवताओं ने कहा**— महती कान्ति सम्पन्न कुमार को नमस्कार है । दैत्यों को मारने वाले स्कन्द को नमस्कार है॥१५४॥ नवीन सूर्य के समान अप्रतिम कान्ति सम्पन्न रहस्यमय गुह को नमस्कार है । संसार के भय को दूर करने वाले तथा संसार पर कृपा करने वाले आपको नमस्कार है ॥१५५॥ विशाल तथा निर्मल नेत्रों वाले आपको नमस्कार

नमोस्तु केयूरधराय तुभ्यं नमो धृतोदग्रपताकिने ते ।
नमः प्रभावप्रणताय तेस्तु नमोऽस्तु घंटाधरधैर्यशालिने ॥१५७॥

कुमार उवाच

कं वः कामं प्रयच्छामि भवंतो ब्रूत निर्वृताः। यद्यप्यसाध्यं कृत्यं नो हृदये चिंतितं चिरम्॥१५८॥
इत्युक्तास्तु सुरास्तेन प्रोचुः प्रणतमौलयः। सर्व एव महात्मानं गुहं मुदितमानसाः ॥१५९॥
दैत्येंद्रस्तारको नाम सर्वामरकुलांतकृत्। बलवान् दुर्जयस्तीक्ष्णो दुराचारोतिकोपनः ॥१६०॥
तमेव जहि दुर्धर्षं दैत्यं सर्वविनाशनम् । उपस्थितः कृत्यशेषो ह्यस्माकं च भयावहः ॥१६१॥
हिरण्यकशिपुश्चोग्रो ह्यवध्यो देवतागणैः । यज्ञघ्नः पापकर्मा वै येन ब्रह्मापि तापितः ॥१६२॥
एतौ हरस्वभद्रं ते तावकं च महाबलम् । एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्वामरपदानुगः ॥१६३॥
जगाम जगतां नाथस्तूयमानोऽमरेश्वरैः । तारकस्य वधार्थाय जगतां कंटकस्य च ॥१६४॥
ततश्च प्रेषयामास शक्रोगूढसमाश्रयः । दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरवादिनम् ॥१६५॥
स तु गत्वा ब्रवीद्दैत्यमभयो भीमदर्शनम् ।

दूत उवाच

शक्रस्त्वामाह देवेशो दैत्यकेतुं दिवस्पतिः ॥१६६॥
तारकासुर तच्छक्त्या घटयस्व यथेच्छया। यज्जगज्ज्वलनो दीप्तं किल्बिषं च त्वया कृतम्॥१६७॥
तस्याहं सादकस्तेऽद्य राजास्मि भुवनत्रये । श्रुत्वैतदद्भुतं वाक्यं कोपसंरक्तलोचनः ॥१६८॥

है । महाव्रत करने वाले स्कन्द को नमस्कार है । युद्ध में अत्यन्त उत्कट आपको नमस्कार है तथा देदीप्यमान मयूर को वाहन बनाने वाले आपको नमस्कार है ॥१५६॥ केयूर धारण करने वाले तथा उन्नत पताका धारण करने वाले आपको नमस्कार है । प्रभाव प्रणत रहने वाले आपको नमस्कार है तथा घण्टाधारी, धैर्यशाली आपको नमस्कार है॥१५७॥ **कुमार ने कहा—** आपलोग बतलायें कि मैं आपलोगों की किस इच्छा को पूरा करूँ । आपलोग अपने हृदय में किसी असाध्य कार्य को लेकर चिन्ता न करें ॥१५८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** कुमार के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सभी देवताओं ने अपना शिर झुकाकर सारी बातों को गुह को बतलाया ॥१५९॥ तारक नामक दैत्यों का राजा सम्पूर्ण देवताओं को मारने वाला है । वह बलवान, दुर्जय, तीक्ष्ण दुराचारी तथा अन्यन्त क्रोधी है॥१६०॥ उस दुर्धर्ष दैत्य का आप वध कर दें, वह दैत्य सबों का विनाश करने वाला है । यह कार्य शेष उपस्थित है जिसके कारण हम सभी भयभीत हैं ॥१६१॥ हिरण्कशिपु भी अत्यन्त उग्र हैं, सभी देवताओं के लिए वह अवध्य है । वह यज्ञों को विनष्ट करने वाला तथा पापी है, उसके कारण ब्रह्माजी भी सन्तप्त हैं ॥१६२॥ आप इन दोनों को मार दें आपके महान् बल का कल्याण हो । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इस तरह से कहने पर कुमार ने कहा ठीक है । कुमार के पीछे सभी देवता चले ॥१६३॥ जगत् के स्वामी कुमार देवताओं से स्तुति किए जाते हुए जगत् के कण्टक तारकासुर का वध करने के लिए गये ॥१६४॥ उसके बाद गूढ बातों को जानने वाले इन्द्र ने परुषवाणी बोलने वाले दूत को तारकासुर के पास भेजा ॥१६५॥ वह जाकर निर्भयता पूर्वक उस भयङ्कर दैत्य से कहा **दूत ने कहा—** दैत्यों का विनाश करने वाले, स्वर्ग के स्वामी इन्द्र ने आप से कहा है ॥१६६॥ तारकासुर तुम अपनी शक्ति का प्रदर्शन करो । तुमने संसार को दुःख देने वाला पाप किया है ॥१६७॥ अब त्रिभुवन का स्वामी मैं तुम्हारा विनाश करने वाला हूँ । **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इस अद्भुत वाक्य को सुनकर क्रोध से आँखें लाल करके

उवाच दूतं दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः ।

तारक उवाच

दृष्टं ते पौरुषं शक्र शतशोऽथ महारणे ॥१६९॥
निस्त्रपत्वान्न ते शांतिर्विद्यते शक्र दुर्मते । एवमुक्ते गते दूते चिंतयामास दानवः ॥१७०॥
नालब्धसंश्रयः शक्रो वक्तुमेवमिहार्हति । जातः स्कंदोऽधुना शक्राज्ज्ञायते समुपाश्रयात् ॥१७१॥
निमित्तौघांस्तदा दुष्टान् सोपश्यन्नाशवेदिनः । पांसुवर्षमसृक्पातं गगनादवनीतले ॥१७२॥
वामनेत्रप्रकंपं च वक्त्रशोषं मनोमयम् । स्वकानां वत्रपद्मानां म्लानतां च व्यलोकयत् ॥१७३॥
दुष्टांश्च प्राणिनो रौद्रान् सोऽपश्यद्दुष्टवादिनः । तदचिंत्यैव दितिजो न्यस्तचित्तो भवत्क्षणात् ॥१७४॥
यावद्गजघटाघंटाघनत्काररवोत्कटाम् । तद्वत्तुरंगसंघातह्रेषोत्साहविभूषिताम् ॥१७५॥
सैन्यैस्सेनान्तरोदग्रध्वजराजैर्विराजिताम् । विमानैश्चाद्भुताकारैश्चलितामलचामरैः ॥१७६॥
विभूषणपिनद्धां च किन्नरोद्गीतनादिताम् । नानानाकतरूत्फुल्लकुसुमापीडधारिणीम् ॥१७७॥
विशोकास्त्रपरिस्फारचर्मनीर्मलदर्शिनीम् । विद्युत्पुष्टद्युतिधरां नानावाद्य विनादिताम् ॥१७८॥
सेनां नाकसदां दैत्यः प्रासादस्थोव्यलोकयत् । सचिंतयामास तदा किंचिद्विभ्रांतमानसः ॥१७९॥
अपूर्वः को भवेद्योद्धा यो मयानविनिर्जितः । ततश्चिंताकुलो दैत्यः शुश्रावकटुकाक्षरम् ॥
सिद्धवंदिभिरुद्घुष्टमिदं हृदयदारुणम् ॥१८०॥
जयातुलशक्तिदीधितिपंजरभुजदंडप्रचंडतररभससुरवदनकुमुदविकासनविलासनेत्रकुमारवर ॥१८१॥

जिसकी विभूति प्रायः नष्ट हो चुकी थी वह तारकासुर दूत से कहा **तारकासुर ने कहा—** इन्द्र बड़े-बड़े युद्धों में मैंने सैकड़ों वार तुम्हारा पराक्रम देखा है ॥१६८-१६९॥ मूर्ख इन्द्र ! निर्लज्ज होने के कारण तुम को शान्ति नहीं है **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इस तरह से कहने पर जब दूत चला गया तो दानव तारक ने विचार किया ॥१७०॥ किसी की सहारा पाये बिना इन्द्र इस तरह से नहीं बोल सकता है । इन्द्र का रक्षक स्कन्द उत्पन्न हो गया ऐसा लगता है ॥१७१॥ उसके बाद उसने विनाश को सूचित करने वाले शकुनों को देखा । उस समय आकाश से पृथिवी पर खून और धूलि की वर्षा हुयी । उसकी वायीं आँख फड़कने लगी मुख और मन सुख गये । उसके अपने लोगों के मुखकमल सुखे हुए दिखने लगे ॥१७३॥ अशुभभाषी दुष्ट और भयङ्कर जीवों को उसने देखा । उन सारी बातों की चिन्ता किए बिना ही वह दैत्य क्षणभर में स्थिर चित्त वाला हो गया ॥१७४॥ उसी समय अपने महल के ऊपर विद्यमान तारकासुर ने गज समूह के घंटा ध्वनि से उत्कटध्वनि वाली, उसी तरह घोड़ों के समूह की हिनहिनाहट से विभूषित ॥१७५॥ सेना के सैनिकों की ऊँची ध्वजा से सुशोभित, जिस पर चामर झले जा रहे थे ऐसे अद्भुत आकार वाले विमानों से विभूषित, जिसमें किन्नरों के गीत सुनाई पड़ रहे थे ऐसी अनेक स्वर्गीय वृक्षों के विकसित पुष्पमालाओं वाली, बिना किसी भय के चमकते हुए अस्त्र-शस्त्र को धारण की हुयी, तेज से चमकने वाली विद्युत की कान्ति वाली अनेक प्रकार के वाद्यों से निनादित, देवताओं की सेना को अपने छत पर से देखा । कुछ विभ्रान्तमना होकर उसने सोचा ॥१७६-१७९॥ यह कौन सा अपूर्व योद्धा हो गया जिसको मैंने पराजित नहीं किया हो । उसके बाद चिन्ता से व्याकुल होकर तारकासुर ने इस कठोर वाणी को सुना जो तारकासुर को दुःख देने वाली थी और जिसका उद्घोष वन्दीगण कर रहे थे ॥१८०॥ **वन्दिगणों ने कहा—** अतुलनीय शक्ति, कान्ति तथा पंजररूपी भुजदण्ड से प्रचण्ड, शीघ्र ही देवताओं के मुख कमल को विकसित करना रूपी विलास मय नेत्र वाले, कुमार की जय

जयदितिजकुलमहोदधिबडवानलमधुरमयूररथसुरमकुटकोटिकुंचितचरणनखांकुरमहासेन ॥१८२॥
जयचलितललितचूडाकलापनवविमलकमलदंडकांतदैत्येशवंशदुःसहदावानल ॥१८३॥
जयविशाखविभो जयबालसप्तवासर भुवनालिशोकशमन जयसकललोकदितिसुतधुरंधरनाशकस्कंद ॥१८४॥
श्रुत्वैतत्तारकः सर्वमुद्घुष्टं देववंदिभिः । सस्मार ब्रह्मणो वाक्यं वधं बालादुपस्थितम् ॥१८५॥
स्मृत्वा धर्मौघविध्वंसी सदावीरपदानुगः। मंदिरान्निर्जगामाशु शोकग्रस्तेन चेतसा ॥१८६॥
कालनेमिमुखा दैत्याः संत्रस्ता भ्रांतचेतसः । स्वेष्वनीकेषु च तदात्वराविस्मितचेतसः ॥१८७॥
हिरण्यकशिपुः प्राह दानवानां धुरंधरः । त्रपाकरं भवेन्मह्यं बालस्यास्य पलायनम् ॥१८८॥
यद्यहं हतवे यामि सोपि वैकमलाश्रितः। हत्वाहं बालकं चैनं दुःस्पर्शः स्यामकारणम् ॥१८९॥
यात धावत गृह्णीत योजयध्वं वरूथिनीम् । कुमारं तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणाकृतिः ॥१९०॥
किं बाल योद्धुकामोऽसि क्रीड कंदुकलीलया। येनातपो निसृष्टस्ते सत्संगरविभाषक ॥१९१॥
बालत्वादथ ते बुद्धिरेवंस्वल्पार्थदर्शिनी । कुमारोपि तमग्रस्थं बभाषे हर्षवत्तमम्॥१९२॥
शृणु तारकशास्त्रार्थं इह नैव निरूप्यते । शस्त्रैरर्था न दृश्यंते समरे निर्भरं भये॥१९३॥
शिशुत्वं मावमंस्थामे शिशुः कष्टो भुजंगमः। दुष्प्रेक्षो भास्करो बालस्तथाहं दुर्जयः शिशुः ॥१९४॥
अल्पाक्षरो न मंत्रः किं सस्फुरो दैत्यदृश्यते । कुमारे प्रोक्तवत्येवं दैत्यश्चिक्षेपमुद्गरम्॥१९५॥
कुमारस्तंनिरासोग्रं चक्रेणामोघवर्चसा । ततश्चिक्षेपदैत्येंद्रो भिंदिपालमयोमयम्॥१९६॥

हो ॥१८१॥ दैत्य वंशरूपी महासागर के लिए बडवानल, मनोहर मयूर नामक रथ वाले, देवताओं के करोड़ों मुकुटो की कान्ति से प्रकाशित नख वाले, महासेन की जय हो ॥१८२॥ चंचल एवं मनोहर चूडा कलाप वाले, नवीन स्वच्छ कमल के समान कान्ति वाले, दैत्य वंश के लिए दुःसह दावाग्नि के समान आपकी जय हो ॥१८३॥ हे विशाख प्रभो ! हे सात दिन के बालक लोक समूह के शोक सन्ताप का शमन करने वाले आपकी जय हो । सम्पूर्ण लोकों में विद्यमान दैत्याग्रगण्य का नाश करने वाले आपकी जय हो ॥१८४॥ देवताओं के इन सम्पूर्ण उद्घोषों को सुनकर तारकासुर ब्रह्माजी के द्वारा कहे गये बालक के द्वारा अपने वध को उपस्थित हुआ जान लिया ॥१८५॥ उस बात का स्मरण करके महावीरों के मार्ग का अनुसरण करने वाला वह पापी शोक संतप्त मन से शीघ्र ही अपने गृह से निकल पड़ा ॥१८६॥ कालनेमि आदि दैत्य शीघ्रता करते हुए तथा भयभीत होकर शीघ्रता से आश्चर्यित मन से अपनी सेनाओं में प्रवेश कर गये ॥१८७॥ दानवों में धुरन्धर तारक ने हिरण्यकशिपु से कहा इस बालक से पलायन करना मेरे लिए लज्जा की बात है ॥१८८॥ **तारकासुर ने कहा**— यदि मैं इस बालक को मारने जाता हूँ तो वह भी मेरे लिए लज्जा की बात है । इस बालक को मारकर मैं आकरण ही दुःस्पर्श हो जाऊँगा ॥१८९॥ तुमलोग अपनी सेना तैयार करो जाओ, दौड़ो और कुमार को बन्दी बना लो । इसतरह से कुमार को देखकर तारकासुर ने कहा॥१९०॥ बालक क्या युद्ध करना चाहते हो कन्दुक क्रीडा करो । जिससे धूप से निसृष्ट पसीना तुम्हारे युद्ध का प्रकाशक होगा ॥१९१॥ बालक होने के कारण तुम्हारी बुद्धि वस्तुत ठीक निश्चय नहीं करने वाली है । सामने विद्यमान उसको हँसते हुए कुमार ने भी कहा ॥१९२॥ **कुमार ने कहा**— हे तारक ! सुनो, यहाँ शास्त्रार्थ का निरूपण नहीं किया जाता है । भययुक्त युद्ध में शास्त्रों के द्वारा अर्थ नहीं दिखता है ॥१९३॥ मेरे शिशुत्व का अपमान न करो, छोटा भी सर्प भयङ्कर होता है । बाल सूर्य भी दुष्प्रेक्ष्य होता है, उसीतरह मैं दुर्जय शिशु हूँ॥१९४॥ दैत्य ! स्फुरण युक्त कम अक्षरों वाला भी मंत्र नहीं होता है क्या ? **महर्षि पुलस्त्य ने कहा**— कुमार के इसतरह

करेण तं च जग्राह कार्तिकेयोऽमरारिहा । गदां मुमोच दैत्याय समुत्थाय खरस्वनाम् ॥१९७॥
तया हतस्ततो दैत्यश्चकम्पेऽचलराडिव । मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा बालं सुदुःसहम् ॥१९८॥
चिंतयामास बुद्ध्या वै प्राप्तः कालो न संशयः । कंपितं च समालोक्य कालनेमिपुरोगमाः ॥१९९॥
सर्वे दैत्यैश्वरा जघ्नुः कुमारं रणदारुणम् । स तैः प्रहारैरस्पृष्टस्तथा क्लेशैर्महाद्युतिः ॥२००॥
स बालो बलिभिर्वेगैरयुध्यद्दानवै रणे । रणशौण्डाश्च दैत्येंद्राः पुनर्जघ्नुः शिलीमुखैः ॥२०१॥
कुमारं समरे दैत्या बलिनो देवकंटकाः । कुमारस्य व्यथा नाभूद्दैत्यास्त्रनिहतस्य तु ॥२०२॥
प्राणांतकरणं जातं देवानां दानवाहवम् । देवान्निपीडितान् दृष्ट्वा कुमारः कोपमाविशत् ॥२०३॥
ततोऽस्त्रैर्दारयामास दानावानामनीकिनीम् । तैरस्त्रैर्निष्प्रतीकारैस्ताडिताः सुरकंटकाः ॥२०४॥
कालनेमिमुखाः सर्वे रणेह्यासन्पराङ्मुखाः । विद्रुतेषु च दैत्येषु प्रहतेषु समंततः॥२०५॥
किन्नरोद्गारगीतैश्च हास्यसन्यस्तचेतनः । जघ्ने कुमारं गदया निष्टप्तकनकत्विषा ॥२०६॥
शरै र्मयूरं चित्रैश्च चकार विमुखं रणे । दृष्ट्वा पराङ्मुखो देवो मुक्तरक्तं स्ववाहनम् ॥२०७॥
जग्राह शक्तिं विमलां रणे कनकभूषणाम् । बाहुनाहेमकेयूररुचिरेण षडाननः ॥२०८॥
ततोब्रवीन्महासेनस्तारकं दानवाधिपम् । तिष्ठ तिष्ठ सुदुर्बुद्धे यमलोकं विलोकय ॥२०९॥
हतोह्यसि मया शक्त्या स्मर स्वं दैत्यचेष्टितम् । इत्युक्त्वा तु ततः शक्तिं मुमोच दितिजं प्रति ॥२१०॥
सा कुमारभुजोत्सृष्टा तत्केयूररवानुगा । विभेद दैतयहृदयं वज्रशैलेंद्रकर्कशम् ॥२११॥

से कहने पर तारकासुर ने अपनी गदा का प्रहार किया ॥१९५॥ कुमार ने उसको अमोघ वर्चस्वी चक्र के द्वारा खण्डित कर दिया । उसके बाद दैत्येन्द्र ने उनके ऊपर लौह निर्मित परिघ का प्रहार किया ॥१९६॥ देवशत्रुओं को मारने वाले कुमार ने उसको हाथ से पकड़ लिया । उन्होंने भयङ्कर ध्वनि करने वाली गदा को उठाकर फेंका॥१९७॥ उस गदा के प्रहार से तरकासुर पर्वतराज के समान काँप उठा और उसने समझ लिया कि यह बालक दुर्जय है, ॥१९८॥ उसने समझ लिया कि यह मेरी मृत्यु की बेला आ गयी है । कम्पित हुए दैत्येन्द्र को देखकर कालनेमि इत्यादि॥१९९॥ सभी बड़े-बड़े दैत्ययों ने भयङ्कर युद्ध करने वाले कुमार पर प्रहार किया, किन्तु उन प्रहारों तथा तज्जनय क्लेशों से कुमार का स्पर्श भी नहीं हुआ ॥२००॥ वह बालक उन बलवान् दानवों के साथ वेगपूर्वक युद्ध करने लगा । युद्ध करने में निपुण बड़े-बड़े दैत्यों ने उन पर बाणों से प्रहार किया ॥२०१॥ देवताओं के शत्रु दैत्यों ने कुमार पर प्रहार किया किन्तु दैत्यों के अस्त्रों के प्रहार से कुमार को कोई कष्ट नहीं हुआ ॥२०२॥ दैत्यों के द्वारा किया गया वह युद्ध देवताओं के लिए प्राणान्त करने वाला बन गया । देवताओं को पीड़ित देखकर कुमार कुपित हो गये ॥२०३॥ उसके बाद उन्होंने अस्त्रों के द्वारा दानवों की सेना को विदीर्ण कर दिया । जिनका कोई प्रतिकार नहीं था उन अस्त्रों के प्रहार से देवताओं के शत्रु कालनेमि इत्यादि युद्ध से भाग गये । दैत्यों के चारो ओर से मार दिए जाने पर तथा भाग जाने पर ॥२०४-२०५॥ किन्नरों के गीत को सुनकर तारकासुर होश में आ गया और उसने सन्तप्त सुवर्ण के समान कान्ति वाली गदा से कुमार पर प्रहार किया ॥२०६॥ उसने विचित्र बाणों के प्रहार से मयूर को युद्ध पराङ्मुख बना दिया । अपने वाहन को रक्त से सने हुए तथा युद्ध पराङ्मुख देखकर कुमार ॥२०७॥ ने सुवर्ण के भूषणों से भूषित निर्मल शक्ति को अपने केयूर भूषित हाथ में उठा लिया ॥२०८॥ उन्होंने दैत्यराज को तिष्ठ-तिष्ठ कहते हुए कहा मूर्ख ठहरो अब तुम यमलोक में जाओ ॥२०९॥ अब तुम मेरे द्वारा शक्ति से मारे जा रहे हो, अपने कर्मों को याद करो, यह कहकर उन्होंने तारक के ऊपर शक्ति का प्रहार किया ॥२१०॥ कुमार के हाथ से प्रहृत तथा केयूर के

गतासुः स पपातोर्व्यां प्रलये भूधरो यथा । विकीर्ण मकुटोष्णीषो विस्त्रस्ताखिलभूषणः ॥२१२॥
तस्मिन्विनिहते दैत्ये दानवानां धुरंधरे । नाभूत्कश्चित्तदा दुःखी नरकेष्वपि पापकृत् ॥२१३॥
स्तुवंतः षणमुखं देवाः प्राक्रीडन्नागतस्मिताः । जग्मुः स्वानेवभुवनान्निरस्यासंस्तथोत्सुकाः ॥२१४॥
ददुश्चापि वरं सर्वे देवाश्च षणमुखं प्रति । तुष्टाः संप्राप्तसर्वार्थास्सहसिद्धैस्तपोधनैः ॥२१५॥

देवा ऊचुः

यः पठेत्स्कंदसंबंधां कथामेतां महामतिः । शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत्कीर्तिमान्नरः ॥२१६॥
बह्वायुः सुभगः श्रीमान् कीर्तिमान् शुभदर्शनः । भूतेभ्यो निर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः ॥२१७॥
संध्यामुपास्य यः पूर्वां स्कंदस्य चरितं पठेत् । सयुक्तः किन्नरैः सर्वै र्महाधनपतिर्भवेत् ॥२१८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे कुमारसंभवतारकवधो नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥
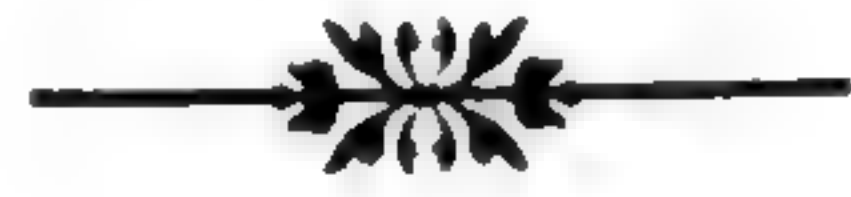
पैंतालिसवाँ अध्यायय

भीष्म उवाच

इदानीं श्रोतुच्छिामि हिरण्यकशिपोर्वधम् । नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम् ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

पुरा कृतयुगे राजन् हिरण्यकशिपुः प्रभुः । दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥२॥

समान ध्वनि करने वाली उस शक्ति ने वज्र निर्मित पर्वत के समान कर्कश तारकासुर के हृदय को चीर दिया॥२११॥ मरकर वह प्रलय काल में पर्वत के समान पृथिवी पर गिर पड़ा। उसके मुकुट, उष्णीश तथा सारे भूषण विखर गये॥२१२॥ दानवों में धुरन्धर उस दैत्य के मार दिये जाने पर नरकों में विद्यमान कोई पापी भी दुःखी नहीं हुआ॥२१३॥ जिनके मुख पर मुस्कान आ गयी थी वे देवता षण्मुख की स्तुति करते हुए क्रीडा करने लगे। वे अपने लोकों में चले गये तथा मनुष्य प्रसन्न हो गये ॥२१४॥ सभी देवताओं ने षण्मुख को वरदान दिया। सिद्ध तथा मुनिगण प्रसन्न हो गये उनको मानों सर्वार्थ की प्राप्ति हो गयी ॥२१४॥ सभी देवताओं ने षण्मुख को वरदान दिया सिद्ध तथा मुनिगण प्रसन्न हो गये। उनको भी मानों सर्वार्थ की प्राप्ति हो गयी ॥२१५॥ **देवताओं ने कहा—** जो बुद्धिमान् व्यक्ति स्कन्द की इस कथा को पढेगा, सुनेगा या सुनायेगा वह मनुष्य यशस्वी होगा ॥२१६॥ उसकी आयु बहुत होगी। वह सुनकर और ऐश्वर्य सम्पन्न होगा। सभी दुखों से रहित वह भूतों से निर्भय होगा ॥२१७॥ जो प्रातः संध्या करके स्कन्द चरित का पाठ करेगा, वह सभी किन्नरों के साथ महाधनवान् होगा ॥२१८॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड का कुमारोत्पत्ति तथा तारकवध नामक चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४४।।

नृसिंहावतार का वर्णन और हिरण्यकशिपुवध का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— अब मैं हिरण्यकशिपु के वध की कथा को सुनना चाहता हूँ भगवान् नृसिंह की महिमा तथा उस पापी हिरण्यकशिपु का विनाश सुनना चाहता हूँ ॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे राजन्! प्राचीन काल

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ॥३॥
वृतः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि । ब्रह्मा प्रीतो भवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४॥
ततः स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागत्य तत्र हि । विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५॥
आदित्यै र्वसुभिः साध्यै र्मरुद्भिर्दैवतैस्सह । रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥६॥
दिग्भिश्चैवविदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा। नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खचरैश्च महाग्रहैः ॥७॥
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षभिस्तथा। राजर्षिभिः पुण्यकृद्भि गन्धर्वाप्सरसांगणैः ॥८॥
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥९॥
प्रीतोस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत। वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥१०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

नदेवासुरगंधर्वा नयक्षोरगराक्षसाः । न मानुषाः पिशाचाश्च हन्युर्मां देवसत्तम ॥११॥
ऋषयो मानवाः शापैर्नशपेयुः पितामह । यदि मे भगवान्प्रीतो वर एष वृतो मया ॥१२॥
न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा। न शुष्केण न चार्द्रेण नस्याच्चान्येन मे बधः ॥१३॥
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः । सलिलं चांतरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥१४॥
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः। धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एष दिव्यो वरस्तात मयादत्तस्तवाद्भुतः। सर्वकामप्रदो वत्स प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥१६॥
एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाशमेव हि। वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥१७॥

में कृतयुग (सत्ययुग) में दैत्यों के स्वामी हिरण्यकशिपु ने घोर तपस्या की ॥२॥ वह स्नान तथा मौन का व्रत धारण करके ग्यारह हजार वर्षों तक जल में रहा ॥३॥ शम, दम तथा ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले उस पर ब्रह्माजी उसकी तपस्या तथा नियम को देखकर प्रसन्न हो गये ॥४॥ उसके बाद सूर्य के समान देदीप्यमान तथा हंस से युक्त विमान से ब्रह्माजी स्वयं वहाँ आये ॥५॥ ब्रह्माजी के साथ आदित्यगण, वसुगण, साध्यगण तथा मरुद्गण आदि देवता विद्यमान थे । रुद्रगण, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस और पन्नग ॥६॥ दिशा, विदिशा, नदियाँ, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त, ग्रहगण, महाग्रह ॥७॥ इत्यादि देवता, ब्रह्मर्षियों के साथ सिद्धगण, सप्तर्षिगण, राजर्षिगण, पुण्यवान पुरुष, गन्धर्व तथा अप्सराएँ ॥८॥ इन सबों के साथ चराचर गुरु ब्रह्माजी सभी देवताओं से वे घिरे थे । ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने दैत्य हिरण्यकशिपु से कहा ॥९॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— तुम्हारी इस तपस्या से हे सुव्रत भक्त ! मैं प्रसन्न हूँ; अतएव अपने मनोनुकूल तुम वरदान माँगो ॥१०॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा**— हे देवश्रेष्ठ ! मुझे देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच नहीं मार सकें ॥११॥ हे पितामह ! मुझे ऋषिगण तथा मनुष्य शाप नहीं दे सकें । यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं यही वरदान माँगता हूँ ॥१२॥ शस्त्र, अस्त्र, पर्वत तथा वृक्ष से भी मेरी मृत्यु न हो, न सुखी वस्तु से न गीली वस्तु से मेरी मृत्यु हो । अन्य किसी भी वस्तु से मेरी मृत्यु न हो ॥१३॥ सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, दशो दिशाएँ मैं ही हो जाऊँ ॥१४॥ मैं ही क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, वसुगण, यम, धनाध्यक्ष कुबेर, यक्षों तथा किं पुरुषों का स्वामी हो जाऊँ ॥१५॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— तात ! मैंने यह दिव्य तथा अद्भुत वरदान तुमको दे दिया । हे वत्स ! मैं सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला हूँ । इसमें कोई संशय नहीं है ॥१६॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— यह कहकर ब्रह्माजी, आकाश में ब्रह्मर्षि समूह सेवित

ततो देवाश्च गंधर्वा ऋषिभिः सहचारणाः । वरप्रदानं श्रुत्वैवं पितामहमुपस्थिताः ॥१८॥

देवा ऊचुः

वरप्रदानाद्भगवन्वधिष्यति स नो सुरः । तत्प्रसादश्च भगवन् वधोप्यस्य विचिंत्यताम् ॥१९॥
भगवान् सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयंप्रभुः । स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिः परः ॥२०॥
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः । आश्वासयामास तदा सुशीतै र्वचनांबुभिः ॥२१॥
अवश्यं त्रिदशानेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् । तपसोऽन्तेस्य भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥२२॥
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजाननात् । स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रजग्मु र्मुदान्विताः ॥२३॥
लब्धमात्रे वरे सोऽथ प्रजास्सर्वा अबाधत । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन गर्वितः ॥२४॥
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै शंसितव्रतान् । सत्यधर्मपरान् दान्तान् घर्षयामास दानवः ॥२५॥
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः । त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥२६॥
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मिणा । यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञीयांश्च दैवतान् ॥२७॥
तथा दैत्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा । रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः ॥२८॥
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् । देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ॥२९॥

देवा ऊचुः

नारायणमहाभाग देवास्त्वां शरणं गताः । त्रायस्व जहि दैत्येंद्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ॥३०॥
त्वं हि नः परमोदाता त्वं हि नः परमो गुरुः । त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तमः ॥३१॥

अपने वैराज नामक भवन में चले गये ॥१७॥ उसके बाद हिरण्यकशिपु को इस प्रकार की बात सुनकर देवता, गन्धर्व, ऋषिगण तथा चारणगण ब्रह्माजी के पास आये ॥१८॥ **देवताओं ने कहा**— भगवन् ! वर को प्राप्त करके वह हमलोगों का वध करेगा । अतएव आप उसके वध का भी उपाय सोचिए ॥१९॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— सभी जीवों के आदि कर्ता, भगवान् प्रजापति तथा स्वयं प्रभु सृष्टि करने वाले हैं, वे ही हव्य और कव्य की सृष्टि करने वाले है, अव्यक्त तथा प्रकृति से परे (ऊपर) हैं ॥२०॥ सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करने वाले वाक्य को सुनकर ब्रह्माजी ने उन लोगों को शीतल वचन रूपी जल से सींचते हुए आश्वासन दिया ॥२१॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— उसको अपनी तपस्या का फल अवश्य मिलना चाहिए । जब उसकी तपस्या समाप्त हो जायेगी तो भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥२२॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— ब्रह्माजी के उस वाक्य को सुनकर सभी देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥२३॥ वरदान के गर्व से गर्वित हिरण्यकशिपु दैत्य वरदान प्राप्त कर लेने के पश्चात् सम्पूर्ण प्रजाओं को दुःख देने लगा ॥२४॥ वह दानव आश्रमों में रहने वाले प्रशंसित व्रत वाले, सत्य व्रत का पालन करने वाले तथा दमगुण सम्पन्न मुनियों को अपमानित किया ॥२५॥ वह महान् असुर त्रैलोक्य के देवताओं को परास्त करके त्रैलोक्य को अपने वश में करके स्वर्ग में ही रहने लगा ॥२६॥ जब वरदान के मद से मत्त वह काल धर्म से प्रेरित होकर यज्ञीय देवताओं को अयज्ञीय बना दिया ॥२७॥ उस समय दैत्य, साध्यगण विश्वेदेव, वसुगण, रुद्रगण, देवगण, यक्ष, देवता, ब्राह्मण तथा महर्षिगण ॥२८॥ सबों के आश्रय, सबों के रक्षक महाबलवान् देवाराध्य, यज्ञस्वरूप, सनातन वासुदेव भगवान् विष्णु की शरण में गये ॥२९॥ **देवताओं ने कहा**— हे महाभाग नारायण ! सभी देवता आपके शरण में आये हैं, आप रक्षा कीजिये । प्रभो ! आप दैत्य हिरण्यकशिपु का वध कीजिये ॥३०॥ आप ही हमलोगों के सर्वश्रेष्ठ दाता और परमगुरु हैं । हे सुरोत्तम ! आप ही हम ब्रह्मा आदि के

विष्णुरुवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्। तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत माचिरम्॥३२॥
एनं हि सगणं दैत्यं वरदानेन गर्वितम् । अवध्यममरेंद्राणां दानवेंद्रं निहन्म्यहम् ॥३३॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् विश्वपो विष्णुरव्ययः । हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः ॥३४॥
तेजसाभास्काराकारः शशीकांत्येव चापरः । नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं तथा ॥३५॥
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संगृह्य पाणिना । ततो ददर्श विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ॥३६॥
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् । विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम् ॥३७॥
वैहायसीं कामगमां पंचयोजनमुच्छ्रिताम् । जराशोकक्षमापेतां निष्प्रकम्प्यां शिवां सुखाम्॥३८॥
वेश्मासनवतीं रम्यां ज्वलंतीमिव तेजसा । अंतःसलिलसंयुक्तां विहिता विश्वकर्मणा ॥३९॥
दिव्यवर्णमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् । नीलपीतासितश्यामैः श्वेतैर्लोहितकैरपि॥४०॥
अवदातैस्तथागुल्मै रक्तमंजरिधारिभिः । सिताभ्रघनसंकाशां प्लवंतीं च ददर्श सः ॥४१॥
रश्मिमती स्वभावेन दिव्यगंधमनोरमा । सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा॥४२॥
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्य तां प्राप्नुवंति ते। नानारूपै रुपकृता सुचित्रैश्च सुभास्वरैः ॥४३॥
अतिचंद्रातिसूर्यातिशिखिकान्तिस्वयंप्रभा । दीप्यते नाकपृष्ठस्था भासयंती विभासुरा ॥४४॥
सर्वे चकाशिरे तस्यां मुदिताश्चैव मानुषाः । रसवच्च प्रभूतं च भक्ष्यभोज्यान्नमुत्तमम् ॥४५॥
पुण्यगंधा स्त्रजश्चापि नित्यकालफलाद्रुमाः । उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि संति वै॥४६॥

सर्वश्रेष्ठ देव हैं ॥३१॥ **भगवान् विष्णु ने कहा**— देवताओं आपलोग भय छोड दें । मैं आपलोगों को अभय प्रदान करता हूँ । शीघ्र ही आपलोग पहले के समान स्वर्ग को प्राप्त कर लेंगे ॥३२॥ वरदान से गर्वित तथा देवताओं के लिए अवध्य इस दैत्य का मैं वध करूँगा ॥३३॥ इस तरह से कहकर विश्व की रक्षा करने वाले श्रीहरि भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपु के स्थान पर चले गये ॥३४॥ उस समय भगवान् का आकार सूर्य के समान तेजस्वी तथा चन्द्रमा के समान कान्तिमान था । उन्होंने अपना आधा शरीर मनुष्य का तथा आधा शरीर सिंह का बना लिया॥३५॥ नरसिंह शरीर से अपने हाथ में मणि लेकर श्रीभगवान् ने हिरण्यकशिपु की विस्तीर्ण, दिव्य, मनोहर ॥३६॥ सभी काम्य पदार्थों से युक्त तथा शुभ सभा को देखा । वह सभा सौ योजन लम्बी तथा पचास योजन चौड़ी थी ॥३७॥ वह सभा आकाश में स्थित थी इच्छानुसार चला करती थी । वह पाँच योजन ऊँची थी, जरा, शोक एवं क्षमा से रहित, अचल, कल्याणमयी और सुखप्रद थी ॥३८॥ गृहों तथा आसनों से युक्त, मनोहर तथा तेज से देदीप्यमान थी । उसके भीतर जल भरा था । उसको विश्वकर्मा ने बनाया था ॥३९॥ उसमें दिव्य वर्णो वाले तथा फल एवं पुष्प देने वाले वृक्ष लगे थे । वे नीला, पीला, श्वेत, श्याम, लाल तथा स्वच्छ गुल्मों एवं लाल मञ्जरियों को धारण किए थे । श्वेत मेघ के समान तथा चलती हुयी उस सभा को भगवान् नरसिंह ने देखा ॥४०-४१॥ वह सभा स्वभावतः कान्ति सम्पन्न, दिव्य गन्ध से मनोरम, दुःख रहित, सुखप्रद और समशीतोष्ण थी ॥४२॥ उस सभा में जाने पर किसी को भी भूख, प्यास तथा श्रान्ति नहीं होती थी । वह अनेक प्रकार के देदीप्यमान चित्रों से अलंकृत थी ॥४३॥ सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि से भी अधिक स्वाभाविक कान्ति से दीप्यमान वह स्वर्ग लोक में सुशोभित होती थी ॥४४॥ उस सभा में सभी मनुष्य प्रसन्न और प्रकाशित होते थे । उसमें उत्तम कोटि के रसयुक्त भक्ष्य भोज्य अन्न प्रभूत मात्रा में विद्यमान थे ॥४५॥ वहाँ की मालाएँ सुगन्धि युक्त तथा वृक्ष सदैव फल देते रहने वाले थे । वहाँ जल गर्मी में शीतल

पुष्पिताग्रान् महाशाखान् प्रवालांकुरधारिणः । लतावितानसंछन्नान् कल्पानैक्षिष्ट स प्रभुः ॥४७॥
गंधवंति च पुष्पाणि रसवंति फलानि च । तानि शीतानि चोष्णानि तत्र तत्र सरांसि च ॥४८॥
अपश्यद्भूपतीर्थानि सभायां तस्य स प्रभुः । नलिनैः पुंडरीकैश्च शतपत्रैः सुगंधिभिः ॥४९॥
रक्तैः कुवलयैश्चैव कल्हारैरुत्पलैस्तथा। नानाश्चर्यसमोपेतैः पुष्पैरन्यैश्चसुप्रियैः ॥५०॥
कारंडवैश्चक्रवाकैः सारसैः कुररैरपि । विमलस्फटिकाभानि पांडुरच्छदनैर्द्विजैः ॥५१॥
बहुहंसोपगीतगनि सारसानां रुतानि च । गंधयुक्ता लतास्तत्र पुष्पमंजरिधारिणीः ॥५२॥
दृष्टवान् भगवान् हृष्टः खादिरान् वेतसार्जुनान्। चूता निम्बा नागवृक्षाः कदंबा वकुला धवाः ॥५३॥
प्रियंगवः पाटलाख्याःशाल्मल्यस्सहरिद्रवाः । शालास्तालास्तमालाश्च चम्पाकाश्च मनोरमाः ॥५४॥
तथैवान्ये व्यराजंत सभायां पुष्पिता द्रुमाः । एला ककुभकंकोललवलीकर्णपूरकाः ॥५५॥
मधूकाः कोविदाराश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः। अंजनाशोकपर्णासा बहवश्चित्रकाद्रुमाः ॥५६॥
वरुणाश्च पलाशाश्च पनसास्सहचंदनैः। नीलास्सुमनसश्चैव नीपाश्चाश्वत्थ तिंदुकाः ॥५७॥
पारिजाताश्च तरवो मल्लिका भद्रदारवः । अटरूषाः पीलुकाश्च तथाचैवैलवालुकाः ॥५८॥
मंदारकाः कुरवका पुन्नागाः कुटजास्तथा। रक्ताः कुरवकाश्चैव नीलाश्चागरुभिः सह ॥५९॥
किंशुकाश्चैव भव्याश्च दाडिमा बीजपूरकाः । कालेयका दुकूलाश्च हिंगवस्तैलवर्त्तिकाः ॥६०॥
खर्जूरा नालिकेराश्च हरीतकमधूककाः । सप्तपर्णाश्च बिल्वाश्च सयावाश्च शरावताः ॥६१॥
असनाश्च तमालाश्च नानागुल्मसमावृताः । लताश्च विविधाकाराः पुष्पपत्रफलोपगाः ॥६२॥
एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः । नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समंततः ॥६३॥

और सर्दी में गर्म रहता था ॥४६॥ नरसिंह भगवान् ने वहाँ पर विद्यमान कल्प वृक्ष की वड़ी-बड़ी शाखाओं को देखा, जिनके अग्रभाग में पुष्प विकसित थे । अङ्कुर से युक्त प्रवालों को धारण करने वाले तथा लता समूह से ढँके हुए थे ॥४७॥ पुष्प सुगन्धि युक्त थे और फल रस युक्त थे । विभिन्न स्थानों पर गर्म तथा शीतल जल वाले सरोवर थे ॥४८॥ हिरण्यकशिपु की सभा में भगवान् ने राजा का सरोवर देखा जो कमलिनी, श्वेत कमल तथा शतपत्रों से सुगन्धित था ॥४९॥ रक्त कमल, कह्लार, नील कमल तथा अनेक आश्चर्य मय दूसरे अत्यन्त प्रिय पुष्पों से सुशोभित था ॥५०॥ वह कारण्डव, चक्रवाक, सारस एवं कुरर पक्षियों से विमल स्फटिक के समान धवल ओष्ठों वाले दाँतों से सुशोभित था ॥५१॥ उसमें बहुत से हंस वोल रहे थे और सारस पक्षी बोल रहे थे । पुष्पों तथा मञ्जरी से युक्त सुगन्धित लताएँ थीं ॥५२॥ श्रीभगवान् ने वहाँ प्रसन्नता पूर्वक खैर, वेंत तथा अर्जुन के वृक्षों को देखा । आम, निम्ब, पुन्नागवृक्ष, कदम्ब, वकुल, धव ॥५३॥ प्रियङ्गु, पाटल, सेमर, हरिद्रव, शाल, ताल, तमाल तथा मनोहर चम्पा ॥५४॥ तथा दूसरे भी वृक्ष उस सभा में सुशोभित होते थे । एला (इलायची), कुंकुम, कङ्कोल, लवङ्ग, कर्णपूर॥५५॥ महुआ, कोविदार तथा ऊँचे-ऊँचे ताल वृक्ष, अञ्जन, अशोक, पर्णास तथा बहुत से अद्भुत वृक्षा वहाँ पर लगे थे ॥५६॥ वरुण, पलास, चन्दन, नीले पुष्प, नीप (एकतरह का कदम्ब) पिप्पल, तिंदुक ॥५७॥ पारिजात के वृक्ष, मल्लिका, भद्रदारु, अटरूष, पीलुक, ऐलवालुक ॥५८॥ मन्दार, कुरवक, पुन्नाग, कुटज, रक्त कुरवक, नीला कुरवक, अगरु ॥५९॥ किंशुक, भव्यअनार, बीजपूर, कालेयक, दुकूल, हींगु, तैलवर्ती ॥६०॥ खजूर, नारिकेल, हरीतक, मधूक, सप्तपर्ण (सप्तछद) विल्व, सयावा तथा शरावत ॥६१॥ असन तथा अनेक प्रकार के गुल्मों से आच्छन्न तमाल, पुष्प, पत्र तथा फल से भरी हुई अनेक प्रकार की लतायें ॥६२॥ ये सभी तथा बहुत से

**चकोराःशतपत्राश्च मत्तकोकिलशारिकाः । पुष्पितान् पुष्पिताग्रांश्च संपतंति महाद्रुमान् ॥६४॥
रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगताः खगाः । परस्परमवैक्षंत प्रहृष्टा जीवजीवकाः ॥६५॥
तस्यां सभायां दैत्येंद्रो हिरण्यकशिपुस्तदा । आसीन आसने चित्रे दशनल्बप्रमाणतः ॥६६॥
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते । हिरण्कशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुंडलः ॥६७॥
उपचेरुर्महादैत्या हिरण्यकशिपुं तदा । दिव्यतालानि गीतानि जगुर्गंधर्वसत्तमाः ॥६८॥
विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेति च पूजिता । दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुंजिकस्थला ॥६९॥
मिश्रकेशी च रंभा च चित्रभा श्रुतिविभ्रमा । चारुनेत्रा घृताची च मेनका चोर्वशी तथा ॥७०॥
एतास्सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः । उपातिष्ठंत राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥७१॥
उपासते दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा । बलि र्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः ॥७२॥
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः । सुरहन्ता दुःखकर्ता सुमनास्सुमतिस्तथा ॥७३॥
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा । विश्वरूपस्वरूपश्च विश्वकायो महाबलः ॥७४॥
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महासुरः । घटाभो विटरूपश्च ज्वलनश्चेंद्रतापनः ॥७५॥
दैत्यदानवसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुंडलाः । स्रग्विणो वर्मिणः सर्वे सर्वे च चरितव्रताः ॥७६॥
सर्वे लब्धवराः शूरास्सर्वे विहितमृत्यवः । एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥७७॥
उपासते महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः । विमानै र्विविधाकारै र्भ्राजमानैरिवाग्निभिः ॥७८॥
महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्रांगदबाहवः । भूषितांगा दितेः पुत्रास्तमुपासत सर्वतः ॥७९॥**

वन में उत्पन्न होने वाले वृक्ष, अनेक प्रकार के पुष्प तथा फलों से युक्त होने के कारण सुशोभित हो रहे थे ॥६३॥ चकोर पक्षी, शतपत्र पक्षी, मदमत्त कोकिलाएँ और शारिकाएँ जिनके अग्रभाग में पुष्प विकसित थे, ऐसे बड़े-बड़े वृक्षों पर बैठे थे ॥६४॥ वृक्षों के अग्रभाग में रक्तवर्ण के, पीले तथा अरुण वर्ण के पक्षियों को पक्षियों पर अपनी जीविका चलाने वाले जीव प्रसन्नता पूर्वक देख रहे थे ॥६५॥ उस सभा में दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु विचित्र आसन पर बैठा था उसका प्रमाण दश नल्व था ॥६६॥ जिस पर दिव्य चादर बिछी थी ऐसी दिव्य शय्या पर, सूर्य के समान कान्तिमान हिरण्यकशिपु बैठा था, उसका कुण्डल चमक रहा था ॥६७॥ उस समय बड़े-बड़े दैत्य हिरण्यकशिपु की सेवा कर रहे थे । बड़े-बड़े गन्धर्व दिव्यतालों को गा रहे थे ॥६८॥ विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, पूजिता, दिव्या, सौरभेयी, समीची, पुंजिकस्थला ॥६९॥ मिश्रकेशी तथा रम्भा चित्रभा, श्रुतिविभ्रमा, चारुनेत्रा, घृताची, मेनका तथा उर्वशी॥७०॥ ये सभी तथा अन्य हजारों अप्सराएँ जो नृत्य तथा गीत में निपुण थीं, वे स्वामी हिरण्यकशिपु की सेवा करती थीं॥७१॥ सभी वरदान प्राप्त दैत्य, बलि, विरोचन, पृथिवी पुत्र नरकासुर ॥७२॥ प्रह्लाद, विप्रचित्ति, महान असुर गविष्ठ, सुरहन्ता, दुःखकर्त्ता, सुमना, सुमति ॥७३॥ घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, स्वरूपतः, महाबलवान् विश्वकाय ॥७४॥ दशग्रीव, वाली, महान् असुर मेघवासा, घटाभ, विटरूप, ज्वलन तथा इन्द्रतापन॥७५॥ इन सभी दैत्य एवं दानव समुदाय के कुण्डल चमक रहे थे । सभी माला तथा कवच धारण किए हुए थे, सबों ने व्रतानुष्ठान किया था ॥७६॥ सबके सब वरदान प्राप्त थे, तथा सबों की मृत्यु विहित थी । ये सभी तथा दूसरे भी दैत्य अपने स्वामी हिरण्यकशिपु की सेवा में थे ॥७७॥ सबों का अलङ्कार दिव्य था । वे अनेक प्रकार के अग्नि के समान देदीप्यमान विमानों से सुशोभित होते थे ॥७८॥ सबके सब महेन्द्र के समान शरीर वाले अपनी भुजाओं में अद्भुत केयूर (अङ्गद) धारण किए थे । सबों के अङ्ग अलंकृत थे और हर प्रकार से हिरण्यकशिपु की सेवा करते

ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्यमहात्मनः । न श्रुतं नैव दृष्टं च कस्यापि भुवनत्रये ॥८०॥

रजतकनकचित्रवेदिकायां परिकृरत्नविचित्रवीथिकायाम् ।
स ददर्शमृगाधिपः सभायां सुरुचिरजालगवाक्षशोभितायाम् ॥८१॥
कनकवलयहारभूषितांगं दितितनयं समृगाधिपो ददर्श ।
दिवसकरकरप्रभं ज्वलंतं दितिजसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम् ॥८२॥

ततो दृष्ट्वा महाभागं कालचक्रमिवागतम्। नारसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम्॥८३॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नामवीर्यवान् । दिव्येन वपुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम्॥८४॥
तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमाश्रितम् । विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥८५॥

प्रह्लाद उवाच

महाराजमहाबाहो दैत्यानामादिसंभव । न श्रुतं नैव मे दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः ॥८६॥
अव्यक्तं परमं दिव्यं किमिदं रूपमागतम्। दैत्यांतकरणं घोरं शंसतीव मनो मम ॥८७॥
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा । हिमवान् पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ॥८८॥
चंद्रमास्सहनक्षत्रैरादित्यारश्मिभिः सह । धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥८९॥
मरुतो देवगंधर्वा ऋषयश्चतपोधनाः । नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥९०॥
ब्रह्मा देवाः पशुपर्तिललाटस्था भ्रमंति हि । स्थावराणि च सर्वाणि जंगमानि तथैव च ॥९१॥
भवांश्च सहितोस्माभिः सर्वै दैत्यगणै र्वृतः । विमानशतसंकीर्णा सर्वा या भवतः सभा॥९२॥
सर्वं त्रिभुवनं राजन् लोकधर्मश्च शाश्वतः। दृश्यते नरसिंहेस्मिंस्तथेदं निखिलं जगत्॥९३॥

थे ॥७९॥ दैत्याग्रण्य हिरण्यकशिपु का जैसा ऐश्वर्य था वैसा ऐश्वर्य त्रैलोक्य में न तो किसी का सुना गया है और न देखा गया है ॥८०॥ रत्नों से चित्रित सोने और चाँदी की वेदी पर रत्न जटित गलियारे बनाये गये थे । सुन्दर-सुन्दर जिसकी खिडकियाँ थी । इन सबों से सुशोभित सभा में सुवर्ण के कंकण और हार से सुशोभित अङ्गों वाले, सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान कान्ति वाले हिरण्यकशिपु को बैठे हुए भगवान् नृसिंह ने देखा ॥८१-८२॥ उसके पश्चात, महाभाग, कालचक्र के समान आये हुए नर और सिंह शरीर वाले भस्म से ढँकी हुयी अग्नि के समान॥८३॥ दिव्य शरीर वाले समागत भगवान् नरसिंह को हिरण्यकशिपु के पराक्रमी पुत्र प्रह्लाद ने देखा ॥८४॥ सुवर्ण पर्वत के समान कान्ति वाले, अपूर्व शरीरधारी उन भगवान् को देखकर सभी दानव तथा हिरण्यकशिपु सबके सब आश्चर्यित हो गये ॥८५॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे महाराज ! हे महाबाहो ! हे दैत्यों में सबसे प्राचीन इस प्रकार का नारसिंह शरीर न तो मैंने कभी देखा है और न सुना है ॥८६॥ यह अव्यक्त और परम दिव्य शरीर कहाँ से आ गया ? मुझे तो लगता है कि यह भयङ्कर रूप दैत्यों का विनाश करने वाला है ॥८७॥ इसके शरीर में सभी देवता, सागर, नदियाँ, हिमालय, पारियात्र तथा दूसरे कुलपर्वत, सभी नक्षत्र, चन्द्रमा तथा सूर्य अपनी कान्तियों के साथ विद्यमान हैं । धनद, वरुण, शचीपति इन्द्र ॥८८-८९॥ मरुद्गण, देवता, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण, नाग, यक्ष, पिशाच तथा भयंकर पराक्रमी राक्षस विद्यमान हैं ॥९०॥ ब्रह्माजी, दूसरे देवता और पशुपति, इसके ललाट प्रदेश में विचरण कर रहे हैं। सभी स्थावर एवं जंगम ॥९१॥ और हमलोगों के साथ आप भी सभी दैत्यों के साथ विद्यमान हैं । सैकड़ों विमानों से भरी हुयी यह आपकी जो सभा है वह तथा ॥९२॥ राजन् सम्पूर्ण त्रैलोक्य शाश्वत लोकधर्म तथा सम्पूर्ण जगत् इस नरसिंह के भीतर दिखायी देते हैं ॥९३॥ इसमें ही प्रजापति, महात्मा मनु, महान् योगीगण, पृथिवी, आकाश, उत्पात

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च महीनभश्च ।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च रतिश्च सत्यंच तपोदमश्च ॥९४॥
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे ।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥९५॥

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः। उवाच दानवान् सर्वान् गणांश्च सगणाधिपः ॥९६॥
मृगेंद्रो गृह्यतामेष अपूर्वां तनुमास्थितः । यदि वा संशयःकश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥९७॥
ते दानवगणास्सर्वे मृगेंद्रं भीमविक्रमम् । परिक्षिपंतो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥९८॥
सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः । बभंज तां सभां सर्वां व्यादितास्य इवांतकः ॥९९॥
सभायां भज्यमानायां हरिण्यकशिपुः स्वयम्। चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचनः ॥१००॥
सर्वास्त्राणामथश्रेष्ठं दंडमस्त्रं सुदारुणम्। कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथापरम् ॥१०१॥
पैतामहं महत्युग्रं त्रैलोक्यनिर्मितं महत्। विचित्रामशनिं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥१०२॥
रौद्रं तथोग्रशूलं च कंकालं मुसलं तथा । अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ॥१०३॥
नारायणास्त्रमैन्द्रं च आग्नेयं शैशिरं तथा । वायव्यं मथनं चैव कपालमथकिंकरम् ॥१०४॥
तथा प्रतिहतां शक्तिं क्रौंचमस्त्रं तथैव च । मोहनं शोषणं चैव संतापनविलापने ॥१०५॥
कंपनं शातनं चैव महास्त्रं चैव रोधनम् । कालमुद्गरमक्षोभ्यं तापनं च महाबलम् ॥१०६॥
संवर्तनं मोहनं च तथा मायाधरं वरम्। गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नंच नंदकम् ॥१०७॥
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम्। अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥१०८॥
एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तदा । असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥१०९॥

सूचक काल, धृति, मति, रति, सत्य, तपस्या तथा दम ॥९४॥ महानुभाव सनत्कुमार, विश्वेदेव, सभी ऋषिगण, क्रोध, काम, हर्ष, दर्प, मोह तथा समस्त पितृगण इन नृसिंह के ही शरीर में दिखते हैं ॥९५॥ प्रह्लाद की वाणी को सुनकर दैत्यों के स्वामी हिरण्यकशिपु ने सभी दानवों को कहा ॥९६॥ इस अपूर्व शरीरधारी मृगेन्द्र को पकड़ लो यदि इसको पकड़ पाने मे किसी प्रकार का संशय हो तो इस जानवर को मार डालो ॥९७॥ वे सभी दानवों के गण प्रसन्नता पूर्वक उस भयङ्कर मृगेन्द्र पर प्रहार करते हुए अपने तेज से उसे डरा रहे थे ॥९८॥ महाबलवान् भगवान् नृसिंह ने भी सिंहनाद करके मुँह खोले हुए यमराज के समान उस सभा को ही विनष्ट कर दिया ॥९९॥ जब सभा विनष्ट हो रही थी उस समय कुद्ध हिरण्यकशिपु ने नरसिंह भगवान् के ऊपर अस्त्रों से प्रहार किया ॥१००॥ सभी अस्त्रों में श्रेष्ठ भयङ्कर ब्रह्मदण्ड, कालचक्र, भयङ्कर विष्णुचक्र, महान् त्रैलोक्य का निर्माण करने वाले ब्रह्माजी के अस्त्र (ब्रह्मास्त्र) शुष्क तथा आर्द्र दोनों प्रकार की अद्भुत अशनियों (वज्रों) ॥१०१-१०२॥ भयङ्कर रुद्रशूल, कालचक्र, मुसलास्त्र, ब्रह्मशिरः अस्त्र, तथा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया ॥१०३॥ उसने नारायणास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, आग्नेयास्त्र शिशिरास्त्र, वायव्यास्त्र, मथनास्त्र, कपालास्त्र, किंकरास्त्र का भी प्रयोग किया ॥१०४॥ उसीतरह अप्रतिहता शक्ति, क्रौञ्चास्त्र, मोहनास्त्र, शोषणास्त्र, संतापनास्त्र, विलेपनास्त्र ॥१०५॥ कंपनास्त्र, शातनास्त्र, रोधनास्त्र, अक्षोभ्य कालमुद्गर तथा महाबलवान तापनास्त्र से प्रहार किया ॥१०६॥ हिरण्याक्ष के द्वारा प्रयुक्त ये सभी अस्त्र भगवान् नृसिंह के समक्ष घी में डाली गयी आहुति के ही समान सिद्ध हुए ॥१०९॥ प्रज्वलित इन अस्त्रों के द्वारा हिरण्यकशिपु ने नरसिंह भगवान् को ढंक दिया । उस समय भगवान् ऐसे लग रहे थे जैसे हिमालय सूर्य की किरणों से ढँक जाता

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमः । विवस्वान् धर्मसमये हिमवंतमिवांशुभिः ॥११०॥
सह्यमर्षानिलोद्भूतो दैत्यानां सैन्यसागरः । क्षणेनाप्लावयत्सर्वं मैनाकमिवसागरः ॥१११॥
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा । वज्रैरशनिभिश्चैव बहुशाखैर्महाद्रुमैः ॥११२॥
मुद्गरैः कूटपाशैश्च शिलोलूखलपर्वतैः । शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दंडैरपि सुदारुणैः ॥११३॥

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेंद्रतुल्याशनितुल्यवेगाः ।
समंततोभ्युद्यतबाहुकायाः स्थिताः सशीर्षा इव नागपोताः ॥११४॥
सुवर्णमालाकुलभूषितांगाः सुतीक्ष्णदंष्ट्राकुलवक्त्रगर्ताः ।
स्फुरत्प्रभास्ते च सश्रृंगदेहाश्चीनांशुका भांति यथैवहंसाः ॥११५॥

सोसृजद्दानवो मायामग्निं वायुं समीरितम् । तमिंद्रस्तोयदैः सार्धं सहस्राक्षोमहाद्युतिः ॥११६॥
महता तोयवर्षेण शमयमास पावकम् । तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः ॥११७॥
असृजद्घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समंततः । तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च ॥११८॥
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवोद्गतः । त्रिशिखां भ्रुकुटीमस्य ददृशुर्दानवा रणे ॥११९॥
ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव । ततः सर्वासु मयासु हतासु दितिनंदनाः ॥१२०॥
हिरण्यकशिपुं दैत्या विषण्णाश्शरणं ययुः । ततः प्रज्वलितः क्रोधात्प्रदहन्निवतेजसा ॥१२१॥
तस्मिन्क्रुद्धे तु दैत्येंद्रे तमोभूतमभूज्जगत् । आवहःप्रवहश्चैव विवहोथ समीरणः ॥१२२॥
परावहस्संवहश्च उद्वहश्च महाबलः । तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसिनः ॥१२३॥
इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः । येग्रहास्सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवंति हि ॥१२४॥

है ॥११०॥ वह क्रोध से भरा हुआ मानो दैत्य सैन्य सागर भगवान् को प्राश, पाश, खड्ग, गदा, मुसल, वज्र, अशनि तथा अनेक शाखाओं वाले वृक्षों, मुद्गर, कूट पाश, शिला, उलूखल, पर्वत, देदीप्यमान शतघ्नी तथा भयङ्कर दण्ड उसी तरह से ढँक दिया जिसतरह मैनाक पर्वत को सागर ने ढँक लिया था ॥१११-११३॥ सभी दानव हाथ में प्राश लिए हुए, वज्र के वेग से युक्त इन्द्र के समान चारो ओर से हाथ उठाये हुए उसीतरह से खड़े हो गये, जैसे फन काढे हुए साँप के बच्चे खड़े हो ॥११४॥ उन सबों के अङ्ग सुवर्ण की माला से अलङ्कृत थे । उनके मुख तीक्ष्ण दाँतों से भरे थे उनकी कान्ति चमक रही थी । शरीर में सींग जमे थे । चीनांशुक से उनके शरीर हंस की भांति चमक रहे थे ॥११५॥ हिरण्यकशिपु ने माया के द्वारा वायु से प्रदीप्त अग्नि की सृष्टि कर दी तो इन्द्र ने मेघों के साथ अत्यधिक वर्षा के द्वारा उस अग्नि को शान्त कर दिया । युद्ध में उस माया के विनष्ट हो जाने पर हिरण्यकशिपु ने ॥११६-११७॥ चारो ओर घोर अन्धकार की सृष्टि कर दी । संसार के अन्धकाराच्छन्न हो जाने पर तथा दैत्यों के आयुध धारण कर लेने पर तेजः सम्पन्न सूर्योदय सा हो गया । दानवों ने नृसिंह की टेढी भृकुटी को देखा॥११८-११९॥ लगता था जैसे ललाटस्थ त्रिकूट पर त्रिपथगा गङ्गा प्रवाहित हो रही हो । उसके पश्चात् जब सारी मायायें विनष्ट हो गयीं उस समय सभी दैत्य ॥१२०॥ उदास हो गये और दैत्य हिरण्यकशिपु के शरण में गये। हिरण्यकशिपु अपने क्रोध के तेज से प्रज्ज्वलित सा हो गया ॥१२१॥ उसके क्रुद्ध होने पर सारा जगत् अन्धकारमय हो गया और आवह तथा प्रवह नामक वायु चलने लगी ॥१२२॥ उन दोनों के साथ परावह, संवह उद्वह एवं महाबलवान् भय को सूचित करने वाली परिवह नामक वायु जोर से चलने लगी ॥१२३॥ आकाशगामी सातो वायु क्षुब्ध हो गयी । सम्पूर्ण लोकों के विनाश के समय जो ग्रह उदित होते हैं ॥१२४॥ वे सभी ग्रह आकाश

ते सर्वे गगने हृष्टाव्यचरंश्च यथासुखम् । अयोगतश्चाप्यचरद्योगं निशि निशाचरः ॥१२५॥
सग्रहः सहनक्षत्रैस्तारापतिररिंदम । विवर्णतां च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ॥१२६॥
कृष्णः कबंधश्च तदा लक्ष्यते सुमहान् दिवि । असृजच्चासितां सूर्यो धूमवत्तां विभावसुः ॥१२७॥
गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिविष्यते । सप्तधूमनिभाघोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः ॥१२८॥
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठंति शृंङ्गगाः । वामे च दक्षिणेचैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती ॥१२९॥
शनैश्चरो लोहितांगो लोहितांगसमद्युतिः । समंसमधिरोहंत सर्वे वै गगनेचराः ॥१३०॥
श्रृंगाणि शनकैर्घोरा युगांतावर्त्तनग्रहाः । चंद्रमाश्च सनक्षत्रो ग्रहैः सह तमोनुदः ॥१३१॥
चराचरविनाशाय रोहिणीं नाभ्यनंदत । गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ॥१३२॥
उल्काः प्रज्वलिताश्चंद्रे व्यचरंत यथासुखम् । देवानामधिपो देवः सोप्यवर्षत शोणितम् ॥१३३॥
अपतन्गगनादुल्का विद्युद्रूपा महास्वना । अकाले च द्रुमास्सर्वे पुष्प्यंति च फलंति च ॥१३४॥
लताश्च सफलाः सर्वा या आहुर्दैत्यनाशिकाः । फलेफलान्यजायन्त पुष्पे पुष्पं तथैव च ॥१३५॥
उन्मीलंति निमीलंति हसंति प्ररुदंति च । विक्रोशंति च गंभीरं धूमायंते ज्वलंति च ॥१३६॥
प्रतिमास्सर्वदेवानां कथयंत्यो महद्भयम् । आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः ॥१३७॥
चुक्रुशुर्भैरवं तत्र मृगयुद्ध उपस्थिते । नद्यश्च प्रतिकूलानि वहंति कलुषोदकाः ॥१३८॥
न प्रकाशंत च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः । वानस्पत्या नपूज्यंते पूजनार्हाः कथंचन ॥१३९॥
वायुवेगेन हन्यंते भज्यंते प्रणमंति च । तथा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्त्तते ॥१४०॥

में विचरण करते हुये दिखायी देने लगे । विना योग के ही रात्रि में निशाचर संचरण करने लगे ॥१२५॥ हे अरिंदम भीष्म ! तारा गणों तथा ग्रहों के साथ चन्द्रमा तथा सूर्य विवर्ण (निष्प्रभ) हो गये ॥१२६॥ आकाश में बहुत बड़ा काला कबन्ध दिखने लगा । सूर्य में कालिमा दिखने लगी तथा अग्नि में अत्यधिक धूम युक्तता ॥१२७॥ आकाश में विद्यमान भगवान् सूर्य बार-बार परिवेष्टित होने लगे । आकाश में सूर्य की ज्योति सात प्रकार के धूम जैसा दिखायी देने लगी ॥१२८॥ आकाशस्थ चन्द्रमा के ग्रहों के शृङ्ग उन्नत हो गये । उनके बायें तथा दाहिने भाग में क्रमशः शुक्र और बृहस्पति हो गये ॥१२९॥ शैनेश्चर और भौम की कान्ति लाल हो गयी । सभी ग्रह एक ही साथ उच्च हो गये॥१३०॥ प्रलयकाल में उदित होने वाले भयङ्कर ग्रहों के शृंग उद्भूत हो गये । अन्धकार को विनष्ट करने वाले चन्द्रमा सभी ग्रहों तथा नक्षत्रों के साथ ॥१३१॥ चराचर का विनाश करने के लिए रोहिणी को अभिनंदित नहीं किए। राहु ने चन्द्रमा को पकड़ लिया और उन पर उल्कापात करने लगा ॥१३२॥ चन्द्रमा पर प्रज्जवलित उल्का चारो ओर विचरण करने लगे । देवेन्द्र भी खून की वर्षा करने लगे ॥१३३॥ विद्युत् स्वरूप उल्काएँ जोर-जोर से शब्द करती हुयी आकाश से गिरने लगीं । बिना समय के ही सभी वृक्ष पुष्पित और फलित होने लगे ॥१३४॥ फल युक्त होकर सभी लताएँ दैत्यों के विनाश को सूचित करने लगीं । फलों में फल लग गये तथा पुष्पों में पुष्प निकलने लगे॥१३५॥ महान् भय को बतलाती हुयी देवताओं की सभी प्रतिमायें आँखें खोलने लगी और बन्द करने लगीं । हँसने और रोने लगीं । गम्भीर ध्वनि करने लगीं और धूम प्रकट करने लगी । प्रज्वलित होने लगीं । जंगली पक्षी और पशुओं के साथ ग्राम्य पशु-पक्षी मिल गये ॥१३६-१३७॥ उस मृग युद्ध के समय वे घोर शब्द करने लगे । नदियों का जल कलुषित हो गया और वे प्रतिकूल बहने लगीं ॥१३८॥ रक्त और धूलि से भरी दिशाएँ प्रकाशित होती थी । पूज्य वनस्पतियाँ प्रकाशित नहीं होती थीं ॥१३९॥ वे वायु के वेग से टूटकर विनष्ट हो जाती थीं और गिर

अपरेण गते सूर्ये सलोकानां युगक्षये । तदा हिरण्यकशिपो दैंत्यस्योपरिवेश्मनः ॥१४१॥
भांडागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु । असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ॥१४२॥
दृश्यंते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः । एते चान्ये च बहवो घोररूपाः समुत्थिताः ॥१४३॥
दैत्येंद्रस्य विनाशाय दृश्यंते रणशंसिनः । मेदिन्यां कंपमानायां दैत्येंद्रेण महात्मनः ॥१४४॥
महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजसः । विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैः विर्मुंचंतो हुताशनम् ॥१४५॥
चतुः शीर्षाः पंचशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः । वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनंजयौ ॥१४६॥
एलामुखः कालियश्च महापद्मश्च वीर्यवान् । सहस्रशीर्षशशुद्धांगो हेमतालध्वजःप्रभुः ॥१४७॥
शेषोनंतो महानागो ह्यप्रकंप्यश्च कंपिताः । दीप्यंतेंतर्जलस्थानि पृथिवीविवराणि वै ॥१४८॥
सप्तदैत्येंद्रकोपेन कंपितानि समंततः । नानातेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः ॥१४९॥
पाताले सहसा क्षुब्धे दुष्प्रकंप्याः प्रकंपिताः । हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्टवान्महीम् ॥१५०॥
संदष्टौष्टपुटः क्रुद्धो वराह इव पूर्वजः । गंगाभागीरथीचैव कौशिकी सरयूरपि ॥१५१॥
यमुना चाथ कावेरी कृष्णावेणी च निम्नगा। तुंगभद्रा महावेगा नदीगोदावरी तथा ॥१५२॥
चर्मण्वती च सिंधुश्च तथानदनदीपतिः। मेलकप्रभवश्चैव शोणोमणिनिभोदकः ॥१५३॥
नर्मदा च शुभस्रोतास्तथा वेत्रवती नदी। गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वा सरस्वती ॥१५४॥
महाकालमहीचैव तमसापुष्पवाहिनी। जंबूद्वीपं रत्नवच्च सर्वरत्नोपशोभितम् ॥१५५॥
सुवर्णपुटकं चैव सुवर्णाकरमंडितम् । महानदश्च लौहित्यशशैलः कांचनशोभितः ॥१५६॥

पड़ती थी । सभी जीवों की छाया में कोई परिवर्तन नहीं होता था ॥१४०॥ लोकों के युगक्षय (विनष्ट) की वेला में सूर्य के अपरभाग में पहुँच जाने पर उस समय हिरण्यकशिपु के ऊपर घर के भाण्डगार तथा युद्धागार में असुरों का विनाश करने के लिए तथा देवताओं को विजय प्रदान करने के लिए मधु ने प्रवेश किया ॥१४१-१४२॥ भयङ्कर परिणाम को उपस्थित करने वाले अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे । ये सभी तथा इनके अतिरिक्त बहुत से दूसरे शकुन होने लगे ॥१४३॥ वे रण में दैत्येन्द्र के विनाश को सूचित करते थे । जब पृथिवी काँपने लगी तो दैत्येन्द्र के द्वारा ॥१४४॥ महा ओजस्वी पृथिवी को धारण करने वाले नागगण ऊपर से गिरे । वे विष की ज्वाला से भरे हुए अपने मुख से अग्नि उगल रहे थे ॥१४५॥ किसी के चार शिर थे तो किसी के पांच, किसी के सात शिर थे ऐसे पन्नग, वासुकी, तक्षक, धनञ्जय और कर्कोटक नामक सर्प थे ॥१४६॥ एलामुख, कालिय, पराक्रमी महापद्म । हजार शिरों वाले, शुद्धांग सुवर्णतालध्वज के समान ऊँचे ॥१४७॥ अनंत शेष अप्रकम्प्य महानाग भी काँपने लगे । पृथिवी फट गयी और उसके छिद्रों में जल दिखने लगा ॥१४८॥ हिरण्यकशिपु के क्रोध से ये सातो पाताल काँपने लगे । ये सभी तेजस्वी तथा पाताल में रहने वाले सर्प थे ॥१४९॥ सहसा पाताल के क्षुब्ध हो जाने पर दुष्प्रकम्प्य भी काँप गये उस समय हिरण्यकशिपु ने पृथिवी का स्पर्श किया ॥१५०॥ क्रुद्ध वराह भगवान् के समान उसने क्रुद्ध होकर अपने ओठों को काट लिया, उससे भागीरथी गङ्गा, कौशिकी, सरयू ॥१५१॥ यमुना, कावेरी, कृष्णावेणी, तुङ्गभद्रा, महावेगा गोदावरी ॥१५२॥ चर्मण्वती, सिन्धु तथा नदों एवं नदियों के स्वामी सागर मणि के समान जल वाला तथा मेलक की उत्पत्ति स्थान शोणनद ॥१५३॥ मङ्गलमय स्रोत वाली नर्मदा, वेत्रवती नदी, गोकुल कीर्णा, गोमती नदी, प्राची सरस्वती ॥१५४॥ महाकाल की नगरी (उज्जैन) तमसा, पुष्प वाहिनी, सभी रत्नों से सुशोभित और द्वीपों में रत्न के समान जम्बूद्वीप ॥१५५॥ सुवर्ण के खजाने से अलङ्कृत सुवर्ण पुटक, महानद, सुवर्ण से सुशोभित लौहित्य

पत्तनं कोशकारणां कशिं च रजताकरम् । मगधाश्च महाग्रामा: पुण्ड्रा उग्रास्तथैव च ॥१५७॥
स्रुघ्ना मल्ला विदेहाश्च मालवा: काशिकोसला:। भवनं वैनतेयस्य दैत्येंद्रेणाभिकंपितम्॥१५८॥
कैलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा । रत्नतोयो महाभीमो लौहित्यो नामसागर: ॥१५९॥
उदयश्च महाशैल उच्छ्रित: शतयोजनम् । सवर्णवेदिक: श्रीमान्मेघपंक्तिनिषेवित: ॥१६०॥
भ्राजमानोर्कसदृशै र्जातरूपमयैर्द्रुमै: । सालैस्तालैतमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितै: ॥१६१॥
अयोमुखश्च विख्यात: सर्वतो धातुमंडित: । तमालवनगंधश्च पर्वतो मलय: शुभ: ॥१६२॥
सुराष्ट्राश्च सबाह्लीकाश्शूद्राभीरास्तथैव च । भोजा: पांण्ड्याश्च वंगाश्च कलिंगास्ताम्रलिप्तका:॥१६३॥
तथैव पौंड्रा: शुभ्राश्च वामचूडास्सकेरला: । क्षोभितास्तेन दैत्येन देवाश्चाप्सरसांगणा: ॥१६४॥
अगस्त्यभवनं चैव यदगस्त्यकृतं पुरा । सिद्धचारणसंघैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम्॥१६५॥
विचित्रनानाविहगं सपुष्पितमहाद्रुमम्। जातरूपमयै: श्रृगैरप्सरोगणसेवितम् ॥१६६॥
गिरि: पुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान्प्रियदर्शन: । उत्थित: सागरं भित्वा विश्रामश्चंद्रसूर्ययो: ॥१६७॥
रराज समहाश्रृंगै र्गगनं विलिखन्निव । चंद्रसूर्यांशु संकाशै: सागरांबुसमावृतै: ॥१६८॥
विद्युत्वान्पर्वत: श्रीमानायत:शतयोजनम् । विद्युतां यत्र संपाता निपात्यंते नगोत्तमे ॥१६९॥
ऋषभ: पर्वतश्चैव श्रीमानृषभसंस्थित: । कुंजर: पर्वत: श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् ॥१७०॥
विमलाख्या च दुर्द्धर्षा सर्पाणां मालतीपुरी । तथा भोगवती चापि दैत्येंद्रेणाभिकंपिता ॥१७१॥
महासेनगिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वत: । चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैवपर्वत: ॥१७२॥

पर्वत ॥१५६॥ कोशकारों की नगरी तथा चाँदी का खजाना कशि, महाग्राम मगध, पुण्ड्र तथा उग्र ॥१५७॥ स्रुघ्न, मल्ल, विदेह, मालवा, काशि, कोसल तथा जिसको विश्वकर्मा ने कैलास शिखर के समान उन्नत बनाया था उस गरुड के भवन; इन सबों को हिरण्यकशिपु ने कँपा दिया । रत्न के समान जल वाले, अत्यन्त भयङ्कर लौहित्य नामक सागर ॥१५९॥ महान् पर्वत उदयाचल जो सौ योजन ऊँचा है उसको, मेघों की पंक्ति से सेवित ऐश्वर्य सम्पन्न सुवर्ण वेदिक को ॥१६०॥ जो सूर्य के समान शाल, ताल, तथा विकसित पुष्पों वाले तमाल वृक्षों के द्वारा सुशोभित है॥१६१॥ सर्वत्र धातुओं से मण्डित है, उस अयोमुख पर्वत को, तमाल वन की सुगन्धि वाले मलय पर्वत को (उसने कँपा दिया) ॥१६२॥ सुराष्ट्र बह्लीक में रहने वाले शूद्रों तथा अभीरो को भोजकट प्रदेश, पाण्ड्य, बंगप्रदेश, कलिङ्ग तथा ताम्रलिप्तक को भी उसने कँपा दिया ॥१६३॥ उसी तरह शुभ्र पौण्ड्र प्रदेश, वाभचूड, केरल प्रदेश को उस दैत्येन्द्र ने स्वर्ग तथा अप्सराओं के गण को क्षुब्ध बना दिया ॥१६४॥ जिसको पहले महर्षि अगस्त्य ने बनाया था उस अगस्त्य महर्षि के सिद्धों और चारणों के गणों से भरे हुए तथा मनोहर भवन को भी उसने क्षुब्ध कर दिया॥१६५॥ सौ योजन विस्तृत जो अनेक प्रकार के अद्भुत पक्षियों से युक्त था, जिस पर बड़े-बड़े वृक्ष पुष्पित रहते हैं, जिसके शिखर सुवर्णमय हैं, जिस पर अप्सराएँ निवास करती हैं, पुष्पो से युक्त, लक्षण सम्पन्न, देखने में प्रिय, जो सागर का भेदन करके निकला था तथा जो चन्द्रमा और सूर्य का विश्राम स्थल है वह अपने बड़े-बड़े शिखरों से सुशोभित जैसे आकाश का स्पर्श कर रहा हो, चन्द्रमा और सूर्य के सदृश सागर के जल से धिरे हुए शिखरों वाला विद्युत्वान पर्वत भी काँप गया । उस पर विद्युतों का समूह गिरता रहता है ॥१६६-१६९॥ जिस पर ऋषभ का निवास था वह ऋषभ पर्वत, अगस्त्य महर्षि का भवन और कुञ्जर पर्वत भी काँप गया ॥१७०॥ सर्पों की दुघर्ष विमला नाम की मालती पुरी तथा भोगवती नगरी को भी हिरण्यकशिपु ने कँपा दिया ॥१७१॥ उसने महासेन पर्वत,

प्राग्ज्योतिष्पुरं चापि जातरूपमयं शुभम्। यस्मिन्नुवास दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥१७३॥
मेघश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगंभीरनिस्स्वनः। षष्टिस्तत्रसहस्राणि पर्वतानां विशांपते ॥१७४॥
तरुणादित्यसंकाशो मेरुश्चैव महान्गिरिः। यक्षराक्षसगंधर्वै र्नित्यं सेवितकंदरः ॥१७५॥
हेमगर्भो महासेनस्तथामेघसखो गिरिः। कैलासश्चैव शैलेंद्रो दानवेंद्रेण कंपितः ॥१७६॥
हेमपुष्करसञ्छन्नं तेन वैखानसं सरः। कंपितं मानसं चैव हंसकारंडवाकुलम् ॥१७७॥
त्रिशृंगः पर्वतश्रेष्ठः कुमारी च सरिद्वरा। तुषारचयसंच्छन्नो मदंर श्चापि पर्वतः ॥१७८॥
उशीरबीजश्चगिरिर्भद्रप्रस्थस्तथाद्रिराट्। प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः ॥१७९॥
देवाभः पर्वतश्चैव तथावै वालुकागिरिः। क्रौंचः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रबर्णश्च पर्वतः ॥१८०॥
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा। नद्यः ससागराः सर्वाः दानवेनाभिकंपिताः ॥१८१॥
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्च प्रकंपितः। खेचराश्च निशा पुत्राः पातालतलवासिनः ॥१८२॥
गणस्तथा परोरौद्रो मेघनामांकुशायुधः। उद्धर्वगो भीमवेगश्च सर्व एतेभिकंपिताः ॥१८३॥
गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तथा। जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ॥१८४॥
देवारि दितिजो दृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत्। स तु तेन ततस्तीक्ष्णैर्मृगेंद्रेण महानखैः ॥१८५॥

तदोङ्कारसहायेन विदार्यनिहतो युधि।
मही च कालश्च शशी नभश्च ग्रहास्ससूर्याश्च दिशश्च सर्वाः ॥१८६॥
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादं दितिपुत्रनाशात्।
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥१८७॥

पारियात्र पर्वत, चक्रवान् पर्वत तथा पर्वतों में श्रेष्ठ वाराह पर्वत को भी कँपा दिया ॥१७२॥ जिसमें दुष्ट नरकासुर रहता था उस सुवर्णमय प्राग्ज्योतिषपुर को भी उसने कँपाया ॥१७३॥ पर्वतश्रेष्ठ मेघ, जिसमें साठ हजार पर्वतों का सन्निवेश है, उसको भी मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाले हिरण्यकशिपु ने कँपा दिया ॥१७४॥ जिसकी कन्दरा में यक्ष, राक्षस तथा गन्धर्वों का निवास है, उस मध्याह्न सूर्य के समान कान्ति वाले, सुमेरु पर्वत को भी उसने कँपा दिया ॥१७५॥ उस दानवेन्द्र ने सुवर्ण जिसके भीतर हैं, उस महासेन पर्वत, मेघसख पर्वत तथा पर्वत श्रेष्ठ कैलास को भी कँपा दिया ॥१७६॥ उसने स्वर्णिम कमल से भरे हुए वैखानस सरोवर तथा हंसों एवं कारण्डव पक्षी से परिपूर्ण मानसरोवर को भी कँपा दिया ॥१७७॥ उस समय त्रिकूट पर्वत, नदी श्रेष्ठ कुमारी तथा वर्फ से ढँके रहने वाले मन्दराचल भी काँप उठा ॥१७८॥ उशीरबीज पर्वत, पर्वतराज भद्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, तथा पुष्कर पर्वत भी काँप गया ॥१७९॥ देवाभ पर्वत, बालुकागिरि, क्रौंच पर्वत सप्तर्षिपर्वत तथा धूम्रवर्ण पर्वत भी काँप गये ॥१८०॥ ये सभी तथा दूसरे पर्वत तथा देश एवं जनपद, नदियाँ, एवं सभी सागर दानवेन्द्र हिरण्यकशिपु के द्वारा कँपा दिए गये ॥१८१॥ कपिल, पृथिवी पुत्र व्याघ्रवान भी काँप उठा। आकाशचारी रात्रि के पुत्र, पाताल में रहने वाले॥१८२॥ गण तथा अत्यन्त भयङ्कर उर्ध्वगामी, तथा भयङ्कर वेग मेघ नामक अंकुशायुध भी काँप गया ॥१८३॥ भयङ्कर हिरण्यकशिपु हाथ में गदा तथा त्रिशूल लेकर मेघ के समान गर्जना करता हुआ, मेघ के समान वेगवान् ॥१८४॥ दृप्त देवताओं का शत्रु वह दैत्य भगवान् निसृह की ओर दौड़ा, उसी समय भगवान् नृसिंह के द्वारा तीक्ष्ण तथा बड़े-बड़े नखों द्वारा ॥१८५॥ ओङ्कार की सहायता (ओङ्कार का उच्चारण करके) भगवान् ने उसे चिर फाड़कर युद्ध में मार दिया। उस समय, पृथिवी, काल, चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रह सभी दिशाएँ ॥१८६॥ नदियाँ, पर्वत तथा

तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम् । यत्त्वया विधृतं देवनारसिंहमिदं वपुः ॥१८८॥
एतदेवार्चयिष्यंति परापरविदो जनाः ।

ब्रह्मोवाच

भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेंद्रो देवसत्तमः ॥१८९॥
भवान्कर्त्ता विकर्त्ता च लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
परां चसिद्धिं च परंच सत्वं परं रहस्यं परमं हविश्च ॥१९०॥
परं च धर्मं परमं यशश्च त्वामाहुरग्र्यं परमं पुराणम् ।
परं च सत्यं परमं तपश्च परं पवित्रं परमं च मार्गम् ॥१९१॥
परं च यज्ञं परमं च होत्रं त्वामाहुरग्र्यं परमं पुराणम् ।
परं शरीरं परमं च ब्रह्म परं च योगं परमां च वाणीम् ॥१९२॥
परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं परमं पुराणम् ।
एवमुक्त्वा तु भगवान्सर्वलोकपितामहः ॥१९३॥
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः । ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यंतीष्वप्सरःसु च ॥१९४॥
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः। नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमान्॥१९५॥
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः । अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन भास्वता ॥१९६॥
अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान्प्रभुः ॥१९७॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे नरसिंहप्रादुर्भावो नाम पंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४५॥

महासागर हिरण्यकशिपु का विनाश हो जाने से प्रसन्न हो गये । उसके पश्चात् प्रसन्न हुए देवता,ऋषिगण, सभी तपस्वी॥१८७॥ आदि सनातन देव श्रीभगवान् के दिव्य नामों से उनकी स्तुति किए और कहे हे देव ! आपने जो यह नरसिंह रूप धारण किया है ॥१८८॥ आपके इस परात्पर रूप को जानने वाले महापुरुष आपके इसी रूप की पूजा करते हैं । **ब्रह्माजी ने कहा**— हे देवश्रेष्ठ ! आप ही, ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्र स्वरूप हैं ॥१८९॥ आप ही लोकों के कर्ता और विकर्ता हैं । आप ही लोकों की उत्पत्ति और संहारस्थल हैं । आप ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धि, परंसत्त्व, सर्वश्रेष्ठ रहस्य तथा सर्वश्रेष्ठ हविष्य हैं ॥१९०॥ ऋषियों ने आपको ही परंधर्म, परमयश और सर्वश्रेष्ठ पुराण बतलाया है । परंसत्य परमतप, परं पवित्र, सर्वश्रेष्ठ मार्ग ॥१९१॥ सर्वश्रेष्ठ यज्ञ, परंहोत्र, तथा सर्वश्रेष्ठ पुराण आपको ही कहा गया है । परं शरीर, परं ब्रह्म, परंयोग तथा परमा वाणी ॥१९२॥ परंरहस्य, परंगति (प्राप्य) तथा परंपुराण आपको ही ऋषियों ने बतलाया है । इसतरह से कहकर सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी भगवान् नारायण की स्तुति करके ब्रह्मलोक में चले गये । उसके बाद जब तुर्य बज रहे थे, अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं ॥१९४॥ उसी समय भगवान् क्षीर सागर के उत्तर तट पर गये । अत्यन्त देदीप्यमान श्रीभगवान् अपने नरसिंह शरीर को वहीं पर स्थापित करके ॥१९५॥ अपना पुराना रूप धारण करके भगवान् गरुडध्वज ऐश्वर्य सम्पन्न चमकते हुए आठ चक्रो वाले विमान से चले गये ॥१९६॥ दिव्य गुण सम्पन्न, अव्यक्त प्रकृति वाले श्रीभगवान् अपने स्थान पर चले गये ।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के नरसिंहप्रादुर्भाव नामक पैंतालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४५।।

छियालिसवाँ अध्याय

श्रीभीष्म उवाच

नरसिंहस्य माहात्म्यं विस्तरेण त्वयेरितं। तथा भवस्य माहात्म्यं भैरवस्याभिधीयताम् ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

तस्यापि देवदेवस्य शृणु त्वं कर्म चोत्तमं । आसीद्दैत्योंधको नामभिन्नांजनचयोपमः ॥२॥
तपसा महता युक्तो ह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम्। स कदाचिन्महादेवं पार्वत्या सहितं विभुम् ॥३॥
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे। एतां देवीं हराम्यद्य वियोगे मृत्युमेष्यति ॥४॥
ततः स्थिरा भवित्री मे भार्यैषा लोकसुंदरी। बिंबौष्ठं चारुवदनं चारुकांततरं मुखम् ॥५॥
यद्येषा न भवेद्भार्या जीविते किं प्रयोजनम्। एतां मतिमथास्थाय मंत्रिभिः सह मंत्र्य च ॥६॥
चक्रे योगं स सैन्यस्य सेनापतिमभाषत । आनयस्व रथं मह्यं जैत्रं देवनिपातनम् ॥७॥
जयिष्ये त्रिदशान् सर्वान् विष्णुरुद्रपुरोगमान् । हरिष्ये पर्वतसुतां तया मेऽपहृतं मनः ॥८॥
मंत्रिणा तस्य चाख्यातः कनकस्य वधस्सुरैः । परभार्यानुरक्तस्य कृता देवैः सवासवैः ॥९॥
ततः कोपपरीतात्मा हन्मि देवान्सशंकरान्। तं हत्वा दानवं शक्रो भयादंधासुरस्य च॥१०॥
जगाम शरणान्वेषी कैलासं शङ्करालयम् । दृष्ट्वा प्रणम्य देवेशं चंद्रार्द्धकृतशेखरम् ॥११॥
भीतो विज्ञापयामास धृतसाहस्रलोचनः । अभयं देहि मे देव दानवादंधकादहम् ॥१२॥

अन्यकासुर की कथा, शङ्करजी तथा अन्यकासुर का युद्ध, शिवजी द्वारा आदित्य की स्तुति, अन्यकासुर द्वारा शिवजी की स्तुति, ब्रह्माजी द्वारा ब्राह्मणों का प्राशास्त्य वर्णन, गायत्री का माहात्म्य वर्णन और गायत्री न्यास विधि का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— आपने नरसिंह भगवान् की महिमा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया, इसी प्रकार भयङ्कर शिवजी की महिमा का आप वर्णन करें ॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** आप शङ्करजी के भी उत्तम कार्य का वर्णन सुनें । गाढे काले वर्ण का अन्धकासुर नामक दैत्य था ॥२॥ वह घोर तपस्या को करके देवताओं के लिए अवध्य हो गया उसने एक वार पार्वतीजी के साथ क्रीडा करते हुए महादेव शिवजी को देखा ॥३॥ उसी समय क्रीडा करते हुए शङ्करजी को देखकर पार्वतीजी का हरण करने की योजना उसने वनायी । यदि मैं आज इस देवी का हरण कर लेता हूँ तो इसके वियोग में शङ्कर मर जायेंगे ॥४॥ उसके वाद यह लोकसुन्दरी पार्वती स्थिर रूप से मेरी पत्नी वन जायेगी । इसके ओष्ठ विम्वाफल के समान सुन्दर तथा कान्ति सम्पन्न मुख अत्यन्त सुन्दर है ॥५॥ यह मेरी पत्नी न वने तो मुझे अपने जीवन से क्या लाभ है ? इस तरह से निश्चय करके उसने अपने मन्त्रियों के साथ विचार किया॥६॥ उसने अपने सेनापति से सेना जुटाने के लिए कहा उसने कहा— देवताओं को मारने वाले मेरे जैत्ररथ को लाओ ॥७॥ मैं विष्णु, रुद्र आदि सभी देवताओं को जीत लूँगा । मैं पार्वती का हरण करूँगा, उसने मेरे मन का हरण कर लिया है ॥८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** मन्त्री ने कहा कि दूसरे की पत्नी से प्रेम करने वाले कनक का इन्द्र आदि देवताओं ने वध कर दिया था ॥९॥ उसके वाद क्रोध करके अन्धकासुर ने कहा मैं शङ्कर आदि देवताओं का वध करूँगा । उस कनकासुर को मारकर इन्द्र अन्धकासुर के भय से ॥१०॥ अपने रक्षक का अन्वेषण करते हुए शङ्करजी के यहाँ कैलास पर्वत पर चले गयें । इन्द्र ने चन्द्रार्द्धमौलि शङ्करजी का दर्शन करके तथा प्रणाम

विभेमि तस्य पुत्रोऽद्य मया युधि निपातितः । तद्यावन्न स जानाति हतं पुत्रं महासुरः ॥१३॥
तावत्तत्रस्थ एवाशु हन्यतां मद्भयावहः । स्त्रीलौल्याद्दानवः क्रूरः परभार्यापहारकः ॥१४॥
सर्वथा घातनीयस्ते भवता सुरसत्तम । शक्रस्यैव वचः श्रुत्वा शरण्यः शङ्करस्तदा ॥१५॥
ददावभयमेवासौ मा भैरिति शतक्रतोः । दत्ताऽभयोथ कैलासादाजगाम कुशस्थलीम् ॥१६॥
वृतोभूतगणैरीशो वधार्थमंधकस्य तु । कृत्वा रूपं महाकायं विश्वरूपं सुभैरवम् ॥१७॥
सर्पैर्ज्वलद्भिर्धावद्भि र्भीमं भीमभुजंगवत् । जटासटाभिराकाशं फणिरत्नशिखार्चिषा ॥१८॥
दहन्नतीवतेजोभिः कालाग्निरिव संक्षये । मुखैर्दंष्ट्रांकुरांकैश्च द्वितीयेन्दुकलोज्ज्वलैः ॥१९॥
पातालोदरूपाभै र्भैरवारावनादिभिः । भुजैरनेकसाहस्रै बहुशस्त्रकृतग्रहः ॥२०॥
बह्वाभरणभूषाढ्यै रणे घोरनिनादिभिः । सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वमुत्तरीयकम् ॥२१॥
गजाजिनकृताटोपं पतद्भृंगरवाकुलम् । ईदृग्रूपं विधायेशो दनुदैत्यभयावहम् ॥२२॥
अवातरन्महीं भीमो दनूनां क्षयकारकः । अंधासुरोऽपि दनुजः पुत्रं श्रुत्वा हतं युधि ॥२३॥
क्रोधेन तमसाविष्टो रणतूर्याण्यचोदयत् । संहत्यावहितः प्राप्तो यत्र ते त्रिदशाः स्थिताः ॥२४॥
महत्याऽसेनया सार्द्धं रथवारणयुक्तया । ते देवा दानवान्वीक्ष्य महाहवकृतादरान् ॥२५॥
व्यपयाततनुत्राणाः शंभुं शरणमन्वयुः । माभैरिति च तान् देवो देवानुक्त्वा त्रिलोचनः ॥२६॥
गृहीत्वा शूलमातिष्ठद्दंष्ट्रारवधरोरुषा । अंधकेनाथरुष्टेन शतकोटिशरैर्गणाः ॥२७॥

करके॥११। भयभीत होकर सहस्त्रों नेत्रों वाले इन्द्र ने शङ्करजी से कहा **इन्द्र ने कहा—** हे देव ! मुझे अन्धकासुर से अभय बना दीजिये ॥१२॥ मैं। इसलिए डर रहा हूँ कि आज युद्ध में मैंने उसके पुत्र कनक को मार दिया है। अतएव जब तक वह अपने मरे हुए पुत्र को नहीं जानता है ॥१३॥ उससे पहले ही मुझको भयभीत करने वाले अन्धकासुर का आप वध कर दें । वह क्रूर दानव स्त्री का लोभी है तथा दूसरे की पत्नी का हरण करता है ॥१४॥ अतएव हे देवश्रेष्ठ ! वह आपके द्वारा मार दिए जाने योग्य है । इन्द्र की वाणी को सुनकर शरण्य भगवान् शिव ने कहा ॥१५॥ **शङ्करजी ने कहा—** इन्द्र डरो मत, मैं तुम्हें अभय बना रहा हूँ । अभय प्राप्त करके इन्द्र कैलास से कुशस्थली चले गये ॥१६॥ भूतगणों के साथ भगवान् शिव भी अन्धकासुर का वध करने के लिए, अपना भयङ्कर विश्वरूप विशालकाय शरीर बनाकर ॥१७॥ देदीप्यमान, दौड़ने वाले सर्पो के द्वारा समान भयङ्कर फणि (सर्प) रूपी रत्न की कान्ति से तथा जटाओं से आकाश को जलाते हुए के समान प्रलयकाल में उद्भूत होने वाली कालाग्नि के समान तेज के द्वारा, देदीप्यमान, दूसरी चन्द्रमा की कला के समान चमकते मुख के दाँतों द्वारा पाताल के समान, अत्यन्त भयङ्कर ध्वनि आदि के कारण अनेक हजार हाथों में अनेक शस्त्रों को धारण करके युद्ध में घोर ध्वनि करने वाले अनेक प्रकार के आभूषणों द्वारा आकाश को मानो जलाते हुए ॥१८-२०॥ सिंह के चमडे का परिधान धारण करके व्याघ्र के चमड़े को उत्तरीय बनाकर जिस पर भौंरें गुंजार कर रहे थे ऐसे गजासुर के चमड़े को ओढकर तथा दैत्यों को भयभीत करने वाला रूप धारण करके भगवान् शिव पृथिवी पर आये ॥२१-२२॥ भगवान् शिव का यह रूप दानवों का विनाश करने वाला था । अन्धकासुर ने भी अपने पुत्र के बध की बात सुनकर ॥२३॥ क्रोधान्ध हो गया और रण के बाजे को बजवा दिया । वह अपनी सेना एकत्रित करके वहाँ आया जहाँ देवता एकत्रित थे ॥२४॥ उसकी रथ और हाथी से युक्त सेना विशाल थी, महान् युद्ध करने वाले दानवों की सेना को देखकर देवगण अपना कवच खोलकर भगवान् शिव के शरण में गये । भगवान् शिव ने देवताओं से कहा डरो मत ॥२५-२६॥ वे क्रोध

निहताश्चापि देवानां बहूनामेकता कृता । सस्फुलिंगार्चिषोवह्नेर्मुंचमानः पिनाकधृक् ॥२८॥
शरैः समावृतं चक्रे अंधकं रथगं ततः । दनुनाथो रथस्थोऽथ शिथिलः शिथिलायुधः ॥२९॥
निमंत्र्य दानवान् सर्वान् स योद्धुमुपचक्रमे । बहुधा तद्बलं भग्नं विविधायुधयोधिभिः ॥३०॥
युधिवीरैर्हतं देवैः स्थाणुना सख्यमाश्रितैः । दानवश्चांधकः सैन्यं भिन्नं दृष्ट्वा कृतं सुरैः ॥३१॥
आत्मानं च महेशेन निरुद्धं बाणकोटिभिः । विह्वलीभूतदेहोऽसौ धैर्यमालंब्य केवलम् ॥३२॥
पिनाकं चैव रुद्रस्य गृह्य रुद्रमताडयत्। पिनाकस्याभिघातेन रुद्रोभूमिमथागमत् ॥३३॥
भूमौ निपातिते देवे चलितं भुवनत्रयम्। तत्यजुः सागरा वेलां पर्वताः शिखराणि च ॥३४॥
नक्षत्राणि वियोगीनि जग्मुर्मुक्तान्यनेकशः। पतिते भुवि देवेशे अंधको गदया पुनः ॥३५॥
जघान रुषितो नागं हत्वा तं पातयद्भुवि। शिवं त्यक्त्वानागराजः प्रपलाय्यान्यतो गतः ॥३६॥
मुहूर्त्ताच्चेतनां लब्ध्वा उत्थितः परमेश्वरः । गृहीत्वा परशुं दिव्यं दानवं नैव पश्यति ॥३७॥
कृत्वा तु तामसीं मायां मायाशतविशारदः । तया विमोहिते देवे क्वनु वै दानवो गतः ॥३८॥
शंभो र्भयमथो प्राप्य किंनु पापः करिष्यति । तमसा छादिता यावद्देवाव्याकुलतां गताः ॥३९॥
संभ्रांतमानसानीकास्तदोचुः कार्यगौरवात् । एतस्मिन्नंतरे सूर्यस्तेजो रूपो व्यवस्थितः ॥४०॥
उत्तस्थौ नररूपेण कुर्वन्वितिमिरा दिशः। नष्टे तमसि हृष्टाङ्गे खद्योते प्रकटे स्थिते ॥४१॥
देवा मुदमवापुस्ते स्पष्टाननविलोचनाः । उद्दीप्तास्तु सुराः सर्वे गणाः स्कंदपुरोगमाः ॥४२॥

से दाँत कटकटाते हुए हाथ में त्रिशूल लेकर तैयार हो गये । रुष्ट अन्धकासुर ने दश करोड़ बाणों का प्रयोग करके विशाल देवसेना को समेट दिया । अनेक देवता मारे गये । उसके बाद भगवान् शिव ने भी अग्नि की चिनगारी युक्त बाणों के द्वारा अन्धकासुर के रथ को ढँक दिया । रथ पर बैठा हुआ अन्धकासुर शिथिलायुध हो गया वह स्वयं भी शिथिल पड़ गया ॥२७-२९॥ दानवों को युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करके वह युद्ध करने लगा । अनेक प्रकार के आयुधों से युद्ध करने वाले वीर देवताओं के द्वारा उसकी सेना भाग चली ॥३०॥ शङ्करजी से मित्रताप्राप्त देवताओं ने उसके अनेक वीरों को मार दिया । मरी जानकर देवताओं के द्वारा अपनी सेना को विदीर्ण देखकर॥३१॥ तथा महेश के द्वारा करोड़ो बाणों से अपने को निरुद्ध देखकर अन्धकासुर का शरीर विह्वल हो गया । वह केवल धैर्य धारण किए हुए था ॥३२॥ उसने रुद्र के पिनाक को लेकर शङ्करजी के ऊपर उसे प्रहार किया । पिनाक के प्रहार से शङ्करजी पृथिवी पर गिर पड़े ॥३३॥ भगवान् शिव के पृथिवी पर गिरने से त्रैलोक्य काँप गया । सभी सागरों में तूफान आ गया पार्वत काँपने लगे ॥३४॥ सभी नक्षत्र वियुक्त होकर अलग-अलग हो गये । भगवान शिव के गिर जाने पर अन्धकासुर ने क्रुद्ध होकर अपनी गदा से ॥३५॥ नागराज पर प्रहार किया और नागराज भी पृथिवी पर गिर पड़े शिव को छोड़कर नागराज भागकर दूसरी ओर चले गये ॥३६॥ मुहूर्त भर के बाद होश में आकर भगवान् शिव उठ गये । उन्होंने अपने हाथ में दिव्य फरसा उठा लिया; किन्तु उस समय अन्धकासुर दिखायी नहीं पड़ा ॥३७॥ माया करने में निपुण उसने तामसी माया फैला दी । उस माया से मोहित होकर शिवजी सोचने लगे कि वह दानव कहाँ गया ?॥३८॥ उन्होंने कहा कि वह पाप मुझको प्राप्त करके क्या कर लेगा ? उस समय अन्धकाराच्छन्न होने के कारण सभी देवता व्याकुल हो गये ॥३९॥ वे घबराये हुए थे कार्य की महत्ता को देखकर वे आपस में बातें कर रहे थे । उसी समय भगवान् सूर्य ने अपना तेजोमय रूप धारण कर लिया ॥४०॥ सारी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए वे मनुष्य के रूप में प्रकट हो गये । अन्धकार के नष्ट हो जाने पर जब कि भगवान् सूर्य प्रकट विद्यमान

स्तुवंति विविधैस्तोत्रैः नररूपं दिवाकरम् । अनौपम्यं जगद्व्यापि ब्रह्मविष्णुशिवात्परम् ॥४३॥
स्निग्धविद्रुमसच्छायं सिंदूरारुणसप्रभम् । प्रभासं तं तदा दृष्ट्वा पंचांगालिंगितावनिः ॥४४॥
पुनः प्रणामप्रवणं प्रणिधान पुरः सरम् । आलोक्यस्निग्धया दृष्ट्या देवदेवं त्रिलोचनः ॥४५॥
उवाच स्निग्धगंभीरवाचा देवं शनै र्हरः । पूरयन्निवतेजोभिर्भगवान् भुवनत्रयम् ॥४६॥
दैत्यमायाभिपन्नानां दर्शनाकुलचेतसाम् । प्राणिनामिदमेवैकमविसंवादिदैवतम् ॥४७॥
अयमेव च संसारसागरात् सकलादपि । सत्वानुत्तारयन्देवः कर्णधारायते प्रभुः ॥४८॥

यजंतो जंतवो भक्त्या यं देवं विविधाः सदा ।
निःश्रेयसाय कल्पंते तं नतो भास्करं विभुम् ॥४९॥
यस्तूदयाद्रिशिखरे मकुटायमानलीलागभस्तिभिरलंकुसुमप्रकाशैः ।
व्याप्य स्वदीधितिगणैः प्रदिशोदिशश्च देदीप्यते स सविता विभवायलोके ॥५०॥
ब्रह्मेंद्ररुद्रमरुदच्युतवह्निपाथो नाथप्रयोगनिपुणैश्च ऋषींद्रसंघैः ।
श्रेयोर्थिभिः प्रतिदिनं दिवसांगरागै र्दिव्यांगरागपरिलिप्तसमस्तदेहैः ॥५१॥
पूज्यं वपुस्तव सदाप्रलये हि वेदैर्गीर्भिर्विचित्रपदमंडलमंडिताभिः ।
ये त्वां स्तुवंति परसद्मनिसद्महीनां नित्यं प्रसारितकरा भुवि ते भवंति ॥५२॥
ये दद्रुकुष्ठपिटिकादिभिरर्दितांगाः शीर्णत्वचः कुनखिनश्च्युतकेशनाशाः ।
देवेश तेपि तव पादनता भवंति सद्योद्विरष्टशरदाकृतयो मनुष्याः ॥५३॥

थे ॥४१॥ देवता प्रसन्न हो गये उनके मुख साफ दिखायी दे रहे थे । स्कन्द आदि सभी देवता प्रोत्साहित हो गये॥४२॥ सबों ने अनेक स्तोत्रों से अनुपम, जगद् व्यापक, ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी श्रेष्ठ मनुष्य रूप धारी सूर्य की स्तुति की ॥४३॥ उन सबों ने स्निग्ध विद्रुम के समान कान्ति वाले, सिन्दूर के समान कान्ति वाले प्रकाशित होते हुए सूर्य को देखकर अपने पाँचों अंगों से पृथिवी का स्पर्श करके ॥४४॥ प्रणिधान पूर्वक प्रणाम करते हुए सूर्य भगवान् को प्रेमभरी दृष्टि से देखकर स्तुति की, देवाधिदेव शिवजी ने सूर्य की स्तुति की ॥४५॥ मधुर तथा गम्भीर वाणी से **शिवजी ने कहा**— हे भगवन् ! आप तेज के द्वारा त्रैलोक्य को भरते हुए के समान हैं ॥४६॥ दैत्य की माया से ग्रस्त, देखने के लिए व्याकुल चित्त वाले प्राणियों के लिए केवल सूर्य ही देवता हैं ॥४७॥ ये ही सम्पूर्ण संसार सागर से भी जीवों का उद्धार करते हैं तथा उनके कर्णधार बन जाते हैं ॥४८॥ भक्ति पूर्वक अनेक प्रकार से पूजा करने वाले जीव जिनके द्वारा मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं मैं उन भगवान् सूर्य को प्रणाम करता हूँ ॥४९॥ जो भगवान् सूर्य उदयाचल पर्वत के शिखर पर उसके मुकुट के समान सुशोभित होते हैं, अपनी किरणों के द्वारा लीला करते हैं तथा पुष्पों को विकसित करने का काम करते हैं । सभी दिशाओं और विदिशाओं में अपने किरणों से व्याप्त होकर देदीप्यमान होते हैं, वे भगवान् सविता लोक का कल्याण करें ॥५०॥ ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, मरुद्गण, विष्णु, अग्नि, वरुण तथा प्रयोग करने में निपुण ऋषियों के समुदाय जो कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं, वे प्रतिदिन दिव्य अङ्गरागों के द्वारा अपने समस्त देह को अलङ्कृत करके ॥५१॥ पूज्य शरीर वाले प्रलय काल में, विचित्र पद समूह से अलङ्कृत वेद वाणी के द्वारा गृहहीन होने के कारण दूसरे के घर में आपकी स्तुति करते हैं । वे लोक में नित्य ही दान देने वाले बन जाते हैं ॥५२॥ दाद, कुष्ठ तथा फोड़े आदि रोगों के कारण जो लोग अपने शरीर से दुःखी रहते हैं, जिनका चमड़ा शीर्ण हो गया है, नख खराब हो गये हैं, जिनके बाल गिर गये हैं, हे देव ! वे लोग

सामेति सामगगणाहि मखार्थकं त्वामध्वर्यवस्त्वृगिति बहवृचमुख्यपूगाः ।
त्वामेवमार्यमितिकार्यविदोधिगंतुं नागाश्च वेति पितरोप्यथ सर्वगंधम् ॥५४॥
मायेति चोपनिषदर्कषडैवदेवा मर्त्यास्तथावयमिवेह उपासतेऽमी ।
गंधर्वकिन्नरगणाः सहचारणैस्तु रूपं तथा च भगवन्प्रतिपद्य सत्वम् ॥५५॥
ये नार्चयंति सततं भवतोर्च्य मर्चिस्तेर्चिष्प्रतापितदिंगम्बरवित्तहीनाः ।
क्षुत्क्षामकंठजठराघटखर्परेण भिक्षामटंति परवेश्मसु तेऽर्थहीनाः ॥५६॥
उत्फुल्लकोकनदकोशविशालनेत्र मीषद्विलासलुलिताञ्चितपिंगतारम् ।
कामं प्रशस्ततरसुंदरहाररम्यमुत्तुंगपीवरपयोधरभारखिन्नम् ॥५७॥
रंभोपमोरुपृथुपीननितंबबिंबानद्धक्वणन्मणिरणद्रशनाकलापम् ।
बृंदं ललाटतटकोटिपटांतलंबिहेमांचलांचितमुखंकुलपालिकानाम् ॥५८॥
कांतं गृहेषु कलगद्गदभाषितानां झंकारनूपुररवेण विरावितानाम् ।
तेषां कृशानुकरमिन्दुसमानकांतं यैरर्चितोसि भगवन्भवमोचनस्त्वम् ॥५९॥
ब्रह्मा त्वमेव हरिरस्यनिलऽनलोसि रुद्रोंतकोसि वरुणोस्यमराधिपोऽसि ।
सोमोसि वायुरसि भूरसिचेश्वरोसि यज्ञोसि वित्तपतिरस्यपराजितोसि ॥६०॥
ते सप्तसप्तिसुरवाहरणेन मुक्ता भूमावथेति तरसोरुतरंतरीताः ।
व्योमैतदंतरहितं परितो हि गत्वा गच्छंति न श्रमपद हि मनागपीमे ॥६१॥
ध्यानैकयोगनिरताश्च समाधिभावात् ध्यात्वा पदं तव तुरीयमनंतमूर्ते ।
मुक्तामयास्तनुभृतो न भियाभियुक्तास्तद्ब्रह्मशाश्वतमचिंत्य मनाद्यनंतं ॥६२॥

भी यदि आपके चरणों में नतमस्तक होते हैं तो वे भी मनुष्य अठासी वर्ष के आयु वाले हो जाते हैं ॥५३॥ सामवेदी ब्राह्मण आपकी उपासना साम रूप से, यजुर्वेदी आपकी स्तुति यज्ञ रूप से, और ऋग्वेदी आपकी उपासना ऋक् रूप से, कार्यज्ञ पुरुष तथा नाग आर्य रूप से आपको प्राप्त करने के लिए आपकी उपासना करते हैं पितृगण सर्वगन्ध रूप से आपको ही जानते हैं ॥५४॥ देवता उपनिषत् प्रतिपाद्य षडर्कदेव रूप से माया रूप से देवता और मनुष्य आपकी उपासना हमारे ही समान करते हैं । गन्धर्वगण, किन्नरगण तथा चारणगण आपको, रूप जानते हैं ॥५५॥ जो लोग आपकी अर्च्य अर्चि (ज्योति) की पूजा नहीं करते हैं वे वस्त्रहीन और धनहीन हो जाते हैं । वे दरिद्र लोग भूख प्यास से व्याकुल होकर हाथ में खप्पर लेकर दूसरों के घर भीख माँगते चलते हैं ॥५६॥ विकसित कमल दल के समान बड़े-बड़े नेत्रों वाली, जिनके नेत्र थोड़े से विलास के कारण चंचल तारों वाले हैं, अत्यन्त सुन्दर हार से मनोहर तथा उन्नत एवं पुष्ट पयोधरों के भार से आक्रान्त रहने वाली, रम्भा के समान पृथु कटितटी वाली तथा मणि जटित करधनी को धारण करने वाली, जिनका मुख ललाट पर्यन्त लटकने वाले स्वर्णिम आञ्चल से मनोज्ञ रहता है ऐसी कुलपालिकाओं (कुलबधुओं) का मनोज्ञ समूह, झङ्कारमय नुपूर की ध्वनि से ध्वनित करने वाली तथा कल-कल ध्वनि से बोलने वाली रमणियों से युक्त उनका गृह मनोहर बना रहता है । जो लोग हे भगवन् ! संसार से मुक्ति प्रदान करने वाले आपकी पूजा किए रहते हैं ॥५७-५९॥ आप ही ब्रह्मा, विष्णु, वायु, अग्नि, रुद्र, यम, वरुण तथा इन्द्र हैं । आप ही सोम, वायु, पृथिवी, ईश्वर, यज्ञ, कुबेर तथा अपराजित हैं ॥६०॥ भगवान् सूर्य के जो वाहन रण में मुक्त होते हैं वे वेग पूर्वक पृथिवी पर उतरते हैं, वे इस अनन्त आकाश के चारो आरे जाकर भी श्रान्त नहीं होते

जन्मादिरोगरहितं परमं पुराणमीशं जरामरणशोकभयातिरिक्तम् ।
स्थूलानुभावनगणागणितं विशुद्धं वेदांतवादिभिरलं परिमन्यते यत् ॥६३॥
त्वामग्निपुंजवपुषं तपसां निवासं याता दिवं सुचिरकालमुपास्य भक्ताः ।
भानो सुरासुरसमूहशिरोनिघृष्टपादारविंदयुगलामचलारुमूर्ते ॥६४॥
भूतेश भूतवरदासकृदव्ययात्मन् व्योमाट्टहाससवितर्भुवनैकदीप ।
ऋक्साममंत्रयजुषामधिवासनाम सृष्टिस्थितिप्रलयकारणलोकपाल ॥६५॥
दीनस्य देवकृपणस्य भवे भवेमे मग्नस्य चारुदविचारमनोरथानि ।
शश्वद्यतीश्वरशशीकरवंकघोरोत्पातोजरामरणशोकरुगांतरस्य ॥६६॥
यः प्रातः सायमिदं मध्याह्नेवा पठेच्च दीप्तांशोः ।
सलोक्यं याति रवेः प्राप्नोतिधर्मार्थकामांश्च ॥६७॥

नित्यं तस्माच्च सूर्याच्च मनसोभिहितं च यत्। नमस्ते देवदेवेश भक्तानामभयङ्कर ॥६८॥
सुब्रह्मण्यनमस्ते तु सर्वदेवनमस्कृत। तिग्मांशो वै नमस्तुभ्यं जगतश्चक्षुषे नमः ॥६९॥
प्रभाकरनमस्ते तु भानो जय जगत्पते। अनेन दनुमुख्येन पीडितो हं जगत्पते॥७०॥
किंकरोमि कथंचैनं घातयामि दिवाकर।

सूर्य उवाच

जय शूलेन पापिष्ठं मायाशतविशारदम् ॥७१॥
जयं प्राप्नुहि देवेश हत्वा शूलेन चांधकम्। गृह्य शूलं ततो दूरमाक्षिप्यहरतेजसा ॥७२॥

हैं ॥६१॥ हे अनन्त मूर्ते ! ध्यान परायण योगिजन ध्यान के द्वारा आपके जिस तुरीय पद का ध्यान करके रोगों से रहित शरीर धारण करके, भयभीत नहीं होते हैं, वह आपका शाश्वत अचिन्त्य अनादि एवं अनन्त ब्रह्म स्वरूप ही है॥६२॥ जिसको वेदान्ती जन, जन्मादि रोगों से (षड् विकारों से) रहित, परम प्राचीन, जरा, मरण तथा शोक के भय से रहित, स्थूल प्रभाव समूह में परिगणित तथा विशुद्ध मानते हैं ॥६३॥ हे भानो अग्नि के पुञ्ज रूपी शरीर वाले, तपस्या के आश्रय भूत आपकी दीर्घ काल तक उपासना करके भक्तजन स्वर्ग चले जाते हैं। देवता एवं असुरगण आपके दोनो चरणों पर अपना शिर पटकते रहते हैं, हे सुन्दर शरीर वाले सूर्य ! हे भूतेश (जीवों के स्वामिन्) हे जीवों को वरदान देने वाले ! अव्यय स्वरूप ! हे व्योमाट्टहास ! हे सम्पूर्ण लोको को प्रकाशित करने वाले एक मात्र दीप (प्रकाश) हे ऋग् ! यजुः एवं सामों के आश्रय स्वरूप, जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं पालन करने वाले लोकपाल ॥६५॥ प्रत्येक जन्म में दीन बने हुए देवताओं में कृपण रहने वाले मेरे सुन्दर विचार युक्त मनोरथ, हे शाश्वत यतीश्वर ! चन्द्रमा को करने वाले, जरा, मृत्यु, शोक तथा रोगग्रस्त रहने वाले मेरे प्रति दैत्यों के उत्पात को नष्ट करें ॥६६॥ सूर्य भगवान् के इस स्तोत्र को प्रात:काल, सायंकाल तथा मध्याह्न में जो पाठ करता है वह इस लोक में धर्म, अर्थ एवं काम को प्राप्त करके मृत्यु के बाद सूर्य के सालोक्य को प्राप्त करता है ॥६७॥ वह उस सूर्य से जो भी मनोभिलिषित है उन सबों को प्राप्त कर लेता हैं। हे देवदेवेश सूर्य ! हे अपने भक्तों को अभय बनाने वाले!॥६८॥ हे सुब्रह्मण्य, हे सर्वदेव नमस्कृत, हे तिग्मांशो। जगत् के नेत्र स्वरूप आपको नमस्कार है। हे प्रभाकर! आपको नमस्कार है, हे जगत्पते सूर्य आपकी जय हो। हे जगत्पते मैं इस दैत्यश्रेष्ठ अन्धकासुर से पीडित हूँ ॥६९-७०॥ मैं क्या करूँ ? मैं इसको कैसे मारू ? **सूर्य ने कहा—** अनेक प्रकार की माया करने में

ततोऽन्धकस्त्रिशूलेनाताडयत्पापकर्मकृत् । तस्मिन्युद्धे तथा रुद्रो ह्यन्धकेनाभिपीडितः ॥७३॥
मुमोचबाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हि यत् । पिनाकमानम्यदोर्भ्यां पिनाकी शङ्करः स्वयम् ॥७४॥
रुद्रबाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु । अंधकाश्च समुत्पन्नाश शतशोथ सहस्रशः ॥७५॥
तेषां विदार्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः । बभूवुरंधकाघोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥७६॥
तं तु मायाविनं दृष्ट्वा देवदेवस्तदांधकम् । पानार्थमंधकस्यास्य ससृजे मातृकास्तदा ॥७७॥
माहेश्वरीं तथा ब्राह्मीं शौरीं वा बाडवीं तथा । सौपर्णीमथ वायव्यां शंखिनीं तैत्तिरीं तथा ॥७८॥
सौरीं सौम्यां शिवदूतीं चामुंडामथवारुणीम् । बाराहीं नारसिंहीं च वैष्णवीं च विभावरीम् ॥७९॥
शतानंदां भगानंदां पिच्छिलां भगमालिनीम् । बालामतिबलां रक्तां सुरभीं मुखमंडिताम् ॥८०॥
मातृनंदां सुनंदां च बिडालीं शकुनीं तथा । रेवतीं च महापुण्यां तथैव शिखिपट्टिकाम् ॥८१॥
शूलेन च ततो दैत्यं बिभेद त्रिपुरांतकः । निर्गतं रुधिरं तस्मात्पपुस्ता मातरस्तदा ॥८२॥
नीरक्तो हि तदा दैत्यश्शुष्कतां प्राप भूपते । शूले प्रोतस्तदा दैत्यो दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥८३॥
महाबलेन रुद्रेण विधृतोपि मृतो नहि । स्तुतस्तेन तदाशंभुर्भक्त्या दैत्येन सुव्रत ॥८४॥

नमोस्तु शंभो भवनाशहेतो नमोस्तु ते देववरप्रसीद ।
त्वं भूजलाग्नीरनभोर्कसोमऽयज्वाष्टमूर्ति र्भव भावनोलम् ॥८५॥
त्वां वै बाणो बहुवाद्येन तोष्यप्राप्तश्चैश्यं स्वे पुरे तत्स्वरक्ष्यम् ।
रक्षोधीशोबाहुभिस्तोल्यशैलं युष्मत्क्रांतक्लिष्टरूपोह्यनैषीत् ॥८६॥

निपुण इस पापी को आप अपने त्रिशूल से परास्त कीजिए ॥७१॥ हे देवेश ! अपने त्रिशूल से इस अन्धकासुर को मारकर विजयी बनें । उसके बाद त्रिशूल लेकर तेज पूर्वक दूर से ही उसे फेंककर ॥७२॥ उस पापी अन्धकासुर पर शङ्करजी ने प्रहार किया । उस युद्ध में अन्धकासुर से पीडित रुद्र ने ॥७३॥ अपने अत्यन्त उग्र पाशुपतास्त्र नामक बाण से प्रहार किया पिनाकधारी भगवान् शिव ने पिनाक से उस पर पाशुपतास्त्र का प्रहार किया ॥७४॥ रुद्र के बाण से निकलने वाले खून से सैकड़ों हजारों अन्धक उत्पन्न हो गये ॥७५॥ उन सबों के विदीर्ण करने से दूसरे अन्धक उत्पन्न हो गये । इसतरह भयङ्कर शिव ने अन्धकों को पी जाने के लिए मातृकाओं की सृष्टि कर दी ॥७७॥ वे मातृकाएँ ब्राह्मी, शौरी, बाडवी, सौपर्णी, वायव्यी, शंङ्खिनी, तैत्तिरी ॥७८॥ सौरी, सौम्या, शिवदूती, चामुण्डा, वारुणी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, विभावरी ॥७९॥ शतानन्दा, भगानंदा, पिच्छिला, भगमालिनी, बाला, अतिबला, रक्ता, सुरभी, मुखमण्डिता ॥८०॥ मातृनन्दा, सुनन्दा, बिडाली, शकुनी, रेवती, महापुण्या तथा शिखिपट्टिका थीं॥८१॥ उसके बाद शङ्करजी ने अन्धकासुर को त्रिशूल से छेद दिया । उससे निकले खून को मातृकाओं ने पी लिया । वह रक्त रहित हो गया । हे भीष्मजी ! रक्त रहित वह अन्धकासुर सूख गया । शूल से छिद जाने पर भी वह दैत्य मरा नहीं । उसको शङ्करजी त्रिशूल से दबाये रहे । हे सुव्रत ! उस दैत्य ने भक्ति पूर्वक शङ्करजी की स्तुति की ॥८२-८४॥ **अन्धकासुर ने कहा—** हे संसार के बन्धन को छुडाने वाले शम्भो ! आपको नमस्कार है, हे देवश्रेष्ठ ! आप प्रसन्न हो जाइये । आप ही पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, सूर्य, सोम, यजमान आदि आठ शरीर वाले हैं, आप संसार का कल्याण करने वाले हैं ॥८५॥ आपको बाणासुर ने बहुत वाद्य बजाकर सन्तुष्ट कर दिया उसको आपने ईशत्व प्रदान कर दिया । उसको अपनी नगरी में ही आपने रक्ष्य बनाया । राक्षसों का स्वामी वह पर्वत को भी उठा लेने वाली भुजाओं वाले उसे, आपने अपने को भी आक्रान्त करने वाला तथा क्लेशकर रूप वाला बना

प्राप्तोप्यैश्यं सर्वरक्षोगणानां पुत्रं चापि प्रोर्जितं शक्रबंधम् ।
भवभयहर हरपरमउदार ममसुखकरण निखिलसुरसार ॥८७॥
जितमरुदभिमत वितरणपार तव पदकमलमिहारणसार ।
तवेश पादपंकजं करोति यो नरो हृदि सदेशतस्य वांछितं ददासि भक्ति भावितः ॥८८॥
मुनीश्वराः पुरा हरं भवंत मेवमादरात् प्रपूज्यलिंगरूपिणं समापितामनोरथान् ।
भवोद्भवैकरूपिणं प्रपंचपंचकाकृतिं विचिंत्यवृक्षकोटरस्थएषजीवजीवनम् ॥८९॥
भवेद्भवाङ्घ्रिचिंतनाप्तसर्वकामईश्वर त्वदीयकिंकरान्विते पदे पदे समागतः ।
मूढोहं नाभिजानामि त्वां स्तोतुं भक्तवत्सल ॥९०॥
सदीश्वरेण मनसाप्यनुकंप्यो रणं गतः । इतिस्तुतो महेशस्तु भक्त्या दैत्येन सादरम्॥९१॥
गणेशतां ददौ तस्मै नामभृंगीरिटीति च । एष ते महिमा भूप हरस्य भवहारिणः ॥९२॥
कथितो विघ्नविघ्नाख्यस्तत्पराणां सुखावहः ।

भीष्म उवाच

मनुष्यस्यापिदेवत्वं सुखं राज्यं धनं यशः ॥९३॥
जयं भोग्यं तथारोग्यमायुर्विद्यां श्रियंसुतम् । बंधुवर्गशिवं सर्वं ब्रूहि मे विप्रसत्तम ॥९४॥

पुलस्त्य उवाच

एभिर्गुणैर्युतः श्रीमान्सदैव ब्राह्मणो भुवि । त्रैलोक्ये तु सदा मेध्यो विप्रदेवो युगे युगे॥९५॥
पूजयित्वा द्विजान्देवाः स्वर्गं भुंजंति चाक्षयम् । धरामवंति राजानो लोका वित्तं सुखं शिवम्॥९६॥

दिया ॥८६॥ सभी राक्षसों का स्वामी स्वयं बनकर उसने इन्द्र को भी बान्ध लेने वाले पुत्र को प्राप्त किया । हे परम उदार शङ्कर ! मेरे दुःख को दूर कर मुझको सुख प्रदान करने वाले आप सभी देवताओं में प्रधान है ॥८७॥ अपने श्वासों पर विजय प्राप्त करने वाले, अपने भक्तों को अभिमत फल प्रदान करने वाले आपके चरण कमल इसलोक के सार स्वरूप हैं । हे ईश ! जो व्यक्ति आपके चरण कमलों का ध्यान करता है, आप उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उसको वांछित फल प्रदान करते है ॥८८॥ पूर्वकाल में बड़े-बड़े मुनियों ने आदरपूर्वक लिङ्ग स्वरूप आपकी ही पूजा करके अपने मनोरथों को पूरा किया । तथा केवल संसार में उत्पन्न होने वाले पाँच आकार वाले पपञ्च का चिन्तन करने से जीव शरीर रूपी वृक्ष के कोटर में स्थित है ॥८९॥ हे ईश्वर ! आपके चरण कमलों का इस तरह चिन्तन करके मनुष्य अवाप्त समस्त काम हो जाता है और पद-पद पर आपके किंकर के पद को प्राप्त कर लेता । हे भक्त वत्सल ! मैं मूर्ख हूँ आपकी स्तुति करना नहीं जानता हूँ ॥९०॥ अतएव इस रण में विद्यमान आप प्रसन्नमना होकर मुझ पर कृपा करें । इस तरह उस दैत्य (अन्धक) के द्वारा भक्तिपूर्वक स्तुति किए जाने पर प्रसन्न होकर शङ्करजी ने उसे भृंगीरिटी नामक गणेश बना दिया । हे राजन् ! संसार के बन्धन को दूर करने वाली भगवान् शिव की यह महिमा मैंने तुम्हें सुनायी ॥९२॥ इस स्तुति का नाम विघ्नविघ्न है । यह स्तुति स्तुति करने वालों के लिए सुखप्रद है। **भीष्मजी ने कहा—** हे विप्र ! मुझे यह बतलाइये कि मनुष्य को किस तरह से देवत्व, सुख, राज्य, धन, यश॥९३॥ जय, भोग्य, आरोग्य, आयु, विद्या, श्री, पुत्र, बान्धव और सर्वत्र कल्याण प्राप्त होता है ? इसे आप विस्तार पूर्वक बतलाइये ॥९४॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** इन गुणों से युक्त, सदा ऐश्वर्य सम्पन्न ब्राह्मण त्रैलोक्य में सदैव पूज्य होता है । सभी युगों में ब्राह्मण देवता के समान पूज्य हैं ॥९५॥ ब्राह्मणों की पूजा करके ही देवता

लोके विप्रसमो नास्ति देवानामपि दैवतम् । स च धर्ममयः साक्षाद्भुवि मुक्तिप्रदो भृशम् ॥९७॥
लोकानां स गुरुः पूज्यस्तीर्थभूतोऽनघो जनः । स वै देवालयः सत्त्वो निर्मितो ब्रह्मणा पुरा ॥९८॥
इममर्थं पुरा पृष्टो नारदेन पितामहः । कस्मिंस्तु पूजिते ब्रह्मन्प्रसादी माधवो भवेत् ॥९९॥

ब्रह्मोवाच

यस्य विप्राः प्रसीदन्ति तस्य विष्णुः प्रसीदति। तस्माद्ब्राह्मणशुश्रूषुः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१००॥
विष्णुर्ब्राह्मणदेहेषु सदा वसति नान्यथा । तस्माद्ब्राह्मणपूजायां विष्णुस्तुष्यति तत्क्षणात् ॥१०१॥
विप्रान्यः पूजयन्नित्यं दानमानार्चनादिभिः । कृतं क्रतुशतं तेन विध्युक्तं प्रियदक्षिणम् ॥१०२॥
ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रमनूषरमकण्टकम् । वापयेत्सर्वबीजानि सा कृषिस्सार्वकालिकी ॥१०३॥
अभिगम्य तु यद्दत्तं यच्च दानं मनोरमम् । विद्यते सागरस्यांतो दानस्यांतो न विद्यते ॥१०४॥
मनसापि न हिंसंति भूदेवमाततायिनम् । मनोनुकूलतां यांति देवैरपि च दुर्लभाम् ॥१०५॥
गृहे यस्यागतो विद्वान् नैराश्यं नोपगच्छति । सर्वपापक्षयस्तस्य चाक्षयस्वर्गमश्नुते ॥१०६॥
काले देशे च पात्रे च विप्रे यच्चार्पयेद्वसु । तद्धनं चाक्षयं विद्धि जन्मजन्मनि तिष्ठति ॥१०७॥
न च दारिद्र्यतामेति नातुरो न च कातरः । मनोनुकूलां प्रमदामर्चयित्वा द्विजान् लभेत् ॥१०८॥
कृत्वा साहसकर्माणि दद्याद्विप्राय पर्वसु । तद्दानं सुगुणं प्रोक्तमभयं लाभ एव च ॥१०९॥
विप्रपादतलोद्घृष्टिक्षती भवति यः करः । स करः श्रीकरो नाम अन्यः कर्मकरः करः॥११०॥

अक्षय स्वर्ग का भोग करते हैं । राजागण पृथिवी की रक्षा करते हैं तथा धन, सुख और कल्याण प्राप्त करते हैं॥९६॥ संसार में ब्राह्मण के समान कोई देवता भी पूज्य नहीं है । ब्राह्मण पृथिवी पर साक्षात् देवता हैं और सर्व धर्ममय हैं । ब्राह्मण मुक्ति भी प्रदान करते हैं ॥९७॥ ब्राह्मण संसारी जीवों का साक्षात् पूज्य गुरु हैं, तीर्थ स्वरूप हैं तथा निष्पाप हैं, पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों को सभी देवताओं के आश्रय रूप से बनाया ॥९८॥ इस बात को प्राचीनकाल में नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा था । हे ब्रह्मन् ! किसकी पूजा करने से श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं ?॥९९॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— जिस पर ब्राह्मण प्रसन्न रहते हैं, उस पर भगवान् विष्णु भी प्रसन्न रहते हैं । इसीलिए ब्राह्मणों की सेवा करने वाला मनुष्य, परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥१००॥ भगवान् विष्णु ब्राह्मणों के शरीर में सदैव निवास करते हैं । इसीलिए ब्राह्मण की पूजा करने से विष्णु भगवान् उसी क्षण प्रसन्न हो जाते हैं ॥१०१॥ जो व्यक्ति दान-मान तथा अर्चना आदि से ब्राह्मणों की पूजा करता है, उसको विधिपूर्वक तथा पर्याप्त दक्षिणा देकर सैकड़ों यज्ञों को करने का फल प्राप्त होता है ॥१०२॥ ब्राह्मण का मुख उषर तथा कण्टक रहित खेत के समान है । उसमें सभी प्रकार के बीजों का वपन करना चाहिए, वही सार्वकालिकी कृषि हैं ॥१०३॥ ब्राह्मण के पास जाकर जो दान दिया जाता है तथा जो मनोरम दान होता है, उसके फल का अंत नहीं होता है, सागर का तो अन्त होता है ॥१०४॥ जो लोग आततायी भी ब्राह्मण की मन से भी हिंसा नहीं करते हैं, वे देवताओं को भी दुर्लभ अपने मनोऽनुकूल फल को प्राप्त करते हैं ॥१०५॥ जिसके घर में आया हुआ विद्वान् ब्राह्मण निराश नहीं होता है, उसके सारे पापों का नाश हो जाता है तथा वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥१०६॥ पुण्य देश काल में उत्तम पात्र ब्राह्मण को जो धन दिया जाता है, उस धन को अक्षय समझो, वह अनेक जन्मों तक बना रहता है ॥१०७॥ उसमें न तो कभी दरिद्रता आती है, न आतुरता और न कातरता; ब्राह्मणों की पूजा करने से मनोनुकूल पत्नी की प्राप्ति होती हैं ॥१०८॥ साहसिक कर्मो को भी करके पर्वों (संक्रान्तियों) के अवसार पर जो ब्राह्मणों को दान दिया जाता है, वह सद्गुण सम्पन्न दान है,

विप्रपादरजः पूताः पूतास्तज्जलबिन्दुभिः । विपद्भिश्च सदापापै मुक्ता यांति त्रिविष्टपम् ॥१११॥
विप्रपादरजः पूता शुचयो गृहचत्वरा । पुण्यक्षेत्रसमास्ते स्युः प्रशस्ता यज्ञकर्मसु ॥११२॥
आदौ ब्रह्ममुखाद्विप्रः समुद्भूतः पुरानघः । वेदास्तत्रैव संजाताः सृष्टिसंस्थितिहेतवः ॥११३॥
तस्माद्विप्रमुखे वेदाश्चार्पिताः पुरुषेण हि । पूजार्थं सर्वलोकानां सर्वयज्ञार्थतो ध्रुवम्॥११४॥
पितृयज्ञे विवाहे च वह्निकार्येषु शांतिषु । प्रशस्तब्राह्मणा नित्यं सर्वस्वस्त्ययनेषु च॥११५॥
देवा भुंजंति हव्यानि बलिं प्रेतादयोऽसुराः । पितरश्चैव कव्यानि विप्रस्यैव मुखाद् ध्रुवम्॥११६॥
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च यो दद्याद्यज्ञकर्मसु । दानं होमं बलिं चैव विना विप्रेणनिष्फलम् ॥११७॥
भुंजंति चासुरास्तत्र प्रेता दैत्याश्च राक्षसाः। तस्माद्ब्राह्मणमाहूय तेषु कर्माणि कारयेत् ॥११८॥
काले देशे च पात्रे च लक्षकोटिगुणं भवेत् । श्रद्धया च द्विजं दृष्ट्वा प्रकुर्यादभिवादनम् ॥११९॥
दीर्घायुस्तस्य वाक्येन चिरञ्जीवी भवेन्नरः । अनभिवादनाद्विप्रद्वेषादश्रद्धया पि च॥१२०॥
आयुः क्षीणं भवेत्पुंसां भूतिनाशश्च दुर्गतिः । आयुर्वृद्धि र्यशोवृद्धि र्वृद्धिर्विद्याधनस्य च ॥१२१॥
पूजयित्वा द्विजान् श्रेष्ठो भवेन्नास्त्यत्र संशयः। नविप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिघोषितानि॥१२२॥
स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ।

नारद उवाच

कश्चपूज्यतमो विप्रो ह्यपूज्यो वाथ को भवेत् ॥१२३॥

उससे अभयत्व की प्राप्ति होती है ॥१०९॥ ब्राह्मणों की सेवा करते समय उनके तलवे को रगड़ने से जो हाथ घिसता है, उस हाथ का नाम श्रीकर है और दूसरे हाथ केवल कर्म करने वाले हैं ॥११०॥ ब्राह्मण के चरण धूलि से पवित्र बने लोग तथा ब्राह्मणों के चरणोदक से पवित्र बने मनुष्य विपत्तियों तथा पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में जाते हैं॥१११॥ ब्राह्मणों के चारणघूलि से पवित्र बने हुए गृह तथा चत्वर पुण्य क्षेत्र के समान यज्ञ करने के लिए प्रशस्त होते हैं ॥११२॥ ब्रह्माजी के मुख से सर्वप्रथम निष्पाप ब्राह्मण उत्पन्न हुए । ब्रह्माजी के मुख से ही सृष्टि तथा स्थिति के कारणभूत वेद भी उत्पन्न हुए ॥११३॥ इसीलिए परमात्मा ने ब्राह्मणों के मुख में ही सभी लोकों में पूजा के लिए तथा यज्ञों के लिए, वेदों को अर्पित किया ॥११४॥ पितृयज्ञ (श्राद्ध), विवाह, होम तथा शान्ति कर्मों में तथा सभी कल्याण कर्मों में ब्राह्मण प्रशस्त माने गये हैं ॥११५॥ इसलिए ब्राह्मण के ही मुख से देवता हव्य का भोजन करते हैं, प्रेत तथा असुर आदि बलि का भोग करते है तथा पितृगण कव्य का भोग करते हैं ॥११६॥ यज्ञों में ब्राह्मण से भिन्न के द्वारा जो देवताओं और पितरों के लिए दान दिया जाता है, वह दान और होम निष्फल होता है ॥११७॥ ब्राह्मण से भिन्न के द्वारा कराये गये कर्म में केवल भूत प्रेत ही होमादि का भोग करते हैं । अतएव श्राद्धों तथा यज्ञों में ब्राह्मण को ही बुलाकर यज्ञादि कर्म कराना चाहिए ॥११८॥ उतम देश, काल और पात्र के होने पर किए गये कर्मों का लाख गुना फल होता है । ब्राह्मण को देखकर उसको श्राद्धा पूर्वक प्रणाम करना चाहिए ॥११९॥ उस ब्राह्मण के आशीर्वाद से मनुष्य दीर्घायु होता है । द्वेष तथा अश्रद्धा के कारण ब्राह्मण को प्रणाम नहीं करने पर॥१२०॥ आयुक्षीण होती है, धन का नाश होता है और दुर्गति होती है । श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा करने से आयु की वृद्धि, यश की वृद्धि विद्या की वृद्धि और धन की वृद्धि होती है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । जिसके घर में ब्राह्मण के पादोदक से कभी कीचड़ नहीं होता, वेदों तथा शास्त्रों की प्रतिध्वनि नहीं होती है, कभी होम और श्राद्ध नहीं होते हैं वह घर श्मशान के तुल्य अपवित्र होता है । **नारदजी ने कहा—** कौन सा ब्राह्मण पूज्यतम है तथा

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि याथातथ्यं गुरोरपि ।

ब्रह्मोवाच

पूज्यः श्रोत्रियको नित्यं सदाचारसमन्वितः ॥१२४॥
सद्वृत्तः कलुषैर्मुक्तस्तीर्थभूतो जनोऽनघः ।

नारद उवाच

जातः कः श्रोत्रियस्तात सत्कुले वाप्यसत्कुले ॥१२५॥
सदसत्कर्मकर्ता वा कः पूज्यो भुवि बाडवः ।

ब्रह्मोवाच

सत्श्रोत्रियकुलेजातो ह्यक्रियो नैव पूजितः ॥१२६॥
असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यासवैभांडकौ यथा । क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रोस्ति मत्समः॥१२७॥
वेश्यापुत्रो वसिष्ठश्च अन्यो सिद्धा द्विजादयः । तस्मात्सच्छोत्रियादीनां शृणु पुत्रक लक्षणम् ॥१२८॥
धरायां तीर्थभूतानां सर्वपापहराय च । जन्मन ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥१२९॥
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम्। विद्यापूतो मंत्रपूतो वेदपूतस्थैव च ॥१३०॥
तीर्थस्नानादिभिर्मेध्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः । नारायणे सदा भक्तः शुद्धांतःकरणस्तथा॥१३१॥
जितेंद्रियो जितक्रोधस्समः सर्वजनेषु च । गुरुदेवातिथेर्भक्तः पित्रोः शुश्रूषणे रतः॥१३२॥
परदारे मनो यस्य कदाचिन्नैव मोदते। पुराणकथका नित्यं धर्माख्यानस्य संततिः॥१३३॥
अस्यैव दर्शनान्नित्यमश्वमेधादिजं फलम्। संलापे गतिमेत्यस्य भागीरथ्या प्लवस्य च॥१३४॥

कौन सा ब्राह्मण अपूज्य होता है ?॥१२१-१२३॥ आप विप्र तथा गुरु का ठीक-ठीक लक्षण बतलायें । **ब्रह्माजी ने कहा—** श्रोत्रिय तथा सदाचारी ब्राह्मण नित्य ही पूज्य हैं ॥१२४॥ सदाचारी मनुष्य निष्पाप, पापों से रहित, तथा तीर्थस्वरूप होता है । **नारदजी ने कहा—** कौन सा ब्राह्मण श्रोत्रिय कहलाता है ? सद्वंश में उत्पन्न अथवा असद्वंश में उत्पन्न ?॥१२५॥ लोक में कौन सा ब्राह्मण सत्कर्म करने वाला तथा कौन सा असत्कर्म करने वाला होता है ? **ब्रह्माजी ने कहा—** सद्वंश तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न भी ब्राह्मण यदि क्रियाहीन है तो वह पूज्य नहीं है। असद्वंश में भी उत्पन्न श्रोत्रिय ब्राह्मण उसी तरह से पूज्य होता है जैसे व्यास तथा विभाण्डक ऋषि के पुत्र शृङ्गी ऋषि। क्षत्रियों के वंश में भी उत्पन्न विश्वामित्र मेरे समान हैं ॥१२६-१२७॥ उसी तरह वेश्या के पुत्र वसिष्ठ, तथा दूसरे सिद्ध द्विज आदि भी पूज्य हैं । अतएव हे पुत्र ! मैं तुम्हें श्रोत्रिय आदि का लक्षण बतलाता हूँ ॥१२८॥ जिससे कि पृथिवी पर तीर्थ स्वरूप ब्राह्मणों के द्वारा पाप का नाश हो सके । ब्राह्मण वंश में जन्म से ब्राह्मण ब्राह्मण होता है । उपनयनादि संस्कारों के द्वारा वह द्विज हो जाता है ॥१२९॥ विद्या प्राप्त करके वह विप्र बन जाता है तथा ये तीनों विशेषताएँ जिसमें हो वह श्रोत्रिय कहलाता है । विद्या, वेद तथा मंत्र से पवित्र हुए ॥१३०॥ व्यक्ति तीर्थों में स्नान करके पवित्र बनता है । ऐसा ब्राह्मण सदैव पूज्यतम होता है । जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, तथा सदा भगवान् नारायण की भक्ति करता है ॥१३१॥ जितेन्द्रिय, क्रोधहीन तथा सबों के प्रति समदर्शी आचार्य देवता तथा अतिथि का भक्त, माता-पिता की सेवा करने वाला ॥१३२॥ जिसका मन दूसरे की स्त्री के विषय में कभी भी मुदित नहीं होता है जो धार्मिक पुराणों की कथा करता है, ऐसे ब्राह्मण की जो सन्तान हो ॥१३३॥ उसका दर्शन कर लेने मात्र से अश्वमेध आदि यज्ञों के करने का फल होता है । बात-चित करने से गति को प्राप्त करने वाले, गङ्गा नदी में

व्रतैश्च विविधैः पूतो नित्यस्नानद्विजार्चनैः । मित्रामित्रे दयालुः स्यात्समः सर्वजनेषु च ॥१३५॥
परस्वं न हरेद्यस्तु तृणमप्यटवीगतम्। कामक्रोधादिनिर्मुक्त इंद्रियैरजितः पुमान् ॥१३६॥
परदारान्नगृह्णाति मनसापि गृहागतान् ।

नारद उवाच

गायत्र्या लक्षणं किं वा प्रत्येकाक्षरजं गुणम् ॥१३७॥
कुक्षिचरणगोत्राणां तस्य ब्रूहि सुनिश्चयम् ।

ब्रह्मोवाच

छंदो गायत्री गायत्र्याः सवितादेवताध्रुवम् ॥१३८॥
शुक्लवर्णा त्वग्निमुखा विश्वामित्रऋषिस्तथा । ब्रह्मणशिशरआरूढा शिखा विष्णुहृदिस्थिता ॥१३९॥
उपनयने नियोगः स्यात्सांख्यायनसगोत्रजा। त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवी कुक्षिसंस्थिता ॥१४०॥
चतुर्विंशतिस्थाने च पादादौ मस्तकांतके । चतुर्विंशत्यक्षरं न्यस्य ब्रह्मलोकं स विंदति ॥१४१॥
प्रत्यर्णदेवतां ज्ञात्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्। अपरं च प्रवक्ष्यामि गायत्र्या लक्षणं ध्रुवम् ॥१४२॥
सप्तपंचतथाब्रह्मयजुरष्टादशाक्षरम् । ज्वलनादिहकारांतं जलेस्थित्वा शतंजपेत् ॥१४३॥
उपपातकोट्या तु तथातिपातकैरपि। ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्ता यांति ममालयम् ॥१४४॥
ॐअग्नेर्वाक् पुंसि यजुर्वेदेन जुष्टात्सोमं पिब स्वाहा ।
विष्णुमंत्रं महामंत्रं तथा माहेश्वरस्य च ॥१४५॥
देवीसूर्यगणेशानां तथा क्रतुभुजां सुत। यस्य कस्य कुले जातो गुणवानेव तैर्गुणैः ॥१४६॥

स्नान करने से अनेक प्रकार के व्रतों को करने से तथा नित्य ही स्नान करके ब्राह्मणों की पूजा करने से पवित्र बना हुआ, शत्रुओं तथा मित्रों पर दया करने वाला, सभी मनुष्यों से एक समान व्यवहार करने वाला ॥१३४-१३५॥ जो दूसरों की सम्पत्ति को नहीं हड़पता है तथा वन में जाकर तृण भी नहीं लेता है, काम तथा क्रोध से रहित जो इन्द्रियों के वश में नहीं होता है ॥१३६॥ अपने घर आयी हुयी दूसरों की पत्नी को मन से भी नहीं अपनाने वाला, इसतरह का ब्राह्मण पूज्यतम है । **नारदजी ने कहा—** गायत्री का लक्षण क्या है ? उसके प्रत्येक अक्षरों के गुण क्या है?॥१३७॥ इस बात का निश्चय करके आप उसकी कुक्षि, चरण तथा गोत्र को बतलायें । **ब्रह्माजी ने कहा—** गायत्री का गायत्री छन्द है, उसके अधिष्ठातृ देवता सविता हैं ॥१३८॥ उसका वर्ण शुक्ल है, अग्नि ही उसका मुख है तथा उसके ऋषि विश्वामित्र है । ब्राह्मण ही उसके शिर हैं, वह आरुढ शिखा है, भगवान् विष्णु के हृदय में स्थित है ॥१३९॥ उसका उपनयन में उपयोग है, उसका सांख्यायन गोत्र है । त्रैलोक्य ही उसका चरण है । वह पृथिवी की कुक्षि में स्थित है ॥१४०॥ गायत्री के चौबीस अक्षरों का शरीर के पैर से लेकर मस्तक पर्यन्त चौबीस स्थानों में न्यास करने वाला व्यक्ति ब्रह्मलोक में जाता है ॥१४१॥ गायत्री के प्रत्येक अक्षरों के देवता का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है । मैं गायत्री के दूसरे भी लक्षण को बतलाऊँगा ॥१४२॥ सात या पाँच वेद मंत्र का तथा अठारह अक्षरों वाले यजुष् का अग्नि देवताक अक्षर से लेकर हकार पर्यन्त का जल में खड़ा होकर सौ बार जप करे ॥१४३॥ ऐसा करने वाला करोड़ों उपपातकों, ब्रह्म हत्या आदि अतिपातकों के पापों से भी मुक्त होकर ब्रह्मलोक में जाता है ॥१४४॥ वह मन्त्र है **ओम् अग्नेर्वाक् पुंसि यजुर्वेदेन जुष्टात् सोमं पिब स्वाहा** हे पुत्र विष्णुमन्त्र महामंत्र है, उसी तरह का माहेश्वर मन्त्र है, देवी, सूर्य तथा गणेश तथा यज्ञीय देवताओं का

साक्षाद्ब्रह्मयो विप्रः पूजनीयः प्रयत्नतः । दानं दद्याच्च विधिवत् सदा पर्वणि पर्वणि ॥१४७॥
अक्षयं लभते दाता जन्मकोटिशतान्प्रति । स्वाध्यायनिरतो विप्रो यः पठेत्पाठयेत्परान् ॥१४८॥
धर्मं च श्रावयेल्लोके सदाचारं श्रुतिं स्मृतिम् । पुराणसंहितां नूनं तथैव धर्मसंहिताम् ॥१४९॥
श्रावयित्वा तु लोकेषु श्रावयित्वा द्विजातिषु । उर्व्यां विष्णुसमः सोपि पूजनीयो नरैःसुरैः ॥१५०॥
यद्बलं चाक्षयं तस्य तीर्थभूतानघस्य च । समानमर्चनं कृत्वा नरो यात्यच्युतालयम् ॥१५१॥
कदाचित् क्रियते पापं विप्रः पापैर्नलिप्यते । चांडालस्य गृहे निष्ठौ भास्करज्वलनौ यथा ॥१५२॥
याजनाध्यापनाद्यौनात्तथैवासत्प्रतिग्रहात् । विप्राणां न भवेद्दोषो ज्वलनार्कसमा द्विजाः ॥१५३॥
तान्प्रतिग्रहजान् दोषान् प्राणायामव्यवस्थिताः । नाशयंतीह पापानि वायुर्मेघमिवांबरे ॥१५४॥
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं प्राणायामसमन्विताम् । प्रत्यक्षरामरैयुक्तां स्वाङ्गेविन्यस्यतामपि ॥१५५॥
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो जन्मकोटिकृतादपि । ब्रह्मणः पदवीं प्राप्य सगच्छेत्प्रकृतेः परम् ॥१५६॥
प्राणायामयुतां तस्माद्गायत्रीं जप नारद ।

नारद उवाच

प्राणायामाः कथं ब्रह्मन्प्रत्येकाक्षरदेवताः ॥१५७॥
तेषां न्यासं तथांगेषु वद तात यथाक्रमम् ।

ब्रह्मोवाच

गुददेशे त्वपानःस्याद्धृदि प्राणोस्ति देहिनः ॥१५८॥

भी मन्त्र वैसा ही है । जिस किसी भी वंश में उत्पन्न व्यक्ति इनमें से किसी के भी मन्त्र का जप करके उस देवता के गुणों से युक्त हो जाता है ॥१४५-१४६॥ विप्र साक्षात् ब्रह्म स्वरूप होता है, उसकी पूजा अवश्य करे और प्रत्येक वर्ष (संक्रान्तियों) पर विधि पूर्वक उसको दान दे ॥१४७॥ ऐसे दाता सैकड़ों करोड़ो जन्मों तक अक्षय पुण्य को प्राप्त करता है । वेदाध्ययन करने वाला विप्र जो स्वयं वेदों को पढता है या दूसरों को पढाता है ॥१४८॥ लोगों को धर्म, सदाचार, श्रुतियों तथा स्मृतियों का उपदेश देता है, पुराण संहिता तथा धर्म संहिता ॥१४९॥ को लोगों को सुनाकर पृथिवी पर ब्राह्मणों में विष्णु के समान मनुष्यों तथा देवताओं का पूज्य हो जाता है ॥१५०॥ तीर्थस्वरूप तथा निष्पाप उसका जो अक्षय बल होता है, उसकी अर्चना करने वाला मनुष्य उसके द्वारा भगवान् विष्णु के लोक में जाता है॥१५१॥ वह यदि किसी पाप को भी कभी कर लेता है तो उसका उस पाप से सम्बन्ध उसीतरह नहीं होता है, जिस तरह चाण्डाल के घर में जाने वाली सूर्य की रोशनी तथा अग्नि दूषित नहीं होती है ॥१५२॥ यज्ञ कराने से, अध्यापन करने से, वैवाहिक सम्बन्ध से, असत् प्रतिग्रह (दान) लेने से, ब्राह्मणों को पाप नहीं लगता है क्योंकि ब्राह्मण अग्नि तथा सूर्य के समान होते हैं ॥१५३॥ प्राणायाम करने वाले ब्राह्मण उन प्रतिग्रह जन्य पापों को उसी तरह नष्ट कर देते हैं जिसतरह वायु आकाशस्थ मेघों को विनष्ट कर देती है ॥१५४॥ जो ब्राह्मण प्राणायाम पूर्वक गायत्री का तथा उसके प्रत्येक अक्षरों के देवताओं का अपने अङ्गों में न्यास करके जप करता है ॥१५५॥ वह करोड़ों जन्मों के पापों से रहित होकर ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त करके प्रकृति से परे हो जाता है ॥१५६॥ अतएव हे नारद! प्राणायाम पूर्वक गायत्री का जप करो । **नारदजी ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! प्राणायाम कैसे होता है ? उसके प्रत्येक अक्षर के देवता कौन है ?॥१५७॥ हे तात ! उन देवताओं का अङ्गों में-जैसे न्यास होता है, उसे आप मुझे क्रमशः बतलायें **ब्रह्माजी ने कहा—** शरीरधारी के गुदा प्रदेश में अपान वायु तथा हृदय में प्राण वायु रहता है ॥१५८॥

तस्माद्गुदं समाकुंच्य प्राणेन सह योजयेत् । पूरकेण तदा पुत्र कृत्वा कुंभकमुत्तमम् ॥१५९॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीं मंजपेद्द्विजः । अनेनैवजपेद्यस्तु महापातकसंचयः ॥१६०॥
सकृदुच्चारितेनैव क्षयं यात्युपपातकम् । प्रतिवर्णस्वरं ज्ञात्वा विन्यस्येद्यः कलेवरे ॥१६१॥
सजनोब्रह्मतामेति फलं वक्तुं न शक्नुमः । प्रत्यक्षरस्य यद्दैवं शृणु पुत्र वदाम्यहम् ॥१६२॥
यज्जप्त्वा च पुनर्मातुस्तनं न पिबति द्विजः । आग्नेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकम् ॥१६३॥
तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वैयुतं तथा । पंचमं यमदैवत्यं वारुणं षष्ठमुच्यते ॥१६४॥
सप्तमं बार्हस्पत्यं तु पार्जन्यं चाष्टमं विदुः । ऐन्द्रंच नवमं ज्ञेयं गांधर्वं दशमं तथा ॥१६५॥
पौष्णमेकादशं विद्धि मैत्रं द्वादशकं स्मृतम् । त्वाष्ट्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम् ॥१६६॥
मारुतं पंचदशकं सौम्यं षोडशकं स्मृतम् । आंगिरसं सप्तदशं वैश्वदेवमतः परम् ॥१६७॥
आश्विनं चैकोनविंशं प्राजापत्यं तु विंशकम् । सर्वदेवमयं ज्ञेय मेकविंशकमक्षरम् ॥१६८॥
रौद्रं द्वाविंशकं ज्ञेयं ब्राह्मंज्ञेयमतः परम् । वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता अक्षरदेवताः ॥१६९॥
जपकाले तु संचिंत्य तासु सायुज्यतां व्रजेत् । ज्ञात्वा तु देवतास्तस्य वाङ्मयं विदितं भवेत् ॥१७०॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः पदवीं व्रजेत् । गायत्रीं विन्यसेत्पूर्वं शरीरे चात्मनो बुधः ॥१७१॥
चतुर्विंशति स्थानेषु आपादमस्तकेषु च । तत्कारं विन्यसेद्योगी पदांगुष्ठे विचक्षणः ॥१७२॥
सकारं गुल्फदेशे तु विकारं जंघयोर्न्यसेत् । तुकारं जानुमध्ये च वकारं चोरुदेशतः ॥१७३॥

इसलिए गुदा प्रदेश को संकुचित करके अपान वायु को प्राण वायु के साथ मिलाये । उसके बाद हे पुत्र ! पूरक के द्वारा उत्तम कुम्भक करके ॥१५९॥ तथा तीन प्राणायाम करके गायत्री का जप करे महापापी पुरुष भी इस क्रम से गायत्री का जप करे तो ॥१६०॥ एक बार गायत्री जपने से ही उसके सारे उपपातक नष्ट हो जाते हैं । जो प्रत्येक वर्ण के स्वर को जानकर उसका अपने शरीर में न्यास करता है ॥१६१॥ वह मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है । उसके फल का वर्णन मैं नहीं कर सकता हूँ । हे पुत्र ! गायत्री के प्रत्येक अक्षर के जो देवता हैं, उनका वर्णन मैं करता हूँ, उसे तुम सुनो ॥१६२॥ उसका जप करके ब्राह्मण पुनः जन्म नहीं लेता है । गायत्री के प्रथम अक्षर का देवता अग्नि है, द्वितीय अक्षर 'स' का देवता वायु है ॥१६३॥ तृतीय 'वि' के देवता सूर्य हैं, चतुर्थ 'तु' का देवता विद्युत् है, पाँचवें 'व' का देवता यम है, छठे अक्षर 'रे' के देवता वरुण है, सातवें 'णी' के देवता बृहस्पति हैं, आठवें 'यं' के देवता पर्जन्य हैं, नवें 'भ' के देवता इन्द्र हैं, दशवें 'र्गो' के देवता गन्धर्व हैं, ग्यारहवें 'दे' के देवता पूषा है, बारहवें 'व' के देवता मित्र हैं, तेरहवें 'स्य' के देवता त्वष्टा है, चौदहवें 'धी' के देवता वसु हैं, पन्द्रहवें 'म' के देवता मरुत् हैं और सोलहवें 'हि' के देवता सोम हैं ॥१६५-१६७॥ सत्रहवें 'धि' के देवता अङ्गिरा हैं, अठारहवें 'यो' के देवता विश्वेदेव हैं, उन्नीसवें 'यो' के देवता अश्विनीकुमार हैं, बीसवें 'नः' के देवता प्रजापति हैं, इक्कीसवें 'प्र' के देवता सभी देवता है, बाइसवें 'चो' के देवता रुद्र हैं, तेइसवें 'द' के देवता ब्रह्मा हैं, और चौबीसवें 'यात्' के देवता विष्णु हैं । ये सभी अक्षर देवता है । जप के समय इन सबों का चिन्तन करके मनुष्य इन देवताओं के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥१६८-१७०॥ अक्षरों के देवताओं को जानकर वाङ्मय का ज्ञान हो जाता है । वह ब्राह्मण सभी पापों से रहित होकर ब्रह्माजी की पदवी को प्राप्त कर लेता है ॥१७१॥ विद्वान् को चाहिए कि वह सर्वप्रथम अपने शरीर में गायत्री का न्यास पैर से लेकर मस्तक तक चौबीस स्थानों में करे ॥१७२॥ निपुण योगी 'तत्' का न्यास पैर के अंगूठे में करे, 'स' का न्यास गुल्फ प्रदेश में करे 'वि' का न्यास जंघाओं में 'तु' का न्यास

रेकारं गुह्यदेशे तु णिकारं वृषणे न्यसेत्। यंकारं कटिदेशे तु भकारं नाभिमण्डले ॥१७४॥
गोकारं जठरे न्यस्य देकारं स्तनयोर्न्यसेत्। वकारं हृदयेन्यस्य स्यकारं करदेशतः ॥१७५॥
धीकारं वदनेन्यस्य मकारं तालुके न्यसेत्। हिकारं नासिकाग्रे च धिकारं चक्षुषोर्न्यसेत्॥१७६॥
योकारं तु भ्रुवोमध्ये योकारं च ललाटके । नः कारं तु मुखे पूर्वे प्रकारंदक्षिणेमुखः ॥१७७॥
चोकारं पश्चिमेन्यस्य दकारंचोत्तरेन्यसेत्। यात्कारं मूर्ध्निविन्यस्य सर्वव्यापीव्यवस्थितः ॥१७८॥
एतान्विन्यस्य धर्मात्मा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। महायोगी महाज्ञानी परं निवाणकं व्रजेत्॥१७९॥
संध्याकाले पुनर्न्यासं शृणु त्वं तद्यथार्थतः। ॐभूरितिहृदये न्यस्य ॐभुवश्शिरसि न्यसेत् ॥१८०॥
ॐस्वःशिखायै तत्सवितुर्वरेण्यमिति कलेबरे । ॐभर्गोदेवस्यधीमहीतिनेत्रयोः ॥१८१॥
ॐधियो यो नः प्रचोदयादितिकरयोर्न्यसेत्। ओं आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥
इत्युदकस्पर्शमात्रेणपापात्पूतोव्रजेद्धरिम् ॥१८२॥

ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ।
ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
ॐ आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ।
इति सव्याहृतिं सप्रणवां द्वादशोंकारां संध्याकाले कुंभकेन वारत्रयं जप्त्वा ॥

सूर्योपस्थाने सावित्रीं चतुर्विंशत्यक्षरां जप्त्वा । महाविद्याधिको भवति ब्रह्मत्वं लभते॥१८३॥
षट्कुक्षिलक्षणां पुत्र गायत्रीं शृणु यत्नतः। यां ज्ञात्वा तु परंब्रह्मस्थानं गच्छति वै द्विजः॥१८४॥

घुटनों में करे, 'व' का न्यास ऊरू प्रदेश में करे। 'रे' का न्यास गुप्ताङ्ग में करे, 'णी' का न्यास वृषण (अण्डकोश) में करे ॥१७३-१७४॥ 'यम्' का न्यास कटि प्रदेश में करे, 'भ' का न्यास नाभि में करे। 'गों' का न्यास पेट में करे और 'दे' का न्यास दोनों स्तनों में करे। 'व' का न्यास हृदय में करे। 'स्य' का न्यास हाथ में करे ॥१७५॥ 'धी' का न्यास मुख में करके 'म' का न्यास तालु में करे। 'हि' का न्यास नासिका में करके 'धि' का न्यास दोनों नेत्रों में करे ॥१७६॥ यो का न्यास दोनों भैहों के मध्य में करके, 'यो' का न्यास ललाट में करे। 'नः' का न्यास पूर्वमुख में करके 'प्र' का न्यास तालु में करे ॥१७७॥ 'चो' का न्यास मुख के पश्चिम में करके 'द' का न्यास मुख के उत्तर में करे। 'यात्' का न्यास मूर्धा प्रदेश में करके वह सर्व व्यापक रूप से व्यवस्थित हो जाता है ॥१७८॥ इन न्यासों को करके ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव स्वरूप धर्मात्मा महायोगी और महाज्ञानी हो जाय और परं निर्वाण को प्राप्त कर ले ॥१७९॥ फिर संध्याकाल में किए जाने वाले न्यास को तुम सुनो। 'ॐ भूः' का हृदय में न्यास करे। ॐ भुवः' का शिर में न्यास करें, ॐ स्वः' का शिखा में करे। ॐ 'तत्सवितुवरेण्यम्' का शरीर में न्यास करे। ॐ 'भर्गोदेवस्य धीमहि' का दोनों नेत्रों में न्यास करे। 'ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्' का दोनों हाथों में न्यास करे। 'ॐ आपो ज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्' इसके द्वारा जल का स्पर्श करे। ऐसा करने वाला पाप से पवित्र होकर श्रीहरि को प्राप्त करता है ॥१८०-१८१॥ उसके बाद ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्, ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योती रसो मृतं ब्रह्म, भूभुर्वः स्वरोम्। इसतरह से प्रणव तथा व्याहृति युक्त द्वादश ओंकारों वाली गायत्री का सायं काल कुम्भक के द्वारा तीन बार जप करे, सूर्योपस्थान में चौबीस अक्षरों वाली सावित्री का जप करक ब्राह्मण, महाविद्या से सम्पन्न हो जाता है। ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है ॥१८२-१८३॥ हे पुत्र ! सावधानी से षट्कुक्षि लक्षण गायत्री को सुनो।

ओंतत्सवितुर्वरेणियं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८५॥

अथ गायत्री पंचशीर्षलक्षणम् ।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॥

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८६॥

सव्याहर्तिं तु गायत्रीं पुनर्न्यासं तु कारयेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥१८७॥

ॐ भूः पादाभ्याम् ॐ भुवः जानुभ्याम् ॐ स्वः कट्याम् ॐ महः नाभौ ॐ जनः हृदये न्यसेत् ।

ॐ तपः करयोः ॐ सत्यं ललाटे ॐ तत्सवितुर्वरेणियं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ।

इति शिखायाम् ॥१८८॥

एवं विप्रो न जानाति स एव ब्राह्मणाधमः । न तस्य क्षीयते पाप्मा भवेद्धूरिप्रतिग्रहः ॥१८९॥

इमां यो वेत्ति गायत्रीं सर्वबीजसमन्विताम्। स वेत्ति चतुरो वेदान् योगज्ञानं जपत्रयम् ॥१९०॥

य एनां नैव जानाति सशूद्रात्परतः स्मृतः । तस्यापूतस्य विप्रस्य न देयं पितृपार्वणम् ॥१९१॥

नस्नानफलदः कश्चित्सर्वं निष्फलं भवेत्। विद्या वित्तं तथा जन्म द्विजत्वं कारणं यतः॥१९२॥

निष्फलं सकलं तस्य मेध्यं पुष्पं यथाऽशुचौ । चतुर्वेदाश्च गायत्रीं पुरा वै तुलिता मया ॥१९३॥

चतुर्वेदात्परा गुर्वी गायत्री मोक्षदा स्मृता । दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुरा कृतम्॥१९४॥

त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हंति किल्विषम्। गायत्रीमक्षमालायां सायं प्राप्तश्च यो जपेत् ॥१९५॥

चतुर्णामपि वेदानां फलं प्राप्नोत्यसंशयम्। त्रिसंध्यं यो जपेन्नित्यं गायत्रीं हायनं द्विजः ॥१९६॥

जिसको जानकर ब्राह्मण परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥१८४॥ ॐ तत्संवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८५॥ ॐ भू, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्, ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८६॥ फिर व्याहति सहित गायत्री का न्यास करना चाहिए । ऐसा करने वाला ब्राह्मण सभी पापों से रहित होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है॥१८७॥ इसके बाद फिर न्यास करे ॐ भूः इससे चरणों में न्यास करें, ॐ भुवः से दोनों घुटनों में न्यास करे, ॐ स्वः से कमर में न्यास करे, ॐ महः से नाभि में न्यास करे, ॐ जनः से हृदय में न्यास करे, ॐ तपः से दोनों हाथों में न्यास करे, ॐ सत्यम् से ललाट में न्यास करे, और ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् से शिखा में न्यास करे ॥१८८॥ इन सारी बातों को जो नहीं जानता है, वही अधम ब्राह्म है । उसका पाप विनष्ट नहीं होता है, अपितु दान लेने से उसका पाप बढता ही है ॥१८९॥ जो सभी जीवों से युक्त इस गायत्री को जानता है । वह चारों वेदों का ज्ञाता, योग का ज्ञाता तथा तीनों जपों का ज्ञाता हो जाता है ॥१९०॥ जो इस गायत्री को नहीं जानता है, वह शूद्र से भी बढकर है । उस अपवित्र ब्राह्मण को पितृ पार्वण श्राद्ध आदि में भोजन नहीं कराना चाहिए ॥१९१॥ उसको स्नान करने का कोई फल नहीं होता है उसका सब कुछ किया हुआ निष्फल होता है; क्योंकि विद्या, वित्त, ब्राह्मणवंश में जन्म, द्विजत्व का कारण यह गायत्री का ज्ञान हीं है ॥१९२॥ उसका सबकुछ उसीतरह से निष्फल होता है जिसतरह अपवित्रावस्था में पवित्र पुष्प इत्यादि भी व्यर्थ हो जाते हैं । पूर्वकाल में मैंने चारो वेदों तथा गायत्री दोनों को तौला था ॥१९३॥ तो चारो वेदों से मोक्षप्रदा गायत्री गुर्वी निकली। पहले के एक हजार जन्मों में किए गये पाप कर्मों को छह हजार गायत्री का जप विनष्ट कर देता है । जो व्यक्ति सायंकाल और प्रातःकाल रुद्राक्ष की माला पर गायत्री का जप करता है, वह निस्संदेह चारो वेदों के पाठ करने का फल प्राप्त करता है । जो ब्राह्मण एक वर्ष तक तीनो सन्ध्याओं में गायत्री का जप करता है ॥१९४-१९६॥ उसके

तस्य पापं क्षयं याति जन्मकोटिसमुद्भवम्। गायत्र्युच्चारमात्रेण पापकूटात्पुनाति च ॥१९७॥
स्वर्गापवर्गमाप्नोति जप्त्वा नित्यं द्विजोत्तमः। वासुदेवस्य मंत्राणि जपेद्यस्तु दिने दिने ॥१९८॥
प्रणमेच्च हरेः पादौ सगच्छेदपवर्गिताम्। वासुदेवस्य स्तोत्राणि मुखे वापि कथोत्तमा ॥१९९॥
पंकस्य लवमात्रं तु तस्य देहे न तिष्ठति। वेदशास्त्रावगाहेन त्रिस्रोतः स्नानजं फलम् ॥२००॥
धर्मपाठकृतां लोके यज्ञकोटिफलं लभेत्। एवंविप्रगुणान् वक्तुं न शक्नोमि द्विजोत्तम ॥२०१॥
विश्वरूपश्च को देही समूर्तो हरिरेव च। यस्य शापाद्विनाशः स्यादायुर्विद्यायशोधनम् ॥२०२॥
वरदानात्समायांति सर्वाः संपत्तयस्तथा। विष्णुर्ब्रह्मण्यतामेति सदाविप्रप्रसादतः ॥२०३॥
नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः ॥२०४॥
मंत्रेणैवं हरिं यस्तु पूजयेत्सततं नरः। प्रसादी च हरिस्तस्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥२०५॥
य इदं शृणुयात्पुण्यमाख्यानं धर्मविग्रहम्। तस्य पापं क्षयं याति जन्मजन्मकृतं च यत् ॥२०६॥
यः पठेत्पाठयेद्वापि उपदेष्टा जनस्य च। न तस्य पुनरावृत्तिः स्वर्गमक्षयमश्नुते ॥२०७॥
धनं धान्यं लभेदत्र राज्यभोगानरोगिताम्। सत्सुतं च शुभां कीर्तिं देववद्रमते दिवि ॥२०८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे ब्राह्मणसंस्कारो नाम षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४६॥

करोड़ों जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मण केवल गायत्री का नाम लेकर ही पवित्र हो जाता है ॥१९७॥ प्रतिदिन गायत्री का जप करने वाला मनुष्य स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति भगवान् वासुदेव के मन्त्रों का प्रतिदिन जप करता है ॥१९८॥ तथा श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम करता है, वह मुक्त हो जाता है। वासुदेव के स्तोत्रों का पाठ करना ही उत्तम है ॥१९९॥ उसके शरीर में पाप का लव भी नहीं रह जाता है। वेदों और शास्त्रों का चिन्तन करने से त्रिपथ गामिनी गंगा में स्नान करने का फल होता है ॥२००॥ संसार में धर्म ग्रन्थों का पाठ करने से करोडों यज्ञों का फल प्राप्त होता है। इसतरह से द्विजोत्तम नारद, मैं ब्राह्मणों के गुणों का वर्णन स्वयं नहीं कर सकता हूँ ॥२०१॥ विश्वरूप कोई शरीर नहीं है, वह ब्राह्मण ही मूर्तिमान श्रीहरि है। उसके शाप से आयु, विद्या, यश एवं धन का विनाश हो जाता है ॥२०२॥ ब्राह्मण के वरदान से सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। भगवान् विष्णु भी ब्राह्मणों की कृपा से सदा ब्रह्मण्य (ब्राह्मण भक्त) बने रहते हैं ॥२०३॥ ब्रह्मण्य देव श्रीभगवान् को नमस्कार है, गौ और ब्राह्मणों का कल्याण करने वाले भगवान् को नमस्कार है, जगत् का कल्याण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है, भगवान् कृष्ण को नमस्कार है, भगवान् गोविन्द को बार-बार नमस्कार है ॥२०४॥ इस मन्त्र के द्वारा जो व्यक्ति निरन्तर श्रीभगवान् की पूजा करता है उसके ऊपर भगवान् कृपा करते हैं और वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२०५॥ जो व्यक्ति इस धार्मिक आख्यान का श्रवण करता है, उसके अनेक जन्मों में किए गये पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥२०६॥ जो व्यक्ति इसका पाठ करता है, अथवा किसी को पढाता है, अथवा इसका लोगों को उपदेश करता है, वह पुनः इस संसार में नहीं आता है। उसको अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है॥२०७॥ वह इस संसार में धन, धान्य तथा आरोग्य को प्राप्त करता है। वह सत्पुत्र, सत्कीर्ति को प्राप्त करके अन्त में स्वर्ग में देवता के समान रमण करता है ॥२०८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के ब्राह्मणों के संस्कार वर्णन नामक छियालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४६।।

सैतालिसवाँ अध्याय

नारद उवाच

तव प्रसादतो ज्ञातो विप्रः पुण्यतमश्च यः। यथाजानामि देवेश क्रियया ब्राह्मणाधमम् ॥१॥
ब्रूहि शीघ्रं सुरश्रेष्ठ यदि प्रीतिं मयीच्छसि।

ब्रह्मोवाच

स्नानैर्दशविधैर्मुक्तस्तथैव तर्पणादिभिः ॥२॥
संध्यासंयमहीनश्च स एव ब्राह्मणाधमः। देवपूजाव्रतैर्मुक्तो वेदविद्यादिभिस्तथा ॥३॥
सत्यशौचादिभिश्चैव योगज्ञानाग्नितर्पणैः। पंचस्नानानि विप्राणां कीर्तितानि महर्षिभिः ॥४॥
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च। आग्नेयं भस्मना स्नानमद्भिर्वारुणमुच्यते ॥५॥
आपोहिष्ठेति वै ब्राह्मं वायव्यं गोरजःस्मृतम्। अद्भिरातपवर्षाभिर्दिव्यं स्नानमुदाहृतम् ॥६॥
एतैस्तु मंत्रतः स्नानात्तीर्थानां फलमाप्नुयात्। तुलसीपत्रसंलग्नं सालग्रामशिलांबु च ॥७॥
गवां शृंगोदकं चैव विप्रपादोदकं च यत्। गुरूणामेवमुख्यनां पूतात्पूतमिति स्मृतिः ॥८॥
त्यागतीर्थादिभिर्यज्ञै र्व्रतहोमादिभिस्तथा। यत्फलं लभते धीरः स्नानैरेतैस्तु तत्फलम् ॥९॥
तर्पणैश्च विनिर्मुक्तः पितृणामेव नित्यशः। पितृहा नरकं याति संध्याहीनस्तु विप्रहा ॥१०॥
मंत्रव्रतविहीनश्च वेदविद्यागुणैरपि। यज्ञदानादिभिर्मुक्तो ब्राह्मणश्चाधमाधमः ॥११॥

पञ्चविध स्नान वर्णन, ब्राह्मण पुत्र की कथा का वर्णन, गरुड की कथा, कश्यप गरुड संवाद, इन्द्र द्वारा कद्रु पुत्र सर्पों के सन्निकट से अमृत का हरण

नारदजी ने कहा— आपकी कृपा से मैंने पुण्यतम ब्राह्मण को जान लिया है, अव आप मुझको अधम ब्राह्मण द्वारा किए जाने वाले कार्यों को बतलाइये ॥१॥ हे सुरश्रेष्ठ। यदि आप का मेरे ऊपर स्नेह है तो उसे आप मुझे शीघ्र बतलाइये। **ब्रह्माजी ने कहा—** जो दश प्रकार के स्नान बतलाये गये हैं, उन सबों को नहीं करने वाला, संध्या एवं तर्पण आदि क्रियाओं को नहीं करने वाला ॥२॥ तथा जो संध्या एवं संयम से रहित है, वही अधम ब्राह्मण है। देवताओं की पूजा तथा व्रतों को नहीं करने वाला तथा वेददि विद्याओं से रहित ॥३॥ सत्य एवं शौचादि का पालन नहीं करने वाला जो योग ज्ञान से रहित है वह तथा जो अग्निहोत्र एवं तर्पण रहित है, वह अधम ब्राह्मण है। महर्षियों ने विप्रों के लिए पाँच स्नानों की विधि बतलायी है ॥४॥ आग्नेय स्नान, वारुण स्नान, ब्राह्म स्नान, वायव्य स्नान तथा दिव्य स्नान। भस्म के द्वारा किया जाने वाला स्नान आग्नेय स्नान है। जल से किया जाने वाला स्नान वारुण स्नान है ॥५॥ आपोहिष्ठाः इत्यादि मन्त्रों से किया जाने वाला स्नान ब्राह्म स्नान है। गोरज (गाय के खुरों की धूलि) से किया जाने वाला स्नान वायव्य स्नान है और धूप के निकले रहने पर भी होने वाली वर्षा के जल से किया जाने वाला स्नान दिव्य स्नान है ॥६॥ मन्त्र पूर्वक इन सबों से किये जाने वाले स्नान से तीर्थों का फल प्राप्त होता है। तुलसी पत्र से युक्त शालग्राम शिला के जल, गायों के शृङ्ग का जल, ब्राह्मणों के चरणोदक का जल तथा मुख्य गुरुओं के चरणोदक सर्वापेक्षया पवित्र होते हैं। ऐसा स्मृतियाँ बतलाती हैं ॥७-८॥ त्याग, तीर्थ तथा यज्ञों के द्वारा व्रतों एवं होमों के द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति इन स्नानों से होती है ॥९॥ जो प्रतिदिन पितृतर्पण नहीं करता है, वह नित्य ही पितृवध के दोष का भागी होता है। पितृहा पुरुष नरक में जाता है, और

यज्ञार्थका देवलका नाक्षत्रा ग्रामयाजका: । परदाररता नित्यं पंचैते ब्राह्मणाधमा: ॥१२॥
मंत्रसंस्कारहीनाश्च शुचिसंयमवर्जिता: । मोघाशिनो दुरात्मानो ब्राह्मणाश्चाधमाधमा: ॥१३॥
अपि स्तेयरता मूढा: सर्वधर्मविवर्जिता: । उन्मार्गगामिनो नित्यं ब्राह्मणाश्चाधमाधमा: ॥१४॥
श्राद्धादिकर्मरहिता गुरुसेवाविवर्जिता: । अमंत्रा भिन्नमर्यादा एते सर्वाधमाधमा: ॥१५॥
असंभाष्या इमे दुष्टास्सर्वे निरयगामिन:। अमेध्यास्ते दुराचारा अपूज्याश्च समंतत: ॥१६॥
खड्गोपजीविका: प्रेष्या गोवाहनरता द्विजा:। कारुवृत्युपजीवाश्च गणवार्द्धषिकाश्च ये ॥१७॥
बालापण्याभिचाराश्च अंत्यजाश्रयमाश्रिता: । कृतघ्नाश्च गुरुघ्नाश्च एते सर्वाधमा: स्मृता: ॥१८॥
ये चैवान्ये हताचारा पाषंडा धर्मनिंदका:। दूषका देवभेदानामेते ब्रह्मद्विषो द्विजा: ॥१९॥
तथापि ब्राह्मणश्चैव न हंतव्य: कदाचन । एनं हत्वाद्विजश्रेष्ठ ब्रह्महा पुरुषो भवेत् ॥२०॥
अंत्यजातिषु म्लेच्छेषु तथा चांडालजातिषु। पतितो वान्नयोनिभ्यां न हंतव्य: कथंचन ॥२१॥
सर्वजातिस्त्रियं गत्वा सर्वाभक्ष्यस्य भक्षणात्। द्विजत्वं नविनश्येत पुण्याद्विप्रो भवेत् पुन: ॥२२॥

नारद उवाच

ईदृशं दुष्कृतं कृत्वा पश्चात्पुण्यं समाचरेत् । कां गतिं यात्यसौ विप्र: सर्वलोकपितामह॥२३॥

ब्रह्मोवाच

कृत्वा सर्वाणि पापानि पश्चाद्यस्तु जितेंद्रिय: । मुच्यते सर्वपापेभ्य: पुनर्ब्रह्मत्वमर्हति ॥२४॥

सन्ध्या नहीं करने वाला विप्रघाती होता है ॥१०॥ मन्त्र एवं व्रत से रहित वेद विद्या में निपुण भी व्यक्ति, यज्ञ, दान इत्यादि नहीं करने वाला ब्राह्मण अधमाधम है ॥११॥ यज्ञों से धन कमाने वाले, देवताओं की पूजा कराकर धन कमाने वाले, नक्षत्रादि बतलाकर धन कमाने वाले, गावों में जा-जाकर यज्ञ कराने वाले, तथा दूसरों की स्त्रियों में रत रहने वाला ये पाँच प्रकार के ब्राह्मण अधम हैं ॥१२॥ मन्त्र के संस्कार से रहित, पावित्र्य तथा संयम से रहित, व्यर्थ ही भोजन करने वाले दुष्ट ब्राह्मण अधमाधम हैं ॥१३॥ चोरी करने वाले, अज्ञानी, किसी धर्म का पालन नहीं करने वाले तथा नित्य ही कुमार्गगामी ब्राह्मण अधमाधम हैं ॥१४॥ श्राद्ध आदि कर्मों को नहीं करने वाले, गुरुजनों की सेवा नहीं करने वाले, मंत्र ज्ञान से रहित, मर्यादा का भङ्ग करने वाले, ये सभी ब्राह्मण अधमाधम हैं । इन दुष्ट ब्राह्मणों से बात भी नहीं करना चाहिए, ये सभी नरकगामी हैं, वे अमेध्य अपूज्य तथा दुराचारी हैं ॥१६॥ जो ब्राह्मण खड्गोपजीवी (हिंसा के बल पर जीने वाले) हैं, नौकर, बैलों की सवारी करने वाले, बढईगीरी करने वाले, अथवा गणवार्द्धषिक हैं ॥१७॥ लड़की को बेंचने वाले, दुराचारी और शूद्रों के अधीन रहने वाले, कृतघ्न, गुरु की हत्या करने वाले, ये सबके सब ब्राह्मण अधम हैं ॥१८॥ दूसरे के आचार को विनष्ट करने वाले है, पाषण्डी, धर्म की निन्दा करने वाले, भिन्न-भिन्न देवताओं में दोष लगाने वाले ये सभी ब्राह्मण ब्रह्मद्वेषी हैं ॥१९॥ फिर भी ब्राह्मण का वध कभी भी नहीं करना चाहिए । हे द्विजश्रेष्ठ ! ब्राह्मण को मारने वाला पुरुष ब्रह्मघाती होता है ॥२०॥ यदि कोई ब्राह्मण शूद्रों में, म्लेच्छों में तथा चाण्डाल गति वालों में भोजन तथा योनि सम्बन्ध के द्वारा मिल जाय, तो भी उसका वध नहीं करना चाहिए ॥२१॥ सभी जाति के स्त्रियों के साथ सहगमन करके सर्वभक्षी हो जाने पर भी ब्राह्मणत्व का नाश नहीं होता है । वह ब्राह्मण पुण्य कर्म करके पुन: विप्र हो सकता है ॥२२॥ **नारदजी ने कहा—** इसतरह का पाप कर्म करके बाद में पुण्यकर्म करके वह सम्पूर्ण लोकों के हे पितामह ! वह किस-किस गति को प्राप्त करता है?॥२३॥ **ब्रह्माजीने कहा—** सभी पापों को करके जो बाद में जितेन्द्रिय हो जाता है, वह सभी पापों से मुक्त हो

शृणु पुत्र कथां रम्यां विचित्रां च पुरातनीम् । कस्यचिद्ब्राह्मणस्यापि यौवनाढ्यः सुतोऽभवत् ॥२५॥
ततो यौवनसंपत्ते र्मोहाच्च पूर्वकर्मणः । चांडालीमगमत्सद्यस्तस्याः प्रियतरो भवत् ॥२६॥
तस्यामुत्पादितास्तेन पुत्रा दुहितरस्तथा । स्वकुटुंबं परित्यज्य गृहे तस्याश्चिरं स्थितः ॥२७॥
अन्या भक्ष्यं न चाश्नाति घृणया च सुरां त्यजेत् । तमुवाच सदा सा च भक्षयान्यतरां सुराम् ॥२८॥
तामुवाच तदाशौचं गदितुं नार्हसि प्रिये । उत्कारो जायते तस्याः श्रवणात्सततं मम ॥२९॥
एकदा समृगान्वेषात् श्रांतः सुप्तो गृहे दिवा । गृहीत्वा सा सुरां तस्य हसित्वा च मुखे ददौ ॥३०॥
ततो विप्रमुखादग्निः प्रजज्वालसमंततः । ज्वाला तु सकुटुबां तामदहच्च गृहं वसु ॥३१॥
हाहा कृत्वा समुत्थाय विललाप तदा द्विजः । विलापांते च जिज्ञासा समारब्धा च तेन हि ॥३२॥
कुतश्चाग्निः समुद्भूतो गृहे दाहः कथं मम । ततः खेतमुवाचेदं तेजस्ते ब्राह्मणस्य च ॥३३॥
कथिते तद्यथावृत्ते ब्राह्मणो विस्मयं गतः । विमृश्यार्थमुवाचेदं पुनः खेऽस्य हितं वचः ॥३४॥
विप्रणष्टं सुतेजस्ते तस्माद्धर्मचरो भव । ततो मुनिवरान्गत्वा पप्रच्छात्महितं द्विजः ॥३५॥
तमूचुर्मुनयः सर्वे दानधर्मं समाचर ।

ऋषय ऊचुः

पूयंते सर्वपापेभ्यो ब्राह्मणा नियमैर्व्रतैः ॥३६॥
नियमान् शास्त्रदृष्टांश्च पूतत्वार्थमुपाचर । चांद्रायणांश्च कृच्छ्रांश्च तप्तकृच्छ्रान्पुनःपुनः ॥३७॥
प्राजापत्यांश्च दिव्यांश्च दोषशोषाय सत्वरम् । गच्छ तीर्थानि पूतानि गोविंदाराधनं कुरु ॥३८॥

जाता है और फिर ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ हे पुत्र ! एक विचित्र, मनोहर तथा प्राचीन कथा सुनो । किसी ब्राह्मण का पुत्र जवानी पर धनिक हो गया ॥२५॥ उसके बाद, जवानी, धन सम्पत्ति तथा पूर्वकर्म के प्रभाव से किसी चाण्डाली के साथ उसने सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उसका अत्यन्त प्रिय हो गया ॥२६॥ उसने उस चाण्डाली के गर्भ से पुत्रों तथा पुत्रियों को उत्पन्न किया । वह अपने परिवार को छोड़कर उसी के घर रहने लगा॥२७॥ वह किसी अभक्ष्य पदार्थ को नहीं खाता था और घृणा के कारण मदिरा को नहीं पीता था । वह चाण्डाली उसे अभक्ष्य वस्तुओं को खाने और मदिरा पीने के लिए कही तो ॥२८॥ उसने उस चाण्डाली से कहा कि तुम इन धृणित बातों को मत कहो, उसका नाम ही सुनकर मुझे उबकाई आने लगती हैं ॥२९॥ एक दिन वह मृग का अन्वेषण करने के कारण दिन में ही अपने घर में सो गया । वह चाण्डाली मदिरा लेकर हँसती हुए उसके मुख में मदिरा डाला ही ॥३०॥ उससे उस ब्राह्मण के मुख से निकलकर चारो ओर अग्नि जलने लगी । उस ज्वाला ने कुटुम्ब सहित उस चाण्डाली तथा घर की सारी सम्पत्ति को जला दिया ॥३१॥ वह उठकर हाय-हाय करता हुआ ब्राह्मण विलाप करने लगा । विलाप के बाद उसे इस बात को जानने की इच्छा हुई कि ॥३२॥ कहाँ से अग्नि उत्पन्न हुयी तथा कैसे मेरा घर जल गया ? उस समय आकाश बाणी हुयी कि तुम्हारे ब्राह्मतेज की (यह अग्नि थी) ॥३३॥ ठीक-ठीक घटना कहने पर उस ब्राह्मण को आश्चर्य हुअ । अर्थ का विस्तार करके आकाशवाणी ने पुनः कहा ॥३४॥ तुम्हारा तेज विनष्ट हो गया है, अतएव धर्म का आचारण करो । उसके बाद श्रेष्ठ मुनियों के पास जाकर उसने अपने कल्याण के विषय में पूछा ॥३५॥ उसको मुनियों ने कहा कि तुम दान धर्म करो । **ऋषियों ने कहा—** नियमों और व्रतों का पालन करके ब्राह्मण सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥३६॥ अतएव पवित्र होने के लिए शास्त्रों में बतलाये गये नियमों का पालन करो । तुम बार-बार तप्त एवं कृच्छ्र चान्द्रायण व्रतों को करो ॥३७॥ शीघ्र ही पापों

क्षयमेष्यंति पापानि न चिरेण समंततः। पुण्यतीर्थप्रभावाच्च गोविंदस्य प्रभावतः ॥३९॥
क्षयमेष्यंति पापानि ब्रह्मत्वं प्राप्स्यते भवान्। शृणु तात यथावृत्तं कथयामः पुरातनम् ॥४०॥
आहारार्थी पुरा वत्स गरुडो विनतासुतः। पतंगोपि बहिः साक्षादंडान्निस्सृत्य शावकः॥४१॥
क्षुधार्थी मातरं प्राह भक्ष्यं मे दीयतामिति। ततः पर्वतसंकाशं गरुडं च महाबलम् ॥४२॥
दृष्ट्वा माता महाभागा तनयं हृष्टमानसा।

विनतोवाच

क्षुधां ते बाधितुं पुत्र नशक्नोमि समंततः ॥४३॥
तव तातस्तपस्तेपे लौहित्यस्योत्तरे तटे। कश्यपो नामधर्मात्मा साक्षाल्लोकपितामहः ॥४४॥
तत्र गच्छस्वपितरं पृच्छ कामं यथा तव। अस्योपदेशतस्तात क्षुधा ते शममेष्यति ॥४५॥

ऋषय ऊचुः

ततो मातुर्वचःश्रुत्वा वैनतेयो महाबलः। अगमत्पितुरभ्याशं समुहूर्तान्मनोजवः ॥४६॥
दृष्ट्वा तातं मुनिश्रेष्ठं ज्वलंतमिव पावकम्। प्रणम्य शिरसा वाक्यमुवाच पितरं खगः ॥४७॥

वैनतेय उवाच

भक्षार्थी समनुप्राप्तः सुतोऽहं ते महात्मनः। क्षुधया पीडितो नाथ भक्ष्यं मे दीयतां प्रभो ॥४८॥
ततो ध्यानं समालभ्य ज्ञात्वा तं विनतासुतम्। पुत्रस्नेहाद्वचश्चेदं प्रोवाच मुनिसत्तमः ॥४९॥

कश्यप उवाच

अनेकशतसाहस्रा निषादाः सरितांपतेः। तीरे तिष्ठंति पापिष्ठास्तान्संभक्ष्य सुखीभव॥५०॥
तीर्थमुत्सादयंति स्म तीर्थकाका दुरासदाः। विना विप्रं निषादेषु भक्षय त्वमलक्षितम् ॥५१॥

का नाश करने के लिए दिव्य प्राजापत्य व्रतों का पालन करो। पवित्र तीर्थों में जाकर भगवान् गोविन्द की आराधना करो ॥३८॥ पुण्यतीर्थों के प्रभाव से तथा भगवान् गोविन्द की आराधना करने से तुम्हारे सारे पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जायेंगे ॥३९॥ तुम्हारे सारे पाप विनष्ट हो जायेंगे तथा तुम्हे ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हो जायेगी। इस विषय में एक पुराना कथानक है सुनो ॥४०॥ जब विनता के पुत्र गरुड़ अण्डे से बाहर निकले और बच्चे थे, वे आहार प्राप्त करने के लिए ॥४१॥ अपनी माता से कहे कि मुझे खाने को दो, उसके बाद पर्वत के समान विशालकाय महाबलवान्॥४२॥ गरुड को देखकर महाभागा माता ने प्रसन्न होकर अपने पुत्र से कहा। **विनता ने कहा**— पुत्र मैं तुम्हारी भूख को नहीं मिटा सकती हूँ ॥४३॥ तुम्हारे पिता लौहित्य के उत्तर तट पर तपस्यारत उन धर्मात्मा का नाम कश्यप है। वे साक्षात् ब्रह्माजी के समान हैं ॥४४॥ अतएव तुम अपने पिता के पास चले जाओ और उनसे अपने भक्ष्य के विषय में पूछो। पुत्र उनके उपदेश से ही तुम्हारी भूख मिटेगी ॥४५॥ **ऋषियों ने कहा**— उसके बाद अपनी माता की बात को सुनकर मन के समान वेग वाले महाबलवान गरुड अपने पिता के पास आये ॥४६॥ अग्नि के समान अपने पिता, उन मुनि को देखकर गरुड ने उनको शिर झुकाकर प्रणाम करके कहा ॥४७॥ **वैनतेय ने कहा**— हे नाथ ! मैं आपका पुत्र हूँ, भोजन करना चाहता हूँ, आप मुझे भोजन दीजिये। मैं भूख से व्याकुल हूँ ॥४८॥ **ऋषियों ने कहा**— उसके बाद ध्यान के द्वारा महर्षि ने उसे विनता का पुत्र जान लिया और पुत्र के स्नेह से मुनिश्रेष्ठ ने कहा **कश्यप महर्षि ने कहा**— समुद्र के तट पर अनेक हजार पापी निषाद रहते हैं, उन सबों को खाकर सुखी हो जाओ॥४९-५०॥ ये दुष्ट तीर्थ काक हैं। ये तीर्थ को विनष्ट करने का काम करते हैं, उन सबों को तुम अप्रत्यक्ष

ऋषय ऊचुः

इत्युक्तः प्रययौ पक्षी भक्षयामास तांस्ततः । अलक्ष्यभावो विप्रोऽपि गिलितस्तेन पक्षिणा ॥५२॥
स तस्य गलके गाढं लालगीति द्विजस्तदा । वमितुंगिलितुं चापि न शशाक द्विजोत्तमः ॥५३॥
गत्वाऽथ पितरं प्राह किमेतदिति मे पितः । लग्नं मे गलके सत्वं प्रतिकर्तुं न शक्नुयाम् ॥५४॥

ऋषय ऊचुः

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपस्तमुवाच ह ।

कश्यप उवाच

मयोक्तं ते पुरा वत्स ब्राह्मणोऽयं न बुध्यसे ॥५५॥

ऋषय ऊचुः

इत्युक्त्वा च मुनिर्धीमान् द्विजं प्राह स धार्मिकः ।

कश्यप उवाच

आगच्छ त्वं ममासन्नं हितं ते प्रवदाम्यहम् ॥५६॥

ऋषय ऊचुः

तमुवाच तदा विप्रः कश्यपं मुनिपुंगवम् ।

विप्र उवाच

ममैते सुहृदोनित्यं सर्वे संबंधिनः प्रियाः ॥५७॥
श्वशुराः स्यालकाश्चाप्तास्सबालाश्च तथापरे । एतैः सह प्रयास्यामि निरयं चापि वा शिवम् ॥५८॥

ऋषय ऊचुः

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विस्मितः कश्यपोऽब्रवीत् ।

कश्यप उवाच

द्विजानां च कुलेजातश्चांडालैः पतितो भवान् ॥५९॥

रहकर खाना । केवल निषादों को ही खाना किसी ब्राह्मण को मत खा जाना ॥५१॥ **ऋषियों ने कहा—** इस तरह से कहने पर वह पक्षी वहाँ चला गया तथा उन सबों को खा लिया । किन्तु नही पहचान पाने के कारण गरुड ने एक ब्राह्मण को भी खा लिया ॥५२॥ वह ब्राह्मण गरुड के गले में फँस गया । उस ब्राह्मण को गरुड न तो निगल पाते थे और न वमन ही कर पाते थे ॥५३॥ इसके बाद गरुड अपने पिता के पास गये और अपने पिता से पूछे कि यह क्या हो गया है ? मेरे गले में कोई जीव अँटक गया है, उसको मैं न तो निगल पाता हूँ और न तो वमन ही कर पाता हूँ ॥५४॥ **ऋषियों ने कहा—** गरुड की उस वाणी को सुनकर महर्षि कश्यप ने कहा **कश्यप महर्षि ने कहा—** वत्स ! मैंने तुमसे पहले की कहा था, किन्तु तुम जान नहीं सके, यह ब्राह्मण है ॥५५॥ **ऋषियों ने कहा—** इसतरह से कहकर बुद्धिमान मुनि ने उस ब्राह्मण से कहा **कश्यप महर्षि ने कहा—** तुम मेरे पास आओं, मैं तुम्हारे कल्याण की बातें बतलाता हूँ ॥५६॥ **ऋषियों ने कहा—** उस समय उस ब्राह्मण ने महर्षि कश्यप से कहा **उस ब्राह्मण ने कहा—** ये मेरे मित्र हैं तथा मेरे प्रिय सम्बन्धी हैं ॥५७॥ इनमें से कोइ मेरा श्वशुर है तो कोई मेरा साला है । इन सबों के साथ मैं अकल्याणकारी नरकों में भी जाऊँगा ॥५८॥ **ऋषियों ने कहा—** उसकी उस वाणी को सुनकर आश्चर्यित होकर कश्यप बोले । **महर्षि कश्यप ने कहा—** तुम ब्राह्मणों के वंश में उत्पन्न होकर इन

पुरुषास्ते प्रतिष्ठंते घोरे च निरये ध्रुवम। चिराय निष्कृतिस्तेषां नैवास्तीह कथंचन ॥६०॥
सर्वांश्चैव दुराचारांश्चांडालान्पापकारिणः । दोषांस्त्यक्त्वा नरः पश्चात्सुखी भवति नान्यथा ॥६१॥
अज्ञानाद्यदि वा मोहात्कृत्वा पापं सुदारुणम् । ततो धर्मं चरेद्यस्तु सगच्छेत्परमां गतिम् ॥६२॥
पापकृन्न चरेद्धर्मं पापे कुर्यान्मतिं पुनः। शिलानावं यथा रूढः सागरे सनिमज्जति ॥६३॥
कृत्वा सर्वाणि पापानि तथादुर्गतिसंचयम् । उपशान्तोभवत्पश्चात्तंदोषं शमयिष्यति ॥६४॥

ऋषय ऊचुः

तमुवाच महाप्राज्ञं द्विजं मुनिवरोत्तमम्।

विप्र उवाच

यदिमां न जहातीह खगः सर्वांश्च बांधवान् ॥६५॥
ततःप्राणं च त्यक्ष्यामि खगे मर्मावघातिनि । नो चेत्त्यजतु मे बंधून्प्रतिज्ञा मे दृढात्मनः ॥६६॥

ऋषय ऊचुः

ततस्ताक्ष्यर्मुवाचेदं मुनिर्ब्रह्मवधे भयात् ।

कश्यप उवाच

उद्वमैतान्सविप्रांश्च म्लेछानेतान् समंततः ॥६७॥
वनेषु पर्वतान्तेषु दिक्षु तान्पतगेश्वर ।

ऋषय ऊचुः

उद्ववाम ततः शीघ्र दोषज्ञः पितुराज्ञया ॥६८॥
ततः सर्वेऽभवन्व्यक्ता अकेशाः श्मश्रुवर्जिताः । यवना भोजनप्रीताः किंचिच्छमश्रुयुताश्च ये ॥६९॥
अग्नौ च नग्नकाः पापा दक्षिणस्यामवाचकाः । घोराः प्राणिवधे प्रीता दुरात्मानो गवाशिनः ॥७०॥

चाण्डालों से साथ पतित हो गये हो ॥५९॥ तुम्हारे पितृगण घोर नरक में हैं । उन लोगों के उद्धार का कोई भी साधन नहीं है ॥६०॥ पाप करने वाले, दुराचारी चाण्डालों का परित्याग करके मनुष्य सुखी हो जाता है, और दूसरा कोई साधन नहीं है ॥६१॥ अज्ञान अथवा मोह के कारण यदि कोई भयङ्कर पाप करता है तो धर्माचरण करके वह परमा गति को प्राप्त कर लेता है ॥६२॥ पापी धर्माचरण नहीं करता है, वह बार-बार पाप ही करता है । जिस तरह पत्थर की बनी नाव पर बैठने वाला व्यक्ति सागर में डूब जाता है, उसी तरह वह व्यक्ति भी पतित हो जाता है॥६३॥ सभी पापों को करके तथा दुर्गति के समूह को भी करके यदि कोई पाप करना छोड़ देता है तो उसके वे दोष शान्त हो जाते हैं ॥६४॥ **ऋषियों ने कहा—** यह सुनकर उस ब्राह्मण ने महर्षि से कहा **ब्राह्मण ने कहा—** यदि यह पक्षी मेरे बांधवों के साथ मुझे नहीं छोड़ता है ॥६५॥ तो मैं इस मर्मावघाती पक्षी के ही शरीर में आपना प्राण त्याग दूँगा। नहीं तो यह मेरे बाँधवों को छोड़ दे यह मेरी दृढप्रतिज्ञा है ॥६६॥ **ऋषियों ने कहा—** उसके बाद ब्रह्महत्या के भय से कश्यप महर्षि ने गरुड से कहा **कश्यप महर्षि ने कहा—** पक्षिश्रेष्ठ ! तुम ब्राह्मण के साथ इन सभी म्लेच्छों का वनों, पर्वतों तथा दिशाओं में वमन कर दो **ऋषियों ने कहा—** उसके बाद पिता की आज्ञा से दोषों को जानकर गरुड ने वमन कर दिया । उसके बाद वे सब केश तथा दाढी मूछ से रहित हो गये । यवन भोजन प्रेमी हो गये तथा उनकी दाढी बहुत कम हो गयी ॥६७-६९॥ अग्नि में नंगे रहने वाले वे पापी दक्षिण दिशा में चले गये, वे नाम लेने योग्य भी नहीं हैं । वे भयङ्कर तथा प्राणियों का वध करने वाले तथा गौ को खाने वाले दुष्ट हैं ॥७०॥ कुत्सित

नैर्ऋते कुवदाः पापा गोब्राह्मणवधोद्यताः । खर्पराः पश्चिमे पूर्वे निवसंति च दारुणाः ॥७१॥
वायव्यां च तुरुष्काश्च श्मश्रुपूर्णा गवाशिनः । अश्वपृष्टसमारूढाः प्रयुद्धेष्वनिवर्तिनः ॥७२॥
उत्तरस्यां च गिरयोम्लेच्छाः पर्वतवासिनः । सर्वभक्षा दुराचाराः बधबंधरताः किल ॥७३॥
ऐशान्यां निरयास्संति कर्तॄणां वृक्षवासिनः । एते म्लेच्छस्थितादिक्षु घोरास्ते शस्त्रपाणयः ॥७४॥
येषां च स्पर्शमात्रेण सचैलो जलमाविशेत् । एतेषां च कलौ देशेप्यकाले धर्मवर्जिते ॥७५॥
संस्पर्शं च प्रकुर्वंति वित्तलोभात्समंततः । म्लेच्छां स्तान्मोचयित्वा तु क्षुधया परिपीडितः ॥७६॥
पुनराह द्विजस्तातक्षुधा मे बाधतेतराम् । अवदद्गरुडं तत्र कश्यपः कृपया द्रुतम् ॥७७॥

कश्यप उवाच

तिष्ठंतौ विपुलो तत्रजिघांसू गजकच्छपौ । अप्रमेयौ महासत्वौ सागरस्यैकदेशतः ॥७८॥
तावप्सु च द्रुतं वत्स क्षुधां ते वारयिष्यतः ।

ऋषय ऊचुः

स पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्र गत्वाभिपद्य तौ ॥७९॥
नखैर्भित्वा कूर्मगजौ महासत्वो महाजवः । खमुत्पपात तौ धृत्वा विद्युद्वेगो महाबलः ॥८०॥
आधारतां न गच्छंति नगाश्च मंदरादयः । ततो योजनलक्षे द्वे गत्वा मारुतरंहसा ॥८१॥
महत्यां जंबुशाखायां निपपात महाबलः। भग्ना सा सहसा शाखा तां पतंतीं खगेश्वरः ॥८२॥
गोब्राह्मणवधाद्भीतो दधार तरसा बली। धृत्वा तां रुचिरं वेगादद्रवंतं खे महाबलम् ॥८३॥
गत्वा विष्णुरुवाचेदं नररूपधरो हरिः ।

बोलने वाले, गौओं तथा ब्राह्मणों का वध करने वाले वे पापी नैऋत्यकोण में चले गये । खर्पर जाति वाले पश्चिम और पूर्व दिशा में रहते हैं और भयङ्कर पापी हैं ॥७१॥ वायव्य कोण में तुर्क चले गये ये पूर्ण दाढी और मुच्छ वाले हैं तथा गौऔं को खाने वाले हैं । ये घोड़े की सवारी करते हैं, और युद्ध करने वाले होते हैं ॥७२॥ उत्तर के पर्वतों पर पर्वतवासी म्लेच्छ रहते हैं वे सर्वभक्षी, दुराचारी, बाँधने तथा बध करने का काम करते रहते हैं ॥७३॥ ईशान दिशा में वृक्षों पर रहने वाले और नरकवासी हैं । ये सभी म्लेच्छ घोर शस्त्रधारी और विभिन्न दिशाओं में रहने वाले हैं।॥७४॥ इन सबों का स्पर्श हो जाने पर वस्त्र के साथ स्नान करना चाहिए । इन सबों का कलियुग में बुरे देश और काल में तथा धर्महीन देश में से ॥७५॥ स्पर्श लोग धन प्राप्ति के लोभ से करते हैं । उन म्लेच्छों का परित्याग करके गरुड फिर भूखे हो गये ॥७६॥ फिर उन्होंने कहा पिताजी मुझे जोर से भूख लगी है । कृपा करके कश्यप महर्षि ने गरुड को अद्भुत बात बतलायी ॥७७॥ **कश्यप महर्षि ने कहा**— सागर के भीतर एक किनारे पर विशालकाय हाथी और कच्छप आपस में लड़ रहे हैं । एक दूसरे को मार डालना चाहते हैं ॥८७॥ हे वत्स ! उन दोनों से तुम्हारी भूख मिट जायेगी । **ऋषियों ने कहा**— अपने पिता की वाणी सुनकर गरुड उन दोनों के पास चले गये ॥७९॥ महावेगवान् वे अपने नखों से कच्छप और हाथी को छेदकर उन दोनों को पकड़कर आकाश में उड़ गये॥८०॥ मंदराचल आदि पर्वत गरुड के भार को नहीं सह पाते थे इसलिए वायु के वेग से दो लाख योजन जाकर ॥८१॥ महाबलवान् गरुड एक महान् जामुन के वृक्ष की शाखा पर बैठे तो वह शाखा टूट गयी, गिरती हुयी उस शाख को गरुड ने ॥८२॥ किसी गौ अथवा ब्राह्मण के वध के भय से अपनी चोंच में पकड़ लिए और उसे पकड़कर आकाश में उड़ने लगे ॥८३॥ मनुष्य का रूप बनाकर भगवान् विष्णु गरुड के पास गये और कहे । हे

विष्णुरुवाच

कस्त्वं भ्रमसि चाकाशे किमर्थं पतगेश्वर ॥८४॥
विधृत्य महतीं शाखां महांतौ गजकच्छपौ । तमुवाच द्विजस्तस्मिन्नररूपधरं हरिम् ॥८५॥
गरुडोऽहं महाबाहो खगरूपः स्वकर्मणा । कश्यपस्य मुनेस्सुनूर्विनतागर्भसंभवः ॥८६॥
पश्यैतौ च महासत्त्वौ भक्षणार्थं मया धृतौ । न धरा च ममाधारो न वृक्षा न च पर्वताः ॥८७॥
अनेकयोजनान्यूर्ध्वं दृष्ट्वा जंबूमहीरुहम् । अपतं तस्य शाखायां सहेमौ परिभक्षितुम् ॥८८॥
भग्ना सा सहसा शाखा तां च धृत्वा भ्रमाम्यहम् । कोटिकोटिसहस्राणां ब्राह्मणानां गवां वधात् ॥८९॥
भयं तत्र विषादो मे सहसा प्राविशद्बुध । किं करोमि कथं यामि को मे वेगं सहिष्यति ॥९०॥

ऋषय ऊचुः

इत्युक्ते पतगश्रेष्ठं प्रोवाचेदं हरिस्तदा ।

विष्णुरुवाच

अस्मद्बाहुं समारुह्य भक्षेमौ गजकच्छपौ ॥९१॥

गरुड उवाच

ममाधारं न गच्छंति सागराश्च नगोत्तमाः । अथ चैवं महासत्व कथंत्वं धारयिष्यसि ॥९२॥
ऋते नारायणादन्यः को मां धारयितुं क्षमः । त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेद्यो वेगं मे सहिष्यति ॥९३॥

हरिरुवाच

स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः स्वकार्यं कुरु सांप्रतम् । कृत्वा कार्यं खगश्रेष्ठ विजानीषे च मां ध्रुवम् ॥९४॥

ऋषय ऊचुः

महासत्वं च तं दृष्ट्वा विमृश्य मनसा खगः । एवमस्त्विति चोक्त्वा स पपात ह महाभुजे ॥९५॥
न चचाल भुजस्तस्य सन्निपाते खगेशितुः । तत्र स्थित्वा स तां शाखां मुमोच पर्वतालये ॥९६॥

पक्षिराज् ! आप कौन हैं ? और आकाश में इन कच्छप और महागज को पकड़कर क्यों भ्रमण कर रहे हैं ?॥८४॥ मनुष्य का रूप धारण किए हुए श्रीहरि से गरुड ने कहा हे महाबाहो ! मैं गरुड़ अपने कर्मों के कारण पक्षी शरीर वाला हूँ । मैं महर्षि कश्यप का पुत्र हूँ । मेरी माता का नाम विनता है ॥८५-८६॥ आप इन विशाल जीवों को देखें। इन दोनों को मैंने खाने के लिए पकड़ रखा है । मेरे भार को वृक्ष पर्वत तथा पृथिवी भी नहीं सम्हाल पाते हैं ॥८७॥ मैंने अनेक योजन विस्तृत जामुन के वृक्ष को देखकर इन दोनों को लेकर खाने के लिए उसकी शाखा पर बैठा॥८८॥ किन्तु वह शाखा भी टूट गयी उसको पकड़कर मैं धूम रहा हूँ । मुझे भय है कि इस शाखा के गिर जाने से करोड़ों गायों और ब्राह्मणों का वध हो जा सकता है । मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे वेग को कौन सह सकता है ?॥८९-९०॥ **ऋषियों ने कहा—** उस पक्षिश्रेष्ठ के इस तरह से कहने पर भगवान् विष्णु ने उससे कहा **विष्णु भगवान् ने कहा—** तुम मेरी भुजा पर बैठ कर इन हाथी और कच्छप को खा लो ॥९१॥ **गरुड ने कहा—** मेरे भार को सागर और श्रेष्ठ पर्वत भी नहीं धारण कर पाते है, इस महासत्त्व को आप कैसे धारण कर सकेंगे ?॥९२॥ भगवान् नारायण को छोड़कर कौन ऐसा पुरुष है जो मेरे वेग को धारण कर सके ॥९३॥ **श्रीहरि ने कहा—** पहले बुद्धिमान को अपना कार्य करना चाहिए, इस समय तुम अपना काम करो । अपना कार्य करने के बाद तुम मुझको जान पाओगे ॥९४॥ **ऋषियों ने कहा—** उस महासत्त्व को देखकर गरुड ने मन में विचार किया और कहा ठीक

शाखापतनमात्रेण सचराचरकानना । चचालवसुधा चैव सागराः प्रचकंपिरे ॥९७॥
ततश्च खादितौ सत्त्वौ सहसा गजकच्छपौ । तृप्तिं न प्राप्तवान्सोऽपि क्षुधा तस्य न शाम्यति॥९८॥
एतज्ज्ञात्वा तु गोविंदस्तमुवाचखगेश्वरम् । भुजस्य मम मांसं तु भक्षयित्वा सुखी भव ॥९९॥

ऋषय ऊचुः

इत्युक्ते प्रचुरं मांसं भुजस्य तस्य तेन हि । खादितं क्षुधया पुत्र व्रणं तस्य न विद्यते ॥१००॥

वैनतेय उवाच

तमुवाच महाप्राज्ञश्चराचरगुरुं हरिम् । कस्त्वं किं वा प्रियं तेऽद्य करिष्यामि च सांप्रतम्॥१०१॥

नारायण उवाच

विद्धि नारायणं मां हि त्वत् प्रियार्थं समागतम्।

ऋषय ऊचुः

रूपं स्वं दर्शयामास प्रत्ययार्थं च तस्य वै ॥१०२॥
पीतवस्त्रं घनश्यामं चतुर्भुजमनोहरम् । शंखचक्रगदापद्मधरं सर्वसुरेश्वरम् ॥१०३॥
तं च दृष्ट्वा गरुत्मांश्च प्रणम्य शिरसा हरिम् । प्रियं किं ते करिष्यामि वद नः पुरुषोत्तम ॥१०४॥

ऋषय ऊचुः

तमब्रवीन्महातेजा देवदेवेश्वरो हरिः।

विष्णुरुवाच

भव मे वाहनं शूर सखे त्वं सार्वकालिकम् ॥१०५॥

ऋषय ऊचुः

तमुवाच खगश्रेष्ठो धन्योऽहं विबुधेश्वर । सफलं जन्म मे नाथ त्वां दृष्ट्वाद्य मे प्रभो॥१०६॥

है, यह कहकर गरुड उस भुजा पर बैठ गये ॥९५॥ पक्षिराज के बैठने पर भुजा में कँप भी नहीं हुआ, उस पर बैठकर उन्होंने उस शाखा को पर्वत पर छोड़ दिया ॥९६॥ शाखा के गिरने मात्र से चराचर जीवों और पर्वतों के साथ पृथिवी काँप गयी और सगर में तूफान आ गया ॥९७॥ उसके बाद में उन्होंने विशालकाय हाथी और कच्छप को खा लिया, किन्तु वे उतने से तृप्त नहीं हुए और उनकी भूख नहीं मिटी ॥९८॥ इस बात को जानकर उन्होंने उस खगेश्वर से कहा **विष्णु ने कहा** मेरी भुजा के माँस को खाकर पेट भर लो ॥९९॥ **ऋषियों ने कहा**— भगवान् के इस तरह से कहने पर गरुड ने भुजा के प्रचुर माँस को खाया, किन्तु उसमें कोई घाव नहीं हुआ ॥१००॥ उस महाबुद्धिमान ने चराचर के स्वामी श्रीहरि से कहा **वैनतेय ने कहा**— आप कौन है ? मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ?॥१०१॥ **नारायण ने कहा** मैं नारायण हूँ तुम्हारा कल्याण करने के लिए आया हूँ **ऋषियों ने कहा**— गरुड के विश्वास के लिए उन्होंने अपना रूप दिखाया ॥१०२॥ सभी देवताओं के स्वामी श्रीभगवान् शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए थे ॥१०३॥ उनको देखकर गरुड ने उनको शिर से प्रणाम किया । **वैनतेय ने कहा**— हे पुरुषोत्तम ! आप बतलाइये कि मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ?॥१०४॥ **ऋषियों ने कहा**— देवताओं के भी आराध्य, महातेजस्वी श्रीहरि ने गरुड से कहा **विष्णु ने कहा**— हे शूरवीर ! तुम मेरा सार्वकालिक वाहन और मित्र बनो । **ऋषियों ने कहा**— उस पक्षिश्रेष्ठ ने भगवान् विष्णु से कहा— हे देवेश्वर मैं तो धन्य हो गया । हे प्रभो ! आपका दर्शन करके आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया ॥१०६॥ मैं अपने माता-पिता से प्रार्थना करके

प्रार्थयित्वा च पितरावागमिष्यामि तेन्तिकम्। प्रीतो विष्णुरुवाचेदं भव त्वमजरामरः ॥१०७॥
अवध्यः सर्वभूतेभ्यः कर्मतेजश्च मत्समम् । सर्वत्र तेगतिश्चास्तु निखिलं तु सुखं ध्रुवम् ॥१०८॥
संमिलतु द्रुतं सर्वं यत्ते मनसि वर्तते । यथेष्टं प्रीतिमाहारमकष्टेन प्रलप्स्यसे ॥१०९॥
व्यसनान्मातरं सद्यो मोचयिष्यसि नान्यथा । एवमुक्त्वा हरिः सद्यस्तत्रैवांतरधीयत ॥११०॥
तार्क्ष्योपि पितरं गत्वा कथयच्चाखिलं ततः । स तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टात्मा तनयं पुनरब्रवीत् ॥१११॥

कश्यप उवाच

धन्योऽहं च खगश्रेष्ठ धन्या ते जननी शिवा । धन्यं क्षेत्रं कुलं चैव यस्य पुत्रस्त्वमीदृशः ॥११२॥
यस्य पुत्रः कुले जातो वैष्णवः पुरुषोत्तमः । कुलकोटिं समुद्धृत्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥११३॥
विष्णुं यःपूजयेन्नित्यं विष्णुं ध्यायेत गायति । जपेन्मंत्रं सदाविष्णोः स्तोत्रं तस्य पठिष्यति ॥११४॥
प्रसादं च भजेन्नित्यमुपवासं हरेर्दिने । क्षयाच्चसर्वपापानां मुच्यते नात्र संशयः ॥११५॥
यस्य तिष्ठति गोविंदो मानसे च सदैव हि। स एव च लभेद्दास्यं स पुण्यैः पुरुषोत्तमः ॥११६॥
जन्मकोटिसहस्रेभ्यः कृत्वा सत्कर्मसंचयम् । क्षयाच्च सर्वपापानां विष्णोः किंकरतां व्रजेत् ॥११७॥
धन्योऽसौ मानवो लोके विष्णोस्सादृश्यमाव्रजेत् । नित्यः सुरवरैः पूज्यो लोकनाथोऽच्युतोव्ययः ॥११८॥
सुप्रसन्नो भवेद्यस्य स एव पुरुषोत्तमः । तपोभिर्बहुभिर्धर्मैर्मखैर्नानाविधैरपि ॥११९॥
विष्णुर्न लभ्यते देवैस्त्वयासौ विप्रलभ्यते। सपत्नीव्यसनाद् घोरान्मातरं ते प्रमोचय ॥१२०॥
ततो यास्यसि देवेशं कृत्वा मातुः प्रतिक्रियाम्।

आपके पास आऊँगा । प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने कहा— तुम अजर अमर हो जाओ ॥१०७॥ तुम सभी जीवों के लिए अवध्य हो और तुम्हारा कर्म एवं तेज मेरे ही समान हो जाय । तुम्हारी गति सर्वत्र हो, तुम्हे सभी सुख प्राप्त हों ॥१०८॥ तुम्हारे मन में जो आये वह तुम्हे शीघ्र ही प्राप्त हो जाय । तुम अपने मनोनुकूल यथेष्ट आहार प्राप्त करोगे ॥१०९॥ तुम शीघ्र ही अपनी माता को कष्ट से रहित करोगे । ऐसा कहकर श्रीहरि वहाँ से अन्तर्धान हो गये॥११०॥ गरुड भी अपने पिता के पास जाकर सारा वृत्तान्त सुनाये । उसको सुनकर प्रसन्न हुए महर्षि ने गरुड से कहा ॥१११॥ **कश्यप महर्षि ने कहा**— हे पक्षिश्रेष्ठ ! मैं धन्य हो गया और तुम्हारी मंगलमयी माँ भी धन्य हो गयी । जिसमें तुम जैस पुत्र है, वह क्षेत्र और वंश भी धन्य हो गया ॥११२॥ जिसके वंश में पुरुषोत्तम वैष्णव पुत्र उत्पन्न होता है, वह अपने करोड़ों पूर्वजों का उद्धार करके स्वयं भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है॥११३॥ जो नित्य ही भगवान् विष्णु की पूजा करता है, विष्णु का ध्यान करता है, उनका गायन करता है, सदा भगवान् विष्णु के मन्त्र का जप करता है और उनके स्तोत्रों का पाठ करता है ॥११४॥ प्रतिदिन उनकी कृपा प्राप्त करता है एकादशी के दिन उपवास करता है । उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं वह मुक्त हो जाता है; इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥११५॥ जिसके मन में सदा गोविन्द का निवास होता है वही पुरुष श्रेष्ठ अपने पुण्यों के कारण श्रीभगवान् की दासता को प्राप्त करता है ॥११६॥ करोड़ो हजार जन्मों में किए गये पुण्य समूह से तथा पापों के विनष्ट हो जाने से ही भगवान् विष्णु की किंकरता प्राप्त होती है ॥११७॥ वह पुरुष धन्य हो जाता है, वह भगवान् विष्णु के सदृश हो जाता है । बड़े-बड़े देवता उसकी पूजा करते हैं । लोकनाथ, निर्विकार भगवान् अच्युत जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं, वही पुरुषोत्तम है । अनेक प्रकार की तपस्याओं, धर्मों तथा अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा भी ॥११८-११९॥ भगवान् विष्णु की प्राप्ति नहीं हो पाती है, देवता भी उनको नहीं प्राप्त कर पाते हैं और तुम्हें

ऋषय ऊचुः

गृहीत्वा जनकस्याज्ञां लब्ध्वा विष्णोर्वरं महत् ॥१२१॥
अंबापार्श्वं गतो हृष्टस्तां प्रणम्याग्रतः स्थितः ।

विनतोवाच

अभवद्भोजनं तेऽद्य पुत्र दृष्टः पितापि च ॥१२२॥
किमर्थं वा विलंबस्ते चिंतया व्यथिताह्यहम् ।

ऋषय ऊचुः

स मातुर्वचनं श्रुत्वा गरुडः प्रहसन्निव ॥१२३॥
कथयामास वृत्तांतं सा श्रुत्वा विस्मिताभवत् ।

विनतोवाच

कथंच दुःष्करं कर्मशिशुभावात्त्वया कृतम् ॥१२४॥
धन्याहं मे कुलं धन्यं यस्त्वं विष्णुसखोऽभवः। लब्ध्वा वरं महात्मानं दृष्ट्वा मे हृष्यते मनः ॥१२५॥
पौरुषेण त्वया वत्स उद्धृतं मे कुलद्वयम् ।

सुपर्ण उवाच

मातः किं ते करिष्यामि प्रियमेव तदुच्यताम् ॥१२६॥
कार्यं कृत्वाथ यास्यामि पार्श्वं नारायणस्य च ।

ऋषय ऊचुः

एतच्छ्रुत्वा तु सा प्राह गरुडं विनता सती ॥१२७॥
महद्दुःखं च मे चास्ति कुरु तात प्रतिक्रियाम्। भगिनी मे सपत्नी सा पणिताहं तया पुरा ॥१२८॥
तस्या दास्यमहं प्राप्ता कस्तारयति मामितः । कृष्णं कृत्वाविषैरश्वं तस्याः पुत्रै र्महोरगैः ॥१२९॥

तो वे विशेष रूप से प्राप्त हैं। तुम अपनी माता को उनकी सौत के घोर कष्ट से मुक्त करो ॥१२०॥ अपनी माता को प्रसन्न करके तुम भगवान् विष्णु के पास जाना। **ऋषियों ने कहा**— अपने पिता की आज्ञा प्राप्त करके तथा भगवान् विष्णु से वरदान प्राप्त करके ॥१२१॥ गरुड प्रसन्नता पूर्वक अपनी माता के पास गये और उनको प्रणाम करके खड़े हो गये। **विनता ने कहा**— पुत्र ! क्या तुम्हारा भोजन हुआ ? क्या तुम्हारे पिता प्रसन्न हैं ?॥१२२॥ तुम्हारे आने में विलम्ब कैसे हुआ ? इसी चिन्ता से मैं दुःखी थी **ऋषियों ने कहा**— अपनी माता की बातों को सुनकर गरुड हँसते हुए ॥१२३॥ सारा वृत्तान्त सुनाये, उसको सुनकर विनता आश्चर्यित हो गयीं। **विनता ने कहा**— तुम अभी बच्चे हो इस दुष्कर कार्य को तुमने कैसे किया ?॥१२४॥ मैं धन्य हूँ, मेरा वंश धन्य है, क्योंकि तुम भगवान् विष्णु के सखा हो गये। तुमने वरदान प्राप्त किया है, तुम महापुरुष हो, तुम्हें देखकर मेरा मन प्रसन्न हो रहा है ॥१२५॥ हे वत्स ! तुमने अपने पौरुष से मेरे दोनों वंशों का उद्धार कर दिया। **सुपर्ण ने कहा**— माँ ! मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ ? यह बतलाओ ॥१२६॥ तुम्हारा कार्य पूरा करके मैं भगवान् नारायण के पास जाऊँगा **ऋषियों ने कहा**— इस बात को सुनकर सती विनता ने गरुड से कहा ॥१२७॥ हे तात ! मुझको बहुत बड़ा दुःख है, उससे मेरा उद्धार करो। मेरी बहन मेरी सौत है। उसने मुझसे शर्त लगाया ॥१२८॥ मैं उसकी दासी बन गयी, उससे मेरा उद्धार कौन करा सकता है ? अपने पुत्र बड़े-बड़े सर्पों के द्वारा सूर्य के घोड़ों को उसने

उष:कालेऽवदत्सा च अश्वोयं कृष्णतां व्रजेत् । ततोऽहमवदं तत्र सदा चायं रुचासित: ॥१३०॥
मिथ्या ते वचनं मात: प्रतिज्ञां साकरोत्तदा । ततोहमब्रुवं कद्रूं शपथं नागमातरम्॥१३१॥
यदीमं कृष्णताभ्येति हरेरश्वमहं तदा। कृता भवामि ते दासीत्यहमेतत्तदाऽवदम् ॥१३२॥
ततस्तस्मिन् हरेरश्वे कृतेकृष्णे च कृत्रिमै: । तस्या: पुत्रैश्च धूर्तैश्च दासीत्वमगमं तदा ॥१३३॥
यस्मिन्कालेह्यभीष्टञ्च तस्य द्रव्यं ददाम्यहम्। तस्मिन्काले ह्यदासीत्वं यास्यामि कुलनंदन ॥१३४॥

गरुड उवाच

पृच्छ शीघ्रं च मातस्तां करिष्यामि प्रतिक्रियाम्। भक्षयिष्यामि तान्नागान्प्रतिज्ञा मे यथार्थत: ॥१३५॥

ऋषय ऊचु:

तत: कद्रुमुवाचेदं विनतादु:खिता सती ।

विनतोवाच

अभीष्टं वदकल्याणि येन मुच्येय कृच्छ्रत: ॥१३६॥

ऋषय ऊचु:

अब्रवीत्सा दुराचारा पीयूषं दीयतामिति । एतच्छ्रुत्वा तु वचनमभवत्सा च निष्प्रभा ॥१३७॥
तत: शनैरुपागम्य तनयं प्राह दु:खिता ।

विनतोवाच

अमृतं प्रार्थयत्पापा तात किं वा करिष्यसि ॥१३८॥

ऋषय ऊचु:

श्रुत्वा वाक्यं गरुत्मांश्च महाक्रोधसमन्वित:। अमृतं चानयिष्यामि मातर्माविमुखी भव ॥१३९॥

ऋषय ऊचु:

एवमुक्त्वा तु तरसा स गत: पितुरंतिकम् ।

काला बना दिया । प्रात:काल उसने कहा यह अश्व काला हो गया । यह अश्व तो सदैव धवल कान्ति वाला रहता है ॥१२९-१३०॥ उसने प्रतिज्ञा की कि तुम्हारी बात झूठी है । तब मैंने क्रुद्ध होकर क्रदु से शपथ करके कहा॥१३१॥ यदि यह सूर्य का घोड़ा काला हो जाय तो मैं तुम्हारी दासी बन जाऊँगी ॥१३२॥ उसके बाद उसके पुत्रों द्वारा अश्व जब कृत्रिम रूप से काला हो गया तो मैं कद्रू की दसी बन गयी ॥१३३॥ उसको जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसी समय यदि मैं उसको वह वस्तु लाकर दे देती हूँ तो मैं उसके दासित्व से मुक्त हो जाऊँगी॥१३४॥ **गरुड ने कहा**— माँ ! उससे तुम पूछो मैं उस कार्य को करूँगा । मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उन नागों को खा जाऊँगा ॥१३५॥ **ऋषियों ने कहा**— उसके बाद दु:खिनी विनता क्रदू से बोली **विनता ने कहा**— हे कल्याणि ! तुम अपना अभीष्ट बतलाओ जिससे मैं इस कष्ट से छुटकारा पाऊँ ॥१३६॥ उस दुष्टा ने कहा कि मुझे अमृत लाकर दो । **ऋषियों ने कहा**— इस बात को सुनकर विनता उदास हो गयी ॥१३७॥ वह धीरे से अपने पुत्र के पास आकर बोली **विनता ने कहा**— पुत्र ! वह अमृत माँगती है, तुम क्या कर सकते हो?॥१३८॥ **ऋषियों ने कहा**— उस बात को सुनकर गरुड अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहे, माँ मैं अमृत लाऊँगा, तुम दु:खी मत होओ ॥१३९॥ **ऋषियों ने कहा**— यह कहकर गरुड वेगपूर्वक अपने पिता के पास गये **गरुड़ ने कहा**— हे पित: ! अपनी माता के लिए मैं अमृत लाऊँगा ॥१४०॥ **ऋषियों ने कहा**— गरुड़ की वाणी को

गरुड उवाच

अमृतं चानयिष्यामि मातुरर्थेऽधुनाऽनघ ॥१४०॥
स तस्य वचनं श्रुत्वा मुनिः प्राह खगेश्वरम् । सत्यलोकस्य वै चोर्ध्वे विश्वकर्मविनिर्मिता॥१४१॥
पुरी चास्ति सभा रम्या देवानां हितहेतवे। वह्निप्राकारदुर्लभ्या दुर्धर्षाचासुरैः सुरैः ॥१४२॥
रक्षार्थं निर्मितो देवः सुरैस्तत्र महाबलः। यं यं पश्यति वीरः स स एवभस्मतां व्रजेत्॥१४३॥

सुपर्ण उवाच

नारायणाद्वरो लब्धो मया च मुनिसत्तम। भयं नास्तीह मे तात सुरासुरगणादपि॥१४४॥
एवमुक्त्वा गरुत्मान्स उद्धृत्यसागराज्जलम् । जगामाकाशमाविश्य खगश्चोर्ध्वं मनोजवः ॥१४५॥
पक्षवातेन तस्यैव रजः समुद्गतंबहु । तस्यांतिकं न च त्यक्तमगमत्तस्य तच्चयः॥१४६॥
गत्वा चंचू जलेनापि वह्निंनिर्वापयद्बली । रजोभिः परिपूर्णाक्षो न सुरस्तं च पश्यति॥१४७॥
जघान रक्षिवर्गांस्तानमृतं चाहरद्बली । आनयंतं च पीयूषं खगं गत्वा शतक्रतुः॥१४८॥
ऐरावतं समारूढो वाक्यमेतदुवाच ह ।

इन्द्र उवाच

खगरूपधरः कस्त्वं पीयूषं हरसे बलात् ॥१४९॥
अप्रियं सर्वदेवानां कृत्वा जीवे रतिःकथम् । विशिखैरग्निसंकाशैर्नयामि यम मंदिरम् ॥१५०॥
श्रुत्वा वाक्यं हरेः कोपादुवाच स महाबलः ।

गरुड उवाच

नयामि तव पीयूषं दर्शयस्व पराक्रमम् ॥१५१॥

ऋषि उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहु र्जघानविशिखैः शितैः । यथामेरुगिरिः शृंगं तोयवर्षेण तोयदः ॥१५२॥

सुनकर मुनि ने गरुड से कहा— सत्यलोक के ऊपर विश्वकर्मा ने देवताओं का कल्याण करने के लिए एक नगरी का निर्माण किया है । उसमें मनोहर सभा है । उसके चारो ओर अग्नि की चाहारदिवारी है । उसमें देवता और असुर कोई प्रवेश नहीं कर सकता है ॥१४१-१४२॥ वहाँ पर रक्षा करने वाला देवता महाबलवान् है, वह जिसको-जिसको देखता है वह-वह भस्म हो जाता है ॥१४३॥ **सुपर्ण ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ मैंने भगवान् नारायण से वरदान प्राप्त किया है । अतएव मुझे किसी देवता अथवा असुर से काई भय नहीं है ॥१४४॥ इसतरह से कहकर गरुड सागर से जल निकाल कर मन के समान वेग पूर्वक ऊपर आकाश में चले गये ॥१४५॥ उनके पङ्ख की वायु से बहुत अधिक धूलि उड़ी और गरुड़ के साथ ही धूलि समूह भी गया ॥१४६॥ वहाँ जाकर उन्होंने अपनी चोंच के जल से अग्नि को बुझा दिया धूलि से परपूर्ण पंख वाले गरुड को वह रक्षक देवता नहीं देख सका ॥१४७॥ उन्होंने रक्षको को मार दिया और अमृत का हरण कर लिया । अमृत लाने वाले गरुड के पास इन्द्र गये ॥१४८॥ वे ऐरावत पर बैठे थे और बोले **इन्द्र ने कहा—** तुम पक्षी रूपधारी कौन हो कि अमृत का बलपूर्वक हरण कर रहे हो ॥१४९॥ सभी देवताओं का अप्रिय कार्य करके तुम कैसे जीवित रह सकते हो ? तुमको अग्नि के सदृश बाणों से यमलोक भेज रहा हूँ ॥१५०॥ **ऋषियों ने कहा—** इन्द्र की बात को सुनकर महाबलवान् गरुड ने कहा **गरुड ने कहा—** मैं तुम्हारे अमृत को ले जा रहा हूँ तुम अपना पराक्रम दिखाओ ॥१५१॥ **ऋषियों ने कहा—** इसबात को सुनकर इन्द्र ने

नखैरशनिसंकाशैर्बिभेद गरुडो गजम् । मातलिं च रथं चक्रं तथादेवान्पुरस्सरान् ॥१५३॥
व्यथितो सौ महाबाहुर्मातलिर्गजपुंगवः । विमुखाः पक्षवातेन सर्वे देवगणास्तदा ॥१५४॥
ततस्तु कोपितो जिष्णुर्जघान कुलिशेन तम् । कुलिशस्यावपातेन न च क्षुब्धो महाखगः ॥१५५॥
स्वं मोघं भिदुरं दृष्ट्वा हरिर्भीतो भवत्तदा । संनिवृत्य ततो युद्धात्तत्रैवांतरधीयत ॥१५६॥
सुतरामपि गच्छंतं वेगाद्भूतलमागतः । अब्रवीत्ससुरश्रेष्ठः सर्वदेवगणाग्रतः ॥१५७॥

शक्र उवाच

यदि दास्यसि पीयूषमिदानीं नागमातरि । भुजगाश्चामराः सर्वे क्रियन्ते हि ध्रुवं तया॥१५८॥
प्रतिज्ञा ते भवेन्नष्टा न फलं जीवितस्य ते । तस्मादिदं हरिष्यामि संमतेन तवानघ ॥१५९॥

गरुत्मानुवाच

यस्मिन्कालेह्यदासी सा माता मे दुःखिता सती। विदिता सर्वलोकेषु हरेऽमृतं हरिष्यसि॥१६०॥

ऋषय ऊचुः

एवमुक्त्वा महावीर्यो गत्वोवाच प्रसूं तदा ।

गरुड उवाच

आनीतममृतं मातस्तस्या एव प्रदीयताम् ॥१६१॥
प्रोत्फुल्लहृदया सा च दृष्ट्वा पुत्रं सहामृतम्। तामाहूयामृतं दत्वा चादासीतां तदागता ॥१६२॥
तृणकाष्ठानि भूतानि पशवश्च सरीसृपाः। हृष्ट्वा सविस्मयास्सर्वे देवामहर्षयस्तदा ॥१६३॥
मोचयित्वा तु तामंबां गरुडः सुष्ठुतां गतः । एतस्मिन्नंतरे शक्रो जहारसहसा सुधाम् ॥१६४॥
निधाय गरलं तत्र तया चानुपलक्षितः । प्रहृष्टहृदया कद्रूः पुत्रानाहूय संभ्रमात्॥१६५॥

तीक्ष्ण बाणों का प्रहार किया । जैसे सुमेरु पर्वत के शिखर पर मेघ वर्षा कर रहा हो ॥१५२॥ गरुड ने भी अपने वज्र तुल्य नखों से हाथी को छेद दिया । मातलि, रथ, चक्र, तथा जो देवता सामने आये उन सबों को उन्होंने छेद दिया॥१५३॥ हाथी और महाबाहु मातलि दोनो घायल हो गये । पंख की वायु के कारण सभी देवतागण पराङ्मुख हो गये ॥१५४॥ उसके बाद क्रोध करके इन्द्र ने वज्र से गरुड पर प्रहार किया । किन्तु महाखग वज्र के प्रहार से क्षुब्ध नहीं हुए ॥१५५॥ अपने वज्र को व्यर्थ होते देखकर इन्द्र डर गये । वे युद्ध करना बन्द करके अन्तर्धान हो गये॥१५६॥ अत्यन्त वेग से जाते हुए गरुड के साथ वे वेग से पृथिवी पर आये । सभी देवताओं के आगे आकर देवश्रेष्ठ इन्द्र ने कहा ॥१५७॥ **शक्र ने कहा—** यदि तुम नागमाता को पीयूष (अमृत) दे दोगे तो वह सभी सर्पों को अमर बना देगी ॥१५८॥ तुम्हारी सर्पों को खाने की प्रतिज्ञा नष्ट हो जायेगी अतएव तुम्हारे जीवन का कोई फल नहीं होगा । अतएव हे अनघ ! तुम्हारी सम्मति से मैं इस अमृत का हरण कर लूँगा ॥१५९॥ **गरुड ने कहा—** इन्द्र जिस समय मेरे दुःखिता माता दासित्वरहित रूप से लोकों में ज्ञात हो जाय उस समय तुम अमृत का हरण कर लो ॥१६०॥ **ऋषियों ने कहा—** इसतरह से कहकर महाबलवान् गरुड ने अपनी माता से कहा माँ मैंने अमृत ला दिया; इसे तुम उसको (क्रदू को) दे दो ॥१६१॥ अमृत के साथ आये हुए पुत्र को प्रसन्न हृदय से देखकर विनता ने क्रदू को बुलाकर उसे अमृत दे दिया और दासित्व से मुक्त हो गयी ॥१६२॥ इस घटना को देखकर तृण, काष्ठ, सभी जीव, पशु, सर्प तथा महर्षिगण सभी आश्चर्यित हो गये ॥१६३॥ अपनी माता को दासित्व से मुक्त कराकर गरुड प्रसन्न हो गये । इसी बीच में इन्द्र, अमृत के स्थान पर विष को रखकर अमृत का अपहरण कर लिए ।

तेषां मुखे ददौ हृष्टा क्ष्वेडं चांमृतलक्षणम् । तानुवाच प्रसूः पुत्रान्युष्माकं च कुले सदा॥१६६॥
मुखेतिष्ठन्त्वमीदैवा बिंदव स्तेननिर्वृताः। महर्षयस्ततो देवाः सिद्धगंधर्वमानुषाः ॥१६७॥
ऊचुःस्सन्तु कुले मातरस्माकं च प्रसादतः। नागैर्विसर्जिता देवाः ससिद्धा गुनयस्तथा ॥१६८॥
जग्मुः स्वमालयं हृष्टा नागाः प्रमुदिताः स्थिताः। एतस्मिंनंतरे नागां श्रखाद गरुडो बलात् ॥१६९॥
दिक्षु पलायिताः शेषाः पर्वतेषु वनेषु च। सागरेषु च पाताले बिलेषु तरुकोटरे ॥१७०॥
निभृतेषु निकुञ्जेषु स्थिताः सर्पाश्च निर्वृताः । भुजगास्तस्य भक्ष्याश्च सदैवविधिनिर्मिताः ॥१७१॥
स खादयित्वा नागांश्च संभाष्य पितरावथ। विबुधान्पूजयित्वा तु जगामहरिमव्ययम् ॥१७२॥
यःपठेच्छ्णुयाद्वापि सुपर्णचरितं शुभम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सुरलोके महीयते॥१७३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गरुडोत्पत्तिर्नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोध्याय: ॥४७॥

अड़तालिसवाँ अध्याय

ब्रह्मोवाच

अतः परं तु विप्रर्षे चांडालपतितोद्विजः। प्रलप्य च बहून् शोकान् जगाम कश्यपं मुनिम्॥१॥

इस बात को कद्रू भी नहीं जान सकी । प्रसन्न होकर कद्रू ने अपने पुत्रों को बुलाकर ॥१६४-१६५॥ उसने सवों के मुख में विष को अमृत समझकर डाल दिया । उन सबों को कद्रू ने कहा तुमलोगों के कुल में ये दैव विन्दु सर्वदा निवास करे उससे महर्षिगण, सिद्ध तथा गन्धर्वगण एवं मनुष्य प्रसन्न हो गये ॥१६६-१६७॥ सर्पों ने कहा माँ तुम्हारी कृपा से यह हमारे वंश में सदा बना रहे । नागों ने सिद्धों, महर्षियों तथा देवताओं को विदा किया ॥१६८॥ सबके सब प्रसन्न होकर अपने घर चले गये और नाग प्रसन्नता पूर्वक वहाँ बने रहे । उसी समय गरुड ने बल पूर्वक नागों को खा लिया ॥१६९॥ जो बच गये थे वे दिशाओं, वनों तथा पर्वतों में, सागर में, पाताल में, विलों में, पेड़ों के कोटरों में भागकर चले गये ॥१७०॥ सुनसान निकुञ्जों में सर्प शान्ति पूर्वक रहने लगे । ब्रह्माजी ने सर्पों को गरुड़ का सदा के लिए भक्ष्य बना दिया ॥१७१॥ गरुड नागों को खाकर तथा अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर, देवताओं की पूजा करके अव्यय श्रीभगवान् के पास चले गये ॥१७२॥ जो व्यक्ति इस गरुड के चरित को पढ़ता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर देवलोक में पूजित होता है ॥१७३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के गरुडोत्पत्ति नामक सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४७।।

महर्षि कश्यप के उपदेश से चाण्डाल पतित ब्राह्मण को सदाचार पालन करने से स्वर्ग की प्राप्ति, ब्राह्मण को पीडित करने से अनेक प्रकार के दुःखों की प्राप्ति का वर्णन, ब्राह्मणों की उपजीव्यवृत्ति का वर्णन, सत्य की प्रशंसा, गौ का माहात्म्य तथा कपिला गौ के दान इत्यादि की विधि

ब्रह्माजी ने कहा— उसके प्रश्चात् चाण्डालों के बीच में पड़कर वह ब्राह्मण विप्रर्षि कश्यप के समक्ष अनेक प्रकार से अपने अनेक दोषों का वर्णन करके महर्षि कश्यप की शरणागति किया ॥१॥ उन मुनिश्रेष्ठ के सन्निकट में

गत्वोवाच मुनिश्रेष्ठ वदास्माकं हितं वचः । याथापापाद्विमुच्येहं मुनिश्रेष्ठ तथा कुरु ॥२॥
तमुवाच महातेजा ईषद्धास्यः समंततः ।

कश्यप उवाच

संदर्शनाच्च म्लेछानामुपशांतोसि वै स्वयम् ॥३॥
गायत्र्याश्च जपैर्होमैर्व्रतै श्चांद्रायणादिभिः । स्मर नित्यं हरेः पादमुपोष्य हरिवासरम् ॥४॥
अहर्निशं हरेर्ध्यानं प्रणामं कुरु तं प्रभुम् । तीर्थस्नानेन मंत्रेण पङ्कस्यांतं गमिष्यसि ॥५॥
ततः पापक्षयादेव ब्राह्मणत्वं च लप्स्यसे । व्रतैर्वृषाधिकैर्मोक्षं नाशयन्कल्मषं द्विज ॥६॥
मुनेस्तस्य वचः श्रुत्वा कृतकृत्यो भवत्तदा । पुण्यं स विविधं कृत्वा पुनर्ब्रह्मत्वमाप्तवान् ॥७॥
ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं स्वर्लोकं चिरमभ्यगात् । सद्वृत्तस्याखिलं पापं क्षयं याति दिने दिने॥८॥
असद्वृत्तस्य पुण्यं हि क्षयं यात्यंजनोपमम् । अनाचाराद्धतो विप्र आचारात्सुरतां व्रजेत् ॥९॥
ततः कंठगतैः प्राणैराचारं कुरुते द्विजः । कर्मणा मनसांगेन सदाचारं सदा कुरु ॥१०॥
कश्यपस्योपदेशेन सविनीतोऽभवद्द्विजः । आचारं तु पुनः कृत्वा तपस्तप्त्वा दिवं गतः॥११॥
अनाचारी हतो विप्रः स्वर्गलोकेषु गर्हितः । आचारं तु पुनः कृत्वा सुरलोके महीयते॥१२॥

नारद उवाच

प्राप्नुवंति गतिं लोकाः पूजयित्वा द्विजोत्तमान् । द्विजानां पीडनं कृत्वा गतिं गछन्ति कां प्रभो ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

क्षुधासंतप्तदेहानां ब्राह्मणानां महात्मनाम् । नार्चयेच्छक्तितोभक्त्या स याति नरकं नरः ॥१४॥

जाकर उसने निवेदन किया कि आप हमारे कल्याण का उपदेश करें । हे मुने जिसतरह से मैं पापों से मुक्ति प्राप्त कर सकूँ आप वैसा ही उपाय करें ॥२॥ **ऋषियों ने कहा—** मन्दमुस्कान करते हुए महातेजस्वी महर्षि कश्यप ने उससे कहा **कश्यप महर्षि ने कहा—** तुम स्वयं ही म्लेच्छों को देखकर उपशान्त हो गये हो ॥३॥ तुम गायत्री का जप, होम, चान्द्रायण इत्यादि व्रतों को करो । एकादशी के दिन उपवास करो श्रीहरि के चरणों का सदा स्मरण करो ॥४॥ रात-दिन श्रीभगवान् का ध्यान करो और उनको प्रणाम करो । तीर्थों में जाकर स्नान करने से तुम्हारे पापों का अन्त हो जायेगा ॥५॥ उसके बाद पापों के विनष्ट हो जाने से तुम ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लोगे । अधिक धार्मिक व्रतों के द्वारा हे ब्राह्मण ! अपने पापों का नाश करो ॥६॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** मुनि के वचन को सुनकर वह ब्राह्मण कृतकृत्य हो गया । अनेक प्रकार के पुण्यों को करके उसने ब्रह्मत्व प्राप्त कर लिया ॥७॥ उसके बाद तीव्र तपस्या करके उसने स्वर्ग लोक को प्राप्त कर लिया । सद्वृत्त ब्राह्मण के सारे पाप प्रतिदिन विनष्ट होते रहते हैं ॥८॥ सदाचार का पालन नहीं करने वाले के प्रतिदिन पुण्य विनष्ट होते जाते है अनाचार से ब्राह्मण का विनाश हो जाता है और सदाचार का पालन करने से उसको देवत्व की प्राप्ति हो जाती है ॥९॥ इसीलिए मरणासन्न भी ब्राह्मण आचार का पालन करते हैं । तुम मन, कर्म तथा वाणी से सदैव सदाचार का पालन करो ॥१०॥ महर्षि कश्यप के उपदेश से वह ब्राह्मण विनीत हो गया । उसके बाद सदाचार का पालन करके तथा तपस्या करके वह स्वर्ग लोक चला गया॥११॥ अनाचार के द्वारा मारा गया ब्राह्मण स्वर्गलोक में निंदित होता है, उसके बाद सदाचार का पालन करके वह स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥१२॥ **नारदजी ने कहा—** श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा करके मनुष्य सद्गति को प्राप्त करते है किन्तु ब्राह्मणों को पीडित करने वालों की कौन सी गति होती है ?॥१३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** जो मनुष्य

परुषेण क्रोशयित्वा क्रोधाद्यस्तु विसर्जयेत् । स याति नरकं घोरं महारौवकृष्छ्रकम् ॥१५॥
सन्निवृत्तस्ततः कीटाद्यन्त्यजातिषु जायते । ततो रोगी दरिद्रस्तु क्षुधया परिपीडितः॥१६॥
नावमन्येत्ततोविप्रं क्षुधया गृहमागतम् । न ददामीति यो ब्रूयाद्देवाग्निब्राह्मणेषु सः ॥१७॥
तिर्यग्योनिशतं गत्वा चाडाल्यमुपगच्छति । पादमुद्यम्य यो विप्रं हंति गां पितरौ गुरुम्॥१८॥
रौरवे नियतोवासस्तस्य नास्तीह निष्कृतिः । यदिपुण्याद्भवेज्जन्म स एवं पंगुतां व्रजेत् ॥१९॥
अतिदीनो विषादी च दुःखशोकाभिपीडितः । एवं जन्मत्रयं प्राप्य भवेत्तस्य च निष्कृतिः ॥२०॥
मुष्टिचपेटकीलैश्च हन्याद्विप्रं तु यः पुमान् । तापने रौरवे घोरे कल्पांतं सोपि तिष्ठति॥२१॥
अथ जन्मसमासाद्य कुक्कुरः क्रूर चंडकः । अंत्यजातिषु जातोपि दरिद्रः कुक्षिशूलवान्॥२२॥
पादमुद्यच्छते वा यस्तस्य पादे शिलीपदः । खंजो वा मंदजंघो वा खंण्डपादो भवेन्नरः॥२३॥
पक्षवातेन चांगानि प्रकंपंते सदैव हि । मातरं पितरं विप्रं स्नातकं च तपस्विनम्॥२४॥
हत्वा गुरुगणं क्रोधात्कुंभीपाके चिरंभवेत् । उषित्वा चैव जायेत कीटजातिषु तत्परम् ॥२५॥
विरुद्धं परुषं वाक्यं यो वदेद्धि द्विजातिषु । अष्टौ कुष्टाः प्रजायंते तस्य देहे दृढं सुत ॥२६॥
विचर्चिकाथ दद्रूश्च मंडलः शुक्तिसिध्मकौ । कालकुष्ठस्तथाशुक्लस्तरुणश्चातिदारुणः ॥२७॥
ततोभिषक् प्रयोगे च पापात्पुण्यं पलायते । अपुण्याज्जलरेखेव तेनैव निधनं व्रजेत् ॥२८॥

भूख से व्याकुल महापुरुष ब्राह्मणों की पूजा भक्तिपूर्वक तथा श्रद्धा पूर्वक नहीं करता है, वह नरक में जाता है ॥१४॥ जो व्यक्ति कठोर वाणी से डाँटकर क्रोध आदि करके ब्राह्मणों को भगा देता है, वह भयङ्कर रौरव नरक में जाता है॥१५॥ उन नरकों से निकल कर वह कीडा आदि होता है, फिर शूद्र योनि में जन्म लेता है । उसके बाद वह रोगी और दरिद्र होता है, भूख से पीडित होता है ॥१६॥ अतएव घर आये हुए भूखे ब्राह्मण का कभी अपमान नहीं करना चाहिए । जो देवता, अग्नि तथा ब्राह्मणों को देने से इनकार कर देता है वह ॥१७॥ सैकड़ों पशुपक्षियों की योनि में जन्म लेकर चाण्डाल योनि में जन्म लेता है । जो व्यक्ति अपना पैर उठाकर ब्राह्मण, गौ, माता-पिता तथा गुरु को मारता है ॥१८॥ उसका रौरव नरक में निरन्तर निवास होता है उसका कभी उद्धार नहीं होता है । यदि किसी पूर्व पुण्य के कारण उसका मनुष्यों की योनि में जन्म भी होता है तो वह लंगड़ा होता है ॥१९॥ वह अत्यन्त दीन, विषाद करने वाला तथा दुःख एवं शोक से पीडित होता है । इस तरह से तीन जन्मों के बाद उसका प्रायश्चित हो जाता है ॥२०॥ जो ब्राह्मण को मुक्के से, थप्पड से, कील ठोक कर मारता है, वह एक कल्प पर्यन्त भयङ्कर संतप्त रौरव नरक में निवास करता है ॥२१॥ उसके बाद जन्म पाकर वह कुत्ता होता है, क्रूर चाण्डाल होता है, शूद्र योनि में जन्म पाता है, तो उसके पेट में सदा शूल होता रहता है ॥२२॥ जो ब्राह्मणों को पैर उठाकर दिखाता है उसके पैर में शोथ रोग होता है । वह या तो लंगड़ा होता है अथवा कमजोर जंघों वाला होता है, अथवा उसका पैर कट जाता है ॥२३॥ पक्षाघात रोग से उसके पाप से उसके अङ्ग काँपने लगते हैं । माता, पिता, ब्राह्मण, स्नातक तथा तपस्वी ॥२४॥ को मारकर गुरुजनों के क्रोध के कारण दीर्घ काल तक कुम्भीपाक नामक नरक में जाता है । उस नरक में रहने के बाद वह कीडा होता है ॥२५॥ जो ब्राह्मणों के विरुद्ध बोलता है, कठोर वाणी बोलता है, उसके शरीर में निश्चित रूप से आठो प्रकार के कुष्ठ (कोढ) होते हैं ॥२६॥ विचर्चिका, दाद, मण्डल, शुक्तिका, सिध्मक (सिहुला) कालकुष्ठ, शुक्लकुष्ठ (श्वित्र) तथा भयङ्कर तरुणकुष्ठ ये आठ प्रकार के कुष्ठ (कोढ) हैं ॥२७॥ उसके बाद दवा के प्रयोग के द्वारा पाप के कारण पुण्य भाग जाता है । पाप के ही कारण जल की रेखा के समान कुष्ठ होता है और

एषां मध्ये महाकुष्ठास्त्रय एव प्रकीर्तिताः । कालकुष्ठस्तथाशुक्लस्तरुणश्चातिदारुणः ॥२९॥
महापातकभावानां ज्ञानात्संसर्गतोपि वा । अतिपातकिनामेव त्रयो देहे भवंति वै ॥३०॥
संसर्गात्सहसंबंधाद्रोगः संचरते नृणाम् । दूरात्परित्यजेद्धीरः स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्॥३१॥
पतितं कुष्ठसंयुक्तं चांडालं च गवाशिनम् । श्वानं रजस्वलां भिल्लं स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ॥३२॥
दुरितस्यानुरूपेण देहे कुष्ठा व्यवस्थिताः । इह लोके परत्रैवाप्यत्र नास्ति तु संशयः ॥३३॥
न्यायेनोपार्जितां वृत्तिं ब्रह्मस्वं हरते तु यः । अक्षयं नरकं प्राप्य पुनर्जन्म न विद्यते॥३४॥
पिशुनो यस्तु विप्राणां रंध्रान्वेषणतत्परः । तं दृष्ट्वाप्यथवास्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥३५॥
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । विक्रमेण तु भुंजानो दशपूर्वान्दशापरान् ॥३६॥
नविषं विषमित्याहु र्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । विषमेकाकिनं हंति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥३७॥
मोहाच्च मातरं गत्वा ब्राह्मणीं च गुरोस्त्रियम् । पतित्वा रौरवे घोरे पुनरुत्पत्तिदुर्लभः ॥३८॥
पतंति पितरस्तस्य कुंभीपाकेऽथतापने । अवीचिकालसूत्रे च महारौरवरौरवे ॥३९॥
कदाचिदपि वा तेषां निष्कृतिं नानुमेनिरे । प्राणं हत्वाद्विजातीनां स्वयं यात्यपुनर्भवम् ॥४०॥
पतंति पुरुषास्तस्य रौरवे च सहस्रशः ।

नारद उवाच

सर्वेषामेव विप्राणां वधे च पातकं समम् ॥४१॥

उसी से वह मर जाता है ॥२८॥ इन आठ प्रकार के कोढों में तीन ही प्रकार के कोढ महाकोढ हैं । कालकुष्ठ, श्वेतकुष्ठ तथा भयङ्कर तरुणकुष्ठ ॥२९॥ महापातकों के करने अथवा उनके संसर्ग के कारण महापापियों को ही ये तीनों प्रकार के कोढ होते हैं ॥३०॥ संसर्ग के कारण तथा साथ-साथ संबन्ध के कारण रोग का संचरण होता है । अतएव इन सबों को ज्ञानियों को दूर से ही त्याग देना चाहिए अथवा उनका स्पर्श हो जाने पर स्नान करे ॥३१॥ पतित, कोढी, चाण्डाल, गोमांसभक्षी, कुत्ता, रजस्वला और भिल्ल इन सबों का यदि स्पर्श हो जाय तो स्नान करना चाहिए ॥३२॥ जिसका जैसा पाप होता है उसके देह में उसके अनुसार ही इस लोक में अथवा परलोक में कोढ होता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥३३॥ जो मनुष्य ब्राह्मण की न्यायोपार्जित सम्पत्ति का अपहरण करता है, वह अक्षय नरक में चला जाता है, वह कभी जन्म नहीं लेता है ॥३४॥ जो चुगुलखोर व्यक्ति ब्राह्मणों के दोषों को ही खोजता रहता है उसको देखकर उसका यदि स्पर्श भी हो जाय तो वस्त्र को पहने हुए ही स्नान कर लेना चाहिए॥३५॥ प्रेम पूर्वक भी यदि कोई ब्राह्मण की सम्पत्ति को खाता है तो वह उसकी सात पीढी का विनाश कर देता है । यदि कोई बल का प्रयोग करके ब्रह्मस्व को खा लेता है तो वह उसके दश पीढी पहले के तथा दश पीढी बाद का भी विनाश कर देता है ॥३६॥ विष को विष नहीं कहा गया है । ब्रह्मस्व ही विष है, विष तो केवल विष खाने वाले को मारता है और ब्रह्मस्व तो खाने वाले के पुत्रों तथा पौत्रों को भी विनष्ट कर देता है ॥३७॥ अज्ञानवशात् माता, ब्राह्मणी या गुरुपत्नी के साथ सहगमन करने वाला घोर रौरव नरक में गिर जाता है, और उसका पुनः जन्म नहीं होता है ॥३८॥ उसके पितृगण कुंभीपाक तथा तापन नरक में गिर पड़ते हैं । वे अवीचि, कालसूत्र महारौरव तथा रौरव नरक में भी चले जाते हैं ॥३९॥ ऋषियों ने उनका कभी भी उद्धार नहीं बतलाया है । द्विजातियों का वध करने वाला स्वयं फिर कभी जन्म नहीं लेता है ॥४०॥ उसके हजारो पूर्वज रौरव नरक में गिर जाते हैं **नारदजी ने कहा** किसी भी ब्राह्मण का वध करने पर एक समान फल होता है क्या ?॥४१॥ अथवा उनमें कोई विषमता होती है उसे आप

विषमां वा कुतस्तिष्ठेत्तत्त्वतो वक्तुमर्हसि।

ब्रह्मोवाच

हत्वा विप्रं ध्रुवं पुत्र पातकं यदुदाहृतम् ॥४२॥
लभते ब्रह्महा घोरं वक्तव्यं चापरं शृणु। लक्षकोटिसहस्राणां ब्राह्मणानां वधं भजेत् ॥४३॥
वेदशास्त्रयुतं हत्वा श्रोत्रियं विजितेंद्रियम् । विप्रं च वैष्णवं हत्वा तस्माद्दशगुणोत्तरम् ॥४४॥
स्ववंशान् पातयित्वा तु पुनर्जन्म न विंदते। त्रिवेदं स्नातकं हत्वा वधस्यांतं न विन्दते ॥४५॥
श्रोत्रियं च सदाचारं तीर्थमंत्रप्रपूतकम्। ईदृशं ब्राह्मणं हन्तुः पापस्यांतो न विद्यते ॥४६॥
अपकारं समुदिश्य द्विजः प्राणान्परित्यजेत् । दृश्यते येन चान्येन ब्रह्महा स भवेन्नरः ॥४७॥
वचोभि परुषैर्वृत्तैः पीडिस्ताडितो द्विजः। यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥४८॥
ऋषयो मुनयो देवाः सर्वे ब्रह्मविदस्तथा। देशानां पार्थिवानां च सा च वध्या भवेदिह ॥४९॥
अतो ब्रह्मवधं प्राप्य पितृभिः सह पच्यते। प्रायोपवेशकं विप्रं बुधः संमानयेद् ध्रुवम् ॥५०॥
दोषैश्चापि विनिर्मुक्तमुद्दिश्य प्राणमुत्सृजेत्। स प्रलिप्तो वधैर्घोरैर्न तु यं परिकीर्तयेत् ॥५१॥
आत्मघातं द्रुमारोहं कोटरै रुपजीवनम्। यः कुर्यादत्मनोघातं स्ववंशे ब्रह्महा भवेत् ॥५२॥
भ्रूणं च घातयेद्यस्तु शिशुं वा आतुरं गुरुम्। ब्रह्महा स्वयमेवस्यान्नतु यं परिकीर्तयेत् ॥५३॥
मारयेच्च सगोत्रं वा ब्राह्मणं ब्राह्मणाधमः। तस्यैव तद्भवेत्पापं न तु यं परिकीर्त्तयेत् ॥५४॥
पीडयित्वा द्विजं शूद्र; स्वकार्यं चापि साधयेत्। तत्रापापे च शूद्रस्य पातकं नान्यथा भवेत् ॥५५॥

बतलाने की कृपा करें **ब्रह्माजी ने कहा**— हे पुत्र ! ब्राह्मण का वध करने वाले को वह पाप अवश्य लगता है जिसे मैंने बतलाया है ॥४२॥ हे पुत्र ! उसके विषय में जो कहना है, वह सुनो। लाख करोड़ हजार ब्राह्मणों के वध का पाप उसको लगता है जो जितेन्द्रिय तथा वेदज्ञ श्रोत्रिय का वध करता है। वैष्णव ब्राह्मण को मारने वाले को उसके दश गुना पाप लगता है ॥४३-४४॥ जो अपने वंश वालों को मारता है उसको पुनः जन्म नहीं मिलता है। जो तीन वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण को मारता है, उसके पापों का कोई अन्त नहीं है ॥४५॥ जो श्रोत्रिय, सदाचारी तथा तीर्थ एवं मन्त्र से पवित्र ब्राह्मण है, इस प्रकार के ब्राह्मण को मारने वाले के पाप का कभी अन्त नहीं होता है ॥४६॥ अपकारो को बतलाकर अपने प्राणों का परित्याग करते हुए ब्राह्मण को जो देखता रहता है, उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥४७॥ कठोर वाणी द्वारा पीडित तथा प्रताडित ब्राह्मण जिसके कारण अपने प्राणों का परित्याग करता है, उसको ब्रह्मघाती कहा गया है ॥४८॥ ऋषियों मुनियों, देवों, सभी ब्रह्मज्ञानी देश और राजा के घातक सभी ब्रह्म हत्यारे हैं॥४९॥ अतएव ब्रह्महत्या करने वाला अपने पितृगणों के साथ नरकगामी होता है। जो ब्राह्मण सभी बातों में बुलाये जाते है, उनका सम्मान करना चाहिए ॥५०॥ दोषों से रहित व्यक्ति को भी दोषी बतलाकर जो अपने प्राणों का परित्याग कर देता है वह मरने वाला ही वधजन्य पाप का भागी होता है, जिसको पापी बतलाया गया है वह नहीं॥५१॥ आत्मघात, पेड़ों पर चढना तथा वृक्षों के कोटरों से जो अपना जीवन चलाता है ऐसा व्यक्ति यदि आत्मघात करता है तो वह अपने वंश में ब्रह्मघाती होता है ॥५२॥ जो व्यक्ति गर्भ या बालक, या आतुर, या गुरुजन का वध करता है वह स्वयं ब्रह्मघाती है, जिसको बतलाये वह नहीं ॥५३॥ जो अधम ब्राह्मण अपने गोत्र के ब्राह्मण को मारता है, तो उसका पाप उसी को लगता है, कहने वालों को नहीं ॥५४॥ यदि कोई पापी शूद्र ब्राह्मण को दुःख देकर अपना कार्य सिद्ध करता है वह निष्पाप शूद्र को ही पाप लगता है, अन्यथा नहीं ॥५५॥ यदि कोई ब्राह्मण

तात्कालिकवधं हत्वा हंतारमाततायिनम् । न च हंता च तत्पापैर्लिप्यते द्विज सत्तम ॥५६॥
आततायिनमायांतमपि वेदांतगं रणे । जिघांसंतं जिघांसेच्च न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥५७॥
अग्निदो गरदश्चैव धनहारी च सुप्तघः । क्षेत्रदारापहारी च षडेते ह्याततायिनः ॥५८॥
खलो राजवधोद्योगी पितॄणां च वधे रतः । अनुयायी नृपो राज्ञश्चत्वारश्चाततायिनः ॥५९॥
तत्क्षणान्न मृतं विप्रं पुनर्हंतुं न युज्यते । पुर्नहत्वा वधं घोरं ज्ञानात्प्राप्नोति निश्चितम् ॥६०॥
लोके विप्रसमो नास्ति पूजनीयो जगद्गुरुः । हत्वा तं यद्भवेत्पापं तत्परं च न विद्यते ॥६१॥
देववत्पूजनीयऽसौ देवासुरगणैर्नरैः । ब्राह्मणस्य समो नास्ति त्रिषु लोकेषु निश्चितम् ॥६२॥

नारद उवाच

कां वृत्तिं समुपाश्रित्यजीवितव्यं द्विजेन हि । अपानेन सुरश्रेष्ठ तत्वतो वक्तुमर्हसि ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

अयाचिता च या भिक्षा प्रशस्ता सा प्रकीर्तिता । उञ्छवृत्तिस्ततो भद्रा सुभद्रा सर्ववृत्तिषु ॥६४॥
यामाश्रित्य मुनिश्रेष्ठा गच्छन्ति ब्रह्मणः पदम् । दक्षिणा यज्ञशेषाणां ग्राह्या यज्ञगतेन हि ॥६५॥
पाठनं याजनं कृत्वा ग्रहीतव्यं धनं द्विजैः । पाठयित्वा पठित्वा च कृत्वा स्वत्ययनं शुभम् ॥६६॥
ब्राह्मणानामिदं जीव्यं शिष्टा वृत्तिः प्रतिग्रहः । शास्त्रोपजीविनो धन्या धन्या वृक्षोपजीविनः ॥६७॥
धन्या वृक्षलता जीव्या वाटीसस्योपजीविनः । अन्नजं तु बधे पापं तस्य दोषोपशांतये ॥६८॥
नव धान्यानि शस्तानि विप्रेभ्यः संप्रदापयेत् । न चेत्प्राणिधे ह्यत्र क्षीयंते चायुषो ध्रुवम् ॥६९॥

श्रेष्ठ किसी आततायी को मारता है, वह न तो मारने वाला होता है और न तो अततायी के मारने का पाप ही लगता है ॥५६॥ युद्ध में आते हुए वेदान्तज्ञ भी आततायी को जो मारना चाहता है उसको मार देना चाहिए । उससे मारने वाले को ब्रह्महत्या का दोष नहीं लगता है ॥५७॥ किसी के घर में आग लगाने वाला, विष देने वाला, किसी का धन चुराने वाला तथा सोये हुए को मारने वाला, दूसरे का खेत हड़पने वाला और दूसरे की पत्नी का अपहरण करने वाला ये छहो आततायी हैं ॥५८॥ दुष्ट, राजा को मारने का प्रयास करने वाला, माता-पिता का वध करने वाला तथा राजा का अनुयायी नृप ये चारो आततायी हैं ॥५९॥ जो ब्राह्मण मारने के तत्क्षण नहीं मरता है, उसको फिर मारना उचित नहीं है, क्योंकि फिर मारने से उसको घोर पाप लगता है ॥६०॥ संसार में ब्राह्मण के समान पूजनीय कोई जगद्गुरु नहीं है । उसको मारने से जो पाप होता है उससे बढकर कोई भी दूसरा पाप नहीं होता है॥६१॥ देवता, असुर तथा मनुष्यों के द्वारा वह देवता के समान पूजनीय होता है । यह निश्चित है कि ब्राह्मण के समान दूसरा कोई भी पूजनीय नहीं है ॥६२॥ **नारदजी ने कहा—** हे सुरश्रेष्ठ ! किस प्रकार की वृत्ति को अपनाकर ब्राह्मण को अपने जीवन का निर्वाह करना चाहिए इसे आप बतलायें ॥६३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** जो भिक्षा बिना माँगे ही मिल जाय वह श्रेष्ठ है । उससे भी श्रेष्ठ है उञ्छ वृत्ति । वह ब्राह्मणों की सभी वृत्तियों में सर्वाधिक कल्याणकारिणी है ॥६४॥ उस वृत्ति को अपनाने वाले ब्राह्मण ब्रह्मलोक में जाते हैं । अथवा ब्राह्मणों को यज्ञ में जाकर यज्ञ के अन्त में दक्षिणा प्राप्त करना चाहिए ॥६५॥ ब्राह्मणों को पढाकर, यज्ञ कराकर भी धन प्राप्त कर लेना चाहिए । पढाकर अथवा पढकर तथा दूसरे का कल्याण करके ॥६६॥ जीविका प्राप्त करना तथा दान से धन प्राप्त करना शिष्ट वृत्ति है । शास्त्र से अपनी जीविका को चलाने वाले तथा वृक्षों के द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले ब्राह्मण धन्य हैं ॥६७॥ वृक्षों तथा लताओं से जीविका चलाने वाले, वाटी तथा खेती से जीविका चलाने वाले ब्राह्मण

तस्माद्दद्यात्सुबहूनि पितृदेवद्विजातिषु । अभावात्क्षत्रिया वृत्तिर्ब्राह्मणैरुपजीव्यते ॥७०॥
न्याययुद्धेष योद्धव्यं चरेद्वीरव्रतं शुभम् । स तया च द्विजो वृत्या यद्धनंलभते नृपात् ॥७१॥
पितृयज्ञादिदानेषु मेध्यं तद्धनमुच्यते । समभ्यसेद्धनुर्विद्यां वेदयुक्तां सदानघः ॥७२॥
शक्तिकुंतगदाखड्गपरिघाणां समंततः । अश्वारोहं गजारोहमैंद्रजालममानकम् ॥७३॥
रथभूमिगतं युद्धं युक्तं सर्वत्र कारयेत् । द्विजदेवध्रुवाणां च स्त्रीणां वृत्तं तपस्विनाम् ॥७४॥
साधुसाध्वीगुरूणां च नृपाणां रक्षणाद् ध्रुवम् । यत्पुण्यं लभ्यते शूरैः कथं तद्ब्रह्मवादिभिः ॥७५॥
सर्वपापक्षयं कृत्वा सोऽक्षयं स्वर्गमश्नुते । सम्मुखे न्याययुद्धे च पतंति ब्राह्मणा रणे ॥७६॥
ते व्रजंति परं स्थानं नगम्यं ब्रह्मवादिनाम् । धर्मयुद्धस्य यद्वृत्तं शृणु पुण्यं यथार्थतः ॥७७॥
संमुखेन प्रयुध्यंते न च गच्छंति कातरम् । न भग्नं पृष्ठतो घ्नंति निःशस्त्रं प्रपलायितम् ॥७८॥
अयुध्यमानं भीरुं च पतितं गतकल्मषम् । असच्छूद्रं स्तुतिप्रीतमाहवे शरणागतम् ॥७९॥
हत्वा च नरकं यांति दुर्वृत्ता जयकांक्षिणः । एषा च क्षत्रिया वृत्तिः सदाचारैस्तु गीयते ॥८०॥
यामाश्रित्य दिवं यान्ति सर्वक्षत्रियकुंजराः । धर्मयुद्धे शुभो मृत्युः संमुखेक्षत्रियस्य च ॥८१॥
अत्र पूतो भवेत्सोपि सर्वपापैः प्रमुच्यते । स तिष्ठेत्स्वर्गलोके च प्रासादेरत्नभूषिते ॥८२॥
जांबूनदमयस्तंभे रत्नभूषितभूतले । इष्टद्रव्यैः सुसंपूर्णे दिव्यवस्त्रोपशोभिते ॥८३॥

धन्य हैं । अन्न के कारण होने वाली हिंसा के पाप की शान्ति के लिए ॥६८॥ नवीन उत्पन्न प्रशस्त अन्न ब्राह्मणों को देना चाहिए । ऐसा नहीं करने पर प्राणियों का वध हो जाने से आयु क्षीण होती है ॥६९॥ अतएव पितरों को, देवताओं को तथा ब्राह्मणों को बहुत अन्न प्रदान करना चाहिए । इन वृत्तियों के अभाव में ब्राह्मणों को क्षत्रियों की वृत्ति अपनानी चाहिए ॥७०॥ उसे न्यायानुकूल युद्ध करना चाहिए तथा वीरव्रत का अचारण करना चाहिए । उस वृत्ति के द्वारा उसे जो राजा से धन मिले ॥७१॥ उससे श्राद्ध आदि तथा दान करे ऐसा करने से वह धन पवित्र कहा गया है । वह वेद से युक्त धनुर्विद्या का अभ्यास करके ॥७२॥ शक्ति, कुन्त (भाला), गदा, खड्ग तथा परिघ के साथ अश्वारोहरण, गजारोहरण, इन्द्रजाल, अमानक, आदि का ॥७३॥ एवं रथ युद्ध, भूमि पर रहकर युद्ध को सर्वत्र करवाये । ब्राह्मण, देवता, स्त्रियों तथा तपस्वियों के वृत्तान्त सज्जनों, साध्वियों, गुरुजनों तथा राजाओं की रक्षा करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसकी प्राप्ति ब्रह्मवादियों को भी नहीं होती है ॥७४-७५॥ सभी पापों को विनष्ट करके वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है । न्याय युद्ध में जो ब्राह्मण सामने गिरते हैं ॥७६॥ वे उस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करते हैं, जिस स्थान को ब्रह्मज्ञानी पुरुष भी नहीं प्राप्त कर पाते हैं । धर्मयुद्ध का जो वास्तविक स्वरूप है उसे सुनो ॥७७॥ जिस युद्ध में योद्धा सामने युद्ध करते हैं, वे कभी कातर नहीं होते हैं । वे गिरे हुए को पीछे से नहीं मारते हैं और न तो शस्त्रहीन तथा पलायन किए हुए को मारते हैं ॥७८॥ युद्ध नहीं करने वाले, डरपोक, गिरे हुए, निष्पाप, असच्छूद्र और स्तुति करके प्रसन्न हुए तथा शरणागत को युद्ध में मारने वाला नरकगामी होता है, क्योंकि ऐसे लोग गलत ढंग से विजय प्राप्त करना चाहने वाले होते हैं । सदाचारियों ने इसी को क्षत्रियों की वृत्ति वतलाया है ॥७९-८०॥ इस क्षत्रिया वृत्ति को अपनाकर सभी क्षत्रिय वीर स्वर्गलोक में जाते हैं । क्षत्रिय की धर्मयुद्ध में सामने मृत्यु शुभ होती है ॥८१॥ इस युद्ध में वह पवित्र हो जाता है और सभी पापों से मुक्त हो जाता है । वह स्वर्गलोक में रत्न जटित महल में निवास करता है ॥८२॥ उस प्रासाद के स्तम्भ रत्नमय तथा फर्श रत्न भूषित होते है । वह प्रासाद सभी अभिप्रेत वस्तुओं से भरा रहता है तथा दिव्य वस्त्रों से सुशोभित होता है ॥८३॥ उसके सामने सब कुछ

पुरतः कल्पवृक्षाश्च तिष्ठंति सर्वदायिनः । वापीकूपतटाकाद्यै रुद्यानैरुपशोभिते ॥८४॥
यौवनाढ्याश्च सेवंते तं देवपुरकन्यकाः । तस्याग्रतो मुदा नित्यं नृत्यंत्यप्सरसांगणाः ॥८५॥
गीतं गायंति गंधर्वा देवाश्च स्तुतिपाठकाः । एवं क्रमेण कल्पांते सार्वभौमो भवेन्नृपः ॥८६॥
सर्वभोगैककर्ता च नीरुङ्मन्मथविग्रहः । तस्यपत्न्यः प्ररूपाढ्याः सदैव यौवनान्विताः ॥८७॥
धर्मशीलाः सुताः शुभ्राः समृद्धाः पितृसंमताः । एवं क्रमेण भुंजंति सप्तजन्मसु क्षत्रियाः ॥८८॥
अन्यायेन तुयोद्धारस्तिष्ठंति नरके चिरम् । एवं च क्षत्रियावृत्तिर्ब्राह्मणैरुपजीव्यते ॥८९॥
वैश्यैः शूद्रैस्तथान्यैश्च अंत्यजैर्म्लेच्छजातिभिः । ये च योधाः प्रयुध्यंते न्याययुद्धेन सर्वदा ॥९०॥
तेऽपि यांति परं स्थानं सर्वे वर्णा द्विजातयः । न शूरो योद्विजोभीरुरस्त्रशस्त्रविवर्जितः ॥९१॥
विपत्तौ वैश्यवृतिं च कारयेदि्द्वजसत्तमः । वैश्यवृत्तिं वणिग्भावं कृषिं चैव तथापरैः ॥९२॥
कारयेत्कृषिवाणिज्यं विप्रकर्म न च त्यजेत् । वणिग्भावान्मृषात्युक्तौ दुर्गतिं प्राप्नुयादि्द्वजः ॥९३॥
आर्द्रद्रव्यं परित्यज्य ब्राह्मणो लभते शिवम् । समुत्पाद्य ततो वृत्तिं दद्याद्विप्राय सर्वशः ॥९४॥
पितृयज्ञे तथाचाग्नौ जुहुयाद्विधिवादि्द्वजः । तुलेऽसत्यं न कर्त्तव्यं तुलाधर्म प्रतिष्ठिता ॥९५॥
छलभावं तुले कृत्वा नरकं प्रतिपद्यते । अतुलं चापि यद्द्रव्यं तत्रमिथ्यापरित्यजेत् ॥९६॥
एवं मिथ्या न कर्त्तव्या मृषा पापप्रसूतिका । नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥९७॥
अतः सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते । अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥९८॥

देने वाले कल्प वृक्ष रहते हैं । वह प्रासाद, वापी, कूप, तडाग तथा उद्यानों से सुशोभित होता है ॥८४॥ देवगनरी की युवती कन्यायें उसकी सेवा करती हैं । उसके सामने प्रसन्नता पूर्वक अप्सराओं का समूह सदा नृत्य करता रहता है ॥८५॥ गन्धर्वो का समूह गीत गाता है और देवता उसकी स्तुति करते हैं । इसतरह से एक कल्प तक रहने के पश्चात् वह पृथिवी का सार्वभौम राजा होता है ॥८६॥ सभी भोगों को करने वाला रोगरहित, तथा कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाला होता है । उसकी पत्नियाँ रूप सम्पन्न तथा सदैव युवती रहती हैं ॥८७॥ उसके पुत्र धार्मिक, स्वच्छ, समृद्ध तथा पिता के अनुकूल रहने वाले होते हैं । इसतरह सत् क्षत्रिय सात जन्मों के भोगों को भोगते हैं॥८८॥ जो क्षत्रिय अन्याय पूर्वक युद्ध करते हैं वे नरकों में चिरकाल पर्यन्त रहते हैं । इसी तरह की क्षत्रिया वृत्ति को ब्राह्मण अपना उपजीव्य बनाते हैं ॥८९॥ वैश्य, शूद्र तथा दूसरे अन्त्यज तथा म्लेच्छ जाति के भी जो योद्धा सदा न्याय पूर्वक युद्ध करते हैं, वे भी सर्वश्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करते हैं । सभी वर्ण द्विजाति के ही होते हैं । जो द्विज भयभीत रहने वाला अस्त्र-शस्त्र के ज्ञान से रहित होता है, वह वीर नहीं होता है ॥९०-९१॥ विपत्ति आने पर ब्राह्मण श्रेष्ठ को वैश्य वृत्ति भी करना चाहिए । बनियापन को ही वैश्य वृत्ति कहते हैं, तथा कृषि को भी वैश्य वृत्ति कहते हैं॥९२॥ वह वणिग्वृत्ति कृषि को भी कराये; किन्तु विप्रकर्म का परित्याग न करे । वणिग्भाव को अपनाने वाला ब्राह्मण यदि झूठ बोलता है तो वह दुर्गति को प्राप्त करता है ॥९३॥ हजार अश्वमेध यज्ञ करने की अपेक्षा सत्य की महिमा अधिक होती ह । आर्द्रद्रव्य का परित्याग करके ब्राह्मण कल्याण को प्राप्त करता है । उससे वृत्ति को उत्पन्न करके पूरा-का-पूरा ब्राह्मण को दान कर दे ॥९४॥ श्राद्ध तथा होम ब्राह्मण को विधिपूर्वक करना चाहिए । तौलने में असत्य भाषण नहीं करना चाहिए तुला धर्म प्रतिष्ठित होते है ॥९५॥ अतएव मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए मिथ्या भाषण पाप को उत्पन्न करने वाला है । सत्य से बढकर कोई दूसरा धर्म नहीं है और मिथ्या से बढकर कोई दूसरा पाप भी नहीं है ॥९६-९७॥ अतएव सभी कार्यो में सत्य ही महान् है । हजार अश्वमेध को एक तुला पर और दूसरी

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते । यो वदेत्सर्वकार्येषु सत्यं मिथ्यां परित्यजेत् ॥९९॥
सनिस्तरति दुर्गाणि स्वर्गमक्षयमश्नुते । वाणिज्यं कारयेद्विप्रो मिथ्याऽवश्यं परित्यजेत् ॥१००॥
वृद्धिं च निक्षिपेत्तीर्थे स्वयं शेषं तु भोजयेत् । देहक्लेशात्तत्सहस्रगुणं भवति सर्वदा ॥१०१॥
अर्थार्जनविधौ मर्त्या विशंति विषमे जले । कांतारमटवीं चैव श्वापदैः सेवितां तथा ॥१०२॥
गिरिं गिरिगुहां दुर्गां म्लेच्छानां शस्त्रपातिनाम् । गृहं प्रति भयं स्थानं धनलोभात्समंततः ॥१०३॥
सुतदारान्परित्यज्य दूरं गच्छंति लोभिनः । स्कंधे भारं वहंत्यन्ये तर्यांचक्रे निपातनैः ॥१०४॥
क्षेपणीभिर्महादुःखैस्सदा प्राणव्ययेन च । अर्थस्य संचयः पुत्र प्राणात्प्रियतरो महान् ॥१०५॥
एभिर्न्यायार्जितं वित्तं वणिग्भावेन यत्नतः । पितृदेवद्विजातिभ्यो दत्तं चाक्षयमश्नुते ॥१०६॥
एतौ दोषौ महांतौ च वाणिज्ये लाभकर्मणि । लोभानामपरित्यागो मृषाग्राह्यश्च विक्रयः ॥१०७॥
एतौ दोषौ परित्यज्य कुर्यादर्थार्जनं बुधः । अक्षयं लभते दानाद्वणिग्दोषैर्नलिप्यते ॥१०८॥
पुण्यकर्मरतो विप्रः कृषिं हि परिकारयेत् । वाहयेद्दिवसस्यार्धं बलीवर्दचतुष्टयम् ॥१०९॥
अभावात्त्रितयं चैव अविश्रामं न कारयेत् । चारयेच्च तृणेऽच्छिन्ने चोरव्याघ्रविवर्जिते ॥११०॥
दद्याद्घासं यथेष्टं च नित्यमातर्पयेत्स्वयम् । गोष्ठं च कारयेत्तस्य किंचिद्विघ्नविवर्जितम् ॥१११॥
सदागोमयमूत्राभ्यां विघसैश्च विवर्जितम् । न मलं निक्षिपेद्गोष्ठे सर्वदेवनिकेतने ॥११२॥
आत्मनः शयनीयस्य सदृशं कारयेद्बुधः । समं निर्वापयेद्यत्नाच्छीतवातरजस्तथा ॥११३॥

तुला पर सत्य को रखो ॥९८॥ हजार अश्वमेघ से सत्य ही भारी होता है । जो सभी कार्यों में सत्य ही बोलता है और मिथ्या का परित्याग कर देता है ॥९९॥ वह सभी संकटों को पार करके अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है । ब्राह्मण वाणिज्य को करे किन्तु मिथ्या का परित्याग कर दे ॥१००। जो वृद्धि हो उसको तीर्थ में लगा दे और अवशिष्ट वस्तु का भोग करे । ऐसा करना देह को क्लेश देकर तपस्या करने की अपेक्षा सौ गुना अधिक फलप्रद होता है ॥१०१॥ धनार्जन करने के लिए लोग विषम जल में प्रवेश कर जाते हैं । वे कान्तार (वन) तथा हिंसक जन्तु युक्त अरण्यानी में भी चले जाते हैं ॥१०२॥ धन के लोभ से लोग पर्वतों में, पर्वतों की कन्दराओं में, शस्त्रपात करने वाले म्लेच्छों के घर तथा अत्यन्त भयङ्कर स्थान में जाते हैं ॥१०३॥ लोभी पुरुष पुत्र तथा पत्नी का परित्याग करके दूर चले जाते हैं । वे अपने कन्धे पर भार ढोते हैं तथा क्षेपणी के द्वारा वे नावों में रहकर अत्यन्त कष्ट पूर्वक नाव खेने का काम करते हैं । हे पुत्र ! अर्थ का संचयन प्राणों से भी प्रिय होता है ॥१०४-१०५॥ इन सभी साधनों से तथा व्यापार के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अर्जित धन यदि पितरों, देवों तथा ब्राह्मणों को दान दिया जाता है तो उससे अक्षय फल की प्राप्ति होती है ॥१०६॥ लाभ के कर्म वाणिज्य के दो दोष महान हैं लोभ का परित्याग न करना तथा झूठ बोलना॥१०७॥ विद्वान् को चाहिए कि वह इन दोनों दोषों का परित्याग करके वाणिज्य द्वारा अर्थार्जन करे । उसका दान करके उसे अक्षय फल की प्राप्ति होती है और उसको व्यापार का दोष नहीं लगता है ॥१०८॥ पुण्य कर्म करने वाले विप्र को कृषि ही करवाना चाहिए । वह आधे दिन तक चार बैलों को जोते ॥१०९॥ चार बैलों के अभाव मे तीन से ही का चलाये, किन्तु उन सबों को निरन्तर नहीं जोते । बैलों को बिना कटी हुयी घास को चोर तथा व्याघ्र आदि से रहित स्थान में चराये ॥११०॥ उन सबों को यथेष्ट निवास स्थान प्रदान कराये अथवा स्वयं करे और उन सबों को भर पेट खिलाये । बैलों की गोशाला को बिल्कुल साफ रखे ॥१११॥ उसमें कभी गोबर और मूत्र नहीं रहना चाहिए । गोशाला में सभी देवताओं का निवास होता है, अतएव उससें कभी मल न फेंके ॥११२॥ उसे अपने सोने के स्थान

प्राणस्य सदृशं पश्येत्तां च सामान्यविग्रहम् । अस्य देहे सुखं दुःखं तथा तस्यैव कल्पते ॥११४॥
अनेन विधिना यस्तु कृषिकर्माणि कारयेत् । स च गोवाहनै दोंषै र्न लिप्येत धनी भवेत्॥११५॥
दुर्बलं पीडयेद्यस्तु तथैव गदसंयुतम् । अतिबालातिवृद्धं च स गोहत्यां समालभेत् ॥११६॥
विषमं वाहयेद्यस्तु दुर्बलं सबलं तथा । स गोहत्यासमं पापं प्राप्नोतीह न संशयः ॥११७॥
योवाहयेद्विना सस्यं खादंतं गां निवारयेत् । मोहात्तृणं जलं वापि स गोहत्या समं लभेत्॥११८॥
संक्रांत्यां पौर्णमास्यां चामावास्यायां तथैव च । हलस्य वाहनात्पापं गवामयुतहत्यया ॥११९॥
अमूषूपूजयेद्यस्तु सितैश्चित्रादिभिर्नरः । कज्जलैः कुसुमैस्तैलैः सोऽक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥१२०॥
घासमुष्टिं परगवे यो ददाति सदाह्निकम् । सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गं चाक्षयमश्नुते॥१२१॥
यथाविप्रस्तथागौश्च द्वयोः पूजाफलं समम् । विचारे ब्राह्मणो मुख्यो नृणां गावः पशौ तथा॥१२२॥

नारद उवाच

विप्रो ब्रह्ममुखे जातः कथितो मे त्वयानघ । कथं गोभिः समो नाथ विस्मयो मे विये ध्रुवम्॥१२३॥

ब्रह्मोवाच

शृणु चात्र यथा तथ्यं ब्राह्मणानां गवां यथा । एकपिंडक्रियैक्यं तु पुरुषैर्निर्मितं पुरा ॥१२४॥
पुरा ब्रह्ममुखोद्भूतं कूटं तेजोमयं महत् । चतुर्भागप्रजातं तद्वेदोग्निर्गौर्द्विजस्तथा ॥१२५॥
प्राक्तेजः संभवो वेदो वह्निरेव तथैव च । परतो गौस्तथाविप्रो जातश्चैव पृथक् पृथक्॥१२६॥
तत्र सृष्टा मया चादौ वेदाश्चत्वार एकशः । स्थित्यर्थं सर्वलोकानां भुवनानां समंततः ॥१२७॥

के समान स्वच्छ रखे । उसमें प्रयत्न पूर्वक, शीत वायु तथा धूल डालते रहना चाहिए ॥११३॥ गौ के शरीर को अपने प्राण के समान समझना चाहिए । बैलों के शरीर में अपने ही शरीर के समान सुख तथा दुःख को समझना चाहिए ॥११४॥ इस विधि से जो कृषि कर्म करवाता है, वह गौ के जोतने के दोष से युक्त नहीं होता है तथा धनी हो जाता है ॥११५॥ जो दुर्बल तथा रोगी अत्यन्त छोटी अवस्था के अथवा अत्यन्त वृद्ध बैल को जोतता है, उसको गोहत्या का पाप लगता है ॥११६॥ जो दुर्बल अथवा सबल बैल को बहुत अधिक जोतता है, वह गोहत्या के समान पाप को प्राप्त करता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥११७॥ जो घास खिलाये बिना अथवा घास खाने से बैल को रोक देता है और उस बैल को जोतता है, अज्ञान वशात् उसे तृण और जल भी नहीं देता है, वह गोहत्या के पाप का भागी होता है ॥११८॥ संक्रान्ती, पूर्णिमा तथा अमावस्या तिथि को जो व्यक्ति हल में गौ को जोतता है उसको दश हजार गोहत्या का पाप लगता है ॥११९॥ इन तिथियों में जो गौ की पूजा धवल चित्रों, काजल, पुष्प एवं तेल से करता है वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥१२०॥ जो दूसरे के बैलों को प्रतिदिन एक मुट्ठी भी घास देता है उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं, वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥१२१॥ गौ और ब्राह्मण दोनों की पूजा करने का एक समान फल होता है । विचार करने पर मनुष्यों में ब्राह्मण मुख्य है, और पशुओं में गौ प्रधान है॥१२२॥ **नारदजी ने कहा—** हे अनघ ! आपने कहा है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न है, वह गौ के समान कैसे हो सकता है, यही हमको आश्चर्य है ॥१२३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** इस समय तुम ब्राह्मणों और गौ के विषय में वास्तविक बात सुनो । प्राचीन काल में पुरुषों ने एक पिण्ड से एक क्रिया को बनाया ॥१२४॥ पहले ब्रह्म के मुख से महान् तेज समूह निकला उसके चतुर्थांश चतुर्थांश से क्रमशः वेद, अग्नि, गौ तथा द्विज उत्पन्न हुए ॥१२५॥ सर्वप्रथम तेज से वेद उत्पन्न हुए उसके बाद अग्नि उत्पन्न हुयी । फिर गौ और उसके बाद ब्राह्मण ये सब पृथक्-पृथक्

अग्निर्हव्यानि भुंजीत देवहेतोस्तथाद्विजः। आज्यं गोप्रभवं विद्धि तस्मादेते प्रसूतकाः ॥१२८॥
न संति यदि लोकेषु चत्वारोमी महत्तराः । तदाखिलं च भुवनं नष्टं स्थावरजंगमम् ॥१२९॥
एभिर्धृताः सदा लोकाः प्रतिष्ठंति स्वभावतः। स्वभावो ब्रह्मरूपोऽसावेते ब्रह्ममयाः स्मृताः॥१३०॥
तस्माद्गौः पूजनीयोऽसौ विप्रदेवासुरैरपि। उदारः सर्वकार्येषु जातस्तथ्यो गुणाकरः ॥१३१॥
सर्वदेवमयः साक्षात्सर्वसत्वानुकंपकः । अस्य कार्यं मया सृष्टं पुरैव पोषणं प्रति ॥१३२॥
अतएव मयादत्तं वरं चातिसुशोभिनम्। एकजन्मनि ते मोक्षस्तवास्त्विति विनिश्चितम्॥१३३॥
अत्रैव ये मृता गावस्त्वागच्छंति ममालयम् । पापस्य कणमात्रं तु तेषां देहे नतिष्ठति ॥१३४॥
देवी गौर्धेनुका देवाश्चदिदेवी त्रिशक्तिका। प्रसादाद्यस्य यज्ञानां प्रभवो हि विनिश्चितः ॥१३५॥
गवां सर्वपवित्राणि पुनंति सकलं जगत्। मूत्रं गोर्गोमयं क्षीरं दधिसर्पिस्तथैव च ॥१३६॥
अमीषां भक्षणे पापं न तिष्ठति कलेवरे। तस्माद्घृतं दधिक्षीरं नित्यं खादंति धार्मिकाः ॥१३७॥
विशिष्टं सर्वद्रव्येषु गव्यमिष्टं परं शुभम्। यस्यास्ये भोजनं नास्ति तस्यमूर्तिस्तु पूतिका ॥१३८॥
अन्नाद्यं पञ्चरात्रेण सप्तरात्रेण वै पयः । दधिविंशतिरात्रेण घृतंस्यान्मासकैककम्॥१३९॥
अगव्यै र्यस्तु भुंक्ते वै मासमेकं निरंतरम्। भोजने तस्य मर्त्यस्य प्रेताः खादंति चैव हि॥१४०॥
परमान्नपरं शुद्धं स्वित्रं चातपतण्डुलैः। भुक्त्वा तु यत्कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत्॥१४१॥
अन्यच्चापि च यद्द्रव्यं हविष्यं शास्त्रनिर्मितम्। तद्भुक्त्वा यत्कृतं कर्म सर्वलक्षगुणं भवेत् ॥१४२॥

उत्पन्न हुए ॥१२६॥ उसमें भी मैंने एक-एक करके पहले वेदों को सभी लोकों तथा भुवनों की स्थिति (रक्षा) के लिए बनाया ॥१२७॥ देवताओं के लिए अग्नि तथा ब्राह्मण हव्य का उपभोग करते हैं । घी गौ से उत्पन्न होता है, अतएव गौ घृत उत्पन्न करने वाले हैं ॥१२८॥ यदि लोकों में ये चारो महान वस्तु न रहें तो फिर स्थावर जंगमात्मक का सम्पूर्ण संसार विनष्ट हो जाय ॥१२९॥ इन्हीं सबों के द्वारा धारण किये गये लोक स्वाभावतः प्रतिष्ठित रहते हैं । स्वभावतः ये ब्रह्मस्वरूप हैं अतएव ये चारो ब्रह्म स्वरूप कहे गये हैं ॥१३०॥ इसीलिए गौ, ब्राह्मण, देव तथा असुरों से भी पूज्य हैं । ये सभी कार्यों में उदार हैं यह तथ्य गुणाकर है ॥१३१॥ गौ साक्षात् सर्वदेवमय है तथा सभी जीवों पर कृपा करने वाले हैं । मैंने गौ का कार्य पोषण करना पहले ही बनाया है ॥१३२॥ इसीलिए मैंने गौओं को यह बहुत अच्छा वरदान दिया है कि तुमलोगों का एक ही जन्म में मोक्ष हो जायेगा, यह निश्चित है ॥१३३॥ इस संसार में जो गायें मर जाती हैं वे हमारे लोक में आती हैं । उन सबों के शरीर में पाप का कोई कण भी नहीं रहता है ॥१३४॥ गौ और देवी, धेनुक (बैल) देव हैं । ये तीनों शक्ति स्वरूप आदि देवी है । उन्हीं की कृपा से यज्ञ की उत्पत्ति हुयी है ॥१३५॥ गौओं के मूत्र, गोबर, दुग्ध, दधि और घी ये सबके सब पवित्र हैं और संसार को पवित्र बनाती हैं ॥१३६॥ इन सबों को खाने से शरीर में कोई पाप नहीं रहता है, इसीलिए धार्मिक पुरुष घी, दही, दुग्ध, प्रतिदिन खाते हैं ॥१३७॥ सभी द्रव्यों में गव्य इष्ट और कल्याणकारी है । जिसके मुख में भोजन नहीं है उसकी मूर्ति पूतिका है ॥१३८॥ शरीर में खाया हुआ अन्न पाँच रात में पच जाता है, दूध सात रात तक शरीर में रहता है, दधि बीस रात्रि तक शरीर में टिकती है और घी एक मास तक रहता है ॥१३९॥ जो एक मास तक बिना गव्य पदार्थ के भोजन करता है उसके भोजन को प्रेत खाते हैं ॥१४०॥ जो अग्नि के संताप तथा चावल से पकाया जाता है व परमान्न (खीर) अत्यन्त शुद्ध होता है । उसके खाने से किया हुआ पुण्य करोड़ों गुना बढ़ता है ॥१४१॥ दूसरे भी द्रव्य जिसे शास्त्र हविष्य बतलाता है, उसको खाकर जो कर्म किया जाता है, उससे वह लाख गुणा बढता है॥१४२॥

निरामिषं च यत्किंचित् तस्माद्यद्यत्फलं लभेत्। तस्माद्गौः सर्वकार्येषु शस्त एको युगे युगे ॥१४३॥
सर्वदा सर्वकामेषु धर्मकामार्थमोक्षदः।

नारद उवाच

केषु किं वा प्रयोगेण परं पुण्यं प्रकीर्तितम् ॥१४४॥
वद तत्सर्वलोकेश यथा जानामि तत्वतः ।

ब्रह्मोवाच

सकृत्प्रदक्षिणं कृत्वा गोधनं चाभिवंदयेत् ॥१४५॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स्वर्गं चाक्षयमश्नुते। सुराचार्यो यथावंद्यः पूज्योऽसौ माधवो यथा ॥१४६॥
सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा चैश्वर्यात्पाकशासनः । कल्य उत्थाय गोमध्ये पात्रं गृह्य सहोदकम् ॥१४७॥
निषिंचेद्यो गवां श्रृंगं मस्तकेनैव तज्जलम्। प्रतीच्छेत निराहारस्तस्य पुण्यं निबोधत ॥१४८॥
श्रूयंते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु नारद । सिद्धचारणयुक्तानि सेवितानि महर्षिभिः ॥१४९॥
अभिषेकस्समस्तेषां गवां श्रृंगोदकस्य च। प्रातरुत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गां च घृतं मधु ॥१५०॥
सर्षपांश्च प्रियंगूंश्च कल्मषात्प्रतिमुच्यते । घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ॥१५१॥
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे संतु सदा गृहे। घृतं मे सर्वगात्रेषु धृतं मे मनसि स्थितम् ॥१५२॥
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च। गावश्च सर्वगात्रेषु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥१५३॥
इत्याचम्य जपेन्मंत्रं सायं प्रातरिदं शुचिः । सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्लोके पूजितो भवेत् ॥१५४॥

मांस रहित जो कुछ भी पदार्थ होता है, उसकी अपेक्षा यह लाख गुना और करोडों गुना की बात कही गयी इसीलिए सभी कार्यों में केवल गौ को ही सभी युगों में श्रेष्ठ कहा गया है ॥१४३॥ गौ सभी कामों में सदैव ही मोक्षप्रद है । **नारदजी ने कहा—** किन कार्यो में किस प्रयोग के द्वारा गौ पुण्यतमा होती है ॥१४४॥ हे सभी लोकों के स्वामिन् इन सारी बातों को आप मुझे बतलाइये, जिससे कि मैं जान सकूँ । **ब्रह्माजी ने कहा—** गोधन की एक बार प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करना चाहिए ॥१४५॥ ऐसा करने वाला सभी पापों से छूटकर अक्षय स्वर्ग प्राप्त कर लेता है । गौ की बृहस्पति के समान वन्दना करनी चाहिए, तथा भगवान् विष्णु के समान गौ पूज्य है ॥१४६॥ उसकी सात बार प्रदक्षिण करने से इन्द्र के समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । प्रात:काल उठकर जल भरे पात्र को लेकर गौ के बीच में जाकर उस जल से गौ के मस्तक एवं सींग को धोने का जो जल होता है, उसको निराहार रहकर जो अपने सिर पर धारण करता है उससे होने वाले पुण्य को मैं बतलाता हूँ ॥१४७-१४८॥ हे नारद ! सिद्धों और चारणों से युक्त तथा महर्षियों के द्वारा सेवित जितने भी तीर्थ त्रैलोक्य में सुने जाते हैं ॥१४९॥ उन सबों में स्नान करने का जो फल होता है, उसी के समान गौओं के श्रृङ्गोदक को समझना चाहिए । प्रात:काल उठकर जो मनुष्य गौ, घी तथा मधु (शहद) का स्पर्श करता है ॥१५०॥ एवं सरसों, प्रियंगू का स्पर्श करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । घी तथा दुग्ध देने वाली गायें घृतयोनि तथा घृतोद्भवा कही जाती हैं ॥१५१॥ गौ ही धृत की नदी, घृत के आवर्त वाली होती हैं । मेरे घर में सदा गौ निवास करे । मेरे सम्पूर्ण अङ्गों में घी होए, तथा घी मेरे मन में स्थित हैं ॥१५२॥ गायें मेरे आगे, पीछे तथा मेरे सभी अङ्गों में रहें । मैं गायों के बीच में निवास करता हूँ॥१५३॥ सायं तथा प्रात:काल आचमन करके इस मन्त्र का जो उच्चारण करता है, उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह स्वर्ग लोक में पूजित होता है ॥१५४॥ गौ के ही समान विप्र होते हैं, विप्रों के समान श्रीहरि हैं ।

यथा गौश्च तथाविप्रो यथाविप्रस्तथा हरिः । हरिर्यथा तथा गंगा एतेनह्यवृषाःस्मृताः ॥१५५॥
गावो बंधुर्मनुष्याणां मनुष्या बांधवा गवाम् । गौश्च यस्मिन् गृहे नास्ति तद्बंधुरहितं गृहम् ॥१५६॥
गोमुखे चाश्रिता वेदाः सषडंगपदक्रमाः । श्रृंगयोश्च स्थितौ नित्यं सहैव हरिकेशवौ ॥१५७॥
उदरेवऽस्थितः स्कंदः शीर्षे ब्रह्मास्थितः सदा। वृषध्वजो ललाटे च श्रृंगाग्र इंद्र एव च ॥१५८॥
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोश्शशिभास्करौ। दंतेषु गरुडो देवो जिह्वायां च सरस्वती ॥१५९॥
अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्रावे चैव जाह्नवी । ऋषयो रोमकूपेषु मुखतः पृष्ठतो यमः ॥१६०॥
धनदो वरुणश्चैव दक्षिणं पार्श्वमाश्रितौ। वामपार्श्वे स्थिता यक्षास्तेजस्वंतो महाबलाः ॥१६१॥
मुखमध्ये च गंधर्वा नासाग्रे पन्नगास्तथा । खुराणां पश्चिमे पार्श्वेऽप्सरसश्च समाश्रिताः ॥१६२॥
गोमये वसते लक्ष्मी गोमूत्रे सर्वमंगला । पादाग्रे खेचरा वेद्या हंभाशब्दे प्रजापतिः ॥१६३॥
चत्वारः सागराः पूर्णा धेनूनां च स्तनेषु वै । गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः॥१६४॥
अतो मर्त्यः प्रपुष्टैस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते। गवां रजः खुरोद्भूतं शिरसा यस्तु धारयेत्॥१६५॥
स च तीर्थजले स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते।

नारद उवाच

गवां च दशवर्णानां कस्य दाने च किंफलम् ॥१६६॥
ब्रूहि तत्त्वं गुरुश्रेष्ठ परमेष्ठिन्प्रियं यदि ।

श्रीहरि के समान गङ्गाजी हैं इनमें से एक भी अधार्मिक नहीं होते हैं ॥१५५॥ गायें मनुष्यों के बन्धु हैं और मनुष्य गायों के बन्धु हैं । जिस घर में गायें नहीं रहती हैं, वह घर बन्धु विहीन होता है ॥१५६॥ गायों के मुख में छहों अङ्गों तथा पदक्रम के साथ वेदों का निवास है । गौ के दोनों सीङ्गों में श्रीहरि और केशव दोनों का एक साथ निवास होता है ॥१५७॥ गौ के उदर में स्कन्द का निवास है शिर पर ब्रह्माजी का निवास है । ललाट में भगवान् शिव का निवास है, तथा गौ के सींग के अग्र भाग में इन्द्र का निवास है ॥१५८॥ गौ के दोनों कानों में अश्विरी कुमार नामक दो देवों का निवास हैं और नेत्रों में सूर्य और चन्द्रमा स्थित होते हैं । दाँतों में गरुड देव का निवास है तथा जीभ में सरस्वती देवी का निवास है ॥१५९॥ गौ के अपान में सभी तीर्थो का निवास है तथा मूत्र स्थान में गङ्गा नदी का निवास है, गौ के रोमकूपों में ऋषियों का निवास है, मुख के पीछे यम का निवास है ॥१६०॥ गौ के दाहिने पार्श्व में कुबेर और वरुण का निवास है । गौ के वाम पार्श्व में महाबलवान् और तेजस्वी यक्षों का निवास होता है ॥१६१॥ गौ के मुख के भीतर गन्धर्वों का निवास है, नासिका के अग्रभाग में सर्पो का निवास है । गौ के खुरों के पश्चिम भाग में अप्सराओं का निवास है ॥१६२॥ गौ के गोबर में लक्ष्मी का निवास है, गोमूत्र में सर्वमङ्गला देवी का निवास है। गौ के पैरों के अग्रभाग में ग्रहों का निवास है तथा उसके खम्भा (खूंटा) में ब्रह्माजी का निवास है ॥१६३॥ गायों के चारो स्तनों में सभी सागरों का निवास है । जो व्यक्ति नित्य ही गौ का स्पर्श करता है, वह नित्य स्नान करने का फल प्राप्त करता है ॥१६४॥ ऐसा करने वाला मनुष्य बढे हुए अपने समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । जो व्यक्ति गाय के खुर से उड़ी हुयी धूल को अपने शिर पर चढाता है ॥१६५॥ वह मानो सभी तीर्थों के जल से स्नान कर लिया और उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । **नारदजी ने कहा—** दश वर्णो की गायों में किसके दान करने से कौन सा फल होता है ॥१६६॥ हे परमेष्ठिन् गुरुश्रेष्ठ ! यदि मैं प्रिय हूँ तो आप इस बात को मुझे बतलायें **ब्रह्माजी ने कहा—** श्वेतवर्ण की गौ का दान करके मनुष्य ईश्वर हो जाता है ॥१६७॥ वह मनुष्य सदा प्रासाद (महल) में

ब्रह्मोवाच

श्वेतां गां ब्राह्मणे दत्वा मानवश्चेश्वरो भवेत् ॥१६७॥
प्रासादे वसते नित्यं भोगी च सुखमेधते। धुम्रा तु स्वर्गकांतारसंसारे पापमोक्षिणी॥१६८॥
अक्षयं कपिलादानं कृष्णां दत्वा न सीदति। पांडुरा दुर्लभालोके गौरी च कुलनंदिनी॥१६९॥
रक्ताक्षी रूपकामस्य धनका स्य नीलिका। एकां च कपिलां दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१७०॥
यत्तु बाल्येकृतं पापं यौवने वार्धके कृतम्। वाचा कृतं कर्मकृतं मनसा यत्प्रचिंतितम्॥१७१॥
अगम्यागमनं चैव मित्रद्रोहे च पातकम्। मानकूटं तुलाकूटं कन्यानृतं गवानृतम्॥१७२॥
सर्वं च नाशयेत्क्षिप्रं कपिलां यः प्रयच्छति। दशयोजनविस्तीर्णा महापारा महानदी॥१७३॥
नाराचजलकांतारे प्रसृते चोदकार्णवे। यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ मुखं यावन्न जायते॥१७४॥
तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुंचति। सुवर्णश्रृंगींवस्त्राढ्यां सर्वालंकारभूषिताम्॥१७५॥
ताम्रपृष्ठीं रौप्यखुरां तथाकांस्योपदोहनाम्। शोभितां गंधपुष्पैश्च सर्वालंकारभूषिताम्॥१७६॥
ईदृशीं कपिलां दद्यादिद्वजातौ वेदपारगे। सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुलोकेऽच्युतो भवेत्॥१७७॥
तस्यां तु दुह्यमानायां भूमौ पतंति विंदवः। आरामा दिवि जायंते बहुपुष्पफलोत्तमाः॥१७८॥
यत्र कामफलावृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः। प्रासादाश्चापि सौवर्णास्तत्र गच्छंति गोप्रदाः॥१७९॥
दशधेनूश्च यो दद्यादेकं चैव धुरंधरम्। समानं तु फलं प्रोक्तं ब्रह्मणा समुदाहृतम्॥१८०॥

निवास करता है; सभी भोगों को प्राप्त करता है और सुखी होता है। धूम वर्ण की गौ स्वर्ग के कान्तार रूपी संसार के समस्त पापों से मुक्ति देने वाली होती है॥१६८॥ कपिला गौ के दान से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। कृष्णा गौ का दान करने वाला कभी दुःखी नहीं होता है। पाण्डुर वर्ण की गौ संसार में दुर्लभ होती है और गौर वर्ण की गौ वंश की वृद्धि करने वाली होती है॥१६९॥ रूप चाहने वाले को लाल आँखों वाली गौ का दान करना चाहिए, धन चाहने वाले को नीली गौ का दान देना चाहिए। एक कपिला गौ का दान करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१७०॥ कपिला गौ का दान करने वाले के बालावस्था में किए गये, युवावस्था में किए गये तथा वृद्धावस्था में किए गये, वाणी, मन अथवा कर्म से किए गये पाप विनष्ट हो जाते हैं॥१७१॥ अगम्यागमन जन्य, मित्रद्रोह जन्य, मानकूट जन्य, तुलाकूट जन्य, कन्या के विषय में मिथ्या भाषण जन्य गौओं के विषय में मिथ्या भाषण जन्य॥१७२॥ ये सभी पाप कपिला दान करने वाले के शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। गौ दश योजन विस्तीर्ण पृथिवी जिसको पार करना कठिन हो ऐसी नदी के समान है। जब तक गौ के गर्भ से बछड़े के दो पैर सुख पूर्वक नहीं निकल जाते हैं॥१७३-१७४॥ ऐसी गौ को पृथिवी के समान तब तक जानना चाहिए जब तक कि वह बच्चा नहीं दे देती है। ऐसी गौ के श्रृंग में सुवर्ण लगाकर, वस्त्र से ढँककर तथा सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत करके॥१७५॥ उसके पीठ में ताम्बा तथा खूर में चाँदी मढाकर काँसे के दोहन पात्र के साथ, चन्दन, पुष्प तथा सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत करके॥१७६॥ इस प्रकार की कपिला गौ को वेदज्ञ ब्राह्मण को दान देना चाहिए। ऐसा करने वाले के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह विष्णु लोक में जाता है॥१७७॥ उस कपिला गौ को दूहते समय उसके दूध के जो विन्दु पृथिवी पर गिर जाते हैं उससे स्वर्ग में अनेक प्रकार के पुष्पों और फलों से भरे उद्यान उद्भूत होते हैं॥१७८॥ उन उद्यानों के वृक्ष इच्छानुसार फल देने वाले और दूध की नदियाँ वाले होते है। सुवर्ण निर्मित प्रासाद होते हैं। उसी में गोदान करने वाले मृत्यु के पश्चात् जाते हैं॥१७९॥ जो दश धेनुओं का दान करता है, और एक साँड देता है।

एकं च दशभिर्दद्यात्सहस्राणं शतं फलम्। तस्यानुसारतो वेद्यं फलं नारद यत्नतः ॥१८१॥
पितृनुद्दिश्य यः पुत्रो वृषं च मोक्षयेद्भुवि। पितरोविष्णुलोकेषु महीयंते यथेप्सितम् ॥१८२॥
चतस्रो वत्सतर्यश्च एकस्यैव वृषस्य च। मोक्ष्यंते सर्वतः पुत्र विधिरेष सनातनः ॥१८३॥
यावंति चैव रोमाणि तस्य तासां च सर्वशः। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गं भुंजंति मानवाः ॥१८४॥
लांगूलेन वृषो यच्च जलंचोत्क्षिपति ध्रुवम् । तत्तोयं तु सहस्राब्दं पितृणाममृतं भवेत् ॥१८५॥
खुरेण कर्षयेद्भूमिं ततोलोष्ठं च कर्दमः। पितृभ्यश्च स्वधा तत्र लक्षकोटिगुणं भवेत् ॥१८६॥
विद्यमाने च जनके यदि माता विनश्यति । चंदनेनांकिता धेनुस्तस्याः स्वर्गाय दीयते ॥१८७॥
दाता चैव पितृणां च ऋणं चैव प्रमुंचति । अक्षयं लभते स्वर्गं पूजितो मघवा यथा ॥१८८॥
सर्वलक्षणसंयुक्ता तरुणा गौः पयस्विनी। समा प्रसूतिका भद्रा सा च गौः पृथिवीस्मृता॥१८९॥
तस्य दानेन मंत्रस्य पृथ्वीदानसमं फलम् । शतक्रतुसमो मर्त्यः कुलमुद्धरते शतम् ॥१९०॥
गवां च हरणं कृत्वा मृते गोरथ वत्सके । क्रिमि पूर्णे सकूपे च तिष्ठेदाभूतसंप्लवम् ॥१९१॥
गवां चैव वधं कृत्वा पितृभिः सह पच्यते। रौरवे नरके घोरे तावत्कालं प्रतिक्रिया ॥१९२॥
गोप्रचारप्रभग्नश्च षंडवाहनबंधनः । अक्षयं नरकं प्रायान्पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥१९३॥

उन दोनों का फल एक समान होता है इस बात को ब्रह्माजी ने बतलाया है ॥१८०॥ दश गायों के साथ एक सांड दान देने वाले को सैकड़ों हजार गोदान का फल होता है । हे नारद ! उसी के अनुसार होने वाले फल को जानना चाहिए ॥१८१॥ हे नारद ! पितरों की प्रसन्नता के लिए जो पुत्र सांड छोड़ता है, उसके पितृगण भगवान् विष्णु के लोक में अपनी इच्छानुसार आनन्दानुभव करते हैं ॥१८२॥ चार बछिया तथा एक बैल सर्वत्र छोड़े जाते हैं । यही सर्वत्र सनातन विधि है ॥१८३॥ उस बैल तथा उन बछियों के जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्ष पर्यन्त वे दाता मनुष्य स्वर्ग में निवास करते हैं ॥१८४॥ बैल अपनी पूंछ से जो ऊपर जल फेंकता है, वह जल पितरों के लिए एक हजार वर्ष पर्यन्त अमृत के समान तृप्तिप्रद होता है ॥१८५॥ जहाँ पर बैल अपने खूर से पृथिवी को खनता है, उसके लोष्ठ और कर्दम (कीचड़) के स्थान पर किया गया श्राद्ध लाख गुना अधिक फलप्रद होता है ॥१८६॥ यदि पिता के रहते ही माता की मृत्यु हो जाय तो माता की स्वर्गप्राप्ति के लिए चन्दन से धेनु को अलङ्कृत करके दान देना चाहिए ॥१८७॥ दान देने वाला पितृऋण से मुक्त हो जाता है वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है और वहाँ वह इन्द्र के समान पूजित होता है ॥१८८॥ सभी लक्षणों से सम्पन्न, तरुण दूध देने वाली, वर्ष में एक बार बच्चा देने वाली, कल्याणकारिणी गौ पृथिवी के समान कही गयी है ॥१८९॥ उसका मन्त्र पूर्वक दान करने से पृथिवी दान करने के समान फल होता है । वह मनुष्य इन्द्र के समान हो जाता है, और अपने सौ पीढी के पूर्वजों का उद्धार कर देता है ॥१९०॥ गौ को चुरा लेने से यदि गौ के बछड़ा मर जाते हैं तो चुराने वाले को कीड़ों से युक्त कुएँ में प्रलय काल पर्यन्त निवास करना पड़ता है ॥१९१॥ जो गौओं का वध करता है, वह अपने पितरों के साथ पकाया जाता है और वह रौरव नरक में प्रलय काल पर्यन्त निवास करता है ॥१९२॥ गौ के प्रचार करने में यदि गौ मर जाती है तो उस सांड़ को वाहन बनाने वाले और बाँधने वाले के प्रत्येक जन्म में अक्षय नरक में जाना पड़ता है ॥१९३॥

सकृच्च श्रावयेद्यस्तु कथां पुण्यतमामिमाम्। सर्वपापक्षयस्तस्य देवैश्च सह मोदते ॥१९४॥
य इदं शृणुयाद्वापि परं पुण्यतमं महत्। सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते तत् क्षणेन हि ॥१९५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गोमाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८॥

उनचासवाँ अध्याय

नारद उवाच

केनाचारेण विप्रस्य ब्रह्मतेजो विवर्धते । केनाचारेण तस्यैव ब्राह्मं तेजो विनश्यति ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शयनीयात्समुत्थाय रत्र्यंशे द्विजसत्तमः। देवांश्चैवस्मरेन्नित्यं तथा पुण्यवतो ध्रुवम् ॥२॥
गोविंदं माधवं कृष्णं हरिं दामोदरं तथा । नारायणं जगन्नाथं वासुदेवमजं विभुम् ॥३॥
सरस्वतीं महालक्ष्मीं सावित्रीं वेदमातरम् । ब्रह्माणं भास्करं चन्द्रंदिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा ॥४॥
शङ्करं च शिवं शंभुमीश्वरं च महेश्वरम्। गणेशं च तथा स्कन्दं गौरीं भागीरथीं शिवम्॥५॥
पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दनः । पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ॥६॥
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः । कृपः परशुरामश्च सप्तैते चीरजीविनः ॥७॥

जो मनुष्य किसी को इस पवित्रतम कथा को सुनाता है, उसके सभी पापों का क्षय हो जाता है तथा वह देवताओं के साथ आनन्दानुभव करता है ॥१९४॥ जो मनुष्य अत्यन्त पवित्र इस कथा का श्रवण करता है, वह उसी क्षण अपने सात जन्मों के किए हुए पापों से मुक्त हो जाता है ॥१५५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के गो माहात्म्य वर्णन नामक अड़तालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४८।।

ब्रह्मतेज को बढाने वाले नित्य कर्मों का वर्णन, तर्पण विधि का वर्णन, सदाचार वर्णन, धर्मबीज एवं पापबीज समुद्भुत मनुष्य का लक्षण

नारदजी ने कहा— किस प्रकार के आचरण से ब्राह्मण का ब्रह्मतेज बढता है और किस प्रकार के आचरण से ब्राह्मण का ब्रह्मतेज विनष्ट होता है ?॥१॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** ब्राह्मणश्रेष्ठ को चाहिए कि जब कुछ रात्रि शेष ही रहे तो जगकर देवताओं और पुण्य पुरुषों का स्मरण करे ॥२॥ गोविन्द, दामोदर, श्रीहरि, माधव, श्रीकृष्ण, नारायण, जगन्नाथ, अजन्मा तथा व्यापक भगवान् वासुदेव ॥३॥ सरस्वती, महालक्ष्मी, सावित्री, वेदमाता गायत्री, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा, दिक्पाल, ग्रहों, शङ्करजी, शिव, शम्भु, ईश्वर, महेश्वर, गणेश, स्कन्द, गौरी, भागीरथी तथा शिवा इन देवताओं का स्मरण करे ॥४-५॥ राजा नल पुण्य श्लोक हैं, पुण्य श्लोक भगवान् जनार्दन है, वैदेही (सीताजी) पुण्यश्लोक हैं तथा राजा युधिष्ठिर पुण्य श्लोक हैं ॥६। अश्वत्थामा, राजा बलि, व्यासजी, हनुमान्जी, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुरामजी ये सातो चिरजीवी हैं ॥७॥ जो मनुष्य प्रात:काल जगकर इन सबों का स्मरण

एतान्यस्तु स्मरेन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥८॥
सकृदुच्चरिते तात सर्वयज्ञफलं लभेत् । गवां शतसहस्राणां दानस्य फलमश्नुते ॥९॥
ततश्चापि शुचौ देशे मलमूत्रं परित्यजेत् । दक्षिणाभिमुखो रात्रौ दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥१०॥
परतो दंतकाष्ठं च तृणैरुदुंबरादिभिः । अतःपरं च संध्यायां संयतश्च द्विजो भवेत् ॥११॥
पूर्वाह्ने रक्तवर्णा तु मध्याह्ने शुक्लवर्णिकाम् । सायं सरस्वतीं कृष्णां द्विजोध्यायेद्यथाविधि ॥१२॥
ततः समा चरेत्स्नानं यथाज्ञानेन यत्नतः । अंगं प्रक्षालयित्वा तु मृद्भिः संलेपयेत्ततः ॥१३॥
शिरोदेशे ललाटे च नासिकायां हृदि भ्रुवोः । बाह्वोः पार्श्वे तथानाभौ जान्वोरङ्घ्रिद्वये तथा ॥१४॥
एका लिगे गुदेतिस्रस्तथा वामकरे दश । उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥१५॥
अश्वक्रांते रथक्रांते विष्णुक्रांते वसुंधरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् ॥१६॥
अनेनैव तु मंत्रेण मृत्तिकां यस्तनौ क्षिपेत् । सर्वपापक्षयस्तस्य शुचिर्भवति मानवः ॥१७॥
ततस्तु वेदपूर्वेण स्नानं कुर्याद्विचक्षणः । नदे नद्यां तथा कूपे पुष्करिण्यां तटाकके ॥१८॥
जलराशौ च वप्रे च घटस्नानं तथोत्तरम् । कारयेद्विधिवन्मर्त्यः सर्वपापक्षयाय च ॥१९॥
प्रातः स्नानं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । यःकुर्यात्सततं विप्रो विष्णुलोके महीयते ॥२०॥
प्रातः संध्यासमीपे च यावद्दंडचतुष्टय् । तावत्पानीयममृतं पितृणामुपतिष्ठते ॥२१॥
परतो घटिकायुग्मं यावद्यामैकमाह्निकम् । मधुतुल्यं जलं तस्मिन्पितृणां प्रीतिवर्धनम् ॥२२॥
ततस्तु सार्द्धयामैकं जलं क्षीरमयं स्मृतम् । क्षीरमिश्रं जलं तावद्यावद्दण्डचतुष्टयम् ॥२३॥

करता है, वह ब्रह्महत्या इत्यादि के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥८॥ हे तात! इन सबों का एक बार उच्चारण करने से सभी यज्ञों के फल की प्राप्ति होती है । वह सौ हजार गायों के दान का भी फल प्राप्त करता है ॥९॥ उसके बाद पवित्र स्थान में जाकर वह मल-मूत्र का परित्याग करे । रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर तथा दिन में उत्तराभिमुख होकर मलमूत्र का त्याग करे ॥१०॥ उसके बाद तृणों तथा गूलर इत्यादि के दातून से दतौन करे । उसके बाद मनुष्य संध्या करे । पूर्वाह्ण में ब्राह्मण रक्तवर्णा, मध्याह्न में शुक्लवर्णा तथा सायंकाल, कृष्णवर्णा संध्या का ध्यान करे ॥११-१२॥ उसके बाद ब्राह्मण अपने ज्ञानानुसार स्नान करे । पहले अङ्गों को धोकर उसके बाद अङ्गों में मिट्टी लगाये ॥१३॥ शिर में, ललाट में, नाक में, हृदय में दोनों भौहों पर, दोनों भुजाओं में, काँख में फिर नाभि में उसके बाद दोनों पैरों में मिट्टी लगाये ॥१४॥ लिङ्ग में एक बार, गुदा में तीन बार, बायें हाथ में दश बार, फिर दोनों हाथों में सात बार शुद्धि चाहने वाले को मिट्टी लगानी चाहिए ॥१५॥ उस समय अश्वक्रान्ते इत्यादि मन्त्र को पढना चाहिए । मन्त्र का अर्थ हैं, हे अश्व क्रान्त, रथक्रान्त तथा विष्णुक्रान्त बसुन्धरे, मृतिके मेरे द्वारा संचित मेरे पापों का आप हरण करें ॥१६॥ इस मन्त्र के द्वारा जो अपने शरीर में मिट्टी लगाता है, उसके सभी पाप क्षीण हो जाते हैं, और वह मनुष्य पवित्र हो जाता है ॥१७॥ उसके बाद वेदमंत्र पूर्वक स्नान करे । स्नान नद, नदी, पुष्करिणी अथवा तालाव में करें ॥१८॥ अथवा रखे हुए जलराशि से, घट से स्नान सभी पापों के विनाश के लिए विधिपूर्वक करे ॥१९॥ प्रातःकाल का स्नान अत्यन्त पवित्र तथा सभी पापों का नाशक होता है । जो ब्राह्मण निरन्तर प्रातःकाल स्नान करता है, वह विष्णु लोक में पूजित होता है ॥२०॥ जब तक प्रातःकाल चार घड़ी रात्रि रहती है, उस समय संध्या का जल अमृत के समान होता है ओर पितरों को प्राप्त होता है ॥२१॥ उसके बाद की दो घड़ी तक यानी एक याम (पहर) तक जो आह्निक कृत्य, किया जाता है उसका जल पितरों को मधु के तुल्य प्राप्त

अतःपरं च पानीयं यावद्विप्रहरत्रयम्। तत्परंलोहितं प्रोक्तं यावदस्तं गतो रविः ॥२४॥
चतुर्थप्रहरे स्नाने रात्रौ वा तर्पयेत्पितॄन्। तत्तोयं रक्षसामेव ग्रहणेन विना स्मृतम् ॥२५॥
पानीयं सर्वसिद्ध्यर्थं पुरैवनिर्मितं मया । रक्षार्थं तस्य तोयस्य यक्षाश्चैव धुरंधराः ॥२६॥
न प्राप्नुवंति पितरो ये चलोकांतरं गताः। दुष्प्राप्य सलिलं तेषामृते स्वान्मर्त्यवासिनः ॥२७॥
तस्माच्छिष्यैश्च पुत्रैश्च पौत्रदौहित्रकादिभिः । बंधुवर्गैस्तथाचान्यैस्तर्पणीयं पितृव्रतैः ॥२८॥

नारद उवाच

जलस्य दैवतं ब्रूहितर्पणस्य विधिं मयि । यथा जानामि देवेश तत्वतो वक्तुमर्हसि॥२९॥

ब्रह्मोवाच

जलस्य देवता विष्णुः सर्वलोकेषु गीयते। जलपूतो भवेद्यस्तु विष्णुस्तच्छंकरो भवेत् ॥३०॥
जलं गंडूषमात्रं तु पीत्वा पूतो भवेन्नरः। विशेषात्कुशसंसर्गात्पीयूषादधिकंजलम् ॥३१॥
सर्वदेवालयो दर्भो मयायं निर्मितः पुरा । कुशमूले भवेद्ब्रह्मा कुशमध्ये तु केशवः ॥३२॥
कुशाग्रे शंकरं विद्धि कुश एते प्रतिष्ठिताः। कुशहस्तः सदामेध्यः स्तोत्रं मंत्रं पठेद्यदि ॥३३॥
सर्वं शतगुणं प्रोक्तं तीर्थे साहस्र मुच्यते। कुशाः काशास्तथादूर्वा यवपत्राणि व्रीहयः॥३४॥
बल्वजाः पुडरीकाश्च कुशास्सप्त प्रकीर्तिताः। आनुपूर्व्येण मेध्याः स्युः कुशालोके प्रतिष्ठिताः॥३५॥
विना मंत्रेण यत्स्नानं सर्वं तन्निष्फलं भवेत्। अमृतात्स्वादुतामेति संस्पर्शाच्च तिलस्य च ॥३६॥
तस्माच्च तर्पयेन्नित्यं पितॄंस्तिलजलैर्बुधः। दशभिश्च तिलैस्तावत्पितॄणां प्रीतिरुत्तमा॥३७॥

होता है ॥२२॥ उसके बाद डेढ प्रहर तक संध्या का जल दुग्ध के तुल्य हो जाता हे । उसके बाद चार दण्ड का दुग्ध मिश्रित के समान जल रहता है । उसके बाद तीन प्रहर तक जल जल रहता है । उसके पश्चात् सूर्यास्त तक संध्या का जल रक्त के तुल्य हो जाता है ॥२४॥ जो व्यक्ति चौथे प्रहर में स्नान करके पितरों का तर्पण करता है उसके द्वारा किए गये तर्पण का जल राक्षसों को ही प्राप्त होता है । किन्तु ग्रहण काल में ऐसा नहीं होता है ॥२५॥ मैंने पहले ही सभी कार्यों की सिद्धि के लिए पानी को बनाया है और उसकी रक्षा करने के लिए धुरन्धर यक्षों को नियुक्त किया ॥२६॥ लोकान्तर में गये हुए पितृगण अपने से जल को नहीं प्राप्त कर पाते हैं । मर्त्यलोक वासी अपने सन्तानों के बिना पितरों को जल दुर्लभ होता है ॥२७॥ इसीलिए पितरों की पूजा करने वाले शिष्यों, पुत्रों, पौत्रों, दौहित्रों, वान्धवों तथा दूसरे संबन्धियों को तर्पण करना चाहिए ॥२८॥ **नारदजी ने कहा—** आप मुझे जल के देवताओं और उनके तर्पण की विधि को बतलायें जिससे कि हे देवेश ! मैं उन सबों को तत्त्वतः जान सकूँ ॥२९॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** सभी लोकों में जल के देवता विष्णु जाने जाते हैं जो जल से शुद्ध होता है भगवान् विष्णु उसका कल्याण करते हैं ॥३०॥ गंडूष (कुल्ला) मात्र जल पीकर मनुष्य पवित्र हो जाता है । खासकर कुश के संसर्ग से जल अमृत जैसा पवित्र हो जाता है॥३१॥ कुश सभी देवताओं का आश्रय रूप से मेरे द्वारा बनाया गया है । कुश के मूल में ब्रह्माजी का निवास होता है, मध्य में भगवान् केशव का निवास होता है ॥३२॥ कुश के अग्रभाग में शङ्करजी का निवास होता है । कुश में ये सभी देवता प्रतिष्ठित हैं । अतएव हाथ में कुश लेकर ही यदि मन्त्र अथवा स्तोत्र पढा जाता है तो वह पवित्र होता है ॥३३॥ ऐसा करने से सब कुछ किया हुआ सौ गुना हो जाता है और तीर्थों में तो हजार गुना हो जाता है । कुश, काश, दुर्वा, यवका पत्ता, धान का पत्ता, बल्वज, तथा पुण्डरीक ये सातो कुश कहे गये हैं । ये पूर्व-पूर्व के क्रम से अधिक पवित्र होते हैं ॥३४-३५॥ मन्त्र के बिना किया गया स्नान निष्फल होता है । तिल के संस्पर्श से जल अमृत

अग्निस्तंभभयाद्देवा नचेच्छन्त्यतिविस्तरम् । स्नात्वा यस्तर्पयेन्नित्यं तिलमिश्रोदकैः पितॄन् ॥३८॥
नीलषंडविमोक्षेण त्वमावास्यातिलोदकैः । वर्षासु दीपदानेन पितॄणामनृणो भवेत्॥३९॥
वत्सरैकममायां तु तर्पयेद्यस्तिलैः पितॄन् । विनायकत्वमाप्नोति सर्वदेवैः प्रपूज्यते ॥४०॥
युगाद्यासु च सर्वासु यस्तिलैस्तर्पयोत्पितॄन् । उक्तं यद्वाप्यमायां तु तस्माच्छतगुणाधिकम् ॥४१॥
अयने विषुवे चैव राकामायां तथैव च । तर्पयित्वा पितृव्यूहं स्वर्गलोके महीयते॥४२॥
तथामन्वंतराख्यायामन्यस्यां पुण्यसंस्थितौ । ग्रहणे चंद्रसूर्यस्य पुण्यतीर्थे गयादिषु ॥४३॥
तर्पयित्वा पितॄन्याति माधवस्य निकेतनम् । तस्मात्पुण्याहकं प्राप्य तर्पयेत्पितृसंचयम् ॥४४॥
तर्पणं देवतानां च पूर्वं कृत्वा समाहितः । अधिकारी भवेत्पश्चात्पितॄणां तर्पणे बुधः ॥४५॥
श्राद्धे भोजनकाले च पाणिनैकेनदापयेत् । उभाभ्यां तर्पणे दद्याद्विधिरेषसनातनः ॥४६॥
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा शुचिस्तु तर्पयेत्पितॄन् । तृप्यतामितिवाक्येन नामगोत्रेण वै पुनः ॥४७॥
अकृष्णैर्यत्तिलै र्मोहात्तर्पयेत्पितृसंचयम् । भूम्यां ददाति यदपो दाता च जलेस्थितः ॥४८॥
वृथा तद्दीयते दानं नोपतिष्ठति कस्यचित् । स्थलेस्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः ॥४९॥
नोपतिष्ठेत्पितॄणां तु सलिलं तन्निरर्थकम् । आर्द्रवासा जले यस्तु कुर्यादुदकतर्पणम् ॥५०॥
पितरस्तस्य तृप्यंति सह देवैस्सदानघ । रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः ॥५१॥
हस्तप्रक्षालने चैव पुनर्वस्त्रं तु शुध्यति । शुष्कवासाः शुचौ देशे स्थानेयत्तर्पयेत्पितॄन् ॥५२॥

से भी अधिक स्वादिष्ट हो जाता है ॥३६॥ इसीलिए तपर्ण सदा तिल मिश्रित जल से करना चाहिए। दश तिलों से पितरों की उत्तम तृप्ति होती है ॥३७॥ अग्नि स्तम्भ के भय से देवता अत्यन्त विस्तार नहीं चाहते । जो स्नान करके प्रतिदिन तिल से पितरों का तर्पण करता है ॥३८॥ पितरों के लिए नीला सांढ छोड़ने से आमावस्या के दिन तिल के जल से तर्पण करने से तथा वर्षा के दिनों में दीपदान करने से मनुष्य पितृऋण से मुक्त हो जाता है ॥३९॥ जो व्यक्ति एकवर्ष तक आमावस्या के दिन तिल से पितरों का तर्पण करता है, वह विनायकत्व को प्राप्त करके सभी देवताओं से पूजित होता है ॥४०॥ जो व्यक्ति सभी युगादि तिथियों को तिल से पितरों का तर्पण करता है, वह अमावस्या के दिन किये गये तर्पण से सौ गुना अधिक होता है ॥४१॥ अयन के अवसर पर तथा विषुव के समय तक राका आमावस्या को पितरों का तर्पण करने वाला स्वर्गलोक में पूजित होता है उसी तरह मन्वन्तर तिथि को तथा दूसरी पुण्य तिथि को सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण के समय तथा गया आदि पुण्य तीर्थों में ॥४३॥ तर्पण करके मनुष्य श्रीभगवान् के लोक में जाता है । अतएव पुण्य दिनों को पितरों का तर्पण करना चाहिए ॥४४॥ सावधानी पूर्वक देवताओं का तर्पण करके विद्वान् पुरुष पितरों के तर्पण करने का अधिकारी होता है ॥४५॥ श्राद्ध में तथा भोजनकाल में एक हाथ से देना चाहिए और तर्पण में दोनों हाथों से तर्पण करना चाहिए यही सनातन विधि हैं ॥४६॥ पवित्र होकर दक्षिणाभिमुख होकर तर्पण करना चाहिए । तर्पण में नाम एवं गोत्र के उच्चारण पूर्वक वाक्य के अन्त में तृप्यताम् कहना चाहिए ॥४७॥ अज्ञानवशात् जो उजले तिल से पितृतपर्ण किया जाता है तथा जो जल में खड़ा होकर पृथिवी पर जल गिराया जाता है ॥४८॥ वह दिया गया जलदान व्यर्थ होता है, वह किसी को नहीं मिलता है जो मनुष्य पृथिवी पर रहकर जल में जल देता है ॥४९॥ वह भी जल पितरों को नहीं मिलता है, वह निरर्थक होता है जो भिंगे कपड़े से जल में जल का तर्पण किया जाता है । हे अनघ उस जल से देवता और पितृगण तृप्त होते हैं । धोबी के द्वारा धोए गये वस्त्र को ऋषियों ने अशुद्ध बतलाया है ॥५०-५१॥ अपने हाथ से धो लेने पर वह वस्त्र शुद्ध होता

ततोदशगुणेनैव तुष्यंति पितरो ध्रुवम्। स्नानं संध्यां च पाषाणे खड्गे वा ताम्रभाजने॥५३॥
तर्पणं कुरुते यस्तु प्रत्येकं च शताधिकम्। रौप्यांगुलीयं तर्जन्यां धृत्वा यत्तर्पयेत्पितॄन्॥५४॥
सर्वं च शतसाहस्रगुणं भवति नान्यथा। तथैवानामिकायां तु धृत्वास्वर्णांगुलीं बुधः॥५५॥
तर्पयेत्पितृसंदोहं लक्षकोटिगुणं भवेत्। अंगुष्ठदेशिनीमध्ये सव्यहस्तस्यखड्गकम्॥५६॥
धृत्वानामिकयारत्नमंजलेरक्षयं फलम्। स्नानार्थमभिगच्छंतं देवाः पितृगणैः सह॥५७॥
वायुभूतानुगच्छंति तृषार्ताः सलिलार्थिनः। निराशास्ते निवर्तंते वस्त्रनिष्पीडनेन च॥५८॥
तस्मान्नपीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम्। तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे॥५९॥
स्रवंतिसर्वतीर्थानि तस्मान्न परिपीडयेत्। देवाः पिबंति शिरसि श्मश्रुतः पितरस्तथा॥६०॥
चक्षुषोरपिगंधर्वा अधस्तात्सर्वजंतवः। देवाः पितृगणाः सर्वे गंधर्वाजंतवस्तथा॥६१॥
स्नानमात्रेण तुष्यंति स्नानात्पापं न विद्यते। नित्यस्नानं च च यः कुर्यात्स नरः पुरुषोत्तमः॥६२॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो नाकलोके महीयते। स्नानं तर्पणपर्यंतं देवामहर्षयोविदुः॥६३॥
अतः परं च देवानां पूजनं कारयेद् बुधः। गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते॥६४॥
आरोग्यार्थं च सूर्यं च धर्ममोक्षाय माधवम्। शिवं च कृत्यकामार्थं सर्व कामाय चंडिकाम्॥६५॥
देवांस्तु पूजयित्वा तु वैश्वदेवबलिंचरेत्। वह्निकार्यं ततः कृत्वा यज्ञं ब्राह्मणतर्पणम्॥६६॥
देवानां सर्वसत्त्वानां पुनस्त्रिविष्टपं व्रजेत्। गतागतं स्थिरं कृत्वा कामान्मोक्षं सुखंदिकम्॥६७॥

है। सूखे वस्त्र से पवित्र स्थान में जो पितरों का तर्पण किया जाता है ॥५२॥ उससे दश गुना पितरों की तृप्ति होती है। स्नान और सन्ध्या पाषाण पर अथवा खड्ग पर या ताम्बे के पात्र में जो किया जाता है ॥५३॥ उससे सौ गुना फल होता है। तर्पण के समय चाँदी की अङ्गूठी तर्जनी अङ्गुली में धारण करके पितरों का तर्पण करना चाहिए॥५४॥ ऐसा करने से तर्पण का फल हजारों गुना होता है। उसी तरह अनामिका अङ्गुलि में सुवर्ण की अङ्गूठी धारण करके॥५५॥ विद्वान् को तर्पण करना चाहिए। ऐसा करने से तर्पण का लाख करोड़ गुना फल होता है। दाहिने हाथ के अङ्गूठे और तर्जनी अङ्गुलि के मध्य में विद्यमान स्थान को खड्ग कहते हैं ॥५६॥ अनामिका अङ्गुलि में रत्न धारण करने से अक्षय फल होता है। स्नान करने के लिए जाते समय देवता और पितृगण वायु रूप में प्यासे हुए उसके पीछे जाते हैं और वस्त्र गार लेने से वे निराश होकर लौट जाते हैं ॥५८॥ अतएव पितरों का तर्पण किए बिना वस्त्र को नहीं निचोड़े। मनुष्य के शरीर में साढे तीन करोड़ रोएँ होते हैं ॥५९॥ उन सबों से जल गिरता है अतएव उन सबों को नहीं पोछना चाहिए। शिर के जल को देवता पीते हैं, दाढी के जल को पितृगण पीते हैं ॥६०॥ नेत्रों से गिरने वाले जल को गन्धर्व पीते है और नीचे के रोओं से गिरे जल को दूसरे सभी जीव पीते हैं। देवता, पितृगण, गन्धर्व तथा दूसरे जीव ॥६१॥ केवल स्नान कर लेने से तुष्ट हो जाते हैं, अतएव स्नान कर लेने से पाप नहीं रह जाता है। जो प्रतिदिन स्नान करता है वह मनुष्य उत्तम पुरुष है ॥६२॥ सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्ग लोक में जाता है। तर्पण पर्यन्त स्नान को देवता और महर्षि जानते हैं ॥६२॥ उसके पश्चात् विद्वान को देवताओं का पूजन करना चाहिए। गणेशजी की पूजा करने वाले को कोई विघ्न नहीं होता है ॥६४॥ अरोग्य की प्राप्ति के लिए सूर्य की पूजा करे, धर्म और मोक्ष की प्राप्ति के लिए भगवान् माधव की पूजा करे। शिवजी की पूजा कृत्य काम के लिए करे और सभी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए चण्डिका की पूजा करे ॥६५॥ देवताओं की पूजा करके बलि वैश्वदेव करे। उसके बाद अग्निहोत्र करके यज्ञ तथा ब्राह्मणों को तृप्त करे ॥६६-६७॥ देवताओं और सभी जीवों को तृप्त

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नित्यं कर्माणि कारयेत् ।

नारद उवाच

किमर्थं च जलं तात देवाः पितृगणैः सह ॥६८॥
न प्राप्नुवंति सर्वज्ञ लभंते मानवा यथा ।

ब्रह्मोवाच

पुरा सृष्टं मया तोयं सर्वदेवमयामृतम् ॥६९॥
तस्यैव रक्षणार्थं च रक्षा यक्षा धनुर्धराः । घ्नंति ते पितरं देवमस्मद्वाक्यान्न मानुषम् ॥७०॥
पशवः पक्षिणः कीटा मर्त्यलोके व्यवस्थिताः । मर्त्यजाताश्च देवा ये तथैव मानुषा ध्रुवम्॥७१॥
तर्पयित्वा गुरुं नित्यं सुरलोके प्रतिष्ठिताः । अस्नायी च मलं भुंक्ते अजपी पूयशोणितम् ॥७२॥
अकृत्वा तर्पणं नित्यं पितृहा चोपजायते । ब्रह्महत्या समं पापं देवानामप्यपूजने ॥७३॥
सन्ध्याकृत्यमकृत्वा च सूर्यंहंति च पापकृत् ।

नारद उवाच

ब्राह्मणस्य सदाचारक्रमं ब्रूहि च कर्मणाम् ॥७४॥
इतरेषां च वर्णानां प्रवृत्तमखिलं वद ।

ब्रह्मोवाच

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते सुखम् ॥७५॥
आचारात्स्वर्गमोक्षं च आचारो हंत्यलक्षणम् । अनाचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ॥७६॥
दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेव च । नरके नियतं वासो ह्यनाचारान्नरस्य च ॥७७॥
आचाराच्च परं लोकमाचारं शृणु तत्त्वतः । गोमयेन गृहे नित्यं प्रकुर्यादुपलेपनम् ॥७८॥

करने वाला स्वर्ग लोक जाता है । गमनागमन, काम, मोक्ष तथा सुख आदि को स्थिर करके वह स्वर्ग जाता है॥६७॥ अतएव प्रयास पूर्वक नित्य कर्मों को करना चाहिए । **नारदजी ने कहा—** हे सर्वज्ञ ! मनुष्यों के समान देवता तथा पितृगण अपने से जल को क्यों नहीं प्राप्त करते हैं **ब्रह्माजी ने कहा—** सृष्टि के प्रारम्भ में मैने सर्वदेवमय अमृत जल की रचना की ॥६९॥ उसकी रक्षा के लिए धनुर्धारी यक्षों एवं राक्षसों को मैंने नियुक्त किया । मेरी आज्ञा के अनुसार देवता और पितरों को वे मारते हैं, किन्तु मनुष्यों को नहीं ॥७०॥ पशु, पक्षी, कीट ये मर्त्यलोक में रहने वाले हैं। जो देवता संसार में उत्पन्न होकर देवता हो जाते हैं वे भी मनुष्य ॥७१॥ उन गुरुजनों का नित्य तर्पण करके देवलोक में प्रतिष्ठित होते हैं । स्नान नहीं करने वाला मल खाता है, विना जप किए खाने वाला रक्त खाता है॥७२॥ प्रतिदिन तर्पण नहीं करने वाला पितृघाती होता है । देवताओं की पूजा नहीं करने से ब्रह्महत्या के समान पाप होता है॥७३॥ संध्या नहीं करने वाला पापी सूर्य का हनन करता है । **नारदजी ने कहा—** आप ब्राह्मण के सदाचार को क्रमशः बतलाइये ॥७४॥ दूसरे वर्णों के भी कर्मों का आप मुझे बतलायें । **ब्रह्माजी ने कहा—** आचार से आयु की प्राप्ति होती है तथा आचार से सुख की प्राप्ति होती है ॥७५॥ आचार से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है, आचार का पालन करने से सभी दोष विनष्ट हो जाते हैं । आचार का पालन नहीं करने वाले पुरुष की लोक में निन्दा होती है ॥७६॥ वह सदा दुःखी रहता है, रोगी होता है तथा वह अल्पायु हो जाता है । अनाचार के कारण मनुष्य का निश्चित रूप से नरक में वास होता है ॥७७॥ आचार से परलोक की प्राप्ति होती है, अतएव तुम आचार का स्वरूप

प्रक्षालयेत्ततःपीठं काष्ठं पात्रं शिलातलम् । भस्मना कांस्यपात्रं तु ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥७९॥
शिलापात्रं तु तैलेन फालं गो वालकेन तु । स्वर्णरौप्यादिपात्रं तु जलमात्रेण शुध्यति ॥८०॥
अग्निना लोहपात्रं तु पाकप्रक्षालनेन तु । खननाद्दाहनाच्चैव उपलेपनधावनात् ॥८१॥
पर्जन्यवर्षणाच्चैव भूरमेध्या विशुध्यति । तैजस्सानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥८२॥
भस्मभिर्मृत्तिकाभिश्च शुद्धिरुक्ता मया पुरा। शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमंडलुः ॥८३॥
आत्मनः कथिताश्शुद्धा न परेषां कदाचन । नभुंजीतैक वस्त्रेण नस्नायादेकवाससा ॥८४॥
नधारयेत्परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन। संस्कारं केशदंतानां प्रातरेव समाचरेत् ॥८५॥
गुरूणांच नमस्कारं नित्यमेव समाचरेत्। हस्तपादे मुखे चैव पंचार्द्रो भोजनं चरेत् ॥८६॥
पंचार्द्रकस्तु भुंजानः शतं वर्षाणि जीवति । देवतानां गुरोराज्ञां स्नातकाचार्ययोरपि ॥८७॥
नाक्रमेत्कामतश्छायां विप्रस्य दीक्षितस्य च । गोगणं दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ॥८८॥
प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत प्रख्यातांश्च वनस्पतीन् । गोविप्रावग्निविप्रौ च विप्रौद्वौ दंपती तथा ॥८९॥
तयोर्मध्ये न गच्छेत स्वर्गस्थोपि पतेद् ध्रुवम् । उच्छिष्टो नस्पृशेदग्निं ब्राह्मणं दैवतं गुरुम् ॥९०॥
स्वशीर्षं पुष्पवृक्षं च यज्ञवृक्षमधार्मिकम्। त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन ॥९१॥
सूर्याचंद्रमसावेव नक्षत्राणि च सर्वशः । नेक्षेद्विप्रं गुरुं देवं राजानं यतिनां वरम् ॥९२॥
योगिनं देवकर्माणं धर्माणां कथकं द्विजम् । नदीनां च प्रतीरेच पत्युश्च सरितां तथा ॥९३॥

सुनो । प्रतिदिन गोबर से घर को पोतना चाहिए ॥७८॥ उसके वाद काठ की चौकी को धोए, पात्रों को तथा शिला हो तो उसको भी धोए । कांसे के पात्र की भस्म से और ताम्बे के पात्र की खटाई से शुद्धि होती है । पत्थर का पात्र तेल से शुद्ध होता है, फाल की शुद्धि गोबाल से होती है । सोने और चाँदी के पात्र की शुद्धि केवल जल से होती है ॥७९-८०॥ लोहे के पात्र की शुद्धि आग से होती है, पाक की शुद्धि धोने से होती है । खनन करने से तथा जलाने से भी होती है । उपलेपन उबटन आदि की शुद्धि धो लेने से होती है ॥८१॥ अपवित्र भूमि की शुद्धि वर्षा से होती है । मणि आदि तैजस पदार्थों तथा समस्त पत्थर के पदार्थों की शुद्धि भस्म तथा मिट्टी से होती है; इस वात को मैं पहले कह चुका हूँ । शय्या, पत्नी, बच्चा, वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा कमण्डलु ॥८२-८३॥ ये सभी अपने ही शुद्ध होते हैं दूसरे के नहीं । एक वस्त्र पहन कर भोजन न करे और न तो एक वस्त्र पहन कर स्नान करे ॥८४॥ दूसरे के स्नान के वस्त्र को नहीं धारण करना चाहिए । केश और दाँतों की सफाई प्रातःकाल ही करनी चाहिए॥८५॥ गुरुजनों को प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए । दोनो हाथ दोनो पैर तथा मुख धोकर ही भोजन करना चाहिए ॥८६॥ इन पाँचों को भिंगोकर भोजन करने वाला सौ वर्ष तक जीवित रहता है । देवताओं की तथा गुरु की आज्ञा का तथा स्नातक तथा आचार्य की छाया को जानकर न लाँघे । यज्ञ में दीक्षित ब्राह्मण की भी छाया को न लाँघे । गो समूह, देवता, ब्राह्मण, घी, मधु (शहद) तथा चौरास्ता ॥८७-८८॥ इनको दाहिने करके चलना चाहिए प्रख्यात वनस्पतियों को भी गौ, दो ब्राह्मण, अग्नि और विप्र, दो दम्पती, इन सबों के बीच में नहीं जाना चाहिए । इन सबों के बीच में जाने वाले स्वर्गीय व्यक्ति का भी पतन हो जाता है । जूठे मुँह अग्नि, ब्राह्मण, देवता और गुरु का स्पर्श न करे॥८९-९०॥ जूठे मुँह अपने शिर के पुष्प, यज्ञीयवृक्ष तथा अधार्मिक इन तीनों तेजों को न देखे ॥९१॥ सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ब्राह्मण, गौ, देवता, राजा, संन्यासी, योगी, देवता का कार्य करने वाले को तथा धर्मोपदेश करने वालों को जूठे मुँह न देखे । नदी तथा समुद्र के तट में, यज्ञीय वृक्ष की जड़ में, उद्यान में, पुष्प वाटिका में, जीवन

यज्ञवृक्षस्य मूले च उद्याने पुष्पवाटके । शरीरस्य मलत्यागं न कुर्याज्जीवने तथा ॥९४॥
विप्रस्यायतने गोष्ठे रम्ये राजपथेषु च । न क्षौरं कारयेद्धीरः कुजस्याह्नि कदाचन ॥९५॥
मलं न धारयेद्दंते नखं न वदने क्षिपेत् । तैलाभ्यंगं न कुर्वीत वासरे रविभौमयोः ॥९६॥
स्वगात्रासनयोर्वाद्यं गुरोरेकासनादनम् । न हरेच्छोत्रियस्वं च देवस्यापि गुरोरपि ॥९७॥
राज्ञस्तपस्विनां चैव पंगोरंधस्य योषितः । पंथा देयोब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ॥९८॥
रोगिणे भारतप्ताय गुर्विण्यै दुर्बलाय च । विवादं न च कुर्वीत नृपविप्रचिकित्सकैः ॥९९॥
ब्राह्मणं गुरुपत्नीं च दूरतःपरिवर्जयेत् । पतितं कुष्ठसंयुक्तं चांडालं च गवाशिनम् ॥१००॥
निर्धूतं ज्ञानहीनं च दूरतःपरिवर्जयेत् । स्त्रियं दुष्टां च दुर्वृत्तामपवादप्रदायिनीम् ॥१०१॥
कुकर्मकारिणीं दुष्टां सदैव कलहप्रियाम् । प्रमत्तामधिकांगीञ्च निर्लज्जां ब्रह्मचारिणीम् ॥१०२॥
व्ययशीलामनाचारां दूरतःपरिवर्जयेत् । मलिनां नाभिवंदेत गुरुपत्नीं कदाचन ॥१०३॥
न स्पृशेत्तां च मेधावीस्पृष्ट्वास्नानेन शुद्ध्यति । स तया सह केलिं च वर्जयेच्च सदैव हि ॥१०४॥
शृणुयाच्च वचो नूनं नपश्येच्च गुरोःस्त्रियम् । वधूं पुत्रस्य भ्रातुश्च स्वपुत्रीं युवतीं ध्रुवम् ॥१०५॥
अन्यां च गुरुपत्नीं च नेक्षेत्स्पर्शं न कारयेत् । ताभिःसह कथालापं तथाभ्रूभंगदर्शनम् ॥१०६॥
कलहं निस्त्रपां वाणीं सदैवपरिवर्जयेत् । नदद्याच्च सदापादं तुषांगारास्थिभस्मसु ॥१०७॥
कार्पासास्थिषु निर्माल्ये चितिकाष्ठे चितौ गुरौ । शुष्कं मीनं न भक्षेत पूतिगंधिममेध्यकम् ॥१०८॥
विघसं चान्यदुच्छिष्टं पाकार्थं च परस्य च । न स्थातव्यं न गंतव्यं क्षणमप्यसता सह ॥१०९॥

में कभी अपने शरीर के मल का त्याग नहीं करना चाहिए ॥९२-९४॥ ज्ञानी व्यक्ति कभी भी ब्राह्मण के घर में, गोशाला में, मनोहर राजमार्ग पर तथा भौमवार को क्षौर न कराये ॥९५॥ दाँत को गन्दा न रखे, नख को मुँह में नही डाले, रविवार एवं भौमवार को शरीर में कभी तेल न लगाये ॥९६॥ अपने शरीर और आसन पर ताल न दे, गुरु के आसन पर न बैठे, श्रोत्रिय ब्राह्मण, देवता और बालक की सम्पत्ति के न हड़पे ॥९७॥ राजा, तपस्वी, पंगु, अंधा और स्त्री इन सबों को रास्ता दे देना चाहिए । ब्राह्मण, गौ और राजाओं को भी मार्ग दे दे ॥९८॥ रोगी, भारवाहक, गर्भिणी और दुर्बल को भी रास्ता दे दे । राजा, ब्राह्मण और चिकित्सक से विवाद न करे ॥९९॥ ब्राह्मण और गुरु की पत्नी से दूर रहे । पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोमांस भक्षी, धूर्त, और अज्ञानी का दूर से ही परित्याग कर दे । दुष्टा, दुराचारिणी, निन्दा करने वाली स्त्री ॥१००-१०१॥ कुकर्म कराने वाली, दुष्टा, सदा कलह करने वाली, प्रमत्ता, अधिकाङ्गी, निर्लज्जा, बाहर घूमने वाली, अपव्य करने वाली और अनाचारिणी, स्त्री का भी दूर से ही परित्याग कर दे । मलिन (रजस्वला) गुरु पत्नी को कभी प्रणाम न करे ॥१०२-१०३॥ मेधावी उसका कभी स्पर्श न करे, स्पर्श हो जाने पर स्नान करे । ऐसी स्त्री के साथ हँसी मजाक कभी न करे ॥१०४॥ गुरु की पत्नो की बातों को सुन ले किन्तु गुरु की पत्नी को कभी देखे नहीं । पुत्रवधू, भाई की पत्नी, अपनी युवती पुत्री ॥१०५॥ दूसरी युवतियों को तथा गुरुपत्नी को न तो देखे और न स्पर्श करे । उन सबों के साथ हँसी मजाक तथा इशारा इत्यादि न करे ॥१०६॥ कलह और निर्लज्जता की बातों का सदा वर्जन करे । धान की भुस्सी, अंगार, हड्डी तथा भस्म पर कभी पैर न रखे ॥१०७॥ कपास, हड्डी, देवताओं पर चढी हुयी वस्तुओं, चिता की लकड़ी, चिता तथा गुरु पर कभी पैर न रखे । सूखी मछली को न खाये, वासी, जिससे गंध आ रही हो तथा अमेध्य वस्तुओं को न खाये॥१०८॥ अपवित्र, दूसरे का जूठा तथा रसोई बनाने के लिए रखी हुयी दूसरे की वस्तु को न खाय । दुष्टों के

न तिष्ठेच्च क्षणं धीरो दीपच्छाये कलिद्रुमे। अस्पृश्यैस्सह चालापं पतितैः कुपितैः सह ॥११०॥
न कुर्यात् क्षणमात्रं तु कृत्वा गच्छेच्च रौरवम्। कनिष्ठं नाभिवंदेत पितृव्यं मातुलं तथा ॥१११॥
उत्थाय चासनं दद्यात्कृतांजल्यग्रतःस्थितः। तैलाभ्यक्तं तथोच्छिष्टमार्द्रवस्त्रं च रोगिणम् ॥११२॥
पारावारगतोद्विग्नं वहंतं नाभिवादयेत्। यज्ञस्यांतर्गतं नष्टं क्रीडंतं स्त्रीजनैः सह ॥११३॥
बालक्रीडागतं चापि पुष्पयुक्तं कुशैर्युतम्। शिरः प्रावृत्य कर्णौ वा अप्सु मुक्तशिखोपि वा॥११४॥
अकृत्वा पादयोः पूजां नाचामेद्दक्षिणामुखः। उपवीतविहीनश्च नग्नको मुक्तकच्छकः ॥११५॥
एकवस्त्रपिधानश्च आचांतो नैव शुध्यति। मध्यमाभि र्मुखं पूर्वं तिसृभिः समुपस्पृशेत् ॥११६॥
अंगुष्ठदेशिनीभ्यां च नासां च तदनंतरम्। अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशेत् ॥११७॥
कनिष्ठांगुष्ठतश्श्रोत्रे नाभिमंगुष्ठकेन तु। तलेनहृदयं न्यस्य सर्वाभिमस्तकोपरि ॥११८॥
बाहू चाग्रेण संस्पृश्य ततःशुद्धोभवेन्नरः। अनेनाचमनं कृत्वा मानवः प्रयतो भवेत् ॥११९॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स्वर्गं चाक्षयमश्नुते। प्राणास्त्रिपुटशृंग्याच व्यानोपानश्चमुद्रया ॥१२०॥
समानस्तु समस्ताभि रुदानस्तर्जनींविना। नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥१२१॥
उपप्रीणन्तु ते प्रीता येभ्यो भूमौ प्रदीयते। शयनं चार्द्रपादेन शुष्कपादेन भोजनम् ॥१२२॥
नांधकारे च शयनं भोजनं नैव कारयेत्। पश्चिमे दक्षिणे चैव नकुर्याद्दंतधावनम् ॥१२३॥
उत्तरे पश्चिमे चैव न स्वपेद्धि कदाचन। स्वप्नादायुः क्षयं याति ब्रह्महा पुरुषो भवेत् ॥१२४॥

साथ न क्षण भर भी ठहरे और न उनके साथ चले ॥१०९॥ ज्ञानी पुरुष कभी दीपक की छाया में तथा बहेड़े के वृक्ष के नीचे न रुके। वह अछूतों, पतितों, क्रोधियों के साथ ॥११०॥ क्षणभर भी बातें न करे, इनके साथ बातें करने वाला रौरव नरक में जाता है। अपने से छोटे उम्र वाले चाचा और मामा को प्रणाम न करे ॥१११॥ खड़ा होकर तथा उनके सामने हाथ जोड़कर उन्हें आसन प्रदान कर दे। तेल लगाये हुए, जूठे मुह, गीले वस्त्र पहने और रोगी, समुद्र में गये हुए, उद्विग्न तथा बोझ ढोने वाले को प्रणाम न करे। यज्ञ कार्य करने वाले, स्त्रियों के साथ क्रीडा करने वाले ॥११२-११३॥ बालकों से क्रीडा करने वाले, फूल तथा कुश लिए हुए ऐसे व्यक्ति को प्रणाम न करे। मस्तक अथवा कानो को ढँककर, जल में खड़ा होकर, शिखा खोलकर, पैरों को बिना धोए हुए तथा दक्षिणाभिख आचमन न करे। यज्ञोपवित से रहित, नङ्गा होकर अथवा पछोटा खोले हुए ॥११४-११५॥ एक वस्त्र को धारण करके आचमन करने वाला शुद्ध नहीं होता है। पहले तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन तीन अङ्गुलियों से मुख का स्पर्श करे ॥११६॥ उसके बाद अङ्गूठे एवं तर्जनी से नासिका का स्पर्श करे। फिर अङ्गुठे से दोनों कानों का स्पर्श करे और नाभि का अङ्गूठे से स्पर्श करे। हथेली से हृदय का न्यास करके पाँचो अङ्गुलियों से मस्तक पर न्यास करे॥११८॥ दोनों भुजाओं को अङ्गुलियों के अग्र भाग से स्पर्श करके मनुष्य शुद्ध हो जाता है। इसके द्वारा आचमन करके मनुष्य सावधान हो जाय ॥११९॥ ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है। प्राण का त्रिपुट शृंगी मुद्रा से प्राण और व्यान तथा अपानका भी उसी मुद्रा से ॥१२०॥ समान का सभी अङ्गुलियों से तथा उदान का बिना तर्जनी अङ्गुलि के ही स्पर्श करे। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त एवं धनंजय ॥१२१॥ ये सभी उससे प्रसन्न होएँ जिन सबों को भूमि पर अन्न दिया जाता है। भींगे पैर से सोना तथा सूखे पैर से भोजन करना निषिद्ध है ॥१२२॥ अन्धकार में न तो सोये और न भोजन करे। पश्चिमाभिमुख तथा दक्षिणाभिमुख बैठकर दतौन न करे ॥१२३॥ उत्तर और पश्चिम की ओर शिर करके कभी सोना नहीं चाहिए। उन दोनों ओर शिर करके सोने से

नकुर्वीत ततः स्वप्नं शस्तंच पूर्वदक्षिणम् । आयुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ॥१२५॥
श्रियंप्रत्यङ्मुखोभुंक्ते यशोभुङ्क्त उदङ्मुखः । प्राच्यां नरो लभेदायु र्याम्यांप्रेतत्वमश्नुते ॥१२६॥
वारुणे च भवेद्रोगी आयुर्वित्तं तथोत्तरे । देवानामेकभुक्तं तु द्विभुक्तंस्यात्नरस्य च ॥१२७॥
त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थं कौणपस्य तु । निरामिषं हविर्देवा मत्स्यमांसादिमानुषाः ॥१२८॥

पूतिपर्युषितं दुष्टमन्येभुंजंत्यनावृताः ।
स्वर्गस्थितानामिहजीवलोके चत्वारि तेषां हृदये च संति ॥१२९॥
दानंप्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ।
कार्पण्यवृत्तिःस्वजनेषु निंदा कुचेलता नीचजनेषु भक्तिः ॥१३०॥
अतीवरोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य ।
नवनीतोपमा वाणी करुणाकोमलं मनः ॥१३१॥

धर्मबीजप्रसूतानामेतत्प्रत्यक्षलक्षणम् । दयादरिद्र्यहृदयं वचःक्रकचकर्कशम् ॥१३२॥
पापबीजप्रसूतानामेतत्प्रत्यक्षलक्षणम् । श्रावयेच्छृणुयाद्वापि सदाचारादिकं नरः ॥१३३॥
आचारादेः फलं लब्ध्वा पापात्पूतोऽच्युतो दिवि ॥१३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे सदाचारवर्णनं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥४९॥

आयु क्षीण होती है तथा मनुष्य ब्रह्मघाती होता है ॥१२४॥ अतएव पूर्व और दक्षिण की ओर ही शिर करके सोना चाहिए । पूर्व की ओर मुख करके भोजन करने से आयु बढती है । दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करने से यश बढता है ॥१२५॥ पश्चिम की ओर मुख करके भोजन करने से लक्ष्मी बढती हैं और उत्तर की ओर मुख करके भोजन करने से यश बढता है । पूर्व की ओर मुख करके भोजन करने से आयु बढती है, दक्षिण की ओर मुख करके खाने से मृत्यु की प्राप्ति होती है ॥१२६॥ पश्चिम की ओर मुख करके खाने से रोग बढता है और उत्तर की ओर मुख करके भोजन करने से आयु और धन बढता है । एक बार भोजन करना देव भोजन है, दो बार भोजन मनुष्य करते हैं ॥१२७॥ तीन बार भोजन प्रेतों और दैत्यों का होता है और चार बार भोजन राक्षसों का होता है । मांस रहित देवताओं का भोजन है । मत्स्य एवं मांस का भोजन मानुष भोजन है ॥१२८॥ वासी और पूति (लस लसाहट जिसमें आ गया हो) ऐसा भोजन नग्नों का होता है । स्वर्ग से इस संसार में आये हुओं के चार लक्षण होते हैं प्रशस्त दान देना, मधुर वाणी बोलना, देवताओं की पूजा करना और ब्राह्मणों को तृप्त करना । कृपणता, अपने लोगों की निन्दा करना, फटे चिथड़े कपड़ा पहनना और नीच जनों की सेवा करना ॥१३०॥ अत्यन्त क्रोध करना, कठोर वाणी बोलना, ये सभी चिह्न नरक से आये हुए मनुष्यों के हैं । नवनीत के समान कोमल वाणी तथा करुणापूर्ण कोमल मन ॥१३१॥ ये सभी धर्म बीज से उत्पन्न मनुष्यों के प्रत्यक्ष लक्षण हैं । इसी तरह हृदय का दयाहीन होना अत्यन्त कर्कश वाणी ॥१३२॥ यह पाप बीज से उत्पन्न जीवों का लक्षण है । मनुष्य को इस सदाचार के लक्षण को सुनना चाहिए तथा दूसरों को सुनाना चाहिए ॥१३३॥ ऐसा करने वाला मनुष्य आचार आदि के फल को प्राप्त करके स्वर्गलोक में जाता है ॥१३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के सदाचार वर्णन नामक उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४९॥
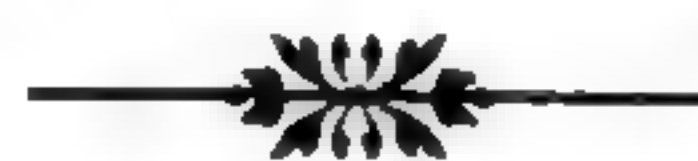
पचासवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

यत्पुण्यमधिकं लोके सर्वदा सर्वसंमतम्। तद्वदस्वेच्छया विप्र यत्कृतं पूर्वपूर्वकैः ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

एकदा तु द्विजाः सर्वे व्यासशिष्या स्सहादरात्। व्यासं प्रणम्यपप्रच्छुधर्मं मां च यथाभवान् ॥२॥

द्विजा ऊचुः

पुण्यात्पुण्यतमं लोके सर्वधर्मेषु चोत्तमम् । किं कृत्वा मानवा स्वर्गं भुंजते चाक्षयं वद ॥३॥
लभ्यं चाकष्टकं शुद्धं वर्णानां मर्त्यवासिनम्। गुरुणां च लघूनां च साध्यमेकक्रतुं वद ॥४॥
यद्यत्कृत्वा च देवानां पूज्यो नाके भवेन्नरः। तत्तद्वद च नो ब्रह्मन् प्रासादी भव धर्मतः ॥५॥

व्यास उवाच

पंचाख्यानं वदष्यिामि श्रृणुध्वं तत्र पूर्वतः । पंचानामेककं कृत्वा विंदेन्मोक्षं दिवं यशः ॥६॥
पित्रोरर्चाऽथपत्युश्च साम्यं सर्वजनेषु च। मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेते पंचमहामखाः ॥७॥
प्राक्पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः । न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि ॥८॥
पिताधर्मः पितास्वर्गः पिता हि परमंतपः। पितरिप्रीतिमापन्ने प्रीयंते सर्वदेवताः ॥९॥
पितरोयस्यतृप्यंति सेवया च गुणेन च। तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते ॥१०॥
सर्व तीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता। मातरं पितरं चैव यस्तुकुर्यात्प्रदक्षिणम्॥११॥

पितृसेवा की प्रशंसा, मूकाख्यान, पिता के अनदर से होने वाले पापों का वर्णन, पतिव्रता का लक्षण, मित्र से द्रोह न करने की प्रशंसा, पुत्र के कर्तव्य का निरूपण, पिता की पूजा करने का माहात्म्य, चूड़ामणि योग का वर्णन, श्राद्ध की प्रशंसा और श्राद्ध करने में असमर्थ के कर्तव्य का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! जो सबसे अधिक पुण्यप्रद हो, सदा सबके अनुकूल हो, हे विप्र ! उसको अपनी इच्छानुसार कहें, जिसको पूर्वपुरुषों ने किया हो ? **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** एकबार सभी ब्राह्मण जो व्यासजी के शिष्य थे, उन सबों ने आदर पूर्वक व्यासजी को प्रणाम करके उनसे इसी प्रकार से धर्म के विषय में पूछे जैसे आपने मुझसे पूछा है ॥२॥ **ब्राह्मण ने कहा—** लोक में सर्वाधिक पुण्यमय कौन सा कर्म करके सभी मनुष्य अक्षय स्वर्ग का भोग करते हैं ?॥३॥ जो शुद्ध धर्म विना कष्ट के ही सभी लोगों के लिए सुलभ हो आप उस यज्ञ को बतलाइये ॥४॥ जिन कर्मों को करके मनुष्य देवताओं का पूज्य हो जाता है, हे ब्रह्मन् ! आप कृपा करके उसे हमलोगों को बतलाइये ॥५॥ **व्यासजी ने कहा—** मैं पाँच आख्यानों को बतलाऊँगा उनमें से किसी एक का भी अनुष्ठान करके मनुष्य, स्वर्ग, मोक्ष और यश को प्राप्त कर लेता है ॥६॥ माता-पिता की सेवा, पति की सेवा, सभी जीवों के प्रति समता की भावना, मित्र से द्रोह न करना तथा भगवान् विष्णु की भक्ति ये पाञ्चो महायज्ञ हैं ॥७॥ सर्वप्रथम माता-पिता की सेवा करके हे विप्रों ! मनुष्य जिस धर्म को प्राप्त कर लेता है उसकी प्राप्ति सैकड़ो यज्ञों तीर्थयात्रओं से नहीं हो सकती है ॥८॥ पिता ही धर्म, स्वर्ग और सर्वश्रेष्ठ तप हैं, पिता के प्रसन्न हो जाने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं । जिसकी सेवा तथा गुण के द्वारा माता-पिता प्रसन्न हो जाते हैं, उसको प्रतिदिन गङ्गा स्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥९-१०॥ माता सभी तीर्थ स्वरूप होती है और पिता सर्व देवमय होते हैं, अतएव

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा। जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः॥१२॥
निपतंति पृथिव्यां च सोऽक्षयंलभतेदिवम् । तयोश्चरणयोर्यावद्रजश्चिह्नानि मस्तके ॥१३॥
प्रतीके च विलग्नानि तावत्पूतः सुतस्तयोः । पादारविंदसलिलं यःपित्रोः पिबते सुतः ॥१४॥
तस्य पापक्षयं याति जन्मकोटिशतार्जितम् । धन्योऽसौ मानवो लोके पूतोऽसौ सर्वकल्मषात्॥१५॥
विनायकत्वमाप्नोति जन्मनैकेन मानवः। पितरौ लंघयेद्यस्तु वचोभिः पुरुषाधमः ॥१६॥
निरये च वसेत्तावद्यावदाभूत संप्लवम् । पित्रोरनर्चनं कृत्वा भुंक्ते यस्तु सुताधमः ॥१७॥
क्रिमिकूपेऽथ नरके कल्पांतमुपतिष्ठति । रोगिणं चापि वृद्धं च पितरं वृत्तिकर्शितम् ॥१८॥
विकलं नेत्रकर्णाभ्यां त्यक्त्वा गच्छेच्च रौरवम् । अंत्यजातिषु म्लेच्छेषु चांडालेष्वपि जायते ॥१९॥
पित्रोरपोषणं कृत्वा सर्वपुण्यक्षयोभवेत् । नाराध्यपितरौ पुत्रस्तीर्थदेवान्भजन्नपि ॥२०॥
तयोर्नफलमाप्नोति कीटवद्रमते महीम् । कथयामि पुरावृत्तं विप्राः श्रृणुत यत्नतः ॥२१॥
यं श्रुत्वा न पुनर्मोहं प्रयास्यथ पुनर्भुवि । पुरासीच्च द्विजः कश्चिन्नरोत्तम इति स्मृतः ॥२२॥
स्वपितरावनादृत्य गतोऽसौ तीर्थसेवया। ततः सर्वाणि तीर्थानि गच्छतो ब्राह्मणस्य च ॥२३॥
आकाशेस्नानचेलानि प्रशुष्यंति दिने दिने । अहंकारोऽविशत्तस्य मानसे ब्राह्मणस्य च ॥२४॥
मत्समोनास्ति वै कश्चित्पुण्यकर्मा महायशाः । इत्युक्ते चानने तस्य अ[illegible]दच्च बकस्तदा ॥२५॥
क्रोधाच्चैवेरितस्तस्य स शशाप द्विजो बकम् । पपात च बकः पृथ्व्यां सभस्मीभूतविग्रहः ॥२६॥

माता और पिता की प्रतिदिन प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥११॥ जो ऐसा करता है उसको सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का फल प्राप्त होता है । जो पृथिवी पर घुटना टेककर माता-पिता को शिर झुकाकर प्रणाम करता है ऐसा करने वाला व्यक्ति अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है । माता-पिता के चरणों की धूलि जब तक मस्तक में लगी रहती है॥१२-१३॥ तब तक वह पुत्र शुद्ध रहता है । जो माता-पिता के चरणोदक को प्रतिदिन पीता है ॥१४॥ उसके करोड़ों जन्मों में अर्जित पाप विनष्ट हो जाते हैं । वह मनुष्य संसार में धन्य हो जाता है, तथा सभी पापों से पवित्र हो जाता है ॥१५॥ वह मनुष्य एक ही जन्म में विनायक का पद प्राप्त कर लेता है । जो अधम पुरुष माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है ॥१६॥ वह प्रलय काल पर्यन्त नरक में निवास करता है । जो अधम पुत्र माता-पिता की पूजा किये बिना खा लेता है ॥१७॥ वह क्रिमिकूप नामक नरक में कल्प के अन्त पर्यन्त निवास करता है । रोगी, तथा वृत्तिविहीन माता-पिता को ॥१८॥ तथा अन्धे और बहरे माता-पिता को छोड़कर मनुष्य रौरव नामक नरक में जाता है और उसका जन्म शूद्र जातियों में, म्लच्छों में तथा चाण्डाल जाति में होता है ॥१९॥ माता-पिता का पोषण नहीं करने पर सभी पुण्यों का नाश हो जाता है । माता-पिता की सेवा न करके तीर्थ और देवताओं की आराधना करके भी मनुष्य ॥२०॥ उन सबों का फल नहीं प्राप्त करता है, वह पृथिवी पर कीड़ों की तरह भ्रमण मात्र करता है । हे ब्राह्मणों ! इस विषय में मैं एक पुराना इतिहास बतलाता हूँ, उसे तुमलोग सुनो । उसको सुनकर आपलोगों को संसार में फिर मोह नहीं होगा । प्राचीन काल में एक नरोत्तम नामक ब्राह्मण था ॥२१-२२॥ वह अपने माता-पिता का अनादर करके तीर्थाटन में चला गया । उसके बाद सभी तीर्थों में जाने वाले उस ब्राह्मण के ॥२३॥ स्नान किए हुए वस्त्र प्रतिदिन आकाश में सुखते थे । उस ब्राह्मण के मन में अहङ्कार ने प्रवेश किया ॥२४॥ वह सोचता था कि मेरे समान कोई पुण्य करने वाला महायशस्वी नहीं है । इसतरह से कहते समय ही एक बगले ने उसके मुख पर विट् कर दिया ॥२५॥ इससे ब्राह्मण को क्रोध आ गया और उसने बगले को शाप दे दिया । उसके कारण वह

भीर्द्विजेंद्रं महामोहः प्राविशच्चांत कर्मणि। ततः पापाच्च विप्रस्य चेलं खं च न गच्छति॥२७॥
विषादमगमत्सद्यस्ततः खे तमुवाच ह।

देववाण्यु वाच

गच्छबाडवचांडालं मूकं परम धार्मिकम् ॥२८॥
तत्र धर्मं च जानीषे क्षेमं ते तद्वचो भवेत्।

व्यास उवाच

खाच्चतद्वचनं श्रुत्वा गतोऽसौ मूकमंदिरम् ॥२९॥
शुश्रूषन्तं च पितरौ सर्वारंभान् ददर्श सः। ददतं शीतकाले च सम्यगुष्णं जलं तयोः ॥३०॥
तैलतापनतांबूलं तथा तूलवतीं पटीम्। नित्याशनं च मिष्टान्नं दुग्धखंडं तथैव च ॥३१॥
दापयंतं वसंते च मधुमालां सुगंधिकाम्। अन्यानि यानि भोग्यानि कृत्यानि विविधानि च॥३२॥
उष्णे चावीजयत्सोपि नित्यं च पितरावपि। ततस्तयोः प्रचर्यां च कृत्वा भुक्तेथ सर्वदा ॥३३॥
श्रमस्य वारणं कुर्यात्संतापस्य तथैव च। एभिः पुण्यैः स्थितो विष्णुस्तस्य गेहोदरे चिरम्॥३४॥
अंतरिक्षे च क्रीडंतमाधारस्तंभवर्जिते। तस्यापि भवने नित्यं स्थितं त्रिभुवनेश्वरम्॥३५॥
विप्ररूपधरं कांतं नान्यैर्भूतं च सत्परम्। तेजोमयं महासत्वं शोभयंतं च मंदिरम्॥३६॥
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो विप्रः प्रोवाच मूककम्।

विप्र उवाच

आसन्नं च ममागच्छ त्वयैवेच्छामि शाश्वतम् ॥३७॥
हितं मे सर्वलोकानां तत्वतो वक्तुमर्हसि।

बगला भस्म होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२६॥ उसके कारण उस द्विजेन्द्र के भीतर महामोह ने प्रवेश किया उससे उत्पन्न पाप के कारण उस ब्राह्मण का वस्त्र आकाश में नहीं जाने लगा ॥२७॥ उसके कारण उसके मन में विषाद हो गया और उसको आकाशवाणी हुयी। **देववाणी ने कहा—** ब्राह्मण तुम परम धार्मिक मूक चाण्डाल के पास जाओ॥२८॥ वहाँ जाकर तुम धर्म को जानोगे उसकी वाणी तुम्हारे लिए कल्याणकारिणी होगी। **व्यासजी ने कहा—** आकाशवाणी को सुनकर वह ब्राह्मण उस मूक के घर गया ॥२९॥ उस समय वह अपने माता-पिता की सेवा कर रहा था। ठंढी के दिनों में वह उन सबों को गर्म पानी देता था ॥३०॥ उनके शरीर में तेल लगाता था, तापने के लिए अङ्गीठी देता था, भोजन के पश्चात् पान खिलाता था तथा ओढने के लिए रजाई देता था। उन्हें खाने के लिए प्रतिदिन दुग्ध तथा श्रीखण्ड देता था ॥३१॥ वसन्त ऋतु में वह उन्हे सुगन्धित मधु की माला पिन्हाता था। इसके अतिरिक्त जो भोग सामग्रियाँ होती थीं, उन्हे देता था और उनकी अनेक प्रकार से सेवा करता था ॥३२॥ गर्मी में वह माता-पिता को पंखा झलता था। इसतरह से माता-पिता की सेवा करके वह सदा भोजन करता था ॥३३॥ उनके श्रम तथा संताप को वह मिटाता था। इसी पुण्य के कारण उसके कारण दीर्घ काल से उसके घर में भगवान् विष्णु का निवास था ॥३४॥ वे इसी पुण्य के कारण उसका घर बिना किसी स्तम्भ के आकाश में स्थित था। उसके भवन में नित्य ही त्रैलोक्याधिपति भगवान् विष्णु का निवास था ॥३५॥ वे उसके घर में तेजस्वी वसुगण सम्पन्न ब्राह्मण का रूप धारण करके उस घर की शोभा बढा रहे थे ॥३६॥ यह सब देखकर ब्राह्मण आश्चर्य चकित थे, उन्होंने मूक से कहा **ब्राह्मण ने कहा—** तुम मेरे पास आओ, मैं तुमसे सम्पूर्ण संसार के कल्याणकारी बात को जानना चाहता हूँ।

मूक उवाच

पित्रोरर्चां करोम्यद्य कथमायामि तेंतिकम् ॥३८॥
अर्चयित्वा तु पितरौ कृत्यं ते करवाणि वै । तिष्ठ मे द्वारदेशे च आतिथ्यं ते करोम्यहम् ॥३९॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते चेव चांडाले चुकोप ब्राह्मणस्तदा ।

ब्राह्मण उवाच

ब्राह्मणं मां परित्यज्य किं कार्यमधिकं तव ॥४०॥

मूक उवाच

किं कुप्यसि वृथाविप्र न बकोऽहं तवाधुना । कोपस्सिद्ध्यति ते तावद्बके नान्यत्र किंचन ॥४१॥
गगने स्नानशाटी ते न शुष्यति न तिष्ठति । वचनं खात्ततः श्रुत्वा मद्गृहं चागतो भवान् ॥४२॥
तिष्ठ तिष्ठ वदिष्यामि नोचेद्गच्छ पतिव्रताम् । तां च दृष्ट्वा द्विजश्रेष्ठ दयितं ते फलिष्यति ॥४३॥

व्यास उवाच

ततस्तस्य गृहाद्विष्णु र्द्विजरूपधरो विभुः । विनिस्सृत्य द्विजं प्राह गेहं तस्याः प्रयाम्यहम् ॥४४॥
सविमृश्य द्विजश्रेष्ठस्तेन सार्धं चचाल ह । गच्छंतं तमुवाचेदं हरिं विप्रोतिविस्मितः ॥४५॥

विप्र उवाच

किमर्थं च त्वया विप्र चांडालस्य गृहोदरे । सदा संस्थीयते तात योषाजनवृते मुदा ॥४६॥

हरिरुवाच

इदानीं मानसं शुद्धं भूतं भवतो ध्रुवम् । पतिव्रतादिकं दृष्ट्वा पश्चाज्ज्ञास्यसि मां किल ॥४७॥

विप्र उवाच

पतिव्रता च का तात किं वा तस्याश्श्रुतं महत् । येनाहं तत्र गच्छामि कारणं वद मे द्विज ॥४८॥

उसे तुम बतलाओ । **मूक ने कहा** मैं इस समय माता-पिता की सेवा कर रहा हूँ, आपके पास कैसे आऊँ ?॥३७-३८॥ माता-पिता की सेवा करने के बाद मैं आपका आतिथ्य करूँगा । तब तक आप मेरे दरवाजे पर रहें ॥३९॥ **व्यासजी ने कहा**— चाण्डाल के इसतरह कहने पर ब्राह्मण क्रुद्ध हो गये । **ब्राह्मण ने कहा**— मुझ ब्राह्मण को छोड़कर तुम्हारा कौन सा बड़ा काम है ?॥४०॥ **मूक ने कहा**— ब्राह्मण क्यों क्रोध करते हो ? मैं बक पक्षी नही हूँ । तुम्हारा क्रोध बगले पर ही सफल होगा दूसरे पर नहीं ॥४१॥ अब तुम्हारी घोती आकाश में न तो सुखती है, और न ठहरती है । तुम आकाशवाणी को सुनकर मेरे घर आये हो ॥४२॥ तुम ठहरे रहे तो मैं कहूँगा, नहीं तो तुम पतिव्रता के पास चले जाओ । हे ब्राह्मण ! उसका दर्शन करने से आपका कल्याण होगा ॥४३॥ **व्यासजी ने कहा**— उसके घर से ब्राह्मणवेषधारी भगवान् विष्णु निकल कर कहे मैं उस पतिव्रता के घर जा रहा हूँ ॥४४॥ उसके बाद विचार करके वे ब्राह्मण विप्ररूपधारी श्रीभगवान् के पास चल पड़े । जाते समय उस ब्राह्मण ने श्रीहरि से कहा ॥४५॥ **विप्र ने कहा**— हे विप्र स्त्रियों से भरे हुए इस चाण्डाल के घर में आप प्रसन्नता पूर्वक किसलिए रहते हैं ॥४६॥ **श्रीहरि ने कहा**— अभी तक आपका मन शुद्ध नहीं हुआ है । आप पतिव्रता आदि का दर्शन करके ही मुझे जान पायेंगे ॥४७॥ **विप्र ने कहा**— वह पतिव्रता कौन नारी है ? उसका शास्त्रज्ञान कितना है ? उसका कारण मुझे बतलाइये ॥४८॥ **श्रीहरि ने कहा**— नदियों में गङ्गा श्रेष्ठ है, स्त्रियों में पतिव्रता श्रेष्ठ है, मनुष्यों में राजा श्रेष्ठ

हरिरुवाच

नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा प्रमदानां पतिव्रता । मनुष्याणां प्रजापालो देवानां च जनार्दनः ॥४९॥
पतिव्रता च या नारीपत्युर्नित्यं हिते रता। कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतंशतम् ॥५०॥
स्वर्गं भुनक्ति तावच्च यावदाभूतसंप्लवम् । स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्वास्याः सार्वभौमो नृपः पतिः ॥५१॥
अस्यैव महिषी भूत्वा सुखं विंदेदनंतरम् । पुनः पुनः स्वर्गराज्यं तस्य तस्या न संशयः ॥५२॥
एवं जन्मशतं प्राप्य अंते मोक्षो भवेद् ध्रुवम्।

विप्र उवाच

पतिव्रता भवेत्का वा तस्याः किं वा च लक्षणम् ॥५३॥
ब्रूहि मे द्विजशार्दूल यथा जानामि तत्त्वतः।

हरिरुवाच

पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद्राजानं च भयादथ ॥५४॥
आराधयेत्पतिं शौरिं या पश्येत् सा पतिव्रता । कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननी समा ॥५५॥
विपत्सु मंत्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता । भर्तुराज्ञां न लंघेद्या मनोवाक्कायकर्मभिः ॥५६॥
भुंक्ते पत्यौ सदा चात्ति सा च भार्या पतिव्रता । यस्यां यस्यां तु शय्यायां पतिः स्वपिति यत्नतः ॥५७॥
तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चां करोति नित्यशः। नैव मत्सरमायाति न कार्पण्यं न मानिनी ॥५८॥
मानेऽमाने समानं च या पश्येत्सा पतिव्रता। सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम् ॥५९॥
मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता। तां गच्छ द्विजशार्दूल वद कामं यथा तव ॥६०॥

है और देवताओं में भगवान् जनार्दन श्रेष्ठ हैं ॥४९॥ जो नारी पतिव्रता होती है, वह सदा पति का कल्याण करती रहती है । वह अपने पिता तथा पति दोनों कुलों के सौ पीढी के पूर्वजों का उद्धार कर देती है ॥५०। वह प्रलयकाल पर्यन्त स्वर्ग का भोग भोगती हैं जब उसका पति स्वर्ग से गिरता है तो वह सार्वभौम राजा होता है ॥५१॥ वह उसी की पटरानी होकर सुख को प्राप्त करती है । उसको तथा उसके पति को बार-बार स्वर्ग का राज्य प्राप्त होता है॥५२॥ इस तरह सौ जन्म प्राप्त करने के बाद उसकी मुक्ति हो जाती है । **विप्र ने कहा—** कौन सी नारी पतिव्रता होती है ? उसका लक्षण क्या होता है ? हे द्विजश्रेष्ठ मुझे आप इन सारी बातों को बतायें जिससे कि मैं उसे तत्त्वतः जान सकूँ । **श्रीहरि ने कहा—** जो पुत्र की अपेक्षा पति से सौ गुना स्नेह करती हो, वह राजा से भी अधिक अपने पति से डरती हो ॥५३-५४॥ तथा पति को भगवान् का रूप समझकर उसकी आराधना करती हो, वही प्रतिव्रता है। वह दासी के समान पति के कर्मों को करती है तथा रतिकाल में वेश्या के समान व्यवहार करती है तथा माता के समान वह पति को भोजन कराती है ॥५५॥ विपत्ति में पति को सलाह देती है, ऐसी ही पत्नी पतिव्रता है । जो मन, वाणी तथा शरीर से कभी भी पति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते है ॥५६॥ पति के भोजन कर लेने पर ही भोजन करती है, ऐसी पत्नी पतिव्रता होती है । जिस-जिस शय्या पर पति सोते हैं ॥५७॥ वहाँ जाकर पति की पूजा करती है, वह पति से न तो इर्ष्या करती है, न तो कृपणता करती हो और न तो मान करती है ॥५८॥ पति के द्वारा किए जाने वाले मान तथा अपमान को जो एक समान मानती है, वही पत्नी पतिव्रता होती है । वह सुन्दर वेष धारण किए पुरुष को देखकर उसे भाई, पिता और पुत्र मानती हैं ॥५९॥ वही स्त्री पतिव्रता है । हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके पास जाइये और उससे अपने कल्याण की बातें पूछिये ॥६०॥ उसकी कई सौते हैं, उन सबों में वह सुन्दरी रूप एवं

तस्य पत्न्योऽष्टतिष्ठंति तन्मध्ये वरवर्णिनी। रूपयौवनसंपन्ना दयायुक्ता यशस्विनी॥६१॥
शुभानामेति विख्याता गत्वा तां पृच्छ तेहितम्।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥६२॥
तस्यैवादृश्यतां दृष्ट्वा विस्मितोभूद्द्विजस्तदा । स च साध्वी गृहं गत्वा पप्रच्छाथ पतिव्रताम्॥६३॥
अतिथेर्वचनं श्रुत्वा गृहानिःसृत्य संभ्रमात् । दृष्ट्वा द्विजसती तत्र द्वारदेशे स्थिता भवत्॥६४॥
तां च दृष्ट्वा द्विजश्रेष्ठ उवाच वचनं मुदा। प्रियं मम हितं ब्रूहि यथादृष्टं त्वमेवहि ॥६५॥

पतिव्रतोवाच

सांप्रतं पत्युरर्चास्ति न चास्माकं स्वतंत्रता। पश्चात्कार्यं करिष्यामि गृहाणातिथ्यमद्य वै ॥६६॥

विप्र उवाच

मम देहे क्षुधानास्ति पिपासाद्य न च श्रमः। अभीष्टं वद कल्याणि नोचेच्छापं ददामि ते ॥६७॥

व्यास उवाच

तमुवाच तदा सापि न बकोऽहं द्विजोत्तम। गच्छ धर्मतुलाधारं पृच्छ तं ते हितं द्विज ॥६८॥
इत्युक्त्वा सा महाभागा प्रययौ च गृहोदरम्। तत्रापश्यद्द्विजोविप्रं यथा चांडालवेश्मनि॥६९॥
विमृश्यविस्मयापन्नस्तेन सार्धं ययौ द्विजः। तिष्ठंतं च द्विजं तं च सोपश्यद्धृष्टमानसम्॥७०॥
स चोवाच मुदा विप्रं दृष्ट्वा तं तां सतीं च सः।

विप्र उवाच

देशांतरे च यद्वृत्तं तया च कथितं किल ॥७१॥
कथं जानाति मद्वृत्तं चांडालोऽपि पतिव्रता। अतो मे विस्मयस्तात किमाश्चर्यं परं महत् ॥७२॥

यौवन से सम्पन्न दयालु और यशस्विनी है ॥६१॥ वह शुभा के नाम से विख्यात है। जाकर उससे आप कल्याण की बातें पूछे। इसतरह से कहकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये ॥६१-६२॥ उनके अदृश्य हो जाने पर वे ब्राह्मण आश्चर्यित हो गये। वे उस साध्वी के घर जाकर उस पतिव्रता से पूछे ॥६३॥ अतिथि की वाणी सुनकर वह पतिव्रता शीघ्रता से घर से निकली, उस ब्राह्मण को देखकर वह अपने दरवाजे पर खड़ी हो गयी ॥६४॥ उसको देखकर ब्राह्मण बोले। **ब्राह्मण ने कहा—** तुम मुझे कल्याणकारी बातों को बतलाओ जिसे तुम जानती हो ॥६५॥ **पतिव्रता ने कहा—** इस समय मैं अपने पति की सेवा कर रही हूँ मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। पति की सेवा के बाद मैं उसको बतलाऊँगी, आप मेरे यहाँ आतिथ्य स्वीकार करें ॥६६॥ **विप्र ने कहा—** मुझे न तो भूख लगी है, न प्यास लगी है, और न तो मुझे थकान ही है। हे कल्याणि ! मेरे अभीष्ट को तुम बतलाओ नहीं तो मैं तुमको शाप दे दूँगा॥६७॥ **पतिव्रता ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! मैं बगुला नहीं हूँ आप तुलाधार वैश्य के यहाँ जाइये और उससे अपने कल्याण की बातें पूछिये ॥६८॥ यह कहकर वह महाभागा घर के भीतर चली गयी। वहाँ पर उस विप्र ने वैसे ही विप्र को देखा जैसा विप्र चाण्डाल के घर में थे ॥६९॥ विचार करके आश्चर्यित वे ब्राह्मण उस विप्र के साथ चल दिये। ब्राह्मण ने प्रसन्नता पूर्वक वहाँ पर उस विप्र को विद्यमान देखा ॥७०॥ उन विप्र तथा सती को देखकर ब्राह्मण ने विप्र से पूछा **ब्राह्मण ने कहा—** दूसरे स्थान में जो घटना हुई उसको इस पतिव्रता ने बतलाया ॥७१॥ मेरे वृत्तान्त को चाण्डाल और पतिव्रता दोनों कैसे जानते हैं ? अतएव हे तात ! मुझको तो आश्चर्य हो रहा है, इससे

हरिरुवाच

ज्ञायते कारणं तात सर्वेषां भूतभावनैः। अतिपुण्यात्सदाचाराद्यतस्त्वं विस्मयं गतः ॥७३॥
किमुक्तश्च तया त्वं च वद तत्सांप्रतं मुने।

विप्र उवाच

प्रष्टुं धर्मतुलाधारं सा च मां समुपादिशत् ॥७४॥

हरिरुवाच

आगच्छ मुनिशार्दूल अहं गच्छामि तं प्रति। गच्छंतं च हरिं प्राह तुलाधारः क्व तिष्ठति ॥७५॥

हरिरुवाच

जनानां निकरो यत्र बहुद्रव्यसु विक्रये। विक्रीणाति च क्रीणाति तुलाधारस्ततस्ततः ॥७६॥
जनो यवान् रसं स्नेहं कूटमन्नस्य संचयम्। सर्वतस्य मुखादेव गृह्णाति च ददात्यपि ॥७७॥
सत्यं त्यक्त्वानृतं किंचित्प्राणांते समुपस्थिते । नोक्तं नरवरश्रेष्ठस्तेन धर्मतुलाधरः ॥७८॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते तु तमद्राक्षीद्विक्रीणंतं रसान्बहून्। मलपंकधरं मर्त्यं दंतकुड्मलपंकिलम् ॥७९॥
तत्र वस्तुधनोत्थां च भाषंतं विविधांगिरम् । वृतं बहुविधैर्मर्त्यैः स्त्रीभिः पुंभिश्च सर्वतः ॥८०॥
कथं कथमिति प्राह स तं मधुरया गिरा।

विप्र उवाच

धर्मस्य मे समुद्देशं वदप्राप्तोंऽतिकं हिते ॥८१॥

तुलाधार उवाच

यावज्जनाः प्रतिष्ठंति ममैव सन्निधौ द्विज । तावन्मेस्वस्थता नास्ति यावच्च रात्रियामकः ॥८२॥
तच्चोपदेशमादाय गच्छ धर्माकरं प्रति । बकस्य मरणे दोषं खे च वस्त्राविशोषणम्॥८३॥

बढकर दूसरा महान् आश्चर्य क्या हो सकता है ? **श्रीहरि ने कहा**— महापुरुषों के जानने के कारण हैं अत्यन्त पुण्य और सदाचार का पालन, जिसके कारण आपको आश्चर्य हो रहा है ॥७३॥ उस पतिंव्रता ने क्या कहा ? आप मुझे बतलाइये **ब्राह्मण ने कहा**— उसने मुझे तुलाधार से धर्म पूछने को कहा ॥७४॥ **श्रीहरि ने कहा**— हे मुनिश्रेष्ठ! आप मेरे साथ आइये मैं तुलाधार के घर जा रहा हूँ। जाते हुए श्रीहरि से ब्राह्मण ने पूछा कि तुलाधार कहाँ रहता है?॥७५॥ **श्रीहरि ने कहा**— जहाँ पर बिकने वाली वस्तुओं को खरीदने के लिए लोगों की भीड़ है; उन सभी वस्तुओं को बेंचने और खरीदने का काम तुलाधार ही करता है ॥७६॥ वह अन्नो, रसों, तेलों तथा अन्य सभी वस्तुओं को लोग उसी से लेते हैं, और वह सबों को देता भी हैं ॥७७॥ प्राणांत की भी स्थिति में वह सत्य ही बोलता है झूठ नहीं बोलता है, इसीके कारण वह श्रेष्ठ मनुष्य तुलाधार कहलाता है ॥७८॥ इस तरह से कहने पर उस ब्राह्मण ने उसे वस्तुओं को बहुत से रसों को बेचते हुए देखा । उसके कपड़े मैले थे, दाँतों में मैल बैठी थी॥७९॥ वह वस्तुओं और धनों के विषय में अनेक प्रकार की बातें कर रहा था । वह अनेकों स्त्रियों से बहुत प्रकार की वातें कर रहा था ॥८०॥ किसी प्रकार से उस ब्राहाण ने उससे मधुरवाणी में कहा **ब्राह्मण ने कहा**— आप मुझे धर्म का उपदेश दें मैं आपके पास आया हूँ ॥८१॥ **तुलाधार ने कहा**— विप्र जब तक मेरे यहाँ ग्राहक लोग हैं तब तक मैं निश्चिन्त नहीं हूँ । यह स्थिति प्रहर भर रात जाते तक रहती है ॥८२॥ आप उस उपदेश को प्राप्त करने के

सर्वं तेत्र च जानीषे सज्जनाद्रोहकं व्रज। तत्र तस्योपदेशेन तव कामः फलिष्यति॥८४॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तं तुलाधारः करोति क्रयविक्रयौ।

विप्र उवाच

तथा तात गमिष्यामि सज्जनाद्रोहकं प्रति ॥८५॥
तुलाधारसमुद्देशान्नजानामि तदालयम्।

हरिरुवाच

एह्यागच्छ गमिष्यामि त्वया सार्द्धं च तद्गृहम् ॥८६॥
अथ वर्त्मनि गच्छंतमुवाच ब्राह्मणो हरिम्

विप्र उवाच

तुलाधारे च न स्नानं न देवपितृर्पणम् ॥८७॥
मलदिग्धं च गात्रं तु सर्वं चेलमलक्षणम् । कथं जानाति मदृत्तं देशांतरसमुद्भवम् ॥८८॥
अतोमे विस्मयस्तात सर्वं त्वं वद कारणम्

हरिरुवाच

सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्त्रयम् ॥८९॥
तेनतृप्यंत पितरो देवा मुनिगणैः सह । भूतभव्यप्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः ॥९०॥
नास्तिसत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्। विशेषे समभावस्य पुरुषस्यानघस्य च॥९१॥
अरौ मित्रेप्युदासीने मनोयस्य समं व्रजेत्। सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥९२॥
एवं यो वर्तते नित्यं कुलकोटि समुद्धरेत् । सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यं स्थैर्यमलोभता ॥९३॥

लिए धर्माकर के पास जाइये । वहाँ जाने से आपको बगुले के मरने से हुए पाप और आकाश में वस्त्र न सूखने की सारी बाते ज्ञात हो जायेंगी ॥८३॥ अतएव आप अद्रोहक सज्जन के पास जाइये । वहाँ पर उसके उपदेश से आपका काम पूरा हो जायेगा ॥८४॥ **व्यासजी ने कहा—** इसतरह से कहकर तुलाधार अपने क्रय-विक्रय के काम में लग गये । **विप्र ने कहा—** हे तात ! मैं सज्जन अद्रोहक के पास जाऊँगा ॥८५॥ तुलाधार ने मुझे वहीं जाने को कहा है, किन्तु मैं उसका घर नही जानता हूँ । **श्रीहरि ने कहा—** आओ मैं तुम्हारे साथ उसके घर जाऊँगा ॥८६॥ उसके बाद रास्तें में चलते हुए श्रीहरि से ब्राह्मण ने पूछा **ब्राह्मण ने कहा—** तुलाधार न तो स्नान करता है, न देवताओं की पूजा करता है, न पितरों का तर्पण करता है ॥८७॥ उसके सम्पूर्ण शरीर में मैल बैठी है । उसके कपड़े गंदे हैं, फिर भी वह दूसरे स्थान में घटित मेरे वृत्तान्त को वह कैसे जानता है ॥८८॥ हे तात ! मुझको बडा आश्चर्य है, इसको आप मुझे बतलाइये । **श्रीहरि ने कहा—** उसने सत्य तथा समभाव के द्वारा तीनों लोकों को जीत लिया है॥८९॥ उसके कारण पितृगण, देवता और मुनिगण प्रसन्न हैं । वह धार्मिक उसी के कारण भूत और भविष्य की सारी बातों को जानता है ॥९०॥ सत्य से बढकर केई धर्म नहीं है झूठ से बढकर कोई पाप नहीं होता है । खासकर निष्पाप समभाव वाले पुरुष के विषय में यह बात है ॥९१॥ शत्रु, मित्र तथा उदासीन सबों के विषय में जिसका मन एक समान रहता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है ॥९२॥ जो नित्य ही इस प्रकार का आचरण करता है, वह अपने वंश के करोड़ों जीवों का उद्धार कर देता है । उसमें सत्य, शम,

अनाश्चर्यमनालस्यं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् । तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वशः ॥९४॥
वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरिः । लोके तस्य समो नास्ति समःसत्यार्जवेषु च ॥९५॥
स च धर्ममयः साक्षात्तेनैव धारितं जगत् ।

द्विज उवाच

ज्ञातं मे त्वत्प्रसादाच्च तुलाधारस्य कारणम् ॥९६॥
अद्रोहकस्य यद्वृत्तं तद्ब्रूहि त्वं यदीच्छसि ।

हरिरुवाच

पुरैव राजपुत्रस्य कुलस्त्रीनवयौवना ॥९७॥
पत्नीव कामदेवस्य शचीव वासवस्य च । तस्य प्राणसमा भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥९८॥
अकस्मात्पार्थिवस्यैव कार्ये गन्तुं समुद्यतः । मनसा लोचितं तेन प्राणेभ्योपि गरीयसीम् ॥९९॥
कस्मिन् स्थाने स्थापयामि यतो रक्षा भवेद् ध्रुवम् ।
इत्यालोच्यैव सहसा त्वागतोस्य गृहं प्रति ॥१००॥
उक्तं च तादृशं वाक्यं श्रुत्वा सविस्मयं गतः ।

अद्रोहक उवाच

न तातस्ते नचभ्राता न चाहं तव बान्धवः ॥१०१॥
पितृमातृकुलस्यैव तस्या नहि सुहज्जनः । कथं च मद्गृहे तात स्थित्या स्वस्थो भविष्यसि॥१०२॥

हरिरुवाच

एतस्मिन्नन्तरे तेन चोक्तं वाक्यं यथोचितम् ।

राजपुत्र उवाच

लोके त्वत्सदृशो नास्ति धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः ॥१०३॥

दम, धैर्य, स्थैर्य, लोभ हीनता, आश्चर्यराहित्य और आलस्य राहित्य आदि सभी गुण प्रतिष्ठित हो जाते हैं । उसी के कारण वह देवलोक तथा मनुष्य लोक के समस्त वृत्तान्तों को जान जाता है ॥९३-९४॥ उस धर्मज्ञ के शरीर में श्रीहरि का निवास होता है, संसार में समता, सत्य तथा आर्जव गुणवाला कोई नहीं है ॥९५॥ वह साक्षात् धर्म स्वरूप है । वह ही जगत् को धारण किए हुए है । **द्विज ने कहा—** आपकी कृपा से मैंने तुलाधार के विषय में जान लिया ॥९६॥ यदि आप चाहें तो मुझे अद्रोहक के वृत्त को बतला दें । **श्रीहरि ने कहा—** पूर्वकाल में एक राजकुमार की पत्नी नवयौवना थी ॥९७॥ वह कामदेव की पत्नी रति के समान तथा इन्द्र की पत्नी शची के समान सुन्दरी थी । वह राजकुमार को प्राण के समान प्यारी थी, उसका नाम सुन्दरी था ॥९८॥ अकस्मात् उसको राजा के कार्य से बाहर जाने के लिए तैयार होना पड़ा । वह अपने मन में प्राणों से भी प्रियतमा पत्नी के विषय में सोचने लगा॥९९॥ मैं पत्नी को कहाँ रखूँ जिससे इसकी रक्षा हो सके । यह सोचकर वह सहसा अद्रोहक के पास आया॥१००॥ उसने अपने मन की बात अद्रोहक को सुनाया, उसे सुनकर अद्रोहक को आश्चर्य हुआ । **अद्रोहक ने कहा—** मैं न तो तुम्हारा पिता हूँ, न भाई हूँ और न तुम्हारा बन्धु हूँ ॥१०१॥ न तो तुम्हारे माता-पिता के कुल का हूँ और न तुम्हारा सुहृद् हूँ । अतएव हे तात ! मेरे घर में उसको रखकर आप कैसे निश्चिन्त रह सकते हो ?॥१०२॥ **श्रीहरि ने कहा—** इस समय उसने यथोचित बातें कहीं । **राजकुमार ने कहा—** संसार में आपके समान कोई

हरिरुवाच

स चाह तं च सर्वज्ञं वक्तुं नार्हसि दूषणम्। त्रैलोक्यमोहिनी भार्या कःपुमान् रक्षितुं क्षमः ॥१०४॥

राजपुत्र उवाच

धरण्यां परिविज्ञाय त्वागतोऽहं तवान्तिकम् । एषा तिष्ठतु तेऽगारे व्रजामि निजमन्दिरम् ॥१०५॥

हरिरुवाच

इत्युक्ते स पुनः प्राह नगरेऽस्मिन् प्रशोभने। बहुकामुकसंपूर्णे कथं रक्षाभवेत्स्त्रियाः ॥१०६॥
स चोवाच पुनस्तं च कुरु रक्षां व्रजाम्यहम् । गृहस्थस्सङ्कटादाह धर्मस्य राजपुत्रकम्॥१०७॥

अद्रोहक उवाच

करोम्यनुचितं कार्य स्वदास्यमुचितं हितम् । सदा चैवेदृशी भार्यास्थातव्या मद्गृहे पितः ॥१०८॥
अरक्षा रक्षणे देव वदाभीष्टं कुरु प्रियम्। ममतल्पे मया सार्धं शयानं भार्यया सह ॥१०९॥
मन्यसे दैवतं स्वंचोत्तिष्ठेन्नोचेत्तु गच्छतु।

हरिरुवाच

क्षणं विमृश्य तं प्राह राजपुत्रः पुनस्तदा ॥११०॥

राजपुत्र उवाच

बाढमेतद्वचस्तात यथाभीष्टं तथा कुरु ।

हरिरुवाच

ततो भार्यां जगादाथ अस्य वाक्याच्छिवाशिवम् ॥१११॥
कर्तव्यं च न ते दोष आज्ञया मम सुंदरि। एतदुक्त्वा गतः सोपि भूपतेः शासनात्पितुः ॥११२॥
अनंतरं क्षपायां च यदुक्तं च तथा कृतम् । योषितोर्मध्यगः सोपि नित्यं स्वपिति धार्मिकः॥११३॥

धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय नहीं है ॥१०३॥ **श्रीहरि ने कहा**— सर्वज्ञ ने कहा राजकुमार आप फिर मुझे दोष नहीं देंगे। त्रैलोक्य मोहिनी पत्नी की कौन पुरुष रक्षा कर सकता है ?॥१०४॥ **राजकुमार ने कहा**— पृथिवी पर अच्छी तरह से जानकर मैं आपके पास आया हूँ। यह आपके घर में रहे मैं अपने घर जा रहा हूँ ॥१०५॥ **श्रीहरि ने कहा**— इस तरह से राजकुमार के कहने पर अद्रोहक ने फिर कहा इस सुन्दर नगर में बहुत से कामुक पुरुष हैं, अतएव किसी की स्त्री की रक्षा कैसे की जा सकती है ?॥१०६॥ राजकुमार ने पुनः कहा आप रक्षा करें मैं जा रहा हूँ सङ्कटापन्न गृहस्थ अद्रोहक ने राजकुमार से कहा **अद्रोहक ने कहा**— मैं सदा अनुचित कार्य करता हूँ, अपनी दासता तो उचित और कल्याणमयी होती है इसतरह की पत्नी मेरे गृह में भी है ॥१०७-१०८॥ अरक्ष्य वस्तु की रक्षा करने के लिए जो मैं कहता हूँ उसे करना होगा। जब मैं अपनी पत्नी के साथ सोऊँ तो यह मेरी ही शय्या पर सोये। यदि इसे आप मानें तब तो यह यहाँ रहे अन्यथा यह जाय। **श्रीहरि ने कहा**— क्षणभर विचार करके राजकुमार ने कहा ॥१०९-११०॥ **राजकुमार ने कहा**— तात ठीक है, आप जैसा चाहें वैसा ही करें **श्रीहरि ने कहा**— उसके बाद अपनी पत्नी से राजकुमार ने कहा— कल्याणि ! इनकी बातों का पालन करना, उसमें तुमको कोई पाप नहीं होगा। यह मेरी आज्ञा है। इस तरह से कहकर वह अपने पिता राजा की आज्ञा से बाहर चला गया॥११२॥ उसके बाद रात्रि में अद्रोहक ने जैसा कहा था वैसा ही किया; वह धार्मिक उन दोनों स्त्रियों के बीच में

धर्मान्नचलते सोऽपि स्वभार्यापरभार्ययोः। संस्पर्शात्स्वस्त्रियश्चास्य कामाभिलषितं मनः ॥११४॥
तस्याः संसर्गतश्चैव दुहितेव प्रमन्यते। स्तनौ तस्यास्तु पृष्टे च लगन्तौ च पुनः पुनः॥११५॥
बालकस्येव पुत्रस्य स्तनौ मातुः स मन्यते। तस्या अंगानि चांगेषु लगंति च पुनः पुनः ॥११६॥
ततो मातुस्सुतस्येव सोऽमन्यत दिने दिने। तस्य योषासुसंसर्गो निवृत्तस्त्वभवत्ततः ॥११७॥
एवं संवत्सरस्यार्द्धे तत्पतिश्चागतः पुरम्। अपृच्छत्तं च लोकेषु तस्या वृत्तमथोदितम् ॥११८॥
केचिद्भद्रं बोधयन्तो युवानोपि सुविस्मिताः। केचिदाहुस्त्वया दत्ता तया सार्द्धं स्वपित्यसौ ॥११९॥
स्त्रीपुंसोरेकसंसर्गात् शांतता तु कथं भवेत्। तस्यां यस्याभिलाषोस्ति नपृष्टस्सवदेद्युवा॥१२०॥
लोकानां कुश्रुतिर्वार्ता तेन पुण्यबलाच्छ्रुता। जनापवादमोक्षार्थं बुद्धिस्तस्याभवच्छुभा॥१२१॥
दारूणि स्वयमाहृत्याजिज्वलत्स महानलम्। एतस्मिन्नंतरे तात राजपुत्रः प्रतापवान्॥१२२॥
आगमत्तद्गृहं सद्यः सोऽपश्यत्तं च योषितम्। प्रोत्फुल्लवदनां नारीं प्रविषादगतं नरम् ॥१२३॥
अनयोर्मानसं ज्ञात्वा राजपुत्रोवदद्वचः। किं न संभाषसे मां च मित्रकं चिरमागतम्॥१२४॥

हरिरुवाच

अब्रवीत्सोपि धर्मात्मा राजपुत्रमनष्टधीः।

अद्रोहक उवाच

यत्कृतं दुष्करं कर्म मया त्वद्धितकारणात् ॥१२५॥
सर्वं व्यर्थमहं मन्ये जनानां च प्रवादतः। अद्य वह्निमहं यास्ये प्रपश्यंतु नरास्सुराः ॥१२६॥

हरिरुवाच

इत्युक्त्वा समहाभागः प्रविवेश हुताशनम्। विशतस्तस्य वह्नौ न कुसुमं चिकुरालये ॥१२७॥

सोता था ॥११३॥ वह अपनी पत्नी तथा पर पत्नी के विषय में धर्म से विचिलित नहीं होता था। जब उसका अपनी पत्नी से स्पर्श होता था तो उसमें काम की अभिलाषा होती थी ॥११४॥ जब उसका स्पर्श उससे होता था तो वह उसे अपनी पुत्री के समान मानता था। बार-बार उसके स्तन भी इसकी पीठ से सट जाते थे ॥११५॥ वह उसके स्तनों को उसी तरह मानता था जिस तरह कोई बालक अपनी माता के स्तनों को मानता है। उस नारी के अङ्ग भी इसके अङ्गों से सट जाते थे ॥११६॥ उस समय वह उसी तरह मानता था जैसे कोई बालक माता के अङ्गो को मानता है। इसतरह से उसकी स्त्रियों के प्रति काम राहित्य की भावना हो गयी ॥११७॥ इस तरह छह मास के बाद उस स्त्री का पति आया। उसने लोगों से अपनी पत्नी के चरित्र के विषय में पूछा ॥११८॥ कुछ युवक भी आश्चर्यित होकर उसे अच्छा बतलाये। कुछ लोगों ने कहा— तुमने तो उसे दे ही दिया था, वह उसके साथ प्रतिदिन सोता था ॥११९॥ जब स्त्री और पुरुष एक साथ रहें तो वे शान्त कैसे रह सकते हैं ? जिस युवक की उसको प्राप्त करने की इच्छा न हो ऐसा कौन हो सकता है ॥१२०॥ उसने (अद्रोहक ने) अपने पुण्य की बल से लोगों की निन्दा को जान लिया। वह अपने जनापवाद को मिटाने के लिए सोचा ॥१२१॥ उसने स्वयं काष्ठों को लाया और उसमें आग लगा दी। उसी समय वह राजकुमार भी आ गया। उसने अद्रोहक और अपनी पत्नी को देखा। वह नारी प्रसन्न थी और वह पुरुष उदास था ॥१२२-१२३॥ उन दोनों के मन की बात को जानकर राजकुमार ने कहा **राजकुमार ने कहा**— मैं तुम्हारा मित्र हूँ, दीर्घकाल के पश्चात् आया हूँ, मुझसे बातें क्यों नहीं करते हो ॥१२४॥ **अद्रोहक ने कहा**— मैं तुम्हारे कल्याण के लिए जो दुष्कर कार्य किया है ॥१२५॥ लोगों के इस अपवाद के कारण मुझे वह सब व्यर्थ

नांगमस्यानलोधाक्षीन्नच वस्त्रं न कुंतलम् । खे च देवा मुदा सर्वे साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥१२८॥
अपतन्पुष्पवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि समंततः । यैर्यैश्च दुष्कृतं वाक्यं गदितं तावुभौ प्रति ॥१२९॥
तेषां मुखे प्रजायंते कुष्ठानि विविधानि च । तत्रागत्य च देवाश्च वह्नेराकृष्यतं मुदा ॥१३०॥
अपूजयन्सुपुष्पैश्च मुनयो विस्मयं गताः । सर्वै र्मुनिवरैरेवं मनुष्यैर्विविधैस्तदा ॥१३१॥
अर्च्यते तु महातेजाः स च सर्वानपूजयत् । सज्जनाद्रोहकं नाम कृतं देवासुरैर्नृभिः ॥१३२॥
तस्य पादरजः पूता सस्यपूर्णाधरा भवत् । सुराश्चाहुश्च तं तत्र भार्याते संप्रगृह्यताम् ॥१३३॥
एतस्य सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति । नास्तीति सांप्रतं पृथ्व्यां कामलोभाजितः पुमान् ॥१३४॥
देवासुरमनुष्याणां रक्षसां मृगपक्षिणाम् । कीटादीनां च सर्वेषां काम एष सुदुर्जयः ॥१३५॥
कामाल्लोभात्तथा क्रोधान्नित्यं सत्वेषु जायते । संसारबंधकः कामो ह्यकामो न क्वचिद्भवेत् ॥१३६॥
अनेनैवजितं सर्वं भुवनानि चतुर्दश । अमुष्य हृदये नित्यं वासुदेवो मुदा स्थितः ॥१३७॥
एवं स्पृष्ट्वाथ दृष्ट्वा तं मनुष्याः सर्वकल्मषात् । पूयंते ह्यनघाश्चैव लभंते चाक्षयांदिवम् ॥१३८॥
एवमुक्त्वा गता देवा विमानैश्च दिवं मुदा । मनुष्याः प्रययुस्तुष्टा दंपती स्वगृहं तथा ॥१३९॥
दिव्यं चक्षुस्तदा तस्य चासीद्देवान् स पश्यति । त्रैलोक्यस्य च वार्त्ता च जानाति लीलया भृशम् ॥१४०॥
ततस्तस्य च बीथ्यां च दृष्टस्तेन सहैव सः । स पप्रच्छमुदा तं च धर्मोद्देशं हि तं वद ॥१४१॥

सज्जनाद्रोहक उवाच

गच्छ बाडवधर्मज्ञ वैष्णवं पुरुषोत्तमम् । तं च दृष्ट्वात्वभीष्टं ते सांप्रतं च फलिष्यति ॥१४२॥

लगता है । आज मैं अग्नि में प्रवेश कर रहा हूँ मुझे देवता और मनुष्य देखें ॥१२६॥ **श्रीहरि ने कहा—** इसतरह से कहकर उस महाभाग ने अग्नि में प्रवेश किया । अग्नि में प्रवेश करने पर अग्नि ने न तो उसके बालों के पुष्पों को ॥१२७॥ न उसके अङ्गों को, न वस्त्रों को और न बालों को जलाया; आकाश में विद्यमान देवताओं ने उसे साधु-साधु कहा ॥१२८॥ उसके शिर पर चारो ओर से आकाश से पुष्प गिरने लगे । उन दोनों की जिन-जिन लोगों ने निन्दा की थी ॥१२९॥ उन लोगों के मुख में अनेक प्रकार के कुष्ठ हो गये । वहाँ पर आकर देवताओं ने उसे आग से बाहर निकला ॥१३०॥ आश्चर्यित होकर मुनियों ने उसकी पूजा की । सभी मुनिवरों तथा अनेक मनुष्यों के द्वारा ॥१३१॥ उस महातेजस्वी अद्रोहक की पूजा की गयी और उसने भी सबों की पूजा की । देवताओं ने उसका नाम सज्जन अद्रोहक रखा ॥१३२॥ उसके चरणों की धूलि से पवित्र भूमि धन-धान्य से भर गयी । देवताओं ने राजकुमार से कहा कि तुम अपनी पत्नी को स्वीकार करो ॥१३३॥ इसके समान न तो कोई व्यक्ति हुआ और न होगा । उस समय पृथिवी पर कोई भी पुरुष काम और लोभ से रहित नहीं है ॥१३४॥ देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, मृग, पक्षी तथा कीट आदि सबों के लिए काम पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है ॥१३५॥ काम, लोभ तथा क्रोध के ही कारण जीवों को संसार का बन्धन होता है काम कभी काम रहित नहीं होता है ॥१३६॥ इसने चौदहो भुवनों को जीत लिया है । इसके हृदय में सदैव भगवान् वासुदेव प्रसन्नता पूर्वक रहते हैं ॥१३७॥ इसको देखकर तथा स्पर्श करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं वे पवित्र होकर अक्षय स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं॥१३८॥ इस तरह से कहकर देवता विमान द्वारा स्वर्गलोक चले गये । सन्तुष्ट होकर सभी मनुष्य अपने घर चले गये तथा वे दोनों पति-पत्नी अपने घर चले गये ॥१३९॥ उसी समय से उसकी दिव्य दृष्टि हो गयी और उसके कारण वह देवताओं को भी देखता था । वह आसानी से त्रैलोक्य की घटनाओं को जान जाता है ॥१४०॥ उसके

बकस्य निधनं यद्वा वस्त्रस्याशोषणं तथा । जानीषे चापरो यश्च कामस्तेऽस्ति हृदि स्थितः ॥१४३॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमागतो वैष्णवं प्रति । विष्णुरूपद्विजेनैव सार्द्धं तेन मुदा ययौ ॥१४४॥
अपश्यत्पुरुषं शुद्धं ज्वलंतं च पुरः स्थितम् । सर्वलक्षणसंपूर्णं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥१४५॥
अब्रवीत्स च धर्मात्मा ध्यानस्थं च हरेः प्रियम् ।

विप्र उवाच

वद नो यद्यद्वृत्तंवै दूरात्त्वां चागोतोह्यहम् ॥१४६॥

वैष्णव उवाच

प्रसन्नस्ते सुरश्रेष्ठो दानवारीश्वरः सदा । दृष्ट्वा त्वां च मनोऽस्माकं हृष्यतीवाधुना द्विज॥१४७॥
कल्याणं चातुलं तेद्य फलिष्यति मनोरथः । सुरवर्त्मनि ते नित्यं चेलं शुष्यति नान्यथा ॥१४८॥
दृष्ट्वा देवं सुरश्रेष्ठं मम गेहे हरिं स्थितम् ।

व्यास उवाच

इत्युक्ते वैष्णवेनाथ स तु तं पुनरब्रवीत् ॥१४९॥

विप्र उवाच

क्वासौ विष्णुः स्थितो नित्यं दर्शयाद्य प्रसादतः ।

वैष्णव उवाच

अस्मिन्देवगृहे रम्ये प्रविश्य परमेश्वरम् ॥१५०॥
तं दृष्ट्वा किल्बिषाद्धोरान्मुच्यसे जन्मबंधानत् ।

व्यास उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रविश्य सदनं प्रति ॥१५१॥

बाद उस गली में उस ब्राह्मण ने उस विप्र के साथ ही अद्रोहक को देखा । ब्राह्मण ने उससे कहा कि तुम मुझे धर्म का उपदेश करो ॥१४१॥ **सज्जनाद्रोहक ने कहा**— हे धर्मज्ञ ब्राह्मण ! आप पुरुष श्रेष्ठ वैष्णव के पास जायँ । उनका दर्शन करने से आपको अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी ॥१४२॥ बगुले की मृत्यु की बात, तथा वस्त्र के नहीं सुखने की बात एवं दूसरी बातें जो तुम्हारे हृदय में है, उन सारी बातों को जान जाओगे ॥१४३॥ **व्यासजी ने कहा**— इसबात को सुनकर वे ब्राह्मण उस श्रीवैष्णव के पास आये । वे विष्णुस्वरूप ब्राह्मण के साथ वहाँ प्रसन्नता पूर्वक आये ॥१४४॥ उन्होंने शुद्ध देदीप्यमान तथा सामने स्थित पुरुष को देखा । वे सभी लक्षणों से सम्पन्न तथा अपने तेज से देदीप्यमान थे ॥१४५॥ ब्राह्मण ने धर्मात्मा ध्यानस्थ तथा श्रीहरि के प्रिय श्रीवैष्णव से कहा **ब्राह्मण ने कहा**— आप हमारे वृत्त को बतलायें । मैं दूर से आपके पास आया हूँ ॥१४६॥ **श्रीवैष्णव ने कहा**— आपके ऊपर दानवों के शत्रु देवताओं में श्रेष्ठ श्रीभगवान् प्रसन्न हैं । हे द्विज ! आपको देखकर मेरा मन प्रसन्न हो रहा है॥१४७॥ आपका अतुलनीय कल्याण होगा और आपका मनोरथ पूरा होगा । तुम्हारा वस्त्र आकाश में ही सूखेगा॥१४८॥ मेरे गृह में विद्यमान देवताओं में श्रेष्ठ श्रीहरि का दर्शन करके तुम्हारा कल्याण होगा । **व्यासजी ने कहा**— इस तरह से श्रीवैष्णव के कहने पर ब्राह्मण बोले । **ब्राह्मण ने कहा**— वे भगवान कहाँ है ? कृपा करके आप मुझे उनका दर्शन करायें । **श्रीवैष्णव ने कहा**— इस मनोहर गृह में प्रवेश करके परमेश्वर ॥१४९-१५०॥ श्रीहरि का दर्शन करके आप सभी पापों से मुक्त होकर जन्मों के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे । **व्यासजी ने कहा**— श्री

अपश्यत्तं द्विजं विष्णुं तिष्ठंतं पद्मतल्पके । शिरसैव प्रवंद्याथ जग्राह चरणौ मुदा ॥१५२॥
प्रसादी भव देवेश न ज्ञातस्त्वं पुरा मया । इहामुत्र च देवेश तवाहं किंकरः प्रभो ॥१५३॥
अनुग्रहश्च मे दृष्टो भवतो मधुसूदन। रूपं ते द्रष्टुमिच्छामि यदि चास्ति कृपा मयि॥१५४॥

विष्णुरुवाच

अस्ति मे त्वयि भूदेव प्रियत्वं च सदैव हि । स्नेहात्पुण्यवतामेव दर्शनं कारितं मया ॥१५५॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाद्भाषणात्तथा । सकृत्पुण्यवतामेव स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥१५६॥
नित्यमेव तु संसर्गात्सर्वपापक्षयो भवेत्। भुक्त्वा सुखमनंतं च मद्देहे प्रविलीयते॥१५७॥
स्नात्वा च पुण्यतीर्थेषु दृष्ट्वा मां चैव सर्वतः । दृष्ट्वा पुण्यवतां देशान् मम देहे प्रविलीयते ॥१५८॥
कथयित्वा कथां पुण्यां लोकानामग्रतः सदा। स चैव नरशार्दूल मद्देहे प्रविलीयते ॥१५९॥
उपोष्य वासरेस्माकं श्रुत्वा मच्चरितं ध्रुवम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा मद्देहे प्रविलीयते॥१६०॥
अत्यंतघोषणो नृत्यगीतवाद्यादिकैस्सदा। नामस्मरन् द्विजश्रेष्ठ मद्देहे प्रविलीयते ॥१६१॥
मद्भक्तस्तीर्थभूतश्च त्वमेव बकमारणात्। यत्पापं तस्य मोक्षाय सखे स्थित्वा उवाच ह॥१६२॥
गच्छ मूकं महात्मानं तीर्थं पुण्यवतां वरम् । मूकस्य दर्शनात्तात सर्वे दृष्टामहाजनाः ॥१६३॥
तेषां च दर्शनादेव तथा संभाषणान्मम । मम संपर्कभावाच्च मद्गृहं चागतो भवान् ॥१६४॥
जन्मकोटिसहस्रेभ्यो यस्य पापक्षयो भवेत् । स मां पश्यति धर्मज्ञो यथा तेन प्रसन्नता ॥१६५॥
ममैवानुग्रहाद्वत्स अहं दृष्टस्त्वयानघ। तस्माद्वरं गृहाण त्वं यत्तेमनसि वर्तते॥१६६॥

वैष्णव की उस वाणी को सुनकर उस गृह में प्रवेश करके ॥१५१॥ ब्राह्मण ने देखा कि द्विजरूपी विष्णु कमल के आसन पर बैठे हैं ब्राह्मण ने शिर झुकाकर उनकी वन्दना की और दोनों चरणों को पकड़ लिया ॥१५२॥ हे देवेश! आप प्रसन्न होइये, आपको मैंने पहले नहीं जाना । हे देव ! मैं इस लोक तथा परलोक में आपका किंकर हूँ ॥१५३॥ हे मधुसूदन ! आप मेरे ऊपर कृपा करें । यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो आप मुझे अपना रूप दिखाइये ॥१५४॥ **विष्णु भगवान् ने कहा—** हे भूदेव ! आप मेरे सदैव प्रिय हैं । स्नेह के ही कारण मैंने, आपको पुण्यवान् पुरुषों का दर्शन कराया है ॥१५५॥ मेरा एक बार भी दर्शन, स्पर्श, ध्यान, कीर्तन तथा मुझसे भाषण कर लेने से पुण्यवान पुरुषों को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है ॥१५६॥ मेरे नित्य संसर्ग से सभी पापों का नाश हो जाता है। वह अनन्त सुख का भोग करके मेरे देह में विलीन हो जाता है ॥१५७॥ पवित्र तीर्थों में स्नान करके तथा सर्वत्र मेरा दर्शन करके, पुण्यवानों के देशों का दर्शन करके वह मेरे देह में विलीन हो जाता है ॥१५८॥ सभी लोकों के सामने पुण्यवानों की कथा कहकर वह मनुष्य मेरे शरीर में विलीन हो जाता है ॥१५९॥ मेरे दिन (एकादशी) को उपवास करके मेरे चरित का श्रवण करके, रात्रि में जागरण करके मनुष्य मेरे देह में विलीन हो जाता है । नृत्य गीत तथा वाद्य आदि के साथ अत्यन्त घोषणा करके मेरे नामों का स्मरण करता हुआ ब्राह्मण मेरे देह में विलीन हो जाता है॥१६०-१६१॥ मेरी भक्ति से पवित्र हुए तुमने बगुले को मार दिया, उससे उत्पन्न पाप से तुम्हें मुक्त करने के लिए मैंने तुम्हें कहा कि तुम महात्मा मूक का दर्शन करने के लिए जाओ । हे तात ! मूक का ही दर्शन करने के कारण तुम्हें सभी महात्माओं का दर्शन हुआ ॥१६३॥ उन सबों का दर्शन करने के कारण तथा मेरे साथ बातें करने के कारण मेरे साथ सम्पर्क होने के कारण तुम मेरे घर आ सके ॥१६४॥ करोड़ो हजार जन्मों में जिसके पाप का क्षय हो जाता है, वही धर्मज्ञ मेरा दर्शन कर पाता है । उसके कारण उसकी प्रसन्नता होती है ॥१६५॥ हे वत्स ! मेरी

विप्र उवाच

अस्माकं सर्वथा नाथ मानसं त्वयि तिष्ठतु। त्वदृते सर्वलोकेश कदाचिन्नतु रोचताम्॥१६७॥

माधव उवाच

यस्मादेतादृशी बुद्धिः स्फुरते ते सदानघ । तस्मान्मत्सदृशान् भोगान् मद्देहे संप्रलप्स्यसे ॥१६८॥
किंतु ते पितरौ पूजा माप्नुतो न त्वयानघ । पूजयित्वा तु पितरौ पश्चाद्यास्यसि मत्तनुम् ॥१६९॥
तयोर्निश्श्वासवातेन मन्युना च भृशं पुनः । तपःक्षरति ते नित्यं तस्मात्पूजय तौ द्विज ॥१७०॥
मन्युर्निपतते यस्मिन्पुत्रे पित्रोश्च नित्यशः । तन्निरयं नाबाधेऽहं न धाता न च शङ्करः ॥१७१॥
तस्मात्त्वं पितरौ गच्छ कुरु पूजां प्रयत्नतः । ततस्त्वं हि तयोरेव प्रसादान्मेपदं व्रज ॥१७२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते तु द्विजश्रेष्ठः पुनराह जगद्गुरुम्।

विप्र उवाच

प्रसन्नो यदि मे नाथ रूपं स्वं दर्शयाच्युत ॥१७३॥

व्यास उवाच

ततो द्विजप्रणयतः प्रसन्नहृदयो वशी। रूपं स्वं दर्शयाास ब्रह्मण्यो ब्रह्मकर्मणे॥१७४॥
शंखचक्रगदापद्मधारणं पुरुषोत्तमम्। कारणं सर्वलोकस्य तेजसापूरयज्जगत् ॥१७५॥
प्रणम्य दंडवद्विप्र उवाच पुनरच्युतम्। अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे चक्षुषी शिवे॥१७६॥
अद्यमे च करौ श्लाघ्यौ धन्योहं जगदीश्वर। अद्य मे पुरुषा यांति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥१७७॥

कृपा से ही तुम मेरा दर्शन कर पाये हो अतएव तुम्हारे मन में जो हो वह वरदान मुझसे माँगो ॥१६६॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे नाथ ! आप में ही हमारा मन लगा रहे । हे सम्पूर्ण लोकों के स्वामिन् आपसे भिन्न वस्तु में हमारा मन न लगे ॥१६७॥ भगवान् माधव ने कहा हे अनघ ! चूकि तुम्हारी बुद्धि सदैव इसीप्रकार से प्रकाशित होती है, इसलिए मेरे लोक में तुम हमारे ही समान लोगों को प्राप्त करोगे ॥१६८॥ किन्तु हे अनघ ! तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे द्वारा पूजित नहीं हो रहे हैं; अतएव तुम अपने माता-पिता की पूजा करने के बाद मेरे शरीर में लीन होओगे॥१६९॥ उन दोनों के निःश्वास वायु और क्रोध के कारण तुम्हारी बहुत अधिक तपस्या क्षीण हो जा रही है; अतएव हे द्विज ! पहले तुम उन दोनों की पूजा करो ॥१७०॥ जिस पुत्र पर माता-पिता कस क्रोध बना रहता है, उसको नरक जाने से न तो मैं रोक सकता हूँ न ब्रह्माजी और शङ्करजी ॥१७१॥ अतएव तुम अपने माता-पिता के पास जाओ और प्रयत्न पूर्वक उन दोनों की सेवा करो । उसके बाद तुम उन दोनों की ही कृपा से मेरे लोक में आओगे॥१७२॥ **व्यासजी ने कहा—** इसतरह से कहने पर उस श्रेष्ठ द्विज ने पुनः श्रीभगवान् से कहा **ब्राह्मण ने कहा—** हे नाथ ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तों आप मुझे अपने रूप का दर्शन कराइये ॥१७३॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके बाद उस विनयावनत ब्राह्मण को ब्रह्मण्य (ब्राह्मण प्रेमी) श्रीभगवान् ने अपने रूप का दर्शन कराया॥१७४॥ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मधारी पुरुषोत्तम सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप, अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को पूर्ण करने वाले ॥१७५॥ श्रीभगवान् को दण्डवत प्रणाम करके, ब्राह्मण ने पुनः कहा— आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरे नेत्र कल्याण प्राप्त हो गये ॥१७६॥ आज मेरे हाथ प्रशंसनीय हो गये, हे जगदीश्वर ! मैं धन्य हो गया हूँ । आज मेरे पूर्वज सनातन लोक में जा रहे हैं ॥१७७॥ हे जनार्दन ! आपकी कृपा से मेरे बाँधव

नंदंति बांधवा मेऽद्य त्वत्प्रसादाज्जनार्दन। इदानीं च प्रसिद्धा मे सर्वे चैव मनोरथाः ॥१७८॥
किंतु मे विस्मयो नाथ मूकादिज्ञानिनो भृशम्। कथं जानंति मद्वृत्तं देशांतरमुपस्थितम् ॥१७९॥
तस्य गेहोदराकाशे स्थितो विप्रोति शोभनः। तथा पतिव्रता गेहे तुलाधारशिरस्यपि ॥१८०॥
तथामित्राद्रोहकस्य त्वं च वैष्णवमंदिरे। अनुग्रहाच्च मे विप्र तत्वतो वक्तुमर्हसि ॥१८१॥

श्रीभगवानुवाच

पित्रोर्भक्तः सदा मूकः पतिव्रता शुभा च सा। सत्यवादी तुलाधारः समः सर्वजनेषु च ॥१८२॥
लोभकामजिदद्रोहोमद्भक्तोवैष्णवः स्मृतः। संप्रीतोऽहं गुणैरेषां तिष्ठाम्यावसथे मुदा ॥१८३॥
भारतीकमलाभ्यां च सहितो द्विजसत्तम।

विप्र उवाच

महापातकिसंसर्गान्नराश्चैवातिपातकाः ॥१८४॥
इति जल्पंति धर्मज्ञाः स्मृतिशास्त्रेषु सर्वदा। पुराणागमवेदेषु कथं त्वं तिष्ठसे गृहे ॥१८५॥

श्रीभगवानुवाच

कल्याणानां च सर्वेषां कर्त्ता मूको जगत्त्रये। वृत्तस्थो योऽपि चण्डलस्तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥१८६॥
मूकस्य सदृशो नास्ति लोकेषु पुण्यकर्मतः। पित्रो र्भक्ति परे नित्यं जितं तेन जगत्त्रयम् ॥१८७॥
तयोर्भक्त्या त्वहं तुष्टः सर्वदेवगणैः सह। तिष्ठामि द्विजरूपेण तस्य गेहोदरे च खे ॥१८८॥
तथा पतिव्रतागेहे तुलाधारस्य मंदिरे। अद्रोहकस्य भवने वैष्णवस्य च वेश्मनि ॥१८९॥
सदा तिष्ठामि धर्मज्ञ मुहूर्तं नत्यजाम्यहम्। तेन पश्यंति मां नित्यं ये त्वन्ये पापकृज्जनाः ॥१९०॥
पुण्यत्वाच्च त्वया दृष्टो ममानुग्रहकारणात्। पित्रोर्भक्तिपरः शुद्धश्चांडालो देवतां गतः ॥१९१॥

आनन्दानुभव कर रहे हैं, आज मेरे सारे मनोरथ सफल हो गये ॥१७८॥ किन्तु हे नाथ ! मुझे मूक आदि के विषय में अत्यन्त आश्चर्य है कि देशान्तर में घटित मेरे वृत्तान्त को वे कैसे जानते हैं ?॥१७९॥ हे विप्र ! आप अत्यन्त सुन्दर रीति से उन सबों के घर में स्थित हैं। उसी तरह से पतिव्रता के घर में तथा तुलाधार के भी घर में आप स्थित हैं ॥१८०॥ उसी तरह से आप मित्र अद्रोहक के तथा श्रीवैष्णव के घर में स्थित हैं। कृपया मुझ पर आप कृपा करके इसे बतलाइये ॥१८१॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— मूक सदैव अपने माता-पिता का भक्त है, शुभा पतिव्रता है, तुलाधार सत्यवादी है, तथा सभी लोगों के साथ समान बुद्धि रखने वाला है ॥१८२॥ अद्रोहक लोभ और काम पर विजय पर प्राप्त किए है तथा श्रीवैष्णव हमारे भक्त हैं। अतएव इन सबों के गुणों से प्रसन्न होकर इन सबों के घर में आनन्द पूर्वक सरस्वती तथा लक्ष्मी के साथ निवास करता हूँ **ब्राह्मण ने कहा**— महापातकियों के संबन्ध से मनुष्य पातकी हो जाते है, यह धर्मो के जानकारों ने धर्मशास्त्रों में कहा है तथा पुराणों आगमों तथा वेदों में कहा गया है तो फिर आप कैसे घरों में रहते हैं ?॥१८३-१८५॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— मूक त्रैलोक्य में सभी कल्याणों को करने वाला है यद्यपि उसकी चाण्डाल की वृत्ति है किन्तु देवता उसे ब्राह्मण ही जानते हैं ॥१८६॥ मूक के समान लोकों में कोई पुण्यवान नहीं है। वह नित्य ही माता-पिता की भक्ति करता है उसने तीनों लोकों को जीत लिया है॥१८७॥ उन दोनों की भक्ति से मैं सभी देवताओं के साथ उससे सन्तुष्ट हूँ और उसके घर में द्विज के रूप में निवास करता हूँ ॥१८८॥ उसी तरह से पतिव्रता के घर में, तुलाधार के घर में, अद्रोहक के घर में तथा श्रीवैष्णव के घर में सदैव रहता हूँ। हे धर्मज्ञ ! इन सबों को मैं मुहूर्त भर भी नहीं त्यागता हूँ, इसीलिए वे सब मुझे तथा दूसरे

तस्मात्तेन सह प्रीत्या तिष्ठामि तस्य मंदिरे । पुनःपुनः कथालापं करोमि द्विजनंदन ॥१९२॥
तस्य वै मानसे नित्यं वर्तेऽहंभूत भावनः। स तज्जानाति त्वद्वृत्तं तथा पतिव्रतादयः ॥१९३॥
तेषां वृत्तं वदिष्यामि शृणु त्वं चानुपूर्वशः । यच्छ्रुत्वा सर्वथा मर्त्यो मुच्यते जन्मबंधनात्॥१९४॥
पितुर्मातुः परं तीर्थं देवदेवेषु नैव हि । पित्रोरर्चा कृता येन स एव पुरुषोत्तमः ॥१९५॥
पित्रोराज्ञा च देवस्य गुरोराज्ञा समं फलम् । आराधनाद्दिवो राज्यं बाधया रौरवं व्रजेत् ॥१९६॥
स चास्माकं हृदिस्थोऽपि तस्याहं हृदये स्थितः । आवयोरंतरं नास्ति परत्रेह च मत्समः ॥१९७॥
मदग्रे मत्पुरे रम्ये सर्वैश्च बांधवैः सह । सभुञ्जीताक्षयं भोगमंते मयि च लीयते॥१९८॥
अतएवहि मूकोऽसौ वार्त्ता त्रैलोक्यसंभवाम् । जानाति नरशार्दूल एष ते विस्मयः कुतः ॥१९९॥

द्विज उवाच

मोहादज्ञानतो वापि न कृत्वा पितुरर्चनम् । ज्ञात्वा वा किंच कर्तव्यं सदसज्जगदीश्वर ॥२००॥
दिनैकं मासपक्षौ वा पक्षार्धं वाथवत्सरम् । पित्रोर्भक्तिः कृता येन स च गच्छेन्ममालयम्॥२०१॥
कारयित्वा मनःकष्टमवश्यं नरकं व्रजेत् । न कृता वा कृता वा स्यात्पित्रोरर्चा परं पुरा॥२०२॥
वृषोत्सर्गं नरः कृत्वा पितृभक्ति फलं लभेत् । अन्नं वस्त्रं तथा गव्यं सामिषं च निरामिषम्॥२०३॥
सर्वलक्षगुणं प्रोक्तं ज्ञातिभ्यो यत्प्रदीयते । सर्वस्वेन कृतं श्राद्धं येन पुत्रेण धीमता ॥२०४॥

पापियों को जानते हैं ॥१८९-१९०॥ पुण्यवान होने के ही कारण तथा मेरी कृपा के कारण तुमने भी मेरा दर्शन किया है । अपनी माता-पिता की सेवा करने के कारण शुद्ध होकर चाण्डाल देवता बन गया है ॥१९१॥ इसीलिए मैं उसके साथ उसके घर में प्रेम पूर्वक रहता हूँ, हे द्विजनन्दन ! मैं उसके साथ बार-बार बातें करता हूँ ॥१९२॥ लोक कल्याणकारी मैं सदैव उसके मन में निवास करता हूँ। उसी के कारण वह तुम्हारे वृत्त को जानता है । तथा पतिव्रता इत्यादि भी जानते हैं ॥१९३॥ मैं उन सबों का वृत्त बतलाता हूँ उसे तुम क्रमशः सुनो । उसका श्रवण करने मात्र से मनुष्य जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१९४॥ माता-पिता से बढकर कोई तीर्थ नहीं हैं; देवताओं में भी नहीं है । जो पिता की पूजा कर लिया है वही पुरुषोत्तम है ॥१९५॥ पिता की आज्ञा गुरुदेव की आज्ञा के समान फलद होती है । पिता की आज्ञा का पालन करने से स्वर्ग मिलता है और पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने से रौरव नरक मिलता है ॥१९६॥ वह हमारे हृदय में विद्यमान रहकर भी, मैं उसके हृदय में विद्यमान हूँ । लोक और परलोक में हम दोनों में कोई अन्तर नहीं है वह मेरे ही समान है ॥१८७॥ वह मेरे सामने, मेरे मनोहर लोक में अपने समस्त बान्धवों के साथ अक्षय भोग को भोगता है और अन्त में मुझमें लीन हो जाता है ॥१९८॥ इसीलिए वह मूक त्रैलोक्य में होने वाली बातों को जानता है । हे नरशार्दूल इस विषय में तुम्हें आश्चर्य क्यों है ?॥१९९॥ **द्विज ने कहा—** मोह अथवा अज्ञान के कारण यदि कोई माता-पिता की पूजा न करके अब उसे जानकर मुझे अच्छा या बुरा क्या करना चाहिये ?॥२००॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** जो व्यक्ति एक दिन, या मासभर या पक्षभर, या आधा पक्ष, या एक वर्ष तक अपने माता-पिता की भक्ति करता है, वह मेरे लोक में जाता है ॥२०१॥ अपने माता-पिता के मन को दुःखी बनाने वाला अवश्य ही नरक में जाता है, जिसने पहले अपने माता-पिता की सेवा किया हो या नहीं किया हो ॥२०२॥ मनुष्य वृषोत्सर्ग करके पिता की भक्ति का फल प्राप्त कर लेता है । अन्न, वस्त्र, गव्य, सामिष या निरामिष ॥२०३॥ ये सभी जो अपने ज्ञाति जनों द्वारा पितरों को दिया जाता है, वह लाख गुना फल देने वाला होता है । जो बुद्धिमान् पुत्र अपना सर्वस्वदान करके श्राद्ध करता है ॥२०४॥ वह जाति स्मरत्व तथा पितृभक्ति के फल को

जातिस्मरत्वं प्राप्नोति पितृभक्ति फलं लभेत्। श्राद्धात्परो महायज्ञस्त्रैलोक्ये तु न विद्यते॥२०५॥
अत्र यद्दीयते किंचित्सर्वं चाक्षयमश्नुते। अन्यस्मिंश्चायुतं विद्धि ज्ञातिभ्यो लक्षमुच्यते॥२०६॥
पिण्डे कोटिगुणं प्रोक्तं द्विजायानन्तमुच्यते। गङ्गाजले गयायां च प्रयागे पुष्करे तथा॥२०७॥
वाराणस्यां सिद्धकुंडे गङ्गासागरसंगमे। अन्नपिंडं प्रदद्याद्यस्तस्य मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम्॥२०८॥
पितरश्चाक्षयं स्वर्गं लभंते जन्मनः फलम्। भागीरथ्यां विशेषेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम्॥२०९॥
मुक्तिमार्गं स चाप्नोति पिंडदाने तु किं पुनः। नदीतीरेषु साहस्रं नदेत्वयुतमिष्यते॥२१०॥
सामान्यफलसंसर्गाच्छ्राद्धं शतगुणं भवेत्। अमायां च युगाद्यायां ग्रहणे सूर्यचंद्रयोः॥२११॥
पार्वणं कुरुते यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते। पितरस्तस्य तुष्यंति सर्वे समायुतं प्रति॥२१२॥
आशिषं दयितं दत्वा भोग्यं चानंतमात्मजे। ततःपर्वणि पुत्रैश्च कर्त्तव्यं पार्वणं मुदा॥२१३॥
पित्रोर्यज्ञमिमं कृत्वा मुच्यते जन्मबंधनात्। अहन्यहनि यच्छ्राद्धं नित्यश्राद्धमितिस्मृतम्॥२१४॥
श्रद्धयाकारयेद्यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते। तथैवापरपक्षे च काम्यश्राद्धं विधानतः॥२१५॥
कृत्वा कामं स चाप्नोति यद्वा मनसि वर्तते। आषाढीमवधिं कृत्वा यस्तुपक्षस्तु पंचमः॥२१६॥
तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यां गच्छतु वा न वा। कन्यां गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश॥२१७॥
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि समाप्तवरदक्षिणैः। काम्यश्राद्धं महापुण्यमिदंतस्यागतं शिवम्॥२१८॥
अभावात्कृष्णपक्षादौ तुलायां कर्तुमर्हति। अमावृश्चिकमायाति नैराश्यं पितरो गताः॥२१९॥

प्राप्त करता है। त्रैलोक्य में श्राद्ध से बढकर दूसरा कोई यज्ञ नहीं हैं ॥२०५॥ इस लोक में जो कुछ भी पितरों के लिए दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। दूसरों को दिया हुआ दान दश हजार गुना होता है और ज्ञातियो को दिया गया दान लाख गुना फलप्रद होता है ॥२०६॥ पिण्डदान में लगाया हुआ धन करोड़ गुणा होता है, ब्राह्मण को दिया गया दान अनन्त गुणा होता है जो गङ्गाजी के जल में, गया में, प्रयाग में, पुष्कर में, वाराणसी में, सिद्धकुण्ड में या गङ्गा सागर संगम स्थल पर अन्न का पिण्डदान करता है, उसकी मुक्ति अवश्य होती है ॥२०७-२०८॥ पितृगण भी अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करते हैं और उनका जन्म सफल हो जाता है। विशेष रूप में जो व्यक्ति तिल मिश्रित जल से तर्पण करता है ॥२०९॥ वह मुक्ति के मार्ग को प्राप्त कर लेता और पिण्डदान करने पर क्या कहना है ? नदी के तट पर हजार गुना और नद के तट पर दश हजार गुना फल होता है ॥२१०॥ सामान्य फल के संसर्ग से श्राद्ध का महत्त्व सौ गुना हो जाता है। अमावस्या तथा युगादि तिथियों पर एवं सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के समय जो पार्वण श्राद्ध करता है वह अक्षय लोक में जाता है। उसके पितृगण दश हजार वर्ष पर्यन्त तृप्त रहते हैं॥२११-२१२॥ वे श्राद्ध करने वाले को प्रिय आशीर्वाद तथा अनन्त भोग प्रदान करते हैं। इसीलिए पुत्रों को चाहिए कि वे अपने पितरों का श्राद्ध प्रत्येक वर्ष करें ॥२१३॥ श्राद्ध रूपी पितृयज्ञ करके मनुष्य जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। प्रतिदिन किया जाने वाला श्राद्ध नित्य श्राद्ध कहलाता है ॥२१४॥ जो श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करवाता है उसका अक्षय फल होता है। उसी तरह से अपरपक्ष (कृष्णपक्ष) में श्रद्धा पूर्वक काम्य श्राद्ध का अनुष्ठान करके॥२१५॥ मनुष्य अपनी सारी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है। आषाढमास की पूर्णिमा के बाद जो पाँचवाँ पक्ष होता है ॥२१६॥ उसमें श्राद्ध अवश्य करना चाहिए जब सूर्य कन्या राशिपर नही गये हों तो भी सूर्य के कन्या राशि पर जाने पर जो सोलह दिन होते हैं ॥२१७॥ उस समय किया गया श्राद्ध श्रेष्ठ दक्षिणाओं से युक्त यज्ञ का महत्त्व रखते हैं, काम्य श्राद्ध अत्यन्त पुण्यमय होता है। इससे श्राद्ध करने वाले का अत्यन्त कल्याण होता है ॥२१८॥

पुनःस्वभवनं यांति शापं दत्वा सुदारुणम्। पितृशापेन पुत्रस्य नष्टं सर्वमिति स्मृतम् ॥२२०॥
धनं पुत्रा यशः काम्यमभीष्टमायुरेव च। सर्वाण्येतानि लभ्यंते जन्मजन्मसु मानवैः ॥२२१॥
पितृणां च वरेणैव तस्मान्मैनं परिज्यजेत्। विवाहव्रतयज्ञादौ कृत्वानांदीमुखं द्विजः ॥२२२॥
अक्षयं लभते पुण्यं गोत्रं तस्य प्रवर्द्धते। एतद्विपर्ययो यस्य स याति नरकं नरः ॥२२३॥
कुलक्षयो भवेत्तस्य सजीवो दुःखितो भवेत्। ततस्तु पूजयेदग्रे गणेशं शंभुनंदनम्॥२२४॥
परं षोडशमातृश्च तत्पश्चात्पितृसंचयम्। नांदीमुखेषु सर्वेषु प्रपितामहपूर्वकम् ॥२२५॥
नांदीमुखे द्विजान्सर्वान् स्थापयेत्प्राङ्मुखान्सुधीः। उच्चारयेन्नमो वाक्यं स्वधाचान्यत्रयोजयेत्॥२२६॥
ग्रहणे चंद्रसूर्यस्य दत्वा पिंडोदकं नरः। अक्षयं लभते स्वर्गं पितृणां पुष्टिवर्द्धनम् ॥२२७॥
तत्र स्नानं न कुर्याद्यः शक्त्यापिंडोदकं नरः। न ददाति पितृणां तु चांडालत्वं स गच्छति ॥२२८॥
सर्वभूमिसमं दानं सर्वे व्याससमा द्विजाः। सर्वंगङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते निशाकरे ॥२२९॥
इंदोर्लक्षगुणं प्रोक्तं दशलक्षं तुं भास्करे। गङ्गातोये तु सम्प्राप्त इंदोः कोटी रवेर्दश ॥२३०॥
गवांशतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्। तत्फलं जाह्नवीस्नानो राहुग्रस्ते निशाकरे ॥२३१॥
चंद्रसूर्यग्रहेचैव अवगाहति जाह्नवीम्। सस्नातस्सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम् ॥२३२॥
सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमेसोमग्रहस्तथा। चूडामणिरितिख्यातस्तत्रानंतफलं स्मृतम्॥२३३॥

यदि कृष्ण पक्ष न आया हो तो तुला राशि के सूर्य में भी श्राद्ध किया जा सकता है। उस समय श्राद्ध नहीं करने पर वृश्चिक राशि की अमावस्या के आने पर पितृगण निराश हो जाते हैं ॥२१९॥ वे अपने पुत्रों आदि को भयङ्कर शाप देकर अपने भवन में चले जाते हैं। पितरों के शाप से पुत्रों का सर्वस्व नाश हो जाता है ॥२२०॥ मनुष्य प्रत्येक जन्मों में धन, पुत्र, यश सभी काम्य पदार्थ तथा अभीष्ट आयु को ॥२२१॥ पितृगणों के आशीर्वाद से ही प्राप्त करता है, अतएव पितरों का परित्याग नहीं करना चाहिए विवाह, व्रत तथा यज्ञ आदि के प्रारम्भ में नांदीमुख श्राद्ध करके द्विज ॥२२२॥ अक्षय भोगों को प्राप्त करता है तथा उसके वंश की वृद्धि होती है। जो मनुष्य इन सभी अवसरों पर नान्दी श्राद्ध नहीं करता है वह नरक गामी होता है ॥२२३॥ उसके वंश का विनाश हो जाता है और वह जीवन भर दुःखी रहता है। इसीलिए इन सभी अवसरों पर शम्भुनन्दन गणेशजी की पूजा करे ॥२२४॥ उसके बाद षोडश मातृकाओं की पूजा करके पितरों की पूजा करे। सभी नांदीमुखों में प्रपितामह पूर्वक सभी ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख होकर स्थापित करे। सभी वाक्यों में नमः पद का उच्चारण करे अन्यत्र सर्वत्र स्वधा पद का प्रयोग करे ॥२२५-२२६॥ सूर्य और चन्द्र ग्रहण के समय तर्पण और श्राद्ध करके मनुष्य पुष्टिवर्द्धक अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥२२७॥ जो मनुष्य इस अवसर पर न तो स्नान करता है और न तो शक्ति के अनुसार तर्पण और पिण्डदान करता है और न तो पितरों को दान करता है, वह चाण्डाल हो जाता है ॥२२८॥ चन्द्रग्रहण के समय किये गये सभी दान भूमि दान के समान होते हैं सभी ब्राह्मण व्यासजी के समान होते हैं, सभी जल गङ्गाजल के समान हो जाते हैं चन्द्रग्रहण के समय किए गये दान का फल लाख गुना होता है और सूर्य ग्रहण के समय किया गया श्राद्ध का फल दश लाख गुना होता है। उस समय यदि गङ्गाजल मिल जाय तो चन्द्रग्रहण के अवसर पर किये गये श्राद्ध का फल करोड़ गुना और सूर्य ग्रहण के समय दश करोड़ गुना हो जाता है ॥२२९-२३०॥ एक लाख गौओं के दान का जो फल होता है उसी के समान चन्द्रग्रहण के समय गङ्गा में स्नान करने का फल होता है ॥२३१॥ सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय जो गङ्गा में स्नान करता है, उसने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया, उसके लिए तीर्थ यात्रा करना व्यर्थ

समुपोष्य तयोः पूर्वे पुण्यतीर्थे तु यः पुमान्। दत्वापिंडोदकं दानं सत्यलोके प्रतिष्ठितः ॥२३४॥

द्विज उवाच

पितुरेव महायज्ञः श्राद्धं च भवतेरितम्। तातापश्चिमकालादौ किंकर्त्तव्यं सुतेन हि ॥२३५॥
किं कृत्वा च परं श्रेयो जन्मजन्मसु लभ्यते। पुत्रेण धीमता देव यत्नतो वक्तुमर्हसि॥२३६॥

श्रीभगवानुवाच

पूर्वे वयसि संप्राप्ते पिता पुत्र इति स्मृतः। उत्तरे च सुतस्तातः पालनान्नतु पूजनात् ॥२३७॥
देववत्पूजयेत्तातं स्नेहं कुर्याच्च पुत्रवत्। न लंघयेद्वचस्तस्य मनसापि कदाचन॥२३८॥
आतुरस्य पितुः पुत्रो यस्तु कुर्यात्प्रतिकियाम्। सोऽक्षयं लभते स्वर्गं सदा देवैः प्रपूज्यते॥२३९॥
मुमूर्षोरपि तातस्य पश्यतो मृत्युलक्षणम्। कृत्वा च यजनं पुत्रो देवानां तुल्यतां व्रजेत्॥२४०॥
विधिनाऽनशनेनैव पितुःस्वर्गं ददाति यः। पुत्रस्य तस्य धीरस्य शृणु वक्ष्यामि यद्गुणम्॥२४१॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। भवेदनशने पुण्यं तीर्थकोटिगुणं तयोः ॥२४२॥
भागीरथ्या जले चैव यो मृतः पुरुषोत्तमः। पयोधररसं मातुर्नपिबेन्मुक्ततां व्रजेत्॥२४३॥
वाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैव यदृच्छया। अभीष्टं च फलं भुक्त्वा मद्देहे प्रविलीयते॥२४४॥
या गतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। सा गतिस्त्यजतः प्राणान् ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ॥२४५॥
लोहितस्य विशेषेण तीरोत्तरसमाश्रितः। विधिना यस्त्यजेत्प्राणान्स च मत्समतां व्रजेत् ॥२४६॥
तस्यैव चोर्वशीकेशे पुण्यतीर्थे द्विजोत्तम। मृतोत्पन्नः समाप्नोति सर्वदोषैर्न लिप्यते ॥२४७॥

है ॥२३२॥ सूर्यबार को जब सूर्य ग्रहण लगे और सोमवार को चन्द्रग्रहण लगे तो चूड़ामणि योग होता है, उसका अनन्त फल बतलाया गया है ॥२३३॥ उन दोनों अवसर पर पहले उपवास करके व्यक्ति पवित्र तीर्थ में तर्पण करके तथा श्राद्ध करके सत्यलोक में जाता है ॥२३४॥ **ब्राह्मण ने कहा—** आपने पिता के लिए किए जाने वाले श्राद्ध को महायज्ञ कहा गया है, किन्तु आप यह बतलाइये कि पुत्र को पिता के जीवित रहने पर उनके लिए क्या करना चाहिए॥२३५॥ बुद्धिमान पुत्र क्या करे कि उसको प्रत्येक जन्मों में परंकल्याण की प्राप्ति हो आप बतलाइये॥२३६॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** बाल्यावस्था में पिता ही पुत्र कहलाता है। उसके बाद की अवस्था में पुत्र पालन करने के कारण पिता कहलाता है, पूजन करने के कारण नहीं ॥२३७॥ पुत्र को चाहिये कि वह पिता की देवता की समान पूजा करे और तथा पुत्र के समान उनसे स्नेह करे। उनकी आज्ञा का कभी मन से भी उल्लंघन न करे ॥२३७-२३८॥ जो पुत्र अपने रोगी पिता की दवा कराता है, वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है और वहाँ पर देवता उसकी पूजा करते हैं ॥२३९॥ मरणासन्न तथा मृत्यु के लक्षण से युक्त पिता की भी पूजा करने वाला पुत्र देवता के समान हो जाता है ॥२४०॥ जो पुत्र पिता की सद्गति की प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक उपवास करता है, उससे उसको जिस फल की प्राप्ति होती है उसे मैं बतलाता हूँ ॥२४१॥ उस उपवास का फल हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ के फल के समान तथा करोड़ों तीर्थों में स्नान के फल के समान होता है ॥२४२॥ जो मनुष्य गङ्गा जल में जाकर अपना प्राण त्याग करता है वह मुक्त हो जाता है, पुनः जन्म नहीं लेता है ॥२४३॥ जिसके प्राण वाराणसी में निकल जायँ, वह अपने अभिप्रेत भोगों को प्राप्त करके मेरे शरीर में विलीन हो जाता है ॥२४४॥ जो गति ऊर्ध्वरेतस् योगियों को मिलती है, वह गति सात ब्रह्मपुत्रों (ब्रह्मपुत्र नदी की धाराओं) में प्राण त्याग करने वाले की होती है ॥२४५॥ विशेष रूप से लोहित के उत्तर तट पर अपने प्राणों का जो विधिपूर्वक परित्याग करता है वह मेरे समान हो जाता

गृहस्याभ्यंतरे यस्य प्राणत्यागो भवेद् ध्रुवम्। यावद्ग्रंथिर्गृहेतिष्ठेत्तावद्बंधो भवेत्तनौ ॥२४८॥
हायने हायने चापि एकैकं परिहीयते। पश्यतां पुत्रबंधूनां बंधने नास्ति निष्कृतिः॥२४९॥
पर्वते कानने दुर्गे स्थाने वा जलवर्जिते । मृतो दुर्गतिमाप्नोति कीटादौ जायते पुनः ॥२५०॥
संस्कारश्च भवेद्यस्य मृतस्य परवासरे । षष्टिर्वर्षसहस्राणि कुंभीपाके प्रतिष्ठति॥२५१॥
अस्पृश्यस्पर्शनादेव उच्छिष्टः पतितो मृतः । सुचिरं नरकेस्थित्वा म्लेच्छजातिषु जायते॥२५२॥
तथैवबहुकीटेषु जायते सत्त्वजातिषु। तस्मान्न चिरकालेषु जानीयात्पुण्यपातकम् ॥२५३॥
पुण्यात्पुण्यप्रयोगैश्च सर्वेषां मर्त्यवासिनाम्। मरणे या गतिः पुंसां गतिर्भवति तादृशम्॥२५४॥
पुण्यतीर्थे मृतो यस्तु विष्णोर्नामानि चिंतयन्। पापात्पूतो व्रजेत्स्वर्गं सर्वैंदोषैर्न लिप्यते ॥२५५॥
पितुर्मृतस्य देहं तु वहेद्यस्तु सुतो बली। पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥२५६॥
प्राक् चितौ च पितुर्देहे मुखाग्निं कारयेत्सुतः । विधिना मंत्रपूतेन पश्चाद्देहं दहेत्पुनः ॥२५७॥
लोभमोहसमायुक्तं पापपुण्यसमावृतम् । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान्स गच्छतु ॥२५८॥
दग्ध्वा च लंघयेत्पुत्रोप्यस्थिसंचयनं प्रति । दशाहे समनुप्राप्ते चार्द्रवस्त्रं परित्यजेत् ॥२५९॥
छित्वा च लोहितं चेलं वह्नौ चाथ जले क्षिपेत्। ततश्चैकादशाहे च श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥२६०॥
प्रेतस्य देहपुष्ट्यर्थं ब्राह्मणैकं तु भोजयेत् । दानं दद्याच्च विधिवद्वस्त्रं पीठं च पादुकाम् ॥२६१॥

है ॥२४६॥ हे द्विजोत्तम ! उसका ही (लौहित्य तीर्थ का ही) फल उर्वशी केश नामक पवित्र तीर्थ में मरकर उत्पन्न होने वाला प्राप्त करता है और वह सभी दोषों से मुक्त हो जाता है ॥२४७॥ जो व्यक्ति घर के भीतर रहकर अपने प्राणों का त्याग करता है, उस घर में जितनी ग्रंथियाँ होती है, उतनी ग्रंथियाँ उसके शरीर में बँध जाती हैं॥२४८॥ एक-एक वर्ष में उसकी एक-एक ग्रंथि खुलती है । उसके पुत्र और बंधु उसे देखते रह जाते हैं, वे उस ग्रंथि को खोल नहीं सकते हैं ॥२४९॥ पर्वतपर, जङ्गल में, या दुर्गम स्थान में अथवा जलरहित स्थान में मरने वाला दुर्गतिक होता है और उसके बाद उसका जन्म कीट आदि योनियों में होता है ॥२५०॥ जिस मरे हुए व्यक्ति का दाह संस्कार मृत्यु के दूसरे दिन होता है, वह कुम्भीपाक नामक नरक में साठ हजार वर्ष तक पड़ा रहता है ॥२५१॥ जो अस्पृश्य का स्पर्श करके अथवा जूठे पर या पतितावस्था में मरता है, वही दीर्घ काल तक नरक में रहकर म्लेच्छ आदि जातियों में जन्म लेता है ॥२५२॥ उसी तरह से वह अनेक कीट योनियों में जन्म लेता है, अतएव बहुत समय बाद में पुण्य और पाप को नहीं जानना चाहिए ॥२५३॥ सभी मर्त्यवासियों की पुण्य करने से, पुण्य का प्रयोग करने से मरने पर जिस तरह की बुद्धि होती है उसी तरह की उसकी गति होती है ॥२५४॥ जो व्यक्ति भगवान् विष्णु के नामों का चिन्तन करता हुआ भगवान् विष्णु के पवित्र तीर्थों में प्राण त्याग करता है वह पाप से रहित पुरुष स्वर्गलोक में जाता है वह किसी भी दोष के बन्धन में नहीं बँधता है ॥२५५॥ जो बलवान् पुत्र मरे हुए अपने पिता के शव को अपने कन्धे पर ढोता है वह पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥२५६॥ पिता के शरीर को चिता पर रखकर उनके मुख में अग्नि देना चाहिए । उसके बाद मन्त्रोच्चारण पूर्वक पिता के शरीर को जलाये॥२५७॥ मन्त्र है **लोभमोह० इत्यादि** अर्थात् लोभ और मोह से युक्त तथा पाप एवं पुण्य युक्त शरीर को मैं जला रहा हूँ मेरे पिता दिव्य लोक में चले जायँ ॥२५८॥ शरीर को जलाने के बाद पुत्र को चाहिए कि अस्थि संचय के लिए कुछ दिन प्रतीक्षा करे । उसके बाद दशाह के दिन स्नान करके गीले वस्त्र का परित्याग कर दे ॥२५८-२५९॥ लाल कपड़े को फाड़कर उसे जल में या आग में डाल दे । उसके बाद बुद्धिमान को चाहिए कि वह एकादशाह के

सर्वोपकरणैस्तुल्यं धरादिगजवाजिकम् । कृष्णां गां च प्रदद्यात्तु सर्वपापविमुक्तये ॥२६२॥
चतुर्थाहे त्रिपक्षे च षण्मासे चाब्दिके तथा । द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येतानि षोडश ॥२६३॥
यस्यैतानि न संतीह यथाशक्ति च श्रद्धया । पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥२६४॥
अब्दमंबुघटं दद्यादन्नंचामिषसंयुतम् । नित्यानित्यमभावाच्च क्षपन्मासं समापयेत् ॥२६५॥
सपिंडीकरणश्राद्धं गते संवत्सरे बुधः । पार्वणस्य विधानेन कारयेद्दि्वजसत्तमः ॥२६६।
पितुरब्दमशौचं स्यान्मातुःषण्मासमेव च। त्रिमासंतुस्त्रियश्चैव तदर्द्धंभ्रातृपुत्रयोः॥२६७॥
सपिंडानामशौचं स्याद्यावन्नेहे स तिष्ठति । पुत्रस्य यन्निषिद्धं तु शृणु तात बदाम्यहम् ॥२६८॥
ब्रह्मचारी सदाचारी नगच्छेच्च स्त्रियं क्वचित् । सप्तघट्याः परं चैव नवघट्याश्च पूर्वतः ॥२६९॥
सकालःकुतपो ज्ञेयः पितृणां दत्तमक्षयम्। श्राद्धे त्रीणि पवित्राणि दौहित्रं कुतपास्तिलाः ॥२७०॥
त्रीणि चात्र प्रशंसंति सत्यमक्रोधमत्वराम्। सायं संध्यां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम् ॥२७१॥
दानं प्रतिग्रहं चैव श्राद्धं कृत्वा विवर्जयेत्। अकर्तव्यशतं कृत्वा श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥२७२॥
तच्च कर्तव्यतामेति स्वयमुक्तं विरिंचिना । शृणु पुत्र पुरावृत्तं बहूनां च वदाम्यहम् ॥२७३॥
गुरोर्गोहननं कृत्वा ददुः श्राद्धं ययुर्दिवम् । तेषां चकीर्तनादेव श्राद्धं भवति चाक्षयम्॥२७४॥

दिन श्राद्ध करे ॥२६०॥ प्रेत के शरीर की पुष्टि के लिए एक ब्राह्मण को भोजन कराये । ब्राह्मण को विधिपूर्वक वस्त्र चौकी, चरणपादुका इत्यादि का दान करे ॥२६१॥ सभी उपकरणों के साथ पृथिवी, हाथी ओर घोड़े आदि का दान करना चाहिए । सभी पापों से मुक्ति पाने के लिए काली गौ का दान करे ॥२६२॥ चतुर्थाह (दाह के चौथे दिन किए जाने वाले श्राद्ध) त्रैपाक्षिक (तीन पक्ष के बाद किया जाने वाला श्राद्ध) छह मास के भीतर किया जाने वाला श्राद्ध (षाण्मासिक) वर्ष के भीतर किया जाने वाला श्राद्ध (उनवार्षिक) इनसे भिन्न बारह मासों में किए जाने वाले बारह श्राद्ध इसतरह से सब मिलकर किये जाने वाले सोलह श्राद्ध होते हैं ॥२६२-२६३॥ जिन मनुष्यों के ये सोलह श्राद्ध नहीं किए जाते है, उसकी पिशाचत्व से मुक्ति सैकड़ों श्राद्ध करने पर भी नहीं होती है ॥२६४॥ एक वर्ष तक प्रेतात्मा को घड़ा में भरकर पानी तथा अन्न एक वर्ष तक देना चाहिये । ऐसा प्रतिदिन नहीं कर सकने पर पक्ष तथा मास भर पर क्षमा माँगे ॥२६५॥ एक वर्ष पूरा हो जाने पर विद्वान् को चाहिए कि वह पार्वण विधि से प्रेतात्मा का सपिण्डीकरण श्राद्ध कर दे ॥२६६॥ पिता का अशौच एक वर्ष तक रहता है, माता का छह मास तक, स्त्री का अशौच तीन मास तक और भाई तथा पुत्र का अशौच डेढमास तक रहता है ॥२६७॥ जब तक प्रेतात्मा का शव घर में रहता है तब तक ही सगोत्रीयों को अशौच होता है । हे तात ! जिन कार्यों को नहीं करना चाहिए उसे मैं बतला रहा हूँ सुनो ॥२६८॥ उसे ब्रह्मचर्य तथा सदाचार का पालन करना चाहिए वह स्त्री के पास न जाय । दिन के पहले की सात घड़ी और बाद के नव घड़ी का जो काल है, वह कुतप कहलाता है । कुतप की वेला में पितरों के लिए किया गया श्राद्ध अक्षय होता है । श्राद्ध में तीन वस्तुएँ पवित्र होते है दौहित्र (लड़की का लड़का), कुतप और तिल॥२६९-२७०॥ श्राद्ध में तीन बातें प्रशंसित है सत्य, अक्रोध और शीघ्रता न करना । श्राद्ध करने वाले को सायं सन्ध्या, दूसरे के यहाँ का भोजन, मैथुन, दान लेना ये सब कार्य नहीं करना चाहिए । सैकड़ों पापों को करके भी श्राद्ध करना चाहिए ॥२७२॥ श्राद्ध के लिए किया गया सारा पाप भी कर्तव्य बन जाता है, यह ब्रह्माजी ने कहा है । हे पुत्र ! सुनों मैं इस विषय में प्राचीन इतिहास बतला रहा हूँ ॥२७३॥ गुरु के गाय को मारकर जिन लोगों ने श्राद्ध किया वे स्वर्ग प्राप्त किए । उन सबों का नाम लेने मात्र से श्राद्ध अक्षय हो जाता है ॥२७४॥ महर्षि वसिष्ठ

वसिष्ठस्य मुनेः शिष्या ब्रह्माणास्सप्त सुव्रताः। पितृश्राद्धे समायाते होमधेनुं गुरोः प्रियाम्॥२७५॥
प्रार्थयित्वा गृहं नीत्वा सप्तभि र्भ्रातृभि र्मुदा। गव्यार्थं पितृयज्ञे तां धेनुं हत्वा विमृश्य च॥२७६॥
ददुर्मांसं च विप्रे च शेषं विप्रांस्त्वभोजयन्। समाप्य पितृकर्माणि वत्सं संगृह्य ते द्विजाः ॥२७७॥
गुरौ समर्पयामासु र्धेनुर्व्याघ्रेण भक्षिता। ततस्तपोबलादेव ज्ञात्वा तेषां च कारणम् ॥२७८॥
स शशाप ततः शिष्यांश्चांडालाश्च भविष्यथ। वेपमानास्ततो विप्राः कृतांजलिपुटाः स्थिताः ॥२७९॥

शिष्या ऊचु

धेनोर्मासं प्रदातारः पितृकृत्ये सदानघ। अकर्तव्यसहस्राणि महांति पातकानि च ॥२८०॥
कुर्वंतः पितृकार्येषु पापात्पूतादिवं गताः। श्रुतं बहुविधं नाथ मुखात्ते च पुरातनम्॥२८१॥
क्षंतु मर्हसि धर्मज्ञ शापस्यांतो विधीयताम्।

वसिष्ठ उवाच

शापो वोऽथ यथापाप्मा न तु धर्मविचारणात् ॥२८२॥
चांडालादौ समुत्पन्नाः पुरावृत्तं स्मरिष्यथ। न च वो ज्ञानलोपश्च स्मृतिशास्त्रमनष्टकम् ॥२८३॥
पापयोनिं समुत्तीर्य पश्चात्मोक्षं गमिष्यथ। ततःप्राणान्परित्यज्य गुरुशापात्तु ते द्विजाः॥२८४॥
जाताश्चांडालयोनौ तु सर्वे ज्ञानसमन्विताः। स्तन्यं तैस्तु न पीतं वै समरद्भिः पूर्वजन्म तत्॥२८५॥
मृताजाता मृगाः सर्वे चक्रवाकाः पुन र्वने। हंसास्तु मानसे तीर्थे शुक्ला जाताः पुनर्द्विजाः॥२८६॥
मुमूर्षवो महाभागा मृतास्ते खेदकारणात्। तस्मिन् काले महाराजो धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥२८७॥
यायौ स्नातुं ततस्तीर्थं सदारःसपरिच्छदः। ततो हंसास्त्रयो मोहाद्राज्यं भोग्यंतु योषितः॥२८८॥

के सात ब्राह्मण शिष्य थे, पितृश्राद्ध की बेला में अपने गुरु की प्रिय होमधेनु को ॥२७५॥ प्रार्थना करके प्रसन्नता पूर्वक अपने घर लाये। गौ गव्य के लिए लाये थे, उन सबों ने विचार करके उस गौ को मार दिया ॥२७६॥ उसके मांस को ब्राह्मण को परस दिया और उसे ही खिला दिया। श्राद्ध पूरा करके उन सबों ने केवल बछड़े को ले जाकर महर्षि को सौंप दिया ॥२७७॥ गुरु को समर्पित करके उन सबों ने कहा कि गौ को बाघ मार कर खा गया। उसके बाद तपस्या के बल से महर्षि उन सबों के कार्य को जान गये ॥२७८॥ उन्होंने शिष्यों को शाप दे दिया कि तुमलोग चाण्डाल हो जाओगे। उसके बाद वे सब काँपते हुए महर्षि के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और कहे—॥२७९॥ हे अनध ! पितृकार्य में गोमांस भी प्रदान करने वाले तथा हजारों महान् पाप करने वाले भी॥२८०॥ श्राद्ध करने के कारण पाप से पवित्र हो गये और स्वर्ग लोक चले गये ऐसी बहुत सी पुरानी कथायें सुनी गयी हैं ॥२८१॥ हे धर्मज्ञ आप हमलोगों को क्षमा कर दें और पाप का अंत कर दें। **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** तुमलोगों को धर्म का विचार नहीं करने के कारण पाप के अनुसार शाप लगेगा ॥२८२॥ तुमलोग पहले चाण्डाल योनि में उत्पन्न होकर भी अपने पूर्वजन्म के कार्यों का स्मरण करोगे। तुमलोगों का ज्ञान लुप्त नहीं होगा। अतएव स्मृति और शास्त्रों का ज्ञान बना रहेगा ॥२८३॥ पाप योनि को पूरा करके तुमलोग मोक्ष को प्राप्त कर लोगे। उसके बाद प्राणों का परित्याग करके वे ब्राह्मण, चाण्डाल योनि में उत्पन्न हो गये, किन्तु उनके ज्ञान का लोप नहीं हुआ। वे अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त का स्मरण करके अपनी माता का स्तन पान नहीं किए ॥२८४-२८५॥ इसके कारण मरकर वे वन में मृग हो गये, उसक बाद वे सब चक्रवाक पक्षी हो गये। उसके बाद वे मानसरोवर में जाकर श्वेत वर्ण के हंस हो गये ॥२८६॥ मुमूर्षु वे सब शोक करते हुए मर गये। उस समय प्रख्यात राजा धर्मकेतु

भक्ष्याणि चिंतयंतश्च लोकांतरमयुस्तदा। ज्ञात्वा वेदं च वेदांगं मोक्षं यास्यामहे वयम्॥२८९॥
चिंतयंतो गता अन्ये ततो लोकांतरं प्रति। अथ त्रयो नृपा जाताश्चत्वारो विप्रसत्तमाः ॥२९०॥
कुरुक्षेत्रे ततो वेदान्वेदांगानि समंततः। तपोबलाद्विदंतिस्म वार्ता चामुत्र चेह च ॥२९१॥
त्रयो राजकुले जाता राजानो मदमोहिताः। ज्ञानलोपात्परं लोकं न जानंति हिताहितम् ॥२९२॥
ते च विप्राश्च संदेहादाहूय चेटकं स्वकम् ।

विप्रा ऊचुः

राज्ञो गच्छ स्वकार्पण्यात्पत्रं देहि च संभ्रमात् ॥२९३॥
सप्तव्याधादशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥२९४॥
तेपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥२९५॥

श्रीभगवानुवाच

गृहीत्वा चेटको लेखं राज्ञस्तु समदर्शयत्। दृष्ट्वा लेखं तु राजानो राज्यं त्यक्त्वा ययुर्द्विजान्॥२९६॥
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषां गतास्ते च तपोधनाः । अचिरेणैव कालेन मोक्षं याताश्च तैस्सह ॥२९७॥
य इदंश्रृणुयाच्छ्राद्धे सप्तव्याधादिकं द्विज । अक्षयं चान्नपानं च पितृणामुपतिष्ठति ॥२९८॥

द्विज उवाच

वित्तहीनस्य विप्रस्य पितृकार्यं कथं भवेत्। तपस्विनो वनस्थस्य गृहस्थस्य च केशव॥२९९॥

भगवानुवाच

तृणकाष्ठार्जनं कृत्वा प्रार्थयित्वा वराटकम्। करोति पितृकार्याणि ततो लक्षगुणं भवेत् ॥३००॥

हुआ ॥२८७॥ अपनी पत्नियों और परिच्छदों के साथ वह राजा तीर्थ में स्नान करने के लिए गया राजा को देखकर तीन हंस अज्ञान के कारण, राज्य, भोग्यपदार्थ तथा स्त्रियों ॥२८८॥ एवं भक्ष्य पदार्थों का चिन्तन करते हुए मर गये। और दूसरे जो चार थे वे; हमलोग वेदों एवं वेदाङ्गों का ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करेंगे, इस प्रकार से सोचते हुए अपने शरीर का परित्याग किए। उसके वाद उनमें से तीन तो राजा हुए और चार श्रेष्ठ विप्र हो गये ॥२८९-२९०॥ वे कुरुक्षेत्र में रहकर अपनी तपस्या के वल से वेदों तथा वेदाङ्गों का तथा लौकिक एवं पारलौकिक वृत्तान्तों का ज्ञान प्राप्त कर लिए ॥२९१॥ तीन तो राजकुल में उत्पन्न होकर मद एव मोह से मोहित राजा हो गये। उनके ज्ञान का लोप हो गया, उनको परलोक तथा अपने कल्याण तथा अकल्याण का ज्ञान नहीं रहा ॥२९२॥ वे चारो ब्राह्मण अपने नौकर को वुलाकर कहे। **ब्राह्मणों ने कहा—** तुम राजा के यहाँ जाकर अपनी दीनता के साथ यह पत्र दे देना ॥२९३॥ पत्र में लिखा था दशार्ण प्रदेश में उत्पन्न सात व्याधे मरकर कालञ्जर पर्वत पर मृग हो गये। फिर वे शरद्वीप में चक्रवाक पक्षी हुए। उसके वाद मानसरोवर में हंस हो गये ॥२९४॥ वे कुरुक्षेत्र में वेदपारंगत ब्राह्मण हुए। आपलोग दूर तक का मार्ग पार कर चूके हैं, तुमलोग क्यों दुःखी होते हो ॥२९५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** चेटक उस पत्र को ले जाकर उस राजा को दिखाया उस श्लोक को देखकर वे राजा राज्य को छोड़कर उन ब्राह्मणों के पास गये ॥२९६॥ उन ब्राह्मणों की वाणी को सुनकर वे सब तपस्वी हो गये। और वे शीघ्र ही उन ब्राह्मणों के साथ मुक्त हो गये ॥२९७॥ हे द्विज ! जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर उन सातों व्याधों आदि की कथा को सुनता है, उसके द्वारा दिया गया अन्न तथा जल तिपरों को अक्षय रूप से प्राप्त होता है ॥२९८॥ **ब्राह्मण ने कहा—** जो ब्राह्मण, तपस्वी, वन में रहने वाला, निर्धन, गृहस्थ है, वह श्राद्ध कैसे करे ?॥२९९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** तृण और काष्ठ के द्वारा तथा भीख माँगकर जो कौड़ी-कौड़ी करके धनार्जन करता है; और उससे यदि वह श्राद्ध करता है तो उसका फल लाख गुना होता है ॥३००॥ सैकड़ों पापों को करके भी जो पितरों का श्राद्ध करता है,

अकर्तव्यशतं कृत्वा पितृश्राद्धं करोति यः । सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गं याति च मानवः ॥३०१॥
सर्वाभावे पितृतिथौ गोभ्यो घासं सददाति यः । फलं च पिंडदानस्य संप्राप्रोत्यधिकं नरः ॥३०२॥
पुरा वैराटविषये रुरोदातीव दीनकः । पितृतिथौ स्वयं प्राप्ते सर्वाभावाच्च रोदिति ॥३०३॥
रुदित्वा सुचिरं सोऽपि पप्रच्छकोविदं द्विजम् । ब्रह्मनूपितृतिथावाद्य किंस्वित्कृत्वा हितं भवेत् ॥३०४॥
वराटकश्च मे नास्ति धनं ब्रह्मविदांवर । उपदेशं च मे देहि येन धर्मे स्थितो ह्यहम् ॥३०५॥

द्विज उवाच

गच्छ शीघ्रं वने तात मुहूर्ते कुतपेऽधुना । घासं पितरमुद्दिश्य गवे देहीति सत्वरम् ॥३०६॥

भगवानुवाच

ततस्तस्योपदेशेन गृहीत्वा घासपूलकम् । गवे दत्वा यथाहृष्टः पुष्ट्यर्थं पितुरेव च ॥३०७॥
एतत्पुण्यप्रसादेन गतोऽसौ सुरमंदिरम् । स्वर्गं च सुचिरं भुक्त्वा उत्पन्नो धनिनां कुले ॥३०८॥
धनवान्स पुरा पुण्यात्पितृयज्ञस्य कारणात् । स ददाति पितुः पिंडं सर्वस्वेन धनेन च ॥३०९॥
तत्रैक जन्मनोभ्यासाद्गतोऽसौ विष्णुमंदिरम् । भुक्त्वानन्तसुखं तत्र सार्वभौमो भवेन्नृपः ॥३१०॥
पितृयज्ञात्परो यस्माद्धर्मो नास्ति कथंचन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शक्त्याकुर्यादमत्सरः ॥३११॥
यःपठेद्धर्मसंतानं जनानामग्रतो नरः । विष्णुपद्या जले स्नानं प्रतिलोके च लभ्यते ॥३१२॥
जन्मजन्मकृतो येन महापातकसंचयः । तत्सर्वं प्रलयं याति सकृदुच्चरिते श्रुते ॥३१३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पंचाख्यानो नाम पंचाशत्तमोध्यायः ॥५०॥

उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥३०१॥ सब कुछ के अभाव में जो मनुष्य अपने पिता की तिथि पर गायों को मुट्ठी भर घास भी दे देता है तो उसे पिण्डदान करने का फल प्राप्त होता है॥३०२॥ प्राचीन काल में विराट देश में एक निर्धन ब्राह्मण रहता था । पिता की तिथि आने पर उसने अत्यन्त दीन होकर रोया, क्योंकि उसके पास श्राद्ध के लिए कुछ भी नहीं था ॥३०३॥ दीर्घकाल तक रोने के बाद एक विद्वान् ब्राह्मण से पूछा हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! मेरे पास कुछ नहीं है, आज मेरे पिता की तिथि है, मैं क्या करूँ की धर्म में स्थित रहूँ ? आप मुझे उपदेश दें ॥३०४-३०५॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे तात ! इस कुतप की बेला में शीघ्र ही वन में चले जायँ और पितरों की तृप्ति के लिए गायों को घास खिला दीजिये ॥३०६॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— उसके बाद उस विद्वान के उपदेश से घास की पूली लेकर, वह ब्राह्मण पितरों की पुष्टि के लिए गायों को प्रदान किया । उसी से उत्पन्न पुण्य के कारण वह स्वर्ग चला गया दीर्घकाल तक स्वर्ग सुख को भोगकर वह धनिक वंश में जन्म लिया ॥३०८॥ वह अपने पूर्व जन्म के तथा पितृश्राद्ध जन्य पुण्य से धनवान हुआ । वह अपने सर्वस्व तथा धन के द्वारा पिता का श्राद्ध करता था ॥३०९॥ उस एक जन्म के अभ्यास से वह वैकुण्ठ लोक में गया । वहाँ पर अनन्त भोगों को भोग कर वह सार्वभौम राजा हुआ ॥३१०॥ चूकि श्राद्ध से बढकर दूसरा कोई धर्म नहीं है अतएव अपने सम्पूर्ण प्रयासों के द्वारा मत्सररहित होकर श्राद्ध करना चाहिए ॥३११॥ जो धार्मिक सन्तान लोगों के समक्ष इस कथा को पढता है वह प्रत्येक लोक में गङ्गा स्नान का फल प्राप्त करता है ॥३१२॥ उसके प्रत्येक जन्म के पाप इस प्रसङ्ग का एक बार भी पाठ कर लेने से विनष्ट हो जाते हैं ॥३१३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पञ्चाख्यान नामक पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५०॥

एकावनवाँ अध्याय

नरोत्तम उवाच

त्रिदशानां च देवानामन्येषां जगदीश्वरः । प्रभुः कर्ता च हर्त्ता च गोप्ता भर्त्ता पिता प्रसूः ॥१॥
अस्माकं वाक्श्रमोविष्णोः कथनेनैव युज्यते। किंतु कौतूहलं मेस्ति पिपासा वा क्षुधापि वा ॥२॥
कृतं पृच्छति येनैव वक्तव्यं तत्प्रियेण हि । अतीतं चैव जानाति कथं नाथ पतिव्रता ॥३॥
किं वा तस्या प्रभावं च वक्तुमर्हस्यशेषतः।

भगवानुवाच

कथितं मे पुरा वत्स पुनः कौतूहलं द्विज ॥४॥
कथयिष्यामि तत्सर्वं यत्ते मनसि वर्तते। पतिव्रता पतिप्राणा सदा पत्युर्हिते रता ॥५॥
देवानामपि साराध्या मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्। धवस्यैकस्य या नारी लोके पूज्यतमा स्मृता ॥६॥
तस्या संमानने गुर्वी निभृता न भविष्यति । मध्यदेशे पुरा तात नगरी चातिशोभना ॥७॥
तस्यां च ब्रह्मजातीया सैव्या नाम्नी पतिव्रता । तस्या धवोऽभवत्कुष्ठी पूर्वकर्मविरोधतः ॥८॥
गलद्व्रणस्य पत्युश्च नित्यं चर्या परायणा । यद्यन्मनोरथं तस्य शक्त्या सा कुरुते भृशम् ॥९॥
अर्चयेद्देववन्नित्यं स्नेहं कुर्यादमत्सरा। कदाचित्पथि गच्छंतीं वेश्यां परमसुंदरीम् ॥१०॥
दृष्ट्वातीवाभवन्मोहान्मन्मथाविष्टचेतनः । निश्श्वस्य सुतरां दीर्घं ततस्तु विमनाभवत् ॥११॥
श्रुत्वा गृहाद्विनिः सृत्य साध्वीं पप्रच्छ तं पतिम्।

पतिव्रता का महात्म्य वर्णन, पतिव्रता सैव्या द्वारा पति की सेवा का वर्णन और माण्डव्यमुनि की कथा

नरोत्तम ब्राह्मण ने कहा— हे प्रभो ! आप सभी देवताओं तथा दूसरों के स्वामी हैं । आप ही जगत् के कर्ता, जगत् का संहार करने वाले, रक्षक, स्वामी तथा जनक हैं ॥१॥ हे भगवन् ! हमलोगों को कथन मात्र से श्रम होता है । किन्तु मुझे इस बात को जानने का कौतूहल, प्यास तथा भूख है । यदि कोई किसी वात को पूछता है तो प्रिय व्यक्ति को उसे बतलाना चाहिए । हे नाथ ! यह पतिव्रता हमारी बीती घटनाओं को कैसे जानती है ॥३॥ उसका प्रभाव क्या है ? इस बात को आप बतलाइयें । **श्रीभगवान् ने कहा**— हे वत्स ! मैंने पहले ही उसे बतला दिया है, फिर भी तुम्हें कौतूहल है ॥४॥ मैं उन सारी बातों को कहूँगा, जो तुम्हारे मन में है । पतिव्रता को उसका पति प्राण के समान प्रिय होता है, वह सदैव पति का कल्याण करने में लगी रहती है ॥५॥ वह देवताओं तथा ब्रह्मज्ञानी मुनियों का भी प्रिय होती है जो केवल अपने पति की ही नारी होती है, वह लोक में सर्वाधिक पूज्य कही गयी है॥६॥ वह सम्मान करने से गुरुत्व सम्पन्न नहीं होती है । हे तात ! मध्यदेश में एक अत्यन्त सुन्दर नगरी थी ॥७॥ उस नगरी में एक सैव्या नाम की प्रतिव्रता थी । पूर्व कर्म के विपरीत होने के कारण उसका पति गलितकुष्ठ वाला हो गया॥८॥ वह गलित कुष्ठ वाले भी अपने पति की सेवा में सदैव लगी रहती थी । उसकी जो-जो इच्छा होती थी उसको वह अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण करती थी ॥९॥ वह अपने पति की देवता के समान पूजा करती थी और विना किसी कपट के उससे स्नेह करती थी । एक बार उसके पति ने उस मार्ग से जाती हुयी सुन्दरी नाम की वेश्या को देखा ॥१०॥ उसको देखकर वह कामावेश से युक्त हो गया । उसने लम्वी श्वास ली और उदास हो गया ॥११॥ उसको सुनकर घर से निकलकर पतिव्रता ने अपने पति में उसकी उदासी का कारण पूछा **साध्वी ने कहा**— हे नाथ!

साध्व्युवाच

उन्मनास्त्वं कथं नाथ निःश्वासस्ते कथं विभो ॥१२॥
ब्रूहि मे यच्चकर्तव्यमकर्तव्यं च यत्प्रियम्। दयितं ते करिष्यामि त्वमेको मे गुरुः प्रियः ॥१३॥
अभीष्टं वद मे नाथ यथाशक्ति करोम्यहम्।

भगवानुवाच

इत्युक्ते तामुवाचेदं वृथा किं भाषसे प्रिये ॥१४॥
न शक्ता त्वं न चैवाहं मोघं वक्तुं न युज्यते। प्रष्टुं नाधिकरोषीति यथादीर्घतरोः फलम् ॥१५॥
भूमौ स्थित्वा तु खर्वात्मा समुद्धर्तुं प्रवाञ्छति। तथा मे रमणी लोभान्मोहाद्यदभिवांछितम् ॥१६॥
दंपत्योरपि दुःसाध्यमपयानं वदाम्यहम्।

पतिव्रतोवाच

ज्ञात्वा तु त्वन्मनोवृत्तं शक्ताहं कार्यसाधने ॥१७॥
आदेशं कुरु मे नाथ कर्तव्यं येन केनचित्। यदि ते दुर्लभं कार्यं कर्तुं शक्नोमि यत्नतः ॥१८॥
तदा मे त्वतिकल्याणं फलिष्यति परेत्विह । इत्युक्ते परमः प्रीतः स्थितो वचनमब्रवीत् ॥१९॥
पापाभ्यासाच्च पाप्मानं पृच्छतीति विनिश्चयः।

कुष्ठ्युवाच

पथ्यस्मिन्संप्रगच्छंती वेश्यां परमसुंदरीम् ॥२०॥
सर्वतश्चानवद्यांगीं दृष्ट्वा मे दह्यते मनः । यदि तां त्वत्प्रासादाच्च प्राप्नोमि नवयौवनाम् ॥२१॥
तदा मे सफलं जन्म कुरु साध्वि हितं मम । यदि मां कुष्ठिनं दीनं पूतिगंधं नवव्रणम् ॥२२॥
न गच्छति वरारोहा तदा मे निधनं हितम् ।

आप उदास क्यों हैं ? आप लम्बी श्वास क्यों ले रहे हैं । आपका प्रिय चाहे कर्तव्य हो या अकर्तव्य हो, उसे आप मुझे बतलाइये, आपके प्रिय कार्य को मै करूँगी, केवल आप ही मेरे प्रिय गुरु हैं ॥१३॥ हे नाथ ! आपको जो अभीष्ट हो उसे मुझे बतलाइये उसे मैं करूँगी । **श्रीभगवान् ने कहा—** इस तरह से कहने पर उसने कहा— हे प्रिये! व्यर्थ क्यों बोलती हो ?॥१४॥ उसे न तो तुम कर सकती हो और न तो मैं कर सकता हूँ, व्यर्थ बोलना ठीक नहीं है । उसके विषय में पूछना ठीक नहीं । जैसे ऊँचे वृक्ष के फल को ॥१५॥ कोई बौना तोड़ लेना चाहे उसी तरह आज मेरा मन लोभवशात् किसी रमणी को प्राप्त करना चाहता है ॥१६॥ वह हमदोनों के लिए दुःसाध्य है, अतएव उसको कहना व्यर्थ है । **पतिव्रता ने कहा—** आपके मन की वृति को जानकर मैं उसे पूरा कर सकती हूँ ॥१७॥ हे नाथ ! आप आदेश दें और मैं उसे किसी भी प्रकार से करूँगी ॥१८॥ यदि मैं आपके दुर्लभ कार्य को प्रयत्नपूर्वक कर सकूँगी ॥१८॥ तो वह मेरे लिए परलोक में अत्यन्त कल्याणकारी होगा । **भगवान् ने कहा—** इसतरह से अत्यन्त प्रसन्न होकर कोढी पति ने कहा— क्योंकि पाप करने के अभ्यास के कारण पापी पाप को ही करना चाहता है । इस मार्ग से जाती हुयी परम सुन्दरी वेश्या को मैंने देखा ॥१९-२०॥ उसके सारे अङ्ग निर्दोष हैं, उसको देखकर मेरा मन उसे प्राप्त करना चाहता है । यदि मैं तुम्हारी कृपा से उस नवयौवना को प्राप्त कर लूँ ॥२१॥ तो मेरा जन्म सफल हो जाय, अतएव हे साध्वि ! तुम मेरा कल्याण करो । यदि वह, दीन, दुर्गंधि युक्त, नवीन घावों वाले कोढी मुझको ॥२२॥ नही मिलती है तो निश्चित है कि मैं मर जाऊँगा । **श्रीभगवान् ने कहा—**

भगवानुवाच

श्रुत्वा तेनेरितं वाक्यं साध्वी वचनमब्रवीत् ॥२३॥

पतिव्रतोवाच

यथाशक्तिकरिष्यामि स्थिरी भव प्रभोऽधुना।

भगवानुवाच

मनसाथ समालोच्य क्षपांते ह्युषसि द्रुतम् ॥२४॥
गोमयं सह शोधन्या गृहीत्वा सा ययौ मुदा। संप्राप्य गणिकागेहं शोधयित्वा च चत्वरम् ॥२५॥
प्रतोलीं वीथिकां चैव गोमयं प्रददौ मुदा । सा तूर्णमागता गेहे जनस्यालोकने भयात्॥२६॥
एवं क्रमेण सा साध्वी चरतिस्म दिनत्रयम्। अथ सा बारमुख्या च चेटिकाश्चेटकानपि ॥२७॥
अपृच्छत्कस्य कर्माणि शोभनानि च चत्वरे। मयानोक्तेप्युषःकाले कस्य मत्प्रियकारणात् ॥२८॥
रुच्यकर्मणि दीप्यंते रथ्या चत्त्वरवीथिकाः । परस्परेण संचिंत्य वारमुख्यां च तेऽब्रुवन्॥२९॥

चेटका ऊचुः

अस्माभिर्नकृतं भद्रे कर्मचैतत्प्रमार्जनम्।

भगवानुवाच

अथ सा विस्मयं गत्वा संचिंत्य रजनीक्षये ॥३०॥
तया च दृश्यते सा च तयैव पुनरागता । दृष्ट्वा तां महतीं साध्वीं ब्राह्मणीं च पतिव्रताम्॥३१॥
दधार चरणे तस्या हा क्षमस्वेति भाषिणी।

गणिकोवाच

आयुर्देहं च संपत्तिर्यशोर्थः कीर्तिरिव च ॥३२॥
एतासां मे विनाशाय स्फुरसीव पतिव्रते । यद्यत्प्रार्थयसे साध्वि नित्यं दास्यामि तद्दृढम् ॥३३॥

उसकी बातों को सुनकर साध्वी बोली ॥२३॥ **पतिव्रता ने कहा—** हे प्रभो ! आप शान्त रहें मैं अपनी शक्ति के अनुसार प्रयास करूँगी । **श्रीभगवान् ने कहा—** मन से विचार करके प्रात:काल की बेला में ॥२४॥ वह झाडू तथा गोबर लेकर गयी । वेश्या के घर जाकर उसके चत्वर को झाड़कर ॥२५॥ उसकी प्रतोली तथा गली को गोबर से पोत दिया और दूसरे लोगों को देख लने के भय से प्रतिव्रता अपने घर शीघ्र आ गयी ॥२६॥ इस तरह वह तीन दिन तक करती रही, उसके बाद उस वेश्या ने अपने दासों तथा दासियों से पूछा ॥२७॥ मेरे चत्वर पर यह कौन सुन्दर कार्य करता है, मेरे कहे बिना कौन प्रात:काल में मेरा प्रिय कार्य करता है ॥२८॥ अलङ्करण के कारण मार्ग, चत्वर और वेदियाँ सुशोभित हो रही हैं । उन सबों ने आपस में बातें करके उस वेश्या से कहा । **दासों ने कहा—** हे भद्रे ! हमलोगों ने यह सफाई का कार्य नहीं किया है । **श्रीभगवान् ने कहा—** उसके बाद वह वेश्दा विचार करके बहुत आश्चर्यित हुयी । प्रात:काल जगी तो ॥३०॥ उसकी दृष्टि उस पतिव्रता पर पड़ी । वह पहले के ही समान आयी थी, उस अत्यन्त साध्वी पतिव्रता ब्राह्मणी को देखकर ॥३१॥ उसने उस पतिव्रता के चरणों को पकड़ लिया और कहा क्षमा करो **गणिका ने कहा—** पतिव्रते ! लगता है कि आप मेरी आयु, देह, संपत्ति, यश, धन तथा कीर्ति का नाश कर देना चाहती हैं । हे साध्वि ! आप जो चाहें वह मैं आपको दूँगी ॥३२-३३॥ आप सुवर्ण, मणि,

सुवर्णं मणिरत्नं वा चेलं वा यन्मनोरथम्।

भगवानुवाच

तामुवाच ततः साध्वी न मे चार्थे प्रयोजम् ॥३४॥
अस्ति कार्यं च ते किञ्चिद्वदामि कुरुषे यदि। तदा मे हृदि संतोषः कृतं सर्वं त्वयाऽधुना ॥३५॥

गणिकोवाच

सत्यं सत्यं करिष्यामि द्रुतं वद पतिव्रते। कुरु मे रक्षणं मातर्द्रुतं कृत्यं च मे वद ॥३६॥

भगवानुवाच

त्रपया निकृतं वाच्यं तस्यामुक्तं वरं प्रियम्। क्षणं विमृश्य सा वेश्या कृत्वा क्षांतिमुवाच च॥३७॥
कुष्ठिनः पूतिगंधस्य संपर्के दुःखिता भृशम्। दिनैकं च करिष्यामि यद्यागच्छति मद्गृहम्॥३८॥

पतिव्रतोवाच

आगमिष्यामि ते गेहमद्य रात्रौ च सुंदरि। भुक्तभोग्यं पतिं दृष्टं पुनर्नेष्यामि मद्गृहम् ॥३९॥

गणिकोवाच

गच्छ शीघ्रं महाभागे स्वगृहं च पतिव्रते। पतिस्ते चार्द्धरात्रे स आगच्छतु च मद्गृहम्॥४०॥
बहवो मे प्रियास्संति राजानस्तत्समाश्रये। एकैको मद्गृहे नित्यं तिष्ठतीह निरंतरम् ॥४१॥
अद्याहं मे गृहं शून्यं करिष्यामि च त्वद्भयात्। स चागच्छतु ते भर्त्ता सचास्मान्प्राप्य गच्छतु ॥४२॥

भगवानुवाच

एतच्छ्रुत्वा तु सा साध्वी गतासौ स्वगृहे तथा। पत्यौ निवेदयामास कृत्यं ते फलितं प्रभो ॥४३॥
अद्य रात्रौ च तद्गेहं गंतुं ख्यातिं करोति सा। प्रभूताः पतयस्तस्यास्तवकालो न विद्यते ॥४४॥

विप्र उवाच

कथं यास्यामि तद्गेहं मया गंतुं न शक्यते। एतज्ज्ञात्वा कुतः क्षांतिः कृतं कार्यं कथं भवेत्॥४५॥

रत्न, वस्त्र जो चाहें सब दूँगी। **श्रीभगवान् ने कहा—** उसके बाद उस साध्वी ने कहा मुझे धन नहीं चाहिए। तुमसे ही कुछ काम है, यदि करो तो मैं बतलाऊँ उसको करने से ही मेरे हृदय में सन्तोष होगा ॥३४-३५॥ **गणिका ने कहा—** हे पतिव्रते! शीघ्र बतलाओं, उसे मैं अवश्य करूँगी, मैं सत्य कहती हूँ। हे मां आप मेरी रक्षा करें मुझे अपना काम शीघ्र बतलायें ॥३६॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** लजाती हुयी पतिव्रता ने उस कार्य को उसे बतलाया जो कार्य उसके पति को प्रिय था। क्षणभर विचार करके तथा मन शान्त करके वेश्या बोली। दुर्गन्धि से युक्त कोढी से सम्पर्क करने से मुझे दुःख तो बहुत होगा। यदि आपके पति मेरे घर आयें तो एक दिन उनके साथ संगम कर लूँगी॥३७-३८॥ **पतिव्रता ने कहा—** हे सुन्दरि मैं आज रात में उनको लेकर आऊँगी। अपने पति को भुक्तभोग्य देखकर फिर उन्हें अपने घर ले जाऊगी ॥३९॥ **गणिका ने कहा—** हे पतिव्रते! शीघ्र अपने घर चली जाओ, तुम्हारे पति मेरे घर आधी रात को आ जायँ ॥४०॥ मेरे बहुत से राजा तथा राजा के समान पति हैं। उनमें से कोई-न-कोई मेरे घर रहता ही है ॥४१॥ तुम्हारे भय के कारण आज मैं अपना घर उन सबों से रहित रखूँगी। आज आपके पति आ जायँ और मेरा उपभोग करके चले जायँ ॥४२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** इस बात को सुनकर वह साध्वी अपने घर चली गयी और अपने पति को बतलायी कि आपका मनोरथ सिद्ध हो गया ॥४३॥ आज रात्रि में उसके घर जाने के लिए उसने कहा है। उसके बहुत से पति हैं, किन्तु आपके समय में वहाँ कोई नहीं रहेगा।

पतिव्रतोवाच

स्वपृष्ठस्थमहं कृत्वा नेष्यामि तद्गृहं प्रति । सिद्धेह्यर्थे नयिष्यामि पुनस्तेनैव वर्त्मना॥४६॥

द्विजउवाच

कल्याणि त्वत्कृते नैव सर्वं मे कृत्यमेष्यति। इदानीं यत्कृतं कर्मस्त्रीजनैरपि दुःसहम् ॥४७॥

भगवानुवाच

तस्मिंश्च नगरे रम्ये नित्यं च धनिनो गृहे। चौरैश्च प्रचुरं वित्तं हृतं राज्ञा श्रुतं तदा ॥४८॥
श्रुत्वा सर्वान्निशाचारानाहूय नृपती रुषा ।

नृपतिरुवाच

जीवितुं यदि वो बांछा चोरं मामद्य दास्यथ ॥४९॥

भगवानुवाच

गृहीत्वा तु नृपस्याज्ञां यत्तैर्जिघृक्षया कुलैः । चारैश्चोरोगृहीतस्तै र्बलाच्चैव नृपाज्ञया ॥५०॥
नगरोपांतदेशे च वृक्षमूले घने वने । समाधिस्थो महातेजा मांडव्यो मुनिपुगवः ॥५१॥
व्यातिष्ठद्वह्निसंकाशो योगिनां प्रवरो मुनिः। अंतर्नाडीगतो वायुः किंचिन्नप्रतिभाति च॥५२॥
तं ब्रह्मतुल्यं तिष्ठन्तं दृष्ट्वा दुष्टा महामुनिम्। चोरोयमद्भुताकारो धूर्तस्तिष्ठति कानने॥५३॥
एवमुक्त्वा तु तं पापा बबन्धुर्मुनिसत्तमम्। नोक्ताश्च नेक्षितास्तेन पुरुषा अतिदारुणाः ॥५४॥
ततो राजा उवाचेदं संप्राप्तस्तस्करो मया। उपांते च पथि द्वारे कुरुध्वं घोरदण्डनम्॥५५॥
मांडव्यश्च मुनिस्तत्र पथिशूले च कीलितः । पायुदेशे च तैर्दत्तं शूलं यावच्च मस्तकम् ॥५६॥
व्यथां स च न जानाति शूलेविद्धतनुर्यमात्। अन्यैरपि कृतोदण्डः कृतस्तैस्तु मनोहितः ॥५७॥

ब्राह्मण ने कहा— उसके घर मैं कैसे जाऊँगा । मैं अपने से तो जा नहीं सकता हूँ । अतएव मुझको शान्ति कैसे होगी ?, मेरा कार्य कैसे सम्पन्न होगा ?॥४४-४५॥ **पतिव्रता ने कहा—** मैं अपनी पीठ पर बैठाकर आपको उसके घर पहुँचाऊँगी । और आपके सन्तुष्ट हो जाने पर मैं आपको अपने घर लाऊँगी ।४६॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे कल्याणि ! तुम से ही मेरा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगा । तुमने यह जो कार्य किया है वह किसी भी स्त्री के लिए दुःसह है ॥४७॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** उस नगर में प्रतिदिन धनिकों के घर में चोरों ने बहुत अधिक धन सम्पत्ति चुरा लिया था इस बात को राजा ने सुना ॥४८॥ यह सुनकर क्रुद्ध हुए राजा ने रात्रि में घूमने वाले गुप्तचरों को बुलाकर कहा **राजा ने कहा—** यदि तुम लोग जीवित रहना चाहते हो तो चोर को पकड़ कर आज उपस्थित करो ॥४९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** राजा की आज्ञा पाकर वे सब रात्रि में चोर को पकड़ने के लिए व्याकुल घूम रहे थे । राजा की आज्ञा से दूतों ने चोर को पकड़ लिया ॥५०॥ नगर के बाहर सन्निकट के बन में महर्षि माण्डव्य समाधि में तपस्या कर रहे थे ॥५१॥ अग्नि के समान तेजस्वी महर्षि बैठे थे । उनकी प्राण वायु नाड़ी में प्रवेश कर गयी थी अतएव उनको कुछ भी पता नहीं चला ॥५२॥ ब्रह्म के सदृश बैठे हुए महर्षि को देखकर गुप्तचरों ने सोचा यह चोर है, रूप बनाये बैठा है ॥५३॥ इसतरह से कहकर वे पापी मुनि को बाँध दिए । किन्तु मुनि ने उन दुष्टों को न तो देखा और न कुछ कहा ॥५४॥ इसके बाद उन सबों ने राजा से कहा कि हमलोगों ने चोर को पकड़ लिया है । राजा ने कहा नगर के बाहर उसे घोर दण्ड दो ॥५५॥ उन सबों ने माण्डव्य महर्षि को उस शूल में कीलित कर दिया और उनके गुदामार्ग से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त शूल ठोक दिया ॥५६॥ शरीर में शूल से बेधने के कष्ट का उनको

एतस्मिन्नंतरे रात्रावंधकारे घनोन्नते । स्वपतिं पृष्ठतः कृत्वा प्रययौ सा पतिव्रता ॥५८॥
मांडव्यस्य तनो सङ्गात्कुष्ठिनो गंध आगतः।

भगवानुवाच

भग्नः समाधिस्तस्यैवं कुष्ठि संसर्गतो ध्रुवम् ॥५९॥

मांडव्य उवाच

एवं येनाधुनाकृच्छ्रं कारितं गात्रवेदनम् । स एव भस्मतां यातु प्रोदिते च विरोचने ॥६०॥

भगवानुवाच

मांडव्येनैवमुक्तस्स पपातधरणी तले। ततः पतिव्रताचाह ब्रघ्नो नोदयतु ध्रुवम् ॥६१॥
दिनत्रयं गृहं नीत्वा शापाद्वेशमगता ततः । शयनीये स्थितं रम्ये धृत्वाऽतिष्ठत्पतिव्रता ॥६२॥
शप्त्वा तं च मुनिश्रेष्ठो गतोदेशमभीष्टकम् । सूरोनोदयते लोके यावच्चैव दिनत्रयम्॥६३॥
निखिलं व्यथितं दृष्ट्वा त्रैलोक्यं सचराचरम् । शतक्रतुं पुरस्कृत्य गता देवाः पितामहम् ॥६४॥
वृत्तंन्यवेदयन्सर्वं पद्मयोनौ दिवौकसः । कारणं च न जानीमस्त्वं तु योग्यं विधेहि नः॥६५॥

ब्रह्मोवाच

पतिव्रताया यद्वृत्तं मांडव्यस्य मुनेश्च यत्। यथानोदयते ब्रध्नो धाता देवेष्ववेदयत्॥६६॥
ततो देवा विमानैश्च पुरस्कृत्यप्रजापतिम्। गतास्तदंतिकं विप्र तूर्णं सर्वे च भूतलम्॥६७॥
तेषां श्रिया विमानानां मुनीनां किरणैस्तथा । शतसूर्यमिवाभाति नान्यत्र च गृहोदरे ॥६८॥

प्रतिव्रतोवाच

हा हतास्मि कथं सूरो मद्गृहे समुपस्थितः ।

पता ही नहीं चला उन सबों ने उन्हें दूसरे प्रकार के भी कष्ट दिए ॥५७॥ उसी समय घने अन्धकार में वह पतिव्रता भी पीठपर बैठाकर अपने पति को उसी रास्ते से ले जा रही थी ॥५८॥ कोढी के शरीर से निकलने वाली दुर्गन्धि मुनि को लगी । उस कोढी के संसर्ग से मुनि की समाधि टूट गयी ॥५९॥ **माण्डव्य महर्षि ने कहा—** इस तरह मेरे शरीर में इस प्रकार की वेदना जिसने उत्पन्न की है, वह सूर्योदय होते ही भस्म हो जाय ॥६०॥ माण्डव्य महर्षि के ऐसा कहते ही कोढी पृथिवी पर गिर पड़ा । उस समय पतिव्रता ने कहा— अब सूर्योदय नहीं होगा ॥६१॥ उसके बाद वह अपने पति को घर लायी और तीन दिन बीत गये । वह पतिव्रता अत्यन्त मनोहर शय्या पर पति को लेटा कर उसे पकड़े रही ॥६२॥ उस कोढी को शाप देकर मुनि श्रेष्ठ माण्डव्य अपने स्थान पर चले गये । तीन दिन बीत गये किन्तु सूर्योदय हो नहीं रहा था ॥६३॥ सम्पूर्ण जगत् को दुःखी देखकर सभी देवता इन्द्र को आगे करके ब्रह्माजी के पास गये ॥६४॥ देवताओं ने सारा समाचार ब्रह्माजी को बतलाया और कहा हे ब्रह्माजी ! इसके कारण का हमलोगों को पता नहीं है, आप हमें बतलायें ॥६५॥ **ब्रह्माजी ने बतलाया—** कि पतिव्रता ने कैसे शाप दिया, माण्डव ऋषि ने कैसे शाप दिया ? सूर्योदय क्यों नहीं हो रहा है ? इन सारी बातों को ब्रह्माजी ने देवाओं को बतलाया ॥६६॥ हे विप्र ! उसके बाद ब्रह्माजी को आगे करके सभी देवता विमानों से उस पतिव्रता के पास पृथिवी पर आये ॥६७॥ उन देवताओं के विमानों से तथा मुनियों के तेज से उस घर के भीतर सैकड़ों सूर्य के प्रकाश के जैसा प्रकाश हो गया, किन्तु और किसी जगह वह प्रकाश नहीं था ॥६८॥ **पतिव्रता ने कहा—** अरे मैं तो मारी गयी, सूर्य हमारे घर क्यों आये हैं **भगवान् ने कहा—** उसके बाद उसे हंस के समान विमानों से देवता दिखायी

भगवानुवाच

अदृश्यंत तया देवा विमानैर्हंससन्निभैः ॥६९॥

एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा तामुवाच पतिव्रताम् । अखिलानां च देवानां द्विजानां च गवां तथा॥७०॥

यथैव निधनं तेषां कथं ते परिरोचते । मातःक्रोधं त्यजस्वाद्य सूर्यस्योदयनं प्रति ॥७१॥

पतिव्रतोवाच

सर्वलोकानतिक्रम्य पतिरेको गुरुर्मम । अस्य मृत्युर्मुनेश्शापादुदिते च विरोचने ॥७२॥

तेनैव कारणेनैष मया शप्तो दिवाकरः । न कोपान्न च मोहाच्च लोभात्कामान्न मत्सरात्॥७३॥

ब्रह्मोवाच

एकस्य निधनेनैव त्रैलोक्यस्य हितं भवेत् । ततस्तेचाधिकं पुण्यं मातरेवं भविष्यति ॥७४॥

सा चोवाच विधिं तत्र देवानामग्रतः सती । पतिं त्यक्त्वा च मे सत्यं शिवं मे नानुरोचते॥७५॥

ब्रह्मोवाच

उदिते च खगे सौम्ये पत्यौ ते भस्मतां गते । स्वस्थेभूते च त्रैलोक्ये करिष्यामि हितं तव॥७६॥

भस्मनः पुरुषो भाव्यः कामदेवसमप्रभः । गुणैः सर्वैयुते भर्ता रतिवत्त्वं च सर्वदा ॥७७॥

यथा पूज्यो हरिर्देवै र्यथालक्ष्मीश्च पूजिता । तथैव दंपतीस्वर्गे तस्मान्मद्वचनं कुरु ॥७८॥

पतिव्रतोवाच

पत्युर्मे निधने ब्रह्मन् विधवालोकनिंदिता । कांस्तु लोकान्गमिष्यामि भग्नाचारा मलीमसा ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

अतस्ते नास्ति दोषो वै न मृतस्ते धवो धुना। अस्माकं वचनेनैव कुष्टी मन्मथतां व्रजेत् ॥८०॥

पड़े ॥६९॥ उसी समय ब्रह्माजी उस पतिव्रता से बोले । **ब्रह्माजी ने कहा** सम्पूर्ण देवताओं, ब्राह्मणों तथा गायों की मृत्यु हो जाय यह बात तुम्हें क्यों अच्छी लग रही है ? हे माँ ! तुम अपने क्रोध का परित्याग करो, सूर्योदय होने दो ॥७०-७१॥ **पतिव्रता ने कहा—** हमारे लिए तो सभी लोकों से बड़े गुरु मेरे पति ही हैं, मुनि के शाप के कारण इनकी मृत्यु हो जायेगी ॥७२॥ इसीलिए मैंने सूर्य को शाप दे दिया है, मैंने किसी क्रोध या मोह, या लोभ, या मत्सर के कारण सूर्य को शाप नहीं दिया है ॥७३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** यदि किसी एक के मरने से त्रैलोक्य का कल्याण होता है तो हे मातः ! उससे तुमको अधिक पुण्य प्राप्त होगा ॥७४॥ सभी देवताओं के समक्ष उस पतिव्रता ने ब्रह्माजी से कहा पति को छोड़कर सैकड़ो प्रकार के कल्याण मुझे अच्छे नहीं लगते हैं ॥७५॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** हे सौम्ये ! सूर्योदय हो जाने पर तथा तुम्हारे पति के भस्म हो जाने पर तथा त्रैलोक्य के सुखी हो जाने पर मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा ॥७६॥ उस भस्म से जो पुरुष उत्पन्न होगा वह कामदेव के समान सुन्दर सभी गुणों से सम्पन्न तुम्हारा पति होगा और तुम रति के समान सदा के लिए हो जाओगी ॥७७॥ जैसे श्रीहरि देवताओं द्वारा पूजे जाते हैं, जैसे लक्ष्मीजी की पूजा होती है, उसी तरह तुम दोनों पति पत्नी मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग में पूजे जाओगे, अतएव मेरी बात मानो ॥७८॥ **पतिव्रता ने कहा—** हे ब्रह्मन् ! पति के मर जाने पर तो मैं, लोक निन्दित विधवा हो जाऊँगी आचार के भङ्गरूप पाप से युक्त मैं किन लोको में जाऊँगी ॥७९॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** तुम्हें दोष नही लगेगा । तुम्हारा पति मरा नहीं है हमारे वरदान से यह कुष्ठी ही कामदेव के समान सुन्दर हो जायेगा ॥८०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर पतिव्रता ने क्षण भर विचार किया और कहा— ठीक है, उसके

भगवानुवाच

वदत्येवं विधौ सा च विमृश्य क्षणमेव च। वाढमुक्तवती सा च ततस्सूर्योदयोऽभवत् ॥८१॥
अभवद्भस्मरूपोऽसौ मुनिशापप्रपीडितः। भस्मनो मध्यतो जातो द्विजो मन्मथपीडितः ॥८२॥
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नाः सर्वे ते पुरवासिनः। मुदिता देवसंघाश्च जनः स्वस्थतरोऽभवत् ॥८३॥
विमानेनार्कवर्णेन स्वर्लोकादागतेन च। पतिना सह सा साध्वी सुरैः सार्द्धं गाता दिवम्॥८४॥
एवं पतिव्रतायस्माच्छुभा चैव तु मत्समा। तेन वृत्तं च जानाति भूतं भव्यं प्रवर्तनम् ॥८५॥
य इदं श्रावयेल्लोके पुण्याख्यानमनुत्तमम्। तस्य पापं क्षयं याति जन्म जन्मकृतं च यत्॥८६॥
अक्षयं लभते स्वर्गं विबुधैः संप्रयुज्यते। ब्राह्मणो लभते वेदं जन्मजन्मसु बाडवः ॥८७॥
सकृच्छृणोति यः पूतो दुष्कृतौघाद्विमुच्यते। सुरालयमवाप्नोति स्वर्गाद्भ्रष्टो धनी भवेत् ॥८८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पतिव्रतोपाख्यानं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

बावनवाँ अध्याय

द्विज उवाच

माडव्यस्य मुनेर्विष्णोशूलाघातः कथं तनौ। पत्यौ पतिव्रतायाश्च कथं कुष्ठं कलेवरे॥१॥

बाद सूर्योदय हो गया ॥८१॥ मुनि के शाप के कारण पीडित कोढी भस्म हो गया उस भस्म के ही बीच से कामदेव के समान सुन्दर ब्राह्मण हो गया ॥८२॥ इस तरह की बात को देखकर सभी नगरवासी आश्चर्यित हो गये, सभी देवता प्रसन्न हो गये और लोग स्वस्थ हो गये ॥८३॥ सूर्य के समान देदीप्यमान विमान के द्वारा वह साध्वी अपने पति के साथ देवताओं के साथ ही स्वर्ग लोक में चली गयी ॥८४॥ इसीलिए यह शुभा नाम की पतिव्रता भी मेरे ही समान है, अतएव वह सभी भूतकालिक तथा भविष्यत् कालिक बातों को जानती है ॥८५॥ संसार में जो व्यक्ति इस पवित्र कथा को किसी को सुनाता है, उसके जन्म जन्मान्तर के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥८६॥ वह अक्षय स्वर्गलोक को प्राप्त करता है तथा देवताओं द्वारा पूजित होता है। ब्रह्मण वेद ज्ञान को प्राप्त कर लेता है और वह प्रत्येक जन्मों में ब्राह्मण होता है ॥८७॥ जो इस कथा को एक बार सुन लेता हैं वह पाप समूह से मुक्त हो जाता है। वह मृत्यु के बाद देवलोक में जाता है और स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर धनी होता है ॥८८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पतिव्रतोपाख्यान वर्णन नामक एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५१।।

महर्षि माण्डव्य के शूलारोपण के कारण का वर्णन, दूसरे की पत्नी का बलपूर्वक हरण करने वाले के पाप का वर्णन, साध्वी स्त्रियों के माहात्म्य का वर्णन, अपात्र वर को कन्यादान करने से होने वाले पाप का वर्णन

ब्राह्मण ने कहा— हे भगवन् विष्णो ! माण्डव्य ऋषि के शरीर में शूलाघात कैसे हुआ तथा पतिव्रता के पति के शरीर में कोढ कैसे हुआ ?॥१॥ **श्रीहरि ने कहा—** जब माण्डव्य बालक थे उस समय उन्होंने अज्ञान वशात्

हरिरुवाच

शिशुभावाच्च मांडव्यो झिल्लिकायामभानतः । वस्तिदेशे तृणं दत्वा मोहात्स च मुमोच ताम् ॥२॥

तेनापवाददोषेण धर्मस्याज्ञातुरेव च । अहोरात्रं व्यथाकृच्छ्रा भुक्ता तेन द्विजन्मना ॥३॥
किंतु समाधिना तेन न ज्ञातं शूलसंभवम् । कृच्छ्रं च मुनिना कृत्स्नं योगाभ्यासाद्भृशादपि॥४॥
कुष्ठिनो ब्रह्मणो घातादजितेंद्रियकारणात् । पूतिगंधंतनौ कुष्ठं संजातं द्विजसत्तम ॥५॥
पुरा विप्राय तेनैव दत्तं गौरी चतुष्टयम् । कन्यका त्रितयं विप्र तेन तस्य पतिव्रता ॥६॥
अस्यास्तु कारणादेव स च मत्समतां व्रजेत् । अत्र ते विस्मयः कुत्र वेदकर्मपुरातनम् ॥७॥

द्विज उवाच

कृत्या नारी न यस्यैव तस्य स्वर्गो भवेद् ध्रुवम् । यथैतच्चरितं नाथ सर्वेषां शिवमिष्यते ॥८॥

हरिरुवाच

संति कृत्याः स्त्रियःकाश्चित्पुंसः सर्वस्वदस्य च । तत्राप्यरक्षणीयां च मनसापि न धारयेत् ॥९॥
न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियो वापि न विद्यते । गाव स्तृणमिवारण्ये प्रार्थयंति नवं नवम् ॥१०॥
पुमांसं वित्तहीनं च विरूपं गुणवर्जितम् । अकुलीनं च भृत्यं च कामिनी भजते ध्रुवम्॥११॥
भर्तारं च गुणोपेतं कुलीनं च महाधनम् । सुंदरं रतिदक्षं च त्यक्त्वा नीचं भजेद्वधूः ॥१२॥
उमानारदसंवादमाख्यानं विद्धि भूसुर । येन विद्यःस्त्रियाश्चेष्टा विविधाः कृत्स्नशो द्विज ॥१३॥
स्वभावान्नारदो विप्र विश्वजिज्ञासको मुनिः । स्वांते विमृश्याथगतः कैलासं गिरिमुत्तमम् ॥१४॥
वृषकेतुसदाख्यानसप्रतिष्ठे हिमे गिरौ । प्रणिपत्य महात्मा वै पप्रच्छपार्वतीं मुनिः ॥१५॥

किसी झिंगुर के वस्ति प्रदेश मे तृण खोंस कर छोड़ दिया ॥२॥ उस अपवाद दोष के कारण धर्म के ज्ञाता नहीं होने पर भी उनको एक दिन और एक रात तक उस शूल का कष्ट भोगना पड़ा । किन्तु समाधिस्थ होने के कारण उस शूल की वेदना का पता नहीं चला । योग के अभ्यासी होने के कारण मुनि ने उस कष्ट का विल्कुल अनुभव नहीं किया ॥४॥ कुष्ठी को कुष्ठ इसलिए हुआ कि उसने एक ब्राह्मण की हत्या की थी और जितेन्द्रिय नहीं था । इसीलिए उसके शरीर में पूतिगंध से युक्त कुष्ठ हो गया ॥५॥ पूर्वजन्म में उसने ब्राह्मण को चार गौरियों का दान किया था तथा तीन कन्याओं का दान किया था इसीलिए उसकी पत्नी पतिव्रता हुई ॥६॥ इसीकारण से वह तथा पतिव्रता मेरे समान हो जायेगे । इस विषय में तुमको आश्चर्य क्यों है, तुम तो प्राचीन कर्मों को जानते हो ॥७॥ **द्विज ने कहा—** जिसकी पत्नी कृत्या (व्यभिचारिणी) न हो उसको निश्चित रूप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, जैसा कि इन सबों का चरित्र कल्याणकारी लगता है ॥८॥ **श्रीहरि ने कहा—** बहुत सी ऐसी नारियाँ है जो सर्वस्व प्रदान करने वाले पति की भी पत्नी होकर व्यभिचारिणी हो जाती हैं ॥९॥ स्त्रियों का न तो कोई प्रिय होता है और न अप्रिय होता है जिस तरह वन में गायें नवीन-नवीन घास चाहती है, उसीतरह वे नवीन, नवीन पुरुष चाहती हैं ॥१०॥ निर्धन, कुरूप, गुणहीन, अकुलीन तथा नौकर भी पुरुष को कामुक स्त्रियाँ स्वीकार कर लेती हैं ॥११॥ गुणी, कुलीन, महाधनी, सुन्दर, रतिकर्म में निपुण भी पति का त्याग करके स्त्रियाँ नीच पुरुष का सङ्ग कर लेती हैं ॥१२॥ हे द्विज ! तुम उमा नारद संवाद को सुनो उससे तुम स्त्रियों की सारी चेष्टाओं को जान जाओगे ॥१३॥ नारद ऋषि स्वभाव से ही सारी वातों को जानना चाहते थे । अपने मन में विचार करके वे कैलास पर्वत पर गये ॥१४॥ जहाँ पर भगवान् शिव

नारद उवाच

देविसीमंतिनीनां तु दुश्चेष्टां ज्ञातुमुत्सहे। कौतुकेन त्वया चर्या वधूनां संप्रयुज्यते ॥१६॥
सर्वासामपि नारीणां स्वान्तं जानासि तत्त्वतः । तन्मां कथय सर्वेषु विनीतमज्ञमत्र च ॥१७॥

देव्युवाच

युवतीनां सदा चित्तं पुंसु तिष्ठत्यसंशयम् । अस्मिन्योनौ सुसंयोग्ये संगते वाप्यसंगते ॥१८॥
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्। योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद॥१९॥
स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः। तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥२०॥
घृतकुंभसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकस्थाने च धारयेत्॥२१॥
यथैव मत्तमातंगं सृणिमुद्गरयोगतः । स्ववशं कुरुते यंता तथास्त्रीणां प्ररक्षकः ॥२२॥
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्राश्चस्थाविरे भावे नस्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति ॥२३॥
ततः स्वातंत्र्यभावाच्च स्वेच्छया च वरांगना। पुरुषेणार्थिता धीरा प्रेरणादिचरी भवेत् ॥२४॥
अरक्षणाद्यथापाकः श्वकाकवशगो भवेत्। तथैव युवती नारी स्वच्छंदाद्दुष्टतां व्रजेत् ॥२५॥
पुनरेव कुलं दुष्टं तस्यास्संसर्गतो भवेत् । परबीजेन यो जातः स च स्याद्वर्णसंकरः ॥२६॥
जारजः संकरः पापो नरके नियतं वसेत् । कीटजातौ गता जाताः पुनः सर्वे महीतले ॥२७॥
ततोम्लेच्छमुपानीतं कुलं स्याद् द्विजनंदन । कुलक्षयो भवेद्यस्मात्तस्माद्दुष्टां न धारयेत्॥२८॥
ज्ञात्वैव योषितां दोषं क्षमते यो नराधमः । स तिष्ठेन्निरये घोरे रौरवे पितृभिः सह ॥२९॥

सदैव कथा कहा करते थे। उन्होंने पार्वतीजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पार्वतीजी से पूछा ॥१५॥ **नारदजी ने कहा—** हे देवि ! मैं कुतूहल वशात् नारियों की चेष्टाओं को जानना चाहता हूँ और आप इसको जानती हैं ॥१६॥ आप सभी नारियों के अन्तःकरण की बात ठीक-ठीक जानती हैं मैं विनीत हूँ और इस विषय में अज्ञ हूँ, उसे आप मुझे वतलाइये ॥१७॥ **देवी ने कहा—** निस्सन्देह स्त्रियों का मन सदैव पुरुषों में लगा रहता है, इस मनुष्य योनि में चाहे वह उचित हो या अनुचित ॥१८॥ हे नारद ! सुन्दर वेष वाले पुरुष, भाई तथा पुत्र को भी देखकर स्त्रियों की योनि में क्लेदन होने लगता है ॥१९॥ हे नारद ! व्यभिचारयोग्य स्थान, समय तथा प्रार्थयिता के अभाव में ही स्त्रियों का सतीत्व सुरक्षित रह सकता है ॥२०॥ नारी घी के घड़े के समान है और पुरुष तप्त अंगार के समान होता है, इसीलिए घृत के समान नारी को तथा अग्नि के समान पुरुष को एकत्र न रखे ॥२१॥ जिसरह मदमत हाथी को अंकुश और मुग्दर के द्वारा वश में रखा जाता है उसीतरह स्त्री को नियामक तथा श्रेष्ठ रक्षक ही अपने वश में रख सकते हैं ॥२२॥ स्त्री की कुमार्यावस्था में पिता, यौवनावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है। अतएव स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहिए ॥२३॥ इसीलिए स्वतन्त्र होने पर अपनी इच्छानुसार सुन्दर स्त्रियाँ किसी भी पुरुष के द्वारा प्रार्थना करने पर उसकी इच्छा के अनुसार आचरण करने लगती हैं ॥२४॥ जिसतरह रक्षा के अभाव में तैयार भोजन को कुत्ते तथा कौए खा लेते हैं, उसीतरह स्वच्छन्द होने पर नारी दुष्टों की सङ्गति कर लेती है ॥२५॥ उसके संसर्ग के कारण वंश दूषित हो जाता है, दूसरे वीर्य से उत्पन्न होने वाला वर्णसङ्कर कहलाता है ॥२६॥ जारज (पर पुरुष से उत्पन्न) पापी सङ्कर (दोगला) नरकगामी होता है। उसके बाद वह पृथिवी पर सभी कीट योनियों में जन्म लेता है ॥२७॥ हे ब्राह्मण ! उसके बाद दुष्टा नारी के कारण पूरा वंश ही म्लेच्छ जाति का हो जाता है, अतएव दुष्टा नारी को कभी स्वीकार करना चाहिए ॥२८॥ इस तरह स्त्रियों के दोष को जानकर भी जो उसे क्षमा कर देता है वह

काचित्पातयते नारी काचिदुद्धरते कुलम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुलजामुद्वहेद्बुधः ॥३०॥
कुलद्वयं समा नारी समयित्वा तु तिष्ठति । साध्वी तारयते वंशान् दुष्टा पातयति ध्रुवम् ॥३१॥
दारेष्वधीनं स्वर्गं च कुलं पंकं यशोऽयशः । पुत्रं दुहितरं मित्रं संसारे कथयंति च ॥३२॥
तस्मादेकां द्वितीयां वा वामामुद्वाहयेद्बुधः । संतानार्थात्तु कामाच्च बहुदोषाश्रिता च सा ॥३३॥
रजस्वलां च वनितां नावगच्छति यः पतिः । ब्रह्महा भ्रूणहा सोपि दुर्गतिं चाधिगच्छति ॥३४॥
यो मोहाद्दुर्भगां कृत्वा साध्वीं त्यजति पापकृत् । तस्या वधेन यत्पापं तद्भुक्त्वा नरकं व्रजेत् ॥३५॥
वनिता हरणं कृत्वा चांडलकुलतां व्रजेत् । तथैव वनिताहानात्पतितो जायते नरः ॥३६॥
रामां विन्यस्य स्कंधे च चिरं यमपुरे वसेत् । मलमूत्रं शिरोदेशे नित्यं तस्य च संपतेत् ॥३७॥
एवं वर्षसहस्राणि भारं वहति दुर्गतिः । पुनर्यावन्ति लोमानि तावत्स रौरवं व्रजेत् ॥३८॥
पुनः कीटेषु संतीर्णस्तदा मानुषतां व्रजेत् । ततश्च कलहं शोकं प्राप्नोति पूर्वकल्मषात् ॥३९॥
एवं जन्मत्रयं प्राप्य मुच्यते पातकान्नरः । तत्कालं नरकं भुक्त्वा सा तु काकी तु वञ्चकी॥४०॥
उच्छिष्टनरकं भुक्त्वा मानुषे विधवा भवेत् । यः पुनःश्चांत्यजां गच्छेन्म्लेछांवा पुल्कसां नरः ॥४१॥
द्वित्रिचतुर्गुणं भुक्त्वा तत्र संचीर्णवंचकः । मातरं गुरुभार्यां च ब्राह्मणीं महिषीं तथा ॥४२॥
अन्यां वा प्रभुपत्नीं च गत्वा यात्यपुनर्भवम् । भगिनीं तत्पुत्रभार्यां तथा दुहितरं स्नुषाम् ॥४३॥

अपने पितरों के साथ भयङ्कर रौरव नरक में चला जाता है ॥२९॥ कोई नारी वंश का पतन कर देती और कोई नारी वंश का उद्धार कर देती है, इसलिए विद्वान् को चाहिए कि वह सद्वंश में उत्पन्न नारी के ही साथ विवाह करे ॥३०॥ सती स्त्री दोनों वंशों (अपने पति तथा अपने पिता के वंश का) उद्धार कर देती है । इसतरह साध्वी नारी वंशों का उद्धार करती है और दुष्टा वंश का पतन कर देती है ॥३१॥ इसीलिए संसार में कहा जाता कि स्त्री के अधीन ही, स्वर्ग, कुल, पङ्क, यश, अपयश, पुत्र, पुत्री और मित्र हैं ॥३२॥ इसीलिए विद्वान् को चाहिए कि वह एक अथवा दो स्त्रियों के साथ विवाह सन्तान की प्राप्ति के लिए करे, काम के लिए विवाह करने पर तो उसमें अनेक दोष आ जाते हैं ॥३३॥ जो पति अपनी रजस्वला पत्नी को नहीं समझता है, वह ब्रह्महत्या, भ्रूण हत्यारा होता है और नरक में जाता है ॥३४॥ जो मनुष्य साध्वी स्त्री को दूषित करके उसका परित्याग कर देता है, उसको स्त्री के वध करने का पाप लगता है, और वह नरकगामी होता है ॥३५॥ जो व्यक्ति किसी स्त्री को बलपूर्वक अथवा धन का प्रलोभन देकर उसक साथ सङ्ग करता है, वह इस लोक में पत्नीघाती और मरने के बाद नरकगामी होता है ॥३६॥ जो मनुष्य किसी की स्त्री का हरण करता है, उसका जन्म चाण्डाल वंश में होता है उसीतरह पत्नी का परित्याग करने से मनुष्य पतित हो जाता है ॥३७॥ जो अपने कन्धे पर पत्नी को बैठाता है वह यमलोक में जाता है और उसके शिर पर सदैव मल एवं मूत्र गिरता रहता है ॥३८॥ इसतरह से वह अज्ञानी एक हजार वर्ष तक भार का वहन करता है । उसके बाद शरीर में जितने रोम (सोढे तीन करोड रोएँ) होते हैं, उतने वर्ष तक रौरव नरक में निवास करता है॥३९॥ उसके बाद उसका जन्म कीड़ों की योनि में होता है, उसके बाद वह मनुष्य होता है ओर उस जन्म में पूर्वकृत पाप के कारण वह कलह तथा शोक को प्राप्त करता है ॥४०॥ इसतरह तीन जन्म तक भोग करके मनुष्य पाप मुक्त होता हैं । वह स्त्री भी मरकर नरक में जाती है, फिर मादा कौआ होती है ॥४१॥ उस जन्म में उच्छिष्ट और गन्दी वस्तु खाकर मनुष्य होकर विधवा होती है । उसका जन्म शूद्र या म्लेच्छ या पुल्कस (कोलभिल) जाति में होता है ॥४२। दोगुना, तीन गुना, या चार गुना भोजन करने वाला नरकगामी होता है । माता, गुरुपत्नी, ब्राह्मणी,

पितृव्यां मातुलानीं तु तथैव च पितृष्वसाम्। मातृष्वसादिकामन्यां गत्वा नास्ति च निष्कृतिः ॥४४॥
ब्रह्महा सभवेदंधो वचसा जडतां व्रजेत् । कर्णयोर्बधिरो जातश्च्यवते नास्ति निष्कृतिः ॥४५॥
उक्त्वा अश्लीमत्यर्थमखिलं स्त्रीकृते नहि।

द्विज उवाच

एवं दुष्कृतमासाद्य कथं मोक्षो भवेत्पुनः ॥४६॥
तत्समाचक्ष्व भगवन् श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ।

श्रीभगवानुवाच

तासां च गमनं कृत्वा तप्तां लोहस्य पुत्तलीं ॥४७॥
समालिंग्य त्यजेत्प्राणं शुचिर्लोकांतरं व्रजेत् । यो वै गृहाश्रमं त्यक्त्वा मच्चित्तो जायते नरः॥४८॥
नित्यं स्मरति गोविंदं सर्वपापक्षयो भवेत्। ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं गुर्वङ्गनागमात् ॥४९॥
शतं शतसहस्रं च पैष्टीमद्यस्यभक्षणात् । स्वर्णादिर्हरणं कृत्वा तेषां संसर्गकं चिरम् ॥५०॥
एतान्यन्यानि पापानि महान्ति पातकानि च । अग्निं प्राप्य यथातूलं तृणं शुष्कं प्रणश्यति ॥५१॥
तस्मान्मन्नामगोविंदं स्मृत्वा पूतो भवेन्नरः । यो वा गृहाश्रमे तिष्ठेन्नित्यं गोविंदघोषणम् ॥५२॥
कृत्वा च पूजयित्वा च स पापात्सन्तरो भवेत्। भागीरथी तटे रम्ये खगस्य ग्रहणे शिवे ॥५३॥
गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः। तत्फलं समवाप्नोति सहस्रं चाधिकं च यत् ॥५४॥
गोविंदकीर्तने तात मत्पुरे चाक्षयं वसेत् । कामात्सभवने स्थित्वा सार्वभौमो भवेन्नृपः ॥५५॥

राजा की रानी अथवा अपने दूसरे स्वामी की पत्नी, पुत्री, चाची, मामी, बुआ, मौसी अथवा दूसरी स्त्री के साथ गमन करने वाले पुरुष का कोई भी प्रायश्चित नहीं है, उसका कभी उद्धार नहीं होता है ।।४३-४५।। जो ब्रह्महत्या करने वाला होता है, वह अन्धा गूंगा, बहरा, होता है, उसका भी उद्धार नहीं होता है । जो स्त्रियों के साथ निर्लज्जता की वातें करता है उसका भी कोई प्रायश्चित नहीं है ।।४६-४७।। **ब्राह्मण ने कहा**— इसतरह के पापों को करने वाले की मुक्ति कैसे हो सकती है ? हे भगवन् ! इस बात को आप मुझे बतलायें, उसे मैं सुनना चाहता हूँ ।।४८।। **श्रीभगवान् ने कहा**— उपर्युक्त नारियों के साथ संगम करने वाला पुरुष लोहे की नारी बनाकर उसको आग में खूब संतप्त करे और उसका आलिङ्गन करके अपने प्राणों का परित्याग कर दे तो पवित्र होकर स्वर्गलोक में जाता है।।४९।। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम का परित्याग करके मुझमें ही अपने मन को लगा देता है और सदैव मेरे गोविन्द नाम का स्मरण करता है, उसके भी समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं ।।५०।। यदि कोई हजारों ब्राह्महत्या करता है तथा सैकड़ों गुरुजनों की पत्नियों के साथ संगम करता है, तथा हजारों लाखों बार पैष्टी मदिरा का पान किया हो सुवर्ण की चोरी की हो, तथा उन सभी पापियों का सङ्ग करता हो, इन सबों के अतिरिक्त दूसरे भी महान् पापों तथा उपपातकों को किया हो, गोविन्द नाम स्मरण करने वाले उन सभी पापियों के पाप नष्ट हो जाते हैं । किन्तु नाम के बलपर पाप करने वाले के पाप नष्ट नहीं होते हैं । जिसतरह अग्नि के लगते ही रुई का ढेर जल कर भस्म हो जाता है उसीतरह मेरे गोविन्द नाम का स्मरण करने वाले के भी सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह पवित्र हो जाता है । अथवा जो नित्य ही गृहस्थाश्रम में रहकर नित्य गोविन्द नाम का उच्चारण करता है, भगवान् की पूजा करता है, पापों को पार कर जाता है । सूर्यग्रहण के समय भागीरथी के तीर पर स्नान करे तो उसको अक्षय फल की प्राप्ति होती है ।।५१-५३।। करोड़ों गायों के दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसके हजार गुना अथवा उससे

पुराणेमत्कथां श्रुत्वा मत्सादृश्यं लभेन्नरः । कथयित्वा पुराणं च विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥५६॥
तस्मान्नित्यं च श्रोतव्यं पुराणं धर्मसंचयम् । श्रावितव्यं प्रयत्नेन लोके विष्णुतनुं व्रजेत् ॥५७॥
अन्यद्वास्त्रीकृते दोषे यथायोगं भवेद् ध्रुवम् । निशामय प्रवक्ष्यामि तत्वतो द्विजनंदन ॥५८॥
सर्वबीजस्य दानेन सांबुकुम्भं महाफलम् । दद्याद्विप्राय पुण्याहे सद्यः पूतो भवेत्क्षणात् ॥५९॥
सर्वं धान्यादिकं बीजं कालेदद्याद्विजातये । सर्वपापक्षयं कृत्वा अक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥६०॥
गुणं वक्ष्यामि विप्रर्षे सतीनां यादृशं दृढम् । शुद्धवंशो भवेत्तस्या नित्यं लक्ष्मीः प्रवर्तते ॥६१॥
उभयोर्वशयोः स्वर्गो भर्तुरात्मन एव च । पतिव्रता गुणोविप्र विस्मृतः पृच्छतस्तव ॥६२॥
पुनर्वक्ष्यामि योषाणां सर्वलोकहितं शुभम् । उषित्वा पूर्वकालं च पुण्यापुण्येन योषितः ॥६३॥
पश्चात्पतिव्रतायाश्च ताश्चगच्छंति मद्गतिम् । षण्मासं वाथ वर्षं वा अधिकं च प्रशस्यते ॥६४॥
पतिव्रताभवेद्या च यावत्पूता व्रजेद्दिवम् । सुराप विप्रहंतारं सर्वपापयुतं पतिम् ॥६५॥
षङ्कात् पूतंन्येत्स्वर्गं भर्त्तारं यानुगच्छति । कंदर्पसदृशोभर्ता सा रतीवमनोरमा ॥६६॥
जिष्णोरेव चिरंलोके भुंक्तेऽनंतमयं सुखम् । पतिव्रता बलाद्याच विदूरे स्वामिपातने ॥६७॥
चिह्नं लब्ध्वा मृता वह्नौ पापादुद्धरते पतिम् । पतिव्रता च या नारी देशांतरमृते पतौ ॥६८॥
सा भर्तुश्चिह्नमादाय वह्नौ सुप्त्वादिवं व्रजेत् । या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् ॥६९॥

भी अधिक फल मेरे गोविन्द नाम के कीर्तन से होती है ॥५४॥ ऐसा करने वाला पुरुष मेरे अक्षय लोक में निवास करता है । वह जन्म लेकर गृहस्थ राजा होता हैं ॥५५॥ पुराण में मेरी कथा सुनकर मनुष्य मेरे सायुज्य को प्राप्त करता है । पुराणों की कथा कहने वाला भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥५६॥ अतएव धर्मो के संग्रह रूप पुराण का प्रतिदिन श्रवण करना चाहिए । पुराण को सुनाने वाला भगवान् विष्णु के शरीर में लीन हो जाता है।॥५७॥ दूसरी स्त्री के साथ संवन्ध करने वाले को जिस पाप की प्राप्ति होती है ब्राह्मण उसे मैं वतलाता हूँ सुनो।॥५८॥ जल भरे कुम्भ के साथ सभी प्रकार के वीजों का दान पवित्र दिन को ब्राह्मण को दान करने से वह पाप विनष्ट हो जाता है ॥५९॥ सभी अन्नों की उत्पत्ति के समय ब्राह्मण को वह दान देना चाहिए । ऐसा करने वाला अपने सभी पापों को विनष्ट करके अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥६०॥ हे विप्रर्षि ! सती स्त्रियों के गुणों को मैं वतला रहा हूँ । सती स्त्री का वंश शुद्ध होता है और उसके गृह में नित्य ही लक्ष्मी आती हैं ॥६१॥ ऐसा पति और पिता दोनों के वंश में होता है । हे विप्र ! तुमने जो पूछा था उस पतिव्रता के गुणों को वतलाना मैं भूल गया था।॥६२॥ उसको मैं फिर इसलिए कह रहा हूँ कि उससे स्त्रियों का कल्याण होता है । पहले पुण्य के फलस्वरूप स्त्रियाँ रहकर पुनः जो पतिव्रता हो जाती हैं वे सद्गति को प्राप्त करती है । छह मास, या एक वर्ष या उससे अधिक समय तक पतिव्रता रहना श्रेष्ठ है ॥६३-६४॥ जो पतिव्रता होती है, वह पवित्र होकर स्वर्गलोक जाती है । जो पतिव्रता पत्नी होती है, वह मदिरा पीने वाले ब्रह्महत्या करने वाले, तथा सभी प्रकार के पापों को करने वाले भी पति को पाप रूपी पंक से पवित्र वनाकर उसे स्वर्ग पहुँचा देती है । उसका पति कामदेव के समान और वह रति के समान हो जाती है ॥६५-६६॥ यह भगवान् विष्णु के ही लोक में अनन्त सुख को पतिव्रता के वल से ही भोगता है, जिस स्त्री का पति दूर रहकर मर जाता है ॥६७॥ और वह उसके किसी चिह्न को लेकर अग्नि में प्रवेश करके मर जाती है तो वह पति का पापों से उद्धार कर देती है । जिस पतिव्रता नारी का पति विदेश में मर जाता है ॥६८॥ वह पति के चिह्न को लेकर यदि अग्नि में सोकर मर जाती है, तो वह स्वर्गलोक को प्राप्त करती है । जो ब्राह्मण की पत्नी पति

सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं नपतिं नयेत्। नम्रियेत समं गत्वा ब्राह्मणी ब्रह्मशासनात्॥७०॥
प्रव्रज्या गतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ।

नरोत्तम उवाच

सर्वासामपि जातीनां ब्राह्मणः शस्य इष्यते ॥७१॥
पुण्यं च द्विजमुख्येन अत्र किं वा विपर्ययः ।

श्रीभगवानुवाच

ब्राह्मण्यास्साहसं कर्म नैव युक्तं कदाचन ॥७२॥
निःशेषेऽस्यावधं कृत्वा स नरो ब्रह्महा भवेत् । तस्माद्ब्राह्मणजातीया विप्रया च व्रतं चरेत्॥७३॥
प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं शृणु विप्र यथार्थतः । आपणांतरमामिष्यं भक्षयेन्न कदाचन॥७४॥
अश्वमेधसहस्राणां हायने फलमाप्नुयात्। अर्हणं चेष्टदेवस्य हरेर्व्रतमनुत्तमम् ॥७५॥
स्वामिनोऽपि जलं पिंडं संप्रदद्यादमत्सरात्। युगकोटिसहस्राणि युगकोटिशतानि च ॥७६॥
पतिना सह सा साध्वी विष्णुलोके युता भवेत् । ततो महाव्रतं प्राप्य निरये ब्राह्मणी वधूः ॥७७॥
उद्धरेदुभयोर्वंशाच्छतशोऽथ सहस्रशः । अतोबंधुजनैरेव पुत्रैर्भ्रात्रादिभिर्बुधैः ॥७८॥
विनियम्य सदा तस्या व्रतलोपं न कारयेत्। हरेश्चेद्वासरं प्राप्य विधवा न व्रतं चरेत् ॥७९॥
पुनर्वैधव्यतामेति जन्मजन्मनि दुर्भगा । भोजनात्मत्स्यमांसस्य व्रतानां विप्रयोगतः ॥८०॥
चिरं निरयमासाद्य शुनी भवति निश्चितम्। दुष्टाया मैथुनं गच्छेद्विधवा कुलनाशिनी ॥८१॥
नरकाननुभूयाथ गृध्रिणी दश जन्मसु। द्विजन्मफेरवा भूत्वा ततो मानुषतां व्रजेत् ॥८२॥

के मर जाने पर उसका अनुगमन करती है ॥६९॥ वह आत्मघात करके पति को स्वर्ग नहीं पहुँचा पाती है, ब्रह्माजी की आज्ञा के अनुसार ब्राह्मण की पत्नी को पति के साथ नहीं मरना चाहिए ॥७०॥ आत्मघात करने वाली वह प्रव्रज्या (संन्यास) की गति को प्राप्त करती है । **नरोत्तम ने कहा—** सभी जातियों में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ कहा गया है ॥७१॥ और द्विज श्रेष्ठ के द्वारा किया गया पुण्य भी श्रेष्ठ कहा गया है, इस विषय में क्यों उल्टा कहा गया है । **श्रीभगवान् ने कहा—** ब्राह्मणी के लिए साहसिक कर्म करना कभी उचित नहीं होता है ॥७२॥ क्योंकि पति के मर जाने पर इसका वध करने वाला ब्रह्मघाती हो जाता है । अतएव ब्राह्मण जातीय ब्राह्मणी को व्रत करना चाहिए ॥७३॥ हे विप्र! मैं वास्तविक बात बतला रहा हूँ उसे तुम सुनो । वह दूसरे दुकान के बने मांस को कभी न खाय ॥७४॥ ऐसे व्रत का एक वर्ष तक पालन करने से उसे हजारो अश्वमेध करने का फल प्राप्त होता है । वह अपने इष्टदेव की पूजा करे तथा श्रेष्ठ एकादशी व्रत करे ॥७५॥ वह विना किसी मत्सर के अपने स्वामी को भी जलदान तथा पिण्डदान करे। ऐसी विधवा ब्राह्मणी करोड़ों हजार तथा करोड़ों सौ युगों तक ॥७६॥ वह साध्वी विष्णुलोक में अपने पति के साथ आनन्दित होती है । उसके बाद वह ब्राह्मणी वधू इस महाव्रत का पालन करके नरक में स्थित दोनों (पति और पिता) के हजारो वंश का उद्धार कर देती है । अतएव बाँधवों, पुत्रों तथा भाई आदि के द्वारा उसको नियमित करके ऐसे रखना चाहिए कि उसके व्रत का लोप न हो । यदि विधवा एकादशी व्रत नहीं करे तो ॥७८-७९॥ वह अभागिनी जन्म-जन्मान्तर तक विधवा होती हैं । मांस मछली के खाने से तथा एकादशी व्रत नहीं करने से ॥८०॥ वह दीर्घकाल तक नरक में रहकर कुतिया होती है । जो कुल का नाश करने वाली विधवा मैथुन करती है ॥८१॥ वह नरक में निवास करने के बाद दश जन्मों तक गिधिनी होती है । उसके बाद दो जन्मों तक लोमड़ी होने के बाद

तथैव बालवैधव्या दासीत्वमुपगच्छति ।

द्विज उवाच

कन्यादानफलं ब्रूहि वद दास्याः फलं च यत् ॥८३॥
विधानं च यथोक्तं च यदि मेऽनुग्रहः प्रभो ।

श्रीभगवानुवाच

रूपाढ्ये गुणसंपन्ने कुलीने यौवनान्विते ॥८४॥
समृद्धे वित्तसंपूर्णे कन्यादानफलं शृणु । सर्वाभरणसंयुक्तां कन्यकां यो ददाति च ॥८५॥
तेन दत्ता धरा सर्वा सशैलवनकानना । अर्द्धाभरणदानेन फलं दातुर्भवेद्ध्रुवम् ॥८६॥
अनाभरणकन्यायाः पादैकस्य फलं भवेत् । यः पुनः शुल्कमश्नाति स याति नरके नरः ॥८७॥
विक्रीय चात्मजां मूढो नरकान्न निवर्त्तते । लोभादसदृशे पुंसि कन्यां यस्तु प्रयच्छति ॥८८॥
रौरवं नरकं प्राप्य चांडालत्वं च गच्छति । अतएव हि शुल्कं च जामातुर्न कदाचन ॥८९॥
गृह्णाति मनसा प्राज्ञो यद्दत्तं तस्य चाक्षयम् । भूमिं गां च हिरण्यं च धनं वस्त्रं च धान्यकम् ॥९०॥
जामातु यौतकं दत्वा सर्वं भवति चाक्षयम् । विवाहसमये वत्स सगोत्रपरगोत्रजैः ॥९१॥
यौतकं दीयते किंचित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् । दाता न स्मरते दानं प्रतिग्राही न याचते ॥९२॥
उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्घटो यथा । अवश्यं यौतकं दानं दातव्यं सात्विकेन हि ॥९३॥
अदत्वा नरकं प्राप्य दासीत्वमुपगच्छति । अत्यासन्नेतिदूरस्थे चात्याढ्ये चातिदुर्गते ॥९४॥
कुलहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते । अतिवृद्धे चाति दीने रोगिष्ठे देशवासिनि ॥९५॥

मनुष्य का जन्म प्राप्त करती है ॥८२॥ उसके बाद वह बालविधवा होकर दासी का काम करती है । **ब्राह्मण ने कहा—** आप कन्यादान करने का फल बतलाएँ तथा दासी के फल को बतलायें ॥८३॥ आप की यदि मुझ पर कृपा है तो आप मुझे कन्यादान की विधि को बतलायें । **श्रीभगवान् ने कहा—** रूपवान्, सम्पत्ति सम्पन्न, कुलीन, युवा॥८४॥ समृद्ध, धन संपत्ति से परिपूर्ण वर को कन्यादान करने का फल सुनो । ऐसे वर को जो सभी आभूषणों से सजाकर कन्या का दान करता है ॥८४-८५॥ उसको पर्वत तथा वनों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी का दान करने का फल प्राप्त होता है । आधा आभूषण देने का फल आधा होता है ॥८६॥ आभरण (भूषण) रहित कन्या का दान करने पर उसके चौथाई फल होता है । जो व्यक्ति शुल्क लेकर उसका दांन करता वह नरकगामी होता है ॥८७॥ अपनी पुत्री को बेचने वाले मूर्ख का नरक से उद्धार नहीं होता है । लोभ के कारण जो व्यक्ति अयोग्य वर को कन्या देता है वह ॥८८॥ रौरव नरक में जाने के बाद चाण्डाल योनि में जन्म लेता है । अतएव कभी भी दामाद से शुल्क नहीं लेना चाहिए ॥८९॥ बुद्धिमान मनुष्य दहेज के रूप में मन से जो कुछ भी भूमि, गौ, सुवर्ण, धन, वस्त्र, अन्न देता है उसका अक्षय फल होता है ॥९०॥ हे वत्स ! विवाह के समय अपने गोत्र वाले तथा दूसरे गोत्र वाले जो कुछ भी दामाद को दहेज देते हैं, उसका अक्षय फल होता है । दहेज में दिए गये दान का स्मरण यदि न तो दाता और गृहीता उस दहेज का स्मरण दिलाकर न माँगे तो दाता और ग्रहीता दोनों नरकगामी होते हैं उसी तरह जिसतरह रस्सी के टूट जाने पर घड़ा रस्सी को भी लेकर डूब जाता है । अतएव सात्विक पुरुष को दहेज का दान अवश्य देना चाहिए ॥९१-९३॥ दहेज के दान को नहीं देने वाला जन्मान्तर में दास बनता है । छह लोगों को कन्या का दान नहीं करना चाहिए १. जो अत्यन्त सन्निकट में हो, २. जो अत्यन्त दूर का हो, ३. अत्यन्त धनिक हो,

अतिक्रुद्धेप्यसन्तुष्टे षट्सु कन्या नदीयते। एतेभ्यः कन्याकां दत्वा नरकं चाधिगच्छति ॥९६॥
लोभात्संमानलाभाच्च कन्यका परिवर्तनात्। मुनीनांप्रेयसीं नारी युवतीं रूपशालिनीम् ॥९७॥
सालंकारां सशय्यां च दत्वाऽनंत फलं लभेत्। अनयोश्च फलं तुल्यं युवती कन्ययोरपि ॥९८॥
एका वराय दातव्या अपरा ब्राह्मणाय तु। क्रीता देवाय दातव्या धीरेणाकष्टकर्मणा॥९९॥
कल्पकालंभवेत्स्वर्गं नृपोवा कौमहाधनी। प्रतिजन्मलभेतैष सुपत्नीं वरवर्णिनीम् ॥१००॥
यं इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमनुत्तमम्। सर्वपापक्षयस्तस्य सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥१०१॥
लभेत सोऽक्षयं स्वर्गं नारीणां वल्लभो भवेत्। क्षत्रियो विजयी चाथ लोकनाथोभवेद्ध्रुवम् ॥१०२॥
श्रुतं हरति पापानि जन्मजन्मकृतानि च। सौभाग्यं लभते लोके तथैव च वरांगना ॥१०३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पंचाख्याने स्त्रीणामाख्यानं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

द्विज उवाच

तुलाधारस्य चरितं प्रभावमतुलं प्रभो। वक्तुमर्हस्यशेषेण यदिमय्यस्त्यनुग्रहः ॥१॥

---

४. अत्यन्त गरीब हो, ५. जो कुलहीन हो तथा ६. जो मूर्ख हो। १. अत्यन्त दीन, २. अत्यन्त रोगी, ३. अत्यन्त निकट रहने वाले, ४. अत्यन्त क्रोधी और ६. असन्तुष्ट इन छह व्यक्तियों को भी कन्यादान न करें। इन सबों को कन्या दान करने वाला नरक में जाता है ॥९४-९६॥ लोभ के कारण, सम्मान प्राप्त करने के लिए तथा कन्या का परिवर्तन करके भी मनुष्य नरकगामी होता है। युवती, रूपवती तथा प्रियतमा नारी को मुनियों को अलंकार तथा शय्या के साथ दान देकर मनुष्य अनन्त फल को प्राप्त करता है। इन दोनों युवती कन्याओं को दान का फल तुमको भी प्राप्त होगा। एक कन्या वर को दे और दूसरी कन्या ब्राह्मण को दान दे। धैर्यशाली व्यक्ति को तथा कठोर कर्म करने वाले को चाहिए कि वह खरीद कर भी कन्या देवता को दे ॥९७-९९॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति एक कल्प तक स्वर्ग में रहकर फिर पृथिवी पर महाधनी होता है। वह प्रत्येक जन्मों में सुन्दर पत्नी को प्राप्त करता है॥१००॥ जो व्यक्ति इस पवित्र आख्यान का श्रवण करता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते है और वह सभी शास्त्रों में पारंगत होता है ॥१०१॥ वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त कर नारियों का प्रियतम होता है। क्षत्रिय विजयी तथा लोकों का स्वामी होता है ॥१०२॥ इसका श्रवणकरने से जन्म जन्मान्तर में किए गये पाप विनष्ट हो जाते हैं वह लोक में सौभाग्य तथा सुन्दर पत्नी को प्राप्त करता है ॥१०३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पञ्चाख्यान वर्णनान्तर्गत स्त्रियों का आख्यान वर्णन नामक बावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५२।।

तुलाधार वैश्य का चरित, सत्य की प्रशंसा, निर्लोभत्व की प्रशंसा, और निर्लोभ शूद्र का वर्णन

ब्राह्मण ने कहा— हे प्रभो ! यदि आपकी मुझपर कृपा है तो आप मुझे तुलाधार के चरित और उसके अतुल प्रभाव को बतलाइये ॥१। **श्रीभगवान् ने कहा—** जो व्यक्ति सत्यता पूर्वक, बिना किसी लोभ के, मत्सर हीन

भगवानुवाच

सत्यभावादलोभाच्च दद्याद्योवै त्वमत्सरात् । नित्यं यज्ञशतं तस्य सुनिष्पन्नं सुदक्षिणम् ॥२॥
सत्येनोदयते सूरो वाति वातस्तथैव च । नलंघयेत्समुद्रस्तु वेलां कूर्मो धरां तथा ॥३॥
सत्येन लोकास्तिष्ठंति सर्वे च वसुधाधराः । सत्याद्भ्रष्टोथ यः सत्वोप्यधोवासी भवेद् ध्रुवम् ॥४॥
सत्यवाचि रतो यस्तु सत्यकार्यरतःसदा । स शरीरेण स्वर्लोकमागत्याच्युततां व्रजेत् ॥५॥
सत्येन मुनयः सर्वे मां च गत्वा स्थिरं गताः । सत्याद्युधिष्ठिरो राजा सशरीरो दिवं गतः ॥६॥
सर्वशत्रुगणं जित्वा लोको धर्मेण पालितः । अकरोच्च मखं शुद्धं राजसूयं सुदुर्लभम् ॥७॥
चतुरशीति सहस्राणि ब्राह्मणानां च नित्यशः । भोजयेद्रुक्मपात्रेषु राजोपकरणेषु च ॥८॥
भोजयित्वोपकरणांस्तेभ्यो दत्वा विसर्जयेत् । यदभीष्टं द्विजातीनामतोन्यद्दापयेद्धनम् ॥९॥
अदरिद्रं ततो ज्ञात्वा द्विजव्यूहं परित्यजेत् । तथैवस्नातकानां तु सहस्राणि तु षोडश ॥
नित्यं संभोजयेद्राजा सत्येनैव विमत्सरः ॥१०॥
अतिष्ठंत गृहे पूर्वं चिरं तस्य जिगीषया । जितं तेन जगत्सर्वं प्राणानुग्रहकारणात् ॥११॥
सत्येन चासुरो राजा बलिरिंद्रो भविष्यति । पातालस्थस्य तस्यैव भूयस्तिष्ठामि वेश्मनि ॥१२॥
निरंतरं च तिष्ठामि स्वांते पुण्यैक कर्मणः । यद्वा पुरा मया बद्धो दैत्ययोनेर्विमोक्षणात् ॥१३॥
तलंचैवामरत्वं हि शक्रत्वं प्रददाम्यहम् । हरिश्चंद्रो नृपस्सत्यात्सवाहनपरिच्छदः ॥१४॥
स्वशरीरेण शुद्धेन सत्यलोके प्रतिष्ठितः । राजानो बहवश्चान्ये ये च सिद्धा महर्षयः ॥१५॥
ज्ञानिनो यतय श्चैव सर्वेसत्येऽच्युताभवन् । तस्मात्सत्यरतो लोके संसारोद्धरणक्षमः ॥१६॥

होकर, दान करता है, वह प्रतिदिन दक्षिणा दान पूर्वक सौ यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है ॥२॥ सत्य के द्वारा सूर्य उदित होते हैं, वायुदेव वहते हैं, समुद्र अपने तट को पार नहीं करते हैं और कूर्म भगवान् पृथिवी को धारण करते हैं ॥३॥ सत्य पर सारे लोक टिके हुए हैं, सम्पूर्ण पर्वत टिके हैं, जो मनुष्य सत्य से भ्रष्ट हो जाता है, उसका अध: पतन अवश्य होता है ॥४॥ जो सदा सत्य बोलता है और सत्य कार्य करता है वह सशरीर स्वर्गलोक में जाकर भगवत्स्वरूप हो जाता है ॥५॥ सत्य के ही द्वारा सभी मुनिजन मुझको प्राप्त करके स्थिर हो गये । सत्य के ही वल पर सशरीर राजा युधिष्ठिर स्वर्ग चले गये ॥६॥ उन्होंने सभी शत्रुओं को जीतकर धर्मपूर्वक राज्य किया, उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ राजसूय यज्ञ भी किया ॥७॥ वे प्रत्येक दिन चौरासी हजार ब्राह्मणों को समस्त राजोपकरणों के साथ सुवर्ण के पात्र में भोजन कराते थे ॥८॥ भोजन कराकर उन सभी उपकरणों को उन ब्राह्मणों को ही प्रदान करके उन्हें विदा करते थे ॥९॥ जब उन्होंने जान लिया कि अव कोई ब्राह्मण दरिद्र नहीं रहा तो उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराना वन्द किया । उसीतरह सत्य के वल पर वे प्रतिदिन सोलह हजार स्नातकों को भोजन बिना किसी मत्सर के कराते थे ॥१०॥ उनको जीतने की इच्छा से उनके घर में दीर्घकाल तक पाण्डवों पर कृपा करने वाले श्रीभगवान् वने रहे ॥११॥ सत्य के ही वल पर असुरों के राजा वलि इन्द्र होयेंगे । राजा वलि पाताल में रहते हैं, और मैं उनके यहाँ भी रहता हूँ ॥१२॥ पुण्य कर्म करने वाले बलि के अन्त:करण में मैं निरन्तर रहता हूँ । उस राजा को मोक्ष प्रदान करने के लिए ही मैंने उसे वाँधा था ॥१३॥ पाताल में ही मैंने अमरत्व तथा इन्द्रत्व प्रदान किया है । सत्य के ही वल पर राजा हरिश्चन्द्र अपने वाहन तथा परिच्छदों के साथ ॥१४॥ अपने शुद्ध शरीर से सत्यलोक में प्रतिष्ठित हैं । वहुत से राजागण, सिद्धगण, महर्षिगण ॥१५॥ ज्ञानी पुरुष, संन्यासीगण ये सबके सब सत्य के ही

तुलाधारो महात्मा वै सत्यवाक्ये प्रतिष्ठितः। लोके तत्सदृशो नास्ति सत्यवाक्यस्य कारणात्॥१७॥
अश्वमेधसहस्रेण सत्यं तु तुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥१८॥
सर्वं सत्याद्भवेत्साध्यं सत्यो हि दुरतिक्रम । सत्यवाक्येन सा धेनु र्बहुला स्वर्गगामिनी॥१९॥
सर्वराष्ट्रं समाधाय पुनरावृत्ति दुर्लभा। तथायं सर्वदा साक्षी मृषा नास्ति कदाचन ॥२०॥
बह्वर्घमल्पमर्थं च क्रयविक्रयणे सुधीः । सत्यवाक्यं प्रशस्तं च विशेषात्साक्षिणो भवेत् ॥२१॥
साक्षिणः सत्यमुक्त्वा च अक्षयं स्वर्गमाययुः। वावदूकः सभां प्राप्य सत्यं वदति वाक्पतिः॥२२॥
स याति ब्रह्मणो गेहं यज्ञैरन्यैश्च दुर्लभम् । सभायां यो वदेत्सत्यमश्वमेधफलं लभेत् ॥२३॥
लोभाद्द्वेषान्मृषोक्त्वा च रौरवं नरकं व्रजेत् । सर्वसाक्षी तुलाधारो जनानां शूर एव च ॥२४॥
विशेषाल्लोभ संत्यागान्नाके निर्जरतां व्रजेत् । कश्चिच्छूद्रो महाभागो न लोभे वर्तते क्वचित्॥२५॥
वृत्तिश्शाकेन दुःखेन तथा शिलोंञ्छतो भृशम्। जर्जरं वस्त्रयुग्मंच करौपात्रे च सर्वदा॥२६॥
सदापि लाभविरहो न परस्वं गृहीतवान् । तस्यजिज्ञासयैवाहं गृहीत्वा वस्त्रयुग्मकम् ॥२७॥
अवकोटे नदीतीरे स्थितस्संस्थाप्यसादरम्। स दृष्ट्वा वस्त्र युग्मं तन्नलोभे कुरुते मनः॥२८॥
इतरस्य परिज्ञाय तत्क्षांत्या स्वगृहं ययौ । ततो विचिंतयित्वा तु हृदास्वल्पमिति द्विज ॥२९॥
उदुंबरं हेमगर्भ मया तत्रैव पातितम्। किंकरे च नदीतीरे विकोणे जनवर्जिते॥३०॥

वल पर अच्युत स्वरूप हो गये। अतएव सत्य का पालन करने वाला मनुष्य संसार का उद्धार करने में समर्थ होता है ॥१६॥ महात्मा तुलाधार सत्यवादी हैं। सत्यवक्ता होने के ही कारण तुलाधार के समान संसार में कोई भी नहीं है ॥१७॥ हजारो अश्वमेध यज्ञों के करने के फल को सत्य के साथ तराजू पर रखा गया तो हजार अश्वमेध यज्ञों के फल की अपेक्षा सत्य भारी हो गया ॥१८॥ सत्य के द्वारा सब कुछ की प्राप्ति की जा सकती है, सत्य का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता है। सत्यवाक् होने के कारण ही वह गौ स्वर्ग लोक में चली गयी ॥१९॥ सम्पूर्ण राष्ट्र को एकत्रित करके, संसार में पुनः आगमन नहीं होता है, उसीतरह से यह तुलाधार सर्वदा साक्षी है, वह कभी मृषाभाषण नहीं करता है ॥२०॥ वह बहुत मूल्य वाली तथा अल्प मूल्य वाली वस्तुओं का क्रय तथा विक्रय करने में निपुण है। साक्षी व्यक्ति की सत्यवाणी प्रशस्त (श्रेष्ठ) होती है ॥२१॥ साक्षी व्यक्ति सत्य ही बोलकर अक्षय स्वर्ग को प्राप्त कर लेते हैं। सभा में जाकर वह वावदूक, बृहस्पति के समान सत्य बोलता है ॥२२॥ वह सत्यभाषी दूसरे यज्ञों से दुर्लभ ब्रह्मलोक से जाता है। जो सभा में सत्य बोलता है वह अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है ॥२३॥ लोभ तथा द्वेष के कारण झूठ बोलने वाला रौरव नरक में जाता है। तुलाधार सर्वसाक्षी हैं और मनुष्यों में शूरवीर हैं॥२४॥ विशेष रूप से लोभ का परित्याग करने वाला स्वर्गलोक में जाकर देवत्व को प्राप्त कर लेता है। कोई महाभाग शूद्र था, वह कभी भी लोभ नहीं करता था ॥२५॥ वह शाक तथा शिलोञ्छ वृत्ति से जीवन निर्वाह बड़े कष्ट के साथ करता था। उसके पास पुराने दो वस्त्र थे और वह हाथ में ही भोजन कर लेता था ॥२६॥ उसको कभी भी कुछ नहीं मिलता था फिर भी वह किसी दूसरे की कोई वस्तु नहीं लेता था। उसके सत्य की परीक्षा करने के लिए मैंने दो वस्त्र लेकर ॥२७॥ एकान्त में नदी के तट पर रख दिया। उसने उन दोनों वस्त्रों को देखा, किन्तु उसके मन में लोभ नहीं आया ॥२८॥ उसने समझा के ये किसी दूसरे के वस्त्र हैं और वह शान्ति पूर्वक अपने घर चला गया। हे द्विज ! उस समय उसके हृदय में विद्यमान मैंने सोचा कि उन वस्त्रों को बहुत थोडा समझकर उसने नहीं लिया है ॥२९॥ उसके वाद मैंने गूलर के फल में सुवर्ण भरकर वहीं पर गिरा दिया वह नदी का तट एकान्त था कोई वहाँ आता

तस्य या तस्य देशे तु दृष्टं तेन तदद्भुतम् । अलंविधानमेतत्तु कृत्रिमं चोपलक्ष्यते ॥३१॥
ग्रहणे वा धुनाचास्य अलोभं नष्टमेव मे । अस्यैव रक्षणेकष्टमहंकारपदंत्विदम्॥३२॥
यतोलोभस्ततो लाभो लाभाल्लोभः प्रवर्तते । लोभग्रस्तस्य पुंसश्च शाश्वतोनिरयो भवेत्॥३३॥
यदि नो विगुणं वित्तं यदा वेश्मनि तिष्ठति । तदा मे दारपुत्राणामुन्मादो ह्युपपद्यते॥३४॥
उन्मादात् कामसंजातविकारान्मतिविभ्रमः । भ्रमान्मोहोप्यहंकारः क्रोधलोभवतः परम्॥३५॥
एषां प्रचुरभावाच्च तपः क्षयं गमिष्यति । क्षीणे तपसि वर्तंते पंकाश्चित्तप्रमोहकाः ॥३६॥
तैश्च शृंखलयोगैश्च बद्धो नैवोद्धृतिं व्रजेत्। एतद्विमृश्य शूद्रोसौ परित्यज्य गृहं गतः ॥३७॥
स्वस्था देवा मुदा तत्र साधुसाध्विति चाब्रुवन्। निर्ग्रंथिरूपमादाय तस्यांतिक गृहं तथा ॥३८॥
गत्वाहं देवसंवादमवदं भूतवर्तनम् । ततोभ्यासप्रसंगाच्च जनानां च परिप्लवात् ॥३९॥
तस्य योषा तदागत्य पप्रच्छ दैयकारणम्। ततोहमवदं तस्य यद्वाचेतो गतं द्रुतम्॥४०॥
निभृतोऽथ निनादस्य कारणं कथितं मया । हृन्नतं पतिना तेद्य विधिना दत्तमज्ञवत् ॥४१॥
परित्यक्तं महाभागे पुनर्नास्तीहते वसु। यावज्जीवति दौर्विध्यं तस्य भोक्ता न संशयः॥४२॥
गच्छ मातर्गृहंशून्यमलब्ध्यं तत्प्रपृच्छतम्। श्रुत्वा तद्वैशिवं सा च वचनं पत्युरंतिके ॥४३॥
गत्वाप्रोवाचदुर्वृत्तं तच्छ्रुत्वा विस्मयं गतः । स विचिंत्य तया सार्धमागतोऽसौ ममांतिकम् ॥४४॥
निभृतं मामुवाचेदं क्षपणत्वं च कीर्तय।

जाता नहीं था ॥३०॥ जब वह उस स्थान पर गया तो उस अद्भुत पदार्थ को देखा तो उसने सोचा ऐसा तो कभी होता नहीं है, लग रहा है यह किसी की चाल है ॥३१॥ यदि मैं, इसको ले लेता हूँ तो मेरी निर्लोभता नष्ट हो जायेगी । इसकी रक्षा करने में भी कष्ट है, धन से मन में अहङ्कार भी आ जा सकता है ॥३२॥ जिससे लोभ होता है, उसीसे लाभ हाता है और फिर लाभ से लोभ बढता है । और जो पुरुष लोभग्रस्त होता है, उसको शाश्वत नरक की प्राप्ति होती है ॥३३॥ यदि हमारे घर में गुण रहित धन रहे तो फिर मेरी पत्नी और पुत्रों को उन्माद हो जायेगा॥३४॥ उन्माद से काम जन्य विकार उत्पन्न हो जाता है उससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है भ्रम से मोह और (अहङ्कार होता है) और उसके बाद क्रोध तथा लोभ उत्पन्न हो जाते हैं ॥३५॥ इन सबों का प्राचुर्य हो जाने पर मेरे तप का नाश हो जायेगा । तपस्या के क्षीण हो जाने पर चित्त में मोह उत्पन्न होने वाले पाप उत्पन्न हो जाते हैं ॥३६॥ उन पापों की बेड़ी में बँधे हुए मनुष्य का उद्धार नहीं होता है । इन सारी बातों का विचार करके वह शूद्र अपने घर चला गया॥३७॥ उस समय स्वर्ग में विद्यमान देवता साधु-साधु का उच्चारण करने लगे । उसके बाद क्षपणक का रूप धारण करके मैं उसके घर गया ॥३८। वहाँ जाकर मैं सबों की भूतकालिक घटनाओं को मैं बतलाता था । उसके बाद अभ्यास वशात् लोग बहुत अधिक आने लगे ॥३९॥ उसकी पत्नी भी मेरे पास आयी और मुझसे अपने भाग्य के विषय में पूछी । उसके बाद मैंने उन सारी बातों को बतला दिया जो उसके मन में था ॥४०॥ उसको मैंने एकान्त में उसके निनाद का कारण बतलाया ॥४१॥ तुम्हारे पति को ब्रह्मा ने मूर्ख बना दिया है । उसको जो धन मिला उसका उसने परित्याग कर दिया ॥४२॥ तुम्हारा पति जब तक जीवित रहेगा तब तक उसकी दरिद्रता बनी रहेगी । हे माँ तुम अपने घर शीघ्र जाओ और उस धन के विषय में पूछो । उसकी मंगलमयी बाणी को सुनकर वह अपने पति के पास जाकर पूछी ॥४३॥ उसने जाकर उस बुरे समाचार को सुनाया तो उसे सुनकर शूद्र आश्चर्यित हो गया। कुछ विचार करके वह शूद्र अपनी पत्नी के साथ मेरे पास आया ॥४४॥ वह एकान्त में आकर मुझसे कहा क्षपणक

क्षपणक उवाच

चाक्षुषं चिरसंशुद्धं हेलया तृणवत्कथम् ॥४५॥
त्वया त्यक्तं यतस्तात नास्ति भाग्यमकंटकम् । ऐश्वर्य मतुलं शौर्यं शीर्यते भावुकं पुनः ॥४६॥
स्वबंधूनां महद्दुःखमाजन्ममरणांतिकम् । द्रक्ष्यसे चात्मना नित्यं मृतानां या गतिर्ध्रुवम् ॥४७॥
तस्मात्तद्गृह्यतां तूर्णं भुंक्ष्व भोग्यमकंटकम् । ऐश्वर्यमतुलं शौर्यं लोकानां विस्मयं वरम् ॥४८॥

शूद्र उवाच

न मे वित्ते स्पृहा चास्ति धनं संसारवागुरा। तद्विधौ पतितो मर्त्यो नपुनर्मोक्षकं व्रजेत् ॥४९॥
शृणु वृत्तस्य यद्दोषमिहलोके परत्र च । भयं चोराच्च ज्ञातिभ्यो राजभ्यस्तत्करादपि ॥५०॥
सर्वे जिघांसवो मर्त्याः पशुमस्यविविष्किराः । तथाधनवतां नित्यं कथमर्थास्सुखावहाः॥५१॥
प्राणस्यांतकरोह्यर्थस्साधको दुरितस्य च । कालादीनां प्रियं गेहं निदानं दुर्गतिः परम् ॥५२॥

क्षपणक उवाच

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बांधवाः। कुलं शीलं च पांडित्यं रूपं भोग्यं यशःसुखम् ॥५३॥
धनेन तु विहीनस्य पुत्रदारोज्झितस्य च । कथं मित्रं कथं धर्मं दीनानां जन्मनः कथम्॥५४॥
सत्वादि क्रतुकार्यं च पुष्करिव्युपकारकाम्। दानं नाकस्य सोपानं निःस्वस्य च नसिद्ध्यति॥५५॥
व्रतकार्यस्थ रक्षा च धर्मादि श्रवणं भृशम्। पितृयज्ञादितीर्थं च निर्वित्तस्य न सिद्ध्यति ॥५६॥
तथा रोगप्रतीकारः पथ्यमौषधसंचयम्। रक्षणं विग्रह श्चैव शत्रूणां विजयो ध्रुवम् ॥५७॥

बतलाओ क्या कह रहे थे **क्षपणक ने कहा—** जो अत्यन्त शुद्ध वस्तु आखों से दिखायी पड़े उसको तृणवत् क्यों समझे ॥४५॥ चूकि तुमने उसे वैसा ही समझा है अतएव तुम्हारा भाग्य ठीक नहीं है । ऐश्वर्य अतुलनीय पराक्रम है, जो भावुक होता है, वह शीर्ण (विनष्ट) हो जाता है ॥४६॥ तुम अपने बान्धवों के महान दुःख को जन्म से मरण पर्यन्त देखोगे तथा जैसे मरे हुओं की गति होती है, वैसी ही तुम्हारी गति होगी ॥४७॥ इसलिए उस धन को तुम शीघ्र लो और भोगों का अकण्टक (निर्विघ्न) भोग करो । ऐश्वर्य अतुलनीय पराक्रम है, वह लोगों को विस्मित कर देता है ॥४८॥ **शूद्र ने कहा—** धन में मेरी कोई स्पृहा नहीं है, वह संसार बन्धन का जाल है । धन के बन्धन में बँधा मनुष्य पतित हो जाता है । संसार में पतित मनुष्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता है ॥४९॥ इस लोक में तथा परलोक में जो धन के दोष हैं, उंसे आप सुनें धन को विषय में चोरों, दायादों तथा राजा से भय सर्वदा बना रहता है ॥५०॥ सभी पशु तथा मछली बेचने वाले लोग उसको मार डालना चाहते हैं जब धनिको की यह स्थिति है तो धन सुखप्रद कैसे हो सकता है ?॥५१॥ धन प्राणान्त करने वाला है वह पाप को बढाने वाला है, वह काल आदि का प्रिय आश्रय स्थान है, तथा नरक प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन है ॥५२॥ **क्षपणक ने कहा—** धनवानों के ही मित्र और बान्धव होते हैं । धनवानों को ही कुल शील नामक गुण, पाण्डित्य, रूप, भोग्य पदार्थ, यश तथा सुख की प्राप्ति होती है ॥५३॥ धनहीन पुरुष को तो उसके पुत्र तथा पत्नी भी त्याग देते हैं, जन्म से ही दरिद्रों को मित्र तथा धर्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?॥५४॥ जिसके पास धन नहीं है, वह न तो सात्त्विक यज्ञों को कर सकता है, न लोगों के उपकारक बावलियों आदि को बनवाकर दान कर सकता है और स्वर्ग की सीढी रूपी दोनों को भी नहीं कर सकता है ॥५५॥ वह न तो व्रत कर सकता है, न धर्म की रक्षा कर सकता है, वह शास्त्रों का श्रवण, श्राद्ध और तीर्थ भी नहीं कर सकता है ॥५६॥ वह अपने रोगों का न तो प्रतिकार कर पाता है, न पथ्य का सेवन कर पाता है

स्त्रीणां च जन्मना वाता वसुयोगेन लभ्यते। भूतभव्यप्रवृत्तानां सुकृतं दुष्कृतं च यत् ॥५८॥
तस्माद्बहुधनं यस्य तस्य भोग्यं यदृच्छया। स्वर्गं वितरणादेव लप्स्यसे ह्यचिरादितः ॥५९॥

शूद्र उवाच

अकामाच्च व्रतं सर्वमक्रोधात्तीर्थसेवनम्। दयाजप्यसमा शुद्धं संतोषो धनमेव च ॥६०॥
अहिंसा परमासिद्धिः शिलोंछवृत्तिरुत्तमा। शाकाहारः सुधा तुल्य उपवासः परंतप ॥६१॥
संतोषो मे महाभोग्यं महादानं वराटकम्। मातृवत्परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ॥६२॥
परदारा भुजंगाभाः सर्वयज्ञ इदं मम। तस्मादेनं न गृह्णामि सत्यं सत्यं गुणाकर ॥६३॥
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।

श्रीभगवानुवाच

इत्युक्ते तु नरश्रेष्ठ पुष्पवर्षं पपात ह ॥६४॥
मूर्ध्नि देशे तनौ तस्य सर्वदेवेरितं द्विज। देवदुंदुभयो नेदुर्नृत्यंत्यप्सरसांगणाः ॥६५॥
जगुर्गंधर्वपतयो विमानं चापतद्दिवः। ऊचुर्देवगणास्तत्र विमानमिदमारुह ॥६६॥
सत्यलोकं समासद्य भुंक्ष्व भोग्यं महेंद्रवत्। संख्यातेनापि वर्तेत भोग्यकालस्य धार्मिक ॥६७॥

श्रीभगवानुवाच

इत्युक्तेषु च देवेषु शूद्रो वचनमब्रवीत्।

शूद्र उवाच

कथं निर्ग्रंथकस्यास्य ज्ञानं चेष्टास्य भाषणम् ॥६८॥

और न औषिधियों को पा सकता है। वह अपने शरीर की भी रक्षा नहीं कर सकता और न शत्रुओं पर विजय ही प्राप्त कर सकता है ॥५७॥ धनवानों की ही जन्म से स्त्रियों के साथ बातें होती हैं, भूतकालिक भविष्यत् कालिक तथा वर्तमान कालिक, पुण्य तथा पाप की प्रवृत्ति धन से ही होती है ॥५८॥ अतएव जिसके पास बहुत अधिक सम्पत्ति है, उसके ही मनोनुकूल भोगों की प्राप्ति होती है। धन का ही दान करके तुम स्वर्ग की प्राप्ति कर सकते हो ॥५९॥ **शूद्र ने कहा—** हमारा तो सन्तोष ही धन है। कामना रहित होने से ही हमारे सारे व्रत पूरे हो गये, क्रोध रहित होना ही हमारा तीर्थाटन है, दया ही मन्त्रों के जप के समान है ॥६०॥ अहिंसा मेरी सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है, शिलोञ्छ ही सर्वोत्तम वृत्ति है, शाको का भोजन अमृत के समान है और उपवास करना ही सबसे बड़ी तपस्या है ॥६१॥ मेरे लिए संतोष ही सबसे बड़ा धन है और कौड़ी का दान देना ही मेरे लिए महादान है। मेरे लिए दूसरों की पत्नियाँ माता के समान हैं और दूसरों की सम्पत्ति मिट्टी के ढेले के समान है ॥६२॥ दूसरे की स्त्री को सर्पिणी के समान समझना ही मेरा सबसे बड़ा यज्ञ है। हे गुणाकर इन्हीं सभी कारणों से इस धन को मैं नहीं लेता हूँ, यह सत्य वाणी है। कीचड़ लगाकर उसको धोने की अपेक्षा उसको नहीं छूना ही अच्छा होता ह। हे ब्राह्मण जिस समय वह इस प्रकार की बातें कर रहा था, उसी समय उसके शिर तथा शरीर पर देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की, देवगण दुन्दुभि को बजाने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगी ॥६-६५॥ गन्धर्व सङ्गीत करने लगे और आकाश से विमान पृथिवी पर उतारा देवताओं ने उससे कहा तुम इस विमान पर बैठो ॥६६॥ सत्य लोक में जाकर इन्द्र के समान भोगों को भोगो। हे धार्मिक ! तुम्हारा भोग का काल अनन्त है ॥६७॥ देवताओं के इसतरह कहने पर शूद्र ने कहा यह क्षपणक

किं वा हरिहरौ ब्रह्मा किंवा शक्रो बृहस्पतिः। किं वा मच्छलनादेव साक्षाद्धर्म इहागतः ॥६९॥

श्रीभगवानुवाच

इत्युक्ते क्षपणश्चासौ स्मितो वचनमब्रवीत् ।

क्षपण उवाच

विज्ञातुं चैव वो धर्ममहं विष्णुरिहागतः ॥७०॥
विमानेन दिवं गच्छ सकुटुंबो महामुने। मत्प्रसादाच्च युष्माकं सदैव नवयौवनम् ॥७१॥
भविष्यति महाप्राज्ञ भाग्यानंतं प्रलप्स्यथ ।

श्रीभगवानुवाच

दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यवस्त्रोपशोभिताः ॥७२॥
गतास्ते सहसा नाकं सर्वैर्बंधुजनैर्वृताः । एवं द्विजवरश्रेष्ठलोभत्यागाद्ययुर्दिवम् ॥७३॥
तुलाधारस्तथाधीमान् सत्यधर्मप्रतिष्ठितः । येन जानाति त्वद् वृत्तं देशांतरसमुद्भवम् ॥७४॥
तुलाधारसमो नास्ति सुरलोके प्रतिष्ठितः। तस्मात्त्वमपि भूदेव समं गत्वा दिवं ब्रज॥७५॥
य इदं शृणुयान्मर्त्यः सर्वधर्मप्रतिष्ठितः। जन्मजन्मार्जितं पापं तत्क्षणात्तस्य नश्यति ॥७६॥
सकृत्पठनमात्रेण सर्वयज्ञफलं लभेत् । लोकानां पुरतो विप्र देवानामर्च्यतां व्रजेत्॥७७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिष्टिखंडे शूद्रस्यालोभाख्यानं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

इसतरह की ज्ञान, चेष्टायें और भाषण क्यों करता है ॥६८॥ यह विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र अथवा बृहस्पति में से कोई है क्या ? अथवा मुझे छलने के लिए स्वयं धर्म ही यहाँ आ गये हैं ॥६९॥ इसतरह से पूछने पंर उसने मुस्कुराते हुए कहा मैं विष्णु हूँ, क्षपणक रूा से यहाँ आया हूँ तुम्हारे धर्म की परीक्षा करने के लिए आया हूँ ॥७०॥ हे महामुने ! तुम इस विमान से अपने परिवार क साथ स्वर्ग लोक जाओ मेरी कृपा से तुमलोगों की युवावस्था सदैव बनी रहेगी। तुम्हारा अनन्त सौभाग्य होगा तुमलोग सदैव दिव्य अलङ्कारों तथा वस्त्रों से सुशोभित रहोगे ॥७१-७२॥ उसके बाद वे सब सहसा अपने बान्धवों के साथ स्वर्ग लोक में चले गये। हे द्विजश्रेष्ठ ! लोभ का त्याग करने के कारण वे स्वर्गलोक गये ॥७३॥ यह बुद्धिमान तुलाधार भी सत्य के पालन में प्रतिष्ठित है उसी के कारण दूसरे देश के भी वृत्तान्तों को जानता है ॥७४॥ अतएव तुलाधार के समान देवलोक में भी कोई सत्य वक्ता नहीं है। अतएव तुम भी सबों के प्रति समदृष्टि होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करो ॥७५॥ जो इस प्रसङ्ग का श्रवण करता है, वह धर्म में स्थिर हो जाता है और उसके समस्त जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥७६॥ इस कथा को देव पूजक लोगों के समक्ष एक बार पढने से ही पढने वाले को समस्त यज्ञों के करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥७७॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के शूद्र की निर्लोभता का वर्णन नामक तिरपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५३।।

चौवनवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

अद्रोहकस्य चाख्यातो महिमा लोकदुःसहः । एकतल्पगतां वामां क्षान्त्वा सर्वजितोभवत्॥१॥
ज्ञानिनामपि दुःसाध्यं मुनीनां ब्रह्मचारिणाम् । सुरासुरमनुष्याणां विषमं तत्समं गतः ॥२॥
स्वभावाद्विषमं कामं जेतुं कः पुरुषः क्षमः । अद्रोहकमृते विप्र स एव भवजित्पुमान्॥३॥
अहल्याहरणादेव सुरेशस्य भगांकता । पुनर्देव्याः प्रसादाच्च सहस्राक्षेति विश्रुतः ॥४॥
विदितं सर्वलोके च त्रैलोक्ये सचराचरे ।

द्विज उवाच

कथं च देवदेवस्य अहल्याहरणं प्रभो ॥५॥
भगांकत्वं च संप्राप्य सहस्राक्षः सुराधिपः । नगांकोपि भगांकत्वं संप्राप्तस्सुरराट्कथम् ॥६॥
दुःश्रुतं सुरवैकल्यं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ।

श्रीभगवानुवाच

पुरा स्वांतोद्भवां कन्यां लोकेशश्च महामनाः ॥७॥
गौतमाय ददौ धाता लोकपालाग्रतो मुदा। ततस्तु लोकपालानां मन्मथाविष्टचेतसाम् ॥८॥
शचीपतेस्तु संमोहो हृदिशल्य इव स्थितः । लोकपालानतिक्रम्य सुवेषा वरवर्णिनी ॥९॥
द्विजाय रत्नभूतैषा दत्ता किं वा करोम्यहम् । इति संचिंत्य तस्यास्तु वर्तमाने च यौवने॥१०॥
पुनश्च मायया दृष्टं रूपं तस्यास्सुशोभनम् । पुनश्चिन्तयमानोऽसौ गौतमाध्यासनं गतः ॥११॥
पश्चात्तु तस्यगमनाद्यद्वृत्तं तच्छृणुष्वमे । एकदा गौतमः स्नातुं गतोऽसौ पुष्करं प्रति॥१२॥

काम के दुर्जयत्व का वर्णन, अहल्या तथा इन्द्र का चरित्र

श्रीभगवान् ने कहा— संसारी जीवों के लिए असंभव मैंने अद्रोहक का चरित्र बतलाया है । उसने एक ही शय्या पर सोयी हुयी सुन्दरी को निष्काम होकर देखने के कारण संसार पर विजय प्राप्त कर लिया ॥१॥ यह कार्य ज्ञानियों, मुनियों, ब्रह्मचारियों, देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों के लिए करना असंभव है । वह विषम परिस्थिति में भी समदर्शी बना रहा ॥२॥ हे विप्र ! अद्रोहक को छोड़कर दूसरा कौन ऐसा पुरुष होगा ? जो स्वभाव से ही विषय काम को जीत ले ॥३॥ अहल्या का अपहरण करने के कारण ही इन्द्र के शरीर में हजारों भगों (योनियों) के चिह्न हो गये बाद में वे देवी की कृपा से सहस्राक्ष हो गये ॥४॥ यह प्रसङ्ग त्रैलोक्य के चराचर में प्रख्यात है । **ब्राह्मण ने पूछा—** हे प्रभो ! किस तरह अहल्या का अपहरण करने से देवराज इन्द्र की भगाङ्कता हुयी और बाद में वे सहस्राक्ष हो गये । पर्वतों का विदारण करने वाले इन्द्र भगाङ्क कैसे हो गये ? देवताओं की इस प्रकार की विकलता कभी नहीं सुनी गयी उसे आप बतलायें । **श्रीभगवान् ने कहा—** पूर्व काल में अपने से उत्पन्न कन्या अहल्या का विवाह ब्रह्माजी ने गौतम महर्षि से कर दिया । उसके बाद कामाविष्ट अन्तःकरण वाले लोकपालों में श्रेष्ठ इन्द्र को अत्यन्त अज्ञान हो गया वे अत्यन्त कष्ट का अनुभव किए कि लोकपालों को छोड़कर सुन्दरी अहल्या ॥८-९॥ का विवाह गौतम से हो गया अब मैं क्या करूँ ? इसतरह से विचार कर अहल्या के युवती होने पर ॥१०॥ इन्द्र ने माया पूर्वक अहल्या के सुन्दर रूप को देखा इसके बाद विचार करते हुए इन्द्र, गौतम ऋषि के आश्रम में गये॥११॥

साध्वी च गृहशौचे च गृहवस्तुनि तत्परा । प्रवृत्ता देववस्तूनां बलिं कर्तुं तत्परा ॥१३॥
इंधनं वह्निकार्यं च नित्यकर्मानुसंचयम् । एतस्मिन्नन्तरे शक्रो मुनेस्तस्य महात्मनः ॥१४॥
रूपमास्थाय गात्रेण प्रविवेशोटजं मुदा । पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा श्रद्धया परया सती ॥१५॥
देवस्थाने च वस्तूनां संचयं कर्तुमुद्यता । ततस्तामब्रवीदार्तो मुनिवेषधरो हरिः ॥१६॥

इन्द्रउवाच

प्रद्युम्नवशगो वामे देहि मे चुंबनादिकम् ।

श्रीभगवानुवाच

एतस्मिन्नंतरे सा च त्रपायुक्ता ब्रवीद्वचः ॥१७॥

अहल्योवाच

देवकार्यादिकं त्यक्त्वा वक्तुं नार्हसि मे प्रभो । सर्वं जानासि धर्मज्ञ पुण्यानां निश्चयं मुने ॥१८॥
अयमर्थो हि वेलायामधुनैव न युज्यते ।

श्रीभगवानुवाच

ततस्तां चारुसर्वांगीं दृष्ट्वा मन्मथपीडितः ॥१९॥

इन्द्र उवाच

अलं प्रिये न वक्तव्यं हृच्छयो मे प्रजायते । कर्तव्यं चाप्यकर्तव्यं पत्युर्वचनसंमतम् ॥२०॥
करोति सततं या च सा च नारी पतिव्रता। लंघयेद्याच तस्याज्ञां सुरते च विशेषतः ॥२१॥
पुण्यं तस्याभवेन्नष्टं दुर्गतिं चाधिगच्छति। साब्रवीद्देववस्तूनि संति देवार्थतो मुने ॥२२॥
नित्यकर्माणि चान्यानि किं वा तेषु विपर्ययः । स चोवाच सतीं तत्र देह्यालिंगादिकं मम ॥२३॥
मनसा भयमुत्सृज्य मया दत्तानि तानि च । इत्युक्त्वा तां परिष्वज्य कृतस्तेन मनोरथः ॥२४॥

वहाँ जाने के बाद जो घटना हुयी उसे आप सुनें । एक बार महर्षि गौतम स्नान करने के लिए पुष्कर तीर्थ में गये॥१२॥ साध्वी अहल्या घर की वस्तुओं को साफ कर रही थी उसके बाद वह घर के वास्तु देवता की पूजा कर रही थी ॥१३॥ नित्य अग्निहोत्र के लिए इन्धन एकत्रित कर रही थी उसी समय महर्षि गौतम का रूप बनाकर इन्द्र॥१४॥ उस आश्रम में प्रवेश किए । पतिव्रता साध्वी अहल्या अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक ॥१५॥ देवताओं के स्थान पर वस्तुओं को एकत्रित करने लगी ॥१६॥ उसके बाद मुनि का वेष बनाये हुए आर्त इन्द्र अहल्या से बोले ॥१७॥ **इन्द्र ने कहा**— हे सुन्दरि ! मैं कामार्त हूँ मुझे चुम्बन इत्यादि दो । **श्रीभगवान् ने कहा**— उस समय लज्जित होकर अहल्या बोली **अहल्या ने कहा**— हे प्रभो ! देवकार्य छोड़कर आप मुझसे ऐसी बातें न करें । हे मुने ! आप तो पुण्यों के विषय में पूर्णरूप से ज्ञाता हैं ॥१८॥ इस समय में ऐसा कार्य करना उचित नहीं हैं । **श्रीभगवान् ने कहा**— उसके बाद सर्वाङ्ग सुन्दरी अहल्या को देखकर काम पीडित ॥१९॥ **इन्द्र ने कहा**— हे प्रिये ! अपनी बातें बन्द करो, मेरे हृदय में सन्ताप हो रहा है । पत्नी को पति की कर्तव्य तथा अकर्तव्य सारी बातों को मानना ही चाहिए ॥२०॥ इसतरह से करने वाली ही स्त्री पतिव्रता कहलाती है । विशेष रूप से सुरत के विषय में पति की आज्ञा को नहीं मानने वाली नारी ॥२१॥ का पुण्य नष्ट हो जाता है । और वह नरक में जाती है । **श्रीभगवान् ने कहा**— अहल्या ने कहा देवताओं के कार्य के लिए यहाँ देव वस्तुएँ हैं ॥२२॥ दूसरे नित्यकर्म करने है, उनमें दोष नहीं होगा क्या ? इन्द्र ने कहा तुम मेरा आलिङ्गन इत्यादि करो ॥२३॥ मन में भय न करो मैं तुम्हारा अलिङ्गन कर रहा हूँ । इसतरह से

एतस्मिन्नंतरे विप्र मुनेर्हृद्यासकल्मषम् । ततो ध्यानं समारभ्याजानाद् वृत्तं शचीपतेः ॥२५॥
तूर्णमेवद्वारदेशे गत्वा च समुपस्थितः। शक्रो मुनिं तु संलक्ष्य चौतुदेहं विवेशह ॥२६॥
गच्छतः पृषदंशस्य पद्धतौ प्रचचाल ह। मुनिस्तत्रावदत्तंवै कस्त्वं मार्जाररूपधृत् ॥२७॥
भयात्तस्य मुनेरग्रे शक्रः प्रांजलिरास्थितः । मघवंतं पुरो दृष्ट्वा चुकोप मुनिपुंगवः ॥२८॥

मुनिरुवाच

यत्त्वया चेदृशं कर्म भगार्थं छलसाहसम्। कृतं तस्मात्तवांगेषु सहस्रभगमुत्तमम् ॥२९॥
भवत्विह तु पापिष्ठ लिंगं ते निपतिष्यति । गच्छ मे पुरतो मूढ सुरस्थानं दिवौकसः॥३०॥
पश्यंति मुनिशार्दूला नराः सिद्धास्सहोरगाः ।

श्रीभगवानुवाच

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो रुदंतीं तां पतिव्रताम् ॥३१॥
पप्रच्छ किमिदानीं ते कर्मदारुणमागतम्। इत्युक्त्वा वेपमाना सा भीता पतिमुवाच ह॥३२॥

अहल्योवाच

अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म क्षंतुमर्हसि वै प्रभो ।

मुनिरुवाच

परेणाभिगतासित्वममेध्या पापचारिणी ॥३३॥
अस्थिचर्मसमाविष्टा निर्मांसा नखवर्जिता। चिरंस्थास्यसि चैकापि त्वां पश्यंतु जनाः स्त्रियः॥३४॥

श्रीभगवानुवाच

दुःखिता तमुवाचेदं शापस्यांतो विधीयताम् । इत्युक्ते करुणाविष्टो मन्युनापि परिप्लुतः॥३५॥
जगाद गौतमो वाक्यं रामो दाशरथिर्यदा। वनमभ्यागतो विष्णुः सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥३६॥

कहकर इन्द्र ने अपना मनोरथ पूर्ण किया ॥२४॥ उसी समय महर्षि के हृदय में कल्मष (पाप) का उदय हुआ। उसके बाद ध्यान करके उन्होंने इन्द्र के पाप को जान लिया ॥२५॥ शीघ्र ही वे दरवाजे पर जाकर खड़े हो गये। मुनि को देखकर इन्द्र ने विडाल का रूप बना लिया ॥२६॥ जाती हुयी बिल्ली के पीछे महर्षि चलने लगे। मुनि ने कहा तुम विडाल का रूप बनाये हुए कौन हो ?॥२७॥ भयभीत होकर इन्द्र महर्षि के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये इन्द्र को देखकर महर्षि क्रुद्ध हो गये ॥२८॥ **मुनि ने कहा**— तुमने भग की प्राप्ति के लिए इसतरह का साहसिक कर्म किया है अतएव तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर में एक हजार भग के चिह्न हो जायेंगे ॥२९॥ हे पापी ! तुम्हारा लिङ्ग गिर जायेगा। मूर्ख मेरे सामने से हटो और देवलोक चले जाओ ॥३०॥ मुनिश्रेष्ठ, मनुष्य तथा सिद्ध सब तुम्हारे अङ्गों में भगों को देख रहे हैं **श्रीभगवान् ने कहा**— इसतरह से कहकर मुनिश्रेष्ठ, पतिव्रता अहल्या से पूछे कि तुमने इस प्रकार का पाप कर्म क्यों की ? इसतरह से पूछने पर काँपती हुई भयभीत अहल्या बोली ॥३२॥ हे प्रभो! मैंने अज्ञानवशात् इस कर्म को किया है, आप क्षमा करे। **मुनि ने कहा**— दूसरे के साथ संगम करने के कारण अपवित्र और पापिनी हो गयी हो ॥३३॥ तुम हड्डी और चमड़े में प्रवेश करके मांस और नख से रहित होकर यहाँ दीर्घकाल तक पड़ी रहोगी और स्त्री पुरुष तुम्हें देखेंगे ॥३४॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— दुखिता अहल्या ने कहा मेरे इस दुःख का अन्त कब होगा, इसतरह से क्रुद्ध मुनि करुणाक्रान्त हो गये ॥३५॥ महर्षि गौतम ने कहा जब महाराज दशरथ के पुत्र भगवान् विष्णु ही राम रूप में सीता और लक्ष्मण के साथ तुम्हें देखेंगे ॥३६॥ तुमको देखकर

दृष्ट्वा त्वां दुःखितां शुष्कां निर्देहां पथि संस्थिताम्।
गदिष्यति च वै रामोकौशिकस्याग्रतो हसन् ॥३७॥
किमियं शुष्करूपा च प्रतिमास्थिमयीशुभा। न दृष्टं मे पुरा ब्रह्मन् रूपं लोकविपर्ययम्॥३८॥
ततो रामं महाभागं विष्णुं मानुषविग्रहम्। यद्वृत्तमासीत्पूर्वं तत् कौशिकः कथयिष्यति ॥३९॥
कौशिकस्यवचः श्रुत्वा रामो वक्ष्यति धर्मवित्। अस्या दोषो न चैवास्ति दोषोऽयं पाकशासने ॥४०॥
एवमुक्ते तु रामेण त्यक्त्वा रूपं जुगुप्सितम्। दिव्यं रूपं समास्थाय मद्गृहं चागमिष्यसि ॥४१॥
शप्त्वा तु गौतमस्तां हि तपस्तप्तुं गतो वनम्। ततोत्यन्तं शुष्करूपा तथैव पथिसंस्थिता ॥४२॥
रामस्य वचनादेव गौतमं पुनरागता। गौतमोपि तया सार्द्धमद्यैवं दिवि तिष्ठति ॥४३॥
इंद्रोऽपि त्रपया युक्तः स्थितश्चांतर्जलेचिरम्। स्थित्वा चांतर्जले देवीमस्तौषीदिंद्राक्षिसंज्ञिताम्॥४४॥
सुप्रसन्ना ततो देवी स्तोत्रेण परितोषिता। गत्वोवाच ततः सा च वरोऽस्मत्तो विगृह्यताम्॥४५॥
ततो देवीमुवाचेदं शक्रः परपुरंजयः।

शक्र उवाच

त्वत्प्रसादाच्च मे देवि वैरूप्यं मुनिशापजम् ॥४६॥
संत्यज्य देवराज्यं च लब्ध्वाहं तु पुरा यथा।

श्रीभगवानुवाच

तमुवाच ततो देवी पापं तं मुनिशापजम् ॥४७॥
हंतुं ब्रह्मादयो देवाश्शक्ता नाहं सुरेश्वर। किंतु बुद्धिं सृजाम्यद्य येन लोकैर्न लक्ष्यते ॥४८॥
योनिमध्यगतंदृष्टिसहस्त्रं ते भविष्यति। सहस्राक्ष इति ख्यातस्सुरराज्यं करिष्यसि ॥४९॥

महर्षि कौशिक के सामने तुमको दुखी, शुष्क, देह रहित और मार्ग में पड़ी हुयी देखकर हँसते हुए कहेंगे ॥३७॥ यह सुखा हुआ, अस्थि रूपी शव कैसा है ? हे ब्रह्मन् ऐसा रूप का परिवर्तन मैंने कभी नहीं देखा है ॥३८॥ उस मनुष्य शरीरधारी विष्णु श्रीराम से महर्षि कौशिक पूर्वकालिक वृत्तान्त को बतलायेंगे ॥३९॥ महर्षि कौशिक की बातों को सुनकर धर्मज्ञ श्रीराम कहेंगे, इसमें इसका दोष तो है नहीं दोष तो इन्द्र का है ॥४०॥ श्रीराम के इस तरह कहने पर निन्दित रूप का परित्याग करके और दिव्य रूप धारण करके तुम मेरे गृह में आओगी ॥४१॥ इसतरह अहल्या को शाप देकर महर्षि गौतम तपस्या करने के लिए वन में चले गये और अहल्या शुष्क रूप को धारण करके मार्ग में पड़ी रही ॥४२॥ श्रीराम की वाणी सुनकर वह महर्षि गौतम के पास चली गयी। गौतम महर्षि भी अहल्या के साथ आज भी स्वर्ग में स्थित हैं ॥४३॥ इन्द्र भी लज्जित होकर दीर्घकाल तक जल में छिपे रहे। जल में रहकर इन्द्र अक्षि नामक देवी की आराधना किये ॥४४॥ उस स्तोत्र के द्वारा देवी प्रसन्न हो गयीं, वे इन्द्र के पास जाकर कहीं कि तुम वरदान माँगो ॥४५॥ उसके बाद शत्रुओं को परास्त करने वाले इन्द्र ने देवी से कहा। **इन्द्र ने कहा—** हे देवि ! आपकी कृपा से मुनि के शाप के कारण यह विरूपता ॥४६॥ नष्ट हो जाय और मैं पहले के समान अपने राज्य को प्राप्त कर लूँ। **श्रीभगवान् ने कहा—** उसके बाद देवी ने मुनि के शाप जन्य पाप को बतलाया कि॥४७॥ मैं तथा ब्रह्मा इत्यादि भी इस शाप को मिटा नहीं सकते है, किन्तु मैं ऐसी वुद्धि की सृष्टि कर देती हूँ कि लोग इसको देख नहीं पायेंगे ॥४८॥ इन योनियों के भीतर तुम्हारी एक हजार आँखें हो जायेंगी और सहस्राक्ष के नाम से प्रसिद्ध होकर तुम अपना राज्य करोगे ॥४९॥ मेरे वरदान के कारण मेष का ही अण्डकोश तथा लिङ्ग तुम्हारे अण्डकोश

मेषांडं तवशिश्नं च भविष्यति च मद्वरात्। इत्युक्त्वा सा जगन्माता तत्रैवांतरधीयत ॥५०॥
शक्रो देववरैः पूज्योह्यद्यापि दिवि वर्तते। इंद्रस्यैतादृशी कामादवस्था द्विजसत्तम् ॥५१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे अहल्याहरणं नाम चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पचपनवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

अपरं च प्रवक्ष्यामि कामेनाधिष्ठितस्य च। पुराभागीरथी तीरो द्विजः परमहंसकः ॥१॥
उपदेष्टा सहस्राणां द्विजानां शांतिदःपरः। एकदंडधरः साक्षात्कूर्मवद्धरणीस्थितः ॥२॥
एकाकिनः सतस्तस्य देवागारे विनिष्कृते। पत्युर्गृहात्परं गेहं गंतुं सायं समुद्यता ॥३॥
अकस्माद्युवती नारी मिलिता रूपधारिणी। दृष्ट्वा तां भगवान् विप्रो मन्मथस्य भयार्दितः ॥४॥
अगारजठरे कृत्वा सचैनां प्राक्षिपत् क्षपाम्। अर्गलं सादृढं कृत्वा देवागारे सुशोभने ॥५॥
कदाचिदपि तं द्वारादागंतुं न ददाति ह। एवंभूतः समाधिस्थः क्षपां क्षिप्त्वा विलप्य सः ॥६॥
चितयंस्तां वरारोहां द्वारि किं वा कृत मम। एवं संचिंत्यतामाह द्वारं देहीह नः प्रिये ॥७॥
पतिश्च वशगः कांते दयितस्ते भविष्यति। ततस्तं प्राह सा विप्रं वृद्धं कामप्रलालसम् ॥८॥

और लिङ्ग होंगे। इसतरह से वरदान देकर जगन्माता देवी अन्तर्धान हो गयीं ॥५०॥ इन्द्र भी श्रेष्ठ देवताओं से पूजित होकर आज भी स्वर्गलोक में विद्यमान हैं। हे द्विजश्रेष्ठ ! काम के कारण इन्द्र की ऐसी अवस्था हो गयी ॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के अहल्या हरण नामक चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५४।।

काम का दुर्जयत्व वर्णन, परमहंस चरित्र तथा लौहित्य की उत्पत्ति का वर्णन

श्रीभगवान् ने कहा— अब मैं काम विषयक दूसरे प्रसङ्ग को सुनाता हूँ। प्राचीनकाल में भागीरथी के तट पर एक परमहंस ब्राह्मण रहता था ॥१॥ वह हजारों ब्राह्मणों को अपने उपदेश के द्वारा शान्ति प्रदान किया था। वह एक दण्ड धारण करने वाला तथा पृथिवी पर कच्छप के समान अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी रखता था ॥२॥ उस अकेले रहने वाले परमंहस के सुन्दर देवगृह में अपने पति के घर से सायंकाल दूसरे के घर जाती हुयी एक युवती नारी रात को टिक गयी ॥३॥ अकस्मात् सुन्दरी तथा युवती नारी को देखकर वे परमहंस कामार्त हो गये ॥४॥ सुन्दरी अपने घर के भीतर अच्छी तरह से किवाड़ बन्द करके तथा देवागार में सुदृढ अर्गला (कीली) बन्द करके रात बितायी ॥५॥ उस द्वार से वह किसी को भी आने नहीं देती थी। इस तरह विलाप करके परमहंस समाधिस्थ होकर किसी तरह रात बिताये ॥६॥ वे रात भर उस सुन्दरी के विषय में तथा उस द्वार के विषय में सोचते रहे। इसतरह से विचार करके उन्होंने उससे कहा हे प्रिये ! मुझे घर के भीतर आने दो ॥७॥ हे कान्ते ! तुम्हारा पति वशवर्ती और तुम्हारा प्रिय होगा। उसके बाद उस रमणी ने उस कामी तथा वृद्ध ब्राह्मण से कहा ॥८॥ **नारी ने**

नार्युवाच

अनन्विता गिरस्तात वक्तुं त्वं नार्हसि प्रभो ।

श्रीभगवानुवाच

अथासौ भागवान्प्राह प्रचुरं चास्ति मे वसु ॥९॥
तव दास्यामि कल्याणि प्रस्फोटय कपाटिकाम् । विप्रमाह पुनः सा च त्वं वै मे धर्मतः पिता ॥१०॥
मा गच्छ पुत्रिकां मां च परयोषां च धार्मिक । मनसा स समालोच्य सुषिरेण पथा गृहान् ॥११॥
बाहुनोद्घाट्यते नैव गंतुं चैव समुद्यतः । गच्छतश्चार्द्धमरर उत्तमांगं सुसंकटे ॥१२॥
प्रविष्टं न पुनश्चैति पंचत्वमगमत्तदा । उषः काले समायाता रक्षिणो ये च किंकिराः॥१३॥
अद्भुतं तं शवं दृष्ट्वा तामूचुस्ते च विस्मिताः ।

रक्षिण ऊचुः

कथं च निधनं त्वस्य संभूतं ब्रूहि सुन्दरि ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

कथयित्वा तु तदृत्तमभीष्टं देशमागता । एवं कामस्य महिमा दुर्निवारो जनेषु च ॥१५॥
सर्वेषामपि जंतूनां सुरासुरनृणां भवेत् । दृष्ट्वाऽमोघां वरारोहां सर्वलोकपितामहः ॥१६॥
च्युतबीजोऽभवत्तत्र लौहित्यसंभवःस्मृतः । पुनाति सकलान् लोकान्सर्वार्थमयोहि सः ॥१७॥
यमाश्रित्य नरो याति ब्रह्मलोकमनामयम् ।

द्विज उवाच

कथं च ब्रह्मणो मोहो ह्यमोघा का वरांगना ॥१८॥
उद्भवंतीर्थराजस्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।

श्रीभगवानुवाच

मुनिर्देवैः समाराध्यः पद्मयोनिसमप्रभः ॥१९॥

कहा— हे प्रभो ! आप मुझसे अनुचित बातें न करें । **श्रीभगवान् ने कहा**— उसके बाद उन परमंहस ने कहा मेरे पास प्रचुर सम्पत्ति है हे कल्याणि ! उसे मैं तुम्हे दे दूँगा, किवाड़ खोलो । उसने फिर कहा आप मेरे धर्म के पिता हैं।।९-१०।। हे धार्मिक ! मैं आप की पुत्री तथा दूसरे की पत्नी हूँ, मेरे साथ संगम न करें मन में विचार करके उसने छिद्र के मार्ग से घर में प्रवेश करना चाहा किन्तु मार्ग के छोटा होने से प्रवेश करते हुए उसका शिर उस किवाड़ में फंस गया ।।११-१२।। वह उसी में फंसकर मर गया प्रात:काल की बेला में रक्षक और नौकर आये ।।१३।। उस अद्भुत शव को देखकर वे सब आश्चर्यित हो गये । **रक्षकों ने पूछा**— हे सुन्दरि इसकी मृत्यु कैसे हुयी ?।।१४।। **श्रीभगवान् ने कहा**— वह सुन्दरी उस वृत्त को बतलाकर अपने अभिप्रेत स्थान पर चली गयी । इस तरह लोगों के लिए काम की महिमा दुर्निवार है ।।१५।। काम सभी जीवों देवताओं और असुरों के लिए दुर्निवार है । अमोघा नाम की नारी को देखकर सम्पूर्ण लोकों के पितामह का भी वीर्य स्खलित हो गया और उसी से लौहित्य का जन्म हुआ । लौहित्य सर्व तीर्थमय है, और सम्पूर्ण जीवों को पवित्र बनाता है ।।१६-१७।। उसी का आश्रयण करके मनुष्य, निर्दोष, ब्रह्मलोक में जाता है । **द्विज ने कहा**— ब्रह्माजी को कैसे मोह हो गया ? सुन्दरी अमोघा कौन थी ?।।१८।। मैं तीर्थराज की उत्पत्ति को सुनना चाहता हूँ । **श्रीभगवान् ने कहा**— देवताओं के द्वारा आराध्य तथा ब्रह्माजी के

शंतनुश्चेति विख्यातः पत्नी तस्य पतिव्रता । अमोघेति समाख्याता रूपयौवनशालिनी ॥२०॥
अस्याश्च पतिमन्वेष्टुं यातो ब्रह्मा चतद्गृहम् । तस्मिन्काले मुनिश्रेष्ठः पुष्पाद्यर्थं वनं गतः ॥२१॥
सा तं दृष्ट्वा सुरश्रेष्ठमर्घपाद्यादिकं ददौ । दूरेभिवादनं कृत्वा सा गृहं प्रविवेश ह ॥२२॥
तां च दृष्ट्वा नवद्यांगीं धाता कामवशं गतः । स्रष्टात्मानं समाधायाचिंतयत्तां पुरोगताम् ॥२३॥
बीजं पपातखट्वायां ब्रह्मणः परमात्मनः । ततो ब्रह्मागतस्त्रस्तस्त्वरया परिपीडितः ॥२४॥
अथायातो मुनिर्गेहं शुक्रं पीठे ददर्श ह । तामपृच्छद्वरारोहां कश्चाप्यत्रागतः पुमान् ॥२५॥
तमुवाच ततोऽमोघा ब्रह्माह्यत्रागतः पते । त्वामेवान्वेषितुं नाथ मयादत्तोऽत्र पीठकः ॥२६॥
शुक्रस्य कारणं चात्र तपसाज्ञातुमर्हसि । ततोध्यानात्परिज्ञातं तेनैव च द्विजन्मना॥२७॥

शन्तनुरुवाच

ब्रह्मरेतः परं साध्वी पालयस्व ममाज्ञया । उत्पद्यते सुतस्ते तु सर्वलोकैकपावनः ॥२८॥
आवयोः सर्वकल्याणं फलिष्यति मनोगतम् ।

श्रीभगवानुवाच

ततः पतिव्रता तस्य आज्ञामागृह्य संभवात् ॥२९॥
पपौ रेतो महाभागा ब्रह्मणः परमात्मनः । आवर्त इव संजज्ञे रौद्रगर्भ इति स्फुरन् ॥३०॥
प्रसोढुं नैव शक्ता सा शंतनु चाब्रवीत्ततः ।

अमोघोवाच

गर्भं धारयितुं नाथ न शक्नोम्यधुना प्रभो ॥३१॥
किंकरिष्यामि धर्मज्ञ प्राणो मे संचलत्यपि । आज्ञापय महाभाग गर्भं त्यक्षामि यत्र च ॥३२॥

समान कान्ति वाले एक मुनि थे । उनका नाम शन्तनु था । उनकी पत्नी पतिव्रता थीं उसका नाम अमोघा था । वह रूप तथा युवावस्था से सुशोभित थी ॥२०॥ उसके पति को खोजने के लिए ब्रह्माजी उसके घर गये । उस समय मुनि फूल आदि लाने के लिए वन में गये थे ॥२१॥ उन देव श्रेष्ठ ब्रह्माजी को देखकर अमोधा ने उन्हें पाद्य, अर्घ्य इत्यादि प्रदान किया । उनको दूर से प्रणाम करके वह अपने घर में चली गयी ॥२२॥ उस निरवद्य सुन्दरी को देखकर ब्रह्माजी कामार्त हो गये । ब्रह्माजी ने अपने को समाधिस्थ करके उसकी चिन्ता की ॥२३॥ उसके कारण ब्रह्माजी का वीर्यपात् उस खाट पर ही हो गया । उसके बाद काम पीडित ब्रह्माजी शीघ्र ही वहाँ से चले गये ॥२४॥ इसके वाद जव मुनि घर पर आये तो उन्होंने खाट पर वीर्य को देखा । उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा कौन सा पुरुष यहाँ आया था ॥२५॥ उसके बाद अमोघा ने कहा यहाँ पर ब्रह्माजी आये थे । हे नाथ ! वे आपको ही खोज रहे थे, मैंने उन्हें बैठने के लए यह पीठ दिया ॥२६॥ इस वीर्य का कारण क्या है ? इस बात को तो आप अपनी तपस्या के बल से जान सकते हैं । उसके बाद ध्यान करके मुनि ने सारी बात जान ली । **शन्तनु मुनि ने कहा—** हे साध्वि! यह ब्रह्माजी का रेतस है, मेरी आज्ञा है कि तुम इसका पालन करो । ऐसा करने से तुम्हारा पुत्र सम्पूर्ण लोकों को पवित्र बनाने वाला होगा ॥२८॥ हमदोनों के मनोगत सम्पूर्ण मनोरथ पूरे हो जायेंगे । **श्रीभगवान् ने कहा—** उसके बाद उस पतिव्रता ने अपने पति की आज्ञा प्राप्त करके ॥२९॥ ब्रह्माजी के उस रेतस को पी लिया । उसके कारण वह भयंकर गर्भ आवर्त के समान चल रहा था ॥३०॥ इसतरह से उसने शन्तनु महर्षि से कहीं कि, वह उसे बर्दास्त नहीं कर पा रही है । **अमोधा ने कहा—** हे प्रभो ! इस समय मैं गर्भ को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ ॥३१॥ हे

पत्युराज्ञां समादाय मुक्तो गर्भो युगंधरे । पयस्तेजोमयं शुद्धं सर्वधर्मप्रतिष्ठितम्॥३३॥
तन्मध्ये पुरुषः शुद्धः किरीटी नीलवाससा । रत्नदाम्ना च विद्धांगो दुःप्रेक्ष्यो ज्योतिषां गणः॥३४॥
ततो देवगणाः स्वर्गात् पुष्पवर्षमवाकिरन् । प्रसूतः सर्वतीर्थेषु तीर्थराज इति स्मृतः ॥३५॥
ततो राम इति ख्यातः प्रजातोहं भृगोः कुले । क्षत्रियान्पितृहंतृंस्तु ससैन्यबलवाहनान् ॥३६॥
हत्वा युद्धगतान् भीतान् पंकैःसर्वै र्युतोह्यहम् । ब्रह्महत्यासमं घोरं मद्देहे समुपस्थितम् ॥३७॥
पंकयुक्तं कुठारं मे क्षालितं नैव शुद्ध्यति । ततःखे चाभवद्वाणी राममद्वचनं कुरु ॥३८॥

देववागुवाच

यत्र तीर्थे कुठारं ते निर्मलं च भवेदिह । तत्र ते सर्वपापानां जातानां च क्षयो भवेत् ॥३९॥
जनानां तत्र सर्वेषां हितार्थं तिष्ठ मानद। चपलं गच्छ तीर्थानि सर्वाणि सुमहांति च ॥४०॥
तेषां मध्ये महातीर्थे पर्शुः शुद्धोभवेद्यदि । तं च जानीहि तीर्थेषु मुक्तिदं परिकीर्तितम् ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

तच्छुत्वा जामदग्न्यस्तु तीर्थानि प्रययौ तदा । गङ्गां सरस्वतीं शुभ्रां कावेरीं सरयूं तथा॥४२॥
गोदावरीं च यमुनां कद्रूं च वसुदां तथा । अन्यांच पुण्यदां रम्यां गौरीं पूर्वास्थितां शुभाम्॥४३॥
गच्छतस्तस्य धीरस्य सदागतिसमस्य च। क्षालितः सर्वतीर्थेषु न पुनर्निर्मलो भवत् ॥४४॥
ततोगिरिगुहां दुर्गां महारण्यं च पर्वतम् । गिरिकूटं च दुर्लभ्यं ययौ तीर्थमसौ हरिः ॥४५॥
नच निर्मलतामेति कुठारस्तस्य तेन च। विषादमगमत्तत्र रामः परपुरंजयः ॥४६॥

प्रभो! मैं क्या करू ? मेरा प्राण निकलना चाहता है । हे महाभाग ! आप बतलायें कि इस गर्भ का मैं परित्याग कहाँ करूँ ?॥३२॥ अपने पति की आज्ञा लेकर उसने युगंधर में गर्भ का परित्याग किया । जिसमें सभी धर्म प्रतिष्ठित था वह तेज जलमय हो गया ॥३३॥ उसके बीच से किरीट और नीला वस्त्रधारी पुरुष प्रकट हुआ । उसके सारे अङ्ग रत्नमयी डोरी से वद्ध था । उसकी ज्योतियाँ इतनी थी कि उसको देखना कठिन था ॥३४॥ उसके बाद उसके ऊपर सभी देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की, वह सभी तीर्थों में उत्पन्न हो गया और तीर्थराज के नाम से विख्यात हुआ॥३५॥ उस समय मैं महर्षि भृगु के वंश में मैं मेरे पिता को मारने वाले क्षत्रियों को सेना और वाहन के साथ मारने वाला परशुराम के नाम से उवतीर्ण हुआ था ॥३६॥ भयभीत हुए उन सबों को मारकर मैं पाप से संलिप्त हो गया । मेरे घर में ब्रह्महत्या के समान पाप उपस्थित हो गया । पाप से सना हुआ मेरा कुठार (फरसा) धोने से भी साफ नहीं होता था । उसी समय आकाशवाणी हुयी कि राम मेरी बात मानो ॥३८॥ **देववाणी ने कहा—** इस संसार में जिस स्थान पर तुम्हारा कुठार निर्मल हो जाय वहीं पर तुम्हारे समस्त पापों का नाश होगा ॥३९॥ हे शत्रुओं के मान का दमन करने वाले तथा सभी लोगों का कल्याण करने के लिए तुम शीघ्रता से समस्त बड़े-बड़े तीर्थों में जाओ ॥४०॥ उन सबों में से जिस महान् तीर्थ में तुम्हारा फर्सा शुद्ध हो जाय उसी तीर्थ को तुम सभी तीर्थों में मुक्ति प्रदान करने वाला समझो ॥४१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** यह सुनकर परशुराम जी सभी तीर्थों में गये, गङ्गा, सरस्वती, स्वच्छ कावेरी, सरयू ॥४२॥ गोदावरी, यमुना, कद्रू तथा वसुदा तीर्थों में वे गये । दूसरे भी तीर्थों में जहाँ पहले गौरी थी वहाँ गये ॥४३॥ वायु के वेग से सभी तीर्थों में जाकर बार-बार धोने से उनका कुठार स्वच्छ नहीं हुआ ॥४४॥ उसके बाद पर्वतों की दुर्गम गुफाओं में बड़े-बड़े वनों में एवं, पर्वत पर दुलंघ्य पर्वत कूटों पर वे तीर्थों में गये॥४५॥ फिर भी उनका कुठार निर्मल नहीं हुआ । उसके कारण शत्रुजयी परशुरामजी को विषाद हो गया ॥४६॥ उसके बाद

हाहेति विधिं कृत्वा चोपविश्य धरातले । प्रचिंतामगमद्वीरस्तमुवाच पुनस्तथा ॥४७॥

देववागुवाच

पूर्वस्यां दिशि देवेश तीर्थं चास्ति गुहोदरे ।

श्रीभगवानुवाच

तच्छ्रुत्वा नरशार्दूलो गत्वा कुंडं ददर्श सः ॥४८॥

प्रदक्षिणं जलावर्तं शुभ्रं पापहरं शुभम् । तज्जलस्पर्शमात्रेण कुठारः शुद्धतां गतः ॥४९॥

ततो रामोभिषेकं तु कृतवान्प्रमुदान्वितः । शुद्धात्मनस्त्वपापस्य बुद्धिर्जाता प्रपाविनी ॥५०॥

स रामः सुचिरं स्थित्वा तीर्थराजं प्रसाद्यतम् । ततस्ततोऽचलात्प्राप्य पुरं वेगसमन्वितः ॥५१॥

ख्यातं कृत्वा ततश्चोर्व्यां गतोऽसौ लवणार्णवम् । अयं तीर्थवरः साक्षात् पितामहकृतो भुवि ॥५२॥

सुखदः सर्वतः शुद्धो मुक्तिमार्गप्रदः किल । एवंकामप्रभावं च विद्धिदुर्वारदुःसहम् ॥५३॥

कामाज्जातं वृषं पापं पुण्यं पुण्यप्रयोगतः । सजातश्चैव लौहित्यो विरिंचेश्चैव चौरसः ॥५४॥

शंतनोः क्षेत्र संजातस्त्वमोघा गर्भसंभवः । विरिञ्चिना जितः कामः शांतनोरप्यमत्सरात् ॥५५॥

तस्याः पतिव्रतात्वाच्च तीर्थात्तीर्थवरोहि सः । एवं यस्तु पठेन्नित्यं पुण्याख्यानमिदं शिवम् ॥५६॥

शृणुयाद्वा मुदा पृथ्व्यां मुक्तिमार्गं स गच्छति ।

इतिश्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पंचाख्याने लौहित्योत्पत्तिर्नाम पचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

हाय-हाय करके परशुरामजी पृथिवी पर वैठकर अत्यधिक चिन्ता किये, उस समय उनको पुनः आकाशवाणी हुयी॥४७॥ **आकाशवाणी ने कहा—** हे देवेश ! पूर्व दिशा में गुफा के भीतर वह तीर्थ है **श्रीभगवान् ने कहा—** उसको सुनकर नरश्रेष्ठ वे वहाँ जाकर कुण्ड को देखे । उसका शुभ तथा पाप विनष्ट करने वाला जल दक्षिणावर्त था। उस जल का स्पर्श होते ही कुठार निर्मल हो गया ॥४९॥ उसके वाद परशुरामजी ने प्रसन्नता पूर्वक उसमें स्नान किया। शुद्ध परशुरामजी की बुद्धि पवित्र हो गयी ॥५०॥ परशुरामजी दीर्घकाल तक वहाँ रहे उस तीर्थराज को प्रसन्न किए । उसके वाद वे वहाँ से वेगपूर्वक नगर में आकर उस तीर्थ को लोक विख्यात बनाये और क्षार समुद्र में गये। इस तीर्थ को साक्षात् व्रह्माजी ने पृथिवी पर बनाया है ॥५२॥ वह तीर्थ सुखद हर प्रकार से शुद्ध तथा मोक्षमार्ग को प्रदान करने वाला है । इसतरह तुम काम के प्रभाव को दुर्वार और दुःसह जानो ॥५३॥ काम से ही वृष, पाप तथा उसके पुण्य प्रयोग से पुण्य उत्पन्न हुआ । वह लौहित्य तीर्थ व्रह्माजी का औरस पुत्र भी काम से ही उतपन्न हुआ॥५४॥ शन्तनु ऋषि की पत्नी अमोघा के गर्भ से वह उत्पन्न हुआ । शन्तनु के प्रति मात्सर्य नहीं होने के कारण ही व्रह्माजी ने काम को जीत लिया ॥५५॥ अमोघा के पवित्र पातिव्रत्य के कारण वह श्रेष्ठ तीर्थ हुआ । इसतरह से इस कल्याणकारी आख्यान को जो सदैव ही पढता है अथवा प्रसन्नतापूर्वक सुनता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है॥५६॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के लौहित्योत्पत्ति नामक पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५५।।

छप्पनवाँ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

पुरा शर्वः स्त्रियो दृष्ट्वा युवतीरूपशालिनीः। गंधर्वकिन्नराणां च मनुष्याणां च सर्वतः ॥१॥
मंत्रेण ताः समाकृष्य त्वतिदूरे विहायसि। तपो व्याजपरो देवस्तासु संगतमानसः ॥२॥
अतिरम्यां कुटीं कृत्वा ताभिः सह महेश्वरः । क्रीडां चकार सहसा मनोभवपराभवः॥३॥
एतस्मिन्नंतरे गौर्याश्चित्तमुद्भ्रततां गतम्। अपश्यद्ध्यानयोगेन क्रीडंतं जगदीश्वरम्॥४॥
स्त्रीभिरंतर्गतं ज्ञात्वा रोषस्य वशगाऽभवत्। ततः क्षेमंकरी रूपा भूत्वा च प्रविवेश सा ॥५॥
व्योमैकांतेतिदूरे च कामदेवसमप्रभम् । वामातिमध्यगंशुभ्रं पुरुषं पुरुषोत्तमम्॥६॥
स्त्रीभिःसह समालिंग्य प्रक्रीडंतं मुहुर्मुहुः । चुंम्बन्तं निर्भरं देवं हरं रागप्रपीडितम् ॥७॥
वृत्तं क्षेमंकरी दृष्ट्वा निपपाताग्रतस्तदा । तासां केशेषु चाकृष्य चकार चरणाहतिम् ॥८॥
त्रपया पीडितश्शर्वः पराङ्मुखमवस्थितः। केशेष्वाकृष्य रोषात्ताः पातयामास भूतले ॥९॥
स्त्रियः सर्वा धरां प्राप्य सहसाविकृताननाः । उमाशापप्रदग्धांगाम्लेच्छानां वशमागताः ॥१०॥
ताश्चांडालस्त्रियः ख्याता अधवाधवसंयुताः । अद्याप्युमाकृतं शापं सर्वास्ताश्च समश्नुयुः ॥११॥
अथोमाशतधारूपं कृत्वेशं संगता तदा । एवंप्रभावं जानीहि कामस्य सततं द्विज ॥१२॥
ततश्चिरात्तयासार्द्धं गतः कैलासमंदिरम् । अतःक्षेमंकरीं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ॥१३॥
तेषांवित्तर्द्धि विभवा भवंतीह परत्र च । कुंकुमारक्तसर्वांगि कुदेन्दुधवलानने ॥१४॥

गन्धर्वों आदि की स्त्रियों के साथ शिवजी की क्रीडा का वर्णन, क्षेमङ्करी की कथा, पञ्चाख्यान की समाप्ति

श्रीभगवान् ने कहा— पहले भगवान् शिव गन्धर्वों, किन्नरों तथा मनुष्यों की सुन्दर तथा युवती स्त्रियों को॥१॥ मन्त्र के द्वारा वहुत दूर आकाश में खींच कर तपस्या के बहाने, उन सबों के साथ रमण करते थे ॥२॥ वहाँ पर अत्यन्त मनोहर कुटी बनाकर उन सबों के साथ महेश्वर कामार्त होकर क्रीडा करते थे । उसी समय गौरी का चित्त उद्भ्रान्त हो गया । उन्होंने ध्यान योग के द्वारा क्रीडा करते हुए जगदीश्वर को देखा ॥४॥ उनको स्त्रियों के साथ भीतर गये हुए जानकर गौरी क्रुद्ध हो गयीं । उसके बाद क्षेमङ्करी का रूप बनाकर उन्होंने भीतर प्रवेश किया आकाश में अत्यन्त दूर एकान्त में कामदेव के समान कान्ति वाले, सुन्दरी स्त्रियों के मध्य में विद्यमान शुभ्र पुरुष पुरुषोत्तम॥६॥ को स्त्रियों के साथ आलिङ्गन करके बार-बार क्रीडा करते हुए और आश्वस्त होकर खूब चुंबन करते हुए, काम परवश शिवजी को देखकर क्षेमङ्करी उनके सामने ही खड़ी हो गयी और उन सबों के केश को पकड़कर उन्हें खींच कर चरणों से मारा ॥७-८॥ लज्जित होकर शिवजी तो पीछे मुख करके खड़े थे । पार्वतीजी ने उन सबों के केश को पकड़कर और खींचकर क्रोध पूर्वक पृथिवी पर पटक दिया ॥९॥ पृथिवी पर गिरते ही उन स्त्रियों का मुख विकृत हो गया । उमा के शाप के कारण वे म्लेच्छों की वशवर्तिनी हो गयीं ॥१०॥ वे सब चाण्डालों की स्त्रियाँ पतिहीन थीं और पतियों से संयुक्त हो गयीं, आज भी पार्वती के शाप को वे सब भोगती हैं ॥११॥ इसके बाद उमा ने सैकड़ो क्षेमङ्करियों का रूप बनाकर शङ्करजी के साथ क्रीडा किया, हे द्विज ! तुम काम के प्रभाव को इसतरह का जानो॥११॥ उसके बाद शङ्करजी पार्वतीजी के साथ कैलास पर्वत पर आये । अतएव क्षेमंकरी को देखकर जो मनुष्य उसका अभिवादन करते हैं ॥१३॥ उन सबों के इस लोक में तथा परलोक में ऐश्वर्य की वृद्धि होती है । क्षेमङ्करी को

सर्वमंगलदे देवि क्षेमंकरि नमोस्तुते । योगिनी साम्यं तेनैव संमुखाविमुखापि वा॥१५॥
दृष्ट्वा तां नाभिवंदेद्यस्तस्य युद्धे पराजयः । राजगृहेषु विद्यायां नमस्काराज्जयो भवेत् ॥१६॥
एवं कामस्य माहात्म्यं भवो मोहवशं गतः। अयं देवासुराणां च क्षमयां प्रभुतां गतः ॥१७॥
अस्यैव सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति । रामामङ्कस्थितां रम्यां क्षमातल्पगतेन च ॥१८॥
त्यक्त्वैव साधिता लोकास्सुरासुरसुदुर्लभाः। एवं वैष्णवमुख्यश्च सुरासुरगणार्चितः ॥१९॥
यो नो ददातिभुक्त्याग्र्यं शेषं च स्वयमश्नुते । एवमभ्यास धैर्येण दीर्घकाले सुखं गते॥२०॥
प्राक्संगमात्स्वभार्यां च दृष्ट्वा मां प्रददौ मुदा । द्वादशाब्दं प्रसंकल्प्य प्राग्भोगो मयि वेशितः ॥२१॥
तेन तस्य गृहे नित्यं तिष्ठामि गृहरक्षणात्। तथा धात्री फलस्यापि सदा स्वरसमीहते ॥२२॥
तस्मादुक्तो मयान्येषां वैष्णवानां चवैष्णवः । पुरा ये विप्र मे भक्ता स्सुरा मत्पथगामिनः ॥२३॥
तैरेव न कृतं यच्च तदनेन कृतं परम् । तस्माद्वैष्णवसर्वस्वं नाम रम्यं मया कृतम् ॥२४॥
अस्य वेश्मनि तिष्ठामि मुहूर्तं न चलाम्यहम् । अतो ये चैव मद्भक्तास्तेष्वहं सुलभो द्विज ॥२५॥
अस्माकं पदवीं तेभ्यो ह्यद्य दद्मिस्वकारणम् । आवयोर्विप्रसौजन्यं स्वप्रभोज्यादिकं समम् ॥२६॥
सायुज्यं च सखित्वं च पश्यभूदेवनांतरम् । ततो मूकादयः सर्वे स्वागता हरिमीश्वरम् ॥२७॥
गंतुकामा दिवं पुण्यास्सदाराः सपरिच्छदाः । ये च तेषां गृहाभ्याशेप्यात्मनो गृहगोधिकाः ॥२८॥
नानाकीटादयो ये च तेषामनुययुःसुराः ।

देखकर प्रार्थना करना चाहिए। हे कुंकुम के समान रक्तवर्ण के सभी अङ्गो वाली तथा कुन्द एवं इन्दु के समान श्वेतमुख वाली ॥१४॥ सभी मङ्गलों को करने वाली देवेशि, क्षेमङ्करि आपको नमस्कार है। योगिनी के समान वह सामने हो या विमुख हो ॥१५॥ उसको देखकर जो उसे नमस्कार नहीं करता है उसका युद्ध में पराजय होता है। राजगृहों तथा विद्या में क्षेमङ्करी को नमसकार करने से विजय होता है ॥१६॥ इसतरह से काम की महिमा होने के कारण शङ्करजी उसके पराधीन हो गये। देवताओं और असुरों के क्षमा कर देने के कारण वे प्रभुत्व को प्राप्त कर लिए। कामदेव के समान न तो कोई प्रभावशाली हुआ और न होगा। अपनी गोद में स्थित, शय्या पर सोयी हुयी रमणी का परित्याग करके इसने ने समस्त लोकों को जीत लिया है। इसीलिए श्रीवैष्णव आदि ये पाँचो देवताओं और असुरों से पूजित हैं ॥१७-१९॥ जो श्रेष्ठ भोगों को मुझे प्रदान करता है और मेरे प्रसाद को स्वयं खाता हैं। इसतरह के अभ्यास और धैर्य के कारण दीर्घकाल तक सुख प्राप्त होने पर ॥२०॥ उसने पूर्व सम्बन्ध के कारण मुझको देखकर मुझे अपनी पत्नी को बारह वर्ष के लिए सङ्कल्प करके मुझे प्रदान कर दिया ॥२१॥ इसीलिए उसके (श्रीवैष्णव के) घर की रक्षा करने के लिए मैं उनके घर में रहता हूँ। वह धात्री फल के स्वरस को प्राप्त करना चाहता है ॥२२॥ इसीलिए मैंने उसे सभी वैष्णवों में उत्तम वैष्णव कहा। हे विप्र ! पहले जो मेरे भक्त तथा देवता मेरे मार्ग पर चलने वाले हैं ॥२३॥ वे सब जिस कार्य को नहीं कर सके उस कार्य को इन सबों ने (पाञ्चों ने) किया है। इसीलिए इसका मनोहर नाम मैंने वैष्णव सर्वस्व रखा ॥२४॥ इसके घर में मैं सदैव रहता हूँ, मुहूर्त भर के लिए भी कहीं नहीं जाता हूँ। अतएव जो मेरे भक्त हैं उनको मैं सुलभ हूँ ॥२५॥ अपने ही कारण मैं उन सबों को मैं अपनी पदवी प्रदान करता हूँ। हे विप्र ! हमदोनों का सौजन्य, स्वप्न तथा भोज्य पदार्थ आदि एक समान है॥२६॥ हे भूदेव ! सायुज्य तथा सत्त्विकता में समानता है दोनों में कोई भी अन्तर नहीं है। उसके बाद मूक आदि सभी स्वयं ही श्रीहरि के समीप आ गये ॥२७॥ वे अपनी पत्नियों तथा परिच्छदों के साथ जाना चाहते थे। उन सबों

व्यास उवाच

एतस्मिन्नंतरे देवाः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥२९॥
प्रचक्रुः पुष्पवर्षाणि साधुसाध्वित्यनादयन् । देवदुंदुभयो नेदुर्विमानेषु वनेषु च ॥३०॥
समारूह्य रथं स्वं स्वं हरिवीथीपुरं ययुः । तदद्भुतं समालोक्य विप्रोऽवोचज्जनार्दनम् ॥३१॥
उपदेशं च देवेश ब्रूहि मे मधुसूदन ।

श्रीभगवानुवाच

गच्छ स्वपितरौ तात शोकविक्लवमानसौ ॥३२॥
समाराध्य प्रयत्नेन मद्गृहं प्राप्स्यसेऽचिरात् । पितृमातृसमा देवा नतिष्ठंति सुरालये ॥३३॥
याभ्यां सुगर्हितं देहं शिशुत्वे पालितं सदा। अज्ञानदोषसहितं प्रपुष्टं चापि वर्धितम् ॥३४॥
याभ्यां तयोस्समं नास्ति त्रैलोक्ये सचराचरे। ततो देवगणास्सर्वे पंचभिस्तै मुदान्विताः ॥३५॥
माधवं संस्तुवंतश्च गतास्तेहरिमंदिरम् । खचितां च पुरीं रम्यां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥३६॥
रत्नाढ्याष्टिसंपूर्णां कल्पवृक्षादिभिर्युताम्। शातकुम्भमयैर्गेहै स्सर्वरत्नैस्सकर्बुराम् ॥३७॥
वज्रवैडूर्यसोपानां स्वर्णदीतोयसंयुताम्। गीतवाद्यादिसंपूर्णां सर्वदुर्गसमाकुलाम् ॥३८॥
कोकिलालापबहुलां सिद्धगंधर्वसेविताम्। रूपाढ्यैः सुजनैः पूर्णां प्रयांतीमिव खेपुरीम् ॥३९॥
ततःस्थित्वा च्युताः सर्वे सर्वलोकोर्ध्वतो भृशम् । द्विजोपि पितरौ गत्वा समाराध्य प्रयत्नतः ॥४०॥
अचिरेणैव कालेन सकुटुंबोहरिं ययौ। पंचाख्यानमिदं पुण्यं मया ते समुदाहृतम् ॥४१॥

के घर के सन्निकट रहने वाले लोग तथा घर की छिपकली आदि भी ॥२८॥ अनेक प्रकार के जो कीट पतङ्ग थे वे उन सबों के पीछे देवता हो गये । **व्यसजी ने कहा**— उस समय देवता, सिद्धगण और परमर्षिगण ॥२९॥ सबके सब साधु-साधु कहते हुए फूलों की वर्षा किए । देवताओं ने विमानों में तथा वनों में दुन्दुभियों को बजाया ॥३०॥ वे सब के सब अपने-अपने रथ पर बैठकर श्रीहरि के लोक में चले गये । उस अद्भुत कार्य को देखकर ब्राह्मण ने भगवान् जनार्दन से कहा ॥३१॥ हे भगवन् ! मुझे अपने कर्तव्य का आप उपदेश दें । **श्रीभगवान् ने कहा**— हे तात ! तुम अपने माता-पिता के पास जाओ, उनका मन शोक से व्याकुल है ॥३२॥ उन दोनों की आराधना करके तुम शीघ्र ही मेरे लोक में आओगे । पिता और माता के समान देवलोक में भी कोई देवता नहीं है ॥३३॥ उन दोनों ने अपने पुत्र के निन्दित शरीर का बचपन में पालन किया है । अज्ञान तथा दोष युक्त भी उस शरीर को पुष्ट किया है और बढाया है ॥३४॥ अत एव दोनों के समान पूज्य इस चराचर जगत् में कोई भी नहीं है । उसके बाद सभी देवता उन पाँचों के साथ प्रसन्नता पूर्वक ॥३५॥ श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए श्रीहरि के लोक में चले गये । वह सुन्दर पुरी रत्न जटित तथा विश्वकर्मा निर्मित थी ॥३६॥ रत्नों से भरी हुयी तथा अभिप्रेत वस्तुओं से भरी हुयी वह पुरी कल्पवृक्ष आदि से युक्त थी । उसके गृह सुवर्ण निर्मित तथा सभी रत्नों से जटित थे ॥३७॥ उसकी सीढियाँ हीरों तथा वैडूर्य मणि से निर्मित थी तथा गङ्गा नदी के जल से परिपूर्ण थी । उसमें सदा गीत और वाद्य हो रहे थे सभी प्रकार के दुर्गों से वह घिरी थी ॥३८। कोकिलाएँ बोल रही थीं तथा इस नगरी में सिद्ध तथा गन्धर्व रहते थे । वह रूपवान् सज्जनों से पूर्ण थी मानो वह आकाश में जा रही हो ॥३९॥ उसके बाद सबके सब अपने विमानों से सभी लोकों से अत्यधिक ऊपर उतरे । ब्राह्मण भी अपने माता-पिता के पास जाकर प्रयत्न पूर्वक उनकी आराधना करके॥४०॥ थोड़े ही दिन में अपने परिवार के साथ श्रीहरि के लोक में चले गये । मैने यह पवित्र पञ्चाख्यान तुमको

यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्यनास्तीह दुर्गतिः । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्नलिप्येत कदाचन ॥४२॥
गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः । तत्फलं समवाप्नोति पंचाख्यानावगाहनात् ॥४३॥
स्नानेन पुष्करे नित्यं भागीरथ्यां च सर्वदा । यत्फलंतदवाप्नोति सकृच्छ्रवणगोचरात् ॥४४॥
दुःस्वप्नं नाशयेत्क्षिप्रं तथारोग्यं प्रयच्छति । लक्ष्म्यारोग्यकरं चैव तस्माच्छ्रोतव्यमेव हि ॥४५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पंचाख्यानं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

द्विज उवाच

कीर्तिधर्मोथलोकेषु सर्वाणि प्रवराणि च । वद नो मुनिशार्दूल यदि नोस्ति त्वनुग्रहः ॥१॥

व्यास उवाच

यस्य खाते वने गावस्तृप्यांति मासमेव च । यद्वासप्तदिनात्पूतः सर्वदेवैः स पूजितः ॥२॥
पुष्करिण्या विशेषेण पूताया यज्ञकर्मणा । यत्फलं जलदानेन सर्वमत्रास्य तच्छृणु ॥३॥
हायने हायने चैव कल्पं कल्पं विधीयते । दानात्स्वर्गमवाप्नोति तोयदः सर्वदो भुवि ॥४॥
मेघे वर्षति खाते च जायंते ये तुशीकराः । तावद्वर्षसहस्राणि दिवमश्नाति मानवः ॥५॥

सुनाया । जो इसको पढता अथवा सुनता है उसकी दुर्गति नहीं होती है । वह ब्रह्महत्या आदि पापों से कभी संलिप्त नहीं होता है ॥४१-४२॥ करोड़ों गायों का दान करने से मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति हाती है, उस फल की प्राप्ति इस पञ्चाख्यान का अध्ययन करने से ही हो जाती है ॥४३॥ पुष्कर में तथा गङ्गाजी में नित्य स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति इस आख्यान को एक बार सुन लेने से हो जाती है ॥४४॥ उससे शीघ्र ही दुःस्वप्न का नाश हो जाता है और अरोग्य की प्राप्ति होती है । लक्ष्मी प्रदान करने वाला तथा अरोग्य प्रदान करने वाला होने के कारण इसे सुनना ही चाहिए ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पञ्चारख्यान नामक छप्पनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५६।।

जलाशयदान का माहात्म्य, धनिक सुत की कथा

ब्राह्मणों ने कहा— हे मुनिश्रेष्ठ व्यासजी ! आपकी यदि हम लोगों पर कृपा है तो हमलोगों को यश, धर्म तथा संसार की श्रेष्ठ वस्तुओं को प्रदान करने वाली कथा को सुनायें ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** जिसके जलाशय में, वन में गयें जल पीकर एक मास तक तृप्त होती हैं, अथवा सात दिनों तक तृप्त होती हैं, वह व्यक्ति पवित्र होकर सभी देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥२॥ विशेष रूप से वे पुष्करिणी जो यज्ञ के द्वारा पवित्र हो गयी हैं । उसके जल का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे पूर्णरूप से सुनें ॥३॥ प्रतिवर्ष पृथिवी पर जलदान करने वाले को उतने कल्प का स्वर्ग मिलता है ॥४॥ मेघ के बरसने पर उस खात में जितने जल के विन्दु होते हैं, उतने हजार

तोयैरन्नादिपाकैश्च प्रसन्नो मानवो भवेत्। प्राणानां च विनान्नैश्च धारणन्नैव जायते ॥६॥
पितॄणां तर्पणं शौचं रूपं वैगंध्य नाशनम्। बीजं त्विहार्जितं सर्वं सर्वं तोये प्रतिष्ठितम्॥७॥
वस्त्रस्य धावनं रुच्य भाजनानां तथैव च। तेनैव सर्वकार्यं च पानीयं मेध्यमेव च ॥८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वापीकूपतटाककम्। कारयेच्च बलैः सर्वैस्तथा सर्वधनेन च ॥९॥
ततो विनिर्जले देशे यो ददाति जलाशयम्। वासरे वासरे तस्य कल्पं स्वर्गविनिर्दिशेत्॥१०॥
त्रिविष्टपाच्च्युतो विप्रो वेदशास्त्रार्थ पारगः। लोकबंधुः सधर्मात्मा तपस्तप्त्वादिवं व्रजेत्॥११॥
एवं जन्माष्टकं प्राप्य एकस्याक्षयमिष्यते। क्षत्रियाणां कुले जातः सार्वभौमो भवेन्नृपः ॥१२॥
विशोऽक्षयं धनं विद्या जन्मज्जन्मसु यत्प्रियम्। शूद्रादयोन्त्यजाश्चान्ये लभंते स्वर्गतिं मुहुः ॥१३॥
चतुर्हस्तप्रमाणं तु कूपं खनति यः पुमान्। परोपकारकं नित्यं कल्पं स्वर्गं तु हायने॥१४॥
द्विगुणे द्विगुणं विद्याच्छतं चैव चतुर्गुणे। विंशत्किष्कुप्रमाणां तु दद्यात्पुष्करिणी तु यः ॥१५॥
विष्णोर्धाम लभेत्सोपि दिव्यभोगं तथैव च। अनंतरं नृपो जातो धनीवागीश्वरो भवेत् ॥१६॥
एवं द्विस्त्रिश्चतुर्वापि गुणतो भोग्यमिष्यते। विस्तीर्णे प्रचुरं विद्धि सहस्रेणाच्युतो दिवः ॥१७॥
सहस्राद्द्विगुणेनैव सुरपूज्यो भवेन्नरः। जन्तवस्तत्र ये संति यावंतो जीवनं ययुः॥१८॥
तत्संख्याका जनास्तस्य किंकराः पृष्ठलग्नकाः। भवंति सततं गेहे पुरे जनपदेषु च॥१९॥
विहाय पितरं भोग्या धने क्षीणे यथा वनम्। पक्षिणस्सूकरश्चैव महिषीकरिणी तथा॥२०॥

वर्ष पर्यन्त वह निर्भीकता पूर्वक स्वर्ग का भोग प्राप्त करता है ॥५॥ जल से ही अन्न इत्यादि पकते हैं और मनुष्य प्रसन्न होते हैं। अन्न के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता है ॥६॥ पितरों का तर्पण, पावित्र्य, रूप तथा दुर्गन्धि का नाश, इस संसार में अर्जित सभी बीज सबके सब जल से ही सम्भव हैं ॥७॥ वस्त्रों को धोना, पात्रों को अच्छी तरह से चमकाना चूकि जल से ही सम्भव है अतएव जल पवित्र है ॥८॥ अतएव हर तरह का प्रयास करके बावली, कूप, तडाग का निर्माण कराना चाहिए तथा सम्पूर्ण बल एवं धन लगाकर इन सबों का निर्माण करना चाहिए ॥९॥ जल रहित स्थान में जो जलाशय का दान करता है, उसको प्रत्येक दिन एक-एक कल्प तक का स्वर्ग प्राप्त होता है॥१०॥ स्वर्ग से गिरा हुआ ब्राह्मण वेद एवं शास्त्र में पारंगत होता है। वह लोकवन्धु, धर्मात्मा होता है तथा तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त करता है ॥११॥ इसतरह से आठ जन्म उसे प्राप्त होते है। एक-एक जन्म उसका अक्षय होता है। जो क्षत्रिय होता है, वह सार्वभौम राजा होता है ॥१२॥ स्वर्ग से गिरा हुआ वैश्य प्रत्येक जन्मों में अक्षय धन, विद्या तथा अपनी सारी प्रिय वस्तुओं को प्राप्त करता है। शूद्र आदि जो अन्त्यज होते हैं वे बार-बार स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य चार हाथ कुँआ नित्य ही परोपकार की दृष्टि से खनता है। ऐसा एक वर्ष तक करने वाला एक कल्प तक स्वर्ग का भोग भोगता है ॥१४॥ उसके दो गुना अर्थात् प्रतिदिन आठ हाथ कूप खनने पर उसके दो गुना अर्थात् दो कल्प तक स्वर्ग में निवास होता है और चार गुना प्रतिदिन खनने पर सौ गुना फल होता है। जो व्यक्ति बीस हाथ की पुष्करिणी का दान देता है ॥१५॥ वह भी भगवान् विष्णु के धाम में जाता है और दिव्य भोगों को प्राप्त करता है। उसके बाद वह राजा होता है फिर धनी और वागीश्वर होता है ॥१६॥ इसतरह दो तीन अथवा चार गुना वह भोगों को प्राप्त करता है। अत्यन्त विस्तृत पुष्करिणी दान करने पर वह भगवान् विष्णु के लोक में हजार गुना भोगों को प्राप्त करता है ॥१७॥ दो हजार गुना विस्तृत जलाशय दान से मनुष्य देवताओं का पूज्य हो जाता है। उस जलाशय में जितने जीव जीते हैं ॥१८॥ उतने ही लोग उसके अनुचर उसके गृह, ग्राम तथा जनपदों में होते

उपदेष्टा च कर्त्ता च पडेतेस्वर्गगामिनः। दिव्यं च पक्षिणां चैव शतं स्वर्गविनिर्दिशेत् ॥२१॥
क्रोडोवर्षसहस्त्रं तु महिष्ययुतहायनम्। देवरूपं समास्थाय करिण्या लक्षमुच्यते ॥२२॥
कोट्येकमुपदेष्टुश्च कर्तुरक्षयमेव च। पुरा धनिसुतेनैव कृतः ख्यातोजलाशयः ॥२३॥
अयुतधनव्ययेनैव प्राणेनैव बलेन च। सर्वसत्वोपकाराय शिवश्रद्धायुतेन च ॥२४॥
कालेन कियता चापि क्षीणवित्तो भवत् किल। कश्चिदर्थी धनी तस्य मूल्यदानाय चोद्यतः ॥२५॥
विमृश्य धनिना चोक्तं व्याहारं शृणुताधुना। दीनारस्यायुतं वा ते दास्याम्यस्याश्चकारणात् ॥२६॥
लब्धं ते पुष्करिण्याश्च पुण्यं लाभात्प्रमन्यसे। शक्त्या दत्वाथ मूल्यं तां स्वीयां कर्तुंव्यवस्थितः ॥२७॥
एवमुक्ते स तं प्राह वासरेप्ययुतं पुनः। फलं भवति वै नित्यं पुण्यं पुण्यविदोविदुः ॥२८॥
एतस्मिन्निर्जले देशे शिवं खातं कृतं च मे। स्नानपानादिकं कर्म सर्वे कुर्वंत्यभीष्टतः ॥२९॥
तस्मान्मेप्ययुतार्थस्य नैत्यकं फलमिष्यते। ततस्तस्याभवद् हास्यं तथैव च सभासदाम् ॥३०॥
ह्रिया च पीडितः सोपि वाक्यमेतदुवाच ह। सत्यमेतद्वचोस्माकं परीक्षा कुरु धर्मतः ॥३१॥
मत्सरात्सतु तं प्राह शृणु मे वचनं पितः। दीनारायुतमेतत्ते दत्वा चानीय प्रस्तरम् ॥३२॥
पातयिष्यामि ते खाते यथायोगं प्रमज्जतु। उन्मज्जति च यत्काले प्रस्तरः संतरत्यपि ॥३३॥
क्षयं यास्यति नोवित्तं नोचेन्मे धर्मतोहि सा। बाढमुक्त्वायुतं तस्य गृहीत्वा स्वगृहं गतः ॥३४॥

हैं ॥१९॥ अपने माता-पिता का त्याग करके भोग्य धन के क्षीण हो जाने पर उसका भोग वैसे ही होता है जैसे पक्षी, सूकर, महिषी तथा करिणी उपभोग करते हैं ॥२०॥ जलाशय बनाने का उपदेश करने वाले तथा जलाशय बनाने वाले स्वर्गगामी होते है यदि उस जलाशय में पक्षिगण पानी पीते हैं तो दिव्य सौ वर्ष तक उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। सूकरों के उसका उपभोग करने पर दिव्य हजार वर्षो का स्वर्ग प्राप्त होता है, भैंसो द्वारा उसका उपभोग किए जाने पर दशहजार दिव्य वर्षों तक स्वर्ग प्राप्त होता है। हथिनियों द्वारा उसका उपभोग किए जाने पर दाता देवता होकर लाख दिव्य वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है ॥२१-२२॥ जलाशय निर्माण का उपदेश करने वाले को एक करोड़ दिव्य वर्षों तक स्वर्ग की प्राप्ति होती है, और जलाशय का निर्माण करने वाले को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। पूर्वकाल में धनिसुत नामक व्यक्ति ने प्रख्यात जलाशय का निर्माण कराया ॥२३॥ वह दश हजार मुद्रा, लगाकर प्राणपन से अपनी सम्पूर्ण शक्ति द्वारा उसका निर्माण कराया। वह श्रद्धा पूर्वक सम्पूर्ण जीवों का उपकार करने के लिए उसे बनवाया था ॥२४॥ कुछ समय के बाद उसकी सम्पत्ति समाप्त हो गयी। कोई धनी व्यक्ति उस जलाशय का मूल्य देकर उसे खरीदना चाहा ॥२५॥ विचार करके धनी ने कहा इसके विषय में आपलोग व्यवहार सुनें। मैं आपको इसके लिए दश हजार स्वर्ण मुद्रायें दूँगा ॥२६॥ आपने तो पुष्करिणी बनाने का पुण्य लाभ प्राप्त ही कर लिया है। अपनी शक्ति के अनुसार धन देकर उसने उस पुष्करिणी को अपना बनाना चाहा॥२७॥ उसके ऐसा कहने पर निर्माता ने कहा कि दश हजार का पुण्य तो मुझे प्रतिदिन प्राप्त होता है, इस बात को पुण्यों के वेत्ता पुरुष जानते हैं ॥२८॥ मैंने इस निर्जल प्रदेश में कल्याणकारी जलाशय बनवाया है। सभी लोग अपने अपनी इच्छा के अनुसार इसमें स्नान करते हैं और जल पीते हैं ॥२९॥ उसके कारण मुझे प्रतिदिन दश हजार का पुण्य मिलता है। उसको सुनकर सभी सभासद उसका उपहास किए ॥३०॥ लज्जा से दुःखी होकर निर्माता ने कहा मेरी यह वाणी सत्य है, आपलोग धर्मानुसार इसकी परीक्षा कर लें ॥३१॥ मत्सर के कारण उस धनी ने कहा आप मेरी बात सुनें। मैं आपको दश हजार दीनार दे देता हूँ। उसके बाद पत्थर लाकर ॥३२॥ इसमें डालता हूँ। वह पत्थर स्वाभाविक रूप से डूब जायेगा। उसके बाद वह ऊपर आकर तैरने लगे तो ॥३३॥ मेरा वह धन भी

साक्षिणामग्रतस्तेन प्रस्तरः पातितस्तथा । पुष्करिण्यां महत्यां च दृष्टं नरसुरासुरैः ॥३५॥
ततोधर्मतुलायां तु तुलितं धर्मसाक्षिणा । दीनारायुतदानस्य पुष्करिण्या जलस्य तु ॥३६॥
न समं तु दिनैकं तु जलस्य धर्मतो भृशम् । धनिनो मानसं दुःखं मोघार्थं च परेऽहनि ॥३७॥
शिलोच्चयोऽभवत्तीर्णो द्वीपवच्च जलोपरि । ततः कोलाहलः शब्दो जनानां समुपस्थितः ॥३८॥
तच्छुत्वाद्भुतवाक्यं च मुदा तौ च गतौ ततः । दृष्ट्वा शैलं तथा भूतं कृतं तेनायुतं तथा ॥३९॥
ततःखाताधिपेनैव शैलं दूरेनिपातितम् । पुण्यं खातस्य चोत्खाते प्रलुप्तस्य सुतेन हि ॥४०॥
सोपि नाकं समारुह्य जन्मजन्मसु निर्वृतः । गोत्रमातृगणानां च नृपाणां सुहृदां तथा ॥४१॥
सखीनां चोपकर्तॄणां खातं खात्वाऽक्षयं फलम् । तपस्विनागनाथानां ब्राह्मणानां विशेषतः ॥४२॥
खातं तु जनयित्वा तु स्वर्गं चाक्षयमश्नुते । तस्मात्खातादिकं विप्राः शक्तितो यः करिष्यति ॥४३॥
सर्वपापक्षयात्पुण्यं मोक्षं यायान्नसंशयः । य इदं श्रावयेल्लोके धर्माख्यानं महोत्कटम् ॥४४॥
सर्वखातप्रदानस्य फलमश्नाति धार्मिकः । ग्रहणे भास्करस्यैव भागीरथ्यां तटे वरे ॥४५॥
गवां कोटिप्रदानस्य फलं श्रुत्वा लभेन्नरः । न च दरिद्रतामेति न शोकं व्याधिसंचयम् ॥४६॥
असंमानं महद्दुःखमुभयोर्नाधिगच्छति ।

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे खातादिकीर्तनं नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

आपका हो जायेगा । यदि ऐसा नहीं हुआ तो यह पुष्करिणी मेरी हो जायेगी । बहुत अच्छा कहकर निर्माता धन लेकर अपने घर चला गया ॥३४॥ साक्षी पुरुषों के समक्ष उस धनी ने जलाशय में पत्थर को डाल दिया इसबात को देवताओं और असुरों ने भी देखा ॥३५॥ उसके बाद धर्म साक्षी ने धर्म की तुला पर दश हजार दीनारों तथा उस जलाशय के पुण्य को तौला ॥३६॥ तो एक दिन के भी पुण्य के बारबार वह दीनार नहीं हुआ । उस धनी के मन में कष्ट हुआ कि मेरे दश हजार दीनार व्यर्थ ही चले गये ॥३७॥ दूसरे दिन वह पत्थर जल के ऊपर द्वीप के समान तैरने लगा । उस समय सभी लोग यह देखकर चिल्लाने लगे ॥३८॥ उन लोगों की बातों को सुनकर निर्माता और धनी दोनों प्रसन्नता पूर्वक वहाँ आयें । उस तैरते हुए पत्थर को देखकर धनी ने अपनी स्वर्ण मुद्राओं को उसे दे दिया॥३९॥ उसके बाद सरोवर के स्वामी ने उस पत्थर को सरोवर से निकलवाकर दूर फेंकवा दिया । उस खात के निर्माण का पुण्य भी उस धनिसुत को ही मिला ॥४०॥ वह भी अनेक जन्मों तक स्वर्ग को प्राप्त करके सुखानुभव किया, जलाशय बनाने वाले के गोत्रीय, माताएँ, राजा, मित्रगण ॥४१॥ मित्रों तथा उपकारक पुरुषों को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है । विशेष रूप से तपस्वियों, अनाथों तथा ब्राह्मणों को अक्षय फल प्राप्त होता है ॥४२॥ जलाशय बनाने वाले इन सबों को अक्षय स्वर्ग मिलता है । अतएव हे विप्रों जो जलाशय निर्माण करायेगा ॥४३॥ वह सभी पापों के विनष्ट हो जाने से मोक्ष प्राप्त करेगा इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । जो व्यक्ति अत्यन्त पुण्यमय इस कथा को लोगों को सुनाता है ॥४४॥ वह धार्मिक सभी प्रकार के जलाशयों के निर्माण का फल प्राप्त करता है। सूर्य ग्रहण के समय गङ्गाजी के तट पर इस कथा का जो श्रवण करता है, वह सौ गायों का दान देने का फल प्राप्त करता है । वह शोक, दारिद्र्य तथा रोगों से मुक्त हो जाता है ॥४५-४६॥ उन दोनों (श्रोता तथा श्रावयिता) को असम्मान जन्य दुःख नहीं होता है ।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के जलाशयादि वर्णन नामक सत्तावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५७।।

अठावनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

शाखिनामेव सर्वेषां फलं वक्ष्यामि यादृशम्। तच्छृणुध्वं महाभागा रोपणे च पृथक् पृथक् ॥१॥
यस्तु रोपयते तीरे पुण्यवृक्षान्समंततः। तस्य पुण्यफलं ज्ञातुं कथितुं नैव शक्यते ॥२॥
अन्यत्र रोपणं कृत्वा शाखिनां यत्फलं लभेत्। ततो जलसमीपे तु लक्षकोटिगुणं भवेत् ॥३॥
स्वयं पुष्करिणी तीरे त्वनंतं फलमश्नुते। तस्माच्छतगुणं ब्रूमः शाखिनां पुण्यकारिणाम् ॥४॥
अश्वत्थरोपणं कृत्वा जलाशयसमीपतः। यत्फलं लभते मर्त्यो न तत्क्रतुशतैरपि ॥५॥
पतंति यानि पत्राणि जले पर्वणि पर्वणि। तानि पिंडसमानीह पितृणामक्षयं ययुः ॥६॥
खादंति पतगास्तत्र फलानि कामतो ध्रुवम्। ब्रह्मभक्ष्यसमं तस्य पुण्यं भवति चाक्षयम् ॥७॥
अश्वत्थेनैव भक्ष्येण रोपणेनैव यत्फलम्। तद्वै क्रतुशतैर्नैव पुत्रैरेव शतैरपि ॥८॥
उष्णे च्छायां प्रगृह्णंति गावो देवद्विजातयः। कर्तुः पितृगणानां च स्वर्गो भवति चाक्षयः ॥९॥
कर्तुं स्वस्थस्य वै विघ्नमक्षयत्वान्न शक्यते। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोपयेद् वृक्षमाधवम् ॥१०॥
एकं वृक्षं समारोप्य नरः स्वर्गान्न हीयते। तस्मादेव महावृक्षं रोपयध्वं द्विजोत्तमाः ॥११॥
जलानां निकटे रम्ये रसानां क्रयविक्रये। मार्गे जलाशये वृक्षान् रोपयेद्योमहाशयः ॥१२॥
अश्वत्थादीन्समारोप्य स्वर्गं याति मनोरमम्। अर्चयित्वा तु यत्पुण्यं प्रवक्ष्यामि द्विजातयः ॥१३॥

अश्वत्थ आदि वृक्षों को रोपने की विधि तथा फल का वर्णन, प्याऊ दान की विधि, और घर्मघट दान विधि का वर्णन

व्यासजी ने कहा— सभी वृक्षों के लगाने का जैसा फल होता है, उसे मैं बतलाता हूँ। उन वृक्षों को रोपने का फल आपलोग सुनें ॥१॥ जो व्यक्ति जलाशय के तट पर वृक्षों को चारो ओर लगाता है, उससे होने वाले पुण्य फल को न तो जाना जा सकता है और न कहा जा सकता है ॥२॥ जलाशय तट से भिन्न स्थान पर वृक्षों के रोपने से जो फल होता है उससे लाख गुना अधिक जल के समीप वृक्षों को लगाने का फल होता है ॥३॥ पुष्करिणी के तीर पर वृक्ष लगाने का अनन्त फल होता है, उसकी अपेक्षा पवित्र वृक्षों के लगाने का सौ गुना फल होता है ॥४॥ जो जलाशय के सन्निकट अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष लगाता है, उसका उसको सैकड़ों यज्ञों के फल से अधिक फल प्राप्त होता है ॥५॥ प्रत्येक पर्वों पर पीपल के जो पत्ते पानी में गिरते हैं, उनका फल पितरों को पिण्डदान करने के समान होता है उससे पितरों को अक्षय तृप्ति होती है ॥६॥ पक्षीगण उसके फलों को अपनी इच्छा के अनुसार खाते हैं, उसका भी फल ब्राह्मण भोजन कराने के समान अक्षय होता है ॥७॥ अश्वत्थ रूपी भक्ष्य वृक्ष के रोपने से जो फल होता है, वह सैकड़ों यज्ञों तथा पुत्रों से भी नहीं प्राप्त होता है ॥८॥ गर्मी के दिनों में अश्वत्थ वृक्ष की छाया देवता, ब्राह्मण और गौ प्राप्त करते हैं उससे रोपने वाले के पितरों को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥९॥ अश्वत्थ वृक्ष रोपने वाले के स्वर्ग में किसी प्रकार का विघ्न इसलिए नहीं हो सकता है कि वह स्वर्ग अक्षय होता है। इसीलिए प्रयास पूर्वक अश्वत्थ वृक्ष को रोपना चाहिए ॥१०॥ अश्वत्थ के एक वृक्ष को लगाने से मनुष्य कभी स्वर्ग से गिरता नहीं है, अतएव हे विप्रों आपलोग महावृक्ष को लगायें ॥११॥ जो उदार पुरुष मनोहर जल के निकट, रसों के क्रय-विक्रय के स्थान पर मार्ग में पड़ने वाले जलाशय पर वृक्षों को लगाता है, वह अश्वत्थ आदि वृक्षों को रोपकर स्वर्ग

स्नात्वाश्वत्थं स्पृशेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते । अस्नातो यःस्पृशेन्मर्त्यो लभते स्नानजं फलम् ॥१४॥
दृष्ट्वा च नाशयेत्पापं स्पृष्ट्वा लक्ष्मीं प्रपद्यते । प्रदक्षिणे भवेदायुः सदाश्वत्थ नमोस्तुते॥१५॥
चलद्दलाय वृक्षाय सदाविष्णुस्थिताय च । बोधिसत्वाय योग्याय सदाश्वत्थ नमोस्तुते ॥१६॥
अश्वत्थाय तु हव्यं तु पयोनैवेद्यमेव च । पुष्पं धूपं दीपकं च दत्वा स्वर्गान्न हीयते ॥१७॥
स पुत्रं चाक्षयं विद्धि धनवृद्धियशस्करम्। विजयं मानदं भद्रमश्वत्थस्य प्रपूजनम् ॥१८॥
यज्जप्तं च हुतं स्तोत्रं यन्त्रमंत्रादिकं च यत् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं मूले चलदलस्य च॥१९॥
यस्य मूले स्थितो विष्णुर्मध्येतिष्ठति शङ्करः । अग्रभागेस्थितो ब्रह्मा कस्तं जगति नार्चयेत्॥२०॥
सोमवारे त्वमायां च स्नानं यन्मौनिना कृतम्। दानस्य गोसहस्रस्य फलं चाश्वत्थवंदने॥२१॥
सप्त प्रदक्षिणेनैव गवामयुतजं फलम् । प्रचुराल्लक्षकोटिश्च तस्मात्कार्या हि सा सदा ॥२२॥
यत्किंचिद्दीयते तत्र फलमूलजलादिकम् । सर्वं तच्चाक्षयफलं जन्मजन्मसु जायते ॥२३॥
अहोश्वत्थसमो नास्ति वृक्षरूपी हरिर्भुवि । यथापूज्यो द्विजो लोके यथा गावो यथामराः॥२४॥
तथाश्वत्थवृक्षरूपी देवः पूज्यतमः स्मृतः । रोपणे रक्षणे स्पर्शे पूजाकर्मणि वै सदा॥२५॥
ददाति वित्तं पुत्रांश्च स्वर्गं मोक्षं पुनः क्रमात्। किंचिच्छेदं तु यः कुर्यादश्वत्थस्य तनौ नरः ॥२६॥
कल्पैकं निरयं भुक्त्वाचांडालादौ प्रजायते। मूलच्छेदेन तस्यैव स च यात्यपुनर्भवम्॥२७॥
पुरुषास्तस्य तिष्ठंति रौरवे घोरदर्शने। अश्वत्थस्यैकवृक्षस्य रोपणे यत्फलं भवेत् ॥२८॥

में जाता है । ब्राह्मणों अश्वत्थ वृक्ष की पूजा करने से होने वाले फल को मैं बतलाता हूँ । बिना स्नान किए ही जो व्यक्ति अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करता है, वह स्नान करने का फल प्राप्त करता है ॥१२-१४॥ अश्वत्थ वृक्ष का दर्शन करने से पापों का नाश होता है, स्पर्श करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, प्रदक्षिणा करने से आयु की प्राप्ति होती है, हे अश्वत्थ वृक्ष आपको सदैव नमस्कार है ॥१५॥ जिसके पत्ते सदा हिलते रहते है, ऐसे वृक्ष जिसमें सदा भगवान् विष्णु का निवास होता है, वोधिसत्त्व नाम के योग्य अश्वत्थ वृक्ष आपको नमस्कार है ॥१६॥ जो मनुष्य अश्वत्थ वृक्ष को हविष्य, नैवेद्य, पुष्प, धूप और दीप प्रदान करता है, वह कभी भी स्वर्ग से पतित नहीं होता है ॥१७॥ उसको पुत्र रहित अक्षय जानो । उसके पूजन से, धन की वृद्धि होती है, यश बढता है, विजय, मान सम्मान मिलता है तथा कल्याण की प्राप्ति होती है ॥१८॥ पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर किया गया जप, होम, स्तोत्रपाठ, यन्त्र, मन्त्र इत्यादि सबके सव करोड़ गुणा होता है ॥१९॥ जिस पीपल के मूल में भगवान् विष्णु का, मध्य में शङ्करजी का, और ऊपर की ओर ब्रह्माजी का निवास होता है उस पीपल की पूजा कौन नहीं करेगा ॥२०॥ सोमवारी अमावस्या के दिन मौन होकर स्नान करके हजार गायो का दान करने का जो फल होता है, वही फल अश्वत्थ वृक्ष की वन्दना से प्राप्त होता है ॥२१॥ पीपल वृक्ष की सात प्रदक्षिणा करने से दश हजार गायों के दान का फल प्राप्त होता है । उससे अधिक प्रदक्षिणा करने से लाख करोड़ गोदान का फल मिलता है । अतएव पीपल के वृक्ष की प्रदक्षिणा सदैव करनी चाहिए ॥२२॥ पीपल वृक्ष के ऊपर फल, मूल तथा जल आदि जो कुछ भी चढाया जाता है उसका प्रत्येक जन्मों में अक्षय फल मिलता है ॥२३॥ अश्वत्थ वृक्ष के समान संसार में कोई भी वृक्ष रूपी श्रीहरि नहीं है । जिसरह संसार में ब्राह्मण पूज्य है, गायें पूज्य हैं, देवता पूज्य हैं ॥२४॥ उसीतरह अश्वत्थ वृक्ष रूपी देव भी पूज्यातम हैं । अश्वत्थ रोपने, रक्षा करने, स्पर्श करने तथा पूजा करने से सदैव ॥२५॥ वित्त, पुत्र, स्वर्ग तथा मोक्ष क्रमशः प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति पीपल वृक्ष को थोड़ा सा भी काटता है ॥२६॥ वह एक कल्प तक नरक भोगकर चाण्डाल आदि योनियों में जन्म लेता है । जो पीपल वृक्ष को जड़ से काटता है उसका तो कभी जन्म ही नहीं होता है ॥२७॥ उसके पूर्वज घोर

तथैव चंपकेर्केच त्रयाणां रोपणेपि च। अष्टौ बिल्वस्यवृक्षाश्च न्यग्रोधाश्चैव सप्त च ॥२९॥
निंबस्य दशवृक्षाश्च फलं चैषां समं भवेत्। एकैकस्य फलं चोक्तं वृक्षाणां रोपणे द्विजाः ॥३०॥
एवं बुध्वा तु धर्मात्मा यः कुर्यात्कृत्रिमं वनम्। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥३१॥
नाकमेति स चूतस्य समारोप्य सहस्रकम्। ततो द्वित्रिगुणेनैव न्यूने वा प्रचुरेपि वा ॥३२॥
भुंक्ते भुक्त्वा पुनः कुर्यान्नृपो वाथ सदीश्वरः। स्वर्गं भोग्यं ततो राज्यं कल्याणं मंगल शुभम् ॥३३॥
आरोग्यं शौर्यसंपन्नमारामादेव जायते। फलानि यस्य खादंति जंतवोथ सहस्रशः ॥३४॥
आश्रिता विहगाः कीटाः पतगाः शलभादयः। छायाश्रिताश्च ये सत्वास्तत्संख्याताः पृथग्जनाः ॥३५॥
तस्य किंकरतां यांति शतशो देवतार्चिताः। ये च वृक्षा महासत्वास्सर्वे ते देवरूपिणः ॥३६॥
तदर्चापितृवत्कार्या शुश्रूषां जलपिंडकम्। मर्त्यलोके च ते पुत्रास्तस्य जन्मनि जन्मनि ॥३७॥
सुरूपाः सुविनीताश्च सदा पुण्यक्रियाशुभाः। एवं गणेशतां यांति जंतवश्चूतलग्नकाः ॥३८॥
धात्री हरीतकी चान्ये कटुतिक्ताम्लसंभवाः। सर्वे चारामतः शुद्धाः फलदाः शिवदाः सदा ॥३९॥
प्रासादा यत्र सौवर्णाः सर्वरत्नविभूषिताः। सर्वाभरणसंयुक्ता विमानाश्चानिलोपमाः ॥४०॥
शातकुंभमयावृक्षाः सदैव सर्वदायिनः। सर्वतुसुखदाः सौम्यकन्यका अप्सरस्समाः ॥४१॥
गीतनृत्यपरा धीरास्तत्र तिष्ठंति वृक्षदाः। पुष्करिण्यो विशेषेण खातान्यन्यानि यानि च ॥४२॥
शुद्धोपलांतरचिता नद्यः पायसकर्दमाः। पुनर्दुग्धसफेनाश्च अन्नादिषड्रसान्विताः ॥४३॥

रौरव नरक में निवास करते हैं। अश्वत्थ के एक वृक्ष को रोपने का जो फल होता है ॥२८॥ उसी तरह का फल तीन चम्पा का या तीन मन्दार को रोपने का फल होता है। आठ विल्ववृक्षों तथा सात बट वृक्षों के भी लगाने का वहीं फल होता है ॥२९॥ निम्ब के दश वृक्ष लगाने का भी वैसा ही फल होता है। हे द्विजों एक-एक वृक्षों के रोपने का फल अभी तक मैंने बतलाया ॥३०॥ इन सारी बातों को जानकर जो कृत्रिम वन का निर्माण करता है वह ग्यारह सौ करोड कल्पों तक स्वर्ग में निवास करता है। आम का वन लगाकर हजार करोड़ कल्पों तक स्वर्ग में रहता है। उसके बाद दो गुना या तीन गुना अथवा उससे भी अधिक स्वर्ग को भोगता है ॥३२॥ उसके बाद वह राजा अथवा ईश्वर होता है। वह स्वर्गी भोग्य पदार्थो को भोगता है, उसके बाद वह कल्याण को प्राप्त करता है ॥३३॥ उस उद्यान से ही अरोग्य तथा शौर्य सम्पन्नता होती है। जिस वृक्ष के फलों को हजारों जीव खाते हैं ॥३४॥ उस उद्यान में पक्षी, कीड़े, पतंग, शलभ आदि छाया प्राप्त करते है, उनकी जितनी संख्या होती है, उतने ही लोग उसके किङ्कर (नौकर) होते हैं ॥३५॥ वह पुरुष सैकड़ों देवताओं से अर्चित होता है। जो बड़े वृक्ष हैं वे सबके सब देवता स्वरूप होते हैं ॥३६॥ उनकी पूजा माता-पिता के समान करना चाहिए। उनकी सुश्रुषा पितरों के लिए किए जाने वाले तर्पण और श्राद्ध के समान है। वे मर्त्यलोक में उस पुरुष को अनेक जन्मों में पुत्र के रूप में प्राप्त होते हैं ॥३७॥ वे सुन्दर रूप वाले, विनीत तथा मङ्गलमय पुण्यकार्यो को करने वाले पुत्र होते हैं। इसीतरह आम के वृक्ष में लगने वाले जीव गणेश होते हैं ॥३८॥ आँवला, हरे, तथा दूसरे कटु तिक्त और खट्टे फल वाले सभी वृक्ष आराम (उद्यान) में शुद्ध फल देने वाले तथा कल्याणप्रद होते हैं ॥३९॥ जहाँ पर सुवर्णमय प्रासाद सभी रत्नों से अलंकृत, सभी आभूषणों से सुशोभित तथा वायु के समान विमान होते हैं ॥४०॥ सुवर्ण के समान तथा सदैव सबकुछ प्रदान करने वाले वे वृक्ष होते हैं तथा सभी ऋतुओं में सुख देने वाले होते हैं जहाँ कन्याएँ सौम्य स्वभाव वाली तथा अप्सराओं के समान सुन्दर ॥४१॥ गीत तथा नृत्य परायण धैर्य युक्त स्वभाव वाली होती हैं, वहीं पर ये वृक्ष दान करने वाले पुरुष जाते हैं। विशेष रूप से वहाँ पुष्करिणियाँ तथा दूसरे जलाशय भी ॥४२॥ शुद्ध पत्थरों से बनी होती हैं, दूध की नदियाँ होती हैं, उनका फेन भी दुग्ध के ही समान होता है। अन्न आदि षड्रसों से युक्त होते हैं ॥४३॥ मर्त्यलोक

मर्त्यलोके यथाभोग्यं पुनःस्वर्गे पुनर्भुवि । पुनरेव तदाभ्यासात् खातमाराम्कं पुनः ॥४४॥
यथापुण्यादिकं कृत्वा स्वर्गमर्त्याधिपः पुमान्। अशक्तस्तु प्रपां कृत्वा पुष्करिण्याः फलं लभेत्॥४५॥
प्रपाया लक्षणं चात्र सर्वपापहरं परम् । सर्वभोगप्रदं शुद्धं स्वर्गापवर्गदं स्थिरम् ॥४६॥
लक्षणं च प्रवक्ष्यामि प्रपायाः कीर्तिवर्धनम्। निर्जलेऽध्वनि पृक्तेच स्थानेकृत्वा च मंडपम्॥४७॥
बहुपान्थे समायाते ग्रीष्मवर्षाशरत्स्वपि । अगरुकादिसौगंध्यं जलं पूगं सचंद्रकम् ॥४८॥
आसनं चैव तांबूलं दत्वा स्वर्गान्न हीयते । एवं वर्षत्रयेणैव पुष्करिण्याः फलं लभेत् ॥४९॥
स्वर्गाच्चैवाच्युतो मर्त्यो देवैरपि प्रपूज्यते। मासमेकं तु योदद्यात्प्रपां ग्रीष्मेथ निर्जले ॥५०॥
कल्पैकं तु वसेत्स्वर्गे स्वर्गाद्भ्रष्टो महीयते । प्रपादास्तत्रतिष्ठंति यत्र पुष्करिणीप्रदाः ॥५१॥
नोचेद्धर्मघटो देयः पुण्यपापक्षयाय च । एषधर्मघटो ज्ञेयो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥५२॥
तव प्रसादात्सफलाः मम संतु मनोरथाः । स्वर्णमाषं चतुर्भागं दक्षिणार्थघटस्य च ॥५३॥
एवं वर्षत्रयेणैव प्रपादानफलं लभेत् । यःपठेच्छ्रावयेद्वापि पुष्करिण्यादिजं फलम् ॥५४॥
साक्षात्पापात् भवेन्मुक्तस्तत्प्रसादात्तुसद्गतिः । जनेषु श्रावयेद्यस्तु पुण्याख्यानमिदं शुभम् ॥५५॥
कल्पकोटिसहस्राणि सुरलोके स तिष्ठति ॥५६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पुष्करिण्यादिधर्मकीर्तनं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

के ही समान स्वर्ग लोक में भी वे भोग्य होते है । उसी अभ्यास के कारण वह पुरुष भूलोक में आकर जलाशय और उद्यान इत्यादि को बनाते हैं ॥४४॥ जिस तरह के पुण्य आदि को करके मनुष्य स्वर्गलोक तथा मर्त्यलोक का स्वामी होता है, वैसा पुण्य करता है । असमर्थ व्यक्ति प्याऊ का ही दान करके पुष्करिणी के दान का फल प्राप्त कर लेता है ॥४५॥ प्रपा का फल इस लोक में सभी पापों को विनष्ट करने वाला, सभी भोगों को प्रदान करने वाला, शुद्ध तथा स्थिर स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला होता है ॥४६॥ कीर्ति को बढाने वाले प्रपा (प्याऊ) का लक्षण मैं बतलाता हूँ । निर्जन मार्ग में एकान्त स्थान में मण्डप बनाकर, जहाँ पर अनेक पथिक आते हों वहाँ पर ग्रीष्म, वर्षा या शरद ऋतुओं में भी, अगरु आदि की सुगन्धि से सुगन्धित चन्दन मिश्रित जल, सुपारी ॥४८॥ आसन तथा ताम्बूल देने वाला मनुष्य कभी भी स्वर्ग से नहीं गिरता है । इसतरह से तीन वर्षो तक करने से उसे पुष्करिणी दान का फल प्राप्त होता है ॥४९॥ वह पुरुष स्वर्ग में सदा रहता है तथा देवता उसकी पूजा करते हैं । जो पुरुष निर्जल स्थान में ग्रीष्म ऋतु में एक मास तक जल पिलाता है ॥५०॥ वह एक कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है, वहाँ से भ्रष्ट होने पर भूलोक में पूजित होता है । प्याऊ चलाने वाले उसी लोक में जाते हैं, जहाँ पुष्करिणी दान करने वाले जाते हैं ॥५१॥ यदि यह सम्भव हो तो पापों का नाश करने के लिए पवित्र धर्मघट का दान करना चाहिए । यह धर्मघट ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव स्वरूप होता है । धर्मघट में दक्षिणा के रूप में चार मासा सोना रखकर दान करके प्रार्थना करना चाहिए हे धर्मघट तुम्हारी कृपा से मेरे मनोरथ सफल हों ॥५२-५३॥ इसतरह से तीन वर्ष तक धर्मघट का दान करने से प्रपादान का फल प्राप्त होता है । जो मनुष्य पुष्करिणी के दान से होने वाले फल को पढता अथवा किसी को सुनाता है ॥५४॥ वह पापों से मुक्त हो जाता है और उसकी कृपा से सद्गति को प्राप्त करता है । जो मनुष्य इस पवित्र आख्यान को लोगों के बीच सुनाता है, वह हजारों करोड़ कल्पों तक देवलोक में निवास करता है ॥५५-५६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पुष्करिणी आदि के दान से होने वाले धर्म का वर्णन नामक अठावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५८॥

उनसठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कीर्त्तिधर्मपरं शुभम्। सेतुबंधफलं पुण्यं ब्रह्मणा भाषितं यथा ॥१॥
कांतारे दुस्तरे पंके पुरुषं कुसमाकुलम् । आलिं कृत्वा भवेत्पूतो देवत्वं याति मानवः ॥२॥
वितस्तौ तु लभेत्स्वर्गं दिव्यं वर्षशतं समम्। एवं संख्याविधानेन नरः स्वर्गान्नहीयते ॥३॥
कदाचित्पंकयोगाच्च स्वर्गाद्भुवि विजायते । तदा भट्टारकः श्रीमान्रोगशोकविवर्जितः ॥४॥
पंकादौ संक्रमाश्चैव कृत्वा स्वर्गान्न हीयते । सर्वपापक्षयं तस्य संप्रयाति दिने दिने ॥५॥
तथालिसंक्रमाणां च फलं तुल्यं प्रकीर्तितम्। धनप्राणव्ययेनैव धीमता क्रियते सदा ॥६॥
श्रूयतां यत्पुरावृत्तमाख्यानं वृद्धसंमतम् । कश्चिच्चोरो महाभीष्मो स्तेयकर्मणि चोद्यतः ॥७॥
कांतारे गोशिरः स्थाप्य क्रांत्वा स्तेयं गतो ह्यसौ । धनापहरणं कृत्वा गृहस्थस्य च तेन हि ॥८॥
गतः स्वमंदिरं तत्र जनागच्छंति वर्त्मनि । सर्वेषामेकपादस्य सुखं भवति निश्चितम्॥९॥
एकपादे ह्रदे दुर्गे तारकं गोशिरः परम् । चांद्रायणं च तत्तस्य कांतारे संस्थितं शिरः॥१०॥
ततश्चोरस्य निधने चित्रगुप्तप्रणीतके।

चित्रगुप्तउवाच

धर्मस्य फलमात्रं तु एतस्य च न विद्यते ॥११॥

सेतु बन्धन (पुल बनाने) का फल वर्णन, कीचड़ आदि पार करने के लिए पाषाण आदि से मार्ग बनाने का फल वर्णन, चोर की कथा, अनेक प्रकार के दानों का माहात्म्य, रुद्राक्ष का माहात्म्य, रुद्राक्ष धारण विधि, रुद्राक्ष धारण का माहात्म्य

व्यासजी ने कहा— अब मैं अत्यन्त कल्याणकारी कीर्ति धर्म का वर्णन करता हूँ। सेतुबन्धन का जैसा पुण्य ब्रह्माजी ने बतलाया है उसे मैं बतला रहा हूँ। वन में अथवा जिसको पार करना कठिन हो ऐसे कीचड़ में अत्यधिक काँटों से भरे हुए स्थान में सेतु का निर्माण करके मनुष्य पवित्र हो जाता है और वह देवत्व को प्राप्त कर लेता है ॥२॥ एक बित्ता चौड़ा मार्ग बनाने वाला देवताओं के सौ वर्ष तक स्वर्ग को प्राप्त करता है। इसतरह से अधिकाधिक चौड़ा मार्ग बनाने वाला मनुष्य स्वर्ग से कभी भ्रष्ट नहीं होता है ॥३॥ जब कभी पाप के कारण वह स्वर्ग से भूमि पर आता है तो वह भट्टारक (विद्वान्) श्रीमान् रोग और शोक से रहित होता है ॥४॥ कीचड़ आदि में रास्ता को वनाकर वह कभी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होता है। उसके सारे पाप प्रतिदिन विनष्ट होते रहते हैं ॥५॥ इस अलि (सीढी) और पाप करने के रास्ते का फल एक समान होता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष धन तथा शक्ति का व्यय करके अलि और सङ्क्रम का निर्माण करते हैं ॥६॥ आपलोग एक वृद्ध सम्मत प्राचीन इतिहास सुनें। कोई अत्यन्त भयङ्कर चोर सदा चोरी करता रहता था ॥७॥ वह वन में गौ का शिर बनाकर उसके द्वारा उसे पार करके चोरी किया। किसी गृहस्थ के घर से धन चुराकर उसी के द्वारा अपने घर चला गया ॥८॥ उसके बाद उसी मार्ग से लोग जाते थे। उसके कारण सभी लोगों को सुख मिलता था ॥९॥ एक पैर के दुर्गम सरोवर को गोशिर से आसानी से पार किया जा सकता था। कान्तार (वन) में विद्यमान वह शिर उसके लिए चान्द्रायण हो गया ॥१०॥ उस चोर के मर जाने पर चित्रगुप्त प्रणीत पञ्जिका में देखकर **चित्रगुप्त ने कहा**— इसका कोई भी धर्म का फल नहीं है। इसने

न दैवं पैतृकं कार्यं तीर्थस्नानं द्विजार्चनम् । दानं गुरुजने मानं ज्ञानं परहितं शुभम्॥१२॥
मनसा न कृतं तेन क्रियया च कथं पुनः । कृतं साहसिकं स्तेयं परदाराभिमर्शनम् ॥१३॥
भूतमिथ्यापवादं च साधुनिंदापरं तथा । एवं शतसहस्रं तु तथा गोहरणं कृतम् ॥१४॥

व्यास उवाच

तत्राह धर्मराजस्तु कालानलसमप्रभः ।

धर्मराज उवाच

नयतैनं फलं शूरा दुर्गतिं चापुनर्भवम् ॥१५॥

व्यास उवाच

एतस्मिन्नंतरे वोचच्चित्रगुप्तोऽनुकंपकः ।

चित्रगुप्त उवाच

अस्त्यस्य गोशिरः पुण्यं किंचिन्नाथ क्षमाधुना ॥१६॥

व्यास उवाच

नृपो द्वादशवार्षिक्यं लभेत्पुण्यादयं क्षितौ । तथाह धर्मराजस्तं गच्छमर्त्यं दुरात्मक॥१७॥
अकंटकं च राज्यं च भुंक्ष्व द्वादशवत्सरम्। यद्धृतं गोशिरो मार्गे मुक्तस्तस्यैव कारणात्॥१८॥
पुनरत्र समागम्य संगंता चापुनर्भवम् । ततः कृतांजलिर्देवमुवाच दुःखपीडितः ॥१९॥

चोर उवाच

धर्मराजानुकंपा च मय्येवं पापकारिणि। कुरु नाथ त्वनाथे च जानामि प्रीतिपूर्वकम्॥२०॥

व्यास उवाच

धर्मराजस्तु तं चाह बाढमेव मितो व्रज। स्मरिष्यसि स्ववृत्तांतं मत्प्रसादात्सुदुःखितः॥२१॥

न तो दैवकार्य किया है, न पितृ कार्य किया है, न तो तीर्थ में स्नान किया है और न तो ब्राह्मणों की पूजा की है ॥११॥ इसने मन से भी न तो दान किया है, न तो गुरुजनों का सम्मान किया है । न इसको दूसरों का कल्याण करने वाला ज्ञान ही है । फिर इसके कर्म करने का क्या प्रश्न है ?॥१२॥ इसने साहसिक चोरी की है, दूसरों की पत्नियों को दूषित किया है । जीवों का मिथ्या अपवाद किया है तथा सज्जनों की निन्दा की है ॥१३॥ इसने सैकड़ों हजार जीवों का मिथ्या अपवाद किया है तथा सज्जनों की निन्दा की है ॥१३॥ इसने सैकड़ों हजार गायों को चुराया है ॥१४॥ **व्यासजी ने कहा**— इसपर कालाग्नि के समान कान्ति वाले धर्मराज बोले **धर्मराज ने कहा**— हे दूतों! इसे ले जाओ ऐसे नरक में डाल दो कि इसका पुनर्जन्म न हो ॥१५॥ **व्यासजी ने कहा**— उसी समय दयालु चित्रगुप्त बोले ॥१६॥ **चित्रगुप्त ने कहा**— हे नाथ ! क्षमा करे ! इसका गोशिर का पुण्य है । इसका पुनर्भव है ही नहीं और न इसके कल्याण का लेश भी है । अतएव हे देव उस पाप का नाश करने के लिए आप विचार करके बतलायें ॥१७॥ **व्यासजी ने कहा**— इसके पुण्य का उदय होने पर यह बारह वर्ष तक राजा बने । इसके बाद धर्मराज ने कहा— पापी तुम मर्त्य लोक में जाओ ॥१८॥ तुमने जो रास्ते में गौ का शिर रख दिया है उसी के कारण बारह वर्षों तक अकण्टक राज्य करो ॥१९॥ फिर यहाँ आकर तुम अपुनर्भवत्व को प्राप्त करोगे । दुःख से पीडित उसने हाथ जोड़कर धर्मराज से कहा ॥२०॥ **चोर ने कहा**— मुझ जैसे पापी पर धर्मराज की यह अनुकम्पा है । हे नाथ ! मैं अनाथ हूँ आप प्रेमपूर्वक मेरे पर अनुकम्पा करें ॥२१॥ **व्यासजी ने कहा**— धर्मराज ने चोर से

एतस्मिन्नंतरे चैव मोचितः किंकरेण हि । तस्य जन्माभवत्कौ च दुर्विधे चातिवाणिके ॥२२॥
आजन्मविविधं दुःखं भुक्तं पूर्वविकर्मतः । भुक्त्वा क्लेशं महांतं च एकविंशतिहायनम्॥२३॥
तस्मिन् राष्ट्रे मृतो भूपः स्वकर्मपरिपीडितः । एतस्मिन्नंतरेऽमात्यैः समालोक्य सुमंत्रिभिः ॥२४॥
अनेकपरिमर्शैस्तु पृथिव्यां भ्रमणं कृतम्। तमावृण्वंश्च ते सद्यः सर्वेषां पुरतो दृढम्॥२५॥
ततो राज्याभिषेकश्च कृतस्तैस्तु विमत्सरैः । स च राज्यं च संश्रित्य धर्मराजवरेण च ॥२६॥
अकरोदालिकं कर्म शिलाबद्धं च मृण्मयम्। संक्रमं जलदुर्गे च तरणिं च तथापरे ॥२७॥
वापीकूपतटाकानि प्रपाराममहीरुहम् । कृतवान्विविधं यज्ञं दानपुण्यमतः परम्॥२८॥
स्मरंश्च पूर्वकर्म्माणि सर्वपापक्षयाय वै । कृतं बहुविधं धर्मं व्रतानि विविधानि च ॥२९॥
सुराणां ब्राह्मणानां च गुरूणां चैव तर्पणात् । पापात्पूतो ययौ गेहं धर्मराजस्य धीमतः ॥३०॥
स यानस्थं ततो दृष्ट्वा क्रोधरक्तेक्षणो भवत्। स च तं प्रांजलिः प्राह भो धर्म कुरु तारणम्॥३१॥
चित्रगुप्तोब्रवीद्वाक्यं धर्मराजसमीपतः ।

चित्रगुप्त उवाच

कर्मणा मनसा पूतो विष्णुलोकं स गच्छतु ॥३२॥

व्यास उवाच

स तच्छ्रुत्वा पुनश्चाह तस्य विज्ञाय कारणम् । स्मितः प्रीत्या प्रसन्नात्मा गच्छ गच्छाच्युतालयम् ॥३३॥
विमानं सुरलोकाच्च स्वागतं वर्णकर्बुरम् । समारुह्य गतः स्वर्गं पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥३४॥
तस्मात्किष्कुप्रमाणं हि दत्तं येनालिकं पुरा । स तु राज्यान्वयं स्वर्गं महांतं चानुगच्छति ॥३५॥

कहा ठीक है, अब तुम यहाँ से जाओ । अत्यन्त दुःखी होने के कारण तुम मेरी कृपा से अपने पूर्वकालिक वृत्तान्त को याद रखोगे । उसी समय यमदूतों ने उसे छोड़ दिया । उसका जन्म पृथिवी पर अत्यन्त धनिक बनियाँ के यहाँ हुआ ॥२२॥ अपने बुरे कर्म के कारण उसने जन्म से ही अनेक प्रकार के दुःखों को भोगा । उसने इक्कीस वर्षों तक महान क्लेशों को भोगा । उस राष्ट्र में अपने कर्मों के कारण पीडित होकर वहाँ का राजा मर गया । उस समय मन्त्रियों ने अच्छी तरह से विचार करके ॥२३॥ अनेक प्रकार का परामर्श करके पृथिवी पर भ्रमण किया और उन सबों ने उसको ही राजा के रूप में सबों के सामने चुन लिया ॥२४॥ बिना किसी मत्सर के उन सबों ने उसका अभिषेक कर दिया । वह राज्य प्राप्त करके धर्मराज के वरदान के प्रभाव से ॥२५॥ उसने सिढियों को शिलाबद्ध रूप से तथा मिट्टी से बनवाया । उसने जलदुर्ग में सेतु बनवाया । तथा नावों को रखा ॥२६॥ उसके बाद उसने वापी (बावली) कूप, सरोवर, प्याऊ, उद्यान तथा वृक्षों को लगवाया । उसने अनेक यज्ञों तथा दानों एवं पुण्य कर्मों को किया ॥२७॥ पूर्वजन्म के कर्मों को स्मरण करते हुए तथा उनसे उत्पन्न पापों का नाश करने के लिए उसने अनेक प्रकार के धर्मों तथा व्रतों को किया ॥२८॥ उसने देवताओं, ब्राह्मणों तथा गुरुजनों को तृप्त किया । इसतरह से पापों से पवित्र होकर वह धर्मराज के घर गया ॥२९॥ उसको विमान पर बैठे हुए देखकर धर्मराज की आँखे क्रोध से लाल हो गयीं । उसने हाथ जोड़कर कहा हे धर्मराज मेरा उद्धार करो ॥३१॥ धर्मराज के समीप जाकर चित्रगुप्त ने कहा **चित्रगुप्त ने कहा—** मन तथा कर्म से पवित्र होने के कारण यह विष्णुलोक में चला जाय ॥३२॥ **व्यासजी ने कहा—** इस बात को सुनकर धर्मराज ने उसका कारण जानकर प्रसन्नता पूर्वक मुस्कुराते हुए कहा— तुम भगवान् अच्युत के लोक में जाओ ॥३३॥ देवलोक से देखने में सुन्दर देवलोक से आया हुआ विमान पर बैठकर जहाँ से

तथैव गोप्रचारं तु दत्वा स्वर्गान्न हीयते। या गतिर्गोप्रदस्यैव ध्रुवं तस्य भविष्यति ॥३६॥
व्यामैकं गोप्रचारं तु मुक्तं येन सुधीमता। तस्यस्वर्गं भवेदिष्टं किमन्यैः पुरुभाषितैः ॥३७॥
गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्यजति हेतुना। दिने दिने ब्रह्मभोज्यं पुण्यं तस्य शताधिकम् ॥३८॥
तस्माद्गवां प्रचारं तु मुक्त्वा स्वर्गान्नहीयते। यश्छिन्नत्ति द्रुमं पुण्यं गोप्रचारं छिनत्त्यपि ॥३९॥
तस्यैकविंशं पुरुषाः पच्यन्ते रौरवेषु च। गोचारघ्नं ग्रामगोपः शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत् ॥४०॥
छेत्तारं धर्मवृक्षणां विशेषाद्गोप्रचारघम्। तस्य दंडसुखं तस्य तस्मात्तं दंडयेत्तु सः ॥४१॥
प्रासादं कुरुते यस्तु विष्णुलिंगस्य मानवः। त्रिकांडं पंचकाडं च सुशोभं सुघटान्वितम् ॥४२॥
इतोऽधिकं तु यो दद्यान्मृण्मयं वादृषन्मयम्। वसुवृत्तिसुपूर्णं च सुरम्यं दिव्यभूतलम् ॥४३॥
प्रतिष्ठाकर्मसंपन्नं किङ्करादिभिरावृतम्। सुलिंगमिष्टदेवस्य विष्णोरेव विशेषतः ॥४४॥
कृत्वा च विष्णुसायुज्यं समाप्नोति नरोत्तमः। तथैव प्रतिमां कृत्वा हरेरन्यतरस्य च ॥४५॥
कृत्वा देवकुलं रम्यं यत्फलं लभते नरः। न तन्मखसहस्रैस्तु दानै र्भुवि व्रतादिभिः ॥४६॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च। प्रासादे रत्नसंयुक्ते सूपूर्णद्रव्यसंकुले ॥४७॥
स वसेत्कामगे याने सर्वलोकमनोहरे। स्वर्गाच्च्युतो भवेद्राजा सार्वभौमो गुणै र्वशी ॥४८॥
शिवलिंगे तु प्रासादं कारयित्वा स्वशक्तितः। यदुक्तं विष्णुलिंगे तु तज्ज्ञेयं शिववेश्मनि ॥४९॥

पुनः इस संसार में नहीं आना पड़ता है ऐसे स्वर्गलोक में वह चला गया ॥३४॥ अतएव जिसने हाथभर का भी अली पूर्वजन्म में प्रदान किया है, वह राज्य युक्त महान् स्वर्ग में जाता है ॥३५॥ इसीतरह गोचर भूमि दान करने वाला भी स्वर्गलोक से भ्रष्ट नहीं होता है। गोदान करने वाले की जो गति प्राप्त होती है, वही गति आली प्रदान करने वाले की भी होती है। जो पृथिवी पर एक गोचर भूमि छोड़ता है, उस बुद्धिमान पुरुष को अभिप्रेत स्वर्ग की प्राप्ति होती है वहुत अधिक दूसरी बातों को कहने से कौन सा लाभ है ?॥३७॥ जो पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार गोचर भूमि छोड़ता है, उसको प्रतिदिन सौ ब्राह्मणों को भोजन कराने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उससे भी अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३८॥ अतएव गोचर भूमि छोड़ने वाला स्वर्गलोक से कभी भ्रष्ट नहीं होता है। जो व्यक्ति पवित्र वृक्ष को काटता है, उसको गोचर भूमि को काटने का पाप लगता है ॥३९॥ उसके इक्कीस पीढी के पूर्वज रौरव नरक में चले जाते हैं। गाव के समर्थ स्वामी को गोचर भूमि को काटने वाले को दण्डित करना चाहिए ॥४०॥ विशेष रूप से गोचर भूमि तथा धार्मिक वृक्ष को काटने वाले को दण्ड देने से सुख की प्राप्ति होती है अतएव उसको दण्डित करना चाहिए ॥४१॥ भगवान् विष्णु की मूर्ति के लिए जो सुन्दर मन्दिर तीन मजिल या अथवा पाँच मंजिल का वनवाता है ॥४२॥ अथवा इससे भी अधिक जो मिट्टी का अथवा पत्थर का मन्दिर बनवाकर उसमें धन, वृत्ति से परिपूर्ण सुन्दर भूमि प्रदान करता है ॥४३॥ सेवकों आदि से युक्त प्रतिष्ठा कर्म से सम्पन्न, अपने इष्टदेव या भगवान् विष्णु की मूर्ति ॥४४॥ बनवाकर दान करता है वह मनुष्य श्रेष्ठ भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है। उसीतरह श्रीहरि की अथवा किसी दूसरे देवता की सुन्दर मुर्ति बनवाकर मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है उसकी प्राप्ति सैकड़ों यज्ञों दानों तथा व्रतों आदि के करने से भी नहीं होती है ॥४५-४६॥ वह मनुष्य स्वर्गलोक में हजारों करोड़ कल्पों तक रत्नजटित, तथा सभी द्रव्यों से परिपूर्ण ॥४७॥ प्रासाद में अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले मनोहर विमान में निवास करता है स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर वह पृथिवी पर सर्वगुण सम्पन्न सार्वभौम तथा जितेन्द्रिय राजा होता है ॥४८॥ अपनी शक्ति के अनुसार शिवलिङ्ग का मन्दिर बनवाने वाला उसी फल को प्राप्त करता है जिस

भुंक्ते भोगं महाभागो मनःशर्मकरं परम्। रामाभिरामसंपूर्णं सर्वतः सुखदं दिवि ॥५०॥
उर्व्यामक्षयभोग्यानि नृपो वाथ महाधनी। हरस्य प्रतिमा यश्च कृत्वा देवगृहे नरः ॥५१॥
सुलिंगां वा सुरूपां वा कल्पकोटिं वसेद्दिवि। स्वर्गाद् भ्रष्टो भवेद्राजा धनी पूज्यतमोपि वा॥५२॥
देवीलिंगेषु सर्वेषु कृत्वा देवगृहं नरः । सुरत्वं प्राप्नुयाल्लोके देव्यास्सर्वसुखोद्भवे ॥५३॥
भृशमच्युततामेति सुखमेति निरामयम्। रत्नसंसृष्टप्रासादे मणिकर्बुरभूतले॥५४॥
रामायुतप्रसंभोग्ये देवीसंसृष्टनिर्भये। नृत्यगीतपरे रम्ये सर्वेंद्रियमनोरमे ॥५५॥
रत्नमर्ईलतालाढ्ये सर्वदास्त्रीजनेरिते । निर्मले सुखदे रम्ये रत्नानांसुशुभे गृहे ॥५६॥
तथैव प्रतिमायाश्च देव्याः प्रासादमुत्तमम् । नियुतं कल्पकोटीनां स्वर्लोकमेति मानवः ॥५७॥
स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्भूपो देवीभक्तिपरायणः। एवं च जन्मसाहस्त्रं स्मर एव भवेद्भुवि ॥५८॥
प्रासादं गाणपत्यं च देव्या वा प्रीतिमान्नरः। कृत्वा सुरगणानां च पूजितो दिवि जायते ॥५९॥
तथैव राजतामेति भोग्यान्देवी पुरे तथा । अविघ्नं सर्वकार्येषु सदैव गणपो यथा ॥६०॥
आज्ञा न स्खलिता तस्य सुरासुरनरेषु च । तथैव सौरप्रासादे फलमाप्नोति नरोत्तमः ॥६१॥
अरोगी सुप्रसन्नात्मा कामदेव समप्रभः । वरदः सर्वलोकेषु यथाब्रध्नस्तथाहि सः ॥६२॥
सूरस्य प्रतिमायां च गृहं कृत्वाशिलामयम् । कल्पकोटिशतं भुक्त्वा स्वर्गमुर्वीश्वरो भवेत् ॥६३॥
विष्ण्वादिसर्वदेवानामर्चनं यत्पृथक् पृथक् । प्रत्येकं संप्रवक्ष्यामि नराणां हितहेतवे ॥६४॥

फल को भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाने वाला प्राप्त करता है ॥४९॥ हे महाभाग वह मन में शान्ति प्रदान करने वाले भोगों का भोग करता है मनोरम स्त्रियों से परिपूर्ण सुखद भोगों को द्युलोक में भोगता है । वह पृथिवी पर पद्य धनी अथवा राजा होकर अक्षय भोगों को भोगता है । सुन्दर लिङ्ग वाली तथा सुन्दर चिह्न वाली भगवान् शिव की सुन्दर प्रतिमा को जो मन्दिर में बनवाता है वह करोड़ों कल्प तक स्वर्ग लोक में निवास करता है । स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर वह पृथिवी पर राजा अथवा पूज्यतम धनी होता है ॥५१-५२॥ जो मनुष्य देवी की सभी मूर्तियों के लिए मन्दिर बनवाता है, वह संसार में देवत्व को प्राप्त कर लेता है । उसके बाद देवी के लोक में सम्पूर्ण सुख सम्पत्ति सम्पन्न॥५३॥ अत्यधिक निरोग रहकर सुख को प्राप्त करता है तथा अच्युतत्व को प्राप्त करता है । जिसकी फर्श मणि जटित हो ऐसे रत्नजटित दशों हजार संभोग्य ललनाओं से युक्त, देवी के द्वारा सृजित, निर्भय, जो सदा नृत्य एवं गीत होने के कारण अत्यन्त मनोहर रहता है ॥५४-५५॥ ऐसे रत्न निर्मित लताओं से परिपूर्ण, सर्वदा स्त्रीजनों से भरे हुए । निर्मल सुखद रत्नों से सुशोभित प्रासाद के गृह में ॥५६॥ जो देवी की प्रतिमा तथा मन्दिर बनवाता है वह दश हजार करोड़ कल्पों तक स्वर्ग लोक में निवास करता है । जब वह स्वर्ग से भ्रष्ट होता है तो देवी का भक्त राजा होता है । इसतरह से वह हजारों जन्मों को पृथिवी पर प्राप्त करता है, उसे अपने पूर्व जन्मों की यादगारी बनी रहती है ॥५८॥ जो प्रेम पूर्वक गणेशजी का मन्दिर बनवाता है वह स्वर्ग लोक में देवताओं से पूजित होता है । जिसतरह देवों के लोक में भोग्य पदार्थ होते हैं, उसीतरह के भोगों को प्राप्त करता है । अन्त में वह राजा होता है। वह सभी कार्यों में गणेशजी के समान विघ्नरहित होता है ॥५९-६०॥ उसकी आज्ञा सभी देवता असुर और मनुष्य मानते हैं । उसीतरह सूर्य का मन्दिर बनवाने वाला भी नरश्रेष्ठ फल प्राप्त करता है ॥६१॥ वह निरोग अत्यन्त प्रसन्न, तथा कामदेव के समान सुन्दर होता है । वह सूर्य के ही समान सभी लोकों में वरदान देने वाला होता है॥६२॥ सूर्य की प्रतिमा के लिए पत्थर का गृह बनाने वाला सैकड़ों करोड़ कल्प तक स्वर्ग लोक में निवास करके

घृतप्रदीपं यो दद्यात्मासमेकमहर्निशम् । दिव्यं वर्षायुतं स्वर्गे पूजितो देवसतमैः ॥६५॥
घृतस्नानं तथालिंगे यःकुर्याद्धुवि मानवः । कल्पकोटिसहस्राणि मासैके लभते नरः॥६६॥
तिलतैलप्रदीपस्य तथान्यस्यार्द्धकं फलम् । मासैकं जलदानस्य फलेनेश्वरतां व्रजेत् ॥६७॥
धूपदानेन गंधर्वं चंदने द्विगुणं भवेत् । मृगमदागरूसत्वस्य दाने बहुफलं भवेत् ॥६८॥
मालापुष्पप्रदानेन नरः स्यात्त्रिदशेश्वरः । शीते तूलपटीं दत्वा सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ॥६९॥
जन्मजन्मसु लभ्येत उष्णे च शीतलां पटीम् । दत्वा च नैव सीदेत शक्त्या वस्त्रं ददाति यः॥७०॥
चतुर्हस्तप्रमाणं च वर्ष्मवेष्टं सुशोभनम् । पिधानं चरणानां च दत्वास्वर्गान्न हीयते ॥७१॥
शक्त्या स्वर्णप्रदानेन स्वर्गे पूज्यो भवेन्नरः । दशयोजनविस्तीर्णे मंडपे रूपभाग्भवेत् ॥७२॥
सवुर्णं रत्नसयुक्तं दत्त्वा दशगुणं लभेत् । वज्रवैडूर्यगारुत्ममाणिक्यादीननर्घतः ॥७३॥
दत्वा लिंगे विधानाच्च ब्राह्मणे वा यशस्विनि । शतयोजनविस्तीर्णे मंडलेधिपतिर्भवेत् ॥७४॥
तथैव भुवि जातोपि सर्वलोकप्ररंजनः । सुरभिद्रव्यदानेन वावदूकश्च सुंदरः ॥७५॥
रक्तामृतसुकंठश्च पूगदानान्नरो भवेत्। वरदासीप्रदानेन नरः कल्पं वसेद्दिवि ॥७६॥
वरदासीप्रदानेन उर्व्यां जातो धनेश्वरः। तथैव भृत्यदानेन बहुभृत्यो भवेद्दिवि ॥७७॥
धरायामक्षया ऋद्धिर्जन्मजन्मसु जायते। सर्वतूर्यप्रदानेन गुणवान् लोकसंमतः ॥७८॥

पृथिवीपति होता है ॥६३॥ विष्णु आदि सभी देवताओं की पूजा करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है, उन सबों को मैं लोक कल्याण की दृष्टि से अलग-अलग बतलाता हूँ ॥६४॥ जो व्यक्ति एक मास तक विष्णु आदि देवताओं की रात-दिन घी का दीपक जलाता है वह देवताओं के दश हजार वर्षों तक स्वर्ग में श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा पूजित होता है ॥६५॥ जो मनुष्य एक मास तक शिवलिङ्ग को घृत से स्नान कराता है, वह हजारों करोड़ कल्पों तक स्वर्ग भोगता है ॥६६॥ तिल के तेल का जो रात-दिन एक मास तक दीपक जलाता है, अथवा उससे स्नान कराता है, उसको घी की अपेक्षा आधा फल प्राप्त होता है । एक मास तक जलदान करने वाला ईश्वरत्व को प्राप्त कर लेता है॥६७॥ धूप का दान करने से गन्धर्व होता है, चन्दन का दान करने से उसको दो गुना फल होता है । देवता को कस्तूरी तथा अगरु आदि वस्तुओं का दान करने पर बहुत फल होता है ॥६८॥ देवता को माला तथा पुष्प प्रदान करने से मनुष्य देवराज होता है । जाड़े के दिन में सूती रजाई दान करके मनुष्य सभी दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥६९॥ वह प्रत्येक जन्मों में ग्रीष्मकाल में शीतल वस्त्र को प्राप्त करता है, जो अपनी शक्ति के अनुसार देवताओं को वस्त्र प्रदान करता है वह कभी दुःखी नहीं होता है ॥७०॥ जो दाता देवताओं को चार हाथ लम्बा शरीर का सुन्दर वस्त्र प्रदान करता है, तथा चरणों का मोजा देता है, वह स्वर्ग से कभी भ्रष्ट नहीं होता है ॥७१॥ जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार देवता के लिए स्वर्ग दान देता है वह स्वर्ग में पूज्य होता है । वह स्वर्ण में दश योजन विस्तृत मण्डप में अपने सौन्दर्य से सुशोभित होता है ॥७२॥ जो रत्न जटित सुवर्ण दान करता है उसको सुवर्ण दान का दश गुना फल प्राप्त होता है । जो अनर्घ्य, वैडूर्य, गरुत्मत् मणि आदि शिवलिङ्ग के लिए दान देता है अथवा यशस्वी ब्राह्मण को दान देता है वह दशयोजन विस्तीर्ण मण्डप का स्वामी होता है ॥७४॥ उसी तरह संसार में भी जन्म लेकर सबलोगों का प्रिय होता है । सुगन्धित द्रव्य प्रदान करने वाला वावदूक और सुन्दर होता है ॥७५॥ पूगीफल का दान का दान करने वाला सुन्दर रागयुक्त तथा अमृत के समान कण्ठ (राग) वाला मनुष्य होता है । श्रेष्ठ दासी का दान करने वाला मनुष्य स्वर्गलोक में एक कल्प तक निवास करता है ॥७६॥ श्रेष्ठ दासी का दान करने

नृत्यगीतादिशास्त्रेण गंधर्वाणां पतिर्भवेत् । दासीदासयुतः स्वर्गे धनैः स्त्रीभिर्वरैर्युतः ॥७९॥
तथैव गोप्रदानेन तावत्कालं वसेद्दिवि । लिंगे दुग्धप्रदानाच्च नरः कल्पं वसेद्दिवि ॥८०॥
दध्ना स्नानेन द्विगुणं घृतेन तु शताधिकम् । अन्नं षड्रससंयुक्तं दत्वाक्षिति पतिर्भवेत् ॥८१॥
तथैव पायसं दत्वा मुनीनां प्रवरो भुवि । हविष्यान्नं मुदा दत्वा वेदशास्त्रार्थपारगः ॥८२॥
निरामिषप्रदानाच्च ब्रह्मचारी व्रती भवेत् । मधुदानाच्च सौभाग्यं गुडेन लवणेन च ॥८३॥
शर्करादिभिर्लावण्यं सर्वलोकेपु गीयते । देवानां शंभुलिंगानामर्चा कृत्वा विधानतः ॥८४॥
अनुक्रमेण स्वर्गादौ लोकानां स पतिर्भवेत् । लोकानां चाहितार्थाय देवास्तिष्ठंति संमुखाः ॥८५॥
सकृत्प्रदक्षिणां कृत्वा शंभुलिंगेषु पंडितः । दिव्यं वर्षशतं पूर्णं स्वर्गमेति नरोत्तमः ॥८६॥
एवमेव क्रमेणैव नमस्कारैः स्वयंभुवः । लोकवंद्यो ब्रजेत्स्वर्गं तस्मान्नित्यं समाचरेत् ॥८७॥
लिंगरूपस्य देवस्य यो धनं हरते नरः । स च रौरवमासाद्य हरणात्कीटतां व्रजेत् ॥८८॥
दातुः पूजां च लिंगार्थे हरेश्चाप्याददाति यः । कुलकोटिसहस्रेण नरकान्न निवर्तते ॥८९॥
जलपुष्पादिदीपार्थे वसुचान्यद्गृहीतवान् । पश्चान्न दीयते लोभादक्षयं नरकं व्रजेत् ॥९०॥
दासीं हत्वा तु लिंगस्य नरकान्न निवर्तते । कामार्तो मातरं गच्छेन्न गच्छेच्छिवचेटिकाम्॥९१॥

वाला पृथिवी पर उत्पन्न होकर धनेश्वर होता है । उसीतरह भृत्य दान करने वाला स्वर्गलोक में अनेक भृत्यों वाला होता है ॥७७॥ उसकी पृथिवी पर प्रत्येक जन्म में अक्षय समृद्धि होती है । देवताओं को हर प्रकार का वाद्य दान करने वाला मनुष्य लोकविख्यात गुणवान् होता है ॥७८॥ नृत्य गीत आदि शास्त्रों का दान करने वाला गन्धर्व का स्वामी होता है । स्वर्ग में दासी, दास, धन तथा श्रेष्ठ स्त्रियों से सम्पन्न होता है ॥७९॥ उसीतरह गौ प्रदान करने वाला उतने ही समय तक स्वर्गलोक में निवास करता है । शिवलिङ्ग पर दुग्धाभिषेक करने वाला मनुष्य एक कल्प तक स्वर्गलोक में निवास करता है ॥८०॥ शिवलिङ्ग का दधि से अभिषेक करने वाला उसके दो गुना (दो कल्प तक) स्वर्गलोक में निवास करता है । तथा घृताभिषेक करने वाला सौ गुना (सौ कल्प तक) स्वर्ग में निवास करता है । षड्रस से युक्त अन्नदान करने वाला पृथिवी का स्वामी होता है । उसीतरह पायस (खीर) का दान करने वाला श्रेष्ठ मुनि होता है । प्रसन्नता पूर्वक हविष्य दान करने वाला वेदशास्त्र में पारङ्गत होता है ॥८२॥ निरामिष (शाकाहारी) अन्न दान करने वाला व्रती ब्रह्मचारी होता है । मधु (शहद) गुड तथा नमक दान करने वाला सौभाग्य प्राप्त करता है॥८३॥ चीनी आदि दान करने से लोक विख्यात सौन्दर्य होता है । देवताओं तथा शिवलिङ्गों की सविधि अर्चना करके ॥८४॥ मनुष्य क्रमशः स्वर्ग आदि लोकों का स्वामी होता है । संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए देवता उसके सामने रहते हैं ॥८५॥ शम्भु लिङ्ग की एक बार प्रदक्षिणा करके ज्ञानी मनुष्य देवताओं के सौ वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है । इसीतरह क्रमशः शङ्करजी को नित्य नमस्कार करने वाला लोकवंद्य होकर स्वर्ग में जाता है । अतएव प्रतिदिन शङ्करजी को नमस्कार करे ॥८६-८७॥ लिङ्ग स्वरूप देवता का जो धन चुराता है वह पहले रौरव नरक में जाता है उसके वाद कीड़ा होता है ॥८८॥ दान के द्वारा शिवलिङ्ग की पूजा के लिए दी गयी वस्तु से जो पूजा नहीं करता है । उसके करोड़ो वंशज नरक में चले जाते हैं और फिर नरक में ही पड़े रहते हैं ॥८९॥ दूसरे द्वारा जल, पुष्प तथा दीप के लिए दिए गये धन लेकर जो लोभ के कारण उसे ले लेता है किन्तु वह देवता को समर्पित नहीं करता है वह अक्षय नरक में जाता है ॥९०॥ शिव लिङ्ग की दासी का हरण करने वाले का नरक से कभी उद्धार नहीं होता है । कामार्त व्यक्ति अपनी माता के साथ भले ही सङ्गम कर ले किन्तु शिवदासी के साथ सङ्गम

शिवदासी ततो गत्वा शिवस्य हरणे तथा। भक्षणादन्नपानानांनरो दुर्गतिमाप्नुयात् ॥९२॥
अतो देवलविप्रो यो नरकान्ननिवर्त्तते। तस्माद्वेश्यां जनानां च दौष्ट्यमेव हितं भवेत् ॥९३॥
अतस्तु गणिकां स्पृष्ट्वा नरः स्नानाद्विशुध्यति। मलिनां दुर्गतिं याति बहुपूरुषसंश्रयात्॥९४॥
वेश्यातपस्विनी या च देवार्चनरता सदा। पतिव्रतपरा शुद्धा स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥९५॥
गणिकां मातृवद्यस्तु सदासन्नां प्रपश्यति। देववत्सुरलोकेषु निखिलं भोगमश्नुते॥९६॥
सुरासुरनराणां च वंदनीयो यथा हरिः। तथार्होयं सर्वलोके सर्वभूतैकपावनः ॥९७॥
देवदासः सदा यस्तु देवकृत्येषु लोलुपः। स च गच्छति लोकेशो देवलोके महीयते ॥९८॥
एतेषामेवलिंगानि कारयित्वा च मंडपम्। शक्त्या यं लभते नाकं कालस्य निश्चयं शृणु॥९९॥
हायनैकं तृणेनैव शरकांडेन तच्छतम्। अयुतं त्वन्यकाष्ठेन लक्षं खादिरदारुणा ॥१००॥
कोटिकोटि च पाषाणैः सुदृढैर्यत्नसंयुतैः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मंडपं कारयेद्बुधः ॥१०१॥
यावत्कालं वसेत्स्वर्गे नरो मंडपकारकः। तावत्कालं च हरणे नरो दुर्गतिमाप्नुयात् ॥१०२॥
जनानां निचरे रम्ये वस्तूनां क्रय विक्रये। आश्रये चाध्वगानां च नदीनदसमागमे ॥१०३॥
देवानां मंडपं कृत्वा यत्फलं लभते नरः। तत्फलं समवाप्नोति द्विगुणं विप्रमंदिरे॥१०४॥
अनाथस्य च दीनस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः। कारयित्वा गृहं रम्यं नरः स्वर्गान्न हीयते ॥१०५॥

नहीं करे ॥९१॥ शिवदासी के साथ सङ्गम करना तथा शिव सम्पत्ति के हरण के समान है। जिसके कारण शिव के अन्न जल का हरण करने से नरक होता है ॥९२॥ इसीलिए जो देवल ब्राह्मण होता है। (देवता की सम्पत्ति खाने वाला ब्राह्मण) उसका कभी नरक से उद्धार नहीं होता है। अतएव वेश्या लोगों के लिए दूषित होने पर भी कल्याण कारिणी होती है। वेश्या का स्पर्श हो जाने पर स्नान करने से मनुष्य की शुद्धि होती है। अनेक पुरुषों के साथ सङ्गम करने के कारण वेश्या मलिन होती है तथा नरक में जाती है ॥९४॥ जो वेश्या तपस्विनी तथा देवार्चन परायण होती है, वह पतिव्रत परायण होने के कारण अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करती है ॥९५॥ सदा सन्निकट में रहने वाली गणिका को जो माता के समान समझता है। वह देवलोकों में देवता के सभी भोगों को प्राप्त करता है ॥९६॥ जिस तरह श्रीहरि देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों के लिस सदा वंदनीय हैं, उसीतरह वह पुरुष सभी लोकों को पवित्र बनाने वाला होता है ॥९७॥ जो देवदास देवकार्य को करने के लिए सदैव लोलुप बना रहता है वह लोकेश होकर देवलोक में पूजित होता है ॥९८॥ जो व्यक्ति इन देवताओं का मण्डप बनाकर मूर्तियों को बनवाता है, वह अपनी शक्ति से जितने समय तक स्वर्गलोक को प्राप्त करता है उसे मैं बतलाता हूँ ॥९९॥ तृण का मण्डप बनाने से एक वर्ष का स्वर्ग मिलता है, शरकण्डे का मण्डप बनाने से सौ वर्ष का दूसरी लकड़ियों से मण्डप बनाने पर दश हजार वर्ष का स्वर्ग प्राप्त होता है। खैर की लकड़ी का मण्डप बनाने पर एक लाख वर्ष तक का स्वर्ग प्राप्त होता है ॥१००॥ पाषाण के द्वारा देव मण्डप बनाने पर करोड़-करोड़ वर्ष का स्वर्ग प्राप्त होता है, अतएव विद्वान् को सप्रयास मण्डप बनवाना चाहिए ॥१०१॥ मण्डप बनाने वाला पुरुष जितने समय तक स्वर्ग में निवास करता है, उस मण्डप को चुराने वाला उतने ही समय तक नरक में निवास करता है ॥१०२॥ लोगों के मनोहर समूह में अथवा वस्तुओं के क्रय-विक्रय स्थल में, पथिकों के रहने के स्थान में नदों एवं नदियों के सङ्गमस्थल में ॥१०३॥ देवताओं का मण्डप बनाने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति किसी वेदज्ञ ब्राह्मण का गृह बनवा देने से होती है॥१०४॥ विशेष रूप से अनाथ, दीन तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण का गृह बनवाने वाले का कभी स्वर्ग से पतन नहीं होता

य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमनुत्तमम्। अक्षयं लभते स्वर्गं प्रासादादेः फलं लभेत् ॥१०६॥
धनिनां चेश्वराणां च तथा पुण्यवतां पुनः । पाठयित्वा पठित्वा तु नरः स्वर्गान्न हीयते॥१०७॥
देवानां दासदासीनां सदा देवालयेषु च । पठेद्यस्तु सदा विप्रो मोक्षमार्गं स गच्छति ॥१०८॥
नृपाणामीश्वराणां च धनिनां गुणिनां पुरः । पठित्वा मोक्षमाप्नोति श्रवणात्तत्फलं लभेत् ॥१०९॥

द्विजा ऊचुः

सामान्येकः परः पुण्यो मर्त्यलोके द्विजोत्तम। सुलभो मर्त्यपूज्यस्तु मुनीनां च तपस्विनाम्॥११०॥
चातुर्वर्ण्याश्रमाणां च पापपुण्यवतां नृणाम्। गुणा गुणवतां चैव वर्णा वर्णवतां तथा ॥१११॥

व्यास उवाच

सर्वेषामेव भूतानां रुद्राक्षेण युतो वरः । दर्शनाद्यस्य लोकानां पापराशिः प्रलीयते ॥११२॥
स्पर्शनाद्दिवमश्नाति धाराणाद्रौद्रतां व्रजेत् । शिरस्युरसि बाहौ च रुद्राक्षं धारयेत्तु यः ॥११३॥
स चेशानसमो लोके मखे सर्वत्रगोचरः। यत्र तिष्ठत्यसौ विप्रस्स देशः पुण्यवान्भवेत् ॥११४॥
तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा नरः पूयेत कल्मषात् । यज्जप्यं तर्पणं दानं स्नानमर्चा प्रदक्षिणम्॥११५॥
यत्किंचित्कुरुते पुण्यं निखिलं तदनंतकम् । तीर्थानां च महत्तीर्थं रुद्राक्षस्य फलं द्विजाः ॥११६॥
अस्यैव धारणाद्देही पापात्पूतोऽतिपुण्यभाक्। गृहीत्वा चाक्षमालां च ब्रह्मग्रंथियुतां शिवाम् ॥११७॥
यज्जप्तं कृतं दानं स्तोत्रं मंत्रं सुरार्चनम् । सर्वं चाक्षयतामेति पापं च क्षयमाव्रजेत् ॥११८॥
मालाया लक्षणं ब्रूमः श्रूयतां द्विजसत्तमाः। तस्यास्तु लक्षणं ज्ञात्वा शैवमार्गं प्रलप्स्यथ॥११९॥

है ॥१०५॥ जो व्यक्ति इस पवित्र कथा का नित्य श्रवण करता है, वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा प्रासाद इत्यादि वनवाने का भी फल उसको प्राप्त होता है ॥१०६॥ धनिकों, स्वामियों तथा पुण्य पुरुषों को पढाने वाले तथा स्वयं पढने वाले का पुण्य कभी क्षीण नहीं होता है ॥१०७॥ देवताओं के दासों एवं दासियों तथा देवालय में जो सदैव इसको पढता है, वह ब्राह्मण मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लेता है ॥१०८॥ राजाओं, स्वामियों, धनियों तथा गुणी पुरुषों के सामने इसका पाठ करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है तथा सुनने वाला भी उसी फल को प्राप्त करता है॥१०९॥ **ब्राह्मणों ने कहा—** हे द्विजोत्तम ! मर्त्यलोक में सबसे प्रधान पुण्य क्या है ? मुनियों तथा तपस्वियों में श्रेष्ठ पूज्य एवं सुलभ मनुष्य कौन है ?॥११०॥ वह चारो वर्णों चारो आश्रमों के पापियों तथा पुण्यवानों में गुणियों में गुण, वर्णवालों में वर्ण सुलभ (पुण्यवान मनुष्य कौन) हैं ॥१११॥ **व्यासजी ने कहा—** सभी मनुष्यों में रुद्राक्षधारी पुरुष श्रेष्ठ है । उसका दर्शन करने से ही पाप समूह का नाश हो जाता है ॥११२॥ रुद्राक्ष का स्पर्श करने से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है, धारण करने से रुद्रत्व की प्राप्ति होती है । जो व्यक्ति शिर पर, वक्षस्थल पर तथा भुजाओं में रुद्राक्ष धारण करता है ॥११३॥ वह लोक में शङ्करजी के समान होता है तथा यज्ञ में सर्वत्र पवित्र होता हैं । वह ब्राह्मण जिस स्थान में रहता है वह स्थान पवित्र हो जाता है ॥११४॥ उस ब्राह्मण का दर्शन अथवा स्पर्श करके मनुष्य पाप रहित हो जाता है । वह जो मन्त्र जपता है तर्पण करता है, दान देता है, स्नान करता है, पूजा करता है अथवा प्रदक्षिणा करता है, वह सब अक्षय होता है । हे ब्राह्मणों ! रुद्राक्ष का फल सभी तीर्थों से बढकर महान् तीर्थ है ॥११५-११६॥ इसका ही धारण करने वाला शरीरधारी पाप से पवित्र तथा अत्यन्त पुण्यवान् हो जाता है । रुद्राक्ष की ब्रह्मग्रंथि से युक्त तथा पवित्र माला लेकर ॥११७॥ जो जप, दान स्तोत्रपाठ, मन्त्र तथा देवार्चन किया जाता है वह सबके सब अक्षय होता है तथा उसके पापों का नाश हो जाता है ॥११८॥ हे द्विजश्रेष्ठों ! मैं माला

निर्योनि कीटविद्धं च भग्नलिंगं यथाक्रमम् । अन्योन्यं बीजलग्नं च मालायां परिवर्जयेत् ॥१२०॥
स्वयं च ग्रथिता या च श्लथान्योन्य प्रसज्जिता । शूद्रादिग्रथिताऽशुद्धा दूरात्तां परिवर्जयेत् ॥१२१॥
मध्यमा लग्नकं बीजं जप्तव्यं च यथाक्रमम् । हस्तसंभ्रमणेनैव मेर्वामर्शं पुनः पुनः ॥१२२॥
संख्यातं यज्जपेन्मंत्रमसंख्यातं च निष्फलम्। सर्वेषामेव देवानां जपेन्मंत्रंस्वमालया॥१२३॥
प्रयतः सकले तीर्थे कोटिकोटिगुणं भवेत्। शुद्धायामेव भूम्यां तु मेध्यके वृक्षमूलके ॥१२४॥
गोष्ठे चतुष्पथागारे विष्णोर्मंत्रं शिवस्य च। गणपतेश्च सूरस्य लिंगेनंतफलं लभेत्॥१२५॥
शून्यागारे शवस्याग्रे श्मशाने च चतुष्पथे । देवीमंत्रं जपेद्यस्तु सद्यःसिध्यति साधकः ॥१२६॥
यावच्चावैदिकं मंत्रं पौराणं चागमोद्भवम् । सर्वं रुद्राक्षमालायामीप्सितेष्टार्थदायकम्॥१२७॥
रुद्राक्षस्रवजं शुद्धं जलं शिरसि धारयेत् । सर्वस्मात्कल्मषात्पूतः पुण्यं भवति चाक्षयम्॥१२८॥
रुद्राक्षस्य च प्रत्येकं बीजं प्रत्येक निर्जरम् । धारयेद्यस्तनौ मर्त्यः सुराणां सत्तमो भवेत् ॥१२९॥

द्विजा ऊचुः

रुद्राक्षस्तु कुतो जातः कुतो वा मेध्यतां गतः । किमर्थं स्थावरो भूमौ केनैव च प्रचारितः॥१३०॥

व्यास उवाच

पुरा कृतयुगे विप्रास्त्रिपुरो नाम दानवः । सुराणां च वधं कृत्वा अंतरिक्षपुरे हि सः ॥१३१॥
प्रणाशे सर्वलोकानां स्थिरो ब्रह्मवरेण च । शुश्राव शङ्करो भीमं देवैरीशो निवेदितम् ॥१३२॥

का लक्षण बतलाता हूँ उसे आप लोग सुनें । उसके लक्षण को जानकर आपलोग शैव मार्ग को प्राप्त कर लेंगे॥११९॥ माला में योनिहीन, क्रीडों द्वारा खाये गये, जिसका लिङ्ग भग्न हो गया हो तथा जो दाना परस्पर में सटा हो ऐसे रुद्राक्ष का परित्याग कर देना चाहिए ॥१२०॥ जो माला स्वयं गूंथी गयी हो जो परस्पर में सटी हो, जिसको शूद्र आदि गूंथे हो ऐसी माला अशुद्ध होती है, उसका दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ॥१२१॥ माला के बीजों को मध्यमा अङ्गुलि से सटाकर जपना चाहिए । सुमेरु के पास आने पर हाथ से माला को घुमा ले, सुमेरु को पार न करे ॥१२२॥ जिस मंत्र का जप करे उसकी संख्या होनी चाहिए, बिना संख्या के जप करना निष्फल होता है । अपनी माला से किसी भी देवता का मन्त्र जपना चाहिए ॥१२३॥ सावधानी पूर्वक तीर्थ में जप करने से करोड़ों-करोड़ों गुना फल होता है । जप शुद्ध भूमि पर अथवा मेध्य वृक्ष की जड़ में बैठकर ॥१२४॥ गोशाला में अथवा चौराहे के घर में, भगवान् विष्णु या शिवजी के, या गणेशजी के या सूर्य के लिङ्ग (मूर्ति) के सन्निकट मन्त्र का जप करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ॥१२५॥ जो साधक शून्य गृह में, शव के सामने, श्मशान में या चौराहे पर देवी के मन्त्र को जपता है उसकी सद्यः सिद्धि हो जाती है ॥१२६॥ सभी वैदिक मन्त्र, पौराणिक मन्त्र, आगमीय मन्त्र सबके-सब रुद्राक्ष की माला से जप करने के कारण अभीष्ट फल देते हैं ॥१२७॥ रुद्राक्ष से स्रुत जल को जो अपने शिर पर धारण करता है, वह सभी पापों से पवित्र हो जाता है तथा उसको अक्षय फल की प्राप्ति होती है॥१२८॥ रुद्राक्ष के प्रत्येक बीज के अलम-अलग देवता होते हैं । जो मनुष्य उसे अपने शरीर पर धारण करता है, वह देवताओं में श्रेष्ठ हो जाता है ॥१२९॥ **ब्राह्मणों ने कहा**— रुद्राक्ष कैसे उत्पन्न हुआ ? कैसे पवित्र हो गया? वह भूमि पर क्यों स्थित है ? और उसका प्रचार किसने किया ?॥१३०॥ **व्यासजी ने कहा**— हे विप्रों ! पहले एक त्रिपुर नामक दानव था, वह अनन्तरिक्ष में ही देवताओं का वध कर देता था ॥१३१॥ ब्रह्माजी के वरदान के कारण वह सम्पूर्ण लोकों का विनाश कर देना चाहता था । इस बात को शङ्करजी ने भी सुना और देवताओं ने

ततोऽजगवमासज्यबाणमंतकसन्निभम् । धृत्वा तं च जघानाथ दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥१३३॥
सपपात महीपृष्ठे महोल्केव च्युतो दिवः । घटनव्याकुलाद्रुद्रात्पतिता स्वेदबिंदवः ॥१३४॥
तत्राश्रुबिंदुतोजातो महारुद्राक्षकः क्षितौ । अस्यैव च फलं जीवा न जानंत्यतिगुह्यतः ॥१३५॥
ततः कैलासशिखरे देवदेवं महेश्वरम् । प्रणम्य शिरसा भूमौ स्कंदो वचनमब्रवीत् ॥१३६॥

स्कन्द उवाच

रुद्राक्षस्य फलं नाथ ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः । जप्येथ धारणे चैव दर्शने स्पर्शनेपि वा ॥१३७॥

ईश्वर उवाच

लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिर्वै स्पर्शनेन च । दशकोटिफलं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥१३८॥
लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च । जप्त्वास्यलभते पुण्यं नात्र कार्या विचारणा ॥१३९॥
उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षधारणेन वै ॥१४०॥
कंठे रुद्राक्षमादाय श्वापदो म्रियते यदि । सोपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुन र्मानुषादयः ॥१४१॥
ध्यानधारणहीनोपि रुद्राक्ष यदि धारयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥१४२॥

कार्तिकेय उवाच

एकवक्त्रं द्वित्रिचतुःपंचषड्वक्त्रमेव च । सप्ताष्टनववक्त्रं च दशैकादशवक्त्रकम् ॥१४३॥
रुद्राक्षं द्वादशास्यं च त्रयोदशमुखं तथा । चतुर्दशास्यसंयुक्तं स्वयमुक्तं च शंकरम् ॥१४४॥
तेषां च तन्मुखानां च देवताः काश्च तद्वद । गुणो वा कीदृशस्तेषां दोषो वा जगदीश्वर ॥१४५॥
यदि मेऽनुग्रहो वास्ति कथयस्व यथार्थतः ।

भी शङ्करजी से निवेदन किया ॥१३२॥ इसके बाद अजगव धनुष धारण करके उस पर यमराज के समान भयङ्कर वाण चढाकर अपनी दिव्य दृष्टि से उसे देखकर शङ्करजी ने उसका वध कर दिया ॥१३३॥ वह पृथिवी पर आकाश से टूटी हुयी महोल्का के समान गिर पड़ा। इस कार्य को करने से श्रान्त शिवजी के शरीर से स्वेद की विन्दुएँ पृथिवी पर गिरीं ॥१३४॥ वहाँ पर आँसू की विन्दु से महारुद्राक्ष उत्पन्न हुआ। इसके रहस्यात्मक फल को जीव नहीं जानते हैं ॥१३५॥ उसके बाद कैलास पर्वत पर देवाराध्य भगवान् शिव को पृथिवी पर शिर सटाकर प्रणाम करके उनसे स्कन्दजी ने पूछा ॥१३६॥ **स्कन्दजी ने कहा—** हे नाथ ! मैं रुद्राक्ष की महिमा को तत्त्वतः जानना चाहता हूँ। मन्त्र जपने में, धारण करने में तथा दर्शन करने एवं स्पर्श करने से जो फल होता है, उसे मैं जानना चाहता हूँ॥१३७॥ **शङ्करजी ने कहा—** रुद्राक्ष का दर्शन करने से लाख गुना पुण्य होता है तथा स्पर्श करने से करोड़ गुना पुण्य होता है। उसको धारण करने से दश करोड़ गुना पुण्य होता है ॥१३८॥ रुद्राक्ष की माला से जप करने से लाख करोड़ गुणा तथा लाख करोड़ सौ गुना फल होता है, इस विषय में कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥१३९॥ रुद्राक्ष को धारण करने मात्र से ही उच्छिष्ट रहने वाला अथवा पापी मनुष्य भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१४०॥ यदि कोई जीव गले में रुद्राक्ष धारण करके मर जाता है तो वह भी रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है, मनुष्यों आदि के विषय में क्या कहना है ?॥१४१॥ ध्यान तथा धारणा से रहित व्यक्ति भी यदि रुद्राक्ष धारण करता है तो वह भी सभी पापों से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥१४२॥ **कार्तिकेयजी ने कहा—** स्वयं शङ्करजी ने रुद्राक्ष को एकमुख वाला, दो मुखी, तीन मुखी, चार मुखी, पाँच मुखी, छह मुखी, सात मुखी, आठ मुखी, नव मुखी, दश मुखी, ग्यारह मुखी, बारह मुखी, तेरह मुखी और चौदह मुखी बतलाया है ॥१४३-१४४॥ उन सबों के तथा उनके

ईश्वर उवाच

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१४६॥
तस्मात्तु धारयेद्देहे सर्वपापक्षयाय च। शिवलोकं सगच्छेच्च शिवेन सह मोदते ॥१४७॥
महता पुण्ययोगेन हरानुग्रहकारणात्। एकवक्त्रं लभेन्मर्त्यो कैलासं च षडानन ॥१४८॥
देवदेवो द्विवक्त्रं च यस्तु धारयते नरः । सर्व पापक्षयं याति यद्गुह्यं गोवधादिकम् ॥१४९॥
स्वर्गं चाक्षयमाप्नोति द्विवक्त्रधारणात्ततः । त्रिवक्त्रमनलस्साक्षाद्यस्य देहे प्रतिष्ठति ॥१५०॥
तस्य जन्मार्जितं पापं दहत्यग्निरिवेंधनम्। स्त्रीहत्याब्रह्महत्याभ्यां बहूनां चैव हत्यया ॥१५१॥
यत्पापं लभते मर्त्यः सर्वं नश्यति तत्क्षणात्। यत्फलं वह्निपूजायामग्निकार्ये घृताहुतौ ॥१५२॥
तत्फलं लभते धीरः स्वर्गं चानंतमश्नुते। त्रिवक्त्रं धारयेद्यस्तु स च ब्रह्मसमो भुवि ॥१५३॥
निचितं दुष्कृतं सर्वं दहेज्जन्मनि जन्मनि । न चोदरे भवेद्रोगो न चैवापटुतां व्रजेत् ॥१५४॥
पराजयं न लभते नाग्निना दह्यते गृहम् । एतान्यन्यानि सर्वाणि वज्रादेश्च निवारणम् ॥१५५॥
नाशुभं विद्यते किंचित्त्रिवक्त्रस्य तु धारणात्। चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा यस्य देहे प्रतिष्ठति ॥१५६॥
स भवेत्सर्वशास्त्रज्ञो द्विजो वेदविदांवरः । सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञः स्मार्तः पौराणिको भवेत् ॥१५७॥
यत्पापं नरहत्यायां बहुसत्त्वेषु वेश्मसु । तत्सर्वं दहते शीघ्रं चतुर्वक्त्रस्य धारणात् ॥१५८॥

मुखों के देवता कौन है, इसे आप बतलायें, उन सबां का गुण क्या है अथवा दोष क्या है ? हे जगदीश्वर ! उसे आप वतलायें ॥१४५॥ यदि आप की मुझ पर कृपा है तो उसे यथार्थ रूप से मुझे बतलाइये । **शङ्करजी ने कहा**— एकमुखी रुद्राक्ष स्वयं शिव स्वरूप होता है और वह ब्रह्महत्या को दूर करता है ॥१४६॥ अतएव अपने शरीर पर उसको सभी पापों का नाश करने के लिए धारण करना चाहिए । उसको धारण करने वाला शिवलोक में जाता है और भगवान् शिव के साथ आनन्दानुभव करता है ॥१४७॥ हे षडानन ! जब महान पुण्य उदित होता है तथा उस पर शङ्करजी की कृपा होती है । एक मुखी रुद्राक्ष तथा कैलास की प्राप्ति होती है ॥१४८॥ दो मुखी रुद्राक्ष देवदेव शिव स्वरूप होता है उसको जो धारण करता है उसके गोप्य गोवध आदि जन्य पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥१४९॥ अतएव दो मुखी रुद्राक्ष धारण करने वाला आक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है । तीन मुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि स्वरूप है । वह जिसके शरीर पर रहता है ॥१५०॥ वह उसके पापों को उसी तरह विनष्ट कर देता है जिस तरह अग्नि इन्धन को जला देती है । स्त्री हत्या, ब्रह्महत्या तथा अनेक लोगों की हत्या करने से ॥१५१॥ जो पाप होता है उन सभी पापों को वह विनष्ट कर देता है । अग्निहोत्र के समय अग्नि में घी की आहुति देने से जिस फल की प्राप्ति होती है॥१५२॥ धीर पुरुष उस फल को तथा अनन्त स्वर्ग को रुद्राक्ष धारण करके प्राप्त करता है । जो मनुष्य तीन मुखी रुद्राक्ष धारण करता है वह ब्रह्माजी के समान हो जाता है ॥१५३॥ उसके जन्म जन्मान्तार में अर्जित पापों को वह भस्म कर देता है । उसके पेट में कोई रोग नहीं होता है और वह मूर्ख भी नहीं होता है ॥१५४॥ उसका कभी पराजय नहीं होता है तथा उसके घर में कभी आग भी नहीं लगती है । इन सबों के अतिरिक्त उसके घर पर कभी बिजली नहीं गिरती है ॥१५५॥ तीन मुखी रुद्राक्ष धारण करने वाले का अकल्याण होता ही नहीं है । चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा स्वरूप होता है, वह जिसके शरीर पर रहता है ॥१५६॥ वह ब्राह्मण सभी शास्त्रों का ज्ञाता और वेदज्ञों में श्रेष्ठ होता है । वह सभी धर्मों और अर्थों के तत्त्व को जानने वाला तथा स्मार्त पौराणिक होता है ॥१५७॥ मनुष्य को मारने से, तथा घर में बहुत से जीवों को मारने से होने वाले पापों को वह वह शीघ्र ही भस्म कर देता है,

महेशस्तुष्यते नित्यं भूतानामधिपो भवेत् । सद्योजातस्तथेशानस्तत्पुरुषोऽघोर एव च॥१५९॥
वामदेव इमे देवा वक्त्रैः पंचभिराश्रिताः । अतः सर्वत्रभूयिष्ठाः पंचवक्त्रो धरातले ॥१६०॥
रुद्रस्यात्मजरूपोऽयं तस्मात्तंधारयेद्बुधः । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥१६१॥
तावत्कालं शिवस्याग्रे पूजनीयः सुरासुरैः । सार्वभौमो भवेद्भूमौ शर्वतेजाः शिवालये ॥१६२॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पंचवक्त्रं तु धारयेत् । षड्वक्त्रं कार्तिकेयं तु धारयन् दक्षिणे भुजे ॥१६३॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । स्कंदस्य सदृशः शूरः कल्पांते समुपस्थिते ॥१६४॥
नात्र पराजयं चैति गुणानामाकरो भुवि । कुमारत्वमवाप्नोति यथागौरीशनंदनः ॥१६५॥
ब्राह्मणो भूपपूज्यश्च क्षत्रियो लभते जयम् । वैश्याः शूद्रादयो वर्णाः सदैश्वर्यप्रपूरिताः ॥
तस्यैव वरदा गौरी मातेव सुलभा भवेत् ॥१६६॥
ततो भुजबलादेव विश्वतेजा भवेन्नरः । वाग्मी धीरस्सभायां च नृपवेश्मनि संसदि ॥१६७॥
न च कातरतामेतिनैव भंगो भवदेध्रुवम् ॥१६८॥
एतान्यन्यानि सर्वाणि षड्वक्त्रस्यैव धारणात् । सप्तवक्त्रो महासेनस्त्वनंतो नाम नागराट् ॥१६९॥
अस्य प्रत्येकवक्त्रे तु प्रतिनागा व्यवस्थिताः । अनंतः कर्कटश्चैव पुंडरीकोऽथ तक्षकः ॥१७०॥
विषोल्बणश्च कारीषः शंखचूडश्च सप्तमः । एतेनागा महावीर्याः सप्तवक्त्रे व्यवस्थिताः ॥१७१॥
अस्य धारणमात्रे तु विषं न क्रमते तनौ । हरश्च परमप्रीतो भवेन्नागेश्वरे यथा ॥१७२॥
प्रीत्यास्य सर्वपापानि क्षयं यांति दिने दिने । ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयादि गुरुतल्पजम् ॥१७३॥

यह चतुर्मुखी रुद्राक्ष के धारण की महिमा है ॥१५८॥ उससे शङ्करजी सदा सन्तुष्ट रहते हैं वह सभी जीवों का स्वामी होता है, सद्योजात, ईशान, तत्पुरुष, अघोर ॥१५९॥ तथा वामदेव ये पाँचो देवता पाँचमुखी रुद्राक्ष में रहते हैं। अतएव पञ्चमुखी रुद्राक्ष सर्वत्र पृथिवी पर अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है ॥१६०॥ यह रुद्र के पुत्र स्वरूप है अतएव इसको धारण करना चाहिए। करोड़ हजार कल्प तथा सैकड़ों हजार कल्पों तक ॥१६१॥ उसको धारण करने वाला शिव के समक्ष पूज्य होता है। वह भूलोक में सर्वभौम राजा होता है तथा शिवलोक में जाकर शिव के तेज से सम्पन्न होता है ॥१६२॥ अतएव सभी प्रयत्नों के द्वारा पञ्चमुखी रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए। छह मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वरूप होता है और उसको दाहिनी भुजा में धारण करने वाला ॥१६३॥ ब्रह्महत्या आदि के पापों से मुक्त हो जाता है। कल्प के अन्त में वह स्कन्द के ही समान शूरवीर होता है ॥१६४॥ उसका कहीं भी पराजय नहीं होता है, वह गुणों का आकर होता है। वह गौरीश नन्दन के ही समान कुमारत्व को प्राप्त करता है ॥१६५॥ उसको धारण करने वाला ब्राह्मण राजा का पूज्य होता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य तथा शूद्र आदि वर्ण सदा ऐश्वर्य से परिपूर्ण होते हैं। उसको वरदात्री गौरी, माता के समान सुलभ होती हैं ॥१६६॥ उसके बाद अपनी भुजा के बल से ही सम्पूर्ण तेजों से सम्पन्न वह मनुष्य सभा में, राजगृह में तथा संसद में वाग्मी (बोलने में निपुण) तथा धैर्य सम्पन्न होता है ॥१६७॥ उसमें न तो कायरता आती है और न वह हतोत्साह होता है ॥१६८॥ ये सभी गुण छह मुखी रुद्राक्ष के धारण से आते हैं। सप्तमुखी रुद्राक्ष महासेन अनन्त नामक नामराज स्वरूप होता है ॥१६९॥ इसके प्रत्येक मुख में अलग-अलग नागों का निवास होता है। अनन्त, कर्कट, पुण्डरीक, तक्षक, विषोल्वण, करीष और शंखचूड, ये महाबलवान् सात नाग सप्तमुखी रुद्राक्ष में व्यवस्थित हैं ॥१७०-१७१॥ इस रुद्राक्ष के धारण करने मात्र से कभी भी शरीर में विष व्याप्त नहीं होती है, उसी तरह जिस तरह नागेश्वर शिवजी के शरीर में कभी

यत्पापं लभते मर्त्यः सर्वं नश्यति तत्क्षणात् । देवस्य सदृशं भोग्यं त्रैलोक्ये निश्चितं लभेत् ॥१७४॥
अष्टवक्रो महासेनः साक्षाद्देवो विनायकः । अस्यैव धारणादेव यत्पुण्यं तच्छृणुष्वमे॥१७५॥
जन्मजन्म न मूर्खः स्यान्नातुरो न च नष्टधीः। अविघ्नं सर्वकार्येषु तस्यैव सततं भवेत्॥१७६॥
नैपुण्यं लिपिकार्येषु महाकार्येषु कौशलम् । सर्वारंभादिकार्येषु क्षमं तस्य दिने दिने॥१७७॥
अर्थकूटं तुलाकूटं सर्वकूटं तथैव च । शिश्नोदरकरेणैव संस्पृशेद्वा गुरुस्त्रियम्॥१७८॥
एवमादीनि सर्वाणि हंति पापानि सर्वथा । अक्षयं त्रिदिवं भुक्त्वा मुक्तो याति परां गतिम्॥१७९॥
गुणान्येतानि सर्वाणि अष्टवक्त्रस्य धारणात् । नवास्यं भैरवं प्रोक्तं धारयेद्यस्तु बाहुतः ॥१८०॥
कपिलं मुक्तिदं धृत्वा मम तुल्यबलो भवेत्। लक्षकोटिसहस्त्राणि ब्रह्महत्याः करोति यः ॥१८१॥
ताःसर्वा दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात् । सुरलोके सदादेवैः पूजितो मघवान्यथा ॥१८२॥
हरवद्वरवेश्मस्थो गणेशो नात्र संशयः । पन्नगाश्च विनश्यंति दशवक्त्रस्य धारणात्॥१८३॥
वक्त्रे चैकादशे वत्स रुद्राश्चैकादशस्मृताः । शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१८४॥
अश्वमेधसहस्त्राणि यज्ञकोटिशतानि च । गवांशतसहस्त्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥१८५॥
तत्फलं शीघ्रमाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात्। हरस्य सदृशो लोके पुनर्जन्म न विद्यते ॥१८६॥
रुद्राक्षं द्वादशास्यं यः कंठदेशे तु धारयेत् । आदित्यस्तुष्यते नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थितः ॥१८७॥

विषव्याप्त नहीं होता है ॥१७२॥ इसकी प्रसन्नता के कारण सभी पाप प्रतिदिन विनष्ट हो जाते हैं । ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी तथा गुरु की शय्यापर सोना आदि से उत्पन्न पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं । वह त्रैलोक्य में देवता के समान भोगों को प्राप्त करता है ॥१७३-१७४॥ आठ मुखों वाला रुद्राक्ष साक्षात् गणेश स्वरूप होता है, इसके धारण करने से होने वाले पुण्य को तुम सुनो ॥१७५॥ वह किसी भी जन्म में न तो मूर्ख होता है, न रोगी होता है कभी भी उसके कार्यो में कोई विघ्न नहीं आता है ॥१७६॥ लिखने के काम में उसको निपुणता प्राप्त होती है और सभी कार्यो के करने में वह कुशल होता है । वह सभी कार्यो के करने में प्रतिदिन समर्थ बना रहता है ॥१७७॥ उसके अर्धकूट, तुलाकूट तथा सर्वकूट जन्य पाप शिश्न, उदर या हाथ से गुरु पत्नी के स्पर्श जन्य पाप, इसीतरह के दूसरे भी पाप आठमुखी रुद्राक्ष के धारण से तत्काल विनष्ट हो जाते हैं । वह अक्षय स्वर्गलोक का भोग करके मुक्त हो जाता है ॥१७८-१७९॥ ये सभी आठ गुण आठ मुखी रुद्राक्ष के धारण के हैं । नवमुखी रुद्राक्ष भैरव स्वरूप होता है । उसको जो अपनी भुजाओ में धारण करता है ॥१८०॥ उस कपिल वर्ण के मुक्तिप्रद रुद्राक्ष को धारण करने वाला मेरे समान बलवान् होता है । लाख करोड़ ब्रह्महत्या को करने वाले के भी सभी पापों को नवमुखी रुद्राक्ष तत्क्षण ही भस्म कर देता है और देवलोक में देवता उसकी इन्द्र के समान पूजा करते हैं ॥१८१-१८२॥ शङ्करजी के ही समान वह श्रेष्ठ गृह में स्थित गणेश हो जाता है । दशमुखी रुद्राक्ष के धारण करने से सर्पो का विनाश हो जाता है ॥१८३॥ हे वत्स ! ग्यारह मुखी रुद्राक्ष में ग्यारहो रुद्रों का निवास होता है । जो व्यक्ति इसको अपनी शिखा में धारण करता है, मैं उसका फल बतलाता हूँ ॥१८४॥ हजारो अश्वमेघ यज्ञों, सैकड़ों करोड़ अन्य यज्ञों तथा विधिपूर्वक एक लाख गायों के दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है ॥१८५॥ उस फल की प्राप्ति एकादश मुखी रुद्राक्ष के धारण से हो जाती है, वह मनुष्य लोक में शिवजी के समान हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥१८६॥ यदि कोई मनुष्य अपने गले में द्वादशमुखी रुद्राक्ष को धारण करता है तो उससे आदित्य की तुष्टि होती है । उस रुद्राक्ष में द्वादशादित्य का निवास होता है ॥१८७॥ गोमेध तथा नरमेध याग से जिस फल की प्राप्ति होती

गोमेधं नरमेधं च कृत्वा यत्फलमश्नुते । यत्फलं शीघ्रमाप्नोति वज्रादेश्च निवारणम् ॥१८८॥
नैववह्नेर्भयं चैव न च व्याधिः प्रवर्तते । अर्थलाभं सुखं भुंक्त ईश्वरो न दरिद्रता ॥१८९॥
हस्त्यश्वनरमार्जारमूषकाउच्छशकांस्थतथा । व्यालदंष्ट्रिसृगालादीन् हत्वा व्याघातयत्यपि ॥१९०॥
मुच्यते नात्र संदेहो वक्त्रद्वादशधारणात् । वक्त्र त्रयोदशो रुद्रो रुद्राक्षः प्राप्यते यदि ॥१९१॥
शंतमः स तु विज्ञेयः सर्वकामफलप्रदः । सुधारसायनं चैव धातुवादश्च पादुका ॥१९२॥
सिध्यंति तस्य वै सर्वे भाग्ययुक्तस्य षण्मुख । मातृपितृस्वसृभ्रातृगुरून्वाथ निहत्य च ॥१९३॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो त्रयोदशास्यधारणात् । अक्षयं लभते स्वर्गं यथा देवो महेश्वरः ॥१९४॥
चतुर्दशमुखं वत्स रुद्राक्षं यदि धारयेत् । सततं मूर्ध्नि बाहौ वा शक्ति पिंडंशिवस्य च॥१९५॥
किं पुनर्बहुनोक्तेन वर्णितेन पुनः पुनः। पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यगौरवात् ॥१९६॥

कार्तिकेय उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि वक्त्रे वक्त्रे यथाविधि । न्यसनं केन मंत्रेण धारणं वा कथं वद ॥१९७॥

ईश्वर उवाच

श्रृणु षण्मुख तत्त्वेन वक्त्रे वक्त्रे यथाविधि । अमंत्रोच्चारणादेव गुणाह्येते प्रकीर्तिताः ॥१९८॥
यः पुनर्मंत्रसंयुक्तं धारयेद्भुवि मानवः । गुणास्तस्य महत्त्वं च कथितुं नैव शक्यते ॥१९९॥
इदानीं मंत्रा दिश्यंते ॐ रुद्र एकवक्त्रस्य, ॐ खं द्विवक्त्रस्य ॐ बुं त्रिवक्त्रस्य, ॐ ह्रीं चतुर्वक्त्रस्य, ॐ ह्रां पंचवक्त्रस्य, ॐ हूं षड्वक्त्रस्य, ॐ ह्रः सप्तवक्त्रस्य, ॐ कं अष्टाक्त्रस्य, ॐ जूं नववक्त्रस्य, ॐ क्षं दशवक्त्रस्य, ॐ श्रीं एकादशवक्त्रस्य, ॐ ह्रीं द्वादशवक्त्रस्य, ॐ क्षीं त्रयोदशवक्त्रस्य, ॐ व्रां चतुर्दशवक्त्रस्य,

---

है, उस फल की प्राप्ति मनुष्य द्वादशमुखी रुद्राक्ष के धारण से कर लेता है । उससे वज्रपात इत्यादि नहीं होता है॥१८८॥ उसके यहाँ अग्नि और रोग का भय नहीं होता है । वह अर्थलाभ करके सुख भोग करता है और ईश्वर हो जाता है । उसको दरिद्रता नहीं होती है ॥१८९॥ हाथी, घोडा, मनुष्य, बिल्ली, चूहा, खरगोश, सर्प, दाँत वाले जीव शृगाल इत्यादि को मारकर भी वह ॥१९०॥ उसके पाप से निःसन्देह रूप से मुक्त हो जाता है । यह द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारण का फल है । यदि त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष मिल जाय तो वह साक्षात् रुद्र स्वरूप होता है॥१९१॥ उसको सर्वाधिक शान्तिप्रद तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला जानना चाहिए । हे षण्मुख ! उस रुद्राक्ष को धारण करने वाले व्यक्ति की अमृत रसायन, धातुवाद तथा पादुका ये सबके सब सिद्ध होते हैं ॥१९२॥ हे वत्स ! यदि कोई चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष को सदा शिर तथा भुजा में धारण करता है तो वह शिव का शक्तिपिण्ड रुद्राक्ष होता है ॥१९५॥ इसको धारण करने वाले के विषय में बहुत क्या कहना है, देवता उसकी सदैव पूजा करते हैं । अत्यधिक पुण्य होने पर ही वह रुद्राक्ष प्राप्त होता है ॥१९६॥ **कार्तिकेयजी ने कहा**— हे भगवन् ! रुद्राक्ष के प्रत्येक मुखों में किस मन्त्र से न्यास करना चाहिए तथा धारण कैसे करना चाहिए इसे आप मुझे बतलायें॥१९७॥ **शिवजी ने कहा**— हे षणमुख सुनो ! प्रत्येक मुख में मन्त्रों का न्यास किए बिना ही ये सभी गुण होते हैं ॥१९८॥ जो मनुष्य भूलोक में मन्त्रपूर्वक रुद्राक्ष को धारण करता हैं उसके गुणों तथा महत्त्व का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥१९९॥ अब मैं उन मन्त्रों को बतलाता हूँ एकमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओम् रुद्र** है दो मुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओं खम्** है । तीन मुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओं वुं** हैं चमुर्मुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओं ह्रीं** है, पञ्चमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओं**

एवं मंत्रा यथाक्रमं न्यस्तव्याः । शिरस्युरसि मालां च गृहीत्वा यो व्रजेन्नरः ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति नान्यथा ॥२००॥
सर्वेषामपि वक्त्राणां धारणे मत्समो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रुद्राक्षं पुत्र धारय ॥२०१॥
धारयित्वा तु रुद्राक्षं म्रियते यः क्षितौ नरः । सयाति मत्पुरं रम्यं सर्वदेवैः प्रपूजितः ॥२०२॥
मरुदेशे पुरा वत्स वाणिज्याय किल स्थले। गच्छन्वणिक्सुतस्तात तरौ प्रेता प्रपीडितः ॥२०३॥
ननीनर्ति ततः प्रेता द्विजेन परमैक्षि च ।

द्विज उवाच

का त्वं नृत्यसि दीनासि संवृता जीर्णवाससा ॥२०४॥

ईश्वर उवाच

आह सा च द्विजं प्राह देवदूतान्मया श्रुतम् । अस्य चारुनरस्यैव वज्रपातेन सांप्रतम् ॥२०५॥
निश्चितं निधनं विप्र मद्भर्त्ता तु भविष्यति। एतस्मिन्नंतरे नाकाद्वज्रं तस्य शिरोपरि ॥२०६॥
अपतत्स पपातोर्व्यां रुद्राक्षस्यार्धखंडके। ततो मम पुरात्पुत्र विमानं चापतदद्भुतम् ॥२०७॥
समारुह्य ततः श्रीमांस्तत्र तिष्ठति संचिरम्। ममांशकं समासाद्य ईश्वरः कौ धनी भवेत् ॥२०८॥
एवं रुद्राक्षखंडे च मृतस्य सुगतिः सुत । ज्ञानेन धारिणः पुंसः फलं वक्तुं न शक्नुमः॥२०९॥

हः है छह मुखी रुद्राक्ष का मंत्र **ॐ हूम्** है । सप्तमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ॐ हुः** है । अष्टमुखी रुद्राक्ष का मंत्र **ओम् कम्** है । नवमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ॐ जूं** है । दशमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओम् क्षम्** है । एकादश मुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओम् श्रीम्** है, द्वादशमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओम ह्रीम्** है । त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओम क्षौम्** है और चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष का मन्त्र **ओमव्रां** है । इसरह से क्रमानुसार मन्त्रों का न्यास करना चाहिए । जो मनुष्य अपने शिर पर या वक्षः स्थल पर रुद्राक्ष माला को धारण करके कहीं जाता है । वह पग-पग पर अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥२००॥ सभी मुखों वाले रुद्राक्ष को धारण करने वाला मनुष्य मेरे समान हो जाता है । अतएव हे पुत्र ! सभी प्रयत्नों के द्वारा रुद्राक्ष को धारण करो ॥२०१॥ भूलोक में रुद्राक्ष को धारण करके जो मनुष्य मर जाता है, वह अत्यन्त मनोहर मेरे नगर में जाता है वह सभी देवताओं से पूजित होता है ॥२०२॥ हे वत्स ! प्राचीनकाल में व्यापार करने के लिए जाते हुए किसी वणिक् पुत्र को किसी प्रेतिनी ने पीडित किया । उसके बाद वह प्रेतनी खूब नृत्य करने लगी । उसे द्विज ने देखा तो **द्विज ने कहा—** अरे तुम दीन, फटे वस्त्रों को पहनी हो, क्यों नृत्य कर रही हो ?॥२०३-२०४॥ **ईश्वर ने कहा—** उसके बाद वह प्रेतिनी बोली मैंने देवदूत के मुख से सुना है कि इस सुन्दर मनुष्य का इस समय वज्रपात से मृत्यु निश्चित है और वही मेरा पति होगा । उसी समय आकाश से उसके शिर पर वज्रपात हुआ ॥२०५-२०६॥ उसके कारण वह रुद्राक्ष के आधे टुकड़े के ऊपर गिर पड़ा । हे पुत्र ! उसी समय मेरे लोक से शीघ्र ही वहाँ विमान आया ॥२०७॥ उसके बाद उस विमान पर चढकर वह मेरे लोक में आया और दीर्घकाल से यहाँ है । मेरे अंश को प्राप्त करके वह पृथिवी पर धनिकों का स्वामी होगा ॥२०८॥ हे पुत्र ! रुद्राक्ष के टुकड़े पर गिरने से सुन्दर गति होती है और जो जानकार रुद्राक्ष धारण करता है उसके फल का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥२०९॥ जो रुद्राक्ष की माला अथवा एक रुद्राक्ष को धारण करके मर जाता है, वह शैव

स शैवो वा भवेच्छाक्तो गाणपत्योऽथसौरकः । यो ददाति मृतो मालामेकं रुद्राक्षकं तु वा ॥२१०॥
यः पठेत्पाठयेद्वापि श्रावयेच्छृणुतेपि वा । सर्वपापात्प्रमुक्तात्मा सुखं स्वर्गं लभेत् क्रमात् ॥२११॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे रुद्राक्षमाहात्म्यं नामैकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥५९॥

साठवाँ अध्याय

स्कन्द उवाच

अपरस्यापि पृच्छामि फलस्य पूततां तरोः । सर्वलोकहितार्थाय वद नो जगदीश्वर ॥१॥

ईश्वर उवाच

धात्रीफलं परं पूतं सर्वलोकेषु विश्रुतम् । यस्य रोपान्नरो नारी मुच्यते जन्मबंधनात् ॥२॥
पावनं वासुदेवस्य फलं प्रीतिकरं शुभम् । अस्य भक्षणमात्रेण मुच्यते सर्वकल्मषात् ॥३॥
भक्षणे च भवेदायुः पाने वै धर्मसंचयः । अलक्ष्मीनाशनं स्नाने सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात् ॥४॥
यस्मिन् गृहे महासेन धात्री तिष्ठति सर्वदा । तस्मिन् गृहे न गच्छंति प्रेता दैत्यराक्षसाः ॥५॥
न गंगा न गया चैव न काशी न च पुष्करम् । एकैव हि नृणां धात्री संप्राप्ते हरिवासरे ॥६॥
एकादश्यां पक्षयुगे धात्रीस्नानं करोति यः । सर्वपापक्षयं यांति विष्णुलोके महीयते ॥७॥
धात्रीफलं सदा सेव्यं भक्षणे स्नान एव च । नियतं पारणे विष्णोः स्नानमात्रे हरेर्दिने ॥८॥

या शाक्त या गाणपत्य अथवा सौर (सूर्य भक्त) होता है ॥२१०॥ जो इस कथा को सुनता है या सुनाता है या पढता अथवा पढवाता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर क्रमशः सुखपूर्वक स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥२११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के रुद्राक्ष माहात्म्य वर्णन नामक उनसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५९।।

धात्री (आँवले) का माहात्म्य, प्रेतों की कथा तथा तुलसी का माहात्म्य वर्णन

स्कन्द ने कहा— हे जगदीश्वर ! मैं दूसरे भी पवित्र वृक्षों की पवित्रता के विषय में पूछ रहा हूँ उसे आप वतलायें, जिससे कि संसार का कल्याण हो । **ईश्वर ने कहा—** धात्री (आँवला) का फल अत्यन्त पवित्र है । उसके रोपने मात्र से ही स्त्री अथवा पुरुष जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥२॥ वह पवित्र तथा भगवान् वासुदेव को प्रसन्न करने वाला है । इसको खाने मात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥३॥ आँवले के खाने से आयु वढती है और उसका रस पीने से धर्म बढता है । आँवले के रस से स्नान करने से अलक्ष्मी का नाश होता है तथा सभी ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है ॥४॥ हे महासेन ! जिसके घर में आँवले का फल सदैव रहता है, उस घर में प्रेत, दैत्य तथा राक्षस प्रवेश नहीं करते हैं ॥५॥ यदि एकादशी के दिन एक आँवला का फल मिल जाय तो गङ्गा में, गया में, काशी में तथा पुष्कर में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥६॥ दोनों पक्षों की एकादशी तिथि को जो आँवले से स्नान करता है, उसके सभी पातक क्षीण हो जाते हैं और वह भगवान् विष्णु के लोक में पूजित होता है ॥७॥ भोजन तथा स्नान के समय आँवले के फल का सदा सेवन करना चाहिए । एकादशी के पारण में तथा स्नान करने

संयते पारणे चैव धात्र्येकस्पर्शने नरः । भुक्त्वा तु लंघयेद्यस्तु एकादश्यां सितासिते ॥९॥
एकेनैवोपवासेन कृतेन तु षडानन । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥१०॥
अक्षयं लभते स्वर्गं विष्णुसायुज्यमाव्रजेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्रीव्रतं समाचर ॥११॥
धात्री द्रवेण सततं यस्य केशाः सुरंजिताः । न पिबेत्स पुनर्मातुः स्तनं कश्चित्षडानन॥१२॥
धात्री दर्शनसंस्पर्शान्नाम्नउच्चारणेपि वा। वरदः संमुखो विष्णुः संतुष्टो भवति प्रियः॥१३॥
धात्रीफलं च यत्रास्ते तत्र तिष्ठति केशवः। तत्र ब्रह्मा स्थिरापद्मा तस्मात्तां तु गृहे न्यसेत्॥१४॥
अलक्ष्मी र्नश्यते तत्र यत्र धात्री प्रतिष्ठति । संतुष्टाःसर्वदेवाश्च न त्यजंति क्षणं मुदा॥१५॥
धात्री फलेन नैवेद्यं यो ददाति महाधनम् । तस्य तुष्टोभवेद्विष्णुर्नान्यैः क्रतुशतैरपि ॥१६॥
स्नात्वा धात्रीद्रवेणैव पूजयेद्यस्तुमाधवम् । सोभीष्टफलमाप्नोति यद्वा मनसि वर्तते॥१७॥
तथैव लक्षणं स्मृत्वा पूजयित्वा फलेन तु । सुवर्णशतसाहस्त्रं फलमेति नरोत्तमः ॥१८॥
या गातिर्ज्ञानिनां स्कंद मुनीनां योगसेविनाम्। गतिं तां समावाप्नोति धात्रीसेवारतो नरः ॥१९॥
तीर्थसेवाभिगमने व्रतैश्च विविधैस्तथा । सागतिर्लभ्यते पुंसां धात्रीफलसुसेवया ॥२०।
प्रीतिश्च सर्वदेवानां देवीनां नो गणस्य च । संमुखा वरदा स्नाने धात्रीफलनिषेवणे ॥२१॥
ग्रहा दुष्टाश्च ये केचिदुग्राश्च दैत्यराक्षसाः । सर्वे न दुष्टतां यांति धात्रीफलसुसेवनात् ॥२२॥
सर्वयज्ञेषु कार्येषु शस्तं चामलकी फलम्। सर्वदेवस्य पूजायां वर्जयित्वा रविं सुत॥२३॥

के समय आँवले का प्रयोग अवश्य करे ॥८॥ संयत होकर पारण करने से एक आँवले का स्पर्श करने वाला तथा आँवला खाकर दोनो एकादशी का उपवास करने वाला मनुष्य ॥९॥ एक ही उपवास के द्वारा सात जन्मों में किए गये पापों से मुक्त हो जाता है ॥१०॥ वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करके भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है, अतएव सारे प्रयत्नों के द्वारा आँवले का व्रत करो ॥११॥ जिसके केश सदैव आँवले के रस से रंजित होते हैं, वह पुनः संसार में आकर अपनी माता के स्तन पान को नहीं करता है ॥१२॥ आँवला के दर्शन, स्पर्श, तथा नामोच्चारण करने मात्र से वर देने वाले भगवान् संतुष्ट होते हैं । वहाँ पर ब्रह्माजी तथा लक्ष्मीजी स्थिर रहती है, अतएव आँवले के फल को अपने घर में रखना चाहिए ॥१४॥ जहाँ पर आँवला रहता है वहाँ की अलक्ष्मी का नाश हो जाता है, सभी देवता वहाँ प्रसन्नता पूर्वक रहते हैं, वे उस स्थान को क्षण भर के लिए भी नहीं त्यागते हैं ॥१५॥ जो आँवले के फल का भगवान् को भोग लगाता है, उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं, सैकड़ों यज्ञों के करने से वे उतना प्रसन्न नहीं होते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य आँवले के रस से स्नान करके भगवान् माधव की पूजा करता है वह अपने अभिप्रेत फल को प्राप्त करता है अथवा जो उसके मन में रहता है उसे प्राप्त करता है ॥१७॥ इसी लक्षण का स्मरण करके तथा आँवले के फल से पूजा करके श्रेष्ठ मनुष्य सुवर्ण के एक लाख द्रव्य का फल प्राप्त करता है॥१८॥ हे स्कन्द ! जो गति ज्ञानी मनुष्यों तथा योगियों को प्राप्त होती है, वही गति आवले की सेवा करने वाले की भी होती है ॥१९॥ तीर्थाटन करने, तथा अनेक प्रकार के व्रतों को करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति मनुष्य धात्री फल का सेवन करके प्राप्त कर लेता है ॥२०॥ आँवले के फल का सेवन करने से सभी देवताओं, देवियों था मेरे गणों की प्रसन्नता होती है वे उसका वरदान देते हैं और उस मनुष्य के अभिमुख रहते हैं॥२१॥ धात्री फल का सेवन करने वाले के जो दुष्ट ग्रह होते हैं, तथा उग्र दैत्य एवं राक्षस होते हैं, वे सबके सब शान्त हो जाते हैं ॥२२॥ सभी यज्ञों तथा कार्यों में आँवले का फल प्रशस्त होता है सूर्य को छोड़कर सभी देवताओं

तस्माद्रविदिने तात सप्तम्यां च विशेषतः। धात्रीफलानि सततं दूरतः परिवर्जयेत्॥२४॥
यस्तु स्नाति तथा श्नाति धात्रीं च रविवासरे। आयुर्वित्तं कलत्रं च सर्वं तस्य विनश्यति॥२५॥
संक्रान्तौ च भृगोवरि षष्ठ्यां प्रतिपदि ध्रुवम्। नवम्यां चाप्यमायां च धात्रीं दूरात्परित्यजेत्॥२६॥
नासिका कर्णतुंडेषु मृतस्य चिकुरेषु वा। तिष्ठेद्धात्रीफलं यस्य स याति विष्णुमंदिरम्॥२७॥
धात्रीसंपर्कमात्रेण मृतो यात्यच्युतालयम्। सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गं याति रथेन तु॥२८॥
धात्रीद्रवं नरो लिप्त्वा यस्तुस्नानं समाचरेत्। पदे पदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति धार्मिकः॥२९॥
अस्य दर्शनमात्रेण ये वै पापिष्ठजंतवः। सर्वे ते प्रपलायंते ग्रहादुष्टाश्च दारुणाः॥३०॥
पुरैकः पुल्कसः स्कंदमृगयार्थं वन गतः। मृगपक्षिगणान् हत्वा तृषया परिपीडितः॥३१॥
क्षुधयामलकीवृक्षं पुनःपीनफलान्वितम्। दृष्ट्वा संरुह्य सहसा चखाद फलमुत्तमम्॥३२॥
ततो दैवात्सवृक्षाग्रान्निपपात महीतले। वेदना गाढसंविद्धः पंचत्वमगमत्तदा॥३३॥
ततः प्रेतगणाः सर्वे रक्षोभूतगणास्तथा। तनुं वोढुं मुदा सर्वे येवै शमनसेवकाः॥३४॥
नशक्नुवंति चांडालं मृतं द्रष्टुं महाबलाः। अन्योन्यं विग्रहस्तेषां ममायमिति भाषताम्॥३५॥
ग्रहीतुं चापि नेतुं च न शक्तास्ते परस्परम्। ततस्ते तु समालोक्य गता मुनिगणान्प्रति॥३६॥

प्रेता ऊचुः

किमर्थं मुनयो धीराश्चांडालं पापकारिणम्। प्रेक्षितुं न वयं शक्ता न चापि यमसेवकाः॥३७॥

की पूजा में वह प्रशस्त है ॥२३॥ इसीलिए हे तात ! रविवार तथा सप्तमी तिथि को आँवले का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ॥२४॥ जो रविवार के दिन आँवले के फल से स्नान करता है तथा उसको खाता है उसकी आयु धन और पत्नी ये सबके सब विनष्ट हो जाते हैं ॥२५॥ संक्रान्ति के दिन, शुक्रवार को, षष्ठी तिथि को, प्रतिपदा तिथि को, नवमी को तथा अमावस्या को आँवले का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ॥२६॥ संक्रान्ति, शुक्रवार, षष्ठी तिथि, नवमी तथा आमावस्या को आँवले का दूर से ही परित्याग करना चाहिए ॥२७॥ मरा हुआ व्यक्ति जो नासिका, कान, मुख अथवा केश में आँवले का फल रखता है, वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥२७॥ आँवला का सम्पर्क होने मात्र से मरा हुआ व्यक्ति भगवान् विष्णु के लोक में जाता है। उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह रथ से स्वर्ग में जाता है ॥२८॥ जो आदमी अपने शरीर में आँवल का रस लगाकर स्नान करता है वह धार्मिक पद-पद पर अश्वमेध का फल प्राप्त करता है ॥२९॥ उसके देखने मात्र से सभी पापी जीव तथा दुष्ट ग्रह पलायन कर जाते हैं ॥३०॥ हे स्कन्द ! प्राचीन काल में एक चाण्डाल शिकार के लिए वन में गया वह मृगों और पक्षियों को मारकर प्यास से व्याकुल हो गया ॥३१॥ भूखा हुआ वह सामने विद्यमान बड़े-बड़े फलों वाले आँवला के वृक्ष को देखकर उस पर सहसा चढकर उसके फलों को खाया ॥३२॥ भाग्यवशात् वह वृक्ष के ऊपर से पृथिवी पर गिर पड़ा और अत्यधिक वेदना से पीडित होकर मर गया ॥३३॥ उसके बाद उसके शरीर को ले जाने के लिए सभी प्रेत, राक्षस, भूत तथा यमदूत वहाँ आये ॥३४॥ किन्तु महाबलवान् होने पर भी वे उसके शरीर को नहीं देख पा रहे थे। वे सब परस्पर में यह कहकर झगड़ने लगे कि यह मेरा है, यह मेरा है ॥३५॥ किन्तु वे उसको न तो छू पा रहे थे और न ले जा पा रहे थे। उसके बाद वे मुनियों को देखकर उनलोगों के पास गये॥३६॥
प्रेतों ने कहा— हे धीर मुनियों इस पापी चाण्डाल को न तो हमलोग और न यमदूत क्यों नहीं देख पा रहे हैं?॥३७॥ जो लोग ऊपर से गिरकर युद्ध से पलायन करके, साहसिक कर्म के कारण, गिराये गये, भयभीत बिजली

म्रियंते पातिता ये च स्थिरैर्युद्धपराङ्मुखाः । साहसैः पातिता भीता वज्राग्निकाष्ठपीडिताः ॥३८॥
सिंहव्याघ्रहता मर्त्या व्याघ्रै र्वा जलजंतुभिः । जलस्थलस्थिताः प्रेताः वृक्षपर्वतपातिताः ॥३९॥
पशुपक्षिहता ये च कारागारे गरे मृताः । आत्मघातमृता ये च श्राद्धादिकर्मवर्जिताः ॥४०॥
गृहकर्ममृता धूर्ता गुरुविप्रनृपद्विषः । पाषंडाः कौलिकाः क्रूरा गरदाः कूटसाक्षिणः ॥४१॥
आशौचान्नस्य भोक्तारः प्रेतभोग्या न संशयः । ममायमितिभाषन्तो नेतुं तं च न शक्नुमः ॥४२॥
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः किं वा कस्य प्रभावतः ।

मुनय ऊचुः

अनेन भक्षितं प्रेताः पक्वं चामलकीफलम् ॥४३॥
तत्संगं यांति तस्यैव फलानि प्रचुराणि च । तेनैव कारणेनायं दुष्प्रेक्ष्यो भवतां ध्रुवम् ॥४४॥
वृक्षाग्रपतितस्याथ प्राणः स्नेहान्नच त्यजेत् । नायं चारेण सूर्यस्य न चान्ये पापकारिणः ॥४५॥
धात्रीभक्षणमात्रेण पापात्पूतो व्रजेद्दिवम् ।

प्रेता ऊचुः

पृच्छामो वो ह्यविज्ञानान्न वयं निंदकाः क्वचित् ॥४६॥
विष्णुलोकाद्विमानं तु यावन्नैवात्र गच्छति । उच्यतां मुनिशार्दूला वो द्रुतं मनसि स्थितम्॥४७॥
यावद्द्विजा न घोषंति वेदमंत्रादिकल्पितम् । घोष्यंते यत्र वेदाश्च मंत्राणि विवियानि च ॥४८॥
पुराणस्मृतयो यत्र क्षणं स्थातुं न शक्नुमः । यज्ञहोमजपस्थानदेवतार्चनकर्मणाम् ॥४९॥
पुरतो वै नतिष्ठामस्तस्माद्वृत्तं समुच्यताम् । किं वै कृत्वा प्रेतयोनिं लभंते हि नरा द्विजाः॥५०॥

तथा काठ की अग्नि से पीड़ित होकर, मर जाते हैं ॥३८॥ सिंह तथा व्याघ्र से मारे गये लोग अथवा जल-जंतुओं से मारे गये, जल तथा स्थल पर रहने वाले मृत व्यक्ति, वृक्ष तथा पर्वत से गिरे हुए ॥३९॥ जिन सबों को कोई पशु या पक्षी मार देते हैं, या जो जेल में मर जाते हैं, आत्महत्या करने वाले, जिनका श्राद्ध आदि कर्म नहीं होता है॥४०॥ गृहकर्म में मरे हुए धूर्त, ब्राह्मण तथा राजा से द्वेष करने वाले, पाखण्डी, कौलिक (औघड़) विष देने वाले, क्रूर व्यक्ति, झूटी गवाही देने वाले ॥४१॥ अपवित्र अन्न को खाने वाले ये सबके सब प्रेतों के ही भोग्य होते हैं। हमलोग यह मेरा है यह मेरा है यह कहते हैं, किन्तु इसे ले नहीं जा पा रहे है ॥४२॥ यह किसके प्रभाव से तथा क्यों सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य हैं ? **मुनियों ने कहा—** हे प्रेतों इसने पके हुए आँवला के फल को खा लिया है॥४३॥ उसके ही साथ वहाँ वहुत अधिक आँवला के फल भी गिरे हुए हैं, उसीके कारण तुमलोगों के लिए यह दुष्प्रेक्ष्य हो गया है ॥४४॥ पेड़ के ऊपर से गिरने के कारण या प्रेम से प्राणों का परित्याग नहीं किया है यह सूर्य के चार के कारण अथवा किसी दूसरे कारण से नहीं मरा है ॥४५॥ आँवला के फल को खाने के कारण पापों से मुक्त होकर यह विष्णु लोक में जायेगा । **प्रेतों ने कहा—** हम अज्ञानी होने के कारण आपलोगों से पूछ रहे हैं किसी की निन्दा नहीं कर रहे हैं ॥४६॥ जव तक विष्णुलोक से इसके लिए विमान नहीं आता है तब तक हे मुनियों ! आपलोग हमारे प्रश्नों का उत्तर शीघ्र दे दें ॥४७॥ जव तक ब्राह्मण वेद के मन्त्रों का उद्घोष नहीं करते हैं तब तक आपलोग हमारे प्रश्नों का उत्तर दे दें । जहाँ विविध वेद मंत्रों का उद्घोष होता है ॥४८॥ तथा पुराणों तथा स्मृतियों का उद्घोष होता है वहाँ पर हमलोग नहीं रुक सकते हैं । यज्ञ, होम, जप स्थान तथा देवताओं की पूजा करने वालों के समक्ष हमलोग नहीं ठहरते है । अतएव आपलोग हमलोगों को वतलायें । हे ब्राह्मणों ! आपलोग बतलायें कि किन कर्मो को करके

श्रोतुच्छिामहे सम्यक्कथं वै विकृतं वपुः ।

द्विजा ऊचुः

शीतवातातपक्लेशैः क्षुत्पिपासाविशेषकः ॥५१॥
अन्यैरपि च दुःखैर्ये पीडिताः कूटसाक्षिणः। बधवंधप्रमीताश्च प्रेतास्तेनिरयं गताः ॥५२॥
छिद्रान्वेषपरा ये च द्विजानां कर्मघातिनः। तथैव च गुरूणां च ते प्रेताश्चापुनर्भवाः ॥५३॥
दीयमाने द्विजाग्र्ये तु दातारं प्रतिविध्यति। चिरं प्रेतत्वमाश्रित्य नरकान्ननिवर्तते ॥५४॥
परस्य वाऽत्मनो वा गां कृत्वा पीडनवाहने । न पालयन्ति ये मूढास्ते प्रेताः कर्मजा भुवि ॥५५॥
हीनप्रतिज्ञकाः सत्यास्तथा भग्नव्रतानराः । नलिनीदलभुक्ताश्च ते प्रेताः कर्मजा भुवि ॥५६॥
विक्रीणन्ति सुतां शुद्धां स्त्रियं साध्वीमकंटकाम् । पितृव्यमातुलादेश्च ते प्रेताः कर्मजा भुवि ॥५७॥
एते चान्ये च बहवः प्रेता जाताः स्वकर्मभिः ।

प्रेता ऊचुः

न भवंति कथं प्रेताः कर्मणा केन वा द्विजाः ॥५८॥
हिताय वद नस्तूर्णं सर्वलोकहितं परम् ।

द्विजा ऊचुः

येन चैव कृतं स्नानं जले तीर्थस्य धीमता ॥५९॥
नमस्कृतं परं लिंगं न प्रेतो जायते नरः । एकादश्यामुपोष्यैव द्वादश्यां च विशेषतः ॥६०॥
पूजयित्वा हरिं मर्त्याः प्रेतत्वं न व्रजंति वै । वेदाक्षरप्रसूक्तैश्च स्तोत्रमंत्रादिभिस्तथा ॥६१॥
देवानां पूजने रक्ता न वै प्रेता भवंति ते। श्रुत्वा पौराणिकं वाक्यं दिव्यं च धर्मसंहितम् ॥६२॥

मनुष्य प्रेत योनि में चले जाते हैं ॥४९-५०॥ हमलोग यह जानना चाहते हैं कि हमलोगों का रूप विकृत क्यो हो जाता है ? **ब्राह्मणों ने कहा—** शीत, वायु तथा आतप के क्लेश से तथा भूख प्यास के कारण ॥५१॥ दूसरे भी दुःखों से, जो झूठी गवाही देने वाले पीडित होते हैं, जो निरन्तर वध करने तथा बाँधने के ही काम में लगे रहते हैं, ऐसे मनुष्य मरकर प्रेत होते हैं और नरक में जाते हैं ॥५२॥ जो छिद्रान्वेषण करने वाले होते हैं, तथा ब्राह्मणों के कर्मों का घात करने वाले होते हैं, तथा जो अपने गुरुजनों के साथ घात करने वाले होते हैं वे प्रेत होकर फिर मनुष्य योनि में जन्म नहीं पाते हैं ॥५३॥ जो लोग ब्राह्मणों को दान करने वालों को बाधित करते हैं, वे दीर्घकाल तक प्रेतत्व को प्राप्त करके फिर नरक में चले जाते हैं और वहाँ से निकल नहीं पाते हैं ॥५४॥ दूसरे अथवा अपने गौ (बैल) को बहुत अधिक जोतकर जो उन सबों का ठीक से पालन नहीं करते हैं, वे मूर्ख मर कर प्रेत होते हैं ॥५५॥ झूठी प्रतिज्ञा करने वाले तथा व्रत को भंग करने वाले, कमल के पत्ते में भोजन करने वाले, वे इस भूलोक में कर्मज प्रेत होते हैं ॥५६॥ जो लोग अपनी पुत्री को बेंचते हैं, शुद्ध एवं साध्वी स्त्री को, निर्दोष स्त्री को, चाचाी और मामी को वेच देते हैं ऐसे लोग मर कर प्रेत होते हैं ॥५७॥ ये सभी तथा वहुत से दूसरे भी मनुष्य अपने कर्मों के कारण प्रेत होते हैं **प्रेतों ने कहा—** हे द्विजों किन कर्मो को करने से लोग प्रेत नहीं होते हैं ॥५८॥ इस वात को आपलोग हमलोगों को तथा संसार के कल्याण के लिए शीघ्र बतलायें **ब्राह्मणों ने कहा—** जो बुद्धिमान पुरुष तीर्थ जल से स्नान करते हैं ॥५९॥ तथा परमात्मा को नमस्कार करते हैं वे प्रेत नहीं होते हैं । एकादशी अथवा द्वादशी को उपवास करके ॥६०॥ तथा श्रीहरि की पूजा करने वाले मनुष्य प्रेत नहीं होते हैं, वैदिक सूक्तों तथा मन्त्रों से ॥६१॥

पाठयित्वा पठित्वा च पिशाचत्वं न गच्छति । व्रतैश्च विविधैः पूताः पद्माक्षधारणैस्तथा ॥६३॥
जप्त्वा पद्माक्षमालायां प्रेतत्वं नैव गच्छति । धात्रीफलद्रवैः स्नात्वा नित्यं तद्भक्षणे रताः ॥६४॥
तेन विष्णुं सुसंपूज्य न गछंति पिशाचताम्।

प्रेता ऊचुः

सतां संदर्शनात्पुण्यमिति पौराणिका विदुः ॥६५॥
तस्माद्वो दर्शनं जातं हितं नः कर्तुमर्हथ। प्रेतभावाद्यथा मुक्तिः सर्वेषां नो भविष्यति ॥६६॥
व्रतोपदेशकं धीरा युष्माकं शरणागताः। ततो दयालवः सर्वे तानूचुर्द्विजसत्तमाः ॥६७॥
धात्रीणां भक्षणं शीघ्रं कुर्वतां मुक्तिहेतवे।

प्रेता ऊचुः

धात्रीणां दर्शने विप्रा वयं स्थातुं न शक्नुमः ॥६८॥
कथं तेषां फलानां च शक्ता वै भक्षणेधुना ।

द्विजा ऊचुः

अस्माकं वचनेनात्र धात्रीणां भक्षणं शिवम् ॥६९॥
फलिष्यति परं लोकं तस्माद्गन्तुं समर्हथ । अथ तेभ्यो वरं लब्ध्वा धात्रीवृक्षं पिशाचकैः ॥७०॥
समारुह्य फलं प्राप्य भक्षितं लीलया तदा। ततो देवालयात्तूर्णं रथं पीनं सुशोभनम् ॥७१॥
आगतं तं समारुह्य सचांडालपिशाचकाः । गतास्ते त्रिदिवं पुत्र व्रतैर्यज्ञैः सुदुर्लभम् ॥७२॥

स्कंद उवाच

धात्रीभक्षणमात्रेण पुण्यं लब्ध्वा दिवं गताः। तद्भक्षिणः कथं स्वर्गं न गच्छंति नरादयः ॥७३॥

जो पूजन करते हैं वे प्रेत नहीं होते हैं । पौराणिक दिव्य धार्मिक वाक्यों का श्रवण करके ॥६२॥ उनको पढकर अथवा पढवाकर मनुष्य प्रेतत्व को नहीं प्राप्त करते हैं अनेक व्रतों को करने से पवित्र हुए तथा कमल की माला को पहनने वाले ॥६३॥ तथा कमल की माला पर जप करने वाले प्रेत नहीं होते हैं । आवला के फल के रस से स्नान करके तथा उनका भक्षण करके ॥६४॥ आँवले के फल से भगवान् विष्णु की पूजा करके जीव पिशाचत्व को नहीं प्राप्त करते हैं **प्रेतों ने कहा—** पौराणिकों का कहना है कि सत्पुरुषों के दर्शन से पुण्य होता है ॥६५॥ अतएव आपलोगों का दर्शन हमलोगों को मिला है, आपलोग हमलोगों का कल्याण करें, जिससे कि हमसबों की प्रेतत्व से मुक्ति मिल जाय ॥६६॥ पुरुषों आपलोग हमें व्रत का उपदेश करें, हम आपके शरण में हैं । उसके बाद दयालु उन ब्राह्मणों ने कहा ॥६७॥ तुमलोग मुक्ति प्राप्त करने के लिए शीघ्र आँवले के फल को खा लो **प्रेतों ने कहा—** हे ब्राह्मणों आँवले का दर्शन करने में हमलोग समर्थ नहीं हैं तो फिर उन सबों के फलों को कैसे खा सकते हैं ? **ब्राह्मणों ने कहा—** हमलोगों के कहने मात्र से आँवले के फल को खाना तुम्हारे लिए कल्याणाकरी है ॥६९॥ उससे तुमलोगों को स्वर्ग प्राप्त हो जायेगा । उसके बाद ऋषियों का वरदान प्राप्त करके वे पिशाच आँवले के पेड़ पर॥७०॥ चढकर तथा फल को प्राप्त करके अपने मनोनुकूल खाये । उसके बाद देवलोक से शीघ्र ही सुन्दर तथा बड़ा रथ आया ॥७१॥ वे सभी पिशाच तथा चाण्डाल उस पर बैठकर, हे पुत्र ! वे सब दुर्लभ स्वर्गलोक चले गये॥७२॥ **स्कन्दजी ने कहा—** आँवले का फल खाने मात्र से पुण्य प्राप्त करके वे सब स्वर्ग लोक चले गये तो फिर आँवले का फल खाने वाले दूसरे मनुष्य स्वर्ग क्यों नहीं जाते हैं ?॥७३॥ **ईश्वर ने कहा—** वे सब पहले से ज्ञान

ईश्वर उवाच

पूर्वं ते ज्ञानलोपाच्च न जानंति हिताहितम्। उच्छिष्टं श्वभिरुत्स्पृष्टं श्लेष्ममूत्रंशकृत्तुवा॥७४॥
मत्वा च मोहिताः श्रेष्ठं प्रेतादंतिसदैव हि। शकृच्छौचजलं वांतं बलिसूकरकुक्कुटैः ॥७५॥
मृतके सूतकेजप्यं नत्यक्तं येन केनचित्। तस्यान्नं च जलं प्रेताः खादंति तु सदैव हि॥७६॥
दुर्दांता गृहीणी यस्य शुचिसंयमवर्जिता। गुरु निःसारिता दुष्टा संति प्रेताश्च तत्र वै॥७७॥
अपुङ्गवा कुलैर्जाया बलोत्साहविवर्जिताः। बधिराश्च कृशा दीनाः पिशाचाः कर्मजातयः ॥७८॥
क्षणं च मंगलं नास्ति दुःखैर्देहयुता भृशम्। तेनैव विकृताकाराः सर्वभोगविवर्जिताः ॥७९॥
नग्नका रोगसंतप्ता मृता रूक्षा मलीमसाः। एते चान्ये च दुःखार्ताः सदैव प्रेतजातयः ॥८०॥
तेन कर्मविपाकेन जायंते काममीदृशाः। पितृमातृगुरूणां च देवनिंदापराश्च ये ॥८१॥
पाषंडाः कौलिकाः पापास्ते प्रेताः कर्मजा भुवि। गलपाशैर्जलैः शस्त्रैर्गरलैरात्मघातकाः ॥८२॥
इह लोके च ते प्रेताश्चांडालादिषु संभवाः। अंत्यजाः पतिताश्चैव पापरोगमृताश्च ये ॥८३॥
अंत्यजै र्घातिता युद्धे ते प्रेता निश्चिता भुवि। महापातकसंयुक्ता विवाहे च बहिष्कृताः॥८४॥
शौर्यात्साहसिका ये च ते प्रेताः कर्मजा भुवि। राजद्रोहकरा ये च पितॄणां द्रोहचिंतकाः ॥८५॥
ध्यानाध्ययनहीनाश्च व्रतैर्देवार्चनादिभिः। अमंत्राः स्नानहीनाश्च गुरुस्त्रीगमने रताः ॥८६॥
तथैव चांत्यजस्त्रीषु दुर्गतासु च संगताः। मृताः क्रूरोपवासेन म्लेच्छदेशस्थिता मृताः ॥८७॥
म्लेच्छभाषायुता शुद्धास्तथा म्लेच्छोपजीविनः। अनुवर्तंति ये म्लेच्छान् स्त्रीधनैरुपजीवकाः ॥८८॥

नहीं रहने के कारण अपने हित तथा अहित को नही जानते हैं। वे उच्छिष्ट, कुत्तों से स्पृष्ट, कफ, मूत्र तथा विष्ठा समझकर मोहित हो जाते हैं और श्रेष्ठ आँवले को नहीं खाते हैं, उनके द्वारा दिए गये वस्तु को सदा प्रेत ही खाते हैं। शौच से बचे हुए जल, वमन, बलि सूकर तथा मूर्गो के द्वारा ॥७४॥ मृतक शौच में जप करने वालों के द्वारा दिए गये अन्न जल को सदा प्रेत ही खाते हैं ॥७५-७६॥ जिसकी पत्नीवश में नहीं रहती है वह अपवित्र तथा संयम रहित होती है, जिसको उसके गुरुजन घर से निकाल दिए हों तथा दुष्टा स्त्रियाँ जहाँ रहती हैं, वहाँ प्रेत रहते हैं ॥७७॥ कायर जाति, वंश बल तथा उत्साह से रहित, बहरे, दुर्बल और दीन ये सभी कर्मज पिशाच हैं ॥७८॥ उन सबों को शरीर से क्षणभर भी सुख नहीं मिलता है, वे अत्यन्त दुःखी होते हैं, इसीलिए उनका (पिशाचों का) आकार विकृत हो जाता है तथा वे सभी प्रकार के भोगों से रहित होते हैं ॥७९॥ ये सभी प्रेतों की जातियाँ, रोगी, रुक्ष तथा मैली होती हैं तथा दुःखों से दुःखी रहती हैं ॥८०॥ वे अपने पूर्वकर्मो के परिणाम स्वरूप ऐसे हो जाते हैं। जो मनुष्य माता-पिता गुरु तथा देवताओं की निन्दा करते हैं ॥८१॥ पाखण्डी तथा कौलिक है, वे पापी पृथिवी पर कर्मज प्रेत होते हैं। गले में फाँसी लगाकर, जल में डूबकर, शस्त्र से तथा विष खाकर जो लोग अपनी हत्या कर लेते हैं ॥८२॥ वे इस लोक में ही प्रेत होते हैं। चाण्डाल, योनि में उत्पन्न होने वाले, अन्त्यज, पतित तथा पाप एवं रोग से मरने वाले॥८३॥ तथा युद्ध में शूद्रों द्वारा मारे गये लोग पृथिव पर निश्चित रूप से प्रेत होते हैं। जो महापातकी हैं, जिनका कोई विवाह नहीं करता है ॥८४॥ जो साहसिक पराक्रम दिखाने वाले हैं वे पृथिवी पर कर्मजन्य प्रेत होते हैं। राजद्रोह करने वाले तथा माता-पिता से द्रोह करने वाले ॥८५॥ ध्यान, अध्ययन, व्रत तथा देवार्चन से रहित, मन्त्रहीन, स्नानहीन, गुरु की पत्नी से संगम करने वाले ॥८६। उसी तरह शूद्रों की स्त्रियों तथा कुलटाओं के साथ संगम करने वाले, क्रूर उपवास करके मरने वाले, म्लेच्छों के देश में रहकर मरने वाले ॥८७॥ म्लेच्छों की भाषा बोलने वाले,

स्त्रियो यैश्च न रक्ष्यं ते ते प्रेता नात्र संशयः । क्षुधा संतप्तदेहं तु श्रांतं विप्रं गृहागतम् ॥८९॥
गुणपुण्यातिथिं त्यक्त्वा पिशाचत्वं व्रजंति ते । विक्रीणंति च वै गाश्च म्लेच्छेषु च गवाशिषु ॥९०॥
प्रेतलोके सुखं स्थित्वा ते च यांत्यपुनर्भवम् । अशौचाभ्यंतरे ये च जाताश्च पशवो मृताः ॥९१॥
चिरं प्रेताः पिशाचाश्च मृता जाताः पुनः पुनः । जातकर्ममुखैश्चैव संस्कारैर्ये विवर्जिताः ॥९२॥
एकैकस्मिंश्च संस्कारे प्रेतत्वं परिहीयते । स्नानसंध्यासुरार्चाभि र्वेदयज्ञव्रताक्षरैः ॥९३॥
आजन्मवर्जिताः पापास्ते प्रेताश्चापुनर्भवाः । भोजनोच्छिष्टपात्राणि यानि देहमलानि च ॥९४॥
निपातयंति ये तीर्थे ते प्रेता नात्र संशयः । दानमानार्चनैर्नैव यै विप्रा भुवि तर्पिताः ॥९५॥
पितरो गुरवश्चैव प्रेतास्ते कर्मजा भृशम् । पतिं त्यक्त्वा च या नार्यो वसंति चेतरैर्जनैः ॥९६॥
प्रेतलोके चिरं स्थित्वा जायंते चांत्ययोनिषु । पतिं च वंचयित्वा या विषयेंद्रियमोहिताः ॥९७॥
मिष्टं चादंति याः पापास्तास्तु प्रेताश्चिरं भुवि । विण्मूत्रभक्षका ये च ब्रह्मस्वभक्षणे रताः ॥९८॥
अभक्ष्यभक्षकाश्चान्ये ते प्रेताश्चापुनर्भवाः । बलाद्ये परवस्तूनि गृह्णंति न ददत्यति ॥९९॥
अतिथीनवमन्यंते प्रेता निरयमास्थिताः । तस्मादामलकीं भुक्त्वा स्नात्वा तस्य द्रवेण च ॥१००॥
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेवयामलकीं शिवाम् ॥१०१॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमिदं शुभम् । सर्वपापप्रपूतात्मा विष्णुलोके महीयते ॥१०२॥
श्रावयेत्सततं लोके वैष्णवेषु विशेषतः । स याति विष्णुसायुज्यमिति पौराणिका विदुः ॥१०३॥

तथा म्लेच्छो से जीविका प्राप्त करने वाले, म्लेच्छों का अनुगमन करने वाले, स्त्री के धन से ही अपनी जीविका चलाने वाले ॥८८॥ तथा अपनी स्त्री की रक्षा नहीं करने वाले निश्चित रूप से मरकर प्रेत होते हैं । भूख से व्याकुल घर पर आये हुए ब्राह्मण अतिथि को भोजनादि न कराकर लौटा देने वाले मर कर पिशाच होते हैं । जो लोग गौ खाने वाले म्लेच्छों को गौ बेच देते हैं ॥९०॥ वे प्रेतलोक में बहुत दिनों तक रहकर फिर कभी मनुष्य योनि में जन्म नहीं प्राप्त करते हैं । जो पशु अशौच के भीतर ही जन्म लेकर मर जाते हैं ॥९१॥ वे बहुत समय तक प्रेत और पिशाच होकर मरते और उत्पन्न होते रहते हैं । जो जातकर्म आदि संस्कारों से रहित ॥९२॥ एक-एक संस्कार के द्वारा प्रेतत्व का नाश होता है । स्नान, संध्या, देवार्चन, वेदाध्ययन, यज्ञ तथा व्रत से प्रेतत्व का नाश होता है॥९३॥ जन्म से ही रहित पापी पुरुष मरकर प्रेत होते हैं और उन्हें मनुष्य का जन्म नहीं मिलता है । जो लोग भोजन के उच्छिष्ट पात्र तथा देह के मैल को तीर्थ में फेंक देते हैं, वे भी निश्चित रूप से प्रेत होते हैं । जिनलोगों ने भूलोक में दान, सम्मान तथा पूजन के द्वारा ब्राह्मणों, पितरों तथा गुरुजनों को तृप्त नहीं किया है ॥९५॥ ऐसे भी जीव मरकर कर्मज प्रेत होते हैं । जो नारियाँ अपने पति को छोड़कर दूसरे लोगों के साथ रहती है ॥९६॥ वे दीर्घकाल तक प्रेतलोक में रहकर अन्त में शूद्र योनि में जन्म लेती हैं विषयों तथा इन्द्रियों से मोहित होकर जो स्त्रियाँ पति को धोखा देकर अकेले मीठे पदार्थ को खाती हैं वे भूलोक में दीर्घकाल तक प्रेत रहती है जो ब्रह्मस्वरूप को खा लेते हैं वे विष्ठा और मूत्र को खाते हैं ॥९८॥ दूसरे अभक्ष्य भक्षण करने वाले प्रेत होकर पुनः मनुष्य योनि में जन्म नहीं लेते हैं । जो लोग बलपूर्वक दूसरों की वस्तु को लेकर उसे नहीं लौटाते हैं ॥९९॥ अतिथियों का अपमान करते हैं वे मरकर प्रेत होते हैं और नरक में निवास करते हैं । इसलिए आँवला के फल को खाकर तथा उसके रस से स्नान करके ॥१००॥ मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है । अतएव समस्त प्रयत्नों के द्वारा आँवलें का सेवन करो, वह कल्याणकारी है ॥१०१॥ जो व्यक्ति इस पवित्र आख्यान को सुनता है वह सभी पापों से

स्कंद उवाच

महीरुहफलं ज्ञातं प्रपूतं द्विविधं प्रभो। इदानीं श्रोतुच्छिामि पत्रं पुण्यं सुमोक्षदम्॥१०४॥

ईश्वर उवाच

सर्वेभ्यः पत्रपुष्पेभ्यः सत्तमा तुलसी शिवा। सर्वकामप्रदा शुद्धा वैष्णवी विष्णुसुप्रिया॥१०५॥
भुक्तिमुक्तिप्रदामुख्या सर्वलोकपरा शुभा। यामाश्रित्य गताः स्वर्गमक्षयं मुनिसत्तमाः॥१०६॥
हितार्थं सर्वलोकानां विष्णुनारोपिता पुरा। तुलसीपत्रपुष्पं च सर्वधर्मप्रतिष्ठितम्॥१०७॥
यथा विष्णोः प्रिया लक्ष्मी यथाहं प्रिय एव च। तथेयं तुलसी देवी चतुर्थो नोपपद्यते॥१०८॥
तुलसीपत्रमेकं तु शतहेमफलप्रदम्। नान्यैः पुष्पैस्तथापत्रै र्नान्यैर्गंधानुलेपनैः॥१०९॥
तुष्यते दैत्यहा विष्णुस्तुलस्याश्च दलैर्विना। अनेन पूजितो येन हरिर्नित्यं पराशया॥११०॥
तेन दत्तं हुतं ज्ञातं कृतं यज्ञव्रतादिकम्। जन्मजन्मनि भासित्वं सुखं भाग्यं यशः श्रियम्॥१११॥
कुलं शीलं कलत्रं च पुत्रं दुहितरं तथा। धनं राज्यमरोगत्वं ज्ञानं विज्ञानमेव च॥११२॥
वेदवेदांगशास्त्रं च पुराणागमसंहिताः। सर्वं करगतं मन्ये तुलस्याभ्यर्चने हरेः॥११३॥
यथा गङ्गापवित्रांगी सुरलोके विमोक्षदा। यथा भागीरथीपुण्या तथैव तुलसीशिवा॥११४॥
किंच गंगाजलेनैव किंच पुष्करसेवया। तुलसीदलमिश्रेण जलेनैव प्रमोद्यते॥११५॥
माधवः संमुखो यस्य जन्मजन्मसु धीमतः। तस्य श्रद्धाभवेछ्रुत्वा तुलस्या हरिमर्चितुम्॥११६॥

मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है॥१०२॥ विशेष रूप से इसे वैष्णवों को सुनना चाहिए, वह मनुष्य भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है, इसतरह से पौराणिकों का कहना है॥१०३॥ **स्कन्दजी ने कहा**— हे प्रभो! मैंने वृक्षों के दो अत्यन्त पवित्र फलों को जान लिया अब मैं मोक्ष प्रद पत्रों और पुष्पों को जानना चाहता हूँ॥१०४॥ **ईश्वर ने कहा**— सभी पत्रों तथा पुष्पों से तुलसी सर्वश्रेष्ठ कल्याणप्रद है। वह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली, शुद्ध, वैष्णवी तथा भगवान् विष्णु को प्रिय है॥१०५॥ सभी लोकों में सर्वाधिक कल्याणप्रद भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली है। उसी को अपनाकर श्रेष्ठ मुनिगण अक्षय स्वर्ग को प्राप्त कर लिए॥१०६॥ सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करने के लिए इसे सर्वप्रथम विष्णु भगवान् ने रोपा। तुलसी के पत्र तथा पुष्प सभी धर्मों में प्रतिष्ठित हैं॥१०७॥ जिसतरह भगवान् विष्णु को लक्ष्मीजी प्रिय हैं तथा मैं प्रिय हूँ, उसीतरह से तुलसीदेवी श्रीभगवान् को प्रिय हैं। चौथा कोई भी उतना प्रिय नहीं है॥१०८॥ तुलसी का एक पत्ता सौ सुवर्ण मुद्रा का फल प्रदान करने वाला है। उस तरह का फल दूसरे पुष्पों, पत्रों तथा चन्दन इत्यादि से नहीं होता है॥१०९॥ तुलसीदल के बिना दैत्यहन्ता भगवान् विष्णु प्रसन्न नहीं होते हैं। जो व्यक्ति परम आशा से तुलसीदल के द्वारा जो भगवान् विष्णु की पूजा करता है॥११०॥ उसने दान, होम, ज्ञान, यज्ञ, व्रत, प्रत्येक जन्म में होने वाले सुख, भाग्य, यश और श्री॥१११॥ कुल, शील, पत्नी, पुत्र, पुत्री, धन, राज्य, अरोग्य, ज्ञान, विज्ञान॥११२॥ वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, आगम और संहिताएँ सब कुछ तुलसी की अर्चना से मानो प्राप्त कर लिया॥११३॥ जिसतरह पवित्र अंगों वाली गङ्गा, देवलोक में मोक्ष प्रदान करती है, वह भागीरथी श्रीभगवान् को जितना प्रिय है, उतना ही ये कल्याणकारी तुलसी भी प्रिय है॥११४॥ गङ्गा का जल तथा पुष्कर की सेवा करने की अपेक्षा भगवान् विष्णु तुलसी मिश्रित जल से ही प्रसन्न होते हैं॥११५॥ जिस बुद्धिमान के प्रति प्रत्येक जन्म में भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं, उसी को इस प्रसङ्ग को सुनकर तुलसी से भगवान् की अर्चना करने में श्रद्धा होती है॥११६॥ जो तुलसी की मंजरी तथा दलों के द्वारा

यो मंजरीदलैरेव तुलस्या विष्णुमर्चयेत् । तस्य पुण्यफलं स्कन्द कथितुं नैव शक्यते ॥११७॥
तत्र केशवसान्निध्यं यत्रास्ति तुलसीवनम् । तत्र ब्रह्मा च कमला सर्वदेवगणैः सह ॥११८॥
तस्मात्तां संनिकृष्टे तु सदादेवीं प्रपूजयेत्। स्तोत्रमंत्रादिकं यद्वा सर्वमानंत्यमश्नुते ॥११९॥
ये च प्रेताश्च कूष्मांडाः पिशाचा ब्रह्मराक्षसाः। भूतदैत्यादयस्तत्र पलायन्ते सदैव हि ॥१२०॥
अलक्ष्मीर्नाशिनी घूर्णा या डाकिन्यादिमातरः। सर्वाः संकोचितां यांति दृष्ट्वा तु तुलसीदलम्॥१२१॥
ब्रह्महत्यादयः पापव्याधयः पापसंभवाः। कुमंत्रिणा कृता ये च सर्वे नश्यंति तत्र वै॥१२२॥
भूतले वापि तं येन हर्यर्थं तुलसीवनम्। कृतं क्रतुशतं तेन विधिवत्प्रियदक्षिणम् ॥१२३॥
हरिलिंगेषु चान्येषु सालग्रामशिलासु च । तुलसीग्रहणं कृत्वा विष्णोः सायुज्यमाव्रजेत्॥१२४॥
नंदंति पुरुषास्तस्य माधवार्थे क्षितौ तु यः । तुलसी रोपयेद्धीरः स याति माधवालयम् ॥१२५॥
पूजयित्वा हरिं देवं निर्माल्यं तुलसीदलम्। धारयेद्यः स्वशीर्षे तु पापात्पूतो दिवं व्रजेत् ॥१२६॥
पूजने कीर्त्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ । तुलसीदहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च ॥१२७॥
उपदेशं दिशेदस्याः स्वयमाचरते पुनः। स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम्॥१२८॥
हरेः प्रियकरं यच्च तन्मे प्रियतरं भवेत् ॥१२९॥
सर्वेषामपि देवानां देवीनां च समंततः । श्राद्धेषु यज्ञकार्येषु पर्णमेकं षडानन ॥१३०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलसीसेवनं कुरु । तुलसीसेविता येन तेन सर्वं तु सेवितम् ॥१३१॥
गुरुं विप्रं देवतीर्थं तस्मात्सेवय षण्मुख। शिखायां तुलसीं कृत्वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥१३२॥

भगवान् विष्णु की अर्चना करता है, हे स्कन्द ! उसके पुण्य फल का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥११७॥ जहाँ पर तुलसी का वन होता है, वहाँ पर भगवान् केशव का सान्निध्य होता है । वहाँ पर ब्रह्माजी तथा लक्ष्मीजी अपने गणों के साथ सदैव स्थित रहते हैं ॥११८॥ अतएव सन्निकट में विद्यमान तुलसीदेवी की सदैव पूजा करनी चाहिए। तुलसी के सन्निक्ट स्तोत्र पाठ तथ मन्त्र जप सब कुछ अनन्त फल प्रदान करने वाले होते हैं ॥११९॥ जो प्रेत तथा कुष्माण्ड, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, भूत, तथा दैत्य आदि हैं, वे वहाँ से दूर भग जाते हैं ॥१२०॥ तुलसीदल को देखकर, अलक्ष्मी, नाश करने वाली घूर्णा तथा जो डाकिनी आदि मातृकाएँ हैं वे सब संकुचित हो जाती हैं ॥१२१॥ ब्रह्महत्या आदि पाप व्याधियाँ जो पाप से उत्पन्न होती हैं, तथा कुत्सित मंत्र के द्वारा किए गये सब कुछ, वहाँ पर सब नष्ट हो जाते हैं ॥१२२॥ जो श्रीभगवान् की पूजा के लिए पृथिवी पर तुलसी का वन लगाता है, वह सैकड़ों विधि तथा दक्षिणा के साथ यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥१२३॥ श्रीहरि की मूर्ति पर, सालग्राम शिला पर तुलसी चढाकर मनुष्य भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥१२४॥ जो धीर पुरुष पृथिवी पर श्रीभगवान् के लिए तुलसी लगता है, उसके पितृगण प्रसन्न होते हैं और मृत्यु के बाद वह श्रीहरि के लोक में जाता है ॥१२५॥ श्रीहरि की पूजा करके जो मनुष्य भगवान् पर चढायी हुयी तुलसी को अपने शिर पर धारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और स्वर्ग जाता है ॥१२६॥ कलियुग में तुलसी पूजन करने से, ध्यान करने से, रोपने से तथा धारण करने से सभी पापों को भस्म करके स्वर्ग तथा मोक्ष को प्रदान करती हैं ॥१२७॥ जो इस तुलसी अर्चना का उपदेश करता है तथा स्वयं तुलसी अर्चना करता है ॥१२८॥ वह भगवान् माधव के श्रेष्ठ लोक में जाता है । जो श्रीहरि को प्रिय है वही मुझको सर्वाधिक प्रिय है ॥१२९॥ हे षडानन कार्तिकेय ! सभी देवताओं तथा देवियों के यज्ञों में तथा श्राद्धों में तुलसी का एक भी पत्ता श्रेष्ठ होता है ॥१३०॥ अतएव सभी प्रयासों के द्वारा तुम तुलसी का सेवन करो।

दुष्कृतौघाद्विनिर्मुक्तः स्वर्गमेति निरामयम् । राजसूयादिभिर्यज्ञैर्व्रतैश्च विविधै र्यमैः ॥१३३॥
या गतिः प्राप्यते धीरैः तुलसीसेविनां भवेत् । तुलसीदलेन चैकेन पूजयित्वा हरिं नरः ॥१३४॥
वैष्णवत्वमवाप्नोति किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः । न पिबेत्स पयोमातुस्तुलस्याः कोटिसंख्यकैः ॥१३५॥
अर्चितः केशवो येन शाखामृदुलपल्लवैः । भावयेत्पुरुषान्मर्त्यः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१३६॥
पूजयित्वा हरिं नित्यं कोमलैस्तुलसीदलैः । प्रधानतो गुणास्तात तुलस्या गदिता मया ॥१३७॥
निखिलं पुरुकालेन गुणं वक्तुं न शक्नुमः । यस्त्विदं शृणुयान्नित्यमाख्यानं पुण्यसंचयम् ॥१३८॥
पूर्वजन्मकृतात्पापान्मुच्यते जन्मबंधनात् । सकृत्पठनमात्रेण वह्निष्टोमफलं लभेत् ॥१३९॥
न तस्य व्याधयः पुत्र मूर्खत्वं न कदाचन । सर्वदा जयमाप्नोति नगच्छेत्स पराजयम् ॥१४०॥
लेखस्तिष्ठेद्गृहे यस्य तस्य लक्ष्मीः प्रवर्तते । नचाधयो न च प्रेता न शोका नावमानना ॥१४१॥
नतिष्ठंति क्षणं तत्र यत्रेयं वर्तते लिपिः ॥१४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे तुलसीमाहात्म्यं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥६०॥

जिसने तुलसी की सेवा की है, उसने गुरु, ब्राह्मण, देवता, तीर्थ, सबों की सेवा कर ली । जो व्यक्ति अपनी शिखा में तुलसी धारण करके प्राणों का परित्याग करता है ॥१३१-१३२॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में जाता है । राजसूय यज्ञों, व्रतों तथा अनेक प्रकार के संयमों ॥१३३॥ के द्वारा जिस गति की प्राप्ति होती है, धीर पुरुष उस गति की प्राप्ति तुलसी की सेवा के द्वारा कर लेते हैं । तुलसी के एक दल के द्वारा श्रीहरि की पूजा करके मनुष्य ॥१३४॥ वैष्णवत्व को प्राप्त कर लेता है अन्य शास्त्रों का विस्तार करने से कौन सा लाभ है ? एक करोड़ तुलसी के द्वारा श्रीहरि की पूजा करने वाला पुनः इस संसार में जन्म नही लेता है ॥१३५॥ जिस मनुष्य ने तुलसी के कोमल दलों तथा शाखाओं से श्रीहरि की पूजा की है, इस तरह प्रतिदिन तुलसी के कोमल दलों से श्रीहरि की पूजा करने वाला मनुष्य अपने सैकड़ों हजारों पूर्वजों को सन्तुष्ट कर देता है । हे तात ! मैंने तुलसी के प्रधान गुणों को बतला दिया ॥१३६-१३७॥ तुलसी के समस्त गुणों का वर्णन बहुत समय में भी नहीं किया जा सकता है । जो व्यक्ति पुण्य समूह रूप इस पवित्र आख्यान को नित्य श्रवण करता है ॥१३८॥ वह पूर्व जन्मों में किए गये पापों तथा जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है । इसका एकबार भी पाठ करने से अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त होता है॥१३९॥ हे पुत्र ! उस व्यक्ति को न तो कोई रोग होता है और न कभी मूर्खता होती है । वह सर्वत्र विजयी होता है, उसकी पराजय कभी भी नहीं होती है ॥१४०॥ जिसके घर में इस कथा का लेख रहता है उसकी लक्ष्मी की वृद्धि होती है । उसके सारे रोग, प्रेतबाधा, शोक तथा अपमान विनष्ट हो जाते हैं ॥१४१॥ ये सब वहाँ नहीं रहते है जहाँ पर यह ग्रन्थ रहता है ॥१४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के तुलसी माहात्म्य वर्णन नामक साठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६०।।

एकसठवाँ अध्याय

द्विजा ऊचुः

तुलसीपुष्पमाहात्म्यं श्रुतं त्वत्तो हरेः शुभम् । तस्याःस्तोत्रं कृतं पुण्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥

व्यास उवाच

पुरा स्कंदपुराणे य यन्मया कीर्तितं द्विजाः । कथयामि पुराणं च पुरतो मोक्षहेतवे ॥२॥

शतानंदमुनेः शिष्याः सर्वे ते संशितव्रताः । प्रणिपत्य गुरुं विप्राः पप्रच्छुः पुण्यतो हितम् ॥३॥

पूर्वं ब्रह्ममुखान्नाथ यच्छ्रुतं तुलसीस्तवम् । तद्वयं श्रोतुच्छिामस्त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥४॥

शतानंद उवाच

नामोच्चारे कृते तस्याः प्रीणात्यसुरदर्पहा। पापानि विलयं यांति पुण्यं भवति चाक्षयम्॥५॥

सा कथं तुलसी लोकैः पूज्यते वंद्यते नहि । दर्शनादेव यस्यास्तु दानं कोटिगवां भवेत् ॥६॥

धन्यास्ते मानवा लोके यद्गृहे विद्यते कलौ । सालग्रामशिलार्थं तु तुलसी प्रत्यहं क्षितौ ॥७॥

तुलसीं ये विचिन्वंति धन्यास्ते करपल्लवाः । केशवार्थं कलौ ये च रोपयंतीह भूतले ॥८॥

किं करिष्यति संरुष्टो यमोऽपि सह किंकरैः । तुलसीदलेन देवेशः पूजितो येन दुःखहा ॥९॥

तीर्थयात्रादिगमनैः फलैः सिध्यति किन्नरः । स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्चने ॥१०॥

तुलसी दहते पापं कीर्तने रोपणे कला। तुलस्यमृतजन्मासि सदात्वं केशवप्रिये ॥११॥

केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने । त्वदंगः संभवैर्नित्यं पूजयामि यथाहरिम् ॥१२॥

तुलसीस्तोत्र तथा उसका माहात्म्य वर्णन

ब्राह्मणों ने कहा— आपने तुलसी तथा उसके पुष्प का माहात्म्य बतलाया अब हमलोग तुलसी स्तोत्र को सुनना चाहते हैं ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** मैंने पहले स्कन्द पुराण में जिस स्तोत्र का वर्णन किया है, उसे ही आप लोगों को सुनता हूँ जिससे मुक्ति की प्राप्ति हो ॥२॥ शतानन्द मुनि के सभी शिष्य व्रत के लिए प्रख्यात थे । उन लोगों ने अपने गुरु को प्रणाम करके पवित्र कल्याण के विषय में पूछा ॥३॥ हे नाथ पहले ब्रह्माजी के मुख से जिस तुलसी स्तोत्र को सुना गया था हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! उसे ही हमलोग आपके मुख से सुनना चाहते हैं ॥४॥ **शतानन्द ने कहा—** तुलसी को नमस्कार करने मात्र से असुरों के दर्प को मिटाने वाले भगवान् प्रसन्न होते हैं, उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं और अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥५॥ उस तुलसी का पूजन और वंदन लोगों द्वारा क्यों न किया जाय ? तुलसी का दर्शन करने मात्र से सैकड़ों गायों का दान करने का फल होता है ॥६॥ वे लोग धन्य हैं जिनके घर में कलियुग में तुलसी का निवास होता है । सालग्राम शिला के लिए प्रतिदिन तुलसी अपेक्षित होती हैं॥७॥ जिन हाथों से तुलसी दल तोड़ा जाता है, वे हाथ धन्य है । कलियुग में जो लोग भगवान् केशव की पूजा के लिए तुलसी रोपते हैं ॥८॥ उनलोगों का अपने दूतों के साथ रुष्ट होकर भी यमराज क्या बिगाड़ सकते हैं ? जो व्यक्ति दुःखों को दूर करने वाले श्रीहरि की पूजा तुलसी दल से करता है ॥९॥ तीर्थ यात्रा आदि करने से मनुष्य को क्या लाभ होता है ? स्नान, दान, ध्यान करने तथा श्रीभगवान् की पूजा करने से ॥१०॥ तुलसी का नाम संकीर्तन करने से तथा तुलसी को रोपने से तुलसी सभी पापों को भस्म कर देती हैं । हे तुलसी ! तुम अमृत से उत्पन्न हुयी हो तथा तुम भगवान् केशव को सदैव प्रिय हो ॥११॥ मैं भगवान् केशव की पूजा के लिए तुम्हें लेता हूँ, अतएव हे

तथा कुरु पवित्रांगि कलौ मलविनाशिनि। मंत्रेणानेन यः कुर्याद्विचित्य तुलसीदलम् ॥१३॥
पूजनं वासुदेवस्य लक्षकोटिगुणं भवेत् । प्रभावं तव देवेशि गायंति सुरसत्तमाः ॥१४॥
मुनयः सिद्धगंधर्वाः पाताले नागराट्स्वयम् । न ते प्रभावं जानंति देवताः केशवादृते ॥१५॥
गुणानां परिमाणं तु कल्पकोटिशतैरपि । कृष्णानंदात्समुद्भूता क्षीरोदमथनोद्यमे ॥१६॥
उत्तमांगे पुरा येन तुलसी विष्णुना धृता । प्राप्यैतानि त्वया देवि विष्णोरंगानि सर्वशः॥१७॥
पवित्रता त्वया प्राप्ता तुलसीं त्वां नमाम्यहम् । त्वदंगसंभवैः पुत्रैः पूजयामि यथाहरिम् ॥१८॥
तथा कुरुष्व मेऽविघ्नं यतो यामि परां गतिम् । रोपिता गोमतीतीरे स्वयं कृष्णेन पालिता ॥१९॥
जगद्धिताय तुलसी गोपीनां हितहेतवे । बृंदावने विचरता सेविता विष्णुना स्वयम् ॥२०॥
गोकुलस्य विवृद्ध्यर्थं कंसस्य निधनाय च । वसिष्ठवचनात्पूर्वं रामेण सरयूतटे ॥२१॥
राक्षसानां वधार्थाय रोपिता त्वं जगत्प्रिये । रोपिता तपसोवृद्ध्यै तुलसीं त्वां नमाम्यहम्॥२२॥
वियोगे वासुदेवस्य ध्यात्वा त्वां जनकात्मजा । अशोकवनमध्ये तु प्रियेण सह संगता ॥२३॥
शङ्करार्थं पुरा देवि पार्वत्या त्वं हिमालये। रोपिता तपसो वृद्ध्यै तुलसीं त्वां नमाम्यहम् ॥२४॥
सर्वाभिर्देवपत्नीभिः किन्नरैश्चापि नंदने । दुःस्वप्ननाशनार्थाय सेविता त्वं नमोस्तुते ॥२५॥
धर्मारण्ये गयायां च सेविता पितृभिः स्वयम्। सेविता तुलसी पुण्या आत्मनो हितमिच्छता ॥२६॥
रोपिता रामचंद्रेण सेविता लक्ष्मणेन च। पालिता सीतया भक्त्या तुलसी दंडके वने ॥२७॥

शोभने आप मेरे लिए वरदा हों। मैं जैसे तुम्हारे अङ्ग से उत्पन्न श्रीहरि की पूजा कर सकूँ ॥१२॥ हे कलियुग के दोषों को विनष्ट करने वाली मुझे वैसा ही बना दो। इस मन्त्र से तुलसी दल लेकर जो व्यक्ति ॥१३॥ भगवान् वासुदेव की पूजा करता है, उसकी पूजा करोड़ गुणा फलद होती है। हे देवेशि! आपके प्रभाव का बड़े-बड़े देवता गायन करते हैं ॥१४॥ मुनिजन, सिद्ध, गन्धर्व, पाताल में स्वयं नागराज शेष तुम्हारे प्रभाव का गायन करते हैं। ये लोग आपके पूर्णरूप से प्रभाव को नहीं जानते हैं। केवल भगवान् केशव ही आपके प्रभाव को जानते हैं ॥१५॥ आपके गुणों का परिणाम करोड़ों सौ कल्पों में नहीं जाना जा सकता है। क्षीरसागर के मन्थन के समय भगवान् विष्णु के आनन्द से तुलसी उत्पन्न हुयीं। जिन भगवान् विष्णु ने आपको अपने शिर पर धारण किया है हे देवि! भगवान् विष्णु के अङ्गों को पूर्ण रूप से प्राप्त करके ॥१६-१७॥ आपने पवित्र्य को प्राप्त किया। हे तुलसी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपके अङ्ग से उत्पन्न पत्तों से मैं भगवान् विष्णु की पूजा करता हूँ ॥१८॥ आप मेरी पूजा को निर्विघ्न बना दें जिससे कर्मों से श्रेष्ठ गति प्राप्त कर सकूं। हे तुलसी! भगवान् विष्णु ने आपको गोमती नदी के तट पर रोपकर आपको ॥१९॥ गोपियों का कल्याण करने के लिए पाला वृन्दावन में विचरण करते हुए भगवान् कृष्ण ने स्वयं आपकी सेवा की ॥२०॥ उन्होंने गोकुल की समृद्धि तथा कंस की मृत्यु के लिए आपकी सेवा की है। हे जगत्प्रिये! महर्षि वसिष्ठ के कहने से श्रीराम ने सरयू के तट पर ॥२१॥ राक्षसों का वध करने के लिए आपको रोपा था। हे तुलसी देवि! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वासुदेव भगवान् (श्रीराम) का वियोग हो जाने पर जनकात्मजा जानकीजी ने आपका अशोक वाटिका में ध्यान किया उसके फल स्वरूप वे अपने पतिदेव से मिल गयीं॥२२-२३॥ शङ्करजी को प्राप्त करने के लिए पार्वतीजी ने आपको हिमालय पर अपनी तपस्या की वृद्धि के लिए रोपा था। हे तुलसी देवि मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२४॥ सभी देव पत्नियों तथा किन्नरों ने दुःस्वप्न का नाश करने के लिए आपको नन्दन वन में रोपा और आपकी सेवा किया था, आपको मेरा नमस्कार है ॥२५॥ पितृगणों ने

त्रैलोक्यव्यापिनी गंगा यथाशास्त्रेषु गीयते । तथैव तुलसीदेवी दृश्यते सचराचरे॥२८॥
ऋष्यमूके च वसता कपिराजेन सेविता। तुलसी बालिनाशाय तारासंगमहेतवे॥२९॥
प्रणम्य तुलसीं देवीं सागरोत्क्रमणं कृतम्। कृतकार्यः प्रहृष्टश्च हनूमान्पुनरागतः॥३०॥
तुलसीग्रहणं कृत्वा विमुक्तो याति पातकैः । अथवा मुनिशार्दूल ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥३१॥
तुलसी पत्रगलितं यस्तोयं शिरसा वहेत्। गङ्गास्नानमवाप्नोति दशधेनुफलप्रदम्॥३२॥
प्रसीद देवि देवेशि प्रसीद हरिवल्लभे । क्षीरोदमथनोद्भूते तुलसि त्वां नमाम्यहम्॥३३॥
द्वादश्यां जागरे रात्रौ यः पठेत्तुलसी स्तवम् । द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशवः॥३४॥
यत्पापं यौवने बाल्ये कौमारे वार्द्धके कृतम् । तत्सर्वं विलयं याति तुलसीस्तवपाठतः॥३५॥
प्रीतिमायाति देवेशस्तुष्टो लक्ष्मीं प्रयच्छति । कुरुते शत्रुनाशं च सुखं विद्यां प्रयच्छति॥३६॥
तुलसीनाममात्रेण देवा यच्छंति वांछितम्। गर्ह्याणामपिदेवेशो मुक्तिं यच्छति देहिनाम्॥३७॥
तुलसी स्तवसंतुष्टा सुखं वृद्धिं ददाति च। उद्गतं हेलया विद्धि पापं यमपथेस्थितम्॥३८॥
यस्मिन् गृहे चलिखितो विद्यते तुलसीस्तवः। नाशुभं विद्यते तस्य शुभमाप्नोति निश्चितम्॥३९॥
सर्वं च मंगलं तस्य नास्ति किंचिदमंगलम्। सुभिक्षं सर्वदा तस्य धनं धान्यं च पुष्कलम्॥४०॥
निश्चला केशवे भक्तिर्नवियोगश्च वैष्णवैः । जीवति व्याधिनिर्मुक्तो नाधर्मेजायते मतिः॥४१॥

आत्म कल्याण की प्राप्ति के लिए धर्मारण्य गया में पुण्य स्वरूपा आपकी सेवा की थी ॥२६॥ हे तुलसीदेवि ! भगवान् श्रीराम ने दण्डकारण्य में आपको रोपा, लक्ष्मणजी ने आपकी सेवा की तथा सीताजी ने आपकी भक्ति की॥२७॥ जिस तरह त्रैलोक्य व्यापिनी गङ्गाजी शास्त्रों में वर्णित हैं, उसीतरह तुलसी चराचरात्मक जगत् में दिखायी पड़ती है ॥२८॥ ऋष्यमूक पर्वत पर निवास काल में कपिराज सुग्रीव ने बालि का विनाश करने के लिए तथा तारा को प्राप्त करने के लिए आपका सेवन किया ॥२९॥ श्रीहनुमानजी तुलसीदेवी को प्रणाम करके सागर को लांघ गये ओर अपने उद्देश्य में सफल होकर प्रसन्नता पूर्वक लौट आये ॥३०॥ तुलसी को ग्रहण करके जीव पापों से मुक्त हो जाता है अथवा हे मुनि श्रेष्ठ ! वह ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है ॥३१॥ जिसमें तुलसीदल डाला गया हो ऐसे जल को जो अपने शिर पर धारण करता है, उसको गङ्गाजी में स्नान करने तथा दश गायों का दान करने का फल प्राप्त होता है ॥३२॥ हे तुलसी देवि ! आप प्रसन्न होइये, हे हरि बल्लभे ! आप प्रसन्न हों । हे क्षीरसागर के मंन्थन से उत्पन्न होने वाली आप प्रसन्न होइये आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३३॥ द्वादशी तिथि को जागरण करके जो तुलसी स्तोत्र का पाठ करता है, उसके बत्तीस अपराधों को भगवान् केशव क्षमा कर देते हैं ॥३४॥ जवानी, बचपन, कुमारावस्था तथा वृद्धावस्था में जो पाप हो जाते हैं, वे सभी तुलसी स्तव का पाठ करने से विनष्ट हो जाते हैं ॥३५॥ श्रीभगवान् प्रसन्न होकर उसे लक्ष्मी प्रदान करते हैं उसके शत्रु का नाश करके सुख तथा ज्ञान प्रदान करते हैं ॥३६॥ तुलसी का केवल नाम लेने से देवगण उसके मनोभिलषित पदार्थों को प्रदान करते हैं, निन्दित जीवों को भी श्रीभगवान् मुक्ति प्रदान कर देते हैं ॥३७॥ स्तोत्र पाठ से संतुष्ट होकर तुलसी देवी सुख तथा वृद्धि प्रदान करती हैं तथा कुमार्ग स्थित व्यक्ति के उत्पन्न पापों को विनष्ट कर देती हैं ॥३८॥ जिसके घर में लिखित रूप से तुलसी स्तव रहता है, उसका कभी अकल्याण नहीं होता है और उसको शुभ की प्राप्ति होती है ॥३९॥ उस घर में सबकुछ मङ्गलमय ही रहता है अमङ्गलमय कुछ भी नहीं रहता उसके यहाँ हमेशा सुभिक्ष बना रहता है और पुष्कल मात्रा में धन-धान्य की प्राप्ति होती है ॥४०॥ भगवान् विष्णु में निश्चला भक्ति होती है श्रीवैष्णवों का कभी वियोग नहीं होता

द्वादश्यां जागरे रात्रौ यः पठेत्तुलसीस्तवम् । तीर्थकोटिसहस्रैस्तु यत्फलं लक्षकोटिभिः ॥४२॥
तत्फलं समवाप्नोति पठित्वा तुलसीस्तवम् ॥४३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे तुलसीस्तवमाहात्म्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

बासठवाँ अध्याय

द्विजा ऊचुः

मज्जनादखिलं पापं क्षयं याति सुनिश्चितम् । महापातकमन्यच्च तदादेशं वदस्व नः ॥१॥
पापात्पूतोऽक्षयं नाकमश्नुते दिवि शक्रवत् । सुरयोनेर्नहानिः स्यादुपदेशं वदस्व नः ॥२॥
अत्र भोग्यं परं सर्वमृते स्वर्गे सुरोत्तमः । कलिपाप हतानां च स्वर्गसोपानमुच्यते ॥३॥

व्यास उवाच

गतिं चिंतयतां विप्रास्तूर्णं सामान्यजन्मनाम् । स्त्रीपुंसामीक्षणाद्यस्माद्गंगा पापं व्यपोहति ॥४॥
गंगेतिस्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् । कीर्तनादति पापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम् ॥५॥
स्नानात्पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा । महापातकवृन्दानि क्षयं यांति दिने दिने ॥६॥
अग्निनादह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद्यथा । तथा गंगाजलस्पर्शात्पुंसां पापं दहेत्क्षणात् ॥७॥

है वह व्याधि राहित जीवन जीता है तथा उसकी अधार्मिक बुद्धि कभी नहीं होती है ॥४१॥ द्वादशी तिथि को जागरण करके जो रात्रि में तुलसी स्तव का पाठ करता है उसको हजारों करोड़ तीर्थों में स्नान करने का जो फल होता है, उसको तुलसी स्तव के पाठ से प्राप्त होता है ॥४२-४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के तुलसीस्तव माहात्म्य नामक एकसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६१॥

गङ्गामाहात्म्य तथा गङ्गाजी में स्नान आदि की विधि

द्विजों ने कहा— आप हमलोगों को ऐसे तीर्थ को बतलाएँ जिसमें स्नान करने से निश्चित रूप से महापातकों तथा अतिपातकों का नाश हो जाता है ॥१॥ पाप से पवित्र बना हुआ मनुष्य अक्षय स्वर्ग को इन्द्र के समान प्राप्त करता है और वह देव योनियों में चला जाता है, ऐसे तीर्थ का आप उपदेश करें ॥२॥ इसलोक में स्वर्ग के अतिरिक्त समस्त श्रेष्ठ भोगों को देवताओं को जिससे प्राप्त करता है, जो कलियुगीय पापों से रहितों के लिए स्वर्ग की सीढी के समान हो उसे आप बतलायें ॥३॥ **व्यासजी ने कहा—** गङ्गाजी शीघ्र ही गति प्राप्त करना चाहने वाले सामान्य स्त्री-पुरुषों के पापों को देखने मात्र से दूरकर देती है ॥४॥ गङ्गा का नाम स्मरण करने से पाप का क्षय हो जाता है। गङ्गाजी के नाम का कीर्तन करने से अतिपातकों का नाश हो जाता है तथा गङ्गाजी का दर्शन करने से महान् पाप का नाश होता है ॥५॥ गङ्गा में स्नान करने से, उनका जल पीने से तथा पितरों का तर्पण करने से महापातकों की राशि का प्रतिदिन नाश होता है ॥६॥ जिस तरह अग्नि के सम्पर्क से क्षणभर में ही रुई, तृण तथा दूसरे शुष्क पदार्थ जल

संप्राप्नोत्यक्षयं स्वर्गं गंगास्नानेन केशवम्। यशो राज्यं लभेत्पुण्यं स्वर्गमंते परां गतिम् ॥८॥
पितॄनुद्दिश्य गंगायां यस्तु पिंडंप्रयच्छति । विधिना वाक्यपूर्वेण तस्य पुण्यफलं शृणु ॥९॥
अन्नेकेन तु साहस्रं वर्षपूज्यः सुरालये । तिलेन द्विगुणं विद्धि तथामेध्यफलेन च ॥१०॥
गव्येन विधिना विप्राः स्वर्गस्यांतो न विद्यते । एवं पिंडप्रदानेन नित्यं क्रतुशतं भवेत् ॥११॥
पितरोनिरयस्था ये धन्यास्ते मर्त्यवासिनः । धनपुत्रयुतारोग्यं सुखसंमानपूजिताः ॥१२॥
रसातलगता ये च ये च कीटा महीतले। स्थावरे पक्षिसंघादौ तेमर्त्या धनिनो नृपाः ॥१३॥
तत्तत्पुत्रैश्च पौत्रैश्च गोत्रै दौहित्रकैस्तथा । जामातृ भागिनेयैश्च सुहृन्मित्रैः प्रियाप्रियैः ॥१४॥
प्रदीयते जलं पिंडं यथोपकरणान्वितम् । गंगातोयेषु तीरेषु तेषां स्वर्गोऽक्षयो भवेत् ॥१५॥
पिंडादूर्ध्वं स्थिता ये च पितरो मातृगोत्रजाः । भवंति सुखिनः सर्वे मर्त्याश्शतसहस्रशः ॥१६॥
स्वर्गे तस्य स्थिताः सत्वा अधःस्था मध्यवासिनः ।
नित्यं वांच्छंति सद्गंगां गच्छन्तु सुरनिम्नगाम् ॥१७॥
एको गच्छति गंगां यः पूयंते तस्य पूरुषाः । एतदेव महापुण्यं तरते तारयत्यपि ॥१८॥
गंगाकृत्स्नगुणं वक्तुं नशक्तश्चतुराननः। अतः किंचिद्वदाम्यत्र भागीरथ्या द्विजा गुणम्॥१९॥
मुनयःसिद्धागंधर्वा ये चान्ये सुरसत्तमाः । गंगातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेऽच्युताभवन्॥२०॥
दिव्येन वपुषा सर्वे कामगेन रथेन च । अद्यापि न निवर्तंते रत्नपूर्णक्षयेषु वै ॥२१॥

जाते हैं, उसीतरह से गङ्गाजी के जल का स्पर्श होने से पुरुषों के पापों का क्षणभर में ही नाश हो जाता है ॥७॥ गङ्गा में स्नान करने से मनुष्य अक्षय स्वर्ग तथा भगवान् केशव को प्राप्त कर लेता है वह यश, राज्य, स्वर्ग तथा अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥८॥ जो व्यक्ति पितरों के उद्देश्य से गङ्गा में पिण्डदान विधिपूर्वक शुद्ध वाक्योंच्चारण पूर्वक करता है उसका फल सुनो ॥९॥ जो एक अन्न से पिण्डदान करता है वह एक हजार वर्ष तक देवलोक में पूज्य होता है । तिल के द्वारा अथवा फल से पिण्डदान करने पर उसको दो गुना फल मिलता है ॥१०॥ दूध-दधि आदि गव्यों से पिण्डदान करने पर प्राप्त होने वाले स्वर्ग का कभी अन्त नहीं होता है । इसतरह से पिण्डदान करने पर नित्य ही सौ यज्ञों के करने का फल प्राप्त होता है ॥११॥ उनके पितृगण यदि नरक में भी हो तो धन्य हो जाते है और भूमि पर रहने वाला मनुष्य, धन तथा पुत्र के साथ आरोग्य, सुख तथा सम्मान से पूजित होते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य रसातल में चले गये हैं, तथा पृथिवी पर कीट आदि के रूप में विद्यमान हैं, स्थावर हो गये हों अथवा पक्षि हो गये हों वे भी धनिक राजा होते हैं ॥१३॥ जिनलोगों के पुत्र, पौत्र, गोत्रीयों, दौहित्रों, जामाताओं, भागिनेयों, सुहृदों, मित्रों, पुत्र तथा प्रिय लोग गङ्गा में जाकर उपकरणों के साथ जलदान तथा पिण्डदान करते हैं, उन जीवों को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥१५॥ जो पिता तथा माता के गोत्र वाले पितृगण पिण्ड से ऊपर स्थित हैं वे सभी जीव हजारो गुना अधिक सुखी हो जाते हैं ॥१६॥ उनके सत्त्व तो स्वर्ग में स्थित होते है, चाहे वे नीचे अथवा मध्य में हों, वे सदा यही चाहते हैं कि नित्य ही गङ्गा में जायँ ॥१७॥ जो अकेले गङ्गाजी में जाता है उसके सभी पूर्वज पवित्र हो जाते हैं । इसी महापुण्य से गङ्गा जाने वाले स्वयं तरते है और अपने पूर्वजों को भी तार देते हैं ॥१८॥ गङ्गाजी के समस्त गुणों का वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते हैं । अतएव हे द्विजों ! भागीरथी के कुछ गुणों का मैं वर्णन करता हूँ ॥१९॥ मुनिगण, सिद्धगण तथा गन्धर्व तथा दूसरे श्रेष्ठ देवता गङ्गा के तट पर तपस्या करके स्वर्ग लोक में जाकर स्थिर हो गये ॥२०॥ वे सबके सब दिव्य शरीर तथा कामगरथ के

प्रासादा यत्र सौवर्णास्सर्वलोकोर्ध्वगाश्शिवाः । इष्टद्रव्यैः सुसंपूर्णाः स्त्रियो यत्र मनोरमाः ॥२२॥
पारिजातःसमाः पुष्पवृक्षाः कल्पद्रुमोपमाः । गंगातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्यं लभंति हि॥२३॥
तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा । पुरुदानैर्गतिर्याच गंगां संसेवतां च सा ॥२४॥
जारजं पतितं दुष्टमंत्यजं गुरुघातिनम् । सर्वद्रोहेण संयुक्तं सर्वपातकसंयुतम् ॥२५॥
त्यजंति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणाः । अन्येच बांधवाः सर्वे गंगा तु नपरित्यजेत्॥२६॥
यथा माता स्वयं जन्ममलशौचं च कारयेत् । क्रोडीकृत्य तथा तेषां गंगाप्रक्षालयेन्मलम् ॥२७॥
भवंति ते सुविख्याता भोग्यालंकारपूजिताः । दर्शने क्रियते गंगासकृद्भक्त्यानरैस्तु यैः ॥२८॥
तेषां कुलानां लक्षं तु भवात्तारयते शिवा । स्मृतार्तिहर्त्रीयैर्ध्याता संस्तुता साधुमोदिता॥२९॥
गंगा तारयते नृणामुभौ वंशौ भवार्णवात् । संक्रांतिषु व्यतीपाते ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः ॥३०॥
पुण्ये स्नात्वा तु गंगायां कुलकोटिं समुद्धरेत् । शुक्लपक्षे दिवामर्त्या गंगायामुत्तरायणे ॥३१॥
धन्या देहंविमुंचंति हृदिस्थे च जनार्दने । अनेन विधिना यस्तु भागीरथ्या जले शुभे ॥३२॥
प्राणांस्त्यक्त्वा व्रजेत्स्वर्गं पुनरावृत्तिवर्जितम् । यो गंगानुगतो नित्यं सर्वदेवानुगो हि सः ॥३३॥
सर्वदेवमयो विष्णुर्गंगाविष्णुमयी यतः । गंगायां पिंडदानेन पितृणां वै तिलोदकैः ॥३४॥
नरकस्था दिवं यांति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः । परदार परद्रव्यबाधाद्रोहपरस्य च ॥३५॥

द्वारा अपने रत्नों से भरे गृहों में स्वर्ग में जाकर अभी तक नहीं लौटे ॥२१॥ वहाँ सुवर्ण निर्मित महल हैं, वे सभी लोकों के ऊपर तथा कल्याणमय हैं । वे सब अभिप्रेत द्रव्यों से भरे हुए हैं । वहाँ की स्त्रियाँ सुन्दर हैं ॥२२॥ पारिजात के समान पुष्पों के वृक्ष है, तथा कल्पवृक्ष वहाँ विद्यमान हैं । गङ्गा के तट पर तपस्या करके वे स्वर्ग में ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥२३॥ तपस्याओं के करने से तथा अनेक प्रकार के यज्ञों के करने तथा अनेक प्रकार के दानों को करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति गङ्गा के सेवन से होती है ॥२४॥ जारज, पतित, दुष्ट, शूद्र, गुरु से घात करने वाले, सभी प्रकार के द्रोहों से युक्त तथा सभी पातकों वाले ॥२५॥ इन सभी पापों से युक्त को माता-पिता, पुत्र, प्रिय पत्नी मित्रगण तथा दूसरे बांधव सभी त्याग देते हैं, किन्तु गङ्गाजी उसे नहीं त्यागती हैं ॥२६॥ इन सबों से युक्त पुरुष को भी अपनी गोद में लेकर गङ्गाजी उसके पापों का प्रक्षालन कर देती हैं॥२७॥ वे भी जीव भोग्य पदार्थो से युक्त होकर अत्यन्त विख्यात हो जाते हैं । पुरुषों को गङ्गाजी भक्ति पूर्वक दर्शन किए जाने मात्र से पवित्र बना देती हैं ॥२९॥ उन सबों के लाखों पूर्वजों को कल्याणकारिणी गङ्गाजी संसार से तार देती हैं । स्मरण करने मात्र से कष्ट को दूर करने वाली गङ्गाजी का जो लोग ध्यान करते हैं तथा अच्छी तरह से प्रसन्नता पूर्वक स्तुति करते हैं ॥२९॥ उन लोगों के माता तथा पिता दोनों के वंशों को संसार सागर से वे तार देती हैं । संक्रान्ति के समय, व्यतीपात के समय, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के समय ॥३०॥ पुण्य समय में गङ्गा में स्नान करके मनुष्य अपने करोड़ों वंशों का उद्धार कर देते हैं । उत्तरायण के समय शुक्लपक्ष में दिन में गङ्गा में जाकर जो मनुष्य अपने प्राणों का परित्याग भगवान् जनार्दन का चिन्तन करते हुए करते हैं । इस विधि से गङ्गाजी के पवित्र जल में ॥३१-३२॥ अपने प्राणों का परित्याग करके जीव स्वर्ग चले जाते हैं और वे पुनः इस संसार में नहीं आते हैं । जो मनुष्य प्रतिदिन गङ्गाजी में स्नान करने के लिए जाता है, उसके पीछे सभी देवता जाते हैं ॥३३॥ क्योंकि भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं और गङ्गा विष्णुमयी हैं । गङ्गाजी में तिलोदक से तर्पण करने से तथा पिण्डदान करने से ॥३४॥ दूसरों की पत्नी तथा दूसरों के धन को लेने वाले भी पुरुषों के नरक में विद्यमान पितृगण

गतिर्मनुष्यमात्रस्य गंगैव परमा गतिः । वेदशास्त्र विहीनस्य गुरुनिंदापरस्य च ॥३६॥
समयाचारहीनस्य नास्ति गंगा समा गतिः। किंयज्ञैर्बहुवित्ताढ्यैः किंतपोभिः सुदुष्करैः ॥३७॥
स्वर्गमोक्षप्रदा गंगा सुखसौभाग्यपूजिता। नियमैः परमैर्नित्यं किं योगैश्चित्तरोधकैः ॥३८॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा गंगा सुखमोक्षाग्रतः स्थिता। अनेकजन्मसंघातपापं पुंसां विनश्यति ॥३९॥
स्नानमात्रेण गंगायां सद्यः स्यात्पुण्यभाङ्नरः। प्रभासे गोहस्रस्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥४०॥
लभते यत्फलं दाने गंगास्नानाद्दिनेदिने। दृष्ट्वा तु हरते पापं स्पृष्ट्वा तु लभते दिवम्॥४१॥
प्रसंगादपि सा गंगा मोक्षदा त्ववगाहिता । सर्वेन्द्रियाणां चापल्यं वासनाशक्तिसंभवम् ॥४२॥
निर्घृणत्वं ततो गंगादर्शनात्प्रविनश्यति । परद्रव्याभिकांक्षित्वं परदाराभिलाषिता ॥४३॥
परधर्मेरुचिश्चैव दर्शनादेव नश्यति । यदृच्छालाभसंतोषस्स्वधर्मेषु प्रवर्तते ॥४४॥
सर्वभूतसमत्वं च गङ्गायां मज्जनाद्भवेत् । यस्तु गंगां समाश्रित्य सुखं तिष्ठति मानवः ॥४५॥
जीवन्मुक्तस्स एवेह सर्वेषामुत्तमोत्तमः। गंगां संश्रित्यस्तिष्ठेत्तस्यकार्यं नविद्यते ॥४६॥
कृतकृत्यस्स वैमुक्तो जीवन्मुक्तश्च मानवः । यज्ञोदानं तपोजप्यं श्राद्धं च सुरपूजनम् ॥४७॥
गंगायां तु कृतं नित्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् । अन्यस्थाने कृतं पापं गंगातीरे विनश्यति ॥४८॥
गंगातीरेकृतं पापं गंगास्नानेन नश्यति । आत्मनो जन्मनक्षत्रे जाह्नवीसङ्गते दिने ॥४९॥

स्वर्ग चले जाते हैं और स्वर्ग में रहने वाले पितृगण मुक्त हो जाते हैं ॥३५॥ सभी मनुष्यों की परमगति गङ्गाजी ही हैं। चाहे वेद शास्त्र विहीन तथा गुरुजनों की निन्दा करने वाला ही क्यों न हो ॥३६॥ सदाचार का पालन नहीं करने वाले के लिए गङ्गा के समान कोई भी दूसरी गति नहीं है । बहुत अधिक धन से किए जाने वाले यज्ञों तथा दुष्कर तपस्याओं से कोई लाभ नहीं है ॥३७॥ सुख तथा सौभाग्य से पूजित गङ्गाजी ही स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं । चित्त के निरोध रूपी योग तथा श्रेष्ठ नियमों का नित्य पालन करने से क्या लाभ है ?॥३८॥ सामने विद्यमान गङ्गाजी ही सुख तथा मोक्ष प्रदान करती है । उन्हीं से मनुष्यों द्वारा अनेक जन्मों में किए गये पाप समूह का गङ्गाजी नाश कर देती हैं ॥३९॥ गङ्गाजी में जाकर मनुष्य शीघ्र ही पुण्य का पात्र बन जाता है । सूर्यग्रहण की बेला में प्रभास क्षेत्र में जाकर हजारो गायों का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति गङ्गा स्नान करने वाले को प्रतिदिन होती है । गङ्गाजी का दर्शन करने से वे उसके पापों को हर लेती हैं और जो गङ्गाजल का स्पर्श करता है, वह स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥४०-४१॥ केवल प्रसंग मात्र से भी स्नान करने वाले को गङ्गाजी मोक्ष प्रदान कर देती हैं । वासना तथा आसक्ति जन्य सभी इन्द्रियों की चञ्चलता ॥४२॥ निष्ठुरता ये सबके सब गङ्गाजी के दर्शन मात्र से विनष्ट हो जाते हैं । दूसरे की सम्पत्ति को प्राप्त करने की कामना तथा दूसरे की पत्नी को प्राप्त करने की इच्छा ॥४३॥ तथा दूसरे धर्म में होने वाली अभिरुचि गङ्गाजी के दर्शन मात्र से समाप्त हो जाते हैं । उसकी अपने धर्म में रुचि हो जाती है, ओर स्वाभाविक रूप से प्राप्त वस्तुओं से संतोष हो जाता है ॥४४॥ गङ्गाजी में स्नान करने से सभी भूतों के प्रति समभाव होता है । जो मनुष्य गङ्गाजी के तट पर जाकर वहीं सुखपूर्वक निवास करता है॥४५॥ सभी लोकों में उत्तमोत्तम वह पुरुष इस लोक में ही जीवन्मुक्त हो जाता है । जो जाकर गङ्गातट पर ही निवास करता है, उसके लिए कुछ भी करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता है ॥४६॥ वह मनुष्य जीवन्मुक्त, कृतकृत्य तथा मुक्त है । गङ्गा तट में यज्ञ, दान, तप तथा मन्त्रजप श्राद्ध तथा देवपूजन ॥४७॥ जो कुछ भी किए जाते हैं, उन सबों का करोड़ गुना फल होता है । दूसरे स्थानों में किए गये पाप का विनाश गङ्गा के तट पर हो जाता

नरःस्नात्वा तु गंगायां स्वकुलंच समुद्धरेत् । आदरेण यथा स्तौति धनवंतं सदा नरः ॥५०॥
सकृद्गंगां तथास्तुत्वा भवेत्स्वर्गस्य भाजनम्। अश्रद्धयापि गंगायां योऽसौ नामानुकीर्तनम् ॥५१॥
करोति पुण्यवाहिन्यास्स वै स्वर्गस्य भाजनम्। क्षितौ भावयतो मर्त्यान्नागांस्तारयतेप्यधः ॥५२॥
दिवि तारयते देवान् गंगात्रिपथगास्मृता । ज्ञानतोऽज्ञानतोवापि कामतोऽकामतोपि वा॥५३॥
गंगायां च मृतोमर्त्यः स्वर्गं मोक्षं च विंदति । या गतिर्योगयुक्तस्य सत्वस्थस्य मनीषिणः॥५४॥
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गंगायां तु शरीरिणः। चांद्रायणसहस्राणि यश्चरेत्कायशोधनम् ॥५५॥
पानं कुर्याद्यथेच्छं च गंगांभः सविशिष्यते। तावत्प्रभावस्तीर्थानां देवानां तु विशेषतः ॥५६॥
तावत्प्रभावो वेदानां यावन्नाप्नोति जाह्नवीम्। तिस्रःकोट्योर्धकोटीच तीर्थानां वायुरब्रवीत् ॥५७॥
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्तिजाह्नवि। विष्णुपादाब्जसंभूते गंगेत्रिपथगामिनि॥५८॥
धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि । विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवीविष्णुपूजिता॥५९॥
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्मारणांतिकात् । श्रद्धया धर्मसंपूर्णे श्रीमता रजसा च ते॥६०॥
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् । त्रिभिः श्लोकवरैरेभिर्यः स्नायाज्जाह्नवीजले॥६१॥
जन्मकोटिकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । मूलमंत्रं प्रवक्ष्यामि जाह्नव्या हरभाषितम् ॥६२॥
सकृज्जपान्नरः पूतो विष्णुदेहे प्रतिष्ठति ।
मंत्रश्चायं ॐ नमो गंगायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः ॥६३॥

है ॥४८॥ और गङ्गा तीर में किए गये पापों का नाश गङ्गा स्नान करने से होता है । अपने जन्म नक्षत्र में अथवा उस दिन को गङ्गा में ॥४९॥ स्नान करके मनुष्य अपने वंश का उद्धार कर देता है । जिसतरह मनुष्य आदर पूर्वक किसी धनी की स्तुति करता है ॥५०॥ उसी प्रकार एक बार भी गङ्गाजी की स्तुति करके मनुष्य स्वर्ग प्राप्ति का पात्र बन जाता है । बिना श्रद्धा के भी जो गङ्गाजी के नामों का कीर्तन करता है ॥५१॥ उसको भी श्रीगङ्गाजी स्वर्ग प्राप्ति का पात्र बना देती है । त्रिपथ गामिनी गङ्गाजी भूमि पर अपने भक्तमानव को तारती हैं, पाताल में नागों को तारती हैं, और स्वर्ग में देवताओं को तारती हैं । जान करके जाना चाहकर या नहीं चाहकर भी ॥५२-५३॥ जो मनुष्य गङ्गा तट पर मर जाता है वह स्वर्ग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है । योगी सात्त्विक तथा मनीषी मनुष्य को जिस गति की प्राप्ति होती है ॥५४॥ उस गति की गङ्गा में प्राण त्याग करने वाले को प्राप्ति हो जाती है । हजारों चान्द्रायण व्रत करने से शरीर जितना शुद्ध होता है ॥५५॥ उससे अधिक शुद्धि गङ्गाजल को इच्छानुसार पीने वाले की होती है । तीर्थों तथा विशेष रूप से देवताओं ॥५६॥ एवं वेदों का तब तक ही प्रभाव रहता है जब तक कि गङ्गाजी की प्राप्ति नहीं होती है । वायु देवता ने कहा द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष में साढे तीन करोड़ तीर्थ हैं, वे सबके सब हे त्रिपथ गामिनी, विष्णु भगवान् के चरण कमल से उद्भूत जाह्नवि आपके हैं ॥५७-५८॥ हे धर्मद्रवा शब्द से विख्यात जाह्नवि आप मेरे पापों को हर लें । आप भगवान् विष्णु के चरणों से उद्भूत वैष्णवी तथा भगवान् विष्णु से पूजित हैं॥५९॥ अतएव आप जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के पापों से मेरी रक्षा करें । हे श्रद्धा तथा धर्म से परिपूर्ण गङ्गे आप अपने ऐश्वर्य सम्पन्न धूलि से ॥६०॥ तथा जल से हे देवि ! मुझको पवित्र कर दें । इन श्रेष्ठ तीन श्लोकों को पढते हुए गङ्गाजी में स्नान करना चाहिए ॥६१॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति अपने करोड़ों जन्मों के पापों से शुद्ध हो जाता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नही है । मैं शङ्करजी के द्वारा कहे गये गङ्गा के मूल मन्त्र को बतलाता हूँ॥६२॥ उसका एक बार जप कर लेने से मनुष्य भगवान् विष्णु के शरीर में प्रतिष्ठित हो जाता है । वह यह मन्त्र है । ॐ

जाह्नवीतीरसंभूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः । सर्वपापविनिर्मुक्तो गंगास्नानं विना नरः ।।६४।।
गंगाजलोर्मिनिर्धूतपवनं स्पृशते यदि । स पूतः कल्मषाद्धोरात्स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ।।६५।।
यावदस्थिमनुष्यस्य गंगातोये प्रतिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।६६।।
पित्रोर्बंधुजनानां च अनाथानां गुरोरपि । गंगायामस्थिपातेन नरः स्वर्गान्न हीयते ।।६७।।
गंगां प्रतिवहेद्यस्तु पितृणामस्थिखंडकम् । पदे पदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।६८।।
धन्या जानपदा ये च पशवः पक्षिकीटकाः । स्थावरा जंगमाश्चान्ये गंगातीरसमाश्रिताः ।।६९।।
क्रोशान्तरमृता ये च जाह्नव्या द्विजसत्तमाः । मानवा देवतास्संति इतरे मानवा भुवि ।।७०।।
गंगास्नानाय संगच्छन्पथि संम्रियते यदि । स च स्वर्गमवाप्नोति गंगास्नानफलं लभेत् ।।७१।।
गंगाजले प्रयास्यंति ते जीवाः पथि ये मृताः । कीटाः पतंगाश्शलभाः पादाघातेन गच्छताम् ।।७२।।
ये वदंति समुद्देशं गंगां प्रतिजनंद्विजाः । ते च यांति परं पुण्यं गंगास्नानफलं नराः ।।७३।।
जाह्नवीं ये च निंदंति पाषण्डैर्हतचेतसः । ते यांति नरकं घोरं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।७४।।
दुस्थो वापि स्मरन्नित्यं गंगेतिपरिकीर्तयन् । पठन्स्वर्गमवाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।७५।।
गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यत्ते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ।।७६।।
अंधाश्चपंगवस्ते च वृथभवसमुद्भवाः । गर्भपाताद्विपद्यंते ये गंगानगतानरः ।।७७।।
नकीर्तयंतिये गंगांजडतुल्या नराधमाः । परान्नोपदिशंतिस्मवातूलाश्चित्तविभ्रमाः ।।७८।।

नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः अर्थात् विश्व स्वरूपिणी नारायणी गङ्गाजी को बारम्बार नमस्कार है।।६३।। जो मनुष्य गंगातट की मिट्टी को अपने शिर पर धारण करता है, वह गङ्गा स्नान किये बिना ही सात जन्मों के पापों से शुद्ध हो जाता है ।।६४।। गङ्गाजी की लहरियों का स्पर्श करके आती हुयी वायु, जिसका स्पर्श करती है, वह घोर पाप से पवित्र होकर अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ।।६५।। गङ्गाजी में मनुष्य की हड्डी जब तक रहती है, उतने हजार वर्ष पर्यन्त वह मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है ।।६६।। जो मनुष्य माता-पिता बांन्धवों, अनाथों तथा गुरु की अस्थि को गङ्गाजी में डालने का काम करता है, उस मनुष्य का स्वर्ग से कभी भी पतन नहीं होता है ।।६७।। जो अपने पितरों की हड्डी को गङ्गाजी में ले जाकर डालता है, वह पद-पद पर अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है ।।६८।। गङ्गा के तीर पर रहने वाले, जनपद, पशु पक्षी, कीड़े, स्थावर, जङ्गम तथा दूसरे जीव धन्य हैं।।६९।। जो मनुष्य गङ्गाजी से एक कोश के भीतर ही मरते हैं हे द्विजश्रेष्ठ ! वे मानव देवता होते हैं तथा पृथिवी पर रहने वाले दूसरे जीव मनुष्य होते हैं ।।७०।। यदि कोई गङ्गा में स्नान करने के लिए जाते हुए रास्ते में ही मर जाता है, वह भी गङ्गा स्नान के फल को प्राप्त करके स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है ।।७१।। जो कीट, पतंग, कीड़े गङ्गाजी के रास्ते में मर जाते हैं वे गङ्गा स्नान करने के लिए जाते हुए लोगों के पदाघात से लगाकर गङ्गाजी में पहुँच जाते हैं ।।७२।। जो ब्राह्मण गङ्गाजी का नाम लेकर लोगों से बातें करते हैं, वे गङ्गा स्नान के परम पवित्र फल को प्राप्त करते हैं ।।७३।। जो पाखण्डी लोग गङ्गाजी की निन्दा करते हैं वे घोर नरक में जाते हैं और उनका मनुष्य योनि में जन्म नहीं होता है ।।७४।। जो गङ्गा के नामों का कीर्तन करते हुए गङ्गाजी से दूर रहते हैं, वे भी स्वर्ग को प्राप्त कर लेते हैं, बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है ?।।७५।। जो गङ्गाजी से सैकड़ों योजन दूर रहकर गङ्गाजी के नाम का स्मरण करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं ।।७६।। जो मनुष्य कभी गङ्गाजी का दर्शन नहीं किए वे ही वस्तुतः अन्धे, लंगड़े तथा व्यर्थ जन्म लेने वाले गर्भपात से मरते हैं ।।७७।। जो नराधम

नपठंतिजनायेचतेषांशास्त्रंविनिष्फलम् । गंगापुण्यफलं विप्राः कुधियः पतिताधमाः ॥७९॥
पाठयंति जना ये च श्रद्धया निपठंति च । गच्छंति ते दिवं धीरास्तारयंतिपितृन्गुरून् ॥८०॥
पाथेयकंगच्छतांयोवसुशक्त्याप्रयच्छति । भागीरथ्यालभेत्स्नानं यः परान्नेनगच्छति ॥८१॥
कर्तुःस्नानफलंविद्याद्दिगुणं प्रेरकस्य च । इच्छायानिच्छया चापि प्रेरणेनान्यसेवया ॥८२॥
जाह्नवीं योगतःपुण्यां सगच्छेन्निजरालयम्।

द्विजा ऊचुः

कर्तुःस्नानफलंविद्याद्द्विगुणं प्रेरकस्य च । गंगायाः कीर्तनंव्यास श्रुतं त्वत्तोविनिर्मलम् ॥८३॥

द्विजा ऊचुः

गंगाकस्मात्किमाकारा कुतः साह्यतिपावनी ।

व्यास उवाच

शृणुध्वं कथयाम्यद्य कथां पुण्यां पुरातनीम् ॥८४॥
यां श्रुत्वा मोक्षमार्गं च प्राप्नोतिनरसत्तमः । ब्रह्मलोकं पुरा गत्वा नारदो मुनिपुगवः ॥८५॥
नत्वाविधिंच्पप्रच्पूतंत्रैलोक्यपावनम् । किंसृष्टंचत्वयातातसंमतंशंभुकृष्णयोः ॥८६॥
सर्वलोकहितार्थाय भुवः स्थाने समीहितम् । देवी वा देवता का वा सर्वासामुत्तमोत्तमा ॥८७॥
यां समासाद्य देवाश्च दैत्यमानुषपन्नगाः । अंडजाः स्वेदजा वृक्षा ये चान्य उद्भिज्जादयः ॥८८॥
सर्वे यांति शिवं ब्रह्मन्समग्रं विभवं ध्रुवम् ।

ब्रह्मोवाच

सृजता च पुरा प्रोक्ता मायाप्रकृतिरूपिणी ॥८९॥

गङ्गाजी के नामो का कीर्तन नहीं करते हैं तथा दूसरों को उसका उपदेश भी नहीं देते हैं, वे ही वातुल और भ्रान्त मनुष्य हैं ॥७८॥ हे विप्रों ! जो दूषित बुद्धि वाले गङ्गा के पवित्र फलों का अध्ययन नहीं करते है, वे उनका शास्त्राध्ययन व्यर्थ है ॥७९॥ जो लोग श्रद्धा पूर्वक पढ़ते हुए दूसरों को गङ्गाजी का माहात्म्य सुनाते हैं, वे धीर पुरुष स्वर्गलोक में जाते हैं और अपने पितरों तथा गुरुजनों को तार देते हैं ॥८०॥ जो गङ्गा जाने वालों को रास्ते का भोजन तथा धन अपनी शक्ति के अनुसार प्रदान करते हैं, वह परान्न के द्वारा जाते हुए लोगों के गङ्गा स्नान करने का फल प्राप्त करता है ॥८१॥ गङ्गा स्नान करने वाले की अपेक्षा उसको स्नान करने की प्रेरणा देने वाले को दो गुना ज्ञान और फल होता है । इच्छा, अनिच्छा तथा प्रेरणा तथा दूसरों की सेवा से ॥८२॥ जो पवित्र गङ्गाजी में स्नान करने के लिए जाता है, वह देवलोक में जाता है । **द्विजों ने कहा—** हे व्यासजी ! हमलोगों ने आपके मुख से गङ्गाजी का निर्मल कीर्तन सुना ॥८३॥ गङ्गा किससे उत्पन्न हुयी है ? उनका आकार क्या है ? और वे क्यों अत्यन्त पवित्र हैं ? **व्यासजी ने कहा—** आपलोग सुनें मैं पुरानी तथा पवित्र कथा सुनाता हूँ ॥८४॥ उसका श्रवण करके मनुष्य मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लेता है, प्राचीन काल में नारदजी ब्रह्मलोक में गये ॥८५॥ वे अनेक प्रकार की पवित्र बातों को ब्रह्माजी से पूछे । हे तात ! आपने भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु के अनुकूल किस चीज की सृष्टि की है ?॥८६॥ जो पृथिवी पर रहने वाले जीवों के लिए अभिप्रेत तथा कल्याणकारी हो । सबों में उत्तम देवी अथवा देवता कौन है ?॥८७॥ जिसको प्राप्त करके देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, अण्डज, स्वेदज तथा वृक्ष आदि उद्भिज आदि ॥८८॥ सबके सब समस्त ऐश्वर्यों के साथ परम कल्याण को प्राप्त करते हैं । **ब्रह्माजी ने कहा—** सृष्टि करते

आद्या भवस्व लोकानां त्वत्तो भवं सृजाम्यहम्। एतच्छुत्वा परा सा च सप्तधा चा भवत्तदा ॥९०॥
गायत्री वाक्त्र च स्वर्लक्ष्मीस्सर्वसस्यवसुप्रदा । ज्ञानविद्या उमा देवी शक्तिबीजा तपस्विनी ॥९१॥
वर्णिका धर्मद्रवा च एतास्सप्तप्रकीर्तिताः । गायत्री प्रभवो वेदा वेदात्सर्वं स्थितं जगत् ॥९२॥
स्वस्ति स्वाहा स्वधा दीक्षा एता गायत्रिजास्मृताः ।
उच्चरयेत्सदा यज्ञे गायत्रीं मातृकादिभिः ॥९३॥
क्रतौ देवाः स्वधां प्राप्य भवेयुरजरामराः। ततस्सुधारसं देवा मुमुचुर्धरणीतले ॥९४॥
अथ सस्यवती पृथ्वी ओषधीनां परा शुभा। फलमूलै रसै र्भक्ष्यैर्जनाः सुस्थतराभवन् ॥९५॥
भारती सर्वलोकानां चानने मानसे स्थिता। तथैव सर्वशास्त्रेषु धर्मोद्देशं करोति सा॥९६॥
विज्ञानं कलहं शोकं मोहामोहं शिवाशिवम्। तयाविना जगत्सर्वं यात्यतत्त्वमितिस्मृतम्॥९७॥
कमलासंभवश्चैव वस्त्रभूषणसंचयः। सुखं राज्यं त्रिलोके तु ततः सा हरिवल्लभा॥९८॥
उमया हेतुना शंभोर्ज्ञानं लोकेषु संततम्। ज्ञानमाताच सा ज्ञेया शंभोरर्धाङ्गवासिनी ॥९९॥
वर्णिका शक्तिरत्युग्रा सर्वलोकप्रमोहिनी । सर्वलोकेषु लोकानां स्थिति संहारकारिणी ॥१००॥
देव्या च निहतौ पूर्वमसुरौ मधुकैटभौ । रुरुश्चापि हतो घोरः सर्वलोकपरिश्रुतः ॥१०१॥
सर्वदैवैकजेतारं साजध्ने महिषासुरम्। निहता लीलया देव्या येऽसुरा दैत्यपुंगवाः ॥१०२॥
एवं बलानि दैत्यानां निहत्य सर्वदा तया। पालितं मोदितं चैव कृत्स्नमेतज्जगत्यम्॥१०३॥
धर्मद्रवस्वरूपा च सर्वधर्मप्रतिष्ठिता । महतीं तां समलोक्य मयाकमंडलौ धृता॥१०४॥
विष्णुपादाब्जसम्भूता शंभुना शिरसा घृता । अस्माभिश्चत्रिभिर्युक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥१०५॥

हुए मैंने प्रकृति रूपिणी माया को कहा तुम जगत् का आदि कारण बनो । मैं तुमसे ही जगत् की सृष्टि करूँगा । इस वात को सुनकर परा प्रकृति सात रूपों में हो गयी ॥९०॥ गायत्री, वाक्स्वरूपा सरस्वती, सब प्रकार के धन धान्य को प्रदान करने वाली लक्ष्मी, ज्ञान तथा विद्या स्वरूपा उमादेवी, शक्ति बीजा तपस्विनी और धर्मद्रवा । ये सात परा प्रकृति के रूप हैं । इनमें गायत्री से सभी वेद प्रकट हुए और वेद सम्पूर्ण जगत् की स्थिति है ॥९१-९२॥ स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और दीक्षा भी गायत्री से उत्पन्न कही गयी हैं । यज्ञ में सदैव गायत्री का मातृका के साथ उच्चारण करना चाहिए ॥९३॥ यज्ञ में देवता स्वाहा को प्राप्त करके अजर अमर हो गये । इसीलिए देवताओं ने पृथिवी पर अमृत रस गिराये ॥९४॥ उसके बाद सस्यों से भरी हुयी ओषधियों (अन्नों) के लिए अत्यन्त कल्याणकारिणी हुयी और लोग, फल, मूल, और भक्ष्य रसों से अत्यन्त सुखी हो गये ॥९५॥ सरस्वती सभी लोगों के मन तथा मुख में स्थित हुयी । इसीलिए वह सभी शास्त्रों में धर्मों का वर्णन करती हैं ॥९६॥ उसके बिना विज्ञान, कलह, शोक, मोह, अमोह, कल्याण, अकल्याण रूप सम्पूर्ण जगत् तत्त्वहीन हो जाता है ॥९७॥ लक्ष्मी से, वस्त्र, भूषण, सुख तथा राज्य त्रैलोक्य में होता है, इसीसे लक्ष्मीजी श्रीहरि की वल्लभा हैं ॥९८॥ उमा के ही द्वारा शम्भु का ज्ञान लोक में फैला उमा को ज्ञान की माता शम्भु की अर्द्धाङ्गवासिनी समझना चाहिए ॥९९॥ उग्रा ही वर्णों की शक्ति है । वह सम्पूर्ण लोक को मोहित करती है । वही सभी लोको में स्थिति तथा संहार को करती है ॥१००॥ पूर्वकाल में देवी ने मधु और कैटभ को मार दिया । सम्पूर्ण संसार में प्रख्यात भयङ्कर रुरु नामक दैत्य मारा गया ॥१०१॥ सभी देवताओं को जीत लेने वाले महिषासुर को देवी ने मार दिया । देवी ने आसानी से बड़े-बड़े दैत्यों को मारा ॥१०२॥ इसतरह से दैत्यों को मारकर सर्वदा देवी ने त्रैलोक्य का पालन किया और उसे प्रसन्न किया ॥१०३॥ धर्मद्रव

धर्मद्रवा परिव्याता जलरूपा कमंडलौ। बलियज्ञेषु संभूता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१०६॥
छद्मना छलितः पूर्वं बलिर्बलवतांवरः। ततःपादद्वयेनैव क्रांतंसर्वमहीतलम् ॥१०७॥
नभःपादश्च ब्रह्माण्डं भित्वा मम पुरःस्थितः। मया संपूजितः पादः कमण्डलुजलेन वै ॥१०८॥
प्रक्षाल्यैवार्चितात्पादाद्धेमकूटेऽपतज्जलम् । तत्कूटाच्छंकरं प्राप्य भ्रमते सा जटास्थिता ॥१०९॥
ततो भगीरथेनैव समाराध्य शिवं भुवि। आनीयाराधितो नित्यं तपसा गजपुंगवः ॥११०॥
तेन भित्वा नगं वीर्यात्त्रिभिर्दतैः कृतं बिलम् । ततस्त्रिबिलगा यस्मात्त्रिस्त्रोता लोकविश्रुता ॥१११॥
हरिब्रह्महरयोगात्पूता लोकस्य पावनी। समासाद्य च तां देवीं सर्वधर्मफलं लभेत् ॥११२॥
पाठयज्ञपरैः सर्वैं मंत्रहोमसुरार्चनैः। सागतिर्नभवेज्जंतोर्गंगासंसेवया च या ॥११३॥
धर्मस्य साधनोपायो ह्यतः परो न विद्यते। त्रैलोक्यपुण्यसंयोगात्तस्मात्तां व्रज नारद ॥११४॥
गंगातोयास्थि संयोगात् सुतास्ते सगरस्य च। स्वर्गताः पितृभिश्चैव स्वपूर्वापरजैः सह ॥११५॥
ततो ब्रह्ममुखाच्छुत्वा नारदो मुनिपुंगवः। गंगाद्वारे तपः कृत्वा ब्रह्मणा सदृशो भवत् ॥११६॥
सर्वत्रसुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे ॥११७॥
त्रिरात्रेणैकरात्रेण नरो याति परां गतिम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सद्यो मुक्तिं विचिंतयेत् ॥११८॥
ततो गच्छत धर्मज्ञाः शिवां भागीरथीमिह। अचिरेणैव कालेन स्वर्गमोक्षं प्रगच्छथ ॥११९॥
विशेषकलिकाले च गंगामोक्षप्रदा नृणाम्। कृच्छ्राच्च क्षीणसत्वानामनंतः पुण्यसंभवः ॥१२०॥

स्वरूपा प्रकृति जलरूप से मेरे कमण्डलु में भर गयी। उसको राजा बलि के यज्ञ में भगवान् विष्णु ने प्रकट किया॥१०६॥ महाबलवान् बलि को श्रीभगवान् ने छद्मरूप से छला। उन्होंने दो डगों में सम्पूर्ण पृथिवी को नाप लिया ॥१०७॥ भगवान् का चरण आकाश का भेदन करके मेरे सामने उपस्थित हुआ। मैंने कमण्डलु के जल से भगवान् के चरणों की पूजा की ॥१०८॥ मैंने भगवान् के चरणों को धोकर पूजा की उससे वह जल हेमकूट पर्वत पर गिरा। हेमकूट से वह भगवान् शङ्करजी की जटा में आकर उसी में भ्रमण करने लगा ॥१०९॥ उसके बाद भगीरथ ने शिव की आराधना करके उसे पृथिवी पर लाकर तपस्या के द्वारा पर्वत श्रेष्ठ की पूजा की ॥११०॥ उसने अपने पराक्रम से तीन दाँतो से छिद्र बना दिया। उसके कारण तीन छिद्रों से जाने के कारण गङ्गा त्रैलोक्य में त्रिस्रोता के नाम से प्रख्यात हुयीं ॥१११॥ श्रीहरि, ब्रह्मा और शङ्करजी के साथ संयोग होने से गङ्गा पवित्र तथा संसार को पवित्र बनाने वाली हुयीं। गङ्गा देवी को प्राप्त करके सभी धर्मो का फल प्राप्त हो जाता है ॥११२॥ पाठ, यज्ञ तथा सभी मंत्रों के द्वारा होम करने एवं देवताओं की अर्चना करने से उस गति की प्राप्ति नहीं होती है, जिस गति की प्राप्ति गङ्गाजी का सेवन करने से होती है ॥११३॥ गङ्गाजी से बढकर धर्म का दूसरा कोई भी साधन नहीं है। गङ्गा में त्रैलोक्य के पुण्यों का संयोग होने से नारद तुम गङ्गातट पर जाओ ॥११४॥ हड्डी से गङ्गा के जल का संयोग हो जाने से राजा सगर के पुत्र अपने पितृगणों के साथ स्वर्ग चले गये ॥११५॥ उसके बाद ब्रह्माजी के मुख से इस आख्यान को सुनकर नारदजी गङ्गाद्वार में तपस्या करके ब्रह्माजी के समान हो गये ॥११६॥ गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं किन्तु तीन स्थानों में वे दुर्लभ हैं। गङ्गाद्वार में, प्रयाग में तथा गङ्गासागर संगम स्थल पर ॥११७॥ इन स्थानों में तीन रात अथवा एक रात निवास करने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अतएव सारे प्रयत्नों के द्वारा सद्यः मुक्ति प्राप्त करना चाहिए ॥११८॥ अतएव हे धर्मज्ञों आपलोग यहाँ के कल्याणकारिणी भागीरथी के तट पर चले जायँ। ऐसा करके आपलोग शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर लेंगे ॥११९। विशेष रूप से कलियुग में गङ्गा ही मोक्ष प्रदान

ततस्ते ब्राह्मणा हृष्टाः श्रुत्वा व्यासाद्गिरं शुभाम् । गंगायां तु तपस्तप्त्वामोक्षमार्गं ययुस्तदा ॥१२१॥
य इदं शृणुयान्मर्त्यः पुण्याख्यानमनुत्तमम् । सर्वं तरति दुःखौघं गंगास्नानफलं लभेत् ॥१२२॥
सकृदुच्चारिते चैव सर्वयज्ञफलं लभेत् । दानं जप्यं तथाध्यानं स्तोत्रं मंत्रसुरार्चनम् ॥१२३॥
तत्रैव कारयेद्यस्तु स चानंतफलं लभेत् । तस्मात्तत्रैव कर्त्तव्यं जपहोमादिकं नरैः ॥१२४॥
अनंतं च फलं प्रोक्तं जन्मजन्मसु लभ्यते ॥१२५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गंगामाहात्म्य नाम द्विषष्ठितमोऽध्यायः ॥६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

पुलस्त्य उवाच

एतस्मिन्नंतरे पूर्वं व्यासशिष्यो महामुनिः । नमस्कृत्य गुरुं भीष्म संजयः परिपृच्छति ॥१॥

संजय उवाच

देवानां पूजनोपायं क्रमं ब्रूहि सुनिश्चितम् । अग्रे पूज्यतमः कोसौ को मध्यो नित्यपूजने ॥२॥
अंते च पूजा कस्यैव कस्यको वा प्रभावकः । किं वा किंच फलं ब्रह्मन्पूजयित्वालभेन्नरः ॥३॥

व्यास उवाच

गणेशं पूजयेदग्रे त्वविघ्नार्थं परेत्विह । विनायकत्वमाप्नोति यथागौरीसुतो हि सः ॥४॥

करने वाली हैं । कृच्छ्र तपस्या करने से जिनके शरीर क्षीण हो गये हैं उनको अनन्त पुण्य की प्राप्ति होती है ॥१२०॥ उसके बाद व्यासजी के मुख की वाणी को सुन करके ब्राह्मण सन्तुष्ट हो गये और गङ्गा तट पर तपस्या करके मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लिए ॥१२१॥ जो मनुष्य इस उत्तम आख्यान को सुनता है, वह सभी दुःखें को पार कर जाता है तथा गङ्गा स्नान का फल प्राप्त करता है ॥१२२॥ इसका एक बार पाठ करने से सभी यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है । अतएव दान, मन्त्र, जप, ध्यान, स्तोत्रपाठ, मन्त्रपाठ तथा देवताओं की पूजा ॥१२३॥ वहीं पर (गङ्गा तट पर) जो करता है, वह अनन्त फलों को प्राप्त करता है । अतएव मनुष्यों को गङ्गातट पर जप तथा होम आदि करना चाहिए ॥१२४॥ ऐसा करने वाला अनन्त फलों को अनेक जन्मों में प्राप्त करता है ॥१२५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के गङ्गा महात्म्य वर्णन नामक बासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६२।।

गणेशजी की अग्रपूज्यता का वर्णन, पार्वतीजी के प्रेम की कथा

पुलस्त्य महर्षि ने कहा— हे भीष्म ! उसी समय व्यासजी के शिष्य संजय महर्षि ने अपने गुरु को नमस्कार करके पूछा ॥१॥ **संजय महर्षि ने कहा—** आप मुझे देवताओं के पूजन के साधन तथा क्रम को बतलायें नित्य के पूजन में किसकी पूजा सबसे पहले करनी चाहिए ? तथा किसकी पूजा सबसे मध्य में करनी चाहिए ॥२॥ किस देवता की पूजा अन्त में करनी चाहिए ? किस देवता का प्रभाव क्या है ? हे ब्रह्मन् किस देवता की पूजा करने से किस फल की प्राप्ति होती है ?॥३॥ **व्यासजी ने कहा—** विघ्न नहीं होने के लिए सबसे पहले गणेशजी की पूजा

पार्वत्यजनयत्पूर्वं सुतौ महेश्वरादिमौ। सर्वलोकधरौ शूरौ देवौ स्कंदगणाधिपौ ॥५॥
तौ च दृष्ट्वा नगसुता सिध्यर्थं पर्यभाषत ।

पार्वत्युवाच

इदं तु मोदकं पुत्रौ देवैर्दत्तं मुदान्वितैः ॥६॥
महाबुद्धीति विख्यातं सुधया परिनिर्मितम्। गुणं चास्य प्रवक्ष्यामि शृणु तं तु समाहितौ ॥७॥
अस्यै वाघ्राणमात्रेण अमरत्वं लभेद्ध्रुवम्। सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ॥८॥
निपुणः सर्वतंत्रेषु लेखकश्चित्रकृत्सुधीः । ज्ञानविज्ञानतत्त्वज्ञः सर्वज्ञो नात्र संशयः ॥९॥
पुत्रौ धर्मादधिकतां प्राप्य सिद्धिशतं ब्रजेत् । यस्तस्य वै प्रदास्यामि पितुस्तेसंमतंत्विदम् ॥१०॥

व्यास उवाच

श्रूत्वा मातृमुखादेवं वचः परमकोविदः। स्कंदस्तीर्थं ययौ सद्यः सर्वं त्रिभुवनस्थितम् ॥११॥
बर्हिणं स्वंसमारुह्य त्वभिषेकः कृतःक्षणात् । पितरौ प्रदक्षिणं कृत्वा लंबोदरधरस्सुधीः ॥१२॥
तत एव मुदा युक्तः पित्रोरेवाग्रतस्थितः । पुरतश्च तथास्कंदो मे देहीति ब्रुवन् स्थितः ॥१३॥
ततस्तु तौ समीक्ष्याथ पार्वती विस्मिताब्रवीत् ।

पार्वत्युवाच

सर्वतीर्थाभिषेकैस्तु सर्वदेवैर्नतैस्तथा ॥१४॥
सर्वयज्ञव्रतैर्मंत्रैर्योगैरन्यैर्यमैस्तथा । पित्रोरर्चाकृतः कोपि कलां नार्हति षोडशीम्॥१५॥
तस्मात्सुतशतादेषोधिकः शतगुणैरपि। अतो ददामि हेरंबं मोदकं देवनिर्मितम् ॥१६॥

करनी चाहिए। गौरीजी के पुत्र गणेशजी ने विनायकत्व को कैसे प्राप्त किया ?॥४॥ पार्वतीजी ने शिवजी के समस्त लोकों को धारण करने वाले तथा शूरवीर स्कन्द और गणेशजी दो पुत्रों का जन्म दिया ॥५॥ उन दोनों को देखकर पार्वतीजी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा। **पार्वतीजी ने कहा**— हे पुत्रों ! प्रसन्न होकर देवताओं ने इस मोदक को प्रदान किया है ॥६॥ यह अमृत से बना हुआ और महाबुद्धि प्रदान करने वाला है। इसके गुणों को मैं बतलाती हूँ; उसे सावधानी से तुम दोनों सुनो ॥७॥ इसको केवल सूंघ लेने वाले को अमरत्व की प्राप्ति हो जाती है। वह सभी शास्त्रों के तत्त्वों को जानने वाला तथा सभी शास्त्रों में पारङ्गत हो जाता है ॥८॥ वह सभी तन्त्रों में निपुण, लेखक तथा चित्रों को बनाने वाला हो जाता है। ज्ञान और विज्ञान के तत्त्वों को जानने वाला और तथा सर्वज्ञ हो जाता है ॥९॥ हे पुत्रों! वह अत्यधिक धर्मों को प्राप्त करके सैकड़ों सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। तुम दोनों में से जो ऐसा होगा उसे ही मैं इस मोदक को दूँगी यह तुम्हारे पिता की सम्मति है ॥१०॥ माता के मुख से इस वाणी को सुनकर अत्यन्त बुद्धिमान् स्कन्दजी त्रैलोक्य के तीर्थों की यात्रा करने के लिए मयूर पर बैठकर निकल पड़े और शीघ्र ही सभी तीर्थों में स्नान कर लिए। बुद्धिमान गणेशजी अपने माता-पिता की परिक्रमा वहीं करके उनके सामने खड़े हो गये। उसके बाद में आकर स्कन्दजी ने कहा कि मोदक मुझे प्रदान करें ॥१२-१३॥ उसके बाद अपने दोनों पुत्रों को देखकर पार्वतीजी आश्चर्यित हो गयीं और बोलीं। **पार्वतीजी ने कहा**— सभी तीर्थों में स्नान करने, सभी देवताओं को नमस्कार करने ॥१४॥ समस्त यज्ञों, व्रतों, मंत्रों, योगों तथा अन्य नियमों के पालन से माता-पिता की पूजा से प्राप्त होने वाले फल का सोलहवाँ भी अंश नहीं मिलता है ॥१५॥ अतएव यह सैकड़ों पुत्रों से भी तथा सैकड़ों गुणों से श्रेष्ठ है। अतएव मैं गणेश को ही देवनिर्मित मोदक दे रही हूँ ॥१६॥ **महादेवजी ने कहा**— इसीलिए इसकी सभी

महादेव उवाच

अस्यैव कारणादस्य अग्रे पूजा मखेषु च। वेदशास्त्रस्तवादौ च नित्यं पूजाविघासु च ॥१७॥
पार्वत्या सह भूतेशो ददौ तस्मै वरं महत्। अस्यैव पूजनादग्रे देवास्तुष्टा भवंतु च॥१८॥
सर्वासामपि देवानां पितॄणां च समंततः। तपो भवतु नित्यं च पूजितेऽग्रे गणेश्वरे ॥१९॥

व्यास उवाच

ततः सर्वेषु यज्ञेषु पूजयेद् गणपं द्विजः। कोटिकोटिगुणं तेषु देवदेवीवचो यथा॥२०॥
दत्वा सर्वगुणं पुण्यं देवदेव्या तथा मुदा। कृतं गणाधिपत्यं च सर्वदेवाग्रतस्तदा ॥२१॥
तस्मात्प्राज्येषु यज्ञेषु स्तोत्रेषु नित्यपूजने। गणेशं पूजयित्वा तु सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ॥२२॥
एवं ज्ञात्वा तु देवैस्तु दयितप्राप्तिकाम्यया। पूजितश्चाथ सर्वैस्तु स्वर्गमोक्षार्थतो ध्रुवम् ॥२३॥
नक्ताहारश्चतुर्थ्यां तु पूजयित्वा गणाधिपम्। लिंगे वा प्रतिमाचित्रे देवः पूज्यो भवेद्यदि ॥२४॥
गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशांतिदा। उमानंदप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात् ॥२५॥
हरानंदकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो। विघ्नराजनमस्तुभ्यं प्रसन्नो भव सर्वदा॥२६॥
कृतोपवासो गणपं पूजयेद्यो नरो मुदा। सर्वपापविनिर्मुक्तः सुरलोके महीयते ॥२७॥
स्तोत्रं तस्य प्रवक्ष्यामि नामद्वादशकं शुभम्। ओ नमो गणपतये मंत्र एष उदाहृतः ॥२८॥
गणपतिर्विघ्नराजो लंबतुंडो गजाननः। द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदंतो गणाधिपः ॥२९॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः। द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥३०॥

यज्ञों में सबसे पहले पूजा होगी। वेद शास्त्र तथा स्तोत्र के आदि में तथा नित्य पूजाओं में पार्वती के साथ गणेशजी तुम्हारी पूजा होगी यह वरदान शङ्करजी ने दिया। इसी की अग्रपूजा होने से सभी देवता सन्तुष्ट हों ॥१७-१८॥ सभी देवताओं और पितरों की तपस्या पहले गणेश की पूजा से ही नित्य होए ॥१९॥ **व्यासजी ने कहा**— इसलिए ब्राह्मण को सभी यज्ञों में सर्वप्रथम गणेशजी की पूजा करनी चाहिए। उन सबों में करोड़ों देवियों और देवों का इस प्रकार का वचन है ॥२०॥ इसतरह सभी गुण से युक्त पवित्र मोदक देकर देवी पार्वती और शङ्करजी ने गणेशजी को सभी देवताओं के सामने ही गणाधिप बना दिया ॥२१॥ अतएव समृद्ध यज्ञों में स्तोत्र पाठ में तथा नित्य पूजन में सर्वप्रथम गणेशजी की पूजा करके मनुष्य समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है ॥२२॥ इस बात को जानकर देवताओं ने अपने अभिप्रेत अर्थ की प्राप्ति की कामना से तथा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए गणेशजी की पूजा की ॥२३॥ चतुर्थी तिथि को दिनभर उपवास करने के बाद रात्रि में गणेशजी पर या चित्र पर पूजा करे ॥२४॥ गणेशजी की प्रार्थना करते हुए कहे— हे सभी विघ्नों को शान्त करने वाले गणेशजी आपको नमस्कार है। हे पार्वतीजी को आनन्द प्रदान करने वाले प्राज्ञ इस संसार सागर से आप मेरी रक्षा करें ॥२५॥ हे शङ्करजी को आनन्दित करने वाले ज्ञान विज्ञान को प्रदान करने वाले प्रभो, हे विघ्नराज ! आपको नमस्कार है, आप सदा प्रसन्न रहें ॥२७॥ जो मनुष्य दिनभर उपवास करके गणेशजी की पूजा प्रसन्नता पूर्वक करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर देवलोक में पूजित होता है ॥२७॥ मैं गणेशजी के द्वादश नामों वाले स्तोत्र को बतलाता हूँ। **ओं नमो गणपतये** यह गणेशजी की पूजा का मन्त्र है ॥२८॥ गणपति, विघ्नराज, लम्बोदर, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप ॥२९॥ विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल, और भवात्मज, गणेशजी के इन बारह नामों को प्रातःकाल जगकर जो पढता है ॥३०॥ सारा

विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित्। महाप्रेताश्शमं यांति पीड्यते व्याधिभिर्न च ॥
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो ह्यक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥३१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गणपतिस्तोत्रं नाम त्रिषष्ठितमोऽध्यायः ॥६३॥

चौसठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं गणाधिपस्य च । सर्वसिद्धिकरं पूतं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥१॥
एकदंतं महाकायं तप्तकांचनसन्निभम् । लंबोदरं विशालाक्षं वंदेऽहं गणनायकम् ॥२॥
मुंजकृष्णाजिनधरं नागयज्ञोपवीतकम्। बालेंदुकलिकामौलिं बंदेहं गणनायकम् ॥३॥
सर्वविघ्नहरं देवं सर्वविघ्नविवर्जितम् । मूषकोत्तममारुह्य देवासुरमहाहवे ॥४॥
योद्धुकामं महाबाहुं वन्देऽहं गणनायकम् । अंबिकाहृदयानन्दं मातृकापरिवोष्टितम् ॥५॥
भक्तिप्रियं मदोन्मत्तं वन्देऽहं गणनायकम् । चित्ररत्नविचित्रांगं चित्रमालाविभूषणम् ॥६॥
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम् । गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम् ॥७॥
पाशांकुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्। यक्षकिन्नरगंधर्वैः सिद्धविद्याधरैस्सदा ॥८॥

संसार उसके वश में हो जाता है, उसको कहीं विघ्न नहीं होता है । महाप्रेत की भी शान्ति हो जाती है वह कभी व्याधियों से पीडित नहीं होता है । सभी पापों से मुक्त होकर वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के गणपति स्तोत्र वर्णन नामक तिरसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६३।।

गणेश स्तोत्र

व्यासजी ने कहा— मैं गणेशजी का दूसरा स्तोत्र बतलाता हूँ । यह पवित्र, सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला तथा समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाला है ॥१॥ मैं एक दाँत वाले, विशालकाय, तप्तकाञ्चन के समान कान्ति वाले, लम्बोदर, विशाल नेत्रों वाले, गणनायक की वन्दना करता हूँ । मौञ्जी मेखला, कृष्णमृगचर्म तथा नागमय यज्ञोपवीत धारण करने वाले, शिर पर बाल चन्द्र को धारण करने वाले, देव सभी विघ्नों से रहित, चूहे के ऊपर चढकर देवासुर संग्राम में युद्ध करने की कामना वाले, महाबाहु गणनायक की मैं वन्दना करता हूँ ॥४॥ अम्बिका के हृदय में आनन्द देने वाले, मातृकाओं से घिरे रहने वाले, भक्तिप्रिय, मदोन्मत्त, गणनायक की मैं वन्दना करता हूँ ॥५। अद्भुत रत्नों से निर्मित विचित्र अङ्गों वाले, विचित्र माला तथा भूषणों को धारण करने वाले, अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले देव गणनायक की मैं वन्दना करता हूँ ॥६॥ हाथी के मुख वाले, देवों में श्रेष्ठ सुन्दर कान तथा विभूषण वाले, पाश तथा अङ्कुश धारण करने वाले, देव गणनायक की मैं वन्दना करता हूँ॥७॥ सदा यक्ष, किन्नर गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधरों के द्वारा, स्तुति किये जाने वाले महान् देवता गणनायक की

स्तुयमानं माहादेहं वन्देऽहं गणनायकम्। गणाष्टकमिदं पुण्यं भक्तितो यः पठेन्नरः ॥९॥
सर्वसिद्धिमवाप्नोति रुद्रलोके महीयते । ननिःस्वतां तथाभ्येति सप्तजन्मसु मानवः ॥१०॥
य इदं पठते नित्यं महाराजो भवेन्नरः । वश्यं करोति त्रैलोक्यं पठनाच्छ्रवणादपि ॥
स्तोत्रं परं महापुण्यं गणपस्य महात्मनः ॥११॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गणपतिस्तोत्रं नाम चतुष्षष्ठितमोऽध्यायः ॥६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

नांदीमुखेषु सर्वेषु पूजयेद्योगणाधिपम् । तस्य सर्वो भवेद्वश्यः पुण्यं भवति चाक्षयम् ॥१॥
गणानां त्वेतिमंत्रेण सर्वयज्ञघटेषु च । सर्वसिद्धिमवाप्नोति स्वर्गं मोक्षं लभेन्नरः ॥२॥
मृणमये प्रतिमायां च चित्रे चाथ दृषन्मये । द्वारदारुणि पात्रेच हेरम्बं लेखयेद्बुधः ॥३॥
अन्यस्मिन्नपि देशे तु सततं दृष्टिगोचरे । स्थापयित्वा तु हेरंबं शक्त्या यःपूजयेद्बुधः ॥४॥
तस्य कार्याणि सिद्ध्यंति दयितानि समंततः। न विघ्नं जायते किंचित्त्रैलोक्यं वशमानयेत्॥५॥
विद्यार्थी लभते विद्यां वेदशास्त्रसमुद्भवाम्। अन्यां च शिल्पिविद्यां च विजयां स्वर्गदायिनीम्॥६॥

मैं वन्दना करता हूँ ॥८॥ गणाष्टक नामक इस स्तोत्र को जो मनुष्य भक्ति पूर्वक पाठ करे वह सभी सिद्धियों को प्राप्त करके रुद्र के लोक में पूजित होता है ॥९॥ वह मनुष्य सात जन्मों तक कभी दरिद्र नहीं होता है, जो इस स्तोत्र का नित्य पाठ करे वह महाराज हो जाय ॥१०॥ इस स्तोत्र को पढने तथा सुनने वाले के वश में त्रैलोक्य हो जाय, यह महात्मा गणेशजी का स्तोत्र अत्यन्त पवित्र है ॥११॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड का गणेशाष्टक वर्णन नामक चौसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६४।।

नान्दीमुख आदि में गणेशजी की अग्र पूजा का वर्णन, गणेशजी द्वारा देवताओं को वरदान, भगवान् विष्णु की आज्ञा से देवताओं का असुरों के साथ युद्ध, चित्ररथ द्वारा कालकेय का वध वर्णन

व्यासजी ने कहा— जो मनुष्य सभी नान्दीमुखो में गणेश जी की पूजा करता है, उसके अधीन सारा संसार हो जाता है तथा उसको अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥१॥ **गणानां त्वा** इत्यादि मन्त्र के द्वारा जो सभी यज्ञों तथा कलशों में पूजा करता है, वह सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है तथा स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है ॥२॥ कलश पर, प्रतिमा पर, चित्र पर तथा पत्थर से बने द्वार, लकड़ी तथा पात्र पर, गणेशजी का चित्र बनवाये॥३॥ दूसरे भी सदा दिखायी देने वाले स्थानों पर गणेशजी की स्थापना करके विज्ञ पुरुष को अपनी शक्ति के अनुसार उनकी पूजा करनी चाहिए ॥४॥ ऐसा करने वाले के सभी प्रिय कार्य सिद्ध होते हैं, उसको कोई भी विघ्न नहीं होता है और उसके वश में त्रैलोक्य हो जाता है ॥५॥ विद्याथी वेद शास्त्रों से उद्भूत विद्या को तथा सर्वत्र विजय

धनार्थी विपुलं वित्तं कन्यां साध्वीं मनोरमाम्। ऐश्वर्यं धर्मसाध्यं च तनयं कुलमोक्षदम् ॥७॥
न रोगैः पीड्यते कश्चिन्न ग्रहैः प्रेतयोनिभिः । शृंगिभिर्नापि रक्षोभिर्विद्युद्भिर्वनतस्करैः ॥८॥
न राजा कुप्यति गृहे न च मारीप्रवर्तते । न दौर्भिक्ष्यं न दौर्बल्यं पूजयित्वा विनायकम् ॥९॥
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यत्सुरैरपि। सर्वविघ्नछिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥१०॥
मंत्रश्चायं ॐ नमो गणपतये ।
नारायणप्रियैः पुष्पैरन्यैश्चापि सुगंधिभिः। मोदकैः फलमूलैश्च द्रव्यैःकालोद्भवैस्तथा॥११॥
दधिदुग्धैः प्रियैर्वाद्यैरपि धूपसुगंधिभिः। पूजयेद्गणपं यस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्॥१२॥
विशेषात्तस्यलिंगे तु यो ददाति वसुप्रियम्। पूजोपकरणं वस्त्रं सर्वंलक्षगुणं भवेत् ॥१३॥
देशे च भारते वर्षे वनितापूर्वसन्निधौ । लौहित्यदक्षिणे तीरे लिंगरूपो विनायकः ॥१४॥
हरगौरीसमादेशाद्देवानां संमतेन च । स्थितो लोकप्रशान्त्यर्थं सर्वविघ्नविनाशनात् ॥१५॥
पूजयित्वा तु तं देवं शक्तितो द्रव्यसंचयैः । विनायकत्वमाप्नोति वेदशास्त्रार्थपारगः ॥१६॥
सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु मानवः । अक्षयं लभते स्वर्गं सदा देवैः प्रपूज्यते ॥१७॥
संसर्गिणां च म्लेछानां गत्यर्थं सुतपस्विनाम्। पुत्रार्थं सर्वलोकानां तत्र शंभुर्विनायकः ॥१८॥
कृत्वाभिषेकं लौहित्ये स्पृशेद्यस्तु गणाधिपम्। सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥१९॥
न वैधव्यं नकार्पण्यं न शोकं न तु मत्सरम् । विनायकं समासाद्य जन्मजन्मनि संलभेत् ॥२०॥

प्रदान करने वाली पवित्र विद्या तथा शिल्पविद्या को वह प्राप्त कर लेता है । जिससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है॥६॥ धनार्थी प्रभूत धन को, सुन्दर साध्वी कन्या को तथा धर्मसाध्य ऐश्वर्य को, एवं वंश भर को मोक्ष प्रदान करने वाले पुत्र को प्राप्त करता है ॥७॥ वह रोगों, ग्रहों, प्रेतयोनि के जीवों से, सींग वाले पशुओं से, राक्षसों से, बिजली से तथा चोरों से कभी पीडित नहीं होता है ॥८॥ उस पर न तो राजा क्रोध करता है और न घर में महामारी का प्रकोप होता है, दुर्भिक्ष तथा दुर्बलता भी गणेशजी की पूजा करने वाले को नहीं होती है ॥९॥ अपने अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति के लिए जो देवताओं द्वारा भी पूजित हैं, उन सभी विघ्नों का विनाश करने वाले गणेशजी को नमस्कार है ॥१०॥ **ओम् नमो गणपतये** यह गणेशजी का मन्त्र है । भगवान् नारायण को प्रिय पुष्पों से तथा दूसरे सुगन्धित पुष्पों से मिठाइयों से, फलों तथा मूलों से तथा उस समय में उत्पन्न होने वाले द्रव्यों से, दधि, दुग्ध, प्रिय वाद्य एवं सुगन्धित धूप से गणेशजी की पूजा करनी चाहिए । ऐसा करने वाला सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है ॥११-१२॥ विशेष रूप से गणेशजी की मूर्ति पर जो अपनी प्रिय सम्पत्ति को चढाता है, पूजा के उपकरण, सुन्दर वस्त्र को चढाता है तो उसका फल उसे सौ गुना प्राप्त होता है ॥१३॥ भारतवर्ष में, वन के पूर्व दिशा में विद्यमान, लौहित्य तीर्थ की दक्षिण दिशा में, लिङ्ग रूप विनायक हैं ॥१४॥ शङ्कर तथा पार्वतीजी के आदेश से, देवताओं को अभिमत सभी विघ्नों को विनष्ट करने वाले गणेश संसार को शान्ति प्रदान करने के लिए वहाँ स्थित हैं ॥१५॥ उनकी अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करके मनुष्य वेदशास्त्र पारंगत तथा विनायक हो जाता है ॥१६॥ उनकी एक बार प्रदक्षिणा करके, दर्शन तथा स्पर्श करके, मनुष्य अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥१७॥ संसर्गियों, म्लेच्छों, तपस्वियों को सुगति प्राप्ति के लिए तथा सभी लोगों को पुत्र प्रदान करने के लिए शम्भु विनायक रूप में स्थित हैं ॥१८॥ जो मनुष्य उनका अभिषेक करके गणेशजी का स्पर्श करता है वह सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१९॥ विनायक का स्पर्श करने वाले को अनेक जन्मों तक

पुनः सिद्धिं पुनर्भोग्यं पुनः कीर्तिं पुनर्बलम् । पूजयित्वा तु गणपं नरस्य नात्र संशयः ॥२१॥
अस्य पूजामकृत्वा च सर्वाभीष्टं विनश्यति । तत्र देवाश्चसुप्रीता ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥२२॥
मघोनो गणपस्याथ पूजाविरहितस्य च । अथासुरै र्महावीर्यैर्हिरण्याक्षमुखै रणे॥२३॥
मघवा तु जितो वीर्याद्धिरण्याक्षेण वै तदा । ततस्सुराश्चनिर्वीर्या यावद्वर्षशतंपुरा॥२४॥
दैवासुरे महायुद्धे सुराणां च पराजयः । ततो देवाधिदेवे तु शिवे देवैर्निवेदितम् ॥२५॥

देवा ऊचु

भगवन्नसुरैर्नो हि जितं राज्यं गता मखाः ।

व्यास उवाच

एतस्मिन्नंतरे शंभुर्देवान्वचनमब्रवीत् ॥२६॥

शम्भुरुवाच

हेरंबाय वरो दत्त उमया प्रीतया मया। पूजया ते परासिद्धिर्देवादीनां भवत्विति ॥२७॥
अवजानाति यो मोहात्पुरुषस्तु महोत्सवे। नभवेत्तस्य सिद्धिश्च रणे चापि पराजयः ॥२८॥
महामखे न युष्माभिः पूजागणपतेः कृता । हेलया न कृता मोहात्तस्मात्प्राप्तः पराजयः ॥२९॥
शीघ्रं गच्छत वै पुण्यां गणपस्यमहात्मनः । पूजां कुरुत धर्मज्ञा जयस्तूर्णं भविष्यति ॥३०॥

व्यास उवाच

ततो हरमुखच्छ्रुत्वा वचः क्षेमपरं हितम् । प्रहृष्टा विबुधास्सर्वे गणपरस्य पुरः स्थिताः ॥३१॥

देवा ऊचुः

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वदेवैकपालक । स्वर्गभोगप्रद प्रीत्या हेरंब त्वाँ नताः स्म ह ॥३२॥

वैधव्य, कार्पण्य, शोक तथा मत्सर नहीं होते हैं ॥२०॥ गणेशजी की पूजा करने वाला मनुष्य बार-बार सिद्धि भोग्य पदार्थ, कीर्ति तथा बल की प्राप्ति करता है ॥२१॥ गणेशजी की पूजा किए बिना सभी अभीष्ट वस्तुओं का नाश हो जाता है । गणेशजी की पूजा करने से ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर आदि देवता अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥२२॥ गणेशजी की पूजा नहीं करने के कारण इन्द्र महापराक्रमी हिरण्याक्ष आदि से युद्ध में ॥२३॥ पराजित हो गये । इन्द्र को हिरण्याक्ष ने अपने पराक्रम से जीत लिया । उसके बाद पराक्रम हीन देवताओं का असुरों के साथ सौ वर्षो तक युद्ध हुआ ॥२४॥ उस देवासुर संग्राम में देवताओं का पराजय हुआ इसके बाद देवताओं ने देवाधिदेव शिव से निवेदन किया ॥२५॥ **देवताओं ने कहा—** हे भगवन् ! असुरों ने हमारे राज्य को जीत लिया है और यज्ञों के भाग को छिन लिया है । **व्यासजी ने कहा—** उस समय शङ्करजी देवताओं से बोले **शम्भु ने कहा—** गणेशजी को मैंने तथा उमा ने प्रसन्न होकर वरदान दिया है कि तुम्हारी पूजा से देवताओं को परम सिद्धि प्राप्त होगी ॥२७॥ अज्ञान के कारण जो व्यक्ति गणेशजी की पूजा महोत्सव के अवसर पर नहीं करता है, उसको सिद्धि न मिले और युद्ध में पराजय होए ॥२८॥ आपलोगों ने महायज्ञ में गणेश का पूजन नहीं किया और अज्ञानवशात् उनकी अवमानना की, इसीलिए आपलोगों को पराजय प्राप्त हुआ ॥२९॥ अतएव शीघ्र जाओ और गणेशजी की पूजा करो तब शीघ्र ही विजय मिलेगी ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके बाद शङ्करजी के मुख से अत्यन्त कल्याणकारी वचन को सुनकर सभी देवता गणेशजी के समक्ष गये ॥३१॥ **देवताओं ने कहा—** हे गणाधिप ! आपको नमस्कार है । आप ही सभी देवताओं का पालन करने वाले हैं । प्रसन्न होकर आप स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं, अतएव हमलोग आपको

जयदं सर्वयुद्धेषु सिद्धिदं सर्वकर्मसु । महामायं महाकायं हेरंब त्वां नताः स्म ह ॥३३॥
एकदंतं महाप्राज्ञं लबतुंडं विनायकम् । देवं महर्षिदेवानामिंद्रस्य च नताःस्म ह ॥३४॥
यत्ते पुरार्चनं यज्ञे न कृतं तत्क्षमस्व नः ।

व्यास उवाच

सुराणां च गिरः श्रुत्वा गणपो वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥

गणेश उवाच

युष्माभिर्व्रियतां देवा वरो मत्तो हि वांच्छितः ।

व्यास उवाच

ततः शक्रादयः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥३६॥
ऊचुर्गणपतिं देवा जयोस्माकं भवत्विति । देवानां वचनं श्रुत्वा गणेशो वाक्यमब्रवीत् ॥३७॥

गणेश उवाच

बाढमेव सुरश्रेष्ठा जयो वो भवतु द्रुतम् ।

व्यास उवाच

ततो देवगणास्सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ॥३८॥
गणेशं पूजयामासुर्गंधसारैस्तु मण्डनैः । दिव्यधूपैः सुवस्त्रैश्च कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ॥३९॥
पारिजातादिभिः पुष्पैरन्यैर्देवमनोहरैः । पूजितोगणपो देवैरुवाच सुरसत्तमान् ॥४०॥

गणेश उवाच

गच्छध्वं विबुधा देवं विष्णुमद्भुतसाहसम् । सविधास्यति वः कामं वांच्छितं च ततः सुराः ॥४१॥

व्यास उवाच

स्वं स्वं रथं समारुह्य गतास्ते हरिमव्ययम् । पीतांबरं नमस्कृत्य ऊचुर्देवगणा मुदा ॥४२॥

नमस्कार करते हैं ॥३२॥ आप युद्धों में विजय प्रदान करने वाले और सभी कर्मों में सिद्धि प्रदान करने वाले हैं । हे महामाया वाले, महाकाय हेरम्ब ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥३३॥ एकदन्त, अत्यन्त ज्ञानी, लम्बोदर तथा विनायक महर्षियों तथा इन्द्र के आराध्य आपको हम नमस्कार करते हैं ॥३४॥ हमलोगों ने पहले यज्ञ में आपकी पूजा जो नहीं की उसके लिए आप हमें क्षमा करें । **व्यासजी ने कहा—** देवताओं की वाणी सुनकर गणेशजी बोले॥३५॥ **गणेशजी ने कहा—** हे देवताओं ! आप लोग मुझसे अपने अभीष्ट वरदान को माँगें **व्यासजी ने कहा—** उसके बाद बृहस्पति को आगे करके इन्द्र आदि देवताओं ने ॥३६॥ गणेशजी से कहा कि हमलोगों को विजय प्राप्त हो जाय । देवताओं की बात को सुनकर गणेशजी बोले **गणेशजी ने कहा—** हे श्रेष्ठ देवताओं ! आपलोगों की विजय होगी उसके बाद सभी देवता प्रसन्न हो गये ॥३८॥ उन सबों ने गणेशजी की पूजा सुगन्धित पदार्थों से की तथा नन्दन वन में उत्पन्न पुष्पों, धूपों, द्वीपों तथा सुन्दर वस्त्रों से की ॥३९॥ पारिजात आदि तथा दूसरे सुन्दर पुष्पों से देवताओं ने गणेशजी की पूजा की तो गणेशजी बोले **गणेशजी ने कहा—** हे देवताओं, आपलोग अद्भुत साहस करने वाले देवता भगवान् विष्णु के पास जायँ । वे ही आप लोगों के अभिप्रेत कार्य को पूरा करेंगे ॥४१॥ **व्यासजी ने कहा—** देवता अपने-अपने रथ पर चढकर श्रीभगवान् के पास गये । उन लोगों ने पीताम्बरधारी श्रीभगवान् को प्रणाम करके प्रसन्नता-पूर्वक कहा **देवताओं ने कहा—** शङ्करजी के पुत्र गणेशजी के

देवा ऊचुः

हरात्मजं तु संप्राप्य पूजयित्वा गणाधिपम् । आगतास्त्वत्सकाशं वै महात्मन्नद्य केशव॥४३॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु देवानां वचनं हरिरव्ययः। यथातथ्यमुवाचेदं हनिष्ये दैत्यपुंगवान्॥४४॥
श्रुत्वा वागमृतं देवा नारायणमुखाच्च्युतम्। हृष्टाश्च सुमुदाविष्टा द्रव्यैरिष्टैः समर्चयन् ॥४५॥
पुनर्विष्णुरुवाचेदं देवानिंद्रपुरोगमान् ।

विष्णुरुवाच

स्वं स्वं बलं समाहृत्य सज्जी भवत विज्वराः ॥४६॥
हनिष्येतान् दुराचारान्बलं चैव समंततः। अस्त्रबृंदं तु संगृह्य यूयंतिष्ठत निर्भयाः ॥४७॥

व्यास उवाच

माधवस्य वचः श्रुत्वा प्रगताः सुरपुंगवाः । विमानानि समारुह्य सर्वे दिव्यास्त्रधारिणः ॥४८॥
देवानां हर्षवाक्यानि दैत्यचाराः श्रुतानि वै । राजानं कथयामासुर्हिरण्याक्षं महाबलम् ॥४९॥
श्रुत्वा दैत्यपतिस्तत्र चुकोपातिमहाबलः । सचिवांस्तु समाहूय क्रुद्धो वचनमब्रवीत् ॥५०॥

दैत्यराज उवाच

अधुनेंद्रादिदेवाश्च निखिलाः क्रूरबुद्धयः । माधवं च परीप्सन्तः शंभौ सर्वंन्यवेदयन् ॥५१॥
कथं जयं च लप्स्यामो दैत्यबृंदेति दारुणे। त्रिपुरारि रुवाचेदं गणेशं यजतामराः ॥५२॥
पूजयित्वा तु तं देवं जेष्यथासुरदानवान् । ततो देवगणैर्हृष्टैः पूजितो गणनायकः ॥५३॥
गणाधिपेन तुष्टेन क्रूरो दत्तो वरो महान्। जेष्यथाद्यासुरान्सर्वांस्ततो देवा मुदान्विताः ॥५४॥
हरिंनिवेदयामासुरस्मद्वधपरीप्सवः । हरेर्बाढमुपश्रुत्य रथिनः शस्त्रपाणयः ॥५५॥

पास जाकर उनकी पूजा करके, हे महात्मन् केशव ! हमलोग आपके पास आये हैं ॥४२-४३॥ **व्यासजी ने कहा**— देवताओं के इस वचन को सुनकर निर्विकार रहने वाले श्रीभगवान् ने तथ्यानुसार कहा कि मैं बड़े-बड़े दैत्यों को मार दूँगा ॥४४॥ भगवान् नारायण के मुख से अमृत के समान निकली हुयी वाणी को सुनकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन लोगों ने अभिप्रेत द्रव्यों से श्रीहरि की पूजा की ॥४५॥ उसके वाद भगवान् विष्णु ने देवताओं से फिर कहा **भगवान् विष्णु ने कहा**— आप लोग बिना किसी चिन्ता के अपनी-अपनी सेना को तैयार करके सज जायँ । मैं उन दुराचारी दैत्यों के बल का हरण कर लूँगा । आपलोग अपना-अपना अस्त्र लेकर बिना किसी भय के तैयार रहें॥४७॥ **व्यासजी ने कहा**— श्री भगवान् की बातों को सुनकर देवता चले गये । विमानों पर चढकर तथा दिव्यास्त्रों को धारण करके तैयार सभी देवताओं ॥४८॥ के हर्ष भरे वाक्यों को दैत्यों के गुप्तचरों ने सुना । उन सबों ने महाबलवान् अपने राजा हिरण्याक्ष से जाकर कहा ॥४९॥ उसको सुनकर दैत्यों के राजा ने अत्यन्त क्रोध किया । वह अपने मन्त्रियों को बुलाकर क्रोध पूर्वक कहा ॥५०॥ **दैत्यराज ने कहा**— इस समय क्रूर बुद्धि वाले इन्द्र इत्यादि देवता, विजय को प्राप्त करने की इच्छा से सारी बातें जाकर शम्भु से कहा कि भयङ्कर दैत्य समुदाय पर हमलोग पर कैसे विजय प्राप्त करें तो त्रिपुरारि ने कहा कि जाकर तुमलोग गणेश की पूजा करो ॥५१॥ गणेशजी की पूजा करके तुमलोग दैत्यों पर विजय प्राप्त कर लोगे । उसके बाद प्रसन्न होकर देवताओं ने गणेशजी की पूजा की॥५२-५३॥ प्रसन्न होकर गणेशजी ने उन सबों को वरदान दिया कि तुमलोग असुरों को जीत लोगे । उसके बाद

युद्धार्थमधितिष्ठंति निर्जरास्त्वभया मयि। यस्य या शक्तिरस्तीह देवाञ्जेतुं बदत्वलम्॥५६॥

व्यास उवाच

ततो राज्ञो वचः श्रुत्वा मधुर्वचनमब्रवीत्।

मधुरुवाच

जेष्यामि च हरिं राजन्सहायं मे नियोजय ॥५७॥
जिते नारायणे देवाः सभयास्त्रिदशा ध्रुवम्। तस्मान्नारायणोऽस्माकं भागः सर्वपुरंजयः ॥५८॥

व्यास उवाच

ततो धुंधुश्च सुंदश्च कालकेयो महाबलः। सहायश्च मधोरस्य जेष्यामो माधवं नृप॥५९॥
सर्व दैत्यबलेमुख्याश्चत्वारो दृढविक्रमाः। कालमृत्युसमा वीराः सर्वास्त्रविधिपारगाः॥६०॥
बलस्तत्राब्रवीद्वाक्यं यस्मिन् जय उपस्थितः। तं च जेष्यामिजिष्णुं च प्रतिज्ञा मे दृढा नृप॥६१॥
नमुचिश्च मुचिश्चैव भ्रातरौ बलदर्पितौ। ऊचतुस्तौ नृपं ह्यावां जेष्यावो वै बलाद्बलौ॥६२॥
जम्भश्चैवाब्रवीद्वाक्यमिंद्रमिंद्रपुरोगमान्। जेष्यामि नात्र संदेहो दैत्या भवत विज्वराः॥६३॥
त्रिपुरश्चाब्रवीद्वाक्यं जेष्यामि च विनायकम्। तावदूचेऽथ सेनानीर्मयो देवांतको बली ॥६४॥
कुबेरं प्रतिरक्षोभिः सर्वांश्चैव हिरण्यकान्। एतस्मिन्नंतरे तत्र नारदो मुनिसत्तमः ॥६५॥
गत्वोवाच हिरण्याक्षं जिष्णुदूतोहऽमागतः। राज्यं त्यजस्व वाचा नः प्राणेषु यदि ते हितम्॥६६॥
न चेद्युध्यस्व मामद्य न वा गच्छ रसातलम्। ततः कोपादुवाचेदं नारदं मुनिसत्तमम्॥६७॥

दैत्यराज उवाच

अहिंस्यस्त्वं ब्राह्मणाद्य गच्छ तूर्णं ममाग्रतः। देवानां च विपत्तिं च कदनं निधनं पुरः ॥६८॥

देवता प्रसन्नता पूर्वक हमलोगों का वध कराने की इच्छा से श्रीहरि से निवेदन किया। श्रीहरि की; ठीक है, इस वाणी को सुनकर रथ पर चढकर और हाथ में शस्त्र लेकर ॥५५॥ देवता विना किसी भय के युद्ध करने के लिए तैयार हैं। देवताओं को जीतने के लिए जिसके पास जितनी शक्ति हो वह बतलाये ॥५६॥ उसके बाद मधु दैत्यराज से बोला **मधु ने कहा—** राजन् मैं हरि को परास्त करूँगा। आप मेरे सहायकों को नियुक्त करे ॥५७॥ नारायण के परास्त हो जाने पर सभी देवता भयभीत हो जायेंगे। अतएव शत्रुओं को जीतने वाले नारायण ही हमारे भाग में रहेंगे ॥५८॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके बाद धुन्धु, सुन्द तथा कालकेय, जो मधु के सहायक थे उन सबों ने कहा राजन् हमलोग माधव को जीत लेंगे ॥५९॥ सम्पूर्ण दैत्यों की सेना में मुख्य, दृढपराक्रम वाले, काल तथा मृत्यु के समान भयङ्कर वीर चार थे, जो सभी अस्त्रों में पारंगत थे ॥६०॥ उनमें बल ने कहा जिसके जीतने पर विजय होती है, उस विष्णु को मैं जीतूगा यह मेरी सुदृढ प्रतिज्ञा है ॥६१॥ नमुचि और मुचि ये दोनों भाई बल के कारण दृप्त थे। उन दोनों ने राजा से कहा— हमदोनों बलपूर्वक दोनों बलवानों को जीतेंगे ॥६२॥ जम्भ ने कहा हम इन्द्र आदि देवताओं को जीतेंगे। हे दैत्यों ! इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है आपलोग निश्चिंत रहें ॥६३॥ त्रिपुर ने कहा मैं विनायक को परास्त करूँगा। उसी समय सेनापति देवान्तक तथा बलवान् मय ने कहा ॥६४॥ मैं कुवेर तथा उनके राक्षसों को तथा उनके यक्षों को जीतूगाँ। उसी समय मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी ने जाकर हिरण्याक्ष से कहा— मैं विष्णु का दूत होकर आया हूँ, उन्होंने कहा— कि यदि तुमको अपना प्राण प्रिय है तो तुम हमलोगों का राज्य दे दो ॥६५-६६॥ अन्यथा आकर आज मुझसे युद्ध करो या पाताल में चले जाओ। उसके बाद उसने क्रोध से मुनि

पश्य विप्र क्षणेनांतं प्राप्तं हरिहरादिकम्। एवमुक्त्वा स दैत्येंद्रो बलाध्यक्षुवाच ह॥६९॥

दैत्यराज उवाच

सज्जीकृत्य बलं सर्वान् रथांश्चानयत द्रुतम्।

व्यास उवाच

दैत्यराजवचः श्रुत्वा बलाध्यक्षः समंततः ॥७०॥
बलान्याहूय सहसा संत्रस्तास्तूर्णमागताः। कोटिकोटिसहस्राणि अक्षौहिण्यो बलानि च ॥७१॥
एकैकस्य च वीरस्य वाहनानि महांति च। स्यंदनानि विचित्राणि गजोष्ट्राश्वखरानपि ॥७२॥
सिंहव्याघ्रलुलायांश्च समारुह्य ययुस्तदा। वाद्यैः सर्वैश्चभूयिष्ठैःसिंहनादैर्भयानकैः ॥७३॥
दिशस्तु पूरयामासुसिन्धुवेलाचला धराः। सर्वलोकाश्च वित्रेसुः समुद्राश्च चकंपिरे ॥७४॥
देवदुंदुभयो नेदुः सर्वदेवैः समीरिताः। वाद्यैश्च विविधैरन्यै र्वायुपूर्णैर्घनस्वनैः ॥७५॥
सर्वलोकाभयत्रस्ता ये च त्रैलोक्यवासिनः। भ्रष्टकामागताकाशं घोरं तीव्रं महाहवम् ॥७६॥
परिघैःपाशशूलैश्च खड्गयष्टिपरश्वधैः। शरैश्च निशितै र्घोरै र्जघ्नुरन्योन्यमाहवे॥७७॥
शस्त्रास्त्रै र्बहुधा मुक्तैर्दिशः सर्वा निरंतरम्। विग्रहेषु धरण्यां च पर्वतेषु जलेषु च ॥७८॥
देवस्थाने तथाकाशे पर्वताग्रेषु सानुषु। गह्वरेषु महारण्ये तयोर्युद्धमवर्तत ॥७९॥
पुष्कलादिघनानां च वर्षधाराजलं यथा। पतंत्यस्त्राणि सैन्येषु शतशोऽथ सहस्रशः ॥८०॥
केचित्पेतुः पृथिव्यां तु शरैः संभिन्नविग्रहाः। शक्तिभिर्मुसलैश्चान्ये छत्रशूलपरश्वधैः ॥८१॥
पतिताः संमुखे शूरा युद्धेषु न्यायवर्तिनः। गच्छंति सुरसद्मानि स्वाम्यर्थे येत्वभीरवः ॥८२॥

श्रेष्ठ नारद से कहा ॥६७॥ **दैत्यराज ने कहा**— हे ब्राह्मण आज तुम मारने योग्य नहीं हो अतएव मेरे सामने से शीघ्र चले जाओ। तुम अपने सामने देवताओं की विपत्ति तथा उनकी मृत्यु को देखो ॥६८॥ विप्र क्षण भर में ही हरि तथा हर आदि को मरे हुए देखना। **व्यासजी ने कहा**— इस तरह से कहकर दैत्यराज ने सेनापति से कहा **दैत्यराज ने कहा**— तुम शीघ्र सेना तथा सभी रथों को सजा कर लाओ। **व्यासजी ने कहा**— दैत्यराज की वाणी को सुनकर सेनाध्यक्ष ने सारी सेना को ॥७०॥ बुलाया और सबके सब भयभीत हुए सहसा आ गये, करोड़ों-करोड़ अक्षौहिणी दैत्यों की सेना थी ॥७१॥ वाहन तथा रथ बड़े-बड़े तथा अद्भुत थे। हाथी घोड़े तथा गधे भी विचित्र थे॥७२॥ वे सब सिंह, व्याघ्र तथा विलाव पर चढकर चल पड़े। अनेक प्रकार के वाद्यों तथा भयङ्कर सिंहनादों से॥७३॥ सभी दिशाएँ भर गयीं, समुद्र चंचल हो गया, पृथिवी काँपने लगी। सभी लोक भयभीत हो गये तथा समुद्र काँपने लगे॥७४॥ सभी देवताओं ने भी अपनी दुन्दुभि बजायी अनेक वाद्यों तथा वायुपूर्ण मेघों की ध्वनि से ॥७५॥ सभी लोग भयग्रस्त हो गये तथा त्रैलोक्य वासी भी भयभीत हो गये। अपनी कामना के भ्रष्ट हो जाने से वे आकाश में चले गये और भयङ्कर तीव्र महायुद्ध प्रारम्भ हो गया ॥७६॥ परिघ, पाश, त्रिशूल, खड्ग, यष्टि, फरसा तथा तीक्ष्ण भयङ्कर बाणों से एक वीर दूसरे वीर पर प्रहार किए ॥७७॥ अनेक प्रकार के प्रयोग किए गये शस्त्रों तथा अस्त्रों से दिशाएँ भर गयीं। गृहरहित स्थानों पर, पृथिवी, पर्वतों पर, जलों में, देवस्थानों में, आकाश में, पर्वतो के ऊपर, शिखरों पर, गुफाओं में और महारण्य में दोनों सेनाओं में युद्ध होने लगा ॥७९। पुष्कर आदि मेघों की जलधारा के समान सेनाओं पर सैकड़ों तथा हजारों अस्त्रों तथा शस्त्रों का प्रहार हो रहा था ॥८०॥ जिनके बाणों से वीरों का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था, शक्ति, मुसल, छत्र, त्रिशूल से मारे गये कुछ वीर पृथिवी पर गिर पड़े ॥८१॥ न्यायानुसार युद्ध करने

ये चान्ये कातराः पापा हंतारो विमुखान् रणे । अन्यायै यें च योद्धारस्ते यान्ति यममंदिरम्॥८३॥
त्रिदिवस्था गजारोहाः सैन्यवस्थास्तथा परान् । रथस्थांश्च रथारोहाः पदगांश्च पदातयः ॥८४॥
परस्परं विनिध्नंति शूरा युद्धाभिकांक्षिणः । मुदिताः सत्त्वसंपन्ना धर्मिष्ठा बलसंवृताः॥८५॥
केषांचिद्बाहवश्छिन्ना मुसलैर्भिन्नमस्तकाः । केशाश्शिरांसि वस्त्राणि निपेतुर्धरणीतले ॥८६॥
मध्यच्छिन्नास्तथा भिन्नाः पितुरुर्व्यां महाबलाः । खड्गपातैस्तथाचोग्रैश्छिन्नभिन्नाः परश्वधैः ॥८७॥
गामेव पतिता धीरा दिव्यालंकारभूषिताः । प्रदीप्तोभूद्धरादेशो वीरै र्नागै र्हयै रथैः ॥८८॥
विविधाभरणै र्नष्टैः पताकाभिश्च केतुभिः । ततो वसुन्धरा सर्वा सशैलवनकानना ॥८९॥
रुधिरौघप्लुता तत्र विबुधासुरयोर्युधि । क्रव्यादैर्बहुभिस्तत्र खादितो द्रव्यसंचयः॥९०॥
लोहितं प्रचुरं पीतं रक्षोभिश्च वृकादिभिः । अन्यैर्महागणैरेव क्षतजं पवनान्वितम्॥९१॥
खादितं प्रीतिमद्भिश्च फेरुगृध्रगणैर्मुदा । एतस्मिन्नंतरे सूरिः सुरपूज्यो बृहस्पतिः ॥९२॥
मृतसंजीवनींविद्यां सुराणां संजजाप ह । विशल्यकरणीं दिव्यां ब्रह्मविद्यां महाबलाम् ॥९३॥
ततोधन्वंतरिर्विद्वान्सुरवैद्यो मनोजवः । औषधैस्तत्प्रयोगैश्च रणे पर्यटते मुदा ॥९४॥
तत्र देवाश्च जीवंति ये मृताश्च महाहवे । अव्रणा बलसंपन्नाः प्रयुध्यंति भृशं पुनः ॥९५॥
एवं शतसहस्रं तु गणं दैत्यस्य चोद्धतम् । पतितं पुण्ययोगाच्च शरैर्निर्भिन्नकंधरम्॥९६॥
ततस्तु जयशब्देन नंदंति सिद्धचारणाः । ऋषयः खेचराश्चान्ये ये चैवाप्सरसां गणाः ॥९७॥
गीतिं गायंति गंधर्वाः शशंसुः परमर्षयः । अथ क्रुद्धो महातेजा दैत्यमुख्यो महाबलः ॥९८॥

वाले वीर युद्ध में सामने ही गिर पड़े निर्भय रहने वाले वे अपने स्वामी के लिए देवलोक में जा रहे थे ॥८२॥ दूसरे जो कायर तथा पापी थे,युद्ध में पलायन करने वाले को मारने वाले थे, जो अन्याय पूर्वक युद्ध करते थे, वे यमलोक में जा रहे थे ॥८३॥ स्वर्ग में रहने वाले हाथी पर युद्ध करने वाले को, घुड़सवार दूसरे घुड़सवारों को, रथी रथियों को तथा पैदल सेना पदातियों को मार रही थी ॥८४॥ युद्ध करने की इच्छा वाले वीर एक दूसरे को मार रहे थे। बल सम्पन्न वीर प्रसन्न थे, धर्म पूर्वक युद्ध कर रहे थे ॥८५॥ कुछ बीरों की भुजाएँ कट गयीं, शिर मुसल से फूट गया, उनके केश, शिर तथा वस्त्र पृथिवी पर गिर पड़े ॥८६॥ जो बीच से ही कट पिट गये थे वे महाबलवान् पृथिवी पर गिर पड़े, वे खड्ग प्रहार तथा भयङ्कर फरसे से छिन्न-भिन्न हो गये थे ॥८७॥ दिव्य अलङ्कारों से अलङ्कृत धीर वीर पृथिवी पर ही गिरे हुए थे। वह पृथिवी का प्रदेश वीरों, हाथियों, घोड़ों तथा रथों से चमक रहा था ॥८८॥ अनेक आभरण, कटी हुयी पताकाओं, ध्वजों, पर्वत तथा वन से युक्त सारी पृथिवी ॥८९॥ देवों तथा असुरों के रक्त समूह से भींग गयी। मांसभक्षी बहुत से जीव मांस खा रहे थे तथा मांस एकत्रित कर रहे थे ॥९०॥ राक्षसों तथा वृकों ने खूब खून पिया दूसरे महागणों ने स्यारिनों तथा गृध्रों ने प्रसन्नता पूर्वक, वायु युक्त खून को तथा मांस को खाया। उसी समय विद्वान् एवं देवपूज्य बृहस्पति ने ॥९२॥ देवताओं के लिए मृतसंजीवनी विद्या का जप किया। उन्होंने घाव रहित बनाने वाली महाविद्या का भी जप किया ॥९३॥ उसके बाद मन के समान वेग वाले धन्वन्तरि वैद्य अपने औषधियों से सबों को निरोग करने लगे ॥९४॥ उसके कारण जो देवता मर गये थे वे जीवित हो गये। वे व्रण रहित तथा सम्पन्न होकर युद्ध करने लगे ॥९५॥ इस तरह से दैत्यों के लाखों बड़े-बड़े योद्धा बाणों से जिनके कण्ठ कट गये थे पुण्य योग के कारण गिरकर मर गये ॥९६॥ उस समय जय-जयकार करते हुए सिद्ध तथा चारणगण प्रसन्न हो गये। ऋषिगण, दूसरे आकाशचारी तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और गन्धर्व गीत गाने लगे।

कालकेय इति ख्यातः सेनानीर्दैत्यपस्य च । स्यन्दनस्थो महावीर्यो धनुरादाय तत्र च॥९९॥
जघानसुरसंघांस्तान्नर्तयामास भूतले । निरंतरशरौघेन च्छादितं गगनं तदा॥१००॥
निपतंति शराः सैन्ये कोटिकोटिसहस्त्रशः । निपतंति ततो देवाः संयुगेष्वनिवर्तिनः ॥१०१॥
रुधिरोद्गारिणस्सर्वे सिद्धगंधर्वकिन्नराः । विशिखैः पीडिता देवा निपेतु र्धरणीतले॥१०२॥
केचिच्छरशतैर्भिन्नास्सहस्रैरयुतैस्तथा । पेतुरुर्व्यां महावीर्या ये रणे सुरपुंगवाः ॥१०३॥
व्यथिताश्चाभवन्सर्वे स्यंदनस्था दिवौकसः। शरैः प्रव्यथितास्ते तु स्थातुं शक्ता न संमुखे॥१०४॥
तेनावगाहितं सैन्यं गजेनेव सरोवनम् । शरैस्तस्यार्दिता देवा वज्रानलसमप्रभैः ॥१०५॥
न शेकुः समरेस्थातुं मघवंतं ययुस्तदा । चित्ररथ इति ख्यातो देवश्शस्त्रभृतां वरः॥१०६॥
ययौ स्यंदनमारुह्य युद्धं प्रतिधनुर्धरः। अब्रवीद्वचनं सोऽपि सेनान्यं तु महासुरम्॥१०७॥
यथाहंसि महाशूर सुरसेनां मुदान्वितः । स त्वं प्रशंसनीयश्च शूरोऽसि सुरसंमतः ॥१०८॥
हिरण्याक्षप्रियं कर्म कृतं युद्धे त्वयाधुना । इदानीं मम बाणैश्च गच्छस्व यममंदिरम् ॥१०९॥
ततश्च कालकेयस्तु स्मितो वचनमब्रवीत् । पुरैव विजितो देवगणः सर्वः प्रलीलया ॥११०॥
इदानीं तु स्थितं युद्धे बलं सर्वं तु हेलया। यदि ते निधने प्रीतिरस्तीह सुरपुंगव ॥१११॥
एभिस्त्वां निशितैर्बाणैर्नयामि यममंदिरम् । इत्युक्त्वा परमक्रुद्धो बाणमंतकसन्निभम् ॥११२॥
जघानसमरे वीरस्त्रिभिश्चिच्छेदसोंबरे । पुनर्बाणांश्च समरे योजयित्वा द्रुतं रुषा॥११३॥

परमर्षि गण उनकी प्रशंसा करने लगे । उसी समय महातेजस्वी मुख्य महाबलवान् ॥९७-९८॥ तथा दैत्यराज का सेनापति कालकेय रथ पर बैठकर ॥९९॥ देव समूह को मारकर पृथिवी पर गिरा दिया । उसने लगातार बाणों के प्रहार से आकाश को ढँक दिया ॥१००॥ उस समय देवसेना पर करोड़ों हजार बाण गिर रहे थे और युद्ध से कभी पराङ्मुख नहीं होने वाले देवता पृथिवी पर गिरने लगे ॥१०१॥ सभी, सिद्ध गन्धर्व तथा किन्नर खून वमन करने लगे । बाणों से पीडित होकर धरती पर गिरने लगे ॥१०२॥ कुछ बड़े-बड़े देवता, सैकड़ों हजारों तथा दश हजार बाणों से पीडित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥१०३॥ रथों पर विद्यमान सभी देवता पीडित हो गये । बाणों से पीडित होने के कारण वे सामने ठहर न सके ॥१०४॥ उसने उसी तरह देवसेना को मथ दिया जिस तरह कोई हाथी सरोवर को मथ देता है । वज्राग्नि के समान कान्ति वाले कालकेय के बाणों से पीडित हो गये ॥१०५॥ वे युद्ध में रुक न सके और इन्द्र के पास गये । चित्ररथ नामक गन्धर्व जो शास्त्रधारीयों में श्रेष्ठ था ॥१०६॥ वह धनुष धारण करके रथ पर बैठकर युद्ध करने गया । उसने महासुर सेनापति से कहा ॥१०७॥ हे महासुर जिस तरह तुम प्रसन्नता पूर्वक सेना को मार रहे हो उससे तुम प्रशंसनीय पराक्रम वाले बीर हो, देवता तुम्हारी प्रशंसा करते हैं ॥१०८॥ तुमने इस समय हिरण्याक्ष का प्रिय कार्य किया है । अब मेरे बाणों से यमलोक जाओ ॥१०९॥ उसके बाद मुस्कुराते हुए कालकेय ने कहा पहले ही मैंने आसानी से देवसमूह को जीत लिया है ॥११०॥ इस समय मैंने सम्पूर्ण सेना को आसानी से जीत लिया है । हे देवपुत्र ! यदि तुम यहाँ मरना चाहते हो ॥१११॥ तो तुम्हें मैं इन बाणों से यमलोक भेज देता हूँ । यह कहकर अत्यन्त क्रोध करके उसने काल के समान बाण का ॥११२॥ प्रहार किया; किन्तु चित्ररथ ने उन सबों को आकाश में ही काट दिया । उसके बाद शीघ्र ही बाणों को क्रोध पूर्वक चढकार ॥११३॥ अनेक

जघानप्रचुरान्दैत्यांस्तांश्चकर्त्त स लाघवात् । ततोन्योन्यं शरैस्तीक्ष्णैः कालानलसमप्रभैः ॥११४॥
युद्धे धनुष्मतां श्रेष्ठश्चिच्छेद भुवि वेगतः । तद्युद्धमभवद्देवदैत्ययोर्धर्मतो भृशम् ॥११५॥
द्रष्टुकामागताः पार्श्वमृषिदेवाः सुरोरगाः। एवं शतसहस्राणि बाणानां विधृतानि च॥११६॥
अन्योन्यं समरे वीरौ विजयाय विरेजतुः । अथ क्रुद्धो महातेजा गंधर्वाणां पतिस्तदा ॥११७॥
त्रिभि र्बिभेदबाणैश्च ललाटे हृदि पंचभिः। सप्तभिर्जठरे नाभौ वस्तौ तस्य सपंचभिः ॥११८॥
शरैः संपातितो दैत्यो मुग्धः कश्मलतां गतः। शिथिलीकृतचापश्च लेभे संज्ञां चिराद्बली ॥११९॥
मधुसंज्ञं त्रिभिर्बाणै स्सबिभेद सुरोत्तमम् । चकर्त्त धनुरस्त्रैश्च दैत्यराजस्य पश्यतः ॥१२०॥
ततोबाणसहस्रैस्तु कालांतकसमप्रभैः । बिभेददैत्यसिंहं तु सुराणामुत्तमो बली ॥१२१॥
हतचेताः सदैत्येंद्रो बहुशोणितसंस्रवः । विह्वलोबहुबाणार्तः शूलं जग्राह दानवः॥१२२॥
शूलहस्तस्य तस्यैव चतुर्भिस्तुरगाञ्शरैः। हत्वा चपातयामास त्रिभिर्यंतारमेव च॥१२३॥
जघानशूलमुर्वीष्ठस्ततो गंधर्वसत्तमम् । विचकर्त्त त्रिभिर्बाणैः शूलं चित्ररथो बली ॥१२४॥
शूलं च नष्टकं दृष्ट्वा हतभोगमिवोरगम् । गृहीत्वा मुद्गरं घोरं प्रदुद्राव सुरं बली॥१२५॥
समुद्गरं समायन्तं दैत्यसेनाधिपं तदा। विचकर्त्तशिरो देहादर्धचंद्रेण संभ्रमात् ॥१२६॥
स पपातमहीपृष्ठे संचचाल वसुंधरा। ततो दैत्यगणाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ॥१२७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे कालकेयवधो नाम पंचषष्ठितमोऽध्यायः ॥६५॥

दैत्यों को मार दिया और उन बाणों को कालकेय ने शीघ्रता से काट दिया । उसके बाद परस्पर में एक दूसरे को कालाग्नि के समान कान्ति वाले वाणों से ॥११४॥ धनुधारियों में श्रेष्ठ दोनो वीर दोनों को बाणों से छेद दिए । वह युद्ध दैत्य और देवता के बीच धर्म पूर्वक हो रहा था ॥११५॥ उस युद्ध को देखने की इच्छा से वहाँ सन्निकट में ऋषिगण, देवता और सर्पगण आ गये, इसतरह से एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए दोनों वीरों ने हजारों बाणों को वर्दास्त किया । उसके बाद महातेजस्वी गन्धर्वपति ने कालकेय के ललाट में तीन बाण और हृदय को पाँच बाणों से छेद दिया । पेट में सात बाणों से तथा नाभि तथा वस्ति प्रदेश में पाँच बाणों का प्रहार किया ॥११८॥ वाणों के प्रहार से गिरकर कालकेय बेहोश हो गया । उसका धनुष शिथिल हो गया था और बहुत देर के बाद वह बलवान् होश में आया ॥११९॥ उसने तीन बाणों से मधु नामक देवता को छेद दिया दैत्यराज के समक्ष ही उसो अस्त्रों से धनुष को काट दिया ॥१२०॥ उसके पश्चात् काल के समान कान्तिमान बाणों से उसे श्रेष्ठ दैत्य को उत्तम तथा वलवान् देवता ने हजारों बाणों से छेद दिया ॥१२१॥ अनेक बाणों के प्रहार स आर्त बने हुए तथा बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण संज्ञाहीन हो गया उसके पश्चात् उसने अपने हाथ में त्रिशूल उठाया ॥१२२॥ शूल धारण किए हुए उसके घोड़ों को चार बाणों से मारकर तीन बाणों से सारथि को मारकर चित्ररथ ने गिरा दिया ॥१२३॥ पृथिवी पर खड़ा होकर दैत्येन्द्र ने गन्धर्व राज चित्ररथ को शूल से मारा और चित्ररथ ने तीन बाणों से उसके शूल को काट दिया ॥१२४॥ उसके पश्चात् अपने शूल को नष्ट हुए देखकर जिसका फण झुक गया हो ऐसे सर्प के समान भयङ्कर गदा लेकर कालकेय चित्ररथ की ओर दौड़ा । उस समय मुद्गर लेकर आते हुए सेनापति कालकेय को देखकर चित्ररथ ने वेगपूर्वक अपने अर्द्धचन्द्र वाणों से उसके शिर को काट दिया ॥१२५-१२६॥ वह पृथिवी पर गिर पड़ा और पृथिवी काँप गयी । उसके बाद सभी दैत्य युद्ध पराङ्मुख होकर भाग चले ॥१२७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के कालकेयवध नामक पैंसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६५।।

छियासठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा कालेयो नाम दानवः। चित्ररथं प्रदुद्राव धृत्वा बाणं सकार्मुकम् ॥१॥
दृष्ट्वासुरं विधावंतं कालमृत्युसमप्रभम् । अरौत्सीत्तं महावीर्यो जयंतः पाकशासनिः ॥२॥
अब्रवीच्च महातेजा दैतेयं सुरसत्तमः। तथ्यं धर्माभिसंयुक्तं लोकद्वयहितं ध्रुवम् ॥३॥
शस्त्राभिघातदुःखार्तं कश्मलं चान्यसंयुतम् । प्रभग्नंच निरस्तंच यो हंति स च बालिशः ॥४॥
सुचिरं रौरवं भुक्त्वा तस्य दासो भवेच्चिरम्। तस्मान्माऽमुं प्रयुध्यस्व युद्धधर्मस्थितो भव॥५॥
जयंतमब्रवीद्वाक्यं कालेयः क्रोधमूर्च्छितः । निहत्यभ्रातृहंतारमथ त्वां हन्मि सांप्रतम् ॥६॥
ततस्तंचासुरश्रेष्ठं कालानलसमप्रभम्। जयंतो निशितैर्बाणै र्जघान सुरसत्तमः॥७॥
निचकर्त्त शरान्सोपि त्रिभिर्विव्याध चासुरः । यथा वृष्टिगणं प्राप्य नदी गैरिकवाहिनी ॥८॥
तथा तौ च महावीर्यौ न क्षीणौ न च कातरौ। न शर्मपरिलेभाते परस्परजयेषिणौ ॥९॥
अथ तस्य च दैत्यस्य धनुश्चिच्छेद चेषुणा। यंतारं पंचभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥१०॥
अष्टाभिर्निशितैर्बाणै श्चतुरोश्वानपातयात्। शक्तिं संगृह्य भूमिष्ठः कुमारं च जघान ह ॥११॥
गदया पीडितं साश्वं सवरूथं सकूबरम् । पातयित्वा धरण्यां च सिंहनादं ननाद ह॥१२॥
लाघवात्स धरां गत्वा गदापाणिरुपस्थितः। वज्रपाताद्यथा शब्दो लोकानां दुःसहो भवेत्॥१३॥
तथा तयोर्गदापाते शब्दः स्यात्तु मुहुर्मुहुः। एवं तयोर्गदायुद्धं यावदब्दचतुष्टयम् ॥१४॥

जयन्त के द्वारा कालेय का वध

व्यासजी ने कहा— अपने भाई को मरा हुआ देखकर कालेय नामक दानव धनुष बाण धारण करके चित्ररथ के प्रति दौड़ा ॥१॥ काल तथा मृत्यु के समान कान्ति वाले असुर को दौड़ते हुए देखकर उसको इन्द्र के पुत्र महापराक्रमी जयन्त ने रोका ॥२॥ उस दैत्य से देव श्रेष्ठ जयन्त ने धर्मानुकूल दोनों लोकों में हितकारी तथ्य को कहा॥३॥ शस्त्रों के प्रहार से पीडित तथा मूर्छित, युद्ध पराङ्मुख तथा निरस्त को जो मारता है वह मूर्ख है ॥४॥ वह दीर्घकाल तक रौरव नरक की यातना भोगकर दीर्घकाल तक उसका दास बना रहता है। अतएव इसके साथ युद्ध न करो। धर्मयुद्ध करो ॥५॥ क्रोध से व्याकुल कालेय ने जयन्त से कहा— पहले अपने भाई को मारने वाले को मारकर मैं तुम्हें मारता हूँ ॥६॥ उसके बाद उस असुर श्रेष्ठ को जयन्त ने कालाग्नि के समान कान्ति वाले तीक्ष्ण बाणों से मारा ॥७॥ उसने भी उन बाणों को काट गिराया और तीन बाणों से जयन्त पर प्रहार किया। जिसतरह वर्षा होने पर गौरिक नदी का जल बहने लगता है, उसीतरह वे दोनो वीर न तो क्षीण हुए और न कातर हुए। परस्पर में एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से शान्त नहीं थे ॥९॥ उसके बाद उस दैत्य के धनुष को जयन्त ने बाण से काट दिया। और पाँच बाणों के प्रहार से सारथि को भी पृथिवी पर गिरा दिया ॥१०॥ आठ तीक्ष्या बाणों से जयन्त ने चार घोड़ों को भी गिरा दिया। इसके बाद पृथिवी पर विद्यमान वह शक्ति लेकर उसका प्रहार कुमार पर किया। गदा के प्रहार से पीडित घोड़ा, वरुथ तथा कूबर के साथ जयन्त के रथ को पृथिवी पर गिराकर कालेय ने सिंह के समान गर्जना किया ॥११-१२॥ शीघ्रता से पृथिवी पर जाकर वह हाथ में गदा लेकर युद्ध के लिए तैयार हो गया। जिसतरह वज्रपात से होने वाला शब्द लोगों के लिए दुःसह होता है ॥१३॥ उसीतरह उन दोनों के गदापात

प्रभग्ने ते गदे खस्थौ खड्गचर्मधरावुभौ । तदापदातिनोर्युद्धमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥१५॥
दृष्ट्वा च विस्मयं जग्मुर्देवासुरमहोरगाः । खड्गपातैर्मुहूर्तान्ते तयोश्छिन्ने तु वर्मणी ॥१६॥
अभवत्खड्गयुद्धं च तयोर्युद्धाति शीलिनोः । दधार चिकुरे तस्य जयंतो भीमविक्रमः ॥१७॥
शिरश्छित्वास्य खड्गेन पातयामास भूतले। ततस्तु जयशब्देन देवाः सर्वे ननंदिरे॥१८॥
प्रभग्ना दैत्यसंघाश्च दिशः सर्वाः प्रदुद्रुवुः ॥१९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे कालेयवधोनाम षट्षष्ठितमोऽध्याय ॥६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु दैत्येंद्रो हिरण्याक्षो महाबलः । सरोषश्चातिताम्राक्षो ह्यसुरानादिदेश ह ॥१॥
स्वयं गच्छामि युद्धाय देवानां विजिघांसया। नागच्छंति न युद्ध्यंते तेन मार्गाद्विशन्त्वितः ॥२॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शेषा दैत्यगणाधिपाः। युद्धाय प्रययुः सर्वे शूलपाशातिपंडिताः ॥३॥
अधिकं पूर्वसैन्याश्च तथाशतगुणैरपि । निरंतरं तथाकाशं प्रययुर्युद्धकांक्षिणः ॥४॥
ततो रुद्रास्ससाध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा । स्कंदश्च गणपश्चैव विष्णुजिष्णुपुरोगमाः ॥५॥

से वार-वार शब्द होता था इसतरह उन दोनों का गदा युद्ध चार वर्ष तक चला ॥१४॥ उन दोनों की गदायें टूट गयों तो आकाश में ही स्थित रहकर उन दोनों ने खड्ग और ढाल धारण कर लिया उस समय उन दोनों का अद्भुत और लोमहर्षक युद्ध हुआ ॥१५॥ उसको देखकर असुर, देवता और महोरग आश्चर्यित हो गये । खड्ग के प्रहार से दोनों के कवच टूट गये ॥१६॥ उन दोनों का खड्ग युद्ध चलता रहा । उसके बाद महापराक्रमी जयन्त ने उसके बालों को पकड़ लिया । उसने खड्ग के प्रहार से उसके शिर को काटकर पृथिवी पर गिरा दिया । उसके बाद जय-जयकार करते हुए सभी देवता आनन्दित हो गये ॥१७-१८॥ और सम्पूर्ण दैत्यसेना प्रभग्न होकर विभिन्न दिशाओं में भाग गयी ॥१९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के कालेय वध नामक छियासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६६।।

इन्द्र के द्वारा बल और नमुचि का वध

व्यासजी ने कहा— इस वात को सुनकर महाबलवान् हिरण्याक्ष नामक दैत्यराज ने क्रोध से अपनी आँखे लाल कर लीं और उसने आदेश दिया ॥१॥ मैं स्वयं देवताओं को मार डालने की इच्छा से युद्ध करने जा रहा हूँ। क्योंकि जाने वाले न आते हैं और युद्ध करते हैं । अतएव वे मार्ग से हट जायँ ॥२॥ इसबात को सुनकर बचे हुए दैत्यगणों के स्वामी जो शूल तथा पाश में अत्यन्त निपुण थे वे युद्ध करने के लिए चल पड़े ॥३॥ पहले की सेना से सौ गुना अधिक वे आकाश को भरकर युद्ध करने की इच्छा वाले चल पड़े ॥४॥ उस समय सभी रुद्र, साध्यगण

सर्वे योद्धुं गतास्ते च हृष्टा रणसमुत्सुकाः। एतस्मिन्नंतरे युद्धं देवदानवयोरपि ॥६॥
नभूतं नश्रुतं पूर्वं सर्वलोकभयंकरम्। शस्त्रास्त्रैर्बहुधा युक्तं शिशिरेणेव काननम् ॥७॥
धरां स्वर्गौक आकाशं संरुध्य युद्धमाबभौ। अन्योन्यं जघ्नुराकाशे तथान्योन्यं महीतले ॥८॥
शक्तिभिर्मुसलैर्भल्लैर्बहुभिः शरवृष्टिभिः। दारुणैः खड्गपातैश्च तथा चक्रपरश्वधैः ॥९॥
अन्यायुधैश्च विविधैर्निर्जघ्नुस्ते परस्परम्। अभवन् घोररूपाणि धराकाशेऽव्ययानि च ॥१०॥
शस्त्रैः शरैरसृक्पातैः कंकवायसजंबुकैः। यथा मुसलधाराभिर्घना वर्षंति लोहितम् ॥११॥
तथैव क्षतजैः स्रस्तैः स्वाङ्गाच्च देवदानवाः। केचित्पतंति मुह्यंति स्खलंति च हसंति च ॥१२॥
मुञ्चंति चार्तनादांश्च सिंहनादं मुहुर्मुहुः। केषांचिद्वाहवश्छिन्ना शिछन्नपादास्तथापरे ॥१३॥
छिन्नपार्श्वोदराः केचिन्निपेतुः शतशो भुवि। कोटिकोटिसहस्राणि गजवाज्यसुराणि च ॥१४॥
अपतन्धरणीपृष्ठे रक्तौघे बहुधा भुवि। ततस्तु धरणीपृष्टे त्वभवल्लोहितार्णवः ॥१५॥
विपरीतास्ततो नद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः। तृणकाष्ठपरास्तत्र शक्तयोदारुसंचयाः ॥१६॥
मुद्गरा मुसलाः शूला मकराद्या भवंति च। जयंतिका ध्वजामीनाः कमठाश्चर्मकायकाः ॥१७॥
शरादिभिर्महोष्ट्रैश्च निरुद्धाः प्रचुरैस्तथा। केशचामरशैवालाः संपूर्णास्तास्ततः स्ततः ॥१८॥
पतद्भिश्च तथान्यैश्च विविधैः क्षतजार्णवः। तदा वसुंधरा सर्वा सशैलवनकानना ॥१९॥
रुधिरौघा महाघोरा सर्वलोकभयंकरा। स्कंदस्य शक्तिपतेन गता दैत्या यमक्षयम् ॥२०॥
पर्शुना परमेणैव अग्निनाग्निशिखैः शरैः। वरुणस्य च पाशेन वद्धामग्नायमक्षये ॥२१॥

सभी वसुगण, स्कन्दजी, गणेशजी इत्यादि भगवान् विष्णु को आगे करके ॥५॥ युद्ध करने के लिए उत्सुक होकर प्रसन्नता पूर्वक चले। इस समय देवताओं और दानवों का अभूतपूर्व तथा आश्रुत पूर्व सम्पूर्ण लोकों के लिए भयङ्कर युद्ध हुआ। जिसतरह वर्फ से वन ढँक जाता है उसीतरह शस्त्रास्त्रों से पृथिवी, आकाश भर गया वीर आकाश में एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे और पृथिवी पर भी एक दूसरे को मार रहे थे ॥६-८॥ वे परस्पर में एक दूसरे को भयङ्कर खड्ग प्रहार से, चक्र एवं फरसे से, शक्ति, मुसल तथा बहुत अधिक भल्ल बाणों की वृष्टि से प्रहार कर रहे थे ॥९॥ वे दूसरे आयुधों से भी दूसरों को मार रहे थे। शस्त्रों से बाणों से, रक्तपात से कंक पक्षियों, कौओं से और शृगालों से पृथिवी तथा अनन्ताकाश भयङ्कर दिखने लगे। लग रहा था जैसे मेघ मुसलाधार खून की वर्षा कर रहे हों॥१०-११॥ उसीतरह अङ्गों से निकले हुए खून के कारण अपने अङ्गो के गिर जाने से कुछ देवता और दानव गिर रहे थे, वेहोश हो रहे थे फिर हँसने लगते थे ॥१२॥ वे बार-बार आर्तनाद तथा सिंहनाद कर रहे थे। किसी की भुजा कट गयी थी तो किसी के पैर कट गये थे ॥१३॥ सैकड़ों वीर पार्श्व तथा उदर के विदीर्ण हो जाने से करोड़ों-करोड हजार हाथी घोड़े तथा असुर पृथिवी पर गिर पड़े ॥१४॥ ये सबके सब पृथिवी पर गिर पड़े और पृथिवी पर रक्त समूह का मानो रक्त सागर बन गया ॥१५॥ उस समय शीघ्र ही नदियाँ विपरीत दिशा में बहने लगीं। तृण और काष्ठ स्वरूप वहाँ शक्तियाँ मुद्गर, मूसल, त्रिशूल आदि उस सागर के मानो घडियाल आदि थे। विजयध्वज ही उस रक्त सागर की मछलियाँ थी और ढाल इत्यादि उसके कच्छप थे ॥१६-१७॥ अत्यधिक बाण तथा बड़े-बड़े ऊँट उस सागर के तट बन्ध बन गये। केश तथा चामर ही उसके सेवार थे। इसतरह वे चारो ओर भरे पड़े थे ॥१८॥ गिरने वाले तथा दूसरे अनेक प्रकार के खूनों से पर्वत तथा वनों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी रुधिर समूह से अत्यन्त घोर और सभी लोकों के लिए भयङ्कर हो गयी। स्कन्द के शक्तिप्रहार से दैत्य यमलोक पहुँच गये ॥२०॥ अग्नि ने पर्शु

येषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च पुरोगैः सचिवैस्तथा । निपातिताश्च दैतेयाः शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ॥२२॥
ग्रहैश्च श्वसनैरेव क्षयगंधर्वकिन्नरैः। महत्या गदया चैव कुबेरेण च धीमता ॥२३॥
घनानां निकरैर्वज्रैस्तुषारैर्विधुनेरितैः। पन्नगानांविषैर्घोरैर्दैत्याः पेतुर्धरातले ॥२४॥
अन्यैश्च विविधैर्देवैः कोटिकोटिसहस्रशः। पातिताः प्रययुस्सर्वे धरण्यां तु गतासवः ॥२५॥
देहांस्त्यक्त्वा दिवं यांति केचिच्च यम मंदिरम्। केचित्तच्छंति पातालं पुण्यापुण्यप्रयोगतः ॥२६॥
एतस्मिन्नंतरे वेदाञ्जजल्पुः परमर्षयः। स्वस्त्यस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च गोभ्यः स्त्रीभ्यस्तपस्विषु ॥२७॥
प्रयुध्यमानेष्वन्येषु सांप्रतं सर्वजंतुषु । विबुधैरर्दिता दैत्याः शेषाः पर्वतमाश्रिताः ॥२८॥
प्रजग्मुश्च दिशः सर्वाः कातरा रणभीरवः । दैत्यव्यूहे प्रभग्ने च बलो नाममहाबलः ॥२९॥
अर्दयामास देवांश्च संयम्याग्निसमैः शरैः । तस्य बाणार्दिता देवा बहवो बलदर्पिताः ॥३०॥
पतिता धरणीपृष्ठे केचिद्भग्ना रणाजिरे। दृष्ट्वा तस्य महत्कर्म दारुणं लोकभीषणम् ॥३१॥
शशंसुर्ऋषयो देवास्तत्र शिष्टाः प्रचुक्रुशुः । अथ क्रुद्धो महातेजाश्शतक्रतुरर्रिदमः ॥३२॥
जघानशरसंदोहैर्बलं बलवतांवरम् । सोपि क्रुद्धो बलो युद्धे तथा शक्रं ससंभ्रमः ॥३३॥
रुधिरेणावसिक्तांगौ प्रसृतेन महाबलौ । तौ यथामाधवे मासि पुष्पितौ किंशुकद्रुमौ॥३४॥
चक्राणि च सहस्राणि शूलानि मुसलानि च । निचखान रणे शक्रे चपले चासुरोत्तमः॥३५॥
तानि चक्राणि शूलानि निचकर्त्तशरोत्तमैः । सुरराट् सहसा भ्रांतो लीलया समरे बली ॥३६॥
स च दैत्यो महातेजाः शक्त्या चैव पुरंदरम्। निजघान तदातूर्णं गजस्थं च स्तनांतरे ॥३७॥

नामक अग्नि की ज्वाला वाले बाणों से और वरुण ने अपने पाश से बाँधकर दैत्यों को यमलोक भेज दिया ॥२१॥ जिन सबों के पुत्रों, पौत्रों, पुरोहितों तथा मन्त्रियों के द्वारा बाणों से शक्ति से तथा ऋष्टियों के द्वारा दैत्य मार दिये गये॥२२॥ ग्रहों, वायुओं, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों के द्वारा बुद्धिमान कुबेर ने अपनी विशाल गदा से, मेघ समूह के द्वारा, वज्रों के द्वारा, चन्द्रमा के द्वारा प्रयुक्त शीत के द्वारा, सर्पों के भयङ्कर विष के द्वारा, वे दैत्य पृथिवी पर गिर पड़े ॥२४॥ दूसरे भी अनेक प्रकार के करोड़ों देवों द्वारा पृथिवी पर गिराये जाने से दैत्य मर गये ॥२५॥ उनमें से कुछ अपने शरीर का त्याग करके स्वर्ग जाते थे तथा कुछ यमलोक जाते थे । कुछ दैत्य अपने पुण्य तथा पाप के प्रयोग के कारण पाताल में चले जाते थे ॥२६॥ उसी समय परमर्षियों ने वेदों का पाठ किया और कहा ब्राह्मणों, गौओं, स्त्रियों तथा तपस्वियों का कल्याण हो ॥२७॥ युद्ध करने वाले दूसरे सभी जीवों का कल्याण हो । देवताओं के द्वारा पीडित होकर सभी दैत्य पर्वतों में भग गये ॥२८॥ कायर और रणभीरु दैत्य विभिन्न दिशाओं में भग गये दैत्यों की सेना के पलायन कर जाने पर महाबलवान् बल ने अग्नि के समान बाणों का सन्धान करके देवताओं का मर्दन किया । उसके बाणों से मर्दित बल के दर्प से दृप्त अनेक देवता ॥३०॥ पृथिवी पर गिर पड़े और कुछ रणभूमि में ही गिर पड़े । उसके भयङ्कर कठोर तथा महान कर्म को देखकर ॥३१॥ ऋषियों ने उसकी प्रशंसा की और वहाँ पर बचे हुए देवता चिल्लाने लगे । उसके पश्चात् शत्रुओं का मर्दन करने वाले इन्द्र क्रुद्ध होकर ॥३२॥ अपने बाणों से बलवानों में श्रेष्ठ बल नामक दैत्य को मारा । उसके बाद क्रुद्ध होकर बल ने भी इन्द्र पर प्रहार किया। उसके कारण प्रवाहित होने वाले खून से दोनों (इन्द्र और बल) भिंग गये । वे दोनों चैत्र के महीने में सुशोभित होने वाले पलाश वृक्षों के समान लाल-लाल लग रहे थे ॥३३-३४॥ असुरोत्तम बल ने इन्द्र पर हजारों चक्रों से, शूलों से और मुसलों से प्रहार किया ॥३५॥ बलवान् देवराज इन्द्र ने भी बड़ी आसानी से उन चक्रों तथा शूलों को अपने बाणों द्वारा तोड़ दिया ॥३६॥ उसके बाद महातेजस्वी बल ने हाथी पर बैठे हुए इन्द्र की छाती में शक्ति से प्रहार किया ॥३७॥ उस प्रहार से मारे गये इन्द्र हाथी पर ही मूर्छित हो गये । उसके बाद होश में आकर इन्द्र ने बल

तथा विनिहतः शक्रः प्रचचाल गजोपरि। लब्धसंज्ञो बलं जिष्णुर्विभेद दनुजं क्षणात् ॥३८॥
रथसंस्थस्य हस्तौ च धनुश्चिच्छेद चेषुणा। चर्मतीक्ष्णं ध्वजं तस्य शरेणैकेन वीरहा ॥३९॥
चतुर्भिर्निशितैर्बाणैर्विव्याध चतुरो हयान्। शरेणैकेन सूतस्य शिरश्चिच्छेद तत्क्षणात् ॥४०॥
छिन्नधन्वा हतरथो हताश्वो हतसारथिः। निपत्य मूर्च्छितः पृथ्व्यां मुहूर्तान्मृत्युमाप सः ॥४१॥
अथ क्रुद्धो महादैत्यो नमुचिः सुरदर्पहा। गदामादाय सहसा स जघान महागजम् ॥४२॥
यथामेरुगिरेः शृंगे वज्रपातो भवेद् ध्रुवम्। तथैव च महाशब्दो ह्यभवल्लोमहर्षणः ॥४३॥
प्रहारेणार्दितः पद्मी संचचाल सविह्वलः। रुधिरेणावसिक्तांगो विमुखो वेदनातुरः ॥४४॥
शतक्रतुं विधावंति शतशोऽथसहस्रशः। अर्धचंद्रैः क्षुरप्रैश्च चिच्छेद पाकशासनः ॥४५॥
जंतुभिस्तस्य मायाभिरर्दितास्सुरपुंगवाः। भूमौ निपतिताः केचित्केचित्सुप्ता रथोपरि ॥४६॥
दृष्ट्वास्य महत्कर्म माधवो विशिखांस्तथा। जंतुभूतान्सचक्रेण चिच्छेद देहलग्नकान् ॥४७॥
ततोजिष्णुस्त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले। पृथिव्यां पतितो दैत्यो मूर्च्छितस्खलितः पुनः ॥४८॥
दधार मुद्गरं घोरं शक्रं हंतुं समुद्यतः। ततो जघान मघवा कुलिशेन महासुरम् ॥४९॥
सपपात महीपृष्ठे क्षतवक्षा महाबलः। साधुसाध्वति देवाश्च सिद्धाश्चैव महर्षयः ॥५०॥
अपूजयंस्तदा शक्रं बहुभिः पुष्पवृष्टिभिः। ततो दैत्यगणाः सर्वे भीतास्तत्र प्रदुद्रुवुः ॥
गीतं गायंति गंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥५१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे बलनमुचिवधोनामसप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥६७॥

को क्षण भर में छेद डाला ॥३८॥ वीरों को मारने वाले इन्द्र ने रथ पर बैठे हुए बल के दोनों हाथों को तथा धनुष को अपने बाणों से काट डाला। उसके ढाल तथा पताका को भी एक ही बाण से काट दिया ॥३९॥ चार तीक्ष्ण बाणों से चार घोड़ों को मार दिया और उसी क्षण उसके सारथि को एक बाण से मार दिया ॥४०॥ कटे हुए धनुष वाला टूटे रथ वाला तथा मरे हुए सारथि वाला बल पृथिवी पर गिरकर मर गया ॥४१॥ उसके बाद देवताओं के दर्प को विनष्ट करने वाला नमुचि क्रुद्ध होकर गदा लेकर इन्द्र के हाथी पर प्रहार किया ॥४२॥ जिस तरह सुमेरु पर्वत के शिखर पर वज्रपात हुआ हो उसी तरह का भयङ्कर शब्द उस गदा प्रहार से हुआ ॥४३॥ उस प्रहार से ऐरावत काँप कर मूर्छित हो गया। उसका सारा शरीर खून से भिंग गया और वह हाथी रण पराङ्मुख हो गया ॥४४॥ इन्द्र के पीछे हजारों दैत्य दौड़ने लगे। इन्द्र ने उन सबों को हजारो अर्द्ध चन्द्र बाणों से काट दिया ॥४५॥ उस दैत्य के मायाओं ने बड़े-बड़े देवताओं को पीडित कर दिया। कुछ देवता पृथिवी पर गिर पड़े कुछ अपने रथ पर ही सो गये॥४६॥ उसके इस महान कर्म को देखकर तथा जन्तु रूप बाणों को देखकर माधव ने उसे अपने चक्र से काट दिया उसके बाद इन्द्र ने अपने तीन बाणों से मार कर उसको पृथिवी पर गिरा दिया। पृथिवी पर गिरकर वह दैत्य मूर्छित होकर लड़खड़ा गया ॥४८॥ उसके बाद उसने इन्द्र को मारने के लिए गदा उठाया। तो इन्द्र ने नमुचि को अपने वज्र के प्रहार से मार दिया ॥४९॥ उसके बाद छाती के विदीर्ण हो जाने से महाबलवान् वह पृथिवी पर गिर पड़ा। महर्षि तथा सिद्धगण बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहने लगे। उन लोगों ने पुष्प की वृष्टि करके इन्द्र की पूजा की। उसके बाद दैत्य समूह भयभीत होकर पलायन कर गया। गन्धर्वों ने गीत गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया ॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के बल तथा नमुचि वध नामक सड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६७।।

अड़सठवाँ अध्याय

व्यास उवाच

बलं च निहतं दृष्ट्वा नमुचिं च स्वकाग्रजम् । मुचिस्तत्राब्रवीद्वाक्यं ज्येष्ठो मे सूदितस्त्वया ॥१॥
परोक्षेणाधुनात्वं च शरैर्नेष्यामि भास्करिम् । तमब्रवीन्महातेजाः शक्रः सर्वसुरार्चितः ॥२॥

शक्र उवाच

भ्रातुस्ते धर्मपंथानमिदानीं लप्स्यसे ध्रुवम् । वह्नेरुष्णमविज्ञाय प्रमोहाच्छलभा यथा ॥३॥
सहसा प्रविशंत्यग्निं तथा मां योद्धुमिच्छसि । एवं ब्रुवाणमिन्द्रं च जघान विशिखैस्त्रिभिः ॥४॥
सचिच्छेद त्रिभिर्बाणैः शक्रः परपुरंजयः । ततो जघान दशभिरिंद्रमैरावणं त्रिभिः ॥५॥
सप्तभिर्मातलिं छित्वा नादैरुच्चैर्ननाद ह । शक्रं प्रति पुनर्दैत्यो भ्रामयामास संभ्रमात् ॥६॥
आयसीं तां गदां कोपान्महाबलपराक्रमः । ततस्तु लाघवाच्छक्रो जघानकुलिशेन हि॥७॥
भिदुरस्यावपातेन गतासुर्निपपात ह । दनुजस्य प्रपातेन संचचाल वसुंधरा॥८॥
देवाः प्रचक्रुर्नृत्यानि दानवा विप्रदुद्रुवुः ॥९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे मुचिवधोनामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥६८॥

इन्द्र के द्वारा मुचि का वध

व्यासजी ने कहा— अपने अग्रज बल तथा नमुचि को मारा गया देखकर मुचि ने कहा तुमने मेरे अग्रज को मार दिया है ॥१॥ अतएव अप्रत्यक्ष ही रहकर मैं तुमको यमलोक पहुँचा रहा हूँ । यह सुनकर देवताओं द्वारा पूजित इन्द्र ने कहा ॥२॥ तुम अपने भाई के धर्ममार्ग को शीघ्र ही प्राप्त करोगे । अग्नि की उष्णता को जाने विना तुम अज्ञान के कारण शलभ बनना चाहते हो ॥३॥ जिस तरह शलभ सहसा अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, उसी तरह से तुम मुझसे युद्ध करना चाह रहे हो । इसतरह से कहने वाले इन्द्र को मुचि ने तीन बाणों से मारा ॥४॥ उन बाणों को इन्द्र ने अपने तीन बाणों से काट दिया ॥५॥ उसके बाद मुचि सात बाणों से मातलि को छेद कर जोर से गर्जना किया । उसके बाद उसने इन्द्र के प्रति लौहनिर्मित गदा को धारण करके भाँजा । फिर इन्द्र ने शीघ्रता से उसको वज्र से मारा ॥७॥ वज्र के प्रहार से वह मर कर गिर पड़ा । उस दैत्य के गिरने से पृथिवी डोल गयी ॥८॥ देवता नृत्य करने लगे और दैत्य भाग चले ॥९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टि खण्ड के मुचि वध नामक अड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६८।।

उनहत्तरवाँ अध्याय

व्यास उवाच

तारेयो बलसंपन्नः शक्रतुल्यपराक्रमः । जघान विशिखैस्स्कन्दं पितृघातिनमाहवे ॥१॥
ततस्स्कन्दो महाबाहुर्हरितुल्यपराक्रमः । विचकर्त शरांस्तांस्तान्निर्बिभेद शरोत्तमैः ॥२॥
सदैत्यस्सहसा स्कंदं छादयामास मार्गणैः । असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद विशाखो विशिखैस्तदा ॥३॥
तारेयोग्निशरैः स्कंदं जघान रणमूर्धनि । विशिखं भिदुरप्रख्यं चखान हरनंदने ॥४॥
वैश्वानरेण सेनानीस्तत्र संपर्यवारयत् । रौद्रमस्त्रं पुनर्दैत्यः प्रेषयामास तं प्रति॥५॥
तन्निरस्तं कृतं तेन बाणेनास्फालितेन च । अघोरं प्राक्षिपद्दैत्यो घोररूपं सुदारुणम् ॥६॥
भूधराविटपासिंसिहास्तथा सर्पादयः शराः। धावंति पार्वतीपुत्रं कोटिकोटिसहस्रशः ॥७॥
छित्वा तांस्तु शरान् स्कंदो बिभेद दैत्यपुंगवम् । आपादंशीर्षपर्यतं शरैरग्न्यर्कसन्निभैः ॥८॥
स्वर्णपुंखाः शरा लग्ना देहेदैत्यपतेर्भृशम् । रेजुस्तेस्वर्णशकला यथा कृष्णशिलोच्चये ॥९॥
तस्यदेहात्ततश्चैव बहुसुस्रावशोणितम् । यथा च माधवे मासि पुरुपुष्पश्शमीतरुः ॥१०॥
स्यंदनाथश्चराश्चाश्च शिश्यिरे भूमिलाग्नकाः । अथ क्रुद्धो महादैत्यः शूलं भीमं च दारुणम्॥११॥
धृत्वा तं प्रतिचिक्षेप कालमृत्युसमप्रभम्। पार्वतीनंदनेनापि शूलं पाशुपतेन ह ॥१२॥
क्षिप्तं तेन कृतं दग्धं मूहर्तेन रणाजिरे । पुनः शक्तिं मुमोचाथ ब्रह्मदत्तान्तु दानवः ॥१३॥
शूलं प्रतिजघानाथ शतकूटसमप्रभम् । ततोऽस्त्रे वज्रसंकाशे जघटाते वियत्यपि ॥१४॥

तारेय वध

व्यासजी ने कहा— तारेय इन्द्र के ही समान बलवान् था । उसने अपने पिता को मारने वाले स्कन्द को बाणों से मारा ॥१॥ उसके बाद श्रीहरि के समान पराक्रम वाले स्कन्दजी ने उन बाणों को काट दिया तथा तारेय को अपने उत्तम बाणों से बेध दिया ॥२॥ उस दैत्य ने आचानक स्कन्दजी को अपने बाणों से ढंक दिया और उसने सावधानी पूर्वक स्कन्दजी को बाणों से छेद दिया । तारेय ने अग्नि बाणों से स्कन्द को मारा और उसने उनके शरीर में वज्र के सदृश बाण का प्रहार किया ॥४॥ उस समय स्कन्द ने उन बाणों को आग्न्यस्त्र से खण्डित किया । उसके बाद तारेय ने स्कन्द पर रौद्रास्त्र का प्रहार किया ॥५॥ उसको स्कन्दजी ने स्फालित बाण से शान्त कर दिया । दैत्य ने भयङ्कर रूप वाले अघोरास्त्र का प्रयोग किया तो उस समय स्कन्दजी की ओर हजारों पर्वत, वृक्ष, सिंह तथा सर्प आदि उस बाण से निकलकर स्कन्दजी की ओर दौड़ने लगे ॥६-७॥ उन बाणों को काटकर स्कन्दजी दैत्य श्रेष्ठ तारेय को पैर से लेकर शिर पर्यन्त अग्नि तथा सूर्य के समान कान्ति वाले बाणों से छेद दिया ॥८॥ जिनके सुवर्ण निर्मित पुंख वाले बाण काले-काले दैत्य के शरीर में लगकर काली शिला में लगे हुए स्वर्ण के टुकड़ों जैसे शोभते थे ॥९॥ उस समय तारेय के शरीर से बहुत अधिक खून उसीतरह निकला जिसतरह शमी के वृक्ष में चैत्र के महीने में लाल-लाल फूल निकलते हैं ॥१०॥ उसके रथ में जुते हुए घोड़े पृथिवी पर सो गये । उसके बाद महादैत्य भयङ्कर त्रिशूल धारण करके कालाग्नि के समान कान्ति वाले उसे स्कनदजी पर चलाया । स्कन्दजी ने भी ॥११-१२॥ त्रिशूल को उस पाशुपत पर चलाया । उस त्रिशूल ने तारेय के त्रिशूल को भस्म कर दिया । फिर दानव ने ब्रह्माजी द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रहार स्कन्दजी के त्रिशूल पर किया ॥१३॥ जो सौ कूटों के समान कान्ति वाली थी । वे दोनों अस्त्र आपस

तयोस्सवीर्ययोरस्त्रे धरण्यां प्रणिपेततुः। ततोदैत्यपतिः स्कंदं शरैरग्निशिखोपमैः ॥१५॥
अर्दयामास सहसा घनघारेव पर्वतम्। तांस्तु च्छित्वा महाबाहुः सेनानीश्चापमस्य वै॥१६॥
विचकर्तार्धचंद्रेण तथा यंतुःशिरो महत्। तथाश्वान्बहुभिर्बाणैः पातयामास भूतले ॥१७॥
गृहीत्वा मुसलं वेगात् सदुद्रावस्थले गुहम्। जघान तेन दैत्येन्द्रः शिखिनं शिखिवाहनम् ॥१८॥
ततो मोहं गतो बर्हीप्रचकंपे मुहुर्मुहुः। ततः स्कंदः पुनस्तं च जघानासुरपुंगवम् ॥१९॥
प्रचिच्छेदासिना वेगान्मुसलंचातिदारुणम्। तारेयः शक्तिमादाय जघान क्रौंचदारणम् ॥२०॥
सोपि शक्तिं मुमोचाथ अमोघां दुष्टघातिनीम्। ततः संदह्य सा शक्तिर्विश्वप्रलयकारिणी॥२१॥
यमदंडसमानं च भित्वा पुनर्गुहं गता। सगतासुः पतातोर्व्यां चालयंश्च बसुंधराम् ॥२२॥
पुष्पधूपादिभिः स्कंदः सर्वदेवैः प्रपूजितः ॥२३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे तारेयवधोनामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

व्यास उवाच

ततो देवांतको दैत्यो व्यनदत्समरं प्रति। रणं चकार धर्मेण संदष्टौष्टपुटो बली ॥१॥
स गत्वा चाब्रवीद्वाक्यं सर्वलोकविगर्हितम्।

में आकाश में टकरा गये ॥१४॥ दोनों पराक्रमियों के अस्त्र पृथिवी पर गिर पड़े। उसके बाद तारेय ने स्कन्द को अग्नि शिखा के समान बाणों से पीडित कर दिया। लग रहा था जैसे पर्वत के ऊपर मेघ वरस रहे हों। स्कन्दजी ने उन बाणों को काटकर उसके धनुष को अर्धचन्द्र बाणों से काट दिया और सारथि के शिर को भी काट दिया। फिर अनेक बाणों से उसके घोड़ों को मारकर गिरा दिया ॥१६-१७॥ उसके बाद तारेय मुसल धारण करके स्कन्दजी की ओर दौड़ा। और उससे मयूर तथा स्कन्दजी दोनों पर प्रहार किया ॥१८॥ उसके बाद मयूर मूर्छित हो गया और बार-बार काँपने लगा। तदनंतर स्कन्द ने असुर पर प्रहार किया ॥१९॥ और वेग पूर्वक अत्यन्त भयङ्कर मुसल को कृपाण से काट दिया। तारेय ने शक्ति लेकर स्कन्दजी पर प्रहार किया ॥१९-२०॥ स्कन्दजी ने कभी विफल नहीं होने वाली और वीरों को मारने वाली शक्ति का प्रहार किया। उसके बाद विश्व का प्रलय करने वाली वह शक्ति उसको भस्म करके यमदण्ड के समान स्कन्दजी के पास लौट गयी। तारेय भी मरकर पृथिवी को कँपाता हुआ गिर पड़ा ॥२२॥ सभी देवताओं ने स्कन्दजी की धूप तथा दीप से पूजा की।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के तारेयवध नामक उनहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६९॥

देवान्तक, दुर्धर्ष तथा दुर्मुख का वध

व्यासजी ने कहा— उसके बाद देवांतक नामक दैत्य युद्ध में गरजने लगा। वह अपने ओठों को चबाते हुए धर्मराज के साथ युद्ध करने लगा ॥१॥ वह धर्मराज के पास जाकर सभी लोकों में निन्दित वाक्य को कहने लगा।

देवान्तक उवाच

न जानासि महद्धर्म दुष्ट मोहाद्यथाक्रमम् ॥२॥
पापपुण्यप्रयोगेण निग्रहानुग्रहे प्रभः। अहं च निर्मितो धात्रा करोमि तव शासनम्॥३॥
न जानासि यतो धर्म कालमृत्युपुरः सरः। न रोगो न जरा कालो न मृत्युर्नच किंकरः ॥४॥
धर्मात्प्रचलितः कर्मी कष्टं याति दिवानिशम्।

व्यास उवाच

उक्त्वा चैवं महावीर्यं यमं धर्मैकसाक्षिकम् ॥५॥
स जघान त्रिभिर्बाणैः कालमृत्युसमप्रभैः। प्रचिच्छेद सधर्मात्मा ते त्वन्यैर्विशिखैस्त्रिभिः ॥६॥
ततस्तूच्चैः शरैप्राज्यैर्युगांतानलसप्रभैः। निजघान यमं संख्ये सचिच्छेदशरैः शरान् ॥७॥
एतस्मिन्नंतरे क्रुद्धो परस्परजयैषिणौ। जघ्नतुः समरेन्योन्यं महाबलपराक्रमौ ॥८॥
अहोरात्रं तयोर्युद्धमवर्त्तत सुदारुणम्। एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः शक्त्या प्रशमनं रुषा ॥९॥
विभेद दैत्यशार्दूलो ह्यहंकारयुतो बली। तामेवाथ रुषा धर्मो गृहीत्वाशक्तिकां द्रुतम् ॥१०॥
निजघान तयैवामुंस्तनयोरंतरे भृशम्। सविह्वलितसर्वांगो मुखादागतशोणितः ॥११॥
ततः क्रुद्धो महातेजा धृत्वादंडं सुदारुणम्। अमोघं पातयामास तस्य दैत्यस्य विग्रहे॥१२॥
साश्वं रथं तथासूतं योद्धारं शस्त्रसंचयम्। चकार भस्मसात्तं च शमनः क्रोधमूर्च्छितः ॥१३॥
पतिते च तथा दैत्ये दुर्धर्षो नाम दानवः। शमनं शूलहस्तस्तु प्रदुद्राव जिघांसया॥१४॥
शूलहस्तं समायांतं बडवानलसन्निभम्। आससाद रणे मृत्युः शक्तिहस्तोऽति निर्भयः ॥१५॥

देवान्तक ने कहा— हे दुष्टु अज्ञान के कारण तुम धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हो ॥२॥ पाप और पुण्य के प्रयोग के द्वारा तुम जीवों पर निग्रह तथा अनुग्रह करते हो। मुझे ब्रह्मा ने बनाया है मैं तुम्हारा प्रशासन कर रहा हूँ ॥३॥ चूकि तुम काल और मृत्यु को आगे करके धर्म को नहीं जानते हो। तुमको न रोग होता है, न जरा होती है, न काल तुम्हारे पास आता है और न मृत्यु, तुम किसी के दास भी नहीं हो ॥४॥ धर्म का पालन नहीं करने वाले तुम्हारे दिन-रात कष्ट से बीतते हैं। **व्यासजी ने कहा—** इसतरह से एकमात्र धर्म के साक्षी महापराक्रमी यम को इस प्रकार कहकर ॥५॥ यमराज पर काल तथा मृत्यु के समान कान्तिवाले बाणों से प्रहार किया, महात्मा यमराज ने दूसरे बाणों से उन बाणों को काट दिया ॥६॥ उसके बाद अत्यन्त भयंकर युगान्तागिन के समान कान्ति वाले बाणों से यमराज को मारा किन्तु यमराज ने उन बाणों को अपने तीन बाणों से काट दिया ॥७॥ उस समय एक-दूसरे को जीत लेने की इच्छा से क्रुद्ध होकर महाबल एवं पराक्रम सम्पन्न दोनों ने एक दूसरे पर प्रहार किया ॥८॥ उन दोनों का पूरे दिन-रात युद्ध चलता रहा। इसी समय क्रोध से शक्ति के द्वारा देवान्तक ने यमराज पर अहङ्कार पूर्वक प्रहार किया। यमराज ने शीघ्रता से उसी शक्ति को पकड़कर ॥९-१०॥ उसी की छाती में उससे प्रहार किया उससे देवान्तक मूर्छित होकर मुख से खून वमन करने लगा ॥११॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर महातेजस्वी यमराज ने अपने अमोघ दण्ड को लेकर उस दैत्य के शरीर पर प्रहार किया। यमराज ने क्रोध करके रथ, घोड़े, सारथि, देवान्तक तथा उसके शस्त्र समूह को भस्म कर दिया ॥१३॥ उसके मर जाने पर दुर्धर्ष नामक दैत्य यमराज को मारने के लिए हाथ में त्रिशूल लेकर दौड़ा ॥१४॥ हाथ में त्रिशूल लेकर आते हुए बाडवाग्नि के समान कान्ति वाले दुर्धर्ष को यमराज ने निर्भय होकर युद्ध में शक्ति से मारा ॥१५॥ वह दैत्य मृत्यु को देखकर उसे त्रिशूल से ही मारा।

स च दृष्ट्वाऽसुरोमृत्युं शूलेनैव जघान ह । शक्तिं चैव ततो मृत्युः प्रचिक्षेप रणाजिरे ॥१६॥
संदह्य सहसा शूलं वह्निकूटसमप्रभम् । दैत्यस्य हृदयं भित्वा गता सा च धरातलम् ॥१७॥
सरथः सपपातोर्व्यां शक्तिजर्जरविग्रहः । अथान्यो दुर्मुखो मृत्युं कृष्टचापो महाबलः ॥१८॥
खड्गचर्मधरः कालो रथ एव गतो भवत् । दृष्ट्वा तं विशिखैः प्राज्यैर्जघान सयमं रणे ॥१९॥
स चाप्लुत्यरथाद्देवो ह्यसिना च सकुंडलम् । शिरश्छिच्छेद सहसा पातयित्वा च भूतले ॥२०॥
हतशेषं बलं सर्वं प्रदुद्राव दिशो दश ॥२१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे देवांतकदुर्धर्षदुर्मुखवधोनाम सप्ततिमोऽध्यायः ॥७०॥

एकहत्तरवाँ अध्याय

व्यास उवाच

अथान्यो नमुचिः क्रुद्धः स्यंदनस्थो दिवौकसः । विशिखैरर्दयामास घोरै राशीविषोपमैः ॥१॥
ततस्तु संयुगे देवाः सिद्धकिन्नरपन्नगाः । न शक्नुवंति बाणानां वेगं सोढुं समंततः ॥२॥
रथमुच्चैःश्रवोश्वेन युक्तं मातलिनेरितम् । पुरुहूतः समास्थाय प्रागमत्तं महाबलम् ॥३॥
दृष्ट्वा शक्रं महावीर्यं नमुचि दैत्यपुंगवः । अब्रवीद्वासवं संख्ये वचनं सानुगं तदा ॥४॥

उसके बाद यमराज ने शक्ति का उस पर प्रहार किया ॥१६॥ वह शक्ति अग्नि समूह के समान कान्ति वाले उस त्रिशलू को भस्म करके उस दैत्य के हृदय का भेदन करके पृथिवी में प्रवेश कर गयी ॥१७॥ शक्ति के द्वारा शरीर के जर्जर हो जाने के कारण वह दुधर्ष अपने रथ के साथ पृथिवी पर गिर पड़ा । उसके पश्चात् दूसरा दुर्मुख अपने धनुष को चढाकर तथा हाथ में खड्ग एवं चर्म धारण किए हुए यमराज के रथ पर ही चला गया । उसने यमराज को देखकर बहुत अधिक बाणों से उन पर प्रहार किया ॥१९॥ यमराज भी रथ से कूदकर अपने तलवार से उसके कुण्डल सहित शिर को काट दिया और उसको पृथिवी पर गिरा दिया ॥२०॥ मारने से बची हुए दैत्यों की सेना दशों दिशाओं में भाग गयी ॥२१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के देवान्तक दुर्घर्ष तथा दुर्मुख वध नामक सत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७०।।

इन्द्र द्वारा दूसरे नमुचि का वध

व्यासजी ने कहा— उसके बाद दूसरा नमुचि क्रुद्ध तथा रथ पर सवार होकर अपने सर्प के समान बाणों से देवताओं का दलन करने लगा ॥१॥ उस समय युद्ध में सिद्ध, किन्नर तथा पन्नग उसके बाणों के वेग को नहीं बर्दास्त कर पा रहे थे ॥२॥ उसके बाद मातलि के द्वारा हाँके गये रथ पर बैठकर इन्द्र उसके समक्ष आ गये ॥३॥ महापराक्रमी इन्द्र को देखकर दैत्य श्रेष्ठ नमुचि युद्ध में इन्द्र से बोला **नमुचि ने कहा—** इन सामान्य देवताओं को मारने से न तो मेरा यश होगा और न तो मुझको प्रसन्नता होगी, उससे बनावटी लाभ होने वाला है और न तो मेरी

नमुचिरुवाच

प्राकृतं निर्जरं हत्वा न यशोस्ति न च प्रियम्। नलाभकृतकं वापि न जयस्तु पुरन्दर ॥५॥
तस्मात्वयि हतेऽत्रैव सर्वं भवति शाश्वतम्। देवराज्यं प्रलप्स्यामि सुखं भोग्यं सुरालये ॥६॥

व्यास उवाच

तमब्रवीन्महातेजाः शक्रः परपुरंजयः।

इन्द्र उवाच

शूरता वाक्यमात्रेण सर्वत्रसुलभा भवेत् ॥७॥
महापराक्रमं यद्वा अस्ति ते दानवाधम। दर्शयस्वाहवे वीर्यं पुरं नेष्यामि भास्करेः ॥८॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा महातेजाश्चुकोप दैत्यपुंगवः। पंचभिर्निशितैर्बाणै र्जघान सुरसत्तमम् ॥९॥
तांस्तु चिच्छेदमघवा क्षुरप्रैः पंचभिर्द्रुतम्। जग्मतुस्तौ महावीर्यौ समरे विजयैषिणौ ॥१०॥
अन्योन्यं सहसा वेगाच्छरैश्चिच्छितुः शरान्। बिभिदातेथ गात्राणि विशिखैर्भिदुरोपमैः ॥११॥
अत्यपूर्वं कृतं कर्म ताभ्यामेव रणे भृशम्। लाघवं शरसंधान ग्रहमोक्षं सुदुर्लभम् ॥१२॥
दृष्ट्वा तु विस्मयं जग्मुर्देवासुरगणास्तदा। एतस्मिन्नंतरे दैत्यो मायास्संप्रमुमोच ह ॥१३॥
विशिखाः शतशस्तत्र विनिश्चेरुस्समंततः। शक्रः कोपात्पुनः शीघ्रं धनुरुद्यम्य वीर्यवान् ॥१४॥
जघान विशिखैरुग्रैः सर्वगात्रेषुसंज्वलन्। ततोमार्गणसाहस्त्रै रष्टभिस्त्वधिकं तथा ॥१५॥
बिभिदाते ततोन्योन्यं चिच्छिदाते परस्परम्। शरैर्निरंतराकाशं ददृशुस्तत्र संयुगे ॥१६॥
निपतंति धरापृष्ठे खड्गपातैः सहस्रशः। एवं सुदीर्घकाले तु गते तस्मिन्महाहवे ॥१७॥
मायास्त्रं दर्शयामास क्रूरकृन्नमुचिस्तदा। तामसं त्रिषु लोकेषु कृतं स्यात्तुनिरंतरम् ॥१८॥

विजय ही होगी ॥४-५॥ तुमको मार देने से मुझे ये सारी बाते मिल जायेंगी। मैं देवलोक में देवताओं का राज्य सुख तथा भोग्य पदार्थ को प्राप्त कर लूँगा ॥६॥ **व्यासजी ने कहा—** शत्रुओं की नगरी पर विजय प्राप्त करने वाले महातेजस्वी इन्द्र उससे बोले **इन्द्र ने कहा—** केवल बोलने मात्र से वीर तो सर्वत्र सुलभ है ॥७॥ हे दानव ! यदि तुममें महापराक्रम है तो उसे दिखाओं मैं तुम्हे यमलोक पहुँचा दूँगा ॥८॥ **व्यासजी ने कहा—** यह सुनकर महातेजस्वी दानवश्रेष्ठ क्रुद्ध हो गया। उसने पाँच तीक्ष्ण बाणों से इन्द्र पर प्रहार किया ॥९॥ किन्तु इन्द्र ने शीघ्र ही उन बाणों को अपने पाँच क्षुरप्र बाणों से काट गिराया। वे दोनों महापराक्रमी विजयैषी हो गये ॥१०॥ वे अचानक एक-दूसरे के बाणों को वेगपूर्वक काट रहे थे। उन दोनों के शरीर वज्र सदृश बाणों से छेद गये थे ॥११॥ उन दोनों ने अत्यन्त अभूतपूर्व कर्म किया, बाणों के सन्धान करने तथा छोड़ने में अत्यन्त क्षिप्रता का प्रदर्शन कर रहे थे॥१२॥ उसको देखकर देवता और असुर सब विस्मित थे। उसी समय दैत्य ने माया का प्रयोग किया ॥१३॥ वहाँ पर सैकड़ों बाण चारो ओर से चलने लगे। उसके बाद इन्द्र ने क्रोध करके धनुष उठाकर ॥१४॥ अत्यन्त तीव्र बाणों से उसके सम्पूर्ण शरीर में प्रहार किया। उसके बाद एक हजार आठ बाणों से ॥१५॥ एक दूसरे का छेदन-भेदन कर दिया। उस समय आकाश बाणों से भर गया ॥१६॥ आकाश से पृथिवी पर हजारो खड्ग गिरने लगे। इस तरह उस महायुद्ध में बहुत अधिक समय बीत जाने पर ॥१७॥ क्रूर कर्म करने वाले नमुचि ने अपने मायास्त्र का प्रयोग किया। उसके कारण त्रैलोक्य में घोर अन्धकार फैल गया ॥१८॥ अब देवता और असुर एक दूसरे को देख

परस्परं न पश्यंति देवासुरगणा भृशम् । सूर्यचंद्रग्रहाणां च वह्नीनां च दिवौकसाम् ॥१९॥
तस्मिंस्तमसि दुष्पारे गभस्तिर्नैव दृश्यते । दैत्यस्य च ततस्तूर्णं शरैरग्निशिखोपमैः ॥२०॥
विभग्नाः सर्वेदेवाश्च शक्रश्च रणसंमुखे । शरैर्विभिन्नदेहास्तु निपेतुर्धरणीतले ॥२१॥
प्रभग्नाश्चापरे शूरास्संयांति च दिशो दश । कूटं तस्यपरिज्ञाय सर्वदेवार्चितो हरिः ॥२२॥
सौम्यमस्त्रं मुमोचाथ दिविसूर्यशतप्रभम् । विलम्बितं समालोक्य शक्त्या च बहुघंटया ॥२३॥
जघानोरसि दैत्यस्य सपपात व्यथान्वितः । चिरात्संलभ्य संज्ञां च दैतेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥२४॥
गत्वा वेगात्सुरश्रेष्ठमैरावतं दधार ह । त्रासयामास सुतरामिंद्रस्य द्विरदं रुषा ॥२५॥
धृत्वा सतु गजं सेंद्रं मुमोच धरणीतले । ततो भूमिगतः शक्रः कश्मलं च क्षणं गतः ॥२६॥
अवप्लुत्य स दैत्येंद्रो गजदंतांतरस्थितः । शक्रं ग्रहीतुकामस्य वधार्थं यूथपस्य सः ॥२७॥
असिनाऽसुरमुख्यस्य शिरश्छित्वा न्यपातयत् । सर्वे प्रजहृषुर्देवा गंधर्वा ललितं जगुः ॥
मुदितास्ते च मुनयःस्तुवंति सुरसत्तमम् ॥२८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे द्वितीयनमुचिवधोनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

नहीं पाते थे । सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि नामक देवताओं के किरणें उस अन्धकार में दिखायी नहीं पड़ती थीं । उसके बाद शीघ्र ही दैत्य के अग्नि के समान बाणों से ॥२०॥ सभी देवता भाग चले केवल युद्ध में इन्द्र ही थे । बाणों से छिदे हुए शरीर वाले देवता पृथिवी पर गिर पड़े ॥२१॥ युद्ध में दूसरे वीर दशों दिशाओं में भाग गये । उस दैत्य की माया को जानकर सभी देवताओं से पूजित इन्द्र ने ॥२२॥ आकाश में सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले सौम्यास्त्र को छोड़ा । आकाश में लटके हुए दैत्य को देखकर उन्होंने आठ घण्टों वाली शक्ति से उसके वक्षःस्थल में प्रहार किया जिससे व्यथित होकर वह पृथिवी पर गिर पड़ा । वहुत देर के बाद होश में आकर क्रोध से व्याकुल दैत्य ने ॥२४॥ वेग पूर्वक इन्द्र के पास जाकर ऐरावत को पकड़ लिया और क्रोध करके उसने इन्द्र के हाथी को भयभीत कर दिया ॥२५॥ उसने इन्द्र सहित हाथी को पकड़कर भूमि पर पटक दिया । उसके बाद पृथिवी पर आकर इन्द्र क्षण भर के लिए मूर्छित हो गये ॥२६॥ वह दैत्येन्द्र नीचे कूदकर इन्द्र को पकडने के लिए तथा यूयप को मारने के लिए हाथी के दाँतों के भीतर चला गया ॥२७॥ उसी समय इन्द्र ने कृपाण से उस नमुचि के शिर को काट दिया और उसे भूमि पर पटक दिया । यह देखकर सभी देवता प्रसन्न हो गये और गन्धर्वों ने ललित संगीत किया । प्रसन्न होकर मुनियों ने इन्द्र की स्तुति की ॥२८॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के द्वितीय नमुचि वध नामक एकहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७१।।

बहत्तरवाँ अध्याय

व्यास उवाच

दिव्यं रथं समास्थाय धनुर्हस्तो बलैर्युतः । गत्वा च माधवं संख्ये देवासुरगणाग्रतः ॥१॥
क्रोधेन महताविष्टो मधुर्निर्जरमर्दनः । अब्रवीत्परुषं वाक्यमव्ययं हरिमीश्वरम् ॥२॥
नारायण न जानासि युद्धधर्ममितः कथम् । अन्यायाहुर्वधोपायं कृत्वा नष्टो न शोचसि ॥३॥
अनेन पंकयोगेन व्यवहाराकृतस्य च । सुरत्वं चोपनष्टं स्यादन्य सृष्टिं करोम्यहम् ॥४॥
त्वामेव निहनिष्यामि सह देवगणैरिह । इत्युक्त्वा धनुरादाय जघान विशिखैर्विभुम् ॥५॥
माधवस्तान्बिभेदाथ शरैर्वज्रसमप्रभैः । बहुभिस्सर्वगात्रेषु जघान च मधुं ततः ॥६॥
मायया छादितः सोभूदैत्यस्तं सुरसत्तमाः । ये वै शूराश्च रुद्राद्यास्त्रिदशास्सत्त्वधारिणः ॥७॥
देव्यो नानाविधाश्चापि सायुधा वाहनान्विताः । सेनान्यो गणपा देवा लोकेशहरविष्णवः ॥८॥
अन्ये प्रहादयो देवाः सर्वे युध्यन्ति संगताः । विनष्टाश्च तदा देवा मधोर्वै मायया ध्रुवम् ॥९॥
संमुखे विमुखे चैव शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः । पतंति सहसा देवा भूमौ शस्त्राभिपीडिताः ॥१०॥
एतस्मिन्नंतरे विष्णुर्गृहीत्वा च सुदर्शनम् । असुरान् मायया देवान् जघान रणमूर्धनि ॥११॥
अथते शिरांस्येषां छित्वा चैवसहस्रशः । पातयामास देवेशो दैत्यानां च सुरात्मनाम् ॥१२॥
एवमन्यान् विभुर्दैत्यान् द्रावयामास संगरात् । तं दृष्ट्वा मुनयो देवाः सर्वे विस्मयमाययुः ॥१३॥
कर्णे कर्णे प्रजल्पंते देवा मुनिगणास्तथा।

भगवान् विष्णु द्वारा मधु का वध

व्यासजी ने कहा— देवताओं का मर्दन करने वाला मधु नामक दैत्य सभी देवताओं तथा असुरों के आगे जाकर दिव्य रथ पर बैठकर हाथ में धनुष धारण किए हुए क्रोध पूर्वक भगवान् माधव तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी अव्यय श्रीहरि से कठोर शब्दों में कहने लगा ॥१-२॥ उसने कहा नारायण आप युद्ध धर्म को नहीं जानते हैं इसीलिए अन्याय पूर्वक दुर्वध का उपाय करके क्यों नहीं सोचते हैं ॥३॥ इस पाप के कारण तथा व्यवहार के नहीं करने के कारण आपका देवत्व नष्ट हो गया है, मैं दूसरी सृष्टि कर रहा हूँ ॥४॥ युद्ध में मैं दूसरे देवताओं के साथ तुम्हें मार दे रहा हूँ । यह कहकर धनुष धारण करके उसने श्रीभगवान् पर बाणों से प्रहार किया ॥५॥ श्रीभगवान् ने अपने वज्र के समान बाणों से उन बाणों को विनष्ट कर दिया और अनेक बाणों से मधु के सम्पूर्ण शरीर को छेद दिया ॥६॥ उसके बाद उसने वाहनों से युक्त अनेक देवियों, सेनापति, गणेश, शङ्कर तथा अनेक विष्णु सबके सब उसने माया से उत्पन्न कर दिया और वे सब देवता युद्ध करने लगे । उस समय मधु की माया से बहुत से देवता विनष्ट हो गये ॥७-९॥ देवताओं के आगे पीछे अपनी माया सब ओर से बाण, शक्ति तथा ऋष्टि की वर्षा होने से पीडित होकर देवता पृथिवी पर गिरने लगे ॥१०॥ उसी समय भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र को लेकर असुरों तथा माया से उत्पन्न देवताओं को मार दिया ॥११॥ उसके बाद उन सभी दैत्यों के जो देवता रूप हो गये थे शिरों को काटकर पृथिवी पर गिरा दिया ॥१२॥ इसतरह से भगवान् ने दूसरे दैत्यों को युद्धस्थल से खदेड़ दिया । उसको देखकर मुनिगण आश्चर्यित हो गये ॥१३॥ सभी देवता तथा मुनिगण एक-दूसरे से कहते थे **मुनियों तथा देवताओं ने कहा—** देवताओं के एक मात्र रक्षक सबों के नियामक श्रीहरि ही हैं ॥१४॥ ये भगवान् सबों के साक्षी तथा

मुनिदेवा ऊचुः

सदा देवैकगोप्ता च हरिरव्यय ईश्वरः ॥१४॥
सर्वसाक्षीत्वयं देवो दैत्यजिष्णुर्युगेयुगे । कथं हंति सुरान्सर्वान्कल्पांत इह जायते ॥१५॥

व्यास उवाच

एतस्मिन्नंतरे दूरे मधुर्मायां प्रयोजिता । हररूपधरो भूत्वा अब्रवीद्धरिमव्ययम् ॥१६॥

मधु रुवाच

दैत्यानामग्रतः पाप रणे देवान्समंततः । हत्वा किं ते शिवं चाद्य धर्मकीर्तियशोगुणाः ॥१७॥
महतोन्मत्तभावेन नजानासि परान्स्वकान् । अतस्त्वां निशितैर्बाणैर्नयामि यमसादनम् ॥१८॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा शरैरुग्रैर्जघान केशवं रणे । निचकर्त शरांस्तांस्तु माधवो वाक्यमब्रवीत् ॥१९॥

माधव उवाच

जानामि त्वां रणे दैत्यं हररूपधरं प्रियम् । शूरं शूरविकर्माणं मधुं मायानियोजितम् ॥२०॥
मिथ्यालोकं प्रदास्यामि पातयित्वा रणाजिरे । एतस्मिन्नंतरे तीक्ष्णैः शरैर्विव्याध संयुगे ॥२१॥
जटिलं वृषकेतुं च वृषभस्थं महेश्वरम् । तयोर्युद्धमतीवासीद्देवदानवयोस्तदा ॥२२॥
परस्परं भिंदतोश्च प्राप्तान् प्राप्तान् शरान् शरैः । क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद हरिरव्ययः ॥२३॥
ततश्च पातयामास घोटकं वृषरूपिणम् । सदैत्यश्शूलहस्तोथ प्रदुद्राव जगत्पतिम् ॥२४॥
भ्रामयित्वा ततः शूलं जघान परमेश्वरम् । त्रिभिश्चिच्छेद बाणैश्च शूलं कालानलप्रभम् ॥२५॥
ततः क्रूरो महाबाहु र्मधुर्मायातिमायिकः । देवीरूपं समास्थाय सिंहस्थः प्रययौ हरिम् ॥२६॥
शरैर्बहुविधै विष्णुं जघानैवाब्रवीद्वचः ।

प्रत्येक युगों में दैत्यों को परास्त करते हैं । ये देवताओं को कैसे मार रहे हैं । लग रहा है कि इस समय कल्पांत हो रहा है ॥१५॥ **व्यासजी ने कहा**— उसी समय मधु के द्वारा माया की गयी, वह शङ्करजी का रूप धारण करके श्रीभगवान् से कहा **मधु ने कहा**— अरे पापी दैत्यों के समक्ष देवताओं को मार कर तुम्हारा कौन सा कल्याण तथा कौन सा धर्म, यश तथा गुण है ॥१७॥ अत्यन्त उन्मत्त होने के कारण अपने और पराये को नहीं जानते हो अतएव मैं तुमको तीक्ष्ण बाणों से यमलोक पहुँचाता हूँ ॥१८॥ **व्यासजी ने कहा**— उसने भयङ्कर बाणों से श्रीभगवान् को मारा, श्रीहरि ने उन बाणों को काट दिया और कहा **माधव ने कहा**— मैं जानता हूँ कि तुम दैत्य हो और मेरे प्रिय हर के रूप को धारण किए हो । वीरों के विपरीत कर्म करने वाले वीर मधु हो और माया कर रहे हो ॥२०॥ तुम को रणांगन में मारकर तुम्हें मिथ्या भाषियों का लोक प्रदान करूँगा । **व्यासजी ने कहा**— उस समय युद्ध में जटाधारी, बैल पर सवार वृषकेतु महेश्वर को भगवान ने तीक्ष्ण बाणों से वेध दिया उन दोनों देव तथा दानव का अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ ॥२१-२२॥ एक दूसरे पर बाणों का प्रहार करके एक दूसरे को छेदते हुए श्रीहरि ने क्षुरप्र बाण से उस दैत्येन्द्र के धनुष को काट दिया ॥२३॥ उसके बाद वृष रूपधारी उसके घोड़े को श्रीभगवान् ने गिरा दिया उसके बाद वह दैत्य हाथ में त्रिशूल लेकर श्रीभगवान् पर दौड़ा ॥२४॥ उसने धुमाकर श्रीभगवान् पर त्रिशूल का प्रहार किया । श्रीभगवान् ने तीन बाणों से उस कालाग्नि के समान कान्ति वाले त्रिशूल को तोड़ दिया॥२५॥ उसके बाद अत्यन्त मायावी मधु देवी का रूप धारण करके सिंह पर सवार होकर श्रीहरि के पास गया ॥२६॥ और

मधुरुवाच

स्वामी तु मे सुरश्रेष्ठ त्वयैव पातितो युधि ॥२७॥
अहं त्वां च हनिष्यामि सुतौस्कंदविनायकौ ।

व्यास उवाच

उक्तवंतं च दैतेयं जघान बहुमार्गणैः ॥२८॥
सपपातमहीपृष्ठे गतासु र्लोहितोद्गिरः । पितरौ निहतौ दृष्ट्वा मायाबद्धो महाबलः ॥२९॥
स्कंदः शक्तिं समादाय प्रायाद्योद्धयितुं हरिम् । ततो धाताऽब्रवीद्वाक्यं स्कंदं मोहप्रपीडितम् ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

पश्य ते पितरौ दूरे पश्यंतौ युद्धमीदृशम् । अंतरिक्षे भ्रमंतौ च संस्थितौ लोकसाक्षिणौ ॥३१॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो दृष्ट्वा तत्रैवांतरधीयत । ततो धुंधुश्च सुंधुश्च भ्रातरावतिदर्पितौ ॥३२॥
वधं प्रति हरेर्युद्धे पेततुर्गरुडोपरि । खड्गहस्तं च धुंधुं च सगदं सुंधुमेव च ॥३३॥
चिच्छेद नंदकेनैकं गदया सादयत्परम् । पेततुस्तौ धरापृष्ठे प्रवीरौ क्षतविक्षतौ ॥३४॥
मधुस्तदा गतस्तूर्णमंतर्धानं तमोवृतः । पातयामास विष्णौ च मायया शतपर्वतान् ॥३५॥
ततस्तान्पर्वतांश्छित्वा तमसोऽन्तर्गतो युधि । क्रोधात्सुदर्शनेनैव शिरश्छित्वा निपातितः ॥३६॥
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैश्शंभुना त्रिदशैरपि । मधुसूदन इति ख्यातिर्विष्णोर्लोकेषु कारिता ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे मधुवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

अनेक प्रकार के बाणों से श्रीहरि पर प्रहार किया । **मधु ने कहा—** हे सुरश्रेष्ठ मेरे स्वामी को तुमने ही मारा है॥२७॥ मैं तथा मेरे दोनो पुत्र स्कन्द और गणेश तुम्हे मार डालेंगे । **व्यासजी ने कहा—** इसतरह से कहने वाले उस दैत्य को श्रीहरि ने बहुत से बाणों से मारा ॥२८॥ वह मरकर पृथिवी पर गिर कर खून वमन किया । माया में बद्ध स्कन्द ने माता पिता को मरा हुआ देखकर महाबलवान् स्कन्द शक्ति धारण करके श्रीहरि से युद्ध करने के लिए गये । उस समय मोहित स्कन्द को ब्रह्माजी ने कहा ॥३०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** देखों तुम्हारे माता-पिता दूर खड़े होकर इस युद्ध को देख रहे हैं । वे अन्तरिक्ष में लोक साक्षी रूप से भ्रमण कर रहे हैं ॥३१॥ **व्यासजी ने कहा—** इस बात को सुनकर और अपने माता-पिता को देखकर स्कन्द अन्तरिक्ष में वहीं अन्तर्धान हो गये । उसके बाद धुन्धु तथा सुन्धु नामक दो बलवान् दैत्य ॥३२॥ श्रीभगवान को मारने के लिए गरुड के ऊपर टूट पड़े । उस समय खड्ग धारण किए हुए धुन्धु को नन्दक नामक कृपाण से तथा गदा धारण किए हुए सुन्धु को अपनी गदा से श्रीभगवान् ने मार दिया । वे दोनों वीर क्षत-विक्षत शरीर वाले होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥३४॥ उस समय मधु अन्धकाराछन्न होकर अन्तर्धान हो गया। और भगवान् विष्णु पर माया से सैकड़ों पर्वतों को गिराया ॥३५॥ उसके बाद उन सभी पर्वतों को छिन्न-भिन्न करके युद्ध में अन्धकाराच्छन्न हुए मधु के शिर को श्रीभगवान् ने सुदर्शन चक्र से काटकर उसे गिरा दिया ॥३६॥ उसके बाद ब्रह्मा आदि देवता, शङ्करजी तथा देवगण ने श्रीभगवान् के मधुसूदन नाम को लोक में विख्यात कर दिया ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के मधु वध नामक बहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७२।।

तिहत्तरवाँ अध्याय

व्यास उवाच

ततो वृत्रो महतेजा दैत्यानां प्रवरो युधि। दिग्गजाब्यं गजारूढः प्राद्रवद्बलसूदनम् ॥१॥
आगच्छंतं ततो वृत्रं शरैः कालानलप्रभैः। विव्याध सर्वगात्रेपु द्विरदस्थो महाहवे॥२॥
ततोवृत्रस्तुशीर्षं च जिष्णोरेव पतत्रिणा। विव्याधसहसा तेन स चचाल महाबलः ॥३॥
आत्मानं च समाश्वास्य धनुरुद्यम्य वीर्यवान्। ववर्ष शरवर्षेण तस्य दैत्यस्य विग्रहे॥४॥
शरांश्छित्वा बिभेदाशु शरैराशीविषोपमैः। शतक्रतुं महावीर्यः सर्वदेवाधिपं युधि॥५॥
ततः शरसहस्रैस्तु दैत्यं विव्याध देवराट्। परस्परं शरा यांति यथासप्ताश्वरश्मयः ॥६॥
एवं शरसहस्रैस्तु विभिदाते परस्परम्। मनोजवसमाः शीघ्रा गाढाः शिखरिणो यथा ॥७॥
बडवानलसंस्पर्शाः खगावज्रारभेदकाः। तयोर्धनुष्मतोर्युद्धे शरास्तुल्यगुणान्विताः ॥८॥
एवं क्रमेण युद्धे च अहोरात्रमवर्तत। महेंद्रो द्विरदं तस्य शूलनैव जघान ह॥९॥
स निपत्य महीपृष्ठे लाघवात्स्वरथं ययौ। रथस्थस्तस्य देवस्य शक्त्या चैरावणं दृढम् ॥१०॥
बिभेद लाघवेनाशु वज्रेणेव महागिरिम्। शुशुभे कंपमानस्तु सेंद्रः स च महागजः ॥११॥
ततः शक्तिं समादाय आविध्य मघवाऽसुरम्। बिभेदोरसि दैत्यस्य सपपात रथोपरि ॥१२॥
क्षणात्सज्ञां समालंब्य सविनद्य पतत्रिणा। बिभेद समरे शक्रं स ततः कश्मलं गतः ॥१३॥
इंद्रः संज्ञां पुनः प्राप्य जघान विशिखैः शितैः। शतकोटिसमै र्बाणैरर्दितो व्यथयान्वितः॥१४॥

इन्द्र के द्वारा वृत्रासुर का वध वर्णन

व्यासजी ने कहा— उसके बाद महातेजस्वी, युद्ध करने में दैत्यों में श्रेष्ठ, वृत्रासुर दिग्गज के समान विशाल हाथी पर बैठा हुआ इन्द्र पर टूट पड़ा ॥१॥ आते हुए वृत्रासुर को देखकर हाथी पर सवार इन्द्र ने कालाग्नि के समान कान्ति वाले बाणों से उसके सम्पूर्ण अङ्गों को बेध दिया ॥२॥ उसके बाद महाबलवान् वृत्र ने बाणों से इन्द्र के शिर को ही छेद डाला ॥३॥ अपने को सम्हाल कर तथा धनुष उठाकर पराक्रमी इन्द्र ने बाणों की उस दैत्य के शरीर पर वर्षा की ॥४॥ वृत्र ने भी इन्द्र के बाणों को काटकर सर्पो के समान जहरीले बाणों से देवराज इन्द्र का भेदन किया ॥५॥ उसके बाद हजारो बाणों से देवराज इन्द्र ने दैत्य का भेदन किया। उस समय बाण सूर्य की किरणों के समान एक दूसरे पर आ जा रहे थे ॥६॥ इसतरह दोनो परस्पर में एक-दूसरे को हजारो बाणों से वेध दिए। वे बाण मन के समान वेग वाले पर्वत के समान कठोर, वाडवाग्नि के समान ऊष्ण, आकाश में चलने वाले तथा वज्र के भी आकार का भेदन कर देने वाले थे। उन दोनों धनुर्धारियों के बाण एक समान गुण वाले थे ॥७-८॥ इसतरह से क्रमशः युद्ध करते हुए दिन और रात दोनों बीत गये। उसके बाद वृत्रासुर ने इन्द्र के हाथी पर त्रिशूल से प्रहार किया ॥९॥ वृत्रासुर पृथिवी पर कूदकर शीघ्रता से अपने रथ पर चला गया और रथ पर बैठे हुए उसने शक्ति से ऐरावत पर प्रहार किया ॥१०॥ उसने ऐरावत पर शीघ्रता से उसी प्रकार प्रहार किया जैसे महान पर्वत पर वज्र से प्रहार किया गया हो। इन्द्र के साथ वह हाथी काँप गया ॥११॥ उसके बाद इन्द्र ने शक्ति से उस महादैत्य के वक्षःस्थल में प्रहार किया और वृत्रासुर अपने रथ पर ही गिर गया ॥१२॥ क्षणभर में होश में आकर उसने जोर से गर्जना किया और बाणों से इन्द्र पर प्रहार किया उसके कारण इन्द्र मूर्छित हो गये ॥१३॥ उसके बाद होश में

ततो वृत्रो महाशूलं प्राक्षिपन्निर्जिरेश्वरे। शांभवास्त्रेण देवेशो वैष्णवास्त्रं मुमोचह ॥१५॥
उभयोरंबरे चास्त्रे वह्निकूटसमप्रभे । अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र स्फुलिंगानि विमुंचती ॥१६॥
स्पर्शनि च स्फुलिंगानामुभयोः सेनयार्भटाः । न शक्ताः संमुखे स्थातुं शलभाज्वलने यथा ॥१७॥
दग्धाः पेतुः पृथिव्यां च दिशस्सर्वाः प्रदुद्रुवुः । देवदानवयोर्वीराः शून्यस्तत्राभवद्रणः ॥१८॥
अस्त्रं निरस्तकं दृष्ट्वा सदैत्यः क्रोधमूर्च्छितः । मायया शैलसंदोहमस्त्रं शक्रे मुमोच ह ॥१९॥
बाणौघैः शैलसंघातं प्रचिच्छेद रणे हरिः । अघोरं प्रासृजद्दैत्यः पुरुहूते महाबले ॥२०॥
कोटिकोटिसहस्राणि जंतूनां प्रवराणि च । सिंहशार्दूलभल्लूकवृकव्याघ्रमहागजाः ॥२१॥
दंदशूकादयः सत्वाः प्रधावंति सुरेश्वरम्। क्षुरप्रैरर्धचंद्रैश्च भल्लैः शिलीमुखैस्तथा ॥२२॥
असंप्राप्तान्प्रचिच्छेद मघवा परवीरहा । ततो वृत्रो महाबाहुर्धनुरुद्यम्य वीर्यवान्॥२३॥
विभेद शरसाहस्रैर्वज्रकल्पैः शतक्रतुम्। छित्वा क्षुरप्रैश्शक्रश्च धनुस्तस्य चकर्त च ॥२४॥
सूतं चाश्वान्पृथिव्यां च पातयामास तत्क्षणात् । सकंटकां गदां भीमां संपूज्यासुरसत्तमः ॥२५॥
जघान पद्मिनः शीर्षे मोहाद्दंतीक्षितिं ययौ। सगजः सर्वदेवेशो धरणीं समुपस्थितः ॥२६॥
ततस्तयोर्गदायुद्धमवर्तत मुहुर्मुहुः। तयोःप्रहरतोः शब्दो गदापातोद्भवोध्रुवम् ॥२७॥
आवर्तं परिवर्तं च चक्रतुस्तौ पुनः पुनः। अथ ऊर्ध्वं प्रहारं च पार्श्वयोरतिभीषणम् ॥२८॥
बभूवैवं तयोर्युद्धं लोकालोकभयंकरम्। दृष्ट्वा देवगणाः सिद्धा दानवा विस्मयं गताः॥२९॥
युद्ध्यमानौ तु तौ वीरौ मृत्युसंशयमागतौ। देवदानववीराश्च द्रष्टुं नैव तदीशिरे ॥३०॥
ईशब्रह्मादयः खे तु स्थिता द्रष्टुं तदद्भुतम्। तयोर्हुंकारशब्देन गदापातस्वनेन च ॥३१॥

आकर इन्द्र ने करोड़ों बाणों का प्रहार करके वृत्र को पीडित कर दिया ॥१४॥ तदनंतर वृत्र ने इन्द्र पर महात्रिशूल चलाया । इन्द्र ने भी उस शाम्भवास्त्र के विपरीत वैष्णवास्त्र को छोड़ा ॥१५॥ दोनों अस्त्र आकाश में परस्पर में टकरा गये और दोनों टकराकर विनष्ट हो गये ॥१६॥ उन अस्त्रों से निकली हुयी चिनगारी को दोनों सेनाओं के वीरों में कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता था अतएव वे उन सबों के सामने ठहर न सके ॥१७॥ वे जलते हुए पृथिवी पर गिर पड़े तथा सारी दिशाएँ जलने लगीं । सभी वीर वहाँ से भाग चले और रणांगण खाली हो गया ॥१८॥ अपने अस्त्र को निरस्त देखकर दैत्य वृत्र क्रोध से व्याकुल होकर माया से पर्वत समूह वाले अस्त्र को इन्द्र पर छोड़ा॥१९॥ इन्द्र ने अपने वाणों से पर्वत समूह को चूर-चूर कर दिया उसके बाद वृत्र ने इन्द्र पर अघोरास्त्र का प्रहार किया॥२०॥ उससे इन्द्र पर करोड़ों हजार सिंह, शार्दूल, भालू, वृक, व्याघ्र, महानाग ॥२१॥ तथा सर्प आदि जीव दौड़ पड़े । उन सबों को अपने पास आने से पहले ही शत्रु के वीरों को मारने वाले इन्द्र ने अपने क्षुरप्र बाणों से काट डाला । उसके बाद पराक्रमी वृत्र ने धनुष उठाकर ॥२२-२३॥ हजारो वज्र के समान बाणों से इन्द्र का भेदन किया और इन्द्र ने अपने क्षुरप्र बाणों से उन बाणों को काटकर वृत्र के धनुष को भी काट दिया ॥२४॥ उन्होंने वृत्र के सारथि तथा घोड़ों को भी मार कर गिरा दिया । वृत्र ने कंटीली गदा से इन्द्र के ऐरावत के शिर पर प्रहार किया जिसके कारण हाथी बेहोश होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । उस हाथी के साथ इन्द्र भी पृथिवी पर गिर पड़े । उसके बाद उन दोनों में बार-बार गदा युद्ध हुआ । वे दोनों जब गदा का प्रहार करते थे तो उससे भयङ्कर शब्द होता था वे दोनों बार-बार पैंतड़ा चल रहे थे और ऊपर-नीचे तथा बगल में भयंकर प्रहार करते थे ॥२५-२८॥ इसतरह उन दोनों का लोक भयङ्कर युद्ध हुआ । उसको देखकर देवता, दानव, सिद्ध और गन्धर्व आश्चर्यित हो गये ॥२९॥ युद्ध करते हुए

ऊर्ध्वोर्ध्वमगमच्छब्दो ह्यशनेश्चोपजायते । भग्ने गदे द्वयोरेव करःसंपुटितस्तयोः ॥३२॥
एवं चैवार्धयामेन तयोरस्त्रेनिपेततुः । एतसिन्नन्तारे बीरौ खड्गचर्मधरौ तदा ॥३३॥
प्रतियोद्धुं महाघोरमाहवे संप्रचेरतुः । निस्त्रिंशौविद्युदुल्काभौ तयोर्गात्रे च चर्मणी ॥३४॥
दृश्येते सर्वलोकैश्च लाघवं विस्मयं गतैः । चिच्छिदाते तयोरेव चर्मणी बहुवर्णके ॥३५॥
भीष्मकं बलयुद्धं च तयोरेवं प्रवर्तते । मंडलं चक्रधन्वं च लाघवं च परीप्लुतम् ॥३६॥
वृत्रवासवयोर्युद्धं वृत्रवासवयोरिव । केशान्वृत्रस्य उत्पलुत्य संप्रधृत्यासिना द्रुतम् ॥३७॥
शिरश्चिच्छेद सहसा मघवा रणमूर्धनि । जयशब्दस्ततस्त्वासीद्देवानां च समंततः ॥३८॥
प्रोत्फुल्लहृदया देवा मघवंतमपूजयन् । देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥३९॥
गीतं गायंति गंधर्वा मुनयः स्तुतिपाठकाः । भीताः पलायिताः सर्वे दैत्यास्त्यक्तायुधा दिशः ॥४०॥

इतिश्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे वृत्रासुरवधोनाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

व्यास उवाच

चतुर्भिस्तुरगैर्जुष्टं रथं सूर्यसमप्रभं । त्रैपुरिः संरुरोहाथाब्रवीद्वाक्यं गणाधिपम् ॥१॥

वे दोनों वीर प्राणसंकटपन्न हो गये । उसको देखने में देवता तथा दानव वीर समर्थ नहीं हो पा रहे थे ॥३०॥ ब्रह्मा तथा शङ्कर आदि देवता उस अद्भुत युद्ध को देखने के लिए आकाश में स्थित थे । उन दोनों के हुंकार भरे शब्द से तथा गदा प्रहार के शब्द से वज्रपात के शब्द से भी अधिक शब्द ऊपर की ओर फैल गया । आधे प्रहर के युद्ध में दोनों की गदायें टूट गयी किन्तु उन दोनों का हाथ संपुटित ही था ॥३१-३२॥ उसी समय उन दोनों बीरों ने खड्ग और चर्म धारण कर लिया ॥३३॥ और एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध करने के लिए संचरण करने लगे । उन दोनों के खड्ग उल्का के समान कान्ति वाले थे तथा उनके शरीर में चर्म (ढाल) लगा था ॥३४॥ सभी लोग उसे आश्चर्य पूर्वक देख रहे थे अनेक रूपों वाला उन दोनों का ढाल छिन्न-भिन्न हो गया ॥३५॥ किन्तु उन दोनों का भयङ्कर युद्ध चलता रहा । वे अत्यन्त शीघ्रता से मण्डल चल रहे थे ॥३६॥ इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध अनुपमेय रहा । इन्द्र ने उछल कर अत्यन्त शीघ्रता से वृत्र के केशों को पकड़ कर उसके शिर को काट दिया । उस समय सभी देवता इन्द्र का जय-जयकार करने लगे ॥३७-३८॥ प्रसन्न हृदय से देवताओं ने इन्द्र की पूजा की देवताओं ने दुन्दुभि बजायी और अप्सराओं ने नृत्य किया ॥३९॥ गन्धर्वगण गीत गा रहे थे मुनिजन इन्द्र की स्तुति कर रहे थे और सभी दैत्य आयुध छोड़कर विभिन्न दिशाओं में भाग गये ॥४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के इन्द्र द्वारा वृत्रवध नामक तिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७३।।

त्रिपुरासुर के पुत्र का वध वर्णन

व्यासजी ने कहा— उसके बाद त्रिपुरासुर का पुत्र त्रैपुरि चार घोड़ों वाले सूर्य के समान कान्ति वाले रथ पर

त्रैपुरिरुवाच

पिता मे निहतः पित्रा तव यस्माद्गणाधिप। तस्मात्त्वामद्य विशिखैर्नयामि यमसादनम् ॥२॥

व्यास उवाच

ततस्तमब्रवीद्देवो गणेशस्त्रिपुरात्मजम्।

गणेश उवाच

तव तातेन दुष्टेन सुराणामहितं पुरा ॥३॥

कृतं कर्म महत्पापं श्रुतं नो जनकेन हि। पापकर्मरतं दुष्टं ज्ञात्वा ज्ञानबलेन च॥४॥

अवधीत्तं शरैकेण पितरं ते बलेन च। पंकात्प्रतारितो मोहात्प्रेषितो यममंदिरे ॥५॥

त्वां चाहं तत्पथं दैत्य प्रेषयामि क्षणादिह।

व्यास उवाच

उक्तवंतं महाप्राज्ञं सुराणां च गणाधिपम् ॥६॥

विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः कालानलसमप्रभैः। ततः शरसहस्रैस्तु दैत्यं विव्याध साहसात् ॥७॥

यमदंडसमैर्बाणैः क्षुरप्रैश्च शिलीमुखैः। कंकपत्रैर्महातीक्ष्णै र्वज्रानलसमप्रभैः ॥८॥

विचकर्त शरांश्चास्य लंबोदरः सुरार्चितः। पुनर्विव्याधविशिखैः सहसाभिदुरोपमैः ॥९॥

शरैरर्दितसर्वांगो मूर्च्छितस्त्वपतद्भुवि। ततोभद्रश्च सौभद्रो भीषणो निर्जरांतकः ॥१०॥

स्वां स्वां गदां समादाय दुद्रुवुस्तं विनायकम्। युगपत्ते गदापातैर्निजघ्नुर्गणनायकम् ॥११॥

लाघवात्तु वृथा कृत्वा गदास्तेषा महाबलः। भद्रकस्य तु शीर्षे चाहनत्परशुना तदा ॥१२॥

सौभद्रस्योत्तमांगं च असिनाग्रे निपातितम्। भीषणस्य कुठारेण खड्गेन निर्जरांतकम् ॥१३॥

पातयित्वा च हेरम्बो महागिरिसमांस्तदा। चतुरो गणमुख्यांश्च अन्यांश्चापातयद्द्विद्विपः ॥१४॥

चढकर गणेजी से कहा ॥१॥ हे गणाधिप ! तुम्हारे पिता ने मेरे पिता को मार दिया है अतएव आज मैं तुमको वाणों के प्रहार से यमलोक भेज रहा हूँ ॥२॥ उसके बाद श्रीगणेशजी त्रिपुरात्मज से वोले **गणेशजी ने कहा**— तुम्हारा पिता दुष्ट था। उसने देवताओं का अहित कर्म किया था यह मैंने अपने पिताजी से सुना है। पाप कर्म करने वाले दुष्ट तुम्हारे पिता को मेरे पिता ने एक ही बाण से ज्ञान तथा वल के द्वारा मार दिया ॥३-४॥ उस अज्ञानी को उन्होंने पाप से वचाकर यमलोक भेज दिया ॥५॥ हे दैत्य ! तुमको भी मैं क्षणभर में ही उसी मार्ग पर भेज दे रहा हूँ। **व्यासजी ने कहा**— इसतरह से महाप्राज्ञ गणेशजी को ॥६॥ उस दैत्य ने कालाग्नि के समान कान्ति वाले दश वाणों से वेध दिया। उसके बाद गणेशजी ने उस दैत्य को साहस पूर्वक हजारो वणों से छेद दिया ॥७॥ यमदण्ड के समान क्षुरप्र तथा कंक पत्र से युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण वज्र तथा अग्नि के समान कान्ति वाले बाणों से गणेशजी ने त्रैपुरि के वाणों को काट दिया। उसके वाद गणेशजी ने वज्र के समान बाणों से उसको विद्ध किया ॥८-९॥ वाणों से समस्त अङ्गों के विद्ध हो जाने के कारण त्रैपुरि मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा। उसके बाद भद्र, सौभद्र, भीषण तथा निर्जरांतक नामक दैत्य अपनी-अपनी गदा लेकर गणेशजी पर टूट पड़े और एक ही समय में गदा प्रहार गणेशजी पर किए ॥१०-११॥ गणेशजी ने शीघ्रता से उन सबों की गदाओं को विफल वनाकर भद्रक के शिर पर फरसे प्रहार किया ॥१२॥ उन्होंने कृपाण से सौभद्र के शिर को काट कर गिरा दिया, भीषण को कुठार से तथा निर्जरान्तक को खड्ग से मार दिया ॥१३॥ महान् पर्वत के समान आकार वाले उन चारो को मारकर

ततः संज्ञां समालभ्य त्रैपुरिश्चासुरोत्तमः । समारुह्य रथं स्वं च जघान सुरसत्तमम् ॥१५॥
विशिखैरर्धचंद्रैश्च क्षुरप्रैर्मल्लकैस्तथा । तांस्तु चिच्छेदधर्मात्मा पुनर्विव्याध तं शरैः ॥१६॥
चतुर्भिः सैधवांश्चैव शरैकेन च सारथिम् । शरैः संपातयामास धरण्यां गणनायकान् ॥१७॥
लाघवात्तु रथं चान्यं गत्वा त्रिपुरनंदनः । विशिखैर्वज्रसंकाशैः संबिभेद गणाधिपम् ॥१८॥
रुधिरेणावसिक्तांगो रुषा घोरयमप्रभः । ललाटे च त्रिभिर्बाणैस्सप्तभिश्च स्तनांतरे ॥१९॥
चतुर्भिर्नाभिदेशे च पंचाभि र्मुष्टिमस्तके । संबिभेदमहाक्रोधो बलिनं शंभुनंदनः ॥२०॥
शरैरर्दितसर्वांगः स दैत्यो रणमूर्धनि । कश्मलं परमं गत्वा संपपात रथोपरि ॥२१॥
ततःसूतेन धीरेण अपनीतो रणाजिरात् । विमुखं नाहनच्छूरो विनायकः सुरार्चितः ॥२२॥
चिरात्संज्ञां समालम्ब्य यंतारं चाब्रवीद्वचः ।

त्रैपुरिरुवाच

गच्छ सूत रणे भीरुं विनायकं हरात्मजम् ॥२३॥

व्यास उवाच

ततो यन्ताऽब्रवीद् वाक्यं सत्यं पथ्यं च कोमलम् ।

सारथ्युवाच

हरात्मजशरान्सोढुं कस्समर्थो रणाजिरे ॥२४॥
तस्मान्मोहगतस्त्वं च मया नीतः प्रभासुत । एतज्ज्ञात्वात्विदानीं भो यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥२५॥

व्यास उवाच

एतस्मिन्नंतरे राज्ञा प्रेरितः कविसत्तमः । औषधादिप्रयोगेण गजः संज्ञामबोधयत्॥२६॥
अकारयच्छतगुणप्राणं च जयमादिशत् । प्राग्जलं मंत्रितं दत्वा रुरोधास्याङ्गक व्रणान् ॥२७॥

गणेशजी ने दूसरे शत्रुओं को भी मार कर गिरा दिया ॥१४॥ उसके बाद होश में आकर तथा अपने रथ पर चढकर त्रैपुरि सुरश्रेष्ठ गणेशजी पर अर्द्धचन्द्र तथा क्षुरप्र बाणों से प्रहार किया । उन सभी बाणों को धर्मात्मा गणेशजी ने काटकर फिर उसको बाणों से विद्ध किया ॥१५-१६॥ उन्होंने चार बाणों से घोड़ों को तथा एक बाण से सारथि को मार दिया । उन्होंने उसके गणनायकों को बाणों से मारकर गिरा दिया ॥१७॥ त्रिपुरनन्दन त्रैपुरि शीघ्रता से दूसरे रथ पर जाकर व्रज के सदृश बाणों से गणेशजी को छेद दिया ॥१८॥ उस समय गणेशजी के सारे अङ्ग खून से भींग गये थे वे क्रोध के कारण यमराज के समान भयङ्कर हो गये और त्रैपुरि के ललाट को तीन बाणों से तथा सात बाणों से छाती को ॥१९॥ चार बाण से नाभि प्रदेश को तथा पाँच बाणों से मुष्टि के मस्तक को छेद दिया । उस समय शम्भु नन्दन गणेशजी अत्यन्त क्रुद्ध थे ॥२०॥ बाणों से सभी अङ्गों के पीडित होने से वह दैत्य समराङ्गण में अत्यन्त मूर्छित होकर रथ पर ही गिर पड़ा ॥२१॥ सरथि उसको रणाङ्गाण से बाहर ले गया । युद्ध विमुख होने के कारण देव पूजित गणेशजी ने उसे मारा नहीं ॥२२॥ बहुत देर के बाद होश में आकर उसने सारथि से कहा । **त्रैपुरि ने कहा**— हे सूत ! उस डरपोक शङ्कर पुत्र गणेश के पास चलो ॥२३॥ **व्यासजी ने कहा**— उसके बाद सारथि ने सत्य, पथ्य तथा कोमल वाणी में कहा । **सारथि ने कहा**— समराङ्गण में गणेश के बाणों को वर्दास्त करने में कौन समर्थ है ?॥२४॥ उसी के कारण आप मूर्छित हो गये थे इसीलिए मैंने आपको यहाँ लाया । इस बात को जानकर आप जो उचित हो वैसा कीजिये ॥२५॥ **व्यासजी ने कहा**— इसी समय दैत्यराज ने वैद्यश्रेष्ठ को भेजा। उसने

सगजोदशनैरेव स्फोटयामास वै गिरिम्। एवं शतसहस्राणि सैन्यानि सैन्यपालकान् ॥२८॥
पातयामास समितौ गजः परमदुर्जयः । सदैत्यस्तस्य पृष्ठस्थः शरैः कालानलप्रभैः॥२९॥
हत्वा त्वपातयच्चोर्व्यां मुख्यमुख्यान् सुराधिपान् । शरैस्तस्य तदादेवा यमदंडसमप्रभैः ॥३०॥
निपतंति महावीर्या रुधिरौघपरिप्लुताः । यस्मिन्यस्मिंश्च मार्गे तु सदैत्यः स गजो गतः॥३१॥
तत्र तत्र चकाराशु भीषणं संचितं शरैः । गजेन पातिता केचिद्गजारोहेण चापरे ॥३२॥
वेगेन भ्रमणेनैव सुराः केचित्प्रतापिताः । एवं सुरगणाध्यक्षाः शस्त्रास्त्रैर्विविधैश्चतम् ॥३३॥
सगजं युद्धानिर्भीता निजघ्नु र्बहुभिः शरैः । तथापि तद्गजं योद्धुं न शक्तास्ते महाबलाः ॥३४॥
क्षिप्रं तांस्तु गजोदंतैस्त्रैपुरोऽपातयच्छरैः । न गता ये धरण्यां च देवा जर्जरविग्रहाः ॥३५॥
शरण्यं गणपं जग्मुर्भीतास्ते वेदनातुराः । देवानां कदनं दृष्ट्वा गणधीशः प्रतापवान् ॥३६॥
सगजं ताडयामास वज्रानलसमैः शरैः । सगजो वेगसंरुद्धः शरेण च समुत्थितः ॥३७॥
अथो तौ द्वौ शरैरेव बिभिदाते परस्परम् । उभौ तौ नर्दमानौ च अन्योन्यं जयमैच्छताम् ॥३८॥
शोणितै र्लिप्तसर्वांगौ वीरमुख्यौ सुरासुरौ । अथाखुं सगजो मत्तो विभेद दशनैः स्वकैः ॥३९॥
आखुनाभिद्रुतो नागो घोरयुद्धं तयोः परम् । अधोर्ध्वं संविभागे च चतुर्भिर्युद्धमद्भुतम्॥४०॥
सशब्दं तुमुलं युद्धं सर्वलोकभयंकरम् । दशनैर्दशनैरेव शरैरेवशरोत्तमैः ॥४१॥
तद्धोरमभवद्युद्धं देवदानवसंगरे । आखुको भेदयांचक्रे महानागं महाबलम्॥४२॥

औषधि आदि के प्रयोग से हाथी को होश में ला दिया ॥२८॥ और उसमें पहले की अपेक्षा सौ गुना प्राणों का संचार कर दिया पहले उसने अभिमंत्रित जल देकर उसके अङ्गों के घावों को समाप्त कर दिया ॥२७॥ उस हाथी ने अपने दाँतों के प्रहार से पर्वतों को तोड़ दिया । इसीतरह उसने हजारों सैनिकों तथा सेनापतियों को गिरा दिया । वह हाथी अत्यन दुर्जय था । वह दैत्य उस हाथी पर बैठकर अपने कालाग्नि के समान वाणों से ॥२९॥ मुख्य मुख्य देवताओं को मारकर पृथिवी पर गिरा दिया ॥३०॥ इसके यमदण्ड के समान वाणों से खून की धारा से लथपथ होकर देवता पृथिवी पर गिर पड़े । वह दैत्य जिस-जिस मार्ग से हाथी पर सवार होकर जाता था ॥३१॥ वहाँ-वहाँ पर वह वाणों से भीषण स्थिति बना देता था । कुछ देवता हाथी द्वारा गिरा दिये गये और कुछ उस दैत्य के द्वारा ॥३२॥ उसके वेगपूर्वक भ्रमण करने के ही कारण कुछ देवता संतप्त हो गये । इसतरह से देवगणों के अध्यक्षों ने अनेक प्रकार के शास्त्रास्त्रों से विना भय के उस दैत्य तथा हाथी पर वाणों से प्रहार किया । फिर भी उस हाथी से युद्ध करने में कोई समर्थ नहीं हुआ ॥३४॥ शीघ्र ही उस हाथी ने अपने दाँतों से तथा त्रैपुरि ने अपने वाणों से उन देवताओं को गिरा दिया । जर्जर शरीर वाले जो देवता पृथिवी पर नहीं गये थे वे वेदना से आतुर होकर तथा भयभीत होकर गणेशजी के शरण में गये । देवताओं का वध देखकर प्रतापी गणेशजी ने ॥३६॥ गज तथा उस दैत्य दोनों को वज्राग्नि के समान वाणों से मारा । वाणों के वेग से वह हाथी रुक गया ॥३७॥ उसके बाद वे दोनों एक-दूसरे को वाणों से वेध दिये । वे दोनों गर्जना करते हुए एक दूसरे पर विजय प्राप्त करना चाहते थे ॥३८॥ देवों तथा दैत्यों के दोनों मुख्य वीरों के सारे अंग खून से लथपथ थे । उसके बाद हाथी ने अपने दाँत से गणेशजी के वाहन चूहे को मारा ॥३९॥ चूहे ने भी अपनी तीव्रता दिखायी और उन दोनों में घोर युद्ध हुआ । इसतरह उन चारों में अद्भुत युद्ध हुआ ॥४०॥ वह शब्द से युक्त भयङ्कर युद्ध सम्पूर्ण लोकों के लिए भयङ्कर हुआ । दोनों वाहन दाँत से लड़ रहे थे और दोनों वीर वाणों से ॥४१॥ उस देव दानव संग्राम में वह युद्ध भयङ्कर हुआ । चूहे ने महाबलवान् उस हाथी को काट

पर्शुना पृष्ठवंशाग्रे स्थित्वा तेनाहनत्पुनः । दैत्यस्य दशनद्वारे हृदिस्कंधेऽथ लाघवात् ॥४३॥
सगजः सपपातोर्व्यां गतासुर्लोहितं वमन् । शशंसुर्मुनयो देवास्साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥४४॥

महेश्वर उवाच

अत्रान्येऽस्त्रैरमोघैश्च दैत्यानाजघ्नुराहवे । यावत्तुसेनयोर्नैव जययुद्धं समापयेत् ॥४५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे त्रैपुरिविमर्दो नाम चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

व्यास उवाच

श्रुत्वा महेश्वराद्वाक्यं देवाः शक्रपुरोगमाः । दुद्रुवुर्दैत्यसंघांस्तान्सर्वे सर्वान्समंततः ॥१॥
आजगाम महाबाहुः कुंभो नाम महासुरः । नैर्ऋतो यक्षराजानं गदया चाहनद्भृशम् ॥२॥
गुह्यकेशो गदापातैर्जघान भृशमुत्तमम् । ततोन्योन्यं गदायुद्धमभवद्भीषणं तयोः ॥३॥
चक्रबंधं महाबंधं पुरोवध्यनिबंधनम् । प्रचुरं भीषणं यानं स्फोटतैलाभिवास्तिकम् ॥४॥
तेन कृत्वा महायुद्धमवसाने धनेश्वरः । पातयामास तं स्फोटं तस्य कुंभस्य चोरसि ॥५॥
भग्नदंष्ट्रस्ततः कुंभो निपपात महीतले । स्यंदनस्थो महावीर्यो जंभो हरिहयं तदा ॥६॥
जघान शरसंघैश्च तथैवैरावणं भृशम् । वासवो भिदुरेणैव संबिभेदासुरोत्तमम् ॥७॥

डाला॥४२॥ वह हाथी के पीठ पर चढकर फरसे से दैत्य के मुख पर कंधे पर तथा हृदय पर शीघ्रता से प्रहार किया॥४३॥ वह दैत्य हाथी के साथ खून वमन करते हुए पृथिवी पर गिर पड़ा । सभी मुनिगण तथा देवता उनकी प्रशंसा करते हुए साधु-साधु कहने लगे ॥४४॥ **महेश्वर ने कहा—** इस युद्ध में जिन दूसरे लोगों ने अपने अमोघ अस्त्रों से दैत्यों को मारा है उससे दोनों सेनाओं की विजय युद्ध समाप्त नहीं हुआ है ॥४५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के त्रैपुरिवध नामक चौहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७४।।

देवताओं और दानवों का परस्पर युद्ध और हिरण्याक्ष वध

व्यासजी ने कहा— महेश्वर की वाणी को सुनकर इन्द्र आदि सभी देवता चारो ओर से उन दैत्यों पर टूट पड़े ॥१॥ उस समय कुंभ नामक दैत्य युद्ध करने के लिए आया । और उस दैत्य ने कुबेर पर बहुत अधिक गदा से प्रहार किया ॥२॥ कुबेर ने भी उस दैत्य कुंभ पर बहुत अधिक गदा का प्रहार किया । उसके बाद उन दोनों में भयङ्कर गदा युद्ध हुआ ॥३॥ चक्रबंध, महाबंध, पुरोवध्य, निबन्धन भीषण पान, स्फोट, तैलाभिवास्तिक, आदि प्रकार से उस दैत्य के साथ युद्ध करके अन्त में कुबेर ने स्फोट को उस कुंभ के हृदय पर गिराया ॥४-५॥ उसके कारण कुम्भ के दाँत टूट गये और वह पृथिवी पर गिर पड़ा । उस समय रथ पर बैठा हुआ जम्भ नामक दैत्य इन्द्र को ॥६॥ वाण समूह से मारा । और उसी तरह उसने ऐराबण को भी मारा । इन्द्र ने अपने वज्र से उस दैत्य को

स पपात धरापृष्ठे गतासुर्लोहितोक्षितः । तथारण्यं सुघोरं च अघोरं घोरमेवच ॥८॥
चतुरो गणमुख्यांश्च शक्त्या बिभेद संयुगे । सेनान्यश्चैव प्रत्येकं पातयामास लाघवात् ॥९॥
सौरभं शरसंघैश्च जयंतो वशमानयत् । शक्तिहस्तं चसंह्लादं यमदंडं नरान्तकम् ॥१०॥
हत्वा च पातयामास सभस्मीकृतविग्रहः । कालश्च खड्गपातेन पातयामास बाभ्रवम् ॥११॥
शक्त्या मृत्युर्बिभेदाश्वं तथानिर्घृणकं रणे । अग्निना दह्यमानाश्च सप्तैते च महाबलाः ॥१२॥
भद्रबाहु र्महाबाहुः सुगंधो गंध एव च । भौरिको वल्लिको भीम एते सेनाग्रगामिनः ॥१३॥
रणे सदग्धदेहाश्च पेतुरुर्व्यां गतासवः । पाशबद्धा महावीर्या वरुणस्य महात्मनः ॥१४॥
पेतुरुर्व्यां महासत्वाः शूराः शूरभयानकाः । शूरस्य रश्मिजालेन निहताः पञ्च दानवाः ॥१५॥
तुरुतुंबुरुदुर्मेधस्साधकासाधकाभिधाः । क्रूरक्रौंचरणेशानमोदसंमोदषणमुखाः ॥१६॥
शरैर्निपातिता दैत्याः संयुगे मातरिश्वना । नैर्ऋतो गदया भीमं पातयामास भूतले ॥१७॥
शूलपातैश्च रुद्राणां शतशो दैत्यदानवाः । निपेतुः संयुगे भीताः संमुखा रणपंडिताः ॥१८॥
वसूनां शरपातैश्च शूराणां रश्मिमालिनाम् । मेघानां करकाभिश्च वज्रपातैस्सुदारुणैः ॥१९॥
निपातिता रणे दैत्याः शतशो बलशालिनः । कुबेरस्य गदापातैर्निपतंति सहस्रशः ॥२०॥
शक्रस्य भिदुरेणैव भेदिता दैत्यपुंगवाः । असंख्याताः पतंत्युर्व्यां स्कंदशक्त्या तथाहताः ॥२१॥
गणेशपर्शुपातेन पतंति मुख्यमुख्यकाः । वैकुंण्ठकरमुक्तेन चक्रेण तीव्रकर्मणा ॥२२॥
दैत्यानां प्रवराणां च शिरांसि निपतंति कौ । शमनो यमदंडेन कोटिकोटिसहस्रशः ॥२३॥
अपातयत्तदा भूम्यां कालः खड्गेन दानवान् । मृत्युश्शक्त्या तथा दैत्यान्पाशी पाशेन च परान् ॥२४॥

भेद दिया ॥७॥ उसके कारण खून से लथपथ होकर वह दैत्य पृथिवी पर गिर पड़ा । उसी तरह अरण्य, सुधीर, घोर तथा अघोर इन चारो गण मुख्यों को इन्द्र ने शक्ति के प्रहार से मार दिया । उन्होंने शीघ्रता पूर्वक दूसरे सेनानियों को भी मार गिराया ॥९॥ जयन्त ने अपने बाणों से सौरभ को बाण समूह से मार दिया । शक्तिहस्त संह्लाद, यमदण्ड तथ नरान्तक ॥१०॥ को मारकर उसके शरीर को भस्म बना दिया । काल ने खड्ग के द्वारा बभ्रु के पुत्र को मार डाला ॥११॥ मृत्यु ने शक्ति के द्वारा आश्व तथा निर्घृणक को मारा । अग्नि ने भद्रबाहु, महाबाहु, सुगन्ध, गन्ध, भौरिक, बल्लिक तथा भीम इन सात सेनानायकों को जला दिया ॥१२-१३॥ युद्ध में शरीर के जल जाने से ये मरकर पृथिवी पर गिर पड़े । महात्मा वरुण के पाश में बँधे हुए महाबलवान् अत्यन्त भयानक वीर पृथिवी पर गिर पड़े । सूर्य के रश्मि समूह से पाञ्च दानव मारे गये ॥१४-१५॥ तुरु, तुम्बुरु, दुर्मेधा, साधक तथा असाधक । क्रूर, क्रौञ्च, रणेशान, मोद, संमोद तथा षण्मुख, इन छह दानवों को वायुदेव ने बाणों से मारकर गिरा दिया । नैर्ऋत ने गदा से भीम को मारकर गिरा दिया ॥१६-१७॥ रुद्रों के त्रिशूल प्रहार से सैकड़ों दानव पृथिवी पर गिर पड़े वे युद्ध से भयभीत थे और सामने युद्ध करने में निपुण थे ॥१८॥ वसुओं के बाण प्रहारों से तथा रश्मिमाली द्वादशादित्यों तथा मेघों के भयङ्कर करकापात से ॥१९। सैकड़ों बलवान दैत्य गिरा दिये गये । कुबेर के गदा के प्रहार से हजारो दैत्य गिर पड़े ॥२०॥ इन्द्र के वज्र प्रहार से बिंधे हुए असंख्य दैत्य पृथिवी पर गिर पड़े । उसी तरह स्कन्द की शक्ति के प्रहार से दैत्य मारे गये ॥२१॥ गणेश के पर्शु के प्रहार से मुख्य-मुख्य दैत्य मारे गये । भगवान् विष्णु के तीव्र कर्म करने वाले चक्र से ॥२२॥ श्रेष्ठ दैत्यों के शिर कटकर पृथिवी पर गिर पड़े । यमराज ने यमदण्ड से मारकर करोड़ों-करोड़ों दैत्यों को गिरा दिया और काल ने खड्ग से मारकर दैत्यों को गिराया । मृत्यु देव ने शक्ति

पातेन तक्षकादीनां सुधांशोः शिशिरेण च । अश्वारोही खरो मन्यो हनिपाशस्तथा गजान्॥२५॥
परिघेण गजं कुंभे दैत्यानां नाशयत्ततः । एवमश्वान्गजांश्चैव लाघवात्स न्यपातयत्॥२६॥
एवंसिद्धैश्च गंधर्वैरप्सरोभिर्महाबलैः । अन्याभिर्देवताभिश्च समातृगणनायकैः॥२७॥
निपातिता महाघोरा येते प्रलयदानवाः । शरैश्चखड्गपातैश्च शूलशक्तिपरश्वधैः ॥२८॥
यष्टिपरिघकुंतैश्च पातयंत्यसुरान्सुराः । एवं संक्षीयमाणेषु दैत्यराट् समपद्यत ॥२९॥
आदित्यरथसंकाशं रथरत्नविभूषितम्। शातकुंभमयं दिव्यं घंटाचामरभूषितम् ॥३०॥
पताकाध्वजसंपूर्णं रम्यं शक्ररथोपमम्। समारुह्य महावीरो हिरण्याक्षोऽसुराधिपः ॥३१॥
जघान शरजालैश्च दुर्निवार्यः सुरासुरैः । ससैन्यानि गजान्वीरो रथांश्च सह सैंधवान् ॥३२॥
पातयामास भूमौ च शतशोऽथ सहस्रशः । एवं चरन्सवृंदेषु निखिलेषु दिवौकसाम् ॥३३॥
पातयामास दैत्येंद्रः शरौघान्मृत्युसन्निभान्। क्रमेण समरे चाथ देवसैन्यान्समंथत ॥३४॥
यथा पुष्करिणीवृंदे गजः कंजवनं शितैः। शरपातैरथोवेगात् सिंहनादैः पुनः पुनः ॥३५॥
धरण्यां पतिता वेगात्तदा दैत्येश्वरस्य च । दशभिश्च सुतीक्ष्णाग्रै जयंतं स जघान ह ॥३६॥
रेमंतं पंचभिर्बाणैः शक्रं पंचदशेन तु । चित्ररथं विंशतिभिः पंचविंशतिभिर्गुहम्॥३७॥
हेरंबं त्रिशरणेव चत्वारिंशच्छरैर्यमम् । तथैव कालं मृत्युं च पाणिनाद्विगुणे न च॥३८॥
गुह्यकेशं जगत्प्राणं दशभिर्दशभिःशरैः । षड्भि सप्तभिश्चैव रुद्रान्सर्वान्पृथक् पृथक्॥३९॥

तथा पाशधारी वरुण ने पाश से दैत्यों का वध किया ॥२३-२४॥ तक्षक आदि के गिरने से तथा चन्द्रमा के शैत्य अश्वारोही, खर, मन्यु हनिपाश तथा हाथियों को मार दिया ॥२५॥ उन्होंने दैत्यों के हाथियों के कुम्भ स्थल (मस्तक) पर प्रहार करके उन्हें मार दिया । इसतरह उन्होंने दैत्यों के हाथियों तथा घोड़ों आदि को शीघ्र ही पृथिवी पर गिरा दिया ॥२६॥ इसी तरह सिद्धों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने तथा अन्य देवताओं ने तथा मातृकाओं के नायकों ने॥२७॥ जो प्रलयंकारी भयङ्कर दानव थे उन सबों को गिरा दिया । देवताओं ने दैत्यों को बाणों तथा खड्गों के प्रहार से, त्रिशूल, शक्ति, फरसा ॥२८॥ यष्टि, परिघ तथा भाला के प्रहार से दानवों को पृथिवी पर गिरा दिया । इसतरह सभी दैत्यों का नाश होने पर दैत्यराज युद्ध करने के लिए आया ॥२९॥ उसका रथ सूर्य के रथ के समान रत्नों से अलङ्कृत था । सुवर्ण निर्मित घंटा तथा चामर से वह विभूषित था ॥३०॥ वह पताकाओं और ध्वजों से भरा हुआ था, वह इन्द्र के रथ के समान मनोहर था । ऐसे रथ पर बैठकर महावीर हिरण्याक्ष जो असुरों का राजा था॥३१॥ उसको कोई भी देवता तथा असुर रोक नहीं सकता था । वह बाण समूहों से देवताओं की सेना, हाथी तथा सैंधव घोड़ों को मारकर सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में नीचे गिरा दिया । इसतरह देव समूह में संचरण करते हुए॥३२-३३॥ उस दैत्येन्द्र ने काल के समान बाणों की वर्षा की । उसने क्रमशः देवताओं की सेना को मथ दिया॥३४॥ जैसे पुष्करिणियों में कोई हाथी कमलवन को विनष्ट कर रहा हो उसीतरह तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से तथा बार-बार सिंहनाद के द्वारा देवता पृथिवी पर गिर पड़े । उस समय जयन्त को वेगपूर्वक दैत्येश्वर ने दश तीक्ष्ण बाणों से मारा ॥३५-३६॥ रेमन्त को उसने पाँच बाणों से और इन्द्र को पन्द्रह बाणों से मारा । उसने चित्ररथ को बीस बाणों से तथा स्कन्द को पच्चीस बाणों से मारा ॥३७॥ गणेशजी को तीन बाणों से तथा यमराज को चालीस बाणों से उसीतरह काल तथा मृत्यु को दश-दश बाणों से उसने मारा ॥३८॥ कुबेर तथा वायु को दश-दश बाणों से उसने मारा । उसने प्रत्येक रुद्रों को अलग-अलग छह तथा सात बाणों से मारा ॥३९॥ उसने सभी वसुओं, सिद्धों, गन्धर्वों

वसून्सर्वांश्च सशरैः सिद्धगंधर्वपन्नगान्। दशाष्टदशभिः षड्भिर्युद्धे देवान् भिनत्त्यसौ ॥४०॥
ओजौघावतिवीर्यात्तु शीघ्रलाघवदर्शनात्। आपत्प्राप्ताः सुरा भीत्या प्रतिकर्तुं न चेश्वराः ॥४१॥
महेशा शूलसंकाशैः शरैर्मर्मविभेदिभिः। ताडिता निर्जरा युद्धे मूर्च्छिता धरणीं ययुः ॥४२॥
तस्यैव संमुखे स्थातुं न शेकुः प्रवरास्सुराः। ततो देवा विनिर्धूतास्त्रिदिवेशेन संयुताः ॥४३॥
शरण्यं ते हरिं तत्र शरेण ताडिता ययुः। एतस्मिंनंतरे विष्णुः प्राह जिष्णुं खगेश्वरम् ॥४४॥
अधुना गच्छ दैत्यस्य संमुखं रणमूर्धनि। नाशाय स ततस्तूर्णंगतस्तस्यांतिकं जवात् ॥४५॥
सरथं मार्गणैर्भित्वा विष्णुमारोधयज्जवम्। रथस्य संमुखे दैत्य उवाच विष्णुमव्ययम् ॥४६॥
अन्यसृष्टिंकरोम्यद्य हत्वा त्वां च सनिर्ज्जरम्। ततो विष्णुरुवाचेदं गर्जंतं दैत्यपुंगवम् ॥४७॥
शक्तस्त्वं स्पर्द्धने पाप यदि युद्धेस्थिरो भव। ततः शरशतैरेव जघानविष्णुमव्ययम् ॥४८॥
असंभ्रांतःसचिच्छेद यमदंडनिभान् शरान्। पुनः शरसहस्राणि प्रेरयामास तं रणे ॥४९॥
तां श्चछित्वा शरैः शौरिस्तं चविव्याधमार्गणैः। प्रगौरवादहार्याभैः संस्पर्शाद्वाडवानलैः ॥५०॥
शरैश्च भेदकैस्तीक्ष्णैः खगमैश्च मनोजवैः। लाघवात्केशवास्त्रस्य तूलशुष्कतृणोपमैः ॥५१॥
हैमैः शरसहस्रैस्तु ताडितो दैत्यपुंगवः। बाधयाभ्यर्दितः क्रुद्धो धृत्वाशिखरिणं रणे ॥५२॥
जघान माधवं वेगाद्धिरण्याक्षो महाबलः। तं च संचूर्णयामास गदया लीलया हरिः ॥५३॥
एवं पर्वतसाहस्रं पातितं तु क्रमेण हि। तथैव लाघवाच्चूर्णं हरिणादानवारिणा ॥५४॥
पुनर्बाहुसहस्राणि कृत्वासौ दानवोत्तमः। शरैः शक्तिभिरत्युग्रैः शूलैः परशुकादिभिः॥५५॥

तथा सर्पों को क्रमशः दश, आठ, दश तथा छह बाणों से मारा ॥४०॥ पराक्रम की अतिशयता तथा शीघ्रता प्रदर्शन के कारण विपत्तिग्रस्त देवता भय के कारण उसका प्रतिकार नहीं कर सके ॥४१॥ शङ्करजी के त्रिशूल के समान मर्मभेदी बाणों से युद्ध में मारे गये सभी देवता मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥४२॥ उसके सामने बड़े-बड़े देवता नहीं ठहर सके। इसतरह से पराजित सभी देवता इन्द्र के साथ ॥४३॥ सबों के रक्षक श्रीहरि के शरण में गये। उस समय विष्णु ने जिष्णु गरुड से कहा ॥४४॥ इस समय तुम समरांगण में दैत्यराज के समक्ष चलो। गरुड उस दैत्य का नाश करने के लिए वेग से उसके पास गये ॥४५॥ उस समय भगवान् विष्णु को गरुड़ के साथ भेदन करके उसने गरुड़ के वेग को रोक दिया। रथ के सामने आकर वह दैत्य अव्यय विष्णु से कहा ॥४६॥ आज मैं देवताओं के साथ तुम्हारा वध करके दूसरी सृष्टि करूँगा। उस गरजते हुए दैत्य श्रेष्ठ से भगवान् विष्णु ने कहा॥४७॥ अरे पापी! यदि युद्ध करने में तुम समर्थ हो तो युद्ध करो उसके बाद उसने सैकड़ों बाणों से भगवान् विष्णु को मारा॥४८॥ उसने भगवान् को यमदण्ड के समान बाणों से छेद दिया। उसके बाद उसने फिर भगवान् पर हजारो बाणों को छोड़ा उन बाणों को काटकर भगवान् ने उसको भी बाणों से छेद दिया वे बाण अत्यन्त गौरव सम्पन्न, अहार्य तथा वाडवाग्नि के समान ऊष्ण थे ॥५०॥ वे आकाशगामी तीक्ष्ण, भेदन करने वाले तथा मन के समान वेग वाले थे। भगवान् के अस्त्र तूल तथा सूखे तृण के समान हलके थे ॥५१॥ सुवर्ण निर्मित हजारो बाणों से श्रीभगवान् ने उस दैत्य को मारा। उस वेध के द्वारा क्रुद्ध होकर दैत्य ने पर्वत को धारण करके उससे माधव के ऊपर प्रहार किया। उस पर्वत को भगवान् ने बड़ी आसानी से अपनी गदा के प्रहार से चूर-चूर कर दिया ॥५२-५३॥ इसतरह से हिरण्याक्ष ने भगवान् पर हजारों पर्वतों को गिराया और दानवों के शत्रु श्रीहरि ने उन सबों को उसी प्रकार चूर-चूर कर दिया ॥५४॥ उसके बाद वह क्रुद्ध दानव हजारों भुजाओं को बनाकर बहुत अधिक श्रीहरि पर बाणों, शक्तियों,

ववर्ष बहुभिर्विष्णुं क्रोधाविष्टेन चेतसा । तांस्तु तेनैव प्रहितांश्चिच्छेद सुरसत्तमः ॥५६॥
शरैर्दीप्तैर्महाघोरैरसुराणां भयङ्करैः । विव्याध सर्वगात्रेषु शंभुशूलोपमैश्शरैः ॥५७॥
दानवाधिपतिः संख्ये ह्यव्ययो हरिरीश्वरः । स च कश्मलतां गत्वा सर्वशक्तिमनुत्तमाम् ॥५८॥
कालजिह्वोपमां घोरामष्टघंटासमन्विताम् । हरेरुरसि पीने च विद्युत्या पातयदद्भुतम् ॥५९॥
शुशुभे ससुरश्रेष्ठस्तटित्वत्सान्द्रमेघवत् । ततश्च चुक्रुशुर्दैत्या जयेति साधुवादिनः ॥६०॥
ततश्चक्रं दैत्यसैन्ये दानवारिर्व्यसर्जयत् । तेषां शिरांसि संच्छिद्य माधवं पुनरागमत् ॥६१॥
स दैत्यं शक्तिपातेन पातयामास वै रणे । चिरात्संज्ञां समालम्ब्य वह्निबाणेन केशवम् ॥६२॥
निजघान रणे क्रुद्धो हरिः कौबेरमाक्षिपत् । ततो मुमोच मायास्त्रं चासुरं चातिदारुणम् ॥६३॥
सिंहव्याघ्रलुलायांश्च तद्वद्द्विपसरीसृपान् । जघान समरे विष्णुं हिरण्याक्षः प्रतापवान् ॥६४॥
ततो मायास्त्रसंभूतान् शस्त्रास्त्रौघान् रणे हरिः । प्रचिच्छेद शरैरेव शूलेनैकनमताडयत् ॥६५॥
सविह्वलितसर्वांगस्तत्क्षणं लोहितोक्षितः । विचकर्ष हरन्विष्णुरसृग्विप्लुतविग्रहः ॥६६॥
तच्छूलं च त्रिभिर्बाणैः प्रविव्याध सुराधिपः । वरूथं सध्वजं केतुं रथं चैवातपत्रकम् ॥६७॥
यंतारं च प्रचिच्छेद दशभिश्च हरिः शरैः । पातिते च रथे दैत्यः संप्लुत्याथ रथं परम् ॥६८॥
आरुरोह स दैत्येंद्रः संमुखं चाकरोद्बली । ततो युद्धं महाघोरमभवल्लोमहर्षणम् ॥६९॥
हिरण्याक्षस्य च हरेर्लोकविस्मापनं महत् । अस्त्रयुद्धं तथान्योन्यं कृतप्रतिकृतं च तत् ॥७०॥
ततो नियुद्धे सततं दिव्यवर्षशतं गतम् । ततो दैत्यो महासत्वो ववृधे वामनो यथा ॥७१॥

कठोर त्रिशूलों तथा फरसों आदि से प्रहार किया उन सबों को भी श्रीभगवान् ने असुरों के लिए भयङ्कर देदीप्यमान बाणों से काट दिया और उस दैत्य के सम्पूर्ण शरीर को शङ्करजी के त्रिशूल के समान बाणों से बेध दिया । उसके कारण प्रपीडित उस दैत्य ने सभी शक्तियों में श्रेष्ठ ॥५५-५८॥ काल की जिह्वा के समान भयङ्कर आठ घण्टाओं वाली शक्ति से श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में प्रहार किया ॥५९॥ उसका प्रहार करके वह दैत्य विद्युत युक्त काले मेघ के समान सुशोभित हुआ । उस समय प्रसन्न होकर सभी दैत्य हिरण्याक्ष का जय-जयकार करने लगे ॥६०॥ उस समय श्रीहरि ने दैत्यों पर अपना चक्र चलाया और वह उन सबों के शिर को काटकर पुनः श्रीभगवान् के पास आ गया ॥६१॥ उन्होंने शक्तिपात के द्वारा दैत्य हिरण्याक्ष को रणस्थल में गिरा दिया । दीर्घकाल के बाद होश में आकर क्रुद्ध होकर उसने अग्निबाण से भगवान् केशव को मारा तो श्रीहरि ने कौबेरास्त्र का उस पर प्रहार किया । उसके बाद हिरण्याक्ष ने असुर नामक भयङ्कर मायास्त्र का प्रयोग किया ॥६३॥ वह सिंह, व्याघ्र, लुलाव हाथी तथा सर्प स्वरूप था । उससे हिरण्याक्ष ने विष्णु पर प्रहार किया ॥६४॥ उसके बाद मायास्त्र से उत्पन्न शस्त्रों तथा अस्त्रों को श्रीहरि ने बाणों से ही काट दिया फिर दैत्य ने भगवान् पर त्रिशूल से प्रहार किया । उसके कारण भगवान् का सारा अङ्ग व्याकुल हो गया और वे लहूलुहान हो गये । खून से लथपथ शरीर वाले भगवान् ने उस त्रिशूल को खीच लिया और तीन बाणों के प्रहार से तोड दिया । उन्होने उसके रथ के बरुथ,ध्वजा, पताका, छत्र तथा ॥६५-६७॥ सारथि को दश बाणों से विनष्ट कर दिया । उस रथ के विनष्ट हो जाने पर वह दैत्य कूदकर दूसरे रथ पर जा बैठा ॥६८॥ और श्रीभगवान् से युद्ध करने लगा उसके बाद हिरण्याक्ष और श्रीहरि में भयङ्कर तथा लोमहर्षक (रोगंटे खड़ा कर देने वाला) युद्ध हुआ ॥६९॥ हिरण्याक्ष और श्रीहरि का वह युद्ध संसार को विस्मित कर देने वाला था । उन दोनों ने एक-दूसरे के विरुद्ध अस्त्र युद्ध किया ॥७०॥ इसतरह निरन्तर युद्ध करते हुए देवताओं के सौ वर्ष बीत

मुखेन जग्राह रुषा त्रैलोक्यं सचराचरम् । भूमंडलं समुद्धृत्य विवेश च रसातलम् ॥७२॥
शेषाश्च विविशुर्दैत्यास्तमनुप्रीतिसंयुताः । ततो विष्णुर्महातेजा ज्ञात्वा दैत्यबलं महत् ॥७३॥
दधार रूपं वाराहं दैत्यराजजिघांसया । धृत्वा क्रोडतनुं विष्णुर्विवेश तमनुद्रुतम् ॥७४॥
तत्र गत्वा रसामूले रसातलगतां महीम् । दृष्ट्वा स्वदंष्ट्रयोर्दंग्रे लोकाधारां वसुंधराम् ॥७५॥
तां धृत्वा गच्छतस्तस्य विष्णोरमिततेजसः । समाजगामदैत्येंद्रो धृष्टं वाग्भिस्तुदन्ननु ॥७६॥
मायाक्रोडतनुर्विष्णुर्दुर्वचांसि सहन् रुषा । जलोपरि दधारेमां धरां भूधर एव च ॥७७॥
तस्यां न्यस्य स्वसत्वं च स चकार तदाचलाम् । ततः पश्चात्स संलग्नो दैत्यराट्समुपस्थितः ॥७८॥
क्रोधेन महताविष्टो जघान गदया हरिम् । मायया सूकरो विष्णुस्तां गदां समवंचयत् ॥७९॥
योगयुक्तो यथा मृत्युं कौमोदक्याहनच्च तम् । ततः पुनारुषाविष्टो हिरण्याक्षो महाबलः ॥८०॥
मुष्टिना प्राहरद्देवं दक्षिणे तु भुजे प्रभोः । एवं युद्धं महाघोरं सव्यासव्यं गतागतम् ॥८१॥
परिभ्रमणाविक्षेपं कृतानुकरणं तथा । ततो ब्रह्मादयो देवा युद्धं पश्यंति खेस्थिताः ॥८२॥
स्वस्ति प्रजाभ्यो देवेभ्य ऋषिभ्यश्चेति चाब्रुवन् । ऊचुश्च देवदेवेशं विष्णुं वाराहरूपिणम् ॥८३॥
माक्रीड बालवद्देव जह्यमु देवकंटकम् । ततोविष्णुर्महातेजा मायावाराहरूपधृत् ॥८४॥
ब्रह्माद्यनुमतिं प्राप्य चक्रं प्राक्षिपदुल्बणम् । सहस्रसूर्यसंकाशं सहस्रारं महाप्रभम् ॥८५॥
दैत्यांतकरणे रौद्रं प्रलयाग्निसमप्रभम् । तच्चक्रं विष्णुना मुक्तं हिरण्याक्षं महाबलम् ॥८६॥

गये । उसके बाद वह महासत्व दानव वामन के समान बढने लगा ॥७१॥ क्रुद्ध होकर उसने सचराचर त्रैलोक्य को मुख से पकड़ लिया और उसमें से भूमण्डल को उठाकर पाताल में प्रवेश कर गया ॥७२॥ बचे हुए दैत्य भी उसके पीछे प्रेम पूर्वक पताल में चले गये । उसके बाद महातेजस्वी भगवान् विष्णु उस दैत्य के बल को जानकर ॥७३॥ दैत्यराज के मार देने की इच्छा से वाराह का रूप बना लिये । सूकर का रूप बनाकर भगवान् उसके पीछे ही पाताल में प्रवेश कर गये ॥७४॥ वहाँ पर जाकर रसातल में गयी हुयी पृथिवी को देखकर उन्होंने वसुन्धरा को अपने दाँत पर रख लिया ॥७५॥ पृथिवी को अपने दाँतों पर रखकर जाते हुए निस्सीम तेजस्वी भगवान् विष्णु के पीछे उन्हें गालियाँ देते हुए वह दैत्य दौड़ पड़ा ॥७६॥ माया से सूकर शरीर धारण करने वाले भगवान् विष्णु उसके दुर्वचनों को क्रोधपूर्वक सहते हुए पृथिवी तथा पर्वतों को जल के ऊपर स्थापित कर दिए ॥७७॥ उस पृथिवी में अपने बल को स्थापित करके उसे ये अचला बना दिए । उनके पीछे लगा हुआ दैत्यराज भी वहाँ उपस्थित हो गया ॥७८॥ अत्यन्त क्रुद्ध दैत्य ने विष्णु पर अपनी गदा से प्रहार किया । माया से सूकर बने हुए भगवान् विष्णु ने उस गदा को विफल बना दिया ॥७९॥ उसके पश्चात् योगयुक्त श्रीभगवान् ने उस पर अपनी कौमोदकी गदा से प्रहार किया । उसके बाद क्रोध करके हिरण्याक्ष ने श्रीविष्णु पर मुक्के से उनकी दाहिनी भुजा पर प्रहार किया । इसतरह दायें-बायें पैंतरें से दोनों में युद्ध होने लगा ॥८०-८१॥ परिभ्रमण करने में विक्षेप भी हुआ । उस समय ब्रह्मा इत्यादि देवता आकाश में स्थित होकर युद्ध देख रहे थे ॥८२॥ ऋषियों आदि ने प्रजाओं, देवताओं और ऋषियों का कल्याण हो इसतरह से देवाराध्य वराहरूपधारी भगवान् विष्णु से कहा ॥८३॥ हे देव ! इसके साथ क्रीडा न करें । इस देवताओं के शत्रु को शीघ्र मारिये । उसके बाद माया से वाराह रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने ॥८४॥ ब्रह्मा आदि की अनुमति प्राप्त करके भयङ्कर हजारों सूर्यों के समान, महान कान्ति वाले सहस्रार चक्र को फेंका ॥८४-८५॥ वह दैत्यों को मारने वाला, अग्नि के समान कान्ति वाला चक्र था । भगवान् विष्णु के द्वारा प्रक्षिप्त उस चक्र ने महाबलवान् ॥८६॥ उस दैत्य

चकार भस्मसात्सद्यो ब्रह्मादीनां च पश्यताम् । दैत्यांतकरणं रौद्रं चक्रं चागमदच्युतम् ॥८७॥
ततो ब्रह्मादयो देवाः शक्रमुख्याश्च लोकपाः । दृष्ट्वा च विजयं विष्णोः स्तुवंति स समागताः ॥८८॥

देवा ऊचुः

नताः स्म विष्णुं जगदादिभूतं सुरासुरेंद्रं जगतां प्रपालकम् ।
यन्नाभिपद्मात्किलपद्मयोनिर्बभूव तं वै शरणं गताः स्मः ॥८९॥
नमो नमो मत्स्यवपुर्धराय नमोस्तु ते कच्छपरूपधारिणे ।
नमः प्रकुर्मश्च नृसिंहरूपिणे तथा पुनर्वामनरूपिणे नमः ॥९०॥
नमोस्तु ते क्षत्रविनाशनाय रामाय रामाय दशास्यनाशिने ।
प्रलंबहंत्रे शितिवाससे नमो नमोस्तु बुद्धाय च दैत्यमोहिने ॥९१॥
म्लेच्छांतकायापि च कल्किनाम्ने नमः पुनः क्रोडवपुर्धराय ।
जगद्धितार्थं च युगे युगे भवान् बिभर्ति रूपं त्वसुराभवाय ॥९२॥
निषूदितोऽयं ह्यधुना किल त्वया दैत्यो हिरण्याक्ष इति प्रगल्भः ।
यश्चेंद्रमुख्यान्किललोकपालान् सहेलया चैव तिरश्चकार ॥९३॥
स वै त्वया देवहितार्थमेव निपातितो देव वर प्रसीद ।
त्वमस्य विश्वस्य विसर्गकर्ता ब्राह्मेण रूपेण च देवदेव ॥९४॥
अतो भवानेव च विश्वकारणं न ते परं जीवमजीवमीश ।
यत्किंच भूतंच भविष्यरूपं प्रवर्त्तमानंच तथैवरूपम् ॥९५॥

को ब्रह्मा आदि के सामने ही भस्म कर दिया । तदनंतर दैत्यों को मारने वाला भयङ्कर वह चक्र भगवान् विष्णु के पास आ गया ॥८७॥ उसके बाद ब्रह्मा आदि देवता तथा इन्द्र आदि लोकपाल, वहाँ आकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥८८॥ **देवताओं ने कहा—** हमलोग जगत् के आदि कारण भगवान् विष्णु को नमस्कार करते हैं । सुरों तथा असुरों के स्वामी संसार के पालक को नमस्कार करते हैं । जिनसे पद्मयोनि ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उन भगवान् विष्णु को हम नमस्कार करते हैं ॥८९॥ मत्स्य शरीर धारण करने वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है, कच्छप शरीर धारण करने वाले आपको नमस्कार है । हमलोग नृसिंह रूप धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार करते हैं तथा वामन रूप धारण करने वाले श्रीहरि को नमस्कार करते हैं ॥९०॥ क्षत्रियों का विनाश करने वाले परशुरामजी को नमस्कार है, तथा रावण का विनाश करने वाले श्रीराम को नमस्कार है । प्रलम्बासुर का नाश करने वाले बलरामजी को नमस्कार है । दैत्यों को मोहित करने वाले बुद्ध रूपधारी श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥९१॥ म्लेच्छों का विनाश करने वाले भगवान् कल्कि को नमस्कार है । तथा सूकर रूप धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है । आप जगत् का कल्याण करने के लिए प्रत्येक युग में असुरों का नाश करने के लिए विविध शरीरों को धारण करते हैं ॥९२॥ इस समय आपने हिरण्याक्ष का वध किया है । उसने इन्द्र आदि देवताओं का अपमान पूर्वक तिरस्कार किया था॥९३॥ देवताओं का कल्याण करने के लिए उसको आपने मारा है । हे देवश्रेष्ठ ! आप प्रसन्न होइये । आप ही संसार की समृद्धि ब्रह्मारूप धारण करके करते हैं ॥९४॥ प्रत्येक युग में आप ही संसार की रक्षा करते हैं और अनेक मनोहर रूपों की धारण करते हैं । आप ही प्रलय काल के समय में काल, अग्नि तथा शङ्करजी का रूप धारण करके संसार का संहार करते हैं ॥९५॥ अतएव आप ही सम्पूर्ण जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं । हे ईश !

सर्वं त्वमेवासि चराचराख्यं न भाति विश्वं त्वदृते च किंचित् ।
अस्तीति नास्तीति च भेदनिष्ठं त्वय्येव भातं सदसत्स्वरूपम् ॥९६॥
ततो भवंतं कतमोपि देव न ज्ञातुमर्हत्यविपक्वबुद्धिः ।
ऋते भवत्पादपरायणं जनं तेनागतास्मश्शरणं शरण्यम् ॥९७॥

व्यास उवाच

ततो विष्णु प्रसन्नात्मा उवाच त्रिदिवौकसः । तुष्टोस्मि देवा भद्रं वो युष्मत्स्तोत्रेण सांप्रतम् ॥९८॥
य इदं प्रपठेद्भक्त्या विजयस्तोत्रमादरात् । न तस्य दुर्लभं देवास्त्रिषु लोकेषु किंचन ॥९९॥
गवांशतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति कीर्तनाच्छ्रवणान्नरः ॥१००॥
सर्वकामप्रदं नित्यं देवदेवस्य कीर्तनम् । अतः परं महाज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥१०१॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे देवासुरसंग्रामसमाप्तौ विजयस्तोत्रं नामपंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

संजय उवाच

येऽसुराश्च मृता युद्ध संमुखे विमुखेपि वा । गतिं तेषामहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

आपसे बढ़कर कोई जीव अथवा अजीव नहीं है जो कुछ भी, भूत कालिक, भविष्यत् कालिक तथा वर्तमान कालिक है; वह आपका ही रूप है ॥९६॥ चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व आप ही हैं, आप से भिन्न संसार नाम की कोई भी वस्तु नहीं है । सत् एवं असत् रूप भेदों से भी आप ही सत्ता तथा असत्ता रूप से प्रतीत होते हैं ॥९६॥ अतएव हे देव! कोई भी अपरिपक्व बुद्धि वाला व्यक्ति आप को नहीं जान पाता है । आपको तो आपके चरणों का कोई सेवक ही जान पाता है अतएव हमलोग आपके शरणागत हैं ॥९८॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके बाद प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने देवताओं से कहा—- हे देवताओं मैं आपलोगों के स्तोत्र से प्रसन्न हूँ आपलोगों का कल्याण हो ॥९९॥ हे देवताओं ! जो कोई भी इस विजय स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पढेगा उसके लिए संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होगी॥१००॥ एक लाख गायों को घास खिलाने से होने वाले फल को मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करके अथवा श्रवण करके कर लेता है ॥१०१॥ श्रीभगवान् का कीर्तन सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । इससे बढकर कोई दूसरा ज्ञान न हुआ और न होगा ॥१०२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पचहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७५।।

युद्ध में मरे हुए दैत्यों की उत्तम गति की प्राप्ति का वर्णन, मनुष्य योनि में उत्पन्न दैत्यों के स्वाभाविक दैत्यत्व का वर्णन, दैत्यवंशीय प्रह्लाद आदि को भी देवत्व की प्राप्ति का वर्णन, एक वैष्णव पुत्र की कथा, मनुष्यों में उत्पन्न देवों तथा दैत्यों का लक्षण

संजय ने कहा— युद्ध में जो दानव सामने अथवा विमुख होकर मारे गये; हे ब्रह्मन् ! मैं उन सबों को जो

असंख्याता इमे दैत्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे। अद्याप्यासन्गताः कुत्र एतन्मे शंस भो गुरो ॥२॥

व्यास उवाच

येमृतास्संमुखे शूरा दैत्यानां प्रवरा रणे। स्वयं प्राप्य च देवत्वं भोग्यमश्नन्ति शाश्वतम् ॥३॥
प्रासादा यत्र सौवर्णा नानारत्नविभूषिताः। सर्वकामप्रदा वृक्षाः स्वर्णदी तोयसंयुता ॥४॥
पद्मोत्पलसुकह्लारैर्गन्धाढ्यैरन्यपुष्पकैः। दधिदुग्धाज्यखंडैश्च युतापुष्करिणी शुभा ॥५॥
अतीव रूपसंपन्नाः सदैव नवयौवनाः। तत्र राज्यं प्रकुर्वंति तथैव वसुधातले ॥६॥
एवं जन्माष्टकं प्राप्य धनिनो ध्यक्षमंत्रिणः। अर्धसंमुखगात्रेण दिवमश्नंति शाश्वतम्॥७॥
विमुखाः कातरा भीता ये च मायाविनो रणे। ते यांति निरयं घोरं ये च देवद्विजद्विषः॥८॥
पतितं मूर्च्छितं भग्नमन्योद्धारमाहवे। हंतारो निरयं यांति ते च म्लेच्छाः कुवाचकाः ॥९॥
परन्यासापहर्तारो विमुखास्संति तत्त्वतः। रात्रौ वा पिपिने नष्टे चोरास्साहसकारिणः ॥१०॥
सर्वभक्षरता मूढा म्लेच्छा गोब्रह्मघातकाः। कुवाचकाः परे म्लेच्छा एते ये कूटयोनयः ॥११॥
तेषां पैशाचिकी भाषा लोकाचारो न विद्यते। नास्ति शौचं तपो ज्ञानं नदेवपितृतर्पणम्॥१२॥
दानश्राद्धादिकं यज्ञे सुराणां च प्रपूजनम्। पितृणां च न शुश्रूषा द्विजदेवतपस्विनाम्॥१३॥
ज्ञानलोपादतस्तेषां मलशौचं न विद्यते। मातरं भागिनीं चान्यां गृहिणीं कामयंति च ॥१४॥
सर्वो विपर्ययो लोकात्सदाचारो मलीमसः। तार्क्ष्यस्योद्वमनानां च अन्येषां गोत्रवासिनाम् ॥१५॥
कुलजातास्सदा दैत्या येषां पुण्यमकारणम्। दुर्गतिं च मृता यांति द्विजस्त्रीशिशुघातिनः ॥१६॥

गति प्राप्त हुयी उसे सुनना चाहता हूँ ॥१॥ ये असंख्य दैत्य सचराचर जगत् में आज भी थे, वे कहाँ गये उसे आप मुझे बतलायें ॥२॥ **व्यासजी ने कहा—** जो दैत्यप्रवर युद्ध में सामने युद्ध करते हुए मरे वे देवत्व को प्राप्त करके भोग्य पदार्थो का भोग करते हैं ॥३॥ वहाँ सुवर्ण के महल बने हैं और वे सभी रत्नों से अलंकृत हैं। वहाँ स्वर्गीय नदी के जल से युक्त सभी कामनाओं को पूरा करने वाले वृक्ष है ॥४॥ स्वर्ग में पुष्करिणियाँ दही, दुग्ध तथा घृत खण्ड से युक्त हैं, कमल, नीलकमल, कह्लार तथा दूसरे सुगन्धित पुष्पों से वे परिपूर्ण हैं ॥४॥ अत्यन्त रूप सम्पन्न तथा सदा नवीन जवानी से युक्त वे वहाँ राज्य करते हैं, जैसे पृथिवी का कोई राजा होता है ॥६॥ इस तरह वे आठ जन्म प्राप्त करके धनिक, धनाध्यक्ष राजा के मन्त्री होते हैं। अर्ध संमुख शरीर से वे अक्षय स्वर्ग भोगते हैं ॥७॥ जो युद्ध में पराङ्मुख होने वाले, कायर, भयभीत तथा माया करने वाले देवताओं तथा ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले दैत्य थे वे अत्यन्त घोर नरक में हैं ॥८॥ पतित, मूर्छित, भग्न दूसरे के साथ युद्ध करने वाले को मारने वाले नरक में जाते हैं। गालियाँ देने वाले म्लच्छ होते हैं ॥९॥ दूसरों के घर को हड़पने वाले तथा युद्ध से पलायन करने वाले, रात्रि में अथवा वन में मरने वाले चोर तथा साहसिक कर्म करने वाले ॥१०॥ सब कुछ खाने वाले, अज्ञानी, म्लेच्छ, गौ तथा ब्राह्मण को मारने वाले, कुवाक्य बोलने वाले, तथा म्लेच्छ ये कूटयोनि वाले हैं ॥११॥ वे पिशाचों की तरह बोलते हैं उनमें लोकाचार नहीं होता है। पावित्र्य के पालन से रहित उनमें तपस्या तथा ज्ञान का अभाव होता है। वे देवताओं और पितरों का तर्पण नहीं करते हैं ॥१२॥ दान तथा श्राद्ध आदि यज्ञों में देवताओं की पूजा भी नहीं करते हैं। वे अपने माता-पिता की सेवा नहीं करते ब्राह्मण देवता और तपस्वियों की भी वे सेवा नहीं करते हैं ॥१३॥ उनके ज्ञान का लोप हो जाता है, अतएव उनके मल का पवित्रीकरण नहीं होता है। वे माता, बहन तथा दूसरों की स्त्री को प्राप्त करना चाहते हैं ॥१४॥ उनके सारे आचरण लोक विपरीत होते हैं, और वे पापी होते हैं। गरुड ने

गवाशिनो दुरात्मानो ह्यभक्ष्यभक्षणे रताः । कीटयोनिं व्रजंत्येते तरवश्च पिपीलिकाः ॥१७॥
नमंत्रेषु नदेवेषु कल्पंते ते सुरद्विषः । अग्रजः सहजस्तेषां सदृङ्गोग्राम्यवृत्तयः ॥१८॥
लोमकेशप्रणेतारः क्रव्यभक्षरता भुवि । साहसं च व्रतं दानं स्नानं यज्ञादिकं च यत् ॥१९॥
मत्स्यमांसादिषु प्रीता मृषावचनभाषिणः । सदाकामास्सदालोभास्सदाक्रोधा मदान्विताः ॥२०॥
वधबंधरतोद्वेगा द्यूतसंगीतसंप्रियाः । कुभृत्याः कुजनप्रीताः पूतिगंधरतानराः ॥२१॥
न देवेषु न विज्ञेषु न धर्मश्रवणेषु च । स्तोत्रमंत्रादिके पुण्ये यथा कार्येष्वनिश्चयाः ॥२२॥
बहुरोगाधिरोषाश्च बहुरूपपरिच्छदा । नरजातिषु दैत्यानां चिह्नान्येतानि भूतले ॥२३॥
न जानंति परलोकं न गुरुं स्वं न चापरम् । गर्भपूरणमिच्छंति नातिथिं न गुरून् द्विजान् ॥२४॥
न देवं न सुतं गोत्रं न मित्रं न च बान्धवम् । स्वप्ने दानं न जानंति भक्षणान्नपरिच्छदम् ॥२५॥
गोपायंति धनं यस्मात्ते यक्षा नररूपिणः । प्राणांतेपि धनं किंचिन्नदिशंति च राजनि ॥२६॥
ते यक्षा दुर्गतिस्थाश्च परार्थे भारवाहकाः । प्रेतानां लक्षणं यद्वा सर्वलोकविगर्हितम् ॥२७॥
स्त्रीणां च पुरुषाणां च शृणुष्वैकमना मम । मलपंकधरा नित्यं सत्यशौचविवर्जताः ॥२८॥
दंतकुंतलवस्त्राणां वपुषोमलसंचयाः । गृहपीठादिपात्राणां सकृच्छौचं न रोचते ॥२९॥
न पश्यंति सुखं स्त्रीणां विशंति कानने द्रुतम् । विघसोच्छिष्टपूतीनां भक्षणेऽभिरता भुवि ॥३०॥

जिन सबों को वमन कर दिया तथा दूसरों के गोत्र में निवास करने वाले ॥१५॥ वे वंश से उत्पन्न दैत्य हैं, तथा जिन सबों का कारण पाप है, वे सभी मरकर दुर्गति को प्राप्त करते हैं तथा जो ब्राह्मण, स्त्री तथा बच्चों को मारते हैं ॥१६॥ गोमांस खाने वाले, पापी अभक्ष्य भक्षण करने वाले ये सभी मरकर कीड़ों की योनि में चले जाते हैं, वृक्ष हो जाते हैं, और चींटी हो जाते हैं ॥१७॥ मन्त्रों और देवताओं में विश्वास नहीं करने वाले, देवताओं से द्वेष करने वाले उनके लिए अग्रज सहजन्म होता है । उनकी वृत्ति उन सबों के समान नहीं होती है, रोओं और केशों को बनाने वाले मांसभक्षी, साहसकि यज्ञ, दान और व्रत करने वाले ॥१८-१९॥ मछली मांस आदि से प्रसन्न रहने वाले, झूठ बोलने वाले । हमेशा कामना करने वाले, सदा लोभ करने वाले, सदा क्रोध करने वाले तथा मदमत्त रहने वाले ॥२०॥ हत्या करने वाले, किसी को बाँधकर रखने वाले, जूआ तथा सङ्गीत ही जिनको प्रिय है, दुष्टों की नौकरी करने वाले, दुष्टों से प्रेम करने वाले, दुर्गन्धि पदार्थों में रत रहने वाले ॥२१॥ देवता विद्वान् धर्मश्रवण, स्तोत्रों मंत्रों आदि कार्यों में विश्वास नहीं करने वाले ॥२२॥ बहुत अधिक रोगी रहने वाले, बहुत अधिक क्रोध करने वाले, अनेक प्रकार का सजावट करने वाले, ये सभी मनुष्य जाति में उत्पन्न हुए दैत्यों के लक्षण हैं ॥२३॥ जिन्हें परलोक का ज्ञान नहीं है न तो अपने या दूसरे के गुरु को मानते हैं । उनकी इच्छा सदा सन्तान उत्पन्न करने की बनी रहती है, वे गुरु और ब्राह्मण का महत्त्व नहीं देते हैं ॥२४॥ वे देवता, पुत्र, गोत्र, मित्र तथा बान्धव को मानते ही नहीं है । वे स्वप्न में भी अन्न तथा वस्त्र का दान देना नहीं जानते हैं ॥२५॥ वे सदा धन की ही रक्षा में लगे रहते हैं, ऐसे लोग मनुष्य रूपधारी यक्ष हैं । प्राण भले ही चला जाय किन्तु वे राजा को थोड़ा सा भी धन नहीं देना चाहते हैं ॥२६॥ ऐसे जीव नारकीय तथा यक्ष होते है और दूसरों के लिए भार वहन करते रहते हैं । सभी लोकों में निन्दित स्त्री तथा पुरुष प्रेतों का लक्षण सावधानी से सुनो । वे लोग सदा मल और कीचड़ से सने रहते हैं । झूठ बोलने वाले, अपवित्र रहने वाले ॥२८॥ उनके दांत, केश, वस्त्र तथा शरीर मैल से भरे रहते हैं । वे कभी भी अपने गृह, बैठने के आसन तथा पात्रों को साफ करना नहीं चाहते हैं ॥२९॥ वे स्त्रियों के सुख को नहीं देखते हैं ।

अन्नपानं च शयनमन्धकारेषु रोचते । कदाचित्स्वस्थता नास्ति क्वचिद्वाशुचिता तनौ ॥३१॥
लक्षणं नरलोकेषु प्रेतानामीदृशं किल । हिताहितं न जानंति मित्रामित्रं गुणागुणम् ॥३२॥
पापपुण्यादिकं स्थानं स्नानं देवद्विजार्चनम् । अरिमित्रमुदासीनं नविंदंति स्वभावतः ॥३३॥
मर्त्यस्थाः पशवस्ते च ज्ञायंते बुद्धिसंमतैः । बुद्ध्या नानात्व भावाश्च भ्रमंति च मृषा भुवि ॥३४॥
यक्षरूपा नरास्ते च सर्वकर्मबहिष्कृताः । एषां भेदं प्रवक्ष्यामि लक्षणं धरणीतले ॥३५॥
विजाता मर्त्यलोकेषु पापस्यैवानुरूपतः । मलीमसभुविप्रस्थं नागरं छद्मरूपिणम् ॥३६॥
विघसादिप्रभोक्तारं काकमाहुर्मनीषिणः । अभक्ष्ये निरतः पापः कुकुरः पूतिसंप्रियः ॥३७॥
प्रवृत्तस्सर्वगृह्येषु भक्ष्याभक्ष्यसजीवनः । भूम्यां पश्वादियोनीनां कुलेषु प्राप्तसंभवाः ॥३८॥
शुनो विगृह्य हस्तेन म्लेच्छनां भक्षणप्रियाः । विशेषात्सूकराणां च तथाचरणयोधिनाम् ॥३९॥
पोषणे भक्षणे प्रीताः पूतिगर्ह्योष्वसाधुषु । पर्वते करणाद्वह्नेः काष्ठसंचयसंग्रहे ॥४०॥
विज्ञेयास्ते सदाम्लेच्छाः क्षत्रियाणां भयाकुलाः । लोकानां नष्टधर्मे च सदाशौच विवर्जिते ॥४१॥
कुलीनानां तदाम्लेच्छा भविष्यंति च दस्यवः । तेषां संसर्गतोन्ये च संबंधादन्नभोजनात् ॥४२॥
मैथुनात्तस्ययोषासु तद्भावं तु व्रजंति ते । तस्मिन्काले जनास्सर्वे दुःखरोगप्रतापिताः ॥४३॥
दुर्भिक्षान्नपरा मूढाः सदा राजप्रपीडिताः । तत्रासत्ये रता मर्त्याः सर्वशौचविवर्जिताः ॥४४॥
नश्रूयंते जनैरेव पुराणागमसंहिताः । मद्यमांसप्रियाः पापास्सर्वभक्षास्सुदारुणाः ॥४५॥

वन में जाकर रहने लगते हैं । वासी अन्न, जूठा अन्न तथा दुर्गन्धि युक्त अन्न को खाते हैं । वे अन्धकार में ही खाते हैं, पानी पीते हैं तथा सोते हैं उनका शरीर कभी न तो स्वस्थ रहता है और न तो पवित्र रहता है ।।३०-३१।। ये मनुष्य लोक में रहने वाले प्रेतों के लक्षण हैं । विज्ञ पुरुष उन सबों को मनुष्य रूप में रहने वाले पशु जानते हैं जिन लोगों को कल्याण, अकल्याण, मित्र, अमित्र (शत्रु) गुण-दोष पाप तथा पुण्य के स्थान, स्नान करना, देवता तथा ब्रह्मण की पूजा करना, शत्रु, मित्र तथा उदासीन इत्यादि का ज्ञान नहीं होता है । जो बुद्धि पूर्वक अनेक भावों (रूपों) को बनाते है तथा व्यर्थ ही पृथिवी पर घूमते रहते है ।।३२-३४।। ऐसे मनुष्य यक्ष स्वरूप हैं और वे सभी कर्मों से वहिस्कृत हैं । इन सबों का मैं अलग-अलग लक्षण तथा भेद बतलाता हूँ ।।३५।। जारजात (सङ्कर) मर्त्यलोक में अपने पूर्वकृत पापों के अनुसार मलिन पृथिवी पर छलपूर्वक नागरिक रूप बनाये हुए, अपवित्र वस्तुओं को खाने वाले कौए होते हैं, यह मनीषियों ने कहा है । अभक्ष्य पदार्थों को खाने वाले पापी, दुर्गन्धि युक्त वस्तुओं को खाने वाले कुकुर होतें हैं ।।३७।। जो सभी गृह संवन्धी कार्यों में लगे रहने तथा भक्ष्य-अभक्ष्य वस्तुओं को खाकर जीने वाले पृथिवी पर पशु आदि की योंनि में जन्म लेते हैं ।।३८।। जो म्लेच्छों के कुत्तों को हाथ से पकड़कर भोजन करते है, विशेष रूप से सूकरों के समान आचरण करने वाले, उनका (कुत्तों तथा सूकरों का) पालन तथा भक्षण करने वाले, वासी, निन्दित तथा अपवित्र वस्तुओं को खाने वाले, पर्वत पर विद्यमान काष्ठ समूह में आग लगाने वाले ।।३९-४०।। सदा म्लेच्छ ही रहते हैं । क्षत्रियों में भयभीत रहने वाले, लोगों के धर्म के नष्ट हो जाने पर तथा सदा अपवित्र रहने पर ।।४१।। वे म्लेच्छ कुलीनों के लिए लुटेरे हो जाते हैं । उन सबों के साथ संबन्ध होने तथा उनका अन्न खाने से।।४२।। तथा उन सबों की स्त्रियों के साथ मैथुन करने से लोग भी वैसे ही हो जाते हैं । उससे सभी लोग दुःख तथा रोग से सन्ताप्त हो जाते हैं ।।४३।। वे मूर्ख दुर्भिक्ष के कारण अन्न चाहने वाले तथा सदा राजा से पीडित होते रहते हैं । उस समय मनुष्य मिथ्याभाषी तथा सभी प्रकार की पवित्रता से रहित हो जाते हैं ।।४४।। कोई भी मनुष्य पुराणों,

दारुणाचारनिरता नित्यं छलपरायणाः । नपुष्णंति सुतास्तातं प्रसुवं च गुरूनपि ॥४६॥
न शुश्रूषंति वै भृत्याः स्वामिनं गुणशालिनम् । भर्तारं न स्त्रियः काश्चिच्छ्वशुरौ च स्वमातरः ॥४७॥
नित्यकष्टा नरास्तत्र कलहश्च गृहे गृहे । नृपाम्लेच्छाः सुरापाश्च तथामंत्रिपुरोहिताः ॥४८॥
मनुष्यैश्च बलिस्तेषां मत्स्यैर्मांसैर्निरामिषः । पाषंडायासयोगेभ्यः प्रधाना गुणवार्तयोः ॥४९॥
कनिकैः कोलिलैर्मंदैर्व्याप्तं तैस्तु महीतलम् । ततोन्योन्यं प्रिया मूढा वनेवा नगरेषु च ॥५०॥
भक्ष्याभक्ष्यं समश्नंति मत्स्यमांसादिकं नराः । वने द्विजातयश्चान्ये भुंजते चानुपापकम् ॥५१॥
भक्तिमंतं पशुं चान्यत्सर्वे यांत्यपुनर्भवम् । पातयन्ति पितृन्पापाः सर्वे ते पूर्वदेवकाः ॥५२॥
पिशाचा राक्षसा ये च मर्त्यका गुह्यका ध्रुवम् । एते चाविनयप्रीता न देवा न च मानुषाः ॥५३॥

संजय उवाच

कथंच मर्त्यभावेषु लक्षं जानंति तात्त्विकाः । एतं मे संशयं नाथ दूरीकुरुत तत्त्वतः ॥५४॥

व्यास उवाच

कृतपापानुरूपास्तु द्विजातिष्वन्यजातिषु । असुरा राक्षसा प्रेताः स्वभावं न त्यजंति ते ॥५५॥
जाता ये चासुरामर्त्ये सदा ते कलहोत्सुकाः । कुहकाः कच्चराः क्रूराः विज्ञेया राक्षसा भुवि ॥५६॥
जनोद्विग्नादिकं दानं तथा देवार्चनं भुवि । उग्र भावाद्धनं लब्ध्वा राज्यं भुञ्जंति शाश्वतम् ॥५७॥
जयं शौर्यादिकं पुण्यं पुनःपापक्षयं व्रजेत् । एवमुर्व्यां तथा नाके नागलोके यमालये ॥५८॥

आगमों तथा संहिताओं का श्रवण नहीं करता है । वे मद्य मांस को प्रेमपूर्वक खाते-पीते हैं, पापी तथा भयङ्कर मांस भक्षी हो जाते हैं ॥४५॥ उन सबों का आचार भयङ्कर हो जाता है तथा वे सदा छल करते रहते हैं । वे अपने पुत्र, पिता, माता तथा गुरुजनों का पालन नहीं करते हैं ॥४६॥ भृत्य भी गुणी स्वामी की सेवा नहीं करते हैं । स्त्रियाँ अपने पति, श्वसुर तथा सासुओं की सेवा नहीं करती हैं ॥४७॥ वे सभी लोग सदा कष्ट में रहते हैं तथा प्रत्येक घर में कलह होता रहता है । राजागण म्लेच्छ तथा मदिरापान करने वाले हो जाते हैं और उनके मन्त्री तथा पुरोहित भी उसी प्रकार के हो जाते हैं । वे लोग निरामिष बलि पूजा मनुष्यों, मत्स्यों, भांस से करते हैं । पाषण्ड आयास तथा योगों की उनकी गुण तथा वार्ता में प्रधानता होती है ॥४९॥ धनिक, पंकिल (पापी) तथा मन्द पुरुषों से पृथिवी व्याप्त हो जाती है । उसके कारण वनों तथा नगरों में परस्पर में प्रिय मूर्खों का निवास होता है ॥५०॥ लोग भक्ष्य, अभक्ष्य, मत्स्य तथा मांस आदि खाने लगते हैं । वन में जाकर ब्राह्मण भी उन पापियों के यहाँ भोजन करते है ॥५१॥ भक्ति युक्त पशु तथा दूसरे सभी अपुनर्भव नरकों में चले जाते हैं । वे पापी पहले देवता रहे हुए अपने पितरों को भी नरक में गिरा देते हैं ॥५२॥ पिशाच, राक्षस, मर्त्यक, गुह्यक (यक्ष) ये सभी धृष्टता से प्रसन्न होते हैं देवता और मनुष्य नहीं ॥५३॥ **संजय ने कहा—** तात्त्विक पुरुष मनुष्यों में होने वाले लक्षणों को कैसे जानते हैं । हे नाथ ! मेरे इस संशय को आप दूर करें ॥५४॥ **व्यासजी ने कहा—** अपने पूर्वकृत पापों के अनुकूल होने वाले स्वभाव को ब्राह्मणों तथा अन्य जातियों में भी असुर, राक्षस तथा प्रेत अपने स्वभाव को नहीं त्यागते हैं ॥५५॥ जो असुर मनुष्य हो जाते हैं, वे सदा कलह करने के लिए तैयार रहते हैं । कुहक (मन में कपट रखने वाले) कच्चर (मलिन स्वभाव वाले) तथा क्रूर जीवों को सदा पृथिवी का राक्षस जानना चाहिए । वे सदा दान करते हैं, जिससे लोगों में उद्विग्नता आ जाय तथा वैसा ही देवार्चन करते हैं । अपनी उग्रता के कारण धन प्राप्त करके सदा राज्य भोगते हैं ॥५७॥ विजय, पराक्रम आदि से पुण्य तथा निष्पाप हो जाते हैं । इसीतरह से पृथिवी पर स्वर्गलोक में नागलोक में तथा

उग्रेण तपसा कश्चित्सुरत्वं लभते दिवि । वासुदेवं समाराध्य प्रह्लादः सुरपूजितः ॥५९॥
हरं तथान्धको दैत्यः स्तुत्वा तत्सभ्यकोभवत् । तस्यैव गणमुख्यत्वं लेभे भृंगी महाबलः ॥६०॥
एते चान्ये च बहवो बलिरिंद्रो भविष्यति । गच्छन्ति सद्गतिं तात इहामुत्र च सर्वदा ॥६१॥
केचिद्दैत्यकुले जाताः पृथिव्यां सुरसत्तमाः । भावयंति पितॄन्सर्वान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥६२॥
एकेनापि सुपुत्रेण कुलत्राणं च धीमता । एकोपि वैष्णवः पुत्रः कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥६३॥
जितेंद्रियोपि धर्मात्मा द्विजदेवार्चने रतः । क्षये धर्मे कलौ शेषे पुरे जनपदेषु च ॥६४॥
एको रक्षति धर्मात्मा पुरे ग्रामं जनं कुलम् । विज्ञातृमेदुरं चासीद्ब्राह्मणानां पुरं महत् ॥६५॥
तत्र सर्वे द्विजाः शश्वत्संध्योपासनतत्पराः । वेदपाठरता धीरा देवातिथिद्विजार्चकाः ॥६६॥
यज्ञव्रताग्निकर्माणः षट्कर्मपरिनिश्चयाः । अतिकृच्छ्रे च तेषां वै न पापे वर्तते मनः ॥६७॥
कुर्वंति सततं वीरा व्रतं यज्ञं सनातनम् । कदाचिद्दैवयोगाच्च गृहस्थश्च स कोविदः ॥६८॥
वह्नौ जुहोति विप्रर्षिराज्यं मंत्रेण मंत्रवित् । तस्मिन् काले च तस्यैव मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ॥६९॥
तत्प्रोज्झितुं गतः सोपि रक्षार्थं स्थाप्य चेटिकाम् । तस्यास्त्वनवधानेन शुना चाज्यं च भक्षितम् ॥७०॥
भिया तया ततः पात्रं स्वीयमूत्रेण संभृतम् । असंलक्ष्याजुहोदग्नौ स विप्रस्त्वरया ततः ॥७१॥
आश्चर्यं च ततो वह्नौ लक्षितं तेन तत्क्षणात् । कूट हेममयं साक्षात्स्वर्णं जांबूनदप्रभम् ॥७२॥
गृहीत्वा तन्मुदा विप्रः पापयोगं चकार ह । पप्रच्छविस्मयाद्दासीं कथमेतद्वद प्रिये ॥७३॥
मुदा तत्र यथा वृत्तं कथितं तु तया द्विज । ततो नित्यं यथाकालं तच्च तस्य प्रवर्तते ॥७४॥

यमलोक में उग्र तपस्या करके कोई भी देवत्व को प्राप्त कर लेता है । प्रह्लाद भगवान् वासुदेव की आराधना करके देवताओं से पूजित हुए ॥५८-५९॥ उसीतरह अन्धकासुर भगवान् शिव की आराधना करके उनका गण बन गया । महाबलवान् भृङ्गी नामक शङ्करजी का मुख्य गण अन्धकासुर ही हुआ ॥६०॥ इसतरह के इन सबों के अतिरिक्त बहुत से दैत्य हुए । बलि भी इन्द्र होने वाले हैं । हे तात ! इसतरह से ही जीव इस लोक में तथा परलोक में सद्गति को प्राप्त करते हैं ॥६१॥ कुछ देवश्रेष्ठ पृथिवी पर जन्म लेकर सैकड़ों तथा हजारों बार पितरों की पूजा करते हैं॥६२॥ एक भी बुद्धिमान पुत्र अपने वंश का उद्धार कर देता है । एक भी वैष्णव पुत्र अपने करोड़ों पूर्वजों का उद्धार कर देता है ॥६३॥ कलियुग के अन्त में धर्म का क्षय हो जाने पर नगर में अथवा जनपद में जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, ब्राह्मण तथा देवताओं की पूजा करने वाला एक भी धर्मात्मा, नगर, ग्राम तथा जनपद की रक्षा करता है । विज्ञातृमेदुर नामक ब्राह्मणों का महान ग्राम था ॥६४-६५॥ वहाँ के ब्राह्मण सदैव सन्ध्योपासन करते रहते थे । वेद पाठ करते थे तथा देवताओं एवं अतिथि की पूजा करते थे ॥६६॥ यज्ञ करते थे, व्रत करते थे तथा अग्निहोत्र करते थे एवं षट्कर्म करते थे । अत्यन्त विपत्ति में भी उन सबों का मन कभी पाप कर्म में प्रवृत्त नहीं होता था ॥६७॥ वे सदा सनातन व्रत तथा यज्ञ करते रहते थे । एकबार संयोग वशात् एक विद्वान् गृहस्थ ॥६८॥ घी से मन्त्र द्वारा होम कर रहा था । उस समय उसको भयङ्कर मूत्र कृच्छ्र का रोग उत्पन्न हुआ । उसकी रक्षा करने के लिए वह चेटी को नियुक्त करके लघुशङ्का (पेशाव) करने चला गया । दासी की अनवधानता के कारण घी को कुत्ता खा गया ॥६९-७०॥ भय के कारण दासी ने अपने मूत्र से घी के पात्र को भर दिया । उसे जाने बिना वह ब्राह्मण शीघ्रता से अग्नि में होम कर दिया ॥७१॥ उसने उस समय अग्नि में आश्चर्य देखा । उसने उसमें चमकते हुए सुवर्ण कूट (समूह) को देखा ॥७२॥ ब्राह्मण ने उस सुवर्ण पिण्ड को प्रसन्नता से ले लिया और पाप कर्म करने लगा । उसने अपनी दासी से कहा कि यह

समृद्धिरद्भुतो गेहे लोकविस्मयकारिणी। ततः परस्पराच्छ्रुत्वा सर्वैरेव च तत्पुरे ॥७५॥
कृतं कर्मदुराचारं श्रुत्वा लोभादसाधुभिः। गुरुलोभाच्च सुमहत्स्वांते पंकं विशत्यपि ॥७६॥
पंकादेवभयान्मोहान्मतिभ्रंशो भवत्ततः। अथकिल्बिषकूटेन दग्ध मेव पुरं च तत् ॥७७॥
स्त्रियोदुष्टा जना दुष्टाः सर्वे पापबलात्तदा। वृद्धो ज्ञाता द्विजस्तत्र तत्कार्ये न मतिं दधौ ॥७८॥
तस्य भार्या तदा साध्वी पुरुदुःखेन संयुता। भर्तारं कृच्छ्रसन्तप्ता पुरकार्यं जगाद सा ॥७९॥

ब्राह्मण्युवाच

कष्टं मे वर्तते नाथ दृष्ट्वा त्वां दुःखसंयुतम्। ग्रामाचारमिमं यद्वाप्यपरं कतुर्मर्हसि॥८०॥

व्यास उवाच

ततस्तत्रसदोषज्ञः स्मित्वा वचनमब्रवीत्।

द्विज उवाच

यस्तु जीवति पापेन त्यक्त्वाधर्मं परं हितम् ॥८१॥
स वैधेयो महाभागे प्रगच्छत्यपुनर्भवम्। एते विप्रा दुराचाराः सदारास्सपरिच्छदाः ॥८२॥
अतिपातकयोगाच्च महापातकसंमताः। सह पापेन महता प्रयास्यंति रसातलम्॥८३॥
अंतेऽपुनर्भवं प्राप्यापराधांतो नविद्यते। अहमेकोऽत्र तिष्ठमि स्वपुण्यपरिरक्षणात् ॥८४॥

व्यास उवाच

ततस्सा तमुवाचेदं लोकहास्यं वचस्तव। वक्तुमर्हसि नश्चाग्रे न पुरोन्यस्य कस्यचित् ॥८५॥

द्विज उवाच

यदि यास्यामि चान्यत्र इतोऽहं तत्क्षणात्प्रिये। सवित्तैः स्वजनैरेव पुरीयास्यत्यधोगतिम् ॥८६॥

कैसे हो गया ?॥७३॥ उसने प्रसन्नता पूर्वक उस वृत्तान्त को कह दिया। उसके बाद वह ब्राह्मण समयानुसार वैसा ही करने लगा ॥७४॥ उसके कारण उस घर में आश्चर्यित कर देने वाली समृद्धि हो गयी। उसके बाद उस नगर में एक दूसरे से उस बात को जानकर सभी लोग वैसा ही करने लगे ॥७५॥ उस बात को सुनकर सभी अज्ञानी दुष्ट दुराचारमय वैसा ही कर्म करने लगे। बहुत अधिक लोभ के कारण अन्तःकरण में बहुत बड़ा पाप प्रवेश कर जाता है ॥७६॥ उस पाप के कारण ही मति भी भ्रष्ट हो गयी। उस पाप समूह के कारण सारा नगर ही जल गया ॥७७॥ उस पाप के बल से स्त्रियाँ तथा सभी लोग दुष्ट हो गये। एक ज्ञानी वृद्ध इस पाप को नहीं करना चाहा ॥७८॥ उसकी पत्नी साध्वी थी और अत्यधिक दुःख से दुःखी थी। अपने पति को कष्ट से सन्तप्त देखकर नगर में होने वाले कार्य को उसने बतलाया ॥७९॥ **ब्राह्मणी ने कहा**— हे नाथ आप को दुःखी देखकर मुझे बहुत कष्ट है। इस गाँव में लोग जैसा कर्म करते हैं, वैसा ही अथवा कोई दूसरा कर्म आप कीजिये ॥८०॥ **व्यासजी ने कहा**— उसको सुनकर दोषों के जानकार वे ब्राह्मण बोले। **ब्राह्मण ने कहा**— अति पातक करने से महापातक होता है। महान् पाप से पापी रसातल में चले जाते हैं ॥८३॥ अन्त में अपुनर्भव नरक में जाने पर पापों का कभी अन्त नहीं होता है। मैं अपने पुण्य की रक्षा करने के लिए अकेला यहाँ रहता हूँ ॥८४॥ **व्यासजी ने कहा**— उसके बाद उसने कहा कि आपकी यह बात लोगों के लिए उपहासास्पद है। हमारे सामने आप कहते हैं दूसरे किसी के सामने इसे नहीं कहेंगे ॥८५॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे प्रिये ! यदि मैं यहाँ से कहीं अन्यत्र चला जाऊँ तो यह नगरी जनों और धनों के साथ विनष्ट हो जायेगी ॥८६॥ **व्यासजी ने कहा**— इसतरह से अत्यन्त प्रसन्नता से वह ब्राह्मण अपने धन को लेकर

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा परमप्रीतः संगृह्य च धनं स्वकम्। क्षिप्रं स च तया सार्धं ययौ सीमांतरं द्विजः ॥८७॥
स्थित्वा पश्यत्पुरी तावत्स्थिरं तिष्ठति पूर्ववत्। स चाह तं पतिं साध्वी पुरी चेयं न नश्यति ॥८८॥
विमृश्य तामुवाचेदं विप्रवर्यस्सुविस्मितः। किंनु तिष्ठति तत्रैव द्रव्यमस्मद्गृहाद्बहिः ॥८९॥
विचार्य सा यवं प्राह मया भ्रांत्या उपानहौ। नानीते तिष्ठतस्तत्र धारयिष्यामि किंनु वै ॥९०॥
एवमुक्त्वा पतिं साध्वी गृहीत्वा ते उपागता। पत्युरभ्याशतो दृष्टं पुरं निर्व्यथनं गतम् ॥९१॥
ततो विप्रादयो वर्णाः कच्चराः पुरवासिनः। तिष्ठंति नरके घोरे दुःखिताश्चापुनर्भवे ॥९२॥
कृच्छ्राद्यमपुरं यांति नास्ति तेषां च निष्कृतिः। पूतिगंधं ततो मेध्यं वर्जनीयं प्रकीर्तितम् ॥९३॥
पूर्ववद्भक्षणे प्रीतो ह्यद्य पापं करोति च। स्तेयशीलो निशाचारी बुधैर्ज्ञेयस्स वंचकः ॥९४॥
अबुधः सर्वकार्येषु अज्ञातः सर्वकर्मसु। समयाचारहीनस्तु पशुरेव सबालिशः ॥९५॥
एवमुष्ट्रादयस्संति भक्षादिनकुलादयः। हिंस्रो ज्ञातिजनोद्वेगीरते युद्धे च कातरः ॥९६॥
विघसादिप्रियो नित्यं नरः श्वाकीर्तितोबुधैः। चौर्यकर्मरतो नित्यं बहुमित्रप्रवंचकः ॥९७॥
मिथुने कलहो नित्यं मर्त्यस्तु परिकीर्तितः। प्रकृत्या चपलो नित्यं सदाभोजनचंचलः ॥९८॥
प्लवगः काननप्रीतो नरः शाखामृगो भुवि। सूचकोभाषया बुध्या स्वजनेन्यजनेषु च॥९९॥
उद्वेगजनकत्वाच्च सपुमानुरगः स्मृतः। बलवान्क्रांतशीलश्च सततं चानपत्रपः ॥१००॥
पूतिमांसप्रियो भोगी नृसिंहस्समुदाहृतः। तत्स्वनादेव सीदंति भीता अन्ये वृकादयः ॥१०१॥

अपनी पत्नी के साथ उस नगर की सीमा से बाहर चला गया ॥८७॥ वहाँ खड़ा होकर उसने देखा कि वह नगरी पहले के ही समान स्थित थी। उस साध्वी ने अपने पति से कहा कि नगरी तो विनष्ट नहीं हुयी ॥८८॥ विचार करके उस ब्राह्मण ने पत्नी से कहा कौन सी हमलोगों की वस्तु हमारे घर के बाहर छुटी हुयी हैं ॥८९॥ विचार करके उसने अपने पति से कहा भ्रमवशात् आपके दोनों जूतों के मैं वहाँ छोड़ आयी हूँ। वे ही वहाँ पड़े हैं क्या मैं उसे लाऊँ?॥९०॥ इसतरह से कहकर वह साध्वी उन दोनों जूतों को लेकर आयी अपने पति के समीप खड़ी होकर उसने देखा कि नगरी जल गयी ॥९१॥ उसके कारण सभी ब्राह्मण आदि मलिन लोग जो उस नगर में रहते थे वे अपुनर्भव नामक नरक में दुःखी होकर रहते हैं ॥९२॥ वे कष्टपूर्वक यमपुरी जाते हैं किन्तु उनका उद्धार नहीं होता। इसीलिए अमेध्य पूतिग्रंथ वर्जित कहा गया है ॥९३॥ पहले के ही समान भक्षण करने के कारण जो आज भी पाप करता है जो चोरी करता है, तथा रात्रि में संचरण करता है उसे विज्ञों को वंचक समझना चाहिए ॥९४॥ जो सभी कार्यों में अज्ञ होता है तथा सभी कर्मों में अज्ञात होता है, जो नियमों का पालन नहीं करता है वह मूर्ख पशु ही होता है।॥९५॥ इसीतरह ऊँट आदि होते हैं तथा भक्षादि नेवले आदि होते हैं। जो अपने ज्ञाति जनों को उद्विग्न करता है, वह पूर्वजन्म का हिंस्र जीव होता है। उद्वेजक कर्मरत तथा युद्ध में कायर ॥९६॥ विघस पदार्थों को प्रेम पूर्वक खाने वाला पूर्वजन्म का कुत्ता होता है। सदैव चोरी करने वाला तथा जिसके बहुत मित्र होते हैं, वह प्रवञ्चक होता है।॥९७॥ जिन पति-पत्नियों में सदा कलह होता है वह मनुष्य कहा गया है जो स्वभाव से चंचल होता है तथा भोजन का लालची होता है जो कूदता रहता है, तथा वन में प्रसन्न रहता है, वह पूर्वजन्म का वानर होता है। जो अपने लोगों को तथा दूसरों को भाषा तथा बुद्धि से सूचित करता है, तथा उन सबों को उद्विग्न करता है वह पूर्वजन्म का सांप होता है। वह मनुष्य पूर्वजन्म का सिंह होता है जो, बलवान् उछलते रहने वाला, सदा निर्लज्ज रहने

द्विरदादि नरा ये च ज्ञायंते दूरदर्शिनः । एवमादिक्रमेणैव विजानीयान्नरेषु च ॥१०२॥
सुराणां लक्षणं ब्रूमो नररूपंव्यवस्थितम् । द्विजदेवातिथीनां च गुरुसाधुतपस्विनाम् ॥१०३॥
पूजा तपोरतो नित्यं धर्मशास्त्रेषु नीतिषु । क्षमाशीलो जितक्रोधः सत्यवादी जितेंद्रियः ॥१०४॥
दयालुर्दयितो लोके रूपवान्मधुरस्वरः । वागीशः सर्वकार्येषु गुणी दक्षो महाबलः ॥१०५॥
साक्षरश्चापि विद्वांश्च गीतनृत्यार्थतत्त्ववित् । आत्मविद्यादिकार्येषु सर्वतंत्रीस्वरेषु च ॥१०६॥
हविष्येषु च सर्वेषु गव्येषु च निरामिषे । सद्योगास्वादद्रव्ये च प्रत्यग्रे चातिशोभने॥१०७॥
गंधमाल्येषु वस्त्रेषु शास्त्रेष्वाभरणेषु च। संप्रीतश्चातिथौ दाने पार्वणादिषु कर्मसु ॥१०८॥
स्नानदानादिभिः कार्ये व्रतैर्यज्ञैः सुरार्चनैः । कालो गच्छतिपाठैश्च नक्लीबं वासरं भवेत् ॥१०९॥
अयमेव मनुष्याणां सदाचारो निरंतरम्। देववन्मानवाचारो गीयते मुनिसत्तमैः ॥११०॥
किंतु सत्त्वाधिको देवो मनुष्यो भीत एव च। गंभीरः सर्वदा देवः सदैव मानवो मृदुः ॥१११॥
द्वयोःस्तुत्या च संप्रीतिर्नदैत्यादौ भवेत्किल । प्रीतिभावं परं सौख्यं सौहृदंसुकृतं शुभम् ॥११२॥
दैवमानुषयोरेव दैत्यराक्षसयोस्तथा । प्रेतादीनां च प्रेतेषु पशौ प्रीतिः पशोरपि॥११३॥
काकादयः स्वजातौ च तथान्ये च स्वजातिषु। प्रीता भवंति चाप्रीता विद्या तेषां च लक्षणम्॥११४॥
एवं पुण्यावशेषेण सविशेषासु जातिषु। प्रियाप्रियं विजानीयात्पुण्यापुण्यं गुणागुणम् ॥११५॥
दंपत्योर्नसुखं किंचिज्जातिभेदान्नृणां भुवि। स्वजातिषु भवेत्प्रीतिर्मुक्तौ वा निरयेपि वा ॥११६॥

वाला ॥९८-१००॥ तथा जो कच्चा मांस खाता है उसकी ध्वनि से ही वृक आदि डर जाते हैं ॥१०१॥ जो दूर देखते हैं, वे मनुष्य पूर्व जन्म के हाथी जाने जाते हैं । इसीतरह क्रमशः नरों को जानना चाहिए ॥१०२॥ मनुष्य रूप से रहने वाले देवताओं का मैं लक्षण वतलाता हूँ । ब्राह्मण, देवता, अतिथि, गुरु, साधुजन तथा तपस्वियों की पूजा करने वाले, तपस्या करने वाले, धर्मशास्त्रों तथा नीतिज्ञों में रत रहने वाले, क्षमाशील, अपने क्रोध को जीत लेने वाले, सत्य बोलने वाले, बोलने में निपुण, सभी कार्यों को करने में गुणी तथा दक्ष, महावलवान् ॥१०३-१०५॥ साक्षर, विद्वान् गीत तथा नृत्य के तत्त्वों को जानने वाला, आत्मविद्या आदि के कार्यों में सभी तंत्रों (शास्त्रों) तथा स्वरों में, सभी प्रकार के हविष्यों तथा मांस रहित हव्य पदार्थों में, अच्छे स्वाद तथा द्रव्य में तथा सुन्दर ज्ञान में॥१०६-१०७॥ चन्दन, माला, वस्त्र, अलङ्कार के विषय में प्रसन्न रहने वाला पार्वण श्राद्ध आदि कर्मों में अतिथियों को दान देने में ॥१०८॥ स्नान तथा दान आदि कार्य में, व्रत तथा यज्ञ आदि के द्वारा देवताओं के पूजन द्वारा एवं पाठ करने में जिसका समय बीतता है, जिसका दिन व्यर्थ ही नहीं बीतता है । वह पूर्व जन्म का देवता होता है ॥१०९॥ यही सदाचार मानवों का भी होता है । श्रेष्ठ मुनियों ने मनुष्यों का आचार देवताओं के ही समान वतलाया है ॥११०॥ किन्तु देवताओं में सत्त्वगुण अधिक होता है, मनुष्य में भय होता है । देवता सदा गम्भीर होता है और मनुष्य मृदु होता है ॥१११॥ इन दोनों को प्रशंसा करने पर प्रसन्नता होती है, दैत्यों में ऐसा नहीं होता है । देवता तथा मनुष्यों में ही परस्पर में सौख्य, प्रेमभाव, सौहार्द, पुण्य, कल्याण होते हैं । दैत्यों और राक्षसों में परस्पर में प्रेम आदि होते हैं । प्रेतों आदि की प्रीति प्रेतों में ही होती है और पशु की प्रीति पशु में होती है ॥११३॥ कौओं आदि का प्रेम अपनी जाति में ही होता है तथा दूसरे जीव भी अपनी जाति वालों से ही प्रेम रखते हैं । तथा प्रसन्न एवं अप्रसन्न होते हैं । देवताओं और मनुष्यों में विद्या पायी जाती है ॥११४॥ इसीतरह पुण्य विशेष के कारण विशिष्ट जातियों में, प्रियत्वाप्रियत्व, पुण्य, अपुण्य, गुण तथा दोष आदि होते हैं ॥११५॥ भिन्न-भिन्न जाति के पति और

अतिपुण्याल्लभेदायुः शोभनाः पुण्यकारिणः । पापात्मानो लभंतेऽन्तं ये च दैत्यादयो नराः ॥११७॥
कृते जाताः सुरा भूमौ न दैत्याश्चान्यजातयः । त्रेतायामेकपादं च द्विपदं द्वापरे युगे ॥११८॥
संध्यायां च कलेरेव सर्वपादं च संकुलम् । देवादीनांभवेज्जातं भारतं यत् प्रवर्तितम् ॥११९॥
ये ते दुर्योधनस्यैव योधाः सैन्यादयस्तथा । ते च दैत्यादयः सर्वे ये च कर्णादयो भुवि॥१२०॥
गांगेयो वसुमुख्यश्च द्रोणो देवमुनिः प्रभुः । अश्वत्थामा हरः साक्षाद्धरिर्नंदकुलोद्भवः ॥१२१॥
पंचेन्द्राः पांडवा जाता विदुरो धर्म एव च । गांधारी द्रौपदी कुंती चैतादेव्यो धरातले ॥१२२॥
देवदैत्याः कलेर्मध्ये दैत्याश्शेषे च मानवाः । उत्पत्स्यंते सदा प्रेताः क्रव्यादाः पशुपक्षिणः ॥१२३॥
तेषां च कुलटा दासी नित्यकष्टा यवीयसी । नित्यं द्वंद्वेषु संप्रीत्या तेषमाचारभाषिणी ॥१२४॥
किल्बिषेषु च सर्वेषु कलहेन्यायकर्मणि । रता दैत्यादयो ये ते सर्वे निरयगामिनः ॥१२५॥

वैशंपायन उवाच

दैत्यादीनां मृषाभावात्सुरत्वं नसुरालयम् । कथं भोग्यं कथं सौक्ष्म्यमारोग्यं बलसंचयम् ॥१२६॥
राज्यमायुस्तथाकीर्तिरभीष्टं दयितं बलम् । नीतिविद्यादिकं भाव्यं जन्मवृद्धं सनातनम् ॥१२७॥
दानाध्ययनकर्माणि यज्ञादि च कथं प्रभो । एतदाप्ताय शिष्याय मह्यं भो वक्तुमर्हसि ॥१२८॥

व्यास उवाच

दैत्यानां साहसादेव तपोभवति निश्चितम् । व्रतं यज्ञादिकं चैव संप्रीतिः स्वजनस्य च ॥१२९॥
यो दांतो विगुणैर्मुक्तो नीतिशास्त्रार्थतत्त्वगः । एतैश्च विविधैः पूतः सभवेत्सुरलक्षणः ॥१३०॥

पत्नी होने पर थोड़ा सा भी सुख नहीं मिलता है । मुक्ति अथवा नरक में अपनी ही जाति वालों में प्रेम होता है॥११६॥ अत्यन्त पुण्य के ही होने पर आयु की प्राप्ति अच्छे और पुण्यवान् जीवों को होती है । जो मनुष्य रूप में दैत्य होते हैं उनका नाश हो जाता है ॥११७॥ सत्ययुग में देवता भूमि पर उत्पन्न होते है, दैत्य और दूसरी जाति के नहीं । त्रेता में पाप का एक पैर रहता है, द्वापर में उसके दो पाद हो जाते हैं । संध्याकाल और कलियुग में अधर्म के सभी पैर जुट जाते हैं । जिससे भारत की प्रवृत्ति हुयी वह देवताओं आदि से ही हुयी ॥११८-११९॥ दुर्योधन के जो योद्धा तथा सेना आदि में थे वे कर्ण आदि सवके सव दैत्य थे ॥१२०॥ भीष्म प्रधान वसु थे, द्रोण देवमुनि थे। अश्वत्थामा साक्षात् शङ्कर स्वरूप थे, श्रीहरि नंद वंश के थे ॥१२१॥ पाँचो पाण्डव पाँच इन्द्र थे, धर्म ही विदुर हुए थे । गांधारी, द्रौपदी, कुन्ती ये सभी देवियाँ धरातल पर अवतीर्ण थीं ॥१२२॥ कलियुग के आदि में देवता बीच में दैत्य पृथिवी पर अवतीर्ण होते हैं । कलियुग के अन्त में मनुष्य होते हैं । जो प्रेत होते हैं वे सदैव मांसभक्षी पशु एवं पक्षी रूप से अवतीर्ण होंगे ॥१२३॥ उन सवों में जो कुलटा दासी होती है तथा जो छोटी स्त्री होती है, वह सदा कष्टप्रद होगी । वह कलह में प्रेम रखती है और आचार का उपदेश करती है ॥१२४॥ सभी पापों को करने वाले, कलह करने में तथा न्याय करने में जो दैत्य आदि लगे रहते हैं, वे नरक में जाते हैं ॥१२५॥ **वैशम्पायन ने कहा—** दैत्य आदि तो सदा मृषाभाषी होते हैं, उनमें न देवत्व होता है और न वे स्वर्गलोक में जाते हैं । उन सवों को भोग्य पदार्थों की प्राप्ति, सौख्य, आरोग्य, बल ॥१२६॥ राज्य, आयु, कीर्ति, अनीति तथा प्रिय वल तथा नीति, विद्या आदि कैसे प्राप्त होते हैं । उनको ये सभी चीजें जन्म से ही समृद्ध होती है क्या ?॥१२७॥ वे दान, अध्ययन तथा यज्ञादि कमों को कैसे करते हैं ? इन सारी बातों को आप वतलाएँ मैं आपका आप्त (प्रामाणिक) शिष्य हूँ॥१२८॥ **व्यासजी ने कहा—** दैत्यों में साहस होने के कारण वे निश्चित रूप से तप करते हैं । उन्हें अपने लोगों में प्रेम होता है तथा वे व्रत, यज्ञ आदि भी करते हैं ॥१२९॥ जो दान्त, दुर्गुणों से रहित तथा नीतिशास्त्र के तत्त्व को

पुराणागमकर्माणि नाकेष्वत्र च वै द्विज । स्वयमाचरते पुण्यं सधरोद्धरणक्षमः ॥१३१॥
विशेषाद्वैष्णवं दृष्ट्वा प्रीयते पूजयेच्च यः । विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सधरोद्धरणक्षमः ॥१३२॥
षट्कर्मनिरतो विप्रस्सर्वयज्ञरतस्सदा । धर्माख्यानप्रियो नित्यं सधरोद्धरणक्षमः ॥१३३॥
विश्वासघातिनो ये च कृतघ्ना व्रतलोपिनः । द्विजदेवेषु विद्विष्टाः शातयंति धरां नराः ॥१३४॥
ये च मद्यरताः पापा द्यूतकर्मरतास्तथा । पाषंडपतितालापाः शातयंति धरां नराः ॥१३५॥
सुकर्मरहिता ये च नित्योद्वेगाश्चनिर्भयाः । स्मृतिशास्त्रार्थकोद्विग्नाश्शातयंति धरां नराः ॥१३६॥
निजवृत्तिं परित्यज्य कुर्वंति चाधमां च ये । गुरुनिंदारता द्वेषाच्छातयंति धरां नराः ॥१३७॥
दातारं ये रोधयंति पापके प्रेरयंति च । दीनानाथान्पीडयंति शातयंति धरां नराः॥१३८॥
एते चान्ये च बहवः पापकर्मकृतो नराः । पुरुषान्पातयित्वा तु शातयंति धरां नराः ॥१३९॥
य इदं शृणुयाद्रम्यं गुह्याद्गुह्यं परंहितम् । न तस्यदुर्गतिर्दुःखं दौर्भाग्यं दीनता भुवि॥१४०॥
न दैत्यादौ भवेज्जन्म स्वर्लोकि शाश्वतं सुखम् । नाकाले मरणं तस्य न च पापैः प्रलिप्यते॥१४१॥
इह सर्वजनाध्यक्ष स्त्रिदिवे त्रिदिवेश्वरः । कल्पं कल्पं दिवं भुक्त्वा मोक्षमार्गं व्रजत्यसौ॥१४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुण्यव्यक्तिर्नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

जानने वाला होता है, वह इन गुणों से पवित्र होकर देवता हो जाता है ॥१३०॥ हे द्विज ! जो पुराण तथा आगम प्रोक्त कर्मो को इस लोक में तथा परलोक में करता है, वह पृथिवी का उद्धार करने में समर्थ होता है ॥१३१॥ जो विशेष रूप से किसी वैष्णव को देखकर प्रसन्न होता है तथा उसका पूजन करता है वह सभी पापों से रहित होकर पृथिवी का उद्धार करने में समर्थ होता है ॥१३२॥ जो ब्राह्मण सदा षट्कर्म करता है, सभी यज्ञों को करता है तथा धार्मिक कथाओं में प्रेम रखता है वह पृथिवी का उद्धार करने में समर्थ होता है ॥१३३॥ जो विश्वासघाती, कृतघ्न तथा व्रत का लोप करने वाले होते हैं । जो ब्राह्मणों तथा देवताओं से विद्वेष रखते हैं, वे मनुष्य पृथिवी को क्षीण करते हैं ॥१३४॥ मद्य पीने वाले, पापी, जुआड़ी, पाखण्डी, पतित, वकवादी मनुष्य पृथिवी को क्षीण करते हैं ॥१३५॥ जो कभी सुकर्म नहीं करते, नित्य ही उद्वेग युक्त होते हैं तथा निर्भय होते हैं, स्मृतियों तथा शास्त्रार्थो को उद्विग्न करने वाले हैं वे मनुष्य पृथिवी को क्षीण बनाते हैं ॥१३६॥ जो अपनी वृति का परित्याग करके अधम वृत्ति को अपनाते हैं, द्वेष के कारण गुरुजनों की निन्दा करते हैं, वे पृथिवी को क्षीण बनाते हैं ॥१३७॥ जो दान देने वाले को रोकते हैं और पाप करने के लिए प्रेरित करते हैं, दीनों तथा अनाथों को दुःख देते हैं, वे मनुष्य पृथिवी को क्षीण बनाते हैं॥१३८॥ ये सभी तथा बहुत से दूसरे पापी मनुष्य अपने पूर्वजों का पतन कराकर पृथिवी को क्षीण करते हैं॥१३९॥ जो लोग इस मनोहर और अत्यन्त गोपनीय, कल्याणकारी आख्यान सुनते हैं उनको न तो दुःख होता है और न उनकी दुर्गति होती है । उनको पृथिवी पर दुर्भाग्य तथा दीनता भी नहीं होती है ॥१४०॥ उनलोगों का दैत्य आदि योनियों में जन्म नहीं होता है, स्वर्ग में उनको शाश्वत सुख मिलता है । उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती है और उसका पाप से संवन्ध भी नहीं होता है ॥१४१॥ वह इस लोक में सभी लोगों का स्वामी होता है, स्वर्ग में वह इन्द्र होता है । अनेक कल्पों तक स्वर्गलोक का भोग करके वह मुक्त हो जाता है ॥१४२॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पुण्य विवेचन नामक छिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७६।।

सतहत्तरवाँ अध्याय

वैशंपायन उवाच

प्रभवत्ययमाकाशे नित्यं द्विजवरप्रभो । कोयंकोवा प्रभावोस्य कुत्र जातो घृणीश्वरः ॥१॥
किं करोति हि कार्यं वै यतो रश्मिमयो भृशम् । देवैर्मुनिवरै स्सिद्धैश्चारणैर्दैत्यराक्षसैः ॥२॥
निखिलैर्मानुषैः पूज्यः सदैव ब्राह्मणादिभिः ।

व्यास उवाच

परमं ब्रह्मणस्तेजो ब्रह्मदेहाद्विनिस्सृतम् ॥३॥
साक्षाद्ब्रह्ममयं विद्धि धर्मकामार्थमोक्षदम् । मयूखैर्निर्मलैः कूटमतिचंडं सुदुःसहम् ॥४॥
दृष्ट्वा प्रदुद्रुवुर्लोकाः करैश्चंडैः प्रपीडिताः । ततश्च सागराः सर्वे वरनद्यो नदादयः ॥५॥
शुष्यंति जंतवस्तत्र म्रियंते चातुरा जनाः । अथ शक्रादयो देवा ब्रह्माणं समुपागताः ॥६॥
इममर्थं तदा प्रोचु र्देवांश्च विधिरब्रवीत् ।

ब्रह्मोवाच

आदिर्ब्रह्मतनोर्देवाः सत्त्वगोजनकः प्रभुः ॥७॥
अयं रजोमयः साक्षात् सुधांशुस्तनुमध्यगः । एताभ्यां पालिता लोकास्त्रैलोक्ये सचराचराः ॥८॥
दिव्योपपादका देवा ये वात्रैव जरायुजाः। अंडजाः स्वेदजाश्चैव ये वात्रैवोद्भिज्जादयः ॥९॥
सूर्यस्यास्य प्रभावं तु वक्तुमेव न शक्नुमः । अनेन रक्षिता लोका जनिताः पालिता ध्रुवम्॥१०॥
अस्यैव सदृशो नास्ति सर्वेषां परिरक्षणात् । यं च दृष्ट्वाप्युषः काले पापराशिः प्रलीयते ॥११॥

सूर्य का माहात्म्य वर्णन, सङ्क्रान्ति आदि के पर्व पर दान देने की विधि, अर्कसप्तमी व्रत के विधान का वर्णन

वैशम्पायन ने पूछा— यह जो आकाश में उदित होता है वह कौन है ? इसका प्रभाव क्या है ? यह रश्मियों का स्वामी किससे उत्पन्न हुआ है ?॥१॥ यह कौन सा कार्य करता है जिसके कारण यह रश्मिमय है ? इसकी पूजा देवता मुनिश्वर, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस, सभी मनुष्य तथा सभी ब्रह्मर्षि ब्राह्मणों के द्वारा की जाती हैं। **व्यासजी ने कहा—** यह ब्रह्म का सर्वश्रेष्ठ तेज है, यह परब्रह्म के शरीर से निकला है ॥२-३॥ यह साक्षात् ब्रह्म स्वरूप है, यह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है । यह निर्मल किरणों का समूह है, यह अत्यन्त प्रचण्ड तथा दुःसह है ॥४॥ सर्वप्रथम इसके प्रचण्ड किरणों को देखकर सभी जीव भाग चले । उसी से सभी सागर श्रेष्ठ नद और नदियाँ सूख जाते थे । रोगी जीव तथा दूसरे जीव मर जाते थे । उसके बाद इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजी के पास गये ॥५-६॥ और इस बात को ब्रह्माजी को बतलाये तो ब्रह्माजी ने कहा **ब्रह्माजी ने कहा—** देवताओं यह ब्रह्म के शरीर का आदि ओजमय सत्त्व है ॥७॥ ब्रह्म के मध्य शरीर से निकलने वाला चन्द्रमा रजोगुणमय हैं । इन दोनों से ही त्रैलोक्य के सभी जीव पालित होते हैं ॥८॥ दिव्य उपकरण से युक्त इसमें सभी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्रिज इत्यादि हैं । अर्थात् इन सबों का यही आश्रय है । सूर्य के प्रभाव को हम भी नहीं बतला सकते हैं । ये ही लोकों को उत्पन्न करने वाले, रक्षा करने वाले तथा पालन करने वाले हैं ॥९-१०॥ ये ही सबों की रक्षा करते हैं, अतएव इनके सामन कोई नहीं है । इनका ही उषःकाल में दर्शन करने से पाप राशि का नाश हो जाता है ॥११॥

तमाराध्य जना मोक्षं साधयंति द्विजातयः । संध्योपासनकालेतु विप्रा ब्रह्मविदः किल ॥१२॥
उद्वाहवो भवंत्येव ते च देवप्रपूजिताः । अस्यैव मंडलस्थां च देवीं संध्यास्वरूपिणीम् ॥१३॥
समुपास्य द्विजास्सर्वे लभंते स्वर्गमोक्षकौ । धरायां पतिततोच्छिष्टाः पूतास्ते चास्य रश्मिभिः॥१४॥
संध्योपासनमात्रेण कल्मषात्पूततां व्रजेत् । दृष्ट्वा चांडालकं गोघ्नं पतितं कुष्ठसंगतम् ॥१५॥
महापातकसंकीर्णमुपपातकसंवृतम् । पश्यंति ये नरास्सूरं ते पूता गुरुकिल्बिषात्॥१६॥
अस्योपासनमात्रेण सर्वरोगात्प्रमुच्यते । नांधत्वं न च दारिद्र्यं न दुःखं न च शोच्यताम्॥१७॥
लभते च इहामुत्र समुपास्य विरोचनम् । अदृष्टा नैवलोकैश्च देवाहरिहरादयः ॥१८॥
ध्यानरूपप्रगम्यास्ते दृष्टो देवो ह्ययं स्मृतः।

देवा ऊचुः

अस्तु प्रसादनाराध्यश्चास्तूपासनपूजनम् ॥१९॥
अस्यैव दर्शनं ब्रह्मन् प्रलयानलसंमितम्। सर्वे नरादयस्सत्त्वा मृतावस्थां गता भुवि ॥२०॥
अस्य तेजः प्रभावेण प्रणष्टास्सागरादयः । न समर्था वयं सोढुं कथमन्ये पृथग्जनाः॥२१॥
तस्मात्तव प्रसादाच्च पूजयामो यथारविम् । यजंति च नरा भक्त्या तदुपायो विधीयताम् ॥२२॥

व्यास उवाच

देवानां वचनं श्रुत्वा गतो ब्रह्मा खगेश्वरम्। गत्वा स्तोतुं समारेभे सर्वलोकहिताय वै ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

देवत्वं सर्वलोकस्य चक्षुर्भूतो निरामयः। ब्रह्मरूपधरः साक्षाद्दुष्प्रेक्ष्यः प्रलयानलः॥२४॥

इनकी ही आराधना करके ब्राह्मण आदि मुक्त हो जाते हैं। ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण सन्ध्योपासन की वेला में इनकी ही उपासना करते हैं ॥१२॥ लोग जो इनकी उपासना हाथ को ऊपर उठाकर करते है, उससे ही इनकी पूजा हो जाती है। इनके ही मण्डल में सन्ध्योपासन स्वरूपिणी गायत्री देवी विद्यमान हैं ॥१३॥ उनकी ही उपासना करके सभी द्विज स्वर्ग तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। पृथिवी पर गिरने वाली इनकी उच्छिष्ट रश्मियाँ पवित्र हैं ॥१४॥ सन्ध्योपासन करने मात्र से ब्राह्मण निष्पाप हो जाते हैं। चाण्डाल, गोहत्यारा, पतित, कुष्ठी ॥१५॥ महापातकी तथा उपपातक युक्त मनुष्यों को देखने वाले भी जीव सूर्य का दर्शन करके महान् पातक से मुक्त हो जाते हैं ॥१६॥ सूर्य की उपासना करने मात्र से ही मनुष्य सभी रोगों से मुक्त हो जाता है। उसको दारिद्र्य, अन्धत्व, दुःख तथा शोक नहीं होते हैं ॥१७॥ वह इस लोक तथा परलोक में सूर्य की उपासना करके ही जिन सबों को मनुष्यों ने देखा भी नहीं है उन हरिहर आदि देवताओं को प्राप्त कर लेता है। ये देवता तो ध्यान रूप से बतलाये गये हैं किन्तु सूर्य देव तो दिखायी देते हैं। **देवताओं ने कहा—** हे ब्रह्मन् सूर्यदेव को प्रसन्न करना, उपासना, आराधना और पूजन तो छोड़ दीजिये ॥१९॥ इनका दर्शन ही प्रलयाग्नि के समान है। पृथिवी के सभी मनुष्य आदि जीव मृतप्राय हो गये हैं ॥२०॥ इनके तेज के प्रभाव से सागर आदि प्रणष्ट हो गये हैं। इनके तेज को सहने में हमलोग ही समर्थ नहीं है, दूसरे जीव कैसे समर्थ हो सकते हैं ?॥२१॥ जिससे कि आपकी कृपा से इनकी पूजा हमलोग कर सकें, मनुष्य भी भक्ति पूर्वक इनकी पूजा कर सकें ऐसा आप कोई उपाय कीजिये ॥२२॥ **व्यासजी ने कहा—** देवताओं की बात को सुनकर ब्रह्माजी सूर्य के पास गये और जाकर सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करने के लिए उनकी स्तुति करने लगे। **ब्रह्माजी ने कहा—** हे देव! आप सम्पूर्ण जीवों के निरोग नेत्र स्वरूप हैं; साक्षात् ब्रह्मरूपधारी तथा प्रलयाग्नि के समान दुष्प्रेक्ष्य हैं ॥२३-२४॥

सर्वदेवस्थितस्त्वं हि सदा वायुसखस्तनौ । अन्नादिपाचनं त्वत्तो जीवनं च भवेद् ध्रुवम्॥२५॥
उत्पत्तिप्रलयौ देव त्वमेको भुवनेश्वरः। त्वदृतेसर्वलोकानां दिनैकं नास्तिजीवनम् ॥२६॥
प्रभुस्त्वं सर्वलोकानां त्राता गोप्ता पिता प्रसूः। चराचराणां सर्वेषां त्वत्प्रसादाद्धृतं जगत् ॥२७॥
देवेषु त्वत्समो नास्ति भगवंस्त्वखिलेषु च । सर्वत्र तेस्तिसद्भावस्त्वयैव धारितं जगत् ॥२८॥
रूपगंधादिकारी त्वं रसानांस्वादुता त्वया । एवंविश्वेश्वरः सूरो निखिलस्थितिकारकः ॥२९॥
तीर्थानां पुण्यक्षेत्राणां मखानां जगतः प्रभो। त्वमेकः प्रयतो हेतुस्सर्वसाक्षी गुणाकरः॥३०॥
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च हर्ता पाता सदोत्सुकः। ध्वांतपंकमयघ्नश्च दारिद्र्य दुःखनाशनः ॥३१॥
प्रेत्येहच परोबंधुः सर्वज्ञः सर्वलोचनः । त्वदृते सर्वलोकानामुपकारी नविद्यते ॥३२॥

आदित्य उवाच

पितामह महाप्राज्ञ विश्वेन्द्र विश्वभावक । ब्रूहि शीघ्रं परं यत्ते करिष्यामि मतं विधे ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

मयूखस्त्वति चंडश्च लोकानामतिदुःसहः। यथैवमृदुतामेति तथा कुरु सुरेश्वर ॥३४॥

आदित्य उवाच

किरणाः कोटिकोटि में लोकनाशकराः पराः। नचाभीष्टकरा लोके प्रयोगाच्छिन्धि तान् प्रभो ॥३५॥

व्यास उवाच

ततो विरिंचिना तूर्णं रविवाक्यवशाद् ध्रुवम् । आहूय विश्वकर्माणं कृत्वावज्रमयीं भ्रमिम् ॥३६॥

आप सर्वदेव स्वरूप हैं। अग्नि ही आपके दोनों स्तन हैं। आप ही अन्न इत्यादि को पकाते हैं जिससे कि सभी जीवों का जीवन चलता है ॥२५॥ हे भुवनेश्वर ! आप ही जगत् की सृष्टि और प्रलय करते हैं। आपके बिना किसी भी जीव का जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता है ॥२६॥ आप ही सभी जीवों के स्वामी, रक्षक, पिता तथा माता हैं। आपकी ही कृपा से सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् बचा हुआ है ॥२७॥ हे भगवन् ! देवताओं में कोई भी आपके समान नही है। आपका सर्वत्र सद्भाव है, आपने ही जगत् को धारण किया है ॥२८॥ आप ही रूप तथा गन्ध को उत्पन्न करने वाले है आपसे ही रसों में स्वादुता आती है। इस तरह आप विश्वेश्वर है, तथा सम्पूर्ण जगत् की स्थिति बनाये रखने वाले हैं ॥२९॥ हे प्रभो ! आप जगत् के तीर्थों, क्षेत्रों और यज्ञों के एकमात्र निश्चित कारण हैं सबों के साक्षी और गुणों के आकर है ॥३०॥ आप सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वहर्ता तथा सबों के सदा उत्सुकता पूर्ण रक्षक हैं। आप अन्धकार और कीचड़ तथा रोगों का विनाश करने वाले हैं, दरिद्रता तथा दुःख का विनाश करने वाले हैं ॥३१॥ इसलोक में तथा परलोक में आप बन्धु है, सर्वज्ञ तथा सबों के नेत्र हैं। आपको छोड़कर कोई भी सम्पूर्ण लोकों का उपकार करने वाला दूसरा नहीं है ॥३२॥ **आदित्य बोले—** हे महाप्रज्ञ ! विश्व के स्वामिन् तथा विश्व का कल्याण करने वाले पितामह ! आप अपने अभिमत अर्थ को शीघ्र बतलायें मैं आपके अभिमत कार्य को करूँगा ॥३३॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** आपकी किरणे अत्यन्त प्रखर हैं, लोकों के लिए अत्यन्त दुःसह है। हे सुरेश्वर ! आपकी किरणों में जिसतरह से मृदुता आ जाय वैसा ही आप करें ॥३४॥ **आदित्य ने कहा—** मेरी करोड़ों किरणें लोकों का नाश कर देने वाली हैं, वे संसार के अभीष्ट अर्थ की साधिका नहीं है, अतएव हे प्रभो ! आप इन किरणों को छँटवा दें ॥३५॥ **व्यासजी ने कहा—** उसके वाद सूर्य की वातों को सुनकर ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा को बुलाकर वज्रमय भ्रमि यंत्र को बनाकर ॥३६॥ प्रलयाग्नि के समान जो सूर्य की किरणे थीं उन सबों को छँटवा दिया। उन किरणों से ही

विच्छेद च रवेर्भानून् प्रलयानलसन्निभान् । तैरेव रचितं तत्र विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३७॥
अमोघं यमदंडं च शूलं पशुपतेस्तथा । कालस्य च परः खड्गश्शक्तिर्गुरुप्रमोदिनी ॥३८॥
चंडिकायाः परं शस्त्रं विचित्रं शूलकं तथा । चक्रे ब्रह्माज्ञयाशीघ्रं तेनैव विश्वकर्मणा ॥३९॥
सहस्रकिरणं शिष्टमन्यच्चैव प्रशातितम् । अजनोपायभावेन पुनश्च कश्यपान्मुने ॥४०॥
अदितेर्गर्भसंजात आदित्य इति वैस्मृतः । अयं चरति विश्वांते मेरुश्रृंगं भ्रमत्यपि ॥४१॥
सदोर्ध्वं दिनरात्रं च धरण्या लक्षयोजने । ग्रहा श्चंद्रादयस्तत्र चरंति विधिनोदिताः ॥४२॥
सूरः संचरते मासान्द्वादशद्वादशात्मकः । संक्रमादस्य संक्रांतिः सर्वैरेव प्रतीयते ॥४३॥
तासु यद्वा फलं ब्रूमो लोकानां निखिलं मुने । धनुर्मिथुनमीनेषु कन्यायां षडशीतयः ॥४४॥
वृषवृश्चिककुंभेषु सिंहो विष्णुपदीस्मृता । तर्पणं चाक्षयं विद्धि दानं देवार्चनं तथा ॥४५॥
षडशीतिसहस्राणि षडशीतौ फलं भवेत् । विष्णुपद्यां तु लक्षं तु अयनेकोटिकोटिकम् ॥४६॥
विष्णुपद्यां तु यद्दानमक्षयं परिकीर्तितम् । दातुर्वदामि सान्निध्यं सदा जन्मनि जन्मनि ॥४७॥
शीते तूलपटीदानान्नदुःखं जायते तनौ । तुलादाने तल्पदाने द्वयोरेवाक्षयंफलम् ॥४८॥
सर्वोपकरणां शय्यां यो ददाति विमत्सरः । वर्णमुख्याय विप्राय सराजपदवीं लभेत् ॥४९॥
तथैवाग्निं जलं दत्वा नदीतीरे पथिप्रगे । दत्वा च तैलतांबूलमूर्व्या अधिपतिर्भवेत् ॥५०॥
सत्यभावाद्द्विजं नत्वा धनी चाक्षयतांव्रजेत् । माघे मास्यसिते पक्षे पंचदश्यामहर्मुखे ॥५१॥

भगवान् विष्णु के चक्र को बनाया गया ॥३७॥ अमोघ यमदण्ड तथा शङ्कर का त्रिशूल बना । उसी से काल का श्रेष्ठ खड्ग तथा चण्डिका का परं शस्त्र अत्यन्त भारी प्रमोदिनी नामक शक्ति तथा अद्भुत त्रिशूल बना । इन सबों को विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी की आज्ञा से बनाया ॥३७-३८॥ अब सूर्य में केवल एक सहस्र किरणें अवशिष्ट रहीं। अन्य सभी किरणें छाँट दी गयीं । ये सभी चीजे ब्रह्माजी के कहने से ही बनीं कश्यप महर्षि की पत्नी अदिति के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण सूर्य को आदित्य कहते हैं । सूर्य विश्व की अन्तिम सीमा तक सञ्चरण करते है और सुमेरु के शिखर पर भी भ्रमण करते हैं ॥४०-४१॥ ये दिन-रात सदैव पृथिवी से लाख योजन ऊपर भ्रमण करते हैं । वहीं पर ब्रह्माजी से प्रेरित होकर चन्द्रमा आदि भी भ्रमण करते रहते हैं ॥४२॥ सूर्य बारह महीनों में बारह रूप धारण करके बारह राशियों में संक्रमण करते हैं । उस संक्रमण को ही संक्रान्ति कहते हैं, यह सब लोग जानते हैं । उन राशियों में दानादि का जो फल होता है उसे मैं बतलाता हूँ । धनु, मिथुन, कन्या तथा मीन की संक्रान्तियों को षडशीति कहते हैं ॥४२-४४॥ वृष, वृश्चिक, कुम्भ तथा सिंह की संक्रान्तियों को विष्णुपदी कहते हैं । इन दोनों में किये गये तर्पण देवार्चन तथा दान अक्षय होते हैं ॥४५॥ षडशीति संक्रान्तियों में किए गये दान का फल छियासी हजार गुना होता है । विष्णुपदी की संक्रान्तियों में किये गये दानादि लाख गुना होते हैं । दोनों अयनों के आरम्भ में किए गये दानादि का फल करोड़-करोड़ गुणा होता है ॥४६॥ विष्णुपदी में जो दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है । दानदाता के प्रत्येक जन्म में उस फल का सान्निध्य बना रहता है ॥४७॥ जाड़े में रजाई दान करने से दाता के शरीर में दुःख नहीं होता है । तुलादान तथा शय्यादान दोनों का अक्षय फल होता है ॥४८॥ जो व्यक्ति बिना किसी मत्सर के सभी उपकरणों से युक्त शय्या अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह राजा होता है ॥४९॥ उसी तरह जो व्यक्ति नदी के तट में तथा मार्ग में अग्नि तथा जल का तैल एवं ताम्बूल का दान करता है वह अधिपति होता है ॥५०॥ जो सत्यभाव से ब्राह्मण को प्रणाम करता है वह अक्षय धनी होता

पितृंतिलजलैरेव तर्पयित्वा क्षयो दिवि । सुलक्षणां च गां दत्वा हेमश्रृंगां मणिप्रभाम् ॥५२॥
रौप्यखुरप्रदेशां च तथा कांस्यसुदोहनाम् । एतां दत्वा द्विजाग्र्याय सार्वभौमो भवेन्नृपः ॥५३॥
दत्वान्नाभरणं राजा मंडले शोधनेश्वरः । तिलधेनुं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करणान्विताम् ॥५४॥
सप्तजन्मर्जितात्पापान्मुक्तो नाकेऽक्षयो भवेत् । भोज्यान्नं ब्राह्मणे दत्वा अक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥५५॥
धान्यं वस्त्रं तथा भृत्यं गृहपीठादिकं च यत् । यो ददाति द्विजाग्र्याय तं च लक्ष्मीर्न मुंचति ॥५६॥
यत्किंचिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । अक्षयं परलोकेषु युगाद्यासु तथैव च ॥५७॥
यद्वा देवार्चनं स्तोत्रधर्माख्यानप्रतिश्रवः । पुनाति सर्वपापेभ्यो दिवि पूज्यो भवत्यसौ॥५८॥
तृतीया माघमासस्य सिता मन्वंतरा स्मृता । तस्यां यद्दीयते दानं सर्वमक्षयमुच्यते॥५९॥
धनं भोग्यं तथाराज्यं नाकं कल्पांतरस्थितम् । तस्माद्दानं सतां पूजा प्रेत्यानंतफलप्रदा॥६०॥
मन्वंतरा तु माघे स्यात्सप्तमी या सितेतरा । तिथिः पुण्यतमा प्रोक्ता पुराणैरभिरक्षिता ॥६१॥
माघमासे सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा । तामुपोष्य नरः पुण्यां मुच्यते नात्र संशयः ॥६२॥
सूर्यग्रहणतुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥६३॥
यच्च तत्र कृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च भास्करी हंतु सप्तमी॥६४॥
जननीसर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके । सप्तम्यामुदिते देवि नमस्ते रविमंडले ॥६५॥
अर्कपत्रं यवाः पुष्पं सुगंधं बदरीफलम् । तत्पत्रे ताम्रपात्रेवा युक्तमानीयतण्डुलम् ॥६६॥

है । माघ के महीने के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को प्रातःकाल ॥५१॥ पितरों का तिल से तर्पण करने वाले को अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है । सुन्दर लक्षणों वाली गौ के सीग को सुवर्ण से तथा खुर को चाँदी से ढँककर काँसे के दोहन पात्र के साथ किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान देने वाला सार्वभौम राजा होता है ॥५२-५३॥ अन्न एवं अलङ्कार का दान करने वाला राजा, मण्डलेश्वर तथा धनीश्वर होता है । जो उस दिन सभी उपकरणों के साथ तिलधेनु का दान करता है ॥५४॥ वह सात जन्मों में किए गये पापों से मुक्त होकर अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥५५॥ अन्न, वस्त्र, भृत्य तथा गृह एवं चौकी आदि का ब्राह्मण को दान करने वाले का लक्ष्मी कभी त्याग नहीं करती है ॥५६॥ युगादि तिथियों में जो कुछ भी थोड़ा अथवा बहुत दान किया जाता है वह परलोक में अक्षय होता है ॥५७॥ जो कुछ भी देवार्चन, स्तोत्र पाठ तथा धर्मकथा का श्रवण किया जाता है, वह उसको पवित्र बना देता है तथा वह स्वर्ग में पूज्य होता है ॥५८॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि ही मन्वन्तर तिथि कही जाती है उस तिथि को जो दान दिया जाता है वह स्वर्ग में अक्षय होता है ॥५९॥ धन, भोग्य पदार्थ, राज्य, स्वर्ग ये सब उसको कल्पान्तर पर्यन्त बने रहते हैं । इसीलिए दान, सज्जनों की पूजा ये सब मरने के पश्चात् फलप्रद बतलाये गये हैं ॥६०॥ माघ मास की जो सप्तमी तिथि होती है वह अत्यधिक पुण्यवती बतलायी गयी है तथा वह पुराणों में सुरक्षित है ॥६१॥ माघ मास के शुक्लपक्ष में होने वाली कोटि भास्कर तिथि के समान है, उस तिथि को उपवास करने वाला मनुष्य निःसन्देह मुक्त हो जाता है॥६२॥ माघ के शुक्लपक्ष की सप्तमी, सूर्य ग्रहण के समान बतलायी गयी है । उस तिथि को अरुणोदय की बेला में स्नान महान् फल देने वाला बतलाया गया है ॥६३॥ स्नान करते समय यच्च तत्र इत्यादि श्लोक पढे। उसका अर्थ है मैने सात जन्मों में जो पाप किया है उन पापों को, रोगों को, शोकों को, भास्करी सप्तमी विनष्ट कर दे॥६४॥ हे देवि ! आप सभी जीवों की माता है । सप्तमी में रवि मण्डल के उदित हो जाने पर आक का पत्ता, यव, सुगन्धित पुष्प बदरीफल, उस पत्ते पर अथवा ताम्बे के पात्र में रखकर चावल के साथ, यज्ञोपवीत तथा सिन्दूर

यज्ञसूत्रं स सिंदूरं दत्वा चार्घं सुशोभनम् । सर्वपापं क्षयं याति सप्तजन्कृतं च यत् ॥६७॥
नरकैः पीड्यते तावद्रोगैः पापैश्च दुःखदैः । हविष्यं भोजयेदत्रं शुद्धमातपतंडुलैः ॥६८॥
वर्जयेच्च शिलापृष्टं शृंगवेरं तु शाककम् । कोरदुषकपत्रं च रंभाच्छागीघृतं तथा ॥६९॥
केशकीटादिकं वर्ज्यमुष्णोदस्नानमेव च । अल्पबीजादिकं सर्वं व्रते सूरस्य वर्जयेत् ॥७०॥
अन्यच्च नाचरेत्तत्र धर्मचिंतां विना व्रती । सौरव्रतं महापुण्यं पुराणैरभिनंदितम् ॥७१॥
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । आदित्यस्य समं भोग्यं लभते दिवि शाश्वतम् ॥७२॥
एवं स्वर्गक्षयादेव राजा भूमौ महायनी । मर्त्यलोके पुराभ्यासात्करोति भास्करव्रतम् ॥७३॥
तथा स्वयं सुखं भोग्यं लभते दिवि शाश्वतम् । आरोग्यं सम्पदं जन्मी भास्करस्य प्रसादतः ॥७४॥
रविवारे भवेद्या च सप्तमी माघशुक्लके । महाजयेति विख्याता अन्यत्र विजया स्मृता ॥७५॥
विजया कोटिलक्षं स्यादनंतं स्यान्महाजया । तत्रैकेन व्रतेनैवमुच्यते जन्मबंधनात् ॥७६॥
अश्वरत्नं सुवर्णं च रक्तवस्त्रं च धान्यकम् । ददाति भास्करप्रीत्या स्वर्गमर्त्यपतिः कमात् ॥७७॥
एषां भेदं प्रवक्ष्यमि शृणु विप्र यथार्थवत् । उत्तमाभरणैर्युक्तं सद्वाहं यो ददाति ह ॥७८॥
समुद्रैस्सप्तभिर्जुष्टां भूमिमेत्यरिवर्जिताम् । लभेद्भवांतरे मर्त्यमेकेनैकाधिपो भवेत् ॥७९॥
अश्वहीनं च पत्रांगं वृषभैर्वाप्यलंकृतम् । हेममाषं द्विमाषं वा दक्षिणा विहिता बुधैः ॥८०॥
रत्नभांडंमहार्थं च हैमैरेव कृतं च यत् । स्वर्णवा केवलं दत्वा त्रिविष्टपधनेश्वरः ॥८१॥

के साथ अर्घ्य प्रदान करने से सभी पाप क्षीण हो जाते है, जो पाप सात जन्मों मे किये गये होते है ॥६७॥ मनुष्य तब तक नरकों में रोगों तथा दुखद पापों से पीडित होता है जब तक वह सूर्य का व्रत नहीं करता है । सूर्य के व्रत में शुद्ध अगहनी के चावल से बने हविष्य, ब्राह्मणों को भोजन कराये । सूर्य के व्रत में शिला पर रगड़े हुए शृंगवेर तथा शाक, कोद्रव का, केले का, बकरी के घी का ॥६८-६९॥ केश, कीड़ा, आदि तथा गर्म जल से स्नान आदि का तथा थोड़े बीज वाली सभी वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए ॥७०॥ व्रती को केवल धर्म का ही चिन्तन करना चाहिए किसी दूसरी वस्तु की नहीं । सूर्य का व्रत महान् पुण्यप्रद है । पुराणों में उसका समर्थन किया गया है ॥७१॥ सूर्यव्रत करने वाला स्वर्ग में हजारों करोड़ वर्षों तक निरन्तर भोगों को प्राप्त करता है ॥७२॥ जब उस स्वर्ग का क्षय हो जाता है तो वह पृथिवी पर जन्म लेकर राजा होता है और मर्त्यलोक में आकर पहले के ही अभ्यास के कारण वह सूर्य का व्रत करता है ॥७३॥ और स्वयं स्वर्ग में शाश्वत भोगों को प्राप्त करता है । सूर्य की कृपा से वह जन्म से ही आरोग्य तथा सम्पत्ति को प्राप्त करता है ॥७४॥ यदि माघ शुक्ल सप्तमी को रविवार हो तो वह सप्तमी महाविजया सप्तमी होती है अन्यथा वह विजया सप्तमी कहलाती है ॥७५॥ विजया करोड़ लाख गुना फल देने वाली होती है तथा महाविजया अनन्त फलप्रद होती है । महाजया का एक ही व्रत करके मनुष्य जन्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥७६॥ जो उस दिन अश्वरत्न, सुवर्ण, रक्त वस्त्र, और अन्न सूर्य की प्रसन्नता के लिए दान करता है वह स्वर्गलोक तथा मर्त्यलोक का स्वामी क्रमशः होता है ॥७७॥ हे विप्र ! सुनो इन सबों का भेद मैं ठीक-ठीक बतलाता हूँ । उस दिन जो उत्तम अलङ्कारों से युक्त अच्छे वाहन का दान करता है ॥७८॥ वह सातो समुद्रों वाली तथा शत्रु से रहित पृथिवी का स्वामी होता है । उसी के द्वारा वह जन्मान्तर में पृथिवी का अकेला स्वामी होता है ॥७९॥ जो घोड़े से रहित पत्राङ्ग को अथवा वृषभों से अलङ्कृत एक मासे अथवा दो मासे की सुवर्ण दक्षिण के साथ दान करता है। अथवा अत्यन्त मूल्यवान् रत्नों का घड़ा जो सुवर्ण से ही निर्मित हो उसका दान करता है, या केवल सुवर्ण ही दान

रक्तवस्त्रं च धान्यं च शक्तितो यःप्रयच्छति। स्वर्गव्योरीशतामेति नतं लक्ष्मीर्विमुंचति ॥८२॥
अरोगी सुप्रसन्नात्मा दस्युजेता प्रतापवान् । यावत्प्रभासते भानुस्तावत्पूज्यतमो हि सः ॥८३॥
माघादौ द्वादशीं मायां सप्तमीं कारयेत्स तु। इहाभीष्टफलंभुक्त्वा सुरैश्चैव प्रपूज्यते ॥८४॥
अर्काङ्गसप्तमीव्रतं कृत्वा च विधिवद्बुधः । पापात्पूत इहाभीष्टं संप्राप्य मुक्तिमाप्नुयात्॥८५॥
लक्षणं च प्रवक्ष्यामि मासि मासि च यो विधिः । व्रतस्यास्य प्रसादाच्च सुराणामर्चितो द्विवि॥८६॥
शुक्लपक्षे रविदिने प्रवृत्ते चोत्तरायणे। पुंनामधेयनक्षत्रे गृह्णीयात्सप्तमीव्रतम् ॥८७॥
हस्तो मैत्रं तथा पुष्यः श्रवो मृगपुनर्वसु । पुंनामधेयनक्षत्राण्येतान्याहुर्मनीषिणः ॥८८॥
पंचम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितम्। सप्तम्यामुपवासं च अष्टम्यां पारणं भवेत् ॥८९॥

अर्काग्रं शुचिगोमयं सुमरिचं तोयं फलं चाश्नुते मूलं नक्तमुपोषणं चविधिवत्कृत्वैकभक्तं तथा ।
क्षीरं वाप्यशनं घृताक्तमिति च प्रोक्ताः क्रमेणामुना कृत्वावासरसप्मीदिनकृतेः प्राप्नोत्यभीष्टं फलम् ॥९०॥

अर्काग्रं ग्रामात्पूर्वोत्तरदिग्गतार्कविटपस्य शाखाग्रस्थितं विशिष्टं सूक्ष्मपत्रद्वयं सतोयं दन्तैरस्पृष्टपातव्यम् ।
शुचिगोमयं भूमावपतितं मध्यमाङ्गुष्टाभ्यां पलमात्रं दन्तैरस्पृष्टं सतोयं पातव्यम् ॥
सुमरिचमव्रणमपुरातनं स्थूलमवशुष्कमेकं दन्तैरस्पृष्टं सतोयं पातव्यम् ।
तोयं ब्रह्मापित्रङ्गुलीमूलप्रसरं पातव्यम् ॥
फलं खर्जूरनारिकेलानामन्यतमं दंतैरपृष्टं पातव्यम्।घृताक्तमितिचाहारं मयूरडिंभपरिमाणम् ॥

करता है वह स्वर्ग के धन का स्वामी होता है ॥८०-८१॥ जो अपनी शक्ति के अनुसार लाल वस्त्र तथा अन्न दान करता है, वह स्वर्ग तथा पृथिवी का स्वामी होता है । लक्ष्मी उसका कभी भी त्याग नहीं करती है ॥८२॥ जहाँ तक सूर्य प्रकाशित होते हैं वहाँ तक का रोगरहित, हमेशा प्रसन्न रहने वाला, दस्युओं को जीतने वाला तथा प्रतापी स्वामी होता है ॥८३॥ माघ आदि महीनों में द्वादशी, आमावस्या तथा सप्तमी का व्रत करना चाहिए । ऐसा करने वाला इस लोक में अपने अभीष्ट फलों का भोग करके स्वर्ग में देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥८४॥ विज्ञ पुरुष अर्काङ्ग सप्तमी व्रत को विधिपूर्वक करके पापों से रहित हो जाता है, इस लोक में अभीष्ट फल प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥८५॥ प्रत्येक मास में जो विधि होती है, उसे मैं बतलाता हूँ । इस व्रत के प्रभाव से व्रती देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥८६॥ यदि शुक्ल पक्ष में रविवार के दिन उत्तरायण प्रारम्भ हो तो पुल्लिंग नाम वाले नक्षत्रों में व्रत प्रारम्भ करना चाहिए ॥८७॥ हस्त नक्षत्र मित्र देवताक मघा नक्षत्र, पुष्य नक्षत्र, श्रवण नक्षत्र, मृगशिर नक्षत्र, पुनर्वसु ये सभी नक्षत्र पुल्लिङ्ग नाम वाले हैं यह मनीषियों ने कहा है ॥८८॥ पञ्चमी तिथि को एक शाम भोजन करे । षष्ठी को रात्रि में भोजन करे सप्तमी को उपवास करे और अष्टमी को पारण करे ॥८९॥ आक का अग्रभाग, पवित्र गोबर, मरिच, जल, फल और मूल को खाकर तथा नक्त की बेला में उपवास करके, तथा एक शाम भोजन करके अथवा घृत मिश्रित दुग्ध का भोजन करके ये सभी व्रताङ्ग बतलाये गये हैं । इन सबों से अर्काङ्ग सप्तमी का व्रत करने वाला मनुष्य अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करता है । अर्काग्र को ग्राम के ईशान कोण में उत्पन्न अर्क के वृक्ष की शाखा के अग्र भाग में विद्यमान विशिष्ट दो पत्तों को जल के साथ दाँत से स्पर्श किए बिना पीना चाहिए । ब्रह्म तथा पितरों की जो अङ्गुलि का मूल उससे गिरे हुए जल को पीना चाहिए । जो पृथिवी पर न गिरा हो ऐसे गोबर को मध्यमा तथा अङ्गूठे से पल (माशे) भर उठाकर जिसका दाँतों से स्पर्श न हो ऐसे जल से पीना चाहिए । उसे ही शुचि गोमय कहते हैं। व्रण रहित, नवीन, बड़ा सा, सुखा हुआ एक मरिच को सुमरिच कहते हैं । उसे दाँतों से स्पर्श किए बिना जल से पीना

घृतमपि तत्परिमाणम् ॥९१॥
आत्मनो द्विगुणां छायां यदाकुर्वीतभास्करः । तदानक्तं विजानीयान्ननक्तंनिशिभोजनम् ॥९२॥
प्रथमं पूजयेद्देवं फलंपुष्पादिमंत्रकैः । अन्नदानं ततः कुर्याद्विध्युक्तपरिमाणकम् ॥९३॥
ततो ध्यानम्
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वाभरणभूषितम् । द्विभुजं रक्तवर्णं च रक्तपंकजधृत्करम्॥९४॥
तेजोबिंबं बहुजलमध्यस्थं सपरिच्छदम्। पद्मासनगतं देवं रक्तगंधानुलेपनम्॥९५॥
आदित्यं चिंतयेद्देवं पूजाकाले विशेषतः ।

अथ मंत्रश्चायं

भास्कराय विद्महे सहस्ररश्मये धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥९६॥

जप्य एष परः प्रोक्तः सप्तम्यां विजयावहः । करवीरैः करंजैश्च रक्तकुंकुमसन्निभैः ॥९७॥
पश्चाच्च पारणा कार्या तथाष्टम्यां विशेषतः । अष्टम्यामेव कर्तव्यं नवम्यां नैव पारणम्॥९८॥
व्रते फलं न चाप्नोति नवम्यां पारणे कृते । पारणं त्वपराह्ले तु कटुतिक्ताम्लवर्जितम् ॥९९॥
तंडुलं शोधयेद्यत्नात्तृणबीजादिकं त्यजेत् । मुद्गमाषतिलादीनि घृतं चपरिवर्जयेत्॥१००॥
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या शक्तः क्षीरादिहव्यकैः । यथाशक्त्यन्नपानैश्च व्यंजनैश्च निरामिषैः ॥१०१॥
विप्राय दक्षिणां दद्याद्विभज्य चानुरूपतः । इमामनंतफलदां यः कुर्यात्सप्तमीं नरः ॥१०२॥
सर्वपापप्रशमनीं धनपुत्रविवर्धनीम्। मासि मासि द्विजश्रेष्ठ व्रतं कृत्वार्कतुष्टये॥१०३॥

चाहिए। खजूर अथवा नारियल इन दोनों में कोई हो वही फल है। उसको दाँतों से स्पर्श किए बिना जल से पीना चाहिए। मयूर के अण्डे के परिमाण वाले आहार को उतने ही परिमाण में घी से मिलाकर खाये। इसे ही घृताक्त आहार कहते हैं ॥९०-९१॥ जब सूर्य अपने दो गुना छाया करें उसी समय को नक्त कहते हैं। नक्त रात्रि में भोजन करने को नहीं कहते हैं ॥९२॥ पहले फल तथा पुष्प आदि से सूर्य की पूजा मन्त्र द्वारा करे। उसके बाद विधिपूर्वक बतलाये गये परिमाण में अन्न दान करे ॥९३॥ **उसके बाद ध्यान करे** सभी शुभ लक्षणों से परिपूर्ण, सभी आभूषणों से भूषित दो भुजाओं वाले, रक्त वर्ण वाले हाथ में रक्त कमल धारण किए हुए ॥९४॥ तेजो मण्डल स्वरूप, बहुत अधिक जल में स्थित परिच्छदों से युक्त, कमल के आसन पर बैठे हुए, रक्त चन्दन के अङ्गरागों से संलिप्त ॥९५॥ ऐसे आदित्य का विशेष रूप से पूजा के समय ध्यान करना चाहिए। सूर्य की पूजा का मन्त्र यह है- **भास्कराय विद्महे सहस्ररश्मये धीमहि, तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्**। विजय प्राप्त करने के लिए सप्तमी तिथि को यह विशेष रूप से जपने योग्य मन्त्र कहा गया है। सूर्य की कुंकुम के सदृश करवीर तथा करञ्ज पुष्पों से पूजा करे ॥९७॥ उसके बाद विशेष रूप से अष्टमी में ही पारण करना चाहिए। नवमी मे नहीं ॥९८॥ नवमी में पारण करने से व्रत का फल नहीं होता है। पारण अपराहण में, कटुतिक्त, खट्टा से रहित अन्न से होना चाहिए ॥९९॥ चावल को पहले बीन ले उसमें से तृण तथा बीज आदि को निकाल दे। उसमें से मूंग, ऊड़द तिल आदि को निकालकर घी भी न डाले॥१००॥ पहले ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराये, शक्ति हो तो दुग्ध इत्यादि से बने पदार्थ तथा मांस रहित व्यञ्जन इत्यादि ब्राह्मणों को भोजन कराये। ब्राह्मणों को उनके स्वरूपानुरूप अलग-अलग दक्षिणा देनी चाहिए। इस अनन्त फल को प्रदान करने वाली सप्तमी को जो मनुष्य करता है ॥१०१-१०२॥ इस सभी पापों को विनष्ट करने वाली, धन धान्य को बढाने वाली सप्तमी का प्रत्येक मास में सूर्य की प्रसन्नता के लिए व्रत करके जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक

यः कुर्यात्पारणं भक्त्या सूर्यलोकं स गच्छति । कल्पकोटिं वसेत्स्वर्गे ततो याति परां गतिम् ॥१०४॥
इदमेव परं गुह्यं भाषितं शंभुना पुरा । श्रवणात्सततं तस्य व्रतस्य परिपालनात् ॥
श्रावयेद्वापि लोकस्य फलं तुल्यं प्रकीर्तितम् ॥१०५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे अर्काङ्गसप्तमीव्रतं नाम सप्तसप्ततिमोऽध्यायः ॥७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

वैशंपायन उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादाच्च श्रुतं मे पावनं व्रतम् । अपरं श्रोतुमिच्छामि ब्रध्नस्य च प्रियं च यत् ॥१॥

व्यास उवाच

कैलासशिखरे रम्ये सुखासीनं महेश्वरम् । प्रणम्य शिरसा भूमौ स्कंदो वचनमब्रवीत् ॥२॥
अर्काङ्गाख्याविधिस्त्वत्तो मयैवं विस्तराच्छ्रुतः । वारादेर्यत्फलं नाथ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥

ईश्वर उवाच

रक्तपुष्पैरवेवारि त्वर्घ्यं दद्याद्व्रती नरः । नक्ताहारं हविष्यान्नं कृत्वा स्वर्गान्न हीयते ॥४॥
सप्तम्याश्च सदाचारं सर्वेवार्कवासरे । कुर्वतः प्रीतिमाप्नोति सगणः परमेश्वरः ॥५॥
सूरस्य सदृशं याति तिथिवारस्य पालनात्। एकेन गाणपत्यस्य यावत्सूरो नभस्तले ॥६॥

पारण करता है वह सूर्य लोक में जाकर पूजित होता है । वह करोड़ कल्पों तक सूर्य लोक में रहने के वाद मुक्त हो जाता है ॥१०३-१०४॥ इस अत्यन्त गोपनीय व्रत को शङ्करजी ने वतलाया है इस प्रसङ्ग को सुनने तथा सदा व्रत का पालन करने से अथवा किसी को सुनाने से एक बराबर फल होता है ॥१०५॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अर्काङ्गसप्तमी नामक व्रत का वर्णन नामक सतहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७७।।

सूर्य के अनेक व्रतों का वर्णन, सूर्य शान्ति का विधान वर्णन

वैशम्पायन महर्षि ने कहा— भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने पवित्र व्रत का श्रवण किया । अव मैं दूसरी वातें जो भगवान् सूर्य को प्रिय हैं, उन्हें सुनना चाहता हूँ ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** एकबार महेश्वर कैलास पर्वत पर सुख पूर्वक बैठे थे उसी समय स्कन्दजी ने भूमि पर शिर टेककर उनसे पूछा— मैंने अर्काङ्ग सप्तमी व्रत की विधि को आपसे विस्तार पूर्वक सुना है । हे नाथ ! दिनों आदि के जो फल होते हैं उन सबों को मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥३॥ **ईश्वर ने कहा—** व्रती मनुष्य को रविवार को लाल पुष्प से सूर्यार्घ्य देना चाहिए । नक्त की वेला में हविष्यान्न का भोजन करने वाला व्रती कभी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होता है ॥४॥ सप्तमी तिथि के रविवार को सभी सदाचारों का पालन करने वाले मनुष्य भगवान् विष्णु अपने गुणों के साथ प्रसन्न होते है ॥५॥ तिथि और वार के व्रत का पालन करने मात्र से ही मनुष्य तब तक गाणपत्य को प्राप्त किए रहता है जब तक सूर्य आकाश में रहते है ॥६॥

सर्वकामप्रदं पुण्यमैश्वर्यं रोगनाशनम् । स्वर्गदं मोक्षदं पुण्यं रवेवरि व्रतं हितम् ॥७॥
रविवारेण संक्रांत्या सप्तम्या तद्दिने शिवे । व्रतपूजादिकं चाप्यं सर्वं चाक्षयतां व्रजेत् ॥८॥
आदित्यवासरे शुभ्रे ग्रहाधिपप्रपूजनम् । प्राणादहतवक्त्रेण निःसार्य मंडले न्यसेत् ॥९॥
द्विभुजं रक्तपद्मस्थं सुगलं रक्तवाससम् ।
सर्वरक्ताभरणं ध्यात्वा हस्ताभ्यां पुष्पं विधृतसंघ्रायैशान्यां क्षिपेत् ॥१०॥
आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि । तन्नो भानुः प्रचोदयात् ॥११॥
ततो गुरूपदिष्टेन विधिना च विलेपनम् । विलेपनांते सद्धूपं धूपांते च प्रदीपकम् ॥१२॥
प्रदीपांते च नैवेद्यं ततो वारि निवेदयेत् । ततो जप्यं स्तुतिं मुद्रां नमस्कारं तु कारयेत् ॥१३॥
अंजलिः प्रथमा मुद्रा द्वितीया धेनुका स्मृता । एवं यः पूजयेदर्कं रविसायुज्यमाव्रजेत् ॥१४॥
मम ब्रह्मवधं वोरं कपालं करलग्नकम् । रवेस्तस्यप्रसादात्तु मुक्तं वाराणसीतटे ॥१५॥
रवेः परतरं देवं त्रैलोक्ये तु नविद्यते । यस्य प्रसादतो घोरान्मुक्तोहं गुरुकिल्बिषात् ॥१६॥

स्कंद उवाच

श्रुत्वा त्वत्तो गिरं नाथ विस्मयो मेऽभवत्प्रभो । त्वदन्योस्ति न को देवः कथं ब्रह्मवधं त्वयि ॥१७॥
त्वं च ज्ञानीश्वरो योगी लोके भोक्ताऽक्षरोव्ययः । देवानां गुरुरेकस्त्वं व्याप्तरूपी महेश्वरः ॥१८॥
सर्वज्ञो वरदो नित्यं सर्वेषां प्राणिनां प्रभुः । दुष्कृतं ते कुतो नाथ तथा क्रोधोविशेषतः ॥१९॥

शिव उवाच

लोकानां चहितार्थाय पृथग्भूता युगे युगे । सर्वं कुर्मो वयं पुत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥२०॥

उससे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों की प्राप्ति कराने वाला तथा रोगों को विनष्ट करने वाला पुण्य होता है । रविवार का व्रत स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले पुण्य का जनक होता है ॥७॥ यदि रविवार के दिन सप्तमी तथा संक्रान्ती दोनों का योग हो तो उस दिन को किया गया व्रत तथा पूजा सब कुछ अक्षय होता है ॥८॥ उस दिन सूर्य की पूजा करनी चाहिए। मुख से सटाये विना सूर्य को प्राणों से निकालकर सूर्य मण्डल में विन्यस्त करे ॥९॥ फिर दो भुजाओं वाले लाल कमल पर बैठे सुन्दर गला वाले, रक्त वस्त्र धारण किए हुए तथा समस्त लाल आभरणों से भूषित भगवान् सूर्य का ध्यान हाथ में लाल पुष्प लेकर करे उसके बाद उस फूल को सूंघकर ईशान कोण में फेंक दे ॥१०॥ इसके बाद **आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्** । इस सूर्य गायत्री मन्त्र का जप करे ॥११॥ उसके बाद आचार्योपदिष्ट विधि से भगवान् सूर्य को चन्दन लगाये । उसके बाद धूप उसके बाद दीप निवेदित करे॥१२॥ प्रदीप के बाद नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदित करे । उसके बाद सूर्य गायत्री का जप करके स्तुति करे और मुद्रा प्रदर्शित करे । अन्त में नमस्कार करे ॥१३॥ सूर्य की पहली अंजलि मुद्रा है, दूसरी सुरभिमुद्रा है । इस प्रकार से सूर्य की पूजा करने वाला मनुष्य भगवान सूर्य के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥१४॥ मुझे ब्रह्माजी का शिर काटने से ब्रह्महत्या के कारण उनका शिर मेरे हाथ से सट गया था, भगवान् सूर्य की ही कृपा से वाराणसी में जाकर वह कपाल मेरे हाथ से छूटा ॥१५॥ त्रैलोक्य में सूर्य से बड़ा कोई देवता नहीं हैं, उन्हीं की कृपा से मैं भयङ्कर पाप से मुक्त हुआ था ॥१६॥ **स्कन्दजी ने कहा—** हे नाथ ! आपकी वाणी को सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है । आप से बढकर कौन देवता है जिसके कारण आपको ब्रह्महत्या लगी ॥१७॥ आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ, योगी, लोक में एकमात्र अक्षर तथा अव्यय भोक्ता हैं । देवताओं के आप प्रधान स्वामी है, व्याप्त तथा रूपी महेश्वर हैं ॥१८॥ आप

नास्माकं बंधमोक्षौ च नाकार्यं कार्यमेव वा । तथालोकस्य रक्षार्थं चरामो विधिपूर्वकम् ॥२१॥
सर्वं च परमं चैव सर्वविघ्नविनाशनम् । सर्वरोगप्रशमनं सर्वार्थप्रतिसाधकम्॥२२॥
एकोसौ बहुधा भूत्वा कालभेदादनिंदितः । मासे मासे तु तपति एकोद्वादशतां व्रजेत् ॥२३॥
मित्रो मार्गशिरे मासि पौषे विष्णुः सनातनः । वरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा ॥२४॥
चैत्रे मासि तपेद्भानुर्वैशाखे तापनः स्मृतः । ज्येष्ठमासे तपेदिंद्र आषाढे तपते रविः ॥२५॥
गभस्तिः श्रावणे मासि यमो भाद्रपदे तथा। हिरण्यरेताश्वयुजि कार्तिके तु दिवाकरः ॥२६॥
इत्येते द्वादशादित्या मासि मासि प्रकीर्तिताः। उरुरूपा महातेजा युगांतानलवर्चसः॥२७॥
य इदं पठते नित्यं तस्य पापं न विद्यते । न रोगो न च दारिद्यं नावमानो भवेत्क्वचित् ॥२८॥
अक्षयं लभते स्वर्गं सुखं राज्यं यशः क्रमात्। महामंत्रं प्रवक्ष्यामि सर्वप्रीतिकरं परम् ॥२९॥
ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमो नमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमो नमः ॥३०॥
नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमो नमः । नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः ॥३१॥
त्वं च ब्रह्मात्वं च विष्णूरुद्रस्त्वं च नमो नमः। त्वमग्निः सर्वभूतेषु वायुस्त्वं नमो नमः॥३२॥
सर्वगः सर्वभूतेषु नहि किंचित्त्वया विना । चराचरे जगत्यस्मिन्सर्वदिहे व्यव्वस्थिताः॥३३॥
इति जप्त्वा लभेत्कामं स्वर्गं भोग्यादिकं क्रमात्। आदित्यो भास्करः सूर्यो अर्को भानुर्दिवाकरः॥३४॥

सर्वज्ञ, वर देने वाले तथा सभी प्राणियों के स्वामी हैं। हे नाथ ! आपको इस प्रकार क्रोध और उसके कारण होने वाले पाप का कारण क्या है ?॥१९॥ **शिवजी ने कहा—** हे पुत्र ! ब्रह्मा, विष्णु और मैं ये तीनों संसार का कल्याण करने के लिए प्रत्येक युग में सब कुछ करते रहते हैं ॥२०॥ हमलोगों को न तो बन्धन होता है और न मोक्ष होता है। हमलोगों के लिए कुछ भी कर्तव्य अथवा अकर्तव्य नहीं है। हमलोग संसार की रक्षा करने के लिए विधिपूर्वक कार्यों को करते रहते हैं ॥२१॥ ये सूर्य सबसे श्रेष्ठ, सभी विघ्नों का विनाश करने वाले तथा सभी रोगों को शान्त करने वाले सभी कार्यों को सिद्ध करते रहते हैं। ये यद्यपि एक हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न होकर बारह प्रकार के होते है और प्रत्येक मास में भिन्न रूप से संतप्त होते रहते हैं ॥२३॥ ये मार्गशिर (अग्रहायण) मास में मित्र रूप से, पौष मास में सनातन विष्णु रूप से, माघमास में वरुण रूप से, फाल्गुन मास में सूर्य रूप से॥२४॥ चैत्रमास में भानु रूप से, वैशाखमास में तापन रूप से, ज्येष्ठ मास में इन्द्र रूप से तथा आषाढ में रवि रूप से सन्तप्त होते हैं ॥२५॥ श्रावण मास में गभस्ति रूप से, भाद्रपद मास मे यम रूप से, आश्विन मास में हिरण्यरेता रूप से, और कार्तिक मास में ये दिवाकर रूप से तपते हैं ॥२६॥ ये प्रत्येक मास के अलग-अलग द्वादश आदित्य है। इनके अनेक रूप हैं महातेजस्वी हैं तथा प्रलयाग्नि के समान इनकी कान्ति है ॥२७॥ जो व्यक्ति इस प्रसंग को पढता है उसके पापों का नाश हो जाता है। उस व्यक्ति को न तो कोई रोग होता है, न कोई दरिद्रता होती है और न तो कहीं उसका कोई अपमान हो पाता है ॥२८॥ वह अक्षय स्वर्ग, सुख तथा राज्य का भोग करता है। मैं सूर्य के महामन्त्र को बतलाता हूँ जिससे भगवान् सूर्य को अत्यन्त प्रसन्नता होती है ॥२९॥ हजारो बाहुओं वाले आदित्य को बारम्बार नमस्कार है। हाथ में कमल धारण करने वाले वरुण को नमस्कार है ॥३०॥ अन्धकार को नष्ट करने वाले श्रीसूर्य को नमस्कार है। हजारों जिह्वाओं वाले भानु को नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र स्वरूप आप को बारम्बार नमस्कार है। सभी भूतों (जीवों) के भीतर आप अग्नि तथा वायु रूप से विद्यमान हैं ॥३१-३२॥ आप सर्वत्र जाने वाले तथा सभी भूतों में रहने वाले हैं। संसार में आप से रहित कुछ भी नहीं है। आप सम्पूर्ण

सुवर्णरिता मित्रश्च पूषा त्वष्टा च ते दश। स्वयंभूस्तिमिराशश्च द्वादशः परिकीर्तितः ॥३५॥
नामान्येतानि सूर्यस्य शुचिर्यस्तु पठेन्नरः । सर्वपापाच्च रोगाच्च मुक्तो याति परां गतिम् ॥३६॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि भास्करस्य महात्मनः । रक्ताख्या ये रक्तनिभास्सिंदूरारुणविग्रहाः ॥३७॥
यनि नामानि मुख्यानि तच्छृणुष्व षडानन । तपनस्तापनश्चैव कर्त्ता हर्त्ता ग्रहेश्वरः ॥३८॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेषु व्योमाधिपो दिवाकरः । अग्निगर्भो महाविप्रः स्वर्गः सप्ताश्ववाहनः ॥३९॥
पद्महस्तस्तमोभेदी ऋग्वेदो यजुस्सामगः । कालप्रियं पुंडरीकं मूलस्थानं च भावितम् ॥४०॥
यःस्मरेच्च सदाभक्त्या तस्य रोगभयं कुतः । शृणु कार्तिक यत्नेन सर्वपापहरं शुभम् ॥४१॥
नसंदेहो मनाक्कार्य आदित्यस्य महामते । ॐ इंद्राय नमः ॐ विष्णवे नमः ॥४२॥
एषजप्यश्च होमश्च संध्योपासनमेव च । सर्वशांतिकरश्चैव सर्वविघ्नविनाशनः ॥४३॥
नाशयेत् सर्वरोगांश्च लूताविस्फोटकादिकान् । कामलादिकरोगांश्च येरोगाश्चैवदारुणाः ॥४४॥
ऐकाहिकं द्व्यहिकं च ज्वरं चातुर्थिकं तथा । कुष्ठं रोगं क्षयं रोगं कुक्षिरोगं ज्वरं तथा ॥४५॥
अश्मरी मूत्रकृच्छ्रांश्च नानारोगामयांस्तथा । ये वातप्रभवा रोगा ये रोगा गर्भसंभवाः ॥४६॥
मर्दयन्तो महारोगा मर्दिता वेदनात्मकाः । विलयं यांति ते सर्व आदित्योच्चारणेन तु ॥४७॥
रक्ष मां देवदेवेश ग्रहरोगभयेषु च । प्रशमं यांति ते सर्वे कीर्तिते तु दिवाकरे ॥४८॥
मूलमंत्रं प्रवक्ष्यामि सर्वकामार्थसाधकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं भास्करस्य महात्मनः ॥४९॥

चराचरात्मक जगत् के सभी शरीरों में विद्यमान हैं ॥३३॥ इस स्तोत्र का पाठ करके मनुष्य स्वर्ग तथा भोग्य पदार्थ आदि अपने मनोरथों को क्रमशः प्राप्त करता है । आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, भानु, दिवाकर ॥३४॥ सुवर्णरिता, मित्र, पूषा तथा त्वष्टा इन दश नामों को तथा स्वयम्भू तथा तिग्मरश्मि ये द्वादश सूर्य के नाम हैं ॥३५॥ जो पवित्र होकर सूर्य के इन नामों को पढता है वह सभी पापों तथा सभी रोगों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है॥३६॥ फिर मैं भगवान् सूर्य के दूसरे आख्यान को बतला रहा हूँ । जो रक्त शब्द से कहे जाते है, रक्त के सदृश तथा सिन्दूर के सदृश शरीर वाले हैं ॥३७॥ इनके जो मुख्य नाम है, हे षडानन ! उन सबों को आप सुनें । तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, ग्रहेश्वर ॥३८॥ तीनों लोकों में लोकसाक्षी, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, स्वर्ग, सप्ताश्ववाहन॥३९॥ पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्युजुः साम स्वरूप, कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान तथा भावित ॥४०॥ जो भक्तिपूर्वक इन नामों का स्मरण करे उसको रोग का भय नहीं हो । हे कार्तिकेय ! तुम सावधानी पूर्वक सुनो मैं सभी पापों को विनष्ट करके कल्याणकारी आख्यान बतलाता हूँ ॥४१॥ हे महामते ! आदित्य के विषय में थोड़ा सा भी सन्देह नहीं करना चाहिए । ॐ इन्द्राय नमः, ओ विष्णवे नमः ॥४२॥ ये ही मन्त्र तथा होम एवं सन्ध्योपासन हैं । ये ही सभी प्रकार की शान्तियों को करने वाले तथा सभी विघ्नों को विनष्ट करने वाले हैं ॥४३॥ ये सभी रोगों, लूता, तथा घाव आदि को, कामलादिक रोगों तथा भयङ्कर रोगों को ॥४४॥ ऐकाहिक, त्र्याह्निक तथा चातुर्थिक ज्वर को, कुष्ठ रोग, क्षयरोग, कुक्षिरोग, ज्वर ॥४५॥ अश्मरी (पथरी) तथा मूत्रकृच्छ्र आदि विविध आधिव्याधियों को विनष्ट करने वाले हैं। जो रोग वायु विकार से उत्पन्न होते हैं, जो रोग गर्भ से ही लग जाते हैं ॥४६॥ उन सभी महारोगों का मर्दन करते हुए ये सभी वेदनाओं को मर्दित करते हैं । ये सबके सब रोग आदित्य नाम का उच्चारण करने से विनष्ट हो जाते हैं॥४७॥ हे देवदेवेश महारोग जन्य भयों में आप मेरी रक्षा करें । इसतरह से दिवाकर नाम का कीर्तन करने पर सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं ॥४८॥ मैं भगवान् सूर्य के भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले तथा सभी कामनाओं एवं अर्थों

मंत्रश्चायं ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः । अनेन मंत्रेण सदा सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥५०॥
व्याधयो वै न बाधंते नचानिष्टभयं भवेत् । सूर्यावर्तोदकं यस्तु गृहीत्वा तु क्रमेण तु ॥५१॥
तस्य प्राशनमात्रेण नरो रोगात्प्रमुच्यते । न दातव्यं नख्यातव्यं जप्तव्यं च प्रयत्नतः ॥५२॥
अभक्तेष्वनपत्येषु पाषण्डलौकिकेषु च । कटुतैलसमायुक्तं नस्ये पाने च दापयेत् ॥५३॥
सूर्यावर्तजलं पुत्र सर्वरोगाद्विमुच्यते । मूलमंत्रस्तु जप्तव्यः संध्यायां होमकर्मसु ॥५४॥
जप्यमाने तु नश्यंति रोगाः क्रूरग्रहास्तथा । किमन्यै र्बहुभिः शास्त्रैर्मंत्रैर्वा बहुविस्तरैः ॥५५॥
सर्वशांतिरियं वत्स सर्वार्थप्रतिसाधिका । नास्तिकाय न दातव्या देवब्राह्मणनिंदके ॥५६॥
गुरुभक्ताय दातव्या नान्येभ्योपि कदाचन । प्रातरुत्थाय योनित्यं कीर्तयिष्यति मानवः ॥५७॥
गोध्न कृतध्नकश्चैव मुच्यते सर्वपातकैः । शरीरारोग्यकृच्चैव धनवृद्धियशस्करः ॥५८॥
जायते नात्र संदेहो यस्य तुष्येद्दिवाकरः । एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च ॥५९॥
यःपठेद्रविसान्निध्ये सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् । पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत् ॥६०॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् । शृणुयात्संयुतो भक्त्या शुद्धाचारसमन्वितः ॥६१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तस्सूर्यलोकं व्रजत्यपि । भास्करस्य व्रते यच्च तत्राचारमखेषु च ॥६२॥
पुण्यस्थानेषु तीर्थेषु पठेत्कोटिगुणं भवेत् । ग्रहे भोज्येषु पूजायां ब्रह्मभोज्येद्विजाग्रतः ॥६३॥

को सिद्ध करने वाले मूल मन्त्र को बतला रहा हूँ ॥४९॥ वह मन्त्र है **ओम् ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः** इस मन्त्र से सर्वदा सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥५०॥ इसके जपने से व्याधियाँ बाधित नहीं करती हैं, किसी प्रकार के अनिष्ट का भय नहीं होता है जो व्यक्ति सूर्यावर्त को लेकर उसका प्राशन (आचमन) करता है वह रोग मुक्त हो जाता है । अतएव इस मन्त्र को किसी को न तो देना चाहिए और न बतलाना चाहिए, प्रयत्न पूर्वक इसका जप करना चाहिए ॥५२॥ इसको अभक्त, नि:सन्तान तथा पाखण्डी को नहीं बतलाना चाहिए । सरसों के तेल में सूर्यावर्त के जल को मिलाकर नस्य के रूप में देना चाहिए ॥५३॥ हे पुत्र ! सूर्यावर्त सभी रोगों को विनष्ट कर देता है । संध्या के समय होमकर्म में मूलमंत्र का जप करना चाहिए ॥५४॥ मूलमंत्र का जप करने से रोग तथा क्रूरग्रह नष्ट हो जाते हैं । दूसरे अनेक मन्त्रों तथा शास्त्रों से क्या मतलब है ?॥५५॥ हे वत्स ! यह सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली सर्व शान्तिप्रद है । इसको नास्तिकों तथा देवों एवं ब्राह्मणों के निन्दक को नहीं बतलाना चाहिए ॥५६॥ केवल गुरुभक्तों को बतलाना चाहिए दूसरों को कभी भी नहीं । जो प्रात:काल जगकर इसका पाठ करेगा ॥५७॥ चाहे वह गोध्न, कृतघ्न ही क्यों न हो सभी पातकों से मुक्त हो जायेगा । यह शरीर को निरोग बनाने वाला तथा धन और यश को बढाने वाला है ॥५८॥ जिसके ऊपर दिवाकर तुष्ट हों उसके ऐसा होने में कोई सन्देह नहीं है । जो प्रतिदिन एकबार-दो बार या तीन बार सूर्य के सन्निकट इस प्रसंग का पाठ करता है वह अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करता है । इसका पाठ करने वाले पुत्रार्थी पुत्र को प्राप्त कर लेते हैं और कन्या चाहने वाले कन्या प्राप्त कर लेते हैं ॥५९-६०॥ विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है और धनार्थी धन प्राप्त करता है । इसका शुद्धाचरण पूर्वक श्रवण करना चाहिए ॥६१॥ ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक में जाता है । जो इसको सूर्य के व्रत के समय, या यज्ञों के समय॥६२॥ या पवित्र तीर्थों में जाकर पाठ करता है, उसको करोड़ गुना फल प्राप्त होता है । ग्रहभोज्य के

य इदं पठते विप्रस्तस्यानंतफलं भवेत् । तपस्विनां च विप्राणां देवानामग्रतः सुधीः ॥६४॥
यः पठेत्पाठयेद्वापि सुरलोके महीयते ॥६५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे सूर्यशांतिर्नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

उनासीवाँ अध्याय

व्यास उवाच

मध्यदेशे स्वराट् सम्राट् भद्रेश्वर इति श्रुतः । तपोभिर्बहुभिः पूतो व्रतैर्नानाविधैरपि ॥१॥
देवांस्तुपूजयेन्नित्यं सुभावेन सदा खलु । तस्य सव्येऽभवत्कुष्ठं करे श्वेतमजायत ॥२॥
ततोभिषक्प्रयोगाच्च लक्षणं दृश्यते पुरा । आहूय द्विजमुख्यांश्च मंत्रिणः सोब्रवीद्वचः ॥३॥

राजोवाच

किल्बिषं मे करे विप्रा दुःसहं लोकगर्हितम् । तस्मात्पुण्यं महाक्षेत्रं यत्र त्यक्ष्यामि विग्रहम् ॥४॥
अज्ञापयत धर्मज्ञाः परलोकहिताय वै । वंशहीनस्य मे वीराः प्रेत्यामुत्रहितं च यत् ॥५॥
तद्ब्रूत सुप्रसन्ना म उद्दिष्टं यत्करोम्यहम्।

द्विजा ऊचुः

परित्यक्ते त्वया राष्ट्रे धर्मशीलेन धीमता ॥६॥
नष्टं जगदिदं राजंस्तस्मान्नो वक्तुमर्हसि। अयमस्य प्रतीकारो ह्यस्माभिरवगम्यते॥७॥

समय, पूजा में, ब्राह्मण भोजन के समय ब्राह्मणों के सामने ॥६३॥ जो विप्र पाठ करता है उसको अनन्त गुना फल प्राप्त होता है तपस्वियों, ब्राह्मणों तथा देवताओं के समक्ष जो बुद्धिमान ॥६४॥ इसका पाठ करता है या पढवाता है, वह देवलोक में पूजित होता है ॥६५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के सूर्यशान्तिनामक अठहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७८।।

भद्रेश्वर नामक मध्य देश के राजा की कथा

व्यासजी ने बतलाया— मध्यदेश में भद्रेश्वर नामक एक चक्रवती राजा था । वह अनेक तपस्याओं तथा अनेक व्रतों के कारण पवित्र था ॥१॥ वह सुन्दर भाव पूर्वक देवताओं की पूजा करता था । उसके बाये हाथ में श्वेत कुष्ठ हो गया ॥२॥ उसने वैद्यों के प्रयोग से कुष्ठ के लक्षण को जानकर श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा मन्त्रियों को बुलाकर कहा॥३॥ **राजा ने कहा—** हे ब्राह्मणों ! मेरे हाथ में लोकनिन्दित रोग उत्पन्न हो गया है । आपलोग उस पुण्य क्षेत्र को मुझे बतलायें जहाँ पर जाकर मैं अपना शरीर त्याग करूँ और मेरा परलोक भी बन जाय । मैं वंशहीन हूँ, अतएव मरने के बाद परलोक में कल्याणकारी जो हो उसे आप बतलाएँ मैं वही करूँगा । **ब्राह्मणों ने कहा—** आप धर्मशील है, आपके राष्ट्र का परित्याग कर देने पर संसार नष्ट हो जायेगा ॥४-६॥ यह राज्य भी नष्ट हो जायेगा,

सूरं मंत्रैर्महादेवं यत्नादाराधय प्रभो ।

राजोवाच

केनोपयेन विप्रेंद्रास्तोषयिष्यामि भास्करम् ॥८॥
अमेध्येनाथकुष्ठेन लोकानां गर्हितेन च । अदृश्यः सर्वभूतानां गर्हितोस्मि द्विजातयः ॥९॥
किं करिष्यामि राज्यं च किं स्यादाराधनेन तु ।

द्विजा ऊचुः

अत्र स्थित्वा स्वराज्ये तु समुपास्य विरोचनम् ॥१०॥
प्रमुच्य किल्विषाद्धोरात्स्वर्गं मोक्षं च लप्स्यसे । एतच्छ्रुत्वा तु राजेंद्रः प्राणिपत्य द्विजोत्तमान् ॥११॥
आकार्षीत्तस्य सूर्यस्य परमाराधनं च यत् । नित्यपूजां तथा मंत्रैरुपहारैर्विलेपनैः ॥१२॥
फलैर्नानाविधैरर्घैरक्षतातपतंडुलैः । जपापुष्पार्कपर्णैश्च करवीरकरंजकैः ॥१३॥
रक्तकुकुमसिन्दूरैस्तथावासंतिकादिभिः । सुगंधकदलीपत्रैस्तत्फलैः सुमनोहरैः ॥१४॥
अर्घ्यमौदुंबरे कृत्वा सदा सूर्याय पार्थिवः । आदित्यसंमुखे दत्ते सदा मंत्रिपुरोहितैः ॥१५॥
महिषीभिस्तथाचार्घो भोगिनीभिः समंततः । सर्वैरन्तः पुरस्थैश्च सपत्नीकैश्च रक्षिभिः ॥१६॥
चेटवर्गैस्तथान्यैश्च दीयतेर्घो दिने दिने । अर्कशांतिभिरत्युग्रैः स्तोत्रमंत्रादिभिः परैः ॥१७॥
मूलमंत्रान्यमंत्रैश्च यजंतिस्म दिवाकरम् । तथार्कांगव्रतं चान्यत्कृतं तैः सुसमाहितैः ॥१८॥
क्रमात्समां समासाद्य रोगस्यांतं गतो नृपः । बाधिते चामये घोरे स राजा निखिलं जगत् ॥१९॥
नियम्यकारयामास कल्ये च याजनव्रतम् । एवमेव जपापुष्पं सुगंधं कदलीफलम् ॥२०॥
बाणैर्जायाभिरालभ्यकर्मपर्णान्यपुष्पकम् । एवमेवमहापुण्यं कृत्वा सर्वजनप्रियम् ॥२१॥

अतएव हे राजन् ! आप ऐसा न कहें, इसका निदान हमलोग यह जानते है कि ॥७॥ आप सप्रयास मन्त्रों के द्वारा सूर्य की आराधना करें । **राजा ने कहा**— ब्राह्मणों मैं किस साधन से सूर्य को प्रसन्न करूँगा । इस लोक निन्दित तथा अमेध्य कुष्ठ के द्वारा अदृश्य रहकर मैं राज्य और आराधना से क्या करूँगा ? **ब्राह्मणों ने कहा**— आप अपने इस राज्य में रहकर सूर्य की उपासना करके ॥८-१०॥ इस भयङ्कर रोग से मुक्त होकर स्वर्ग तथा मोक्ष को प्राप्त करेंगे। यह सुनकर राजा ने ब्राह्मणों को प्रणाम करके ॥११॥ सूर्य का परमाराधन किया । प्रतिदिन मंत्रों, उपहारों, विलेपनों ॥१२॥ फलों अनेक प्रकार के आर्घ्यों, साठी धान के चावलों, जपापुष्प, आक के पत्ते, करवीर और करञ्ज के लाल कुंकुम, सिन्दूर, वासन्तिक, सुगन्ध कदली पत्र, तथा मनोहर फल से ॥१३-१४॥ वह राजा गूलर के पेड़ पर सूर्य को अर्घ्य देते थे । उनके मंत्री और पुरोहित सूर्य के सामने अर्घ्य देते थे ॥१५॥ उनकी सारी रानियाँ सभी दासियाँ, जो अन्तःपुर में रहती थी वे सब तथा अन्तःपुर के सभी रक्षक अपनी पत्नियों के साथ ॥१६॥ सभी भृत्य तथा दूसरे लोग भी प्रतिदिन सूर्यार्घ्य अत्यन्त उग्र अर्क शान्ति स्तोत्रों तथा मन्त्रों से देते थे ॥१७॥ वे सब सूर्य के मूलमंत्र तथा दूसरे मंत्रों से सूर्य की पूजा करते थे । उनलोगों ने सावधानी पूर्वक अर्काङ्ग सप्तमी व्रत भी किया॥१८॥ इसतरह वर्ष पूरा होते ही राजा का रोग विनष्ट हो गया । रोग के दूर जाने पर राजा ने सम्पूर्ण साम्राज्य में प्रातःकाल सूर्य की पूजा तथा व्रत का नियम कर दिया । इसीतरह से जपापुष्प, सुगन्ध कदली फल, सब सूर्य को निवेदित करते थे ॥१९-२०॥ बाणों तथा पत्नियों के द्वारा प्राप्य अर्क के पत्ते तथा पुष्प, भगवान् सूर्य को निवेदित करते थे । इसतरह सभी लोगों के प्रिय पुण्य को करके ॥२१॥ कुछ लोग हविष्यान्न खाकर कुछ लोग निराहार रहकर

हविष्यान्नो निराहारो जनो यजति भास्करम्। एवमेव त्रिभिर्वर्गैरर्चितस्तै र्विभाकरः ॥२२॥
संतुष्टो भूपमागम्य कृपया चाब्रवीद्वचः। वरं वरय चाभीष्टं यस्ते मनसि वर्तते ॥२३॥
सर्वेषां वो हितार्थाय सानुगः पुरवासिनाम्।

राजोवाच

यदीच्छसि वरं दातुं सर्वलोचनमत्प्रियम् ॥२४॥
सर्वेषां नः परं स्वर्गं त्वत्सकाशे भवत्विति।

सूर्य उवाच

आमात्यास्ते द्विजा विप्राः सदारास्सपरिच्छदाः ॥२५॥
नवीनयौवनाः शुद्धा यावदाभूतसंप्लवम्। तिष्ठंतु मत्पुरे रम्ये सर्वभोगैर्निरामयाः ॥२६॥
सुरद्रुमैः सुसंपूर्णैः प्रासादैर्द्रुमकल्पकैः। प्रमदाभिर्महाभाग नृत्यगीतादिभिः परैः ॥२७॥
पंचकल्पांतरे राजा मन्वादौ त्वं भविष्यसि। अमीते मनुजा भूप पुरस्थाश्च पुरोधसः ॥२८॥
तथाजनपदस्थाश्च विद्वांसो धनिनो नराः। तत्र मत्तो वरं लब्ध्वा सुखं स्वर्गमवाप्स्यथ ॥२९॥
एवमुक्त्वा जगच्चक्षुर्स्तत्रैवांतरधीयत। ततो भद्रेश्वरो राजा सपुरो दिवि मोदते ॥३०॥
तत्र कीटादयो ये च ते पीताः ससुतादयः। स्वर्गे देवद्रुमे भोग्यं कुर्वंति महदद्भुतम् ॥३१॥
एवमेव नृपा विप्रा मुनयश्शंसितव्रताः। ये च क्षत्रादयो वर्णास्सूरस्वर्गं ययुर्द्रुतम् ॥३२॥
कैश्चिदभ्यर्थितं वित्तं पुत्रदारास्तथापरैः। सुखं स्वर्गं तथारोग्यं भास्करस्य प्रसादतः ॥३३॥
पुण्यकूटमिदं भद्रं यः पठेन्मानवः शुचिः। सर्वपापक्षयस्तस्य रुद्रवत्पूजितो भुवि ॥३४॥

सूर्य की आराधना करते थे। इसतरह ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य ॥२२॥ संतुष्ट हो गये और राजा के पास आकर कहे, तुम अपने मनोनुकूल वरदान माँगो ॥२३॥ जिससे कि तुम्हारे सभी अनुचरों के साथ तुम्हारा कल्याण हो। **राजा ने कहा—** हे सबों के नेत्र स्वरूप ! यदि आप मुझको प्रिय वरदान देना चाहते हैं ॥२४॥ तो आपके सन्निकट ही हमलोगों को श्रेष्ठ स्वर्ग प्राप्त हो। **सूर्य ने कहा—** तुम्हारें मंत्री, पुरोहित आदि अपनी पत्नियों तथा परिच्छदों के साथ ॥२५॥ नवीन जवानी प्राप्त करके शुद्ध रूप से कल्प पर्यन्त मेरे मनोहर लोक में निरोग होकर निवास करें ॥२६॥ हे महाभाग ! देववृक्षों तथा कल्पवृक्षों से परिपूर्ण, नृत्य गीतादि परायण प्रमदाओं आदि से भरे हुए प्रासादों में उनका निवास हो ॥२७॥ पाँच कल्प के बाद तुम मन्वादि में राजा होओगे। हे राजन्! ये तुम्हारे नगर में रहने वाले लोग तथा पुरोहित ॥२८॥ जनपद के सभी विद्वान्, धनिक पुरुष मुझसे वरदान प्राप्त करके सभी स्वर्ग में चले जायेगें ॥२९॥ इसतरह से कहकर जगत् के नेत्र स्वरूप भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। तब से राजा भद्रेश्वर अपने सभी लोगों के साथ स्वर्ग में आनन्दानुभव करते हैं ॥३०॥ वहाँ पर जो कीड़े इत्यादि थे वे अपने पुत्रों आदि के साथ वहाँ के देव वृक्षों में अत्यन्त अद्भुत रस का पान करते हैं ॥३१॥ हे विप्रों! इसीतरह से क्षत्रिय आदि राजागण तथा प्रख्यात व्रत वाले मुनिगण सूर्य के लोक में शीघ्र ही चले गये ॥३२॥ कुछ लोगो ने वित्त, पुत्र पत्नी को सूर्य से माँगा, दूसरे लोगों ने सूर्य की कृपा से स्वर्ग, सुख तथा भोग्य पदार्थों को माँगा॥३३॥ जो मनुष्य इस लोक में कल्याणकारी तथा पुण्यपुञ्ज स्वरूप इस प्रसंग का पाठ करेगा, उसके सारे पाप विनष्ट हो जायेंगे और वह रुद्र के समान पूजित होगा ॥३४॥ वह सर्वसाक्षी भगवान् सूर्य के लोक में उनका प्रिय

सर्वसाक्षी भवेत्स्वर्गे वरदो भास्करप्रियः। शृणोति संयतो मर्त्यः सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥३५॥
पारगः सर्वपापानां भास्करस्यैव संसदि। वावदूको भवेन्नित्यं श्रवणात्पुण्यवान् धनी ॥३६॥
इदं गुह्यतिगुह्यं च भास्करेण प्रचारितम्। इदं यमाय कथितं क्षितौ व्यासेन कीर्तितम् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे भद्रेश्वराख्यान नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

असीवाँ अध्याय

वैशंपायन उवाच

श्रुतोग्रहेश्वरस्यैष प्रभावस्त्वत्प्रसादतः। रव्यादीनां ग्रहाणां च साधनं नो वद द्विज ॥१॥
के ते रव्यादयस्तेषां कथं तोषः कथं प्रियम्। काले देशे तु संप्राप्ते दर्शनं तच्छिवाशिवम्॥२॥

व्यास उवाच

ग्रहादयो ये लोके तु भुंजंति पुण्यपातकम्। शिवाशिवं च कुर्वंति विश्वकर्मक्षयाय वै ॥३॥
सूरः कालोंतको ज्ञेयो जनेषु च ग्रहेषु च। तिग्मसौम्याच्च योगात्स निग्रहानुग्रहे प्रभुः ॥४॥
ग्रहभावाच्च तस्यैव संतोषं निगदाम्यहम्। उदुम्बरपलाशाभ्यां पल्लवाभ्यां जुहोति यः ॥५॥
आकृष्णेनेति मंत्रेण मूलकेनाथ शांतये। जुहुयादाज्ययुक्ताभ्यामभीष्टफलहेतवे ॥६॥

होगा। जो मनुष्य सावधानी से इसका श्रवण करेगा वह अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करेगा ॥३५॥ भगवान् सूर्य के ही लोक में वह सभी पापों को नष्ट करेगा। इसका श्रवण करने वाला वावदूक, पुण्यवान् और धनी होता है ॥३६॥ इस अत्यन्त गोपनीय तथा अत्यन्त पुण्यमय प्रसङ्ग का सूर्य ने अपने लोक में यमराज को उपदेश दिया और पृथिवी पर व्यासजी ने इसका प्रचार किया ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के भद्रेश्वर चरित वर्णन नामक उनासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।७९।।

सूर्यपूजा विधि का वर्णन तथा चन्द्रपूजा विधि का वर्णन

वैशम्पायन महर्षि ने कहा— आपने कृपा करके मुझे ग्रहों के स्वामी श्रीसूर्य नारायण का प्रभाव सुनाया। हे द्विज! आप हमलोगों की सूर्य आदि ग्रहों की प्रसन्नता का साधन बतलायें ॥१॥ सूर्य आदि कौन है ? वे कैसे प्रसन्न होते हैं तथा कल्याण करते हैं। किस काल तथा किस स्थान में उनक दर्शन कल्याणकारी तथा अकल्याणकारी होता है?॥२॥ **व्यासजी ने कहा—** इसलोक में जो ग्रह आदि पुण्य तथा पाप का भोग करते हैं तथा कल्याण एवं अकल्याण वे सम्पूर्ण कर्मों का नाश करते हैं ॥३॥ ग्रहों तथा मनुष्यों में सूर को कालान्तक जानना चाहिए। वह तिक्ष्णयोग में अकल्यणकारी तथा सौम्ययोग होने पर कल्याणकारी होते हैं ॥४॥ ग्रह रूप से उसे मैं सन्तोष कहता हूँ। गूलर और पलाश के दो पत्रों से **अकृष्णेन रजसा इत्यादि** मंत्र से या मूलमंत्र से जो घी द्वारा होम शान्ति के लिए करता है। उससे अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए उन दोनों पत्तों से घी से होम करना चाहिए ॥५६॥ सभी रोगों की

शांतये सर्वरोगाणां वधबंधविमोचने। एकैकेन तु मंत्रेण होतव्यं च शतं शतम् ॥७॥
शितं च च्छागलं दद्यात्सूरायादित्यवासरे । भोजयेद्ब्राह्मणान्शक्त्या हव्यकव्यैर्मनोहरैः ॥८॥
सप्तम्यां च सिते पक्षे पंचदश्यां तथैव च । रोगाद्विमुच्यते रोगी न रोगात्कृच्छ्रमेष्यति॥९॥
परमं चामरं सत्वमाब्रह्मस्तंबमात्रके । ब्रह्मांडे चाणुमात्रे च सूरः संभावयिष्यते ॥१०॥
संहारांतं क्रमात्सर्वमुत्पत्तिस्थितिकारणात् । प्राणसर्गे जनानां सपाता विश्वचरस्तनौ॥११॥
मृत्युकाले तनोर्मध्यात्प्राणेन सह गच्छति । शीर्षान्तस्थः सदा चंद्रो द्विरष्टकलया युतः ॥१२॥
अहर्निशं सुधावृष्टिं देहे वर्षत्यधोमुखः । जंतवस्तेन जीवंति महासत्वानुमात्रकाः ॥१३॥
उर्व्यां सस्यानि पुष्णाति तथास्थावरजंगमान् । एताभ्यां पुष्पवद्भ्यांच धारितं जनितं जगत् ॥१४॥
तयोराराधनात्पुष्टिः सदापुण्या परार्थिका। साधयेत्सर्वकार्याणि साधकः सर्वदा शुचिः ॥१५॥
न पूजयति यो मोहात्सुधांशुं मानवाधमः। आयुस्तस्यक्षयं याति नरकं चाधिगच्छति॥१६॥
निष्कलंक कलाधार गंगाधर शिरोमणे। द्वितीयायां जगन्नाथ तुभ्यं चंद्र नमोस्तु ते॥१७॥
तिथिमन्यामनुप्राप्य नमस्कारं विधोरपि। प्रकरोति नरो यस्तु सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥१८॥
अत्रिनेत्रोद्भव श्रीमन् क्षीरोदमथनोद्भव। महेशमुकटावास तुभ्यं चंद्र नमोस्तु ते ॥१९॥
दिव्यरूपनमस्तुभ्यं सुधाकर जगत्पते । शुक्लपक्षे तथाकृष्णे त्रियामायां विदुर्बुधाः ॥२०॥
ॐ ह्रां ह्रीं सोमाय नमः इति जप्यमंत्रः। प्रभाते जपनीयः ॥

शान्ति के लिए तथा वध एवं वन्धन से मुक्ति पाने के लिए सौ-सौ आहुतियाँ देनी चाहिए ॥७॥ रविवार को सूर्य के लिए श्वेत वकरे की वलि देनी चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार मनोहर हव्यों एवं कव्यों से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥८॥ शुक्लपक्ष की सप्तमी तथा पूर्णिमा को ब्राह्मण भोजन कराकर मनुष्य रोग से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। रोगी मनुष्य रोगजन्य कष्ट को नहीं प्राप्त करता है ॥९॥ उत्कृष्ट चामर सूर्य को प्रदान करने से ब्रह्माजी से लेकर तृण पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सूर सम्पूर्ण जीवों को प्रसन्न करते हैं ॥१०॥ संहार काल पर्यन्त सम्पूर्ण उत्पत्तियों तथा स्थिति का कारण होने के कारण सूर्य लोगों के प्राण सर्ग में सम्पूर्ण जीवों के शरीर में रहकर उनकी रक्षा करते हैं॥११॥ मृत्यु के समय सूर शरीर से प्राण के साथ निकलकर चले जाते है। मनुष्यों के शिर के अन्तिम भाग में चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं के साथ विराजमान रहते हैं ॥१२॥ वे नीचे की ओर मुख करके रात-दिन अमृत की वर्षा करते रहते है। उसी के कारण अणु परिमाण वाले जीव जीवित रहते हैं ॥१३॥ चन्द्रमा पृथिवी पर सस्यों को तथा स्थावर जंगम जीवों को पुष्ट बनाते हैं। इन दोनो पुरुषों के सदृश ग्रहों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् जीवित रहता है ॥१४॥ अतएव इन दोनों की आराधना करनी चाहिए पुण्यों से ही अधिक पुष्टि होती है। उपासक पुरुष सदा पवित्र रहकर अपने समस्त कार्यों को सिद्ध कर लेता है ॥१५। जो अधम मनुष्य अज्ञान के कारण चन्द्रमा की पूजा नहीं करता है। उसकी आयु क्षीण हो जाती है और वह नरक में जाता है ॥१६॥ पूजा के समय **निष्कलंक कलाधार इत्यादि** मंत्र को पढना चाहिए। हे निष्कलंक कलाओं को धारण करने वाले भगवान् शिव के शिरोमणि स्वरूप, हे जगन्नाथ आज द्वितीया तिथि को आप को नमस्कार है ॥१७॥ द्वितीया से भिन्न दूसरी तिथि को भी जो चन्द्रमा को देखकर नमस्कार करता है, वह अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करता है। महर्षि अत्रि के नेत्र से उत्पन्न होने वाले श्रीमन् क्षीर सागर के मन्थन काल में उत्पन्न होने वाले, तथा महेश के मुकुट पर रहने वाले चन्द्रदेव आपको नमस्कार है ॥१९॥ हे दिव्यरूप वाले, जगत् के स्वामिन् सुधाकर आपको नमस्कार है। विद्वज्जन आपको शुक्लपक्ष तथा कृष्ण पक्ष दोनों में

एवं यः पूजयेत्सोमं श्रावयेच्च शृणोति वा ।
स पीयूषसमो लोके भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२१॥
एवं सहस्रनाम्ना यः स्तौति पूजयते भुवि । सोऽक्षयं लभते स्वर्गं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२२॥

इति सोमपूजा

पित्तले भाजने कांस्ये दधिपूर्णे घृते शिवे । न्यूनोऽधिकस्तुविभवाच्छ्रुत्वा कर्मविमत्सरः ॥२३॥
स्वर्णे वा राजते वारे सौम्ये कृष्णभवे बुधम् । संस्थाप्य सर्वसंस्थाने दद्याद्बहुसुताय च ॥२४॥
परं भवति सौभाग्यं पीयूषादधिकं भृशम् । स्त्रीणां च पुरुषाणां च नदौर्भाग्यं कदाचन ॥२५॥
रूपसौभाग्यकामोऽहं दधिपूर्णं च भाजनम् । ददामिकांस्यपात्रस्थं देहिसौभाग्यरूपकम् ॥२६॥
द्विजाय वाक्य पूर्वेण दद्याद्विमत्सरो नरः । शक्तितो दक्षिणा देया तथा वस्त्रादिकं नवम् ॥२७॥
भोज्यान्नं सर्वसंपूर्णं तांबूलं सुमनोहरम् । पुष्पमालादिकं दद्याद्रूपसौभाग्यहेतवे ॥२८॥
एवं यः कुरुते दानं सोमोद्दिष्टं द्विजातये । स्वर्लोके नरलोके वा रूपसौभाग्यभुग्भवेत् ॥२९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे सोमार्चनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

रात्रि में बतलाते हैं ॥२०॥ ओम् ह्रां ह्रीं सोमाय नमः यह सोम का जपने योग्य मन्त्र हैं । इसको प्रातःकाल जपना चाहिए । जो इस प्रकार से सोम की पूजा करता है, इस प्रसंग को सुनता और सुनाता है वह प्रत्येक जन्मों में अमृत के समान होता है ॥२१॥ जो सहस्र नाम से चन्द्रमा की स्तुति करता है अथवा पूजा करता है । वह पुनरावृत्ति से रहित दुर्लभ स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥२२॥ इसतरह से सोम पूजा पूरी हुयी । पीतल के अथवा कांसे के दधिपूर्ण पात्र में अथवा घी से भरे पात्र में चन्द्रमा को रखकर इसका श्रवण करके मनुष्य न्यूनाधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करता है॥२३॥ वहुत पुत्रों को प्राप्त करने के लिए सोमवार की कृष्णजन्माष्टमी के दिन सोने अथवा चाँदी के पात्र मे चन्द्रमा को रखकर दान करना चाहिए ॥२४॥ ऐसा करने वाला अमृत से भी अधिक सौभाग्य को प्राप्त करता है चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष उसको कभी दौर्भाग्य नहीं होता है ॥२५॥ उस समय रूप तथा सौभाग्य प्राप्त करने की इच्छा से कांस्यपात्र में स्थित सौभाग्य स्वरूप दधि मैं दान करता हूँ हे चन्द्रदेव ! आप मुझे सौभाग्य तथा रूप प्रदान करें॥२६॥ इस वाक्य को पढकर बिना किसी मत्सर के उसे ब्राह्मण को देना चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए तथा नवीन वस्त्र इत्यादि देना चाहिए॥२७॥ सभी प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण सुन्दर भोजन तथा सुन्दर पान देना चाहिए । रूप तथा सौभाग्य की प्राप्ति के लिए पुष्पमाला आदि देना चाहिए ॥२८॥ इस तरह से सोम की प्रसन्नता के लिए जो ब्राह्मण को दान देता है, वह स्वर्गलोक तथा मनुष्य लोक में रूप तथा सौभाग्य से सम्पन्न होता है ॥२९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टि खण्ड के सोमार्चन नामक अस्सीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८०।।

एकासीवाँ अध्याय

वैशंपायन उवाच

उद्भवं लोहितांगस्य संतोषं तु जनेषु च। प्रभाव वैभवं तेजः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

व्यास उवाच

हरांशसंभवो देवः कुजातः पृथिवीसुतः। सत्त्वस्थस्सत्वसंपूर्णश्शूरः शक्तिधरो भुवि ॥२॥
तीक्ष्णः क्रूरग्रहो देवो लोहितांगः प्रतापवान्। कुमारो रूपसंपन्नो विद्युत्पातमयः प्रभुः ॥३॥
अनेन भर्जिता दैत्याः क्रव्यादा ये सुरद्विषः। दशयोगाच्च मनुजा उद्भिज्जाः पशुपक्षिणः ॥४॥

वैशंपायन उवाच

शंभोरेष कथं जातः कथंजातो महीसुतः। ग्रहो देवः कथं क्रूर एतदिच्छामि वेदितुम्॥५॥
कथमस्य भवेत्तुष्टिः सर्वलोकेषु सर्वदा। गुरो मय्याप्तभावे तु वद निस्संशयं मुखात् ॥६॥

व्यास उवाच

हिरण्याक्षकुले धीमानसुराणां च पार्थिवः। अंधकेति समाख्यातो दैत्यः सर्वसुरांतकृत् ॥७॥
जातो विष्णुवरादेव जातो विष्णुपराक्रमः। तेनैव निर्जिता देवास्सेन्द्राः क्रतुभुजः क्रमात् ॥८॥
ततो देवा विधिं गत्वा वचनं चेदमब्रुवन्। अन्धकेनैव चास्माकं हतं राज्यं सुखं मखः ॥९॥
तस्मात्तस्य वधोपाय उच्यतां तद्विधीयताम्। अथ धाताब्रवीद्वाक्यं देवानस्य च नैधनम् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

नास्ति विष्णुवरादेव पीयूषस्य च भक्षणात्। किंतु तस्यासुरत्वस्य यथा परिभवो ध्रुवम् ॥११॥

भौम की उत्पत्ति तथा भौम की पूजा का वर्णन

वैशम्पायन महर्षि ने कहा— मैं भौम की उत्पत्ति, उनकी सन्तुष्टि तथा मनुष्यों पर भौम के प्रभाव, वैभव तथा तेज को सुनना चाहता हूँ ॥१॥ **व्यासजी ने कहा—** भौम देवता शङ्करजी के अंश से उत्पन्न पृथिवी के पुत्र हैं। वे सत्त्वगुण सम्पन्न, बल सम्पन्न, शूरवीर तथा शक्तिधारण करने वाले हैं ॥२॥ प्रतापी भौम तीक्ष्ण तथा क्रूर ग्रह हैं। कुमार रूपवान् तथा विद्युत् के उत्पात स्वरूप हैं ॥३॥ इन्होंने दैत्यों को, भूंज कर मांस भक्षियों को दे दिया भौम की दशा में मृत मनुष्य उद्भिज तथा पशु-पक्षी होते हैं ॥४॥ **वैशम्पायन महर्षि ने कहा—** भौम शङ्करजी से कैसे उत्पन्न हुए तथा कैसे पृथिवी पुत्र हुए ? ये क्रूर ग्रह कैसे हो गये ? इस बात को मैं जानना चाहता हूँ ॥५॥ भौम की सभी लोगो पर सर्वकालिक तुष्टि कैसे होती है ? हे गुरो ! इसे आप मुझे बतलाइये, मैं आपका आप्ततम शिष्य हूँ ॥६॥ **व्यासजी ने कहा—** हिरण्याक्ष के वंश में असुरों का राजा बुद्धिमान् अन्धकासुर उत्पन्न हुआ। वह सभी देवताओं को मार देता था ॥७॥ भगवान् विष्णु का वरदान प्राप्त होने के कारण विष्णु के ही समान पराक्रम वाला वह इन्द्र आदि सभी देवताओं को क्रमशः पराजित कर दिया ॥८॥ उसके बाद सभी देवताओं ने ब्रह्माजी के पास जाकर कहा कि अन्धकासुर ने हमलोगों के राज्य, सुख तथा यज्ञभाग को छिन लिया है ॥९॥ अतएव आप उस उपाय को बतलाइये जिससे उसका वध हो जाय, उसके बाद ब्रह्माजी ने अन्धकासुर के निधन का उपाय बतलाया॥१०॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** भगवान् विष्णु के वरदान को प्राप्त करके उसने अमृत का पान कर लिया है, अतएव उसकी मृत्यु तो नहीं हो सकती है; किन्तु उसकी आसुर भावना बदल जाय ॥११॥ ऐसा उपाय मैं लोक कल्याण करने के

कुर्वे लोकहितार्थाय श्रद्धां कामसमन्विताम्। विचिकित्सा तु तत्रैव सर्वास्त्रीरतिगच्छति ॥१२॥
त्यक्त्वैकां पार्वतीं दुर्गां न तस्य मानस स्थिरम् । ततः क्रुद्धो जगत्स्वामी तं च वैरूप्यतां नयेत् ॥१३॥
ततोऽसुरत्वं संत्यज्यगणस्तस्य भविष्यति । एवमुक्त्वा प्रजाध्यक्षः श्रद्धां कामसमन्विताम् ॥१४॥
विचिकित्सां स्वमायां च प्रेषयामास तं प्रति । ततोविचेष्टितः कामाद्योपान्वेषणतत्परः ॥१५॥
स्वदारान्परयोषां च नापश्यद्विचिकित्सया । ततो मायाप्रयुक्तो सौ त्रैलोक्यं विचचार ह ॥१६॥
दृष्टं च हिमवत्पृष्ठे स्त्रीरत्नं चातिशोभनम् । दृष्ट्वा च पार्वतीं दैत्य; कामस्य वशगोऽभवत्॥१७॥
ज्ञानलोपात्ततो दुर्गां ग्रहीतुं तां सचेच्छति। उमा च कोटवी रूपं कृत्यादेहस्य चात्मनः ॥१८॥
ईश्वरस्यांतिकस्था च ग्रहीतुं तां ससार सः । ततःकामविचेताश्च उन्मतीकृतचेतनः ॥१९॥
न जहाति शिवां धात्रीं पार्वतीं दैत्यपुंगवः । ततोध्यानात्समागम्य मिलितः पार्वतीं धवः ॥२०॥
दृष्ट्वा तं च स दैत्येन्द्रः प्रगतस्तु स्वमालयम् । सज्जीकृत्य स्वयोधांश्च शंभुं जेतुं समुत्सुकः॥२१॥
गौरीमेवसमानेतुं काममोहादचेतनः । एतच्छ्रुत्वातु त्रिदशा गत्वा तं नंदिनेरिताः॥२२॥
अकुर्वंश्च महद्युद्धं घोरं लोकभयंकरम्। दैत्यान्रणे मृतांस्तत्र दैत्याचार्योह्यजीवयत् ॥२३॥
एतद् वृत्तं तु कैलासे सर्वे चैवन्यवेदयन् । क्रोधाच्छंभुस्तदा वाक्यं नंदिनं निजगादह ॥२४॥
गच्छदैत्यालयं वीर द्रुतमेव ममाज्ञया । पश्यतां सर्वदैत्यानां दैत्येंद्रस्य च संसदि ॥२५॥
गृहीत्वा चिकुरेऽत्यर्थं भार्गवं तं दुरात्मकम् । लब्ध्वा चास्मत्सकाशं वै विह्वलं चानय क्षणात्॥२६॥

लिए करूँगा । उसी के विषय में विचार करना है । वह सभी स्त्रियों से प्रेम करता है ॥१२॥ वह केवल दुर्गा स्वरूपिणी पार्वती को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करना चाहता है । यदि वह उनको चाहने लगे तो जगत् के स्वामी शङ्करजी उसको विरूप बना दें ॥१३॥ उसके बाद वह अपनी आसुर भावना को त्याग देगा और शङ्करजी उसे अपना गण बना देंगे । इसतरह से कहकर ब्रह्माजी ने कामयुक्त श्रद्धा ॥१४॥ विचिकित्सा तथा अपनी माया को अन्धकासुर के प्रति प्रेरित किया । विचिकित्सा के कारण वह अपनी पत्नियों तथा दूसरों की पत्नियों का विचार नहीं करता था । उसके वाद वह कामुक बना हुआ सदा रमणियों का अन्वेषण करने लगा ॥१५॥ उसके बाद वह माया से प्रेरित होकर त्रैलोक्य में विचरण किया ॥१६॥ उसने हिमालय पर अत्यन्त सुन्दर स्त्री को देखा । पार्वतीदेवी को देखकर वह अत्यन्त कामुक बन गया ॥१७॥ ज्ञान का लोप हो जाने के कारण वह पार्वती देवी का अपहरण करना चाहा । उमा ने भी अपने शरीर को स्यारिन का रूप बना दिया ॥१८॥ भगवान् शिव के सन्निकट विद्यमान पार्वतीजी को पकडने के लिए वह वहाँ गया । उस समय कामार्त होने के कारण वह उन्मत्त हो गया था ॥१९॥ उसने जगन्माता पार्वतीजी को पकड़ लिया और उन्हें छोड़ता भी नहीं था उसके बाद ध्यान करके पार्वती देवी अपने पति से मिल गयीं ॥२०॥ शङ्करजी को देखकर वह दैत्यराज अपने घर चला गया और शङ्करजी को परास्त करने के लिए उत्सुक वना हुआ वह अपनी सेना को पार्वतीजी को ही प्राप्त करने के लिए सज्जाया । इस समाचार को सुनकर नन्दी के द्वारा प्रेरित सभी देवता ॥२१-२२॥ शङ्करजी के पास जाकर अन्धकासुर से महायुद्ध करने लगे, वह युद्ध अत्यन्त भयङ्कर था । मरे हुए दैत्यों को दैत्याचार्य जीवित कर देते थे ॥२३॥ इस वृत्तान्त को सबों ने कैलास जाकर शङ्करजी को सुनाया । यह सुनकर क्रुद्ध हुए शङ्करजी ने नन्दी से कहा ॥२४॥ हे वीर ! मेरी आज्ञा से तुम शीघ्र ही अन्धकासुर के यहाँ जाओं और सबों के सामने दैत्यों की सभा में प्रवेश करके ॥२५॥ दुष्ट शुक्राचार्य का केश पकड़कर घसीटते हुए व्याकुल शुक्राचार्य को मेरे पास लाओ ॥२६॥ उसके बाद शङ्करजी के द्वारा प्रेरित होकर

ततो नंदीश्वरः श्रीमान्पार्वतीपतिनेरितः । काव्यं तं कुंतले धृत्वा दैत्यानां पुरतो बलात् ॥२७॥
आनयंतं च तं दैत्या जघ्नुः प्रहरणै शरैः । न शेकुस्ते रुजां कर्तुं नंदिनो बलशालिनः ॥२८॥
देवानामग्रतो नंदी गृहीत्वा तं च कुंतले । हरस्य पुरतो हृष्टः सह तेन समाययौ ॥२९॥
गृहीत्वा भार्गवं शंभुरसुराणां गुरूं रुषा। अगिलद्रौद्रमूर्तोसौ कालांतकसमः प्रभुः ॥३०॥
ततो दैत्यपतिः क्रुद्धः सर्वसैन्यवृतोबली । दुद्राव शंकरं तत्र घोरैः प्रहरणादिभिः ॥३१॥
त्रिदशाश्च तथा क्रुद्धास्ततो विद्याधरादयः । प्रययुः समरं तत्र दैत्यानां च भृशं रुषा ॥३२॥
एतस्मिन्नंतरे घोरं युद्धं भीष्मं समुत्थितम् । देवदानवयोरेवं सर्वलोकभयङ्करम् ॥३३॥
ततः प्रत्ययितास्त्रैश्च देवा निघ्नन्ति दानवान् । दनुजा निर्जरांस्तत्र विनिघ्नंति महाहवे ॥३४॥
शातकुंभमयाङ्गैस्ते शरैर्वज्रसमानकैः। बिभिदू रत्नपुंखैश्च परस्परजयैषिणः ॥३५॥
दीपयंति भृशं कांतैस्तद्गात्राणि नभांसि च। वीर्यवंतो महादैत्यानमोघैरस्त्रासंचयैः ॥३६॥
हत्वा च पातयामासुः काश्यपाः सुरसत्तमाः। जगद्व्याप्तं महासैन्यं बलायुधसुसंवृतम् ॥३७॥
नीतं क्षयं सुरैः सर्वैः शस्त्रैः प्रत्ययितैःक्षणात्। स्वयंच युध्यमानेन महादेवेन यत्नतः ॥३८॥
शूलोद्धृतोपि सुचिरमविनष्टोऽथ नम्रधीः। अन्धको गणतां नीत्वा कृतोभृंगीरिटिर्द्विज ॥३९॥
ततो देवान् समाभाष्य शुक्रमुद्गीर्णवान् शिवः । भूमौ निपतितो गर्भस्ततो भौम इति स्मृतः ॥४०॥
शुक्रश्शिवं समाभाष्य गतो दैत्यान्मुदान्वितः । एवं भौमस्समुत्पन्नो हरांशो भूसमुद्भवः ॥४१॥

नन्दीश्वर दैत्यों के सामने ही शुक्राचार्य के केश को पकड़कर लाने लगे। उस समय दैत्यों ने उनके ऊपर अस्त्रों तथा शस्त्रों से प्रहार किया। किन्तु बलशाली नन्दी को वे घायल नहीं कर सके ॥२७-२८॥ देवताओं के ही सामने नन्दी शुक्राचार्य के वालों को पकड़कर प्रसन्नता पूर्वक अनेक देवताओं के साथ शङ्करजी के सामने आ गये ॥२९॥ क्रुद्ध शङ्करजी काल तथा यमराज के समान रौद्र रूप धारण किए हुए शुक्राचार्य को पकड़कर निगल गये ॥३०॥ उसके वाद दैत्यराज अन्धक सेना के साथ क्रुद्ध होकर भयङ्कर शस्त्रों से सजकर शङ्करजी के समक्ष आ गया ॥३१॥ उस समय देवता तथा विद्याधर आदि भी क्रुद्ध होकर समराङ्गण में दैत्यों के विरुद्ध आ गये ॥३२॥ और उस समय भयङ्कर घोर युद्ध देवताओं और दैत्यों में होने लगा ॥३३॥ उस समय देवता अपने विश्वस्त शस्त्रों से दैत्यों को मार रहे थे और दानव भी उस महायुद्ध में देवताओं को मार रहे थे ॥३४॥ परस्पर में एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से सुवर्ण निर्मित, वज्र के समान भयङ्कर तथा जिनके पुंख रत्नों के वने थे ऐसे बाणों से एक दूसरे को छेद रहे थे ॥३५॥ वे बाण अपनी कान्ति से शरीरों तथा आकाश को प्राकाशित कर रहे थे। पराक्रमी देवता अपने अमोघ अस्त्रों से दैत्यों को मारकर गिरा दिए। जगत् में व्याप्त तथा बल एवं आयुध से युक्त सेना को देवताओं ने अपने विश्वस्त शस्त्रों से क्षणभर में विनष्ट कर दिया और स्वयं सप्रयास युद्ध करते हुए शङ्करजी के द्वारा ॥३६-३८॥ त्रिशूल से दवाये रहने पर अन्धक मरा नहीं वह विनीत हो गया और शङ्करजी ने उसको अपना भृङ्गीरिटी नामक गण वना दिया ॥३९॥ उसके बाद देवताओं से बात करके महादेव ने शुक्राचार्य को उगल दिया। वह गर्भ पृथिवी पर गिरकर भौम ग्रह बन गया ॥४०॥ शुक्राचार्य भी शिवजी से बातें करके प्रसन्नता पूर्वक दैत्यों के पास चले गये। इसतरह शङ्करजी के अंशभूत भौम ग्रह पृथिवी से उत्पन्न हुआ ॥४१॥ सुन्दर व्रत वाले लोगों को भौम ग्रह की दशा

तस्य पूजा चतुर्थ्यांतु भौमवारे च सुव्रतैः। दशाद्यरिष्टे च तथा गोचरेऽनिष्टराशिगे ॥४२॥
त्रिकोणे मंडले चैव रक्तपुष्पानुलेपनैः । एवं वै पूजितो भौमः प्रयच्छति मतिं धनम् ॥४३॥
पुत्रान्सुखं यशश्चैव किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ।

व्यास उवाच

एतद्वः कथितं शिष्या धर्माख्यानं शुभावहम् ॥४४॥
यच्छ्रुत्वा न पुनर्भूयो जायते म्रियतेपि वा । द्विजातीनां पुण्यदंच संसेव्यं च शुभेप्सुभिः ॥४५॥
यथासुखं चगच्छध्वं कृतकृत्याममाज्ञया।

ब्रह्मोवाच

एवं विश्राव्य भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥४६॥
निर्णीय धर्मविविधं शम्याप्रासमगात्सुत। त्वमपि श्रद्धया वत्स ज्ञात्वा तत्वं यथासुखम्॥४७॥
विहरस्व यथाकालं गायमानो हरिं मुदा । लोकान् धर्मं चोपदिशन् प्रीणयन् जगतां गुरुम्॥४८॥

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्तः प्रययौ भूप नारदो गंधमादनम्। नारायणं मुनिवरं द्रष्टुं वदरिकाश्रमे॥४९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे भौमोत्पत्तिपूजनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

होने तथा भौम के अनिष्ट राशि पर स्थित होने पर भौमवारी चतुर्थी तिथि को व्रत करना चाहिए ॥४२॥ त्रिकोणमण्डप रक्त चन्दन से बनाकर उसमें भौम की लाल पुष्प से पूजा करने पर भौम बुद्धि तथा धन प्रदान करते हैं ॥४३॥ वे पुत्र, सुख तथा यश को भी प्रदान करते है । अब क्या सुनना चाहते हो ? **व्यासजी ने कहा—** हे शिष्यों ! मैंने तुमलोगों को यह धार्मिक आख्यान सुनाया ॥४४॥ इसका श्रवण करके मनुष्य जन्म मरण से मुक्ति पा लेता है । यह ब्राह्मणों को पुण्य प्रदान करने वाला है । अतएव काल्याण चाहने वालों को इसका सेवन करना चाहिए ॥४५॥ अब आपलोग मेरी आज्ञा से अपने अभिप्रेत स्थान पर जायँ । **ब्रह्माजी ने कहा—** इसतरह सत्यवती के पुत्र भगवान् व्यासजी अपने शिष्यों को प्रेषित करके तथा अनेक धर्मो का निर्णय करके शम्याप्रास चले गये । हे वत्स नारदजी भी श्रद्धा पूर्वक तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके अपने मनोनुकूल श्रीहरि का कीर्तन करते हुए लोगों को धर्मोपदेश करते हुए तथा श्रीभगवान् को प्रसन्न करते हुए विचरण करने लगे ॥४६-४८॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा—** हे भीष्मजी ! ब्रह्माजी के इसतरह से कहने पर नारदजी बदरिकाश्रम में भगवान् बदरीनारायण का दर्शन करने के लिए गन्धमादन पर्वत पर चले गये ॥४९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के भौम की उत्पत्ति तथा पूजन वर्णन नामक एकासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८१॥

बयासीवाँ अध्याय

भीष्म उवाच

श्रुतं सूर्यस्य चंद्रस्य भौमस्यापि प्रपूजम्। बुधस्य सोमसूनोश्च पूजनं कथयाधुना ॥१॥

पुलस्त्य उवाच

तारागर्भसमुद्भूतो बुधश्चंद्र कुमारकः। सौम्यः क्रूरो ग्रहो ज्ञेयः शुभाशुभप्रदो नृणाम् ॥२॥
शराकारं मंडलं तु बुधस्य परिकीर्तितम्। हरिन्मणिसमैर्वर्णैः श्चूर्णैः कुर्यात्तुमंडलम् ॥३॥
पूजयेत्तत्र गंधाद्यैः पुष्पैर्धूपैस्सुशोभनैः। दानं च विधिवत्कुर्याद्दशारिष्टे च गोचरे ॥४॥
कर्पूराश्चैव मुद्गाश्च हरिद्वस्त्रं हरिन्मणिः। सुवर्णं च यथाशक्ति दद्याद्बोधनतुष्टये ॥५॥
सोमपुत्रमहाप्राज्ञ वेदवेदांगपारग। नमस्ते ग्रहमध्यस्थ प्रसन्नो भव मे सदा ॥६॥
इति स्तुत्वा महाराज बुधभक्त्या समाहितः। प्राप्नुयान्निखिलान्कामान्सोमसूनुप्रसादतः ॥७॥
गुरोश्च पूजनं प्रोक्तं पट्टसाकारमंडले। पीतवर्णैः सुनिष्पन्नैः चूर्णैः राजन् सुशोभनैः ॥८॥
पीतैर्गंधयुतैः पुष्पैर्वस्त्रैर्हेम्ना च पूजयेत्। दशागोचरयोर्दौष्ट्ये दानं दद्याच्च शक्तितः ॥९॥
चणकद्विदलं चैव पीतवस्त्रं सुवर्णकम्। पुष्परागं तुविप्राय दद्याच्चारिष्टशांतये ॥१०॥
बृहस्पते सुराचार्य सर्वशास्त्रविशारद। दानेनानेन संतुष्टो भव सौम्यो ममाधुना ॥११॥
एवं कृते तु राजेंद्र स्वानुकूलो भवेद्गुरुः। सर्वान्कामानवाप्नोति नरो गुरुसमर्चनात् ॥१२॥
भार्गवस्यापि वक्ष्यामि पूजनं नृपतेऽधुना। यत्कृत्वा सर्वकामाप्तिः सम्यक्पुसां प्रजायते ॥१३॥

पुराणावतार वर्णन तथा सभी ग्रहों की पूजा का वर्णन

भीष्मजी ने कहा— मैंने सूर्य, सोम तथा भौम की भी पूजा का वर्णन सुन लिया। अब आप सोम के पुत्र बुध के पूजन विधि को वतलायें ॥१॥ **पुलस्त्य महर्षि ने कहा**— चन्द्रमा के पुत्र बुध तारा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वुध को सौम्य तथा क्रूर दोनों प्रकार का ग्रह समझना चाहिए यह मनुष्य को शुभ तथा अशुभ दोनों प्रदान करता है ॥२॥ वुध का मण्डल वाण के आकार का होता है। नीलमणि के समान हरे वर्ण के चूर्ण से बुध का मण्डल वनाना चाहिए ॥३॥ उसी में गन्ध, पुष्प तथा सुन्दर धूप से बुध का पूजन करना चाहिए। बुध की अरिष्ट दशा होने पर विधिपूर्वक कर्पूर, मूंग, हरा वस्त्र, हरी मणि, तथा सुवर्ण का अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए जिससे कि बुध प्रसन्न हों ॥५॥ उसके बाद बुध की स्तुति करे— हे महाप्राज्ञ, सोमपुत्र, वेदों तथा वेदांगों के ज्ञाता बुध आपको नमस्कार है। आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥६॥ हे महाराज भक्ति पूर्वक बुध की इस तरह से स्तुति करके मनुष्य वुध की कृपा से अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण कर लेता है ॥७॥ गुरु का पूजन पट्टिस के समान आकार वाले मण्डल में वतलाया गया है। गुरु का मण्डल पीले सुन्दर चूर्ण से बनाना चाहिए ॥८॥ गुरु की पूजा पीले, सुगन्धित पुष्पों तथा पीले वस्त्र से करना चाहिए। गुरु की दशा और गोचर के अरिष्ट होने पर विधि पूर्वक शक्ति के अनुसार ब्राह्मण को दान देना चाहिए ॥९॥ चने की दाल, पीला वस्त्र, सुवर्ण तथा पुष्प रागमणि ब्राह्मण को दान करे। उसके वाद प्रार्थना करे हे सभी शास्त्रों में निपुण सुराचार्य बृहस्पति इस दान से सन्तुष्ट होकर आप मेरे लिए कल्याणकारी हो जायँ ॥१०-११॥ हे राजेन्द्र ऐसा करने से बृहस्पति अनुकूल हो जाते हैं। बृहस्पति की पूजा

पंचकोणं समुद्दिष्टं मंडलं भार्गवस्य तु । चूर्णकैः श्वेतवर्णैश्च विधिना सुधियाकृतम् ॥१४॥
श्वेतगंधैश्च पुष्पैश्च वस्त्रैश्चापि सितैस्तथा । पूजयेद्भार्गवं भक्त्या नरः श्रद्धासमन्वितः ॥१५॥
रौप्यंच दक्षिणादानं यथाशक्ति प्रकीर्तितम् । दशाद्यरिष्टे चोत्पन्ने सितमश्वं प्रदापयेत् ॥१६॥
तंडुलाः श्वेतवस्त्रंच रौप्यं चंदनमेव च । कर्पूरं सुगंधाढ्यं देयं दानं द्विजातये ॥१७॥
भृगुपुत्र महाभाग दानवानां पुरोहित । दानेनानेन संतुष्टो भव सर्वासुरार्चित ॥१८॥
इति मंत्रं समुच्चार्य दद्याद्दानं यथोदितम् । तस्य तुष्टो भवत्याशु भार्गवः कुरुनंदन ॥१९॥
शनैश्चरस्य पूजार्थं मंडलं च नराकृति । कृत्वा चूर्णैः कृष्णवर्णैः पूजयेत् तत्र भक्तितः ॥२०॥
कृष्णै र्गन्धैश्च पुष्पैश्च वस्त्रैश्चापि तथाविधैः । लोहं च दक्षिणादानं पिण्याकं च तिलस्यच ॥२१॥
दानंशनैश्चरारिष्टे कृष्णां गां कृष्णवस्त्रकैः । सुवर्णं च यथाशक्ति दद्यान्नीलमणिं तथा ॥२२॥
सूर्यसूनो महाभाग छायापुत्र महाबलः । अयोदृष्टे भव शने प्रसन्नोऽस्मात्प्रदानतः ॥२३॥
एवं स्तुत्वा शनिं भक्त्या यश्च दद्याद् द्विजातये । स्वानुकूलो भवेत्तस्य शनिः पापे च गोचरे ॥२४॥
राहोर्वर्णादिकं सर्वशनिवन्मंडलं तथा । सूर्यकारं समुद्दिष्टं तत्र पूजार्कसूनुवत् ॥२५॥
गोमेदं सर्षपाश्चैव तिला माषाश्च कृष्णकाः । महिषी च तथाच्छागो दानं राहोः प्रकीर्तितम् ॥२६॥
सिंहिकासुत दैत्येंद्र राहोचंद्रार्कमर्दन । भवतुष्टो महाभाग दानेनानेन सुव्रत ॥२७॥
केतोर्मडलकं कुर्यद्ध्वजाकृति सुशोभनम् । शनिवत्सकलं ज्ञेयं पूजावर्णादिकं नृप ॥२८॥
सप्तधन्यं समुद्दिष्टं सस्वर्णं केतुदानकम् । एवं कृते स्वानुकूलौ भवेतां च नृणां नृप ॥२९॥

करने से मनुष्य की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥१२॥ हे राजन् ! इस समय मैं शुक्र की भी पूजा बतलाता हूँ। उस पूजन को करके मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति हो जाती हैं ॥१३॥ शुक्र का मण्डल पाँच कोणों वाला बतलाया गया है । उसे श्वेत चूर्ण से बनाना चाहिए ॥१४॥ श्रद्धा सम्पन्न पुरुष को चाहिए कि वह शुक्र की पूजा श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प तथा श्वेत वस्त्र से करे ॥१५॥ इसकी दक्षिणा भी अपनी शक्ति के अनुसार चाँदी ही देनी चाहिए । शुक्र की दशा अरिष्ट होने पर ब्राह्मण को श्वेत घोड़ा का दान देना चाहिए ॥१६॥ किञ्च ब्राह्मण को श्वेत चावल श्वेत वस्त्र, चाँदी, श्वेत चन्दन, सुगन्धित कर्पूर का दान देना चाहिए ॥१७॥ फिर प्रार्थना करे कि हे महाभाग ! महर्षि भृगु के पुत्र तथा दैत्यों के पुरोहित एवं सभी असुरों से पूजित शुक्राचार्य इस दान से आप सन्तुष्ट होएँ ॥१८॥ इस मंत्र को पढकर ही यथेष्ट दान देना चाहिए । हे कुरुनन्दन ! ऐसा करने से शुक्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥१९॥ शनैश्चर की पूजा के लिए काले चूर्ण से मनुष्य के आकार का मण्डल बनाकर भक्तिपूर्वक ॥२०॥ उसी में शनि की पूजा काले चन्दन, पुष्प, काले वस्त्र से करे और तिल का लड्डू एवं लोहे का दान करना चाहिए ॥२१॥ शनिश्चर के अरिष्ट होने पर अपनी शक्ति के अनुसार काली गौ, काले वस्त्र, नीलमणि तथा सुवर्ण का दान देना चाहिए ॥२२॥ उसके बाद स्तुति करे हे छाया देवी के गर्भ से उत्पन्न महाबलवान् सूर्य पुत्र महाभाग शनि मेरे द्वारा दिये गये इस दान के प्रभाव से आप मेरे लिए अधोदृष्टि हो जायँ । इस प्रकार से स्तुति करके जो ब्राह्मण को दान देता है, उसके लिए पाप गोचर में विद्यमान शनि अनुकूल हो जाते हैं ॥२३-२४॥ राहु के वर्ण आदि सब कुछ शनि के समान होते हैं । राहु का मण्डल सूर्पाकार होता हे । राहु की पूजा भी शनि के ही समान होती है । राहु के लिए दान गोमेद, सरसो, तिल, काली उड़द, भैंस तथा बकरे का दान बतलाया गया है ॥२५-२६॥ उसके बाद प्रार्थना करे हे सूर्य तथा चन्द्रमा को पीडित करने वाले सिंहिका पुत्र दैत्येन्द्र राहो इस दान से आप सन्तुष्ट हो जायँ ॥२७॥ केतु का सुन्दर मण्डल ध्वज

प्रदद्यातां धनं पुत्रान् सुखं सौभाग्यमेव च । आकृष्णोति रवेर्मंत्र इमंदेवास्तथा विधोः ॥३०॥
अग्निर्मूर्धेति भौमस्य मंत्रो जप्येर्हणे तथा । उद्बुध्यस्वेतींदुसूनो बृहस्पते गुरोस्तथा ॥३१॥
अन्नात्परीति शुक्रस्य शन्नोदेवीरयं शनेः । कयान इति राहोश्च केतोः केतुमितिस्मृतः ॥३२॥
एते मंत्रा स्समुद्दिष्टा ग्रहाणां पूजने जपे । एवंकृते नृपश्रेष्ठानुकूला अखिला ग्रहाः ॥३३॥
भवंति पुंसां सततं यच्छंति च सुसंपदः । एतन्महाराज मया समस्तं तुभ्यं समुद्दिष्टमिहक्रमेण॥३४॥
श्रुत्वा नरः सर्वश्रुतार्थसारमेतीश्वरस्यैव च सन्निधानम् ।
इदं पवित्रं यशसोनिधानमिदं पितॄणामतिवल्लभं स्यात् ॥३५॥
इदंच देवेष्वमृताय कल्पते पुण्यावहं पातकिनां च पुंसाम् ।
इति पठति यशस्यं यः शृणोतीह भक्त्या मधुमुरनरकारेरर्चनं वाथ पश्येत् ॥३६॥
मति मपिच जनानां योददातींद्रलोके विधिशिवविबुधेन्द्रैः पूज्यते कल्पमेकम् ।
य इदं शृणुयान्नित्यमृषीणां चरितं शुभम् ॥३७॥
विमुक्तस्सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोके महीयते। तपः कृते प्रशंसंति त्रेतायां ज्ञानमेव च ॥३८॥
द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौ युगे । सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्॥३९॥
अभयं सर्वभूतानां नास्तिदानमतः परम् । दानं प्रधानं शूद्रस्य त्वित्याह भगवान्प्रभुः ॥४०॥
दानेन सर्वकामाप्तिस्तस्य संजायते तपः । पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥४१॥

के आकार का बनाना चाहिए । केतु की पूजा तथा उनका वर्ण शनि के ही समान होता है ॥२८॥ केतु का दान सप्तधान्य तथा सुवर्ण बतलाया गया है । हे भीष्म ! ऐसा करने से राहु और केतु दोनों पूजा करने वाले के अनुकूल होकर ॥२९॥ धन, पुत्र, सुख तथा सौभाग्य प्रदान करते हैं । सूर्य का मन्त्र **अकृष्णेन इत्यादि** है, और चन्द्रमा का मन्त्र **इमं देवा० इत्यादि** है ॥३०॥ भौम का जपने योग्य मंत्र **अग्निमूर्धा० इत्यादि** है, इसी से भौम की पूजा भी करे । बुध का मंत्र **उद्बुध्यस्व० इत्यादि** है और गुरु का मन्त्र **बृहस्पते अति० इत्यादि** है ॥३१॥ शुक्र का मन्त्र **अन्नात् परि० इत्यादि** है तथा शनि का मन्त्र **शन्नो देवी इत्यादि** है । राहु का मन्त्र **कयान इत्यादि** है तथा केतु का मन्त्र **केतो कृण्वन्** इत्यादि है ॥३१-३२॥ ग्रहों के पूजन और जप के लिए ये ही मन्त्र बतलाये गये है । हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसा करने से सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं और आराधक को सदा सम्पति प्रदान करते है । हे महाराज! इस प्रकार से इन सारी बातों को मैंने आपको क्रमशः बतलाया ॥३३-३४॥ समस्त श्रुत अर्थो के सार का श्रवण करके मनुष्य ईश्वर के सन्निधान को प्राप्त करता है । यह आख्यान अत्यन्त पवित्र, यश का आकर तथा पितरों को प्रिय है ॥३५॥ यह देवताओं को अमृत के समान प्रिय है तथा पातकियों को पुण्य प्रदान करने वाला है । इस यश प्रदान करने वाले आख्यान को जो पढता अथवा सुनता है तथा मधु, मुर एवं नरकासुर (भौमासुर) के शत्रु श्रीहरि की पूजा का जो दर्शन करता है ॥३६॥ जो इसका ज्ञान लोगों को प्रदान करता है, वह ब्रह्मा, शिव तथा देवेन्द्र के द्वारा एक कल्प पर्यन्त पूजित होता है । जो मनुष्य इस ऋषियों के चरित का श्रवण करता है ॥३७॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में पूजित होता है । सत्ययुग में तपस्या की प्रशंसा होती है, त्रेता में ज्ञान की ही प्रधानता होती है, द्वापर में यज्ञ को मुक्ति का साधन बतलाया गया है और कलियुग में केवल दान की ही महत्ता होती है । सभी दानो में सर्वोत्तम दान सभी भूतों को अभय प्रदान बतलाया गया है । अभय दान से बढकर कोई दूसरा दान नहीं है। भगवान् ने शूद्रों के लिए सभी समयों में दान को ही प्रधान बतलाया है ॥३८-४०॥ शूद्र की सारी कामनाएँ दान से

पुराणमेतत्कथितं तीर्थश्राद्धानुवर्णनम् । शृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान् संजायते नरः ॥४२॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सलक्ष्मीकं हरिं लभेत् । इदं महाराज अगादि तुभ्यं पुण्यं महापातकनाशनं च॥४३॥
ब्रह्मार्करुद्रैश्चसुपूजितं च श्रोतव्यमेतत्प्रवदंति तज्ज्ञाः ।
सृष्टिखंडमिदं राजन् मया तुभ्यं प्रकीर्तितम् ॥४४॥
पुराणस्यादिभूतं च नवधासृष्टिपौष्करम् । द्विजेभ्यः श्रावयेद्विद्वान्यश्च वैश्रृणयात्पठेत् ॥
कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके समोदते ॥४५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे पुराणावतारे ग्रहार्चनवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

सृष्टिखंडं समाप्तम्

ही पूरी हो जाती है, उसके लिए वही तप है । यही उसके लिए पवित्र पुण्य आयु को बढाने वाला तथा पापों को विनष्ट करने वाला है ॥४१॥ इस वर्णित पुराण में तीर्थों तथा श्राद्धों का वर्णन किया गया है । जो इस पुराण को पढता अथवा सुनता है वह ऐश्वर्य सम्पन्न हो जाता है ॥४२॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है । हे महाराज ! आपको यह मैं अत्यन्त पवित्र तथा पापों को विनष्ट करने वाला पुराण सुनाया ॥४३॥ यह पुराण ब्रह्मा, रुद्र तथा सूर्य से पूजित है । पुराण पुरुष इसको सुनने योग्य बतलाते हैं । हे महाराज ! मैंने आपको सृष्टिखण्ड सुनाया है ॥४४॥ यह पद्मपुराण का प्रथम खण्ड है । इसमें ब्रह्माजी की नव प्रकार की सृष्टियों का वर्णन है । विद्वान् को चाहिए कि वह इसे ब्राह्मणों को सुनाये तथा जो इसे सुनता अथवा पढता है वह ब्रह्माजी के लोक में सौ कल्पों से भी अधिक काल तक सुख पूर्वक निवास करता है ॥४५॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के प्रथम सृष्टिखण्ड के पुराणावतार तथा ग्रहों की पूजा वर्णन नामक बयासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८२।।

इसतरह पद्ममहापुराण का सृष्टिखण्ड सम्पूर्ण हुआ ।